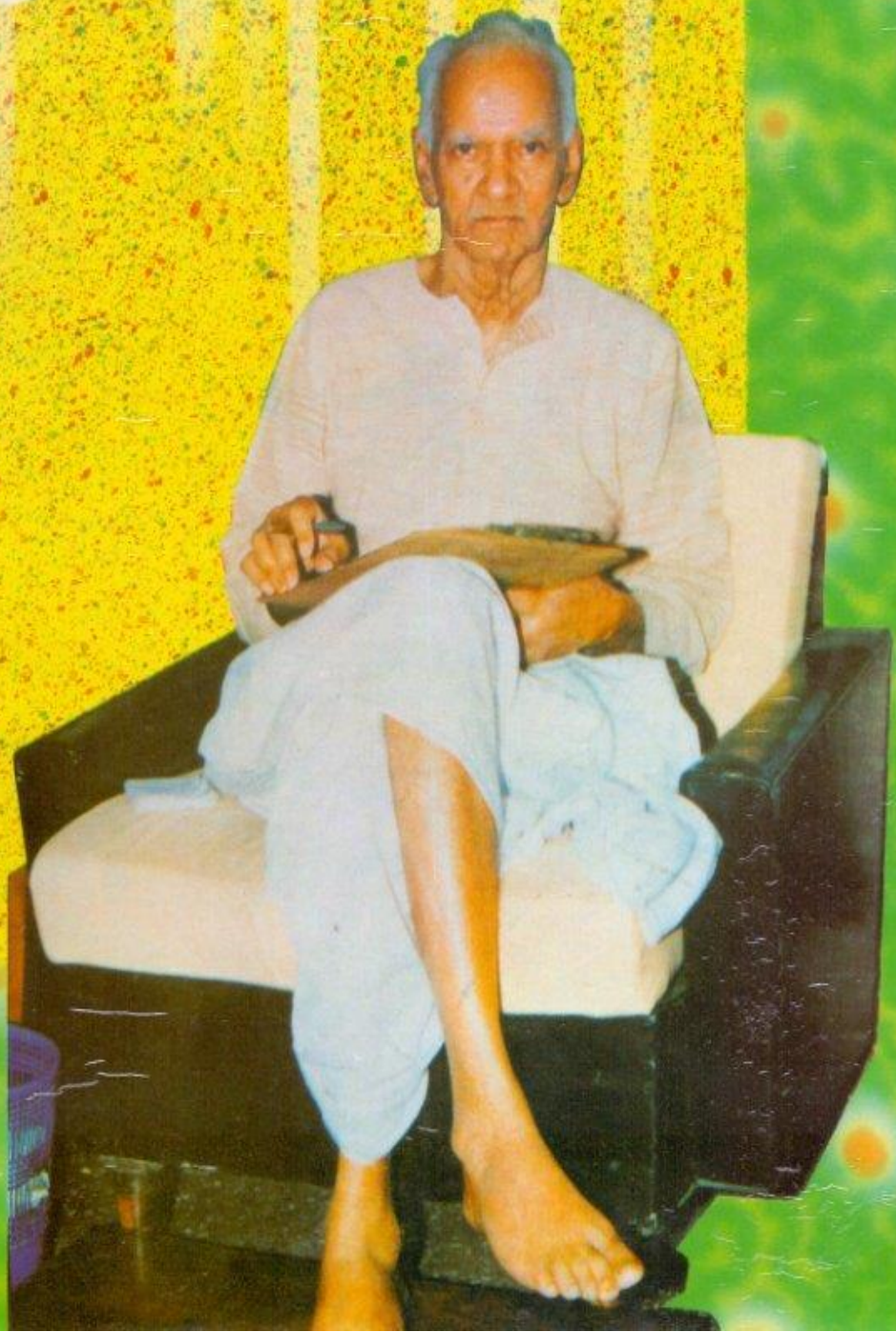
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

तीर्थ सेवन क्यों और कैसे ?



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

तीर्थ सेवन क्यों ? और कैसे ?



प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org



मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

परमपूज्य गुरुदेव ने शांतिकुञ्ज को गायत्री तीर्थ में परिणित कर न केवल तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित किया अपितु, इसके साथ ही भारतीय संस्कृति की चिरपुरातन जो पाँच स्थापनाएँ जो हमारी धरोहर थीं, उन्हें भी नूतन प्राण दिए—ये हैं—देवालय, आश्रम, आरण्यक, गुरुकुल एवं तीर्थ । आज इनकी चिन्हपूजा मात्र दिखाई देती है, वास्तविकता में इनका वह रूप नहीं देखा जाता, जिनके कारण कभी भारतीय संस्कृति सर्वोच्च शिखर पर थी ।

इन सबके बारे में पृथक—पृथक विवेचन करते हुए पूज्यवर ने लिखा है कि धर्म कृत्यों में सबसे अधिक व्यापकता, लोकमान्यता और विशाल स्वरूप तीर्थयात्रा को मिला है । दूसरे धर्म कृत्यों के लिए धर्म प्रेमी जनसमुदाय का जितना श्रम, समय, मनोयोग और धन खर्च होता है, उन सबके सम्मिलित योग से भी अधिक शक्तियाँ और साधन प्रयास तीर्थयात्रा में नियोजित होते हैं । हजारों लाखों बड़े—छोटे तीर्थ भारत में हैं । सभी के संबंध में किन्हीं न किन्हीं समुदाय, वर्ग विशेष की मान्यता है—महिमा है, कुछ सार्वभौम है, जहाँ प्रतिवर्ष तीर्थयात्रा का क्रम चलता है यथा चारों धाम पूरे भारत के—एवं उत्तरा खण्ड के । इस तीर्थयात्रा का उद्देश्य क्या था, क्यों हमारे ऋषि चाहते थे कि मनुष्य घर से बाहर निकले एवं तीर्थों की पावन चेतना से—ऊर्जा से अनुप्राणित होकर आए ? यह समझे बिना मात्र पर्यटन हेतु या धर्म धारणा से प्रेरित होकर पर दिशा के अभाव में भारी धन, समय, श्रम व सरकार की भी शक्ति इन सब कार्यों में लगती है । तीर्थ क्या थे, क्या बन गए, क्या बनना चाहिए के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव ने वास्तविक तीर्थ की परिभाषा दी है एवं वहाँ जाकर क्या प्राप्त करने की इच्छा से जाना चाहिए, वहाँ का अनुशासन कैसे पाला जाना चाहिए, संस्कारों से कैसे अनुप्राणित होना चाहिए, यह सब समझाया है ।

हिमालय को ध्रुव चेतना का केन्द्र बताते हुए पूज्यवर लिखते हैं कि वहीं पर दुर्गम क्षेत्रों में ही शिव व शक्ति के प्रतीक, शैव व वैष्णव धर्म के परिचायक देवालय के रूप में क्यों विनिर्मित होते चले गए । उनने हिमालय को ऋषियों की कार्य स्थली व अध्यात्म ऊर्जा का धनीभूत क्षेत्र बताया है, विशेष रूप से हिमालय का हृदय क्षेत्र जहाँ यमुनोत्री से कैलाश—मान सरोवर तक के क्षेत्र में हिमालय का सौंदर्य देखते ही बनता है । यह पूरा क्षेत्र अत्यन्त पावन प्रेरणादायी ऊर्जा का पुंज है । यहाँ किया गया थोड़ा सा भी तप व्यक्ति के प्रारब्ध को काटता है एवं उस की आत्मिक प्रगति के पथ को प्रशस्त करता है । तीर्थ सर्वाधिक यहीं स्थापित हैं । यमुनोत्री, गंगोत्री बद्रिकाश्रम, केदारनाथ के अतिरिक्त भागीरथी, अलकनन्दा, गंगा, यमुना यहीं पर हैं तथा तुंगनाथ, त्रिमुखीनारायण, देवप्रयाग आदि पंच प्रयाग भी उत्तरकाशी सहित यहीं स्थित हैं । ऋषियों के समय में छोटे तीर्थ देवालय का रूप ले लेते थे । वे जनजागृति के केन्द्र बन जाते थे । छोटे बड़े देवालय, आरण्यक आदि इसी कारण प्राकृतिक परिसर में स्थापित किए गए ताकि जन—जन अपने भौतिकता प्रधान जीवन से कुछ निवृत्ति लेकर धर्मधारणा से अनुप्राणित होकर जाए । गुरुकुलों में बालकों का शिक्षण चलता था तो आरण्यकों में गृहस्थों का । आश्रम शिक्षकों के निर्माण के तंत्र की भूमिका निभाते थे । जिस प्रकार आजकल शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु महाविद्यालय होते हैं, ऐसे ही ऋषितंत्र के मार्गदर्शन में आश्रमों में यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

शिक्षण चलता था जो विद्यावितार का पुण्य प्रयोजन पूरा करता था । तीर्थ यात्रा करने वाले इन सभी स्थानों का निरीक्षण कर ज्ञान गंगा में अवगाहन कर जीवन जीने की कला का, सर्वांगपूर्ण जीवन को जीने का, जीवन के चार पुरुषार्थों के सम्पादन का शिक्षण लेते थे ।

आज तो स्थिति विपरीत है । तीर्थयात्रा–तीर्थाटन एक पिकनिक का दिखावा या औपचारिकता मात्र रह गया है । परमपूज्य गुरुदेव ने इसीलिए तीर्थ परम्परा–तीर्थ प्रक्रिया का अभिनव पुनर्जीवन कर सिद्ध पीठ के रूप में गायत्री–तीर्थ का निर्माण किया जहाँ पाँचों स्थापनाएँ की गयीं तथा नवजागृति के प्रेरणा केन्द्रों–शक्ति संस्थानों के रूप में ये प्रज्ञासंस्थानों का निर्माण किया जो ४८०० से अधिक संख्या में पूरे भारत व विश्व में फैले हैं । तीर्थयात्रा का अर्थ ही होता है तीर्थ चेतना में स्नान–व्यक्तित्त्व के समग्र कायाकल्प हेतु किन्तु लोगों ने उसे बहिरंग का स्नान मानकर तुर्तफुर्त्त नहाकर अफरा–तफरी मचा कर अव्यवस्था फैलाना ही सब कुछ मान लिया । यही पूज्यवर ने स्थान–स्थान पर इस वाङ्मय में लिखा है कि यह दृष्टिकोण बदलकर तीर्थों का जीर्णोद्धार–उस परम्परा से उनकी मुक्ति जिसमें तीर्थ यात्रियों को लूटा जाता है तथा तीर्थयात्रा का पुनर्जीवन किया जाना चाहिए । उन्होंने कहा ही नहीं, असंख्यों परिजनों को दिशा देकर उनसे साइकिल से–अपने अपने वाहनों से–पैदल तीर्थयात्रा करने के संकल्प भी करा लिये । यह अध्यात्म जगत की एक सफलतम क्रांति है ।

मंदिरों–साधु–पुरोहितों को विशेष रूप से सम्बोधित करते हुए वे लिखते हैं कि मंदिरों का निर्माण जनमानस में धार्मिकता की निष्ठा को जमाने व बढ़ाने में योगदान हेतु हुआ था न कि चिन्ह पूजा के लिए । ऋषियों ने धर्म संस्थाओं को मंदिर का रूप देकर भगवान की प्रतिमाएँ स्थापित कीं ताकि उनकी संचालक सत्ता भगवान ही कहलाए । उनकी अर्थव्यवस्था का क्रम भी बनाया । मंदिरों को एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में विनिर्मित किया । किन्तु आज भव्यता की चकाचौंध व पुजारी का अपनी इतिश्री मानकर लेना, लोक शिक्षण का अभाव व दर्शनार्थी का प्रतिमा को नमन–यही सब शेष रह गया है । इस पर प्रहार करते हुए पूज्यवर ने साधु–पुरोहितों को राष्ट्र को जाग्रत जीवन्त बनाए रखने वालों को यह दायित्व संभालने की प्रेरणा देते हुए उन्हें चेताया है । सचमुच धर्मतंत्र के परिष्कार हेतु अभिनव क्रान्ति के बीज इस खण्ड में हैं ।

–ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंतःस्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्‌बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्‌भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंतःकरण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुतः अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएंगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे क पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी । उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं । यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी ।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ । गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी । धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है । १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है । १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया । कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं । संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था । तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं । हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया । परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं ।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ । तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था । तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए । स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये । एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी । ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये ।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे । इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक । इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

अध्याय १

तीर्थ क्या थे ? क्या बन गये ?

क्या बनने चाहिये ? **१.१**

सांस्कृतिक चेतना के ज्योति स्तम्भ तीर्थ १.१

धर्मधारणा के आलोक केन्द्र–तीर्थ १.४

जाग्रत और जीवन्तः प्राणवान तीर्थ १.७

तीर्थों की स्थापना का उद्देश्य १.१०

तीर्थ दर्शन और उसका पुण्यफल १.१६

तीर्थ परम्परा के पीछे सन्निहत उद्देश्य और आदर्श १.२२

तीर्थ परम्परा का उद्देश्य, प्रचलन और सुधार १.२३

प्रमुख तीर्थों का परिचय १.२८

अमरनाथ, वैष्णवदेवी, ज्वालामुखी १.२६

कण्वआश्रम १.२६

कुरुक्षेत्र १.२६

ब्रजभूमि– मथुरा १.३०

नैमिषारण्य १.३०

प्रयाग १.३१

गया–बुद्ध गया १.३१

अयोध्या १.३१

काशी १.३१

सारनाथ १.३२

कोणार्क १.३२

कामाख्या १.३२

चित्रकूट १.३२

जगन्नाथपुरी १.३२

नालन्दा १.३३

पुष्कर १.३३

नासिक १.३३

ओंकारेश्वर १.३३

उज्जैन १.३४

अमर कंटक १.३४

गंगासागर १.३४

पारसनाथ १.३४

लुम्बिनी, कुशीनगर, श्रावस्ती १.३४

अमृतसर १.३५

एकलिंग जी १.३५

डाकोर जी १.३५

जूनागढ़, गिरनार १.३५

सोमनाथ, वेरावल १.३५

पोरबन्दर १.३६

द्वारिका १.३६

तिरुपति बालाजी १.३६

पक्षितीर्थ १.३६

कन्याकुमारी १.३७

रामेश्वरम् १.३७

कांची १.३७

हरिद्वार–महातीर्थ १.३७

तीर्थ–साधना का तत्त्वदर्शन १.४०

तीर्थपरम्परा के चार पुण्य प्रयोजन १.४२

व्यक्ति और समाज के उत्थान में तीर्थ प्रक्रिया का योगदान १.४४

तीर्थ स्थानों से आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति १.४७

तीर्थों का प्रयोजन एवं पुरातन स्वरूप १.४८

तीर्थचेतना को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता १.५२

अध्याय २

अध्यात्म चेतना का ध्रुव केन्द्र **२.१**

देवात्मा हिमालय २.१

देवात्मा हिमालय और उसका परिचय २.३

धरती पर देवभूमि के दर्शन गंगा का उद्गम २.६

हिमालय का हृदय–धरती का स्वर्ग २.१८

देवात्मा हिमालय के प्रमुख धाम २.२४

बद्रीनाथ २.२५

(१) योगध्यान बद्री २.२६

जोशी मठ २.२६

केदारनाथ २.२७

गंगोत्री २.२८

यमुनोत्री २.२६

हरिद्वार क्षेत्र के चार तीर्थ २.३०

हरिद्वार २.३०

कनखल २.३०

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषिकेश २.३१
लक्ष्मण झूला २.३१
वनस्पतियों के रूप में विद्यमान देवी–देवता २.३२
उत्तराखण्ड के कुछ विशेष तीर्थ २.३३
पाँच बद्री २.३३
पाँच केदार २.३३
पाँच प्रयाग २.३३
सिद्ध क्षेत्र हिमालय २.३५
देवात्मा हिमालय क्षेत्र की विशिष्टताएँ २.३७
उदृश्य चेतना का दृश्य उभार २.३६
अनेकानेक विशेषताओं से भरा पूरा हिम प्रदेश २.४२
पर्वतारोहण की पृष्ठभूमि २.४४
तीर्थ स्थान और सिद्धपुरुष २.४७
सिद्ध पुरुषों का स्वरूप और अनुग्रह २.४६
सूक्ष्म शरीर धारियों से सम्पर्क २.५१
हिमक्षेत्र की रहस्यमयी दिव्य सम्पदाएँ २.५४
दैवी सहायता मात्र पुण्य प्रयोजनों के लिए २.५६
देवात्मा हिमालय–सिद्धपुरुषों की कार्यस्थली २.५६
धरती के मानव को देवात्मा हिमालय का सन्देश २.६२
देवात्मा हिमालय में ऋषि कल्प ऊर्जा २.६३
आत्म साधना का उपयुक्त वातावरण हिमालय की छाया २.६६
अध्यात्म साधना के लिए हिमालय की उपयोगिता २.७०
साधना के लिए गंगा–तट की महिमा और महत्ता २.७३
तरण–तारिणी गंगा २.७७
देवात्मा हिमालय की खोज अभी बाकी है २.८३
देवात्मा हिमालय की पवित्रता अक्षुण्ण बनी रहे २.८५
हिमालय की ऋषि परम्परा का अभिनव–संस्करण शान्तिकुंज २.८७

अध्याय- ३

आरण्यक एवं गुरुकुल ३.१
भारतीय संस्कृति बनाम आरण्यक संस्कृति ३.१
बहिरंग को नहीं अन्तरंग को बदलने वाले गुरुकुल आरण्यक ३.२
विद्या के दो सशक्त तन्त्र– आरण्यक एवं गुरुकुल ३.४

अध्याय-४

प्राचीन तीर्थ परम्परा का अभिनव निर्धारण-गायत्री तीर्थ ४.१
शान्तिकुञ्ज गायत्री तीर्थ ४.१
गायत्री तपोभूमि– एक समर्थ तीर्थ ४.५
गायत्री तीर्थ का उद्देश्य ४.८
मन्त्र लेखन यज्ञ ४.११
सामूहिक यज्ञ आयोजन ४.११
समय दान ४.११
सेवा के लिए आत्म समर्पण ४.११
तीर्थों का पुण्यफल आरण्यक परम्परा में सन्निहित ४.११
तीर्थपरम्परा की एक झलक–झाँकी गायत्री तीर्थ में ४.१४
गायत्री तीर्थ– अतीत की वापसी का अभिनव प्रयास ४.१७
ऋषि तपस्वियों की पुण्य परम्परा का अभिनव संस्करण ४.२०
गायत्री तीर्थ का स्वरूप और कार्यक्रम ४.२६
शान्तिकुञ्ज गायत्री नगर बनाम गायत्री तीर्थ ४.२८
गायत्री तीर्थ में प्राचीन परम्परा की अनुभूति ४.३१
(१) कल्पसाधना ४.३२
(२) युगशिल्पी सत्र ४.३३
(३) तीर्थ सेवन सत्र ४.३३
कल्पसाधना और युग सृजन की अभिनव शिक्षा व्यवस्था ४.३४
बारह दैनिक साधनाएँ ४.३४
साधना के साथ शिक्षा भी ४.३५
दस दिवसीय मिनी कल्प सत्र ४.३५
नियम और अनुशासन ४.३६
साधना के लिए दिव्य वातावरण ४.३६
समर्थ सान्निध्य– प्राणवान संरक्षण ४.३६
विना शुल्क सेवा–तीर्थ परम्परा की पुनरावृत्ति ४.३६
वरिष्ठ ऊर्जा का उद्गम और सम्पर्क साधन ४.४०
संकट से सुरक्षा ४.४२
दस दिवसीय साधना सत्र तीर्थ निवास ४.४३
गायत्री तीर्थ और सुसंस्कारिता सम्वर्धन ४.४६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ सेवन की अभिनव आदर्श व्यवस्था ४.४६
सम्पर्क सूत्र की सघनता–बनाम तीर्थ सेवन सत्र ४.५०
गायत्री तीर्थ के समग्र स्वास्थ्य सम्बर्द्धन सत्र ४.५१
तीर्थ सेवन शृंखला के नये निर्धारण ४.५५
ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान ४.५८
ऋषि परम्परा का विनम्र अनुकरण ४.५८
ऋषि चेतना का प्रतिनिधित्व ४.६०
युग चेतना का व्यापक विस्तार ४.६२
समग्र स्वस्थता की साधना ४.६३
शान्तिकुञ्ज की सत्रसाधना ४.६६
नव सृजन हेतु युगशिल्पियों का निर्माण ४.६८
तीर्थ साधना से देवत्व का उदय ४.७०
सचेतन तीर्थ सिद्धपीठ ४.७३
तीर्थ परम्परा का अभिनव पुनर्जीवन ४.७५

अध्याय ५

नव-सृजन के शक्ति-संस्थान ५.१

तीर्थ–परम्परा का आदर्श और शक्ति–पीठ अभियान ५.१
गायत्री शक्ति–पीठों की स्थापना ५.५
तीर्थ–प्रक्रिया की युगानुकूल नव–प्रतिष्ठापना ५.७
तीर्थ–परम्परा का पुनर्जीवन शक्ति–पीठ के रूप में ५.१०
ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में गायत्री शक्ति–पीठ ५.१३
त्रिपदा की जीवन्त प्रतिमा ब्रह्मवर्चस् ५.१६
प्रतिभाओं की ढलाई का समर्थ संयंत्र ब्रह्म वर्चस् ५.१६
ब्रह्मवर्चस् सत्रों का स्वरूप और साधकों का प्रवेश ५.२१
गायत्री शक्ति–पीठ का स्वरूप और उद्देश्य ५.२४
रजत जयन्ती वर्ष में २४ गायत्री तीर्थों की स्थापना ५.२६
गायत्री शक्ति–पीठों की स्थापना ५.३१
नवोदित तीर्थों के स्थान और पृष्ठ भूमि ५.३६
शक्ति–पीठ का भवन और उसका स्वरूप ५.४२
शक्ति–पीठों की उत्साह वर्धक विस्तार–प्रक्रिया ५.४५
अब यह क्रम रुकेगा नहीं ५.४७
छोटे शक्ति–पीठ जो हर जगह बनने और चलने चाहिये ५.५२
गायत्री शक्ति–पीठों का विस्तार और व्यवस्था ५.५४
छोटे शक्ति–पीठों की रूप–रेखा और संचालन–प्रक्रिया ५.५७
गायत्री शक्ति–पीठ की मौलिक विशेषता ५.५६
शक्ति–पीठों के निर्माण का विकास–विस्तार ५.६०
प्रज्ञा–संस्थानों की स्थापना ५.६३
सृजन–शिल्पियों की आपूर्त्ति ५.६५
गायत्री प्रज्ञा–पीठ स्वरूप और कार्यक्रम ५.६६
सर्व सुलभ डिजाइन ५.६६
अन्य स्तर के निर्माण ५.७०
(१) बड़ी प्रज्ञा–पीठ लागत ३२ हजार ५.७०
(२) मझोले प्रज्ञा–पीठ लागत २० हजार ५.७१
(३) चरण–पीठ लागत २५० रुपया ५.७१
मझोले प्रज्ञा–पीठ का नया विकल्प ५.७२
प्रज्ञा–संस्थान, प्रज्ञा–आयोजन भी सम्पन्न करें ५.७३
प्रज्ञावतार का लीला–संचरण ५.७६
गायत्री चरण–पीठ–योजना ५.७६
निर्माण की रूपरेखा ५.७७
मुख्य आसन ५.७८
कार्यक्रमों का संचालन ५.७६
चरण–पीठ की देव–प्रतिमा ५.८०
छोटे कलेवर में महान सम्भावनायें ५.८१
तीन स्तर के चरण–पीठ एक स्पष्टीकरण ५.८३
(१) सबसे छोटा ५.८३
(२) मध्यम स्तर ५.८४
(३) बड़े स्तर की चरण–पीठ ५.८४
गायत्री चरण–पीठें और नव–सृजन की सम्भावनाएँ ५.८४
चरण–पीठों की स्थाधना प्रत्येक गांव में हो ५.८८
शक्ति–पीठों की रचनात्मक भूमिका ५.८६
शक्ति–पीठों का उद्देश्य ५.६०
जागृत आत्माओं का आह्वान ५.६५
समाजोत्थान में गायत्री शक्ति–पीठों का स्थान ५.१०२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति–पीठों का निर्माण और प्रव्रज्या का अभिवर्धन साथ–साथ ५.१०३
तीर्थ संचालन के लिए पाँच परिव्राजक ५.१०८
शक्ति–पीठों का संचालन परिव्राजकों द्वारा ५.११०
शक्ति–पीठों के लिए प्राणवान परिव्राजक चाहिए ५.११३
जागृत आत्माओं का अंशदान अपेक्षित ५.११५

अध्याय-६

तीर्थयात्रा क्यों ? और कैसे करें ? ६.१
तीर्थयात्रा का महत्व ६.६
तीर्थ का फल किसको मिलता है ६.७
छः विशेष तीर्थ ६.८
१– भक्त-तीर्थ ६.८
२– गुरु-तीर्थ ६.८
३, ४– माता-तीर्थ पिता-तीर्थ ६.९
५– पति-तीर्थ ६.९
६– पत्नी-तीर्थ ६.९
सर्वोत्तम तीर्थ ६.९
तीर्थ परम्परा–पावन यज्ञ ६.१०
तीर्थ यात्रा का पुण्य प्रयोजन ६.१०
तीर्थ अनुसरण की महान महिमा ६.१२
तीर्थ यात्रा का आधार, स्वरूप और प्रतिफल ६.१३
तीर्थ यात्रा हमारी महान धर्म परम्परा ६.१५
तीर्थ यात्रा क्यों करें ? ६.२५
धर्म चेतना को जाग्रत रखने की सुव्यवस्था तीर्थ स्थापना ६.२९
तीर्थों में प्राण शक्ति भी जाग्रत रहे ! ६.३२
तीर्थों की सुव्यवस्था हर दृष्टि से श्रेयस्कर ६.३५

अध्याय-७

तीर्थ-प्रक्रिया का अभिनव पुनर्जीवन ७.१
तीर्थ यात्रा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाय ७.६
तीर्थ यात्रा का पुण्य परमार्थ ७.१३
एक और महत्त्वपूर्ण चरण– तीर्थ यात्रा संयोजन ७.१५
यह कदम इन्हीं दिनों उठने चाहिए ७.१७
तीर्थ यात्रा पर निकलिये ७.२२
तीर्थ यात्रा हर किसी के लिए हर स्थिति में सम्भव ! ७.२६

अध्याय ८

तीर्थ सेवन से आत्मपरिष्कार ८.१
प्रज्ञा परिजनों के तीर्थ-सेवन-सत्र कार्य पद्धति एवं उद्देश्य ८.१
तीर्थ प्रेरणा का अधिग्रहण ८.६
प्रज्ञा परिजनों का चिन्तन कैसा हो ? ८.७
चिन्तन में सदाशयता जुड़े ८.८
तीर्थ प्रेरणा के अनुदान ८.१०
विभूति अर्जन की कुंजी : संयम ८.११
तीर्थ सेवन फलदायी हों ८.१५
प्रज्ञापरिजनों का उपासना उपक्रम ८.१५
उपासना का तत्वदर्शन ८.१६
जीवन साधना : उपासना की पूरक ८.१६
उपासना का क्रिया पक्ष ८.२०
उपासना की फलश्रुतियाँ ८.२२
जीवन में सुसंस्कारिता का समावेश–परिवार निर्माण की साधना ८.२२
तीर्थ सेवन का दर्शन समझें ८.२३
जीवन साधना : परिवार की प्रयोगशाला में ८.२४
तीर्थ सेवन और उसकी पूर्णाहुति ८.३२
तीर्थ सेवन की देव दक्षिणा ८.३३
साधु-ब्राह्मण परम्परा ८.३३
पुण्य-परमार्थ का सच्चा स्वरूप ८.३४
तीर्थ सेवन सत्र–प्रज्ञा परिजनों की प्रखरता के लिए ८.३६

अध्याय-६

तीर्थयात्रा इस तरह की जाय ६.१
पदयात्राओं से लोक जागरण ६.१
अभिनव गठन ६.६
सार्थक तीर्थयात्रायें ६.१३
टोलियाँ और पद यात्रायें चल पड़ें ६.१५
तीर्थ यात्रा– बनाम प्रचार यात्रा ६.१६
तीर्थ प्रव्रज्या अब इस नूतन रूप में चल पड़े ६.१८
तीर्थ यात्रा इस प्रकार चलेंगी ६.२१
तीर्थ यात्रा की आहार-व्यवस्था ६.२२
ग्राम तीर्थों की स्थापना और पदयात्रा ६.२३
निकटवर्ती क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा ६.२५
तीर्थ–प्रक्रिया का युगानुकूल निर्धारण ६.२६
सही और सशक्त तीर्थ यात्रा ६.२९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रव्रज्या सनातन परम्परा ६.२६
युगधर्म के रूप में प्रव्रज्या ६.३०
प्रस्तुत उत्तरदायित्व ६.३१
प्रज्ञा परिजनों की प्रव्रज्या ६.३३
एकाकी प्रयासों से भी बहुत कुछ हो सकता है ६.३४

अध्याय-१०

तीर्थयात्रा धर्म परम्परा का पुनर्जीवन १०.१
आधार और पृष्ठभूमि १०.१
उद्देश्य और प्रयोजन १०.५
सामयिक तीर्थयात्रा टोलियाँ १०.७
स्थाई तीर्थ यात्रा की पृष्ठभूमि १०.८
उद्बोधन–प्रवचन १०.१२
१. प्रवचन-सिद्धान्त परक १०.१२
२. प्रवचन कार्यक्रम परक १०.१५
यात्रा सम्बन्धी सामान्य कुछ विशेष ज्ञातव्य १०.१६
नारे वाक्य १०.२१
दीवारों पर लिखने के लिए वाक्य १०.२१

अध्याय-११

मन्दिर जनजागरण के केन्द्र बनें ११.१
धर्मनिष्ठा को परिपुष्ट करना देवालयों का मूल प्रयोजन रहे ११.१
विशाल जनशक्ति और विपुल धनशक्ति ११.१
यह सामर्थ्य व्यर्थ नष्ट न हो ११.२
मन्दिर और उनका मूल प्रयोजन ११.३
भगवान की प्रसन्नता का माध्यम ११.३
उपयोगी धर्म संस्था ११.४
पुनः आदर्श उपस्थित करें ११.५
रचनात्मक प्रवृत्तियों के केन्द्र ११.६
विद्या और ज्ञान का प्रकाश ११.७
शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ११.८
संगीत एवं भजन कीर्तन ११.९
कथा–प्रवचन एवं सत्संग में विचार विनमय ११.१०
सुधार की नितान्त आवश्यकता ११.११
दर्शन करें, पर इस तरह ११.१२
अति न की जाय ११.१२
स्कूल का दर्शन ११.१३
अस्पताल की दर्शन झाँकी ११.१४
मण्डी के दर्शन से अर्थलाभ ११.१४
दर्शन का उद्देश्य एवं प्रयोजन ११.१५
देखें ही नहीं विचारें भी ११.१५
भावनायें ही आधार हैं ११.१६
सत्पुरुष और उनके दर्शन ११.१६
प्रेरणा आवश्यक तो है पर पर्याप्त नहीं ११.१७
फल के लिए कर्म आवश्यक ११.१७
देव-दर्शन से भाव समन्वय ११.१८
घोड़ा लकड़ी का नहीं, जानदार हो ११.१८
छल्लेदार चुसनी चूसने से क्या मिलेगा ? ११.१९
हमारी मूर्खतापूर्ण बुद्धिमानी ११.२०
व्यवस्थित विश्व का हर कार्य व्यवस्थित ११.२०
देखें और सीखें ११.२०
दार्शनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता ११.२१
हमारी भावना ही देवता को सामर्थ्य देती है ११.२२
देवदर्शन के पीछे दिव्य दृष्टि भी रहे ११.२३
दर्शन मात्र से वरदान मिलने की ललक ११.२५
मन्दिर आस्तिकता और सत्प्रवृत्तियाँ जागने में लगें ११.२८
श्रद्धा और सद्भावना के केन्द्र–देवालय ११.३०
मन्दिर आस्तिकता के पोषण केन्द्र बनें ११.३१
मन्दिर अपनी गरिमा को सार्थक करें ११.३४
स्मारक एवं देवालय ११.३६
बदलते समय के साथ मन्दिर भी बदलें ११.३७
नये मन्दिरों का निर्माण नहीं पुरानों का नवोन्मेष आवश्यक ११.४०
परिवर्तन के लिए धर्मतन्त्र का ही आश्रय लेना होगा ११.४३
धर्म जागृति के महान केन्द्र–देव मन्दिर ११.४७
जन जागरण हेतु ऋषि संस्कृति की दो महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ ११.५०
देव स्थापना क्यों ? किसलिए ? ११.५४
देवालयों में प्राणचेतना फूँकने हेतु भावभरा आह्वान ११.५७

अध्याय-१२

पुरोहित जागें - साधु चेतें १२.१
ब्राह्मणत्व का उद्देश्य एवं स्वरूप १२.१
ब्राह्मणत्व का मर्म १२.२
ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं, कर्म से १२.३
विद्या और ब्राह्मण १२.४
ब्राह्मण तो वह– जो १२.५
ब्राह्मणत्व का अर्थ है– त्यागमय जीवन १२.६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मणत्व का तात्त्विक विवेचन–आज के परिप्रेक्ष्य में १२.८
संवेदनामूलक समाज का मेरुदण्ड–"ब्राह्मण" १२.९
ब्राह्मणत्व का उच्च आदर्श १२.१२
ब्राह्मणत्व की महान जिम्मेदारी १२.१४
ब्राह्मणत्व गिरेगा तो समाज की बरबादी होगी १२.१५
"ब्राह्मणः आविर्भवन्ति गुह्य न केचित्" १२.१७
साधु–ब्राह्मण की गरिमा जीवन्त रहे १२.१९
ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा न करें १२.२०
समाज के उत्थान और पतन का उत्तरदायित्व ब्राह्मणों पर है १२.२२
साधु ब्राह्मण की परम्परा का पुनर्जीवन १२.२३
वर्तमान समय में ब्राह्मणों का कर्त्तव्य १२.२४
ब्राह्मणत्व और साधुता का जागरण १२.२६
साधु–ब्राह्मण की परम्परा पुनर्जीवित की जाये १२.२८
ब्राह्मणत्व की महान जिम्मेदारी १२.३०
ब्राह्मणत्व जागेगा तो राष्ट्र जागेगा १२.३५
सेवाव्रती साधुओ ! आओ !! १२.३७
लोक मानस की शुद्धि कौन करेगा १२.३७
साधु लोक–मंगल की मुहीम सम्भालें १२.४०
भावना शील व्यक्ति लोक निर्माण के लिये आगे आयें १२.४२
लोक सेवा में सच्ची भगवद्–भक्ति १२.४५
ब्राह्मण अपना उत्तरदायित्व सम्भालें १२.४७
समाज पुरुष का शीर्ष–ब्राह्मण १२.४७
कठिन कर्त्तव्य और महान उत्तरदायित्व १२.५०
अवनति और पतन का क्रम १२.५१
यह परम्परा नष्ट न हो १२.५१
ब्राह्मणत्व का दर्शन और कर्त्तव्य १२.५२
प्रायश्चित का साहस करें १२.५३
वातावरण बदला जाय १२.५४
ईसाइयों का धार्मिक उत्साह १२.५४
छँटनी आवश्यक १२.५५
यह आवश्यकता अपूर्ण न रहे १२.५७
साधु की महान परम्परा और जिम्मेदारी १२.५७
ज्ञान के प्रकाश का अरुणोदय १२.५७
वेष–भूषा रहन–सहन का प्रयोग १२.५८
अन्धानुकरण से क्या लाभ १२.५८
गुणों का अनुकरण १२.५९
साधुता का सुअवसर १२.६०
ऋषियों का महान कर्त्तव्य १२.६१
कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों का पालन १२.६१
उल्टी–गंगा न बहे १२.६२
समय रहते बदलें १२.६३
आत्म–निरीक्षण और आत्म–चिन्तन की घड़ी १२.६३
शिक्षा–प्रसाद की मुहीम १२.६४
प्रौढ़–शिक्षा आवश्यक १२.६५
पुस्तकालय ज्ञान मन्दिर १२.६६
साधुता का ठीक–ठीक अर्थ समझा जाये १२.६७
पचास वर्ष की आयु और उसका तकाजा १२.६९
समाज का ऋण चुकाना ही श्रेयस्कर १२.७२
पुरोहित अपना उत्तरदायित्व सम्भालें १२.७५
पुरोहित के जागरण की आवश्यकता १२.७६
राष्ट्रीय उत्कर्ष में साधु अपना योगदान दें १२.७७
उनसे–जो पचास के हो चले १२.७८
मनुष्य जीवन इसलिए नहीं मिला १२.७९
ऋण से उऋण हों १२.७९
अगणित व्यक्तियों के अगणित उपकार १२.८०
सहयोग से ही प्रगति सम्भव १२.८०
उत्तरार्द्ध का श्रेष्ठता में सदुपयोग १२.८१
श्रेष्ठ परम्परा का पालन करें १२.८२
जीवन का समुचित विभाजन १२.८२
धार्मिक नेतृत्व का उत्तरदायित्व १२.८३
सम्मिलित परिवार का स्वर्णिम सूत्र १२.८४
आज की परिस्थिति का आदर्श १२.८४
वानप्रस्थ संस्कार विवेचन १२.८५
उच्चस्तरीय सुख के लिए उच्चस्तरीय तप १२.८६
ढलती उम्र का तकाजा है–वानप्रस्थ १२.८७
कार्य पद्धति की रुपरेखा १२.८८
सुसंस्कार का सृजन १२.८८
लोक शिक्षण की आवश्यकता १२.८९
मूल प्रयोजन समझा जाय १२.८९
योगाभ्यास एवं तपश्चर्या १२.९०
ईश्वर उपासना एवं भजन १२.९०
ऐसे ईश्वर १२.९०
स्वेद एवं स्नेह का अभिसिंचन १२.९१
शतसूत्री साधना क्रम १२.९१

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ क्या थे ? क्या बन गये ? क्या बनने चाहिए ?

सांस्कृतिक चेतना के ज्योतिस्तम्भ-तीर्थ

भारतीय संस्कृति अनगढ़ मानव को देवमानव बना देने वाली जीवनमूरि है, संजीवनी है । षोडष संस्कारों तथा प्रतीकों के माध्यम से जहाँ देव संस्कृति व्यष्टिसत्ता व समष्टिसत्ता में घनिष्ट तादात्म्य स्थापित कर व्यक्तित्व परिष्कार की प्रक्रियाओं की स्थापना करती है, वहाँ सांस्कृतिक चेतना के पाँच सशक्त आधार स्तम्भों के माध्यम से वह इस आलोक को जन-जन तक पहुँचाने की व्यवस्था भी करती है । ये आधार हैं—(१) **तीर्थ**—जो वातावरण से शिक्षण देते हैं, (२) **गुरुकुल**—जहाँ बाल्यावस्था से ही सुसंस्कारित अभिवर्धन का शिक्षण क्रम चलता रहा है, (३) **आरण्यक**—विधा विस्तार हेतु व्यक्तित्व सम्पन्न शिक्षकों के निर्माण का तंत्र (४) **आश्रम**—जीवन की यहन शोध कर सद्गृहस्थों से लेकर मानव मात्र के लिए व्यावहारिक अध्यात्म के सूत्र देने वाली व्यवस्था तथा (५) **देवालय**—जो जनजाग्रति के केन्द्र रहे हैं, जहाँ से सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन की प्रक्रिया सतत् चलती रही है । इन पाँचों का विशद विवेचन पाठकों की जानकारी व शिक्षण हेतु इस व अगले अध्यायों में किया जा रहा है ।

मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने का विज्ञान और विधान संस्कृति है । जहाँ इसकी चेतनता सर्वाधिक सक्रिय, जीवन्त और मुखर अनुभव हो-शास्त्रकारों ने उसी स्थान को **'तीर्थ'** कहा है.. । पुराणों के सर्वाधिक पृष्ठ इसके महात्म्य से भरे पड़े हैं । स्कन्द पुराण का बहुत बड़ा अंश इसी विवरण को अपने में सँजोये है । दूसरे अनेक पुराणों-उपपुराणों में भी तीर्थों के महत्त्व, तीर्थयात्रा के पुण्यफल पर प्रचुरता से प्रकाश डाला गया है । इस सारे वर्णन और विवरण का उद्देश्य जन साधारण को तीर्थ चेतना का सान्निध्य पाने के लिए प्रोत्साहित करना है । इस पारस को छूकर लोग अपने भीतर की लोहे जैसी कठोरता, कलुष-कालिमा को धो सकें और बहुमूल्य सुवर्ण जैसा अपना अन्तःकरण बना सकें । इन्हें उस कल्पवृक्ष की उपमा दी जा सकती है—जिसके सम्पर्क में आने वाले अपने आन्तरिक अभावों और संकटों से छुटकारा पा सकते हैं ! आरम्भ काल के अपने तीर्थ ऐसे ही शान्ति समाधान केन्द्र थे ।

प्राच्य विधा के मनीषी आर.आर.दीक्षितार ने अपने ग्रन्थ "स्टडीज ऑव धर्मशास्त्राज" में इन केन्द्रों की स्थापना के बारे में काफी खोजबीन की है । उनके अनुसार इनमें से प्रत्येक स्थान अपने समय में किसी ऋषि की तपस्थली अथवा अवतारों की लीला भूमि रहा है । उन दिनों ऋषि अपने छात्र-शिष्यों तथा गायों के साथ घूमते थे । वे सुविधाजनक जगहों पर पड़ाव डालते कुछ समय वहाँ रुकते और फिर आगे बढ़ जाते । इस क्रम में आस-पास के क्षेत्रों की जनता भी लाभान्तित होती थी । इस तरह छात्रों का अध्ययन और लोक शिक्षण साथ-साथ चलता रहता था ।

आज जो छोटे-छोटे तीर्थ, देव स्थान, धर्म स्थान दिखाई देते हैं वे ऋषियों के निवास और शिक्षण क्रिया के स्मारक चिन्ह जैसे हैं । बड़े तीर्थ की स्थापना का उद्देश्य कहीं अधिक व्यापक और गुह्य था । इस प्रक्रिया में संलग्न ऋषिगण तरह-तरह के व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयोगों द्वारा वातावरण को दिव्य-स्पन्दनों से भर देते थे । उनकी तपश्चर्या से उद्भूत प्राणउर्जा तीर्थ चेतना की प्रखरता और प्रभाविकता को जन्म देती थी । इसकी समर्थता से तादात्म्य साधने वाले व्यक्तित्व स्वयं की दिशाधरा और स्वरूप में वांछित बदलाव की अनुभूति किए बिना नहीं रहते थे । प्रयोगों के इसी क्रम में महर्षि अगस्त्य ने वेदपुरी नर-नारायण ने बद्रीनाथ, ऋषि दम्पति अत्रि-अनसूया ने चित्रकूट ब्रह्मर्षि-विश्वामित्र ने सिद्धाश्रम, अवधूत श्रेष्ठ दत्तात्रेय ने गिरनार, ब्रह्माजी ने पुष्कर और भगवान शिव के तप ने कैलाश के दिव्य क्षेत्र को जन्म दिया ।

इनके अलावा जिन क्षेत्रों में भगवान के विभिन्न अवतारों के क्रियाकलाप विशिष्ट प्रेरणाएँ प्रस्तुत करते रहे हैं उन भक्तजनों ने तीर्थों की स्थापना की है । भगवान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम और कृष्ण की लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले अनेकों तीर्थ अभी भी उनकी लीला-भूमि में विद्यमान हैं । इन सबका एक ही उद्देश्य रहा है कि सर्व सामान्य को भगवान के अवतारों के प्रयोजनों का परिचय मिले वे उससे प्रेरणा और प्रकाश पा सकें । इसीलिए इन विशिष्ट स्थलों को अवतारों का "भावना-शरीर" कहा जाता है और इसी श्रद्धा भावना से उनके सान्निध्य का प्रयास किया जाता है । यह प्रयास मनुष्य मात्र को प्रेरणा-प्रकाश और उर्जा देता रहे । इसी प्रयोजन ने बद्रीनाथ, द्वारकापुरी, रामेश्वर, जगन्नाथपुरी नामक चार धामों काशी, कांची मायापुरी, द्वारावती, अयोध्या, अवन्तिका आदि सप्त पुरियों, वाराणसी, गुप्तकाशी, उत्तरकाशी, दक्षिणकाशी, शिवकाशी नाम से पंचकाशियों, गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती कावेरी, नर्मदा और सिन्धु नामक सप्त पुण्य नदियों, कुरुक्षेत्र, हरिहर क्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, रेणुकाक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, पुरुषोत्तम क्षेत्र एवम् सूकरक्षेत्र आदि सप्तक्षेत्रों तथा बिन्दु सरोवर, नारायण सरोवर पम्पासरोवर, पुष्कर सरोवर और मानस सरोवर के रूपों में व्यापक तीर्थ तन्त्र विकसित किया । इन प्रधान केन्द्रों से ऊर्जस्विता लेकर अन्य अनेक छोटे-बड़े तीर्थ विकास पाते रहे ।

प्राच्य अनुरागी ए. ल. बैशम के ग्रन्थ "द वन्डर दैट वाज इण्डिया" की विषयवस्तु पर विचार करने पर पता चलता है कि इस स्थापना ने दो प्रक्रियाओं को गति दी । एक यह कि समय-समय पर अपनी सुविधानुसार व्यक्ति वहाँ पहुँचें और उपयुक्त वातावरण में आरण्यकों के तत्वाधान में तीर्थवास करें । दूसरा यह कि विशेष पर्वों पर लोग इकट्ठे होकर मनीषियों के सान्निध्य एवं उनके विचार मन्थन से प्रकाश और प्रेरणा प्राप्त करें । तीर्थ सेवन की इस परम्परा का परिणाम है कि अभी भी माघ महीने में त्रिवेणी तट पर अनेक लोग पर्णकुटी बनाकर एक माह निवास करते हैं । इस साधनाव्रत को 'कल्पवास' कहा जाता है । यह स्वयं के अस्तित्व को स्थान विशेष के दिव्य स्पन्दनों से एकाकार करने का प्रयोग है । जिसमें कतिपय अनुशासन व्रतों, मर्यादाओं का पालन, करना होता है । अन्यथा नारद पुराण के शब्दों में कहें तो

"गंगादि तीर्थेषु वसन्ति मत्स्या, देवालये पक्षिगणा सन्ति ।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते, तीर्थाच्च देवायतनाम्य मुख्यात् ॥"

गंगा आदि तीर्थों में मछलियाँ निवास करती हैं, देव मन्दिरों में पक्षीगण रहते हैं, किन्तु उनके चित्त भाव से रहित होने के कारण उन्हें यहाँ निवास करने का कोई फल प्राप्त नहीं होता ।

प्राचीनकाल में इनका स्वरूप आध्यात्मिक सेनोटोरियम का था वहाँ पर आत्मिक विश्रान्ति पाने तथा उद्विग्नता का शमन करने में सहायता देने वाला वातावरण रहता था । ऋषियों के आरण्यक थे । तीर्थ सेवन के लिए आने वाले वहाँ कुछ समय ठहरकर जीवनक्रम पर नए सिरे से विचार करते और आरण्यकों के संचालक ऋषियों से अपनी समस्याओं के समाधान तथा उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण के लिए प्रकाश परामर्श प्राप्त करते थे । बात भी सही है जीवन की उलझनों की समीक्षा करने के लिए इनके जाल-जंजाल से कुछ दूर रहकर उन पर विचार करना जरूरी होता है । व्यक्ति तीर्थ में पहुँचने पर सम्बद्ध लोगों से दूर हो जाता है । इसलिए उनके प्रति राग-द्वेष भी झीना हो जाता है । उसी मनोदशा में अपने पराए गुण दोषों को समझना आसान होता है । आधा हल तो समस्याओं का सही स्वरूप समझने में ही निकल आया मानना चाहिए । इसी क्रम में पापों के प्रायश्चित के लिए आवश्यक तपश्चर्या करने से वह प्रयोजन भी पूरा हो जाता था जिसे पाप निवृति कहा है । आत्मशोधन और आत्म परिष्कार के विधि-विधान तपःपूत ऋषियों के संरक्षण में पूरे करने से तीर्थ सेवन के सभी उद्देश्य पूरे हो जाते थे ।

इसके पीछे वातावरण की विशिष्ट भूमिका है कुछ प्रतिभाशाली लोग ही वातावरण को बनाने में समर्थ होते हैं । सर्वसाधारण तो वातावरण के प्रभाव के अनुरूप ढलते रहते हैं । जिस ढर्रे पर घर के, समाज के, आस-पास के लोग लुढ़कते रहते हैं साधारण व्यक्ति भी घिसटकर उसी प्रवाह में बहने लगता है । डिब्बे पटरी पर ही लुढ़कते हैं, आँधी अपने साथ अपनी दिशा में ढेर सारा कूड़ा करकट उड़ा ले जाती है । वातावरण भी नदी के बहाव और आँधी तूफान के आवेग जैसा ही होता है । सामान्य मनुष्य तो दर्पण की तरह है । जिस रंग की प्रखरता उनके समीप होती है, वैसी ही उसकी दर्पण में छबि बन जाती है । इसी से इतिहास पुराणों में सत्संग की महिमा का प्रभाव भरा पड़ा है । क्योंकि प्रचण्ड प्रभाव या तो प्रचलित ढर्रे का होता है या फिर प्राणवान व्यक्तियों का । उससे कोई बिरला ही अप्रभावित रह पाता है । आग के पास गर्मी और पानी के पास ठण्डक मिलती है । सुगन्धित और दुर्गन्धित स्थल की अनुभूति से सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभावित होते हैं । तीर्थों की प्रमुख विशेषता यही थी- कि प्राणवान प्रतिभाएँ वहाँ का ऐसा वातावरण बनाए रहती थीं जिसमें थोड़े समय भी रहने वाला व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता था ।

प्राकृतिक सौन्दर्य सरित-सरोवर, उत्साहप्रद देव मन्दिर आदि इसमें सोने में सुगन्ध उत्पन्न करने जैसा काम करते थे । अपने स्नेह सौजन्य अतिथि सत्कार और भाव-भरे परामर्शों से तीर्थ यात्रियों को निहाल करने वाले व्यक्तित्वों का अपना आकर्षण कम नहीं था । इन सबका मिलाजुला चुम्बकत्व लोक मानस में तीर्थ यात्रा के लिए आतुरता उमगादे तो आश्चर्य क्या ? सम्राट हर्षवर्धन के दरबार में रहने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस सम्बन्ध में अपनी अनुभूति का चित्रण मोहक शब्दों में किया है । उसके अनुसार भारतीय मनीषियों ने लोक जीवन की भावनात्मक एकता, सांस्कृतिक चेतना के प्रसार विस्तार एवं धर्म भावना के विकास जैसे उच्चस्तरीय लाभों के लिए तीर्थ यात्रा का क्रम विकसित किया था । इसी उद्देय को पूरा करने के लिए शास्त्रकारों ने इसे पदयात्रा के रूप में सम्पन्न करने का निर्देश दिया है । कहा जा सकता है कि उन दिनों वाहन नहीं थे, इसीलिए सामयिक परिस्थितियों के अनुसार ही पदयात्रा का विधान किया गया होगा । निस्संदेह उन दिनों आज की तरह द्रुतगामी वाहन नहीं थे पर जो थे उनका भी निषेध किया हुआ था । इस परम्परा के अवशेष आज भी कई रूपों में देखे जा सकते हैं । गोवर्धन, गिरनार, आदि पर्वतों, व्रजधाम, प्रयाग, पंचकोशी आदि क्षेत्रों, नर्मदा, गंगा, यमुना आदि नदियों की परिक्रमा आज भी की जाती है । असमर्थता वश जो लोग दूर स्थानों की तीर्थ यात्रा नहीं कर सकते वे इस असुविधा से बचते हुए भी विशिष्ट पर्वों पर, समीपस्थ विशिष्ट स्थानों की या पीपल, बरगद, ऑवला, तुलसी आदि की अमुक संख्या में परिक्रमा कर लेते हैं ।

मैकक्रिन्डल के ग्रन्थ "मेगस्थनीज एण्ड एरियन" के शब्द प्राचीन समय में इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हैं । उसके अनुसार उन दिनों आस्तिक जन छोटी मण्डलियाँ बनाकर तीर्थयात्रा के लिए निकलते थे । वहाँ से चलकर किन-किन स्थानों पर ठहरते हुए कब तक वापस लौटेंगे इसकी रूपरेख प्रत्येक मण्डली बनाती थी । मार्ग में जो भी गाँव, झोंपड़े, जंगल, पुर मिलते थे उनमें रुकते, ठहरते और किसी उपयुक्त स्थान पर रात्रि विश्राम करते थे । निरन्तर यही क्रम चलता था । दिन में जहाँ रुकना, वहाँ धर्म चर्चा करना, लोगों की व्यथा सुनना, उन्हें उचित सलाह देना यह प्रातः से सायं का कार्यक्रम था । रात्रि विश्राम का काफी कुछ समय कथा, कीर्तन, शंका-समाधान सत्संग, प्रवचन आदि में व्यतीत होता था । काय चिकित्सा उपयोगी परामर्श मानसिक समाधान तथा समर्थ शुभकामना जैसे कई एक लाभ इन तीर्थ यात्रियों से सर्वसाधारण को मिलते थे । तीर्थयात्रियों के लिए वह यात्रा एक उच्चस्तरीय तपसाधना थी ।

भावनात्मक सामजंस्य के इस क्रम में मन्दिर-मठों, देवस्थानों में चढ़ने वाली राशि, तीर्थयात्री जत्थों के लिए ही खर्च होती थी । धर्मशालाओं का उद्देश्य इन जत्थों के लिए ठहरने का प्रबन्ध ही था । धर्म प्रयोजन के लिए बनी इन शालाओं का बनाने वाले लोग इसलिए पुण्य के भागी बनते थे कि उनके धन से बनी हुई इमारतें सच्चे अर्थों में धर्म प्रयोजन को पूरा कर रही हैं । तीर्थयात्रा के लिए परिभ्रमण करने वालों में वानप्रस्थियों की बहुलता थी । इस प्रकार तीर्थयात्रा-पदयात्रा की परम्परा जिन दिनों अपने असली स्वरूप में जीवित थी, उन दिनों जन-जन को कितना सुखद अवसर प्राप्त होता था इसकी कल्पना से हृदय पुलक उठता है ।

पूर्व के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए जीवन समर्पित करने वाले ओल्डेनवर्ग ने 'स्टडी ऑव पुराणाज' में तीर्थ तन्त्र के संचालकों की गतिविधियों को तीन वर्गों में बाँटा है । प्रथम तीर्थवास में आने वालों के लिए शिक्षण एवं साधना की समुचित व्यवस्था । द्वितीय तीर्थ के निकटवर्ती क्षेत्रों का एक मण्डल बनाकर उसमें सांस्कृतिक चेतना के सतत् प्रचार का उत्तरदायित्व सम्हालना । तीसरा-समय-समय पर स्वल्प अवधि के लिए दूर-दूर से जन समुदाय तीर्थों में आकर उपस्थित हो ऐसी प्रेरणा जन-जन को देना । यह कार्य पर्व स्नान के रूप में होता था । यों तीर्थ में धर्म प्रेमी जाते तो सदैव रहते हैं । किन्तु पर्वस्नान का विशेष पुण्यफल माना गया है । पर्व स्वाभाविक तौर पर धर्म सम्मेलनों का प्रयोजन पूरा करते थे ।

कभी-कभी धर्मसेवियों ऋषि तपस्वियों का भी मिलन सम्मेलन होता था ताकि वे मिल-जुल कर एक-दूसरे के अनुभव का लाभ उठाते हुए समय की माँग को पूरा करने के लिए मिल-जुल कर उपाय निर्धारित कर सकें । कुम्भपर्व जैसे आयोजन इसी उद्देश्य से निर्धारित किए गए थे । तीन-तीन वर्ष बाद लगभग एक-एक महीने के लिए हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक में सम्पन्न होने वाले इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर्वों का मकसद इस बड़े धर्म क्षेत्र का एक भ्रमण चक्र पूरा करना होता था ।

विभिन्न वर्गों के मूर्धन्य मनीषी अभी भी विविध "सेमिनारो " के रूप में मिलते-जुलते हैं । इनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान, न्याय व्यवस्था आदि जनोपयोगी विषयों पर मिल-जुलकर उचित समाधान के लिए ढूँढ-खोज होती है । प्राचीन काल में कुम्भ जैसे पर्वों का ठीक यही रूप था, ऐसे विशाल आयोजनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका यही थी कि उस अवसर पर विभिन्न मनीषियों के निर्धारणों, प्रतिपादनों तथा प्रेरणाओं से अवगत होकर समुचित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके । यह समस्त गतिचक्र तीर्थों की धुरी पर ही घूमता था । अमुक तीर्थ में अमुक समय पर सम्मेलन पर्व सम्पन्न होना है, यह तय रहने से समय की अलग से सूचना भेजने नई व्यवस्था जुटाने, विद्वानों को आमन्त्रण भेजने की झंझटों से मुक्त रहना सम्भव होता था । सब कार्य स्वाभाविक क्रम से सहज रूप में सम्पन्न होते थे ।

स्पष्ट है जिन दिनों तीर्थ अपनी सभी भूमिकाएँ निभाते रहे होंगे, उन दिनों तीर्थयात्रा से लौटने वाला व्यक्ति वहाँ आध्यात्मिक विश्रान्ति के उपरान्त नई क्षमता, नई दृष्टि और नई स्फुरणा से नए सिरे से अपने सामान्य जीवन में प्रवेश करता होगा । यही नहीं तीर्थों और उनके संचालकों के उर्जस्वी जीवन से बिखरने वाला प्राण भारत-भूमि को स्वर्गोपम परिस्थितियों से भरा-पूरा बनाता रहा होगा ।

आज तीर्थों की काया तो विद्यमान है किन्तु उनकी आत्मा प्रसुप्त है । यद्यपि प्रसुप्ति मृत्यु नहीं है, पर ऐसी स्थिति में होने वाला आचरण मृतवत् तो है ही । इन दिनों तीर्थों में पहुँचने वालों की भीड़, स्नान दान-पुण्य, दर्शन आदि कृत्य तो पहले जैसे ही हैं । लेकिन दोनों स्थितियों में वही अन्तर है जो सुषुप्ति के गर्त और जाग्रति में होता है।

प्रथा तो रह गई है पर प्रेरणा बुझ चुकी है । समय की पुकार है कि मूर्च्छना को जाग्रति में बदला जाय । नवजागरण की इस सुहानी, पवित्र सुबह में तीर्थों के धर्म बिन्दु को उपेक्षित छोड़ना उचित नहीं । मैले कपड़े धोए जा सकते हैं टूट-फूट की मरम्मत होती रहती है । बीमार फिर से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकता है, तब कोई कारण नहीं है कि तीर्थ तन्त्र स्वार्थों और अन्धविश्वासों की बेड़ियाँ तोड़ कर न उठ खड़ा हो । ऐसी स्थिति में इसकी प्रखरता की आभा में अतीत की स्वर्णिम परिस्थितियाँ पुन: जाग्रत हो उठेंगी ।

धर्म धरणा के आलोक केन्द्र -तीर्थ

पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहना है । मनुष्य का मन भी पानी की तरह है, जो पतनोन्मुख प्रवृत्तियों को सहज ही अपना लेता है । इसमें जन्म-जनमान्तरों की संचित पशु प्रवृत्तियों का अभ्यास उस मानवी गरिमा को अपनाने की दिशा में बढ़ने से प्राय: रोकता ही रहता है । ऊँचा उठने के लिए—विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं । पानी को कुँए से ऊपर खींचना हो तो कई साधन जुटाने पड़ते हैं और बल लगाना पड़ता है । इसी प्रकार मनुष्य को ऊँचा-चढ़ना हो तो सीढ़ी आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है । नीचे गिरना हो तो पानी, मनुष्य या कुछ भी, क्षण भर में गहरे गर्त तक पहुँच सकता है । ऊँचा उठना बड़ा काम है । उसके लिए आवश्यक व्यवस्था बनानी पड़ती है । क्रेनें इसी काम में लगी रहती हैं । पम्पों को यही करना पड़ता है । लिफ्टों का यही कार्य है आगे बढाना भी लगभग उसी प्रकार का काम है । पैदल चलना हो तो भी शक्ति चाहिए । दौड़ने वाले वाहनों में भाप, तेल, बिजली आदि की शक्ति नियोजित करनी पड़ती है । इसके लिए अतिरिक्त साधन न जुटाये जाये तो प्रगति की कल्पना स्वप्न ही बनी रहेगी ।

मनुष्य जीवन की विशेषता और सार्थकता उसके उत्थान-अग्रगमन में है । गतिशीलता पशु-प्रवृत्तियों से आगे बढ़ने, ऊचें उठने में हैं । मनुष्य शरीर पालने से कोई बड़ा लाभ नहीं । सुविधा की दृष्टि से तो अन्य प्राणी भी अपनी आवश्यकतानुसार ईश्वर प्रदत्त सुविधाओं को भोगते और सुखी रहते हैं । मानवी गरिमा इतने तक ही सीमित नहीं है । उसके कुछ विशेष कर्त्तव्य हैं और विशेष उत्तरदायित्व । चरित्र और चिन्तन में उत्कृष्टता का समावेश ही मनुष्यता है । मर्यादाओं के पालन और आदर्शों का अवलम्बन अन्य प्राणियों से नहीं बन पड़ता । उसे मात्र मनुष्य ही निवाहता है, इसी में उसका गौरव है । मनुष्य शरीर के साथ जुड़ी हुई उपलब्धियों का रसास्वादन एक सौभाग्य है, उस सुअवसर की सार्थकता इस पर निर्भर है कि मानवी गौरव के अनुरूप आदर्शवादिता अपनाई गई या नहीं । सच्चे अर्थों में मनुष्य उसी को कहा जा सकता है, जो मानवी उत्कृष्टता की अवधारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके शालीनता, कर्मठता और परमार्थ परायणता का परिचय दे ।

एक सीढ़ी इससे भी आगे की है—मानवी काया से देवत्व का उत्पादन, अभिवर्धन । व्यक्तित्व के उच्चस्तरीय उत्कर्ष इसी स्थिति में सन्निहित है। महामानव, सन्त, ऋषि, देवात्मा, अवतार इसी प्रगति यात्रा के क्रमिक सोपान हैं । जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए—पशुता से ऊँचे उठकर—मनुष्यता के उत्तरदायित्व सम्भालने पड़ते हैं—मनुष्य से देवता बनने के लिए गतिविधियों को लोकमंगल में नियोजित करना पड़ता है ।

गुण, कर्म स्वभाव में देवत्व की मात्रा बढ़ते चलने से ही उस आत्म सन्तोष, लोक सम्मान तथा दैवी अनुग्रह की प्राप्ति होती है जिसकी उपलब्धि को पूर्णता की प्राप्ति कहते हैं । शास्त्रकारों ने इसी स्थिति का उल्लेख स्वर्ग, मुक्ति के—ऋद्धि-सिद्धि के—ईश्वर दर्शन आत्म-साक्षात्कार के—रूप में सुविस्तृत वर्णन किये हैं । आत्मिक प्रगति का स्वरूप एवं क्रम यही है । इसी का विवेचन एवं मार्गदर्शन करने के लिए अध्यात्म तत्वज्ञान की रचना हुई है । ब्रह्म विद्या को इसी निमित्त सृजा गया है । दूरदर्शी ऋषि मनीषियों ने धर्म धारणा एवं अध्यात्म साधना का विशालकाय ढाँचा इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया है कि उसके आलोक में मनुष्य प्रगति पथ पर अग्रसर हो सके । अपनी चेतना को, व्यक्तित्व की सत्ता को उच्चस्तरीय बना सके । कहना न होगा कि वैयक्तिक सुख-शान्ति और सामाजिक सुविधा सुरक्षा के समस्त आधार इसी केन्द्र बिन्दु पर निर्भर हैं ।

मनःस्थिति ही परिस्थिति के रूप में परिणत होती है। बाह्य वैभव आन्तरिक वर्चस् का ही प्रतिफल है । हेय मनःस्थिति में पड़े हुए व्यक्ति परिस्थिति की दृष्टि से दरिद्रता, अवमानना, दुर्बलता, रुग्णता, हीनता, दीनता जैसी पिछड़ेपन की स्थिति से कभी उवर न सकेंगे । बढ़ी हुई सम्पदा भी दुष्प्रवृत्तियों को उभारने के अतिरिक्त और किसी काम न आ सकेगी । ऐसे लोगों को किसी अनुपयुक्त मार्ग से वैभव हस्तगत हो जाने पर भी कोई विशेष लाभ नहीं होते । आग में ईंधन पड़ने से भड़की हुई दुष्प्रवृत्तियाँ उस बढ़े हुए अनुपयुक्त वैभव के कारण मनुष्य की रही बची शालीनता और शान्ति को भी नष्ट करके रख देती हैं । वे दरिद्रों की तुलना में भी घाटे में रहते हैं । व्यक्ति और समाज की समग्र सुख-शान्ति के लिए सम्पदा से भी अधिक आवश्यकता उच्चस्तरीय आस्थाओं की है । इसके बिना किसी का मनुष्य जीवन सार्थक हो ही नहीं सकता ।

तत्वदर्शी मनीषियों ने धर्म और अध्यात्मक का तत्वदर्शन सृजा । साथ ही यह प्रयत्न भी किया कि इसे जीवन क्रम में उतारने की विधि व्यवस्था भी बनाई जाय । धर्मधारणा इसी का नाम है । विभिन्न प्रकार के धर्मानुष्ठान इसी के अन्तर्गत आते हैं । इन्हीं आदर्शों के परिपालन के लए प्रथा परम्पराओं का निर्धारण एवं प्रचलन किया गया । संक्षेप में यही है, विशालकाय धर्म कलेवर जिसके अर्न्तगत धारणाओं और कृत्यों का द्विधा समावेश हैं । आचार-व्यवहार के रीति-रिवाजों, नियम-मर्यादाओं के निर्धारण में यह ध्यान रखा गया है कि मनुष्य को आचारवान बनने की दिशा में अग्रसर करें पीछे भले ही मनुष्य ने अपनी भ्रष्टता और दुष्टता का समावेश करके उन्हें कुरीतियों, अन्ध-विश्वासों एवं अनाचारणों में बदल लिया हो पर मूलतः धर्म की आचार संहिता का सृजन मानवी गरिमा के अनुरूप व्यक्तित्वों को ढालने के लिए ही किया गया था ।.विकृत होने पर तो अमृत भी विष हो सकता है । धर्म परम्परा भी यदि अन्धविश्वासों में परिणत होकर अनुपयुक्त बन चले तो उसमें आपूचर्य ही क्या है । आज हम धर्म विकृति के ऐसे युग में रह रहे हैं जिसमें धर्म तत्व का दर्शन भी कठिन हो रहा है । धूर्तों और मूर्खों का समन्वित आधिपत्य ही उस पर छाया दीखता है ।

धर्मानुष्ठानों के असंख्य स्वरूप हैं । सामान्य पूजा उपासना से लेकर उच्चस्तरीय योगाभ्यासों और तप साधनों तक अनेकानेक क्रिया-प्रक्रिया मनुष्य को एक ही लक्ष्य पर ले जाती हैं कि वह भावनात्मक दृष्टि से अधिकाधिक परिष्कृत होता चला जाय और ऐसी आचार पद्धति अपनाये जो अपने स्वयं के लिए तथा समूचे संसार के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हो । धर्मानुष्ठानों के स्वरूप कितने ही प्रकार के क्यों न हों ?उनका लक्ष्य एक ही है जीवन क्रम में अधिकाधिक उदात्त, उत्कृष्टता का समावेश करते हुए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाना और उस स्थिति का व्यक्ति तथा समाज को परिपूर्ण लाभ प्रदान करना । आज धर्मानुष्ठान भले ही देवता को फुसलाकर मनोकामनाएँ पूर्ण करने के लिए किये जाते हों पर इस उद्देश्य से उन्हें बनाया नहीं गया था । परिष्कार अन्तःकरण अपने आप में एक परिपूर्ण देवता है, उसके अन्तराल से जो कुछ उद्भूत होता है उसे ऋद्धि-सिद्धियों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की रत्न-राशि समझा जा सकता है । प्रगति और शान्ति, स्वर्ग और मुक्ति उसी के प्रतिफल हैं ।

मनुष्य को धर्म धारणा के राज मार्ग पर चलकर सर्वतोमुखी प्रगति से लाभान्वित होने के लिए जिन क्रिया कृत्यों और विधि-विधानों का निर्धारण किया गया है उनकी संख्या एंव विधि व्यवस्था का विस्तृत वर्णन करना इन पंक्तियों में अभीष्ट नहीं । यहाँ तो इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि दैनिक उपासना, देव प्रतिमाओं का नमन-वन्दन, षोड़स-संस्कार, पर्व-त्यौहार, व्रत-उपवास, कथा-कीर्तन, स्वाध्याय, सत्संग, अग्निहोत्र, बलिवैश्व, जप-ध्यान, श्राद्ध-तर्पण, दान-पुण्य, योगाभ्यास, तप-साधन, ब्रह्मभोज, सन्त-सत्कार, सदावर्त, जलाशय, धर्मशाला, स्मारक आदि के अनेकानेक धर्मकृत्यों का बाह्य स्वरुप भिन्न भले ही हो पर उनका मूल प्रयोजन व्यक्ति को अधिक पवित्रता एवं अधिक उदारता अपनाने की प्रेरणा प्रदान करना ही है । इन क्रिया-कृत्यों की सार्थकता उतनी ही आँकी जा सकती हैं; जितने से कि मूल उद्देश्य के पूर्ण होने में सहायता मिलती है । आत्मा की, परमात्मा की प्रसन्नता इसी तथ्य पर निर्भर है कि अपनाये गये धर्म-कृत्यों के सहारे आत्म-परिष्कार का लक्ष्य पूरा कर सकना किस परिमाण में सम्भव हुआ । देवता के वरदान इसी एक कसौटी पर कसकर सत्पात्रों को दिये जाते हैं कि उनने धर्म-कृत्यों को अपना कर अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता का कितना विकास किया । देव अनुग्रह की मात्रा और प्रतिक्रिया इसी आधार पर उपलब्ध होती है । आंख भले ही प्रशंसा करने और उपहार देने के मूल्य पर दैवी अनुकम्पा पाने की बात सोची जाने लगी हो पर यथार्थता कुछ और ही है । धार्मिकता की सार्थकता और उस मार्ग पर चलने वाले को मिलने वाली सर्वतोमुखी सुसम्पन्नता का आधार केवल एक ही है कि इन उपचारों के सहारे किसने आत्मपरिष्कार में कितनी सफलता प्राप्त की ।

धर्म-कृत्यों में सबसे अधिक व्यापकता, विशालता और लोक-मान्यता तीर्थयात्रा को मिली है । ध्यान- पूर्वक देखने से विदित होता है कि अन्यान्य धर्म-कृत्यों के लिए धर्म प्रेमी जन-समुदाय का जितना श्रम, समय, मनोयोग एवं धन खर्च होता है उस सब का समन्वय करने से भी अधिक प्रयत्न तीर्थ यात्रा के लिए नियोजित करते हैं। भारत में हजारों बड़े और लाखों छोटे तीर्थ हैं । अपने-अपने क्षेत्रों में इन सभी की महिमा और मान्यता है। लोग श्रद्धापूर्वक तीर्थ सेवन के लिए समय, श्रम, मनोयोग एवं धन का प्रचुर परिमाण में खर्च करते हैं । समय-समय पर तीर्थयात्रा के विशेष पर्व आते हैं । उन पर पवित्र जलाशयों में स्नान करने एवं देव प्रतिमाओं का दर्शन करने अगणित लोग भाव श्रद्धा लेकर पहुँचते हैं । विशेष पर्वों पर भीड़ इतनी हो जाती है कि उसकी व्यवस्था बनाने में सरकार तक को भारी दौड़-धूप करने एवं जिम्मेदारी उठाने की आवश्यकता पड़ती है । सामान्य अवसरों पर भी लोग तीर्थ यात्रा की धर्म भावना से वहाँ पहुँचते ही रहते हैं ।

प्रसिद्ध तीर्थों में अनेक पर्व होते हैं । इन विशिष्ठ अवसरों से लेकर सामान्य दर्शन तक को पहुँचने वाले यात्रियों की गणना की जाय तो वह संख्या लाखों को पार कर जाती है । बड़े तीर्थ हजारों हैं । उन सब में पहुँचने वाले हर साल करोड़ों होते हैं । छोटे तीर्थ इनके अतिरिक्त हैं । उनमें भी कुछ सिलसिला तो चलता ही रहता है । कुम्भ मेले जैसे बड़े आयोजनों की विशालता तो आश्चर्यजनक होती है । इन सबमें सम्मिलित होने वाले जन-समुदाय का लेखा-जोखा लिया जा सके तो प्रतीत होगा कि करोड़ों व्यक्ति वहाँ पहुँचते हैं। यह ठीक है कि हर प्रकृति के लोग उनमें नहीं जाते, पर ऐसा भी होता है कि एक ही व्यक्ति बार-बार कई-कई तीर्थों में पहुँचे । हर हालत में उपस्थित का अनुपात इतना अधिक रहता है कि उसे असाधारण ही कहा जा सकता है। अभ्यास में आने और प्रचलन में सम्मिलित रहने के कारण वह स्वाभाविक, सामान्य भले ही लगने लगे पर वस्तुत: वैसा है नहीं । इतनी बड़ी जन-शक्ति का एक विशिष्ठ प्रयोजन के साथ सम्बद्ध रहना—उसके निमित्त इतना समय, श्रम, मनोयोग और धन खर्च करना कुछ अर्थ रखता है । तीर्थ प्रयोजन में संलग्न जन शक्ति और धन शक्ति का विस्तार इतना बड़ा है कि उतने भर से आर्थिक प्रगति के नाम पर खड़ी की जाने वाली कई-कई पंचवर्षीय योजनाएँ सफलतापूर्वक चलाई जा सकती हैं । इतना श्रम और धन शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग आदि किसी भी केन्द्र पर नियोजित किया जा सके तो उतने अनुदान से उस क्षेत्र में काया-कल्प जैसी प्रगति हो सकती है । जन साधारण द्वारा एक पवित्र प्रयोजन के लिए इतने भाव-भरे अनुदान प्रस्तुत करते हुए देखकर प्रतीत होता है कि जन मान्यता में तीर्थ के लिए कितनी आस्था विद्यमान है । इस श्रद्धा और चेष्टा के समन्वय का प्रतिफल ऐसा उत्पन्न होना चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति और अभीष्ट की पूर्ति हो सके । तीर्थों की स्थापना उनकी यात्रा का इतना सुविस्तृत प्रावधान इसलिए बना कि उस पुण्य-प्रक्रिया के सम्पर्क में आने वाला अपनी गरिमा निखार सके और सामाजिक प्रगति में उत्साहवर्धक योगदान दे सके । आज तीर्थ भी हैं और तीर्थयात्रा का प्रचलन भी । किन्तु सब कुछ खोखला और निर्जीव बन गया । ढकोसला खड़ा रहा ओर उसमें से प्राण निकल गया है तो उस निरर्थक विडम्बना के बने रहने या सड़े पदार्थों के फूलते रहने की तरह क्या कुछ बनेगा ? इस ज्वलन्त प्रश्न पर आज गम्भीर चिन्तन की आवश्यकता है । साथ ही यह भी अभीष्ट है कि भ्रान्ति या विकृति की इस क्षेत्र में जहाँ घुस पैठ हुई है उसका परिमार्जन, परिशोधन और नवनिर्धारण किया जाय ।

जाग्रत और जीवन्त : प्राणवान तीर्थ

ऋषि तपोवनों में रहते थे । तपश्चर्या करते थे । इसका अर्थ और स्वरूप जो इन दिनों दृष्टिगोचर होता है, पुरातन काल में वैसा न था । तप का अर्थ है—सदुद्देश्यों के लिए अनवरत श्रम और आवश्यकता पड़ने पर कष्ट सहन । तपोवन का अर्थ है—प्रकृति सान्निध्य में अवांछनीय तत्वों से रहित शान्त वातावरण । प्राचीन काल में ऐसे ही तपोवन तीर्थ बनते थे । जहाँ ऊर्जा प्रचुर परिमाण में उत्पन्न होती थी, जहाँ उससे जुड़ने के लिए कुछ तार सर्किट और भी जुड़ जाय तो प्रचण्ड जेनरेटरों का कुछ बनता बिगड़ता नहीं ।

जिनके पास उत्पादन क्षमता की कमी नहीं, उनसे कुछ अधिक लोग लाभ उठाने लगें तो निर्झरों को कोई घाटा नहीं पड़ता । पशु-पक्षी उससे बिना हिचक के लाभ उठाते रहते हैं । समुद्र से बादल पानी भर ले जाते हैं तो भी न वह सूखता है, न सतह नीची होती है । हिमालय से कितने ही नदी-सरोवर जल लेते भरे-पूरे रहते हैं । इतने पर भी उस अनुदान को बाँटते-बाँटते युग बीत जाने पर भी हिमवन्त ने किसी हानि की कल्पना नहीं की । स्वाँति सृष्टि के आदि से ही बरसता रहता है । उससे कितनी सीपों ने मोती उगाये, कितने केले कपूर के धनी हुए, कितने बाँसों में वंशलोचन उपजा पर इससे उस अमृत वर्षा में कहीं कोई कमी पड़ती नहीं देखी गई ।

तपोवन में तपश्चर्यारत ऋषियों का न केवल लक्ष्य-प्रयोजन महान था वरन् विश्वकल्याण के उच्चस्तरीय निर्धारणों में अपने को सर्वतोभावेन खपाये रहते थे, तो भी तीर्थ-यात्रियों की व्यक्तिगत गुत्थियों को सुलझाने, प्रगति से लिए आवश्यक अनुदान देने में कभी उनने कटौती-कोताही नहीं बरती । तीर्थ क्रम अपने ढर्रे पर चलता रहा । आवश्यक प्रक्रिया से लोक-मंगल ढंग से सधता रहा, तो भी उनके उच्चस्तरीय उन व्यवधानों में कोई व्यवधान नहीं आया जिनके लिए उन्हें ऋषिकल्प जीवनचर्या अपनानी पड़ी और तपसाधना के आधार पर प्रसुप्त प्रखरता की प्रचण्डता के स्वर उभारने में प्राणपण से निरत रहना पड़ा ।

आज के बाबा लोग घर-गृहस्थी छोड़कर, संसार को माया-जाल बताते हुए, पलायनवादी आलसियों की तरह किसी कोंतर में मुँह छिपाये पड़े रहते हैं । माँग-माँग कर पेट भर लेते हैं । मन आया तो उलटी सीधी माला घुमा दी, अन्यथा अपंग-असमर्थों की तरह इधर-उधर मटरगस्ती करते दिन गुजारते रहे । इसी विडम्बना से ऋषि जीवन तथा उनेक महान कार्यक्रम की तुलना करने वाले अक्सर भ्रम में पड़ते और सोचते हैं कि उस बहुमूल्य जीवन का इस अनगढ़ वैराग्य में अपव्यय होना एक दुर्भाग्य भरी दुर्घटना जैसा ही हुआ ।

वस्तुस्थिति भिन्न थी । कोई ऋषि प्रयोजनों का सहचर यदि इन दिनों साक्षी देने के लिए विद्यमान रहा होता तो वह कहता कि वेश के सहारे साधु और वंश के सहारे ब्राह्मण होने का दावा करने वाले उन दिनों कहीं कोई नहीं थे । ऋषि विशुद्ध वैज्ञानिक थे । वे विभिन्न प्रयोजनों के लिए अपने स्थूल और सूक्ष्म शरीरों को इस प्रकार साधते थे, कि वे एक दिव्य बहुमूल्य उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशाला का हर काम उससे ले सकें । भौतिक प्रयोजनों के अनुसंधान के लिए इन दिनों यंत्र उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशालाएँ खड़ी की जाती हैं । भौतिक साधन चाहिए ही । किन्तु आत्मिक क्षेत्र की बात दूसरी है । उसके लिए चेतन उपकरणों वाली चेतन प्रयोगशाला चाहिए । यह एक हो सकती है मानवी काया । उसमें एक तो कर्म पक्ष है—वह खाने, सोने और दैनिक क्रिया-कृत्य करने में लगा रहता है । इसके अतिरिक्त दूसरा पक्ष उच्चस्तरीय अध्यात्म प्रयोजनों से सम्बन्धित है । मस्तिष्क का थोड़ा सा भाग ही जीवनचर्या में काम आता है अधिकांश भाग अचेतन और उच्च चेतन का है जिसमें अतीन्द्रिय क्षमताएँ भरी पड़ी हैं । उसी में ब्रह्मसत्ता से जुड़ने और उससे आदान-प्रदान का द्वार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोलने वाले सूक्ष्म संयंत्रों की छोटी किन्तु सुविस्तृत प्रयोगशाला है हृदय भी ऐसा ही दिव्य संस्थान है । उससे रक्तसंचार का काम भी होता है, साथ ही भावना तंत्र भी इतना दिव्य है कि मनुष्य को उच्चस्तरीय संवेदना से आप्लावित करके स्वर्गीय उल्लास की अनुभूतियों से रस विभोर कर दे । षट्चक्रों, उपत्यिकाओं की ऐसी दिव्य संरचना मानवी काया में विद्यमान है कि उसे जागृत, परिष्कृत समर्थ बनाया जा सके तो उसी क्षेत्र में लोकोत्तर विभूतियों का भण्डार भरा पूरा देखा जा सकता है । इसी रत्न राशि को ऋद्धियों-सिद्धियों के नाम से जाना जाता है देवताओं के वरदान-अनुदानों की चर्चा कथा पुराणों में मिलती है और तप द्वारा उन्हें प्रसन्न करने का वर्णन मिलता है । यह देवता अन्यलोक में भी हो तो सकते, पर जो व्यक्ति विशेष को निहाल करते हैं वे भीतर से ही उभरते हैं । तपश्चर्या का प्रयोजन व्यक्तित्व को इतना पवित्र और प्रखर बना देता है जिसमें नर-पशु को तिरोहित और नर-नारायण को प्रकट, समर्थ और कार्यरत देखा जा सके ।

ऋषियों की तप साधना एक वैज्ञानिक पद्धति थी जिसके आधार पर स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को देव स्तर का बना लिया जाता था । इसी शक्ति पुंज के सहारे वे ओजस्, तेजस् और वर्चस् की सम्पदाओं से सम्पन्न बनते थे । उस सामर्थ्य का अर्जन था लोक कल्याण की महान योजनाओं की पूर्ति में उनका नियोजन करना । व्यक्तिगत लाभ की न उन्हें इच्छा थी न आवश्यकता । समर्थ किसी का आसरा नहीं ताकते, वे प्रचण्ड नदी प्रवाह में कूदकर भी पार हो सकते हैं किन्तु इतने भर से उनका काम तो नहीं चलता । नदी के किनारे इस पार से उस पार जाने के उत्सुक किन्तु साथ ही असहाय असमर्थ जनों की सहायता करने के लिए करुणा उमड़ती है तो वे नाव बनाते भी हैं और चलाते भी । ऋषियों के सभी प्रयास मात्र परमार्थ प्रयोजनों के लिए नियोजित रहते हैं । परमार्थ ही उनका स्वार्थ होता है । दूसरों का दुःख बँटाने, हौसला बढ़ाने और अभ्युदय के चरम लक्ष्य तक प्राणियों को पहुँचाने का ताना-बाना बुनते रहने में ही उन्हें सन्तोष मिलता है । 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की—'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उमंगें सेवा साधना की व्रतशीलता अपनाये बिना तृप्त भी हो नहीं होतीं । इसके बिना उन्हें चैन भी तो नहीं पड़ता । इन्हीं प्रयासों में उन्हें आत्मकल्याण और लोक कल्याण का उद्देश्य पूरा होता दीखता है । पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हर श्रेयार्थी को इसी मार्ग पर चलना पड़ा है ।

ऋषि एकान्त तपोवनों की गुफा कन्दराओं में अजगर की तरह नहीं पड़े रहते थे वरन् उस चरम पुरुषार्थ में संलग्न रहते थे जिसे स्रष्टा के उपरान्त मात्र तपस्वियों में ही देखा जा सकता है । स्वार्थ सिद्धि के कोल्हू में पिलते और चक्की में पिसते नर-पशुओं का विशाल समुदाय कहीं भी इन्हीं आँखों से देखा जा सकता है—किन्तु लोभ-मोह की हथकड़ी-बेड़ी तोड़कर जो सत्प्रवृत्ति-सम्वर्धन में निरत रह सके—लोकमंगल में अपना परिपूर्ण हित साधन देख सके ऐसे दिव्यदर्शी-मनीषी कहीं-कहीं ही दृष्टिगोचर होते हैं । उन्हें अपनी गतिविधियाँ कोलाहल रहित स्थानों में चलानी पडती है । वैज्ञानिक, साहित्यकार तथा दूरगामी योजनाओं का निर्धारण क्रियान्वयन करने के उत्तरदायी सदा ऐसा वातावरण खोजते हैं, जहाँ उनके गम्भीर चिन्तन में कम से कम विक्षेप पड़े ।

अमेरिका सरकार ने महान वैज्ञानिक आइन्सटीन की निवास व्यवस्था इस प्रकार की थी जिसमें उन्हें मनचाही सुविधा तो रहे किन्तु उनके एकान्त-चिन्तन में किसी को भी हस्तक्षेप करने का अवसर न मिले । वे जब चाहें जिसे चाहें उसी से भेंट हो सके । अन्य लोग कितने इच्छुक-उत्सुक क्यों न हों उन्हें शान्ति भंग करने और चिन्तन प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न करने की छूट नहीं मिलती थी । सुविधा ही नहीं, प्रतिबन्ध भी गम्भीर चिन्तन में अपेक्षित होते हैं । इसी उदाहरण को ऋषि कल्प महामनीषियों के साथ जोड़ा जा सकता है । वे स्वेच्छापूर्वक ऐसे वातावरण में रहते थे जहाँ मात्र उपयोगी व्यक्ति ही उन तक पहुँचे । बाजारू भीड़ से घिरे रहने में उनकी हानि ही हानि है जिन्हें कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए अपनी शक्तियों को अपव्यय से बचाना है । प्राचीन-काल के ऋषियों के एकान्त सेवन और आज के आम लोगों का प्रमाद-पलायन एक जैसा लग तो सकता है पर उद्देश्य की कसौटी पर कसने के उपरान्त दोनों में जमीन-आसमान जितना अन्तर दिखाई देता है ।

इन पंक्तियों में चर्चा तीर्थ परम्परा की, की जा रही है और यह बताया जा रहा है कि महत्त्व किसी नदी, पर्वत, वृक्ष आदि का नहीं, वरन् उस क्षेत्र में निवास करने वाले प्राणवान तीर्थों का हैं जिन्हें पुराने समय में 'ऋषि' कहते थे । आज उन्हें पवित्रता और प्रखरता के धनी, लोकमंगल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिये समर्पित महा-मानव कह सकते हैं । वेश से कोई साधु नहीं हो सकता और वंश के आधार पर किसी को ब्राह्मण की पदवी नहीं मिल सकती । यह सम्मानास्पद पदवियाँ उत्कृष्टता, आदर्शवादिता एवं परमार्थ परायणता पर ही पूरी तरह निर्भर हैं । ऐसे लोग जहाँ भी निवास करते हैं वहीं तीर्थ बन जाता हैं । इतिहास पुराण इन तथ्यों को अनेकानेक प्रमाणों उदाहरणों द्वारा प्रतिपादित करते हैं ।

'महामानव' वे जो महान कृत्य करें । जिनके जीवन क्रम में लोक मंगल की साधना जुड़ी हुई न हो, वे व्यक्तिगत जीवन में भले बुरे जैसे भी होंगे, उन्हें कृत्यों के अनुरूप यश-अपयश या सुख-दुःख मिलेगा । जो इतने तक सीमित हैं—जिनके सामने विश्व मानव की पीड़ा नाम की कोई बात नहीं जो जन-कल्याण की बात सोचते तक नहीं, उन्हें पाषाण हृदय कहना चाहिए भले ही वे पूजा पाठ में कितने ही उलझे क्यों न रहते हों । तीर्थ न केवल उदारचेता महामानवों के प्राणवान व्यक्तित्व से अनुप्राणित होते हैं वरन् उनके महान कर्तृत्व से भी वह भूमि धन्य बनती है । उस स्थान पर पहुँचने और उसकी धूलि मस्तक पर लगाने की भाव श्रद्धा सहज संवेदनशील हृदयों में उमड़ती रहती है ।

प्राचीनकाल में तीर्थों को कलेवर और ऋषियों के व्यक्तित्व एवं उनके महान कर्तृत्व को प्रण समझा जाता था । दोनों के समन्वय से ही वे जीवन्त बनते थे । माहात्म्य ऐसे ही स्थानों का है । तीर्थ उसी विशेषता के कारण बने प्रख्यात हुए और पूजे गये । तथ्य अपने स्थान पर सदा सर्वदा स्थिर रहते हैं । आज भी कहीं पुण्यफलदायक तीर्थ की तलाश करनी हो तो वहाँ के सम्बन्ध में फैली हुई जनश्रुतियाँ, किम्वदन्तियों और कथा कहानियों पर ध्यान न देकर यह देखना चाहिए कि कलेवर में प्राण है या नहीं । प्राण निकल जाने पर काया स्थिर भी नहीं रह सकती वह तुरन्त सड़ना आरम्भ कर देती है । ठिकाने न लगाया जाय तो फिर अपने भीतर से ही कृमि-कीटक उत्पन्न करके अस्तित्व समाप्त कर लेती है । निर्जीव और सजीव तीर्थों के सम्बन्ध में भी यही बात है । पुरातन घटनाओं का स्मरण दिलाने पर उत्साह तो बढ़ता है और प्रेरणा भी मिलती है किन्तु उपयोगिता, क्रियाशीलता न होने पर उसका प्रभाव भी नगण्य जितना ही होता है । नालन्दा, तक्षशिला विश्वविद्यालयों ने किसी समय समूचे एशिया खण्ड तथा विश्व के अन्य भू-भागों को नव-जीवन से अनुमाणित किया था । अब वे गतिविधियाँ न रहीं, मात्र ध्वंसावशेष बचे हैं । वहाँ जाने पर दर्शकों को गौरव भरे अतीत का स्मरण आता है पुलकन उठती है और उन महान प्रयासों के प्रति मस्तक भी श्रद्धावनत होता है । इतने पर भी वैसा प्रत्यक्ष लाभ कुछ भी नहीं मिलता जैसा कि उनके गतिशील रहने के दिनों में सान्निध्य स्थापित करने पर मिलता । अतीत की स्मृतियाँ कितनी ही प्रेरणाप्रद हों उनसे वह लाभ नहीं मिल सकता जो उनकी प्रखरता के दिनों सम्बन्ध रखने वालों को मिलता था । तीर्थों के सम्बन्ध में भी यही बात है उन्हें जीवन्त और निष्प्राण वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । जीवन्त वे जो सक्रिय हैं, जिनमें ऋषि कल्प आत्माएँ निवास करतीं तथा उन गतिविधियों को सही रुप में चलाती हैं जो तीर्थ गरिमा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं ।

जिन्हें तीर्थ परम्परा की चिन्ह पूजा ही पर्याप्त लगती है उन्हे लकीर पीटकर ही सन्तोष कर लेना चाहिए । पानी में डुबकी मारने मात्र से अगर स्वर्ग मिलता हो तो उसे क्यों छोड़ना चाहिए ? प्रतिमाओं का दर्शन यदि अक्षय पुण्यफल दे सकता है, मनोकामना पूर्णकर सकता है, तो लाटरी खुलने से भी यह सस्ता सौदा किसी को भी हाथ से नहीं जाने देना चाहिए । आत्मशोधन और परमार्थ परायणता की कष्ट साध्य साधना करने वालों को मूर्ख ठहराने वाली यह 'बिना हर्र फिटकरी के रंग चोखा' लाने वाली चतुरता यदि बात की बात में इतने बड़े लाभ दे सके तो उस उपलब्धि में किसी को क्यों बाधक बनना चाहिए ? बात तथ्यान्वेषियों की है—उनकी, जो कार्य कारण की संगति बिठाते हैं । क्यों-कैसे ? का उत्तर पाने के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते हैं । उन्हें यह बात गिरह बाँधनी चाहिए कि तीर्थ निर्धारण की गरिमा तथा उसकी फलश्रुति पर भरोसा तभी किया जा सकता है जब गन्तव्य तीर्थ में प्राण-प्रखरता विद्यमान हो । वहाँ ऋषि कल्प महामानव उन पुण्य परम्पराओं का निर्बाह, गतिविधियों का संचालन करते हों, जिन्हें उस प्रसंग में आधारभूत कारण ठहराया गया है । जीवन्त तीर्थ ही विवेकशीलों के लिए उपास्य हो सकते हैं । उस उपासना में यात्रियों को अपनी ओर से भी उस श्रद्धा साधना का समन्वय करना होगा जो उनके लिए सनातन काल से अनिवार्य ठहराई गई है ।

भोजन पौष्टिक होना ही पर्याप्त नहीं, उसे पचाने की पेट में शक्ति भी होनी चाहिए । वर्षा होनी ही काफी नहीं, जल जमा करने के लिये गहराई भी अभीष्ट है । चट्टान पर विपुल पानी बरसते रहने पर भी घास का एक तिनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं उगता । रक्त की पूरक क्षमता समाप्त हो जाने पर कुष्ठ व्रण पर कोई मरहम काम नहीं करता । अनुदानों की अपेक्षा उन्हीं को करना चाहिए, जिनमें पात्रता हो । सरकारी उच्चपदों के लिये आवेदन पत्र माँगे जाते हैं पर उन पर नियुक्ति आवश्यक योग्यता की शर्त पूरी करने वालों की ही होती है । तीर्थों के माहात्म्य-अनुदान ही सब कुछ नहीं मान लेने चाहिए, उसके लिए यात्रा में अपनी श्रद्धा निष्ठा का समन्वय भी होना चाहिए । दर्शन कर लेना भर उपयुक्त पात्रता निशानी नहीं है ।

आग जलती होना ही पर्याप्त नहीं, ईंधन भी सूखा होना चाहिए । गीली लकड़ी जलेगी नहीं धुआ ही देती रहेगी । चिकित्सक और उपचार ही सब कुछ नहीं । रोगी का पथ्य सेवन एवं अनुशासन पालन भी आवश्यक है । एक हाथ से ताली नहीं बजती । एक पहिये की गाड़ी नहीं चलती । दोनों तार सही होने पर ही करेन्ट उत्पन्न होता है । भूमि और बीज दोनों के सही होने पर ही फसल उगती और कोठे भरती है । सुयोग्य अध्यापक ही किसी को निष्णात नहीं कर सकता । छात्र की श्रमशीलता और बुद्धिमत्ता भी उतनी ही आवश्यक होती है । गाय दूध देती है यह सही है पर उसके लिए चूसने वाला बछड़ा अथवा दुहने वाला ग्वाला भी तो चाहिए । तीर्थों की महिमा महत्ता कितनी ही बढ़ी-चढ़ी या सही क्यों न हो, जब तक उस प्रक्रिया को ठीक प्रकार से अपनाने वाले धर्मनिष्ठ मनोभूमि तथा श्रद्धासाधना को तेजस्वी न करेंगे तब तक वह पुण्यफल मिलेगा नहीं जिसकी आशा अपेक्षा की जाती है ।

तीर्थ जीवन्त हो यह ढूँढ़ा जाना चाहिए । उपलब्ध हो तो ही किसी बड़े प्रतिफल की आशा करनी चाहिए । अन्यथा पर्यटन से जितना विनोद सन्तोष हो सके उतने को ही पर्याप्त मान लेना चाहिए । तीर्थ में पहुँचकर मात्र देखना ही सब कुछ नहीं होता वरन् वहाँ कुछ सोचना करना भी पड़ता है । जप, अनुष्ठान, स्वाध्याय, सत्संग के निर्धारण इसके लिए पहले से ही बने हुए हैं । प्रायश्चित, परिशोधन भी इसी प्रक्रिया का अंग है । इस अवधि में अनुदान-वरदान पाने की ललक लिप्सा ही नहीं संजोए रहना चाहिए वरन् यह समझना चाहिए कि वर्तमान साधना एवं भावी निर्धारण का स्वरूप कितना प्रखर एवं तेजस्वी रहता है ।

अच्छा हो तीर्थ साधक पर्यटन को गौण मानकर चलें । उसके लिए बहुत दौड़-धूप न करें । भगवान एक ही है । अनेक देवताओं एवं अनेक देवालयों में उस एक की ही झाँकी होती है तो फिर थकाने, चित्त भी चंचल किए रहने वाली भगदड़ को अनावश्यक महत्व क्यों दिया जाय ? इसी लक्ष्य प्रयोजन पर ध्यान केन्द्रीभूत क्यों न रखा जाय जो उच्चस्तरीय साधनाओं, प्रेरणाओं एवं अवधारणाओं के सहारे चिन्तन और चरित्र में आदर्शवादी परिवर्तन प्रस्तुत कर सके । स्मरण रहे इस सृष्टि का नियंता, अधिष्ठता, में भगवान एक है । विभिन्न देवता, उसी की विभिन्न मान्यताओं के आधार पर गढ़े गये नाम रूप मात्र हैं । जब एक ही सर्वत्र संव्याप्त है तो एक प्रतिमा की झाँकी करने पर भी संतोष किया जा सकता है और उस मूल्यवान समय को आत्म परिष्कार के उस पुण्य प्रयोजन में लगाया जा सकता है जो तीर्थ साधना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । इस तत्वदर्शन को ध्यान में रखते हुए यदि सुनियोजित तीर्थाटन किया जाय तो वे समस्त लाभ पुण्य सहित अर्जित किए जा सकते हैं, जिनका उल्लेख शास्त्रों में विस्तार से आया है ।

तीर्थों की स्थापना का उद्देश्य

प्राणी या पदार्थ स्वभात: अनगढ़ होते हैं उन्हें सुन्दर, समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता पड़ती है । पदार्थों को पकाया, गलाया, ढाला व खरादा जाता है, तब कहीं वे अपनी अनगढ़ स्थिति से आगे बढ़कर उपयोगी बनते हैं प्राणियों के सन्दर्भ में भी यही बात है । पशुओं को पालतू बनाने के लिए उनकी वन्य प्रकृति को बदलना पड़ता है । सरकस जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों में उनकी भूमिका अधिक उपयुक्त हो सके इसके लिए प्रशिक्षण में और भी अधिक कठोरता एवं सतर्कता बरतनी पड़ती है । प्रशिक्षित पशु-पक्षी स्वयं कितना श्रेय-सम्मान पाते हैं और पालने वाले के लिए कितने उपयोगी सिद्ध होते हैं यह किसी से छिपा नहीं है । अनगढ़ को सुगढ़ बनाने का नाम ही सभ्यता एवं संस्कृति है । बगीचे के पौधों की कटाई, छटाई, गुड़ाई, निराई, सिंचाई जैसे उपचारों से, कुशल माली उन्हें कितना सुविकसित बना देता है । कलम लगाने पर पेड़ों के फल फूलों में कितना अन्तर आ जाता है उसे देखते हुए सुसंस्कारिता को एक प्रकार से जादुई उपचार ही कह सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने का विज्ञान और विधान संस्कृति कहलाता है । इसके दर्शन को अध्यात्म और व्यवहार को धर्म कहते हैं । धर्म और अध्यात्म का समन्वय ही साधना विज्ञान है । ब्रह्म विद्या इसी को कहते हैं । इस प्रयोजन के लिये बनाये गये अनेकानेक उपाय-उपचारों को धर्म कृत्यों के रूप में विनिर्मित किया गया है ।

इन धर्म कृत्यों में तीर्थ को महत्ता अत्यधिक है । इसका पता उसकी प्रथा परम्परा के प्रति धर्मप्रिय जनता के उत्साह के देखने से सहज ही लग जाता है । स्थिति इस स्तर तक कैसे पहुँची—इस पर अधिक गम्भीर चिन्तन करने से प्रतीत होता है कि इस पुण्य प्रयोजन को इतनी लोक मान्यता मिलने के पीछे कई कारण हैं ।

ऋषियों ने तीर्थों का माहात्म्य वर्णन करने में धर्म पुराणों के जितने पृष्ठ लिखे हैं उतने कदाचित् अन्य किसी प्रसंग पर नहीं । शिव पुराण का बहुत बड़ा भाग तीर्थ माहात्म्य से ही भरा पड़ा है । अन्यान्य पुराणों-उपपुराणों में इस संदर्भ में इतना अधिक पुण्य-फल बताया गया है कि उसे प्राप्त करने के लिए धर्म प्रेमियों की सहज श्रद्धा को परिपूर्ण प्रोत्साहन मिले । पापों से निवृत्ति प्रायश्चित विधा-पुण्य संचय, स्वर्गमुक्ति की प्राप्ति, देवी अनुकम्पा, आत्म-शान्ति, मनोकामना की पूर्ति जैसे कितने ही लाभ गिनाये गये हैं । उनके साथ क्या इतिहास जुड़ा हुआ है । किन कारणों से वे तीर्थ बने, उनका सेवन करने से किसे क्या पुण्य फल प्राप्त हुआ ? जैसे अनेकों वृतान्त इस तीर्थ चर्चा के प्रसंग में आते हैं । इन कथनोपकथनों का प्रयोजन यह है कि जन साधारण में वहाँ पहुँचने की प्रवृत्ति बढ़े ।

दूसरा प्रयास तीर्थ यात्रा को प्रोत्साहित करने में उन लोगों का है जिनने उन स्थानों पर दर्शनीय, देवालय, घाट, सरोवर, राज-मार्ग, धर्मशाला आदि बनाये । वहाँ पहुँचने के रास्ते में ठहरने के सुविधा-साधन उत्पन्न किये ।

जन साधारण को वहाँ पहुँचाने के लिए प्रोत्साहन इसलिए दिया गया कि वे वहाँ पहुँचे और इन कल्प वृक्षों के सम्पर्क में आकर आन्तरिक अभावों और संकटों से निवृत्ति प्राप्त करें । तीर्थ के पारस का स्पर्श करके अपने कलूष कालिमा की लौह जैसी कठोरता को बहुमूल्य स्वर्ण सदृश बनाने का श्रेय प्राप्त करें ।

अपने आरम्भ में तीर्थ एक प्रकार के शान्ति समाधान के केन्द्र थे जहाँ पहुँच कर कुछ समय तीर्थ यात्री को वहाँ निवास करना पड़ता था, इन निवास अवधि को तीर्थ सेवन नाम दिया गया है । अभी भी त्रिवेणी तट पर माघ महीने में पर्ण कुटी बना कर कितने ही व्यक्ति एक महीने का साधना व्रत लेते हैं । और उस तपश्चर्या को 'कल्प वास' कहते हैं । प्राचीन काल में तीर्थ ऐसे आध्यात्मिक सेनेटोरियम थे जहाँ आत्मिक विश्रान्ति पाने एवं उद्विग्नताओं का समाधान करने में सहायता मिलती थी । वहाँ ऋषियों के अरण्यक रहते थे तीर्थ सेवन के लिए आने वाले वहाँ कुछ समय ठहर कर जीवन क्रम पर नये सिरे से विचार करते ओर आरण्यक संचालक ऋषियों से अपनी समस्याओं के समाधान तथा उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में आवश्यक परामर्श-प्रकाश प्राप्त करते थे । दूर हटकर देखने पर विस्तृत क्षेत्र दीखता है । जीवन की उलझनों की समीक्षा करने के लिए भी कुछ दूर पहुँचने पर निष्पक्ष समीक्षा कर सकना अधिक सरल पड़ता है ।

आत्म-चिन्तन, आत्मसुधार, आत्म निर्माण, आत्म विकास के चारों ही चरण पूरा करने में यह तीर्थ वास का वातावरण हर दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होता था । पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए कई तपश्चर्याएँ आवश्यक होती हैं । वे भी यहाँ रहकर करने से वह प्रयोजन पूरा होता था, जिसमें तीर्थों के माहात्म्य से पाप निवृत्ति को जोड़ा गया है। यह निश्चित रूप से प्रायश्चित विधान की ओर संकेत है । आत्मोत्कर्ष के लिए कई प्रकार के साधन करने पड़ते हैं । धर्मानुष्ठान इन्हीं को कहते हैं । योग और तप के विधिविधान, आत्म शोधन एवं आत्म-परिष्कार के उद्देश्य से ही विनिर्मित हुए हैं । यह सभी प्रयोजन तीर्थवास की अवधि में तपःपूत मनीषियों के संरक्षण में-तत्वावधान में सम्पन्न होते थे । तीर्थ यात्री जब लौटता था तो किसी सेनेटोरियम में रहकर व्याधियों का उपचार एवं स्वास्थ्य सम्वधन का दुहरा लाभ उठाने वालों की तरह ही आत्मिक पवित्रता और प्रखरता साथ लेकर घर आता था ।

इस उपलब्धि की सुखद प्रतिक्रिया को देखते हुए तीर्थ यात्रा का जो माहत्म्य बताया गया है वह बहुत अंशों में सही सिद्ध होता था । प्रकृति के सान्निध्य में उत्तम जलवायु का लाभ लेने सात्विक आहार-विहार पर निर्भर रहने, प्रेरणा-पद वातावरण की ऊर्जा ग्रहण करने से छोटे-मोटे शारीरिक और मानसिक रोगों से भी निवृत्ति मिल जाती थी । रात्रि को गहरी नींद लेने पर जिस प्रकार प्रातः उठने पर स्फूर्ति एवं प्रसन्नता अनुभव होती है वैसे ही तीर्थ से लौटने वाला अपनी इस आध्यात्मिक विश्रान्ति के उपरान्त फिर से सामान्य जीवन में प्रवेश करता था और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नई क्षमता, नई दृष्टि एवं नई स्फुरणा के कारण उसे हर क्षेत्र में उत्साहवर्धक सफलताओं का लाभ मिलता चला जाता था । इसे तीर्थ यात्रा का प्रत्यक्ष पुण्य फल माना जाता था। शरीरिक और मानसिक चिकित्सा की दृष्टि से इसे उभय पक्षीय उपचार अनुभव किया जाता था और जितना समय, श्रम, धन उस कार्य में लगा उसे सार्थक माना जाता था ।

तीर्थ यात्रा पद यात्रा के रूप में होती थी, सवारी का उपयोग उसमें नहीं होता था । उसके कई लाभ हैं । प्रथम है आरोग्य सम्वर्धन, पैदल यात्रा को रोगोपचार का असाधारण प्रयोग माना जा सकता है । बैठे रहने से हाथ पैर विंध जाते हैं और नस-नाड़ियों का मांस-पेशियों का उचित संचालन न होने से श्रम रहित व्यक्ति अपच एवं जकड़न के कारण उत्पन्न होने वाले अनेकानेक रोगों के शिकार बनते हैं । प्रात: टहलने की महत्तासर्व विदित है । यदि शारीरिक, मानसिक रोगों की निवृत्ति के लिए एक क्रम बनाकर लम्बे समय तक पद यात्रा की जाये तो एक उपयोगी चिकित्सा कोर्स कहा जा सकता है । यदि यात्रा अवधि में खान-पान रहन-सहन आदि के भी कुछ 'व्रत' जुड़े रहते तो इसके कारण उस विधान की उपयोगिता किसी उच्चस्तरीय चिकित्सा पद्धति से कम नहीं रहती ।

मानसिक स्वास्थ सुधार की दृष्टि से भी तीर्थों की उपयोगिता असाधारण थी । परिस्थिति में लिप्त व्यक्ति अपनी कठिनाइयों का वास्तविक स्वरूप समझ नहीं पाता। वास्तविक समीक्षा के लिए ऐसी मन:स्थिति चाहिए जो पक्षपात रहित हो—तो दूसरों की तरह अपनी समीक्षा भी कर सके, जिसे अपने-पराये में से किसी के प्रति राग-द्वेष न हो । न्यायाधीश इसी मन:स्थिति में होते हैं तभी उनके लिए वस्तु स्थिति को ठीक तरह समझना और न्याय करना सम्भव होता है । पहाड़ की ऊँची चोटी पर चढ़ा हुआ व्यक्ति ही दूर-दूर तक की स्थिति को ठीक तरह देख सकता है । जो नीची घाटी में खड़ा है उसके लिए तो समीपवर्ती घेरा ही सब कुछ है । तीर्थ में पहुँच कर सम्बद्ध लोग दूर हट जाते हैं फलत: उनके प्रति द्वेष भी झीना हो जाता है ऐसी मनोदशा अपने-पराये गुण-दोष समझने में समर्थ होती है । समस्याओं का सही रूप समझा जा सके तो उनका आधा हल निकल आया समझा जा सकता है । सही निदान हो जाना आधी चिकित्सा है। इस प्रकार तीर्थ निवास के लिए प्रस्तुत समस्याओं का हल ढूँढने में ही उज्ज्वल भविष्य के संदर्भ में उपयोगी रीति-नीति अपनाने में भी कार्य पद्धति निर्धारित करने में उपयोगी सिद्ध होते हैं

वातावरण के प्रभाव से सभी परिचित हैं । कुछ प्रतिभाएँ तो ऐसी भी होती हैं, जो वातावरण को बनाती हैं। किन्तु जन साधारण की स्थिति यही होती है कि वातावरण के प्रभाव में ढलते हैं, घर का, समाज का, वातावरण सम्बद्ध व्यक्तियों को घसीट कर उसी ढर्रे पर ले आता है, जिसका प्रवाह बह रहा होता है । डिब्बे पटरी पर ही लुढ़कते हैं । आँधी अपने साथ अपनी दिशा में बहुत कूड़ा करकट उड़ा ले जाती है । वातावरण को भी सरिता प्रवाह एवं आँधी-तूफान के समतुल्य माना जाता है। ऋषियों के आश्रमों में सिंह गाय के एक घाट पानी पीने जैसे उदाहरण आये दिन मिलते रहते हैं । सामान्य मनुष्य दर्पण की तरह होते हैं । उन पर समीपवर्ती प्रखरता जिस रंग की होती है । वैसी ही दर्पण की छवि बन जाती है । सत्संग की महिमा से इतिहास पुराण भरे हैं । इससे यही सिद्ध होता है कि प्राणवान व्यक्तियों का अथवा प्रचलित ढर्रे का प्रभाव अत्यधिक प्रचण्ड होता है । उसकी समीपता से प्रभावित हुए बिना कोई विरला ही बच सकता है । आग की समीपता से गर्मी, बर्फ की समीपता से ठंडक मिलती है । दुर्गन्धित स्थान की अनुभूति से सभी प्रभावित होते हैं । तीर्थों की प्रमुख विशेषता यह रहती थी कि प्राणवान प्रतिमाएँ अपने प्रभाव से आरण्यकों का वातावरण ऐसा बनाये रहती थीं जिसमें कुछ समय रहने मात्र से किसी नये व्यक्ति को भी प्रभावित होना पड़ता था । जहाँ जिस प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रवाहित होती हैं वहाँ के निवासी उस रीति-नीति के प्रथा परम्परा से प्रभावित ही नहीं होते अनुकरण भी करने लगते हैं और क्रमश: अभ्यस्त भी हो जाते हैं । उच्चस्तरीय जीवनयापन के लिए जिस रीति-नीति को अपनाया जाना आवश्यक है उसे पढ़ने सुनने से भी अधिक प्रभावी ढंग से जीवन में उतारने के लिए उस प्रकार के वातावरण में रहना आवश्यक होता है । तीर्थ सेवन से जीवन सन्तुलन की दृष्टि से इस प्रकार के वातावरण की सहज उपलब्धि होती थी ।

पाप बन पड़ने पर उनके प्रायश्चित्त के लिए अमुक तीर्थ तक पद यात्रा करते हुए जाना वहाँ अमुक अवधि तक निवास करना प्रायश्चित विधान पूरे करना भविष्य के लिए पवित्र रहने का व्रत लेकर लौटना आवश्यक समझा जाता था । पाप प्रायश्चित के लिए तीर्थ यात्रा के विधान का सही तात्पर्य था । घर में किसी प्रिय जन की मृत्यु हो जाने पर भी उसकी अस्थियाँ विसर्जित करने के लिए पवित्र जलाशयों में तीर्थों में जाया जाता था । इस बहाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ समय वे लोग वहाँ रहते थे । गरुड़-पुराण आदि की कथा सुनते थे । फलत: शोक संकुल मन को शान्ति मिलती थी और चित्त पर पड़े हुए दबाव एवं छाए हुए असंतुलन से निवृत्ति पाकर हलके मन से अपने घरों को वापिस लौटते थे । मृत्यु शोक की तरह अन्यान्य हानियाँ भी होती है—जिनसे आधात लगता है । संतुलन गड़बड़ा जाता है । ऐसी स्थिति में आवेशग्रस्त लोग कुछ भी बुरा कर गुजरते हैं । असंतुलनों का उपचार तीर्थ निवास से बढ़कर उन दिनों और कुछ था ही नहीं । उसमें न केवल परिस्थितियाँ बदलती थीं वरन् प्रभावी वातावरण के कारण मन:स्थिति में भी परिवर्तन आ जाता था । अनर्थ से बचने के लिए इसे एक सुयोग ही समझा जाता था और खिन्न उद्विग्न मनुष्य शान्तिदायक वातावरण में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए तीर्थों के लिए दौड़ें जाते थे ।

न केवल विग्रहों की निवृत्ति के लिए वरन् भविष्य निर्धारण के लिए अनुभवी दूरदर्शी लोगों से प्रकाश परामर्श प्राप्त करने के लिए भी तीर्थ यात्रा की जाती थी । सभी जानते हैं कि घर पड़ौस के आत्मीय चिकित्सकों के द्वारा रोगों का उपचार कराने की तुलना में बड़े चिकित्सक अस्पतालों में नियुक्त विशेषज्ञों की सलाह लेना उनके संरक्षण में रहकर चिकित्सा कराना अधिक लाभदायक होता है । यों सत्परामर्श कहीं भी प्राप्त किये जा सकते हैं । सर्वत्र संव्याप्त दुर्बुद्धि से भी तथा कथित मूर्धन्य लोग भी कम ग्रसित नहीं है । फिर भी ढूँढने पर सत्परामर्श दाता भी मिल ही जाते हैं उनकी सलाह से भी समस्याओं के समाधान एवं भविष्य निर्धारण में कुछ तो काम चल ही जाता है किन्तु यदि दूरदर्शी-दिव्यदर्शी महामनीषियों का अधिक महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन प्राप्त करना होता था तो लोग तीर्थ यात्रा की तैयारी करते थे और वहाँ आरण्यकों में निवास करने वाले तत्वदर्शी मनीषियों से ऐसे परामर्श प्राप्त करते थे जो हित साधन की दृष्टि से आरोग्य कहे जा सकें ।

कई बार ऐसी विषम परिस्थितियाँ सामने होती हैं जिनके लिए मात्र परामर्श से भी काम नहीं चलता । निपटने के लिए समर्थों की सहायता आवश्यक होती है । कई बार आगे बढ़ने के लिए ऐसे आत्मबल की जरूरत पड़ती है जो गाड़ी में पैट्रोल पड़ने जैसा उदाहरण प्रस्तुत कर सके । व्यवसाय में पूँजी और अनुभव दोनों की जरूरत होती है जिनके पास यह नहीं होते कहीं से उपलब्ध करके अपना काम चलाते हैं । तपस्वी मनीषी आत्मबल के निर्झर होते थे । उनसे अभीष्ट प्रयोजनों के लिए उच्चस्तरीय सहायता बिना कठिनाई के मिल जाती थी । आशीर्वाद—वरदान ऐसे ही अनुदानों का नाम है, तपस्वी-मनीषियों द्वारा अपनी तप सम्पदा निचोड़ कर दी जायें तो वे कारगर ही सिद्ध होती हैं । इस प्रकार के अनुदान प्राप्त करने के लिए भी उन दिनों तीर्थों में अवस्थित प्राणवान प्रतिभाओं का आश्रय तका जाता था और जो उन कल्प वृक्षों के पास पहुँचते थे खाली हाथ वापिस नहीं लौटते थे ।

तीर्थों की स्थापना और वहाँ पहुँचने की प्रेरणा देने वाले शास्त्रकारों के मस्तिष्क में इन्हीं विशेषताओं से सम्पन्न रखने की योजना थी । ऐसे उच्चस्तरीय अध्यात्म अस्पताल बनाने की दृष्टि से यह सरंजाम जुटाया गया था कि वहाँ पहुँचकर सर्वसाधारण को न केवल शारीरिक मानसिक आधि-व्याधियों से आन्तरिक दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा मिले वरन् उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में भी उपयोगी प्रकाश परामर्श एवं अनुदान उपलब्ध हो सके । तीर्थों के निर्माण में ऋषियों ने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया, साधन-सम्पन्नों को उनके निर्माण में धन लगाने की प्रेरणा दी, जन साधारण को पुण्य प्रलोभन देकर वहाँ पहुँचने के लिए उकसाया । यह सब न तो निरर्थक था और न किसी षड्यंत्र का अंग । इस स्थापना के पीछे विशुद्ध जन-कल्याण की लोक निर्माण की भावना थी जो तब तक पूर्णतया सफल ही होती रही जब तक कि तीर्थों का स्वरूप अपने वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त बना रहा ।

आज प्राण निकल गया । उद्देश्य पिछड़ गया । मात्र लकीर पिटती है । निष्प्राण कलेवर पर पुष्प हार चढ़ते हैं । प्रज्ञावानों का मृत शरीर भी कोई प्रयोजन पूरा कर सकने में समर्थ नहीं रहता, महामनीशियों ने जिस लक्ष्य को सामने रखकर तीर्थ परम्परा की स्थापना की थी, उस लक्ष्य की पूर्ति के प्राय: सभी साधन समाप्त हुए दीखते हैं । उसके स्थान पर धर्म श्रद्धा के दोहन का प्रपन्च चल पड़ा है । वस्तुत: स्थिति के अनुरूप विचारशील वर्ग में जो अश्रद्धा उत्पन्न हो रही है उसे देखते हुए लगता है कि जिस प्रकार पेड़ की जड़ खोखली हो जाने से उसका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है उसी प्रकार तीर्थ की महान् परम्परा भी अपनी गरिमा समाप्त करने जा रही है ।

प्राचीनकाल में सतयुगी माहौल में सभी का ध्यान इस धारणा पर केन्द्रित था कि व्यक्तित्व में देवत्व का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुपात बढ़ाने वाली प्रेरणा कहाँ पाई वह प्रक्रिया किस तरह अपनाई जाय । इस आवश्यकता की पूर्ति में तीर्थों के अतिरिक्त और कोई प्रभावशाली माध्यम था नहीं । अतएव विचारशील वर्ग का हर व्यक्ति इस प्रयत्न में रहता था कि उसे तीर्थों का सान्निध्य किस प्रकार कितने अधिक समय तक उपलब्ध हो सके । बालकों को शिक्षा से भी अधिक दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है । शिक्षण ही नहीं वातावरण भी—वातावरण ही नहीं अभ्यास भी मनुष्य की सुसंस्कारिता बढ़ाने में आवश्यक होता है । तीर्थों में बने हुए गुरुकुल उस आवश्यकता को पूर्ण करते थे । फलतः छात्रों के उन आश्रमों का भरपूर लाभ मिलता रहता था । ढलती आयु का हर व्यक्ति वानप्रस्थ में प्रवेश करते हुए जीवन की सार्थकता अनुभव करता था और नये ढंग का—नये स्तर का—नया जीवन—जीने के लिए आवश्यक प्रकाश प्राप्त करने के लिए तीर्थों में पहुँचता था। यह आरण्यक ही विश्व भर के लिए मुनि मनीषी, ऋषि, तपस्वी, स्तर की प्रतिभाओं को विनिर्मित करते और समस्त संसार की समस्याओं के समाधान की उच्चस्तरीय व्यवस्था बनाते थे । वानप्रस्थ अनुभव करते थे कि उनने ढलती आयु में ही जीवन का सच्चा आनन्द लिया है । आरण्यक ऐसे ही नर-रत्नों की खदान थे ।

तीर्थों में गुरुकुल आरण्यक ही नहीं गृहस्थों की उस आवश्यकता को भी पूर्ण करने वाले उन्हें पारिवारिकता विकसित करके तथा प्रयोगशाला में परिणत कर सकने में सक्षम भी बनाते थे । घर परिवार को यदि सुव्यवस्थित सुसंस्कृत बनाया जा सके तो निश्चित ही पूर्वकाल की तरह धरती पर बसे हुए छोटे-छोटे स्वर्ग बन सकते हैं ।

गुरुकुल के छात्र और आरण्यकों के वानप्रस्थ लम्बे समय तक निवास करने आते थे और परिपक्व बनने के उपरान्त कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए विदाई लेते थे । किन्तु गृहस्थों की स्थिति इन दोनों से सर्वथा भिन्न होती है, वे आजीविका उपार्जन एवं परिवार व्यवस्था के अनेकानेक उत्तरदायित्वों को निभाते हुए लम्बे समय तक बाहर रहने की स्थिति में नहीं होते । वे ऐसी तीर्थ प्रक्रिया का ही लाभ ले सकते हैं जो स्वल्प-कालीन हो ।

प्राचीन काल में तीर्थ सेवन की प्रक्रिया इसी स्तर की थी । उसमें एक साथ कई उद्देश्यों का समावेश रहता था। बहुत समय तक एक ही स्थान पर रहते-रहते एक ही दायरे का जीवन जीते-जीते जो ऊब आती है । उसे दूर करने लिए कभी-कभी कुछ समय का पर्यटन भी मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक होता है । इसके लिए इन दिनों भी समीपवर्ती 'पिकनिक' और दूरवर्ती पर्यटन की व्यवस्था लोग अपने-अपने ढंग से करते रहते हैं । इस मनोरंजन के साथ ही यदि समाधान एवं अनुदान की उच्चस्तरीय व्यवस्था भी जुड़ सके तो समझना चाहिए कि स्वर्ण सुगन्ध जैसा सुयोग बन गया । तीर्थ स्थान इस आवश्यकता को पूर्ण करते थे ।

खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः सम्पादित करने के लिए इन दिनों आम जलवायु के स्थानों पर निवास करने—पूर्ण विश्राम लेने तथा सेनेटोरियमों का उपचार पाने का खर्चीला प्रबन्ध बड़े लोग करते रहते हैं । सो भी वह प्रबन्ध शारीरिक स्वास्थ्य लाभ भर का हो पाता है । इससे भी बड़ी वस्तु हैं—मानसिक स्वास्थ्य । वह इतना महत्त्वपूर्ण है जिस पर बलिष्ठता को भी निछावर किया जा सकता है, सेनेटोरियमों में कहीं भी मानसिक स्वास्थ सम्बर्धन का प्रबन्ध नहीं है । बहुत हुआ तो कश्मीर जैसे स्थानों पर उथले मनोरंजनों में कुछ दिन मन बहलाया जा सकता है । लौटने पर वह विनोद नये किस्म की ललक उत्पन्न करता और आदतें बिगाड़ता है । तीर्थों की यह विशेषता थी कि जहाँ मानसिक तनाव दूर करने वातावरण बदलने एवं विश्रान्ति देने में समर्थ होते थे, वहाँ उनका पूरक पक्ष यह होता था कि न केवल छिद्रों को भरें वरन् ऐसी स्थापनाएँ भी करें जो निकट भविष्य में चन्दन के वृक्ष बनकर स्वयं को धन्य बनाने और समीपवर्ती वातावरण को सुगन्ध से भर दें । मनोरोगों, मनोविकारों का उपचार करना एक बात है और मनःक्षेत्र में सुसंस्कारिता उगाना और चन्दन वन की तरह सुरम्य बना देना दूसरी । तीर्थ सेवन के लिए आने वाले गृहस्थ इन दोनों ही प्रकार के मानसिक लाभ प्राप्त करते थे ।

संसार में तीसरे वर का श्रद्धा सम्बर्धन अन्तराल का कायाकल्प, सञ्चित, कुसंस्कारिता का निराकरण दृष्टिकोण में उत्कृष्टता का समावेश अनगढ़ वर्तमान का सुखद भविष्य के साथ संयोजन । यह सभी प्रक्रियाएँ शारीरिक मानसिक न होकर विशुद्ध'आध्यात्मिक हैं । उस क्षेत्र को 'कारण शरीर' भी कहते हैं । चमत्कारी अतीन्द्रिय क्षमताएँ इसी क्षेत्र में प्रसुप्त पड़ी रहती हैं । उन्हें साधन उपचारों से कुरेदा उभारा जा सके तो ऐसे प्रतिफल दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें मनुष्य में देवत्व में उदय की संज्ञा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दी जा सके । कहना न होगा कि इस दिशा में प्रगति का मार्ग रोकने वाले वे पाप कर्म होते हैं जो पतन पराभव और संकट बन कर फलित होने वाले हैं । वे आध्यात्मिक आकांक्षाओं को निरुत्साहित करते रहते हैं और साधना मार्ग को अवरुद्ध करने वाले तरह-तरह के विघ्न उपस्थित करते रहते हैं ।

आध्यात्मिक साधनाओं में प्राथमिकता 'प्रायश्चित तप' को दी गई है । पूजा उपचार से प्रारब्ध कर्मों का निराकरण नहीं होता, मात्र उनका नया निर्माण रुकता है । क्रियमाण कर्मों की लम्बी दण्ड शृंखला से बचने का एक मात्र उपाय उपचार है—'प्रायश्चित' । प्राचीन काल में लोग पापों का प्रायश्चित करने के लिए तीर्थों में जाते थे । आज तो इतना भर समझा जाता है कि देवदर्शन, जल स्नान भर से पाप छूट जाते हैं पर वास्तविकता ऐसी है नहीं । उसके लिए ऐसी तप साधनाएँ करनी पड़ती हैं जो दुष्कर्मों की खाई को उसी स्तर के तप पुण्य से पूरी कर सकने में समर्थ हो सके । पापों का प्रतिफल इससे कम में नहीं छूटते । प्राचीनकाल में इस तथ्य को भली प्रकार समझा जाता था और क्रियमाण का निराकरण करने के लिए तीर्थों के उपयुक्त वातावरण में रोग के अनुरूप उपचार की नीति अपना कर प्राश्चित तप का निर्धारण किया जाता था ।

'तीर्थ सेवन' के लाभों में एकरसता की ऊब से छुटकारा पाने और नवीनता का आनन्द लेने के मानवी स्वभाव की पूर्ति होती है । तीर्थक्षेत्र में फैले हुए अनेकानेक ऐतिहासिक पौराणिक स्थानों को देखकर उनकी प्रेरणाओं से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है। यदि तीर्थ जीवन्त हैं, वहाँ की गतिविधियाँ तथा प्रेरणाएँ प्राणवान हैं तो उस वातावरण का प्रभाव भी पड़ता हैं, यदि तीर्थ संचालक मनीषी, मुनि और तपस्वी ऋषि हैं तो उनके परामर्श, मार्गदर्शन एवं अनुदान वरदान का लाभ भी मिलता है । साथ ही अवधि में ऐसी साधनाएँ तपश्चर्याएँ करने का सुयोग बैठता है जो प्रायश्चित का तीर्थ उद्देश्य पूरा कर सके और आत्म विकास की दृष्टि से फलप्रद सिद्ध हो सके । ऐसे-ऐसे और भी अनेकों प्रत्यक्ष परोक्ष लाभ हैं जो तीर्थ यात्री के लिए उस प्रकरण में लगाये गये श्रम, समय एवं धन की तुलना में असंख्य गुने लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं । यह तथ्य प्राचीन काल में सर्वविदित थे । फलस्वरूप तीर्थ-यात्रा पर जाने वालों का भावभरा स्वागत होता था प्रयास को दूरदर्शिता पूर्ण समझा और भूरि-भूरि सराहा जाता था ।

यही हैं वे तथ्य जिन्हें ध्यान में रखते हुए तत्वदर्शी महामनीषियों ने तीर्थ प्रक्रिया को जन्म दिया । उनके निर्माण में साधन सम्पन्नों को दबाया । धर्म क्षेत्र को मूर्धन्यों को तीर्थयात्रा करके लोक शिक्षण की उपयोगी मुहीम सम्भालने के लिए सहमत किया । साथ ही जन-साधारण को वहाँ पहुँचने को पुण्य फलदायक बताकर उकसाया । उनका जो विशाल विस्तार दीखता है वह उसी ऋषि चेतना का निर्धारण एवं प्रयास है । इनके पीछे काम करने वाली दृष्टि एवं योजना को जितना सराहा जाय उतना ही कम है ।

यदि तीर्थों में ऋषि प्रणीत चेतना बनी रहती, योजना क्रियान्वित होती रहती तो निश्चय ही उनका वह स्वरूप भी कायम रहा होता जिसके सम्मुख सभी का मस्तक श्रद्धावनत होकर शत-शत नमन करता है । उस उपयोगिता से लाभान्वित होने वाले अपना प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करके उस प्रक्रिया को अपनाने का उत्साह भरते थे । फलतः तीर्थयात्रियों की न केवल संख्या बढ़ती थी वरन् उनकी प्रतिष्ठा भी होती थी । जहाँ तीर्थयात्री ठहरते वहाँ लोग निवास की धर्मशाला, अन्नक्षेत्र, जलाशय, उद्यान एवं सेवा, सुश्रूषा का प्रबन्ध करके सुविधा बढ़ाने का भरपूर प्रयत्न करते थे । तीर्थ संचालकों को उस व्यवस्था के चलाने में किसी प्रकार की कठिनाई न पड़ने पाये इसलिए उदारमना कुछ न कुछ दान-दक्षिणा प्रस्तुत करके अपनी भाव-श्रद्धा को प्रकट पल्लवित भी करते थे ।

तीर्थ सेवन के ध्वंसावशेष अभी कहीं-कहीं देखने को मिल जाते हैं । माघ के महीने में त्रिवेणी संगम पर कुछ लोग कल्पवास करते हैं । उन दिनों वे वहाँ अपनी एक पर्णकुटी बनाकर रहते—हाथ से भोजन पकाते—संकल्पपूर्वक साधनरत रहते हैं । उस क्षेत्र से निकलकर कहीं बाहर न जाने की मर्यादा को पालते और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं । इसमें यदि क्रमबद्ध मार्गदर्शन भी जुड़ गया होता कार्यक्रम एक छत्रछाया में नियंत्रण पूर्वक चलता तो प्राचीन काल के तीर्थ सेवन की एक झांकी देखने का अवसर अभी भी मिल सकता था । मथुरा में बृज चौरासी कोस की यात्रा निकलती है । उसमें प्रायः ढाई महीने लगते हैं । इस बीच कई-कई पड़ावों पर कई-कई दिन यात्री लोग ठहरते हैं और उनके सामूहिक धर्मकृत्य चलते हैं । इस अवधि में उन सभी को संकल्पूर्वक व्रतशील जीवनचर्या का परिपालन करना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

होता है । इस भ्रमणशील तीर्थयात्रा की प्राचीन पद्धति को प्रमाण परिचय माना जा सकता है । यों उसमें भी उस उद्देश्य का समावेश होना चाहिए जो मात्र भक्ति ही नहीं ज्ञान और कर्म का आधार जोड़कर वर्तमान के परिष्कार और भविष्य के निर्धारण में सहायता कर सके ।

भगवान के विभिन्न अवतारों के क्रिया-कलाप जहाँ अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा प्रस्तुत करते रहे हैं, वहाँ भक्त जनों ने तीर्थों की स्थापना की है । भगवान राम और कृष्ण की लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले अनेकों तीर्थ उनकी लीला भूमियों में अभी भी विद्यमान हैं । इन निर्माणों का एक ही उद्देश्य था कि जन साधारण को उन उद्देश्यों का परिचय, प्रकाश तथा उत्साह वहाँ पहुँचने पर मिल सके । भगवान का शरीर न रहने पर भी उनके उद्देश्य की प्रेरणा केन्द्रों से मिलती रहती है । इसलिए उनके निर्माता इन तीर्थों का अवतारों का भावना-शरीर मानते हैं और इसी श्रद्धा के साथ उनका सान्निध्य शिरोधार्य करते हैं ।

विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में यही प्रथा प्रचलित है कि उनके संस्थापकों की शिक्षा प्रेरणा के लिए ऐसे केन्द्र बने रहें जहाँ से उस मिशन का सुसंचालन व्यवस्थित रूप से भविष्य में भी होता रहे । ईसाई धर्म के लिए क्रिश्चियन मिशन के तत्वावधान में अनेकों छोटे-बड़े धर्म संस्थान समस्त संसार में काम करते हैं । धर्म प्रचारकों के निवास निर्वाह से लेकर—रचनात्मक प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन समीपवर्ती क्षेत्र में इन्हीं केन्द्रों से होता है । उस सम्प्रदाय वालों की दृष्टि में इस प्रकार के धर्म केन्द्रों को इसी भावना से देखा जाता है जैसा कि भारत में तीर्थों का सम्मान होता है । सिखों के गुरुद्वारे मात्र पूजा स्थल ही नहीं होते वहाँ वे प्रवृत्तियाँ भी चलती हैं जिनके सहारे सिख धर्म की प्रेरणाएँ वहाँ पहुँचने वालों को मिलती रहें ।

तीर्थों की स्थापना में कई सन्तों का विशेष प्रयत्न रहा है आद्य शंकराचार्य की प्रेरणा से भारत के चार कोनों पर चार धामों की स्थापना हुई है । उनके शिष्य मान्धाता ने अपने गुरु की इच्छा योजना पूरी करने के लिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया और वह महान प्रयोजन पूरा कर दिखाया । ब्रज धाम के अधिकांश तीर्थ महाप्रभु चैतन्य के संकेत पर कृष्ण भक्तों ने बनाये और उन क्षेत्रों में विनिर्मित देवालयों का वर्तमान स्वरूप सामने आया । पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय के धर्मगुरु जहाँ-जहाँ रहे, जहाँ धर्मोपदेश करते रहे प्राय: उन सभी प्रमुख स्थानों में उनकी बैठकें बनी हुई हैं । स्वामी नारायण सम्प्रदाय में भी ऐसा ही हुआ है । उनके धर्म गुरु जहाँ भी कुछ महत्त्वपूर्ण कृत्य करते रहे हैं, प्राय: उन सभी स्थानों पर देवालय बने हुए हैं ।

क्या उत्कृष्ट चिन्तन उपलब्ध होने से जीवन क्रम बदलने और प्रतिभा उभरने का लाभ नहीं मिलता ? इसके उत्तर में बीज, फसल, और खाद-पानी का उदाहरण देना होगा । उत्कृष्ट चिन्तन बीज है । उसकी आवश्यकता अपरिहार्य है । वह न हो तो अंकुर उगने से लेकर फल लगने तक का आधार ही नहीं बनता । इस अभाव में तो पूर्ण अवरोध ही बना रहेगा । इतने पर भी यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि इस प्रसंग में खाद, पानी की आवश्यकता भी रहेगी । अभाव में बोया हुआ बीज, अंकुर भर बन सकता है परिपुष्ट पौधे की स्थिति में नहीं पहुँच सकता । व्यक्तित्व के विकास का जहाँ तक सम्बन्ध है वहाँ उसके लिए प्रेरणाप्रद वातावरण की अनिवार्य आवश्यकता मानी गई है । इसका प्रबन्ध हो सके तो दोष चाहे बोने वाले को दिया जाय या काटने वाले को—आवश्यक फसल काटने का अवसर तो नहीं ही मिलेगा । विचारणा चाहे भली हो या बुरी अनुकूल वातावरण में ही पलती और फलती है । इसके अभाव में हर प्रयत्न मुरझाता और सूखता दृष्टिगोचर होगा, भले ही वह अच्छा हो या बुरा । सत्संग और कुसंग की जो महिमा बताई जाती है उसे मात्र व्यक्ति विशेष के सम्पर्क तक सीमित न माना जाय, वरन् उसका अर्थ वातावरण से लगाया जाय । वातावरण में ही प्रभावित करने की वास्तविक क्षमता रहती है ।

सम्पन्न लोग अपने छोटे बच्चों को पाँच सौ रुपया मासिक खर्च वाले पब्लिक स्कूलों में पढ़ने भेजते हैं, जबकि वहाँ भी ग्रामीण स्कूलों की तरह ही प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम रहता है पूछने पर वे अभिभावक एक ही बात कहेंगे कि उन मँहगे स्कूलों का वातावरण ऐसा होता है जिसमें बालकों में सभ्य व्यवहार की आदत पड़ सके । वातावरण की प्रभावी शक्ति को असंदिग्ध रूप से स्वीकार करना पड़ता है ।

देवता स्वर्ग में रहते हैं, इसलिए उसकी गरिमा अक्षुण बनी रहती है । यदि उन्हें नारकीय वातावरण में रहना पड़े तो निश्चय ही उनमें से अनेकों की आदतें बदल जायेंगी और साधारण लोगों जैसी बुरी आदतों से वे भी भर जावेंगे । प्राचीनकाल में बालकों का शिक्षण ऋषियों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुरुकुलों में होता था और वे नर-रत्न बनकर निकलते थे। वयस्कों को तीर्थवास में, अधेड़ों को आरण्यकों में चिरकाल तक निवास करना पड़ता था ताकि वे परिवार के अनगढ़ वातावरण से प्रथक् होकर कुछ समय प्रेरणाप्रद परिस्थितियों में रह सकें । वानप्रस्थों की शिखा साधना आरण्यकों में चलती थी । यों गुरुकुलों और आरण्यकों के कोर्स को प्राइवेट पढ़कर गैस पैपरों के सहारे अथवा पत्राचार विद्यालय में भर्ती होकर भी पूरा किया जाता है । ट्यूटर निर्धारित पाठ्यक्रम का अभ्यास करा सकते हैं और सरलतापूर्वक उत्तीर्ण होने का अवसर मिल सकता है। इतने पर भी छात्रों को वह लाभ नहीं मिल सकता जो उन शिक्षण संस्थाओं के साथ जुड़ें हुए विशिष्ट वातावरण में सन्निहित रहता है।

भूतकाल में गुरुकुलों और आरण्यकों ने विश्वमानव को, नररत्नों का अजस्त्र उपहार दिया है । इतिहास भारतीय गरिमा का ऋणी है । जिससे संसार के कोने-कोने में अभ्युदय और उत्कर्ष के लिए भागीरथ जैसे प्रयास और दधीच जैसा अनुदान प्रस्तुत किया । इस देश के सामान्य नागरिकों को देव संज्ञा प्राप्त थी । उत्कृष्ट जीवन और आदर्श क्रिया-कलाप अपनाने वाले नर-नारायणों की यह पृष्ठभूमि स्वर्गादपि गरीयसी कहलाती थी । इस गरिमा का विशाल रूप जनसाधारण ने जिस भी रूप में देखा हो और परखने वालों ने जो भी निष्कर्ष निकाला हो, पर वास्तविकता इतनी है कि धरती पर बिखरे पड़े और मानवी काया में परिलक्षित होने वाले देवत्व का उपार्जन उत्पादन गुरुकुलों और आरण्यकों में ही होता था, वे नर्सरी खदान और फैक्टरी की भूमिका निभाती थीं । यह विद्यालय नहीं थे । उनमें पढ़ाई भर नहीं होती थी, ढलाई उनका प्रमुख प्रयोजन था । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए पाठ्यक्रमों को गौण और वातावरण को प्रमुखता दी जाती थी । अध्ययन से मनुष्य सीखता है । वातावरण से ढलता है । पढ़ाई से जानकारी मिलती है और वातावरण से प्रतिभा उभरती है। व्यक्तित्व ढालने के जितने भी उपाय हैं वे सभी एकांगी और संदिग्ध हैं । सुनिश्चित उपचार एक ही है कि सुसंस्कृत वातावरण में रहने का ऐसा अवसर मिले जिससे जो बनना है उसके अतिरिक्त प्रयत्न न करना पड़े। अनुकरण करने, ढर्रे में लुढ़कने और अनुशासन पालने भर से चिन्तन और चरित्र में परिवर्तन होता चला जाय ।

प्राचीन काल में यही प्रक्रिया अपनाई गई थी । बालकों को गुरुकुलों में, प्रौढ़ों को आरण्यकों में अधिक समय रहने और सीखने तथा ढलने का अवसर मिलता था । तीर्थ कल्प से माध्यम से व्यस्त लोग कुछ समय के लिए वातावरण बदलने और देव जीवन की प्रेरणा लेने जाते थे ।

धर्म-कृत्यों में सबसे अधिक प्रख्यात एवं प्रचलित प्रक्रिया है—तीर्थयात्रा । श्रवणकुमार के अन्धे माता-पिता तक तीर्थयात्रा के लिए इतने बेचैन थे कि अभाव-जन्य परिस्थितियों में काँवर में कन्धे पर रखकर उनकी इच्छापूर्ति की व्यवस्था बनाई गई । ऐसी आकांक्षाएँ प्रायः धर्मप्रेमियों में पाई जाती हैं । ईसाई, मुसलमान, बौद्ध आदि में भी तीर्थयात्रा की तैयारी उत्साहपूर्वक की जाती है । भारतीय धर्म में तो इसकी एक प्रकार से प्रमुखता है । अन्य समस्त धर्म-कृत्यों में जितना श्रम, समय, धन और भाव लगता है। उससे कहीं अधिक तीर्थ प्रयोजनों में संलग्न रहता है।

देखना यह है कि यह मात्र प्रचलन भर है या इसके पीछे मनीषियों का निर्धारण प्रतिपादन उत्साहक भी है । इस संदर्भ में ऋषियों ने अपनी प्रतिभा एवं आकांक्षा का पूरा-पूरा उपयोग किया है कि तीर्थों का महत्त्व जन-जन को समझाया जाय और उस पर पूरा उत्साह रखने के लिए कुछ कमी न रहने दी जाय । अठारह पुराणों और अठारह उपपुराणों में से प्रत्येक में विभिन्न तीर्थों के माहात्म्य महत्त्व, इतिहास और संदर्भ असाधारण रूप से बताये गये हैं । स्कंद पुराण को तो एक प्रकार से तीर्थ माहात्म्य वर्णन के लिए ही लिखा जैसा समझा जाता है । अन्य धर्म ग्रन्थ भी प्रकारान्तर से इस बात का प्रयत्न करते हैं कि धर्म श्रद्धा को तीर्थ यात्रा के साथ कहीं न कहीं—किसी प्रकार जोड़े जाय ।

आद्य शंकराचार्य ने देश के चार कोनों पर चार धामों की स्थापना कराई । मान्धाता ने अपना समस्त वैभव इसके लिए समर्पित कर दिया । अन्यान्य मत-मतान्तरों के लोग भी यह प्रयत्न करते रहे हैं कि उनके स्मरणीय स्थानों का विकास विस्तार तीर्थ के रूप में हो और इसके लिए उन्हें आकर्षण केन्द्र बनाने एवं भव्यता उत्पन्न करने में कुछ उठा न रखा जाय । इस तथ्य के प्रमाण देश के हर क्षेत्र में बिखरे देखे जा सकते हैं ।

इन निर्माणों की इमारतों में लगी राशि का यदि विवरण तैयार किया जाय तो प्रतीत होगा कि शिक्षा और चिकित्सा जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जितनी इमारतें बनी हैं उसकी तुलना में बड़े तीर्थों और छोटे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवालय तीर्थों की लागत पूँजी कहीं अधिक है । उनके रख-रखाव—पूजा-अर्चा एवं उत्सव—समारोहों में लगने वाली सामर्थ्य एवं सम्पदा को भी जोड़ा जा सके तो प्रतीत होगा कि वह राशि शिक्षा-चिकित्सा के चालू खर्च की तुलना में कम नहीं अधिक ही होती है ।

यह उत्साह उसी प्रतिपादन एवं प्रोत्साहन का प्रतिफल है जो महा-मनीषियों ने इस संदर्भ में जमाया एवं उभारा है । यह सब किसलिए ? यह प्रश्न भले ही उस समय के श्रद्धा प्रबलता ने न पूछा हो पर आज का बुद्धिवादी युग तो यह पूछे बिना रह नहीं सकता कि इस खर्चीले निर्धारण के पीछे आखिर क्या उपयोगिता समझी समझाई गई ? आज तीर्थों की जो स्थिति है उसे देखते हुए तो यह प्रश्न और भी अधिक प्रचण्ड होकर उभरता है। वरन् आकुल आतुरता के साथ अपना समाधान भी माँगता है ।

आज की तीर्थ यात्रा के पक्ष में औचित्य कम और अनौचित्य अधिक उभर कर आता है । धर्माडम्बर ओढ़े हुए असंख्यों व्यक्ति भिक्षा व्यवसाय वहाँ इस प्रकार चलाते हैं जिसे न नैतिक कहा जा सकता है न सामाजिक न धार्मिक । अपंग भिक्षुओं की संख्या तो वहाँ नगण्य जितनी होती है । दान पुण्य के नाम पर तीर्थ यात्रियों को उतना निचोड़ा जाता है जितने में वे 'ची' न बोलने लगें । इसके लिए जो तरीके अपनाये जाते हैं उन्हें देखकर तो उलटी अश्रद्धा उत्पन्न होती है ।

यह वर्तमान स्थिति का विडम्बना भरा एवं निराशाजनक पर्यवेक्षण भर हुआ । इससे उस मूल समस्या पर प्रकाश नहीं पड़ता, जिसके आधार पर महा-मनीषियों के मनों में तीर्थ स्थापना की सूझ उपजी और उसे उपयोगिता की हर कसौटी पर कसने के उपरान्त यह पाया कि इस निर्धारण की मान्यता भर न रहने देकर उसे क्रियान्वित करने के लिए अपनी प्रतिभा को दाँव पर लगा दिया जाय ।

शास्त्रों में इस प्रक्रिया का एक मात्र नाम है—तीर्थ सेवन । प्रकारान्तर से इसे 'निवास' कहा जा सकता है । इन दिनों जो भी इन प्रयोजनों के लिए निकलते थे वे पर्याप्त थे वे पर्याप्त समय तक अभीष्ट तीर्थ में निवास करते थे और उन लाभों को प्राप्त करते थे जो इस पुण्य प्रक्रिया के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए हैं । आज की तरह एक ही सांस में समूची धरती नाप डालने के लिए घुड़दौड़ पर निकल पड़ना सर्वथा उपहासास्पद माना जाता होगा और कदाचित ही कोई ऐसी मूर्खतः करेता होगा जैसी कि इन दिनों अपनाई जाती है । स्पेशल रेलें, बसें, चारों धाम को और बीच-बीच में अन्य छोटे-बड़े सैकड़ों तीर्थों की यात्रा दो ढाई महीने में करा देती है । किराया भी एक दो हजार के लगभग ही बैठता है । इतनी जल्दी समस्त तीर्थों के पुण्य की लूट-खसोट करके यात्री इस प्रकार गर्व करते हुए वापिस लौटते हैं मानो देश-देशान्तरों में अश्वमेध का घोड़ा घुमाकर चक्रवर्ती या दिग्विजयी बन कर वापिस लौटे हों ।

देखा यह जाना चाहिए कि इन पुण्य लुटेरों ने किया क्या ? जिसके आधार पर उन्हें यह सोचते बन पड़ा कि वे सीधे स्वर्गलोक तक पहुँचने की योजना में कहीं बीच में रुकने वाले नहीं हैं । क्या किया ? इसमें तीन प्रसंग सामने आते हैं । एक देवालयों की प्रतिमाओं का दर्शन दूसरा नदी सरोवरों में स्नान जिस-तिस को दान दक्षिणा का उपक्रम । इन तीनों कृत्यों की यात्री पर क्या उच्चस्तरीय प्रतिक्रिया हुई ? समाज का क्या हित साधन हुआ ? धर्मधारणा के अभ्युत्थान का क्या फल मिला ? यह तीन आधार भी ऐसे हैं जिनको देखते हुए स्वर्ग या अन्य प्रकार के सुखद परिणामों की आशा की जा सकती है । बहुत खोजने पर भी ऐसी कड़ी नहीं जुड़ती जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस तथाकथित पुण्य प्रयोजन की वैसी परिणति होगी जैसी की माहात्म्य बताने वालों को समझाई है ।

तीर्थ सेवन एक मनोवैज्ञानिक भावनात्मक आत्म परिष्कार एवं उज्ज्वल भविष्य निर्धारण की सुनिश्चित प्रक्रिया है । उसके साथ भूत के अनुभवों के लाभ उठाते हुए—सुखद सम्भावनाओं से भरा-पूरा लक्ष्य प्राप्त करने के लिए वर्तमान का परिष्कृतीकरण की एक सांगोपांग योजना जुड़ी हुई है । अनुपयुक्तता अपनाने के कारण उत्पन्न हुई विपत्तियों का—निर्वाह क्रम में प्रस्तुत अवरोधों का—तथा भविष्य निर्धारण की दूरगामी योजनाओं का समन्वय इस प्रक्रिया में पूरी तरह समाविष्ट है । वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन मनन—उच्चस्तरीय व्यक्तियों का परामर्श एवं सहयोग यह सभी पक्ष तीर्थ सेवन के साथ जुड़ें रहने के कारण उसे उतनी महत्ता एवं गरिमा प्रदान की गई ।

प्राचीन काल में व्यावहारिक जीवन की भौतिक जानकारियों के लिए तो आजकल जैसे अर्थकारी शिक्षा देने वाले स्कूल भी अवश्य रहे होंगे । पर उन दिनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक ध्यान व्यक्तियों को महान् बनाने—नर में नारायण की कलम लगाने का उत्साह आवेश स्तर का छाया रहता था । उसी की पूर्ति के लिए अध्यात्म एवं धर्म को एक सुनियोजित दर्शन विधान एवं प्रयोग की तरह प्रयुक्त किया जाता था । अतएव उस प्रशिक्षण एवं अभ्यास के लिए तदनुरूप उत्कृष्टता एवं व्यवस्था से भरे-पूरे विद्यालय भी चलते थे । इनकी तीन श्रेणियाँ थीं—(१) अविकसित किशोरों के लिए 'गुरुकुल' । (२) गृहस्थों के लिए स्वल्पकालीन 'तीर्थ सेवन' । (३) प्रौढ़ों एवं निवृत्तों के लिए 'आरण्यक' । यह तीनों ही स्तर के विद्यालय मात्र मौखिक या बौद्धिक शिक्षण तक ही सीमित न थे वरन् व्यक्तित्वों को ढालने वाली उन साधनाओं से भी समन्वित रहते थे जो जीवन की दिशाधारा में—अन्तःकरण की आस्था, अभिरुचि एवं आदतों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सके ।

तीर्थों का यही वास्तविक स्वरूप था । इन पुण्य प्रयोजनों की पूर्ति के लिए स्थान ऐसे चुने जाते थे जिनसे प्राकृतिक एवं निर्वाह साधनों की अनुकूलता के साथ-साथ कुछ ऐसा इतिहास भी जुड़ा हो जिसे प्रेरणाप्रद एवं भावनात्मक उत्कृष्टता उभारने वाला कहा जा सके । तीर्थों के स्थान निर्धारण में इन तथ्यों का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है ।

अब बात आती है प्रशिक्षण, परिवर्तन एवं तप साधन की । इसके लिए उपरोक्त तीनों स्तर के आश्रम बने हुए थे । उनमें निवास, भोजन का प्रबन्ध तो रहता ही था । साथ-साथ ऐसे प्रशिक्षण की परिपूर्ण व्यवस्था भी थी आत्म्-चिन्तन, स्वाध्याय, सत्संग एवं उच्चस्तरीय परामर्श के सहारे वर्तमान को समुन्नत बनाना सम्भव हो सके ।

इन तीर्थों के संचालक ऋषि कल्प महा-मनीषी होते थे । इन महाप्राज्ञों में यह क्षमता होती थी कि विभिन्न स्तर के व्यक्तियों को उनके गले उतारने वाले—एक-एक कदम आगे बढ़ाने वाले परामर्श दे सके । तोता रटन्त वाले प्रवचनकर्ता तो सभी भेड़ों को एक लाठी से हाँकते है । रिकार्ड बजाने जैसे प्रवचन एक प्रकार का कला-कौशल है । मुनि मनीषी व्यक्ति का स्तर परखते एवं तदनुरूप परामर्श एवं आशीर्वाद परक अनुदान सहयोग प्रदान करते हैं । तीर्थों में यह सारी व्यवस्था थी । वहाँ ऋषि मुनि रहते थे । आश्रम अर्थात् प्रशिक्षण एवं साधना के समन्वित केन्द्र चलाते थे । किशोर, गृहस्थ एवं अधेड़ व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थितियों का नये सिरे से पर्यवेक्षण करने तथा प्रगति के लिए सार्थक समाधान ढूँढ़ने के लिए पहुँचते थे । इन पहुँचने वालों को तीर्थयात्री कहा तो जाता था पर वस्तुतः वे पहुँचते तीर्थ सेवन के लिए थे । यह 'सेवन'—कायाकल्प जैसी रसायन को सेवन करने से भी अधिक फलप्रद सिद्ध होता था । यही है वह प्रक्रिया जिससे जन-जन को लाभ पहुँचाने के लिए महा मनीषियों ने 'तीर्थ' निर्धारण में अपनी तत्वदर्शिता का प्रयोग किया था ।

तीर्थ दर्शन और उसका पुण्य फल

तीर्थ सेवन का इन दिनों प्रचलित पक्ष 'दर्शन' मात्र रह गया है । दर्शन अर्थात् तत्व ज्ञान नहीं, इन दिनों प्रयुक्त होने वाला पर्यवेक्षण । आँखों के द्वारा हो सकने वाली देखभाल ही इन दिनों संतों, देवालयों के सम्बन्ध में प्रयुक्त होती है । फलतः उसका कुछ भी लाभ नहीं मिलता । गाँधी जी जैसे महामानव को आये दिन देखते रहने वाले कर्मचारी-पड़ोसी उस दर्शन से तनिक भी लाभान्वित नहीं हुए । मन्दिरों में सफाई, रसोईदारी, चौकीदारी आदि की नौकरी करने वालों में भक्तिभाव का संचार कहाँ होता है ? उसके न होने पर स्वर्ग, मुक्ति सद्गति अथवा मनोकामना की पूर्ति का विश्वास कहाँ बनता है ? आँख से देखकर किसी वस्तु—दृश्य या प्राणी के स्वरूप की जानकारी भर मिलती है । पुण्यफल का सीधा सम्बन्ध चिन्तन या चरित्र से है । कोई दर्शन यदि इस प्रयोजन की पूर्ति कर सके तो ही यह समझना चाहिए कि पुण्यफल की सम्भावना बनी और उस देखभाल के लिए की गई दौड़धूप सार्थक हुई । इमारतें, प्रतिमाएँ देखने से जानकारी भर मिलेगी । नदी-सरोवरों में स्नान से शीतलता-स्वच्छता उपलब्ध होगी किन्तु जिस पुण्यलाभ का महात्म्य तीर्थ-मंदिरों के सम्बन्ध में बताया गया है, उसकी सम्भावना तभी बनेगी जब उसे अवलोकन से श्रद्धा जगे । श्रद्धा प्रज्ञा में बदले और प्रज्ञा की प्रखरता क्रिया-कलापों को दिशा देने वाली निष्ठा में परिणत हो । उतना तारतम्य न बने—तालमेल ने बैठे, तो समझना चाहिए कि दर्शन के सत्परिणामों के सम्बन्ध में जो कल्पना की गई थी उसका आधार न होने से तदनुरूप प्रतिफल की तनिक भी सम्भावना नहीं है ।

अध्यात्म क्षेत्र में जिस दर्शन की महिमा गायी गई है उसके पीछे एक और तथ्य जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिए कि जो देखा गया है उसके पीछे उत्कृष्टता उभारने वाली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कोई उच्चस्तरीय प्रेरणा जुड़ी हुई है या नहीं । यदि है तो उसकी अनुभूति अन्तराल में कितनी उमंग बन कर उभरी। उस उभार ने जीवन क्रम में किस स्तर का परिवर्तन प्रस्तुत किया । इतने विस्तृत पर्यवेक्षण के उपरान्त ही यह कहा जा सकता है कि देव प्रतिमा, साधु-सन्त, तीर्थ-क्षेत्र, नदी-सरोवर आदि का सान्निध्य-अभिवन्दन सफल- सार्थक बना या नहीं ।

तीर्थों की दर्शन-झाँकी को इन दिनों प्रधान माना जाने लगा है जबकि पूर्व परम्परा उन स्थानों में बने हुए प्राण-चेतना उभारने वाले प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम पर निर्भर थी । लोग आँखों से प्रकृति शोभा एवं ऐतिहासिक स्मारकों से भी उत्साह प्राप्त करते थे, पर वास्तविक लाभ विचारणा और भावना में उत्कृष्टता अभिवर्धन के उपक्रमों से ही सम्भव होता था । इसके उपरान्त उन स्थानों में जाकर की गई साधनाएँ अनुकूल वातावरण के सहारे अधिक फल दिखाती तथा चमत्कार उत्पन्न करती थीं । तीसरा प्रकरण उस प्रायश्चित-परिशोधन का था जो तीर्थों में पहुँच कर किया ही जाता था । तीर्थों में सिर मुड़ाने की परम्परा अभी भी उस प्रायश्चित प्रक्रिया के प्रचलन का स्मरण दिलाती है । तीर्थ यात्रा के समय अवधि में धर्म प्रचार की पदयात्रा का भी समावेश था । द्रुतगामी वाहनों पर जल्दी-जल्दी प्रतिमाओं की झांकी करने मात्र से पुण्य लूटने वाले उड़ंछु लोग अपने समय की भ्रान्तियों में पले हुए समझे जा सकते हैं । पूर्वकाल में तीर्थयात्राएँ धर्म-प्रचार के लिए जनजागरण का वातावरण बनाने वाली पदयात्रा के रूप में ही प्रचलित थीं । पिछड़े क्षेत्रों की यह अमृतोपम सेवा-साधना है । तीर्थों में दानपुण्य की अनिवार्यता नहीं रहती है । इसके लिए जीवितों के संस्कार एवं मृतकों के श्राद्ध-तर्पण जैसे क्रिया-कृत्य तीर्थ पुरोहितों द्वारा कराए जाते थे । इस बहाने उन्हें आश्रमों को जीवन्त-प्रखर बनाने के निमित्त उदार सहायता दक्षिणा के रूप में दी जाती थी उसके अधिकारी तीर्थ पुरोहित ही होते थे । वे इसे अपना अधिकार भी मानते थे । यहाँ तीर्थ पुरोहित का अर्थ उन आरण्यकों में चलने वाली प्रशिक्षण प्रक्रिया के अध्यापकों एवं सूत्र संचालकों को ही समझा जाना चाहिए । वंश या वेष के आधार पर किसी को भी प्रतिग्रह माँगने का अधिकार नहीं मिल जाता । यही है तीर्थ यात्रा का उसके साथ जुड़ें क्रियाकलाप, तदनुरूप मिलने वाले पुण्य फल का उपक्रम । यही हैं सनातन तथ्य जिनके आधार पर तीर्थों की महिमा गाई और वहाँ पहुँचने पर मिलने वले पुण्यफल की आशा दिलाई जाती है । आधार यही हो तो तीर्थ सेवन के वैसे ही परिणाम मिलने चाहिए जैसे कि शास्त्रकारों ने, आप्तजनों ने बताए हैं ।

तीर्थ दर्शन के लिए जाने वालों को धर्म प्रयोजनों से सम्बन्धित जो भी नमन वेदियाँ देखने को मिलें उनके इतिहास उद्देश्य का परिचय प्राप्त करना चाहिए और सोचना चाहिए कि इस अवसर पर उस दृश्य दर्शन से क्या प्रेरणा मिलती है और परिशोधन परिष्कार के सन्दर्भ में क्या उत्साह उत्पन्न करती है । यों भिन्न-भिन्न तीर्थ देवालयों के साथ अपने-अपने निमित्त कारण एवं घटना क्रम भी जुड़े हुए हैं किन्तु तथ्यत: उनमें से अधिकांश की पृष्ठभूमि एक ही है । (१) कोई महामानव तपस्वी वहाँ रहे हों और आत्मकल्याण, लोककल्याण के पुण्य प्रयोजन में निरत रहे हों । (२) किसी देवता ने किसी साधक की सदाशयता से प्रसन्न होकर उसे वरदान सहयोग दिया हो। (३) कोई ऐसी घटना हुई हो जिसमें आदर्शवादिता अपनाने, परमार्थ के लिए कोई त्याग बलिदान का इतिहास हो । (४) कोई महत्त्वपूर्ण निर्धारण या शुभारम्भ समापन हुआ हो । (५) किसी महामानव का जन्मस्थान या महान क्रियाकलापों का कार्यक्षेत्र रहा हो । (६) उस स्थान की अपनी प्राकृतिक विशेषता रही हो, इसी परिधि में प्राय: हर तीर्थ की स्थापना, परम्परा, गरिमा का मूल्यांकन किया जा सकता है ।

हलवाई की दूकान में अनेकों मिठाइयाँ सजी रहती हैं, पर उनके मूल में अन्न, चिकनाई, मिठाई की तीन सामग्रियों का ही उपयोग हुआ पाया जाएगा । तीर्थ कोई भी क्यों न हो, उसकी आकृति एवं विधि-व्यवस्था कुछ भी क्यों न हो, मूल में वही तत्व समन्वित दृष्टिगोचर होंगे जिनकी चर्चा ऊपर की पंक्तियों में की गई है । यह दृष्टिकोण लेकर चला जाय और जो भी अभिनन्दनीय पूजार्ह प्रतिष्ठापना दीख पड़े उसके बारे में जानने वालों से पता लगाया जाय कि इस प्रतिष्ठापना के पीछे इतिहास एवं उद्देश्य क्या है ? यदि किसी विज्ञजन द्वारा उत्तर मिला तो उसमें ऐसे कारणों का अवश्य समावेश मिलेगा जो आदर्शवादिता के पक्षधर रहे हैं और आज भी जनसाधारण को कुछ उपयोगी प्रकाश, उत्साह प्रदान कर सकने में समर्थ हैं । दस पूछने में भी सावधानी रखने की आवश्यकता है । किसी अतिआदि या निहित स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करने वाले से पूछा जाय तो उनके घिसे-पिटे उत्तर यही होंगे—(१) यहाँ अमुक देवता-प्रकट हुए और

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विलक्षण् चमत्कार दिखाये । (२) यहाँ अमुक की मनोकामना पूर्ण हुई । (३) इस स्थान में आने और दक्षिणा चढ़ाने पर देवता प्रसन्न होते और मनमाने वरदान देते हैं । (४) किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं और कुकर्मों के फल नहीं भुगतने पड़ते । (५) दर्शन या स्नान करते ही स्वर्ग-मुक्ति पर अधिकार हो जाता है । यह सभी बातें तथ्य, तर्क और प्रमाण से रहित ऐसी कुकल्पनाएँ हैं जिनसे देवता के नीतिवान्, न्यायनिष्ठ होने पर प्रश्न चिह्न लगता है और वे उद्धत आचरण करने वाले, खुशामद से फुसलाये जाने वाले तथा तनिक-सी रिश्वत पाकर किसी का भी पक्षपात करने पर उतारू सिद्ध होते हैं । यह सभी निष्कर्ष ऐसे हैं जिनके कारण देवता और उनकी मनौती मानने वाले दोनों ही 'राममिलाई जोड़ी । एक अंधा एक कोढ़ी ।' की उक्ति चरितार्थ करते दीखते हैं । विचारणीय है कि देवता को यदि किसी पवित्रता पराक्रम एवं परमार्थ परायणता से वा स्ता नहीं और जो वंदन-चंदन पाने भर से किसी को किसी भी तरह निकाल कर सकता है—कर्मफल सिद्धान्त को झुठलाता है तो फिर वह देवता स्तर पर अभिनंदनीय रहेगा ही कैसे ? ऐसे पक्षपात और अनीति आचरण तो क्षुद्र लोग भी नहीं करते जैसे कि तनिक से प्रलोभन्ति के पीछे देवता करते बताये जाते हैं । ऐसी निरर्थक किम्बदन्तियों पर किसी भी विचारशील को विश्वास नहीं करना चाहिए । महान की महानता का पता लगाते हुए—अपने व्यक्तित्व में महानता का अभिवर्धन करने वाली प्रेरणा को अपनी ही सूक्ष्मदर्शिता के सहारे ढूँढ़ निकालना चाहिए । उसे अपनाते हुए परिशोधन- परिष्कार के मार्ग पर चलने का स्वयं ही ताना-बाना बुनना चाहिए । यही है तीर्थ दर्शन का तत्व ज्ञान, रहस्य एवं भाव-भरा अनुदान ।

मात्र इमारतों की भव्यता प्रतिमाओं की भिन्नता-श्रृंगार सज्जा देखना भर ही अभीष्ट हो तो उन दृश्यों की झाँकी बिना समय और श्रम का असाधारण अपव्यय किये अतिसरलतापूर्वक की जा सकती है । इमारत से जो समाधान होता है, वही प्रकारान्तर से उनके चित्र भी कर सकते हैं । सिनेमा इसका उदाहरण है । लोग अपने स्वजनों के फोटो खिंचवाते और श्रद्धापूर्वक देखते हैं । प्रतिमाएँ भी परमेश्वर की काल्पनिक तस्वीरें हैं । ऐसी दशा में तीर्थों की इमारतें प्रतिमाएँ न देखकर उनके चित्रों के सहारे भी श्रद्धा सम्वर्धन किया जा सके तो इसमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता । इन संदर्भ में एक कथा आती है—देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन इसकी प्रतिस्पर्धा ठनी । ब्रह्माजी ने मापदण्ड रखा-जो विश्व ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करके सबसे पहले लौट आये, वही विजेता । अन्य सभी देवता अपने द्रुतगामी वाहनों पर सवार हुए और दौड़ पड़े किन्तु गणेशजी की विवशता थी । इतना भारी वजन लादकर दौड़ सकने से चूहे ने स्पष्ट इनकार कर दिया । हारते गणेश को एक उपाय सूझा, उनने धरती पर रामनाम लिखा और चूहे पर बैठकर उसी एक फुट भूमि की परिक्रमा कर ली । सबसे पहले प्रजापति के पास जा पहुँचे । प्रजापति ने प्रत्यक्ष की तुलना में परोक्ष को विशिष्ट ठहराया और सूक्ष्मदर्शिता की परख में खरे सिद्ध होने के कारण गणेश जी को विजेता ठहराया । हम सब भी ऐसा ही कर सकते हैं । चित्रों के सहारे प्रमुख तीर्थों के दर्शन सरलतापूर्वक कर सकते हैं और प्रेरणा को खोजने अपनाने में समर्थ हो सकते हैं जो तीर्थों की आधारभूत क्षमता तथा गरिमा है ।

गायत्री तीर्थ-शान्ति कुंज में यही प्रयत्न किया गया है । उसके तीर्थ कक्ष में देवात्मा हिमालय की विशालकाय प्रतिमा है । नीचे भगवती भागीरथी का दिव्य दर्शन है । गंगा लाने वाले भागीरथ और उसके प्रवाह को वेगवान बनाने वाले परशुराम की प्रतिमाएँ दोनों के पूजा प्रहरियों की तरह प्रतिष्ठित हैं । हिमालय जैसी प्रखरता परशुराम में और गंगा जैसी पवित्रता भागीरथ में देखकर इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि अध्यात्म विभूतियों की उपलब्धि इन्हीं महान तथ्यों के इर्द-गिर्द भ्रमण करती है ।

तीर्थों की पवित्रता अपेक्षाकृत उत्तराखण्ड में अभी भी अधिक है इसलिए उसमें विद्यमान प्रायः सभी तीर्थों के चित्र नयनाभिराम छोटे देवालयों के रूप में विनिर्मित किए गए हैं । साथ ही देश के विभिन्न भागों में विद्यमान मूर्धन्य तीर्थों के चित्र उतनी संख्या में प्रतिष्ठित कर दिए गए हैं जितना कि इस कक्ष में स्थान था ।

तीर्थ यात्रा के लिए उनके स्थानों पर जाया जा सके तो उत्तम अन्यथा वह प्रयोजन प्रस्तुत तीर्थ कक्ष में प्रतिष्ठित देश के सभी प्रधान तीर्थों का दर्शन अवलोकन करके भी काम चलाया जा सकता है । प्रेरणा एवं भावना ही प्रधान है, प्रतीक पदार्थों का उतना महत्त्व नहीं । ऐसी स्थिति में गणेश जी द्वारा रामनाम की परिक्रमा करके बाजी जीती जा सकती है और तीर्थ दर्शन से जितना पुण्यफल हो सकता है उसका लाभ अन्यत्र परिभ्रमण करने की अपेक्षा शान्ति कुंज में थोड़े स्थान में कम नहीं अधिक मात्रा में ही पाया जा सकता है, क्योंकि इस तीर्थ में दर्शन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कराने के अतिरिक्त उनकी प्रेरणाओं से अवगत एवं हृदयंगम कराने वाली ऐसी व्यवस्था मौजूद है, जैसी अन्यत्र कदाचित ही कहीं दृष्टिगोचर हो सके ।

तीर्थ परम्परा के पीछे सन्निहित उद्देश्य और आदर्श

प्राचीन काल में गुरुकुल शिक्षा पद्धति छात्रों की शिक्षण व्यवस्था थी । ऋषियों के सान्निध्य में शिक्षार्थी अध्ययन करते थे और दिव्य सान्निध्य एवं प्रशिक्षण द्वारा समग्र रूप में विकसित व्यक्तित्व लेकर वापिस लौटते थे। यह गुरुकुल कहाँ थे, इसका पता लगाने पर उनके भव्य भवनों का कहीं पता नहीं चलता । शिक्षा का इतना विस्तार और उनके निमित्त बनाये गये स्थानों का कहीं अता-पता तक नहीं । इस आश्चर्य के कारण की खोज करने पर विदित होता है कि वे गुरुकुल चलते-फिरते थे । ऋषि अपने छात्रों तथा गौओं सहित परिभ्रमण करते थे । सुविधाजनक स्थानों पर पड़ाव डालते थे । कुछ समय रुकते थे और फिर आगे बढ़ने की तैयारी करते थे । इस प्रकार भ्रमणशील विद्यालयों के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन का क्रम चलता रहता था । उसके समीपवर्ती क्षेत्रों की जनता भी लाभ उठाती थी । ऋषि सम्पर्क का सौभाग्य अपने समीप ही आया देखकर जन-साधारण को बड़ा बल मिलता था । छात्रों का अध्ययन और जनसाधारण का लोक-शिक्षण साथ-साथ ही चलता रहता था ।

बड़े तीर्थों की स्थापना के बड़े उद्देश्य थे । छोटे-छोटे तीर्थ, देव स्थान, धर्म स्थान जगह-जगह बने दिखाई पड़ते हैं । इनके पीछे ऋषियों का निवास एवं प्रशिक्षण प्रक्रिया का स्मारक समझा जा सकता है । स्थान छोड़ने से पूर्व ही या पीछे उस सत्प्रवृत्ति के चलते रहने की व्यवस्था बन जाती थी, अथवा उनके विदा होने के बाद प्रभावित व्यक्ति यह प्रयत्न करते थे कि स्थापित परम्परा नष्ट होने न पाये, धर्म-धारणा की यह प्रवृत्ति किसी प्रकार भविष्य में भी चलती ही रहे । इस विचार से देवालय बनाये जाते थे । इन्हें धर्म-चेतना के केन्द्र के स्थान ही कहना चाहिए । जहाँ देव प्रतिष्ठा से लेकर धर्म धारणा को सुस्थिर एवं प्रगतिशील बनाने की अनेकानेक रचनात्मक गतिविधियाँ वहाँ चलती रहती थीं । अधिकांश देव मन्दिरों के साथ अतिथि निवास को धर्मशाला एवं अध्ययन को पाठशाला की व्यवस्था जुड़ी रहती थी । कथा-प्रवचनों का सिलसिला वहाँ नियमित रूप से चलता रहता था । घरों पर संस्कारों की और सामूहिक रूप से पर्व त्यौहारों को मनाने की विधि व्यवस्था का उत्तरदायित्व इन देवालयों के संरक्षक ही चलाते थे । पुरोहित, पुजारी एवं धर्म प्रचारक की भूमिका निभाने के लिए न्यूनतम एक और अधिक जितने सम्भव हो सके उतनों की निवास व्यवस्था वहाँ रहती थी । यही था देवालयों का वह स्वरूप जो गुरुकुलों के संचालक मनीषियों की प्रेरणा से बनता बढ़ता चला गया । स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े प्राचीन देवालयों का निर्माण इसी प्रकार—इसी उद्देश्य के लिए हुआ है । छोटे तीर्थों का देव संस्थानों का इतना अधिक विस्तार अपने देश में प्रायः इसी आधार पर होता गया है ।

धर्म क्षेत्र के महामानवों ने स्वयं—अथवा उनके अनुयायियों के बाद में तीर्थ स्थापना को आवश्क समझा और उनके भाव-भरे निर्माण की व्यवस्था बनी । समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र में ऐसे अनेकों देवालयों की स्थापना की थी जिनमें स्थानीय धर्म चेतना जीवन्त रखने के अतिरिक्त शिवाजी की सहायता के लिए सैनिक, शस्त्र तथा साधन भी इकट्ठे किये और भेजे जाते थे । भगवान बुद्ध की महत्त्वपूर्ण गतिविधियाँ जहाँ कहीं चलती रहीं—वहाँ उनके सामने ही अथवा बाद भी तीर्थ स्थान बन गये । सन्तों की जीवनचर्या उनके उपरान्त भी तीर्थों के रूप में प्रेरणा केन्द्र बनकर गतिशील रही है और वह आलोक अद्यावधि किसी-किसी रूप में अपनी रश्मियाँ वितरित कर रहा है ।

भगवान के विभिन्न अवतारों के क्रिया-कलाप जहाँ अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा प्रस्तुत करते रहे हैं; वहाँ भक्तजनों ने तीर्थों की स्थापना की है । भगवान राम और कृष्ण की लीलाओं का स्मरण दिलाने वाले अनेकों तीर्थ उनकी लीला भूमियों में अभी भी विद्यमान हैं । इस निर्माणों का एक ही उद्देश्य था कि जन साधारण को उन उद्देश्यों का परिचय, प्रकाश तथा उत्साह वहाँ पहुँचने पर मिल सके । भगवान का शरीर न रहने पर भी उनके उद्देश्य की प्रेरणा इन प्रेरणा केन्द्रों से मिलती रहती है । इसलिए उनके निर्माता इन तीर्थों को अवतारों का भावना-शरीर मानते हैं और इसी श्रद्धा के साथ उनका सान्निध्य शिरोधार्य करते हैं ।

विभिन्न धर्म सम्प्रदायों में यही प्रथा प्रचलित है कि उनके संस्थापकों की शिक्षा प्रेरणा के लिए ऐसे केन्द्र बने रहें जहाँ से उस मिशन का सुसंचालन व्यवस्थित रूप से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भविष्य में भी होता रहे । ईसाई धर्म के लिए क्रिश्चिचन मिशन के तत्वावधान में अनेकों छोटे-बड़े धर्म संस्थान समस्त संसार में काम करते हैं । धर्म प्रचारकों के निवास से लेकर—रचनात्मक प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन समीपवर्ती क्षेत्र में इन्हीं केन्द्रों से होता है । उस सम्प्रदाय वालों की दृष्टि से इस प्रकार के धर्म केन्द्रों को इसी भावना से देखा जाता है; जिससे कि भारत में तीर्थों का सम्मान होता है । सिखों के गुरुद्वारे मात्र पूजा स्थल ही नहीं होते वहाँ वे प्रवृत्तियाँ भी चलती हैं जिनके सहारे सिख धर्म की प्रेरणाएँ वहाँ पहुँचने वालों को मिलती रहें ।

तीर्थों की स्थापना में कई सन्तों का विशेष प्रयत्न रहा है । आद्य शंकराचार्य की प्रेरणा से भारत के चार कोनों पर चार धामों की स्थापना हुई । उनके शिष्य मान्धता ने अपने गुरु की इच्छा योजना पूरी करने के लिए अपना सर्वस्व दाव पर लगा दिया और वह महान प्रयोजन पूरा कर दिखाया । ब्रज धाम के अधिकांश तीर्थ महाप्रभु चैतन्य के संकेत पर कृष्ण भक्तों ने बनाये और उन क्षेत्रों में विनिर्मित देवालयों का वर्तमान स्वरूप सामने आया । पुष्टि मार्गीय सम्प्रदाय के धर्मगुरु जहाँ-जहाँ रहे—जहाँ धर्मोपदेश करते रहे प्राय: उन सभी प्रमुख स्थानों में उनकी 'बैठकें' बनी हुई हैं । स्वामी नारायण सम्प्रदाय में भी ऐसा ही हुआ है । उनके धर्म गुरु जहाँ भी कुछ महत्त्वपूर्ण कृत्य करते रहे हैं, प्राय: उन सभी स्थानों पर देवालय बने हुए हैं ।

तीर्थों का प्रयोजन प्रेरणाओं के देवालयों के साथ जोड़कर जन-सम्पर्क साधना और उस आलोक से लोक श्रद्धा को प्रभावित करना रहा है । यह प्रयोजन जहाँ से जिस प्रकार, जिस सीमा तक पूरा होता है, उसी अनुपात से उसे जीवन्त कह सकते हैं । अन्यथा मात्र देव प्रतिमाओं को अलग-अलग स्थापित करते फिरने और वहाँ पूजा पत्री भर की चिन्ह पूजा होते रहने से उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती, जिसके लिए इस महान स्थापना के लिए ऋषियों ने अपनी दूरदर्शिता एवं प्रखर प्रयत्नशीलता का प्रयोग किया था ।

देवता का पूजन तभी उपयोगी हो सकता है जब उस अर्चना के फलस्वरूप आदर्शवादी प्रेरणाओं को उकसाने का समर्थ आधार भी उसके साथ ही जुड़ा हुआ हो । ऐसा न बन पड़े तो घर में चौकी पर रखी छोटी प्रतिमा भी पूजा प्रयोजन के लिए पर्याप्त है; फिर उसके लिए इतने धन और श्रम का विनियोग किस लिये किया जाय ?

प्रेरणाओं से रहित मात्र पूजा प्रयोजन तक सीमित देवालयों के प्रति बुद्धिवादी वर्ग के तीखे आक्षेप होते हैं । वे इसे स्थान, पूँजी एवं श्रम का अपव्यय मानते हैं तथा धर्म व्यवसायियों द्वारा महालोभी पूँजीपतियों के द्वारा रचा हुआ षड़यन्त्र बताते हैं । इन आक्षेपों का समाधान कारक उत्तर इसी रूप में दिया जा सकता है कि उनके द्वारा उच्चस्तरीय आस्था को निर्माण कर सकने वाली रचनात्मक प्रवृत्तयों का संचालन होता रहे । आज के तीर्थों को इसी कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि वे अपने मूल प्रयोजन—उत्कृष्टता परक आस्था सम्बर्धन में कहाँ तक सहायक होते हैं । यदि ऐसा न हो सका तो वे अपनी उपयोगिता खोते चले जायेंगे और परम्परागत श्रद्धा की पूँजी समाप्त होते-होते उपहास के ही नहीं; तिरस्कार के भी भाजन बनेंगे ।

तीर्थ परम्परा का उद्देश्य, प्रचलन और सुधार

तीर्थ परम्परा के पीछे महान उद्देश्यों का समावेश है उसमें व्यक्तिगत स्वार्थ और सामूहिक परमार्थ का समुचित समन्वय है । इस निर्धारण के सूत्र संचालकों की दूरदर्शी विवेकशीलता ने न केवल उसे स्थापित करने—अग्रगामी बनाने के लिए प्रयत्न किया है वरन् उसे लोकप्रिय बनाने एवं क्रियान्वित करने में भी कुछ उठा नहीं रखा है ।

समय बदलने के साथ-साथ प्रथा प्रचलनों में भी अन्तर आना स्वाभाविक है । परिस्थितियाँ अनेकानेक कारणों से बदलती रहती हैं तथा समयानुसार प्रचलनों को भी तदनुरूप बदलना ढलना पड़ता है । तीर्थों का मूल भूत उद्देश्य तो धर्म-धारणा की तरह सदा शाश्वत एवं सुनिश्चित ही रहा है किन्तु उसे प्रयुक्त करने में सामयिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, उसमें उपयोगी हेर-फेर भी होता रहा है । ऐसे परिवर्तन मूल संस्थापकों की दूरदर्शिता पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं वरन् सामयिक परिवर्तन के लिए तत्पर सूझ-बूझ का प्रशंसनीय परिचय ही देते हैं ।

स्मृतियाँ एक प्रकार के सामाजिक संविधान हैं जो समय-समय पर बदले हैं । मनु से लेकर याज्ञवल्क्य तक चौबीस स्मृतिकार हुए हैं । वर्तमान हिन्दू दायभाग कानून या याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरी टीका को मान्यता देते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए बना है । इससे पूर्व के प्रतिपादनों को स्मृतिकार रद्द करते रहे हैं । भारतीय संविधान में ही आजादी मिलने से लेकर अब तक कितने ही संशोधन हुए हैं । कभी वेद अपौरुषेय सर्वमान्य उनके निर्धारणों पर कोई उँगली नहीं उठाता था । किन्तु भगवान बुद्ध के बुद्धिवाद ने सामयिक परिस्थितियों को देखा और चिरकाल से चली आ रही मान्यताओं को उलट दिया । यज्ञों के नाम पर चल रही हिंसा और वामाचारी उच्छृंखलता उन्हें बहुत अखरी और विरोध करना आरम्भ कर दिया । प्रतिपक्षियों ने कहा कि वेद अपौरुषेय हैं । उनमें यज्ञों का विधान है । यज्ञ में पशुबलि आवश्यक है । इन प्रतिपादनों में अनीति का समर्थन होते देखकर वे उस सारी प्रक्रिया के विरुद्ध हो गये । उन्होंने पशुबलि को ही अमान्य नहीं ठहराया, जिन यज्ञों के कारण उसे प्रयुक्त किया जाता था, उसका भी विरोध किया । यज्ञ चूँकि वेदों में बताये गये इसलिए उन्होंने वेद को भी अमान्य ठहराया । चूँकि वेद ईश्वरकृत बताये गये थे इसलिए उन्होंने ईश्वर का अस्तित्व मानने से ही इन्कार कर दिया ओर अनीश्वरवादी शून्यवाद चलाया । भगवान बुद्ध संस्कृत के विद्वान नहीं थे और वे प्रचलन के सम्बन्ध में इस निष्कर्ष पर न पहुँच सके कि मूल प्रतिपादन में वैसा नहीं है जैसा कि विहित स्वार्थों ने उन्हें मनमर्जी का बना लिया है । यदि ऐसा अनुमान उनने लगाया होता तो विरोध का मार्ग अपनाने की अपेक्षा वेदों के मूल प्रतिपादनों को ही उनके वास्तविक स्वरूप में रखने और तात्कालिक प्रचलनों को शास्त्र विरुद्ध ठहराने का प्रयत्न किया होता ।

यहाँ चर्चा इस बात की जा रही है कि लक्ष्य यथावत् रखते हुये धर्म क्षेत्र में वह पूरी-पूरी गुंजाइश है कि विकृतियों का समावेश होने—परिस्थिति बदल जाने पर पूर्व प्रचलनों में हेर-फेर करके सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप उन्हें ढाला मरोड़ा जाय । कभी बहुपत्नी प्रथा थी। दास-दासी खरीदे बेचे और दान दिये जाते थे । अछूत के तप करने पर कभी किसी ने उसका सिर भी काट दिया था । विधवाएँ पति के साथ सती होने के लिए बाधित की जाती रही हैं । देवताओं के सामने पशुओं के रक्त मांस के पहाड़ खड़ा करने की प्रतिस्पर्धा रही है । पर उन प्रचलनों को समय ने अस्वीकार कर दिया है । नारी पर से मध्यकालीन प्रतिबन्ध उठ रहे हैं । पुत्र कन्या के बीच बरते जाने वाले भेदभाव भी समाप्त हो रहे हैं । वंश न चलने से नरक में जाने की बात अब उपहासास्पद ठहराई जाने लगी है और बहुत सन्तान होने के आशीर्वाद देना पण्डितों ने भी बन्द कर दिया है । अब सन्तान रहितों को अधिक सौभाग्यशाली माना जाने लगा है । आवश्यक नहीं कि हर चीज जो पुरानी हो, अच्छी हो। वर्षों पुराना रखा हुआ घी कौन खाता है । पुराने जीर्ण-शीर्ण कपड़े पहनने में किसे उत्साह रहता है ? न तो नवीनता बुरी है और न प्राचीनता के लिए सदा सर्वदा आग्रह करना ही सनातन धर्म है । नवजात शिशु किशोर बनता—किशोर से प्रौढ़ होता है, फिर वृद्धावस्था आती है। इन परिवर्तनों के बीच उसके वस्त्र, आहार, रहन-सहन, रुझान, सम्मान एवं उत्तरदायित्व में भी भारी परिवर्तन होता हैं । इसे अनुपयुक्त ही नहीं वरन् सामयिक आवश्यकता ही कहा जायगा !

तीर्थ परम्परा का लक्ष्य सदा स्थिर रहा है पर उसके स्वरूप एवं प्रयोग में समय-समय पर भारी अन्तर होता रहा है । अन्तराल के परिशोधन परिष्कार के लिए उपयुक्त वातावरण और उपयुक्त सान्निध्य में जाकर उपयुक्त प्रेरणाएँ प्राप्त करने—भावी निर्धारण का उस विशिष्ट अवसर का क्रान्तिकारी उपयोग करना यह तीर्थ सेवन का वैयक्तिक लाभ रहा है । ऋषियों ने आरण्यक इसीलिए बनाये । वहाँ लोकसेवियों, सद्गृहस्थों और किशोरों के लिए व्यक्तित्वों में पवित्रता प्रखरता उभारने वाले पाठ्यक्रम बनाये और स्थायी एवं अस्थायी शिक्षण की तदनुरूप साधना उपचार की व्यवस्था बनी । वस्तुत: यही था तीर्थों का प्रधान उद्देश्य जिसके लिए धर्मप्रेमी वहाँ दौड़-दौड़कर श्रद्धासिक्त मनोभूमि लेकर जाते और लम्बी अवधि तक निवास करते थे । यह तो हुआ आत्मकल्याण का स्वार्थ पक्ष । इसी में पैदल यात्रा से होने वाले स्वास्थ्य लाभ तथा अनेकों व्यक्तियों, परिस्थितियों की वस्तुस्थिति समझने के उपरान्त बढ़ने वाले अनुभव के लाभ को सम्मिलित किया जाया जा सकता है और उसे भी एक प्रकार की स्वार्थसिद्धि कहा जा सकता है ।

तीर्थयात्रा का परमार्थ पक्ष वह है जिसमें विज्ञजन मण्डली बनाकर, धर्मप्रचार का उद्देश्य आगे रखकर चलते थे । मार्ग में मिलने वालों से ऊँचा उठाने वाली, आगे बढ़ाने वाली वार्ता करते थे । रात्रि को जहाँ ठहरते वहाँ लोकशिक्षण के निमित्त कथा कीर्तन का आयोजन रखते थे। साथ ही व्यक्तिगत अथवा स्थानीय उलझनों के सन्दर्भ में सुझाव समाधान भी प्रस्तुत करते थे । लोग उनकी निष्पक्षता, विद्वत्ता एवं प्रतिभा से प्रभावित होकर बातें मानते भी थे । इस प्रकार यह तीर्थ यात्राएँ घर-घर अलख जगाने और जन-जन के मन-मन में धर्म धारणा उभारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं । उस प्रयास की उपयोगिता और संलग्न व्यक्तियों की महानता को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखते हुए श्रद्धालु लोगों ने उनके प्रवास को सरल बनाने में पूरा-पूरा सहयोग दिया था । धर्मशालाएँ, सदावत, उद्यान बनाने में तीर्थयात्रा के लिए सुविधा साधन जुटाना, धर्मप्रचारकों का सहयोग देना ही एकमात्र प्रयोजन था । विकृतियों ने क्या से क्या कर दिया, इसे देखकर दुःख होता है । आज तो धर्मशालाएँ व्यवसायियों, जेबकटों, सैलानियों, बरातियों को मुफ्त में डेरा डालने की अवांछनीय सुविधाएँ प्रदान करती हैं । आज तो सदावर्तों का उपयोग निठल्ले दुव्यसनी ही करते हैं । आज की दुर्मति और दुर्गति ने तीर्थ परम्परा का ढाँचा भी लड़खड़ा दिया है । प्रतिमाओं को देखने, डुबकी लगाने और सैर सपाटे में व्यस्त रहने के अतिरिक्त आज तो तीर्थ यात्रियों को किसी ऐसे कार्य में निरत नहीं देखा जा सकता जिससे उनकी धर्म भावना का परिचय मिले या उस भगदड़ के फलस्वरूप किसी प्रकार का पुण्यफल मिलने का विश्वास बाँधे । वर्तमान दुर्गति में भी हम भूतकालीन स्थापनाओं के साथ जुड़ी हुई गरिमा और पुनर्जीवन के उपरान्त प्रस्तुत हो सकने वाली सम्भावना का स्मरण करके आशा और उत्साह बनाये रह सकते हैं ।

तीर्थों के स्वरूपों, क्रियाकलापों में छुटपुट हेर-फेर होता रहा है । तीर्थ देवाराधनपरक थे । वहाँ रहकर लोग आत्मदेव एवं परब्रह्म की एकान्त उपासना करते, तप निरत रहकर अन्तराल उभारने ब्रह्मसत्ता से सम्बन्ध जोड़ने और उच्चस्तरीय आदान-प्रादान का द्वार खोलने में निरत रहते थे । तपश्चर्या करके देव वरदान पाना, जन कल्याण में काम आने वाली ऋद्धि-सिद्धियाँ अर्जित करना जब प्रमुख उद्देश्य था तब उस प्रयोजन के लिए उपयुक्त वातावरण तलाश करते हुए ऐसी सुसंस्कारी तथा सुविधाजनक भूमि तलाश करते थे जहाँ अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति में अनुकूलता रहे । साथी सहयोगी भी मिल सकें । एक समय तीर्थ यात्रा का यह स्वरूप रहा है ।

एक समय पापों का प्रायश्चित करके स्वर्ग लाभ की प्रवृत्ति पनपी और लोग तीर्थों में जाकर कष्ट साध्य जीवन जीने एवं जीवन लीला की धीमी अथवा तीव्र प्रक्रिया अपनाकर जल्दी पापमुक्त होने स्वर्ग पहुँचने की बात सोचते थे । प्रायश्चित ही उन दिनों तीर्थ का प्रधान उद्देश्य बना । धृतराष्ट्र, गान्धारी, पाण्डव आदि के वन गमन इसी उद्देश्य के लिए थे । ब्रह्महत्या के पाप से छूटने के लिए चारों भाई राम हिमालय गये थे । तीर्थों में चान्द्रायण व्रत; मुंडन आदि प्रायश्चितपरक व्रत साधनाएँ होती थीं । किसी से गौ हत्या जैसा पाप बन पड़ता तो उसे प्रायश्चित करने के लिए तीर्थ जाना पड़ता था । काशी करवट, मोक्ष शिला, स्वर्ग कूप आदि के अभी भी ऐसे कितने ही चिह्न मौजूद हैं जहाँ लोग स्वेच्छापूर्वक प्राण विसर्जन करते थे । कितने ही नर बलि के लिए अपने आपको इसीलिए प्रस्तुत करते थे कि उन्हें पापयोनि से छुटकारा और देवलोक मिल सके ।

इसके उपरान्त पुण्य अर्जन करने के लिए तीर्थ स्थान सर्वश्रेष्ठ समझे गए और लोग अपनी संचित सम्पदा वहाँ दान कर देने की योजना बनाने लगे । अनेक तीर्थों में तुलादान के स्मृति चिह्न अभी भी विद्यमान हैं । सम्पन्न लोग अपने शरीर के बराबर तोलकर सोना, चाँदी आदि दान करते थे । निर्धन लोग भी घृत, अन्न, गुड़ आदि का तुलादान करते थे । तीर्थों में ब्रह्मभोज, यज्ञ, धर्मानुष्ठान, कथा समारोह आदि की व्यवस्थाएँ बनती थीं और उनमें साधु ब्राह्मणों को प्रभूत दान दक्षिणा देने का उपक्रम चलता था । बड़े यज्ञ लोग घरों पर नहीं तीर्थों में जाकर करते थे । भगवान राम ने दस अश्वमेध अयोध्या में नहीं गंगातट पर काशी जाकर किये थे । इसी प्रकार अन्य सम्पन्न लोग भी वहाँ पहुँचकर वैसे आयोजन रचते थे । अभी भी अनेक तीर्थों में यज्ञकुण्ड, भस्म भण्डार तथा अन्य अवशेषों के प्रमाण उपलब्ध होते हैं । दान पाने के इच्छुक इन्हीं क्षेत्रों के इर्द-गिर्द डेरा डालते या मँडराते रहते थे । संस्कृत पाठशालाएँ आदि उन क्षेत्रों में इसी उद्देश्य से खुलतीं थीं । साधुओं की जमातें इसी सुविधा के कारण डेरा डालती थीं कि तीर्थ यात्रियों की दान भावना का आश्रय मिलने से उन्हें आर्थिक असुविधा का सामना न करना पड़ेगा । पितरों के पिण्डदान, बालकों के मुण्डन आदि संस्कार कराने के प्रचलन में भी प्रधानतया इसी उद्देश्य का समावेश है कि इसी बहाने तीर्थ पुराहितों को पुष्कल दान-दक्षिणा मिलती रहे । उन दिनों इस प्रतिग्रह का श्रेष्ठतम सत्प्रयोजनों में ही विनियोग होता था इसलिए दानियों को भी जहाँ-तहाँ पैसा बखेरने की अपेक्षा सत्पात्रों के हाथों में उसे सौंपना उपयुक्त भी लगता था ।

एक समय स्मारकों का निर्माण करने वाले उत्साह के रूप में तीर्थ स्थानों का चयन हुआ । इष्ट देवता की प्रसन्नता, पूर्वजों की सद्गति, अपनी ख्याति के लिए देवस्थान, धर्मस्थान बनाने का प्रचलन हुआ । एक ने दूसरे से प्रेरणा ली और तीर्थ तपोवन न रहकर भव्य स्मारकों के घटाटोप से घिर गए । एक से एक बड़े मन्दिर बनने लगे । अपने स्थान पर बनाने की अपेक्षा तीर्थों में इस प्रकार के निर्माण करने से यश और पुण्य अधिक मिलता देखकर लोग कुछ न कुछ तीर्थों में ही बना देने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बात सोचने लगे । अनेक तीर्थों में ऐसे ही निर्माणों की भरमार है । छोटे से वृन्दावन कस्बे में ही प्राय: पाँच हजार छोटे-बड़े मन्दिर हैं । काशी, प्रयाग आदि तीर्थों में यह घिच-पिच देखते ही बनती है । इसमें लोकमंगल का कम और देवता की प्रसन्नता अर्जित करके चित्र-विचित्र वरदान पाने का भाव अधिक रहा है । शरीर कष्ट न सहना पड़े, तप साधना में समय न लगाना पड़े—इससे यह सरल लगा कि पैसा खर्च करके मन्दिर बना दें और अक्षय पुण्य लूटें । उसमें डाकू और हत्यारे भी पीछे नहीं रहे । एक अंश मन्दिर बनाने में लगा देने पर जब पाप से मुक्ति और देवता के वरदान का दुहरा लाभ मिलता है और साथ ही शेष अनीति उपार्जन से स्वयं मजा उड़ाने का लाभ मिलता है तो यह दुहरी बुद्धिमत्ता का उपयोग क्यों न किया जाय । अनावश्यक मन्दिरों की भरमार तीर्थ स्थानों में कदाचित ऐसे ही कारणों से बढ़ती रही है ।

तीर्थ कभी विद्या के केन्द्र भी रहे हैं । पाठशालाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक के संस्थान यहाँ विद्यमान थे। विद्वान तीर्थ सेवन का पुण्य लाभ लेने के लिए वहाँ पहुँचते थे और प्रसन्नतापूर्वक अध्ययन की सेवा-साधना में जुट जाते थे । छात्रों को भी शुष्क वातावरण में पढ़ने की अपेक्षा तीर्थों में प्रकृति सौन्दर्य, चहल-पहल, सुविधा-साधन, गाँव-परिवार के लोगों का आवागमन, यातायात की अपेक्षाकृत अधिक सुविधा, विद्यालय का स्तर आदि कारणों से निकटवर्ती विद्यालयों में पढ़ना घर से दूर पढ़ने पर भी अच्छा लगता था । इस प्रकार शिक्षा प्रचलन का दौर चला तो अनेक तीर्थों में विभिन्न विषयों के विद्यालय खुलते चले गये । उनकी व्यय-व्यवस्थाएँ बिना किसी कठिनाई के जुटती रहीं । काशी, उज्जैन आदि कभी प्रख्यात विद्या के केन्द्र रहे हैं उसी आधार पर नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्व विद्यालय भी विनिर्मित होते रहे हैं ।

इससे पूर्व एक ऐसा भी मध्यान्तर आया है, जिसमें वन लगाने, उद्यानों के आरोपण आदि के लिए उत्साह उभरा और उस दिशा में भारी काम हुआ । गोमुख से आगे का नन्दन वन किसी का योजनाबद्ध रूप से लगाया हुआ है । अनगढ़ प्रकृति की देन इस रूप में नहीं हो सकती है । हेम कुण्ड के इर्द-गिर्द वाली फूलों की घाटी को देखने संसार भर के वनस्पति प्रेमी आते हैं । उनमें से अधिकांश का मत है कि कभी यह क्षेत्र सुनियोजित पुष्पोद्यान रहा है और किसी साधन सम्पन्न प्रकृति प्रेमी का प्रयास है । भगवान परशुराम ने आधे जीवन फरसे से मार-काट मचाई, पीछे उसे फेंक दिया और फावड़ा लेकर उत्तरार्द्ध में उद्यान लगाने में निरत रहे । बिहार के हजारी किसान द्वारा हजार आम्र उद्यान लगाने का संकल्प करने और उसे पूरा करके रहने की बात तो सर्वविदित है ही ।

अथर्ववेद तथा तैत्तिरीय संहिता में अश्वत्थ, न्यग्रोध, उदुम्बर, प्लक्ष आदि वृक्षों में देवताओं का निवास माना गया है । आंवला, वट, कदम्ब, तुलसी के सम्बन्ध में भी ऐसी ही मान्यता है ।

वृक्ष-वनस्पतियों के रूप में देवताओं की पूजा-स्थापना जिन दिनों अपनी प्रौढ़ता पर होगी निस्संदेह उन दिनों देश हर दृष्टि से सुरम्य-सुसम्पन्न दीखता होगा। वृक्ष-वनस्पति और मनुष्य प्राणी दोनों अन्योन्याश्रित हैं । आहार दोनों को दोनों से मिलता है । दोनों एक-दूसरे को जीवन्त-समर्थ बनाने में संलग्न रहते हैं । यह सम्बन्ध टूटा तो न पेड़ जीवित रह सकेंगे और न मनुष्यों की, प्राणियों की जीवन रक्षा शक्य हो सकेगी ।

महाभारत में वृक्षों के रूप में भगवान की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित किये जाने का उल्लेख मिलता है । लोमश ने अक्षयवट के रूप में शिव प्रतिमा स्थापित की थी । पुलस्त्य ने वृक्षों की छाया में यज्ञ करने का विधान बताया है । कई तीर्थों में ऐसे पवित्र वृक्ष हैं जो देवताओं की तरह पूजे जाते हैं, यथा—

(१) अक्षयवट (गया), (२) गृध्र वट (गया), (३) मुंज वट (कुरुक्षेत्र), (४) पंचवटी (कुरुक्षेत्र), (५) स्थाणु वट (कुरुक्षेत्र), (६) कपिला वट (हिमालय), (७) अरुन्धती वट (हिमालय), (८) मधुवटी (कुरुक्षेत्र) । इनमें से अधिकांश को शिव और कइयों को विष्णु-वरुण तथा देवी का प्रतीक माना गया है ।

शल्य पर्व में सरस्वती तट पर अवस्थित एक शंख नाम महावृक्ष का उल्लेख है जो उस समय, उस क्षेत्र में देवता की तरह पूजा जाता था । ऋषि पुलस्त्य ने वट पूजा की तालिका ही बना दी है । ऋग्वेद में आरण्यादि सूक्त, सोम सूक्त एवं वनस्पति सूक्त हैं जिनमें वृक्ष-वनस्पतियों का ही नमन-वन्दन किया गया है ।

नारदीय पुराण के अध्याय ६५ में कुरुक्षेत्र के समीपवर्ती आठ वनों का उल्लेख धर्म क्षेत्र के स्तर पर किया गया है । इन वनों के नाम हैं—काम्य वन, अदिति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वन, व्यास वन, फलकी वन, सूर्य वन, शीत वन । मथुरा क्षेत्र में अभी भी लोहवन, महावन, वृन्दावन, कामवन, मधुवन, आदि चौरसी वन हैं और उनकी हर वर्ष परिक्रमा होती है ।

कालान्तर में तीर्थों का श्मशानों के साथ भी सम्बन्ध जुड़ा । मत्स्य पुराण में वाराणसी के इर्द-गिर्द श्मशानें तीर्थों की एक बड़ी तालिका का उल्लेख है । मणि कर्णिका, श्मशान, शिवालय, प्रचण्ड भैरव, भीमचन्डी, घण्टा-कर्ण चण्ड, कपाल मोचन आदि देवालयों की स्थापना श्मशान क्षेत्रों के सन्दर्भ में ही हुई है । शिव पुराण, वाराह पुराण, कूर्म पुराण में वाराणसी के कपाल मोचन का उल्लेख हुआ है और वहाँ पितरों का श्राद्ध-तर्पण करने पर जोर दिया गया है । सम्भवत: मृत्यु की ओर ध्यान दिलाकर श्मशान वैराग्य उत्पन्न करने और उस भय से भयभीत लोगों को विरक्त मण्डली में भर्ती कर लेने के निमित्त ऐसा हुआ हो । इस ओर ध्यान जाने पर लोग जीवन का सदुपयोग करें—पाप से बचें यह भी एक कारण हो सकता है । शंकर भक्तों को यह उपयुक्त लगा हो कि जिस भूमि से महादेव को प्रेम है वहीं क्यों न उनके स्थान बनायें जायें ।

यह परिवर्तन सामयिक परिस्थितियों के कारण होते रहते हैं । पुरानी परम्पराएँ कई बार इतनी जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं कि लोग उन्हें उसी रूप में अपनाने के लिए तैयार नहीं होते । उसका एक बड़ा कारण विकृतियों के समावेश से उत्पन्न हुई अनुपयोगिता भी है, जिसके कारण खीजा हुआ लोक मानस उसे उस रूप में फिर से अपनाने को सहमत नहीं होता । कई बार नवीनता के उत्साह में भी पुरातन की उपेक्षा होने लगती है । सब पुराने ढंग की पगड़ी बाँधने के लिए नये जमाने के लोग तैयार नहीं । नवीनता का आकर्षण एक तथ्य है जिसके कारण विभिन्न संस्थानों का गठन और स्वरूप बदलता रहता है । पूर्वकाल में धर्म संस्थानों के उत्तराधिकारी नियुक्त होते थे, पर अब वे चुने जाते हैं । पूर्वकाल में दान का हिसाब नहीं पूछा जाता था पर अब संस्थानों एवं पुरोहितों से भी इनकम टैक्स की जाँच-पड़ताल होती है ।

तीर्थ परम्परा पर भी इस प्रकार का दबाब पड़ता रहा है और उसने विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रंग रूप में अपनें केंचुल बदले हैं । इतने पर भी इस तथ्य को उसके साथ जुड़ा ही रखा गया है कि आत्म परिष्कार और लोक मंगल की धर्म धारणा उस माध्यम से किसी न किसी प्रकार सधती ही रहे ।

तीर्थों की संख्या आरम्भ में कम थी । धीर-धीरे वह बढ़ी है । मत्स्य पुराण में मात्र २० का उल्लेख मिलता है । इसके बाद बने पुराणों में उनकी संख्या बढ़ती गयी है । ब्रह्म पुराण में ३०, लिंग पुराण में ६५, नारदीय पुराण में ६५, तथा स्कन्द पुराण में १५० से अधिक है । महाभारत के वन पर्व, शल्य पर्व और अनुशासन पर्व में तीर्थों का वर्णन है । उन सब का योग १७७ तक जा पहुँचा है । महर्षि पुलस्त्य, धौम्य, लोमश, अंगिरा द्वारा अपने यात्रा विवरण महाभारत में विस्तारपूर्वक वर्णन किये गये हैं ।

अब इन तीर्थों की संख्या द्रुत गति से बड़ी और बढ़ रही है । साधन सम्पन्न तीर्थों की संख्या अब हजारों को पार कर चुकी है । छोटे-बड़े क्षेत्र में देवता तथा तीर्थों की संख्या अब लाखों में गिनी जा सकती है । निर्माणों का यह उत्साह बताता है कि परम्परा के प्रति लोगों का अनुराग अभी भी कम नहीं हुआ है । यही बात तीर्थ यात्रियों के सम्बन्ध में भी है । उत्तराखण्ड के बद्रीनाथ् तीर्थ में अब से ६० वर्ष पूर्व ५ से १० हजार के बीच यात्रीगण एक वर्ष में पहुँचते थे । इसके बाद यह संख्या २० वर्ष तक धीमी गति से बढ़ी । मोटरों की सुविधा तथा अन्य साधन बढ़ जाने पर अब यह ३०-४० लाख से भी अधिक वार्षिक तक जा पहुँचती है । यही बात अन्याय तीर्थों के बारे में भी है । ऐसे अपवाद कम ही हैं जहाँ कभी बहुत रौनक थी, पर वहाँ पुरातन निर्माण टूटते और खण्डहर बनते जा रहे हैं । यह यात्रा चक्र से बाहर पड़ जाने के कारण ही हुआ है । इसे तीर्थ परम्परा के प्रति अरुचि का चिन्ह नहीं माना जा सकता ।

इन दिनों सरकार का ध्यान उन्हें पर्यटन केन्द्र बनाने की दृष्टि से मुड़ा है । संसार में पर्यटन एक अच्छे खासे उद्योग के रूप में विकसित हुआ है । उससे वाहनों को व्यापारियों को, मजदूरों को पैसा मिलता है । फलत: खुशहाली बढ़ती है । इसमें एक अंश सरकार की जेब में भी टैक्स रूप में जाता है । पर्यटन एक अच्छा मनोरंजन भी है, उससे धन वितरण का भी एक प्रयोजन पूरा होता है । इन दिनों बढ़ते हुए पर्यटकों के लिए यात्री निवासों की बहुत जरूरत पड़ रही है । जो हैं वे कम पड़ते हैं । इसलिए धर्मशाला होटल बनाने वालों को प्रोत्साहन सहयोग मिल रहा है । सरकार कुछ अपने भी बना रही है । इन दिनों तीर्थयात्रा का स्वरूप पर्यटन मनोरंजन के रूप में ही दृष्टिगोचर होता है । अन्य देशों में पर्यटन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थों के स्थान भिन्न-भिन्न हैं । दोनों का वातावरण एवं स्वरूप भी भिन्न है । स्वरूप पर अपने देश में धर्मिकता की प्रवृत्ति एवं उपयुक्त स्थानों पर चिरकाल से बनते आ रहे तीर्थों का बाहुल्य एवं परिचय इतना अधिक बढ़ गया है कि पर्यटन के लिए निकलने वाले एक पंथ दो काज की नीति अपनाते और तीर्थ स्थानों की ओर दौड़ पड़ते हैं । इससे पर्यटन पक्ष को बल मिलता है, किन्तु तीर्थ परम्परा घाटे में रही है । यात्रियों की भगदड़ से लाभ उठाने के लिए तीर्थों के संचालक यह सोचते हैं कि कम समय में कम श्रम में—इन लोगों से अधिक लाभ किस प्रकार उपार्जित किया जाय । संचालक और पर्यटक दोनों ही उस महान् परम्परा को एक प्रकार से विस्मृत ही करते चले जा रहे हैं, जिसके लिए इस स्थापना के लिए दूरदर्शी महामनीषियों ने घोर श्रम किया था । साधन सम्पन्नों की यहाँ भव्यता—सुविधा उत्पन्न करने के लिए दबाया था । साथ ही यात्रियों को भारी सत्परिणामों की आशा दिला कर उन्हें इस निमित्त समय, श्रम और धन खर्च करने के लिए सहमत किया था ।

प्रवाह कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचा, यह देखते हुए आश्चर्य भी होता है और दुःख भी । आश्चर्य इस बात पर कि अवांछनीयता की मात्रा बढ़ते जाने पर भी उसके सुधार-परिष्कार का प्रयत्न मनीषियों ने क्यों नहीं किया ? सुधारकों की संख्या एवं चेतना क्यों कर इन दिनों मूर्छित बनी रही और विकृतियाँ पनपती-बढ़ती चली गईं । दुःख इस बात का कि न तीर्थयात्री सोचते हैं कि यह लकीर किस निमित्त पिट रही है । न तीर्थ संचालक सोचते हैं कि यदि वर्तमान प्रवाह चलता रहा तो उस महान परम्परा के आदर्श ही समाप्त हो जायेंगे और मात्र काने-कुबड़े प्रदर्शन ही पर्यटकों को आकर्षित करने वाले स्वांग बन कर रह जायेंगे ।

गिनती गिनना भूल जाने पर उसे नये सिरे से गिनना एड़ता है । तीर्थ परम्परा जिन मोड़ों और ढलानों से गुजरी है उसमें कूड़े-करकट की भरमार होना स्वाभाविक है । आवश्यकता ऐसे परिशोधन, परिमार्जन, निर्धारण और नव निर्माण की है जो तीर्थ परम्परा को फिर उसी रूप में पुनजीवित कर सकें, जिसके निमित्त इसका जन्म हुआ था ।

प्रमुख तीर्थों का परिचय

इन दिनों छोटे-बड़े तीर्थों की संख्या अगणित है । विभिन्न धर्म सम्प्रदायों एवं व्यक्तिगत मान्यताओं के आधार पर अनेकानेक सृजन हुआ है । उनके भक्तों ने अपनी भावुकता की पूर्ति, देवता की प्रसन्नता से मनोकामना की उपलब्धि, स्वर्ग मुक्ति जैसे सद्गति की कल्पना, लोक ख्याति आदि कारणों से प्रेरित होकर इन मन्दिरों को बनाया है । गिरजा, मस्जिद, गुरुद्वारा जैसी एकनिष्ठ भगवत् उपासना ही उद्देश्य रहा होता तो एक ही आकृति के देवालय दीखते और उनमें पूजा उपक्रम भी एक जैसा चलता पर हिन्दू धर्म में वैसा है नहीं । अनेकता में एकता देखने की दृष्टि का व्यतिक्रम हुआ तो वह देव भिन्नता और मन्दिरों की बहुरूपता में पनपा ।

हर सम्प्रदाय के लिए अपना देव स्थान प्रमुख है । उनकी दृष्टि में अन्य सब गौण हैं । ऐसी दशा में किस आधार पर किसे महत्त्वपूर्ण, किसे महत्वहीन कहा जाय यह कठिन है । यहाँ इतना ही कहा जा रहा है कि लोक मान्यता में चारों धाम, द्वादश ज्योतिर्लिंग, द्वादश शक्तिपीठ, सप्त पुरियाँ, सप्तक्षेत्र सप्तधाराएँ अधिक प्रख्यात हैं ।

शक्तिपीठों के सम्बन्ध में भारी भ्रम है । कहा गया है कि सती के शव को कन्धे पर रखकर शंकरजी विक्षिप्त हो चले तो विष्णु ने उस शव को काटकर दूर-दूर फेंक दिया और जहाँ वे टुकड़े गिरे वहाँ शक्तिपीठ बने । ऐसे स्थानों की गणना ५१ में की जाती है । पर अब उनमें से कितनों का कुछ पता ही नहीं चलता । कुछ पाकिस्तान में हैं । कुछ पर एक ही नाम के कई-कई दावेदार हैं । ऐसी दशा में त्रिपुरा रहस्य में वर्णित द्वादश शक्तिपीठों का प्रतिपादन अधिक युक्तिसंगत लगता है । अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में उतना विवाद नहीं है । इसलिए उनका उल्लेख इसी आधार पर किया जा रहा है—

चारों धाम—(१) बद्रीनाथ, (२) जगन्नाथपुरी, (३) रामेश्वरम्, (४) द्वारिका ।

सप्त पुरियाँ—(१) काशी, (२) कांची, (३) मायापुरी (हरिद्वार), (४) अयोध्या, (५) द्वारावती (द्वारिका), (६) मथुरा, (७) अवंतिका (उज्जैन) ।

सप्त पुण्य धाराएँ—(१) गंगा, (२) यमुना, (३) गोदावरी, (४) सरस्वती, (५) कावेरी, (६) नर्मदा, (७) सिन्धु ।

सप्त क्षेत्र—(१) कुरुक्षेत्र (पंजाब), हरिहर क्षेत्र (सोनपुर-बिहार), (३) प्रभास क्षेत्र (वेरावल-सौराष्ट्र), (४) रेणुका क्षेत्र (मथुरा), (५) भृगु क्षेत्र (भँरुच),

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(६) पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी), (६) शूकर क्षेत्र (सोरों-उ.प्र.) ।

द्वादश ज्योतिर्लिंग (शिवलिंग)—(१) सोमनाथ (गुजरात-सौराष्ट्र), (२) मल्लिकार्जुन (कृष्णा जिला-मद्रास), (३) महाकालेश्वर (उज्जैन, म० प्र०), (४) ओंकारेश्वर (म० प्र०), (५) केदारनाथ (उत्तराखण्ड), (६) भीमशंकर (बम्बई प्रान्त-महाराष्ट्र), (७) विश्वेश्वरनाथ (वाराणसी, उ० प्र०), (८) त्र्यम्बकेश्वर—(नासिक-महाराष्ट्र), (९) वैद्यनाथ (जसीडीह-बिहार), (१०) नागेश्वर (द्वारिका-सौराष्ट्र), (११) सेतुबन्ध रामेश्वर (मद्रास), (१२) घुश्मेश्वर (मनमाड-महाराष्ट्र) ।

त्रिपुरा रहस्य (माहात्म्य खण्ड, अध्याय ४८, श्लोक ७१ से ७५). में द्वादश देवी शक्तिपीठों के नाम गिनाये गये हैं । वे इस प्रकार हैं— (१) कामाक्षी (काँचीपुरम्), (२) भ्रामरी (मलयगिरि), (३) कुमारी (केरल-मलाबार), (४) अम्बाजी (आनर्त-गुजरात), (५) महालक्ष्मी (करबीर-कोल्हापुर) (६) कालिका (उज्जैन-मालवा) (७) ललिता (प्रयाग) (८) विंध्यवासिनो (विंध्याचल) (९) विशालाक्षी (वाराणसी) (१०) मंगलावती (गया-बिहार) (११) सुन्दरी (बंगाल) (१२) गुह्य केश्वरी (नेपाल) ।

सम्प्रदाय विशेष के तीर्थों का यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है ।

अमरनाथ, वैष्णवदेवी, ज्वालामुखी—

कश्मीर क्षेत्र के अमरनाथ और वैष्णवदेवी दो तीर्थ प्रख्यात हैं । यहाँ हर वर्ष लाखों की संख्या में यात्री पहुँचते हैं । वैष्णव देवी की अपेक्षा अमरनाथ यात्रा कठिन है यहाँ आषाढ़ी और श्रावणी पूर्णिमा को अधिक भीड़ होती है । पठानकोट तक रेल से पहुँचने के बाद उस क्षेत्र में ज्वालामुखी मन्दिर भी है । इनमें जमीन से धीमी अग्नि ज्योति निकलती रहती है । जमीन से निकलने वाली गैस में आग लगने पर ऐसे दृश्य कहीं भी देखे जा सकते हैं । इसे दुर्गा की शक्तिपीठों में गिना जाता है ।

कहते हैं कि विष्णु भगवान ने सती के ५१ खण्ड करके दूर-दूर तक बिखेरे तो जहाँ गिरे वहाँ शक्ति पीठें बनीं । ज्वालामुखी जिह्वा गिरने के स्थान पर प्रकट हुई मानी जाती हैं । भूमि से निकलने वाली ज्योति बड़ी है और जलती मशाल जैसी लगती है । इसके अतिरिक्त और भी कई जगह से इस मन्दिर में ऐसी ही छोटी-छोटी अग्नि शिखाएँ निकलती हैं । पिछली दीवार से ४, कोने से १, दाहिनी दीवार से १, मध्य कुण्ड की दीवारों से ४ इस प्रकार कुल मिलाकर दस ज्योतियों के दर्शन होते हैं । इनके अतिरिक्त और भी प्रकाश समय-समय पर प्रकट होते बुझते रहते हैं । मन्दिर के पीछे एक कुआँ है उसमें से भी ऐसे ही प्रकाश निकलते हैं । लोग इन्हीं को देवी की स्वयंभू प्रतिमा मानते हैं और आश्विन नवरात्रि में बड़ी संख्या में पहुँचते हैं ।

अमरनाथ समुद्र से १६,००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है । यहाँ एक ६० फुट लम्बी, ३० फुट चौड़ी, १५ फुट ऊँची प्राकृतिक गुफा है । भीतर एक बर्फ का चबूतरा है जिस पर शिव लिंग की आकृति का एक हिमिलम्ब बनता है । कहते हैं कि यह कृष्ण पक्ष में क्रमशः घटता और अमावस्या को समाप्त हो जाता है । उसके बाद प्रतिपदा से बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमा को पूर्ण होता है । यह कथा सही नहीं है । शीत ऋतु में यह स्वयं बनता है और बाद में बहुत धीमी गति से क्षीण होता है ।

गुफा के नीचे एक छोटी जल धारा बहती है जिसे अमर गंगा कहते हैं । बड़ा हिमि लम्ब जिसे शिव लिंग कहते हैं, उसके समीप ही दो और छोटे हिमि लम्ब बनते हैं जिन्हें गणेश पार्वती का नाम दिया जाता है । गुफा में जंगली कबूतरों के झुण्ड भी रहते हैं । एक ही जोड़ा रहने की बात किम्बदन्ती भर है ।

वैष्णव देवी जम्मू से ६० कि० मी० उत्तर-पच्छिम में है । गुफा अंधेरी है । व्यवस्था बन जाने से इन दिनों यहाँ की रात्रि अपेक्षाकृत सरल हो गयी है । आश्विन नवरात्रि में यात्रियों की यहाँ भीड़ रहती है, गुफा में प्रवेश करने पर कुछ ही आगे सरस्वती, लक्ष्मी और काली की तीन मूर्तियाँ हैं । इनके नीचे एक छोटी जल धारा बहती है जिसे वाण गंगा कहते हैं ।

कण्व आश्रम

ऋषीकेश-कोटद्वार के मध्य कण्व ऋषि का आश्रम है। शकुन्तला उन्हीं की पुत्री थी, दुष्यन्त के विमुख हो जाने पर पितृ गृह में ही पली और वहीं चक्रवर्ती भरत को जन्म दिया जो सिंहनी के बच्चों से खेलता था । बड़ा होने पर वह चक्रवर्ती राजा हुआ । भारत का नामकरण उसी के कारण पड़ा । कण्व की गणना वेदकाल के ऋषियों में की जाती है ।

कुरुक्षेत्र

अब कुरुक्षेत्र एक नगर भी है और सूर्यग्रहण के अवसर पर यहाँ भारी मेला भी होता है । प्राचीनकाल में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह एक सुविस्तृत भूखण्ड था, ब्रजभूमि की तरह इसकी परिधि ५० मील लम्बी तथा इतनी ही चौड़ी मानी जाती हैं । वामन पुराण के ३३ वें अध्याय में इसे उत्तर भारत का विशालकाय शिक्षा क्षेत्र बताया गया है । राजा कुरु ने इसे एक आदर्श कृषि क्षेत्र बनाया था । उन्हीं के नाम पर यह कुरुक्षेत्र कहलाया । महाभारत में वर्णन आता है कि पावन सरस्वती के तट पर यहाँ अनेकों ऋषि आश्रम और गुरुकुल थे । सहस्त्रों छात्र यहाँ शिक्षा पाते थे । प्रसिद्ध कौरव-पाण्डव युद्ध यहाँ हुआ जो १८ दिन में ही समाप्त हो गया था । कृष्ण भारत को विशाल भारत देखना चाहते थे । खण्ड-विखण्डों में बँट जाने से शक्ति का अपव्यय और अव्यवस्था फैलने से उन्हें दुःख था । उस विश्व-युद्ध का उद्देश्य विशाल भारत की संरचना में अड़े हुए अवरोधों को समाप्त करना था । इसलिए उस युद्ध का नाम भी महाभारत रखा गया । भारतीय संस्कृति का निरूपण महर्षि व्यास ने जिस पुराण ग्रन्थ में किया है उसका नाम भी महाभारत रखा गया । इस संरचना में विशेषतया इसी विश्व-युद्ध तथा उससे सम्बन्धित चरित्रों कथानकों का वर्णन है । वामन पुराण के अनुसार यह विशाल क्षेत्र छोटे-छोटे सात उपक्षेत्रों में बँटा हुआ था ।

ये क्रमशः— (१) काम्य वन, (२) अदिति वन, (३) फलकी वन, (४) व्यास वन, (५) सूर्य वन, (६) मधु वन, (७) शीत वन थे । इस प्रदेश में नदियाँ भी सात ही बहती थीं। उनके नाम— (१) सरस्वती, (२) वैतरणी, (३) आपस्रवा, (४) मधुस्रवा, (५) कौशिकी, (६) दृषद्वती, (७) हिरण्यवती था ।

महाभारत काल के कई स्मृति चिह्न यहाँ पाये जाते हैं । यह समूचा क्षेत्र अनेक देवालयों, पवित्र सरोवरों, ऋषि परम्परा के अवशेषों से भरा हुआ है ।

ब्रजभूमि-मथुरा

भगवान श्रीकृष्ण की लीलास्थली ब्रजभूमि कहलाती है । इसमें कई स्थान प्रख्यात और कई सर्वसाधारण की जानकारी से छिपे हैं । भगवान मथुरा में जनमे, गोकुल में पले, वृन्दावन में खेले, गोवर्धन में गौ चराई, राधाकुण्ड नंदगाँव बरसाने में राधा से सम्पर्क बना । इसी प्रकार और भी छोटे-बड़े इस क्षेत्र में अनेकों स्मृति चिह्न हैं जिनसे भगवान की बाल-लीलाओं का परिचय प्राप्त होता है ।

ब्रज चौरासी कोस में फैला हुआ है । उसमें उत्तर प्रदेश ही नहीं राजस्थान प्रान्त भी सम्मिलित है । भरतपुर, डीग, कामा आदि बड़े नगर कस्बे भी इसी परिधि में आते हैं । हर वर्ष इस परिधि की भक्तजन परिक्रमा करते हैं । गोसाईं जी की यात्रा बड़े ठाठ-बाठ से निकलती और प्रायः दो महीने चलती है । बंगाली भक्तजन इसे पन्द्रह दिन में ही पूरा कर लेते हैं । वे कई-कई दिन डेरा नहीं डालते साथ ही चलने की गति भी तीव्र रखते हैं ।

दुर्वासा, अक्रूर, ध्रुव, बलि, विरजानन्द आदि महामनस्वियों के इस क्षेत्र में रहने और तपश्चयाएँ करने के विवरण मिलते हैं ! मीरा, सूर, तुलसी का बहुत समय यहाँ रहना हुआ है ।

चैतन्य महाप्रभु इस प्रदेश में आये और उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से यह बताया कि भगवान ने कहाँ क्या लीलाएँ कीं । उनके कथन पर विश्वास करके भक्तजनों ने उन स्थानों पर स्मृति मन्दिर बना दिए । मध्यकाल में दसनामी सम्प्रदाय का यहीं बोलबाला रहा है । बल्लभ सम्प्रदाय यहीं से जन्मा और गुजरात, राजस्थान आदि में पनपा । दक्षिण भारत के कई आचार्य यहाँ आये और उनने अपने सम्प्रदायों के मठ मन्दिर यहाँ बनाये । इन दिनों श्रावण के महीने में झूलों के मेले, गोवर्धन-परिक्रमा, लठमार होली, यमद्वितीया, रथयात्रा आदि के अवसरों पर दर्शनार्थियों की भारी भीड़ इस क्षेत्र में होती है । गीत-वाद्यों, कथा-प्रवचनों में कृष्ण की रसिकता ही चर्चा का प्रधान विषय रहती है । गीता वाले कृष्ण का गौरव भी यहीं दीख पड़े, ऐसा कई लोग विचार करते हैं । वृन्दावन के स्वर्णस्तम्भ वाले मन्दिर में, मथुरा के द्वारिकाधीश तथा विश्राम घाट की आरती में दर्शनार्थियों का समुदाय एकत्रित होता रहता है ।

नैमिषारण्य

आरण्यक परम्परा में नैमिषारण्य का नाम अग्रणी है । शौनकादिक अट्ठासी हजार ऋषियों को सूतजी इसी क्षेत्र में कथा सुनाते रहे ऐसा उल्लेख मिलता है । यह विद्या का केन्द्र और तपसाधना का क्षेत्र माना जाता रहा है । इसकी माहात्म्य चर्चा अनेक पुराणों में विस्तारपूर्वक आई है ।

ब्रज की भाँति इस क्षेत्र की भी चौरासी कोस की परिक्रमा होती है । अन्तर्वेदी परिक्रमा प्रायः दो तीन घण्टे में ही हो जाती है । गोमती तट पर कितने ही ऋषियों के आश्रम रहे हैं । यहाँ से पाँच मील आगे मिश्रिख में महर्षि दधीचि ने देवताओं के वज्र बनाने के निमित्त अस्थिदान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया था । चक्रतीर्थ के सरोवर में पानी के स्रोत हैं जहाँ से निकलकर वह बाहर भी बहता रहता है । कितने ही चमत्कारी पुराण उपाख्यान इस क्षेत्र के साथ भी जुड़े हैं ।

प्रयाग

प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं । यहाँ गंगा-यमुना का संगम है । कहते हैं कि पाताल से आकर अदृश्य सरस्वती भी यहीं मिलती है अस्तु उसे त्रिवेणी संगम माना जाता है। तीन अग्नियों की इस क्षेत्र में विशेष रूप से पूजा होती थी । गार्हप-त्याग्नि, आहवनीयाग्नि और दक्षिणाग्नि के आधार पर यह क्षेत्र तीन भागों में विभक्त था ।

माघ मास में संगम पर लोग एक महीने का कल्प वास करते हैं । इसी परिधि में झोंपड़ी बनाकर निवास करते हैं । बाहर नहीं जाते । वहाँ बारह वर्ष बाद बड़ा कुंभ और छः वर्ष बाद अर्धकुम्भी का मेला होता है । सम्राट् हर्षवर्धन यहाँ हर पाँच वर्ष बाद एक बड़ी धर्म सभा का आयोजन करते थे और जो संचित धन होता, सर्वस्व दान कर देते थे ।

संगम के समीप राजा पुरुरवा का ध्वंसावशेष मिला है । किले में अक्षयवट की तथा उनके निकट असंख्य छोटी-छोटी प्रतिमाओं के रूप में देवपूजा है । प्रयाग की परिक्रमा दस दिन में पूरी होती है । विराम के लिए स्थान नियत है । इस क्षेत्र में परशुराम तीर्थ, भारद्वाज आश्रम, विश्वामित्र आश्रम, गौतम आश्रम, जमदग्नि आश्रम, अत्रि तीर्थ, दत्तात्रेय तीर्थ, दुर्वासा तीर्थ, व्यास आश्रम आदि ऋषियों की तपश्चर्या का स्मरण दिलाने योग्य कतिपय स्थान हैं । देवी-देवताओं की प्रतिमा वाले मन्दिरों की तो भरमार है ही ।

गया-बुद्ध गया

फल्गु नदी के किनारे पर बसा गया प्रमुखतया श्राद्ध तीर्थ है । लोग अपने पितरों को पिण्डदान देने यहाँ पहुँचते हैं आश्विन पितृपक्ष में यहाँ अधिक भीड़ रहती है यहाँ बने हुए घाट-देवालयों से इसके पितृ प्रधान होने का आभास मिलता है । मुण्ड पृष्ठ - जिह्वा वाले काक, बलि प्रेत शिला - ब्रह्म कुण्ड - वैतरणी मस्यकूप संकटा देवी -मतंगवापी धर्मारण्य आदि स्थानों से पितरों का प्रिय क्षेत्र होने की ध्वनि निकलती है । पुन-पुन नदी के तट पर प्रायः श्राद्ध कर्म होते रहते हैं । पुराणों में यहाँ गयासुर के - तप करने वरदान पाने और अन्ततः विष्णु के गदा से उसके मारे जाने का उल्लेख है ।

बुद्ध गया बौद्ध धर्म का महत्त्वपूर्ण तीर्थ इसी क्षेत्र में है । गया से बुद्ध गया प्रायः १९ कि० मी० है । यहाँ पत्थर का एक चबूतरा है जिस पर बैठकर भगवान ने तप किया था । इसे बुद्ध सिंहासन कहते हैं । जिस वृक्ष के नीचे भगवान को आत्म बोध प्राप्त हुआ था वह बोधि वृक्ष यहीं था । अब उस स्थान पर एक पीपल का वृक्ष लगा है । बकरौर स्थान पर और भी बौद्ध धर्म के अवशेष उपलब्ध हैं ।

गया क्षेत्र में दो जैन मन्दिर भी हैं समीपस्थ कुलहा जैनी पहाड़ पर आचार्य शीतल नाथ जी ने लम्बी तपस्या की थी ।

अयोध्या

अयोध्या भगवान राम की जनमभूमि है । सरयूतट पर बसी है । वर्तमान अयोध्या को राजा विक्रमादित्य ने बसाया । उससे पूर्व के संस्कृति चिन्ह ध्वंसावशेष मात्र कहा जाता था । गो सम्वर्धन के लिए यहाँ विशेष प्रयास चलते थे । लोमश ऋषि यहाँ तप करते थे । सूर्य वंशी राजाओं की यह राजधानी रही है । घाट और कुण्ड इस क्षेत्र में भी अनेक हैं । अयोध्या की परिक्रमा १० कि० मी० की है । इसमें प्रायः सभी देवताओं के दर्शन हो जाते हैं । तुलसी चौरा वह स्थान है जहाँ गोस्वामी जी ने रामायण लेखन प्रारम्भ किया था । राम नवमी पर विशेष मेला लगता है श्रावण और कार्तिक में भीड़ रहती है ।

काशी

सप्तपुरियों में एक काशी (वाराणसी) भी है । कभी यहाँ मरने पर स्वर्ग मिलने की किंवदन्ती बहुत जोरों पर थी । इसलिए मरणासन्न लोग काशी करवट लेने के लिए यहाँ पहुँचते थे । कई समय से पूर्व ही यहाँ बस जाते थे । प्राचीन काल में यहाँ विद्या का अच्छा केन्द्र रहा है । द्वादश ज्योतिर्लिंगों में यहाँ के विश्वनाथ मन्दिर की गणना होती है और शक्तिपीठों में मणिकर्णिका घाट के विशाल क्षेत्र को गिना गया है । वृन्दावन की तरह यहाँ भी गली मुहल्लों में मन्दिरों की भरमार है । घाटों में मुख्य पाँच हैं—(१) वरुणा संगम घाट, (२) पंच गंगाघाट, (३) मणिकर्णिका घाट, (४) दशाश्वमेध घाट, (५) असी संगम घाट । मणिकर्णिका श्मशान है । कहते हैं कि राजा हरिश्चन्द्र यहीं ठहरे थे । दशाश्वमेध घाट के समीप भगवान राम ने दस अश्वमेध यज्ञ कराये थे ।

वरुणा असी नदियाँ गंगा में मिलती हैं । इसलिए उन दो नदियों की स्मृति दिलाने वाला संयुक्त क्षेत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

वाराणसी नाम से प्रख्यात हुआ । पहले इसका नाम काशी था । घाटों की भरमार है प्राय: ५० घाट अभी भी सही और टूटी-फूटी स्थिति में विद्यमान हैं । काशी क्षेत्र की पंचकोसी परिक्रमा है जो प्राय: ६० कि० मी० की है । यह पाँच दिन में पूरी होती है इस मार्ग में प्राय: सभी देवालय आ जाते हैं । कभी यहाँ ५९ शिवलिंग, १२ आदित्य, ५६ विनायक, ८ भैरव, ९ दुर्गाएँ, १३ नृसिंह, १६ केशव देवालय क्षेत्र प्रमुख थे । अब बढ़ती अश्रद्धा, उपेक्षा के कारण उनमें से कितने ही लुप्त भी हो गये हैं । यहाँ कितने ही तपस्वियों के निवास आश्रमों के स्मृति चिन्ह अभी विद्यमान है । काशी में गंगा ६ मील पश्चिम वाहिनी बही हैं । काशी में ही जैन सम्प्रदाय का अतिशय तीर्थ है यहाँ सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी का मन्दिर है ।

सारनाथ

समीप ही सारनाथ है । यह बौद्ध तीर्थ है । भगवान बुद्ध ने यहीं से अपनी धर्म चक्र प्रवर्तन योजना आरम्भ की और अग्रगामी बनाई । प्रथम उपदेश उन्होंने यहीं दिया । यह कभी बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र रहा है । इसके साक्षी यहाँ बने अशोक निर्मित चतुर्मुख सिंह स्तम्भ प्रधान बुद्ध मन्दिर-धर्म देव स्तूप, चौखण्डी स्तूप, मूलगंध कुटी, नवीन बिहार हैं ।

कोणार्क

पुरी (उड़ीसा) से समुद्र किनारे २० मील चलने पर कोणार्क आता है । कथा है कि कृष्ण पुत्र साम्ब को कुष्ट हो गया था उन्होंने यहाँ आकर सूर्य की उपासना की और अच्छे हो गये । एक सरोवर के मध्य यहाँ बहुत ऊँचा सूर्य मन्दिर है । सात घोड़े सारथी, रथ आदि सभी हैं पर हैं टूटी-फूटी दशा में । सूर्य पत्नी संध्या का मन्दिर भी है । सरकारी देखभाल में ही यहाँ के ध्वंसावशेषों की रक्षा होती है । पूजा उपचार का कोई प्रबन्ध नहीं है ध्वंसावशेषों पर काम क्रीड़ा की अश्लील मूर्तियाँ भरी पड़ी हैं । उससे लगता है कि यहाँ कभी वाममार्ग का प्रभाव प्रचलन रहा होगा । इस स्थान को प्राचीन काल में वेधशाला के रूप में प्रयुक्त किया जाता था । यह ऐसी जगह है जहाँ सौर परिवार की जांच पड़ताल अधिक अच्छी तरह की जा सकती है ।

कामाख्या

आसाम में गौहाटी के समीप कामाख्या देवी का मन्दिर है । यह प्रदेश कभी कामरूप कहलाता था और तन्त्र प्रयोगों के लिए प्रख्यात था । देवी भागवत के ७ वें स्कन्ध के ३२ वें अध्याय में इस स्थान का विशेष महत्त्व लिखा है । मन्दिर एक मील ऊँची पहाड़ी पर है । इस क्षेत्र में और भी दुर्गा देवालय हैं । आश्विन चैत्र की नव रात्रियों में मेले भरते हैं । ब्रह्म पुत्र नदी के बीच एक चट्टानी टापू पर भैरव मन्दिर है जिसे कामाख्या का प्रहरी माना जाता है । उसके दर्शन के लिए नाव में जाना पड़ता है ।

चित्रकूट

बाल्मीकि रामायण के अनुसार यहाँ दुर्वासा, दत्तात्रेय और चन्द्र मुनि ने तपस्या की थी । महाभारत के अनुसार यहाँ युधिष्ठिर और नल दमयन्ती का सोद्देश्य निवास रहा है । पद्म पुराण, स्कन्द पुराण आदि में भी इस स्थान के माहात्म्य का वर्णन है ।

वनवास के अवसर पर भगवान राम का बहुत दिन यहाँ निवास रहा है । महर्षि अत्रि का यह प्रधान कार्य क्षेत्र रहा है । उनके साथ-साथ अन्यान्य तपस्वी भी इस क्षेत्र में निवास करते और मिलकर किन्हीं महान प्रयोजनों में निरत रहते थे । यहाँ भी एक पहाड़ी को कैलाश कहते हैं और एक छोटी नदी गुप्त गोदावरी कहलाती है । पयस्विनी प्रधान है । उस पद चौबीस पक्के घाटे बने हैं । इससे प्रतीत होता है कि कभी यहाँ स्नानकर्ताओं की कितनी भीड़ रहती थी और उन्हें उदार लोगों ने कितनी सुविधा प्रदान की थी ।

अत्रि आश्रम, अनुसूया कुटी, गुप्त गोदावरी चित्रकूट से कुछ मील दूर है । यहाँ एक अंधेरी गुफा है । भीतर एक झरना है । मार्ग की दुर्गमता के कारण कम ही लोग वहाँ पहुँचते हैं । बाल्मीकि आश्रम भी इसी क्षेत्र में हैं ।

जगन्नाथ पुरी

जगन्नाथ पुरी उड़ीसा प्रान्त में चार धामों में एक हैं पुराणकाल में यहाँ नीलांचल पर्वत, नलवन एवं नील माधव मूर्ति का वर्णन है । कहते हैं कि उस सारे विग्रह को समेट कर देवता अपने लोक को ले गये । उसी की समृति में मन्दिर पर लगे छत्र को नीलछत्र कहते हैं और दर्शन के लिए उसे भी देव प्रतिमा की तरह ही पुण्य फल दायक मानने लगे हैं । शाक्त सम्प्रदाय के अनुसार यह उड्डियान पीठ है ।

समुद्र स्नान के स्थान को स्वर्गद्वार कहते हैं । इस क्षेत्र में कितने ही देवालय हैं । अषाढ़ शुक्ला द्वितीया को

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रथ यात्रा निकलती है । यहाँ छुआछूत नहीं मानी जाती । पके चावलों का भोग प्रसाद सभी लोग बिना किसी स्पर्श-अस्पर्श भावना के प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करते हैं । प्रतिमाएँ अपूर्ण हैं । मठ, मन्दिर, कुण्ड आदि इस क्षेत्र में भी बहुत हैं ।

मार्कण्डेय आश्रम, कण्व आश्रम प्राचीनकाल के तप परम्परा का स्मरण दिलाते हैं और मध्यकालीन सन्तों में से शंकराचार्य मठ, कबीरमठ, हरिदाससमाधि, गौरांग स्थान, बल्लभाचार्य, अच्युतानन्द आदि की स्मृतियाँ विद्यमान हैं । मन्दिर की दीवारों पर अश्लील चित्रों को देखकर उसके निर्माताओं का तांत्रिक रुझान दीखता है । यों प्रतिमा वैष्णव सम्प्रदाय की है ।

नालन्दा

यहाँ कभी भारत का मूर्धन्य विश्वविद्यालय रहा है । चाणक्य इसका सूत्र संचालन करते थे और तीस हजार धर्म प्रचारक यहाँ शिक्षा प्राप्त करके संसार भर में धर्म धारणा का विस्तार करने के परिभ्रमण की तैयारी करते थे । बौद्ध काल में धर्म चक्र प्रर्वतन एवं प्रव्रज्या अभियान के लिए प्रयुक्त करने में उसका पुनर्निर्माण हुआ । उन दिनों भारत में धर्म चेतना को जीवन्त रखने का उतरदायित्व नालन्दा ने सँभाला और एशिया के मध्य क्षेत्र को तक्षशिला (अब पाकिस्तान में) के माध्यम से जाग्रत रखने की योजना कार्यान्वित होती रही । कभी काशी का भी यही स्वरूप था । बाद में वहाँ 'काशी करवट' ही मुख्य रह गया । तब नालन्दा जैसे तीर्थ उभरे । पुरातत्व विभाग ने इस क्षेत्र में पाँच मंजिलों तक भव्य भवन खोजे हैं जो भावना को ऊँचा उठाने वाले प्रचारक तैयार करने की योजना में निरत रहते थे । उन दिनों यहाँ मूर्धन्य स्तर का बौद्ध बिहार था ।

यह क्षेत्र बौद्ध एवं जैन तीर्थों से भरा पड़ा है । बुद्ध के समतुल्य ही भगवान महावीर ने भी मिलते-जुलते प्रयास किए थे । बुद्ध का मध्यम मार्ग था, महावीर का अतिवादी । इस थोड़े से अन्तर के अतिरिक्त उद्देश्य और प्रयास में साम्य है । दोनों के कार्य क्षेत्र भी प्राय: मिलती-जुलती परिधि में रहे हैं। दोनों धर्म समकालीन भी हैं । इसलिए नालन्दा क्षेत्र में बौद्ध एवं जैन संस्कृति की तीर्थ परम्परा का बाहुल्य होना स्वाभाविक भी है ।

राजगृह (राजगीर) हिन्दू, बौद्ध, और जैन तीर्थों का संगम है । यहाँ कभी मगध की राजधानी भी रही हैं । कभी १८ बौद्ध बिहार थे । इक्कीसवें जैन तीर्थंकर सुव्रतनाथ जी का जन्म यहीं हुआ । पंच पर्वतों पर अनेक गणधरों के स्मारक हैं । नील गुफा में क्षुल्लिका पूर्तिगन्धा ने समाधि ली थी । नालन्दा के समीप पायाकुर में अन्तिम जैन तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया था । उनका जलाशय के मध्य निर्वाण मन्दिर भी है ।

पुष्कर

पुष्कर में नारद तथा सनकादि ऋषियों ने तपस्या की थी । यह पाँच पवित्र प्रमुख सरोवरों में से एक माना जाता हैं । पर्वत शिखर पर ब्रह्माजी का मन्दिर है । उनके दाएँ-बाएँ गायत्री-सावित्री की भी प्रतिमाएँ हैं । यज्ञ पर्वत पर अगस्त्य आश्रम है । यहाँ सरस्वती नदी प्रवाहित होती है । नाग पर्वत पर बहुत-सी गुफाएँ हैं जिनमें भर्तृहरि शिला तथा भर्तृहरि गुफा विशेष रूप से दर्शनीय है। पुष्कर की छोटी-बड़ी चार परिक्रमाएँ होती हैं । अन्तर्वेदी ६ मील की, मध्य वेदी १० मील की, प्रधान वेदी २४ मील की और बहिर्वेदी ४८ मील की । इन परिक्रमाओं में अनेकों ऋषियों के निवास आश्रमों के स्मृति चिह्न हैं ।

नासिक

प्राचीनकाल में इनका नाम त्र्यम्बक क्षेत्र था । अब नासिक और पंचवटी दो नगर मिलकर एक हो गये हैं । बीच में गोदावरी बहती है । उसका उद्गम भी समीप ही त्र्यम्बक में है । आगे पेशवाकुण्ड है जहाँ गोदावरी में वरुणा, सरस्वती, गायत्री, श्रद्धा नामक छोटी-छोटी नदियाँ मिलती हैं । आगे वैशम्पायन कुण्ड हैं । मेधातिथि तीर्थ भी यहीं है । कपिल मुनि का आश्रम कपिल तीर्थ कहलाता है । डेढ़ मील आगे कपिल ऋषि तप करते थे वहाँ कपिला नामक छोटी सी जलधारा है जो गोदावरी में जा मिली है ।

भगवानराम वनवास काल में पंचवटी रहे थे यहीं सीताहरण हुआ था । जटायु तीर्थ भी यहीं है कुछ दूर अगस्त्य आश्रम है ।

ओंकारेश्वर

इस एक ही स्थान में द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से दो की स्थापना है । एक को ओंकारेश्वर दूसरे को अमलेश्वर कहते हैं । देवालय नर्मदा से बीच मान्धाता टापू का क्षेत्र प्राय: दो किलोमीटर है । कहते हैं कि इस द्वीप पर राजा मान्धाता ने तप किया था । शिवलिंग अनगढ़ है । छेनी हथौड़े से उसे नहीं गढ़ा गया है । आस-पास सौ से भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक छोटे-बड़े शिवलिंगों की स्थापना की सबके अलग-अलग नाम तथा छोटे-बड़े मन्दिर हैं । तीन दिन की पाँच कोसी की परिक्रमा में इन सबके दर्शन हो जाते हैं।

समीप क्षेत्र में सीता वाटिका है । यहाँ महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था एवं सीता जी यहीं निवास करती थीं ऐसा कहा जाता है ।

उज्जैन

यह सप्तपुरियों में से एक है । शक्तिपीठों में से भी एक। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार देशान्तर शून्य रेखा यहीं से आरम्भ होती है । इसलिए यहाँ विक्रमादित्य विनिर्मित पुरानी वेधशाला थी जिसके ध्वंस हो जाने पर दुबारा नये यन्त्र के साथ बनाया गया । महाकोल शिवलिंग और हरि सिद्धि देवी शक्ति पीठ हैं ।

संदीपन ऋषि का आश्रम क्षिप्रा तट पर है । जिसमें कृष्ण सुदामा पढ़े थे । भर्तृहरि की तप गुफा है । इस क्षेत्र में २८ तीर्थ-द्वादश-यात्रा पथ, सप्त सागर (जलाशय) अष्ट भैरव, एकादश रुद्र एवं नव दुर्गाओं के भिन्न-भिन्न स्थानों पर मन्दिर बिखरे पड़े हैं । परिक्रमा यात्राएँ यहाँ कई निकलती हैं । सम्प्रदाय भेद से उनके समय और मार्ग भी भिन्न-भिन्न हैं ।

अमरकंटक

नर्मदा अपने क्षेत्र में गंगा की तरह ही पवित्र मानी जाती हैं । उसका उद्गम अमरकंटक है । एक कुण्ड से नर्मदा निकलती है । यह पक्का बना है , ग्यारह कोने हैं उतरने के लिए चारों ओर सीढ़ियाँ हैं । इस क्षेत्र में फैली हुई पर्वत श्रृंखला को मेकल पर्वत कहते हैं । इस पर व्यास, भृगु, कपिल आदि ऋषियों ने तप किये । राजा मेकल ने इस क्षेत्र को सुविकसित करने का विशेष प्रयत्न किया और उसके नाम पर पर्वत का नाम 'मेकल' पड़ा । नर्मदा जी के प्रधान मन्दिर के अतिरक्त १५ अन्य बड़े मन्दिर भी हैं । छोटे अनेकों । मार्कण्डेय एवं भृगु के आश्रम भी थे । गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ और कबीरदास ने भी यहाँ निवास किया था उनकी स्मृतियाँ भी हैं । कपिलधारा, दूध धारा, भृगु कमण्डल, छोटे किन्तु आकर्षक जल प्रपात हैं ।

गंगा सागर

कभी गंगा समुद्र में सागर द्वीप के पास मिलती थी । यह द्वीप २०० कि० मी० परिधि में फैला है । कलकत्ता से प्राय: १०० मील दक्षिण में है । अब गंगा का मुहाना पीछे हट आया तो भी धार्मिक दृष्टि से अभी भी गंगा सागर 'सागर द्वीप' को ही माना जाता है और वहीं कार्तिकी पूर्णिमा पर गंगा समुद्र का मिलन पर्व मनाया जाता है । मकर संक्रान्ति पर भी पाँच दिन का मेला होता है । यहाँ गंगा की एक छोटी शाखा भी जा पँहुचती है और मिलन का स्मरण दिलाती है ।

यहाँ कभी कपिल मुनि तप करते थे । उनके मन्दिर को समुद्र बहा ले गया । फिर बना नहीं । प्रतिमा कलकत्ता में सुरक्षित है । जो मेले के दिनों में लाई जाती है और रेत के चबूतरे पर स्थापित करदी जाती है । द्वीप में सर्वत्र खारा पानी होने से वहाँ कोई रहता नहीं । मेले के अवसर पर एक मील जंगल काट कर यात्रियों के लिए जगह बना दी जाती है । वहाँ मीठा पानी मोल बिकता है खाद्य सामग्री तथा ठहरने के आच्छादन भी व्यापारी लोग ले पहुँचते हैं । द्वीप में इस प्रकार की कोई सुविधा नहीं है ।

पारसनाथ

पारसनाथ जैन धर्म का प्रमुख तीर्थ एवं सिद्ध क्षेत्र है। इसे सम्मेलन शिखर भी कहते हैं । भगवान् आदिनाथ ऋषभदेव यहीं मोक्ष को गये । कहा जाता है कि यहीं ५० तीर्थंकरों तथा अगणित मुनियों ने निर्वाण प्राप्त किया ।

पारसनाथ दर्शन का मार्ग लम्बा और पैदल का है । मधुवन से पहाड़ी पर छ: मील चढ़ना पड़ता है । शिखर पर बने मन्दिरों का दर्शन करने के लिए छ: मील परिभ्रमण करना पड़ता है । छ: मील उतरने में अर्थात् १८ मील की पैदल यात्रा है ।

शिखरों पर अनेक मन्दिर हैं । कुछ में केवल चरण चिह्न हैं, कुछ में तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ हैं । सभी तीर्थंकर तथा उनके साथी तपश्चर्या में निरत रहते थे ।

लुम्बिनी, कुशीनगर, श्रावस्ती

गोरखपुर (उ० प्र०) का समीपवर्ती यह क्षेत्र रहा है। नैपाल की तराई में बसे लुम्बिनी क्षेत्र में एक अशोक स्तम्भ है जिनमें लिखा है कि भगवान बुद्ध का जन्म यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुआ । बुद्ध की प्रतिमा, मन्दिर तथा समाधि स्तूप भी यहाँ हैं । छोटी पुष्करिणी नदी भी है ।

श्रावस्ती, बौद्ध एवं जैन दोनों धर्मों का तीर्थ है । युधिष्ठिर ने अश्वमेध भी यहीं किया था । बुद्ध बहुत समय तक यहाँ रहे । उनके साथी साधकों के निवास गृह यहाँ बने थे । जैन धर्म में इसे अतिशय तीर्थ कहा जाता है । तीसरे तीर्थंकर सम्भवनाथ जी का जन्म यहाँ हुआ ।

कुशी नगर में भगवान बुद्ध का देहावसान दो शाल वृक्षों के नीचे ८० वर्ष की आयु में यहीं हुआ । निर्वाण स्तूप और बिहार स्तूप दर्शनीय हैं ।

अमृतसर

व्यास नदी के तट पर बसा अमृतसर सिख सम्प्रदाय का प्रमुख तीर्थ है । नगर के बीच बने सरोवर का नाम अमृतसर है । इसी से पूरे नगर का नाम भी अमृतसर पड़ गया । यहाँ १३ प्रमुख गुरुद्वारे हैं, जिनमें स्वर्ण मन्दिर सबसे बड़ा माना गया । यह सरोवर के मध्य ६५ × ६५ के चबूतरे पर बना है । चौथे गुरु रामदास जी तथा पाँचवे गुरु अर्जुनदेव जी के प्रयास से इस तीर्थ का यह स्वरूप बना । समीप में और भी चार सरोवर हैं—सन्तोष सर, राम सर, विवेक सर, कौल सर । इन्हें भी पवित्र मानते हैं और स्नान करते हैं । समीप ही तरनतारन तीर्थ है । यहाँ व्यास सतलुज का संगम है । यहाँ भी सरोवर के मध्य गुरुद्वारा है । कथा है कि अश्वमेध के लिए घोड़ा ले जाते समय लक्ष्मण का लवकुश से यहीं युद्ध हुआ था और लक्ष्मण मरणासन्न स्थिति में पहुँच गये । बाद में लवकुश को पश्चाताप हुआ । उनने इन्द्र से अमृत माँगा उससे सबको पुनर्जीवित किया । अमृत घट का शेष भाग इसी भूमि में गाड़ दिया गया । गुरु रामदास ने उस स्थान को खुदवाया और उसमें अमृत का प्रभाव पाया । यही अमृत सरोवर या अमृतसर बना । जलियाँ वाला बाग में शहीदों का स्मारक है । इसलिए यह राष्ट्रीय तीर्थ भी है ।

एकलिंगजी

उदयपुर-नाथद्वारा रोड पर हल्दी घाटी और एकलिंगजी आते हैं । उदयपुर के राणाओं का यह आराध्य देव हैं । प्रतिमा को नित नई पोशाक पहनाई जाती है जिसमें रत्न जड़े होते हैं ।

इस क्षेत्र में नाथद्वारा कांकरोली, चार भुजाजी और भी तीन बड़े देवस्थान हैं । नाथद्वारा बल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख पीठ है । यहाँ मीराबाई का एक मन्दिर भी है । कांकरौली भी वल्लभ सम्प्रदाय का मठ है । चार भुजाजी में भगवान श्रीकृष्ण की चार भुजी मूर्ति है । उदावड़ में परशुराम मन्दिर है । काँकरिया में एक बड़ा सरोवर है ।

डाकोर जी

यहाँ का प्रसिद्ध मन्दिर श्री रणछोड़ जी का है । समीप ही गोमती तालाब है । तालाब के आस-पास अनेकों देवमन्दिर हैं ।

भक्त बोडावा और उनकी पत्नी गंगाबाई की रणछोड़जी के साथ कितनी ही किम्बदन्तियाँ जुड़ी हुई हैं जिनमें से एक यह भी है कि गंगाबाई की कान की बाली रणछोड़जी की प्रतिमा के बराबर वजन की तोली गई । तालाब पर तुला स्थान भी है ।

समीप क्षेत्र में सीमलज, उमरेठ, लसुन्द्रा, गलतेश्वर, टूवा आदि तीर्थ हैं । लसुन्द्रा, टूवा में कई गरम जल के कुण्ड हैं । सन्त महात्माओं के स्मृति चिह्न भी अनेकों हैं ।

जूनागढ़, गिरनार

गिरनार पर्वत योग साधना के लिए कभी प्रसिद्ध था । उस पर अनेकों तपस्वी रहते थे । भक्त नरसी मेहता का जन्म यहीं हुआ था । नगर का नाम जूनागढ़ है । जैन धर्म में इसे उज्जयन्त पर्वत कहा गया है और वस्त्रापथ सिद्ध क्षेत्र कहा गया है ।

पर्वत पर भर्तृहरि गुफा तक जाने में ढाई हजार सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं । यहाँ भर्तृहरि और उनके शिष्य गोपीचन्द की प्रतिमाएँ हैं । राजुल जी की गुफा भी समीप है । गोरख शिखर, दत्त शिखर, पाण्डव गुफा, भरत वन आदि के स्मृति चिह्न यह बताते हैं कि इस क्षेत्र में कितने महाभाग तप करते रहे हैं । जैन धर्म के नेमिनाथ के साथ अन्य असंख्यों साधक मोक्ष प्राप्त कर सके । कार्तिक शुक्ला एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक पाँच दिन की गिरनार परिक्रमा होती है ।

सोमनाथ, वेरावल

इस क्षेत्र को 'प्रभास' कहते हैं । सोमनाथ और वेरावल इसी में आते हैं । सोमनाथ द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है । व्याध के बाण से भगवान श्रीकृष्ण की हत्या वेरावल में हुई थी । वह स्मारक भी मन्दिर रूप में है । नगर से पूर्व में हिरण्या, सरस्वती और कपिला नदियों का संगम है । ये अन्ततः समुद्र में जा मिलती हैं । बलदेवजी का भी देहावसान यहीं हुआ था । चन्द्रदेव ने तप यहीं किया था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोमनाथ का प्राचीन मन्दिर बहुत विशाल था । उसे महमूद गजनवी ने आक्रमण करके ध्वस्त किया । सरदार पटेल के प्रयत्न से वह अब प्राचीन निर्माण से भी अधिक भव्य बन गया है । उस क्षेत्र के मोक्ष पीपला का विशेष माहात्म्य है ।

पोरबन्दर

यह भगवान श्री कृष्ण के अनन्य मित्र सुदामाजी की पुरी है । महात्मा गाँधी का जन्म भी यहीं हुआ था । यहाँ सुदामाजी का मन्दिर विद्यमान है । अन्तिम समय भगवान ने अपनी सारी सम्पत्ति सुदामा गुरुकुल के लिए दान कर दी थी । राजा विक्रमादित्य ने यहाँ तप साधना की थी ।

द्वारिका

यह चार धाम में से तथा सप्तपुरियों में से एक है । समुद्री उथल-पुथल से प्राचीन द्वारिका का रूपान्तरण हो गया । अब वह क्षेत्र गोमती द्वारिका, भेट द्वारिका के रूप में विभाजित है । कुशस्थली में अभी भी प्राचीन स्मृति चिन्ह मिलते हैं । यहाँ श्री रणछोड़ जी का मन्दिर है । इसी को द्वारिकाधीश मन्दिर कहते हैं । गोमती की ओर से ५६ सीढ़ी पर चढ़कर मन्दिर तक पहुँचना पड़ता है । मन्दिर सात मंजिला है । इतनी लम्बी ध्वजा अन्यत्र कहीं नहीं फहराती है । जब पुरानी बदलकर नई फहराते हैं तो विशेष उत्सव-समारोह होता है । प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, बलराम आदि कृष्ण के विशेष घनिष्ठजनों की प्रतिमाएँ हैं। श्री वल्लभाचार्य की बैठक है । दुर्वासा भी कृष्ण मिलन के लिए यहाँ पहुँचे थे । अन्तिम समय भगवान कृष्ण ने इसी क्षेत्र को अपनी राजधानी बनाया था ।

भेट द्वारिका गोमती द्वारिका से ३ कि. मी. कच्छ की खाड़ी में छोटा-सा द्वीप है । चौड़ाई ७ मील । यहीं कृष्ण के तीन महल हैं । समीप ही गोपी तालाब है ।

तिरुपति बालाजी

मद्रास प्रान्त का वेंकटाचल पर्वत पर बना हुआ तिरुपति बालाजी मंदिर प्रख्यात है । यह समूचा पर्वत ही देव माना जाता है । इसी लिए एक नियत सीमा तक ही उस पर जूता चप्पल पहनकर जाया जा सकता है शेष सारी यात्रा पैदल ही पूर्ण करनी पड़ती है । पर्वत पर चढ़ने का मार्ग प्राय: १० किलोमीटर है । मोटर बस से भी ऊपर तक जाया जा सकता है । बालाजी वेंकटेश्वर भगवान को कहते हैं । यह विष्णु विग्रह है । कहते हैं कि प्राचीनकाल में प्रह्लाद अम्बरीष पर्वत को नीचे से ही प्रणाम करके चले गये थे । उस पर चढ़ने की परम्परा तो वर्तमान देवस्थान बन जाने के उपरान्त ही पड़ी । समीप ही कपिल तीर्थ सरोवर है ।

तिरुपति तीर्थ में विवाह होने के उपरान्त महिलाएँ बड़ी संख्या में मुण्डन कराने जाती हैं । कोई-कोई थोड़े बाल कटवाकर भी श्रद्धा की पूर्ति कर लेती हैं मंदिर में एक स्वर्ण मंडित स्तम्भ है ।

पाण्डव तीर्थ, जाबालि तीर्थ, कपिल तीर्थ आदि को देखते हुए प्रतीत होता है कि यहाँ तप साधना का भी प्रचलन कभी रहा है ।

पक्षितीर्थ

मद्रास प्रान्त के चेंगल पर स्टेशन से १० कि. मी. दूर पक्षितीर्थ है । उसका वास्तविक नाम 'तिरुक्कुलुक्कुन-म्मतक' है । यहाँ देवगिरि पर्वत है एवं शंख तीर्थ नामक सरोवर । इसे रुद्र कोटि भी कहते हैं । दक्षिण मूर्ति भगवान शिव का मंदिर वेदगिरि पर्वत पर है । प्राय: ५०० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं ।

मन्दिर के समीप बने एक चबूतरे पर यात्री लोग पक्षियों के दर्शन देवता रूप में करते हैं । चबूतरे के पास वाले तालाब को गृद्ध तीर्थ कहते हैं । गिद्ध जाति के पक्षी कभी कम कभी अधिक संख्या में दस बजे के करीब आते हैं । थाली में पुजारी का परोसा भोजन करते, पानी पीते और उड़ जाते हैं । नियत समय पर नियत जाति के पक्षियों का आना, बिना भय के भोजन करना और पेट भरते ही बिना रुके अन्यत्र उड़ जाना दर्शकों को आश्चर्यजनक लगता है किन्तु जानकारों का कहना है कि वे पाले-सधाये होते हैं । उन्हें विशेष वस्तु मिली वस्तुएँ खाने का अभ्यास पहले से ही पालकर कराया जाता है । आदी होने पर वे नशेबाजों की तरह आदत के अनुसार नियत समय और नियत स्थान के लिए दौड़ पड़ते हैं ।

पक्षियों में देवताओं का दर्शन करने-कराने वाला यह अनोखा तीर्थ भारतवर्ष में एक ही है ।

इस क्षेत्र में नन्दी ने तप किया और शिव का वाहन बना । वशिष्ठ, अगस्त्य, मार्कण्डेय, विश्वामित्र के वहाँ निवास करने और साधना रत रहने के चिन्ह भी यहाँ विद्यमान हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कन्याकुमारी

कन्याकुमारी एक अन्तरीप है । यहाँ भारत की अन्तिम सीमा है । तीन समुद्रों का मिलन संगम है । एक ओर बंगाल की खाड़ी, दूसरी ओर अरब सागर, तीसरी ओर हिन्द महासागर । स्नान के लिए समुद्र में सुरक्षित घेरा तथा पक्का घाट यहाँ की विशेषता है । यदि बादल न हों तो उस पर एक ही स्थान से बंगाल की खाड़ी में चन्द्रोदय और अरब सागर में सूर्यास्त का दृश्य एक साथ देखा जा सकता है । दूसरे दिन प्रात: बंगाल की खाड़ी में सूर्योदय और अरब सागर में चन्द्रास्त का दृश्य भी एक साथ देखा जा सकता है । इसी प्रकार लहरों के साथ आगे बढ़ते, पीछे हटते सूर्य बिम्ब भी बहुत कौतूहल उत्पन्न करते हैं और उन्हें देखने के लिए प्रात: सायं भारी भीड़ जमा रहती है ।

नवदुर्गाओं में एक कुमारी भी है । यहाँ भगवती कुमारी कन्या के रूप में प्रतिष्ठित हैं । तीर्थ का नाम इसी आधार पर पड़ा । कन्या के प्रति देवी भाव रखने की भावना यहाँ की विशेष प्रेरणा है । वाणासुर वध भी यहीं हुआ था ।

घाट से बाँई ओर समुद्र में अन्तिम चट्टान दीख पड़ती है । पुराना नाम श्री पाद शिला है । स्वामी विवेकानन्द जब वहाँ पहुँचे तो वेगवान समुद्र को तैरकर उस शिला तक जा पहुँचे । तीन दिन तक निर्जल व्रत से रहे । पता चलने पर उन्हें नौका से वापिस लाया गया । इस शिला को इन दिनों विवेकानन्द शिला कहा जाता हैं वहाँ विवेकानन्द मिशन का भव्य आश्रम भी बन गया है ।

रामेश्वरम्

चारधामों में दक्षिण दिशा का धाम रामेश्वरम् है । भगवान राम जब लंका विजय के लिए समुद्र पर पुल बनाने लगे तो उन्होंने वहाँ रामेश्वरम् की प्रतिष्ठापना एवं आराधना की । यह स्थान पहले भू-भाग से मिला हुआ था । अब समुद्र की उलट-पुलट होने के कारण कट कर वह स्थान एक कीप बन गया है । रामेश्वर द्वीप की चौड़ाई ७ मील और लम्बाई ११ मील है । अगस्त ऋषि तथा पाण्डवों के तीर्थ यात्रा प्रसंग में ठहरने के स्मृति चिह्न बने हुए हैं । यहाँ लक्ष्मण तीर्थ, सीता तीर्थ, राम तीर्थ, हनुमान तीर्थ, सुग्रीव तीर्थ, अंगद तीर्थ, जामवन्त तीर्थ, विभीषण तीर्थ भी देखने को मिलते हैं । जिनकी महान गतिविधियों से यह क्षेत्र धन्य बना था । देवी देवताओं के अनेकानेक विग्रह दर्शन यहाँ भी अन्य तीर्थों की तरह भरे पड़े हैं ।

तीर्थ महत्ता में एकान्त सेवन की साधना का विशेष रूप से समावेश है । सद् गृहस्थ, वानप्रस्थ तीर्थों में जहाँ शिक्षा और प्रेरणा ग्रहण करते थे वहाँ एकान्त में आत्म चिन्तन और मनन में भी संलग्न रहना पड़ता था । भगवान राम ने भी रामेश्वरम् आकर वैसा ही किया था । वे अगला महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाने से पूर्व आवेशग्रस्त होने की अपेक्षा शान्त चित्त रहे । परिस्थितियों का अवलोकन और योजनाबद्ध भविष्य निर्धारण में लगे रहे । इसलिए उस क्षेत्र में एक "एकान्त राम मन्दिर" भी है । इससे प्रतीत होता है कि व्यस्त जीवन से हटकर महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के लिए कुछ समय एकान्त सेवन के लिए तीर्थों का आश्रय लेना कभी कितना महत्त्वपूर्ण माना जाता होगा ।

कांची

दक्षिण भारत के कांची तीर्थ के दो भाग हैं एक को शिवकांची, दूसरे को विष्णुकांची कहते हैं । दोनों को एक ही नगर के दो मुहल्ले कहना चाहिए । यह सप्त पुरियों में गिनी जाती है और देवी की शक्तिपीठों में इसकी गणना है । नगर का प्रचलित नाम काँचीपुरम् है ।

शिवकाँची में एकाग्रेश्वर शंकर मन्दिर और सर्वतीर्थ सरोवर है । हर सोमवार को भगवान की सवारी यात्रा परिक्रमा पर निकलती है । इस क्षेत्र में १०८ शिवलिंग हैं। कामाक्षी देवी मन्दिर आद्यशंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित है । वहाँ वामन भगवान की प्राय: १५ फुट ऊँची मूर्ति है । बलि को उनके चरणों के बीच दिखाया गया है । यहीं सुब्रह्मण्यम स्वामी का मन्दिर है ।

विष्णु कांची में भगवान वरदराज विष्णु की पूजा प्रतिष्ठा है । मन्दिर में स्वर्ण मण्डित गरुड़ और साँप है । एक मन्दिर में श्री रामानुजाचार्य की प्रतिमा है । यह रामानुज सम्प्रदाय का प्रमुख पीठ है । यहाँ के आचार्य—"प्रतिवादी भयंकर" पदवी धारण करते हैं । यहाँ बल्लभाचार्य महाप्रभु की बैठक भी है ।

हरिद्वार—महातीर्थ

तीर्थ यों भारत में अनेक हैं एवं उन सबके अपने-अपने माहात्म्य, महत्त्व एवं इतिहास हैं । पर गंगा की गोद हिमालय की छाया में स्थापित तीर्थों की गरिमा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन सबसे सर्वोच्च मानी गई हैं । जो पर्वतों पर बहुत ऊँचे नहीं चढ़ सकते और वहाँ का शीत तथा वस्तुओं का अभाव सहन नहीं कर सकते, वे उपयुक्त वातावरण के लिए श्रेष्ठतम तीर्थ हरिद्वार तो पहुँचते ही थे । हरिद्वार ऐसा तीर्थ है जहाँ सप्तऋषियों ने एक ही स्थान पर निकट-निकट रहकर तप साधनाएँ की थीं । भागीरथी जब गंगा को लाये तो एक ही भूमि पर सात ऋषियों को तप करते देखा । गंगा ने उनके कार्य में विघ्न डालना उचित न समझा और अपनी सात धाराएँ काट कर उनका स्थान सुरक्षित रहने दिया । अभी भी वे सात टीले गंगा के मध्य में यथावत अवस्थित हैं ।

हरिद्वार छोटा उत्तराखण्ड है । उत्तराखण्ड में जिस प्रकार बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री चार तीर्थ हैं उसी प्रकार इस भूमि में भी हरिद्वार, कनखल, ऋषीकेश, लक्ष्मणझूला चार प्रमुख तीर्थ हैं । यह अति प्राचीन स्थान है । सप्त पुरियों में इसकी गणना है । द्वादस ज्योतिर्लिंगों में विश्वेश्वर की गणना है जहाँ पार्वती ने शिव को वर रूप में प्राप्त करने के लिए तप किया था । पूर्व जन्म में वे निकट ही वक्षेश्वर की भूमि पर सती हुई थी ।

भगवान राम इसी भूमि पर तप करने भाईयों समेत आये थे । कर्ण प्रयाग में राम, लक्ष्मणझूला में लक्ष्मण, ऋषीकेश में भरत और मुनि की रेती में शत्रुघ्न ने तप किया था । समीप में ही वशिष्ठ जी की गुफा है । इस भूमि को अति प्राचीन काल में सर्वोत्तम इसलिए बनाया था कि यहाँ की समतल और सुविधाजनक भूमि तक गृहस्थों का भी आवागमन होता रहे । वे यहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द ले सकें । निकट क्षेत्र में तप करने वाले ऋषियों के दर्शन कर सकें तथा बच्चों को इधर गुरुकुलों में भेज सकें । बृद्धजन भी अपना शेष जीवन गंगातट के समीप रहकर व्यतीत कर सकें ।

हरिद्वार के दोनों तटों पर शिवालिक पहाड़ियों के शिखरों पर दो दिव्य देवियों के दर्शन हैं । एक ओर मंशा देवी, दूसरी ओर चण्डी देवी । जो शिखरों पर चढ़ सकते हैं वे वहाँ भी जाते हैं । चण्डी देवी के निकट हनुमान जी की माता अंजनी देवी का मंदिर है । ऋषीकेश से आगे ५ मील ऊँचे शिखर पर नीलकंठेश्वर महादेव का मंदिर है । इसी प्रकार छिटपुट देवालयों के अवशेष इस क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं । जिनके पास समय है और शरीर में सशक्तता है वे इन देवस्थानों का भी दर्शन करते हैं ।

भारत के चारों कोनों पर चार धाम हैं । बीच-बीच में दुर्गा की शक्तिपीठें, द्वादस ज्योतिर्लिंग, पुण्य नदी, सरोवर एवं देवालयों के दर्शन हैं । उन सबके भी अपने-अपने इतिहास हैं । पर उन स्थानों की घिचपिच इतनी बढ़ती चली गई है कि शहरी वातावरण की खामियाँ उनमें भरती चली गई हैं । वे व्यवसाय के केन्द्र हो गये हैं । पण्डों पुजारियों के भी अपने-अपने व्यवसाय बढ़े हैं । तीर्थों में जो प्राकृतिक दृश्य शुद्ध वातावरण और सहज सर्दी-गर्मी जैसी विशेषताएँ अभी शेष हैं । वह हरिद्वार ही है । यह दो ओर से शिवालिक पहाड़ियों से घिरा हुआ है । जिनमें हाथी अभी भी स्वच्छन्द विचरण करते हैं । तीसरी ओर हिमालय है जिनकी बर्फ से ढकी हुई चोटियों का दर्शन अभी भी इस तीर्थ के ऊँचे स्थानों पर चढ़कर किया जा सकता है । हरिद्वार और ऋषीकेश के बीच में ही तीन बड़ी नदियों का संगम हुआ है इसलिए इस भूमि को त्रिवेणी भी कहा गया है ।

हरिद्वार में हर १२ वर्ष में पूर्ण कुंभ मेला होता है । तीन-तीन वर्ष बाद छोटे कुंभ होते हैं । जिनमें देश भर के साधु-सन्तों का अगमन और सम्मेलन होता है ।

तीर्थ स्थानों की स्थापना के कई प्रमुख कारण हैं । एक तो उनकी प्राकृतिक शोभा और नदी-पर्वतों की सुन्दरता-रम्यता, दूसरे उन स्थानों में घटित हुई पुरातन काल की अति महत्त्वपूर्ण घटनाओं का इतिहास तथा विद्यमान दिव्य प्रभाव । तीसरे लोक सेवी ऋषियों के ऐसे आश्रम जहाँ पहुँचकर मनुष्य अपने दुःख-शोकों से त्राण पा सके और भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाला प्रकाश-परामर्श-मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें ।

जहाँ यह सभी सुविधाएँ होती थीं उन्हें महातीर्थ कहा जाता था और जहाँ इनका अभाव रहता था उन्हें साधारण देवालय धर्मसंस्थान कहा जाता था । उनमें से जिन तीर्थों में विशेषताएँ पाई जाती थीं उन्हें सामान्य तीर्थों का श्रेय मिलने लगता था । अन्यथा जहाँ समय-समय पर बड़ी संख्या एकत्रित होती रही है मेले लगते हैं, भव्य देवालय भी हैं उन सभी को क्षेत्रीय तीर्थ कहा जाने लगता है । यों समूचा भारतवर्ष ही देव भूमि तीर्थ भूमि है । उसे "स्वर्गादपि गरीयसी" कहा गया है । संतों ऋषियों की, महामानवों की, अवतारों की, क्रीड़ास्थली भी तीर्थ है । इस प्रकार भारत में २४ लाख तीर्थ कहे जाते हैं । सामान्य घर गृहस्थी के नीच-ऊँच भरे स्थानों की अपेक्षा तो यह सभी स्थान भजन पूजन के योग्य हैं । जो जहाँ से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निकट पड़ते हैं और जिनका जिनसे सम्बन्ध सम्पर्क है वे उन्हीं को महत्त्व देते हैं । यह उचित भी है । सुविधा की दृष्टि से निकट स्थान को वरीयता मिलनी भी चाहिए ।

तीर्थों को एक प्रकार से कायाकल्प केन्द्र कहा गया है। ऊँचे स्थानों और अच्छी जलवायु के स्थानों में सेनेटोरियम बनते हैं । वहाँ तपैदिक जैसे कठिन रोगों का इलाज बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है । दवादारू तो अन्यत्र जैसी ही होती है, पर जलवायु की उत्कृष्टता के कारण रोगियों को लाभ कहीं अधिक होता है और वे जल्दी अच्छे हो जाते हैं । इसलिए सम्पन्न लोग इलाज के लिए अथवा स्वास्थ्य सुधारने के लिए विशेष रूप से वहाँ जाते हैं और कुछ दिन में ही पहले की अपेक्षा अधिक अच्छे होकर आते हैं । आध्यात्मिक स्वास्थ्य सुधारने के लिए ऐसे ही कायाकल्प के उपयुक्त स्थानों में तीर्थ बनाए गये थे । अब उनमें से कितने उस प्रकार की भूमिका निभाते हैं कितने नहीं यह नहीं कहा जा सकता पर पूर्वकाल में उनका वास्तविक उद्देश्य वही था गिरों को उठाने और उछालनें की भूमिका वे सम्पन्न करते थे ।

शास्त्रकारों और आप्तजनों के अनुसार पाप ही आधिव्याधियों दुःख शोक के निमित्त कारण हैं । आधुनिक मनोवैज्ञानिक पूर्व जन्म को न मानने पर भी इस जन्म की शरीर व्यथाओं का मूल कारण मानसिक उद्वेगों दुरावों या अन्तर्द्वन्दों को ही मानते हैं । उनका कथन है कि यदि मनुष्य का मन हलका रहे चिंतन पर बोझ न लदा हो तनाव की स्थिति न हो तो शरीर में रोग हो ही नहीं । आहार-विहार की गड़बड़ी से कोई हो भी जाय तो उसके अच्छे होने में देर न लगेगी । किन्तु यदि मन अस्वस्थ्य है तो शरीर कभी स्वस्थ्य न हो सकेगा । मन का प्रभाव शरीर पर निश्चित रूप से पड़ेगा और उससें कोई बीमारी उगती उठती रहेगी । जड़ गहरी और मजबूत होने पर पत्ते भी गिरेंगे नहीं, मन जड़ है और शरीरगत रोग उसके पत्ते, दवा-दारू भी ऐसी स्थिति में कुछ काम नहीं करती । यदि मन की उद्विग्नता हट सके और उसका स्थान प्रसन्नता ले तो कोई भी व्यक्ति दुर्बलता और रुग्णता से सहज ही छुटकारा पा सकता है ।

पाप एक प्रकार का मनोरोग है । उसमें दुराव तो रहता ही है । अनाचार से उत्तेजित अन्तःकरण अर्न्तद्वन्द्व भी खड़ा किये रहता है । ऐसे लोगों को रक्तचाप, मधुमेह, अपच, सिरदर्द, अनिद्रा, जकड़न आदि अनेक रोग घेरे रहते हैं । मन पर तनाव का बुखार चढ़ा रहता है । शास्त्रवचन इससे भी एक कदम आगे बढ़ता है । उसका कथन है कि पाप चाहे प्रकट हो या गुप्त उनके कारण मनुष्य के ऊपर अनेकों संकट, विघ्न कष्ट आते रहते हैं । दुष्कर्मों की ओर मन ललकता है और उपासना से लेकर पुण्य कार्यों तक कोई श्रेष्ठता उससे न बन पड़ती है, ऐसे लोगों का चंचल चित्त भजन से भी एकाग्र नहीं होता और किया हुआ साधन निरर्थक चला आता है इसलिए जिन्हें आत्मिक प्रगति करनी हो उन्हें अपने पूर्वसंचित एवं इस जन्म के पापों का प्रायश्चित्त करना चाहिए । जब पाप धुल जाते हैं तो उपासना में भी सफलता मिलती है और आये दिन खड़े रहने वाले संकटों से भी छुटकारा मिलता है ।

पापों का निराकरण प्रायश्चित्य तो होता है, किसी उच्चकोटि की आत्मा के सम्मुख अपने पाप प्रकट भी किये जा सकते हैं और भविष्य में वैसा न करने की प्रतिज्ञा लेते हुए भूतकाल को कुकृत्यों के प्रति पश्चात्ताप किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त प्रायश्चित्य का अन्तिम स्वरूप यह है कि कुकर्म की क्षतिपूर्ति की जाय । जितना भारी पाप बन पड़ा हो उसी के समतुल्य पुण्य कार्य किया जाय । चाहे वह श्रम, समय देकर किये जायें या धन देकर । खोदी हुई खाई को हर हालत में पाटा और उसे समतल किया जाना चाहिए ।

प्रायश्चित्य के लिए उपयुक्त स्थान तीर्थ हैं । ऐसे तीर्थ जो नाम मात्र के न हों वरन् उनमें वे सारी विशेषताएँ विद्यमान रहनी चाहिए जो कि किसी स्थान विशेष को तीर्थ कहे जाने के लिए आवश्यक हैं ।

साधना, उपासना, स्वाध्याय, सत्संग के अतिरिक्त कष्ट सहन की तप तितीक्षा भी तीर्थ सेवन में की जाती है। एकचित्त होकर मन को संयमी बनाया जाता है और भूतकाल के अनर्थ के समतुल्य पुण्य परमार्थ करने का विचार किया जाता है । साथ ही जप अनुष्ठान व्रत उपवास का क्रम भी चलता है ।

हर्षवर्धन ने हरिद्वार के गंगा घाट पर आकर अपना सम्पूर्ण राजपाट तक्षशिला विश्वविद्यालय के निमित्त दान कर दिया था । इसी प्रकार अशोक ने कलिंग विजय के सिलसिले में किये असंख्यों के रक्तपात का प्रायश्चित्य अपना सारा राजपाट भगवान बुद्ध के चरणों में अर्पित कर के किया । अंगुलिमाल, आम्बपाली ने भी यही रीति-नीति अपनाई थी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर दृष्टि से प्रायश्चित्य अथवा साधना के निमित्त हरिद्वार को सर्वोच्च मान्यता प्राप्त है । संस्कारित सिद्धपीठ के रूप में सुप्रसिद्ध गंगातट पर अवस्थित इस पावन तीर्थ पर निवास कर जीवन सार्थक बनाना चाहिए ।

तीर्थ-साधना का तत्त्व दर्शन

पुराण-पुराण है, इतिहास नहीं । उन्हें इतिहास की कसौटी पर कसा जायेगा तो भूल होगी । कथानक लोक शिक्षण के निमित्त सृजे गये हैं । इनमें लोक मानस में श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा के समावेश का लक्ष्य रखा गया है। धर्म धारणा की जड़ें जमाने के लिए जिन दार्शनिक एवं नैतिक सिद्धान्तों को जन-जन के गले उतारना आवश्यक समझा गया, उन्हें कथानकों की सरसता एवं सुगमता के साथ सम्मिश्रित करते हुए पुराणों का पुनीत सृजन कृत्य आरम्भ किया गया । इस सन्दर्भ में पूरी तरह सफल भी रहे हैं । ऐसी दशा में ऐतिहासिक तथा तथ्यपरक विसंगतियाँ उनमें रहनी स्वाभाविक हैं । बात ऐसी भी नहीं है कि उनमें इतिहास हो ही नहीं, सभी घटनाएँ सर्वथा काल्पनिक हों । अनेक स्थल ऐसे भी हैं जो ऐतिहासिक घटनाक्रम के साथ संगति खाते हैं । फिर भी उन्हें रोचक, भयानक, कौतूहलवर्धक बनाने के लिए जहाँ रंग भरना आवश्यक समझा गया वहाँ वह जी खोलकर हुआ है, उन दिनों ऐसी आशंका नहीं थी कि पुराण श्रवण को धर्म श्रद्धा के अभिवर्धन से भी ऊँची कसौटियों पर कसा जायेगा और यह जाँच-पड़ताल की जायेगी कि वे ऐतिहासिक हैं या नहीं, प्रकृति क्रम के साथ ताल-मेल खाते हैं या नहीं । दस मुख बीस भुजा वाले रावण की—हजार भुजा वाले सहस्र बाहु की बात नृतत्व विज्ञानियों के गले उतरने वाली नहीं है । उपयोगी प्रतिपादनों को उनके सृजनकर्त्ताओं के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए ही पढ़ा समझा जाना चाहिए ।

तीर्थों के सम्बन्ध में भी यही बात है । उनसे सम्बन्धित वर्णनों विवरणों में भी यही दृष्टि रखी जानी चाहिए। देवताओं की बात दूसरी है पर राजाओं, ऋषियों तथा अन्य महामनवों के साथ जुड़ी हुई तीर्थ घटनाओं की तथ्यात्मक व्याख्या विवेचना करने से उनके भीतर का कवित्व-कलात्मक सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा । पाण्डवों से सम्बन्धित तीर्थ समस्त भारतवर्ष में भरे पड़े हैं । वे वहाँ कब गये ? उन तीर्थों का निर्माण पाण्डवों से पूर्व हुआ या पश्चात्, इस जाँच-पड़ताल का श्रृंखला लेख खड़ा किया जाए तो श्रद्धा को अश्रद्धा में परिणत करने वाला अनर्थ खड़ा हो जायेगा । ऋषियों के सम्बन्ध में भी यही बात है, अगस्त मुनि से सम्बन्धित तीर्थ हिमालय की कन्दराओं से लेकर रामेश्वर तक के अनेकानेक स्थानों में अवशेष विद्यमान हैं । यह कैसे कहा जाए कि किसी अन्य अवशेष को कौतूहल प्रिय लोगों ने जिस नाम को प्रभावशाली समझा उसी के साथ जोड़ दिया । प्रमाण सम्बन्धी पूछताछ न करने वाली भावुकता के रहते किम्बदन्तियाँ खूब पनपती हैं और वे तिल को ताड़, कबूतर को मोर, मक्खी को भैंस बनाती रहती हैं । शेष जी के फन पर, गाय के सींग पर पृथ्वी टिकी है या नहीं, इसका उत्तर पहेली-बूझव्वल स्तर की संगति बिठा कर ही की जा सकती है, यथार्थता ढूँढ़ने पर अविश्वास और असंतोष ही उभरेगा । पुराण को पुराण मान लेने से काम चल जाता है । पंच तन्त्र, हितोपदेश पर किसी ने विवाद खड़ा नहीं किया तो तीर्थों के निमित कहे गये विवरणों और महात्माओं के सन्दर्भ में भी ऐसी तार्किकता क्यों प्रस्तुत की जाय । जिसके बिना भी उनके भाव पक्ष से उपयोगी प्रेरणाएँ उपलब्ध की जा सकती हैं । यह हो सकता है, कि जहाँ अनैतिक घटनाक्रम दृष्टिगोचर हों उन्हें प्रक्षिप्त मान लिया जाय, पर रहस्योद्घाटन की बात आगे कभी हो सकने की बात सोचते हुए टाल दिया जाए ।

तीर्थों की गरिमा और महत्ता की धुरी महामानवों की तपश्चर्या है । तपश्चर्या का अर्थ न तो काय-कष्ट माना जाए और न कामना पूर्ति की स्वार्थ-सिद्धि के लिए डाला गया । अनुचित दबाव उसे समझा जाए । उस पुण्य प्रक्रिया का सीधा सा अर्थ इतना हो कि आत्म परिष्कार और लोकमंगल की ऐसी प्रक्रिया अपनाई गई जो उच्चस्तरीय उद्देश्यों के साथ जुड़ी हुई थी । जिसका लक्ष्य व्यक्ति को सुसंस्कृत और समाज को समुन्नत बनाना था । तप शब्द का यही वास्तविक तात्पर्य है । इस प्रयास में यदि अपरिग्रही संयमी जीवन जीना पड़ता है, घर छोड़कर उपयुक्त वातावरण में निवास करना पड़ता है—अहर्निशि तत्पर और तन्मय रहना पड़ता है तो उस कठिनाई को भी हँसते-हँसाते सह लिया जाए, यही है तपश्चर्या की मूल प्रवृत्ति एवं दिशा धारा ।

तीर्थों में से प्रत्येक के साथ वहाँ के सूत्रधारों की तपश्चर्या ही उस गरिमा एवं स्थापना का मूल कारण रही है । यदि देवताओं की अनुकम्पा को कहीं कारण माना गया है तो प्रकारान्तर से उसमें भी यही रहस्य सन्निहित है कि किन्हीं महामानवों के सदुद्देश्य सम्प्रयत्न से प्रेरित प्रभावित होकर देवता वरदान देने, प्रकट होने, निवास करने के लिए वचन बद्ध हुए । देव पूजन की तरह असुर का समापन भी पुण्य है । अस्तु, किन्हीं तीर्थों में यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असुरता को निरस्त किये जाने की घटना ने तीर्थ बनाया तो भी उसे सदुद्देश्य के लिये किया गया पराक्रम ही माना जाना चाहिए ।

प्रत्येक तथ्यान्वेषी को तीर्थ गरिमा की यथार्थता का मूल्यांकन करते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए कि इन स्थानों से महान् परमार्थ प्रयोजनों का उद्भव-अग्रगमन हुआ और उस आधार पर वैसा वातावरण बना जिसे सतयुग के ऋषि युग के नाम से जाना-बखाना जाता है ।

तीर्थ दर्शन के लिए इतना अधिक जोर दिया गया है—इतना अधिक माहात्म्य बताया गया है कि स्पष्ट अत्युक्ति प्रतीत होती है । कर्मफल को ताक में रखकर कहीं पहुँचने, कुछ देखने भर से स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि जैसे असाधारण तप-त्याग से मिलने वाले प्रतिफल ऐसे ही चुटकी बजाते मिलने लगे तो उसे सृष्टि विधान का स्पष्ट उल्लंघन माना जायेगा, ऐसा न देवता स्वयं करते हैं और न किसी को करने देते हैं । इस प्रकार के प्रतिपादनों के पीछे कई बार तो निहित स्वार्थों द्वारा भावुक जनों को बहकाने और अनुचित लूटपाट का षड्यंत्र रचने जैसी गन्ध आती है ।

किन्तु वैसा है नहीं । दर्शन के लिए सर्व साधारण को इसलिए उकसाया गया कि लोभ-व्यामोह में जकड़े हुए लोग तपस्वियों की दुनिया को देखें और उनके सम्पर्क में आने पर हस्तगत होने वाली उस उपलब्धियों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष देखें और नये वातावरण में नये दृष्टिकोण अपनायें और दिशा धारा को आदर्शों की ओर मोड़-मरोड़ें ।

दर्शन का एक दूसरा तात्पर्य सत्प्रवृत्तियों में योगदान करना भी है । देव संस्थान में खाली हाथ न जाने की परम्परा है । शास्त्र वचन है कि देवाश्रमों में अथवा गुरुजनों के निकट खाली हाथ जाने से पुण्य क्षीण होता है और पाप लगता है । अभी भी यह प्रचलन है कि देव दर्शन के लिए जाने वाले कुछ न कुछ प्रतिवन्दन अर्पित करते हैं । भले ही वह फल-फूल जैसा नगण्य ही क्यों न हो, गुरुजनों के पास समित्पाणि होकर जाया जाता है, कथा है कि शुकदेव राजा जनक के पास ब्रह्म विद्या सीखने गये । राजा ने दृष्टि उठाकर देखा भी, किन्तु न उन्हें आसन दिया न सत्कार किया और न बताने का आश्वासन दिया । शुकदेव खिन्न होकर पिता के पास लौट गये । पिता ने सारा घटना क्रम पूछा । उन्होंने भूल बताई और कहा गुरुजनों के समीप खाली हाथ नहीं जाया जाता । दुबारा शुकदेव गये और हाथ में समिधाएँ लेकर पहुँचे । राजा ने समुचित स्वागत किया और पूरे मनोयोग से ब्रह्म विद्या सिखाई । यह प्रचलन ब्रह्म भोज के साथ दक्षिण देने की प्रथा के रूप में अभी भी धार्मिक क्षेत्रों में जीवित है । तीर्थों में दान पुण्य करने का हजार गुना अधिक प्रतिफल बताया गया है । इस समूचे प्रतिपादन के पीछे उस सदाशयता का गहरा पुट प्रतीत होता है । जिसमें तीर्थों में आत्म साधना, अभिनव विचार, वातावरण की प्रेरणा एवं सन्त हृदयों की उदार अनुकम्पा प्राप्त करने जैसे अनेकानेक लाभ हैं । वहीं पुण्य फल का एक और भी आधार है कि सत्प्रयोजनों के निमित्त उदार अनुदान प्रस्तुत करने में कृपणता न बरती जाए ।

स्पष्ट है कि साधना को सफलता के स्तर तक पहुँचाने के लिए साधन भी चाहिए । मनुष्य अन्न-वस्त्र के बिना जी नहीं सकेगा । महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए आच्छादन उपकरण आदि के लिए साधन चाहिए ही । उन्हें मजूरी से, व्यवसाय से, चोरी से, भिक्षा से किसी न किसी प्रकार उपार्जित करना ही होगा । यह सब भी ऋषियों को ही करना पड़े तो उनकी अधिकांश शक्ति इसी जंजाल में ही नष्ट हो जायेगी और वे जो निश्चिन्ततापूर्वक कर सकते थे उसका शतांश भी न बन पड़ेगा । इसलिए तीर्थ प्रभावित लोगों के ऊपर प्रकारान्तर से यह उत्तरदायित्व भी आता है कि वे नमन-वन्दन करके ही न लौट जायें वरन् उन पुण्य प्रयोजनों को सींचने के लिए भी उस उदारता का भी परिचय दें जिससे उन महान् प्रयोजनों को साधनों के अभाव में दम तोड़ना पड़े । सुदामा के गुरुकुल को कृष्ण ने अपनी समस्त सम्पदा हस्तान्तरित कर दी थी । अशोक, हर्षवर्धन आदि ने बौद्ध धर्म संस्थानों के निर्माण और अभिवर्धन में कितना कुछ किया यह सर्वविदित है । यह श्रद्धा धनी-निर्धन सभी के मन में जब तक बनी रही तब तक तीर्थ अपनी महान् परम्परा बनाये रहने में समर्थ रहे । साधन चुके तो जड़ों को पानी न मिलने पर पूरा उद्यान ही मुरझाया कुम्हलाया और धराशायी हो गया । तीर्थ परम्परा पहले गिरी या उदारता पहले धूमिल हुई इस आक्षेप की चर्चा न करते हुए यही मानना पड़ेगा कि दोनों पहिये कीचड़ में धँस गये ।

आज की तीर्थ यात्रा के पीछे एक भारी विडम्बना यह है कि लोग स्मारकों, ध्वंसावशेषों, देवालयों का दर्शन स्पर्श करके वापस लौट आते हैं और इतने भर से आकाश-पाताल जैसे पुण्यफल की कल्पना करते हैं । न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाने क्यों उनके भीतर यह लज्जा उत्पन्न नहीं होती कि कभी अपना देश पग-पग पर तप साधना की प्रवृति से अनुप्राणित था और जगह-जगह लोकमंगल के सम्प्रवृत्ति सम्वर्धन प्रयास इतनी तत्परता के साथ चले थे कि न केवल देश वरन् समस्त विश्व कृतकृत्य हो गया । आज उन सत्प्रवृत्तियों का कहीं अता-पता तक नहीं । तीर्थों के नाम पर कितना श्रम, समय धन एवं मनोयोग लगता है पर वह सब कुछ न जाने किस गर्त में समा जाता है और उसके सिंचन से धर्म धारण के सूखे खेत उगाने को एक बूँद जितना भी लाभ नहीं मिलता । यह प्रश्न ऐसा है जो यदि किसी भावनाशील तीर्थ यात्री के मन में उठे तो वह तिलमिलाये बिना न रहेगा । तिलमिलाना ऐसी बेचैनी का नाम है जिसमें लज्जा, व्यथा के साथ आक्रोश का भी समन्वय हो । कोसते रहने वाले तो जीवित मृतकों में गिने जाते हैं । तीर्थों की सड़ी लाश पर पुष्प, चंदन चढ़ाकर जो संतोष हर्ष मनाते लौटते हैं और यह नहीं सोचते कि इस महान् परम्परा का स्वरूप कुछ से कुछ कैसे बन गया ? उनकी परमहंस अथवा भावशून्य स्थिति का किन शब्दों में वन्दन-अभिनन्दन किया जाय ?

तीर्थ श्रद्धा यदि वस्तुतः कहीं जीवित हो तो उसे सोचना होगा कि आज सर्वत्र खण्डहर ही खण्डहर क्यों दृष्टिगोचर होते हैं । इनमें वह प्राण प्रतिष्ठा क्यों और कहाँ तिरोहित हो गई जिसके कारण यह तीर्थ कभी प्रेरणा पुञ्ज बने हुए थे और उसके प्रभाव से प्रभावित होकर निश्चय ही अजस्र पुण्यफल के भागी होकर लौटते थे ।

सोचना होगा कि तीर्थ परम्परा महान् है । उसके मूल में सन्निहित तप साधना और भी महान है । यह महानता गँवा देने से काम चलेगा नहीं । चित्र प्रतिबिम्बों को दर्शन झांकी करने से आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ पल्ले पड़ने वाला नहीं है । बात तो तब बनेगी जब मूर्छना की विडम्बना को निरस्त करके प्राचीन काल जैसी प्राण-प्रखरता का पुनर्जीवन सम्भव किया जाय ।

मरणासन्न लक्ष्मण को संजीवनी बूटी पिलाकर कभी किसी ने पुनर्जीवित किया था । जराजीर्ण च्यवन को किसी उपचार से नवयौवन उपलब्ध हुआ था । अभिशप्त अहिल्या किन्हीं का चरण स्पर्श करके शिला से पुनः मानुषी बनी थी । मेघदूत का यक्ष वियोग की अवधि समाप्त होने पर फिर अपनी प्रेयसी से मिला था । सुदामा की दरिद्रता लेकर किसी ने उसे सम्पन्नता प्रदान की थी । सगर पुत्रों की जलन को किसी ने स्वर्ग से गंगा उतार कर शान्त किया था । अपहृत सीता किसी के पराक्रम ने वापस लौटाई थी । भारतमाता को किसी ने दो सहस्राब्दी की गुलामी के बन्धन से मुक्त कराया था । सावित्री ने मृतक पति की आत्मा को यमराज के हाथ से वापस लिया था । यह सब इसी भारत भूमि में सम्पन्न होता रहा है । अब देखना यह है कि तीर्थ परम्परा को मरणासन्न स्तर की दुर्दशा से उबार सकने वाला कोई कहीं जीवित है या नहीं । यदि होगा तो वह दर्शन झाँकी मात्र से सन्तुष्ट न रहेगा । उसे सोचना होगा कि देव संस्कृति की रीढ़ समझी जाने वाली तीर्थ परम्परा को उसके प्राचीन स्तर तक पहुँचाने के लिए क्या कुछ नहीं किया जा सकता ? हारे हुए टुटे हुए 'ना' में उत्तर देंगे और विवशता व्यक्त करेंगे । किन्तु जिनमें जीवन है, वे इस मूर्छना को भी नव जीवन में परिणत करने के लिए कुछ न कुछ किये बिना रहेंगे नहीं ।

तीर्थ परम्परा के चार पुण्य प्रयोजन

तीर्थों के तीन प्रयोजन हैं । (१) तीर्थ आश्रम में कुछ समय रहकर आत्मोत्कर्ष की साधना करना । कुसंस्कारों, दोष-दुर्गुणों तथा पापकृत्यों का परिमार्जन प्रायश्चित करना । उज्जवल भविष्य के लिए भावी जीवन की अभिनव रीति-नीति निर्धारित करना । (२) तीर्थों में अवस्थित देवालयों, स्मारकों, जलाशयों, इतिहासों से प्रेरणा ग्रहण करना । पवित्र वातावरण की प्राणवान ऊर्जा से आत्म चेतना को अनुप्राणित करना । (३) पद यात्रा के साथ जुड़े हुए अनेकानेक लाभों से अपने आपको लाभान्वित करना । जन सम्पर्क के साथ धर्म धारणा का आलोक जन-जन में वितरण करना । लोकमानस के परिष्कार का भावभरा वातावरण बनाना । श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा के अभिवर्धन से यात्रा पथ में नवजीवन का संचार करना । इसके अतिरिक्त चौथा प्रयोजन और है, जो सदा-सर्वदा तो नहीं पर विशेष पर्वों पर प्रयुक्त होता है ।

सर्वविदित है कि एक प्रकृति के व्यक्ति जब उद्देश्य विशेष की पूर्ति के लिए बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं और परस्पर सहयोग से किसी निष्कर्ष पर जुड़ते हैं, कोई निर्धारण करते हैं तो उसकी परिणित निश्चित रूप से उत्साहवर्धक होती है । दुर्गा अवतरण की कथा इसी तथ्य की पुष्टि करती है । ऋषियों ने रक्तदान से घड़ा भरा और उससे भगवती सीता को उत्पन्न करने का आयोजन किया था । सेतुबन्ध बनाने और गोवर्धन उठाने की कथाएँ सज्जनों के सहयोग से उत्पन्न होने वाली शक्ति सामर्थ्य का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं । यह प्रक्रिया समय-समय पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यान्वित होने योग्य है । एकान्त का व्यक्तिगत चिन्तन-मनन की दृष्टि से महत्त्व है किन्तु सर्वजनीन क्रिया कथाओं के लिए सहयोग उत्पन करने वाले सम्मेलन आयोजन की आवश्यकता सदा से समझी और उसकी सुनियोजित व्यवस्था की जाती रही है ।

इन दिनों भी विभिन्न संस्थाएँ अपने उद्देश्यों के लिए प्रचार अभियान चलाती हैं । विचार-गोष्ठियों, कथा-प्रवचनों, सम्मेलन समारोहों की योजनाएँ बनाती चलाती रहती हैं । राजनैतिक पार्टियाँ तथा सुगठित संस्थाएँ आपने वार्षिकोत्सव करतीं और दूर-दूर तक फैले हुए कार्यकर्ताओं को एकत्रित करके उनके सम्मिलित विचार-निर्धारण को कार्यान्वित करने के लिए कदम उठाती हैं । विधान सभा, लोकसभा के सत्र चलते ही रहते हैं । यह आवश्यकता धर्म क्षेत्र में भी समझी जाती है और उसकी पूर्ति के लिए व्यवस्था बनती है । जिला परिषदें छोटे क्षेत्र की समस्याओं पर विचार करती हैं और प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सभाओं के निर्धारण उनकी परिधि विस्तार से सम्बन्धित रहते हैं । यही आवश्यकता धर्म क्षेत्र में भी समझी जाती है और उसकी पूर्ति के लिए समान उद्देश्यों के लिए, समान विचार के प्राणवान प्रतिनिधियों का सम्मेलन बुलाने के रूप में पड़ती है इसलिए उसकी उपयुक्त व्यवस्था भी बनाई गयी है ।

तीर्थ स्थानों में विभिन्न अवसरों पर पर्व मनाये जाते हैं । उस अवसर पर समीपवर्ती क्षेत्रों के लोग विशेष रूप से और दूरवर्ती लोग सामान्य रूप से वहाँ पहुँचते हैं । स्नान दर्शन तो कभी भी किये जा सकते हैं पर पर्व स्नान का अतिरिक्त पुण्यफल इसलिए बताया गया है कि उस अवसर पर उस क्षेत्र के धर्मप्रेमी लोग एकत्रित होकर धर्म सम्मेलनों के द्वारा होने वाले वैयक्तिक एवं सामाजिक लाभ उठा सकें । गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, सरयू आदि पवित्र नदियों के प्रमुख घाटों पर सोमवती अमावस्या का स्नान पर्व होता है और बड़ी संख्या में लोग पहुँचते हैं । न केवल पर्व प्रेमी धर्म लाभ लेते वरन् व्यवसायी, वाहनवाले, मजदूर आदि भी जन सम्प्रदाय के उस एकत्रीकरण का समुचित लाभ उठाते हैं । इसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न तीर्थ देवालयों पर विभिन्न ऐतिहासिक, पौराणिक, घटनाक्रमों कथाओं के आधार पर पर्व मेले होते रहते हैं । उन सभी की नियत तिथि होती है । उस अवसर पर उस क्षेत्र के धर्मप्रेमी बिना किसी निमन्त्रण, आग्रह, व्यवस्था के, बिना बुलाये स्वेच्छापूर्वक पहुँचते रहते हैं । यह धर्म सम्मेलनों के लिए बहुत ही सस्ता, सहज सुलभ उपाय है ।

विभिन्न संस्थाओं द्वारा बुलाये जाने वाले सम्मेलन आयोजनों के संयोजकों को उनकी भारी जिम्मेदारी उठानी पड़ती है । आमन्त्रण देने, प्रचार करने, आगन्तुकों के लिए निवास, भोजन, सफाई-सजावट आदि का प्रबन्ध करने में भारी शक्ति खर्च होती है और महीनों पहले से उस दौड़-धूप में लगना पड़ता है । इतना व्यय भार तथा बहुमुखी आवश्यकताएँ जुटाने का प्रबन्ध करना सुयोग्य एवं समर्थ अनुभवी लोगों का ही काम है । हर कोई वैसा साहस नहीं कर सकता । धर्म क्षेत्र के लोगों के लिए इतनी बड़ी और खर्चीली जिम्मेदरियाँ उठांना भारी पड़ता है, फिर जिस स्तर के लोगों को बुलाना है उनके पते परिचय भी तो अदलते-बदलते रहते हैं । ऐसी दशा में एक ही समय एक स्तर के लोगों के एकत्रित होने पर जो महत्त्वपूर्ण मंत्रणाएँ हो सकती हैं, योजनाएँ बन सकती हैं उनकी व्यवस्था कैसे बने, इस असमंजस की पूर्ति निर्धारित समय पर निर्धारित स्थानों पर होते रहने वाले पर्व आयोजनों के माध्यम से होती है । बिना निमंत्रण, कार्यक्रम की प्रतीक्षा किये धर्मप्रेमी लोग पुण्य लाभ की दृष्टि से अन्तःप्रेरणा से ही जा पहुँचते हैं । मार्गव्यय, निवास, भोजन आदि का सारा खर्च स्वयं ही उठाते हैं । इतना ही नहीं तीर्थ संस्थाओं की रचनात्मक गतिविधियों की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दान-दक्षिणा भी देकर जाते हैं । स्नान दर्शन की तरह इन अवसरों पर दान-पुण्य का भी विशेष माहात्म्य बताया गया है । उस आधार पर उन आरण्यकों; गुरुकुलों, ज्ञानसत्रों की आर्थिक आवश्यकताएँ भी पूरी होती हैं, जिनके कारण जड़ मंदिर-सरोवरों की सच्चे अर्थों में प्राणप्रतिष्ठा हुई और वे जीवन्त ही नहीं देवतुल्य श्रद्धास्पद भी कहलाये । यह स्थानीय क्षेत्रीय सम्मेलनों की, उस प्रदेश के धर्म-प्रेमियों के एकत्रीकरण और तीर्थ पुरोहितों द्वारा उस समवेत समुदाय की सामयिक मार्गदर्शन की बात हुई । अब इससे एक कदम आगे उन मनीषियों के एकत्रीकरण का नया प्रश्न आता है । जिससे क्षेत्रीय नहीं, समूचे देश के मूर्धन्य विज्ञजनों का सम्मेलन आवश्यक होता है । बड़ी और व्यापक समस्याओं के समाधान में मूर्धन्य स्तर के लोगों की दूरदर्शिता एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिभा का समन्वय ही काम देता है । उनकी शक्ति, प्रतिष्ठा एवं प्रभाव क्षमता के माध्यम से छोटे-बड़े सभी स्तर के लोगों को प्रभावित करना और सामयिक निर्धारणों को अग्रगामी बनाना सम्भव होता है ।

व्यक्ति और समाज के उत्थान में तीर्थ प्रक्रिया का योगदान

प्रतीत यह होता है कि पदार्थों का महत्त्व सर्वोपरि है । जिसके पास जितने साधन हैं वह उतना ही सुखी और समर्थ है । इस प्रकार यह भी समझा जाता है कि परिस्थितियाँ जिसके अनुकूल हैं वह प्रसन्न रहता है और प्रगति करता है । जन मान्यता यही है; पर गहराई में उतरने पर कुछ और ही तथ्य सामने आते हैं । मूल वस्तु, साधन और परिस्थितियों का समन्वय वैभव नहीं मनुष्य का व्यक्तित्व है । व्यक्तित्व, चिन्तन और चरित्र से मिल कर बनता है । आस्थाओं में आदर्शवादी मान्यताओं का जितना गहरा समावेश होगा इच्छाएँ, विचारणाएँ, क्रियाएँ उसी स्तर की बन पड़ेंगी । बहुत समय तक जिस दिशा धारा में बहते रहा जाय वही आदत बन जाती है और स्वभाव के रूप में प्रकट होती है । व्यक्तित्व इसी परिकर का नाम है । व्यक्तित्व में चुम्बकत्व होता है । वह अपने अनुरूप मनुष्यों, साधनों एवं परिस्थितियों को खींचता और जमा करता जाता है । यह संचय वैभव वर्चस्व आदि के रूप में दृष्टिगोचर होता है ।

व्यक्तित्व ही मनुष्य के सुख-दुःख का, उत्थान-पतन का, सहयोग-विरोध का आधारभूत कारण है । बाहर से थोपा हुआ वैभव या तो ठहरता ही नहीं, ठहरता है तो दुर्बुद्धि उसका दुरुपयोग करके उलटे विपत्ति ही उत्पन्न करती है । उच्चस्तरीय व्यक्तित्व अपनी विशेषताओं के कारण गई गुजरी परिस्थितियों में रहते हुए भी आन्तरिक क्षमता के बल-बूते चट्टानों की दरारों में उगने वाले वृक्षों की तरह ऊँचे उठते हैं । निर्झरों की तरह मार्ग के अवरोधों को चीरते हुए अगे बढ़ते हैं ।

व्यक्तियों का समूह ही समाज है । समाज का ही बड़ा रूप राष्ट्र एवं विश्व है । व्यक्तियों के घटक मिल कर ही समाज या राष्ट्र की रचना करते हैं । यह घटक जिस स्तर के होंगे उनका समूह भी उसी स्तर का बन जायगा । समाज में फैली हुई अवांछनीयताएँ एवं अव्यवस्थाएँ वस्तुतः उन घटकों की ही क्षुद्रता की, निकृष्टता की परिणिति होती हैं । समाज को असंख्यों अव्यवस्थाओं से, राष्ट्र को अगणित समस्याओं से, व्यक्ति को अनेकों विपत्तियों से घिरा हुआ देखकर यों उनके अलग-अलग कारण खोजे और उपाय सोचे जा सकते हैं, पर यह सब होता उथला ही है । मूलतः व्यक्तित्वों में घुसी हुई निकृष्टता ही इन सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति की दुखद प्रतिक्रिया प्रकट कर रही होती है । समाधान और सुधार के अनेकों उपाय सोचे और प्रयास किये जा सकते हैं । आर्थिक अभावों को दोष दिया जा सकता है । समाज, धर्म, शासन, देव आदि में से किसी को अथवा इन सबको विपत्तियों का कारण ठहराया जा सकता है । यह उथली समीक्षायें हैं । वास्तविक एक ही है कि व्यक्तित्व में घटियापन का घुसा होना ही समस्त विपत्तियों का एक मात्र कारण है । सुधार की, परिवर्तन की, इच्छा हो तो हेर-फेर के लिए इसी केन्द्र पर ध्यान दिया जाना चाहिए ।

इन तथ्यों को गम्भीरतापूर्वक समझने वाले तत्व दर्शियों ने मानवी प्रगति और समृद्धि की समस्या को ध्यान में रखते हुए आधारभूत उपाय यह सोचा कि जनमानस को परिष्कृत करने की दूरगामी योजना एवं सुव्यवस्थित अवधारणा विनिर्मित विकसित की जाय । धर्म-धारणा के विशालकाय कलेवर के मूल में यही तथ्य अभिप्रेत हैं । पशु प्रवृत्तियों को मानवी संस्कृति में परिणित करने के लिए ही व्यक्ति के स्तर से ताल-मेल रखने वाले धर्मोपचारों का निर्धारण किया गया है । ऋषियों की शास्त्रकारों की सारी सूझ-बूझ उसी प्रयोजन में संलग्न रही है उनने जिन प्रथा प्रचलनों का, धर्मानुष्ठानों का, दार्शनिक निर्धारणों का निर्माण, प्रचलन किया उनमें इसी मूल उद्देश्य को समाहित रखा कि व्यक्ति का अन्तरंग उच्चस्तरीय बने, उसकी आस्थाओं का स्तर ऊँचा उठे । संक्षेप में इसी प्रयास को धर्म प्रतिपादनों के विभिन्न रूपों में समाविष्ट देखा जा सकता है ।

कहना न होगा कि धर्म धारणा को विकसित करने में शास्त्र-संरचना और दार्शनिक-स्थापनाओं का बड़ा महत्त्व है; पर उस महत्त्व की सार्थकता तब बनती है, जब जन-जन को उससे अवगत एवं प्रभावित किया जाय । इतना ही नहीं स्थिति यहाँ तक पहुँचाई जाय कि आदर्शवादी आस्थाओं को अपनाने और व्यवहार में उतारने के लिए भी मनुष्य को सहमत-समुद्यत किया जा सके । इसके निमित्त किये जाने वाले उपायों को धर्मोपचार कहा जाता है । धर्म धारणा की स्थापना और धर्मोपचार को उसका क्रिया पक्ष कह सकते हैं । दोनों के समन्वय को ही परिपूर्ण धर्म प्रक्रिया समझा जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म को मानव जीवन का अंग बनाने के लिए उसकी आस्थाओं और आदतों को समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने की आवश्यकता पड़ती है । इसके लिए एक सीमा तक तो शास्त्र के, साहित्य के माध्यम से भी कार्य हो सकता है; पर अधिक प्रभावी और पूरक उपाय यही है कि उत्कृष्टता सम्पन्न महामानवों का प्रत्यक्ष सम्पर्क जन-जन से सधे । उनके परामर्श और प्रभाव में जुड़ी हुई महानता जन-जन को प्रभावित करे । दीपक से दीपक जलते हैं । जीवित ही जीवन देते हैं । उठे हुए ही उठाने में समर्थ होते हैं । इसलिए तप: पूत प्रतिमाओं को जनसम्पर्क का अधिकाधिक अवसर मिले इसके लिए धर्म-चेतना के निर्धारणकर्त्ताओं ने पूरा-पूरा ध्यान रखा और स्थान दिया है । कथा प्रवचनों की सत्संग, सान्निध्य की प्रक्रिया इसी निमित्त चलती है । सामूहिक धर्मानुष्ठान में धर्मोपदेशों को अविच्छिन्न रूप से जुड़ा रखा जाता है । द्रव्य-यज्ञ का ज्ञान-यज्ञ अविच्छिन्न अंग है । पर्व संस्कारों के अवसर पर ज्ञान गोष्ठियाँ होती हैं और पुरोहित उस अवसर पर किये जाने वाले कृत्यों की व्याख्या विवेचना करके उपस्थिति लोगों में स्थिति के साथ संगति मिलाते हुए शालीनता अपनाने की प्रेरणा भरते हैं । धर्म कृत्यों को शरीर और धर्म-प्रेरणा को प्राण माना गया है । दोनों के समन्वय से ही धर्मोपचारों का उद्देश्य पूरा होता है इस तथ्य को आरम्भ से समझा जाता रहा है और मनुष्य को आस्थावान बनाने के लिए मनीषियों द्वारा प्रबल प्रयत्न किया जाता रहा है ।

इन प्रयत्नों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण धर्मचर्या तीर्थ हैं । तीर्थ स्थापना के दोनों ही प्रयोजन सर्वविदित हैं । एक यह कि समय-समय पर अपनी सुविधानुसार व्यक्ति आये और उस उपयुक्त वातावरण में आरण्यकों के तत्वाधान में तीर्थ वास करके सीमित काया-कल्प का लाभ उठायें । इस कार्य में तीर्थ संचालक ऋषि इन आगन्तुकों की भाव भरी सेवा सहायता करते थे । अपने स्नेह-सौजन्य, अतिथि सत्कार एवं भाव भरे परामर्शों से तीर्थ यात्री को निहाल कर देने वाले व्यक्तित्व ही जीवन्त तीर्थ कहलाते थे । प्राकृतिक सौन्दर्य के नदी-सरोवर, उत्साह भरने वाले देवालय भी तीर्थ-वास के लाभ में चार चाँद लगाते और सोने में सुगन्ध उत्पन्न करते थे । इतने पर भी मूल केन्द्र तीर्थों के ऋषि-आश्रम आरण्यक ही होते थे । उनमें प्राप्त होने वाली प्रेरणा तथा वहाँ रहकर की जाने वाली साधना ही आगन्तुकों को पुण्य फल प्रदान करती थी जिसकी संगति तीर्थ माहात्म्य के साथ पूरी तरह बैठ जाती है ।

तीर्थ तंत्र के संचालकों की गतिविधियाँ तीन भागों में विभक्त थीं—

(१) तीर्थ बास के लिए आने वाले धर्म प्रेमियों के लिए साधना एवं शिक्षण की समुचित व्यवस्था । इसे क्रमबद्ध साधना सत्र प्रक्रिया भी कह सकते हैं ।

(२) तीर्थ के समीपवर्ती क्षेत्र को एक मंडल बना कर उसमें पुरोहितों का परिभ्रमण करना और उस परिधि में नियति रूप से धर्म चेतना उत्पन्न करते रहने का उत्तर दायित्व सम्भालना । इन धर्म मंडलों की सुव्यवस्था बनाये रहने वाले मंडलाधीश या मंडलेश्वर कहलाते थे । इन मंडलों के केन्द्रीय स्थानों को मठ कहा जाता था ।

(३) उस समय पर उन तीर्थों में स्वल्प काल के लिए दूर-दूर से जन समुदाय को आसीन होने की प्रेरणा देना । यह कार्य पर्व स्नान के रूप में होता था । यह एक प्रकार से धर्म सम्मेलन थे । अभी भी संस्थाएँ अपने वार्षिकोत्सव मनाती और सामयिक आयोजन करती हैं । इनका उद्देश्य बड़ी संख्या में जनता को एकत्रित करके उनमें अभीष्ट प्रेरणाएँ भरना होता है । पर्वों पर तीर्थ स्नान का विशेष महत्त्व इसी दृष्टि से बताया गया था कि धर्म प्रेमियों का बड़ा समुदाय एक ही समय एकत्रित होकर ऋषियों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली सामयिक प्रेरणाओं को ग्रहण करें और अपने-अपने स्थानों पर जाकर उस चेतना का विस्तार करें ।

तीर्थों, दर्शनों के लिए यों तो धर्म प्रेमी सदा ही जाते रहते हैं; पर विशेष पुण्य फल पर्व स्नान का माना जाता है । इसका कारण ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट है । पर्व, अनायास ही धर्म सम्मेलनों का प्रयोजन पूरा करते थे । जन चेतना का उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर होने का इन आयोजनों से विशेष उद्देश्य पूरा होता था ।

कभी-कभी धर्म-सेवियों का, ऋषियों-तपस्वियों का भी मिलन सम्मेलन होता था; ताकि वे मिल-जुल कर सामयिक समस्याओं पर विचार कर सकें, पारस्परिक सुख दु:ख की पूछताछ कर सकें, एक दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सकें, अधिक संगठित हो सकें, समय की माँग को पूरा करने के लिए मिल-जुल कर उपाय निर्धारित कर सकें । ऐसे-ऐसे अनेक उद्देश्य उन विशिष्ट आयोजनों के साथ जुड़े रहते थे जिनमें मुख्यतया धर्म सेवियों की, सन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिव्राजकों की उपस्थिति ही आवश्यक होती थी । कुम्भ पर्व जैसे आयोजन इसी उद्देश्य से निर्धारित किये गये थे । यह चलते-फिरते तीर्थ थे । अपना स्थान और क्रम बदलते रहते थे । कुंभ पर्वों की योजना दृष्टव्य है । हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक इन चारों स्थानों पर तीन-तीन वर्ष बाद प्राय: एक-एक महीने के कुंभ पर्व होते हैं । बारह वर्ष में यह चक्र पूरा होता है । धर्म प्रचारकों की सन्त मंडलियाँ इन आयेजनों में पहुँचती थीं । इस प्रकार उस समय की व्यवस्था के अनुरूप बने एक बड़े धर्म क्षेत्र का भ्रमण चक्र पूरा हो जाता था । सभी धर्म प्रचारक, सभी क्षेत्रों में पहुँचने, वहाँ की स्थिति समझने और पारस्परिक सम्पर्क को सघन बनाने का आनन्द उपलब्ध करते थे ।

जहाँ देश भर के धर्म सेवी एकत्रित हों वहाँ जनता की सहज रुचि होना स्वाभाविक है । तीर्थ स्नान से भी बड़ा पुण्य समझा जाता था—सन्त समागम । इसके लिए साधन सम्पन्न लोग सदावर्त-जल प्रबन्ध, निवास व्यवस्था आदि की सुविधा बनाने के लिए दान पुण्य करते थे ।

विभिन्न वर्गों में मूर्धन्य मनीषी अभी भी राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर पर मिलते-जुलते रहते हैं । पारस्परिक सहयोग आदान-प्रदान का इन सम्मेलनों से मार्ग खुलता है और उत्साहबर्धक परिणाम निकलता है । सरकारी तत्वाधान में समय-समय पर ऐसे सेमिनारों की व्यवस्था बनती रहती है जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान, न्याय, व्यवस्था आदि उपयोगी विषयों पर मिल-जुल कर अधिक सोचने एवं प्रगति के उपाय खोजने में सुविधा उत्पन्न हों । काँग्रेस आदि बड़ी संस्थाओं के वार्षिकोत्सवों के अवसर पर उन्हीं पंडालों में अन्यान्य संस्था संगठनों के भी आयोजन चलते रहते हैं । कुंभ जैसे पर्वों का प्राचीन काल में ठीक यही रूप था । विभिन्न सन्तों की विभिन्न प्रेरणाओं एवं निर्धारणाओं से अवगत होते और किसी उपयुक्त निष्कर्ष पर पहुँचने की दृष्टि से यह कुंभ पर्व जैसे विशाल आयोजन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करते थे ।

स्मरण रहे यह समस्त गतिचक्रतीर्थों की धुरी पर परिभ्रमण करते थे । बार-बार स्थान बदलने से, नये प्रकार की नई व्यवस्था जुटानी पड़ती है और नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है समय की अलग से सूचना भेजनी पड़ती है स्थानीय परिस्थितियों से तालमेल बिठा कर उनका प्रबन्ध करने में विशेष सूझ-बूझ एवं विशेष तत्परता का परिचय देना पड़ता है । किन्तु अमुक तीर्थ में अमुक पर्व पर पहुँचने की बात निश्चित रहने पर नये आमन्त्रण भेजने से लेकर नई व्यवस्था बनाने तक के सारे झंझट मिट जाते थे । न विद्वानों को बुलाना पड़ता था न जनता को आमन्त्रित, आकर्षित करने को दौड़-धूप करनी पड़ती थी । सब कार्य सहज स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होते रहते थे और विशालकाय धर्म सम्मेलनों की व्यवस्था अपने गति चक्र पर सरलतापूर्वक परिभ्रमण करती रहती थी ।

जब तीर्थ उपरोक्त तीनों भूमिका निभाते रहे होंगे तब उसे सुखद परिणाम किस प्रकार किस परिमाण में प्रस्तुत होते रहेंगे, इसका परिचय अभी भी पुरातन इतिहास की झाँकी करने पर मिल जाता है । अतीत की स्वर्णिम परिस्थितियाँ दैवी वरदान थीं जिनने इस महान देश के नागरिकों को—उनके देश को सच्चे अर्थों में गौरवान्वित किया । यह दैवी वरदान संभवत: स्वर्ग से उतरता होगा और उसे देवता अपने पुष्पक विमानों पर चढ़ कर बरसाते होंगे । जो इस मान्यता को संदिग्ध मानते हों उन्हें तीर्थों को, उनके संचालक ऋषियों को वह केन्द्र मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए जहाँ से भारत भूमि को स्वर्गोपम परिस्थितियों से भरा-पूरा बनाने वाले वरदान बरसा करते थे ।

यह अतीत की चर्चा है । यह तथ्य भी है और इतिहास भी । इसकी साक्षी प्रस्तुत तीर्थों में जाकर लकीर पिटने के रूप में चलने वाली प्रथा परम्पराओं को देखने से उपलब्ध हो सकती है । जिन दिनों तीर्थ जीवन्त रहे होंगे अपने उद्देश्य की पूर्ति में प्राण पण से निरत रहे होंगे तब कितना सौभाग्य सुअवसर जन-जन को मिलता होगा । उसकी स्मृति मात्र से अन्त:करण पुलकित हो आता है और उस तीर्थ परम्परा को, उसके निर्धारण-कर्त्ताओं को शत-शत नमन करने को जी करता है, जिनने अपने समय में जन-आस्था को उत्कृष्ट बनाने में अपने ढंग से महान भूमिका निभाई ।

आज तीर्थों की काया तो विद्यमान है, पर उनकी आत्मा सुषुप्ति में चली गई । प्रसुप्ति मृत्यु तो नहीं है पर उस स्थिति में आचरण मृतकवत ही होते हैं । तीर्थ अभी भी विद्यमान हैं । पहुँचने वालों की भीड़-स्नान दर्शन, दान पुण्य आदि के कृत्य वैसे ही होते हैं । अन्तर एक ही है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जागृति, सुषुप्ति के गर्त में जा गिरी । प्रथा रह गई, प्रेरणा बुझ गई ।

समय की पुकार है कि मूर्छना को जागृति में बदला जाय । नव जागरण के इस पुण्य प्रभाव में तीर्थों के धर्म बिन्दु को उपेक्षित नहीं छोड़ा जा सकता, मैले कपड़े धोये जा सकते हैं—टूटी वस्तुओं की मरम्मत हो सकती है, रोगी को स्वस्थ बनाया जाता है, अपराधी सुधरते हैं । तो कोई कारण नहीं कि तीर्थों को निहित स्वार्थों एवं अन्ध-विश्वासों से छुड़ा कर उनके पूर्व रूप में न पहुँचाया जा सके ।

व्यक्ति और समाज को समुन्नत बनाने के लिए उच्च स्तरीय आस्था का निर्माण एवं अभिवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक है । इस पुण्य प्रयोजन के लिए अतीत की तरह वर्तमान में भी तीर्थ संस्थान अपनी महत्ती भूमिका निभा सकते हैं और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं ।

तीर्थस्थानों से आध्यात्मिक शक्ति की प्राप्ति

विदेशी धर्म-प्रचारक हिन्दू धर्म पर प्राय: यह आक्षेप किया करते हैं कि यह एक ईश्वर अथवा परमात्मा के बजाय ३३ करोड़ देवताओं को मानने वाला और पशु, पेड़ों, पत्थरों, नदियों आदि की पूजा करने वाला नीचे दर्जे का धर्म है । पर वास्तव में यह आरोप मिथ्या है । जिसे वे लोग या तो अज्ञान के कारण समझ नहीं पाते अथवा जान-बूझकर झूँठा प्रचार करने की चेष्टा करते हैं । अन्य धर्मों की भाँति हिन्दू-धर्म को भी मालूम है कि परमात्मा अथवा ईश्वर एक ही हो सकता है, चाहे उसकी शक्ति का आविर्भाव असंख्यों रूपों में क्यों न हुआ हो । सत्य बात यह है कि किसी धर्म वाले एकेश्वरवाद की जितनी भी डींग क्यों न मारें निर्गुण परब्रह्म के स्वरूप को समझ सकना अथवा उसकी वास्तविकता को अपनी बुद्धि द्वारा ग्रहण कर सकना बड़े से बड़े विद्वान् के लिये भी महा कठिन है । भगवान् बुद्ध अपने चेलों से कहा करते थे कि "ऐसी भारी बातों के विषय में उन्हें कुछ विचार न करना चाहिये, क्योंकि इस विषय में किसी भी प्रकार का निर्णय कर सकना असम्भव है और उससे कुछ लाभ नहीं निकलेगा ।" इसीलिये भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने धर्म की बातों को ऐसा बुद्धिगम्य और व्यवहारिक रूप दिया है, जिससे वे क्रमश: आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर होते जायें और समय आने पर आत्मा और परमात्मा के सत्य स्वरूप को भी समझने की योग्यता प्राप्त कर सकें । इस सम्बन्ध में एक विदेशी विद्वान् ने जो स्वयं ईसाई धर्म के आचार्य थे और आध्यात्मिक विषयों में बड़ी रुचि रखते थे, हिन्दू मन्दिरों, तीर्थ स्थानों और उनमें प्रतिष्ठित मूर्तियों की वास्तविकता पर, बहुत विवेकपूर्ण और तर्क संगति विवेचन किया है । नीचे उन्हीं के लेख की कुछ बातें दी जाती हैं ।

हिन्दू देवताओं की मूर्तियों में बहुधा ओजस् शक्ति भरी रहती है । उत्सवों के अवसर पर जब इन मूर्तियों को जुलूस के रूप में निकाला जाता है तो दर्शकों पर उनके दर्शन का अच्छा प्रभाव पड़ता है । बहुत से मन्दिरों और तीर्थों में अब भी आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न करने वाली धार्मिक क्रियाएँ हुआ करती हैं और वहाँ जाने से और उनका प्रसाद ग्रहण करने से मनुष्य के हृदय में अवश्य ही श्रेष्ठ भावों की उत्पत्ति होती है ।

भारतवर्ष वास्तव में क्रियाकाण्ड और विधियों का देश है । यहाँ का धर्म इनसे भरा हुआ है और अनेकों विधियाँ तो युगों से चली आई हैं । यह भी निश्चय है कि बहुत-सी क्रियाएँ पीछे से जोड़ी गई हैं । इनमें से कितनी ही ऐसी क्रियाएँ हैं, जो जाति के आरम्भ में अति आवश्यक होती हैं, पर आर्य जाति के पूरी तरह से विकसित हो जाने पर अब उनका कोई काम नहीं रहा । बहुत सी क्रियाओं को होते समय उन्हें देखने से स्पष्ट रूप से मालूम हो जाता है कि असल में उनका क्या अर्थ रहा होगा, हालाँकि परिस्थिति के बदल जाने से अब वे अर्थशून्य हो गई हैं और उनसे कोई फल उत्पन्न नहीं होता । ये विधियाँ नये मनुष्यों के लिए तो उपयोगी होती हैं और बहुत-सों को उन से आनन्द तथा लाभ भी मिलता है । पर वास्तव में उन क्रियाओं अथवा विधियों के बिना काम न चल सके ऐसी बात नहीं । उन्नति प्राप्त पुरुष को ये बन्धन नहीं रहते, चाहे वह लोक-रीति के कारण उनका पालन करता भी रहे ।

पर सबसे बड़ी बात यह है कि आजकल के धर्म क्रियाएँ कराने वाले पुराहितों में उस शक्ति का अभाव होता जा रहा है, जिसके आधार पर पूर्वकाल में ये क्रियाएँ साक्षात् फल देने वाली होती थीं । इन दिनों ये लोग अपनी इच्छा शक्ति का प्रयोग नहीं करते हैं । वे मंत्र तो पढ़ते हैं—"ॐ भू:भुर्वा:स्व:" पर इसके उच्चारण से कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फल उत्पन्न नहीं होता । पूर्व काल में आचार्य लोग इस मन्त्र का उच्चारण करते समय अपनी इच्छा शक्ति भी उसमें लगाते थे और अपनी तथा उपस्थिति प्रभावग्राही या कोमल प्रकृति वाले लोगों की चेतना मन्त्र उच्चारण करते समय एक लोक से दूसरे लोक तक पहुँचा देते थे । यह बात ठीक है कि इस प्रकार का असर थोड़ी देर के लिये ही रहता था और क्रिया समाप्त हो जाने के बाद उसमें भाग लेने वालों की ऊँचे लोकों की चेतना भी जाती रहती थी । परन्तु उनके लिये यह एक महत्त्वपूर्ण अनुभव होता था और दूसरी बार जब कभी ऐसी क्रिया की जाती थी तो उनमें ऊँचे दर्जे की चेतना जागृत होती थी । इस प्रकार उपासकों की आत्मिक शक्ति का निरन्तर विकास होता रहता था । परन्तु आजकल ऐसा कार्य शायद ही कहीं होता हो । आजकल आचार्य हवन कुण्ड में समिधा रखता है और अग्नि आवाहन के लिये मंत्र पढ़ता है और फिर दियासलाई से अग्नि प्रज्ज्वलित कर देता है । प्राचीन काल में अग्नि के अधिष्ठाता देव यथार्थ में आते थे, जैसा कि पुरानी कथाओं में बतलाया गया है । कारण यही था कि उस समय सब लोग अपनी इच्छा शक्ति का भी प्रयोग साथ-साथ करते थे । अब उन क्रियाओं का बाहरी रूप ही रह गया है, जिससे फल भी नाम मात्र को ही प्राप्त होता है ।

तीर्थ-यात्रा की प्रथा भी बिल्कुल तर्क और विज्ञान से सिद्ध है । जहाँ किसी पवित्र मनुष्य का आश्रम रहा हो अथवा जहाँ दीक्षा के समान कोई महत्व का कार्य हुआ हो, वहीं पर प्राय: बड़े-बड़े मन्दिर बनाये जाते थे । ये मन्दिर कभी-कभी किसी महापुरुष की अस्थियों पर भी बनाये गये हैं । इस प्रकार का मन्दिर, चाहे वह किसी भी उद्देश्य से बनाया गया हो, दृढ़ ओजस् का केन्द्र हो जाता है, जो सैकड़ों-हजारों वर्षों तक भी स्थिर रह सकता है । जब कोई प्रभावग्राही या कोमल प्रकृति का व्यक्ति ऐसे स्थान पर पहुँचता है तो उसको इस असर का ज्ञान होता है और इस असर से निस्सन्देह उसको लाभ पहुँचता है । जहाँ कहीं बहुत ऊँचे दर्जे का कम्पन होता है, तो वह अपने क्षेत्र के भीतर आने वाले मनुष्य के कम्पों अथवा चेतना को अपनी ऊँचाई तक उठा लेता है । यदि कोई यात्री ऐसे स्थान पर कई दिन तक रहे और उस पर वहाँ के ओजस् का असर पड़े तो अवश्य ही उसे आत्मिक लाभ होगा । पर यह लाभ भिन्न-भिन्न लोगों को अपनी प्रभाव ग्रहण करने की योग्यता या स्वभाव के अनुसार ही कम या ज्यादा मिल सकता है ।

तीर्थों का प्रयोजन एवम् पुरातन स्वरूप

तीर्थ महात्म्य सम्बन्धी पुरातन शास्त्र मान्यता का प्रभाव अभी भी ऐसा है कि हर वर्ष लाखों-करोड़ों की संख्या में धर्म प्रेमी तथा पर्यटक आनन्द के लिए उत्सुक हर वर्ष इस निमित्त अकेले या सपरिवार निकलते हैं । रेल गाड़ियों, बसों में आधी भीड़ तो प्राय: इसी उद्देश्य से निकलने वालों की होती है । तीर्थ यात्रा को अत्यधिक पुण्य फलदायक माना जाता है । इसलिए जिनकी, जिन तीर्थों में आस्था है वे वहाँ जाने में समय एवं धन खर्चते हैं । मार्ग की कठिनाइयों को नहीं गिनते ।

धर्म-धारणा के अनेक सिद्धान्तों और आदर्शों को लोग भूल गये हैं; पर तीर्थ यात्रा के प्रति उत्साह घटा नहीं, बढ़ा है । पहले वाहनों के अभाव में तथा मार्ग की कठिनाइयों को देखते हुए लोग प्राण हथेली पर रखकर ही इस दुस्साहस पर निकलते थे; पर अब ऐसी बात नहीं । यातायात की सुविधा और दर्शनीय स्थानों की अभिवृद्धि होने से अब उस दिशा में उत्साह और भी अधिक बढ़ा है । तीर्थ यात्रियों की संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जाती है ।

न केवल हिन्दू धर्मावलम्बी, वरन् मुसलमान मक्का को, ईसाई यरुसलम को, बौद्ध सारनाथ, श्रावस्ती को दौड़ते हैं । उन्हें लम्बी यात्राओं में समय भी अधिक लगता है और खर्च भी अधिक पड़ता है । फिर भी उनका यह उत्साह रुकता नहीं ।

इसका कारण भी है । तीर्थों का माहात्म्य अनायास ही नहीं गाया बताया गया है, वरन् उनके पीछे कुछ ठोस सिद्धान्त और कारण भी रहे हैं ।

तीर्थों में न केवल भवन किन्हीं यशस्वी धनाढ्य लोगों ने बनाये थे, न केवल प्राकृतिक मनोरम दृश्यों की भरमार थी, वरन् वहाँ की ऋषि प्रणीत गतिविधियाँ ऐसी थीं जिनके सम्पर्क में आने से यात्रियों की श्रद्धा, भावना का उद्रेक होता था और वहाँ जानने सीखने को इतना कुछ मिलता था कि यात्रा का श्रम और व्यय उसके सामने तुच्छ ही बैठता था । वे आश्रम सर्वसाधारण के लिए खुले थे और आगन्तुकों को वहाँ चलने वाली प्रवृत्तियों से पूरा-पूरा लाभ उठाने का अवसर था ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ एक प्रकार के शिक्षालय और चिकित्सालय थे। बच्चों को गुरुकुल पद्धति से, वानप्रस्थों को लोक मंगल की सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के निमित्त बहुत कुछ सीखने को मिलता था। वयोवृद्ध अगले जन्म के लिए सुसंस्कार संग्रह करने के लिए वहीं रम जाते थे। जिनने सांसारिक लोभमोह के भव बंधन काट लिए थे, वे परमार्थ परायण जीवन जीने के लिए तीर्थों में ही अपने को समर्पित करते थे और वहाँ के अनुशासन में रहकर अनेकों सत्प्रयास व्यापक क्षेत्रों में करते थे।

सद्गृहस्थों को अधिक समय तो नहीं मिलता था; पर जितना कुछ अवकाश होता था, वे तीर्थ सेवन की साधना करते थे, अपनी शारीरिक, मानसिक आधि-व्याधियों को धोते थे। अन्तराल पर चढ़े हुए कषाय-कल्मषों के परिशोधन की तपश्चर्या करके पापों का प्रायश्चित्त करके अपनी अन्तरात्मा को निर्मल बनाते थे। शरीरगत व्याधियों का उपचार होता था। स्वाध्याय और सत्संग के माध्यम से वे अपने दृष्टिकोण का परिशोधन करते और व्यक्तित्व विकास के लिए अपनी मनःस्थिति एवं परिस्थितियों के अनुरूप मार्गदर्शन, परामर्श ऋषि कल्प लोगों से प्राप्त करते थे। भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाली कार्यपद्धति का स्थिति के अनुरूप निर्धारण भी यही करते थे। इस प्रकार, एक प्रकार से आगन्तुकों का मानसिक-आत्मिक जीवन का काया कल्प ही हो जाता था।

परिवार समेत लोग इसलिए पहुँचते थे, कि महिलाओं को परिवार निर्माण की उच्चस्तरीय प्रेरणा मिले और वे घर परिवार के छोटे दायरे में ही स्वर्ग का अवतरण कर सकें। नारी वह खदान है, जिसकी स्थिति ऊँची रहने पर उसके द्वारा नररत्न पैदा होते हैं और अपना तथा अपने प्रभाव क्षेत्र का कल्याण-उत्कर्ष करते हैं। नारी की वरिष्ठता का प्रभाव नर पर पड़ना ही चाहिए। उन्हें देवी इसलिए कहा जाता है कि वे अपने परिवार में गृहलक्ष्मी की भूमिका निभाती हैं और वहाँ सुखशान्ति की कमी नहीं पड़ने देतीं।

बालकों को तीर्थ इसलिए ले जाया जाता था कि उनके षोड्श-संस्कार घर के अव्यवस्थित वातावरण की अपेक्षा तीर्थ स्थान में ही हों। नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, दीक्षा-उपवीत आदि संस्कार प्रभावशाली वातावरण में होने से एक तो खर्च की बचत होती थी, दूसरे बालकों पर उस दिव्य वातावरण का प्रभाव भी असाधारण पड़ता था। जो अपने बच्चों को गुरुकुलों में पढ़ाना चाहते थे, उनके लिए वैसी व्यवस्था वहाँ थी। लोग चाहते थे कि मरणोपरान्त उनकी अस्थियाँ तीर्थ सरिताओं में ही प्रवाहित हों। पूर्वजों के श्राद्ध-तर्पण के निमित्त भी घर की अपेक्षा वहीं पर शान्तिदायक कृत्य करना उत्तम समझा जाता था।

जिस प्रकार किसी उत्तम जलवायु के वातावरण में बने सेनेटोरियमों में लोग अपनी चिकित्सा कराते हैं। और खोये स्वास्थ्य को वापस लेकर लौटते हैं, वही लाभ तीर्थ सेवन का मिलता था। कुछ समय वहाँ रहकर लोग अनुभव करते थे कि वहाँ की अप्रत्यक्ष और परोक्ष दिव्य तरंगें ऐसी हैं, जिनमें थोड़े समय का निवास-सम्पर्क भी प्रायः वैसी ही भूमिका निभाता है, जैसे फल-फूलों से लदे उद्यान में निवास करते हुए दिव्य गंध और पौष्टिक आहार प्राप्त करने का अवसर मिलता है।

स्वाति की बूँद सीप में मोती, बाँस में बंसलोचन, केले में कपूर उत्पन्न करती है और चन्दन वृक्ष के समीप उगे हुये झाड़-झंखाड़ भी सुगंधित बन जाते हैं। उसी प्रकार का लाभ तीर्थ सेवन करने वालों का मिलता था। वे अनुभव करते थे, वह स्थान धरती पर बने हुए भी स्वर्ग समान है। संसार के वातावरण में जहाँ स्वार्थ, विलास, अहंकार और आपाधापी का वातावरण छाया रहता है, वहाँ यहाँ की स्थिति सर्वथा भिन्न है। यहाँ आत्मशोधन का पुण्य और लोक कल्याण का परमार्थ संचय करना ही एक मात्र उद्देश्य रहता है। ऐसी दशा में उस सम्पर्क सौभाग्य को लोग पारस मणि का स्पर्श करके लोहे का सोने में बदल जाना प्रत्यक्ष देखते हों तो, कोई आश्चर्य नहीं। सांसारिक कामनायें तो ऐसी हैं, जो इच्छित वस्तुयें मिलते चलने पर आग में ईंधन मिलने की तरह भड़कती चलती हैं, पर आत्मा की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को तृप्त करने का यहाँ समुचित सुयोग रहता था और रहने वाले उसे कल्पवृक्ष के समीप जा पहुँचने जैसी अनुभूति मानते थे। प्रसुप्त अध्यात्म भावनायें भी जाग पड़ती थीं। इसलिए उसे नव-प्रभात द्वारा कमल पुष्पों को खिला देने जैसी विशेषताओं से भरा-पूरा सुयोग भी माना जाता था।

जब तीर्थों का स्वरूप और माहात्म्य अपने वास्तविक रूप में था, तब श्रद्धालु धर्म प्रेमी अपनी मण्डलियाँ बनाकर पैदल यात्रा पर निकलते थे। तीर्थ का वास्तविक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुण्य पैदल यात्रा में ही मिलता है इस प्रकार शास्त्र कथन पर विश्वास करते हुए लोग अपनी मंजिलें धीरे-धीरे पूरी करते थे। रास्ते की परिस्थितियों को देखते समझते हुए देश दर्शन का लाभ उठाते और अपना अनुभव, परिचय, सम्पर्क परिकर बढ़ाते थे।

कूप मंडूक बने बैठे रहने की अपेक्षा ज्ञान वृद्धि का महत्त्वपूर्ण उपाय सुदूर क्षेत्रों का परिभ्रमण भी है। उस माध्यम से संसार का अधिक व्यापक और विस्तृत स्वरूप देखने का अनुभव प्राप्त होता है। पर्यटन प्रिय व्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान होते हैं। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का भली-बुरी परिस्थितियों को देखने पर मनुष्य को अधिक सतर्क रहने, दूरदर्शी बनने का अवसर मिलता है। पर्यटन एक उच्चकोटि का मनोरंजन तो सर्वविदित ही है।

पैदल यात्रा में जलवायु परिवर्तन से स्वास्थ्य सुधार का अद्भुत लाभ मिलता है। हकीम लुकमान अपने मरीजों को नित्य कुछ समय चलते रहने का निर्देश करते थे । उनके इस नुस्खे ने अगणित लोगों का खोया हुआ स्वास्थ्य वापिस दिलाया।

तीर्थ यात्रियों की सत्संग मंडलियाँ रास्ते में जहाँ-जहाँ बैठती थीं, भजन गाना आरम्भ कर देती थीं। रात को जहाँ रुकती थीं, वहाँ एक अच्छा खासा धार्मिक समारोह अनायास ही बन जाता था। मंडलियाँ गाँवों की समस्याओं का समाधान सुझाती और कराती भी चलती थीं। जहाँ विद्वान, बड़े लोग नहीं पहुँच पाते थे, तीर्थ मंडलियाँ उधर ही होकर जाने का कार्यक्रम बनाती थीं और पिछड़े क्षेत्रों में प्रगतिशीलता का वातावरण बनाती चलती थीं। यह ऐसी ही सेवा थी, जैसी बादल खेत पर पहुँच कर पानी बरसाते हैं। सूर्य-चन्द्र किसी के बुलावे की प्रतीक्षा न करके अनायास ही सर्वत्र प्रकाश फैलाते हैं। तीर्थ यात्रियों की मंडलियाँ उसी प्रयोजन की पूर्ति करती हुई वातावरण में नीतिनिष्ठा का उत्कर्ष करती थीं। प्राचीन काल में ऋषियों के गुरुकुल भी इसी प्रकार की रीति-नीति अपनाते थे और अपने विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए देशाटन करते रहते थे। यह चल गुरुकुल जन साधारण में जितनी प्रेरणा भरते थे, उतनी स्थिर विद्यालयों से सम्भव नहीं, भले ही उनमें छात्रों और अध्यापकों को कितनी ही सुविधा क्यों न हो ?

यही था तीर्थ यात्रा का प्राचीन स्वरूप, जिसे गृहस्थ तो यदाकदा ही अपनाते थे; पर साधु-सन्त परिव्राजक के रूप में निरन्तर भ्रमण करते रहते थे। जहाँ जितने समय ठहरने की आवश्यकता होती थी, वहाँ उतने समय रुक कर सत्प्रवृत्तियों के शुभारम्भ सुसंचालन का सुयोग बिठाते थे। तीर्थ स्थानों में उनके अधिक समय तक रुकने तथा मार्ग में काम आने वाली वस्तुयें प्राप्त करने की सुविधा थी। देवालयों और धर्मशालाओं का निर्माण इसलिए भी होता था, ताकि वे अपने मण्डल में जन जागरण के केन्द्र बने रहें और साथ ही तीर्थ यात्री परिव्राजकों की आवश्यकतायें भी पूरी करते रहें।

तीर्थ यात्रा का यह स्वरूप बहुत समय तक प्रचलित रहा। उसकी कई धारायें निकलीं। तीर्थ स्थानों की देव प्रतिमाओं को छोटे रथ में रखकर उनका दर्शन कराने का एक परिभ्रमण कार्यक्रम बनाते थे, जिससे घर बैठे सर्वसाधारण को भगवान के दर्शन का लाभ अनायास ही मिलता रहे।

अब उन पुरानी प्रथा-परम्पराओं का ध्वंसावशेष किन्हीं तीर्थों की सीमा-परिक्रमा के रूप में चिह्न पूजा की तरह होता मिल जाता है। गोवर्धन परिक्रमा, नर्मदा परिक्रमा, ब्रज ८४ कोस परिक्रमा के रूप में वह प्रथा किसी प्रकार अभी भी चलती दीखती है। शिवरात्रि पर लोग गंगा-जल कंधे पर कांवर में रखकर लाते हैं और अपने स्थानीय शिव मंदिर पर उस जल को चढ़ाते हैं। रास्ते में भजन या दोहे गाते चलते हैं। यह पुरातन तीर्थ यात्रा का ही ध्वंसावशेष है।

यात्रियों को अब तो भौतिक दृष्टि से भी लाभदायक माना जाने लगा है। इससे पैसा घूमता है। वाहन वाले तथा श्रमिक लाभ उठाते हैं। व्यापारियों की बिक्री होती है। सरकार को टैक्स मिलता है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए अपने देश में अनेकों धार्मिक मेले होते हैं। उसमें पुरातन काल में धर्म प्रचारक इसी बहाने मिल लिया करते थे और भावी योजनायें बनाते थे। पर अब तो वे व्यवसाय एवं प्रचार के माध्यम मात्र रह गये हैं।

समयानुसार हर वस्तु जराजीर्ण हो जाती है। मनुष्य बूढ़ा होने पर अशक्त हो जाता है और डगमगाने लगता है, पुरानी इमारतें टूटने-फूटने लगती हैं, पुराने पेड़ उखड़ जाते हैं। यदि उनकी समय-समय पर मरम्मत न की जाती रहे, तो उनका स्वरूप विकृत हो जाता है। ठीक यही हाल तीर्थ परम्परा का हुआ है। जहाँ पहले प्राकृतिक दृश्य थे और वातावरण की शुद्धता थी, वहाँ अब शरीर की घिच-पिच और गन्दगी की भरमार हो गई है। प्रमुख देवालय भी आबादी की बढ़ोत्तरी के साथ ऐसे गली-कूचों में घुस गये, जहाँ धूप तक का प्रवेश नहीं हो पाता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब तो हर जगह व्यापार ही व्यापार है। देवालय तो यश लोलुपों ने वाहवाही के लिए भव्य भवन बना दिये हैं, पर वहाँ कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं है, जैसा पुरातन तीर्थों में था। न वहाँ गुरुकुल है, न आरण्यक, न सत्संग, न परामर्श-मार्गदर्शन, न शोध, न स्वाध्याय, न तप, न साधना और न देश-समाज के कल्याण का कोई कार्यक्रम। मात्र दीवारें और प्रतिभाएँ दीख पड़ती हैं।

लोग भी एक प्रकार से तीर्थ यात्रा के महत्व के साथ जुड़े हुए कारणों को पूरी तरह भूल गये हैं। उनकी तलाश भी नहीं करते। प्रतिमाओं के दर्शन और जलाशयों का स्नान, बस इतना ही तीर्थ सेवन रह गया है। लोग पिकनिक, पर्यटन की तरह इधर-उधर घूमते रहते हैं और जहाँ स्वादिष्ट भोजन देखते हैं, उन्हीं दुकानों पर टूट पड़ते हैं। तीर्थ पुरोहितों की गतिविधियों से सभी परिचित रहते हैं। वे इस प्रकार पीछे लगते और हैरान करते हैं कि रही बची श्रद्धा भी समाप्त हो जाती है और सोचते हैं यहाँ की अपेक्षा दूसरे शहर में चला गया होता तो अच्छा रहता। स्थानीय जनसंख्या बढ़ जाने और आगन्तुकों की भीड़-भाड़ रहने से अपेक्षाकृत ऐसे स्थानों पर गंदगी का बढ़ना स्वाभविक है। ऐसी दिशाभूल जैसी मनःस्थिति में घूमने वाली जनता को चोर, उठाईगीरे, जेबकट भी अपना शिकार बनाने से नहीं चूकते। इतनी भीड़ में कहाँ ढूँढें ? किससे पूछे ? समय की बर्बादी और भविष्य में अधिक घाटे की संभावना देखकर लोग जल्दी ही चल पड़ने की तैयारी करते हैं। भाग-दौड़ में जितना कुछ यहाँ-वहाँ देख लिया, उसी में संतोष करते हैं।

तीर्थों में जब पुरातन आकर्षण ही न रहा, वहाँ कोई हृदयग्राही गतिविधियाँ ही नहीं चलती, तो लोग कहाँ टिकें ? जहाँ भी जाया जाय वहीं घूम फिरकर पैसे की याचना। जिन कारणों ने तीर्थों के प्रति भावभरा आकर्षण बढ़ाया था, जब वे आधार ही नहीं रहे, तो जन साधारण की श्रद्धा क्यों कर उमड़े ? जहाँ-तहाँ जेब कटाते-फिरने के उपरान्त लोग जब ऊब और खीज जाते हैं तो सोचते हैं कि यहाँ व्यर्थ ही आये। प्रतिमा दर्शन और जलाशय स्नान के इस बुद्धिवादी युग में किसी का समाधान नहीं होता। उस पर भी पाई-पैसा चढ़ा कर कल्पना करते हैं कि शायद इतने भर से ही तथाकथित स्वर्ग-मुक्ति का लाभ मिल जाता होगा। मन को समझाने पर भी अविश्वास और असंतोष भरा असमंजस बढ़ता ही जाता है।

इस स्थिति को बदलते जाने की आवश्यकता समझी गई। जीर्णोद्धार अनिवार्य प्रतीत हुआ, अन्यथा कारणवश बढ़ती हुई अश्रद्धा इन धर्म केन्द्रों का इतिहास भी उपेक्षा के गर्त में फेंक देगी। जिसके कारण इन्हें इतना श्रेय मिला था, शास्त्रकारों ने जिनका मुक्त कंठ से गुणानुवाद गाया था और जिनके साथ सम्पर्क जोड़ने में जनता का हित साधन समझा था, यदि अपना गौरव और आधार गँवा बैठेंगे तो लोगों को उनके प्रति श्रद्धा बनाये रहने की आशा करना व्यर्थ हो जायेगा।

भारत में अनेकों तीर्थ हैं। उनके पीछे किन्हीं ऐतिहासिक घटनाओं का भी सम्बन्ध है। यदि प्रयत्न किया जाय तो इस इतिहास को मात्र चमत्कार या देवताओं का हास-विलास न बताकर इतिहास को ऐसा स्वरूप दिया जा सकता है, जिसे सुन-समझ कर लोग अपने जीवन में उन प्रेरणाओं के आधार पर उत्कृष्ट आदर्शवादिता का अभिवर्धन करें, पवित्र और प्रखर बनें, कुछ सीखें और कुछ अपनायें। पर ऐसी कोई व्यवस्था वर्तमान तीर्थ स्थानों में दीख नहीं पड़ती।

इस अभाव को दूर करने की आवश्यकता है। प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक स्थानों का नव निर्माण या जीर्णोद्धार आवश्यक है। साथ ही उनमें ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति होनी चाहिए, जो यात्रियों के साथ घूमकर उन्हें प्रस्तुत तीर्थ की प्रेरणाएँ अपनाने के लिए भावना उभारें। पर अब तो यह भी नहीं होता। प्रतिमा के सामने एक अर्धमृत पुजारी बैठा रहता है। पानी का चरणामृत बाँटता रहता है। पैसे बटोरता रहता है और सवेरे-शाम घंटा-घड़ियाल बजाकर पूजा आरती की बेगार भुगत देता है।

इस बिडम्बना को चलाते रहने से काम बनने वाला नहीं है। हमें ईसाई चर्चों से उनकी कार्य पद्धति सीखनी चाहिए, जिसके पीछे कुछ निश्चित उद्देश्य और निर्धारित कार्यक्रम होता है उसी कारण उनका धर्म संसार के एक तिहाई लोगों ने अपना लिया है। हमारे यहाँ लाखों की संख्या में देवालय और प्रायः उतने ही पुजारी भी हैं, पर धार्मिक आस्था ही नहीं घटती जाती, वरन् हिन्दू समुदाय की संख्या भी घटती जा रही है। अपने धर्म में उन्हें जब कुरीतियों और विडम्बनाओं के अतिरिक्त दूसरा कुछ दीखता ही नहीं तो उनकी रुचि अन्य प्रगतिशील धर्मों की ओर ढुलकना नितान्त स्वाभाविक है। हमें अपने धर्म को पुरातन स्तर पर ले जाना होगा। उसके उद्देश्य और आदर्शों को समझना-समझाना होगा और देवालयों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन जागृति का केन्द्र तथा तीर्थों को उस स्तर का बनाना होगा, जिस गरिमामयी स्थिति में वे पुरातन काल में रहे हैं। उनकी ख्याति प्रतिमाओं या जलाशयों पर निर्भर नहीं रही है, वरन् वह कार्यपद्धति प्रधान रही है जिसकी उपयोगिता-आवश्यकता का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए लोग उनके साथ जुड़े रहें। जिनके कारण वे स्थान संस्कारित बने।

स्मरण रहे, उपयोगिता और उत्कृष्टता में वह आकर्षण है, जिसे देखने परखने के उपरान्त लोग उसे अभावग्रस्त नहीं रहने देते। उसकी उचित आवश्यकताएँ लोक श्रद्धा के सहारे सुनिश्चित रूप से पूरी होती रहती हैं। जहाँ ठग सोना बटोरते हैं वहाँ सत्प्रयत्नों के लिए एक मुट्ठी अनाज भी न मिले, ऐसा नहीं हो सकता।

वस्तुत: तीर्थ दर्शन के लिए जाने वालों का धर्म प्रयोजनों से सम्बन्धित जो भी नमन वेदियाँ देखने को मिलें उनके इतिहास, उद्देश्य का परिचय प्राप्त करना चाहिए और सोचना चाहिए कि इस अवसर पर उस दृश्य दर्शन से क्या प्रेरणा मिलती है और परिशोधन परिष्कार के सन्दर्भ में क्या उत्साह उत्पन्न करती हैं। यों भिन्न-भिन्न तीर्थ देवालयों के साथ अपने-अपने निमित्त कारण एवं घटना क्रम भी जुड़े हुए हैं किन्तु तथ्यत: उनमें से अधिकांश की पृष्ठभूमि एक ही है। (१) कोई महामानव तपस्वी वहाँ रहे हों और आत्मकल्याण, लोककल्याण के पुण्य प्रयोजनों में निरत रहे हों। (२) किसी देवता ने किसी साधक की सदाशयता से प्रसन्न होकर उसे वरदान सहयोग दिया हो। (३) कोई ऐसी घटना घटित हुई हो जिसमें आदर्शवादिता अपनाने, परमार्थ के लिए कोई त्याग बलिदान का इतिहास हो। (४) कोई महत्त्वपूर्ण निर्धारण या शुभारम्भ समापन हुआ हो। (५) किसी महामानव का जन्मस्थान या महान क्रियाकलापों का कार्यक्षेत्र रहा हो। (६) उस स्थान की अपनी प्राकृतिक विशेषता रही हो, इसी परिधि में प्राय: हर तीर्थ की स्थापना, परम्परा, गरिमा का मूल्यांकन किया जा सकता है।

आज भी पुरातन काल के तीर्थ यों इमारतों के रूप में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं, पर अभाव उन सत्प्रवृत्तियों का बढ़ गया है, जो कभी तीर्थों का प्राण थीं। आवश्यकता अनुभव की गई की कम से कम एक तीर्थ ऐसा होना चाहिए, जिसकी गतिविधियों का दर्शन करने से सामान्य बुद्धि के लोग भी यह अनुमान लगा सकें कि तीर्थों का इतना महत्त्व क्यों मिला? प्राचीन काल में उनकी विशिष्टता एवं उपयोगिता क्या रही होगी जिसकी ख्याति भर शेष रह जाने की स्थिति में भी लाखों, करोड़ों व्यक्ति उनमें पहुँचते व अरबों धनराशि खर्च करते हैं।

गायत्री तीर्थ शान्ति कुञ्ज में यही प्रयत्न किया गया है। उसके तीर्थ कक्ष में देवात्मा हिमालय की विशालकाय प्रतिमा है। नीचे भगवती भागीरथी का दिव्य दर्शन है। गंगा लाने वाले भागीरथ और उसके प्रवाह को वेगवान बनाने वाले परशुराम की प्रतिमाएँ दोनों के पूजा प्रहरियों की तरह प्रतिष्ठित हैं हिमालय जैसी प्रखरता परशुराम में और गंगा जैसी पवित्रता भागीरथ में देखकर इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि अध्यात्म विभूतियों की उपलब्धि इन्हीं के इर्द-गिर्द भ्रमण करती है।

तीर्थों की पवित्रता अपेक्षाकृत उत्तराखण्ड में अभी भी अधिक है। इसलिए उनमें विद्यमान प्राय: सभी तीर्थों के चित्र नयनाभिराम छोटे देवालयों के रूप में विनिर्मित किए गए हैं। साथ ही देश के विभिन्न भागों में विद्यमान मूर्धन्य तीर्थों के चित्र ऋषि परम्परा के अन्तर्गत चल रही गतिविधियों के साथ प्रतिष्ठित कर दिये गये हैं।

तीर्थ यात्रा के लिए उनके स्थानों पर जाया जा सके तो उत्तम अन्यथा वह प्रयोजन प्रस्तुत तीर्थ में प्रतिष्ठित देश के सभी प्रधान तीर्थों का दर्शन करके भी होता रह सकता है। प्रेरणा एवं भावना ही प्रधान है, प्रतीक पदार्थों का उतना महत्त्व नहीं। ऐसी स्थिति में गणेश जी द्वारा रामनाम की परिक्रमा करके बाजी जीती जा सकती है और तीर्थ दर्शन से जितना पुण्य फल हो सकता है उसका लाभ अन्य परिभ्रमण करने की अपेक्षा शान्ति कुञ्ज में थोड़े से स्थान में कम नहीं अधिक मात्रा में ही पाया जा सकता है, क्योंकि इस तीर्थ में दर्शन कराने के अतिरिक्त उनकी प्रेरणाओं से अवगत एवं हृदयंगम कराने वाली ऐसी व्यवस्था मौजूद है, जैसी अन्यत्र कदाचित् ही कहीं दृष्टिगोचर हो सके।

तीर्थ चेतना को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता

लोगों की मोटी दृष्टि से मात्र साधनों का महत्त्व है, ये सुविधा चाहते और सज्जा-सम्पदा के आकर्षणों पर भागे-भागे फिरते हैं। जीवन इसी तृष्णा में कस्तूरी हिरन की तरह अतृप्त रहते, निराशा में खीजते, दु:ख दुर्भाग्य का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोना रोते, कोल्हू के बैल की जैसी उपेक्षा, अवज्ञा एवं थकान सहते हुए मौत के दिन पूरे करते हैं। इतने पर भी लोभ और मोह के निविड भवबन्धन न छूटते हैं और न टूटते, अपने बुने मकड़ी के जाले में ही लोग उलझते-सुलझते, रोते-कलपते किसी प्रकार समय गुजारते हैं। न वासना पूरी होती है न तृष्णा की आग बुझती है। पेट प्रजनन की दुहाई देते-देते दम तोड़ने वाले अपनी ललक लिप्सा में असंख्यों को पतन पराभव के गर्त् में धकेलते रहते हैं।

आज की चतुरता और सफलता इसी कुचक्र में डूबती उबरती अपनी क्षुद्रता एवं अदूरदर्शिता का भर्त्सना भरा इतिहास ही पीछे वालों के लिए छोड़ जाती है किन्तु प्राचीनकाल में ऐसा न था। उस सतयुगी माहौल में सभी का ध्यान इस धारणा पर केन्द्रित था कि व्यक्तित्व में देवत्व का अनुपात बढ़ाने वाली प्रेरणा कहाँ पाई और वह प्रक्रिया किस प्रकार अपनाई जाय। इस आवश्यकता की पूर्ति में तीर्थों के अतिरिक्त और कोई प्रभावशाली माध्यम था नहीं। अतएव विचारशील वर्ग का हर व्यक्ति इस प्रयत्न में रहता था कि उसे तीर्थों का सान्निध्य किस प्रकार कितने अधिक समय तक उपलब्ध हो सके। बालकों को शिक्षा से भी अधिक दीक्षा की अवश्यकता पड़ती है। शिक्षण ही नहीं वातावरण भी—वातावरण भी नहीं अभ्यास भी मनुष्य की सुसंस्कारिता बढ़ाने में आवश्यकता को पूर्ण करते थे। फलतः छात्रों के उन आश्रमों का भरपूर लाभ मिलता रहता था। ढलती आयु का हर व्यक्ति वानप्रस्थ में प्रवेश करते हुए जीवन की सार्थकता अनुभव करता था और नये ढंग, नये स्तर का, नया जीवन जीने के लिए आवश्यक प्रकाश प्राप्त करने के लिए तीर्थों में पहुँचता था। यह आरण्यक ही विश्व भर के लिए मुनि मनीषी, ऋषि, तपस्वी, स्तर की प्रतिभाओं को विनिर्मित करते और समस्त संसार की समस्याओं के समाधान की उच्चस्तीय व्यवस्था बनाते थे। वानप्रस्थ अनुभव करते थे कि उनने ढलती आयु में ही जीवन का सच्चा आनन्द लिया है। आरण्यक ऐसे ही नर-रत्नों की खदान थे।

तीर्थों में गुरुकुल आरण्यक ही नहीं गृहस्थों की उस आवश्यकता को भी पूर्ण करने वाले उन्हें पारिवारिकता विकसित करने तथा प्रयोगशाला में परिणत कर सकने में सक्षम भी बनाते थे। घर परिवार को यदि सुव्यवस्थित सुसंस्कृत बनाया जा सके तो निश्चय ही पूर्वकाल की तरह धरती पर बसे हुए छोटे-छोटे स्वर्ग बन सकते हैं।

गुरुकुल के छात्र और आरण्यकों के वानप्रस्थ लम्बे समय तक निवास करने जाते थे और परिपक्व बनने के उपरान्त कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने के लिए विदाई लेते थे किन्तु गृहस्थी की स्थिति इन दोनों में सर्वथा भिन्न होती है, वे अजीविका उपार्जन एवं परिवार व्यवस्था के अनेकानेक उत्तरदायित्वों को निभाते हुए लम्बे समय तक बाहर रहने की स्थिति में नहीं होते। वे ऐसी तीर्थ प्रक्रिया का ही लाभ ले सकते हैं जो स्वल्प-कालीन हो।

प्राचीन काल में तीर्थ सेवन की प्रक्रिया इसी स्तर की थी। उसमें एक साथ कई उद्देश्यों का समावेश रहता था। बहुत समय तक एक ही स्थान पर रहते-रहते एक ही वर्ग का जीवन जीते-जीते जो ऊब आती है उसे दूर करने के लिए कभी-कभी कुछ समय का पर्यटन भी मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक होता है। इसके लिए इन दिनों भी समीपवर्ती 'पिकनिक' और दूरवर्ती पर्यटन की व्यवस्था लोग अपने-अपने ढंग से करते रहते हैं। इस मनोरंजन के साथ ही यदि समाधान एवं अनुदान की उच्चरीय व्यवस्था जुड़ सके तो समझना चाहिए कि स्वर्ण सुगन्ध जैसा सुयोग बन गया। तीर्थ स्थान इस आवश्यकता को पूर्ण करते थे।

खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः सम्पादित करने के लिए इन दिनों आम जलवायु के स्थानों पर निवास करने, पूर्ण विश्राम लेने तथा सेनेटोरियमों का उपचार पाने का खर्चीला प्रबन्ध बड़े लोग करते रहते हैं। सो भी वह प्रबन्ध शारीरिक स्वास्थ्य लाभ भर का हो पाता है। इससे भी बड़ी वस्तु है—मानसिक स्वास्थ्य। वह इतना महत्त्वपूर्ण है जिस पर बलिष्ठता को भी निछावर किया जा सकता है, सेनेटोरियमों में कहीं भी मानसिक स्वास्थ सम्बर्धन का प्रबन्ध नहीं है। बहुत हुआ तो कश्मीर जैसे स्थानों पर उथले मनोरंजनों में कुछ दिन मन बहलाया जा सकता है। लौटने पर वह विनोद नये किस्म की ललक उत्पन्न करता और आदतें बिगाड़ता है। तीर्थों की यह विशेषता थी कि जहाँ मानसिक तनाव दूर करने वातावरण बदलने एवं विश्रान्ति देने में समर्थ होते थे, वहाँ उनका दूसरा पूरक पक्ष यह होता था कि न केवल छिद्रों को भरे वरन् ऐसी स्थापनाएँ भी करे जो निकट भविष्य में चन्दन के वृक्ष बनकर स्वयं को धन्य बनाने और समीपवर्ती वातावरण को सुगन्ध से भर दें। मनोरोगों, मनोविकारों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का उपचार करना एक बात है और मनःक्षेत्र में सुसंस्कारिता उगाना और चन्दन वन की तरह सुरम्य बना देना दूसरी। तीर्थ सेवन के लिए आने वाले गृहस्थ इन दोनों ही प्रकार के मानसिक लाभ प्राप्त करते थे।

संसार में तीसरे स्तर का श्रद्धा सम्बर्धन अन्तराल का काया कल्प, संचित कुसंस्कारिता का निराकरण, दृष्टिकोण में उत्कृष्टता का समावेश, अनगढ़ वर्तमान का सुखद भविष्य के साथ संयोजन। यह सभी प्रक्रियाएँ शारीरिक मानसिक न होकर विशुद्ध आध्यात्मिक हैं। उस क्षेत्र को 'कारण शरीर' भी कहते हैं। चमत्कारी अतीन्द्रिय क्षमताएँ इसी क्षेत्र में प्रसुप्त पड़ी रहती हैं। उन्हें साधन उपचारों से कुरेदा उभारा जा सके तो ऐसे प्रतिफल दृष्टिगोचर होते हैं, जिन्हें मनुष्य में देवत्व के उदय की संज्ञा दी जा सके। कहना न होगा कि इस दिशा में प्रगति का मार्ग रोकने वाले वे पाप कर्म होते हैं जो पतन पराभव और संकट बन कर फलित होने वाले हैं। वे आध्यात्मिक आकांक्षाओं को निरुत्साहित करते रहते हैं और साधना मार्ग को अवरुद्ध करने वाले तरह-तरह के विघ्न उपस्थिति करते रहते हैं।

आध्यात्मिक साधनाओं में प्राथमिकता 'प्रायश्चित तप' की दी गई है। पूजा उपचार पर प्रारब्ध कर्मों का निराकरण नहीं होता, मात्र उनका नया निर्माण रुकता है। क्रियामाण कर्मों की लम्बी दण्ड श्रृंखला से बचने का एक मात्र उपाय उपचार है—'प्रायश्चित'। प्राचीन काल में लोग पापों का प्रायश्चित करने के लिए तीर्थों में जाते थे। आज तो इतना भर समझा जाता है कि देवदर्शन, जल स्नान भर से पाप छूट जाते हैं, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं उसके लिए ऐसी तप साधनाएँ करनी पड़ती हैं जो दुष्कर्म की खाई को उसी स्तर के तप पुण्य से पूरी कर सकने में समर्थ हो सके। पापों के प्रतिफल इससे कम में नहीं छूटते। प्राचीनकाल में इस तथ्य को भली प्रकार समझा जाता था और क्रियामाण का निराकरण करने के लिए तीर्थों के उपयुक्त वातावरण में रोग के अनुरूप उपचार की नीति अपनाकर प्रायश्चित तप का निर्धारण किया जाता था।

इन पंक्तियों में गुरुकुलों और आरण्यकों की उस व्यवस्था की चर्चा नहीं की जा रही है जिसमें लम्बे समय तक निवास तथा अभ्यास करने की आवश्यकता पड़ती है। चर्चा का विषय सामान्यजनों की 'तीर्थ सेवन' प्रक्रिया है जिसमें कम समय में अधिक प्रयोजनों की पूर्ति होती है। 'तीर्थ सेवन' के लाभों में एक रसता की ऊब से छुटकारा पाने और नवीनता का आनन्द लेने के मानवी स्वभाव की पूर्ति होती है। तीर्थ क्षेत्र में फैले हुए अनेकानेक ऐतिहासिक पौराणिक स्थानों को देखकर उनकी प्रेरणाओं से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है। यदि तीर्थ जीवन्त है। वहाँ की गतिविधियाँ तथा प्रेरणाएँ प्राणवान हैं तो उस वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है। यदि तीर्थ संचालक मनीषी, मुनि और तपस्वी ऋषि है तो उनके परामर्श, मार्गदर्शन एवं अनुदान वरदान का लाभ भी मिलता है। साथ ही इस अवधि में ऐसी साधनाएँ तपश्चर्याएँ करने का भी सुयोग बैठता है जो प्रायश्चित का तीर्थ उद्देश्य पूरा कर सके और आत्म-विकास की दृष्टि से फलप्रद सिद्ध हो सके। ऐसे-ऐसे और भी अनेकों प्रत्यक्ष परोक्ष लाभ हैं जो तीर्थ यात्री के लिए उस प्रकरण में लगाये गये श्रम, समय एवं धन की तुलना में असंख्य गुने लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। यह तथ्य प्राचीन काल में सर्वविदित थे। फ़लस्वरूप तीर्थयात्रा पर जाने वालों को, लौटकर आने वालों का भावभरा स्वागत होता था उस प्रयास को दूरदर्शिता समझा और भूरि-भूरि सराहा जाता था।

यही है वे तथ्य जिन्हें ध्यान में रखते हुए तत्वदर्शी महामनीषियों ने तीर्थ प्रक्रिया को जन्म दिया। उनके निर्माण में साधन सम्पन्नों को दबाया। धर्म क्षेत्र के मूर्धन्यों को तीर्थयात्रा करके लोक शिक्षण की उपयोगी मुहीम सम्भालने के लिए सहमत किया। साथ ही जनसाधारण को वहाँ पहुँचने को पुण्य फलदायक बताकर उकसाया। उनका जो विशाल विस्तार दीखता है वह उसी ऋषि चेतना का निर्धारण एवं प्रयास है। इनके पीछे काम करने वाली दृष्टि एवं योजना को जितना सराहा जाय उतना ही कम है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि मूल निर्धारण और वर्तमान स्वरूप में क्या अन्तर है। स्थिति को देखते हुए उसे जमीन-आसमान ज़ितना भिन्न-विपरीत कहा जा सकता है। कलेवर तो लगभग मिलते-जुलते हैं, पर अन्तर थोड़ा-सा ही है जितना जीवित और मृतक में होता है। प्राणान्त हो जाने पर भी काय-कलेवर की आकृति प्रायः पूर्ववत् ही बनी रहती है, पर अन्तर यह बन जाता है कि जीवन के अभाव में वह काया से उस व्यक्ति की सत्ता का भान होता है। इतने पर भी उस लाश से किसी हलचल या उपलब्धि की आशा नहीं की जा सकती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच तो यह है कि जीवन विहीन शरीर सड़ने, गलने लगता है। कृमि कीटकों से लेकर चील, कौएँ उसे कुतरने लगते हैं। साथ ही दुर्गन्ध भरा वीभत्स दृश्य उभारता चला जाता है। इस दयनीय दुर्दशा से उसे बचाने के लिए अग्नि, जल या भूमि को समर्पित करते हुए अन्त्येष्टि का उपक्रम बनाना पड़ता है। जो बात मृत शरीर के सम्बन्ध में लागू होती है वही संस्थानों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। देवालय कभी जन जागृति के केन्द्र थे। अब उनकी प्राण चेतना समाप्त हो जाने से प्रतिमा पूजन भर शेष रह गया है। खण्डहरों में जिस प्रकार चमगादड़ अठावील, उलूक, मकड़े साँप, बिच्छू ही नहीं भूत-पलीत तक घर बनाने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार उद्देश्यों का परित्याग करने वाले संस्थान भी दुर्दशा ग्रस्त होते चले जाते हैं। भले ही वे कोई संगठन हों, परिवार हों, देवालय हों अथवा तीर्थ हों।

यदि तीर्थों में ऋषि प्रणीत चेतना बनी रहती, योजना क्रियान्वित होती रहती तो निश्चय ही उनका वह स्वरूप भी कायम रहा होता जिसके सम्मुख सभी का मस्तक श्रद्धावनत होकर शत-शत नमन करता है। उस उपयोगिता से लाभान्वित होने वाले अपना प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थिति करके उस प्रक्रिया को अपनाने का उत्साह भरते थे। फलतः तीर्थयात्रियों की न केवल संख्या बढ़ती थी वरन् उनकी प्रतिष्ठा भी होती थी। जहाँ तीर्थयात्री ठहरते वहाँ लोग निवास की धर्मशाला, अन्नक्षेत्र, जलाशय उद्यान एवं सेवा सुश्रूषा का प्रबन्ध करके सुविधा बढ़ाने का भरपूर प्रयत्न करते थे। तीर्थ संचालकों को उस व्यवस्था के चलाने में किसी प्रकार की कठिनाई न पड़ने पाये इसलिए उदारमना कुछ न कुछ दान-दक्षिणा प्रस्तुत करके अपनी भाव श्रद्धा को प्रकट पल्लवित भी करते थे।

पुरातन को मृतक समझ कर उसकी आत्मा का श्राद्ध तर्पण करने से काम नहीं चलेगा। अभी उसमें जीवन बाकी है और इतनी गुंजायश मौजूद है कि पुनर्जीवन का, जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया जा सके। राख से ढका अंगार काला और ठण्डा दीखता है पर, उसे कुरेदने तथा ईंधन जुटाने से लपटें उठते भी देर नहीं लगती। तीर्थ चेतना का निर्धारण एवं इतिहास इतना महान है कि थोड़े से प्रयास से उसका जीर्णोद्धार हो सकता है। युग मनीषियों का कर्तव्य है कि वे इस महान परम्परा को दलदल में फँसी दुर्दशा से उबारें और उसे प्राचीन काल के स्तर तक पहुँचाने का नये सिरे से प्रयास करें।

निस्संदेह तीर्थ प्रक्रिया की महान स्थापना का प्रतिपादन, प्रचलन जब हुआ होगा तो उसकी प्रतिक्रिया से न केवल भारत भूमि को धन्य बनने का अवसर मिला होगा? वरन् उसके आलोक का लाभ समस्त संसार को मिला होगा। इन पुण्य तीर्थों का दर्शन एवं सेवन करने के लिए संसार भर से भाव सम्पन्न व्यक्ति यहाँ आते देखते, ठहरते और लाभान्वित होकर वापिस चले जाते थे। इसका विवरण प्रामाणिक इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। ईसा इसी तीर्थयात्रा के लिए आये थे और कुछ समय उन ऊर्जा केन्द्रों में निवास करने के उपरान्त ईश्वर के पुत्र बनकर वापिस लौट गये थे। भारत भूमि उन दिनों अब जितनी छोटी नहीं थी। वृहत्तर भारत लगभग समूचे एशिया भूखण्ड में फैला हुआ था। उसका आलोक सूर्य की तरह अपनी आभा और ऊर्जा धरती के प्रत्येक भाग में बखेरता होगा। उस सतयुग स्वर्णयुग की स्थापना में बहुत बड़ा भाग निश्चित रूप से तीर्थ प्रक्रिया का रहा होगा।

यहाँ यह तथ्य भी पूरी तरह ध्यान में रखे जाने योग्य है कि तीर्थ तत्व किसी देवालय नदी, सरोवर या पूजा कृत्य तक सीमित नहीं है। यह उसके बाह्य कलेवर मात्र हैं। प्राण तो वह विधि व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत प्राणवान ब्रह्मवेत्ता इन स्थानों में रहकर व्यापक जन सम्पर्क की योजना लोक चेतना में गहराई तक धर्म धारणा की प्रतिष्ठापना के लिए सर्वतोमुखी प्रयत्न करते थे। इन प्रयत्नों को आत्मिक स्वास्थ्य सम्वर्धन के सेनेटोरियमों के व्यापक क्षेत्र में भाव हरीतिमा उत्पन्न करने वाले मेघ मण्डलों के ऊर्जा उत्पादन और वितरण के लिए बने बिजलीघरों के रूप में गतिशील देखा जा सकता था। यदि उस प्रयत्नशीलता को हटा दिया जाय तो निष्प्राण कलेवर सड़ते-गलते इसी स्थिति में पहुँच सकता है। जिसमें कि आज वह पहुँच चुका हुआ दृष्टिगोचर होता है।

कलेवर का अपना महत्त्व है आवरण की भी आवश्यकता है। उपकरणों के बिना भी काम नहीं चलता, पर इस तथ्य को भली-भाँति जान लेना चाहिए कि आवरण, उपकरण, साधन तभी कारगर होते हैं जब उनका उपयोग कोई क्रिया कुशल प्राणवान कर रहा हो ऐसा सुयोग न बने तो समझना चाहिए कि साधन उपकरणों की उपयोगिता दर्शनीय वस्तु से अधिक और कुछ न रहेगी। तीर्थों की गरिमा इसलिए नहीं थी कि वहाँ देवालय बने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए थे—प्रकृति सान्निध्य था, जलाशयों की शोभा सुषमा थी। ऐसा प्रकृति सौन्दर्य एवं दर्शनीय आकर्षण तो कहीं भी हो सकता है या उत्पन्न किया जा सकता है। इतने मात्र से उसे तीर्थ कौन कहेगा ?

तीर्थ तो श्रद्धा के प्रतीक हैं। श्रद्धा वस्तुओं से नहीं उत्कृष्ट व्यक्तित्वों द्वारा संचालित आस्थाओं का सम्वर्धन करने वाले किये गये क्रिया-कलापों द्वारा ही उत्पन्न होती है। तीर्थों के बाह्य कलेवर जितने बड़े थे और उसमें भी असंख्य गुनी महानता उनमें भरी रहती थी। महत्त्व डिब्बी का नहीं उसमें रखी हुई अँगूठी का होता है। बिकता छिलका नहीं धान-चावल है। धान तो उसके ऊपर-लिपटा भर होता है। मूल्यांकन मनुष्य का किया जाता है। पोशाक तो उसकी शोभा सज्जा के लिए होती है। पोशाक के आधार पर किसी को महत्त्व नहीं मिल सकता। सच तो यह है कि बिना पोशाक के भी महानता अपने गौरव को अक्षुण्ण रख सकती है। अच्छा व्यक्तित्व, अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा आच्छादन का सुयोग मिल सके तब तो कहना ही क्या है। इतने पर भी यह तथ्य अपने स्थान पर अडिग है कि गरिमा उत्कृष्टता सम्पन्न व्यक्तित्व की है। उसी की शोभा बढ़ाने में आवरण का उपयोग होता है।

तीर्थों में देवालयों को भव्यता, जलाशयों की शोभा, दर्शकों को आकर्षित करने वाली विचित्रता, किन्हीं स्थानों को दर्शनीय बनाये रह सकती है। कौतूहलवश पर्यटकों का आवागमन वहाँ रह सकता है। इसमें विनोद के बदले अर्थतन्त्र का परिभ्रमण का लाभ सम्बद्ध लोगों को मिलता रह सकता है। पर्यटक विनोद खरीदें और उस आवागमन से कुछ लोग—व्यावसायिक लोग लाभ उठायें इतना उपक्रम ही यदि तीर्थों के द्वारा पूरा हो सके तो समझना चाहिए कि किसी कलात्मक प्रतिमा का उपयोग तराजू में रखे बटखरे जैसा हो रहा है। ऐसा कुछ चलता रहे और प्रतिमा का उपयोग तोल नाप में होता रहे तो इसमें प्रतिमा निर्माता को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हो सकता। उसे गढ़ने में जिस प्रतिभा, तन्मयता, श्रमशीला, कलाकारिता का उपयोग हुआ था उसकी सार्थकता तो तब थी जब उसे दर्शकों की कला बुद्धि को आनन्द मिला होता। तीर्थों पर ऋषियों की दूरदर्शी योजना एवं उनके निर्माताओं का उदार योगदान तभी सफल समझा जा सकता है जब उन केन्द्रों के द्वारा धर्म चेतना उत्पन्न करने वाले, प्राणवान प्रयत्नों से ओत-प्रोत हों।

तथ्य को समझा जा सके तो तीर्थों के विद्यमान विशालकाय कलेवर में प्राण फूँकने की आवश्यकता अनुभव होगी। असाध्य रुग्णता की स्थिति दुःखद है। मरना हो तो मौत आये। जीना हो तो शक्ति रहे। चारपाई पर सड़ना किसी के लिए प्रसन्नतादायक नहीं। महान प्रयोजन सिद्ध कर सकने के उद्देश्य से बनाये गये और अभीष्ट प्रयोजन सिद्ध कर सकने में पूर्णतया सुविधा सम्पन्न तीर्थों का उपयोग यदि सही रूप से न हो सके तो उसे दुर्भाग्पूर्ण ही कहा जायगा और समझा जायगा कि विचारशीलता, जागरूकता और सुव्यवस्था बनाये रहने की प्रतिभा का मूर्धन्य वर्ग में से पलायन हो गया। प्रचुर साधनों के रहते हुए उनका सदुपयोग न बन सकना यही सिद्ध करता है कि विवेक और पौरुष के हाथों से लोक नेतृत्व कर सकने वाली क्षमता छिन गई। इसे अपने युग की दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना ही कहा जायगा।

प्रस्तुत आस्था संकट ही मनुष्य के आन्तरिक पिछड़ेपन का प्रधान कारण है। उसी के कारण व्यक्ति में दुष्टता और समाज में भ्रष्टता का अनुपात बढ़ता चला जा रहा है। आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, शासकीय, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में अगणित समस्याएँ बढ़ती और उलझती जाती हैं। समाधान ढूँढने वाले एक छेद को बन्द नहीं कर पाते कि दस नये छेद और फूट पड़ते हैं। यह क्रम तब तक चलता ही रहेगा जब तक समस्त विकृतियों के आधारभूत कारण आस्था संकट के निराकरण के लिए कारगर उपाय न किये जायें।

अर्थ-व्यवस्था सुधारने, उपयोगी कानून बनाने, सुविचार फैलाने जैसे प्रयत्नों की उपयोगिता भी है और आवश्यकता भी, पर ध्यान रखा जाय व्यक्तित्व का उद्गम मनुष्य के अन्तःकरण की गहराई में सन्निहित है। वहाँ तक न अर्थ साधन पहुँचते हैं, न कानून, न शिक्षण। उस गह्वर तक मात्र श्रद्धा का प्रवेश हो सकता है। दूसरी वस्तु का प्रवेश है ही नहीं। उच्चस्तरीय श्रद्धा का उत्पादन धर्म चेतना के माध्यम से ही अन्तःकरण के कर्मस्थल में सम्भव हो सकता है। इस विशेष काम को प्रखर धर्मनिष्ठा के अतिरिक्त और कोई कर नहीं सकता। धर्म अर्थात् आदर्श। आदर्शों का समझना समझाना तो वाणी और लेखनी के माध्यम से भी हो सकता है किन्तु उन्हें अन्तराल की गहराई में स्थिर रूप से प्रतिष्ठापित कर सकना मात्र धर्म धारणा के लिए ही सम्भव है। आदर्शवादी आस्थाओं को दृढ़तापूर्वक अपनाये रहने वालों को निहित रूप से धर्मात्मा ही कहा जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उच्चस्तरीय आदर्शों को व्यवहार में उतारने की विधि व्यवस्था और पुण्य परम्परा को धर्म कहते हैं। उसे स्वाध्याय, सत्संग, मनन चिन्तन आदि के द्वारा अपनाया जाता है। धर्मानुष्ठानों के सहारे उसे अभ्यास में उतारा जाता है। यह वैयक्तिक प्रयत्न हुए। सामूहिक एवं सुसंगठित रूप से उसे जनमानस में जगाने और जमाने के लिए जो कारगर उपाय ढूँढे गये हैं उनमें तीर्थ प्रक्रिया का असाधारण स्थान है उनमें चलने वाली गतिविधियों की प्रतिक्रिया बनाने के लिए अतीत के गौरव भरे इतिहास में प्रामाणिक साक्षी के रूप में पढ़ा जा सकता है।

युग सृजन अभियान में जनचेतना में उत्कृष्ट आदर्श वादिता का समावेश आधारभूत लक्ष्य है। उसी धुरी पर अनेकों रचनात्मक गतिविधियों का धर्मचक्र चल रहा है इन प्रयासों में एक महान कार्य तीर्थ तत्व को पुनर्जीवित करने का भी है। विडम्बनाओं से उन्हें मुक्ति मिल सके और धर्म चेतना जाग्रत कर सकने वाली तत्परता उसमें घुल सके तो समझना चाहिए कि उज्ज्वल भविष्य की संरचना का एक महत्त्वपूर्ण द्वार खुल गया।

युग की इस महती आवश्यकता को पूरा कैसे किया जाय? इसका सरल उत्तर तो यह है कि वर्तमान तीर्थ संचालकों से अनुरोध किया जाय कि वे अपनी व्यवस्था ऐसी बदलें कि उनमें तपःपूतमनीषियों की परम निस्वार्थ भाव से धर्मधारणा उत्पन्न करने वाली गतिविधियाँ चलने लगें। आशा की जा सकती है कि यदि वस्तुतः देवालयों का, धर्मसंस्थानों का उद्देश्य समझते होंगे तो सहज ही इस अनुरोध को स्वीकार कर लेंगे और चुटकी बजाते सब कुछ ठीक हो जायगा। तीर्थों की प्रक्रिया बदल जायगी और उनमें प्राचीनकाल जैसे दृश्य उपस्थिति होने लगेंगे।

इस आशा को उचित भी कहा जा सकता है और सराहनीय भी। किन्तु व्यवहार में यह नितान्त कठिन है जिसे लगभग असम्भव कह सकते हैं। धर्म संस्थानों से होने वाली आय, उनके आधिपत्य से तुष्ट होने वाली अर्हता का दबाव इतना अधिक है कि आज की स्थिति में उस प्रकार के परिवर्तन की तनिक भी सम्भावना नहीं है। स्वामित्व का मोह एक प्रकार का लाभ ही है और वह इतना प्रबल है कि मनुष्य अपनी निरुपयोगी वस्तुओं को भी किसी सत्प्रयोजन में देने के लिए तैयार नहीं हो सकता। जहाँ लोभ और मोह दोनों का समन्वय हो वहाँ तो फिर इस प्रकार का परिवर्तन और भी दुष्कर है। बहुत से धर्मस्थानों में अच्छी खासी आजीविका भी है और उसे गँवाने के लिए कोई क्यों तैयार हो? धर्म का शब्दाडम्बर गढ़ना एक बात है और स्वार्थों में कमी पड़ने देना बिलकुल दूसरी। भजन पूजन करने वाले अगणित लोगों में से ऐसे व्यक्ति उँगलियों पर ही गिनने जितने मिलेंगे जो अपने स्वार्थों में कमी पड़ना सहन कर सकें। यों चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा बढ़ाने के लिए धर्मधारणा का सृजन हुआ था पर उसकी आत्मा तो न जाने कहाँ चली गई। उथले कर्मकाण्डों तक ही सारी विडम्बना सीमित होकर रह गई है। वस्तुस्थिति को समझा जा सके तो उन प्रयत्नकर्ताओं की असफलता का कारण समझा जा सकेगा जो वर्तमान तीर्थों को साधन सम्पन्न, धर्म स्थानों को संकीर्ण स्वार्थपरता के बन्धन में से छुड़ाने और उन्हें धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए हस्तान्तरित करने का अनुरोध करते रहे हैं। ऐसे प्रयत्नों में नितान्त असफलता के साक्षी युगनिर्माण मिशन के सूत्र संचालक को माना जा सकता है उसने मन्दिरों को धर्म चेतना के प्रसार केन्द्र बनाने की दृष्टि से हर सम्भव उपाय किया है पर जिनके हाथ में उनका स्वामित्व है वे उसमें शिथिलता करने के लिए टस से मस न हुए।

अच्छा होता तीर्थ कलेवर में लगे वर्तमान साधनों का ही उपयोग धर्मधारणा की पुनर्जीवन प्रक्रिया के लिए हो सका होता। पर उसमें असफलता मिलने की सम्भावना दीखने पर अब यही कदम उठाया गया है कि युग तीर्थों का नव निर्माण किया जाय जिनकी गतिविधियों को ऐसा बनाया जाय जिससे जन साधारण को तीर्थों की गरिमा स्वीकार करने और उनसे लाभान्वित होने का पूरा-पूरा अवसर मिल सके। गायत्री तीर्थ निर्माण योजना गायत्री शक्ति पीठों की स्थापना के पीछे एक मात्र उद्देश्य यही है कि तीर्थ तत्व अपने असली रूप में पुनः जनसाधारण के सामने उपस्थित हो सकें, और प्राचीनकाल की उस पुण्य परम्परा को क्रियान्वित कर सकें जिससे भारत भूमि को, उसके महान पुत्रों की गरिमा को, गगन-चुम्बी बनाया था।

● ● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यात्म चेतना का ध्रुव केन्द्र

देवात्मा हिमालय

देवात्मा हिमालय, विशेषकर उत्तराखण्ड जिसे हिमालय का हृदय कहा जाता है, अध्यात्म विज्ञानियों की दृष्टि में दैवी चेतन सत्ता की निवास स्थली है। मोटी दृष्टि से वह बर्फ से आच्छादित एक पर्वत श्रृंखला है जो तिब्बत के पठार को भारतीय उपमहाद्वीप से अलग करती है। आल्पस् पर्वत की तरह ही स्थूल दृष्टि रखने वालों ने उसे एक हिमपर्वत माना है, जबकि भारतीय संस्कृति के विकास की दृष्टि से हिमालय का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाठकों को यह जानकारी यहाँ दे देना अप्रसांगिक नहीं होगा कि हिमालय का आर्य संस्कृति के उत्थान में कितना महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वह देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों की पुण्य स्थली रही है। उसी कारण उसे स्वर्ग कहा जाता हो तो यह गलत नहीं माना जाना चाहिए। ऐसे अनेकों भौगौलिक एवं नृतत्व विज्ञान सम्बन्धी तथ्य मिलते हैं जो इसका समर्थन करते हैं कि हिमालय का महत्त्व बृहत्तर भारत के सांस्कृतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। इतिहासकारों ने लिखा है कि आर्य मध्य एशिया से हिमालय की तराइयों में होते हुए नीचे उतरे और आर्यावर्त्त में बस गये। आर्यावर्त्त गंगा यमुना का दोआबा कहलाता था। आरम्भ में उसकी सीमा त्रिवेणी संगम तक थी। पीछे वह गया क्षेत्र तक बढ़ गई।

इतिहासकारों के अनुसार आर्यों का राजा इन्द्र कहलाता था और उनका पुरोहित बृहस्पति। हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र इन देवजनों की राजधानी थी। इन्द्र के तत्त्वावधान में कार्य करने वाले अन्य देवता भी हिमालय के इसी उच्च शिखर भाग में हरते थे। तब हिमालय ऊँचा तो था पर इतना ऊँचा नहीं कि उसकी ठण्डक असह्य हो और वृक्ष वनस्पति न होते रहे हों। इन दिनों जो स्थिति गंगोत्री क्षेत्र की है लगभग वही उस क्षेत्र की भी थी जिसे देवलोक कहते थे। शासकों, विद्वानों और वैज्ञानिकों के समुदाय उसी क्षेत्र में रहते थे। मौसम इतना ठण्डा न था जितना वहाँ इन दिनों है।

अब से १७ हजार वर्ष पूर्व पिछला हिमयुग आया था। पृथ्वी के बड़े भाग में बर्फ जम गई थी। समुद्रों में भी उथल-पुथल हुई। कितने ही भू-खण्डों में पानी भर गया था और महाद्वीप कटकर एक दूसरे से अलग हो गये थे। भू-भागों में कुछ नीचे हो गये, कुछ नीचे-ऊँचे। इस उलट-पलट का हिमालय पर भी असर पड़ा और मौसम पर भी। गंगोत्री और बद्रीनाथ शिखर ऊँचे उठ गये और ठण्डक की अधिकता से वृक्ष वनस्पतियों का भी अभाव हो गया। देव युग में ऐसा न था। मध्य एशिया से आर्यावर्त्त तक आवागमन की, रहन-सहन की सुविधा थी। इसी से आर्य मध्य एशिया छोड़ कर आर्यवर्त्त के उपजाऊ क्षेत्र में आ बसे।

मध्य एशिया का वातावरण उन दिनों अच्छा न था। असुर स्तर के लोग बहुत संख्या में उधर रहते थे। उनकी रीति-नीति का तालमेल आर्यों से न बैठता था। आये दिन देवासुर संग्राम ठने रहते थे। अन्त में यह क्षेत्र उनने खाली कर दिया। अधिक अच्छी भूमि जो उनने तलाश कर ली थी। उत्तराखण्ड का अपेक्षाकृत ऊँचा क्षेत्र इससे भी उत्तम था कि वह सुरक्षा के मध्यवर्ती किले का काम करता था। असुरों से लड़ना होता तो उन्हें ऊपर बसे हुए लोग आसानी से रोक सकते थे और नीचे धकेल देते थे।

यह इतिहासकारों का प्रदिपादन है। इसकी पौराणिक गाथा में भी संगति मिल जाती है। देवताओं का स्वर्ग कहाँ था? इसके लिए अलंकारिक भाषा में उसे ऊपर आसमान में कोई लोक विशेष कहा गया है। ऊपर आसमान—अन्तरिक्ष में बसा हुआ। पर उस कथन की तथ्यात्मक श्रृंखला नहीं मिलती। मनुष्यों का स्वर्गलोक से आवागमन किस प्रकार सम्भव हो सकता है? मरने के बाद स्वर्ग जाने की बात यदि ठीक है तो आये दिन वहाँ आगमन कैसे बन पड़ेगा? तथ्य यही कि गंगा का उद्गम जिस क्षेत्र में है और वहीं से कुछ आगे पीछे सरयू, यमुना आदि निकलती हैं। पंजाब के पंचनद जहाँ से निकलते हैं, उसी को तत्कालीन स्वर्ग कहा जा सकता है। अभी भी लेह तिब्बत आदि का मौसम ऐसा है, जहाँ मनुष्यों का आसानी से निर्वाह हो जाता है। पूर्वकाल का देवताओं का स्वर्ग बद्रीनाथ से तिब्बत तक फैला हुआ था। इस क्षेत्र के निवासी मूर्धन्य स्तर के थे। वे विज्ञान की प्रत्येक धारा में पारंगत थे। तत्त्व-दर्शन भी उनका प्रिय विषय था। उपर्युक्त सभी विशेषताओं के रहने से उस क्षेत्र का नाम स्वर्ग और निवासियों के नाम उनकी विशिष्टताओं के अनुरूप देवता कहा गया हो तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है। यदि ब्रह्माण्ड में कहीं अन्यत्र बुद्धिमान प्राणी रहते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होंगे तो उनके साथ भी उनकी घनिष्टता रही हो तो आश्चर्य नहीं। इस पृथ्वी पर यह चरम उत्कर्ष का क्षेत्र तो था ही। ज्ञान और विज्ञान का भण्डार होने के कारण इस प्रकार की उपमा दिया जाना कोई असंगत नहीं है। उनका लोक-लोकान्तरों की प्रतिभाओं के साथ आदान-प्रदान चलना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन दिनों महान् विद्याओं, कलाओं, विभूतियों का भण्डार रहने की बात समझ में भी आती है।

नारद जी स्वर्ग लोक में विष्णुजी से महत्त्वपूर्ण समस्याओं के सम्बन्ध में विचार विमर्श हेतु बहुधा आते-जाते रहते थे। इस आवागमन में उन्हें प्रवीणता प्राप्त थी। पुराणों में और भी ऐसी कथाएँ हैं, जिनसे उपरोक्त तथ्य की पुष्ट होती है। असुरों के आक्रमण मध्य एशिया से देव समुदाय पर जब-जब हुए हैं । तब-तब उनने आर्यावर्त्त के राजाओं को सहायता करने के लिए बुलाया है और वे प्रसन्नता पूर्वक पहुँचे भी हैं। राजा दशरथ एक बार इन्द्र के निमंत्रण पर वहाँ गये थे। रथ की धुरी में गड़बड़ी पड़ जाने से उनकी पत्नी ने अपनी उँगली लगा कर यान को यथावत् चालू रहने योग्य बनाया था। इस साहसिकता के बदले दशरथ ने कैकयी को दो वरदान देने का वचन दिया था। एक बार अर्जुन को इन्द्र ने बुलाया था। वे भी सहायता करने पहुँचे थे। सहायता सफल हुई तो इन्द्र ने वहाँ की सर्वोत्तम सुन्दरी उर्वशी को उपहार में देना चाहा। अर्जुन के मनाकर देने पर इन्द्र ने दूसरा उपहार गाण्डीव धनुष दिया। उस धनुष के बाण शब्द बेधी होते थे।

असुरों ने मध्य एशिया को छोड़कर देवताओं की सम्पदा पर कब्जा करने के लिये लंका को अपना अड्डा बनाया था और देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर को लूटकर लंका में सोने के मकान बना लिये थे। इस प्रकार देवताओं का स्वर्ग इस धरती पर होना ही सिद्ध होता है और भी कितनी ही कथाएँ इस प्रकार की हैं जिनमें स्वर्ग का वर्णन इसी रूप में आता है, मानो वह पृथ्वी का ही कोई उत्कृष्ट भाग रहा हो। यह भी कहा जा सकता है कि अधिक विकसित सभ्यता के किन्ही अन्तरिक्षवासियों के साथ उन लोगों का आदान-प्रदान रहा हो। ऐसे अनेकों प्रमाण अभी भी उपलबध होते हैं।

हिमालय को कार्य क्षेत्र देवताओं ने बनाया हो इसके कई कारण थे। एक यह कि अधिक ऊँचाई में असुरों का वहाँ तक पहुँचना और आक्रमण करना सरल नहीं था। इसलिये देवासुर संग्राम आये दिन न होने की सुविधा देवताओं को मिलती थी। दूसरी यह कि उस क्षेत्र में अनेकों गुफाएँ हैं, जिनमें तापमान सह्य रहता है। उनमें निवास करते हुए तत्त्व-ज्ञान और विज्ञान की शोधें एकान्त में—एकाग्रतापूर्वक करना सम्भव होता था। तीसरे यह कि उस क्षेत्र में संजीवनी बूटी जैसी मृतक को जीवित कर देने वाली जड़ी-बूटियाँ मिलती थीं। सोमरस यहीं उगता था। च्यवन जैसे वृद्ध को युवा बना देने वाला अष्ठ वर्ग यहीं था। संसार की अलभ्य जड़ी-बूटियों की दृष्टि से यह क्षेत्र अनुपम था व अभी भी है। उसय समय स्वर्ण की खदाने भी इधर ही थीं। वातावरण में ऐसे तत्त्व थे जिन्हें अलौकिक कहा जा सके। इन कारणों से ऋषिगण इस क्षेत्र की गुफाओं में हरकर अनेकों सिद्धियों का उपार्जन करते थे। मानव शरीर ब्रह्माण्ड शरीर का संक्षिप्त संस्करण है। इसमें प्रकृति की, ब्रह्माण्ड की, महती शक्तियाँ बीज रूप में विद्यमान हैं। उन्हें उठाने और परिपक्व करने के लिये यह क्षेत्र सर्व सुविधा सम्पन्न है। ऋद्धियों और सिद्धियों का भाण्डागार इस क्षेत्र में रहकर सरलता पूर्वक अर्जित किया जा सकता है। इसलिये देवता ही नहीं, देव मानवों, सिद्ध पुरुषों का समुदाय भी इसी क्षेत्र में आकर निवास करता था। इतिहास पुराण इस बात के साक्षी हैं कि ऋषियों में से अधिकांश ने अपनी योग साधना तपश्चर्या करके दुर्लभ विभूतियाँ यहीं अर्जित की थीं। उस उपार्जन का लाभ मनुष्य जाति को, विशेषतया आर्यावर्त्त क्षेत्र को निरन्तर मिलता रहा है। प्रसिद्ध है कि उधर के ऊबड़-खाबड़ नदी नालों को सुव्यस्थित करके देवताओं ने भागीरथ के तत्त्वावधान में गंगा को स्वर्ग से नीचे उतारा था और जल के अभाव में पिछड़ा हुआ क्षेत्र हरीतिमा से भरपूर स्वर्ण सम्पदाओं का स्वामी आर्यावर्त्त बन गया था।

हिमालय के स्वर्ग केन्द्र की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यहाँ स्थूल शरीर को सूक्ष्य शरीर में विकसित कर लेना और इच्छानुसार लम्बी अवधि तक जीवित बनाये रखना सम्भव था। सूक्ष्म और कारण शरीर को समर्थ बनाने के उपरान्त स्थूल शरीर के न रहने पर भी मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है। तब उसे भूख, प्यास, निद्रा आदि की उन आवश्यकताओं को पूरा नहीं करना पड़ता, जो स्थूल शरीर के रहते अनिवार्य रूप से आवश्यक मानी जाती हैं। सूक्ष्म शरीर दृश्यमान न होते हुऐ भी स्थूल शरीर की तुलना में कहीं अधिक समर्थ एवं स्थिर रहता है, उसे शरीरगत आवश्यकताओं में ही लगाना पड़ता है। जो महान उद्देश्य सामने हैं, उसे पूरा करने में बिना किसी विघ्न-बाधा के लगे रहने में कोई विघ्न आड़े नहीं आता। स्थूल शरीर को स्वेच्छा पूर्वक परित्याग करके सूक्ष्म शरीर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के रूप में अपनी सत्ता को बनाये रहना और जो काम करने हैं, उन्हें अनवरत रूप से चालू रख पाना सम्भव होता है । यह एक बहुत बड़ी सुविधा है । इसे उपलब्ध करने से लम्बे समय तक किसी प्रयोग को जारी रखा जा सकता है । स्थूल शरीर के न रहने पर साधारण मनुष्यों की गतिविधियाँ समाप्त हो जाती हैं, किन्तु सूक्ष्म शरीरधारी अपनी गति विधियाँ हजारों वर्षों तक जारी रखे रह सकते हैं ।

इतिहासकारों के अनुसार अब से १७ हजार वर्ष पूर्व पिछला हिमयुग आया था उस समय के ऋषि अपने सूक्ष्म शरीर से किन्हीं कन्दराओं, शिखरों, एवं दिव्य भूमियों पर विद्यमान हैं । सर्वसाधारण को वे नहीं दिखते, किन्तु जिन्हें अपना परिचय देना होता है या कुछ सहायता करनी होती है, तब उस शरीर को प्रकट भी कर देते हैं । यह बहुत बड़ी बात है । इस सिद्धि के बल पर ही हिमालय के सिद्ध पुरुष हिमयुग से भी पूर्व की संचित अपनी ज्ञान सम्पदा को यथावत बनाये हुए हैं । इसके बाद भी वे अपने तप प्रयोगों में संलग्न रहने के कारण अपेक्षाकृत और भी अधिक समर्थ हैं । पिछड़ों को बढ़ाना और गिरों को उठाना इन सिद्ध पुरुषों का प्रधान कार्य है । जो अध्यात्म मार्ग में बढ़ना चाहते हैं, उन्हें अध्यापकों की तरह पढ़ाना, अभिभावकों की तरह संरक्षण एवं सुविधा प्रदान करना इनका प्रमुख कार्य है । जब उन्हें संसार की सामयिक समस्याओं का समाधान करने के लिए स्वयं कोई बड़ा उत्तरदायित्व ओढ़ना होता है तो किसी शरीर में मनुष्य जन्म भी ले लेते हैं और अपना प्रयोजन पूरा होने पर उस शरीर को त्यागकर पुन: अपने स्वरूप में लौट जाते हैं ।

भगवान् निराकार हैं । वे शरीर धारण नहीं कर सकते । एक जगह जन्म लेने वाले को अन्यत्र से अपनी सत्ता समेटनी पड़ेगी । इसलिये वे अपने अंशधर को वह काम सौंप देते हैं, जो करना है । यह अंशधर ही देवात्मा, ऋषि, अवतार, महापुरुष आदि कहलाते हैं और वे उन कामों को सम्पन्न करते हैं जो उन्हें सौंपे गये हैं । समय-समय पर ऐसे अंशधारी ही प्रगट होते और वे कार्य पूरे कर दिखाते हैं, जो सामान्य मनुष्यों की सामर्थ्य से बाहर हैं ।

इस पृथ्वी का आध्यात्मिक ध्रुव केन्द्र हिमालय है । इसे एक प्रकार से भगवान् की विशेष शक्तिशाली सेना की छावनी समझा जाना चाहिये । सूक्ष्म शरीरधारी— अंशधर देवात्मा सिद्ध पुरुष प्राय: इसी क्षेत्र में रहते हैं । महाप्रभु ईसा कुछ समय के लिए इसी क्षेत्र में आये थे । यह ईसवी सदी के प्रारम्भ की बात है । यह उच्चस्तरीय आत्माओं का प्रशिक्षण विद्यालय रहा है । उन्हें आवश्यक अस्त्र-शस्त्र भी यहीं से मिल जाते हैं । जो सिद्धियाँ उनकी निज की उपार्जित नहीं होतीं, उन्हें यह सिद्ध पुरुष अपने विभूति भण्डार में से अभीष्ट उद्देश्य पूर्ति के लिये प्रदान करते हैं और वे भी चमत्कारी महापुरुषों की तरह लोकहित के सामयिक समाधान इस प्रकार करते हैं कि दर्शकों को आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । यही है हिमालय का वास्तविक स्वरूप जिसे स्पष्टत: अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र मानना चाहिए । हरिद्वार की विशिष्ट एवं महातीर्थ के रूप में स्थापना इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए । भागीरथी यहीं पर दुर्गम पर्वत श्रृंखला से उतरकर सात धाराओं में बँटती हुई आर्यावर्त्त को अभिसिंचित करने निकल पड़ी हैं । हिमालय के द्वार पर स्थित हरिद्वार में सम्पन्न साधना अथवा कोई भी पुण्यकार्य उत्तराखण्ड के चारों धामों में की गई तीर्थ यात्रा के समकक्ष माने गए हैं । यही कारण है कि मिशन के सूत्रसंचालक ने ऋषिसत्ता के आदेश पर इस देव-स्थली को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया है ।

देवात्मा हिमालय और उसका परिचय

हिमालय सुविस्तृत है । वह पाकिस्तान से लेकर बर्मा तक चला गया है । यों यह सारा क्षेत्र ही दिव्य सौन्दर्य, वैभव एवं वातावरण से भरा हुआ है, पर यहाँ हिमालय के उस क्षेत्र की चर्चा की जा रही है जिसे देवात्मा या ब्रह्मपुरा कहते हैं । देवताओं और ऋषियों ने जिस क्षेत्र को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु बनाया, वह सीमित क्षेत्र है । पुराणों में इसका उल्लेख केदारखण्ड के नाम से हुआ है । इन पंक्तियों में सुविस्तृत हिमालय की चर्चा नहीं की जा रही है वरन् देवात्मा हिमालय उत्तराखण्ड पर ही कुछ प्रकाश डाला जा रहा है । तीर्थ—तपोवन इसी को कहते हैं । यों अभिनन्दनीय और महत्त्वपूर्ण तो शेष क्षेत्र भी है, पर जिसका सीधा आत्म-विज्ञान से सम्बन्ध है, यहाँ विवेचन उसी का अभिष्ट है ।

गंगा की पवित्रता और हिमालय की प्रखरता का समन्वय होने से उत्तराखण्ड क्षेत्र देवात्मा कहलाया । अगणित ऐसी विशेषताएँ इस प्रदेश में इस सुयोग संयोग से ही उत्पन्न हुईं जिनसे प्रभावित होकर देवताओं और ऋषियों को यह भूमि अपने महान् क्रिया-कलापों के लिए चुननी पड़ी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्यात्म क्षेत्र का ध्रुव केन्द्र सुमेरु माना गया है। पुराणों में इसी प्रदेश की धरती को स्वर्ग कहा गया है। आसमान वाला अदृश्य स्वर्ग कहा गया है—इसकी यहाँ विवेचना नहीं हो रही है। कहा यह जा रहा है कि ऐतिहासिक एवं भू-क्षेत्र से सम्बन्धित स्वर्ग पुरातन काल में इसी को कहा जाता था जिसे इन दिनों उत्तराखण्ड या देवात्मा हिमालय के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

हिमालय को भगवान् ने अपनी मूर्तिमान प्रतिमा कहा है—

"स्थावराणां हिमालयः।"

—गीता १० /२५

पर्वतों में हिमालय मैं हूँ।

"शैलानां हिमवन्तो च।"

—नारद पुराण

पर्वतों में हिमालय भगवान् का रूप है।

मनीषिताः सन्ति गृहेषु देवताः।
तपः क्वचत्से क्व च तावकं वपुः॥

—कुमार संभव

हे पुत्री उमा, इस अपने घर हिमालय में समस्त देवता निवास करते हैं, फिर तुम किसका तप करने क्यों, कहाँ जाती हो ?

अस्त्युत्तर स्यांदिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वावरोतोयनिधीवगाह्य,
स्थितः पृथिव्यामिव मानदण्ड॥

—कुमार संभव १/१

भारत की उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत है। यह देवों की आत्मा है। पर्वतों का सम्राट् है। पूर्व सागर से पच्छिम सागर तक इस प्रकार फैला है, मानो पृथ्वी नापने का माप दण्ड हो।

परिव्राजक ह्वेनत्सांग को विदाई देते हुए सम्राट् हर्षवर्धन ने उन्हें भाव भरा अभिवादन किया और बोले—"महात्मन्! यह महान् भारत विदा देने से पूर्व आपका आशीर्वाद चाहता है।"

विनयावनत त्सांग ने उत्तर देते हुए कहा—"इस योग ध्यानमग्न मानवी अतीत के प्रतिनिधि भारत की शुभ कामनाएँ मैं भी अपने देशवासियों के लिए लेकर जाना चाहता हूँ। यह भारत धरती का स्वर्ग है। हिमालय के ब्रह्मपुरा क्षेत्र में जितने समय मैं रहा—वहाँ मैंने पृथ्वी पर फैले हुए स्वर्ग का साक्षात् और बार-बार दर्शन किया।"

'स्वर्ग' के सम्बन्ध में पौराणिक मान्यता यह है कि पुण्यात्मा व्यक्ति मरने के बाद सुख-सुविधा से भरे जिस लोक में जाते हैं उसे स्वर्ग कहते हैं। दार्शनिक लोग स्वर्ग को उदात्त दृष्टिकोण मानते हैं और कहते हैं चिन्तन की इस विशेष शैली को अपनाकर मनुष्य अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी अविच्छिन्न सुख-शान्ति का रसास्वादन करता रहता है।

इतिहास और भूगोल की दृष्टि से स्वर्ग कोई ऐसा स्थान विशेष होना चाहिए जहाँ लोगों का आना-जाना बिना किसी विशेष कठिनाई के होता रहता हो। जहाँ भौतिक समृद्धियों और आत्मिक विभूतियों का बाहुल्य रहता हो। दशरथ, अर्जुन, नारद आदि के ऐसे कितने ही कथानक हैं जिनमें स्वर्ग जाना और वापिस आना उसी प्रकार बताया गया है जैसे हम सामान्य स्थानों पर बिना अधिक कठिनाई उठाए आते-जाते रहते हैं। पाण्डवों के स्वर्गारोहरण का तुक इस प्रकार बैठता है कि वे जीवन के अन्तिम दिनों उसी शान्तिमय क्षेत्र में निवास करने के लिए चले गये थे।

लगता है—हिमालय के जिस भू-भाग को इन दिनों 'उत्तराखण्ड' कहते हैं उससे थोड़ा और अधिक बड़ा तथा ऊँचा क्षेत्र उन दिनों स्वर्ग कहलाता था। उसमें देव प्रकृति के लोग रहते थे। लोककल्याण की विविध-विध योजनाएँ और व्यवस्थाएँ वहीं से बनती थीं। वह पूरा क्षेत्र एक प्रकार से मानव-कल्याण के विविध उत्पादनों की प्रयोगशाला थी। ऋषि और देव पुरुष वहीं के शान्त वातावरण में इस प्रकार के अभिनव उत्पादन करते थे, जिनसे समस्त विश्व लाभान्वित हो सके।

हिमालय को सभ्यता का आदि जन्मदाता माना गया है। मनुष्यों की आरम्भिक उत्पत्ति नहीं हुई। मध्य एशिया का तापमान एवं प्रकृति वातावरण प्रतिकूल पड़ने पर निर्वाह के लिए उपयुक्त स्थान खोजते हुए आर्य लोग यहाँ आ बसे। जल प्रलय और हिमप्रलय के उपरान्त हिमालय की ही स्थिति प्राणियों के जीवित रह सकने योग्य बनी रही। यही मान्यताएँ पुरातत्त्ववेत्ताओं की हैं। मनु की नाव यहीं आकर किनारे पर लगी थी। मार्कण्डेय मुनि यहीं जीवित बचे रहे थे आदि पौराणिक मान्यताएँ भी आदि समय से मनुष्यों को आश्रय देने वाला हिमालय को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही मानते हैं। इस संदर्भ में शोधकर्त्ताओं ने जो सामग्री उपलब्ध की है उससे इस निर्धारण की पुष्टि ही होती है।

संसार के पुरातत्व विज्ञानियों में से अनेकों का अभिमत है कि आर्य लोग चिरअतीत में उत्तरी ध्रुव क्षेत्र के समीप मध्य एशिया में रहते थे। वहाँ भयंकर हिमपात होने के कारण उन्हें नीचे उतरना पड़ा और तिब्बत के समीप हिमालय क्षेत्र में बस गए। सर विलियम जोन्स ने 'संस्कृत साहित्य का अध्ययन' ग्रन्थ में इस मत को प्रतिपादित करते हुए अनेक तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। लोकमान्य तिलक ने 'आर्कटिक होम इन दि वेदाज्' ग्रन्थ में तथा नारायण स्वामी ने—'फ्राम दी फ्रेडल टू दी कालोनीज्' पुस्तक में इसी तथ्य पर प्रकाश डाला है। महर्षि दयानन्द सुमेरु कैलाश के समीप आर्यों की जन्मभूमि मानते हैं। प्रो. वैनफे के अभिमत भी यही है। प्रो. हेनेले तथा वैवर के ग्रन्थों से भी यह ध्वनि निकलती है। एटकिंसन ने अपने ग्रन्थ 'हिमालियन डिस्ट्रिक्टिस, में लिखा है—ऋग्वेद काल में मानवी सभ्यता का विकास हिमालय के उस क्षेत्र में हुआ जिसे इन दिनों गढ़वाल कहा जाता है। अलवरूनी ने मानवी-सभ्यता का आरम्भ हिमालय क्षेत्र से हुआ माना है। "वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ग्रन्थ के लेखक ने न केवल आर्य वरन् एशिया की अन्यान्य जातियों का उद्गम भी हिमालय क्षेत्र को माना है। जर्मन के संस्कृत विद्वान प्रो. मैक्समूलर ने अपने ग्रन्थ 'इण्डिया व्हाट इट टीचर्स अस' में हिमालय क्षेत्र को मानवी सभ्यता का विकास क्षेत्र माना है।

'मैनुअल ऑफ इण्डियन जिलोलॉजी, के लेखक मिडलीक्ट ने कुमायूँ क्षेत्र में मिले पाषाण भूत नर कंकालों की साक्षी प्रस्तुत करते हुए कहा है, 'चिर अतीत में पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों की तुलना में यह प्रदेश मनुष्यों के निवास-निर्वाह के अधिक उपयुक्त था। उन दिनों यहाँ की जलवायु बसने योग्य थी और निर्वाह के साधन भी सुविधा पूर्वक उपलब्ध होते थे। जयदेव विद्यालंकार ने 'इतिहास प्रदेश' में लिखा है—"नये चरागाहों की खोज में मनुष्यों की एक नयी शाखा पच्छिमी तिब्बत की ओर बढ़ी और उसके दक्षिणी छोर पर पहुँच के बाद ईसा से ३००० वर्ष पूर्व हिमालय के नीचे, उत्तर गंगा-यमुना-सरस्वती कोणों से आई। अलकनन्दा गढ़वाल में हिमालय के भीतर कश्मीर तक फैल गई।" इसी क्षेत्र का नाम इन दिनों गढ़वाल है।

लार्ड एलफिंस्टन अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' में भारतीयों का विकास उद्गम हिमालय क्षेत्र को ठहराते हैं। भारतीयों की हिमालय क्षेत्र में देवताओं के निवास वाली मान्यता को वे इसी दृष्टि से उचित ठहराते हैं। सर वास्टर रेले ने 'हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड' में लिखा है— "जल प्रलय के उपरान्त मात्र भारत ही, हिमालय भाग ही इस योग्य था कि उसमें मनुष्यों प्राणियों एवं वृक्ष वनस्पतियों का विकास संभव हो सके ।' मैउलीक्ट और बलम्फडे ने 'मैनुअल ऑफ ज्योलॉजी ऑफ इण्डिया" में लिखा है—"समशीतोष्ण तापक्रम के आधार पर भारत का उत्तरी भाग ही इस योग्य ठहरता है कि वहाँ मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों का विकास संभव हो सके ।" कर्नल टॉड ने 'एनेल्स ऑफ राजस्थान' में लिखा है—"आर्यावर्त का उत्तराखण्ड आर्य सभ्यता का उद्गम केन्द्र था ।"

फ्यूरट के ग्रन्थ 'मोन्यूमेन्टस ऐन्टोक्लीटीज ' में उत्तराखण्ड में उपलब्ध पुरातत्व सामग्री की साक्षी देते हुए कहा है कि " यह क्षेत्र सभ्यता के विकास क्षेत्र में कहने लायक उपलब्धियाँ प्राप्त कर चुका था ।" चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने भी अपने संस्मरणों में ऐसे प्रमाणों का उल्लेख किया है जिससे इस क्षेत्र की पुरातन समृद्धि का परिचय मिलता है । एक दूसरे चीनी-यात्री युवानचांग ने भी भारत की पुरुतन सभ्यता में हिमालय क्षेत्र को अग्रणी कहा है ।

शतपथ ब्राह्मण, बुद्ध जातक, महाभारत, स्मृति एवं पुराणों में जितने घटनाक्रमों का विवरण है उनमें में अधिकांश हिमालय क्षेत्र के साथ जुड़ते हैं ।

कहा जा चुका है हिमालय और गंगा के युग्म से यह क्षेत्र देवात्मा कहलाया । देखना है कि यह सुयोग आरम्भ कहाँ से होता है । उस उद्गम को अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र माना गया है । स्वर्ग से गंगा का अवतरण होना— शिव-शंकर का उसे जटाओं में धारण करना— इसी उद्गम केन्द्र का अलंकारिक स्वरूप है ।

पौराणिक गाथा में गंगा को कैलाश पर्वत से, शिवजी की जटाओं से निकलने की बात कही गई है । यह कैलाश कहाँ हो सकता है । पिछले दिनों तिब्बत वाले कैलाश शिखर को नाम भ्रम से गंगा का उद्गम माना जाता है । पर वस्तुतः वैसा है नहीं— वह भौगोलिक दृष्टि से देवात्मा हिमालय खण्ड से बहुत दूर है। इतनी दूरी और शिखरों की ऊँचाई पर करके गोमुख तक जा पहुँचने की संगति किसी भी प्रकार नहीं बैठती।

गंगा का दृश्यमान प्रकटीकरण गोमुख हैं, पर उसका उद्गम स्रोत कहाँ है; इस सम्बन्ध में कितनी ही किम्बदन्तियाँ हैं। इनमें एक उस पौराणिक कथानक के आधार पर है जिसमें कैलाशवासी शिव की जटाओं से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंगा का निकलना बताया गया है। इस कथानक के साथ तिब्बत स्थित कैलाश पर्वत की संगति नहीं बैठती। अलखनन्दा का उद्गम सत्पथ के पास सुमेरु पर्वत पर जिस जगह माना जाता है उसकी ऊँचाई १५००० फुट है। गंगा का उद्गम इससे और ऊँचा है, जब कि कैलाश पर्वत स्थित राक्षस ताल की ऊँचाई १४९०० फुट । सौ फुट नीचा होने के अतिरिक्त उसे प्राय: १३५ किलो मीटर दूरी भी पार करनी है जिसके लिए काफी ढलान चाहिए। ऐसी दशा में वर्तमान कैलाश स्थित राक्षस ताल से गंगा की उत्पत्ति की संगति बिठाना उपहासास्पद है।

यही अभिमत इस उद्गम के अन्यान्य शोधकर्त्ताओं का भी है। स्वीडन के डॉ. स्वेन हैडिन ने इस सन्दर्भ में गहरी खोज की और वे सन् १९०७ से लेकर कई वर्ष तक इस खोज में निरत रहे। इस खोज का विवरण उन्होंने 'ट्रान्स हिमालय' नामक ग्रन्थ के तीन भागों में प्रकाशित किया। उनका दूसरा ग्रन्थ है 'सादर्न तिब्बत' जो १९१६ में बारह भागों में प्रकाशित हुआ। उनका दावा था कि हिमालय की नदियों के उद्गम खोजने वाले वे पहले और प्रामाणिक व्यक्ति हैं। इस ग्रन्थ में उन्होंन कैलाश को गंगा का उद्गम होने की बात का खण्डन किया है और सुमेरु पर्वत की तलहटी को वह केन्द माना है।

इस प्रकार निष्कर्ष यही निकलता है कि सुमेरु पर्वत ही कैलाश है। देवताओं का निवास, जिसे स्वर्ण जटित पर्वत पर पुराणों में लिखा गया है वह सुमेरू ही वह कैलाश है जिसकी जटाओं से गंगा निकलती है। एक नाम के दो व्यक्तियों की तरह दो पर्वत भी हो सकते हैं। इसलिए शिव-आराधना के सन्दर्भ में जिस कैलाश मानसरोवर की गरिमा मानी और यात्रा की जाती है, उसे सुमेरु ही समझा जाना चाहिए।

स्वामी प्रणवानन्द की पुस्तक 'एवसप्लोरेशन इन टिवेट' कलकत्ता विश्वविद्यालय से छपी है। स्वामी जी ने कई बार कैलाश यात्रा की। साथ ही उन्होंने गंगा के उद्गम के सम्बन्ध में प्रचलित किम्बदन्ती के बारे में भी खोजबीन की। उनका कथन है कि मानसरोवर का वह भाग जहाँ किसी नदी का उद्गम होना सम्भव है, वह राक्षस ताल है। इसके वायव्य कोण से 'सतलज' नदी निकलती है जो पंजाब में बहती है। तिब्बती इसे 'गंगादू' कहते हैं। इसलिए लोगों को यह भ्रम हुआ कि तिब्बतियों की मान्यता के आधार पर यही गंगा का उद्गम रहा होगा। किन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है। गंगोत्री से बहने वाली गंगा का तिब्बती भाषा में दूसरा नाम है। इसे तिब्बती पुराण 'कंगरीकरछक में 'दामोगंगा [गंगा-माता], दमो गंगा [बड़ी नदी] लिखा है। दोनों के शब्द मिलते-जुलते होने के कारण भी कदाचित् इस भ्रम की पुष्टि हुई है कि तिब्बती भी गंगा का उद्गम कैलाश मानते हैं।

गंगा को भारतीय पुराणों में विष्णु के चरण (अंगूठा) से निकली माना गया है। शिव जी ने तो उसे बाद में अपने सिर पर धारण कर लिया था। उद्गम विष्णु चरण होना चाहिए। विष्णु चरण नर-नारायण पर्वत को कहते हैं। यही गंगा ग्लेशियर है जो चौखम्भा पर्वत होता हुआ शिवलिंग के मार्ग से गोमुख जा पहुँचता है। नर-नारायण पर्वत सुमेरु का एक भाग है, इसलिए अलखनन्दा की भाँति उसी क्षेत्र में गंगा का उद्गम भी ठहरता है।

कुबेर की राजधानी अलकापुरी काँचन नगरी थी। लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने वाली बूटी ज्योतिवान 'संजीवनी' द्रोणगिरि में उपलब्ध हुई थी। गंध मादन पर्वत पर पाँडवों ने यज्ञ किया और वहाँ स्वर्ण भण्डार पाया था। अर्जन ने तप करके पशुपत-अस्त्र पाया था। जिन वनों में वाल्मीकि ने रामायण और व्यास ने महाभारत रची, उस स्थान की तिब्बत कैलाश के साथ कोई संगति नहीं बैठती। मान्धाता की तप:स्थली यही है। नर-नारायण, मुचकुंद, अत्रि, भारद्वाज, वशिष्ठ, कपिल, कणाद, गौतम आदि की गुफाएँ-कुटियाँ जिस क्षेत्र में पायी जाती हैं, वह ब्रह्मपुरा देवात्मा हिमालय की परिधि में ही आते हैं।

सूर्य की किरणें यहाँ पर छाये हिम कणों से होकर पार होती हैं तो उनका वर्ण सुनहरा हो जाता है। फलत: इस क्षेत्र की बर्फीली चोटियाँ उस प्रतिबिम्ब से सुनहरी दीखती हैं। इसी विशेषता के कारण सुमेरु पर्वत को स्वर्ण मंडित कहते हैं। पुराणों में इसे स्वर्ण निर्मित कहा गया है। दिन की तरह रात को भी चन्द्रमा के प्रकाश में यह सुनहरा ही दीखता है। इस क्षेत्र में और भी कई पर्वत हैं वे सुनहरे ही दीखते हैं, पर मुख्य सुमेरु भाग में सुनहरापन उन सब की तुलना में कहीं अधिक है। इस क्षेत्र पर आमतौर से बर्फीले बादल छाये रहते हैं, इसलिए स्पष्ट दृश्य मौसम साफ होने पर ही दीखता है। समुद्र से सुमेरु की ऊँचाई प्राय: २२००० फीट है।

सुमेरु तिकोना है । प्रत्येक कोण प्राय: ३० मील का है। दो ओर रास्ता बंद जैसा है। भागीरथी गंगा की ओर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ही जाने का रास्ता है। इसी क्षेत्र से मंदाकिनी-अलकनंदा और भागीरथी नामक तीनों गंगायें निकलती हैं, जो आगे चलकर एक हो गयी हैं।

सुमेरु त्रिकोण के विभिन्न स्थानों की ऊँचाई २० हजार से २३ हजार (साढ़े तेईस हजार) फीट तक है। २२ हजार तो औसत माना गया है। यह कितनी ही चोटियों में विभक्त है। इस क्षेत्र में कोई देवालय तो नहीं है, पर पर्वत शिखरों की आकृतियाँ ही ऐसी हैं जो दूर से देखने में देवालय जैसे प्रतीत होते हैं । कई शिखरों की आकृतियाँ मनुष्य के शिर धड़ से मिलती-जुलती हैं। इसलिए उन्हें देव-दर्शन की तरह भी निहारा जा सकता है। एक शिखर को शिव पार्वती के संयुक्त विग्रह के रूप में देखा जा सकता है। पुरातन काल का आदि कैलाश यही है। तिब्बत क्षेत्र में अवस्थित कैलाश को तो भ्रमवश ही मान्यता मिल गयी है। अन्यथा शिव की जटाओं से गंगा निकलने वाले तथ्य की वर्तमान कैलाश के साथ किसी भी प्रकार से संगति नहीं बैठती। वस्तुतः सुमेरु ही कैलाश है। उसके मध्य में बने हुए विशालकाय सरोवर को ही पुरातन काल का मानसरोवर समझा जाना चाहिए। गीता में भगवान् ने पर्वतों में अपने आपको सुमेरु कहा है। सुमेरु का एक शिखर 'ब्रह्मकूट' कहलाता है। इसे दूर से इस तरह देखा जा सकता है मानों, उनमें से एक नर की और दूसरी नारी की आकृति हो। इसी को शिव-पार्वती दर्शन कहते हैं।

यह सुमेरु के शिखर भाग की चर्चा हुई । उसकी ढलान का आरम्भ जहाँ से होता है उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसी को हिमालय का हृदय कहते हैं। इसकी जड़ में दस हजार से लेकर बाहर हजार फीट तक की ऊँचाई वाले क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें मनुष्य रह सकता है। ईंधन तथा प्रवाही जल के बिना माँस शरीर का जीवित रहना कठिन है। सूक्ष्म शरीर की बात दूसरी है। इसलिए प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों के निवास तथा गुहा आश्रमों का इतिहास उतनी ही ऊँचाई तक का मिलता है। इतनी ऊँचाई तक जिन विज्ञात तपस्वियों की नामावली उपलब्ध है, उनमें उपमन्यु, सनक, सनातन, अत्रि, व्यास, नारद, विशिष्ठ, लोमश, कपिल, दुर्वासा, संदीपन, विश्वामित्र, कश्यप, अगस्त्य प्रमुख हैं। नारियों में अनुसूइया, अरुन्धती, देवहूति के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।

पारस पत्थर और सोने की खदान सुमेरु पर्वत के इर्द-गिर्द इलाके में कहीं हो सकती है। इसकी खोजबीन होती रहती है, पर अभी सम्भावना को बल देने वाले कुछ कल्पना सूत्र ही हाथ लगे हैं। गंगोत्री जाते समय गंगवानी गाँव के पास एक 'सोनगाड' नदी बहती है। उसकी बालू में कभी-कभी स्वर्ग कण देखे गये हैं। बद्रीनाथ मार्ग में हनुमान चट्टी के आस-पास भी कहीं सोने का भण्डार होने की आशा की जाती है। कहते हैं कि पाण्डव अपने साथ बहुत सा सोना लाये थे और उधर ही कहीं गाड़कर चले गये। केदार मार्ग की सोनगाड एवं वासुकी मंदाकिनी नदियों का संगम सोन प्रयाग भी ऐसी ही आशा का केन्द्र है, पारस पत्थर कहीं सुमेरु में होने की मान्यता अभी भी कितनों की है, पर सुनिश्चित तथ्यों के अभाव में अभी तो उसे दिवास्वप्न ही कहा जायेगा।

अलकनंदा, पिंडार और सोनागढ़ नदियों के बालू में सोने के कण पाये जाते हैं। सोना नदी के लाल दरवाजा और दूधिया क्षेत्र के बीच धोबी बिरादरी के लोग यहाँ सोना निकालने का काम करते थे, पर अब परिश्रम अधिक और लाभ कम होने के कारण वह उद्योग बंद हो गया। रामगंगा के पश्चिम भाग में भी ऐसे कण पाये जाते हैं। पिछली शताब्दी में कप्तान हर्बर्ट को अलकनंदा तट के मातृका स्थान में अधिक सोना प्राप्त हुआ था। अभी तक यह पता नहीं चला कि यह स्वर्ग खदान कहाँ है ? फिर भी यह सम्भावना बनी हुई है कि इस क्षेत्र में कहीं सोने की बड़ी खदायें हैं।

शिवलिंग शिखर प्रत्यक्ष दृश्यमान गंगा के उद्गम गोमुख से कुछ ऊपर चढ़ते ही दृष्टिगोचर होता है। उसकी आकृति अन्य शिखरों से भिन्न है। वह नोकदार होकर गोलार्द्ध लिए हुये है। जमी बर्फ जब पिघलती है तो लगता है, मानो दूध की धारा ऊपर से नीचे की ओर उतर रही है। उसी दृश्य की उपमा स्वर्ग से गंगा की दूध की धारा के रूप में उतरने और धरती पर आने के उपरान्त पानी की बन जाने के रूप में दी गयी है। शिवलिंग को भी छोटा कैलाश कहते हैं। इसके नीचे भी एक छोटा तालाब है, उसे छोटा मानसरोवर नाम दिया जा सकता है। शिवलिंग के ऊपर से पिघलने वाली बर्फ पानी की धारा के रूप में जमीन में धंस जाता है और फिर गोमुख में प्रकट होती है। इस प्रकार यहाँ भी कैलाश पर्वत से गंगा निकलने की संगति खा जाती है और शिवलिंग दर्शन को भी कैलाश दर्शन के समतुल्य माना जा सकता है।

सुमेरु त्रिकोण की ढलान जहाँ समाप्त होती है, उस परिधि के संरक्षक तीन तीर्थ बने हुए हैं (१) बद्रीनाथ (२)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केदारनाथ (३) गंगोत्री। इन तीनों ही मार्गों से चढ़ते-चढ़ते सुमेरु के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचा जा सकता है। दर्शन तो इन तीनों ही स्थानों से हो सकता है।

इस क्षेत्र में कई सिद्ध गुफाएँ हैं। इनमें ऋषि मुनि तपस्याएँ करते रहे हैं। उनका प्रभाव अभी भी विद्यमान है। केदारनाथ के ऊपर ६ हजार फुट की ऊँचाई पर 'ब्रह्मगुफा' है। बद्रीनाथ के ऊपर सतपथ सरोवर के निकट 'सूर्य गुफा'। गोमुख से ऊपर तपोवन में कीर्ति धारा के पास 'ज्योतिगुफा' यह सभी १६ हजार फुट के लगभग ऊँचाई पर हैं।

सुमेरु शिखर की चरम ऊँचाई को छोड़कर उसके निचले भाग १७ हजार फुट तक ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं। यहाँ से कुछ और नीचे उतरा जाय तो वे क्षेत्र इन दिनों जन शून्य होते हुये भी अगम्य नहीं कहे जा सकते। अगस्त मास में वहाँ का मौसम अनुकूल पड़ता है, तब वहाँ साधनों के सहारे जाया भी जा सकता है। कुछ दिन डेरा डालकर रहा भी जा सकता है।

सुमेरु की शास्त्रों में सुविस्तृत चर्चा है। गीता १०—२३ में भगवान् कहते हैं—'मेरुः शिखरिणामहम्' अर्थात् शिखरों में सुमेरु शिखर मैं हूँ।

सुमेरु पर्वत के कई पर्यायवाची नाम अमर कोश में गिनाये हैं—

मेरुः सुमेरुः हिमाद्रिः रत्नसानु सुरालयः।

—अमर कोश

मेरु, सुमेरु, हिमाद्रि, रत्नसानु, सुरालय (देवताओं का घर)।

ज्वलन्तमचलं मेरुः तेजोराशिमनुत्तमम्।
आक्षिपन्तं प्रभां भानोः स्वश्रृगैः काँचनोज्ज्वलैः॥
कनकाभरणं चित्रं देव गन्धर्व सेवितम्॥

—महाभारत, आदि पर्व, १७/७

यह सुमेरु पर्वत ज्वलंत, तेजोराशि, अतिश्रेष्ठ, स्वर्णिम आभा वाला तथा देव-गन्धर्वों का निवास स्थान है।

महामेरोः त्रयस्त्रिंशत क्रीडन्ते यज्ञियाः सुराः।

—ब्र. पु. २/१७/४

इस सुमेरु पर्वत पर तैंतीस कोटि देवता क्रीडा करते हैं।

गतोऽहम् देव सदनं सौवर्ण मेरु पर्वतम्।
सोऽहम् कदाचित् देवानां समाजे मेरुमूर्धनि॥
तत्र पंञ्चायतामेव देवतानां यथा श्रुत।

—हरिवंश पुराण १/२८/५

नारद कहते हैं—एक बार मैं देवलोक स्वर्ण वर्ण सुमेरु पर्वत पर गया। वहाँ सुमेरु-शिखर पर देवताओं का समाज जुड़ था। उनके मध्य होने वाली चर्चा को मैंने ध्यान पूर्वक सुना।

लिंग पुराण के सातवें अध्याय में दिव्य सद्गुरुओं, सिद्ध पुरुषों का निवास हिमालय के सुमेरु पर्वत पर बताया गया है। श्री मद्भागवत् के दूसरे अध्याय के ३७ वें श्लोक में उन सिद्ध पुरुषों का निवास 'कलाप' क्षेत्र में बताया है। १० वें स्कन्ध के श्लोक ५,६,७ में भी ऐसा ही वर्णन है। महाभारत से भी इसकी पुष्टि होती है।

इस्लाम धर्म में स्वर्ग से आदम-हव्वा के जमीन पर आने की बात लिखी है। कई अन्वेषकों का कहना है कि यह स्थान हिमालय का यही सर्वोच्च शिखर होना चाहिए।

सुमेरु क्षेत्र में बद्रीनाथ, केदारनाथ से लेकर गंगोत्री-यमुनोत्री से ऊपर वाला सारा अगम्य भाग आ जाता है। नीचे वाले भाग की उसकी तलहटी के रूप में आवागमन के उपयुक्त उत्तराखण्ड को समझा जा सकता है—

हिमवन्त च मेरुश्च नीलं निषधमेवच।
कैलाशं मुंजवन्तं च तथाद्रि गन्धमादनम्॥
एते देवगणानांच, सिद्धानांच महात्मनाम्॥
आश्रमाः पुण्यशीलानाम् सर्वकाययुताद्रयः॥

—हरिवंश पुराण ३।१।

हिमवान, सुमेरु, निषध, कैलाश, मुंजवान, गंधमादन, त्रिशिखर, मंदर पर्वतों पर, देवताओं-सिद्ध पुरुषों और दिव्य आत्माओं का निवास है। यह सभी पर्वत हिमालय के अंतर्गत हैं।

इस क्षेत्र के चार वन प्रमुख हैं—(१) तपोवन (२) नन्दन वन (३) सुमानसवन और (४) ज्योति प्रकाश वन। यह गोमुख के कुछ ऊपर से लेकर हेमकुण्ड तक की परिधि में फैले हुए हैं। अगस्त के आस-पास यह चारों ही क्षेत्र जड़ी बूटियों और पुष्पों से भर जाते हैं। इनकी शोभा और सुगन्ध देखते ही बनती है।

११ से १७ हजार तक की ऊँचाई पर पाई जाने वाली विशिष्ट जड़ी बूटियों में संजीवनी, रुदन्ती, अतिविशा, कटुरोहिणी, ममीरा, अमृत स्रवा, सोमलता, ब्रह्मकमल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें रुदन्ती को आयुर्वेद में विशेष महत्त्व दिया गया है। राजनिघंटु, सालिगराम निघंटु, वंगसेन संहिता, निघंटु रत्नाकर, गदतिमिर भास्कर, काकचण्डीश्वर कल्प तंत्रम्, धन्वन्तरि संहिता आदि में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रुदन्ती कल्प का वर्णन है। उस उपचार को वृद्धता निवारक एवं नवयौवन प्रदान करने वाला बताया गया है। एक मत यह भी है कि लक्ष्मण की मूर्छा निवारण में हनुमान द्वारा जिस संजीवनी बूटी को लाये जाने का वर्णन है वह रुदन्ती का ही दूसरा नाम है। यह बहुत बड़ी मात्रा में तो उपलब्ध नहीं होती, पर खोजने पर उसे गोमुख, भोजवासा, तपोवन, केदारनाथ क्षेत्र, वासुकी सरोवर, ब्रह्म-गुफा, द्रोणगिरि, नारायण पर्वत, अलकापुरी, चक्रतीर्थ, संतोपथा, नीलकंठ पर्वत आदि की तरहटियों में जहाँ-तहाँ पायी जाती है । रुदन्ती को रुद्रवन्ती भी कहते हैं। यह छत्तेदार चने जैसे पत्ती की होती है। इसकी जड़ें जमीन में गहराई तक चली जाती हैं।

ऐसी ही दिव्य जड़ी बूटियों में उस ज्योतिष्मती संजीवनी को भी एक समझा जाना चाहिए जिसे लक्ष्मण जी के उपचार के लिए हनुमान जी ढूँढ कर ले गये थे।

ब्रह्म कमल का पुष्प इसी क्षेत्र में १४ से १७ हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है। इसे दिव्य पुष्प माना गया है। कहते हैं कि इसकी सुगंध मात्र से समाधि अवस्था प्राप्त हो जाती है। महाभारत में वर्णन है कि द्रौपदी ने भीम से इसी पुष्प को ला देने का आग्रह किया था।

महाभारत की इस कथा में सम्भवत: कल्पना अधिक, तथ्य कम जान पड़ता हो, किन्तु यह कल्पना नहीं, आश्चर्यजनक रहस्य ही है कि ऐसा नन्दन वन आज भी इसी भारत भूमि में वैसे ही विद्यमान है जैसी महाभारत में कथा आती है। समुद्र तल से १३२०० फीट ऊँचा यह हिमालय की गोदी में स्थित स्थान आज भी 'फूल घाटी' के नाम से विख्यात है। प्रतिवर्ष हजारों विदेशी पर्यटक यहाँ पहुँचते और जहाँ, वहाँ की मादक छटा को देखकर मुग्ध होते हैं, वहीं यह आश्चर्य भी है कि १०-१५ मील क्षेत्र में प्राकृतिक तौर पर उगते आ रहे इन हजारों प्रकार के विचित्र पुष्पों को किसने रोपा ? सारे संसार में ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहाँ प्राकृतिक तौर पर इतने अधिक, इतने सुन्दर, इतने वर्णों के पुष्प और कहीं खिलते हों। ब्रह्मकमल ५ से ७ इंच गोलार्द्ध के हलके सुनहरे रंग के होते हैं। बीच-बीच में नीले रंग की छोटी- छोटी घुंडियाँ होती हैं। इनके फूलने का समय १५ अगस्त से १५ सितम्बर के बीच रहता है। यह प्राय: मन्दाकिनी, अलखनन्दा, भागीरथी के उद्गम से लेकर उसके साथ-साथ नीचे उतरते क्षेत्रों में पाये जाते हैं। भोजवासा एवं रुद्रनाथ में जहाँ-तहाँ खोजने पर वे मिल जाते हैं। इन्हें अधिक समय तक सूँघने से योग निद्रा आने लगती है।

सुमेरु शिखिर से लेकर उत्तराखण्ड के क्षेत्र में ऋषियों ने तप साधना द्वारा विभिन्न स्तर की उपलब्धियाँ प्राप्त की थीं। श्रुति कहती है—

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रो अजायत ॥

—यजु. २६/१५

अर्थात् पर्वतों, गुफाओं, नदी, तटों, संगमों के सान्निध्यों में ब्राह्मणों ने महाप्रज्ञा की प्राप्ति की।

न केवल अध्यात्म विभूतियों की दृष्टि से वरन् भौतिक संपदाओं की दृष्टि से भी हिमालय अमृतकलश एवं स्वर्ण भण्डार से भी अधिक बहुमूल्य है। हिमालय के उच्च शिखर न हों तो उनसे टकराकर बरसने वाले बादलों को हवा उड़ाकर अन्यत्र ले जाय और देश में वर्षा की कमी से हाहाकार मच जाय। हिमालय से अनेकों नदियाँ निकलती हैं जो देश के विभिन्न भागों को सींचती और वृक्ष-वनस्पति उगाने से लेकर प्यास बुझाने तथा उद्योगों की पृष्ठभूमि बनाने में भारी सहायता करती हैं। लकड़ी, जड़ी-बूटी, घास-पत्थर, धातु के रूप में हिमालय इतना उपजाऊ है कि उससे उत्पन्न होने वाली सम्पदा को देश की बहुमूल्य समृद्धि में ही गिना जा सकता है।

धरती पर देवभूमि के दर्शन

गंगा का उद्गम

गोमुख आजकल गंगोत्री से १८ मील आगे है, किन्तु प्राचीन काल में वह गंगोत्री में ही था। विशाल भागीरथ शिला वही है जिस पर बैठकर भागीरथजी ने तप किया था। पार्वती के तप का स्थान गौरी कुण्ड है, गंगोत्री का यह स्थान बहुत ही भव्य है। शिवजी ने अपनी जटाओं में गंगा को वहीं लिया बताते हैं। यहाँ जलधारा बहुत ऊँचे से बड़े कोलाहल के साथ गिरती है। नारद जी भागीरथी का उद्गम देखकर जब वापिस गये तो ब्रह्माजी ने उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। और कहा था—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि धन्यो धन्यः पुनः पुनः।
यत्त्वयासेवितं तीर्थं पुण्यं गंगोत्तरम् मुनु॥

हे नारद: तुम धन्य हो। तुमने गंगोत्री का सेवन किया, तुम कृतकृत्य हो गये, तुम्हें बार-बार धन्यवाद है।

इस पुण्य तीर्थ की प्रशंसा करते हुये बहुत कुछ कहा गया है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तापसानां तपः स्थानं मुनीनां मननालयः।
भक्तानां च विरक्तानामावसो हृदय प्रियः॥

यह तपस्वियों के तप का स्थान है, मुनियों के मनन की भूमि है। भक्तों और विरक्तों के हृदय को आल्हादित करने वाला यह क्षेत्र है।

ब्रह्मैव परमं साक्षात् द्रव रूपेण धावति।
पुमर्थ करुणार्थं कौ गंगेति शुभ संज्ञया।

यहाँ साक्षात् परब्रह्म ही पृथ्वी पर गंगा इस शुभ नाम से मनुष्यों को चारों पदार्थ देने के लिए जल रूप में वह रहे हैं।

कुत्र गंगोत्तरी तीर्थ कुत्र काशी गयादयः।
प्रचंड द्युमणेरग्रे खद्योतः किं प्रकाशते॥

कहाँ तो गंगोत्तरी तीर्थ और कहाँ काशी, गया आदि तीर्थ। मध्यान्ह काल के सूर्य के सामने खद्योत क्या प्रकाश कर सकता है?

न पापं न दुराचारः कौटिल्यं कूट कर्म च
न धर्मध्वजिता यत्र नवा दुःखं महाद्भुतम्॥

इस क्षेत्र में पा नहीं, दुराचार नहीं, कुटिलता नहीं, छल वंचना नहीं और साथ ही किसी प्रकार का दुःख भी नहीं है।

भागीरथ तपः स्थानं त्रिषुलोकेषु विश्रुतम्।
इंद भूनलोक वैकुण्ठ मिति जानहि नारद॥

हे नारद ! यह पवित्र पुण्य तीर्थ भागीरथी का तप स्थान तीनों लोकों में प्रसिद्ध है, उसे तुम भूलोक का स्वर्ग ही समझो।

ऋतु विशेषज्ञों का कथन है कि यह प्रदेश अब धीरे-धीरे गरम होता जा रहा है। पहले जितनी बर्फ यहाँ पड़ती थी, अब उतनी नहीं पड़ती। गंगा ग्लेशियर धीरे-धीरे गलता जा रहा है और अब गोमुख १८ मील पीछे चला गया है। लगभग १ मील तो अभी कुछ ही वर्षों में हटा है। इसलिए गंगा से उद्गम तक जाने को अब गंगोत्री से १८ मील ऊपर जाना पड़ता है। इस पुण्य उद्गम का वर्णन करते हुए कहा गया है—

तत्र प्रालेय संघात भूषिते भुवि भूषणे।
गोमुखे गोमुखाकार महातुहित गह्वरात्॥
निर्गच्छति महावेगा गंगा सुरतरंडिणी।
पावनी पावनार्थाय पृथ्वीलोक निवासिनाम्॥

बर्फ के समूह से भूषित और भूमि के विभूषण उस गोमुख स्थान में गौ के मुख के सदृश बर्फ की महान् गुफा से पुण्यवती सुरनदी गंगाजी भू-लोक के निवासियों को पावन करने के लिए महान् वेगवती होकर निकलती हैं।

गंगोत्री से ९ मील पर चीड़ का वृक्षों का वन है इसे चीड़वासा कहते हैं। वासा शब्द उधर वन के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। चीड़वासा अर्थात् चीड़ के वृक्षों का वन। यहाँ एक पुण्यात्मा ने एक छोटी-सी धर्मशाला बना दी है। इसमें प्रबन्धक तो कोई नहीं रहता, पर भोजन पकाने तथा जल रखने को कुछ बर्तन पड़े रहते हैं। जो वहाँ पहुँच जाता है वही उसका प्रबन्धक बन जाता है। यहाँ से भोजनवासा प्रारम्भ होता है। भोजवासा अर्थात् भोज पत्र के वृक्षों का वन। इस वृक्ष के ऊपर जो वल्कल निकलता है उससे ओढ़ने-बिछाने का, वस्त्रों का, कुटिया ढकने का, काम चल जाता है। इसी क्षेत्र में पाँच महात्माओं की कुटिया हैं जो शीतकाल में भी भीषण बर्फ के नीचे यहीं रहते हैं। गंगा के दूसरी पार स्वामी तत्त्व बोधानन्द जी की कुटिया है। ग्रीष्म ऋतु में जब उधर आने-जाने का मार्ग खुलता है तब यह लोग ९ महीने के लिए जीवन निर्वाह की आवश्यक सामिग्री जमा कर लेते हैं और अग्नि के सहारे जीवन धारण किये रहते हैं। एक महात्मा रघुनाथ दास अन्न नहीं लेते, वे ग्रीष्म में हरे और शीत में सूखे पत्ते आलू के साथ बनाकर कितने ही वर्षों से काम चला रहे हैं। भोजपत्र के पेड में जहाँ-तहाँ कबड़ जैसी मुलायम गाँठें निकल आती हैं जिन्हें 'भुजरा' कहते हैं। इसे पानी में उबालने से बढ़िया किस्म की चाय बनती है जो रंग, स्वाद और गर्मी देने में बाजारू चाय की अपेक्षा हर प्रकार उत्कृष्ट होती है। शीत निवारण के लिए इन महात्माओं का दैनिक पेय यही रहता है। दूध और चीनी का तो वहाँ अभाव ही रहता है। इसलिए इस भुजरा के उवाले हुए क्वाथ को वे नमक डालकर पिया करते हैं।

इस भोजवासा क्षेत्र में एक छोटी-सी नदी है जिसे 'भोजगढ़' कहते हैं। गढ़ शब्द पहाड़ी भाषा में नदी के अर्थ में प्रयोग होता है। भोजगढ़ अर्थात् भोजपत्र वन में वहने वाली नदी। इसके बाद फूलबासा अर्थात् फूलवन आरम्भ हो जाता है। जहाँ कोई वृक्ष नहीं मिलता भूमि पर वनस्पतियाँ उगी होती हैं। यह वनस्पतियाँ श्रावणभाद्रपद महीनों से सुन्दर पुष्पों से सुशोभित होती हैं। इसे पार करके गोमुख आता है।

इस १८ मील प्रदेश में कोई सड़क या पगडंडी नहीं है। जानकार मार्ग दर्शक कुछ पहचाने हुए वृक्षों, पत्थरों,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिखिरों तथा दृश्यों के आधार पर चलते हैं और यात्री को गोमुख तक ले पहुँचते हैं। रास्ते में कई स्थान ऐसे हैं जहाँ थोड़ी भी चूक होने पर जीवन का अन्त ही हो सकता है। चलने और चढ़ने में कितनी कठिनाइयाँ हैं इनका वर्णन न करते हुए यहाँ तो यही कहना उचित है कि इस प्रदेश में प्रवेश करने पर मनुष्य थकान और कष्टों को भुलाकर एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करता है । प्रकृति माता की इस सुहावनी गोद से—जब वह कोलाहल भरे हुए दु:वृत्तियों से पटे हुए शहरों की तुलना करता है तो वह सचमुच ही अपने नरक से निकल कर एक स्वर्गीय वातावरण में निमग्न पाता है।

भगवती भागीरथी का उद्‌गम दर्शक को एक आध्यात्मिक आनन्द में विभोर कर देता है। यदि गंगा को एक नदी मात्र माना जाय तो भी उसके इस उद्‌गम का प्राकृतिक सौन्दर्य इतना सुशोभित है कि कोई सौन्दर्य परखी उस दृश्य पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। 'गोमुख' शब्द से ऐसा अनुमान किया जाता है कि वहाँ गाय के मुँह की शकल का कोई छेद होगा वहाँ से धारा गिरती होगी, पर वहाँ ऐसी बात नहीं है। बर्फ के पर्वत में एक गुफा जैसा बड़ा छेद है उसमें से अत्यन्त प्रबल वेग से पिचकारी की तरह एक छोटी-सी जलधारा उछलती हुई निकलती है। उस शोभा का वर्णन कर सकना किसी कलाकार का ही काम है। यदि गंगा को एक आध्यात्मिक धारा माना जाय तो उसके उद्‌गम स्थल से वह अध्यात्म तत्त्व भी प्रबल वेग के साथ उद्‌भूत होता है। कोई भी श्रद्धालु हृदय यहाँ यह प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है कि कोई दिव्य अध्यात्म तरंगे उसके अन्त:करण के कण-कण को एक दिव्य आनन्द में सराबोर कर रही हैं। गंगा का अध्यात्म यों जहाँ भी वह बहती है हर जगह है, पर उसकी पूर्ण निर्मलता देखनी हो तो वह इस गोमुख पर ही दृष्टिगोचर होती है।

भोजवासा से यहाँ तक ८ मील की दूरी में कोई विश्राम स्थल नहीं है। जहाँ-तहाँ बड़े पत्थर बाहर निकले हुए हैं उनके नीचे सुस्ताया जा पकता है। साल में तीर्थ यात्रियों की संख्या अब ५-६ सौ तक होने लगी है। उन सभी को पहली रात जहाँ चीड़वासा की धर्मशाला में विश्राम किया था । वहीं फिर लौट कर जाना पड़ता है। ८ मील जाना और ८ मील लौटना यह १६ मील, इतनी विकट चड़ाई और दुर्गम पथ के कारण बहुत भारी पड़ते हैं। कोई श्रद्धालु यहाँ गोमुख पर कुछ देर विश्राम या भजनध्यान करना चाहे तो कर नहीं सकता, क्योंकि उसे तुरन्त लौटने की चिन्ता पड़ती है। अन्यथा १६ मील का मार्ग कैसे पार हो ? रात हो जाय, वर्षा होने लगे तब तो मार्ग मिलना भी कठिन है। इसलिए यात्री कुछ देर यहाँ ठहरना चाहता है, पर मन मारकर वापिस ही लौटता है। कुछ दिन पूर्व गंगा के उस पार का उदासीन बाबा रहते थे, उनका शरीर शान्त हो जाने से वह कुटिया भी अस्तव्यस्त हो रही है। मन में विचार उठा कि यहाँ छोटी धर्मशाला होती तो भोजवासा की तरह यहाँ भी लोग ठहरते और एक दिन में १६ मील चलने की आपत्ति से भयभीत होकर इस पुण्य भूमि का लाभ कुछ समय अवश्य उठाते। स्थान की आवश्यकता मन को खींचती रही। संकल्प ने कहा—यह कुछ असम्भव नहीं है। यहाँ इस गंगा के उद्‌गम गोमुख पर एक छोटी धर्मशाला बन सकती है। शीघ्र ही बनेगी भी।

गोमुख तक यात्रियों का आना सम्भव होता है, उससे ऊपर घोर हिमालय-प्रारम्भ हो जाता है। जहाँ जाने का न कोई मार्ग है और न प्रयोजन। हिमालय का हृदय यहाँ से प्रारम्भ होता है। उसमें प्रवेश कर हमे तपोवन तक जाना था, समीप ही नन्दनवन है। वहाँ पहुँचकर अपना प्रयोजन पूर्ण हुआ । जितना ठहरना था, ठहर गया, जो करना था किया गया, जो कहना था कहा गया, जो सुनना था सुना गया। उससे सर्व साधारण का कोई प्रयोजन नहीं है। उन व्यक्तिगत बातों की चर्चा भी अप्रासंगिक होगी।

धरती के स्वर्ग को देखने की प्रबल इच्छा उठ रही थी और किसी के अनुग्रह से ही वह असम्भव दीखने वाले कार्य की व्यवस्था सहज ही बन गई। प्रभु की महान् कृपा और महात्माओं के आशीर्वाद से कठिन कार्य भी सहज हो सकते हैं। अपना मनोरथ भी सहज हो गया, उसके सब उपकरण जुट गये। साथी और मार्ग-दर्शक भी थे। थके-माँदे पैरों में नया जीवन आया औ ठंड सहन न कर सकने वाली दुर्बल काया भी तन कर खड़ी हो गई। ठिठुरते पैर आगे को बढ़ने लगे।

यात्रा अभियानों के वर्णन में बहुधा लेखक अपने व्यक्तिगत प्रसंगों की चर्चा अधिक करते हैं। इसमें आत्मश्लाघा बहुत रहती है—हमें वैसा कुछ भी न करके केवल वहाँ की परिस्थितियों का ही वर्णन करना है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गोमुख से ऊपर का अगम्य हिमालय चिरकाल से आवागमन रहित है। वहाँ जाने का कुछ प्रयोजन भी नहीं समझा जाता। गोमुख से दो मील ऊपर जहाँ तपोवन आरम्भ होता है, वहाँ श्रावण, भाद्रपद महीनों में बड़ी कोमल और पौष्टिक वनस्पतियाँ उगती हैं। यदि भेड, बकरियाँ चरलें तो उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो जाता है, बच्चे मजबूत देती हैं और ऊन भी बहुत मुलायम निकलता है, इन लाभों को देखते हुए कभी-कभी कोई दुस्साहसी पहाड़ी बकरी वाले अपनी भेडें, कुछ दिन के लिए उधर ले पहुँचते हैं। यह लोग भी गोमुख से दो तीन मील ऊपर तक ही जाते है । इन्हें छोड़ कर और कभी मनुष्यों के दर्शन उधर नहीं होते। यह तपोवन क्षेत्र ही है जहाँ यह मनुष्य और पशु कभी-कभी देखे जाते हैं। जंगली भेड़ें जिन्हें बरड़ कहते हैं वे, कस्तुरी हिरन तथा भूरा भालू भी इस क्षेत्र में कभी-कभी विचरण करते नजर आते हैं। पेड एक नहीं केवल घास एवं वनस्पतियाँ हैं जिनमें से एक मन भावन गन्ध आती रहती है जो इस गन्ध की तेजी को सहन नहीं कर सकते हैं उनका सिर चकराने लगता है। इससे थोड़े आगे चलकर नन्दनवन है। यहाँ श्रावण, भाद्रपद के महीने बसन्त ऋतु माने जाते हैं। इन दो महीनों में ही यह वनस्पतियाँ उगती, बढ़ती, फूलती, पकती और समाप्त हो जाती हैं। आश्विन से बर्फ पड़ने लगती है, तब वह हरियाली भी समाप्त हो जाती है। यह हरियाली जब फूलती है तो इसमें सैकड़ों प्रकार के एक-से-एक बढ़कर सुन्दर फूल खिलते हैं। इनकी बनावट, विचित्रता और भिन्नता देखकर ऐसा लगता है जैसा किसी चतुर चित्रकार ने रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित मखमली कालीन जमीन पर बिछा दिया हो।

नन्दनवन से लगा हुआ भागीरथी शिखिर है। कहते हैं कि तपस्वी भागीरथ इस पर्वत के रूप में यहाँ सदा विराजमान रहते हैं। यह शिखर भी उतना ही सुन्दर है जितना कि उसके नीचे का मैदान नन्दनवन।

नन्दनवन देवताओं का वन माना जाता है। प्राचीनकाल में सम्भव है यहाँ कोई वृक्ष रहे हों, पर आज तो यहाँ सुन्दर हरियाली ही शेष है, जिसे देखकर प्रकृति की इस अद्भुत् कृति पर आश्चर्य होता है और विचार आता है कि आज यह छोटी हरियाली इतनी सुन्दर लगती है तो प्राचीन काल में जब यहाँ वृक्ष होंगे तो वे भी तने ही सुन्दर होंगे और उनके वातावरण में रहने वाले भी वैसे ही सुन्दर होते होंगे जैसे देवता चित्रण किये जाते हैं। रंग-बिरंगे फूलों के साथ रहने वाली तितली जब उन्हीं के रंग की वैसी ही सुन्दर हो जाती है तो इस नन्दनवन में विचरण करने वाली आत्माओं के वैसी ही सुन्दर होने में कोई सन्देह की बात नहीं है। इस धरती के नन्दनवन की शोभा के बारे में उल्लेख मिलता है कि—

अगहन गहनं वै लता विटपिवर्जितम्।
प्रशांतमति गंभीरं विशालं ग्राव संकुलम्॥
कृष्णरक्तैः श्वेतपीतैः पुष्पैर्दिव्य मनोहरैः।
इन्द्राणी केश भूषाभिः समाच्छन्नं समतंतः॥

"यहाँ गहन वन नहीं है। लता, वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है। प्रशान्त और अत्यन्त गम्भीर प्रदेश है। विशाल और शिलाओं से भरा हुआ है। इन्द्राणी के केशों में लगे आभूषणों जैसे मन को मोहित करने वाले रंग-बिरंगे फूल वहाँ खिले रहते हैं।"

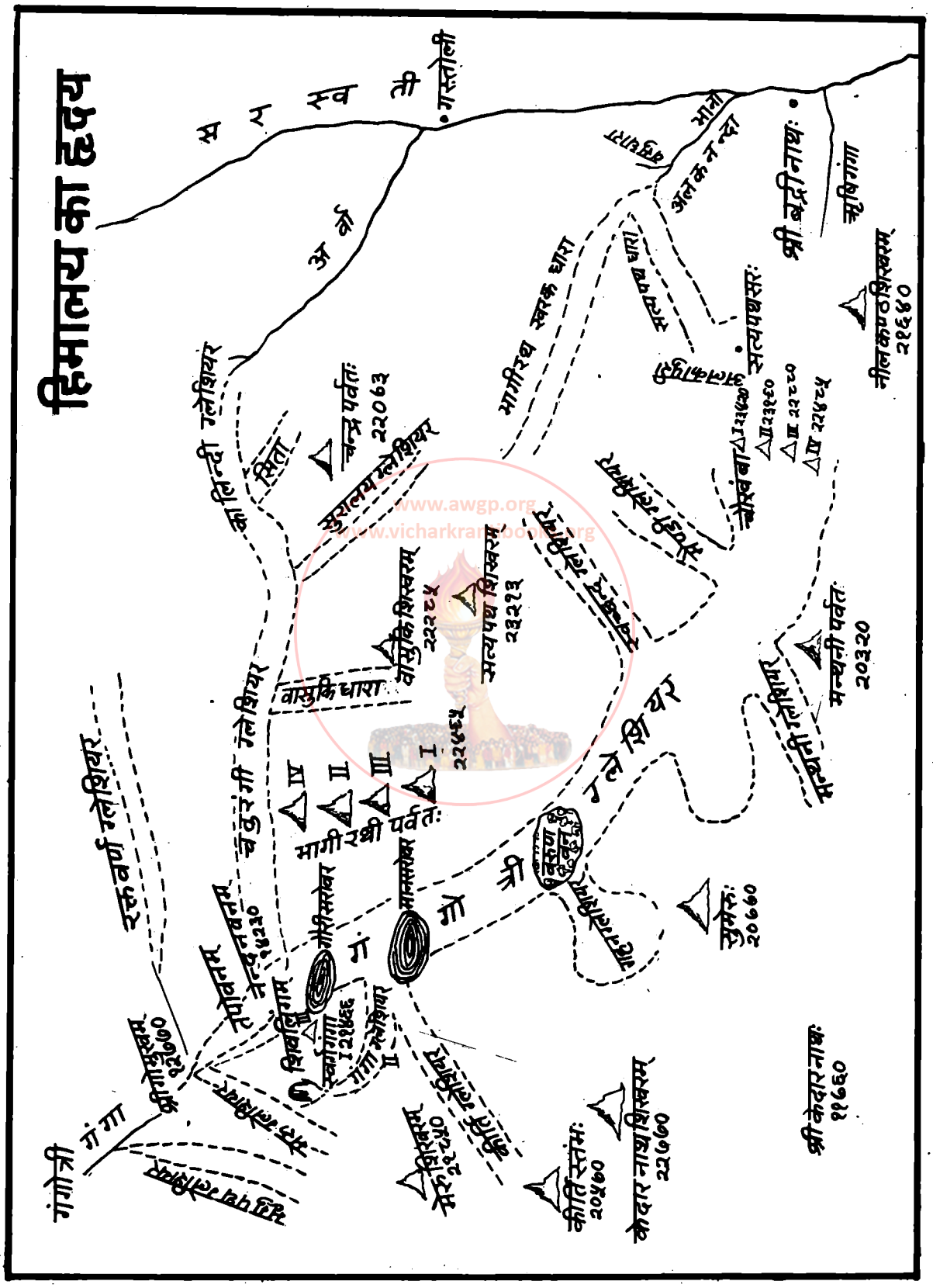
अहो तत्रत्य सुषमां कोवा वर्णयितुं प्रभुः।
इन्द्रोप्यक्षि सहस्त्रेण यां विलोकय न तृप्यति॥

वहाँ की प्राकृतिक शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? इस सौन्दर्य को इन्द्र अपने हजारों नेत्रों से देखकर भी तृप्त नहीं होता है।

तपोवन में एक विशाल शिला के नीचे थोड़ी-सी आड़ ऐसी है कि उसके नीचे दस व्यक्ति विश्राम कर सकते हैं। कुछ गुफा जैसी स्थिति उसकी है। इसके अतिरिक्त इस प्रदेश में और कोई छाया का स्थान ऐसा नहीं है जिसके नीचे रात को विश्राम किया जा सके। पेड तो है ही नहीं। लकड़ी भी यहाँ नहीं मिलती। एक मोटे डंठल की वनस्पति ऐसी होती है कि उसके डंठलों को जलाकर अग्नि का कुछ प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है। तपोवन से सटा हुआ ही शिवलिंग शिखिर है। इसका दृश्य कैलाश जैसा ही लगता है। इसे देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानों यह शिखर प्रकृति का बनाया हुआ एक विशाल शिवलिङ्ग है जिसे किसी ने यहाँ विधिवत् स्थापित किया हो।

तपोवन से गोमुख की दिशा में मेरु शिखर है। इसके नीचे मेरु ग्लेशियर है जो केदार शिखर तक चला गया है। शिवलिंग शिखिर से निकल कर स्वर्ग गंगा नामक एक छोटी-सी नदी बहती है। ऊपर से इसकी दो धारायें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org


हिमालय का हृदय
म र स्व ती
गंगोत्री
गं गा
रक्तवर्ण ग्लेशियर
चंदरंगी ग्लेशियर
वासुकि धारा
वासुकि शिखरम्
सत्यपथ शिखरम्
चन्द्र पर्वतः
सुरालय ग्लेशियर
क्रा रिन्दी ग्लेशियर
सीता
भागीरथी स्वरूप धारा
सतोपन्थ धारा
अलकनन्दा धारा
सतोपन्थः
सत्यपथसः
श्री बद्रीनाथः
ऋषिगंगा
नीलकण्ठशिखरम्
मन्थनी पर्वतः
मन्थनी ग्लेशियर
रक्तवर्ण शिखरम्
गोमुख
शिवलिंगम्
गोमुखेश्वर
मानसरोवर
भागीरथी पर्वतः
सुमेरुः
श्री केदारनाथः
केदार नाथ शिखरम्
कीर्ति स्तंभः
कीर्ति ग्लेशियर

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दो और से आती हैं, तपोवन के मध्य भाग में वे दोनों मिलकर गंगा-यमुना मिलने जैसा संगम बनाती हैं।

पुराणों में वर्णन आता है कि गंगा पहले स्वर्ग में निवास करती थीं, पीछे भागीरथ के तप के कारण भूतल निवासियों का कल्याण करने के लिए नीचे आई। यह दृश्य यहाँ प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। हिमालय के हृदय—धरती के स्वर्ग—में यह स्वर्ग गंगा बहती है। यही धारा गंगा ग्लेशियर में कुछ दूर के लिए विलीन होकर फिर नीचे गोमुख पर प्रगट होती है। शिवजी अपनी जटाओं में गंगा को धारण किये हुए हैं, यह दृश्य भी शिवलिंग शिखिर पर स्पष्ट है । यह स्वर्ग गंगा मेरु शिखिर से निकलकर शिवलिंग के भाग को स्पर्श करती हुई तपोवन में प्रवाहित होती हैं ।

तपोवन के अन्त में गंगा ग्लेशियर से सटा हुआ गौरी सरोवर है। यहाँ भगवती उमा शिव के समीप ही सरोवर रूप से विराजती हैं । कठोरता और करुणा का यह युग्म सब प्रकार वन्दनीय है। शिव और शक्ति यहाँ पर्वत सरोवर के रूप में साकार हैं। एक को तप कहें तो दूसरे को भक्ति। एक ज्ञान है तो दूसरे को भावना कह सकते हैं। शिवलिंग पर्वत के समीप गौरी सरोवर का जोड़ा देखते-देखते भावनाशील हृदयों में साक्षात् शिव-पार्वती के दर्शनों जैसा आल्हाद उत्पन्न होता है।

इस स्वर्गीय दृश्य को देखते-देखते गंगा ग्लेशियर के सहारे-सहारे कुछ मील और आगे बढ़ जाते हैं तो कीर्ति ग्लेशियर के कोने पर मान-सरोवर झील आ जाती है। लम्बाई-चौड़ाई में तिब्बत वाली मानसरोवर की बराबर यह नहीं है, पर निर्मलता, पवित्रता और दिव्य तत्त्वों की दृष्टि से यह स्वर्ग-सरोवर संसार के सभी जलाशयों की अपेक्षा अधिक शान्ति और पवित्रता प्रदान करने वाला है।

इतने क्षेत्र में विचरण करने पर भी अभी यहाँ की नीचे की भूमि पर से सुमेरु के दर्शन नहीं हो सकते हैं। किसी शिखर से दर्शन हो सकते हैं, पर ऊपर चढ़ सकना सम्भव नहीं। चिकनी बर्फ और सीधी चढ़ाई होने के कारण बिना विशेष उपकरणों की सहायता के यहाँ के किसी शिखर की चोटी पर केवल पैरों के बल बूते चढ़ा नहीं जा सकता। इसलिये सुमेरु के दर्शन के लिए अभी गंगा ग्लेशियर में ही आगे बढ़ना होगा और 'गहन हिमधारा' से 'वरुण वन' तक पहुँचना होगा। यहाँ से सुमेरु के दर्शन भली प्रकार होते हैं। वरुण वन में मिट्टी है, वहाँ निचाव होने के कारण पानी की नमी रहती है, नन्दनवन जैसी वनस्पतियाँ भी यहाँ हैं। इससे आगे का मार्ग जाने योग्य नहीं। चौखम्बा शिखर जिन पर पाण्डवों ने स्वर्गारोहण किया था यहाँ से दिखाई देते हैं। बस, दर्शनों का लोभ अब यहीं छोड़ना पड़ता है। इससे आगे का मार्ग अवरुद्ध है। अब यहाँ से ऊँचाई के साथ-साथ मार्ग की दुर्गमता भी अकथनीय होती है। इसलिए धरती का स्वर्ग देखने की आकांक्षा वाले को इतने से ही सन्तोष करके वापिस लौटना पड़ेगा।

अग्निपुराण के अनुसार शिवजी ने ताण्डव नृत्य यहीं किया था। जब यह दुनियाँ पापों के भार से इतनी डूब गई थी कि प्राणी यहाँ शान्तिपूर्वक न रह सकें तो उन्होंने अपना डमरू और त्रिशूल उठा कर थिरकना आरम्भ कर दिया था। उस ताण्डव नृत्य से प्रलय उत्पन्न हो गई, प्रचण्ड अग्नि ज्वालाएँ दशों दिशाओं में उठने लगीं और वह सब जिस पर पापी मानव इतराता फिरता था देखते-देखते क्षणभर में नष्ट हो गया। उस ताण्डव नृत्य का भूमि में पग-पग पर मन पूछता था, हे भूतभावन् ! अभी ताण्डव नृत्य में कितनी देर है, क्या पापी मानव के कुकुर्मों का प्याला भरने में अभी भी कुछ देर बाकी है ?

पुरातत्त्व वेत्ताओं ने मानव जाति की आदि उत्पत्ति मेरु पर्वत पर मानी है। आदम हव्वा का स्वर्ग से पृथ्वी पर आना भी इसी पर कहा जाता है। प्रलय के समय नूह की नाम की कथा तथा मारकण्डेय ऋषि का बालक के रूप में दर्शन होने की घटना भी इसी स्थान से सम्बन्धित बताई जाती है। इन सब विशेषताओं के कारण प्राचीनता के प्रति प्रेम रखने वाले किसी भावुक हृदय व्यक्ति के लिए ऐसा स्थान एक प्रकार की विशेष भावनाओं का उद्रेक करने वाला बन सकता है। अपने लिए भी इस भूमि के कण-कण में से अतीत की अनेकों महत्त्वपूर्ण घटनाएँ अपने सुप्तस्वरूप को प्रगट करती हुई अन्तःकरण को भावनाओं में ओत-प्रोत कर रही हैं।

पुराणों में पढ़ा था कि सिद्ध योगी सद्गुरु अभी हैं, पर कलियुग के प्रभाव से हिमालय के किसी गुप्त स्थान पर अदृश्य रूप में रहते हैं। गुरु गीता में ऐसे सद्गुरु का वर्णन आता है जो साधक के ज्ञानचक्षु को खोल कर उसका अज्ञानान्धकार दूर कर देते हैं। ये गुरु स्वयं त्रिमूर्ति और परब्रह्म स्वरूप हैं। इन सद्गुरुओं का अजर-अमर ऋषि न महर्षियों से ही तात्पर्य है जो अब युगप्रभाव से दिखाई नहीं पड़ते। लिंग पुराण के सातवें अध्याय में इन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सद्गुरुओं का वर्णन है और उनका निवास हिमालय के सुमेरु पर्वत पर बताया गया है। श्री मद्भागवत् के बारहवें स्कन्ध में दूसरे अध्याय के ३७ वें श्लोक में इस सिद्ध पुरुषों का निवास स्थान कलाप ग्राम में बताया गया है। १० वें स्कन्ध के अध्याय ८७ में श्लोक ५, ६, ७, में भी ऐसा वर्णन है और महाभारत नौसल पर्व के अध्याय ७ में भी कलाप ग्राम में सिद्ध पुरुषों के निवास स्थान का वर्णन है।

वह सिद्ध भूमि यही है। उन अदृश्य आत्माओं के चर्मचक्षुओं से दर्शन कर सकना तो किन्हीं विरलों का ही सौभाग्य हो सकता है। पर इस पुण्य प्रदेश में ऐसा अनुभव अवश्य होता है कि जिस क्षेत्र में प्राचीन काल में इतनी ऊँची आत्माएँ क्रीड़ा करती रही हैं, वह आज भी उस पूर्व कालीन प्रभाव से सर्वथा रहित नहीं है। अश्रद्धालु और अविश्वासी तक यहाँ आस्तिकता की निष्ठा जमने के लायक बहुत कुछ अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। श्रद्धा, शांति वैराग्य और विवेक की भावनाएँ अपने आप ही अन्त:करण में उद्वेलित होने लगती हैं और ऐसा अनुभव होता है, मानों यहाँ बिखरी हुई कोई अदृश्य दिव्य शक्तियाँ इन भावनाओं को अपनी करुणा, दया और प्रगति का विश्वास दिलाने के लिए प्रसाद रूप में प्रदान कर रही हैं।

'धरती के स्वर्ग' प्रदेश का यह एक छोटा-सा भाग देखा गया। मुख्य केन्द्र स्थान सुमेरु के दर्शन मात्र किये गये। वहाँ तक पहुँचना सम्भव न हो सका, पर जितने क्षेत्र में प्रवेश किया गया, जो कुछ देखा गया वह भी अपनी तुच्छता और साधन हीनता को देखते हुए कम सौभाग्य की बात नहीं है। दूसरे लोगों को यहाँ पहुँचने पर कैसा अनुभव होगा यह कहना कठिन है, पर अपने को पूरी अनुभूति के साथ देवभूमि का अनुभव हुआ। प्राचीन काल में यहाँ सशरीर देवता रहते होंगे, आज वे इस सुनसान में चर्म-चक्षुओं से कहीं नहीं दीखे, पर ऐसा अनुभव बराबर होता रहा कि यहाँ देव तत्वों की एक प्रभावशाली सत्ता अब भी मौजूद है और वह अपनी उपस्थिति से अन्त:करण को बार-बार आन्देलित कर रही है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु अपने अन्दर देवत्व धारण किए हुए है और उसमें से आत्मतत्त्व का सबल संदेश देने वाली दिव्य किरणें प्रबल वेग के साथ उद्भूत हो रही हैं। प्राचीन काल में भारत समस्त संसार को आध्यात्मवाद का संदेश देने वाला जगद्गुरु रहा है। लगता है उस संदेश का उद्गम तप-साधनाओं द्वारा उपलब्ध किया जाता होगा। भारत की आरण्यक संस्कृति पापतापों ने जलते हुए प्राणी पर अमृत छिड़कती रहती है, कौन जाने आरण्यकों श्रेष्ठ में आरण्यक कभी यह हिमालय का हृदय—धरती का स्वर्ग प्रदेश ही न रहा होगा।

इस क्षेत्र में फैले हुए शिखरों की ऊँचाई और गहनता का अनुमान लगाने के लिये कौन स्थान कितना ऊँचा है, यह जानने से स्थिति का सही अनुमान लगाने में सुगमता होगी। समुद्र तल से ऋषिकेश लगभग २००० फीट ऊँचा है। गंगोत्री १०॥ हजार, गोमुख १२७७०, नन्दनवन १४२३०, भागीरथ पर्वत २२४९५, मेरु शिखर २१८५०, सत्पथ शिखर २३२१३, केदारनाथ शिखर २२७७०, सुमेरु २०७७०, स्वर्गारोहण शिखर २३८८०, चन्द्र पर्वत २२०७३, नीलकण्ठ शिखर २१६४०। इतने ऊँचे पर्वतों और शिखरों पर पहुँच सकना अत्यन्त उच्चकोटि के साधनों से सम्पन्न, लाखों रुपया खर्च करने वाले पर्वतारोही दलों का काम है। केवल शारीरिक बल और स्वल्प साधन सामग्री के आधार पर वरुण वन तक पहुँच सकना ही सम्भव है। यहाँ पहुँचने से धरती के स्वर्ग के प्राय: सभी प्रमुख दिव्य स्थानों के दर्शन हो जाते हैं।

'एवरेस्ट'—शिखर पर चढ़ने के लिये भारत सरकार की सहायता से १३ व्यक्तियों का एक दल गया था, जिसे १८ टन (लगभग ५०० मन) आवश्यक उपकरण अपने साथ ले जाने पड़े थे और इस सामान को ढोने को ६५० कुली तथा मार्ग बनाने के लिये ५२ शेरपा साथ गये थे। लाखों रुपया खर्च हुआ था। अन्य पर्वतारोही दलों को भी ऐसी ही व्यवस्था करनी पड़ती है। केदार शिखर पर स्विटजरलैण्ड का एक दल चढ़ाई कर भी चुका है, पर कहते हैं कि उसे सफलता नहीं मिली। इसलिए इन शिखरों पर पहुँच सकना निस्संदेह कठिन है, पर जितना अपनी इस यात्रा में पहुँच सकना सम्भव हुआ वह भी धार्मिक भावना से जाने वाले व्यक्ति के लिये कम सन्तोषजनक नहीं है।

इस पुण्य प्रदेश में पहुँचने पर किसी भौतिक दृष्टिकोण के व्यक्ति के मन में संम्भव है । पत्थर, बर्फ, घास, पानी तथा प्रकृति की थोड़ी भी सुन्दरता मात्र ही दृष्टि गोचर हो, पर जिसके हृदय में श्रद्धा है उसके लिए उस श्रद्धा-भावना को पुष्ट और विकसित करने के लिए यहाँ बहुत कुछ है। अन्त:करण के सात्विक तत्त्व यहाँ के दिव्य वातावरण में बड़ी तीव्र गति से विकसित होते हैं और उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है तीनों इस पृथ्वी का समस्त सतोगुण एकत्रित होकर उसकी अन्तरात्मा में प्रवेश कर रहा है। मन की एकाग्रता और बुद्धि में स्थिरता उत्पन्न होती है, आध्यात्मिक अभिरुचि, पापों से घृणा, ईश्वरीय निष्ठा, आत्मपरायणता एवं भक्ति-भावना की हिलोरें अनायास ही हृदय में उठने लगती हैं। सत्यं, सिवं, सुन्दरं की झाँकी अपने चारों ओर होती है। प्राकृतिक सौन्दर्य का अटूट भण्डार दिखाई पड़ता है। इस शोभा को लेखनी तथा वाणी से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता यह तो अनुभव करने की चीज है। इस वातावरण की झाँकी नीचे देखिए—

देव सेव्यं च तत्स्थानं दैवतानां च दुर्लभम्।
महा पुण्य महोपुण्य पूरषैरव लौकितम्॥
नैतत् केवल मक्षाणां सदैवह्लादकं मुने।
सर्व पुण्य महातीर्थ मूर्द्ध भूषेति विद्धितत्॥

"यह स्थान देवताओं द्वारा सेवनीय, परम दुर्लभ और महान्पुण्यप्रद है। इसे पुण्यात्मा लोग ही अवलोकन करते हैं। हे नारद ! यह स्थान केवल इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाला ही नहीं, किन्तु उसे समस्त महान् तीर्थों का शिरोमणि जानो।"

तथाह्नि कलधौताभैः सायंच कनक प्रभैः।
प्रहर्षयाति या चित्तं पर्वताग्रैर लौकिकैः॥
किमयं तपनीयाद्रिः किंवा रजत पर्वतः।
इति संदेहा तो यत्र बाढ मुह्यान्ति मानवः॥

"दिन में चाँदी के प्रकाश वाले और सायं सुवर्ण के प्रकाश वाले दिव्य पर्वत शिखरों से चित्त को अत्यन्त आह्लाद प्राप्त होता है। मनुष्य सन्देहग्रस्त होकर सोचता है कि क्या यह सोने का पर्वत हैं? क्या यह चाँदी का पर्वत है?"

प्रातः और सायंकाल जब सूर्य पीत और रक्त वर्ण होता है तो उसकी आभा के प्रतिबिम्ब से हिमाच्छादित शिखर सूर्य के रंग के तथा अपनी स्थिति और विशेषताओं के कारण विविध रंगों के दिखाई पड़ते हैं। इन्द्र धनुष की झाँकी जगह-जगह होती है। उस दृश्य को देखकर उस सौन्दर्य समुद्र में मनुष्य अपने को खोया-खोया सा अनुभव करता है।

सौन्दर्य ब्रह्मणो रूपं प्रकृत्या मनु वर्तते।
प्रकृतेर्नास्ति सौन्दर्य स्व स्वरूपात्मको गुणाः॥
तादृशास्तादृशे स्थाने ब्रह्म सौन्दर्य दीपिते।
ब्रह्मसम्पत्ति मायान्ति भावाविष्टाधियोवलात्॥

"सौन्दर्य ब्रह्म का ही स्वरूप है। प्रकृति स्वयं सुन्दर नहीं है, वह ब्रह्मा के प्रकाश से ही सौन्दर्यवान् होती है। ब्रह्म-सौन्दर्य से सम्पन्न ऐसे पुण्य स्थानों में ब्रह्मवित् लोग भावाविष्ट होकर स्वयमेव ब्रह्म समाधि को प्राप्त हो जाते हैं।

जिस आत्मस्थिति को प्राप्त करने के लिए बहुत समय तक साधना करने के उपरान्त सफलता मिलती है, वह इस वातावरण में प्रवेश करने पर कुछ समय के लिए अनायास ही उपलब्ध होती है। इन विशेषताओं को देखते हुए यदि इस देवभूमि में नन्दनवन के समीप ही ऋषियों तथा देवताओं ने तपोवन को तप साधना के लिए अपना उपयुक्त स्थान चुना था तो उनका यह निर्णय उचित ही था।

आज मनुष्यों की शारीरिक और मानसिक स्थिति वहाँ निवास करने योग्य नहीं है। पूर्वकाल की भाँति अब वहाँ वृक्ष तथा जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक साधन भी नहीं रहे हैं, फिर भी इस पुण्य प्रदेश के दर्शन करके अपने भाग्य को धन्य बना सकना अभी भी मनुष्य की सामर्थ्य के भीतर है। हममें से कई ऐसे साहसी जिनका स्वास्थ्य ठीक स्थिति में है आवश्यक उपकरणों के सहारे यहाँ तक पहुँच सकते हैं।

कैलाशवासी शंकर के सिर से गंगा प्रवाहित होती है। इसकी सगंति तिब्बत में स्थित कैलाश पर्वत से नही मिलती। क्योंकि वहाँ से गंगा का गोमुख तक आना भौगोलिक स्थिति के कारण किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। गंगोत्री से जेलूखागा घाटी होकर कैलाश करीब ३०० मील है। फिर बीच में कई आड़ पहाड़ आये हैं, जिसके कारण भी कोई जलधारा या हिमधारा वहाँ तक नहीं आ सकती। असली शिवलोक इस धरती के स्वर्ग में ही हो सकता है। गंगा ग्लेशियर शिवलिंग के समीप है। स्वर्ग गंगा भी वहीं है। गौरी सरोवर वहाँ मौजूद ही है। इस प्रकार गंगा धारण करने वाले शिव का कैलाश यह हिमालय का हृदय ही हो सकता है। यदि प्राचीन कैलाश यहाँ न रहा होता तो भागीरथ जी यहाँ तप क्यों करते? वे तिब्बत वाले कैलाश पर ही शिव के समीप क्यों न जाते? इस पुण्य प्रदेश में शिवलिंग केदार शिखर और नीलकण्ठ शिखर यह तीनों ही शिवजी के निवास हैं। मानसरोवर का भी इस देवभूमि में होना स्वाभाविक है। सुरालय, हिमधारा, सत्पथ हिमधारा तथा वरुण वन नामों से भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रदेश का देवभूमि होना सिद्ध है । अष्ट वस्तुओं ने जिस स्थान को अपना निवास बनाया वह वसुधारा भी अलकापुरी के पास ही है । इन सब बातों पर विचार करने से वास्तविक कैलाश और मानसरोवर इसी प्रदेश में अवस्थित सिद्ध होते हैं ।

आजकल का तिब्बत प्रदेश वाला कैलाश अब विदेशी प्रतिबन्धों के कारण यात्रा की दृष्टि से दिन-दिन असुविधा जनक हो रहा है । वहाँ डाकुओं का भी भय सदा रहता है । दूरी भी बहुत है । उस प्रदेश में भारतीय वातावरण भी नहीं है, न अपनी भाषा न संस्कृति । वहाँ जाकर विदेश-सा अनुभव होता है । जिस समय भारत की संस्कृति का वहाँ तक विस्तार रहा था उस समय वह तीर्थ भी उपयुक्त रहा होगा, पर शिव का वास्तविक निवास, गंगा का वास्तविक उद्गम और सच्ची आध्यात्मिक मानसरोवर का दर्शन करना हो तो हमें इस हिमालय के हृदय-धरती के स्वर्ग में वास्तविक कैलाश की खोज करनी पड़ेगी । परीक्षा के लिए कोई व्यक्ति तिब्बत वाले कैलाश और इस हिमालय के हृदय वाले कैलाश की यात्रा करके देखे वह स्वयं अनुभव करेगा कि धरती के स्वर्ग प्रदेश वाला कैलाश कितना शान्तिवद एवं कितने दिव्य वातावरण से परिपूर्ण है । यदि भारत सरकार या धनीमानी सज्जन इस मार्ग को ठीक करने और दो-तीन जगह ठहरने योग्य सुविधा उत्पन्न कर सकें तो आध्यात्मिक यात्रा प्रेमियों और पर्वतारोहण में अभिरुचि रखने वाले सामान्य स्थिति के लोगों के लिए भी यह प्रदेश पहुँचने योग्य बन सकता है और इस प्रदेश के गरीब मजदूरों को यात्रियों के साथ जाने से आजीविका का भी एक द्वार खुल सकता है ।

इस प्रदेश के उत्तर भाग से बद्रीनाथ जाने का एक मार्ग खोज निकाला गया है । वैसे गोमुख से वर्तमान प्रचलित मार्ग से बद्रीनाथ २५० मील है पर इसे सीधे मार्ग से २५ मील ही है । गत दो-तीन वर्षों में कई दुस्साहसी सन्तों के दल इस मार्ग से बद्रीनाथ यात्रा कर भी चुके हैं । स्विटजरलैण्ड के पर्वतारोही दल के साथ मुखवा गाँव का दलीपसिंह नामक एक कुली गया था, उसने इस मार्ग की जानकारी प्राप्त की, फिर उसके नेतृत्व में दो तीन अभियान हुए, जो सफलता पूर्वक अपने लक्ष तक पहुँचे । गोमुख से रवाना होकर पहले दिन तपोवन की शिला गुफा में, दूसरे दिन सीता ग्लेशियर, तीसरे दिन चतुरंगी ग्लेशियर के ऊपर, चौथे दिन अरबा नदी के किनारे, पाँचवें दिन गस्तोती माना गाँव होते हुए बद्रीनाथ पहुँच जाते हैं । खुले मैदान में छोटा-सा टेण्ट लगाकर चारों ओर के प्रचण्ड शीत के वातावरण में रात काटना मृत्यु से लड़ाई-लड़ने के सामान है । फिर भी थकान के मारे घण्टे दो घण्टे पेट में घोंटू देकर नींद आ ही जाती है । साथ-साथ लोग एक दूसरे से सटकर भी कुछ गर्मी उत्पन्न करते हैं । शरीर का जो भी अंग खुला रह जाता है वहीं ऐसा लगता है मानों गलने लगा । केवल श्रद्धा और साहस ही यहाँ मुनष्य को सावधान रखते हैं अन्यथा यदि यात्री यहाँ की भयंकरता से डरने लगे और अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठे तो उसकी भी पांडवों की तरह हिम-समाधि हो जाना सहज है ।

इस मार्ग में २० हजार फुट की ऊँचाई चन्द्र पर्वत के निकट पार करनी पड़ती है । अधिक ऊँचाई पर हवा कम हो जाने से सिर में चक्कर आते हैं, मन उदास रहता है । पक्की बर्फ की दरारों के ऊपर कच्ची बर्फ जम जाती है तो नीचे की दरारें दिखाई नहीं पड़तीं और उनमें फँस कर प्राण गँवा बैठने का खतरा रहता है । इसलिए यात्री आपस में कमर से रस्सियाँ बाँध कर दूर-दूर, अलग-अलग चलते हैं ताकि कोई एक उन दरारों में फँसे तो उस रस्सी के कारण इन खाइयों में धँस जाने से बचाया जा सके । इस मार्ग में कई जगह बर्फ फिसल कर रास्ता तय करना पड़ता है । प्रात: जब ठण्ड में बर्फ जमी रहती है तब तक मार्ग चला जाता है, जब धूप निकलने से कच्ची बर्फ नरम हो जाती है और पिघलने लगती है तो पैर फँसते हैं । फिर यात्रा बन्द करनी पड़ती है । शाम को ४ बजे से बादल घिर आते हैं तब पास बैठे हुए व्यक्ति भी दीखते नहीं । कुहरा और अधेरा छा जाता है । खाने के लिए नमकीन सत्तू और नमकीन चाय पर रहना पड़ता है । स्टोव यहाँ का सच्चा साथी है । उस पर बार-बार चाय बनाकर थकान उतारनी पड़ती है । दूध की जगह पर मक्खन और चीनी की जगह पर नमक डालने से काम चलाऊ चाय बन जाती है । बर्फ रात को काफी कड़ी हो जाती है, उस पर कम्बल बिछा कर सोया जा सकता है । ठण्ड काफी रहती है, ऊनी कपड़े, स्वेटर, मोजे, दस्ताने, जूते, मफलर, टोपा दिनरात कसे रहते हैं । शरीर खोलने और स्नान करने का तो यहाँ प्रश्न ही नहीं है । बर्फ सूरज की धूप में काँच की तरह चमकती है तो इसके प्रतिबिम्ब से आँखे खराब हो जाती हैं । इसलिए दिन के समय गहरा रंगीन चश्मा पहने रखना पड़ता है । ऊँचे पर्वतों पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पानी नहीं । वहाँ तो स्टोव से बर्फ पिघला कर काम चलाना पड़ता है । दोपहर को बर्फ पिघलने से भी छोटे गड्ढों में जहाँ तहाँ कुछ देर के लिए पानी भर जाता है, उसे भी उस समय काम लिया जा सकता है । हवा की कमी अनुभव होती है, दम फूलता है, साँस जल्दी लेना पड़ता है, रास्ता बना हुआ न होने से अनुमान और कम्पास के सहारे चलना पड़ता है । थोड़ा सा बजन ले चलना अनभ्यस्त लोगों के लिए कठिन होता है, इसके लिए अभ्यस्त कुली ही सहायक होते हैं । इस प्रकार की अनेकों कठिनाइयाँ उस विकट क्षेत्र में हैं, पर साहस, धैर्य और श्रद्धा के आधार पर वे सभी पार हो जाती हैं । अब तक के इन यात्रा अभियानों में कोई जीवन हानि नहीं हुई ।

हिमालय का हृदय-धरती का स्वर्ग

बहुत दिन पूर्व किसी मासिक पत्रिका में एक लेख पढ़ा था जिसका शीर्षक था—"स्वर्ग इस पृथ्वी पर ही था ।" लेखक ने धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं यह लेख भूगोल और इतिहास को दृष्टि में रखकर लिखा था । उसमें अनेकों युक्तियों से यह सिद्ध किया था कि—"हिमालय का मध्य भाग प्राचीन काल में स्वर्ग कहलाता था । आर्य लोग मध्य एशिया से तिब्बत होकर भारत में आये थे । उन दिनों हिमालय इतना ठंडा न था, पिछली हिम-प्रलय के बाद वह हिमाच्छादित हो जाने के कारण मनुष्यों के लिए दुर्गम हुआ है । इससे पूर्व वहाँ का वातावरण मनुष्यों के रहने योग्य ही नहीं, अनेक दृष्टियों से अत्यन्त सुविधाजनक एवं शोभायमान भी था । इसलिए आर्यों के प्रमुख नेतागण, जिन्हें देव कहते थे—इसी भूमि में निवास करने लगे । गंगा यमुना के दुआवा, आर्यवर्त और जम्बूदीप में बसे हुए अपने साथियों और अनुयायियों का मार्ग दर्शन वे यहीं रहकर करते थे । सम्पत्ति, आयुध ग्रन्थ तथा अन्य आवश्यक उपकरण वे यहीं सुरक्षित रखते थे ताकि आवश्यकतानुसार तथा समयानुसार उनका उपयोग समतल भूमि निवासियों के लिए होता रहे और वे वस्तुएँ युद्ध के समय दस्युओं, असुरों—अनार्यों के हाथ न लगने पावें । देवताओं के राजा की पदवी 'इन्द्र' होती थी । प्रत्येक इन्द्र का सिंहासन इस हिमालय के हृदय प्रदेश—स्वर्ग में ही होता था ।"

इस लेख में यद्यपि अनेकों प्रबल युक्तियाँ थीं, पर उस समय वे अपने मन में उतरती नहीं थीं, क्योंकि जिस स्वर्ग की इतनी महिमा गाई है, जिसे प्राप्त करने के लिए हम इतना त्याग और तप करते हैं क्या वह इसी पृथ्वी का एक साधारण क्षेत्र मात्र होगा ? फिर स्वर्ग को एक लोक कहा गया है । लोक का अर्थ है, पृथ्वी से बहुत दूर अंतरिक्ष में स्थित कोई ग्रह नक्षत्र जैसा स्थान । इसके अतिरिक्त मानव की अन्तरात्मा में अनुभव होने वाली सुख-शान्ति को भी स्वर्ग माना जाता है । फिर हिमालय के एक भाग विशेष को स्वर्ग कैसे माना जाय ?

लेकिन उसे पढ़कर यह एक बात कुछ समझ में आई कि आध्यात्मिक दृष्टि से स्वर्ग कोई लोक विशेष हो सकता है, सुख-शान्ति की अमुक आन्तरिक स्थिति को भी स्वर्ग कहा जा सकता है, पर यही शब्द पृथ्वी के किसी महत्त्वपूर्ण भाग के लिए प्रयुक्त हुआ हो ऐसा भी हो सकता है । इस तथ्य पर विचार किया तो कई ऐसी बातें सूझ पड़ीं जो पृथ्वी पर स्वर्ग होने की संभावना को प्रगट करती हैं ।

राजा दशरथ अपनी पत्नी समेत इन्द्र की सहायता के लिए अपने रथ पर सवार होकर स्वर्ग गये थे । जब रथ का पहिया धुरी में से निकलने लगा तब साथ में बैठी हुई कैकयी ने अपनी उगली धुरी के छेद में डालकर रथ को टूटने से बचाया था । एक बार अर्जुन भी इन्द्र की सहायता के लिए स्वर्ग गये थे, तब इन्द्र ने उर्वसी अप्सरा को उनके पास भेजकर उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न किया था । एक बार इन्द्र का इन्द्रासन खाली होने पर नीचे से राजा नुहुष को वहाँ ले जाया गया और उन्हें वहाँ बिठाया गया था । त्रिशंकु भी सशरीर वहाँ पहुँचे थे । राजा ययाति सशरीर स्वर्ग गये थे । पर जब उन्होंने वहाँ अपने पुण्यों की बहुत प्रशंसा करनी आरम्भ की तो उनके पुण्य क्षीण हो गये और उन्हें स्वर्ग से नीचे ढकेल दिया गया । देवर्षि नारद बहुधा देवसभा में आया-जाया करते थे । इस प्रकार के अनेकों उदाहरण ऐसे हैं जिनसे स्वर्ग में मनुष्यों का सशरीर जाना सिद्ध होता है देवता तो प्रायः नीचे आया ही करते थे । रामायण और भागवत में पचासों जगह देवताओं के पृथ्वी पर आने और मनुष्यों से सम्पर्क स्थापित करने के वर्णन आते हैं । अप्सराएँ स्वर्ग से ऋषियों के आश्रमों में आती थीं और कइयों को मोहित करके उनके साथ रहतीं तथा सन्तान उत्पन्न करती थीं । श्रृगी ऋषि को उनने मोहित किया था, विश्वामित्र के साथ रहकर मेनका ने शकुन्तला को जन्म दिया था ।यह सूक्ष्म शक्ति वाले, सूक्ष्म रूप वाले, देवी-देवताओं का वर्णन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं है वरन् उनका है जो मनुष्यों की तरह ही शरीर धारण किये थे । चन्द्रमा और इन्द्र ने ऋषि पत्नियों से व्यभिचार किया और फलस्वरूप उन्हें शाप का भागी भी होना पड़ा था ।

इन घटनाओं पर विचार करने पर ऐसा लगता है कि यदि स्वर्ग नाम कोई स्थान पृथ्वी पर भी रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । यदि ऐसा न होता तो देवताओं का पृथ्वी पर और भूलोक वासियों का स्वर्ग में पहुँचना कैसे सम्भव रहा होता ?

पुराणों में सुमेरु पर्वत का विस्तृत वर्णन आता है जिसमें कहा गया है कि देवता सुमेरू पर्वत पर रहते थे । पांतजलि योग प्रदीप में इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है— "मध्य में सुवर्णमय पर्वत राज सुमेरु विराजमान है । उस सुमेरु पर्वत राज के चारों दिशाओं में चार श्रृग (पहाड़ की चोटी) हैं । उनमें जो पर्व दिशा में श्रृग है वह रजतमय है । दक्षिण दिशा में जो है वह वैदूर्यमणिमय है, जो पश्चिम दिशा में श्रृग है, वह स्फटिकमय (प्रतिबिम्ब ग्रहण करने वाला) है और जो उत्तर दिशा में श्रृग है वह सुवर्णमय (सुवर्ण के रंग वाले पुष्प विशेष के वर्ण वाला) है । ___सुमेरु पर्वत देवताओं की उद्यान भूमि है, जहाँ मिश्रवन, नन्दनवन, चैत्ररथ वन, सुमानसवन—चार वन हैं । सुमेरु के ऊपर सुधर्म नामक देवसभा है, सुदर्शन नाम पुर है और वैजयन्त नामक प्रासाद (देव महल) है ।___इसके ऊपर स्वर्ग लोक है जिसको महेन्द्रलोक कहते हैं । इनमें त्रिदश, अग्निष्वात, याम्य, तुषित, अपरिनिर्मित वशवर्ती, परिनिर्मित वशवर्ती ये छै देवयोनि विशेष निवास करते हैं । ये सब देवता संकल्प सिद्ध अणिमादि ऐश्वर्य सम्पन्न और कल्पायुष वाले तथा वृन्दारक (पूजने योग्य) कामभोग और औपपादिक देह वाले हैं और उत्तम अनुकूल अप्सराएँ इनकी स्त्रियाँ हैं।___सुमेरु अर्थात् हिमालय पर्वत उस समय भी ऊँची कोटि के योगियों के तप का स्थान था ।"

महाभारत में पाण्डवों के स्वर्गारोहण का विस्तार पूर्वक वर्णन है । स्वर्ग जाने के लिए द्रौपदी समेत पाँचों पाण्डव हिमालय में गये हैं । अन्य सब तो बीच में ही शरीर त्यागते गये पर युधिष्ठिर सर्वोच्च शिखर पर पहुँच कर सशरीर स्वर्ग जाने में समर्थ हुए हैं । इन्द्र का विमान उन्हें स्वर्ग को ले गया है । यह स्वर्गारोहण स्थान सुमेरु पर्वत के समीप ही है । बद्रीनाथ से आगे तेरह मील चलने पर सीढ़ियों की तरह एक के ऊपर यह एक स्वर्गारोहण शिखर दिखाई पड़ते हैं । इन्हें स्वर्ग की सीढ़ियाँ भी कहते हैं । चौखम्भा शिखरों को भी स्वर्ग की सीढ़ी कहा जाता है । इस प्रदेश में पहले यक्ष, गन्धर्व, किन्नर रहते थे, जिनने स्वर्गारोहण के लिए जाती हुई द्रौपदी का अपहरण कर लिया था । भीम ने उससे युद्ध करके द्रौपदी को छुड़ाया था ।

पुराणों में सुमेरु के स्वर्णमय होने का वर्णन है । कवियों ने स्थान-स्थान पर सोने के पहाड़ के रूप में सुमेरु की उपमा दी है । अब भी इस हिमाच्छादित सुमेरु पर्वत पर पीली सुनहरी आभा दृष्टि-गोचर होती है । देवताओं के कोषाध्यक्ष कुवेर देवता की नगरी अलकापुरी यहाँ से समीप ही है । अलकनन्दा के उद्गम स्थल को अलकापुरी कहा जाता है । इससे भी इस प्रदेश में स्वर्ग होने की बात पुष्ट होती है ।

सुमेरु पर्वत, स्वर्गारोहण, अलकापुरी, नन्दनवन यह सभी स्थान हिमालय के उस भाग में आज भी मौजूद हैं । इसे ही हिमालय का हृदय कहते हैं । इस स्थान को यदि प्राचीनकाल में स्वर्ग कहा जाता हो तो असम्भव नहीं है । गंगाजी का उद्गम भी यह पुण्य क्षेत्र है । पुराणों में वर्णन है कि गंगा स्वर्ग से नीचे उतरीं । गंगा ग्लेशियर इसी प्रदेश में फैला हुआ है । भगवती शिवजी के मस्तक पर उतरीं इस आख्यान की भी पुष्टि इस तरह होती है कि शिवलिंग शिखर गोमुख से ऊपर है । गंगा वहीं होकर आती है । शिवलिंग शिखर के पास ही नन्दनवन है । नन्दनवन स्वर्ग में ही था इसका वर्णन पुराणों में आता है । नन्दिनी नदी यहीं बहती है । स्वर्ग में रहने वाली कामधेनु की पुत्री नन्दिनी के साथ इस नदी की कुछ संगति बैठती है । चन्द्र पर्वत इसी प्रदेश में है । कहते हैं चन्द्रमा इसी पर्वत पर निवास किया करते थे । बद्रीनाथ क्षेत्र से मिले हुए सूर्य कुण्ड, वरुण कुण्ड, गणेश कुण्ड अब भी मौजूद हैं, कहते हैं कि इन देवताओं का निवास इन-इन प्रदेशों में रहता था । केदार शिखर होकर इन्द्र का हाथी ऐरावत नीचे जाया करता था ऐसे वर्णन मिलते हैं । एक बार ऐरावत पर चढ़े हुए इन्द्र दुर्वासा ऋषि के आश्रम के समीप होकर गुजरे और ऋषि के स्वागत का तिरस्कार किया तो उन्हें दुर्वासा ऋषि ने शाप दे दिया था ।

गंगोत्री से गोमुख की ओर चलते हुए मार्ग में यह विचार आया कि यदि किसी प्रकार सम्भव हो सके तो इस धरती के स्वर्ग के दर्शन करने चाहिए । भावना धीरे-धीरे अत्यन्त प्रबल होती जाती थी, पर इसका उपाय न सूझ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ता था । गोमुख से आगे वह धरती का स्वर्ग आरम्भ होता है । मीलों की दृष्टि से इसकी लम्बाई चौड़ाई बहुत नहीं है । लगभग ३० मील और इतना ही लम्बा यह प्रदेश है । यदि किसी प्रकार इसे पार करना संभव हो तो बद्रीनाथ, केदारनाथ इसके बिल्कुल नीचे ही सटे हुए हैं । यों बद्रीनाथ गोमुख से पैदल के रास्ते लगभग २५० मील है, पर इस दुर्गमरास्ते से तो २५ मील ही है । ऊँचाई की अधिकता, पर्वतों के ऊबड़-खाबड़ होने के कारण चलने लायक मार्ग न मिलना तथा शीत अत्यधिक होने के कारण सदा बर्फ जमी रहना, रास्ते में जल, छाया, भोजन, ईंधन आदि की कुछ भी व्यवस्था न होने आदि कितने ही कारण ऐसे हैं जिनसे वह प्रदेश मनुष्य की पहुँच से बाहर माना गया है । यदि ऐसा न होता तो गंगोत्री, गोमुख आने वाले २५० मील का लम्बा रास्ता क्यों पार करते ? इस २५ मील से ही क्यों न निकल जाते ?

इस मार्ग से कितने ही वर्ष पूर्व स्विटजरलैण्ड के पर्वतारोही दल ने चढ़ने का प्रयत्न किया था । उसे उस आरोहण में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता था । सुना था कि शिवलिंग पर चढ़ते हुए दल के एक कुली का पैर टूट गया था और एक आरोही केदार शिखर पर चढ़ते हुए बर्फ की गहरी दरारों में फँस कर अपने प्राण गँवा बैठा था । फिर भी उस दल ने वह मार्ग पार कर लिया था । इसके बाद दुस्साहसी हिम अभ्यस्त महात्माओं के एक दो दल भी उस दुर्गम प्रदेश को पार करके बद्रीनाथ के दर्शन कर चुके हैं ।

साहस ने कहा—"यदि दूसरे इस मार्ग को पार कर चुके हैं तो हम क्यों पार नहीं कर सकते ?" बुद्धि ने उत्तर दिया—"उन जैसी शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य अपनी न हो, ऐसे प्रदेशों का अभ्यास और अनुभव भी न हो तो फिर किसी का अन्ध अनुकरण करना बुद्धिमत्ता नहीं है ।" भावना बोली—"अधिक से अधिक जीवन का खतरा ही तो हो सकता है यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है । कहते भी हैं कि स्वर्ग अपने मरने से ही दीखता है । यदि इस धरती के स्वर्ग को देखने में प्राण सकंट का खतरा मोल लेना पड़ता है तो कोई बड़ी बात नहीं है । उसे उठा लेने में संकोच न करना चाहिए ।" व्यावहारिकता पूछती थी—"चल भी दिये तो रास्ता कौन दिखायेगा ? उतनी सर्दी को शरीर कैसे सहन करेगा ? सोने और खाने-पीने की क्या व्यवस्था होगी ? अब तक समुद्रतल से ११ हजार फुट ऊँचाई चढ़ी गई है । ऋषिकेश से यहाँ तक आने में १७० मील में ९ हजार फुट चढ़े जिससे पैरों के देवता कूच कर गये हैं । अब आगे १२ मील के भीतर ९ हजार फुट और चढ़ना पड़ेगा तो उस चढ़ाई की दुर्गमता पैरों के बस से सर्वथा बाहर की बात होगी ।"

इस प्रकार अर्न्तद्वन्द चल रहा था । निर्णय कुछ नहीं हो पा रहा था । प्रश्न केवल साहस का ही न था, अपनी सीमित शक्ति के भीतर भी वह सब है या नहीं, यह भी विचार करना था । मस्तिष्क सारी शक्ति लगाकर समस्या का हल खोज रहा था, पर कोई उपाय सूझ नहीं पड़ता था । अन्तरात्मा कहती थी कि—"अब धरती के स्वर्ग के बिलकुल किनारे पर आ गये तो उसके भीतर प्रवेश करने का लाभ भी लेना चाहिये । गंगातट पर से प्यासे लौटने में कौन समझदारी है । मरने पर स्वर्ग मिला या न मिला कौन जाने । यहाँ बिल्कुल ही समीप धरती का स्वर्ग मौजूद है तो उसका लाभ क्यों नहीं लेना चाहिये ?"

स्मरण शक्ति ने इस दुर्गम पथ की स्थिति बताने वाला एक प्राचीन श्लोक उपस्थित कर दिया—

तत ऊर्ध्वंतु भूमौद्धा मर्त्यं संचार दूरगाः ।
आच्छन्नाः संततस्थापि घनोत्तुड़ महाहिमै ॥
गोमुखी तो विशाला दूर्नाति दूरे विराजते ।
तत्रायं गमने मार्गः सिद्धानांचामृतांधसाम् ॥

"उस (गोमुख) से आगे के पर्वत अतीवस घन, ऊँचे और भारी बर्फ से ढके हैं । वे मनुष्य की पहुँच से बाहर हैं । उस ओर से बद्रीनारायणपुरी बहुत दूर नहीं है, लेकिन वह मार्ग मनुष्य के लिए असम्भव है, वह सिद्ध और देवताओं का मार्ग है । इस मार्ग से वे ही जाते हैं ।"

"अपने ऐसे भाग्य कहाँ जो इस सिद्ध और देवताओं के मार्ग पर चल सकें ।" इस प्रकार की निराशा बार-बार मन में आती थी, पर साथ ही आशा की एक बिजली भी कौंधती थी और कोई कहता था कि—"जाकी कृपा पंगु गिरि लंघहि, रंक चलें शिर छत्र धराई" वाली कृपा उपलब्ध होती है तो यह भूतल का दुर्गम प्रदेश ही क्या और भी ऊँचे से ऊँचे दुर्गम स्तरों को पार और प्राप्त किया जा सकता है ।"

यह भाव जैसे-जैसे प्रबल होते गये, वैसे-वैसे ही अन्तःकरण में एक नवीन आशा और उत्साह का संचार होता गया । सर्वशक्तिमान की सत्ता कैसी अपरम्पार है कि वह कामना पूर्ण होकर रही, वह दिन भी आया जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस पुण्य प्रदेश में प्रवेश करके वह तन सार्थक बना । न भूलने योग्य उन क्षणों का जब भी स्मरण हो आता है तब रोमांच खड़े हो जाते हैं, आत्मा पुलकित हो उठती है और सोचता हूँ कि प्रभु ! यदि उन्हीं आनन्दमय क्षणों में चिरशान्ति प्राप्त हो जाती तो कितना उत्तम होता । पर जो कर्मफल अभी और भोगना है उसे कौन भोगता, यह सोच कर किसी प्रकार मन को समझाना ही पड़ता है ।

इस पुण्यप्रदेश हिमालय के हृदय और धरती के स्वर्ग की यात्रा और स्थिति का वर्णन करने से पूर्व इस क्षेत्र की महत्ता पर विचार करेंगे । जिस प्रकार हृदय में स्थित रक्त, धमनियों के द्वारा सारे शरीर में फैलता है, जैसे उत्तर ध्रुव का चुम्बकत्व सारी पृथ्वी पर अपना आकर्षण फैलाये हुए है, लगता है कि उसी प्रकार हिमालय का यह हृदय अपने दिव्य स्पन्दनों के दूर-दूर तक आध्यात्म तरंगों को प्रवाहित करता है ।

जिस प्रकार हृदय के ऊपर कितने ही प्रकार के स्वर्ण रत्नों से जड़ित आभूषण धारण किये जाते हैं, उसी प्रकार इस हिमालय के हृदय के चारों ओर एक घेरे के रूप में कितने ही महत्त्वपूर्ण तीर्थों की एक सुन्दर श्रृखला पहनाई हुई है । महाभारत के बाद जो तीर्थ इस क्षेत्र में अस्त-व्यस्त हो गये थे उनका पुनरुद्धार करने की प्रेरणा जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य को हुई और उन्होंने कठिन प्रयत्न करके उन तीर्थों को पुनः स्थापित कराया । जिस प्रकार चैतन्य महाप्रभु ने बृजभूमि के विस्मृत पुण्य क्षेत्रों को अपने योग बल से पहचान कर उन स्थानों का निर्माण कराया था, उसी प्रकार जगद्गुरू शंकराचार्य को भी यह प्रेरणा हुई थी कि वे उत्तराखण्ड की विस्मृत देव भूमियों तथा तपोभूमियों का पुनरुद्धार करावें । वे दक्षिण भारत के केरल प्रान्त से चलकर उत्तराखण्ड आये और उन्होंने बद्रीनाथ आदि अनेकों मन्दिरों का निर्माण कराया । आज उत्तराखण्ड का जो गौरव परिलक्षित होता है, उसका बहुत कुछ श्रेय उन्हीं को है ।

इस 'हिमालय के हृदय' के किनारे-किनारे जितने तीर्थ हैं उतने भारतवर्ष भर में और कहीं नहीं हैं । देवताओं की निवास भूमि सुमेरु पर्वत पर बताई गई है । सुमेरु पर पहुँचना मनुष्यों के लिए अगम्य है । इसलिए जनसम्पर्क की दृष्टि से कुछ नीचे उत्तराखण्ड की तपोभूमि में देवताओं ने अपने स्थान बनाये । राजा का व्यक्तिगत समय अपने राजमहलों में व्यतीत होता है, वहाँ हर कोई नहीं पहुँचता । पर राजदरबार का स्थान राजा जनकार्यों के लिए ही सुरक्षित रखता है । सुमेरु यदि देवताओं का राजमहल कहा जाय तो उससे कुछ ही नीचे के समीपतम देव स्थानों को राजदरबार कहा जा सकता है । उत्तराखण्ड के नक्शे पर एक दृष्टि डाली जाय तो यह निश्चय हो जाता कि 'हिमालय के हृदय' से नीचे के भाग का देवभूमि कहा जाना सार्थक ही है ।

हरद्वार से ही लीजिये । यहाँ ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था । दक्ष प्रजापति ने कनखल में यज्ञ किया था और उनकी पुत्री सती अपने पति शिव का अपमान सहन न करके इसी यज्ञ में कूद पड़ी थीं । यह मायापुरी, सप्तपुरियों में से एक है । देवप्रयाग में वराह भगवान् का निवास हुआ है । सूर्य तीर्थ यहाँ है, रघुनाथजी तथा काली भैरव की भी स्थापना है । आगे दुँढप्रयाग तीर्थ में गणेशजी ने तप किया था । श्रीनगर में भैरवी पीठ है, चामुण्डा, भैरवी, कंसमर्दिनी गौरी, महर्षिमर्दिनी, राजेश्वरी देवियों का यहाँ निवास है । चण्ड-मुण्ड, शुंभ-निशुंभ, महिषासुर आदि असुरों का उन्होंने यहीं वध किया था । सौडी चट्टी से ५ मील ऊपर स्वामि कार्तिक का स्थान है । इससे पूर्व मठचट्टी के सामने सूर्य प्रयाग में सूर्यपीठ है और वहाँ से दो मील भणगा गाँव में छिन्न मस्ता देवी तथा वहाँ से दो मील आगे जैली में कूर्मासना देवी विराजमान है । गुप्त काशी में अन्नपूर्णा देवी का निवास है । नारायण कोटि तीर्थ में लक्ष्मी सहित नारायण की प्रतिष्ठा है । १ मील पच्छिम के पहाड़ पर यक्ष देवता का मेला लगता है । रामपुर से दो मील आगे शकाम्भरी देवी है जहाँ एक मास शाक खाकर तप करने का बड़ा महत्त्व माना जाता है । त्रियुगी नारायण में नारायण मन्दिर के अतिरिक्त लक्ष्मी, अन्नपूर्णा और सरस्वती की स्थापना है, शिव पार्वती विवाह भी यहीं हुआ था । उस विवाह की अग्नि एक चतुष्कोण कुंड में अभी तक जलती रहती है । नारायण मन्दिर में अखण्ड दीपक भी जलता है । सोन प्रयाग में मन्दाकिनी और वासुकी गंगा हैं । वासुकी नाग का निवास इस गंगा के तट पर था । पास ही कालिका देवी का स्थान है । सोन प्रयाग से आधा मील आगे वह स्थान है जहाँ शिव ने गणेश का शिर काटा था और फिर हाथी का शिर लगाया था । यहाँ बिना शिर के गणेश की प्रतिमा है ।

केदारनाथ तीर्थ में वह स्थान है जहाँ पाण्डव अपने कुलघात के दोष का निवारण करने के लिए शंकर भगवान् के दर्शनों के लिए गये थे, पर उनके पाप को देखते हुए शिवजी वहाँ से भैंसे का रूप बनाकर भागे । भागते हुये भैंसे को पीछे से पाँडवों ने पकड़ लिया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितना अंग पकड़ में आया उतना वहाँ रह गया शेष अंग को छुड़ा कर शिवजा आगे भाग गये । हिमालय में पाँच केदार हैं—केदारनाथ, मध्यमेश्वर, तुगंनाथ, रुद्रनाथ, कल्पेश्वर । रुद्रनाथ के समीप वैतरणी नदी बहती है । पुराणों में वर्णन आता है कि यमलोक में जाते समय जीव को रास्ते में वैतरणी नदी मिलती है । गोपेश्वर में एक वृक्ष पर लिपटी हुई बहुत पुरानी कल्पलता होने की बात की संगति इस कल्पलता से बिठाई जाती है । पास ही अग्नि तीर्थ है । यहीं कामदेव का निवास था । शंकरजी से छेड़छाड़ करने के अपराध में उसे यहीं भस्म होना पड़ा था। काम की पत्नी रति ने यहाँ तप किया था इसलिए वहाँ रति कुण्ड भी है ।

पीपल कोटि से साढ़े तीन मील आगे गरुड़ गंगा है, यहाँ विष्णु के वाहन गरुड़ का निवास माना जाता है । जोशीमठ में नृसिंह भगवान् विराजते हैं । विष्णु प्रयाग में विष्णु भगवान का निवास है । यहाँ ब्रह्माकुण्ड, शिवकुण्ड, गणेशकुण्ड, टिंगी कुण्ड, ऋषि कुण्ड, सूर्यकुण्ड, दुर्गाकुण्ड, कुवेर कुंड, प्रह्लादकुण्ड अपने अधिपतियों के नाम से विख्यात हैं । पांडुकेश्वर से एक मील आगे शेष धारा है जहाँ शेषजी का निवास माना जाता है । बद्रीनाथ में नर, नारायण, गरुड़, गणेश, कुवेर, उद्धव तथा लक्ष्मीजी की प्रतिमाएँ हैं । सरस्वती गंगा और अलकनन्दा के संगम पर केशव प्रयाग है, पास ही सम्याप्रास तीर्थ है । यहाँ गणेश गुफा तथा व्यास गुफा है । व्यास जी ने महाभारत गणेश जी द्वारा यहीं लिखाया था ।

केदारखंड में वर्णन है कि कलियुग में म्लेच्छ शासन आ जाने और पाप बढ़ जाने से शंकरजी काशी छोड़कर उत्तर काशी चले गये अब यहीं उनका प्रमुख स्थान है । विश्वनाथ का मन्दिर यहाँ प्रसिद्ध है । देवासुर संग्राम के समय आकाश से गिरी हुई शक्ति की स्थापना भी दर्शनीय है । आगे ढोढी तालाब है, जहाँ गणेशजी का जन्म हुआ था ।

गंगोत्री के समीप रुद्रगैरु नामक स्थान है यहाँ से रुद्र गंगा निकलती है, यहाँ एकादश रुद्रों का निवास स्थान है। जागला चट्टी के पास गुंगुम नाला पर वीरभद्र का निवास है ।

इस प्रकार हिमालय के हृदय स्थल पर खड़े होकर जिधर भी दृष्टि घुमाई जाय उधर तीर्थों का वन ही दिखाई देता है । गंगोत्री आदि ठंडे स्थानों के निवासी जाड़े के दिनों में ऋषिकेश उत्तरकाशी आदि कम ठंडे स्थानों में उतर आते हैं । उसी प्रकार लगता है कि देवता भी सुमेरु पर्वत से नीचे उत्तर कर उत्तराखंड में अपने सामयिक निवास स्थल बना लेते होंगे । इन देव स्थलों में आज भी जन कोलाहल वाले बड़े नगरों की अपेक्षा कहीं अधिक सात्विकता एवं आध्यात्मिकता दृष्टिगोचर होती है । देव तत्त्वों की प्रचुरता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण कोई व्यक्ति अब भी देख सकता है ।

तपस्वी लोग तपस्या द्वारा देवतत्त्वों को ही प्राप्त करते हैं । जहाँ देवतत्त्व अधिक हों वहीं उनका प्रयोजन सिद्ध होता है । इसलिए प्राचीन इतिहास, पुराणों पर दृष्टि डालने से यही प्रतीत होता है कि प्राय: प्रत्येक ऋषि ने उत्तराखड में आकर तप किया है । उनके आश्रम तथा कार्यक्षेत्र भारत के विभिन्न प्रदेशों में रहे हैं, पर वे समय-समय पर तप साधना करने के लिए इसी प्रदेश में आते रहे हैं । विविध कामनाओं के लिए विभिन्न व्यक्तियों ने भी तपस्याएँ इधर ही की हैं । अनेक असुरों ने भी अपने उपासना क्षेत्र इधर ही बनाये थे । कतिपय देवताओं ने भी तप यहीं किया था । करते भी क्यों न ? धरती का स्वर्ग और हिमालय का हृदय तो यहीं से समीप पड़ता है ।

बद्रीनाथ में विष्णु भगवान् ने तपस्वी का रूप धारण कर स्वयं घोर तप किया था । उस तीर्थ में जाने का प्रधान द्वार होने के कारण हरिद्वार नाम पड़ा । राजा वेन ने यहीं तप किया था । कुशावर्न पर्वत पर दत्तात्रेय जी ने तप किया था । हरिद्वार से तीन मील आगे सप्त सरोवर नामक स्थान पर गंगा के बीच में बैठकर सप्त ऋषियों ने तर किया था । गंगाजी ने उनकी सुविधा के लिए उनका स्थान छोड़ दिया और सात धाराएँ बन कर बहने लगीं । बीच में सातों ऋषियों के तप करने की भूमि अलग-अलग छूटी हुई है । इसी स्थान पर जन्हु मुनि तप करते थे । जब भागीरथ गंगा को लाये और भगवती बड़े वेग से गर्जन-तर्जन करती आ रही थी तो मुनि को यह कौतूहल बुरा लगा । उन्होंने गंगा को अंजली में भरकर पी लिया। भागीरथ आगे-आगे चल रहे थे, उन्होंने गंगा को लुप्त हुआ देखा तो आश्चर्य में पड़े । कारण मालुम होने पर उन्होंने जन्हु मुनि की बड़ी अनुनय-विनय की तब उन्होंने गंगा को उगल दिया । इसी से तप्त सरोवर के बाद की गंगा को जन्हु पुत्री या 'जाह्नवी' कहते हैं । । इससे ऊपर की गंगा 'भागीरथी' कहलाती है । जन्हु के उदर में रहने के कारण वे जन्हुतनया कही गईं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

रावण, कुम्भकरण, मेघनाद आदि को मार डालने के कारण रामचन्द्रजी, लक्ष्मण जी को ब्रह्म हत्या का पाप लगा । इस पाप के फलस्वरूप लक्ष्मण जी को क्षयरोग और रामचन्द्रजी को उन्निद रोग हो गया । वशिष्ठजी ने इस पाप से छूटने के लिए उन्हें तप करने को कहा—"लक्ष्मणजी ने लक्ष्मण झूला में और रामचन्द्रजी ने देव प्रयाग में दीर्घ काल तक घोर तप किया । बड़े भाईयों को इस प्रकार तप करते देख कर भरत और शत्रुघ्न ने भी उनका अनुकरण किया । भरत ने ऋषिकेश में और शत्रुघ्न ने मुनी की रेती में तप किया । इसी क्षेत्र में बाबा काली-कमली वालों का बनाया हुआ 'स्वर्गाश्रम' नामक स्थान है जहाँ आज भी अनेकों सन्त महात्मा तप करते हैं। लक्ष्मण झूला से ३० मील आगे व्यासघाट में व्यासजी ने तप करके आत्मज्ञान पाया था ।"

देव प्रयाग में ब्रह्मा जी ने भी तप किया था । अलकनन्दा और गंगा के संगम का दृश्य बहुत ही मनोहर है । प्रसिद्ध विद्वान मेधातिथि ने यहीं तप करके सूर्य शक्ति को प्रत्यक्ष किया था । वशिष्ठ तीर्थ भी यहीं है जहाँ वशिष्ठजी ने तप किया था । वहाँ वशिष्ठ गुफा नाम की एक विशाल गुफा भी नगर से कुछ पहले है । रघुवंशी राजा दलीप, रघु और अज ने यहीं तप किये थे, शाप पीड़ित वैताल और पुष्पमाल किन्नरी ने भी अपने पापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये देव प्रयाग के समीप ही तप किया था ।

आगे चल कर इन्द्रकील नामक स्थान पर अर्जुन ने तप करके पाशुपति अस्त्र प्राप्त किया था । खाण्डव ऋषि जहाँ तप करते थे उसके समीप बहने वाली नदी खाण्डव-गंगा कहलाती है । श्रीनगर के पास राज सत्यसंग ने तप करके कोलासुर राक्षस को मारने योग्य सामर्थ्य प्राप्त की थी । राजा नहुष ने भी यहीं तप करके इन्द्र पद पाया । वन्हि धारा और वन्हि पर्वत के बीच अष्टावक्र ऋषि का तप स्थान है। राजा देवल ने भी समीप ही कठोर साधना की थी ।

रूद्र प्रयाग में नारदजी ने तप करके संगीत सिद्धि प्राप्त की थी । अगस्त मुनि ने जहाँ अपना सुप्रसिद्ध नवग्रह अनुष्ठान किया था वह उन महर्षि के नाम पर 'अगस्त मुनि' कहलाने लगा । शौनक ऋषि ने यहाँ एक यज्ञ किया था । भीरी चट्टी के पास मन्दाकिनी के समीप भीम ने तप किया था । इससे आगे शौणितपुर में वाणासुर ने अपने रक्त का यज्ञ करके तपस्या की थी और शिवजी को प्रसन्न करके सम्पूर्ण जगत् को जीत लेने में सफलता प्राप्त की थी ।

चन्द्रमा को जब क्षय रोग हो गया था तो उसने कालीमठ से पूर्व मतंग शिला से पाँच मील आगे राकेश्वरी देवी के स्थान पर तप करके रोग मुक्ति पाई थी। फाटा चट्टी से आगे जमदग्नि ऋषि का आश्रम है । सोमद्वार से आगे २ ॥ मील पर गौरी कुण्ड है । पास ही साथ सम्प्रदाय के आचार्य गुरु गोरखनाथ का आश्रम है । उन्होंने यहीं तप किया था । केदारनाथ तीर्थ में इन्द्र ने जिस स्थान पर तप किया था वह स्थान इन्द्र पर्वत कहलाता है । ऊखीमठ में राजा मान्धाता ने तप किया था। गुप्त काशी के पूर्व मन्दाकिनी नदी के दूसरी पार राजा बलि ने तप किया था, यहीं बलिकुण्ड है । तुंगनाथ के पास मार्कण्डेयजी का आश्रम है । मण्डल गाँव चट्टी के पास बालखिल्य नदी है । यह नदी बालखिल्य ऋषियों ने अपनी तप साधना के लिए अभिमंत्रित की थी । राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ यहीं किया था और सन्तान के लिए सौ वर्ष तक आयोजन भी इसी स्थान पर किया था ।

नन्द प्रयाग से आगे विरही नदी के तट पर सती विरह में दुःखी शंकर ने अपने शोक को शान्त करने के लिए तप किया था । कुम्हार चट्टी के ६ मील पश्चिमोत्तर ऊर्गम गाँव है, यहाँ राजा अज ने तप किया था । कल्पेश्वर के समीप दुर्वासा ऋषि का स्थान था । एक दिन ऐरावत हाथी पर सवार होकर इन्द्र उधर से निकले तो महर्षि ने उन्हें फूलमाला भेंट की । इन्द्र ने अभिमान पूर्वक उसे हाथी के गले में पहना दी । इससे क्रुद्ध होकर दुर्वासा ने इन्द्र को शाप दिया था । समीप ही कल्प स्थल है जहाँ पूर्वकाल में कल्प वृक्ष का होना माना जाता है । वृद्ध बद्री के पास गुफाएँ हैं जहाँ प्राचीन काल में तपस्वी लोग अपनी साधनाएँ किया करते थे । जोशीमठ में जगद्गुरु शंकराचार्य ने तप किया था, उपनिषदों के भाग्य लिखे थे और ज्योतिष पीठ नामक गद्दी स्थापित की थी । यहीं उन्होंने अपना नश्वर शरीर भी त्यागा । जोशीमठ से छः मील आगे तपोवन है । यहाँ व्यासजी का वेद विद्यालय था । शुकदेवजी का आश्रम भी यहाँ से समीप में ही है । पाण्डुकेश्वर में पाण्डवों के पिता राजा पाण्डु ने तप किया

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

था । यहाँ से ६ मील आगे हनुमान चट्टी है, जहाँ वृद्ध होने पर हनुमानजी ने तप किया है । एक बार भीम उधर से निकल, उन्हें अपने बल पर अभिमान था । हनुमानजी ने कहा ए वीर ! मैं बहुत वृद्ध बन्दर हूँ । अब मुझसे मेरे अंग भी नहीं उठते, तुम मेरी पूँछ उठाकर उधर सरका दो तो बड़ी कृपा हो । भीम ने पूँछ उठाई पर उठ न सकी । तब उन्होंने हनुमानजी को पहचाना और क्षमा माँगी । हनुमान चट्टी के पास अलकनन्दा के उस पार क्षीर गंगा और घृत गंगा का संगम है । पूर्व काल में इनका जल दूध और घी के समान पौष्टिक था । यहीं वैखानस मुनि तप करते थे । राजा मरुत ने यहीं एक बड़ा यज्ञ किया था जिसकी भस्म अभी भी वहाँ मिलती है । कर्णप्रयाग में कर्ण ने सूर्य का तप करके कवच और कुण्डल प्राप्त किये थे ।

गंगोत्री मार्ग में उत्तरकाशी तपस्वियों का प्रमुख स्थान रहा है । परशुराम जी ने यहीं तप करके पृथ्वी को २१ बार अत्याचारियों से विहीन कर देने की शक्ति प्राप्त की थी । जड़-भरत का स्वर्गवास यहीं हुआ था, उनकी समाधि अब भी मौजूद है । नचिकेता का तपस्थल भी यहीं है । नचिकेता सरोवर देखने योग्य है । यहाँ से आगे नाकोरी गाँव के पास कपिल मुनि का स्थान है । पुरवा गाँव के पास मार्केण्डेय और मतंग ऋषियों की तपोभूमियाँ हैं । इसके पास ही कचोरा नामक स्थान में पार्वती जी का जन्म हुआ था । हरिप्रयाग (हर्षिल) गुप्तप्रयाग (कुप्ति घाट) तीर्थ भी इसी मार्ग में पड़ते हैं । आगे गंगोत्री का पुण्य धाम है जहाँ भागीरथ ने तप करके गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरण किया था । यहाँ अभी भी कितने ही महात्मा प्रचण्ड तप करते हैं । शीत ऋतु में जब कि कभी-कभी तेरह फुट तक बर्फ पड़ती है ये तपस्वी बिलकुल नग्न शरीर रह कर अपनी कुटियाओं में तप करते रहते हैं । गोमुख गंगा का वर्तमान उद्गम यहाँ से १८ मील है । उस मार्ग में भी कई महात्मा निवास करते और तप साधना में संलग्न रहते हैं ।

सिक्खों के गुरु गोविंदसिंह ने जोशीमठ के पास हेम कुण्ड में २० वर्ष तक तप करके सिक्ख धर्म को प्रगतिशील बनाने की शक्ति प्राप्त की थी । स्वामी रामतीर्थ का यही सबसे प्रिय प्रदेश था । वे गंगा और हिमालय के सौन्दर्य पर मुग्ध थे । टिहरी के पास गंगा जी में स्नान करते समय वे ऐसे भाव विभोर हुए कि उसकी लहरों में ही विलीन हो गये ।

उत्तराखण्ड को साधना क्षेत्र में चुनने में इनमें से प्रत्येक ने सूक्ष्म दृष्टि से ही काम लिया है । वे जानते थे कि हिमालय के हृदय धरती के स्वर्ग प्रदेश की दिव्य शक्ति अपनी ऊष्मा को अपने निकटवर्ती क्षेत्र में ही अधिक बिखेरती है इसलिये वहीं पहुँचना उत्तम है । अग्नि का लाभ उठाने के लिये उसके समीप ही रहना पड़ता है । आध्यात्मिक तत्त्वों की किरणें जहाँ अत्यन्त तीव्र वेग से प्रवाहित होती हैं वह स्थान सुमेरु केन्द्र ही है । केवल पानी वाली गंगा ही वहाँ से नहीं निकलती आध्यात्मिक गंगा का उद्गम भी वहीं है । उस पुण्य प्रदेश—धरती के स्वर्ग को देख सकना कैसे सम्भव हुआ ? वहाँ क्या देखा और क्या अनुभव किया ? वहाँ की दुर्गमता किस प्रकार सुगम बनी है ? इसका विवरण अब उपस्थित करना है ।

देवात्मा हिमालय के प्रमुख धाम

उत्तराखण्ड तीर्थ यात्रा को कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। इस क्षेत्र के प्रमुख तीर्थों को धाम कहते हैं। यों जगन्नाथा, रामेश्वर, द्वारिका, एवं बद्रीनाथ चार धाम भारत के चार कोनों पर भी हैं। किन्तु यह धाम शब्द उत्तराखण्ड के कुछ विशेष तीर्थों के लिए भी प्रयुक्त होता है। यथा—(१) बद्रीनाथ (२) केदारनाथ (३) गंगोत्री (४) यमुनोत्री। इन चारों धामों के साथ और भी कई-कई छोटे बड़े तीर्थ जुड़े हुए हैं। यह चारों धाम हिमालय के उस उत्तरी छोर पर हैं जहाँ तक कि मनुष्यों का सहज आवागमन सम्भव है। उससे आगे की ऊँचाई ऐसी है जिसमें शीत की अधिकता से न तो वृक्ष-वनस्पति ही सदा उपलब्ध होते हैं और न मनुष्य के स्थाई निवास योग्य तापमान है। बर्फ जमी रहने से ठण्डक के दिनों में पानी मिलना भी कठिन हो जाता है। ईंधन न होने से शीत का सामना करना एवं भोजन बनाना भी सम्भव नहीं। ऐसी—दशा में उस क्षेत्र को अगम्य हिमालय कहते हैं। इस क्षेत्र में भी कई अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। उन्हें भी चार धाम कह सकते हैं। (१) गंधमादन (२) शिवलिंग (३) सुमेरु (४) सत्पथ। उस क्षेत्र में कोई मन्दिर आदि नहीं हैं। पर्वत शिखरों, नदियों एवं सरोवरों को ही प्रकृति विनिर्मित देवता समझा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड के प्रवेश द्वारा हरिद्वार—गंगाद्वार क्षेत्र का समीपवर्ती क्षेत्र भी चार धाम के नाम से पुकारा जाता है, इन्हें प्रवेश धाम कहते हैं। (१) हरिद्वार (२) कनखल (३) ऋषिकेश (४) लक्ष्मण झूला, इनमें प्रमुख हैं। सहायक तीर्थ तो इन चारों के भी हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तराखण्ड के यह चार-चार धाम तीन भागों में विभक्त करने के उपरान्त कुछ और महत्त्वपूर्ण क्षेत्र रह जाते है जिन्हें (१) पंच प्रयाग (२) पंच बद्री (३) पंच केदार (४) पंच सरोवर कहते हैं। दो काशियाँ इनके अतिरिक्त हैं।

जिस प्रकार काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि प्रमुख तीर्थों में थोड़ी-थोड़ी दूर पर अनेकानेक देवालय बने हुए हैं, उसी प्रकार उत्तराखण्ड में भी उपरोक्त प्रमुख विभाजनों के समीपवर्ती क्षेत्र में छोटे-बड़े अनेकानेक तीर्थ देवालय बने हुए हैं। उन सबके साथ अपनी-अपनी कथा किम्वदन्तियाँ भी जुड़ी हुई हैं। यह समूचा क्षेत्र देवताओं एवं ऋषियों की तपोभूमि रहा है। उसमें ज्ञान और विज्ञान के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग परीक्षण-अनुसंधान एवं निर्धारण होते रहे हैं। इसलिए संबद्ध स्थानों को महत्त्व मिलना स्वाभाविक है। प्रकति सौन्दर्य तो पग-पग पर विद्यमान है। गर्वोन्नत सिर उठाये हुए पर्वत, हिमाच्छादित शिखर, निर्झर, सरिताएँ हिमानियाँ, सघन एवं नयनाभिराम वृक्षावली, पुष्पों-औषधियों से भरी पूरी भूमि को देखकर अशान्त मन में भी शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, जिन्हें प्रकृति सौन्दर्य और स्रष्टा की कलाकारिता को देखने-समझने और अनुभव करने वाली दिव्य दृष्टि मिली है उनके लिए तो यह समूचा क्षेत्र धरती पर उतरा हुआ स्वर्ग है।

बद्रीनाथ

बद्रीनाथ का माहात्म्य जिन पुराणों में वर्णित है उनमें से कुछ उल्लेखनीय इस प्रकार हैं—(१) स्कन्द पुराण केदार खण्ड ५७-५८ अध्याय (२) श्रीमद् भागवत प्रथम स्कंध, तीसरा अध्याय (३) पद्म पुराण सृष्टि खण्ड-१४ वाँ अध्याय (४) कूर्म पुराण ३६ वाँ अध्याय (५) देवी भागवत् १२ वाँ स्कन्ध (६) वाराह पुराण ४९ वाँ अध्याय (७) ब्रह्म वैवर्त पुराण १९ वाँ अध्याय (८) नारद पुराण उत्तरार्द्ध ३७ वाँ अध्याय (९) महाभारत वन पर्व एवं शान्ति पर्व।

बद्रीनाथ की पाँच शिलाएँ प्रसिद्ध हैं (१) नृसिंह शिला, (२) वाराही शिला (३) गरुड़ शिला (४) नारद शिला (५) मार्कण्डेय शिला। इन पर इन अवतारों एवं ऋषियों ने तप किया था।

बद्रीनाथ में ही नारद शिला है । जिस पर बैठकर नारद जी ने तप किया और कामदेव पर विजय पायी । उसी की स्मृति में नारद कुण्ड है ।

मार्कण्डेय शिला के सम्बन्ध में कहा जाता है कि महर्षि मार्कण्डेय ने यहीं तप किया था ।

बद्रीनाथ में बेरों का एक पुरातन पवित्र पेड है। भगवान् कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणी ने उसी बेर के फल खाकर लम्बे समय तक तप किया था। संस्कृत में बेर को बदरी कहते हैं। बेर वृक्ष की इस विशेषता के कारण इस स्थान का नाम बद्रीनाथ (बदरिकाश्रम) पड़ा।

बद्रीनाथ में 'माता मूर्ति' का मंदिर है। यह नर, नारायण की माता तथा दक्ष की तेरहवीं पुत्री 'मूर्ति' थीं, जिनका विवाह धर्म से हुआ था। उन्होंने अपने पुत्रों को तप करने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके साथ भी रहीं। उनकी स्मृति में यह मंदिर है। बद्रीनाथ नर-नारायण का कार्य-क्षेत्र माना जाता है।

नारद शिला के निकट वह्नि नामक एक गरम जल का कुण्ड है इसके पास ही और भी तीन छोटे गरम पानी के कुण्ड हैं जिन्हें गौरी कुण्ड, सूर्य कुण्ड, और ब्रह्म कुण्ड कहते है । समीप ही एक छोटी नदी कंचन गंगा भी इधर बहती है जो सुमेरु से निकल कर यहाँ से ३ कि. मी. आगे अलकनंदा में मिल जाती है।

पुराणों में बद्रीनाथ क्षेत्र में अनेकों देव मानवों द्वारा कठोर तपश्चर्या करने का उल्लेख है। नर और नारायण दो ऋषि दुग्म रूप में रहते थे। दोनों ने इसी स्थान पर तपश्चर्या की ।

बद्रीनाथ को बद्री विशाल भी कहते हैं। कथा है कि एक विशाल नामक राजा अनेक विपत्तियों से संत्रस्त होकर शान्ति की खोज में एकान्त सेवन की दृष्टि से आया, उसे यह स्थान बहुत रमणीक लगा । विष्णु भगवान् तप से प्रसन्न हुए। उनकी कृपा से राजा की भौतिक कठिनाइयाँ समाप्त हुईं और उन्हें आत्मिक शान्ति भी मिली । तब वह अपने क्षेत्र में धर्म कृत्यों का विस्तार करने के लिए वापिस लौट गया। तब से उस राजा के नाम पर बद्री के साथ विशाल शब्द भी जुड़ गया।

कथा है कि आरम्भ में ब्रह्मा जी के पाँच मुख थे। चार मुखों से उन्होंने चार वेदों का उच्चारण किया। किन्तु पाँचवाँ मुख मौन ही रहा। शंकर जी ने उसे निरर्थक मान और भार को हटाने के उद्देश्य से उसे त्रिशूल से काट डाला। वह ब्रह्म कपाल जहाँ गिरा उस स्थान को 'ब्रह्म कपाल' कहा जाता है। इन दिनों पितरों के श्राद्ध तर्पण वहीं होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्तराखण्ड में बद्रीनाथ के नाम पर पाँच अन्य देवालय भी हैं, इनमें विष्णु प्रतिमा है। उत्तराखण्ड शिव प्रधान भी है और विष्णु प्रधान भी। बद्रीनाथ पर वैष्णव सम्प्रदाय और केदारनाथ पर शिव सम्प्रदाय की छाप है।

(१) **योग ध्यान बद्री**—पाण्डुकेश्वर में है—कृष्ण रुक्मिणी यहीं ध्यान मग्न हो तप करते थे। (२) भविष्य बद्री-जोशी मठ से १६ कि.मी. दूर पूर्व में तपोवन नामक स्थान में है। ऐसी मान्यता है कि भविष्य में ऋषि संस्कृति ही शेष रहेगी और लोक प्रपंच से विरत होकर ऋषिगण सृष्टि का भविष्य निर्धारण इसी क्षेत्र में करेंगे। (३) वृद्ध बद्री खचेटी चट्टी से आधा किलो मीटर नीचे है। अगस्त्य मुनि जब वृद्ध हो गये और दर्शन के लिये चलने में असमर्थ हो गये तो भगवान् स्वं चलकर उन तक आते थे और वृद्ध के रूप में मिलते थे। (४) आदि बद्री—कर्ण प्रयाग से रानीखेत मार्ग पर ९६ किलोमीटर दूर है। कहते हैं कि लक्ष्मी जी से रुष्ट होकर भगवान् सर्वप्रथम यहीं आये थे। देवदूतों ने रात्रि में मंदिर बनाया पर वह प्रातः काल तक अधूरा ही रहा। उसी स्थिति में वह अब तक है। आदि में भगवान् पारस के थे पर पीछे लोगों की अश्रद्धा से वे साधारण पाषाण के हो गये। (५) पंचम बद्री त्रियुणी नारायण हैं। यह केदारनाथ मार्ग में रामपुर से ७ कि. मी. पैदल चलने पर मिलता है। यहाँ विष्णु की मूर्ति से जल निकल कर बाहर बने कुण्डों में जाता है। कुण्डों के नाम ब्रह्म कुण्ड, विष्णु कुण्ड, रुद्र कुण्ड तथा सरस्वती कुण्ड है। मंदिर में घना अँधेरा है, जो प्रलय काल का स्मरण दिलाता है। इसमें बाहर से प्रकाश लेकर ही जाया और कुछ देखा जा सकता है।

त्रियुगी नारायण के सम्बन्ध में कहा जाता है कि यहीं भगवान् शंकर और पार्वती का विवाह हुआ था। मंदिर के आगे एक यज्ञ कुण्ड है जिसमें अखण्ड अग्नि रहती है। कहते हैं कि वह पिछले तीन युगों से जलती आ रही है।

प्रसिद्ध देवज्ञ पाराशर और गर्गाचार्य ने बद्रीनाथ के पास सरस्वती गंगा के तट पर ज्ञान तपस्या की और ज्योति विज्ञान के निष्णात बने।

बद्रीनाथ प्रतिमा के सम्बन्ध में एक किम्बदन्ती यह है कि वह प्रतिमा पहले तिब्बत के थीलिंग मठ में थी। लामा उसकी पूजा करते थे। जब लामाओं ने भक्ष्याभक्ष्य का विचार त्याग दिया तो भगवान् छत में छेद करके वहाँ से भागे। लामाओं ने पीछा किया। भगवान् अपने को चंवरी गाय की पूँछ में, घोड़े के कान में छिपाते हुए लामाओं की नजर बचाते हुए वर्तमान स्थान तक आ पहुँचे और यहाँ शिव पार्वती के आश्रय में शान्ति पूर्वक रहने लगे। प्रतिमा भगवान् बुद्ध की प्रतीत होती है। पद्मासनस्थ है। 'बालबुद्ध' जैसी है। चेहरा व एक हाथ खंडित है। वर्तमान मन्दिर १८ वीं सदी के उत्तरार्ध में स्वामी वरद राजाचार्य की प्रेरणा से गढ़वाल नरेश ने बनवाया। स्वर्ण की छतरी इन्दौर की रानी अहिल्याबाई के दान से बनी।

कुछ समय वर बद्रीनाथ प्रतिमा के ऊपर स्वर्ण दण्ड के सहारे स्वर्णछत्र टंगा रहता था। सन् १९२० में सोने चाँदी के बने ९० पौण्ड भारी आभूषण चोर चुरा ले गये तब से नया छत्र लौह दण्ड पर टिका है।

नारदीय पुराण में बद्रीनाथ क्षेत्र को 'नारदीय क्षेत्र' कहा है। देवर्षि नारद का निवास यहीं था। वे आवश्यकतानुसार निकटवर्ती सुमेरु पर्वत पर बसे हुये स्वर्गलोक में आसानी से जा पहुँचते थे।

विद्वान ओकले के अनुसार अब से ८० वर्ष पूर्व बद्रीनाथ यात्रियों की संख्या वर्ष में ५-६ तक पहुँचती थी, सन् ५० में वह संख्या ५०-६० हजार तक पहुँच गई। अब तो वह १० लाख तक जा पहुँचती है।

जोशीमठ—बद्रीनाथ से २७ कि. मी. पहले जोशीमठ है। यह ६१०० फीट की ऊँचाई पर होने से उतना ठण्डा नहीं है जितना कि बद्रीनाथ। सर्दियों के दिनों में बद्रीनाथ में बर्फ जम जाने के कारण वहाँ सेवा पूजा की व्यवस्था कठिन पड़ती है। अस्तु, इन महीनों में भगवान् की पूजा जोशीमठ में होती है। जोशीमठ का पुराना नाम ज्योतिर्मठ है। आद्य शंकराचार्य ने यह मठ बनाया था और शहतूत वृक्ष के नीचे तप किया था। इस पेड के नीचे ही उनकी एक गुफा भी है। यहाँ नृसिंह भगवान का मन्दिर भी है।

पाण्डुकेश्वर—जोशीमठ-बद्रीनाथ मार्ग में पाण्डुकेश्वर तीर्थ है। इसकी कथा महाभारत के आदि पर्व तथा स्कन्द पुराण के केदारखण्ड में है। भगवान् की मूर्ति ध्यानस्थ योगी की है।

कथा है कि राजा पाण्डु ने अपनी पत्नी कुन्ती और माद्री समेत यहीं रह कर तप किया था। यहीं कुन्ती ने देवताओं का आह्वान करके पाँच पाण्डवों को जन्म दिया था। पाण्डु का स्वर्गवास भी यहीं हुआ था। कहते हैं कि यह मन्दिर राजा पाण्डु के समय का बना हुआ है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धृतराष्ट्र, गंधारी, कुंती, संजय ने भी शरीर त्याग उसी पुण्य-भूमि में किया था।

स्कन्द पुराण के केदार खण्ड ६१।३४-३५ में बद्रीनाथ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि व्यासदेव ने बद्रिकाश्रम में रहकर महाभारत की रचना की। उनके चार शिष्य (सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और शुक) साथ में थे।

बद्रीनाथ से आगे सुमेरु पर्वत की ओर चढ़ते हैं तो मार्ग में व्यास गुफा, वसुधारा एवं स्वर्गारोहण, (सत्पथ) स्थान मिलते हैं। इनमें देवालय नहीं हैं। प्राकृत गुफाएँ, शिखर एवं छोटे बड़े जलाशय हैं। इन्हीं, का दर्शन करके भगवान् की भावनात्मक झाँकी की जाती है।

बद्रीनाथ से वसुधारा जाने के मार्ग में ३ कि. मी. आगे चलते ही व्यास गुफा एवं गणेश गुफा माणाग्राम से ऊपर सरस्वती नदी के पश्चिम में हैं। इसे सम्याप्रास तीर्थ भी कहा गया है। इसी स्थान पर व्यास जी ने अठारह पुराणों की रचना की। गणेश जी लिखते थे और व्यासजी बोलते थे। इस प्रकार वह महान् सृजन कार्य दोनों के सहयोग से सम्पन्न हुआ।

बद्रीनाथ से ७ कि.मी. आगे 'वुसुधारा' तीर्थ है। यहाँ लगभग ४०० फुट ऊँचा एक जल प्रपात है। यह स्थान समुद्र सतह से लगभग १२०० फुट ऊँचाई पर हैं। इस जल प्रपात की बूँदें हवा में उड़कर यात्रियों पर पड़ती हैं। जिन पर पड़ती हैं वे अपने को पुण्यात्मा मानते हैं।

नारद पुराण, वामन पुराण, स्कन्द पुराण में संतपथ-संतोपथ का विस्तार पूर्वक वर्णन आता है। इसी स्थान को स्वर्गारोहण भी कहते हैं। पांडवों ने इसी स्थान पर शरीर त्यागा और स्वर्ग को चले गये थे।

यह स्थान बद्रीनाथ से प्राय: २० कि.मी. दूर है। ऊँचाई १४४०० फीट। यहाँ पर्वत के अतिरिक्त एक तिकोना हिम सरोवर है। इसका हर कोण २ फर्लांग लम्बा एवं १ फर्लांग ६४० फीट चौड़ा है। स्कन्द पुराण में इसे 'त्रिकोण मंडलाकार तीर्थ' कहा गया है। तीनों कोनों की इस प्रकार सही नाप तोल-एक जैसी होना आश्चर्यजनक है।

हेमकुण्ड—जोशीमठ से लोकपाल तीर्थ को एक सीधा मार्ग जाता है। इस लोकपाल तीर्थ को हेमकुण्ड भी कहा जाता है। यह समुद्रा से १४२०० फीट की ऊँचाई पर है। यहाँ लक्ष्मण जी—लोकपाल, देवता तथा दुर्गा की प्रतिमाओं वाले मन्दिर हैं। समीप ही हेमकुण्ड है। लम्बाई-चौड़ाई प्राय: आधा-आधा मील है। परिक्रमा दो-ढाई मील की हो जाती है। यहाँ से नीलकंठ पर्वत तथा काक-भुशुण्डि पर्वत की चोटियाँ दीखती हैं। नारद पुराण, पद्म पुराण एवं स्कन्द पुराण में इसे 'दण्ड पुष्करिणी' बताया गया है। कालिदास के मेघदूत में इसे चित्र रथ गंधर्व की राजधानी कहा गया है।

सिखधर्म के दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने अपने पूर्व जन्म में यहाँ तपस्या की थी। इसका उल्लेख उन्होंने आत्मकथा में स्वयं किया है। इसी कारण अब यह सिख धर्मानुयायियों के लिए विशेष रूप से तीर्थ बन गया है।

हेमकुण्ड के समीप ही 'फूलों की घाटी' है। इस क्षेत्र में रंग-बिरंगे और अद्‌भुत गंध वाले फूलों की भरमार है। इस १६७०० फुट ऊँचाई वाली म्यूडार घाटी में सन् ३१ में इंग्लैंड के एफ. एस. स्माइथ नामक सज्जन इस क्षेत्र में आये। पुष्पों की ऐसी अद्‌भुत शोभा देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये। इसके बाद वे फिर १९१७ में उस क्षेत्र में गये और ढाई सौ प्रकार के पुष्पों के बीज चुनकर अपने देश ले गये। इस घाटी के पुष्प परिचय पर उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है "दि बैली ऑफ फ्लावर"। इसके बाद सन् १९४० में कुमारी जॉन लेग इंग्लैंड के न्यू बॉटैनिकल गार्डन की ओर से इस क्षेत्र में फूलों के बीज चुनने का काम करती रहीं। एक बार पैर फिसल जाने से वे इसी क्षेत्र में स्वर्गवासी हो गई। उनकी समाधि भी वहीं बनी है। साहसी पर्यटक हेमकुण्ड के साथ ही इस फूलों की घाटी को भी देखने जाते हैं।

केदारनाथ

केदारनाथ महात्म्य का अनेक ग्रन्थों में वर्णन है। यथा—व्यास स्मृति चौथा अध्याय, महाभारत शल्य पर्व ३२ वाँ अध्याय, लिंग पुराण ९२ वाँ अध्याय, वामन पुराण ३६ वाँ अध्याय, कूर्म पुराण ३६ वाँ अध्याय, गरुड़ पुराण ८१ वाँ अध्याय, सौर पुराण ६९ वाँ अध्याय, ब्रह्मवैवर्त पुराण ९६ वाँ अध्याय। शिव पुराण ज्ञान खण्ड ३२ वाँ अध्याय, स्कन्द पुराण-केदार खण्ड ४० वाँ अध्याय।

केदारनाथ द्वाद्वश ज्योतिर्लिंगों में से एक है। सत्युग में ऋषि उपमन्यु ने यहाँ तप किया था। महाभारत से निवृत होकर पाण्डव यहीं तप करने आये थे। ब्रह्म-वैवर्त पुराण के अनुसार यहाँ राजा केदार ने तपस्या की थी। इस लिए इस स्थान का नाम केदारनाथ पड़ा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आद्य शंकराचार्य ने ३२ वर्ष की आयु में इसी स्थान पर तप करते हुए अपना शरीर त्यागा था। उनकी छोटी समाधि भी यहाँ है।

मंदिर में अखण्ड ज्योति जलती रहती है। प्रधान मूर्ति प्राकृतिक पाषाण खण्ड की है जो भैंसे के पिछले भाग जैसी लगती है। शिव जी को भैंसा क्यों बनना पड़ा इसकी एक विचित्र कथा—किम्बदन्ती भी है।

केदारनाथ मंदिर के निर्माण में विशालकाय पाषाण खण्डों का उपयोग हुआ है। सामान्य दर्शक चकित रह जाता है कि यांत्रिक सहायता के बिना इतनी विशालकाय चट्टानें किस प्रकार इतनी ऊँचाई तक पहुँचाई गई होंगी। यह मानवी श्रम और कौशल का एक प्रकार से चमत्कार ही समझा जाना चाहिए। आस-पास में कई कुण्ड हैं, जिनमें एक रुधिर कुण्ड भी है जिसका वर्ण लाल बना रहता है।

इस क्षेत्र में कई कुण्ड तथा कई छोटी नदियाँ हैं। कुण्डों के नाम हंस कुण्ड, उदक कुण्ड, रेत कुण्ड तथा क्षीर गंगा, मधु गंगा, सरस्वती, स्वर्ग रोहिणी ये चार छोटी नदियाँ हैं, मंदिरों के पीछे ब्रह्मगुफा के समीप पांडवों ने यज्ञ किया था, ऐसी मान्यता है।

केदारनाथ के समीप ही चोराबाड़ी सरोवर है। इसमें ही गाँधी जी की अस्थियों का विसर्जन हुआ था तब से इसका नाम 'गाँधी सरोवर' कहा जाने लगा है। आद्य शंकराचार्य की समाधि यहीं है।

केदारनाथ क्षेत्र में हरी दूब और अनेक प्रकार के गुलाब जैसे रंग-बिरंगे फूलों का बाहुल्य है। कहते हैं कि इसी दूब को चरने और सुगन्ध का आनन्द लेने के लिए भगवान् शिव ने भैंसे का रूप धारण किया था यहाँ उनकी प्रतिमा इसी रूप में है।

यहाँ से ६ कि. मी. दूर भृगु पतन या भैरवझांप है। प्राचीन काल में कई यात्री यहाँ से कूदकर शरीर त्यागते और स्वर्ग जाने की आशा करते थे। सन् १८८३ में इस प्रथा को अंग्रेज सरकार ने कड़े प्रतिबन्ध लगा कर बंद कराया।

तुंगनाथ—तुंगनाथ की ऊँचाई केदारनाथ से भी अधिक है। केदारनाथ समुद्र से ११७५३ फीट ऊँचा है, जबकि तुंगनाथ १२०७२ फीट। यह गंगोत्री-बद्रीनाथ से भी अधिक ऊँचाई पर है। शीत की अधिकता से पेड-पौधे उत्पन्न नहीं होते। प्राकृतिक पाषाण ही प्रतिमा है जो भुजा जैसी लगती है। आद्य शंकराचार्य की प्रतिमा को देखते हुए समझा जाता है कि यह उन्हीं की प्रेरणा से बना होगा। तुंगनाथ शिखर से पाप नाशिनी आकाश गंगा निकलती है। यहाँ से दो फर्लांग आगे रावण शिला है। यहाँ रावण ने शिव को प्रसन्न करने वाला तप किया था।

गंगोत्री

पुराणों की कथानुसार इक्ष्वाकु वंश में राजा सगर हुए और उन्होंने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया । देवेन्द्र ने यज्ञ का अश्व ले जाकर पाताल में छिपा दिया और सागर पुत्रों ने खोजते-खोजते पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में चरते हुए घोड़े को पाया। कपिल मुनि ने इसे अपमान समझकर सगर पुत्रों को श्राप देकर भस्म कर दिया। उनके उद्धार के लिए पृथ्वी पर गंगाजी को लाने के लिए सगर-पौत्र अंशुमान ने तप किया, फिर राजा दिलीप ने तप किया अन्त में भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने गंगा को पृथ्वी पर जाने का आदेश दिया। भगवान् शंकर ने ब्रह्मलोक से अवतरित गंगा को अपनी जटाजुट में धारण कर लिया और राजा भगीरथ की प्रार्थना पर उसे पृथ्वी में अवतरित कर दिया। जब गंगाजल का स्पर्श सगर-पुत्रों को हुआ तब उनका उद्धार हुआ।

गंगा मन्दिर के समीप ही भागीरथी में केदार गंगा मिलती है। इस संगम का जल लोग शिव विग्रह पर चढ़ाने के लिए ले जाते हैं।

संगम से कुछ ही आगे गौरी कुण्ड है। यह प्रपात प्राय: बीस फुट नीचे गिरता है। पत्थरों से टकरा कर वह अनेक धाराओं में विभाजित हो जाता है। इसे सहस्त्रधारा कहते हैं। जहाँ यह प्रपात गिरता है, वहाँ प्राय: पच्चीस फुट लम्बाई चौड़ाई का एक खड्ड हैं। ऊपर से बहुत जोर से पानी गिरने के कारण वह चक्राकार घूमता है। इसके बीच में एक चट्टान है, जिसे शिवलिंग कहते हैं।

गौरी कुण्ड की पश्चिमी दीवार पर एक मन्दिर की आकृति प्राकृति का रूप से बनी है। काली चट्टान पर लगता है कि किसी ने सफेद चाक से इसे बनाया हो, पर वस्तुत: ऐसा है नहीं। काल पत्थरों के बीच में सफेद रंग ही इस प्रकार आया है जिससे उसकी आकृति मन्दिर जैसी बन गयी है। ऐसे प्रकृति निर्माणों की, सामान्य बुद्धि किसी दैवी चमत्कार के साथ संगति बिठाती है। गौरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुण्ड से कुछ आगे एक छोटा-सा मैदान है जिसे 'परागंना' कहते हैं । कहते हैं कि पाण्डवों ने यहाँ एक बड़ा यज्ञ किया था। इससे कुछ ही आगे एक और छोटी नदी गंगा में मिलती है, इसे रुद्र गंगा कहते हैं।

ऋषिकेश से गंगोत्री मार्ग में गंगनानी तीर्थ है। इसमें गरम जल के तीन कुण्ड हैं। सूर्य कुण्ड, नारद कुण्ड, व्यास कुण्ड। एक कुण्ड अधिक गरम है। दो का तापमान मध्य है।

भागवत् पुराण में वर्णित गंगावतरण की कथा में बताया गया है कि विष्णु ने वामन अवतार बनकर बलियज्ञ में अपना विराट् रूप बनाया और पृथ्वी को तीन चरणों में नापा, तब उनके बायें पैर के अँगूठे से गंगा निकली। इसलिए वह विष्णु पदी है।

गंगोत्री में १४ कि. मी. आगे गोमुख है। यहीं प्रथम बार गंगाजी के पृथ्वी पर दर्शन होते हैं। गोमुख से बद्रीनाथ तक सीधा पहाड़ी मार्ग मात्र ४० कि. मी. है, पर उस बीच दुर्ग महिमाच्छादित पर्वतों और छोटे-छोटे नदी-नालों के कारण उधर से जा सकना अति कठिन है। इस मार्ग को कोई-कोई दुस्साहसी पर्वतारोही पार कर पातें हैं । साधारणतया गंगोत्री से बद्रीनाथ पहुँचने के लिए सड़क के रास्ते २७५ कि. मी. की यात्रा करनी पड़ती है।

गोमुख से ऊपर नन्दन वन है। इसके बाद तपोवन के पठार हैं । शिवलिंग पर्वत यहीं है। इसके बाद चौखम्बा पर्वत माला आरम्भ हो जाती है। वासुकी शिखर, भागीरथ शिखर, चतुरंगी शिखर, चन्द्र शिखर आदि कई शिखर इन रास्ते में पड़ते हैं, जिनकी ऊँचाई १५ हजार से लेकर १९५०० फीट तक समुद्र तट से है। इस बीच कई छोटे नदी नाले भी हैं जो बर्फ पिघलने पर ही बहते हैं। गस्तोली (१३१०० फीट) तक कठिन रास्ता है। फिर बद्रीनाथ की दूरी मात्र १२ कि. मी. रह जाती है। बद्रीनाथ की ऊँचाई १०२४४ फुट है।

यमुनोत्री

यमुनोत्री की ऊँचाई समुद्र तल से १०,००० फुट है। यमुना के ऊपर गरम पानी के दो कुण्ड हैं। प्रथम कुण्ड उबलते हुए पानी के सदृश इतना गर्म है कि लोग आलू, रोटी और चावलों की खिचड़ी पकाकर घर ले जाते हैं। लोग आलू या खिचड़ी कपड़े की पोटली में बाँध कुण्ड में छोड़ते हैं। इसी तरह कच्ची रोटियाँ बनाकर डाल देते हैं। पहले तो वे पानी के नीचे चली जाती हैं, फिर पककर ऊपर आ जाती हैं।

दूसरा कुण्ड कुनकने जल का है, इसमें यात्री स्नान करते हैं। प्रथम का नाम 'सूर्य कुण्ड' और दूसरे का 'तप्तकुण्ड' है। तप्तकुण्ड के समीप ही गरम जल का फुहारा अहर्निश छूटता रहता है, इसे गोमुख कहते हैं । यात्री यमुना जी का पूजन, दान, संकल्प आदि इसी गोमुख पर करते हैं।

कलिंद पर्वत से निकलने के कारण यमुना का एक नाथ कालिन्दी भी है। कहते हैं कि पूर्व काल में कालिंदी तट पर असित ऋषि तप करते थे। वृद्धावस्था में नित्य स्नान के लिए उन्हें नीचे उतरने में कष्ट होते देखकर यमुना छोटे झरने के रूप में उनके आश्रम पर ही बहने लगीं, तब से एक झरना वहीं बहता है। इस घटना से रैदास की कठौती में गंगा प्रगट होने की कथा स्मरण हो आती है।

यमुनोत्तरी का मंदिर आजकल जहाँ है, उद्गम स्थल उससे एक हजार फुट ऊँचाई पर अन्यत्र है। यमुनोत्तरी में कई गरम पानी के कुण्ड हैं। इनमें से एक कुण्ड का पानी ऐसा है जिसे खौलता हुआ कहा जा सकता है। खुला हाथ डालने पर फफोले पड़ सकते हैं।

यमुनोत्री महात्म्य में कहा गया है कि यहाँ सर्वप्रथम अग्निदेव ने तप किया था, जिसके फलस्वरूप उन्हें दिग्पाल का पद मिला। जिस कुण्ड में वे स्नान करते थे उसका नाम तप्तकुण्ड पड़ा। इसके समीप ही सिद्ध शिला पर यम ने तप किया और वे भी लोकपाल बने।

यमुनोत्री मंदिर वैसाखी अक्षय तृतीया से लेकर दीपावली तक खुला रहता है। पीछे छै: महीने उस प्रतिमा को पण्डे लोग खरसाली गाँव ले आते हैं और वहीं उसकी पूजा करते हैं।

सूर्य कुण्ड के पास गरम पानी की दो धाराएँ फुब्बारे की तरह ऊपर उछलती हैं। इनका झुकाव दिन के साथ-साथ सूर्य की ओर बढ़ता रहता है। यमुना को सूर्य पुत्री भी कहते हैं। पहले यात्राएँ पैदल ही हुआ करती थीं। पैदल मार्ग से चलते हुए यमुनोत्तरी से गंगोत्तरी ११४ मील, गंगोत्तरी से केदारनाथ १२१ मील, केदारनाथ से बद्रीनाथ ११६ मील, बद्रीनाथ से हरिद्वार १८६ मील है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हरिद्वार क्षेत्र के चार तीर्थ

अगम्य हिमालय के चार क्षेत्र, उत्तराखण्ड हिमालय के चार धामों की तरह प्रवेश द्वार हिमालय के भी चार तीर्थ हैं। (१) हरिद्वार (२) कनखल (३) ऋषिकेश (४) लक्ष्मण झूला। इन चारों के अपने-अपने माहात्म्य और इतिहास हैं।

इस सन्दर्भ में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य वह गाथा है जिसमें भगवान् राम ने अपने भाइयों समेत वर्णाश्रम धर्म का पालन करने के लिए वानप्रस्थ लिया था। जीवन के उत्तरार्द्ध में वे चारों हिमालय में चार आश्रम बनाकर रहे और इसमें विश्व-कल्याण की तप साधना करते रहे। मार्ग-दर्शन के लिए महर्षि वशिष्ठ का आश्रम समीप ही था। महर्षि का आश्रम वहाँ था जो आजकल वशिष्ठ गुफा के नाम से प्रख्यात है।

भगवान् राम-देव प्रयाग में, लक्ष्मण-लक्ष्मण झूला में, भरत-ऋषिकेश में और शत्रुध्न-मुनी की रेती में रहे। ये चारों अपनी उत्कृष्टता पहले इतनी बढ़ा चुके थे कि निजी प्रयोजनों के लिए तप-साधना की उन्हें कोई आवश्यकता न थी। प्राचीनकाल में तप आज की तरह स्वर्ग-मुक्ति या ऋद्धि सिद्धि की व्यक्ति स्वार्थपरता पूरी करने के लिए नहीं होते थे। उन दिनों की ऋषिकल्प तप-साधना पूर्णतया लोक मंगल के अनुष्ठान, अनुसंधान, प्रयोग, प्रशिक्षण आदि परमार्थ कृत्यों के साथ जुड़ी हुई थी। व्यास का साहित्य-सृजन, चरक का औषधि-अनुसन्धान, कपिल का शिक्षण-आरण्य, नारद की स्वर साधना, अगस्त का शोध-संस्थान प्रसिद्ध था। उसी प्रकार अन्य ऋषि भी अपने-अपने ढंग से लोकमंगल की साधना करते थे। परशुराम ने शस्त्र-विद्या इसी प्रयोजन के लिए सीखी थी। उन्हें कोई निजी लड़ाई थोड़े ही लड़नी थी।

हरिद्वार—हरिद्वार को हरद्वार भी कहा जाता है। पुराणों में उसके गंगाद्वार, हिमप्रवेश, मायापुरी नाम भी आये हैं। हर कहते हैं शिव को और हरि विष्णु को। हिमालय क्षेत्र में दोनों स्तर के तीर्थ हैं। यह हरिद्वार दोनों का संयुक्त क्षेत्र है। इसलिए भक्तजन अपनी श्रद्धा मान्यता के अनुसार उसे हरिद्वार या हरद्वार पुकारते हैं।

गंगा का पर्वतीय प्रदेश यहाँ समाप्त होता है। यहाँ से आगे वह मैदानी समतल भूमि में बहती है। हिमालय और गंगा का संयोग यहीं समाप्त होता है। हिमिसुता का दिव्य दर्शन यहीं से आरम्भ होता है, इसलिए इसे गंगाद्वार भी कहते हैं। हिमालय यहीं से आरम्भ होता है इसलिए वह हिमद्वार भी है।

अयोध्या, मथुरा, मायापुरी, काशी, कांची, अवन्तिका, पुरी, द्वारावती यह सप्तपुरियाँ हैं। इनमें मायापुरी हरिद्वार है। मायादेवी का मन्दिर इस पुरी के नाम का प्रतिनिधित्व करता है। पुराणों में दक्ष कन्या सती का नाम ही मायादेवी बताया गया है।

गंगा को लाने वाले भगीरथ का स्वागत करने के लिए स्वर्ग-लोक से ब्रह्माजी धरती पर पधारे। उन्होंने जहाँ यह अभिनन्दन किया उस स्थान का नाम ब्रह्मकुण्ड पड़ा। ब्रह्मकुण्ड हरि की पौड़ी पर है। अस्थि-विसर्जन यहीं करते हैं।

हरिद्वार माहात्म्य के सम्बन्ध में कई पौराणिक गाथाएँ तथा किम्बदन्तियाँ हैं। जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) यहाँ भर्तृहरि ने तप किया और उनका शरीर यहीं विसर्जित हुआ।

(२) गोरखनाथ ने तप किया। उस स्थान पर गोरखमन्दिर बना। यहीं गोरखगुफा भी है।

(३) राजा विक्रमादित्य यहाँ रहे। उन्हें साधना के लिए यह स्थान बहुत प्रिय लगा। उन्होंने हर की पौड़ी घाट बनवाया।

(४) दत्तात्रेय भगवान् ने यहाँ तप किया।

(५) यहीं शान्तनु और गंगा का विवाह हुआ।

(६) भीष्म पितामह का पालन, पोषण और अध्ययन यहीं हुआ।

(७) द्रोण और द्रुपद ने आचार्य अग्निवेश से यहीं धनुर्वेद सीखा।

(८) अर्जुन और उलूपी का विवाह यहीं हुआ।

(९) गुरु नानक देव का जिस स्थान पर निवास रहा, उस स्मृति स्थान को ज्ञान गुदड़ी कहा जाता है।

सप्तसरोवर में गंगा की सात धारा हो गई हैं। कहा गया है कि यहाँ कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज—यह सात ऋषि तप करते थे। वायु पुराण में उल्लेख है कि गंगा जब भागीरथ के नेतृत्व में यहाँ आईं तो उन्होंने सात ऋषियों को तप करते देखा और असमंजस में पड़ीं कि उन्हें कष्ट देने से कैसे बचा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्ततः यह उपाय निकला कि गंगा सात धाराओं में विभक्त हो गई और कुटियों के स्थान बीच-बीच में जहाँ के तहाँ बने रहे।

विल्वकेश्वर स्थान पर दक्षपुत्री सती ने दूसरा जन्म उमा के रूप में लिया और भगवान् शंकर को पति रूप में प्राप्त करने के लिए सफल तप किया था।

कनखल—कनखल में दक्ष प्रजापति द्वारा स्थापित दक्षेश्वर महादेव का मन्दिर है। शिवजी ने द्वादश ज्योतिर्लिंगों की स्थापना का संकल्प यहीं किया था।

दक्ष कन्या सती ने योगाग्नि से जिस स्थान पर शरीर त्याग किया था उस स्थान का नाम सती कुंड है। सती घाट भी यहीं है।

दक्ष कन्या-शिवपत्नी मायादेवी निमंत्रित न होने पर भी पति से हठ करके पिता के यज्ञ में आईं। यहाँ पति का अनादर देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ और आघात को न सह सकने पर योगाग्नि में जलकर सती हो गईं। इस पर शिवजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने दक्ष से निपटने के लिए अपने गण भेजे। उनमें से एक वीरभद्र ने तो दक्ष का सिर ही काट दिया। समाचार पाकर शिवजी पहुँचे। उन्होंने दक्ष को तो पुनर्जीवित कर दिया। पर स्वयं पत्नी वियोग से संतुलन खो बैठे। वे अपनी दग्ध पत्नी का शव कंधे, पर लादकर उद्विग्न हो ताण्डव नृत्य करने लगे। उद्विग्नता बढ़ती देखकर विष्णु ने अपने चक्र से महासती के शव के टुकड़े-टुकड़े कर बिखेर दिये। वे जहाँ-जहाँ भी गिरे वहाँ-वहाँ शक्ति-पीठों की स्थापना हुई। एक टुकड़ा हरिद्वार में भी गिरा। वहाँ माया देवी का मन्दिर है।

हरिद्वार में जिस स्थान पर इन दिनों विल्वकेश्वर महादेव का मन्दिर है, कहते हैं कि वहीं सती ने दूसरा जन्म लेकर उमा रूप में अपने पति को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से तप किया था।

कथा है कि समुद्र मंथन से अमृत घट निकला। देवता और असुर दोनों पक्ष उसे स्वयं पी जाना चाहते थे। छीना झपटी में घड़ा टूट गया। जहाँ-जहाँ वह अमृत कुंभ गिरा, वहाँ-वहाँ कुंभ मेले होने लगे। हरिद्वार, नासिक, प्रयाग, उज्जैन में बारह-बारह वर्ष बाद यह कुंभ पर्व मनाया जाता है।

भगवत पुराण के चौथे स्कन्ध में कथा आती है। उसमें लिखा है—दक्ष प्रजापति की पत्नी प्रसूति के गर्भ से सोलह पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं इनमें से तेरह का धर्म के साथ विवाह कर दिया। इनका नाम श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टी, क्रिया, प्रगति, बुद्धि, मेधा, तितीक्षा, हरीं और मूर्ति था। इन कन्याओं ने एक-एक पुत्र उत्पन्न किया। श्रद्धा से शुभ, मैत्री, से प्रसाद, दया से अभय, शान्ति से सुख, तुष्टि से मुद, पुष्टि से गौरव, क्रिया से योग, प्रगति से धर्म, बुद्धि से अर्थ, मेधा से स्मृति, तितीक्षा से क्षेम, हीं से प्रश्रय नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

दक्ष अर्थात् कुशल। उसकी मेधा बुद्धि से सत्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होनी चाहिए। उसे सत्प्रयोजन वरण करने चाहिए और सत्परिणाम प्राप्त करने चाहिए। यही इस विवाह प्रकरण का रहस्य है।

ऋषिकेश—ऋषिकेश के सम्बन्ध में कितनी ही पुराण गाथाएँ उपलब्ध होती हैं। एक कथा के अनुसार मधु और कैटभ नामक दो दैत्यों का वध करके उनके त्रास से देवताओं तथा मनुष्यों को बचाया था। एक कथा है कि सतयुग में वाराह, त्रेता में हयग्रीव, द्वापर में वामन और कलियुग में यहाँ भगवान् की भरत रूप में पूजा हुई। एक कथा के अनुसार सहस्रार्जुन द्वारा सताये जाने पर ब्राह्मणों ने इसी क्षेत्र में आश्रय ग्रहण किया था। वशिष्ठ, विश्वामित्र भारद्वाज, परशुराम, धौम्य आदि ऋषियों के अनेक सत्प्रयोजनों के सम्बन्ध में यही कार्य-क्षेत्र रहा है। धृतराष्ट्र, मनु, पृथु, दक्ष, मान्धाता भागीरथ, नहुष, ययाति, पुरूरवा आदि राजर्षियों के साथ भी इस क्षेत्र का सघन सम्बन्ध रहा है।

ऋषिकेश को वामन पुराण में कुब्जाम्रक कहा गया है और लिखा है कि प्रह्लाद ने यहीं तप किया था। कूर्म पुराण में, नृसिंह पुराण में यहाँ तप करने वाले अन्यायन्य ऋषि मुनियों का भी वर्णन है।

ऋषिकेश में रैक्य ऋषि तप करते थे। उन्हें लोग ऋषिमात्र ही कहते थे। साथ में लम्बे केश वाले अन्य ऋषियों का भी निवास था। इसलिए उस क्षेत्र का नाम ऋषिकेश पड़ा। भरतजी ने यहाँ आश्रम बनाकर परमार्थ प्रयोजन के लिए तप किया था।

लक्ष्मण झूला—प्राचीन काल में लक्ष्मण जी वानप्रस्थ लेकर भाइयों समेत इसी क्षेत्र में आये थे। इन्होंने जिस स्थान पर तप किया था, वह लक्ष्मणतीर्थ के नाम से प्रख्यात हुआ। मध्यकाल में बद्रीनाथ यात्रा के लिए यहाँ से गंगा पार करके दूसरी ओर जाना पड़ता था। उन दिनों रस्सों का पुल था जिस पर से यात्री गुजरते

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थे तो वह हिलाता था। झूला झूलने जैसा अनुभव होता था। उसी आधार पर लक्ष्मण तीर्थ और रस्से का झूला मिला देने से लक्ष्मण झूला नाम पड़ गया।

कथा है कि लक्ष्मण जी को क्षयरोग हो गया था। उन्होंने यहाँ साधनारत रहकर सहज ही उस विपत्ति से छुटकारा पा लिया।

उत्तराखण्ड यात्रा की इस प्रथम अग्नि परीक्षा को सरल बनाने के लिए दानियों ने १९८९ में स्थायी पुल का निर्माण कराया। वह कमजोर था, सो बाढ़ में बह गया। बाद में १९२४ में वर्तमान पुल बना। इस पर उन दिनों दो लाख बीस हजार खर्च आया था, जिसमें से आधा सूरजमल ट्रस्ट ने और आधा भारत सरकार ने दिया था। यह लोहे के मोटे रस्सों पर टिका है। अब उत्तराखण्ड यात्रा के लिए इसी किनारे पर सड़क बन गयी है।

वनस्पतियों के रूप में विद्यमान देवी-देवता—

उत्तराखण्ड के प्रकृतिगत कला-कौशल में पर्वत, निर्झर, सरोवर, नदियों, गुफाओं की तरह ही वन सम्पदा का भी महत्त्व है। यह पेड ही इस क्षेत्र को सुरम्य बनाते तथा प्राणियों के रहने योग्य रखे रहते हैं। पर्वतों की स्थिरता भी इन्हीं पर निर्भर है। यदि वे न रहें तो मिट्टी वाले पहाड़ ढह-ढह कर नीचे गिरते और सर्वत्र खड्ड टीलों की कुरूपता दृष्टिगोचर होती। वन-सम्पदा से जो अगणित लाभ होते हैं, उनमें एक भी उपलब्ध नहीं होता।

अधिक महत्त्व उन जड़ी बूटियों का है, जिन्हें जीवनदात्री संजीवनीमूरि कहा जा सकता है। च्यवन को वृद्ध से युवा बनाने वाली तथा लक्ष्मण को मृतक से जीवित करने वाली औषधियाँ अभी भी इस क्षेत्र में विद्यमान हैं। आवश्यकता उनकी नये सिरे से खोज करने की है।

नंदनवन में एक प्रकाशवान बूटी पाई जाती है जिसे उस क्षेत्र के लोग दीप जड़ी कहते हैं। इसकी जड़ से हरे और नीले रंग से मिश्रित प्रकाश चमकता है। जुगनू या रेडियम डायल की घड़ी से जल प्रकाश की उपमा दी जा सकती है। जड़ को तोड़ने पर उसके भीतर उसी प्रकार का प्रकाश चमकता है।

कालिदास के ग्रन्थों में विशेषतया 'कुमारसंभव' में इस प्रकाशवान् वनस्पति का कई स्थानों में उल्लेख हुआ है। यथा—

'गंगास्तोतः परिक्षिप्तं व प्रान्तर्ज्वलितौषधि।'

वाल्मीकि रामायण में इन दीप्तिमान जड़ी-बूटियों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

तस्य वानस शार्दूल चतास्त्रो मूर्ध्नि संभवाः।
द्रव्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्ती दिशो दश॥
मृतसंजीवनी चैव विशल्यकरणीमपि।
सुवर्ण करणी चैव संधानी च महौषधम्॥

—हे वानर श्रेष्ठ! उस शिखर पर तुम्हें चार ऐसी दिव्य बूटियाँ मिलेंगी जो अपना प्रकाश सब ओर फैलाये रहती हैं। उनके नाम मृत सञ्जीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी है।

मृत सञ्जीवनी मृतक को जीवित करती है। विशल्य करणी क्लोरोफार्म की तरह निद्राग्रस्त करने वाली है। सुवर्णकरणी पारे को सोना बनाती है संधानी रक्त के जमाव को क्षत्-विक्षत् करती है।

भारत में प्रायः १५,००० जाति की फूल-पौधे वर्ग की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इनमें ५,००० वर्ग ऐसे हैं जो मनुष्य के खाने में प्रयुक्त हो सकने योग्य हैं। इनमें से १५०० औषधि स्तर के हैं। इनमें प्रायः आधी हिमालय क्षेत्र में पाई जाती हैं। औषधि वृक्षों की संख्या ५५० है, जिनमें से प्रायः दो सौ ठंडे वातावरण में उगते तथा बढ़ते हैं। पर्यवेक्षण से हिमालय पर उगने वाले ४०० से अधिक जड़ी बूटियों को महत्त्वपूर्ण पाया है और उन पर गहरा अनुसन्धान चल रहा है।

भारत से विदेशों में प्रायः ८० करोड़ रुपये की जड़ी बूटियाँ भेजी जाती हैं। अभी इस उत्पादन को बढ़ाने की भारी गुंजायश है। उनका वर्णन अथर्ववेद, चरक, सुश्रुत, वागभट्ट निघण्टु आदि आयुर्वेद ग्रन्थों में पाया जाता है। अंग्रेजी में इस विषय पर "ग्लोसरी ऑफ मेडीसिनल प्लाण्ट्स" इण्डियन मेडिसिनल प्लान्ट्स", "इण्डियन मेटेरिया मेडिका" आदि ग्रन्थ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं।

हिमालय क्षेत्र के जिन जड़ी-बूटियों की देश-विदेश में भारी माँग रहती है उनमें से कुछ के नाम यह हैं—कालमेघ, अगूची, स्याहजीरा, जीवक, गुलाबी लौंग, मुलेठी, चालमुंगरा, लालमेथी, पद्मपुष्करा, जटामासी, रतन ज्योति, माजूफल, चम्बुल, कुथ, चिरायता, औशवाह; मकोय, गोखरू, गिलोय, बनफसा, मुश्कवाला, अशोक, सिनकोना, अनन्तमूल।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कालिदास ने देवदारु वृक्ष को शंकर पुत्र के रूप में चित्रित किया है। पार्वती उन्हें और भी अधिक प्यार करती हैं। एक बार किसी जंगली हाथी ने खुजली मिटाने के लिए अपनी कनपटी देवदारु वृक्ष से रगड़ी तो वह छिल गया। यह देखकर पार्वती को उतना ही दुःख हुआ जितना कि एक बार असुर युद्ध में कार्तिकेय के बाणों से छिदजाने पर उन्हें हुआ था। संसार के सुन्दरतम वृक्षों में देवदारु की गणना होती है। उसकी उपयोगति भी बहुत है। ऐसे-ऐसे अनेक वृक्षों, पुष्पों और औषधियों से यह सारा क्षेत्र भरा हुआ है। इस उत्पादन को भी वनस्पति जगत के जीवन्त देवताओं की उपस्थिति समझा जा सकता है।

उत्तराखण्ड के कुछ विशेष तीर्थ

उत्तराखण्ड में ऋषिकेश से बद्रीनाथ एवं गंगोत्री के लिए दो प्रमुख मार्ग आरम्भ होते हैं। बद्रीनाथ मार्ग से केदारनाथ जाना पड़ता है और गंगोत्री मार्ग पर ही यमुनात्री हैं। इस बड़े मार्ग के अतिरिक्त उस क्षेत्र में अनेकों छोटे-बड़े नगर-कस्बे हैं, इन्हें परस्पर जोड़ने वाली सड़के भी हैं, इन्हीं के किनारे अनेकों छोटे-छोटे देवालय बने हैं। जिनके साथ पुरातनकाल में किसी देवता या ऋषि से संगति जोड़ी जाती है । इन सबकी गणना की जाय तो उनका विवरण बहुत बड़ा हो जायेगा। यह स्थानीय महत्त्व के हैं। बड़ी मात्रा में तो कदाचित ही कभी कोई उनमें जाता होगा। इसलिए उनकी चर्चा इन पंक्तियों में नहीं की जा रही है। फिर भी कुछ देखने और जानने योग्य स्थान हैं, जिनके विवरण इन प्रकार हैं—

उत्तराखण्ड में पाँच बद्री, पाँच केदार और पाँच प्रयाग हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

पाँच बद्री—(१) आदि बद्री (२) वृद्ध बद्री (३) भविष्य बद्री (४) योग बद्री (५) विशाल बद्री।

पाँच केदार—(१) मध्य माहेश्वर (२) तुंगनाथ (३) रुद्रनाथ (४) कल्पेश्वर (५) केदारनाथ।

पंच प्रयाग—(१) देव प्रयाग (२) रुद्र प्रयाग (३) कर्ण प्रयाग (४) नंद प्रयाग (५) विष्णु प्रयाग।

इनके अतिरिक्त दो काशी हैं—(१) गुप्तकाशी (२) उत्तरकाशी।

उत्तराखण्ड की प्रमुख नदियाँ तीन हैं—(१) भागीरथी (२) अलक नंदा (३) मंदाकिनी।

इन तीनों में ही कई-कई नदियों के संगम है। भागीरथी में भृगुगंगा, देवगंगा, केदारगंगा, रुद्रगंगा, जाड़गंगा, भीलगंगा मिलती हैं।

अलकनंदा में विष्णु गंगा मिलती है। इस संगम पर विष्णु प्रयाग बसा है। जहाँ मंदाकिनी मिली है वहाँ नंद प्रयाग है। पिंडार नदी जहाँ मिलती है, उस संगम को कर्ण प्रयाग कहते हैं। जहाँ मंदाकिनी मिली है, वह स्थान रुद्रप्रयाग है। इतना रास्ता पार करने के बाद अलकनंदा भागीरथी में मिल जाती है। वहाँ देवप्रयाग है इसके बाद अकेली भागीरथी गंगा रह जाती है।

कर्णप्रयाग में राजा कर्ण ने एक रहस्यमय यज्ञ किया था जिसमें व्यास, शुक्र, वैशम्पायन, नारद, भृगु, रन्तिदेव, कश्यप, उद्दालक, भारद्वाज, गौतम आदि अनके ऋषि उपस्थित थे। सूर्य की आराधना करके कर्ण ने कवच-कुण्डल तथा अक्षय तूणीर यहीं प्राप्त किया था।

देवप्रयाग में भागीरथी गंगा तथा अलकनंदा का संगम है। यहाँ वृद्धावस्था में भगवान् राम ने तप किया और शेष जीवन बिताया।

समीपस्थ ब्रह्मतीर्थ में ब्रह्माजी ने और दशरथाचल शिखर पर दशरथजी के तप की भी कथा है।

देव प्रयाग तीन पर्वतों के बीच बसा हुआ है। इनमें से एक को दशरथाचल दूसरे को गृध्र, तीसरे को नृसिंह शिखर कहते हैं। अलकनंदा, भागीरथी और गंगा इन तीनों पृथक्-पृथक् सीमाएँ बनाती है। संगम के ऊपर दो गुफाएँ हैं। इनमें से एक को वशिष्ठ गुफा और दूसरी को शंकर गुफा कहते हैं।

हिमवन्त पुराण में उल्लेख है कि सृष्टि का प्रथम प्रादुर्भाव हिमालय के इसी क्षेत्र में हुआ। वाराह भगवान् ने जलप्रलय के उपरान्त जल में डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर निकाला तो यही भाग सर्वप्रथम ऊपर उभरा।

अलकनन्दा और मन्दाकिनी के संगम पर रुद्रप्रयाग बसा है। केदार खण्ड ६३।६५ में उल्लेख है कि देवर्षि नारद ने यहीं तप किया था और भगवान् शंकर ने उन्हें संगीत-शास्त्र के समूचे रहस्य बताये थे । साथ ही प्रसिद्ध वीणा भी उन्हें प्रदान की थी।

रुद्रप्रयाग से केदारनाथ जाते हुए अगस्त्य मुनि का स्थान है। तीन चुल्लू में समुद्र का सारा जल सोख लेने की घटना का वर्णन पुराणों में मिलता है। यह शक्ति अगस्त्य मुनि ने इसी स्थान पर तप करके प्राप्त की थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुप्तकाशी एक ऊँचे पर्वत शृंग पर बसा है। यहाँ वाणासुर ने तप करके शिव को प्रसन्न किया था और अपार बल-वैभव पाया था। वाणासुर की पुत्री उषा का विवाह कृष्ण-पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था।

ऋषिकेश से बद्रीनाथ यात्रा के मार्ग में देवप्रयाग से आगे 'कोट महादेव' नामक आश्रम में वाल्मीकि ऋषि का आश्रम था। यहीं 'सीता कोटी' में सीताजी ने महर्षि के संरक्षण में निवास किया और लव-कुश को जन्म दिया। लक्ष्मण सेना के साथ लव-कुश के युद्ध की घटना भी इसी क्षेत्र की बताई जाती है। इस स्थान को 'सीता की पुंगडी' कहा जाता है और हर साल कार्तिक सुदी द्वादशी को उपरोक्त घटना के उपलक्ष्य में 'मनसार' का मेला होता है।

देवात्मा हिमालय के क्षेत्र में पाँच सरोवर हैं। स्थानीय भाषा में सरोवर को ताल कहते हैं। इसलिए इन पाँचों का नामकरण ताल के नाम पर हुआ है। (१) डोडी ताल (२) भराट ताल (३) सहस्र ताल (४) गोहना ताल (५) रूपकुण्ड।

डोडी ताल उत्तरकाशी से ३३ किलोमीटर दूर है। असि नदी का प्रादुर्भाव इसी सरोवर से हुआ है। भराट ताल उत्तरकाशी के समीप माँझी वन के निकट चारों ओर पर्वतों से घिरा यह इस क्षेत्र का बड़ा सरोवर है। कुष्ठ रोगी अपनी व्यथा निवारण के लिए यहाँ पहुँचते है। सहस्रताल-गंगोत्री-केदार मार्ग में यह विद्यमान है। भील गंगा इसी सरोवर से निकलती है। गोहना ताल-चमोली से २४ किलोमीटर दूर है। बिरही गंगा के अवरुद्ध होने से यह बना है। यह नैनीताल से भी प्रायः तीन गुना अधिक बड़ा है। रूप कुण्ड-कर्ण प्रयाग से ग्वालदम मार्ग पर है। घराली से ७३ कि. मी. आगे है। रूप गंगा का उद्गम यही सरोवर है।

ऋषिकेश गंगोत्री मार्ग पर उत्तरकाशी तीर्थ है। अब यह जिला भी हो गया है। यहाँ गंगा में छोटी-छोटी और दो नदियाँ मिलती हैं, इसलिए उसे त्रिवेणी संगम जैसा महत्त्व दिया जाता है। यहीं महर्षि परशुराम ने तप करके अवतार का स्तर पाया था। यहीं शिवजी ने उन्हें वह कुल्हाड़ा दिया था, जिससे जीवन के पूर्वार्ध में उन्होंने अनीति के विरुद्ध संघर्ष करके असंख्यों को परास्त किया। जीवन के उत्तरार्ध में उन्होंने उसे फावड़े की तरह प्रयुक्त किया और असंख्यों वन-उद्यान लगाये।

स्कन्द पुराण के अनुसार यवनों के आक्रमण काल में भगवान् शंकर काशी छोड़कर अपने श्वसुर-गृह हिमालय चले आये यहीं उत्तरकाशी में बस गये। इस प्रकार दूसरी काशी हो गई। एक कथा यह भी है कि गंगा इस क्षेत्र से कुछ दूर उत्तराभिमुख होकर बही है जबकि सर्वत्र उसका प्रवाह दक्षिणाभिमुखी है। उत्तर काशी नाम पड़ने का एक कारण यह भी बताया जाता है। सरकारी कागजों में इसका पुराना नाम 'बाड़ा हाट' है। वरणावत पर्वत पर बसी हुई इस नगरी में वरुणा और असी का गंगा के साथ संगम होने से उसे इस क्षेत्र की त्रिवेणी भी कहा जाता है।

विश्वनाथ मंदिर के प्रांगण में यहाँ एक शक्ति मंदिर है, उसमें २१ फीट ऊँचा एक त्रिशूल रखा हुआ है।, इसकी गोलाई नीचे ८ फुट ९ इंच है ऊपर पतला होता चला गया है, कहते हैं कि आकाश से एक बार यहाँ शक्तिपात् हुआ तो वह त्रिशूल बनकर यहीं खड़ी रह गई। ऊपर का त्रिशूल ६ फुट लम्बा है। गुप्तकाशी के सम्बन्ध में भी ऐसी ही कथा गाथा है कि भगवान् शिव यहाँ बहुत समय तक अज्ञातवास करते रहे और प्रगट नहीं हुए। पता पाने वाले देवताओं तथा ऋषियों ने भी वहीं पहुँच कर गुप्त निवास किया और गुप्त वरदान पाये।

श्रीनगर, ऋषिकेश से १०८ कि. मी. बद्रीनाथ मार्ग पर है, कथा है कि किसी दैत्य ने यहाँ श्री विद्या की साधना करके सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उसने एक पाषाण शिला पर 'श्रीयंत्र' भी खुदवाया था। कहते हैं कि प्राचीन काल में यह यंत्र ही देवी की प्रतिमा थी और उस पर नर-बलि चढ़ाई जाती थी, पशुबलि भी होती थी। कोई उसे देखने जाता तो देवी के ही उदर में समा जाता। आद्य शंकराचार्य इस क्षेत्र में पहुँचे तो इस अनाचार से उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने यंत्र शिला को उलट कर अनकनंदा में पटक दिया तब से वह वहीं पड़ी है। नाथ सम्प्रदाय के गुरु गोरखनाथ का स्वर्गवास श्री नगर में हुआ बताया जाता है। उनकी समाधि भी गुफा द्वार पर है।

शैव, शक्ति और वैष्णव धर्म का जैसा अच्छा समन्वय हिमालय क्षेत्रों के तीर्थों में हुआ है, वैसा भारतवर्ष में अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। यहाँ एक सम्प्रदाय के लोगों ने सहानुभूतिपूर्वक दूसरों की प्रतिष्ठापनाओं का आदर ही नहीं किया अपनी स्थापनाओं के साथ-साथ अन्यान्यों को सम्मिलित कर दिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सिद्ध-क्षेत्र हिमालय

पदार्थों और प्राणियों के परमाणुओं जीवकोषों में मध्यवर्ती नाभिक "न्यूक्लियस" होते हैं । उन्हीं को शक्ति स्रोत कहा गया है और घिरे हुए परिकर को उसी उद्‌गम से सामर्थ्य मिलती है और अवयवों की सक्रियता गतिशील रहती है । यह घिरा हुआ परिकर गोल भी हो सकता है और चपटा अण्डाकार भी । यह संरचना और परिस्थितियों पर निर्भर है ।

पृथ्वी का नाभिक उत्तरी ध्रुव से लेकर दक्षिण ध्रुव की परिधि में मध्य स्थान पर है । उसके दोनों सिरे अनेकानेक विचित्रताओं का परियच देते हैं । उत्तरी ध्रुव लोक लोकान्तरों से कास्मिक-ब्रह्माण्डीय किरणों को खींचता है। जितनी पृथ्वी को आवश्यकता है उतनी ही अवशोषित करती है और शेष को यह नाभिक दक्षिणी ध्रुव मार्ग से अन्तरिक्ष में निसृत कर देता है । इन दोनों छिद्रों का आवरण मोटी हिम परत से घिरा रहता है । उन सिरों का सुदृढ़ रक्षाकवच एवं भण्डारण में प्रयुक्त होने वाली तिजोरी की उपमा दी जा सकती है । प्राणियों के शरीरों और पदार्थ परमाणुओं में भी यही व्यवस्था देखी जाती है। अपने सौरमण्डल का "नाभिक" सूर्य है अन्य ग्रह उसी का प्रेरणा से प्रेरित होकर अपनी-अपनी धुरियों और कक्षाओं में भ्रमण करते हैं ।

नाभिक की सत्ता, महत्ता और स्थिति के बारे में इतना समझ लेने के उपरान्त प्रकृति से आगे बढ़कर चेतना क्षेत्र पर विचार करना चाहिए । उसका भी नाभिक होता है । ब्रह्माण्डीय चेतना का ध्रुव केन्द्र कहाँ हो सकता है, इसके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में से अधिकाँश का प्रतिपादन ध्रुव तारे के सम्बन्ध में है । वह दूर तो है ही, स्थिर भी प्रतीत होता है । उसका स्थान ब्रह्माण्ड का मध्यवर्ती माना जाता रहा है । अभी भी उसमें संदेह भर किया जाता रहा है । किसी ने प्रत्यक्ष खण्डन करने का साहस नहीं किया ।

पृथ्वी का, पदार्थ सम्पदा का, नाभिक जिस प्रकार ध्रुव केन्द्र है, उसी प्रकार चेतना प्रवाह का मध्य बिन्दु नाभिक-हिमालय के उस विशेष क्षेत्र को माना गया है, जिसे हिमालय का हृदय कहते हैं । भौगोलिक दृष्टि से उसे उत्तराखण्ड से लेकर कैलाश पर्वत तक बिखरा हुआ माना जा सकता है । इसका प्रमाण यह है कि देवताओं, यक्ष, गन्धर्वों सिद्ध पुरुषों का निवास इसी क्षेत्र में पाया जाता रहा है । इतिहास पुराणों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र को देव भूमि कहा और स्वर्गवत् माना जाता रहा है, सामान्य वन, पर्वतों भू-खण्डों की तुलना में इस क्षेत्र की चेतनात्मक महत्ता विशेष रूप से आँकी गई है । उच्चस्तरीय चेतन शक्तियाँ इस क्षेत्र में बहुलता पूर्वक पायी जाती हैं । आध्यात्मिक शोधों के लिए, साधनाओं के लिए, सूक्ष्म शरीरों को विशिष्ट स्थिति में बनाये रखने के लिए वह विशेष रुप से उपयुक्त है । उस क्षेत्र में सूक्ष्म शरीर इस स्थिति में बने रह सकते हैं जो यथा अवसर आवश्यकतानुसार अपने को स्थूल शरीर में भी परिणित कर सकें और उस स्तर के लोगों के साथ विचार विनिमय कर सकें । एक दूसरे को सहयोग देकर किसी बड़ी योजना को कार्यान्वित भी कर सकें ।

सिद्ध पुरुषों के कई स्तर हैं , जिनमें यक्ष गन्धर्व, प्रमुख हैं । खलनायकों की भूमिका निभाने वालों को दैत्य या भैरव कहते हैं । उनकी प्रकृति तोड-फोड़ में अधिक होती है । यक्ष राजर्षि स्तर के होते हैं । गन्धर्व कलाकार स्तर के। सिद्ध पुरुष तपस्वी योगी जनों की ही एक विकसित योनि है । भूलोक की मानवी समस्याओं को सुलझाने में प्रायः सिद्ध पुरुषों का ही बढ़ा चढ़ा योगदान रहता है, इसलिए उनकी समीपता, सहायता के लिए ऐसी अभ्यर्थनाएँ की जाती हैं जो उन्हें प्रभावित या आकर्षित कर सकें । उनको जिन्हें विशेष अनुग्रह प्राप्त होने लगता है, वे उन्हें "देव" भी कहने लगते हैं । यों ईश्वर की अनंत शक्तियों को अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण "देव"नाम से जाना जाता है । वे अदृश्य होती हैं । फिर भी ध्यान साधने के लिए सम्पर्क सम्बन्ध स्थापित करने के लिए उन्हें अलंकारिक रूप से किसी आकर की मान्यता दी जाती है । आकार के बिना न तो ध्यान बन सकता है और न तादात्म्य स्थापित हो सकता है, इसलिए निराकार की अभ्यर्थना के लिए उनके साकार रूपों की प्रतिष्ठापना की गई है । पूजा प्रयोजनों में, देवालय स्थापना में इन्हीं निरुपित प्रतिमाओं का प्रयोग होता है । इनकी समर्थता में दैवी शक्तियों के अतिरिक्त साधक की श्रद्धा सघनता का भी भारी महत्त्व हे । श्रद्धा के बिना दैवी विभूतियों को आकर्षित, स्थापित नहीं किया जा सकता । रामचरित मानस के प्रणेता ने तो श्रद्धा-विश्वास को भवानी-शंकर की उपमा दी है । वह बहुत हद तक सही भी है । झाड़ी का भूत और रस्सी का साँप बनते और उस मान्यता के अनुरूप भयानक प्रतिफल प्रस्तुत करते हैं । इसी प्रकार उच्चस्तरीय श्रद्धा भी देव दर्शन कराती है । एकलव्य के मिट्टी से बनाये गये द्रोणाचार्य, मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली के उदाहरण ऐसे ही है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनमें जड़ प्रतिमाओं ने समर्थ सचेतन जैसी भूमिकाएँ सम्पन्न कीं । फिर सचेतन को देवता या सिद्ध-पुरुष स्तर तक पहुँचने की सम्भावना सुनिश्चित होने में संदेह क्यों किया जाय ?

यह चर्चा भावना के अनुरूप देव पुरुषों की, सिद्ध पुरुषों की सत्ता निमित करने संबंधी हुई । मुख्य प्रश्न यह है कि श्रद्धा के अभाव में भी सत्ताएँ अपने क्रिया-कलाप जारी रख सकती हैं या नहीं । इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि वे अपनी इच्छानुसार अभीष्ट गतिविधियाँ किसी रोक-टोक के क्रियाशील रखें रह सकती हैं । आवश्यकतानुसार अपने सूक्ष्म शरीरों को स्थूल शरीरों में भी बदलती रहती हैं । मनुष्यों के साथ सम्पर्क साधने में उन्हें विशेषतया प्रगट स्वरूप बनाना पड़ता है । पर वह कुछ समय के लिए ही होता है । उनको स्वाभाविक स्थिति सूक्ष्म शरीर में ही बने रहने की होती है । इसलिए निश्चित प्रयोजन पूरा करने के उपरान्त वे पुनः अपनी स्वाभाविक स्थिति को अपना लेती हैं, सूक्ष्मता की स्थिति मे चली जाती हैं । स्थूल शरीर का कलेवर बनाकर रहना उन्हें असुविधा जनक प्रतीत होता है । कारण कि उसके लिए उन्हें ऋतु प्रभाव से बचने, आहार, जल आदि की व्यवस्था जुटाने के लिए विशेष स्तर का प्रबंध करना पड़ता है । इस झंझट भरी व्यवस्था को वे थोड़े समय के लिए स्वीकारते हैं और अभीष्ट की पूर्ति के उपरान्त बिना झंझट वाली सूक्ष्म स्थिति में चले जाते हैं ।

मरने के उपरान्त—नया जन्म मिलने से पूर्व जीवधारी को कुछ समय सूक्ष्म शरीर में रहना पड़ता है । उनमें से जो अशान्त होते हैं, उन्हें, प्रेत और जो निर्मल होते है उन्हें पितर प्रकृति का निस्पृह उदार चेता, सहज सेवा, सहायता में रुचि लेते हुए देखा गया है । मरणोपरान्त की थकान दूर करने के उपरान्त संचित संस्कारों के अनुरूप उन्हें जन्म धारण करने के लिए उपयुक्त वातावरण तलाशना पड़ता है । इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है । वह समय भी सूक्ष्म शरीर में रहते हुए ही व्यतीत करना पड़ता है । ऐसी आत्माएँ अपने मित्रों, शत्रुओं, परिवारजनों एवं परिचितों के मध्य ही अपने अस्तित्व का परिचय देती रहती हैं । प्रेतों की अशांति, सम्बद्ध लोगों को भी हैरान करती हैं । पितर वे होते है जिनका जीवन सज्जनता के सतोगुणी वातावरण में बीता है, वे स्वभावतः सेवा, सहायता में रुचि लेते हैं । उनकी सीमित शक्ति अपनों परायों को यथा संभव सहायता पहुँचाती रहती हैं । इसके लिए विशेष अनुरोध नहीं करना पड़ता । जरूरत मन्दों की सहायता करना उनका सहज स्वभाव होता है । कितनी ही घटनाएँ ऐसी सामने आती रहती हैं, जिनमें दैवी शक्तियों ने कठिन समय में भारी सहायता की और संकट ग्रस्तों की चमत्कारी सहायता करके उन्हें उबारा ।

सिद्ध पुरुष जीवन मुक्त स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं । इसका तात्पर्य—उनकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा एक हो जाती है । वे स्वेच्छा कल्प पूर्वक कुछ काम नहीं करते । दैवी प्रेरणाएँ ही उनसे लोकहित के लिए विविध कार्य कराती रहती हैं । जिस प्रकार काया में संव्याप्त निराकार देवात्मा अपनी इच्छा के अनुरूप कार्य हाथ, पैर, वाणी आदि विभिन्न अवयवों के माध्यम से सम्पन्न कराती रहती है, उसी प्रकार दैवी प्रेरणा सिद्ध पुरुषों को कठपुतली की तरह नचाती और सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनसे विविध कार्य कराती है । इस प्रकार निराकार सत्ता के प्रयोजन सिद्ध पुरुषों के माध्यम से पूरे होते रहे हैं । ऐसे सिद्ध पुरुषों को देवात्मा भी कहते हैं । वे शरीर के बन्धनों में बन्धे हुए नहीं होते । शरीर त्यागने के बाद भी उनका सूक्ष्म शरीर प्रायः उसी आकृति-प्रकृति का बना रहता है । उनकी स्थिति उनके संकल्पों के ऊपर निर्भर रहती है । अस्तु समयानुसार वे उसमें परिवर्तन भी कर लेते हैं । अब उनसे दिव्य चेतना महत्त्वपूर्ण कार्य कराना चाहती है तो नियत समय पर नियत स्थान, नियत साधनों के साथ उन्हें जन्म धारण करने के लिए निर्देश करती है, ऐसे लोग महामानव स्तर के होते हैं । बचपन का दबाव उन पर अधिक समय तक नहीं रहता । वे लम्बी अवधि तक अबोध नहीं बने रहते । किशोरावस्था से ही उनकी विशिष्ट गतिविधियाँ आरम्भ हो जाती हैं । दिगभ्रान्त होना पड़ता । वातावरण के प्रभाव से वे प्रभावित नहीं होते वरन् अपनी प्रखरता के आधार पर वातावरण को प्रभावित करते हैं । परिस्थितियाँ उनके मार्ग में बाधक नहीं बनतीं वरन् वे परिस्थितियों के प्रतिकूल होते हुए भी उन्हें अनुकूलता के ढाँचे में ढालते हैं । हवा के साथ सूखे पत्ते की तरह उड़ते नहीं फिरते वरन् पानी की धार चीरती हुई उलटी घाट में चल सकने वाली मछली जैसा अपने पुरुषार्थ का परिचय देते हैं । आदर्शवादी जीवन जीते और पीछे वाले के लिए अनुकरणीय अविस्मरणीय निन्दनीय उदाहरण छोड़ते हैं ।

सिद्ध पुरुष यों संसार के किसी भी भाग में पायें जा सकते हैं, अपनी गतिविधियाँ कार्यावित करने वाले सिद्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरुष प्रगट होते रहे हैं । इस दृष्टि से कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसे ऊसपर कहा जा सके । फिर भी विशेषता की वितपुलता किसी क्षेत्र विशेष के साथ जुड़ी रहती देखी जाती है । वृक्ष, वनस्पति, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु हर क्षेत्र में अपनी-अपनी विशेषता भिन्नता लिये हुए जन्मते हैं । सर्वत्र एक जैसा उत्पादन नहीं होता । इसी प्रकार सिद्व पुरुषें की उत्कष्टता एवं बहुलता हिमालय के ध्रुव केन्द्र के इर्द-गिर्द पाई जाती है । सफेद रीछ, बर्फीले प्रदेशो में ही पाया जाता है । अनेक विशिष्ट जड़ी-बूटियाँ विशेष क्षेत्रों में ही उपजती और उसी परिधि में जीवित रहती हैं । सोमवल्ली, संजीवनी बूटी, अरुन्धती ब्रह्म कमल जैसी बनस्पतियाँ हिमालय के एक विशेष क्षेत्र में ही पाई जाती हे । यदि उन्हें अन्यत्र कहीं लगाया जाय तो उनका जीवित रहना संभव नहीं । इसी प्रकार पृथ्वी ध्रुव के केन्द्र हिमालय के एक विशेष भाग में ही उच्चस्तरीय दिव्य आत्माओं का बाहुल्य पाया जाता है । उन्हें अन्य भू-खण्ड रास नहीं आते । जैसा पोषण वातावरण से मिलना चाहिए वैसा अन्यत्र से नहीं मिलता । इसलिए अपनी सुविधा तथा अपने स्तर की अन्य आत्माओं की उपस्थिति देखते हुए उनका निवास इसी क्षेत्र में रहता है। वे समस्त दोषों से लोक लोकान्तरों से यहाँ रह कर जिस सुविधा के साथ सम्पर्क बनाये रहते हैं, वैसी सुविधा उन्हें अन्यत्र नही मिलती । यही कारण है कि हिमालय का देवात्मा भाग एक प्रकार से सिद्व क्षेत्र बन गया है ।

देवात्मा हिमालय क्षेत्र की विशिष्टतायें

सौर मण्डल का पृथ्वी पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इस जानकारी से किस प्रकार लाभान्वित हुआ जा सकता है ? अनिष्टों की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में किस प्रकार सुरक्षात्मक कदम उठाए जा सकते हैं ? इसके लिए साधन सम्पन्न वेधशालायें पृथ्वी के अत्यन्त सम्वेदनशील क्षेत्रों में बनाई गई हैं, उनसे जो जानकारियाँ मिली हैं, वे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं । यदि उन्हें सामान्य क्षेत्रों में सुविधाजनक स्थानों में बनाया गया होता तो वह लाभ न मिलता जो प्रस्तुत संवेदनशील क्षेत्रों में मिल रहा है । उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव क्षेत्रों में भी अनेक प्रकार की शोधों के प्रयास चल रहे हैं, ये अत्यन्त खर्चीले हैं और जोखिम भरे भी । फिर भी क्षेत्रीय संवेदनशीलता का लोभ संवरण नहीं किया जा सका और जहाँ-तहाँ वैसी प्रयोगशालायें बनाने का विचार नहीं किया । क्योंकि स्थान विशेष की संवेदनशीलता का लाभ अन्यत्र नहीं उठाया जा सकता ।

खग्रास सूर्य ग्रहणों के समय भी उसके फोटों लेने और प्रभाव जाँचने के लिए भी वैज्ञानिक किन्हीं ऐसे स्थानों पर जाते हैं, जहाँ से दृश्य की छवि सीधी देखी जा सकती है । ऐसे स्थान ही उस शोध प्रयोजन की पूर्ति भली प्रकार करते हैं ।

मिस्र के पिरामीड मात्र कब्रें नहीं हैं, उन्हें धरती के एक विशेष क्षेत्र में बनाया गया है, जहाँ से सौरमण्डल की, ग्रहों की गतिक भिन्नता की नाप-तौल भली प्रकार हो सके, उनकी बदलती परिस्थितियों का लेखाजोखा ठीक प्रकार लिया जा सके । वे सूक्ष्म गणित पर आधारित विशेष प्रकार की वेधशालायें हैं । उपयुक्त स्थान तलाश करके उन्हें विशेष कठिनाइयों के साथ बनाया गया है । यदि भूमि का महत्त्व उतना न रहा होता तो सम्भवत: वे पिरामिड कहीं ऐसे स्थान पर बनाए गए होते जहाँ आवश्यक वस्तुयें सुविधापूर्वक मिल सकी होतीं और कारीगरों का निवास निर्वाह अपेक्षाकृत सरल होता । पिरामिडों के स्थान चयन में सौर मंडल के विभिन्न प्रभावों का पृथ्वी पर अवतरण ही प्रमुख कारण रहा है ।

एशिया के सोवियत क्षेत्र में कई स्थान ऐसे हैं, जहाँ अधिकाँश लोग शतायु या उससे भी अधिक समय तक जीवित रहने वाले पाये जाते हैं । इन लोगों का आहार-विहार अन्यत्र रहने वालों की तरह सामान्य ही होता है, किन्तु फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि उन्हीं क्षेत्रों में दीर्घजीवी क्यों पाए जाते हैं ? इसका सम्बन्ध भी उन प्रदेशों पर अन्तरिक्षीय विशेष किरणों का बरसना माना जाता है । इसे जलवायु की, आहार-विहार की विशेषता नहीं माना जाता वरन् उस क्षेत्र में पृथ्वी और आकाश के मिलन का अद्‌भुत संयोग कहा जाता है ।

धरातल का सामान्य वातावरण ऋतुओं के प्रभाव से प्रभावित होता रहता है, पर विशेष क्षेत्र ऐसे भी हैं, जिनकी परिस्थितियाँ धरती और आकाश के बीच विशेष प्रकार के सम्बन्ध पर निर्भर रहती है । उन क्षेत्रों की उर्वरता, खनिज सम्पदा, प्राणियों का स्वभाव एवं पौरुष असामान्य रूप से घटा-बढ़ा पाया जाता है, इसे भूगोल एवं खगोल प्रत्यावर्तन कहा जा सकता है । हिमालय का वह भाग जिसे देवात्मा कहते हैं ऐसी ही विशेषताओं से सम्पन्न है । उस पर भू-चुम्बक एवम् अन्तरिक्षीय तरंग वर्षण का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशेष प्रभाव देखा गया है । हिमालय बहुत विस्तृत भी है और ऊँचा-नीचा भी, उसमें पठार भी हैं, किन्तु जो विशेषतायें देवात्मा क्षेत्र में पाई गई हैं, वे एक नहीं अनेकों हैं । वे विशेषतायें आन्यत्र नहीं हैं । इसी कारण उस परिधि को सिद्ध पुरुषों ने अपने लिए क्रिया क्षेत्र चुना है ।

रेडियो, टेलीविजन के प्रसारण के लिए ऊँचे-खम्भे खड़े किए जाते हैं । यह कार्य धरातल पर कारखाना बनाकर पूरा नहीं किया जा सकता । कारण कि धरातल पर से जो तरंगें निसृत होती हैं, वे प्राय: समानान्तर ऊँचाई पर ही चलती हैं, उन्हें ऊँचा फेंकना हो तो विशेष शक्ति का नियोजन करना पड़ता है । किन्तु ऊँचे खम्भे के सिर पर जो तरंगें फेंकी जाती हैं, वे निर्बाध रूप से लम्बी दूरी पार करती हुई विस्तृत क्षेत्र में बिखर जाती हैं । हिमालय की ऐसी सन्तुलित ऊँचाई देवात्मा क्षेत्र में ही पड़ती है वहाँ से विश्व को, क्षेत्र विशेष को प्रभावित किया जा सके । वहाँ तक विशेष संदेश पहुँचाये जा सकें । सिद्ध पुरुष मात्र अपनी ही निजी साधनाओं तक सीमित नहीं रहते, उन्हें धरातल के विभिन्न क्षेत्रों को—वहाँ के विशेष शक्तियों को सन्देश पहुँचाने पड़ते हैं । इसके लिए उनका आसन ऐसे स्थान पर होना चाहिए जो इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिए सही और सन्तुलित है । समुद्रों में खड़े किए गए प्रकाश स्तम्भ भी ऐसी ही ऊँचाई तक उठाए जाते हैं, जहाँ से उनमें जलने वाला प्रकाश जलयानों तक पहुँचने में भली प्रकार समर्थ हो । यदि यह स्तम्भ अनुपात में नीचे या ऊँचे हों तो निर्धारित उद्देश्य की पूर्ति न हो सकेगी । सिद्ध पुरुषों को प्रसारण भी करना पड़ता है और प्रकाश स्तम्भों की भूमिका भी निभानी पड़ती है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उनने देवात्मा क्षेत्र को अपने लिए चुना है । यों विस्तृत हिमालय क्षेत्र में अनेक स्थान उससे ऊँचे भी हैं नीचे भी । विविधा-साधनों की दृष्टि से हिमालय के कई क्षेत्र अधिक पसंद किए जाने के लिये हैं, पर उनकी उपयोगिता इसलिए नहीं समझी गयी कि वहाँ से कारण और संग्रहण का तारतम्य सही रूप से नहीं बनता है ।

प्रसारण का तात्पर्य है—फेंकना । सिद्ध पुरुष अपनी आत्म-शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण अंश समय-समय पर आवश्यकतानुसार फेंकते रहते ही हैं, साथ ही उन्हें यह भी करना पड़ता है कि अन्तरिक्षीय प्रभावों को आकर्षित करके अपने में उनका अवतरण-अवधारण कर सकें । दिव्य शक्ति प्राप्त करने के लिए शरीरगत एवं मनोगत साधना ही पर्याप्त नहीं होती । अपने प्रसुप्त केन्द्रों का जागरण भी साधना का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, पर उतने भर से ही वह महत्त्वपूर्ण प्रयोजन पूरा नहीं हो जाता । अन्तरिक्ष से भी बहुत कुछ प्राप्त करना पड़ता है । धरातल पर जलाशय क्षेत्र में अनेक उपयोगी पदार्थ और तत्त्व पाये जाते हैं, पर इससे कहीं अधिक मात्रा उसकी है जो वायुभूत होकर अन्तरिक्ष में परिभ्रमण करता रहता है । यह पदार्थ रूप में भी है और चेतना रूप में भी । उसे जल-थल पर पाये जाने वाले पदार्थों की तुलना में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण एवं मूल्यवान समझा जा सकता है । उदाहरण के लिए पवन, ताप, ध्वनि, प्रकाश, लेसर-रेडियो, ऋतु प्रभाव वातावरण आदि अनेकों बहुमूल्य तत्त्व आकाश में ही भरे पड़े हैं । यदि इन्हें आकर्षित एवं संचित किया जा सके तो धरती पर पाई जाने वाली सम्पदा की तुलना में उसे असंख्य गुना अधिक मूल्यवान पाया जा सकता है । फिर मात्र पदार्थ ही नहीं, अन्तरिक्ष में चेतना प्रवाह भी असीम मात्रा में भरा पड़ा है । इसे सचेतन में—अदृश्य लोक में विद्यमान रहने और मनुष्य परिकर के इर्द-गिर्द भ्रमण करते पायां जाता है । इसमें प्रेत-पितरों से लेकर देव-दानव स्तर की अनेकानेक सत्तायें परिभ्रमण करती रहती हैं । यों वे अपने रास्ते आती और चली जाती हैं, किन्तु प्रयत्नपूर्वक उन्हें पकड़ा और उपयोग में लाया जा सकता है । लोग प्रयत्न करने पर जलचरों और नभचरों को भी जाल बिछाकर पकड़ लेते हैं । यही प्रयोग अन्तरिक्ष की सचेतन सत्ताओं के संबंध में भी हो सकता है । देखना यह होता है कि अन्तरिक्ष के सघन क्षेत्र के साथ अधिक सरलतापूर्वक सम्पर्क कहाँ रहते हुए बन सकता है । तत्त्वदर्शियों ने पाया है कि हिमालय का देवात्मा भाग इसके लिए अधिक उपयुक्त और सुविधाजनक है । अनेक क्षेत्रों की परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करते हुए तत्वदर्शियों ने देवात्मा भाग को ही अधिक उपयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण पाया है और उसी को अपने समुदाय के लिए सुनिश्चित स्थान नियत किया है ।

तान्त्रिक साधनायें करने वाले कापालिक अपने प्रयोगों के लिए श्मशान भूमि में डेरा डालते हैं । क्योंकि वहाँ का वातावरण एवं प्रेतात्माओं का जमधट उन्हें अपने लिए अधिक कारगर दीखता है । ठीक इसी प्रकार उच्चस्तरीय आत्मबल सम्पादन के सम्बन्ध में भी है । जिन क्षेत्रों में देव शक्तियाँ, दिव्य आत्मायें यूथ रूप में बहुलतापूर्वक विचरण करती हैं, वहाँ रहकर निर्धारित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधनाओं में उपयुक्त सहायता भी मिलती है और अहैतुकी अनुग्रह भी—मार्गदर्शन भी । मार्गदर्शन परामर्श भी उन्हें उच्चस्तरीय मिलता रहता है । जिस प्रकार चन्दन के निकट उगने वाले अन्य पौधे भी सुगन्धित हो जाते हैं, उसी प्रकार देवात्मा क्षेत्र में रहने वाले स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरधारी साधना की अपनी-अपनी रुचि के मनोरथ प्राप्त करते हैं ।

थियोसॉफिकल सोसायटी के संस्थापकों ने यह प्रतिपादन विस्तारपूर्वक किया है कि हिमालय के देवात्मा भाग में सिद्ध पुरुषों की संगठित समिति कार्य करती है । उसके फैसले उन लोगों द्वारा कार्यान्वित किए जाते हैं । इससे जन-साधारण को अनेक ऐसी सहायतायें अयाचित रूप से प्राप्त होती रहती हैं, जिन्हें वे अपने प्रबल पुरुषार्थ से भी प्राप्त नहीं कर सकते थे । सोसाइटी के उपरोक्त प्रतिपादन में बहुत कुछ सच्चाई है । इस क्षेत्र के साथ सूक्ष्म सम्बन्ध जोड़ सकने वाले अदृश्यदर्शियों ने वैसा ही पाया भी है । साधारण स्थानों में रहने वाले सामान्यजन भी इस क्षेत्र में जाकर थोड़े समय रहने पर भी अपने लिए उपयोगी जीवन तत्त्व सन्तोषजनक मात्रा में उपलब्ध करते हैं ।

शीत प्रधान वातावरण में वस्तुयें स्थिर रहती हैं । गर्मी की अधिकता में जहाँ पदार्थों का क्षरण अधिक मात्रा में होता है, वहाँ यह भी देखा गया है कि शीत में पदार्थों को देर तक सुरक्षित रखने की क्षमता है । शीत ऋतु में पदार्थ जल्दी खराब नहीं होते । रेफ्रीजनेटर में खाद्य पदार्थ कई दिन सुरक्षित रहते हैं । बर्फ मे दबाकर रखे गये मृत शरीर लम्बे समय तक यथावत् बने रहते हैं । शुक्राणुओं को शीतल करके उन्हें काफी समय तक गर्भाधान के उपयुक्त स्थिति में बनाये रखा जा सकता है । कोल्ड स्टोरों में फल-सब्जी आदि को महीनों सुरक्षित रखा जाता है । अजगर, भालू शीत प्रदेश की गुफाओं में बिना कुछ खाये-पीये लम्बे समय तक गहरी निद्रा में सोते रहते हैं । हिमालय का देवात्मा भाग भी ऐसा है जहाँ स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों को अनेक विकृतियो से बचाकर उपयुक्त स्थिति में सुरक्षित रखा जा सकता है । अब तो मृत शरीरों को गहरी शीतलता में इस निमित्त भी सुरक्षित रखा जाने लगा है कि कालान्तर में उन्हें पुनर्जीवित किया जा सकेगा । इतना निश्चित है कि शीतकाल में सुरक्षा-सुस्थिरता अधिक है । सिद्ध पुरुषों की सूक्ष्म एवं स्थूल कायाओं को सुरक्षित एवं चिरस्थाई बनाए रहने की आवश्यकता अनुभव होती है । इसलिए उनने प्रकृतिविनिर्मित केन्द्र स्तर वाला ऐसा क्षेत्र चुना है जहाँ की सहज स्थिति है । अधिक गर्मी की तरह अधिक शीत भी सामान्य क्रिया-कलापों में बाधक होती हैं । इसलिए मध्यवर्ती चयन ही उपयुक्त पड़ता है । सिद्ध पुरुषों ने ऐसे ही संतुलित क्षेत्र को अपनी क्रीड़ा भूमि बनाया हुआ है । यह सुरक्षित क्षेत्र है—देवात्मा हिमालय ।

अदृश्य चेतना का दृश्य उभार

जिस क्षेत्र में जिस प्रकार की गतिविधियाँ लम्बे समय तक चलती रहती हैं, वहाँ का वातावरण उस प्रक्रिया से प्रभावित होता है । वहाँ रहने वाले उस चिर निर्मित प्रवाह से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते । कोई विरले ही ऐसे होते हैं, जो उस दबाव या आकर्षण को स्वीकार कर सकें । इसलिए जिन्हें जिस स्तर का बनना होता है, वे वहाँ खिचते घिसटते जा पहुँचते हैं । मन उधर ही चलता है । वातावरण भी अपने अनुरूप व्यक्तियों को अपनी ओर खींचता है । धातुओं की खदानें भी इसी प्रकार बनती हैं । जहाँ धातु खण्ड बड़ी मात्रा में जमा हो जाते हैं, वहाँ एक प्रकार का चुम्बकत्व पैदा हो जाता है । उसकी आकर्षण शक्ति दूर-दूर तक बिखरे हुए उसी जाति के धातु कणों को धीरे-धीरे अपनी ओर खींचती रहती है । फलतः वह संग्रह निरन्तर बढ़ता रहता है और छोटी खदान कुछ ही समय में बड़ी बन जाती है । ऐसा ही आकर्षण व्यक्तियों में भी देखा गया है, क्षेत्र में भी और वातावरण में भी ।

शहरी सुविधायें अभावग्रस्त ग्रामीणों अथवा बाबू स्तर के मनचले लोगों को अनायास ही खींचती चली जाती हैं । स्वभाव अनुरूप उन्हें अदृश्य निमन्त्रण मिलता है और ऐसा संयोग बन जाता है जिससे वे अपने मनचाहे स्थान पर जा पहुँचने के लिए कोई संयोग प्राप्त कर सकें । जुआघर, शराबखाने, व्यभिचार के अड्डे भी अपने-अपने ढंग के लोगों को अदृश्य आमन्त्रण देकर बुलाते रहते हैं । फलतः एक ही प्रकृति के लोगों के गिरोह उन केन्द्रों से सम्बद्ध हो जाते हैं । यही बात सत्सगों के सम्बन्ध में भी है । उत्कृष्ट स्तर के लोग भी परस्पर सम्बन्ध बनाते और एक शृँखला में बँधते देखे गए हैं । चोर-उचक्कों से लेकर हत्यारों तक के गिरोह इसी प्रकार बनते हैं । सन्त-सज्जनों की जमातें भी इसी आधार पर बनती देखी गयी हैं । सम्भवतः देवलोक और नरक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी इसी सिद्धान्त के अनुरूप बने हैं । शोध संस्थानों से लेकर पुस्तकालयों तक में एक ही प्रकृति के लोग पाये जाते हैं । इससे प्रकट है कि वातावरण और स्वभाव का आपस में तारतम्य बैठे जाता है । हिमालय के सिद्ध पुरुषों के सम्बन्ध में भी यही है और देवात्मा क्षेत्र के सम्बन्ध में भी । वहाँ का परिकर बढ़ता भी जाता है और समर्थ बलिष्ठ होने की स्थिति में भी होता है । लंका के छोटे से क्षेत्र में रावण का सुविस्तृत परिकर जमा हो गया था । नैमिषारण्य में सूत और शौनक समुदाय का कथा सत्संग जमा ही रहता था । इसी प्रकार हिमालय का देवात्मा क्षेत्र भी क्रमश: अधिक विस्तृत और परिपुष्ट होता चला गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

महाभारत के लिए कृष्ण को उपयुक्त भूमि की तलाश करनी थी जहाँ भाई-भाई की लड़ाई के बीच मोह आड़े न आने लगे । दूतों को भेज और क्षेत्रों के प्रचलन को तलाश कराया तो मालूम पड़ा कि कुरुक्षेत्र के इर्द गिर्द भाई-भाई के साथ निर्ममतापूर्वक मारकाट करते रहने की घटनायें अधिक होती हैं । भूमि संस्कारों के प्रभाव को समझते हुए उसी क्षेत्र में महाभारत रचाए जाने का निश्चय हुआ । इसी प्रकार की एक पौराणिक घटना श्रवणकुमार की भी है । उनने कन्धे पर रखी कांवर में बैठे अँधे माता-पिता को नीचे उतार दिया था और कहा था आप लोग पैदल चलें । मैं रस्सी के सहारे आपको रास्ता बता सकता हूँ । पैर ठीक होते हुए भी आप कन्धे पर क्यों सवार होते हैं ? पिता-माता पुत्र के यश को व्यापक बनाना चाहते थे । उसमें इस प्रकार व्यवधान आया देख कर उनने जान लिया कि यह कुसंस्कारी भूमि का प्रभाव है । उनने पुत्र को इस बात के लिए सहमत कर लिया कि रात्रि को वहाँ विराम न किया जाय । जल्दी वह क्षेत्र पार कर लिया जाय । जैसे ही वह परिधि पार हुई, श्रवणकुमार के विचार बदले । उसने माता-पिता से क्षमा याचना की और फिर कन्धे पर कांवर में बिठाकर पहले की ही भाँति आगे की यात्रा सम्पन्न की । यह संस्कारित भूमि का प्रभाव है जो मनुष्य में उत्कृष्टता एवं निकृष्टता के उतार-चढ़ाव उत्पन्न करता रहता है । हिमालय के देवात्मा क्षेत्र के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है । उसमें सूक्ष्म शरीरधारी सिद्ध पुरुषों का तो निवास रहता ही है । साथ ही उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप अन्यान्य साधन भी उत्पन्न एवं विकसित हुए हैं । वहाँ पाई जाने वाली वस्तुओं में अपनी विशेषता है । वहाँ रहने वाले मनुष्यों और प्राणियों में विशेष प्रकार का स्वभाव भी पाया जाता है ।

जौनसार बाबर इलाके में अभी भी बहुपति प्रथा चालू है । बहु पत्नी प्रथा का रिवाज तो पुराने जमाने की तरह अभी भी जहाँ-तहाँ दीख पड़ती है, किन्तु बहुपति प्रथा का खुला प्रचलन कहीं नहीं है । वेश्यावृत्ति अवश्य होती है, पर वह तो देह व्यापार भर है । गृहस्थ बसाकर बहुपतियों में समान रूप से सहयोग पूर्वक रहना इसलिए सम्भव नहीं होता कि पुरुषों में स्त्रियों से भी अधिक इस सम्बन्ध में ईर्ष्या पायी जाती है । वे अपनी पत्नी का अन्य पुरुषों से सम्बन्ध सहन नहीं कर पाते और पता चलते ही भयंकर विग्रह पर उतर आते हैं । किन्तु पृथ्वी पर जौनसार बाबर ही एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ बड़े भाई का विवाह होता है और शेष सभी भाई अपनी बड़ी भावज के साथ पत्नीवत् सम्बन्ध बनाये रहते हैं । यह चुपचाप नहीं होता । सबकी जानकारी में होता है । सन्तान भी बड़े पिताजी, मझले पिताजी, छोटे पिताजी आदि से सम्बोधन करती हैं । ईर्ष्या और कलह जैसा रंचमात्र भी नहीं दीख पड़ता है । इसलिए पुराणों में एक द्रौपदी की ही ऐसी कथा है । पर वह ईर्ष्या, द्वेष से ऊँचे उठकर दाम्पत्य जीवन में भी सहयोग सहकार मात्र जौनसार बावर क्षेत्र में ही दीख पड़ता है । यह मानवी ईर्ष्या पर सद्भाव-सहकार की विजय है । यह क्षेत्र भी देवात्मा हिमालय क्षेत्र से लगा हुआ है ।

हिमालय की ऊँचाई पर स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ता जाता है, पर वहाँ व्यभिचार जैसी घटनायें कभी ही सुनने में आती हैं । तलाक और पुनार्विवाह तो होते हैं, पर वह सारी व्यवस्था पंचों की आज्ञा-अनुमति से सभी की जानकारी में होती है । दरवाजों में कुण्डी चढ़ाकर या रस्सी बाँध कर घर वाले काम पर चले जाते हैं । रोकथाम मात्र जानवरों की होती है । कोई किसी की चोरी नहीं करता । पहाड़ी कुलियों की ईमानदारी प्रसिद्ध है । वे बोझा लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान को चलते हैं, उसमें बहुमूल्य वस्तुएँ और नकदी भी होती है । कुली आगे पीछे निकल जाते हैं, पर कभी ऐसा नहीं सुना गया कि कोई कुली सामान लेकर गायब हो या उसमें से अवसर पाकर कुछ चुराया हो । यह सहज सज्जनता हिमालय के इस हृदय निवासियों में पाई जाती है, फिर जो विचारशील हैं उनकी भलमनसाहत का तो कहना ही क्या ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकृति का चेतना से सम्बन्ध है और चेतना का प्रकृति से । दोनों की उत्कृष्टता-निकृष्टता का परस्पर सम्बन्ध बनता है । बसन्त जब महकता है तो उसका प्रभाव कोकिल भ्रमर आदि से लेकर अन्यान्य जीवधारियों में मस्ती बनकर झूमता है । मादायें प्राय: उन्हीं दिनों गर्भधारण करती हैं । बसन्त समूची धरती पर एक ही समय नहीं आता, विभिन्न भू-खण्डों पर उसके ऋतुमास अलग-अलग होते हैं । जिस क्षेत्र में बसन्त उमड़ता है उसी में उसका मादक प्रभाव भी परिलक्षित होता है । देवात्मा हिमालय में वृक्षों का बसन्त ग्रीष्म में और वनस्पतियों का श्रावण भाद्रपद में आता है, पर आध्यात्मक उमंग उस क्षेत्र में सदा सर्वदा छाई रहती है । इसमें वनस्पति हिम, सरितायें निर्झर, आदि सभी की पुलकन सम्मिलित है । यह प्रकृति के दबाव से होता है या चेतना के उल्लास से, इसका रहस्य गहराई में उतर कर देखा जाय तो प्रतीत होता है कि देवात्मा क्षेत्र में संव्याप्त चेतना तरंगें ही वातावरण को प्रभावित करती हैं। जो भी उधर जाता है, रहता है स्थिर है, वह सात्विकता से ओत-प्रोत होता देखा जाता है । उसमें सामान्य की तुलना में अनेकों प्रकार की विशेषतायें पाई जाती हैं ।

देवात्मा क्षेत्र हरिद्वार से आरम्भ होकर यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ बद्रीनाथ, गोमुख, तपोवन, नन्दन बन वाले उत्तराखण्ड से आरम्भ होकर कैलाश मान सरोवर तक चला गया है । कैलाश क्षेत्र को देवभूमि में ना जाता शिव को कैलाश और पार्वती को मान सरोवर कहा जाता है । इस क्षेत्र के प्रत्येक शिखर को एक मूर्तिमान देव माना गया है । नदियाँ, सरोवर, झरने देवियाँ हैं । गुफाओं को देवालय कहा जा सकता है । इस प्रकार यदि किसी को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो तो वह सारा क्षेत्र प्रकटत: प्राकृतिक पदार्थों से बना, किन्तु तत्वत: देव चेतना से ओत-प्रोत दिखाई पड़ेगा । इस क्षेत्र में यदा-कदा व्यक्ति तीर्थयात्रा के आधार पर वहाँ जा पहुँचते हैं । वे प्रकृति की शान्तिदायक शीतलता और साथ ही दिव्य चेतना की अभिनव प्रेरणा प्राप्त करते हैं । शर्त एक ही है कि पहुँचने वाला दिव्य भावना लेकर दिव्य प्रयोजन के लिए वहाँ पहुँचा है । जहाँ शान्ति मिले वह कुछ समय शान्त मन से ठहर सकने जितना अवकाश लेकर गया हो । जो भगदड़ की तरह धक्के देते और धक्के खाते भटकते-भटकाते पहुँचते हैं, उन्हें मात्र कौतुक कौतूहल ही दीख पड़ता है । ऐसे दिग्भ्रान्त मूर्ख को हर जगह पाये जाने वाले धूर्त अच्छी तरह पहचान लेते हैं और उलटे उस्तरे से हजामत बनाते हैं । इस वरदान क्षेत्र में अभिशाप भी उसी प्रकार पाये जाते हैं । घर-बिस्तर में चूहे छिपकली, मकड़ी, खटमल, पिस्सू, जूएँ आदि का अड्डा जमा रहता है । मलीनता ही उनकी खुराक है, जो भाव श्रद्धा लेकर नहीं, कामनाओं की पूर्ति और चित्र-विचित्र दृश्य देखने जाते हैं, वे खीज और थकान ही साथ लेकर वापिस लौटते हैं ।

चर्म चक्षुओं को दृश्य पदार्थ ही दीख पड़ते हैं । उन्हें देखकर ही उन्हें मन को सन्तोष देना पड़ता है । बाल-बोध की प्राथमिक पुस्तकों में प्रत्येक अक्षर के साथ एक तस्वीर जुड़ी रहती है । स्मरण रखने की दृष्टि से इस प्रकार की संगीत बिठाने की उपयोगिता भी है । चित्रकला, मूर्तिकला का आधार यही है । प्रत्यक्ष को देखकर उसके साथ जुड़े हुए भावनात्मक संबंध सूत्र में प्रतिपादित भाव चेतना को जागृत करना । प्रसन्नता की बात है कि यह आवश्यकता भी उदार चेत्ता सम्पन्न जनों ने अनुभव की है और ऐसे देवालय स्मारक इस क्षेत्र में बिनिर्मित किए हैं जिनके दर्शन, पूजन, वन्दन के सहारे प्रसुप्त श्रद्धा किसी सीमा तक जगायी जा सकती है । इस जागरण को यदि बिजली की कौंध जैसा क्षणिक न रहने दिया जाय, उस आलोक को अन्तरात्मा में बसाकर मार्ग-दर्शन के लिए आधार बनाया जाय, तो यह सब प्रकार उपयुक्त ही होगा । ऐसी तीर्थयात्रा से भी आत्मिक उत्कर्ष का प्रयोजन पूरा करने में सहायता मिलती है । फिर भी इतना तो स्मरण रखा ही जाना चाहिए कि पदार्थों से बने और आँखों से देखे गए दृश्य नेत्रों के माध्यम से आँखों को ही प्रभावित कर पाते हैं । दृश्य बदलने पर दृष्टि बदल जाती है और उसके माध्यम से मस्तिष्क पर पड़ी छाप भी तिरोहित हो जाती है ।

विद्याध्ययन वर्णमाला याद करने से होता है । दिव्य चेतना के साथ अन्तरात्मा को जोड़ने की प्रक्रिया विशुद्ध भावनात्मक है, अदृश्य भी । फिर उसके लिए आवरण की सहायता लेनी पड़ती है । देवात्मा हिमालय में दीख पड़ने वाले दृश्य एवं देवालय इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनेकानेक विशेषताओं से भरा पूरा हिमप्रदेश

ईश्वर का अविनाशी अंश होने के कारण जीवात्मा दिव्य विभूतियों से सम्पन्न हैं । उसे यह विभूतिमत्ता बीज रूप में जन्मजात मिली है । उसकी संभावना इस स्तर की है कि विकास मार्ग पर चलते हुए पुनः ईश्वरत्व में प्रवेश करके तदनुरूप बन सके । इतनी अद्‌भुतशक्ति संभावना का धनी होने पर भी उसे अपने समस्त क्रियाकलाप शारीरिक अवयवों के द्वारा ही सम्पन्न कराने पड़ते हैं । जीवात्माओं की इच्छा अभिलाषा कुछ भी क्यों न हो पर वह उन्हें संकल्प मात्र से पूरा नहीं कर सकता । इसके लिए उसे शारीरिक अवयवों का, मानसिक संरचना का उपयोग करना ही पड़ता है । बिना इसके हलचलों को सक्रियता दीख नहीं पड़ती । यह वास्तविकता इस सीमा तक प्रगट होती है कि यदि शरीर और प्राण पृथक हो जाएँ तो अकेली जीवात्मा अदृश्य लोकवासी चेतना स्फुल्लिग मात्र बनकर रह सकती है । उसके द्वारा किन्हीं निर्धारणों का क्रियान्वत कर सकना संभव नहीं रहता ।

ठीक यही बात परब्रह्म के सम्बन्ध में भी है । वह सर्वव्यापी और व्यवस्थापक होने के नाते निराकार ही रह सकता है । प्रतिमाएँ तो ध्यानधारणा के निमित्त ही बनाई जाती रहती हैं । निराकार परमेश्वर को सृष्टि के विभिन्न क्रिया-कलाप सम्पन्न करने के लिए किन्हीं शरीर धारियों के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है । वे सहयोगी दो प्रकार के होते हैं । एक विशिष्ट दूसरे वरिष्ठ । विशिष्टों में देव शक्तियाँ आती हैं । उन्हें मोटे तौर से तीन भागों में विभाजित किया जाता है । सृजेताब्रह्मा, अभिवर्धक विष्णु और परिवर्तन प्रधान शिव । इन्हें देवी रूप में मान्यता दी जाती है तो वे ही ब्राह्मी, वैष्णवी, शांभवी समझी जाती है ।

इनमें जब त्रिवर्गों के भेद उपभेदों को गिना जाता है तो उनके भेद तैंतीस कोटि हो जाते हैं । कोटि शब्द श्रेणियों के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है और करोड़ के अर्थ में भी देवताओं को तैंतीस कोटियाँ हैं या वे तैंतीस करोड़ हैं । इस विवाद में न पड़कर यहाँ इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि वे अनेकानेक हैं और अपने-अपने हिस्से का काम करते रहते हैं । देवताओं के दो ही काम हैं धर्म की स्थापना और अधर्म का निराकरण । शरीर भी यही करता है । जो उपयोगी है उसे मुँह नासिका आदि से ग्रहणधारण करता रहता है । जो कचरा है उसे मल, मूत्र, स्वेद आदि के रूप में बाहर फेंकता रहता है । जहाँ क्रिया होती है; वहाँ कचरा भी बनता है । मशीनों में भी यही होता रहता है । वे ऊर्जा माँगती हैं और कचरा उगलती हैं । सृष्टि में भी यही होता रहता है । दोनों की व्यवस्था करने में ईश्वर की इच्छा के अनुरूप देव शक्तियाँ जुटी रहती हैं । वे सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन और दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन में निरन्तर निरत रहती हैं । सृष्टि का सन्तुलन इसी प्रकार बना रहा आता है ।

देवताओं के उपरान्त दूसरा समुदाय सिद्ध पुरुषों का है । वे भी आमतौर से अदृश्य ही रहते हैं, पर आवश्यकतानुसार स्थूल शरीर भी धारण कर लेते हैं । देवता परब्रह्म के अधिक निकट हैं और सिद्ध पुरुष प्रकृति के वे दैवी इच्छानुसार समस्त विश्व, ब्रह्माण्ड की सुव्यवस्था बनाये रहने में देवताओं की प्रमुख भूमिका रहती है । सिद्ध पुरुषों का कार्य क्षेत्र पृथ्वी तक सीमित हैं । वे पृथ्वी पर चलने वाले उथल-पुथलों को सन्तुलित करते हैं । आत्म-शक्ति सम्पन्न सात्विक सज्जन प्रकृति के उदार चेतनाओं को वे ढूँढ़ते रहते हैं और जो भी सत्पात्र दीख पड़ते हैं, सत्प्रयोजनों की पूर्ति के लिए अपनी क्षमता का एक अंश धारणकर्त्ता को आवश्यकताएँ पात्रता के अनुरूप देते रहते हैं । एक प्रकार की अहैतुकी कृपा वे बरसाते ही रहते हैं। श्रेष्ठता सम्पन्नों के ऐसे वरदान निरन्तर मिलते रहते हैं । साथ ही उनका दूसरा कार्य भी चलता है । अनौचित्य का निराकरण इसी को अधर्म का उन्मूलन भी कहा जा सकता है । धरातल के दिग्‌पाल-दिग्गज यह सिद्ध पुरुष ही कहे जाते हैं । वे पृथ्वी का भौतिक और आत्मिक-पदार्थ परक और चेतनात्मक संतुलन बनाये रहने के लिए यथा संभव प्रयत्न करते हैं । इन्हें धरतीवासियों के लिए परब्रह्म का विशेष अनुग्रह भी समझा जा सकता है ।

साधनारत योगी तपस्वी जब अपने कषायकल्मषों का निराकरण कर लेते हैं । साथ ही देवोपम मानवी गरिमा के समस्त आधारों से अपने को सुसज्जित कर लेते हैं तो उन्हें देवात्मा का—सिद्ध पुरुष का पद मिल जाता है । फिर वे मिलजुल कर धरातल की आये दिन उत्पन्न होती रहने वाली समस्याओं के बारे में विचार करते रहते हैं और उसमें समाधान संदर्भ में अपनी भूमिका का, योजना का निर्धारण करते रहते हैं ।

बिखराव सदा असुविधाजनक होते हैं और सहकार सुविधाजनक । एक जुट होने के लिए समीपवर्ती निवास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी आवश्यक हैं । सैनिकों की छावनी अपने-अपने क्षेत्रों में होती हैं । वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाएँ भी एक क्षेत्र में सटी हुई बनती है ताकि परस्पर सहकार संभव हो सके । विश्वविद्यालयों में अनेक मनीषी अपने-अपने काम सभालते हैं । रेल के इंजन बनाने वाले कारखाने हैवीइलेक्ट्रिकल, टाटा लौह कारखाने जैसे विशेष कल-कारखाने भी एक बड़ी परिधि को घेरते हैं । उन्हें छोटी-छोटी फैक्टरियों के रूप में बिखेरा नहीं जा सकता । ठीक इसी प्रकार सिद्ध पुरुष भी एक-एक करके जहाँ-तहाँ बिखरे नहीं रहते । उन्हें परस्पर विचार विनिमय करना पड़ता है और योजनाबद्ध कार्य पद्धति अपनाने के लिए ऐसी दशा में आवश्यक हो जाता है कि वे किसी सधन क्षेत्र में निवास करें । ऐसा स्थान इस पृथ्वी पर हिमालय का वह क्षेत्र ही है जिसे देवात्मा नाम दिया जाता रहा है । उत्तराखण्ड उसका हृदय प्रदेश है । सिद्ध पुरुषों की क्रीड़ा स्थली भी इसी को समझा जाना चाहिए ।

कभी देवताओं का निवास भी यही रहा है । उनकी कथागाथाओं पर ध्यान देने और उनके बुद्धि-संगत निष्कर्ष निकालने के लिए जब प्रयत्न किया जाता है तो देवताओं का लोक स्वर्ग किसी अन्य ग्रह पर अवस्थित होने वाली बात गले नहीं उतरती । कारण कि सौर मंडल के २३ उपग्रहों की पूरी-पूरी छानबीन लगभग पूरी हो चुकी है । वहाँ पदार्थ भर भरा पाया गया है । सचेतन प्राणियों का अस्तित्व नहीं मिला । इसी प्रकार सौर मंडल के बाहर वाले क्षेत्र की रेडियो तरंगों, प्रकाश विकरणों के माध्यम से खोजबीन करने पर ऐसे क्षेत्र नहीं मिले जहाँ किन्हीं बुद्धिमान प्राणियों का अस्तित्व स्वीकारा जा सके । फिर स्वर्ग कहाँ हो सकता है ? जिसमें मानवा कृति के प्राणी निवास करते हों या करते रहे हैं । देव मान्यता को स्वीकारने पर इतना तो मानना ही पड़ता है कि उनका स्वभाव रुझान, निर्वाह साधन, सौन्दर्य बोध, सरसता आदि की दृष्टि से वे मनुष्य से मिलते-जुलते ही रहे हैं । उनका मनुष्यों के साथ संबंध भी रहा है । कहा तो यहाँ तक जाता है कि धरती की सृष्टि के आरंभ में यहाँ देवता ही प्रकट हुए थे और उन्हीं के वंशज रूप में मनुष्य प्रकटे थे । आरंभिक ज्ञान और साधनों की व्यवस्था उन्होंने की थी । प्रयोजन पूरा करने के उपरान्त वे अदृश्य हो गये और अपने निर्धारित कार्य में लग गये ।

स्वर्ग की मान्यता के संबंध में उसकी संगति धरती के साथ ही बैठती है । मनुष्यों का उस क्षेत्र में आवागमन रहा है । देवता भी समय-समय पर पृथ्वी पर आते और मनुष्यों की चेतना में बैठकर उन्हें आवश्यक सामयिक परामर्श देते रहे हैं । ज्ञान और विज्ञान का आभिर्भाव किन्हीं महामानवों के अन्तःकरणों में अनायास ही होता रहा है । इसके बाद उन्हें ऐसा दिशा-निर्देशन मिलता रहा है जिसके आधार पर वे किसी सुनिश्चित लक्ष्य तक पहुँच सकें ।

दशरथ के अर्जुन के देवलोक जाकर वहाँ वालों की सहायता करने, असुरों को परास्त करने की कथायें प्रख्यात हैं । नारद जी अक्सर विष्णु लोक जाकर भगवान् से परामर्श किया करते थे । नहुष, ययाति आदि ने सशरीर स्वर्ग जाने का प्रयत्न किया था । युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने के लिए देवयान आया था । इसी प्रकार देवताओं का भी मनुष्यों के अनेक कार्यों में सहयोग रहा है । कुन्ती के पुत्र देव-पुत्र ही थे । शकुन्तला की माँ देव लोक से पृथ्वी पर उतर कर विश्वामित्र के संयोग से उसे जन्म दे गई थी । पाण्डव अन्त समय में सशरीर स्वर्गारोहर के लिए अग्रसर हुए थे ।

इन कथा-गाथाओं को यदि मिथक मानकर सन्तोष न कर लिया जाय और धरती पर स्वर्ग होने की बात पर ध्यान जुटाया जाया तो इसी निश्चय पर पहुँचना पड़ता है कि हिमालय का देवात्मा भाग कभी अतिपुरातन काल में स्वर्ग भी रहा है । देवता सुमेरू पर्वत पर रहते थे । उनके उद्यान का नाम नन्दन वन था । यह दोनों ही इसी नाम से उपरोक्त क्षेत्र में अभी भी विद्यमान में । सुमेरू को स्वर्ण-पर्वत कहा गया है । उस शिखर पर अधिकाँश समय सूर्य की पीली किरणें पड़ती है । अस्तु बरफ सुनहरी दिखती है-स्वर्ण की बनी जैसी प्रतीत होती है । अब भू भाग नीचा आ गया है । पर्वत ऊँचे हो गये । शीत की अधिकता बढ़ी सभवतः इस कारण देवताओं ने वह क्षेत्र अपने लिए उपयोगी न समझा हो और कारण शरीरों में अन्तरिक्ष में रहने लगे हों । अपना स्थान सिद्ध पुरुषों के लिए स्थानान्तरित कर दिया हो ।

जो हो यहाँ चर्चा सिद्ध पुरुषों के संबंध में अभीष्ट है । उनके लिए यह स्थान सर्वथा उपयुक्त भी है । पूर्ववर्ती देव निवास होने के कारण उसकी सत्पात्रता, सुसंस्कारिता भी बढ़ी-चढ़ी है । फिर धरातल की परिस्थितियों को दूर-दूर तक देखने, समझने की क्षमता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी। धरती की निचली पर्तों पर हवा में उड़ने वाला कचरा तह बनाकर बैठता रहता है । इसी प्रकार जिन स्थानों की समुद्र सतह से ऊँचाई कम हो वहाँ स्वस्थता और सम्पन्नता के साधन घटते जाते हैं। सौन्दर्य सद्भाव भी अपेक्षाकृत कम होता है। जैसे-जैसे ऊँचाई बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे भूमि की उर्वरता और प्राणियों की प्रतिभा का विकास हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टि से हिमालय के ऊँचाई वाले क्षेत्र में जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य की भरमार है वहाँ स्वास्थ्य संरक्षक तत्त्व भी कम नहीं है। साधन सम्पन्न लोग गर्मी के दिनों में पहाड़ों पर अपनी निवास-व्यवस्था बनाते हैं। जो अधिक समय वहाँ ठहरने की स्थिति में नहीं हैं वे उस क्षेत्र में सैर-सपाटे के लिए निकलते हैं। कितने ही सेनेटोरियम पहाड़ी क्षेत्र में बने हैं जिसमें क्षय जैसे कष्ट साध्य रोगों के रोगी रोग-मुक्ति का लाभ प्राप्त करते हैं। सम्पन्न लोगों के विद्यालय भी देहरादून, मँसूरी, नैनीताल, अल्मोड़ा जैसे स्थानों में बने हैं ताकि छात्र विद्या प्राप्ति के अतिरिक्त प्रकृति सान्निध्य एवं उपयुक्त जलवायु के सहारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि कर सकें। पहाड़ी क्षेत्र में निर्धनता रहते हुए भी वहाँ के निवासियों में सहनशीलता एवं सज्जनता की मात्रा अन्य स्थानों की अपेक्षा कम नहीं अधिक ही पाई जाती हैं।

तीर्थयात्रा की धर्म भावना से प्रेरित होकर अब धर्म प्रेमी अन्यान्य भीड़ भरे नगरों में देव-दर्शन के लिए जाने की अपेक्षा उत्तराखण्ड की दिशा अधिक उत्साह पूर्वक पकड़ने लगे हैं। अब से १०० वर्ष पहले मुश्किल से ५ हजार यात्री उस क्षेत्र में जाते थे, पर अब उनकी संख्या २० लाख से अधिक होती है। यह प्रमाण बताते हैं कि मानसिक शान्ति की दृष्टि से जन-साधारण के लिए भी देवात्मा हिमालय वाला भाग कितना उत्साह वर्धक और आनन्द दायक हैं ।

पर्वतारोहण की पृष्ठभूमि

हिमालय के देवात्मा भाग में अनेकानेक विशेषताओं से भरा पूरा वातावरण है। उसके सान्निध्य में आने के लिए हर किसी का जी ललचाता है, पर वहाँ पहुँच या रह वे ही पाते हैं जिनकी इच्छाशक्ति में श्रमशीलता, संयमशीलता संतुष्टि एवं तितीक्षा वृत्ति का समुचित समावेश है। इसके बिना उस विलासिता के साधनों के अभाव वाले क्षेत्र में हर किसी के रहने की संभावना बनती ही नहीं। वन प्रदेश का बाहुल्य, चढ़ाव ढलान वाले ऊबड़-खाबड़ क्षेत्रों में सामान्य आवागमन भी उन लोगों के लिए भारी पड़ता है जिन्हें अपने शरीर का भार ढोना भी कठिन पड़ता है, जो पग-पग पर वाहनों का आश्रय लेते हैं।

हिमालय निवास अपने आप में एक तपश्चर्या है। वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य, सुरुचिपूर्ण वातावरण एवं अध्यात्म तत्वों का उच्चस्तरीय समावेश तो अपनी ढंग की अनौखी विशेषताएँ हैं ही। इन दिनों तो उस क्षेत्र में आवागमन के मार्ग भी बन गये हैं और वाहन भी मिलने लगे हैं। पर जिन दिनों ऐसा कुछ भी नहीं था उन दिनों भी आत्म साधना के लिए उपयुक्त स्थान खोजने वाले उसी क्षेत्र में पहुँचते थे। तप साधना में निरत होते और जीवन का अन्तिम अध्याय वहीं समाप्त करते थे। हिमालय में कितने तपस्वी साधना प्रयोजन के लिए उस क्षेत्र में पहुँचते रहे हैं। उसका विवरण पुराणों के पृष्ठ उलटने पर सहज ही चल जाता है। लगता है किसी समय हिमालय का देवात्मा भाग तपोभूमि के रूप में मान्यता प्राप्त करता रहा है। अति प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि साधना पारायणों को उसी क्षेत्र में आकर्षण एवं सन्तोष प्राप्त होता रहा है। यश और स्मारकों के लोभ में न पड़ने वाले व्यक्ति एकान्त साधना में निरत रहते रहे हैं। इस चयन का एक बड़ा लाभ यह भी रहा है कि उस क्षेत्र में सूक्ष्म रूप से निवास करने वाले सिद्ध पुरुष उन आत्म परायणों का सामयिक मार्ग-दर्शन एवं सहकार करते हुए अपनी उपस्थित का परिचय देते रहे हैं।

इस क्षेत्र की भूमि का अधिकांश भाग ऊबड़ खाबड़ है। उसमें बड़े भवन निर्माण की सुविधा नहीं है फिर भी भावुक भक्तजनों और उदार साधन सम्पन्नों के प्रयास से यहाँ छोटे-मोटे अनेक देवालय बनते रहे हैं। तीर्थ-यात्रियों की श्रद्धा का पोषण भी तो इससे होता है। थोड़ा चलने पर थकान मिटाने सुस्ताने के लिए जहाँ आश्रय की तलाश होती है। वहाँ संयोगवश कोई देवालय भी मिल जाता है। यों वे सभी छोटे आकार के हैं तो भी समीपवर्ती सचेतन प्रकृति उनकी गरिमा में चार चाँद लगा देती है। सूदूर समतल क्षेत्रों में बने विशालकाय भव्य भवनों वाले देवालय अपनी पूँजी और वास्तुकला के कारण-पूजा समारोहों के कारण जितने प्रभावोत्पादक लगते हैं, उससे कम महिमा उन छोटे देवालयों की भी नहीं है।

मीलों की दृष्टि से इस छोटे कहे जाने वाले क्षेत्र में तीर्थों की भरमार है। यहाँ चार धाम हैं। (१) बद्रीनाथ (२)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केदारनाथ (३) गंगोत्री (४) यमनोत्री । चार प्रमुख पर्वत शिखर हैं—(१) गंध मादन (२) शिवलिंग (३) सुमेरू (४) सत्तोपंथ । अन्य प्रमुख तीर्थों में यहाँ (१) पंच प्रयाग (२) पंच बद्रीनाथ (३) पंच केदार (४) पंच सरोवर हैं । इसके अतिरिक्त अन्य अनेक देवी देवताओं के छोटे बड़े मंदिर हैं । आद्य शंकराचार्य ने यहाँ ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी । ऐसे भी स्थान मिलते हैं जिनके सम्बन्ध में मान्यता है । यहाँ देव सत्ताओं का निवास है अथवा ऋषि मुनियों ने अपने-अपने समय में साधना की है । पाण्डवों के लम्बे समय तक यहाँ रहने की भी स्मृतियाँ दिलाने वाले भी कुछ स्थान हैं । केदार से कैलाश तक के क्षेत्र में अनेक हिमाच्छादित शिखर हैं । छोटे-बड़े सरोवरों की, हिमानियों की, निर्झरों की बड़ी संख्या है । छोटे-छोटे हिम नद थोड़ी-थोड़ी दूर बहकर किसी बड़ी नदी में मिलते चले गये हैं । ऐसी बड़ी नदियों में गंगा, यमुना, अलकनन्दा सरयू, ब्रह्मपुत्र आदि प्रमुख हैं । कैलाश मानसरोवर की अपनी गरिमा और महिमा विशिष्ट है । कहा जाता है इस समूचे क्षेत्र में लगभग १०० सरितायें बहती हैं और एक हजार के करीब हिमानियाँ हैं । वे एक दूसरे के साथ मिलती चली गयी हैं और समुद्र तक पहुँचते-पहुँचते गंगा और ब्रह्मपुत्र के रूप में मात्र दो रह गयी हैं ।

इस प्रदेश में वृक्ष वनस्पतियों का भी बाहुल्य है । उनकी रासायनिक विशेषताएँ अन्य सामान्य क्षेत्रों में उगने वाली वनस्पतियों की तुलना में कहीं अधिक है । यह यहाँ के विशेष वातावरण की विशेषता है । इसी प्रकार यहाँ पाये जाने वाले जीव जन्तुओं, पक्षियों में भी अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं । राजहँस मानसरोवर पर पाये जाते हैं, जो कीड़े नहीं खाते, गहरे पानी में गीता लगाकर मोती ढूँढ़ते और उन्हीं पर निर्वाह करते हैं । लम्बी उड़ान की क्षमता भी उनमें ऐसी होती है जिसे अनौखी कहा जा सके । नीर-क्षीर विवेक भी उनमें होता है । इसके अतिरिक्त कस्तूरी हिरण, चँवर पूँछ वाली गाय, याक, सफेद भालू, सफेद लोमड़ी, सफेद तेंदुआ आदि अनेक प्राणी ऐसे है जो इसी क्षेत्र में देखे गये हैं ।

हिम मानव के संबंध में ऐसी ही कम्बदंती है । उसे देखा तो अनेकों ने है । पर पद चिन्ह प्रमाण स्वरूप मिले है । उसे मनुष्य से प्रायः दूने आकार का और बल में दम पहलवानों के उद्देश्य बसाया जाता है । वह नीचे उत्तर तो आता है पर रहता कहाँ है उसका परिवार कहाँ रहता है यह अभी तक पता नहीं चला । पकड़ में भी किसी के नहीं आया है । फिर भी घटनाएँ और विवरण इतने अधिक है कि उसके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता । अनेक विदेशी पर्यटक खोजियों ने भी उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर उसका अस्तित्व स्वीकारा है । जो हो, इतना अवश्य है की इस क्षेत्र में कुछ अधिक ऊँचाई पर जो प्राणी पाये जाते है, जो वनस्पतियाँ देखी गई है, वे सर्वथा असाधारण है । उनकी विशेषताओं और उपलब्धियों के सबंध में यदि बारीकी से जाँच पड़ताल की जाय तो पाया जायेगा कि यह समुचा परिकर अनेकानेक ऐसी विचित्रताओं से भरा पड़ा है, जो मनुष्य के लिए असाधारण रूप से उपयोगी भी है ।

इस क्षेत्र में आमतौर से तीर्थ यात्री ही पर्यटक के रूप में भ्रमण करते पाये जाते हैं । उन्हें उस क्षेत्र की प्राकृतिक सुन्दरता से अपने नेत्रों को तृप्त करने का लाभ मिलता है । पैदल चलने को भी एक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं स्वास्थ्य संरक्षक विधा माना गया है । नदियाँ अनेक खिनिजों और वनस्पतियों का सार अपने साथ लेकर बहती है । इसीलिए उनका जल भी जीवनदायी औषधियों के समतुल्य रहता है । गंगा जल की महत्ता सर्वविदित है । उसे श्रद्धा के कारण ही श्रेय नहीं मिला है वरन् वैज्ञानिक परीक्षण में भी यह पाया गया है कि उसमें जीवनी शक्ति संवर्धक एवं अनेक रोगों के निवारण की क्षमता है । यह गंगा की विशेषता उस हिमप्रदेश से बहने वाली अन्यान्य नदियों में भी न्यूनाधिक मात्रा में पाई जाती है ।

देवात्मा हिमालय क्षेत्र में कुछ प्रमुख हिमाच्छादित शिखरों की ऊँचाई समुद्र की सतह से इस प्रकार है—गंगोत्री १०५०० फीट, गोमुख १२७७० फीट, नन्दनवन १४२३० फीट, भागीरथ पर्वत २०४९५ फीट, मेरुशिखर २१५० फीट, सतोपंथ शिखर २३२१३ फीट, केदारनाथ शिखर २२.७७ फीट, सुमेरू शिखर २०७०० फीट, स्वर्गारोहरणशिखर २३०८० फीट, चन्द्रपर्वत २२०७० फीट नीलकंठ शिखर २१६४० फीट और भी कितने ही प्रमुख शिखर उस क्षेत्र में बिखरे पड़े हैं । उनकी भी ऊँचाई न्यूनाधिक मिलती जुलती है ।

कुछ वर्ष पूर्व हिमालय के एक २२ हजार फुट ऊँचे पर्वत शिखर पर एक पर्वतारोही दल गया था । उसमें १३ यात्री थे, उनकी व्यवस्था के लिए १८ टन लगभग ५०० मन साधन सामग्री साथ ले जाने की आवश्यकता पड़ी । इसे ढोने के लिए ६५० कुली तथा रास्ता बनानें वाले ५२

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शेरपा साथ गये। समय-समय पर ऐसे ही अन्य पर्वतारोही दल संसार के विभिन्न क्षेत्रों से आते रहते हैं। उनमें से अधिकांश सफल रहे, पर कुछ को सदस्यों में से कइयों को प्राण गंवाने पड़े और भारी कष्ट सहकर वापिस लौटने के लिए विवश हुए।

पर्वतारोही इतना जोखिम भरा कार्य किसलिए उठाते है, इसका मौलिक प्रयोजन तो प्रत्यक्षत: इतना ही दिखाई पड़ता है कि दूसरों पर अतिरिक्त बलिष्ठता, साहसिकता और कुशलता की छाप डाली जाय। लोगों को चकित किया जाय कि जो कार्य दूसरे लोग नहीं कर सकते उसे वे कर दिखाते हैं इस आधार पर अपने को विशिष्ट लोगों की पंक्ति में बैठने का यश प्राप्त करते हैं। सम्भवत: पर्वतीय वातावरण में लगातार कुछ दिन रहने से स्वास्थ्य संवर्धन में भी सहायता मिलती है। चित्र विचित्र दृश्य देखने पर कलात्मक दृष्टि उभरती है। उँचे क्षेत्रों में ऑक्सीजन कम पड़ जाने पर भी मनोबल के आधार पर उस कमी को सहन करना किस प्रकार संभव हो सकता है, इस तथ्य को भी सिद्ध करता है। जिनका मात्र आरोहरण भर से सम्बन्ध है, उनका प्रयोजन मात्र यही रहता हो। फिर भी वे उन दुर्गम स्थानों तक पहुँच पाने में असफल रहे हैं, जिसे वस्तुत: देवात्माओं की आश्रयस्थली कहा गया है।

जिनकी वैज्ञानिक दृष्टि है वे इस आधार पर अन्यान्य कई प्रयोजन भी सिद्ध कर सकते हैं। उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव पर शोधकर्त्ता इसीलिए जाते हैं कि वहाँ के नीचे वाले धरातल की स्थिति जाँच सकें। संभावित बहुमूल्य खनिजों की टोह ले सकें । स्वास्थ्य सुधार एवं दीर्घजीवन के लिये किस क्षेत्र का वातावरण कितना उपयोगी हो सकता है यह जान सकें । अर्न्तग्रही शोधों के लिए भी हिमालय के ऊँचाई वाले भाग अन्वेषण के लिए सहायक हो सकते हैं। नदियों के पानी में पाई जाने वाली विशेषताएँ भी शोध का विषय हो सकता है । किस नदी निर्झर के किस भाग में किस स्तर के गुण हैं और उनका उपयोग चिकित्सा प्रयोजनों के लिए किस सीमा तक जा सकता है। यह भी एक अनुसंधान का विषय है। उत्तराखण्ड की एक सरिता 'सोन गड़' नदी में स्वर्ण कणों की एक अच्छी मात्रा पाई गई। उससे अनुमान लगाया जाता है कि जिस क्षेत्र से यह नदी आती है, उसके आस-पास कहीं भूमिगत स्वर्ण भण्डार हो सकता है। ऐसे-ऐसे अनेक आधार हैं जिनके निमित्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति उस क्षेत्र में जोखिम भरा परिभ्रमण कर सकते हैं। महत्त्वपूर्ण अनुसंधान सदा प्रयोगशालाओं में बैठकर ही सम्पन्न नहीं होते रहे हैं। उनके लिए लम्बी यात्राएँ भी करनी पड़ी हैं। भू-खण्डों, द्वीपों, सागरों वन पर्वतों जलाशय की स्थिति जानने के लिए कितने ही शोधकर्त्ताओं ने परिभ्रमण को अपना प्रमुख आधार बनाया है। इन्हीं कार्यों में पर्वत भी आते हैं। समुद्र की गहराई में सन्निहित सम्पदाओं को खोजने में इतना कुछ पाया गया हैं जिसे धरती पर उपलब्ध सम्पदा से किसी भी प्रकार कम मूल्यावान या महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जा सकता पर्वतों को—विशेषतया देवात्मा खण्ड क्षेत्र को शोध का विषय बनाया जाय तो उससे भौतिक ही नहीं, आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत कुछ पाया जा सकता है।

दिव्य वनौषधियाँ अपने आप में एक महान् विषय है। सामान्य जड़ी-बूटियाँ तो उर्वर भूमि वाले वन प्रदेशों में जहाँ तहाँ उगी पाई जाती हैं। इनमें से जो सुलभ स्थानों में बहुलता के साथ पाई जाती है उन्हीं को मजदूर स्तर के लोग खाली समय में खोद लाते हैं। इसके बाद भी उनका यह प्रयत्न नहीं कि बीज आने से पूर्व उन्हें खोद लेने पर उनकी वंश परम्परा कुछ ही दिनों में समाप्त हो जायेगी, इसलिए उन्हें पकने पर खोदा जाय। बीज वहीं बिखेर दिये जायें ताकि अगले दिनों भी उनकी उपलबधि लगातार होती रहे।

वनौषधियों की शोध इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उस आधार पर समूची मनुष्य जाति को कष्ट साध्य रोगों से छुटकारा दिलाया जा सकता है। विश्वभर में जो खर्च और श्रम औषधि निर्माण के लिए हो रहा है। वनौषधियों के आधार पर उसमें भारी कटौती हो सकती है। अपने देश के लिए एक ऐसा उद्योग हाथ लग सकता है जो निर्धन लोगों को अरोग्य प्रदान करने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो साथ ही विदेशी मुद्रा का भी बड़ी मात्रा में अर्जन कर सके। वह प्रकटत: प्रसिद्ध वनौषधियों की बात हुई । हिम पिघलने के उपरान्त पर्वतों की मिट्टी वाले भागों में वनस्पतियाँ भी प्रकट हो जाती हैं जो हिमपात के दिनों उसके नीचे दब जाते हैं, किन्तु जीवित बनी रहती हैं। बर्फ हटते ही उनका बसन्त फूट पड़ता है। श्रावण भाद्रपद के महिनों में हिमालय के कई क्षेत्र पुष्पवाटिका की तरह खिल पड़ते हैं। इन क्षेत्रों को "फूलों की घाटी" कहा जाता है। उनकी मनोरम दृष्टि तो नयनाभिराम होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही है, साथ ही मखमली गलीचा बिछा होने जैसा दृश्य प्रस्तुत होता है, पर साथ ही इन सुगंधित वनस्पतियों में से कितनी ही ऐसी होती है, जो औषधि प्रयोजनों के लिए अमृतोपम गुणकारी सिद्ध हो सकें। इनकी खोज नये सिरे से की जानी आवश्यक है। इस कार्य को पर्वतीय क्षेत्रों की यात्रा से ही पूरा किया जा सकता है।

तीर्थस्थान और सिद्ध पुरुष

प्रसुप्त दिव्य शक्तियों का भण्डार मानवी काया में बीज रूप में प्रचुर परिमाण में विद्यमान है। दैनिक क्रिया-कलाप में उनका बहुत छोटा भाग ही प्रयुक्त हो पाता है। जो वस्तु निष्क्रिय पड़ी रहती है, वह अपनी क्षमता खो बैठती है। पड़े रहने वाले चाकू को जंग खा जाती है। कोठों में बन्द अनाज को कीड़े लग जाते हैं। बक्से में बन्द कपड़े अनायास ही सड़ने लगते हैं। खाली पड़े रहने वाले मकानों में सीलन-सड़न चढ़ती है और चूहे छछूँदर, चमगादड़ जैसे जीव उसे और भी जल्दी खस्ता हाल बना देते हैं। मानवी दिव्य शक्तियों के बारे में भी यही बात है । वह पेट प्रजनन भर के लिए दौड़-धूप करता है। इतने छोटे काम में शक्तियों का लघु अंश ही काम आता है। शेष उपेक्षित स्थिति में पड़ा-पड़ा निष्क्रिय—निर्जीव हो जाता है। यदि इस प्रसुप्ति को जागृति में परिणित किया जा सके, तो मनुष्य सामान्य व्यक्ति न रहकर मनीषी, योगी, तपस्वी, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी स्तर का महामानव सिद्ध पुरुष बन सकता है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों में विद्यमान अगणित प्रसुप्त बीजों को जागृत कैसे किया जाय। इसके लिए साधना वर्ग के दो प्रयोजन ही कार्यान्वित करने होते हैं—एक तप दूसरा योग। इनके दार्शनिक और क्रियापरक कितने ही स्वरूप हैं। अपनी स्थिति और सुविधा के आधार पर उनमें से इस विषय में रुचि लेने वाले अपने लिए मार्ग चयन करते हैं और तत्परता, तन्मयता अपनाकर संकल्पपूर्वक अभीष्ट लक्ष्य की ओर साहसिक प्रयाण करते हैं।

आत्मोत्कर्ष की साधनाओं के लिए मात्र कर्मकाण्ड ही सब कुछ नहीं है। उसके लिए उपयुक्त वातावरण भी चाहिए । बीज कितना ही उत्तम क्यों न हो, पर उसे विकसित-पल्लवित होने का अवसर तभी मिलता है, जब भूमि उपजाऊ हो । खाद-पानी की व्यवस्था हो और देखरेख करने वाले व्यक्ति का संरक्षण मिले । विशेष क्षेत्र में विशेष प्रकार के फल, शाक, अन्न, वृक्ष, वनस्पति जीवजन्तु आदि जन्मते है । हर जगह, हर वस्तु का उत्पादन एवं विकास नहीं होता । योग और तप के लिये यों कोई भी स्थान अपनाया जा सकता है ।" "सभी भूमि गोपाल की" वाली उक्ति के अनुसार मन चंगा होने पर कठौती में गंगा प्रकट हो सकती है । फिर भी विशेष स्थानों के विशेष महत्त्व बना रहेगा । गंगाा की गोद, हिमालय की छाया, सिद्ध पुरुषों का संरक्षण की त्रिविध विशेषतायें जिन्हें भी उपलब्ध होती है, वे अपनी साधना को सिद्धि में बदलने में अधिक सफलता प्राप्त करते देखे गये हैं ।

इस प्रयोजन के लिये हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र अधिक उपयुक्त सिद्ध होता है, इसलिये कितने ही मुमुक्षु इस क्षेत्र में अन्न-जल-आच्छादन की सुविधा देखकर अपने काम-चलाऊ कुटीर बना लेते हैं । उनमें साधनारत रहते हैं । कभी-कभी इन साधकों में कुछ सम्पन् जन भी होते हैं । वे प्रेरणा पर उन्हीं कुटीरों के इर्द-गिर्द देवालय बना देते हैं । कालान्तर में वह किसी पुरातन कथा-प्रसंग से जुड़ जाता है, दर्शनार्थी आने लगते हैं और भूमि का, भवन का, परिबार का विस्तार होने लगता है । कई साधन सम्पन्न ऐसे स्थानों में अपने दान का स्मारक बनाने में अधिक उपयोगिता समझते हैं । धने शहरों में घिचपिच अनेकों देवालय, धर्मशालायें बने रहते हैं । उनके उनके बीच किसी एक का विशेष स्मरण रह सकना सम्भव नहीं होता । यश न हो, तो दानी अपने व्यय को क्यों सार्थक माने ? इस दृष्टि से हिमालय के वीरान क्षेत्र में देवालयों की स्थापना अधिक आकर्षक बन जाती है, विशेषतया तब, जबकि उसके साथ किसी पौराणिक कथा-गाथा का इतिहास जुड़ सके ।

हिमालय का उत्तराखण्ड देवात्मा भाग वस्तुतः तपोवन है। उसमें तीर्थ स्तर की सुविधाएँ नहीं हैं। तीर्थों में आमतौर से गुरुकुल, आरण्यक और साधना आश्रम हुआ करते थे। उनमें सत्संग-स्वाध्याय की, निवास विश्राम की व्यवस्था रहती थी। अभी भी ऐसे तीर्थों के कितने ही प्रतीक चिन्ह जहाँ-तहाँ विद्यमान हैं, किन्तु हिमालय में समतल भूमि की व्यवस्था नगण्य होने के कारण वैसी बड़ी व्यवस्था का सुयोग नहीं बनता रहा है। छोटे-छोटे कुटीर और आश्रम भर सम्भव होते रहे हैं। उनमें व्यक्तिगत साधनायें इस दृष्टि से होती रही हैं कि अन्तराल में समाहित प्रसुप्त शक्तियों का जागरण सम्भव हो सके, दिव्य वातावरण मिलता रह सके और उस भूमि की उर्वरता में उनका व्यक्तित्व बीज रूप से समुन्नत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होते-होते समर्थ सम्पन्न हो सके, साधना बढ़ते-बढ़ते सिद्धि स्तर तक पहुँच सके।

इन दिनों देवालयों के संरक्षक संचालक पुजारियों का उस क्षेत्र में बाहुल्य है। साधना की दृष्टि से प्राय: गर्मी के दिनों में ऋतु अनुकूलता का लाभ उठाने के लिए कुछ लोग साधक के रूप में भी निवास करते हैं, पर जैसे ही ठण्ड बढ़ती है, नीचे गरम एवं सुविधाजनक क्षेत्रों में उतर आते हैं। हरिद्वार, ऋषिकेश तो इन लोगों से प्राय: हर ऋतु में भरा रहता है। सुविधायें उन्हें यहाँ ठहरने के लिए आकर्षित करती रहती हैं। घोर शीत के दिनों में हिमालय का देवात्मा क्षेत्र प्राय: खाली हो जाता है। जीवट वाले गृहस्थ और साधक ही उस क्षेत्र में रुक पाते हैं। दीवाली से होली तक के साढ़े चार महीने उस क्षेत्र में जाने पर सन्नाटा ही दृष्टिगोचर होता है।

तीर्थयात्रा के लिए अब यह क्षेत्र विस्तार प्राप्त करता जाता है। हर वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में तीर्थयात्रियों की संख्या बढ़ जाती है। निवास, यातायात के विनिर्मित साधन अगले वर्ष फिर कम पड़ जाते हैं। यों देश भर में अन्यत्र भी अनेक तीर्थ हैं, पर उनमें से अधिकांश घनी आबादी के बीच बसे हैं। इसलिये पर्यटकों को जहाँ घिच-पिच का, स्थान-भाव का, मँहगाई का, वाहनों की कमी का सामना करना पड़ता है, वहाँ चोर-उचक्कों के छल-छद्म भी कम हैरान नहीं करते। इन सबसे उत्तराखण्ड के तीर्थों में अपेक्षाकृत कम परेशानी उठानी पड़ती है। वन, पर्वत, नदी, झरने, सुहावने लगते हैं, साथ ही भीड़ भी अपेक्षाकृत कम मिलती है। सुन्दर दृश्य और आकर्षक वातावरण सहज समझा देता है कि तीर्थयात्रा के उद्देश्य से इस क्षेत्र को प्रमुखता दी जाय। यही कारण है कि इस क्षेत्र में पर्यटक अधिक संख्या में आने लगने का क्रम चल पड़ा है। यात्रियों के कारण व्यापार भी चलता है और मजूरी भी अच्छी मिलती है। इस दृष्टि से पहाड़ी क्षेत्रों की आबादी भी सुनसान क्षेत्र की तुलना में वहाँ ज्यादा बढ़ने लगी है, जहाँ सड़कें बन गयी है, कस्बे बस गये हैं, व्यापार होने लगा है। यह मार्ग और क्षेत्र इस दृष्टि से विकसित हुए हैं, कि वहाँ यात्रियों को, वहाँ के निवासियों का सहयोग मिले और निवासी यात्रियों के सहारे अपनी आजीविका का सहज उपार्जन कर सकें। संक्षेप में यही है वह प्रगति, जिसे पर्वतीय क्षेत्रों का, विशेषतया तीर्थ क्षेत्रों का विकास भी कह सकते हैं।

आर्थिक एवं सुविधा सम्वर्धन की दृष्टि से इस विकास को सराहा जा सकता है। घाट, पुल, सड़क, पगडंडी व्यापार, उत्पादन, कृषि, उद्योग आदि का भी विस्तार होता जा रहा है। यद्यपि इस प्रगति के कारण वन भाग में कटौती होती चली जा रही है और बाढ़-भूस्खलन जैसी समस्यायें क्रमश: बढ़ रही हैं।

इस प्रगति के साथ-साथ एक अवगति भी हुई है कि मनुष्य द्वारा अधिक कृत क्षेत्र से दिव्य जड़ी-बूटियों का, वन्य जीवों का, महत्त्वपूर्ण वृक्षों का पलायन होता जा रहा है। ईंधन की आवश्यकताओं के लिए, मकान बनाने के लिए पेड कटते जा रहे हैं। जहाँ कभी वनस्पतियाँ उगती थीं, वहाँ कृषि होने लगी है। वन्य पशु भीड़ से घबराकर एकान्त मिले, वैसा क्षेत्र खोजने के लिए पालयन कर चल पड़े हैं। जन क्षेत्र की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ बढ़ते भौतिक विकास के साथ-साथ घटने भी लगी हैं।

सबसे बड़ी कमी हुई है, उस क्षेत्र में विचरण करने वाले सिद्ध पुरुषों की। वे मात्र शीतलता के लिए ही यहाँ नहीं बसते थे, वरन् सबसे बड़ी उपलब्धि थी—निस्तब्धता। वह एकान्त में ही मिल पाती है। कोलाहल और घिचपिच का प्रभाव वातावरण पर पड़ता है। फिर जिनमें व्यवसाय बुद्धि ही प्रधान है, वे जनसाधारण में पाये जाने वाले दोष-दुर्गुणों से भरे रहते हैं। प्रवृत्तियाँ भी क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। योगी, तपस्वी यदि वातावरण में उत्कृष्टता का संचार करते हैं, तो गये-गुजरे व्यक्ति उसमें प्रदूषण भी करते हैं। कमल पुष्पों में रमण करने वाले भ्रमर दुर्गन्धित स्थानों में घुटन अनुभव करते हैं और वहाँ टिकने के लिए उद्यत नहीं होते। उसी प्रकार सिद्ध पुरुष भी कोलाहल भरे व्यवसाय बुद्धि से अनुप्राणित क्षेत्र में टिक नहीं सकते। कोई समय था, जब उत्तराखण्ड क्षेत्र में मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्र में भी जब-तब सिद्ध पुरुषों का साक्षात्कार किन्हीं सौभाग्यशालियों को ही जाता था, उनका परामर्श और सहयोग मिल जाया करता था, पर अब वैसा नहीं होता। इस प्रयोजन के लिए जो लोग उधर जाते हैं, उन्हें निराश ही वापिस लौटना पड़ता है।

असल की नकल बनाने में दुनियाँ बड़ी प्रवीण है। नकली रेशम, रत्न, नकली घी, नकली आँख, नकली दाँत तक बाजार में बहुलता के साथ सस्ते मोल में मिलते हैं। उनका विज्ञापन भी किया जाता है ताकि सस्ते के लोभ में कम समझ वाले ग्राहकों को आसानी से आकर्षित किया जा सके। जन संकुल क्षेत्र के आस-पास अड्डे बनाकर बस जाने वाले नकली सन्तों और सिद्ध पुरुषों की भी बाढ़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसी लगी है। भावुक श्रद्धालु लोग आसानी से इनके चंगुल में फँसते हैं। पुरातन मान्यताओं के अनुरूप उनकी मनोभूमि तो बनी ही होती है, फिर सहज प्राप्ति का प्रलोभन किसी से किस प्रकार छोड़ते बने। चिड़िया जाल में और मछली काँटे में इसी सस्ते प्रलोभन के कारण फँसती है। सिद्ध पुरुषों की तलाश में निकले व्यक्ति भी आमतौर से इसी भ्रमजाल में फँसकर अपना समय मन और धन खराब करते हैं।

कितने ही भावुकजनों की अभिलाषा होती है कि सिद्ध पुरुषों से भेंट का सुयोग किसी प्रकार उन्हें मिले। इस कामना के पीछे मोटे रूप से तो उनकी भक्ति भावना ही दिखाई पड़ती है, पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं। वे दर्शन मात्र के अभिलाषी नहीं होते। वे उनका कोई कौतूहल-चमत्कार देखना चाहते हैं। चमत्कार देख चुकने पर उन्हें इस बात का भरोसा होता है कि यह सिद्ध पुरुष है या नहीं। इससे कम प्रदर्शन के बिना उन्हें इस बात का भरोसा ही नहीं होता है कि यह कोई दिव्य आत्मा है या नहीं। जब कुछ अचम्भा, अनोखापन, जादू-तमाशे जैसा कोई कौतुक दीख पड़े, तब उसके बाद अपने मन की गाँठ खोलते हैं। गाँठ में कामनायें, ललक, लिप्साएँ भरी होती हैं। प्रचुर धन, खोया हुआ यौवन, बल, सौन्दर्य, अधिकार, यश, प्रतिष्ठा, विजय, शत्रु नाश जैसी कामनायें जब अपने पुरुषार्थ के बलबूते पूरी नहीं हो पातीं, तो उसकी पूर्ति देवताओं या सिद्ध पुरुषों से चाहते हैं। देव पूजन आये दिन होता रहता है। जप, अनुष्ठान, पूजन, अर्चन का सिलसिला लम्बी अवधि तक चलने पर भी जब मनोरथ पूरा नहीं होता, तो एक ही सम्भावना बाकी रहती है—वे आकांक्षायें किसी सिद्ध पुरुष के अनुग्रह से पूरी हों। अनुग्रह का विश्वास तब हो, जब उनके प्रत्यक्ष दर्शन चर्म-चक्षुओं से हो सकें, आमने-सामने का वार्तालाप बन पड़े।

कुछ की आशंका कुछ और बड़े स्तर की होती है। वे स्वयं सिद्ध पुरुष बनना चाहते हैं। इसके लिए साधना करने का मूल्य तो चुकाना नहीं चाहते, वरदान-आशीर्वाद मात्र से ऋद्धि-सिद्धियों का विपुल भण्डार झोली में भरना चाहते हैं। इन्हीं कामनाओं की पूर्ति के लिए आम लोग सिद्ध पुरुषों की तालाश में जहाँ-तहाँ भटकते रहते हैं।

सिद्ध पुरुषों का स्वरूप और अनुग्रह

समुद्र को यों अचल, स्थिर माना जाता है। फिर भी वह गतिविधियों से रहित नहीं रहता। उसके विभिन्न स्वरूप भी बनते रहते हैं। ऊँची नीची लहरें, ज्वार भाटे, तूफान, भँवर आदि के कारण वह चंचल भी दिखाई पड़ता रहता है। सूर्य की ऊर्जा एक है। अपनी सौर मण्डल परिधि में वितरित होती रहती हैं पर उस एकरसता में भी अन्तर आता रहता है। समीपवर्ती बुध अग्नि पिण्ड की तरह तपता है, जबकि मध्यवर्ती दूरी वाले पृथ्वी मंगल जैसे ग्रहों में सहज तापमान रहता है। दूरवर्ती नेपच्यून प्लूटो जैसे ग्रह सदा शीतल ही रहते हैं। उन तक सौर ताप स्वल्प मात्रा में ही पहुँचता है। परब्रह्म की एकता, अखण्डता और स्मस्वरता में कोई व्यवधान नहीं पड़ता पर परिस्थितियों के अनुरूप उसकी विराट सत्ता हलचल रहित नहीं होती। उसकी इच्छा एवं व्यवस्था को पूरा करने के लिए विविध माध्यम भी अपना-अपना काम करते रहते हैं। उत्पादन अभिवर्धन और परिवर्तन की त्रिविध प्रक्रियाएँ तो अपने ढंग से चलती ही रहती हैं। फिर भी समय-समय पर बादलों का उठना, बरसना, मेघों का कड़कना, चमकना, तूफान, अन्धड़, चक्रवात जैसे दृश्य भी प्रकृति क्षेत्र में दीख पड़ते हैं। यों ब्रह्म की तरह प्रकृति को भी शान्त और व्यवस्थित माना जाता है। पवन सर्वदा एक नियत प्रवाह में बहती है। किन्तु उसमे भी यदा कदा जहाँ-तहाँ भयंकर चक्रवात और तूफान उठते देखे गये हैं। ऋतु प्रभाव से उसका तापमान भी न्यूनाधिक हो जाता है। इसी को कहते हैं एकता के बीच अनेकताओं का रहना। अनेकताओं के बीच एकता के दर्शन करना। पृथ्वी गोल है फिर भी उसमें पर्वतों खंदकों की कमी नहीं। द्वीपी महाद्वीपों के कारण वह छिन्न भिन्न एवं अनेक रूपों में बँटी हुई भी दीखती है। इसे नियन्ता की, उसकी इच्छा या व्यवस्था की विचित्रता ही कह सकते हैं।

परब्रह्म एक है। उसे विराट् विश्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप में भी देखा जा सकता है। भूलोक अथवा ब्रह्माण्ड उसकी प्रत्यक्ष छवि है। इस विशालता में चलती रहने वाली विभिन्न हलचलों का क्रियान्वयन उसकी विभिन्न सामर्थ्य काम करती रही हैं। उसी प्रकार जैसे कि शरीर के अनेक अवयव मिलजुलकर जीवन चेतनाओं के अनुशासन में काम करते रहते हैं। प्रकृति में ताप, ध्वनि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और प्रकाश की शक्तियाँ सक्रिय पंचतत्त्वों, पाँच प्राणों का अपना एक विशिष्ट परिकर है जो जीवधारियों के उत्पादन, अभिर्धन में कार्यरत रहता है ।

विश्व व्यवस्था के चेतना क्षेत्र को गतिशील बनाने में पराशक्ति के कितने ही सचेतन घटक हैं । इनमें सर्वोच्च स्तर के हैं—देव । जो ब्रह्म चेतना के अतीव निकट एवं उसके साथ जुड़े हुए माने जाते हैं उनकी संरचना अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष है । वे ईश्वर इच्छा व्यवस्था को कार्यान्वित करने में संदेह वाहक की भूमिका निभाते हैं । असंतुलनों को सम्भालते हैं । क्षतियों की पूर्ति करते है । अनौचित्य को औचित्य में बदलते हैं । जीवात्माएँ उनका आश्रय लेकर परम तत्त्व तक पहुँचने में सुविधा अनुभव करती हैं । सीढ़ियों पर पैर रखते हुए छत तक पहुँच जाना भी तो सरल पड़ता है । प्राणियों के संकटों एवं अभावों की पूर्ति के लिए वे ब्रह्मतत्व से आवश्यक समर्थता एवं सम्पन्नता उपलब्ध करके अभावग्रस्तों को उपलब्ध कराते रहते हैं । उनका प्रधान कार्य ही संतुलन बनाये रखना है । जब कभी उसमें बिगाड़ आता है तो उसका समाधान करने के लिए उनकी दौड़ धूप विशेष रूप से क्रियाशील होती देखी जाती है । यह देव ही जब तब अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं । समूची ब्रह्म सत्ता तो अपना व्यापक रूप यथावत् ही बनाये रहती है । निराकार को साकार नहीं बनना पड़ता । उस प्रयोजन को देव-शक्तियाँ ही निपटा देती हैं ।

देव समुदाय का दूसरा वर्ग ऐसा है जो प्रकृति के जन समुदाय के अधिक निकट है । मनुष्यों में, क्षेत्रों में व्यवस्थाओं में उसकी विशेष दिलचस्पी होती है । अपनी सीमित सामर्थ्य के अनुरूप वह बिना प्रमाद किये अपना कर्त्तव्य पालन भी करता रहता है । इस समुदाय में यक्ष, गन्धर्व और सिद्ध पुरुष आते हैं । यक्ष, गन्धर्व सुरक्षित सेना की तरह है । उन्हें कार्य में तभी जुटना पड़ता है, जब कहीं कोई महत्त्वपूर्ण कार्य पड़ता है । इन्हें दिक्पाल या दिग्गज के नाम से भी जाना जाता है । अन्तर्ग्रही विपत्तियों से वे पृथ्वी को बचाते हैं । अभावों को जहाँ-तहाँ से पूरा करते हैं । गन्धर्व उल्लास के कर्णधार हैं । शरीर को जिस प्रकार अन्न वस्त्र की, मस्तिष्क को जिस प्रकार ज्ञान अनुभव की आवश्यकता पड़ती हैं, उसी प्रकार अन्तःकरण उल्लास भरा विनोद मनोरंजन चाहता है । कला का प्रयोजन यही है । बसन्त इसका प्रतिनिधित्व करता है । सौन्दर्य एवं माधुर्य इसका सहचर है । काम कोतुक में भी उसका हस्तक्षेप है, यह गन्धर्व क्षेत्र है । यह शक्तियाँ भी अपने ढंग से हर प्राणी को जिस तिस सीमा तक अनुदान जुटाते रहते हैं । देव, यक्ष और गन्धर्व उच्च लोक के वासी उच्च भूमिकाएँ निभाने वाले माने गये हैं, वे पात्रता के अनुरूप अहेतु की कृपा करते रहते हैं । कभी-कभी आराधना अनुष्ठान से भी आकर्षित होते और अनुग्रह करते देखे गये हैं ।

भूलोक वासी प्राणियों से अधिक घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाले उनके कार्यों में अधिक रुचि लेने वाले, अधिक सहयोग करने वाले दो वर्ग हैं—एक सिद्ध पुरुष, दूसरे पितर । दोनों के शरीर तो सूक्ष्म होते हैं और वे आवश्यकतानुसार अपना परिचय स्थूल शरीर धारियों जैसा भी देने लगते हैं, पर उनकी सत्ता महत्ता शक्ति एवं इच्छा के बीच असाधारण अन्तर पाया जाता है फिर भी दोनों की गणना सूक्ष्म शरीर धारी मानव स्तर से कुछ ऊँची उठी हुई आत्माओं से ही की जा सकती है ।

सिद्ध पुरुष योग और तप का आश्रय लेकर अपने स्थूल शरीर का ही सूक्ष्मीकरण कर लेते हैं । यह भी हो सकता है कि वे कचरे जैसे शरीर का परित्याग कर दें और सूक्ष्म शरीर द्वारा उन कार्यों में संलग्न हों, जो लोक मंगल के लिए नितान्त आवश्यक हैं । शरीर के सीमा बंधन में बँधें रहने पर जीवात्मा को जहाँ कई प्रकार की सुविधा सरसता का लाभ मिलता है । वहाँ यह कठिनाई भी है कि कार्य उतना ही हो सकता है जितना कि काया की सीमित शक्ति के अन्तर्गत बन पड़ता है । सूक्ष्म शरीर के सक्रिय हो उठने पर वे सारे व्यवधान दूर हो जाते हैं जो शरीर को सीमित एवं आधि-व्याधि ग्रसित बनाये रहते थे । सीमा टूट जाने पर वे अपने को असीम अनुभव करते हैं । जीवित स्थिति के साधक जिन्हें अतीन्द्रिय क्षमताओं के रूप में प्राप्त करके गौरवान्वित होते हैं उससे अनेक गुनी दिव्यशक्तियाँ सूक्ष्म शरीरधारी सिद्ध पुरुषों को अनायास ही ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में मिल जाती हैं । वे स्थूल काया को या तो पूर्णतया परित्याग कर देते हैं या फिर उसे अपने प्रबल अध्यात्म प्रयत्नों द्वारा सूक्ष्म कर लेते हैं । सूक्ष्म शरीर की जीवन अवधि असीम है । वह युग युगान्तरों तक भी उसी स्थिति में रह सकता है । आवश्यकतानुसार वे अपने पुराने शरीर को धारण कर सकते हैं, या अन्य किसी भी आकृति को धारण करके अपने अस्तित्व एवं पराक्रम का परिचय दे सकते हैं । ऐसे सिद्ध पुरुष प्रकारान्तर से उच्च कोटि के योगी हैं जिनकी क्षमता दैव लोक के साथ जुड़ी है और क्रियाशीलता लोकहित के कामों में लगी रहती है । उनकी भूमिका जिम्मेदारी उद्यान के माली जैसी होती है । वे विशाल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अन्तरिक्ष में कहीं भी रह सकते हैं, आवश्यकतानुसार कहीं भी पहुँच सकते हैं, पर पाया यही गया है कि वे निर्धारित जिम्मेदारी को पूरा करने के उपरान्त वापिस हिमालय के देवात्मा क्षेत्र में ही लौट आते हैं। वहाँ विश्राम करते हैं, थकान उतारते हैं और गँवाई शक्ति को पूरा करने के लिए अथवा भविष्य के लिए सामर्थ्य संचय करने के लिए अपने ढंग की विशेष साधना आरम्भ कर देते हैं। खाली समय को वे स्वेच्छाचार में नहीं बिताते वरन् योजनाबद्ध रूप से उसके द्वारा उच्चस्तरीय शक्ति संचय का प्रयास करते रहते हैं ताकि समय की पुकार पर किसी भी क्षेत्र में उन्हें जो भी प्रेरणा मिले उसे बिना हिचक क्रियान्वित कर सकें।

इसी अवधि में उनका एक कार्य और भी होता है—वंश वृद्धि। वे भी परब्रह्म की तरह एक से अनेकों को अपने सदृश्य बनाना चाहते हैं। अपने संचित अनुदानों का एक बड़ा अंश उन्हें प्रदान भी करते रहे हैं। अविभावक यही करते हैं। संतान पर अपना समय मनोयोग एवं वैभव निःसंकोच लुटाते हैं। अल्प समर्थों को अति समर्थ बनाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। हर पिता अपनी संतान को अपने हीं सदृश्य तथा अपने से भी अधिक बढ़ा-बढ़ा देखना चाहता है। अविभावकों और सन्तान के बीच इसी आधार पर आदान-प्रदान चलता रहता है और कई सौभाग्यशाली उत्तराधिकारियों को सहज ही धनाध्यक्ष बनने की तरह सिद्ध पुरुषों के अनुग्रह से वह असाधारण क्षमताएँ एवं सफलताएँ प्राप्त कर लेते हैं जो निजी प्रयत्नों से कदाचित ही उलब्ध हो पाती हैं।

सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा सहायता प्राप्त करने के लिए कितने ही लोग लालायित फिरते है। उनके दर्शन करने और चमत्कार देखने के लिए आतुर फिरते हैं। इसके लिए वन पर्वतों की खाक छानते हैं, पर ऐसे लोगों को असफलता ही मिलती है क्योंकि दिव्यदर्शी सिद्ध पुरुष घट-घट की जान लेते हैं। उनका क्षुद्र मनोरथ ऐसा होता है जिसे परखने में उन्हें तनिक भी कठिनाई नहीं होती। वे मदारी के हाथ की कठपुतली बनने, अपना अपमान अनुभव करते हैं। फिर क्षुद्रजनों के मनोरंजन या कामना पूर्ति के लिए वे क्यों अपना तप या समय खराब करें। वे भली प्रकार जानते हैं कि उन्हें अपना बहुमूल्य अनुग्रह किस व्यक्ति को किस काम के लिए प्रदान करना है। ऐसे सत्पात्रों को वे स्वयं तलाशते फिरते हैं। जहाँ खिला कमल दीखता है, उस पर भौरों की तरह वे स्वयं जा पहुँचते हैं । उद्देश्य स्पष्ट है प्रामाणिक प्रतिभावानों को सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन में जुटाने के लिए आवश्यक सहयोग प्रदान करना। यह हर किसी से करते नहीं बन पड़ता जिनने पहले से ही अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को उदार साहसिकता से ओत-प्रोत कर रखा है, जिनने संयम साधा है, लोभ, मोह, अहंकार से छुटकारा पाया है, उन निस्पृह व्यक्तियों से ही यह आशा की जा सकती है कि लोकमंगल की साधना में निरत हो सकेंगे। पुण्य प्रयोजनों के लिए अपने श्रम, समय, मनोयोग एवं साधनों को लगावेंगे। इस स्तर को उत्कृष्ट प्रामाणिकता को सिद्ध करने में जिन्होंने अनेकों बार अग्नि परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, उन्हें ही देव पुरुष दिव्य प्रयोजनों के लिए वरण करते हैं। दर्शन या अनुग्रह उन्हें ही प्रदान करते हैं। करने के बाद यह भी देखते रहते हैं कि जो दिया गया है वह पुण्य प्रयोजनों में लगा या नहीं। जिन्हें मात्र स्वार्थ ही नशे की तरह सवार है उनकी क्षुद्रता दुर्गन्ध की तरह उड़ती रहती है और किसी सिद्ध पुरुष के समीप पहुँचने पर उसे समीप नहीं आने देती। हेय मनोभूमि के लोग ललक लिप्साओं की पूर्ति के लिए सिद्ध पुरुषों को अपने चंगुल में फँसाने के लिए बहेलियों की तरह जाल सजाये फिरते हैं, पर वे राजहंस परमहंस ऐसे हैं जो यह भली-भाँति जानते हैं कि कुपात्रों और सुपात्रों की सहायता करने पर उसके क्या बुरे भले परिणाम होते हैं। कुपात्रों के हाथ पहुँची दिव्य शक्ति वैसे ही विग्रह खड़े करती है, जैसे कि भस्मासुर, मारीचि, रावण, हिरण्यकश्यप, महिषासुर आदि के हाथों सिद्धियाँ पहुँचने में अनर्थ खड़े हुए हैं। सिद्धों को तलाशने के लिए जहाँ-तहाँ, मारे-मारे फिरने वाले निश्चत रूप से खाली हाथ लौटते हैं। वे असफलता के उपहास से बचने के लिए मन गढ़ंत झूठे उपाख्यान गढ़ लेते हैं और भोले-भावुक जनों पर अपनी धाक जमाने के लिए उन मन गढ़ंतों का प्रचार करते हैं कि उनकी अमुक क्षेत्र में किन्हीं सिद्ध आत्माओं से भेंट हुई उनने यह दिया, यह कहा आदि। ऐसी मन गढ़ंतें अनेकों के मुँह सुनी जाती हैं और किम्बदती के रूप में जहाँ-तहाँ प्रचारित होते हैं। इनकी सच्चाई जाँचने के लिए एक कसौटी है कि भेंट करने वाला उत्कृष्ट चरित्र का विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न था या नहीं। उसने दिव्य अनुग्रह को पाकर लोक मंगल के लिए कोई महत्त्वपूर्ण त्याग, पुरुषार्थ किया या नहीं।

सूक्ष्म शरीरधारियों से सम्पर्क

सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं में घटिया वर्ग उन प्रेत-पितरों का होता है, जो मरते समय कोई बड़े उद्वेग या मनोरथ लेकर मरे। अभाव, वियोग, अकाल मृत्यु जैसी पीड़ा, ललक-लिप्सा, प्रतिशोध आदि के कारण जो उद्विग्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन:स्थिति में शरीर त्यागने को विवश हुए हैं वे नया जन्म पाने से पूर्व बहुत समय तक प्रेत बनकर रहते हैं। उन्हें उद्विग्नता का वातावरण पसन्द आता है । उसी में रस लेते हैं। वैसा ही दृश्य देखने में सन्तोष अनुभव करते हैं। अपने प्रयत्नों से वैसा वातावरण विनिमित करते हैं।

उनके कृत्य दूसरों को सताने वाले होते हैं। स्वयं डरते और दूसरों को डराते रहते हैं। सूक्ष्म शरीरधारी होने से इतनी सामर्थ उनमें भी होती है कि कोई आकार बनाकर स्वप्न में अथवा जागृत होने पर दिवा स्वप्न की स्थिति में दूसरों के सामने प्रगट हो सकें। इनके छद्म रूप भी होते हैं। वे किसी की सहायता कर सकने की स्थिति में नहीं होते। उलटे याचनायें ही करते हैं। सताये जाने पर किन्हीं के भयभीत होने पर वे तृप्ति भी अनुभव करते हैं।

पितर सभ्य होते हैं। मरते समय जिनकी मंगलमयी कामनायें अधूरी रहीं, वे भी अशान्त स्थिति में सूक्ष्म शरीरधारी बनकर आकाश में भ्रमण करते हैं। उस स्थिति में भी उनकी इच्छा अधूरे संकल्प को पूरा करने की रहती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए उनकी चेष्टा भी चलती है। किसी उपयुक्त व्यक्ति के साथ जुड़ जाने का वे प्रयत्न करते हैं। साथ सहयोगी भी तालाश करते हैं। मिल जाता है तो उसके साथ अपनी सामर्थ्य जोड़ते हैं। इस संयोग के बल पर ऐसे काम कराते हैं जो उनकी अधूरी इच्छा की दिशा में किसी सीमा तक अग्रसर हो सके। लेखक, कलाकार, वैज्ञानिक व्यवसायी, परमार्थी जैसी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों में ही उनका मन रमा होता है। स्थूल शरीर न होने के कारण वे स्वयं तो कुछ प्रत्यक्ष पुरुषार्थ कर नहीं सकते, पर किसी उपयुक्त सत्पात्र के साथ सहयोग बिठाकर उसे योजना बताते, ऐसी राह चलाते हैं ताकि अपने अधूरे मनोरथ को पूरा होने जैसे दृश्य देख सकें।

ऐसे पितरों का संयोग भी कभी-कभी सिद्ध पुरुषों के अनुग्रह जैसा प्रतीत होता है। इस संदर्भ में हुई भ्रान्ति को इस आधार पर जाना जा सकता है कि पितरों की इच्छायें भौतिक सफलताओं की दिशा में किसी को अग्रसर करती हैं। मार्ग बताती हैं और अपनी सीमित सामर्थ्य के अनुरूप यथासम्भव सहायता भी करती हैं। बस इतनी ही उनकी परिधि होती है। सिद्ध पुरुष मात्र उत्कृष्ट चरित्र, संयमी, तपस्वी, सन्तोषी और परमार्थ परायणों के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं। अपनी अति महत्त्वपूर्ण तप, सम्पदा का एक भाग देकर अनुगृहीत को इस योग्य बनाते हैं कि वह निजी सामर्थ्य कम पड़ने पर भी उस अनुदान के सहारे पुण्य परमार्थ के निमित्त कोई बड़े कदम उठा सके। बढ़-चढ़कर काम कर सके। प्रतिकूलताओं के बीच रहकर भी यशस्वी हो सके। बड़े त्याग-बलिदान करके असंख्यों के लिए मार्ग-दर्शक बन सके। अपने कृत्यों को अनुकरणीय, अभिनन्दनीय बना सके। जहाँ ऐसा कुछ घटित होता दीखे, समझना चाहिए कि किसी तपस्वी सिद्ध पुरुष की अनुकम्पा उसे उपलब्ध हुई है। व्यक्तिगत भौतिक सफलताओं में श्रेय मिल रहा हो तो समझा जा सकता है कि किसी पितर का अनुग्रह प्राप्त हुआ है। अदृश्य दर्शन तो घटिया स्तर के प्रेत भी करा देते हैं। वे मुनष्य या किसी प्राणी के शरीर में अपने अस्तित्व का परिचय दे सकते हैं। कुछ ऐसा परामर्श सहयोग भी दे सकते हैं, जो आरम्भ में भले ही आकर्षक लगे, पर पीछे दुष्परिणाम ही खड़े करे।

यक्ष-गन्धर्व कभी-कभी दीख तो पड़ते हैं, पर वे मनुष्यों के प्रत्यक्ष जीवन में कोई विशेष सहयोग नहीं देते। प्रगट भी नहीं होते। विचार क्षेत्र में कोई महत्त्वपूर्ण उत्पादन खड़ा करते हैं। समूहों के लिए उनकी प्रेरणायें काम करती हैं। युग प्रभाव बदलने में यक्ष गन्धर्वों का प्रकटीकरण कदाचित ही देखा जाता है। प्रेत-पितरों के क्रिया-कलाप जिस-तिस रूप में सामने आते रहते हैं, पर उनका उद्देश्य और क्षेत्र छोटा ही होता है।

सिद्ध पुरुषों को सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि कहना चाहिए। यों भी तपस्वी जब तक स्थूल शरीर धारण किए रहते हैं, तब तक उन्हें ऋषि कहते हैं। जब वे स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर में अवतरित होते हैं, रहने लगते हैं, तब वे दिव्य पुरुष बन जाते हैं। इन्हीं को सिद्ध पुरुष भी कहते हैं। इन्हें देव और मनुष्य की मध्यवर्ता स्थिति में रहने वाले समझा जाता है। साधारणतया वे अदृश्य ही रहते हैं, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर स्थूलकाय कलेवर भी धारण कर लेते हैं। जिस शरीर से तय किया और सिद्धि पाई है वह उन्हें प्रिय भी लगता है और उसे प्रकट करना भी सरल पड़ता है। इसलिए जब कभी किन्हीं को उनका दर्शन होता है तो वही काया सामने आती है। उतनी ही वय दृष्टिगोचर होती है जितनी में उनने स्थूल का सूक्ष्मीकरण किया था । इस परिवर्तन के दोनों ही स्वरूप हो सकते हैं। एक यह कि अवधारित शरीर को उसी प्रकार अलग कर दिया जाय, जिस प्रकार सर्प केचुली छोड़कर नई त्वचा वाली स्फूर्तिवान काया का उपयोग करता है। छोड़ा हुआ शरीर नष्ट भी किया जा सकता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और ऐसा भी हो सकता है कि स्थूल का धीरे-धेरे परित्याग करते स्थिति मात्र उतनी ही रहने दी जाय, जिससे कि सूक्ष्म ही शेष रहे। तत्व सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शरीरधारी ही होते हैं, आवश्यकतानुसार कभी-कभी वें शरीर में भी प्रगट होते हैं। ऐसा विशेषतया तब होता है जब उन्हें किसी या किन्हीं शरीरधारियों के साथ सम्पर्क बनाने, वार्त्तालाप करने की आवश्यकता होती है।

प्रकट होना या न होना यह पूर्णतया उनकी अपनी इच्छा पर निर्भर है। किसी के आग्रह अनुरोध का उन पर कोई दबाव नहीं पड़ता। कारण सिद्ध पुरुष मात्र उच्च उद्देश्य की पूर्ति को ही ध्यान में रखते हैं, जबकि सामान्यजन कौतुक-कौतुहल देखने, चमत्कारों का रस लेने, मनोकामना पूरी कराने के फेर में रहते हैं। इस स्तर की निकृष्ट मनोभूमि के दर्शन अभिलाषा में भी घोर स्वार्थ ही भरा होता है। उसे वे कुचक्र भर समझते हैं और अपने को उस जाल में फँसाने से स्पष्ट इन्कार कर देते हैं। उन्हें मात्र उन्हीं के सम्मुख प्रगट होने की उपयोगिता प्रतीत होती है जिन्हें महत्त्वपूर्ण परामर्श देने पर उसी पूर्ति हो सकने की पात्रता परिलक्षित होती है। कोई अपनी बेटी को कुपात्र वर के हाथों जानबूझकर नहीं सौंपता। फिर दिव्यदर्शी आत्मायें अपना अत्यन्त कष्टपूर्वक कमाया हुआ तप किसी के चाहने भर से प्रभावित होकर देने के लिए क्योंकि सहमत हो सकते हैं ।

यों सिद्ध पुरुषों का शरीर सूक्ष्म होने के कारण उन्हें आकाश गमन की सिद्धि होती है। वे इच्छानुसार चाहे जिस क्षेत्र या स्थान में तत्काल जा पहुँचते हैं, फिर भी वे पतंग की तरह नहीं उड़ते फिरते। किसी या किन्हीं स्थानों को अपने लिए नियत करते हैं जहाँ वे शक्ति संचय के लिए तप करते रहते हैं, जो स्थूल शरीरधारियों के विधि-विधानों से सर्वथा भिन्न होता है। सूक्ष्म शरीर के साथ तन्मात्रायें जुड़ी होती हैं। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में सूक्ष्म शरीर की भी आसक्ति हो सकती है। यह कामनायें प्रकारान्तर से बन्धन में बाँधती हैं। विशालता को संकुचित करती हैं। इसलिए इन्हें भी उसी प्रकार काटना पड़ता है जैसा कि स्थूल शरीर में जिस प्रकार वासना-तृष्णा के, लोभ-मोह के बन्धन बाँधते हैं। ये समुन्नत स्तर तक व्यक्तित्व को नहीं पहुँचने देते हैं। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीरधारियों के लिए तन्मात्राओं के बन्धन जकड़ लेते हैं और अधिक ऊँची आत्मिक स्थिति पर अग्रगामी नहीं बनने देते। एकाग्रता को चंचलता में बदलते हैं। ऐसी स्थिति में वे देवात्मा बनने की स्थिति में नहीं पहुँच पाते। इसलिए तप का आश्रय उन्हें भी लेना पड़ता है । अपूर्णताओं को पूर्णता में विकसित करने के लिए इसलिए उन्हें भी अपने लिए साधना हेतु उपयुक्त स्थान चुनना पड़ता है ।

स्थान चयन में उन्हें दो तथ्यों को ध्यान में रखना पड़ता है। एक यह कि वह कोलाहल रहित हो। प्रकृति की स्वाभाविक निस्तब्धता में किसी कारण विक्षेप न पड़ता हो। दूसरे यह कि जब भी सूक्ष्म शरीर को स्थूल आकार में बदलना पड़े, तब उसके लिए आवश्यक ताप और आहार उपलब्ध हो सके। इसके लिए गुफायें उपयोगी पड़ती हैं। वे पर्वतों के फैलने सिकुड़ने से बन जाती हैं । उनमें से कितनी ही ऐसी भी होती हैं जिनमें सूक्ष्म शरीरधारी ही नहीं स्थूल शरीर वाले प्राणी भी शीतकाल में तन्द्रित स्थिति में रहकर गुजार सकें। पत्थरों में भी कुछ ऐसे होते हैं जिसमें चुम्बकीय गुण होते हैं। उन्हें परस्पर रगड़ने, टकराने से अग्नि प्रगट की जा सकती है। गुफाओं के भीतर शैवाल स्तर की काई और घास की मिली हुई वनस्पति प्रजाति पाई जाती है। उसका आहार की तरह उपयोग हो सकता है। गुफाओं में शीत अधिक न होने से उसमें बिना वस्त्र के भी रहा जा सकता हैं अथवा वह कार्य भोज-पत्र जैसी कोमल लम्बी छालों से लिया जा सकता है। इस प्रकार के आश्रय उन्हें इसलिए बनाने पड़ते हैं कि साथी सहयोगियों से जब भी आदान-प्रदान करना पड़े तो उसके लिए आवश्यक स्थूलता अपनाई जा सके। प्रत्यक्ष शरीर धारण किया जाय तो उसके लिए निर्वाह की आवश्यक साधन सामग्री मिल सके। जब स्थूल स्थिति में जिस जगह निर्वाह हो सकता है, वहाँ सूक्ष्म स्थिति में बने रहना तो और भी अधिक सरल होना चाहिए।

कुछ समय पूर्व देवात्मा हिमालय के यातायात वाले स्थानों के समीप ही गुफाओं में ऐसी आत्मायें रहा करती थीं, तब यात्रियों की धूमधाम नहीं थी। मार्ग कच्चे और अगम्य थे। इसलिए दुस्साहसी आत्मवान् ही उस क्षेत्र की यात्रा पर सिर से कफन बाँधकर चलने जैसी मनोभूमि बनाकर निकलते थे। पर अब वैसा बिलकुल भी नहीं है। बसावट बढ़ती जा रही है । मार्ग बनते जा रहे हैं। वाहन निकलते हैं। यात्रियों की संख्या हर वर्ष कई गुनी हो जाती है। इस सब के कारण वातावरण में कोलाहल तो बढ़ता ही है, साधारण स्तर के व्यक्तियों का चिन्तन, चरित्र भी उस क्षेत्र को प्रभावित करता है। साधनारत सिद्ध पुरुषों को उसमें घुटन अनुभव होती है। फलतः वे उन स्थानों को छोड़कर सघन वनों में ऊँचे पर्वतों में इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चले जाते हैं कि उन्हें मानव सकुल से उत्पन्न असुविधा का सामना न करना पड़े। अब यदि उनकी उपस्थिति का पता चल सके तो खोजी को ऐसे क्षेत्रों में पहुँचना पड़ेगा, जो सर्वसुलभ नहीं हैं। इस कारण अब वह दूरी बहुत बढ़ गई है जिसको सरलतापूर्वक पार किया जा सकता था और सिद्ध पुरुषों से संपर्क सध सकता था ।खोजी वर्ग के लोग भी अपनी जीवट और तितीक्षा की दृष्टि से बहुत दुर्बल रहने लगे हैं। भौतिक लाभ के लिए सिद्ध पुरुषों का सम्पर्क कुछ विशेष लाभदायक नहीं होता। आत्मिक प्रगति की अभिलाषा अब किन्हीं बिरलों में ही देखी जाती है। ऐसी दशा में उन्हें आपस में मिलाने वाले आधार ही एव दूसरे से प्राय: विपरीत हो जाने पर दोनों ओर से ऐसे प्रयत्न नहीं होते कि सामान्य साधकों और सिद्ध पुरुषों में पारस्परिक सम्बन्ध बने। दर्शन एवं परामर्श सम्भव हो। सिद्ध पुरुष परमार्थ प्रयोजनों के लिए उपयुक्त उच्चस्तरीय आत्माओं को तलाशते हैं, जबकि कौतुक-कौतूहल देखने की मनोभूमि वालों को मुफ्त के ऐसे वरदान-अनुदान चाहिए जो उन्हें सम्पन्न, समृद्ध, युवक, यशस्वी, अधिकारी, विजयी जैसी लौकिक सफलतायें मात्र दर्शन नमन के बदले दें या दिला सकें। अन्तर बहुत बड़ा हो गया है। यही कारण है कि पुरातन काल में साधकों और सिद्धों के जो संयोग बनते थे वे अब असम्भव स्तर के बन गए हैं। आत्मश्लाघा से प्रेरित अपनी शेखी बघारकर दूसरों को चकित करने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले कुचक्री ही सिद्ध दर्शन और अनुग्रह पाने की किम्बदन्तियाँ गढ़ते और मन-मोदक झाड़कर जी बहलाते रहते हैं।

हिम क्षेत्र की रहस्यमयी दिव्य सम्पदायें

हिमालय बहुत विस्तृत है। उसके अध्यात्म विशेषताओं से सम्पन्न भाग को देवात्मा कहते हैं। वह बहुत छोटा है। यमुनोत्तरी से आरम्भ होता है और कैलाश शिखर तक चला जाता है। उसकी ऊँचाई समुद्र तल से दस हजार फुट से लेकर बीच हजार फुट तक की समझी जा सकती है। शेष भाग वन, पर्वत, वनस्पति, नदी, नद आदि से भरा है। उसमें जहाँ कृषि सम्भव है, जल की सुविधा है, तापमान सह्य है, वहाँ उस क्षेत्र में रहने के अभ्यासी टिके रहते है और निर्वाह क्रम चलाते रहते हैं। उत्तरी ध्रुव में एस्किमो जाति के लोग रहते हैं। वे मांसाहार से पेट भरते हैं। बड़ी मछलियों की चमड़ी से रहने के लिए तम्बू बनाते हैं। मछली की चर्बी से प्रकाश जलाते हैं। शिकार पकड़ने, उसे काटने, भूनने के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें भी एकत्रित करके काम चलाते रहते हैं। कुत्ते और हिरन उनके कामों में हाथ बँटाते हैं।

दक्षिणी ध्रुव में मनुष्य या पशु तो नहीं रहते पर वहाँ पेन्गुइन जाति के दो पैरों के सहारे चलने वाले पक्षी पाये जाते हैं। टिड्डे स्तर के चींटे भी होते हैं। इन ध्रुव प्रदेशों में मैदानी इलाकों में रहने वाले लोगों का निर्वाह असंभव जैस लगता है, पर जो अभ्यस्त हैं वे चिर पुरातनकाल से रहते और वंशवृद्धि करते चले आ रहे हैं। इसका निष्कर्ष यही निकलता है कि प्राणी किसी भी परिस्थिति में रहने के लिए अपने को ढाल सकता है। प्रकृति उसके लिए आवश्यक सुविधा-साधन भी जुदा देती है। घोर शीत वाले हिमाच्छादित प्रदेशों में भी कुछ प्रकार के जीव पाये जाते हैं। श्वेत भालू, श्वेत विलाव, श्वेत पक्षी, श्वेत कछुए एक प्रकार से काई को ही अपना आहार बना लेते हैं। इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली चट्टानी गुफाओं के नीचे वे बस जाते हैं और समीपवर्ती क्षेत्र से ही अपना आहार प्राप्त कर लेते हैं। ऊँचाई पर पाये जाने वाले हिरन और भेडें उस वर्ग के लिए भोजन की आवश्यकता पूरी करते रहते हैं, जिन्हें मांसाहार पचता है।

यह हिमाच्छादित प्रदेशों के निवासियों के निर्वाह की चर्चा हुई। अब देखना यह है कि महत्त्वाकाँक्षी मनुष्य भौतिक दृष्टि से उस क्षेत्र में जाकर क्या खोज और क्या पा सकता है? इस प्रयोजन के लिए बहुत ऊँचाई तक जाने का मोह छोड़ना होगा। वहाँ पहुँचना अत्यन्त महँगा भी है और कष्ट साध्य भी। जिनने कैलाश मान सरोवर की यात्रा की है, जिन्होंने गंगोत्री और बद्रीनाथ का मध्यवर्ती मार्ग पैदल चलकर पार किया है, वे जानते हैं कि इस प्रकार के प्रयास कितने खर्चीले होते हैं। जिनके सामने आध्यात्मिक लक्ष्य हैं, उनकी बात दूसरी है, पर जिनका दृष्टिकोण विशुद्ध भौतिक है, वे इस प्रकार के पचड़े में पड़कर अपनी सुख-सुविधा वाली जिन्दगी में क्यों जोखिम खड़ा करेंगे। अध्यात्मवादियों के अतिरिक्त दूसरा वर्ग शोधकर्त्ता वैज्ञानिकों का आता है। वे भी अपनी गुरुता सिद्ध करने, कीर्तिमान स्थापित करने और कुछ ऐसी उपलब्धियाँ प्राप्त करने के लिए समर्पित रहते हैं, जो पीछे वालों के लिए उपयोग बन सकें, सराही जाती रहें।

हिमालय इस दृष्टि से भी खोजने योग्य है। जब उत्तरी ध्रुव जैसे क्षेत्र शोधकर्त्ताओं के लिए आकर्षण का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केन्द्र बन सकते हैं, उन्हें वहाँ की परिस्थिति जानने के लिए कठिन यात्राओं के लिए प्रोत्साहित करते हैं, तो कोई कारण नहीं कि हिमालय की भौतिक सम्पदा को खोज निकालने के लिए शोधकर्त्ताओं का उत्साह क्यों न जगे।

जहाँ प्रकृति का दोहन होता रहता है, वे क्षेत्र दुर्बल पड़ जाते हैं, किन्तु जहाँ की मौलिकता अक्षुण्ण रही है, वहाँ खोज के लिए बहुत कुछ पाया जा सकता है। अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड आदि नये खोजे क्षेत्रों में भूमि-उर्वरता, खनिज आदि का इतना बड़ा वैभव प्राप्त हुआ है कि वहाँ के निवासी कुछ ही समय में समृद्ध हो गए। हिमालय का क्षेत्र भी ऐसा है, जिसे अति प्राचीनकाल में ही खोजा गया था। उन दिनों न वहाँ पाई जाने वाली समृद्धि की कल्पना की गई, न हाथ डाला गया। फलत: वह क्षेत्र एक प्रकार से अछूता ही पड़ा है। समुद्र किनारे पर पड़े हुए सीप घोंघों को जिस प्रकार बालक बीन लेते हैं, उसी प्रकार हिमालय से अनायास ही मिलने वाले लाभों को ही पर्याप्त मानकर सन्तोष किया जाता रहा है। यदि समुद्र की गहराई में उतरकर मोती बीनने वाले का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके, तो वह प्रदेश कम विभूतियों से भरा-पूरा न मिलेगा।

हिम खण्ड पर्वत धरती की ऊपरी सतह पर है, उसके नीचे सामान्य भूमि है। इस निचली सतह से कभी-कभी गरम गैसें ऊपर आती हैं और पानी के साथ मिलकर खौलते तप्त कुण्डों का सृजन करती हैं । इनके खोजे जा सकें, तो असाधारण मात्रा में ऐसी ऊर्जा हस्तगत हो सकती जो अनादिकाल से सुरक्षित है, जिसका दोहन कभी भी नहीं हुआ। पत्थरों में ऐसे तत्त्व भरे पड़े है जो बहुमूल्य रसायनों के रूप में बाहर निकाले जा सकते हैं, जिनका अति महत्त्वपूर्ण उपयोग हो सकता है। शिलाजीत उन्हीं में से एक है, जिसे असाधारण रूप से बलवर्धक माना जा सकता है। हिमालय से आने वाली नदियों की बालू में सोने-चाँदी जैसी बहुमूल्य धातुओं का सम्मिश्रण पाया गया है। यदि उनके उद्गम खोजे जा सकें, तो समतल भूमि में पाई जाने वाली धातु खदानों से अधिक मूल्यवान सम्पदा हाथ लग सकती है। कहीं-कहीं यूरेनियम जैसी धातुओं का सम्मिश्रण, भी रेत में पाया गया हैं। कुछ सरितायें ऐसी हैं, जिनके पानी में ऐसे तत्त्व मिले हुए हैं, जो उन्हें प्रभावशाली औषधियों के समतुल्य बनाते हैं। यह रसायन उन क्षेत्रों की परतों में पाये जा सकते हैं, जहाँ से कि वह टकराती हुई प्रभावित होती है।

कस्तूरी हिरन हिमालय की ऊँचाइयों में पाये जाते हैं। बारहसिंगे के सींग अपने आप में औषधीय विशेषताओं से भरे-पूरे हैं। चँवरी हिरन की पूँछ न केवल सुन्दर होती है, वरन् उसके शरीर पर दुलते से प्रसुप्त ऊर्जा में उभार आता है। इसी प्रकार अन्यान्य जीव जन्तु भी असाधारण विशेषताओं से भरे होते हैं। वातावरण का प्रभाव प्राणियों पर भी पड़ता है और वे इस योग्य बनते हैं कि मनुष्य को शारीरिक मानसिक स्तर के विशेष अनुदान दे सकें । दुर्भाग्य इसी बात का है कि इन प्राणियों का अभिबधंन करके उनके सम्पर्क से लाभ नहीं उठाया जा रहा है, वरन् माँस के लिए उनका वध करके महती संभावनाओं से दिन-दिन वंचित होता चला जा रहा है।

हिमालय के वृक्षों की अपनी विशेषतायें हैं। उनकी लकड़ियों में तेल की इतनी प्रचुर मात्रा पाई जाती है कि उनकी गीली लकड़ी को भी जलाया और ताप का लाभ उठाया जा सके। चीड़ देवदारु के तनों से निकलने वाला रस 'विरोजी' के रूप में बाजार में बिकता है और अनेक रासायनिक प्रयोजनों के लिए काम आता है। अन्य पेड भी अपने-अपने ढंग के गौंद देते हैं। उनके पुष्प तथा फल औषधियों की तरह काम में लाये जाते हैं। अन्न तो प्रचुर परिमाण में हिमालय की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर पैदा नहीं होता पर उसकी पूर्ति कर सकने वाले कई प्रकार के कन्द अनायास ही उपलब्ध होते हैं। उनकी क्षमता अन्न की तुलना में कम नहीं अधिक ही होती है। कितने ही शाक अलग-अलग क्षेत्रों में अलग आकृति-प्रकृति के ऐसे पाये जाते हैं जिन्हें शाक-भाजियों के समतुल्य गुणकारी पाया जाता है। पत्तियों के रूप में पाये जाने पर भी उनमें पोषक तत्त्व उनसे कम नहीं होते जैसे कि समतल भूमि के शाकों और फलों में होते हैं।

भोज पत्र एक बहु उद्देश्यीय वृक्ष है। उसके वल्कल का उपयोग वस्त्रों के रूप में, विस्तर के रूप में एवं झोंपड़ी आच्छादन के रूप में हो सकता है। उसके पत्र कागज के रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं। भोज-पत्र में उभरने वाली गाँठों का काढा बनाकर पीने से कड़क चाय की आवश्यकता पूरी होती है।

औषधियों का तो हिमालय को भण्डार ही समझना चाहिए । ऊँचाई पर पाये जाने वाली वनौषधियाँ असामान्य गुणों से भरपूर पाई गई हैं। उसी जाति की वनौषधियाँ यदि मैदानी इलाके के गरम वातावरण में लगाई जायँ तो उनमें वे विशेषतायें नहीं पाई जायेंगी जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऊँचाई वाले पहाड़ी क्षेत्रों में उगने पर होती हैं। चट्टानों पर हवा के द्वारा मिट्टी की हल्की परत छोड़ दी जाती है। उसी में जड़ी-बूटियाँ अपने लिए जड़ें फैलाने का स्थान बना लेती हैं। वायुमण्डल से मिलने वाले खाद-पानी से अपना पोषण करती हैं। ऐसी दशा में उनका विशिष्टताओं से सम्पन्न होना स्वाभाविक है। ऊँचाई पर होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो पाता। कोई उन्हें लाने के लिए नहीं पहुँचता। यदि मार्ग बना लिया जाय और उन्हें बोने-बटोरने का व्यवस्थित क्रम चलाया जाय, तो मनुष्य के हाथ अमृतोपम औषधियों का भंडार हाथ लग सकता है। साथ ही अति लाभदायक उपयोग के रूप में भी विकसित किया जा सकता है।

हिमाच्छादित प्रदेशों में कम ऊँचाई वाले ऐसे भी अनेक क्षेत्र जहाँ शीत ऋतु में हल्की बर्फ जमती है। गर्मी आने पर वह पिघल जाती है। पिघलने पर उर्वरा भूमि निकल आती है। इस प्रकार भूमि उभर आने का समय श्रावण-भाद्रपद के दो महीने विशेष रूप में होते हैं। किन्हीं क्षेत्रों में थोड़ा आगा-पीछा भी रहता है इन्हीं, दो महीनों में उस भूमि में दबी वनस्पतियाँ अचानक उभर आती हैं। अंकुरित और पल्लवित तो वे पहले से भी किसी रूप में बनी रहती हैं, पर गर्मी पाते ही बसंत काल की तरह द्रुतगति से विकसित होती हैं। इन दो महीनों में ही उनका जीवनकाल पूरा हो जाता है। इस अवधि में वे पूरी तरह फूल-फल लेती हैं । मध्यम ऊँचाई के हिम पर्वतों में दो महीने का बसन्त रहता है। उनमे विशेषतया छोटे-बड़े आकार की जड़ी-बूटियाँ फूलती हैं। दूर-दूर तक फूलदार मखमली गलीचे जैसे बिछे दिखाई पड़ते हैं । उस नयनाभिराम दृश्य को देखते-देखते मन नहीं भरता। प्रकृति का यह अद्भुत कला कौशल दर्शक को भाव-विभोर कर देता है। ऐसे फूलों की घाटी देवात्मा हिमालय क्षेत्र में दर्जनों हैं, उनमें से हेमकुण्ड वाली अधिक प्रख्यात है। केदारनाथ के ऊपर वाला क्षेत्र भी ऐसा ही है। फलने के बाद यह वनौषधियाँ फलती हैं। पकने पर बने हुए बीज धरती पर बिखर जाते हैं। इसके बाद बर्फ पड़ने लगती है। बीज उसके नीचे दब जाते हैं। प्रायः आठ महीने उपरान्त बर्फ पिघलने पर यह जमीन फिर खुलासा होती है। इस बीच में बीज भूमि में अपनी जड़े जमा लेते हैं, अंकुरित हो लेते हैं। धूप के दर्शन होते ही वे तेजी से बढ़ते, पल्लवित होने पर फूलने-फलने लगते हैं। यह उनके दृश्य स्वरूप की चर्चा हुई । इन वनस्पतियों के गुणों की नये सिरे से खोज होने की आवश्यकता है। इन्हें पुष्प-वाटिका के समतुल्य नहीं माना जाना चाहिए, वरन् समझना चाहिए कि इनमें एक से एक बढ़े-चढ़े गुणों वाली, शरीरिक और मानसिक रोगों का शमन करने वाली, जीवन शक्ति एवं दीर्घ आयुष्य प्रदान करने वाली वनस्पतियाँ हैं। चरक युग में तत्कालीन वनौषधियों की खोज हुई थी। आयुर्वेद का औषधि खण्ड उसी आधार पर बना था। उस बात को अब लम्बा समय बीत गया। कितनी ही लुप्त हो गयीं और कितनी ही प्रजातियाँ नये सिरे से उत्पन्न हो गयीं। यदि उनका विश्लेषण वर्गीकरण परीक्षण किया जाय तो नये सिरे से फिर आधुनिक औषधि शास्त्र विनिर्मित हो सकता है। इस क्षेत्र की कितनी ही वनस्पतियाँ अभी भी प्रख्यात किन्तु दुर्लभ हैं। रात्रि को प्रकाश देने वाली ज्योतिष्मती, संजीवनी, रुन्दती, सोमवल्ली आदि को देव वर्ग का माना जाता है। इनमें मृत-मूर्च्छितों को नवजीवन प्रदान करने की शक्ति मानी जाती है। वृद्ध च्यवन ऋषि ने इन्हीं के आधार पर जराजीर्ण वृद्धावस्था को नवयौवन में परिवर्तित करके कायाकल्प जैसा आनन्द उठाया।

देवी सहायता मात्र पुण्य प्रयोजनों के लिए

मादक द्रव्यों की भाँति सम्पदाओं सफलताओं का भी एक नशा होता है। जिन्हें असाधारण रूप से बल, वैभव, पद, गौरव आदि मिलता है वे अहंता की मादकता से उन्मत्त जैसे हो जाते हैं। मर्यादाओं को तोड़ने, वर्जनाओं की उपेक्षा करने और अपराधी स्तर के उद्धत आचरणों में निरत होने लगते हैं। अनुकरण की छूत एक से दूसरे को लगती है। अनाचार 'उत्पीड़न की प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। प्रतिशोध प्रति प्रतिशोध का क्रम चल पड़ता है। नियति भी उद्धतों को प्रताड़ित किये बिना चैन ले कर बैठती है। मनःस्थिति में घुसी हुई विषाक्तता परिस्थितियों में विग्रह विद्रोह के तत्त्व उभारती है। संघर्ष खड़े होते हैं साथ ही प्रकृति भी अनेकानेक प्रतिकूलताएँ विपत्तियाँ, विभीषिकाएँ बरसाने लगती है। अशान्ति के अनेकानेक विस्फोट फूटने लगते हैं। वातावरण संकटों, असन्तोषों के अभावों से भर जाता है।

मनुष्य यों चाहे तो चिन्तन, चरित्र, व्यवहार की उत्कृष्टता बनाये रहकर सुख शान्ति का माहौल बनाये रह सकता है। स्नेह सहयोग की नीति अपनाकर हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सकता है। जितने साधन उपलब्ध हैं उन्हें मिल बाँटकर खाते हुए प्रगति और प्रसन्नता भरपूर मात्रा में उपलब्ध कर सकता है, पर वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसा करता नहीं है। क्षुद्रता जब भी साधन सम्पन्न होती है, तभी विष उगलती है। कुमार्ग अपनाने का प्रतिफल विपत्तियों और विग्रहों के रूप में ही सामने आ सकता है।

यही सब बार-बार होता रहता है। अनैतिकता की अराजकता बार-बार उभरती रहती है। समुद्र में ज्वार और पवन में तूफान आने की तरह जब मानवी क्रिया-कलापों में अनैतिकता की अराजकता उभरती है तो विश्व संतुलन बिगड़ने लगता है। यदि वह उसी रूप में चलता रहे तो महाविनाश जैसे विग्रह खड़े होते हैं। इनकी रोकथाम आवश्यक है। असंतुलन को संतुलन में बदलने से ही बात बनती है। उफानों को रोकने के लिए चूल्हे की जलती अग्नि बुझानी पड़ती है और उफनते झागों में पानी डालना पड़ता है। इसकी व्यवस्था भी नियंता ने बना रखी है। संतुलन की जिम्मेदारी देवात्माओं सिद्ध-पुरुषों को सौंपी है। उनकी विशिष्टता का उपयोग इसी में है कि सृष्टि के बिगड़ने वाले संतुलन को समय-समय पर नियन्त्रित करते रहें। प्रगति के मार्ग में अड़े हुए अवरोधों को हटाते रहें। यह एक प्रकार से सृष्टा का हाथ बटाना है। विश्व-उद्यान के मालियों को यही करना पड़ता है। वे उसे समुन्नत बनाने के लिए खाद पानी की व्यवस्था करते, खरपतवारों को उखाड़ते और उजाड़ने वाले तत्त्वों से निपटते हैं। देवात्माओं की शक्ति सामर्थ्य इसी प्रयोजन में निरत रहती है। वे अधर्म के उन्मूलन और धर्म के संस्थापन वाली ईश्वरीय इच्छा को पूर्ण करने में अपनी सत्ता और क्षमता को होमते रहते हैं। गिरों को उठाते उठने वालों को बढ़ाते, भटकों को राह दिखाते और पीड़ितों की सहायता करते हैं। आत्मा की गरिमा इसी में है कि वह अपना दुलार बिखेरे और वैभव बाँटे। अनीति से निपटे। नीति को बढ़ाये और बिगड़े हुए संतुलन को बनाये। देवात्माएँ यही करती रहती हैं। अपनी अपूर्णता दूर करने के लिए योग तप का आश्रय लिया जाता है। साथ ही जो कुछ उच्चस्तरीय वैभव प्राप्त होता है उसे सत्प्रवृति संवर्धन में लगाया जाता है। सिद्ध पुरुषों का यही एक मात्र क्रिया-कलाप रहता है। वे बादलों की तरह सुसम्पन्न बनते हैं और अपनी विभूतियों को आवश्यक प्रयोजनों के लिए भू-खण्डों पर बरसा देते हैं।

सिद्ध पुरुष इसी के लिए अवसर की तलाश में रहते हैं। जहाँ अपने सहयोग की आवश्यकता समझते हैं, वहाँ उसे बिना माँगे अहैतुकी कृपा के रूप में मुक्तहस्त से बिखेर देते हैं। साथ ही ऐसे सुसंस्कारी व्यक्तियों को भी ढूँढते रहते हैं जिन्हें सामान्य से असामान्य बनाकर अपने ऊपर लदे हुए दायित्व में भागीदार बनाने के लिए सहयोगी स्तर तक विकसित किया जा सकें। साधक ऐसे ही व्यक्तित्वों को कहते हैं। पुण्य परमार्थ की उमंगों को उभारना ही साधना है। साधकों को सिद्धों की और सिद्धों को साधकों की आवश्यकता पड़ती है। दोनों एक दूसरे को खोजते हैं। संयोग मिल जाने पर अन्धे-पंगे का संयोग बनाकर अपूर्णता को पूर्णता में बदलते हैं।

सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शक्ति प्रधान होते हैं। उनका सूक्ष्म शरीर होता है । साधक की स्थिति स्थूल शरीर में समाहित होती है। स्थूल की वरिष्ठता सूक्ष्म के संयोग से प्राप्त होती है। काया की वरिष्ठता प्राण बाहुल्य में है। साधक को काया और सिद्ध मात्र सूक्ष्म होने से प्रत्यक्ष हलचलों के संयोजन में असमर्थ रहता है। इसी प्रकार एकाकी साधक प्राण-शक्ति की न्यूनता के कारण वैसा कुछ कर नहीं पाता जिसे अलौकिक या चमत्कार कहा जा सके ऐसा बन पड़ना दोनों के संयोग से ही सम्भव होता है। इसलिए सिद्ध साधकों की और साधक सिद्धों को तलाशते देखे गये हैं। जब संयोग मिल जाता है तो दोनों पक्ष कृतकृत्य हो जाते हैं । दो पहियों की गाड़ी सरपट दौड़ने लगती है।

सिद्ध पुरुषों का प्रधान कार्य सृष्टि का संतुलन बनाये रहना है। इसके लिए उन्हें साथी सहयोगियों की आवश्यकता पड़ती हैं। इसलिए उत्सुकता पूर्वक सत्पात्र साधकों को तलाशते रहते है । साधकों के लिए अपने बलबूते अधिक कुछ कर सकना सम्भव नहीं होता। बालक को अभिभावक का, अध्यापक का सहयोग चाहिए। इसके बिना एकाकी निर्वाह या विकास बन नहीं पड़ता। साधक भी उच्चस्तरीय उत्कर्ष के लिए समर्थ सहयोगी की आवश्यकता अनुभव करता और उसे खोजता है।

साधक और सिद्ध आदर्श मार्ग के दो पथिक हैं। दोनों ही दो बैलों की तरह एक जुए में जुतते हैं जिसका ढाँचा विश्व संतुलन का परिवहन करते रहना है। एक दूसरे का सहयोग पाकर कृतार्थ भी होते हैं और सच्चे मन से सहयोग भी करते हैं। पहुँचना तो दोनों को एक ही गन्तव्य पर है।

इसके विपरीत एक ऐसी अड़चन भी है जो दोनों के बीच कभी सच्चा सहयोग बनने ही नहीं देती। वह है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ललक लिप्सा। कामना स्वार्थ परता। देखा गया है कि तथाकथित आध्यात्मवादियों में से अधिकाँश ऐसे होते हैं जो सम्पन्नता सफलता के भौतिक प्रयोजना के लिये किन्हीं देवताओं अथवा देवपुरुषों का श्रम उपार्जित वर्चस्व मुफ्त में ही लूटना चाहते हैं। इसके लिए अपने को भक्त सिद्ध करने का मुखौटा लगाते हैं । आकुल-व्याकुल फिरते हैं।

भक्त वेषधारी जो भी सोचते हो पर देवात्माओं की अन्तर्दृष्टि आर-पार जाने वाली होती है। उन्हें वस्तुस्थिति समझने में कभी भ्रम नहीं होता। उन्हें किसी बहाने फुसलाया नहीं जा सकता।

जिसके नाम की चिट्ठी होती है पोस्ट मैन उसका घर तलाशता हुआ स्वयं पहुँच जाता है। खिले फूल की गंध पाकर भौंरे, तितलियाँ, मधुमक्खियाँ स्वयं ही दौड़ जाती हे। इसी प्रकार जिन आत्माओं में उदात्त चिन्तन, आदर्श चरित्र, स्नेह-सद्भाव का विकसित स्वरूप दीख पड़ता है, उन्हें सिद्ध पुरुष अपने लिए उपयोगी मान लेते हैं और उन्हें समीप लाने के लिए अर्जित विभूतियों द्वारा निहाल करने के लिए स्वयं ही उन्हें खोज लेते हैं। उनके घर पर जा पहुँचते हैं विवेकानन्द के घर रामकृष्ण परमहंस स्वयं पहुँचे थे। शिवाजी से समर्थ गुरु रामदास ने किसी बहाने स्वयं सम्पर्क बनाया। चाणक्य और चन्द्रगुप्त का सुयोग भी इसी प्रकार बना। ऐसे सुयोग घर जाकर भी बनाये जा सकते हैं और अपने आकर्षण से कहीं बाहर बुलाकर उनसे सम्पर्क साधा जा सकता है। हर हालत में इसमें परख चयन, आमन्त्रण, आकर्षण समर्थ शक्तियों का ही होता है। अनुग्रहकर्त्ता तो निमित्त मात्र होते हैं।

कई कौतूहल को कसौटी मानकर उनकी तलाश में निकलते हैं और कामना पूरी करने के लिए उनका अनुग्रह चाहते हैं। वे भूल जाते हैं कि कोई निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी पर किसलिए अनुदानों की वर्षा करेगा? परमार्थ के लिए तो उदारचेत्ता बड़े-बड़े दान दे देते हैं। हरिश्चन्द्र दधीचि, भामाशाह आदि ने जब उच्च प्रयोजन सामने खड़े देखे तो उनकी झोली भर दी। पर हट्टे कट्टे भिखारी जब कोई बहाना बनाकर भीख माँगने निकलते हैं तो उन्हें दुत्कार ही मिलती है। आध्यात्म क्षेत्र में समर्थों के विशिष्ट अनुदान सत्पात्रों को मिलने की परम्परा रही है। लालची, स्वार्थी जब मतलब गाँठने के लिए भीख माँगने या जेब काटने के लिए अपने को अध्यात्मवादी लवादे में लपेटते हैं तो उनकी पोल तत्काल खुल जाती है। ऐसे लोगों को निराश होकर ही वापस लौटना पड़ता है।

जिन लोगों ने इस प्रकार की खोज में लम्बी दौड़ धूप की है वे निराश होने पर अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए मनगढ़ंत कहानियाँ बना लेते हैं और परिचित लोगों के आगे सिद्धों से भेंट के लम्बे किस्से सुनाते हैं। इस कौतूक को सुनने से किन्हीं का मनोरंजन तो हो सकता है। आरम्भ में कुछ समय के लए असमंजस युक्त विश्वास भी कर लेता है, पर वस्तुस्थिति प्रकट होने में देर नहीं लगती। जब व्यक्तित्व और व्यवहार में किन्हीं उच्चस्तरीय गतिविधियों का समावेश नहीं दीखता तो वे समझ लेते हैं कि कथन में प्रपंच मात्र था। पारस को छूकर लोहा सोना बन जाता है। स्वांति की बूँद से सम्पर्क होने पर सीप मोती बन जाती है। चन्दन वृक्ष के समीप उगने वाले झाड़-झंखाड़ महकने लगते हैं तो कोई कारण नहीं कि सिद्ध पुरुषों की अनुकम्पा पाने वाला घटिया जीवन जीता रहे और वचकानी प्रवृत्तियों के बाड़े में कैद रहे। गाँधी की आत्मीयता पाकर विनोबा विनोबा बन गये थे। सिद्धपुरुषों का उद्देश्य किन्हीं लालची अंहकारी लोगों की कामनाएँ पूरी करते फिरना नहीं है। न वे इसके लिए अपनी तपस्या को कूड़े के ढेर पर बिखेरते हैं। उनकी स्वयं की सत्ता उत्कृष्टता का परिपोषण करने के लिए समर्पित हुई तो वे अपने बहुमूल्य तप का समापन किसी को कौतूहल दिखाने के लिए-किन्हीं की ललक लिप्साएँ पूरी करने के लिए क्यों खर्च करेंगे ? इस नग्न सत्य को ऐसे हर व्यक्ति को भली प्रकार समझ लेना चाहिए जो सिद्धपुरुषों को खोजने और उनसे लाभ उठाने के लिए जहाँ-तहाँ भटकते हैं, उन्हें वरदान अनुग्रह प्राप्त करना तो दूर दर्शन तक का लाभ नहीं मिलता। भले ही उनकी मौजूदगी समीपवर्ती क्षेत्र में ही क्यों न हो !

कभी-कभी ऐसा होता देखा गया है एक ठग को दूसरा बड़ा ठग अपने चंगुल में फँसा लेता है और पकड़े हुए शिकार को झोली में डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। प्रेत पिशाचों में से यक्ष गंधर्वों में से कुछ ऐसे मनचले होते हैं जो इन प्रपंची लोगों की मनोभूमि को ताड़ लेते हैं और उन्हें फँसाकर मन माने कृत्य कराने के लिए वाहन जैसा उपयोग करते हैं। यह वर्ग भी सूक्ष्म शरीर-धारी होता है। निकृष्ट वर्ग में गिने जाने पर भी वेष बदलकर किसी भी रूप में प्रकट होने की कला में अभ्यस्त होता है। उनके लिए सिद्ध पुरुषों जैसा रूप बना लेने में भी कठिनाई नहीं होती। मूर्खों के साथ वे धूर्तों जैसा व्यवहार करते हैं। कौतूहल दिखाकर उन्हें मन्त्र मुग्ध कर लेते हैं और सम्मोहित की तरह उन्हें उंगली के इशारे पर कठपुतली की तरह नचाते हैं। इस प्रकार जकड़ें पकड़े गये लोग भी अपने को सिद्धपुरुषों के साथ सम्पर्क

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होंने की मान्यता में जकड़ जाते हैं और उनकी इच्छानुसार उचित अनुचित का विचार किये बिना हेय कृत्य करने लगते हैं । अघोरी कापालिक, ताँत्रिक स्तर के लोग इसी प्रकार के कुचक्र में फँसे हुए होते हैं। सन्त का जीवन आदर्शवादी और परमार्थ परायण होना चाहिए। पात्रता और प्रामाणिकता उनकी महानता को सिद्ध करने वाली कसौटियाँ सही सिद्ध करती दीख पड़नी चाहिए, पर इसके विपरीत जब दीख पड़ता है कि कोई संत वेष धारण करके भी अभक्ष्य खाता, अपेय पीता अपवित्र उपकरण धारण करता और कुकर्मों में निरंत रहता दीख पड़ता है तो समझा जाना चाहिए कि वह किसी प्रेत पिशाच का वाहन बन गया या किसी वेतालयोनि ने इसे अपने फंदे में फँसा लिया। ऐसे लोगों की गतिविधियाँ मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि हेयकृत्यों में संलग्न रहती हैं। वे इसी प्रकार की चर्चाएँ एवं चेष्टायें करते हैं। नाम तो देवता सिद्ध होने जैसा लेते हैं, पर वस्तुत: वे किन्हीं प्रेत पिशाचों क वशवर्ती होते हैं । वे ही विलक्षण वस्तुएँ लाकर दिखा देने कौतूहल प्रकट करने जैसी आश्चर्य चकित करने वाले कृत्य करते देखे जाते हैं। इन प्रदर्शनों का उद्देश्य मात्र चकित व्यक्तियों को सम्मोहन जाल में फँसा लेना मात्र होता है।

देवात्मा हिमालय-सिद्ध पुरुषों की कार्य-स्थली

हमारे मार्ग-दर्शक सत्ता के हिमप्रदेश में निवास करने एवं वहाँ से उनका मार्ग-दर्शन करने सूक्ष्म शरीर से उनकी पूजा स्थली में प्रगट होने का प्रसंग पढ़कर पाठकों को हिमालय के संबंध में कुछ उत्कण्ठाएँ-जिज्ञासाएँ हो सकती हैं । मोटी दृष्टि तो यही कहती है कि गिलगित की पाकिस्तान रूस से लगी हिमाच्छादित चोटियों से लेकर अरुणाचल व बर्मा तक तथा गढ़वाल की पहाडियों से लेकर तिब्बत के पठार तक छाया सारा ही प्रदेश हिमालय है । तो वे हिमालय में किस क्षेत्र से आए ? हिमालय में ऐसी क्या विशेषता है ?

भूगोल वेत्ताओं, भू गर्भ वेत्ताओं, पर्यावरणविदों की दृष्टि में हिमालय आल्पसपर्वत की तरह ही मात्र हरीतिमा व बर्फ से ढकी एक पर्वत शृँखला हो सकती है जिसमें के दो एवं गौरीशंकर नामक विश्व की दो सर्वोच्च चोटियाँ भी हैं, किन्तु अध्यात्मवेत्ताओं की दृष्टि में वह दैवी चेतन सत्ता की, परोक्ष संचालन तंत्र की निवास स्थली है । भारतीय संस्कृति आर्ष संस्कृति के विकास की दृष्टि से हिमालय का प्रागैतिहासिक काल से ही बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है । हिमालय को धरती का स्वर्ग कहा गया है, जो कि गलता नहीं है । भौतिक और आत्मिक दोनों ही प्रगति की उच्चस्तरीय विभूतियों से भरी पूरी होने के कारण यह भूमि "स्वर्गादपि गरीयसी" कहलाती रही है। गरीयसी न मानें तो वह स्वर्ग तो है ही । क्योंकि जलधारा वाली भागीरथी ही नहीं देवलोक की ज्ञानगंगा का अवतरण एवं प्रदाह भी इसी क्षेत्र से ही आरंभ होता रहा है । विशेष रूप से उत्तराखण्ड जिसे देवात्मा हिमालय का हृदय कहा जाता है, दुर्गम् हिमालय नाम से जाना जाता है, विशिष्ट ऋषिसत्ताओं की तपस्थली है एवं अध्यात्म चेतना का ध्रुव केन्द्र है ।

श्रीमद् भागवत में (स्कन्द बारह, अध्याय २) हिमालय के इस क्षेत्र में सिद्ध पुरुषों का निवास बताया गया है जो सारे विश्व में कल्याण की कामना हेतु सतत् तप करते रहते हैं एवं सूक्ष्म शरीरधारी होते हैं । ऐसा ही कुछ कथन 'थियॉसाफी' की संस्थापिका मैडम ब्लैवटसकी का है जो इसे सिद्धों की पार्लियामेन्ट मानती हैं परमहंस योगानन्द जी "आटोवयोग्राफी ऑफ योगी" एवं स्वामी राम की "लिविंग विध हिमालयन मास्टर्स" में ऐसे अनेक प्रसंगों के उल्लेख हैं जिनमें हिमालय के सिद्धयोगियों के विलक्षण कर्तृत्वों का विवरण है । पाल ब्रण्टन ने एक पुस्तक लिखी हैं "इन सर्च ऑफ सीक्रेट इण्डिया" इसमें उनने भी अन्यान्य शोधकर्त्ताओं की तरह समर्थ सिद्ध पुरुषों का यहाँ अस्तित्व माना है ।

यदि इसे देवलोक माना जाता रहा हो तो भी कोई अत्युक्ति नहीं है । इतिहासकारों के अनुसार आर्यों का राजा इन्द्र था व उनके पुरोहित थे बृहस्पति । हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र इनकी राजधानी था । अन्याय देवता भी इसी क्षेत्र में निवास करते थे । तब हिमालय ऊँचा तो था, परन्तु इतना ऊँचा नहीं कि उसमें ठण्डक असह्य हो, वृक्ष वनस्पति न होते हों फिर उस समय के व्यक्तियों की जीवनी शक्ति भी अधिक बढ़ी-चढ़ी थी । इन दिनों गंगोत्री-गोमुख का जैसा क्षेत्र है, लगभग वैसा ही उस क्षेत्र की स्थिति थी, जिसे देवलोक कहते हैं ।

पाण्डवों ने अंत समय में स्वर्गारोहण जहाँ किया, वह पर्वत शृँखला स्वर्गारोहिणी नाम से अभी भी बद्रीनाथ, केदारनाथ के मध्य विद्यमान है । वसोधारा पठार के पास ही व्यास गुफा है, जहाँ महाभारत व अन्यान्य पुराण लिखे गए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संभवत: बाद में हिमयुग आने पर समुद्रों में भारी उथल-पुथल होने पर कई महाद्वीपों की आकृति-प्रकृति में अन्तर आया । इस उलट-पलट से गंगोत्री बद्रीनाथ शिखर ऊँचे उठ गए, ठण्डक बढ़ जाने से वह क्षेत्र हरीतिमा रहित हो गए एवं बाद में लौकिक प्रयोजनों की दृष्टि से आने वाले व्यक्तियों के कारण ऋषिसत्ताएँ देवसत्ताएँ भी नन्दनवन शिवलिंग, सुमेरू, चौखम्वा शिखरों के पृष्ठ स्थान पर चली गईं, जहाँ अभी भी उनका निवास माना जाता है ।

इस क्षेत्र के देवताओं की क्रीड़ा स्थली होने से तात्पर्य यह है कि ब्रह्मपरायण जीवन जीने वाले देवमानव कभी यहाँ रहकर वैज्ञानिक एवं दार्शनिक शोधों में निरत रहते थे । अपनी काया को ही प्रयोगशाला बनाते हुए वे सतत् इस दिव्य वातावरण में साधना करते थे, तथा उन निष्कर्षों के आधार पर उन गुत्थों का निर्माण करते थे, जिनसे जनसामान्य का मार्ग-दर्शन होता था । इस क्षेत्र के निवासी मूर्धन्य स्तर के थे । विज्ञान की प्रत्येक धारा में वे निष्णात् थे । तत्त्व-दर्शन उनका प्रिय विषय था । यदि कहीं इसी कारण इस क्षेत्र को स्वर्ग और निवासियों को देवता कहा गया हो तो वह अत्युक्तिपूर्ण है भी नहीं । दिव्यदर्शियों का कथन है कि ब्रह्माण्ड की सधन अध्यात्मचेतना का धरती पर विशिष्ट अवतरण इस क्षेत्र की भू-चुम्बकीय व आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण इसी क्षेत्र में होता है । जो मान्यता उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव को भौतिक क्षेत्र में मिली है, वही अध्यात्म क्षेत्र में हिमालय के हृदय को मिली है । इसीलिए यदि ब्रह्माण्ड में कहीं बुद्धिमान प्राणी रहते होंगे तो उनके साथ भी देवमानवों की घनिष्टता रही हो, आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता हो, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । महत्त्वपूर्ण विद्याओं, कलाओं विभूतियों का भण्डार वहाँ होने की बात समझ में भी आती है ।

नारदजी विष्णुजी से महत्त्वपूर्ण विचार विमर्श करने स्वर्गलोक संभवत: इसी मार्ग से जाया करते होंगे । पौराणिक आख्यानों के अनुसार दशरथ को इन्द्र द्वारा सहायता के लिए बुलाना, अर्जुन, का इन्द्र लोक जाना दधीचि का देवगणों को अस्थिदान, सुकन्या के आह्वान पर अश्विनी कुमारों द्वारा च्यवन ऋषि को नेत्रदृष्टि ही नहीं देना अपितु कायाकल्प कर देना आदि अनेक घटनाक्रम ऐसे हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि स्वर्ग कहीं भूमि पर ही होना चाहिए व वहाँ के देवमानवों का अंतरंग स्तर कहीं अधिक ऊँचा होना चाहिए ।

हिमालय को देवमानवों व ऋषिसत्ता ने अपना कार्य क्षेत्र बनाया हो तो इसके कई कारण थे । एक तो यह कि अधिक ऊँचाई के कारण अनगढ़ों, असुरों, नरपशु स्तर के व्यक्तियों का वहाँ तक पहुँचना व व्यवधान पहुँचाना सरल नहीं था । इसीलिए देवासुर संग्राम आये दिन न होने की सुविधा देवताओं को प्राप्त थी । दूसरी यह कि उस क्षेत्र में इतनी अधिक गुफाएँ कन्दराएँ, झीलें, प्रपात व गुप्त स्थान हैं जिनमें तापमान भी सहन करने योग्य होता है व उनमें निवास करते हुए तत्त्वज्ञान और विज्ञान की शोधें एकान्त में एकाग्रतापूर्वक कर पाना संभव होता था । यहाँ रहकर शांत चित्त से धर्म तंत्र की विविध उपलब्धियों से समस्त विश्व को लाभान्वित बनाने की योजनाएँ बनाना, साधन जुटाना सरल था । तपस्वी ऋषिगण एक प्रकार से अध्यात्म विज्ञान के शोधकर्ता एवं विभूति उत्पादक कहे जा सकते हैं । पातंजलि, चरक, आर्यभट्ट की प्रयोगशालाएँ यही थीं । एवं कणाद ने अणु विज्ञान की शोध यहीं की थी । ऐसी वैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ यहाँ थी एवं कणाद ने अणु विज्ञान की शोध यह की थीं जिनमें शरीर यंत्र और मन:तन्त्र के भीतर छिपे शक्तिशाली रहस्यों का अधिकाधिक अनावरण सम्भव होता था । शास्त्रों का सृजन, योगाभ्यास की उपलब्धियाँ, अध्यात्म दर्शन का विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्साशास्त्र, रसायन, शिल्पकला आदि की भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियाँ इसी क्षेत्र से निकल कर आती थीं और उनसे लाभान्वित होने वाले उसे स्वर्ग निवासी देवताओं का वरदान कहकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते थे ।

तीसरे यह कि उस क्षेत्र में सजीवनी बूटी रुदन्ती, ब्रह्मकमल जैसी अमृतोपम जड़ी बूटियाँ मिलती थीं । सोमरस यहीं उपलब्ध था जिसे पीकर देवमानव अजर अमर बने रहते थे । बहुमूल्य धातुओं स्वर्णादि की खदानें भी यहीं थी व अभी भी उनका बाहुल्य इधर बताया जाता है । वस्तुत: वातावरण में इतने अलौकिक तत्त्व इस स्थान विशेष में हैं कि इसे धरती के स्वर्ग की उपमा गलत नहीं दी गयी ।

जहाँ ऋद्धि सिद्धियों को अध्यात्म चेतना से अनुप्राणित हो सरलतापूर्वक अर्जित किया जा सकता हो, वहाँ देवता ही नहीं, देवमानव, सिद्धपुरुषों का समुदाय भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आकर निवास करता हो, तो इसे आश्चर्य नहीं मानना चाहिए ।

हिमालय के इस स्वर्ग केन्द्र की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि यहाँ स्थूल शरीर को सूक्ष्म शरीर में विकसित कर उसे इच्छानुसार लम्बी अवधि तक जीवित बनाये रखना संभव था । सूक्ष्म और स्थूल शरीर को समर्थ बनाने के उपरान्त स्थूल शरीर के न रहने पर भी मनुष्य का अस्तित्व सदियों तक बना रहता है । भूख, प्यास, निद्रा जैसी दैनन्दिन आवश्यकताओं को तब पूरा नहीं करना पड़ता । सूक्ष्म शरीर भले ही दिखाई न पड़े तो भी अधिक सामर्थ्यवान् बना रहता है व उसे महान् उद्देश्यों के निमित्त नियोजित करना संभव हो पाता है ।

अभी भी सूक्ष्म शरीर धारी ऋषिगण हिमालय के इसी हृदय की कन्दराओं, शिखरों दिव्य भूमियों पर विद्यमान हैं, जिन्हें अपना परिचय देना होता है या अदृश्य सहायता करनी होती है वे इच्छानुसार अपना शरीर प्रकट भी कर देते हैं । इसी सिद्धि के बल पर हिमालय के सिद्धपुरुष हिमयुग से भी पूर्व की संचित अपनी भाव तथा ज्ञान सम्पदा को यथावत् बनाये हुए हैं । सतत् तप में लीन होने के कारण वे अपेक्षाकृत अधिक समर्थ हो गये हैं । इन्हीं सूक्ष्म शरीरधारी ऋषियों से साक्षात्कार हिमालय यात्रा के दौरान परोक्षसत्ता ने पूज्य गुरुदेव से कराया था । इनका एक ही काम है पिछड़ों को बढ़ाना, गिरों को उठाना व उसके लिए कठोर तप करना। अध्यात्म मार्ग के जिज्ञासुओं को यह अविभावक की तरह संरक्षण व सुविधा प्रदान करते हैं ।

अपने गुरु से हिमालय की पावन भूमि पर सशरीर प्रथम साक्षात्कार का प्रसंग अप्रैल १९८५ की अखण्ड-ज्योति में वर्णन करते हुए कहा गया है—"तपोवन का पठार चौरस है । फिर पहाड़ियों की ऊँची श्रृंखला है । इसके बाद नन्दन वन आता है । हमें यहीं बुलाया गया था । समय पर पहुँच गए । देखा तो गुरुदेव खड़े थे । प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । हमारी का भी और उनका भी । वे पहली बार हमारे घर आए थे और अब हम उनके यहाँ आए थे । यह सिलसिला जीवन भर चलता रहे तो इस बंधे सूत्र की सार्थकता है ।" "_बात-चीत का सिलसिला थोड़े समय में ही पूरा हो गया । अध्यात्म शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रचण्ड मनोबल सम्पादित करना, प्रतिकूलताओं को दबोचकर अनुकूलता में ढाल लेना, मौत से भी न डरना, ऋषिकल्प आत्माओं के लिए तो यह स्थिति नितान्त आवश्यक है । तुम्हें ऐसी परिस्थितियों के बीच अपने जीवन का बहुत समय गुजारना है ।"

'उस समय की बात समाप्त हो गयी_ वहीं बहते निर्झर में स्नान किया, संध्या वन्दन भी । जीवन में पहली बार ब्रह्मकमल और देवकन्द देखा । योगनिद्रा ला देने वाली सुगन्ध देने वाला ब्रह्मकमल, हफ्तों तक क्षुधा तृप्ति कर देने वाला देवकन्द गुरुदेव के यही दो प्रत्यक्ष उपहार थे । इसके बाद तपोवन पर दृष्टि दौड़ाई । पूरे पठार पर मखमली फूलदार गलीचा-सा बिछा था ।"

उपरोक्त वर्णन सिद्ध पुरुषों की मार्ग-दर्शन शैली व हिमालय के सौन्दर्य का परिचायक है । यों हिमालय के प्रकृतिगत सौन्दर्य का वर्णन अपनी १९६१ की तीसरी हिमालय यात्रा में "सुनंसान के सहचर" प्रसंग में विस्तार से किया है, पर यहाँ अपने गुरु से प्रथम साक्षात्कार का प्रसंग यही विचार कर उद्धृत किया कि जिन्हें इस सौन्दर्य के रसास्वादन का हिमालय के प्रसंग में लाभ न मिल पाया हो वे भी वंचित न रहें ।

आगे ऋषि सत्ता से साक्षात्कार प्रसंग में लिखा है—"रात्रि को गुरुदेव आए । उनके पैर जमीन से ऊपर उठे हुए चल रहे थे । आज यह जाना कि सिद्धियों में ऊपर हवा में उड़ने की, अन्तरिक्ष में चलने की आवश्यकता क्यों पड़ती है । मैं भी अधर ही अधर गुरुदेव के पीछे उनकी पूँछ की तरह सटा हुआ चल रहा था । आज की यात्रा का उद्देश्य पुरातन ऋषियों की तपस्थितियों का दिग्दर्शन कराना था । स्थूल शरीर सभी ने त्याग दिये थे, पर सूक्ष्म शरीर सभी के बने हुए थे ।"

"वे सभी ध्यान मुद्रा में थे । मुझे एक-एक का नाम बताया और सूक्ष्म शरीर का दर्शन कराया गया । यही है सम्पदा, विशिष्टता और विभूति सम्पदा, इस क्षेत्र की ।"

यह प्रसंग विस्तार से परिजन "हमारी वसीयत और विरासत" पुस्तक में पढ़ सकते हैं । अदृश्य शरीर धारी ऋषियों की पावनस्थली से परिचय कराने के उद्देश्य से इसे यहाँ दिया गया । वस्तुत: पृथ्वी का आध्यात्मिक ध्रुव केन्द्र हिमालय है, यह ऋषिसत्ता की विशिष्ट छावनी है । सूक्ष्म शरीरधारी देवात्मा सिद्धपुरुष प्राय: इसी क्षेत्र में रहते हैं । यह उच्चस्तरीय आत्माओं का एक प्रकार से प्रशिक्षण विद्यालय रहा है । सिद्धपुरुष सुयोग्य पात्रों को सिद्धियाँ अपने विभूति भण्डार से यहीं से देते रहते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही है हिमालय का वास्तविक स्वरूप जिसे जनसाधारण सामान्यतया समझ नहीं पाते । भगवान ने गीता में अकारण नहीं कहा है कि "स्थावरण हिमालय:" । हिमालय देखने में पाषाण खण्ड प्रतीत होता है, पर तात्विक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर वह एक प्रत्यक्ष देवता है । जीवन उसके कण-कण में है । आत्म-साधना की दृष्टि से इस क्षेत्र का सर्वोपरि महत्त्व प्राचीनकाल की तरह तभी भी बना हुआ है और सम्भवत: सदा बना ही रहेगा ।

धरती के मानव को देवात्मा हिमालय का संदेश

घटना आज की नहीं, पर है इसी शताब्दी की । उस वर्ष हिमालय में हिमपात अधिक हुआ था । श्री बद्रीनाथ जी के मन्दिर के पट वैसे सामान्य स्थिति में अक्षय तृतीया को खुल जाया करते हैं, किन्तु वे जब जोशीमठ पहुँचे तो यात्री वहीं रुके थे । वह अक्षय तृतीया वाराणसी में ही मनाकर चले थे । मार्ग में तीन-चार दिन तो ऋषिकेश तक में ही रुकते-रुकाते लग गए और तब मोटर-बसें केवल देव-प्रयाग तक जाती थीं । आगे का मार्ग उन्होंने पैदल पार किया ।

भाग्य-देवता कुछ अनुकूल लग रहे थे । जोशीमठ पहुँचने पर पता लगा कि आज ही शाम को पट खुलने वाला है । बद्रीनाथ पहुँचने पर देखा-मार्गों पर तीन-चार फुट बरफ पड़ी थी और दुकानदार फावड़ों से बरफ हटा कर अपनी दुकानों के द्वार खोलने की कोशिश में लगे हैं।

याद नहीं, दूसरे या तीसरे दिन बद्रीनाथ से आगे व्यासगुफा, सहस्त्रधारा तक चले गए । साथ में एक युवक पर्वतीय ब्राह्मण थे—मार्ग दर्शन के लिए । दो-तीन स्थानों पर उन्होंने अलकनन्दा की धारा बरफ के प्रकृति निर्मित पुल से पार की । लेकिन जब वे दोनों वसोधारा के ऊपर की गुफा पर चढ़ने लगे, तब मार्ग-दर्शक ने मना किया, लेकिन जैसे उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । इसी बीच पता नहीं कब उन्हें भाग्य भरोसे छोड़कर-मार्ग-दर्शक और मित्र दोनों वापस लौट गए ।

ऊपर किसी तरह वे पहुँचे भी और लौटे भी । लौटते समय या तो उनको मार्ग भूल गया अथवा जिस हिमनिर्मित पुल से उनने अकलनन्दा पार की थी, वह इतनी देर में टूट गया था । हुआ कुछ भी हो, उनको माना गाँव के पास होकर घूमकर आने के लिए विवश होना पड़ा ।

माना गाँव सुनसान पड़ा था । घरों के दरवाजों पर ताले सीलबन्द पड़े थे । वहाँ के निवासी जो सर्दियों में नीचे चले गये थे, अभी तक नहीं लौटे थे । जीवन में पहली बार एक जनहीन गाँव देखा-अद्‌भुत लगा वह सुनसान । वह कुछ और आगे बढ़ गए । सन्ध्या समीप थी । अस्ताचल से एक बार दिनपति ने जगती को देखा और उनके विराम की छाया सम्पूर्ण धरातल पर फैल गई । सम्पूर्ण हिमाच्छादित गिरि शिखर गैरिकवर्णी वीतराग संन्यासी के वेश में परिवर्तित हो गए । तरु-वीरुध और लताओं ने भी उसी वर्ण को अपना लिया । प्रत्येक शिला भी रंग गई उस रंग में । पक्षियों ने दिशाओं में मन्त्रपाठ प्रारम्भ किया । अचानक बादल घिर आए, वर्षा किसी भी क्षण सम्भव थी । उनके पास न छाता था न बरसाती कोट। अत: स्थान पर पहुँचने की शीघ्रता स्वाभाविक थी।

सहसा उनके पैरों ने चलना अस्वीकार कर दिया । उनकी क्या स्थिति हुई कहना कठिन है । स्वयं सोच लें-आस-पास कोई नहीं था । उज्ज्वल हिमाच्छन्न पर्वत और उसके पीछे एक जनहीन गाँव । मार्ग-दर्शक और मित्र तो कभी के चुपचाप खिसक चुके थे, जानने का कोई साधन था नहीं । सहसा सामने केवल दस गज दूर एक महाकाय आकृति आ खड़ी हुई । एक गम्भीर स्वर उभरा। कुछ क्षण लगे उन्हें अपने को आश्वस्त करने में। उनके सम्मुख वे जो कोई भी थे, कुछ आश्वासन दे रहे थे कि भय करने की जरूरत नहीं है । हाँ वे पुरुष थे—मानव पुरुष । किन्तु उनका विशाल शरीर जिसके सामने खड़े वह उनके घुटनों से कुछ ही ऊँचे लग रहे थे। नाभि से नीचे तक लटकती हिम धवल दाढ़ी-सुपुष्ट दीर्घ भुजाएँ और लेकिन—उनके तेजोमय मुख को भली प्रकार देख पाना सम्भव कहाँ था । वह-वहाँ खड़े थे—यही कहाँ कम था । "कौन हो तुम ?" उन्होंने शुद्ध देववाणी में पूछा था। ये भी संस्कृत के आचार्य थे । "गोपीनाथ"—अपना नाम बताकर संक्षिप्त परिचय दिया। इतनी देर में वे अपने को कुछ अधिक आश्वस्त अनुभव कर रहे थे । उन्हें पृथ्वी पर मस्तक रखकर प्रणाम किया । "गोत्र" प्रश्न हुआ । "सावर्णि"—उत्तर सुनकर वे इतने हँसे कि पर्वतमालाएँ काँपती हुई प्रतीत हुईं । "कोई विशेष बात नहीं" वे सौम्य स्वर में बोले—"तुम्हारे कुलपुरुष भगवान् विवस्वान के आत्मज सावर्णि हैं—आगामी मन्वंतर के मनु। तुम्हारा यह क्षीणकाय, उन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्तण्ड तनय के सम्मुख; मैं भी इतना ही ह्रस्वदेह, अल्पप्राण प्रतीत होने लगता हूँ । कहीं तुम अपने उन कुल पुरुष का साक्षात् कर सको तो ?_ । लेकिन वे इस बार हँसे नहीं । "भगवन् आप ?" जिज्ञासा उबरी " "मेरा जन्म त्रेता के अन्त में हुआ था ।" उन्होंने सहज भाव से कहा । "तब तक मानवदेह ह्रास को प्राप्त हो चुका था और तुम्हें तो देखकर लगता है_ ।" पता नहीं क्यों उन्होंने अपनी बात अधूरी छोड़ दी ।

इतने में गोपीनाथ जी को ध्यान आया कि पुराण वर्णित कलाप ग्राम कहीं यहाँ से पास होना चाहिए । अवश्य सामने जो दिव्य पुरुष उपस्थित हैं, वे वहीं के निवासी होंगे । उनके मन में उस भूमि के दर्शन की इच्छा प्रबल होने लगी ।

वत्स ! तुम ठीक सोचते हो, हिमालय का गौरव और वैभव अनन्त है । कलाप ग्राम ही क्यों-देवात्मा के इस ध्रुव केन्द्र में ऐसे अनगिनत स्थल हैं, जहाँ युग-युगान्तर साधनाएँ, तपश्चर्यायें, विशिष्ट-प्रयोग सम्पन्न होते रहे हैं—सम्पन्न हो रहे हैं । जहाँ तक भूमि का प्रश्न है, इन स्थानों पर तुम और तुम्हारे अनेक साथी आते-जाते रहते हैं;किन्तु उसके निवासी जब तक स्वयं न चाहें, उन्हें तुम देख नहीं सकते ।"

अद्‌भुत आश्चर्यजनक लगा—उस लोकोत्तर मानव का कथन । भला इन अति विशिष्ट मानवों के लिए प्रयोगों की क्या जरूरत ? अन्तराल में उभरे प्रश्न को उनकी सुविकसित संवेदना ने अनुभव कर लिया । "ऐसा मत सोचो, इनके प्रयोगों का उद्देश्य, स्वार्थ का जखीरा इकट्ठा करना अथवा अहं का सिक्का चलाना नहीं है । ये सभी देवपुरुष-ब्रह्माण्ड के हित में समर्पित हैं । तुम्हारे वैज्ञानिक और ज्योतिषी अनेक भविष्यवाणियाँ कर मानव के मन में हलचल पैदा कर देते हैं । सभी सुख-चैन की नींद को त्याग चिन्तातुर हो उस वक्त की प्रतीक्षा करते हैं और जब वक्त आता है—तब कुछ नहीं होता । भविष्य वक्ताओं के कथन अपने स्थान पर सही होते हैं, पर ये ही महापुरुष अपने प्रयोगों से स्थिति को टाल देते हैं । आज नहीं आगे भी देखोगे, युद्ध छिड़ेंगे, पर महाविनाश के पूर्व समझौते हो जायेंगे । लगेगा सभ्यता समाप्त हुई, पर कोई शान्तिदूत स्थिति संभाल लेगा ।"

"प्रयोग तो आश्चर्य जनक है, पर मानव भी विनाश के कगार पर है । हाँ-आमंत्रित तो यही कर रहा है । आज वह और उसका समाज अस्वस्थ है ।" "समाज, भी अस्वस्थ"—बात समझ में नहीं आ रही थी । "मनुष्य सदा दुर्बल रहा है ।" वे कह रहे थे— "उससे त्रुटि नहीं होगी, उसके पद वासना-विचलित नहीं होंगे, यह कभी सम्भव नहीं हुआ । पर पहले वह सुसंस्कृत बनने, स्वस्थ रहने के विज्ञान और विधान को स्वीकार कर देवत्त्व की ओर छलाँग लगाता था, आज इन्हें अस्वीकार कर कीट-पतंगों की तरह बिलबिला रहा है ।"

यह सब सुनकर उन्हें अनेक पौराणिक कथाएँ याद हो आयीं । मानस चक्षुओं के सामने उभरने लगें—वशिष्ठ, अगत्स्य, यज्ञवल्क्य के वे प्रयास जिन्होंने समूचे मानव जीवन को संस्कार महोत्सव बना डाला था । यदि ऐसी स्थिति आज बनायी जा सके । विचार तरंगों से स्पन्दित हो वे कह उठे—"स्थिति बनेगी वत्स ! धरती के मानव को हिमालय का संदेश देना—वह संस्कार के मंगल विधान को पुनः अपनाए । देवत्त्व की ओर बढ़ते प्रत्येक कदम को यहाँ की ऋषि सत्ताएँ सम्बल देंगी । देवात्मा हिमालय के संरक्षण में चल रहे प्रयोग भारत को केन्द्र बनाकर समूचे विश्व का कायाकल्प कर डालेंगे । उन दिव्य पुरुषों का यह प्रयोग अगले पचास वर्षों में पूरा होकर रहेगा । हाँ इस बीच धरती और धरती पुत्रों को बहुत कुछ सहना पड़ेगा ।

कुछ क्षण, पता नहीं कितने क्षण वे मस्तक झुकाये अपने चिन्तन में लीन रहे, अगली शताब्दी की दुनिया का स्वर्णिम चित्र उनके अस्तित्व में पुलकन भर रहा था । पता नहीं कितना समय इसमें बीत गया और जब उन्होंने नेत्र उठाए, सम्मुख कोई नहीं था । वही हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ, वही तीव्र—वेगा अलकनन्दा और वही पीछे सुनसान माना गाँव और हिमालय का शाश्वत् सन्देश—जिसके अनुरूप स्वयं को ढालकर गोपीनाथ प्राच्य विद्या के महान साधक महामहोपाध्याय डा. गोपीनाथ कविराज बन गए । सन्देश के स्वर शाश्वत् हैं—बस ग्रहणशीलता के लिए हमारी प्रतीक्षा है ।

देवात्मा हिमालय में ऋषि कल्प-ऊर्जा

प्रमुख ऋषियों के नाम से यों अनेक युग कल्पों में अनेक ऋषियों की नामवली जुड़ती, घटती और परिवर्तित होती रही है, पर उनमें से जिनके आदर्शों की स्थिति को देखते हुए कार्यान्वित किया जा सकना सम्भव हो सका है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हीं के लक्ष्य सामने रखकर उनकी गतिविधियों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया गया है । इसी को महासागर कह सकते हैं, जिससें अनेक नदियों का संगम-संमागम हुआ है ।

गंगा गोमुख से निकलती है और गंगा सागर में विलीन होती है । इस सुदूर मार्ग में सर्वत्र उसे गंगा ही कहा जाता है । यद्यपि उसमें बीच-बीच में अनेकों छोटी-बड़ी नदियाँ मिलती गयीं हैं । उसे उन सबकी सम्मिलित सम्पदा भी कहा जा सकता है । अखण्ड-ज्योति को ज्ञान गंगा कहा जाय तो मानना पड़ेगा कि वह किसी व्यक्ति या शक्ति का एकाकी प्रयास नहीं है, उसके साथ अनेक मूर्धन्य शक्ति केन्द्रों की दिव्य चेतना जुड़ती चली गयी है ।

हिमालय का उत्तराखण्ड क्षेत्र 'देवात्मा' शब्द से सम्बोधित किया जाता है । यों हिमालय अत्यन्त सुविस्तृत है । वह अनेक देशों की सीमाएँ छूता हुआ एक सुविस्तृत भूखण्ड घेरे हुए है । पर वह सभी ऋषि भूमि के रूप में जाना-माना नहीं जाता । मात्र वह खण्ड ही देव-भूमि है जिसमें ऋषियों ने तप साधना की थी । गहन चिन्तन-मनन से ऐसा नवनीत निकाला था जो भू-लोक निवासियों के लिए अमृतोपम सिद्ध हो सके । उनकी तपश्चर्याएँ व्यक्तिगत महत्वाकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए नहीं वरन् विश्व-कल्याण के लिए सम्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए थीं । इन्हीं दोनों में उन्होंने स्वर्ग और मुक्ति का दर्शन किया था । आज देवपूजा तो बहुत है, किन्तु ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित मानवी गरिमा की अभ्यर्थना करने का किसी का मन नहीं है । वस्तुत: देव विभूतियाँ, ऋषि कल्पों में होकर ही अपना आलोक प्रकट करती और सम्पर्क साधने वाले को निहाल करती है । देवताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क साधना कठिन है, पर मनुष्य रूप में अवतरित हुए ऋषियों का जीवित होने पर स्थूल शरीर और दिवंगत होने पर उनका सूक्ष्म शरीर और भी अधिक समर्थता के साथ काम करता रहा है । इतिहास साक्षी है कि देवात्माओं के अनुदान मनुष्यों को ऋषियों के माध्यम से ही उपलब्ध होते रहे हैं । इसीलिए गुरु को गोविन्द से भी बढ़कर माना गया है । वस्तुत: ऋषि परम्परा ही अविनाशी गुरु सत्ता है । उसी को ब्रह्मा-विष्णु-महेश की उपमा दी जाती रही है । मंत्रदाता जीवित गुरु तो ऋषि परम्परा के प्रतीक मात्र होते हैं । ऋषियों की तपोभूमि होने के कारण ही उस क्षेत्र को 'देवात्मा हिमालय' के नाम से सम्बोधित किया जाता है । शान्ति-कुन्ज की स्थापना के पीछे उसी महान् परम्परा को पुनर्जीवित करने का संकल्प है । इसी संकल्प के अन्तर्गत उन सभी प्रवृत्तियों का इस एक स्थान में केन्द्रीकरण किया गया है, जिसके लिए ऋषियों की समस्त सत्ता सर्वतोभावेन समर्पित हुई थी ।

उद्देश्य की प्रथम झलक झाँकी में दिग्दर्शन कराने के लिए 'देवात्मा हिमालय' का एक भव्य देवालय है । उसमें उस क्षेत्र के प्रमुख स्थानों का उतार-चढ़ावों का, नदी-सरोवरों का दिग्दर्शन कराया गया है । देवालयों की दृष्टि से यह अपने ढंग का अनोखा मंदिर है जैसा अयन्त्र कहीं नहीं दीख पड़ेगा । वस्तुत: इस धरित्री का पुण्यतम और आध्यत्मिक शक्तियों से भरा पूरा क्षेत्र यही है । तपश्चर्या के लिए इसी क्षेत्र को प्रमुखता मिलती रही है ।

हिमालय देवालय के समीप के सप्त ऋषियों के छोटे-छोटे देव मंदिर हैं । साथ ही इस क्षेत्र के प्रमुख तीर्थों के बड़े चित्र भी सुसज्जित ढंग से लगाये गये हैं ताकि यदि कोई एक क्षेत्र में इस दिव्य प्रकाश की दर्शन झाँकी करना चाहे तो कुछ ही क्षणों में उसके मन मस्तिष्क पर वहाँ का अक्श खिंच सके । गणेश जी ने धरती पर राम नाम लिख कर उसकी परिक्रमा करने भर से समस्त संसार के परिभ्रमण का पुण्य लाभ प्राप्त कर लिया था ।

देवता कहाँ हैं ? कहाँ नहीं ? इसके बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किन्तु हिमालय क्षेत्र में अभी भी सूक्ष्म शरीरधारी सिद्धपुरुषों की सत्ता मौजूद है । वे अपनी प्रेरणाओं को उपयुक्त सत्पात्रों तक भेजते और उनके द्वारा इच्छित प्रयोजनों की पूर्ति कराते हैं, जिनमें सूक्ष्म दर्शन की क्षमता है वे उनके साथ अपने प्रयत्नों से भी सम्पर्क साध सकते हैं ।

अनेकानेक महान् सन्त, ऋषियों ने अपने जीवन काल में कुछ जानने योग्य प्रयत्न, पुरुषार्थ किये थे । उनकी सशक्त गतिविधियों का सूत्र संचालन किया था । इनमें से कुछ का वर्णन इस प्रकार है—

(१) यमुनोत्री पर भगवान् परशुराम की तपश्चर्या सम्पन्न हुई थी । उन्हें महाकाल का काल कुठार उपलब्ध हुआ था। उन्होनें अनैतिकता, अवाँछनीयता, अन्ध-विश्वास एवं कुरीति परिकर का व्यापक उन्मूलन किया था ।

(२) गंगोत्री में भगीरथ ने तप किया था । उनने भगवती गंगा को स्वर्ग से धरती पर अवतरित होने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए बाध्य किया था । उस पुण्यतोया के गंगाजल से अनेक प्राणियों और वनस्पतियों को जीवन प्राण मिला था। सूखी धरती हरी-भरी हुई थी । इसका अध्यात्म विवेचन ज्ञान गंगा के अवतरण रूप में किया जाता है ।

(३) केदारनाथ के क्षेत्र में महर्षि चरक ने वनौषधि अन्वेषण किया था । आयुर्वेद परम्परा का वही प्रमुख भाग है ।

(४) बद्रीनाथ के निकट गुफा प्रसिद्ध है । महर्षि वेदव्यास ने गणेश जी की सहायता से अठारह पुराणों की संरचना की थी । साहित्य सृजन के माध्यम से उन्होंने स्वाध्याय प्रयोजन के लिए व्यापक व्यवस्था की थी ।

(५) त्रियुगी नारायण क्षेत्र में महर्षि याज्ञवल्क्य ने यज्ञ विज्ञान की सुविस्तृत शोध की थी । उस आधार पर इस महाविज्ञान के माध्यम से वातावरण की पवित्रता, वायुमंडल की परिशुद्धि, मानसिक आत्मिक व्याधियों का निराकरण सम्भव हुआ ।

(६) देवर्षि नारद ने गुप्तकाशी में तप किया । उनने संगीत के तत्त्वज्ञान और प्रत्यक्ष विज्ञान का आविर्भाव किया । उस अधार पर भावना क्षेत्र की संवेदन शीलता को प्रेम रस से सरानार करने में असाधारण सफलता पायी ।

(७) ज्योतिर्मठ-आद्य शंकराचार्य की तपस्थली है । वहाँ शक्ति अर्जित करके उन्होंने चार मठों और अनेकानेक तीर्थों की संस्थापना एवं उनका पुनरुद्धार किया ।

(८) महर्षि जमदग्नि का साधनाश्रम उत्तरकाशी था । उनका सुविस्तृत गुरुकुल आरण्यक चलता था जिसमें अगणित नर-रत्न महामानव विनिर्मित होते थे ।

(९) रुद्र प्रयाग में महर्षि पातन्जलि का चिरकाल तक साधनात्मक पुरुषार्थ चला । योगविज्ञान की अनेक शाखा-प्रशाखाओं का अनुभव, अभ्यास एवं प्रतिपादन किया । विश्व के अनेकानेक साधना विधान पातञ्जलि के सूत्रों की व्याख्या स्वरूप प्रगट हुए हैं ।

(१०) लक्ष्मण झूला में महर्षि पिप्पलाद ने आहार के आधार पर कायाकल्प जैसी विधियों का निर्माण किया था।

(११) महर्षि वशिष्ठ ने देव प्रयाग में राम बन्धुओं को अपने समीपवर्ती क्षेत्र में रखकर वेदान्तपरक अध्यात्म की शिक्षा दी थी, जिसका योगवशिष्ठ में विस्तारपूर्वक वर्णन है ।

(१२) महर्षि कणाद ने परमाणु विज्ञान की खोज की थी । उनकी तपस्थली हरिद्वार के सप्तधारा क्षेत्र में थी, जहाँ आज ब्रह्मवर्चस् की अनुसंधानशाला खड़ी है । जिस अणुशक्ति को आज विश्व की सर्वोपरि शक्ति माना जा रहा है, उसका कणाद ने अध्यात्म उपयोग समझा और उपयुक्त प्रयोजनों में उसमें प्रयोग की रूपरेखा तैयार की थी ।

(१३) महर्षि विश्वामित्र भी हरिद्वार के सप्तधारा क्षेत्र में ही अपना अधिकांश साधना काल बिताते रहे । उन्होंने गायत्री का तत्त्व-दर्शन प्रकट किया और नाद ब्रह्म-शब्द-ब्रह्म से संबंधित साममान की रूप रेखा बनाई । अभिनव विश्व की संरचना उन्हीं का स्वप्न था जो कारणवश कभी पीछे के लिए टल गया ।

यह संकेत रूप सर संक्षेप है । ऐसे अनेक ऋषि देवात्मा हिमालय के क्षेत्र में असाधारण तप अनुसंधान करते रहे हैं । वे एक प्रकार के अध्यात्म क्षेत्र की शोध करने वाले वैज्ञानिक ही थे । वे ऐसे उपाय सोचते और निकालते रहे जिससे समस्त विश्व के हर क्षेत्र में शालीनता, सद्भावना सम्पन्नता एवं सुव्यवस्था का उत्पादन अभिवर्धन होता रहे । उन्हें अपने लक्ष्य में आशातीत सफलता भी मिली । इसी आधार पर इस देश को जगद्गुरु चक्रवर्ती शासक और स्वर्ण सम्पदाओं एवं दिव्य विभूतियों का अधिपति कहलाने का श्रेय उपलब्ध हुआ ।

उपरोक्त ऋषि परम्परा के क्रिया-कलापों को यथासम्भव शांति-कुन्ज में कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया गया है, जो अब तक आशाजनक परिमाण में सफल एवम् अग्रगामी होता रहा है । इनके पीछे ऋषि तत्त्व का प्रकाश मार्ग-दर्शन एवम् सहयोग रहने के कारण इस उपक्रम की और भी उनेक परतें खुलने वाली हैं और प्रगति के उच्चशिखर पर पहुँच कर लोकमंगल मे महायोगदान दे सकने की स्थिति में पहुँचने वाली है ।

मनुष्य की शक्ति सीमित है । उसका शरीर-बल एवम् बुद्धि-बल नगण्य है । साधन और सहयोग भी वह एक सीमा तक ही अर्जित कर सकता है । आकांक्षाओं और संकल्पों की पूर्ति बहुत करके परिस्थितियों पर निर्भर है । यदि प्रतिकूलताओं का प्रवाह चल पड़े तो बनते काम बिगड़ सकते हैं । इसके विपरीति ऐसा भी हो सकता है कि राई को पर्वत होने का अवसर मिले । "मूक होंहि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाचाल, पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन" वाली रामायण की उक्ति प्रयत्यक्ष प्रकट हाने लगे और दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दे ।

जिनने कठपुतली का काम देखा है वे जानते हैं कि बाजीगर पर्दे के पीछे बैठा हुआ अपनी उँगलियों के साथ बँधे हुए तारों को इधर-उधर हिलाता रहता है और मंच पर एक आकर्षक अभिनय लकड़ी के टुकड़ों द्वारा सम्पन्न होने लगता है । हवा के झोंके तिनके एवं धूलि कणों को आकाश में उड़ा ले जाते हैं । पानी के प्रवाह में पड़कर झंखाड़ और कचरे के गट्ठर नदी-नालों को पार करते हुए समुद्र तक की लम्बी यात्रा कर लेते हैं । समझना चाहिए कि देवात्मा हिमालय क्षेत्र में स्थूल शरीरधारी और सूक्ष्म शरीर धारी ऋषि कल्प देव शक्तियों के संयुक्त मार्ग-दर्शन और अनुदान के सहारे शांति-कुन्ज की बहुमुखी गतिविधियाँ चल रही हैं । इसी की एक शाखा अखण्ड-ज्योति से निस्सृत होने वाली सप्त रंगों वाली सात किरणों की समुचित भूमिका निभा रही है ।

षडानन कार्तिकय को छः अग्नियों ने मिलकर पाला था । उन्हें प्रमुख छः देवताओं ने अपने-अपने अंश देकर सर्व शक्तिमान बनाया था । कुन्ती को भी सूर्य, धर्मराज, इन्द्र, मरुत की अनुकम्प से देव पुत्र प्राप्त हुए थे । एक बार पराजित देवताओं ने प्रजापति के तत्त्वाज्ञान में अपनी-अपनी शक्तियों का महत्त्वपूर्ण अंश सम्मिलित कर महाकाली का सृजन किया था । उसी संध शक्ति ने मधु, कैटभ, महिषासुर, शुभ-निशुभ, रक्तबीज जैसे दानवों को परास्त किया था । आसुरी आतंक से मुक्ति पाने के ऋषियों ने अपना रक्त एक घड़ा भर कर एकत्रित किया था और सीता ने जन्म लेकर धरती से दानवता का समापन और रामराज्य का संस्थापन किया था । समझा जा सकता है कि दिव्य विभूतियों से सुसम्पन्न ऋषिकल्प देवात्मा हिमालय के सिद्ध पुरुषों का संयुक्त वरदान, सम्मिलित अनुदान गायत्रीतीर्थ शान्ति-कुन्ज की पुण्य प्रक्रिया है । उसकी प्रखण्ड-ज्योति अपने दिव्य आलोक से युग चेतना का आलोक दसों दिशाओं में विकीर्ण कर रही है । उसकी प्रस्तुत गतिविधियों में यह देखा जा सकता है कि ऋषियों के भूत कालीन क्रिया-कलापों की मुखाकृति इन दिनों किस सरलता और सफलता के साथ सम्पन्न हो रही है ?

युग अवतरण का तात्पर्य है—मानवी गरिमा का पुनरुत्थान । चरित्र और व्यवहार का पतन से उत्थान की ओर अभिगमन । जहाँ जिस मात्रा में यह प्रयास चल रहा होगा, वहाँ समर्थता, सम्पन्नता, सुसंस्कारिता और प्रगति शीलता की कमी रह ही नहीं सकती ।

आत्म-साधना का उपयुक्त वातावरण हिमालय की छाया

श्रीमद्भागवत के बारहवें स्कन्ध में दूसरे अध्याय के तीसरे श्लोक में हिमालय में दिव्य सिद्ध पुरुषों का निवास बताया गया है और उनके समवेत होने के केन्द्र को कलाप कहा गया है । १० वें स्कन्ध के ८७ वें अध्याय के ५, ६, ७, श्लोकों में भी ऐसा ही वर्णन है । थिसोसाथी सम्प्रदाय के क्षेत्र में सिद्ध पुरुषों की 'पार्लमेन्ट' होने और अध्यात्म क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण फैसले होते रहने की बात कही गई है । 'ओटोवायो ऑफ योगी' ग्रन्थ में ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख है जिसमें हिमालय के सिद्ध योगियों के विलक्षण कर्तृत्वों का विवरण है । पाल ब्रिटन और रम्पा जैसे शोधकर्त्ताओं ने इस क्षेत्र में समर्थ सिद्ध पुरुषों का अस्तित्व पाया है । दो सौ वर्ष जीवित रहने वाले स्वामी कृष्णाश्रय ने हिन्दू विश्वविद्यालय की आधार शिला रखी थी । वे नग्न अवधूत की तरह हिम प्रदेश में निवास निर्वाह करते थे । जिन लोगों को भी ऐसे शरीरधारी और अशरीरी सिद्ध पुरुषों के साक्षात्कार यहाँ होते रहते हैं, जिनके उनके साथ सम्पर्क सधे हैं उनमें इन पंक्तियों का लेखक भी एक है ।

हिमालय में छोटे-बड़े देवस्थान हैं, उतने अन्यत्र मिलने कठिन हैं । अमरनाथ, ज्वालामुखी, हरिद्वार, केदारनाथ, बद्रीनाथ, गंगोत्री, पशुपतिनाथ तो प्रख्यात हैं ही, इनके समीपवर्ती क्षेत्रों में छोटे-छोटे तीर्थों की तो श्रृंखला ही बिखरी पड़ी है । ऋषीकेश से बद्रीनाथ जाने के मार्ग में ही देव प्रयाग, नन्द प्रयाग, कर्ण प्रयाग आदि कितने ही प्रयाग तथा उत्तरकाशी, गुप्त काशी, दिव्य काशी आदि कितने ही तीर्थ मिलते हैं । शिव और शक्ति के विभिन्न काम रूपों के देवस्थान थोड़ी-थोड़ी दूर पर गामों के समीप एवं पर्वतीय घाटियों से सर्वत्र पाये जाते हैं । सती के आत्म-विसर्जन का, पार्वती की तप साधना का यही स्थान है । शिव ताण्डव भी यहीं हुआ था । उस अवसर पर प्रयुक्त हुआ त्रिशुल उत्तरकाशी के एक प्राचीन स्थान में स्थापित बताया जाता है । जमदग्नि और परशुराम की तप साधना उत्तरकाशी में सम्पन्न हुई थी ।

आयुर्वेद, रसायन विद्या, अस्त्रसंचालन, साहित्य सृजन, योगानुसंधान जैसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग हिमालय क्षेत्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सुविस्तृत प्रयोगशाला में होते रहे हैं । सप्त ऋषियों के— महामनीषी देव मानवों के कार्यक्षेत्र इसी भूमि में रहे हैं । छात्रों के लिए गुरुकुल और श्रेयार्थियों के लिए आरण्यक यहीं थे । राजतंत्रों के सूत्र संचालक वशिष्ठ जैसे धर्माध्यक्षों के निवास इसी भूमि में थे । प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण ऋषि कल्प देवात्माओं की विविध-विधि गतिविधियाँ हिमालय की सुरम्य घाटियों और कन्दराओं में सुविकसित होती रही हैं । उन प्रयोगों से लाभान्वित होकर विशाल भारत के ३३ करोड़ निवासी ३३ कोटि देवता कहलाते रहे हैं । भौतिक और आत्मिक प्रगति की उच्चस्तरीय विभूतियों से भरी-पूरी होने के कारण भारत भूमि स्वर्गादपि गरीयसी कहलाती रही है । गरीयसी न सही स्वर्ग तो वह रही ही है । यह अनुदान हिमालय क्षेत्र से ही अवतरित होता रहा है । जलधारा वाली भागीरथी ही नहीं देव लोक की ज्ञान-गंगा का अवतरण एवं प्रवाह भी इसी क्षेत्र से आरम्भ होता रहा है ।

इतिहास और भूगोल की दृष्टि से स्वर्ग कोई ऐसा स्थान विशेष होना चाहिए जहाँ लोगों का आना-जाना बिना किसी विशेष कठिनाई के होता रहता हो । जहाँ भौतिक समृद्धियों और आत्मिक विभूतियों का बाहुल्य रहता हो । दशरथ, अर्जुन, नारद आदि के ऐसे कितने ही कथानक हैं जिनमें स्वर्ग जाना और वापिस आना उसी प्रकार बताया गया है, जैसे हम सामान्य स्थानों पर बिना अधिक कठिनाई उठाये आते-जाते रहते हैं । पाण्डवों के स्वर्गारोहण की तुक इस प्रकार बैठती है कि वे जीवन के अन्तिम दिनों उसी शान्तिमय क्षेत्र में निवास करने के लिए चले गये थे ।

पाण्डवों ने अन्त समय स्वर्ग के लिए प्रयाण किया था । वह स्वर्गारोहण पर्वत अभी भी वसोधारा पठार के आगे विद्यमान है । व्यास जी ने जहाँ महाभारत लिखा था वह व्यास गुफा वहीं है, उन्हीं के पास लिपिकार गणेश रहते थे । गणेश गुफा भी व्यास गुफ के समीप ही है । यह स्वर्ग क्षेत्र उस प्रदेश में था जिसे बद्रीनाथ और गंगोत्री का मध्यवर्ती भाग कह सकते हैं यही हिमालय का हृदय है ।

दिव्यदर्शियों का कथन है कि ब्रह्माण्ड की सघन अध्यात्म चेतना का धरती पर विशिष्ट अतवरण इसी क्षेत्र में होता है । भौतिक शक्तियों के धरती पर अतरण का केन्द्रबिन्दु विज्ञान जगत में ध्रुव प्रदेश को माना जाता है । अध्यात्म जगत में वैसी ही मान्यता इस हिमालय के हृदय के सम्बन्ध में है । यह स्वर्ग क्षेत्र ब्रह्माण्ड-व्यापी दिव्य-चेतनाओं का अवतरण केन्द्र है जहाँ शोध करते हुए तप करते हुए, महामनीषी अपने को देव शक्तियों से उसे सुसज्जित करते थे । अभी भी उस क्षेत्र में स्थूल और सूक्ष्म शरीरधारी दिव्य सत्ताओं के अस्तित्व पाये जाते हैं । वे अपने क्रिया-कलाप से समस्त भूमण्डल को प्रभावित करते हैं ।

इन्द्र देवता की सहायता के लिए दशरथ जी अपने रथ लेकर गये थे । पहिया गड़बड़ाने लगा तो कैकेयी ने अपनी उंगली लगाकर उस विपत्ति का समाधान किया था । ठीक इसी प्रकार का एक और वर्णन यह मिलता है कि अर्जुन इन्द्र की सहायता करने गये थे, प्रसन्न होकर इन्द्र ने अर्जुन को रूपसी, उर्वशी का उपहार दिया था जिसे उसने अस्वीकार कर दिया था । जहाँ मनुष्यों का आवागमन सम्भव हो सके ऐसा स्वर्ग धरती पर ही हो सकता है । इन्द्र और चन्द्र देवताओं का गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या से छल करना धरती पर ही सम्भव है । दधीचि ने अपनी अस्थियाँ याचक देवताओं को प्रदान की थीं । आदि-आदि अगणित उपाख्यान ऐसे हैं जिसमें देवताओं और मनुष्यों के पारस्परिक घनिष्ठ सहयोग की चर्चा है । इन पर विवेचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो उसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि स्वर्ग कहीं भूमि पर ही होना चाहिए और देवता, मनुष्यों का कोई वर्ग विशेष ही होना चाहिए । इसका समाधान उत्तराखण्ड को देव भूमि स्वर्ग मान लेने से ही हो सकता है । देवर्षि नारद का बार-बार विष्णुलोक में जाना और वहाँ के अधिपति विष्णु से सांसारिक समस्याओं पर विचार विनिमय करना तभी सही सिद्ध होगा जब हम उस पुण्यभूमि को स्वर्ग के रूप में मान्यता दें । उस क्षेत्र में अभी भी भ्रमण करके ऐसे अनेकानेक प्रमाण उपलब्ध किये जा सकते हैं जिनके आधार पर पौराणिक स्वर्ग की संगति इस क्षेत्र के साथ बिठाई जा सके ।

प्राचीन काल में देव मानव इसी क्षेत्र में निवास करते रहें हैं । भौतिक और आध्यात्मिक वातावरण उन्हें हर दृष्टि से उपयुक्त लगा होगा और वे यहीं निवास करने लगे होंगे । यहाँ रहकर वे शान्त चित्त से धर्म-तन्त्र की उपलब्धियों से समस्त विश्व को लाभान्वित बनाने की विविध-विधि योजनाएँ बनाते थे; तैयारियाँ करते थे और साधन जुटाते थे । इन कष्टसाध्य महाप्रयासों का नाम ही तप था । तपस्वी देवता एक प्रकार के अध्यात्म विज्ञान के शोधकर्त्ता और विभूति उत्पादक कहे जा सकते हैं । यह क्षेत्र ऐसी वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं से भरा पड़ा था जिनमें शरीर यन्त्र और मन:तन्त्र के भीतर छिपे हुए शक्तिशाली रहस्यों का अधिकाधिक अनावरण सम्भव हो सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शास्त्रों का सृजन, योगाभ्यास की उपलब्धियाँ, अध्यात्म दर्शन का विकास, स्वास्थ्य, चिकित्सा, शिक्षाशास्त्र, रसायन, शिल्पकला आदि की भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियाँ इसी क्षेत्र से निकल कर आती थीं और उनसे लाभान्वित होने वाले उसे स्वर्ग निवासी देवताओं का वरदान कहकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते थे ।

देवार्चन हर मनुष्य का कर्त्तव्य था ताकि उस क्षेत्र में किसी प्रकार का अभाव अनुभव न हो । गीता में यज्ञ से देवताओं की पुष्टि की बात कही गई है, इसे सर्वसाधारण द्वारा देव प्रयोजनों के लिए विविध-विधि अनुदान प्रस्तुत करना ही समझा जाना चाहिए । यज्ञ का सीधा अर्थ दान एवं त्याग, बलिदान है । देव प्रयोजनों के लिए श्रम, समय, मन, धन आदि से सहयोग करते रहना है । "यज्ञ से पूजित देवता मनुष्यों पर सुख-शान्ति बरसाते हैं और यज्ञ न करने वाले विपत्ति में फँसते हैं" इस गीता वचन में सामान्य प्रजाजनों को देव वर्ग को, देव कर्म को, समुचित सहयोग प्रदान करते रहने की अनिवार्य आवश्यकता का उद्‌बोधन कराता है । यह देवता और कोई नहीं—उस समय स्वर्ग क्षेत्र में निवास करके धर्म-प्रेरणा के भावात्मक परिष्कार के विविध विधि आधारों का निर्माण करने वाले महामानव ही थे । समस्त धरती पर स्वर्गीय परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए उनका महा प्रयास, जन साधारण को देव वन्दन एवं देव पूजन के लिए अनायास ही प्रेरित करता था ।

हिमालय की शोभा का वर्णन करते हुए तत्त्वज्ञानी कवि कहता है—

देव सेव्यं च तत्स्थानं दैवत नां च दुर्लभम् ।
महा पुण्य महोपुण्य पूरषैरव लौकितम् ॥
नैतत् केवल मक्षाणां सदैवह्लादकं मुने ।
सर्व पुण्य महातीर्थ मूर्द्धभूषेति विद्धितम् ॥

"यह स्थान देवताओं द्वारा सेवनीय, परम दुर्लभ और महान् पुण्यप्रद है । इसका पुण्यात्मा लोग ही अवलोकन करते हैं । हे नारद ! यह स्थान केवल इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाला ही नहीं, किन्तु उसे समस्त महान् तीर्थों का शिरोमणि जानों ।"

तथाह्नि कलधौताभैः सायंच कनक प्रभैः ।
प्रहर्षयति या चित्त पर्वताग्रैर लौकिकैः ॥
किमयं तपनीयाद्रिः किया रजत पर्वतः ।
इति संदेहा तो यत्र बाढ मुह्यन्ति मानवः ॥

"दिन में चाँदी के प्रकाश वाले और सायं सुवर्ण के प्रकाश वाले दिव्य पर्वत शिखरों से चित्त को अत्यन्त आह्लाद प्राप्त होता है । मनुष्य सन्देहग्रस्त होकर सोचता है कि क्या यह सोने का पर्वत है ? क्या यह चाँदी का पर्वत है ?"

सौन्दर्य ब्रह्मणो रूपं प्रकृत्या मनु वर्तते ।
प्रकृतेर्नास्ति सौन्दर्य स्वस्वरूपात्माके गुणाः ॥
तादृशास्तादृशे स्थाने ब्रह्म सौन्दर्य दीपिते ।
ब्रह्मसम्पत्ति मायान्ति भावाविष्टधियोबलात् ।

"सौन्दर्य ब्रह्म का ही स्वरूप है । प्रकृति स्वयं सुन्दर नहीं है वह ब्रह्म के प्रकाश से ही सौन्दर्यवान् होती है । ब्रह्म-सौन्दर्य से सम्पन्न ऐसे पुण्य स्थानों में ब्रह्मवित् लोग भावविष्ट होकर स्वयमेव ब्रह्म समाधि को प्राप्त हो जाते हैं ।

कैलाश और मानसरोवर भारतीय हिमालय क्षेत्र में ही थे और अभी भी है । कैलाशवासी शंकर जी के सिर से गंगा प्रवाहित होती है । इसकी संगति तिब्बत में स्थित कैलाश पर्वत से नहीं मिलती । क्योंकि वहाँ से गंगा का गोमुख तक आना भौगोलिक स्थिति के कारण किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है । गंगोत्री से जेलूखागा घाटी होकर कैलाश करीब ३०० मील है । फिर बीच में कई आड़े पहाड़ आये हैं जिसके कारण भी कोई जलधारा या हिमधार, वहाँ तक नही आ सकती । असली शिव लोक इस धरती के स्वर्ग में ही हो सकता है गंगा ग्लेशियर शिवलिंग के समीप है । स्वर्ग गंगा भी वहीं है । गौरी सरोवर वहाँ मौजूद ही है । इस प्रकार गंगा धारण करने वाले शिव का कैलाश यह हिमालय का हृदय ही हो सकता है । यदि प्राचीन कैलाश यहाँ न रहा होता तो भागीरथजी यहाँ तप क्यों करते ? वे तिब्बत वाले कैलाश पर ही शिव के समीप क्यों न जाते ? इस पुण्य प्रदेश में शिवलिंग, केदार शिखर और नीलकण्ठ शिखर यह तीनों ही शिवजी के निवास हैं । मानसरोवर का भी इस देव भूमि में होना स्वभाविक है । सुरालय, हिमधारा, सत्पथ हिमधारा तथा वरुण वन नामों से भी इसी प्रदेश का देवभूमि होना सिद्ध है । अष्ट वसुओं ने जिस स्थान को अपनी निवास बनाया वह वसुधारा भी अलकापुरी के पास ही है । इन सब बातों पर विचार करने से वास्तविक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कैलाश और मानसरोवर इसी प्रदेश में अवस्थित सिद्ध होते हैं ।

आजकल का तिब्बत प्रदेश वाला कैलाश अब विदेशी प्रतिबंधों के कारण यात्रा की दृष्टि से दिन-दिन असुविधाजनक हो रहा है । वहाँ डाकुओं का भी भय सदा रहता है । दूरी भी बहुत है । उस प्रदेश में भारतीय वातावरण भी नहीं है, न अपनी भाषा न संस्कृति । वहाँ जाकर विदेश-सा अनुभव होता है । जिस समय भारत की संस्कृति का वहाँ तक विस्तार रहा था, उस समय वह तीर्थ भी उपयुक्त रहा होगा, पर शिव का वास्तविक निवास, गंगा का वास्तविक उद्गम और सच्ची आध्यात्मिक मानसरोवर का दर्शन करना हो तो हमें इस हिमालय के हृदय-धरती के स्वर्ग में वास्तविक कैलाश की खोज करनी पड़ेगी । परीक्षा के लिए कोई व्यक्ति तिब्बत वाले कैलाश और इस हिमालय के हृदय वाले कैलाश की यात्रा करके देखे, वह स्वयं अनुभव करेगा कि धरती के स्वर्ग प्रदेश वाला कैलाश कितना शान्तिप्रद एवं कितने दिव्य वातावरण से परिपूर्ण है । वस्तुतः असली कैलाश और मानसरोवर इसी क्षेत्र में है । उस पर किसी विदेशी की छाया भी नहीं पड़ सकती ।

हिमालय को भारतीय संस्कृति का प्रत्यक्ष उद्गम स्रोत कहा जाय, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी । इतिहासकारों के अनुसार आर्य लोग मध्य एशिया से आकर हिमालय क्षेत्र मे बसे और इसके उपरान्त भारत के मैदानी प्रदेश में उतरे थे ।

स्वर्ग का वर्णन पुराणों में आता है । उसकी प्रायः सूक्ष्म व्याख्या में उदात्त दृष्टिकोण और उत्कृष्ट भाव अभिव्यंजना के रूप में व्याख्या होती है, जो उचित भी है । पर यदि उसका भौगोलिक स्वरूप ढूँढ़ना हो और सौन्दर्य वातावरण को परखना हो तो वह किसी ग्रह नक्षत्र में नहीं वरन् अपनी धरती पर ही परिलक्षित होता है उपाख्यानों के आधार पर हिमालय को धरती का स्वर्ग कहा जा सकता है ।

महाभारत की एक आख्यायिका है कि अर्जुन द्रौपदी से कोई उपहार माँगने का हठ करते हैं, उत्तर में संकोच पूर्वक द्रौपदी याचना करती है कि —"मेरे लिए नन्दन वन के पारिजात पुष्प ला दें, जो जल में नहीं पत्थरों में पैदा होते हैं, जिनका सौन्दर्य दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति करा देता है ।" अर्जुन हिमालय जाते हैं । नन्दन वन पहुँचते हैं । रक्षक से युद्ध करते हैं और वहाँ से एक पारिजात पुष्प द्रौपदी के लिऐ लाते है ।

नन्दन वन हिमालय क्षेत्र के पुष्पोद्यान का नाम है । यह गौमुख के आगे तपोवन पार करते ही मिलता है, शिवलिंग पर्वत के समीप ही यह क्षेत्र बिखरा पड़ा है । यहाँ वर्षा के उपरान्त बसन्त आता है और सारा क्षेत्र फूलों के गलीचे की तरह नयनाभिराम बन जाता है । ऐसा ही एक उद्यान यातायात की दृष्टि से सुगम भी मिलता है । यह फूलों की घाटी के नाम से प्रसिद्ध है । समुद्र तल से १३२०० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित यह क्षेत्र विश्व विख्यात है । इस १०-१५ मील के क्षेत्र में प्राकृत रूप से उगने वाले हजारों प्रकार के चित्र-विचित्र पुष्प अनायास ही उगते हैं । संसार में ऐसा सुन्दर और अद्भूत क्षेत्र अन्यत्र कहीं नहीं है । इसे देखने के लिए हजारों देशी-विदेशी पर्यटक हर साल पहुँचते हैं । प्रकृति की अनुपम छटा देख कर धन्य होते हैं । विशेषज्ञों का अनुमान है कि यह उत्पादन प्रकृति का नहीं वरन् विचार शील व्यक्तियों का अतीत काल में किया गया शुभारम्भ है । यह पौधे सुनियोजित ढंग से विकसित किये गये हैं । सम्भव है, यहाँ कोई राजोद्यान अथवा किसी महर्षि का तपोवन आश्रम रहा होगा । पुष्प ही नहीं इस क्षेत्र में बहुमूल्य वनौषधियाँ भी मिलती हैं । इस क्षेत्र में समय-समय पर यज्ञों के उपकरण, बहुमूल्य धातु पात्र, आभूषण, अस्त्र आदि भी मिलते रहे हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि यह क्षेत्र जनशून्य नहीं रहा । यहाँ कोई सुविकसित लोग रहते रहे हैं ।

इग्लैण्ड की श्रीमती जॉन लेग इस क्षेत्र के पुष्पानुसंधान में वर्षों लगी रहीं, उनने ५०० से भी अधिक प्रकार के पुष्प बीज संग्रह करके अपने देश भेजे थे । वैसे लगभग ३००० किस्म के ऐसे फूल इस क्षेत्र में पाये जाते हैं, जो प्रयत्न-पूर्वक उगाये गये, गुलाब आदि का सिर नीचा कर देते हैं । यहाँ उगने वाला ब्रह्म कमल ही वह पुष्प है जिसके लिए द्रौपदी ने अर्जुन से याचना की थी ।

जोशी मठ तक पक्की सड़क है । जोशी मठ से बद्रीनाथ जाने वाली सड़क पर मध्य में गोविन्द घाट मोटर से उतरना पड़ता है । वहाँ से ७ मील पैदल चलकर घाघरिया तक पहुँचना पड़ता है । यहाँ सें मुख्य घाटी तक पहुँचने में एक घण्टा लगता है । कामेट झरना उस क्षेत्र का बहुत ही सुहावना निर्झर है क्यूड गाँव से ही, पुष्प घाटी आरम्भ हो जाती है । यह १०-१५ मील के घेरे में फैली हुई है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घाटी के दाहिने पक्ष में "कुवेर भण्डार" पर्वत है, किम्बदन्ती है कि यहीं कहीं देवलोक के कोषाध्यक्ष कुवेर की बहुमूल्य सम्पदा अभी भी दबी पड़ी है ।

गंगा ग्लेशियर से आगे गहन हिमधारा व वरुण वन क्षेत्र है । कहते हैं कि यह इलाका वरुण देवता का कार्य क्षेत्र रहा है । यहाँ से सुमेर पर्वत भली प्रकार दिखाई देता है । यहाँ प्रातः-सायं के सूर्यादय एवं सूर्यास्त काल में सुनहरा दिखाई पड़ता है । सुनहरी सूर्य किरणें बर्फ से ढकी चोटियों पर प्रतिबिम्बित होती हैं और यह पर्वत ऐसा लगता है, मानो वह सोने का बना हो । पुराणों में सुमेरु पर्वत देवताओं का निवास और स्वर्ण का बना बताया गया है । यह उपमा प्रातः और सायं कालीन सुमेरु के स्वर्ण की तो नहीं, पर स्वर्णवत् आभावान देखते हुए अभी चरितार्थ होती है । स्वर्ग में सुमेरु होने के कथन से इस क्षेत्र को स्वर्ग कहा जा सकता है ।

हिम प्रदेश में इन्द्र धनुषों की बाढ़ रहती है । झरनों में, उड़ती फुहारों में, बादलों में, घाटियों में नमी के कारण उन पर प्रतिविम्बित होने वाली सूर्य किरणें चित्र-विचित्र प्रकार के इन्द्र धनुष बनाती हैं । लगता है देवताओं के यह सप्त वर्ण आयुध इस क्षेत्र में अपना और अपने अधिपति देव-सत्ताओं का अस्तित्व इस क्षेत्र में होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं ।

हिमालय भारत का सुरक्षा प्रहरी है । तीन सीमाएँ समुद्र घेरे हुए है । उत्तर दिशा में गर्वोन्नत मस्तक किये हिमालय खड़ा है । यों मध्य एशिया में हमले होते तो रहे हैं, पर इस दुस्साहस में आक्रमणकारियों को लोहे के चने चबाने पड़े हैं । चीन ने अपनी सुरक्षा के लिए कभी मोटी दीवार खड़ी की थी, भारत की सुरक्षा के लिए वह उत्तरदायित्व हिमालय ने अनादि काल से ही अपने कन्धों पर उठा रखा है ।

हिमालय प्रकृति शोभा, वन सम्पदा, बलिष्ठ जलवायु, एवं आध्यात्मिक वातावरण का धनी ही नहीं रहा है । वह प्राचीन काल में विकसित राज-सत्ताओं का भी केन्द्र रहा है । पुरातन युग में इस क्षेत्र के राजा इन्द्र पदवी धारण करते थे । मध्यकाल में भी महाभारत के अनुसार द्विगर्त त्रिगर्त, माद्रा राज्य हिमालय क्षेत्र में रहे हैं । काश्मीर, नैपाल, गढ़वाल जैसे प्रान्त एवं देश अभी भी हैं । हिमाचल एवं काश्मीर हिमालय की ही सीमा के अन्तर्गत हैं । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भूमि, समूचे भारत का एक चौथाई भाग कही जा सकती है । पंजाब एवं उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग को हिमालय की छाया प्राप्त करने का सौभाग्य उपलब्ध है ।

मेघदूत, हर्षचरित्र, कुमारसम्भव, कथा सरित्सागर जैसे संस्कृत काव्यों में तथा प्रायः सभी पुराणों में हिमालय की भावभरी गरिमा तथा उस क्षेत्र में घटित हुई घटनाओं की गौरव गाथा भरी पड़ी है । आर्ष साहित्य में एक प्रकार से हिमालय की ही आत्मा बोलती है ।

उत्तरी पूर्वी तथा पच्छिमी भारत को सींचने का श्रेय हिमालय से निकलने वाली नदियों को ही है । पंजाब, सिंध के लिए पंच नद । आसाम से लेकर वर्मा तक के लिए बह्मपुत्र । उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल के लिए गंगा यमुना, सरयू आदि यह सभी हिमालय की देन हैं । बादल बरसते हैं यह ठीक है, पर वस्तुतः निरन्तर हिमालय ही बरसता है । उसके भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही महत्व हैं । भौतिक में वन सम्पदा, वनस्पति औषधि, जल, पत्थर तथा खनिज । आध्यात्मिक, वातावरण जिसके कारण उस क्षेत्र के कुली, मजदूर जैसे दरिद्र वर्ग के लोग भी ईमानदार तथा सदाचारी पाये जाते हैं । तपोभूमि तो वह है ही । देवताओं, ऋषियों, तपस्वियों का यह क्रीड़ा प्रांगण है । इसी से भगवान् ने गीता में हिमालय को अपना प्रतीक बताया है-"स्थावरणां हिमालय !"। अर्थात् स्थाविरों में हिमालय मैं ही हूँ ।

हिमालय देखने भर में निर्जीव पाषाण खण्ड प्रतीत होता है तात्विक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर वह एक प्रत्यक्ष देव है । जीवन उसके कण-कण में है । हिम की शीतलता अपने दिव्य प्रभाव से उस क्षेत्र में जा पहुँचने वाले प्राणियों के अन्तरंग में प्रवेश करके शान्ति ही प्रदान करती है । आत्म-साधना की दृष्टि से इस क्षेत्र का सर्वोपरि महत्त्व प्राचीन काल की तरह अभी भी बना हुआ है और सम्भवतः सदा ही बना रहेगा । ब्रह्मवर्चस् आरण्यक की स्थापना हिमालय की छाया में उपयुक्त वातावरण को ध्यान में रखकर ही की गई है ।

अध्यात्म साधना के लिए हिमालय की उपयोगिता

किसी भी कार्य की सफलता के लिए उसके लिए उपयुक्त स्थान और अवसर की आवश्यकता होती है । यह ठीक है कि मनस्वी पुरुषार्थी लोग पत्थरों पर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना रास्ता बना लेते हैं और असम्भव को भी सम्भव बना देते हैं । यह भी ठीक है कि एकाग्रता, निष्ठा, तन्मयता और प्रबल इच्छाशक्ति की प्रचण्डता के सामने अनुपयुक्त परिस्थितियाँ भी उपयुक्त बन जाती हैं, पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि उपयुक्त स्थान और वातावरण का भी कम महत्त्व नहीं है । यदि कार्य के अनुकूल परिस्थितियों एवं साधनों की व्यवस्था कर ली जाय तो मंजिल सहज ही होती है और असफलता का भय बहुत अंशों में दूर हो जाता है । इसके प्रतिकूल यदि साधनों का अभाव हो तो मनस्वी व्यक्तियों को भी अपना लक्ष्य पूर्ण करने में बहुत देर लगती है और बहुत कष्ट उठाना पड़ता है । अनुकूल साधन प्राप्त होने पर जितने समय और श्रम में जितनी सफलता प्राप्त की जाती है, प्रतिकूल परिस्थितियों में उससे बहुत कम सफलता, अत्यधिक श्रम और समय लगाने पर उपलब्ध होती है । इसलिये उचित यही है कि किसी कार्य को करने के लिए उसके उपयुक्त परिस्थितियाँ और साधनों को तलाश कर लिया जाय ।

यदि खेती ऊसर या पथरीली जमीन पर की जाय तो फसल बहुत कम ही उपजेगी । अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए उपजाऊ जमीन ढूँढ़नी पड़ेगी और साथ ही खाद, सिंचाई की सुविधा का भी प्रबन्ध करना होगा । यह ठीक है कि कोई मनस्वी व्यक्ति प्राण-प्रण से जुट जावें तो ऊसर जमीन को भी अपने पुरुषार्थ से उपजाऊ बना सकते हैं, पर इसमें उन्हें उससे कहीं अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ेगी जितनी कि अधिक उपजाऊ और जल-सुविधा की भूमि प्राप्त होने पर करनी पड़ती । इसलिये बुद्धिमान लोग कार्य की सफलता के लिये उपयुक्त साधनों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में भी समुचित ध्यान दिया करते हैं ।

आध्यात्मिक साधनाएँ कहीं भी की जा सकती हैं, अपना घर भी उसके लिये बुरा नहीं है । सभी भूमि गोपाल की होने के कारण सर्वत्र परमात्मा ही समाया हुआ है, इसलिए किसी स्थान विशेष में प्रभु का स्मरण करने का कोई प्रतिबन्ध नहीं है । फिर भी उपयुक्त स्थान की अपनी बहुत कुछ विशेषता होती है । गीता के विभूति योग अध्याय में भगवान् ने बताया है कि विशेषतायुक्त प्रत्येक वस्तु में मेरी प्रधानता समझनी चाहिये । यही बात स्थान के सम्बन्ध में भी लागू होती है ।

जिस प्रकार पशुओं में गौ, पक्षियों में हंस, वृक्षों में पीपल, पौधों में तुलसी, धान्यों में जौ की सात्विकता प्रसिद्ध है, सतोगुणी तत्त्वों की मात्रा अधिक होने से उनका सान्निध्य एवं सेवन सब प्रकार मंगलमय माना जाता है, इसी प्रकार कुछ स्थानों और नदी-सरोवरों में यह सूक्ष्म सात्विक शक्ति प्रचुर परिमाण में पाई जाती है, तदनुसार उनके समीप रहने वालों में भी सत् तत्त्व बढ़ता है और आध्यात्मिक सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । सूक्ष्मदर्शी ऋषियों ने ऐसे संस्थानों की खोज उसी प्रकार की थी जिस प्रकार आजकल सोने, चाँदी आदि धातुओं की खानें खोजी जाती हैं । जो स्थान सत् तत्त्व से ओतप्रोत मिले उन्हें तीर्थ घोषित किया गया । वहाँ ऋषि-मुनियों ने अपने निवास एवं साधना के स्थान बनाये । साथ ही जनता को भी उन तीर्थों में स्नान एवं दर्शन के अभिप्राय से समय-समय पर आते रहने और वहाँ कुछ दिन निवास करके आत्मिक स्वास्थ्य लाभ करने का निर्देश किया । इन तीर्थों में उन ऋषियों का सान्निध्य, सत्संग एवं मार्ग-दर्शन भी आगन्तुक तीर्थ यात्रियों को प्राप्त होता था, जिससे उनके अन्तःकरण की मुरझाई हुई कली फिर हरी हो जाती थी ।

दुर्भाग्य और समय के फेर से आज तीर्थों का वातावरण भी विकृत हो गया है । वहाँ के निवासी ऋषियों के वंशज कहाकर दान-दक्षिणा तो बटोरते हैं, पर चरित्र, तप, त्याग एवं ज्ञान-विज्ञान से रहित होने के कारण आगन्तुकों का कुछ भला नहीं कर पाते । इतना ही नहीं उलटे अपने निम्न मानसिक स्तर और लूटखसोट के कारण लोगों में अश्रद्धा ही उत्पन्न करते हैं । इतना सब होते हुए भी उन स्थानों की सूक्ष्म शक्ति अभी भी पूर्ववत् बनी हुई है । गंगा में अनेकों मगर, मेढक पड़े रहें, उसमें मल-मूत्र एवं दुष्कर्म भी करते रहें तो भी गंगा अपवित्र नहीं होती और न उसकी महत्ता में कोई कमी आती है । इसी प्रकार जो स्थान ऋषियों ने सत् तत्त्व प्रधान खोजे थे, मूलतः आज भी वैसे ही बने हुए हैं यद्यपि बाह्य वातावरण वहाँ का बहुत करके उलटा ही हो गया है ।

स्थान की अपनी विशेषता होती है । श्रवणकुमार जब अपने अन्धे माता-पिता की काँवर कंधे पर रखकर उन्हें तीर्थ यात्रा कराने ले जा रहे थे, तो एक स्थान ऐसा आया जहाँ पहुँचते ही श्रवणकुमार का मन बदल गया । उन्होंने काँवर जमीन पर रख दी और माता-पिता से कहा—"आप लोगों की आँखें ही तो नहीं हैं, पैदल चलिए, मैं सिर्फ आपको रास्ता बताऊँगा, कंधे पर लादे न फिरूँगा ।" आदर्श पितृभक्त श्रवणकुमार में इस प्रकार का अचानक परिवर्तन देखकर उसके पिता क्रुद्ध न हुए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वरन् वस्तुस्थिति को समझ गये और उन्होंने कहा "हम लोग पैदल ही चलेंगे पर तुम इतना अवश्य करो कि जल्दी ही इस स्थान को छोड़ दो और तेजी से चलकर कहीं दूसरी जगह में हमें ले चलो ।" श्रवणकुमार ने ऐसा ही किया । जैसे ही वह क्षेत्र समाप्त हुआ, बालक की बुद्धि ने पलटा खाया और वह अपनी भूल पर बड़ा दुःखी हुआ । माता-पिता से रो-रोकर क्षमा माँगने लगा और पुनः कंधे पर बिठा लिया ।

श्रवणकुमार के पिता ने बालक को सान्त्वना देते हुए एक पुराना इतिहास बताया कि इस स्थान पर एक दानव रहता था और यहाँ कुकृत्यों एवं कुविचारों का केन्द्र जमा रहता था । उन्हीं अशुभ संस्कारों से संस्कारित होने के कारण यह भूमि ऐसी है कि यहाँ कोई सद्विचार वाला व्यक्ति पहुँचे तो यह भी कुविचारी बन जाता है । इसलिए हे पुत्र, इसमें तुम्हारा दोष नहीं है यह भूमिगत दोष है । ऐसी पातकी भूमियों से दूर ही रहना चाहिए ।

इसी प्रकार की एक कथा तब की है जब महाभारत होने को था । श्रीकृष्ण जी को भय था कि भाई भाईयों का युद्ध है, कहीं ऐसा न हो कि लड़ते-लड़ते किसी पक्ष का मोह उमड़ पड़े और दुष्टों के संहार का कार्य अधूरा ही रह जाये । इसलिए युद्ध के लिए ऐसी भूमि ढूँढ़नी चाहिए जहाँ नृशंसता और निर्ममता का बोलवाला हो । ऐसी भूमि तलाश करने के लिए श्रीकृष्ण जी ने सभी दिशाओं को दूर-दूर तक दूत भेजे और वहाँ की विविध घटनाओं के समाचार लाकर देने का आदेश दिया । दूत गए और बहुत दिन बाद अपने समाचार लाकर दिये । एक दूत ने बताया कि—"उसने एक स्थान पर ऐसी घटना देखी कि बड़ा भाई छोटे भाई को कह रहा था कि वर्षा के कारण खेत की मेंड़ टूट गई है उसे ठीक कर आओ । छोटे भाई ने बड़े को बड़ा अपमानजनक उत्तर दिया और कहा यह कार्य तू कर । बड़े भाई को ऐसा क्रोध आया कि छोटे भाई का गला मरोड़ डाला और उसकी लाश को घसीटता हुआ वहाँ ले गया जहाँ खेत की मेंड़ टूटी पड़ी थी । उस लाश को ही उसने मिट्टी की जगह डाल कर मेंड़ सुधारी, इस घटना को सुनकर श्रीकृष्ण जी समझ गये कि जहाँ भाई-भाई के बीच नृशंसता बरती जा सकती हो वही भूमि इस युद्ध के लिए उपयुक्त है । उन्होंने उसी जगह लड़ाई का झंडा गढ़वा दिया और अन्त तक दोनों ही पक्ष इस युद्ध को एक दूसरे के खून के प्यासे होकर लड़ते रहे ।'

उपरोक्त दो घटनाओं में जिस प्रकार भूमि के कुसंस्करित होने की चर्चा है, उसी प्रकार सुसंस्कारी भूमियाँ भी होती हैं और वहाँ रहने से मनुष्य की भावनाओं और विचारधाराओं में तदनुकूल प्रवाह उठने लगते हैं । यदि उन प्रेरणाओं को थोड़ा प्रोत्साहन एवं सिंचन मिलता रहे तो निससंदेह उस स्थान की सुसंस्कारिता से बहुत लाभ उठा सकते हैं । अध्यात्म मार्ग के पथिकों के लिये तो ऐसे सथान बहुत ही मंगलमय होते हैं । ऐसे स्थान का चुनाव कर लेने से उन्हें आधी सफलता तो उस चुनाव के कारण ही मिल जाती है ।

सतोगुणी आध्यात्मिक साधनाओं के लिये हिमालय का उत्तराखण्ड बहुत ही उपयुक्त है । प्राचीनकाल में अधिकांश ऋषियों ने इसी भूमि में अपनी तपस्याएँ पूर्ण की थीं । इस प्रदेश में भ्रमण करने से पता चलता है कि भारतवर्ष के प्रधान-प्रधान सभी ऋषियों के आश्रम प्रायः इसी क्षेत्र में थे । कुछ ऋषि ऐसे भी थे जो आवश्यक प्रयोजनों के लिए देश के विभिन्न भागों में जाकर वहाँ अभीष्ट कार्य करते थे और कार्य की सुविधा के लिये वहाँ भी आश्रम बनाते थे, पर जब भी उन्हें अधिक आत्मबल उपार्जन के लिए तप करने की आवश्यकता पड़ती थी, तब फिर इसी हिमालय भूमि में जा पहुँचते थे । सहस्त्रधारा होकर गंगा इसी प्रदेश में बहती है यों गंगा का प्रथम दर्शन गंगोत्री से १८ मील ऊपर गोमुख नाम के स्थान में होता है पर वहाँ तो एक छोटा पतला-सा प्रधान झरना मात्र है, गंगा में जो जल एकत्रित होता है, वह उत्तराखण्ड की हजार निर्झरिणियों, लघु नदियों द्वारा होता है । इन सब को भी गंगा का अंग मानते हैं और ऐसा समझा जाता है कि गंगा इस प्रदेश में सहत्र धारा होकर बही है और फिर अन्त में सब मिलकर हरिद्वार से एक सम्मिलत पूर्ण गंगा बन गई है । इस प्रकार सारा हिमालय प्रदेश, उत्तराखण्ड, गंगा के द्वारा पवित्र होकर आध्यात्मिक साधना के साधकों के लिये अलभ्य सुयोग उपस्थित करता है ।

ये ऊँचे , ठण्डे पर्वतीय प्रदेश स्वास्थ्य के लिये जलवायु की दृष्टि से बहुत ही लाभदायक माने जाते हैं । धनी सम्पन्न लोग गर्मी के दिनों में शान्ति मनोरंजन एवं स्वास्थ्य लाभ करने के लिये इन मनोरम प्रदेशों में सैर करने जाया करते हैं । काश्मीर, शिमला, देहरादून, मंसूरी, अलमोड़ा, नैनीताल, दार्जिलिंग आदि अनेकों स्थान एसे हैं जहाँ जलवायु की उत्तमता के कारण स्वास्थ्य लाभ करने और प्राकृतिक मनोरम दृश्यों से आँखों तथा मनोदशा के सुधारने के लिये लाखों व्यक्ति जाया करते हैं और इस कार्य के लिये बहुत धन भी खर्च करते हैं । इस प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

उत्तराखण्ड का गंगा से पवित्र हिमालय प्रदेश स्वास्थ्य लाभ करने के लिये अद्वितीय एवं अनुपम स्थान है ।

इस गये गुजरे जमाने में जबकि सर्वत्र बेईमानी और बद-माशी को विजय पताका फहरा रही है, उत्तराखण्ड आज भी अधिकांश बुराइयों से बचा हुआ है । यमुनोत्री, गंगोत्री केदारनाथ, बद्रीनाथ की यात्रा को लाखों यात्री हर साल जाते हैं, उन सभी को इस बात की गवाही में पेश किया जा सकता है कि उस प्रदेश के पहाड़ी आमतौर से ईमानदार होते हैं । चोरी, व्यभिचार, गुण्डई, झूठ, हरामखोरी, ईर्ष्या आदि पातकों की पहुँच वहाँ नहीं के बराबर ही हैं । जिन यात्रियों को पहाड़ियों से व्यवहार करना पड़ता है वे एक स्वर से कह सकते हैं कि नीचे के प्रदेशों की अपेक्षा पहाड़ी लोग लाखदर्जे ईमानदार और भले होते हैं । पुलिस के रजिस्टरों को भी इस सबूत में पेश किया जा सकता है कि इस प्रदेश में अपराध कितने कम होते हैं । इसका कारण उस प्रदेश के सूक्ष्म वाताराण की सात्विक विशेषता ही है, जिसके प्रभाव से वहाँ के निवासी अभी भी, नेक और ईमानदार माने जाते हैं ।

साधकों में जो अन्त: ऊष्मा बढ़ती है उसे शांत करने के लिए हिमालय की शीतलता एक अद्‌भुत रसायन का काम करती है । गरम प्रदेशों में रहकर कठोर तपश्यर्चा करने में कई बार बढ़ी हुई अंत:-ऊष्मा शान्त न हो सकी तो उस स्थिति में हानि होने की सम्भावना रहती है, पर हिमालय के अञ्चल में रहकर साधन करने वालों को कोई भय नहीं रहता ।

जिस प्रकार मनुष्य उन्नति करने से ऊँचा उठता है, जिसमें सद्‌गुण आते हैं, वह उच्च पद को प्राप्त करता है, जिससे भगवान् प्रसन्न होते हैं, वह दिन-दिन ऊपर की ओर बढ़ता है । स्वर्ग माना गया है, सूर्य चन्द्र ऊपर दीखते हैं। हिन्दुओं के श्रेष्ठ लोक, जहाँ देवताओं समेत भगवान् रहते हैं ऊपर माने जाते हैं । मुसलमान, ईसाई यहूदी, पारसी आदि अन्य धर्मावलम्बी भी अपना ईश्वर ऊपर आस-मान में मानते हैं । ऊँचाई देवत्व की प्रतीक मानी जाती है । पृथ्वीं पर भी यही नियम लागू होता है जो स्थान पृथ्वी पर जितने ऊँचे हैं वे उतने ही दिव्य वातावरण से युक्त माने जाते हैं । हिमालय की ऊँचाई भी उसकी उच्च आध्यात्मिक विशेषताओं का एक कारण है ।

पाण्डव हिमालय में शेष जीवन समाप्त करने के लिए—ऊँचाई ही नहीं वरन् वातावरण की उच्चता को भी ध्यान में रखते हुए गये थे । स्वर्गारोहण नामक एक स्थान है जिसके बारे में कहा जाता है कि यहीं हिमालय में पहुँच कर पाण्डवों ने सीधा स्वर्ग को प्रस्थान किया था । एक मत यह भी है कि प्राचीन काल में उत्तराखंड ही सवर्गलोक था । यहाँ तपस्वी, साधक, ऋषि मुनि एवं देवस्वभाव के सत्पुरुष रहते थे । यहाँ इतनी अधिक सत्प्रवृत्तियाँ फैली रहती थीं कि इस वातावरण में लोगों को वे शारीरिक और मानसिक व्यथा-बाधाएँ न सताती थीं, जो संसार में सर्वत्र आमतौर से देखी जाती हैं । वहाँ के आनन्द और उल्लासमय वातावरण को देखते हुए यदि उस क्षेत्र का नाम स्वर्ग रखा गया हो तो इसमें कुछ आश्चर्य की भी बात नहीं है । सम्भव है पाण्डव दिल्ली के क्षुब्ध वातावरण से हट कर शेष जीवन वहीं व्यतीत करने और देव पुरुषों के सान्निध्य में रहने गये हों । गंगोत्री से आगे गोमुख से सीधे बद्रीनाथ जाने के पर्वतीय मार्ग में नन्दन कानन नामक क्षेत्र आता है । स्वर्ग में नन्दन कानन होने की बात प्रसिद्ध ही है ।

जो हो यह एक तथ्य है कि आध्यात्मिक साधनाओं के लिए गंगा तटवर्ती हिमालय भाग एक उपयुक्त स्थान है । साधना की महत्ता समझाने वाले केवल तीर्थयात्रा और देव दर्शन के लिए ही नहीं कुछ समय निकाल कर यदि उधर साधना के लिए भी जाया करें तो उनकी साधना का मार्ग अधिक प्रशस्त हो सकता है । जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ाने के लिए कतिपय पहाड़ी प्रदेश अच्छे माने जाते हैं, उसी प्रकार आत्मोन्नति की दृष्टि से भी गंगा तटवर्ती हिमालय सब प्रकार उपयुक्त ही है ।

साधना के लिए गंगा-तट की महिमा और महत्ता

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता के अध्याय १० श्लोक ३१ में स्वयं मुख से कहा है—स्रोतसामस्मि जाह्नवि" अर्थात्-नदियों मे भागीरथी गंगा मैं हूँ ।

भागवद् स्कन्ध ११ अध्याय १६ में आता है।"तीर्थानांस्रोतसां गंगा" तीर्थों में गंगा सब से श्रेष्ठ है ।

यों गंगाजल की लौकिक महत्ता भी कम नहीं है, पर इसका मूल महत्त्व तो पारलौकिक एवं आध्यात्मिक ही है। गंगा से कितने मनुष्यों और अन्य जीव जन्तुओं की तृष्णा शान्त होती है, कितनी भूमि हरी-भरी शस्यश्यामला बनती है, उसके जल से सिंचित होकर कितनी घास-पात, कितना अन्न, शाक, फलों का भण्डार उत्पन्न होता है इसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी लोग जानते हैं । सभी मानते हैं कि लाखों करोड़ों मनुष्यों और पशु-पक्षियों का जीवन गंगा पर निर्भर रहता है । यदि गंगा का अवतरण न हुआ होता तो आज जहाँ की भूमि हरी-भरी दीखती है, जहाँ अगणित मनुष्य और पशु-पक्षी आनन्द से किलोल करते हैं, वहाँ का दृश्य दूसरा ही हुआ होता । उस भूमि पर आज श्मशान जैसी विभीषक दृष्टगोचर होती । भगवती गंगा जिस प्रदेश में होकर गुजरती है, वहाँ के समीपवर्ती लोगों को तो जीवन के बहुमूल्य आधार दिये ही हैं, साथ ही दूरवर्ती जनता को भी बहुत कुछ दिया है । यहाँ की समृद्धि दूर-दूर तक फैल कर प्रकारान्तर से सारे देश की श्री, समृद्धि को बढ़ाती है । जैसे पानी से भरे हुए भगौने को उसके किसी एक छोटे स्थान पर भी आग में गरम किया जाय तो वह गर्मी सारे बर्तन या पानी में फैल कर सभी को गरम कर देती है, इसी प्रकार गंगा के द्वारा उत्पन्न हुई समृद्धि सारे देश को ही नहीं सारे विश्व को समृद्ध बनाती है । जो सघन वन गंगा के किनारे हैं उनकी कीमती लकड़ी देश के कोने-कोने में जाकर गृह-निर्माण एवं काष्ठ शिल्प की आवश्यकता पूरी करती है । यहाँ की उर्वरा भूमि में उत्पन्न हुआ अन्न समीपवर्ती लोगों की आवश्यकता से कहीं अधिक होता है और दूरवर्ती लोगों की भी क्षुधा शान्त करने में सहायक होता है । ब्राह्मी आदि अगणित जड़ी-बूटियाँ गंगाजल में ही पनपती हैं । गंगा के द्वारा मनुष्य जाति को जो आर्थिक लाभ होता है, जो विपुल श्री सम्पदा प्राप्त होती है उसका अनुमान लगा सकना भी कठिन है ।

आरोग्य की दृष्टि से गंगाजल का जो महत्त्व है उससे आधुनिक वैज्ञानिक एवं डाक्टर भी आश्चर्यचकित हैं । विश्लेषण करने पर गंगाजल में ताँबा, स्वर्ण, पारद आदि धातुओं एवं अनेक बहुमूल्य क्षारों की ऐसी संतुलित मात्रा मिली है जिसका सेवन एक प्रकार से औषधि का काम करता है । अच्छे स्वास्थ्य को वह और भी अधिक बढ़ाने में सहायक होता है । गिरे हुए स्वास्थ्य को गिरने से रोकता है और बीमारियों को निरोग बनाने में बहुमूल्य औषधि का काम करता है । अनेकों रोगी जो वर्षों तक खर्चीली औषधि उपचार करने पर रोग मुक्त न हो सके, केवल मात्र गंगाजल के सेवन से रोग मुक्त होते देखे गये हैं । कोढ की एक मात्र चिकित्सा गंगाजल मानी गई है । प्राचीनकाल के आयुर्वेद ज्ञाता कोढ़ी लोगों को गंगा के किनारे रहने और निरन्तर गंगाजल सेवन करते रहने की सलाह देते थे और उसका परिणाम भी आशाजनक होता था । आज शहरों का मल-मूत्र पड़ते रहने से गंगा का वह विशेषता नहीं रही और रोगियों को उतना लाभ नहीं होता फिर भी प्राचीन परिपाटी के अनुसार आज भारत के अधिकांश कोढ़ी गंगा किनारे निवास करते देखे जा सकते हैं ।

संग्रहणी,शोथ, वायु विकार, श्वास रोग, मुर्गी, हृदय रोग, रक्त, चाप, मूत्र रोग, वीर्य और रज विकारों में गंगाजल का प्रभाव होता है, यों लाभ तो सभी रोगों में करता है । गंगाजल चिरकाल तक किसी शीशी या वर्तन में रखा रहने पर भी खराब नहीं होता । यह गुण संसार के और किसी सरोवर आदि के जलों में नहीं है । जल के खराब न होने का कारण यह है कि उसमें विकृति उत्पन्न करने वाले दूषित कीटाणुओं को मार डालने का गुण है । डाक्टरों ने एक बार यह परीक्षण किया कि हैजे के कीटाणु भरी बोतल को एक पात्र में रख कर थोड़े से गंगाजल में डाला और इसके परिणाम की जाँच की । उन्हें आशा थी कि विषैले कीटाणुओं से गंगाजल भी वैसा ही विषैला हो जायेगा, पर परिणाम इससे भिन्न ही निकला । गंगाजल में पड़ते ही हैजे के कीटाणु नष्ट हो गये, पर गंगाजल दूषित न हुआ । यदि गंगा में यह विशेषता न हुई होती तो प्रतिदिन लाखों मन मल-मूत्र जो उसमें पड़ता है उसके कारण उसका जल रोग उत्पन्न करने वाला हो गया होता । ऐसा तो नहीं हुआ है । गंगा की पवित्रता तो अभी भी बनी हुई है, पर प्रतिदिन पड़ने वाली गन्दगी को नष्ट करने में उस जल के गुणकारी अमूल्य तत्त्व तो नष्ट होते हैं और उसकी आरोग्य वर्द्धनी शक्ति भी घटती है । अब वही गंगाजल अधिक उपयोगी माना जाता है जो हिमालय के उन भागों में उपलब्ध है जहाँ मल-मूत्र का अधिक मिश्रण नहीं हो पाया है । यदि गंगा तटवर्ती हिमालय प्रदेशों में आरोग्यवर्धक स्वास्थ्य गृह खोलने की ओर ध्यान दे तो उससे रोगियों को शारीरिक ही नहीं आध्यात्मिक भी आशाजनक लाभ हो सकता है ।

संसार की प्रत्येक वस्तु के तीन स्तर होते हैं । (१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण । बाह्य दृष्टि से जो गुण या लाभ दिखाई पड़ते हैं स्थूल हैं । जो वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा गम्भीर अनुसंधान द्वारा प्रमाणित होते हैं, वे सूक्ष्म हैं और जो तत्त्वदर्शी, आत्म-विज्ञान वेत्ता सूक्ष्म दृष्टा योगियों के द्वारा योग दृष्टि से देखें और समझे जाते हैं, वे कारण-गुण कहलाते हैं । तुलसी यों स्थूल दृष्टि से एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हरा भरा पौधा मात्र है । सूक्ष्म दृष्टि से ज्वर नाशक वं अन्य कई रोगों के शमन के गुण उसमें हैं । कारण शोध पर पता चलता हे कि उसमें सतोगुणी आध्यात्मिक तत्त्व इतनी अधिक मात्रा में हैं कि उसे घर में लगाने से और सेवन करने से शरीर में सतोगुणी प्रवृत्तियाँ अनायास ही बढ़ने लगती हैं । इसीलिये इसका धार्मिक कार्यों में उत्साहपूर्वक प्रयोग किया जाता है । गाय के सम्बन्ध में भी यही बात है । स्थूल दृष्टि से वह एक सीधा-साधा उपयोगी पशु मात्र है । सूक्ष्म दृष्टि से दूध में प्राण तत्त्व एवं जीवनी शक्ति की उतनी अधिक मात्रा है जितनी संसार के और किसी पदार्थ में नहीं । कारण दृष्टि से उसके कणों में देवत्व के परमाणु व्याप्त हैं जिसके सान्निध्य से मनुष्य में दिव्य गुण, धर्म स्वभावों की, आचार एवं विचारों की अभिवृद्धि होती है । तुलसी और गाय की तरह प्रत्येक पदार्थ में अपने-अपने स्थूल और कारण स्तर होते हैं । उन्हीं के अनुसार उनके गुणों का निरूपण किया जाता है । प्याज और लहसन में स्थूल दृष्टि से थोड़ी-सी बदबू के अतिरिक्त अन्य सब गुण-ही-गुण हैं, पर कारण दृष्टि से उनमें तामसिकता की प्रधानता है । सेवन करने वालों में काम विकार और क्रोध भड़काते हैं इसलिए इन्हें त्याज्य माना जाता है ।

गंगा भी स्थूल दृष्टि से, एक आर्थिक लाभ वाली उपयोगी नदी मात्र है । सूक्ष्म दृष्टि से उसमें आरोग्य वृद्धि का विशेष गुण है, किन्तु कारण दृष्टि से उसने महिमा एवं महत्ता अपार है । उसकी कल-कल ध्वनि कानों को पवित्र करती है, उसके दर्शन से नेत्रों की कुवासनाएँ शान्त होती हैं, उसकी समीपता से मन के कुविचारों पर अंकुश लगता है, उसके स्नान और पान से अन्तःकारण की भावनाएँ सात्विक बनती हैं । मनुष्य के रोम-रोम में जन्म-जन्मान्तरों से संचित दुष्प्रवृत्तियाँ रमी होती हैं, इन्ही के उभार से मनुष्य दुष्कर्म करने का थोड़ा-सा भी अवसर मिलने पर फिसल पड़ता है और न चाहते हुए भी बरवस दुष्कर्म कर बैठता है । यदि इन संस्कारजन्य प्रवृत्तियों पर अंकुश लग सके तो मनुष्य बहुत से पापों से बच सकता है ।

गंगा के माहात्म्य में जगह-जगह उसके पाप नाशक गुण का वर्णन किया है । उसका तात्पर्य इन्हीं मानसिक दुष्प्रवृत्तियों से है जो अवसर आने पर, प्रलोभन उत्पन्न होने पर कुमार्ग की ओर, कुकर्म की ओर धकेल देती है । गंगा का सान्निध्या, इनके ऊपर एक शक्तिशाली अंकुश के समान है । गंगा महात्म्य में पाप नाश का मूल तत्त्व यही अंकुश है ।

कई लोग सोचते हैं कि किये हुए दुष्कर्मों का फल हमें गंगा स्नान करने के बाद न भोगना पड़ेगा, यह सोचना गलत है । किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों का प्रतिफल तो भोगना ही पड़ता है, वह स्नान आदि साधारण उपायों से छुट नहीं सकता । साधारणतया प्रत्येक कर्म का फल भोगना ही पड़ता है । पर यदि उससे भी छुटकारा पाना हो तो प्रायश्चित और तपश्चर्या का कष्ट साध्य उपाय ही उसका माध्यम हो सकता है । चोरी करने वाले को जेल होती है, पर यदि चोर अपनी भूल मानकर अपना पाप प्रकट कर दे, चुराई हुई वस्तु लौटा दे और जितना दण्ड कानून से मिलना चाहिए उतना दण्ड भुगतने को स्वेच्छापूर्वक तैयार हो जाय तो उसे जेल से छूट मिल सकती है । जैसे गोपाल ने घनश्याम की चोरी की । कुछ दिन बाद उसे सद्बुद्धि आई । चोरी के पाप की भयंकरता को समझा । अब वह उस पाप से छूटना चाहता है । उसने अपनी अन्तरात्मा से सलाह ली । वह घनश्याम के पास पहुँचा । अपना पाप प्रकट किया । चुराई हुई वस्तुएँ लौटा दीं और साथ ही उसे छः महीने की कानून सजा होनी चाहिए थी, उसके बदले मे वह घनश्याम के यहाँ कैदी के तौर पर बिना वेतन मजदूरी करने को तैयार हो गया, साथ ही भविष्य में वैसा न करने की प्रतिज्ञा भी ली । ऐसी स्थिति में निश्चय ही घनश्याम को दया आवेगी, वह उसकी शुद्ध भावना का सम्मान भी करेगा । क्रोध के स्थान पर उस पर प्रेम करेगा और उसने जिस मजबूरी में चोरी की थी वह वस्तुएँ तो खर्च डालीं पर अब चुराई हुई वस्तुएँ लौटाने की व्यवस्था करने में उसे कितना कष्ट और त्यागपूर्ण दौड़धूप करनी पड़ी उसे देखते हुए सम्भव है घनश्याम कुछ वस्तुएँ लौटा भी दे और कम भी ले ले । साथ ही मानवता के नाते वह इतना तो अवश्य ही करेगा कि छः महीने तक कैदी के रूप में उसने जो निःशुल्क सेवा करने का प्रस्ताव किया था उसे अस्वीकार कर दे और गोपाल को गले लगाते हुए कहे—मित्र ! तुम्हारा इतना अलौकिक साहस ही क्या कम है जो अपना पाप प्रगट कर दिया, वस्तुएँ लौटा दीं । इतना भी इस दुनियाँ में कौन करता है ? तुम्हारा सौजन्य सराहनीय है । भूल सभी से हो जाती है, पर उस भूल को स्वीकार करना और उसका प्रायश्चित्य करना यह तो किसी मनुष्य की महानता का सबसे बड़ा प्रमाण है । तुम महान् हो, तुमने जो साहस दिखाया उसके लिए मैं गद्‌गद् हूँ । अब इतना मैं नहीं कर सकता कि तुम्हे कैदी की तरह छः महीने अपने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर में रखूँ । मैंने तुम्हें क्षमा ही नहीं किया वरन् अपना सम्मानास्पद मित्र भी माना है । आओ—हम लोग गले मिलें और एक दूसरे के सच्चे मित्र बन कर रहें ।

इस प्रकार प्रायश्चित्य में ही चुराने वाले के मन की कँपकँपी का और जिसका चुराया गया था उसके रोष एवं शाप का शमन हो सकता है । न्यायाधीश को भी अपने न्याय दण्ड का प्रयोग करने की माथापच्ची नहीं करनी पड़ती । शास्त्रकारों ने उन सभी पाप कर्मों के प्रायश्चित्य बताये हैं जो किये जा चुके और जिनके दण्ड मिलने निश्चित हैं । इन प्रायश्चित्यों के आधार पर मनुष्य स्वयं अपने आपको सुधार सकता है और उनके दण्ड को तपश्चर्या आदि के रूप में भुगत सकता है । किये जा चुके पापों की निवृत्ति का तो प्रायश्चित्य ही एक मात्र उपाय है जो गंगा तट पर और भी सुगमता से हो सकता है । पर गंगा पर माहात्म्य का वर्णन करते हुए शास्त्रकारों ने जिन पापों के नाश का उल्लेख किया है वे मनोगत कुसंस्कार ही हैं । इनकी गणना भी मानसिक पापों में ही है, उनका उफान रुक जाना भी एक प्रकार से भावी पाप नष्ट हो जाना ही है । पिछले और अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं । इसका तात्पर्य यही है कि पिछले अनेक जन्मों के संचित उन कुसंस्कारों का शमन होता है जो पाप कर्मों के वास्तविक उत्पादक हैं ।

गंगा के सान्निध्य से इन पाप वृत्तियों के नष्ट होने के अनेकों शास्त्र प्रमाण मिलते हैं । पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड, अध्याय ६०, २९ और ४३ में इस प्रकार के कतिपय श्लोक हैं, उनमें से कुछ नीचे देखिये—

गंगेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम् ।

कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम् ॥

गंगाजी के नाम के स्मरण-मात्र से पातक, कीर्तन से अति पातक और दर्शन से भारी-भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं ।

स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितृणां तर्पणात्तथा ।

महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने-दिने ॥

गंगाजी में स्नान, जलपान और पितरों का तर्पण करने से महापातकों की राशि का प्रतिदिन क्षय होता रहता है ।

अग्निगा दहते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा ।

तथा गंगाजलस्पर्शात् पुंसा पापं दहेत् क्षणात् ॥

जैसे अग्नि का संसर्ग होने से रुई और सूखे तिनके क्षणभर में भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गंगाजी अपने जल का स्पर्श होने पर मनुष्यों के सारे पाप एक ही क्षण में दग्ध कर देती हैं ।

तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैव्रतैर्नानाविधैस्तथा ।

पुरुदानैतियां च गंगा संसेव्य तां लभेत् ॥

तपस्या, बहुत से यज्ञ, नाना प्रकार के व्रत तथा पुष्कल दान करने से जो गति प्राप्त होती है, गंगाजी सेवन करने से मनुष्य उसी गति को पा लेता है ।

त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणः ।

अन्ये च बान्धवाः सर्वे गंगा तान्नपिरत्यजेत् ॥

पुत्र पिता को, पत्नी प्रियतम को, सम्बन्धी अपने सम्बन्धी को तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी प्रिय बन्धु को छोड़ देते हैं, किंतु गंगाजी अपने जनों का परित्याग नहीं करती ।

विष्णुपादार्घसम्भूते गंगे त्रिपथगामिनि ।

धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि ॥

गंगे ! तुम विष्णु का चरणोदक होने के कारण परम पवित्र हो तथा तीनों लोकों में गमन करने से त्रिपथ गामिनी कहलाती हो । तुम्हारा जल धर्ममया है इसलिये तुम धर्मद्रवी के नाम से विख्यात हो । जाह्नवी ! मेरे पाप हर लो ।

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता ।

त्राहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥

भगवान् विष्णु के चरणों से तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है । तुम श्री विष्णु द्वारा सम्मानित वैष्णवी हो । मुझे जन्म से लेकर मृत्यु तक के पापों से बचाओ ।

श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते ।

अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम् ॥

धर्म से परिपूर्ण महादेवी भागीरथी ! तुम अपने शोभायमान रजःकणों से और अमृतमय जल से मुझे श्रद्धा-सम्पन्न बनाती हुई पवित्र करो ।

गंगा गंगेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥

जो सैकड़ों योजन दूर से भी 'गंगा, गंगा' ऐसे कहता है वह सब पापों से मुक्त हो विष्णुलोक को प्राप्त होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाठयज्ञपरैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः ।
सा गतिर्न भवेज्जन्तोगंगासंसेवया च या ।

पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मों से भी जीव को वह गति नहीं मिलती, जो गंगाजी के सेवन से प्राप्त होती है ।

विशेषात्कलिकाले च गंगा मोक्षप्रदा नृणाम् ।
कृच्छाच्च क्षीणंसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः ॥

विशेषतः इस कलिकाल में सत्त्वगुण से रहित मनुष्यों को कष्ट से छुड़ाने—मोक्ष प्रदान करने वाली गंगाजी ही हैं। गंगाजी के सेवन से अनन्त पुण्य का उदय होता है।

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति ।
अवगाढ़ा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥

गंगाजी नाम लेने मात्र से पापों को धो देती हैं, दर्शन करने पर सप्त पीढ़ियों तक को पवित्र कर देती हैं ।

न गंगासदृशं तीर्थ न देवः केशवात्परः ।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः ॥

ब्रह्मा जी का कथन है कि गंगा के समान तीर्थ, श्रीविष्णु से बढ़ कर देवता तथा ब्राह्मणों से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है ।

तीर्थनां तु परं तीर्थ नदीनामुत्तमा नदी ।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि ॥

गंगा तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ, नदियों में उत्तम नदी तथा सम्पूर्ण महापातकियों को भी मोक्ष देने वाली है ।

सर्वेषां चैव भूतानां पापोपहतचेतसाम् ।
गतिरन्यत्र मर्त्यानां नास्ति गंगासमा गतिः ॥

जिनका चित्त पाप से दूषित है, ऐसे समस्त प्राणियों और मनुष्यों की गंगा के सिवा अन्यत्र गति नहीं है ।

पवित्राणां पवित्रं या मगंलानां च मंगलम् ।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वापापहरा शुभा ॥

भगवान् शंकर के मस्तक से होकर निकली हुई गंगा सब पापों को हरने वाली और शुभकारिणी है । वे पवित्र को भी पवित्र करने वाली और मंगलमय पदार्थों के लिये भी मंगलकारिणी हैं ।

कहा भी गया है—"औषधि जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणः हरिः ।" अर्थात् आध्यात्मिक रोगों की दवा गंगाजल है और इन रोगों के रोगियों के चिकित्सक नारायण हरि परमात्मा हैं । उन्हीं की कृपा से आन्तरिक पाप-दोषों का समाधान होता है । पाप वृत्तियाँ एक प्रकार की आध्यात्मिक बीमारियाँ ही हैं इनका उपचार सांसारिक उपायों से नहीं वरन् गंगा तट पर निवास करते हुए नारायण हरि की, परब्रह्म परमात्मा की उपासना करने में ही है ।

तरण-तारिणी गंगा

नदियाँ इस धरातल पर असंख्यों हैं । उनमें से कितनी-कितनी ही ऊँचे पहाड़ियों से निकलती हैं और सदा प्रवाहित भी रहती हैं । हिमालय से भी कितनी ही नदियाँ निकलती हैं किन्तु इस सरित् सुमदाय में गंगा की गरिमा विलक्षण है । उसकी आध्यात्मिक विशेषताएँ उच्चस्तरीय हैं । जिस क्षेत्र में गंगा बहती हैं, उसे दिव्य वातावरण से भर देती हैं । जो उसके तट पर रहते हैं आध्यात्मिक प्रगति का असाधारण लाभ उठाते हैं । गंगा जल का माहात्म्य आत्मिक पवित्रता बढ़ाने के सम्बन्ध में तो है ही शरीर और मन को आरोग्य प्रदान करने की भी उसमें भारी क्षमता है ।

इतिहास के पृष्ठ बताते हैं कि गंगा जल को बिना किसी धार्मिक भेदभाव के किस तरह उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा है । गंगाजल की विशेषताओं से मध्यकाल के मुसलमान शासक भी हिन्दुओं की तरह ही उसके गुणों पर मुग्ध थे और धार्मिक दृष्टि से उसका उपयोग करते थे । इब्जतबतूता नामक एक भ्रमणशील लेखक अफ्रीका महाद्वीप एशिया की लम्बी यात्रा करते हुए भारत भी आया था उसने जो संस्मरण लिखे हैं उनका गिब्स ने अंग्रेजी में अनुवाद किया है । इस पुस्तक में तत्कालीन सुल्तान मुहम्मद तुगलक के शासन का विस्तृत वर्णन है । उसमें यह भी उल्लेख है कि बादशाह गंगा जल पीते थे । उनके लिए दौलताबाद गंगा जल पहुँचाने में ४ दिन लग जाते थे । नियमित रूप से उन्हें गंगाजल मिलता रहे इसकी व्यवस्था की गयी थी ।

अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ 'आइने-अकबरी' में लिखा है—"अकबर को गंगाजल से भारी प्रेम था उन्हें नित्य गंगा जल मिलता रहे इसके लिए उन्होंने २० व्यक्तियों का दल नियुक्त किया । जब बादशाह आगरा या फतेहपुर सीकरी रहते है तब गंगा जल सोरों से आता है और जब पंजाब जाते हैं तब हरिद्वार से ।"

गुलाम हुसेन लिखित बंगाल के इतिहास "रियजु-स-सलातीन में गंगा जल की महिमा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है और लिखा है कि इसके बराबर गुणकारी जल अन्यत्र नहीं मिलता ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फ्रन्सीसी यात्री बर्नियर सन् १४५९ से १४६७ तक आठ वर्ष भारत रहा । उसने शाहजादा दाराशिकोह की चिकित्सा भी की थी । औरगंजेब के भोजन के साथ गंगा जल भी रहता था। बादशाह ही नहीं अन्य दरबारी भी गंगाजल का नियमित प्रयोग करते थे । यात्रा में भी वे ऊँटो पर लदवा कर गंगा जल अपने साथ ले जाते थे ।

एक-दूसरे फ्रान्सीसी यात्री टैवर्नियर ने लिखा है "हिन्दुस्तान के राजे और नवाब समान रूप से गंगा जल का दैनिक उपयोग करते हैं ।"

ब्रिटिश कप्तान एडवर्ड मूर ने अपने संस्मरणों में लिखा है, शाहनवर के नवाब केवल गंगा जल पीते थे इसके लिए उन्होंने काफिला तैनात कर रखा था ।

पेशवाओं के पीने का पानी गंगा जल ही होता था । गढ़ मुक्तेश्वर तथा हरिद्वार से बहँगियों द्वारा उनके लिए गंगा जल पहुँचता था ।

दक्षिण भारत के राजा कृष्णराव को सन् १९२५ में कोई असाध्य रोग हो गया था । उन्होंने सब दवाएँ छोड़कर केवल गंगा जल लेना आरम्भ किया और वे उसी से अच्छे हो गये ।,

प्राचीनकाल में जब भारतवर्ष का अरब, मिश्र और योरोपीय देशों से व्यापार चलता था , तब भी और इस युग में भी सब देशों के नाविक गंगा की गरिमा स्वीकार करते रहे हैं । डा० नेल्सन ने लिखा है कि हुगली नदी का जो जल कलकत्ता से जहाजों में ले जाते हैं, वह लन्दन पहुँचने तक खराब नहीं होता, परन्तु टेक्स नदी का जल लन्दन से जहाजों में भरा जाता है, बम्बई पहुँचने के पहले ही खराब हो जाता है ।

अँग्रेजी शासन के दिनों वैज्ञानिक हैकिन्स ने गंगा जल की विशेषताओं के सम्बन्ध में प्रचलित किम्बदन्तियों पर शोध कार्य किया था । उन्होंने काशी नगर के गन्दे नालों का जल जाँचा जिसमें हैजे के असंख्य कीटाणु भरे हुए थे । वही नाला जब गंगा मे मिला तो उसमें रहने वाले विषाणु तत्काल मर गये । सड़े हुए मुर्दों की लाश से निकलने वाला विष भी गंगा में घुलते ही अपनी हानिकारक प्रकृति खो बैठता है । कुँए में तथा अन्य जलों में हैजा के कीटाणु डाले गये तो वे तेजी से बढ़े किन्तु गंगा जल में मिलते ही स्वयमेव नष्ट हो गये ।

योरीपीय देशों में चैटल गायोन सेण्ट नेक्टेयर बार्बूले और मोन्टेडोरे के कुण्डों का अति पवित्र माना जाता रहा है । हमारे देश में लखनऊ के पास कुकरैल नदी के स्नान से कुत्ते के काटे के अच्छा हो जाने का विश्वास किया जाता है । मोण्टेडोरे के बारे में भी वहाँ के लोगों का ऐसा ही विश्वास है । फ्रान्स के डा० मोनोद ने इन जलकुण्डों में कुछ ऐसे उपयोगी रसायन घुले हुए हैं, जो डिप्थीरिया, दमा आदि बीमारियों पर लाभकारी होते हैं। १९३० में इण्टेरियन लेक्चर में डॉ० मोनोद ने इन निष्कर्षों का विवरण दिया तो लोगों को उन मान्यताओं की वास्तविकता स्वीकार करनी पड़ी । फिर इन जलकुण्डों से बढ़-चढ़कर गुण देखने के कारण गंगा जी को पुराणों में इतना महत्त्व दिया गया तो उस पर आक्षेप करने का कोई कारण नहीं होना चाहिये था ।

फ्रान्स के प्रसिद्ध डॉ० डी हेरेल ने जब गंगा जल की इतनी प्रशंसा सुनी तो वे भारत आये और गंगा जल का वैज्ञानिक परीक्षण किया । उन्होंने पाया कि इस जल में संक्रामक रोगों के कीटाणुओं को मारने की जबर्दस्त शक्ति है । आश्चर्यजनक बात तो यह है कि एक गिलास में किसी नदी या कुयें का पानी लें जिसमें कोई भी कीटाणु नाशक तत्त्व न हों, उसे गंगा-जल से मिला दो गंगा जल के कृमिनाशक कीटाणुओं की संख्या बढ़ जाती है, इससे सिद्ध होता है कि गंगा जी में कोई ऐसा विशेष तत्व है जो किसी भी मिश्रण वाले जल को भी अपने ही समान बना लेता है । यही कारण है १५५७ मील लम्बी गंगा जी में गोमती, घाघरा, यमुना, सोन, गण्डक और हजारों छोटी-छोटी नदियाँ मिलती चली गईं, तब भी गंगासागर पर उसकी यह कृमिनाशक क्षमता अक्षुण्ण बनी रही । यह एक प्रकार का चमत्कार ही है ।

डॉ० डी हेरेल ने अपने प्रयोगों से सिद्व कर दिया कि इस जल में टी०बी० अतिसार, संग्रहणी, व्रण, हैजा के जीवाणुओं को मरने की शक्ति विद्यमान है । गंगाजी के कीटाणुओं की सहायता से ही उन्होंने सुप्रसिद्ध औषधि 'बैक्टीरियोफैज' का निर्माण किया जो ऊपर कही गई बीमारियों के लिए सारे संसार में लाभप्रद सिद्व हुई । आज भी भारतवर्ष के लगभग १५ हजार कुष्ठ रोगी रोग-निवारण की आशा से गंगा जी के किनारे रहते हैं । दूसरे देशवासी हमारी इस ईश्वरीय देन का विश्वासपूर्वक लाभ ले रहे हैं और हम भारतीयों ने उन्हीं श्रद्धास्पद भगवती गंगा में कितनी गन्दगी भर दी उसका स्मरण करने भर से बड़ा कष्ट होता है ।

भारतीयों की इस पावन सरिता के ऊपर श्रद्धा का आधार वह विज्ञान है, जिसे तत्त्ववेत्ता आदि काल से जानते रहे हैं और आज का विज्ञान जिसकी अक्षरश: पुष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करता है । डॉ. केहिमान ने लिखा है— "किसी के शरीर की शक्ति जवाब देने लगे तो उस समय यदि उसे गंगा जल दिया जाय तो आश्चर्यजनक ढंग से जीवनी शक्ति बढ़ती और रोगी को ऐसा लगता है कि उसके भीतर किसी सात्विक आनन्द का स्त्रोत्र फूट रहा है ।"

गंगा को हिमालय का अमृत रस कह सकते हैं । उस क्षेत्र की रासायनिक विशेषताएँ प्रख्यात हैं । उनका सार तत्त्व निचुड़ता और गंगा के जल में सम्मिश्रित होकर प्रवाहित होता है । दिव्य जड़ी-बूटियाँ इस क्षेत्र में अभी भी पाई जाती हैं। अन्य क्षेत्र में उगने पर उनकी वे विशेषताएँ नहीं रहतीं जो हिमालय क्षेत्र में उगने पर रहती हैं । ब्रह्मी, अष्टवर्ग, रत्न जयोति जैसी बूटियाँ, शिलाजीत जैसे खनिज होते तो अन्यत्र भी हैं, पर भूमि की विशेषता के कारण उनके जो गुण इस क्षेत्र के उत्पादन में रहते हैं, वे दूसरी जगह नहीं रहते हैं । यह विशेषताएँ जल स्त्रोतों के साथ घुलकर गंगा में जा पहुँचती हैं । गंगा लगभग ५० मील हिमालय क्षेत्र में परिभ्रमण करने के उपरान्त मैदानी भूमि में आती है । इस बीच प्राय: तीस नदियाँ दूर-दूर से बहकर आती और गंगा में विसर्जित होती चलती हैं । इस प्रकार हिमालय के अति महत्वपूर्ण क्षेत्र का रसायनिक निचोड़ उसकी जलधारा में सम्मिलित होता रहता है । इस प्रकार आरोग्य शास्त्र दृष्टि से गंगाजल की उपयोगिता किसी बहुमूल्य औषधि द्रव से कम नहीं रहती है ।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य सम्वर्धन गंगा की सर्वोपरि विशेषता है । मनुष्य मानवी सत्ता की तरह पदार्थ सत्ता के भी (१) स्थूल (२) सूक्ष्म (३) कारण स्तर हैं । स्थूल प्रत्यक्ष को कहते हैं । सूक्ष्म अदृश्य किन्तु तथ्यपूर्ण प्रभाव को । कारण वह है जिसे स्थूल और सूक्ष्म की गहन अन्तरात्मा कह सकते हैं । मनुष्य में स्थूल भाग प्रत्यक्ष शरीर है । सूक्ष्म मन चेनता और कारण अन्तरात्मा । यही बात पदार्थों के सम्बन्ध में भी है । तुलसी पौधे के रासायनिक पदार्थ औषधि रूप हैं । उसके सूक्ष्म प्रभाव से तुलसी भक्ति भावना का, श्रद्धा का, पवित्रता का संचार मानवी अन्त: करण में करने वाली होने के कारण देवोपम गिनी गई है । उसे वनस्पति वर्ग में देवतुल्य माना गया है । वट, पीपल, आँवला आदि वृक्षों में भी ऐसी ही दिव्य विशेषताएँ रहने से उनके अन्तराल में रहने वाले, तत्त्वों के परखने वाले, सूक्ष्मदर्शियों ने उनहें वृक्ष वर्ग के देव माना है । पिप्पल द ऋषि पीपल वृक्ष के नीचे निवास करते थे और उसी के फलों से अपनी आहा आवश्यकता पूरी करते थे । पशु वर्ग में गौ को माता इसी आधार पर कहा गया है । दूध आदि का लाभ तो अन्य पशु भी दे सकते हैं, कृषि कर्म में तो बैलों की जगह अनेक देशों में घोड़े आदि भी काम देते हैं । गौ की मान्यता पशु उपयोगिता की प्रतिस्पर्धा में अग्रणी होने से नहीं उसे देव संज्ञा में आध्यात्मिक 'कारण' विशेषताओं के कारण मिली है । भगवान् के चरणामृत में —पंचामृत पंचगव्य में— गौ रस की महिमा है । यह गौरव उस पशु की जीव विशेषताओं के कारण नहीं उसमें पाई जाने वाली दिव्य आध्यात्मिक गरिमा के आधार पर मिली है । गौ को ब्राह्मण के समतुल्य माना गया है और उसकी सेवा को देवाराधन के समान कहा गया है ।

गंगाजल की विशेषता में ऐसे ही दिव्य कारणों का समावेश होने से उसे देव संज्ञा दी गई है । उसके स्नान से शरीर की गर्मी एवं मलीनता हटाना ही नहीं, अन्त:करण में पवित्रता का संचार होना ही प्रधान हेतु है । इसी उद्देश्य से असंख्य भावनाशील नर-नारी उसमें स्नान करने के लिए दौड़े आते हैं और अपनी धर्म भावना तृप्त करते हैं । यह अन्धविश्वास भर नहीं हैं, इसके पीछे तथ्य है । जहाँ गंगा की पवित्रता अभी भी अक्षुण्ण है वहाँ उसके तट पर कुछ समय निवास करके यह प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है कि उसके आन्तरिक शान्ति का कितना लाभ मिलता है । शहरी कोलाहल-गटरों का गन्दा पानी मिलते चलने से उनका प्रभाव घटते जाना स्वाभाविक है । किन्तु अभी भी हिमालय क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली धारा में प्राचीन काल जैसी पवित्रता का अनुभव किया जा सकता है ।

सप्त ऋषियों ने अपने तपस्थली हिमालय की छाया और गंगा की गोद में ही बनाई थी । भगवान् राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न अयोध्या की सुविधाओं को छोड़कर गंगा तट की दिव्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए ही इस क्षेत्र में तप करने के लिए आ गये थे । तपस्वियों की परम्परा हिमालय क्षेत्र में पहुँचने और गंगा तट पर निवास करने की रही है । यह सब अकारण ही नहीं होता रहा है । तत्त्वदर्शी अध्यात्मविज्ञानियों ने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अनुकूलताओं, उपलब्धियों की ध्यान में रखते हुए ही इस प्रकार का चयन किया था । गंगा यों एक नदी भर है, पर सूक्ष्म दृष्टि से उसे प्रवाहमान देव-सत्ता ही कहा जा सकता है । उसके स्नान, दर्शन, जलपान आदि से सहज ही पवित्रता का संचार होता है । माता की गोदी में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने के समान ही उसके सान्निध्य का भाव भरा आनन्द अभी भी भावनाशील सहज ही उपलब्ध करते हैं ।

गंगाजल न केवल शारीरिक, आर्थिक प्रभाव रखता है वरन् उसकी क्षमता मनुष्य के मानसिक सन्तुलन का उच्चस्तरीय बनाये रखने में भी योगदान देती है । धार्मिक क्षेत्र की यह मान्यता अब विज्ञान के क्षेत्र में भी उपहासास्पद नहीं है । उस क्रमशः अधिक तथ्यपूर्ण माना जा रहा है । गंगा स्नान, गंगा तट पर निवास, गंगाजल पानी का माहात्म्य अब मात्र श्रद्धा का विषय ही नहीं है उसके पीछे अनेक तथ्य, तक और प्रमाण भी जुड़ गए हैं, "रत्नैः कल्पितमासनं हिमिजलैः" । (गंगाजल रत्नो से घुला हुआ है) कि मान्यता अब मात्र श्रद्धाभूत ही नहीं विज्ञान सम्मत भी हो गयी है ।

भण्डारकर इन्स्टीट्यूट पूना के महामनीषी श्री पी. के. गौड़े को शोध लेख तिरुपति से प्रकाशित जी वेंकटेश ओरिएंटल पत्रिका (एनल्स) के भाग १ संख्या ३ वाले सितम्बर ४० अंक में गंगाजल की गरिमा पर इतनी सामग्री छपी है जिसे देखने से उसकी महिमा सम्बन्धी आश्चर्य जनक तथ्यों से हम अवगत होते हैं ।

बर्लिन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० जे ओलिवर ने तो भारत की यमुना, नर्मदा, रावी, ब्रह्मपुत्र आदि अनेक नदियों की अलग-अलग जाँच करके उनकी तुलना गंगाजल से की और बताया कि गंगा का जल न केवल इन नदियों की तुलना में श्रेष्ठ है वरन् संसार की किसी भी नदी में इतना शुद्ध कीटाणुनाशक और स्वास्थ्यकर जल नहीं होता है ।

डॉ० ओलिवर का इस सम्बन्ध में एक लेख न्यूयार्क से छपने वाले 'इन्टर नेशनल मेडिकल जर्नल' में भी छपा था । इन सभी का निष्कर्ष एक ही है कि गंगा का जल संसार की सभी नदियों की तुलना में अधिक गुण सम्पन्न, खनिजों से भरपूर है । यह सम्पदा ही उसे स्वास्थ्य वर्धक विशेषता प्रदान करती है । इन सब विवेचनों का वैज्ञानिक आधार खोजे जाने पर जो तथ्य हाथ लगे हैं, उनको संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है ।

नन्दा देवी, गुरला, मान्धाता, धौलागिर, गोसाई थान, कंचन-चंगा, एवरेस्ट जैसे संसार के सबसे ऊँचे गिरि शिखरों का पिघलता हुआ बर्फ हिमालय में इधर-उधर चक्कर काटता हुआ गोमुख पर एकत्रित होकर गंगा जल के रूप में दृष्टिगोचर होता है । इन विशिष्ट भू -क्षेत्रों की धातुएँ तथा रासायनिक वस्तुएँ ऐसी हैं जो गंगाजल को मानवी उपयोग के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण बनाती हैं ।

हिमालय की दुर्लभ जड़ी बूटियों, नवजीवन प्रदान करने वाले विशिष्ट खनिजों, रत्नों से सम्पर्क साधते हुए उनकी विशेषताओं को अपने साथ समेटते हुए गंगाजल प्रवाहित होता है । इस कारण उसके गुण भी ऐसे हैं जैसे अन्य किसी नदी में नहीं पाए जाते । स्कन्द पुराण में गंगाजल के साथ एक 'गांगेय' नामक सोमरस के घुले होने का वर्णन है, जो किसी दिव्य पर्वत से उसमें संयुक्त होकर प्रवाहित होता रहता है । यही कारण है कि उसको पीने से कुष्ठ जैसे भयानक रोगों के दूर होने की बात कही गयी है । कितने ही लम्बे समय तक उसे रखा रहने दिया जाय तो भी वह सड़ता नहीं ।

रसायन विज्ञानी प्रो. एन. एन. गोडवाले ने गंगाजल की विशेषताओं का कारण ढूँढने के लिए लम्बी रासायनिक छान-बीन की । उन्होंने गंगा जल में कुछ ऐसे विशेष 'प्रोटेक्टिव कालौइड' पाये जो उसे सदा पवित्र एंव कीटाणु रहित बनाये रहते हैं । यह तत्त्व अन्य नदियों में बहुत कम मात्रा में पाया जाता है । गोडवाले ने अपने शोध निष्कर्ष में लिखा है, गंगाजल जीवाणु वृद्धि को सेकता ही नहीं वरन् उनका विनाश भी कर देता है । उनका यह भी कथन है गंगा जल का वास्तविक स्वरूप हरिद्वार से कुछ आगे तक ही पाया गया है बाद में कई बड़ी नदियाँ मिल जाने व प्रदूषण बढ़ते चले जाने से उसके वह गुण नहीं रहते जो इससे ऊपर पाये जाते हैं ।

आयुर्वेद शास्त्र में गंगा जल को शारीरिक और मानसिक रोगों का निवारण करने वाला और आरोग्य तथा मनोबल बढ़ाने वाला बताया गया है ।

"गंगा वारि सुधा समं बहु गुणं पुण्यं सदायुष्करं,
सर्व व्याधि विनाशनं बलकरं वर्ण्यं पवित्रं परम् ।
हृद्यं दीपन पाचनं सुरुचिरम्मिष्टं सु पथ्यं लघु—
स्वान्तध्वान्त निवारि बुद्धि जननं दोष त्रयघ्नं वरम् ।"

अर्थात् गंगा का जल अमृत के तुल्य बहुगुणयुक्त पवित्र, उत्तम, आयु को बढ़ाने वाला, सर्व रोगनाशक, बलवीर्य वर्द्धक, परम पवित्र, हृदय को हितकर, दीपन, पाचन, रुचिकारक, मीठा उत्तम पथ्य और लघु होता है तथा भीतरी दोषों का नाशक, बुद्धि जनक, तीनों दोषों को नाश करने वाला सब जलों में श्रेष्ठ है ।

गंगा के सम्बन्ध में इन्जीनियरों का मत है कि वह प्राकृत नदी न होकर मानवी पुरुषार्थ से बनी एक नहर है । इसके कई प्रमाण भी हैं । (१) धरासूँ से दो मील नीचे नगनगढ़ के पश्चात् मलंयाना और समासू के बीच तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) टेहरी के राज महल के नीचे, दोनों स्थानों पर गंगा ठीक नहर जैसी दीख पड़ती हैं । नदियाँ आमतौर से किसी एक निर्धारित दिशा में बहती हैं, पर गंगा में इसके अपवाद हैं । गंगोत्री हिमानी से तीस किलोमीटर नीचे गंगा एक दम उत्तर की ओर बहती है इसके बाद गंगोत्री से भैरों चोटी तक प्राय: दस किलोमीटर उत्तर पश्चिम में यह बहाव है । इसके आगे प्राय: १३ किलोमीटर हरसिल से पश्चिम की ओर चलकर एक दम दक्षिण को मुड़ जाती है । यदि इस प्रकार उलट-पुलट न की गयी होती तो गंगा का प्रवाह कहीं से कहीं पहुँचा होता और गंगा-यमुना का मध्यवर्त्ती दोआबा जो आज सोना उगलता है, वैसा ही मरुस्थल होता जैसा कि राजस्थान का जैसलमेर इलाका है ।

पुराणों की इस कथा में भी उस तथ्य की पुष्टि होती है जिसमें कहा गया है कि "भागीरथ रथ पर चढ़कर आगे-आगे चलते थे और पीछे-पीछे उनके मार्ग-दर्शन में गंगा चलती थी । इस निर्देशन में उन्होंने अनेकों पर्वतों को काटा, शिलाओं को चकनाचूर किया और प्रचण्ड वेग से अभीष्ट दिशा में बढ़ती गयीं ।"

गंगा के प्रति भारतीयों के मन में अपार श्रद्धा का आधार कोई अन्धविश्वास नहीं, यह उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है । इन्हीं कारणों से भावनाशील श्रद्धासिक्त कविहृदय भगवती गंगा को मूर्तिमान देव-सत्ता के रूप में अनुभव करता है और उसके सान्निध्य की पुलकन को अपनी अभिव्यंजना में इस प्रकार व्यक्त करता है:—

विधिर्विष्णु: शम्भुस्त्वमसि पुरुषत्वेन सकला,
रमोमागीर्मुख्यात्वमसिललन जन्हुतनये ।
निराकारा गम्भा भगवति सदात्वं विहरसि,
क्षितौ नीराकाराहरसि जनतापान्स्वकृपया ॥

हे जाह्नवी ! पुरुष रूप में तुम ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश हो और स्त्री होकर तुम रमा, उमा तथा सरस्वती हो । हे भगवति ! तुम निराकार तथा अत्यन्त गम्भीर हो, किन्तु इस पृथ्वी तल पर जल स्वरूप धारणकर विहार करती हो और अपनी कृपा से लोगों के पाप तापों को दूर करती हो ।

प्रसिद्धाते कीर्तिर्भवजलधिपारं गमयति स्मृतौ,
वेदे लोके व्रजनहरिणी शान्ति सरणि: ।
अतोऽहं यामित्वां शरणमभये मोक्षजननि,
भवत्या पात्योऽस्मि प्रभवसि समुद्धारयसा ॥

तुम्हारी यह कीर्ति प्रसिद्ध है कि तुम संसार सागर से पार करा देती हो । लोक, वेद तथा स्मृति में तुम्हारी प्रशंसा अत्यन्त प्रशस्त है । हे अभय तथा मोक्ष देने वाली, मैं तुम्हारी शरण आया हूँ । मेरा उद्धार करो ।

गंगा का आध्यात्मिक महत्त्व शास्त्रों में इस प्रकार बताया गया है—

यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम् ।
सिद्धक्षेत्रन्तु तज्ज्ञेयं गंगातीरं समाश्रितम् ॥

कूर्मपुराण ४७

जहाँ पर यह महाभागा गंगा है वह देश उसका तपोवन होता है । उसको सिद्ध क्षेत्र जानना चाहिए ।

स्नातानां तत्र पयसि गांगे ये नियतात्मनाम् ।
तुष्टिर्भवति या पुंसां न सा क्रतुशतैरपि ॥ २०

पद्म पुराण

गंगा के जल में स्थान किये हुए नियत आत्मा वाले पुरुषों को जो तुष्टि होती है वह सौ बसन्त ऋतुओं से भी नहीं होती है । २० ।

भुक्तिमुक्तिप्रदा गंगा सुखमोक्षाग्रत: स्थिता ।
अनेकजन्मसंघातपापं पुंसा विनश्यति ॥ २८

पद्म पुराण

मनुष्यों के समक्ष भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाली सुख से ही मोक्ष कारिणी गंगा स्थित है । इस महा महिमामयी गंगा के प्रभाव से मनुष्यों के अनेक जन्मों के पापों का संघात नष्ट हो जाता है ॥ २८ ॥

सम्प्राप्नोत्यक्षयं स्वर्ग गंगास्नानेन केशवम् ।
यशो राज्यं लभेत्पुण्यं स्वर्गमन्ते परां गतिम् ॥ ५

पद्म पुराण

गंगा के जल में स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा है। इसके करने से कभी नाश को न प्राप्त होने वाला स्वर्गलोक का निवास मिल जाता है, भगवान् श्री केशव के चरणों की प्राप्ति होती है, संसार में उत्तम यश प्राप्त होता है, राज्य का लाभ होता है और महान् पुण्य मिलता है तथा अन्त समय में स्वर्गलोक और परा गति होती है ॥ ५ ॥

मुनय: सिद्धगन्धर्वा ये चान्ये सुरसत्तमा: ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा स्वर्गलोकेऽच्युताभवन् ॥ ११
पारिजातसमा: पुष्पवृक्षा: कल्पद्रुमोपमा: ।
गंगातीरे तपस्तप्त्वा तत्रैश्वर्य लभन्ति हि ॥ १२
तपोभिबहुभिर्यज्ञर्प्रतैर्नानाविधैस्तथा
पुरुदानगतिर्या च गंगा संसेवतां च सा ॥ १३

पद्म पुराण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुनिगण—सिद्ध लोग—गन्धर्व वृन्द और जो अन्य देवों में परम श्रेष्ठ हैं वे गंगा के तट पर तपस्या करके स्वर्ग लोक में स्थायी रूप से निवास प्राप्त कर अच्युत होते हुए ही वहाँ रहते हैं ॥ ११ ॥ गंगा के तट पर तपश्चर्या करके वहाँ पर परम ऐश्वर्य का लाभ लिया करते हैं, क्योंकि वहाँ पर जो पुष्पों वाले वृक्ष हैं वे पारिजात (देवतरु) के समान हैं और समस्त मनोकामना पूर्ण कर देने वाले कल्प वृक्षों के तुल्य होते हैं ॥ १२ ॥ बहुत प्रकार के तपों से—यज्ञ और नानाप्रकार के व्रतों से तथा अधिक दानों से जो मनुष्य को गति प्राप्त होती है वही गति भागीरथी गंगा के जल में स्नानादि से प्राप्त होती है अत: इस गंगा का भली-भाँति सेवन करना चाहिए ॥१३ ॥

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम् ।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गंगासमा सरित् ।

अग्नि पुराण

भगवान् के समान कोई आश्रय नहीं । उपवास के समान तप नहीं । आरोग्य के समान सुख नहीं और गंगा के समान कोई जल तीर्थ नहीं है ।

येषां मध्ये याति गंगा ते देशा: पावना वरा:
गतिर्गगां तु भूतानां गतिमन्वेषतां सदा ।
गंगा तारयते चाभौ वंशौ नित्यं हि सेविता ॥
गंगातीर्थ समुद्भूतमृद्धारी सोऽघहाऽर्कवत् ।
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गंगेतिकोर्तनांत्
पुनाति पुण्यपुरुषाञ्छतशतोऽथ सहस्त्रश: ॥

अग्नि पुराण (गंगा)

जिन क्षेत्रों में होकर गांगा जाती है वे पवित्र हैं । गंगा सद् गति देने वाली है । जो उसका नित्य सेवन करते हैं वे अपने वंश सहित तर जाते हैं ।

गंगा तट की मिट्टी धारण करना । गंगा दर्शन, गंगा स्नान, गंगा जल पान, गंगा नाम का जप करने से असंख्य मनुष्य पवित्र और पुण्यवान् हुए हैं ।

गंगायां च मृतो मर्त्य:स्वर्गं मोक्षंचविन्दति ।
या गत्तिर्योगयुक्तस्य संत्वस्थस्यमनीषिण: ।
सा गतिस्त्यजत: प्राणान्गङ्गातां तु शरीरिण: ।
चान्द्रायणसहस्त्राणि यश्चरेत्कायशोधनम् ॥
पानम् कुर्याद्यथेच्छ च गंगाम्भ: स विशिष्यते ।

पद्म पुराण

गंगा के समीप में मृत्यु को प्राप्त होने वाला मनुष्य स्वर्ग का निवास और मोक्ष दोनों का लाभ प्राप्त किया करता है । जो गति योगाभ्यास में निरन्तर निरत एक योगी पुरुष की होती है और सत्व में संस्थित एक महा मनीषी पुरुष की गति हुआ करती है, वही गति उस पुरुष की भी होती है जो गंगा के तट पर अपने प्राणों का त्याग किया करता है । एक सहस्त्र चान्द्रायण महाव्रत करके जो काया की शुद्धि की जाती है उससे भी अधिक यथेच्छ रूप से गंगा के जल का पान करने से होती है ।

यद्यकार्यशतम् कृत्वाकृतम् गंगाभिषेचनम् ।
सर्व तत् तस्य गंगाम्भो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥
सर्व कृतयुगे पुण्यम् त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।
द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता ॥

—महाभारत

जैसे अग्नि ईंधन को जला देती है, उसी प्रकार सैकड़ों निषिद्ध कर्म करके भी यदि गंगा स्नान किया जाय तो उसका जल उन सब पापों को भस्म कर देता है । सत्ययुग में सभी तीर्थ पुण्य दायक होते हैं । त्रेता में पुष्कर का महत्त्व है । द्वापर में कुरुक्षेत्र विशेष पुण्यदायक है और कलियुग में गंगा की अधिक महिमा बतायी गयी है ।

इसी प्रकार अन्यान्य ग्रन्थों ने भी गंगाजल के अप्रतिम माहात्म्य का विवेचन अलग-अलग रूपों में किया है ।

शीतं स्वादुस्वच्छमत्यन्त रुच्यं
पथ्यं पाक्यं पाचनं पापहारि ।
तृष्णामोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां
धत्ते वारि भागीरथीयम् ॥

पथ्य निरूपणम्

अर्थात्—गंगाजल शीतल, स्वच्छ, स्वादिष्ट, अत्यंत रुचिकर, पथ्य, पाचक दीपन है । प्रज्ञा बढ़ाने वाला है । पापनाशक तथा तृष्णा मोह को नष्ट करने वाला है ।

शरीरे जर्जरी भूते व्याधि ग्रस्ते कलेवरे ।
औषधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणोहरि: ॥

शरीर जर्जर हो जाय, व्याधियाँ उसमें अड्डा जमा बैठें तो एक मात्र औषधि गंगाजल ही है और वैद्य मात्र भगवान् की शरणागति ।

"चान्द्रायणसहस्त्रेण यश्चरेत्कायशोधनम् ।
य: पिवेद् वै यथेष्टन्तु गंगाम्भ: स विशिष्यते

—महाभारत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हजारों चान्द्रायण व्रत कर जो अपने शरीर को शुद्ध करता है और जो यथेष्ट गंगाजल का पान करता है, दोनों में गंगाजल को पीने वाला बढ़ जाता है, अर्थात् शरीर को शुद्ध करने के सम्बन्ध में गंगाजल में चान्द्रायण व्रत से अधिक शक्ति है । गंगाजल में अनेक स्वास्थ्यप्रद गुण होते हैं । "भण्डारकर ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, पूना में १८ वीं शताब्दी' का एक हस्तलिखित ग्रन्थ है "—भोजन कौतूहल ।" उसमें लिखा है—

आरोग्य की दृष्टि से गंगाजल का भारी माहात्म्य बताया गया है—

हिमवत्प्रभवा: पथ्य: ।

—चरक

हिमालय से उतरा जल पथ्य है ।

"यथोक्त लक्षणं हिमालय भवत्वादेवगागं पथ्यम् ।"

अष्टांग हृदय

जिस प्रकार हिमालय खनिजों और दिव्य जड़ी बूटियों का भण्डार है, उसी प्रकार उसमें उतरी गंगा का जल भी पथ्य है ।

"पयस्विनी घृतमी मृत्युहारांम्"

महा. अनु. २६/८२

गंगाजल दूध और घृत के समान दीर्घजीवी बनाने वाला है ।

विभेद तरसा गंगा गंगा द्वारं युधिष्ठिर ।
पुण्यं तत् ख्यायेत् राजन् ब्रहमर्षि सेवितम्गण ॥

महा. वन पर्व

हे युधिष्ठिर हिमालय को चीरती हुई जहाँ गंगा समतल भूमि पर चलती है, वहाँ गंगाद्वार-हरिद्वार है । उस तीर्थ को सदा ब्रह्मर्षि सेवन करते हैं ।

गीता अध्याय १०, ३१ वें श्लोक में भगवान् कहते हैं—

"स्रोत सामस्मि जाह्नवी" अर्थात् "नदियों में गंगा मैं हूँ ।"

गंगा की स्तुति करते हुए शास्त्रकार बड़े भाव भरे शब्दों में कहता है—

नमामि गंगे तव पाद पंकजं,
सुरासुरैर्वन्दित दिव्यरूपम् ।
मुक्तिं च भुक्तिं च ददासि नित्यं
भावानुसारेण सदानारायणम् ॥

है भगवती गंगे ! आपके पादपंकजों को शत शत नमन । देवता और दैत्य सभी आपके शरणागत ही हैं । आप भावनाओं के अनुरूप-मनुष्यों को सब कुछ प्रदान करती हैं—मुक्ति भी, भुक्ति भी ।

देवात्मा हिमालय की खोज अभी बाकी है

दिव्य दर्शियों का मत है कि ब्राह्मी चेतना की सघन मात्रा का धरती पर विशिष्ट अवतरण देवात्मा हिमालय के हृदय केन्द्र से ही होता है । भौतिक दृष्टि से वैज्ञानिकों के लिए शक्ति के आवागमन केन्द्र उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव हो सकते हैं । किन्तु अध्यात्म क्षेत्र का ध्रुव केन्द्र यही है । इस क्षेत्र में भ्रमण करते, निवास करते अथवा साधना तपश्चर्या कतरे हुए यह अनुभूति सहज ही की जा सकती है । जहाँ थियॉसाफी मान्यतानुसार इसे योगियों की पार्लियामेण्ट कहा गया है, वहाँ श्रीमद्भागवत के बारहवें एवं दसवें स्कन्ध में हिमालय में दिव्य पुरुषों के निवास होने की बात विशिष्ट माहात्म्य सहित लिखी है ।

अभी भी इसके बारे में जन-सामान्य की जानकारी अत्यल्प है । मात्र पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थानों की प्रसिद्धि है और इनमें भी वे जो मोटर यात्रा द्वारा सीधी पहुँच में हैं । हिमायल की शोध में अभी बहुत कुछ ढूँढा जाना शेष है । तीर्थयात्री और स्थानीय निवासी भी वहीं तक पहुँच पाए हैं, जहाँ आवागमन सुगम है, पानी तथा खाद्य उपलब्ध करने के साधन हैं । वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए भी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना पड़ता है । मात्र प्रसिद्ध मठ-मन्दिर, जो धार्मिक आकर्षण के केन्द्र हैं, में पहुँचने पर आजीविका के कुछ स्रोत मिल पाते हैं ।

आज से लगभग १ सहस्र वर्ष पूर्व केवल ३० वर्ष की आयु में आद्य शंकराचार्य ने हिमालय यात्रा कर ज्योतिर्मठ की स्थापना की थी । समीपस्थ बद्रिकाश्रम एवं केदारनाथ के बीच का मार्ग अभी भी यात्रियों के लिए उसी प्रकार अनजाना एवं अगम्य है जैसा कि उस समय रहा होगा ।

आज भी चारों धाम, पंचकेदार और पंचबद्री की समग्र उत्तराखण्ड यात्रा मोटर यातायात उपलब्ध होने पर भी एक माह में नहीं की जा सकती । क्योंकि ये स्थान ऊँचाई पर होने व कई स्थानों पर पैदल मार्ग होने के कारण समुचित समय माँगते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सर सिडनी बर्नार्ड पहले व्यक्ति थे जिन्होंने बद्री-केदार की गहन चोटियों में पहुँच की। उनका कहना है कि इतिहास के प्रारम्भ से ही शिवलिंग स्थित मानसरोवर एक पवित्र तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि बद्रीनाथ शंकराचार्य के पूर्व भी वहाँ बौद्ध तीर्थ स्थल था। वहाँ बौद्धकालीन अवशेष पाए गए हैं।

पाण्डवों ने भी हिमालय आरोहण किया था। ब्राह्मण इतिहास हिमालय के इस क्षेत्र पर एक नया प्रकाश डालता है। इससे ज्ञात होता है कि यह समग्र क्षेत्र तब तांत्रिक सिद्धियों के लिए प्रसिद्ध था। कुछ ऐसे प्रमाण हैं कि केदारनाथ, नाथ पंथी साधनाओं का भी पीठ रहा है। विशेषत: बगुला मुखी शक्ति साधना का। इसके साथ ही सौम्य आरण्यक साधनाएँ भी इस क्षेत्र में होती थीं।

"कनफटिया सम्प्रदाय" का यहाँ धार्मिक एवं राजनैतिक प्रभुत्व कभी था। अब तो मुश्किल से भी इस गुह्य साधना का ओर-छोर मिल पाता हो। पहाड़ की चोटियों पर बने मठ गुरु गोरखनाथ के पन्थ के हैं और देवियों के मठ कुछ विचित्रता लिए हुए हैं। लगता यह है कि प्रारम्भ में सात्विक साधना स्थली रहने के बाद वे मध्यकाल में वामाचारी तन्त्र साधना के विशेषज्ञों के हाथ आ गए। तान्त्रिक मत में तीर्थयात्रा साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है, इसी कारण इस क्षेत्र की तीर्थयात्रा का प्रचलन आदि काल से है।

केदारनाथ से भृगु शृंग का दर्शन होता है। यहीं से गंगा का उद्भव माना जाता है। गंगा की मूलधारा भागीरथी का ग्लेशियर (गंगोत्री ग्लेशियर), जो विश्व में सबसे बड़ा माना गया है, यहाँ से आरम्भ होकर उत्तर पश्चिम की ओर स्वर्ग रोहिणी चतुरंगी श्रृंखलाओं से होता हुआ शिवलिंग—सुमेरु के समीप गोमुख में प्रकट होता है। भागीरथी के अतिरिक्त अलकनन्दा व मन्दाकिनी का मूल स्रोत भी केदारनाथ के बायें-दाँये है। इस तरह यह क्षेत्र पवित्र पुण्य तोया गंगा का आदि स्रोत है जहाँ कभी उसका अवतरण भागीरथ की साधना की परिणिति रूप हुआ था। केदारनाथ से दिखाई देने वाले ऊँचे पर्वत श्रृंग को कैलाश नाम से सभी पहाड़ी लोग पुकारते हैं। उनका तात्पर्य यहाँ समग्र अगम्य दुर्गम हिमालय से होता है। आध्यात्मिक मान्यतानुसार शिवलिंग ही कैलाश व नन्दन वन के समीपस्थ झील ही मानसरोवर है। तिब्बत वाले कैलाश की संगति इतिहास व स्थलों से कुछ मिलती नहीं।

पशुपतिनाथ और केदारनाथ दोनों ही स्थानों पर शिव-शक्ति का पूजन होता है। यहाँ तांत्रिक विधि से शिवार्चन होता पाया जाता है। जागेश्वर, आर्य बद्री, उखीमठ, मठमहेश्वर, तुंगनाथ, गोपेश्वर, त्रियुगी नारायण आदि स्थानों पर भी शैव मतानुसार उपासना की जाती है।

इसी के साथ-साथ यहाँ वैष्णव मत को भी भिन्न-भिन्न स्थानों पर देखा जा सकता है। यमुनोत्री से गंगोत्री एवं केदार से बद्री तक जो उपासना स्थलों की श्रृंखलाएँ हैं, वे विविधता की परिचायक हैं। अपनी स्थिति, प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण तो वे देखने योग्य हैं ही, सिद्ध पीठ शक्ति स्थल होने के नाते भी वे जाने योग्य हैं। वहाँ समय निकालकर पैदल जाने एवं साधना करने का अपना अलग आनन्द है। फिर भी अभी इस क्षेत्र की जनसाधारण में चार धामों के अतिरिक्त जानकारी का अभाव ही है।

हिमालय के हृदय का बहुत-सा क्षेत्र अनजाना पड़ा है और वहीं दिव्य जड़ी-बूटियों का तथा सूक्ष्म शरीर में तपश्चर्या करने वालों दिव्यदर्शी साधकों का निवास है।

गंगोत्री से बद्रीनाथ सीधे पर्वत मार्ग से मात्र ४० मील है पर गम्य मार्ग पर चलने से २०० मील से अधिक की यात्रा करनी पड़ती है, क्योंकि इस मध्य बहुत ऊँचे और दुर्गम पर्वत शृंग हैं। इसी प्रकार बद्रीनाथ और केदारनाथ का मध्यवर्ती क्षेत्र भी ऐसा है जिसे सच्चे अर्थों में फूलों की घाटी कहते हैं। अब होम कुण्ड और तपोवन क्षेत्र मनुष्यों के आवागमन से भरने लगा है। इसलिए उनकी भव्यता तो बढ़ी है पर दिव्यता घटी है। साधक स्तर के व्यक्तियों के स्थान पर पिकनिक पर्यटन प्रधान रुचि वाले जमघट अधिक हैं।

कैलाश-मानसरोवर यात्रा का शास्त्रों में बहुत माहात्म्य वर्णन है। ऐतिहासिक तथा भौगोलिक दृष्टि से भी केदारनाथ के निकटवर्ती श्रृंग कैलाश कहे जाने के उपयुक्त मान जा सकते हैं और गान्धी सरोवर को मान सरोवर माना जा सकता है—जो मन्दाकिनी के स्रोत के समीपस्थ है, शिवलिंग व इस पर्वत श्रृंग में से किसी को भी मान्यता दी जा सकती है। इस मान्यता को उभारना इसलिए भी आवश्यक हो गया कि पिछले दिनों जो कैलाश माना जाता रहा है, वह चीन के चंगुल में चला गया और मार्ग में डाकुओं का खतरा पहले से भी अधिक बढ़ गया है। वह स्थान वस्तुत: वातावरण की दृष्टि से भी अब साधना स्थल नहीं रहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिचित जड़ी-बूटियों को उस क्षेत्र के निवासी खोदकर बाजार में बेचते और गुजारा चलाते हैं। उनके उत्पादन की सुव्यवस्थित योजना न होने तथा काटने पर नियन्त्रण न रहने से वे अब दिनों-दिन घटती जाती है। भेड-बकरी चराने वाले उस क्षेत्र में जा निकलते हैं तो घास और जड़ी-बूटियाँ सभी का सफाया कर देते हैं ।

यदि ब्रह्म कमल जिसकी सुगन्ध से अनायास ही समाधि लग जाती है, संजीवनी जिसमें मृत को जीवित करने जैसा गुण है—जिसे हनुमान जी लक्ष्मण जी के लिए ले गये थे, ज्योति बूटी जो रात्रि में दीपक की तरह प्रकाशवान कही जा रही है, को पुनः खोजा जाए तो साधना एवं चिकित्सा दोनों ही क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हस्तगत हो सकती हैं । हिमालय जितना विशाल है, उतना ही रहस्यमय भी है। अभी इसमें और गहरी पैठ लगाने की आवश्यकता है।

देवात्मा हिमालय की पवित्रता अक्षुण्ण बनी रहे

पर्वत तो संसार में बहुत से ऐसे हैं जिन पर हिम का श्वेत आवरण छाया होता है, देखने में दृश्य नयनाभिराम होता है तथा वहाँ जाने वाले ठण्डक पाकर ग्रीष्म के आतप से मुक्ति पाते हैं। उत्तरीध्रुव व दक्षिणीध्रुव दोनों ही हिमशिला खण्डों से भरे पड़े हैं। ग्रीन लैण्ड व आइसलैण्ड दोनों ही बर्फ से ढँके पड़े हैं तथा वर्ष में कभी कभार ऐसा समय आता है, जब वहाँ उस हिस्से में जाना मनुष्य को सुखद लग पाता है। कनाडा का तो उत्तरी भाग पूरा ही न्यूफाउण्डलैण्ड से लेकर अलास्का तक बर्फ से ढँका है तथा जो भी कुछ जनसंख्या उस देश की है—कुल २३० लाख, वह दक्षिण के उस हिस्से में रहती है, जिसे वनस्पति कवचयुक्त रहने योग्य भाग माना जाता है। जब हिम की ठिठुरन व्यक्ति को निष्क्रिय व जीवन को दूभर बनाती हो तब क्या कारण है कि हिमालय की सतत् बर्फ से ढँकी श्वेत चोटियाँ अगणित व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करतीं व, चेतना के प्रवाह से अनुप्राणित कर एक विशिष्ट ऊर्जा का उन में संचार करती है ।

यहाँ हिमालय की तुलना अन्य हिमाच्छादित क्षेत्रों से करके यह प्रतिपादन करने का प्रयास किया जा रहा है देवतात्मा हिमालय में कुछ ऐसी विशिष्टता समाहित है जो उसे अन्य शिलाखण्डों—भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पर्वतों से अलग ठहराती है। पर्यटकों, ट्रैकिंग करने वाले दुस्साहसी पर्वतारोहियों तथा स्केटिंग का आनन्द लेने वाले व्यक्तियों की बात एक तरह रखकर यदि इसी पक्ष पर विचार करें कि क्या कारण है कि व्यक्ति भारत वर्ष की उत्तरी सीमा पर प्रहरी की तरह खड़े इस पर्वतराज के अंदर परमात्मा की सत्ता के दर्शन करता है तथा एक अलौकिक प्राणशक्ति का संचार इसमें विचरण करने, इसका दर्शन मात्र करने तथा ध्यान लगाने से पाता है। इसका उत्तर एक ही है कि हिमालय वस्तुतः देवताओं की क्रीड़ा-स्थली रहा है व पृथ्वी पर स्वर्ग की उपमा इसे सही ही दी गयी थी। सूक्ष्म शरीरधारी ऋषिगण अभी वहाँ सतत् तपश्चर्यारत रहते हैं, जिसके प्रताप से वहाँ ध्यान लगाने वाले एक पहली कक्षा के साधक का ध्यान भी तुरंत लग जाता है। अध्यात्मचेतना का ध्रुवकेन्द्र हिमालय को इसी कारण सोद्देश्य ही कहा गया है।

मैडम ब्लावट्स्की ने हिमालय में दिव्यात्माओं की (मास्टर्स की-गुरुसत्ताओं की) पार्लियामेन्ट विद्यमान होने की बात अपने ग्रन्थों में लिखी है। समय-समय पर अदृश्य सहायकों के आते रहने व लोगों की जड़ व चेतना जगत् की गुत्थियों को सुलझाने की बात वे "सिक्रेट डॉक्ट्रीन" "में कहती हैं तो उनके शिष्य श्री लेडबीटर अपनी पुस्तक "इनवीजीबल हेल्पर्स" में कहते हैं। पॉल ब्रण्टन से लेकर मैक्समूलर तक तथा स्वामी दयानंद व रामतीर्थ से लेकर स्वामी विवेकानन्द तक हिमालय आते व तपश्चर्या कर सूक्ष्म शरीरधारी ऋषियों से संपर्क स्थापित कर अपनी भावी क्रियापद्धति का निर्धारण करते रहे हैं। स्वामी दयानन्द ने जहाँ धरासू में परशुराम शिला पर तप कर पाखण्ड—खण्डिनी पताका फहराने व देखव्यापी दिग्विजय करने के निमित्त शक्ति अर्जित की, वहाँ स्वामी रामतीर्थ ने तो अपनी साधना का समापन ही हिमालय की छाया व भागीरथी की गोद में कर प्राणों का विसर्जन किया। स्वामी विवेकानन्द ने अलमोड़ में हिमालय के दर्शन कर स्वयं को कृतार्थ किया व बाद में विश्व की एक निराली स्थापना मायावती में अद्वैत आश्रम की स्थापना करके की। अलमोड़ा में वे अपने अल्पकालीन जीवनावधि में तीन-तीन बार आए तथा यहीं से पर्वत श्रंखलाओं में भ्रमण करते हुए वे पूरे उत्तराखण्ड

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में विचरण कर गए। निश्चित ही कोई विशेष कारण रहा होगा जो इन महापुरुषों ने हिमालय के इस भाग को विशिष्ट महत्त्व दिया।

हिमालय यों तो गिलगित—कराकोरम व के—२ नामक विश्व की नम्बर दो की चोटी से आरम्भ होकर वर्मा के जंगलों तक फैला हुआ है, पर इसकी विशिष्टता इसके इस भाग में है जो धौलाधार—बंदरपूछ चोटियों के भाग से लेकर बद्रीनाथ के पूर्व में स्थित नन्दाकोट—पंचचूली—त्रिशूल व कैलाश पर्वत तक फैला हुआ है। भौगोलिक दृष्टि से भी यह समग्र हिमालय का मध्यभाग है तथा आध्यात्मिक दृष्टि से इसे हिमालय का हृदय कह सकते हैं। उत्तराखण्ड को अपने अंक में समेटे यह समूचा हिमक्षेत्र अतिविशिष्ट ऊर्जा सम्पन्न क्षेत्र है, यह वहाँ जाकर उसके समीप्य का लाभ लेकर समझा व आत्मसात् किया जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन काल में चार बार अपनी सूक्ष्म-शरीरधारी मार्ग-दर्शक सत्ता के संकेतों पर हिमालय की यात्रा की। बाल्यकाल में तो वे एक बार घर से हिमालय भाग ही खड़े हुए थे व हल्द्वानी काठगोदान जाने वाली रेल में बैठ भी चुके थे, जब सम्बन्धीगण उन्हें समझा बुझाकर वापस लाए। हिमालय को पूज्यवर पारस कहते थे व अपना पिता—संरक्षक मानते थे। नंदनवन के मखमली पठार से लेकर दुर्गम हिमालय के गंगोत्री से लेकर पर-नारायण पर्वत—नीलकण्ठ पर्वत तक के देवयान मार्ग को एक बार नहीं, तीन बार उनने मात्र अपने तपोबल—योगशक्ति के सहारे पार किया था। आर्षग्रन्थों का भाष्य उनके द्वारा हिमालय प्रवास के बाद ही उत्तरकाशी में किया गया तथा उन प्रवासों के संस्मरणों का दस्तावेज "सुनसान के सहचर" पुस्तक के रूप में एक अलौकिक स्तर की मानवी चेतना को उच्चतर लोकों में ले जाने वाली कृति है। तीर्थों की चेतन सत्ता जिन्दा हो, उनमें प्राण आए व पर्यटन करने आए तीर्थ यात्री वास्तव में हिमालय की प्राणऊर्जा से लाभान्वित होकर जाएँ, यह वेदना संस्कृति पुरुष पूज्य गुरुदेव के अंतस्तल में सतत् बनी रही।

वस्तुतः हिमालय का हृदय कहा जाने वाला यह क्षेत्र न केवल आध्यात्मिक प्रगति के पिपासु, जिज्ञासु साधकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधना स्थली है, वरन् आत्मबल उपार्जन हेतु एक श्रेष्ठ कर्मशाला भी। आज भी इस क्षेत्र में वे कम्पन विद्यमान हैं जो किसी भी व्यक्ति में पवित्रता के संचार-प्राणाग्नि के उद्दीपन तथा सूक्ष्म शरीर में ऊर्जा संचालन में सक्षम हैं। यही कारण है कि विश्वभर से आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ उत्थान करने, उच्चतरस्तर की साधनाएँ करने वाले व्यक्ति यहाँ आते व अपनी साधना पुरुषार्थ संपन्न करते हैं। तिब्बत जिसे "रूफ ऑफ द वर्ल्ड" कहा जाता है में कभी संपन्न होने वाले विशिष्ट स्तर के मंत्रशक्ति व तंत्रशक्ति के प्रयोग इसी क्षेत्र में अभी भी कई साधक संपन्न करते देखे जाते हैं। कैलाश-मानसरोवर का क्षेत्र इसी से जुड़ा हुआ है तथा परमपूज्य गुरुदेव ने तो शिवलिंग-भगीरथ पर्वत-गोमुख—गंगोत्री ग्लेशियर जैसे क्षेत्र को ही वास्तविक कैलाश मानसरोवर कहा है। बर्फ की श्वेत चादर से ढँके इन पर्वतों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाले साधक वास्तव में जागृत जीवन्त पाते हैं। हिमवान पर्वतराज हिमालय की पुत्री जो प्रलयंकर शंकर के परिणय बंधन में बँधी, ने भी यहीं तपकर अपनी पात्रता का संवर्धन किया। संत एक नाथ, आद्यशंकराचार्य, सहजानन्द स्वामी नारायण महाप्रभु ईसा, जैन तीर्थकर ऋषभदेवजी तथा सिक्खों के गुरु श्रीगोविन्दसिंह जी ने भी यहीं आकर तप किया था। पुराणों के तो सारे आख्यान हिमालय क्षेत्र में ही होने सम्पन्न बताए गए हैं। इस प्रकार यह तो प्रमाणित ही है कि देवात्मा हिमालय की प्रचण्ड प्राणचेतना अपने चुम्बकीय आकर्षण से जन-जन के मन-मन को प्रभावित करती रही है।

हमारा यह कर्त्तव्य बनता है कि इस संक्रान्तिकाल की वेला में जब हमें आध्यात्मिक बल सर्वाधिक अभीष्ट है, अपनी ऊर्जा के ध्रुवकेन्द्र हिमालय की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखें। इसका हरीतिमा कवच नष्ट न करें। पर्यटन के नाम पर-पर्वतारोहण के नाम पर वर्जनाओं का उल्लंघन कर तामसिक वस्तुओं का माँस-शराब आदि का वहाँ प्रयोग वर्जित करें। अधिक भीड़ उस क्षेत्र में एकत्र हो—तीर्थाटन के नाम पर प्रदूषण पैदा न करें, इसके स्थान पर इसके चप्पे-चप्पे को तीर्थ बनाते हुए उससे प्रेरणा लेने का प्रयास करें। साधना-स्थलियाँ अपने प्राकृतिक रूप में यहाँ बनें तथा इससे सुपात्र व्यक्ति लाभ उठायें। स्वयं को गलाकर भगीरथी, मंदाकिनी, अलकनंदा को जन्म देने वाले इस हिमालय में कृत्रिम बाँध बनाकर दैवी प्रकोपों को अमंत्रित न करें। यदि हम हिमालय को सुरक्षित रख सके तो हमारा सांस्कृतिक गौरव भी अक्षुण्ण बना रहेगा तथा हम इक्कीसवीं सदी के लिए प्राणवान् पीढ़ी भी समाज के लिए छोड़कर जा सकेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हिमालय की ऋषि परम्परा का अभिनव—संस्करण शान्तिकुञ्ज

संसार की सुव्यवस्था बनाये रहने और प्रगति प्रेरणा देते रहने का काम ऋषिकल्प आत्माओं का है। वे समय-समय पर सामयिक समस्याओं का समाधान करते और कराते हैं। मनुष्यों की दुर्बल चेतना प्रायःभटगाव की ओर चल पड़ती है। अपने स्वरूप, उद्देश्य और कर्त्तव्य को भुलाकर, वह करने लगती है, जो उसके लिए हर दृष्टि से अयोग्य है। इस अवाँछनीयता का संशोधन और परिष्कार कर सकने की सामर्थ्य अर्जित करने के लिए ऋषि वर्ग के लोग अपनी पवित्रता और प्रखरता बनाये रखने—लोक प्रवाह को मोड़ने तथा व्यक्तित्वों को निखारने, उभारने में सफल होते थे। बढ़ती हुई आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए अभिनव अनुष्ठान करते रहते थे।

इन प्रयासों में संलग्न रहने के लिए उन्हें हिमालय का वातावरण सर्वोत्तम लगा। अधोगामी प्रवृत्तियाँ प्रायः पृथ्वी की नीची सतह पर रहती हैं। इसलिए उस क्षेत्र की गणना अधोलोक में की जाती है। ऊँचे स्थान न केवल ऊँचाई की दृष्टि से श्रेष्ठ वातावरण वाले होते हैं, वरन् उनमें आदर्शवादी उत्कृष्टता भी रहती है। हिमालय का हृदय कहे जाने वाले उत्तराखण्ड के साथ वातावरण की सात्विकता का विशेष महत्त्व है। नागपुरी संतरे, भुसावली केले, मलीहाबादी आमों एवं लखनऊ के अमरूदों की अपनी विशेषता उस स्थान विशेष के कारण है। मलयागिरि चन्दन और किसी स्थान पर इतनी सुगन्धि वाला एवं विशिष्ट नहीं उत्पन्न किया जा सकता। उत्तराखण्ड की अपनी विशेषता उस दिव्य वातावरण के कारण है, जो हमेशा से दैवी प्रेरणा का उद्गम केन्द्र रहा है। ब्रह्म कमल, देव कन्द, संजीवनी बूटी और अन्य दिव्य औषधियाँ और कहीं पाई नहीं जातीं। इसका कारण इस क्षेत्र का विशेष वातावरण है। अवतारों ऋषियों की कार्यस्थली होने तथा सूक्ष्म जगत् के सतत् आत्मिक विभूतियों से स्पन्दित होते रहने के कारण इस क्षेत्र का अपना महत्व है।

हिमालय के साथ भूतकालीन इतिहास भी जुड़ा हुआ है। चिर अतीत में देवताओं का निवास यहीं था और ऐतिहासिक स्वर्ग इसी क्षेत्र में है। ऋषि परंपरा में तप साधना से लेकर लोक कल्याण की अनेकानेक योजना बनाने तक का कार्य यहीं होता था। ऋषियों के आश्रम और प्रयोगशालाएँ इसी क्षेत्र में थीं। अलग होते हुए भी वे इतनी दूरी पर थीं कि एक दूसरे से परामर्श करने में आवागमन सम्बन्धी अत्यधिक कठिनाई अनुभव न करें।

उत्तराखण्ड को हिमालय का हृदय माना जाता है। इस क्षेत्र को देवात्मा भी कहते हैं। सर्व साधारण को इस क्षेत्र के सम्पर्क में आकर अद्भुत प्रेरणाओं का लाभ उठाने के लिए कई तीर्थ देवालय भी यहाँ बने हैं, पर मुख्यतया इन्हीं के इर्द-गिर्द गुफाओं, सघन वनों की झोपड़ियों में ऋषियों के स्थान भी थे, जहाँ वे वैज्ञानिक आविष्कारों की तरह अपने क्रिया-कलाप निर्विघ्न रूप से चलाते रहते थे। इस प्रकार ऋषि परंपरा न केवल भारत भूमि का वरन् समस्त संसार का श्रेय-साधन करती थी। निराकार भगवान् के साकार प्रतिनिधि की—सन्देश वाहक की—भूमिका प्रायः इन्हीं द्वारा सम्पन्न होती थी। जन-कल्याण के सामयिक निर्धारण यहीं होते थे और उन्हें परिव्राजक—पुरोहितों द्वारा विश्वव्यापी बनाने की योजना भी इसी क्षेत्र में बनती थी।

समय की विडम्बना ने ऋषि परम्परा को एक प्रकार से अस्त-व्यस्त कर दिया। साधु-बाबा जहाँ-तहाँ गाँजा फूँकने और भ्रम जंजालों में सर्व साधारण को फँसाकर इनका शोषण करते देखे जाते हैं। ऋषि परम्परा की अस्त-व्यस्तता का ही दुष्परिणाम है कि भारत-भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' नहीं रही और उसकी गरिमा मणिविहीन सर्प की तरह निस्तेज हो रही है। मध्यकाल का दुष्प्रवृत्तियों से भरा हुआ अन्धकार युग इसीलिए आया कि सूर्य, चन्द्र जैसी चमकने वाली ऋषि परम्परा पर ग्रहण लग गया और हमारी गतिविधियाँ उस स्तर की न रहीं, जिन्हें देखकर विश्व-वसुधा को, भारत को जगद्गुरु मानना पड़ता और यहाँ के निवासी तैंतीस कोटि देवता मान जाते।

महर्षि व्यास ने धर्म शास्त्रों की, पुराणों की, रचना बद्रीनाथ से आगे वसोधारा स्थान पर की थी। शरीर और मन की दिव्य शक्तियों को उभारने की योग साधना पातञ्जलि ने रुद्रप्रयाग स्थान पर की थी। याज्ञवल्क्य ने यज्ञ विधान का आविष्कार त्रियुगी नारायण क्षेत्र में किया था। विश्वामित्र ने आद्य शक्ति गायत्री का साक्षात्कार सप्तसरोवर स्थान में किया था। भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर उतारने की साधना गंगोत्री में भागीरथ शिला पर बैठकर की थी। चरक ने वनौषधियों का अन्वेषण करके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आयुर्वेद का आविष्कार केदारनाथ में किया था। जमदग्नि उत्तरकाशी में ब्रह्म विद्या का आरण्यक चलाते थे। नारद ने शब्द ब्रह्म-नाद का प्रत्यक्षीकरण गुप्तकाशी में किया था और दिव्य संगीत के माध्यम से विश्व के कोने-कोने में भक्ति भाव जगाया था। वे निरन्तर प्रव्रज्यारत रहे थे। जब अज्ञान और अनीति से वातावरण विषाक्त हो गया, तो सशक्त मूर्धन्यों का "ब्रेन वाशिंग" सिर उतार लेने जैसा पराक्रम परशुराम ने यमुनोत्री में तप साधना करके और शिव जी से अमोघ कुठार प्राप्त करके सम्पन्न किया था। वशिष्ठ जी ने प्रजाधर्म और राजधर्म का स्वरूप निर्धारित करके दोनों का संतुलन बिठाया था। उनका कार्य-क्षेत्र देव-प्रयाग के समीपवर्ती आश्रम में रहा। उन्हीं के पास ढलती आयु में चारों भाइयों समेत राम वानप्रस्थ शिक्षा प्राप्त करने गये थे। आद्य शंकराचार्य ने अपनी तपश्चर्या और साहित्य साधना ज्योतिर्मठ में की थी। पिप्पलाद ने अन्न से मन का निर्माण करने का रहस्य लक्ष्मण झूला के निकट रहकर प्राप्त किये थे। सूतशौनिक की पुराण गाथा का उद्गम ऋषिकेश माना जाता है। भारत की तपोभूमि भी वहीं है। हर की पौड़ी हरिद्वार में राजा हर्षवर्धन ने अपना सर्वस्वदान करके तक्षखिला विश्वविद्यालय का निर्माण एवं संचालन का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर उठाया था। महर्षि कणाद ने आत्मिक कायाकल्प की विद्या सप्तसरोवर पर वहाँ आविष्कृति की थी, जहाँ आजकल ब्रह्मवर्चस् है।

बुद्ध के धर्म चक्र प्रवर्तन की—आर्य भट्ट के ज्योतिर्विज्ञान के आविष्कार की-नागार्जुन की रासायनिक प्रयोगशाला हिमालय क्षेत्र में ही थी। च्यवन की अद्भुत तपश्चर्या का क्षेत्र यही है। इसके अतिरिक्त अति पुरातन काल के तथा उसके पश्चात् वर्तमान काल के सभी उच्चस्तरीय ऋषि-मुनि हिमालय क्षेत्र में रहकर दिव्य प्रेरणायें प्राप्त करते और प्रचण्ड आत्मबल अर्जित करते रहे हैं।

पाँच सखियों समेत गंगा इसी क्षेत्र में प्रवाहित होती हैं। अनेकानेक दिव्य औषधियाँ इसी क्षेत्र में उत्पन्न होती हैं और अपने प्रभाव से वातावरण में दिव्यता भरती है। देवताओं का निवास पुराणों में सुमेरु पर्वत कहा गया है। वह शिखर इसी क्षेत्र में है। नन्दन वन, शिवलिंग पर्वत के समीप ही मानसरोवर का अवस्थित होना कैलाश पर्वत की स्थिति इसी क्षेत्र में होने का संकेत करता है। सती और पार्वती दोनों की तपश्चर्या यहीं हुई थी। गियुगी नारायण में दोनों का ही समय-समय पर विवाह हुआ। दक्ष अपने समय के मूर्धन्य वैज्ञानिक थे। वे कनखल में रहते थे। चाणक्य ने कुछ समय तक हिमालय में रहकर तपश्चर्या की थी। शिव जी का इसी क्षेत्र में स्थाई निवास है। कृष्ण-रुक्मणी समेत बद्रीनारायण में श्रेष्ठ सन्तान के लिए साधना करते रहे। सीता को आश्रय देने वाले और लव-कुश को महान् योद्धा बनाने वाले वाल्मीकी इसी क्षेत्र में रहे हैं। शकुन्तला और चक्रवर्ती भरत का पालन-प्रशिक्षण इसी उत्तराखण्ड में हुआ था।

अभी भी हिमालय के उत्तराखण्ड में गंगोत्ररी, यमुनोत्तरी, केदारनाथ, बद्रीनाथ में चार धाम हैं। पाँच प्रयाग, पाँच काशियाँ, पाँच सरोवर, पाँच गंगाएँ इसी क्षेत्र में अवस्थित हैं। देवता और ऋषि स्थूल या सूक्ष्म शरीर से अभी भी यहाँ विद्यमान हैं। इन कारणों को देखते हुए उत्तराखण्ड क्षेत्र हिमालय का हृदय और आध्यात्मिक शक्ति प्रवाह का ध्रुव केन्द्र माना जाता है। थियोसॉफिकल सोसायटी ने इन दिनों विश्व संचालक शक्तियों की पार्लियामेण्ट इसी को कहा है। पाण्डव सशरीर स्वर्गारोहण की योजना बनाकर इसी क्षेत्र में चले आये थे। इसके अतिरिक्त समय-समय पर अन्य तपस्वी इसी क्षेत्र का आश्रय लेते रहे हैं और इस क्षेत्र में बिखरे पड़े मणि-मुक्तकों के दिव्य अनुदानों से झोली भरकर कृत-कृत्य होते रहे हैं।

पुरातन काल जैसी ऋषि विभूतियाँ इन दोनों देवात्मा हिमालय की गोदी में आश्रय पा नहीं रही हैं, तो भी पुरातन पूँजी इस क्षेत्र को अभी भी सामर्थ्यवान् बनाये हुए है। देवात्मा हिमालय अभी भी एक अतीव शक्ति सम्पन्न एवम् प्रत्यक्ष देवता है।

भारत में विभिन्न स्थानों पर अनेकानेक देवताओं के देवालय हैं। आवश्यकता समझी गई कि देवात्मा हिमालय की आत्मा को आह्वान करके प्राण-प्रतिष्ठा सहित हिमालय का एक दिव्य देवालय बनाया जाय। इस आवश्यकता की पूर्ति शांतिकुञ्ज में अवस्थित हिमालय में की गई है। यह सप्त ऋषियों की वह पुरातन तपोभूमि है, जिसके लिए गंगा ने उनका तप निर्विघ्न चलते देने के लिए अपने आगमन के समय पर सात धारायें बाँट दी थीं। अभी कुछ समय पूर्व सरकार ने भूमि प्राप्त करने के लिए बाँध बना दिया है। इसके कुछ दशक पूर्व ब्रह्मवर्चस् और शान्तिकुञ्ज के दोनों ही स्थानों पर गंगा की धारायें प्रवाहित होती थीं। देवात्मा हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र का देवालय बनाना इसी क्षेत्र मे उपयुक्त समझा गया। यह शांतिकुञ्ज के एक विशाल कक्ष मे अवस्थित है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसमें विद्यमान तीर्थों की झाँकी भी इसी में होती है । भाव श्रद्धा वाले दर्शक इस छोटी प्रतिमा में ही समूचे उत्तराखण्ड क्षेत्र का दर्शन भली प्रकार कर सकते हैं ।

शरीर के साथ प्राण भी होने चाहिए । दर्शन के साथ गतिविधियाँ भी जुड़ी रहनी चाहिए । शांतिकुञ्ज के प्रयास और कार्यक्रम यही हैं । इस आश्रम में क्या होता है और क्या होने जा रहा है, इस पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात किया जाय, तो प्रतीत होगा कि न केवल हिमालय का दृश्यमान शरीर ही यहाँ है, वरन् वे सारी गतिविधियाँ भी चलती हैं, जो पुरातन काल में हिमालयवासी ऋषियों ने अपनायी थीं और जिनका लाभ प्राप्त करके समस्त संसार, समस्त जन समुदाय कृत-कृत्य हुआ था ।

महाप्रज्ञा गायत्री के द्रष्टा विश्वामित्र का यहाँ मन्दिर है । हर आश्रमवासी को अनिवार्यत: गायत्री उपासना करनी पड़ती है । बाहर से सैकड़ों साधक निरन्तर आते और गायत्री अनुष्ठान समेत 'समग्र स्वास्थ्य संवर्धन' की साधना करते हैं ।

याज्ञवल्क्य के यज्ञ विज्ञान का यहाँ नौ कुण्डी यज्ञशाला में निरन्तर यज्ञ होता है और उसमें सभी साधक भाग लेते हैं । आगन्तुकों को यज्ञ के माध्यम से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक व्याधियों के निवारण की विधि बताई और कराई जाती है ।

चरक की वनौषधि शोध को यहाँ आगे बढ़ाया गया है । शांतिकुञ्ज और ब्रह्मवर्चस् में दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ लगायी गई हैं और एक साधन सम्पन्न प्रयोगशाला द्वारा उनमें से प्रत्येक का परीक्षण होता रहता है, ताकि उनकी प्रमाणिकता पर कोई अँगुली न उठा सके ।

पातंञ्जलि और कणाद की योगाभ्यास साधना का यहाँ अभिनव संस्करण देखा जा सकता है । हर साधक का शारीरिक, मानसिक और अन्त: करण परीक्षण कीमती मशीनों और एम. डी., एम. एस. स्तर के सुयोग्य डाक्टरों द्वारा होता है । साधना तथा उपचार इसी आधार पर चलते हैं । दस-दस दिन के 'समग्र स्वास्थ्य संवर्धन सत्र' इसी प्रयोजन के लिए चलते हैं और उनके द्वारा निरन्तर बड़ी संख्या में आगन्तुक लाभान्वित होते हैं ।

व्यास परम्परा के अनुरूप शांतिकुञ्ज में युग साहित्य का सृजन, मुद्रण एवं प्रकाशन क्रम निरन्तर चलता है । आर्ष ग्रन्थों का—वेद, उपनिषद, दर्शन आदि का, अनुवाद-प्रकाशन पहले हो चुका है । अब जीवन और समाज के हर पक्ष पर प्रकाश डालने वाला सस्ता साहित्य विनिर्मित किया जा रहा है और उनका अनुवाद हर भाषा में हो रहा है ।

जमदग्नि परम्परा में जनसाधारण को संस्कारवान् बनाने का प्रचलन था । शांतिकुञ्ज में षोडश संस्कार कराने की व्यवस्था है । यहाँ उपनयन होते हैं, पितरों का श्राद्ध-तर्पण भी होता है । बिना खर्च के विवाह भी बड़ी संख्या में हर साल होते हैं । जन्म दिन और विवाह दिन मनाने भी प्रज्ञा परिजन बड़ी संख्या में यहाँ आते रहते हैं ।

परशुराम के अनुरूप विचार-क्रान्ति अभियान को व्यापक बनाया जा रहा है । कुरीतियों, दुष्प्रवृत्तियों, अवाँछनीयताओं, मूढ़मान्यताओं, अनीतियों को जड़मूल से उखाड़ने के लिए लोकमानस को झकझोरा जा रहा है और जो उचित है, उसी को अपनाने के लिए सहमत किया जा रहा है । यह ब्रेन वाशिंग बड़ा ही प्रभावशाली और सफल सिद्ध हो रहा है ।

नारद परम्परा में संगीत और प्रवचन परामर्श का युग शिल्पी विद्यालय चलता है और प्रशिक्षित परिव्राजक जीव-टोलियों द्वारा देश भर में हर वर्ष हजारों प्रज्ञा आयोजन सम्पन्न करते हैं ।

उद्दालक परम्परा में बालकों का गुरुकुल और अनुसूया परम्परा में महिलाओं का प्रशिक्षण क्रमबद्ध रूप से चलता है और छात्राओं की पुरातन परम्परा को जीवन्त रखा जाता है । छात्रा, महिलाएँ और बलिकाएँ ही मिलजुलकर यहाँ के अन्न क्षेत्र का संचालन करती है ।

बुद्ध परम्परा के अनुरूप यहाँ के कार्यकर्त्ता विदेशों में भी धर्म परम्परा को प्रतिष्ठित एवं अग्रगामी बनाने का प्रयत्न करते हैं । उनने भारत से बाहर चौहत्तर देशों में मिशन की विचार धारा में लाखों लोगों को दीक्षित एवं समर्थक बनाया है ।

पुरातन काल की समुद्र मंथन योजना के अनुरूप अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का भारी शोध प्रयास चला है । यह समस्त संसार में पहला और अनोखा प्रयास है । ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान इसी निमित्त बना है, जिसमें लाखों रुपये के शोध-उपकरण एवं बहुमूल्य यन्त्र हैं । उनके द्वारा जो निष्कर्ष निकलते जा रहे हैं, उन्हें समुद्र मंथन द्वारा निकली रत्न-राशि के समतुल्य होने का अनुमान लगाया जाए, तो कोई अत्युक्ति न होगी । यज्ञ विज्ञान की—विभिन्न साधनाओं की—परिणति की शोध इस प्रयास के अन्तर्गत अतीव गम्भीरतापूर्वक हो रही है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शंकराचार्य परम्परा के अन्तर्गत देश के कोने-कोने पर चार धाम स्थापित किए गये थे। समर्थ गुरु रामदास के प्रयास से महाराष्ट्र के महावीर मन्दिरों के निर्माण की श्रृंखला चली थी। शांतिकुञ्ज के तत्वाधान में देश के कोने-कोने में चौबीस सौ शक्तिपीठ तथा बारह हजार स्वाध्याय मंडल-प्रज्ञा संस्थानों का निर्माण हुआ है, यह स्थापना भी अभूतपूर्व है।

सूत-शौनिक परम्परा के अनुसार प्रज्ञा पुराण का नया निर्माण हुआ है। इसके अभी तीन खण्ड छपे हैं, हर वर्ष एक नया खण्ड प्रकाशित करने की योजना है। इसकी कथाएँ इतनी लोक प्रिय हुई हैं, जिनने अन्य सभी कथाओं को पीछे छोड़ दिया है।

भूतकाल में कितने ही आरण्यक और विश्वविद्यालय धर्म-प्रचारकों को प्रशिक्षित करने के लिए बने थे, अब वह कार्य अपनी सीमित सामर्थ्य के कारण अकेला हरिद्वार का शांतिकुञ्ज कर रहा है। उसमें चौबीस हजार से अधिक प्रज्ञापुत्र धर्मप्रचार का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में युगान्तरीय चेतना का अलख जगाते, आलोक वितरण करते हुए छोटे-बड़े आयोजन निरन्तर करते रहते हैं।

ऋषि कणाद अपनी आश्रम व्यवस्था खेतों में छूटे अन्न से करते थे। शांतिकुञ्ज गायत्री-तीर्थ की यह व्यवस्था महिलाओं द्वारा एक मुट्ठी अन्न एवं पुरुषों द्वारा दस पैसा नित्य देने के आधार पर एकत्रित हुए राशि से ही चलती है।

देवात्मा हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र की प्रतीक-प्रतिमा रूप में विनिर्मित यह आश्रम अद्भुत एवं अनुपम है। हिमालय के अचंल में पले ऋषियों ने जिन-जिन सत्प्रवृत्तियों को सुविस्तृत किया था और जो आत्मबल एकत्रित किया था, उसका छोटा नमूना इस आश्रम में पहुँचकर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। वशिष्ठ-अरुन्धती की तरह यहाँ एक ऋषि युग्म का प्रयास इस योजना का सूत्र संचालन करता है। अब तक की प्रगति को देखने-सुनने वाले आश्चर्यचकित रह जाते हैं।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आरण्यक एवं गुरुकुल

भारतीय संस्कृति बनाम आरण्यक संस्कृति

श्रीमद्भागवत में भगवान् के विराट रूप का वर्णन करते हुये वृक्षों को परब्रह्म के केश रोम कहा गया है। केश किसी शरीर की शोभा, सज्जा एवं सुरक्षा को बढ़ाते हैं। भगवान् के सौन्दर्य का वर्णन करना हो तो उगी हुई हरीतिमा के रूप में ही उसकी विरुदावलि गानी पड़ेगी। प्रकृति का सौन्दर्य समीप से देखना हो तो आकाश के सूर्य, चन्द्र, तारागणों का वर्णन करने की अपेक्षा नयनाभिराम हरीतिमा का ही वर्णन करना पड़ेगा।

भारतीय संस्कृति के तत्त्वज्ञान की अपेक्षा यदि उसके दर्शनीय स्वरूप का विवेचन करने के लिए कहा जाय तो उसे आरण्यक-संस्कृति कहना पड़ेगा। आरण्यक अर्थात् वन। धर्मशास्त्रों में आचार संहिता प्रकरण 'आरण्यक' वाङमय के रूप में ही हुआ है। आरण्यक ही भारतीय तत्त्वज्ञान का उद्गम स्रोत है ।

प्राचीन काल में सुविधा सम्पन्न बड़े नगर न रहे हो, ऐसी बात नहीं है पर मनीषियों और तपस्वियों ने अपने लिये जो कार्य क्षेत्र चुना वह आरण्यक ही रहा। तरुणाई की हिलोरे स्थिर होते ही विज्ञ जन वन गमन की योजना बनाते थे। वानप्रस्थ व्रत ग्रहण करते थे। वानप्रस्थ का तात्पर्य है वन में रहना। जीवन का पूर्वार्ध अध्ययन और उपार्जन में लगाने के उपरान्त शेष जो प्रौढ़ता और परिपक्वता हाथ रहती थी उसका श्रेष्ठतम उपयोग वन क्षेत्र में निवास करते हुये वन पड़ता था।

आत्मिक प्रगति और परिष्कृत जीवनचर्या के लिये वन पर्वतों से नदी-सरोवरों से भरा पूरा क्षेत्र ही उपयोगी वातावरण की पूर्ति करता है। यह प्रयोजन भव्य भवनों और सघन शहरों में रहकर नहीं हो सकता। वहाँ का वातावरण ही ऐसा होता है जिसमें लिप्साएँ, लालसायें घटती नहीं बढ़ती ही हैं। इसलिये उस वातावरण में कभी कोई ऋषि, मनीषी नहीं रहा। वरन् जिस पर अपना प्रभाव रहा उन्हें भी अपने साथ घसीट ले गये। वशिष्ठ रघुवंशियों के कुलगुरु थे, पर उनका निवास शिवालिक पर्वत की वशिष्ठ गुफा में ही रहा। विश्वामित्र राम लक्ष्मण को उच्चस्तरीय विद्यायें सिखाने के लिये उन्हें अपने आश्रम में ले गये। अयोध्या की शोभा, सुन्दरता कम नहीं थी पर वहाँ न तो वशिष्ठ रहे न विश्वामित्र। अन्य ऋषियों के आश्रम, आरण्यक व गुरुकुल वन प्रदेशों में ही थे।

सुसम्पन्न लोगों के लिये सुविधा इसी में थी कि अपने महलों में किन्हीं अध्यापकों को नियुक्त करके बालकों की शिक्षा पूरी करायें। जो सुविधा स्वयं उपलब्ध करते हैं, उन्हें ही बालकों को करायें। आँखों के तारों को, आँख के सामने ही रखें। पर दूरदर्शी विवेकशीलता ने उन्हें यही सुझाया, समझाया कि उन्हें प्रकृति की मनीषा की निकटता में रहने दिया जाय। मोहग्रस्त होकर बालकों को सुविधाओं के लालच में फँसाना उनकी प्रतिभा को कुण्ठित करना है। यह प्रयोग रावण सरीखे ने किया भी था। उसका सुविस्तृत परिवार हेय दृष्टिकोण अपनाये रहा और खरदूषण, मरीचि, सूर्पनखा, सुरसा जैसे व्यक्तित्व विनिर्मित करता रहा।

अरण्कों में रहकर प्रकृति का वैभव आत्मसात् करना तो महत्त्वपूर्ण है ही साथ ही यह भी कम गौरव का विषय नहीं है कि वन सम्पदा को अधिकाधिक समुन्नत और सुविकसित किया जाय।

पेडों का लगाना, दस पुत्र उत्पन्न करने जैसा सौभाग्य माना गया है और वृक्ष काटना ब्रह्म हत्या के समतुल्य जघन्य कहा गया है। इस प्रसंग में कहीं कोई व्यतिरेक तो नहीं हो रहा। उसकी चौकीदारी ऋषि-मुनि ही सम्हालते थे। अपने समय के वे ही रेंजर थे और वे ही फोरेस्टर। अमृतोपम जड़ी बूटियों का विकास एवं संरक्षण उसी क्षेत्र में किया जाता था। तभी लक्ष्मण को जीवन दान देने वाली संजीवनी बूटी वहाँ उपलब्ध होती थी और तभी यह संभव था कि च्यवन जैसे वयोवृद्धों को पुनः यौवन प्रदान करने वाला 'अश्वर्ण' वहाँ उगे और बढ़े। सोम-बल्लरियाँ इसी क्षेत्र में उगती थीं और वही देवता उस दिव्य मधुपान के लिये लालयित होकर आते और निवास करते थे।

बुद्ध की तपश्चर्या जिस वट वृक्ष के नीचे हुई उसे बोधिवृक्ष के नाम से गौरवान्वित किया गया और भी कितने ही ऐसे दिव्य वृक्ष हैं, जिनकी महिमा जितनी गाई जाय उतनी ही कम है। पिप्पलाद पीपल के फल खाकर ही अपना व्रतधारी जीवन क्रम चलाते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विल्व, अश्वत्थ, आँवला, वट, अशोक आदि को देव प्रतिमा की तरह पूजा जाता था और उनके झुरमुटों में कुटी बनाकर मनीषिगण अपने शिष्यों सहित निवास करते थे। आयुर्वेद से लेकर रसायन भस्मों तक की प्रयोगशालाएँ उसी क्षेत्र में थीं। भारतीय रसायन शास्त्र का विकास इसी वातावरण में हुआ है। शास्त्रों और सदग्रन्थों का सृजन, अनुवाद एवं प्रतिलिपि करने का काम यहीं होता था। इन आरण्यकों से लाभ उठाने के लिये संसार भर के मूर्धन्य व्यक्ति वहाँ पहुँचते और अभिलाषा पूर्ण करके वापस लौटते थे।

राजा दिलीप को संतान की इच्छा पूरी कराने के लिये वशिष्ठ की गौएँ चराने के लिये धर्मपत्नी सहित जाना पड़ा। श्रंगी ऋषि को पुत्रेष्टि यज्ञ के निर्मित इसी क्षेत्र से दशरथ किसी प्रकार ले गये थे। व्यास गुफा में महाभारत समेत अठारह पुराण लिखे गये थे। कण्व ऋषि के आश्रम में भरत चक्रवर्ती की गढ़ाई और ढलाई हुई थी। बाल्मीकि के आश्रम में लव कुश ने जो प्रशिक्षण प्राप्त किया था वह दशरथ कुमारों से हल्के दर्जे का नहीं था। राम ने चौदह वर्ष के वनवास को अपना सौभाग्य माना था। शारीरिक असुविधाओं के रहते हुये भी उस क्षेत्र में पति के साथ रहने का लोभ सीता भी संवरण नहीं कर सकी थीं। राजकुमारी सावित्री ने वनवासी सत्यवान से विवाह किया था।

समुद्र मंथन में चौदह रत्न निकले थे। भारतीय संस्कृति का अनमोल रत्न आरण्यक संस्कृति के सुव्यवस्थित क्षेत्र में ही निकला और संसार भर को सभ्यता का पाठ पढ़ाने में समर्थ हुआ। उसकी गुरु-गरिमा और चक्रवर्ती स्तर की क्षमता इसी क्षेत्र में विकसित हुई थी। दिव्य मंत्र, दिव्य तंत्र, मूल मंत्र इन्हीं क्षेत्रों की प्रयोगशालाओं में विकसित होते थे।

भारत में प्राचीन काल के भव्य भवन दृष्टिगोचर नहीं होते, क्योंकि ऋषि युग में उनकी आवश्यकता ही न थी। विलास वैभव तो मात्र दो हजार वर्श की अवधि में ही विकसित हुआ है। आरण्यक सभ्यता जब सम्पन्न सभ्यता के खण्डहरों में विलीन होने लगी तभी से देश पर दुर्भाग्य टूटा और पतन पराभव का अन्धकार उदय हुआ।

बहिरंग को नहीं अंतरंग को बदलने वाले गुरुकुल-आरण्यक

प्लेटो के अनुसार नागरिकों के चरित्र के अनुरूप ही शासन का स्तर बनता है। इसलिए जब तक नागरिकों का स्तर नहीं उठता सुशासन की आशा नहीं करनी चाहिए। बाहरी योजनाएँ कितनी भी सशक्त क्यों न हों वे मानवी विकास में तब तक सहायक नहीं हो सकतीं जब तक कि मनुष्य व्यक्तित्व सम्पन्न नहीं बनता। आश्चर्य व्यक्त करते हुए अपनी प्रख्यात पुस्तक 'दि रिपब्लिक' में वह लिखता है कि मनुष्य भी कितना विचित्र है कि वह बाह्य संसाधनों और सुविधाओं को अधिक महत्त्व देता है और उन्हें उपलब्ध करने का प्रयास करता है पर वह यह नहीं जानता कि साधन तो जड़ हैं। उनका उपभोगकर्त्ता चेतन मनुष्य जब तक नहीं सुधरता-बदलता तब तक प्रगति का मार्ग अवरुद्ध ही पड़ा रहेगा। यह भी कैसी विडम्बना है कि मात्र शासन अथवा सरकार के परिवर्तन से परिस्थितियों में अभीष्ट स्तर की सुधार की बात सोची जाती है तथा सभी प्रकार की अवाँछनीयताओं, अन्यायों के समाप्ति की कल्पना की जाती है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना, प्रगति और समुन्नति अभीष्ट हो तो सर्वप्रथम मानवी व्यक्तित्व को परिष्कृत और सुविकसित करना होगा। यह कार्य शासनतन्त्र द्वारा नहीं व्यक्तित्व सम्पन्न संगठनों द्वारा सम्भव होगा।

पुरातन काल में धर्मतन्त्र की यही भूमिका रहती थी, व्यक्तियों की गलाई-ढुलाई। समाज और राष्ट्र की नहीं समस्त विश्व के निर्माण एवं विकास के लिए श्रेष्ठ और सुदृढ़ व्यक्तित्वों की ढलाई जिस फैक्टरी में होती थी उसका नाम था धर्मतन्त्र। बहुमुखी प्रतिभा के धनी अथवा किसी क्षेत्र विशेष के विशेषज्ञ धर्म तन्त्र की पाठशाला से ही शिक्षण प्राप्त करके निकलते थे। प्रतिभा नहीं चरित्र की पूँजी भी उनके साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती थी जिसके सहारे वे समाज का एक अभिन्न घटक बनकर सामूहिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पादित करते थे। आध्यात्मिक विशेषताओं से अनुप्राणित संगठन-गुरुकुल तथा आरण्यक समग्र शिक्षण को सम्भालते थे। शिक्षा ही नहीं चरित्र की विशेषता अर्जित करने के लिए सभी समझदार व्यक्ति अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजते थे। राजा और महाराजाओं के बच्चों को भी गुरुकुलों के कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा चरित्र निष्ठा की परीक्षा में प्रवेश करना पड़ता था। उसमें सफल होने के बाद ही उन्हें राज्य संचालन करने अथवा कोई महत्त्वपूर्ण पद संभालने के योग्य समझा जाता था।

आरण्यक ऐसे केन्द्र थे जो समाजसेवा में रुचि रखने वालों तथा आत्म-परिष्कार के लिए पहुँचने वालों का प्रशिक्षण करते थे। आत्म-शोधन तथा समाज सेवा के शिक्षण का दोहरा लाभ आरण्यकों में रहने वाले लेते थे। गुरुकुल एवं आरण्यक के सर्वांगपूर्ण शिक्षण व्यवस्था का ही परिणाम था कि समाज के किसी भी क्षेत्र के सुसंचालन के लिए उपयुक्त व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्तियों की कमी नहीं रहती थी। विभिन्न वर्णों में विभाजित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी अपने-अपने क्षेत्र की भूमिका पूरी ईमानदारी और तत्परता से निभाते थे। फलतः सर्वत्र खुशहाली सुख और शान्ति का साम्राज्य था। परिस्थियाँ बदलीं। न तो प्राणवान् वे संगठन ही रहे और न ही उनका संचालन करने वाले व्यक्तित्व संपन्न आचार्य। चिन्ह पूजा के नाम पर लकीर पीटने वाले गुरुकुल कहीं दिखाई भी पड़ते हैं तो उनमें वे विशेषताएँ नहीं रहीं जो शिक्षार्थी को विद्वान् और चरित्रवान् बनाती थी। उस शिक्षण पद्धति के समाप्त होने से व्यक्ति और समाज का स्तर क्रमशः गिरता ही गया। पतन और पराभव का युग आरम्भ हुआ।

जो देश अपनी चारित्रिक विशेषताओं को गँवा देता है उसका पतन सुनिश्चित होता है, विश्व का इतिहास इस तथ्य की पुष्टि करता है कि मुट्ठी भर विदेशी आततायियों ने सदियों तक देश को गुलामी की जंजीरों में बाँधे रखा। मुगलों तथा अंग्रेजों ने देश की कमजोरी का लाभ उठाया। हजार वर्ष तक परतन्त्र रहने के कारण देश-वासियों का रहा-सहा प्रयोजन जाता रहा। नवजागृति की एक लहर बीसवीं सदी के आरम्भ में पैदा हुई जिसने अपनी चपेट में सम्पूर्ण देश को ले लिया फलतः देश स्वतन्त्र हुआ।

राजनैतिक स्वतन्त्रता के उपरान्त वह जागृति कायम रही होती तो आज देश की स्थिति कुछ और ही होती। लम्बी अवधि की गुलामी ने भारतीय जनमानस के मनोबल को तोड़ डाला था। होना यह चाहिए था कि नव-निर्माण के लिए-जन मानस के मनोबल को जागृत करने उन्हें व्यक्तित्वों की विभूतियों से सुसम्पन्न करने के लिए वैचारिक अभियान छेडा जाता। महात्मा गाँधी ने इस दिशा में थोड़ा प्रयास भी किया। एक आशा बँधी पर उनकी मृत्यु के साथ ही वह अभियान ठप्प पड़ गया। जो अनुयायी बचे, उन्होंने शासन तन्त्र की बागडोर संभाली।

तब से लेकर अब तक शासन-तन्त्र द्वारा देश के विकास की अनेकों योजनाएँ बनीं। वे क्रियान्वित भी हुईं। उनसे भौतिक समृद्धि बढ़ाने में सहयोग भी मिला पर गाँधी ने जिस रामराज्य की स्थापना की थी वह मात्र सपना ही बनकर रह गया। देश का बहिरंग स्वरूप तो निखरता गया पर अन्तरंग और भी गिरता गया। श्रेष्ठ व्यक्तित्वों का क्रमशः अभाव पड़ता गया। उल्लेखनीय है किसी भी समाज एवं राष्ट्र की सही अर्थों में प्रगति व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्तियों के सहारे होती है। वे समाज के मेरुदण्ड होते हैं। जिस देश में उनका अभाव रहता है उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। भौतिक एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से वह पिछड़ जाता है।

शासन द्वारा समाज में अभीष्ट स्तर के परिवर्तन तथा उसके नव-निर्माण का लक्ष्य पूरा होता रहा होता तो वह कभी का पूर्ण हो गया होता। कुछ त्रुटियों को छोड़ कर लोकतंत्र की प्रणाली सर्वश्रेष्ठ है। आज की परिस्थितियों में उसे हर दृष्टि से उपयोगी ठहराया गया है, पर बात शासन से नहीं बनती। व्यक्तियों क्रा स्तर श्रेष्ठ हो तो कोई भी प्रणाली समाज के विकास में सहायक हो सकती है। किसी जमाने में राजतन्त्र भी अत्यधिक सफल रहा है। जर्मनी ने 'डिक्टेटरशिप' को भी एक समय देश के निर्माण में विशेष रूप से उपयोगी माना था। हिटलर और नेपोलियन जैसे तानाशाहों तक को उनके देशवासियों ने पूरे मन से स्वीकार किया था। आशय है कि समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद की कोई भी शासन प्रणाली समाज के विकास के लिए श्रेष्ठ सिद्ध हो सकती है—यदि नागरिकों का स्तर उँचा हो। अन्यथा तुलनात्मक दृष्टि से लोकतन्त्र सर्वश्रेष्ठ होते हुए भी घटिया स्तर के नागरिकों के रहते अपने प्रयोजन में असफल हो सकता है।

शासन पद्धतियों की समीक्षा करना उपरोक्त चर्चा का लक्ष्य नहीं है। कहा यह जा रहा है कि जब तक देश के नागरिकों का स्तर विकसित नहीं होता तब तक समग्र प्रगति का लक्ष्य अधूरा ही पड़ा रहेगा। बढ़ते हुए जन-जीवन में भ्रष्टाचार अपराधों पर रोक थाम कर सकना सम्भव नहीं होगा। बाह्य शासकीय अंकुश एक सीमा तक आवश्यक है, पर जब तक आत्मानुशासन का भाव जागृत नहीं होता तब तक बढ़ती हुई अराजकता को रोका नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकता। अभीष्ट स्तर का परिवर्तन एवं नव-निर्माण का लक्ष्य गुरुकुल-आरण्यक संस्कृति के पुनरूत्थान द्वारा ही संभव हो सकेगा।

विद्या विस्तार के दो सशक्त तंत्र—आरण्यक एवं गुरुकुल

विश्व संस्कृति अपने उत्कर्ष और उन्मेष के लिए सुसंस्कृत व्यक्तियों की ढूँढ़ खोज कर रही है। ऐसे व्यक्ति जो कल के समाज को गढ़ने-तदनुरूप ढलने में तत्पर हो सकें। इस अनिवार्य जरूरत को पूरा करने का दायित्व शिक्षण तन्त्र पर है। इसी की जिम्मेदारी है कि वह समाज की वर्तमान और भविष्य की जरूरतों के अनुरूप व्यक्तियों के अन्दर से व्यक्तित्व को उभारें। ताकि वह आज के और आने वाले समय में आदर्शवादी उपयोगिता की कसौटी पर खरा सिद्ध हो सकें। प्रचलित शिक्षण व्यवस्था की छानबीन करने पर हर किसी को यह सहज बोध हो जाएगा कि इस सम्बन्ध में यह असफल प्राय: है। इसकी दशा उस निठल्ले कारखाने की सी है जिस पर कच्चे लोहे से उत्तम कोटि की मशीनें बनाने की जिम्मेदारी है, पर निकम्मेपन के कारण अधिकांश लोहा पड़ा जंग खाता सड़ता रहता है। जो मशीनें बनकर निकलती हैं वह उपयोगी और कारगर सिद्ध नहीं हो पा रहीं। यह स्थिति एक देशीय नहीं सार्वभौमिक है।

अमेरिकन मनीषी इवान इलिच ने अपनी कृति "डिस्कूलिंग सोसाइटी" में स्थिति का खुलासा करने की कोशिश की है। उनके अनुसार शिक्षा की दुकानों में बन्द शिक्षण क्रिया अपनी परिणति भौतिकवादी प्रदूषण, सामाजिक ध्रुवीकरण और मनोवैज्ञानिक भावना शून्यता में कर रही है। इन सबके प्रधानतया दो कारण हैं। पहला इसे एक खास आयु वर्ग की सीमा में समेट देना। दूसरा अन्य व्यापारों की भाँति शिक्षण का व्यापारीकरण कर देना। इसी का प्रतिफल है कि शिक्षा जन-जन तक द्वार-द्वार तक नहीं पहुँच पा रही। व्यापारीकरण के लोकजीवन को संस्कारित करने की परम्परा निर्जीव प्राय: हो गई है। दिमाग को कम्प्यूटर मानकर उसमें जानकारियाँ तो घुसेडी जा रही हैं, पर मानवीय व्यवहार गढ़पाने में असमर्थता है। परिणाम आज की सामाजिक दशा है। जहाँ अपने को पढ़ा-लिखा कहने वाला व्यक्ति स्वयं के ज्ञानवान् और विद्वान होने का दावा तो करता है पर ज्ञान इतना भी नहीं कि स्वयं में क्या है ? स्वयं के प्रति, समाज के प्रति क्या दायित्व है, उन्हें किस कौशल और तत्परता से पूरा किया जाय ? पढने और पढ़ाने वाले दोनों की एक-सी दशा है।

कारगर उपचार एक ही है—लोकशिक्षण का एक नया तंत्र विकसित करना। जहाँ शिक्षा कैदयुक्त और सार्वभौमिक हो और श्री इलिच के शब्दों में कहें तो व्यक्तित्वों के गढ़ने की टकसाल हो। ऐसी टकसाल जहाँ से ढले सिक्के आज और कल सोलह आने खरे साबित हों। इसी कारण वह ढालने वाले प्रशिक्षण में दो गुणों की अनिवार्यता बताते हैं। उन्हीं के शब्दों में प्रशिक्षण कुम्हार की तरह-प्रशिक्षक वैद्य की तरह। ऐसा कुम्हार जो मिट्टी के लौदे को समय के अनुरूप समाज हित में क्षेत्र की समस्याओं को निदान भिन्न-भिन्न रूप देने में तत्पर रहता है। उसे पकाता मजबूती प्रदान करता है। श्रीरामकृष्ण गुरु को वैद्य के अनुरूप होने पर बल देते हैं । ऐसा वैद्य जो मानव व्यक्ति और समूह की आन्तरिक और बाह्य संरचना व क्रिया विधियों में निष्णात् हो। बिगड़े को सँवारने, बिखरे को समेटने, नव जीवन संचार करने में माहिर हो।

आज की स्थिति में इस तंत्र को विकसित करने की तकनीक देव संस्कृति के उन्नायक ऋषियों के प्राचीन सफल प्रयोगों से सीखनी होंगी। अतीत के झरोखे से झाँकने पर साफ दिखाई देता है कि गुरुकुल और आरण्यकों का यह तंत्र कुछ ऐसा ही विकसित रहा है। गुरुकुल अर्थात् बालजीवन को गला-तपाकर समर्थ व्यक्तित्व के रूप में गढ़ने निखारने की कार्यशालाएँ। परिष्कार प्रशिक्षण संस्कार की इसी प्रक्रिया अनगढ़ को गढ़ने के इसी विधान ने संस्कृति और सभ्यता के रूप में अपनी पहचान बनाई है। सभ्यता संस्कृति के इस पुष्पित उद्यान की कटाई-छटाई-गुड़ाई-निराई आदि साज-सँभाल करने की जिम्मेदारी आरण्यकों पर है। इनके ऊपर लोकसेवी वानप्रस्थों के निर्माण और विकास की जिम्मेदारी रही है। इन प्रयासों ने अपने समय संस्कार शोधन के विस्मयकारी परिणाम प्रस्तुत किए हैं। अनगढ़ कुरूप कोयले जैसे दिखने वाले हीरे के टुकड़ों को सुसंस्कारित कर चमकते-दमकते देवमानवों के रूप में बदल कर देव संस्कृति को जन्म देने में समर्थ हुए हैं।

गुरुकुल आरण्यकों की यह प्रणाली आज के प्रचलित स्वरूप से तत्त्व और प्रक्रिया दोनों ही दृष्टियों से भिन्न रही है। इसकी तलाश के लिए प्रख्यात अध्येता आर. एन.

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाणि ने अपने ग्रन्थ "इन्टीग्रल एजूकेशन-थॉट एण्ड प्रैक्टिस" में प्रशंसनीय प्रयास किया है। उनके अनुसार मानवी प्रकृति को प्रशिक्षित रूपान्तरित करने के तीन सोपान हैं शिक्षा, कला और विद्या। प्रत्येक सोपान परस्पर-अन्योन्याश्रित होते हुए अपने में एक विधा है। पहली दोनों की सार्थकता इसी में है कि तीसरी को उपलब्ध कर ले। ऐसा न हो पाने पर इनकी स्थिति कुछ वैसी ही होती है जैसी लँगड़े या लूले की। आज के स्कूल कॉलेजों में पढ़ाई जाने वाली शिक्षा है—जिसका उद्देश्य विभिन्न माध्यमों से बालकों का बौद्धिक विकास स्मृति अभिवर्धन करना है। परीक्षा लेने की तकनीकों से उपर्युक्त कथन की सत्यता प्रमाणित होती है। बल्कि अधिकाधिक अंशों में परीक्षा बौद्धिक विकास की अपेक्षा स्मरण शक्ति की कहीं होती है।

गुरुकुलों का उद्देश्य शिक्षा के माध्यम से विद्या को विकसित करना रहा है। प्रक्रिया की दृष्टि से देखें तो कोई भी शिक्षा सही दिशा में अपने बढ़ते कदमों से कला तक पहुँचती है। कला की प्रवृत्ति प्रारम्भ से भावोन्मुखी होती है। यदि कोई भी कला अभी तक भावों को नहीं स्पर्श कर पाई है तो समझना चाहिए कि उसका दायरा अभी शिक्षा तक ही है कला नहीं बन पाई। उदाहरण के लिए संगीत शिक्षा भी है और कला भी। अपने प्राथमिक चरणों में उस्ताद जब सीखने वाले को तबला, सितार आदि वाद्य यंत्रों को बजाने की तकनीकें, समझाता है, तब वह शिक्षा होती है, सिर्फ बुद्धि और स्मृतिगम्य। मतलब इतना ही होता है कि बुद्धि समझे और स्मृति याद रखे।

शिक्षा की परिपक्वता के बाद जब संगीत साधक अन्तर भावों में डूबकर गाता है। स्वयं विभोर होकर औरों को विभोर करता है। तब इन क्षणों में शिक्षा-कला का स्वरूप प्राप्त करती है। इस अपूर्व तन्मयता में उसकी विकसित होती जा रही भाव चेतना अपनी मौलिकता की अभिव्यक्ति विषय की निगूढ़ताओं अन्तर की अनेकानेक सूक्ष्मताओं में करती है।

भाव स्पर्शी कला यदि विकास की गति पर बढ़ सकी—तो कला साधना बन पाती है। ऐसी साधना जो भावों के प्रगाढ़ परिपक्व होने पर जीवन बोध करा दे। अलाउद्दीन खाँ, रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कला का विकास इसी स्तर तक किया था। यह कथन सिर्फ संगीत के क्षेत्र में नहीं विज्ञान के क्षेत्र में भी सत्य है। इमर्सन ने साहित्य तथा रमन-आइन्सटाइन ने विज्ञान के माध्यम से विद्या के इसी स्वरूप को उपलब्ध किया था। इस सम्भावना के बावजूद आवश्यक नहीं कि शिक्षा कला बने और प्रत्येक कला विद्या के स्तर तक विकसित हो सके।

आज की स्थिति में शिक्षा अर्थात् विकसित बौद्धिकता अपने निहित स्वार्थों के रक्षण अभिवर्धन के रूप में खपती रहती है। कला सम्मान अर्जित करने में व्यय हो रही है ? फिर भला इनका विकास विद्या के रूप में कैसे हो ? यही कारण है कि सच्चे अर्थों में कला भी खोती जा रही है। प्रत्येक क्षेत्र में कला-निष्णात् लुप्त होते जा रहे हैं। कारण एक ही उनकी रीति-नीति का भाव स्पर्शी होने के स्थान पर वैभव स्पर्शी होना।

उपनिषदों ने इन सबका वर्गीकरण दो वर्गों में किया है "अपरा विद्या और परा विद्या"। पहले में शिक्षा और कला की समस्त विधाओं का समावेश है। दूसरे में जीवन बोध के सूत्रों का। इन सूत्रों को उचित ढंग से समाविष्ट करने पर जीवन का प्रत्येक कार्य आत्मोन्नति का साधन बनता है और अपरा विद्या भी परा विद्या का स्वरूप प्राप्त करती है। आचार्य शंकर की प्रश्नोत्तरी माला में एक सवाल आता है "कः विद्या ?" वह उत्तर देते हैं—"सा विद्या या विमुक्तये।" अर्थात् विद्या वही जो मुक्ति दिला सके। मुक्ति किससे भ्रम जंजालों से, इन्द्रियों की दासता से, स्वयं की दैन्तया से। हर उस चीज से जो जीवन बोध में अवरोध बनती है।

गुरुकुलों की व्यवस्था-वातावरण का सृजन इसी उद्देश्य को लेकर हुआ था। गरीब अमीर बिना किसी भेद-भाव के सभी को तप-तितिक्षा व्रत अनुशासनों को स्वीकार शिक्षा का विद्या के रूप में विकास करना पड़ता था। उज्जयिनी में स्थित महर्षि संदीपनि के गुरुकुल की कथा पुराण विख्यात है। वहाँ राजपुत्र कृष्ण और गरीब ब्राह्मण सुदामा दोनों ने समान तप करके विद्या की उपलब्धि की। चक्रवर्ती नरेश दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न को सारे वैभव की तिलांजलि देने पर ही ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के गुरुकुल में प्रवेश मिल सका।

आरण्यकों की व्यवस्था में गुरुकुलों से बहुत कुछ साम्य होते हुए भी तप-साधना, लोक आराधना का वैशिष्ट्य था। जहाँ गुरुकुलों का उद्देश्य था व्यक्तित्व का गठन वहीं आरण्यक का प्रयोजन व्यक्तित्व का लोकहित में समर्पण था। लेकिन शिक्षण की प्रक्रिया और विद्या का स्वरूप दोनों में एक-सा था। आरण्यक भले ही आज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोक विलुप्त हों गए हों पर इनकी उपयोगिता यथावत् है। इनकी स्थापना के पीछे छुपे मनोवैज्ञानिक रहस्य को स्पष्ट करते हुए मनीषी जे स्किनर का "माइन्ड-इट्स लर्निंग एक्सपीरियेंसेज" में कहना है मन के सीखने की शुरूआत मनुष्य के अस्तित्व में आने के साथ ही प्रारम्भ हो जाती है। शरीर विकास के साथ यह प्रक्रिया पच्चीस तीस वर्ष तक गतिशील रहती है। इस अवस्था में इसमें स्वाभाविक मन्दी आ जाती है। यही कारण है कि बच्चे की अपेक्षा युवा में सीखने-जानने की लालसा न के बराबर होती है। स्किनर के अनुसार पैंतालिस से पचास आयु वर्ग में प्रतिभा के जागरण मानसिक विकास का ज्वार एक बार फिर उफनता है। आज के समाज के पास इसके सुनियोजन और विकास का तंत्र भले न हो। पर ऋषियों ने आरण्यकों का विकास इसी तत्वदर्शन को लेकर किया था।

प्राग् ऐतिहासिक काल में चतुर्दिक फैले महर्षि अगस्त्य को वेदपुरी, भारद्वाज की प्रयाग स्थित प्रशिक्षण शाला, विश्वामित्र का सिद्धाश्रम आदि ने व्यक्तित्वों को गढ़कर समय की माँग को पूरा किया। वेदपुरी में महर्षि अगस्त्य के प्रशिक्षण की सराहना करते हुए आदि कवि बाल्मीकि लिखते हैं अनीतिकारी आसुरी शक्तियाँ उस दिशा से भय खाती थीं। दस हजार छात्रों वाली भारद्वाज की प्रशिक्षण शाला जन को जागृत और कर्त्तव्य-निष्ठा के लिए सचेत करने वाले प्रहरी तैयार करती थी। सिद्धाश्रम को केन्द्र बनाकर, उपयुक्त पात्रों को प्रशिक्षित कर विश्वामित्र ने अनीतियों के विरुद्ध व्यूह रचना की। राम राज्य की सतयुगी परिस्थितियाँ इन्हीं गुरुकुल—आरण्यकों की उर्वरता और प्रशिक्षकों के चमत्कारी व्यक्तित्व को गढ़ने में महारथ का परिणाम था।

बीच के समय में भी भारत को सोने की चिड़िया-स्वर्णभूमि कहलाने का सौभाग्य ऐसे ही विश्वविद्यालयों ने प्रदान किया। गान्धार स्थित तक्षशिला राजगिरि के समीप नालन्दा, भागलपुर स्थित विक्रमशिला काठियावाड़ के वल्लभी विश्वविद्यालयों ने अपने समय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। चाणक्य की दुर्धर्ष प्रखरता तक्षशिला से उपजी थी। यहीं के स्नातक उसके प्रथम सहयोगी थे, जिनके सम्मिलित प्रयासों से जनजागृति की लहर फैली और विशाल भारत की समाज संरचना अपना सौन्दर्य प्रकट कर सकी। विचार-क्रान्ति के अग्रदूत कुमारिल भट्ट नालन्दा में गढ़े गए, जिनकी रखी मजबूत नींव पर शंकराचार्य ने सांस्कृतिक क्रान्ति की भव्यता निर्मित की। चोल सम्राट देवपाल के समय विक्रमशिला में गढ़े हुए परिव्राजकों ने भारत ही क्यों सुदूर वर्मा, मलाया आदि जगहों पर पहुँच विद्या का प्रसार किया। पाँचवीं से आठवीं शती तक वल्लभी के स्नातकों ने कठियावाड़ ही क्यों ? समूचे भारत की जनचेतना को जीवन्त और सचेत रखा। यहाँ के आचार्य व्यक्तित्वों को ढालने में इतने माहिर थे कि अन्य देशों के लोग भी यहाँ दाखिले के लिए तरसते थे।

यही क्यों, उज्जयिनी, काँचीपुरम् अमरावती, औदन्तपुरी आदि जगहों पर ऐसी ही कार्यशालाएँ थीं, जहाँ से साधारण व्यक्ति असाधारण प्रखर बनकर निकलते थे। वह स्वयं के साथ देश और समाज की उपयोगिता में खरे साबित होते थे। नेशनल कालेज की स्थापना के पीछे श्री अरविन्द का यही मकसद था और बहुत कुछ पूरा भी हुआ। काशी विद्यापीठ की भूमिका भी कुछ ऐसी ही थी। बाबू सम्पूर्णानन्द आचार्य जुगुलकिशोर, लालबहादुर शास्त्री, डॉ. भगवानदास यहीं तराशे, और निखारे गए। यहीं के उत्पादकों ने राजा महेन्द्र प्रताप का प्रेम महाविद्यालय, प्रयाग विद्यापीठ आदि स्थानों पर जाकर अपने जैसे अनेकों बनाए, जिन्होंने भारत माता की बेडियों को एक झटके में टुकड़े-टुकड़े कर फेंक दिया।

वर्तमान के क्षण सन्निकट उज्ज्वल भविष्य के लिए अतीत के इन प्रभावकारी प्रयोगों को दुहराने के लिए बेतरह आकुल हैं। कम समय में भावी समय की आदर्शवादी परिस्थितियों के अनुरूप व्यक्तित्वों को गढ़ने-तराशने की भारी जिम्मेदारी आ पड़ने से यह व्याकुलता निरन्तर त्वरित गति से बढ़ती जा रही है। श्री अरविन्द के शब्द दोहराएँ तो मानवता विश्व संस्कृति को अपने गर्भ में धारण कर चुकी है, जिसके प्रकट होने पर समूचा विश्व स्वर्ग राज्य में बदल जाएगा और वह समय आ पहुँचा है हमें स्वयं को तैयार करना है।"

यह तैयारी प्रशिक्षण है, जिसके द्वारा सुसंस्कृत व्यक्तियों का समूह तैयार किया जा सके, जो नवयुग की संस्कृति के अनुरूप अपने को सिद्ध कर सके। सारा जनसमूह एक साथ एक जगह प्रशिक्षित हो सके यह सम्भव नहीं। नीति यही रहेगी कि यदि पहाड़ ईसा के पास न पहुँचे तो ईसा पहाड़ के पास पहुँचेगा। अर्थात् घर-घर पहुँचकर मनुष्य को उसके गढ़ने निखारने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सहायता पहुँचानी होगी। इस सहायता पहुँचाने वाले प्रशिक्षकों के विशेष वर्ग को गढ़ने के लिए वेदपुरी, सिद्धाश्रम, वल्लभी, तक्षशिला की भूमिका गायत्री तीर्थ स्थित आरण्यक निभा रहा है। शक्ति पीठें भी संघारामों बौद्ध विहारों, आरण्यकों की परम्परा को निभाने के लिए अग्रसर हैं गढ़ने का उत्कृष्ट कौशल चाणक्य और कुमारिल भट्ट की वह नयी पीढ़ी तैयार कर रहा है जो वर्तमान और भविष्य की जरूरतों को पूरा कर सके। विद्यावान औरों को विद्या दें। विद्या विस्तार का यह क्रम गुरुकुल, आरण्यक की प्राचीन परम्परा को नवजीवन दे सकेगा। विद्या विस्तार के इस तंत्र से विश्वहित-समाजहित के साथ व्यक्ति की क्षेत्र विशेष की उलझनें सुलझेंगी। प्रतियोगिता और संघर्ष को त्यागकर सारी बहानेबाजी भुलाकर विद्या विस्तारकों के द्वारा नूतन इतिहास के सृजन का यह कार्य युगों तक भुलाया न जा सकेगा।

● ● ●

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीन तीर्थ परम्परा का अभिनव निर्धारण—गायत्री तीर्थ

शान्तिकुञ्ज-गायत्री तीर्थ

तीर्थों में सर्वोच्च प्रमुखता हिमालय क्षेत्र की रही है। इसमें उत्तराखण्ड प्रमुख है, जिसे हिमालय का हृदय कहते हैं यही भूमि देवात्मा हिमालय भी कही जाती है। यह अध्यात्म का ध्रुव केन्द्र है। जिस प्रकार उत्तरी ध्रुव पर अन्तर्ग्रही शक्तियों की वर्षा होती है और वे उसमें से उपयोगी अंश पृथ्वी के लिए रख कर शेष का परित्याग कर देती हैं ठीक उसी पर ब्रह्माण्ड व्यापी चेतन तत्त्व का परब्रह्म की अनेकानेक देव शक्तियों का अभिवर्द्धन हिमालय के ध्रुव केन्द्र पर होता रहता है। उसमें से जो जिसे ग्रहण करना हो, अपनी पात्रता, चुम्बकीय क्षमता बढ़ाकर हस्तगत कर सकता है।

यह ऋषियों-तपस्वियों की भूमि है। भगवान अपना ब्रह्म तेजस् पुण्यात्मा ऋषियों पर उतारते हैं। वे उसे प्रामाणिक एवं उदारचेता महामानवों के लिए हस्तान्तरित भी करते हैं। उनके प्रयासों से सृष्टि का सन्तुलन बना रहता है और धर्म-धारणा को परिपोषण मिलता है यही कारण है कि जिसका अध्यात्म तत्त्व ज्ञान से लगाव है वह हिमालय की ओर खिंचता है और वहाँ से बहुत कुछ प्राप्त करके ले जाता है।

ऋषि हिमालय में तप करते थे। गुफाओं और वृक्ष कुंजों में उनके निवास रहते थे। एकान्त उन्हें इसलिए प्रिय था कि वहाँ रह कर वे अध्यात्म विज्ञान की शोध एकाग्रता और निश्चिन्तता के साथ करते रहे हैं। आइंस्टीन जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों के काम में कोई हस्तक्षेप न कर पाये, इसलिए उन्हें ऐसी सुविधाजनक प्रयोगशाला प्रदान की जाती थी जिनसे वे शोध कार्यों के समय उनमें रहें और शेष समय लोक-मंगल के अन्यान्य कार्यों में लगने के लिए जन सम्पर्क में निरत रह सकें।

हिमालय के इस ध्रुव केन्द्र में अभी भी सूक्ष्म शरीर में उच्चकोटि के ऋषियों का निवास है। वे उच्च आत्माओं के साथ सम्पर्क भी रखते हैं और अनुदान भी देते हैं।

इतिहासकारों के अनुसार यही क्षेत्र प्राचीनकाल का स्वर्ग था। पाण्डवों ने स्वर्गारोहण इसी भूमि में किया था। देवताओं का प्रख्यात पर्वत सुमेरु उसी में है। नन्दन वन इसी में देखा जा सकता है। कैलाश और मानसरोवर का अस्तित्व यों भ्रमवश तिब्बत क्षेत्र में माना जाने लगा था, पर वस्तुतः वह केदारनाथ शिखर श्रृंखलाओं में है। मानसरोवर भी वहीं हैं, जिसमें गाँधी जी के अवशेष विसर्जित किये गये थे। इन्द्र आदि देवता पहले यहीं रहते थे। स्वर्ग में रहने वाली गंगा का निवास यहीं था। भागीरथ उसे प्रयत्नपूर्वक नीचे ले गये थे।

इन गई गुजरी परिस्थितियों में भी हिमालय की उत्कृष्टता और पवित्रता बनी हुई है। भोलापन और भलमनसाहत की मात्रा अन्यत्र की अपेक्षा यहाँ अभी भी अधिक है।

कलियुग के आने पर काशी का वातावरण उपयुक्त न रहा हो, शिवजी पार्वती के परामर्श से हिमालय पर चले आये और उत्तर काशी में डेरा डाला। इसके बाद पाँच प्रयाग, पाँच काशी, पाँच गंगा, पाँच देव सभी यहाँ आ गये और वह क्षेत्र कलियुग का स्वर्ग बन गया। दशरथ और अर्जुन का देवताओं की सहायता के लिए जाने का जो विवरण है, वह इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रहा है। द्रौपदी वाली संयुक्त पत्नी वाली प्रथा अभी भी इस क्षेत्र के जानसरबावर क्षेत्र में विद्यमान है। वहाँ पतियों के बीच कभी कोई कलह नहीं होता।

इसी ऋषि भूमि देवात्मा हिमालय का एक छोटा प्रतीक प्रतिनिधि गायत्री तीर्थ, शान्ति कुञ्ज के रूप में हिमालय में इसके द्वार पर बनाया गया है। इसमें पहुँच कर एक दृष्टि से समूचे उत्तराखण्ड की झाँकी की जा सकती है और ऋषि परम्पराओं का सूत्र संचालन अभी भी किस रूप में दृष्टिगोचर हो सकता है। सप्त ऋषियों में से गायत्री के तत्व द्रष्टा विश्वामित्र ने जहाँ तप किया था, उसी सुसंस्कारित भूमि पर इस आश्रम का निर्माण किया गया है। इसके वातावरण में अध्यात्म का प्रभाव और प्रकाश सदा विद्यमान रहे इसलिए साधनात्मक उपचार को यहाँ आरम्भ से ही प्रश्रय दिया गया है। कुमारी कन्याओं द्वारा चौबीस लक्ष्य गायत्री मंत्रों के २४ महापुरश्चरण इस भूमि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर सम्पन्न कराये गये । इसी भूमि पर गायत्री मन्दिर बना एवं विश्वामित्र ऋषि की प्रतिमा उसी मन्दिर के सामने स्थापित हुई । नौ कुण्डों की यज्ञशाला में नित्य प्रात: काल दो घण्टे गायत्री यज्ञ होते रहने की परम्परा, स्थापित होने के उपरान्त ही चल पड़ी । अखण्ड घृत दीप जो पिछले साठ वर्ष से जल रहा है और उस पर पूज्य गुरुदेव व वन्दनीया माता जी की समग्र साधना चली है, वह भी यहीं स्थापित है ।

देवात्मा हिमालय का विशाल मन्दिर भारतवर्ष भर में एक इसी स्थान पर है, जिसमें उत्तराखण्ड के सभी प्रमुख तीर्थों के दर्शन होते हैं । गंगा के आरम्भ में भागीरथ और अन्त में परशुराम का कार्य क्षेत्र रहा है । हिमालय गंगा के इस मन्दिर में इन दोनों की भव्य प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं और ऊपर की ओर सिर उठाते ही सात ऋषियों के भव्य चित्रों के दर्शन होते हैं ।

भारत में अगणित तीर्थ हैं, उन सभी का प्रतिनिधित्व तो सीमित स्थान में सम्भव नहीं था । पर देश के प्राय: सभी प्रमुख तीर्थों की- ज्योतिर्लिंगों, शक्तिपीठों, धामों की चित्र रूप में यहाँ स्थापना है । हर चित्र को छोटे मन्दिर के रूप में सुसज्जित किया गया है । इन सभी की झांकी करते हुए प्रतीत होता है कि समूचे भारतवर्ष के प्राय: सभी तीर्थों की झाँकी इस एक ही स्थान पर कर ली गई । गणेश जी ने भी राम नाम लिखकर उसकी परिक्रमा करके समस्त पृथ्वी की परिक्रमा का पुण्यफल प्राप्त कर लिया था । ऐसा ही अनुभव इस तीर्थ कक्ष में विद्यमान सभी प्रमुख तीर्थों का दर्शन करते हुए होता है ।

यहाँ कोई सफाई कर्मचारी नहीं है । हर प्रकार की सफाई सभी लोग मिल-जुलकर करते हैं । इसके अतिरिक्त पहरेदारी से लेकर लेखन, शोध, प्रवचन आदि सभी कार्य भी ये ही कार्यकर्ता करते हैं । यदि ऐसा सुयोग न बन सका होता तो संभवत: शान्ति कुञ्ज का गायत्री तीर्थ उस रूप में चल ही नहीं पाता जिस रूप में कि इन दिनों एक आदर्श संस्था संगठन के रूप में एक सतर्क ट्रस्ट के अन्तर्गत चल रहा है । इनमें से किसी को भी कोई वेतन नहीं मिलता । वे मात्र भोजन, वस्त्र, निवास जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भर में सन्तुष्ट रहते हैं और साधारण कर्मचारियों की तुलना में दूना काम करते हैं । न कभी छुट्टी, न कभी हड़ताल । इन कार्यकर्ताओं में से प्राय: आधे ऐसे हैं जिनका आर्थिक भार मिशन पर राई-रत्ती भर भी नहीं पड़ता । वे अपनी पेंशन या पूर्व संचित सम्पदा को बेच कर बैंक में जमा रखते और उसकी ब्याज से निर्वाह चलाते हैं ।

ऋषि वेतन भोगी नहीं होते थे । वे ब्राह्मणोचित निर्वाह पर अपनी जीवन यात्रा चलाते थे । उन्हीं के पदचिह्नों पर चलने वाले इतने सुशिक्षित कर्मठ कार्यकर्ताओं का मिल जाना इस जमाने में सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है; पर उसका उदाहरण शान्ति कुञ्ज में देखा जा सकता है । गृहस्थ और विरक्त ब्रह्मचारी वानप्रस्थी सभी स्तर के जीवन दानी कार्यकर्ता यहाँ रहते हैं । इनकी योग्यतायें भी ग्रेजुएट या ऊँचे स्तर की हैं ।

शान्ति कुञ्ज का निर्माण इस आधार पर हुआ है, जिसमें पुरातन ऋषियों की परम्पराओं को आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला जा सके और इस बुद्धिवादी युग में हर बात को तर्क, प्रमाण, तथ्य और उदाहरणों समेत प्रस्तुत किया जा सके ताकि अनुकरणों में कहीं कोई उँगली न उठाने पाये कि कार्य आरम्भ तो किया; पर वह आधा-अधूरा रहा ।

भारत की देव संस्कृति में तीर्थों का, तीर्थ यात्रा का असाधारण महत्त्व है । धार्मिक प्रथा परम्पराओं को इसी कारण सर्वोपरि महत्त्व मिला हुआ है । हर साल करोड़ों यात्री तीर्थ यात्रा पर निकलते हैं और इस हेतु अरबों-खरबों रुपया खर्च करते हैं । समय लगने की दृष्टि से भी हर यात्री को औसतन एक सप्ताह इसी निमित लग जाता है । लौकिक मनोकामनाएँ पूर्ण करने से लेकर, पापों का क्षय, पुण्य का उदय, स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति, देवता की प्रसन्नता, अनुकम्पा जैसे अनेक मनोरथ लेकर जाते हैं । श्रद्धा या अन्धश्रद्धा से वे अपेक्षी मान्यता के फलित होने की भी आशा करते हैं ।

विचार करने पर मात्र देव-दर्शन, नदी स्नान, दान दक्षिणा, छुट पुट कर्मकाण्ड की शारीरिक क्रिया कर लेने भर से कोई कारण समझ में नहीं आता कि इतने सत्परिणामों का पिटारा इतने सस्ते मोल में किसी के हाथ लग सकता है । क्योंकि पुण्य तो सघन श्रद्धा, पवित्रता और उदारतापूर्वक किये गये परमार्थ के सहारे ही उपलब्ध हो सकता है । इससे कम में अध्यात्म क्षेत्र की कोई विभूति हस्तगत नहीं होती । फिर लोगों में तीर्थों के इतने उच्चस्तरीय प्रतिफल प्राप्त करने की मान्यता क्यों कर बनी और वे क्यों कर इस सीमा तक अपनाने के लिए तत्पर हो गये ? तीर्थयात्रियों की संख्या हर साल हर तीर्थ में बढ़ती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही जाती है । इसका एक कारण पर्यटन के प्रति लोगों की सहज उत्सुकता भी हो सकती है और यह भी कहा जा सकता है कि सर्वसाधारण के लिए सैरगाहों की आवश्यकता पूरी होने जैसे कोई स्वतंत्र व्यवस्था नहीं है, उन्हें तीर्थों का ही एकमात्र अवलम्बन मिलता है । वहाँ जाकर दैनिक जीवन के व्यस्त और नीरस क्रिया-कलाप से ऊबा हुआ व्यक्ति कुछ समय के लिए राहत पाता है । पर्यटन का आनन्द लेता है और साथ के अनेकानेक लौकिक और पारलौकिक प्रतिफलों की आशा अपेक्षा भी करता है ।

इस प्रचलन का आरम्भ किस प्रकार हुआ ? इसका पुरातन आधार ढूँढने पर वहाँ पहुँचने पर पैर टिकते हैं कि पुराणों में माहात्म्य ग्रन्थों में अनेकानेक तीर्थों का आश्चर्यजनक इतिहास एवं पुण्यफल बताया गया है । इसी को आधार मानकर भावुक-जनों की धर्मश्रद्धा अन्यान्य कठोर साधनाओं की अपेक्षा इसी सरल उपाय की ओर मुड़ गई । अनुकरण प्रियता के लिए मानवी दुर्बलता प्रसिद्ध है । एक को किसी नूतन कार्य में प्रवृत्त होते देख कर उसके साथ अनेक कौतूहलप्रिय लग लेते हैं । यह बात स्वभाव तो है ही, बड़े भी इसका अपवाद नहीं हैं । विशेषतया ढलती आयु में जब सर्वथा निठल्ले रहना और नीरस जीवन बिताना पड़ता है, तब तो कहीं जाने आने की इच्छा और भी तीव्र होती है । इसके लिए तीर्थ ही एक मात्र निमित रह जाते हैं । वे अपनी अभिलाषा घर वालों पर व्यक्त करते हैं और उन्हें वह दबाव इच्छा या अनिच्छा से स्वीकार करना पड़ता है । कुछ की उत्सुकता इस हेतु अन्यान्य अनेक पर उत्साह का अतिरेक बन कर सवार हो जाती है और रेल के डिब्बों, बसों की कतारों का मुख निकटवर्ती, दूरवर्ती तीर्थों की ओर मुड़ जाता है । यह है आज तीर्थों में जमा होती और दिन-दिन बढ़ती जा रही भीड़ का प्रधान कारण ।

अब प्रश्न उठता है कि आखिर शास्त्रकारों को क्या सूझा कि उन्होंने इस भाग-दौड़ के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया और उनके धन, श्रम, समय का सदुपयोग नष्ट न होने के सम्बन्ध में कुछ भी विचार नहीं किया ? इतना तो वे भी जानते होंगे कि पुण्य परमार्थ के लिए आत्म-शोधन और पुण्य परमार्थ यह दो ही अवलम्बन हैं, जिन्हें अपनाये बिना किसी आत्मिक क्षेत्र की विभूति का उपलब्ध हो सकना सम्भव नहीं । कर्मकाण्ड तो उस दिशा में प्रतीकात्मक मार्गदर्शन ही करते हैं ।

ऋषियों और शास्त्रकारों के सम्मुख उन दिनों तीर्थ यात्रा का स्वरूप दूसरा था, जिसे आज की भगदड़ से सर्वथा भिन्न ही माना जा सकता है । उन दिनों तीर्थ प्राकृतिक सौन्दर्य वाले, जलाशयों की निकटता वाले और भूतकालीन प्रेरणाप्रद प्रसंगों के साथ जुड़े हुए तो थे ही उनकी स्थापना के लिए चयन ऐसे ही स्थानों का किया गया था । पर यह तो चयन और स्थापना की बात रही, उपयोगिता का समावेश इसकी तुलना में और भी अधिक बुद्धिमता और श्रम साधना के आधार पर हुआ था ।

तीर्थों के देवालय-जलाशय एक शारीरिक उत्साह की ही अभिवृद्धि करते हैं । मूल लाभ तो उस भावनात्मक उत्थान परिष्कार से होता है, जिसके कारण व्यक्ति अपने दोष-दुर्गुणों को छोड़ता है । भ्रान्तियों से ऊपर उठता है । उत्कृष्ट जीवन की रीति-नीति अपनाता है । यह सब कुछ अनायास ही नहीं हो जाता । इसके लिए उच्चस्तर का ऐसा दबाव पड़ना चाहिए, जो कच्ची धातुओं को गलाने, ढालने जैसा ज्वलंत एवं ऊर्जा सम्पन्न हो । यह भूमिका उन दिनों तत्वज्ञानी, तपस्वी एवं महामनीषी ही निबाहते थे । तीर्थों में उनके कई-कई आश्रम रहा करते थे, जिसमें विभिन्न वर्गों के स्तरों के व्यक्तियों के प्रशिक्षण की सुनियोजित व्यवस्था मात्र शिक्षा ही पर्याप्त नहीं समझी जाती थी, साथ में साधना प्रक्रिया भी जुड़ी रहती थी । साधना प्रक्रिया में संयुक्त होकर ही उच्च स्तरीय प्रशिक्षण भावना क्षेत्र में उतरता है और जीवन में चरितार्थ होने की स्थिति में पहुँचता है । इसी दुहरी प्रक्रिया को सम्पन्न करा सकने में समर्थ थे वे आश्रम, वे शिक्षण संस्थान जिन्हें तीर्थ प्रक्रिया का जीवन-प्राण सार तत्त्व कहा जा सकता है ।

उन दिनों तीर्थ यात्री इन दिनों की तरह देहली छूने के लिए दौड़ते और उलटे पैरों लौटने की उतावली में नहीं होते थे । वरन् लम्बी पद यात्रा की थकान उतारने से लेकर संजीवनी विद्या घोट कर पिलाने वाले आश्रमों में कुछ अधिक समय वहाँ रहते थे । वहाँ के दिव्य वातावरण से प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण करते थे । साधना चलती थी । संस्कृति के साथ घनिष्टतापूर्वक जोड़ने वाले उपनयन, वानप्रस्थ और अन्य संस्कार कराये जाते थे । इसके अतिरिक्त बन पड़े पाप कर्मों के प्रायश्चित, आत्मपरिष्कार तपश्चर्याएँ तथा उलझी हुई गुत्थियों का समाधान करने वाले प्रवचन, प्रशिक्षण एवं परामर्थ का लाभ मिलता था । जो सुधार परिवर्तन घर के सामान्य वातावरण में बहुत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयत्न करने पर भी सम्भव नहीं होता था, वह वहाँ थोड़े ही समय के तीर्थ सेवन से सम्पन्न हो जाता था।

गुरुकुल तीर्थों में ही होते थे। वहाँ पढ़ने के लिए बालक इसलिए भेजे जाते थे कि नर-रत्नों के स्तर तक विकसित करने की जो प्रक्रिया घर के अस्त-व्यस्त वातावरण में सम्भव नहीं हो पाती, उसे आश्रमों के ऊर्जा भरे अँवे जैसे वातावरण में रखकर आसानी से पकाया जा सकेगा। वस्तुतः होता भी ऐसा ही था। छात्र अनुशासन पालते श्रद्धावनत रहते और जीवन के हर पक्ष को विकसित करने का ऐसा लाभ उठाते थे जिस आधार पर उन्हें महामानवों की श्रेणी में खड़ा होने का सुयोग-सौभाग्य मिलता था। इस प्रयोजन की पूर्ति में शिक्षण का पाठ्यक्रम साधारण होते हुए भी वहाँ का दिव्य वातावरण चमत्कारी प्रतिफल उपस्थित करता था।

बालकों के लिए वर्षों तक गुरुकुल प्रणाली की शिक्षा चलती थी। जो वयस्क हैं, गृहस्थ हैं, कार्य व्यस्त हैं उन्हें भी आत्म-परिष्कार और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण का लाभ प्राप्त करना तो आवश्यक था ही। समय की कमी को देखते हुए तीर्थों में ऐसे कल्प साधना सत्रों के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी जिसे तीर्थ सेवन सत्र के नाम से जाना जाता था। उन दिनों तीर्थ यात्री चित्र-विचित्र इमारतों को देखने एवं दृश्य परक विनोद का मजा लूटने के लिए नहीं वरन् कुछ ठोस आधार अपनाने के लिए जाते थे। इसके लिए उन्हें न्यूनतम दस दिन तो अपने को तपाने, चमकाने के लिए समय देना ही पड़ता था। स्वर्णकार इससे कम समय में कोई शानदार आभूषण गढ़ भी तो नहीं सकता। इसमें एकनिष्ठ रहने की नितान्त आवश्यकता पड़ती है। तीर्थ सेवनकर्ता इसी तैयारी से वहाँ जाते थे।

देव धर्म को आश्रम व्यवस्था में बँधा हुआ समझा जाता था। ब्रह्मचर्य में विद्याध्ययन, शरीर संवर्द्धन, गृहस्थ में परिवार पोषण, अजीविका उपार्जन में जीवन का पूर्वार्द्ध लग जाता था। ढलती आयु का उत्तरार्द्ध विशेष रूप से परमार्थ प्रयोजन के लिए लोक सेवा के लिए निर्धारित था। इस सन्दर्भ में आवश्यक अनुभव अभ्यास प्राप्त करने के लिए यही तीर्थ, आश्रम, वानप्रस्थ, आरण्यक के रूप में भी अपनी एक महत्त्वपूर्ण शाखा चलाते थे। इस प्रकार बालकों को युवाओं को, प्रौढों को, वृद्धों को, महिलाओं को अपने-अपने काम आने वाली प्रेरणाएँ दिशाधाराएँ प्राप्त करने का अवसर तीर्थों में मिलता था।

इसी उपयोग को देखते हुए शास्त्रकारों ने सर्वसाधारण, को प्रेरणा दी थी कि वे जीवन के अन्यान्य आवश्यक कार्यों में ही एक कार्य तीर्थ सेवन का माने। उसके लिए समय निकालें और वह लाभ प्राप्त करें जो अन्यत्र कहीं भी किसी भी मूल्य पर प्राप्त नहीं हो सकता।

तीर्थ यात्राएँ शास्त्रीय विधि से पैदल ही हो सकती हैं। वाहनों का उपयोग करने पर उनका पुण्य फल चला जाता है। इस पद यात्रा का असाधारण महत्त्व है। यात्री गाँव-गाँव धार्मिकता की चेतना उत्पन्न करते हुए आगे बढ़ते थे। रात्रि को जहाँ भी विश्राम करते थे, वहाँ कथा कीर्तन का आयोजन करते थे। इस आधार पर निरन्तर लोक-चेतना को सजीव रखने वाला सिंचन कार्य चलता रहता था। तीर्थयात्री राजमार्ग पर नहीं चलते थे, पर पगडंडियों को अपनाते और गाँव-गाँव से सम्पर्क साधते थे। एक मार्ग से जाते और दूसरे से लौटते थे, ताकि अधिकाधिक लोगों में अधिकाधिक गाँवों में वे नव-चेतना का संचार करते चलें।

यही वे महान उद्देश्य थे, जिनके आधार पर इस देश के नागरिक तैंतीस कोटि देवताओं की गणना में गिने जाते रहे। उन्हें जन्म देने वाली इस भूमि को 'स्वर्गादपि गरियसी' होने का श्रेय सौभाग्य मिलता रहा। आज तीर्थों का ढोंग तो है, स्थान भी वे ही हैं, पर उनके माध्यम से जो जन-कल्याण बन पड़ता था, उस महान उद्देश्य का तो कहीं दर्शन भी नहीं होता। कलेवर खड़े हैं, पर लगता है उनमें से प्राण तिरोहित हो गये।

अखण्ड ज्योति का विचार तंत्र इस अति महत्त्वपूर्ण समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करता रहा है और यह सोचता रहा है कि तीर्थ संस्था को पुनर्जीवित करने के लिए क्या कुछ किया जा सकता है ? जो सम्भव हो उसे समय रहते किया जाना चाहिए।

लम्बे समय के विचार-मंथन के उपरान्त यह निश्चय किया गया कि इसके लिए उपयुक्त स्थान चुना जाय और पुरातन काल की तीर्थ संस्था का स्वरूप, उद्देश्य क्रिया-कलाप और प्रभाव परिणाम इस आधार पर प्रस्तुत किया जाय कि पुरातन की झाँकी को नवीन में किया जा सके। मूर्च्छित में नवचेतना का संचार होता देखा जा सके।

हरिद्वार सप्तसरोवर पर शान्ति-कुञ्ज की स्थापना इसी महान प्रयोजन को सामने रख कर छोटे रूप में किन्तु सांस्कृतिक पुनः जीवन का महान लक्ष्य सामने रख कर की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गयी । गंगा की गोद, हिमालय की छाया, सप्त ऋषियों की तपोभूमि, सप्त धाराओं वाले क्षेत्र में इस गायत्री के तत्त्व दृष्टा विश्वामित्र की पुरातन संस्कार चेतना अभी भी देखी जा सकती है । सातों ऋषि एक ही दिशा धारा के पालक थे किन्तु उन सभी ने अपने-अपने हिस्से के अपने-अपने काम सम्भाले थे । परिवार के सदस्यों में सभी के काम बँटे होते थे । पर वे सभी परस्पर पूरक बनते और परिवार संस्था को सुविकसित बनाते थे ।

अखण्ड-ज्योति की अनेक प्रेरणाओं और स्थापनाओं में से एक शान्ति-कुञ्ज भी है, जिसे तीर्थ परम्परा का ऋषि-युग की रीति-नीति का सार संक्षेप समझा जा सकता है । यहाँ वे सभी प्रवृत्तियाँ चलती हैं जिनके आधार पर इन दिनों भी, इन्हीं कारणों से ऋषि युग का साक्षात्कार किया जा सकता है ।

गायत्री तपोभूमि-एक समर्थ तीर्थ

भारतवर्ष में अनेक तीर्थ हैं । इनमें असंख्यों यात्री प्रति-वर्ष बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ जाते हैं । इन स्थानों में जाने से पुण्य फल प्राप्त होता है ऐसी प्राय: सभी आस्तिकजनों की आस्था होती है । इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर असंख्य जनता तीर्थ यात्रा करती है ।

प्राचीन काल में तीर्थ स्थानों की स्थापना की गई थी, तब वहाँ पुण्य फल प्रदान करने वाली अनेक बातें भी रखी गई थीं । उन ऐतिहासिक स्थानों में जो महापुरुष उत्पन्न हुये थे या जिन्होंने जो आदर्श कार्यों से प्रेरणा ग्रहण करके तीर्थ यात्री लोग इसी ढांचे में अपने जीवन को ढालें, यह उद्देश्य प्रधान था । मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी, योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र के वचन और कार्य ऐसे हैं जिनसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और उनके बताये हुए मार्ग पर चल कर जीवन को सफल बना सकते हैं । इसके अतिरिक्त इन भूमियों में कुछ ऐसा विशेष अध्यात्मिक प्रभाव भी होता है जिनके कारण वहाँ के सूक्ष्म परमाणु आगन्तुकों के अन्त:करण पर सतोगुणी प्रभाव डालते हैं । जिसके कारण अनायास ही पापों से दूर रहने और धर्म संयत मार्ग पर चलने की भावना जागृत होती है ।

तीर्थ स्थानों की उस आध्यात्मिक विशेषता को स्थित रखने तथा बढ़ाने के लिये वहाँ निरन्तर धार्मिक आयोजन होते रहते हैं । ऐसे आयोजनों में यज्ञ प्रधान थे । यज्ञ भारतीय प्राचीन विज्ञान का एक अतीव महत्त्वपूर्ण रहस्यमय आविष्कार है । यज्ञ द्वारा मनुष्य प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों पर अधिकार प्राप्त करके सूक्ष्म जगत की परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना सकता है । यज्ञ द्वारा जहाँ अनेक प्रकार के दिव्य अस्त्र-शस्त्र बन सकते हैं, सृष्टि में पर्याप्त वर्षा, धान्य, दूध, पशु, वनस्पति, औषधि, निरोगता आदि की वृद्धि हो सकती है, व्यक्तिगत तथा सामूहिक कठिनाइयों को हल कर सकते हैं वहाँ किसी स्थान विशेष को अमुक प्रकार की शक्ति से सम्पन्न भी बनाया जा सकता है । प्राचीन काल में तीर्थ स्थानों में अनेक महत्त्वपूर्ण यज्ञ इस आयोजन से भी होते रहते थे कि वहाँ की पाप नासिनी तथा धर्म भावना प्रेरक शक्ति अक्षुण्य बनी रहे । काशी और प्रयाग के दसाश्वमेध घाट प्रसिद्ध हैं । इन घाटों पर एक-एक करके दस-दस बार अश्वमेध विभिन्न राजाओं ने कराये थे । उस समय अपने घर में यज्ञ कराने की अपेक्षा ऐसे महत्त्वपूर्ण पुण्य स्थानों पर बड़े-बड़े यज्ञ कराना अधिक उपयोगी समझा जाता था । आज एक तो बड़े यज्ञ होते ही नहीं यदि होते हैं तो प्रशंसा के लोभी उन्हें अपने घरों तक ही सीमित रखते हैं । तीर्थों की शक्ति बढ़ाने के लिये वे बड़े यज्ञ आज तो बन्द से ही हो गये हैं ।

यज्ञों के अतिरिक्त प्राचीनकाल में तीर्थ स्थानों में अनेक त्यागी, तपस्वी, विद्वान, महात्मा और पुरोहित रहते थे, अनेक गुरुकुल थे जहाँ सत्संग करके मनुष्य अपनी बुद्धि को शुद्ध करते थे, जीवन की अनेक कठिनाइयों को पार करने की कला सीखते थे । पापों का प्रायश्चित करते थे और आत्मबल बढ़ाने के लिये विशेष साधनाएँ की जाती थीं इन लाभों से भी तीर्थ यात्रा का बड़ा महत्त्व था । देवालयों की दर्शन झाँकी, पवित्र नदी सरोवरों का स्नान तो एक गौण लाभ था मूल लाभ तो उन स्थानों की आध्यात्मिक विशेषताएँ ही थीं ।

भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली ब्रजभूमि मथुरा की गणना सर्वोत्तम तीर्थों में की जाती है । इसे तीन लोक से न्यारी कहा गया है । इसी नगरी में वृन्दावन रोड पर स्थापित है गायत्री तपोभूमि जिस प्रकार आग के निकट जाने पर स्वयंमेव गर्मी अनुभव होती है, बर्फखाने में घुसने पर स्वयं ठण्डक लगने लगती है, उसी प्रकार इस तपोभूमि में घुसते ही ऐसा लगता है कि सारी मथुरा नगरी तीन लोक से न्यारी न सही उसकी यह एक उप नगरी यह तपोभूमि तीन लोक से न्यारी अवश्य है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यहाँ की प्रधान विशेषता यहाँ का वह वातावरण है जिसकी तुलना प्राचीनकाल के उन ऋषि आश्रमों से की जा सकती है जहाँ गाय और सिंह एक साथ पानी पीते और रहते सुने जाते हैं। लोगों के बीच यहाँ के पक्षी निर्भय होकर इस प्रकार क्रीड़ा करते रहते थे मानो वे भी सहयोगी हों यही सब कुछ गायत्री तपोभूमि में देखा जा सकता था। प्रातःकाल जब वेद मन्त्रों की ध्वनि के साथ यज्ञ आरम्भ होता था तो आस-पास के वृक्षों पर से तोता, कबूतर, गौरैया, कोयल, मोर आदि पक्षी उतर आते और यज्ञ वेदी के चारों ओर कलरव करने लगते थे । मोरों के तो मनोहर नृत्य आरम्भ हो जाते और वह बहुत देर तक चलते रहते। वह दृश्य देखते ही बनता। यह मोर मनुष्यों पर तनिक भी अविश्वास नहीं करते उनके साथ भोजन तक करने को तैयार रहते हैं। बालकों की थाली में से या उनके हाथ से रोटी ले लेकर यह खाते हैं, भोजन की तलाश में आश्रम की कोठरियों तक में यह घुस जाते हैं।

इस तपोभूमि में भारतवर्ष के प्रायः समस्त तीर्थों का जल रज सुसज्जित रखा हुआ है। देश भर के गायत्री उपासकों द्वारा मन्त्र लेखन में किया हुआ जप बहुत ही आदरपूर्वक स्थापित हैं। प्रायः ८० करोड़ हस्त लिखित गायत्री मन्त्र अब तक संग्रह हो चुके हैं। इतने लोगों ने इतने समय तक जो मन्त्र लेखन जप किया है वह कापियों के माध्यम से मूर्तिमान होकर यहाँ विराजता है उस तप का प्रचण्ड तेज इस स्थान में श्रद्धापूर्वक बैठते ही प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। गायत्री माता की मूर्ति का धार, तथा अंग प्रत्यंगों का माप, शास्त्रोक्त प्रमाणों के आधार पर हुआ है। इसकी प्राण प्रतिष्ठा भी असाधारण रीति से हुई है। २४ दिन तक केवल गंगाजल लेकर—दुस्साहसीय उपवास के साथ मूर्ति की प्रतिस्थापना कराई गयी है। शास्त्रीय विधानों का तो प्रतिष्ठा में पूर्ण ध्यान रखा गया है। यही कारण है कि यहाँ की प्रतिमा चैतन्य प्राण जैसी प्रभावशाली परिलक्षित होती है । शान्ति चित्त से श्रद्धापूर्वक थोड़ी देर इस प्रतिमा के सम्मुख खड़े होने पर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हम किसी निर्जीव पाषाण के सामने खड़े हैं। दर्शक मन में एक विशेष भावना तुरन्त विद्युत तरंगों की भाँति दौड़ जाती है यह प्रभाव यहाँ विशेष प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न किया गया है।

यहाँ नित्य यज्ञ होता है। प्राचीन नैष्ठिक अग्निहोत्रियों की यज्ञ शालाओं की भाँति यहाँ अखण्ड अग्नि रखी जाती है। यज्ञ वेदी के चारों ओर हरी-भरी तुलसी लगी हुई हृदय में सात्विक संस्कारों को उत्पन्न कर देती है। यह भूमि तपोभूमि के लिए चुनने में दैवी पथ-प्रदर्शन का ध्यान रखा गया है। यह स्थान ऐसा है जिसमें प्राचीनकाल के अनेक तपस्वी आत्माएँ बड़े-बड़े तप करके सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। उनके संस्कारों एवं प्रभावों से यह भूमि अभी तक प्रभावित है।

इन सब बातों के अतिरिक्त उच्चस्तरीय आत्माओं का इस स्थान पर प्रभाव है। आरम्भ से ही इस बात का प्रयत्न किया गया है कि यह स्थान इतनी चैतन्य प्रेरणा से युक्त हो जाय कि बिना कुछ कहे-सुने भी इस स्थान में निवास करने पर लोग बहुत कुछ पा सकें। सचमुच बहुत अंशो तक वह वैसा हो भी चुका है। यह अपने व्यक्तिगत अनुभव से कोई भी भली प्रकार जान सकता है।

गायत्री तीर्थ का निर्माण, माता के मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा तथा पूर्णाहुति महायज्ञ का आयोजन तारीख २०, २१, २२ जून सन् १९५३ को सम्पन्न हुआ था। उस अवसर पर केवल २४० सज्जनों को ही आमन्त्रित किया गया था इसलिए उस मनोहर दृश्य का लाभ कुछ थोड़े से बड़भागी ही ले सके। पर वे हजारों गायत्री प्रेमी जो उस अवसर पर उपस्थित नहीं हो सके अवश्य ही इस यज्ञ में सूक्ष्म रूप से सम्मिलित रहे होंगे। उनके लिये इस उत्सव का आँखों देखा संक्षिप्त विवरण नीचे की पंक्तियों में उपस्थित करते हैं।

समारोह को सफल बनाने के लिये कितने ही महानुभाव लगभग १० दिन पूर्व मथुरा आ गये थे। तारीख १८ और १९ को तपोभूमि में काफी चहल पहल आरम्भ हो गई थी। रात को प्रवचन होने आरम्भ हो गये थे। तारीख २० को प्रातःकाल से पञ्चमुखी यज्ञ का कार्य आरम्भ हुआ। वेदपाठी विद्वान बा ब्राह्मणों ने पूर्ण रीति से कुण्ड तथा वेदियों की रचना की थी। वैदिक विधि-विधान के साथ देव पूजन तथा यज्ञ हुआ ।

लगभग २५० व्यक्ति देश के कौने-कौने से आये हुये थे। मद्रास को छोड़कर भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त का प्रतिनिधित्व मौजूद था। आगन्तुकों में १३ वकील, ४१ ग्रेजुएट, १ इन्जीनियर, ३ डॉक्टर तथा अनेक संस्कृत एवं धर्मशास्त्र के सुयोग्य ज्ञाता महानुभाव उपस्थित थे। सभी विचारधाराओं के व्यक्ति अपने तुच्छ मतभेदों की भूल को अनेकता में एकता अनुभव करने के लिए एकत्रित थे। अधिकांश महानुभाव सनातन धर्मी थे, पर आर्य समाजों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के उच्च पदाधिकारी तथा कई बातों में मतभेद रखने वाले अन्य अनेक महानुभाव उतनी ही श्रद्धा और तत्परता के साथ भाग ले रहे थे। ४० से अधिक महिलाएँ बाहर से आई थीं । यह सभी गायत्री उपासना में बहुत समय से निष्ठावान रही थीं ।

प्राय: सभी आगन्तुकों ने तीन दिन के विस्तृत कार्यक्रम में भाग लिया। तीन दिन में गायत्री का २४ लक्ष जप पुरश्चरण, ६० हजार आहुतियों का हवन, २१ हजार गायत्री चालीसा का पाठ, यजुर्वेद तथा गीता के पारायण, भागवत दशमस्कन्द तथा रामायण सुन्दर काण्ड के पाठ, श्री सूक्त, पुरुष सूक्त, गायत्री सहत्र नाम, गायत्री कवच, रुद्राष्टाध्यायी, दुर्गासप्तशती पाठ, महा मृत्युंजय का जप आदि का सुव्यवस्थित कार्यक्रम तीनों दिन चलता रहा। सभी आयोजन बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुए।

प्रात: ३ ॥ बजे जागने की घण्टी बज जाती थी। सभी लोग उठकर शौच, स्नान, से निवृत होकर ५ बजे से पूर्व ही उपासना में लग जाते थे। ८ बजे सबको पञ्च गव्य दिया जाता था। ११ ॥ बजे तक विविध कार्यक्रम चलते रहते। मध्याह्न को फलाहार दिया जाता। दो घण्टे का विश्राम देकर २ ॥ बजे से फिर सब कार्यक्रम आरम्भ हो जाते और सायंकाल ५ ॥। बजे तक चलते रहते। इसके बाद लोग शौच स्नान से निवटते। सायंकाल को फिर थोड़ा स्वल्प फलाहारी जल पान मिलता। रात्रि को ८ बजे से कीर्तन तथा प्रवचन होते और प्राय: ११ बजे तक समाप्त होते। तारीख २१ की रात्रि को परिचय सम्मेलन हुआ। सब लोगों ने अपने-अपने परिचय खड़े होकर स्वयं दिये गायत्री परिवार का प्रत्येक सदस्य इस अवसर पर बहुत ही प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहा था। अपने इतने भाई बहिनों को सामने देखकर उत्साह और हर्ष से सबके मन भरे हुए थे।

महिलाओं का पंडित अलग था उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा तथा तत्परता के साथ भाग लिया। पहले दिन उन्होंने सवा हजार से अधिक गायत्री चालीसा के पाठ किये। दूसरे दिन उनके लिए सवा लक्ष गायत्री जप का आयोजन था उन्होंने उससे भी अधिक जप किये। तीसरे दिन उनके द्वारा हवन का आयोजन था। सेवा कार्यों में उनका सहयोग सराहनीय रहा।

मन्दिर की प्राण प्रतिष्ठा का कार्यक्रम तीनों दिन चलता रहा। तारीख २२ गंगादशहरा एवं गायत्री जयन्ती के पुण्य पर्व पर मध्याह्न काल को शुभ मुहुर्त में माता जी की प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा वेद मन्त्रों के साथ सम्पन्न हुई। प्रतिमा की भव्यता देखते ही बनती थी। दर्शन तो ऐसा लगता था मानों प्रसन्न मुद्रा में उसे आशीर्वाद दे रही हों।

२४ दिन के उपवास के कारण हमारा शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। ११७ पौण्ड का शरीर भार घट कर ९५ पौण्ड रह गया था, शरीर काम नहीं करता था फिर भी तख्त पर पड़े हुए आगन्तुकों से निरन्तर कुशल क्षेम पूछना, पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर देना तथा व्यवस्था का संचालन करना जारी था। गंगाजल पीकर २४ दिन पूरे करने से आत्म तेज कितना निखर गया, इसकी झांकी हर आँख वाले को होती थी। उपस्थित लोगों में से हर व्यक्ति यह अनुभव करता था मानों उसे परा और पश्मति वाणियों द्वारा बहुत ही महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी जा रही है।

जिन लोगों को इस पुनीत अवसर पर उपस्थित रहने का सौभाग्य मिला वे इन दिनों को धन्य मान रहे थे। सभी व्यक्ति एक प्रकृति के होने के कारण प्रेम आत्मीयता, स्नेह, सौहार्द्र एवं स्नेह भावना का झरना झर रहा था, ऐसा अनुभव होता था मानों स्वर्गीय सुख यहाँ से फूटा पड़ता हो। अधिकांश व्यक्ति एक दो दिन पहले आ गये थे और यज्ञ से एक-दो दिन पीछे गये। पर यह समय कुछ घण्टों की तरह बीत गया। किसी की इच्छा इस स्वर्गीय आनन्द को छोड़ने की न होती थी। कई व्यक्ति तो जाते समय बालकों की तरह फूट-फूट कर रोये यों वियोग से दु:ख तो सभी को हुआ परिस्थितियों के कारण, मजबूरियों के कारण, जाना पड़ रहा था पर हृदय से कोई भी जाना न चाहता था।

यज्ञ के लिए अरणि मंथन द्वारा वेद-मन्त्रों से अग्नि उत्पन्न की गई, जिसका दृश्य बड़ा ही प्रभावोत्पादक था। प्राचीनकाल में ऋषि लोग दो लकड़ियाँ घिस कर किस प्रकार वेद-मन्त्रों द्वारा यज्ञ के लिये अग्नि उत्पन्न करते थे, इसका प्रत्यक्षीकरण देखकर सबको बड़ा हर्ष हुआ । इस पवित्र तथा लम्बे अतीत काल से जलती आ रही उस अग्नि को विशेष रूप से एक अप्रकट महात्मा के यहाँ से मँगाई गई थी। उन दोनों को यज्ञ में स्थापित किया गया। पञ्चमुखी घृत दीप की अखण्ड-ज्योति आयोजन के आरम्भ से अन्त तक जलती रही।

गायत्री मन्त्र लेखन लगभग १९ करोड़ एकत्रित हो गये थे, उनकी विधिवत पूजा प्रतिष्ठा की गई। दो हजार से अधिक तीर्थों की रज तथा जल एक कक्ष में और मन्त्र-लेखन की कापियाँ सुसज्जित रूप से दूसरे कक्ष में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थापित की गई थीं । इन दोनों कक्षों के दर्शन से दर्शक के मन में सहज ही श्रद्धामयी धार्मिक भावना जागृत हो जाती थी ।

तीन दिन का उपवास, भूमि शयन तथा सभी प्रकार का संयम-नियम पालन करने से यज्ञ आयोजन में सम्मिलित रहने से प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता था कि उसे एक विशेष आत्मबल प्राप्त हो रहा है । उस वातावरण की पवित्रता एवं सात्विकता हर हृदय में प्रवेश कर रही थी और ऐसा लगता था कि आन्तरिक कषाय कल्मषों को धोकर आत्मा को स्वच्छ कर देने वाली कोई दिव्य मन्दाकिनी सूक्ष्म रूप से यहाँ प्रवाहित हो रही है ।

जितने व्यक्ति आये थे, सभी ने उत्सव को सफल बनाने के लिए जी-जान से प्रयत्न किया । जिनको जिस विभाग की सेवाएँ दी गई थीं उन्होंने अपने कर्तव्य को पूर्ण तत्परतापूर्वक पालन किया । धन्यवाद कौन किसको दे, सभी ने अपने-अपने ढंग से अपना कर्तव्य निभाया इसमें माता की प्रेरणा ही प्रधान कारण थी ।

यज्ञ पूर्णतया सफल रहा । आंधी पानी की जो सम्भावना थी वह समारोह समय तक टलती रही पर यज्ञ समाप्त होते ही इन्द्र देव ने प्रसन्न होकर घनघोर जल वृष्टि की जिसको यज्ञ की सफलता समझ कर सर्वत्र प्रसन्नता प्रकट की गई ।

भविष्य के लिए ऐसी सुन्दर योजनाएँ बनाई गयीं जिनके द्वारा विस्तृत रूप से गायत्री विद्या लुप्त प्राय: महाज्ञान की पुन: स्थापना हो सके । प्रतिवर्ष चैत्र सुदी १५ को गायत्री उपासकों का एक वार्षिक सम्मेलन बुलाने का आयोजन रहा करेगा । जिस प्रकार यज्ञ और पुरश्चरण मथुरा में हुआ था वैसे ही आयोजन देश भर में होते रहें । इसके लिए प्रोत्साहन दिये जायेंगे, ऐसे आयोजनों में हम स्वयं पहुँचने का प्रयत्न करेंगे । तपोभूमि में ऐसी व्यवस्था सोची जा रही है कि यहाँ नित्य नियमित पुरश्चरण और यज्ञ होते रहें । अधिक सस्ता गायत्री साहित्य छापने की भी योजना बनी । गायत्री सम्बन्धी खोज और अन्वेषण का कार्य निरन्तर होता रहेगा ।

आत्म-कल्याण की साधना करने वालों के लिए यह तपोभूमि अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण एवं शान्तिदायक है । यहाँ ऐसे सज्जन स्थायी रूप से निवास कर सकेंगे जिन पर पारिवारिक उत्तरदायित्व नहीं है। जो लोग घरेलू जिम्मेदारियों से निवृत्त हो चुके हैं और शान्तिमय जीवन बिताना चाहते हैं, उसके लिए आचार्य जी का सान्निध्य एवं तपोभूमि का अत्यन्त ही पवित्र एवं प्रभावशाली वातावरण बहुत ही अनुकूल एवं शान्तिदायक सिद्ध हो सकता है । जिन्हें भगवान ऐसा सौभाग्य प्रदान करें उन्हें बड़भागी ही समझना चाहिए ।

यह पुण्य तीर्थ निश्चित रूप से असाधारण महत्त्वपूर्ण है । जिस स्थान पर यह स्थापित है वह प्राचीन काल में महात्माओं की सिद्ध भूमि है, इसके चारों ओर अनेक शक्तिपीठ तथा तपोवन फैले हुए हैं । वृज का यह प्रमुख केन्द्र है ऐसे स्थान पर इस तीर्थ को बनाने या बनवाने में जिनका समय, श्रम, सहयोग तथा धन लाभ है, उनके प्रयत्न की जितनी प्रशंसा की जाय उतनी कम है । इस संस्था के द्वारा भारतीय संस्कृति तथा भारतीय अध्यात्म धर्म के पुनरुत्थान में हम विशेष सहायता के आशातीत हैं ।

गायत्री तीर्थ का उद्देश्य

गायत्री तपोभूमि की स्थापना तथा पूर्णाहुति यज्ञ आयोजन का वृतान्त पिछली पंक्तियों में बताया जा चुका है । सन् ५८ का सहस्रकुण्डीय यज्ञ तो विख्यात है ही । यह सब उस सर्व शक्तिमान सत्ता की इच्छा का छोटा सा चिह्न मात्र था । उसे जो काम कराना होता है, उसके वैसे ही साधन बन जाते हैं । मनुष्य का अपना प्रयत्न और पुरुषार्थ सीमित है । एक आकस्मिक बाधा उपस्थित हो जाने पर उसके सारे मनसूबे धूल में मिल जाते हैं और प्रभु की कृपा की सहायता हवा चलने लगे तो भँवरों में उलझा हुआ जहाज आसानी से किनारे पर लगता है । भगवती की इच्छा और प्रेरणा ही है जिसने एक आवश्यक कार्य का शुभ आरम्भ कर दिया ।

भारतीय संस्कृति, धर्म और आत्म-विज्ञान की आधार-शिला गायत्री है । इस महामन्त्र में वह सब रत्न भरे हुए हैं जिनकी आवश्यकता मनुष्य जाति को रहती है । प्राचीनकाल में ऋषियों ने इसी महाशक्ति की उपासना करके संसार को ज्ञान-विज्ञान की माया से आलोकित किया था । प्राचीन भारत में जो महानता थी उसके मूल में उसकी आत्म-शक्ति प्रधान थी । भौतिक सम्पन्नता भी उसे जो कुछ उपलब्ध थी वह भी आत्मिक योग्यताओं के आधार पर थीं । आजकल छल, बनावट, शोषण, अपहरण एवं अन्याय के आधार पर सुख सम्पदाएँ एकत्रित की जाती हैं । प्राचीनकाल में ऐसी कोई आवश्यकता न होती थी, योग्यता, शक्ति, सामर्थ्य, विद्या और बुद्धि जहाँ होती हैं वहाँ सुख-शान्ति की हवन सामग्री स्वयमेव बड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आसानी से इकट्ठी हो जाती है। पूर्वकाल में भारत की जो अनन्त सम्पन्नता थी, वह ऐसी ही थी।

आज हम सब प्रकार से दीन-हीन हैं। सब दृष्टियों से पिछड़े हुए हैं। उठने का प्रयत्न करते हैं तो गलत दिशा में पैर पड़ते हैं, उठते हैं और लड़खड़ा कर गिर पड़ते हैं। केवल भौतिक आधार पर जो उन्नति होती है, उसकी जड़ कमजोर रहती है । वह न तो स्थिर होती है और न सुरक्षित रहती है। अमेरिका ने किसी प्रकार बहुत सम्पत्ति संचित करली है पर नैतिक या आत्मिक आधार न होने के कारण अब उस सम्पत्ति की रक्षा के लिए परमाणु बमों का आश्रय लेना पड़ रहा है फिर भी वह सुरक्षित रहती दिखाई नहीं पड़ती। हमारे तत्वज्ञानी पूर्वज इस बात को भली प्रकार जानते थे इसलिए उन्होंने आत्म-बल के विकास पर सबसे अधिक जोर दिया था। क्योंकि इसी बल के आधार पर मनुष्य आन्तरिक शान्ति प्राप्त करता है इसी के आधार पर सामाजिक शान्ति स्थिर रहती है, आपसी प्रेमभाव, स्नेह, सौहार्द्र, सहयोग बढ़ता है और इसी आधार पर सुदृढ़ स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन, धन, वैभव आदि सुख साधनों की उपलब्धि होती है।

आज कल आत्मबल का तिरष्कार करके लोग केवल भौतिक आधार पर सुखी एवं सम्पन्न बनना चाहते हैं । फलस्वरूप सम्पत्ति तो नाम मात्र की ही बढ़ती दीखती है पर नाना प्रकार के भय, क्लेश, विद्वेष, उलझन, विवाद, संघर्ष, छल, प्रपंच द्रुत वेग से उपजते चले आ रहे हैं। गरीबी दूर नहीं होती, परेशानी बढ़ती चलती है।

ऋषियों को इस फलितार्थ का पहले से ही पता था इसलिए उन्होंने संसार की सर्वतोमुखी उन्नति का एक मात्र मार्ग 'आत्मबल' बढ़ाना बताया था। इसी धन के धनी वे स्वयं बने और इसी धन का धनी उन्होंने सम्पूर्ण देश को बनाया। अनाज की खेती के साथ-साथ जैसे घास-भुस बिना प्रयत्न के ही उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ही जहाँ आत्मिक धन होता है वहाँ भौतिक धन का कोई अभाव नहीं रहता। इस तथ्य को उन्होंने प्रत्येक भारतीय के मन में बिठा दिया था। फलस्वरूप यह देश अपने आचरण और आन्तरिक बल के कारण संसार का प्रकाश स्तम्भ, ध्रुवतारा बना हुआ था, जगतगुरु कहलाता था।

समय के कुप्रभाव से अन्धकार का युग आया और हम अपना सम्बन्ध छोड़कर पथ-भ्रष्ट हो गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि पिछले दिनों विदेशियों द्वारा किस प्रकार हम पददलित किये गये और नाना प्रकार की मूर्खताओं एवं दुर्बुद्धियों में ग्रसित होकर किस प्रकार त्रास पाते रहे। समय सदा एक समान नहीं रहता। प्रभु की इच्छा फिर ऐसी दिखाई पड़ती है कि जिसकी प्रिय क्रीड़ा स्थली भारत भूमि पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करे, पुनः आत्मधन से धनी होकर अपने और संसार के दुःखों को दूर करे। भारत के आत्मिक उत्कर्ष की दशा में दैवी प्रेरणा के अनेक चिह्न यत्र-तत्र दिखाई पड़ रहे हैं। अनेक दिव्य आत्माएँ भगवत प्रेरणा के अनुरूप अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी स्थिति के अनुरूप कार्य कर रही हैं । विश्वास करना चाहिये कि समय पलटेगा और हमारी व्यक्तिगत तथा सामूहिक समस्याएँ सुलझेंगी। विध्वंस और निर्माण का उभय पक्षीय कार्यक्रम हमारा कायाकल्प करने ही वाला है।

गायत्री विद्या का पुनः प्रकाश भी विश्व-कल्याण के आयोजनों का एक प्रमुख कार्य है। 'तप' के बिना शक्ति उत्पन्न नहीं होती। कथा, कीर्तन, प्रवचन, दान, पुण्य, तीर्थयात्रा, ब्रह्मभोज आदि सभी कार्य शुभ हैं इनके परिणाम भी उत्तम हैं पर आत्मबल केवल 'तप' द्वारा ही प्राप्त होता है। इतिहास साक्षी है कि जिस देव-दानव ने जब भी कोई अलौकिक शक्ति पाई है, महत्त्वपूर्ण वरदान पाया है तब उसे तप अवश्यक करना पड़ा है। तप से ही तपी हुई आत्मा में ही वह गर्मी होती है जिसमें पाप, ताप, कलुष, कषाय, दुर्भाव एवं कुसंस्कार जल सकें। तप से तृप्त आत्मा में ही वह प्रकाश उत्पन्न होता है जिससे अविद्या और माया का अन्धकार नष्ट होकर सत्य तथा परमात्मा का साक्षात्कार हो सके।

तप का प्रधान मार्ग गायत्री है। सृष्टि कर्ता ब्रह्मा, से लेकर आधुनिक काल तक के ऋषियों तक का एक मात्र अवलम्बन गायत्री रहा है। एक भी ऋषि ऐसा दृष्टिगोचर नहीं होता जिसने गायत्री उपासना के बिना ऋषित्व प्राप्त किया है। तप का निश्चित आधार गायत्री है। यह उस आत्म-बल को गर्मी तथा प्रकाश को उत्पन्न करती है जिससे तपस्वी में प्रभाव, तेज, ब्रह्मवर्चस्-तड़ित, द्युति एवं आवृति का संचार होता है। तपस्वी ही किसी राष्ट्र की साक्षी सम्पत्ति ही होते हैं। करोड़ मन सोने की अपेक्षा एक तपस्वी का मूल्य अधिक है। असंख्यों लीडरों, वैज्ञानिकों, इन्जीनियरों, डॉक्टरों, मास्टरों की सम्मिलित शक्ति से जो कार्य नहीं हो सकता वह तपस्वियों के सूक्ष्म तप प्रभाव से हो सकता है। राष्ट्रों का स्थायी निर्माण तपस्वी ही करते हैं। उसका स्थूल श्रेय बहुधा किन्हीं सौभाग्यशाली

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों या संस्थाओं को प्राप्त होता है पर इस रहस्य को बहुत कम लोग जानते हैं कि सूक्ष्म वातावरण बनाने एवं प्रकट शक्तियों को उत्पन्न करने में प्राय: अज्ञान अप्रकट एवं जनसाधारण की आँखों में ओझल रहने वाले तपस्वी ही प्रमुख कार्य करते हैं। महात्मा गाँधी और काँग्रेस को राष्ट्र निर्माता होने का श्रेय प्राप्त है पर कौन जानता है कि योगी अरविन्द, महर्षि रमण, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी राम आदि अनेक तपस्वियों द्वारा भारत को अच्छी स्थिति में लाने के लिए क्या कुछ किया होगा।

छत्रपति शिवाजी के पीछे समर्थगुरु रामदास की शक्ति काम करती थी। ऐसी अज्ञात शक्तियाँ पूर्व काल में हमारे राष्ट्र में प्रचुर परिमाण में थीं फलस्वरूप अनेक वीर, योद्धा, चक्रवर्ती, विद्वान, वाग्मी, श्रीमन्त भरे पड़े हैं। आज वे शक्तियाँ लुप्त हो गई हैं तो सब ओर से खोखलापन ही नजर आ रहा है। राष्ट्र सच्चे अर्थों में सबल एवं सम्पन्न बनाने के लिए 'तप' एक आवश्यक तत्व है। इस तत्त्व के बिना अनेक प्रवृत्तियाँ अधूरी ही रहती हैं।

तपोबल द्वारा आत्मबल की वृद्धि यह आज की एक महानतम एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, प्रतीत होता है कि प्रभु इस आवश्यकता को भी अपूर्ण न रहने देंगे। उनकी इच्छा और प्रेरणा के अनुसार जहाँ अनेक उत्तम आयोजन यन्त्र-तन्त्र हो रहे हैं वहाँ गायत्री तपोभूमि का निर्माण भी एक ऐसी घटना है जिसे बड़े से बड़े रचनात्मक कार्यों से कम महत्त्व नहीं दिया जा सकता इस तीर्थ का स्थूल रूप बहुत साधारण है। इमारत और प्रदर्शन की दृष्टि से इसका कोई बड़ा महत्त्व नहीं है। पर इसके साथ जो सूक्ष्म श्रृंखला सब सुसम्बद्ध है। उसे असामान्य ही कहा जायगा। भारतवर्ष के तपस्वियों, गायत्री उपासकों का यह एक ऐसा केन्द्रीय संगठन बिन्दु है जहाँ उनका पारस्परिक सम्बन्ध, सहयोग एवं सम्मिलन होता है। आपसी आदान-प्रदान से तपश्चर्या में वृद्धि होती है। नये तपस्वियों को प्रेरणा पथ-प्रदर्शन एवं प्रोत्साहन की उपलब्धि होती है। जनसाधारण में इस संख्या द्वारा व्यापक प्रचार करके गायत्री उपासना का अधिकाधिक विस्तार करने का जो आयोजन है, उससे राष्ट्र में एक तपोमयी भूमिका का सूक्ष्म वायुमण्डल बनेगा और उस वातावरण में अनेक मनोरम पुष्प प्रस्फुरित होंगे।

अस्पताल खोलने से बीमारी दूर होती है यह समझ अधूरी है। स्वास्थ्यकर आहार-विहार को अपनाने का वातावरण यदि घर-घर में उत्पन्न हो जाय तो बीमारियों की पीड़ा और अस्पताल खोलने की खर्चीली योजना का भार बहुत कुछ हल्का होता है। शांति स्थापना और रक्षा का जो कार्य पुलिस, फौज, जेल, अदालत, वकील, वैरिस्टर, जज, अफसर मिलकर भी नहीं कर सकते, वह कार्य नैतिक वातावरण उत्पन्न होने से सहज ही हो सकता है और इतने कर्मचारियों के समय तथा बल को किसी रचनात्मक कार्य में लगाया जा सकता है। राष्ट्र निर्माण की सच्ची आधारशिला यह है कि नैतिक एवं धार्मिक वातावरण उत्पन्न किया जाय यह कार्य सरकारें नहीं कर सकतीं यह तो सन्तों और तपस्वियों द्वारा होता है। इन्हीं वर्गों की अभिवृद्धि करने के लिए गायत्री तपोभूमि का निर्माण हुआ है। हम विश्वासपूर्वक यह आशा कर सकते हैं कि यह संस्था इस महान् आवश्यकता को पूरा करने के अपने प्रयत्न में असफल न रहेगी।

हमें समय-समय पर ऐसे आध्यात्मिक अनुभव हुए हैं जिनमें आवश्यकता पूर्ति की ओर संकेत मिला है। गायत्री महाशक्ति को भारत पुन: प्राप्त करेगा। इस महाविद्या के आधार पर हम अपने खोये हुए अनेक रत्न भण्डारों को खोज सकेंगे। तप की राष्ट्रव्यापी अभिवृद्धि होने से ऐसे नर रत्न उत्पन्न होंगे जो व्यापक समस्याओं को आसानी से हल कर सकेंगे। यह गायत्री तीर्थ अपने स्थानीय क्षेत्र में जो आयोजन कर रहा है और देश भर में फैले हुए जिज्ञासुओं, साधकों, तपस्वियों तथा सिद्ध पुरुषों के उपयोग से जो कार्य करने में संलग्न हैं, यह स्वर्ण युग का पूर्व संकेत है। प्रभु की इच्छा एवं प्रेरणा से विश्व की एक महान आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह शुभ आरम्भ हुआ है। इसका अन्त कितना महान है इसकी कल्पना करना भी आज तो कठिन ही होगा।

गायत्री तपोभूमि का निर्माण हो गया। इसमें जिन लोगों का जितना सहयोग, सद्भाव, श्रम एवं धन लगा है वह निश्चित रूप से धन्य हुआ है, क्योंकि यह चारों ही दान वहीं सफल होते हैं जहाँ उनका सदुपयोग होता है। कार्य की महत्ता श्रेष्ठता एवं सात्विकता के अनुरूप ही उसमें लगा हुआ दान सफल माना जाता है। इस तीर्थ की उपयोगिता में जिस प्रकार सन्देह की गुन्जायश नहीं उसी प्रकार इसमें लगा हुआ सहयोग की सफलता में कोई सन्देह नहीं है। इस तीर्थ की स्थापना एवं उद्घाटन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समारोह जिस असाधारण पवित्रता के आध्यात्मिक वातावरण में हुआ वह एक शुभ लक्षण है। ऐसे शुभ सुयोग मानवी प्रयत्नों से नहीं दैवी प्रेरणा से ही उपलब्ध होते हैं। प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो इस भावना के साथ विश्व-कल्याण के इस महान कार्य को पूरा करना चाहिए।

मन्त्र लेखन यज्ञ

गायत्री मन्त्र लेखन यज्ञ चालू रहेगा। जिन सज्जनों ने इस यज्ञ में भाग लिया है। उनसे प्रार्थना है कि लेखन कार्य इस वर्ष भी चालू रखें और इस बात का प्रयत्न करें कि लेखन कार्य में कम से कम दो नये साधकों को सम्मिलित कर सकें। मन्त्र लेखन एक बहुत ही उत्तम साधना है। इससे मन को वश में करने में बड़ी सहायता मिलती है साथ ही जप की अपेक्षा पुण्य फल भी अनेक गुना अधिक होता है।

सामूहिक यज्ञ आयोजन

अगला विशेष कार्यक्रम सामूहिक हवन करने का था। वह भी गायत्री संस्था के सदस्यों द्वारा सहस्रांशु ब्रह्मयज्ञ अन्तर्गत १२५ करोड़ जप, १२५ लाख आहुतियों का हवन, १२५ हजार उपवास, २४ करोड़ गायत्री मन्त्र लेखन का कार्यक्रम पूरा किया गया था। अगले वर्ष १२५ करोड़ आहुतियों का हवन करना था, वह भी सम्पन्न हुआ । गायत्री प्रेमियों को अपने-अपने स्थानों में यह कार्यक्रम आरम्भ करना चाहिए। जहाँ सुविधा हो सके वहाँ प्रतिदिन का और जहाँ सुविधा न हो वहाँ साप्ताहिक कार्यक्रम रखना चाहिए। रविवार विशेष उत्तम है पर सुविधानुसार अन्य दिन भी रखा जा सकता है। अकेला व्यक्ति २४ आहुतियों का हवन भी कर सकता है।

हवन का कार्यक्रम कुछ विशेष कठिन व खर्चीला नहीं है। २रु. के लगभग खर्च में १०८ आहुतियों का हवन हो सकता है। साल भर में १००) के लगभग खर्च पड़ेगा। इसे एक व्यक्ति न उठा सके तो बारी-बारी कई व्यक्तियों के यहाँ किया जा सकता है अथवा किसी सम्मिलित स्थान पर सामूहिक सहयोग से हवन हो सकता है। इसमें सभी गायत्री प्रेमी एकत्रित हो आरम्भ में सन्ध्या फिर प्रार्थना फिर हवन करें । अन्त में आरती एवं कीर्तन किया जाय। यज्ञान्त में पञ्चामृत आदि का प्रसाद वितरण कर दिया जाय। गायत्री की महत्ता सम्बन्धी प्रवचन हों या गायत्री साहित्य की पुस्तकें पढ़ कर सुनाई जायें ।

समय दान

केवल अकेले एकान्त में थोड़ी बहुत साधना करने की अपेक्षा अनेक व्यक्तियों को गायत्री उपासना के महत्त्व को समझाना एवं उपासना के मार्ग पर लगा देना अधिक महत्त्वपूर्ण है। थोड़े से व्यक्ति आत्म-लाभ करलें या मुक्ति प्राप्त करलें इसमें केवल उन थोड़े से व्यक्तियों का ही लाभ है पर यदि अनेक व्यक्ति सन्मार्गगामी हों तो संसार के गन्दे वातावरण को ही बदल सकते हैं। इसलिए गायत्री प्रेमियों को अपनी साधना के साथ-साथ गायत्री प्रचार के लिए भी विशेष रूप से प्रयत्न करना चाहिये। जिसके प्रयत्न से लोग सन्मार्गगामी होते हैं उस प्रयत्न कर्ता को भी विशेष पुण्य-फल प्राप्त होता है। इस प्रकार अनेक व्यक्तियों को सन्मार्ग पर लगाने का पुण्य फल, अपनी थोड़ी-सी एकान्त साधना की अपेक्षा कहीं अधिक मिल जाता है। हमारी प्रार्थना है कि प्रत्येक गायत्री प्रेमी अपना कुछ न कुछ समय इस कार्य में लगाकर गायत्री माता को श्रम एवं समय का दान करें। धन, दान की अपेक्षा समय दान का मूल्य अनेक गुना अधिक होता है।

सेवा के लिए आत्म-समर्पण

जो सज्जन अपनी पारवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुके हैं तथा जिन्हें कमाने की चिन्ता नहीं है ऐसे लोगों को अपना आत्म-कल्याण करने तथा संसार की आध्यात्मिक सेवा करने के लिए अपने को लगा देना चाहिए। ऐसे लोगों की सेवाओं का स्वागत किया जायेगा।

तीर्थों का पुण्य फल आरण्यक परम्परा में सन्निहित

इन दिनों तीर्थ यात्रा और पर्यटन का स्वरूप एक ही बन गया है। तीर्थ और उनकी यात्रा दोनों का ही स्वरूप अन्धकार युग में धूमिल होते-होते अब क्रमशः तिरोहित ही होता जा रहा है। पर्यटन मनोविनोद के अनेक उपायों में से वह एक है। जिसका प्रचलन संसार भर में बढ़ रहा है। तनाव और थकान से, ऊब और खीज से थोड़ी राहत पाने के लिए लोग घुटन भरी परिस्थितियों से भागना चाहते हैं। पर आजीविका और परिवार के प्रश्न इतने जटिल हैं जिन्हें उपेक्षित करके स्थाई रूप से भाग खड़ा होना और नई जगह सभी सुविधाएँ जमा लेना भी सम्भव नहीं होता ऐसी दशा में कुछ समय का पर्यटन ही किसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कंदर सामाजिक उपचार का उद्देश्य पूरा कर देता है और लोग पर्यटन के लिए निकल पड़ते हैं।

अन्य देशों में पर्यटन केन्द्र प्राकृतिक दृश्यों के आधार पर बने हैं। कौतुहल तथा ऐतिहासिक आकर्षणों से भी कितने ही स्थानों पर पर्यटक पहुँचते रहते हैं भारत में तीर्थ स्थानों में ही इस प्रकार की सुविधा प्राप्त है। अन्य प्रकार के पर्यटन केन्द्र तो बहुत ही कम रह जाते हैं। ऐसी दशा में तीर्थों में भीड़ें बढ़ती जाना स्वाभाविक है। सरकार को भी इससे लाभ होता है और इस प्रवृत्ति के सहारे कितनों को ही आजीविका मिलती है और अर्थ चक्र घूमता है। यही कारण है कि सरकारी गैर सरकारी दोनों ही क्षेत्र पर्यटन को बढ़ावा देते हैं। ख्याति प्राप्त करने के इच्छुक भी वहाँ अपनी कुछ स्मृति बनाने में दिलचस्पी रखते हैं अतएव उनका विस्तार भी बढ़ता जा रहा है और वैभव भी।

यह सामयिक समीक्षा हुई। विचारणीय यह है कि इस अध्यात्म सम्पदा के धन कुबेर देश में तीर्थों की स्थापना का विचार कैसे आया ? और उनका माहात्म्य वर्णन करके इतना अधिक विस्तार किस निमित्त किया गया, जिसमें कई बार तो आकर्षण उत्पन्न करने के लिए आलंकारिता अपनायी गई जैसी लगती है। पुराणों का बहुत बड़ा भाग विभिन्न तीर्थों की महिमा बखानने और वहाँ पहुँचने पर मिलने वाले लाभों से भरा पड़ा है।

सामान्य बुद्धि के लिए यह समझ पाना कठिन है कि किसी स्थान विशेष में कुछ समय के लिए जाने, किसी देव प्रतिमा का दर्शन करने तथा नदी सरोवर में नहाने भर से किस प्रकार आत्म-कल्याण जैसे महान् लक्ष्य की पूर्ति कैसे हो सकती है ? किसी स्थान पर पहुँचना या वहीं खुट-पुट पूजा कृत्य सम्पन्न कर लेना, श्रद्धा जगाने की दृष्टि से तो एक सीमा तक उपयोगी भी हो सकता है, पर उतने भर से किसी जीवन की महानता, सफलता पाने के निमित्त किये जाने वाले प्रबल पुरुषार्थ का उद्देश्य कैसे पूरा हो सकता है, यह समझ पाना नितान्त कठिन है। तीर्थ यात्रा से पर्यटन भर का प्रयोजन पूरा होता है तो उससे उच्चस्तरीय आत्मिक लाभों की अपेक्षा कैसे की जाय ?

यदि तीर्थ यात्रा का प्रत्यक्ष लाभ पर्यटन विनोद भर है तो ऋषियों ने इस पर इतना जोर किस लिए दिया ? उनमें पहुँचने के लिए इतनी बढ़ी-चढ़ी फल श्रुतियाँ बताने में किस लिए इतना उत्साह दिखाया ? बात को बढ़ाकर कहने और लोगों के श्रम, समय और धन अपव्यय क्यों कराया ? इन प्रश्नों का समाधान तथ्यों पर गहराई से विचार करने पर ही मिलता है। उथली दृष्टि से तो अत्युक्ति के प्रति अनास्था ही उत्पन्न होती है।

सर्वविदित है कि भारत तीर्थों का देश है। उसकी प्रत्यक्ष धार्मिकता का स्वरूप चर्म चक्षुओं से देखना हो तो इन पुण्य क्षेत्रों के निर्माण में किये गये प्रयासों, लगाये हुए साधनों और पहुँचने वाले दर्शकों को देखकर लगाया जा सकता है। यह सब भेड़िया धसान नहीं हो सकता। इसके पीछे कुछ ठोस कारण होने चाहिये। ऋषियों की दूरदर्शिता और सदाशयता पर किसी प्रकार भी संदेह करने की गुञ्जाइश नहीं है। उन देव तुल्य महामानवों ने जो प्रतिपादन और निर्धारण किये हैं उनके आधार भूत कारण अत्यन्त उच्चस्तरीय रहे हैं। पीछे सामयिक विकृतियों ने उनका स्वरूप भले ही बिगाड़ा हो।

तीर्थों के प्राचीन स्वरूप और कार्यक्रमों पर पैनी दृष्टि डालने से स्थिति को समझने में कठिनाई नहीं रहती और उनकी गरिमा बखानने में जो बातें कहीं गई हैं उनका आधारभूत कारण समझने में कोई अड़चन शेष नहीं रह जाती और यह विश्वास करना सरल पड़ता है कि उन दिनों तीर्थों की कार्य पद्धति और विधि व्यवस्था के सम्पर्क में आने वाले निश्चित रूप से वैसा लाभ पाते रहे होंगे जैसा कि प्रतिपादित किया गया है। इस प्रक्रिया को तीर्थों की आत्मा कह सकते हैं। उसी विशिष्टता को गँवा देने के कारण आज तीर्थों का स्वरूप पर्यटन केन्द्रों जैसा रह गया है और उनकी महत्ता एवं पुण्य फल का जो वर्णन किया गया है उस पर कुछ कारण न होने से विश्वास करना कठिन पड़ता है।

प्राचीनकाल में तीर्थों की आत्मा वहाँ अवस्थित 'आरण्यको' में निवास करती थी। इन महान् जन कल्याण केन्द्रों का निर्माण करने के लिए ऐसे स्थान चुने गये जहाँ प्राकृतिक शोभा, जलव्यवस्था, ऐतिहासिक परम्परा आदि के आकर्षण मौजूद थे। आगन्तुकों को इस की भी सहज आवश्यकता होती है। अस्तु उनका स्थान चुनाव तो बुद्धिमत्तापूर्ण हुआ ही है, साथ ही ऋषियों ने अपना निजी अनुदान उन प्रकृति सम्पदा से भरे-पूरे स्थानों में आरण्यक व्यवस्था बनाकर दिया।

आरण्यक जीवन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने वाले प्रशिक्षण, वातावरण एवं परिवर्तन के लिए सुविधा सम्पन्न विद्या केन्द्रों को कहते हैं। दूसरे शब्दों में उन्हें मानसिक चिकित्सा के अस्पताल तथा व्यक्तित्वों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गरिमा का समावेश करने वाले के समतुल्य कहा समझा जाता था। तीर्थ सेवन के लिए पहुँचने वाले लोग ऐसे ही देखने भालने में भटकते नहीं रहते थे। वरन् वह आलोक उपलब्ध करते थे जिसके सहारे गुत्थियों को सुलझाने और भावी जीवन को समुन्नत बनाने की व्यवस्था बन सके। तीर्थों का समस्त पुण्य फल इसी एक व्यवस्था पर आधारित था। शेष भ्रमण, पर्यवेक्षण, स्नान, मनोरंजन तो जी बहलाने भर की आवश्यकता पूरी करते थे।

जब तक तीर्थों का स्वरूप आरण्यकों जैसा बना रहे तब तक उनकी वह गरिमा और उपयोगिता भी बनी रही जिसका वर्णन शास्त्रकारों ने बढ़े-चढ़े आकर्षण व्यवस्था विस्तार के साथ किया है। तीर्थ-सेवन का जो पुण्य फल बताया गया है उन दिनों उसे प्रत्यक्ष पाया जाता होगा। उसके लिए परलोक की प्रतीक्षा न करनी पड़ती होगी। इसका अनुमान लगाने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

तीर्थ यात्रा में भगदड़ के लिए गुंजायश नहीं थी। जिस तिस देवालय को भागते दौड़ते देख भर लेना, पाई पैसा चढ़ाकर देवता का अनुग्रह बटोर लेना, जलायश में डुबकी मारकर पाप से पीछा छुड़ा लेना, जिस तिस प्रतिमा से मनोकामना की पूर्ति के लिए मनौती माँगते फिरना आज का शुगल है। छोटी बुद्धि इतना ही सोच सकती है और इतना ही उससे बन पड़ना सम्भव है। उच्च दृष्टि और तत्वान्वेषी बुद्धि ही कार्यकरण की संगति बिठाती है। जिन दिनों लोगों में वस्तुस्थिति समझने की क्षमता थी उन दिनों भी लोग तीर्थों में जाते थे पर उनका उद्देश्य और कार्यक्रम उतना उथला नहीं रहता था जितना आज देखा जाता है। वे ठण्डक नहीं शान्ति पाने जाते थे। पुण्य नहीं प्रकाश की कामना लेकर पहुँचते थे। मानसिक आरोग्य की उपयोगिता शारीरिक स्वास्थ्य से भी बढ़ी-चढ़ी है।

अस्पतालों, मानसिक चिकित्सालयों, स्वास्थ्य केन्द्रों, विश्राम गृहों की उपयोगिता तो इन दिनों भी समझी जाती है। प्राचीनकाल में आरण्यकों की भूमिका इस सबके संयुक्त लोभों से भी बढ़ी-चढ़ी होती थी। ये शारीरिक, मानसिक और आन्तरिक व्याधि वेदनाओं का निराकरण करने और विक्षोभ के स्थान पर उल्लास भर देने में पूर्णतया समर्थ रहते थे। अतएव मात्र पुण्य लाभ के लिए ही नहीं प्रत्यक्ष जीवन में उस विशिष्टता को प्राप्त करने पहुँचते थे। जिस पर उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण अवलम्बित है।

उन दिनों तीर्थ यात्री कुछ समय तीर्थों में ठहरते थे। अवकाश लेकर पहुँचते थे। आरण्यकों में निवास करके उस थकान को मिटाते थे, जो खीज और उद्विग्नता उत्पन्न करने तथा गतिविधियों को अस्त-व्यस्त बनाती है। लम्बे समय से चल रही बीमारी का उपचार एवं निवारण भी समय साध्य होता है, अतएव तीर्थ-दर्शन नहीं तीर्थ सेवन का अवकाश लेकर पहुँचा जाता था। गुत्थियों का समाधान जो बाहरी प्रयत्नों एवं साधनों से नहीं कर पाते उन्हें उसकी रहस्यमय कुंजी अन्तरंग से मिल जाती है। मन:स्थिति को बाह्य परिस्थिति का आधारभूत कारण माना गया है। भीतर का सुधार कर सकने में आरण्यकों की भूमिका असाधारण रहती थी, दैव अनुग्रह एवं तत्काल पुण्य फल पाने जैसी।

भारत की महानता उसकी सांस्कृतिक उत्कृष्टता पर अवलम्बित रही है। भारतीय संस्कृति का तत्व-दर्शन तो शास्त्रों में रहा है पर उसका चर्म चक्षुओं से देखा जा सकने योग्य स्वरूप तीर्थों में दृश्यमान रहा है। भारत के कोने-कोने से सभी वर्गों के लोग तीर्थ यात्रा के लिए पहुँचते थे। इतना ही नहीं इस पुण्य प्रक्रिया के प्रत्यक्ष लाभों का विश्वस्त परिचय पाने के कारण संसार भर के विज्ञ व्यक्ति इन तीर्थों के निमित्त कष्ट साध्य लम्बी यात्राएँ करते और उनमें प्रचुर धनराशि लगाते थे। कहना न होगा कि तीर्थों की आत्मा आरण्यकों में रहती थी। उनमें शूषि कल्प, मनस्वी और तपस्वी निवास करते थे। उनका प्राण प्रवाह सारे वातावरण पर छाया रहता था। जो उसमें सांस लेते थे वे तत्काल राहत पाते थे। इसके अतिरिक्त वहाँ की कार्य पद्धति में प्रशिक्षण, परामर्श, साधना, अभ्यास एवं आन्तरिक परिवर्तन के लिए अभीष्ट दिनचर्या बनाने और उसमें निरत रखने की बहुमुखी प्रवृत्तियों का समावेश रहता था। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण इन आरण्यकों में निवास करने वाले साधनारत रहते और आन्तरिक कायाकल्प होने जैसे लाभों का प्रत्यक्ष रसास्वादन करते थे। आगन्तुकों को अनुभव होता था कि वस्तुत: तीर्थ सेवन का जो पुण्य फल बताया गया है, उसमें आलंकारिता नहीं यथार्थता ही अन्तर्भूत है।

महान् परिवर्तन की इस पुण्य बेला में भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए उसका प्राचीन तत्व दर्शन निखारना आवश्यक था। इसके लिए युग निर्माण योजना ने आर्य ग्रन्थों, धर्म शास्त्रों, ऋषि प्रतिपादनों को युग साहित्य के रूप में प्रस्तुत किया है। संस्कृति का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दर्शन तीर्थों से होता है। आदि शंकराचार्य ने चारों धामों की नई स्थापना के अतिरिक्त अनेक तीर्थों का जीर्णोद्धार कराया था। मिशन द्वारा २४००० गायत्री शक्ति पीठों के निर्माण का एक नया कदम बढ़ाया है। तीर्थों का प्राण आरण्यक परम्परा में सन्निहित है। अस्तु गायत्री नगर का निर्माण विशुद्ध रूप से आरण्यक स्तर पर किया गया है। उसमें छोटों के लिये गुरुकुल, गृहस्थों के लिए तीर्थ सेवन और वानप्रस्थों के लिए साधना-श्रम जैसी तीनों ही व्यवस्थाओं का समावेश किया गया है। इस नव-निर्माण एवं विशिष्ठ निर्धारण में भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान और मानवी भविष्य के उन्नयन की सभी संभावनायें झाँकती देखी जा सकती हैं।

तीर्थ परम्परा की एक झलक-झाँकी गायत्री तीर्थ में

तीर्थ यात्रा का धर्म शास्त्रों में अत्यधिक पुण्य फल कहा और महात्म्य बताया गया है। उसकी तुलना तप साधना एवं धर्मानुष्ठान से की गई है। इस प्रक्रिया से पापनाश, पुण्य सम्पादन, स्वर्ग, मोक्ष, देव अनुग्रह, सद्गति, मुक्ति जैसे अनेक अध्यात्म लाभों को प्राप्त होते बताया गया है। साथ ही सांसारिक सुख शान्ति एवं भौतिक लाभ जैसे सत्परिणामों की बात भी सम्मिलित है। यह सब अकारण नहीं है। प्राचीनकाल में तीर्थ व्यवस्था का स्वरूप ही कुछ ऐसा था जिसके कारण ऐसे आत्मिक एवं भौतिक लाभों की उपलब्धि होना सहज ही समझ में भी आता है।

जब तक ऐसे कारण और आधार बने रहे जिनके कारण तीर्थ-दर्शन फलदायक सिद्ध होता था तब तक तीर्थ के सम्बन्ध में शास्त्र उल्लेख और आप्त वचन अक्षरशः सही और सार्थक सिद्ध होते रहे। तीर्थ यात्रियों को श्रेय, सम्मान और संतोष मिलता रहा और स्थापना के महान उद्देश्य की पूर्ति भी भली प्रकार होती रही। आज तो सब कुछ उलट गया है। प्रतिमाओं का दर्शन जलाशयों का स्नान आचमन भर चिह्न पूजा के रूप में शेष हैं। द्रुतगामी वाहनों पर बैठ कर कबड्डी खेलने जैसी भगदड़ मचाते हुए लोग यहाँ-वहाँ धक्के खाते और धक्के लगाते देखे जाते हैं। गन्दगी, जेबकटी की विडम्बना के अतिरिक्त और कुछ दीखता नहीं। लोग थकान, निराशा और अश्रद्धा लेकर वापस लौटते हैं। सोचते हैं इतना समय और पैसा किसी उपयोगी कार्य में लगता तो अच्छा होता।

तीर्थ परम्परा का निर्धारण एवं प्रचलन किसी समय उद्देश्य विशेष के साथ हुआ था। प्राचीन तीर्थों में ऐसा वातावरण था जिसके सान्निध्य में रहने पर पारस को लोहा छूकर सोना बनने और कल्प वृक्ष के नीचे बैठ कर मनोकामना पूर्ण करने जैसा सुयोग बनता था। वहाँ ऋषिगण निवास करते थे, साधनारत रहते थे एवं अन्यान्य साधकों को अपना मार्ग-दर्शन प्रदान करते थे। सामान्य गृहस्थ भी कुछ समय वहाँ निवास का, आन्तरिक कायाकल्प का सुयोग पाते थे। फलस्वरूप सेनिटोरियमों में रहकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने की तरह वहाँ के अध्यात्म उपचारों से जन साधारण को दैनन्दिन जीवन में सताने वाली आधि व्याधियों से छुटकारा प्राप्त करने का सुयोग मिलता था। इस निवास, साधन, शिक्षण को त्रिवेणी संगम की उपमा दी जाती थी। अभी भी त्रिवेणी तट पर माघ मास में अनेक साधक एक महीने की कल्प साधना करने जाते और कुटी बना कर उसी परिधि में रहते हैं। इस तीर्थवास के मूल में काया कल्प होने, व्यक्ति के गुण कर्म स्वभाव के बदल जाने की मान्यता निहित है। ऐसी ही व्यवस्था अन्यान्य तीर्थों में भी थी। तीर्थ सेवन अध्यात्म साधना का ही दूसरा नाम था। धर्म प्रेमी इसी निमित्त वहाँ जाते व अपनी साधना सार्थक करके कषाय कल्मषों से लदे भारी मन को हल्का करके लौटते थे। ऐसे प्रत्यक्ष पुण्य फल प्राप्त करने वालों को यह विश्वास भी होता था कि इस उपचार से परलोक भी सुधरेगा।

सिद्ध पीठों, आरण्यकों, गुरुकुलों में तीर्थ यात्रा का प्राचीन प्रावधान पैदल यात्रा के रूप में था। लम्बी पद यात्रायें स्वास्थ्य सुधार की दृष्टि से अपने आप में एक चिकित्सा उपचार है। राह चलते अनेक अनुभव लेते और ज्ञान सम्पदा बढ़ाते हैं यह शिक्षण प्रक्रिया कल्प उपचार के समकक्ष ही उन दिनों चला करती थी। यात्री मण्डलियाँ मार्ग में धर्म प्रचार भी करती चलती थीं। जहाँ ठहरती वहाँ सत्संग आयोजन भी करती थीं राह में मिलने वालों को सत्परामर्श देतीं और आवश्यकतानुसार कुछ न कुछ समय ठहर कर स्थानीय समस्याओं के समाधान में योगदान देती थीं। जाने की तरह लौटने में भी यही क्रम चलता था। एक रास्ते जाने, दूसरे रास्ते लौटने, से निरन्तर धर्म प्रचार का पुण्य परमार्थ चलता रहता था।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जिन तीर्थों की यात्रा की जाती थी वहाँ कुछ समय निवास किया जाता था। साधना और शिक्षण के लिए तुरन्त जल्दबाजी में पैसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फेंकते हुए किसी तरह निकल भागना और इसी से पुण्य सम्पादन मान लेना यह स्वरूप नहीं था। पुरातन कालीन तीर्थों के संचालक ऋषि मुनि होते थे। वे हर आगन्तुक की शारीरिक, मानसिक स्थिति का गम्भीरता- पूर्वक पर्यवेक्षण करते और तदनुरूप सुधार विकास के लिए यथोचित कार्यक्रम निर्धारित करते थे। जितने समय जो तीर्थ में ठहरता उतने समय साधना स्वाध्याय, सत्संग में निरत रहता। पिछली भूलों का प्रायश्चित करता और भविष्य के लिए अभिनव जीवन चर्या विनिर्मित करने के लिए मनन चिन्तन में तल्लीन रहता। इसके लिए तीर्थ संचालक ऋषियों का आवश्यक परामर्श सहयोग एवं अनुदान भी मिलता था। तप साधना से कषाय कल्मष छूटते हैं। प्रायश्चित से पिछली भूलों का परिमार्जन होता है। सत्संग परामर्श से विवेक जागता एवं उज्ज्वल भविष्य का द्वार खुलता है। ऐसे वातावरण एवं सुयोग साधन की समुचित व्यवस्था रहने के कारण उनमें नियत समय तक निवास करने वाले वैसा ही पुण्यफल प्राप्त करते थे जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा गया है।

तीर्थ एक प्रकार के आरण्यक भी थे। आरण्यक अर्थात् वानप्रस्थों, लोकसेवी परिव्राजकों के लिए उपयुक्त क्षमता अर्जित करने के केन्द्र स्थल। उन दिनों हर किसी को आधी आयु सांसारिक प्रयोजनों के लिए और आधी परमार्थ के लिए लगानी पड़ती थी। आधी आयु गृहस्थ प्रयोजन के लिए लगा देने के उपरान्त सभी धर्म प्रेमी जन वानप्रस्थ लेते थे। इसके लिए वे कुछ समय तीर्थों में निवास करके साधना करते और शिक्षा ग्रहण करते थे। आरण्यक साधना यही है। बुद्ध काल में इसी प्रयोजन के लिए कितने ही विहार, संघाराम बने थे। नालन्दा, तक्षशिला विश्वविद्यालयों में धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए समर्पित जीवन जीने वाले परिव्राजकों वानप्रस्थों के प्रशिक्षण की व्यवस्था थी । पुरातन काल में सभी तीर्थ इसी प्रक्रिया को सुनियोजित रखे रहते थे। उनमें सदगृहस्थ कुछ समय रहकर साधना करते और कल्प जैसा परिवर्तन लेकर वापस लौटते थे। वानप्रस्थ के लिए तो इन आरण्यकों में रहकर शिक्षा-साधना का अवलम्बन लेना होता था। यही उनका वनवास था। वानप्रस्थ शब्द के पीछे इसी विधि व्यवस्था का निर्धारण है। इस प्रकार तीर्थ-गृहस्थ और विरक्तों दोनों के लिए ही समान रूप से सेवनीय थे।

तीर्थ यात्रा का, तीर्थ सेवन का जो पुण्य फल बताया गया है, वह सकारण है । उपर्युक्त उपक्रम जुड़ा रहने से वे वस्तुत: कल्पवृक्ष और स्वर्ग सोपान थे। तीर्थ वहाँ बनाये गये थे जहाँ प्राकृतिक दृश्य, जलाशयों की सुविधा, ऐतिहासिक प्रेरणा का समन्वय था। इस आधार पर तीर्थों के स्थान चुने गये थे। मुख्य बात थी वहाँ ऋषियों का निवास, साधना का उपयुक्त वातावरण एवं लोक सेवियों का ऐसा उत्पादन जिनके माध्यम से सर्वत्र स्वर्गीय भाव चेतना का विकास विस्तार होता रहे।

तीर्थों में गृहस्थों का जीवन कल्प-विरक्तों का परामर्श प्रशिक्षण तो चलता ही था इसके अतिरिक्त सद्ग्रन्थों का प्रणयन एवं विज्ञजनों की संसदों का विचार-विनिमय सामयिक समस्याओं के समाधान, निर्धारण भी साथ-साथ चलता रहता था। कुंभ पर्व जैसे बड़े सन्त समागम उनमें होते रहते थे। सोमवती अमावस्या, सूर्य ग्रहण जैसे अवसरों पर सामान्य गृहस्थजन वहाँ पर्व स्नान के बहाने पहुँचते थे और विशालकाय सम्मेलन द्वारा जो कार्य इन दिनों होता है उसे वहाँ स्वयंमेव पहुँच कर सम्पन्न करते थे। आजकल सामायिक समाधानों के लिए विभिन्न संस्थायें विशेष स्थानों पर वार्षिकोत्सव आदि के रूप में बड़े-बड़े आयोजनों की व्यवस्था करती हैं । उनकी प्रचार प्रक्रिया, निवास व्यवस्था आदि के लिए अत्यधिक धन खर्च करना पड़ता है। पुरातन काल में यह सब कार्य पर्व, स्नान के बहाने तीर्थ स्थानों में सहज सम्पन्न होता रहता था। इसमें आगन्तुक अपना व्यय भार स्वयं उठाते थे। आयोजन कर्ताओं के लिए वे भार नहीं बनते थे। उद्बोधन, मार्ग-दर्शन, नीति निर्धारण का आलोक इस अवसर पर जन साधारण को मिलता और हर क्षेत्र में प्रसारित होता था। मूर्धन्य नेतृत्व को परस्पर विचार-विनिमय करने और निजी तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान की आवश्यकता पड़ती थी। इसके लिए कुंभ पर्व, वसन्त पर्व, नवरात्री, गुरु पूर्णिमा जैसे विशेष अवसर पूर्व निर्धारित रहते थे। बिना आमन्त्रण की प्रतीक्षा के इस स्तर के लोग इन दिनों तीर्थ विशेष पर जा पहुँचते थे। अमुक स्तर का विचारविनिमय अमुक तीर्थ में, अमुक अवसर पर हो। यह पूर्व निर्धारित रहता था। बुद्ध काल में, ऐसे सन्त समागम "संगत" कहलाते थे और उद्देश्य विशेष के लिए समय-समय पर, स्थान-स्थान पर सम्पन्न होते थे। तब लम्बे प्रवास सम्भव न थे, फिर एक स्थान पर उन दिनों सीमित लोगों के ठहर सकने जैसी ही व्यवस्था थी । तीर्थों में मूर्धन्य जनों का पहुँचना और ठहरना होता रहता था। इसलिए वहाँ शास्त्र लेखन एवं शोध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुसंधान भी पारस्परिक सहयोग से भली प्रकार चलता रहता था। इन प्रयासों के द्वारा समस्त संसार को असाधारण लाभ मिलता था। आध्यात्मिक साधन एवं भौतिक अनुसंधान के लिए तीर्थ ही प्रयोगशालाओं की आवश्यकता पूर्ण करते थे। उस स्तर के साधन भी वहाँ जुटते रहते थे। सम्पन्न लोग इन कार्यों में मुक्त हस्त से सहयता भी करते थे। साधारण स्थानों की अपेक्षा तीर्थों में किए लिए गये दान पुण्य का प्रतिफल सौगुना अधिक माना गया है। कारण स्पष्ट है। उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिए जितना अच्छा सदुपयोग तीर्थ संचालकों के हाथ में सौंपी गई राशि का उन दिनों होता था उतना कदाचित ही कहीं अन्यत्र संभव होता हो।

ऋषि आश्रमों में गाय सिंह के एक घाट पर पानी पीने की कथा प्रसिद्ध है। इसे वातावरण का प्रभाव ही कहना चाहिए। तपस्वियों की प्राण ऊर्जा और संचालित गतिविधियों की उत्कृष्टता मिलकर ऐसा वातावरण बनाती है जिसके सम्पर्क सान्निध्य में आने वाले अनायास ही लाभान्वित हो सकें। चंदन वृक्ष की समीपता से झाड़-झंखाड़ भी सुगन्धित हो उठते हैं। स्वाति बूंदों को धारण करके सीप मोती उगलती है और केले में कपूर बाँस में वंशलोचन उपजता है। यह प्राणवान सत्संगति का ही महत्त्व है। ऐसी सुविधा उन दिनों तीर्थ क्षेत्रों में ही उपलब्ध थी।

लोग ऐसे अवसर ढूँढ़ते रहते थे कि किसी बहाने तीर्थों में पहुँचने का सुयोग प्राप्त करें। धर्म कृत्य वहाँ पहुँच कर सम्पन्न करें। बच्चों के मुण्डन, उपनयन आदि संस्कार तीर्थों में कराने के लिए लोग वहीं पहुँचते थे। वानप्रस्थ लेने के लिए तीर्थ ही एक मात्र स्थान थे। विवाह के उपरान्त वर-वधू को तीर्थ जाना पड़ता था। जन्मदिन, विवाह दिन, मनाने के लिए वहाँ पहुँचा जाता था। कन्या के विवाह के उपरान्त माता-पिता तीर्थ स्नान करते थे। पाप बन पड़े तो तीर्थ यात्रा आवश्यक थी। मृतक की अस्थियों का विसर्जन और श्राद्ध-तर्पण घर पर नहीं तीर्थ क्षेत्र में ही सम्पन्न होता था। इस प्रचलन परम्परा से दुहरा लाभ था। एक तीर्थ की प्रचण्ड ऊर्जा के सम्पर्क में जितना समय रहा जाय उतनी नितान्त श्रेयस्कर प्रखरता उपलब्ध होती थी। साथ ही दान पुण्य के कारण तीर्थों की गतिविधियों का परिपोषण करने का स्वर्ण सुयोग भी बनता था। इस आधार पर तीर्थ भी परिपुष्ट, सशक्त, समर्थ बनते थे और उदार चेता जो बीज बोते थे उसकी तुलना में सहस्र गुना पुण्य फल बटोरते थे।

वस्तुतः तीर्थ परम्परा का निर्धारण एवं प्रचलन ऋषियों ने बहुत सोच-समझ कर किया था, और उसके साथ अनेक उपयोगी निर्धारणों, क्रिया-कलापों का समावेश किया था। इसे दुर्भाग्य पूर्ण दुर्घटना ही कहना चाहिए कि उस पुण्य प्रयोजन का अब मात्र ध्वंसावशेष ही जहाँ-तहाँ दृष्टिगोचर होता है। आत्मा के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं।

देव परम्परा के पुनर्जीवन में निरत प्रज्ञा अभियान ने तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करने का निश्चय किया है। शान्ति कुञ्ज हरिद्वार को गायत्री तीर्थ के रूप में इसी दृष्टि से विकसित किया गया है कि वहाँ पहुँचने पर एक बार फिर पुरातन काल की तीर्थ व्यवस्था को आँखों देखने का अवसर मिल सके। खोई हुई श्रद्धा को एक बार फिर वापस लौटने का अवसर मिल सके। लोग यह अनुमान लगा सकें कि पुरातन काल के तीर्थ क्या थे ? और उन्हें अश्रद्धा के गर्त में डूबना नहीं है तो अपना स्वरूप किन विशिष्टताओं से युक्त करना चाहिए।

यदि इमारतों और प्रतिमाओं का दर्शन ही तीर्थ यात्रा है तो सभी प्रमुख तीर्थों की चित्र प्रतिमायें गायत्री तीर्थ में लगा दी गई हैं। चर्म चक्षुओं से देखना ही यदि पुण्य फलदायक होता है तो इस कक्ष की झाँकी से भी वह लाभ बिना किसी खर्च के तत्काल मिल जायेगा। दर्शन ही यदि सब कुछ हो तो फिर समूचे उत्तराखण्ड देवात्माहिमालय की भव्य प्रतिमा भी इस कक्ष में प्रतिष्ठित है।

वस्तुतः तीर्थ जिन प्रयोजनों के लिए बने थे उन्हें पुरातन स्वरूप में चलते हुए यहाँ देखा जा सकता है। हर दिन नियमितगायत्री महा पुरश्चरण; दो घण्टे नौ कुण्ड की यज्ञशाला में अग्निहोत्र, साठ वर्ष से जलता अखण्ड घृत दीप, नियमित, रुद्राभिषेक, प्रज्ञा पुराण, कथा, कीर्तन जैसे धार्मिक कार्यक्रम नियमित रूप से चलते हैं। एक मास में सवालक्ष गायत्री पुरश्चरण, दस दिन में २४ हजार अनुष्ठान का क्रम निरंतन चलता रहता है। निवास, भोजन आदि की उचित व्यवस्था है हर साधक की शारीरिक मानसिक स्थिति सुयोग्य डॉक्टरों और बहुमूल्य मशीनों द्वारा जाँच कर स्थिति के अनुरूप पृथक-पृथक साधनायें बताई जाती हैं। इस कल्प-साधना क्रम में निरन्तर सैकड़ों व्यक्ति सम्मिलित रहते हैं। जड़ी बूटी कल्प के द्वारा हर साधक को लाभान्वित करने का प्रयत्न किया जाता है।

तीर्थ सेवन, प्रायश्चित्य, मुंडन, उपनयन आदि बाल संस्कार, वानप्रस्थ, श्राद्ध, तर्पण आदि की भी व्यवस्था है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बन्ध में उपयोगी परामर्श प्राप्त करने की एवं स्वाध्याय सत्संग की यहाँ समुचित व्यवस्था है। हजारों उत्तराखण्ड तीर्थ यात्रा के यात्री यहाँ आते और अमृताशन का प्रसाद तथा सुखद यात्रा का आशीर्वाद लेकर आगे बढ़ते हैं। पुरातन काल की तीर्थ परम्परा कैसी थी उसकी एक झलक झाँकी प्राप्त करने के लिए शान्तिकुञ्ज हरिद्वार के गायत्री तीर्थ में आना चाहिए और इस पुण्य निर्धारण के पुरातन स्वरूप का अनुमान लगाना चाहिए।

गायत्री तीर्थ–अतीत की वापसी का अभिनव प्रयास

देवालयों और तीर्थों का अन्तर गम्भीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए। देवालय स्थानीय या समीपवर्ती क्षेत्र के लोगों में सत्प्रेरणाएँ उभारने तथा सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करने के भावनात्मक एवं पुरुषार्थपरक प्रयत्नों में कार्यरत रहते हैं। उनका दायरा इतने तक ही सीमित है। उनमें बसने के लिए उतने ही व्यक्ति पर्याप्त होते हैं जितने से स्थानीय गतिविधियों और निर्धारित क्षेत्र की सम्पर्क साधना का अलख जगाते रहना शक्य होता रहे। उनमें कार्यकर्त्ता भर रहते हैं। कभी कोई परिव्राजक प्रचारक आ पहुँचे तो उसके लिए निवास, भोज का प्रबन्ध भी मिल सके।

प्रज्ञा संस्थानों को आदर्श देवालय स्तर की स्थापना कहा जा सकता है। जन साधारण के साथ सामान्य स्तर का सम्पर्क स्थापित करने और जहाँ भी भूमि उपजाऊ दीखे वहाँ अधिक सतर्कतापूर्वक बीजारोपण करने की दृष्टि से यह उपयोगी भी है और पर्याप्त भी। सुविस्तृत धरातल पर बसे देश-देशान्तरों में विभिन्न स्तर के लोगों के साथ सम्पर्क साधने की प्रारम्भिक प्रक्रिया हल्की-फुल्की ही हो सकती है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए देवालयों के निर्माण निर्धारण एवं कार्यक्रम महामनीषियों ने बनाये, चलाये। वे अपने स्थान पर अपनी आवश्यकता पूर्ति की दृष्टि से आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

प्राचीनकाल में इसी दृष्टि से देवालय योजना का प्रचलन आरम्भ हुआ था। बहुत समय तक वह अपने ढर्रे पर ठीक प्रकार चला भी। अस्तु उनके निर्माण से लेकर उपासना गृह की तरह प्रयुक्त करने में जन-साधारण का उत्साह भी बहुत रहा। इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि मध्यकाल के अन्धकार युग में जहाँ सांस्कृतिक निर्धारणों को बेहिसाब अवमूल्यन हुआ वहाँ देवालय भी दुर्दशाग्रस्त हुए बिना न रहे।

तीर्थों का स्तर देवालयों की तुलना में कहीं अधिक वजनदार है। तीर्थ प्रकारान्तर से ऐसे परिष्कार एवं प्रशिक्षण केन्द्र हैं जिनमें न केवल स्वाध्याय, सत्संग की शिक्षा पद्धति वरन् योग तप की समन्वित साधना पद्धति भी जुड़ी हुई है। साधना का महत्त्व शिक्षण की तुलना में कहीं अधिक है। शिक्षण मात्र मस्तिष्क भर को प्रभावित करता है। उसे इतना सोचने भर का अवसर प्रदत्त करता है कि किस तर्क के आधार पर क्या सोचना उचित हो सकता है। इससे पूर्व मान्यताओं में अन्तर आने जितना प्रयोजन है, किन्तु इतने भर से उन रुझानों, अभ्यासों एवं आदतों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता जो अनुपयुक्त होते हुए भी स्वभाव का अंग बनकर रह रही है और तर्क की दृष्टि से मात खाते हुए भी टस से मस होने का नाम नहीं लेतीं।

नशे के अभ्यस्त लोग कई बार उसे बुराई मानते और छोड़ने की आवश्यकता अनुभव करते हुए भी अपनी लत से पिण्ड छुड़ाने में असमर्थ रहते हैं। यह अचेतन की अत्यन्त गहरी परतें हैं जिनमें उलट-पुलट करने के लिए उसी स्तर के प्रयत्न करने होते हैं। कहना न होगा कि वह प्रयास 'साधन' ही है जिसके अनेकानेक भेद उपचार अन्तराल की गहराई तक पहुँचने और उपयोगी फेर-बदल करने में समर्थ होते हैं। अतएव जहाँ तक व्यक्तित्व वाली आदतों को उच्चस्तरीय बनाने का सम्बन्ध है, वहाँ साधना परक अभ्यास की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है। साधना की शक्ति को सुर और असुर दोनों ही अपने-अपने विरुद्ध प्रयोजनों के लिए समान रूप से आवश्यक मानते और सफलतापूर्वक अपनाते रहे हैं।

हर व्यक्ति की अपनी कुछ दुर्बलताएँ हैं, उन्हीं के कारण असफलताएँ एवं विपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं। हर व्यक्ति की अपनी कुछ आन्तरिक आवश्यकताएँ हैं। उनकी उपलब्धि हो सके तो व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनने में देर न लगे। कहना न होगा कि अन्तराल की गहरी परतों का स्पर्श करने में बौद्धिक दबाव बहुत छोटी सीमा तक ही सफल होता है। अन्तराल को प्रभावित, परिवर्तित करने के लिए अधिक भारी एवं पैने ध्यान की आवश्यकता पड़ती है और वह योगाभ्यास परक साधनाओं के माध्यम से ही सरल, सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ साधना प्रधान होते हैं। उनमें शिक्षण का भी पुट रहता है ताकि साधना का रूखा समय पूरा होने के उपरान्त शिक्षण का उपयोगी मनोरंजन भी साथ-साथ चलता रहे। वस्तुतः स्वाध्याय, सत्संग जैसे प्रयोजन महत्त्वपूर्ण होते हुए भी बुद्धि संस्थान तक ही अपनी उछल-कूद करने के उपरान्त शान्त हो जाते हैं। यदि ऐसा न होता तो आये दिन कथा-सत्संगों के वक्ता श्रोता अवश्य ही अपने व्यक्तित्वों को प्रखर बनाने में समर्थ हो गये होते, जब कि इन क्षेत्रों का प्रभाव, परिणाम दीखने पर एक प्रकार से निराशा ही हाथ लगती है।

तीर्थों की प्रकृति शोभा, जलाशय, भव्य देवालय, ऐतिहासिक प्रसंग की चारों ही विशेषताएँ स्थान चयन करने वालों की सूझबूझ का परिचय देती है। इतने पर भी किसी को यह नहीं मान बैठना चाहिए कि मात्र प्रतिमाओं की दर्शन-झाँकी करने अथवा नदी सरोवरों में स्नान भर कर लेने से उस पुण्यफल की प्राप्ति हो सकती है जिसका सुविस्तृत माहात्म्य धर्म शास्त्रों में विस्तारपूर्वक बताया गया है। दर्शन-स्नान से मनःक्षेत्र में धार्मिक स्तर के विचारों का उठना, सम्बद्ध प्रसंगों की स्मृति से अतीत को समझने और उसके प्रति नतमस्तक होने जैसे छुटपुट लाभ ही मिल सकते हैं। उपयोगी जलवायु के स्थानों में अधिक समय तक आहार-विहार की श्रेष्ठता अपनाकर रहा जाय तो विश्रान्ति, बलवृद्धि जैसे लाभ भी मिल सकते हैं, किन्तु यह मान्यता सही नहीं कि उतने भर से आत्मोत्कर्ष की तथा उस पर आधारित कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हो सकती है। कारण के बिना कार्य की सिद्धि होती भी कहाँ है। जब पुण्य प्रदान करने वाला कोई उच्चस्तरीय प्रयास पुरुषार्थ बन ही नहीं पड़ा तो उच्चस्तरीय पुण्य फलों की प्राप्ति बिना मूल्य, बिना प्रयास के ही किस प्रकार मिल सकेगी। निश्चय ही तीर्थ यात्रा के नाम पर चलती रहने वाली आज की भगदड़ वाली भीड़ें पर्यटन विनोद के अतिरिक्त और किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं करतीं।

प्राचीनकाल में तीर्थ ऐसे साधना केन्द्रों के रूप में स्थापित एवं विकसित किए गए थे जिनसे अन्तराल की गहरी परतों का उपचार परिष्कार एवं उत्कर्ष सम्भव हो सके। इस प्रक्रिया को एक प्रकार से उपयोगी वातावरण में बने हुए साधन-सम्पन्न तथा मूर्धन्य चिकित्सकों से भरे-पूरे 'सेनेटोरियमों' की उपमा दी जा सकती है। अन्तर इतना ही है कि वे उपचार केन्द्र पात्र स्वास्थ्य लाभ भर दे सकते हैं जबकि तीर्थों से न केवल चिन्तन को मोड़ने-मरोड़ने वाली स्वाध्याय, सत्संग जैसी परिचर्चा चलती है वरन् मेजर आपरेशनों जैसी, प्लास्टिक सर्जरी जैसी सुविधा भी रहती है। अन्तराल को, अचेतन मन के रहस्यमय क्षेत्रों को सुधारने सँभालने का कार्य तीर्थों में होता रहता है। उसकी कुछ-कुछ तुलना वैज्ञानिक उपचारों से किये जाने वाले 'ब्रैन वाशिंग' से की जा सकती है। अतीन्द्रिय क्षमताओं को उभारने वाले, व्यक्तित्व को सामान्य से असामान्य बनाने वाले उपचार एवं अभ्यास केन्द्रों के रूप में ही महा-मनीषियों ने तीर्थों की स्थापना की थी। अपने समय में पूर्ण या सफल भी रही।

उन दिनों गुरुकुलों में शारीरिक एवं मानसिक बलिष्ठता उत्पन्न करने वाली पढ़ाई ही नहीं होती थी वरन् छात्रों की समग्र दिनचर्या का निर्धारण इस प्रकार होता था, जिसमें उन्हें न केवल लोक व्यवहार में काम आने वाली जानकारियाँ वरन् सद्व्यवहार एवं प्रखर पराक्रम करने में प्रयुक्त होने वाले दृष्टिकोण तथा स्वभाव का भी भली प्रकार अभ्यास होता चले।

उन दिनों आरण्यकों में ढलती आयु के सभी लोगों आत्म-कल्याण और लोक-मंगल की उच्चस्तरीय पढ़ाई नये सिरे से पढ़ते थे जो गुरुकुलों से भिन्न होती थी। अनगढ़ छात्रों को लौकिक जीवन में प्रवेश करने और उस क्षेत्र की प्रवीणता प्राप्त करनी होती थी, किन्तु प्रौढ़, परिपक्व अपनी गृहस्थ भूमिका का भौतिक पक्ष या तो स्वयं पूरा कर लेते थे तथा समर्थ उत्तराधिकारियों के कन्धों पर छोड़कर स्वयं परमार्थ प्रयोजनों में निरत होते थे। उसमें उन्हें अपने निज का अन्तराल उछालने वाली तपश्चर्या करनी होती थी पर जनसमस्या उत्कृष्टता भरे रहने वाली परमार्थ परायणता का प्रशिक्षण भी प्राप्त करना होता था।

लोक-सेवा का स्थूल रूप तो सीधा सादा है। उनमें अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा आदि से असंख्यों की सहायता करने के लिए दान देने या संग्रह करने भर से काम चल जाता है, किन्तु यदि मनुष्य को पतोनोन्मुख प्रवृत्तियों से छुड़ाना और उत्कृष्टता अपनाने के लिए शौर्य साहस दिखा सकने योग्य बनाना हो तो इसके लिए दूसरे स्तर का कार्य-कौशल सजोना पड़ता है। वह भी इस आधार पर पृथक्-पृथक् प्रकार का होता है कि किस स्तर के व्यक्ति को कैसे लोगों के बीच रहकर किस प्रकार के सेवा प्रयोजनों में निरत होना है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हाईस्कूल, कालेज स्तर की शिक्षा परीक्षा तो सामान्य ढर्रे की ही होती है किन्तु किसी सेवा कार्य में नियुक्त होने का समय आने पर उस प्रयोजन की ट्रेनिंग अलग से प्राप्त करनी होती है । यही बात वानप्रस्थी आरण्यक साधना के सम्बन्ध में भी है । उसमें दुहरी तैयारी करनी होती है । निजी व्यक्तित्व उभारने वाली आत्मोत्कर्ष की साधना तथा अगले दिनों जिस स्तर की सेवा साधना अपनानी है । उसके लिए परिस्थितियों के अनुरूप कौशल तथा अनुभव प्राप्त करना । आरण्यक इसी दुहरी क्षमता को अर्जित करने की साहसिक साधना के लिए अभीष्ट वातावरण एवं कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाले प्राणवान केन्द्रों की भूमिका निभाते थे ।

भौतिक क्षेत्र में समृद्धि एवं प्रगति चक्र को अग्रगामी वाली प्रतिभाएँ गुरुकुल ढालते थे और आत्मिक क्षेत्र की प्रतिभाएँ उत्पन्न करके वातावरण में शालीनता की चेतना भरे रहने वाली मनीषाएँ उत्पन्न होती थीं । उन दिनों के उत्पादन केन्द्रों को आज के विशालकाय बिजली घरों के समतुल्य कहा जा सकता था । पावर स्टेशन दूर-दूर तक जनता की अनेकानेक घरेलू आवश्यकताएँ पूरी करने से लेकर अपने क्षेत्र में औद्योगिक विकास का पथ-प्रशस्त करते हैं । इसी प्रकार प्राचीनकाल में तीर्थों द्वारा उत्पादित प्रतिभाएँ भौतिक समृद्धि का, मनीषाएँ व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रगति का रास्ता जुटाती रहती थी । इससे उभयपक्षीय लोकमंगल का व्यापक आधार बनता और साधन सधता था ।

यही थीं उपलब्धियाँ तीर्थ स्थानों की जिनके कारण उनका माहात्म्य बखाना गया, श्रेय दिया गया और उस सान्निध्य को पारस के स्पर्श जैसा फलप्रद बताया गया इसी आधार पर तीर्थों की यश गाथा कीर्ति ध्वजा, गगनचुम्बी होती गई और लोक श्रद्धा उस पुण्य-प्रयोजन के लिए इतनी अधिक भाव-विभोर हुई कि क्रमशः तीर्थों का वैभव और आकर्षण बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक जा पहुँचा जहाँ उनके निमित्त अरबों-खरबों का धन एवं कोटि-कोटि मानवों का श्रम, समय उस प्रयोजन के लिए अभी भी निछावर होता रहता है ।

आँखों से दीखता तो कलेवर ही है, पर उसमें जो सजीवता, उपयोगिता, सुन्दरता दीखती है वह परीक्षत प्राण चेतना की ही होती है । प्राण न रहें तो सुन्दर होने पर भी काया क्षण भर में सड़ने-गलने लगती है और दुर्गन्ध भरी कुरुपता से समूचा दृश्य घिनौना बना देती है । कलेवर तो औजार या बाहन भर है, उसमें प्रखरता जीवनीशक्ति पर अवलम्बित रहती है । तीर्थों के सम्बन्ध में भी यही बात है । जब वे प्राणवान् थे तो न केवल भारत के श्रद्धावान वरन् संसार भर के तत्वदर्शी वहाँ के वातावरण से लाभ उठाने के लिए वर्षों की लम्बी कष्ट साध्य यात्राएँ पार करके यहाँ आते थे । श्रम के अनुरूप उन्हें लाभ भी मिला था क्योंकि उन दिनों इन धर्म स्थानों में प्राणवान होने के सभी चिह्न मौजूद थे ।

ऊपर की पंक्तियों में तीर्थ स्थानों में विनिर्मित गुरुकुलों एवं आरण्यकों की चर्चा हुई । यह उन लोगों के लिए थे जिन्होंने या तो गृहस्थ में प्रवेश ही नहीं किया या उससे निवृत्त होने की सुविधा पाकर देर तक वहाँ ठहरते और लम्बे समय की साधना से कायाकल्प और परिवर्तन से लाभान्वित होकर वापस लौटते थे । तीसरा वर्ग वह रह जाता है जिसे गृहस्थ एवं भौतिक प्रयोजनों में संलग्न कह सकते हैं । बहुसंख्यक जन समुदाय इसी वर्ग का होता है । बहुमुखी क्रिया-कलापों में संलग्न होने के कारण समस्याएँ भी उन्हीं के सामने रहती हैं और चित्र-विचित्र व्यवधानों से लोहा भी उन्हीं को लेना पड़ता है । आकर्षण भी उन्हीं को लुभाते और विग्रह भी उन्हीं को सताते हैं । उत्थान-पतन की बहुमुखी परिस्थितियाँ भी उन्हीं के सामने आती हैं । हर्ष-शोक के ज्वार-भाटे भी उस समुद्र जैसे जनसमुदाय में उभरते रहते हैं । सच तो यह है कि गुरुकुलों के छात्र भी शिक्षा के उपरान्त इसी वर्ग में समा जाते हैं । इसी प्रकार यह भी सच है कि आरण्यकों की वानप्रस्थी साधना भी इसी समुदाय की श्रेष्ठता, समर्थता बनाये रहने के लिए, वापस लौटने पर सेवारत होने के लिए संलग्न दीखती है । इसका अर्थ यह हुआ कि गृहस्थ ही वह धड़ है जहाँ पाचन होता और रक्त बनता है । मस्तिष्क से लेकर अन्यान्य सभी अवयव वहाँ से अपनी खुराक पाते और तरह-तरह के पुरुषार्थ चमत्कार दिखाते हैं ।

तीर्थों ने इस वर्ग के लिए भी द्वार खुले रखे हैं और उनके लिए विशेष स्तर के विशेष उपाय-अवलम्बन बनाये रखे हैं । इन्हीं को तीर्थ सेवन के नाम से जाता रहा है । यह साधना स्वल्पकालीन ही हो सकती है । इन व्यस्तता के दिनों में तो उसकी अवधि एक महीने मानी जाय तो उतना ही अवकाश कठिनाई से ही निकल सकेगा । सामान्यतया यह दस दिन का भी हो सकता है । प्राचीनकाल में वह समय अपेक्षाकृत अधिक ही रहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगा क्योंकि उन दिनों न तो आवश्यकताएँ इतनी बढ़ी-चढ़ी थीं और न उनकी पूर्ति में आज जैसी दिन-रात मारामारी करनी पड़ती थी। कृषि, पशु-पालन जैसे आजीविका उपार्जन संयुक्त कुटुम्ब के नर-नारी, बाल-वृद्ध किसी प्रकार मिलजुल कर चला लेते थे, पर आज के गृहस्थ के सूत्र-संचालकों को ही निरन्तर खटना खपना पड़ता है। ऐशी दशा में पूर्वकाल की भाँति इस वर्ग को लम्बा अवकाश मिलने और तीर्थ सेवन की दीर्घकालीन साधना करने का अवसर नहीं मिल सकता। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि पूर्वकाल की भाँति ही गृहस्थ वर्ग को अपने असन्तुलनों से जूझने और निर्धारणों को क्रियान्वित करने वाली सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए इस उपाय का अवलम्बन करके स्थिरता, प्रसन्नता एवं प्रखरता प्राप्त करने की आवश्यकता तो है ही। सच तो यह है कि चक्रव्यूह में फँसे आज के जन समाज का सब प्रकार का अवलम्बन पूर्व काल की तुलना में और भी अधिक आवश्यक है।

लुप्त प्राय: सड़ी-गली तीर्थ प्रक्रिया के ध्वंसावशेष पर गायत्री तीर्थ का नया भवन खड़ा करने का जो निश्चय किया गया है, उसे इमारत की दृष्टि से नगण्य किन्तु स्थापना की दृष्टि से मूर्धन्य ही कहा जायगा। कई बार स्थानीय समझी और छोटी लगने वाली स्थापनाएँ भी दूरगामी परिणाम उत्पन्न करती देखी गयी हैं। पावर हाउस कुछ ही एकड़ जमीन घेरते हैं किन्तु उनसे घरेलू आवश्यकताओं से लेकर औद्योगिक विकास की सम्भावनाएँ दूर-दूर तक उभरती हैं। ट्यूबबेल जरा-सी जगह घेरता है पर उससे हजारों एकड़ भूमि की फसल लहलहाती है। छोटी-सी नर्सरी हजारों उद्यानों के लिए पौधे तैयार करती है। सुई और माचिस जैसे छोटे उपकरण बनाने वाले कारखाने करोड़ों के काम आते हैं। शान्ति-कुंज में इन्हीं दिनों जिस गायत्री तीर्थ की प्राण-प्रतिष्ठा हुई है उसे प्रत्यक्षत: एक छोटी-सी वस्तु ही कहा समझा जा सकता है। किन्तु यथार्थता यह है कि उसमें प्राचीनकाल की तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करने और उस स्थापना के सहारे समूचे वातावरण को नवजीवन प्रदान करने वाले तत्त्व मौजदू हैं। पौधे में अनेक फल उत्पन्न होते हैं, आशा की जानी चाहिए कि जिस गायत्री तीर्थ की इन्हीं दिनों प्रतिष्ठापना हुई है। कुछ ही दिनों में ऐसे-ऐसे अनेक तीर्थों की वंश वृद्धि करेगा, उसी प्रकार जैसे कि प्रज्ञा संस्थानों ने देखते-देखते मत्स्यावतार की तरह विस्तार कर लिया। कहना न होगा कि यह तीर्थ प्रक्रिया के पुनर्जीवन, अतीत के देवयुग की, स्वर्ण युग की वापसी का सुनिश्चित चिह्न है। इसके दिव्य प्रतिफलों की आशा-अपेक्षा अगले दिनों ही पूरी होते, हम सब इन्हीं आँखों से देख सकेंगे।

ऋषि तपस्वियों की पुण्य परम्परा का अभिनव संस्करण

जिन ऋषियों की तपश्चर्या से नदी, पर्वत, वन, उपवन, क्षेत्र, प्रदेश धन्य बने और तीर्थ कहलाये। उनके प्रयत्नों का गहराई में उतरकर पर्यवेक्षण करना चाहिए। यह अनुमान लगाना उनके साथ अन्याय करना होगा कि वे सामान्य स्वार्थान्धों की तरह सम्पत्ति न सही ऋद्धि-सिद्धि कमाने में लगे रहते होंगे। परिवार और समाज की सेवा करने के महत्त्व से अपरिचित होंगे, मानवता के प्रति अपने कर्तव्यों को भूले रहते होंगे। स्नेह सहयोग के आधार पर मिलने वाले आनन्द से अनजान रहे होंगे तथा भगवान के इस विश्व उद्यान को सुरम्य बनाने में सन्निहित दैवी अनुकम्पा की उपेक्षा अवहेलना करते होंगे। एकाकीपन कुछ मिनट घण्टों का ही पर्याप्त होता है। उतने में ही चिन्तन-मनन की ध्यान-धारणा भली प्रकार सध जाती है। अध्यात्म क्षेत्र, वैज्ञानिक अनुसंधान भी सीमित समय ही संभव हो सकता है। एकाग्र रहने की एक सीमा है। उसे पार करना किसी परमहंस या नीरस, निष्ठुर के लिए ही सम्भव हो सकता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समाजनिष्ठ होकर ही जीना चाहिए। जो दूसरों का दुख बँटा न सके, अपना वैभव बाँट न सके उसे लोभ मोह के भवबंधनों में जकड़ा हुआ पाषाण हृदय ही कहा जाएगा। इतने आक्षेपों से देवात्मा ऋषियों को लाद देना एक प्रकार से उनकी गौरव-गरिमा को समाप्त ही कर देना है। आज के बाबा लोग क्या करते हैं उसे देखकर ऋषि प्रयासों का अनुमान नहीं लगाना चाहिए। वरन् यह देखना चाहिए कि वे जो सोचते और करते रहे हैं, उसे आज के वेषधारी अपनाते क्यों नहीं ? सिंह का लबादा ही क्यों ओढ़ते हैं ? वैसा मार्ग क्यों नहीं अपनाते, वैसा पुरुषार्थ क्यों नहीं करते ?

ऋषियों में से प्रत्येक की चेष्टा लोकमंगल के लिए निरन्तर प्रयत्नरत रहने की रही है। ऐसे प्रयास हाथ में लेने वालों को अपना व्यक्तित्व, तदनुरूप प्रतिभा एवं क्षमता से सम्पन्न बनाना पड़ता है। पवित्रता और प्रखरता जिस जीवन में नहीं वह मानस के परिष्कार का, धर्म-धारणा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हृदयंगम कराने का, उत्कृष्ट आदर्शवादिता व्यवहार में उतारने के लिए उत्साह उत्पन्न करने का कार्य कर ही नहीं सकता। करेगा तो उपहासास्पद बनेगा। वास्तविक सफलता से सदा वंचित ही रहेगा। अहंता की तुष्टि के उद्धत आचरण करने वाले नेता, अभिनेता ख्याति के लिए क्या-क्या करते हैं और उससे कितने विग्रह विक्षेप उत्पन्न होते हैं, यह अपने समय का दुर्भाग्य है। पुरातनकाल में इस सत्य से सभी महामानव परिचित थे कि लोकमंगल की क्षमता उत्पन्न करने के लिए निजी जीवन में चिन्तन की उत्कृष्टता और चरित्र की आदर्शवादिता का समन्वय अनिवार्य रूप से आवश्यक है। इसके लिए वे व्यक्तिगत जीवन में ब्राह्मण की मर्यादाओं का पालन करते थे। महत्वाकांक्षाओं को कुचलते, अपरिग्रही रहते और संयम अनुशासन का जीवनचर्या में कठोर समावेश रखते थे। इतना बन पड़े तो लोकमंगल के निमित्त साधु स्तर की परमार्थ परायणता सही रीति से कार्यान्वित की जा सकती है। इस तथ्य का निष्कर्ष एक ही है कि परमार्थ साधना के माध्यम से जीवन-लक्ष्य की पूर्ति के मार्ग पर चलने वाले अपने अन्तरंग-बहिरंग को ऐसा बनायें जिसके प्रतिपादन जन-जन के मन में उतरते चले जायें। तितीक्षाएँ इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए की जाती थीं। तपश्चर्या इससे अगला कदम है। उसमें संयम और परमार्थ का दुहरा समावेश है। ऋषियों की तपस्या का यही तत्वज्ञान और व्यावहारिक स्वरूप था। निजी जीवन की तितीक्षा की जानकारी तो मात्र उन्हें ही रहती थी पर लोकमंगल के लिए की जाने वाली तपश्चर्या का विवरण अन्यान्यों को भी विदित रहता था। जब महत्त्वपूर्ण प्रतिफल सामने आते थे तब तो उसके लिए किए गए पुरुषार्थ का पता सबको चल ही जाता था।

तीर्थ की स्थापना में जो आधारभूत कारण काम करते रहे हैं उन्हें समझने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन नहीं रह जाता कि उन स्थानों का वातावरण क्यों प्रेरणाप्रद रहा होगा ? वहाँ की गतिविधियाँ किस लिए पहुँचने वालों के अन्तराल में श्रद्धा का संचार करती होंगी। घर की तुलना में उन स्थानों पर पहुँचने पर नया दृष्टिकोण अपनाने, नया पुरुषार्थ करने, नया निर्धारण स्वीकारने में किस कारण साहस उमड़ता होगा। व्रतशीलता क्यों निभ जाती होगी ? जो सीखा-सिखाया गया है, वह क्यों इंजेक्शन की सुई की तरह जीवनचर्या की धमनियों में प्रवेश पाता चला जाता होगा। दृष्टिकोण बदले, व्यवहार सुधरे तो पुण्यफल मिलने में किसी प्रकार के सन्देह की गुंजायश नहीं रहती। अविश्वास तो तब होता है, जब बिना सुधरे-बदले, बिना त्याग परमार्थ अपनाये मुफ्त में ही प्रतिमा झाँकने की खिलवाड़ भर से स्वर्ग-मुक्ति से लेकर मनोकामना पूर्ति तक के सपने देखे दिखाये जाते हैं। दर्शन का तात्पर्य 'तत्वज्ञान अपनाना' न समझकर जब से आँखों से देखना भर मान लिया गया तभी से अनर्थ होता और भ्रम जंजाल पनपता चला गया है। पूर्वकाल में तीर्थ प्रकृति सम्पदा या ऐतिहासिक स्मृतियों के सहारे ही लोक पूज्य नहीं हुए थे। इन विशेषताओं के अतिरिक्त सबसे बड़ी बात थी—ऋषियों की वह तप साधना जिसके कारण वे स्वयं सर्व समर्थ बनते थे और सम्पर्क में आने वालों में से असंख्यों को कृतकृत्य करते थे।

युग अवतरण की इस पुण्य वेला में तीर्थ परम्परा का पुनर्जीवन अनिवार्य रूप से आवश्यक हो गया है। इन्हें प्राणवान प्रेरणा देने और प्रखरता उत्पन्न करने वाली साधना कराने का दुहरा उत्तरदायित्व निभाना होगा। स्थान के बिना किसी सत्प्रवृत्ति का शुभारम्भ-अभिवर्धन नहीं हो सकता। पाठशाला, चिकित्सालय, उद्योगशाला, व्यायामशाला, प्रयोगशाला आदि का निर्माण प्रथम कार्य है। इमारत के साथ ही कुशल सूत्र संचालक रखने पड़ते हैं। इसके बाद ही अनेक लोग वहाँ पहुँचते, उत्पादन बढ़ाते और लाभ उठाते हैं। यही सब युगान्तरीय चेतना को विश्वव्यापी बनाने के सन्दर्भ में भी चलेगा। तीर्थों की प्रशिक्षण प्रक्रिया में धर्म अध्यात्म का तत्वज्ञान और प्रयोग में श्रद्धा प्रज्ञा का समन्वय रहता है। इसलिए लोकमानस के परिष्कार एवं सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के उभयपक्षीय प्रयोजन की पूर्ति के लिए तीर्थ स्तर के ऊर्जा केन्द्रों की अनिवार्य आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

इस शुभारम्भ में एक प्राणवान उदाहरण गायत्री तीर्थ के रूप में विनिर्मित किया गया है। सूझबूझ, साधन, प्रयत्न और परिस्थिति ने जितना सहारा दिया है, उसके अनुरूप पूरी ईमानदारी से यह प्रयास किया गया है कि एक समर्थ तीर्थ खड़ा किया जाय। उसमें उन विशेषताओं का समावेश करने में कुछ उठा न रखा जाय जिनके कारण धर्मस्थानों की साधारण इमारतें देवताओं के समतुल्य प्रभावी सिद्ध होतीं, अनुदान बखेरती और जन-जन की श्रद्धा आकर्षित करती हैं। निष्प्राण तीर्थों की भरमार के इस माहौल में न्यूनतम एक तीर्थ तो ऐसा होना ही चाहिए जिसमें पुरातन प्रयासों की कसौटी पर कसने, तुलनात्मक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोजबीन करने के उपरान्त सन्तोषजनक खरापन दृष्टिगोचर हो सके। वस्तु का स्तर ऊँचा हो तो उसका मूल्यांकन भी देर-सबेर में हो ही जाता है। हीरा कुछ समय ही अनगढ़ हाथों में उपेक्षित रहता है। अन्ततः वह घूमते-घामते जौहरी की तिजोरी में ही जा पहुँचता है और बहुमूल्य आभूषणों के रूप में उपयुक्त सम्मान पाता है। गायत्री तीर्थ को जनसाधारण के सामने अभी इस रूप से प्रस्तुत किया गया है कि उसकी पैनी जाँच-पड़ताल हो और देखा जाय कि ऋषि प्रणीत पुरातन तीर्थ परम्परा की विशिष्टताएँ उसमें समाविष्ट हुई या नहीं ? पनपी और प्रखर बनी या नहीं ? उपयुक्तता सन्तोषजनक सिद्ध हो सके तो विश्वास किया जाना चाहिए कि नालन्दा, तक्षशिला जैसी प्रखरता न सही, समर्थ गुरु रामदास द्वारा महाराष्ट्र के हर गाँव में बनाये गये महावीर मन्दिरों की तरह अपनी छोटी किन्तु अविस्मरणीय भूमिका तो निभ ही सकेगी।

भव्य इमारतों के साधन सम्पन्न देवालयों से गायत्री तीर्थ का कोई मुकाबला नहीं। वैभव का विस्तार, चमत्कार और चकाचौंध सर्वत्र देखा जा सकता है। उनके साथ साधन रहते परिस्थितियों में प्रतिस्पर्धा कैसी ? सोचा और किया यह गया है कि तीर्थों के साथ जुड़े आदर्शों का, क्रियाकलापों का अधिकाधिक समावेश किया जाय। स्वयं कहने की अपेक्षा लोगों को स्वयं ही यह परखने, अनुभव करने दिया जाय कि यदि सत् परम्पराओं का पुनरुत्थान बन पड़े तो उपयोगिता भी सुनिश्चित रूप से सिद्ध होकर रहेगी।

इस सन्दर्भ में यह देखा जाना है कि पुरातन काल में तीर्थों में क्या गतिविधियाँ चलती थीं ? उनके सूत्र संचालक किन प्रयासों में निरत रहते थे ? किन विशिष्टताओं के कारण सामान्य आश्रम मन्दिर तीर्थ शब्द से गौरवान्वित हुए। साथ ही यह भी देखना होगा कि युगतीर्थ के रूप में जिस गायत्रीतीर्थ का अरुणोदय हुआ है उसमें उन महानताओं के बीजांकुर हैं या नहीं जिनके आधार पर तीर्थ गौरवान्वित होते और सम्पर्क साधने वालों को कृतकृत्य करते, पुण्यफल का अधिकारी बनाते हैं।

प्राचीनकाल में ऋषिकल्प महामानव जहाँ रहते थे तीर्थ परम्परा की स्थापना करते थे। एक-एक ऋषि ने कई-कई स्थानों पर निवास किया है। एक का स्थान दूसरे ने लिया है। इसलिए यह कहना तो कठिन है कि किस ऋषि ने कौन तीर्थ बनाया पर यह कहा जा सकता है कि हर तीर्थ के साथ एक या अनेक ऋषियों की तपस्या, प्रयत्नशीलता सुनिश्चित रूप से जुड़ी रही है। वस्तुतः वे महान व्यक्तित्व और उनके द्वारा किए गए लोक-मंगल के उच्चस्तरीय प्रयास ही तीर्थों की प्राण प्रखरता हैं। इसलिए महत्त्व उसी को देना चाहिए। तरह-तरह की इमारत तो फिल्म वाले अपने ढंग का पोज उतारने के लिए देखते-देखते कागज के पुट्ठों पर रंग पोतकर खड़ी कर लेते हैं। इस दृष्टि समाधान से भी वे ढाँचे ढकोसले मात्र फोटो उतारने के काम आते हैं। किले या तीर्थ जैसी वास्तविकता उनमें कहाँ होती है। जहाँ प्राण प्रक्रिया का अभाव हो वहाँ खड़े हुए विशालकाय ढकोसले भी तीर्थों की क्षमता उपयोगिता सिद्ध नहीं कर सकते। जब भी हमारी तथ्यान्वेषी विवेकशीलता जगेगी तब तीर्थों की गरिमा खोजते हुए यह पता लगाना पड़ेगा कि वहाँ ऋषि आश्रमों जैसी गतिविधियों का कितना, किस स्तर का प्रयास चल रहा है। इस कसौटी पर गायत्रीतीर्थ को इसलिए कसा जाना चाहिए कि उसकी प्रामाणिकता सिद्ध होने पर अधिक लोगों का अधिक लाभ उठाया जाना सम्भव हो सके। दूसरा लाभ यह है कि इस समीक्षा पर्यवेक्षण से त्रुटियों की जानकारी मिलेगी और उन्हें सुधारने के लिए समग्र ईमानदारी के साथ प्रयत्न कर सकना सम्भव होगा।

यहाँ तीर्थ स्वरूप कुछ ऐसे मनीषियों की, उनके अविस्मरणीय प्रयासों की चर्चा की जा रही है जिनको मापदण्ड मानकर यह देखा जा सके कि गायत्री तीर्थ उन महान परम्पराओं में से कितना अंश अपने में धारण कर सकने में अब तक समर्थ हुआ और आगे उसे उस अनुकरण में क्या-क्या प्रयत्न पुरुषार्थ करना है।

महर्षि व्यास ने अठारह पुराण लिखे। उस साहित्य ने कथा-शैली पर लोकरंजन और लोक-मंगल का सरल समन्वय किया। दर्शन कठिन और उपाख्यान सरल पड़ता है। व्यास ने श्रुति की अगम्यता को जन-जन के लिए सुलभ बनाया और पुराणों के निर्माण में अपने को खपाया। व्यास गुफा देखने में पर्वत में जगह-जगह पाये जाने वाले छेद गह्वरों में से एक है। पर उसकी गरिमा व्यास के व्यक्तित्व, दृष्टिकोण एवं प्रयास के क्रियान्वित होने के कारण अभिनन्दनीय बन गई। समय बदल गया। अब गुफा में बैठकर साहित्य सृजन कदाचित् कठिन पड़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो भी यह देखा जा सकता है कि गायत्री तीर्थ ने उस परम्परा का अनुकरण किया या नहीं। युग साहित्य सृजा या नहीं ? जितने अंशों में उत्तर सकारात्मक मिले, समझना चाहिए कि व्यास परम्परा की उतनी छाया गायत्री तीर्थ में सम्मिलित हो गई।

महर्षि विश्वामित्र गायत्री के द्रष्टा हैं। जहाँ अन्य ऋषि अन्य साधनाएँ करते बदलते रहे वहाँ विश्वामित्र ने अपना ध्यान एक लक्ष्य से तादात्म्य हो जाने का निश्चय किया। वे गायत्री के द्रष्टा ऋषि कहलाए। विनियोग में इसका सदा उच्चारण किया जाता है। युग परिवर्तन के लिए—नई सृष्टि बनाने के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयासों का पुराणों में सविस्तृत वर्णन है। इस प्रयास की महत्ता समझते हुए उनके सच्चे अनुयायी राजा हरिश्चन्द्र ने साधनों का अभाव न पड़ने देने के लिए अपनी सारी सम्पदा समर्पित की थी। विश्वामित्र ने स्वयं अपने वैभव का नियोजन निर्धारित लक्ष्य के लिए किया था। अशोक की तरह उनकी सम्पदा भी उत्तराधिकारियों को नहीं वरन् निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने में समर्पित हुई थी। देखा जाना चाहिए कि वैसा कुछ गायत्री तीर्थ के, उसके सूत्र संचालकों के जीवन क्रम में सम्मिलित रहा या नहीं।

तपस्वी भगीरथ ने स्वर्ग में अवस्थित गंगा को अपने कठोर तप से प्रभावित करके धरती पर बहने और धरातल की तृषा बुझाने में तत्पर होने के लिए सहमत किया था। गंगा ने जीवित को सम्पन्न बनाया और मृतकों को स्वर्ग पहुँचाया। देखा जाना है कि गायत्री तीर्थ के परिकर में भी ऐसा कुछ घटनाक्रम जुड़ता है या नहीं। युगान्तरीय चेतना की ज्ञानगंगा को तत्वदर्शियों के स्वर्ग से उतारकर जन-जन के लिए सुलभ बनाने का कोई पुरुषार्थ हुआ है या नहीं ? उस पुरुषार्थ को सफल सार्थक बनाने की पृष्ठभूमि लम्बे समय की साधना तपश्चर्या द्वारा सम्पन्न हुई है या नहीं ? खोज करने वालों को गायत्रीतीर्थ की पृष्ठभूमि में ऐसी तपश्चर्या झाँकती मिलेगी जिसके कारण युगान्तरीय चेतना की भागीरथी जन-जन के लिए सुलभ हो सके।

महर्षि वशिष्ठ नें राजतन्त्र और धर्मतन्त्र का समन्वय किया। अपने अनुयायी रघुवंशियों को योगवाशिष्ठ सुनाई। उन्हें वानप्रस्थ के लिए प्रेरित किया और राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न को राज-काज से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य धर्म काज में संलग्न करने लिए अपने साथ हिमालय ले गये। अपनी साधना पद्धति में उन्हें भी भागीदार बनाया। देखना है कि गायत्री तीर्थ में वशिष्ठ परम्परा का आभास मिलता है या नहीं। धर्म और समाज की पृथकता को एकात्मता प्रदान करने का अभिनव निर्धारण हुआ है या नहीं। उस समय वशिष्ठ शासन पर हावी थे। इन दिनों वैसा सम्भव नहीं तो भी शासन के उद्गम स्रोत समाज पर गायत्री तीर्थ हावी होने और उसे मोड़ने, मरोड़ने, दिशा देने में प्रयत्नरत है या नहीं। उच्चस्तरीय आत्माओं को उसने घर बार छुड़ाकर सहभागी बनाने के लिए साथ लिया और हिमालय बुलाया या नहीं। मिशन का इतिहास, प्रयास और भविष्य निर्धारण की जिन्हें जानकारी है वे देख सकते हैं कि वशिष्ठ की परम्परा यहाँ काम करती है। सप्तऋषियों में वशिष्ठ थे। उन्हें अपनी धर्म पत्नी अरुधंती समेत सप्तऋषियों में स्थान दिया गया था। देखा जाना चाहिए कि इस तन्त्र में भी वशिष्ठ अरुन्धती का एकात्मता कार्यरत है या नहीं ?

भगवान परशुराम ने अपनी प्रखरता अनीति उन्मूलन के निमित्त गतिशील की। दूसरे, मात्र धर्म चर्चा और पुण्य अर्जन की बात सोचते थे किन्तु उनने सोचा अनीति के प्रचण्ड रहते धर्म पनपेगा ही नहीं। इसलिए उन्होंने तप करके फरसा प्राप्त किया और उससे सहस्रबाहु जैसे समर्थों को धराशायी बनाकर रख दिया। आज मूढ़मान्यताएँ, कुरीतियाँ, अवांछनीयताएँ मिल-जुलकर वातावरण को अनीतिमय विषाक्त बनाये हुए हैं। सर्वभक्षी अनाचार सहस्रबाहु बनकर खड़ा है। देखना है कि लालमशाल का विचार क्रान्ति अभियान उस फरसे का अनुकरण कर रहा है या नहीं, नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति का त्रिशूल आज की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप चल रहा है या नहीं ?

परशुराम की परम्परा में ही ऋषिकल्प द्रोणाचार्य भी आते हैं। उन्होंने शत्रु, संहारियों की शस्त्रविद्या न केवल सीखी वरन् अनेक को सिखाई भी। हाथ में शास्त्र और कंधे पर शस्त्र उनका वेष था। इन्हें परस्पर विरोधी भी कहा जा सकता है पर वस्तुतः वे ज्ञान और विज्ञान की तरह परस्पर पूरक हैं। उनमें सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के दोनों ही आधार अपनाए गए हैं। साम, दण्ड का पात्रता के अनुरूप प्रयोग करने की इसमें दूरदर्शिता है। एकांकी मनुहार एवं दमन नीति प्रायः असफल रहती है। "एक आँख प्यार की, दूसरी सुधार की" रखने पर ही सच्ची सेवा साधना बन पड़ती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिशन की सुधारात्मक संघर्षशीलता और शालीनता को देखते हुए जाना जा सकता है कि गायत्री तीर्थ की प्रेरणाएँ उपर्युक्त समन्वय बिठाती हैं या नहीं। गलाई की ढलाई की परस्पर विरोधी किन्तु परिपूर्ण समन्वयवादी नीति मिशन ने द्रोणाचार्य से किन मात्रा में सीखी, कितनी अपनाई इसे विज्ञ पर्यवेक्षक अपनी तीव्र बुद्धि से भली प्रकार देख सकते हैं।

भगवान बुद्ध ने बुद्धिवाद को सर्वोपरि मान्यता दी। उन्होंने अपने युग में प्रचलित भक्ति भावुकता और तांत्रिक वाममार्ग के उभयपक्षीय अतिवादों से धर्म-धारणा को बुरी तरह क्षत-विक्षत देखा और परम्पराओं का नये सिरे से पर्यवेक्षण करने के लिए बुद्धवादी कसौटी जनसमुदाय के हाथ में थमाई। सेवा और संयम की तपश्चर्या अपनाई। आत्मबोध जगाया और मनुष्य से भगवान बन गए। उन्होंने व्यापक परिमार्जन का 'धर्मचक्र-प्रवर्तन' चलाया। विहार खड़े किये, संघाराम विनिर्मित किये, विश्वविद्यालय चलाये और प्रव्रज्या धर्म अपनाने के लिए अपने प्रभाव क्षेत्र में परिपूर्ण प्रेरणा दी। अगणित जीवन दानी नर-नारी उनके आह्वान पर आगे आये और विश्व के कोने-कोने में बौद्धिक-क्रान्ति के लिए, धर्म-धारणा प्रतिष्ठित करने के लिए दूर देशों के लिए चल पड़े। बुद्ध का यह परम पुरुषार्थ देश की डूबती नौका को उबारने में समर्थ हुआ। देखना है कि गायत्री तीर्थ का प्रव्रज्या अभियान गतिशील हो रहा है या नहीं। बुद्धिवाद का परिपोषण हो रहा है या नहीं। 'बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, सघं शरणं गच्छामि' के तीन बौद्ध सूत्रों में बुद्धिवाद, धर्मधारणा और संगठन को प्रमुखता दी गई है। देखा जाना चाहिए कि प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत भी वही उपक्रम अपनाया जा रहा है या नहीं। गायत्री तीर्थ भगवान बुद्ध के चरण चिह्नों पर अपने ढंग से चल रहा है या नहीं।

आद्य शंकराचार्य की ऋषिकल्प गतिविधियों में तीर्थ स्थापना प्रमुख है। उन्होंने देश के चार कोनों पर चार धाम, चार मठ बनाये। प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत उसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए २४०० प्रज्ञा संस्थानों का निर्माण कार्य हुआ है। शून्यवाद, नास्तिकवाद की जड़ें भगवान शंकर ने उखाड़ दीं। अपने युग में भी नास्तिकवाद के धुर्रे बखेरने, प्रज्ञा अभियान ने प्रत्यक्षवाद के अस्त्र से प्रत्यक्षवादी अनास्था से लोहा लिया है। आचार्य शंकर ने इसी प्रकार तर्क को तर्क से, बुद्धिवाद को बुद्धिवाद से काटा था। दर्शनों में वेदान्त की प्रमुखता भगवान ने सिद्ध की थी और अद्वैत को वरिष्ठ ठहराने के लिए शंकर भगवात्पाद ने दिग्विजय की जैसी योजना बनाई थी ठीक उसी प्रकार की विश्वव्यापी आत्मीयता की आत्मवत् सर्वभूतेषु और वसुधैव कुटुम्बकम् की मान्यता को सर्वमान्य बनाने का अभियान प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत भी दिग्विजय जैसा आन्दोलन खड़ा किया गया है।

महर्षि चरक ने वनस्पति जगत के अमृतोपम गुणों को खोज निकाला था। घास पात में छिपी हुई रोग निवारिणी, आरोग्यवर्द्धिनी क्षमता को हस्तगत करने के लिए समस्त जीवन निछावर किया और एकनिष्ठ भाव से इसी अनुसंधान में लगे रहे। इस प्रयास के फलस्वरूप असंख्यों ने रुग्णता से घुल-घुलकर प्राण गँवाने की अकाल मृत्यु से राहत पाई और जराजीर्ण काया का कल्प परिवर्तन करने में सफलता पाई। वही प्रयास समय की आवश्यकता के अनुरूप औषधि उद्यान के माध्यम से गायत्री तीर्थ में भी चल रहा है। दुर्लभ जड़ी बूटियों का संग्रह और उनका नई परिस्थितियों के अनुरूप ऐसा अनुसंधान चल रहा है जिसे सामयिक एवं अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ठहराया जाना है। एकौषधि विज्ञान अपने समय की अभिनव खोज है। इस आधार पर हर कोई अपना चिकित्सक आप बन सकेगा और धन समय की बर्बादी तथा कष्ट सहन की कठिनाई से बच सकेगा। यह चिकित्सा पद्धति विश्व की सरलतम उपचार पद्धतियों में एक होगी, ऐसा लगता है। चरक के अनुकरण के साथ इस प्रयास की एक नई संगति बैठती है।

महर्षि पतञ्जलि का 'योग' प्रख्यात है। वह दर्शन भी है और विज्ञान भी। साधना का यह मनोविज्ञान सम्मत राजमार्ग माना जाता है और राजयोग कहा जाता है। गायत्री तीर्थ द्वारा आसन चिकित्सा से शारीरिक और प्राणायाम द्वारा मानसिक रोगों के निवारण की ऐसी प्रक्रिया का आविष्कार किया गया है जिससे न केवल इन दोनों का रोग निवारण वरन् बलवर्द्धन भी सरलतापूर्वक सम्भव हो सकेगा। चान्द्रायण की प्रायश्चित प्रक्रिया, आहार कल्प, औषधि-कल्प, नादानुसंधान और तृतीय नेत्र उन्मीलन का जो समन्वित एवं सन्तुलित साधना विधान गायत्री तीर्थ में आत्मोत्कर्ष के निमित्त अपनाया जाता है। उसमें अपने समय की परिस्थितियों के अनुरूप सरलता एवं आवश्यकता की पूर्ति का समुचित समावेश है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री तीर्थ के इस प्रयास को युग पतञ्जलि का अवतरण कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने समय में यज्ञ विधान का समर्थ प्रतिपादन एवं व्यापक प्रचलन किया था । यज्ञ विज्ञान के मर्मज्ञ होने के कारण ही उनका नाम याज्ञवल्क्य पड़ा था । उनके जीवन में यज्ञीय अनुसंधान, प्रयोग-प्रचलन की प्रक्रिया ही प्रमुख रूप से कार्यान्वित हुई है । गायत्री परिवार के माध्यम से भी यही हुआ है । अब गायत्री और यज्ञ की घर-घर में प्रतिष्ठा है और हर धर्म कृत्य के साथ उनका प्रयोग होता है ।

इतना ही नहीं ब्रह्मवर्चस् के माध्यम से यज्ञपैथी का जो अनुसंधान चल रहा है उसका प्रतिफल रोग निवारण, मानसिक विकृतियों का समाधान, प्रदूषण का निराकरण, वातावरण परिशोधन, प्राणियों का स्वास्थ्य सुधार, हरीतिमा में पौष्टिक गुणों की अभिवृद्धि, प्राणचेतना का उभार जैसे अनेक लाभ मनुष्य मात्र को मिलने वाले हैं । सर्वतोमुखी प्रगति पथ पर अग्रसर करने वाला एक नया शक्तिशाली माध्यम हाथ लगने वाला है । इन प्रयोगों से महर्षि याज्ञवल्क्य की आत्मा अपने उत्तराधिकारी प्रयास पर निश्चित रूप से प्रसन्न हो रही होगी ।

देवर्षि वृहस्पति देववर्ग में प्रचलित अध्यात्म के आचार्य थे । उनका प्रयास ब्रह्मविद्या के माध्यम से ब्राह्मी चेतना के साथ तादात्म्य स्थापित करना और अनुयायियों को दिव्य विभूतियों से सम्पन्न करना था । शुक्राचार्य विज्ञान के पक्षधर दैत्यों के कुलगुरु थे । उनका प्रयास प्रकृति की भौतिक सामर्थ्यों को खोज निकालना और अपने अनुयायी दैत्यों द्वारा प्रयुक्त कराना था । दोनों अपने-अपने क्षेत्रों को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करते थे और उन्हें अधिकाधिक समुन्नत बनाने के लिए प्रयत्नरत थे । गायत्री तीर्थ ने दोनों क्षेत्रों का विग्रह मिटाकर समन्वय सन्तुलन का अभिनव प्रयत्न किया है । अध्यात्म विज्ञान की जो शोध प्रक्रिया ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान के अन्तर्गत चल रही है, इसे दूसरा समुद्र मंथन कह सकते हैं जिसमें देव और दैत्य सहयोग पूर्वक जुटे और चौदह रत्न निकालने में समर्थ हुए थे । अध्यात्म को देव और विज्ञान को दैत्य कहते हैं । दोनों के बीच विग्रह समाप्त कराने और सहयोग का नया आधार खड़ा करने वाली इस शोध प्रक्रिया की सुखद संभावनाओं की कल्पना करने मात्र से विज्ञजनों के अन्तःकरण गद्‌गद हो उठते हैं ।

आर्यभट्ट, भास्कराचार्य, पाराशर, गर्ग, वराहमिहिर आदि देवज्ञों ने भूलोक के साथ अन्तर्ग्रही सम्बन्धों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जाँच-पड़ताल की थी । उस आधार पर प्राणियों, पदार्थों तथा परिस्थितियों पर पड़ने वाले प्रभाव का मूल्यांकन किया है । इस आधार पर सुरक्षा एवं प्रगति में कितना योगदान मिल सकता है, इस रहस्य को उन विज्ञानियों ने जाना और प्रकट किया था । गायत्री तीर्थ की वेधशाला उसी प्रक्रिया की आधुनिक कड़ी है । सौरमण्डल को, निखिल ब्रह्माण्ड की सामयिक स्थिति की जानकारी के आधार पर अपनी रीति नीति में अन्तर किया जा सकता है और प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में बदलने में सहायक ऐसा रहस्यमय द्वार खुल सकता है जिसे भाग्योदय की संज्ञा दी जा सके । गायत्री तीर्थ की वेधशाला आर्यभट्ट, भास्कराचार्य आदि के छोड़े हुए कार्य को पूरा करने में संलग्न है । इसे रहस्यमय अदृश्यजगत के आदान-प्रदान की प्रक्रिया कहा और गर्व किया जा सकता है ।

देवर्षि नारद का प्रचार तंत्र विख्यात है । वे ढाई घड़ी से अधिक कहीं भी खड़े नहीं रहते थे । निरन्तर परिभ्रमण रत रहकर अनेक को भावभरी प्रेरणाएँ देते और मनुष्य शरीरों में देवता उभारने में सफल रहते थे । वाल्मीकि, ध्रुव, प्रह्लाद, उमा, सावित्री आदि असंख्य नर-नारियों ने नारद परामर्श से जीवनधारा बदली और अविस्मरणीय उपलब्धि हस्तगत की । संगीत उनका माध्यम था । इसके सहारे भावनाओं को तरंगित करने में सुगमता भी रहती है । प्रव्रज्या, परामर्श, प्रचार, संगीत के जो उपाय नारदजी ने अपनाये थे उन्हीं को प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत भी अपनाया गया है । इन सभी कला-कौशलों की शिक्षा गायत्री तीर्थ में दी जाती है और प्रशिक्षित को देश-देशान्तरों में भेजा जाता है । इस प्रकार गायत्री तीर्थ अपने को नारद का अनुयायी कहने-कहलाने का दावेदार है ।

मध्यकाल के सन्तों ने अपने ढंग से आत्म-निर्माण और लोक कल्याण के प्रयत्न किये थे । इन्हें भी इस शताब्दी के संत, ऋषि कह सकते हैं । समर्थगुरु रामदास, कबीर, रैदास, विवेकानन्द, दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि कर्वे, गाँधी आदि कितने ही सन्त सुधारक पिछले दिनों ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपनी क्षमता एवं सामयिक परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाते हुए ऋषि परम्परा को जीवित, रखा और कार्यान्वित किया है ।

गायत्री तीर्थ में प्रकारान्तर से उन संत परम्पराओं को भी झाँकते देखा जा सकता है । इन महामानवों ने जहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निवास किया, जहाँ कार्यक्षेत्र बनाया जहाँ उनके स्मृति चिह्नों को लोग श्रद्धा भरा नमन-वंदन समर्पित करते हैं।

उपर्युक्त ऋषियों, संत सुधारक, महामानवों के शरीर दिवंगत हो गए। उनकी गतिविधियाँ भी अब उन दिनों जैसी नहीं हैं। मात्र अवशेष, स्मृति चिह्न देखने को मिलते हैं। उतने भर से श्रद्धा विभोर होने का अवसर मिलता है। गायत्री तीर्थ की अपनी विशेषता यह है कि इन गतिविधियों को यहाँ, जीवन्त गतिशील एवं सामयिक समाधान में प्राणपण से निरत देखा जा सकता है, जिन्हें तपस्वियों ने अपने-अपने समय में अपने-अपने ढंग से अपनाया और फैलाया था।

तीर्थ परम्परा का भूतकाल महान था। उसके स्मरण एवं दर्शन करने भर से पुलकन उत्पन्न होती है। वर्तमान में गायत्री तीर्थ ने अपने छोटे कलेवर में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की है। भविष्य शानदार है। कुछ ही दिनों में यह देखा जायगा कि गायत्रीतीर्थ प्रयासों ने किस प्रकार संजीवनी बूटी पिलाई और प्रक्रिया को प्रसुप्ति से जागृति में बदलकर किस प्रकार उसे च्यवन जैसा नव-यौवन प्रदान किया, लक्ष्मण की तरह नव-जीवन उपलब्ध करने का सुयोग उपलब्ध कराया।

गायत्री तीर्थ का स्वरूप और कार्यक्रम

शान्ति-कुञ्ज गायत्री नगर को गायत्री तीर्थ में परिणित करने की प्रक्रिया दिनांक १२ जून सन् १९८३ को गायत्री जयन्ती महापर्व के दिन से ही चल पड़ी थी। उस दिन तीर्थ के कीर्ति स्तम्भ की स्थापना का समारोह हुआ था। एक हजार से अधिक प्रज्ञापुत्रों ने उसका शिलान्यास भूमि पूजन किया। शान्ति-कुंज का बोर्ड हटाकर उसके स्थान पर जो 'गायत्री तीर्थ' घोषणा पत्र लगाया जाना है, उस पर इन सभी ने पुष्पाञ्जलि चढ़ाई। यह क्रम गायत्री जयन्ती के उपरान्त वाले जून मास में सम्पन्न हुए अन्य, सत्रों में भी चला। इस प्रकार प्रायः चार हजार प्रज्ञा परिजनों के हाथ से यह स्थापना उपचार शास्त्रीय विधिविधान के साथ चलता रहा। इस अवसर पर उपस्थित लोगों को मौखिक रूप से और 'अखण्ड-ज्योति' 'प्रज्ञा-अभियान' के पाठकों को मुद्रित रूप से इस स्थापना की जानकारी पहुँचा दी गई है।

इमारत में कुछ सामान्य से हेर-फेर इस आधार पर जुलाई, अगस्त, सितम्बर के तीन महीनों में ही सम्पन्न कर लिए जाने हैं जिनसे उसका स्वरूप मात्र शिक्षण विद्यालय भर का न रहकर तीर्थों का दर्शनीय और साधनापरक भी बन सके। इस प्रकार की सुविधाएँ विनिर्मित की जा रही हैं जो अब तक नहीं थीं। इस परिवर्तन एवं नवीन संस्थान में कई प्रकार के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं। जो कार्य एक वर्ष में निपटना चाहिए था, उसे तीन महीने में ही निपटाने के लिए जो कुछ सम्भव था वह पूरी तत्परता के साथ करने के लिए समूची कार्यक्षमता एवं मुट्ठी की साधन-सामग्री को झोंक दिया गया है। आश्विन नवरात्रि से निर्धारित कार्य पद्धति विधिवत् चल पड़ेगी। इस बीच आवश्यक निर्माण पूरा हो चुकने की आशा है।

निर्माणों में कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) आरम्भिक प्रवचन हाल को अब देवात्मा हिमालय का मन्दिर बनाया जा रहा है। इसमें तीस फुट लम्बी, छः फुट ऊँची और चार फुट मोटी प्रतिमा स्थापित की जा रही है। जिस भाग को हिमालय का हृदय कहते हैं, वही प्राचीनकाल में धरती का स्वर्ग कहा जाता था। उसी में बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री नाम से प्रख्यात हिमालय के चारों धाम आते हैं। इसके अतिरिक्त इसी में रुद्र प्रयाग, कर्ण प्रयाग, देव प्रयाग, उत्तरकाशी जैसे प्रमुख तीर्थ हैं। व्यास और गणेश द्वारा संयुक्त रूप से जहाँ महाभारत लिखा गया था, वह व्यास गुफा, पाण्डवों के सशरीर स्वर्ग प्रयाग वाला स्थल स्वर्गारोहण, देवताओं का स्वर्ण पर्वत सुमेरु , गंगा का मूल उद्गम शिवलिंग, नन्दनवन, गोमुख आदि उस क्षेत्र में आते हैं, जहाँ साधारण मनुष्यों की पहुँच नहीं हो पाती । इसके अतिरिक्त बातों ऋषियों की तपोभूमियाँ भी उस क्षेत्र में हैं। गंगा अकेले नहीं निकली, उसकी सात सहेलियाँ भी साथ ही निकलीं और कुछ-कुछ दूर पर जाकर देर-सबेर गले मिलती चली गई। भागीरथी, जाह्नवी, मन्दाकिनी, अलखनन्दा आदि सातों सहेलियों के दर्शन भी इसी प्रतिमा में हैं। उन सबका दिव्य-दर्शन इस देवात्मा हिमालय में एक ही स्थान पर किया जा सकेगा। यह अद्भुत एवं अनुपम प्रतिमा है। जिस प्रकार विराट् ब्रह्म के दिव्य दर्शन में समस्त ब्रह्माण्ड की समस्त देवताओं की झाँकी हो जाती है, उसी प्रकार इस 'देवात्मा-हिमालय' का दर्शन करने वाले तीर्थ यात्री उस समूचे क्षेत्र की प्रतिमा को अपनी पहुँच के एक ही स्थान पर देखकर नेत्रों को धन्य बना सकेंगे। राम-नाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के अक्षर लिखकर उसकी परिक्रमा करने वाले गणेश ने जिस प्रकार पृथ्वी की परिक्रमा का पुण्यफल प्राप्त कर लिया था, उस प्रकार इस देव दर्शन को भी कुछ समय उपरान्त सरल उपाय से भाव श्रद्धा उभारने वाला माध्यम माना जाने लगेगा। इसका निर्माण कार्य तत्काल हाथ में ले लिया गया है।

(२) भारत भूमि में अवस्थित समस्त प्रमुख तीर्थों के, उनकी प्रतिमाओं के विशालकाय रंगीन चित्र बनाये जा रहे हैं। उन्हें सुसज्जित रूप से स्थापित करके वह अवसर उपस्थित किया जा रहा है कि आगन्तुकों को इस पुण्य तीर्थ में बने हुये सभी प्रमुख तीर्थों के भाव-दर्शन सम्भव हो सके। उन समस्त तीर्थों का इतिहास, उद्देश्य एवं प्रेरणा प्रकाश भी आगन्तुकों को मिल सकेगा जिसे भीड़ में धक्के खाते फिरते रहने वाले यात्री कहीं भी उपलब्ध नहीं कर पाते।

(३) शान्तिकुंज में स्थापित गायत्री मन्दिर के ठीक सामने एक साधना कक्ष बनाया जा रहा है जिसमें चौबीस साधक एक साथ बैठकर अखण्ड जप की वह संयुक्त साधना चलाते रह सकेंगे जिससे इस गायत्री तीर्थ का समूचा वातावरण उच्चस्तरीय प्राण-प्रेरणा से निरन्तर अनुप्राणित बना रह सके।

(४) गायत्री तीर्थ का समूचा उद्यान अब दिव्य औषधियों-अलभ्य जड़ी-बूटियों से लहलहाया करेगा। रुद्राक्ष, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अक्षय वट जैसे देववृक्ष और सोमवल्ली, संजीवनी, अरुन्धती, सर्पगन्धा वला, अतिबला, मेधा, महामेधा जैसी अलभ्य जड़ी-बूटियाँ यहाँ प्रयत्नपूर्वक उगाई जा रही हैं। यज्ञोपैथी के अनुसधान में इन सभी जड़ी बूटियों का प्रयोग होता रहेगा। साथ ही कष्ट साध्य रोगी भी इस प्रत्यक्ष अमृत का लाभ उठाते रह सकेंगे।

(५) देश भर के प्रज्ञा संस्थानों में लगाने के लिए ऐसी बारह जड़ी-बूटियाँ ढूँढ़ी गई हैं जिनके द्वारा सरलतापूर्वक सामान्य रोगों का उपचार सम्भव हो सके। इन बारह जड़ी-बूटियों का एक विशेष कक्ष नर्सरी के रूप में विनिर्मित किया जा रहा है। इनकी पौध सभी प्रज्ञापीठों को यहाँ से उपलब्ध होती रहेगी। साथ ही उनके परिपोषण तथा उपचार की विधि-व्यवस्था भी सिखाई जायेगी। अभी यह व्यवस्था मात्र उन प्रज्ञापीठों के लिए सोची गई है जिनके पास अपनी भूमि है। पीछे इसे अन्य लोक सेवी संस्थाओं के लिये भी उपलब्ध किया जायगा।

(६) प्रज्ञा अभियान की योजनाओं एवं गतिविधियों की झाँकी कराने वाली एक चित्र प्रदर्शनी बनाई जा रही है जिससे मिशन के उद्देश्य, स्वरूप, कार्यक्रम एवं फलितार्थ सरलतापूर्वक समझे और अपनाये जा सकें। निरुपयोगी दर्शन, झाँकियों की तुलना में समय की माँग और उसके समाधान दर्शाने वाली यह चित्र कक्षा विचारशीलों को कहीं अधिक प्रेरणाप्रद एवं उपयोगी प्रतीत होगी।

(७) अपनी पृथ्वी समूचे ब्रह्माण्ड शरीर की एक छोटी इकाई है। जिसकी भली-बुरी स्थिति में अन्तरिक्षीय प्रवाहों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन प्रवाहों की उपयोगी शक्तियाँ खींचने और अनुपयोगी रोकने की एक विशेष विधा है जिसे दिव्यदर्शियों में ज्योतिर्विज्ञान के नाम से जाना है। भूमि से, जलाशयों से, वायुमण्डल से जिस प्रकार बहुत कुछ पाया जाता है। उसी प्रकार अन्तरिक्ष की भी रहस्यमयी उपलब्धियों से मनुष्य का वैभव-वर्चस्व अनेक गुना बढ़ सकता है। इस तथ्य को आप्तजन जानते थे पर अब तो वह सब कुछ एक प्रकार से विस्मृत जैसा होता चला जा रहा है।

गायत्री तीर्थ में ग्रह-नक्षत्रों की पुरातन स्तर की वेधशाला तो कुछ समय पहले ही बन चुकी थी। जब उसमें नवीनतम अन्तरिक्षदर्शी यन्त्र उपकरणों को भी जोड़ा जा रहा है। साथ ही अन्तरिक्ष की रहस्यमयी जानकारियाँ देने वाली प्रदर्शनी भी बनाई जा रही है जिसके सहारे इस विज्ञान की उपयोगी जानकारी भी सर्वसाधारण को उपलब्ध हो सके। सभी विभाग के अन्तर्गत अगले वर्ष से एक ऐसा पंचांग भी प्रकाशित करने की योजना है जिसमें प्रख्यात नवग्रहों के अतिरिक्त नई शोधों से प्राप्त और मण्डल के तीन नये सदस्य नेप्च्यून, प्लूटो, यूरेनस को भी सम्मलित करके उनका ग्रह गणित भी जोड़ा गया हो।

(८) नित्य यज्ञ वाली यज्ञशाला में अब अखण्ड अग्नि की स्थापना की गई है। साथ ही ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि प्रज्ञा परिवार के परिजनों को अपने संस्कार कराने की व्यवस्था रह सके। बच्चों के नामकरण, अन्यप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत संस्कार यहाँ बिना किसी खर्च के पूर्ण शास्त्रोक्त रीति से होते रहेंगे। अपने विशालकाय परिवार के लड़के-लड़कियों की विवाह-शादी भी बिना दहेज या प्रदर्शन के परम सात्विक वातावरण में होते रहें, इसकी विशेष व्यवस्था बनाई जा रही है। अधेड़ों को वानप्रस्थ दिये जाया करेंगे। पूर्वजों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के श्राद्ध-तर्पण भी वहाँ होते रहेंगे। इस प्रकार षोड्श संस्कारों की सरल शास्त्रीय परम्परा व्यवस्था का लाभ यहाँ सभी प्रज्ञा परिजनों को मिलता रहेगा।

(९) स्वभावत: उपरोक्त स्थापनाओं को देखने के लिये श्रद्धालु और बुद्धिवादी दोनों ही प्रकार के लोग यहाँ पहुँचा करेंगे। उनके लिये बाजार से कहीं अधिक रास्ते दान पर शुद्ध, सात्विक स्तर की भोजन सामग्री उपलब्ध होती रहे ऐसे भोजनालय का स्वतन्त्र प्रबन्ध किया गया है।

(१०) गायत्री परिवार के प्राय: पच्चीस लाख सदस्य हैं और वे तथा उनके परिजन इन दिनों के प्रमुख तीर्थ उत्तराखण्ड को देखने आते रहते हैं । उन सभी के ठहरने के लिये धर्मशाला स्तर की व्यवस्था यहाँ नहीं हो सकेगी। परन्तु वे जब इधर आयेंगे तो निश्चित ही गायत्री तीर्थ के दर्शन करके जायेंगे ही।

उपरोक्त दस व्यवस्थाएँ ऐसी हैं जो गायत्री तीर्थ का आकर्षण बढ़ाती हैं और वहाँ पहुँचकर स्वल्प श्रम समय में अधिक प्रेरणा प्राप्त करने की सुविधा प्रदान करती हैं । अभी देश में एक भी तीर्थ ऐसा नहीं है जहाँ यात्री बिना जेब कटाये, बिना धक्के खाये वापस लौटता हो। अब कम से कम एक तो ऐसा मिलेगा जहाँ स्नेह, सम्मान, स्वागत, सहयोग का भावभरा वातावरण दीखे। कुछ जानने, सीखने को मिले। यह एक ऐसा प्रयास है जिसका अनुकरण देर-सबेर में अन्य तीर्थों को लोकमानस के दबाव से विवश होकर करना पड़ेगा।

शान्ति-कुंज, गायत्री नगर की वर्तमान इमारतों में थोड़ा-बहुत हेर-फेर सम्बर्द्धन इस दृष्टि से किया जा रहा है कि वह अब तक के विद्यालय स्वरूप से भिन्न प्रकार का तीर्थ स्तर का दीखने लगे।

ब्रह्मवर्चस अपने ढंग का है। उसमें स्थापित गायत्री माता की चौबीस प्रतिमाएँ कितनी भव्य और कितनी प्रेरणाप्रद हैं । इसे वे सभी मानते हैं जिन्होंने उसे देखा है। अब वहाँ की शोभा, समय एवं प्रभाव, प्रेरणा के लिये कुछ नये तथ्यों का समावेश किया जा रहा है।

अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, यज्ञ चिकित्सा के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, रोगों के उपचार का अनुसंधान एक ऐसा प्रयोग है जिस के माध्यम से संव्याप्त दुर्बलता, रुग्णता एवं उद्विग्नता, विपन्नता का चिरस्थायी निराकरण सम्भव हो सके। अध्यात्म और विज्ञान के मध्य बनी हुई खाई को पाटने और दोनों के समन्वय से उज्ज्वल भविष्य की संरचना का आधार बनने की जो सम्भावना ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान के माध्यम से बन रही है उसे अनुपम अभूतपूर्व ही कहा जा सकता है। इस प्रयोग एवं प्रयास को देखकर अध्यात्मवादी एवं बुद्धिवादी समान रूप से आशान्वित हैं।

कहना न होगा कि ब्रह्मवर्चस्, शान्ति कुंज, गायत्री नगर यह तीनों प्रयोगशालायें एक ही गायत्री परिवार ट्रस्ट के अन्तर्गत चलती हैं । इन सभी को वर्गीकरण की दृष्टि से उन पुराने नामों से भी जाना जाता रहेगा, पर वस्तुत: यह पूरा तन्त्र गायत्री तीर्थ ही बनने जा रहा है। अब तक के तीन नामों को शिर, धड़, हाथ-पैर की तरह तीन हिस्सों में बाँटा तो जाता रहेगा पर वे सभी एक ही गायत्री तीर्थ शरीर के अवयवों के रूप में देखे जाने जाते रहेंगे। तीनों का संयुक्त प्रयास ही समग्र गायत्री तीर्थ को वर्गीकृत गतिविधियाँ एवं उपलब्धियाँ होंगी। प्रयत्न यह भी किया जा रहा है कि दर्शकों को दो स्थानों पर बने हुए इन आश्रमों के मध्य की दूरी रहते हुये उन्हें देखने में किसी विशेष कठिनाई का सामना न करना पड़े। दोनों एक-दूसरे के पूरक होने के कारण तीर्थ-यात्री दोनों को देखकर ही समग्र जानकारी का लाभ ले सकेंगे।

ऊपर की पंक्तियों में तीर्थ के दर्शनीय एवं व्यवस्था परक पक्ष की चर्चा हुई है। इसे कलेवर समझा जा सकता है। प्राण-प्रेरणा वह है जो यहाँ निवास करके साधना स्वाध्याय, संयम और सेवा की चतुर्विध तीर्थ सेवन के रूप में उपलब्ध की जाती है। उसकी विस्तृत चर्चा तो अगले अंक में पढ़ी जा सकेगी। पर संक्षेप में इतना जाना जा सकता है कि एक महीने का सत्र तीर्थ सेवन सत्र होगा एवं पाँच दिन का सत्र तीर्थ यात्रा सत्र, यह बात स्मरण रखने योग्य है कि जो भी आवें; लिखित स्वीकृति के बिना न आवें। न ही अपना कोई परिजन ऐसा पत्र लेकर बिना पूर्व अनुमति के किसी को भेजें।

तीर्थ सेवन व्रत धारण करके तीर्थवास करने के लिये प्रज्ञा परिजन आते रहेंगे और उन सभी लाभों का रसास्वादन करते रहेंगे जो पूर्वकाल में तीर्थ सेवन करने वालों को हस्तगत होते रहते थे। इस अभिनव स्थापना को भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान का अरणोदय कहा जाय तो उसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी।

शान्तिकुञ्ज गायत्री नगर बनाम गायत्री तीर्थ

मानवी सत्ता के दो पक्ष हैं—एक परोक्ष चेतना, दूसरा प्रत्यक्ष शरीर । चेतना के गुण हैं चिन्तन। शरीर का कर्तृत्व । इन दोनों को समुन्नत बनाते-बनाते पूर्णता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्य तक पहुँचना यही है प्रगति का वास्तविक क्रम। इसकी पूर्ति के लिए सत्वदर्शियों ने दो महत्त्वपूर्ण विज्ञानों का निर्धारण किया है। चिन्तन की उत्कृष्टता की दिशा में अग्रसर करने के लिए अध्यात्म-दर्शन और आचरण में शालीनता भर देने के लिए धर्म विधान। एक शब्द में इन्हीं दोनों का समन्वय ही आत्म-विद्या एवं ब्रह्म-विद्या है। शास्त्रों की समग्र संरचना इसी एक प्रयोजन को विभिन्न तर्कों, तथ्यों एवं उदाहरणों के सहारे प्रस्तुत करते हुए हर वर्ग के हर पक्ष की उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ाने धकेलने के लिए हुई है।

चिन्तन के लिए धारणा और कर्तृत्व के लिए प्रेरणा आवश्यक है। धारणा के लिए स्वाध्याय, सत्संग, मनन, मंथन की आवश्यकता पड़ती है। प्रेरणा के लिए जप, तप, भजन, पूजन, दान, पुण्य आदि अनेक कर्मकाण्डों का आश्रय लेना पड़ता है। इन्हीं दोनों प्रयोजनों के लिए अध्यात्म का एक चिन्तनपरक और धर्म का क्रियापरक विशालकाय ढाँचा खड़ा किया गया है। ऋषियों के इसी अनुदान ने नर-पशु को नर-नारायण स्तर तक विकसित कर सकने वाले अध्यात्म विज्ञान की संरचना की है। यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसे सुविधा सम्बर्द्धन वाले पदार्थ विज्ञान की तुलना में कुछ अधिक ही वजनदार कहा जा सकता है। वैभव की तुलना में आत्मबल की गरिमा भी तो स्पष्टतः अधिक ही है। दो कदम बढ़ाते हुए ही लम्बी मंजिल पूरी की जाती है। जीवन के प्रत्यक्ष और परोक्ष स्तरों को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाते हुए चरम लक्ष्य तक पहुँचने का उद्देश्य भी अध्यात्म और धर्म का अवलम्बन करने से ही पूर्ण होता है। महा मनीषियों ने इसी का पथ प्रशस्त करने के लिए अपनी बहुमूल्य संरचनाएँ प्रस्तुत की हैं और मनुष्य को सच्चे अर्थों में कृत्य-कृत्य होने का अवसर प्रदान किया है।

उत्कृष्ट चिन्तन और कर्तृत्व के प्रथम उद्देश्य अनेकानेक विधि-विधानों के सहारे सम्पन्न होते हैं, किन्तु ऋषि प्रणीत निर्धारणों में एक ऐसा भी है जिससे दोनों ही प्रयोजनों की पूर्ति एक साथ होती है और उसका लाभ हर स्तर का व्यक्ति अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप ले सकता है। उस निर्वारण का नाम है—तीर्थ सेवन। उसका वास्तविक स्वरूप उपयुक्त वातावरण में रहकर परिष्कार और अभ्युदय के लिए महत्त्वपूर्ण आधार उपचार का आश्रय लेना है।

तीर्थ सेवन के ध्वंसावशेष अभी कहीं-कहीं देखने को मिल जाते हैं। माघ के महीने में त्रिवेणी संगम पर कुछ लोग कल्पवास करते हैं। उन दिनों वे वहाँ अपनी एक पर्ण कुटी बनाकर रहते, हाथ से भोजन पकाते, संकल्पपूर्वक साधनरत रहते हैं। उस क्षेत्र से निकलकर कहीं बाहर न जाने की मर्यादा को पालते और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें यदि क्रमबद्ध मार्ग-दर्शन भी जुड़ गया होता । कार्यक्रम एक छत्रछाया में नियंत्रणपूर्वक चलता तो प्राचीनकाल के तीर्थ सेवन को एक झाँकी देखने का अवसर अभी मिल सकता था। मथुरा में बृज चौरासी कोस की यात्रा निकलती है। उससे प्रायः ढाई महीने लगते हैं। इस बीच कई-कई पड़ावों पर कई-कई दिन यात्री लोग ठहरते हैं और उनके सामूहिक धर्मकृत्य चलते हैं। इस अवधि में उन सभी को संकल्पपूर्वक व्रतशील जीवनचर्या का परिपालन करना होता है। इस भ्रमणशील तीर्थ यात्रा की प्राचीन पद्धति को प्रमाण परिचय माना जा सकता है। यों उसमें भी उस उद्देश्य का समावेश होना चाहिए जो मात्र भक्ति ही नहीं ज्ञान और कर्म का आधार जोड़कर वर्तमान के परिष्कार और भविष्य के निर्धारण में सहायता कर सके।

तीर्थ प्रक्रिया का निर्धारण जिन दूरदर्शी महामानवों द्वारा किया गया उसकी भूरि-भूरि सराहना करते हुए भी उस पद्धति के अतीव उपयोगी एवं प्रेरणाप्रद मानते हुए भी—यह उत्तरदायित्व युग मनीषियों को ही वहन करना होगा कि मूल प्रयोजन की अन्तरात्मा को जीवित रखा जा सके। मात्र लकीर पीटने की भेड़िया धँसान में उलझ कर लोग परम्परा के नाम पर कुछ भी ऊट-पटाँग करते अपनी शक्ति सामर्थ्य का अपव्यय करते भटकते न रहें। आज की तीर्थ यात्रा कुछ ऐसी विडम्बनापूर्ण बन गई है कि उसमें दर्शन, स्नान एवं दान का उद्देश्य रहित सड़ा-गला कलेवर ही शेष है।

तीर्थों का आधारभूत प्राचीन स्वरूप विलुप्त हो जाना, उनके स्थान पर अन्धविश्वासों और निहित स्वार्थों का गठ-बन्धन चल पड़ना एक प्रकार से दुर्घटना जैसा दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। जो सामर्थ्य व्यक्तिनिर्माण और समाज-निर्माण की सत्प्रवृत्तियों में लगानी चाहिए थी यदि ऐसे ही भ्रम जंजालों में भटकती रहे तो उस व्यापक अपव्यय को अवांछनीयता का परिपोषक ही माना जायगा। पुण्यफल की वह उपलब्धि किस प्रकार हो सकेगी जिसके लिए उतना दूरदर्शी निर्धारण किया और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसको प्रचलित करने में अपनी प्रतिभा को एक प्रकार से दाँव पर लगया था।

कोसते रहने से कभी किसी प्रयोजन की पूर्ति नहीं हो सकती। मनकी भड़ास निकाल लेना एक बात है और उलटा को उलट कर सीधी कर देना दूसरी। पर्यवेक्षण समीक्षण की आवश्यकता उतनी ही है जिसमें अवांछनीयता के प्रति आक्रोश उभरे और उसे हटाकर उपयोगी स्थानापन्न करने का उत्साह उछले। बात तो काम करने से बनती है। युग-निर्माण हो या देव संस्कृति का पुनर्जीवन सभी के लिए रचनात्मक कार्यों का शुभारम्भ और सम्बर्द्धन आवश्यक है। तीर्थ प्रक्रिया का जीर्णोद्धार भी इससे कम में सम्भव नहीं कि उसके लिए परिस्थितियों के अनुरूप उपाय सोचा जाय। कुछ ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया जाय जिसके सहारे उपयुक्तता का स्वरूप समझने एवं प्रभावी प्रतिफल देखने का जन-साधारण को अवसर मिल सके।

समस्या व्यापक है और उसका समाधान भी व्यापक ही होना चाहिए। पर व्यापकता का भी एक केन्द्र बिन्दु होता है। शिक्षा, चिकित्सा, पुलिस, संचार आदि की प्रक्रियाएँ व्यापक रूप से फैली हुई हैं, पर उनको स्वस्थ एवं कार्यक्रम बनाने का काम तो किसी न किसी केन्द्र से होता है। महान परिवर्तन का विश्वव्यापी युगान्तरीय चेतना का सूत्र संचालन एवं विस्तार किसी एक केन्द्र में ही हो रहा है। तीर्थ प्रक्रिया का परिष्कार परिवर्तन करना हो तो उसके लिए भी कुछ योजनाबद्ध प्रयास करने होंगे।

कुछ समय पूर्व एक कदम देवालयों की जन जागृति के केन्द्र बनाने के रूप में उठाया गया था। उनकी दुर्दशा पर आँसू बहाने या आक्रोश प्रस्तुत करने की तुलना में यह अधिक कारगर समझा गया कि एक आदर्श देवालय बनाकर जन-साधारण को यह सोचने, समझने का अवसर दिया गया कि जीवन्त और मृतक मन्दिरों के स्वरूप और परिणाम में क्या अन्तर होता है। इसके लिए मथुरा के गायत्री तपोभूमि देवालय की स्थापना की गई । उसमें पूजा-अर्चना अन्यों की तरह से हुई जिन्होंने समूचे वातावरण को ही उलट-पुलट कर रख दिया। लोगों को बहुत कुछ देखने-समझने का अवसर मिला और वह तो मन्दिरों को कोसने की तुलना में हजारों गुना अधिक कारगर सिद्ध हुआ। देवलाय परम्परा की सर्वत्र उपयोगिता समझी गई और दिन-दिन तिरोहित होती, जाने वाली विचारशीलों की भी श्रद्धा वापस लौट आई।

दो वर्ष जैसी स्वल्प अवधि में २४०० प्रज्ञा मन्दिरों का बन जाना, उसी एक स्थापना का प्रतिफल है जिसे गायत्री तपोभूमि के रूप में देखने-परखने का असंख्यों को अवसर दिया गया था। अब यह प्रज्ञा देवालयों की संस्थापनाएँ चौबीस सौ न रहकर चौबीस हजार बन पड़े तो श्रद्धा के प्रस्तुत उभार को देखते हुए किसी को भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए। इन देवालयों की भूमिका कुछ ही समय में जन जागृति केन्द्र के रूप में दृष्टिगोचर होने लगेगी तो पुराने मन्दिरों को भी अपने को बदल लेने पर उपेक्षित निरस्कृत होने के दो रास्तों में से एक को चुनना पड़ेगा। परिवर्तन की दूरदर्शिता पद्धति यही हो सकती थी। उसी को अपनाया और सफल बनाकर दिखाया गया है।

अब दूसरा प्रयोग तीर्थ स्थापना के रूप में किया जा रहा है। पद्धति वही अपनाई जा रही है जो देवालयों के पुनर्जीवन का लक्ष्य सामने रखकर अपनाई गई। अच्छा होता पुराने तीर्थ ही अपने आपको बदल लेते। उनमें से न्यूनतम ऐसे हैं जिनकी साधन सम्पदा और प्रतिष्ठा एक आत्म-विज्ञान का स्वतन्त्र विश्वविद्यालय चला सकने के लिए सर्वथा उपयुक्त एवं पर्याप्त है। धर्म के नाम पर आजीविका उपार्जित करने वाले ६० लाख तथाकथित साधु संन्यासी यदि आडम्बरों का लवादा उतारकर प्राचीन काल के संत ऋषियों की रीति-नीति अपना सके होते तो स्थिति कुछ दूसरी ही होती। सात लाख गाँव और साठ लाख 'महात्मा'। हर गाँव पीछे साड़े आठ महात्मा आते और अपने देश को प्राचीनकाल की तरह 'देव समाज' बना देने में कब के सफल हो गये होते। यदि नगर देवालयों की तीर्थों के साथ जुड़ी हुई लोक श्रद्धा एवं प्रचुर सम्पदा के सम्बन्ध में भी है। यदि वह सच्चे अर्थों में अध्यात्म एवं धर्म की सेवा में प्रयुक्त हो सकी होती तो भारतीय धर्म संस्कृति अपनी दार्शनिक सम्पदा के कारण कब की विश्व संस्कृति बन गई होती। ईसाई धर्म को जन्मे दो हजार वर्ष भी नहीं हुए कि उसने विश्व की एक तिहाई जनता एक सौ पचहत्तर करोड़ लोगों को अपने धर्म में दीक्षित कर लिया । इस्लाम की चौदहवीं सदी चल रही है इसमें वे १०० करोड़ से ऊपर हैं। एक हिन्दू धर्म है जो घटते-घटते मात्र ३५ करोड़ जितना रह गया है उसमें भी सिख जैसे कुछ सम्प्रदाय अपने में हिन्दू धर्म से प्रथम मान रहे हैं। संख्या और स्तर की दृष्टि से भारतीय धर्म की ऐसी दुर्गति के अनेक कारणों में एक यह भी है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि यहाँ के तीर्थ देवालयों और साधु ब्राह्मण एक प्रकार निष्प्राण ही नहीं हो गये वरन् सड़न से विषाक्तता भी उत्पन्न करते बढ़ते चले जा रहे हैं।

देर तक सोचते और ताने-बाने बुनते रहने के उपरान्त अब यह समय आ गया जबकि देवालयों की तरह ही तीर्थों का काया-कल्प करने के लिए उसके परिष्कृत स्वरूप की एक केन्द्रीय स्थापना की जाय। इस उद्देश्य के लिए सन् ८१ की गायत्री जयन्ती के दिन यह पंक्तियाँ लिखीं और घोषणा की जा रही है कि शान्ति-कुंज गायत्री नगर की इमारत में ही गायत्री तीर्थ का शुभारम्भ किया जा रहा है। गायत्री जयन्ती के दिन गायत्री तीर्थ की स्थापना मुहूर्त की दृष्टि से भी सर्वथा उपयुक्त पड़ती है। गायत्री नगर के स्थान पर गायत्री तीर्थ नाम भी अधिक भारी भरकम पड़ता है। एक संयोग और भी इस अवसर पर जुड़ गया है कि शान्ति-कुंज की दशाब्दी भी ठीक इसी दिन आ पड़ती है। अब से ठीक दस वर्ष पूर्व इसी दिन मथुरा छोड़कर हरिद्वार के लिए मिशन के सूत्र संचालकों का स्थानान्तरण हुआ था। शान्ति-कुंज की गतिविधियाँ विगत दस वर्षों में प्रशिक्षण परक रही हैं। यहाँ विभिन्न स्तर के सूत्र चलते रहे हैं। अब उसमें वे सभी साधनाएँ प्रक्रियाएँ नये सिरे से जोड़ी जा रही हैं जो 'तीर्थ' के प्राचीन स्तूप के जीवन्त दर्शन करा सकने में समर्थ हो सकें। इस स्थापना को अगले दिनों युगान्तरकारी महाप्रयत्नों में प्रज्ञा पीठ निर्माण की तरह ही मूर्धन्य एवं ऐतिहासिक माना जायगा।

प्राचीनकाल में न केवल स्थानों आश्रमों को ही तीर्थ कहते थे, पर साधु वर्ग के लोकसेवियों का एकदल भी ऐसा था जो परिभ्रमण करते हुए जहाँ-तहाँ रुक-रुक कर वही कार्य सम्पन्न करता था जो तीर्थों का लक्ष्य एवं प्रयास है। ऐसे लोग अपनी योजना एवं कार्य विधि का परिचय देने के लिए नाम के साथ गोत्र उपनाम की तरह 'तीर्थ' शब्द का उपयोग भी करते थे। साधु सम्प्रदाय में एक वर्ग तीर्थ कहलाता है, उसे सभी जानते हैं। स्वामी रामतीर्थ का नाम इस सन्दर्भ में हर किसी की जवान पर है। अगले दिनों इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐसे परिव्राजकों की एक सेना खड़ी की जायगी, जो भगवान बुद्ध के धर्मप्रवर्तन में संलग्न परिव्राजकों के समतुल्य आंकी जा सके। 'तीर्थ' उपनाम दिये बिना ही कुछ प्राणवान ऐसे विनिर्मित किये जायेंगे जो विनिर्मित प्रज्ञा संस्थानों में से जहाँ कहीं सम्भव हों वहाँ उन्हें प्रज्ञा तीर्थों में विकसित कर सके। गायत्री तीर्थ अभी तो एक ध्रुव केन्द्र की तरह शान्ति-कुञ्ज गायत्री नगर में ही विकसित किया जा रहा है, भविष्य में उसका वैभव विस्तार उसी आधार पर उसी द्रुतगति से होगा जैसा कि प्रचलित तीर्थ की स्थापना किसी महती चेतना के तत्वावधान में बनी और व्यापक बनती बढ़ती चली आई।

गायत्री तीर्थ में प्राचीन परम्परा की अनुभूति

आदर्श देव मंदिर कैसे होने चाहिए, इसका एक उदाहरण सन् १९५३ में, मथुरा में गायत्री तपोभूमि बनाकर प्रस्तुत किया गया था। अब उसका दूसरा चरण आदर्श तीर्थ बनाने के रूप में गायत्री तीर्थ की प्रतिष्ठापना की गई है। शान्तिकुंज को अब आवश्यक तैयारी के उपरान्त इसी रूप में विकसित किया गया है।

देव मन्दिर स्थानीय क्षेत्र में धर्म धारण को जीवन्त बनाये रहने का प्रयोजन पूर्ण करते थे और जन जागृति के केन्द्र बनकर अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न करते थे। साकार उपासना का जब प्रचलन हुआ तो खुले चबूतरे पर नदियों में बहने वाले गोल पाषाण शिवलिंग के रूप में प्रतिष्ठित कर दिये जाते थे और जल का अर्घ्य चढ़ा देने भर से पूजा कृत्य सम्पन्न हो जाता था। बाद में भव्य देवालयों के रूप में उन्हें तब विकसित किया गया जब क्षेत्रों में लोक मानस को धर्म श्रद्धा से भरे रहने के लिए रचनात्मक कार्यक्रमों को गतिशील बनाने की आवश्यकता पड़ी। देवताओं को भोग-नैवेद्य चढ़ाने और दान-दक्षिणा अर्पित करने की प्रथा इसलिए चली कि इन केन्द्रों में निवास करने वाले कार्यकर्ताओं का निर्वाह सम्मानपूर्वक होता रहे और आवश्यक गतिविधियों के लिए साधन जुटते रहें। तब देवालयों के साथ प्रातः सायं की सामूहिक प्रार्थना रात्रि की कथा, दिन की पाठशाला, व्यायामशाला, चिकित्सालय, पुस्तकालय आदि अनेक सम्प्रवृत्तियाँ भी अनिवार्यतः जुड़ी रहती थीं। अधिक बड़ा क्षेत्र संभालने वाले मंडलेश्वर कहलाते थे।

तीर्थ स्थापना में प्राकृतिक सौन्दर्य, शान्त वातावरण, ऐतिहासिक प्रेरणाओं का महत्त्व तो था ही, प्रमुख विशेषता वहाँ के तपस्वियों की थी जो उस एकान्त में जन-कल्याण के लिए अध्यात्म क्षेत्र के अनेक आविष्कार करने में मूर्धन्य वैज्ञानिकों की तरह लगे रहते थे। साथ ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोकशिक्षण की वैयक्तिक एवं सामूहिक योजनाओं का भी सूत्र संचालन करते थे । उन दिनों तपश्चर्या का अर्थ आत्मपरिष्कार और लोक-कल्याण की योजनाएँ पूरी करने में उदार साहसिकता का परिचय देना भर होता था । आज की तरह शरीर या मन को अकारण उत्पीड़न देना नहीं । तीर्थ किसी अन्ध श्रद्धा-मूढ़ मान्यता के कारण नहीं, अपनी उपयोगिता एवं सेवा-साधना के कारण प्रख्यात हुए । तपस्वी ही वहाँ ऐसा वातावरण बनाते थे, जिसमें कुछ समय निवास करने वाले अपने में उत्साहवर्द्धक परिवर्तन का अनुभव कर सकें । सेनेटोरियम स्वास्थ्य सुधारते हैं । तीर्थों में आन्तरिक परिशोधन परिष्कार की काया-कल्प जैसी सुविधा हर श्रद्धालु को मिलती थी । गायत्री तीर्थ को उसी पूर्व परम्परा की अनुकृति बनाने का प्रयत्न किया गया है । पिछले १२ वर्षों से अनवरत प्रयास इस बात का किया गया है कि यहाँ वैसा वातावरण बन सके जिसमें प्रवेश या निवास करने वाले किसी गरम भट्टी के समीप पहुँचने जैसी प्राण ऊर्जा का अनुभव कर सकें और हिम क्षेत्र में प्रवेश करने पर मिलने वाली ठंडक जैसी शान्ति पा सकें ।

अखण्ड दीपक पर निर्धारित नित्य जप, अखण्ड अग्नि पर नौ कुण्डी यज्ञशाला में नित्य अग्निहोत्र-गायत्री मंदिर के निकट नियमित पुरश्चरण क्रम, नव रात्रियों में सामूहिक महापुरश्चरण, वशिष्ठ अरुन्धती जैसे सूत्र संचालक, गायत्री के चौबीस अक्षरों की चौबीस देव प्रतिमाएँ, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करने वाला अभूतपूर्व शोध अनुसंधान, युग साहित्य का सृजन, जीवन साधना का व्यावहारिक सत्र शिक्षण, जड़ी-बूटी उद्यान, अन्तर्ग्रही सूत्र सम्बन्ध जोड़ने वाली वेधशाला जैसी अनेक ऐसी गतिविधियाँ यहाँ चलती हैं, जिनके प्रभाव से इस आश्रम में प्राचीनकाल में तीर्थों जैसी विभूतिवान् विशेषताएँ उभर सकें ।

बारह वर्ष तक शान्ति कुंज नाम रहने के उपरान्त अब उसे गायत्री तीर्थ नाम तब दिया गया है जब उसे जाँच-पड़ताल के उपरान्त तीर्थ श्रेणी में गिना जा सकने योग्य परख लिया गया है । स्थापना की बात सोचते समय भी स्थान का चयन इसी दृष्टि से किया गया था । सप्त ऋषियों ने यहाँ एक साथ तपश्चर्या की थी । उनकी मान रक्षा के लिए भागीरथी ने स्वयं ही अपनी धारा को सात भागों में विभक्त कर लिया था ।

हरिद्वार उत्तराखण्ड का अन्त और दक्षिणखण्ड का मध्यान्तर है । हिमालय का हृदय वह क्षेत्र है जहाँ कभी स्वर्ग था, देवता निवास करते थे । सुमेरु ही कैलाश था । जितनी लम्बी अवधि तक जितने उच्चस्तरीय तपस्वियों ने जिस स्तर की साधनाएँ यहाँ की हैं, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है । हरिद्वार तक ही भागीरथी बहती है इसके बाद वह गंगा बन जाती है । यह क्षेत्र अभी भी अध्यात्म विभूतियों का केन्द्र है । दृश्य और अदृश्य सिद्ध पुरुष इस क्षेत्र में पाये जाते हैं । हरिद्वार से नीचे दक्षिण खण्ड है जिसमें देश भर के अन्य सभी तीर्थों की गणना होती है । दोनों के मध्य बसी हुई यह भगवान शंकर की परमप्रिय नगरी है । उन्हें दो बार जीवन संगिनी यहीं से प्राप्त हुई । एक बार दक्ष कन्या के रूप में सती और दूसरी बार हिमालय पुत्री उमा । सती दाह से शोकाकुल होकर जब शिव ताण्डव करने लगे, तब विष्णु ने शव का उच्छेदन किया और उसके टुकड़े बखेर कर देशभर में शक्तिपीठों की स्थापना की । इस दृष्टि से हरिद्वार का महत्त्व है, इस बार भी उसी की पुनरावृत्ति हुई है । इस बार २४ नहीं, २४०० गायत्री शक्ति पीठों के निर्माण का संकल्प उभरा और शिव संकल्प का ताण्डव नृत्य दूसरे से सम्पन्न हुआ ।

गायत्री तीर्थ की स्थानीय गतिविधियाँ वही हैं जो प्राचीन काल में तीर्थ आरण्यकों में लोक-मंगल और आत्म-परिष्कार के निमित्त गतिशील रहती थीं । सूत्र संचालक इस प्रक्रिया को प्राणवान बनाये रखने के लिए निजी प्रयास क्या करते हैं और उसमें किस लोक से अनुकम्पा आकर्षित करते हैं, यह तो अप्रकट है किन्तु जो स्वरूप प्रकट है उसे देखकर जाना जा सकता है कि श्रद्धा, प्रज्ञा और निष्ठा को परिपुष्ट बनाने वाली सामयिक किन्तु उच्चस्तरीय शिक्षा साधना का यहाँ समन्वित सुयोग है । इन दिनों गायत्री तीर्थ में तीर्थ सेवन के उद्देश्य से आने वाले श्रद्धालुओं के लिए तीन स्तर के साधना क्रम हैं— (१) एक महीने की कल्प साधना (२) एक महीने की युग शिल्पी शिक्षा (३) पाँच दिन की तीर्थ परिचर्या । पहली प्रज्ञा पुंजों के लिए । दूसरी प्रज्ञा पुत्रों के लिए । तीसरी प्रज्ञा परिजनों के लिए ।

(१) कल्प साधना

हर महीने पहली से तीस तक चलती है । इसमें चन्द्रायण स्तर का आहार कल्प सम्मिलित है । पन्द्रह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिन आहार घटाने और पन्द्रह दिन क्रमशः बढ़ाने की पुरातन प्रक्रिया को अब शाकाहार, फलाहार, दूध, छाछ आदि कल्पों के रूप में परिणत कर दिया गया है । साथ ही दिव्य औषधियों के एक मास तक विशेष विधि के साथ सेवन करने की कल्प चिकित्सा का विधान भी साथ-साथ चलता है । किस व्यक्ति की शारीरिक मानसिक स्थिति के अनुरूप इनमें से क्या उपचार अभीष्ट एवं उपयोगी है, इसका निर्धारण व्यक्ति विशेष का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने के उपरान्त ही किया जाता है ।

इस साधना के साधकों को एक महीने में सवा लक्ष गायत्री पुरश्चरण करना होता है । नित्य अग्निहोत्र अनिवार्य है । पीने के लिए मात्र गंगा जल । जप के साथ अतिरिक्त ध्यान ।

तीन साधनाएँ अतिरिक्त रूप से चलती हैं । (१) नाद योग-ब्रह्मचेतना के साथ सांकेतिक भाषा में आदान-प्रदान करने का अभ्यास । (२) बिन्दु योग-त्राटक साधना द्वारा तृतीय नेत्र का उन्मीलन, आज्ञा चक्र में दिव्य दृष्टि का उद्‌भव । (३) प्राण योग-प्राणाकर्षण क्रिया, सूर्य वेधन प्राणायाम, नाड़ी शोधन प्राणायाम द्वारा साधक में प्राण शक्ति का अभिवर्द्धन । यह सभी अभ्यास पुरश्चरण प्रक्रिया के अतिरिक्त हैं ।

संचिप पाप कर्मों के कषाय-कल्मष आत्मिक प्रगति का द्वार रोके खड़े रहते हैं । इन चट्टानों को हटाने के लिए प्रायश्चित प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है । साधकों के स्मरण में जिन पापों की जानकारी हो, उसे पूछा और परिशोधन का उपाय-उपचार बताया जाता है ।

इसके अतिरिक्त आत्म-निर्माण की भावनात्मक साधना दिन में कई बार अवसर—एकान्त एवं मूड के अनुरूप चलती रहती हैं । उसमें आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के लिए गम्भीर मनन करना पड़ता है । दिनचर्या में साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा के चारों तत्वों का समावेश कर दिया जाता है । वर्तमान समस्याओं का समाधान एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए निर्धारण में सूत्र संचालकों के साथ इस बीच व्यक्तिगत परामर्श भी चलता रहता है ।

(२) युग शिल्पी सत्र

यह भी एक-एक महीने के हैं । पहली से तीस तक चलते हैं । अपने क्षेत्रों में नव-सृजन की सेवा साधना में निरत प्रज्ञा पुत्रों कें लिए इसमें सम्मिलित होना आवश्यक माना गया है ।

आत्म-परिष्कार की साधना इन सभी सत्रों में अनिवार्य रूप से आवश्यक है । गायत्री पुरश्चरण-अग्निहोत्र अनिवार्य है । इसके अतिरिक्त जिन्हें जिस स्तर की विशेष साधनायें आवश्यक समझी जाती हैं या औषधि कल्प आदि की आवश्यकता समझी जाती है, वह उपक्रम भी बताया जाता है । आहार-विहार का संयम, अनुशासन तथा स्वाध्याय-सत्संग का उपक्रम सभी को अपनाना होता है ।

इन सत्रों में भाषण कला का प्रशिक्षण प्रज्ञा पुराण की कथा शैली के सहारे देने का नया प्रबन्ध हुआ है । साथ ही सुगम लोक संगीत की भी एक पृथक् कक्षा चलती है । भाषण या गायन् में से एक को ही एक महीने में पूरा किया जा सकता है । दोनों का एक साथ चल सकना सम्भव नहीं ।

स्वास्थ्य सुधार-प्रशिक्षण इस शिक्षण का महत्वपूर्ण भाग है । योग चिकित्सा के अंतर्गत विशेष रूप से आविष्कृत आसनों से शारीरिक और प्राणायामों से मानसिक रोगों का उपचार भली प्रकार हो सकता है । इसी प्रकार एकौषधि विज्ञान के अनुसार किस जड़ी-बूटी का किस रोग पर किस प्रकार प्रयोग किया जाय यह भी सिखा दिया जाता है । इस आधार पर किसी भी प्रज्ञा संस्थान अथवा शाखा संगठन के माध्यम से एक घरेलू उपचार केन्द्र चलाया जा सकता है । इस उपचार के साथ-साथ प्राथमिक चिकित्सा की रेडक्रास वाली सरकारी परीक्षा का पाठ्यक्रम भी पूरा करा दिया जाता है ।

(३) तीर्थ सेवन सत्र

यह विशेषतया उन प्रज्ञा परिजनों के लिए है जो प्रधानतया पर्यटन के लिए बच्चों समेत आना चाहते हैं । यह हर महीने पाँच होते हैं (१) १ से ५ तक (२) ७ से ११ तक (३) १३ से १७ तक (४) १९ से २३ तक तथा (५) २५ से २९ तक । उन्हें यहाँ दर्शन झाँकी का सुव्यवस्थित प्रबन्ध भी करा दिया जाता है और साथ ही नामकरण अन्न प्राशन, मुंडन, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत आदि संस्कारों को तीर्थ में कराने की इच्छा भी पूर्ण हो जाती हैं । जो चाहें, वे पितरों के श्राद्ध-तर्पण भी यहाँ करा सकते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँच दिन की अवधि में आत्म-निर्माण, परिवार-निर्माण एवं समाज-निर्माण के वे सूत्र भी समझा दिये जाते हैं, जिन्हें अपना कर कोई व्यस्त व्यक्ति जन सम्पर्क के लिए घर से बाहर न जा सकने पर भी निजी जीवनचर्या के अन्तर्गत भी आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करता रह सकता है । नव सृजन की यह न्यूनतम भागीदारी हर किसी के लिए सम्भव है ।

यहाँ पाँच दिन सम्भव हो सकने वाले छोटे से अनुष्ठान का ऐसा साधना विधान भी है, जो प्रभावशाली होते हुए भी उस भागदौड़ के बीच सरलतापूर्वक सम्पन्न हो सके ।

गायत्री तीर्थ में इन दिनों यह तीन साधना क्रम प्रज्ञा परिवार के सदस्यों के लिए प्रस्तुत किये गये हैं । जिन्हें सम्मिलित होना होता है, वे आवेदन भेज कर पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं ।

कल्प साधना और युग सृजन की अभिनव शिक्षा व्यवस्था

व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए जो करना पड़ता है, उसके लिए आत्मबल चाहिए । लोक-मंगल का सच्चा नेतृत्व करने के लिए भी आत्मशक्ति की आवश्यकता होती है । इन दोनों प्रयोजनों के लिए अन्त: क्षेत्र की जो विशिष्टता आवश्यक है उसके लिए साधना का अवलम्बन किये बिना और कोई मार्ग नहीं । ऐसी साधना के लिए उपयुक्त वातवरण चाहिए । शान्ति कुन्ज, हरिद्वार को गायत्री तीर्थ के रूप में इसीलिए विकसित किया गया है कि घर की तुलना में यहाँ रहकर अपने उपयुक्त साधना का चयन और अनुभव पूर्ण मार्ग-दर्शन में साधना को सफल बनाया जा सके । गंगा की गोद, हिमालय की छाया, प्राणवान सान्निध्य, स्थिति के अनुरूप साधना पथ का निर्धारण, जैसे सुविधा साधनों के कारण, उपयुक्त वातवरण में उपयुक्त प्रयास का उपयुक्त लाभ मिलने की यहाँ जैसी सम्भावना है वैसी अन्यत्र कदाचित ही कहीं सम्भव हो ?

आत्मिक प्रगति की साधना यों जीवन भर करनी होती है पर उसके शुभारम्भ, दिशा निर्धारण के लिए भी कुछ निश्चित समय चाहिए । इसके लिए कल्प साधना सत्रों की व्यवस्था की गयी है और उनकी अवधि एक-एक महीने की रखी गई है । यह पहली तारीख से ३० तारीख तक चलते और निरन्तर जारी रहते हैं । कल्प साधना से तात्पर्य है—दृष्टिकोण, स्वभाव, एवं गतिविधियों में उच्चस्तरीय परिवर्तन । जहाँ यह प्रयत्न जिस मात्रा में सफल होता है, वहाँ परिस्थितियों में उसी अनुपात से सुखद श्रेयस्कर परिवर्तन भी होता है । शारीरिक, मानिसक और व्यावहारिक क्षेत्रों में उत्कृष्टता का समावेश करने, उनकी समस्याएँ सुलझाने एवं प्रगति पथ प्रशस्त करने में जिस तीर्थ सेवन का शास्त्रकारों ने सुविस्तृत वर्णन किया है, उसी का सामयिक स्वरूप और सार संक्षेप इन कल्प-साधना सत्रों को समझा जा सकता है। तीर्थ परम्परा के अनुरूप जन्म दिन मनाने; दीक्षा, यज्ञोपवीत, वानप्रस्थ में प्रवेश करने एवं परिवार की स्वर्गीय आत्माओं के श्राद्ध तर्पण करने जैसे कर्मकाण्डों का भी सत्र योजना के साथ-साथ ही समावेश किया गया है ।

इन सत्रों की अवधि एक माह है । सत्र प्रक्रिया को अध्यात्म क्षेत्र के अस्पताल या सेनीटोरियम के समकक्ष बनाया गया है । साधना के लिए आये साधकों का परीक्षण, विश्लेषण गम्भीरता से किया जाता है, जैसे—(१) भूतकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं, आज की समस्याओं और भविष्य की आकांक्षाओं की समीक्षा (२) संचित पाप कर्मों के कारण अवरुद्ध साधनामार्ग को खोलने के लिए प्रायश्चित्य विधान के व्यावहारिक चरण बनाना । (३) शारीरिक जाँच एवं (४) मनोवैज्ञानिक जाँच, उच्च शिक्षित अनुभवी विशेषज्ञों द्वारा की जाती है । तदनुसार साधक के आहार, औषधिकल्प विशिष्ट साधनाओं आदि का निर्धारण किया जाता है ।

बारह दैनिक साधनाएँ— नित्य की दिनचर्या में सम्मिलित साधनाएँ इस प्रकार है—(१)चौबीस-चौबीस हजार के गायत्री मन्त्र जल सहित दो अनुष्ठान अन्तरंग एवं बहिरंग जीवन का परिशोधन करने के लिए (२)जप के साथ निराकार या साकार परम तत्व की ध्यान धारणा (३) आज्ञा चक्र का तृतीय नेत्र उन्मीलन और दिव्य दृष्टि जागरण, दैनिक त्राटक साधना (४) नादयोग का अभ्यास, दिव्य सन्देश का श्रवण (५)लय योग, आत्मा परमात्मा के बीच आदान-प्रदान तन्तु जोड़ने की प्रक्रिया (६)प्राण योग-सूर्यवेधन प्राणायाम, नारी शोधन प्राणायाम, प्राणाकर्षण प्राणायाम में से कोई एक (७) मुद्रा अभ्यास-शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा में से कोई एक । (८)नित्य अग्निहोत्र से तप तेजस् का अभिवर्द्धन (९)औषधि कल्प-ब्राह्मी, शंख पुष्पी, शतावरी अश्वगन्धा, तुलसी, इनमें से किसी एक का निर्धारित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधि और मात्रा में नियमित सेवन । (१०)अपने ही कमरे में मार्ग-दर्शक का दैनिक परामर्श फिट किये गये संचार माध्यम से श्रवण । (११)निर्धारित स्वाध्याय का क्रमबद्ध रूप से अवगाहन (१२)प्रज्ञा योग की निर्धारित विधि व्यवस्था के अनुरूप आत्मबोध, तत्वबोध और मनन चिंतन का निदिध्यासन ।

प्रारम्भ में साधनाओं के निर्धारण के साथ ही उनका प्राथमिक-प्रशिक्षण दिया जाता है । बीच में साधना की अनुभूतियों पर चर्चा करके कठिनाइयों के निवारण तथा साधना में प्रगति के लिए व्यवस्थित मार्ग-दर्शन का क्रम चलाया जाता है । अन्त में पुन: परीक्षण किया जाता है । इससे साधना काल में हुए लाभों का सर्वेक्षण तो होता ही है, भविष्य के लिए साधना, तपश्चर्या आहार विहार आदि का निर्धारण भी हो जाता है ।

साधना के साथ शिक्षा भी—उपर्युक्त साधना क्रम के अतिरिक्त एक महीने की युग सृजन शिक्षा की व्यवस्था भी साथ-साथ चलती है । डेढ़ घण्टे मध्याह्न और डेढ़ घण्टे सायंकाल के दो शिक्षण सत्र इसी प्रयोजन के लिए निर्धारित हैं । इसके शिक्षण विषय इस प्रकार हैं—(१)समूह में भाषण देने की कला (२)थोड़े लोगों को परामर्श देने की संभाषण कला (३)युग संगीत (ढपली, घुंघरु, मजीरा) बजा कर स्ट्रीट सिंगर स्तर का अभ्यास (४)यज्ञ कराने, संस्कार एवं पर्व कृत्य सम्पन्न कराने का कर्मकाण्ड (५)स्वास्थ्य सम्बर्द्धन (आसनों द्वारा शरीर चिकित्सा, प्राणायामों द्वारा मानसिक चिकित्सा, जड़ी बूटियों द्धारा रोग निवारण का अभ्यास) (६)नवसृजन के युग शिल्पी की भूमिका निभा सकने की विधि व्यवस्था एवं रीति, नीति ।

इससे पूर्व कल्प साधना सत्र, साधना प्रधान होते थे, और युग शिल्पी सत्र शिक्षण प्रधान । अब दोनों का समन्वय कर दिया गया है । जिससे एक ही समय में साधना व शिक्षण दोनों का लाभ समान रूप से उपलब्ध हो सके ।

दस दिवसीय मिनी कल्प सत्र

जब से कल्प साधना सत्र चले हैं तब से उनमें सम्मिलित होने वालों की इच्छा और उत्सुकता बढ़ती ही जाती है । पूछ-ताछ करने और सम्मिलित होने के लिए मन चलाने वालों की संख्या अत्यधिक है । पर उनमें से अधिकांश एक महीने की अवधि लम्बी मानते और कम समय में अभीष्ट लाभ उठाने की आतुरता प्रकट करते हैं । ऐसे लोगों को पिछले दिनों हथेली पर सरसों जमाने जैसी उपहासास्पद मांग करने की बात कहकर मना कर दिया जाता रहा है । पर अब उस दिशा में नये सिरे से विचार किया गया है और अधिक लोगों का अधिक लाभ वाला सिद्धान्त अपने तर्क लेकर पक्ष प्रतिपादन के लिए अड़ रहा है । न कुछ से कुछ अच्छा होने की उक्ति ने दबाव डाला और कहा है कि जो लोग वस्तुत: व्यस्त हैं और ऐसी कठिनाइयों में फँसे हैं जिनसे एक महीने का समय निकालने में उनका ढर्रा ही लड़खड़ा जायेगा, ऐसे लोगों को सर्वथा निराश करने की अपेक्षा कोई मध्यवर्ती मार्ग निकालना चाहिए । जितना गुड़ उतना मीठा वाला सिद्धान्त सही है फिर भी कम पूँजी वालों को कम लाभ भी तो उपेक्षणीय नहीं है । सर्वथा गतिरोध रहने की अपेक्षा थोड़ा-थोड़ा करके, धीमे-धीमे चलना भी बुरा नहीं है । इन तर्कों का दबाव यह है कि कल्प साधना का एक मिनी संस्करण भी साथ-साथ चलता रहे । जिससे आत्मिक प्रगति के लिए उत्सुक उन लोगों को भी राहत मिल सके जो कम समय लगाने पर अपेक्षाकृत कम लाभ मिलने के अनुदान से भी सन्तुष्ट हो सकते हैं ।

उपर्युक्त तथ्यों पर बार-बार विचार करके अब अन्तिम निर्णय यह किया गया है कि दस दिवसीय "मिनी कल्प साधना सत्रों" की एक नयी श्रृंखला प्रारम्भ की जाय। जिसमें साधना क्रम एक माह जैसे ही रखे जावें, शिक्षण क्रम में ही थोड़ा परिवर्तन किया जाय । तदनुसार अमृताशन, गंगा जल पान, गायत्री अनुष्ठान, ध्यान धारणा, बिन्दुयोग, नादयोग, लययोग, विशिष्ट मुद्राएँ एवं प्राणायाम, अग्निहोत्र प्रज्ञायोग आदि सभी यथावत रहेंगे। जप में २४ हजार मन्त्र का एक ही अनुष्ठान हो सकेगा ।

शिक्षण प्रक्रिया में हेर-फेर आवश्यक है । भाषण, संगीत, कर्मकाण्ड जड़ी-बूटी उपचार जैसे शिक्षण एक माह से कम में किसी भी प्रकार संभव नहीं । इसलिए दस दिवसीय सत्र में उनके स्थान पर (१)व्यक्ति-निर्माण (२)परिवार-निर्माण (३)समाज-निर्माण के तीन विषय रखे गये हैं । इन्हें सत्यं, शिवं एवं कारण शरीरों से सम्बन्धित, ओजस्विता और उत्कृष्टता का सम्बर्द्धन संभव है । कम समय में इससे अधिक महत्त्वपूर्ण शिक्षण का और कोई क्रम संभव भी नहीं ।

मिनी कल्प सत्र में भी मनोभूमि तथा शारीरिक परीक्षण क्रम, पूर्ण कल्प सत्रों जैसा ही चलेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रायश्चित्य और भविष्य के क्रम निर्धारण की भी वैसी ही व्यवस्था रहती है । इसके बिना "सब धान बाइस पसेरी" का क्रम अपनाकर न तो उपयुक्त चिकित्सा सधती है और न साधना का उपक्रम बनता है । इसलिए दस दिन में भी पूछ-ताछ, जाँच-पड़ताल की व्यवस्था पूरी तत्परता से की जाती है ।

मिनी कल्प साधना कइयों के लिए इस दृष्टि से भी उपयुक्त पड़ सकती है कि अनेक परिजन, जन्म दिन, विवाह दिन मनाने के लिए वार्षिक आशीर्वाद अनुदान पाने शान्तिकुञ्ज आते रहते हैं, वे उस अवसर पर उपर्युक्त साधना भी कर सकेंगे । किन्हीं को अपने पूर्वजों के श्राद्ध-तर्पण भी नियत तिथि पर कराने होते हैं । वह जिस अवसर पर करना हो उन्हीं दिनों साधना भी की जा सकती है । दीक्षा, यज्ञोपवीत के लिए आने वाले भी साथ-साथ इस सुयोग का भी लाभ ले सकते हैं । जिन्हें बच्चों के मुण्डन, अन्नप्राशन, नामकरण आदि कराने हों वे भी आ सकते हैं । प्रौढ़ों के संस्कार बदलना तो कठिन है पर इस तरह शान्तिकुञ्ज के वातावरण में आने वाले बच्चे मिशन की जन्मजात प्रतिभायें बनकर निखरेंगे । ऐसे लोगों के लिए एक छोटा कक्ष अलग से सुरक्षित रखने का प्रबन्ध किया जा रहा है । ऐसे दम्पत्ति एक ही कमरे में रहेंगे जबकि एक महीने वाले कल्प में एक कमरे में एक के ही ठहरने की मर्यादा है । एक अन्तर और भी है कि समग्र कल्प साधना के तथा मिनी कल्प साधकों के हर कमरे में त्राटक का बल्ब, नादयोग एवं प्रज्ञा प्रवचन सुनने के जो विशेष उपकरण लगाये गये हैं और प्रज्ञा उपकरण रखे गये हैं वे भी पति समेत आने वालों के कमरों में नहीं लगे हैं । कारण कि असावधानी बरतने पर, बच्चों द्वारा छेड़खानी किये जाने पर टूट फूट ही नहीं संकट भी खड़ा हो सकता है । कुछ भिन्नताओं के होते हुए भी सभी सत्रों के सामन्य नियम, अनुशासन एक जैसे ही हैं । शान्तिकुञ्ज में एक दिन निवास करने वालों को भी आश्रम का वातावरण बनाये रखने के लिए आवश्यक मर्यादाओं का पालन करना होता है ।

नियम और अनुशासन

सभी सत्रों के वातावरण को प्रभावशाली बनाये रखने के लिए कड़े नियम और अनुशासन लागू किये गये हैं, ताकि साधकों के समय और श्रम का पूरा-पूरा लाभ दिलाया जा सके । जैसे:—

(१) शान्तिकुञ्ज में धर्मशाला के ढंग से पर्यटकों के ठहरने की व्यवस्था नहीं है । विधिवत स्वीकृति प्राप्त साधकों को ही ठहराया जाता है ।

(२) प्रौढ़, वयस्क, शिक्षित और स्वस्थ व्यक्तियों को ही साधना में प्रवेश मिलता है । जो किसी भ्रम भूलवश स्वीकृति पा जाते हैं या अपने साथ घुमाने-फिराने के लिए बालकों , महिलाओं बुजुर्गों को ले आते हैं, उन्हें पर्यटक दीर्घा में एक दो दिन ठहराकर विदा कर दिया जाता है ।

(३) दूसरों को असुविधा उत्पन्न करने वाले तथा छूत के रोगी, बात रोगी, अल्प वयस्क बालक, अपने पराश्रित लोग न आयें । मानसिक रोगी, मृगी, उन्माद आदि से पीड़ितों को लाने की भी मनाही है । ऐसे लोग स्वयं तो उपर्युक्त कष्ट साध्य तपश्चर्या कर नहीं पाते, उलटे दूसरों को हैरान करते हैं । ऐसी स्थिति वालों को न आने के लिए कहा गया है ।

सत्र साधना क्रम में इधर-उधर घूमने, दर्शन पर्यटन के बहाने जहाँतहाँ मटर-गस्ती करने की कोई गुंजायश नहीं है । अन्तर्मुखी अध्यात्म परायणता के लिए एक लक्ष्य पर केन्द्रीभूत रहना और सतत साधना संलग्न रहना आवश्यक भी है । एक महीने में एक दिन हरिद्वार, कनखल और एक दिन ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला देखने की छुट्टी कर दी जाती है । शेष अवधि में साधक निर्धारित विधि व्यवस्था में संलग्न रहते हैं ;

अन्य कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं—(१) एक कमरे में अकेले निवास । अधिक समय मौन, साधना, आत्म-चिन्तन एवं स्वाध्यायं में मन लगाना (२) पीत वस्त्र धारण । स्वयं को विशिष्ट परिस्थितियों में अनुभव करना (३) मात्र निर्धारित अमृताशन (भगोनी से पकाये अन्न) पर निर्भर रहना (४)आहार कल्प पर आस्थापूर्वक दृढ़ रहना (५) गंगाजल सेवन । काया और अन्तःकरण के दोषों के शमन के लिए पवित्र धारा का सहयोग लेना (६) चाय के स्थान पर दिव्य औषधियों से निर्मित प्रज्ञापेय दो बार लेना (७) प्रातः ४ बजे से रात्रि ८ बजे तक निर्धारित विधि व्यवस्था में तन्मयता और तत्परता से संलग्न रहना ।

साधना के लिए दिव्य वातावरण

इस तरह की साधनायें कहीं भी की जा सकती हैं । जो साधना विधान यहाँ बताये जाते हैं, उनकी जानकारी पुस्तकों से भी मिल सकती है और कुछ समय नियमित निकाल घरों में भी अभ्यास किया जा सकता है, तब फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ समय और धन व्यय करके कष्ट साध्य यात्रायें सम्पन्न कर यहाँ आने की क्या आवश्यकता ? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर कहीं मिल सकता है तो वह मात्र शान्तिकुञ्ज के इन शिक्षण सत्रों में ही मिल सकता है । यहाँ ऋषियों की तपोभूमियों की वे सारी विशेषतायें प्रयत्नपूर्वक विकसित की गई हैं जिनके कारण सामान्य स्थल तीर्थ बन जाया करते थे । जहाँ लोग इस आशा से कल्पवास किया करते थे कि इन स्थानों में कम कष्ट उठाये बिना स्वल्प समय में ही साधना का प्रचुरतम् पुण्यलाभ प्राप्त किया जा सके ।

तीर्थ उन स्थानों को कहा जाता रहा है जहाँ तप-साधना के संस्कार पहले से ही विद्यमान हों, मरघटों में भूत-प्रेतों के निवास की तरह इन स्थानों में साधना पथ पर बिना विचलित हुए देर तक स्थिर बनाए रखने की सूक्ष्म प्रेरणायें विद्यमान रहती हैं । वह प्राण-प्रवाह छलकता रहता है जिससे अपने घरों की अपेक्षा साधक को थोड़े प्रयत्न से ही बहुत कमाई का लाभ मिल जाता है । भूमिगत संस्कारों के महत्त्व को लोग पहले भी जानते थे और आज भी उन्हें मानने से कोई इनकार नहीं कर सकता ।

चितरीवाला केला नासिक में ही पैदा होता है । कश्मीर की चेरी बहुत प्रयत्न करने पर भी अन्यत्र न फलती है न फूलती । सेव दूसरी जगह भी मिल जाते होंगे पर कुल्लु मनाली के सेवों की तुलना में उनकी मिठास, उन जैसी शक्ति, सुन्दरता दूसरे स्थानों के सेवों में देखने तक को नहीं मिलती । मलीहाबादी आम, लखनऊ के खरबूजे, बलसाड़ के चीकू सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । यह उन स्थानों के संस्कारों का ही फल है जो अन्यत्र करने पर भी नहीं मिल सकता ।

अफ्रीका में सौन्दर्य की कल्पना भर की जा सकती है देखा नहीं जा सकता, काँगों जाकर बसने वाली विदेशी नस्लें भी कालान्तर में बौनी हो गई, रूस का अजर बेजान—शताधिक्यों की मण्डी माना जाता है । वहाँ १०० वर्ष की आयु को अपने यहाँ की ४०-५० के लगभग की आयु मानी जाती है । यह सब भूमि के संस्कार हैं, वातावरण की विशेषतायें हैं, ऐसी ही विशेषाओं में देवात्मा हिमालय की चर्चा पुनीत साधना स्थली के रूप में विश्वविख्यात है । यहाँ प्राचीनकाल के प्राय: प्रत्येक ऋषि, मनीषियों महापुरुषों के साधना-संस्कार और उनकी प्राण ऊर्जा आज भी यथावत है । प्राकृतिक सौन्दर्य, भगवती गंगा की गोद, औषधि तुल्य जाह्नवी तोय और हिमालय की छाया ने इन साधना संस्कारों को इस हद तक निखारा है कि यहाँ आते ही व्यक्ति का मन स्वयमेव अन्तर्मुखी हो उठता है । इसीलिए देश के सर्वाधिक तीर्थ यहीं पाए जाते हैं ।

चार धामों में प्रमुख बद्रिकाश्रम, सप्त पुरियों में मायापुरी (हरिद्वार), ज्योतिर्लिंगों में उत्तरकाशी, क्षेत्रों और आरण्यकों में सप्तऋषि, उत्तराखण्ड में ही अवस्थित हैं । यहाँ के अपने चार धाम, पंचवटी, पंच केदार, पंच प्रयाग, चार शिखर धाम, सप्त तपस्थलियाँ, दो काशी यहीं हैं । इसीलिए हिमालय का यह क्षेत्र देवात्मा कहलाता है, दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ यही पैदा होती हैं, यहाँ जैसा प्राकृतिक सौन्दर्य पृथ्वी में अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं । इसे साधना संस्कार और प्राण उर्जा का लहराता हुआ समुद्र कह सकते हैं । उसमें स्नान करने वाले महापुरुषों द्वारा उन स्थलों में प्राण विस्फोट का पुण्य लाभ अनायास ही प्राप्त कर लेते हैं ।

देव प्रयाग भगवान राम की तपोभूमि है । लक्ष्मण झूला में लक्ष्मण, ऋषिकेश में भरत, मुनि की रेती में शत्रुघ्न, भगीरथ शिला में भगीरथ ने तप कर उन स्थानों को पुनीत बनाया । परशुराम शिला, व्यास गुफा, वशिष्ठ गुफा आदि सभी इन महापुरुषों के साधना धाम थे । शिवलिंग सुमेरु गंधमादन और सेतोपंथ आदि उच्चस्तरीय साधनाओं के केन्द्र थे । कल्कि पुराण में भगवान परशुराम के अभी भी शरीर होने और कल्कि अवतार को अपने समीप बुलाकर उद्बोधन करने का उल्लेख है । साधनायें जितनी प्रचण्ड होंगी उससे उत्पन्न ऊर्जा उतनी ही प्रखर । उस प्रदीपन को शमन करने के लिए वैसा ही शीतल क्षेत्र चाहिए । कुण्डलिनी जैसी प्रचण्ड अग्नि ऊर्जा जगाने और धारण करने के लिए यहाँ के अतिरिक्त और कोई दूसरा स्थान हो ही नहीं सकता । हमने १०८ उपनिषद् सप्त सरोवर, वेद उत्तर काशी, दर्शन गंगोत्री में लिखे । जिन्हें 'सुनसान के सहचर' पढ़ने का सुयोग मिला उन्होंने अनुभव किया है कि हमने अपनी अन्तिम कुण्डलिनी जागरण की साधना इस दुरूह क्षेत्र में रहकर ही सम्पन्न की जहाँ सामान्यत: गर्मियों में भी २० इंच बर्फ जमा रहती है । उत्तराखण्ड यों शरीर से शीतल है पर उस शीतलता में प्रचण्ड ऊर्जा की अनुभूति कोई भी थोड़े दिन की साधना से ही करने लगता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को जहाँ सराहा जाता है, वहाँ उनके उद्‌गम तक पहुँचने का भी प्रयत्न किया जाता है । गंगा, गंगोत्री से निकली है । श्रद्धालु लोग इसके लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि उसका उद्‌गम खोजे और वहाँ तक पहुँचे । यमुना का उद्‌गम यमुनोत्री नर्मदा का अमर कंटक है । श्रद्धालु वहाँ पहुँच कर चैन पाते हैं । राम भक्त अयोध्या कृष्ण भक्त मथुरा पहुँचने का प्रयत्न करते हैं । बुदका गया, ईसा का येरूशलम में मुहम्मद का मक्का उनके प्रधान कार्य क्षेत्र रहे हैं । गाँधी जी साँवरमती के संत कहलाये और विनोवा पवनार के । यही बात अन्य सन्तों, महामानव ऋषियों एवं देवताओं के सम्बन्ध में भी है । जन्म स्थान या प्रधान कर्म स्थान को उस सत्ता के उदय की प्राचीन समझा जाता है और उनके अनुयायियों द्वारा भावभरा नमन वन्दन करने के लिए वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है ।

गायत्री का युगावतार जिस क्षेत्र को अपनी प्रधान क्रीड़ाभूमि बना कर चला है, उसे गायत्री तीर्थ कहा जा सकता है । २४००००० उसकी संतानें अभी भी भारत भूमि के प्रांगण में बाल क्रीड़ा कर रही हैं । देश-विदेशों में उसके उपासना केन्द्र दस हजार से ऊपर पहुँचे चुके । नैष्ठिक उपासकों की संख्या २४ लाख के लगभग है । गायत्री साहित्य का जैसा सुनियोजित सृजन इस केन्द्र से हुआ है, जितना आलोक वितरण इस उद्‌गम से हुआ है, उसकी तुलना प्राचीन या अर्वाचीन प्रयासों का पर्यवेक्षण करने पर अन्यत्र कहीं भी मिल सकना कठिन है । प्रज्ञा युग आने की संभावना दिन-दिन सुनिश्चित होती जा रही है । प्रज्ञा पुराण को युगान्तरीय चेतना का प्रतीक माना जा सकता है । इस केन्द्र में अब तक जितनी गायत्री उपासना हुई है इस महामंत्र को जितनी आहुतियां मिली हैं— जितने साधकों ने यहाँ पहुँच कर तदू विषयक उपासना साधना की है वैसी अन्यत्र अद्यावधि कहीं भी नहीं हुई । इस महान तंत्र के संस्थापक को प्रज्ञा पुरुष कहा जाता है । यह सम्बोधन मात्र इसीलिए नहीं किया जाता कि उनका मेधा परक अध्ययन ज्ञान अगाध है वरन् इसलिए भी कहा जाता है कि उन्होंने अपने रोम-रोम को गायत्री से ओत-प्रोत कर लिया है । इन तथ्यों की प्रज्ञा परिवार के सभी परिजनों को पहले से ही आवश्यक जानकारी उपलब्ध है ।

महत्त्वपूर्ण उद्‌गमों को तीर्थ माना जाता है । शान्ति-कुञ्ज न केवल गायत्री के ऋषि विश्वामित्र की तपस्थली है वरन् उसका आधुनिक स्वरूप एवं क्रिया-कलाप भी ऐसा है जिसे युगान्तरीय चेतना का अरुणाचल कहा जा सकता है । ऐसे स्थानों की अपनी विशिष्ठता और क्षमता होती है । उसके साथ न केवल प्रेरणाप्रद इतिहास जुड़ा होता है वरन् कुछ ऐसा विशिष्ठ प्रभाव भी जुड़ा होता है जो वहाँ पहुँचने वाले को अनायास ही कुछ उत्साहवर्द्धक अनुदान प्रदान कर सके । तीर्थ परम्परा में जिन धामों का निर्धारण हुआ है उनके पीछे मात्र देवालयों का दर्शन और जलाशयों का स्नान ही कारण नहीं है, वरन् उन स्थानों में सन्निहित दिव्य क्षमता भी एक बहुत बड़ा कारण है । तीर्थ स्नानों के महात्म्य और पुण्य फल के प्रतिपादन में जहाँ आत्म-परिष्कार की साधना, प्राणवान सान्निध्य और भविष्य-निर्माण का परामर्श एवं निर्धारण संकल्प की गरिमा का समावेश है वहाँ एक बड़ा कारण यह भी है उनके साथ सूक्ष्म स्तर की उपयोगी उदृश्य चेतना का भी समावेश है । तीर्थों के निर्धारण इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर किये गये थे । वे विशेषताएँ जब तक जितनी मात्रा में अक्षुण्य रही तब तक वे तीर्थ अपनी समर्थता भी बनाये रहे । जड़े खोदने पर तो विशाल वृक्ष भी धराशयी हो जाते हैं । अवांछनीयताओं के केन्द्र बन जाने पर तो तीर्थ भी अपनी गरिमा खो सकते हैं ।

चर्चा गायत्री तीर्थ की हो रही थी । आत्मिक प्रगति की साधना करनी है और अपना माध्यम आदि शक्ति गायत्री को रखना हो, तो उचित यही है कि समय निकाल कर वहाँ निवास करते हुए उस पुण्य प्रयोजन को पूरा किया जाय । वातावरण का प्रभाव परिणाम असंदिग्ध है । उपासना में मात्र कर्मकाण्ड ही सब कुछ नहीं होता । उसके लिए उपयुक्त वातावरण भी चाहिए । गंगा की गोद, हिमालय को छाया, गायत्री ऋषि विश्वामित्र की तपस्थली, अजस्र प्राण ऊर्जा का युग उद्‌भव जैसे कारणों में गायत्री उपासना के लिए उतना जीवन्त स्थान दूसरा ढूँढ़ सकना कठिन है । फिर वहाँ की वर्तमान सुविधाएँ भी तो ऐसी हैं जिन्हें इस युग में अन्यत्र कही भी नहीं खोजा जा सकता ।

तीर्थ सेवन के लिए कुछ समय निकालने की जिन्हें जब कभी सुविधा हो तब उन्हें गायत्री तीर्थ में पहुँचने की बात सोचनी चाहिए । घर रह कर अनुपयुक्त वातावरण और संसर्ग में बहुत समय तक पूजा-पाठ करते रहने पर भी जो लाभ नहीं मिल सकता, वह यहाँ थोड़े समय तक एक सुनिश्चित व्रत अनुशासन में बंधकर कर सकने पर उपलब्ध हो सकता है । जिसने भी इसका प्रयोग किया है, उन्हें उत्साहवर्द्धक ही अनुभव हुए हैं ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्थ सान्निध्य-प्राणवान संरक्षण

आज जो वृन्दावन है वह चैतन्य महाप्रभू की बसाई हुई है । ३०० वर्ष पूर्व उन्होंने ही अपनी दिव्य दृष्टि से उस स्थान में भगवान कृष्ण की अनेक क्रीड़ा स्थलियों की प्राण-प्रतिष्ठा कराई थी । परम पू. गुरुदेव ने भी गायत्री तपोभूमि का चयन इस स्थान को महर्षि दुर्वासा की साधना भूमि का बोध होने के बाद क्रिया । युगान्तर शक्ति के अभ्युदय के लिए जिस आत्म बल की आवश्यकता है उसका जागरण कैसे हो ? महाप्रज्ञा कैसे प्रखर बने ? जब यह प्रश्न उठा तो उन्होंने अनुभव किया कि वह साधना शक्ति के जागरण से कम सम्भव नहीं । यह उत्तराखण्ड में ही सम्भव था सो उन्होंने सप्तसरोवर की अनेक बार यात्रायें की और उस क्षेत्र को ढूँढ़ निकाला जहाँ नूतन सृष्टि के जनक महर्षि विश्वामित्र ने तप करके भगवती गायत्री का अवतरण किया था । यह वही स्थान है जहाँ आजकल शान्तिकुञ्ज गायत्री नगर बसा हुआ है । यहाँ ध्यान साधना करते समय साधक अनायास ही उस प्राण सागर में डूब जाता है और अनुभूतियों के आत्मबोध के ऐसे मोती ढूंढ़ लेता है जो जीवन की सारी दरिद्रता को दूर कर देते हैं । वर्तमान में यहाँ स्थापित अखण्ड दीप, अखण्ड यज्ञाग्नि तथा प्रतिदिन साधकों द्वारा सम्पन्न होने वाले २४ लक्ष जप से सुसंस्कारिता, ऐसे पुनीत स्थल की तीर्थ यात्रा का सुयोग किसी को मिले तो उसे यह समझना चाहिए उसने या तो पूर्व जन्मों में साधना सम्पन्न की है या उसे किसी पुण्य परमार्थ के बदले परमात्मा का असीम अनुग्रह प्राप्त है ।

गंगा की पावन गोद और हिमालय की शीतल छाया के अतिरिक्त तीर्थों में प्राण भरने वाला एक और भी तथ्य है, समर्थ सान्निध्य संरक्षण । प्राचीनकाल में ऋषियों के आश्रय में रहकर न केवल आत्म विद्या का पुण्य लाभ मिलता था अपितु उन सांसारिक समस्याओं के सरल समाधान भी मिलते थे जिनके कारण परमात्मा का दिया कल्पवृक्ष जैसा मनुष्य जीवन निराशा, खीझ, ऊब और उत्तेजना से भरा रहता है ऐसे समाधान वह समर्थ ही कर सकते हैं, जिनमें अन्तर्वेधन, अन्तर्दर्शन की शक्ति हो ।

शांतिकुंज की संचालक सत्ता सिद्धों की उस परम्परा के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । विद्वता तो अन्यत्र भी देखने को मिल सकती है पर सिद्धि के तो इन दिनों दर्शन ही दुर्लभ हैं । स्वाँग तो कहीं भी देखे जा सकते हैं । तथाकथित सिद्धि की खाल ओढ़ कर सियार से शेर बनने वाले वाक् चतुर तो पग-पग पर मिल जायेंगे पर अन्त: सामर्थ्य जिस कठोर तप साधना के करतलगत होती है, वैसा करने का साहस इस युग में कोई कर सकेगा, यह कल्पना भी कठिन है ।

जिस दिन महामना मदन मोहन मालवीय जी ने यज्ञोपवीत कराया उसी दिन से हमने त्रिकाल संध्या का उपासना क्रम प्रारम्भ किया । गुरु का जिस दिन से ज्योति दर्शन हुआ उस दिन से २४ वर्ष तक लगातार २४-२४ लक्ष्य के २४ गायत्री महापुरश्चरण सम्पन्न किये । इस अवधि में कठोर तपश्चर्यायें भी कीं । लम्बे समय तक गाय को खिलाये जौ (गोबर में गिर जाने के बाद धोकर साफ किया हुआ) की रोटी और छाछ के अतिरिक्त कुछ नहीं लिया । अन्तिम दिनों में केवल गंगा जल लेकर उच्चस्तरीय साधनायें सम्पन्न कीं । उससे जो प्राण ऊर्जा सञ्चित की उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी कृतियों में सर्वत्र देखे जा सकते हैं । यह सारी तेजस्विता इस प्रचण्ड साधना जन्य पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है ।

शिव और शक्ति मिल कर नूतन विधान रचते हैं । हमारे जैसा ही वन्दनीय माता जी का व्यक्तित्व भी ब्रह्मवर्चस् से ओत-प्रोत् रहा है । साधकों को जो कठोर अभ्यास कराये जाते हैं, वह वन्दनीया माता जी के स्नेह के कारण इतने सरल हो जाते हैं कि साधक को पता ही नहीं चलता, सहज विश्वास ही नहीं होता कि ऐसी साधना उसने सम्पन्न कैसे कर ली । ऋषि कल्प सान्निध्य का लाभ जिसने भी प्राप्त किया वह यहाँ से कृतकृत्य होकर लौटा और उस रस को प्राप्त करने बार-बार आया । जितनी बार आया और अधिक प्राप्त करने का सौभाग्य सार्थक किया ।

बिना शुल्क सेवा—तीर्थ परम्परा की पुनरावृत्ति

आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण साधना सत्रों से किसी को वंचित न रहना पड़े इसलिए सभी सेवाएँ साधकों को प्राय: बिना मूल्य दी जाती हैं । यथा (१) निवास के लिए स्वच्छ कमरे, तख्त, पूजा उपकरण बिजली, पानी, सफाई का प्रबन्ध । (२) दोनों समय भोजन पकाने की व्यवस्था तथा उसके लिए स्टील के बर्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) दो समय जड़ी-बूटी की चाय (प्रज्ञा पेय) (४) औषधि कल्प की निर्धारित मात्रा का दैनिक प्रबन्ध । (५) एक महीने तक नित्य अग्नि होत्र का व्यय । (६) शारीरिक और मानसिक परीक्षा निष्णात चिकित्सकों एवं बहुमूल्य उपकरणों द्वारा किये जाने वाले टेस्ट जिन्हें बाजार में कराने पर सौ रुपये से कम खर्च किसी भी प्रकार नहीं आता । (७) स्वाध्याय के लिए पुस्तकालय से नियमित रूप से पुस्तकें मिलना । इसके अतिरिक्त शिक्षकों, व्यवस्थापकों की जो निरन्तर सेवाएँ मिलती रहती हैं उनका कोई लेखा-जोखा नहीं । इस प्रकार हर साधक के पीछे ढेरों खर्च आता है फिर भी उनकी श्रद्धा तथा विवेक पर विश्वास रखते हुए यह सारा प्रबन्ध नि:शुल्क रखा गया है ।

यह सुविधायें इसलिए नहीं की गई कि आश्रम के पास कोई सेठ साहूकारों की दी हुई राशि सदावर्त की तरह हर किसी पर लुटाने के लिए जमा की हुई है । आश्रम का खर्च तो दस-दस पैसे वाले ज्ञान घटों की भिक्षा राशि पर ही अवलम्बित है । यह दुस्साहस तो इसलिए किया गया है कि धनी निर्धन का भेद किए बिना तीर्थ सेवन की सनातन परम्परा जीवित रखी जा सके । वैसे यह सर्वविदित है कि साधना काल में दूसरे के धन साधनों सुविधाओं का उपयोग करने से अपनी साधना का लाभ दूसरों के भाग में चला जाता है । साधकों को चाहिए कि प्राप्त सुविधाओं को अपना अधिकार न मानें । यदि दान पुण्य न बन पड़े तो कम से कम भिक्षा के धन के उपयोग के पातक से तो बच कर रहें ही ।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन पहले वकालत करते थे । कानून की सुविधा धनी-निर्धन सबको मिल सके इसके लिए वे फीस निर्धारित नहीं करते थे । उन्होंने अपने पैण्ट में एक जेब पीछे लगवा रखी थी ताकि मुवक्किल अपने साधनों के अनुसार फीस चुपचाप पीछे की जेब में डाल दें, यह बात उसके ईमान पर छोड़ देते थे। शान्तिकुञ्ज सत्रों में साधकों के लिए कुछ ऐसी ही व्यवस्था रखी गयी है ।

समग्र कल्प साधना सत्र प्रत्येक माह की पहली तारीख से प्रारम्भ होते हैं और अन्तिम तारीख पर समाप्त होते है । मिनी कल्प सत्र महीने में तीन होते हैं । (१) ता. १ से ९ तक (२) ११ से १९ तक (३) २१ से २९ तक । बीच की तीन तारीखें १०, २०, ३० आने-जाने वालों के लिए हैं । सत्र आरम्भ होने से एक दिन पूर्व शाम तक आश्रम पहुँच जाना चाहिए और पूर्णाहुति होने पर चले जाना चाहिए ताकि नवागन्तुकों को असुविधा न हो ।

साधना सत्रों में हर व्यक्ति को आवेदन भेजकर अपना स्थान सुरक्षित कराना पड़ता है । हम लोग इतने व्यक्ति आना चाहते हैं ऐसा लिखने से काम नहीं चलता । हर प्रवेशार्थी का अलग आवेदन पत्र होना चाहिए । ताकि प्रवेश देने न देने के सम्बन्ध में इच्छुक का स्तर जाँचा जा सके । आवेदन पत्र में निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक लिखे होने चाहिए—

(१) सत्र का नाम जिसमें सम्मिलित होना है । (२) किस महीने की किन तारीखों वाले सत्र में आना चाहते हैं ? (३) यदि वह भर चुका है तो उसके स्थान पर अन्य किस सत्र में स्थान दिया जाय ? (४) प्रवेशार्थी का पूरा नाम, पता (५) आयु, जन्म तारीख (६) शिक्षा (स्कूली तथा स्व-उपार्जित) (७) जन्मजाति, उपजाति का उल्लेख (८) व्यवसाय (यदि स्वयम् उपार्जित अभिभावक, संरक्षक का आजीविका स्रोत) (९) मिशन की पत्रिकाओं में से जिनके नियमित पाठक जब से जब तक रहे हों उसका उल्लेख (१०) साथियों को परेशानी में डालने वाले कोई दाद, खाज, छाजन, कोढ़, घाव, श्वांस, मृगी विक्षिप्तता जैसे शारीरिक मानिसक रोग न होने का स्पष्ट आश्वासन (११) साधना काल की कठोर अनुशासन पालने तथा व्यवहार में शालीनता रखने की प्रतिज्ञा ।

वरिष्ठ ऊर्जा का उद्गम और सम्पर्क साधन

निश्चित समय की उपासना न बन पड़ने पर, पर्यटन मनोरंजन की दृष्टि से आने वालों के लिए भी गायत्री तीर्थ का यथासम्भव सान्निध्य अत्यधिक उत्साहवर्द्धक सिद्ध होता है । सूक्ष्म वातावरण की अपनी विशेषताएँ हैं । ताजमहल, कुतुबमीनार जैसी भव्यताओं के अवलोकन से जहाँ उत्साह बढ़ता और कौतूहल का समाधान होता है वहाँ सूक्ष्म प्रेरणा के भरे पूरी शक्ति केन्द्रों के साथ किसी न किसी रूप में जुड़ने और गुंथने का भी अपना महत्व है, भले ही वह स्वल्पकालीन ही क्यों न हो ।

तीर्थ यात्रा में ऐसे स्वल्पकालीन सुयोगों की भी गुजायश है । जिस में व्यस्त लोग-कारण विशेष के बहाने उन प्रेरणा संस्थानों से सम्बन्ध जोड़े और वहाँ से कुछ कहने लायक पुण्य प्रसाद लेकर वापस लौटे । इस सन्दर्भ में कितने ही प्रचलन भी हैं । हरिद्वार को ही लें तो यहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि कितनी ही विशेषताएँ हैं । बालकों के मुण्डन कराने की मनौती कितने ही मानते हैं और जब भी अवसर मिलता है, आकर उनके केश उतारते हैं । अस्थि-विसर्जन के लिए दूर-दूर से भावनाशील यहाँ आते हैं । श्राद्ध तर्पण के लिए भी यह स्थान उपयुक्त माना जाता है । दर्शनीय स्थानों में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के तप स्थान, हनुमान-जननी अन्जनी का स्थान, पार्वती तप का स्थान, सप्त ऋषियों की तपोभूमि आदि ऐतिहासिक स्थानों की अपनी गरिमा है । भले ही असुविधा के कारण कोई वहाँ पहुँचे न पहुँचे ।

बालकों के संस्कारों के लिए आमतौर से वे कृत्य तीर्थ स्थानों पर पहुँचकर कराने की मान्यता है भले ही उस उपलक्ष्य में उत्सव प्रीतिभोज घर आकर किये जायें । गर्भवतियों का पुंसवन, बच्चों का नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ उपनयन आदि के लिए तीर्थ स्थानों को ही प्रमुखता दी जाती है । यह प्रचलन युक्ति युक्त भी है और तथ्य पूर्ण भी । देखना इतना भर है कि उसके लिए किन तीर्थों का किन स्थानों का आश्रय लिया जाय । इस दृष्टि से यदि उपयुक्त वातावरण भी देखना हो तो हरिद्वार आने वालों के लिए गायत्री तीर्थ की उपयोगिता हर दृष्टि से असंदिग्ध मानी जा सकती है । श्राद्ध तर्पण की भी यहाँ शास्त्रीय व्यवस्था है । उपर्युक्त कृत्यों के सम्बन्ध में सबसे बड़ी सुविधा यहाँ यह है कि निवास, भोजन आदि की व्यवस्था यहाँ हैं जो पूर्व स्वीकृति लेकर आने वालों को सरलता पूर्वक मिल जाती है । इन दिनों ठहरने और खाने पीने में बड़े शहर अत्यधिक महँगे हो गये हैं । किन्तु गायत्री तीर्थ में सभी धनी निर्धन समान सुविधा पाते और किसी को भी आर्थिक तंगी के कारण तनिक भी असमंजस में नही पड़ना पड़ता । जहाँ इन कृत्यों के लिए अन्यत्र ढेरों सामग्री जुटाने की दौड़ धूप करनी पड़ती है, और दक्षिणा याचना से पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है वहाँ ऐसा कुछ नहीं है । स्नेह, सौजन्य, सद्भाव और सहयोग की भावना के अतिरिक्त ऐसी गन्ध भी नहीं सूँघी जा सकती जिसमें छीन-झपट या गिरह-कटी का अनुमान लगाया जा सके ।

जन्म दिवसोत्सव और विवाह दिवसोत्सव पर हर वर्ष कितने की प्रज्ञा परिजन शान्ति कुंज पहुँचते रहे हैं । इस अवसर पर हर किसी को एक रुपया, स्मृति पत्र, के साथ ही मेवा मिश्री का प्रसाद मिलता है । तिलक लगा कर रक्षा सूत्र बाँध कर, पुण्य प्रसाद देकर इस अवसर पर इन प्रयोजनों के लिए आने वालों को जो पुलकत प्रदान की जाती है उसे चिरकाल तक कोई भुला नहीं पाता । शेष जीवन के सुख शान्ति से बीतने, उज्ज्वल भविष्य की दिशा में प्रगति करने, गृहस्थ परिकर के सुखद होने की अपेक्षा ऐसे अवसरों पर की जाती है । शान्ति कुंज के आशीर्वाद प्रोत्साहन आश्वासन से इस आशा को बहुत बल मिलता है और जो इन प्रयोजनों के लिए आता है नयी आशा, उमंग, चेतना एवं प्रेरणा लेकर वापस लौटता है ।

प्रज्ञा परिवार में आदर्श विवाहों का नया उत्साह इन दिनों उभरा है । बिना देन दहेज, प्रदर्शन, बरात आदि कमर तोड़ अपव्यय को छोड़ने की बात लम्बे समय से समझी समझाई जाती रही है । जो उसकी उपयोगिता को समझते भी रहे हैं, किन्तु पड़ौसी सम्बन्धियों के दबाव उपहास को देखते हुए वैसा बन नहीं पड़ता । मन मार कर निरर्थक धूमधाम में घर के बर्तन बेचने पड़े और कर्जदार बनना पड़ा । इस असमंजस से छूटने का अब कुछ दिन से यह एक अच्छा आधार मिल गया है कि विवाह संस्कार तो शान्ति कुंज से ही होगा । वहाँ के वातावरण में यह धर्मानुष्ठान करने से वर-वधू का गृहस्थ जीवन उज्ज्वल बनेगा और गुरुदेव माता जी का आशीर्वाद लेकर इस जोड़ें को उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन मिलेगा । यह तर्क प्रत्यक्षत: प्रभावशाली है और दबाव डालने पर दूसरा पक्ष यदि समझदार हो तो इसे थोड़ी सी ननुनच के उपरान्त मान भी लेता है । इसमें परोक्ष लाभ जो भी हो प्रत्यक्ष लाभ आर्थिक बचत का है । दोनों पक्षों के अधिकतम दस-दस व्यक्ति ही उस समारोह में आने की छूट है । इस अनुशासन के कारण मार्ग व्यय का हल्का-सा ही भार पड़ता है । दावत प्रीतिभोजों की कोई गुंजायश नहीं, मिल-जुल कर हल्की सी चाय पार्टी भर दोनों पक्ष कर लेते हैं । दहेज के नाम पर प्रदर्शन की कोई गुंजायश नहीं । लड़के वालों को जेवर नहीं चढ़ाना पड़ता । लड़की वाले को तो जो देना है कन्या के नाम लम्बी अवधि का फिक्स डिपोजिट खरीद देता है । बाजे-गाजे आतिशबाजी दावत, प्रदर्शन का नाम नहीं । इतने पर भी यहाँ के वातावरण में इतना उत्साहवर्द्धक सुयोग बनता है कि घर पर नोटों की खर्चीली धूमधाम की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुलना में अनेक गुना उत्साह सम्वर्द्धन होता है । तीर्थ यात्रा के परिभ्रमण का लाभ मिलता है सो नफे में । शास्त्रीय कर्मकाण्ड-अखण्ड अग्नि वाली यज्ञशाला के कराने का तथा गुरुदेव माता जी का प्रत्यक्ष आशीर्वाद पाने का जो अतिरिक्त अवसर मिलता है सो ऊपर से, इस समस्त सुयोग के फलस्वरूप अब प्रज्ञा परिवार के नैष्ठिक परिजन अपने बच्चों के विवाह भी शान्तिकुञ्ज से ही कराने लगे हैं । लगता है कुछ समय में यह प्रचलन और भी जोर पकड़ेगा और प्रचलन अभ्यास में आने पर सर्वत्र उसी पद्धति का अवलम्बन होगा । दहेज के दानव का सर्वनाशी विवाहोन्माद का अन्त करने के लिए यह आरम्भिक उपचार बहुत ही कारगर सिद्ध होने की पूरी-पूरी सम्भावना है ।

बच्चा होने पर शान्तिकुञ्ज का आशीर्वाद पाने की तरह अन्त विवाह होने के उपरान्त वर-वधू आशीर्वाद लेने के लिए शान्तिकुञ्ज आते हैं । परीक्षायें उत्तीर्ण होने, प्रमोशन मिलने, कोई कहने लायक सफलता मिलने पर लोग अपनी प्रसन्नता और श्रद्धा की अभिव्यक्ति के लिए शान्तिकुञ्ज पहुँचते हैं । नये उत्तरदायित्व अगले दिनों ठीक प्रकार निभ सकें इसके लिए आशीर्वाद पाने लोग आते हैं । उनका विश्वास उनके लिए फलप्रद भी होता है। यह सभी प्रकरण ऐसे हैं जिनमें गायत्री तीर्थ के साथ न्यूनाधिक सम्पर्क समय-समय पर किसी न किसी बहाने साधने का अवसर मिलता है । तीर्थों की गरिमा जिस आधार पर आँकी जाती है और किसी धर्म-कृत्यों के लिए वहाँ की उपयोगिता अधिक समझी जाती है । इस दृष्टि से जिन्हें तीर्थों में से अधिक उपयुक्त का चयन करना हो उनकी आँखें सहज ही गायत्री तीर्थ पर जा टिकती है ।

यज्ञोपवीत भारतीय संस्कृति का प्रतीक चिह्न है । गायत्री उपासना में दीक्षा की भी आवश्यकता समझी जाती है । पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त होने पर वानप्रस्थ लेने की भी पुरातन परम्परा है । इन कार्यों के लिए कोई निर्धारित समय नहीं है । तीर्थयात्रा, पर्यटन के साथ जिन्हें आवश्यकता प्रतीत होती है सुविधानुसार आकर इन्हें सम्पन्न करा ले जाते हैं । नौ दिन के गायत्री अनुष्ठानों के लिए दो नवरात्रियाँ अधिक उपयुक्त मानी गई है फिर भी अन्य अवसरों पर उस पर कोई रोक नहीं है। शुभकर्मों के लिये हर समय शुभ मुहूर्त हैं । चौबीस हजार का छोटा अनुष्ठान दस दिन में और बड़ा सवा लाख का बड़ा अनुष्ठान एक महीने में पूरा होता है । इन्हें व्यवस्थित रूप से करने के लिए समय निर्धारण भी किया गया है । नौ दिवसीय अनुष्ठान हर महीने १ से ९, ११ से १९ और २१ से २९ तारीखों में सम्पन्न होते हैं । एक महीने के अनुष्ठान हर महीने पहली तारीख से आरम्भ किये जाते हैं । उपर्युक्त सभी प्रयोजन ऐसे हैं जिनके माध्यम से गायत्री तीर्थ के साथ सम्पर्क साधने का बार-बार अवसर मिलता रह सकता है । इस सम्बन्ध सूत्र को जोड़ना, सघन करना और बार-बार दुहराना चाहिए । यह ऐसा लाभ हैं जिसे जितनी बार किया जा सके उतना ही उत्तम है । सूर्य की धूप में जितनी बार बैठा जाय उतनी बार नये सिरे से गर्मी मिलेगी । चन्द्रमा की चाँदनी में बैठने, गंगा नहाने, मन्दिरों में जाने का जितनी बार अवसर मिले; उपेक्षा नहीं कि जाती । जब रेडियो सुनने और सिनेमा देखने की अनुकूलता कभी तृप्त नहीं होती और बार-बार उसकी पूर्ति की जाती रहती है तो कोई कारण नहीं कि गायत्री तीर्थ जैसे ऊर्जा स्रोत के साथ अपनी घनिष्ठता का सूत्र बार-बार सुदृढ़ करने का प्रयत्न भी बार-बार क्यों न होता रहे । इसमें थकान से, मलीनता से छुटकारा पाने का अवसर मिलता है और हर बार नयी चेतना पाने का बैटरी चार्ज जैसा सुयोग सधता है ।

दूर देशों में काम करने वाले भी समय-समय पर अपनी मातृ-भूमि के दर्शनों की इच्छा करते और आत्मीय जनों से मिलने भेंटने के लिए किसी त्यौहार या विवाह-शादी जैसे उत्सव आयोजन की प्रतीक्षा करते रहते हैं । सुसराल में सर्व सुख रहने पर भी लड़कियों को अपने पितृ-गृह की याद आती है और वे किसी बहाने वहाँ पहुँचने की राह जोहती रहती है । फिर जिन प्रज्ञा परिजनों ने गायत्री तीर्थ को अपना आध्यात्मिक घर परिवार माना है, गुरुद्वारा समझा है, युग चेतना का उद्गम समझा है, उनके लिए यह नितान्त स्वाभाविक है कि जिस-तिस बहाने वहाँ समय-समय पर पहुँचते रहे और अपनी प्राण-ऊर्जा में हर बार नई अभिवृद्धि का लाभ उठाते रहें ।

संकट से सुरक्षा

इन दिनों तीर्थयात्रा की दृष्टि से उत्तराखण्ड ही अपेक्षाकृत अधिक दर्शनीय और शान्तिदायक रह गया है। अन्य तीर्थों की घिचपिच, शहरी घुटन, छीना-झपटी, तथा ठहरने आदि की भारी असुविधा कठिनाई को देखते हुए विचारशील लोग वहाँ विश्राम विनोद या शान्ति जैसा कुछ देखते नहीं तो उत्तराखण्ड के बद्रीनाथ, केदारनाथ,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गंगोत्री, जमुनोत्री के प्रकृति सौन्दर्य एवं शान्त वातावरण में जाने की बात में अधिक सार देखते हैं । क्रमश: इन क्षेत्रों की मान्यताएँ बढ़ रही हैं । पुरानी मान्यताएँ हैं कि उत्तराखण्ड यात्रा कठिन है । उसमें कई प्रकार के जोखिम रहते हैं । इसलिए कोई समर्थ आशीर्वाद साथ लेकर वहाँ जाने से अधिक निश्चिन्तता रहती है । इस मान्यता के कारण यहाँ अभी भी बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री तथा यमुनोत्री आदि की यात्रा करने आये अपने परिजन भले ही रात्रि विश्राम हरिद्वार की किसी धर्मशाला में करते रहे हों पर पर्वतीय-यात्रा से पूर्व वे अपनी सुरक्षित यात्रा के लिए परम पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद लेने यहाँ आते रहे हैं । अपनी यात्रा सम्पन्न करने के बाद भी वे यहाँ आते हैं और अपने विश्वास की पुष्टि वाले संस्मरण सुनाते रहे हैं। लम्बे समय से परिजनों की आप-बीती सुनने के बाद यह विश्वास परिपुष्ट ही हुआ है ।

अपने परिजनों की श्रद्धा तीर्थ यात्रा के निमित्त आने वालों की सुविधा और सुरक्षा की दृष्टि से अब उन्हें भी शान्तिकुञ्ज में ठहरने और वापसी में यहाँ होते हुये आने की व्यवस्था कर दी गई है । इससे अपने लाखों परिजनों ने प्रसन्नता अनुभव की संतोष की साँस ली ।

किनारे बैठकर दो क्षण विश्राम करने वाले भी भगवती गंगा के शीतल जन का स्पर्श करके आने वाली प्राण वायु का आनन्द पा लेते हैं । भले ही उन्होंने स्नान न किया हो । स्वल्प अवधि का यह संस्पर्श भी अपने परिजनों को उल्लसित करता हैं, और उनमें नवजीवन का संचार करता है । इसलिये भविष्य में उसके लिये अपने परिजनों को शान्ति कुंज के दरवाजे खुले मिलेगें । व्यवस्था और अनुशासन की दृष्टि से ऐसे परिजन भी पूर्व सूचना अवश्य भेजा करें ।

शान्तिकुञ्ज की आवास व्यवस्था में विस्तार और इन परिवर्तनों से अब अपने सभी परिजन लाभान्वित होंगे इस पर सूत्र संचालक भी सन्तोष और प्रसन्नता अनुभव करते हैं ।

दस दिवसीय साधना सत्र तीर्थ निवास

यह सही है कि मनस्वी व्यक्ति वातावरण बनाते हैं, पर यह भी एक सत्य है कि वातावरण मनुष्यों को बनाता है । मनस्वी हर कोई नहीं होता । आत्म-निर्माण की क्षमता भगवान ने सबको दी है, पर उसका उपयोग कितने कर पाते हैं ? अधिकांश को पानी के बहाव में, हवा के प्रवाह में बहते ही देखा जाता है । छुट-पुट घटनाएँ मनस्वी व्यक्तियों द्वारा प्रखरता प्रकट करने और प्रतिभा का परिचय देने की भी आती हैं । ऐसे लोग महामानव कहे जाते हैं । संसार उनसे प्रकाश ग्रहण करता है, प्रेरणा लेता है और नमन करता है । इतने पर भी जन-साधारण के लिए वैसा सम्भव नहीं होता कि मान्य आदर्शों के अनुरूप अपने आप को ढाले । प्रतिकूल वातावरण को चीरते हुए ऊँचा उठे । ऐसा तो अपनी प्रचण्ड शक्ति से पृथ्वी के वायु मण्डल को चीरते हुए अन्तरिक्षीय यात्रा पर निकलने वाले तेजस्वी राकेट ही कर पाते हैं । सर्वसाधारण को तो वातावरण ही कठपुतली की तरह नचाता और साँचे की तरह ढालता चला जाता है । वातावरण और व्यक्ति में किस की वरिष्ठता है और किसकी कनिष्ठता इसका सीधा उत्तर दे सकना कठिन है। मुर्गी में से अण्डा हुआ या अण्डे में से मुर्गी, इसका निर्णय कैसे हो ? बीज से वृक्ष उपजा या वृक्ष से बीज उत्पन्न हुआ इसका क्या उत्तर दिया जाय ? नर ने नारी को उत्पन्न किया या नारी से पुरुष जन्मा । इसका सही निष्कर्ष निकालना शोधकर्ताओं तक के लिए कठिन है । दोनों ही पक्ष समान रूप से तर्क संगत हैं । व्यक्तियों से वातावरण और वातावरण से व्यक्तियों के बनने की बात भी समतुल्य और समकक्ष मानी जा सकती है । युग परिवर्तन के लिए परिष्कृत व्यक्तित्वों की नितान्त आवश्यकता है । इसके लिए उपयुक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता सहज ही समझी जा सकती है । किन्तु यह भुला नहीं देना चाहिए कि उसकी ढलाई के लिए उपयुक्त वातावरण की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

ऐसा प्रभावशाली वातावरण जो व्यक्ति को ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने में समर्थ हो सके; प्राणवान व्यक्तित्वों की प्रचण्ड ऊर्जा से ही विनिर्मित होता है । प्राचीनकाल में ऐसे सान्निध्य के लिए प्रत्येक विचारशील प्रयत्नशील रहता था और उस लाभ को प्राप्त करने के लिए समय निकालने, खर्च करने एवं कष्ट सहने में भी संकोच नहीं करता था । प्राणवान व्यक्तियों के सम्पर्क में सुअवसर की अवधि तीर्थ निवास कही जाती थी । शान्तिकुञ्ज के साथ संलग्न दोनों अन्य आश्रम ब्रह्म वर्चस् और गायत्री नगर मिलकर गंगा, यमुना और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरस्वती का त्रिवेणी संगम बनते हैं । इस समन्वय को तात्विक दृष्टि से तीर्थराज की ही समता दी जायगी ।

सामान्य व्यक्तियों को परिष्कृत वातावरण में कुछ-कुछ समय तक रहने को प्राचीन काल में एक परम्परा प्रचलित थी; जिसे तीर्थ निवास कहते थे । कुछ समय तक लोग अपने परिवार सहित या अकेले दुकेले जाकर रहा करते थे यह अवधि लम्बी नहीं होती थी तो भी उस स्वल्प काल में नये ढंग से सोचने नये ढंग का रहन-सहन अपनाने नई परिस्थितियों में रहकर नव जीवन के उपयुक्त उलट फेर करने की बात उतने ही समय में बहुत कुछ बन जाती थी ।

अभी भी प्रयाग में त्रिवेणी तट पर लोग एक महीने या अधिक समय का 'कल्पवास' करते हैं । अपनी निजी झोंपड़ी बनाकर रहते हैं । कुम्भ पर्व के अवसर पर भी इसी प्रकार की निवास व्यवस्थाएँ बनाकर लोग पहुँचते हैं । नासिक, उज्जैन, हरिद्वार, कुम्भ के पर्व प्राय: दो-दो महीने के होते हैं । उनमें साधु, सज्जन अपने-अपने परिवार के व्यक्तियों को बुलाकर एक जगह रखते हैं । उन्हें साधना कराते तथा सत्संग का लाभ पहुँचाते हैं ।

तीर्थ यात्रा तो तीर्थ प्रचारक मण्डली द्वारा परिभ्रमण करते हुए जन-सम्पर्क के लिए सम्पन्न की जाती है । तीर्थ निवास इससे भिन्न है । उसमें सामयिक अवकाश निकाल कर थोड़े-थोड़े समय के लिए लोग रहते हैं । प्राचीनकाल के ऐसे अनेक उदाहरण कथा, पुराणों में भरे पड़े हैं, राजा दिलीप अपनी पत्नी समेत महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जाते हैं और वहाँ रहकर बहुत समय तक गुरु की गायें चराते हैं ।

स्वास्थ्य लाभ के लिए उपयुक्त जलवायु के स्थानों में जाने और रहने की चेष्टाएँ होती रहती है । बीमार पड़ने पर अस्पताल में भर्ती, इलाज कराने की आवश्यकता पड़ती है । तीर्थों का वातावरण किसी समय विशुद्ध रूप से मानसिक अस्पतालों जैसा, मनोवैज्ञानिक विद्यालयों जैसा था । वहाँ रहने वाले उस विशिष्टता सम्पन्न वातावरण में साँस लेते थे और सहज ही मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्द्धन का लाभ उठाते थे । मनीषियों के आश्रमों की नैतिक, बौद्धिक एवं भावना स्तर पर छाई हुई विकृतियों के निराकरण के लिए उपयुक्त उपचार करने वाले अस्पतालों से ही तुलना की जाती है । प्रशिक्षण से परामर्श और उपदेश से भ्रान्तियों के निराकरण और उपयुक्त मार्ग-दर्शन का प्रकाश मिलता था । अन्तर्मन में जमी हुई दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन के लिए साधनाएँ कराई जाती थीं । उन दिनों तीर्थ निवासी आज की तरह निरुद्देश्य इधर-उधर भटकते नहीं फिरते थे । वहाँ जाने और ठहरने के पीछे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य रहता था । साधारतया मानिसक स्वास्थ्य सम्वर्द्धन, मानसिक रुग्णता के निवारण से उसकी तुलना की जाती थी । निश्चय ही यह लाभ शारीरिक आरोग्य की तुलना में भी कहीं अधिक उच्चस्तरीय है फिर उस अवधि में सात्विक आहार-विहार व्रत-उपवास एवं अन्य चिकित्सा उपचारों से स्वास्थ्य समस्याओं का समाधान भी साथ-साथ ही मिल जाता है । तीर्थ निवास को काया-कल्प का नाम दिया जाता था । अभी भी प्रयाग में एक महीने के लिए त्रिवेणी तट पर रहने वाले कल्पवासी कहे जाते हैं । उस निवास का नाम 'कल्पवास' है । कल्पवास को काया-कल्प का प्रयोग उपचार कह सकते हैं । आज वह सब चिह्न पूजा मात्र ही रह गया है, पर प्राचीन काल में उसमें वास्तविकता थी । उन दिनों निवास मात्र ही सब कुछ नहीं था वरन् वही स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन एवं साधना अभ्यास का अवसर मिलता था । उसमें स्थिति के परिवर्तन का समुचित अवसर मिलता था । लोग जिस स्थिति में जाते थे उसकी तुलना में अपना बाहरी और भीतरी स्वरूप बहुत कुछ बदल कर ही आते थे ।

आत्मिक परिष्कार तथा आत्मोत्कर्ष के लिए अध्यात्म क्षेत्र में अनेक विशिष्ट साधनात्मक प्रयोगों का प्रचलन रहा है । जप, तप, ध्यान तथा अन्य योग साधनाओं के विधि-विधान इसीलिए हैं । अध्ययन, सत्संग, मनन, चिन्तन भी इसी के अंग रहे हैं । तीर्थों के संस्कारित वातावरण में इन सभी का प्रभाव और लाभ बढ़ जाना स्वाभाविक है । प्रखर साधना और समुचित वातावरण का संयोग सोने में सुहागा की उक्ति चरितार्थ करता रहा है ।

शान्तिकुञ्ज में चलने वाले दस-दस दिवसीय जीवन साधना सत्रों की तुलना प्राचीनकाल की तीर्थ यात्रा एवं तीर्थ निवास प्रकिया के साथ करनी चाहिए । उन सत्रों में सभी शिक्षार्थियों को नौ दिन का एक गायत्री अनुष्ठान करना होता है । साथ में ब्रह्म वर्चस साधना से सम्बन्धित विशिष्ठ ध्यान धारणा का अभ्यास कराया जाता है । सोऽहम् का हंस योग खेचरी मुद्रा का सोम पान, त्राटक द्वारा तृतीय नेत्र उन्मीलन की तीन साधनाएँ जप और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्यान के अतिरिक्त है । इस प्रकार इन छोटे साधना सत्रों में भी ब्रह्म वर्चस् की उच्चस्तरीय साधना का उतना अंश मिला दिया गया है जो आरम्भिक साधकों को ठीक प्रकार हजम हो सके ।

यह साधनाएँ सामान्य रूप से गूढ़ मानी जाती हैं । सामान्य साधकों की गति उनमें होना कठिन माना जाता है। सामान्य दृष्टि से यह मान्यता गलत भी नहीं है । गायत्री का जप अनुष्ठान ही लोग असाधारण मानते हैं, फिर विशिष्ट योग साधनाओं का उसमें समावेश किया जाना अनौखा-सा लगता ही है । लोग समझते हैं कि इनकी मात्र जानकारी भर प्राप्त की जा सकती है, कुछ उल्लखेनीय लाभ पाना सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन है। किन्तु अभ्यास तथा वातावरण के संयोग से अन्त:करण को प्रभावित करने के विज्ञान की जानकारी जिन्हें, है उनकी मान्यता भिन्न होती है ।

साधना एवं तीर्थ वास के द्वारा अन्त:करण को विशेष संस्कारों में रंगने को विशेष उद्देश्य ही सामने रहता था । जानकारियों का महत्त्व उस दृष्टि से उतना अधिक नहीं है। सिद्धान्तों की जानकारी तो सभी को होती है, किन्तु अभ्यास तथा वातावरण के प्रभाव से बने हुए संस्कार अपना अलग ही महत्त्व रखते हैं । कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ सकती है ।

पशु बध के सम्बन्ध में विवेक स्पष्ट रूप से निषेधात्मक निर्णय देता है । हिंसा पाप है, जीव हत्या मानवीय संवेदनाओं का हनन करती हैं, मांसाहार मनुष्य का स्वाभाविक आहार नहीं है । आदि के सन्दर्भ में अनेक तथ्य एवं तर्क प्रस्तुत किए जा सकते हैं । सहृदय व्यक्ति उसकी कल्पना भर से सिहर उठता है; किन्तु जिनमें पशुबलि के संस्कार होते हैं, वे उस जघन्य कृत्य को करते हुए इतने प्रसन्न होते हैं, मानो देवताओं को तुष्ट करने के लिए इससे अधिक अच्छा ढंग और कोई नहीं है ।

नर-नारी के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में भारतवासी बहुत संवेदनशील होते हैं । किसी की आबरू पर हाथ डालना, उसको तिलमिला देने, मरने मारने पर उतारू कर देने के लिए पर्याप्त है; किन्तु विदेशों में अभिभावक स्वत: अपनी युवा बेटियों को युवकों से सम्पर्क बनाने के लिए प्रोत्साहन देते हैं एवं सुविधाएँ प्रदान करते हैं । नशेबाजी नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से त्याज्य है; किन्तु जहाँ उसे देव पूजन का अंग माना जाता है वहाँ उसे प्रसाद मानकर ग्रहण करके लोग अपने को धन्य मानते हैं । सभा सोसाइटियों में विशिष्ट शिष्टाचार (एटीकेट) के रूप में प्रचलित सुरापान को लोग उत्साहपूर्वक अपनाते हैं ।

इन सबके पीछे यह तथ्य कम महत्त्व रखता है कि यह सब कितने अंशों में उचित है अथवा कितना कठिन या आसान है । मुख्य आधार बन जाते हैं—तत्सम्बन्धी अन्त:करण के लम्बे संस्कार तथा वातावरण में व्याप्त उत्साह उमंग । आध्यात्मिक उत्कर्ष की दिशा में भी यह तथ्य लागू होते हैं । संसार में रहकर आध्यात्मिक प्रगति बड़ी कठिन दुरूह लगती है, पर जागृत तीर्थों के विशिष्ट वातावरण में वही सहज स्वाभाविक लगने लगती है । दस दिवसीय शिविरों में सम्मिलित होने वाले विभिन्न प्रकृति के नये-नये व्यक्तियों को साधना क्षेत्र में तीव्र गति से आगे बढ़ते देखकर इस सिद्धान्त पर बरबस विश्वास करना पड़ता है ।

तीर्थ स्थानों की विशिष्ठता का एक पक्ष यह भी है कि उन क्षेत्रों में सम्पन्न हुई ऐतिहासिक सत्प्रवृत्तियों का वातावरण बहुत समय पीछे तक बना रहता है और वहाँ पहुँचने वाले उससे प्रभावित होते रहते हैं । हल्दी घाटी, चित्तौड़ का सती स्थल, जलियाँ वाला बाग आदि स्थानों पर जो महान घटनाएँ घटीं उनका प्रभाव वहाँ पहुँचने पर पड़े बिना रह नहीं सकता । अयोध्या, मथुरा का महत्त्व राम और कृष्ण की लीला भूमि होने के कारण अभी तक बना हुआ है । अन्यान्य महामानवों से सम्बन्धित अनेक प्रेरणाप्रद तीर्थ जगह-जगह बने हुए हैं । वहाँ श्रद्धापूर्वक अनेक लोग पहुँचते हैं । भगवान बुद्ध के कार्यक्षेत्र से बने हुए स्मारकों के प्रति श्रद्धाव्यक्त करने संसार भर के बौद्ध आते हैं । कावा येरुसलम आदि के सम्बन्ध में भी यही बात है यह सब इतिहास प्रसंग ही नहीं है । इसमें उन महामानवों, अवतारों के प्रचण्ड व्यक्तित्व अभी भी एक विशिष्ठ वातावरण के रूप में विद्यमान हैं ।

शान्तिकुञ्ज एवं ब्रह्म वर्चस् क्षेत्र को युग परिवर्तन के लिए समुचित शक्ति अवतरण की दृष्टि से विशेष रूप से संस्कारित किया गया है । भूमि चयन से लेकर विशेष तप साधनात्मक प्रयोगों, चेतना के आह्वान आकर्षण की विशिष्ट शैलियों से उसे जागृत तीर्थ के रूप में विकसित किया गया है । उसका लाभ वहाँ सत् प्रयोजन से साधना करने वाले हर साधक को सहज ही प्राप्त होता रह सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दस दिवसीय साधना सत्रों में मिलने वाला एक विशेष लाभ और भी है जिसकी महत्ता हर भारतवासी समझता है तथा जिसे पाने के लिए लालायित रहता है । वह है अनुभवी मार्गदर्शन, समर्थ संरक्षण तथा सान्निध्य ।

सत्संग और कुसंग की प्रशंसा निन्दा से शास्त्र भरे पड़े हैं । सत्संग की महिमा का तो इतना भावनापूर्ण उल्लखे है जिसे पढ़ने-सुनने पर अत्युक्ति की गन्ध आती है, पर विचार करने पर उस प्रतिपादन को तथ्यपूर्ण ही माना जायगा । इतिहास में इस बात में असंख्य प्रमाण हैं कि सामान्य मन:स्थिति और परिस्थिति के व्यक्ति किन्हीं महामानवों के सम्पर्क में आकर तेजी से अपने व्यक्ति को समुन्नत और परिष्कृत करते चले गये और प्रगति के उच्च शिखर पर जा पहुँचे । यदि उन्हें वैसा अवसर न मिलता तो सम्भवत: वे उसी स्थिति में पड़े रहते जिससे कि उनके अन्य साथी कुटुम्बी निर्वाह करते हुए जिन्दगी के दिन पूरे कर गये । इसी प्रकार ऐसी घटनाओं की भी कमी नहीं है जिनमें अच्छे, खासे, भले, चंगे मनुष्य कुसंग में फँसे और क्रमश: गिरते-गिरते पतन के भयंकर गर्त में जा गिरे । नई उम्र के किशोर और युवक प्राय: इसी कुचक्र में फँसकर अपना भविष्य अन्धकारमय बनाते देखे गये हैं । आवारागर्दी, गुण्डा गर्दी, उच्छृंखलता, चोरी, नशेबाजी जैसी बुरी आदतों में भले घरों के बालकों को फँसते और अपना सर्वनाश करते बहुधा देखा जाता है । ऐसा क्यों हुआ है, इसका पता लगाने पर यही बात सामने आती है कि कुसंग के फौलादी पंजों में फँसकर वे बाज द्वारा दबोचे हुए कबूतर की तरह विवश मन:स्थिति में कहीं से कहीं घिसटते चले गये हैं ।

नारद के सम्पर्क से ध्रुव, प्रह्लाद, पार्वती, सावित्री आदि अनेक नर-नारियों ने ऐसी प्रेरणाएँ पाई जिनके सहारे वे असामान्य बन गये । बाल्मीकि अंगुलीमाल, अजामिल, अम्बपाली जैसे ओछे जीवन भी किन्हीं प्रतिभाओं के प्रभाव से अपने में पूर्णतया परिवर्तन करके निकृष्ट से उत्कृष्ट बनने में समर्थ हुए । भगवान बुद्ध के सम्पर्क में आकर असंख्यों को देवमानव बनने का अवसर मिला । गाँधीजी की निकटता और घनिष्टता ने कितनों को ही युग पुरुष बनाया । वे अपने को धन्य बनाने और अपने समय को बदलने में सफल हुए । अरस्तू के द्वारा सिकन्दर का, चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त का, समर्थ रामदास द्वारा शिवाजी का, रामकृष्ण परमहंस द्वारा विवेकानन्द का, विरजानन्द द्वारा दयानन्द का निर्माण हुआ था । यों इनमें अपनी मौलिक प्रतिभा भी थी, पर खराद पर चढ़ने से हीरे का मूल्य निखरता है । सत्संगति के अभाव में बहुमूल्य प्रतिभाएँ भी जहाँ की तहाँ पड़ी रहती और समाप्त होती देखी जाती हैं । मोती उत्पन्न करने का श्रेय सीप को ही मिलता है, पर स्वाँति बिन्दु के सम्पर्क का लाभ न मिले तो उसकी सृजन शक्ति निरर्थक ही चली जाती है ।

सत्संग की महत्ता इसी कारण है कि उससे न केवल विचार, सुनने परामर्श पाने का अवसर मिलता है, वरन् व्यक्तित्व के साथ जुड़ी रहने वाली प्राण-ऊर्जा की गर्मी पाने का भी लाभ मिलता है । निकटता से महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान सम्भव होते हैं ।

मैस्मरेजम विज्ञान की सारी उपलब्धियाँ प्राण विद्युत के आदान-प्रदान से ही सम्बन्धित हैं । प्रयोगकर्ता अपनी प्राण विद्युत को बढ़ाने और एकाग्रता करने की साधना करता है । कष्ट निवारण, परिपोषण, मार्ग-दर्शन, परामर्श जैसे उद्देश्यों के लिए इस शक्ति का जिस पर प्रयोग किया जाता है, वह लाभान्वित होता है । इसे माता द्वारा बच्चे को दूध पिलाने अथवा सम्पन्नों द्वारा जरूरत मन्दों की सहायता करने के समतुल्य कहा जा सकता हैं । मनुष्य की संचित सम्पदा से धन, बल, बुद्धि, प्रतिभा आदि की ही तरह एक महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य प्राण शक्ति भी है । इसे अपनी प्रगति और दूसरों की भलाई के लिए अच्छी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है ।

प्राणशक्ति का उपार्जन तो उपयुक्त वातावरण में की गयी उपयुक्त साधनाओं से बड़ी मात्रा में सम्भव है ही, उसका अनुदान, संचार, हस्तांतरण भी अध्यात्म जगत का एक सर्वमान्य तथ्य है । प्रस्तुत १० दिवसीय साधना सत्रों में इन दोनों ही प्रक्रियाओं का लाभ साधकों को मिलता रहा है तथा अब और भी अधिक प्रखरता से मिल सकेगा । व्यक्ति अपनी वृत्तियों को मात्र इतना नियन्त्रित कर ले कि प्राप्त अनुदानों का उपयोग ईश्वरी मर्यादा के अनुकूल ही करे, उन्हें प्रतिकूल दिशा में न जाने दे, तो उसे प्रचुर शक्ति अनुदान मिलते देखा गया है । तीर्थवास, योग साधना, आध्यात्मिक प्रशिक्षण एवं दिव्यानुदान प्राप्त करने का संयुक्त अवसर देने वाले इन दस दिवसीय अल्पावधि शिविरों का लाभ व्यस्त रहने वाले व्यक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं ।

गायत्री तीर्थ और सुसंस्कारिता सम्वर्द्धन

षोडश संस्कारों का भारतीय धर्म परम्परा में अपना विशेष महत्त्व है । रसायनें बनाने में उनके कई बार अग्नि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कार किए जाते हैं। रस, भस्में इसी प्रकार बनती हैं। मनुष्य को सोलह बार संस्कारित करने की अति प्रभावी संस्कार प्रक्रिया से प्राचीन तत्वदर्शी भली प्रकार अवगत थे। अवएव उन्होंने ऐसे निर्धारण किए कि संचित कुसंस्कारों को हटाकर उनके स्थान पर सुसंस्कारों की स्थापना करने की विशेष उपचार प्रक्रिया काम में लाई जाय। इन प्रयोजनों के लिए निर्धारित वेदमन्त्र अग्निहोत्र, देवाह्वान, कर्मकाण्ड, साथ-साथ प्रशिक्षण की समन्वित प्रक्रिया को संस्कार कृत्य कहते हैं। यह मात्र चिह्न पूजा नहीं है। यदि उसे सही शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न किया जा सके तो उस व्यक्ति पर आशाजनक प्रभाव पड़ता है जिसका कि संस्कार कराया गया।

भगवान मनु ने ब्राह्मणत्व संस्कारों की उपलब्धि बताया है। वे कहते हैं, "जन्म से सभी शूद्र उत्पन्न होते हैं। संस्कार प्रक्रिया के आधार पर उनका दूसरा देव जन्म होता है।" आगे चलकर उन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त होने के सन्दर्भ में लिखा है—"यज्ञों और महायज्ञों में अनुप्राणित करने पर यह सामान्य शरीर ही ब्राह्मण बन जाता है।" इसी प्रकार के अनेक कथोपकथन अन्यान्य धर्मशास्त्रों में भरे पड़े हैं। उनका अभिप्राय यह है कि सुसंस्कारिता मात्र शिक्षण, सत्संग और वातावरण का ही प्रतिफल नहीं है। उसे संस्कार उपचार के अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से बनी हुई निर्धारित विधि-व्यवस्था के द्वारा भी विकसित किया जा सकता है।

यह प्रतिपादन मात्र श्रद्धा पर निर्भर परम्परागत प्रथा प्रचलनों पर आधारित नहीं है। षोडश संस्कारों की पद्धति का अपना निजी आधार भी है। इन्जेक्शन से रक्त में औषधि पहुँचाकर उसका चमत्कारी परिणाम देखा जा सकता है तो कोई कारण नहीं कि मन्त्र विज्ञान और अग्निहोत्र विधान के समन्वय से बने आध्यात्मिक उपचार मनुष्य के स्तर में विकासोन्मुख परिवर्तन न ला सकें। अतीत में लम्बी अवधि तक इस प्रयोग परीक्षण को अभाव प्रतिफल की कसौटी पर कसने के उपरान्त यह मान्यता बनी और परम्परा चली कि जन्म से लेकर मरण पर्यन्त देव समाज के प्रत्येक सदस्य को सोलह बार संस्कारित किया जाना चाहिए। वर्णाश्रम व्यवस्था की तरह ही षोडश संस्कारों की प्रथा भी भारतीय धर्म संस्कृति का अविच्छिन्न अंग है।

इन दिनों संस्कार उपचारों का स्वरूप एक प्रकार से लुप्त तिरोहित ही हो गया है। मुण्डन की घरेलू और विवाह की मंत्र परक प्रक्रिया ही देखने को मिलती है। बहुत हुआ तो किसी ने यज्ञोपवीत संस्कार करा लिया। इस उपेक्षा एवं विस्मृति के दो प्रमुख कारण हैं। एक यह कि उनका सही स्वरूप जानने बताने वाले पुरोहित रहे नहीं, जो हैं उन्होंने इस प्रक्रिया को असाधारण रूप से महँगी खर्चीली बनाया और जिस-तिस प्रकार यजमानों का धन हरण करने पर ही ध्यान रखा। जिसकी उपयोगिता प्रतीत न हो, जिसे करने में अकारण बहुत सारा खर्च करना और झंझट उठाना पड़े उसकी आमतौर से उपेक्षा ही की जाने लगती है। संस्कार उपचार की अवहेलना इसी आधार पर होती चली गई।

प्रचलन न रहने, अनुयायी कम मिलने पर भी शाश्वत सत्य और तथ्य अपने स्थान पर बिना किसी समर्थन के भी सुदृढ़ बने रहते हैं। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय आदि आश्वत तथ्य को कोई झूठला नहीं सकता। अनुयायियों का सर्वथा अभाव रहने पर किसी का यह साहस नहीं हो सकता कि इन मर्यादाओं को अनुपयुक्त ठहरा सकें। अपनी विवशता बताकर बच निकलने वाले भी उन्हें अमान्य ठहराने निरर्थक सिद्ध करने का साहस नहीं कर सकते।

भारतीय संस्कृति के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई षोडश संस्कार परम्परा के सम्बन्ध में भी यही बात है। उनका प्रचलन भले ही कारणवश घट गया हो फिर भी जहाँ सांस्कृतिक मूल्यों, प्रतिपादनों, अनुबन्ध, अनुशासनों की चर्चा होगी वहाँ उस महान प्रक्रिया की गरिमा एवं उपयोगिता को झुठलाया न जा सकेगा।

भारतीय समुदाय सुसंस्कारिता की ओर अग्रसर होगा, उस समाज को देव समाज में विकसित होना है। उसके लिए जहाँ प्रज्ञा अभियान जैसे वातावरण में प्रखरता उत्पन्न करने वाली युगान्तरीय चेतना को जन-जन के मन में प्रवेश कराना है, वहाँ सुसंस्कारिता उत्पन्न करने की उस चिर परीक्षित प्रक्रिया का भी काम में लाना है जिसने अतीत को सतयुग स्तर का बनाने में असाधारण भूमिका निभाई।

प्रयत्न यह किया जा रहा है कि इस परिपाटी को पारिवारिक धर्मानुष्ठानों की तरह कार्यान्वित किया जाने लगे। परिवार गोष्ठियों के रूप में इस प्रक्रिया का प्रचलन फिर भूतकाल की तरह घर-घर में चल पड़े। इस आधार पर धार्मिकता का वातावरण बनेगा और जन-जन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्यान सुसंस्कारिता सम्पादन की उपयोगिता समझने एवं उस दिशा में प्रयत्नरत होने के लिए मुड़ेगा। दीखने में सामान्य होते हुए भी यह प्रक्रिया कालान्तर में अति महत्त्वपूर्ण सत्परिणाम उत्पन्न करेगी।

यों षोडश संस्कार कहीं भी हो सकते हैं और उन्हें निर्धारित विधि-विधान के आधार पर कोई भी विज्ञ व्यक्ति भली प्रकार करा सकता है। इतने पर भी उपयुक्त स्थान, वातावरण और उच्चस्तरीय पौरोहित्य की आवश्यकता सदा बनी ही रहेगी। वैसे अवसर जिन्हें मिल सकेंगे वे अधिक लाभान्वित भी होंगे और वैसा सुअवसर पाकर अपने को सौभाग्यशाली भी मानेंगे। कहना न होगा कि इस प्रयोजन के लिए तीर्थ स्थानों की विशेषता असंदिग्ध है।

अभी भी बच्चों के मुण्डन संस्कार प्राय: किसी तीर्थ में ही होते हैं। मृतकों के अस्थि प्रवाह एवं श्राद्ध तर्पण के लिए तीर्थों में ही जाया जाता है। जो बात उपर्युक्त दो संस्कारों के सम्बन्ध में लागू होती है। वस्तुत: उसे सोलहों के लिए समझा जा सकता है। गर्भवती का पुंसवन, बच्चे का नामकरण, अन्न प्राशन, मुण्डन, विद्याराम्भ, यज्ञोपवीत यह सभी संस्कार ऐसे हैं जिन्हें किसी तीर्थ में सम्पन्न करने का अवसर मिले तो घर की अपेक्षा उसे अधिक श्रेयस्कर माना जाना चाहिए। कहना न होगा कि इस दृष्टि से भी गायत्री तीर्थ का स्थान मूर्धन्य है। हिमालय से नि:सृत सप्त धाराओं का सम्मगम, सप्त ऋषियों की तपोभूमि, शिव पार्वती के प्रणय बन्धन एवं गणेश, कार्तिकेय की पुण्यभूमि हरिद्वार में अवस्थित गायत्री तीर्थ की अन्यों की अपेक्षा हर दृष्टि से वरिष्ठ समझा जा सकता है। युग क्रान्ति के अतिरिक्त उसे सुसंस्कारिता सम्पादन जैसे पुण्य क्रान्ति के अतिरिक्त से सुसंस्कारिता सम्पादन जैसे पुण्य प्रयोजन एवं क्रिया-कृत्य की दृष्टि से भी अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।

इस स्थान का दिव्य वातावरण ऐसा है जिसे साधना, स्वाध्याय, सत्संग की दृष्टि से वर्तमान समय में मूर्धन्य माना जाय तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। कर्मकाण्ड की दृष्टि से शास्त्रीय विधि-व्यवस्था की समय जानकारी और विधि व्यवस्था का यहाँ समुचित प्रबन्ध है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात है, गुरुदेव माताजी की उपस्थित में उनके हाथों किये गये यह संस्कार कितने फलप्रद हो सकते हैं, इसका अनुमान लगाने में किसी को संदेह करने की गुंजायश नहीं है। ऐसे संस्कार करने में बालकों को परिवार के बड़े-बूढ़ों के हाथ में थमाया, गोद में बिठाया जाता है। अपने विशाल परिवार के कुलपिता एवं कुलमाता की उपस्थित में जिन्हें अपने बालकों के संस्कार कराने का अवसर मिलेगा, वे बड़भागी ही माने जायेंगे। ऐसे अवसरों पर मिले हुए आशीर्वाद बालकों के लिए भी उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना से भरे-पूरे होंगे।

गायत्री मन्त्र की दीक्षा एवं यज्ञोपवीत संस्कार के लिए बचपन, जवानी, वृद्धावस्था का नर नारी का कोई बन्धन नहीं। जिन्हें इनकी उपयोगिता समझ में आई और आवश्यकता अनुभव हुई हो वे भी गायत्री तीर्थ में आकर इन उपलब्धियों से लाभान्वित हो सकते हैं। ढलती आयु में वानप्रस्थ लेने की धर्म परम्परा निभाने के लिए उस व्रतशीलता का दण्ड धारण यहीं किया जा सकता है। वानप्रस्थ सदा के लिए न लेना हो तो न्यूनतम एक साल के लिए लेने और उसे इच्छानुसार आगे बढ़ाते चलने का संकल्प भी गायत्री तीर्थ में आकर लेने से अधिक सफल हो सकता है।

आदर्श विवाहों के लिए भी गायत्री तीर्थ में व्यवस्था बनाई गई है। आदर्श विवाह से मतलब है—बिना बरात, बिना धूम-धाम, बिना लेन-देन का सतोगुणी विवाह बन्धन। जिनके लिए इसमें उपयुक्तता पड़ती हो, वे अभिभावक वर-कन्याओं को लेकर आ सकते हैं और इस वातावरण में हुए पाणिग्रहण से गृहस्थ जीवन की सुखशान्ति का बीजारोपण कर सकते हैं।

पूर्वजों के श्राद्ध तर्पण का प्रबन्ध भी गायत्री तीर्थ में है। माता-पिता ही नहीं, पितृकुल और मातृकुल की ऊपरी पीढ़ियों के भी श्राद्ध तर्पण यहाँ होते रहेंगे।

इस प्रकार सभी संस्कारों के लिए गायत्री तीर्थ हर दृष्टि से सबसे अधिक उपयुक्त स्थान है। जन्म-दिन मनाने और विवाह दिन मनाने के लिए यहाँ पहुँचा आ सकता है।

धर्मानुष्ठानों, षोडस संस्कारों एवं अन्य कृत्यों के प्रति अश्रद्धा इसलिए उभरी है कि उसके साथ पुरोहितों की गैर जानकरी, आधा-अधूरा कृत्य कराने की जल्दबाजी तथा जिस-तिस बहाने अधिकाधिक पैसा झपट लेने की चालाकी घुल जाने से वे सभी कृत्य उपहासास्पद और अश्रद्धा उत्पन्न करने वाले बन गये। अब जबकि उन सभी आक्षेपों का पूरी तरह निराकरण हो गया तो किसी को कहीं अँगली उठाने की गुंजायश ही नहीं रही। सर्वविदित है कि शान्तिकुञ्ज के, गायत्री संस्थान के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतिहास में जेबकटी तो दूर, कभी प्रत्यक्ष परोक्ष रूप से दान-दक्षिणा की याचना का प्रसंग ही नहीं आता। कोई कुछ स्वेच्छा अनुदान दे तो उसे रोका न जाय मात्र इतना भर विधान है।

गायत्री परिवार विशालकाय है। उसके मूर्धन्य परिजनों को स्वयं ही अपने प्रेरणा स्रोत उद्गम केन्द्र के जुड़ने भर से सन्तोष नहीं करना चाहिए वरन् एक कदम आगे बढ़ाकर करना यह भी चाहिए कि अपने परिवार का, सन्तानों का, मित्र पड़ोसियों का भी इस पावर स्टेशन के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाय। कहना न होगा कि इस आयोजन की पूर्ति के लिए षोडस संस्कारों का प्रयोजन लेकर गायत्री तीर्थ में पहुँचने से बढ़कर और कोई उपयुक्त माध्यम हो नहीं सकता।

संस्कार प्रयोजनों के अतिरिक्त हरिद्वार, कनखल, ऋषीकेश, लक्ष्मण झूला के चारों धामों का तीर्थ मज्जन करने का भी सुयोग साथ-साथ रखा गया है। ठहरने की, भोजन की, वाहनों की ऐसी व्यवस्था बनाई गई है जिसे अन्यत्र की तुलना में कहीं अधिक सस्ती कहा जा सकता है। यात्रा तीर्थाटन करना हो तो भी गायत्री तीर्थ से बढ़कर भावभरा और सुविधाजनक वातावरण मिल सकना दूसरी जगह कदाचित ही कहीं सम्भव हो सके।

तीर्थयात्रा का एक अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजन होता है—किये हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित। तीर्थ स्नान से पाप छूटने की जो मान्यता है उसमें मुख्यतया प्रायश्चित विधान ही आधारभूत कारण है। खाई खोदने का प्रायश्चित एक ही है उसे पाट देने के लिए उतना ही सद्भाव भरा पुरुषार्थ किया जाय जितना कि दुर्भाव लेकर खाई खोदी गई और उसमें गिरने वालों को पीड़ा पहुँचाई गई। इस सन्दर्भ में शास्त्रकारों ने ऐसे निर्धारण किये हैं कि दुष्कर्मों के दण्ड तपश्चर्या के कष्ट सहकर स्वयं ही भुगत लिये जायें। इतना बन पड़ने पर ही उन अवरोधों का अन्त होता है जो आत्मिक प्रगति के लिए किए गये प्रयासों को पग-पग पर असफल बनाते रहते हैं। रंगाई से पूर्व धुलाई करनी पड़ती है। शोधन के उपरान्त ही सफल होते हैं। पापों के प्रायश्चित की प्रक्रिया आत्म साधना का सर्वप्रथम सोपान है। अन्यत्र उसे झुठलाया उपेक्षित किया जाता है किन्तु गायत्री तीर्थ के साधना विधानों में हर साधक के लिए उसके अनुरूप प्रायश्चित्त तप का भी प्रावधान रखा गया है। इस प्रकार सुसंस्कारिता के सम्पादन में जो एक भारी व्यवधान अड़ा रहता है, उसे भी यहाँ दूर कराने पर पूरा ध्यान रखा जाता है।

तीर्थ सेवन की अभिनव आदर्श व्यवस्था

धर्म धारणा को क्रियान्वित करने वाली सभी प्रक्रियाओं में तीर्थयात्रा जितनी सरलतम है उतनी अन्य कोई प्रक्रिया नहीं। प्राचीनकाल में यह प्रक्रिया जितनी सारगर्भित और श्रद्धासिक्त थी उतनी तो अब नहीं रही फिर भी लोकप्रिय धर्मप्रचलनों में इसका स्थान सर्वोपरि है। एक विडम्बना तीर्थयात्रा के साथ यह भी जुड़ गई है कि अन्य परम्पराओं की भाँति यह भी लक्ष्य रहित और निहित स्वार्थों के अधीन हो गई है।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए तीर्थ सेवन की साधना को भी नया जीवन और नया प्रकाश मिलना अभीष्ट है। प्रव्रज्या अभियान का आरम्भ यद्यपि शक्तिपीठों की प्रक्रिया और महा-पुरश्चरण आयोजनों की व्यवस्था के लिए किया गया किन्तु उसका मूल उद्देश्य जन सम्पर्क के माध्यम से धर्म प्रचार ही है।

तीर्थ सेवन को प्राचीनकाल की पुनीत परम्परा के अनुकूल बनाया जाय यह आवश्यक समझा गया और इसके लिए शान्तिकुञ्ज की गतिविधियों में एक नये प्रयोग का नये सिरे से समावेश किया जा रहा है।

इस नई व्यवस्था के अन्तर्गत चलने वाले तीर्थयात्रा सत्र पाँच-पाँच दिन के रहेंगे। प्रातः काल से लेकर दस बजे तक सभी नित्यकर्म, साधना, यज्ञ, प्रशिक्षण, भोजन आदि से निवृत्त हो जायेंगे। दस से छः बजे तक आठ घण्टे में हरिद्वार क्षेत्र में दूर-दूर तक फैले ज्ञात एवं अविज्ञात क्षेत्रों का बस द्वारा दर्शन करा दिया जायेगा न केवल दर्शन वरन् इन तीर्थ स्थानों के इतिहास, इनसे जुड़ी गाथाओं और प्रेरणाओं से भी यात्रियों को लाभान्वित कराया जाता रहेगा।

कई लोग प्रायश्चित करने, बच्चों के संस्कार कराने, मृतकों की आस्थियाँ विसर्जित करने या श्राद्ध तर्पण आदि के उद्देश्य से आते हैं। तीर्थों की वर्तमान स्थिति और वातावरण में यह कार्य विधिवत् तो नहीं हो पाते उल्टे पण्डे पुरोहितों की लूट-खसोट के कारण यात्री खीझ और अश्रद्धा लेकर ही वापस लौटते हैं। शान्तिकुञ्ज की प्रस्तुत तीर्थ सेवन व्यवस्था में उपर्युक्त यह सारे प्रयोजन परम्परा के अनुरूप निःशुल्क पूरे कराये जायेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तिगत समस्याओं के लिए उपयुक्त मार्ग-दर्शन की जो व्यवस्था शान्तिकुञ्ज में सदा से रही है वह तीर्थयात्रियों के लिए भी उपलब्ध रहेगी। साधना और पर्यटन का यह समन्वित अनुभव तीर्थयात्रा के वास्तविक स्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन और लाभ उपलब्ध करायेगा।

एक-एक महीने ब्रह्मवर्चस साधना सत्र, शान्तिकुंज में चलते रहेंगे। गायत्री नगर में कार्यकर्ताओं के परिवारों का निवास निर्वाह एवं प्रशिक्षण क्रम तो पूर्व योजना के अनुरूप चलेगा ही। इसके अलावा खाली स्थान में तीर्थ सेवन की उपयुक्त व्यवस्था बनाने का निश्चय किया गया है। यात्रियों के लिए निवास व्यवस्था के अतिरिक्त सस्ते भोजन, नाई, धोबी, दूध आवश्यक सामान, वाहन आदि के आवश्यक साधन भी वहीं उपलब्ध हों, ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है।

सम्पर्क सूत्र की सघनता-बनाम तीर्थ सेवन सत्र

सैनिक युद्ध मोर्चे पर लड़ते हैं तो सफलता का श्रेय प्रत्यक्षत: उनकी देशभक्ति, सूझबूझ, हिम्मत, वीरता कुशलता, तत्परता आदि को ही दिया जाता है। जीतने पर उन्हीं को पुरस्कृत भी किया जाता है। यह उचित भी है और आवश्यक भी। इतने पर भी एक बात भुलाई नहीं जा, सकती कि उनके प्रशिक्षण, निर्वाह एवं आवश्यक साधन जुटाने में एक ऐसा तंत्र काम करता है, जो प्रत्यक्षत: लड़ता तो नहीं पर सफलता में परोक्ष योगदान उसका भी रहता है।

राशन, वर्दी, बन्दूक, कारतूस, जीप, टेलीफोन चिकित्सा आदि का प्रबन्ध जिस तन्त्र से होता है, उसका स्तर उत्पादन एवं योगदान भी कुछ महत्त्व रखता है। यदि वे स्रोत सूख जायें या अवरुद्ध हो जायें, तो वैसी परिस्थिति आ सकती है जैसी कि विवश होकर एक बार राणाप्रताप हथियार डालने की बात सोचने लगे। युद्ध संचालन तंत्र और सैनिक समुदाय के बीच सम्पर्क सूत्र सघन होते हैं। आदान-प्रदान का क्रम ठीक से चलता है तब बात बनती है। अन्यथा लंगर में भोजन भरा रहने पर भी सम्पर्क सूत्र कट जाने पर सैनिक भूखे रह सकते हैं। कारतूसों की सप्लाई में व्यवधान उत्पन्न होने पर गोदाम में पहाड़ जैसा भरा हुआ माल भी बेकार हो सकता है। इसलिए सैनिकों का पराक्रम संचालकों का साधन भण्डार जितना आवश्यक है उतना ही यह भी अभीष्ट है कि पहुँचाने या पहुँच कर स्वयं लाने में से कोई एक या दोनों ही प्रयत्न जारी रहें।

युग परिवर्तन की सृजन चेतना का सूत्र संचालन इन दिनों शान्तिकुञ्ज से होता है। प्रज्ञा परिजनों का सुविस्तृत परिकर वहाँ से न केवल मार्ग-दर्शन वरन् ऊर्जा अनुदान भी से प्राप्त करता है। दोनों के बीच सप्लाई लाइन का भी समर्थ एवं अनवरुद्ध होना आवश्यक है। यों यह कार्य एक सीमा तक पत्रिकाओं पुस्तिकाओं, और चिट्ठी पत्रों से ही होता रहता है। फिर भी व्यक्तिगत सम्पर्क की महत्ता उपयोगिता कम नहीं होती, क्योंकि प्राण प्रत्यावर्तन के लिए निकटता की आवश्यकता पड़ती है। गाय और बच्चे के बीच कितनी ही आत्मीयता क्यों न हो दूध पीने या पिलाने के लिए उनकी निकटता अनिवार्य रूप से आवश्यक होती है।

ऋषियों के आश्रमों में सिंह गाय एक घाट में पानी पीते थे यह उस क्षेत्र में संव्याप्त प्राण ऊर्जा का चमत्कार ही कहा जा सकता है। परस्पर विरोधी प्रकृति के वे दोनों प्राणी जब आश्रम की प्रभाव-परिधि से बाहर चले जाते थे तो फिर आक्रमण आतंक का सिलसिला चल पड़ता था। तीर्थ परम्परा इसी आधार पर चली है। वहाँ पहुँचने-ठहरने की तीर्थ सेवन प्रक्रिया को पिकनिक-पर्यटन नहीं समझा जाना चाहिए। उन स्थानों की अपनी विशेषता होती है। इसमें प्राकृतिक वातावरण-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं उन आश्रम आरण्यकों का वातावरण, संचालकों का प्राण प्रवाह मिल-जुल कर ऐसी स्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें निवास करने पर तीर्थ सेवन का पुण्य मिलता है।

यह स्वल्प कालीन व्यवस्था है, साधना के लिए देर तक ठहरने की स्थिति जिनकी नहीं होती वे सीमित सम्पर्क साधने के लिए तीर्थ सेवन का स्वल्प कालीन अवसर प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इसमें पर्यटन मनोरंजन तो प्रमुख होता ही है, पर साथ ही वह लाभ भी मिल सकता है जो प्राणवान वातावरण की निकटता में मिलना चाहिए। जलती भट्टी के समीप पहुँचने भर से सर्दी छूटती है। शीतल जल में डुबकी लगाते गर्मी की जलन से छुटकारा मिलता है। तीर्थ सेवन की अवधि स्वल्प काल जितनी होने पर भी उसका कुछ तो लाभ मिलता ही है। तीर्थयात्रा की पुण्य परम्परा में मात्र देवालयों की दर्शन-झाँकी या नदी-सरोवरों का स्थान ही एक मात्र आधार नहीं है। इसे तो कलेवर ही समझा जा सकता है। प्राण ऊर्जा तो उच्चस्तरीय वातावरण एवं महान व्यक्तित्वों के सान्निध्य में रहती है। उसका लाभ जिन्हें जितनी मात्रा में मिल सके समझना चाहिए कि उनकी तीर्थ यात्रा उतनी ही मात्रा में सफल हो गई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञा परिवार के लाखों सदस्यों में से कितने ही तीर्थ यात्रा के लिए पर्यटन के निमित्त कहीं न कहीं जाया करते हैं। अब तीर्थों का स्वरूप भी अत्यधिक जन संख्या बढ़ जाने से बेतरह विकृत हो गया है। घिचपिच से न कहीं ठहरने की जगह, न चलने-फिरने की गुंजायश, महँगाई गन्दगी की भी इस स्थिति में भरमार होनी स्वाभाविक है। ऐसी दशा में खुली हवा में सांस ले सकने योग्य स्थान मात्र उत्तराखण्ड ही रह गया है। जहाँ प्रकृति की शोभा, ऋषियों की तप-परम्परा, अनादि काल में देवताओं का स्वर्ग, प्रदेश का बाहुल्य पाया जाता है। अतएव विचार-शीलों के मन में जब कभी पर्यटन की, तीर्थयात्रा की इच्छाएँ उठती हैं तब वे उत्तराखण्ड की ओर चलने की ही योजना बनाते हैं। इन लोगों में प्रज्ञा परिवार के सदस्यों की संख्या भी कम नहीं होती।

शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में नई विशेष व्यवस्था यह की गई है कि पर्यटन के साथ-साथ तीर्थ सेवन का आंशिक लाभ भी वहाँ ठहर कर उठाया जा सके। प्रातः जप, यज्ञ, प्रज्ञापेय, प्रवचन, भोज से दस-ग्यारह बजे निवृत्त हुआ जा सकता है। इसके बाद सायंकाल तक स्नान, दर्शन परिभ्रमण के लिये जहाँ मन हो वहाँ जाया जा सकता है। रात्रि को शान्तिकुञ्ज लौट कर प्रज्ञा पुराण, कथा एवं कीर्तन-संगीत का प्रेरणाप्रद सत्संग लाभ लिया जा सकता है। यों उत्तराखण्ड के चार बड़े धाम बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री हैं। पर छोटे चार धाम हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेश लक्ष्मण झूला भी हैं। इन्हें देखने के लिए तीन दिन पर्याप्त होने चाहिए। साथ ही तीर्थ सेवन का तीन दिवसीय कार्यक्रम भी १०८ माला के छोटे अनुष्ठान के रूप में सम्पन्न किया जा सकता है।

उपरोक्त तीर्थ सेवन योजना को भी प्रज्ञा परिजनों के लिए सम्पर्क सूत्र स्थापित करने की एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित योजना का अंग समझा जा सकता है। कुछ समय पूर्व आश्रम में मात्र शिवरात्रियों के लिए ही स्थान था। पर अब तीर्थ सेवन की तीन दिवसीय साधना करने वालों के लिए भी सुविधा व्यवस्था बन गई है। उसमें यात्रा मनोरंजन के साथ तीर्थ सेवन को पुरातन परम्परा भी सधती है और दुहरा लाभ मिलता है।

तीन दिवसीय तीर्थ सेवन सत्र के लिए तिथियाँ निर्धारित हैं जिन्हें जब सुविधा हो आ सकते हैं पर पूर्ण स्वीकृति लेकर स्थान सुरक्षित कराना हर किसी को आवश्यक है, अन्यथा अव्यवस्था, अराजकता, अनुशासनहीनता जैसी स्थिति बन जायगी और सौ का स्थान होने पर हजार आ घुसेंगे और नये प्रकार का विग्रह उठ खड़ा होगा।

तीर्थ सेवन सत्रों में स्त्री बच्चों समेत भी आया जा सकता है। बच्चों के नामकरण, अन्न प्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, दीक्षा, यज्ञोपवीत जैसे संस्कार भी यहाँ करा देने की व्यवस्था है। तीर्थों में श्राद्ध-तर्पण करने की परम्परा है, उसका प्रबन्ध भी यहाँ है। जन्म-दिवसोत्सव, विवाह-दिवसोत्सव मनाने के लिए कितने ही लोग यहाँ आते रहते हैं। अच्छा हो वे तीन दिन ठहरें और विधिवत् तीर्थ सेवन सत्र की साधना शिक्षा से लाभ उठायें।

तीर्थ सेवन की तीन दिवसीय उपर्युक्त परम्परा बसन्त ८३ से आरम्भ की गई है। उसके लिए स्थान भोजनालय आदि के आवश्यक साधन भी जुटाये गये हैं। इसके पीछे एक ही प्रमुख उद्देश्य है प्रज्ञा परिवार के परिजन आत्म-निर्माण, परिवार-निर्माण एवं समाज-निर्माण के प्रयास में अधिक सफलता प्रदान करने वाली प्राण ऊर्जा का विशेष लाभ अर्जित कर सकें। इसमें उद्गम और उपभोक्ता के बीच के आदान-प्रदान सूत्र को अधिक समर्थ होने का अवसर मिलेगा।

गायत्री तीर्थ के समग्र स्वास्थ्य संवर्द्धन सत्र

मनुष्य की आकांक्षा अनुकूल परिस्थितियों तथा सुविधाजनक समृद्धियों के लिए रहती है। इसके लिए प्रबल पुरुषार्थ, दूरदर्शी चिन्तन एवं अटूट संकल्प की आवश्यकता होती है। यह तीनों ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से बन पड़ते हैं। उन्हीं के द्वारा कठिनाइयों का निराकरण और वैभव-विभूतियों की उपलब्धियों का अर्जन सम्भव होता है। इन क्रिया-कलापों को स्वस्थ शरीर ही कर पाते हैं। यदि वे रुग्णता से ग्रसित हों तो कुछ कर सकना तो दूर पीड़ा सहते, धन खर्च करते, दूसरों का सहारा ताकते, भारभूत होकर जीते और ज्यों-त्यों करके जिंदगी के दिन पूरा करते हैं। इसलिए "पहला सुख निरोगी काया" माना गया है। आरोग्य को ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल माना गया है। मनुष्य की वही पहली और प्रमुख आवश्यकता है।

आरोग्य का अर्थ केवल स्थूल शरीर का रोग मुक्त होना ही नहीं है। सूक्ष्म शरीर की चिन्तन एवं कारण शरीर की भाव मान्यता भी सीधी और सही होनी चाहिए। तीनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शरीर मिलकर ही एक समग्र व्यक्तित्व बनता है और तीनों के निरोग होने पर ही समग्र स्वास्थ्य बन पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में ही मनुष्य कुछ महत्त्वपूर्ण पौरुष कर सकने एवम् कहने लायक सफलतायें प्राप्त कर सकने की स्थिति में होता है। इसलिए किसी महान लक्ष्य का निर्धारण करते हुए यह भी देखना पड़ता है कि अपने तीनों शरीर निरोग हैं या नहीं। इनमें से एक भी रुग्ण हो तो समझना चाहिए कि अपनी क्षमता अधूरी एवम् क्षतिग्रस्त है। उस स्थिति में ऐसा कुछ बन न पड़ेगा जिसे कहने लायक माना और कहा जा सके।

स्थूल शरीर में ज्वर, खाँसी जैसी व्यथायें सूक्ष्म शरीर, मस्तिष्क में उद्विग्नता, सही चिन्तन की अक्षमता विभिन्न मनोविकारों के रूप में दृष्टिगोचर होती है, कारण शरीर के रुग्ण होने पर भावना, मान्यता आकांक्षा, विचारणा, भ्रान्त स्तर की हो जाती है। इन तीनों क्षेत्रों में एक भी गड़बड़ाने लगे तो व्यक्तित्व अधूरा रह जाता है। उस स्थिति में मनुष्य अपने लिए और दूसरों के लिए भारभूत कष्टदायक होकर रहने लगता है। विभूतियों का अर्जन तो संभव ही नहीं रहता। अस्तु, विज्ञजन सर्वप्रथम इस बात का प्रयत्न करते हैं कि वे समग्र स्वास्थ्य सम्पादित करें। तीनों में से किसी में भी आधि-व्याधि घुस गयी हो, तो उसके निष्कासन के लिए प्रबल प्रयत्न करें। किन्तु बहुत से आलसी, प्रमादी ऐसे भी होते हैं कि जहाँ-तहाँ से टूटी हुई गाड़ी पर ही सवारी करते हैं। ऐसे लोग लाभ कम और हानि अधिक उठाते हैं।

हमें यह जानना चाहिए कि तीनों शरीर आपस में गूँथे हुए हैं। उनमें से एक भी गड़बड़ाने लगे तो शेष दो की भी स्थिति डगमगाने लगती है। जड़, तना और पल्लव मिलकर वृक्ष बनता है। इनमें से एक क्षेत्र भी अस्त-व्यस्त हो तो पेड़ की शोभा और उपयोगिता घट जायेगी। दृश्यमान स्थूल शरीर पल्लवों की तरह है जिस पर फल फूल आते हैं और शोभा सुषमा दीख पड़ती है। सूक्ष्म शरीर, मन, मस्तिष्क, चिंतन, तना है, जिस पर पेड़ का सब बोझ लदा होता है। कारण शरीर जड़ को समझा जाना चाहिए जो जमीन में ढका रहता है और इससे खाद, पानी, पेड के हर अंग-अवयव तक सरसता-सुन्दरता पहुँचाती है और प्रगति की समस्त आवश्यकताएँ पूरी करती हैं। इन तीनों में से एक का भी कम महत्त्व नहीं है। वरन् यों कहना चाहिए कि तीनों ही एक-दूसरे पर पूरी तरह निर्भर हैं। रुग्णता किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करे तो उसे बेकार-बर्बाद करेगी ही, शेष दो को लुंज-पुंज कर देगी।

आमतौर से दृश्यमान स्थूल शरीर की दुर्बलता को, रुग्णता को ही बीमारी गिना जाता है और उसका हकीम-डॉक्टरों से इलाज कराया जाता है। किन्तु देखा यह गया है कि जो एक बार बीमारी की चपेट में आ गया, वह सहज ही अच्छा नहीं होता। एक रोग घटता है, तो दूसरा नया उपज पड़ता है। ऐलौपेथी, होम्योपेथी, आयुर्वेद, तिब्बी, यूनानी किसी का द्वार खटखटाते रहा जाय, वे आँखमिचौनी का खेल ही खेलती रहती हैं। चोट लगने जैसे स्थानीय या आकस्मिक रोग ही काट-छाँट करने पर अच्छे हो जाते हैं। पर जिनकी जड़ें भीतर हैं, वे एक जगह से दबते हैं, तो दूसरे स्थान पर उभर कर आते हैं। क्योंकि उनकी जड़ें सूक्ष्म शरीर में होती हैं।

वैज्ञानिक अनुसंधानों ने अब यह तथ्य उजागर कर दिये हैं कि मनोविकार ही शारीरिक रोगों के निमित्त कारण हैं। आवेश, उद्वेग, आक्रोश, चिन्ता, भय, निराशा, आशंका जैसी मानसिक विकृतियाँ तथा पाप, अनाचार, अपराध जैसी दुष्प्रवृत्तियाँ पलती तो मनः क्षेत्र में हैं, पर उनका प्रभाव शरीर के भीतरी अवयवों पर पड़ता है और वे तब तक रोगी बने रहते हैं, जब तक कि मनोविकारी से पीछा नहीं छूटता। मनःक्षेत्र की रुग्णता के मोटे कारण प्रतिकूल परिस्थितियाँ तथा सोचने का सही तरीका न अपनाया जाना होता है। किन्तु और भी अधिक बारीकी से देखने पर मानवी गरिमा के प्रतिकूल कारण शरीर में जब भ्रष्ट मान्यताएँ और दुष्ट आकांक्षाएँ जड़ जमा लेती हैं, तो अपराध अनाचारों के प्रति ललक उठती रहती है। कुकर्मों में रस आने लगता है। बुद्धि को निकृष्टता का चस्का पड़ जाता है और वह उसी प्रकार के ताने-बाने बुनने लगती है। यह कारण शरीर की रुग्णता हुई इसके रहते मन स्वस्थ नहीं रह सकता उसमें मनोविकार उबलते रहते हैं, अपने प्रभाव से काया को दुर्बल एवं रुग्ण बना देते हैं।

शरीरगत रोगों के लिए दवा-दारू का प्रयोग होता है। आहार-विहार की पथ्य-परिचर्या का प्रयोग किया जाता है। हकीम-डॉक्टरों की जानकारी इस एक तिहाई भाग की खींचतान करने तक ही सीमित है। वे नहीं जानते कि मन को नीरोग करने के लिए मानसिक परिष्कार कैसे किया जाय। इससे भी अधिक गहराई भावना क्षेत्र की है। अशुभ आकांक्षाओं, आदतों को कैसे उलटा जाय। उस क्षेत्र में भरी पाप-विषाक्तता का निष्कासन कैसे हो ? जब तक यह प्रयत्न नहीं किया जाय तब तक संचित कुसंस्कार बलिष्ठ ही बने रहते हैं। पक्तियाँ तोड़ लेने पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जड़े मजबूत हों तो ही टहनियाँ, नई पत्तियाँ उगा पाती हैं। उसी प्रकार यदि कुसंस्कारी अन्तःकरण उलटा न जाय तो, मानसिक रुग्णता से पीछा नहीं छूटने देता। इसके बिना शरीर को सर्वथा रोगमुक्त होना कठिन है।

सभी जानते हैं कि चेतना का शरीर पर आधिपत्य है। प्राण पलायन कर चलें तो अच्छा खासा युवा और सुन्दर शरीर सड़ने लगता है और फिर वह स्वयं उठकर अपनी अन्त्येष्टि करने तक की स्थिति में नहीं रहता। यह कार्य भी दूसरों को ही करना पड़ता है। हितैषी सम्बन्धी तक उसे घर में देर तक नहीं रहने देते और छूने तक में कतराते हैं। इससे स्पष्ट है कि चेतना, मन और अन्तःकरण का समन्वय ही प्रधान है। उन्हीं के आदेश का शरीर पालन करता है। कोई महत्त्वपूर्ण काम बन पड़ते हैं तो वे शरीर द्वारा किये गये दीखने पर भी वस्तुतः विचारणा और भावना क्षेत्र द्वारा किये हुए ही होते हैं। मनोबल, संकल्प और संस्कार इन भीतरी क्षेत्रों की ही चमत्कारी क्षमताएँ हैं।

इन सब तथ्यों को देखते हुए तीनों शरीरों का समग्र स्वास्थ्य सम्पादन ही वह वैभव है, जिसे असंख्य सफलताओं का स्रोत कहा जा सकता है। प्रयास इसी का होना चाहिए। समग्रता ही अभीष्ट है। एक अवयव पर ध्यान केन्द्रित करना और शेष को छोड़ देना ऐसा ही है जैसा अन्न, जल और हवा में से एक को सब कुछ मानना शेष दो को छोड़ देना। कागज, स्याही और कलम में से एक भी कम हो, तो लेखन कहाँ होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की समन्वित चिकित्सा न की जाय तो, समग्र स्वास्थ्य का आनन्द न मिल सकेगा और इसके बिना समर्थ पुरुषार्थ द्वारा मिलने वाली सफलताओं से वंचित ही रहना पड़ेगा।

आद्य शंकराचार्य को १६ वर्ष की आयु में भगन्दर का फोड़ा हुआ था। वह १६ वर्ष तक वैसे ही चलता रहा और ३२ वर्ष की आयु में उसी कारण उनकी मृत्यु हो गई। इतनी लम्बी बीमारी में वे इतना, काम करते रहे उतना ३२० वर्ष में भी दूसरे नहीं कर सके। ईसामसीह मात्र ३३ वर्ष जीवित रहे। विवेकानन्द ने कुल ३६ वर्ष की आयु पाई । उनके सूक्ष्म और कारण शरीर बलिष्ठ थे, इसलिए इतने कम समय में शारीरिक असुविधाएँ सहते हुए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने में समर्थ हुए। हममें से किसी का शरीर दुर्बल या रुग्ण रहे तो भी भीतरी बलिष्ठता के रहते असाधारण क्षमता का धनी रहा जा सकता है। सन्त विनोबा को जीवन के उत्तरार्द्ध में पेट में अल्सर की शिकायत २० वर्षों तक रही, तो भी उनकी भूदान पदयात्रा निरन्तर चलती रही।

शरीर की संरचना ऐसी है कि यदि आहार-विहार का अन्य पशुओं जितना भी संयम-अनुशासन रखा जा सके, तो बीमार पड़ने की नौबत न आये। वस्तुतः होता यह है कि अन्तरात्मा सौम्य-सात्विक प्रवृतियाँ अपनाने की प्रेरणा देता है और मनुष्य कुमार्ग अपनाता है। इस प्रकार भीतर दो व्यक्तित्व बन जाते हैं और वे दोनों दो साँडों की तरह परस्पर टकराते रहते हैं। उस मल्ल युद्ध में शरीर रूपी खेत क्षेत्र का देवालय बनाना इसी क्षेत्र में उपयुक्त समझा गया। यह शान्तिकुञ्ज के एक विशाल कक्ष में अवस्थित है। उसमें विद्यमान तीर्थों की झाँकी भी इसी में होती है। भाव श्रद्धा वाले दर्शक इस छोटी प्रतिमा में ही समूचे उत्तराखण्ड क्षेत्र का दर्शन भली प्रकार कर सकते हैं।

शरीर के साथ प्राण भी होने चाहिए। दर्शन के साथ गतिविधियाँ भी जुड़ी रहनी चाहिए। शांतिकुञ्ज के प्रयास और कार्यक्रम यही हैं। इस आश्रम में क्या होता है और क्या होने जा रहा है, इस पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात किया जाय, तो प्रतीत होगा कि न केवल हिमालय का दृश्यमान शरीर ही यहाँ हैं, वरन् वे सारी गतिविधियाँ भी चलती हैं, जो पुरातन काल में हिमालयवासी ऋषियों ने अपनायी थीं और जिनका लाभ प्राप्त करके समस्त संसार, समस्त जन समुदाय कृतकृत्य हुआ था।

महाप्रज्ञा गायत्री के दृष्टि विश्वामित्र का यहाँ मन्दिर है। हर आश्रमवासी को अनिवार्यतः गायत्री उपासना करनी पड़ती है। बाहर से सैकड़ों साधक निरन्तर आते और गायत्री अनुष्ठान समेत 'समग्र स्वास्थ्य संवर्द्धन' की साधना करते हैं।

याज्ञवल्क्य के यज्ञ विज्ञान का यहाँ नौ कुण्डी यज्ञशाला में निरन्तर यज्ञ होता है और उसमें सभी साधक भाग लेते हैं। आगन्तुकों को यज्ञ के माध्यम से शारीरिक, मानसिक और आत्मिक व्याधियों के निवारण की विधि बताई और कराई जाती है।

चरक की वनौषधि शोध को यहाँ आगे बढ़ाया गया है। शान्तिकुञ्ज और ब्रह्मवर्चस् में दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ लगायी गयी हैं और एक साधन सम्पन्न प्रयोगशाला द्वारा उनमें से प्रत्येक का परीक्षण होता रहता है, ताकि उनकी प्रामाणिकता पर कोई अँगुली न उठा सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पातञ्जलि और कणाद की योगाभ्यास साधना का यहाँ अभिनव संस्करण देखा जा सकता है। हर साधक का शारीरिक, मानसिक और अन्तःकरण परीक्षण कीमती मशीनों और एम. डी., एम. एस. स्तर के सुयोग्य डॉक्टरों द्वारा होता है। साधना तथा उपचार इसी आधार पर चलते हैं। दस-दस दिन के 'समग्र स्वास्थ्य संवर्द्धन सत्र' इसी प्रयोजन के लिए चलते हैं और उनके द्वारा निरन्तर बड़ी संख्या में आगन्तुक लाभान्वित होते हैं।

व्यास परम्परा के अनुरूप शान्तिकुञ्ज में युग साहित्य का सृजन, मुद्रण एवम् प्रकाशन क्रम निरन्तर चलता है। आर्ष ग्रन्थों का—वेद, उपनिषद, दर्शन आदि का अनुवाद प्रकाशन पहले हो चुका है। अब जीवन और समाज के हर पक्ष पर प्रकाश डालने वाला सस्ता साहित्य विनिर्मित किया जा रहा है और उनका अनुवाद हर भाषा में हो रहा है ।

जमदग्नि परम्परा में जन साधारण को संस्कारवान् बनाने का प्रचलन था। शान्तिकुञ्ज में षोडश संस्कार कराने की व्यवस्था है। यहाँ उपनयन होते हैं, पितरों का श्राद्ध-तर्पण भी होता है, बिना खर्च के विवाह भी बड़ी संख्या में हर साल होते हैं। जन्मदिन और विवाहदिन मनाने भी प्रज्ञा परिजन बड़ी संख्या में यहाँ आते रहते हैं।

परशुराम के अनुरूप विचार-क्रान्ति अभियान को व्यापक बनाया जा रहा है। कुरीतियों, दुष्प्रवृत्तियों, अवांछनीयताओं, मूढ़मान्यताओं, अनीतियों को जड़मूल से उखाड़ने के लिए लोक मानस को झकझोरा जा रहा है और जो उचित है, उसी को अपनाने के लिए सहमत किया जा रहा है। यह ब्रेजन वाशिंग बड़ा ही प्रभावशाली और सफल सिद्ध हो रहा है।

नारद परम्परा में संगीत और प्रवचन परामर्श का युग शिल्पी विद्यालय चलता है और प्रशिक्षित परिव्राजक जीप-टोलियों द्वारा देशभर में हर वर्ष हजारों प्रज्ञा आयोजन सम्पन्न करते हैं।

उद्दालक परम्परा में बालकों का गुरुकुल और अनुसूया परम्परा में महिलाओं का प्रशिक्षण क्रमबद्ध रूप से चलता है और छात्राओं की पुरातन परम्परा को जीवन्त रखा जाता है। छात्रा महिलाएँ और बालिकाएँ ही मिल-जुलकर यहाँ के अन्न क्षेत्र का सुसंचालन करती हैं।

बुद्ध परम्परा के अनुरूप यहाँ के कार्यकर्ता विदेशों में भी धर्म परम्परा को प्रतिष्ठित एवं अग्रगामी बनाने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने भारत से बाहर चौहत्तर देशों में मिशन की विचारधारा में लाखों लोगों को दीक्षित एवं समर्थक बनाया है।

पुरातन काल की समुद्र मंथन योजना के अनुरूप अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का भारी शोध प्रयास चला है। यह समस्त संसार में पहला और अनोखा प्रयास है। ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान इसी निमित्त बना है, जिसमें लाखों रुपये के शोध-उपकरण एवं बहुमूल्य यंत्र हैं। इनके द्वारा जो निष्कर्ष निकलते जा रहे हैं, उन्हें समुद्र मंथन द्वारा निकली रत्न-राशि के समतुल्य होने का अनुमान लगाया जाए, तो कोई अत्युक्ति न होगी। यज्ञ विज्ञान की, विभिन्न साधनाओं की, परिणति की शोध इस प्रयास के अन्तर्गत अतीव गम्भीरतापूर्वक हो रही है।

शंकराचार्य परम्परा के अन्तर्गत देश के कोने-कोने पर चार धाम स्थापित किए गये थे। समर्थ गुरु रामदास के प्रयास से महाराष्ट्र के महावीर मन्दिरों के निर्माण की श्रृंखला चली थी। शान्तिकुञ्ज के तत्वावधान में देश के कोने-कोने में चौबीस सौ शक्तिपीठ तथा बारह हजार स्वाध्याय मंडल प्रज्ञा-संस्थानों का निर्माण हुआ है, यह स्थापना भी अभूतपूर्व है।

सूत-शौनिक परम्परा के अनुसार प्रज्ञा-पुराण का नया निर्माण हुआ है। इसके अभी तीन खण्ड छपे हैं, हर वर्ष एक नया खण्ड प्रकाशित करने की योजना है। इसकी कथाएँ इतनी लोकप्रिय हुई हैं, जिन्होंने अन्य सभी कथाओं को पीछे छोड़ दिया है।

भूतकाल में कितने ही आरण्यक और विश्वविद्यालय धर्म-प्रचारकों को प्रशिक्षित करने के लिए बने थे, अब वह कार्य अपनी सीमित सामर्थ्य के कारण अकेला हरिद्वार का शान्तिकुञ्ज कर रहा है। उसमें चौबीस हजार से अधिक प्रज्ञापुत्र धर्मप्रचार का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में युगान्तरीय चेतना का अलख जगाते, आलोक वितरण करते हुए छोटे-बड़े आयोजन निरन्तर करते रहते हैं ।

ऋषि कणाद अपनी आश्रम व्यवस्था खेतों में छूटे हुए अन्न से करते थे। शान्तिकुञ्ज गायत्री-तीर्थ की यह व्यवस्था महिलाओं द्वारा एक मुट्ठी अन्न एवं पुरुषों द्वारा दस पैसा नित्य देने के आधार पर एकत्रित हुए राशि से ही चलती है।

देवात्मा हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र की प्रतीक-प्रतिमा रूप में विनिर्मित यह आश्रम अद्भुत् एवं अनुपम है। हिमालय के अंचल में पले ऋषियों ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन-जिन सत्प्रवृत्तियों को सुविस्तृत किया था और जो आत्मबल एकत्रित किया था, उसका छोटा नमूना इस आश्रम में पहुँचकर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। वशिष्ठ-अरुन्धती की तरह यहाँ एक ऋषि युग्म का प्रयास इस योजना का सूत्र-संचालन करता है। अब तक की प्रगति को देखने-सुनने वाले आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

तीर्थ सेवन शृंखला के नये निर्धारण

गंगा का उद्गम गोमुख-गंगोत्री है, यमुना का यमुनोत्री, नर्मदा का अमरकंटक। जो उन सब नदियों का महात्म्य समझते हैं, वे इस प्रयास में रहते हैं कि उसके उद्गम तक पहुँचें और दर्शन-अवगाहन का लाभ लें। कृष्ण भक्तों के लिए मथुरा, राम भक्तों के लिए अयोध्या, बौद्धों के लिए बोध-गया का महत्त्व, मक्का और येरुसलम जैसा ही है। उद्गमों के साथ भावनात्मक सम्बन्ध ही नहीं होते हैं, वहाँ के वातावरण में कुछ अदृश्य विशिष्टता भी रहती है। ऐसी विशिष्टता जिसके सहारे, भावनाओं को उल्लास और विचारणाओं को प्रोत्साहन-परितोष मिल सके।

युगान्तरीय चेतना की ज्ञान गंगा का इन दिनों जो प्रवाह उमंगता है, सूत्र संचालन होता है । उस उद्गम का नाम शान्तिकुञ्ज गायत्री है। युग परिवर्तन की पृष्ठभूमि बनाने वाली भावनाएँ, प्रेरणाएँ और निर्धारणाएँ इन दिनों इसी केन्द्र से निःसृत होती हैं। स्वाभाविक है कि प्रज्ञा-परिजनों का सुविस्तृत समुदाय, इसके साथ बार-बार सान्निध्य साधने का प्रयास करे। भट्ठी के निकट पहुँचने पर शीत निवारण और ऊष्मा-उत्तेजन का अभिवर्द्धन हुए बिना रहता नहीं। गायत्री तीर्थ के साथ कुछ ऐसे ही उच्चस्तरीय तत्त्व जुड़े हुए हैं, जो सम्पर्क में आने वालों को अनुप्राणित किए बिना रहते नहीं। एक बार गंगा स्नान कर लेने पर भी बार-बार स्नान करने की इच्छा बनी रहती है। एक बार देवदर्शन से समाधान नहीं होता। बार-बार झाँकी देखने और नमन् की अभ्यर्थना हेतु मन मचलता ही रहता है। गायत्री तीर्थ में पहुँचने पर जब अजनबी लोग भी अधिक समय लेकर आने और अधिक समय ठहरने की भावना व्यक्त करते हैं, तो कोई कारण नहीं कि प्रज्ञा-परिजनों के मन में वैसी आकांक्षा न उभरे। वे जिस-तिस बहाने वहाँ पहुँचने और कुछ ऐसा साथ लेकर वापस लौटने का विचार करते हैं, जो हर दृष्टि से उनके लिए श्रेयस्कर ही सिद्ध हो सके।

एक-एक महीने के कल्प साधना सत्र शान्तिकुञ्ज में लगातार चलते हैं, उनमें से किसी में भी आया जा सकता है। व्यस्त लोगों के लिए नौ दिन के मिनी कल्प साधना सत्र भी हैं। इन दिनों में अन्तर्मुखी होकर एक कमरे में अकेले रहना पड़ता है। उनमें विशुद्ध रूप से साधनात्मक, स्वाध्याय-सत्संग-परायण ऐसे कार्यक्रम हैं, जिनमें मण्डली समेत आने में ध्यान बँटता है, विक्षेप पड़ता है। इनमें बच्चों समेत आने का भी निषेध है। साधना अवधि में परिभ्रमण पर भी प्रतिबन्ध है, मात्र सायं काल गंगा-दर्शन एवं पीने के लिए गंगाजल लाने की ही छूट मिलती है।

तीर्थ सेवन परिभ्रमण की दृष्टि से चार दिन वाले सत्र ही उपयुक्त पड़ते हैं, इनमें बच्चों समेत आने की छूट है। इनकी सुविधा का लाभ घर परिवार के अन्य ऐसे लोग भी ले सकते हैं, जिन्हें कल्प साधना सत्रों में आने की न तो छूट है, न सुविधा। चार दिन के तीर्थ सत्रों में विशेष सुविधा बालकों के संस्कार कराने की है, उसे उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त वातारण में उपयुक्त हाथों कराने का यह अलभ्य अवसर है।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि देव संस्कृति के अनुयायी षोडस संस्कारों का महत्त्व भूलते जा रहे हैं। वस्तुतः यह एक अति महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया एवं विधि-व्यवस्था है, जिसमें मनुष्य पर सोलह बार सशक्त सम्पुट चढ़ाये जाते हैं और उस पर ओजस् तेजस् एवं वर्चस् की त्रिविधि विभूतियों का गहरा "टैम्पर" चढ़ाया जाता है। औजारों की धार पर टैम्पर चढ़ाते हैं, फलतः घिसाव कम पड़ता है । निब की नोक पर सोने का टैम्पर चढ़ा देने से वह बहुत दिन चलती है । अभ्रक आदि औषधियों को बार-बार जलाकर पुट दिये जाते हैं। इस तरह शतपुटी, सहस्र पुटी होने का भारी महत्त्व है। इसी प्रकार षोडस संस्कारों के समय होने वाले भाव भरे प्रशिक्षण के अतिरिक्त निर्धारित कृत्य-कर्मकाण्डों के द्वारा पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभावों का भी लाभ मिलता है। एक समय था, जब जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त हर भारतीय धर्मानुयायी को सोलह बार दिव्य ऊर्जा से तपाया-पकाया जाता था और उसका प्रतिफल देवत्व की उपलब्धि के रूप में हाथों-हाथ मिलता था।

प्राचीनकाल में इस भूमि पर जन्मने, पलने, फलने-फूलने वाले नर रत्नों-कल्पवृक्षों का जो असाधारण उद्भव विस्तार दीखता था, उसका अन्यान्य कारणों के साथ एक बड़ा-सा कारण यह भी था कि यहाँ संस्कार परम्परा को परिपूर्ण मान्यता प्राप्त थी। उसे चिह्न-पूजा के रूप में नहीं वरन् परिपूर्ण गम्भीरता और भावनापूर्वक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रियान्वित किया जाता था। लकीर पीटने की तरह यह परम्परा चल तो आज भी रही है पर उसमें से भावना भाग पूरी तरह विलुप्त हो गया, मात्र कर्मकाण्ड शेष रहा है। इससे कोई अभीष्ट प्रतिफल नहीं मिल पा रहा।

संस्कार कर्मकाण्डों के कार्य-विधान एवं मन्त्र उपचार छपी पुस्तकों में उपलब्ध हैं। उसे कोई भी शुद्ध उच्चारण कर सकने जितनी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति थोड़ा-सा प्रशिक्षण प्राप्त करके सम्पन्न कर सकता है। किन्तु बात लकीर पीटने भर से बनती नहीं, उसे सम्पन्न करने के लिए विद्वान नहीं ऐसे प्राणवानों की आवश्यकता पड़ती है, जो साधना तपश्चर्या से उपार्जित अपनी प्राण विद्युत के सहारे मन्त्र को मूर्तिमान बना सकें और निर्धारण कर्मकाण्ड के सहारे प्रभावोत्पादक क्षमता द्वारा यजमान को ठोस लाभ प्रदान कर सकें।

प्रज्ञा परिजनों की वर्तमान तथा अगली पीढ़ी के षोडस संस्कार शान्तिकुञ्ज गायत्री तीर्थ में होने लगे, तो यह बहुत ही उत्तम परम्परा होगी। सब न बन पड़े तो जितने सम्भव हों उतनों को ही सही सही रीति से अपनाया जा सकता है। नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, दीक्षायज्ञोपवीत यह पाँच संस्कार बालकों के हैं। इनमें से जब, जिनके जो संस्कार होने हों और हरिद्वार आने का तुक बैठता हो तो उसका ताना-बाना बुनना चाहिए। वयस्कों के जन्मोत्सव भी ऐसे हैं जिन्हें मनाने के लिए हरिद्वार एकाकी या पत्नी समेत आया जा सकता है। मनुष्य जन्म की वरिष्ठता और पारिवारिक जीवन की सफलता के लिए धार्मिक कर्म-काण्ड समर्थों का आशीर्वाद और सामयिक समस्या का समाधान, यह तीनों ही प्रयोजन एक ही समय में सधते हैं, तो थोड़ा समय निकालकर एवं किराया खर्च करके भी उसे किया जाना चाहिए।

उपेक्षित वानप्रस्थ परम्परा के पुनर्जीवन का ठीक यही समय है। कोई समय था जब भारत इस भू-लोक का राजमुकुट जगत गुरु, चक्रवर्ती एवं संरक्षक सहायक के रूप में सर्वत्र सम्मान पाता था। इस भूमि को 'स्वर्गादपि गरीयसी' और निवासियों को धरती का देवता माना जाता था। इसका प्रधान कारण था—वानप्रस्थ परम्परा का प्रचलन। हर व्यक्ति अपना आधा जीवन सांसारिक प्रयोजनों के लिए और आधा परमार्थ, आत्मकल्याण के लिए विभाजित करता था। अधेड़ होते-होते घर परिवार की जिम्मेदारियाँ दूसरे समर्थों के कंधों पर रखकर स्वयं वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे। अनुभवी, कामनाओं से मुक्त, सुयोग्य व्यक्ति यदि परमार्थ भावना से लोक सेवा का व्रत लें तो वे सामान्य कर्मचारियों की तुलना में कहीं अधिक कार्य कर सकते हैं। उनके प्रभाव से अनेक को सुधरने, सँभलने का अवसर मिल सकता है।

यही थी वह खदान जिससे इस देश में अगणित, सुयोग्य, लोक-सेवी निरन्तर निकलने रहते थे। उनकी सेवा-साधना के फलस्वरूप देश-विदेश में प्रगति के अगणित सरंजाम खड़े होते रहते थे। देव संस्कृति के पुनरुत्थान की इस प्रभात बेला में वानप्रस्थ परम्परा को फिर से अपनाने का क्रम चलेगा। उसका शुभारम्भ प्रज्ञा परिजनों के परिकर से ही चलेगा। जिन्हें वानप्रस्थ में प्रवेश पाना है, उनके लिए वह संस्कार करने के लिए शान्तिकुञ्ज से अधिक उपयुक्त सुयोग कदाचित् ही नहीं मिल सके। अब संन्यास की अपेक्षा वानप्रस्थ ही अधिक उपयोगी है। वानप्रस्थों को जो साधना तथा शिक्षा अपनानी पड़ती है, उसके लिए गायत्री तीर्थ का आरण्यक अपने ढंग का अनोखा समझा जा सकता है।

अन्त्येष्ठि सभी अपने-अपने स्थानों में करते हैं, पर अस्थि विसर्जन के लिए त्रिवेणी से भी बढ़कर हरिद्वार को मानते हैं। ढेरों परिजन इस प्रयोजन के लिए आते और शान्तिकुञ्ज में ठहरते हैं। अस्थि प्रवाह के उपरान्त जिस श्रद्धा-तर्पण की आवश्यकता पड़ती है, उसका शास्त्रानुकूल कर्मकाण्ड गायत्री तीर्थ में करा दिया जाता है। वार्षिक श्राद्ध की दृष्टि से भी यह स्थान अपेक्षाकृत अधिक पवित्र एवं उपयुक्त है।

प्रत्येक प्रज्ञा-परिजन को अपना सांसारिक घर वहाँ मानना चाहिए, जहाँ जन्म लिया या निवास व्यवसाय है, किन्तु आध्यात्मिक घर शान्तिकुञ्ज को मानकर चला जा सकता है। प्राचीनकाल में वंश परम्परा की तरह गुरु परम्परा से भी गोत्र चलते थे। वंश परिवार की तरह गुरु द्वारे का भी सर्वोपरि सम्बन्ध परिकर माना जाता है। अपने वरिष्ठ सम्बन्धियों, कुटुम्बियों तथा प्रमुख रिश्तेदारों की गणना करते समय गुरुद्वारे का स्मरण किया जाता है। शुभ कार्यों के लिए वहाँ का आशीर्वाद पाने, किसी सफलता के उपरान्त मत्था टेकने जाने तथा उपार्जन में उसका अंशदान निकालने की परिपाटी चिरकाल से रही है। हो सकता है कि पात्रता न रहने से वह परम्परा विलुप्त हो गई हो और गुरुद्वारे की उपेक्षा, अवमानना होने लगी हो, किन्तु प्रज्ञा-परिजनों का गुरुद्वारा ऐसा नहीं है, जिसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपेक्षा के गर्त में ढकेला जा सके। उसके साथ घनिष्ठता बढ़ाने में घाटा कम और नफा अधिक है।

उपर्युक्त संस्कारों के बहाने बार-बार शान्तिकुञ्ज आते रहने बड़ी न सही छोटी साधना भी यहाँ करते रहने से घर में रहकर लम्बी और देर तक चलने वाली की गई कष्ट साध्य साधना की तुलना में कहीं अधिक फलप्रद सिद्ध होती है। नौ दिन की अनुष्ठान साधना यहाँ करने वाले अक्सर यह कहते सुने जाते हैं कि माता के गर्भ में नौ महीने रहने पर शरीर जीवन मिला था, किन्तु नौ दिन शान्तिकुञ्ज रहकर हमने स्वयंभू-मनु और शतरूपा रानी के गर्भ में रहने जैसा उच्चस्तरीय नव-जीवन प्राप्त किया है। यह यहाँ के विशिष्ट वातावरण का प्रभाव है।

इस सन्दर्भ में एक विशेष योजना अब अधिक तत्परतापूर्वक हाथ में ली गई है कि प्रज्ञा-परिजन दहेज विरोधी अभियान अपने घर परिवार में चलायें और बिना प्रदर्शन का विवाह कराने के लिए शान्ति-कुञ्ज आयें। यहाँ की बरात में दोनों के अधिकतम दस-दस व्यक्ति आते हैं। दहेज प्रदर्शन का नाम नहीं। जेवर या कीमती कपड़े चढ़ाने का प्रचलन नहीं। कुछ राशि कन्या को दी जानी हो, तो वह स्त्री धन के रुप में पाँच वर्ष के फिक्स डिपाजिट में जमा करा दी जाती है।

यह प्रचलन हमें अपने परिवारों से ही आरम्भ करना चाहिए। वर पक्ष को अग्रणी रहना चाहिए और लड़की का विवाह तो हर हालत में शान्ति-कुञ्ज आकर ही करना चाहिए। दूसरों की बात और है, प्रज्ञा-परिजनों को तो सामाजिक क्रान्ति की दिशा में सबसे बड़े अभिशाप सर्वनाशी विवाहोन्माद से जूझना ही चाहिए। सभी जानते हैं कि खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। हर गृहस्थ को अपनी औसत कमाई का प्राय: एक तिहाई भाग इसी खाई में कूड़े-करकट की तरह पाटना पड़ता है। बढ़ती हुई गरीबी और बेकारी का अपने देश में एक बड़ा कारण यह भी है कि कमाई की बचत से जो कुछ हाथ लगता है, वह सभी शादियों में खप जाता है। शिक्षा, चिकित्सा, व्यवसाय, निर्वाह आदि सभी में कटौती करनी पड़ती है। ऋण लेने तथा अनीति से धन कमाने पर किसी तरह काम चलता है—ऐसी दशा में आर्थिक स्थिति का सुधार अच्छी आमदनी होते हुए भी सम्भव नहीं होता। इस लानत को हटाये बिना अपनी नैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति सुधरती नहीं।

बहुत समय से मिशन द्वारा दहेज विरोधी आन्दोलन चलाया जा रहा है और कहा जा रहा है छोटी उपजातियों की संकीर्णता छोड़कर बड़ी जातियों के बीच बेटी व्यवहार का दायरा बढ़ाया जाय। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार ही तो वर्ण हैं। इनके दायरे में विवाह चल पड़े और उपजातियों के प्रतिबन्ध टूटें, तो अच्छे लड़के मिलने में इतनी कठिनाई न हो, जितनी कि उप-जातियों के लिए आग्रह अपनाने से उत्पन्न होती है। अमीर घराने न ढूँढ़कर लड़की-लड़के स्वावलम्बी स्तर का परिश्रम पूर्वक निर्वाह करें इन बातों पर ध्यान दिया जाय, तो उपयुक्त जोड़े ढूंढ़ने में जो कठिनाई पड़ती है और लोभ लालच के घात-प्रतिघात में, विक्षोभ के वातावरण में विवाह होने पर जो क्लेश-कलह के घर बनते हैं, वैसे दुर्भाग्य पूर्ण प्रसंग उपस्थित न हों। विवाह जैसे सर्वाधिक महत्त्व के संस्कार को उपेक्षा में टाला गया तो परिवार आज से बदतर नरक बनते चले जोयेंगे।

इन विचारों से सहमत होते हुए भी परिवार के सम्बन्धियों का दबाव, प्रदर्शन के अभाव में उपहास का भय, संकोचवश वैसा बन नहीं पड़ता है। सुधारवादी भी स्थानीय लोगों के प्रभाव में पुरातन ढर्रे पर ही फिसल पड़ते हैं। अब यह कदम उठाया जा रहा है कि अभिभावक तथा लड़की-लड़के यह प्रतिज्ञा करें कि दहेज और प्रदर्शन रहित शादी कराने के लिए शान्तिकुञ्ज ही पहुँचा करेंगे। उसमें दो लाभ हैं, एक यह कि कुटुम्बियों, रिश्तेदारों तथा पड़ोसियों का कोई दबाव नहीं रहता और शान्तिकुञ्ज आने पर समस्त अपव्ययों से सहज छुटकारा मिल जाता है। लड़की को स्त्री धन के रूप में कुछ स्थाई सहारा मिल जाता है। धन की बर्बादी रुके और कन्या को आड़े समय के लिए अभिभावकों तथा ससुराल से कुछ धन मिले, तो इसे हर दृष्टि से दूरदर्शितापूर्ण ही कहा जाएगा।

विचारशील प्रज्ञा-परिजनों में से प्रत्येक को इस दिशा में पूरे उत्साह के साथ प्रयत्नशील होना चाहिए कि उनके परिवार, पड़ोस तथा सम्बन्धियों की उपयुक्त शादियाँ शान्तिकुञ्ज में ही सम्पन्न हों। इसमें न केवल पैसे की बर्बादी बचती है वरन् एक उच्चस्तरीय वातावरण में, ऋषि चेतना के सान्निध्य में, दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाले आशीर्वाद के साथ वह विवाह सम्पन्न होते हैं, तो उसका अपना महत्त्व है। सामाजिक क्रान्ति एवं अवाँछनीय उन्मूलन की दृष्टि से किये गये कारगर प्रयत्न के रूप में तो उस प्रचलन का महत्त्व ही है। प्रज्ञा-परिवार की शादियाँ शान्तिकुञ्ज में होने लगें, तो फिर यह प्रचलन देशव्यापी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनने में कठिनाई न रहेगी। आरम्भिक झिझक-संकोच मिटाने और आपस में यह प्रक्रिया सहज-सुलभ बनाने की दृष्टि से यह कदम उठना ही चाहिए कि प्रज्ञा-परिजनों से सम्बन्धित सभी लोग अपनी शादियाँ गायत्री तीर्थ हरिद्वार में करायें। तीर्थ सेवन परम्परा में यह एक श्रेयस्कर श्रृंखला का समावेश होगा।

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान

गायत्री तीर्थ के दो भाग हैं एक शान्तिकुञ्ज, दूसरा ब्रह्मवर्चस्। हरिद्वार नगर से ऋषीकेश जाने वाली सड़क पर शान्तिकुञ्ज है और हरिद्वार से सप्त सरोवर जाने वाली सड़क पर ब्रह्मवर्चस्। दोनों के बीच एक मील का फासला है। इसके लिए मध्यवर्ती सड़क भी है जिससे दोनों के बीच आवागमन भली-भाँति चलता रहता है।

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान अध्यात्म और विज्ञान के पारस्परिक सम्बन्धों को सुनिश्चित करने के लिए बना है। यह गंगा के तट पर है। यहाँ से गंगा की सप्तधाराएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं, जहाँ सप्तऋषियों ने तप किया था। ब्रह्मवर्चस् तीन मंजिली भव्य इमारत है। नीचे की मंजिल में २४ कमरों में गायत्री महामंत्र के २४ अक्षरों में सन्निहित शक्तिधाराओं की चौबीस दिव्यमूर्तियाँ हैं। इनके साथ यह भी अंकित है कि इन २४ अक्षरों में से किनके साथ किस प्रकार २४ अवतारों, २४ देवताओं और २४ ऋषियों का किस प्रकार सम्बन्ध है, तान्त्रिक विधि से उपासना करने पर उनके लिए किन २४ यन्त्र चक्रों का सहारा लेना पड़ता है ? बीजाक्षरों का फलश्रुति सहित सचित्र उल्लेख हर मूर्ति के साथ है।

मध्य-प्रांगण में विशाल यज्ञशाला है। जिसमें बहुमूल्य यन्त्र-उपकरण लगे हुए हैं जिनके द्वारा जाना जाता है कि किस शाकल्य से, किन समिधाओं से, किन मंत्रों के किस प्रकार हवन करने से उसकी ऊर्जा किस स्तर की उत्पन्न होती है और उसका प्रभाव किस प्रकार मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक धरातल पर पड़ता है ? मनुष्योत्तर अन्य प्राणी किस प्रकार प्रभावित होते हैं ? वनस्पतियों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? वायुमण्डल का परिशोधन किस प्रकार होता है और अनन्त आकाश से प्राण-पर्जन्य बरसने पर किस प्रकार समस्त भूलोक वासियों का हित साधन होता है ?

इस प्रकार यह भी जाँचा जाता है कि गायत्री मन्त्र की किस उपासना विधि का आश्रय लेने पर मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क में क्या परिवर्तन होते हैं ? इस जाँच-पड़ताल के लिए २४ कमरों में ऊपर की मंजिल में प्रयोगशाला है जिसमें देश-विदेश से लाखों रुपया मूल्य के आधुनिक यंत्र लगाये हैं, जिनके माध्यम से साधकों का संगोपांग परीक्षण किया जाता है और यह जाना जाता है कि आरम्भ में क्या स्थिति थी और बाद में किस स्तर का कितना सुधार हुआ ? इस जाँच-पड़ताल के लिए एम. डी. एम. एस. स्तर के डॉक्टर बारीकी से पर्यवेक्षण करते हैं। उस आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचना संभव होता है कि आध्यात्मिक उपचार वैज्ञानिक आधार पर किस हद तक, किस काम के लिए, कितना कारगर सिद्ध हो सकता है ?

ब्रह्मवर्चस् की तीसरी मंजिल पर २४ कमरों में बहुमूल्य विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का भण्डार है, जिनके आधार पर यह प्रतिपादित किया जाता है कि पुरातन काल में किस प्रकार अध्यात्म और विज्ञान के दर्शन तथा प्रयोग का तारतम्य बैठता था आज की परिस्थितियों में यह किस प्रकार संभव है ?

इस समूची प्रक्रिया में प्राय: एक दर्जन इस विधा में निष्णात कार्यकर्ता निरन्तर एकाग्र भाव से लगे रहते हैं। उनका विश्वास है कि अध्यात्म को अगले दिनों कोई अन्धविश्वास न कह सकेगा, वरन् उसे पूर्ण वैज्ञानिक आधारों पर प्रामाणिक सिद्ध किया जा सकेगा। ब्रह्मवर्चस् को देख कर लगता है कि अथर्ववेदीय परम्परा का पुनर्जागरण हो रहा है।

ब्रह्मवर्चस् में कार्यकर्ताओं के निवास का अलग से प्रबन्ध है। इसका पुष्पोद्यान देखते ही बनता है।

ऋषि परम्परा का विनम्र अनुकरण

सूर्योदय का प्रकाश सर्वप्रथम ऊँचे पर्वतों, शिखरों और वृक्षों के ऊपरी भाग पर चमकता है। परब्रह्म का विशिष्ट प्रेरणा-प्रकाश पहले हिमालय पर उतरता है। उसे उस क्षेत्र के निवासी ऋषिगण ग्रहण करते हैं। उसके उपरान्त उनकी प्रेरणा सुसंस्कारी महामानवों में वितरित होती है। उन महामानवों द्वारा ऐसे आदर्श और चरित्र प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनका आश्रय अवलम्बन लेकर जन-साधारण की पशु-प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने और मानवी गरिमा का गौरव बढ़ाने वाली सत्प्रवृत्तियों को सुविकसित होने का अवसर मिल सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवमानवों में से अधिकांश को हिमालय के अंचल में अपनी प्रवृत्तियों में उत्कृष्टता भरने का अवसर मिला है। वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से थोड़े या बहुत समय के लिए हिमालय के उत्पादनों के, ऋषियों के सम्पर्क में आए हैं। सच ही हिमालय देवात्मा है और देवात्माओं का सृजनकर्ता भी। दैवी शक्ति का इस संसार में जहाँ भी प्रकाश पहुँचा है, उसे प्रकारान्तर से हिमालय का अनुदान ही कहना चाहिए।

अन्य तीर्थ तो महात्माओं के क्रिया-कलाप की पृष्ठभूमि के रूप में प्रगट हुए हैं। उन्हें अवतारों और देवालयों की लीला भूमि भी कहा जा सकता है, किन्तु जिस बल-बूते पर वे संसार को श्रेष्ठता की ओर घसीटने-धकेलने में समर्थ हुए, वह शक्ति सामर्थ्य उन्हें हिमालय से ही मिलती रही है। यहाँ हिमालय की चर्चा उसके पत्थरों, गुफाओं, हिमप्रदेशों, वन-क्षेत्रों, निर्झरों के सम्बन्ध में नहीं की जा रही है और न उसकी स्वर्गोपम शोभा सुन्दरता का उल्लेख ही हो रहा है। वरन् यह कहा जा रहा है कि धरती के देवताओं, ऋषियों का उद्भव इसी क्षेत्र में हुआ। अध्यात्म तत्वज्ञान का सृजन और विश्वव्यापी प्रसारण यहीं से हुआ। मनुष्यों को देवमानव बनाने का सूत्र संचालन यहीं से होता रहा है। इसलिए इस क्षेत्र को महातीर्थ कहा गया है। अन्यत्र जन संकुल के बीच बने हुए और बसे हुए सामान्य तीर्थ ही हैं। नदी सरोवरों की अपने देश में, विश्व में कमी नहीं, पर गंगा ही है, जो स्वर्ग से धरती पर अवतरित हुई, विष्णु के चरणों से निकली, शिव की जटाओं में समाई और तपस्वी भागीरथ के क्षेत्र में जन कल्याण के लिए धरती के महत्त्वपूर्ण भू-भाग पर बही। गंगा का घर भी हिमालय ही है। और इन्हीं दोनों की ऋषिआत्मा पवित्रता बटोर कर ऋषि रूप में प्रत्यक्ष प्रकट हुई।

समय की गति प्रबल है अब स्थूल शरीरधारी ऋषियों के दर्शन उस क्षेत्र में नहीं होते।मात्र उनके सूक्ष्म शरीर ही जहाँ-तहाँ गहन गुफाओं में अपने दिव्य क्रिया-कलापों में निरत हैं। यदि वे प्रत्यक्ष शरीर में रहने लगें, तो समय उनको भी पतन के गर्त में घसीट ले जाय या लोग उनका पता लगाकर उसी तरह दुर्गति के गर्त में गिरा दें जैसे कि तथाकथित देवी-देवताओं का छुट-पुट उपहार या मनुहार के प्रलोभन से अनुचित मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए प्रयोग करना शुरू कर दिया है। यह लांछन लगाकर मनुष्यों ने देवताओं को भी कलंकित किया है। फिर ऋषियों से सम्पर्क बन जाने पर उन्हें ही अछता क्यों छोड़ते ?

ऋषियों ने भगवान के प्रकाश को अधिकाधिक मात्रा में अपने भीतर धारण किया, साथ ही ऐसे कृत्य किये, जो लोकमंगल के लिए आवश्यक थे। उसी ऋषि परम्परा का यथासंभव अनुसरण करने का शान्ति कुञ्ज का प्रयास है। उसके द्वारा अब तक जो बन पड़ा, जो बन रहा है या भविष्य में बन पड़ेगा, उसके लिए किसी व्यक्ति विशेष को श्रेय नहीं दिया ज़ा सकता है। वह विशुद्ध रूप से ऋषि अनुदान ही है। इतना अवश्य है कि उस परम्परा को धारण करने एवम् निबाहने के लिए परिष्कृत व्यक्तित्व चाहिए। बादलों का जल विपुल मात्रा में वहाँ जमा होता है जहाँ गहरे गहर होते हैं। उथले स्थानों पर तो वर्षा ऋतु का समूचा अनुदान बरसने पर भी टिकने के नाम पर एक बूँद का भी पता नहीं चलता।

शान्तिकुञ्ज को ऋषि परम्परा के निर्वाह का एक छोटा प्रयास समझा जाना चाहिए। उसने उन्हीं पद चिह्नों पर चलने का अब तक यथा संभव प्रयत्न किया है।

आर्ष साहित्य का समग्र समुच्चय जनसाधाण के लिए सुलभ करा सकने की सफलता को उस व्यास परम्परा का यथा सम्भव निर्वाह ही कहना चाहिए, जिसमें व्यास गुफा में बैठकर गणेश जी की सहायता से आर्ष वाङ्मय का सृजन किया गया था।

विशाल गायत्री परिवार का संगठन, विचार क्रान्ति अभियान और धर्म तंत्र से लोक शिक्षण के पीछे बुद्ध के उन्हीं तीन सूत्रों को कार्यान्वित हुआ समझा जा सकता है, जिसमें उन्होंने संघ शरणं गच्छामि, बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि के तीन सूत्रों को अपने समय में कार्यान्वित किया था । परिव्राजकों की विशाल सेना नालन्दा तथा तक्षशिला में प्रशिक्षित की गई थी। वैसा ही कुछ शान्तिकुञ्ज की युग शिल्पी योजना और उत्तर तथा मध्य भारत के संसार भर के प्रवासियों में किया गया कार्य, एक छोटी अनुकृति समझा जा सकता है।

चरक और सुश्रुत ने जिस प्रकार वनौषधि विज्ञान की शोध की थी, उसी प्रकार शान्तिकुञ्ज का जड़ी-बूटी उद्यान, उनका वैज्ञानिक शोध-परीक्षण और साधकों को उस उपलब्धि से लाभान्वित कराने का सक्रिय प्रयास भी देखा जा सकता है। इसे किसी की मौलिक सूझ-बूझ नहीं समझा जाना चाहिए, वरन् यही समझा जाना चाहिए कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई बच्चा किसी बड़े के कन्धों पर बैठकर बड़प्पन तथा दूर तक देखने का आनन्द ले रहा है ।

चौथा प्रयत्न आर्यभट्ट में ज्योतिर्विज्ञान का पुनर्जीवन है । ग्रहों की गति एवं कक्षा ग्रीनविच घड़ियों का टाइम देखकर नहीं बनतीं । वे अपनी स्वतंत्र चाल से चलती हैं, इसलिए घण्टा, मिनट, घड़ी, पल के हिसाब में उनकी चाल के साथ पूरी संगति नहीं बैठती । उसमें कुछ न कुछ अन्तर रह ही जाता है । इसका परिशोधन वेधशालाओं द्वारा दृश्य गणित के आधार पर होता है । जो अन्तर पड़ जाता है, उसे सामयिक स्थिति के अनुरूप ठीक किया जाता है । यह कार्य बहुत दिनों से नहीं हुआ । जहाँ वेधशालाएँ बनी पड़ी हैं, वे भी बेमतलब का कौतूहल मात्र समझी जा रही हैं । वह पीढ़ी समाप्त होने जा रही है कि जो ग्रहों का वेध करने के लिए भारत में कुतुबमीनार और मिस्र में पिरामिड स्तर के संस्थान खड़ी करती ।

ज्योतिष, शास्त्रों में से एक माना गया है, पर उसका ग्रह गणित सही होना चाहिए । आज पंचांग बनते हैं और छपते हैं, पर वे उसी स्थान के सूर्योदय पर निर्भर करते हैं जहाँ कि वे बने या छपे हैं । जब कि होना यह चाहिए कि जहाँ कहीं जन्मकुण्डली बने, ठीक उसी स्थान पर बने पंचांग के अनुरूप होना चाहिए । स्थानीय इष्ट के अनुरूप पंचांग कौन बनाए ? अपनी प्रतिभा के अनुरूप पंचांग बनाने से ले कर ग्रह-गणित करने तक का परिश्रम कौन करे ? इतना ज्ञान सम्पादन करने एवम् कौशल संचय करने में जिन्दगी का बड़ा भाग कौन खपाए ? यही कारण है कि बाजारू पंचांगों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं वे अधिकतर गलत ही बैठते हैं ।

शान्तिकुञ्ज ने इस दिशा में, भी प्रयास किया है जो महर्षि गर्ग से लेकर भास्कराचार्य, आर्यभट्ट तक होता रहा है । इसी निमित्त एक सर्वांग पूर्ण वेधशाला बनाई गई है और अपना निज का दृश्य गणित पंचांग प्रकाशित करना आरम्भ किया गया है । उसमें प्राचीन नव ग्रह ही नहीं है, वरन् इसी शताब्दी में खोज निकाले गये यूरेनस, नैप्च्यून और प्लूटो को भी सम्मिलित कर लिया गया है और उनका ग्रह गणित भी ठीक वैसा ही किया गया है, जैसा कि पुरातन काल के लोग विज्ञात नव ग्रहों का किया करते थे । इस पंचांग में वह विधि-विधान भी लिखा गया है, जिसके आधार पर लोग अपना-अपना स्थानीय पंचांग बना सकें ।

सही जन्म कुण्डलियों के आधार पर न केवल मनुष्य का भविष्य जाना जा सकता है, वरन् भूतकाल का पूर्व जन्म का विवरण भी हस्तगत हो सकता है । इस जानकारी के आधार पर अशुभ का परिमार्जन और शुभ का अभिवर्द्धन संभव है ।

शान्तिकुञ्ज की वेधशाला में प्राचीन उपकरण तो विनिर्मित किए ही गए, साथ ही नए टेलिस्कोपों का भी सहारा लिया गया है, जिसके आधार पर निर्धारणों की दुहरी पुष्टि हो सके ।

इस दिशा में अभिरुचि लेने का एक विशेष कारण यह भी है कि नवयुग में उपयुक्त भूमिकाएँ निभा सकने वाले व्यक्तियों की खोज बीन की जा रही है और कुण्डलियाँ बनाने से लेकर उन्हें देखने और शेष-संदेहों को हस्तरेखा के अध्ययन के आधार पर निराकरण करने का प्रयास, प्रयत्न चल पड़ा है । लागत मूल्य में सही जन्म कुण्डली बना देने से परिश्रम के एक अंश की भी पूर्ति नहीं होती पर ज्योतिष शास्त्र पर से उठे विश्वास को फिर से यथा स्थान लाने के लिए इस प्रसंग में भी हाथ डाला गया है ।

ज्योतिष के नाम पर चल रहे धोखा धड़ी के व्यवसाय की तुलना में उसे एक वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करना एक असामान्य साहस का काम था, कष्ट साध्य और श्रम साध्य भी । पर उसे सरल बनाने में भी वे ही ऋषि शक्तियाँ काम कर रही हैं, जिनके संकेतों पर यह समस्त ढाँचा खड़ा किया जा सका है ।

ऋषि चेतना का प्रतिनिधित्व

हिमालय के गुफा गह्वरों में बैठे हुए ऋषि अपने शरीर और मस्तिष्क की प्रयोगशाला में ऐसे अन्वेषण आविष्कार करते थे जिनके प्रतिफल उन्हें शक्तियों का भण्डार बनाते थे । यह दिव्य शक्तियाँ ऊपर से नहीं बरसती थीं वरन् अपने अन्तराल में बीज रूप से विद्यमान प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हुई प्रयत्नपूर्वक जगाई जाती थीं । जब वे परिपक्व हो जाती थीं तो ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ कहलाती थीं इस उपार्जन को आज की तरह कौतुक, कौतूहल, चमत्कार दिखाने में कुपात्रों की अनुपयुक्त मनोकामनाएँ पूरी करने में खर्च नहीं किया जाता था वरन् उनका कण-कण लोग मंगल के लिए सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन के लिए नियोजित किया जाता था । देवताओं की तरह वे दिव्य मानव होते थे और अपनी दिव्यता से पुष्पोद्यान की तरह समूचा वातावरण महकाते थे । उनकी अनुदान वर्षा से सर्वत्र शीतलता, सरसता बिखरती थी । इसी धरती पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मखमली फर्स बिछता था और प्राणियों के समग्र जीवन को परिपुष्ट करने वाले अन्नजल स्तर की अनेक व्यवस्थाएँ बनती थीं।

गंगा ज्ञान की देवी है, यमुना विज्ञान की। गंगा शान्ति प्रदान करती थी यमुना क्रान्ति की उत्तेजना देती थी। भागीरथ ने गंगावतरण से जीवितों और मृतकों को सुख शान्ति की व्यवस्था की थी भगवान परशुराम ने यमुनोत्री उद्गम पर तप किया था और उस धारा को नीचे लाकर हस्तिनापुर के समीप महाभारत की अनीति उन्मूलन की पृष्ठभूमि बनाई थी। वे जानते थे कि स्नेह सहयोग की तरह कई प्रसंगों में विरोध और संघर्ष भी आवश्यक होता है।

भगवान परशुराम ने दिव्य परशु प्राप्त किया था और उसके सहारे असंख्यों पथ भ्रष्टों के शिर और भुजाएँ निरस्त की थीं। जब वह कार्य सम्पन्न हो गया तो परशु को गंगासागर में फेंक कर शेष जीवन उद्यान लगाने में लगा दिया था। उस ऋषि परम्परा को अपनाकर शान्ति-कुञ्ज में भी अनैतिकताओं, भ्रान्तियों और कुरीतियों से डटकर लोहा लिया है। अभी भी वह संघर्ष चल रहा है। जब वह प्रयोजन पूरा हो जाएगा तो रामराज्य का, धर्म संस्थापन का कार्य बिना किसी अवरोध के चल पड़ेगा।

भागीरथ भी अपने समय के ऋषि थे। उन्होंने प्रत्यक्षत: गंगा का अवतरण किया था और परोक्षत: स्वर्ग से धरती पर ज्ञान गंगा उतारी थी। व्यास द्वारा शास्त्र सृजन हुआ था। शान्तिकुञ्ज ने भी युग साहित्य का ऐसा ही अभिनव प्रज्ञा साहित्य सृजा है, जिसका अनेक भाषाओं में अनुवाद प्रकाशन हुआ है।

गुप्तकाशी में नारद जी गुप्त रूप से रहते थे। वे अपनी वीणा निनाद से जन-जन के मन में भक्ति-भावना झंकृत करते थे। उसी संगीत साधना को शान्तिकुञ्ज ने अपने प्रमुख माध्यमों में सम्मिलित किया है। आश्रम सदा संगीत से गूँजता रहता है और देश के कोने-कोने में भक्ति भावनाएँ झंकृत करने का प्रयास चलता है। आदि शंकराचार्य ने चार धामों में चार मठ बनाए थे। शान्ति-कुञ्ज ने २४०० प्रज्ञापीठों की स्थापना करके उसी कार्य को हाथ में लिया है, जो मठाधीश मण्डलेश्वर अपने-अपने क्षेत्र में धर्म धारणा को जीवन्त रखने के रूप में करते रहे हैं। इन स्थापनाओं को एक प्रकार से जन जागृति का केन्द्र ही कहना चाहिए।

महर्षि जमदग्नि के आश्रम में गुरुकुल चलता था शान्तिकुञ्ज के गुरुकुल में भी आश्रमवासी, विद्यार्थी और महिलाओं के लिए ऐसी शिक्षण व्यवस्था चलती है। जिसे गुरुकुल स्तरीय ही कहा जा सकता है। रुद्र प्रयाग में महर्षि पतंजलि का आश्रम था, वे योगाभ्यास में निरत रहते हुए अन्यान्यों को साधना विज्ञान के रहस्य समझाते थे। शान्तिकुञ्ज में भी अधिकांश लोग इसी प्रयोजन से आते हैं और आसन, प्राणायाम, ध्यान-धारणा प्रत्याहार आदि के अभ्यास करते हैं। इस आश्रम में प्रतिवर्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्रों का जप हो जाता है, और २४ लाख मंत्रों का हवन। आहार-विहार में सभी को आश्रम व्यवस्था के अनुरूप आचरण करना पड़ता है। देव प्रयाग के निकट महर्षि वशिष्ठ की गुफा है, वहीं उन्होंने अपने परम प्रिय शिष्यों, चारों दशरथ पुत्रों को बुला लिया था। योग वाशिष्ठ सृजा था और वानप्रस्थ परम्परा को पनुर्जीवित किया था। शान्तिकुञ्ज के परम स्नेही सांसारिक लोभ मोह को त्याग कर यहीं आ बसते हैं और आगन्तुकों को नव-जीवन की प्रेरणा देते हैं। कुछ देश भ्रमण की परिव्राजक प्रक्रिया पूरी करते हैं तथा कुछ शोध कार्यों में, अध्ययन-प्रयोजनों में निरत रहते हैं।

हिमालय पर सूत शौनक परम्परा चलती थी। कथा वार्ता के द्वारा नए धर्म प्रचारक तैयार किए जाते थे और जन साधारण की सर्व सुलभ एवं सरस लगने वाली कथाओं के द्वारा धर्म धारणा की मनोभूमि परिपक्व करते थे। इसी प्रयोजन के लिए शान्तिकुञ्ज द्वारा प्रज्ञा पुराण लिखा गया है। अब तक छपे पाँच खण्डों में प्राय: पाँच हजार आदर्शवादी कथाएँ हैं। विचार २४ खण्डों में इसे प्रकाशित करने का है ताकि हर धर्म सम्प्रदाय के प्रचलित और देश के महामानवों की महान जीवन गाथाओं का उसमें समावेश हो सके।

महर्षि कणाद ने अणु विज्ञान की शोध की थी, ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान आत्मा की सूक्ष्म और स्थूल शक्ति को प्रत्यक्ष करने के लिए संलग्न है।

विश्वामित्र ने तत्कालीन वातावरण, प्रचलन से क्षुब्ध होकर धरती पर स्वर्ग उतारने और मनुष्य में देवत्व उदय करने का संकल्प किया था। लगभग उसी स्तर के प्रयास नवयुग के सृजन के निमित्त शान्तिकुञ्ज में चल रहे हैं।

बुद्ध के विहारों और संघारामों की धर्म चक्र के लिए परिव्राजक तैयार करने की परम्परा को यहाँ समय के अनुरूप ढाला गया है। दुर्लभ जड़ी-बूटियों की शोध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके लोगों के खोये हुए शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को वापस लाने का प्रयास चल रहा है । ज्योर्तिविज्ञान को यहाँ दिव्य नेत्र की तरह विनिर्मित किया गया है । आश्रम गंगा के उस सनातन मध्य भाग में है, जिसे ६० वर्ष पूर्व बांध बनाकर सूखी जमीन के रूप में परिणत किया गया था इसका दिव्य संरक्षण एवं सूक्ष्म मार्ग-दर्शन ऋषि आत्माएँ ही करती हैं । यह उन्हीं की धरोहर है । इसके माध्यम से आयुर्वेद के पुरातन रहस्यों को नए सिरे से उद्घाटित होने और समस्त विश्व में उसे मूर्धन्य स्थान मिलने की सम्भावना है ।

हिमालय भगवान शिव की भूमि है । उनका हिमालय तो यहाँ प्रतीक रूप में विद्यमान ही है उनमें सात स्थानों पर रुद्राभिषेक निरन्तर चलते रहते हैं । ऋषियों और देश व्यापी तीर्थों की दर्शन झाँकी इसमें एक ही स्थान में की जा सकती है ।

विश्व संकट की अनेकानेक विभीषिकाओं को टालने और उसके स्थान पर सदाशयता की उमंग उठाने के लिए शान्तिकुञ्ज के, प्रज्ञा अभियान के सूत्र संचालन की एकान्त साधना इन दिनों इस स्तर की कह सकते हैं जिसकी दधीचि जैसों से ही तुलना की जा सकती है ।

यों शान्तिकुञ्ज के संचालक से हर किसी का मिलना सम्भव नहीं होता वह कार्य वन्दनीया माता जी ही पूरा करती हैं, पर उनके प्रवचन, परामर्श, कार्यक्रम एवं मार्गदर्शन को निरन्तर सायंकाल वीडियों फिल्मों पर देखा-सुना जा सकता है ।

युग चेतना का व्यापक विस्तार

आद्य शंकराचार्य ने देश के चार कोनों पर चार मठ स्थापित किए थे । विवेकानन्द ने विदेशों में रामकृष्ण मिशनों की स्थापनाएँ की थीं । समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र तथा समीपवर्ती प्रभाव क्षेत्र में ७०० महावीर मन्दिर स्थापित किये थे । यह सभी संस्थाएँ महान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थापित की गई थीं । उनमें ऐसी रचनात्मक प्रवृत्तियों का सूत्र-संचालन होता था । यह पुरानी घटनाएँ हैं । आज तो ईसाई चर्च अपनी मान्यताओं और उद्देश्यों के अनुरूप गतिविधियों का सूत्र-संचालन करते हैं । उनके पादरी भी प्राय: जीवनदानी होते हैं । रामकृष्ण मिशन के व्रतधारी संन्यासियों की तरह ।

शान्तिकुञ्ज द्वारा देश के कोने-कोने में गायत्री प्रज्ञा पीठों की स्थापनायें की गयी हैं । इन सभी के अपने छोटे-बड़े भवन हैं । हर प्रज्ञा संस्थान का अपना-अपना कार्य क्षेत्र है । सभी में कार्यकर्ताओं का निवास है । वे अपने क्षेत्र के शिक्षितों को बिना मूल्य प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने वापिस लेने के लिए ज्ञानरथ और झोला पुस्तकालय चलाते हैं । इसके अतिरिक्त टेपरिकार्डर के माध्यम से देश के मूर्धन्य मनीषियों के संदेश तथा ऐसे गीत सुनाते हैं, जो मनुष्य को मानवी गरिमा के अनुरूप जीवन ढालने के लिए प्रेरित करें । यही कार्यकर्ता दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखते और किवाड़ों तथा फर्नीचरों पर प्रेरणाप्रद वाक्यों के स्टीकर चिपकाते हैं । वीडियों टेपों पर युग चेतना का संदेश सुनाते और नव जागरण की दिशा देते हैं ।

प्रज्ञापीठें अपने क्षेत्रों में कार्यकर्ताओं का जन्म दिवस मनाती हैं, जिन्हें एक प्रकार से परिवार गोष्ठियाँ ही कहना चाहिए । उनमें परिवार के अतिरिक्त पड़ोसी, सम्बन्धी, मित्र, समीपवर्ती एकत्रित किये जाते हैं । गायत्री जप और संक्षिप्त हवन के अतिरिक्त भजन, प्रवचन भी होते हैं, जिनमें बहुमूल्य मानव जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग करने की प्रेरणा दी जाती है । इन छोटे आयोजनों में भी सहज ही सौ दो सौ की उपस्थिति रहती है और उनमें वक्ताओं को लाउडस्पीकरों की जरूरत पड़ती है, जो सभी के अपने-अपने हैं । सभी प्रज्ञापीठों में स्लाइट प्रोजेक्टर हैं, जिनके द्वारा प्रकाशचित्र दिखाते हुए व्यक्ति, परिवार और समाज के अभिन्न गठन के सभी पक्ष समझाये जाते हैं । दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन और सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्द्धन का यह छोटा, किन्तु प्रभावशाली प्रयास है । बीच-बीच में टेपरिकार्डर से संगीत भी चलते रहते हैं । मुहल्ले भर के लोग एक जगह इकट्ठे होकर इस विचारधारा को हृदयंगम करते हैं, तदनरूप अपनी जीवनचर्या में भी सुधार परिवर्तन करते हैं ।

इस प्रचार प्रयास से जो लोग प्रभावित होते हैं, उन्हें समयदान, श्रमदान के लिए प्रोत्साहित किया जाता है । इस समयदान के सहारे गाँव की सफाई, तालाबों को गहरा करना, वृक्षारोपण घरेलू शाकवाटिका जैसे छोटे-छोटे कार्य हाथ में लिये जाते हैं तथा थोड़ा अधिक उत्साह बढ़ने पर प्रौढ़ शिक्षा और व्यायामशाला चलाने की प्रक्रिया हाथ में ली जाती है । फूलों और शाकों के बीज मुफ्त देने या लागत से भी कम मूल्य पर बेचने का प्रबन्ध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलता है । गोबर गैस प्लाण्ट लगवाने और धुआँ रहित चूल्हे बनाने में भी इन स्वयं सेवकों का बड़ा योगदान रहता है । इस प्रकार गायत्री परिवार का विभिन्न क्षेत्रों में अपना-अपना प्रयास स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार चलता रहता है । "नशा धीमी आत्महत्या है", "खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं", "नर और नारी एक समान, जाति वंश सब एक समान", "एक बनेंगे नेक बनेंगे", "हम सुधरेंगे युग सुधरेगा" जैसे उद्घोषों को कार्यान्वित करने के लिए ये प्राण-पण से जुटे रहते हैं । भिक्षा व्यवसाय का, मृतक भोजों का डट कर विरोध होता है । मिलावट रिश्वत जैसी अनैतिकताओं का उन्मूलन करने के लिए लोकमत जागृत किया जाता है । २४०० प्रज्ञापीठें प्राय: ऐसे ही रचनात्मक कार्यों में लगी रहती हैं । धर्म धारणा का अर्थ प्रगतिशीलता के रूप में प्रस्तुत करने में सभी प्रगतिशील लोगों का सहयोग मिलता है । सरकार के उपयोगी कार्यों में हाथ बंटाने की शान्तिकुञ्ज की नीति है । परिवार कल्याण और अल्प बचत योजना के पक्ष में सदा वातावरण बनाया जाता है । प्रज्ञा-संस्थानों स्वाध्याय मण्डलों की संख्या १० हजार है, जिनका दायित्व तो प्रज्ञा साहित्य पढ़ाना और बिना पढ़ों को सुनाने तक सीमित रहते हैं, पर वे भी उपर्युक्त रचनात्मक कार्यों में यथा सम्भव सहयोग देते हैं । इस प्रकार गायत्री परिवार की एक व्यापक योजना नवसृजन के उद्देश्य की पूर्ति में प्रवृत्त है ।

उपर्युक्त कार्यों के लिए थोड़ा-बहुत पैसा उपर्युक्त संगठनों को भी खर्च करना पड़ता है और हरिद्वार केन्द्र की भी आर्थिक आवश्यकतायें रहती हैं । इन सब की पूर्ति का एक ही माध्यम है दस पैसा रोज अथवा एक मुट्ठी अनाज का अंशदान । मिशन से प्रभावित लोगों में से अधिकांश एक घंटा समय या दस पैसा नित्य निकालते हैं । कई अधिक उदार लोग महीने पीछे एक दिन की आमदनी स्वेच्छा सहयोग के रूप में भी देते रहते हैं । यह छोटी-छोटी राशि ही बूँद-बूँद से घड़ा भरने की आवश्यकता की पूर्ति करती रहती है फलत: धनी मानियों की मनुहार करने की कभी जरूरत नहीं पड़ती ।

उपर्युक्त सभी संगठनों के वार्षिकोत्सवों की भी एक परम्परा डाली गई है । इसके लिए शान्तिकुञ्ज से २५ जीप गाड़ियाँ. प्रचारकों, गायकों को लेकर निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रवास पर निकलती हैं । ढाई-ढाई दिन के कार्यक्रम चलते हैं । जप में फोल्डिंग स्टेज, लाउडस्पीकर, छोटी यज्ञशाला आदि सभी उपकरण साथ रहते हैं, जिससे स्थानीय लोगों को रोशनी, सफाई, बिछावन आदि के अतिरिक्त और कोई व्यवस्था न करनी पड़े । प्रचारकों को भोजन और गाड़ियों को तेल का मामूली-सा खर्चा हर संगठन बड़ी प्रसन्नता और सरलता से उठा लेता है । इस प्रकार आठ महीने से जीप प्रवास में प्राय: दो हजार से अधिक सम्मेलन भारत के कोने-कोने में सम्पन्न हो जाते हैं । यही मिशन की सत्संग प्रणाली है ।

स्वाध्याय प्रचार का यह दूसरा पक्ष है । इसके लिए गायत्री तपोभूमि एवम् अखण्ड ज्योति कार्यालय से निरन्तर साहित्य छपता रहता है । शान्तिकुञ्ज का युगान्तर चेतना प्रेस भी कुछ न कुछ छापता ही रहता है ।

वेद, शास्त्र, उपनिषद, दर्शन, स्मृतियाँ आदि बहुत पहले ही अनूदित और प्रकाशित हो चुकी हैं । अब ४० पैसे मूल्य के फोल्डर और छोटी-छोटी पुस्तकें बड़ी संख्या में छपती हैं ।

मिशन की ओर से अखण्ड ज्योति, युग निर्माण योजना, युग शक्ति आदि पत्रिकाएँ, हिन्दी, गुजराती, उड़िया आदि भाषाओं में बड़ी संख्या में छपती हैं । उन्होंने अपने क्षेत्र में ग्राहक संख्या की दृष्टि से कीर्तिमान स्थापित किया है ।

भारत से बाहर विदेशों में प्रवासी भारतीयों के बीच मिशन की ओर से ठोस प्रयास चलता है, जिससे वे भारत तथा भारतीय संस्कृति के साथ अपनी श्रद्धा और घनिष्ठता यथावत बनाये रख सकें ।

इस प्रकार गायत्री तीर्थ की प्रचार प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है, और उसके अन्तर्गत हजारों कार्यकर्ता निरन्तर जन सम्पर्क साधते रहते हैं ।

समग्र स्वस्थता की साधना

तीर्थों को त्रिविधि चिकित्सालय कहा जा सकता है । जिन दिनों वे अपनी प्रौढ़ावस्था में थे उन दिनों उनका स्वरूप एवम् क्रिया-कलाप ऐसा था, जिसमें आगन्तुकों के तीनों शरीरों का कायाकल्प स्तर का उपचार हो सके । हर व्यक्ति तीन शरीर धारण करता है । एक को स्थूल, दूसरे को सूक्ष्म और तीसरे को कारण कहते हैं । स्थूल अर्थात् दृश्यमान, प्रत्यक्ष कायकलेवर । सूक्ष्म अर्थात् मन: संस्थान, विचारणा, कल्पना बुद्धि और दूरदर्शी विवेकशीलता का केन्द्र—मस्तिष्क । तीसरा कारण शरीर अर्थात् चेतना, भावना, मान्यता, श्रद्धा एवम् संस्कार के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केन्द्र—दिव्य अन्तराल। इन तीनों में अनेक प्रकार के गुण होते हैं और कितने ही दोष। आवश्यक है कि फसल की तरह विशिष्टताएँ बढ़ती रहें और खर-पतवार की तरह दोष दुर्गुणों का कषाय-कल्मषों का, आधि-व्याधियों का, निराकरण होता रहे।

यह तीनों ही शरीर परस्पर गुंथे हुए हैं। उनका आपस में सघन सम्बन्ध है। जब एक बीमार पड़ता है, तो दूसरे पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। रुग्णता, दुर्बलता एक से बढ़ कर दूसरे पर सवार हो जाती है। इस प्रकार देखा गया है कि या तो समूचा व्यक्तित्व परिष्कृत स्थिति में रहता है या फिर सब ओर से उसे रोग-शोक घेर लेते हैं।

सामान्य शरीर शास्त्री अपनी चिकित्सा को भौतिक कारणों से जोड़ते हैं और उस की रोकथाम में लगे रहते हैं। किन्हीं का मत होता है कि बाहर से रोग कीटाणु शरीर में प्रवेश करते हैं और अनेक प्रकार के रोग फैलाते हैं। कई आहार-विहार को दोष देते हैं और कई का अभिमत ऋतु प्रभाव वात, पित्त, कफ का कुपित होना होता है। कुछ किन्हीं लवणों खनिजों की कमी-वेशी से रोगों की उत्पत्ति बखानते हैं, पर केवल सूक्ष्मदर्शी ही जानते हैं कि चित्र-विचित्र दुष्प्रवृत्तियाँ ही घुन की तरह भीतर ही भीतर मनुष्य को खोखला करती रहती हैं। उन्हीं के कारण दुर्बलता आती, रुग्णता सताती और अकाल मृत्यु आ दबोचती है। मनुष्य अभी अधूरी आयु भी नहीं भोग पाता कि महाप्रयाण के लिए बाधित कर दिया जाता है।

तत्वत्वेत्ता ऋषि ही दिव्य दृष्टि से रोग का निदान करते हैं और उनका सही उपाय उपचार कर पाते हैं। वे न केवल पंच भौतक शरीर का, वरन् मनःसंस्थान और अन्तःकरण का निरीक्षण-परीक्षण करते हैं और चोर जहाँ-जहाँ भी छिपे होते हैं, उन्हें खोज कर बुहार फेंकते हैं। तीनों ही शरीरों की स्वस्थता को समग्र स्वास्थ्य कहा जाता है। इनमें से मात्र एक का उपचार किया जाय और शेष दो के प्रति उपेक्षा बरती जाय, तो अवसर पाते ही अस्वस्थता छछूँदर की तरह एक कोठे में से निकलकर दूसरे में घुस पड़ती है और शरीर एक प्रकार से कष्टों से छूटकर दूसरों प्रकार के कष्टों में फँस जाता है। स्पष्ट है कि रोगी व्यक्ति अपने और दसूरों के लिए भार ही बना रहता है। न अपनी प्रगति कर सकता है और न अपनी सहायता से दूसरों को सुखी-समुन्नत एवं सुसंस्कारी बना पाने में सफल हो सकता है। खोया हुआ स्वास्थ्य लौटाने के लिए जिस सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता है, वह इन दिनों दीख नहीं पड़ती। यही कारण है कि जन साधारण को गई-गुजरी, पिछड़ी हुई परिस्थितियों से घिरा देखा जाता है। तीर्थ संस्था का पतन-पराभव होने के साथ-साथ ऐसे दिव्यदर्शी मनीषियों का भी तिरोधान हो गया, जो व्यक्ति, समाज, समय और वातावरण का समाधान करते रहते थे।

रोग का निदान जानने के लिए डॉक्टरों ने पैथालॉजी का आश्रय लिया है। वे रक्त, माँस, मल, मूत्र आदि का परीक्षण कर रोग-कीटाणुओं की उपस्थिति का पता लगाते हैं। एक्स रे के सहारे भीतरी स्थिति का पता लगाते हैं। हृदय और मस्तिष्क की स्थिति जानने के लिए ई. सी. जी., ई. ई. जी. इत्यादि उपकरणों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के नवीनतम आधुनिक यंत्र ब्रह्मवर्चस् और गायत्री तीर्थ में लगाये गये हैं, और पाँच दिन के या एक महीने के सत्र में सम्मिलित होने वाले साधकों का पर्यवेक्षण करते हैं। मनोबल को जाँचने के लिए—बौद्धिक तीव्रता नापने के लिए जिन नवीनतम यंत्रों का आविष्कार हुआ है, फेफड़े और श्वसन संस्थान की, जो सही स्थिति का पता लगाते हैं, उनकी बहुमूल्य एवम् साधन-सम्पन्न प्रयोगशाला यहाँ लगाई गई है। जिन परीक्षणों के लिए बाजार में सैकड़ों रुपये खर्च करना पड़ता है और जाँच कराने, रिपोर्ट लेने के लिए डॉक्टरों के यहाँ बार-बार चक्कर लगाना पड़ता है, उन सभी का शान्तिकुञ्ज में तत्काल प्रबन्ध हो जाता है और निर्णय किया जाता है कि साधक की सर्वतोमुखी स्वस्थता के सम्बन्ध के लिए क्या किया जाना चाहिए ?

छूत के, असाध्य एवम् दूसरों की सुविधा में जो रोगी विघ्न पैदा करते हैं, उनके रहने और सेवा करने की अस्पताल स्तर की सुविधा तो यहाँ नहीं बन पाई है इसलिए क्षय, कैन्सर, कोढ़, दमा, दाद जैसे रोगियों की भर्ती का प्रबन्ध नहीं है। पर जो अपने शरीर की व्यवस्था स्वयं सम्भाल सकते हैं और जिनके लिए आश्रम के सामान्य क्रम में व्यतिरेक नहीं पड़ता उन्हें रोगी की हैसियत से नहीं, साधक की श्रेणी में प्रवेश दिया जाता है।

सामान्य चिकित्सा के लिए यहाँ जड़ी-बूटियों का उपचार किया जाता है। एक समय में एक ही वनौषधि दी जाती है। अधिकांश औषधियाँ या तो शान्तिकुञ्ज के औषधि उद्यान में ही लगाई, बोई, ऊँगाई जाती हैं या फिर आसपास की पहाड़ियों से एकत्र कर, यहाँ स्वच्छ कर तैयार की जाती हैं। बाहर से तो उन्हीं को मंगाना पड़ता है, जो बहुत ठंडे या बहुत गरम क्षेत्रों में पैदा होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वनस्पतियों में असाधारण गुण हैं। आयुर्वेद उन्हीं के कारण विश्वविख्यात हुआ था। किन्तु वे गुण ताजी एवम् प्रौढ़ स्थिति में प्राप्त किये जाने पर ही उपलब्ध होते हैं। एक वर्ष में वे गुणहीन हो जाते हैं। तब उन्हें फेंक दिया जाना चाहिए। किन्तु दुर्भाग्य से अब न तो जड़ी-बूटियों के कहीं उत्पादन-उद्यान रहे और न असली नकली की पहचान रही। पंसारियों की दुकानों से तो वर्षों पुरानी सड़ी-गली चीजें लेनी पड़ती हैं। खरीददार को उनके असली-नकली होने का भी ज्ञान नहीं होता। ऐसी दशा में उनके सेवन से कोई लाभ न पहुँचे तो आश्चर्य ही क्या ? आयुर्वेद इसी कारण असफल एवम् बदनाम भी हो रहा है। शान्तिकुञ्ज इस सम्बन्ध में सौभाग्यशाली है कि वह अपने साधकों के स्वास्थ्य सम्वर्द्धन में काम आने वाली प्रधान औषधियाँ अपने यहाँ ही उत्पन्न अथवा संग्रहीत कर लेता है। साथ ही उसका यह प्रयास भी चलता है कि ऐसे उद्यान स्थान-स्थान पर लगें जो अपने-अपने क्षेत्र की आवश्यकता पूरी करें।

वनौषधियों के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि उन्हें जितना बारीक पीसा जाय उतने ही उनके अणु सूक्ष्म होते हैं और अपना विशेष प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। होम्योपैथी में औषधियों की पोटैन्सी बढ़ाने में यही सिद्धान्त काम करता है। डीशेन की औषधियों में सूक्ष्मीकरण का ही सिद्धान्त काम करता है। शान्तिकुञ्ज में औषधियों को मशीनों द्वारा अतिशय बारीक बनाया जाता है जैसा कि इन दिनों हाथ से किया जाना अति कठिन है।

एलोपैथी चिकित्सक अपनी औषधियों में क्या रासायनिक पदार्थ हैं और वे किस प्रकार किस रोग पर क्या प्रभाव डालते हैं, इसे एक सुनिश्चित प्रक्रिया के अनुसार सिद्ध करते हैं। आयुर्वेद में शास्त्र कथन ही सब कुछ माना जाता है, इसलिए उसे चुनौती भी दी जा सकती है। शान्तिकुञ्ज में जहाँ वनौषधियों का उद्यान लगाया है, वहाँ इस प्रकार की बहुमूल्य प्रयोगशाला भी खड़ी की गई है, जो किस वनस्पति में क्या तत्त्व कितनी मात्रा में मिले हुए हैं और वे किस रोग पर क्यों कर क्या प्रभाव डाल सकते हैं ? इसकी जाँच-पड़ताल करती है। यह अद्‌भुत प्रयोगशाला इस प्रकार से विज्ञान जगत पर जड़ी-बूटियों के सुनिश्चित प्रभाव की छाप डालता और रोगी को तर्क, प्रमाण के आधार पर आश्वस्त करता है। साथ ही इन औषधियों की दीर्घ कालावधि का निर्धारण कर यह भी बता दिया जाता है कि इनकी प्रभाव क्षमता कब तक रहेगी। आयुर्वेद में प्रामाणिकता का यह प्रयोग मात्र गायत्री तीर्थ में ही किया गया है।

जड़ी-बूटियों के अतिरिक्त यज्ञ सिद्धान्त के अनुरूप ऐसी धूपबत्तियाँ भी बनाई गई हैं, जिन्हें अपने निकट जलाते रहने पर रोग-कीटाणुओं का शमन होता है और प्रसुप्त जीवनी शक्ति जगती है। नित्य यज्ञ करने में जिन्हें असुविधा प्रतीत हो, उन लोगों को यह प्रयोग अत्यन्त सुगम प्रतीत होता है। इससे अग्निहोत्र विज्ञजन का परीक्षण भी होता रहता है। मानसिक बल-वर्द्धन की दृष्टि से यह अग्निहोत्र धूपबत्तियाँ अपना अच्छा प्रभाव दिखाती हैं।

आहार की दृष्टि से यहाँ पर सभी साधकों को अमृताशन (उबले अन्न) का ही प्रयोग करना पड़ता है। दाल, चावल, खिचड़ी, दलिया, शाक ही प्रधान भोजन है। यह एक प्रकार का उपवास ही हो जाता है। तथाकथित व्रत-उपवास के दिनों लोग जिस प्रकार की ऊटपटांग वस्तुएँ फलाहार के नाम पर खाते रहते हैं, उसकी तुलना में यह आहार जिस प्रकार बनाया जाता है, उससे उसका स्तर फलाहार के समतुल्य ही हो जाता है। सभी साधक अपनी सुराहियों में गंगा जल भर कर लाते हैं और वही पीते हैं। माता जी सरस्वती पंचक कल्क के यज्ञ में दिव्य औषधि प्रसाद सभी को पीने के लिए प्रातःकाल देती हैं। इस प्रकार सब मिलाकर चलने वाले उपचार नित्य यज्ञ में सम्मिलित होने की प्रक्रिया के कारण ऐसे बन जाते हैं जो शारीरिक ही नहीं, मनोविकारों, मानसिक रोगों तक भी अपना प्रभाव डालते हैं।

मानसिक विकारों के निवारण एवम् मनःस्वास्थ्य सम्वर्द्धन के लिए स्वाध्याय और सत्संग प्रवचन का क्रम तो चलता ही है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत परामर्श भी आगन्तुकों के सामने उपस्थित कठिनाइयों के निवारण करते हैं। कई प्रकार के प्राणायाम भी मानसिक रोगों के निवारण में अपना चमत्कारी प्रतिफल दिखाते हैं।

आध्यात्मिक अन्तःकरण क्षेत्र में जमे हुए पापों के लिए प्रायश्चित प्रक्रिया द्वारा परिशोधन होता है। इसी बीच गायत्री अनुष्ठान और सविता देवता के ध्यान एवं भाव का निर्धारण होता है। जिनके लिए बन्ध मुद्रा आवश्यक होती हैं, वह बता दी जाती हैं। पूर्व जन्मों के संचित सुसंस्कारों की जानकारी हस्तरेखा माध्यम से मिल जाती है । शान्तिकुञ्ज में बनी वेधशाला का जहाँ एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्देश्य पृथ्वी पर, पृथ्वी निवासियों पर पड़ने वाले अन्तर्ग्रही प्रभावों को जानना है और समय रहते दुर्विपाकों का निराकरण करता है, वहाँ एक विशेष उद्देश्य यह भी है कि साधकों की जन्मकुण्डली या हस्तरेखा के आधार पर उस स्थिति को जाना जाय जो पूर्व जन्मों के संचित शुभ या अशुभ विकारों की जानकारी करा सकें और तदनुरूप उनके निराकरण के लिए किसी योग तप के अभ्यास का निर्देश दे सकें। स्थिति को जानने के लिए शान्ति-कुञ्ज-विनिर्मित दृश्य गणित पंचांग द्वारा एवं हाथ की छाप लेकर स्थिति को जाना और उसका समाधान किया जाता है। इस प्रकार शारीरिक-मानसिक, आध्यात्मिक स्तरों का पर्यवेक्षण तथा उपाय-उपचार साधक को निरभय एवं प्रगतिशील बनाने में बहुत सहायक सिद्ध होता है।

व्यस्त लोग जो पर्यटन के उद्देश्य से आते हैं, समय कम होता है और दृष्टिकोण में भागदौड़ की चंचलता भरी रहती है, उनके लिए शिविर में तीन दिन और पर्यटन के दो दिन लगा देने से पाँच दिन में जितना कुछ बन पड़ता है, जितना सम्भव है उतना कर दिया जाता है। पर यह अन्तिम निर्धारण नहीं है। नौ दिन के २४ हजार या ४० दिन में सवालक्ष अनुष्ठान करने के लिए स्थिति के अनुरूप अनुमति मिल सकती है।

शान्तिकुञ्ज की सत्र साधना

शान्तिकुञ्ज, ब्रह्मवर्चस, की प्रतिष्ठा और ख्याति इतनी बढ़ गई है कि हरिद्वार आने वाले प्रत्येक तीर्थ यात्री का मन उसे बार-बार देखने के लिए करता है। कोई अन्य व्यक्ति इधर किसी काम से आता है तो भी उसे आग्रह-पूर्वक यह परामर्श दिया जाता है कि इन अपने ढंग की अनोखे तीर्थ संस्थानों को देखे बिना न लौटे। वे आते और प्रसन्न, सन्तुष्ट होकर जाते हैं तो अन्यान्यों से इनकी चर्चा करते हैं। इस प्रकार न केवल उत्सुकता बढ़ती है वरन् आगन्तुकों की संख्या में भी अभिवृद्धि होती जाती है। समुचित स्वागत-सत्कार एवम् काम छोड़कर दर्शनार्थियों को यहाँ की स्थापनाओं को दिखाना एवं गतिविधियों को समझाने की प्रक्रिया ऐसी मृदुल होती है जिसमें आदि से अन्त तक सज्जनता टपकती है। जाने वालों का मन और भी अधिक देर बैठने सुस्ताने का होता है।

लोगों की मान्यता बन गई है कि उत्तराखण्ड की यात्रा कठिन है उसमें अनेक प्रकार के संकटों की सम्भावना रहती है। दुर्घटनाओं के समाचार सुनकर जाने वालों का उत्साह एवं भाग्य ज्वार-भाटे की तरह नीचा-ऊँचा होता रहता है। ऐसी दशा में यह समझा जाता है कि शान्ति-कुञ्ज की धूलि मस्तक पर लगाकर या साथ लेकर जाया जाय तो किसी अशुभ अनिष्ट की अशंका न रहेगी। यात्रा सकुशल सम्पन्न होगी। जो जाते समय किसी कारण नहीं आ पाते वे साथी यात्रियों के मुँह से चर्चा सुनकर लौटते हुए जरूर आते हैं। कहा जाता है कि हरिद्वार के दर्शनीय मन्दिरों में सबसे अधिक संभ्रान्त यात्रियों का अवागमन शान्तिकुञ्ज में ही होता है। यहाँ किसी की जेब काटने की नहीं, स्नेह सहयोग, आतिथ्य देने की ही भावना रहती है।

घर से रूठ कर भागे हुए बच्चे बड़े आवेश में घर छोड़ते हैं पर यहाँ आने पर उन्हें एक ही स्थान ऐसा लगता है जहाँ उन्हें संरक्षण मिल सकता है। ऐसी दशा में तुरन्त तार देकर उनके घर वालों को बुला लिया जाता है और भागे हुओं को समझा-बुझाकर वापस लौटाने के लिए तब तक तैयार कर दिया जाता है।

तीर्थ सेवन सत्र शान्तिकुञ्ज में पाँच दिन के होते हैं। उनमें अखण्ड ज्योति के सदस्यों को ही आवेदन पत्र आने पर स्वीकृति पत्र भेजा जाता है। अजनबी लोगों को धर्मशाला की तरह चाहे जब आने और चले जाने जैसी छूट यहाँ बिलकुल भी नहीं है।

हर महीने की १ से ५, ६ से १०, ११ से १५, १६ से २०, २१ से २५ और २६ से ३० तक की तारीखों में यह सत्र चलते हैं और वे नियमित रूप से चलते हैं। भोजन की व्यवस्था आश्रम में रहती है। निवास की व्यवस्था भी रखी जाती है। आरम्भ में तीन दिन शान्तिकुञ्ज में ही रहना और निर्धारित कार्यक्रमों में व्यस्त रहना पड़ता है। चौथे दिन दस बजे भोजन के उपरान्त समीपवर्ती तीर्थों में घूमने जाया जा सकता है। पाँचवें दिन भी इसी प्रकार घूमा जा सकता है।

पाँच दिन में १०८ माला का गायत्री अनुष्ठान पूरा हो जाता है। दोनों नवरात्रियों में प्राय: नैष्ठिक साधक ९-९ दिन की साधना के लिए आते हैं। जप, यज्ञ, स्वाध्याय, सत्संग, व्यक्तिगत परामर्श, प्रज्ञा पुराण, कथा-कीर्तन, संगीत, पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माताजी के वीडियो प्रवचन, गंगातट तक भ्रमण ये दैनिक कार्यक्रम रहते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्हीं दिनों व्यक्तिगत कठिनाइयों एवं आकांक्षाओं के सम्बन्ध में संस्था प्रमुख के साथ विचार विनिमय हो जाता है। इस जन्म में हुई या पिछले जन्म की गलतियों का प्रायश्चित्य भी कराया जाता है और यह बताया जाता है कि भावी जीवन उन्हें किस प्रकार बिताना चाहिए। यह मार्ग-दर्शन ऐसा है कि जो उसे अपना पाते हैं वे भावी जीवन प्रगतिशील एवं सुख शान्ति से भरा पूरा बिताते हैं।

अनुपयुक्त जीवन को सुधार कर उपयोगी जीवन क्रम में प्रवेश करने के लिए कुछ मध्यान्तर रखना चाहिए। यह समय साधना तपश्चर्या के लिए रहे, इसके लिए ९ दिन का २४ हजार का गायत्री अनुष्ठान या न्यूनतम ५ दिन का १०८ माला अनुष्ठान आवश्यक है। इसे मध्यान्तर का साधना काल समझना चाहिए और इसी बीच तीर्थ संचालकों से परामर्श करके यह निश्चय कर लेना चाहिए कि भावी जीवन किन आदर्शों के अनुरूप व्यतीत किया जायेगा। आरम्भिक अभ्यास के लिए अपना घर परिवार सबसे सरल और सबसे उपयुक्त है। कुटुम्ब में जितने सदस्य हों उन सभी को श्रमशीलता, मितव्ययता, सुव्यवस्था, शिष्टता एवम् उदार सहकारिता का अभ्यास कराना चाहिए। इसके लिए आवश्यक यह है कि इन सद्गुणों को सर्व प्रथम स्वयं अपनाया जाय और साथ ही परिवार के लोगों को अपनी सुधरी दिनचर्या में सम्मिलित रहकर इन सत्प्रवृत्तियों के दूरगामी सत्परिणाम समझाते हुए उन्हें भी सीखने सहयोग देने के लिए सहमत करना चाहिए। जिस प्रकार तैरना सीखने के लिए तालाब में प्रवेश करना आवश्यक है, उसी प्रकार इन सत्प्रवृत्तियों की गरिमा समझाते हुए अनुरोध, आग्रह एवमं अनुशासन के रूप में अपना स्वभाव सज्जनोचित बनाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

इसके लिए अच्छा हो घर में एक प्रज्ञा पुस्तकालय स्थापित किया जाय जिसमें मँगाया हुआ प्रज्ञा साहित्य घर के सभी लोगों को पढ़ाया या सुनाया जाय। पढ़े पढ़ा करें और बिना पढ़े उसे सुना करें। इस प्रयोजन के लिए घर में प्रज्ञा पुराण के सभी प्रकाशित सभी खण्ड रहने आवश्यक हैं। इन सभी में मिलाकर प्राय: ५ हजार कथाएँ हैं जो प्राचीनकाल की होते हुए भी अर्वाचीन समस्याओं के तर्क-संगत प्रगतिशील हल सुझाती हैं। सायंकाल इनकी कथाएँ बाल वृद्ध सभी को सुनाई जाया करें। महिलाओं को तीसरे पहर का समय सुविधा का रहता है, वे इन कथाओं को उस समय पढ़ा सुना करें। इस प्रकार तीर्थ यात्रा से लौटने पर अपने परिवार में स्वाध्याय और सत्संग का क्रम चला देना एक उत्तम परमार्थ है। कोई धर्म प्रचार के लिए सुदुर क्षेत्रों में नहीं जा सकता है तो उसका सबसे निकटवर्ती और परम प्रिय वर्ग तो इसके लिए उपयुक्त हो ही सकता है कि उसमें सद्ज्ञान प्रसार का सत्प्रयत्न निरन्तर चलाया जा सके।

उपर्युक्त प्रज्ञा साहित्य मँगाते रहने के लिए बीस पैसा रोज या दो मुट्ठी अनाज ज्ञान घट-धर्म में जमा करते रहना चाहिए। उत्सवों के अवसर पर इस कोष में कुछ अधिक भी जमा किया जा सकता है। इस राशि को किसी और को देने की आवश्यकता नहीं। इसके बदले प्रज्ञा साहित्य खरीदते हुए घर में धर्म सम्पदा सद्ज्ञान साहित्य के रूप में बढ़ाते चलना चाहिए। कुपात्रों के हाथ दान देने की अपेक्षा घर में सद्ज्ञान संपदा बढ़ाने के लिए दान करना अधिक श्रेयस्कर है। फिर वह बीस पैसा नित्य जितनी स्वल्प ही क्यों न हो।

घर में यह प्रथा डालनी चाहिए कि सभी छोटे अपने से बड़ों का चरण स्पर्श करते हुए अभिवादन किया करें। बड़े आशीर्वाद रूप में छोटों के लिए शुभ कामना किया करें। यह अभिवन्दन सर्व प्रथम घर में स्थापित गायत्री माता की तस्वीर या प्रतिमा से आरम्भ हो। उन्हें भी घर का सबसे बड़ा सदस्य और संरक्षक माना जाय।

इन दिनों २४ करोड़ नित्य गायत्री जप का एक महाअनुष्ठान लोक-कल्याण एवं वातावरण संशोधन के लिए चल रहा है। इसमें अपने परिवार के सभी सदस्यों को सम्मिलित करना चाहिए। प्रात:काल सूर्य उदय के समय जो जहाँ, जिस भी स्थिति में हों उसी में पाँच मिनट मौन मानसिक जप कर लिया करें। इतनी देर में प्राय: १०८ मंत्र गायत्री का जप हो जाता है। इसके लिए स्नान आवश्यक नहीं है। मौन मानसिक जप के लिए शरीर शुद्धि अनिवार्य नहीं है।

तीर्थ सेवन सत्र में तो गायत्री अनुष्ठान शुद्ध होकर ही करना पड़ता है और उसमें प्रज्ञायोग की विधा सम्मिलित रखनी पड़ती है। इसी को लौटने के उपरान्त आजीवन चलाते रहना चाहिए। प्रज्ञा योग की साधना नितान्त सरल किन्तु फलवती है। उसका क्रम इस प्रकार है—

(१) प्रात: काल आँख खुलते ही विचार किया जाय कि आज एक दिन के लिए ही नया मनुष्य जन्म मिला है। उसका श्रेष्ठतम सदुपयोग करने के लिए उसी समय रात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक की दिनचर्या बना ली जाय और उसे मुस्तैदी के साथ निभाया जाय।

(२) रात को बिस्तर पर जाते ही ध्यान किया जाय कि अब निद्रारूपी मृत्यु के मुख में जाया जा रहा है। आज की भूलों के लिए पश्चाताप किया जाय और कल अधिक श्रेष्ठ जीवन जीने का निश्चय किया जाय।

(३) प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर, शुद्ध स्थान पर, शुद्ध जल पात्र लेकर उपासना के लिए बैठा जाय। मन, कर्म, वचन, चिन्तन, चरित्र, व्यवहार को शुद्ध करने के लिए आचमन प्राणायाम आदि का कृत्य पूरा किया जाय।

(४) स्थापित गायत्री माता के चित्र के सामने जल, पुष्प, चंदन, अक्षत, अगरबत्ती आदि प्रस्तुत की जाय और भावना की जाय कि इस पूजा उपचार से अपना व्यक्तित्व उच्चस्तरीय ढाला जायगा।

(५) गायत्री मंत्र का जप न्यूनतम दो माला किया जाय। एक आत्म-कल्याण के लिए दूसरा लोक-कल्याण के लिए।

(६) जप के समय प्रातःकालीन स्वर्णिम सूर्य सविता का ध्यान किया जाय और विश्वास किया जाय कि उसका तेजस् शरीर में उज्ज्वल चरित्र, मन में उत्कृष्ट चिन्तन और अन्तःकरण में आदर्श कर्त्तव्य के रूप में प्रवेश कर रहा हैं। अपनी आत्म-सत्ता आगे बढ़ रही है ऊँची उठ रही है, तेजस्वी बन रही है।

(७) जल पात्र को सूर्य के सम्मुख अर्घ्यरूप में चढ़ा दिया जाय और भावना की जाय कि जीवन पात्र में जो सम्पदा भरी है, वह सभी भगवान के लिए—सत्प्रयोजनों के लिए समर्पित की जा रही है। उसका लाभ समस्त विश्व को मिले।

आत्मिक प्रगति के तीन आधार हैं—

(१) उपासना (२) साधना (३) आराधना।

उपासना कहते हैं—गायत्री अनुष्ठान जैसे भजन ध्यान को । इसके लिए प्रज्ञा योग की साधना सर्वोत्तम है। साधना कहते हैं जीवन शोधन को, इसमें आत्म सुधार एवम् आत्म विकास आवश्यक है। इन्द्रिय संयम, समय संयम, अर्थ संयम और विचार संयम। यह सर्व साधारण के लिए आत्म-शोधन की उपयुक्त साधना है। इसे हर दिन किसी एकान्त समय में अकेले बैठकर किया जाय।

आराधना कहते हैं—पुण्य परमार्थ को। दीन दुःखियों की सहायता भी यथा समय करनी चाहिए, पर निरन्तर करने योग्य परमार्थ ज्ञानदान है। इसके लिए न्यूनतम यह हो सकता है कि अपने मित्र पड़ोसियों में से न्यूनतम दस को मिशन की पत्रिकाएँ तथा प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने का व्रत लिया जाय और बिना आलस्य किये पूरा करते रहा जाय।

इन दिनों वातावरण संशोधन एवम् प्रज्ञा युग अवतरण के लिए एक सरल अनुष्ठान एक गायत्री चालीसा पाठ नित्य कर लेने का क्रम चल रहा है। इसके लिए मिशन की ओर से लागत में घाटा देकर एक रुपये में पन्द्रह गायत्री चालीसा दिये जाते हैं। सत्र समाप्त करने के बाद एक दो रुपये के गायत्री चालीसा साथ ले जाने चाहिए। उन्हें प्रसाद की तरह बिना मूल्य वितरण करना चाहिए और साथ ही उनसे नित्य पाठ करने की शर्त तय कर लेनी चाहिए। दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखना, घरों में तुलसी के बिरवे लगाकर, भगवान के खुले मन्दिर स्थापित करना जैसे छोटे-छोटे काम ऐसे हैं जिन्हें निर्धन, संकोची अथवा व्यस्त व्यक्ति भी कर सकते हैं। पाँच दिन का सत्र पूरा करते हुए ऐसे ही व्रत नियम साथ लेकर लौटने में ही उसकी सार्थकता है।

नव सृजन हेतु युगशिल्पियों का निर्माण

अपने देश में सुदूर देहातों में फैला हुआ अशिक्षित ग्रामीण समाज अर्थशास्त्र, राजनीति, समाज विज्ञान, नागरिकशास्त्र आदि के सम्बन्ध में उतना जानकार नहीं जितना कि धर्म परम्पराओं और कथा-पुराणों के सम्बन्ध में। अस्तु समय की आवश्यकता के अनुरूप जन साधारण को प्रशिक्षित करना धर्म पुरोहित प्रचारकों का ही दायित्व है। पुरोहित की प्रतिज्ञा है—"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः", हम पुरोहित राष्ट्र को जाग्रत और जीवन्त रखे रहेंगे।

वर्तमान स्थिति में सर्वत्र जो पिछड़ापन बिखरा दीखता है, उसका कारण नैतिक दुर्बलता, बौद्धिक मूढ़ मान्यताएँ और सामाजिक कुरीतियाँ प्रधान हैं। इन्हें सुधारने में शासन उतनी अच्छी तरह समर्थ नहीं हो सकता, जितना धर्मक्षेत्र। लोक शिक्षण के लिए धर्म की पृष्ठभूमि पर खड़े होकर विचार, चरित्र और व्यवहार को बदलना अपने देश की स्थिति को देखते हुए सरल और सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारत शौर्य-पराक्रम की दृष्टि से कभी दुर्बल नहीं रहा, पर उसे अपनी सामाजिक दुर्बलताओं एवं चरित्र में घुसी हुई प्रतिगामिताओं के कारण ही अपना हेयता और हीनता का परिचय देना पड़ा। इसी कारण सिर पर पराधीनता लदी और उसी कारण शोषण-उत्पीड़न का त्रास सहना पड़ा। समय आ गया है कि पिछड़ेपन की जड़ उखाड़ फेंकी जाय और प्रगतिशीलता का अभिवर्धन हो। यह कार्य सरकार की अपेक्षा धर्म पुरोहित कहीं अच्छी तरह सम्पन्न कर सकते हैं।

जाति-पाँति, ऊँच-नीच, छूआछूत मानना, देहज का लेना-देना भी रिश्वत की तरह कानून विरुद्ध है। बाल-विवाह पर भी प्रतिबन्ध है, किन्तु ढेरों व्यक्ति कानून की अवज्ञा करते हुए अनाचार अपनाते हैं। इसमें सुधार के लिए धर्म परम्परा का आश्रय लेकर अधिक अच्छी तरह सुधार कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।

भगवान बुद्ध ने यही किया था। उनके जमाने में वाम मार्ग का बोलबाला था। तांत्रिक अनाचार से पशुबलि की प्रथा जोरों पर थी। दूसरे प्रकार के अनाचार भी पूरी तरह पनप रहे थे। बुद्ध ने एकाकी प्रयास किया। सर्वप्रथम अपनी निज की तप-साधना से व्यक्तित्व को अधिक, पवित्र और प्रखर बनाया। इसके उपरान्त ही उन्होंने धर्म क्षेत्र को अपने हाथ में लिया और सुधार कार्य आरम्भ किया। यह धर्म चक्र प्रवर्तन क्रमशः गति पकड़ता गया और अनेक विचारशील साथी मिलते गये। संसार में संकीर्ण स्वार्थपरता का बाहुल्य है, किन्तु विचारशील उदारमना लोगों की भी कमी नहीं है। परिचय के अभाव में ही एक-दूसरे के साथ जुड़ नहीं पाते। इसकी एक केन्द्रीय व्यवस्था बुद्ध के नेतृत्व में बनी, तो उनकी छत्र-छाया में एक बड़ा विचारशील वर्ग एकत्रित हो गया।

बुद्ध धर्म के तीन मूल मंत्र हैं—

(१) धर्म शरणं गच्छामि (२) बुद्धं शरणं गच्छामि (३) संघ शरणं गच्छामि।

अर्थात् व्यक्तिगत जीवन को धर्माचरण के अनुरूप बनायेंगे। दूसरे बुद्धिवाद की दूरदर्शी विवेकशीलता की कसौटी पर कस कर ही किसी बात को स्वीकार करेंगे। तीसरे संगठित होकर काम करेंगे, अहंता प्रदर्शन के लिए अपनी ढपली अपना राग न अलापेंगे, डेढ ईंट की अपनी मसजिद खड़ी न करेंगे। इन तीन सिद्धान्तों को लेकर ही बौद्ध धर्म आगे बढ़ा और भारत एशिया तक सीमित न रह कर विश्व-भर में धार्मिक क्रान्ति का शंख बजाया। इस रीति-नीति को गायत्री परिवार द्वारा भी अपनाया गया है।

चौबीस लाख प्रज्ञा परिजनों में से जिनकी मनःस्थिति एवं परिस्थिति लोक-मानस में प्रगतिशीलता का बीजारोपण करने के लिए घर से बाहर निकलने की है, उन सब को अमंत्रित किया गया है, कि वे नवनिर्माण का अलख जगाने के लिए, लोक नेतृत्व के लिए आगे आयें और अपना काम ठीक तरह सम्पन्न कर सकने की योग्यता प्राप्त करने के लिए शान्तिकुञ्ज में प्रशिक्षण प्राप्त करें।

यद्यपि ऐसे प्रशिक्षण के लिए वर्ष-दो वर्ष की आवश्यकता है, किन्तु शान्तिकुञ्ज में स्थान कम होने और कार्य क्षेत्र की माँग में अधिक आवेश होने के कारण समाज सेवी कार्यकर्ता बड़ी संख्या में तैयार करने की जल्दी पड़ी। इसलिए एक महीने के युग शिल्पी सत्रों की योजना बनानी पड़ी, जो गायत्री तीर्थ निर्माण के कुछ दिन पश्चात् से ही आरम्भ कर दी गई और दिनों दिन, अधिकाधिक सुव्यवस्थित रूप से आगे बढ़ रही है।

युग शिल्पी सत्र हर महीने की पहली तारीख से आरम्भ होकर पूरे महीने चलते हैं। इस अवधि में उन्हें—

(१) ढफली, मजीरा, तंबूरा, खड़ताल, चिमटा आदि सरल उपकरणों के साथ संगीत शिक्षा दी जाती है। गायन और वादन का इतना अभ्यास करा दिया जाता है कि वे देहाती क्षेत्र में लोक संगीत के सहारे समा बाँध सकें।

(२) युगशिल्पियों को दूसरा प्रशिक्षण गोष्ठियों में प्रवचन करने, सभाओं में भाषण देने और जहाँ कुछ दिन टिकाऊ व्यवस्था दीखे, वहाँ प्रज्ञा पुराण, कथा तथा कीर्तन संगीत साथ-साथ चलाने की शिक्षा दी जाती है। जो लोग स्टेज पर बैठने और मुँह खोलन से डरते हैं वे ही एक महीने की स्वल्प अवधि में अच्छे वक्ताओं की भूमिका निभाने लगते हैं।

(३) जड़ी-बूटियों के छोटे-छोटे उद्यान लगाने और उनके सहारे जन साधारण का स्वास्थ्य सुधारने की शिक्षा यहाँ दी जाती है।

(४) अपने कार्यक्षेत्र में प्रौढ़ शिक्षा, व्यायामशाला, वृक्षारोपण कार्यक्रम हर गाँव में चलाने की शिक्षा दी जाती है। फर्स्टएड नर्सिंग, स्काउटिंग से सम्बन्धित से सभी बातें बताई जाती हैं, जो किसी को सुयोग्य नागरिक एवम् लोक सेवी बनने के लिए आवश्यक हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(५) कुरीति-उन्मूलन एवं सत्प्रवृत्ति सम्बन्ध के लिए पर्व त्योहारों पर छोटे-छोटे यज्ञ आयोजन करने, पौरोहित्य से सम्बन्धित सभी कर्मकाण्ड कर सकने की दक्षता सम्पादित कराई जाती है। इन आयोजनों में जो लोग सम्मिलित होते है, उन्हें अपनी कम-से-कम एक बुराई छोड़ने और एक अच्छाई अपनाने के लिए संकल्प पूर्वक देव-दक्षिणा देनी पड़ती है। इस माध्यम से दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ने और सत्प्रवृत्तियाँ उभारने में बड़ी सहायता मिलती है।

इन सत्रों को पूरा करके जो लोग एक महीने बाद विदा होते हैं, उन्हें व्यक्तिगत जीवन को जन-साधारण से अधिक ऊँचा बनाने तथा जन सम्पर्क के लिए जिस विनम्र सज्जनता की आवश्यकता पड़ती है, उसे अपनाने की प्रतिज्ञा कराई जाती है।

यह लोग अपना कार्य क्षेत्र चुनते हैं और जैसा सत्र यहाँ सम्पन्न किया है, वैसा ही अपने स्थानीय साथियों का लगाने और एक अच्छा लोग सेवी जत्था अपने गाँवों में खड़ा करने के लिए इनसे कहा जाता है। वे वैसा करते भी हैं। जन्मदिवसोत्सव में और पर्व त्योहारों पर उनके स्थानीय स्तर के आयोजन सम्मेलन होते रहते है, जिनमें विचार व्यक्त करते हुए अपने अभ्यास एवं उद्देश्य को आगे बढ़ाते-चलाते रहें।

जन सम्पर्क के काम आने वाले साधन, स्लाइड प्रोजेक्टर, टेपरिकार्डर और लाउडस्पीकर का उपयोग उन्हें ठीक तरह सिखा दिया जाता है, ताकि वे आये दिन काम आने वाले इन उपकरणों का प्रयोग ठीक प्रकार से करते रह सकें।

जिनकी स्थिति एक महीने जितने स्वल्प समय तक रुकने की है, वे उतने ही दिन ठहर कर काम चलाऊ प्रशिक्षण प्राप्त कर लेते हैं। पर जिनकी स्थिति अधिक समय तक रुकने की है, उनके लिए यह सुविधा है कि हारमोनियम बजाना भी सीख सकें और शान्तिकुञ्ज की व्यवस्था में सम्मिलित रह कर अपने यहाँ बड़े आयोजनों का प्रबन्ध कर सकें।

अभी तक उत्तर एवं मध्य भारत ही अपना कार्यक्षेत्र रहा है, वह भी प्रधान तथा हिन्दी भाषी क्षेत्र। स्थानीय भाषाओं का ज्ञान न होने के कारण अन्य भाषा-भाषी क्षेत्र में मिशन का प्रवेश नहीं हो सका है। उन क्षेत्रों से सम्पर्क साधने में मात्र अँग्रेजी ही माध्यम रह जाता है, जिसे सुशिक्षित ही समझते हैं। जन साधारण से सम्पर्क साधने के लिए देश में बोली जाने वाली १४ प्रधान भाषाओं का ज्ञान होना अनिवार्य है। वह भी यहाँ कराया जाता है।

भाषाओं के शिक्षण की तरह यह भी आवश्यक है कि युग शिल्पियों में मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी, बौद्ध आदि सम्प्रदायों से उनकी मान्यताओं के साथ ताल मेल बिठाते हुए युग चेतना का सन्देश पहुँचाना सभी वर्गों में सम्भव हो सके। इस निमित्त भाषा विद्यालय की तरह धर्म सम्प्रदायों की भी गहरी जानकारी कराई जाती है और लोक सेवियों को उन वर्गों के बीच भी काम करने के लिए भेजने का भावी निर्धारण है।

बुद्ध काल में नालन्दा विश्वविद्यालय में भारत की सभी भाषाएँ पढ़ाई जाती थीं और तक्षशिला विश्वविद्यालय में संसार भर के देशों में प्रचलित भाषाओं के प्रशिक्षण का प्रबन्ध था जिन्हें जिस क्षेत्र या वर्ग के बीच काम करना होता था, उसे उसी प्रयोजन की भाषा और संस्कृति का अभ्यास करना पड़ता था। इस सन्दर्भ में शान्तिकुञ्ज पूरी तत्परता के साथ प्रयत्नशील है और सम्भावना इस बात की है कि जो कमी इस सन्दर्भ में रह गई है उसकी पूर्ति जल्दी ही कर ली जाय। हर दृष्टि से गायत्री तीर्थ आना-अपना, कायाकल्प करके जाने के समान है। न केवल सत्र में सम्मिलित होने, अपितु थोड़ी ही देर में एक महातीर्थ की झांकी कर लेने हेतु यहाँ श्रद्धालु व्यक्तियों का इसी कारण वर्ष भर मेला लगा रहता है।

तीर्थ-साधना से देवत्व का उदय

भारतीय संस्कृति में तीर्थ का असाधारण महत्त्व एवं महात्म्य बताया गया है । उनके अवगाहन का पुण्य फल शास्त्रों में विस्तारपूर्वक बताया गया है । इसके लिए कितने ही तीर्थ बने भी हैं । उनकी भव्यता, विशालता एवं बहुलता देखते ही बनती है । वर्णित माहात्म्य पर असंख्यों धर्म-प्रेमियों की श्रद्धा भी है । यही कारण है कि हर वर्ष तीर्थ यात्रा के लिए निकलते और उस प्रयास के फलस्वरूप पुण्यफल प्राप्त होने की मान्यता लेकर वापस लौटते हैं।

देखना यह है कि यह मान्यता एवं परम्परा किस कारण चली और उससे कौन-सा ऐसा प्रयोजन सधा जिससे वस्तुतः परमार्थ सधता हो । मोटी दृष्टि से देखने पर तो यह उपक्रम उस पर्यटन प्रचलन से अधिक नहीं दिखता जिसे ऊब उतारने और नवीन के सम्पर्क में आकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ताजगी अर्जित करने के लिए संसार भर में अपने-अपने ढंग से अपनाया गया है । पर्यटन एक निर्दोष मनोरंजन है । लगातार एक स्थान पर रहते-रहते मनुष्य ऊबने लगता है । प्राणियों की भ्रमणशील आदत मनुष्य में भी विद्यमान है और वह बहुत समय एक जगह रहते-रहते ऊबने लगता है, तब पर्यटन में उस उचाट का समाधान होता है । ज्ञान अनुभव बढ़ता है, धन का वितरण होता है, श्रमिकों को काम मिलता है, व्यवसाय पनपता है । इन कारणों से पर्यटन को सर्वत्र महत्त्व दिया जाता है । इतनी बात सही होते हुए भी देखना यह है कि इस विलोम प्रचलन को धर्म-धारणा में कैसे सम्मिलित किया गया और उससे पुण्य फल प्राप्त होने, परमार्थ सधने जैसा प्रतिपादन किस कारण मान्य किया गया ?

इस असमंजस का निराकरण पुरातन काल के तीर्थ सेवन और आज के तीर्थ पर्यटन के मध्यवर्ती अन्तर को समझने पर ही हो सकता है । आज तो संसार भर में प्रचलित पर्यटन प्रक्रिया से अधिक अपने तीर्थ भ्रमण में राई रत्ती भर अन्तर नहीं रह गया है ।

दोनों परिस्थितियों की तुलना में इतना ही कहा जा सकता है कि जहाँ सामान्य जन प्रकृति के सान्निध्य में रहने, चित्र-विचित्र वस्तुएँ देखने, और पिकनिक का आनन्द लूटने के लिए पर्यटन पर निकलते हैं, वहाँ हम भारतीय पुरातन इतिहास परम्परा से सम्बन्धित, देवी-देवताओं के मन्दिरों के लिए निकलते हैं । भीड़-भाड़, धक्का-मुक्की, जेबकतरों, अंध-विश्वास के वातावरण में थकान, निराशा और अश्रद्धा लेकर वापस लौटते हैं । इस माहौल में यदि कुछ पाप बढ़ता तो इसे इस रूप में ही समझा जा सकता है कि जेब का बोझ हल्का हुआ और पुण्य धर्म के झंझट में न पड़कर विशुद्ध मनोरंजन के लिए निकलते और तद्नुरूप कार्यक्रम बनाते हैं ।

फिर तीर्थों का पुण्य किस आधार पर कहा गया ? इस प्रश्न के उत्तर में प्राचीन तीर्थ परम्परा का उद्देश्य और स्वरूप समझने की आवश्यकता पड़ेगी । ऋषि युग में जब तीर्थों की स्थापना हुई थी, तब उन्हें बालकों के लिए गुरुकुल, गृहस्थों के लिए परिष्कार, परिशोध तथा अधेड़ों के लिए आरण्यक स्तर की त्रिविध व्यवस्था थी । वहाँ ऋषियों के उपयुक्त आश्रम इन्हीं त्रिविध प्रयोजनों की पूर्ति के लिए बने थे । ऐतिहासिक एवं महामानवों से स्बन्धित स्थलों एवं प्रकृति समीपता की दृष्टि से मनोरम स्थानों में वह स्थापनायें की गयीं थीं । उन दिनों आज जैसे वाटर वर्क्स तो थे नहीं । अधिक संख्या में आने वालों की जल व्यवस्था तो न सूखने वाले नदी सरोवरों के माध्यम से ही संभव था । इसलिए तीर्थों की स्थापना में स्थान का चयन करते समय इन बातों का भी ध्यान रखा गया ।

जहाँ ऋषियों के तीर्थ आरण्यक बने, वहाँ साधकों और शिक्षार्थियों का आवागमन भी आरंभ हुआ । उदार धर्म प्रेमियों ने उनकी सुविधा के लिए धर्मशाला, घाट मन्दिर आदि भी बना दिये । उपयोगी प्रयोजन में सुविधा उत्पन्न करने के लिए उदार लोग स्वेच्छा से भी उत्साहित हुए और वरिष्ठों ने उन्हें इसके लिए उकसाया भी ।

जगत गुरु आद्य शंकराचार्य उसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिनके प्रोत्साहन पर मान्धाता ने चारों धाम बनाये । चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिष्यों से कहकर ब्रजधाम के प्रमुख मंदिर बनवाये । अन्यत्र भी यही होता रहा । ऋषियों की सेवा साधना ने तीर्थों को जन साधारण के लिए उच्च स्तरीय प्रेरणाओं का उद्गम बनाया । वहाँ साधना और शिक्षा की उच्च स्तरीय व्यवस्था की । लोगों ने वहाँ पहुँच कर मिलने वाले असाधारण लाभ को देखा । एक ने दूसरे को प्रोत्साहित किया और तीर्थ यात्रा का प्रवाह चल पड़ा, प्रवाह उमड़ा । उपयोगिता को देखते हुए तत्वदर्शियों ने कथा-पुराणों में उनका अतिरिक्त महत्त्व वर्णन करना आरंभ कर दिया । प्रत्यक्ष लाभ और परोक्ष प्रोत्साहन की उभय पक्षीय प्रक्रिया तीर्थों की आकर्षक भव्यता बढ़ाने में एवं पहुँचने वालों को आत्म-परिष्कार की सुविधा प्रदान करने में समर्थ हुई । तीर्थ प्रख्यात हुए और वहाँ पहुँचने वाले धन्य होकर लौटे । संक्षेप् में यही है वह लक्ष्य, जिसके आधार पर तीर्थों का पुण्यफल कहा और समझा गया । इसमें मूढ़ मान्यतायें नहीं, उपयोगिता की गरिमा ही प्रधान कारण रही ।

तीर्थ यात्रा का एक और भी पक्ष था । विज्ञजनों द्वारा मण्डली बना कर धर्म प्रचार की पद यात्रा पर निकलना । एक रास्ते जाना । दूसरे रास्ते लौटना । रास्ते में जिनसे मिलना हो उनके साथ प्रेरणाप्रद वार्ताक्रम चलाना । रात्रि को जहाँ ठहरना हो वहाँ कथा कीर्तन के माध्यम से निवासियों को सत्संग को उच्चस्तरीय लाभ देना । इस प्रक्रिया को पाप नाशक एवं पुण्य फलप्रदायक माना जाना उचित भी है और स्वाभाविक भी । पुरातन काल में तीर्थ यात्रा पैदल होती थी ताकि अधिक लोगों से सम्पर्क सधे, अधिक अनुभव मिले । पदयात्रा को स्वास्थ्य सम्वर्द्धक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपश्चर्या माना गया है । यह अपने ढंग की चिकित्सा विधि है, जिसके आधार पर आरोग्य सम्वर्द्धन का युक्ति युक्त लाभ मिलता है । कुत्साओं और कुंठाओं से विरत होने और अभ्यस्त ढर्रे को बदलने के लिए यहाँ एक अनुभूतिपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपचार भी है । जिनका यहाँ के नागरिक चिरकाल तक लाभ उठाते और गौरवान्वित होते रहे ।

इन अनेकानेक कारणों से तीर्थ यात्रा शारीरिक मानसिक आधि-व्याधियों से छुटकारा दिलाने तथा एक स्तर की भ्रमणशील जीवनचर्या अपनाने का अनेकानेक लाभों से भरा पूरा अवसर प्रदान करती है । जन-जागरण के लिए जन-सम्पर्क धर्म तंत्र के अनुरूप लोक शिक्षण का समुचित समावेश रहने से उसे परमार्थ कहा जा सकता है। इस प्रकार तीर्थयात्रा में स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय रहने से यदि उसे पुण्य फलदायक कहा जाता है तो उसमें कुछ अत्युक्ति भी नहीं है । उन दिनों तीर्थ यात्रा में चलते तो लोग पैदल ही थे, पर आवश्यक सामान लादने के लिए वाहन भी ले चलने की छूट थी । अभी भी ब्रज चौरासी कोस यात्रा में इस प्रकार का समन्वय देखा जा सकता है ।

सर्व साधारण का तीर्थ स्थानों में बने ऋषि आश्रमों में साधना तथा शिक्षा का उच्चस्तरीय लाभ प्राप्त करके आत्म-शोधन तथा परिष्कार निर्धारण का लाभ लेना ऐसा प्रयोजन था जिसका लोभ संवरण करना किसी विचारशील से बना नहीं था । तनिक भी सुविधा मिलते ही लोग बार-बार उस पुण्य प्रक्रिया से लाभान्वित होने के लिए दौड़ते थे । संकल्प करते थे कि इतने समय उपरान्त, इतने समय के लिए तीर्थ सेवन के लिए निश्चित रूप से पहुँचा करेंगे । तीर्थ उन दिनों अध्यात्म क्षेत्र के सेनेटोरियम से थे जिसमें शारीरिक थकान और मानसिक तनाव मिटाने तथा भविष्य के लिए नव-चेतना अर्जित करने का उत्साहवर्द्धक अवसर मिलता था । व्यस्त गृहस्थों के रेगिस्तानी जीवन में यह तीर्थ सेवन की अवधि नखलिस्तान जैसी मनभावन हरीतिमा का आनन्द भरती रही है ।

तीर्थ गुरुकुलों में विद्यार्थी अपने स्तर की शिक्षा प्राप्त करते थे । आरण्यकों में अधेड़ों को, परमार्थ प्रयोजनों में निरत वानप्रस्थ स्तर की तैयारी करने के लिए आवश्यक वातावरण तथा मार्ग-दर्शन मिलता था । यह अधिक समय ठहरने वाले तीर्थ साधकों की बात हुई । प्रमुखता उस समुदाय की रहती थी, जो जीवन क्रम की अस्त-व्यस्तताओं, समस्याओं, अलझनों, कठिनाइयों, चिन्ताओं में विक्षुब्ध रहता और उनसे छुटकारा पाने के लिए छटपटाता रहता था ।

ऐसे लोग कुछ समय परम पुनीत तीर्थ सेवन की प्रक्रिया में निरत रहकर एक प्रकार का समग्र विश्राम पाते, आत्म-चिन्तन की स्थिति में रहते, पाप-शोधन का प्रायश्चित करते, अनुपयुक्ताओं से छुटकारा पाने का व्रत लेते और उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण करने की सुनिश्चित योजना बनाते । यही था तीर्थ साधकों का कार्यक्रम, जिसे वे उस पुण्य क्षेत्र में निवास करते हुए सम्पन्न किया करते थे ।

तीर्थ सेवन की एक अवधि निर्धारित होती थी । दर्शन-झाँकी, स्नान, पर्यटन तो उस छोटे से क्षेत्र में एकाध दिन का ही सीधा-साधा कार्य था । उद्देश्य था, उतने दिन साधना करना, उसके सहारे दोष-दुर्गुणों को जलाना, तपश्चर्या की ऊर्जा उत्पन्न करना और भावी विकास परिष्कार के निर्धारणों को कार्यान्वित कर सकने योग्य नई शक्ति सामर्थ्य उपलब्ध करना । यह कार्य घर रह कर बन पड़ना कठिन है । उपयुक्त वातावरण का अपना प्रभाव होता है । मार्ग-दर्शन के लिए उच्च स्तरीय मनीषा का परामर्श चाहिए । प्राण ऊर्जा ऋषि कल्प महामनावों के निकट रहने से ही हस्तगत होती है । तपस्वियों के आश्रम में सिंह गाय इसीलिए एक घाट पर पानी पीते थे कि वहाँ एक विशेष प्रकार का उच्चस्तरीय प्रभाव-प्रवाह बहता रहता था । भट्ठी के निकट पहुँच कर सर्दी दूर होती है । गंगा के तट पर शीतलता का लाभ मिलता है । इसी प्रकार ऋषि आश्रमों में, तीर्थ आरण्यकों में, भरी रहने वाली प्राण ऊर्जा से-वहाँ पहुँचने, निवास करने एवं साधना करने वाला व्यक्ति लाभान्वित हुए बिना नहीं रहता ।

आत्मिक प्रगति के चार साधन बताये गये हैं । साधना-स्वाध्याय, संयम-सेवा । इन चारों को ही चरितार्थ करने के लिए उपयुक्त अवसर तीर्थों के वातावरण में रहता था । वहाँ रहकर निर्धारित साधना के लिए योगाभ्यास एवं तप साधना अपनाना पड़ता था । जीवन को उत्कृष्टता के साथ जोड़ने वाला प्रशिक्षण मिलता था । सत्संग प्रवचन और प्राप्त व्यक्तिगत पारामर्श द्वारा इस प्रयोजन की पूर्ति होती थी । लोग एक प्रकार से कुंदन जैसा तपाया जीवन लेकर लौटते थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में तीर्थों में दान पुण्य का प्रतिफल अन्यत्र की अपेक्षा सौ गुना अधिक बताया गया है । वह इसलिए कि तीर्थ संस्थानों के साथ जुड़ा हुआ कार्यक्रम इतना महान, इतना उच्चस्तीय होता था कि कार्य की उपयोगिता एवं प्रक्रिया का स्तर ऊँचा रहने के कारण उसमें किये गये सहयोग का प्रतिफल भी अपेक्षाकृत अधिक ही होना चाहिए ।

इन दिनों सभी क्षेत्रों में अराजकता, अव्यवस्था का बोलबाला है । तीर्थों की पुरातन परम्परा यदि लड़खड़ा गई और उसके स्थान पर विडम्बना का साम्राज्य जम गया तो उसमें आश्चर्य ही क्या ? यदि ऐसा न होता तो आज तीर्थों की अनुपम भूमिका होती, वे जन-जागरण के केन्द्र रहते और पहुँचने वाले लाखों धर्म प्रेमियों को उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ देकर व्यक्ति तथा समाज का स्तर ऊँचा उठाने में उत्साहवर्द्धक भूमिका समपन्न करते ।

समय को कोसने, जिस-तिस को दोष देने से काम चलने वाला न था । तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए नये सिरे से प्रयत्न करने की आवश्यकता पड़ी और उसके लिए शान्तिकुञ्ज का गायत्री तीर्थ बनकर खड़ा हो गया । घहराते समुद्र के बीच इस अपने ढंग का अकेला खड़ा हुआ प्रकाश स्तम्भ समझा जा सकता है । उसमें पुरातन तीर्थ परम्परा को नये सिर से, नई परिस्थितियों के अनुरूप खड़ा करने के लिए अभिनव प्रयत्न एवं भागीरथ पुरुषार्थ नियोजित किया गया है ।

तीर्थ सेवन सत्र चार दिन के होते हैं । प्रत्येक महीने की १ से ४, ५ से ८, ९, से १२, १३ से १६, १७ से २०, २१ से २४, २५ से २८, तक सम्पन्न होते हैं । हर महीने ७ सत्र सम्पन्न होते हैं । जिन्हें जिसमें सुविधा हो, उसमें सम्मिलित होने के लिए आवेदन पत्र भेजकर स्वीकृति मँगा सकते हैं । इसमें स्त्री बच्चों को साथ लाने की भी छूट है । इस छोटी अवधि में हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला के चार तीर्थों में बने अनेक देवालयों, घाटों, ऐतिहासिक स्थानों की दर्शन-झांकी भी की जा सकती है और तीर्थ सेवन का लाभ भी मिल सकता है ।

चार दिन में साधना के उपयुक्त तीन दिन ही मिलते हैं । आधा दिन आने और आधा दिन जाने में निकल जाता है । चूँकि इन सत्रों में आने वाले पर्यटन प्रधान मनोभूमि के होते हैं और उन्हें दर्शन-झाँकी में अधिक आकर्षण रहता है, इसलि कार्यक्रम यह बनाया गया है कि मध्याह्न ११ बजे तक तीर्थ सेवन के सभी कार्यक्रमों से, भोजन से निवृत्त हो जाया जाय और ११ से ७ तक परिभ्रमण पर निकल जाया जाय । आश्रम में भोजन व्यवस्था है, पर तैयार उतना ही किया जाता है, जितना कि समय से पूर्व माँग नोट करा दी जाती है ।

तीन दिन में १७ माला के हिसाब से ५१ माला का छोटा अनुष्ठान—नित्य अग्नि होत्र का साधनाक्रम सम्पन्न हो जाता है । एक घंटा स्वाध्याय में लगाना चाहिए । इसके लिए साहित्य उपलब्ध रहता है । डेढ़ घंटा सत्संग प्रवचन की दैनिक व्यवस्था है, ८ ॥ से १० तक । १० से ११ तक भोजन से निवृत्त हुआ जा सकता है । पू. गुरुदेव तो ११ बजे के बाद ही मिलते हैं, पर वन्दनीय माता जी से मिलना हो तो ८ से ११ के बीच भी मिला जा सकता है । बच्चों के संस्कार-दीक्षा, यज्ञोपवीत आदि कराने हों तो १० बजे से पूर्व ही वे सम्पन्न हो जाते हैं ।

इस प्रकार गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज में पुरातन काल की तीर्थ परम्परा की हल्की सी झाँकी मिल सकती है और यह जाना जा सकता है कि पुरातन काल में तीर्थों का स्वरूप क्या था और उसमें पहुँचने का इतना महात्म्य किस कारण बताया गया है ।

इस परम्परा को और आगे बढ़ाने की बात पर भी इन दिनों शान्तिकुञ्ज में गम्भीर चिन्तन चल रहा है । उत्तराखण्ड आदि काल से उच्चस्तरीय साधनाओं का केन्द्र रहा है । अब उन ऋषियों के आश्रमों के नाम मात्र रह गये हैं । ऐसी कुछ व्यवस्था नहीं जिससे तीर्थ यात्री कुछ प्रेरणा लेकर लौटें । अब यह प्रयास किया जा रहा है कि उन क्षेत्रों को फिर से सजीव किया जाय और वहाँ पद यात्राओं का क्रम चलाया जाये । इसके लिए उत्तर प्रदेश व केन्द्र सरकार से महत्त्वपूर्ण मंत्रणायें भी शान्तिकुञ्ज चला रहा है । समय पर उसकी विस्तृत जानकारी दी जायगी ।

सचेतन तीर्थ-सिद्धपीठ

इन दिनों तीर्थ आयोजनों का स्वरूप मेले-ठेले जैसा बनकर रह गया है । पिकनिक, मनोरंजन, पर्यटन जैसे उद्देश्यों के लिए लोग सैर-सपाटे के लिए निकलते हैं । भीड़-भाड़ का अपना मौज-मजा होता है यहाँ ऐसी भीड़-भाड़ होती है, वहाँ मनोरंजन के खेल तमाशे भी व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जमा हो जाते हैं । सरकस, सिनेमा, कठपुतली, जादूगरी जैसे खेलतमाशे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वालों की ऐसे अवसरों पर अच्छी आमदनी हो जाती है । चाय-पान, मिठाई, चाट-पकौड़ी जैसी स्वादिष्ट वस्तुएँ लेकर भी छोटे-बड़े दुकानदार पहुँच जाते हैं । खरीद फरोख्त के साथ दैनिक आवश्यकताओं की तथा जब तक जहाँ-तहाँ से मिलने वाली दक्षिणा भी वहाँ मिल जाती है । दुकानदारों से लेकर ठहरने-ठहराने का प्रबंध करने वाले तक कुछ न कुछ कमा ही लेते हैं । सरकारी, मुंशी, मेलाधिकारियों, पुलिस आदि को मिलाकर उस भीड़भाड़ का नाम भी हो जाता है । लोग भी मनोरंजन कर लेते हैं और आयोजक भी अपने आप में कोई कमी नहीं रहने देते । कपटी से मनचाहा प्रसंग कहलवाया जा सकता है, प्रेस-प्रकाशन का आधार तो और भी सस्ता है उनसे भी मनचाहा लिखवाया जा सकता है । विज्ञापन इसी का एक रूप है । उसके माध्यम से इच्छित प्रदर्शन कराया जा सकता है । इतने पर भी यह आवश्यक नहीं कि पैसे के बदले जो खरीदा गया है, वह वास्तविक और चिरस्थायी हो ।

पैसे का उतना महत्त्व दृष्टिगोचर होते हुए भी यह आवश्यक नहीं है कि अपना संतोष, दूसरों का श्रेय और हर किसी का सौजन्य प्राप्त कर लिया जा सके । यदि उन्हें महत्त्वहीन माना जाय तो बात दूसरी है, अन्यथा साधन सामग्री के अनुसार कुछ न कुछ लाभ लोग उठा लेते हैं । कहीं-कहीं तो पशुओं के मेले भी लगते हैं, अवसर और भी बढ़ जाते हैं । इस प्रकार मेला एक व्यवसाय बन गया है । उससे अपने-अपने ढंग से लोग लाभ उठाते हैं ।

कभी-कभी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्तर के मेले प्रदर्शनियाँ भी जहाँ-तहाँ होती हैं । उत्सव आयोजन भी होते हैं । कहीं-कहीं विशेष पर्वों या देवी-देवताओं के स्थानों पर ऐसी ही भीड़ हो जाती है सबका अपना-अपना उद्देश्य होता है । भीड़-भाड़ खरीद-फरोख्त, कौतूहल-मनोरंजन जैसे प्रयोजन तो इन सब में छोटे-बड़े रूप में हो जाते हैं, पर इन्हें तीर्थ नहीं कह सकते । तीर्थयात्रा का अर्थ भीड़-भाड़ धक्का-मुक्की, खरीद-फरोख्त भर नहीं है । इन्हें तो मनोरंजन की श्रेणी में ही गिना जा सकता है । भले वहाँ कोई देवालय बना हो अथवा नदी-तालाब को देखने-नहाने आदि का प्रबन्ध हो । इनकी अन्य दृष्टि से न सही, मनोरंजन, खरीद-फरोख्त, कौतुक की दृष्टि से तो कुछ न कुछ उपयोगिता ही है, किन्तु इसके साथ "तीर्थ" नाम न जोड़ा जाय तो ही अच्छा है ।

जिस तीर्थ शब्द के साथ शास्त्रकारों ने अनेक माहात्म्य जोड़े हैं, जिन्हें पुण्य-परमार्थ कहा है । आत्मशोधन, प्रायश्चित, पाप प्रकटीकरण आदि उद्देश्यों के साथ जोड़ा गया है, उसका स्थान इन दिनों की भीड़-भाड़ वाले माहौल से सर्वथा भिन्न है । उसके साथ जीवन परिमार्जन की शिक्षा जुड़ी होती है । इतना ही नहीं जो दुर्गण अपने स्वभाव में सम्मिलित हो गये उनके निष्कासन तथा जिन-जिन निर्धारित सद्गुणों की कमी पड़ गई है, उनकी पूर्ति के लिए, भूलों के परिमार्जन के लिए प्रायश्चित करने की विधा तीर्थ प्रक्रिया में सम्मिलित है, जिसे सम्पन्न करने के उपरान्त व्यक्ति अपने को अधिक निष्पाप अनुभव करे और यह समझे कि पहले की अपेक्षा पवित्रता एवं प्रामाणिकता की मात्रा बढ़ गई है । सद्गुणों का विकास-विस्तार हुआ है । ऐसा होने लगे तो यह समझना चाहिए कि तीर्थयात्रा बन पड़ी । ऐसा जहाँ बन पड़ता है, वहाँ का वातावरण पवित्र बनता है । सामान्य स्थानों की अपेक्षा वह पुण्य परम्पराओं का बाहुल्य ही होता है । इतना ही नहीं उस प्रयोग प्रयोजन को सम्पन्न कराने वालों में अनुशासन बनाये रहने और नैतिक अंकुश को कसे रहने की तेजस्विता भी होती है । यह दोनों ही पक्ष वहाँ दीख पड़ते हैं जहाँ के सूत्र संचालक निजी जीवन में उत्कृष्टता और नैतिकता का अनुपात सामान्य लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचा बनाये रहते हैं । जले हुए दीपक ही दूसरे बुझे हुए दीपकों को जलाने में समर्थ होते हैं । अग्नि प्रज्ज्वलित हो तो उसी के स्पर्श से साधारण ईंधन गर्मी खींचता और ज्योतिर्मय होता है । जो स्वयं ही निस्तेज है, वह दूसरों को ज्योति कैसे दे सकेगा । साबुन में मैल काटने और स्वच्छ बनाने का गुण होना चाहिए । यदि वे विशेषताएँ न हों, मात्र वैसी वेशभूषा बनाली जाय तो कोयले का बना साबुन और कीचड़ से धुला वस्त्र किस प्रकार किसी मैले कपड़े को स्वच्छ बनाने में समर्थ हो सकेगा ?

जिसमें जो गुण विशेष मात्रा में होते हैं, वही दूसरों को यह विशेषताएँ दे सकने में समर्थ हो सकता है । संगीतकार, कलाकार, पहलवान, विद्वान आदि की समीपता का लाभ उन व्यक्तियों को मिलता है जो वैसा बनने की इच्छा रखते हैं किन्तु यदि अध्यापक ही उन विषयों से अनभिज्ञ हो तो समझना चाहिए की उससे कुछ चाहने वालों को निराश ही होना पड़ेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ, इमारतों, देवालयों, प्रतिमाओं, जलाशयों आदि के सहारे ही नहीं बन जाते । वस्तुओं का प्रतिफल वस्तुओं के रूप में ही होता है । विशालकाय मन्दिर या ऊँची प्रतिमा आखिर पदार्थ ही है, उसमें चेतना कहाँ होती है ? तीर्थ की विशेषता चेतनात्मक उत्कृष्टता का अभिवर्द्धन होना चाहिए । जहाँ के चेतनात्मक वातावरण में यह विशेषता होगी, वहीं से अभीष्ट आकांक्षा पूरी हो सकने का सुयोग बनेगा । जो स्वयं ही भूखा भिखारी है, उससे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह किसी दरिद्र की दरिद्रता दूर कर सकेगा । उठे व्यक्ति ही दूसरे गिरे हुओं को उठाने में समर्थ हो सकते हैं । जो स्वयं ही कीचड़ में सने और खाई खंदक में पड़े हैं, उनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि दूसरों को उठाने या स्वच्छ बनाने का उद्देश्य पूरा कर सकेगा ।

तीर्थ सचेतन होते हैं । वहाँ के सूत्र संचालक अनुशासित अध्यापक, चेतना की दृष्टि से आदर्शवादी और उच्च चरित्रवान होते हैं । उन्हीं के तत्वावधान में साधारणजनों को अधिक पवित्र, अधिक प्रखर और अधिक समर्थ बनने का अवसर मिलता है । इसलिए यदि कहीं वस्तुतः तीर्थ बना हो या बनाया गया हो तो उसके सूत्र संचालक को सामान्य लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचा या प्रखर होना चाहिए । जो स्वयं अनुशासन पालन कर सका है, जिसने स्वयं जीवन में उत्कृष्टता अर्जित कर ली है, उसी को तीर्थ संचालक कहा जा सकता है या उसी से यह आशा की जा सकती है कि उसके सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति ऊँचा उठेगा । ऊँचे पेड़ से लिपटने के बाद ही बेल ऊँचा उठ सकने में समर्थ होती है । हरे-भरे पेड़ पर ही फूल या फल आते हैं । जो स्वयं सूख चुका है, निर्जीव बन गया है, जो अपनी हरियाली तक को बनाये नहीं रह सकता, वह साथ में लिपटी बेल का कुछ हित साधन कैसे कर सकेगा ?

तीर्थ तारने वाले को कहते हैं । मल्लाह स्वयं भी तैरता है, नाव को भी पार कराता है, उसमें बैठे यात्रियों को भी । यह सभी गुण जंगम तीर्थों में होना चाहिए । स्थावर तीर्थ तो इमारतों जलाशयों, मूर्तियों आदि जड़ पदार्थों में गिने जाते हैं । उनका प्रभाव आँखों से दिख पड़ने वाले मनोरंजक दृश्य जैसा ही होता है । मात्र इन स्थानों का सुहाना दृश्य देखकर अपने मनोरंजन की पूर्ति भर कर लेनी चाहिए ।

असली तीर्थ तो प्राणवान होते हैं । उनका यह नामकरण उनकी जीवन्त एवं सार्थक गतिविधियों को देखकर ही किया गया था । अब भी सच्चे अर्थों में उस स्थान को ही प्राणवान कहा जा सकता है, जहाँ सत्प्रवृत्तियाँ सतत् चलती रहती हों, सम्पर्क में आने वालों को उन्हें अपनाने की प्रेरणा मिलती हो । जिस वातावरण से ऐसे सुसंस्कारिक तीर्थों का सम्पर्क रहता है, वह स्वतः प्राणवान बनता चला जाता है । शान्तिकुञ्ज गायत्री परिजनों के लिए विनिर्मित एक ऐसा ही तीर्थ है । ऐसे सचमुच के तीर्थ जहाँ भी होंगे, वहीं उनका माहात्म्य और प्रभाव भी दृष्टिगोचर होकर रहेगा ।

तीर्थ परम्परा का अभिनव पुनर्जीवन

तीर्थ परम्पराओं को भारतीय धर्म संस्कृति का मेरुदण्ड और जीवन-प्राण कह सकते हैं । उसकी गरिमा का धर्मजीवी और आप्त जनों ने भरपूर बखान किया है । उदार चेताओं ने तीर्थों के निर्माण में अपने कोष भण्डार खाली कर दिये । उस निमित्त समय लगाने के लिए जन साधारण ने, विशेष तथा विज्ञजनों ने, दूरदर्शी मनीषियों ने पूरा जोर लगया है । यही कारण है कि देश में अनेक प्राणवान तीर्थ बने और उनकी सुनियोजित गतिविधियों के कारण इस भूमि से असंख्यों नर-रत्न निकले । उस टकसाल में ढले हुए सिक्कों ने समस्त भूमण्डल में प्रगति, समृद्धि और संस्कृति का स्तर ऊँचा उठाया । इस अनगढ़ धरती को स्वर्गादपि गरीयसी बनाने में उन भूसुरों का असाधारण योगदान रहा है जिनकी गलाई-ढलाई आमतौर से तीर्थों की प्रचण्ड ऊर्जा व्यवस्था में ही सम्पन्न होती थी ।

आज तीर्थों की दुर्दशा पर आक्रोश व्यक्त करने और उसमें आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता न केवल लाँछन को निरस्त करने की दृष्टि से आवश्यक है वरन् इसलिए भी अनिवार्य है कि उस महान परम्परा के पुरातन स्वरूप को नव-जीवन प्रदान करके समय की माँग को पूरा किया जा सके ।

पुरातन तीर्थ परम्परा के तीन आधार थे—(१) धर्म प्रचार की पद यात्रा (२) आत्म-शोधन परिष्कार की साधना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) लोक नायकों की संरचना । इन तीनों ही प्रयोजनों में से प्रत्येक इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसे मानवी गरिमा को जीवन्त रख सकने वाले धर्म संस्थान कहा जा सके । इस आधार पर व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण की तीनों ही आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं । लोक मानस के परिष्कर और सत्प्रवृति संवर्द्धन के दोनों ही प्रयोजन पूरे होते हैं । उपरोक्त तीनों प्रयोजनों को त्रिवेणी संगम का नाम दिया है । उसका महात्म्य काया कल्प जैसा देखा जा सकता है ।

तीर्थ यात्रा के लिए देश के चार कोनों पर चार धाम बने । हर क्षेत्र में उनकी स्थापना हुई । मनीषियों की मण्डलियाँ पिछड़े क्षेत्रों को प्रगतिशील बनाने एवं । प्रगतिशीलों को देवोपम स्तर तक उठाने के लिए धर्म प्रचार की पदयात्रा पर निकलती थीं । इन परिब्राजकों के लिए आवश्यक प्रावधान जुटाने को जगह-जगह धर्म शालाएँ बनाई गई थीं । देवालयों में वे निवास-निर्वाह के साधन प्राप्त करते और आगे बढ़ते चलते थे । वानप्रस्थों की यह प्रब्रज्या बादलों द्वारा जल बरसाने की तरह हर क्षेत्र में सद्भाव भरती थी और सर्वतोमुखी प्रगति के आधार खड़े करती थी ।

तीर्थों का चयन ऐसे स्थानों पर हुआ जहाँ ऐतिहासिक प्रेरणाओं का, प्राकृतिक शोभा सुषमा का सुयोग था । इन स्थानों पर ऋषियों के विशालकाय साधना आश्रम थे । जिनमें कुछ समय के लिए शिक्षार्थी गृहस्थ जन भी निवास करते और सेनेटोरियम स्तर का शारीरिक मानसिक लाभ उठाते थे । पापों के प्रायश्चित का निराकरण तीर्थों में ही होता था । इस प्रयोजन के लिए क्या किया जाना चाहिए जिससे खोदी गई खाई पटे, इसका समुचित निर्धारण तीर्थ संचालकों के परामर्श से सम्पन्न होता था । संचित कुसंस्कारों से परित्राण दिलाने वाली तपश्चर्याएँ भावनाशील लोग यहाँ के उपयुक्त वातावरण में सम्पन्न करते थे । आत्म-शोधन के लिए तप और परिष्कार के लिए योगाभ्यास का विधान है। यह दोनों ही प्रक्रियाएँ उपयुक्त मार्ग-दर्शन एवं अनुदान चाहती हैं । यह दोनों ही लाभ तीर्थ संचालकों द्वारा तीर्थ सेवन के लिए आने वाले लोगों को निश्चित रूप से मिलते थे । स्वाध्याय सत्संग-चिन्तन मनन-तप साधन के त्रिविध उपक्रम पूरे करते हुए जो लोग तीर्थ सेवन की साधना सम्पन्न करते थे वे तपे सोने की तरह प्रखर होकर लौटते थे । भावी जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निर्धारण आमतौर से धर्म प्रेमी इसी सुयोग में सम्पन्न करते थे । इस प्रकार तीर्थ सेवन के लिए मिला हुआ सौभाग्य हर किसी की मनःस्थिति बदलता था । मनःस्थिति बदलने पर परिस्थिति बदलने के लक्ष्य से तो सभी अवगत हैं । यही कारण था कि तीर्थ सेवन को मनुष्य जीवन का उच्चस्तरीय सौभाग्य माना जाता था । उसके लिए सभी लालायित रहते थे । जिन्हें सुविधा थी वे बार-बार वहाँ पहुँचते और लम्बे समय तक निवास करते थे ।

तीर्थों में संस्कार कराने का विशेष पुण्य माना गया है। बच्चों के नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारंभ आदि संस्कारों हेतु लोग तीर्थों में जाते थे । विवाह यदि तीर्थ में हो तो उसके सफल रहने पर विश्वास किया जाता था । अन्यथा विवाह के उपरान्त प्रजनन से पूर्व ऋषियों का आशीर्वाद प्राप्त करने तो सभी युग्म तीर्थों में पहुँचते थे । जन्म-दिन, विवाह-दिन जैसे हर्षोत्सव मानने के लिए तीर्थ में पहुँचना हर दृष्टि से सुखद समझा जाता था । मृतकों के अस्थि विसर्जन और श्राद्ध-तर्पण के लिए तीर्थ स्थान की दौड़ लगाई जाती थी । इस बहाने से बार-बार वहाँ पहुँचने और हर बार नया प्रकाश नया अनुदान लेकर वापस लौटने का लाभ हस्तगत होता रहता था ।

तीर्थ निर्धारण में तीसरा प्रयोजन था—वानप्रस्थ-परिब्राजक, लोक नायक धर्म पुरोहितों का सृजन, शिक्षण, इनके लिए साधन और शिक्षा की उभय पक्षीय व्यवस्था उनमें रहती थी । जिन्हें भावना-क्षेत्र की सत्प्रवृत्तियों को अनुप्राणित करने का पुण्य फल विदित था, वे इसके लिए किसी समर्थ तीर्थ में पहुँचते और अपना व्यक्तित्व नये सांचे में ढालते थे ।

आद्य शंकराचार्य के चारों धाम इसी प्रयोजन में प्राण-पण से निरत रहे । बुद्ध ने राष्ट्र को जागृत जीवन्त रखने वाले प्रब्रज्या पुरोहितों को ढालने के लिए नालन्दा विश्व-विद्यालय को समर्थ बनाया । विदेशों की भाषा तथा स्थिति समझ कर तदनुरूप योग्यता क्षमता सम्पन्न करने के निमित्त तक्षशिला विश्वविद्यालय बनाया था । वैसे छोटे रूप में इस प्रकार की व्यवस्था सभी तीर्थों, तीर्थ बिहारों, सधारामों में उन दिनों रहा करती थी । यह परिब्राजक पुरोहित ही थे जिनकी भागीरथी साधना से इस देश को जगत्गुरु, चक्रवर्ती, स्वर्ण सुमेरु देव निवास आदि नामों से प्रख्यात किया और उसका गौरव बढ़ाया । उन्हें ढालने के आवश्यक साधन, प्रबन्ध और वातावरण से भरे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूरे तीर्थ ही एक मात्र केन्द्र थे । उन्हें नर-रत्नों की खदान के रूप में जाना जाता था ।

धर्म तंत्र की समर्थता राजतंत्र के समतुल्य है । राजतंत्र सुरक्षा, व्यवस्था एवं सम्पदा सम्बन्धी भौतिक प्रगति का क्षेत्र सँभालता है । धर्म तंत्र को चिन्तन और व्यवहार में उत्कृष्टता बनाये रखने बढ़ाने की जिम्मेदारी सँभालनी पड़ती है । शासन से लोग डरते हैं किन्तु धर्म पर भाव भरी श्रद्धा उड़ेलते हैं । व्यक्ति और समाज का स्तर सही बनाये रखने में शासन से कम नहीं वरन् कुछ अधिक ही भूमिका धर्म की रहती है । यह तंत्र सब प्रकार प्रखर समर्थ एवं व्यवस्थित रहे इसका सूत्र संचालन पुरातन काल में प्रायः तीर्थों से ही होता था । अस्तु उनकी गरिमा उपयोगिता ही किसी के अन्तःकरण को प्रभावित करती थी । विचारशील लोग तीर्थ परम्परा को अधिकाधिक पवित्र एवं प्रखर बनाये रखने के लिए अपना सहयोग अनुदान प्रस्तुत करने में पीछे नहीं रहते थे । वरन् कुछ अधिक कर सकने में सौभाग्य अनुभव करते थे । मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण में जिस देव संस्कृति ने कभी धर्म तंत्र को राजतन्त्र से भी अधिक सशक्त एवं वरिष्ठ रखा उसे आज हम गँवा और लूटा चुके हैं । इन दिनों उसके ध्वंसावशेष ही गई-गुजरी स्थिति में दृष्टिगोचर होते हैं । अबाबीलों, उलूकों और चमगादड़ों के घोंसलों से उस क्षेत्र में दुर्गन्धभर उड़ती दीखती है । द्रुतगामी वाहनों पर लोग धक्के खाते, धक्के मारते, भगदड़ मचाते भर दीखते हैं । प्रतिमाओं की झाँकी करते जलाशयों में डुबकी मारते और जहाँ-तहाँ जेब कटाते हुए फिरने वाली भीड़ के अतिरिक्त ऐसा कहीं कुछ दीखता नहीं जिसे व्यक्तित्वों के परिष्कार और समाज के उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण कहा जा सके। फलतः लौटने वाले खीज, निराशा, थकान और अश्रद्धा ही साथ लेकर वापस लौटते हैं । यह दुर्गति अतीव कष्ट कारक है । कोसने की अपेक्षा इसे बदलना ही अभीष्ट है । बदलने का सही उपाय एक ही है कि अवाँछनीयता से तुलना कर सकने के लिए दूसरा सही पक्ष प्रस्तुत किया जाय । ताकि जनसाधारण की विवेक बुद्धि दो में से एक को चुन सके और जो उचित है उसके परिपोषण का नया आधार विकसित कर सके ।

धर्म धारणा के विशाल कार्य क्षेत्र में "तीर्थयात्रा" का अत्याधिक महत्त्व है । महामनीषियों ने उनकी स्थापना के लिए प्रबल प्रयत्न किये । आद्य शंकराचार्य ने देश के चार कोनों पर धाम बनाये । द्वादश ज्योतिर्लिंग द्वादश शक्ति पीठ, सप्तपुरी, सप्त सरिता, सप्त पर्वत आदि को दर्शनीय पूजनीय ठहराया गया । अवतारों, देवताओं और महामानवों के जन्म स्थानों, कार्य क्षेत्रों में तीर्थ बने । यह सब इसलिए हुआ कि भावनाशील धर्म-प्रेमी यहाँ पहुँचे और उन स्थानों के साथ जुड़ी हुई कथा-गाथाओं, ऐतिहासिक घटनाओं में जिस उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश है, उसे समझें, हृदयंगम करें, अपनायें, व्यवहार में उतारें और कृतकृत्य बनें । इसी आधार पर तीर्थों के बड़े-चढ़े माहात्म्यों का प्रतिपादन किया गया ।

पाप नाश, पुण्यफल, स्वर्ग, मुक्ति, देवताओं की प्रसन्नता आदि आध्यात्मिक लाभ तीर्थयात्रियों को मिलते हैं, ऐसा उल्लेख अनेक प्रसंगों में अनेक धर्मशास्त्रों में उपलब्ध है । देवताओं के अनुग्रह वरदान से, सद्गति, ऋषि-सिद्धि मनोकामना की पूर्ति आदि मिलने के विवरण कितने ही कथा प्रसंगों में मिलते हैं । साधारण बुद्धि से देखने और साधारण रूप से दर्शन झाँकी करने पर तो इस पर्यटन का कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि इतने महत्त्वपूर्ण परिणाम, इतनी सी साधारण प्रक्रिया के सहारे सम्पन्न हो सकते हों । इस सन्दर्भ में बुद्धिवादियों का अविश्वास सर्वविदित है । वे सोचते हैं - प्रतिमाएँ देखने, जलाशयों में स्नान करने जैसी मात्र शारीरिक उथली सी हलचलों के सहारे इतने बहुमूल्य लाभों का उपलब्ध होना-नियति व्यवस्था के प्रतिकूल है । कर्मफल का सिद्धान्त यदि सही है तो फिर दर्शन, स्नान जैसी बालक्रीड़ा का वैसा उच्चस्तरीय प्रतिफल कैसे हो सकता है जैसा कि तीर्थ माहात्म्यों में बताया गया है ।

इतने पर भी यह सत्य है कि ऋषि-निर्धारणों, शास्त्र-उल्लेखों और आप्त वचनों में मिथ्या प्रतिपादनों-अनर्गल आश्वासनों का समावेश नहीं हो सकता । उसके पीछे कुछ ठोस कारण आवश्य रहे हैं । तीर्थ माहात्म्य के सम्बन्ध में भी यही बात है । इन दिनों प्रतिमाओं की झाँकी, नदी सरोवरों में डुबकी भर को ही तीर्थयात्रा का उद्देश्य मान लिया जाता है । प्राचीनकाल में यह प्रक्रिया तो बाह्य आवरण मात्र थी । उससे परिभ्रमण और प्रेरणा ग्रहण का अवसर मिलता था । परिभ्रमण से स्वास्थ्य लाभ, प्रकृति सान्निध्य-नयनाभिराम वातावरण में बसे हुए तीर्थों में कुछ समय ठहरने से मासिक विश्राम उल्लास का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है, इसके अतिरिक्त उस क्षेत्र में पहुँचने वालों को जो अतिरिक्त कर्तव्य पालन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने पड़ते थे, वस्तुत: उन्हीं का मूल्य महत्त्व था । दर्शन झाँकी तो उस प्राण चेतना की शोभा सज्जा मात्र थी ।

तीर्थों में ऋषि आश्रम, आरण्यक थे । धर्म प्रेमी वहाँ पहुँचते और निवास करते थे । आत्मिक प्रगति के साधना-विधान संचित दुष्कर्मों का प्रायश्चित परिमार्जन प्राणवान सत्संग सान्निध्य का अनुदान उलझी दुई गुत्थियों को सुलझाने वाला परामर्श समाधान जैसे अनेक उपयोगी क्रिया-कलाप थे जिन्हें तीर्थ यात्री अपनाते थे । फलस्वरूप वे कायाकल्प जैसी मन:स्थिति साथ लेकर वापस लौटते थें । बदली हुई मन:स्थिति परिस्थितियों को बदलने में पूर्ण समर्थ हैं । उसी परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए तीर्थों का वह माहात्म्य बताया गया यथा जो आज तो आलंकारिक मात्र प्रतीत होता है । बात इतनी तो सच भी है कि तीर्थ प्रक्रिया के साथ जुड़ी हुई साधना परिचर्या को हटा दिया जाय तो फिर मात्र परिभ्रमण ही शेष रह जाता है और उसका उतना ही विनोदात्मक प्रतिफल मिल सकता है जितना कि घुमक्कड़ सैलानी आमतौर से प्राप्त करते रहते हैं ।

दर्शन झाँकी का लाभ भी तभी सम्भव है जब प्रतिष्ठापना का इतिहास उद्देश्य समझा जाय और अन्त:करण में प्रेरणा प्रकाश के तथा व्यवहार में परिवर्तन करने के रूप में उसकी धारणा की जा सके । भाव-श्रद्धा ही किसी पदार्थ को देवोपम बनाती है, उसका अभाव हो तो फिर वस्तु, वस्तु ही रह जायेगी । प्रतिमा के रूप में गढ़ा हुया पाषाण भी श्रद्धा का आरोपण न होने पर खिलौने से अधिक महत्त्व का रह नहीं जाता । तीर्थों की वर्तमान स्थिति कितनी विडम्बनापूर्ण है इसे सभी जानते हैं । न यात्रियों में श्रद्धा न सम्बन्धित प्रेरणाओं को जानने-अपनाने का अवसर न उन स्थानों में ऋषियों का निवास न उनके पीछे ऐसे कोई आरण्यक जिनमें आत्मसाधना प्रायश्चित्य परिशोधन, सत्संग, परामर्श, प्राण, सान्निध्य अनुदान-समाधान की सुव्यवस्था विद्यमान हो—ऐसी दशा में उनका महत्त्व दिन-दिन धूमिल होता जाता है और तीर्थ यात्री वापसी में थकान, खीज एवं अश्रद्धा साथ लेकर वापस लौटता हो तो आश्चर्य नहीं ।

परिस्थितियाँ इतनी दु:खद होते हुए भी आशा की एक किरण यही है कि उस परम्परा का मूलभूत प्रतिपादन निर्धारण इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसके निरर्थक निष्प्राण सिद्ध होने की कोई आशंका नहीं है । दूब गर्मी के दिनों में जल जाती है, कहीं उसका अता-पता भी नहीं दीखता । किन्तु वर्षा आरम्भ होते ही एक सप्ताह में वह उगती ही नहीं, फैलती और समूची धरती पर हरीतिमा के कालीन की तरह बिछ जाती है । धर्म परम्पराओं के सम्बन्ध में भी यही बात हैं । किन्तु यह विडम्बनाओं का आडम्बर हटाया जा सके और तात्विक निर्धारणों को पुनर्जीवित किया जा सके तो कोई कारण नहीं कि उनके प्रतिफल वैसे ही दृष्टिगोचर न हों जैसे कि शास्त्रकारों ने बताये हैं । तीर्थ स्थापना उनकी साधना एवं पुण्य परिणति की विवेचना की गई है, उसमें न अत्युक्ति है न असमंजस । मिट्टी की गाय का ही उपहास होगा । असली गाय तो दूध, बछड़ा, गोबर सभी कुछ देती, प्रत्यक्ष देखी जा सकती है ।

तीर्थ यात्रा के निमित्त प्रचुर धन और श्रम, समय लगता है । यात्रियों की संख्या बढ़ती ही जाती है । कलेवर के विस्तार में कमी नहीं । अभाव केवल उस प्राण-प्रेरणा का है जो अपने सम्पर्क में आने वालों को प्रभावित, परिवर्तित, परिष्कृत किये बिना नहीं रह सकती ।

पारस, चन्दन, इत्र, स्वाँति जल, अग्नि आदि की समीपता के प्रतिफल सर्वविदित हैं । सत्संग की महिमा से भी कोई अनजान नहीं है यही बात तीर्थ प्रक्रिया पर भी लागू होती है । आवश्यकता इतनी भर है कि वहाँ पहुँचने वाले वैसा वातावरण वैसा निर्धारण पाये जैसा कि हर तीर्थ में सुनिश्चित रूप में विद्यमान रहता था । ऋषियों के आरण्यक आश्रम, यदि आगन्तुकों को अभिनव आलोक, उदात्त दृष्टिकोण एवं जीवन व्यवहार बदल सकने वाला वातावरण प्रस्तुत कर सकें तो तीर्थ उसी स्तर की उपयोगिता सिद्ध करेंगे जैसी कि माहात्म्य फलश्रुतियाँ बताई गई हैं ।

इस अभाव की पूर्ति के लिए प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत अति महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं । मथुरा का गायत्री तपोभूमि आश्रम और हरिद्वार का शान्तिकुञ्ज गायत्री नगर इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाये गये हैं कि वहाँ तीर्थों की पुरातन प्रक्रिया का स्वरूप इन्हीं आँखों से देखा जा सके और उद्देश्य पूर्ण निवास करने पर ही लाभ उठाया जा सके जैसा कि तीर्थ माहात्म्यों के सन्दर्भ से गाया, बताया जाता है ।

इन दिनों शान्तिकुञ्ज हरिद्वार को प्रज्ञा आरण्यक के रूप में विकसित किया गया है ताकि भारतीय संस्कृति की रीढ़ समझी जाने वाली तीर्थ परम्परा का पुरातन स्वरूप देखा और प्रतिपादित माहात्म्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सके । आश्रम की अनेकानेक उच्चस्तरीय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशेषताओं से सम्पर्क में आने वाले भली-भाँति परिचित हैं । नित्य नौकुण्डी यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि पर दो घण्टे नित्य चलने वाला यज्ञ ! अखण्ड दीपक । गायत्री मन्दिर । देश के समर्थ तीर्थों के भव्य दर्शन । देवात्मा हिमालय और भगवती गंगा का अनुपम मन्दिर । हिमालय की प्रखरता और गंगा की पवित्रता का प्रतिनिधित्व करने वाले परशुराम और भागीरथ की भव्य प्रतिमाएँ । जड़ी-बूटी उद्यान । यज्ञ विज्ञान का उच्चस्तरीय अनुसन्धान । गायत्री विद्या का गहन अवगाहन । ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान वेधशाला के माध्यम से सौर जगत का पर्यवेक्षण । चिकित्सालय । पुस्तकालय । नियमित सत्संग, कीर्तन आदि अनेक दर्शनीय विशेषताएँ ऐसी हैं जिनमें प्रवेश करते ही युग के प्राणवान-आरण्यकों की झाँकी मिलती है । यहाँ के सूत्र संचालकों और जीवनदानी कार्यकर्ताओं का स्वल्पकालीन सान्निध्य भी यह अनुभव कराता है कि धर्म और अध्यात्म कथन-पठन तक ही सीमित नहीं है, कहीं ऐसा भी स्थान है जहाँ उन्हें जीवन्त तथा सक्रिय रूप में अपनी गरिमा प्रकट करते हुए इन्हीं आँखों से प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है ।

जिस-तिस मन्दिर में पुण्य लूटने के लिए घुड़दौड़ लगाने और यह वह खाते-खरीदते, देखते-दिखाते सैलानियों की बात दूसरी है पर यदि कोई वस्तुत: तीर्थ साधना की दृष्टि से यहाँ पहुँचे तो उसे ऋषि युग की परम्परा को कार्यान्वित देखकर सन्तोष और हर्ष होगा ।

इस संदर्भ में शान्तिकुञ्ज हरिद्वार का गायत्री तीर्थ के रूप में अभिनव विकाश दृष्टव्य है । एक बार उसकी गतिविधियों का गंभीरतापूर्वक पर्यवेक्षण करने पर यह पता चलता है कि पुरातन काल की तीर्थ परम्परा कितनी उपयोगी रही होगी ।

तीर्थ परम्परा के साथ जुड़ी हुई तीनों ही धाराओं का पुनर्निर्माण करने के लिए सामर्थ्य भर प्रयास किया गया है । साधनों के अभाव में अनेक कमियाँ रहने पर भी यह समझा जा सकता है कि चिर पुरातन को नित नवीन के साथ मिलाने के लिए ईमानदारी के साथ प्रयास किया गया है ।

गायत्री परिवार के हजारों परिजन ग्रीष्म और शरद ऋतु में साइकिल टोलियाँ बनाकर पन्द्रह दिन के प्रवास चक्रों में निकलते हैं । पीले वस्त्र, पीले झोले, पीले डण्डे की साज-सज्जा बताती है कि यह धर्म प्रचारकों की मण्डलियाँ हैं । झोलों में प्रज्ञा-पुराण की कथा पोथी, कीर्तन, युग गायन के लिए ढपली, दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखने के लिए उपकरणों से झोले भरे रहते हैं । जहाँ भी दीवार खाली देखें आदर्श वाक्य लिखना, जहाँ भी जन समुदाय इकट्ठा देखें वहीं मिल जुलकर ढपली पर युग संगीत अलापना, युग चेतना बखेरना, राहगीरों से प्रगति प्रेरणा का वार्तालाप करना, दिन भर की कार्य पद्धति रहती है । रात्रि को जहाँ विराम हो वहाँ प्रज्ञा आयोजन खड़ा करना स्वयं ही गलियों में आयोजन के स्थान, उपदेश तथा समय का ऐलान करना, ऐसे प्रयास हैं जिससे बिना पूर्व सूचना के भी तत्काल गाँव भर के लोग इकट्ठे हो जाते हैं । प्रज्ञा पुराण की कथा और साथ में युग कीर्तन से दो घण्टे का सत्संग इतना शानदार और प्रेरणाप्रद होता है कि लोग उसे चिरकाल तक स्मरण करते और सराहते रहते हैं । प्राय: पन्द्रह दिन का यह प्रवास चक्र होता है । उतने भर में उस क्षेत्र में अभिनव जागृति उत्पन्न होती है । प्रज्ञापीठों के साथ उस परिधि की जनता का भावभरा सम्पर्क साधन हो जाता है और आदान-प्रदान चल पड़ता है ।

ऐसा भी होता है कि शान्तिकुञ्ज को लक्ष्य बनाकर सामूहिक टोलियाँ एक मार्ग से हरिद्वार पहुँचें और दूसरे से वापस लौटें । इस प्रवास में भी कार्यक्रम वही रहता है । इनका प्रभाव देखते हुए यह पता चलता है कि यदि इस प्रक्रिया को और भी सुनियोजित ढंग से चलाया जा सके तो परिणाम कितने दूरगामी हो सकते हैं ।

गायत्री तीर्थ में देश के सभी प्रमुख तीर्थों के फोटो देवालय बनाये गये हैं । उत्तराखण्ड हिमालय की एक विशाल कक्ष में भव्य झाँकी है । इन सभी में रुद्राभिषेक भी चलता रहता है । इस कक्ष को देखकर पुरातन काल की तीर्थ परम्परा और उसके साथ जुड़ी हुई प्रक्रिया का स्वरूप समझने और श्रद्धावनत होकर उस निर्माण के प्रति गद्-गद् होने का अवसर मिलता है ।

गंगा की गोद, हिमालय की छाया, प्राण वान मार्ग दर्शन के सुयोग में गायत्री तीर्थ का वातावरण साधना के लिए हर दृष्टि से अत्यधिक अनुकूल है । नित्य २४ लक्ष गायत्री जप नौ कुण्डी यज्ञ शाला में दो घण्टे अनवरत गायत्री यज्ञ-अखण्ड अग्नि, अखण्ड घृत दीप जैसे उपचारों से यह क्षेत्र आध्यात्म ऊर्जा से दिन दिन अधिक प्राणवान होता चला जा रहा है ।

आत्मशोधन और आत्मपरिष्कार के कल्प साधना सत्र एक-एक महीने के चलते हैं । जिन्हें अवकाश का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभाव हो उनके लिए दस दिवसीय संक्षिप्त साधना सत्रों की भी व्यवस्था है । सभी साधक उबले अन्न शाक का आहार लेते हैं । प्रातःकाल प्रज्ञा पेय (वनौषधियों की मेधावर्द्धक चाय) मिलती है । साथ ही हर साधक की शारीरिक मानसिक स्थिति का वैज्ञानिक पर्यवेक्षण मूर्धन्य डॉक्टरों द्वारा किये जाने पर यह निर्धारण होता है कि किसे क्या साधना करनी चाहिए और क्या दिव्यौषधि कल्प दिया जाना चाहिए । तुलसी, ब्राह्मी, शंख पुष्पी, शतावरि, अश्वगंधा, आँवला आदि का निर्धारित मात्रा में सेवन कराया जाता है इससे चिकित्सा उपचार की आवश्यकता पूरी होती है ।

साधना काल में तृतीय नेत्र उन्मीलन के लिए आज्ञा चक्र साधनानाद योग के सहारे दिव्य ध्वनियों का श्रवण-आत्म बोध का लय-योग अभ्यास सभी साधक करते हैं । गायत्री पुरश्चरण और तदनुरूप अग्निहोत्र हर कल्प साधक के लिए अनिवार्य है । सूर्य वेधन प्राणायाम, नाड़ी शोधन प्राणायाम, प्राणाकर्षण प्राणायम में से एक । खेचरी मुद्रा, शांभवी मुद्रा, शक्ति चालनी मुद्रा में से एक, उड्डियान बंध, जालंधर बंध, मूलबंध में से एक । यह भी दस दिन एक महीने वाले साधकों से उनकी स्थिति एवं आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कराये जाते हैं ।

डेढ़ घण्टे का सत्संग, एक घण्टे का स्वाध्याय भी दिनचर्या का अंग है कि ये हुए पाप कर्मों का प्रायश्चित, प्रस्तुत समस्याओं का समाधान एवं भावी जीवन क्रम का निर्धारण क्या, किस प्रकार हो इसका परामर्श साधक तीर्थ संचालकों से करते रहते हैं ।

यह तीर्थ सेवन के साधना सत्रों की प्रक्रिया हुई । साथ ही ऐसा प्रबन्ध भी किया गया है कि युग शिल्पी की सेवा साधना में संलग्न होने वाले प्रज्ञा पुत्र, भाषण कला, कामचलाऊ सुगम संगीत, जड़ीबूटी चिकित्सा एवं धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण के अन्यान्य पौरोहित्य कृत्य इसी अवधि में सिखा दिये जाते हैं । काया कल्प साधन और युग शिल्पी सत्र एक-एक महीने के अलग-अलग हैं । पर जिनको उत्सुकता होती है उन्हें दोनों को एक साथ भी करा दिया जाता है ।

साधना सत्रों के अतिरिक्त कुछ लोग बच्चों के षोडश संस्कार, कराने जन्म दिन एवं विवाह दिन मनाने के लिए भी आते रहते हैं । बिना खर्च के विवाह संस्कार भी होने लगे हैं । दिवंगत आत्माओं के श्रद्धा-तर्पण की व्यवस्था भी की गई है । इस प्रकार शान्तिकुञ्ज को ऐसे गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित किया गया है, जिससे इस महान परम्परा के साथ जुड़े हुए कितने ही उद्देश्य नई परिस्थितियों में नेय ढंग से सरलतापूर्वक सम्पन्न होते रहें ।

शान्तिकुञ्ज में निरन्तर तीन स्तर के साधना सूत्र चलते हैं —(१) आत्मोत्कर्ष की तपसाधना करने वालों के लिए एक-एक महीने के कल्पसाधना सत्र, (२) वानप्रस्थ स्तर की लोकसेवा में रस लेने वालों के लिए एक-एक महीने के युग शिल्पी सत्र (३) व्यस्त गृहस्थों के लिए दस-दस दिन के संगम सत्र । तीन स्तर के लोगों के लिए यह तीनों ही ऐसे बन पड़ते हैं जिनमें उन्हें समुचित समाधान उपलब्ध हो सके ।

कल्पसाधना सत्र में चान्द्रायण व्रत की प्रमुखता है । इस अवधि में सवा लक्ष गायत्री अनुष्ठान भी करना होता है । नादयोग के दिव्य संगीत द्वारा ब्रह्मचेतना से आदान-प्रदान । त्राटक योग द्वारा आज्ञाचक्र वेधन, तृतीय नेत्र उन्मीलन, दो विशेष साधनाएँ साथ-साथ चलती हैं । जीवन में बन पड़े पापकर्मों का प्रायश्चित परिमार्जन । नियमित स्वाध्याय सत्संग मात्र गंगाजल पान । शाकाहार, फलाहार एवं दुग्ध छाछ का कल्प उपचार । दिव्य औषधियों का स्थिति के अनुरूप कल्प विधान । हर साधक की स्थिति एवं आवश्यकता के अनुरूप साधना विधानों को पृथक्-पृथक् निर्धारण । गुत्थियों के समाधान एवं भावी रीति-नीति का निर्धारण जैसी साधनाओं में संलग्न रहकर इस सत्र में एक महीने तक सम्मिलित रहने पर लौटते समय यह अनुभव करते हैं कि स्वास्थ्य सुधरा, मनोबल बढ़ा और अन्तरात्मा में प्रकाश उभरा । इस सबको मिलाकर इस प्रक्रिया को 'कल्पसाधना सत्र' नाम दिया जाना सार्थक प्रतीत होता है ।

युग शिल्पी सत्र भी एक-एक महीने का है । वे भी कल्पसत्रों की तरह हर महीने की पहली तारीख से आरम्भ होकर तीस तक चलते हैं । इनमें भी आत्म-शोधन और आत्म-परिष्कार की प्रक्रिया जप, अनुष्ठान, यज्ञ, तप के साथ जुड़ी हुई रहती है । क्योंकि आत्मिक पवित्रता एवं प्रखरता की अभिवृद्धि के लिए दिव्य सत्ता के साथ द्वार खोलने इस उपाय का अवलम्बन करना प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी के लिए आवश्यक हो जाता है । इसके अतिरिक्त लोकमानस के परिष्कार के लिए जिस प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं सुधारात्मक बहुमुखी कार्यक्रमों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनाने की आवश्यकता है उनका स्वरूप एवं कौशल सिखाने के लिए सुनियोजित पाठ्यक्रम का अभ्यास कराया जाता है। इसमें भाषण कला, संगीत, जड़ी-बूटी चिकित्सा, आसन, प्राणायाम, उपचार जैसे अनेक प्रयोजन ऐसे हैं जो शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य सम्वर्द्धन की दृष्टि से सरल होने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण रामबाण भी है ।

तीर्थ संगम सत्र दस दिनों के हैं । वे हर महीने तीन होते हैं (१) १ से १० (२) ११ से २० (३) २० से ३० रखा गया है । प्रत्येक सद्गृहस्थ को आत्मनिर्माण, परिवार निर्माण के उद्देश्य से प्रज्ञा परिजनों के लिए विनिर्मित सप्तसूत्री कार्यक्रमों का सिद्धान्त एवं व्यवहार समझने के लिए है । तीर्थों में षोडश संस्कार कराने का पुरातन प्रचलन है । पितरों के श्राद्ध-तर्पण को भी तीर्थों में ही कराया जाता है । यह सभी कृत्य इन्हीं इस दिवसीय सत्रों की अवधि में सम्पन्न करा दिये जाते हैं । इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र के हरिद्वार, कनखल, ऋषीकेश, लक्ष्मणझूला चारों तीर्थ और उनसे सम्बन्धित अन्य छोटे बड़े घाट देवालयों की दर्शन झाँकी करा दी जाती है । इनसे क्या शिक्षा, प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए, यह इतिहास घटनाक्रम भी आगन्तुक भली समझ लेते हैं । जबकि असम्बद्ध यात्री ऐसे ही मारे-मारे फिरते रहते हैं ।

उपर्युक्त तीन प्रकार के सत्र निरन्तर चलते रहने के कारण पुरातन काल की आरण्यक पद्धति का—साधना, स्वाध्याय, संयम एवं सेवा के अभ्यास का—ऋषि प्रणीत सिद्धान्तों, निर्धारणों एवं अभ्यासों के अनुरूप प्रयोग अवलम्ब का—उपयुक्त अवलंबन मिल जाता है । उपयुक्त वातावरण में हर बात फलती-फूलती है । उपरोक्त तीनों सत्र भी इसी प्रयोजन के लिए हैं । इनमें सम्मिलित होने वाले अनुभव करते हैं कि वे सचमुच ही पुरातन युग के तीर्थ आरण्यकों में निवास करने का सुयोग सौभाग्य पा रहे हैं और प्रतिपादित पुण्यफल हाथों-हाथ मिल रहा है ।

तीर्थ यात्रा के पीछे प्राचीनकाल में एक प्रक्रिया यह भी थी कि निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए रास्ते में आने वाले व्यक्तियों से धर्मप्रेरणा से भरा हुआ वार्तालाप करते चला जाय । रात्रि को जहाँ विश्राम किया जाय वहाँ कथा कीर्तन की ज्ञानचर्चा विचारगोष्ठी का उपक्रम चले । प्राचीनकाल में तीर्थ यात्राएँ पैदल होती थीं । वाहनों पर चढ़ने का निषेध था । यह इसलिए कि पैदल चलने को एक स्वास्थ्य सम्वर्द्धक चिकित्सा उपचार की तरह भी प्रयुक्त किया जाता है । इसके अतिरिक्त धीमे चलने से अनेक लोगों के साथ चलते-चलाते वार्तालाप करना भी सम्भव होता था । बीच-बीच में आने वाले छोटे-छोटे गाँव झोपड़ों में भी बैठते, सुस्ताते, हँसते-हँसाते चलने में यात्रा भी सरलतापूर्वक कट जाती थी । ज्ञानयज्ञ की यह सेवा साधना ही प्रमुख रूप से पुण्यफल प्रदान करने का निमित्त कारण बनी होती थी । अब वाहनों पर बैठकर दौड़ने और प्रतिमा का चेहरा देखकर ही उड़न्छू हो जाने तक ही तीर्थ यात्रा की लकीर पिटती है । किन्तु तीर्थों के पुनर्जीवन की प्रक्रिया आरम्भ करते-कराते शान्तिकुञ्ज के गायत्रीतीर्थ में पहुँचने वालों ने वही उपक्रम अपनाया है, घर से हरिद्वार तक, हरिद्वार से घर तक पहुँचने में पैदल या साइकिल पर चलना होता है । अब साइकिल को भी पैदल यात्रा में ही सम्मिलित कर लिया गया है । उससे यात्रा सरल भी रहती है । विस्तर भी लदा रहता है । समय भी बचता है । इसलिए साइकिल यात्रियों को भी पैदल तीर्थ यात्रा पूरी करने का अवसर मिलता है ।

दूसरी तीर्थ यात्राएँ अपने-अपने क्षेत्रों की हैं । यह न्यूनतम एक सप्ताह की होती हैं । हर रोज एक विराम विश्राम, एक अच्छा कार्यक्रम बन जाता है । इससे न्यूनतम दो और अधिकतम पाँच साइकिल सवार हों तो सुविधा रहती है । दीवारों पर रंगीन खड़िया से आदर्श वाक्य लिखते चलने वाले, गाँव-गाँव युग सन्देश देने वाले गायन प्रवचन करते चलने पर व्यापक क्षेत्र में युग परिवर्तन का उस संदर्भ में कुछ करने का उत्साह उमड़ता है ।

प्राचीन काल में तीर्थों में नियत समय पर नियत स्थान पर पर्व सम्मेलन भी होते थे और उनमें बिना किसी निमंत्रण की अपेक्षा किये धर्म प्रेमी स्वेच्छापूर्वक जा पहुँचते थे । सोमवती अमावस्या, गंगा दशहरा जैसे पर्वों पर, गंगा, यमुना, गोदावरी आदि नदियों के तट ऐसे ही धर्म सम्मेलन होते थे । इन्हें क्षेत्रीय आयोजन कहा जा सकता है । उसमें विचार विनिमयों का, सामयिक निर्धारणों का, योजनाबद्ध प्रयासों का, पारस्परिक स्नेह संगठन की अभिवृद्धि का अवसर मिलता था । बारह-बारह वर्ष बाद चार स्थानों पर होने वाले कुम्भ पर्वों पर समस्त देश के मूर्धन्य विचारक एवं क्षेत्रों के सेवाधिकारी—मण्डलाधीश एकत्रित होते थे । यह धर्म सम्मेलन हर क्षेत्र में धर्म धारणा को प्रखर बनाये रहने में अति महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यही परम्परा सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत आरम्भ की गई है । सात-सात दिन के प्रज्ञा आयोजन सभी जीवन्त प्रज्ञा संस्थानों में हर वर्ष करने का निश्चय हुआ है, उसे उनका वार्षिकोत्सव तथा क्षेत्रीय आलोक वितरण का—संगठन एवं निर्धारण का महत्त्वपूर्ण माध्यम बनाया जायगा । प्रयत्न यह चल रहा है कि मेले प्रदर्शनियों का भी इन धार्मिक आयोजनों के साथ समावेश रहे ताकि विचार तत्त्व का महत्त्व न समझने वाले लोग भी मनोरंजन के उद्देश्य से वहाँ पहुँचे और अप्रत्याशित प्रेरणायें साथ लेकर वापस लौटें ।

विनिर्मित प्रज्ञा पीठों को ऐसे आयोजन हर वर्ष करने के लिए कहा गया है । उसमें प्रातःकाल प्रज्ञा पुराण की कथा मध्याह्न को क्षेत्रीय कार्यकर्ता सम्मेलन, रात्रि को लोक शिक्षण का सभा आयोजन रहे । अन्तिम दिन गायत्री यज्ञ । इनमें दुष्प्रवृत्तियाँ छोड़ने और सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने की देव दक्षिणा का उपक्रम रहने से यह आयोजन सच्चे अर्थों में युगान्तरीय चेतना का प्रवाह उत्पन्न करने वाले सिद्ध होंगे । ऐसे ही प्रयत्नों से तीर्थ परम्परा का पुनर्जीवन सम्भव था । वहीं शान्तिकुञ्ज द्वारा किया और कराया जा रहा है ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चर्या उनके बाद भी तीर्थों के रूप में प्रेरणा केन्द्र बनकर गतिशील रही। उस प्रकाश की किरणें आज तक किसी न किसी रूप में फैल रही हैं।

जिन क्षेत्रों में भगवान के विभिन्न अवतारों के क्रिया-कलाप विशिष्ट प्रेरणायें प्रस्तुत करते रहे हैं, वहाँ भक्तजनों ने तीर्थों की स्थापना की है। भगवान राम और कृष्ण की लीला का स्मरण दिलाने वाले अनेकों तीर्थ अभी भी उनकी लीला-भूमि में विद्यमान हैं। इन सबका एक ही उद्देश्य रहा है कि सर्वसाधारण को भगवान के अवतारों के प्रयोजनों का परिचय मिले, वे उससे प्रेरणा और प्रकाश पा सकें। इसलिए इन तीर्थों को अवतारों का भावना-शरीर कहा जाता है और उसी श्रद्धा-भावना से उनके सान्निध्य का प्रयास किया जाता है।

सभी धर्म सम्प्रदायों में यह प्रथा प्रचलित है कि अपने संस्थापकों की शिक्षा-प्रेरणा को फैलाने के लिए ऐसे केन्द्र बनाये जाते हैं, जहाँ से उस मिशन का भविष्य में भी संचालन होता रहे। क्रिश्चियन मिशन के तत्वावधान में अनेकों छोटे-बड़े धर्म-संस्थान, ईसाई-धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए सारे संसार में काम कर रहे हैं। उन्हीं से आस-पास के इलाके में रचनात्मक प्रवृत्तियों का फैलाव तथा धर्म-प्रचारकों के निवास और निर्वाह की व्यवस्था होती है। वे लोग अपने इन धर्म-केन्द्रों के प्रति वही भाव रखते हैं, जो भारतीय लोग तीर्थों के प्रति रखते हैं। सिखों के गुरुद्वारे मात्र पूजा स्थल ही नहीं होते, वहाँ वे प्रवृत्तियाँ भी चलती रहती हैं, जो वहाँ पहुँचने वालों को सिख-धर्म की प्रेरणा देती रहें।

तीर्थों की स्थापना में कई सन्तों का विशेष प्रयत्न रहा है। आद्य शंकराचार्य की प्रेरणा से भारत के चार कोनों पर चार धाम बनाए गये। अपने गुरु की उस आकांक्षा को पूरा करने के लिए उनके शिष्य मान्धाता ने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया और वह प्रयोजन पूरा ही कर दिखाया।

ब्रजधाम के अधिकांश तीर्थ कृष्ण-भक्तों ने महाप्रभु चैतन्य के संकेतों पर बनाए। तभी से उस क्षेत्र में बने देवालयों का वर्तमान स्वरूप सामने आया। पुष्टिमार्गी सम्प्रदाय की बैठकें प्राय: उन सभी प्रमुख जगहों पर बनी हैं, जहाँ-जहाँ उनके धर्मगुरु उपदेश करते रहे। यही स्वामी नारायण सम्प्रदाय में हुआ है। लगभग हर उस जगह में देवालय हैं जहाँ उनके धर्मगुरु कुछ महत्त्वपूर्ण कृत्य करते रहे हैं।

देवालयों के साथ प्रेरणाओं को जोड़कर जन-सम्पर्क साधना ही तीर्थों का उद्देश्य रहा है। उसी दिशा में वे लोक-श्रद्धा को प्रभावित करते रहे, यह उद्देश्य पूरा होना चाहिए, तभी उनकी सार्थकता है। जिस सीमा तक देव-मन्दिर जन-जन में प्रेरणा-प्रोत्साहन की यह जिम्मेदारी निभा सकें, उसी सीमा तक उन्हें जीवन्त मानना चाहिए। नहीं तो, बस देव-मूर्तियों की अलग-अलग स्थापना करते फिरने और पूजा-पत्री की चिन्ह-पूजा वहाँ चलाते रहने से वह महान् उद्देश्य पूरा होने का नहीं, जिसके लिए ऋषियों ने अपनी प्रखरता तथा दूरदर्शिता के साथ इतना प्रयास किया था।

देव-पूजन तभी सार्थक है, जब उसके साथ आदर्शवादी प्रेरणायें भी जुड़ी हों। सिर्फ पूजा के लिए उतना अधिक धन और श्रम लगाना बेकार है, क्योंकि यदि ध्यान बन पड़े तो घर में चौकी पर रखी छोटी-सी प्रतिमा भी उस हेतु पर्याप्त है।

बिना प्रेरणा के मात्र चिन्ह-पूजा के केन्द्र बने देवालय बुद्धिवादी वर्ग की आलोचना के पात्र बनते हैं। वे इसे जगह, धन और मेहनत की फिजूल-खर्ची मानते हैं तथा धर्म के धंधेबाजों द्वारा यशलोभी पूँजीपतियों के साथ मिल कर रचा हुआ षड्यन्त्र मानते हैं। इन आलोचनाओं का सन्तोषप्रद उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब इन देव-स्थानों के द्वारा उच्चस्तरीय आस्था उत्पन्न करने वाली रचनात्मक गतिविधियों का संचालन होता रहे। आज के तीर्थों को इसी कसौटी पर कसा जाना चाहिए कि वे अपने मूल प्रयोजन-आदर्शवादी आस्थाओं के संवर्धन में सहायक हैं या नहीं ? यदि वे इसमें सहायक नहीं हैं, तो उनकी उपयोगिता धीरे-धीरे समाप्त ही होती जायेगी। परम्परागत श्रद्धा की पूँजी चुकाने पर वे न केवल उपहास के पात्र बनेंगे, वरन् तीखे तिरस्कार के भी शिकार होंगे।

अपने आरम्भ और उत्कर्ष की अवधि में तीर्थ-प्रक्रिया न केवल भारत वर्ष को प्राणवान और चेतन बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है अपितु सम्पूर्ण विश्व भी इस पुण्य प्रक्रिया के प्रखर प्रकाश से लाभान्वित होता रहा है। यहाँ यह स्मरण कर लेना चाहिए कि तीर्थ-तत्त्व किसी देव-मन्दिर, सरिता-सरोवर, पूजा-कृत्य तक ही सीमित नहीं है, अपितु ये सब तो बाहरी कलेवर मात्र हैं। तीर्थ-तत्व का प्राण वह विधि-व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत इन स्थानों में रहने वाले मनीषी ब्रह्मवेत्ता व्यापक जन-सम्पर्क के द्वारा जन-मानस में धर्म-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारण को प्रतिष्ठित करने के प्रयास करते रहते थे और लोक-चेतना में गहराई तक धर्म-धारणा जमाते थे । इस प्रक्रिया एवं प्रयास का परिणाम आत्मिक स्वास्थ्य-सम्वर्धन के रूप में सामने आता था। यही प्राणवान प्रक्रिया तीर्थ-तत्त्व का जीवन है ।

तीर्थ तो श्रद्धा के प्रतीक हैं। श्रद्धा वस्तुओं में नहीं होती, वह तो उन क्रिया-कलापों द्वारा उत्पन्न होती है जो उत्कृष्ट व्यक्तियों द्वारा आस्थाओं के अभिवर्धन के लिए संचालित किए जाते हैं। बाहरी कलेवर से असंख्य गुनी महानता तीर्थों में उन दिनों चलने वाली इन्हीं गतिविधियों में भरी होती थी। डिब्बी में रखी अँगूठी ही महत्त्वपूर्ण होती है, डिब्बी स्वयं में उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती। धान का छिलका नहीं, चावल ही मूल्यवान होता है। मूल्यांकन मनुष्य का किया जाता है। पहनावा तो साज-सज्जा भर है। पोशाक भर के आधार पर महत्त्व नहीं मिल सकता। हाँ, बिना पोशाक के भी महानता और गरिमा को अक्षुण्ण रखना अवश्य सम्भव है। अच्छी वेशभूषा, अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा डील-डौल एवं बाहरी-व्यक्तित्व हो सके, तब तो कहना ही क्या ? ये सुयोग व्यक्तित्व की शोभा बढ़ाते हैं, लेकिन ये ही भर पर्याप्त नहीं होते। मूल गरिमा तो उत्कृष्टता सम्पन्न व्यक्तित्व की है। बुनियादी महत्त्व उसी का है। उसी की क्षमता और शोभा को बढ़ाने के ही कारण बाहरी व्यक्तित्व, पोशाक और स्वास्थ्य का महत्त्व एवं उपयोग होता है ।

मन्दिरों की भव्यता, जलायशों की सुषमा या दर्शकों को आकर्षित करने वाली विचित्रता किसी स्थान को दर्शनीय तो बना सकती है, कौतूहल वश लोगों का आना-जाना बना रह सकता या बढ़ सकता है, इतने भर से ही उन स्थानों को सचमुच तीर्थ कहा जाना क्या उचित होगा ? पर्यटक विनोद के लिए वहाँ पहुँचे और व्यवसायी लोग कुशलता के साथ विनोद बेचें, दाम कमायें। इतना ही उपक्रम चलते रहने पर तीर्थों का प्रयोजन पूरा हुआ नहीं माना जा सकता। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कि कलात्मक प्रतिमा का उपयोग तराजू के बाँटों के रूप में किया जा रहा हो। अगर प्रतिमा को नापजोख के ही काम में लाया जा रहा, तो उससे प्रतिमा के निर्माता को असन्तोष होगा। उसने कितनी मेहनत, कलात्मक चिन्तन, सूझ-बूझ, तन्मयता-तल्लीनता तथा प्रतिभा के साथ उस प्रतिमा को गढ़ा होगा, उन सबकी सार्थकता तो तभी थी, जब उससे दर्शकों की कला-बुद्धि को आनन्द प्राप्त होता। इसी प्रकार तीर्थों के निर्माता, तीर्थ-प्रक्रिया के चिन्तक, संगठक और विस्तारक दूरदर्शी ऋषियों ने कितनी साध्य और साधना के साथ, इनको प्रारम्भ किया, प्रतिष्ठित किया। उनका वह उदार योगदान तभी सफल माना जा सकता है, जब इन तीर्थ-केन्द्रों के द्वारा धर्म-चेतना का जन-जन में प्रसार हो और उत्कृष्टता की प्राणवान् प्रेरणायें उनके द्वारा फैलाई जायें ।

इस तथ्य को स्मरण करने पर निश्चय ही यह आवश्यकता स्पष्ट हो जाएगी कि तीर्थों के विशालकाय ढाँचे इन दिनों निष्प्राण हो चुके हैं और उनमें प्राण फूँके जाने चाहिए। इन दिनों तो इन तीर्थों की स्थिति असाध्य रोगियों जैसी हो गई है। या तो इनकी मृत्यु हो जाये या फिर इनमें ठीक से जीने की शक्ति आए। इस तरह चारपाई पर पड़े सड़ने की स्थिति से किसी को भी खुशी नहीं होगी। महान् उद्देश्यों से बनाये गए और उस दृष्टि से पूरी तरह सुविधा सम्पन्न तीर्थों का सही उपयोग न हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इस स्थिति से तो यही पता चलता है कि वर्चस्वी प्रभावी वर्ग में विचारशीलता, जागरूकता और सुव्यवस्था बनाये रखने वाली प्रतिभा नहीं रही है। विवेक और पौरुष शिथिल हो गया है। लोक-नेतृत्व की क्षमता नहीं रही है। यह अपने युग की दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना कही जाएगी। यह आस्था के ह्रास की स्थिति है ।

यह आस्था-संकट ही मनुष्य के आंतरिक पिछड़ेपन का प्रधान कारण है। इसी के कारण व्यक्ति में दुष्टता और समाज में भ्रष्टता का अनुपात बढ़ता जा रहा है और सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, शासकीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अगणित समस्यायें-उलझनें बढ़ती चली जाती हैं। समाधान ढूँढ़ने वाले एक छेद को बन्द करें, तब तक नए छेद और फूट पड़ते हैं। यह सिलसिला तब तक रहेगा, जब तक सभी विकृतियों का आधारभूत कारण ही नहीं दूर किया जायेगा। वह है आस्था का संकट। इस मूल-भूत कारण के निवारण के लिए कारगर उपाय ढूँढ़ा जाना जरूरी है ।

समाज की आर्थिक स्थिति एवं अर्थ-व्यवस्था में सुधार, उपयोगी का निर्माण और सुविचारों का विस्तार उचित एवं आवश्यक है, किन्तु यह भी समझा जाना जरूरी है कि व्यक्तित्व का उद्गम मनुष्य के अन्तःकरण की गहराई में सन्निहित है और वहाँ तक न तो अर्थ-साधनों की पहुँच हो पाती है, न ही कानून की, न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने के लिए पधारें यह उचित है, पर इससे भी अधिक आवश्यक है कि देव-संस्थान अपने समीपवर्ती क्षेत्र में धर्म-धारणा को सुविस्तृत एवं परिपक्व करने के लिए भी प्रबल प्रयत्न करें। प्राचीनकाल में धर्म-संस्थान अपना कार्यक्षेत्र 'मण्डलों' के रूप में निर्धारित करते थे। मण्डलेश्वर- मण्डलाधीश आदि शब्द ऐसे ही धर्म संस्थानों के लिए प्रयुक्त होते थे। वे अपनी-अपनी प्रचार परिधि बनाकर मानवी गरिमा को अपनाने के लिए उस क्षेत्र के जन-जन को प्रेरणा देते रहते थे। गायत्री-शक्ति-पीठों का निर्माण जन-मानस में धर्म-धारणा के प्रति अगाध आस्था उत्पन्न करने और तदनुरूप आचरण में शालीनता तथा उदारता का समावेश करने के उद्देश्य से किया जा रहा है। युग- परिवर्तन के लिए व्यक्ति का दृष्टिकोण और चरित्र बदलना चाहिए। गायत्री-शक्ति-पीठें अपने कार्य-क्षेत्र में इसी का सुनियोजित प्रयत्न करेंगी। उन्हें युग तीर्थ संज्ञा देने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

आद्य शंकराचार्य ने ऐसे ही महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए देश के चार कोनों पर चार धाम बनाये थे। चैतन्य महाप्रभु ने ब्रज-धाम पधार कर अपने भक्त-जनों से कृष्ण चरित्र से सम्बन्धित सभी स्थानों का निर्माण कराया था। महाराष्ट्र में समर्थ रामदास ने अनेकों महावीर देवालयों की स्थापना कराई थी। इससे पूर्व ज्योति-लिंगों की, दुर्गा-शक्ति, पीठों की स्थापनाएँ तत्कालीन आवश्यकता की पूर्ति के लिए होती रही हैं। बुद्ध के 'विहार' और 'संघाराम' ऐसे ही लक्ष्य पूरे करने के लिए बनाये गये थे। अपने-अपने समय में अपने-अपने प्रयोजनों के लिए यह सभी निर्माण पूर्णतया सार्थक सिद्ध होते रहे हैं।

नवयुग अवतरण की पुण्य बेला में आस्था-संकट का निराकरण और धर्म-धारणा का अभिवर्धन आवश्यक है। इन्हीं क्षेत्रों में फैली हुई विकृतियों ने असंख्य समस्याओं और विपत्तियों का सर्वनाशी संकट खड़ा किया है। गायत्री-शक्ति-पीठों के माध्यम से इन दोनों ही प्रयोजनों की पूर्ति हो सकेगी ऐसी आशा की जा सकती है। अधर्म के नाश और धर्म के विकास का अवतारी उद्देश्य पूरा करने के लिए शक्ति-पीठों की स्थापना कितनी कारगर सिद्ध होती है, उसका हम सब अगले ही दिनों अपनी इन्हीं आँखों से प्रत्यक्षत: दर्शन करेंगे।

तीर्थ-प्रक्रिया की युगानुकूल नव-प्रतिष्ठापना

नव-सृजन अभियान के धर्मचक्र की धुरी 'तीर्थ-तत्त्व' है। विगत दिनों हुई इसकी उपेक्षा अवहेलना का प्रतिफल है कि भावनात्मक विचारशीलता का प्रवाह सूखता चला गया। जिसके परिणाम में आज मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क को शत-सहस्र टुकड़े होकर बिखरना पड़ रहा है। इन्हें सजा-सँवार कर 'नया मनुष्य' गढ़ने की कोशिश का मतलब है, तीर्थ-प्रक्रिया को विडम्बनाओं से मुक्त करना और उसमें सांस्कृतिक चेतना जागृत करने वाली तत्परता का घुलाना-मिलाना। यदि इसको पुनर्जीवित किया जा सका तो समझो, उज्ज्वल भविष्य की संरचना का सिंह-द्वार खुल गया।

कहने के लिए तो तीर्थों का ढाँचा यथावत् है। रेल-मोटरों की सुविधा हो जाने से यात्रा भी सस्ती और सुगम हो गई है। इन्हें अधिक आकर्षक अधिक मनोहर बनाने में लोगों का उत्साह भी है। देवताओं की कृपा-अनुकम्पा, पुण्य की प्राप्ति और प्रसिद्धि की चाह ने अनेकों को प्रेरणा दी है कि इन तीर्थों में देव-मन्दिर बनवाए जायँ, धर्मशालाओं का निर्माण हो। यही कारण है कि अब पहले की अपेक्षा कहीं अधिक भव्य मन्दिर यहाँ देखे जा सकते हैं। सरकार मन्दिर तो नहीं बनाती, पर वह पर्यटकों के मन को बाँधने-खींचने वाले अन्य दर्शनीय स्थलों का निर्माण एवं सुधार करती रहती है। व्यापारी भी अपने लाभ और लोभ के लिए विविध उपायों द्वारा दर्शकों को खरीददारी के लिए उत्साहित करने का प्रयास और प्रबन्ध करते हैं। मनोरंजन के साधनों की वृद्धि से पर्यटकों को तीर्थ-यात्रा में दुहरा लाभ दिखता है। श्रमजीवियों से नव-दम्पतियों तक सभी की अब एकरसता मिटाने तथा मन को हल्का-फुल्का और प्रसन्न-प्रफुल्ल बनाने के लिए परिभ्रमण की जरूरत महसूस हुआ करती है और इस हेतु सर्वोत्तम जगह है—तीर्थ। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक है कि यात्रियों का संख्या बल बढ़े। लेकिन यदि इस संख्या वृद्धि और रूप-आकर्षण की चकाचौंध के बीच तीर्थों की स्थापना करने वाले ऋषि-मनीषियों के उद्देश्य की ढूँढ़ खोज करें तो अथक परिश्रम के बावजूद निराश होना पड़ता है। इस निराश से प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को पीड़ा ही होती है, प्रसन्नता नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होना यह चाहिए था कि जैसे-जैसे तीर्थों का रूपाकार अधिक आकर्षक अधिक भव्य बनता गया, वैसे ही साथ ही साथ में लोगों की सच्ची धर्म-भावना कभी सुदृढ़ होती चली जाती। लोगों का व्यक्तित्व अधिक प्रखर परिष्कृत बनता। उनके आचरण की प्रगति उन्नति से समाज में भी समृद्धि सुव्यवस्था प्रगतिशीलता की वृद्धि एवं विस्तार होता चलता, लेकिन ऐसा कुछ भी देखने में नहीं आता। पर्यटन केन्द्रों जैसा आकर्षण बढ़ने के बावजूद यह प्रश्न शाश्वत् है कि तत्त्व-दर्शियों ने जिस उद्देश्य से इस महान् तीर्थ-परम्परा का प्रवर्तन किया था, उसका क्या हुआ ? और क्या होगा ? वही तो इसका प्राण था। वह प्राण ही समाप्त हो गया तो रूपाकार का यह विस्तार किस मतलब का ? प्रथाओं के निष्प्राण को ही अनुचित रूढ़ियाँ तथा ढकोसला कहा जाता है। मानवीय अन्तःकरण का परिपोषण करने वाली श्रद्धा की तुलना कामधेनु से की जाती है। धर्म-कृत्यों का उद्देश्य उसी श्रद्धा का पोषण सम्वर्धन हुआ करता है।

तीर्थ-परम्परा इसी प्रयोजन को पूरा करने के लिए थी। लम्बे समय तक वह प्रयोजन पूरा भी होता रहा। अब उसका समाप्त होते जाना खेदजनक है। यदि तीर्थ इसी प्रकार पर्यटन केन्द्रों के रूप में ही सार्थक रह गए और कोई भी प्रेरणा उनसे नहीं बची, तो फिर उनकी गिनती भी विनोद-मनोरंजन के अन्य साधनों के साथ होने लगेगी। संस्कृति के परिपोषण के स्थान पर तीर्थ-विनोद और विकृतियों के ही केन्द्र बनते चले जा रहे हैं। वे प्रकाश स्तम्भ नहीं रहे। समुद्र में खड़े प्रकाश स्तम्भ यदि ज्योतिर्मय न रहें, तो उधर से निकलने वाले जहाजों को खतरा है। वे प्रकाश स्तम्भ जो आलोकित रहने पर जहाजों का पथ-प्रदर्शन करते थे, अब राह के भीषण रोड़े बन जायेंगे। उनसे टकराकर जहाजों के चूर-चूर हो जाने का खतरा है। जो सहायक थे वही संकट पैदा करने लगेंगे। तीर्थों से भी यदि प्रकाश प्रेरणा विलुप्त होती चली गई तो अनर्थकारी परिणामों के लिए तैयार रहना चाहिए। आज तीर्थों की साज-सज्जा का तो सभी को ध्यान है, लेकिन उनके प्राणों को प्रदीप्त रखने, उनकी ज्योति को जलाए रखने की परवाह किसी को नहीं है। धर्म के नाम पर इन जगहों पर जो स्टाल लगे देखे जाते हैं उनमें ऐसा बिकाऊ माल होता है, जो आत्मिक स्वास्थ्य को किसी तरह लाभ नहीं उलटे हानि ही पहुँचाता है। यहाँ भावुकजनों का शोषण किया जाता है और अंधविश्वासों का पोषण। अमृत भी सड़ जाने पर जहर हो जाता है। मुर्दा शरीर तेजी से फूलता है, पर उससे किसी को खुशी नहीं होती। तीर्थों की आत्मा तो उनसे निकल चुकी, हाँ उसका शरीर फूलता दिख रहा है। इसमें प्रसन्न होने लायक कोई बात नहीं, उलटे हृदयवान् और समझदार लोगों का अस्तित्व परिस्थितियों की विषमता पर जार-जार हो रो पड़ेगा।

आश्चर्य तो इस आत्मा विहीन शरीर के रख-रखाव पर होने वाले खर्च का है। इसमें जन-शक्ति और धन-शक्ति कम नहीं खप रही। कुम्भ आदि बड़े पर्वों की बात छोड़कर सोमवती अमावस्या जैसे छोटे पर्व का ही विवेचन करें लें। इस दिन उत्तरकाशी से लेकर गंगा सागर तक लगभग पचास लाख श्रद्धालु प्रत्येक सोमवती पर्व पर गंगा स्नान करते हैं, श्रम, धन, समय का औसत लगाया जाय तो हर व्यक्ति के पीछे इस महँगाई में कम-से-कम दस रुपया खर्च बैठेगा। पचास लाख के पीछे ५ करोड़ रुपया। साल भर में ४-५ सोमवती अमावस्याएँ होती हैं। इससे यह रकम २५ करोड़ हुई। भारत में ऐसी और भी पवित्र नदियाँ हैं। इन सबमें सोमवती स्नान करने वालों का कुल खर्च ७५ करोड़ तो माना ही जा सकता है। यानि नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, यमुना आदि में कुल मिलकर १०० करोड़ रुपये अकेले सोमवती स्नान में खर्च हो जाते हैं। वर्ष भर होने वाली तीर्थ यात्रा में यदि समय और धन का औसत जोड़ा जाय तो कुल खर्च एक हजार करोड़ यानि कि दस अरब से कम न बैठेगा। आर्थिक विपन्नता के चक्रव्यूह में फँसे देश में इतनी जन-सम्पदा के निष्प्रयोजन व्यय का उत्तर किसके पास है ?

इस अहम् सवाल ने तीर्थों की बिलखती आत्मा ने कितनों को बेचैन किया पता नहीं। किन्तु वतमान युग में जन्में एक महामानव ने इस पीड़ा से बेचैन होकर अपना समूचा जीवन तीर्थ-चेतना की प्रतिष्ठापना के लिए न्यौछावर करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी। जिसके मन में, अतीत की वह सारी दृश्यावली साकार हो उठी थी। जब अपनी उत्कर्ष की अवधि में तीर्थ-प्रक्रिया न केवल भारतवर्ष को प्राणवान् चेतन बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है, आपतु सम्पूर्ण विश्व भी इस पुण्य प्रक्रिया के प्रखर प्रकाश से लाभान्वित होता रहा है। पुण्य तीर्थों का दर्शन और सेवन करने पूरी दुनिया से भाव सम्पन्न व्यक्ति यहाँ आते, रुकते निवास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते, देखते-समझते और कृत-कृत्य होकर लौटते रहे हैं। इतिहास में इन तथ्यों के प्रमाणिक विवरण विद्यमान हैं। फाह्यान, मेगस्थनीज, ह्वेनसांग, अल बेरुनी आदि के प्रसंग किसी से छुपे नहीं हैं। स्वयं ईसामसीह भी इसी तीर्थ-यात्रा, तीर्थ-सेवन के लिए भारत आए थे और उन जीवन ऊर्जा केन्द्रों से जीवन-साधना कर ईश्वर पुत्र होकर लौटे थे। उन दिनों भारत-भूमि जितनी छोटी नहीं थी। प्राय: सम्पूर्ण एशिया में बृहत्तर भारत का विस्तार था। उसका प्रकाश सम्पूर्ण धरती पर सूर्य की भाँति आभा और ऊर्जा बिखेरता था। उस सतयुग स्वर्ग युग की स्थापना के प्रमुख आधारों के केन्द्र-बिन्दु यही तीर्थ थे।

इन तीर्थ-तत्त्व का तात्पर्य किसी देव-मन्दिर, सरित-सरोवर, पूजा-कृत्य तक सीमित नहीं है। ये सब तो उसके बाहरी कलेवर भर हैं। तीर्थ-तत्त्व का प्राण वह विधि-व्यवस्था, जिसके अन्तर्गत इन स्थानों में रहने वाले मनीषी ब्रह्मवेत्ता व्यापक जन-सम्पर्क के द्वारा जन-मानस में धर्म-धारणा को प्रतिष्ठित करने के प्रयास करते रहते थे। आस्था क्षेत्र को प्रखर उन्नत बनाते थे। ऋषियों के ये सुव्यवस्थित प्रयास मेघ-मण्डलों की तरह व्यापक क्षेत्र में प्रेरणा की वर्षा करते और भावनाओं की हरियाली को उपजाते-बढ़ाते थे। अत: ऊर्जा का उत्पादन करने वाले बिजलीघरों की तरह तीर्थ-प्रक्रिया की भूमिका थी।

इसे पुनर्जीवित करना, कलेवर में प्राण फूँकना आसान काम नहीं है। तीर्थ संस्थापक का पद कोई महन्त या मैनेजर जैसा पद नहीं है। इसमें यश, वैभव सुविधा प्रसिद्धि और अहंता की तृप्ति की रत्ती भर गुजाइंश नहीं है। इसकी एक मात्र योग्यता उसका ब्रह्मर्षि होना है, जिसे अर्जित करने के लिए २४ वर्षों तक अपना सारा समय और मन २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्ति में लगाना पड़ा। इसके अलावा न जाने कितनी गहन और गुह्य साधनाएँ सम्पन्न करनी पड़ीं, जिनका विवरण अभी लोक दृष्टि से ओझल है। इसी तपश्चर्या के परिणाम-स्वरूप ब्रह्मवर्चस् की प्रचण्ड ऊर्जा निस्सृत हुई जिसने तीर्थ-चेतना को जन्म दिया।

इस चेतना ने अपनी अभिव्यक्ति गायत्री तीर्थों के रूप में करनी शुरू की, जिसका प्रारम्भ गायत्री तपोभूमि मथुरा से हुआ। शान्तिकुंज के रूप में इसमें एक नयी कड़ी जुड़ी। सम्भव है किसी बोध मन में प्रश्न उठ खड़ा हो—तीर्थ स्थापना गायत्री प्रधान ही क्यों ? इसका उत्तर भविष्य दर्शन में सक्षम-तत्वदर्शियों के लिए स्पष्ट है। विश्व के लिए निर्धारण में जिन आस्थाओं-विचारणाओं और परम्पराओं का उपयोग होना है। वे सभी गायत्री महामंत्र में सन्निहित प्रेरणाओं से ही अनुप्राणित होंगी। यह विश्वमाता के रूप में आद्य शक्ति का युग अवतार है। चौबीसवें अवतार को निष्कलंक कहा गया है। यह निष्कलंकता मनुष्य का नहीं चेतना का गुण है। चेतना का यह अवतार ही प्रज्ञावतार है, जिसके संचरण से समस्त संसार श्रद्धामय होने जा रहा है। नए युग की सम्भावना सुनिश्चित है। उसी के सूत्र-संकेतों की प्रधानता उभर रही है। गायत्री को देश-काल के सीमा-बन्धनों में नहीं जकड़ा जा सकता है, उसे विश्व का सौभाग्य निर्माण करने वाली दिव्य प्रेरणा के रूप में लोकमान्यता मिलेगी। ऐसी दशा में युग-शक्ति की प्रतीक प्रतिष्ठापना का भाव भरा प्रश्रय ही उचित है। इसकी उपासना में सभी देव-शक्तियों की उपासना निहित है। इसी कारण ज्ञानमूर्ति संस्कृति पुरुष ने तीर्थ-परम्परा के पुनर्जीवन की प्रक्रिया में इसे प्राथमिकता दी है। इस कार्य के पीछे उनकी ऋषि दृष्टि और महाकाल की योजना है।

तीर्थ-प्रक्रिया की इस नव प्रतिष्ठापना का एक अन्य वैशिष्टय भी है। सामान्यक्रम में तीर्थों को किसी ऋषि अथवा अवतार में किसी एक का सान्निध्य मिलाता रहा है। वर्तमान क्रम में प्रत्येक गायत्री तीर्थ युग ऋषि की तप:शक्ति और प्रज्ञावतार की चेतना शक्ति से अनुप्राणित हुआ है और हो रहा है। तीर्थ-परम्परा को व्यापक और सघन बनाने के उद्देश्य को लेकर शान्तिकुंज को केन्द्र बनाकर सन् १९७९ की बसन्त को शक्ति-पीठों के निर्माण की व्याप्रक श्रृंखला का उद्घोष किया गया। इस उद्घोष में 'भारत-भूमि देव-भूमि बने' की गूँज समाई थी। उनके संकल्प के स्वरों ने देखते-देखते तीर्थ तन्त्र का सुविस्तृत ताना-बाना बुन डाला। २४०० शक्ति-पीठों—२४ हजार प्रज्ञा-संस्थानों के सुदृढ़ तन्त्र निर्माण के पीछे उनकी तपश्चर्या से उद्भूत तीर्थ चेतना की क्रियाशीलता भरी अभिव्यक्ति समझी जानी चाहिए। १९७९ में गायत्री के २४ अक्षरों की २४ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना की गौरवानुभूति अपने में सँजोने वाले ब्रह्मवर्चस् से शक्ति-पीठों की निर्माण का जो क्रम शुरू हुआ था वह अभी भी मन्द नहीं पड़ा है।

युगावतार के इस कार्य को सत्यम् की भावना शिवम् से परिपूर्ण विचार और सुन्दरम् से ओत-प्रोत क्रिया के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप में गतिशील प्राणवान् त्रिपदा गात्री के रूप में जाना जा सकता है। सामान्यजन इसे इमारत बनाने जैसे हलके-फुलके काम के रूप में भले देखें-समझें, पर जिन्होंने अपनी तप साधना की उपलब्धि विवेक दृष्टि के रूप में पाई है, उनकी नजर में यह एक अनुपम शल्य प्रयोग है, जो सांस्कृतिक चेतना का रक्त संचार करने वाली महाधमनी में जमे-आड़े अवरोधों को हटाने में समर्थ हो सकेगा। जिसके दूरगामी परिणाम होंगे, जिस प्रकार अन्तरिक्षीय उपग्रहों को उछाल देने वाले प्रचण्ड ऊर्जा का प्रबन्ध करने पर ही उन उपग्रहों का संचरण होता है, कुछ उसी प्रकार यह प्रयास देव-संस्कृति द्वारा विश्व संस्कृति के रूप में उछाल लेने में सहायक सिद्ध होगा।

सांस्कृतिक चेतना के ज्योति स्तम्भ बनकर स्थापित गायत्री शक्ति-पीठों के त्रिविध उद्देश्य हैं (१) अतीत का पुनरागमन (२) वर्तमान का निर्धारण (३) भविष्य का संयोजन। इस स्थापना को समर्थ राम द्वारा स्थापित हनुमान मन्दिरों, शंकराचार्य द्वारा नवजीवित चारधामें एवम् भगवान बुद्ध द्वारा संचालित बौद्ध विहारों और संघारामों का व्यापक समग्र और भवितव्यता से सामजंस्य रखने की दृष्टि से सार्थक प्रयोग समझा जा सकता है। अपने तीनों उद्देश्य पूरा करने में यह योजना सर्व समर्थ है। इसके स्वरूप की बहुत अंशों में अभिव्यक्ति अभी भविष्य के गर्भ में है। कुछ ही वर्षों में जब यह स्थिति सचमुच में साकार हो जाएगी तो निश्चय ही मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की बात प्रत्येक को स्वानुभूत तथ्य लगने लगेगा।

इस योजना में समाई भविष्य की अनगिनत सम्भावनाओं को साकार करने का दायित्व परिव्राजाकों पर है। इन्हें चलते-फिरते ब्रह्म विद्यालय भी कहा जा सकता है। शास्त्रकारों ने इनको आचार्य या उपाध्याय की गरिमा प्रदान की है। इस पद का दायित्व असाधारण है जिसे निभा सकने के लिए व्यक्तित्त्व को भी असाधारण बनाना पड़ेगा। असामान्य चरित्र बल, निर्लोभवृति और महान् उद्देश्य के प्रति समर्पित सतत् कर्म निष्ठा ही वह बल है जो कार्य में सफलता का आधार सँजोयेगा। इनके व्यावहारिक प्रशिक्षण, लोकशिक्षण के सूत्रों को हृदयंगम कराने का सारा संरजाम शान्तिकुंज में जुटाया गया है। योग्य पात्र युग सृजन के निमित्त यहाँ आकर अपनी प्रतिभा को प्रखर और लोकहित में समर्पित कर सकते हैं।

शक्ति-पीठों में रहने वाले परिव्राजाकं की कार्य शैली कुछ इस प्रकार रहे ऐसी आशा की गई है। तीर्थ में आने वालों को (१) गायत्री प्रतिमाओं का दर्शन कराते हुए इनके तत्व-दर्शन का महत्त्व समझाना। उसे अपनाकर देवोपम जीवन जीने की प्रेरणा देना। (२) जिनमें जिज्ञासा के कुछ भी बीजांकुर मिले, उन्हें सत्संग कक्ष में बिठाकर आत्मीयतापूर्वक भारतीय संस्कृति का तत्त्व-बीज गायत्री और उसके अवलम्बन का स्वरूप समझाना। (३) सम्पर्क में जिनके साथ घनिष्टता बढ़े उन्हें साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा द्वारा समग्र आत्म-विकास की प्रेरणा देना। (४) आस-पास के क्षेत्र में जाकर नवयुग के सन्देशों से अवगत कराना तदनुरूप ढलने की प्रेरणा देना। (५) जन्म दिन मनाने का उत्साह पैदा करके व्यक्ति-निर्माण की, संस्कार प्रचलन से परिवार-निर्माण की, पर्व त्यौहारों द्वारा समाज-निर्माण की चेतना को उत्पन्न करना। (६) रात्रि में, कथा-कीर्तन द्वारा धर्मभाव विकसित करना। (७) पन्द्रह दिन का गीतचक्र बनाकर विभिन्न गाँवों की तीर्थ यात्रा करके विचार क्रान्ति का पथ प्रशस्त करना। (८) अपने क्षेत्र में चल पुस्तकालयों की व्यवस्था। (९) प्रौढ़ शिक्षा वृक्षारोपण कराने आदि सत्प्रवृत्ति संवर्धन और कुप्राथाओं, अन्धमान्यताओं के उन्मूलन जैसे कार्यों में स्वयं लगना और दूसरों को लगाना। यही वे दायित्व हैं जिन्हें युग- ऋषि द्वारा स्थापित तीर्थ तन्त्र के संचालकों को परिव्राजकों को निष्ठापूर्वक पूरा करना है।

इस प्रक्रिया में समर्पित देव-मानवों की समर्थ मण्डली का यह कार्य नवयुग के अवतरण में ब्रह्म मुहूर्त की तरह अपना परिचय देने जैसा है। तीव्र गति से बढ़ती उनकी प्रखरता की किरणें अन्य तीर्थों में भी जागृति ला सकेंगी। गायत्री तीर्थों से उमगती उर्जस्विता प्राचीन अर्वाचीन सभी तीर्थों में नव-जीवन नए प्राणों का संचार करने वाली सिद्ध होगी।

तीर्थ-परम्परा का पुनर्जीवन शक्ति-पीठ के रूप में

भारत में इन दिनों तीर्थों का स्वरूप प्रायः पर्यटन केन्द्रों जैसा बन गया है। उनका स्थान चयन ऐसा हुआ है, जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द मिल सके। नदी, सरोवर, पर्वत पुरातत्व सन्दर्भ ऐतिहासिक घटनाक्रम आदि के जुड़े रहने से वे स्थान सहज आकर्षण के केन्द्र हैं। चिरकाल से यात्रियों का आना-जाना उधर बना रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसलिए ठहरने, घूमने, देखने आदि की वे सुविधाएँ भी विकसित होती चली आई हैं। उन्हें देखने से पर्यटक को प्रसन्नता होती है। सम्पन्न लोगों ने धर्म श्रद्धा से अथवा यश कामना से प्रेरित होकर इन स्थानों में भव्य मन्दिर भी बना दिये हैं। धर्माध्यक्षी श्रद्धालु जन-मानस से अधिक सम्पर्क बनाने और अधिक लाभ उठाने की दृष्टि से अपने डेरे इन्हीं स्थानों में डाले हैं। इन्हीं सबके समन्वय से वह स्थिति बनी है जो आज के तीर्थ-स्थानों में देखी जाती है।

तीर्थ-यात्रियों की संख्या हर साल बढ़ती जाती है। इसका कारण लोगों की श्रद्धा अथवा तीर्थों की उपयोगिता का बढ़ना नहीं, वरन् यह है कि पर्यटन के लिए इन्हीं परम्परागत स्थानों के अतिरिक्त और कोई अधिक उपयुक्त दीख नहीं पड़ते। फिर पर्यटक को यह कहने समझाने का भी अवकाश तो मिल जाता है कि उन्होंने धर्म प्रयोजन के लिए समय और पैसा खर्च किया है। सरकार इस सन्दर्भ में आर्थिक दृष्टि से सोचती है। अधिक टैक्स मिलने एवं अधिक लोगों को अधिक काम मिलने, अधिक बिक्री होने से समृद्धि बढ़ने जैसे लाभों को देखते हुए सरकारी तन्त्र पर्यटन को प्रोत्साहन देते हैं और पर्यटकों के लिए कई तरह की सुविधा उत्पन्न करते हैं। व्यवसायी क्षेत्रों के प्रोत्साहन से ऐसे मेले-ठेले इन तीर्थों में जुड़ते रहते हैं, जिनमें अधिक भीड़ पहुँचने से अधिक बिक्री होने और अधिक लाभ उठाने का अवसर मिले। तीर्थ-यात्री ट्रेनों और बसों की धूम रहती है। उनकी व्यवस्था पर लाभ उठाते हैं और यात्री सुविधा अनुभव करते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में उन प्रयोजनों की चर्चा की गई है, जिनके आधार पर आज की तीर्थ-यात्रा एवं तीर्थ-स्थानों की महिमा का ढाँचा खड़ा है। चलते हुए पर्यटन प्रवाह को ही तीर्थ श्रद्धा कहा जा सकता है। इसमें जन-साधारण की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी होती है। इस उत्साह से लाभ उठाने वाले अन्यान्य वर्ग उसे किसी न किसी रूप में प्रोत्साहित करते रहते हैं, फलतः तीर्थों का विस्तार और आकर्षण बढ़ता जाता है। भीड़ें भी अपेक्षाकृत अधिक होने लगी हैं।

इस स्थिति को धर्म और अध्यात्म के उन सिद्धान्तों के साथ संगति बिठाने पर निराशा ही हाथ लगती है। पर्यटन उपक्रम तो संसार के अन्य देशों में भी चलता है, उसे तो विनोद प्रेमी अन्यत्र भी पूरे उत्साह के साथ अपनाए हुए हैं, फिर भारत में ही उसे पुण्य-परमार्थ का प्रतीक क्यों माना जाय ? धर्म श्रद्धा के आधार पर उत्पन्न हुई उमंगों का जब अन्य प्रकार से श्रेयस्कर उपयोग हो सकता है, तो क्यों उसे ऐसे ही खोटे मनोरंजन के लिए अस्त-व्यस्त होने दिया जाय। पर्यटन अपनी जगह पर एक उपयोगी कृत्य है। वह अपने स्थान पर यथावत् बना रहे और अपने ढर्रे पर चलता रहे, उसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। असमंजस इस बात का है कि धर्म-श्रद्धा का पुण्य परमार्थ जिस मूलभूत उद्देश्य को लेकर तत्वदर्शी ऋषियों ने इन पुनीत धर्म-केन्द्रों की स्थापना की थी और उनके आकाश-पाताल जैसे माहात्म्य बताकर जनमानस को उनके साथ सम्बद्ध होने के लिए आकर्षित किया था, उस महान् लक्ष्य की पूर्ति का क्या हुआ ? उन उपदेशों की पूर्ति कहाँ हुई ? देवताओं के दर्शन एवं जलायशों के स्नान से तो आत्म-लाभ नहीं मिल सकता। उन्हें प्राप्त करने के लिए तो ऐसी प्रेरणाएँ चाहिए जो अन्तरात्मा में उच्चस्तरीय आदर्शों के लिए गहन श्रद्धा उत्पन्न कर सकें। अस्त-व्यस्त और विक्षुब्ध मनःस्थिति को सात्वना और दिशा देने के उद्देश्य से तीर्थ बने थे। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए किस तीर्थ में कितनी व्यवस्था है ? यह खोजने पर निराशा ही हाथ लगती है।

ऋषियों ने तीर्थों को प्राकृतिक सौन्दर्य तथा ऐतिहासिक स्थलों पर स्थापित इसलिए किया था कि आगन्तुकों को प्रकृति के सानिध्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक प्रेरणाओं का लाभ भी मिलता रहे। यह बाह्य प्रयोजन हुआ, मूल उद्देश्य यह था कि उपयोगी वातारण में कुछ समय ठहर कर अपनी अस्त-व्यस्त मनःस्थिति को सुसन्तुलित करने तथा भविष्य के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ प्राप्त कर सकने का बहुमूल्य लाभ मिले। इसके लिए परामर्श प्रवचन का व्यवस्थित क्रम तो चलता ही था, उससे भी बड़ी बात उस वातावरण की थी जिसमें कुछ दिन ठहर जाने पर ही मनुष्य नव-जीवन के लिए उपयुक्त प्रेरणाएँ ग्रहण करता था। लोग तीर्थ-स्थानों में व्रत अनुष्ठान करने जाते थे। वहाँ रह कर प्रायश्चित्त करते और आत्मचिन्तन के आधार पर भावी जीवन क्रम का नव-निर्माण करते थे। तीर्थ पुरोहित इस सन्दर्भ में उन्हें पूरा-पूरा सहयोग करते थे। इन स्थानों में ऋषि कल्प-मनीषियों के द्वारा संचालित आरण्यकों की विशेष व्यवस्था थी जिनमें ठहर कर तीर्थ-यात्री अपना आन्तरिक काया-कल्प करने में व्यक्तित्व को परिष्कृत परिमार्जित करने में उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त कर सकें। इन्हीं उपलब्धियों में तीर्थ-सेवन का माहात्म्य और पुण्य फल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केन्द्रीभूत रहता था। इस उद्देश्य में जो जितना सफल होता था, वह उतने ही बड़े पुण्य फल से प्रत्यक्ष लाभान्वित होता था। आत्म-साधना करने और उच्चस्तरीय प्रेरणा ग्रहण करने की उपलब्धि को तीर्थ-यात्रा की आत्मा समझा जा सकता है। जलाशयों का स्रोत, देवालयों का दर्शन तो उस पुण्य प्रयोजन का बाह्य कलेवर एवं शोभा श्रृंगार जैसा है।

जिस जन-कल्याण के उद्देश्य से तीर्थों की स्थापना की गई और उसकी सफलता से उत्साहित होकर अधिक लोगों को वहाँ पहुँचने की प्रेरणा दी गई, यह बात सामान्य नहीं असामान्य थी। यदि पर्यटन जैसा छोटा लाभ ही प्रतीत होता तो दूरदर्शी ऋषि इस झंझट में स्वयं न पड़ते, अपनी सारी प्रतिभा को दाँव पर लगाकर तीर्थों का वह भावना-स्तर और दर्शनीय ढाँचा खड़ा न करते, जिसमें उनका अजस्र पुरुषार्थ और सघन मनोबल लगा हुआ है। आद्य शंकराचार्य ने देश के चारों कोनों पर चार 'धाम' स्थापित किये। वे प्रकारान्त से सत्रीय विश्वविद्यालय बौद्ध काल में नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय बने थे और उनमें प्रशिक्षण प्राप्त करके संसार भर में परिव्राजकों के जत्थे धर्मचक्र प्रर्वतन के लिए पहुँचते थे। जन-साधारण को भी अनेकानेक बौद्ध विहारों में रहकर उच्चस्तरीय जीवनयापन की शिक्षा मिलती थी। तीर्थों का असली स्वरूप भी यही था। भगवान् बुद्ध ने प्राचीन तीर्थों का जिस उपयोगी ढंग से पुनर्निर्माण किया, उसी का अनुकरण हिन्दू धर्मानुयायियों ने भी अपने-अपने ढंग से किया और तीर्थों की उपयोगिता, आवश्यकता का समझाते हुए उनकी स्थापना का उत्साह उत्पन्न किया। धनिकों के सहयोग से एक के बाद एक तीर्थ बनते चले गये। शक्ति-पीठ-ज्योतिर्लिंगधाम इसी स्तर के धर्म संस्थान थे। आद्य-शंकराचार्य द्वारा विनिर्मित चारों धामों की इस सन्दर्भ में विशिष्ट गणना की जाती है। देश के प्रायः सभी धर्म सम्प्रदायों ने अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सामर्थ्यानुसार छोटे-बड़े तीर्थों की स्थापनाएँ की हैं।

तीर्थों के निमित्त भारत की अपार जन-शक्ति और धन-शक्ति नियोजित है। देखना यह है कि इतनी सुविस्तृत शक्ति का जिस उद्देश्य के लिये उपयोग होता है वह पूरा हुआ या नहीं ?

धर्म-तन्त्र के विशालकलेवर में तीर्थ-प्रक्रिया का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसमें प्रतिगामिता का घुस पड़ना समाज में अवांछनीयता के अभिवर्धन का द्वार खोलता है। मात्र पर्यटक केन्द्रों के रूप में उनका ढोंग-ढकोसला खड़ा रहना एक प्रकार से धर्म तत्व का उपहास है। समय की माँग है कि यथास्थिति वही ही रहनी चाहिए। अवांछनीयता और अनुपयोगिता देर तक जीवित नहीं रह सकती। विवेकशील जागरूकता जब भी अँगड़ाई लेगी उन्हें उलट कर रख देगी।

सदा क्षति होती है, समय रहते विकृतियों का सुधार कर लेने में ही बुद्धिमानी है। धर्म-तत्र में यदि प्रतिगामिता घुसी रही, उसने व्यक्ति और समाज की सुख-शान्ति में कोई योगदान न दिया तो वह भी निश्चित है कि श्रम और धन का अपव्यय जन-विवेक को सहन न हो सकेगा और अनौचित्य के प्रति उभरने वाला आक्रोश उसे उलट कर रख देगा। तब तीर्थ स्थानों की गरिमा भी जीवित न रह सकेगी, लोग देव-मन्दिरों की प्रतिमाएँ अजायबघर में रख देंगे, उनकी इमारत तथा सम्पत्ति का लोकोपयोगी कार्यों में उपयोग करने लगेंगे। यह कार्य आक्रोश पूर्वक होगा तो धर्म-तन्त्र की तीर्थ-परम्परा के विरुद्ध ऐसे आरोप लगेंगे कि भ्रान्त जन-मानस में घुसी हुई घृणा, धर्म-तत्त्व को चिरकाल के लिए अश्रद्धा के गर्त में धकेल दे। ऐसी स्थिति का उत्पन्न होना असम्भव नहीं है। आज के बुद्धिवादी युग में धर्म-तन्त्र की तीर्थ-प्रक्रिया की अवांछनीयता देर तक जन-आक्रोश से बची नहीं रह सकती। आक्रामक परिवर्तन से हटाया गया धर्मानुशासन मनुष्य समाज की इतनी बड़ी क्षति उत्पन्न करेगा जिसकी कल्पना मात्र से आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है।

चेतने का समय ठीक यही है। विलम्ब एक क्षण का भी भारी पड़ेगा। उचित यही है कि धर्म-तन्त्र को उसके वास्तविक स्वरूप में रखा जाय और प्राचीनकाल की तरह समग्र मानवी प्रगति के लिए उच्चस्तरयी अनुदान दे सकने की स्थिति में उसे फिर से प्रतिष्ठित किया जाय। भारत में धर्म-तन्त्र और तीर्थ परिकर एक प्रकार से अति घनिष्ट हो गये हैं। दोनों की स्थिति एक प्रकार से अन्योन्याश्रित जैसी बन गई है। ऐसी दशा में उचित यही है कि इस पुण्य-परम्परा के चिर प्राचीन स्वरूप को चिरनवीन के साथ मिलाकर ऐसी प्रेरणा उत्पन्न की जाय जिससे धर्म-तत्व के प्रति लोक-श्रद्धा में कमी न आ सके। उसकी उपयोगिता पर कोई उँगली न उठा पाये। उसकी आवश्यकता से किसी को इन्कार न करते बन पड़े।

समय की इस माँग को पूरा करने के लिए युग-परिवर्तन की इस पुण्य बेला में गायत्री तीर्थ को ऐसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वरूप दिया गया है जिससे उस उद्देश्य की पूर्ति हो सके, जिसके लिए महामनीषियों ने इस परम्परा का प्रचण्ड मनोबल और समर्थ पुरुषार्थ के आधार का प्रचलन किया था। वह प्रचलन अभी जीवित है, मरम्मत कर देने भर से अभी काम चल सकता है, वह स्थिति अभी नहीं आ पाई है कि तीर्थ परम्परा को खण्डहर में धकेल दिया जाय और उसके मलवे के हटाने की व्यवस्था बनाई जाय।

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में गायत्री शक्ति-पीठ

भारत की अतीत गरिमा जिस देव संस्कृति के आधार पर विनिर्मित एवं विकसित हुई उसका बीज-मन्त्र गायत्री है। इस चौबीस अक्षर के शब्द समुच्च्य से उस ज्ञान और विज्ञान की दिव्य धारायें प्रादुर्भूत होती हैं जो मानवी चेतना को परिष्कृत कर सकने में पूरी तरह समर्थ हैं। बीज छोटा होता है, उसका विकास विस्तार विशाल वृक्ष बन जाता है। गायत्री के प्रत्येक अक्षर को बीज-मन्त्र कहा गया है। उसके तने, टहनी, शाखा, पत्र-पल्लव, फूल-फल भारतीय संस्कृति के अनेकानेक पक्षों में परिलक्षित होते हैं।

गायत्री को वेदमाता कहा गया है, क्योंकि उसकी व्याख्या में ज्ञान और विज्ञान के भाण्डागार वेद शास्त्रों की संरचना हुई है। गायत्री को देवमाता कहा गया है, क्योंकि उसका आश्रय लेने पर मनुष्य उत्कृष्टता एवं समर्थता की दृष्टि से देवोपम स्तर तक पहुँच जाता है। गायत्री को विश्वमाता कहा गया है, क्योंकि उसमें विश्व-कल्याण के समस्त सूत्रों का समावेश है। गायत्री को अमृत, पारस और कल्पवृक्ष की उपमा दी गई है। अमृत इसलिए कि इस तत्त्व-ज्ञान का अवगाहन करके मनुष्य आत्मवान् बनता है और मृत्यु एवं शोक से तर जाता है। पारस इसलिए कि सन्निहित आदर्शों को अपनाने का स्तर बदल जाता है क्षुद्रता महानता में परिणित होती है। कल्पवृक्ष इसलिए कि उसकी कल्पनायें सार्थकता और शालीनता से भरी होती हैं और उनकी पूर्ति में कठिनाई नहीं होती। स्वर्गलोक में समझी जाने वाली जिन विभूतियों की कल्पना की जाती है, वे सभी उत्कृष्ट दृष्टिकोण मिलने पर इसी जीवन में उपलब्ध होने लगती हैं। गायत्री इसी धरती की कामधेनु है, उसमें सन्निहित सद्ज्ञान का पयपान करने वाले देव-मानवों की स्थिति प्राप्त करते हैं, चिर चौवन, चिर सौन्दर्य और चिर उल्लास उनकी नस-नस में भरा रहता है।

क्या उपरोक्त शास्त्र प्रतिपादन यथार्थता की कसौटी पर रखे उतरते हैं ? क्या उन आप्त वचनों में तथ्य है जिनमें गायत्री मन्त्र को भौतिक और आत्मिक प्रगति का ऋद्धियों और सिद्धियों का उद्गम केन्द्र बताया गया है। तत्त्व-दर्शी महामनीषियों को गायत्री मन्त्र पर इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उनने उसे विशिष्ठ व्यक्तियों की साधना तक सीमित न रखकर जन-जन के नित्य कर्म में सम्मिलित होने योग्य ठहराया और उसकी अनिवार्यता को धर्म धारणा में सम्मिलित किया। दैनिक उपासना को सन्ध्या वन्दन कहते हैं। सन्ध्या वन्दन के जितने भी प्रकार हैं उन सब में गायत्री अनिवार्य है। भारतीय धर्म में गुरुमन्त्र की संज्ञा मात्र गायत्री को ही मिली है। विद्याध्ययन आरम्भ कराते हुए सर्व प्रथम यही महामंत्र पढ़ाया जाता था। मस्तिष्क रूपी किले पर शिखा की स्थापना गायत्री की प्रज्ञा ध्वजा फहराई जाती है। शरीर को कर्त्तव्यों के अनुशासन में बाँधने के लिए यज्ञोपवीत से जकड़ा जाता है। यह उपनयन और कुछ नहीं मात्र गायत्री मन्त्र में सन्निहित शिक्षाओं और प्रेरणाओं का प्रतीक समुच्चय है। शिखा और सूत्र की संस्कृति प्रकारान्तर से गायत्री मूलक है इसलिए यह महामन्त्र ज्ञान गंगोत्री के नाम से विख्यात है।

अपने युग का सबसे बड़ा विनाश विग्रह एकमात्र 'आस्था संकट' ही है। जन-मानस में घुसी हुई निकृष्टता ही चिन्तन में भ्रष्टता और आचरण में दुष्टता बन कर विश्व संकट की अनेकानेक विभीषिकायें खड़ी कर रही है। इसका निराकरण जन-मानस के परिष्कार से ही सम्भव होगा। यह कार्य ऋतम्भरा प्रज्ञा की अधिष्ठात्री की प्रेरणाओं का अनुसरण करने से जितनी सरलता और निश्चिन्तता से सम्पन्न हो सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं। नवयुग के अवतरण एवं उज्ज्वल भविष्य के सृजन के लिए सभी आवश्यक तत्व इस महामन्त्र में मौजूद हैं। अभीष्ट परिवर्तन की आवश्यकता इसी तत्व-ज्ञान को व्यापक बनाने में पूरी हो सकती है। सृष्टि ने असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने के लिए—अधर्म का नाश और धर्म का स्थापन करने का वचन निवाहने के लिए प्रज्ञावतार के रूप में प्रकट होने का निश्चय किया है। यही पूर्व घोषित 'निष्कलंक' है। युग-परिवर्तन में गायत्री के तत्त्व-ज्ञान और साधना विज्ञान की असाधारण भूमिका रहेगी यह निश्चित है। उस तत्व-ज्ञान का आलोक जिस द्रुतगति से विश्वव्यापी होता चला जा रहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, उसके प्रति जन-साधारण में आस्था-संचार जिस प्रकार हो रहा है उसे देखते हुए यह विश्वास करने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती कि नवयुग के सृजन में गायत्री में सन्निहित तत्व-ज्ञान की ही सर्वोपरि भूमिका रहेगी। भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का तालमेल बिठा सकने वाला देव-दर्शन एक केन्द्र पर केन्द्रित गायत्री महामन्त्र में ही खोजा जा सकता है। इस चिर पुरातन के साथ चिर नवीन की संगति पूरी तरह बैठ जाती है।

प्राचीन काल में गायत्री का उद्भव, मध्यकाल में उसका वर्चस्व जिस श्रद्धा भरे वातावरण में हो सका और अब नवयुग के सृजन में उसका जो योगदान मिलने जा रहा है, उसे देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि गायत्री की गरिमा हर दृष्ट से मानवी प्रगति में असाधारण रूप से सहायक रही है और रहेगी। ऐसी दशा में उसका जो दार्शनिक मान है वैसा ही प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले प्रतीक क्षेत्र में भी मिलना चाहिए। प्रेरणा केन्द्रों में तीर्थों में भी गायत्री की गरिमा उसकी महानता के अनुरूप परिलक्षित होनी चाहिए थी।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि गायत्री का कोई ऐसा तीर्थ दृष्टिगोचर नहीं होता जो उसकी सर्वोच्च गरिमा के अनुरूप हो। जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े गायत्री मन्दिर तो अनेकों बने हुये हैं, पर उनकी ख्याति एवं विशिष्टता ऐसी नहीं है जिसे देव-संस्कृति की जन्मदात्री की गरिमा के अनुरूप कहा जा सके। चारों धामों की ख्याति है। ज्योति लिंग और शक्ति-पीठ भी विख्यात हैं। इनमें शिव और शक्ति-तत्वों की विशिष्ठता का आभास मिलता है। चौबीस अवतारों में सबको तो नहीं राम एवं कृष्ण का वर्चस्व विशेष है। अयोध्या और मथुरा के क्षेत्रों में उनके कर्तृत्व की जीवन्त स्मृतियाँ विद्यमान हैं। अन्यान्य देवी-देवताओं, सन्तों, धर्म गुरुओं के स्मारक भी ऐसे हैं जो उनके ज्ञान के अनुरूप हैं। बुद्ध, महावीर, नानक, गाँधी, विवेकानन्द आदि के मान कृत्यों और प्रेरणाओं का स्मरण दिलाने वाले प्रेरणा-केन्द्र भी ऐसे हैं, जिन पर उनके अनुयायी गर्व कर सकते हैं। आगरा जाने पर ताजमहल, सिकन्दरा, फतेहपुरी सीकरी, दयाल बाग आदि स्मारकों को देखने से पता चलता है कि आत्मीयजनों के गौरव को चिरस्थायी बनाने के लिए भी उनके प्रियजन कितने भाव भरे पुरुषार्थ कर सकते हैं।

यह सब सुखद संरचनायें देखकर चित्त में प्रसन्नता भरने के समय पर एक बात बुरी तरह खटकती है कि गायत्री महाशक्ति के सन्दर्भ में ऐसा कुछ क्यों नहीं किया जा सका ? जिसके २४ अक्षरों को चौबीस अवतार, चौबीस देवता, चौबीस ऋषि कहा जाता हो। ऋषि, महर्षि, राजर्षि और देवर्षि समान रूप से जिसकी एकनिष्ठ उपासना करते रहे हैं, जिसकी व्याख्या में वेद शास्त्रों से लेकर वाल्मीकि रामायण, श्री मद्भागवत, देवी भागवत जैसे धर्मग्रन्थों का सृजन हुआ हो, उसकी स्मृति एवं प्रेरणा का उद्भव करने वाला समर्थ केन्द्र विख्यात तीर्थ देश भर में कहीं भी न हो । यह इतने बड़े असमंजस की बात है जिसका कारण ढूँढ़ने में बुद्धि को हतप्रभ रह जाना पड़ता है। बाइबिल के प्रसार में ईसाई समाज की कितनी धन-शक्ति और जन-शक्ति लगी हुई है, उसके लिए कितने गगनचुम्बी अति आकर्षक और दर्शनीय भवन बने हुए हैं, यह देखते ही बनता है। अन्यान्य धर्म-सम्प्रदायों ने भी अपनी-अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुरूप ऐसा सृजन मिश्रित रूप से किया है जिसे देखकर जन-साधारण को उनकी गरिमा समझने की प्राथमिक प्रेरणा सफलता पूर्वक मिल सके। भारतीय धर्म-ग्रन्थों में गीता के प्रचार विस्तार के लिए भी कई समर्थ संस्थान बने हैं। यह सब होते हुए भी गायत्री महाशक्ति के सम्बन्ध में किसी प्रेरणाप्रद तीर्थ-पीठ का न होना, एक ऐसा अभाव है जो देव-संस्कृति के प्रत्येक अनुयायी का चेहरा उदास कर देता है।

अगला समय प्रज्ञावतार के लीला संचरण का होगा। युग शक्ति के रूप में उसी का वर्चस्व दृष्टिगाचेर होगा। ऐसी दशा में हमें भूतकला की उपेक्षा का ऊहापोह न करके प्रस्तुत अभाव की पूर्ति के लिए बिना एक क्षण गँवाये जुट जाना ही श्रेयस्कर है।

ब्रह्मवर्चस् की स्थापना इसी प्रयोजन के लिए हुई है। सप्त-ऋषियों के तप क्षेत्र गंगा तट पर बना यह आश्रम गायत्री साधना की प्राचीन परम्परा को पुनर्जीवित करता है।

जहाँ गंगा ने अपनी सात धाराओं द्वारा इन व्याहृति-ऋषियों को अपने हृदय मध्य में स्थान दिया है, उसी पुण्य क्षेत्र में ब्रह्मवर्चस् की स्थापना हुई है । इस स्थापना में परम्परा का पुनर्जीवित प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

गायत्री-शक्ति-पीठ की स्थापना के लिए यह स्थान सर्वोत्तम माना गया है। सप्त-ऋषियों की प्रतीक गायत्री मन्त्र में सात व्याहृतियाँ हैं। प्राणायाम में सात व्याहृतियों समेत गायत्री मन्त्र का प्रयोग होता है। तीन व्याहृतियाँ ब्राह्मी, वैष्णवी, शांभवी कहीं जाती हैं और उनके बीज मन्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ह्रीं, श्रीं क्लीं हैं। इन्हीं को सरस्वती, लक्ष्मी, काली कहते हैं। त्रिपदा को ही तन्त्र प्रयोजनों में त्रिपुरा या त्रिपुर सुन्दरी कहते हैं। यहाँ गायत्री की तीन व्याहृतियों की भूः भुवः स्वः की व्याख्या हुई।

प्राणायाम आदि बहुत से प्रयोजनों के लिए सात व्याहृतियाँ प्रयुक्त होती हैं। सात व्याहृतियाँ भूः भूवः स्वः तपः महःजनः सत्यम् हैं। यह सातों, सात ऋषियों की प्रतीक हैं। भूः-विश्वामित्र, भुवः-जमदग्नि, स्वः-भरद्वाज, तपः-वशिष्ठ, महः-गौतम, जनः-अत्रि, सत्यम-कश्यप ऋषियों का वर्चस् है। इन्हीं को सप्तलोक, सप्त सिन्धु, सप्त द्वीप, सप्त तीर्थ, सप्त चन्द्र माना गया है। गायत्री को श्रृंगार सज्जा में जिन सात तत्वों का समावेश है उन्हें सप्त ऋषि माना गया है। वे मानुषी नहीं दैवी हैं । आकाश में उपस्थित सात तारों को उनका प्रतीक बताया गया है। विश्वामित्र तो गायत्री के प्रधान तत्व दृष्टा हैं। अन्य छः ऋषियों ने देवत्व की उपलब्धि गायत्री साधना से ही की थी । यह संयुक्त साधना जिस स्थान पर सम्पन्न हुई, वह स्थान गंगा की सात धाराओं वाला वही सप्त सरोवर स्थान है, जहाँ गायत्री तीर्थ की गायत्री शक्तिपीठ की ब्रह्मवर्चस्-आरण्यक की स्थापना की गई है।

गायत्री में २४ अक्षर हैं। इन चौबीसों में सूत्र संकेत में जो शिक्षायें भरी पड़ी हैं उनमें ब्रह्मविद्या का नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र का सार तत्त्व विद्यमान है। इनमें वे सभी मर्यादायें मौजूद हैं जिन्हें अपनाकर मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य बन सकता है। इन २४ अक्षरों की व्याख्या के रूप में वेदशास्त्र, ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद, पुराण आदि की रचना हुई है। वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्भागवत में एक-एक हजार श्लोकों के उपरान्त गायत्री महामन्त्र के एक-एक अक्षर का सम्पुट लगा हुआ है।

गायत्री में सन्निहित तत्त्वदर्शन एवं आचार व्यवहार को किस प्रकार जीवन क्रम में उतारा जाना चाहिए। इसके लिए भगवान के २४ अवतारों की कथा-लीलाओं का चरित्र-चित्रण किया गया है। पुराणों में चौबीस अवतारों की कथा-गाथाओं का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ने से यह सार तत्व समझा जा सकता है कि गायत्री के लिए एक अक्षर की शिक्षा-प्रेरणाओं को किस प्रकार चिन्तन एवं चरित्र में उतारा जा सकता है। गायत्री के २४ अक्षर ही भगवान के २४ अवतार हैं।

भगवान दत्तात्रय को अपनी अतृप्त पिपासा का समाधान करने के लिए प्रजापति के पास जाना पड़ा । उन्होंने २४ दिव्य मंत्र प्रदान किये जिनकी सहायता से दत्तात्रय अपनी जिज्ञासा का समाधान ही नहीं साक्षात् ब्रह्मतत्त्व प्राप्त करने का अवलम्बन भी प्राप्त कर सके। पुराणों में दत्तात्रय के २४ गुरूओं में उन पशु-पक्षियों, कीटपतंगों की भी गणना है जिनकी गतिविधियों को देखकर उन्होंने स्वयंमेव दार्शनिक समाधान ढूँढ़ निकाले थे। वे पशु-पक्षी वाणी से तो कुछ कह सकने में समर्थ थे नहीं। यह उच्च ज्ञान के २४ सूत्र गायत्री मन्त्र के अक्षरों में सन्निहित आर्ष प्रतिपादन ही हैं, जिन्हें ईश्वरीय अनुशासन अथवा वेदानुवचन कहा जा सकता है।

पुराणों के अनेक प्रसंगों में प्रमुख देवता भी अवतारों की तरह २४ ही बताये गये हैं। यों उनकी न्यूनतम संख्या ३ और बड़ी संख्या ३३ करोड़ तक गिनाई गई है। अनेक स्थानों पर उनमें से अति महत्त्वपूर्णों का वर्णन २४ देवताओं के रूप में हुआ है। इसी प्रकार ऋषियों में मूर्धन्यों की संख्या भी चौबीस ही है। इन सबको गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों का विस्तार कह सकते हैं।

गायत्री की प्रतिमाओं में त्रिकाल संध्या के रूप में प्रयुक्त होने वाली तीन प्रमुख हैं। अधिक विस्तार से उनके सहस्र नाम गिनाये गये हैं। उनकी आकृतियाँ भी पृथक्-पृथक् हैं। सहसांसु सूर्य को भी कहते हैं और गायत्री भी सहसनाम्नी है। गायत्री सहसनाम के अन्तर्गत जिन्हें प्रधान माना गया है, वे शक्तियाँ २४ हैं। इसे प्रकारान्तर से गायत्री के २४ अक्षरों में सन्निहित दिव्य सामर्थ्य ही कहा जा सकता है। योगों में न्यूनतम तीन और अधिकतम ८४ हैं। इनके मध्यवर्ती २४ हैं। २४ योग साधनाओं में प्रचलित योगों में से अभी महत्त्वपूर्ण साधनाओं की गणना हो जाती है।

इन समस्त प्रतिपादनों का अलंकारिक समन्वय गायत्री की २४ प्रतिमाओं में हुआ है। इनके पृथक्-पृथक् विग्रह हैं। प्रत्येक विग्रह में वाहन, आयुध, आसन, वस्त्र, मुख, हाथ आदि की भिन्नता मिलती है। इनमें प्रकारान्तर से वे रहस्य दिये हुए हैं जिनके आधार पर पहले बुझौअल की तरह यह समझा जा सकता है कि इन चौबीस अक्षरों में से किन की सामर्थ्य एवं प्रेरणा किस स्तर की हो सकती है। इन २४ में १२ दक्षिण मार्गी हैं और १२ वाम मार्गी। १२ वैदिक हैं और १२ तांत्रिक। वैदिकी पक्ष—गायत्री ब्रह्म विद्या, ऋतम्भरा प्रज्ञा आदि नामों से प्रख्यात है। तांत्रिकी पक्ष को सावित्री अथवा कुण्डलिनी कहते हैं। उसमें दुर्गा, काली, त्रिपुरा, भैरवी आदि की गणना होती है।

शान्तिकुन्ज के तत्वावधान में बने ब्रह्मवर्चस् को गायत्री शक्ति-पीठ के रूप में विकसित किया गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे संसार भर का सबसे महत्त्वपूर्ण गायत्री तीर्थ माना जायगा। गंगा का अवतरण तो स्वर्ग लोक से धरती पर हुआ और उसने शिव तथा भागीरथ के महान् प्रयासों का श्रेय साधा, पर उस ऐतिहासिक गाथा का प्रत्यक्ष प्रतीक गो-मुख है। चर्म चक्षुओं को सर्वप्रथम गंगा का दर्शन गो-मुख पर ही होता है। गायत्री की आदि उत्पत्ति में ब्रह्म, सविता, विश्वामित्र का नाम लिया जाता है। कमल पुष्प एवं हंस पर उनकी स्थापना मानी जाती है, पर यदि उसका प्रत्यक्ष उद्गम देखना हो तो वर्तमान में उसका दिव्य दर्शन ब्रह्मवर्चस् के गायत्री शक्ति-पीठ में चर्च चक्षुओं से किया जा सकता है। चौबीसों अक्षरों की चौबीसों प्रतिमाओं का ऐसा दिव्य-दर्शन अन्यत्र कदाचित् ही कहीं मिले।

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक की पहली मंजिल में गायत्री शक्ति-पीठ की स्थापना की गयी है। उसमें इस महामन्त्र के २४ अक्षरों में सन्निहित प्रेरणाओं एवं सामर्थ्यों की प्रतीक २४ शक्ति-प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं। सामान्यतया अन्य देवालयों की तरह उसमें भी पूजा-अर्चन एवं दर्शन-झाँकी का क्रम चलेगा, पर इसे प्रेरणा परिचय माना जायेगा और प्रयत्न यह किया जायेगा कि सम्पर्क में आने वाले हर व्यक्ति को गायत्री की प्रेरणा ऋतम्भरा-प्रज्ञा को हृदयंगम करने का अवसर मिले, साथ ही वह मार्ग भी मिले, जिससे प्रगति पथ पर चलने की प्रचण्ड प्रेरणा एवं समर्थता की प्रचुर परिणाम में उपलब्धि होती है। शिक्षा और साधना के दोनों तत्त्व प्राचीनकाल की तीर्थ-यात्रा के साथ जुड़े रहते थे। ब्रह्मवर्चस् को शक्ति-पीठ के सानिध्य में जो थोड़े या बहुत समय तक रह सकेगें, वे उसी अनुपात में उपयोगी ज्ञान एवं आत्मबल उपलब्ध कर सकेगें—ऐसी सुनियोजित व्यवस्था बनाई गई है। प्राचीनकाल की ऋषिप्रणीत परम्परा का जीवन्त स्वरूप सर्व-साधारण के सामने प्रस्तुत रह सके, इसी सामायिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए गायत्री शक्ति-पीठ की रीति-नीति एवं गतिविधि का निर्धारण किया गया है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गायत्री शक्ति-पीठ में निम्न व्यवस्थाएँ विशेष रूप से रहेंगी। (१) हर यात्री दर्शनार्थी को गायत्री तत्व-ज्ञान की जानकारी एवं उसे अपनाने की प्रेरणा देने का प्रभाव पूर्ण क्रम। (२) अपने सामान्य जीवन क्रम के साथ चलाई जा सकने वाली सुगम उपासना का मार्ग-दर्शन। (३) उपासना करने के इच्छुक व्यक्तियों को गायत्री माता को छोटा चित्र एवं उपासना विधि भेंट में देने का क्रम। (४) विशेष रूप से लिखे गये सुबोध एवं प्रेरणाप्रद गायत्री साहित्य के सस्ते मूल्य पर मिलने की व्यवस्था। (५) जो व्यक्ति सामान्य गायत्री उपासना का क्रम चलाते हैं, उन्हें विशिष्ट साधना के लिए वहाँ रहकर साधना करने, मार्ग-दर्शन पाने की व्यवस्था। ब्रह्मवर्चस् और उसके अन्तर्गत सारे देश में बन रहे २४ गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना के पीछे यही उद्देश्य सन्निहित है, उन्हें पूरा करने का प्राणपण से प्रयास रहा है।

त्रिपदा की जीवन्त प्रतिमा ब्रह्मवर्चस्

गायत्री को त्रिपदा कहा गया है। उसके तीन चरणों में सत्, चित, आनन्द की अनुभूति, सत्यं शिवम् सुन्दरम् की संवेदना, सत्, रज, तम, की प्रेरणा एवं उत्पादन अभिवर्धन परिवर्तन की प्रकृति लीला का समान दर्शन किया जा सकता है। वेद गायत्री माता के पुत्र हैं, उनका विषय ज्ञान, कर्म, और उपासना है। इन्हीं को साधना क्षेत्र में ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग कहा गया है। देवताओं में तीन प्रधान हैं—ब्रह्म, विष्णु, महेश। देवियों में तीन प्रमुख हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, काली। इनके द्विधा त्रिवेणी संगमों को गायत्री महाशक्ति की तीन धारायें कहा जाता है। त्रिपदा गायत्री का यही सात्विक स्वरूप है।

त्रिपदा की तीन रूपों में त्रिकाल संध्या का विधान है। प्रातः काल को ब्राह्मी, मध्याह्न को वैष्णवी, सायंकालकों शांभवी कहा जाता है। इनमें जो त्रिविध प्रेरणाएँ एवं क्षमताएँ भरी पड़ी हैं, उन्हें आस्तिकता, आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता कहा जाता है।

त्रिपदा की उपासना में तीन फल बताये गये हैं—आस्थाओं में मुक्ति-विचारणाओं में स्वर्ग और व्यवहार में सिद्धि-समृद्धि। दूसरी अलंकारिक विवेचनाओं में इन्हीं को अमृत, कल्पवृक्ष और पारस कहा गया है। इस महान् अवलम्बन को अपना कर आत्मिक प्रगति के तीनों सोपान करतलगत हो सकते हैं। नर पशु से मनुष्य बनने का सौभाग्य ईश्वर कृपा से मिल गया, अब अपना पुरुषार्थ परम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये प्रचण्ड पराक्रम करने में है। यह कार्य गायत्री उपासना की सहायता से भली प्रकार सम्भव हो सकता है। सच तो यह है कि साधना विज्ञान का समूचा क्षेत्र गायत्री महाशक्ति के अन्तर्गत हो आता है। उसी महानद की छोटी बड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शाखा-प्रशाखा नाम रूप की भिन्नता रहते हुए भी अपना प्राण-प्रवाह उसी उद्‌गम केन्द्र से उपलब्ध करती है।

सामान्य मनुष्य से महामानव, ऋषि और देवता के रूप में विकसित करते हुये पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाने की सामर्थ्य गायत्री महाशक्ति में विद्यमान है। कठिनाई एक ही है कि उसका विज्ञान और विधान बुरी तरह लड़खड़ा गया है। खण्डहरों के चिह्न प्रतीकों में इतिहास की स्मृतियाँ ही शेष रहती हैं। उसका स्वरूप एवं प्रभाव कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। खंडहरों के सहारे पुरातत्ववेत्ता, उसकी भूतकालीन परिस्थितियों तथा स्थापना का पता भर चला पाते हैं। वे भी ऐसा नहीं कर सकते कि उस टूट-फूट से बचे-खुचे, टेढे-मेढे टुकड़ों को जोड़कर प्राचीन काल जैसा किला और राज्य शासन खड़ा कर सकें। गायत्री सत्ता का स्वरूप बुरी तरह विकृत हुआ है। मध्यकालीन अन्धकार युग के आक्रमणों ने उस महान् संरचना को एक प्रकार से धराशायी ही कर दिया है। आज गायत्री के नाम पर जो कुछ प्रचलन है उसे अब ऐसे ही ध्वंसावशेष की संज्ञा दी जा सकती है, जिसमें पुरातन का गौरव तो झलकता है, पर वर्त्तमान में कुछ प्रयोजन नहीं होता। इस क्षति को ऋषि-संस्कृति की महानतम हानि कह सकते हैं। किसी का कलेजा निकाल लेने के उपरान्त जीवित-मृतक का जो ढोंग खड़ा रहता है, लगभग वैसा स्वरूप गायत्री तत्त्व-ज्ञान का शेष रहा गया है। अन्धविश्वासी छुट-पुट क्रिया-कृत्यों की चिन्ह पूजा करके लम्बी-चौड़ी मनोकामना पूरी होने के सपने देखते रहते हैं और निहित स्वार्थ, इस महान् परम्परा की खाल ओढ़कर अपना उल्लू उसी तरह सीधा करते रहते हैं, जैसे सिंह का आवरण ओढ़कर कोई गधा वन जीवों पर अपना आंतक जमाता रहता था। अन्य क्षेत्रों की तरह गायत्री उपासना के क्षेत्रों में भी मूढ़ मान्यताओं और अवांछनीयताओं की इतनी भरमार हो गयी है कि तथ्यान्वेषी वर्ग की गहराई से वस्तुस्थिति का पता चलाने पर गहरी निराशा ही हाथ लगती है।

प्राचीन काल की गायत्री गरिमा और आज की दयनीय दुर्दशा की प्रशंसा निन्दा करते रहने पर मन तो हल्का हो सकता है, पर उतने भर से किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि नये सिरे से पुनर्निमाण का प्रयत्न किया जाय और पुनर्जीवित जैसी परिस्थिति उत्पन्न करने के लिये भागीरथ प्रयत्न किया जाय। खोये की खोज हुए निकलना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य है, जितना कि नये सिरे से नये उत्पादन का ढाँचा खड़ा करना। छिपी हुयी भू-सम्पदा का उत्खनन कम महत्त्व का नहीं है। सामान बनाने वाले उद्योगों की अवहेलना न करते हुए भी उपलब्ध साधनों और ऊर्जा का सदुपयोग जान लेने के प्रयासों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। मानवी सुख-समृद्धि के लिये वैज्ञानिक उपलब्धियों और मानवी श्रम-कौशलों को बढ़ाने में भरपूर प्रयत्न होना चाहिए किन्तु यह नहीं भुला देना चाहिये कि मनुष्य शरीर नहीं आत्मा है। शरीर की सुविधा तक ही साधन सामग्री की, समृद्धि सम्पत्ति की उपयोगिता है। आत्मा को वे विभूतियाँ चाहिये जो आस्थाओं, विचारणाओं और गतिविधियों को उत्कृष्टता के साथ अविच्छिन्न रूप से जोड़े हुई हैं। विभूतियों का उत्पादन जिस आत्म-साधना के सहारे होता है, उसमें गायत्री का वर्चस्व असंदिग्ध है। अतीत की भारतीय गरिमा के साथ गायत्री तत्त्व-ज्ञान और व्यवहार विज्ञान को इस सीमा तक जोड़ा हुआ देखा जा सकता है कि उनको एक-दूसरे से अलग करके सोचने की बात बनती ही नहीं है।

आज की स्थिति में अध्यात्म क्षेत्र की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि ऋषि प्रणीत महान् तत्त्व-ज्ञान के गायत्री पक्ष का फिर से अनुसंधान किया जाय । पुनर्निर्धारण, पुनर्निर्माण और पुनर्जीवन को लक्ष्य बनाकर यदि नये सिरे से समर्थ अनुसंधान किया जा सके तो वे आधार फिर से उपलब्ध हो सकते हैं, जिनके सहारे अतीत में भारतीय गरिमा को महानता की चरम सीमा तक पहुँचाने का अवसर मिला था। इस दिशा में यदि सन्तोषजनक सफलता मिल सके, उस साधना पुरुषाथ के लिये प्राणवान व्यक्तियों में साहस जग सके, तो उसके प्रति जन-साधारण में फिर से निष्ठा उत्पन्न हो सके, उस साधना पुरुषार्थ के लिए प्राणवान व्यक्तियों में साहस जग सके, तो निश्चय ही उसके महान् परिणाम् होंगे। उतने ही महान् जितने कि सतयुगी स्वर्णिम इतिहास के हर पन्ने पर बिखरे पड़े हैं।

अपने युग की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि बुद्धिवाद है। इन दिनों प्रत्यक्षवाद का बोलबाला है। विज्ञान ने दर्शन को भी प्रभावित किया है और सर्वत्र लक्ष्य और तर्क की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही किसी बात को स्वीकार करने की प्रवृति तेजी से बढ़ चली है। इसे युग-प्रवाह कह सकते हैं। जन-मानस पर विज्ञान युग की यह छाप इतनी गहरी पड़ी है कि उसे झुठलाया नहीं जा सकता। यों अन्धश्रद्धाओं और झूठी मान्यताओं का दौर भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। रूढ़िवादिता भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पिछड़े वर्गों में अपनी जड़ें अभी भी जमाये बैठी है, किन्तु निश्चित रूप से वे युग आलोक में दिन-दिन फीकी पड़ती चली जा रही हैं। धूर्तों की धूर्तता और मूर्खों की मूर्खता की जीवन अवधि अब तेजी के साथ दिन-दिन घटती जा रही है। यह एक दृष्टि से उज्ज्वल भविष्य का एक चिन्ह है। पर इस प्रवाह में जिस बहुमूल्य सम्पदा के बह जाने का खतरा है वह है—श्रद्धा । उत्कृष्ट चिन्तन और आर्दश कर्त्तव्य के ऊपर ही मनस्वी गरिमा का सामाजिक सुव्यवस्था का, सर्वजनीन सुख-शान्ति का सारा ढाँचा खड़ा हुआ है !

अन्ध-श्रद्धा की हानियों को देखते हुये उसके प्रति लोक आक्रोश उभरा है। यहाँ तक तो औचित्य की सीमा है। खतरा वहाँ से आरम्भ होता है, जहाँ अध्यात्म का सारा ढाँचा ही लड़खड़ा जाने का भय है। जो मूलत: श्रद्धा के तत्त्व-दर्शन का आश्रय लेकर ही खड़ा है। श्रद्धा और उत्कृष्टता एक ही लक्ष्य के दो नाम है। एक के बिना दूसरे का जीवित खड़ा रहना कठिन है।

बुद्धिवादी युग के तूफानी प्रवाह से श्रद्धा को बचाया जाय। इसका एक मात्र उपाय यही है कि विज्ञान और अध्यात्म को परस्पर जोड़ दिया जाय। श्रद्धा को इतना बलवती बनाया जाय कि वह तर्क का दबाव सहन कर सके, इतना ही नहीं उससे बल भी प्राप्त कर सके। दीपक को हवा का झोंका बुझा देता है, पर ज्वलंत ज्वाला की लपटें पवन के सहयोग से क्रमश: प्रचण्ड ही होती चली जाती हैं। तत्त्व-दर्शन और साधना विज्ञान के सहारे अध्यात्म का ढाँचा खड़ा है। इसकी आधारशिला श्रद्धा परक है। अब उसका स्थान अन्ध-श्रद्धा को मिलता रह सके ऐसी सम्भावना प्राय: समाप्त ही हो गयी है। युग की पुकार है कि प्रगतिशील युग में प्रगतिशील मनुष्य को जिस बात को अपनाने के लिये कहा जाय, वह तर्क संगत, तथ्य सम्मत एवं प्रत्यक्ष प्रमाणों से समन्वित होना चाहिये। अध्यात्म को यदि जीवित रखना है तो अपने को इसी कसौटी पर कसे जाने के लिये तत्पर करना होगा, बुद्धिवाद को कोसने भर से इस युग में किसी भी मान्यता का पुरातन की दुहाई देकर जागृत रह सकना अब सम्भव नहीं रह गया है। समय को जितनी जल्दी पहचाना जा सके और स्थिति का सामना करने के लिये जितनी जल्दी साहस जुटाया जा सके उतना ही उत्तम है।

गायत्री उपासना को जन-जीवन का अंग बनाने का व्यापक प्रयत्न गायत्री परिवार द्वारा होता रहा उसमें सफलता भी मिली। करोड़ों व्यक्तियों ने उस तत्त्व-दर्शन को समझा और उसका आश्रय ग्रहण किया, उस पर पड़ रहे बुद्धिवाद, तर्कवाद के दबाव का प्रत्युत्तर अब ब्रह्मवर्चस् से दिया जा रहा है।

इस नूतन तीर्थ-प्रज्ञा, प्रतिष्ठान मात्र मन्दिर के माध्यम से गायत्री उपासना के साथ-साथ जन-मानस में गहराई तक धँसी कुत्सित विचारणा को धोया और साफ किया जायेगा। नव युग का आधार उत्कृष्ट चिन्तन ही होगा, इसी कल्पवृक्ष पर आदर्श कर्त्तव्य के फल लगते ही उन्हीं से परिपुष्ट हुआ जन-समाज सतयुग की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने में समर्थ होता है। इस सारे प्रयास की सफलता अध्यात्म तत्त्व-ज्ञान की प्रखरता पर निर्भर है। यह प्रखरता प्रयोग और परीक्षण की भट्टी में तपाये जाने से ही उत्पन्न हो सकती है। ब्रह्मवर्चस् को पकाने की भट्टी और ढालने की फैक्ट्री का समन्वित रूप माना जाय। इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

ब्रह्मवर्चस् को त्रिपदा गायत्री का मूर्तिमान स्वरूप माना जा सकता है। उसके द्वारा संचालित गतिविधियों को गायत्री में सन्निहित तत्त्व-ज्ञान और प्रेरणा-प्रवाह को त्रिवेणी संगम कहा जा सकता है।

ब्रह्मवर्चस् में तीन मंजिले हैं। तीनों में गायत्री के अक्षरों के अनुरूप २४-२४ कमरे हैं। पहली मंजिल के २४ कमरों में गायत्री महाशक्ति की २४ शक्ति-धाराओं के प्रतीक २४ प्रतिमाओं की स्थापना है, जिनके आधार पर दर्शनार्थियों को गायत्री के तत्त्व-दर्शन और साधना-विधान का सामान्य परिचय मिलता रहेगा। इनमें जो शक्ति-धारा जिस साधक के अनुरूप पड़ेगी वह उसकी समीपता से तदनुरूप लाभ उठा सकेगा।

दूसरे कक्ष के २४ कमरों में गायत्री उच्चस्तरीय साधना के लिए मात्र ४८ साधक एक समय में रहकर एक महीने की शिक्षा और साधना का निर्धारण पूरा कर सकते हैं। गायत्री की वैदिक और सावित्री की तांत्रिक साधनाओं का उस साधना क्रम में सन्तुलित समन्वय किया गया है। हर साधक की मन:स्थिति और परिस्थिति का विशेष निरीक्षण करके तदनरूप उन्हें ऐसा साधना क्रम बताया जाता है जो उनके लिए सरल, रुचिकर एवं उपयोगी सिद्ध हो सके। हर साधक के पृथक् साधना क्रम रहते हुए भी (१) साधना (२) ब्रह्मविद्या (३) लोक-निर्माण के तीनों ही तथ्य ब्रह्मवर्चस् प्रशिक्षण में जुड़े हुए हैं, उसे उच्चस्तरयी गायत्री साधना कहा जा सकता है। योग पक्ष में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुण्डलिनी जागरण की दोनों ही विधाएँ इस साधना उपक्रम में सम्मिलित रखी गई हैं। शिक्षण काल एक महीने का है, पर व्यस्त लोगों के लिए इसी उपक्रम का संक्षिप्त रूप दस-दस दिन के छोटे ब्रह्मवर्चस् सत्रों में भी चलता रहेगा। अधिक और कम समय निकाल सकने वाले व्यक्ति अपने-अपने प्रयास के अनुरूप लाभ उठा सकेंगे।

ब्रह्मवर्चस् का तीसरा कक्ष है शोध संस्थान। इसके लिए २४ कमरे सुरक्षित रखे गये हैं। इसमें दो वर्ग होंगे (१) अनुसंधान (२) प्रयोग परीक्षण।

(१) प्राचीन एवं अर्वाचीन अध्यात्म प्रतिपादनों का तुलनात्मक अध्ययन उसकी यथार्थता एवं उपयोगिता का परीक्षण आज की स्थिति में जो उपयोगी है उसका निर्धारण, इसके लिए अपना विशाल पुस्तकालय। विश्व विद्यालयों तथा बड़े पुस्तकालयों से दुर्लभ पुस्तकें उधार लेने का क्रम बनाया जायेगा। इन विद्याओं के मनीषियों से सम्पर्क साधकर उनके ज्ञान परामर्श का लाभ उठाया जायेगा। इस कक्ष में विज्ञ विद्वानों की श्रम-साधना निरन्तर चलती रहेगी।

(२) प्रयोग परीक्षण में एक साधन सम्पन्न प्रयोगशाला है। इसमें साधनाओं के द्वारा मानवी शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभाव का गम्भीर परीक्षण किया जाता रहेगा और परखा जाता रहेगा कि साधना किसका किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार कितना उपयोग हो सकता है।

इसके अतिरिक्त बड़ा प्रयोजन है यज्ञ विज्ञान के असंख्य प्रयाजनों में असंख्य प्रकार की प्रतिक्रियाओं का परीक्षण। यज्ञ और गायत्री परस्पर अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। एक को भारतीय संस्कृति की जननी और दूसरे को भारतीय धर्म का पिता कहा जाता है। इन दिनों यज्ञ कृत्य की गणना सामान्य पूजा उपचार में होती है, पर उसको जो प्रधानता ऋषियों ने दी उसे देखते हुए स्पष्ट है कि यह प्राणि जगत और सृष्टि परिवार को प्रभावित करने वाली असाधारण प्रक्रिया है। यज्ञ का भावना पक्ष तो उच्चस्तरीय है ही, विधान पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यज्ञ उपचार को शारीरिक और मानसिक चिकित्सा के लिए इस प्रकार प्रयुक्त किया जा सकता है कि उसके सहारे कठिन शारीरिक और जटिल मानसिक रोगों की चिकित्सा हो सके। व्यक्तित्व के समग्र विकास में यह पुण्य प्रक्रिया का समुचित योगदान मिल सके। होम्योपैथी, एलोपैथी, क्रोमोपैथी, इलेक्ट्रोपैथी आदि प्रचलित सभी चिकित्सा विज्ञानों को पीछे छोड़कर यज्ञोपैथी अगले दिनों संसार की सर्वश्रेष्ठ उपचार पद्धति और अभिवर्धन प्रक्रिया बन सकती है। ब्रह्मवर्चस् की प्रयोगशाला में इसी सन्दर्भ का सुव्यवस्थित परीक्षण उच्च शिक्षित वैज्ञानिकों द्वारा आरम्भ किया गया है।

मनुष्यों के अतिरिक्त वृक्ष, वनस्पति, वायुमण्डल, जीवाणु, विषाणु कृमिकीट, जलचर, थलचल, नभचर यज्ञ प्रक्रिया से किस सीमा तक किस प्रकार प्रभावित होते हैं, उसका प्रयोग परीक्षण भी इसी प्रयोगशाला में होगा। इसके लिए बहुमूल्य उपकरण मँगा लिये गये हैं। कुछ और मँगाये जा रहे हैं।

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक (१) गायत्री शक्ति-पीठ (२) आत्मोत्कर्ष आरण्यक (३) शोध संस्थान के लिए त्रिविधि कार्यक्रमों को लेकर जिस तत्परता के साथ कार्य क्षेत्र में उतरा है, उसे देखते हुए उसके सत्परिणामों से उज्ज्वल भविष्य की संरचना में पूरा-पूरा योगदान मिलने की सम्भावना है।

प्रतिभाओं की ढलाई का समर्थ सयंत्र ब्रह्मवर्चस्

युग सृजन की महान् प्रक्रिया में अग्रिम मोर्चा सम्भालने वालों में कुछ विशिष्ट क्षमता होनी चाहिए। उनमें सामान्य से अधिक ऊँचे स्तर की असामान्य प्रतिभा रहनी चाहिए। अन्यथा नव-निर्माण में जिस प्रतिभा की आवश्यकता होती है उसके जुट न पाने से प्रगति पथ आगे बढ़ नहीं सकेगा। अग्रगामियों को सदा अतिरिक्त साहसिकता और विशिष्ट सूझ-बूझ का परिचय देना पड़ता है। अनुगमन और अनुशरण के लिए तो अनेकों को आसानी से तैयार किया जा सकता है। बहते प्रवाह में तो तिनकों से लेकर हाथियों तक को बहते हुए देखा जा सकता है। कठिनाई प्रवाह को अवतरण करने और उसे उपयोगी दिशा में मोड़ने वाले मनस्वी भागीरथों की आवश्यकता होती है। नव-निर्माण के प्रथम चरण में ऐसी ही प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ेगी, उस दिशा में उपयुक्त आधार मौजूद हो और उपयुक्त साधन बनते जायँ तो अनुयायियों की, सहकर्मियों की कमी नहीं रहती।

सैनिकों और सेनापतियों के बीच काम करने और शरीर सज्जा में बहुत थोड़ा-सा ही अन्तर होता है। डाक्टरों से भी ज्यादा सक्रिय कम्पाउंडरों और नर्सों को देखा जा सकता है। इंजीनियर योजना बनाते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारीगर इमारत खड़ी कर देते हैं। न्यायाधीश फैसला करते हैं और उनका निर्देश पालन करने के लिए पुलिस जेल आदि के अनेकों कर्मचारी जुट पड़ते हैं। शासनाध्यक्षों के निर्णय को पूरा करने में विशालकाय सरकारी तंत्र को अपनी सारी शक्ति झोंकनी पड़ती है। कारखाने के मालिक, मैनेजर योजना बनाते हैं और उसे पूरा करने वाले हजारों श्रमिक अपना परिश्रम लगाये रहते हैं।

युगसृजन में रीछ-वानरों की सेना का होना ही पर्याप्त नहीं था। उसमें नल नीलों को अंगद हनुमानों को अग्रिम पंक्ति में खड़ा होना था। महाभारत में लाखों योद्धा लड़े थे, पर उनका नेतृत्व कुछेक सेनापतियों को ही करना पड़ा था। सत्यागृहियों में से प्रत्येक देश भक्त की प्रशंसा की जायेगी उनमें गाँधी, नेहरू, पटेल जैसे उत्कृष्ट नेतृत्व का अभाव रहा होता तो संख्या बल होने पर भी सफलता संदिग्ध रह सकती थी। कथाकार अगणित हैं, पर वाल्मीक व्यास जैसे सृजेता तो उँगलियों पर ही गिने जा सकते है। चिकित्सकों की संख्या ही जन-स्वास्थ्य का संरक्षण करती है, पर उन पद्धतियों के निर्माणकर्त्ता चरक सुश्रुत जैसे मूर्धन्य ही उस परम्परा के कर्णधार रहे हैं। गंगा का लाभ असंख्य जीवितो और मृतकों को मिलता है, पर उसका अवतरण भागीरथी प्रयत्न से ही सम्भव हो सका। लेखक थोड़े होते हैं, प्रकाशक मुद्रक विक्रेता पाठक अगणित। अभिनेता थोड़े हैं और दर्शक अधिक। रेल में संचालक थोड़े होते हैं, पर यात्री अनेकों। संख्या बल के महत्त्व को अमान्य नहीं किया जा सकता। किन्तु अग्रिम पंक्ति में खड़े होने वाले नेतृत्व के बिना संसार में वैसी ही रिक्तता छाने लगेगी जैसी कि आकाश में सूर्य-चन्द्र जैसी प्रतिभाएँ छिन जाने पर हो सकती है। सौर मण्डल में सूर्य का परमाणु में नाभिक का अपना स्थान है। उस मूल सत्ता के बिना बाहरी ढाँच यथावत् खड़ा रहने पर भी वह निर्जीव ढकोसला मात्र रह जायेगा।

जन-मानस का परिष्कार अपने युग की महती आवश्यकता है। धर्मतंत्र से लोक-शिक्षण की विशाल-काय योजना उसी के निमित्त बनाई गई है । यह पराक्रम अपने ढर्रे पर अपने ढंग से निर्धारित योजना के अनुरूप चल रहा है, पर एक तरफ अभी भी जहाँ का तहाँ खड़ा है कि युग नेतृत्व कर सकने वाली प्रतिभाओं का निर्माण वैसे ही है। यह बड़ा काम है। हीरे की अपनी निजी विशिष्टता भी होनी चाहिए और जौहरी की सूझ-बूझ तथा खरादी की कुशलता भी। यह सारा समन्वय ही हीरे को उपयुक्त स्थान प्रदान कर सकता है। पारा अपने आप में रसायन है, पर उसे मकरध्वज जैसी जीवनमूरि बनाने वाली प्रक्रिया का भी मूल्यांकन करना होगा। पारस के सन्दर्भ में कहा जाता है कि उससे छूकर लोहे की शिलाएँ स्वर्ण राशि में बदल जाती हैं। चन्दन की प्रखरता समीपवर्ती औरों को सुवासित करती है। स्वाँति बूदें सीप के कलेवर में मोती उत्पन्न करती हैं। चुम्बक अपने अनेकों सजातीयों को निकट खींचता चला जाता है। इन उदाहरणों से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि प्रतिभाएँ अग्रिम पंक्ति में खड़ी होती हैं और सम्पर्क क्षेत्र को अपनी विशिष्टताओं से प्रभावित करती हैं।

यहाँ यह चर्चा इस सन्दर्भ में की जा रही है कि युग सृजन के महान् अभियान में दूरदर्शी निर्धारण सुसन्तुलित क्रियान्वयन उसके लिए जन-सहयोग, उपयुक्त साधन आदि का जितना महत्व है, लगभग उतना ही महत्त्व उन प्रतिभाओं का है जो लोक नायकों की भूमिका निभाने में अपनी उपयुक्तता सिद्ध कर सकें। अनुपयुक्त नेतृत्व से जितनी हानि होती है उसकी कल्पना मात्र से कलेजा दहलने लगता है। इन दिनों राजनैतिक क्षेत्र के नेतृत्व में जिस अनुपयुक्तता का साम्राज्य है, उसे देखते हुए लगता है कि आजादी पा लेने पर भी प्रगति के दिन अभी दूर हैं। जिन देशों को यह सौभाग्य मिल गया है वे कुछ ही वर्षों में कहीं से कहीं जा पहुँचे और हम बगलें झाँक रहे हैं। यही बात धर्म-क्षेत्र के सम्बन्ध में भी है। उसमें उपयुक्त नेतृत्व कर सकने वाली क्षमताएँ रहीं होतीं तो बुद्ध, गाँधी, समर्थ रामदास, विवेकानन्द, गुरु गोविन्द सिंह जैसे क्रान्तिकारी परिवर्तन प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई न रहती। साहित्य क्षेत्र में रोम्या रोला, टालस्टाय, रस्किन, मार्क्स, रूसो, वर्नाशा जैसे मात्र उद्देश्य के लिए लिखने वाली प्राणवन्त प्रतिभाओं की कमी न पड़ी होती तो लोक-मानस को पतन और पराभव के इस कीचड़ में न सड़ना पड़ता।

नेतृत्व करने के लिए लालायित तो असंख्यों हैं और उसमें मिलने वाले श्रेय को देखकर ललकते भी कितने ही हैं। घुसपैठ के लिए छद्मवेशियों की दुरभि संधियाँ भी देखते ही बनती हैं। इस विडम्बना की जन-साधारण को भी अब धीरे-धीरे जानकरी मिल रही है और उन नेताओं की अभिनेताओं की श्रेणी में गणना होने लगी है। यह आस्था-संकट इतना भयानक है कि अगले दिनों लोक-मानस को प्रभावित करने और नव-सृजन जैसे आदर्शवादी कार्यों के लिए उपयुक्त प्रतिभाओं का वर्ग ही समाप्त हो जायगा। तब जन साधारण को समझाया और सिखाया कुछ भी जाता रहे, किसी आदर्शवाद के लिए त्याग बलिदान के लिए साहसिकता प्रदर्शित करने वालों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का ढूँढ़ सकना कठिन हो जायगा । सार्वजनिक जीवन की इसे अपार क्षति कह सकते हैं ।

नव युग के शुभारम्भ की इस पुण्य बेला में जिन औजार उपकरणों से सृजन प्रक्रिया आरम्भ करनी है, पहिले उन्हीं को देखना और सही करना होगा। जो औजार हाथ में हैं वे सही होने चाहिए। उन्हें बनाते समय भी यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उत्कृष्टता में किसी प्रकार की कमी न पड़ने पाये ।

सफलताएँ चाहे आर्थिक हों अथवा श्रेय सम्मान पाने की । वे अनायास ही किसी को नहीं मिलतीं । उनके लिए योग्यता बढ़ाने, पुरुषार्थ करने, साधन जुटाने और सहयोग पाने के कई आधार खड़े करने होते हैं । इन्हें आतंकवादी तरीकों से नहीं उगाया कमाया जा सकता है । इसके लिए आर्थिक प्रयास एवं अटूट साहस की आवश्यकता होती है । ऐसा हर किसी से नहीं बन पड़ता । उसके लिए सुसंस्कारिता की आवश्यकता है । प्रतिभा इसी को कहते हैं । सफलता के लिए वही मूल्य चुकाना पड़ता है । जो असमर्थ होते हैं, वे हाथ मलते रह जाते हैं ।

प्रगति एवं सुव्यवस्था के लिए साधनों की शिक्षा की अनुकूलता की उतनी आवश्यकता नहीं जितनी उत्कृष्ट दृष्टिकोण एवं सज्जनोचित व्यवहार पर आधारित सुसंस्कारिता की । जिनमें यह विशिष्टताएँ होंगी उन्हीं के लिए देश समाज, धर्म, संस्कृति आदि की कोई ठोस सेवा कर सकना सम्भव होता है ।

उत्कृष्ट व्यक्तित्व के धनी ही ऐसा कुछ कर पाते हैं जिसे चिरकाल तक कृतज्ञता पूर्वक स्मरण किया जाता रहे । समस्याओं के समाधान और सुखद सम्भावनाओं के निर्माण में भारी भरकम व्यक्तित्व ही आगे आते हैं । उन्हीं के पराक्रमों से वातावरण बनता है । हवा चलती और तूफान उठता है । बाढ़ रोकने, बाँध बाँधने, विग्रह को उलटने में उन्हीं की प्रतिभा काम देती है । समुद्र छलाँगने और पर्वत उठाने जैसे महान् कार्य ओछे व्यक्ति नहीं कर सकते उसके लिए बजरंगबली जैसे ओजस्विता, तेजस्विता, मनस्विता होनी चाहिए । यह विभूतियाँ कहीं बाहर से नहीं मिलतीं । हर किसी को भीतर से ही उगानी पड़ती हैं ।

यही है मानव-जीवन का परम सौभाग्य, जिसे आत्म-निर्माण एवं आत्म-परिष्कार कहा जा सकता है । जिसने इस दिशा में जितनी प्रगति की समझना चाहिए कि उसने उतनी ही मात्रा में सुखद वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य का सार सिद्धान्त और अमोघ वरदान प्राप्त कर लिया । यह उपलब्धियाँ कभी-कभी पूर्व संचित संस्कारों की पूँजी के रूप में किसी-किसी को अनायास ही उपलब्ध होतीं, उभर कर ऊपर आती देखी गई हैं, पर यह अपवाद है, क्रम विधान नहीं । इसी प्रकार किन्हीं सत्पात्रों को सत्प्रयोजनों के लिए कोई सिद्ध पुरुष अपना उत्तराधिकार भी हस्तान्तरित कर जाते हैं । यह भी अपवाद है । सामान्य क्रम स्वावलम्बन, स्वउपार्जित ही है । आत्म-साधना ही इसका एक मात्र उपाय है । आत्म-बल ही सबसे बड़ा बल है । धन-बल, बुद्धि-बल, बाहु-बल आदि के सहारे समृद्धि स्तर की सफलताएँ मिलती हैं । आत्म-बल इन सबसे ऊपर है । उसके सहारे व्यक्तित्व बजनदार बनता है और इसी आधार पर मनुष्य की गरिमा का मूल्यांकन होता है ।

प्राचीन काल से यह भारत-भूमि नर रत्नों की खदान रही है । इसकी स्थिति अनायास ही ऐसी नहीं बनी । इसके लिए तत्व-ज्ञानियों को आत्म-निर्माण की गरिमा जन-जन को समझानी पड़ी है और उन्हें उसकी उपलब्धि का मूल्य चुकाने के लिए साधना, पुरुषार्थ करने के लिए सहमत करना पड़ा है । गुरुकुलों, आरण्यकों में यही उपक्रम चलता था । लौह शानिक कारखाने कच्चे लोहे को पकाने और ढालने की विधि व्यवस्था बनाते हैं । फलतः उनमें प्रवेश करने वाला कच्चा लोहा जब पकने, गलने, ढलने की कष्ट साध्य प्रक्रिया को पूरा करके बाहर निकलता है तो उसका स्वरूप बहुमूल्य शस्त्रों एवं उपयोगी उपकरणों, औजारों जैसा महत्त्वपूर्ण बना होता है ।

भवन कारखाने बनाने होते तो, धन के आधार पर मिल सकने वाले उपकरण बनाये जुटाये जा सकते थे । वह सरल था, किन्तु अपना सृजन तो भावात्मक है । उसमें कोटे-कोटि मानवों के चिन्तन में उत्कृष्टता और आचरण में शालीनता का उत्पादन अभिवर्धन किया जाता है । सृजनात्मक सत्प्रवृतियों और सद्भावनाओं को लोक-व्यवहार में सम्मिलित करना है । यह अत्यधिक कठिन काम है । इसके लिए ऐसी प्राणवान प्रतिभाओं की आवश्यकता पड़ेगी जो चरित्र और साहस से परिपूर्ण हों । सेवा और उदारता जिनमें कूट-कूट कर भरी हो ।

ब्रह्मवर्चस् सत्रों का स्वरूप और साधकों का प्रवेश

युग-परिवर्तन की इस पुण्यवेला में मान्यताओं, आकांक्षाओं एवं विधि व्यवस्थाओं का नये सिरे से औचित्य के आधार पर निर्धारण हो रहा है । ऐसी दशा में अध्यात्म तत्त्व-दर्शन एवं प्रयोग विज्ञान का भी पर्यवेक्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्यक है। अवांछनीयताओं को जब हर क्षेत्र में निरस्त कियाजा रहा है तो अध्यात्म के ढाँचे में ही विडम्बनाओं को क्यों घुसे रहने दिया जाये। नव-निर्धारण और नव- निर्माण की सुविस्तृत प्रक्रिया के अन्तर्गत अध्यात्म के दार्शनिक मूल्यों को भी उनके वास्तविक रूप में ही प्रस्तुत करना पड़ेगा। उसके प्रयोग उपचार इस प्रकार के रखने होंगे जिनकी उपयोगिता नकद धर्म की तरह परखी जा सके। चिर अतीत में जिस कल्प वृक्ष का आश्रय लेकर कोटि-कोटि मानवों ने अपने को देवोपम बनाया उसको यदि उसी रूप में फिर अपनाया जाने लगे तो सत्परिणामों की दृष्टि से भी वैसी ही सुसम्पन्नता क्यों प्राप्त न होगी ?

ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में साधना उपासना की विधि-व्यवस्था इसी दृष्टि से बनायी गई है कि वह पाठशाला, व्यायामशाला, उद्योगशाला की तरह अपने सत्परिणाम असंदिग्ध रूप से प्रस्तुत कर सके। उसे आत्म-साधना एवं जीवन-साधना के तत्त्व-दर्शन पर आधारित रखा गया है। आत्म-परिष्कार एवं आत्म-विकास उसका उद्देश्य है। इस दिशा में जिसकी जितनी प्रगति होगी, वह उतनी ही मात्रा में सुसंस्कृत, समर्थ एवं सुयोग्य दृष्टिगोचर होने लगेगा। सर्वविदित है कि व्यक्तित्व की उत्कृष्टता अन्त: क्षेत्र में ही उगती और बढ़ती है। उच्चस्तरीय दृष्टिकोण और समर्थ पुरुषार्थ ही मिलकर मानवी प्रतिभा एवं प्रतिमा को जन्म देते हैं। यह चुम्बकत्व जिसके पास जितनी मात्रा में है वह उसी अनुपात में अपने कार्यों में विशिष्टता का समावेश किये रहता है। उसके व्यवहार में उतनी ही शालीनता भरी रहती है। यही विभूतियाँ हैं जो सामान्य को असामान्य बनाती हैं। प्रगति के उच्च शिखर तक जा पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

अध्यात्म के सिद्धान्त एवं प्रयोगों का वास्तविक रूप क्या है और उसके सहारे सर्वतोन्मुखी प्रगति का लाभ कैसे लिया जा सकता है ? उसी का प्रत्यक्ष प्रयोग ब्रह्मवर्चस् साधना के अन्तर्गत करवाया जा रहा है।

आस्थाओं का परिमार्जन इस उपासना पद्धति का मूलभूत उद्देश्य है। शरीर पर मन का और मन पर अन्त:करण का आधिपत्य रहता है। अन्त:करण में बनी हुई आस्थाएँ और आकांक्षाएँ ही मनुष्य के मस्तिष्क एवं शरीर को अपनी अभिरुचि के अनुरूप घसीटे-घसीटे फिरती हैं। व्यक्तित्व का वास्तविक परिष्कार आस्थाओं की गहराई संजोकर रखने वाले अन्तराल में आवश्यक परिवर्तन करने से ही सम्भव हो सकता है। यह कार्य कठिन है। शरीर को आहार-विहार एवं औषध उपचार से सबल बनाया जा सकता है। मस्तिष्क को स्कूली तथा अनुभव जन्य प्रशिक्षणों के आधार पर सुविज्ञ बनाया जा सकता है। व्यवहार सम्पर्क से कुशलता एवं प्रवीणता उपार्जित की जा सकती है, किन्तु आस्थाओं का ध्रुवकेन्द्र तथा आकांक्षाओं का उद्गम अन्त:करण की जिस गहराई में पाया जाता है उस तक पहुँचने और आवश्यक हलचल उत्पन्न करने के लिए अध्यात्म विज्ञान के प्रयोग ही सफल हो सकते हैं। उच्चस्तरीय व्यक्तित्वों के निर्माण में जितना योगदान ब्रह्म-विद्या के तत्त्व-दर्शन का तथा साधना के प्रयोग उपचार का हो सकता है, उतना और किसी प्रकार का नहीं। नवयुग का नेतृत्व कर सकने वाले प्रतिभाओं का उत्पादन अध्यात्म अवलम्बन के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय में सम्भव नहीं हो सकता।

ऐसे महान् कार्य स्वभावत: समय साध्य होते हैं। विद्वान और पहलवान बनने में इंजीनियर, डॉक्टर होने में कितना समय लग जाता है—कितना श्रमसाधन एवं मनोयोग लगाना पड़ता है—यह सर्वविदित है। आत्म-परिष्कार की महान् उपलब्धि उससे कम नहीं अधिक मूल्य देकर ही खरीदी जा सकती है। प्राचीन काल में छात्रों को गुरुकुलों में तथा प्रौढ़ों को आरण्यकों में चिरकाल तक व्यक्तित्व को विकसित करने वाली शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। आज उसकी आवश्यकता और भी अधिक है। प्राचीन काल में दुष्टता-भ्रष्टता का इतना दौर नहीं था जितना आज है, इसलिए उन दिनों साधकों को मलीनताओं से विरत करने में अधिक श्रम-समय नहीं लगता था। साधना सुसंस्कारों के सम्वर्धन में ही करनी पड़ती थी। आज की स्थिति में दुहरा मोर्चा सम्भालना पड़ता है। दुष्प्रवृतियों से छुड़ाना आज का अतिरिक्त श्रम है। विकास की दिशा में बढ़ सकना इन भव-बन्धकों की लौह-श्रृंखला ढीली होने पर ही सम्भव हो सकता है। ऐसी दशा में आवश्यकता इस बात की है साधना अधिक समय तक अधिक संकल्प पूर्वक की जाय, उसमें गुरुकुलों तथा आरण्यकों से भी अधिक समय तक संलग्न रहने का अवसर निकाला जाय, किन्तु आज की स्थिति में ऐसा नहीं दीखता। हर व्यक्ति अपनी भौतिक समस्याओं और व्यवस्थाओं में इतना अधिक जकड़ा है कि उसका समय तथा श्रम अधिक समय तक उन उच्चस्तरीय प्रयोजनों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लग सकना कठिन ही दीखता है। वस्तुस्थिति को समझते हुए ब्रह्मवर्चस् साधना का न्यूनतम समय एक महीना रखा गया है। वैसे जिन्हें अधिक सुविधा हो और जिनका रोका जाना उपयुक्त भी हो उन्हें अधिक समय तक ठहरने और अधिक लाभ उठाने की भी सुविधा मिल सकती है। साधारणतया एक महीने का ही प्रयोगात्मक शिक्षण क्रम बनाया गया है।

इतनी न्यून अवधि का एक कारण तो यही है कि इन दिनों खर्चीला जीवन, पारिवारिक असहयोग, लिप्साओं में अधिक आकर्षण, अनास्था का वातावरण जैसे अनेक कारणों से लोग अत्यधिक व्यस्त पाये जाते हैं। अब जीवन क्रम सरल नहीं रहा, आन्तरिक दुर्बलताएँ और बाह्य समस्याएँ दोनों मिलकर मनुष्य को इतना विक्षुब्ध किये रहती हैं कि दैनिक समस्याओं से निपटने के अतिरिक्त आत्म-बल सम्पादन जैसे परोक्ष लाभ वाले कार्य में न रुचि रह जाती है और न अवकाश की स्थिति। घर का माया मोह भी इन दिनों पूर्वकाल की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है। साधुओं के फेर में पड़ने से सामान्य सद्गृहस्थ की कैसी दुर्गति होती है इसे सभी जानते हैं। ऐसी दशा में घर परिवार के लिए लोग अपने प्रियजनों को साधना के फेर में पड़ने से रोकें तो वह भी समय को देखते हुए ठीक ही है। ऐसे-ऐसे अनेक कारण हैं जिन्हें देखते हुए इस ब्रह्मवर्चस् जैसे उपयोगी प्रशिक्षण के लिए अधिक समय तक घर से दूर-आजीविका से विमुख रहना कठिन ही समझा जा सकता है। जिसमें आने-जाने, खाने-पीने का खर्च भी बढ़ता है। आर्थिक कठिनाइयाँ भी ऐसे उत्साह को ठंडा करती हैं। यह वैयक्तिक कठिनाइयों का प्रसंग हुआ जिसके कारण अधिक समय ठहर सकना, इच्छुकों, उत्सुकों एवं आस्थावानों के लिए भी कठिन पड़ता है।

दूसरा कारण ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में स्थान तथा उपयुक्त प्रशिक्षण के आवश्यक साधनों को भी उतनी बहुलता नहीं है जिसके आधार पर अधिक संख्या में अधिक साधकों को अधिक दिनों तक ठहराया जाना सम्भव हो सके। मिशन के सदस्यों की युग-निर्माण परिवार के परिजनों की संख्या इतनी अधिक है कि उनमें शतांश को भी प्रशिक्षण की सुविधा देनी हो तो अधिक समय न ठहरने देने की बात ही सोचनी पड़ती है। अधिक समय का पाठ्य क्रम रखा जाय तो उससे हर वर्ष मुट्ठी भर लोग ही लाभान्वित हो सकेगें। अन्य सभी को निराश रहना पड़ेगा। इससे अधिकांश सत्पात्रों को ही इस सुअवसर से वंचित नहीं रहना पड़ेगा वरन् एक और भी बड़ी हानि यह होगी कि युग शिल्पियों की, लोक-नायकों की बड़ी संख्या में जो सामयिक आवश्यकता पड़ रही है उसका पूरा हो सकना भी कठिन हो जायेगा। इन सभी तथ्यों पर विचार करते हुए यह निर्धारण करना पड़ता है कि प्रशिक्षण क्रम एक महीने का ही रखा जाय। इस छोटी-सी अवधि का इस प्रकार व्यस्त कार्यक्रम बनाया जाये, इसमें सार रूप से वह सब कुछ सिखाया जा सके जिसकी सृजन शिल्पियों को अपने व्यक्तित्वों को परिष्कृत करने तथा नव-निर्माण का कौशल उपार्जित करने की प्रारम्भिक आवश्यकता पूरी करने का अवसर मिल सके। इतने पर भी यह कठोर प्रतिबंध नहीं है कि इस महीने से अधिक समय के लिए किसी को ठहरने ही नहीं दिया जायेगा। जिनकी मनःस्थिति, परिस्थिति एवं उपयुक्तता को देखते हुए अधिक दिन ठहराना आवश्यक होगा उनके लिए वैसी विशेष व्यवस्था भी बना दी जायेगी।

प्रशिक्षण तीन भागों में विभक्त किया गया है : (१) साधनात्मक तपचर्यापरक (२) दार्शनिक आत्म-विज्ञान परक (३) सृजनात्मक-लोक साधना से सम्बन्धित। साधकों की दिनचर्या का निर्धारण इस प्रकार होगा जिसमें शरीर निर्वाह की शौच, स्नान, भोजन, विश्राम आदि के नित्य कर्मों से बना हुआ सारा समय इन निर्धारित प्रयोजनों में ही लगा रहे। मटरगस्ती, आवारागर्दी, मनोरंजन इधर-उधर भटकने, पर्यटन-भ्रमण करने, आलस-प्रमाद में समय गँवाने की छूट किसी को भी नहीं मिलेगी। समय का एक-एक क्षण व्यस्त रखा जायेगा। आशा है कि आलसी प्रमादी, अवज्ञाकारी लोग इस व्यस्त साधना क्रम में आने का साहस ही न करेगें। यदि कुछ घुस पड़े तो उन्हें अनुशासन हीनता फैलाने और गलत उदाहरण बनाने की सुविधा न मिल सकेगी। उन्हें बीच में से ही वापिस जाने के लिए कह दिया जायेगा। इससे कम कड़ाई अपनाये बिना साधना की सार्थकता सम्भव ही नहीं हो सकेगी। इस प्रकार समय का अपव्यय रोक देने पर शिक्षार्थी बँधे हुए समय का मुस्तैदी के साथ परिपालन करने पर निर्धारित तीनों विषयों में उतनी प्रगति कर सकेंगे जितनी कि इस प्रशिक्षण में सम्मिलित होने वालों से आशा की गई है।

निश्चय ही प्रशिक्षण क्रम अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उसमें साधक के व्यक्तित्व का विकास और युग-साधना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का उपयुक्त कौशल की दोनों ही महान् उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं जिनसे शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों ही धन्य बनते हैं। युग की सबसे बड़ी माँग नव-सृजन के उपयुक्त प्रतिभाओं की आवश्यकता की पूर्ति की व्यवस्था बनना, इन सत्रों की सफलता पर निर्भर है। महत्व को समझा जाये। जागृत इसकी उपयोगिता समझें भी और निजी कामों की क्षति को सहन करते हुए भी इन सत्रों में आतुरता पूर्वक सम्मिलित होने का प्रयत्न करें। संख्या की दृष्टि से आवेदकों की अत्यधिक बहुलता रहना निश्चित है। ऐसी दशा में स्वीकृति देने में क्या दृष्टिकोण अपनाया जाय ? क्या नीति रखी जाय ? इसका निर्धारण होना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में यह नियम बनाया गया है कि जुलाई से लेकर जून तक के बारह महीनों में हर महीने ५० साधक लिये जायें। पूरे वर्ष के लिए छै सौ शिक्षार्थियों के नाम पंजिकृत कर लिए जायें। उनके स्थान सुरक्षित कर दिए जायें, साथ ही कुछ नाम प्रतीक्षा सूची में भी सम्मिलित रखे जायें। उन्हें उस स्थिति में स्थान मिल सकेगा जबकि कोई पंजीकृत शिक्षार्थी का सकने की असमर्थता व्यक्त करेगा। ऐसी सूचनाएँ न्यूनतम एक महीने पहले देने का नियम बनाया गया है। प्रतीक्षा सूची वालों को इस प्रकार स्थान खाली होने पर वह सीट हस्तान्तरित कर दी जायेगी।

प्रथम वर्ष के छै सौ साधकों को पंजीकृत करने के लिए की जाने वाली छँटनी में यह ध्यान रखा जायेगा कि वे वरिष्ठ, कनिष्ठ एवं समयदानी परिव्राजकों में से छाँटे जायें क्योंकि युग परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण योगदान इसी स्तर के परिजनों का रहेगा। जो मात्र अपने ही लाभ की बात सोचते हैं, जिन्हें स्वर्ग, मुक्ति:, सिद्धि, शान्ति आदि में ही रुचि है, जिनके सांसारिक और आध्यात्मिक प्रयास मात्र व्यक्तिगत स्वार्थपरता की परिधि में ही सीमाबद्ध हैं उन्हें पीछे कभी आने वालों की फाइल में सुरक्षित रखा जायेगा। युग सृजन में उदार परमार्थ परायणता की ही आवश्यैकता है। सेठ भी संत की व्यक्तिवादी मनोवृति अपनाकर कोई मनुष्य समर्थ सम्पन्न बन सकता है, पर उसका यह वैभव ईश्वर, धर्म, समाज, संस्कृति की दृष्टि से कानी-कौड़ी जैसी मूल्य का भी नहीं है। आत्म-साधना में आत्म-परिष्कार की तपश्चर्या और उदार लोक-साधना में सघन आस्था होनी चाहिए। यह तथ्य जिनमें सन्तोष जनक मात्रा में पाये जायेगें उन्हें प्राथमिकता दी जायेगी। प्रथम वर्ष के लिए यही नीति रहेगी। उसी कसौटी पर कसकर ब्रह्मवर्चस् सत्रों में हर महीने पचास की संख्या में आने वाले कुल मिलकर छै सौ शिक्षार्थियों का स्थान सुरक्षित किया जायेगा।

गायत्री शक्ति-पीठ का स्वरूप और उद्देश्य

गायत्री शक्ति-पीठ यों मोटी दृष्टि से अन्य देवालयों की तरह २४ प्रतिमाओं के भव्य भवन में अवस्थित एक मन्दिर, आश्रम, तीर्थ जैसा प्रतीत होता है। उसकी प्रत्यक्ष नवीनताओं में इतनी हीं बात है कि २४ गायत्री कहीं सुनी तो जाती थीं, पर उनका स्वरूप कहीं नियत निर्धारित नहीं था। इस देवालय में उन सभी प्रतिमाओं की झाँकी एक ही स्थान पर मिल सकती है।

शक्ति-साधना सनातन काल से चली आ रही है। आदि शक्ति उसका एक समग्र दर्शन है। गायत्री, उपासना की त्रिकाल संध्या में आदि शक्ति के तीन—ब्राह्मी, वैष्णवी शाम्भवी स्वरूपों का वर्णन है। यह वस्तुत: महाशक्ति की नवीन धाराओं की प्रतीक हैं। इन्हें क्रमश: शक्ति की निर्माणपरक, पोषणपरक एवं नियन्त्रणपरक शक्तिधाराएँ कहा जाता है। सप्त मातृकाएँ, षोडश मातृकाएँ, नवदुर्गाएँ चौसठ योगिनियाँ आदि इन्हीं धाराओं के अंतर्गत आती हैं। शक्ति के इन सौम्य, प्रेरक एवं रौद्र सभी स्वरूपों की आराधना 'शक्ति-साधना' के अन्तर्गत आती रही है।

मध्य युग के भ्रान्तिकाल में अन्य क्षेत्रों की तरह शक्ति-साधना के साथ भी अनेक भ्रान्तियाँ जुड़ गयीं। शक्ति के नाम पर केवल शाम्भवी, तांत्रिक साधनाओं का ही नाम लिया जाने लगा। कालांतर में उसके अन्तर्गत भी केवल मारण, सम्मोहन, उच्चाटन, वशीकरण जैसे दुष्टता भरे प्रयोगों तक ही उसकी सीमा रह गयी। शक्ति-साधना में से मातृ-शक्ति-निर्माणकारी स्वरूप एकदम विस्मृत जैसा हो गया।

इस भ्रान्ति का प्रभाव केवल उपासना क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा। वह जन-जीवन में भी फैला। 'शक्ति' का प्रयोग संरचना में हो सकता है। यह कल्पना ही जैसे समाप्त हो गयी, उसका दमन एवं विध्वंसकारी स्वरूप ही सामने रह गया। शक्ति सम्पन्न होने का प्रमाण दूसरों के अधिकारों का हनन और अधिग्रहण के रूप में ही दिया जाने लगा। शक्ति के इस एकांगी प्रयोग के भारी दुष्परिणाम अपने इस देश एवं समाज को भुगतने पड़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज शक्ति-साधना का नाम लेते ही दुर्गा, काली, चण्डी के स्वरूप ही स्मरण में आते हैं। इन्हीं के देवालयों को 'शक्ति-पीठ' के नाम से जाना जाने लगा। शास्त्रों में वर्णित शक्ति-पीठों के अतिरिक्त भी पिछली कुछ शताब्दियों में बने अनेक दुर्गा-मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी उसी रूप में बढ़ी । इस एक पक्षीय मान्यता के अनेक कारण हैं।

मध्ययुग में देश छोटे-छोटे रजवाड़ों में बँट गया। उन्हें संगठित रखने के अश्वमेध यज्ञ जैसे अनुष्ठान, तेजस्वी व्यक्तित्वों के अभाव में असम्भव जैसे हो गये। कथित राजा-महाराज लोगों पर स्वार्थ परक दृष्टिकोण से हावी हो गये जिसके फलस्वरूप विदेशी आक्रमणों के हाथ एक-एक करके उनका पराभव होने लगा। उससे बचने का एकमात्र मार्ग था संगठन। उन्हें संगठन का महत्त्व समझाने के लिए विचारकों ने उनका ध्यान 'संघ शक्ति' की प्रतीक देवी 'दुर्गा' की ओर आकर्षित किया। 'दुर्गा' की आराधना को शक्ति-साधना के रूप में अनेक राज्यों में इसी दृष्टि से प्रधानता दी गयी। उसकी आराधना से युद्ध में विजय मिलने की आशाएँ पैदा की गयीं तथा लोगों के मन में दुर्गा के प्रति आस्थाएँ जमाई गईं।

यह आस्थाएँ भी कालान्तर में विकृत हुईं और 'दुर्गा' अपने काली एवं चण्डी स्वरूपों के साथ केवल युद्ध की देवी बनकर रह गयी। दूसरों की भूमि और धन एवं जन-शक्ति को हड़पने के लिए युद्धलोलुप क्रूर व्यक्तियों ने उस आराधना को अपनाया और उसे विकृतियों से भर दिया। जो साधना संगठन की दृष्टि एकता की भावना बढ़ाने के लिए बतलायी गयी थी उसे विग्रह और विभाजन के लिए प्रयुक्त की जाने लगा। जिस 'दुर्गा' को असुर तत्वों की संहारकर्त्री बतलाया गया था, उसी की जय बोलकर आसुरी तत्व अपना नंगा नाच नाचने लगे।

भ्रांतियों के इन घटाटोप बादलों में शक्ति के मातृका-अम्बिका जैसे सौम्य स्वरूप लुप्त हो गये। अन्नपूर्णा, भुवनेश्वरी, कुमारी, शांकभैरी आदि साम्य श्रद्धापरक सम्बोधन एवं स्वरूप भुला दिए गये। भैरवी, मातंगी, काली, छिन्नमस्ता जैसे विकराल स्वरूप ही रह गये, वैसी ही पूजा पद्धतियाँ चल पड़ीं। उनमें माँस मन्दिरा जैसे अवाँछनीय पदार्थों का प्रयोग चल पड़ा। माँ को उसके बच्चों की हत्या करके प्रसन्न करने की दुष्टता भरी मान्यता, बलि-प्रथा के रूप में फैल गयी। स्वार्थी तत्व उसका उपयोग अपनी मनमानी से करने लगे। जन-साधारण का समर्थन पाने के लिए अज्ञान पर आधारित अनेक भय एवं आतंकों का प्रचार किया गया। इन्हीं सब कारणों से शक्ति-साधना एकांगी एवं विकृत होती गयी, उसकी प्रतिष्ठा पर प्रश्न वाचक चिह्न लगते गये।

यह सभी भ्रांतियाँ न रहने योग्य हैं और न इन्हें रहने देना चाहिए। समय की माँग है कि शक्ति की प्रतिष्ठा सही अर्थों में हो। उसके लिए 'शक्ति' साधना के साथ लिपटी अज्ञान जनित भ्रान्तियों का निवारण तथा उसके सनातन, परमकल्याणकारी स्वरूप की स्थापना करना अनिवार्य है। उपासना क्षेत्र से लेकर व्यवहार क्षेत्र तक में 'शक्ति' तत्व की सर्वांगपूर्ण सही प्रतिष्ठा की जा सके तो अगणित विभीषिकाओं को निरस्त करते हुए प्रगति एवं समृद्धि के अगणित नये-नये मार्ग खोले जा सकते हैं। कहा जा चुका है कि परम्परा में 'शक्ति' शब्द मात्र दुर्गा के लिए प्रयुक्त नहीं होता था। उसकी परिधि में सरस्वती, और लक्ष्मी भी आती थी। ब्राह्मी-वैष्णवी, और शाम्भवी शक्तियों का त्रिविधि समुच्चय 'गायंत्री' में माना जाता था, यह तीनों ही उसके अन्तर्गत आती थीं। इसलिए उसे 'त्रिपदा' कहा जाता था। ह्रीं, श्रीं क्लीं, तीनों ही उसके बीज मन्त्र थे। भू: भुव: स्व: की व्याहृतियों में तो यही भाव है। गायत्री ही त्रिवेणी है। उसके प्रवाह में मात्र दुर्गा नहीं वरन् सरस्वती और लक्ष्मी भी सम्मिलित होती हैं। शक्ति का समय स्वरूप यही है।

गायत्री शक्ति-पीठ की स्थापना के पीछे आर्य परम्पराओं से जनसाधारण को परिचित कराना भी उद्देश्य है। शक्ति एकांगी नहीं है। उसका प्रयोजन ध्वंस ही नहीं, सृजन भी है। चण्डी ध्वंस की देवी है। आवश्यकतानुसार उसका आश्रय भी लिया जा सकता है। क्योंकि सृजन की दो शक्ति-धाराओं को भुलाया नहीं जा सकता। ज्ञान भी शक्ति है और समृद्धि भी अभीष्ट है। शस्त्र-बल की भी उपयोगिता है, पर उसे अति भारी महत्त्व नहीं मिलना चाहिए। एकांगी अत्युत्साह उपयोगी कम और अनुपयोगी अधिक सिद्ध होता है। अध्यात्म क्षेत्र में सत्, चित, आनन्द की, सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की, भक्ति, ज्ञान और कर्म की, ब्रह्मा, विष्णु, महेश की, सरस्वती, लक्ष्मी, काली के समन्वय का ही प्रतिपादन है। ईश्वर जीव, प्रकृति का सत्, रज, तम का कारण सूक्ष्म और स्थूल का समुच्चय त्रिवर्ग है। यही तीन लोक हैं जिन्हें सुचारु रूप से सम्पादित करने पर समग्र जीवन की साधना बन पड़ती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। त्रिवेणी संगम को तीर्थराज कहा गया है। गायत्री ही समग्र शक्ति है। ज्ञान और विज्ञान के दोनों ही क्षेत्रों पर उसका आधिपत्य है। दक्षिणमार्गी और वाममार्गी साधना क्रम का आगम और निगम तत्त्वज्ञान का समन्वय गायत्री में ही होता है। अन्य समस्त मन्त्रों को 'मन्त्र' ही कहते हैं, किन्तु गायत्री महामन्त्र है। उसकी परिधि में अन्यान्य सभी मन्त्रों की साधना सम्मिलित है।

गायत्री शक्ति-पीठ के रूप में युग तीर्थ की स्थापना कराने के पीछे सर्वसाधारण को शास्त्र परम्परा के तत्त्वज्ञान से परिचित कराना है। शक्ति शब्द कितना व्यापक है और उसकी परिभाषा में कितना बड़ा क्षेत्र आता है, इस यथार्थता की जानकारी हर धर्म जिज्ञासु को होनी ही चाहिए। इस प्रयोजन के लिए एक समर्थ गायत्री तीर्थ की स्थापना आवश्यक थी। अनेकानेक धामों के होते हुए भी यह अभाव बुरी तरह खटकता था कि भारतीय धर्म और संस्कृति के बीज-तत्व गायत्री का कोई धाम, कोई तीर्थ ही न हो। जहाँ-तहाँ छुट-पुट गायत्री मन्दिर तो अनेकों हैं पर ऐसा केन्द्र, स्थान कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता जहाँ गायत्री विद्या की उसके समग्र स्वरूपों की समुचित जानकारी किसी एक ही स्थान पर उपलब्ध हो सके।

गायत्री शक्ति-पीठ में उसके त्रिपदा स्वरूप की स्थापना है। सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा की तीनों ही धाराओं के अन्तर्गत जिन विशिष्ठ देव-शक्तियों की गणना होती है उनमें २४ ही प्रमुख हैं। गायत्री महामन्त्र में आठ-आठ अक्षरों के तीन चरण हैं। इन आठ-आठ अक्षरों में क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी और काली का समावेश है। आत्मा, मन और शरीर के तीनों वर्गों की तीन विशिष्टताएँ है—भावना, विचरणा और समर्थता। इन तीनों की समन्वित प्रगति ही समग्र प्रगति है। इन तीनों को सिर धड़ और पैरों की तरह परस्पर अविछिन्न रूप में समन्वित समझा जा सकता है। उनकी उपयोगिता आवश्यकता उतनी है जितनी जीवन निर्वाह के लिए अन्न-जल और वायु की। इनमें से एक को सब कुछ मान बैठने और शेष दो की उपेक्षा कर देने से उस संतुलन का परिणाम हानिकारक ही होता है। रक्त, मांस और अस्थि के त्रिविधि ढाँचे पर काय कलेवर टिका है। आकाश-पाताल और धरती को तीन लोक कहते हैं। इनकी समग्र संरचना से ही सारा प्रपंच चल रहा है। जलचर, थलचर, नभचर के रूप में जीवपरिवार बिखरा पड़ा है। तीनों के समन्वय से चेतना की समानता दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति के पदार्थ ठोस, द्रव और वाष्प के रूप में परिभ्रमण करते रहते हैं। सर्वत्र त्रिधाराओं का ही समोवश है। इनमें से किसी एक को सब कुछ न मान बैठना, तीनों ही के समन्वय का महत्त्व समझना यही है गायत्री का तत्व ज्ञान। इसी त्रिविधि उपासना को अपनाने से अन्तःकरण को मुक्ति का, मनः संस्थान को स्वर्ग का और शरीर को ऋद्धि-सिद्धि का आनन्द मिलता है। इसी अध्यात्म त्रिवर्ग को दक्षिण मार्गी त्रिपदा और वाममार्गी त्रिपुरा कहते हैं। इसकी समन्वित साधना के तीन प्रतिफल आध्यात्मवेत्ताओं ने बताए हैं। आत्मा को अमृत देकर अमरता का अनुभव करने से मन को कल्पवृक्ष की छाया में रहने वाली आप्त काम की, शरीर को पारस के अधिष्ठाता जैसी सुसम्पन्न स्थिति में रखने की स्थिति उत्पन्न करना सच्ची गायत्री साधना से ही सम्भव हो सकता है। यथार्थता का अन्वेषण, गम्भीरता का तत्व विवेचन करते वाले जिज्ञासु को इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि समन्वित जीवन साधना ही श्रेयस्कर है और उसका समग्र स्वरूप गायत्री तंत्र ज्ञान एवं साधना विज्ञान में सन्निहित है। एकांगी अतिवाद को छोड़कर समग्रता की बुद्धिमत्ता अपनाने में ही कल्याण है। इसीलिए गायत्री को कल्याणी और कामधेनु कहा गया है।

गायत्री शक्ति-पीठ का प्रत्यक्ष स्वरूप देने के लिए पहुँचने वालों को भारतीय तत्त्व-दर्शन और साधना-विज्ञान का सर्वांगीण स्वरूप समझने का अवसर मिल सके, उस जानकारी के आधार पर जन-साधारण को सर्वतोमुखी प्रगति का मार्ग-दर्शन मिल सके, यही है प्रधान उद्देश्य इस गायत्री तीर्थ की स्थापना का। प्रयत्न यह किया जायगा कि इस पुण्य धाम में पहुँचने वाले मात्र देवदर्शन की तरफ पीठ कर ही वापिस न लौट जाये वरन् कुछ ऐसी उपयोगी प्रेरणाप्रद जानकारियाँ साथ लेकर वापिस लौटें जिनके आधार पर समुन्नत जीवन-क्रम अपनाने का द्वार खुल सके।

रजत जयन्ती वर्ष में २४ गायत्री तीर्थों की स्थापना

रजत जयन्ती वर्ष ने प्रज्ञावतार की प्रखरता सिद्ध कर दी है। बीजारोपण समयानुसार अंकुरित होता और फलता-फूलता है। परिपूर्ण वृक्ष न बनने तक उसकी कीड़ों-मकोड़ों, पक्षियों और पशुओं से रक्षा करनी पड़ती है। अन्यथा असमय ही पौध चर जाने का संकट बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है । पीछे तो वह जीव-जन्तु और पशु-पक्षी तक उस विशाल वृक्ष में घौसले बनाते और आश्रय पाते हैं। प्रज्ञावतार जब तक शिशु था, तब तक अनास्थावादी तत्वों से लेकर दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादियों तक हर कोई उसे उदरस्थ कर जाने की ताक में था, किन्तु यत्नपूर्वक सुरक्षा देने अभिसिंचन और खाद पानी देते रहने से आज यह स्थिति हो गई है कि बोधि-वृक्ष कल्प-वृक्ष की तरह दीनों का उद्धार और पतितों के मार्ग-दर्शन के साथ-साथ असुरता के महाराक्षस से निबटने में पूर्ण समर्थ है । यह प्रौढ़ता अब परिपक्व अवस्था तक विकसित होकर न केवल इस देश अपितु समूचे विश्व को शीलता प्रदान करने की स्थिति में है ।

समय की विकृतियाँ नि:सन्देह भयावह हैं । प्रत्यक्ष प्रवाह जिस दिशा में चल रहा है उसे देखते हुए सर्वनाश की सम्भावना स्पष्ट है । व्यक्ति और समाज को जिन विकृतियों ने ग्रस कर रखा है, उन्हें गंज-ग्राह की पौराणिक गाथा के समतुल्य ही समझा जा सकता है। इन परिस्थितियों में दैवी शक्ति की सहायता ही उद्धार कर सकती है। गजेन्द्र मोक्ष के पाठक जानते हैं कि महाविनाश के पूर्व ही धर्म की संरक्षक सत्ता ने अपना उत्तरदायित्व पूरा कर दिया था । असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने के लिए नियन्ता अपने घोषित आश्वासन के अनुसार स्वयं वचनबद्ध है । उसने समय-समय पर उसे पूरा भी किया है । 'यदा यदाहि धर्मस्य ——' का वचन सृष्टि के आदि से लेकर अद्यावधि समय पर पूरा भी होता रहा है । आज की विषम बेला में नियन्ता का हस्तक्षेप अनिवार्य हो गया है । सो हो भी रहा है । समस्या आस्था संकट की है । सम्पदा की नहीं, विचारणा की कमी पड़ रही है। साधनों की नहीं सद्भावों का अभाव है। अन्तकणों में घुसी हुई निकृष्टता ही सुरसा की तरह सर्वग्रासी बनती जा रही है । उसका निराकरण प्रज्ञा की उदायमान प्रखरता ही कर सकती है । समाजशास्त्री इसे विचारक्रान्ति कहते हैं । धार्मिक क्षेत्र में इसका नाम 'ज्ञान यज्ञ' है । तत्वदर्शी इसी पुण्य प्रवाह को 'प्रज्ञावतार' कहते हैं । अपने समय में भगवान का अवतार इसी रूप में होना चाहिए था, सो ही हो भी रहा है ।

प्रज्ञा शब्द, ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही संक्षिप्त नाम है । ऋतम्भरा प्रज्ञा को तत्वदर्शी ब्रह्म विद्या कहते और उसकी आराधना करते रहे हैं । साधकों के लिए यही गायत्री है । उसका अस्तित्व और सम्मान तो अनादिकाल से रहा है और अनन्त काल तक रहेगा, पर समय की आवश्यकता के अनुरूप उसे विश्व-चेतना का अभिनव उभार बनकर अपनी भूमिका सम्पन्न करनी पड़ रही है। प्रस्तुत विकृतियों का अनेकानेक नाम रूप के मूल में आस्था संकट ही एक मात्र कारण है । उसका निवारण ऋतम्भरा के विवेक युक्त शालीनता के उभार से ही सम्भव हो सकता है । इस उभार को सूक्ष्म जगत के अन्तराल में उभरते हुए कोई भी दिव्य चक्षु सम्पन्न व्यक्ति अत्यन्त सरलता पूर्वक देख सकता है । उसने जागृत आत्माओं को सर्वप्रथम झकझोरा है। अगले दिनों उसका आलोक जन-जन को अनुप्राणित करता दृष्टिगोचर होगा । युग-परिवर्तन के लिए इससे अधिक और कुछ चाहिए भी नहीं । साथ ही यह भी स्पष्ट है कि दुर्मति के कारण उत्पन्न हुई दुर्गति के निराकरण का इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है ।

पौराणिक प्रतिपादनों में अपने समय के अवतार का नामकरण निष्कलंक रखा गया है। निष्कलंक अर्थात् कलंक रहित। कलंक रहित व्यक्ति नहीं हो सकता। मानवी सत्ता जिस मिट्टी से गढ़ी गई है; उसमें कहीं न कहीं खोट रहता ही है । 'निष्कलंक' सत्ता एक ही है वह है— 'प्रज्ञा' । इस कसौटी पर कसकर सत्य का निरूपण होता है । सत्य का स्थान कितना ही ऊँचा क्यों न हो उसे समझना और पकड़ना प्रज्ञा की सहायता के बिना सम्भव ही नहीं हो सकता । प्रज्ञा ही निष्कलंक है, ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही दूसरा नाम ब्रह्म-विद्या है । चेतना जगत की यही आद्य-शक्ति है । इसी को सामयिक गति-विधियों के अनुरूप युग-शक्ति नाम दिया गया है । प्रज्ञावतार को ही निष्कलंक कह सकते हैं । सामयिक सन्तुलन बनाने के लिए विकृतियों का निराकरण और सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन आवश्यक है । यह कार्य यों जागृत आत्माओं के प्रबल पुरुषार्थ द्वारा ही सम्पन्न होता दिखाई देगा, किन्तु तथ्य और सत्य यह भी है कि अदृश्य जगत की भाव-प्रेरणा ही उन्हें आन्दोलित करेगी और मन:स्थिति एवं परिस्थिति के बन्धनों से मुक्ति दिलाने में मानवी नहीं दैवी प्रयत्न ही सफल हो सकते हैं। मनुष्य अपने भौतिक पुरुषार्थ से सुसम्पन्न बन सकता है, पर सुसंस्कृत बनने के लिए ऐसी प्रबल अन्त:प्रेरणा चाहिए जो लोक प्रवाह को चीर कर उल्टी दिशा में बहने की साहसिकता से भरी-पूरी हो। उच्चस्तरीय उमंगें नि:सन्देह दैवी-प्रेरणा से प्रेरित होती हैं। ईश्वरीय अनुग्रह का एक ही चिन्ह है, वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है—उत्कृष्टता को अपनाने के लिए प्रचण्ड साहस। प्रज्ञावतार की अदृश्य भूमिका यही है। बाजीगर की तरह उसी के द्वारा जागृत आत्माओं को कठपुतली की तरह नचाया जायेगा और युग-सृजन की अग्रिम पंक्ति में खड़े होने के लिए विवश किया जायगा।

नवयुग में समस्त विश्व को एकता, समता और शुचिता की त्रिवेणी में स्नान करना होगा। व्यक्ति और समाज को सुस्कृंत बनना होगा और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की रीति-नीति अपनाकर चलना होगा। इसके लिए सैद्धान्तिक और व्यावहारिक सभी तथ्य बीज रूप से गायत्री महामन्त्र में मौजूद हैं। उसमें दार्शनिक प्रेरणात्मक और सामर्थ्य परक वे सभी क्षमताएँ विद्यमान हैं जिनके आधार पर नवयुग का सृजन होने जा रहा है। गायत्री का तत्वज्ञान अगले दिनों पूजा, उपासना की परिधि तक सीमित नहीं रहेगा। उसे सतयुग के आधारभूत आलोक की भूमिका निभाते हुए देखा जायगा। इन्हीं तथ्यों के आधार पर आद्य-शक्ति गायत्री की सामयिक भूमिका को 'युग-शक्ति' कहा गया है। उसका संचरण 'विश्व माता' के रूप में होगा। जन-जन पर पढ़ने वाली उसकी छाया को 'देव माता' कहा जायगा। देव माता के यही रूप अगले दिनों दृष्टिगोचर होंगे। उसे किसी सम्प्रदाय विशेष की बपौती नहीं माना जायगा। जाति, लिंग और क्षेत्र की परिधि से आगे बढ़कर नवीन विश्व की संरचना सन्दर्भ में अपनी अनौखी भूमिका सम्पन्न करती हुई वह दृष्टिगोचर होगी।

रजत जयन्ती वर्ष के गायत्री महापुरश्चरण अभियान को प्रज्ञावतार का प्रभातकालीन वन्दन कहना चाहिए। उसने कोटि-कोटि जागृत आत्माओं में उच्चस्तरीय चेतना उत्पन्न की है और साहसिक प्रेरणा दी है। लक्ष लक्ष्य व्यक्तियों द्वारा कोटि-कोटि जप और भजन करने से अदृश्य वातावरण में सत्प्रवृत्तियों का प्रचण्ड प्रवाह उत्पन्न हुआ है। इस धर्मानुष्ठान में सम्मिलित होने वाले याजकों ने अपने सम्पर्क क्षेत्र में सदाशयता का नये सिरे से प्रवाह उत्पन्न किया है। यज्ञ आयोजनों से सृजनात्मक गति विधियों ने सत्परम्पराओं का प्रचलन किया है। उनके कारण धर्म-चेतना का उल्लास जन-जन के मन में उभरा है। इन उपलब्धियों का प्रत्यक्ष मूल्यांकन करना तो कठिन है, पर दूरदर्शियों की दिव्य-दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि जो हो रहा है उसमें उज्ज्वल भविष्य की संरचना कर सकने वाले तत्व प्रचुर परिमाण में विद्यमान हैं।

प्रव्रज्या अभियान रजत जयन्ती वर्ष की विशिष्ट देन है। पूरा समय देने वाले वरिष्ठ, सीमित थोड़ा समय देने वाले कनिष्ठ और दो घण्टा नित्य नव-सृजन के लिए लगाने वाले समयदानी जिस तेजी से पंजीकृत हो रहे हैं, उसे देखते हुए प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध द्वारा संचालित धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए जिस प्रकार श्रमण संस्कृति का आवेग आया था और लाखों चीवरधारी परिव्राजक विश्व भर में बिखरे, बरसे थे, प्राय: वैसा ही कुछ इन दिनों भी होने जा रहा है। जागृत आत्माओं का भाव भरा समयदान अगले दिनों सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों को किस प्रकार, किस कदर गगनचुम्बी बनाने जा रहा है; इस सम्भावना की कल्पना भर से हर्षातिरेक से रोमाञ्च होने लगते हैं। प्रव्रज्या अभियान की स्थापना और गतिशीलता को रजत जयन्ती वर्ष की असाधारण उपलब्धि कहा जा सकता है।

इस महापुरश्चरण में सम्मिलित हुए लाखों साधकों को टोली गठन के सूत्र में बाँधकर उन्हें आत्म-निर्माण, परिवार-निर्माण और समाज-निर्माण के रचनात्मक प्रयोजनों में लगाया गया है, इसे देव-संगठन का नव-जीवन प्राण संचार कह सकते हैं। यह प्रज्ञावतार का देव माता स्वरूप है। तेंतीस कोटि देवताओं का इसी भारत-भूमि पर पुन: प्रकट होना और अपने महान् कर्तृत्व से इस धरती को स्वर्गादपि गरीयसी बना देना, अभी भी तो एक सुखद स्वप्न है, पर उसकी पूरी और पक्की सम्भावना इस आधार पर दृष्टिगोचर होती है कि देव-परिवार की संख्या और उनकी उत्कृष्ट सक्रियता दिन दूनी और रात चौगुनी गति से बढ़ती और गगनचुम्बी बनती चली जा रही है।

रजत जयन्ती वर्ष में सर्वसाधारण के लिए नये सिरे से उसके सूत्र संचालक ने लिखा है—यह लेखन जन-जन को प्रज्ञावतार का स्वरूप प्रयोग और सन्देश से परिचित कराने की दृष्टि से लिखा गया है। यों अब तक भी गायत्री साहित्य लिखा गया है और अब उसके तत्त्व-ज्ञान की विशिष्ट जानकारियाँ देने के लिए युग-शक्ति गायत्री सात भाषाओं में प्रकाशित हो रही है, पर यह नूतन साहित्य विशिष्ट उद्देश्य के लिए लिखा गया है। इस तत्व-दर्शन से अपरिचित लोगों को भी विश्व के नव-निर्माण की आधारशिला का स्वरूप समझने का अवसर मिल सके, यह इस नवीन लेखन का विशिष्ट उद्देश्य है। इसका अनुवाद भारत की प्राय: सभी भाषाओं में प्रकाशित होगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और अगले ही दिनों उसे गीता एवं बाइबिल की तरह संसार भर की ७०० भाषाओं में अनूदित प्रकाशित, प्रसारित करने का योजनाबद्ध प्रयास किया जायगा। जो तत्व-दर्शन विश्व के नव-निर्माण की प्रधान भूमिका सम्पन्न करने जा रहा है उसकी पूर्ण जानकारी भी मानव-समाज को करायी जाना आवश्यक है। स्पष्ट है कि गायत्री को जाति, लिंग क्षेत्र को बपौती नहीं रहने दिया जायगा, वह विश्व संस्कृति का मेरुदण्ड ही थी और भविष्य में भी उसका वही स्वरूप प्रखर होगा।

रजत जयन्ती वर्ष विगत गायत्री जयन्ती से आरम्भ हुआ था। अब ५ जून को उसका एक वर्ष पूरा हो जायगा। इस अवधि में महापुरश्चरण योजना की व्यापकता, देव-परिवार की अभिनव संगठना प्रव्रज्या अभियान की प्रौढ़ता ऐसे काम हैं जो सर्वविदित है। ईसाई साहित्य की तरह अत्यन्त सस्ता, अतीव से सुन्दर और हर भाषा में उपलब्ध गायत्री साहित्य अगले ही दिनों भारत के कोने-कोने में, विश्व के हर क्षेत्र में जा पहुँचेगा। यह प्रयत्न गर्भ में पक रहा है अब नौ दस महीने पेट में रहने के उपरान्त यह भ्रूण पक गया, अब उसका प्रसव होने ही वाला है। सम्भवत: अगले तीन महीने पार करके आने वाले गायत्री जयन्ती पर यह सर्वांग सुन्दर गायत्री साहित्य भारत के विश्व के कोने-कोने में जन-जन को उपलब्ध होने लगेगा।

गायत्री महापुरश्चरण के अन्तर्गत अप्रैल, मई, जून में अगणित आयोजन हो रहे हैं। यह आगे अगले वर्ष भी चलते रहेंगे। रजत जयन्ती वर्ष मिशन का पच्चीसवाँ वर्ष है। इसमें २५ कुण्डी धर्मानुष्ठान की धूम रही है। निश्चय यह किया गया है कि यह प्रक्रिया २५ महीने चलने दी जाय। पुरश्चरण आयोजनों को अगले वर्ष जारी रखा जायगा और सन् ८० की गुरुपूर्णिमा को २५ महीने पूरे करने के बाद ही उनकी पूर्णाहुति होगी।

रजत जयन्ती वर्ष की केन्द्रीय उपलब्धियाँ यह हैं कि ब्रह्मवर्चस् आरण्यक में (१) गायत्री शक्ति पीठ, (२) ब्रह्म विद्यालय एवं (३) शोध संस्थान की त्रिवेणी बहने लगेगी। पहले उसे मात्र साधनाश्रम के रूप में बनाया गया था, अब उस गंगा ने त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया है। युग-शक्ति की २४ धाराएँ २४ देवियों के रूप में प्रतिष्ठापित की गई हैं। कलेवर की दृष्टि से छोटा होते हुए भी इसे अन्तर्राष्ट्रीय गायत्री तीर्थ बनाया जा रहा है। यह दर्शनार्थियों की श्रद्धा का परिपोषण ही नहीं करेगा वरन् बुद्धिवाद एवं प्रत्यक्षवाद का उपयुक्त समाधान कर सकने के लिए आवश्यक अनुसंधान भी प्रस्तुत करेगा। यह शोधें इतने महत्त्व की होंगी, जिनके लिए मानव-जाति को अनन्तकाल तक उनका कृतज्ञ रहना पड़ेगा। यज्ञ पैथी ऐसा ही अनुसंधान होगा जिसके द्वारा विश्व-मानव को शारीरिक व्याधियों, मानसिक व्याधियों से ही नहीं आन्तरिक निकृष्टताओं से छुटकारा प्राप्त करके समुन्नत एवं सुसंस्कृत जीवनयापन का अवसर मिल सके। प्रत्यक्षवादी बुद्धिवाद ने पिछली शताब्दियों से अध्यात्मवाद पर आक्रमण करना आरम्भ किया है और प्रतिरोध के अभाव में उसकी छवि धूमिल करने में बहुत हद तक सफलता भी पाई है। अब समय आ गया कि उलट कर हमला किया जाय। ब्रह्मवर्चस् में चलने वाली शोध आज तो आरम्भ ही हो रही हैं, पर अगले दिनों उसकी सफलता पर विश्वास रखा जा सकता है और यह माना जा सकता है कि जिस दिव्य संरक्षण में यह प्रयास आरम्भ हुआ है उसकी क्षमता को देखते हुए असफलता मिलने का कोई कारण नहीं है।

ब्रह्मवर्चस् के अन्तर्गत चलने वाली साधन-शिक्षण प्रक्रिया युग सृजेताओं का एक विशिष्ट वर्ग पैदा करेगी और वे अपनी प्रखरता से अपना-अपने समाज का एवं समस्त विश्व का असाधारण हित-साधन कर सकेंगे। ब्रह्मवर्चस् का ही एक सहायक भाग गायत्री नगर है जहाँ सामान्य तीर्थ-यात्रियों को दस दिवसीय साधनाएँ करके वह आलोक प्राप्त करने का अवसर मिलता रहेगा, जो तीर्थ के नाम से जाने वाले सांस्कृतिक मेरुदण्ड का मूलभूत उद्देश्य है। गायत्री नगर में रहकर दस दिन साधना करने वाले यह अनुभव कर सकेंगे कि तीर्थों का जो माहात्म्य शास्त्रकारों ने बताया है वह अकारण एवं निरर्थक नहीं है।

यह विवरण रजत जयन्ती वर्ष के एक वर्ष का है जिसे पूर्वार्ध्य कहना चाहिए। उत्तरार्ध शेष है। जब इस हर्षोत्सव को ऐतिहासिक धर्मानुष्ठान को एक वर्ष से बढ़ा कर २५ महीने का किया जा रहा है तो समझना चाहिए कि इसके पीछे सामान्य भावुकता नहीं, वरन् कुछ विशिष्ट दैवी प्रयोजन ही छिपा हुआ है। पुरश्चरण आयोजन २५ महीने चलेंगे, यह बात अपने आप अति महत्त्वपूर्ण है। इससे वातावरण के परिशोधन में देव-परिवार के विस्तार में प्रव्रज्या के अधिक प्रौढ़ परिपक्व बनाने में तो असाधारण सहायता मिलेगी ही, पर इससे भी बड़ी बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक और होने जा रही है, जिसका प्रथम परिचय परिजनों को यह पंक्तियाँ पढ़ने के उपरान्त ही उपलब्ध होगा।

यह तथ्य सर्वविदित है कि बसन्त पर्व भगवती सरस्वती का ही नहीं प्रज्ञावरण का भी पावन पर्व है। अनादि काल में गंगा और आद्य-शक्ति गायत्री का जन्म जेष्ठ शुक्ला दशमी को हुआ था। उसी दिन दोनों की जन्म जयन्ती मनाई जाती है। इसी युग्म का दूसरा रूप है—सरस्वती और युग-शक्ति का अवतरण। बसन्त के सौभाग्य में यह दूनी अभिवृद्धि है कि उसे प्रज्ञावतार का जन्मदिन होने का भी श्रेय मिलता रहेगा। युग-निर्माण मिशन का, उसके सूत्र संचालक का जन्मदिन बसन्त पंचमी को मनाया जाता है, यह प्रेरणा पर्व भी है इसलिए कि मिशन के सूत्र संचालक पर उसी दिन आगामी वर्ष के कार्यक्रम के लिए दैवी आदेश, निर्देश उतरते और विधिवत् कार्यान्वित होते रहे हैं। मिशन के साथ जुड़ी हुई विशिष्ट आत्माओं को भी इसी प्रवाह में बहना पड़ा है। वे भी बसन्त पर्व पर महाकाल की प्रेरणाएँ प्राप्त करते रहे हैं और श्रद्धापूर्वक उनका अनुसरण करके अपना क्रिया-कलाप निर्धारित करते रहे हैं। सामान्य परिजनों को भी हर बसन्त पर दिव्य लोक से कुछ सन्देश, संकेत मिलते रहे हैं। इन प्रेरणाओं का कौन कितना अनुसरण कर सका यह उसके पुण्य एवं सौभाग्य पर निर्भर रहा है। प्रज्ञावतार की प्रखरता का सामयिक परिचय इसी तथ्य के आधार पर मिलता है कि युग सृजन के सन्दर्भ में उसके निर्देश क्रमशः बड़े और कड़े होते चले जा रहे हैं। इतना ही नहीं उस अनुशासन की शिरोधार्य करने के लिए देव-मानवों के चरण बरबस आगे बढ़ने लगे हैं।

रजत जयन्ती वर्ष के बसन्त पर्व की विशिष्ट प्रेरणा यह है कि प्रज्ञावतार के आलोक को भारत-भूमि के समस्त धर्म क्षेत्रों तक पहुँचाने के लिए गायत्री तीर्थों की स्थापना की जाय। आद्य शंकराचार्य को भी इसी प्रकार की प्रेरणा हुई थी। अनेकों दूरगामी परिणामों को देखते हुए उनने भारत के चारों कोनों पर चार धामों की स्थापना की थी। यह कार्य उन दिनों की उनकी स्थितियों में अति कठिन था, पर दैवी सहयोग साथ रहने के कारण वह कुछ ही वर्षों में जादुई सफलता की तरह पूरा हो गया था। इस स्थापना के सत्परिणामों पर जितनी गम्भीरता से विचार किया जाय वह उतनी ही अधिक महत्त्वपूर्ण और श्रेयस्कर प्रतीत होती जाती है।

ठीक इसी स्तर की प्रेरणा प्रस्तुत बसन्त पर्व पर अवतरित हुई है। इसके अनुसार भारत में २४ गायत्री तीर्थ बनने हैं। यह स्थापना उन्हीं स्थानों पर होगी, जहाँ परम्परागत विशिष्ट तीर्थ विद्यमान हैं। तीर्थों की रूपरेखा स्पष्ट है। वे कलेवर की दृष्टि से बहुत बड़े नहीं होंगे और न अनावश्यक रूप से खर्चीले। इनकी तीन मन्जिल होंगी। ब्रह्मवर्चस् की तरह इनमें भी युग त्रिवेणी जैसी गतिविधियों का दर्शन होगा।

पहली मन्जिल में युग-शक्ति की भव्य प्रतिमा, दीवारों पर संगमरमर की गायत्री के अन्तर्गत आने वाली २४ महाशक्तियों की प्रतिमाएँ। दर्शकों को इन सभी की जानकारी कराने के लिए 'गाइडों' की नियुक्ति। पैसा चढ़ाने का निषेध। कोई कुछ देना चाहे तो बदले में तत्काल उतने मूल्य का गायत्री साहित्य का प्रतिदान।

दूसरी मन्जिल में सत्संग भवन, परामर्श कक्ष रहेगा। इसमें इच्छुकों को गायत्री ज्ञान देने तथा जिज्ञासाओं का समाधान करने का क्रम निरन्तर चलता रहेगा।

तीर्थ की सभी व्यवस्थाओं का संचालन करने, प्रचार प्रयोजनों में निरत रहने के लिए न्यूनतम पाँच परिव्राजक रहेंगे। अपनी निज की साधना, दैनिक-यज्ञ प्रक्रिया एवं शरीर यात्रा के लिए भोजन, शयन, शौच, स्नान आदि का प्रबन्ध रहेगा। अभी आरम्भिक निर्माण के लिए इतनी ही व्यवस्था सोची गई है। अच्छा तो यह होता कि दूर-दूर से आने वाले आगन्तुकों के लिए एक धर्म शाला भी साथ ही रहती, पर लागत की अधिकता और समय की जल्दी का ध्यान रखते हुए तुरन्त निर्माण के लिए उपरोक्त तीन मन्जिलें तीर्थों का ही काम हाथ में लिया गया है। दूसरे चरण में जहाँ भी तीर्थ होंगे उसी से सटी हुई या थोड़ी हटकर धर्मशालाएँ भी बनेंगी। जहाँ तीर्थ-यात्री और अनुष्ठानकर्त्ता शान्तिपूर्वक निवास करने एवं तीर्थों जैसा वातावरण प्राप्त करने का लाभ उठा सकें।

रजत जयन्ती वर्ष में यह गायत्री तीर्थ निर्माण का संकल्प २४ तक सीमित किया गया है। २४ अक्षरों में २४ शक्तियाँ और प्रेरणाएँ हैं। इसलिए २४ शक्ति-पीठों की, गायत्री तीर्थों की संख्या भी २४ ही तो उपयुक्त ही रहेगा। वैसे भारतवर्ष के हजारों तीर्थों में से कम से कम २४० नहीं तो १०८ तीर्थ तो ऐसे ही हो सकते हैं जिनमें गायत्री तीर्थों की स्थापना होनी चाहिए। इसे एक दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की जन्मदात्री, ब्रह्मविद्या को गंगोत्री और साधना तपश्चर्या की शक्ति निर्झरणी गायत्री का कहीं एक भी समर्थ तीर्थ न दीखे और अन्यान्य चित्र विचित्र देवी-देवताओं के देवालयों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरमार होती चले। इस लज्जाजनक स्थिति को हमें अविलम्ब धो डालना है। गायत्री तीर्थों की श्रृंखला का व्यापक विस्तार नवयुग के अवतरण का वातावरण बनाने के लिए भी आवश्यक है। यह सभी कार्य इन शक्ति-पीठों से किस प्रकार सम्भव हो सकते हैं इसे समय से पूर्व कहना व्यर्थ है। यह तीर्थ मात्र देवालय नहीं रहेंगे, उनके द्वारा जो सृजनात्मक प्रवाह बहेंगे उन्हें हिमालय से निकलने वाली अनेकानेक सरिताओं के समतुल्य ही समझा जा सकता है।

रजत जयन्ती के उत्तरार्द्ध में जिन गायत्री तीर्थों के स्थान चुने जाने हैं, उनका निर्धारण करने में विशेष खोज-बीन, जाँच-पड़ताल की आवश्यकता होगी। पहले कहाँ से काम शुरू करना है यह भी इन्हीं दिनों निश्चित होना है, पर इतना निश्चित है कि सप्त पुरियों, द्वादश ज्योतिर्लिंगे, बीस शक्ति-पीठों, चार कुम्भ स्थलों में से एक भी ऐसा न बचेगा जहाँ गायत्री तीर्थों की स्थापना न हुई हो और जहाँ से तीर्थ यात्रा के लिए पहुँचने वाले लोगों को युग-शक्ति के स्वरूप, प्रयोग एवं प्रतिफल की जानकारी उपलब्ध न होती हो।

आद्य शंकराचार्य के चार धामों को निर्माण करने में एक मान्धाता ही समर्थ हो गये थे। समर्थ रामदास के महावीर मन्दिर छत्रपति शिवाजी ने बनवाये थे, बुद्ध के विहारों और विश्वविद्यालयों को बनाने में हर्षवर्धन, अशोक जैसे सम्पन्न लोगों का हाथ था। युग-निर्माण परिवार में साधन सम्पन्न और उदार होने की दोनों विशेषताएँ जिनमें हों ऐसे लोगों को बहुत ढूँढ़-खोज करने पर ही पाया जा सकेगा। किन्तु आशा उन प्रतिभाओं पर केन्द्रित होती है जो प्रतिभाशाली और प्रमाणिक होने के कारण समर्थ लोगों को अपने प्रभाव से प्रभावित कर सकते हैं और एक-एक ईंट इकट्ठी करके देवालय बनाने का नया आदर्श प्रस्तुत कर सकते हैं। यों यश या पुण्य के लिए भी कई लोग अपने स्थान में मन्दिर धर्मशाला आदि बनाने के इच्छुक रहते हैं। उन्हें यदि तीर्थ में देवालय बनाने से मिलने वाले असंख्य गुने पुण्य की जानकारी कराई जाय और इस माध्यम से व्यापक यश मिलने की स्पष्ट सम्भावना समझाई जाय तो ऐसे लोग भी मिल सकते हैं जो अपने धन का श्रेष्ठतम उपयोग इसी में मानें और युग- देवता के चरणों पर अपने साधनों को समर्पित करने में छोटे भामाशाहों की, हरिश्चन्द्रों की भूमिका सम्पन्न करें। जो हो, विश्वास यही किया जाना चाहिए कि जिस महाकाल की प्रेरणा से यह अनुपम संकल्प प्रकट हुआ है, वही सत्ता इसे सम्पन्न करा सकने वाली प्रतिभाओं को सहयोग की प्रेरणा भी देगी. और यह निर्माण-कार्य कष्ट साध्य-साधन साध्य होते हुए भी सम्पन्न होकर रहेंगे। परिजनों को कुछ ही समय में चौबीस गायत्री तीर्थों का दर्शन अपनी इन्हीं आँखों से कर सकने का सौभाग्य मिल जायगा।

परिव्राजकों की भर्ती का क्रम पहले से ही चल रहा है। स्फूर्तिवान परिश्रमी एवं प्रभावशाली परिव्राजक इन २४ तीर्थों के लिए भी चाहिए। हर तीर्थ में न्यूनतम पाँच परिव्राजकों का एक जत्था रहेगा। उन जत्थों की हर साल एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में बदली होती रहेगी। २४ तीर्थों के लिए १२० परिव्राजकों की १०८ के लिए ५४० तीर्थ संचालकों की आवश्यकता पड़ेगी । इन सब का प्रथम शिक्षण ब्रह्मवर्चस् हरिद्वार में होगा। जो उत्तीर्ण होंगे उन्हें अन्य तीर्थों में भेजा जायगा। इस प्रकार वे २४ वर्ष में २४ तीर्थों का सेवन कर सकेंगे। २४ वर्ष तक गायत्री की वैसी ही उपासना कर सकने में समर्थ होंगे, जैसी कि युग-निर्माण मिशन के संस्थापक ने की है।

जिन्हें यह कार्य प्रिय हो जो अपने को इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उपयुक्त समझते हों वे पहले कुछ समय हरिद्वार शिक्षण प्राप्त करने की योजना बनायें। इन लोगों के निर्वाह का आवश्यक खर्च संस्था की ओर से ही वहन किया जायगा।

रजत जयन्ती वर्ष युग-निर्माण मिशन का एक पावन वर्ष है। इसमें परिवार को प्राय: समस्त जागृत आत्माओं ने अपने-अपने ढंग से योगदान दिया है। आगामी वर्ष उपरोक्त प्रयोजनों में और भी अधिक श्रद्धा के साथ प्रस्तुत कार्यों में हाथ बँटाने की आशा की जा रही है। इन पंक्तियों को इसी का आह्वान आमन्त्रण समझा जाय।

२४ गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना

तीर्थ संस्थानों के माध्यम से धर्म-चेतना का अभिवर्धन करने में रहने वाली सरलता और मिलने वाली सफलता को ध्यान में रखते हुए तत्व-दर्शियों ने उनकी स्थापना पर बहुत जोर दिया था और उन्हें प्रेरणा केन्द्र बनाने में कुछ उठा न रखा था। विभिन्न तीर्थों के माहात्म्य पुराणों में अत्यधिक विस्तार के साथ लिखे गये हैं। इसका प्रयोजन इतना ही था कि जन- साधारण को वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचने के लिये उकसाया जाय। इस निमित्त जो समय श्रम एवं धन खर्च होता है उसकी तुलना में मिलने वाले प्रत्यक्ष और परोक्ष लाभ की मात्रा अत्यधिक समझी गई। तभी से यह माहात्म्य वर्णन का सिलसिला चला। अन्यथा यदि मात्र पर्यटन और देव- दर्शन जैसे सामान्य लाभ रहे होते तो ऋषियों को उनके लिए अत्यधिक प्रोत्साहन देने और बढ़े-चढ़े लाभ बताने की आवश्यकता न पड़ती।

तीर्थ-यात्री पद-यात्रा पर निकले थे। मार्ग में जन-जन से सम्पर्क साधते हुए धर्म-चेतना उगाते-बढ़ाते थे। गाँव-गाँव में सत्प्रवृतियों को अपनाने के लिए वातावरण उत्पन्न करना, घर-घर नव-जीवन का अलख जगाना तीर्थ यात्रा का प्रधान उद्देश्य था। उन दिनों हर तीर्थ में ऐसे उच्चस्तरीय आरण्यक थे जहाँ पहुँचने पर उपयोगी प्रेरणाएँ उपलब्ध की जा सकती थीं। भ्रमितों को प्रकाश और विक्षुब्धों को समाधान मिलने की वहाँ पूरी सुविधा रहती थी। गुरुकुलों में छात्रों का आरण्यकों में वानप्रस्थों का जहाँ सांगोपांग प्रशिक्षण चलता था वहाँ, कम समय के लिए अवसर पाने वाने सामान्य मनुष्यों को उनके लिए उपयोगी मार्ग-दर्शन की व्यवस्था इन तीर्थ-स्थानों में रहती थी। मनीषियों के आश्रमों में पहुँचकर यात्री-गण अपनी सामयिक समस्याओं के समाधान तथा भविष्य के लिए उपयोगी निर्धारण का समुचित परामर्श प्राप्त करते थे। अस्पताल में भर्ती होकर रोगी जिस प्रकार सुव्यवस्थित चिकित्सा का लाभ प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार तीर्थ में स्वल्प समय रहने वाले भी साधना, स्वाध्याय एवं सत्संग का अति महत्त्वपूर्ण लाभ लेते थे। लौटने पर उन्हें कायाकल्प जैसा लाभ मिलता था। प्राकृतिक सौन्दर्य, पवित्र जलाशय, ऐतिहासिक परम्पराएँ जैसे कारणों के मिल जाने से तीर्थों का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता था। तीर्थ-वास का जो पुण्य-फल धर्म-ग्रन्थों में बताया गया है, उसके आधार पर वहाँ पहुँचने वालों की पूर्व निर्धारित श्रद्धा मनोभूमि की अपनी विशिष्ठता थी।

आस्था अपने आप में एक दिव्य शक्ति है। किसी व्यक्ति स्थान, आदर्श या कृत्य पर आस्था जम सके तो उसके सम्पर्क की प्रतिक्रिया सहज ही श्रेयस्कर होती है। ऐसे-ऐसे कारणों से तीर्थों को कल्प वृक्ष माना जाता था। वहाँ पाप प्रायश्चित से लेकर पुण्य सम्वर्धन, आत्मबल सम्पादन तक के अनेकानेक प्रयोजन पूरे होते थे। ऋषियों को एक स्थान पर बैठे-बैठे अनेकों आगन्तुकों के माध्यम से अभीष्ट सत्प्रवृतियों को व्यापक क्षेत्र में विस्तृत करने की सुविधा मिलती थी। फलतः वे प्रेरणा केन्द्र बने रहते थे और जो पुण्य फल माना बताया जाता था उसकी यथार्थता प्रकारान्तर से प्रत्यक्ष ही सिद्ध होती रहती थी।

तीर्थ एक क्षेत्रीय मण्डल में धर्म-चेतना उत्पन्न करते और उस प्रदेश की समस्याओं को सुलझाने में अति महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ पूरी करते थे। इसीलिए तीर्थ पुरोहितों को 'मण्डलाधीश' या 'मण्डलेश्वर' कहते थे। बहुत बड़े क्षेत्र का उत्तरदायित्व जिनके कंधों पर होता था, उन्हें महामण्डलेश्वर कहते थे। वे सम्पर्क क्षेत्र के लोगों को विशेष रूप से और अन्य क्षेत्रों के लोगों को सामान्य रूप से किसी पर्व विशेष पर एकत्रित करते थे। सामयिक प्रेरणाओं से उन आगन्तुकों को अनुप्राणित करते थे। ऐसे आयोजन तीर्थ-मेले कहे जाते थे। पर्व स्नान के रूप में उस अवसर पर असंख्यों धर्म-प्रेमी जमा होते थे और स्नान ध्यान के सामान्य क्रिया-कृत्यों के अतिरिक्त अपने लिए अपने कार्य क्षेत्र के लिए अभिनव मार्ग-दर्शन, बल एवं उत्साह लेकर वापिस लौटते थे। उत्तर भारत और मध्य भारत में चार कुंभ और चार अर्ध कुम्भी चार प्रमुख तीर्थों में इस प्रकार नियोजित किये गये थे कि समीपवर्ती क्षेत्रों का महत्त्वपूर्ण जन-वर्ग वहाँ एकत्रित होकर व्यक्ति और समाज की सुव्यवस्था की सामयिक समस्याओं का समाधान ढूँढ़ें। मनीषियों का मार्ग-दर्शन प्राप्त करें। सोमवती अमावश्या, सूर्य, चन्द्र ग्रहण एवं विशेष पर्वों पर विशेष तीर्थों में विशेष मेले भरने का क्रम इसी उद्देश्य के लिए चला। वह अपना लक्ष्य पूरा करने में चिरकाल तक सफल भी रहा।

तीर्थों की उपयोगिता देखते हुए उनकी स्थापना के लिए विशिष्ट व्यक्तियों ने विशिष्ट प्रयत्न किये हैं। आद्य शंकराचार्य ने भारत के चार कोनों पर चार धामों की स्थापना की। उनके पीछे देश की सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने के दूरगामी उद्देश्य थे। चैतन्य महाप्रभु ने ब्रज क्षेत्र के अधिकांश तीर्थों का जीर्णोद्धार तथा नव-निर्माण कराने में सफल प्रयत्न किया। इन दिनों ब्रज क्षेत्र में जो धार्मिक आकर्षण दीखता है, उसके पीछे चैतन्य महाप्रभु की योजना ही फलवती हो रही है। महाराष्ट्र में समर्थ गुरु रामदास ने गाँव-गाँव देवालयों की स्थापना के लिए जीवन भर अथक प्रयास किया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थों की स्थापना का उद्देश्य धर्म-प्रचार की पद-यात्राओं के लिए सुविधा-व्यवस्था बनाने के अतिरिक्त यह भी था कि उन प्रेरणा स्रोतों से समीपवर्ती क्षेत्रों को धर्म-चेतना को प्रखर बनाये रहने की प्रभावी प्रेरणा उपलब्ध होती रहे। वैयक्तिक उत्कृष्टता और सामाजिक प्रगतिशीलता के दुहरे लाभ जिस सरलता और सफलता के लिए जन-साधारण को मिलते रहे, उसे देखते हुए लोक-श्रद्धा उनके प्रति उमड़ती गई और उनका महत्त्व, विस्तार एवं आकर्षण निरन्तर बढ़ता गया। उसी विकास क्रम के आधार पर तीर्थ क्रमश: अधिक समृद्ध बनते हुए वर्तमान स्थिति तक पहुँचे हैं।

आज की स्थिति विचित्र है। मध्यकालीन अन्धकार युग ने भारतीय गरिमा के प्राय: सभी स्रोतों को बुरी तरह उलट-पुलट कर रख दिया है। धर्म-सिद्धान्तों, उपासना-उपक्रमों, तत्परम्पराओं में जिस कदर विद्रूप विकृतियाँ भर गई हैं इसे देखते हुए उन्हीं लोगों का आक्रोश सही लगता है जो धर्म को पानी पी-पी कर कोसते हैं और उसे उखाड़ने-उजाड़ने पर उतारू हैं। लोक-श्रद्धा का निहित स्वार्थों द्वारा शोषण करने के लिए ऐसी भ्रान्तियाँ फैलाई गईं जिनके सहारे भोले भावुक लोगों की हजामत उलटे उस्तरे से बनाना सम्भव हो सके। तीर्थों में जाने वाले धर्म-प्रेमी लोग अपनी संचित श्रद्धा को किस प्रकार गँवा कर वापिस लौटते हैं इस प्रसंग पर कटु चर्चा करने की आवश्यकता नहीं, इसे हर भुक्त भोगी-भली प्रकार जानता है और समय-समय पर उसकी दु:ख भरी भर्त्सना भी व्यक्त करता रहता है। विदेशों में विनोदात्मक पर्यटन केन्द्रों की भरमार है। भारत में प्रेरणा स्रोतों के रूप में तीर्थों की स्थापना जिस उद्देश्य से हुई थी, उसका तो एक प्रकार से प्राण ही निकल गया, विशुद्ध पर्यटन का मनोरंजन भी उपलब्ध नहीं है। जाने को तो लाखों-करोड़ों व्यक्ति हर साल अगणित स्थानों की तीर्थ-यात्रा करते हैं, पर वे वहाँ से क्या कुछ कमाकर और क्या कुछ गँवाकर आते हैं, उसका लेखा-जोखा लेने पर भारी निराशा ही हाथ लगती है।

इन दिनों नये सिरे से नये निर्माण और नये निर्धारण हो रहे हैं। जीर्णोद्धार और नव-निर्माण के प्रयासों में ऐसी हलचलें हो रही हैं जिनमें चिर-पुरातन को चिर-नवीन के साथ जोड़ा जा सके। युग-परिवर्तन की पुण्य-प्रक्रिया यही है कि व्यक्ति को सुसंस्कृत और समाज को समुन्नत बनाने की इस पुण्य-प्रक्रिया की पुन: प्राण प्रतिष्ठा की जाय, जिसे अपनाकर हमारे महान् पूर्वज देवोपम जीवन यापन करते हुए इस पुण्य भूमि को स्वर्गादपि गरीयसी चिरकाल तक बनाये रहे। अतीत के उसी महान् गौरव को वापस लाने के भागीरथ प्रयत्नों को एक शब्द में युग-निर्माण अभियान कह सकते हैं।

इस नव सृजन का शुभारम्भ भी तीर्थ-स्थापना के साथ-साथ हुआ है। मथुरा में स्थापित गायत्री तपोभूमि युग-निर्माण-योजना विशुद्ध तीर्थ है। दूसरी स्थापना हरिद्वार का शान्ति कुञ्ज ब्रह्मवर्चस् भी प्राचीन काल की तीर्थ-परम्परा का अभिनव संस्करण है। इन दोनों तीर्थों का स्वल्प कालीन इतिहास यह बताता है कि यदि तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित किया जा सके तो उसके सत्परिणाम भी वैसे ही महान् हो सकते हैं; जैसे कि चिरकाल तक इस भारत भूमि की गरिमा को बढ़ाने में समर्थ होते रहे हैं। यमुना तट पर बनी गायत्री तपोभूमि युग-निर्माण-योजना है और गंगा तट पर निर्मित शान्ति कुन्ज ब्रह्मवर्चस् दोनों मिल कर नव-युग का त्रिवेणी संगम उत्पन्न कर रहे हैं। जो इन संस्थानों के स्वरूप प्रयास और उनकी परिणिति से परिचित हैं वे जानते हैं कि थोड़े ही समय में स्वल्प साधनों से इन संस्थानों के द्वारा युग-परिवर्तन की, व्यक्ति में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की जो भूमिका निभाई गई है, वह कितनी महत्त्वपूर्ण है। इन आश्रमों के सम्पर्क में रहने वाले उन्हें अनुपम और अद्‌भुत कहते-कहते नहीं थकते। उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन देने वाले महान् प्रयत्नों में इन दोनों तीर्थों की भूमिका को भावी पीढ़ियाँ कभी भी विस्मृत कर सकें ऐसा सम्भव नहीं है।

इन दोनों गायत्री तीर्थों की असंदिग्ध उपयोगिता को देखते हुए यह आवश्यक समझा गया है कि देश भर में युग की आवश्यकता पूरी कर सकने वाले गायत्री तीर्थों की स्थापना की जाय। गायत्री भारतीय संस्कृति का प्राण है। वेदमाता, देवमाता विश्वमाता के रूप में उसकी भूमिका प्राचीन काल में भी महान् थी। नव-युग में भी उसी बीज-मंत्र का विस्तार विश्व-संस्कृति के देव-संस्कृति के रूप में होगा, उसे नव-युग की कल्पवृक्ष प्रेरणा उद्‌गम कहा जायगा। इन २४ अक्षरों में ज्ञान और विज्ञान के वे सभी तत्व मौजूद हैं जिनके सहारे व्यक्ति की उत्कृष्टता और समाज की सुव्यवस्था का पुन: निर्धारण सम्भव हो सके। आज का 'आस्था-संकट' ही प्रस्तुत समस्याओं-विभीषिकाओं का एक मात्र कारण है। समाधान के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोक-मानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता की ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्रतिष्ठापना रखनी होगी। इस प्रयास का सार्वभौम सूत्र संचालन करने की जैसी क्षमता गायत्री मंत्र में है, वैसी अन्यत्र उपलब्ध हो सकना कठिन है। युगान्तरीय चेतना का प्रादुर्भाव प्रज्ञावतरण के रूप में हो रहा है। प्रज्ञा अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा। धार्मिक भाषा में इसे ज्ञान यज्ञ का अनुष्ठान और सामाजिक भाषा में विचार क्रान्ति अभियान कह सकते हैं।

पिछले दिनों गायत्री मंत्र पूजा-पाठ के काम आने वाला एक छोटा-सा निमित्त कारण था, पर अब उसका विकास-विस्तार पूर्व काल के सतयुग की भाँति ही होने जा रहा है। सृष्टा के सन्तुलन प्रयासों के निमित्त उभरने वाली प्रचण्ड प्रेरणाएँ अवतार कहलाती हैं। यदा-यदाहि धर्मस्य.....का आश्वासन देने वाली नियामक सत्ता-असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने के लिए विभिन्न रूपों में अपनी भूमिकाएँ निभाती रही हैं। इन दिनों उसका स्वरूप प्रज्ञावतार के रूप में हो रहा है। प्रज्ञा अर्थात् गायत्री-गायत्री अर्थात् विवेकशीलता-शालीनता। पौराणिक प्रतिपादन के अनुरूप यही निष्कलंक अवतार है। नव-युग के अनुरूप लोक-मानस उसी को विनिर्मित करना है। इस युग-शक्ति की गतिविधियों को व्यापक बनाने के लिए गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना कितनी महत्त्वपूर्ण होगी, इसकी कल्पना से सहज ही भाव-संवेदनाओं में उल्लास भरा उभार आता है।

अपने देश में देवियों और देवताओं के तीर्थ देवालयों की कमी नहीं। दिव्य प्रेरणाओं को यहाँ अलंकार रूप में देव-देवी के रूप में चित्रित और अर्पित किया जाता रहा है। इस दृष्टि से मूर्धन्य देव-सत्ता के रूप में गायत्री की प्रतिष्ठापना होनी चाहिए थी, खेद है कि इस दिशा में थोड़ी-सी ही स्थापनाएँ जहाँ-तहाँ दिखाई देती हैं। मध्यकालीन मत-मतान्तरों ने अपना विस्तार तो किया पर आद्य-शक्ति की तीर्थ-प्रतिष्ठापना को एक प्रकार से उपेक्षित ही कर दिया। गायत्री शक्ति-पीठों के रूप में देव-स्थानों की संख्या बहुत ही स्वल्प पाई जाती है, जबकि सर्वोपरि प्रधानता उसे ही मिलनी चाहिए थी। समय आ गया है कि आद्य-शक्ति की अपनी गरिमा के अनुरूप भूमिका प्रस्तुत करने का अवसर मिले। नव-युग की देव-सत्ता की प्राण प्रतिष्ठा करने का आज का दिन ही सर्व श्रेष्ठ मुहुर्त है।

निर्देश उतरा और संकल्प उभरा है कि युग-शक्ति के शक्ति-स्रोतों के रूप में असंख्य गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना हो और उन आलोक केन्द्रों से सर्वत्र युग-चेतना की ऊर्जा का विस्तार किया जाय। जन-मानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता की प्रतिष्ठापना ही वह कार्य है जिसके आधार पर उज्ज्वल भविष्य के स्वप्नों को साकार किया जा सकता है। समझा जाना चाहिए कि यह शक्ति-पीठ मात्र देवालय न होंगे। देव-दर्शन से भावुक भक्तों को किसी प्रकार सन्तोष हो भी सकता है, किन्तु सत्परिणामों की आवश्यकता हो तो सत्प्रयत्नों को भी हाथ में लेना होगा। जिन गायत्री शक्ति-पीठों की प्रतिष्ठापना की जा रही है उनमें आद्य-शक्ति की प्रतिमा तो उसकी सहचरी चौबीस धारा-उपधाराओं सहित होगी ही, पर इसे आरम्भ कहा जायगा, अन्त नहीं। दर्शनार्थी देव-प्रतिमा की झाँकी करने के साथ ही इन देवालयों से वह प्रेरणा भी ग्रहण करेंगे जो उन्हें युग के अनुरूप पलने-बदलने के लिए चिन्तन में उत्कृष्टता और चरित्र में आदर्श वादिता का समावेश करने के लिए प्रबल उत्कण्ठा उत्पन्न करें। इन्हीं प्रयासों को योजनाबद्ध रूप से इन गायत्री शक्ति-पीठों के साथ ही सुनियोजित किया जा रहा है।

युग-निर्माण-योजना के संचालक सूत्रों ने विगत बसंत पर्व पर अगले ही दिनों २४ गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना का संकल्प घोषित किया है। यह २४ की संख्या आरम्भ है, अन्त नहीं। अन्त तो इसका संसार भर में २४००० शक्ति-पीठों के रूप में भी हो सकता है। आरम्भ के २४ गायत्री शक्ति-पीठ भारत के उन पुण्य क्षेत्रों में बनाये जायेंगे जहाँ पहले से ही तीर्थ-मान्यता रही है। वहाँ धर्म-प्रेमी जनता परम्परागत मान्यताओं के अनुरूप सहज ही पहुँचती रही है। इन स्थानों का ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व भी है। प्राचीन काल के तत्त्व-दर्शियों ने जिन कारणों से इन स्थानों को प्रमुखता एवं मान्यता दी थीं, उनका महत्त्व अभी भी विद्यमान है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रथम चरण में जिन २४ गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण की तैयारी आरम्भ कर दी गई है; उनमें वे ही स्थान प्रमुख हैं जिनमें पिछले समय से तीर्थ-यात्रा का क्रम चला आ रहा है। मथुरा में गायत्री तपो भूमि और हरिद्वार में शान्ति कुंज का निर्माण भी परम्परागत तीर्थ स्थानों से ही आरम्भ हुआ है। कुछ समय तक ही क्रम चलेगा। २४ शक्ति-पीठों का प्रथम संकल्प पूरा होते ही द्वितीय चरण में अन्य ऐसे स्थानों में यह स्थापनाएँ आरम्भ कर दी जायेंगी जहाँ एक क्षेत्र को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए मण्डल बना कर कार्य किया जा सके।

जिन तीर्थों में नये गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना का कार्य हाथ में लिया जा रहा है, वे प्रान्तों के हिसाब से इस प्रकार हैं—

उत्तर प्रदेश—(१) प्रयाग (२) काशी (३) अयोध्या (४) चित्रकूट (५) बद्रीनाथ।

बिहार—(६) गया (७) बैजनाथ धाम ।

उड़ीसा—(८) जगन्नाथपुरी

मध्य प्रदेश—(९) उज्जैन (१०) ओंकारेश्वर (११) अमर कटंक।

गुजरात—(१२) अम्बाजी (१३) डाकौरजी (१४) गिरनार-जूनागढ़ (१५) द्वारका (१६) सोमनाथ ।

हरियाणा—(१७) कुरुक्षेत्र।

राजस्थान—(१८) नाथ द्वारा (१९) पुष्कर।

जम्मू कश्मीर—(२०) वैष्णव देवी

महाराष्ट्र—(२१) नासिक

दक्षिण भारत—(२२) रामेश्वरम् (२३) तिरूपति (त्रिपदा बालाजी)

आसाम—(२४) कामाख्या-गोहाटी।

अभी इन्हीं २४ की योजना बन रही है। परिस्थिति वश इन स्थानों में हेर-फेर भी किया जा सकता है। संख्या की दृष्टि से २४ ही रहेंगे। प्रथम संकल्प पूरा होते ही ऐसे स्थानों को भी हाथ में ले लिया जायगा, जहाँ प्राचीन तीर्थ तो नहीं है, पर क्षेत्रीय धर्म-चेतना उत्पन्न करने की दृष्टि से इन्हें महत्त्वपूर्ण समझा जा सकता है। आद्य शंकराचार्य ने चार धाम राजा मान्धाता की सहायता से विनिर्मित किये थे। युग-निर्माण-योजना के पास मान्धाता, हर्षवर्धन, अशोक, भामाशाह तो नहीं हैं, पर लकड़ी पत्थर जमाकर लेने वाले रीछ, वानरों की, पहाड़ उठाने में लाठी का सहारा लगाने वाले ग्वाले-बालों की कमी नहीं है। २४ गायत्री शक्ति-पीठों का निर्माण यदि समुद्र पर पुल बाँधने और गोवर्धन उठाने की तहर कठिन होगा तो भी उभरती हुई युग-चेतना की आद्य-शक्ति के प्रेरणा प्रवाह की अजस्र सामर्थ्य को देखते हुए वह कार्य अधूरा नहीं पड़ा रहेगा। निश्चित रूप से पूर्ण होकर ही रहेगा।

शक्ति-पीठों को दो भागों में विभक्त रखा गया है। प्रथम चरण में जन-सम्पर्क के लिए देवालयों की स्थापना और द्वितीय चरण में प्रशिक्षण एवं साधना के लिए आश्रम बनेंगे। देवालय ऐसे सघन स्थानों पर रहेंगे, जहाँ तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से आगन्तुकों का बाहुल्य रहता हो। आश्रम ऐसी जगह बनेंगे, जहाँ शान्ति का वातावरण हो। सघन स्थानों में जमीन कठिनाई से मिलती है और महँगी होती है इसलिए वहाँ अधिक जन-सम्पर्क के लिए ही स्वल्प साधनों के रहते थोड़ा स्थान उपलब्ध हो सकता है। देवालयों का औचित्य एवं उपयोग इसी में है। आश्रमों में अधिक समय ठहरने की, निवास निर्वाह के लिए शान्ति वातावरण की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे स्थान प्रकृति सान्निध्य में हरियाली और शान्तिदायक परिस्थितियों के बीच होने चाहिए। हरिद्वार में यही किया गया है। ब्रह्मवर्चस् में गायत्री शक्ति पीठ एक शोध संस्थान की व्यवस्था है। साधकों को जीवन-निर्माण का प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त करने के लिए गायत्री नगर बसाया गया है। यही व्यवस्था घोषित २४ शक्ति-पीठों में रहेगी। उनके दो खण्ड होंगे (१) प्रचार प्रयोजन एवं जन-सम्पर्क के लिए देवालय । (२) प्रशिक्षण, साधना के लिए निवास-निर्वाह की सुविधा सम्पन्न आश्रम आरण्यक।

फिलहाल २४ स्थानों में प्रथम चरण पूरा किया जा रहा है, बाद में आश्रम बनेंगे। स्वभावत: दोनों एक स्थान पर नहीं हो सकते। जन-सम्पर्क के लिए सघन क्षेत्र चाहिए। वहाँ स्वभावत: जमीन महँगी भी मिलेगी और छोटी भी, अभीष्ट प्रयोजनों की पूर्ति के लिए उसे अनिवार्यत: तीन मन्जिली इमारत के रूप में बनाना पड़ेगा। आरण्यक आश्रम एक मन्जिल खुले एवं विस्तृत क्षेत्र में हरियाली समेत होने चाहिए। दोनों उद्देश्य एक-दूसरे के पूरक हैं, इसलिए अच्छा होता कि वे साथ-साथ रहते और पास-पास बनते, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में वैसी सुविधा मिलनी कठिन है, जो एक साथ दोनों उद्देश्यों की पूर्ति कर सके। जहाँ वैसा कुछ बन पड़ेगा, वहाँ वैसा भी किया जायगा, किन्तु प्रस्तुत परिस्थितियों को देखते हुए सहज नीति यही निर्धारित की गई है कि दोनों को दो स्थानों में, दो बार में, बनाया जाये। प्रथम चरण में गायत्री शक्ति-पीठों का पूर्वार्द्ध पूरा किया जा रहा है और तीन मन्जिले देवालय बनने जा रहे हैं। अगले चरण में जब इन्हीं स्थानों पर आरण्यक आश्रम बनेंगे तो उनके लिए बड़ी सस्ती और विरल क्षेत्र की जमीन उपलब्ध की जायगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विगत बसन्त पर घोषित २४ गायत्री शक्ति-पीठ निर्माण के संकल्प में तीन मन्जिले देवालयों के निर्माण की हीं रूपरेखा है। नीचे वाली मन्जिल में गायत्री माता की भव्य प्रतिमा रहेगी। आगे विशाल हॉल रखा गया है, जिसमें बहुसंख्यक भीड़ भी खड़ी होकर एक साथ दर्शन कर सके। आरती, पूजन वन्दन में हजारों व्यक्तियों की उपस्थिति में अड़चन उत्पन्न न करे। दूसरी मन्जिन को सत्संग भवन या परामर्श कक्ष समझा जा सकता है। परामर्श कक्ष नाम देना इसलिए अधिक उपयुक्त है कि दर्शनार्थियों में से जो गायत्री विधा के सम्बन्ध में अधिक जानने के लिए उत्सुक होंगे उन जिज्ञासुओं को उनकी जिज्ञासा के अनुरूप मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए यहीं व्यवस्था रहा करेगी। एक विद्वान मनीषी इस प्रयोजन के लिए वहाँ सदा प्रस्तुत रहा करेगा। जिज्ञासु अपनी-अपनी मनोभूमि के अनुरूप शंकाओं का समाधान और उपयुक्त परामर्श प्राप्त करने का निरन्तर लाभ उठाते रहेंगे। ऊपर वाली तीसरी मंजिल को कार्यकर्त्ता निवास कक्ष तथा अतिथि ग्रह कहेंगे। इन शक्ति-पीठों की अनेकानेक प्रवृत्तियों का संचालन करने के लिए न्यूनतम पाँच और अधिकतम दस परिव्राजक यहाँ स्थायी रूप से रहा करेंगे। उनके भोजन, शयन, नित्यकर्म, मनन, स्वाध्याय आदि की सारी व्यवस्था शक्ति पीठ की ऊपरी मन्जिलों में ही रहा करेगी। (१) देवालय (२) सत्संग कक्ष एवं (३) कार्यकर्त्ता निवास और अतिथि ग्रह के तीनों ही प्रयोजन एक-दूसरे से सम्बद्ध एवं पूरक हैं जिन्हें परस्पर जोड़े बिना ग्रीर्थ-निर्माण की समग्र आवश्यकता पूरी हो ही नहीं सकती।

इन तीर्थों को सुसंचालित रखने के लिए पाँच कार्यक्रम निर्धारित किये गये हैं। इनकी पूर्ति के लिए न्यूनतम पाँच परिव्राजक उनमें स्थायी रूप से निवास करेंगे। पाँच कार्यक्रम, पाँच कार्यकर्त्ता इस संयोग को गायत्री के पाँच मुख कहा जा सकता है। इसे पंचमुखी गायत्री का प्रत्यक्ष विस्तार कह सकते हैं । इन तीर्थों में नियमित रूप से चलने वाली कार्य पद्धति यह है (१) एक परिव्राजक देव-प्रतिमा के निकट रहेंगे। वे दर्शकों को गायत्री माता का महत्त्व समझावेंगे और उनका मंगल प्रसाद हर दर्शनार्थी को देंगे। (२) दूसरा परिव्राजक इस विशाल भवन में लगे हुए गायत्री की चौबीस शक्ति धाराओं के २४ चित्रों का परिचय कराने में गाइड की तरह दर्शनार्थियों के साथ रहा करेगा। (३) गायत्री विधा में रुचि लेने वाले दर्शकों की जिज्ञासाओं का समाधान करने के लिए सत्संग कक्ष में एक परिव्राजक हर घड़ी उपलब्ध रहेगा। (४) गायत्री साहित्य स्टाल को एक परिव्राजक सम्भालेगा। (५) जहाँ तीर्थयात्री उतरते, ठहरते या भ्रमण करते हैं उन स्थानों में जाकर एक परिव्राजक, बिना मूल्य गायत्री माता के अत्यन्त सुन्दर चित्र प्राय: एक हजार की संख्या में हर दिन वितरण करेगा और उनसे गायत्री तीर्थ पहुँच कर प्रकाश प्राप्त करने का अनुरोध करेगा। इस प्रकार पाँच परिव्राजकों की ड्यूटी प्रभात की आरती से लेकर सायंकाल की आरती तक लगी रहेगी और वे अपना काम मुस्तैदी से करते रहेंगे।

यदि पाँच परिव्राजकों की ही व्यवस्था बन पड़ी तो तीर्थ को कुछ घण्टे खुलने और कुछ घण्टे बन्द होने की व्यवस्था बनाई जायगी, क्योंकि उन्हें भोजन बनाने, खाने, विश्राम करने तथा अन्य आवश्यक कार्यों की व्यवस्था के लिए भी समय चाहिए। इतने समय तक तीर्थ बन्द रखने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। जहाँ दस परिव्राजकों की व्यवस्था हो जायगी वहाँ उनकी ड्यूटी बदलती रहेगी। प्रात: की आरती से सांय की आरती तक तीर्थ बराबर खुला रहेगा। जहाँ इतना प्रबन्ध हो जाय समझना चाहिए वहाँ पूर्ण व्यवस्था है। जहाँ पाँच ही परिव्राजकों से काम चल रहा हो वहाँ समझना चाहिए कि आरम्भिक काम चलाऊ व्यवस्था ही यहाँ बन पड़ी है। दस परिव्राजकों की आवश्यकता हर तीर्थ में इसलिए भी है कि समय-समय पर उस मण्डल में अनेकों गायत्री यज्ञ एवं युग-निर्माण सम्मेलन होंगे, उनकी व्यवस्था सम्भालने के लिए भी इन्हीं तीर्थवासी परिव्राजकों में से दो-दो के जत्थे पहुँचते रहेंगे। चार को उस क्षेत्र के शिविरों आयोजनों में भेज दिया जाय तो शेष छै किसी प्रकार तीर्थ-व्यवस्था सम्भाल लिया करें। जब भीड़ के दिन हों तो दसों वहीं रहें जब भीड़ का सीजन चला जाय तो दो-दो के दो जत्थे उस मण्डल में जन-जागृति की तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़े, इससे स्थानीय व्यवस्था और क्षेत्रीय जागृति के दोनों ही उद्देश्य इन्हीं परिव्राजकों से पूरे हो जाया करेंगे।

(१) प्रज्ञावतरण के अरुणोदय का परिचय इन तीर्थ देवालयों के माध्यम से धार्मिक जगत में द्रुतगति से विस्तृत होगा। (२) परिव्राजक अभियान को विश्व-व्यापी बनाने के लिए बड़ी संख्या में भर्ती और उनके लिए सुनियोजित कार्य व्यवस्था। (३) विचार क्रान्ति के लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

युग साहित्य का जन-जन तक पहुँचाया जाना। यह तीनों ही उद्देश्य इस तीर्थ-योजना के माध्यम से एक साथ सुनियोजित ढंग से पूरे होने हैं।

इन तीर्थों में प्रतिमाओं के सम्मुख पैसे फेंकने की परम्परा को पूर्णतया निषिद्ध रखा जायगा; जो दर्शक श्रद्धाञ्जलि ने रूप में कुछ भी प्रस्तुत करेगा उसे तत्काल उससे ड्यौढ़े-दूने मूल्य का प्रसाद साहित्य आशीर्वाद रूप में और दस पैसा चढ़ाने वाले को एक गायत्री चालीसा और दो गायत्री चित्र दिये जाया करेंगे। इसी अनुपात से देव-प्रतिमा के सम्मुख चढ़ने वाली धन श्रद्धाञ्जलि की तत्काल वापिसी होती रहने से तीर्थ-यात्री की श्रद्धा में कटौती नहीं होगी वरन् वह ब्याज समेत वापिस होकर उसे तत्काल मिल जाया करेगी। तीर्थ-यात्री घर लौटते हैं तो अपने स्वजन सम्बन्धियों के लिए तीर्थ प्रसाद ले जाते हैं और उन्हें बाँटते हैं। इसके लिए "प्रसाद पैकेट" अलग से तैयार किये गये हैं, जिसमें १० गायत्री चालीसा ओर २४ गायत्री चित्र कुल मिलाकर ३४ उपहार रहेंगे, जिन्हें प्राप्त करने वाला निःसन्देह कुछ ऐसा उपलब्ध करेगा जिसे सच्चे अर्थों में तीर्थ का प्रेरणा प्रसाद कहा जा सके। इस प्रसाद वितरण परम्परा से युक्त शक्ति गायत्री के आलोक का प्रसार-विस्तार देश-विदेश के कोने-कोने में पहुँच सकना सम्भव हो सकेगा। इन चित्रों के पीछे गायत्री का महत्त्व एवं प्रयोग भी छपा होगा, जिससे उसके उपयोग की जानकारी भी इन प्रसाद प्राप्त कर्त्ताओं को उपलब्ध होती रहे।

रजत जयन्ती वर्ष में आद्य-शक्ति गायत्री का युग-शक्ति के रूप में परिचय देने वाला साहित्य मिशन के सूत्र संचालक ने नये सिरे से लिखा, उसमें अब तक के प्रतिपादनों का सारांश और जो कुछ अगले दिनों लिखा जाना है उसका सार तत्व इस नव-निर्मित साहित्य में भर दिया है। इन पुस्तकों की संख्या २० है। इन्हें गायत्री महाशक्ति के समस्त पक्षों पर अत्यन्त सारगर्भित प्रकाश डालने वाला युग साहित्य कह सकते हैं। इन २० पुस्तकों को भारत की संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में प्रकाशित करने की योजना है। मुख पृष्ठ अत्यन्त सुन्दर, नयनाभिराम रखा गया है। कागज छपाई एवं पृष्ठ संख्या की दृष्टि से इसे अपने समय का अत्यन्त सस्ता साथ ही उच्च स्तरीय साहित्य कह सकते हैं। इन पुस्तकों में से प्रत्येक का मूल्य सवा रुपया है। यह साहित्य इन्हीं गायत्री शक्ति-पीठों में बने हुए साहित्य स्टाल पर उपलब्ध रहेगा।

इस नव-निर्मित गायत्री साहित्य में लाभांश न्यूनतम रखा गया है फिर भी जो कुछ है वह विशुद्ध रूप से परिव्राजकों के निर्वाह में खर्च होगा। उसमें से एक पाई भी अन्य किसी को नहीं मिलेगी। मिशन भी उसमें से कुछ नहीं लेगा और न किसी को कमीशन मिलेगा। परिव्राजकों का निर्वाह एक आवश्यकता है। सोचा गया है यह खर्च औसतन हर परिव्राजक पीछे अनुमानतः दो सौ रुपये के करीब आवेगा। इसका अर्थ हुआ हर तीर्थ पीछे दस परिव्राजकों का व्यय सम्भवतः दो हजार रुपया मासिक पड़ेगा। इसमें से आधा खर्च साहित्य विक्रय से निकल आने का अनुमान लगाया गया है। आधा खर्च ऐसे परिजनों से मासिक रूप में प्राप्त करने का प्रयत्न किया जायगा जो इस महान् कार्य की उपयोगिता समझते हैं और स्वयं समय न पाने की स्थिति में आर्थिक सहायता करके अन्य परिव्राजकों को सहायता करना चाहते हैं।

हर तीर्थ पीछे परिव्राजकों का खर्चा क्या पड़ेगा ? उसका संकेत ऊपर की पंक्तियों में है। यह तो खर्च का एक पक्ष हुआ। हर दिन एक हजार चित्र वितरण करने की योजना है, जिसका अर्थ होता है प्रायः एक हजार रुपया मासिक। फिर इमारत में पानी, बिजली, सफाई, मरम्मत, रंग रोगन, पौधे, फर्नीचर, प्रसाद, आरती आदि के भी कितने ही खर्च हैं, जिनकी नियमित व्यवस्था बनायी जाना आवश्यक है।

कई व्यक्ति देवालय बनाने के लिए भावावेश में अत्यन्त उतावली करते हैं और भूल जाते हैं कि भावावेश में इमारत बना देना सरल है, पर इन देवालयों के पीछे पुजारी, पूजा सामग्री तथा इमारत का जो नियमित खर्च पड़ता है उसका क्या प्रबन्ध होगा ? यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जिसकी आमतौर से उपेक्षा की जाती है। फलतः आज अधिकांश देव मन्दिरों की बुरी तरह दुर्दशा हो रही है। वे टूटते नष्ट होते चले जा रहे हैं। असंख्य मन्दिरों की यही दुर्गति है। इसे देखकर उनके निर्माताओं की अदूरदर्शिता एवं एकांगी भावावेश पर तरस आता है जिसमें पैसा भी खर्च हुआ और पीछे अपयश भी सहना पड़ा। पूजा से देवता प्रसन्न होते हैं तो दुर्गति पर रुष्ट भी होते होंगे। सम्भवतः इन अदूरदर्शी देवालय निर्माताओं को स्थापित देवता का अभिशाप भी सहना पड़ता होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री तीर्थों के निर्माण की योजना अत्यन्त उच्च-स्तर से उतरी है। उसे कार्यान्वित ही शान्ति-कुन्ज से किया जा रहा है। उसका सूत्र संचालन समर्थ कन्धों पर रखा गया है। ओछे उतावले लोगों की मनोभूमि श्रेय प्राप्ति और अहंता की तृप्ति के इर्द-गिर्द ही घूमती रहती है। वे मन्दिर-निर्माता, प्रबन्धक अधिपति बनने के लिए व्यग्र दिखाई पड़ते हैं ताकि किसी आर्थिक लाभ का छिद्र ढूँढ़ सकें या आत्मश्लाघा की पूर्ति के सस्ते अवसर पा सकें। उन्हें इस बात का ध्यान भी नहीं रहता है कि उन सस्ते प्रसंगों के लिए अवसर मिले या न मिले पर इतना निश्चित है कि देवालयों के पीछे निरन्तर खर्च का भार तत्काल लद जाता है यदि उसकी पूर्ति न बन पड़े तो कल्पित श्रेय की अपेक्षा हजार गुनी-आत्मग्लानि तथा लोक-भर्त्सना सहनी पड़ती है। गायत्री शक्ति-पीठों में तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट है। चढ़ोत्तरी ही मन्दिरों की प्रधान आय रहती है, उसे इन देवालयों में जड़ मूल से काट दिया गया है। ऐसी दशा में निर्माण के दिनों जहाँ विपुल राशि लगेगी वहाँ बनने के दिन से ही भारी दैनिक खर्चा भी तीर्थ पर लद जायगा। भावावेश कुछ दिन ही उसकी पूर्ति कर सकता है। निर्माताओं की पीढ़ियाँ भी उसे वहन करती रहें, यह पूर्णतया अनिश्चित है। उपहास और अपवाद के प्रसंग खड़े होना निर्माताओं की भर्त्सना तक की ही बात नहीं है, वरन् इस सन्दर्भ में निर्देश करने वाली शक्तियों से लेकर प्रज्ञावतार तक को निन्दा का भाजन बनना पड़ेगा।

इन जटिल समस्याओं पर दूरदर्शिता पूर्वक किये गये विचार ने एक ही निश्चय किया है कि इस युग के इस महान् निर्माण कार्य का उत्तरदायित्व ब्रह्म-वर्चस् शान्ति कुन्ज के कन्धों पर ही डाला जाय। निर्माण से लेकर सदा-सर्वदा उसका भार और उत्तरदायित्व उसी के कन्धों पर लादा जाय, इस दृष्टि से भूमि खरीदने से लेकर भवन खड़ा करने, सुशिक्षित परिव्राजकों को नियुक्त करने से लेकर प्रेरणाप्रद गतिविधियों को सुसंचालित रखने तक की क्रिया-प्रक्रिया को शानदार ढंग से चलाते रहने का कार्य कर सकना जिस समर्थ तंत्र के लिए सम्भव हो सकता है, उसकी परख में शान्ति कुन्ज खोटा सिद्ध नहीं हो सकता, खरा ही उतरेगा। उसके पीछे प्रेरक और संरक्षक शक्तियों का जिन्हें आभास है, वे इस सन्दर्भ में पूर्ण निश्चित भी रह सकते हैं।

इन दिनों जमीनें खरीदने का सिलसिला आरम्भ कर दिया गया है। सम्भवत: इसी गायत्री जयन्ती से भवन निर्माण की प्रक्रिया भी चल पड़ेगी। इन्हीं दिनों इन तीर्थों से बटने और बिकने वाला प्रसाद सचित्र युग साहित्य भी तेजी से छपना आरम्भ हो गया है। हर केन्द्र पर दस परिव्राजक रहेंगे। पाँच स्थानीय व्यवस्था सम्भालेंगे और पाँच उस क्षेत्र में परिभ्रमण करके जन-जागृति उत्पन्न करेंगे। २४ शक्ति-पीठों के लिए २४० प्रशिक्षित परिव्राजक अगले ही वर्ष चाहिए। इसके लिए सत्पात्रों की ढूँढ़-खोज उन्हें साधना एवं प्रशिक्षण से उपरोक्त प्रयोजन के लिए सुयोग्य बनाना ऐसा कार्य है जिसके लिए समय चाहिए। यह कार्य भी इन्हीं दिनों आरम्भ कर दिया गया है। नाम नोट किये जा रहे हैं। जुलाई, अगस्त, सितम्बर तीन महीने इन्हीं की ट्रेनिंग चलेगी। उन्हें वक्ता गायक, साधक, मनीषी बनाने के लिए आवश्यक शिक्षा-व्यवस्था इसी जुलाई से आरम्भ कर दी जायगी और भविष्य में निरन्तर चलती रहेगी।

शक्ति-पीठों के निर्माण का संकल्प २४ की संख्या से आरम्भ हुआ है। महापुरश्चरण के लिए भी आरम्भ में इतने ही आयोजनों का संकल्प था। उतनी संख्या तो एक-एक प्रान्त ने ही पूरी कर दी, विस्तार हुआ और वह इन्हीं दिनों २४० की संख्या तक जा पहुँचा। २४ शक्ति पीठों की स्थापना आरम्भ है। हो सकता है कि अगले दिनों एक-एक प्रान्त ही इतने तीर्थ बनाने लगे और देश के १४ प्रान्तों में उनकी संख्या २४० से भी आगे निकल जाय, उसे कल्पना नहीं सम्भावना माना जाना चाहिए। इसके लिए जहाँ अर्थ-साधनों की आवश्यकता पड़ेगी, वहाँ प्रशिक्षित परिव्राजकों के जत्थों की तैयारी भी एक बहुत बड़ा काम है। २४० शक्ति-पीठों के लिए २४०० परिव्राजक चाहिये। प्रशिक्षण में इससे दूनी, चौगुनी संख्या पर परिश्रम करना पड़ेगा, तब कहीं उनमें से आधे चौथाई काम के निकलेंगे। भर्ती का क्रम अभी से आरम्भ किया जा रहा है।

आर्थिक दृष्टि से परिव्राजक कई, श्रेणियों के होंगे। कुछ पूर्ण स्वावलम्बी होंगे। अपना निर्वाह व्यय अपने संचित साधनों के सहारे चला लेंगे। कुछ के लिए भोजन वस्त्र की व्यवस्था करनी पड़ेगी। एक छोटी संख्या ऐसी भी हो सकती है जिनके आश्रित परिवार की थोड़ी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहायता करनी पड़ेगी। तीनों ही वर्ग के परिव्राजकों के लिए बौद्ध विहारों, संघारामों की तरह केन्द्रिय व्यवस्था ही रहेगी । एक-एक वर्ष में उनके स्थान परिवर्तित भी किए जाते रहेंगे। इस उत्तरदायित्व को तीर्थों के भवन-निर्माण से भी अधिक भारी और महत्वपूर्ण माना जा सकता है। अलग-अलग श्रेय पाने के लालची अपनी ख्याति और प्रमुखता के लिए आतुरता प्रकट कर सकते हैं, पर उन्हें समझना और समझाना होगा कि मात्र भवन-निर्माण ही एक कार्य नहीं है—परिव्राजकों का प्रशिक्षण, निर्वाह व्यय एवं मन्दिर के अन्यान्य खर्चे स्थानीय होंगे और उनका प्रबन्ध सदा सर्वदा के लिए कर सकना उनके बल-बूते की बात नहीं है। इतना बोझ तो समर्थ कन्धे ही वहन कर सकते हैं।

भूमि खरीद और भवन-निर्माण के लिए इन्हीं दिनों कार्य आरम्भ किया जा रहा है। इसके लिए उदार धर्म-प्रेमियों के अन्तःकरणों को भी सहायता के लिए उदार हाथ बढ़ाने के लिए वही शक्ति प्रेरणा देगी जिसके निर्देश पर यह योजना बनी है। शक्ति-पीठों की इमारतों का ढाँचा प्रायः एक जैसा बना है। भूमि की लम्बाई-चौड़ाई के अनुरूप ही उसमें परिवर्तन तो होते रहेंगे, पर सामान्य रूप-रेखा यही है। जिसकी ६० फुटX८० फुट की अर्थात् ५००० वर्गफुट के करीब जमीन घेरी गई है। इस निर्माण में न्यूनतम डेढ लाख रुपये की लागत कूती गई है। कोई ऐसे समर्थ भी हो सकते हैं जो अकेले ही इस भार को उठालें। कई मित्र मंडलियाँ परस्पर मिलजुल कर एक तीर्थ का प्रबन्ध कर सकती हैं। तीन मंजिल में से एक-एक मंजिल की व्यवस्था भी कुछ लोग कर सकते हैं, जिनके साधन हैं वे भी ईंट, सीमेन्ट, लोहा, लकड़ी आदि का प्रबन्ध कर सकते हैं। इन दिनों मोटे रूप से ईंटें २०० रु. प्रति हजार, सीमेण्ट २५ रु. प्रति बोरी, लोहा २०० रु. क्विन्टल, लकड़ी ४० रु. प्रतिघन फुट के भाव बिकती है। इसमें से जो जितना हाथ बँटा सके उतना उदार सहयोग प्रस्तुत करे। इन तीर्थों के माध्यम से धर्म-चेतना के विस्तार की महती सम्भावना को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अर्थ साधकों का इससे अच्छा सदुपयोग कदाचित ही अन्यत्र कहीं सम्भव हो सकता है। हर शक्ति-पीठ में नौ प्रतिमाएँ होंगी। प्रथम आद्य-शक्ति की एक बड़ी प्रतिमा तीन फुट ऊँची रहेगी। साथ ही यह गायत्री मंत्र के ९ शब्दों से सम्बन्धित ९ शक्तियों की प्रतीक होगी। ८ कक्षों मे आठ छोटी गायत्री प्रतिमाएँ २ फुट की रहेंगी। उनकी प्रतिष्ठापना दीवारों के सहारे की जायगी। उनके नाम हैं क्रमशः (१) आद्य-शक्ति (२) सावित्री (३) कुण्डलिनी (४) सरस्वती (५) लक्ष्मी (६) दुर्गा (७) वेदमाता (८) देवमाता (९) विश्व माता।

आद्य-शक्ति की बड़ी प्रतिमा की लागत लगभग तीन हजार एवं उसके मन्दिर की लागत लगभग दस हजार रुपये होगी। शेष आठ प्रतिमाओं में से प्रत्येक की न्यूनतम लागत, मन्दिरों सहितदो हजार रुपये से कम नहीं पड़ेगी। श्रद्धालु अपनी स्थिति के अनुरूप इनमें से एक-एक की स्थापना अपनी ओर से तथा अपने साथी-सहयोगियों के सहकार से पूरी कर सकते हैं। कुछ हजार ईंटें, कुछ बोरी सीमेण्ट तो सामान्य स्थिति के व्यक्ति भी किसी प्रकार कर सकते हैं। ऐसे ही उदार सहयोगियों से आशा, अपेक्षा की गई है। विश्वास है कि परिवार की प्रतिभाएँ जो स्वयं कर सकेंगी वह स्वयं तो करेंगी, साथ ही यह भी एक बड़ा काम है कि सम्पन्नता एवं उदारता का जहाँ समावेश हो वहाँ तक उस उच्चस्तरीय पुण्य परमार्थ की जानकारी पहुँचाई जाय और जहाँ सम्भव हो वहाँ परामर्श प्रोत्साहन से लेकर आग्रह करने तक में कमी न रहने दी जाय।

गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण का, प्रज्ञावतार की युगान्तरीय चेतना का विश्व विस्तार होना सुनिश्चित है। इस स्थापना में युग धर्म की झाँकी की जा सकती है। इस सेतुबन्ध में हर रीछ-वानर को अपने हिस्से की लकड़ी पत्थर प्रस्तुत करना चाहिए। जो अंगद, हनुमान की, नल-नील की भूमिका निभाने में समर्थ है, उनके लिए अधिक साहस करने का यह अवसर अनुपम है।

नवोदित तीर्थों के स्थान और पृष्ठभूमि

गायत्री तीर्थों की स्थापना का कार्य लगता तो ऐसा है माना कोई नया प्रगास है, पर वास्तविकता यह है कि यह ऋषिप्रणीत तीर्थ परम्परा का जीर्णोद्धार मात्र है। इसे चिर-पुरातन का चिर-नवीन के साथ नये सिरे से किया गया गठबन्धन मात्र कह सकते हैं। इस अभिनव प्रयत्न में वे सभी तत्व कूट-कूट कर भरे हैं जिनसे उन मूल प्रयोजनों की पूर्ति हो सके जिसे ध्यान में रख कर तत्वदर्शी महामनीषियों ने यह अत्यन्त दूरदर्शिता पूर्ण योजना, धर्म धारणा को जीवन्त एवं ज्वलन्त रखने के लिए बनाई थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसतुत योजना के तीन अंग हैं—(१) स्थानों का चयन एवं भवनों का निर्माण (२) उनके द्वारा उनमें संचालित रहने वाली गतिविधियों का निर्धारण (३) संचालनकर्त्ता परिव्राजकों का प्रशिक्षण एवं निर्वाह। इन तीनों ही दिशा-धाराओं को गंगा, यमुना, सरस्वती के मिलन का संगम कह सकते हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्ना के मिलने से जागृत होने वाली युगान्तर चेतना के रूप में उभरने वाली कुण्डलिनी का विश्व जागरण भी इसे माना जा सकता है। सत् भावना में सत्यं, विचारणा में शिवम् और क्रिया में सुन्दरम् का प्राण, संचार करने वाली इसे गतिशील गायत्री कह सकते हैं। देखने सुनने में यह कोई भवन निर्माण जैसा कार्यक्रम लगता है, किन्तु वस्तुतः इसे धर्म चेतना का रक्त संचार करने वाली महाधमनी में अड़े हुए अवरोध को हटाने वाला एक अद्‌भुत शल्य प्रयोग ही समझा जाना चाहिए और विश्वास किया जाना चाहिए कि इसके दूरगामी परिणाम होंगे। युग-निर्माण अभियान को उछाल देने की इसे ऐसी तैयारी कहा जा सकता है, जैसी कि अन्तरिक्षीय राकेट भेजने के लिए उस यान को उछाल देने वाली प्रचण्ड ऊर्जा जुटाते समय की जाती है।

प्रथम प्रयोजन है स्थानों का चुनाव। इसके लिए उन सभी बातों को ध्यान में रखना होगा जिन्हें प्राचीन काल के ऋषियों ने ध्यान में रखकर उपयुक्त क्षेत्रों का चयन किया था। इस निर्वाचन में उन्होंने कई बातों का ध्यान रखा है यथा—

(१) ऐतिहासिक प्रेरणाएँ—जिनकी स्मृति दिलाने पर आगन्तुकों की भावनाएँ उछलने लगें और महान् पूर्वजों के चरित्रों-प्रेरणाओं एवं निर्देशों को अपनाने के लिए उत्साह उमंगे। महानता को अपनाने वाले महामानवों के प्रति श्रद्धा उमंगे। उनके प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति के लिए श्रद्धाञ्जलि चढ़े। अनुसरण एवं अनुगमन का भाव उठे।

(२) जलवायु की दृष्टि से—उन स्थानों की विशेषता हो। वहाँ कुछ समय निवास करने वालों को प्रकृति विशेषता एवं वातावरण की उपयुक्तता का लाभ मिलें।

(३) धर्म प्रचारकों को जनजागरण प्रक्रिया में सहायता देने वाले साधन जहाँ स्थानीय एवं क्षेत्रीय सहयोग से सरलता पूर्वक उपलब्ध हो सकें।

(४) धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए विभाजित क्षेत्रों का जहाँ एक मण्डल केन्द्र बन सके।

(५) जहाँ अधिक जन सम्पर्क बन सके तथा जहाँ आवागमन की यातायात सम्बन्धी सुविधा हो।

प्राचीनकाल में इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए तीर्थों का निर्धारण किया गया था। गायत्री तीर्थों के लिए स्थानों का चयन करते समय भी इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखा गया है। परम्परागत तीर्थों वाले स्थान इस दृष्टि से अधिक उपयुक्त माने गये हैं। ऋषियों के चयन इस दृष्टि से बहुत ही उपयुक्त थे। उन्होंने महामानवों के व्यक्तित्वों की एवं प्रेरणाप्रद महान घटनाओं की ऊर्जा का बाहुल्य जिस भूमि में अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा वहाँ उन्होंने तीर्थ निर्माण की योजना बनाई और समर्थ लोगों को प्रेरणा देकर उसकी पूर्ति कराई। साथ ही यह भी ध्यान में रखा कि इसके अतिरिक्त अन्य चार प्रयोजन भी वहाँ पूरे हो सकते हैं या नहीं। जहाँ उपयुक्तता देखी वहाँ ध्वजा गाढ़ी और व्यवस्था बनाई।

गायत्री तीर्थों के नव-निर्माण में उस पूर्व परम्परा का अनुसरण करना अधिक सरल है। इन स्थानों में धर्म कृत्य श्रद्धा-अश्रद्धा से किसी प्रकार होते ही रहते हैं और उनका प्रभाव भूमि को प्रभावित किये बिना नहीं रहता। हर तीर्थ के पीछे ऐतिहासिक सत्प्रयत्नों की भूमिका है। वहाँ धर्म प्रयोजनों के लिए अनेकों व्यक्ति सहज ही आते रहते हैं। इनमें सम्पर्क साधनों में प्रचलित प्रवाह के कारण सरलता रहेगी। नव-सृजन के लिए धर्म-चेतना सम्पन्न व्यक्तियों को अग्रिम पंक्ति में आना होगा। धर्म तन्त्र से लोक-शिक्षण की प्रक्रिया को अग्रगामी बनाने के लिए ऐसे व्यक्तियों का सहयोग अपेक्षित है; जिनमें इस प्रकार के संचित संस्कार विद्यमान हों। इन्हें कहाँ से ढूँढ़ा जाय। वन्य प्राणियों को तलाशना हो तो जलाशयों के निकट जाना चाहिए जहाँ वे प्रायः पानी पीने के लिए झुण्ड के झुण्ड आते रहते हैं। धर्म-चेतना युक्त व्यक्ति कभी न कभी, किसी न किसी क्षेत्र में किसी न किसी उद्‌देश्य से प्रायः पहुँच ही जाते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों पर उन्हें तलाश करने की अपेक्षा एक ही स्थान पर ढूँढ़ खोज जारी रखी जाय और सम्पर्क बनाकर सुसंस्कारित का पता लगाया जाय तो निश्चित रूप से वर्त्तमान तीर्थों वाले स्थान अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति अधिक आसानी से कर सकते हैं।

तीर्थ-यात्रियों को गायत्री माता का छोटा चित्र वितरण करते रहने तथा स्थानीय गायत्री तीर्थ में पधारने का आमन्त्रण देते रहने से वहाँ भी सहज ही यात्रीगण पहुँचेंगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हें इस देवालय में स्थापित गायत्री की नौ प्रतिमाओं का दर्शन कराते हुए धर्म-चेतना की नौ दिशा-धाराओं का परिचय कराने के लिए नियुक्त मार्ग दर्शक प्रसंग की जानकारी कराते रहें तो आगन्तुकों को प्रज्ञावतार की दैवी भूमिका तथा उसके लोक व्यवहार में उतरने की सुखद प्रतिक्रिया की जानकारी कराई जाय तो निश्चित रूप से हर दर्शक को एक ऐसी जानकारी मिलेगी जिसे प्राप्त करने से तीर्थ यात्रा की सार्थकता होती है।

इन स्थापित तीर्थों में हर यात्री की गायत्री सन्दर्भ की जिज्ञासाओं के समाधान की नियमित व्यवस्था रहेगी। जो कुछ अधिक जानना चाहेंगे उन्हें सत्कार पूर्वक बिठाया जायगा और पूरे मनोयोग से इस तत्वज्ञान का परिचय कराया जायगा। इस प्रकार दर्शनार्थी देवालय की झाँकी करने में भगदड़ मचाने एंव रेल-पेल करने की अपेक्षा शान्त चित्त से कुछ समय बैठने, शीतल जल आदि का सत्कार पाने एवं आत्मीयता पूर्वक विस्तृत जानकारी प्राप्त करने पर ऐसा अनुभव करेंगे कि उन्हें तीर्थ परम्परा के प्राचीन स्वरूप की झाँकी हो रही है। गायत्री तीर्थों में नियुक्त मार्ग-दर्शकों द्वारा नौ प्रतिमाओं का परिचय कराने, समाधान कक्ष में नियुक्त समाधानी द्वारा सत्कार पूर्वक जिज्ञासाओं के समाधान के साथ-साथ वह सब कुछ बताया जा सकता है जो जन-मानस के परिष्कार एवं उत्कृष्टता की परम्परा प्रचलित करने के लिए आवश्यक है।

परम्परागत तीर्थों में धर्म रुचि के लोगों के अनायास ही पहुँचते रहने के कारण उनसे सम्पर्क साधना और युग चेतना से अवगत कराना अपेक्षाकृत अधिक सरल रहेगा। नये स्थानों पर इस रुचि के व्यक्तियों को खोजने में नये सिरे से प्रयत्न करने पड़ेंगे।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए गायत्री तीर्थों के निर्माण का प्रथम चरण यही है कि प्रख्यात तीर्थों को प्राथमिकता दी जाय। भारत में हजारों तीर्थ हैं। उनमें से चुना उन्हें जाय जहाँ धर्म-प्रचार का एक क्षेत्र बन सके। स्थापना के स्थान एक दूसरे से अति निकट नहीं। घोषित २४ स्थानों में उपयुक्त सभी आवश्यकताएँ बहुत हद तक पूरी होती हैं।

तीर्थों के प्रति जन-साधारण के मन में अवज्ञा का भाव भरता और बढ़ता जा रहा है यह खुली सच्चाई है। दर्शकों में तीर्थ वृद्धि कम और पर्यटन प्रवृति की ही अधिकता रहती है। इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि मन्दिरों में चढ़ने वाले पैसों का परिमाण दिन-दिन घटता जाता है, यद्यपि भीड़ में निरन्तर बढ़ोत्तरी ही हो रही है। इसका कारण है तीर्थ संचालकों द्वारा दर्शकों की बेतरह जेब काटने की प्रवृत्ति और इन संस्थानों की अनुपयोगिता। ईसाई धर्म संस्थानों में कितनी ही रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलती हैं। फलतः उनके प्रति विचारशील अनुयायियों की श्रद्धा घटती नहीं, बढ़ती ही जाती है। अपने तीर्थों में दान के धन पर कुछ लोगों को गुलछर्रे उड़ाते भर ही देखा जा सकता है। इसी दशा में जन-विवेक को झुठलाया नहीं जा सकता। अन्ध-श्रद्धा को फुसला लेना एक बात है और विचारशील वर्ग के सम्मुख उपयोगिता प्रमाणित करके उनकी आन्तरिक श्रद्धा अर्जित करना दूसरी। कहना न होगा कि आज के तीर्थ इस कसौटी पर खरे सिद्ध नहीं हो रहे हैं। फलतः उन्हें देखने के लिए बहुतों के पहुँचते रहने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके आगमन का श्रम भावश्रद्धा में बदलने में अभिवृद्धि करके वापिस लौटा। यदि ऐसा नहीं हो सका तो तीर्थ यात्रा का प्रयोजन कहाँ पूर्ण हुआ ?

अनुपयुक्तता के कारण बढ़ती अश्रद्धा को कलियुग का प्रभाव या नास्तिकता का दौर कह कर आत्म-प्रवंचना तो की जा सकती है, पर उससे उस दुःखद सम्भावना की रोकथाम नहीं हो सकती, जिसमें तीर्थ तत्व की अनुपयुक्तता के कारण तिरस्कार एवं आक्रोश के तत्व निरन्तर बढ़ते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यह क्रम चलता ही रहा तो कुछ दिन पश्चात् तीर्थ परम्परा का रहा बचा प्राण भी निकल जायगा और उन्हें मात्र कौतूहल की दृष्टि से ही देखने जाने की विडम्बना भर बच जायेगी।

सही उपाय यही है कि वर्तमान तीर्थ वस्तुस्थिति को समझते और समय से पूर्व ही जग कर अपना रवैया बदलते। ईसाई मिशनों का अनुकरण करते और उपलब्ध साधनों का धर्म-चेतना उत्पन्न करने वाली लोकोपयोगी प्रवृत्तियों में उपयोग करते। वर्तमान स्थिति में ऐसा सम्भव नहीं दीखता। निहित स्वार्थों की उन पर काली छाया बहुत गहरी छाई हुई है। लोभ और मोह की जंजीरों ने उनके संचालकों को इस तरह जकड़ लिया हैं कि उन्हें सुधार परिवर्तन के लिए सहमत करना असम्भव जितना ही कठिन है। प्रयत्न कर्त्ताओं ने अपनी पूरी शक्ति इस सन्दर्भ में पिछले चालीस साल से लगाई है और संकोच छोड़ कर अपनी पूर्ण पराजय स्वीकार की है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी दशा में दूसरा उपाय यही बच जाता है कि नये तीर्थ ऐसे विनिर्मित किये जायँ, जिन्हें देख कर तीर्थों को "धर्म व्यवसायियों का षडयन्त्र" कहने वालों को नये सिरे से विचार का अवसर मिले और वे यह अनुमान लगा सकें कि प्राचीनकाल में इस महान् स्थापना का क्या प्रयोजन रहा होगा और वे जिन दिनों जीवन्त रहे होंगे उन दिनों उनके द्वारा कितने उच्चस्तर की लोक-सेवा होती रही होगी।

तुलना का अवसर मिलने पर ही जन-विवेक को स्वस्थ समीक्षा करने और उपयुक्तता, अनुपयुक्तता के मध्य अन्तर करने की सुविधा होती है। अनुपयुक्त को कोसते रहना निषेधात्मक कृत्य है। काम उतने भर से नहीं चलेगा। उसका रचनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। अभी बढ़ती हुई अश्रद्धा की रोकथाम हो सकती है। अवांछनीयताओं का विरोध ही एक मात्र उपाय नहीं हैं उसकी तुलना में वांछनीय क्या हो सकता है ? उसका भी प्रस्तुतीकरण होना चाहिए, वरन् निषेध की प्रबलता किसी तथ्य का पूर्णतया उन्मूलन भी कर सकती है। तीर्थों के प्रति बढ़ती हुई अनास्था किसी दिन उस प्रक्रिया की जड़ें ही उखाड़ कर फेंक सकती है, भले ही उसे नास्तिकता या कुछ और कहते रहा जाय। दूर-दर्शिता इसी में है कि जिस तथ्य को जीवित रखना हो उसकी उपयोगिता समझने का अवसर भी जन-साधारण को मिलता रहे। इसी सामयिक आवश्यकता को पूरा करने में गायत्री तीर्थों की रचनात्मक भूमिका असाधारण होगी और वे तीर्थों के प्रति सनातन श्रद्धा को नष्ट होने से बचाने वाले जागरूक प्रहरी कहला सकेंगे। भले ही उन पर निहित स्वार्थों के द्वारा आक्षेप और आक्रमण होते रहें।

गायत्री तीर्थों की स्थापना के प्रथम चरण में जिन चौबीस स्थानों की घोषणा की गई है; उनका निर्धारण पत्थर की लकीर नहीं है। यह संख्या भी बढ़ सकती है और नये स्थानों का निर्धारण भी हो सकता है तभी यात्रा की योजना बनाते समय रास्ते के विराम स्थानों की भी रूपरेखा बना ली जाती है। २४ तीर्थों का संकल्प एक विराम है। आरम्भ है अन्त नहीं। यह यात्रा तो बहुत लम्बी है। लक्ष्य की चरम पूर्ति तक ऐसे-ऐसे अनेकों संकल्प बनते और पूरे होते रहेंगे। उन्हें पूरा करने के लिए वर्तमान सूत्र संचालक तो जीवित न रहेंगे, पर इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। महाकला का आवेश जिन्हें भी इस प्रयोजन को आगे बढ़ाने के लिए वरण करेगा वे साधन रहित दीखते हुए भी हनुमान अंगद और नल-नील जैसी ऐतिहासिक भूमिकाएँ सम्पन्न करते देखे जायेंगे।

संख्या की दृष्टि से चौबीस इसलिए चुने गये हैं कि प्रज्ञावतार गायत्री मन्त्र के २४ अक्षर हैं। ब्रह्मवर्चस् में बनी गायत्री शक्ति-पीठ में चौबीस प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं साथ ही चौबीस तीर्थ स्थानों पर गायत्री शक्ति-पीठें बनाने का संकल्प भी। यह एक विराम है। पंचवर्षीय योजनाएँ तो कितनी ही बन चुकीं। चौबीस महीने से चौबीस तीर्थ बनाने की योजना में से वर्तमान संकल्प को प्रथम कह सकते हैं। इसके उपरान्त भी यह सिलसिला जारी रहेगा। १०८ और २४० के अंकों को उपासना क्षेत्र में २४ की तरह ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है। तीर्थ-स्थापना की संख्या भी क्रमशः बढ़ती ही जायगी।

परम्परागत तीर्थों के अतिरिक्त जहाँ धर्म-चेतना को अग्रगामी बनाने जैसा उत्साह पाया जायगा, जहाँ के क्षेत्रीय लोग अपने यहाँ इसका महत्त्व समझेंगे और उसके लिए श्रम सहयोग प्रस्तुत करेंगे, वहाँ भी इसी श्रृंखला में नये निर्माण में सम्मिलित होते चलेंगे। यह पक्तियाँ लिखे जाते समय तक ऐसे नये स्थानों में उड़ीसा के राउरकेला और काटाभांजी दो स्थान बढ़ा दिये गये हैं और गुजरात में बारपुर तथा चाड़ोद के दो नये नाम और सम्मिलित कर लिए गये हैं। इस प्रकार २४ के स्थान पर २८ तो इस प्रथम संकल्प में ही बढ़ गये। जहाँ तीर्थ नहीं हैं, वहाँ भी नये तीर्थ स्थापित करने की गुंजायश रहने के कारण सम्भव है। २४ महीने में २४ तीर्थ बनाने का संकल्प पूरा होने के साथ-साथ संख्या की दृष्टि से इतना बढ़ जाय जिसको आश्चर्यजनक और अप्रत्याशित कहा जा सके। व्यक्ति के संकल्प अधूरे रहते हैं। महाकाल के संकल्प तो महापुरश्चरण अभियान के घोषित लक्ष्य की तुलना में बीस गुना अधिक हो जाने की तरह तीर्थ स्थापना का विस्तार भी कई गुना हो सकता है।

शक्ति-पीठ का भवन और उसका स्वरूप

गायत्री शक्ति-पीठ दो चरणों में बनेंगे। एक होगा जन-सम्पर्क और दूसरा होगा साधना सत्र। प्रथम चरण में जन-सम्पर्क वाले देवालय बन रहे हैं। इन्हें ऐसे जन-संकुल वाले सघन स्थानों में बनाया जा रहा है जहाँ यात्रियों का सहज स्वभाव आवागमन होता हो। इमारतें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विस्तार में छोटी होते हुए भी तीन मंजिली बनाई जा रही हैं । उनके मुख कलेवर-ऐलीवेशन ऐसे रखे जा रहे हैं, जो उधर से निकलने वाले को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर सकें और उसकी भव्यता को देख कर हर किसी का उसे देखने, भीतर प्रवेश करने का मन हो । प्राचीन काल में मन्दिरों के तोरण द्वार शिखर आदि सज्जा पक्षों को इसीलिए अधिक आकर्षक बनाया जाता था, कि दर्शकों की सहज रुचि को उधर मुड़ने और पहुँचने का आकर्षण बना रहे । इन पीठों में उस तथ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है । सर्वत्र तीन मंजिली इमारतें इसीलिए हैं कि उनकी ऊँचाई दूर से दीख पड़े । मुख कलेवर को अधिक आकर्षक बनाने का इसलिए ध्यान दिया गया है कि दर्शनार्थी की सहज इच्छा उसके सम्बन्ध में अधिक जानने की हो । सज्जा आवरण का यही सिद्धान्त भी है । मन्दिरों में इस तथ्य का अधिकाधिक समावेश करने की उनके निर्माताओं में सदा प्रतिस्पर्धा रही है ।

ऐसे स्थान घने ही हो सकते हैं । घनी सड़क बाजारों में ऐसी खाली जगहें मिलना अति कठिन है । वे पहले से ही घिरी होंगी, बहुत कठिनाई से ही मिलेंगी । कहीं-कहीं तो ऐसा भी हो सकता है कि पुराने मकान खरीदकर उन्हें तोड़ा जाय और उनकी जगह पर यह निर्माण किया जाय । जो भी हो अभीष्ट स्थानों में जगह कठिनाई से मिलेगी और मँहगी भी होगी । इस दृष्टि से उन्हें तीन मंजिला ही बनाया जा रहा है । जमीन कम और काम बहुत हो वहाँ तो कई मंजिली इमारतें ही बनाई जाती हैं । यही निर्णय इन निर्माणों के सम्बन्ध में है । वे सघन सड़क मुहल्लों पर ही बनेंगे ताकि जन-सम्पर्क का उद्देश्य ठीक प्रकार सधता रहे ।

दूसरे चरण में साधना सत्रों के लिए जो आश्रम बनेंगे, वे कोलाहल से दूर एकान्त शान्त प्रकृति सान्निध्य वाले स्थानों में होंगे । वहाँ उसी प्रकार के साधना सत्र चला करेंगे जैसा कि ब्रह्मवर्चस् शान्तिकुञ्ज में चलते हैं । उस क्षेत्र के साधकों, जिज्ञासुओं सृजन शिल्पियों के लिए उपयुक्त वातावरण में रह कर साधना करने और जीवन निर्माण तथा लोक-कल्याण की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता रहे । जहाँ सम्भव होगा इनमें तो यात्रियों के ठहरने की सुविधा भी रखी जायगी । यह आश्रम कहे जायेंगे और एक मंजिले ही होंगे, उनमें भव्यता आवश्यक नहीं । कुटिया बनाने से भी काम चल सकता है । यह योजना ध्यान में तो है, पर आरम्भ कहीं भी नहीं की जा रही है । एक पक्ष को पूरा करने के बाद ही दूसरा हाथ में लेने का निश्चय है । यह उचित भी है और यही सम्भव भी । धन, साधन, संचालक, व्यवस्था आदि की इतनी समस्याएँ हैं, जिन्हें ध्यान में रख कर उठाये गये कदम ही पार पड़ते हैं । आतुरता में बहुत काम हाथ में लेने पर काम एक भी पूरा नहीं होता और अव्यवस्था फैलती है । इसलिए आश्रम को बाद के लिए रखा गया है और प्राथमिकता जन-सम्पर्क वाले देवालयों को दी गई है ।

इन दिनों जो तीन मंजिले निर्माण हो रहे हैं; उनमें पहला कक्ष विशुद्ध देवालय है । दोनों ओर दो बरामदे । बीच में प्रांगण । इसमें इतना स्थान रहेगा कि प्रायः दो सौ व्यक्तियों का एक साथ आवागमन आसानी से हो सके और नवरात्रि आदि की सामूहिक साधना करनी हो तो भी उसमें दो सौ साधक एक साथ बैठ सकें । इतनी जनता का, छोटी ज्ञान गोष्ठियों का, कथा-प्रवचनों का उद्देश्य इस देवालय भाग से पूरा हो सकेगा ।

इस मंजिल में नौ मूर्तियाँ पृथक्-पृथक् कक्षों में स्थापित होंगी और इन सभी में नित्य पूजा आरती होती रहेगी । एक ही कमरे में एक साथ अनेकों मूर्तियाँ बिठा देने से स्थान तो कम घिरता है और थोड़े में बहुत कहने का कौतूहल भी पूरा हो जाता है, पर ध्यान धारणा में बाधा पड़ती है । इस दृष्टि से नौ स्थापनाएँ एक दूसरी से पृथक्-पृथक् थोड़ी-थोड़ी दूरी पर रहेंगी ।

सामने मध्य में आद्यशक्ति गायत्री की बड़ी प्रतिमा रहेगी । वही इस शक्ति-पीठ की प्रमुख अधिष्ठात्री है । इसके उपरान्त आठ उसकी अन्य शक्ति-धाराओं की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित होंगी । आद्यशक्ति के एक पार्श्व में पंचमुखी सावित्री, दूसरे पक्ष में प्राणऊर्जा कुण्डलिनी । तीनों का परस्पर सघन सम्बन्ध भी है । पंचमुखी सावित्री की पंच कोशी-दक्षिण मार्गी साधना का विज्ञान है । कुण्डलिनी को तांत्रिकी वाममार्गी—भौतिकी कहा जाता है । एक ज्ञान की देवी है, दूसरी विज्ञान की । आद्यशक्ति गायत्री इन दोनों की अधिष्ठात्री है ।

सामने तीन प्रतिमाएँ तीन-तीन दोनों बरामदों में रहेंगी । एक कक्ष में ब्राह्मी-वैष्णवी, शाम्भवी । दूसरे में वेदमाता, देवमाता, विश्वमता । ब्राह्मी, वैष्णवी शाम्भवी को ही सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा कहा जाता है । मध्यवर्ती आद्यशक्ति की प्रतिमा तीन फुट ऊँची और अन्य आठ दो-दो फुट ऊँची होगी । आद्यशक्ति का मध्यवर्ती सिंहासन परिपूर्ण होगा । शेष आठ दीवारों में बने सिंहासनों पर प्रतिष्ठापित की जायेंगी । नीचे कमल का सिंहासन, ऊपर छत्रकलश यदि सीमेण्ट के बने होंगे और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधे कटे हुए जैसे दिखाई पड़ेंगे। दीवार में प्रतिमाओं की प्रतिष्ठापना इसी प्रकार होती है।

देव प्रतिमा पर पैसा चढ़ाने की रोक रहेगी। दर्शनार्थी नमन वन्दन करेंगे। पुष्प चढ़ा सकेंगे। जो पैसा देना चाहेंगे उन्हें तत्काल उसके बदले में गायत्री प्रसाद साहित्य दे दिया जायेगा। इसके लिए प्रवेश द्वार की बगल में एक छोटा स्टाल भी रहेगा।

दर्शनार्थियों को प्रतिष्ठापित नौ प्रतिमाओं का तत्त्व ज्ञान, स्वरूप एवं प्रयोग समझाने के लिए एक गाइड नियुक्त रहेगा। दर्शनार्थी मात्र प्रतिमाओं को देख कर ही वापिस नहीं चले जायेंगे वरन् उनके विभिन्न स्वरूपों के माध्यम से गायत्री विद्या का सुनिश्चित परिचय भी इतने थोड़े समय में सार रूप में प्राप्त कर लिया करेंगे। दर्शन और शिक्षण के दोनों उद्देश्य ठीक तरह पूरे होते रहें यह योजना पहले से ही बनाकर रखी गई है।

ऊपर की दूसरी मंजिल में जाने के लिए प्रवेश द्वार की बगल से ही जाना रहेगा। जो दर्शनार्थी गायत्री विद्या के सम्बन्ध में अधिक जानना चाहेंगे, उन्हें ऊपर बने सत्संग भवन में पहुँचा दिया जायगा। यहाँ एक समाधानी परिव्राजक इसके लिए सदा प्रस्तुत रहेगा। जिज्ञासुओं की हर जिज्ञासा का सुविस्तृत समाधान यहाँ हर किसी को उपलब्ध रहेगा। यह सत्संग कक्ष बीच की मंजिल के दो तिहाई भाग में बना होगा। एक-तिहाई में पाँच परिव्राजकों के निवास, नित्यकर्म, भोजनालय आदि की सुविधा रहेगी। दोनों विभाजित होंगे। मंजिल एक होते हुए भी सत्संग वालों को परिव्राजक निवास की जानकारी मिलेगी और उनके निवास क्रम में भीड़ के कारण कोई व्यतिक्रम न पड़ेगा।

तीसरी मंजिल को अतिथि-गृह समझा जाना चाहिए। इसमें तीन और तीन बड़े बरामदे होंगे, जिन्हें आवश्यकतानुसार अलग-अलग काट देने पर आठ कमरों के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। शक्ति पीठ में आगन्तुक अतिथि भी पहुँचते ही रहेंगे। इनके निवास, भोजन, शौच स्नान आदि की सुविधा इस तीसरी मंजिल पर रहेगी। दैनिक हवन भी इसी मंजिल की खुली छत पर होता रहेगा।

इस प्रकार तीनों ही मंजिल मिलकर शक्ति-पीठ के विभिन्न, त्रिविधि उद्देश्यों को पूरा करती रहेगी। देवालय, सत्संग भवन, परिव्राजक निवास, अतिथि गृह के चारों ही उद्देश्य जिस कुशलता से छोटी-सी इमारतों में पूरे किये जायेंगे, उसे देखते हुए यही कहा जा सकता है कि इस निर्माण की एक-एक इन्च भूमि का परिपूर्ण सदुपयोग होगा। फालतू समझा जाने योग्य स्थान इससे कहीं भी दृष्टिगोचर न होगा।

सामने प्रवेश द्वार के आगे बारह फुट जगह खाली छोड़ी गई ताकि उसमें कुछ फूल-फुलवारी, लॉन आदि लग सकें और आवश्यकतानुसार कोई वाहन भी उस में खड़ा हो सके। अन्य तीनों और न्यूनतम छः-छः फुट खाली जगह छोड़ी गई है। ताकि प्रकाश एवं हवा भीतर पहुँचने में बाधा न पड़े। इस खाली जगह में नीचे फूलों के गमले रहेंगे और ऊपर की मंजिल में बालकनी छजली-बाहर निकली रहेगी। उनसे शोभा भी होगी और सुविधा भी।

साधारणतया इन शक्ति-पीठों के लिए ६० फुट चौड़ी और ८० फुट लम्बी जमीन से काम चल जायगा। पाँच हजार वर्ग फुट पर्यात है। जहाँ न्यूनाधिक मिलेगी वहाँ उसके अनुरूप घट-बढ़ की जायगी, पर मोटी रूपरेखा यही रहेगी जो ऊपर बताई गई है। अभीष्ट प्रयोजन इतने स्थान के बिना पूरे होते नहीं हैं।

लागत डेढ़ लाख रुपये की कूती गई है। इसी में भूमि खरीदना तथा नौ प्रतिमाओं की लागत भी सम्मिलित है। अलग-अलग जगहों पर वस्तुओं के, मंजूरी के दाम अलग-अलग होते हैं, इसलिए इसमें न्यूनाधिकता भी हो सकती है। यह लागत हरिद्वार और मथुरा का औसत निकाल कर कूती गई है।

जहाँ साधन कम होंगे वहाँ दो मंजिली इमारतें भी बन सकती हैं। तीसरी मंजिल पर बनने वाले अतिथि कक्ष को छोड़ा जा सकता है, देवालय का बीच का आँगन बिना पटा, खुली छत का रखा जा सकता है। ऐसी दशा में इनकी लागत घट कर एक लाख भी हो सकती है। प्रतिमाएँ तथा जमीन तो तीन मंजिली दो मंजिली इमारतों में समान ही रहेगी। इसलिए लागत में पचास हजार से अधिक की कटौती नहीं हो सकती है।

कोई उदार मन डेढ लाख रुपये की लागत स्वयं अपने परिवार से वहन कर सकेंगे तो निर्माता के रूप में उनके नाम का पत्थर लगेगा और रंगीन फोटो भी लगा रहेगा। जहाँ संग्रह करना पड़े वहाँ पाँच हजार से ऊपर देने वालों के भी स्मृति पटल पत्थर लगाये जायेंगे। यों मुट्ठी-मुट्ठी सहयोग तो इनमें अनेकों धर्म-प्रेमियों का रहेगा। जिनसे सहयोग का अनुरोध किया जायगा, उनस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईंट-सीमेण्ट, लोहा-लकड़ी आदि सामग्री देने की बात कही जायगी। एक-एक दो-दो रुपपों से तो कहाँ तक इतनी बड़ी राशि संग्रह कर सकना सम्भव होगा।

शक्ति-पीठों की उत्साहवर्धक विस्तार-प्रक्रिया

युगान्तरीय चेतना उत्पन्न करने में तीर्थों और शक्ति-पीठों की भूमिका अति प्राचीन काल से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। इतिहास साक्षी है कि भगवान् राम ने लंका विजय के लिये प्रस्थान से पूर्व रामेश्वरम् की प्राण प्रतिष्ठा की थी। भगवान श्री कृष्ण जी का उत्तर कालीन जीवन शक्ति पीठों की स्थापना में ही बीता। श्री डाकोर जी, द्वारका जी आज भी उनके उसी चरित्र की गाथा गाते हैं। भगवान् बुद्ध को संघारामों का व्यापक अभियान ही चलाना पड़ा था। जगद्गुरु शंकराचार्य ने चार धामों की स्थापना करके ही वैदिक धर्म की पुनर्स्थापना में सफलता प्राप्त की थी। युग परिवर्तन के पीछे शक्ति-पीठों की बड़ी भूमिका रहने वाली है । इन स्थापनाओं की मूल प्रेरणा भले ही ईश्वरीय रही है, पर उनकी पूर्ति का यश नन्हें-नन्हें रीछ-वानरों को, मान्धाता जैसे महा धर्म परायण आत्माओं को और अपनी सम्पत्ति सार्थक बनाने की कामना रखने वाले श्रेष्ठि वर्ग को ही रहा है। उनका सहयोग पाकर ही परमात्मा की प्रेरणाएँ साकार हुई और जन-श्रद्धा का आधार बनीं।

प्रज्ञावतार की प्राण-प्रतिष्ठा शक्ति-पीठों के रूप में हो, महाकाल का यह संदेश बसंत पर्व पर अवतरित हुआ। फरवरी माह में उसकी रूपरेखा बनकर तैयार हुई और मार्च माह से ही हमारे प्राणवान् परिजनों ने संकल्प ग्रहण करने प्रारम्भ कर दिये। हमारे साधन विहीन बालक इतने बड़े उत्तरदायित्व उठा सकेंगे हमें उसकी उतनी कल्पना नहीं थी, किन्तु हनुमान की समुद्र छलाँग की तरह भावनाओं का प्रवाह उमड़ा तो वह तरंगें ही भरता चला गया, उसे रोक पाना सम्भव नहीं रहा। अनुरोध पीछे किया गया, जिनके अन्तःकरण हमारे साथ जुड़े रहते हैं उन्हें पूर्वाभास पहले ही हो गया था यह स्वान्तानुभूतियाँ परिजनों ने आकर सुनाई तो पूज्य गुरुदेव की आँखों से इस सघन आत्मीयता का स्मरण कर आँसू बह निकले। यह दृश्य देखकर इतिहास के वह क्षण साकार प्रतीत हुये जब युगान्तरीय सत्ता को उनकी सहायक देवात्मओं ने इस तरह के श्रद्धा सुमन चरणों में समर्पित किये थे।

यह पंक्तियाँ मार्च के अन्तिम क्षणों में चैत्र नवरात्रि, नवीन संवत्सर के प्रारम्भ में लिखी जा रही हैं। अब तक २४ शक्ति-पीठों के संकल्प हो चुके हैं और जिन-जिन परिजनों ने उसके लिये संकल्प लिये उन्हें श्री गणेश अनुदान राशि के रूप में एक-एक हजार रुपये यहाँ से दे दिये गये हैं। शेष व्यवस्था जुटाने का पुण्य कार्य इन परिजनों ने तत्काल प्रारम्भ कर दिया है।

इन संकल्पित २४ स्थानों में १४ तो वही तीर्थ हैं जिनकी पूर्व घोषणा की जा चुकी है। जिन दिनों यह संकल्प हो रहे थे उन्हीं दिनों अपने अनेक समीपवर्ती परिजनों ने उनके स्थानों में भी शक्ति-पीठ स्थापित करने का आग्रह किया । जो स्थान तीर्थ नहीं है, किन्तु वे भविष्य में चार धामों की तरह अत्यन्त प्रभावशाली तीर्थ सिद्ध हो सकते हैं। ऐसे तीर्थ परम्परागत तीर्थों में व्याप्त बुराइयों से मुक्त होने के कारण जन-श्रद्धा को भली-भाँति अभिसंचित किये रख सकते हैं । इस तथ्य को स्वीकार किया गया, फलस्वरूप १० स्थान ऐसे भी निर्धारित हुये जो न तो परम्परागत तीर्थ ही हैं और न घोषित स्थान। घोषित स्थानों में शेष रहे हैं उनके भी संकल्प पूर्ण होते रहेंगे। इसमें किसी तरह का व्यवधान उपस्थित नहीं है, वह भी पूरे होंगे, किन्तु केवल वही स्थान बने रहें इस पूर्वाग्रह को त्यागा जा रहा है। आखिर यह स्थान भी तीर्थ बनने से पूर्व सामान्य स्थल ही तो रहे होंगे। अतएव इस तरह के स्थानों में भी शक्ति-पीठों की स्थापना का अन्तिम निर्णय ले लिया गया है। इस सम्मिलित प्रक्रिया को २४-२४ के कई चरणों में पूर्ण करते हुय लक्ष्य को २४० तक पहुँचाने की कल्पना अब कुछ ही समय में साकार हो जाने वाली है। मार्च माह में जिन परिजनों ने संकल्प लिये, जहाँ शक्ति-पीठ स्थापना का निश्चय हुआ, वहाँ किस, तरह साधनों की व्यवस्था हुई उसके विवरण एकत्र किये जा रहे हैं, उन्हें अगले अंक में छापा जायेगा उससे परिजन जन-मानस में संवेदनाओं के उभार का स्पष्ट अनुदान करेंगे और यह देखेंगे कि प्रज्ञावतार अपना प्रकाश जन-जन के अतः करण तक पहुँचाने के लिये किस तरह सक्रिय सचेष्ट हैं ।

इन नव-निर्मित शक्ति-पीठों का महत्त्व असाधारण है, इनमें स्थापित नौ प्रतिमाएँ आत्म-विकास के आधार भूत सिद्धान्तों का परिचय जन-जन को करायेंगी। आज के देवालय और तीर्थ स्थान जिस तरह जन श्रद्धा के दोहन की दुर्बुद्धि धारण किये हुय हैं उन्हें सावधान किया जायेगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और यह दिखाया जायेगा कि धर्म-श्रद्धा के नाम पर समर्पित साधनों का किस तरह लोक हित में उपयोग किया जाता रहा है और किया जाना चाहिये। वर्तमान दिनों देवालयों के पीछे इतनी बड़ी धन शक्ति लगी हुई है, जिससे एक समान्तर सरकार चल सकती है तो भी धर्म-धारण का अभिवर्धन तो दूर उल्टे धर्म-चेतना की उत्तरोत्तर अवमानता ही हो रही है। शक्ति-पीठों की स्थापनाओं को उपासना क्षेत्र में फैली हुई अराजकता के विरुद्ध खुली चुनौती कहा जा सकता है। आत्मिक प्रगति के लिये आस्थापरक एवं साधनात्मक अवलम्बन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है, किन्तु इन आधारों की शुचिता, पवित्रता और अनुशासनबद्धता भी उतनी ही अनिवार्य है। उपदेशक और उपदेश की दो सीमा रेखाएँ नहीं हो सकतीं। स्वेच्छाचारिता जितनी शासन तन्त्र की बुरी हो सकती है । धर्म तन्त्र की उससे लाख गुनी अधिक दुखद है। धर्म-चेतना के माथे पर लगे इस कलंक को यह शक्ति-पीठ ही धोकर पवित्र बना सकेंगे, इसे सुनिश्चित समझा जाना चाहिये।

शक्ति-पीठ मात्र देवदर्शन द्वारा श्रद्धा तत्व के जागरण तक सीमित नहीं रहेंगे, वरन् प्रव्रज्या अभियान उनका अविच्छिन्न अंग बनेगा, ताकि वे जन-जागरण की प्रक्रिया को निरन्तर गति प्रदान करते रहें। प्रत्येक शक्ति-पीठ में ब्रह्मवर्चस् शान्तिकुञ्ज में प्रशिक्षित पाँच परिव्राजक रहेंगे। शक्ति-पीठ के चारों ओर प्रायः ३० मील क्षेत्र के समूचे क्षेत्र में परिभ्रमण करना और जन-मानस को धर्म-लोक प्रदान करना उनके लिये अनिवार्य रहेगा। दो परिव्राजक निरन्तर इसी कार्य में जुटे रहा करेंगे। शेष तीन स्थानीय गतिविधियाँ सम्भालेंगे, यहाँ भी उनका प्रमुख उद्देश्य सत्संग, कथा प्रवचन और अन्यान्य माध्यमों से दर्शनार्थियों तथा आगन्तुक साधकों में धर्म-चेतना जागृत करना ही रहेगा।

शक्ति-पीठ तिमंजिले बनेंगे उनकी सीमा ६० × ८० फुट की होगी, लागत लगभग डेढ लाख बैठेगी, अब तक की घोषणा यही रही है। अभी तक जहाँ संकल्प हुए वह इसी घोषित आधार पर ही है। नक्शा बनाते समय किफायत का पूरा ध्यान रखा गया है । अलग से बनाने पर तो लागत दूनी तक हो सकती है, पर यहाँ अर्व सुचिता के संस्कारों का कठोरता से पालन किया जायेगा। धर्म के नाम पर दिये गये दान की एक कौड़ी को भी निरर्थक गँवाने नहीं दिया जायेगा। किन्तु आवश्यक कार्यों का समुचित निर्माण तो करना ही है। नौ मूर्तियों सहित मन्दिर, सामूहिक साधना के लिए २०० व्यक्तियों के योग्य स्थान, साहित्य स्टाल, सत्संग भवन, नित्य यज्ञ के लिए यज्ञ शाला, परिव्राजक निवास, अतिथि गृह आदि बनाने में मितव्ययिता की हद कर देने, पर भी डेढ़ लाख की लागत लग जाना सामान्य बात है।

जिन स्थानों में सम्पन्न परिजन हैं, अथवा सम्पन्न व्यक्तियों से सीधे सहयोग पाने की जिनकी स्थिति है, वहाँ ऐसे शक्ति-पीठों की स्थापना के लिए सक्रियता उभर आयी है, वह बनेंगे ही। किन्तु समय की माँग को देखते हुए यह २४ शक्ति-पीठ बहुत कम लगते हैं। यह प्रथम चरण ही तो है। आगे इस संख्या को क्रमशः १०८, २४० तक पहुँचाने की अपेक्षा की जाती है। अगली छलांग में १००८ एवं २४०० की आशा की जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। युग सैनिकों का उत्साह एवं जन-साधारण की आवश्यकता को देखते हुए यह सर्वथा उचित भी लगता है।

किन्तु एक प्रश्न साधनों का भी सामने आ जाता है। युग-निर्माण परिवार के अधिकांश परिजन आर्थिक दृष्टि से सामान्य स्तर के ही हैं। औसत भारतीय के अनुरूप जीवन जिन्होंने स्वेच्छा पूर्वक अपना रखा है, उनका सीधा सम्बन्ध सम्पन्नता से न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। अस्तु शक्ति पीठों की खर्चीली व्यवस्था बनाना उनके लिए कठिन है। यों सम्पन्न व्यक्ति हर क्षेत्र में है, किन्तु उनसे अर्थ-साधन एकत्र कर लेना हर किसी के वश की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में परिजनों के मन में अपेक्षाकृत कुछ सस्ती योजना की आकांक्षा उठ रही है। वैसे ही आग्रह या पत्र इन दिनों स्थान-स्थान से आ भी रहे हैं।

परिजनों के आग्रह पर पूरी सहानुभूति से विचार किया गया है। एक ओर भाव-भरा उत्साह एवं दूसरी ओर अर्थ-संकोच की दुविधा से उन्हें उबारना ही होगा। अस्तु विशेषज्ञों से परामर्श किए गये, आवश्यकताओं में कटौती की गयी और दूसरी श्रेणी के अपेक्षाकृत छोटे लघु शक्ति-पीठों, की रूपरेखा भी तैयार कर ली गयी। उसमें ६० × ८० फुट के स्थान पर ४० × ६० फुट भूमि से ही काम चलाया जायेगा और तीन की जगह डेढ मंजिल की इमारत ही बनायी जायेगी। इसकी लागत भी सत्तर हजार के लग-भग बैठ जायेगी। जो परिजन इतनी अर्थ-व्यवस्था के साथ निर्दिष्ट उद्देश्यों को पूरा कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकते हैं, उनके पास इन लघु शक्ति-पीठों के नक्शे भेजे गये हैं। जो चाहें वह मँगा भी सकते हैं।

अपना मिशन पिछड़े एवं अविकसित आदिवासी क्षेत्रों तक भी फैला है। वहाँ भी शक्ति-पीठों की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, किन्तु उन क्षेत्रों से इतनी धनराशि जुट सकने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। अस्तु वहाँ के लिए लघु शक्ति-पीठों से भी छोटी किसी योजना की माँग की जा रही है, जो उचित भी है, परन्तु वह फिलहाल सम्भव नहीं लगती। जगह और कम करें, पाँच की जगह दो परिव्राजक अथवा एक परिव्राजक दम्पति रख कर ही काम चलाने की बात सोचें। देहाती या कस्बों के इलाके में जमीन भी मुफ्त मिल जाय, नौ की जगह तीन मूर्तियों से ही संतोष करे, तो भी लागत तीस-पैंतीस हजार से कम नहीं लायी जा सकती। यह तृतीय श्रेणी की व्यवस्था है जो कभी भी कार्यान्वित की जा सकती है, पर यह अगले चरण की बात है।

शक्ति-पीठों का निर्माण सामान्य दृष्टि से बड़ा कठिन कार्य लगता है । वर्तमान समाज में व्याप्त अश्रद्धा एवं कृपणता को देखते हुए ही यह निष्कर्ष निकाला जाता है, किन्तु युग साधकों की स्थिति भिन्न है। उनके आँकड़े दूसरे ढंग से चलते हैं। यों तो महापुरश्चरण अभियान के विशाल यज्ञायोजन ही उनकी औकात के बाहर थे, पर जिस अदृश्य शक्ति के सहारे वे चल रहे हैं, वह असम्भव को सम्भव बनाने में पूर्ण समर्थ है। युग की माँग पर साधन एकत्रित न हों यह सम्भव नहीं। बुरी से बुरी बात यह हो सकती है कि बाहरी व्यक्ति उसका महत्त्व न समझें और चन्दा न दें, किन्तु श्रद्धा भरे अंशदान के चमत्कार का इतिहास पुनः दुहराया जाना तो असम्भव नहीं ? प्राणवान् साधन सम्पन्न परिजन अपने साधनों को सार्थक करने में साहस दिखाने में पीछे क्यों रहेंगे ?

सारे क्षेत्र में १०० या ७० व्यक्ति इतना धन दे सकने वाले अपने मिशन के प्रति आस्थावान परिजनों में ही मिल सकते हैं। एक एकड़ उपजाऊ जमीन १० हजार की हो जाती है। कोई भी खाता-पीता भावनाशील किसान इतना साहस कर सकता है। आजकल एक तोला सोना एक हजार रुपया के लगभग मूल्य का हो गया है। ७० तोला सोना थोड़ी-सी भावना सम्पन्न ग्रहणियों से ही एकत्रित हो सकता है। तन कर खड़े हो जाये तो मुट्ठी भर कृषक अथवा गिनी-चुनी महिलाएँ एक मध्यवर्ती शक्ति-पीठ के लिए साधन जुटाने में समर्थ हो सकती हैं।

भावना के धनी कर्मठ भले ही निर्धन व्यक्तियों द्वारा बड़े कार्य सम्पन्न होना कोई नयी बात नहीं । हजारों किसान का पुरुषार्थ एवं युद्ध के समय पड़े अकाल में एक बालिका द्वारा सारे नगर के बच्चों की प्राण रक्षा के प्रसंग सर्व विदित हैं। प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति इस पुण्य परम्परा का अनुगमन कर सकते हैं। सम्पन्नता एवं प्रतिभा का एक-एक अंश जुड़कर इस युग कार्य को हाथों-हाथ उठा लेगा ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए। इसे सुनिश्चित समझा जाना चाहिये।

अब यह क्रम रुकेगा नहीं

विगत बसन्त पर्व पर गायत्री तीर्थों के रूप में २४ शक्तिपीठों के निर्माण की घोषणा की गई थी। मानवी संकल्प और प्रयत्न दुर्बल होते हैं, इसलिए उनकी पूर्ति में अनेक व्यवधान उत्पन्न होते रहते हैं, किन्तु उच्चस्तरीय संकल्पों की प्रखरता अपने आप में इतनी महान् होती है कि उनकी पूर्ति में विशेष अड़चन नहीं पड़ती। दैवी अनुकूलता से परिस्थितियाँ भी अनुकूल होती जाती हैं। वैसा ही हुआ भी प्रथम विराम चरण में २४ शक्ति-पीठें बनने का लक्ष्य था। घोषणा प्रसारित होते-होते वह संख्या पूरी हो गई। यह पंक्तियाँ दिनांक २० अप्रैल, ७९ को लिखी जा रही हैं। उस दिन तक ४० गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण की व्यवस्था बन गई और गतिविधियाँ चल पड़ीं। प्रथम चरण का संख्या निर्धारण पूरा होने पर द्वितीय चरण का संकल्प १०८ निर्माणों का कर दिया गया है। सन् ७९ के अन्त तक यह संख्या भी पूरी हो जायगी और सम्भवतः सन् ८० में २४० निर्माणों का क्रम चल रहा होगा। यह प्रगति रुकने वाली नहीं है। देश और विदेशों में यह निर्माण द्रुतगति से चलेंगें और कुछ ही समय में वह स्थिति आ जायेगी जब भारत में समस्त विश्व में गायत्री की गरिमा, उपयोगिता एवं आवश्यकता से एक भी व्यक्ति अपरिचित न रहेगा। उसे शक्ति-पीठ के प्रेरणा-केन्द्रों के साथ सम्पर्क साधने के लिए बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा।

बसन्त पर्व पर संकल्प छोटा था, उसमें प्राचीन काल से चले आ रहे प्रचलित तीर्थों में ही शक्ति-पीठों के निर्माण की बात सोची गई थी। उसमें तर्कों और आग्रहों ने आवश्यक परिवर्तन करने की विवशता उत्पन्न कर दी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीन तीर्थों में धर्म-प्रेमी जनता के अनायास ही पहुँचते रहने और उन तक धर्म-चेतना की अभिनव ऊर्जा पहुँचाते रहना सरल है। इस तथ्य से कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसलिए इन निर्माणों में प्राथमिकता उन्हीं स्थानों को देने का औचित्य भी है। फिर भी उन्हीं तक सीमित हो जाने की बात परिजनों के गले नहीं उतरी। इसका एक कारण यह था कि मात्र प्राचीन तीर्थों के समीपवर्ती क्षेत्र में ही आलोक वितरण सीमित रह जाता। जहाँ चेतना के स्रोत अनायास ही उभर रहे हैं, जहाँ जागृत आत्माएँ बहुत समय से बहुत कुछ करती रही हैं और वातावरण को अनुकूल बनाया है, वहाँ शक्ति-पीठों के निर्माण का द्वार बन्द पड़ा रहे यह अड़चन सभी को आखरी और इसके लिए आग्रह प्रस्तुत किये गये कि प्राचीन तीर्थों के अतिरिक्त अन्य स्थानों को भी इस महान् निर्माण का अवसर मिले।

कहा गया कि तीर्थ अनादि नहीं है। किन्हीं महान् घटनाओं की स्मृति में ही उन्हें यह श्रेय मिला है। जहाँ नये गायत्री शक्ति-पीठ बनेंगे, वहाँ अगले ही कुछ ही दिनों में नव-तीर्थ की प्रतिष्ठा एवं मान्यता मिल जायेगी। अस्तु प्रतिबन्ध न रखा जाय। प्राचीन तीर्थों में भी निर्माण चले, किन्तु अन्य स्थानों को इसलिए वंचित न रखा जाय कि वहाँ प्राचीन काल में तीर्थ नहीं था।

इस तर्क एवं आग्रह को स्वीकार कर लिया गया है और जहाँ चेतना उभर रही है, वहाँ गायत्री शक्ति पीठें बनाने की छूट दे दी गई है। अस्तु यह पंक्तियाँ लिखे जाते समय तक घोषित चौबीस तीर्थों में से तो बारह में ही निर्माण कार्य आरम्भ हुआ है। शेष २८ नव-निर्धारित हैं। दोनों का योग मिल कर ही ४० हुआ है। उभरते हुए उत्साह को देखते हुए सन् ७९ में १०८ का लक्ष्य पूरा हो जाने की सुनिश्चित सम्भावना है।

बड़े तीर्थों में प्रथम श्रेणी के तीन मन्जिले, डेढ दो लाख की लागत वाले शक्ति-पीठों का ही निर्माण चल रहा है। सुविधा के लिए उपयुक्त स्थान भी चाहिए ही। भव्यता का अपना आकर्षण और प्रभाव होता है। छोटे कलेवर की गरिमा धर्म चक्षुओं को स्वल्प ही प्रतीत होती है। फलत: छोटी आकृति का छोटा और बड़ी आकृति का बड़ा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। देवालयों की भव्यता देखने में दूर-दर्शियों का यही उद्देश्य रहा है कि लोक-मानस पर उसकी अच्छी छाप पड़े। बड़े तीर्थों में, बड़े स्थानों पर, प्राय: इसी प्रकार के शक्ति-पीठ बनाये जा रहे हैं। इसके साथ निर्माताओं का भी बड़प्पन जुड़ता है।

इन शक्ति पीठों को तीन मंजली बनाया जा रहा है। इसके दो कारण हैं—

(१) ऊँचाई अधिक होने के करण उनकी भव्यता का आकर्षण।

(२) सघन क्षेत्रों में भूमि की कमी एवं महँगाई को ध्यान में रखते हुए थोड़े में कार्य चल जाना। यह निर्माण ऐसे सघन क्षेत्रों में सड़कों के किनारे होंगे जहाँ जन-समुदाय अनायास ही बड़ी संख्या में उधर से निकलता रहता हो। एकान्त, उपेक्षित क्षेत्र में बना देने से जन-सम्पर्क में भारी कमी रहेगी। इमारत की लागत तो उतनी ही आती है, मात्र भूमि कुछ सस्ती मिल जाती है। इतने से लोभ के लिए सदा सर्वदा के लिए जन-सम्पर्क की सुविधा से वंचित बने रहना हर दृष्टि से अदूरदर्शितापूर्ण है। धन एवं उपयुक्त स्थानों में जमीन मिलना कठिन भी है और महँगा भी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कम जगह में ऊँची इमारतें बनाने की ही नीति अपनाई गई है।

पहली मंजिलों में देवालय रहेगा। उसमें गायत्री के नौ शब्दों में सन्निहित नौ देवियों की स्थापना रहेगी। मध्य में बड़ी प्रतिमा, आद्य शक्ति की शेष आठ देवियाँ (१) सरस्वती (२) लक्ष्मी (३) दुर्गा (४) वेद माता (५) देवमाता (६) विश्वमाता (७) सावित्री (८) कुण्डलिनी की होगी। दर्शकों को इन नौ शक्तियों के साथ जुड़ी हुई उन नौ सत्प्रवृत्तियों का परिचय कराया जायेगा जिन पर व्यक्ति और समाज का सर्वतोमुखी विकास और कल्याण निर्भर है। उपासना साधना का अवधारण भी नौ भागों में विभक्त है। इन्हें किस प्रयोजन के लिए किस प्रकार अपनाया जा सकता है, इसकी जानकारी देने के लिए एक मार्ग-दर्शक सदा प्रस्तुत रहेगा। कोई भी दर्शक, मात्र देवता को प्रणाम कर पैसा चढ़ाकर वापस नहीं लौटेगा, वरन् देवालय में उपस्थित मार्ग-दर्शक द्वारा थोड़े समय में ही उतनी जानकारी एवं प्रेरणा प्राप्त कर सकेगा जिसे देखते हुए देव-दर्शन में लगे समय की सार्थकता अनुभव की जा सके।

सभी शक्ति-पीठों में एक नियम बना दिया गया है कि देव प्रतिमाओं के सम्मुख पैसा नहीं फेंका जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुलसी, पत्र, पुष्प, अक्षत, जल जैसी भाव श्रद्धाञ्जलि ही समर्पित की जा सकेगी। कोई कुछ चढ़ाना ही चाहेगा तो उतने पैसे का गायत्री साहित्य उसे तत्काल दे दिया जायगा। उदाहरणार्थ—दस पैसा देने वाले को एक गायत्री चालीसा, एक युग-निर्माण संकल्प, दो गायत्री चित्र देने का प्रावधान रखा गया है, अधिक पैसा चढ़ाने वाले को उसी अनुपात से अधिक साहित्य दिया जाया करेगा। इसे वह अपने परिचय क्षेत्र में वितरित करके गायत्री आलोक को सुविस्तृत करने में योगदान कर सकेगा।

देवालय कक्ष में प्राय: २०० व्यक्तियों के बैठने जितना स्थान होगा। इसमें इतने व्यक्ति एक समय सामूहिक जप अनुष्ठान कर सकेंगे। कथा-प्रवचन सुन सकेंगे। 'सहगान' कीर्तन का आनन्द ले सकेंगे। यह पहली मन्जिल का स्वरूप एवं उद्देश्य हुआ।

दूसरी मंजिल के दो तिहाई भाग में सत्संग भवन और एक तिहाई भाग में पाँच परिव्राजकों का निवास कक्ष रहेगा। सत्संग भवन में पुस्तकालय चलेगा। जिज्ञासुओं को परामर्श देते रहने के लिए एक समाधानी प्रस्तुत रहेगा। शाम को कथा-प्रवचन चलेगा। इन तीन प्रवृत्तियों में सत्संग भवन की सार्थकता, उपयोगिता निरन्तर बनी रहेगी।

हर शक्ति-पीठ में न्यूनतम पाँच परिव्राजक स्थायी रूप से रहेंगे।

(१) दर्शकों के लिए मार्ग-दर्शक (२) पुस्तकालय परामर्श, कथा-प्रवचन के लिए उद्बोधक (३) पूजा, आरती, साहित्य, भोजन, फूल-पौधे आदि अनेकों कार्यों में संलग्न व्यवस्थापक (४)—(५) दो परिव्राजकों का जत्था समीपवर्ती गाँवों या मुहल्लों का मण्डल बनाकर उनमें जन-जागरण की रचनात्मक प्रवृत्तियों में संलग्न प्रचारक। यह पाँचों ही परिव्राजक होंगे और अपना कार्य अदल-बदल कर करते रहेंगे। इनके निवास, नित्यकर्म, भोजन, विश्राम आदि का कक्ष दूसरी मंजिल के एक तिहाई "भाग" में होगा। सत्संग कक्ष और परिव्राजक कक्ष की दोनों ही आवश्यकताएँ इसी दूसरी मंजिल में पूरी हो जायेंगी।

तीसरी मंजिल में प्राय: आठ छोटे कमरे होंगे, इन्हें साधना-श्रम कह सकते हैं। जिन्हें गायत्री उपासना, अनुष्ठान आदि के लिए अपने घरों में सुविधा नहीं है, वे इस पवित्र वातावरण में आकर वह पुण्य प्रयोजन पूरा कर सकेंगे। आठ कमरों में एक-एक व्यक्ति बैठे तो आठ अन्यथा तीन-तीन बैठने तक की गुंजायश होने से २४ तक साधक एक साथ साधना कर सकेंगे। खुली छत पर भी कुछ के बैठने का स्थान रहेगा ही। इसी तीसरी मंजिल के खुले आंगन में यज्ञशाला रहेगी जिसमें नित्य हवन होता रहेगा।

सामने का प्रमुख द्वार इस प्रकार शानदार बनाया जायगा कि उसे देखते ही दर्शकों की आँखें वहाँ ठिठकें और मन भीतर जाकर देखने के लिए ललके। प्राचीन काल में शिखर गुम्बज जिस प्रयोजन के लिए बनते थे वह उद्देश्य इन भव्य द्वार शिल्प से और भी अधिक अच्छी तरह पूरा हो सकेगा।

सामान्यतया यह ही है गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण की रूपरेखा। कहा जा चुका है कि उसके लिए ६० × ८० फुट जमीन की आवश्यकता होगी और लागत डेढ़ से लेकर दो लाख तक की बैठेगी। प्रथम श्रेणी के बड़े तीर्थ, बड़े नगरों में इसी स्तर के विनिर्मित होंगे।

जहाँ उतनी आर्थिक सुविधा नहीं है। जमीन भी उतनी नहीं मिल रही। वहाँ छोटे द्वितीय श्रेणी के दो मंजिलें शक्तिपीठ बनेंगे। इनमें ५० × ७० फुट जमीन से काम चल जायेगा। तीसरी मंजिल न होने से साधना श्रम तो नहीं बन सकेगा, पर सत्संग, परिव्राजक निवास एवं अतिथि गृह की गुंजायश इसमें भी निकल आवेगी। इसकी लागत आधी होगी। अर्थात् पचहत्तर हजार से एक लाख तक। आकार-प्रकार में कुछ छोटापन तो रहेगा, पर उतने से भी किसी प्रकार प्रथम श्रेणी वाले निर्माण का उद्देश्य पूरा होता रहेगा। भव्यता में न्यूनता रहने पर भी, इतनी जगह में भी मूल प्रयोजन काम चलाऊ दृष्टि से सधता रह सकता है। मध्यवर्ती स्थानों में इन द्वितीय श्रेणी के शक्ति-पीठों का ही निर्माण हो रहा है।

बड़े गाँव, कस्बों एवं समर्थ शाखाओं वाले छोटे-छोटे स्थानों के आग्रहों तथा आवश्यकताओं को देखते हुए वहाँ की परिस्थिति के अनुरूप अधिक छोटे गायत्री शक्ति-पीठों की भी रूपरेखा बनाई गई है। इनमें प्रथम और द्वितीय श्रेणी की तरह नौ प्रतिमाएँ स्थापित नहीं होंगी। मात्र तीन ही रहेंगी। त्रिपदा के तीन चरणों की विवेचना एवं प्रेरणा इन तीन प्रतिमाओं के माध्यम से भी मिलती रहेगी। एक परिव्राजक परिवार स्थायी रूप से इनमें रह सकेगा और दो ऐसे समय दानी सेवा-सहायता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते रह सकें जो दिन भर काम करने के उपरान्त रात्रि को अपने घर जा सकें। कार्य-क्षेत्र का मण्डल भी इनका छोटा होगा, समीपवर्ती ग्राम, मुहल्लों की परिधि में इसका आलोक फैलता रहेगा।

तृतीय श्रेणी के शक्ति-पीठों के लिए स्थान ३७ X ४५ फुट चाहिए। इसकी लागत चालीस हजार के लगभग कूती गई है।

इमारतों की लागत हरिद्वार में बिकने वाली जमीन तथा निर्माण सामग्री के आधार पर आँकी गई है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार यदि भाव सस्ते, महँगे होंगे तो लागत कम अधिक भी हो सकती है।

यह सभी शक्ति-पीठ एक केन्द्र के नियन्त्रण में रहेंगे। अलग-अलग कमेटियों के सदस्यों की जो खींचतान चलती है वह किसी से छिपी नहीं है। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा और अहंता के साथ जुड़ी हुई क्षुद्रता ने अत्यन्त उपयोगी संस्थाओं को कलह का अखाड़ा बना दिया है। महत्त्वपूर्ण निर्माण इसी आपा-धापी के हथौड़े की चोट से टूट-टूट कर आये दिन नष्ट होते रहते हैं। स्थानीय लोगों का आधिपत्य रहने से इन उपयोगी निर्माणों की भी दुर्गति होने की आशंका बनी ही रहेगी, इसलिए इन सब को एक समर्थ केन्द्र के अन्तर्गत रखा गया है। धन संग्रह करना, निर्माण करना और भविष्य में सुव्यवस्था बनाये रहना तो स्थानीय लोगों के ही जिम्मे रहेगा, पर अंकुश हरिद्वार का रहे, इस दृष्टि से इस निर्माण का स्वामित्व शान्ति कुञ्ज का ही रहेगा। नीति, निर्धारण और मार्ग-दर्शन यहीं का चलेगा। उपयुक्त अंकुश रहने पर ही हाथी की गतिविधियाँ सही रहती हैं। घोड़े से लेकर मोटर तक की कार्य कुशलता उपयुक्त संचालक पर निर्भर रहती है। समस्त शक्ति-पीठें एक ही नियन्त्रण में चलें और उनका भविष्य उज्ज्वल बना रहे, इसका निर्धारण आरम्भ में ही कर लिया गया है।

यह केन्द्रीय नियन्त्रण इसलिए भी आवश्यक हो गया था कि प्रत्येक शक्ति-पीठ में पाँच सुयोग्य परिव्राजक रहेंगे। इसके बिना प्रतिमा की पूजा करते रहने वाले पुजारी की नियुक्ति भर से वह मान प्रयोजन सध ही नहीं सकता जिसके लिए इस निर्माण की योजना बनाई गई है। पाँच परिव्राजकों के निर्वाह का व्यय कितना हो सकता है। नित्य यज्ञ, बिजली, पानी, सफाई, मरम्मत, पूजा, सामग्री आदि का कुल मिलाकर कितना खर्चा बैठता है, इसका हिसाब लगाने पर वह राशि हर हालत में हजार रुपये से कहीं अधिक हर महीने जा पहुँचती है। इमारत बना देना सरल है, पर इतना खर्च नियमित रूप से चलते रहने के लिए स्थायी आमदनी की व्यवस्था करना अति कठिन है। उसके लिए भवन-निर्माण से भी अधिक स्थायी राशि की व्यवस्था करनी होगी। इतने पर भी नौकर, नौकर ही रहेगा। वे परिव्राजकों के आदर्श एवं उद्देश्यों का निर्वाह कर सकेंगे इसमें पूरा सन्देह है। प्रशिक्षित एवं परिष्कृत परिव्राजकों की व्यवस्था करना तो एक प्रकार से असम्भव ही है। शान्ति-कुंज का सारा ध्यान इन दिनों उच्चस्तरीय प्राणवान् परिव्राजकों को ढालने में लगा हुआ है। वह व्यवस्था अन्यत्र कहीं बन सकती है या और कोई बना सकता है इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इनकी गतिविधियों का समोवश हुए बिना देवालयों की इमारतें एक प्रदर्शनी मात्र हैं।

पाँच प्राणों का समुच्चय जीवात्मा होता है। शक्ति-पीठों की आत्मा भी पाँच परिव्राजकों में ही सन्निहित है। इन्हें शक्ति-पीठों में भेजने और उनके माध्यम से नव चेतना उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व शान्ति कुञ्ज ने सम्भाला है। इसलिए इन संस्थानों में उपयुक्त वातावरण बनाये रहने में भी उसका हस्तक्षेप रहना ही चाहिए अन्यथा खींच-तान में ऐसी अप्रिय परिस्थितियाँ बनेंगी जिससे इस निर्माण में लगे हुए सारे अनुदान निरर्थक ही चले जायेंगे। निर्धारित लक्ष्य के लिए सभी शक्ति-पीठ सूत्रबद्ध होकर कार्य करें—इसके लिए भी सशक्त केन्द्रीय नियन्त्रण एवं मार्ग-दर्शन अनिवार्य है। यही है वह कारण जिसके लिए समस्त शक्ति-पीठों का स्वामित्व और नियन्त्रण शान्ति कुञ्ज ने अपने हाथों रखा है। इसमें न तो किसी आर्थिक लाभ की बात है और न प्रभुत्व की। सारी व्यवस्था तो स्थानीय लोगों के ही हाथ रहनी है। केन्द्र को तो परिव्राजक से लेकर अन्यान्य व्यवस्थाओं में होने वाले आर्थिक बोझ ही वहन करना है। ऐसी दशा में स्थानीय प्रभुत्व का लालच किसी को भी नहीं करना चाहिए, वरन् सुयोग्य एवं समर्थ नियन्त्रण में इन संस्थानों के हर दृष्टि से सफल रहने की सम्भावना देखकर प्रसन्न ही होना चाहिए।

प्रमुख तीर्थ स्थानों में से अभी १२ और शेष हैं। बड़े नगरों में से प्रत्येक में उनके निर्माण की अपेक्षा की जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। इनमें प्रथम श्रेणी की तिमंजली इमारतें ही बननी चाहिए। जहाँ की शाखाएँ कमजोर हैं, अर्थ-प्रबन्ध की आशा कम है, वहाँ द्वितीय श्रेणी के निर्माण की बात सोचनी चाहिए। कस्बों और बड़े गाँवों की समर्थ शाखाएँ तृतीय श्रेणी की डेढ़ मंजिली एवं पैंतीस, चालीस हजार वाले निर्माण की व्यवस्था बन सकती है। मुफ्त में जमीन पाने, सरकार से पा लेने के सपने किसी को भी नहीं सँजोने चाहिए, क्योंकि इस आधार पर कहीं भी अच्छे मौके की जमीन नहीं मिल सकती। ऐसी जमीनें प्राय: जन-साधारण की पहुँच से दूर कहीं एकान्त कोने में होती हैं। सस्ती जमीन के लोभ में इमारत में लगने वाला भारी धन ऐसे ही बर्बाद कर देना और चोर, जुआरियों का अड्डा बनने के लिए छोड़ देना हर दृष्टि से अदूरदर्शितापूर्ण है। जहाँ यह निर्माण बनने हैं, वहाँ भूमि की उपयुक्तता और उसके मिलने की कठिनाई पर हजार बार विचार करना चाहिए और तभी कोई कदम आगे बढ़ाना चाहिए कि स्थान के सही चुनाव की समस्या हल हो जाय।

स्मरण रहे इन इमारतों में लगने वाली राशि दो-दो, चार-चार रुपये के चन्दे से पूरी नहीं हो सकती। ऐसे भावुक उत्साह में थोड़ा-सा ही इकट्ठा हो पावेगा और उतने से आरम्भ भर करने के उपरान्त आगे का रास्ता बन्द हो जायगा। इसमें उपहास, असन्तोष और असमंजस ही हाथ लगेगा। अस्तु इस प्रयास में प्रभावशाली साधन सम्पन्न लोगों को ही अग्रिम पंक्ति में खड़ा करना चाहिए। आज की परिस्थितियों में प्रभावशाली लोगों के के व्यक्तिगत दबाव से ही बड़ी राशियाँ कहीं से उपलब्ध हो सकती हैं। इमारत के लिये ईंट, सीमेण्ट, लोहा, लकड़ी की अमुक मात्रा ही चन्दे में माँगनी चाहिए। साधन सम्पन्न लोगों को प्रयोजन भली प्रकार समझाया जा सके और उन्हें, विश्वास दिलाया जा सके कि दिये हुए पैसों का सही सदुपयोग होगा तो कृपणता भी उदारता में बदल सकती है और खाते-पीते लोग आशाजनक सहयोग दे सकते हैं।

कुछ व्यक्ति धर्म-प्रयोजनों में कुछ कहने लायक खर्च करने का पुण्य अर्जित करना चाहते हैं। कइयों को अपनी अथवा अपने पूर्वजों की स्मृति बनाने में उत्साह होता है। कई व्यक्ति लोक-कल्याण के लिये समय तो नहीं दे सकते, पर पैसा देना चाहते हैं। कइयों को संतान की ओर से निराश होकर कुटुम्बियों को उत्तराधिकार में धन छोड़ने की इच्छा होती है। ऐसे लोगों को यह समझाया जा सके कि इन सभी प्रयोजन की पूर्ति शक्ति-पीठ निर्माण में होती है तो उनकी प्रसुप्त परमार्थ भावना जग सकती है और अपने ही समीपवर्ती लोगों में से ऐसे लोग निकल सकते हैं जो अकेले ही इन छोटे निर्माणों का श्रेय प्राप्त करने के लिये साहस जुटा सकें। साधन तो अनेकों के पास इतनी मात्रा में भरे पड़े हैं कि उन्हें निर्वाह की आवश्यकता से कहीं अधिक ही कहा जा सकता है। ऐसा धन यदि इन पुनीत निर्माणों में लग सके तो उस धनवान की, धन की, उभरे हुए साहस की और परामर्शदाता की भूरि-भूरि प्रशंसा ही की जा सकती है।

कई व्यक्ति वानप्रस्थ लेने की बात सोचते हैं। घर में साधन भी कम नहीं होते। ऐसे लोग तृतीय श्रेणी के शक्ति-पीठ अपने साधनाश्रम तथा लोक-मंगल केन्द्र के रूप में यह निर्माण एकाकी भी कर सकते हैं। उपजाऊ भूमि तीन-चार एकड़ बेचकर इतना धन उपलब्ध हो सकता है। तीस तोले सोने की कीमत भी इतनी ही होती है कि उससे तृतीय श्रेणी का शक्ति-पीठ बन सके। एक-एक मंजिल का एक एक कक्ष का खर्च देकर थोड़े से ही साधन सम्पन्न इन निर्माणों को सहज ही पूरा कर सकते हैं। कई व्यक्ति ऐसे उच्च पदों पर होते हैं कि अपने नीचे काम करने वालों से थोड़ा-सा संकेत करने भर से उतनी राशि जमा करा सकते हैं जिससे इस आवश्यकता की पूर्ति सहज ही हो सके। अनीति उपार्जित धन को रोके रख कर उसकी दु:खद प्रतिक्रिया सहने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि प्रायश्चित रूप से उसे इस पुनीत निर्माण में उत्सर्ग करके अपने ऊपर चढ़ा हुआ भार हल्का कर लिया जाय।

जिन्हें गायत्री शक्ति-पीठ की उपयोगिता प्रतीत होती हो, जिनके मन में उसके निर्माण की उमंगें उठती हों उन्हें अपने निज के साधनों की ओर सर्व प्रथम दृष्टिपात करना चाहिए और देखना चाहिये कि सामान्य निर्वाह के अतिरिक्त जो अधिक है, उसे प्रज्ञावतार के चरणों में प्रस्तुत करने का साहस जुट सकता है या नहीं। जो अपने से प्रारम्भ करेंगे उन्हें अन्यान्यों का सहयोग भी अवश्य मिलेगा। स्वयं कृपणता बरती जाये और दूसरों को उपदेश दिया जाय तो परिणाम बहुत थोड़ा ही निकलेगा। सम्पन्नता, उदारता, प्रभावशीलता जैसी विशिष्टताएँ जिनमें हों, उन पर दृष्टि दौड़ाई जाय और जो दृष्टिगोचर हो उनसे सम्पर्क साधने, तथ्य को गम्भीरतापूर्वक समझाने का प्रयत्न किया जाय तो यह आशा की जा सकती है कि वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं कुछ अच्छी सहायता कर सकेंगे और अपने प्रभाव क्षेत्र में रहने लायक संग्रह करा सकेंगे।

अर्थ-संग्रह के समान ही बुद्धि भी महत्त्वपूर्ण है कि निर्माण के लिए आवश्यक श्रम-कौशल एवं सामान जुटाने में अनुभवी तथा ईमानदार लोगों का सहयोग प्राप्त किया जाय। निर्माण कार्य भी संग्रह की तरह ही कठिन है। अनुभव हीन, आलसी, प्रमादी तथा बेईमान प्रवृत्ति के लोगों के हाथ में निर्माण सौंप दिया जाये तो समझना चाहिए कि आधे की बर्बादी होगी और जो बन सकता था उसकी तुलना में कहीं अधिक कुरूप कमजोर निर्माण बनकर खड़ा होगा। अस्तु यह प्रसंग भी बहुत ही सतर्कता का है। जिनके द्वारा निर्माण कार्य कराया जाना है, उनकी कुशलता एवं प्रामाणिकता असंदिग्ध होनी चाहिए। अन्यथा काम बनने के स्थान पर बिगड़ता ही चला जायेगा।

इन दिनों शक्ति-पीठों के स्थान चयन एवं भवन निर्माण की ही चर्चा चल रही है। युग निर्माण परिवार के परिजनों की स्थिति के अनुरूप अपने यहाँ या किसी समीपवर्ती उपयुक्त स्थान पर निर्माण की इस लहर में सम्मिलित होकर तीनों में से किसी स्तर की शक्ति-पीठ अपने समीपवर्ती क्षेत्र में बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। जो इस प्रयत्न में संलग्न हों, उन्हें भरपूर सहयोग देना चाहिए। शान्ति कुञ्ज से इस अभियान का देशव्यापी संचालन करना पड़ रहा है। परिव्राजकों के जत्थे तैयार किये जा रहे हैं। निर्माण प्रशिक्षण के उभय पक्षीय भारों को हलका करने में आर्थिक तथा दूसरे प्रकार का सहयोग दिया जा सकता है।

निर्माण प्रयासों का अधिकांश कार्य सन् ७९-८० में पूरा हो चुकेगा। इस अवधि में सुयोग्य परिव्राजकों के जत्थे भी इन निर्माणों में प्राण भरने के लिए कार्य-क्षेत्र में उतरने योग्य हो जायेंगे और क्रमशः सौंपे हुए सृजन प्रयोजनों को अधिकाधिक व्यापक बनाने में तत्पर दृष्टिगोचर होने लगेगा। तीर्थ-यात्रा एवं धर्म-चेतना का सम्मिश्रित उद्देश्य प्रव्रज्या अभियान से पूरा होता है। गायत्री शक्ति-पीठों को प्रज्ञावतार की क्रीड़ा स्थली इसी दृष्टि से कहा जा रहा है कि वहाँ से युग सृजन की अनेकानेक सत्प्रवृत्तियों का विकास-विस्तार होगा। इस आलोक वितरण के साथ उज्ज्वल भविष्य की वे समस्त सम्भावनाएँ जुड़ी हुई हैं, जो मनुष्य में देवत्व के उदय की मनःस्थिति तथा धरती पर स्वर्ग के अवतरण की परिस्थिति का निर्माण कर सकती हैं।

गायत्री शक्ति-पीठों का कलेवर खड़ा होते ही नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक परिवर्तन परिष्कार के रचनात्मक प्रयास बहुमुखी क्रिया-कलापों में संलग्न होंगे तो नव-निर्माण के स्वप्नों को साकार होने में देर न लगेगी। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन, सभ्य-समाज की, वैयक्तिक पारिवारिक-सामाजिक उत्कर्ष की, नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की अनेकों कल्पनाएँ, धारणाएँ, योजनाएँ पिछले दिनों प्रस्तुत की जाती रही हैं। उनके क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त आधार गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण में बन सकेंगे। प्रज्ञावतार की क्रीड़ा स्थली के रूप में अगले दिनों उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में असाधारण भूमिका होगी। इनके निर्माण में प्रत्येक सद्भाव सम्पन्न आत्मा का भावभरा योगदान सम्मिलित होना ही चाहिए।

छोटे शक्ति-पीठ जो हर जगह बनने और चलने चाहिये

चौबीस गायत्री शक्ति-पीठें २४ तीर्थों में बनने जा रही हैं। इसके अतिरिक्त जागृति केन्द्रों के रूप में यही प्रतिष्ठापना कुछ अन्य स्थानों में भी होगी। सम्भवतः वे भी इतने ही हों या इनसे भी अधिक। आगामी चौबीस महीनों के भीतर बन कर खड़े हो जायेंगे। सभी की इमारतें प्रायः एक जैसी होंगी। सभी में लागत प्रायः डेढ़ लाख के लगभग आवेगी। सभी में ९ प्रतिमाएँ स्थापित होंगी और सभी में पाँच परिव्राजक रहेंगे। संख्या की दृष्टि से इस अवधि में एक सौ तक पहुँच सकती हैं। यह सौभाग्य जिन स्थानों को मिलेगा जो प्रचलित तीर्थों की तरह ही विख्यात होंगे। तीर्थ यात्रियों की मण्डलियाँ देश भर से वहाँ पहुँचा करेंगी। इन धर्म केन्द्रों के स्थापनकर्त्ता भी यशस्वी बनेंगे और अपने सत्साहस का पुण्य परिणाम देखकर गर्व गौरव अनुभव करेंगे।

इतने पर भी यह निश्चित है कि मुट्ठी भर स्थानों और व्यक्तियों को ही इस प्रकार का श्रेय सौभाग्य प्राप्त होगा; जबकि आकांक्षा सभी की यह रहेगी कि ऐसा सुयोग उन्हें स्वयं को भी मिला होता, अथवा उनका स्थान भी इस गणना में आ सका होता तो कितना अच्छा रहता।

प्रस्तुत गायत्री शक्ति-पीठ योजना का एक छोटा सरल, सर्वसुलभ रूप यह हो सकता है कि ज्ञान रथ के रूप में स्थानीय देव मन्दिर बनाया जाय। इसकी लागत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकतम एक हजार और युग साहित्य की पूँजी अधिकतम एक हजार होगी। कुल लागत दो हजार से अधिक नहीं, कम ही बैठेगी। थोड़ी किफायत करने पर यह डेढ़ हजार और बहुत अधिक किफायत करने पर एक हजार तक की हो सकती है। उसे चलते-फिरते प्रज्ञा-मन्दिर के रूप में समझा जा सकता है। तीर्थ संचालक परिव्राजक के रूप में अपना निज का समय दो चार घण्टा नित्य दे सकते हैं।

ज्ञान रथ अभियान की जिन्हें जानकारी है, वे जानते हैं कि उन्हें आत्मिक दृष्टि से ऋतम्भरा प्रज्ञा का विशुद्ध देव मन्दिर ही समझा जा सकता है। घर-घर युग साहित्य पहुँचाना और वापिस लाना प्राचीन काल के सन्तों द्वारा घर-घर अलख जगाने की तरह ही परमार्थ प्रयोजन है। जो लोग मन्दिर में नहीं पहुँच पाते उन्हें घर पर मन्दिर को ले पहुँचना ऐसा ही है जैसा दुर्घटना ग्रस्त अपंगों के पास स्वयं दौड़कर जाने वाले सेवा-भावियों का होता है। गायत्री शक्ति-पीठ का लाभ वे ही उठायेंगे जो वहाँ तक अपने पैरों चल कर पहुँचेंगे। किन्तु जो वहाँ तक किसी कारण वश नहीं जा पाते उनके घर तक मन्दिर को स्वयं घसीट कर ले पहुँचना कम नहीं वरन् अधिक महत्त्व का ही सेवा-कार्य है।

ऋतम्भरा प्रज्ञा ही गायत्री है। युग साहित्य में उसकी आत्मा का दर्शन और भी अधिक अच्छी तरह हो सकता है। यों प्रतिमा के सान्निध्य से भी भक्ति-भावना जगती है उन्हें सत्साहित्य के स्वाध्याय से भी कम लाभ नहीं मिलता, इसे भली प्रकार समझ लेना चाहिए। भगवती सरस्वती की मयूर वाहिनी प्रतिमा भी पूजनीय है, पर विद्या विस्तार के रूप में जो प्रयास चल रहे हैं; उनमें भी माता शारदा को ही वीणा बजाते हुए देखना चाहिए। गायत्री माता की प्रतिमाएँ शक्ति-पीठों में भी स्थापित होंगी, पर प्रज्ञा का आलोक वितरण करने वाले साहित्य में भी उसी तथ्य की प्रत्यक्ष झाँकी होने की बात भी झुठलाई नहीं जा सकती।

ज्ञान रथों के रूप में चलने वाले चलते-फिरते प्रज्ञा मन्दिर भी गायत्री माता के छोटे किन्तु प्रकाश भरे देवालय ही हैं। प्रकारान्तर से वे सभी उद्देश्य उनके द्वारा पूरे होते हैं जो शक्ति-पीठों के साथ जुड़े हुए हैं। इन्हें परमार्थ बुद्धि से चलाने में जितना समय लगता है उसे तीर्थ परिव्राजकों की श्रद्धा के समतुल्य ही समझा जा सकता है। जो कार्य बड़े रूप में शक्ति-पीठ करेंगे उसी को इन प्रज्ञा रथों के माध्यम से भी छोटे रूप में पूरा किया जा सकेगा। अन्तर परिमाण का तो है, पर परिणाम का नहीं। छोटे और बड़े शालिग्राम आकार में ही न्यूनाधिक होते हैं। उनकी पूजा करने वाले समान रूप से अपनी श्रद्धा साधना का प्रतिफल प्राप्त करते हैं।

जो अपने यहाँ शक्ति-पीठ स्थापित न कर सकें, वे छोटे आकार का प्रज्ञा-मन्दिर चलते-फिरते ज्ञान रथ के रूप में बना लें और अपना निज का समय उसे दो घण्टा नित्य चलाने में लगाना आरम्भ कर दें। जो इतना कर सकें उन्हें प्रशंसा न सही सन्तोष करने का पूरा अवसर है। ऐसा बन पड़े तो छोटे रूप में शक्ति-पीठ के निर्माण एवं संचालन जैसा युग सृजन में एक छोटा योगदान माना जा सकता है।

जो स्वयं नहीं बना सकते, वे मिल-जुलकर ज्ञान रथ बना लें। जो स्वयं उसके लिए समय नहीं दे सकें तो स्थानीय समय दानी परिव्राजकों से उसे बारी-बारी चलाने का अनुरोध कर सकते हैं।

एक उपाय यह भी हो सकता है कि किसी कुशल व्यक्ति को उतने घण्टे के लिए नियुक्त कर लिया जाय और उतने पैसे का प्रबन्ध कर दिया जाय। इस सन्दर्भ में मथुरा केन्द्र ने यह निश्चय किया है कि साहित्य का लाभांश विशुद्ध रूप से परिव्राजक प्रयोजनों में ही लगेगा और लाभांश 'कमीशन' के आधार पर वितरित किया जाता है। श्रम और मनोयोग नापने और उसका पुरस्कार देने का एक काम चलाऊ माप दण्ड और भी है कि श्रमकर्त्ता को कमीशन दिया जाय। तीर्थ संचालकों के खर्च की व्यवस्था का एक बड़ा आधार भी यह लाभांश ही है। ज्ञान रथों को भी इस सुविधा का लाभ मिलेगा और जो लोग उन्हें चलावेंगे वे अपने निर्वाह के कुछ साधन उसी प्रकार उपलब्ध कर सकेंगे; जिस प्रकार शक्ति-पीठों में काम करने वाले परिव्राजकों को मिलते हैं।

इन सचल प्रज्ञा-मन्दिरों की स्थापना हर तीर्थ में तत्काल की जा सकती है। शक्ति-पीठ २४ की संख्या में या उससे कुछ अधिक बनने जा रहे हैं, पर प्रसिद्ध तीर्थों की ही संख्या २४०० से ऊपर है। इन सबमें शक्ति पीठ तो नहीं बन सकते, पर प्रज्ञा मन्दिर हर जगह चल सकते हैं। कार्यकर्ता का पारिश्रमिक और वेतन के बीच सन्तुलन उपलब्ध कमीशन से न बैठे तो उसकी कुछ हानि इनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचालकों एवं साथियों को मिल-जुलकर उठानी चाहिए। इस व्यवस्था के आधार पर २४०० तीर्थों में कुछ ही समय में प्रज्ञावतार आलोक वितरित होने का सुयोग बन सकता है। उससे भी निश्चित रूप से वही सत्परिणाम छोटे रूप में मिल सकता है जो बड़े रूप में प्रस्तुत शक्ति-पीठों के द्वारा मिलने जा रहा है।

यह प्रयोग बिना जोखिम का है। कोई निजी रूप से भी इसे आरम्भ करे तो किसी बड़े असमंजस की आवश्यकता नहीं है। असफलता मिले तो विनिर्मित ज्ञान रथ की कोई भी फेरी वाला प्रसन्नतापूर्क खरीद सकता है मुश्किल से ही सौ-दो सौ का घाटा पड़ेगा। बची हुई। पुस्तकें किसी भी पुस्तक विक्रेता को उसी मूल्य पर दी जा सकती हैं जिस पर वह प्राप्त हुई हैं। यह खुला रहस्य है बड़े पुस्तक विक्रताओं को भी थोक माल लेने पर २५ प्रतिशत से अधिक कमीशन देने का नियम नहीं है। जब कि नियमित और व्यवस्थित ज्ञान रथों को ३३ प्रतिशत तक की छूट दे दी जाती है। बची हुई पुस्तकें मिले हुए कमीशन को काट कर किसी पुस्तक विक्रेता को ज्ञान रथ वाले दे दें तो उन्हें उस कार्य में लगाई गई पूँजी में कोई कमी न पड़ेगी। ज्ञान रथों के बनाने में आरम्भिक पूँजी तो लगती है, पर पूँजी डूबने की आशंका नहीं है।

हर तीर्थ में, हर बड़े नगर में ज्ञान रथों के रूप में छोटे गायत्री शक्ति पोठ बनायें और चलाये जा सकते हैं। इसलिए उन सभी को प्रयत्नशील होना चाहिए जो अपने स्थान या व्यक्तित्व को इस पुण्य स्थापना के साथ सम्बद्ध करने के इच्छुक हों।

गायत्री शक्ति-पीठों का विस्तार और व्यवस्था

गायत्री शक्ति पीठों के बारे में इन दिनों जो योजना चल रही है, वह यह है कि इन केन्द्रों में न्यूनतम पाँच-पाँच परिव्राजक रहें और साधु-ब्राह्मण तथा वानप्रस्थ की पुण्य परम्परा के पुनरुज्जीवन हेतु सतत् प्रयत्नशील रहें। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक १० शक्ति-पीठों के निर्माण का क्रम संकल्प प्रारम्भं हो चुका है और उस क्रम के आगे ही बढ़ते जाने की सम्भावना है। गायत्री महामन्त्र २४ अक्षरों का है। उन पर एक बिन्दु लगाने से संख्या २४० हो जाती है। इस संख्या तक इस पुण्य-निर्माण को कर सकने में तो अपना वर्तमान गायत्री परिवार ही समर्थ है और आगामी गुरु-पूर्णिमा तक यह संख्या पूरी हो जाने की ही आशा है। देश की व्यापकता-विशालता के सन्दर्भ में यह संख्या जलते तवे पर एक बूँद जैसी है। घर-घर, जन-जन तक नवयुग का प्रकाश पहुँचाने और जन-जागरण का अलख जगाने के लिए प्रयासों को सविस्तृत होना ही चाहिए। शक्ति-पीठों की संख्या २४०० होनी चाहिए और उनमें क्रियाशील कार्यकर्त्ताओं और परिव्राजकों की संख्या न्यूनतम पाँच गुनी अर्थात् बारह हजार के लगभग पहुँचनी चाहिए। यह संख्या अंकगणना और योजना की दृष्टि से भले ही बड़ी प्रतीत हों, किन्तु अकेले भारत का ही इतना विस्तृत क्षेत्र और विराट जन-समुदाय है कि उन सब तक इस महान् कार्य का विस्तार करने की दृष्टि से इतनी व्यवस्था न्यूनतम एवं अनिवार्य ही कही जानी चाहिए।

गायत्री शक्ति-पीठों का निर्माण धीरे-धीरे पूर्ण हो इतनी प्रतीक्षा का समय नहीं है, इसलिए नया आह्वान यह किया गया है कि जहाँ सुविधायुक्त पुराने देवालय विद्यमान है और वहाँ कोई उपयोगी व्यवस्था नहीं बन रही है, उसे गायत्री परिवार ट्रस्ट के सुपुर्द करने की और इस प्रकार पुण्यमयी, सुन्दर श्रेष्ठ, धर्म-व्यवस्था से संयुक्त होने के अवसर का लाभ उठाया जाय। इन स्थानों में थोड़े-बहुत हेर-फेर करने भर से इन्हें उपयुक्त प्रयोजन के अनुरूप बनाया जा सकता है।

रानी रासमणि, ने अपना बनाया दक्षिणेश्वर मन्दिर रामकृष्ण परमहंस को सुपुर्द कर दिया था। मन्दिर निर्माताओं और व्यवस्थापकों से यह अनुरोध किया गया है कि वे मन्दिर की पुनीत सम्पदा को सुव्यवस्था की अपेक्षा करते हुए गायत्री-परिवार के सुपुर्द कर दें। आशा यही है कि यह अनुरोध अरण्य-रोदन नहीं सिद्ध होगा। इस आह्वान को सुना-समझा जायगा और तदनुरूप आचरण के लिए आगे बढ़ा जायेगा।

इन दिनों देश के अधिकांश देव-मन्दिर अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित अनुपयोगी दशा में है। उन पर निहित स्वार्थी तत्वों का आधिपत्य है, जिसका लाभ वे व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि के लिए उठाते हैं या फिर संचालकों को उस निमित्त भारी धन-राशि खर्च करनी पड़ती और तब भी देव-प्रतिमा की पूजा-अर्चना की लकीर भर पीटी जाती रहती है। देव, प्रयोजन की, धर्म-धारणा की आवश्यकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूरी करने योग्य गतिविधियों से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं।

देव-मन्दिरों के निर्माण की कल्पना करने, योजना बनाने और जन-जन में उस हेतु प्रेरणा का संचार करने वाले तत्व-दर्शियों के मन-मस्तिष्क में निश्चित रूप से एक ही आशा थी कि ये जन-जागृति के प्रेरक एवं प्रभावी केन्द्र बनेंगे। यदि वे यह जानते कि इनमे लगने वाली धन-शक्ति और जन-शक्ति का उपयोग मात्र चिन्ह-पूजा के लिए होने लगेगा तो वे इस प्रेरणा को देने से पूर्व हजार बार सोचते और शायद ही इसे प्रोत्साहन देते।

यही समय है जब देवालयों का उपयोग देव प्रयोजन के लिए करने की ऋषियों की योजना पुनर्जीवित की जानी चाहिए। इसी में मन्दिरों, देवताओं और प्रतिमा-पूजन के तत्त्वज्ञान की गरिमा है और मन्दिर के निर्माण-कर्त्ताओं एवं व्यवस्थापकों को भी। जिन मन्दिरों में मात्र देव-प्रतिमाओं के लिए ही स्थान है, उनका तो उपयोग न हो पायेगा। किन्तु जहाँ मन्दिरों में संलग्न खुला प्रांगण है, जन-समुदाय के बैठने के लिए स्थान तथा छाया की व्यवस्था है, जल-प्रबन्ध है, उन मन्दिरों का निश्चय ही उपयोग सम्भव है। पुराने देवता यथास्थान रहेंगे। उनकी पूजा-अर्चना पहले की ही तरह वरन् उससे भी अधिक शास्त्रीय पद्धति से होती रहेगी। बचे हुए स्थान में ही गायत्री माता को भी प्रतिष्ठापित कर लिया जायेगा। दोनों देवताओं में आपसी लड़ाई-झगड़े का प्रश्न ही नहीं। वे परम स्नेह और सघन सौहार्द के साथ नवयुग के अवतरण का स्वागत करते और आशीर्वाद देते पाए जायेंगे।

उपलब्ध मन्दिरों का मुख्य द्वार गायत्री शक्ति-पीठों जैसा उनसे मिलता-जुलता बनाया जाएगा ताकि इस एक रूपता के द्वारा उन्हें देखते ही यह पता चल जाय कि यह संस्थान गायत्री परिवार के तत्वावधान में चल रहा है। इनमें से प्रत्येक में दो कमरे, कार्यालय एवं स्वागत-सत्संग के लिए रहेंगे। पाँच परिव्राजकों के निर्वाह भोजन, नित्य कार्य के लिए निवास गृह भी इसी में रहेंगे। इस प्रकार इन दान में प्राप्त देवालयों में प्राय: बीस हजार रुपये की राशि नये सिरे से लगानी होगी, तभी वे प्रज्ञाभियान के अनुकूल एवं अनुरूप बन सकेंगे। यह राशि बहुत नहीं। प्रयास करने पर इतना संग्रह सरलता से हो सकता है। परिवर्तित-परिवर्धित देवालय 'गायत्री प्रज्ञा पीठ' कहलाएँगें और वे भी नवनिर्मित गायत्री शक्ति-पीठों के ही समतुल्य माने जाएँगे। इनका नामकरण अर्थ की एकता के बावजूद भिन्नता का बोध कराने जैसा, स्वरूप में अन्तर का ध्यान रखकर ही रखा जा रहा है।

प्रज्ञाभियान को गतिशील करने के लिए बहुत समय तक निर्माण-साधन उपलब्ध होने की प्रतीक्षा करने की विवशता जन्य कठिनाई को देवालयों की याचना का यह नया अनुरोध हल करेगा। यद्यपि इस कार्य में भी मोहग्रस्तता का आधिपत्य और निहित स्वार्थों का विग्रह व्यवधान बनकर खड़ा होगा तथापि, विवेकशीलता और दूरदर्शिता की शक्तियों का नवोदय ऐसी प्रवृत्तियों को प्रबल बना रहा है, जिनसे कि यह आशा बँधती है कि आवश्यक संख्या में देवालय प्राप्त हो जायेगे और वे जन-जागृति के केन्द्र बनकर अपनी उपयोगिता एवं गरिमा का परिचय देंगे। इस प्रकार निर्माणकार्य सरल हो जाएगा। गायत्री शक्ति-पीठों के नव-निर्माण का क्रम तो यथावत् जारी रहेगा, साथ ही पुराने देवालय प्राप्त करने की इस नवीन योजना से अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचना और भी अधिक सरल हो जायेगा।

अगला प्रश्न इन सब में नियुक्त होने वाले परिव्राजकों के बारे में उठता है। कई हजार परिव्राजक अभी-अभी चाहिए। यह कार्य देवालयों के निर्माण एवं उनकी अनुदान में उपलब्धि से भी बहुत अधिक कठिन है। लोक-सेवा में रुचि लेने वाली पीढ़ी घट रही है। संकीर्ण स्वार्थपरता में ही सने रहने की प्रवृत्ति हर व्यक्ति में प्रगाढ़ दीखती है। लोक-मंगल के अनुदान प्रस्तुत करने की महत्त्वाकांक्षा घटते-घटते समाप्त होने की स्थिति में पहुँच गई है। जहाँ यह है भी वहाँ कठिनाई यह है कि पारिवारिक उत्तरदायित्वों को छोड़कर साधु परम्परा को कैसे अपनाया जाय ? शक्ति-पीठों के परिव्राजकों को पूरा समय ही देना होगा। ऐसी दशा में जिनके परिवार आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हैं, उनका निर्वाह कैसे हो ?

इसके लिए भी एक हल सोचा गया है। वह यह कि शक्ति-पीठ अथवा प्रज्ञा पीठ जिन क्षेत्रों में बनें उसी क्षेत्र के अपने युग निर्माण परिवार के परिजनों में से अधिक भावनाशील और कम पारिवारिक जिम्मेदारियों वाले परिजनों को वहाँ काम करने को कहा जाय और उनके लिए अर्थ अनुदान की कुछ व्यवस्था बनाई जाय। ताकि वर्तमान में उनके सामने इस दिशा में खड़ी चट्टान-सी कठिनाई को कुछ सरल किया जा सके। ऐसे लोग भी कुछ कम नहीं जो स्वसंग्रहीत एवं पैतृक साधनों के सहारे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने परिवार की अर्थ व्यवस्था जुटा लेंगे। वे लोग भी इस कार्य में संलग्न होंगे और आगे तो असंख्य लोग इस आधार पर अपने भाव-भरे अनुदान प्रस्तुत करेंगे। साधु-ब्राह्मणों की परम्परा यह रही है कि वे अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ न्यूनतम ही रखते थे और जनता पर अधिक भार न पड़ने देने का ध्यान रखते थे। वह परम्परा पुनः चल निकली है। देव-मानवों का युग पुनः वापस आ रहा है और समय दानी परिव्राजकों का वर्ग अनवरत गति से बढ़ रहा है।

इतना होते हुए भी आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी परिव्राजकों के अतिरिक्त सृजनशिल्पियों की दूसरी पंक्ति भी उसी प्रकार खड़ी करनी होगी जिस प्रकार गायत्री शक्ति-पीठों के साथ-साथ गायत्री प्रज्ञा पीठों की सहायक योजना बनाई गई है। इस दूसरी पंक्ति के सृजन-शिल्पियों के लिए पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह के साधन जुटाने होंगे, तभी उनसे पूरा समय निश्चिन्त होकर देने की अपेक्षा की जा सकेगी। सामयिक आवश्यकता और कार्य की विशालता के कारण यह प्रयास कार्यान्वित करने का निश्चय किया गया है।

सामान्यतया गायत्री शक्ति-पीठों का कार्य-क्षेत्र लगभग तीस मील के दायरे में होगा और उसमें औसत ३० गाँव आएँगें। इसी क्षेत्र में से परिव्राजक उभर कर आएँ, तो इससे कई लाभ होंगे—भाषा सम्बन्धी कठिनाई न रहेगी, राहें जानी-पहचानी होंगी, क्षेत्रीय लोगों की प्रकृति और परम्परा का ज्ञान होगा। पूर्व परिचय कार्य-विस्तार में सहायक होगा। ये सभी सुविधाएँ जुटा तो बाहर से भेजे गए व्यक्ति भी सकते हैं, पर उन्हें समझने और कहने में अपेक्षाकृत विलम्ब लगेगा। उसी कार्य क्षेत्र के या समीपवर्ती परिसर के कार्यकर्त्ताओं को ही ढूँढ़कर प्रशिक्षित करना सुगम होगा, वे अपने घर परिवार की देखभाल भी करते रहेंगे और युग-सृजन के पुण्य-प्रयोजन में अपनी सेवा भी नियोजित रखे रहेंगे।

प्रारम्भिक प्रशिक्षण सभी परिव्राजकों का शान्ति कुञ्ज में होगा और वे जब अपने कार्य के सम्यक्-संचालन की कुशलता अर्जित कर लेंगे तभी उन्हें उस गरिमामय पद पर नियुक्त किया जाएगा। समय-समय पर इनका प्रशिक्षण बीच-बीच में केन्द्र में बुलाकर किया जाता रहेगा।

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर परिव्राजकों के अतिरिक्त उन दूसरी पंक्ति के भावनाशील लोक-सेवियों की भी बड़ी संख्या में भर्ती होगी जिनके लिए परिवार-निर्वाह अर्थ-व्यवस्था छुटाई जानी है। यह अनुदान वेतन-स्तर का नहीं होगा, न ही कर्मचारियों जैसी विधि-व्यवस्था अपनाई जाएगी। लोक सेवी की सनातन परम्परा न्यूनतम निर्वाह और अधिकतम अनुदान की ही रही है। सृजनशिल्पी भी उसी परम्परा को आगे बढ़ाएँगे। योग्यता के आधार पर नहीं आवश्यकता के आधार पर यह निर्णय होगा और भिन्न-भिन्न कार्यकर्त्ताओं की स्थिति पर विचार कर यह निर्णय होगा कि किसका पारिवारिक निर्वाह न्यूनतम कितने अनुदान में चल सकता है। संस्था की स्थिति और कार्यकर्त्ता की आवश्यकता का तालमेल बिठाते हुए ही यह निर्णय भी होना है कि इच्छकों में से किन्हें लिया जा सकता है, किन्हें नहीं। इसके लिए कोई माप नहीं रखा गया है। परिस्थितियों का तालमेल ही मानदण्ड होगा, उसी आधार पर सामयिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु परिव्राजक कार्यकर्त्ता नियुक्त होंगे। इस प्रकार-प्रस्तुत शक्ति-पीठों के कार्य क्षेत्रों में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता पूरी होगी। इस प्रकार परिव्राजकों की भूमिका निभा सकने की जिनकी स्थिति है, उनसे सम्पर्क साधने और आवेदन-पत्र प्राप्त करने के प्रयास हो रहे हैं। परिव्राजकों का सम्पर्क-क्षेत्र में नियमित प्रवास सम्पर्क का क्रम, शक्ति पीठों के बनने, कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति होने और कार्य क्षेत्रों की परिधि बनने के साथ ही प्रारम्भ हो जायगा। विचारशील लोगों से सम्पर्क कर उन्हें युग साहित्य पढ़ने देने, वापस लेने का क्रम चलेगा। जन्म दिन मनाने, बच्चों के षोड्स-संस्कारों के लिए पारिवारिक गोष्ठियों की व्यवस्था करने, पूर्व त्योहारों पर सामूहिक जन-सम्मेलन बुलाने का सिलसिला चलेगा। रामायण-कथा आदि का क्रम भी चलेगा। इस प्रकार सम्पर्क बढ़ाकर उसका उपयोग मिशन की कार्य पद्धति का, स्वरूप समझाने उसके प्रति समर्थन-सहानुभूति आकर्षित करने में करना चाहिए। युग-निर्माण-योजना की सदस्यता की शर्त दस पैसा तथा एक घण्टा समय नियमित रूप से रखी है। सम्पर्क क्षेत्र में सदस्यता निरन्तर बढ़ती रहेगी। उन क्षेत्रीय सदस्यों की सहायता से विचार क्रान्ति अभियान के अन्तर्गत आने वाले सभी शिक्षण-परक, रचनात्मक एवं सुधारात्मक कार्यक्रम गतिशील होंगे।

व्यक्ति-निर्माण, परिवार-निर्माण एवं समाज-निर्माण की शतसूत्री योजना में बौद्धिक नैतिक एवं सामाजिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रान्ति के सभी तत्वों का समावेश है। सृजन-शिल्पियों के सामने जन-मानस के परिष्कार और सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन का विशाल क्षेत्र है। कहाँ की स्थिति में, क्या कार्य किस स्तर पर आरम्भ किया और आगे बढ़ाया जा सकता है, इसका दिशा-निर्धारण तो पहले से भी हो सकता है, परन्तु व्यवहार में कब, कहाँ, क्या किया जा सकता है, इसका निर्णय-निर्धारण सामयिक सूझ-बूझ ही करेगी। सृजन के असंख्य पक्षों में से जहाँ, जो जितना बन पड़े, करना ही चाहिए। इसमें स्थानीय सहयोगियों की योग्यता एवं अभिरुचि को भी महत्त्व देना चाहिए।

यह मात्र उस कार्यक्रम की चर्चा हुई, जो शक्ति-पीठों के केन्द्र-स्थानों के परिव्राजक-मण्डल द्वारा अपने सम्पर्क क्षेत्रों में प्रथमत: क्रियान्वित होगा। इस आरम्भिक उपक्रम से आगे सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए आदर्शवादी एवं सेवाभावी व्यक्तियों को अपने-अपने ढंग से कुछ करने के लिए प्रोत्साहित किया जायगा। यदि प्रतिभाएँ लोभ-मोह की वितृष्णा से विरत होकर नव-सृजन की दिशा में प्रवृत्त हो उठें और संकीर्ण स्वार्थपरता का जल सिमटने लगे, तो फिर नव-सृजन के लिए वाँछित क्षमता का प्रचुर परिमाण में उत्पादन हो सकता है और तब उस क्षमता के द्वारा इतना कुछ कार्य सम्भव है, जितना किसी समर्थ शासन अथवा सुविस्तृत संगठन के लिए भी सम्भव नहीं।

मिशन के सूत्र संचालकों का सहज सम्पर्क हिन्दू समुदाय के साथ ही अधिक होने से आरम्भ हिन्दू धर्म के कार्य-क्षेत्र में किया गया है। यह सीमाबन्धन नहीं शुभारम्भ की सरलता भर है। युग-सृजन अभियान देश, जाति, धर्म की परिधि तक सीमित नहीं रखा जा सकता। वह सार्व-भौम एवं सार्वजनीन है। अत: परिधि बन्धनों से आगे बढ़ा जाता और दृष्टिकोण एवं कार्य-क्षेत्र को निरन्तर व्यापक बनाया जाता रहेगा। उस प्रकाश में सभी देशों, धर्मों, जातियों को नवजीवन प्राप्त करने का अवसर मिलेगा। शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग जैसे सभी महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों को प्रगतिशील प्रोत्साहन मिलेगा। अवांछनीयताओं, अनैतिकताओं, मूढ़ मान्यताओं, अन्ध-परम्पराओं एवं कुरीतियों की विभीषिकाएँ मानवीय पतन एवं पराभव का प्रधान कारण बनी हुई हैं। उनके साथ संघर्ष करने का कार्य सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों के समतुल्य ही महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक है। यह पक्ष उपेक्षणीय कदापि नहीं। लंका-दहन और समुद्र-सेतु-बन्धन की दोनों योजनाएँ एक ही महान् लक्ष्य का अविच्छिन्न अंग हैं। इसे आरम्भ से ही ध्यान में रखा गया है और अन्त तक दृढ़ता पूर्वक अपनाया जाता रहेगा।

नव-सृजन का कार्य महान् और विराट है। श्रम, समय, मनोयोग के साथ ही उस हेतु अतिरिक्त साधन भी आवश्यक होंगे। बूँद-बूँद से घड़ा भरने की लोक श्रद्धा के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा गया है। दस पैसा रोज के ज्ञानघट मुट्ठी-मुट्ठी अनाज जमा करने वाले धर्मघट ही मिशन की आवश्यकता पूरी करते रहेंगे। 'लोक-शक्ति' जागेगी तो सत्प्रयोजनों में लोकश्रद्धा की भी कमी नहीं रहेगी। जब विकृत धर्मतन्त्र तक को इतना विलासी और अपव्ययी परिपोषण मिल रहा है तो कोई कारण नहीं कि इस धर्म-प्राण देश में जीवन्त धर्म-धारणा को अपनी स्वल्प आवश्यकता जुटाने के लिए असफल न रहना पड़े। सरकारों अथवा साधन-सम्पन्नों से सहायता की अपेक्षा न करते हुए इतना बड़ा श्रम-साध्य, समय-साध्य कार्य जिस महाकाल की प्रेरणा से प्रारम्भ हुआ है, वह लोक श्रद्धा बरसाने के साथ ही आवश्यक साधनों की व्यवस्था भी उसी स्रोत से करेगा। यह विश्वास ही अपने बजट और कार्यक्रम का सुनिश्चित आधार है।

छोटे शक्ति-पीठों की रूपरेखा और संचालन-प्रक्रिया

२४ शक्ति-पीठों में २४ गायत्री शक्ति-पीठ तो बनने जा ही रहे हैं, उनके अतिरिक्त कुछ अन्य स्थानों पर जागृति केन्द्रों की प्रतिष्ठापना भी होगी। सम्भवत: वे भी इतने ही समय में या इससे अधिक २४ महीनों के भीतर ही बन कर तैयार हो जायेंगे। इन सभी शक्ति-पीठों और जागृति केन्द्रों की इमारतें लगभग एक जैसी ही होंगी और उनकी लागत करीब डेढ़ लाख रुपये आयेगी। इन सबमें ९ प्रतिमाएँ स्थापित होंगी और प्रत्येक में पाँच-पाँच परिव्राजक नियुक्त किये जायेंगे। जागृति केन्द्रों की संख्या इस अवधि में एक सौ तक पहुँच सकती है। यह सौभाग्य जिन स्थानों को मिलेगा वे प्रचलित तीर्थों की तरह ही प्रतिष्ठा प्राप्त करेंगे। देश भर से तीर्थ यात्रियों की मंडलियाँ यहाँ पहुँचा करेंगी। इन केन्द्रों को स्थापित करने वाले भी यशस्वी बनेंगे और अपने सत्साहस का पुण्य-परिणाम देखकर गर्व-गौरव अनुभव करेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना होने पर भी यह निश्चित है कि थोड़े से स्थानों और थोड़े से व्यक्तियों को ही इस प्रकार का सौभाग्य प्राप्त होगा। यद्यपि आकांक्षा सभी की यह रहेगी कि उनको स्वयं को भी ऐसा सुयोग मिला होता अथवा उनका स्थान भी इस गणना में आ सका होता तो यह सुखद सौभाग्य कितना गौरव पूर्ण रहता।

गायत्री शक्ति-पीठ योजना का एक छोटा, सरल और सर्वसुलभ रूप यह हो सकता है कि ज्ञान रथ के रूप में स्थानीय देव-मन्दिर बनाये जायें। इसका लागत व्यय अधिक से अधिक एक हजार और युग साहित्य की पूँजी भी अधिक से अधिक एक हजार होगी, इस प्रकार कुल लागत दो हजार से अधिक नहीं, कम ही बैठेगी। थोड़ी किफायत करने पर यह डेढ़ हजार और बहुत अधिक किफायत करने पर एक हजार तक हो सकती है। इन्हें चलते-फिरते प्रज्ञा-मन्दिर कहा जा सकता है। इन्हें चलाने के लिए तीर्थ संचालक परिव्राजक के रूप में अपना निज का समय दो-चार घण्टा नित्य दिया जा सकता है।

जिन्हें ज्ञानरथ अभियान की जानकारी है, वे जानते हैं कि उन्हें तात्विक दृष्टि से ऋतम्भरा प्रज्ञा का विशुद्ध मन्दिर ही कहा जा सकता है। प्राचीन काल में सन्त महात्मा घर-घर जाते और अलख जगाते थे, साथ ही उन घरों में सद्ज्ञान वितरण भी करते थे। घर-घर युग-साहित्य पहुँचाना और उसे वापिस लाना भी इसी स्तर का परमार्थ प्रयोजन है। जो लोग मन्दिर नहीं पहुँच पाते उनके घर पर मन्दिर लेकर पहुँच जाना ऐसा ही है—जैसे दुर्घटना ग्रस्त क्षेत्रों में या अपंगों कष्ट पीड़तों, रुग्ण रोगियों के पास सेवा भावी व्यक्ति स्वयं ही पहुँच जाते हैं। गायत्री शक्ति-पीठों का लाभ तो वही लोग उठा सकेगें जो वहाँ तक अपने पैरों चलकर पहुँचेंगे, किन्तु जो किसी कारणवश वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, उनके घर तक मन्दिर को स्वयं घसीट कर ले पहुँचना कम नहीं, वरन् अधिक महत्त्व का ही सेवा-कार्य है।

युग साहित्य में गायत्री की आत्मा का और भी अधिक अच्छी तरह दर्शन हो सकता है, क्योंकि ऋतम्भरा प्रज्ञा ही गायत्री है। यों प्रतिमा के सान्निध्य में भी भक्ति-भावना जागती है और सत्साहित्य के स्वाध्याय से भी कम लाभ नहीं मिलता, यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए। भगवती सरस्वती की मयूरवाहिनी प्रतिमा भी पूजनीय है और विद्या विस्तार के रूप में जो प्रयास चल रहे हैं, उन में भी माता शारदा की ही वीणा बजती हुई देखना चाहिए। गायत्री माता की प्रतिमायें शक्ति-पीठों में भी स्थापित होंगी पर प्रज्ञा का आलोक वितरण करने वाले साहित्य में भी उसी तथ्य की प्रत्यक्ष झाँकी होने की बात झुठलाई नहीं जा सकती।

ज्ञान रथों को चलते-फिरते प्रज्ञा मन्दिर और गायत्री माता के छोटे, किन्तु प्रकाश भरे देवालय ही समझना चाहिए। प्रकारान्तर से ये चलते-फिरते प्रज्ञा मन्दिर वे सभी उद्देश्य पूरे करते हैं, जिनकी पूर्ति शक्तिपीठों के द्वारा हो सकती है। इन प्रज्ञा मन्दिरों को श्रद्धा भावना से परमार्थ बुद्धि से चलाने में जितना समय लगता है उसे तीर्थ परिव्राजकों की श्रद्धा के समतुल्य ही समझना चाहिए। शक्ति-पीठ जो कार्य बड़े रूप में करेंगे वही कार्य प्रज्ञा रथों के माध्यम से छोटे रूप में पूरे किये जा सकेंगे। परिमाण का, मात्रा का तो अन्तर है, पर परिणाम में कोई-रत्ती भर अन्तर नहीं देखा जा सकता। छोटे-बड़े शालिग्राम आकार में ही छोटे-बड़े होते हैं किन्तु जो उनकी पूजा करते हैं वे समान रूप से अपनी श्रद्धा-साधना का प्रतिफल प्राप्त करते हैं।

जो अपने यहाँ शक्ति-पीठ स्थापित न कर सकें वे छोटे-आकार का प्रज्ञा मन्दिर चलते-फिरते ज्ञानरथ के रूप में बना लें और अपना निज का समय उसे दो घण्टा नित्य चलाने में लगाना आरम्भ कर दें। जो इतना कर सके उन्हें प्रशंसा प्राप्त होने का न सही, सन्तोष करने का तो पूरा-पूरा अवसर प्राप्त है। यदि इतना भी कर लिया जाय तो शक्ति-पीठ को छोटे रूप में तैयार कर उसके संचालन द्वारा युग सृजन में एक छोटा योगदान माना जा सकता है।

जिन स्थानों पर परिजन इस तरह के प्रज्ञारथ स्वयं नहीं बना सकते, वहाँ आपस में मिल-जुल कर बना लें। जो स्वयं इसके लिए समय नहीं दे सकें तो स्थानीय समयदानी परिव्राजकों से उसे बारी-बारी चलाने का अनुरोध कर सकते हैं। इसका एक उपाय यह भी हो सकता है कि किसी कुशल व्यक्ति को उतने घण्टे के लिए नियुक्त कर लिया जाये और उतने पैसे का प्रबन्ध कर दिया जाय। इस सन्दर्भ में मथुरा केन्द्र ने यह निश्चय किया है कि साहित्य द्वारा प्राप्त होने वाला लाभांश विशुद्ध रूप से प्रव्रज्या अभियान, परिव्राजक प्रयोजनों में ही लगेगा। यह लाभांश कमीशन के आधार पर वितरित किया जाता है। श्रमकर्त्ता को कमीशन देना एक काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलाऊ मापदण्ड है जो श्रम और मनोयोग को नापने तथा उसका पुरस्कार देने के लिए निर्धारित किया गया है। यह लाभांश तीर्थ संचालकों के खर्च की व्यवस्था का भी एक बड़ा आधार है। इस सुविधा का लाभ ज्ञान रथों को भी मिलेगा और जो उन्हें चलायेंगे वे अपने निर्वाह के कुछ साधन उसी प्रकार अर्जित कर सकेंगे जिस प्रकार कि शक्ति-पीठों में काम करने वाले परिव्राजकों को प्राप्त होते हैं।

इन सचल प्रज्ञा मन्दिरों की स्थापना प्रत्येक तीर्थ में तत्काल की जा सकती है। शक्ति-पीठ तो २४ या उससे कुछ अधिक बनने जा रहे हैं, लेकिन प्रसिद्ध तीर्थों की संख्या ही २४ से अधिक है। इतनी बड़ी संख्या में तो शक्ति-पीठ नहीं बन सकते, पर प्रज्ञा मन्दिर हर जगह चल सकते हैं। कार्यकर्त्ता का पारिश्रमिक और वेतन के बीच सन्तुलन उपलब्ध कमीशन से न बन पाये तो उसकी पूर्ति संचालकों एवं समर्थियों को मिल-जुल कर उठानी चाहिए। इस तरह २४०० तीर्थों में कुछ ही समय के भीतर प्रज्ञावतार का आलोक फैलाने की व्यवस्था बन सकती है। इस व्यवस्था से वही सत्परिणाम निश्चित रूप से छोटे रूप में प्राप्त हो सकते हैं जो शक्ति-पीठों के द्वारा बड़े रूप में मिलने वाले हैं।

यह व्यवस्था बनने में कोई झंझट नहीं है। सरल इतना है कि इसे कोई भी व्यक्तिगत स्तर पर भी प्रारम्भ कर सकता है, क्योंकि इसके लिए कोई बड़े साजो-सामान की आवश्यकता नहीं है। इसमें असफलता मिले तो ज्ञानरथ की धकेल को कोई भी फेरी वाला खरीद सकता है, इसमें घाटा होगा तो भी सौ-दो-सौ से अधिक का नहीं होगा। बची हुई पुस्तकें किसी भी पुस्तक विक्रेता को उसी मूल्य पर दी जा सकती हैं, जिस पर कि वह प्राप्त हुई थीं। सर्वविदित है कि बड़े पुस्तक विक्रताओं को भी थोक माल लेने पर २५ प्रतिशत से अधिक कमीशन देने का नियम है, जबकि अपने यहाँ से नियमित और व्यवस्थित ज्ञानरथों को ३३ प्रतिशत तक छूट दी जाती है। बची पुस्तकें मिले हुए कमीशन को काटकर किसी पुस्तक विक्रेता को दे दी जाये तो उन्हें इस कार्य में लगाई गई पूँजी में कोई घाटा नहीं पड़ेगा। ज्ञान रथों के बनाने में आरम्भिक पूँजी तो लगती है पर उसके डूबने की आशंका नहीं है।

इस तरह हर तीर्थ-स्थान और हर बड़े नगर में ज्ञान रथों के रूप में छोटे गायत्री शक्ति-पीठ बनाये तथा चलाये जा सकते हैं। अत: इस दिशा में उन सभी को प्रयत्नशील होना चाहिए जो अपने स्थान पर अपनी वर्तमान स्थिति में ही इस पुण्य-प्रक्रिया के साथ जुड़े रहने को इच्छुक हैं।

गायत्री शक्ति-पीठ की मौलिक विशेषता

चौबीस प्रतिमाओं की स्थापना की जाने वाली गायत्री शक्ति-पीठ के साथ कई कार्यक्रम जुड़े हुए हैं। दर्शनार्थियों को यह जानकारी मिलेगी कि गायत्री मंत्र मात्र विशाल संध्या वन्दना के लिए प्रयुक्त होने वाला गुरु मंत्र ही नहीं है, वरन् उसका प्रभाव क्षेत्र में अधिक व्यापक है। चौबीस अक्षरों में २४ ऐसी ज्ञान-धाराओं का समन्वय है जिन्हें अपनाकर मनुष्य देवोपम जीवन जी सकता है और सद्भाव सहयोग की नीति अपनाने से अपनी धरती पर स्वर्ग का सतयुग का अवतरण हो सकता है। भविष्य में मानवीय एकता पर आधारित उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण जिस नीति को अपनाने से हो सकता है, वह न्यूनतम अक्षरों में लिखे गए इस धर्मशास्त्र में मौजूद हैं। २४ अक्षर वे चौबीस सूत्र हैं जो नवयुग के सतयुग के आधार बनने जा रहे हैं। भविष्य में मानवी चिन्तन और प्रयास इसी दिशाधारा में प्रवाहित होंगे जो गायत्री के २४ अक्षरों में सन्निहित हैं।

गायत्री शक्ति-पीठ की प्रतिमाओं के माध्यम से जनसाधारण को यह समझाया जायेगा कि साधना, उपासना की भारतीय परम्परा गायत्री मंत्र के ध्रुव केन्द्र पर टिकी हुई है। उसके आधार पर आत्म-कल्याण की, उल्लास आनन्द की और प्रगति समृद्धि तीनों ही महान् उपलब्धियाँ करतलगत हो सकती हैं। उपासना क्षेत्र में इन दिनों जो बहुमुखी बिखराव उत्पन्न हो रहा है, उसे नियन्त्रित और नियमित बनाने का मार्ग-दर्शन उस देवालय में प्रवेश करने वाले प्रत्येक धर्म प्रेमी को उपलब्ध होगा।

सर्वसाधारण को सामान्य दैनिक उपासना त्रिकाल संध्या के साथ जुड़े गायत्री जप का भान हो सकता है। आत्मबल बढ़ाने के लिए गायत्री अनुष्ठान की परम्परा भी सर्वविदित है। विशिष्ट शक्ति सम्पादन के लिए पुरश्चरणों की तपश्चर्या अपनानी पड़ती है। यह जानकारियाँ सर्वविदित और बहुचर्चित हैं। इसके अतिरिक्त एक बात यह रह जाती है कि व्यक्ति विशेष की मन:स्थिति और परिस्थिति के अनुरूप समाधान कारक साधना क्या हो सकती है? इसका मार्ग-दर्शन गायत्री

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति-पीठ में मिल सकेगा। अस्पताल में अनेक औषधियाँ और उपकरणों का भंडार रहता है, पर उसमें हर वस्तु हर किसी के काम की नहीं होती। रोगी की स्थिति का विशेष विश्लेषण करके ही यह निर्धारित किया जाता है कि किसी रोगी के लिए किस उपचार का प्रयोग किया जायगा। गायत्री उपासना में रुचि रखने वाले के लिए भी उनकी स्थिति एवं मनोभूमि के अनुरूप साधना विधान आवश्यक है। यह क्रम २४ गायत्री प्रतिमाओं की व्याख्या करते हुए सर्वसाधारण को समझाया जा सकेगा। जिन्हें इनमें से जिसका चयन करना है वे उसके सान्निध्य में उस उपासना को करने की सुविधा भी प्राप्त कर सकेंगे।

इस तीर्थ की विशेषता यह होगी कि प्रतिमाओं के माध्यम से गायत्री तत्वज्ञान और साधना विधान बताते रहने वाले मार्ग-दर्शक नियुक्त रहेंगे। हर आगन्तुक को उनकी सेवा उपलब्ध रहेगी। दर्शकों को शीतल जल, स्वागत सत्कार का विशेष प्रबन्ध रहेगा । आरण्यक में एक बार पधारने वाले को जीवन भर यह स्मृति बनी रहेगी कि प्राचीन काल में तीर्थ किस उद्देश्य से बनाये गये होंगे और उनका स्वरूप क्या रहा होगा ? तीर्थों के प्रति दिन-दिन बढ़ती जाने वाली अश्रद्धा को उलट कर सघन श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये देवालय की अपनी रीति-नीति में क्या परिवर्तन करना चाहिए ? इसकी एक छोटी झाँकी ब्रह्मचर्स् में प्रवेश करने वालों की सहज ही उपलब्ध हो सकेगी।

शक्ति-पीठों के निर्माण का विकास-विस्तार

प्रज्ञावतार की इस उदयीमान बेला में युगान्तरीय चेतना का विस्तार प्रभात कालीन किरणों की तरह द्रुतगति से होता चला जा रहा है। गायत्री शक्ति-पीठें इस परिवर्तन प्रयास में अपनी असाधारण भूमिका प्रस्तुत करने जा रही हैं। समय ही बतायेगा कि सामान्य उपासना गृहों की तरह प्रतीत होने वाले इन देवालयों ने मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की भूमिका किस शानदार ढंग से निभाई ? यह निर्माण ऐतिहासिक स्मृतियों में सम्मिलित रहेंगे और उनके निर्माताओं को वैसा ही श्रेय मिलेगा जैसा चार धामों के बनाने में अग्रिम भूमिका निभाने वाले मान्धाता को मिला था। इतने साधन वे अकेले नहीं जुटा सके थे, पर उन्होंने अपने निजी साधनों के उपरान्त जो कमी पड़ती थी उसे अपने स्नेही, सम्बन्धियों, मित्र, पड़ोसियों को प्रोत्साहित करके पूरा कर दिया था। देने वाले की तरह ही दिलाने वाले भी यशस्वी होते हैं।

बसन्त पर्व पर महाकाल का संदेश शक्ति-पीठों के निर्माण के लिए उतरा। फरवरी में उसकी रूपरेखा तैयार हुई और सम्पर्क क्षेत्र में जानकारी पहुँची। मार्च से उस महान् निर्माण के लिए प्राणवान् परिजनों के संकल्प आरम्भ हो गये। इतने जल्दी और इतने बड़े कार्य को कन्धे पर उठाने के लिए लोग दुस्साहस जैसा कदम उठा सकेंगे ऐसी आशा थी नहीं, पर महाकाल की इच्छा जागृत आत्माओं के अन्तःकरणों में जिस प्रकार हिलोरें लेने लगी, उसे रोकता भी कौन ? अनुरोध तो बहाना मात्र है। वस्तुतः इस दिशा में जो कुछ हो रहा है उसे विशुद्ध अन्तःप्रेरणा का उभार कह सकते हैं। इसके उभार का सूत्र संचालन अदृश्य सत्ता द्वारा हो रहा है। दैवी आवेश ही रीछ-वानरों को, गिद्ध, गिलहरियों को, ग्वालवालों को ऐसे काम करने के लिए प्रेरित कर रहा है जिसकी आशा सामान्य रूप से नहीं की जा सकती।

मार्च के एक महीने में २४ स्थानों पर निर्माण के संकल्प पूरे हो गये। हरिद्वार आकर इन निर्माता मण्डलों ने अपने संकल्प लिये हैं। उन्हें निर्माण का शुभारम्भ करने के लिए मंगल प्रतीकों के रूप में शान्ति कुन्ज से एक-एक हजार रुपये अनुदान मिला है। शेष व्यवस्था यह निर्माता मण्डल स्वयं करने में तत्काल जुट गये हैं।

जो संकल्प कार्यान्वित हो चले उनमें से १४ घोषित तीर्थों के हैं और १० अघोषितों के। अघोषित शक्ति-पीठ वहाँ बनाने की नई व्यवस्था बनाई गई है, जहाँ पुराने प्रख्यात तीर्थ तो नहीं हैं, पर उन स्थानों की उपयोगिता को देखते हुए आग्रहकर्त्ताओं का यह तर्क स्वीकार करना पड़ा कि पुराने तीर्थ भी जब बने होंगे तब वे सर्वथा नये ही रहे होंगे। सत्प्रवृतियाँ सामान्य स्थानों को तीर्थ बना देती हैं। जहाँ अघोषित नये शक्ति-पीठ बनेंगे, वहाँ कुछ ही समय में प्रख्यात तीर्थ हो जायेगा। यह तर्क वजनदार है। अस्तु उसे स्वीकार भी किया गया और क्रियान्वित होने का सिलसिला भी चल पड़ा। घोषित २४ में से क्रमशः बनते चले जा रहे हैं। साथ ही अघोषित स्थानों में भी निर्माण का क्रम आरम्भ हो गया। इस दुहरी प्रगति से ही उस लक्ष्य की पूर्ति हो सकेगी, जिसमें २४-२४ के विराम लेते हुए २४० निर्माणों तक पहुँचना है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन स्थानों में मार्च मास में संकल्प हुए और निर्माण आरम्भ हुए ? किनने उनका उत्तरदायित्व सम्भाला और साधनों की व्यवस्था किस प्रकार हुई ? इसका विवरण समग्र हो जाने पर अगले अंक में छापा जायेगा। अधूरापन रहने के कारण अभी उसकी सुविस्तृत जानकारी देना बन नहीं पड़ा, किन्तु उसका सार इतना ही है कि इन स्थापनाओं के पीछे काम करने वाली जागृत आत्माओं की भाव संवेदनाएँ पूरी तत्परता और तन्मयता के साथ जुट गई हैं और सफलता का स्तर चमत्कार जैसा होगा। दैवी प्रयोजन-देव मानवों द्वारा किस प्रकार पूरे होते हैं इसके उदाहरण यों इतिहास के पन्ने-पन्ने पर भरे पड़े हैं, पर अपनी पीढ़ी को आँखों के सामने प्रत्यक्ष रूप से यह दृश्य देखने का अवसर मिलेगा कि इतना कठिन और जटिल कार्य कितनी सरलता और कितनी सफलता के साथ कितने शानदार ढंग से सम्पन्न हो सका।

शक्ति-पीठों की उपयोगिता स्पष्ट है। उनमें स्थापित नौ प्रतिमाओं के माध्यम से आत्म-विकास के आधारभूत सिद्धान्तों और साधनों से जन-जन को परिचित कराया जायेगा। देवालयों की दुनिया को यह परिचित कराया जाय कि लोक श्रद्धा के आधार पर समर्पित किये गये इन साधनों का सदुपयोग किस प्रकार होना चाहिए शक्ति-पीठें उन सब को झकझोर कर रखेंगी और एक नया मार्ग-दर्शन देंगी कि इन इमारतों और उनके साथ जुड़ी हुई जन-शक्ति एवं धन-शक्ति का धर्म-धारणा के अभिवर्धन में किस प्रकार सही नियोजन किया जा सकता है। उपासना क्षेत्र में फैली हुई अराजकता का यह एक प्रकार से सार्वभौम अनुबन्ध होगा कि मनुष्य को आत्मिक प्रगति के लिए आस्थापरक एवं साधनात्मक अवलम्बन, ग्रहण करने के लिए उपयुक्त मार्ग क्या हो सकता है। बिखराव का केन्द्रीकरण करने की दिशा में यह एक अति महत्त्वपूर्ण शुभारम्भ है। उपासना से आगे चलकर जीवन क्षेत्र की अन्यान्य मान्यताओं एवं गतिविधियों का भी सार्वभौम स्वरूप बन सकेगा, इस पर विश्वास करने के लिए पर्याप्त कारण एवं तथ्य मौजूद हैं।

प्रव्रज्या अभियान इन शक्ति-पीठों का अविच्छिन्न अंग है। हर शक्तिपीठ में पाँच प्रशिक्षित परिव्राजक रहेंगे और वे निकटवर्ती क्षेत्र की प्राय: तीस मील जितनी परिधि अपनी सेवा साधना के लिए नियत करेंगे। दो परिव्राजक इस क्षेत्र में नव-जागरण की सचेतना उत्पन्न करने के लिए परिभ्रमण करते रहेंगे। तीन स्थानीय गति विधियों को सुनियोजित रखने में संलग्न रहेंगे। कहना न होगा कि प्रशिक्षित परिव्राजकों की सेवा साधना से उससे समूचे क्षेत्र में धर्म चेतना की कृषि कुछ ही दिनों में लहलहातीहुई दिखाई देगी।

घोषित शक्ति-पीठों की योजना तीन मंजिली इमारतों की है। सभी का स्वरूप लगभग एक जैसा होगा। भूमि ६० × ८० फुट चौड़ी है, और लागत डेढ़ लाख से कम नहीं बैठेगी। जहाँ इतना प्रबन्ध हो सका है अभी उन्हीं स्थानें पर संकल्प हुए हैं और कार्य आरम्भ किये गये हैं। प्रस्तुत गतिविधियों के लिए जितने स्थान की आवश्यकता थी उसे ध्यान में रखते हुए पूरी-पूरी किफायत के साथ यह नक्शा बना है। फिर भी घोर महँगाई को देखते हुए इतनी लागत का आ जाना स्वाभाविक है। नौ मूर्तियाँ उनके लिए नौ छोटे-बड़े देवालय, यज्ञ दैनिक यज्ञ के लिए यज्ञशाला, सत्संग भवन दो सौ साधकों के एक साथ बैठकर साधना करने का स्थान, अतिथि कक्ष पाँच परिव्राजकों के रहने की निवास व्यवस्था, साहित्य स्टाल, पुस्तकालय जैसी प्रवृत्तियों को देखते हुए इससे कम में काम चलना कठिन था। सो न्यूनतम आवश्यकता और सस्तेपन की हरमद को पूरी तरह ध्यान में रखते हुए योजना बनाई गई है।

स्पष्ट है कि युग निर्माण परिवार के सदस्यों का वर्ग आर्थिक दृष्टि से गुजारा कर सकने जैसी स्थिति का ही है। उनमें सुसम्पन्न तो उँगलियों पर गिनने जितनी ही होंगे। निर्माण की उपरोक्त राशि उन्हें अपने ही लोगों से एकत्रित करना कठिन पड़ रहा है। सम्पन्न लोगों की भी कमी नहीं है, पर उन पर प्रभाव डालने वाली प्रतिभाएँ परिजनों में बहुत ही कम दीख पड़ती हैं। ऐसी दशा में जहाँ सम्भव है वहाँ तो बन ही रहे हैं और बनेंगे भी, किन्तु लगता है यह विस्तार एक छोटी सीमा तक ही हो सकेगा। जबकि समय की माँग को देखते हुए उनका विस्तार अत्यधिक संख्या में होना चाहिए। २४ निर्माणों का एक विराम ही तो पूरा हुआ है। ऐसे-ऐसे विराम पड़ाव तो अभी कितने ही पार करने होंगे। १०८—२४०—१००८—२४०० के विस्तार की आशा की जाय तो इसमें कुछ भी असमंजस या आश्चर्य की बात नहीं है।

भावनाओं का उभार और अर्थ संकोच की इन दिनों भारी रस्साकसी चल रही है। भावनाशील परिजनों के आग्रह भरे ढेरों पत्र हर दिन आते हैं कि कोई ऐसा मार्ग निकाला जाय, जिससे कम लागत में उपरोक्त उद्देश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पूरा कर सकने वाले छोटे शक्ति-पीठ बन सकें। इन आग्रहों का महत्व भी स्वीकार किया गया है और कितने ही भवन निर्माण कला के विशेषज्ञों से लगातार परामर्श करने के उपरान्त शक्ति-पीठों का एक छोटा प्लान बनाया गया है। इसकी इमारत डेढ़ मंजली होगी। भूमि ४० × ६० फुट लगेगी और लागत प्राय: सत्तर हजार बैठेगी। 'मिनी' शक्तिपीठों को यह प्लान भी बन गया है और उन आग्रहकर्त्ताओं को इसे भेजा गया है जो कम पैसे की व्यवस्था कर सकते हैं और निर्दिष्ट सभी उद्देश्यों को पूरा कर सकने वाले निर्माण के लिए उत्सुक हैं।

देहात कस्बों में इससे भी छोटों की माँग है, पर वैसा कठिन ही दीखता है क्योंकि इन चेतना केन्द्रों के साथ इतनी प्रवृत्तियाँ जुड़ी हुई हैं कि उनमें से एक को भी काटा नहीं जा सकता। कुछ काट-छाँट की जाय, मैटीरियल सस्ता लगाया जाय, भूमि मुफ्त में मिल जाने की आशा की जा तो भी सारी चतुरता खपा देने पर भी लागत तीस पैंतीस हजार से कम नहीं आवेगी। देहात कस्बों में तृतीय श्रेणी के शक्ति-पीठ इतने दाम के बन सकते हैं। इनमें प्रतिमाएँ नौ के स्थान पर तीन ही रखकर सन्तोष करना होगा। इनमें पाँच परिव्राजक तो नहीं रह सकेंगे, पर एक वानप्रस्थ अपनी पत्नी समेत इनमें निवास करते हुए मिली-जुली सेवा साधना से स्थानीय व्यवस्था एवं समीपवर्ती क्षेत्रों की जागृति का काम चला सकेंगे। आवश्यकता इनकी भी है। आदि वासी पिछड़े हुए क्षेत्रों में प्राय: इसी तृतीय श्रेणी के शक्ति-पीठ सम्भव हो सकेंगे। बड़े नगर कस्बों में स्थानीयलोग द्वितीय श्रेणी की स्थापना कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी के निर्माण में सम्पन्न लोगों का अधिक सहयोग एकत्रित करना होगा। परिजनों की आकांक्षा और स्थिति के साथ ताल-मेल बिठाते हुए तीनों ही स्तर के निर्माण अगले दिनों चल पड़ेंगे। अभी तो प्रथम श्रेणी के निर्माणों पर ही ध्यान केन्द्रित है। सरलता की दृष्टि से द्वितीय श्रेणी के निर्माणों के लिए भी कदम बढ़ाये जा रहे हैं। तृतीय श्रेणी की श्रृंखला बाद में ही हाथ में ली जा सकेगी। श्रद्धा और सम्पदा का ताल-मेल न बैठने के कारण इन उतार चढ़ावों का सामना करते हुए ही २४०० स्थापनाओं का स्वप्न पूरा हो सकेगा।

इन निर्माणों की उपयोगिता असंदिग्ध है। गम्भीर विचार करने वाले चाहते हैं कि यह श्रृंखला तत्काल चल पड़नी चाहिए और उसे सर्वोपरि प्रमुखता मिलनी चाहिए। कठिनाई जो दीखती है, पर उसमें आर्थिक अड़चनें उतनी बड़ी नहीं है जितनी अश्रद्धा और कृपणता की। बाहर से चन्दा न मिले यह बात समझ में आती है, पर अपने ही लोग अपने प्रस्तुत साधनों की ओर देखें और उसमें से उदार साहसिकता अपना कर कुछ का अंशदान अर्पित कर दें तो ऐसे-ऐसे निर्माण हजारों की संख्या में देखते-देखते खड़े हो सकते हैं। प्राणवान् परिजन अपनी श्रद्धा की गहराई का परिचय देने लगें तो इस दिशा में चमत्कार ही खड़े हो सकते हैं।

शक्ति-पीठों की आवश्यकता ने उन सब को चुनौती दी है जिनमें श्रद्धा-शक्ति, उदारता और साधन सम्पन्नता की दोनों ही विभूतियाँ न्यूनाधिक मात्रा में मौजूद हैं। सत्तर हजार का मिनी निर्माण कुल मिला कर प्राय: सत्तर तोले सोने के बराबर होता है। सात एकड़ उपाजऊ जमीन के बदले इतनी राशि मिल सकती है। एक-एक एकड़ जमीन सात किसान दे दें, दस-दस तोला सोना सात महिलाएँ दे दें तो एक मध्यवर्ती शक्ति-पीठ चुटकी बजाते बन कर खड़ी हो सकती है। खाते-पीते सौ व्यक्ति एक दिन की आमदनी देने लगें तो एक वर्ष में महा निर्माण पूरा हो सकता है। शौक-मौज के साधनों को हटाने घटाने से स्थायी सम्पत्ति का एक अंश हलका करने के लिए तैयार कुछ ही व्यक्ति एकाकी तथा पारस्परिक सहयोग से यह कार्य अन्तत: सरलता पूर्वक पूरा कर सकते हैं।

हजारी किसान का उदाहरण सर्वविदित है। स्वयं निर्धन होते हुए भी उसने जन-जन की प्रेरणा देकर बिहार प्रान्त के एक क्षेत्र में हजार बाग लगवाये थे। वह इलाका हजारी बाग कहलाया और अपने निर्माणकर्त्ता का यश अमर बनाने में समर्थ हुआ। प्रतिभाएँ अपने प्रभाव का उपयोग करके भी यह कार्य सम्पन्न करा सकती हैं। बुद्ध काल में दुर्भिक्ष पड़ने पर बच्चों की प्राण रक्षा का उत्तरदायित्व एक लड़की ने उठाया था और उसने जन-जन के अन्त:करण का स्पर्श करके निर्वाह के लिए आवश्यक धन जुटाया था। उसका अनुकरण करने की क्षमता हममें से असंख्यों में विद्यमान है। सम्पन्नता एवं प्रतिभा का एक अंश हममें से कुछ लोग लगा सकने का सत्साहस जुटा सकें तो शक्ति-पीठों की महती आवश्यकता कुछ ही दिनों में बड़ी सरलता पूर्वक पूरी हो सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रज्ञा-संस्थानों की स्थापना

गायत्री शक्ति-पीठों को प्रज्ञावतार की गतिविधियाँ का उद्गम केन्द्र कहा जा सकता है। स्वर्ग से पृथ्वी पर गंगा का जब अवतरण हुआ था, तब वे सर्वप्रथम गोमुख पर प्रकट हुई और फिर उनके तट पर अनेकानेक तीर्थ बनते चले गये। नहर निकलीं और उनकी छोटी धाराएँ बहती हुईं खेतों उद्यानों को सींचती और धरती को समृद्धशाली बनाती चली गईं। युग गंगा को गायत्री कहा जा सकता है। आद्य-शक्ति का प्रकटीकरण इन दिनों सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ऋतम्भरा प्रज्ञा के रूप में हो रहा है। विचार क्रान्ति यही है। ज्ञान-यज्ञ की लाल मशाल द्वारा जन मानस के परिष्कार के लिये उठती उमंगों का दर्शन इसी रूप में हो रहा है।

आस्था संकट आज की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष समस्याओं, विपत्तियों एवं विभीषिकाओं का एक मात्र कारण है, इनका समाधान महाप्रज्ञा की ज्योति किरणें ही कर सकती हैं। उन्हीं का प्रकटीकरण गायत्री शक्ति-पीठों के रूप में दृश्यमान हो रहा है। कलेवर खड़ा होने के उपरान्त गतिविधियाँ चल पड़ती हैं, औद्योगिक संस्थान ओर शासन तन्त्र द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक इमारतें बनाने की आवश्यकता पड़ती है। धर्मतन्त्र और युग चेतना के पुनर्जागरण की इस पुण्य बेला में अगणित शक्ति-पीठों का निर्माण इसी स्तर का दिव्य दर्शन समझा जा सकता है। युग चेतना का प्रवाह तो सम्पूर्ण वातावरण में भर गया है, पर उसकी क्रिया पद्धति का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करना हो तो महाप्रज्ञा के इन आलोक संस्थानों पर दृष्टिपात करना होगा जो इन दिनों तेजी से बन रहे हैं।

मत्स्यावतार की कथा में ब्रह्मा जी के कमण्डल में छोटी मछली का प्रकट होना, ब्रह्मा जी द्वारा उसे तालाब में पहुँचाया जाना, तालाब में न समाने पर उसे समुद्र तक ले जाया जाना, फिर अपने विस्तार के सम्पूर्ण समुद्र को पूर्णकर देने पर उसे मत्स्यावतार के रूप में मान्यता मिलना, पुराण गाथा के अनुसार प्रसिद्ध हैं। ठीक इसी की पुनरावृत्ति इन दिनों प्रज्ञावतार के रूप में हो रही है, युगान्तरीय चेतना के निर्झर गायत्री शक्ति-पीठों के रूप में फूटते ही जा रहे हैं।

कुएँ छोटी जगह में बनते हैं, पर उनसे सिंचाई दूर-दूर तक होती है। बिजली घर एक स्थान पर बनते हैं, पर उनका शक्ति प्रवाह दूर-दूर तक शक्ति की आवश्यकता को पूर्ण करता है। शक्ति-पीठों का कलेवर छोटा होते हुए भी उनके द्वारा मानवी गरिमा के पुनर्जीवन का जो महान् कार्य सम्पादित होने जा रहा है, उसे इस युग का चमत्कार ही समझना चाहिए। उज्ज्वल भविष्य की समग्र संरचना में निरत युग चेतना के इन नगण्य से दीखने वाले प्रयत्नों के पीछे जिस दृष्टि और उमंग का समावेश है उसके सत्परिणाम की कल्पना और सम्भावना के पीछे भी सुनिश्चित वास्तविकता को झाँकते देखा जा सकता है। वह दिन दूर नहीं जब मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण कर सकने वाली मनःस्थिति एवं परिस्थिति की प्रौढ़ परिपक्वता को इन्हीं आँखों से देखा और इन्हीं हाथों से परखा जा सकेगा। इसीलिए शक्ति-पीठ प्रक्रिया को हर स्तर पर कार्यान्वित किए जाने योग्य सर्व सुलभ रूप दिया जा रहा है।

अब तक विभिन्न परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए गायत्री शक्ति-पीठों और प्रज्ञा-पीठों के अनेक नक्शे बनाये गये हैं। जहाँ जैसा क्रम चल पड़ा हो वहाँ उसी को पूरा किया जाना चाहिए, किन्तु जहाँ अभी तक बनना आरम्भ नहीं हुआ है और पैसे का प्रबन्ध अधिक होता दिखाई नहीं पड़ता, वहाँ इन्हीं दिनों घोषित किया गया नवीनतम नक्शा प्रयोग में लाया जाना अधिक सुविधा जनक रहेगा। इसकी लागत मात्र बीस हजार है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन दिनों सीमेण्ट की घोर दुर्लभता के रहते हुए भी अपना काम चल सकता है।

सरलतम अतीव सस्ता और संक्षेप में सभी आवश्यकताएँ पूरा करने वाला यही नक्शा है, जिसे आर्थिक विपन्नता रहते हुए भी जागृत केन्द्र में समय रहते विनिर्मित किया जा सकता है। यह नक्शा इस प्रकार है—बीच में १६' × २६' का कमरा उसके चारों और ८ फुट चौड़ा बरामदा। कमरे की ऊँचाई बरामदे से अधिक रहे, उसमें रोशनदान हों। बरामदे के चारों कोनों पर चार कोठरियाँ। छतें खपरैल या सीमेण्ट शीट की। इतने मात्र से छोटी प्रज्ञापीठ बनकर तैयार हो सकती है। बरामदों के खम्भे लकड़ी या लोहे के लग सकते हैं। कमरे तथा कोठरियों की दीवारें, जहाँ तक हो सके पक्की ईंटों से बनानी चाहिए। ईंटों का प्रबन्ध न हो सकने पर दीवारें, कच्ची मिट्टी से यहाँ तक कि बांस बल्ली से भी बनाई जा सकती हैं। जंगलों के समीपवर्ती क्षेत्रों में लकड़ी सस्ते दाम में भी मिल जाती है। जहाँ श्रम सस्ता है, वहाँ लागत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घटेगी ही। देवालय बनाने के लिए श्रमदान का चन्दा भी एकत्रित किया जा सकता है। ऐसी दशा में लागत घट कर बीस के स्थान पर दस हजार भी हो सकती है।

१६' × २६' के मध्यवर्ती कमरे में चार फुट की एक चबूतरी पूजा प्रवचन के लिए छोड़नी है। दीवार से सटा हुआ बाहर से आधार दिखाई पड़ने वाला एक मूर्ति का मन्दिर इसी चबूतरी पर बीचों बीच ६ फुट के दायरे में बन सकता है। दोनों ओर पाँच-पाँच फुट जगह बन जाती है उसे वक्ता एवं गायक के बैठने में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इस निर्माण में ढकी हुई भूमि तो ३५-४५ की ही लगती है फिर भी चारों ओर खुली जगह रहनी चाहिए। इसलिए लगभग ६०-८०' की जमीन इन प्रज्ञापीठों के लिए भी प्राप्त करनी चाहिए। यह शक्ति-पीठ प्रज्ञा-पीठ का सबसे सुगम स्वरूप है।

युग सन्धि के थोड़े से समय में प्रज्ञा-शक्ति की रचनात्मक प्रवृतियों का विकास-विस्तार जिस तीव्रता से हुआ है, उसे देखते हुए एक कदम और आगे बढ़ाने की आवश्यकता अनुभव हुई है, जिसके आधार पर गाँव-गाँव में दिव्य संचार केन्द्र बन सकें। वह है—'गायत्री चरण पीठ।'

चरणपीठ का स्वरूप यह है—गाँव के समीप एक छायादार वृक्ष उपलब्ध किया जाय। उसके नीचे पक्का चबूतरा बनाया जाय। चबूतरे पर तकिया उठा हो। उस तकिये में पत्थर पर खुदे दो चरण उभरे हों। नीचे "चरण पीठ" लिखा हो। इसमें नीचे तीन पत्ती और दो फूल का एक छोटा समर्पण प्रतीक खुदा हो। यह व्यक्त, परिवार और समाज में प्रतिष्ठापित किये जाने वाले पंचशीलों का प्रतीक चिन्ह माना जायेगा। यही है चरणपीठ का समग्र स्वरूप। नीचे सूर्यार्घ चढ़ाने तथा दीपक-अगरबत्ती रखने के लिए एक छोटी चबूतरी अलग से बनी हो।

इस देवालय को शिवलिंगों की खुली स्थापना के समतुल्य माना जाय, जिसके लिए पुजारी नियुक्त करने की आवश्यकता नहीं। पूजा विधान नियमित चले यह भी आवश्यक नहीं। जब जिसका जी चाहे चरण पीठ के समीप सूर्यार्घ चढ़ाकर उसकी पूजा प्रक्रिया पूर्ण कर दिया करे। सप्ताह में एक दिन रविवार को दीपक-अगरबत्ती रखने की भी विशेष पूजा चलती रह सकती है। यह गायत्री माता की हर गाँव में चल पड़ने वाली प्रतिष्ठापना हो गई।

गायत्री और यज्ञ का युग्म है। यदि एक जगह ही यज्ञ करना हो तो उसी छायादार वृक्ष के नीचे कपड़े का चन्दोवा तानकर महीने में अथवा सप्ताह में एक बार साप्ताहिक हवन भी किया जा सकता है। हवन महंगा न पड़े, इसलिए उसका शाकल्य गुड़ पड़ी हुई खीर मात्र हो सकती है। अग्नि प्रदीपन पूर्णाहुति एवं वसोधारा के लिए आहुतियों में घी का प्रयोग किया जाय तो एक दो तोला भर से काम चल सकता है। हवन के समस्त मन्त्र याद न हों तो हर कृत्य मात्र गायत्री मन्त्र से भी पूर्ण किया जा सकता है।

हवन के अतिरिक्त महीने में अथवा सप्ताह में एक दिन कीर्तन होना भी आवश्यक है। हवन के लिए सबेरे का और कीर्तन के लिए सायंकाल का समय उपयुक्त रहता है। इस कीर्तन के लिए कुछ नियत गीत ही प्रयुक्त होंगे। उन्हें सम्बन्धित लोगों को याद कराया जायेगा। इन गीतों में प्रज्ञावतार की युगान्तरयी चेतना की प्रेरणाओं का उल्लेख होगा। यही गीत जन-जन के कण्ठ में गूँजने और जिह्वा पर मुखरित होने लगेंगे।

मन्दिरों में दर्शन के लिए जाने का कितने ही व्यक्ति नियम बनाते हैं और व्रत लेते हैं। उस गाँव के लोगों में से जो श्रद्धालु हों वे यह नियम बना सकते हैं कि जब भी समय मिला करेगा पाँच मिनट के लिए चरणपीठ को नमन करने नियमित रूप से जाया करेंगे। पाँच मिनट खड़े रहकर नमन किया जाय तो इतने समय में ही चौबीस मन्त्रों का जप एवं प्रज्ञा के प्रतीक सविता का—उदयमान सूर्य का ध्यान किया जा सकता है। स्वल्प साधना का व्रत लेना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए।

यह प्रत्यक्ष निर्माण एवं क्रिया पद्धति का संक्षिप्त-सा निर्धारण है। जहाँ इतना चल पड़ेगा वहाँ उन समस्त गतिविधियों के किसी रूप में क्रियान्वित होने की प्रक्रिया चल पड़ेगी, जो युग परिवर्तन के लिए आवश्यक मानी गई है। प्रत्यक्ष का अवलम्बन लेकर परोक्ष में प्रवेश करना ही अध्यात्म तत्त्वज्ञान की सर्वविदित रीति-नीति है। इस प्रकार जो कार्य भव्य शक्ति-पीठों और मझोले छोटे प्रज्ञा-पीठों से हो सकता है उसी को स्वल्प साधनों से छोटे रूप में गाँव-गाँव तक पहुँचाने में यह चरणपीठ स्थापना प्रकरण बहुत ही प्रेरक एवं प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

अशिक्षित एवम् निर्धन हजारी किसान ने मात्र अपनी श्रद्धा और श्रमशीलता से विहार के एक क्षेत्र में हजार आम-उद्यान लगाने में सफलता प्राप्त की थी। सद्उद्देश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से परिचित होने पर उस क्षेत्र की जनता ने इस संकल्प की पूर्ति में परिपूर्ण सहयोग दिया था। चरण-पीठों की स्थापना को इसी स्तर का माना जाय। कुछ प्रभावी परिजन उठ खड़े हों तो अपने-अपने गाँव में, समीपवर्ती प्रभावी क्षेत्र में इन निर्माणों को कराने में सहज ही सफल हो सकते हैं।

सृजन-शिल्पियों की आपूर्त्ति

गायत्री शक्ति-पीठ, प्रज्ञा-पीठ एवं चरण-पीठों का मूल्यांकन उनके कलेवर से नहीं, उनकी गतिविधियों से किया जायगा। पूजा-पाठ, ध्यान, आरती आदि का क्रम उनमें प्रातः सूर्योदय तक तथा शाम सूर्यास्त के उपरान्त ही चलेगा। शेष सारे दिन सत्प्रवृत्तियाँ, सद्गुणों एवं सद्परम्पराओं के अभिवर्धन के रचनात्मक प्रयास चलते रहेंगे। उसमें कथा-कीर्तन, संस्कार, आयोजन, प्रौढ़शालायें, स्वास्थ्य सम्वर्धन के शिक्षण एवं प्रयास, महिलाओं के लिए गृह विज्ञान, शिशु पालन जैसे उपयोगी शिक्षण, जैसी अनेक गतिविधियाँ चलाई जावेंगी। इसके अतिरिक्त घर-घर सम्पर्क पहुँचाना, झोला पुस्तकालय, सद्वाक्य लेखन, घर-घर आस्तिकता का वातावरण बनाना, जन्मदिन मनाना, अस्वच्छता निवारण, दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन आदि का क्रम भी नैष्ठिक कार्यकर्त्ता घूम-घूम कर चलायेंगे। इन्हीं सत्प्रयासों के आधार पर मनुष्य में देवत्व एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण का स्वप्न साकार होगा।

यह सब कार्य कोई नौकर मनोभूमि का व्यक्ति नहीं कर सकता। यह विशुद्ध तप साधना है, जिसे निष्ठावान युग साधक ही सम्पन्न कर सकते हैं। जिनके मन में ईश्वरीय कार्य के लिए खप जाने की उमंग है वे ही इसमें सफल होंगे। यदि इससे भिन्न स्वार्थी के व्यक्ति उसमें प्रवेश पा भी गये तो स्वयं असफल होने, अपमानित होने के साथ-साथ मिशन की प्रतिष्ठा को भी गिराने के कारण बन सकते हैं। इसलिए जहाँ शक्ति-पीठों के निर्माण का उत्साह दिखाया जाना है, उन्हें पूरा किया जाना है, वहीं उनकी गतिविधियों के संचालन के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को आगे आना या लाना अनिवार्य है। कार्यकर्त्ताओं की पूर्ति का कार्य छोटा नहीं है, छोटी प्रज्ञा-पीठों को भी न्यूनतम दो की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। बड़े संस्थानों में पाँच या उससे अधिक भी चाहिए। ऐसी दशा में दो-ढाई हजार कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता इन्हीं दिनों पड़ेगी। इनकी तलाश और नियुक्ति का कार्य ऐसा है जिसे आगे के लिए नहीं टाला जा सकता। इसकी पूर्ति इन्हीं दिनों अविलम्ब होनी चाहिए।

इस प्रयोजन के लिए मिशन की सभी पत्रिकाओं में इस आशय का विज्ञापन छपाया गया है कि जिनकी मनःस्थिति शक्ति-पीठों में रहकर युग सृजन की सेवा साधना में संलग्न होने की हो, वे शान्तिकुंज हरिद्वार के पते पर अपना विस्तृत परिचय लिखते हुए पत्र-व्यवहार करलें। परिचय में शिक्षा, आयु, स्वास्थ्य, स्वभाव, सेवा कार्यों का अनुभव, आर्थिक स्थिति एवं परिवार की उन पर निर्भरता का विवरण माँगा गया है। जानकारी का मूल प्रयोजन यह है कि वे शारीरिक या मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ्य और समस्याओं में उलझे हुए तो नहीं हैं। ऐसे व्यक्ति निश्चिन्तता पूर्वक सेवा कार्यों में संलग्न नहीं हो सकते फिर उन्हें अकारण क्यों छेड़ा जाय। स्थायी रूप से रचनात्मक कार्यों में समय लगाने के लिए ऐसे व्यक्ति चाहिए जिनके ऊपर परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ लदी हुई न हों।

शक्ति-पीठों के पास ज्ञानघटों से मिलने वाली दस-दस पैसा करके संग्रह की जाने वाली राशि ही एकमात्र आजीविका है। इसे कृपणता पूर्वक ही खर्च करना पड़ेगा और कार्यकर्त्ताओं को भर्ती करते समय सौ रुपये से आगे बढ़ते-बढ़ते योग्यता एवं आवश्यकता के अनुरूप उसे दो सौ तक पहुँचाकर रुक जाना होगा। इस प्रकार औसत डेढ़ सौ का बैठ सकता है। ब्रह्मवर्चस् एवं शांतिकुंज में काम करने वाले युग शिल्पी अपने-अपने विषयों के पोस्ट ग्रेजुएट होते हुए भी इतने में ही गुजारा करते हैं। जिन्हें इसी परिधि में अपने गुजारे का खाँचा फिट होता दिखाई पड़े, उन्हीं का फिलहाल आह्वान किया गया है।

सदाशयता, सेवा भावना और मितव्ययिता का समावेश जहाँ हो और जिनका खाँचा इस प्रयोजन में फिट होता हो उनके आवेदन पत्र शांतिकुंज में माँगे गये हैं। आवश्यक पत्र व्यवहार के उपरान्त यह माना जा सकेगा कि वे अपने समीप की किस शक्तिपीठ में रह सकते हैं। वहाँ के संचालक इन सेवार्थियों से सम्पर्क साधेंगे। उपयुक्त जँचने पर कुछ समय अपने यहाँ काम करायेंगे और स्थिरता अनुभव करने पर एक महीने के लिए शांति कुञ्ज में ट्रेनिंग के लिए भेजेंगे, यों प्रशिक्षण का यह समय बहुत ही स्वल्प है, पर तात्कालिक आवश्यकता को देखते हुए प्राथमिक ट्रेनिंग इतनी अवधि की ही रखी जाएगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाद में विशेष प्रवीणता प्राप्त करने के लिए उन्हें समय-समय पर विशेष ट्रेनिंगों के लिए हरिद्वार भेजा जाता रहेगा।

जो समय को पहचानते हैं, वे अवसर को चूकते नहीं। कोई समय ऐसा होता है, जब तिनके का सहारा भी काम दे जाता है और समय निकल जाने पर नाव या जहाज भी बेकार सिद्ध होते हैं। लंकादहन और राम राज्य संस्थापन की सन्धि बेला में जिनने छोटी-छोटी भूमिकाएँ निभालीं वे कृतकृत्य हो गये। समय चला जाने पर उससे असंख्यों गुना त्याग बलिदान करने पर भी वैसा श्रेय देर से चलने वाले किसी को भी न मिल सका। हनुमान, अंगद, नलनील, जटायु गिलहरी, केवट, विभीषण, सुग्रीव आदि का निजी व्यक्तित्व नगण्य था, पर वे भगवत् प्रयोजनों में अग्रणी होने का साहस कर सकने के कारण ही प्रातः स्मरणीय बन गये। देर से चलने और पीछे सहयोग देने वाले भी यों राम-काल में आगे रहे होंगे, पर उनकी चर्चा कहीं भी नहीं होती। अग्रगामियों की साहसिकता उन्हें जैसे दिव्य अनुदान उपलब्ध करा सकी वैसा सुयोग सौभाग्य पीछे और भी अधिक त्याग करने वालों में से भी किसी को न मिल सका। इसी को कहते हैं समय को पहचानना और युग धर्म के निर्वाह में अग्रगामी होना।

युग सन्धियाँ बार-बार नहीं होतीं। जब आती हैं तो किसी को मटिया-मेट और किसी को निहाल करके रख जाती हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन ने राजाओं, जागीरदारों को उलट दिया और सत्याग्रहियों को वैसा श्रेय प्रदान किया जैसा वे स्वार्थ संलग्न रहने पर किसी प्रकार भी पा नहीं सकते थे। अवतारियों और युग प्रवर्तकों के घनिष्ट सहयोगी किस प्रकार उच्चस्तरी श्रेय साधन उपलब्ध कर सके, इसका साक्षी इतिहास के असंख्यों स्वर्णिम पृष्ठों पर विद्यमान है। समय की उपेक्षा यों पड़ती तो सभी को महँगी है पर श्रेय साधकों के लिए तो यह दुर्भाग्यकर ही रहती है और जीवन भर काँटे की तरह चुभती तथा पश्चाताप का कारण बनी रहती है। इसके विपरीत समय के छोटे-छोटे अनुदान भी सदा स्मरणीय बने रहते हैं। शबरी के बेर, विदुर का शाक, गोपियों की छाछ, सुदामा के तन्दुल, कर्ण के दाँत, ग्वाल गोपियों की गोवर्धन उठाने में लगी लाठियों का सहारा देखने में नगण्य जैसा लगता है, पर समय की आवश्यकता के अनुरूप होने के कारण वे इतने श्रेयस्कर सिद्ध हुए कि असंख्यों को उस तुच्छ-सी साहसिकता के फलस्वरूप उपलब्ध हुए, श्रेय से ईर्ष्या हो सकती है। वस्तुतः समय को पहचानना और उपयुक्त अवसर पर श्रेय साहस प्रस्तुत कर सकना ही मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य है। यों तो स्वार्थी और अत्याचारियों को भी कष्ट सहने, त्याग करने के लिए प्रकृतिक्रम विवश करता रहता है। सौभाग्यशाली उन्हीं को कहा गया है, जिन्होंने समय पहचाना और युग धर्म के निर्वाह में साहसिक कदम बढ़ाया।

प्रस्तुत युग सन्धि का सृजन पथ ही सबसे प्रबल और सबसे महत्वपूर्ण है। युद्धों में मरने वालों की जितनी चर्चा होती है उससे अधिक रेडक्रास जैसी दयालु संस्थाओं की। सत्प्रवृत्तियों पर ही श्रद्धा के सुमन चढ़ते हैं। नियति का इशारा भले ही ध्वंस का हो, भले ही सृजन का, अथवा इन दोनों के समन्वय से गलाई ढलाई करने का। मानवी गरिमा तो इतने में ही सध जाती है कि वह महत्त्वपूर्ण समय पर अपने कर्त्तव्य में सेवा साधना का समावेश करके अपनी विशिष्टता का प्रमाण परिचय प्रस्तुत करे।

गायत्री प्रज्ञा-पीठ-स्वरूप और कार्यक्रम

नव-युग की प्रभात बेला अब अति निकट है। महाप्रज्ञा उसका नेतृत्व करेगी। मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का लक्ष्य सद्भावना सम्पन्न दूरदर्शिता के आधार पर ही सम्भव होगा। मानवी गरिमा और सद्भाव सम्पन्न दूरदर्शिता की प्रतीक ऋतम्भरा प्रज्ञा के सहारे ही युग सृजन का महान् प्रयोजन सम्पन्न हो सकेगा। महाकाल की यही प्रेरणायें युगान्तरीय चेतना के रूप में उफनती चली आ रही हैं। जागृत आत्माओं के अन्तराल में इस प्रयोजन के लिए कटिबद्ध होने की उमंगें उठ रही हैं।

बसन्त आता है तो सर्वत्र कोपलें फूटती हैं और फूलों से टहनियाँ लदी हुई दिखाई पड़ती हैं। वर्षा आते ही हरितिमा से धरती ढक जाती है। इन दिनों भी सूक्ष्म जगत का दिव्य प्रवाह ऐसा चल रहा है जिसके प्रभाव से जन-जन के मन-मन में नव-सृजन के लिए कुछ करने की तत्परता उठ रही है।

प्रस्तुत उलझनों, विपत्तियों और विभीषिकाओं का एकमात्र कारण लोक मानस में घुसी हुई अनास्था ही है। चिन्तन में निकृष्टता और चरित्र में दुष्टता घुस पड़ने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रतिक्रिया ही विनाश और संकट का घटाटोप खड़ा करती है, यही है आज की विपन्नताओं का तात्विक विश्लेषण। छाई हुई अवांछनीयताओं का निराकरण महाप्रज्ञा के प्रकटीकरण से ही सम्भव होगा। विचार-क्रांति से ही युग की समस्याएँ सुलझेंगी। वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता गायत्री का व्यापक अभियान इन दिनों आँधी-तूफान की तरह इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए चल रहा है।

बड़े गायत्री शक्ति-पीठों—मझोले गायत्री प्रज्ञापीठों और छोटे गायत्री चरण-पीठों का निर्माण इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए हो रहा है। धर्मतन्त्र को उसके वास्तविक रूप में प्रकट करने और उसे सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में लगाने के लिए पुरातन काल की तरह पुनः प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। इसके लिए इन प्रज्ञा संस्थानों का उपयोग भली प्रकार हो सकेगा। आलोक वितरण केन्द्रों के रूप में इनकी स्थापना गाँव-गाँव होनी चाहिए। भारत का असली स्वरूप देहाती क्षेत्र में निवास करने वाली तीन चौथाई जनसंख्या वाले उस समुदाय को समझना चाहिए जो अशिक्षा और दरिद्रता के कारण दूर-सुदूर स्थान के धर्म-केन्द्रों में जाकर अथवा विज्ञ विद्वानों को अपने यहाँ बुलाकर नव जागृति के अनुरूप प्रेरणाएँ प्राप्त नहीं कर सकता। प्राचीन काल के धर्म संस्थान देवालयों के रूप में जन-जागृति के केन्द्र बनकर रहते थे। अब फिर उन्हें उसी रूप में पुनर्जीवित करने की आवश्यकता पड़ गई। प्रस्तुतः देवालयों में से अधिकांश जिन लोगों के हाथ में हैं उनसे लेकर प्रतिगामिता से मुक्त कराने का सुयोग बनता नहीं दीखता। अतएव यही उपयुक्त लगता है कि जिस प्रकार समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र भर में छोटे-छोटे महावीर मन्दिर बनाए थे, उसी प्रकार गाँव-गाँव प्रज्ञा-मन्दिर बनाए जाएँ। भले ही वे आकार में छोटे और लागत की दृष्टि से सस्ते हों, पर उनमें धर्मतन्त्र की गरिमा को बढ़ाने वाले जीवन्त कार्यक्रम सतत् चलाये जाते रहेंगे।

देवालय की इमारत में चलते रहने वाले कार्यक्रमों की रूपरेखा निर्धारित है। प्रातःसायं सामूहिक प्रार्थना आरती, दिन में छः घण्टे, दो-दो घण्टे की प्रशिक्षण कक्षाएँ, जिनमें छोटी आयु के प्रौढ़-अधेड़ नर-नारी अपनी-अपनी पढ़ाई की सुविधा प्राप्त करते रहेंगे। ट्यूशन के बिना मात्र स्कूल पढ़ाई से बच्चे अच्छे नम्बरों से पास नहीं हो पाते। प्रज्ञा-संस्थान में दो-दो घण्टे की एक कक्षा स्कूली पढ़ाई वाले छात्रों के लिए रहेगी। दूसरी कक्षा प्रौढ़ पुरुषों के लिए, तीसरी महिलाओं के लिए। देश में फैली हुई निरक्षरता एवं शिक्षा में अरुचि को हटाने के लिए यह कार्यक्रम अतीव उपयोगी सिद्ध होगा। आरम्भ में ये गतिविधियाँ छोटे रूप में चलें, थोड़े छात्र मिलें तो यह भी आशा की जा सकती है कि निरन्तर उत्साह मिलते रहने से इस दिशा में कार्य-विस्तार अत्यन्त तेजी के साथ होता चला जाएगा। निरक्षरता दूर करने का कार्य सरकार के जिम्मे नहीं छोड़ा जा सकता है, उसे जन-सहयोग से ही करना होगा और इसे सफल बनाने में प्रज्ञा-पीठ जैसे धर्म संस्थानों को ही नेतृत्व सम्भालने की आवश्यकता है।

दैनिक शिक्षण क्रम में एक घण्टा स्वास्थ्य सम्वर्धन का रहेगा। उसमें शिक्षण और अभ्यास दोनों ही उपाय अपनाए जायेंगे। स्वास्थ्य रक्षा से सम्बन्धित अनेक तथ्यों की जानकारी और विपन्न अवस्था से जन-जन को अवगत कराया जायेगा और उनकी स्थिति के अनुरूप सुधार का परामर्श दिया जाएगा। साथ ही खेल-कूद की व्यवस्था चलती रहेगी। जिन्हें रुचि होगी, उन्हें आसनप्राणायाम और ध्यान का अभ्यास कराया जायेगा।

प्रज्ञापीठों के दैनिक कार्यक्रम में रात्रि को कथा कहने का कार्य नियमित रूप से चलता रहेगा। रामायण, गीता एवं महाभारत प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक प्रसंगों के माध्यम से आज की वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किए जाते रहेंगे। वस्तुतः यही है धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण, जिसके आधार पर अवांछनीयताओं के प्रति आक्रोश एवं सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए उत्साह उत्पन्न किया जा सकता है। कथा-शैली का परोक्ष शिक्षण कितना प्रभावी एवं चिरस्थायी होता है, उसे कहीं भी प्रयोग परीक्षण करके जाना जा सकता है।

समीपवर्ती गाँव में जन-सम्पर्क साधने और रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण करने के लिए दूसरा कार्यकर्त्ता नियमित रूप से जाया करेगा। रचनात्मक कार्यक्रम करने तो कितने ही हैं, पर आरम्भ में दो प्रवृत्तियाँ अनिवार्य रूप से क्रियान्वित की जाती रहेंगी।

एक चल पुस्तकालय—हर घर में प्रत्येक शिक्षित नर-नारी, बाल-वृद्ध को युग साहित्य पढ़ने देने और अगले सप्ताह वापस लेने का क्रम चलाना। दूसरा—सहयोगियों के जन्म दिवसोत्सव मनाने का कर्मकाण्ड एवं संगीत-प्रवचन युक्त आयोजन सम्पन्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कराते रहना। इन आयोजनों के प्रकारान्तर से परिवार गोष्ठी कहना चाहिए, जिसमें उपस्थित लोगों को जीवनोद्देश्य से सम्बन्धित अनेक पक्षों में उत्कृष्टता का समावेश करने का मार्ग-दर्शन किया जाता रहेगा। यह आयोजन आर्थिक दृष्टि से नितान्त सस्ते रखे जाने का प्रचलन बनाया गया है। एक-दो रुपये का पूजन यजन—एक-दो रुपये का स्वागत-सत्कार करने पर चार-पाँच रुपये के भीतर ही ऐसा शानदार समारोह हो जाता है जिसमें उस परिवार से सम्बन्धित पच्चीस-पचास व्यक्ति उत्सव का आनन्द लेने के साथ-साथ सामयिक सत्प्रेरणा भी प्राप्त करते रह सकें।

हर प्रज्ञापीठ में स्लाइड प्रोक्टर, टेपरिकार्डर जैसे साधन रहेंगे जिनके सहारे लोकरंजन और लोकमंगल की समन्वित प्रक्रिया आकर्षक रहकर युग सृजन की बहुमुखी चेतना उत्पन्न करती रहेगी।

यह काम करने की आरम्भिक कार्य-पद्धति है। जन-सम्पर्क में सघनता आते ही उन प्रमुख प्रयोजनों को हाथ में लिया जाएगा जिनके लिए इतनी बड़ी और इतनी दूरदर्शितापूर्ण योजना बनाई गई है। रचनात्मक कार्यों में प्रौढ़-शिक्षा, गृह उद्योग, वृक्षारोपण, आँगन बाड़ी, स्वास्थ्य-संवर्धन, शिशु-कल्याण, नारी जागरण, श्रमदान, स्वच्छता अभियान, सहकारिता, अल्प बचत जैसी कितनी ही सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण एवं अभिवर्धन करना है। सुधारात्मक कार्यक्रमों में नशेबाजी, छूत-छात, पर्दा-प्रथा, शादियों में अपव्यय दहेज, मृतक-भोज, अन्ध विश्वास, हरामखोरी, मिलावट, रिश्वत, बहुप्रजनन, छल, आक्रमण उच्छृखलता जैसी दुष्प्रवृत्तियों के विरोध में वातावरण बनाना प्रमुख हैं। यह सामयिक समस्याओं और आवश्यकता की चर्चा हुई। भविष्य निर्माण के लिए आत्मिक उत्कृष्टता एवं भौतिक सम्पन्नता बढ़ाने वाले, मिल-बाँटकर खाने और हिल-मिलकर रहने का प्रचलन आवश्यक है। इसके लिए ऐसे संरजाम जुटाने होंगे जिससे ४०० करोड़ मनुष्यों की इस दुनियाँ को एकता, समता एवं शुचिता के सूत्र में आबद्ध किया जा सके।

प्रज्ञा-पीठों के माध्यम से आरम्भ किया गया धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण अभियान अपने प्रथम चरण में छोटा प्रतीत होता है, पर जिस प्रकार से इसे सींचने, बढ़ाने की योजना बनाई गई उसे देखते हुए यह विश्वास किया जा सकता है कि निकट भविष्य में जन-जन के अन्तराल तक युगान्तरीय चेतना को पहुँचा सकना और उस आधार पर उज्ज्वल भविष्य की संरचना कर सकना स्वप्न नहीं तथ्य बनकर रहेगा।

नव-निर्मित प्रज्ञा-संस्थानों का खर्च कहाँ से कैसे चलेगा ? इस प्रश्न का सुनिश्चित उत्तर पहले से ही सोचा गया है और उसका प्रयोग सफलता पूर्वक चल भी रहा है। युग निर्माण परिवार की प्रत्येक जागृत आत्मा को कहा जा रहा है कि इन्हें युग सृजन के लिए नित्य दस पैसा एवं एक घण्टा समय का अनुदान देते रहना चाहिए। अब तक इसी समय-दान और साधन-दान के आधार पर मिशन की गतिविधियाँ अग्रगामी होती रही हैं। अब नये कदम उठे हैं। प्रज्ञा-पीठों की इमारतें तो मिलजुल कर चन्दे से बनाई जा रही हैं, पर पीछे हर पीठ संस्थान में रहने वाले दो कार्यकर्त्ताओं का खर्च इस मुट्ठी फण्ड से चलेगा। दस पैसा या एक मुट्ठी अनाज के धर्म घट भावनाशील लोगों के यहाँ रहेंगे।

प्रज्ञा संस्थानों के लिए कार्यकर्त्ता दो स्तर के होंगे। एक सन्त वानप्रस्थ जिनकी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निवृत्त हो चुकीं। दूसरे 'ब्राह्मण' जिन पर परिवार का हलका-सा वजन तो है, पर वे ब्राह्मणोचित आजीविका पर निर्वाह करने को तैयार हैं। ऐसे लोग विशाल गायत्री परिवार में से ढूँढ़ निकालने के लिए समुद्र मंथन आरम्भ कर दिया गया है। वे उतनी संख्या में निश्चित रूप से मिल जायेंगे जितने कि प्रज्ञा-संस्थान बनते चलेंगे। कोई अवैतनिक कोई वैतनिक का औसत फैलाकर १५० रु. मासिक का खर्च हर कार्यकर्त्ता के पीछे आंका गया है। दो का ३०० रु. हुआ। इसके लिए तीन रुपया मासिक के १०० धर्मघट रखने से काम चल सकता है। विश्वास किया गया है कि युग निर्माण मिशन के कार्यकर्त्ता तथा समर्थक, सहयोगी मिलकर एक प्रज्ञा क्षेत्र में इतने धर्म घटों की स्थापना आसानी से कर लेंगे और उस मुट्ठी भर फण्ड से कार्यकर्त्ताओं का निर्वाह व्यय आसानी से निकलता रहेगा।

पीठ संस्थान का कुछ और भी खर्च रहेगा। साप्ताहिक हवन, पानी, रोशनी, सफाई, साइकिल, स्टेशनरी, मकान मरम्मत, उद्यान जैसे कई कामों में कुछ खर्च तो पड़ता ही है, उसे कुछ भावनाशील महीने में एक दिन की आमदनी या न्यूनाधिक स्वेच्छा सहयोग देकर पूरा करते रहेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति करने से पूर्व एक महीने का प्रशिक्षण गायत्री नगर-शान्ति-कुंज हरिद्वार में चलेगा, ताकि हर कार्यकर्त्ता कंधों पर आने वाले अनेकों उत्तरदायित्वों का निर्वाह कुशलता पूर्वक कर सके।

पिछले डेढ़ वर्ष में प्राय: एक हजार बड़ी गायत्री शक्ति-पीठों और गायत्री प्रज्ञा-पीठों के संकल्प हुए हैं। इनमें कुछ बन चुकीं और कुछ निर्माणाधीन हैं, यह प्रगति उत्साह-वर्धक होते हुए भी सन्तोषजनक नहीं है। देश में सात लाख गाँव हैं। इनमें व्यक्ति, परिवार एवं समाज का अभिनव निर्माण करने वाली युगान्तरीय चेतना उत्पन्न करने के लिए एक लाख प्रज्ञा-पीठ जैसे धर्म संस्थानों की आवश्यकता पड़ेगी। एक केन्द्र और उससे सम्बद्ध छ: गाँव। इस प्रकार सात गाँवों के एक यूनिट से एक लाख प्रज्ञा पीठों की आवश्यकता पड़ेगी । एक टोली हर स्थान को एक-एक दिन दें तो प्रति सप्ताह सबसे सम्पर्क का क्रम बन सकता है। यह कार्य एक हजार संस्थानों से सम्पन्न नहीं हो सकता।

अपना देश धर्म-परम्परा से अनुप्राणित होते हुए भी साधन रहित देहातों में बिखरा हुआ है। शिक्षा तथा अर्थ-साधनों की भी कमी है। ऐसी दशा में यदि बिना समय गँवाये नव-सृजन की तीव्र गति देनी है तो सस्ते, स्थानीय साधनों से बन सकने वाले, सामान्य कौशल से बन सकने वाले धर्म-संस्थान बनाने होंगे। श्रद्धा और सृजन की उभय पक्षीय आवश्यकता पूर्ण कर सकने के लिए इस निर्माण को युग की पुकार एवं समय की माँग कह सकते हैं।

सर्व सुलभ डिजाइन

इस प्रयोजन के लिए एक नया डिजायन इन्हीं दिनों उभरा है इसमें (१) कार्यकर्त्ता निवास (२) बहुदेश्यीय हॉल (३) देव मन्दिर (४) पुस्तकालय की वे चारों ही आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं जिनके लिए बड़े गायत्री शक्ति-पीठ बनाये जा रहे हैं, इस छोटे प्रज्ञा-पीठ निर्माणों की लागत लगभग सात-आठ हजार है। गायत्री माता की मूर्ति की लागत एक हजार और बढ़ जायेगी। यह राशि इतनी बड़ी नहीं कि इतने महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए उसे सात गाँव के मण्डल द्वारा जुटाया न जा सके।

इन दिनों सीमेण्ट मिलना अति कठिन है। इसलिए चूने या गारे से चुनाई की जा सकती है। आच्छादन के लिए खपरैल से काम लिया जा सकता है । खपरैल के आच्छादन देवालयों में किया जाना खादी की तरह पवित्र और सरलता सात्विकता का प्रतीक है। गिरजा घरों में तो सर्वत्र खपरैल का आच्छादन ही बना रहता है। उसमें कला, सादगी और सात्विकता का समावेश है। सस्तेपन और गाँव में ही बन जाने की सुविधा तो प्रत्यक्ष है ही इस छोटे प्रज्ञा-पीठ का स्वरूप इस प्रकार है—

एक बड़ा भूमि से १' ऊँचा चबूतरा साइज ३०' × ६०' । चबूतरे के सिरे पर पाँच फुट परिक्रमा छोड़कर मन्दिर ६' × ६' का। मन्दिर का धरातल चबूतरे से ३ फुट ऊँचा। मन्दिर के चारों ओर बाहर दो-दो फुट की चबूतरी। मन्दिर की दीवालों की ऊँचाई भीतर ८॥ फुट छत चारों ओर ढलवां। बीच में शिखर। तुलसी का थावला सामने की ओर।

मन्दिरों के बाद दस फुट जगह छोड़कर हॉल। हॉल साइज १६' × २४' पीछे की साइड में ठोस दीवार। उसमें तीन अलमारियाँ। बरामदे के तीन ओर ढाई फुट ऊँची दीवाल। इसके ऊपर छड़ों की डोली तीनों ओर। एक ओर जाली का दरवाजा। हॉल के पीछे कार्यकर्त्ता निवास । एक सिरे पर ५ × ८ की खुली रसोई । बीच में ८ × ८ का कमरा-दूसरे सिरे पर ६ × ८ का बरामदा। चौका और बरामदा भी छड़ों या बांसों की जाली से बन्द। उनके दरवाजे भी जाली के। इसमें जमीन ३० × ६० की आवश्यकता पड़ेगी चारों ओर जितनी खुली जगह मिल सके उतनी उत्तम।

उपरोक्त सभी संस्थानों में पानी का प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ेगी। हैण्डपम्प या कुएँ की लागत उपरोक्त स्टीमेट से अलग है। चारों ओर हरियाली लगाने का प्रबन्ध किया जाए। खपरैलों पर चढ़ी हुई बेलें बहुत सुन्दर लगती हैं।

इन दिनों सबसे अधिक उत्साह इन्हीं छोटे प्रज्ञा-पीठों के निर्माण का दृष्टिगोचर हो रहा है। उनकी लागत मात्र दस हजार के लगभग आती है। यह सभी ग्रामीण क्षेत्र में बन रहे हैं। इसलिए वहाँ कोई भी उदार किसान गाँव के भीतर या बाहर सटी हुई जमीन ऐसे पवित्र कार्य के लिए देने में अपना सौभाग्य मान रहे हैं। हर जगह जमीनें प्राय: दान में ही मिल रही हैं। लागत इतनी बड़ी नहीं है जिसे एक केन्द्र और छै संलग्न गाँवों से एकत्र न किया जा सके। उसके भी चार खण्ड हो सकते हैं (१) चूबतरा, (२) मन्दिर, (३) कार्यकर्त्ता निवास (४) हॉल। प्रत्येक में दो ढ़ाई हजार का एक औसत माना जा सकता है। उसमें से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि पैसा कम पड़ता हो तो इसी नवम्बर से निर्माण कार्य जारी रखा जा सकता है और जैसे-जैसे पैसा मिले, वैसे-वैसे उसे पूरा किया जा सकता है। अपने देश में परम्परागत धार्मिकता का प्रभाव अभी भी इतना मौजूद है कि एक क्षेत्र में छोटी प्रज्ञा-पीठ बनाने के लिए उत्साह उत्पन्न करने पर उस निर्माण में कहीं कोई अड़चन नहीं रह सकती।

गुरु पूर्णिमा पर्व पर प्रज्ञा की यह प्रेरणा उभरी है कि जहाँ भी गायत्री परिवार के संगठन हैं, वहाँ इन छोटे प्रज्ञा-पीठ निर्माण का कार्य अविलम्ब आरम्भ कर दिया जाए। इसके लिए भावनाशील कर्मनिष्ठ प्रज्ञा पुत्रों को दो-दो की टोली बनाकर अपने सम्पर्क क्षेत्र में परिभ्रमण के लिए निकलना चाहिए और प्राय: वैसी ही तत्परता बरतनी चाहिए जैसी कि चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार बरतते हैं। जहाँ भाव भरे प्रयत्न होंगे, वहाँ सफलता सुनिश्चित है।

जहाँ श्रमदान मिल सकता है यह मजदूरी सस्ती है वहाँ लागत और भी घट सकती है। जहाँ जंगल निकट है और लकड़ी सस्ती मिल सकती है, वहाँ लागत में और भी कमी होगी। जो अनुमान लगाया गया है उसे हरिद्वार की लागत समझा जाना चाहिए।

यह शुभारम्भ गायत्री परिवार शाखाएँ अपने यहाँ से करें और उन्हें सुचारु रूप से चलाने के लिए मनोयोग एवं समयदान केन्द्रित करें। इतना होते ही उस समूचे क्षेत्र में नई स्थापनाओं का ताता लग जाना निश्चित है। प्रज्ञावानों को अपने अग्रगमन का उदाहरण प्रस्तुत करके ही उस समूचे क्षेत्र में नव-जागरण को व्यापक बनाने का श्रेय मिल सकता है।

अन्य स्तर के निर्माण

इसी बीजारोपण वर्ष में छ: हजार वाले छोटे प्रज्ञापीठों के निर्माण को ही प्रधानता मिली है। जहाँ साधनों की न्यूनाधिकता है, वहाँ के लिए अन्य डिजायन पहले सही ही अपनाये गये हैं, वे अपना काम जारी रखें। छोटे प्रज्ञापीठों को प्रधानता देने से उन बड़े एवं मझोलों के निर्माण में कुछ विलम्ब हो तो चिन्ता जरा भी नहीं करनी चाहिए। बड़े कार्यों में अधिक धन चाहिए और वह धीरे-धीरे आता है। उद्घाटन की उतावली न करके उन्हें शान्तिपूर्वक योजनाबद्ध ढंग से चलने देना चाहिए। विलम्ब होने पर उनके उद्घाटन में गुरुदेव पीछे भी पहुँच सकते हैं। दिसम्बर तक निपटा लेने वाली बात अब अनिवार्य नहीं रह गई है। महाप्रज्ञा की सामयिक प्रेरणा को प्रमुखता देते हुए इन दिनों छ: हजार वाले छोटे प्रज्ञापीठों को ही प्रधानता देनी चाहिए।

बड़े और मझोले शक्ति-पीठ, प्रज्ञा-पीठ जहाँ आर्थिक या अन्य कारणों से बनने में नहीं आ रहे हैं, सीमेण्ट नहीं मिल रहा है, बड़े नगर में भूमि नहीं है, वहाँ के लिए सुझाव यह है कि बड़े नगर से दस-पाँच मील दूर किसी देहात में उसे बनाकर वहाँ शहर से कार्य करने के लिए जाया जा सकता है। चाणक्य देश के प्रधानमन्त्री तथा विश्वविद्यालय के कुलपति का उत्तरदायित्व समझकर उन संस्थानों में आते थे किन्तु अपना निवास नगर से दूर छोटे देहात में ही रखते थे। यही नीति बड़े नगरों के सम्बन्ध में भी अपनाई जा सकती है। सीमेण्ट का विकल्प चूना, गारा बड़े एवं खपरैल को मान कर चला जा सकता है।

आर्थिक कठिनाई के नये विकल्प यह सोचे गये हैं कि बड़े प्रज्ञापीठ प्राय: ३२ हजार में और मझोले लगभग बीस हजार में निपटा लिए जाएँ। जहाँ निर्माण कार्य सुविधापूर्वक चल रहे हैं, वहाँ तो वैसे ही चलने दिए जायें, किन्तु जहाँ आर्थिक कठिनाई से अड़चन आने और विलम्ब लगने की सम्भावना है, वहाँ इस नये सुझाव के अनुरूप परिवर्तन कर लिये जायें। जहाँ अभी बनना आरम्भ नहीं हुआ है वहाँ तो इसी योजना को अपनाया जाय, ताकि अधिक धन पाने के लिए भटकना न पड़े और साधनों के अभाव में अनावश्यक विलम्ब न लगे।

[१] बड़ी प्रज्ञा-पीठ-लागत ३२ हजार

इसमें निर्माण कार्य ५० × ६२′ की भूमि पर होगा। आस-पास खुली भूमि कितनी भी हो सकती है। इसे चार विभागों में बाँटा जा सकता है। (१) कार्यालय विभाग (२) मन्दिर विभाग (३) हॉल विभाग (४) कार्यकर्त्ता निवास।

(१) कार्यालय विभाग सामने की ओर ५२′ चौड़ाई में होगा। एक ओर ८′ × १०′ का साहित्य काउन्टर उससे लगा हुआ ८′ का मुख्य प्रवेश द्वार। द्वार की दूसरी ओर कमरा ८′ × १०′ का बरामदा, ११′ × १०′ का कार्यालय एवं १०′ × १०′ का स्टोर।

(२) मन्दिर प्रवेश द्वार के ठीक सामने होगा। प्रवेश द्वार के बाद ६फुट जगह छोड़कर १८ × २९ का चबूतरा उसी पर पीछे ५ फुट परिक्रमा की जगह छोड़ कर ८ × ६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का मन्दिर। मन्दिर का धरातल चबूतरे से चार फुट ऊँचा। मन्दिर के पटाव की ऊँचाई नौ फुट। मन्दिर के आगे बरामदा ६ × ६ का। चारों ओर ढाई फुट छज्जली। बरामदे के आगे वाले भाग पर शिखर डिजायन के तीन मुकुट। भीतर सिंहासन चबूतरी। आद्य-शक्ति गायत्री की प्रतिमा। यदि तीन प्रतिमायें रखनी हों तो मन्दिर ८ × ८ फुट का बनाना चाहिए। उसमें बीच में आद्य-शक्ति गायत्री तीन फुट ऊँची। एक ओर पाँच मुख वाली सावित्री दूसरी ओर अष्ट भुजी दुर्गा। कुण्डलिनी या दुर्गा एक ही शक्ति के दो नाम हैं इनमें से किसी को भी रखा जा सकता है।

(३) हॉल कार्यालय—स्टोर से लगा हुआ बनेगा। १६ × २७ का हाल तथा उसके साथ ८ × २७ का बरामदा। हॉल में स्टेज की चबूतरी ५ फुट चौड़ी रहेगी।

(४) हॉल से लगा हुआ कार्यकर्त्ता निवास रहेगा।

इस निवास में १२ × ९ फुट का कमरा। कमरे से सटी हुई ६ × ९ स्टोर कोठरी। आगे की ओर ८ × १० का बरामदा। बरामदे से सटी हुई ८ × ८ की कमरे की तरह की कोठरी। रसोई या अन्य आवश्यक प्रयोजन के लिए पीछे की ओर सात फुट चौड़ा बरामदा।

निवास के सामने चौक १५ × १५ का। इसके बाद ४ × ४ का शौचालय। इतना ही बड़ा स्नानघर। इन्हीं के पीछे मन्दिर की ओर खुलने वाला मूत्रालय तथा जल-घर जहाँ हाथ धोने, पानी पीने की व्यवस्था भी रहेगी।

यह निर्माण आवश्यकता एवं अर्थ-व्यवस्था के अनुरूप एक-एक करके भी हाथ में लिए जा सकते हैं। इसकी लागत अनुमानत: ३२००० रु. आवेगी। कार्यालय विभाग की ९००० रु. मन्दिर विभाग की ६००० रु. हॉल की ८००० रु. एवं कार्यकर्त्ता निवास की लागत ९००० रु. के आस-पास रहेगी। यह हिसाब हरिद्वार की मजदूरी तथा इमारती सामान को ध्यान में रखकर लगाया गया है। चिनाई ईंट-चूने की, आच्छादन खपरैल का। सीमेंट की छत मात्र मन्दिर की रखी गई है। पलस्तर के लिए सीमेंट मिल सके तो उत्तम, अन्यथा जुड़ाई की जगह सीमेंट की टीप करके भी पुताई की जा सकती है। कहा जा चुका है कि श्रम एवं सामग्री का मोल-भाव तथा खूबसूरती सुविधा अधिक बढ़ाने पर लागत घट-बढ़ भी सकती है। यदि कार्यालय विभाग को पक्का दो मंजिला करके उस पर ५ फुट ऊँचा मुकुट जैसा लगा दिया जाय तो सामने से बड़े शक्ति-पीठों जैसा ही दृश्य बन सकता है। निर्माण का निर्धारण आवश्यक और परिस्थिति देखकर करना चाहिए।

[२] मझोले प्रज्ञा-पीठ-लागत २० रुपये हजार

बीच में १६′ × २७′ का हॉल। उसके चारों ओर आठ फुट चौड़े चार बरामदे। बरामदों के चार कोनों पर ८′ × ८′ की चार कोठरी। हॉल में स्टेज एवं मन्दिर के लिए पाँच फुट चौड़ी चबूतरी। चबूतरों के मध्य में दीवार से चिपका हुआ आधे गुम्बज एवं दो पाये वाला मन्दिर। इसमें ढाई फुट की गायत्री माता की प्रतिमा। पूजा की नियमितता न बन पड़ने पर प्रतिमा के स्थान पर गायत्री चरणों की स्थापना। खपरैल का आच्छादन ईंट-चूने की चिनाई।

दरवाजे की अगल-बगल वाली दो कोठरियों में से एक में दफ्तर और दूसरे में पुस्तकालय रहेगा। दो-दो अलमारियाँ ठोस दीवार की ओर रहेंगी। दो ओर बड़े जंगले और सामने दरवाजा रहेगा। इसी प्रकार दो कोठरियाँ पीछे भी रहेंगी। पीछे वाले बरामदे सहित इन कोठरियों में कार्यकर्त्ता निवास, स्टोर आदि रहेगा।

इसकी लागत अनुमानत: बीस हजार आँकी गई है। सीमेंट-निर्माण या सुन्दर फिनिश करने पर लागत बढ़ भी सकती है। जहाँ श्रमदान मिलेगा एवं उपकरण सस्ते होंगे, वहाँ लागत घट भी सकती है। इसके लिए जमीन कम से कम ५०′ × ६०′ चाहिए। ढकी हुई इमारत तो ३७′ × ४८′ की ही रहेगी, पर इसके चारों ओर जितनी खुली जमीन मिल सके उतना ही अच्छा है।

[३] चरण-पीठ-लागत २५० रुपया

यह आदिवासी एवं अन्य पिछड़ी आर्थिक स्थिति वाले क्षेत्रों के लिए है। ८ × ६ का ढाई फुट ऊँचा चबूतरा। चबूतरे पर पत्थर पर खुदे या सीमेंट के ढले गायत्री चरण। चरणों के नीचे दो फूल तीन पत्ती वाले पंचशील प्रतीक। नीचे गायत्री चरण-पीठ खुदा हुआ।

यह स्थापना किसी छायादार पेड़ के नीचे की जाय। स्थापना चबूतरे के दोनों ओर तुलसी के थाँवले रहें। खड़े होने तथा परिक्रमा के लिए जगह छोड़ी जाय। छूटी जगह पर मिट्टी का चबूतरा बना दिया जाय जो समय-समय पर गोबर-मिट्टी से लीपा जाता रहे। टूट-फूट होने पर मरम्मत चलती रहे। चारों ओर सुरक्षा के लिए कंटीली बाड़ लगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दी जाय। सारा काम श्रमदान से हो। जरूरी काम में अनुमानत: २५० रु. की लागत आँकी गई है।

उपरोक्त चार प्रकार के प्रज्ञा-संस्थानों में से चौथा ढाई सौ वाला मात्र प्रतीक है, उसे ध्वजारोहरण जैसा एक स्थापना भर कह सकते हैं। उसे नमन वन्दन का श्रद्धा-केन्द्र भर बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सृजनात्मक गतिविधियों का केन्द्र किसी अन्य मकान में बनाना पड़ेगा, क्योंकि प्रज्ञा अभियान के साथ रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों का एक दूरगामी परिणाम प्रस्तुत कर सकने में समर्थ योजनाबद्ध प्रयोजन भी सन्निहित हैं। उन्हें क्रियान्वित किये बिना तो देव-पूजा एक प्रकार से निष्प्राण बन कर ही रह जाती है।

किसी को इस असमंजस में पड़ने की आवश्यकता नहीं कि हम भव्य भवन न बना सकें। सन्त-ब्राह्मण संस्थायें प्राचीनकाल में भी ऐसे घास-फूंस की बनती थीं। गुरुकुलों और आरण्यकों की इमारतें भव्य नहीं थी। गाँधीजी के सावरमती एवं सेवाग्राम आश्रम खपरैल के बने थे। विनोबा का पौनार आश्रम भी ऐसा ही है। समर्थ गुरु रामदास के महावीर मन्दिर कच्ची मिट्टी के थे। युगसन्धि के पर्व पर प्रज्ञा प्रेरणा को गतिशील करने में विलम्ब न होने देना ही लक्ष्य है। भव्यता के लिए समय गँवाने और जिस-तिस के सामने गिड़-गिड़ाते फिरना नहीं। अतएव इन दिनों सस्ती और जल्दी की नीति को ही प्रमुखता दी जा रही है।

मझोले प्रज्ञा-पीठ का नया विकल्प

गाँव-गाँव प्रज्ञा-पीठों की स्थापना के क्रम में प्रारम्भ में सात आठ हजार लागत वाले छोटे प्रज्ञा-पीठों के प्रति जन-आकर्षण विशेष रूप से हुआ था। परन्तु उसके अन्तर्गत चलायी जाने वाली गतिविधियों को ध्यान में रखकर परिजनों ने मझोले प्रज्ञा-पीठ को थोड़े संशोधन के साथ अधिक पसन्द किया है। संशोधित स्वरूप और उसके कारण यहाँ स्पष्ट किए जा रहे हैं।

संशोधन क्रम १:—मन्दिर बीच के हॉल में न बनाकर अलग से बनाया जाय। यह इसलिए कि यह केन्द्र बहुत जल्दी ही प्रतिष्ठा पा जायेंगे। सारे क्षेत्र की श्रद्धा उनसे जुड़ जायगी और युग शक्ति के दर्शन-पूजन आराधन के लिए लोग दिन भर अपने-अपने क्रम से आते रहेंगे। हॉल में विभिन्न प्रकार के शिक्षण सत्संग आदि का क्रम भी पूरे दिन चला करेगा। ऐसी स्थिति में या तो दर्शन-पूजन करने के इच्छुक आगन्तुकों को दूर से ही नमस्कार करके रह जाना पड़ेगा, अथवा हॉल में चलने वाले कार्यक्रमों में बराबर व्यवधान आते रहेंगे। इन दोनों ही कठिनाइयों का हल यही है कि मन्दिर हॉल में न रखकर अलग से बना दिया जाय। ऐसा होने से मन्दिर में पूजन-दर्शन तथा हॉल में चलने वाले कार्यक्रमों का प्रभाव एक दूसरें पर नहीं पड़ेगा। दोनों ही स्वतन्त्र एवं व्यविस्थत रूप से चलते रह सकेंगे।

यह संशोधन करने से अधिक कुछ अन्तर भी नहीं पड़ता। मझोले निर्माण के लिए ५०′ × ६०′ की भूमि निश्चित की गयी है। मन्दिर अलग करने पर भी इतनी ही भूमि से काम चल जाता है। मझोले प्रज्ञा-पीठ के प्लान में यह बात स्पष्ट हो जाती है। हॉल एवं बरामदे, कमरे आदि ४५′ × ३५′ में बन जाते हैं। उसी के बगल में ५′ जगह छोड़कर १६′ × ३०′ के पक्के चबूतरे पर ८॥′ × ८॥ (अन्दर, अन्दर ६ × ६) का मन्दिर बना दिया जाय। पीछे एक दीवाल लगाकर आड़कर दी जाये। शेष २१′ × १५′ की भूमि शौचालय स्नान एवं फुलवारी आदि के लिए बच जाती है। यह सब ४५′ × ५५′ में हो जाता है। चारों ओर ढाई-ढाई फुट जगह हरियाली कीबाड़ लगाने के लिए बच जाती है। इस प्रकार ५० × ६० की भूमि से हर उद्देश्य की पूर्ति करने वाला बनाने में सुगम प्रज्ञा-पीठ बन जाता है।

संशोधन क्रम २:— हॉल के चारों कोनों पर चार कमरे ८ × ८ फुट के निकालने का उल्लेख पहले किया गया था। अब इन कमरों को ८ × १० का कर देना उचित समझा गया है। इससे कमरे अधिक सुविधाजनक बन जाते हैं तथा उनकी लम्बाई-चौड़ाई का अनुपात भी सुन्दर हो जाता है।

यह संशोधन महँगे भी नहीं पड़ते हैं। ऊपर स्पष्ट लिखा जा चुका है कि उसके लिए भूमि ५० × ५० से अधिक नहीं लगेगी। अधिक भूमि उपलब्ध हो तो चारों ओर हरियाली एवं खुलेपन का लाभ मिल सकता है। धन की दृष्टि से संशोधित मन्दिर अलग बनाने में लगभग ४००० का अन्तर पड़ता है। कुल लागत बीस हजार के स्थान पर चौबीस हजार के लगभग हो जाती है। गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों से इसकी संगति बैठने से परिजनों को इस निर्माण के प्रति अधिक लगाव अनुभव होता है। लागत बढ़ने की तुलना में इससे जो सुविधायें बढ़ती हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हें देखते हुए लागत का बढ़ना महत्त्वहीन जैसा लगता है।

इस निर्माण में कुछ जमीन एवं धन की कुछ कंजूसी करनी पड़े तो एक ओर का बरामदा तथा दो कमरे हटाये जा सकते हैं। इससे हॉल के साथ दो कमरे तथा तीन ओर बरामदों से काम भली प्रकार चल जाता है। बाद में सुविधा होने पर उसे बढ़ाया भी जा सकता है।

यह संशोधित मझोला डिजाइन अब तक के डिजाइनों में सर्वाधिक पसन्द किया गया है। सात-आठ हजार वाले छोटे निर्माण करने वालों ने भी अधिक संस्थानों पर थोड़ा साहस करके दो चरण में ही सही इसी निर्माण को पूरा करने का निश्चय किया है। बड़े निर्माणों के लिए सन्नद्ध परिजनों ने भी इसमें सारी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं निर्माण में सुविधा देखकर इसी का वरण करना उचित समझा है। जहाँ छोटे-बड़े प्रज्ञा-पीठों के ताने-बाने बुने जा रहे हैं, वहाँ इस निर्माण के पक्ष में आसानी से निर्णय किया जा सकता है।

प्रज्ञा-संस्थान, प्रज्ञा-आयोजन भी सम्पन्न करें

लोक-मानस के परिष्कार के प्रज्ञा अभियान में जन-सम्पर्क की सर्व सुलभ प्रक्रिया को प्राथमिकता देते हुए भी सामूहिक उद्‌बोधन की लोग-शिक्षण-प्रक्रिया बड़े रूप में भी गतिशील रखी जानी चाहिए। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। सामूहिक आयोजनों की विशालता-भव्यता से लोक-मानस में एक नया विश्वास बनता, एक नया उत्साह उभरता है। अधिक लोग जिस काम को करते दीखते हैं, अधिक लोग जिस राह पर चलते हैं, उसका अनुकरण करने के लिए चुपचाप बैठने वालों का भी मन चलता है। मेले-ठेलों का मनोविज्ञान यही है। जिन्हें उनकी उपयोगिता में सन्देह है, वे भी अनेकों को उधर को जाते देखकर स्वयं भी चल पड़ते हैं। समुदायों का एकत्रीकरण अपना अदृश्य प्रभाव छोड़ता है, उसका आकर्षण उपेक्षा करने वाले अन्य-मनस्कों का मन भी अपनी ओर खींचता है।

अधिक लोग एक विचार का समर्थन करते, एक प्रवृत्ति में रस लेते दीखते हैं, तो प्रतीत होता है कि जिसमें इतने लोग सहभागी हैं, वह वस्तुत: कोई बड़ी बात होनी चाहिए।यदि बात बड़ी है, तो उसे अपनाने के लिए अपने को भी सहमत होना चाहिए। यदि इस लोक-प्रवृत्ति को चुनाव के दिनों में भड़काने और लाभ उठाने का प्रयत्न सर्वत्र चलता है। जिसकी जीत होती दीखती है, सामान्य लोग उसी को वोट डालने में बुद्धिमानी समझते हैं। जुलूसों, प्रदर्शनी, रैलियों, सभा-सम्मेलनों में अधिक लोगों की उपस्थिति होने का प्रत्यक्ष प्रभाव यह देखा जाता है कि साधारण लोग भी अन्यमनस्कता छोड़कर उसका समर्थन करने लगते हैं, सहयोग देने लगते हैं।

अपने समय की सबसे बड़ी आवश्यकता 'विचार क्रान्ति' है। लोग जो सोचते, मानते, अपनाते और करते हैं, उसमें अधिकांश भ्रान्तियों और विकृतियों से भरा हुआ है। इस उल्टे को उल्टा कर सीधा करना, यही है विचार क्रान्ति या प्रज्ञा अभियान का उद्देश्य उपक्रम। युगान्तरीय चेतना का आलोक जन-जन के मन-मन तक उतारने और अभीष्ट परिवर्तन का वातावरण बनाने के लिए घर-घर अलख जगाने की आवश्यकता है। इसका महत्त्व कम न करते हुए हमें दूसरी आवश्यकता को भी भुला नहीं देना चाहिए कि लोक-शिक्षण के लिए सामूहिक आयोजनों की भी आवश्यकता है। बहुतों को एक स्थान पर एकत्रित करके उत्साह भरे समारोह में यदि तर्क, तथ्य और प्रमाणों से परिपूर्ण भावभरी वक्तृताएँ दी जा सकें, तो एक दो घण्टे के समय में उपस्थित समुदाय को अभीष्ट विचारणा से अवगत-अनुप्राणित किया जा सकता है, जबकि एक-एक के मिलन-परामर्श की प्रक्रिया समय साध्य भी है।और श्रमसाध्य भी, अतएव लोक-शिक्षण के लिए हमें सामूहिक समारोहों की उपयोगिता भी ध्यान में रखनी चाहिए और जब भी, जहाँ भी, जिस स्तर पर भी सम्भव हो, प्रज्ञा आयोजनों के लिए चेष्टा करनी चाहिए।

स्मरण रहे, भावनात्मक परिष्कार का प्रयोजन महाप्रज्ञा गायत्री को प्रतीक मानकर चिन्तन और मनन क्षेत्र में उस तत्त्वदर्शन को हृदयंगम किया-कराया जा रहा है। कृत्यों, निर्धारणों, प्रचलनों की प्रत्यक्ष प्रक्रिया का आधार यज्ञ है। दोनों का समन्वय ही देव-संस्कृति का उद्‌गम है। गायत्री को माता और यज्ञ को पिता माना गया है। इन्हें चिन्तन और चरित्र में उत्कृष्टता का समावेश करने वाले प्रेरणा स्रोत माना गया है। आत्म-साधना में गायत्री और प्रचलन परम्परा में यज्ञ का प्रतीक अवलम्बन अपनाया जाना चाहिए। आयोजनों में प्रतीकों की स्थापना भी की जाती है। झण्डे इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। उनसे उद्देश्य एवं प्रयास का परिचय मिलता है। नव-निर्माण का प्रत्यक्ष गतिविधियों का प्रतीत गायत्री यज्ञ को मान कर चला जा रहा है। इस युग्म को सद्‌भावना और सत्प्रवृत्ति का समन्वय भी समझा जा सकता है। यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण है कि समस्त छोटे-बड़े प्रज्ञा आयोजनों के साथ गायत्री यज्ञ का कर्मकाण्ड भी सम्मिलित रखा गया है।

बहुत समय से युग-निर्माण सम्मेलनों के साथ गायत्री यज्ञ के समन्वय की विधि व्यवस्था अपनाई जाती रही है। इसका कारण स्पष्ट है। श्रद्धा, प्रज्ञा, निष्ठा की त्रिवेणी-त्रिपदा को गायत्री की अभ्यर्थना और संयम, विवेक तथा परमार्थ के प्रतीक यज्ञ प्रचलन की जनजीवन में प्रतिष्ठापना। संक्षेप में गायत्री यज्ञ को, चिन्तन चरित्र की मान्यता देने की घोषणा को गायत्री यज्ञों के माध्यम से व्यापक बनाने की प्रक्रिया समझा जाना चाहिए। यही है प्रज्ञा-अभियान का प्राण-प्रतिपादन एवं निर्धारण कार्यान्वयन।

गायत्री साधना को, भावना, मान्यता, आकांक्षा, विचारणा को उच्चस्तरीय बनाने का एक तर्क, तथ्य, प्रमाणों से भरा-पूरा प्रयोग कहा जा सकता है। उसमें व्यक्तिगत उत्कर्ष के अनेकानेक सूत्र विद्यमान हैं। इस प्रकार अग्निहोत्र में शारीरिक, मानसिक आधिव्याधियों के निवारण, वायु-प्रदूषण एवं वातावरण के परिशोधन तथा प्राणपर्जन्य बरसने के उपक्रम से जीवधारियों तथा वनस्पतियों में प्रखरता सम्वर्धन जैसे अनेकानेक लाभों का वैज्ञानिक प्रतिपादन है तो भी प्रज्ञा आयोजनों के साथ गायत्री यज्ञों के धर्मानुष्ठान जुड़े रखने का एक विशेष अभिप्राय है। सर्वसाधारण पर इस माध्यम से यह प्रकट किया जाता है कि अपनी कार्य पद्धति में धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण को मान्यता प्रदान की गई है तथा जन-मानस के परिष्कार तथा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन की संयुक्त कार्य- विधि अपनायी गई है। गायत्री यज्ञ और प्रज्ञा आयोजन इसी आधार पर समन्वित किये गये और सम्मिलित रखे गये हैं।

प्रज्ञा आयोजनों के कितने ही छोटे-बड़े स्वरूप प्रचलित हैं। जन्म दिवसोत्सव, विवाह दिवसोत्सव तथा बालकों के नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विद्यारम्भ, दीक्षा, यज्ञोपवीत आदि संस्कार मनाने के लिए पारिवारिक विचारगोष्ठियों का आयोजन होता है। इन्हें घरेलू प्रज्ञा आयोजन कहा जा सकता है। इन सबके द्वारा घर में जहाँ धार्मिक वातावरण बनता है, धर्म श्रद्धा का उत्साह उभरता है, वहाँ उन अवसरों पर प्रस्तुत किये जाने वाले संगीतों एवं प्रवचनों से व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण के लिए ऐसा प्रतिपादन-मार्ग-दर्शन प्रस्तुत किया जाता है, जो उपस्थित लोगों के गले उतर सके।

गाँव नगर के सामयिक आयोजन, पर्व-त्योहारों के अवसर पर सम्पन्न होते हैं। दिवाली, गीता जयन्ती, बसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गायत्री जयन्ती, गुरुपूर्णिमा, श्रावणी, कृष्णाष्टमी पितृ अमावश्या, विजयादशमी आदि त्योहारों के अवसर पर एक गाँव के लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर सम्बद्ध परम्परा के अनुरूप पूजा उपचार का धर्मानुष्ठान करने के उपरान्त संगीत-प्रवचन का क्रम चल पड़ता है। उपरोक्त प्रत्येक पर्व के साथ कुछ अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त एवं प्रतिपादन जुड़ हुए हैं। उनकी व्याख्या-विवेचन करने पर धर्म परम्पराओं, शास्त्र उल्लेखों और आप्त वचनों के साथ आज की समस्याओं के प्रगतिशील समाधान बिल्कुल फिट बैठ जाते हैं या बिठाये जा सकते हैं। पर्वों के अवसर पर धार्मिक समारोहों की सुनियोजित व्यवस्था यदि बन पड़े और चल सके तो समझना चाहिए कि लोक-शिक्षण का एक पुरातन आधार नये उत्साह एवं नये उद्देश्य के साथ पुनर्जीवित किया गया।

प्रज्ञा-संस्थानों को अपने-अपने यहाँ दोनों नवरात्रियों के अवसर पर सामूहिक साधना सत्रों का आयोजन करना चाहिए। यह शान्ति कुञ्ज के निजी साधना सत्रों की छोटी अनुकृति है। प्रातः अनुष्ठान साधना रात्रि को संगीत प्रवचन ज्ञान यज्ञ चलना चाहिए। साधकों की पूर्णाहुति का अग्निहोत्र तो अन्तिम दिन ही होगा पर ज्ञान यज्ञ पूरे नौ दिन चलेगा। इनमें मिशन के स्वरूप और सिद्धान्तों को, गायत्री यज्ञ के साधना उपक्रम को, दार्शनिक एवं व्यावहारिक पृष्ठभूमि पर समझाया जा सके तो उतने भर से वर्ष में दो सुनियोजित सत्र सम्पन्न हो सकते हैं। हर आयोजन के अन्त में क्षेत्रीय परिधि में, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए कुछ करने के संयुक्त संकल्प लिये एवं लक्ष्य निर्धारित किये जा सकते हैं।

प्रत्येक प्रज्ञा-पीठ एवं स्वाध्याय मंडल प्रज्ञा-संस्थान को एक वार्षिकोत्सव करना अनिवार्य है। इनमें शान्ति कुंज से प्रतिनिधियों की प्रचार मण्डलियाँ भेजने का निश्चय किया गया है। बड़े आयोजनों को जीपों में, तथा छोटे आयोजनों में तीन मोटर साइकिलों से प्रचारक मण्डलियाँ भेजी जाती हैं। इनमें वक्ता, संगीत गायक, चित्र-प्रदर्शनी, लाउडस्पीकर, टैप सन्देश आदि साधन रहते हैं। इस आधार पर सम्मेलनों का आकर्षण एवं प्रभाव अत्यधिक बढ़ जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन् २००० तक इन वार्षिकोत्सवों में केन्द्रीय प्रतिनिधियों की प्रचार मण्डलियाँ भेजने का निश्चय कई महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, किया गया है। इनमें सर्वप्रथम यह है कि हर वर्ष बसन्त पर्व पर जो दिव्य प्रेरणा अवतरित होती है, जिसमें अगले वर्ष के क्रिया-कलाप का मार्ग-दर्शन रहता है, उसे अधिक अच्छी तरह सभी प्रज्ञा-परिजन को समझाया जा सके तथा किस स्थिति के व्यक्ति को, किस प्रकार क्या करना है, इसका परामर्श, निर्धारण एवं समाधान भली प्रकार बन पड़े। दूसरा यह कि हर वर्ष प्रज्ञा पुराण का एक खण्ड प्रकाशित होते रहने का जो निश्चय हुआ है, उसे हर वर्ष नये रूप में सुनने-समझने का क्षेत्रीय लोगों को अवसर मिलता रहे। प्रज्ञा पुराण के कथानकों के माध्यम से उन तथ्यों को अधिक सरलता पूर्वक हृदयङ्गम कराया जा सकता है, जिन्हें इन्हीं दिनों जन-साधारण को समझने, समझाने की नितान्त आवश्यकता है।

इन वार्षिकोत्सवों का नाम प्रज्ञा आयोजन दिया गया है। इनके माध्यम से केन्द्र तथा संस्थान के बीच विचार-विनिमय का, परामर्श विवेचन का एक सुनिश्चित क्रम चलता रहेगा। यों मिशन के सामयिक निर्धारण पत्रिकाओं में भी छपते रहते हैं, वह आवश्यक तो हैं, पर पर्याप्त नहीं। प्रत्यक्ष विचार-विनिमय का महत्त्व न होता तो फिर पत्र या टेलीफोन से सब कुछ सम्पन्न होता रहता, कभी किसी के मिलने-जुलने की आवश्यकता ही न पड़ती। केन्द्र और संगठन के बीच घनिष्टता बनाने और तालमेल बिठाने के लिए प्रज्ञा आयोजनों को भी सशक्त माध्यम के रूप में निर्धारित किया गया है। इनमें स्थानीय वक्ताओं का जमघट इकट्ठा करने की मनाही कर दी गई है, क्योंकि उन्हें विशुद्ध रूप से आदान-प्रदान का माध्यम बनाया गया है। बाहरी लोगों के असम्बद्ध प्रवचन भी इसी में ठूँसे जायँ तो उस प्रयोजन में व्यवधान उत्पन्न होगा, जिसके लिए इन्हें किया या कराया जा रहा है। इसी प्रकार विशेष अवसरों पर विशेष रूप से यह समारोह हो सकते हैं। गायत्री यज्ञ उन सबमें किये जाते रहेंगे। आमतौर से अब नौ कुण्ड के गायत्री यज्ञों का प्रचलन ही रखा गया है। हजार कुण्डी, सौ गुण्डी, पचास कुण्डी यज्ञें की मनाही कर दी गई है। अधिकतम पच्चीस कुण्डी गायत्री यज्ञ ही होने चाहिए। इस अनुशासन को सर्वत्र पाला जायेगा, भावावेश में व्यतिरेक नहीं किया जायगा, ऐसी आशा रखी गई है।

गायत्री यज्ञ पद्धति के प्रत्येक कर्मकाण्ड में कुछ आदर्श और कर्त्तव्य सन्निहित हैं। कृत्यों के साथ यजनकर्त्ताओं तथा उपस्थितजनों को इसकी जानकारी कराई जानी चाहिए। मात्र मन्त्रोच्चारण पर क्रिया विधान ही सब कुछ नहीं होना चाहिए। भले ही आहुतियाँ थोड़े ही लोग एक बार में दें प्रारम्भिक देव-पूजन एवं अन्तिम पूर्णाहुति विधान में सभी भागीदार रहें।

यज्ञ देवता की प्रतिष्ठा-अभ्यर्थना के लिए सभी धर्म प्रेमियों का उस अवसर पर देव-दक्षिणा के रूप में श्रद्धांजलियाँ संकल्पूर्वक अर्पित करनी चाहिए। देव-दक्षिणा में उन बुराइयों में से एक का परित्याग करना चाहिए, जो इन दिनों अपने स्वभाव में तथा व्यवहार में पाई जाती हैं। इसी प्रकार एक ऐसी अच्छाई का ग्रहण-अभिवर्धन भी संकल्पूर्वक करना चाहिए, जो या तो है ही नहीं, यदि है तो उसकी मात्र आवश्यकता से कम है।

देव-दक्षिणा में त्यागने योग्य दुष्प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) नशेबाजी (२) आलस्यं-प्रमाद (३) कटु भाषण—अशिष्ट व्यवहार (४) फैशन—फिजूलखर्च (५) शादियों में दहेज प्रदर्शन (६) मृतक भोज (७) भिक्षा व्यवसाय का समर्थन-सहयोग (८) जातिगत ऊँच-नीच एवं पर्दा प्रथा (९) अनावश्यक प्रजनन (१०) अनैतिक एवं असामाजिक अवांछनीय आचरण।

जो सत्प्रवृत्तियाँ देव-दक्षिणा के निमित्त अपनाई जानी चाहिए, वे निम्नलिखत हैं—

(१) नियमित उपासना (२) साधना, स्वाध्य, संयम, सेवा के जीवनोत्कर्ष उपायों का नियमित कार्यन्वयन (३) सप्ताह में एक दिन का उपवास एवं ब्रह्मचर्य (४) परिवार में श्रमशीलता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था, शालीनता एवं सहकारिता के पंचशीलों का अधिक तत्परतापूर्वक प्रचलन (५) 'सादा' जीवन उच्च विचार सिद्धान्त का अधिक मनोयोगपूर्वक अभ्यास (६) अपने बच्चों की शादियाँ बिना दहेज एवं प्रदर्शन के करने का निश्चय (७) हरीतिमा सम्वर्धन, घरों में शाक वाटिका लगाने, तुलसी के बिरवे रोपने का संकल्प (८) नव-निर्माण के लिए कुछ निश्चित एवं समयदान अभियान (९) अपनी कमाई का एक निश्चित अंशदान, प्रज्ञा अभियान में योगदान के लिए (१०) अपने प्रभाव क्षेत्र में सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए होने वाले प्रयासों का परिपोषण।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दस दुष्प्रवृत्ति छोड़ने और दस सत्प्रवृत्ति अपनाने की बीस सूत्री देव-दक्षिणा का संकल्प-उपक्रम प्रत्येक गायत्री यज्ञ के समय सम्पन्न होना चाहिए। इसका प्रतिफल विस्तारपूर्वक उपस्थिति लोगों को समझाना चाहिए। इस प्रकार प्रज्ञा आयोजन के समय अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए गायत्री यज्ञों को समग्र परिशोधन एवं परिष्कार का आधार बनाया जाना चाहिए। अन्यान्य उद्देश्यों के साथ इन आयोजनों का एक अति महत्त्वपूर्ण समावेश है।

प्रज्ञावतार का लीला-संचरण

सन् १९८० से २००० तक के बीस वर्ष युग संधि के हैं, इसमें महान् परिवर्तन होंगे। यह अवधि-गलाई और ढलाई की है। टूटे-फूटे बर्तन आग में गलाये और नये साँचे में ढालकर फिर उपयोगी बनाये जाते हैं। महाकाल की युग चेतना ऐसा ही वातावरण उत्पन्न कर रही है। व्यक्ति, समाज, प्रचलन, चिन्तन, व्यवहार में जहाँ भी अनुपयुक्तता होगी उसे गलना पड़ेगा। उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की हलचलों का अदृश्य जगत में तूफानी दौर चल पड़ा है। परिस्थितियों का परिवर्तन भी सुनिश्चित है। मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण सुनिश्चित है, यह कार्य महाप्रज्ञा द्वारा सम्पन्न होगा। आदि शक्ति ऋतम्भरा प्रज्ञा का ही नाम गायत्री है। युग सन्धि में सम्पन्न होने वाले महान् परिवर्तन में उसी की भूमिका प्रमुख होगी। ज्ञानयज्ञ और विचार क्रान्ति अभियान के अन्तर्गत जो जन-मानस परिष्कार के प्रबल प्रयत्न चल रहे हैं। उनके पीछे इसी प्रज्ञावतार की प्रबल प्रेरणायें काम कर रही हैं। युग विभीषिकाओं का निराकरण और उज्ज्वल भविष्य के नव-सृजन का सूत्र संचालन इसी चौबीस अक्षर वाले चौबीसवें अवतार द्वारा सम्पन्न होगा। प्रज्ञावतार का लीला-संचरण युग-निर्माण योजना के माध्यम से इन दिनों दृष्टि पसार कर सर्वत्र देखा जा सकता है।

गायत्री चरण-पीठ-योजना

गाँव-गाँव युग चेतना का आलोक पहुँचना है। अग्रदूत इस प्रयोजन के लिये जन-जन से सम्पर्क साध रहे हैं और घर-घर अलख जगा रहे हैं। परिवर्तन निकट है। उनमें सभी जागृत आत्माओं का सहयोग होना चाहिये, जो रीछ-वानरों और ग्वाल-बालों की भूमिका निवाहें, वे हर दृष्टि से नफे में रहेंगे, जो मुँह छिपाये बैठे रहेंगे, उन्हें अवसर चूक जाने का पश्चाताप ही करते रहना पड़ेगा।

नव-युग का प्रकाश समस्त विश्व के कोने-कोने में पहुँचना है। धरती का कोई भाग उस आलोक से वंचित न रहेगा, पर उसका शुभारम्भ भारत-भूमि से ही होना है। सूर्य सदा पूर्व में निकलता है। भगवान के समस्त अवतार इसी भूमि पर हुए हैं। सृष्टि-सन्तुलन और युग-परिवर्तन का उद्देश्य अधर्म के निवारण और धर्म-संस्थापन का प्रयोजन पूरा करने वाली ईश्वरीय चेतना इसी दिव्य-भूमि से प्रकट हुई, व्यापक बनी है। नव-चेतना की उषा का उदय भी यहीं से रहा है। युग संधि की प्रभात बेला इसी सम्भावना का संदेश दे रही है।

आज की उलझनों, विपत्तियों और विभीषिकाओं का एक मात्र कारण जन-जन अन्तरंग में घुसी हुई अनास्था ही है। चिन्तन में निकृष्टता घुस पड़ने से चरित्र में दुष्टता प्रकट होती है। दुष्ट आवरण की प्रतिक्रिया संकट खड़े करती है। यही है आज की विषमताओं का विश्लेषण। इसका निवारण भी रोग के अनुरूप चिकित्सा से बन पड़ेगा। छाई हुई अदूरदर्शिता का निराकरण प्रज्ञा के प्रकटीकरण से होगा। श्रद्धा की अधिष्ठात्री गायत्री माता का आलोक जन-जन के अन्तराल को स्पर्श करेगा तो समस्त समस्याओं का हल निकलेगा और अनास्था का समापन होगा और सुख-शान्ति का वातावरण बनेगा। उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाएँ मूर्तिमान होने का यही एक मात्र उपाय है।

गायत्री वेदमाता, देव माता और विश्व माता है। उसी के माध्यम से सद्भावों का, सदाचरण का और सुव्यवस्था का आधार बनेगा। व्यक्ति और समाज का समग्र हित-साधन वर्तमान परिस्थितियों में ऋतम्भरा प्रज्ञा की छत्र-छाया में ही सम्भव हो सकेगा। आद्य शक्ति गायत्री की क्षमता और प्रेरणा से जन-जन को अवगत कराने का ठीक यही समय है। इसी प्रयोजन के लिये आवश्यक हो गया है कि स्थान-स्थान पर आलोक वितरण के प्रज्ञा केन्द्रों की स्थापना की जाए। एक स्थान से विश्व-व्यापी लोक-मानस का प्रशिक्षण एवं उन्नयन सम्भव नहीं। शासन तन्त्र विकेन्द्रित होकर चलते हैं। धर्म तन्त्र को भी तीर्थों एवं देवालयों के रूप में अपने क्रिया-केन्द्रों की स्थापना करनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होती है। विद्युत उत्पादन कहीं से भी क्यों न होता हो 'सबस्टेशन' जगह-जगह बनाने पड़ते हैं। देव-स्थान जन-जागृति के धर्म-धारणा को जीवन्त रखने के केन्द्र बनकर रहते थे, वैसा ही उन्हें रहना भी चाहिये।

प्रज्ञावतार की प्रभात बेला में नव-जागरण की गतिविधियों को व्यापक बनाने के लिये स्थान-स्थान पर बड़े गायत्री शक्ति-पीठों की और मध्यवर्ती प्रज्ञापीठों की स्थापना हो रही है। बहुत छोटे प्रज्ञापीठ भी बीस हजार या उससे कम लागत के बन रहे हैं। इन दिनों भारत-भूमि में ऐसे निर्माणाधीन धर्म केन्द्रों की संख्या एक हजार है, भविष्य में उनकी अभिवृद्धि और भी अधिक होगी। इनमें कई-कई परिव्राजक रहेंगे और अपने समीपवर्ती क्षेत्रों से जन-मानस के परिष्कार एवं सत्परिणाम सर्वतोमुखी प्रगति के रूप में जल्दी ही सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत होंगे।

इन बड़े धर्म-स्थानों की स्थापना का प्रमुख लाभ उन स्थानों को ही मिलेगा जहाँ वे बनेंगे। समीपवर्ती क्षेत्रों को उस ऊर्जा का सीमित अंश ही उपलब्ध होगा। आवश्यकता यह समझी गई कि यह स्थापनाएँ हर गाँव में होनी चाहिये, ताकि समीपवर्ती लोगों को इन जलाशयों से अधिक तृप्ति लाभ करने का अवसर मिल सके। समीप रहने से ही पेड़ की छाया मिलती है। अग्नि की समीपता ही उष्णता प्रदान करती है। दूर रहने पर तो उनसे स्वल्प प्रयोजन ही पूरा हो पाता है। गाँव में स्कूल होने पर सभी बच्चे पढ़ते हैं पर, चार-पाँच मील दूर होने पर तो कोई-कोई ही वहाँ पहुँच पाते हैं। महाप्रज्ञा अवतरण का समुचित लाभ हर गाँव को मिल सके। इस दृष्टि से गायत्री चरण पीठों के रूप में एक छोटी स्थापना व्यापक रूप से करने का संकल्प उभरा है। यह शुभारम्भ भारत-भूमि से हो रहा है। इसका विस्तार क्रमशः अन्यान्य देशों में भी होता चला जायेगा।

निर्माण की रूपरेखा

गायत्री चरणपीठ योजना लागत एवं व्यवस्था की दृष्टि से बहुत सरल और हलकी-फुलकी है। इसे कहीं अत्यन्त स्वल्प प्रयत्न से तुर्त-फुर्त क्रियान्वित किया जा सकता है। लागत भी इतनी स्वल्प है कि किसी छोटे गाँव वाले भी उसकी पूर्ति मिल-जुलकर सहज ही कर सकते हैं। बनने में समय भी एक सप्ताह से अधिक न लगेगा।

गायत्री चरणपीठों की रूपरेखा इस प्रकार है—यदि गाँव के समीप कोई बड़ा छायादार पेड़ हो और उसके मालिक स्थायी रूप से उसे इस प्रयोजन के लिए दे सकते हों तो उसके नीचे यह निर्माण किया जाए। छायादार वृक्ष ही प्राचीनकाल में विद्यालयों का, छात्रावासों का, गुरुकुलों का, सत्संग भवनों का काम दे जाते थे। अब भी जहाँ वैसा सम्भव हो उपलब्ध करने का प्रत्यन्त किया जाए, पर यह ध्यान रहे कि स्थान गाँव से दूर न हो। जहाँ तक हो सके मध्य में या निकट ही किया जाए, पर यदि वैसा सुयोग न बने तो फिर निकटता को ही प्राथमिकता दी जाए या फिर किसी खुली जगह में भी उसे बनाया जा सकता है। इसके लिए ३० फुट चौड़ी ५० फुट लम्बी जमीन से भी काम चल सकता है। अधिक लम्बी चौड़ी मिले तो और भी उत्तम है।

इस साइज की जमीन में एक पूरा चबूतरा बना दिया जाय। पक्की ईंट लगाकर सीमेन्ट के पलस्तर वाला बन सके तो उसमें शोभा, सफाई और स्थायित्व की सुविधा रहेगी। वैसा न बन पड़े तो उसे कच्चा भी रखा जा सकता है। गोबर मिट्टी की लिपाई करते रहने से भी उसकी स्वच्छता और शोभा बनाये रखी जा सकती है। चबूतरे के चारों ओर मेंहदी जैसी कोई बाढ़ लगा दी जाए। इससे एक या दो छोटे-छोटे गेट रखे जाएँ। इस प्रकार चारों ओर पाँच-पाँच फुट हरियाली समेत कुल जमीन ३०′ × ५०′ होती है, वैसे चबूतरा २५′ × ४५′ का ही बनेगा। यह भूमि से ९ इंच या एक फुट ऊँचा रहे।

चबूतरे के एक ओर परिक्रमा के लिए ४′ जगह छोड़कर ६′ × ६′ का ढाई फुट ऊँचा चरण-पीठ का मुख्य आसन बनेगा। इस पर सुविधानुसार हरी बेल का मण्डप या पक्की छतरी बनायी जा सकती है। इसके दायें बायें तुलसी के दो थाँबले बनेंगे। यह मुख्य आसन से २.५′ दूर रहेंगे। इन्हें ३′ × ३′ फुट का २.५′ ऊँचा बनाया जाय। नौ इन्च की दीवाल तथा बीच में १ फुट मिट्टी के लिए स्थान रहेगा। यह सब मिलकर १७ फुट चौड़ाई घेरते हैं। २५ फुट के चबूतरे पर दोनों ओर परिक्रमा के लिए चार फुट स्थान बच जायगा।

लम्बाई में मुख्य आसन पीछे के परिक्रमा स्थल सहित १०′ जगह लेगा। शेष ३५′ जगह हवन भजन कीर्तन आदि के लिए खाली रहेगी।

यदि चबूतरे पर छाया बनानी हो तो उस पर बाँस बल्ली का मण्डल बना कर हरी बेलों से उसका आच्छादन किया जा सकता है। यह मण्डप मुख्य हवन वेदी के लिए रहे। बेलों के मण्डप के नीचे यज्ञ करने से अग्नि की झांक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से बेलें झुलस जायेंगी। यदि वेदी पर छाया करनी हो तो कनस्तरों में मिट्टी भर कर उसमें बांस लगाकर उस पर चंदोवा बाँधा जा सकता है। कोई अन्य सूझ-बूझ भरी व्यवस्था भी की जा सकती है।

मण्डप की चौढ़ाई १६ फुट और लम्बाई २४ फुट रखना उचित है। अधिक चौड़ा मण्डप बनाने में कठिनाई होगी। मण्डप पर टीन की चद्दरें लगानी हों तो भी यह साइज उपयुक्त रहेगा। १० फुटी चद्दरों से इसे आसानी से ढंका जा सकेगा। आसन से ८' हटकर १६' × २४' का शेड बनाने से चारों ओर खुला चबूतरा छूटा रहेगा, जिसका उपयोग अनुकूल परिस्थितियों में होता रहेगा।

मुख्य आसन—

चरणपीठ के बीच में चरण चिन्ह स्थापित रहेंगे। वहाँ लोग केवल प्रणाम करेंगे। जल-अर्घ्य चढ़ाने, दीपक, अगरबत्ती रखने आदि के लिए तुलसी थाँवले को प्रयुक्त किया जायगा। परिक्रमा उनकी संयुक्त होगी। इससे देवस्थान स्वच्छ तथा सुरुचिपूर्ण बना रहेगा। चबूतरे पर हवन, संस्कार, कीर्तन, कथा, प्रौढ़शाला, व्यायामशाला जैसी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलायी जाती रहेंगी।

इन चरणपीठ देवालयों को जागृत महिलाएँ आसानी से बना सकती हैं और उनका सूत्र संचालन वे स्वयं भी बड़ी आसानी से कर सकती हैं। घर-घर साहित्य देने और वापस लेने के लिए एक पुरुष सहायक की तो उन्हें भी आवश्यकता पड़ेगी। जो आधे दिन के लिए वेतन पर भी रखा जा सकता है। यहाँ एक बात और भी स्मरण रखने योग्य है कि जहाँ चरणपीठ बनेगी वहाँ कुछ ही समय बाद पन्द्रह हजार वाली प्रज्ञापीठ भी बनकर रहेगी। इसलिए इस आरम्भिक निर्माण में एक हजार जितनी लागत ही लगाई जाय।

जहाँ पक्की ईंट, चूना, सीमेन्ट, लोहा आदि का प्रबन्ध हो सकता है और उसमें लगने वाली लागत परस्पर मिल-जुलकर पूरी हो सकने की सम्भावना है वहाँ स्थापना को अधिक सुन्दर बनाना ही उपयुक्त है। इस स्तर की बनाने में प्राय: एक हजार की लागत आती है। कोई उदार व्यक्ति अकेले भी उसे पूरी कर सकते हैं। नहीं तो मिल-जुलकर भी उसकी पूर्ति की जा सकती है। यह लागत एक तोले सोने से भी कम है। कोई उदार महिला उसे चिरस्थायीपुण्य प्रतीक के रूप में अकेली भी बना सकती है। जहाँ स्थायी निर्माण सामिग्री उपलब्ध न हो वहाँ श्रमदान से बिना लागत के भी यह सब बन सकता है। मात्र चरणपीठ के चबूतरे के लिए पक्की ईंट एवं सीमेन्ट की आवश्यकता होगी। जहाँ जैसी अर्थ व्यवस्था एवं साधन सुविधा सम्भव हो वहाँ वैसा प्रबन्ध किया जाए।

चरणपीठ के चारों ओर परिक्रमा के लिए जगह रहेगी। दर्शनार्थी पाँच परिक्रमा करते हुए मन ही मन गायत्री मन्त्र का जप और सविता देवता का ध्यान किया करेंगे। नमन, वंदन के रूप में उस स्वल्प साधना की पूर्णाहुति हो जाया करेगी। इस यज्ञ की पूर्णाहुति करनी हो तो तुलसी में एक लोटा जल चढ़ाया जा सकता है। किन्हीं विशेष अवसरों पर थाँवला पर दीपक जलाने की परम्परा भी चल सकती है। हवा के झोंके से दीपक बचाने के लिए थाँवले में चारों ओर तिखालें छोड़ी जा सकती है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि गाँव का हर व्यक्ति इस देवालय के दर्शन करने आया करे और समयानुसार हवन तथा कीर्तन में सम्मिलित होने का प्रयत्न किया करे।

जगह कुछ अधिक मिल सके तो चारों ओर पुष्प-वाटिका लग सकती है। दर्शनार्थी श्रद्धा सुमन चढ़ाने के लिए उसी से साधन प्राप्त कर सकते हैं। कुआँ या हैण्ड पम्प हो तो पानी पीने से लेकर पौधे सींचने, पैर, धोने एवं अर्घ्य के लिए जल प्राप्त करने की सुविधा हो सकती है। क्रमश: साधन बन पड़े तो उसके निकट कार्यकर्त्ता निवास एवं कार्यालय भी बनाया जा सकता है। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उसका स्वरूप और कलेवर निर्धारित किया जा सकता है। यह सब व्यवस्थाएँ बन जाने पर चरणपीठ स्वयं में एक प्रज्ञापीठ के रूप में विकसित हो जायेगा। इसमें अच्छाई यह है कि इसे एक-एक करके कई चरणों में पूरा किया जा सकता है, और हर चरण पर यह अपने आप में पूर्ण दिखाई देगा।

स्थापना के समय भूमिपूजन और बन जाने पर प्राण प्रतिष्ठा के छोटे-छोटे स्थानीय आयोजन समीपवर्ती क्षेत्र के कार्यकर्त्ता मिल-जुलकर कर सकते हैं। कर्मकाण्ड तो उसी स्थान पर करना होगा पर यदि यज्ञ आयोजन, प्रवचन आदि की व्यवस्था बन पड़े तो उसके लिए छाया का अतिरिक्त प्रबन्ध करना होगा। आवश्यक नहीं कि चरणपीठ के समीप अधिक लोगों के बैठने की सुविधा न होने पर भी समारोह का प्रबन्ध भी वहीं किया जाए। यदि पर्याप्त स्थान हो और छाया की सुविधा बन पड़े तो वह स्थान भी आयोजनों के लिए अधिक भावनात्मक और अधिक प्रेरणाप्रद रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्यक्रमों का संचालन

आरम्भ में गायत्री चरण-पीठों के पाँच कार्यक्रम रहेंगे—

(१) घर-घर जन-जन तक युग साहित्य पहुँचाने एवं वापिस लाने की व्यवस्था, इसी के साथ दीवालों पर आदर्श वाक्य लेखन भी किया जाना चाहिए। इसके अन्तर्गत क्षेत्र के सभी शिक्षितों को युग चेतना का प्रतिपादन पढ़ने तथा अशिक्षितों को नियमित रूप से सुनने का अवसर मिलेगा।

(२) सम्पर्क में आने वाले प्रज्ञा प्रेमियों के जन्म दिवसोत्सव एवं अन्य संस्कारों के आयोजन। उनमें गायत्री यज्ञ एवं भजन कीर्तन की व्यवस्था उनके घरों पर की जाय।

(३) चरण-पीठों पर साप्ताहिक यज्ञोयोजन, सत्संग एवं कीर्तन आदि का प्रबन्ध।

(४) रात्रि में दैनिक या साप्ताहिक रामायण कथा एवं कीर्तन।

(५) युग सृजन के निमित्त समय-दान और अंश के लिए भावनाशीलों को प्रोत्साहित करना एवं उनके यहाँ ज्ञान घटों की स्थापना कराना।

इन कार्यक्रमों में 'नित्य', और 'नैमित्तिक' दो प्रकार के उपचार हैं। नित्य में (१) दर्शन नमन्-परिक्रमा (२) आँख बन्द करके प्रकाश का ध्यान (३) पुष्प (४) अर्घ्य (५) अगरबत्ती यह पाँच पूजा उपकरण हैं। इनमें से पाँचों या न्यूनाधिक जिनसे जिस प्रकार बन सके उन्हें वे करने चाहिए। इन्हें करते समय मन ही मन गायत्री जप करते रहा जाए और कुछ देर स्थिर खड़े होकर उदीयमान सूर्य का ध्यान किया जाय और उसकी किरणों का शरीर, मन मस्तिष्क तथा हृदय में प्रवेश करने का अनुभव किया जाए। यह नित्य उपासना हुई। जो नियमित न कर सके तो सुविधानुसार जब भी बन पड़े तब कर सकते हैं। यों उपासना के लिए सर्वोत्तम समय प्रातःकाल का माना गया है, पर जिनसे वह सम्भव न हो वे सायंकाल या रात्रि में भी उसे बे रोक टोक कर सकते हैं।

नैमित्तिक पूजा उपचार साप्ताहिक पाक्षिक या मासिक हो सकता है। साप्ताहिक करना हो तो रविवार या गुरुवार इसके लिए उत्तम है। पाक्षिक करना हो तो अमावस्या, पूर्णमासी, मासिक करना हो तो पूर्णिमा अथवा पहली तारीख। उसके दो निर्धारण हैं—एक हवन, दूसरा कीर्तन। इन दोनों के लिए आवश्यक व्यवस्था पहले से ही बना लेनी चाहिए।

गायत्री माता और यज्ञ पिता हैं। दोनों के सम्मान का समान रूप से ध्यान रखना चाहिए। चरण पीठों का प्रचलन मुख्यतया देहाती क्षेत्रों के लिए किया गया है। इसलिए वहाँ यज्ञ को स्थानीय सुविधा एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करने की सरल व्यवस्था बनानी पड़ेगी। हवन सामग्री में खीर पर्याप्त है। दशरथ के पुत्रेष्ठि यज्ञ में खीर के चरु का ही हवन किया गया था और उसी का बचा हुआ अंश तीनों रानियों को खिलाया गया था। देहातों में यही शाकल्य सुविधा जनक रहेगा। घी के स्थान पर दूध का प्रयोग करने का शास्त्र समर्थन है। जौ, तिल, चावल की गणना हविष्यान्न में होती है। इस प्रकार खीर को यज्ञ हविष्य मानने में कोई आपत्ति नहीं। महाराष्ट्र में गणेश हवन लड्डू का चरु बनाकर किया जाता है। गायत्री यज्ञ में खीर काम में लाई जा सकती है। उसी में थोड़ा घी भी डाल लिया जाय। चीनी के स्थान पर गुड़ का प्रयोग करने में शुद्धता भी अधिक है, सुगन्ध और गुण भी। गुड़ को भोजन के अनुपात की अपेक्षा कुछ अधिक मात्रा में रखा जाय। छोटे-छोटी तश्तरियों में खीर रखकर सामान्य छोटे चम्मचों से आहुतियाँ दी जाती रह सकतीं हैं। आरम्भ की सात और अन्त की तीन आहुतियाँ-कुल दस घी की दी जायें और शेष को खीर से दिया जाय। समय एवं शाकल्य कम हो तो हर सप्ताह बारी-बारी से हवन कर्त्ता बिठाये जायें। सुविधा हो तो कई पारी चलाने का और अधिक लोगों को सम्मिलित करने का भी क्रम चल सकता है। गायत्री यज्ञों का क्रम बहुत सरल है, उसे आसानी से सीखा और प्रयोग में लाया जा सकता है।

कीर्तन मण्डलियाँ हर गाँव में तैयार की जायें। ढोलक-मंजीरे से भी काम चल सकता है। सुविधा हो तो हारमोनियम का उपयोग भी हो सकता है। आरम्भ में एक या दो व्यक्ति मिल कर गायें। मण्डली के शेष लोग उसे दुहरायें। दर्शक स्रोत उनका साथ देने का प्रयास करें। इस प्रकार कीर्तन का क्रम एक दो घण्टे बड़े आनन्द पूर्वक चलता रह सकता है। कीर्तन का अर्थ सहगान समझा जाय। राम धुन नहीं। राम धुन में एक ही कड़ी बार-बार दुहराई जाती रही है, जब कि कीर्तन में प्रेरणाप्रद संगीत का सामूहिक रूप से उपयोग किया जाता है। इन प्रेरणाप्रद गीतों के माध्यम से ही जन-जागृति के विभिन्न पक्षों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन-जन तक पहुँचाया जाना है। प्रेरणाप्रद प्रवचनों के लिए प्रबुद्ध श्रोता चाहिए और सुयोग्य वक्ता। कहने और सुनने वालों की पृष्ठभूमि विकसित न हो तो न प्रवचन बन पड़ता है और न सुनने वालों के ही पल्ले कुछ पड़ता है। इसलिए पचहत्तर प्रतिशत देहातों में बसे हुए प्राय: तीन चौथाई अशिक्षित भारतीय समाज के लिए सहगान कीर्तन पद्धति ही लोग-शिक्षण का उपयुक्त माध्यम हो सकती है। उसी को विकसित किया जाना चाहिए। उपयुक्त गीत युग-निर्माण-योजना द्वारा प्रस्तुत किये जाते रहेंगे। गायक मंडली स्थानीय लोगों में से ही प्रशिक्षित की जानी चाहिए। उपरोक्त सारी व्यवस्था को स्थापना एवं प्रचलन कह सकते हैं। इसके लिए आरम्भ के दिनों में ही अधिक दौड़-धूप करनी पड़ती है। फिर तो सारा ढ़र्रा अपने आप चल पड़ता है। एक से दूसरे को सिखाते हुए उत्साही व्यक्ति उसे अनायास ही चलाते रह सकते हैं।

चरण-पीठ की देव-प्रतिमा

चरणों के नीचे तीन पत्ती और दो फूल का प्रतीक पंचशीलों का प्रतिनिधित्व करता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक यह जीवन व्यवस्था के पाँच क्षेत्र हैं। उनमें से प्रत्येक के पाँच-पाँच अनुशासन हैं। इन्हीं को पंचशील कहते हैं। प्रत्येक के पाँच-पाँच नियम होने से कुल मिलाकर पच्चीस नियम व्रत बन जाते हैं। इन्हें पालन करना ही सामान्य जीवन की वह तपश्चर्या है जिसका पालन करने से मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण सम्भव हो सकता है। इन पंचशीलों की व्याख्या, विवेचना, संगीत प्रवचन, स्वाध्याय, सत्संग, मनन चिन्तन आदि के माध्यम से निरन्तर होती रहनी चाहिए। लोक-शिक्षण की यह प्रक्रिया जहाँ जिस प्रकार सम्भव हो सके वहाँ उसी प्रकार चलाई जानी चाहिए। ताकि लोक-शिक्षण का वह उद्देश्य पूरा होता रहे।

गायत्री चरण पीठें जहाँ भी स्थापित हों वहाँ स्थानीय व्यक्तियों में से एक भावनाशील नैष्ठिक को उसका कार्यवाहक बनाया जाना चाहिए। वह उसकी स्वच्छता, सुरक्षा एवं कार्यक्रम की सुव्यवस्था रखने में स्वयं अग्रणी रहे और दूसरों को साथ लेकर चले। इसके अतिरिक्त एक व्यवस्था और बननी चाहिए कि इस कार्यवाहक को एक सहायक मिले। आधे दिन का समय देने वाला भी 'सहायक' हो सकता है। जन-सम्पर्क के लिए भाग-दौड़ करने के कई कार्य ऐसे हैं जो हर दिन होने चाहिए। इनमें तीन कार्य मुख्य हैं (१) गाँव के हर शिक्षित व्यक्ति को युग साहित्य पढ़ने देने और वापस लेने का चल पुस्तकालय क्रम चलाना (२) जन्मदिवसोत्सवों एवं षोड्स संस्कारों के पारिवारिक आयोजनों तथा सामूहिक पर्व आयोजनों के साधन जुटाना (३) जिनके यहाँ दस पैसे वाले ज्ञानघट या मुट्ठी अन्न वाले धर्मघट रखे हुए हैं, उनका संग्रह-संकलन करना। इन दौड़ धूप के कार्यों में सामान्य योग्यता के लगनशील व्यक्ति भी अच्छे सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

जन-जागरण के लिए युगान्तरीय चेतना का आलोक जन-जन तक पहुँचाया जाना आवश्यक है। यह कार्य युग साहित्य के माध्यम से ही सम्भव होगा। प्रयत्न यह होना चाहिए कि चरण पीठ क्षेत्र का एक भी शिक्षित ऐसा न बचे जिसको युग साहित्य बढ़ने का चस्का न लगे। जो पढ़े नहीं हैं वे सुनें। पढ़ने वाले स्वयं ही पढ़कर सन्तुष्ट नहीं वरन् कम से कम अपने परिवार के शिक्षितों को भी पढ़वायें और अशिक्षितों को पढ़ाया करें। यह कार्य अब तक झोला पुस्तकालयों के माध्यम से परिजन ही स्वयं चलाते थे। अब उस कार्य का उत्तरदायित्व प्रज्ञापीठें, चरण पीठें उठा रही हैं। तो भी इतना कार्य तो हर व्यक्ति के जिम्मे रहेगा ही कि वह अपने परिवार के हर छोटे- बड़े, शिक्षित-अशिक्षितों को इस चेतना के सम्पर्क में लाये। उन्हें पढ़ाने या सुनाने का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करें।

चरणपीठों की प्रधान सम्पदा उसका चल पुस्तकालय होनी चाहिए। इसमें जितना अधिक युग साहित्य हो उतना ही अच्छा, पर इसके लिए कहीं एक दो अलमारियों की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। अखण्ड ज्योति, युग-निर्माण, युग-शक्ति, महिला जागृति के पुराने अंक जहाँ भी मिल सकें उनसे माँग कर मोटा बासी कागज चिपका लेना चाहिए ताकि उस मोटे कवर से फटने की सुरक्षा हो सके। जिनके यहाँ मिशन की पुस्तकें हों, वहाँ से उन्हें भी संकलित कर लेना चाहिए। उनकी सुरक्षा भी इसी प्रकार कवर चिपकाने से हो सकती है। उन्हें पढ़ाने के लिए एक व्यक्ति चल पुस्तकालय योजना के अनुसार घर-घर देने और वापस लेने के लिए जाया करें। बिना किसी खर्च के इतना उपयोगी साहित्य जो पढ़ेंगे उनकी अरुचि देर तक न टिकेगी औ वे फिर आग्रह पूर्वक माँगने तथा खरीदने के लिए उत्सुकता प्रकट करते देखे जायेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हर चरण पीठ को एक नियमित राशि साहित्य खरीदने के लिए निकालनी चाहिए। नई-नई पुस्तकों के कई-कई सैट मँगाते रहने से ही अपने क्षेत्र में जन-जन तक युग चेतना का प्रकाश पहुँचाना सम्भव हो सकेगा। प्रमुखतया इसी प्रयोजन के लिए २५ से ४० पैसे मूल्य की सीमा में १०० पुस्तकें इन्हीं दिनों गायत्री तपोभूमि मथुरा से छपी हैं। भविष्य में भी वे हर वर्ष १०० की संख्या में छपती रहेंगी। इनके १० सैट मँगाने से भी अधिक लोगों तक सम्पर्क साधने की सुविधा बन सकती है। इसके बाद डेढ़ रुपये वाला युग साहित्य भी रुचि लेने वालों को पढ़ाया जा सकता है। लोक शिक्षण की प्रक्रिया में साहित्य के साथ दीवालों पर आदर्श वाक्य लेखन तथा स्लाइड प्रोजैक्टर के प्रदर्शन भी अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। इन्हें भी विकसित और प्रयुक्त किया जाना चाहिए।

चरण पीठों के माध्यम से युगावतार का परिचय जन-जन तक पहुँचाना युग की एक बड़ी आवश्यकता और महती सेवा साधना है। इसे अधिकाधिक विस्तार दिया जाना है। जागृत आत्माओं के लिए यह कठिन नहीं है। उपयुक्त स्थान पर छायादार पेड़ प्राप्त करना या बेलों वाले मण्डप की व्यवस्था, चरण पीठ, तुलसी के थांवले आदि की स्थापना के लिए पैसा और श्रम सहयोग जुटाना, हवन और कीर्तन का ढर्रा घुमाना यह सारी व्यवस्था एक महीने की दौड़-धूप में पूरी हो सकती है। गायत्री परिवार में वानप्रस्थों परिव्राजकों की कमी नहीं। वे एक-एक महीना एक-एक गाँव में अड्डा डालें तो स्थानीय धर्म-प्रेमियों की सहायता से इतनी व्यवस्था किसी भी गाँव में सहज ही बन सकती है। एक-एक परिव्राजक अपने क्षेत्र के दस गाँवों की चरण पीठों को सम्भालते रहने का उत्तर दायित्व वहन करें तो उस क्षेत्र में कभी शिथिलता न आवेगी। एक-एक रात उन गाँवों में ठहरने और स्लाइड प्रोजेक्टर की सहायता से अथवा रामायण कथा का क्रम चला कर जन-मानस के परिष्कार की गतिविधियाँ अग्रगामी बनाई जा सकती हैं । एक परिव्राजक छः गाँव अपने जिम्मे में ले तो वह सप्ताह में पूरा एक दिन एक गाँव को दे सकता है। सातवां दिन अपनी छुट्टी का रख सकता है। नौ गाँव किसी ने अपने जिम्मे लिये हों तो सप्ताह के स्थान पर दस-दस दिन की पारी बन सकती है। इसमें अवकाश का दिन नौ दिन बाद मिला करेगा। साथ ही हर गाँव को नौ दिन बाद ही इस विशेष कार्यक्रम का लाभ मिला करेगा। छः गाँवों पर नौ गाँवों की शक्ति पीठों को जीवन्त बनाये रखने की जिम्मेदारी सम्भालकर एक परिव्राजक अपनी व्रत शीलता को सच्चे अर्थों में सार्थक कर सकता है। साथ ही अपने घर परिवार की देख भाल भी चलती रह सकती है। प्रव्रज्या अभियान कई वर्षों से चल रहा है। उसके व्रत शीलों को अब इसी प्रकार अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए। वानप्रस्थ परम्परा पुनर्जीवित की गई है। कितने ही लोगों ने वानप्रस्थ व्रत लिए हैं। अब समय आ गया कि उस प्रतिज्ञा का सच्चाई के साथ पालन किया जाय। पचास वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों को वानप्रस्थ के लिए और अधिक प्रोत्साहित करने और चरण पीठ प्रक्रिया के माध्यम से नव-सृजन के पुण्य प्रयोजन में इन्हीं दिनों उनकी अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही है । युग की यह पुकार भावनाओं द्वारा पूरी की ही जानी चाहिए।

छोटे कलेवर में महान् सम्भावनायें

चरण पीठों का आकार भर छोटा है। उनके कार्यक्रम एवं उद्देश्य वही हैं जो विशालकाय गायत्री शक्ति-पीठों के। साधन सीमित होने के कारण ही छोटी चरण-पीठें बनी हैं। यदि श्रद्धा और सुविधा का अनुपात बढ़े तो इन छोटी स्थापनाओं के माध्यम से भी बड़ी से बड़ी सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियाँ अग्रगामी हो सकती हैं। बीस हजार वाली छोटी 'प्रज्ञापीठ' बनना वहाँ तनिक भी कठिन नहीं है जहाँ चरणपीठ क्षेत्रों में थोड़े से भी श्रद्धावान् कर्मनिष्ठ दृष्टिगोचर होने लगें। खीर का एक कुण्डी हवन श्रद्धा की कमी नहीं स्वल्प साधन मिल पाने की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए कराये जा रहे हैं। साधन होने पर पाँचकुण्डी, नौ कुण्डी, पच्चीस कुण्डी गायत्री महायज्ञ विशालकाय युग निर्माण सम्मेलनों के साथ होते रह सकते हैं और हर क्षेत्र में नव जागरण का वातावरण बन सकता है। बड़े गायत्री मेले लग सकते हैं। कितने ही रचनात्मक कार्यक्रम खड़े हो सकते हैं। अगले दिनों गायत्री धर्म केन्द्रों में से प्रत्येक को प्रौढ़ शिक्षा, कुटीर उद्योग, स्वच्छता, स्वास्थ्य सम्वर्धन, वृक्षारोपण, लोक-शिक्षण, चल पुस्तकालय, कुरीति निवारण, अवाँछनीयता उन्मूलन, गौसम्वर्धन, सहकारिता विस्तार, श्रमदान जैसी सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कारगर कदम उठाने हैं। महत्त्व समझते हुए इस दिशा में कहने लायक काम नहीं हो पाता। उसका एक ही कारण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है—जन-सहयोग न जुट पाना। युग-निर्माण परिवार की सदस्यता में अंशदान की शर्त को अनिवार्य माना गया है। अस्तु जहाँ कहीं भी नव-सृजन के प्रति श्रद्धा उभरे, उसे सक्रिय बनाने के लिए ज्ञानघट स्थापना का परामर्श एवं दबाव देना चाहिए। अंशदान जहाँ जितना जुटेगा, वहाँ सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन का उत्साहजनक वातावरण उतना ही बनेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समस्त चरणपीठों को अपने क्षेत्र में श्रद्धावानों की खोज करनी चाहिए और जहाँ कुछ भी जीवन दिखाई पड़े, वहाँ उसमें निष्ठा का सिंचन करने वाली उदारता उभारनी चाहिए। यह कार्य ज्ञानघट, धर्मघट स्थापना के सहारे भली प्रकार हो सकता है। श्रद्धालु की निष्ठा परिपक्व होगी और प्रज्ञा अभियान को नव-सृजन के लिए नितान्त आवश्यक साधनों की सुविधा मिलती चलेगी। ज्ञानघटों की राशि से चरण-पीठ के लिए एक सहायक पढ़ाने के लिए साहित्य खरीदते रहने, भविष्य में प्रज्ञापीठ बनाने की तैयारी करने, क्षेत्रीय यज्ञ का आयोजन करने, स्लाइड प्रोजेक्टर, टैपरिकार्डर, लाउडस्पीकर जैसे साधन जुटाने जैसे अनेकों अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करने में इस पैसे का उपयोग हो सकता है जो ज्ञानघटों के माध्यम से एकत्रित होता है।

ज्ञानघटों के माध्यम से अंशदान की प्रेरणा का छोटे रूप में शुभारम्भ करना एक महान् सम्भावना का बीजारोपण है। इस सत्प्रवृत्ति को अधिकाधिक बढ़ाया जाय और भावनाशीलों को अधिक समय एवं अधिक साधन नवसृजन के पुण्य प्रयोजन में लगाने की प्रेरणा देनी चाहिए। इसी उदारता के माध्यम से आध्यात्मिकता को जीवन्त एवं प्रखर होने का अवसर मिलता है। दरिद्रता उतनी बाधक नहीं होती जितनी कृपणता। महान् सम्भावनायें दरिद्रता के रहते हुए भी बन पड़ती हैं, पर कृपणता सदुद्देश्य के लिए किसी को कुछ भी करने नहीं देती और प्रगति की दिशा में एक कदम भी बढ़ने की छूट नहीं देती। अनास्था और अनुदारता एक ही निकृष्टता के दो पक्ष हैं। इसी तरह आध्यात्मिकता एवं उदारता पवित्र उत्कृष्टता के ही नाम हैं। मनुष्य में देवत्व का उदय होने का तात्पर्य उदारता और पवित्रता की उत्कृष्टता का सम्वर्धन होना है। प्रज्ञापुत्रों में से प्रत्येक को इस दिशा में अग्रगामी बनने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। जहाँ उस दिशा में जितनी श्रद्धा का विकास होगा, वहाँ अनेकानेक सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन सहज ही दृष्टिगोचर होने लगेगा।

समयदान भी अशंदान का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रतिदिन दस पैसा एवं एक घण्टे का समय इस अभियान में लगाना प्रज्ञावतार के सहचरों के लिए अनिवार्य है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि गाँव में स्वयं सेवा की भावना पैदा की जाय और चार घण्टा समय एक नियम अवधि तक देने रहने वाले स्वयं सेवी तैयार किये जायें। एक-एक महीना समय देने वाले यदि बारह व्यक्ति हों तो बारह महीने इस प्रक्रिया को अवैतनिक रूप से चलाते रह सकते हैं। भावनाशील छात्रों में से कई इस प्रयोजन को भली प्रकार पूरा कर सकते हैं। मात्र सेवा-भावना जगाने और कार्य की महत्ता समझाने भर की जरूरत है। कितने ही सेवा निवृत्त अथवा खाली समय वाले व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं, जो चार घण्टा समय सच्चे अर्थों में इस धर्म धारणा का उद्देश्य पूरा करने वाले पुण्य प्रयोजन में अपना समयदान देते रहें। सर्वप्रथम इसी का प्रयत्न करना चाहिए। नवयुग में परमार्थ परायणता की प्रवृत्ति को जगाने से ही समय की माँग पूरी कर सकना सम्भव होगा। यदि समय दानी न मिल सके तो फिर थोड़ा-सा पारिश्रमिक देकर भी काम चल सकता है। देहात में चार घण्टे समय देने वाले सेवा भावी पचास रुपया मासिक देने जैसी थोड़ी राशि पाकर भी उत्साहपूर्वक काम करने को तैयार हो सकते हैं। यह पैसा ज्ञानघटों, धर्मघटों की राशि में से चुकाया जा सकता है। चरण-पीठों के कार्य संचालन में योगदान देने के इच्छुक व्यक्तियों को उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त कराने के लिए शांति कुन्ज में चलने वाले न्यूनतम एक माह के सत्रों में भेजा जाना बहुत लाभप्रद रहेगा।

उपरोक्त उल्लेख को चरण-पीठों का ढाँचा खड़ा करने और व्यवस्था क्रम चलाने का मार्ग-दर्शन समझा जा सकता है। इतना बन पड़ने के उपरान्त व्यक्ति, परिवार और समाज की अभिनव संरचना से सम्बन्धित अनेकों रचनात्मक क्रिया-कलाप अग्रगामी बनाये जायेंगे। सीमा सुरक्षा का लक्ष्य पूरा करने के लिए सैनिकों की भर्ती, उनके निर्वाह की छावनी, प्रशिक्षण, व्यवस्था, वाहन एवं अस्त्रों का प्रबन्ध वेतन राशि, वर्दी जैसे अनेकों प्रबन्ध करने पड़ते हैं। उतना बन जाने के बाद ही प्रशिक्षित सैनिकों की स्थिति ऐसी बन पड़ती है कि वे मोर्चे पर शत्रुओं को परास्त करने जा सकें और विजय श्री प्राप्त कर सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महत्त्वपूर्ण उत्पादनों के लिए छोटे-बड़े कारखाने लगाये जाते हैं। उन की इमारतें, मशीनें, दफ्तर, पूँजी, कारीगर, व्यवस्थापक, ग्राहक आदि का प्रबन्ध बन पड़ने के उपरान्त ही उत्पादन का लाभ मिलता है। चरण-पीठों को उपरोक्त व्यवस्था का ढाँचा खड़ा करने वाली प्रारम्भिक भूमिका कहा जा सकता है। प्रभावी काम तो तब आरम्भ होगा जब पटरी बिछ जायेगी और गाड़ी चलने लगेगी। इस प्रज्ञातन्त्र का अभीष्ट लक्ष्य है—मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण। जन-जन का व्यक्तित्त्व, समुन्नत, सुविकसित और सुसंस्कृत बनाया जाना है। उसके चिन्तन में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता का समावेश करना है। परिवारों को सराय स्तर का नहीं रहने दिया जायेगा और उन्हें सुसंस्कारिता वर्धन की प्रयोगशाला के रूप में विकसित किया जायेगा। ऐसी प्रयोगशाला जिसमें ढले हुए घटक अपने लिए ओर अपने समाज के लिए गौरवास्पद बन सकें। परिवार एक छोटा-सा समाज या राष्ट्र है। उसके सुसंचालक के निमित्त उस संगठन के हर छोटे-बड़े सदस्य को योगदान किस प्रकार देना चाहिए, इसकी शिक्षा-व्यवस्था हर घर में नये सिरे से आरम्भ की जानी है। व्यक्ति और परिवार के निर्माण का कार्य शासन सत्ता नहीं धर्मसत्ता ही कर सकती है।

समाज का वर्तमान ढाँचा ऐसा नहीं है जिसमें हर व्यक्ति को उसके मौलिक मानवी अधिकारों के अनुरूप सुविधायें मिल सकें और न ही व्यक्ति की मनोदशा ऐसी है कि वह सभ्य समाज का सुसंस्कृत घटक होने के नाते जो उत्तरदायित्व आते हैं उनका निर्वाह अन्तःप्रेरणा अथवा अनुशासन व्यवस्था के दबाव से ठीक प्रकार करता रह सके। समाज की संरचना में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जाने हैं। व्यक्ति को समूह के प्रति और समूह को व्यक्ति के प्रति अपनी शालीनता का परिचय किस प्रकार देना चाहिए, इसकी सुव्यवस्था नये सिरे से खड़ी करनी होगी। इस प्रयोजन के लिए प्रचलित अवाँछनीयताओं में से बहुत कुछ को उखाड़ना और गलाना होगा। साथ ही बहुत कुछ उगाना और ढालना पड़ेगा। इसकी विशालकाय भूमिका आस्था क्षेत्र पर शासन करने वाले धर्मतन्त्र द्वारा ही सम्पन्न हो सकेगी। इस उत्तरदायित्व को व्यापक रूप से सम्भालने के लिए धर्मतन्त्र का ध्वजारोपण जैसा श्री गणेश हो रहा है—इसी को गायत्री चरणपीठ स्थापना की योजना समझा जाय।

तीन स्तर के चरणपीठ-एक स्पष्टीकरण

गायत्री चरण-पीठों की पहली घोषणा २५०) लागत की की गयी थी। यह इसलिए कि धन के अभाव में श्रद्धालु निर्धन जनता प्रज्ञा प्रसार से वंचित न रह जावे। यदि धन का सहयोग न भी मिले तो श्रमदान और नाम मात्र के अंशदान से ही प्राचीन ऋषि प्रणाली से वह कार्य पूरा किया जा सके।

किन्तु प्रसन्नता की बात है कि युग चेतना ने श्रद्धालुओं के साथ सम्पन्नों के हृदय में भी स्थान पाया है। सभी जगह मध्यम स्तर का सहयोग मिलने के समाचार हैं। शक्ति-पीठ सत्रों में भी ऐसे ही निष्कर्ष निकले हैं। अस्तु शक्ति-पीठों के अति सस्ते २५० रु. वाले निर्माण का आग्रह छोड़कर सस्ती लागत के तीन प्रकार के चरण-पीठों के प्रारूप बनाये गये हैं। इन्हें अपनी-अपनी परिस्थिति एवं सामर्थ्य के अनुसार चुना और बनाया जा सकता है।

अगली पंक्तियों में उनके विवरण तथा उनकी सम्भावित लागत के आँकड़े दिये जा रहे हैं। सम्भावित लागत की गणना हरिद्वार की वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर की गयी है। स्थान विशेष की परिस्थितियों के आधार पर उनमें कुछ घटा बढ़ी हो सकती है। श्रमदान और अनुदान में मिले सामान की कीमत स्वभावत: लागत में से घटेगी ही। विवरण इस प्रकार है—

(१) सबसे छोटा—

इसमें ५′ × ४५′ का पक्का चबूतरा धरातल से एक फुट ऊँचा रहेगा। उस पर एक ओर परिक्रमा के लिए ४ फुट जगह छोड़कर ६′ × ६′ का २′ ऊँचा आसन। आसन पर चित्र के अनुसार छतरी बनेगी । आसन के बीच में सतह पर ही चरण चिन्ह स्थापित होंगे। यह चित्र में छपे छतरी वाले चरण चिन्ह के ढंग के होंगे। छतरी के दोनों ओर २.५′ दूर ३′ × ३′ में तुलसी के दो पक्के थाँवले। चबूतरे के चारों ओर मंहदी जैसी कोई बाड़ जिससे उस पर जानवर न घुस सकें। यह निर्माण २५०० रु. से ३००० रु. के लगभग लागत में बन जायगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) मध्यम स्तर—

इसमें नं. १ वाले चरणपीठ के खुले चबूतरे के बीच में १६ × २४ फुट का शेड डाला जा सकता है। इस शेड के नीचे किसी भी समय धूप, सर्दी एवं वर्षा आदि से सुरक्षित रह कर विभिन्न कार्यक्रम सुविधानुसार किये जाने सम्भव होंगे। शेड के कई ढंग हो सकते हैं, उनके अनुसार उनकी लागत भी बदलेगी। विभिन्न प्रकार के शेड सहित इस स्तर के शक्ति-पीठ की कुल लागत इस प्रकार होगी—

(क) ईंट के पाये, बाँस बल्ली ढाँचे पर खपरैल की छाया बनायें तो छतरी चबूतरे आदि सहित लगभग ४००० रु. से ४५०० रु. की लागत लगेगी।

(ख) बाँस बल्ली के ढाँचे पर टीन की छाया बनायें तो कुल लागत ६००० रु. के लगभग होगी।

(ग) यदि लोहे का ढाँचा बनाकर उस पर टीन की छाया बनायें तो चरणपीठ की कुल लागत ६५०० रु. के लगभग जा पहुँचती है। इसमें भी छतरी वाले चरण चिन्ह स्थापित होंगे।

(३) बड़े स्तर की चरण-पीठ—

यह चरण-पीठ जुलाई की अखण्ड ज्योति के मुखपृष्ठ पर छपे प्रज्ञापीठ जैसी होगी। इसमें बीच में १६' × २६' का हॉल और उसके चारों ओर आठ फुट चौड़े बरामदे। बरामदों के चारों कोनों पर चार ८' × ८' के कमरे। बीच के हॉल में सामने दीवाल से सटी ५' × ३' की ढाई फुट ऊँची चबूतरी। उस पर दो पाये, उनके ऊपर आधार गुम्बद युक्त मन्दिर चबूतरे के बीच दीवाल पर चित्र के अनुसार मन्दिर वाले चरण चिन्ह की स्थापना मूर्ति की जगह होगी।

इसमें कार्यकर्त्ता निवास, कार्यालय साहित्य केन्द्र आदि सभी सुविधाएँ मिल जाती हैं। इसकी लागत ऊपर की छाया के अनुसार बदलती है। दीवालों और पायों की चुनाई ईंट, चूने, सीमेन्ट आदि से करें तो विभिन्न छाया के अनुसार लागत इस प्रकार होगी—

(क) खपरैल की छत सहित कुल लागत लगभग ११००० रु. (ख) टीन की छत सहित कुल लागत लगभग १४५०० रु. (ग) ३ इंच आर. सी. सी. की छत सहित कुल लागत लगभग १७००० रु. ।

सभी प्रकार के चरणपीठों में यदि नीचे का फर्श पक्का न करें, गोबर से लीपने वाला रखें तो प्रत्येक की लागत लगभग १००० रुपये कम हो जायेगी।

मूर्ति वाले प्रज्ञापीठ के स्थान पर चरण-चिन्ह वाले चरण-पीठ बनाने के लाभ इस पुस्तिका में पहले ही स्पष्ट किये जा चुके हैं। परिजन अपने विवेक से परिस्थितियों एवं साधनों के अनुरूप निर्माण की रूपरेखा बना सकते हैं। चरण-चिन्ह पत्थर पर खुदे हुए मथुरा से प्राप्त किये जा सकते हैं तथा उनकी डिजाइन के अनुसार अपने यहाँ के कारीगरों से भी तैयार कराये जा सकते हैं।

गायत्री चरण-पीठें और नव-सृजन की सम्भावनाएँ

इन दिनों युग सन्धि का परिवर्तन चक्र द्रुतगति से चल पड़ा है। महा प्रज्ञा का अवतरण नये विश्व का अभिनव सृजन का सुविस्तृत संरजाम इकट्ठा कर रहा है। साथ ही उस पुण्य प्रयोजन के लिए जीवन्तों एवं जागृतों के सहयोग की अपेक्षा आवश्यकता भी प्रबल हो रही है। ऐसे समय में ऐसे असंख्य कार्यक्रम सामने आ खड़े हुए हैं, जिनमें हर योग्यता का व्यक्ति अपनी योग्यता एवं स्थिति के अनुरूप कुछ न कुछ सहयोग कर सकने में समर्थ हो सकता है। क्या किया जाय ? इस प्रश्न के उत्तर में क्रिया-कलाप की रूपरेखा निर्धारित करने से पूर्व यह देखना होगा कि किस के लिए कितना समय और कितना अंशदान दे सकना सम्भव हो सकता है। योग्यता कितनी ही छोटी क्यों न हो, परिस्थिति कितनी ही दुर्बल क्यों न हो, हर जीवित व्यक्ति का योगदान किसी न किसी रूप में उपयोगी हो ही सकता है। जटायु के समान असमर्थ और वयोवृद्धि भी अनीति के सम्मुख अड़ सकते हैं और गिलहरी के समान साधन हीन भी इन दिनों अपने अनुदान प्रस्तुत कर सकते हैं, भले ही वे नाप-तौल की दृष्टि से अकिंचन ही क्यों न कहे जायँ।

यहाँ एक बात स्मरण रखने योग्य है कि युग सृजन जैसे व्यापक अभियान एकांकी नहीं संयुक्त प्रयासों के सहारे ही अग्रगामी हो सकते हैं। भजन-पूजन, दान-पुण्य, व्यायाम, उपवास जैसे कार्य तो एकांकी भी हो सकते हैं, पर जिस प्रयोजन में व्यक्ति समाज का ढाँचा ही बदलना हो, प्रचलनों और परिस्थितियों में भारी उलट-पुलट करनी हो उसके लिए संयुक्त प्रयासों से कम से काम चल ही नहीं सकता। अतएव जो कुछ सोचा जाना है जो कुछ किया जाना है उसका स्वरूप संयुक्त प्रयास के रूप में ही होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह संयुक्त प्रयास किसी न किसी माध्यम से करना होगा। यह माध्यम महाप्रज्ञा का प्रतीक ही उपयुक्त हो सकता है। व्यक्ति प्रधान संगठन अपनी पिछड़ी मनोभूमि में किस कदर दुर्दशाग्रस्त एवं विग्रह केन्द्र बन रहे हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। इसलिए माध्यम के चुनाव में प्रज्ञा प्रतीकों को ही प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। युग सृजन के केन्द्र स्थान गायत्री तपोभूमि मथुरा एवं गायत्री पीठ हरिद्वार के रूप में चल रहे हैं। यह व्यक्ति प्रधान नहीं वरन् देवता के संरक्षण में चल रहे हैं। इन दोनों केन्द्रों के माध्यम से विगत तीस वर्षों से जो हो सका है वह उत्साह वर्धक भी है और कलह रहित भी। समय आ गया कि इस देवालय प्रक्रिया को अन्यत्र भी अपनाया जाय और अपने-अपने क्षेत्र में नव-सृजन का अभियान उसी रूप में चलाया जाय जैसा कि मथुरा और हरिद्वार के दोनों केन्द्रों द्वारा उसे विश्वव्यापी विधि-व्यवस्था के रूप में चलाया जा रहा है।

विगत वर्षों में गायत्री शक्ति-पीठों और प्रज्ञा पीठों के निर्माण का दौर चला है। उनकी संख्या हजारों में है, पर देश के विस्तार को देखते हुए इतने देवालय जलते तबे पर पड़ने वाली बूँद की तरह ही समझे जा सकते हैं। कहाँ सात लाख गाँव और उनमें रहने वाला ९६ करोड़ जन समुदाय और कहाँ कुछ हजार प्रज्ञा पीठों की छोटी-छोटी इमारतें और उनमें काम करने वाले दो चार हजार कार्यकर्त्ता। इतनी मंथर गति से समस्त भू-मण्डल पर बसने वाली ६०० करोड़ जनसंख्या तक युगान्तरीय चेतना का आलोक पहुँचा सकना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। सो भी तब जब उसे मात्र बीस वर्ष की अवधि में पूरा करने की आवश्यकता एवं विवशता सामने आ खड़ी हुई हो।

समय की कमी एवं कार्य की विशालता को देखते हुए नया निश्चय यह किया गया है कि हर बड़े गाँव में गायत्री चरण पीठ नाम से एक छोटा धर्म-संस्थान बनाया जाय जिसमें उपासना की अनिवार्यता वाली बात भी पूरी होती रहे और धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण का उपक्रम भी चलता रहे। व्यक्ति, परिवार एवं समाज निर्माण की व्यापक कार्य पद्धति को गाँव-गाँव घर-घर, जन-जन तक पहुँचाने के लिए आवश्यक हो गया है कि इन छोटे देवालयों की स्थापना की जाय और उनकी लागत तथा निर्माण विधि इतनी स्वल्प एवं सरल हो कि कहीं भी उन्हें बनाने में कठिनाई अनुभव न हो।

यों गायत्री चरण पीठें यदि कच्ची मिट्टी से बनाई जायें और उनका चबूतरा तथा चरण प्रतिमा भर पक्की ईंटों से बने तो ढाई सौ से भी काम चल सकता है, पर यदि देवालय, यज्ञ स्थान, सत्संग, आच्छादन पक्की ईंटों से स्थायी स्तर के बनाये जायें तो उनकी लागत तीन हजार भी हो सकती है। टिन शेड का स्थायी सत्संग आच्छादन बनाया जाय तो उसकी लागत चार हजार तक पहुँच सकती है। इसमें जमीन मात्र ३०' × ५०' की आवश्यकता पड़ेगी। थोड़ी कम हो तो भी काम चल सकता था। इतनी भूमि और राशि इन दिनों कहीं भी किसी भी प्रतिभाशाली व्यक्ति के नेतृत्त्व में सहज विनिर्मित हो सकती है। यह न्यूनतम भूमि की चर्चा है। प्रयत्न यह होना चाहिए कि अधिक बड़ी जगह मिले। गाँव के समीप यदि एक-दो बीघे जमीन इस कार्य के लिए मिल सके तो उसमें उद्यान, खेलों का मैदान, व्यायाम शाला बड़े सम्मेलन, विद्यालय आदि के लिए गुंजायश बनी रहेगी।

यह इमारत की बात हुई जिसकी छत्र-छाया में अनेकों सृजनात्मक प्रवृत्तियाँ एवं धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण की जन-जागरण प्रक्रिया का सहज संचालन हो सकता है। प्रौढ़, शिक्षा, साक्षरता, प्रसार, वृक्षारोपण, चल पुस्तकालय, स्वास्थ्य सम्वर्धन, स्वच्छता, नारी जागरण, शिशु-कल्याण जैसी रचनात्मक और विवाहों में अपव्यय, दहेज, बाल-विवाह, मृतक-भोज, छूआछूत, पर्दाप्रथा, नशेबाजी, जुआ, चोरी, बेईमानी, रिश्वत, मिलावट आदि प्रचलित अवांछनीयताओं के उन्मूलन का सुधारात्मक अभियान चलाया जा सकता है। इस प्रकार के संगठित प्रयास जन-जन में सृजन चेतना उत्पन्न करके उनके श्रम सहयोग के सहारे सम्पन्न किये जायेंगे। इसके लिए आवश्यक अर्थ-व्यवस्था दस पैसा जमा करने वाले ज्ञान घटों एवं मुट्ठी अन्न वाले धर्म घटों के सहारे अर्जित की जायगी। युग निर्माण की सदस्यता में एक घण्टा समय और दस पैसा नित्य ज्ञान यज्ञ के निमित्त लगाते रहने की शर्त है। अब तक वह ढीली-पोली भी चलती रही है, अब उस पर अधिक जोर और दबाव दिया जा रहा है। इसके लिए किसी भी भावनाशील धर्म प्रेमी ने अमान्य नहीं किया है। फलतः इन छोटी गायत्री चरण पीठ की स्थापनाओं के माध्यम से उस गाँव में तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में उस नव सृजन के चल पड़ने की पूरी-पूरी सम्भावना है जिनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहारे जनमानस का परिष्कार एवं परम्पराओं का नव-निर्धारण हो सकने की विश्वासपूर्वक अपेक्षा की गई है।

आरम्भ में हर गायत्री चरण पीठ के पाँच कार्यक्रम प्रधान रहेंगे।

(१) घर-घर जन-जन तक युग साहित्य पढ़ाने और वापिस लेने की व्यवस्था। इसी के साथ दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन की व्यवस्था भी की जानी चाहिए। इस योजना के अनतर्गत सभी शिक्षितों को युग चेतना का प्रतिपादन पढ़ने और अशिक्षितों को नियमित रूप से सुनने का अवसर मिलेगा।

(२) सम्पर्क में आने वाले प्रज्ञा प्रेमियों के जन्मदिवसोत्सव मनाये जायें। उनके घरों पर गायत्री यज्ञ एवं भजन कीर्तन समेत ज्ञान गोष्ठियों का होना। सम्भव हो तो बालकों के नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ आदि संस्कारों की व्यवस्था बना कर परिवार निर्माण गोष्ठियों की व्यापक व्यवस्था बनाना।

(३) गायत्री चरणपीठ पर साप्ताहिक यज्ञ, सत्संग, भजन कीर्तन एवं प्रवचन का प्रबन्ध किया जाना।

(४) रात्रि को रामायण कथा एवं कीर्तन की व्यवस्था।

(५) युग सृजन के निमित्त समय दान एवं अंशदान के लिए भावनाशालों को प्रोत्साहित करना, उनके यहाँ ज्ञान घटों की स्थापना कराना। यह पंच सूत्री योजना सभी गायत्री चरण पीठों को अपनानी होगी।

इसके लिए अधिकांश कार्यकर्त्ता तो अवैतनिक सेवा भावी ही काम करेंगे, पर एक ही स्थिर नियुक्ति ऐसी भी होगी जिसे पूरे दिन या आधे दिन के लिए वेतन देकर नियुक्त किया जाय और उसे नियमित रूप से पाँच कार्यक्रमों की व्यवस्था बनाने के लिए इधर-उधर भेजा, दौड़ाया जाता रहे। यों अधिकांश कार्य तो अवैतनिक एवं सुयोग्य कार्यकर्त्ता ही अपना समयदान नियमित रूप से देकर सम्पन्न किया करेंगे।

न्यूनतम बीस पैसा, एक घण्टा का अंशदान, ज्ञानयज्ञ के लिए, सद्भाव सम्वर्धन के लिए, नियमित रूप से निकालने और उसे दैवी उत्तरदायित्वों के निर्वाह का अनिवार्य कर्त्तव्य मानने की शर्त इस देव परिवार में सम्मिलित रखी गई हैं। इसमें व्यक्ति को देव प्रयोजनों के लिए अपनी क्षमता का उपयोग करने के निमित्त व्यावहारिक कदम उठाने का अवसर मिलता है और अभियान को इतना बड़ा काम करने के लिए श्रम साधनों की आवश्यकता जुटाने का मार्ग मिलता है। अतएव इस प्रवृत्ति को अधिकाधिक उत्तेजना देने की आवश्यकता है। न्यूनतम शर्त को अधिकतम बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय तो दैवी अंश और दिव्य-ज्योति का प्रतिनिधि मनुष्य सामान्य परिस्थिति में अवरुद्ध होते हुए भी युग सृजन जैसे महान् कार्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका सम्पन्न कर सकता है।

वर्णाश्रम धर्म का अनुशासन यह बताता है कि जिनकी आयु पचास की हो चली उन्हें वानप्रस्थ लेना चाहिए और विराट् ब्रह्म की साधना के निमित्त लोकमंगल रत जीवन जीना चाहिए। इस महान् मर्यादा को न्यूनाधिक मात्रा में उन्हें तो पालन करना ही चाहिए जिनके पारिवारिक और आर्थिक उत्तरदायित्व हल्के हो गये हैं। इसी प्रकार प्राचीन मर्यादाओं के अनुसार उपार्जन का दशवाँ अर्थ अंश परमार्थ के लिए निकालने की बात न बन पड़े तो महीने में एक दिन की आजीविका का अंशदान निर्धारण रहना चाहिए। युग अभियान में रुचि लेने वालों को इस अपनी जीवनचर्या में इस उदार प्रयोजन को स्थान देने और उसका नित्य नियम की तरह पालन करने की आवश्यकता अनुभव करने पर जोर दिया गया है। न्यूनतम एक घण्टा समय और दस पैसा अनुदान निरन्तर प्रस्तुत करते रहने की शर्त इसी लिए लगाई गई है कि यह देव संस्कार हर किसी के स्वभाव का अंग बन सके। जिनकी स्थिति समर्थ है वे बच्चों के ज्ञान घट भी अलग से रखायें और उनमें दस पैसा डालने का अभ्यास करें। यह प्रवृत्ति आगे चलकर उन्हें देव-मानव बनने में सहायता करेगी। थोड़े समर्थ होते ही उन्हें तुलसी का उद्यान एवं पुष्प-वाटिका सींचकर संसार को सौन्दर्य-वृद्धि में सहयोगी बनने जैसी प्रेरणाएँ देनी आरम्भ कर देनी चाहिए।

कहा जा चुका है कि ज्ञान घटों में जमा होने वाली राशि के आधार पर ही गायत्री शक्ति-पीठों, प्रज्ञा-पीठों और चरण-पीठों की प्रत्यक्ष गतिविधियों का सूत्र संचालन किया जाना है। आर्थिक आवश्यकताएँ उसी से पूरी होंगी। दूसरी आवश्यकता श्रम, समय एवं मनोयोग के योगदान की है, वह समयदान के लिए हर विचारशील पर दबाव डालने से सम्पन्न हो सकेगी। युग सृजन अभियान का मेरुदण्ड यह समयदान ही है जिसके लिए प्रत्येक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जागृत आत्मा को बार-बार उकसाया और दबाया जा रहा है।

गायत्री चरण पीठ स्थापना के साथ-साथ ही उनके संस्थापकों को सम्बद्ध कार्यक्षेत्र में जन-सम्पर्क स्थापित करने के लिए निकलना चाहिए और नव-सृजन की आवश्यकता समझाते हुए अंशदान की उदारता अपनाने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। आशा की जानी चाहिए कि उस अनुरोध को सब न सही कुछ तो स्वीकार करेंगे ही और इतने भर से गाड़ी पटरी पर चलने लगेगी। पीछे तो देर-सबेर में उपयोगिता समझने पर अन्य लोग भी उस सदाशयता का अनुसरण करने लगेंगे।

निवृत्त या व्यस्त किसी भी स्तर के व्यक्ति का युग-सृजन जैसे सामयिक आपत्ति धर्म का पालन करने के लिए जितना सम्भव हो उतना समयदान देते रहने के लिए सहमत किया जा सकता है और उसके सहारे निर्धारित गतिविधियों का कार्यक्रम सरलतापूर्वक आगे बढ़ाया जा सकता है।

अपने देश में आलस्य और बेकारी का अभिशाप जन-जन पर छाया हुआ है। वास्तविक अर्थों में व्यस्त कहे जाने वाले लोग भी जब लोक-मंगल के महत्त्व को अनुभव करते हैं तो कई आवश्यक कामों में कटौती करके भी समाज सेवा का उत्तरदायित्व निवाहते हैं। फिर जिनके पास ढेरों समय आलस्य और प्रमाद में गँवाने के लिए मिलता है उनकी अन्तरात्मा को जगाना और उसका उपयोग युग-सृजन जैसे महान् कार्य में लगाने के लिए सहमत कर लेना कुछ भी कठिन नहीं है। प्रवृत्तों और निवृत्तों को ढेरों समय सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों के सम्वर्धन में लगाने के लिए उपलब्ध हो सकता है। इसी प्रकार निर्धन एवं सम्पन्नों में से हर स्तर का व्यक्ति थोड़ा बहुत अंशदान देते रहने के लिए तत्पर हो सकता है। मुट्ठी फण्ड वाले अन्न घट, दस पैसे वाले ज्ञान घट किसी के लिए भार रूप नहीं हो सकते। कठिनाई आर्थिक तंगी की नहीं, अनुदार कृपणता की है। या फिर इस बात की है कि सड़न को बुहारने और अभिनव उद्यान लगाने की रूपरेखा और उसके आधार पर प्रस्तुत होने वाली सुखद सम्भावना का स्वरूप ठीक तरह समझना-समझाना सम्भव हो सके। यदि यह अंधकार हट सके तो पैसा भी मिलेगा और समय भी, तब नव-सृजन का कोई काम अटका नहीं रहेगा। नव-निर्माण के निमित्त साधना तो चाहिए ही। उन्हें न धनवानों से पूरा किया जा सकता है और न सरकारों से। उसकी पूर्ति मात्र लोक श्रद्धा के जागरण से ही सम्भव है। हमें आसमान से अमृत बरसाने की प्रतीक्षा करते रहने की अपेक्षा कुआँ खोदने और पानी पीने की नीति अपनानी चाहिए। तथ्यों से अवगत करके लोक श्रद्धा उभारने और जन-सहयोग से युग सृजन के आवश्यक साधन उपलब्ध करने की योजना बनानी चाहिए।

अखण्ड ज्योति परिवार में ऐसी अगणित प्रतिभाएँ मौजूद हैं जो टोली बनाकर अपने क्षेत्र में निकल पड़े तो हजारी किसान द्वारा लगाये गये हजार उद्यानों की आदर्शवादिता के नये उदाहरण प्रस्तुत कर सकती है। तीन हजार या पाँच हजार के धर्म-संस्थान बनाना किसी भी गाँव के लिए भारी नहीं हो सकते, शर्त यही है कि भाव उत्तेजना के निमित्त प्रामाणिक प्रतिभाएँ आगे आयें। इन दिनों मिशन की पत्रिकाओं के चार लाख के लगभग सदस्य हैं। वे अपने सहयोगियों का साथ लेकर कुछ समय के लिए इस प्रयोजन के लिए सम्पर्क क्षेत्र में निकल पड़ें तो एक लाख चरण पीठें सहज ही बन सकती हैं। युग निर्माण परिवार के जीवंत परिजनों की संख्या प्रायः २४ लाख आँकी गई है। चौबीस प्राणवान् चाहें तो मिलजुल कर एक चरण पीठ का निर्माण अपनी-अपनी जेबों के सहारे भी कर सकते हैं। फिर ऐसे पुनीत कार्य में जन-सहयोग मिलने की कोई कठिनाई कहीं भी प्रस्तुत होने की आशंका नहीं है।

एक लाख चरण पीठें उनमें से प्रत्येक को सौंपा गया एक हजार व्यक्तियों का कार्यक्षेत्र—१० करोड़ व्यक्तियों तक अपनी घनिष्टता स्थापित कर सकने में समर्थ हो सकता है। देश की ६० करोड़ आबादी में १० करोड़ वयस्क और बुद्धिमान व्यक्ति कुछ मानी मतलब रखते हैं। इतने लोगों के नियमित रूप से प्रेरणा मिलते रहने की बात चल पड़े तो समझना चाहिए कि युग-परिवर्तन की कल्पना के सुनिश्चित यथार्थता में परिणित होना तनिक भी कठिन नहीं है। इन पीठों में से प्रत्येक में एक वैतनिक कार्यकर्त्ता रखा जाने में कहीं भी आर्थिक कठिनाई आड़े आने वाली नहीं है 'ज्ञान घट' उसकी पूर्ति सहज ही कर दिया करेंगे। पूरे या आधे समय नियमित रूप से काम करने वाले भावनाशील एक लाख कार्यकर्त्ताओं के प्रयास का मूल्य आँका जाय तो परिणित पुलकित एवं रोमांचित कर देने जितनी हो सकती है। फिर जन-साधारण में से निकलने वाले समय-दानियों के श्रम को यदि ठीक तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से रचनात्मक कामों में लगाया जा सके तो उसका परिणाम ऐसा हो सकता है जिसे अप्रत्याशित एवं चमत्कारी कहा जा सके।

गायत्री चरण पीठों के धर्म संस्थान रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों के प्रति लोक श्रद्धा जगाने वाले जागरण केन्द्र होंगे। उनका आकार छोटा होने पर भी उद्देश्य महान् है। झण्डा जरा-सा होता है, देव प्रतिमाएँ भी छोटी-सी होती हैं, पर उनके साथ जिस गहन आस्था का समावेश होता है उसके कारण उनका शासन असंख्य अन्त:करणों पर देखा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार लागत एवं आकार की दृष्टि से छोटी दीखते हुए भी उनके साथ जुड़ी हुई योजना अत्यन्त सुविस्तृत और दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाली होगी।

मन:स्थिति एवं परिस्थिति संशोधन करने वाले सृजनात्मक शालीनता बढ़ाने वाले अनेकों कार्यक्रम हर जगह स्थानीय परिस्थितियाँ एवं अवश्यकताओं को देखते हुए बताये जा सकते हैं और उनमें हर व्यक्ति का, हर स्थिति का, हर स्तर का उपयोग सुनिश्चित रूप से हो सकता है। एक कार्यक्रम होता तो कठिनाई यह रहती कि एक योग्यता के व्यक्ति ही काम आते, पर जब वृक्षारोपण एवं स्वच्छता सम्वर्धन जैसे श्रमदान पर आधारित कार्यक्रम भी चरण पीठों की सृजन योजना में सम्मिलित हैं तो किसी भी समयदानी को इसकी शिकायत न रहेगी कि हमारे सहयोग को निरर्थक ठहराया गया। पैसे की आवश्यकता तो है ही वह जहाँ जितना जुट सकें वहाँ उतने से ही बड़े निर्माण एवं विशाल कार्यक्रमों का विस्तार होता चला जायगा। इसलिए इन स्रोतों को खोलना भी इन धर्म संस्थानों के निर्माण कर्त्ताओं का कर्त्तव्य है। जहाँ इसमें जितनी सफलता मिलेगी वह उसी अनुपात से नव-सृजन की सम्भावना से प्रखर होती चलेगी।

अखण्ड-ज्योति के परिजनों में से प्रत्येक को नव-सृजन के इस पुण्य पर्व पर युग धर्म के निर्वाह के निमित्त कुछ साहसिक कदम बढ़ाने चाहिए। इस सन्दर्भ में किस की क्या मन:स्थिति एवं क्या परिस्थिति है और उनके लिए कहाँ क्या कुछ कर सकना सम्भव हो सकता है ? इसके लिए शान्ति-कुंज हरिद्वार से पत्र-व्यवहार करके किसी उपयुक्त निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। अपेक्षा की गई है कि युग सन्धि के पुण्य पर्व पर प्रत्येक जागृत आत्मा को अपने-अपने ढंग से कुछ प्रेरणा मिलेगी और उस आधार पर उत्पन्न हुई उदारता से उज्ज्वल भविष्य के अभिनव सृजन में उत्साहवर्धक सहायता मिलेगी।

चरण-पीठों की स्थापना प्रत्येक गाँव में हो

सन् ८० को युग सन्धि का बीजारोपण वर्ष कहा गया है। इसका प्रधान कार्यक्रम है—प्रज्ञावतरण का ध्वजारोपण। यह हर गाँव में किया जाना है। गायत्री चरण-पीठ की स्थापना के रूप में यह पुण्य प्रयोजन सम्पन्न किया जाना है। भारत-भूमि का एक भी गाँव ऐसा न बचने पाये जहाँ गायत्री चरणपीठ की स्थापना न हो। इसके माध्यम से उन सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाया जाना है जिससे व्यक्ति, परिवार और समाज की परिष्कृत संरचना सम्भव हो सकेगी।

गायत्री चरण-पीठ। सस्ती सर्वसुलभ एवं नवयुग का आलोक वितरण कर सकने में पूर्णतया समर्थ ऐसी शक्ति-पीठ है जिसके माध्यम से हर गाँव, हर घर, हर व्यक्ति तक युग-चेतना का प्रवेश पदार्पण सम्भव हो सके।

गाँव के मध्य या समीप एक हरा-भरा वृक्ष, उसके नीचे न्यूनतम ६ × ६′ का पक्का चबूतरा, चबूतरे के तकियों में गायत्री माता के चरणों की स्थापना, सूर्योर्ध मात्र से उसकी पूजा, अर्ध के लिए चबूतरे के नीचे एक छोटा पत्थर बहते हुए जल का उपयोग तुलसी के थाँवले में। बस यही है गायत्री चरणपीठ जो प्राय: ढाई सौ रुपये की लागत से बन सकती है। इसके लिए उपयुक्त स्थान, सामूहिक श्रमदान तथा थोड़ा-थोड़ा करके एकत्रित किया गया धन, किसी भी प्रतिभावना व्यक्ति के प्रयत्न से सहज ही उपलब्ध हो सकता है। इसे बनाने बनवाने के लिए एकाकी या टोली बनाकर निकलने वाले हर जगह इस निर्माण से सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हजारी किसान ने बिहार प्रान्त के एक क्षेत्र में अपने प्रयत्न से हजार आम्र उद्यान लगाये थे और वह जिला हजारी बाग कहलाया था। प्रज्ञा पुत्रों में सभी ऐसे हैं जो अपने प्रभाव क्षेत्र में ढेरों चरण-पीठें बनवा सकते हैं। आम्र उद्यानों से चरण-पीठों की दूरगामी उपयोगिता कम नहीं, वरन् अधिक ही है। आवश्यकता मात्र शारीरिक आलस्य और मानसिक अवसाद छोड़ कर निकल पड़ने भर की है। सूक्ष्म जगत में बहने वाला प्रज्ञा प्रवाह इस प्रयत्न को सफल बनाने में हर जगह अनुकूलता उत्पन्न करेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ भी चरण-पीठ बनें वहाँ उसके निकट हर सप्ताह श्रद्धालु लोग जल चढ़ाने, दीपक जलाने एवं हवन कराने आया करें, हवन में गुड़ मिश्रित खीर का शाकल्य और मात्र गायत्री मन्त्र का उच्चारण पर्याप्त है। हर शक्ति-पीठ के निकट सप्ताह में या महीने में एकबार जन-कीर्तन भी हुआ करे।

चरण-पीठ की व्यवस्था का उत्तरदायित्व कोई श्रद्धालुजन सम्भाले। पूजा-व्यवस्था के अतिरिक्त उस क्षेत्र के शिक्षितों को युग साहित्य पढ़ाने एवं वापिस लाने का क्रम भी तत्काल आरम्भ कर दिया जाय। सहयोगीजनों के जन्म दिन मनाने और इस माध्यम से परिवार गोष्ठियाँ चलाने का प्रयत्न आरम्भ किया जाय। सहयोगी बढ़ने पर बीस हजार या उससे भी कम में बन सकने वाली छोट प्रज्ञापीठ भी वहाँ बन सकते हैं।

श्रद्धालुजनों के यहाँ नित्य दस पैसे वाले ज्ञान-घट और मुट्ठी अन्न वाले धर्मघट रखे जायें। उस संग्रह से चरणपीठ के क्रिया-कलापों में पूरे या अधूरे समय तक सहयोग देने वाले स्वयं सेवक का खर्च चल सकता है। साथ ही चल-पुस्तकालय, प्रौढ़ शिक्षा, घरों में तुलसी आरोपण, दीवारों पर आदर्श लेखन जैसे रचनात्मक कार्यों का खर्च भी निकल सकता है।

गायत्री परिवार के हर प्राणवान् सदस्यों को यही लक्ष्य लेकर चलना चाहिए कि उसे अपने क्षेत्र में अधिकाधिक चरण-पीठों की स्थापना करनी एवं करानी है। प्रज्ञा पुत्रों में से एक भी ऐसा न बचे जिसने इस पुण्य प्रयास में अपना सहयोग, श्रमदान न दिया हो।

शक्ति-पीठों की रचनात्मक भूमिका

गायत्री तीर्थों की रचनात्मक भूमिका असाधारण होगी। वे तीर्थों के प्रति सनातन श्रद्धा को नष्ट नहीं होने देंगे, अपितु उनका पोषण संवर्धन करेंगे। यह बात अलग है कि सनातन श्रद्धा के इन जागरूक प्रहरियों पर निहित स्वार्थों द्वारा कितने ही आक्षेप किये जाएँ। इन स्थापनाओं को विश्वव्यापी विस्तार देने की योजना है और जहाँ भी ये स्थापित होंगे, वहीं तीर्थों की आवश्यकता पूरी करेंगे। प्रचलित और प्रतिष्ठित तीर्थ भी कोई अनादि नहीं हैं, किन्हीं महान् घटनाओं की स्मृति में ही उन्हें यह श्रेय मिला है। जहाँ नये गायत्री शक्ति-पीठ बनेंगे, वहाँ अगले ही कुछ दिनों में नवतीर्थ की प्रतिष्ठा एवं मान्यता मिल जायेगी।

इन अभिनव तीर्थों द्वारा जन-जीवन को अस्त-व्यस्त करके रख देने वाली, अन्धकारमय भविष्य का संकेत देने वाली प्रस्तुत परिस्थितियों के अनुकूलन का प्रयोजन सिद्ध होगा। यह किस प्रकार सम्भव होगा ? इसका एक ही उत्तर है—जन मानस के परिष्कार द्वारा। उल्लेखनीय है कि यह परिष्कार प्रयास केवल मानवी प्रयत्नों द्वारा ही नहीं चलाया जा रहा है, बल्कि वह प्रयत्न अदृश्य रूप से उषा आलोक की तरह पहले से ही चल रहा है। उसके प्रत्यक्षीकरण की घड़ी ही इन दिनों सन्निकट आ गई है।

'प्रज्ञावतार' ही युग अवतरण है। इस जन-सामान्य की भाषा में या निषेधात्मक शब्दों में 'विचार-क्रान्ति' एवं विधेयात्मक शब्दों में 'ज्ञान-यज्ञ' कहा जा सकता है। धर्म-धारणा की दृष्टि से उसे 'प्रज्ञावतार का अवतरण' कह सकते हैं। प्रतीक, सिम्बल, ध्वज, निशान हर अभियान के होते हैं। अपने युग में यह कार्य गायत्री महामन्त्र के माध्यम से सम्पन्न होगा। इसके २४ अक्षरों में वह तत्त्वज्ञान विद्यमान है जिसे ठीक तरह समझा और समझाया जा सके तो 'दिव्य जीवन' की रीति-नीति अपनाने के लिए जन-जन को सहमत किया जा सकता है। गायत्री उपासना में तप साधना के वे सभी तत्त्व विद्यमान हैं जिसमें पड़ कर व्यक्तित्व को सुसंस्कृत और समाज को समुन्नत बन सकने की सुनिश्चित सम्भावना है।

तत्त्वदर्शियों ने देखा है कि युग चेतना का अवतरण और युग शक्ति का प्रकटीकरण गायत्री महामन्त्र के माध्यम से हो रहा है। उसमें शोधन और उत्कर्ष के दोनों तत्व विद्यमान हैं। यह चेतना सार्वभौम है। देश, धर्म, वर्ग सम्प्रदाय की परिधि में उसे कभी सीमित नहीं रखा गया, भविष्य में भी उसका कार्यक्षेत्र सर्वजनीन ही होगा। नवयुग की आधार शिला एकता, समता, ममता और शुचिता के जिन चार तथ्यों पर खड़ी की जानी है वे चार वेदों के रूप में भूतकाल में अपने ढंग से विद्यमान थे। अब सामयिक आवश्यकता के अनुरूप उन्हें मनः शास्त्र, समाज शास्त्र,अर्थ शास्त्र और आचार शास्त्र के सहारे नये ढंग से प्रतिपादित किया जाना है। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का स्वप्न साकार होना ही उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण है। सृष्टा अपनी सुन्दर सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ने से पूर्व ही परिस्थिति को सम्भाल रहे हैं, परिष्कृत मनःस्थिति उत्पन्न करने के लिए प्रवाह उत्पन्न कर रहे हैं। इस तथ्य का तत्त्वदर्शी सूक्ष्म जगत में चल रही हलचलों को देखकर ही बहुत समय से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुमान लगा रहे थे। अब उसे प्रत्यक्ष चर्म चक्षुओं से भी देखा जा सकेगा।

गायत्री मन्त्र का तत्त्वज्ञान और अनुशासन जन-जीवन में उतारने के प्रयत्नों को अग्रगामी बनाने के लिये एक महत्त्वपूर्ण प्रकटीकरण गायत्री शक्तिपीठों के निर्माण का अभिनव प्रयास है। इसे चिर पुरातन का नित नवीन के साथ सुनिश्चित संयोग कह सकते हैं। व्यापक शक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग प्रत्यक्ष माध्यमों से ही सम्भव होता है। वरुण का अनुदान बादलों द्वारा बरसता है और नदी-नहरों द्वारा धरती का सिंचन करता है। विद्युत का उत्पादन केन्द्र कितना ही विशाल क्यों न हो उसका उपयोग करने की सुविधा ट्रान्सफारमर स्विच आदि के माध्यम से ही सम्भव होती है। घोड़े के लिये घुड़साल और प्रशिक्षण के लिये पाठशाला चाहिए। सैन्य व्यवस्था का प्रथम चरण छावनी बनाना है। कारखाना खड़ा करने का प्रथम चरण उसकी इमारत बनाने से प्रारम्भ होता है। प्रज्ञावतार के प्रभाव विस्तार में गायत्री शक्तिपीठों की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है। अतएव उनका निर्माण निर्धारण भी हो रहा है। इसे सुखद सूक्ष्म का स्थूल प्रकटीकरण समझा जा सकता है।

शक्ति-पीठों का उद्देश्य—

गायत्री शक्ति-पीठ के त्रिविध उद्देश्य हैं (१) अतीत का पुनरागमन (२) वर्तमान का निर्धारण (३) भविष्य का संयोजन। इन तीनों उद्देश्यों को पूरा करने में यह योजना सर्व समर्थ होगी। इस अनुपम प्रयास को भागीरथ तप साधना के साथ जुड़ा हुआ गंगावतरण कह सकते हैं। अभी यह कल्पना के गर्भ में है। इन दिनों उसके साकार होने की सम्भावना और उस स्थिति में उत्पन्न होने वाले परिणामों का सुखद अनुमान ही सम्भव है। जब वह स्थिति सचमुच ही साकार हो जायेगी तो निश्चय ही मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की बात सत्य सिद्ध होती दीख सकेगी।

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि प्राणवान् संकल्प साधनों के अभाव में भी फलते-फूलते हैं। नवयुग के अवतरण को उद्देश्य बनाकर किए गए प्रयास भी अपने समय के दुःस्साहस ही कहे जा सकेंगे। अपनी सम्पूर्ण शक्ति से समुद्र को पाट देने के लिए तत्पर टिटहरी तथा गिलहरी से ही उसकी तुलना की जा सकती है। रीछ-वानरों ने सेतुबन्ध जैसे महान् प्रयासों के लिए प्राणों की बाजी लगा दी थी और सामान्य बुद्धि से असम्भव प्रतीत होने वाले उस कार्य को सम्पन्न ही कर डालने के लिए जुट गए थे। अपनी साधनहीनता के बावजूद वे इस ओर प्राणपण से जुटे रहे और लकड़ी-पत्थर जमा करने के श्रम साध्य कार्य में तल्लीन हो गये और अन्ततः उस असम्भव को सम्भव ही कर दिखाया। जब मनुष्य उच्च उद्देश्य को लेकर सम्पूर्ण आस्था के साथ क्रियाशील रहता है तो फिर उसकी प्राप्ति सुनिश्चित ही हो जाती है। इसी आस्था ने ग्वाल-बालों द्वारा अपनी कमजोर कलाइयों और मामूली लाठियों के सहारे गोवर्धन को उठाना सम्भव बना डाला था।

महाकाल युग परिवर्तन के लिए संकल्पित है। मनुष्यों के ही प्राणवान् संकल्प जब पूरे हो जाते हैं, तब सृष्टि सन्तुलन सम्हालने वाली शक्ति की इच्छा क्यों न पूरी होगी ?

प्रभात के आगमन की सूचना कुक्कुट एक अरसे से दे रहा था। अब ब्रह्म-मुहूर्त में उभर रही उषा ने अरुणोदय अति समीप होने की सुनिश्चित झाँकी दे दी है। प्रतीक्षा अब समाप्त ही होने को है। इन दिनों चारों ओर से उग्र विग्रहों का विस्तार परिलक्षित होता है, उससे अधिक होने की कोई आवश्यकता नहीं। सूक्ष्मदर्शियों के अनुसार यह प्रसव पीड़ा है और महान् उद्भव के दर्शन की घड़ी अब नजदीक ही है।

शक्ति-पीठों के माध्यम से अपने क्षेत्र में प्रज्ञावतार का आलोक जन-जन तक पहुँचाने के लिए आस्थावान परिव्राजकों ने अपने समय और श्रम का अंशदान-अनुदान उस हेतु दिया है। उनका उपयोग गायत्री तीर्थों में होगा। प्रत्येक गायत्री-तीर्थ के सुव्यवस्थित सुसंचालन हेतु पाँच-पाँच परिव्राजक नियुक्त किये जायेंगे। वे निर्धारित कार्य-पद्धति के अनुसार व्यवस्था सम्हालेंगे और धर्म-केन्द्र को सुसंचालित रखेंगे साथ ही मण्डल क्षेत्र में नव-जागरण की चेतना उत्पन्न करने के उद्देश्य से परिभ्रमण भी किया करेंगे और दो नियमित परिभ्रमण द्वारा धर्म-चेतना के सृजन अभिवर्धन की भूमिका निर्धारित ढंग से निभायेंगे। इस प्रकार तीर्थ सीमा तक उससे जुड़े हुए क्षेत्र में आलोक विस्तार होगा।

गायत्री तीर्थ स्थापना एवं प्रव्रज्या अभियान परस्पर पूरक एवं अन्योन्याश्रित हैं। तीर्थ का भवन पंच-तत्त्वों से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बने शरीर की तरह होगा। उसमें पाँच प्राणों के प्रतीक पाँच परिव्राजक गतिविधियों का जीवन-संचार करेंगे। प्रचार केन्द्र बनाए जाने का संकेत रजत-जयन्ती वर्ष के आरम्भ में किया गया था और प्रव्रज्या अभियान हाथ में लिया गया था। प्रव्रज्या अभियान ने महापुरश्चरणों की सफलता में योग दिया है और अब वह प्रौढ़ हो गई है। वह पद-यात्रा, तीर्थ-यात्रा के उस रूप में तो जारी रहेगी ही साथ ही उसे गायत्री तीर्थों के संचालन की जिम्मेदारी भी सौंपी जायेगी।

मन्दिरों में प्राय: अल्प वेतन भोगी पुजारी नियुक्त होते हैं। अपनी आवश्यकता और आकांक्षा अधिक होने तथा पैसे कम पाने के कारण उनको एक ही उपाय सूझता है—चढ़ोत्तरी का पैसा मन्दिर समिति को न देकर अपने पास रखें और जप कराने, कथा कराने, भोजन दिलाने, जन्मपत्री बनवाने आदि के आग्रह द्वारा कुछ न कुछ वसूल करने की कोशिश में लगे रहते है। यह याचना वृत्ति स्वाभाविक ही अश्रद्धा उत्पन्न करती हैं। देव-मन्दिरों में पहुँचने वाले जब अनुभव करते हैं कि वहाँ के पुजारी का कोई नैतिक प्रभाव नहीं पड़ता। ज्ञान एवं तप से शून्य पुजारी आगन्तुकों को कोई प्रेरणा नहीं दे पाते। लोग प्रणाम करते हैं, उत्तर में आशीर्वादात्मक कथन भी पुजारियों द्वारा बोले जाते हैं। किन्तु ब्राह्मण-वंश के होने पर भी जिन पुजारियों में ब्राह्मणत्त्व की मात्रा ही नगण्य हो उनके आशीर्वाद कैसे सफल हों ? यह सही है कि कुछ पुजारी निर्धन होते हैं तो कुछ धनवान, पर इसका कारण पुजारियों का चातुर्य ही होता है। तीर्थ संचालन की विशिष्टता का सर्वत्र अभाव ही दीखता है। जब देव पूजा में संलग्न व्यक्ति ही देवोपम न बन सके, तो फिर उस प्रतिष्ठित देव प्रतिमा के दर्शन वन्दन के सत्परिणाम कौन समझदार व्यक्ति स्वीकार कर सकता है।

गायत्री तीर्थों का निर्माण उच्चस्तरीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होने जा रहा है। अत: उनकी गतिविधियों के संचालन कर्त्ताओं के व्यक्तित्व में वह विशिष्टता होनी चाहिए जो सम्पर्क में आने वाले लोगों में धर्म श्रद्धा का संचार करने में समर्थ हो। तभी इन धर्म संस्थानों की सफलता सुनिश्चित हो सकेगी।

गायत्री तीर्थों में नियुक्त पाँच परिव्राजक ब्रह्मवर्चस शांति कुञ्ज में प्रशिक्षित होंगे । वे स्थानीय कर्मचारी नहीं होंगे। सौंपे गये उत्तरदायित्व सम्हाल सकें, ऐसे गुण-कर्म स्वभाव के बनें, यह प्रयास होगा। तीर्थ-पुरोहित को उपासना पद्धति की शास्त्रीय जानकारी होनी चाहिए और धर्मकृत्यों को करा सकने का ज्ञान-सामर्थ्य होनी चाहिए—ऐसे प्रवीण एवं अनुभवी लोग ही तीर्थों में भेजे जायेंगे। न तो किसी की सीधी नियुक्ति की जा सकेगी और न ही उपयुक्त शिक्षण में प्रवीणता प्राप्त किए बिना किसी को तीर्थ-संचालक बनाया जा सकेगा।

हर तीर्थ में न्यूनतम पाँच परिव्राजक होंगे। क्षेत्रीय आवश्यकतानुसार यह संख्या १० तक हो सकेगी। इनमें से मन्दिर की व्यवस्था सम्हालने वालों के अतिरिक्त शेष लोग दो-दो की टोलियों में नियमित रूप से परिभ्रमण हेतु समीपवर्ती क्षेत्र में जायेंगे और नव-जागरण के वातावरण का निर्माण करेंगे। सामान्यत: वे प्रात: जाकर शाम को लौट आयेंगे। आवश्यकतानुसार रात्रि को वहीं रह भी जायेंगे। यह सब काम स्व-विवेक के आधार पर वे ही लोग किया करेंगे।

एक वर्ष से अधिक कहीं एक स्थान पर परिव्राजक नहीं रहेंगे। प्रति वर्ष उनका स्थानान्तरण होता रहेगा। एक जगह जो पाँच लोग हैं वे एक साथ ही अन्यत्र भेजे जायें, यह कतई आवश्यक नहीं । यह मण्डलियाँ नई बनती रहेंगी पुरानी बिखरती रहेंगी। व्यक्तियों का मोह बन्धन नहीं जुड़ना चाहिए। भले ही पुराने से बिछड़ने और नयों के साथ तालमेल बिठाने में कुछ कठिनाई का अनुभव हो। मोह बन्धन रागद्वेष के अंकुरों को पनपाते हैं और परमार्थ परायण लोकसेवियों के लिए अन्तत: हानिकार ही सिद्ध होते हैं। उसकी तुलना में तालमेल की कठिनाई कुछ भी नहीं है। यों कहीं-कहीं एक वर्ष से अधिक ठहरने की व्यवस्था भी अपवादस्वरूप की जा सकती है। ऐसे अपवाद अधिक नहीं होंगे, वे केन्द्र की विवेक-बुद्धि के अनुसार अल्प मात्रा में ही होंगे और इससे तो कोई मोह में बँधकर न उद्देश्य विमुख हो सकेगा, न घनिष्टता का अनुचित वैयक्तिक लाभ उठा सकेगा। इस प्रकार प्रव्रज्या के समय शपथपूर्वक शिरोधार्य परिभ्रमण का उत्तरदायित्व ठीक से निभता रहेगा। सरकारी अफसरों के तबादले होते ही रहते हैं। इससे अफसर कठिनाई का अनुभव करते हैं। नाक-भौं सिकोड़ते हैं । सरकारी खर्च भी बढ़ता है तो भी यह अनिवार्य समझा जाता है। प्रवाहमान जल में स्वच्छता बनी रहती है। अवरुद्ध सरोवर सड़ते हैं। एक जगह पर ही बँधकर बैठ जाने वाले सन्त तक कई बार आसक्तिग्रस्त होकर सामान्य गृहस्थों जैसे प्रपंची परिग्रही होते देखे जाते हैं। इसलिए गायत्री तीर्थों के संचालकों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए भी स्थानान्तरण की यह मर्यादा बना दी गई है, जिससे वे लोभ-मोह के बन्धनों में बँधने न पाएँ और किसी संस्थान पर आधिपत्य जमाने की दुरभिसन्धि भी न रखने पाएँ। इस प्रक्रिया में पुराना चोला छोड़ने, नया शरीर ग्रहण करने जैसी अड़चन का अनुभव हो सकता है। किन्तु उद्देश्य की दृष्टि से इसमें लाभ ही लाभ है, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में रहने, भिन्न-भिन्न समस्याओं का सामना करने और नए-नए अनुभव सम्पादित करने का महत्त्व कम नहीं है। साथ ही तीर्थ क्षेत्र के लोगों को भी नए परिव्राजकों की नई विशेषताओं का हर वर्ष अनुभव होगा तथा नवीनता बनी रहेगी। मोह के दबाव को यदि हानि समझतें, तो उतनी ही हानि स्थानान्तर के इस नियम से भी मानी जा सकती है। अन्यथा तो इससे लाभ ही लाभ है। इसलिए आरम्भ में ही यह व्यवस्था बना दी जा रही है कि परिव्राजकों की मण्डलियाँ स्थान बदलती रहें और मिलती बिछुड़ती रहें।

अपने निर्वाह हेतु परिव्राजकों को प्रयत्न नहीं करना होगा। अतः वे इस निमित्त किसी याचक के मनोभाव से घनिष्टता बढ़ाने और चापलूसी करने के झंझट से मुक्त रहेंगे। उनके निर्वाह व्यय का उत्तरदायित्व शान्ति कुञ्ज सम्हालेगा।

गायत्री तीर्थों में प्रतिमाओं के सामने पैसा चढ़ाने की परम्परा नहीं रखी जायगी। उसे हाथों हाथ उतने मूल्य का प्रसाद साहित्य दे दिया जायगा। गायत्री चालीसा, युग निर्माण सत्संकल्प गायीत्र चित्रों के अत्यधिक सस्ते संस्करण इस हेतु छापे गए हैं। पैसा चढ़ाने के बदले में इस प्रसाद साहित्य को जाकर स्वयं पढ़ें पूजा प्रयोजन में प्रयुक्त करें और अपने प्रियजनों को भी उसे दें तथा उनमें भी धर्म चेतना जगाएँ, बढ़ाएँ। यही पर्याप्त देव-दक्षिणा समझी जायेगी। विशेष दक्षिणा देने का जिनका मन हो, वह अपने किसी दोष-दुर्गण को छोड़ने घटाने तथा सत्प्रवृत्तियों को अपनाने बढ़ाने की प्रतिज्ञा निर्धारित संकल्प पत्र पर लिखकर उन्हें देवता के चरणों में प्रस्तुत कर सकते हैं।

प्रव्रज्या अभियान और तीर्थ स्थापना की प्रक्रिया आरम्भ करते ही व्यवस्था यह बना दी गई है कि युग निर्माण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाले समस्त साहित्य का लाभांश विशुद्ध रूप से इसी पुण्य प्रयोजन हेतु सुरक्षित कर दिया गया है। भवन-निर्माण का कार्य धर्म प्रेमी उदार लोगों की सहायता से सम्पन्न होगा। युग साहित्य से जो थोड़ा-सा लाभांश प्राप्त होता है उसी से परिव्राजकों के निर्वाह-खर्च का अधिकांश प्राप्त हो यह प्रयास किया जायेगा। कमी की पूर्ति उन लोगों के अंशदान से की जायेगी, जो परिव्रज्या अभियान का महत्त्व तो जानते समझते हैं, किन्तु किन्हीं कारणों वश स्वयं नहीं जा सकते और इसीलिए समय के स्थान पर पैसे देंगे। उसका उपयोग कर्यक्षेत्र में गए हुए परिव्राजकों के निर्वाह व्यय के निमित्त हुआ करेगा। परिव्राजक अपने निर्वाह की चिन्ता से हर हालत में मुक्त रहेगा और उस हेतु उसे कुछ भी निजी प्रयास करने नहीं होंगे। परिस्थितिवश कहीं भोजन भले वे करलें अन्य कुछ भी दान उपहार वस्त्र आदि वे निजी प्रयोजन हेतु स्वीकार नहीं करेंगे। यह उन्हें आरम्भ से ही सिखाया जा रहा है कि व्यक्तिगत रूप से दान ग्रहण करना प्रतिग्रह है। पूर्वजों की बात भिन्न थी। इस अपने समय में निजी रूप से याचना करना और उसे ग्रहण करना ठीक नहीं। प्रतिग्रहण का निषेध प्राचीन समय में भी था। वैसे ही प्रतिबन्ध युग निर्माण योजना के परिव्राजकों पर लगाये गये हैं। उनके निर्वाह व्यय का भार मिशन उठायेगा ताकि परिव्राजकों का उच्चस्तरीय स्वाभिमान बना रहे।

जिस जागरूकता के साथ गायत्री तीर्थों के भवन निर्माण के लिए सभी साधन जुटाए जो रहे हैं, उसी जागरूकता के साथ परिव्राजकों की भर्ती और उनके प्रशिक्षण हेतु प्रयास जारी हैं। परिव्राजकों को प्रधानतया इन विषयों का नियमित अध्ययन कराया जायगा—देव-पूजा की शास्त्रीय पद्धति, षोड़श संस्कारों का विधि-विधान, यज्ञ-प्रक्रिया, उपासना विज्ञान, पर्व त्यौहारों की पूजा प्रेरणा की जानकारियाँ, भाषण कला, संगीत, समीपवर्ती क्षेत्रों में धर्म चेतना बढ़ाने की विधि-व्यवस्था, रचनात्मक प्रवृत्तियों का अभिवर्धन, अवांछनीयताओं के प्रतिकार—संघर्ष, युग समस्या के समाधान की जानकारी, परिव्राजकों हेतु निर्धारित पंचशीलों का परिपालन एवं इसी प्रकार के अन्य अनेक विषय। समय-समय पर उन्हें सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप परामर्श निर्देश के लिए शांति कुञ्ज भी बुलाया जाता रहेगा।

तीर्थों के भवन होंगे तो छोटे किन्तु तिमंजिले, भव्य, आकर्षक और धर्म, परम्परा का गौरव बढ़ा सकने योग्य बनाए जायेंगे। उसी प्रकार तीर्थों के संचालनकर्त्ता पाँच देव कुमारों का मण्डल भी व्यक्तित्व आचरण एवं पुरुषार्थ की गरिमा-उत्कृष्टता से भरपूर हो, यह प्रयास किया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायेगा। निहित स्वार्थों की काली छाया गायत्री तीर्थों पर नहीं पड़ने दी जायेंगी। दुरभिसंधियाँ उसमें किसी भी छिद्र से घुसने न दी जाऐंगी। उन्हें ध्वंस का कोई भी अवसर नहीं मिलने पाए, इस हेतु आरम्भ से ही पैनी सतर्कता रखी जा रही है। विशिष्ट रचनात्मक सूत्रों के भावी केन्द्र गायत्री तीर्थ महान् उद्देश्य को समर्पित होंगे। धर्म चेतना के पुनर्जीवन के देव-प्रयास वहाँ चलेंगे। तीर्थ-निर्माण के साथ प्रवज्या-अभियान का सक्रिय-योगदान, इस पुण्य प्रयोजन को सफल बनायेगा यह निश्चित है। इन दोनों की सक्रिय जोड़ी को कृष्ण-अर्जन, राम-हनुमान की ही जोड़ी समझा जा सकता है।

युग सृजन की महाभारत योजना में प्रत्येक तीर्थ के ये पाँच परिव्राजक पाँच पाण्डवों की भूमिका निभा सकेंगे, यह आशा की जानी चाहिए।

पाँच तत्त्वों के सम्मिलन-संयोग को शरीर कहा जाता हे, तो चेतना को भी पाँच प्राणों का सघन सहकार कहा जा सकता है। जिन आशाओं और उमंगों के साथ गायत्री शक्ति-पीठों का निर्माण किया जा रहा है, उसका आधार उन पाँच परिव्राजकों को कहा जाना चाहिए जो उन देव-संस्थानों का संचालन अपने देव-प्रयासों के माध्यम से करते रहेंगे। कहना नहीं होगा कि पढ़े-लिखे लोगों में देवालयों के प्रति श्रद्धा गिरती जा रही है और मन्दिरों को अनुपयोगी बताया जा रहा है। दोष पढ़े-लिखे लोगों का भी नहीं है, मन्दिरों और देवालयों की आजकल जो स्थिति है, उससे भी लोगों में अश्रद्धा उत्पन्न हुई है, लेकिन, कहीं कोई विकृति आई हो तो इसका अर्थ पूरे तन्त्र का ही भ्रष्ट हो जाना नहीं कहा जा सकता, उस तन्त्र को विकृतियों से मुक्त और मन्दिरों को उपयोगी सिद्ध करने में गायत्री शक्ति-पीठों की असाधारण भूमिका होगी। यह कार्य अनायास ही नहीं हो जाता। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्राणवान् परिव्राजकों की आवश्यकता पड़ेगी। निर्माण कार्य पूरा होने के बाद धन और श्रम का दायित्व वहन करने वालों का काम भी एक तरह से पूरा हो ही जायेगा। इन धर्म-संस्थानों को जीवन्त रखने और उनके प्रति जन-साधारण की श्रद्धा अर्जित करने, प्रबुद्धजनों को इनकी उपयोगिता स्वीकार कराने के लिए जिस प्रकार के उत्कृष्ट क्रिया-कलाप अपनाने होंगे, उन्हें परिव्राजक ही पूरा कर सकेंगे।

रजत जयन्ती वर्ष में जो प्रव्रज्या अभियान प्रारम्भ किया गया उसमें युग शिल्पियों का एक अच्छा समुदाय उभर कर आगे आया है। इस समुदाय को देखकर सन्तोष किया जा सकता है कि महाकाल का युग निमन्त्रण निरर्थक नहीं गया। भावनाशील उत्कृष्टता ने उस निमन्त्रण को ध्यानपूर्वक सुना और युग धर्म की आवश्यकता स्वीकार करते हुए अपना आत्मदान प्रस्तुत किया है। इन उत्साही परिजनों को इस वर्ष विशेष सत्र लगाकर प्रशिक्षित किया गया है। इस वर्ष के महापुरश्चरण अभियान के अन्तर्गत होने वाले आयोजनों में दो-दो परिव्राजकों के जत्थे भी भेजे गये हैं। जिन कार्यक्रमों में उन्हें भेजा गया, उन कार्यक्रमों में इन परिव्राजकों ने जिस शालीनता और तत्परता के साथ आयोजकनकर्त्ताओं का हाथ बटाया है, उसकी सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। क्षेत्रों में स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के उत्साह को देखते हुए महापुरश्चरण अभियान को एक वर्ष में न समाप्त करके २५ महीने चलने देने का निश्चय किया गया है। उसकी पूर्णाहुति एक वर्ष बाद गायत्री जयन्ती सन् ८१ में होगी तब तक प्रस्तुत परिव्राजकों को फिर दो-दो के जत्थे में अगले कार्यक्रमों के लिए भेजा जाता रहेगा।

रजत जयन्ती का दूसरा वर्ष पूरा होते-होते जून ८१ तक एक वर्ष के भीतर २४ गायत्री शक्ति-पीठ बन चुके होंगे, इनमें ५-५ परिव्राजक नियुक्त किए जायेंगे। ये परिव्राजक गायत्री शक्ति-पीठों की विशिष्टता सिद्ध करने में अनवरत श्रम एवं भाव भरे मनायोग के साथ युग तपस्वियों की तरह निरन्तर जुटे रहेंगे। महिला जागृति अभियान के अन्तर्गत पिछले दिनों पाँच देव-कन्याओं के जत्थे देश भर में भेजे गये थे। जिस उद्देश्य से उन्हें प्रशिक्षित किया गया वह एक शब्द में पूरी तरह सफल हुआ ही कहा जा सकता है। परिव्राजकों के जत्थे भी लगभग उसी स्तर के समझे जा सकते हैं।

इन पाँच परिव्राजकों को गायत्री शक्ति-पीठों की विशिष्टता सिद्ध करने के लिए ही नियुक्त किया जायेगा। तब तक महापुरश्चरण योजना के लिए उन्हें भेजने की आवश्यकता भी पूरी हो चुकेगी और उसके बाद २४ तीर्थों में १२५ परिव्राजक नियुक्त कर लिए जायेंगे। परिव्राजकों के ये जत्थे एक-एक वर्ष बाद बदल जाया करेंगे, उन्हें नये-नये स्थानों पर, जाकर नये अनुभव करने का अवसर मिलेगा और शक्ति-पीठों के सम्पर्क क्षेत्रों को भी एक लाभ ही है कि परिव्राजकों की गरिमा लोभ और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोह के युगल में फंसकर नष्ट-भ्रष्ट होने से बची रहेगी। स्थान बदलने और सम्पर्क छोड़ने में भावनात्मक एवं व्यवस्थापरक कठिनाई तो होती ही है, पर क्या किया जाय, जल धारा बहती रहे तो ही उसकी स्वच्छता बने रहने का प्रयोजन पूरा होता है। भावनात्मक एवम् व्यवस्थापक कठिनाई होते हुए भी स्थानान्तरण की परम्परा लाभदायक एवं उपयोगी ही है।

पिछले कई वर्षों से शान्ति कुञ्ज में परिव्राजकों की भर्ती और उनके शिक्षण का क्रम चल रहा है। समय की आवश्यकता को देखते हुए थोड़े-थोड़े दिनों के शिक्षण सत्रों में उन्हें रखा गया औ कामचलाऊ निर्देश देकर बाहर भेज दिया गया, पर आगे से उसके भावी उत्तरदायित्वों को देखते हुए अधिक कारगर शिक्षण की व्यवस्था की जायेगी और वह व्यक्ति विशेष की स्थिति के अनुरूप समयसाध्य भी होगी।

जुलाई ८० से प्रवज्या प्रशिक्षण की सुव्यवस्थित प्राण प्रक्रिया आरम्भ हो गयी। अक्टूबर से प्रारम्भ होने वाले देशव्यापी महापुरश्चरण आयोजन आरम्भ होंगे। उनके लिए परिव्राजकों के जत्थे अधिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सकें, इस उद्देश्य से जुलाई, अगस्त और सितम्बर के तीन महीने विशुद्ध रूप से परिव्राजक प्रशिक्षण के लिए रखे गये हैं। भाषण कला, सम्भाषण कुशलता, संगीत, कक्ष, प्रवचन, पर्व संस्कार, यज्ञ आयोजन, जन्म दिन आदि कार्यक्रम तथा जन-सम्पर्क के उतार-चढ़ाव, धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण की रूपरेखा एवं कार्यपद्धति का इस प्रशिक्षण में समुचित समावेश रहेगा।

इन तीन महीनों की शिक्षण पद्धति को अगले वर्षों के आयोजनों की आवश्यकता ध्यान में रखते हुए बनाया जा रहा है। इसके उपरान्त इस शिक्षण पद्धति को सामान्य आवश्यकता की पूर्ति से आगे बढ़ाकर स्थायी कर दिया जायेगा और इसमें गायत्री शक्ति-पीठों के लिए स्थायी रूप से भेजे जा सकने योग्य युग शिल्पियों की भर्ती होगी।

भारत के लगभग सभी प्रान्तों में गायत्री शक्तिपीठ बनने जा रहे हैं। परिव्राजकों के स्थानान्तरण की परम्परा से इसमें भाषा सम्बन्धी कठिनाई आयेगी, क्योंकि उन्हें एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भेजा जाता रहेगा ऐसी दशा में यह आवश्यक होगा कि परिव्राजकों को कई भाषाएँ आती हों। भारत में १४ भाषाएँ संविधान में मान्यता प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त ऐसी प्रादेशिक भाषायें एक सौ से भी अधिक हैं जिनकी लिपि तो एक है, किन्तु शब्द कोष व्याकरण आदि अलग-अलग हैं।

जो परिव्राजक जिस क्षेत्र में जन-सम्पर्क के लिए पहुँचेंगे उन्हें उस समुदाय की भाषा आनी ही चाहिए। इस दृष्टि से प्रवज्या विद्यालय में भाषायी प्रशिक्षण की अतिरिक्त कक्षाएँ चलेंगी और प्रयत्न किया जायेगा कि परिव्राजकों को कई-कई भाषाएँ आयें। न केवल भाषा की, वरन् क्षेत्रीय संस्कृति एवं प्रथा-परम्पराओं की भी उन्हें समुचित जानकारी हो। इसके बिना वे किसी एक क्षेत्र में भले ही जाते रहें, विभिन्न क्षेत्रों में काम करने के योग्य न बन सकेंगे। ईसाई मिशनरी अपने देशों से आते हैं तो जिन क्षेत्रों में उन्हें जहाँ काम करना होता है वहीं की भाषा तथा संस्कृति का अध्ययन क्रिश्चियन कालेजों में करना पड़ता है। बौद्ध प्रचारकों के लिए भी ऐसी ही व्यवस्था थी। नालन्दा, तक्षशिला आदि संघारामों में से भिक्षुओं को जहाँ-जहाँ भेजा जाना होता, वहाँ-वहाँ की संस्कृति, भाषा, रहन-सहन और आचार-विचारों का परिचय ही नहीं प्रशिक्षण भी दिया जाता था। अपने प्रवज्या शिक्षण के लिए शांति कुञ्ज में भी वैसी ही व्यवस्था बनाई जायगी। प्राचीन काल के बौद्धों की तरह और इस समय के ईसाइयों की तरह कार्यक्षेत्र तो अपना भी व्यापक बनना है। प्रवासी भारतीयों की भी युग सृजन में अपनी भूमिका निभाने के लिए ७४ देशों में उनके उद्बोधन के लिए जत्थे भेजे जाने हैं। ऐसी दशा में उन क्षेत्रों का भी भाषायी ज्ञान कराने के लिए यह प्रशिक्षण- व्यवस्था उपयुक्त ही रहेगी।

गायत्री शक्ति-पीठ धर्ममंचकों, लोक-शिक्षण की पुण्य प्रक्रिया का प्रसार केन्द्र कहा जा सकता है। चलते-फिरते पुस्तकालयों की तरह ये चलते-फिरते ब्रह्म विद्यालय भी कहे जा सकते हैं। यहाँ नियुक्त किये जाने वाले परिव्राजकों का प्रशिक्षण क्रम चलाने वालों को अध्यापक या उपाध्याय कहा जा सकता है। यह तो सर्वविदित है कि स्कूली पढ़ाई और धर्म-शिक्षण की प्रक्रिया में अन्तर होता है, इसी प्रकार छात्रों को एक जगह बिठाकर पढ़ाने तथा घर-घर जाकर जन-जन से मिलकर सिखाने की रीति-नीति अलग प्रकार की होती है। इतने पर भी उद्देश्य एक ही है।

परिव्राजक जन सम्पर्क करते हुए चलते-फिरते लोक-शिक्षण करेंगे तो भी उनसे वही आवश्यकता पूरी होती है जो कि प्राचीनकाल में गुरुकुल एवं आरण्यक पूरी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते थे। प्रव्रज्या पर्यटन नहीं है ये लोग यायावरों की तरह भटकते भी नहीं हैं। उन्हें जन-जन में धर्म चेतना जगाने के लिए प्रशिक्षित किया गया है और इसी युग साधना में एकनिष्ठ भाव से लगे रहने के लिए कहा गया है। वे इसी उत्तरदायित्व को शपथपूर्वक निवाहेंगे।

जिन परिव्राजकों को शक्ति-पीठों में भेजा जायेगा उनकी प्रशिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार चलेगी (१) नौ प्रतिमाओं के दर्शन कराते हुए दर्शकों को नौ सत्प्रवृत्तियों का महत्त्व समझाना और उन्हें अपना कर देवोपम जीवन जीने की प्रेरणा देना (२) जिनमें जिज्ञासा के कुछ भी बीजांकुर मिले, उन्हें सत्संग कक्ष में बिठाकर आत्मीयता पूर्वक भारतीय संस्कृति का तत्त्व बीज गायत्री और उसके अवलम्बन का स्वरूप समझाना तथा इस अवलम्बन की दूरगामी प्रतिक्रिया समझाना (३) सम्पर्क में जिसके साथ घनिष्टता बढ़े उन्हें साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा के द्वारा सर्वाङ्गीण आत्मोन्नति के लिए प्रेरणा व प्रोत्साहन देना (४) प्रतिदिन दो परिव्राजकों का एक गाँव में जाकर विचारशील व्यक्तियों से सम्पर्क बनाना, उन्हें नवयुग के सन्देशों से अवगत कराना और तदनुरूप ढलने की प्रेरणा देना (५) जन्मदिन मनाने का उत्साह सम्पन्न करके व्यक्ति-निर्माण की तथा संस्कार प्रचलन से परिवार निर्माण की और पर्व त्यौहारों को सामूहिक रूप से मनाकर समाज निर्माण की चेतना उत्पन्न करना और इन आयोजनों के द्वारा अपना सम्पर्क क्षेत्र अधिकाधिक बनाना (६) रात में किसी गाँव में रुककर वहाँ रामायण-गीता आदि की कथा कहना और धर्म चेतना उत्पन्न करना (७) पन्द्रह दिन का गतिचक्र बनाकर हर दिन दो गाँवों में जाने से उन गाँवों का एक मण्डल बनाना और उसे अपना मण्डलीय कार्यक्षेत्र मानकर विचार क्रान्ति के लिए पथ प्रशस्त करना (८) अपने क्षेत्र में चल पुस्तकालयों की व्यवस्था बढ़ाना (९) प्रौढ़ शिक्षा, वृक्षारोपण, श्रमदान, नशा निवारण, व्यायाम-शाला, स्वच्छता, सहकारिता, कुप्रथाओं, अन्ध मान्यताओं का और अनैतिकताओं का उन्मूलन जैसे रचनात्मक प्रयत्नों में स्वयं लगना और दूसरों को लगाना (१०) सरकारी और गैर सरकारी सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने के लिए जन-सहयोग जुटाना।

परिव्राजक अपनी यात्रा और सम्पर्क द्वारा उपरोक्त प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनायेंगे। सम्पर्क का उनका उद्देश्य व्यक्तिगत दोस्ती बढ़ाना या आवारागर्दी में भटकना नहीं वरन् रचनात्मक कार्यों के लिए भावना जन सहयोग उत्पन्न करना है। इन प्रयोजनों में निरन्तर दत्तचित्त रहने वाले परिव्राजक अपने उज्ज्वल चरित्र शालीनता और सौम्य व्यवहार से असंख्यों को स्नेह बन्धनों में जकड़ेंगे तथा उन्हें मानवी गरिमा बढ़ाने वाला दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत करेंगे, यह विश्वास किया जा सकता है।

युग-निर्माण मिशन विशुद्ध रूप से व्यक्ति-निर्माण, परिवार-निर्माण और समाज-निर्माण के क्रिया-कलापों में संलग्न है। हमारा विश्वास है कि राष्ट्र और विश्व का वास्तविक निर्माण इसी प्रकार हो सकता है। राजनैतिक विरोध-समर्थन दूसरे लोगों का काम है। परिव्राजक तो सभी क्षेत्रों में सभी व्यक्तियों का सहयोग समर्थन सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिये उपलब्ध करने और उन्हें उचित सहयोग देने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। परिव्राजकों की सुनिश्चित सफलता और शक्ति-पीठों की बढ़ती आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए अगले दिनों प्रव्रज्या अभियान को और भी आगे बढ़ाया जायेगा।

जागृत आत्माओं का आह्वान

अरुणोदय की इस मंगलमयी बेला में युग सृजन के लिए अपना योगदान प्रस्तुत करने के लिए प्रत्येक जागृत आत्मा को आगे आना ही चाहिए। गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण के पीछे सृजन का यही उद्देश्य क्रियाशील है। उनके लिए भवनों का निर्माण तो आवश्यक है ही, किन्तु उससे बहुत अधिक आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण है, उस हेतु उन जागृत आत्माओं का योगदान जो दूसरों को जगा सकने की स्थिति तक आ पहुँचे हैं। प्रव्रज्या आमन्त्रण उन्हीं के लिए है। रजत जयन्ती वर्ष के इस महान् अभियान ने ऐसी अनेकों जागृत आत्माओं को आत्माहुति के लिए प्रेरित किया और वे अपना बिस्तर समेटकर शान्ति कुञ्ज में आ गये। इन्हीं की व्यवस्था हेतु गायत्री नगर बन रहा है। इन आत्मदानियों की संख्या बड़ी है। तो भी समय की माँग इतनी बड़ी है कि उसके सामने यह संख्या जलते तबे पर पानी की कुछ बूँदों के समान भर ही है। कनिष्ठ और वरिष्ठ वानप्रस्थों ने अपने समयदान द्वारा इस वर्ष महापुरश्चरण योजना को गति देने में बहुत सहायता दी है। किन्तु माँग को देखते हुए वह संख्या भी कम ही है। इस युग-निमन्त्रण को स्वीकार करने के लिए असंख्यों के मन में हलचल मची हुई है। स्थानीय क्षेत्रों में नित्य दो-दो घण्टा समय देते रहने वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समयदानी भी अब यह अनुभव कर रहे हैं कि थोड़ा साहस और जुटाया जाय। दो घण्टे नित्य रचनात्मक प्रवृत्तियों हेतु देना निश्चय ही सराहनीय है, पर समय इससे अधिक की माँग कर रहा है। साल भर में दो महीने लगातार काम करने और बाहर जाने के लिए निकालने चाहिए। युग-निर्माण परिवार के प्रत्येक प्राणवान् घटक में ऐसी आन्तरिक हलचल मची भी हुई है। परिव्राजकों समयदानियों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। समयदानी कनिष्ठ और वरिष्ठ के रूप में प्रगति कर रहे हैं। यह परमेश्वर की प्रत्यक्ष प्रेरणा एवं अनुकम्पा ही समझी जानी चाहिए।

गायत्री शक्ति पीठों के लिए नये ढंग के परिव्राजक चाहिये। उन्हें वहाँ पैर जमाकर रहना होगा। वहीं रमें जुटे रहने की स्पष्ट एवं स्थायी प्रवृत्ति उनमें चाहिये। उनमें जल्दी-जल्दी घर लौटने की आतुरता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि इस बार-बार की भाग-दौड़ में खर्च होने वाला किराया भाड़ा वेतन के बराबर जा पहुँचता है। इन दिनों चल रहे महापुरश्चरणों में थोड़े-थोड़े समय के लिए भेजना भी जम जाता है। किन्तु गायत्री शक्ति पीठों में ऐसे काम नहीं चलने का। वहाँ तो स्थायी रह सकने की मनोवृत्ति एवं परिस्थिति वाले लोगों की ही आवश्यकता है। ऐसे लोग वे ही हो सकते हैं जिनने या तो पारिवारिक जिम्मेदारियों से छुट्टी पा ली है या फिर जिनने अभी वह दायित्व सिर पर उठाया भी नहीं और शीघ्र ही उठाने का मन भी नहीं रखते।

तीर्थ सेवन एक प्रकार का तप है। तीर्थों के संचालक तो ब्रह्मर्षि कहलाते हैं। जिन्हें यह मार्ग आत्मकल्याणकारी प्रतीत होता हो, उन्हें ही तीर्थ-संचालकों की विशिष्ट श्रेणी के परिव्राजक होने का साहस उठाना चाहिए। युग निर्माण के सूत्र-संचालक ने २४ वर्ष तक अपना सारा समय और मन २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्ति में लगाया है। इसी तपश्चर्या के परिणामस्वरूप उस काया में से ब्रह्म वर्चस् की प्रचण्ड ऊर्जा निःसृत होती और युगान्तर चेतना उत्पन्न करती देखी जाती है। तीर्थ-संचालकों की साधना भी लगभग इसी स्तर की होगी। वह कोई महन्त या मैनेजर जैसा पद नहीं है। उसे यश, वैभव, सुविधा, प्रसिद्धि और अहंता की तृप्ति का सरल माध्यम न समझ बैठना चाहिए। तीर्थ सेवन तो तप साधना है जो है आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण में समर्थ है। इसे अपने युग की सर्वोत्तम साधना कहा जा सकता है। जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों से निश्चिन्त तथा लोभ मोह से मुक्त हैं उन्हें ही इस परमार्थ द्वार में प्रविष्ट होकर आगे बढ़ने पर सफलता प्राप्त होगी।

बौद्ध कालीन प्रव्रज्या भी ऐसी ही थी। पूर्णतः समर्पित गृह-निवृत्त लोग ही उसमें दीक्षा ग्रहण करते थे। इन दिनों लोगों में उस स्तर का आत्मबल दिखाई नहीं देता, इसलिए सामयिक प्रव्रज्या के रूप में ही वह मान-परम्परा किसी प्रकार चलाई गई। आज के घोर स्वार्थपरता के दौर में दो-दो-चार-चार महीने का समय दे सकना भी कम बड़ी बात नहीं है। उससे भी बहुत कुछ कार्य हो रहा है, किन्तु उतना ही पर्याप्त नहीं। महान् प्रयोजनों के लिए आवश्यक है—महान् व्यक्तित्व और सामूहिक अनुदान। गायत्री संचालकों के रूप में नियुक्त होने वाले परिव्राजकों में स्थिरता एवं सुदृढ़ता होनी चाहिए। थोड़े दिन खेल-खिलवाड़ जैसा करके फिर घर दौड़ जाने की चपलता वहाँ नहीं चलेगी।

एक वर्ष एक तीर्थ में रहना होता है। २४ वर्ष में चौबीस तीर्थ पूरे होंगे। जो एक प्रकार से पूर्ण योगाभ्यास कहा जाना चाहिए। एक स्थान पर बैठकर चौबीस महापुरश्चरण करने की तुलना में तीर्थ संचालन की तपश्चर्या किसी भी दृष्टि से कम महत्त्व की नहीं है। तीर्थों में मृत्यु भी सौभाग्य कारक मानी जाती है। मरने से पहले अनेक लोग काशी करवट लेने पहुँचते हैं। जिन्हें यह अवसर नहीं मिल पाता, वे मरने के बाद किसी तीर्थ में अपनी अस्थियाँ विसर्जित होने की आकाँक्षा रखते हैं। तब जीवित स्थिति में तीर्थ सेवन की महत्ता तो स्पष्ट ही है। तीर्थ-संचालन का सौभाग्य तो इससे अधिक ही समझा जायेगा।

सामान्यतः तीर्थवास का निर्वाह-व्यय स्वयं ही उठाना होता है। जबकि गायत्री शक्ति-पीठों में निवास और निर्वाह जैसे सुविधा-साधन सुलभ होंगे। वह आत्म-कल्याण की समग्र साधना का तो अनुपम अवसर है। गृह-निवृत्त लोगों के लिए यह उपयुक्त अवसर है। अभी एकाकी व्यक्ति ही लिए जायेंगे। परन्तु जिनकी गृहिणी शारीरिक दृष्टि से समर्थ होगी और तीर्थ-प्रयोजन में हाथ बँटा सकेगी, उन्हें पत्नी समेत रहने की भी स्वीकृति मिल जायेगी। बच्चे किसी भी स्थिति में साथ नहीं रह सकेंगे।

जिन्होंने गृहस्थी की जिम्मेदारी नहीं लादी है और न ही उसे लादने का मन है, वे तीर्थों में परिव्राजक-संचालक बन सकते हैं। न्यूनतम अवधि एक वर्ष भी हो सकती है। यों इतने भर से विशेष कुशलता अर्जित नहीं हो पाती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी कार्य में प्रवीणता पाने के लिए अनुभव और अभ्यास जरूरी है। प्रतिभा तथा कुशलता का समय-साध्य निखार ही कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकने की योग्यता देता है। अत: यह अवधि जितनी ही अधिक होगी उतनी ही सुव्यवस्था बन पड़ेगी। न्यूनतम अवधि तो एक वर्ष है ही।

सभी परिव्राजक अवैतनिक होंगे जिनके पास अपनी आजीविका है। वे अपने पास से भी निजी खर्च चलावेंगे। जिनकी वैसी स्थिति नहीं है, वे भोजन वस्त्र आदि का निर्वाह तीर्थ से ही प्राप्त करेंगे। कुछ लोगों के लिए, जिनके अवलम्बित लोगों को उनके द्वारा सहायता ही एक मात्र मार्ग है, अपवाद माना जाना चाहिये। उन अपवाद लोगों को अधिकतम एक सौ रुपया मासिक तक अगले दिनों भेजने की व्यवस्था भी हो जायेगी। इस वर्ष की प्रथम ट्रेनिंग आगामी जुलाई, अगस्त, सितम्बर में होगी। विद्यालय निरन्तर चलता रहेगा।

शक्ति पीठों का निर्माण और प्रव्रज्या अभियान का विस्तार एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों को एक-दूसरे के साथ अविच्छिन्न रूप से सुसम्बद्ध माना जा सकता है। इमारतों को शरीर और उनका सुसंचालन करने वाले को प्राण कह सकते हैं। प्राण को शरीर चाहिये और शरीर को प्राण। एक के बिना दूसरे की उपयोगिता रह नहीं जाती। प्रतिभाएँ जड़ हैं वे अपना रूप कलेवर बनाये रह सकती हैं, पर दर्शकों में चेतना उत्पन्न करने में तो पुजारी के भाव भरे प्रयास ही काम करते हैं। पुजारी तो हो पर देवालय का, प्रतिमा का कहीं अता-पता ही न हो तो भी बात नहीं बनती। देवालय की पूर्णता प्रतिमा और पुजारी का सुयोग बैठने पर ही बनती है। शक्ति-पीठों की गरिमा महान् है। उनमें नव युग के अवतरण के आवश्यक साधन विद्यमान रहेंगे, पर उन साधनों के उपयोग कर्त्ता भी तो उस गरिमा के अनुरूप स्तर के ही होने चाहिए। इंजन भले ही नया कीमती और भव्य हो, पर कुशल गार्ड, ड्राइवर के बिना वह अभीष्ट प्रयोजन पूरा करने के स्थान पर उल्टा संकट ही खड़ा करेगा।

शक्ति पीठ बनाने में जो उत्साह उभर रहा है उससे भी अधिक उमंगें उन जागृत आत्माओं में उठनी चाहिये जो नव-निर्माण की दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिए उपयुक्त अवसर और साधन तलाश करते रहे हैं। भावनाओं की प्रचण्ड शक्ति से इन्कार नहीं किया जा सकता है। वे जहाँ उभरती हैं, समस्त प्रतिकूलताओं को तोड़ती-मरोड़ती अपना रास्ता बना लेती हैं। अन्त:करण की अदम्य आकांक्षाओं को दबा सकना किसी व्यवधान के लिए कभी सम्भव नहीं हुआ। उथली अपरिपक्व कल्पना-जल्पना ही विफल होती रहती हैं। मनोकामनाओं को तुर्त-फुर्त पूरी होने के लिए देवी-देवताओं की मनौती मनाने वाले पुरुषार्थहीन लोगों को ही असफलता और निराशा सताती है। संकल्पों के साथ जुड़ा हुआ परिपक्व पराक्रम तो पहाड़ों को उलटते और तूफानों के साथ मल्लयुद्ध करते हुए देखे गये हैं। उसके असफल होने का संकट कभी उत्पन्न नहीं हुआ था। आत्मतेजस की गतिशीलता वेगवती नदी की तरह चट्टाओं से टकराती, अवरोधों को ललकारती अभीष्ट लक्ष्य की ओर बढ़ती ही चली जाती है। जागृत आत्माओं में से जिनके भी मन में नव-सृजन के लिए कुछ कर गुजरने का संकल्प उमँगा है उनकी तथा कथत प्रतिकूलतायें एक नहीं तो दूसरे उपाय से हल होती चली गई हैं। वही भविष्य में भी होना है। युग की पुकार जिन सृजन शिल्पियों को बैचैन करेगी उनके सामने परिस्थितियों की बाधा टिकेगी ही नहीं।

शक्ति-पीठों की निर्माण सामग्री जुटाने के लिए साधन सम्पन्न लोगों को अग्रित पंक्ति में खड़ा होना होगा। उनके प्रभाव से अन्यान्य व्यक्ति भी अनुदान देने के मन से या बे-मन से सहमति प्रकट करेंगे, सहयोग देंगे। भवन-निर्माण में प्राय: यही प्रक्रिया काम करेगी। एक विशेष वर्ग के लोग ही उसकी अग्रिम भूमिका सम्पन्न कर सकेंगे। सहयोग तो सभी छोटे-बड़ों का रहना चाहिए और रहेगा भी। यह कायाकलेवर की व्यवस्था हुई। प्राण क्षमता को परिपक्व और सक्रिय करने का काम इसके अतिरिक्त भी है और वह इतना बड़ा है जिसे भवन-निर्माण से किसी भी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। सुसंचालन के अभाव में साधन सम्पन्न प्रतिष्ठानों के भी दिवाले पिटते हैं। धर्म संस्थानों के सम्बन्ध में तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। देवालयों का संचालन जिनके हाथों में रहता है उनका स्तर प्राय: वैसा नहीं होता, जैसा कि इस महान् प्रयोजन के लिए अभीष्ट है। गये गुजरे स्तर के लोग मन्दिरों के प्रति बनी हुई लोक-श्रद्धा का दोहन करते रहते हैं और किसी प्रकार अपने अनगढ़ एवं अकर्मण्य जीवन, शरीर को आगे घसीटने की सामग्री दान-दक्षिणा के नाम पर जुटाते रहते हैं। यही कारण है कि साधन सम्पन्न देवालय भी लोक-श्रद्धा अर्जित नहीं कर पाते। विचारशील वर्ग की उपेक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और अवज्ञा ही उनके पल्ले पड़ती है। भावुक भक्तों की बात दूसरी है उनकी अन्ध-श्रद्धा तो सड़े गोबर को भी नमन करने की लकीर पीटती रह सकती है।

दक्षिणेश्वर मन्दिर भी सामान्य देवालयों में से एक था। रामकृष्ण परमहंस उसके पुजारी बने तो वह साधारण-सा मन्दिर विश्व-ख्याति का, जन-जागृति का केन्द्र बन गया। प्रतिमा एवं इमारत कितनी ही भव्य क्यों न हो, उनका प्राण तो उन पुजारियों के व्यक्तितव में घुला रहता है, जो अपनी और देवता की गरिमा को एक करके देखते हैं और तदनुरूप गतिविधि अपना कर सच्चे अर्थ में देवताओं की प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। उपयुक्त पुजारी न मिले तो गये गुजरे लोग अपनी ही तरह देवता की भी दुर्गति करके रख देते हैं। स्वयं तिरस्कृत होते हैं और देक्ता को उपहास एवं तिरस्कार की अश्रद्धा से हेय बना कर रख देते हैं। बदनाम मात्र पुजारी ही नहीं होते उस लपेट में देवता भी अपना गौरव गंवाते और अपमान सहते हैं।

शक्ति-पीठों को जिस उच्चस्तरीय उद्देश्य के लिए बनाया जा रहा है, उनसे जो आशा रखी जा रही है उसी के अनुरूप उनके सुसंचालन की व्यवस्था करनी है। इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम, सर्वप्रमुख आवश्यकता उन व्यक्तियों की है जो उनकी पूजा-अर्चना में रामकृष्ण परमहंस की अनुकृति उत्पन्न कर सकें। तलाश ऐसी ही प्रतिभाओं की करनी है। युग-निर्माण परिवार की जागृत आत्मायें समयदान अभियान में अपने भाव भरे योगदान प्रस्तुत कर रही हैं। उनमें से कितने ही वरिष्ठ स्तर के भी हैं और कितने ही कनिष्ठ स्तर के। इनमें से जिन्हें शक्ति पीठों के माध्यम से अपनी ठोस सेवा साधना करनी हो उसके लिए उपयुक्त निर्णय निर्धारण का ठीक यही समय है।

इस वर्ष प्रवज्या अभियान में सम्मिलित हुए परिव्राजकों को एक ही काम सौंपा गया है—महापुरश्चरण आयोजन के सुनियोजन में योगदान। जहाँ भी गायत्री यज्ञों के आयोजन थे, वहाँ उन्हें दो-दो टोलियों में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के लिए भेजा गया। इससे आयोजन कर्त्ताओं को भी उनका सहयोग मिला और वे स्वयं भी इस प्रकार के सामुदायिक कार्यों का अनुभव अभ्यास उपार्जित करने में समर्थ हुए। इसे एक प्रकार का प्रशिक्षण ही कहना चाहिये। थोड़े समय शान्ति कुञ्ज में उनका शिक्षण हुआ और बाद में वे कार्य-क्षेत्र में भेज दिये। उपलब्ध रिपोर्टों के अनुसार इन भेजे गये परिव्राजकों का कार्य एवं व्यवहार संतोष जनक ही रहा है। भविष्य में उन्हें कहीं भेजा गया तो वे संचित अनुभव के आधार पर और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। रजत जयन्ती वर्ष तो समाप्त होता है, पर महापुरश्चरण अभी एक साल और चलेगा। आयोजन भी होंगे आवश्यकतानुसार उन्हें इनमें योगदान देने के लिए भेजा जाता रहेगा।

अगला उत्तरदायित्व जो नये सिरे से उठाना है, वह है— नवनिर्मित शक्ति का सुसंचालन और बनाये जाने वाले निर्माण की आवश्यक अर्थ-व्यवस्था जुटाने एवं निर्माण में कौशल का परिचय देने का है। अब वे उसी में लगे हुए हैं।

हर शक्ति पीठ में औसत पाँच परिव्राजकों की आवश्यकता रहेगी। सर्व विदित है कि ये मात्र देवालय नहीं बन रहे हैं और पूजा आरती तक उनकी गतिविधियाँ सीमित नहीं रहने वाली हैं, हर शक्ति-पीठ एक मण्डलाधीश मंडलेश्वर होगा। समीपवर्ती क्षेत्र में जन-जागृति का उत्तर-दायित्व उन्हें उठाना होगा। औसतन ३० गाँव हर शक्ति पीठ से सम्बद्ध होने की बात सोची गयी है। इस क्षेत्र के विचारशील लोगों के साथ सम्पर्क साधना और उनके सहयोग से रचनात्मक प्रवृत्तियों का बीजारोपण एवं अभिवर्धन करना शक्ति पीठों का निर्धारित कार्यक्रम है। इसके लिए दो काम करने होंगे— एक देवालय में आने वाले आगन्तुकों का प्रशिक्षण निरन्तर चलता रहेगा। हर दर्शनार्थी को उसकी मनःस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ प्रेरणा देनी ही होगी। चुपचाप आना और चुपचाप चले जाना, यह क्रम देवालयों में भले ही चलता हो, पर प्रस्तुत शक्ति-पीठें उस स्तर की नहीं रह सकतीं। उनमें बजने वाले शंख घड़ियाल कुछ देर ध्वनि करके शान्त नहीं होंगे वरन् अपना उद्घोष प्रकारान्तर से निरन्त जारी रखेंगे। हर दर्शनार्थी किसी न किसी प्रकार सत्प्रेरणाएँ, भविष्य में कुछ बदलने-सुधरने की श्रद्धा सद्भावना लेकर ही वापिस लौटे इस प्रयत्न को धुन के धनी परिव्राजक ही कर सकते है। नौकर की तरह रखे हुए पुजारी के लिए यह सब कर पाना कठिन है। उसके लिए तो आरती घुमा देना और घंटी हिला देना भी भारी पड़ता है।

समीपवर्ती क्षेत्र से भी धर्म-प्रेमी शक्ति-पीठ के अंचल में कुछ शान्ति पाने और समाधान खोजने के लिए आते ही रहेंगे। उनका स्वागत-सत्कार एवं आतिथ्य क्रम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी चलेगा ही । दैनिक यज्ञ हर शक्ति-पीठ का नित्य कर्म होगा आरती तीन मिनट में समाप्त नहीं होगी उसके साथ या उपरान्त सहगान-कीर्तन का क्रम चलेगा । देवता को आकर्षक एवं वातावरण को भावना सिक्त बनाये रहना होगा । यह सब काम भी श्रम, समय और मनोयोग चाहते हैं ।

देखने में चाहे यह कार्य सामान्य जैसा ही क्यों न हो, वस्तुत: इसके सूत्र-संचालन में कुशाग्रबुद्धि का पूरा-पूरा नियोजन रहेगा । दिन भर लोग आते रहेंगे । ऐसे स्थान सूने नहीं पड़े रह सकते । अवसर हो तो उसी में पुस्तकालय, वाचनालाय, प्रौढ़-शिक्षा, धर्म-शिक्षा की कक्षायें भी चलती रहेंगी । साहित्य विक्रय केन्द्र रहना निश्चित है । सम्पर्क क्षेत्र के तीस गाँवों में बिखरे हुए अपने सहयोगी सदस्यों के सम्बन्ध में आवश्यक लेखा-जोखा रखना होगा । उनके जन्म दिन मनाने के लिए साहित्य देने, वापिस लाने के लिए नियमित क्रम व्यवस्था चलानी होगी । इसके लिए साइकिलों पर साथी परिव्राजक को दैनिक दौरे पर भेजने, उनकी निर्वाह आवश्यकताओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी उसी व्यक्ति पर रहेगा जो एक प्रकार से संचालक की भूमिका निवाहेंगे और नियमित रूप से उसी में निवास करेंगे ।

ऐसे संचालक पति-पत्नी मिलकर रहते हैं तो भी कोई हर्ज नहीं, वरन् सुविधा ही है । वानप्रस्थों को पत्नी सहित रहने की छूट है । हाँ, बाल-बच्चे साथ नहीं रह सकते । जो लोग स्थायी रूप से वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहते हैं, साधना और सेवा समन्वय का महत्त्व समझते हैं, उनको तो शक्ति पीठों में रहते हुए दोनों उद्देश्य भली प्रकार पूरे करते रहने का अवसर मिलेगा । जो अपना निर्वाह अपने घरों से प्राप्त कर सकते हैं उनके लिए यही उचित है । अपनी कमाई को पूरी तरह उत्तराधिकारियों को दे डालना और खाली हाथ रहकर सार्वजनिक धन पर निर्वाह करना उचित नहीं । हाँ, जिन्हें घर से कुछ नहीं मिल सकता या थोड़ा मिलता है, उनके निर्वाह का प्रबन्ध शक्ति-पीठ ही करेगी । इस प्रकार निर्वाह की समस्या का सामना उनमें से किसी को भी नहीं करना पड़ेगा, जो शक्ति-पीठ के संचालक परिव्राजक की भूमिका सम्पन्न करेंगे ।

एकाकी या सपत्नीक संचालक परिव्राजक के लिए हर शक्ति-पीठ में सुविधा सम्पन्न कुटीर बने हैं । नित्यकर्म का काम उसी से अन्य साथ परिव्राजकों का भी चल जाया करेगा । भोजन सभी का एक साथ बनेगा । जो समीपवर्ती क्षेत्र के होंगे, वे रात्रि को अपने घर जाया करेंगे और घर पर ही स्नान, भोजन की व्यवस्था बनाकर आया करेंगे । यदि परिव्राजक बाहर के हैं तो उनका स्थायी निवास एवं निर्वाह शक्ति-पीठ में ही रहेगा । प्रमुख संचालक पीठों में इनकी उपयुक्त व्यवस्था बना देंगे । यदि वे पत्नी समेत रहते हैं, तब तो इस पाँच छ: व्यक्तियों के कुटुम्ब का भार भी उसी पर रहेगा । समीपवर्ती क्षेत्र के हों और रात्रि को घर जाते हो तो बात दूसरी है ।

सम्पर्क क्षेत्र में क्रमबद्ध रूप से परिभ्रमण की योजना बनाकर जाने और किस प्रकार क्या काम करना होता है, इसकी पूर्ण शिक्षा कई-कई महिने शान्ति कुञ्ज में रहकर करनी पड़ती है । इस सन्दर्भ में कोई भी अजनवी, अपरिचित न होगा और सहज ही सफलतापूर्वक अपना-अपना कर्त्तव्य पालने का क्रम चलता रहेगा । कुछ ही समय में यह सम्पर्क दृष्टि से शक्ति-पीठ के साथ भली प्रकार जुड़ जाता है और उस स्नेह सम्बन्ध के फलस्वरूप अधिक रचनात्मक प्रवृत्तियों का भार उठाना पड़ता है । अनुभव से विदित है कि जहाँ भी सम्पर्क-यात्रायें सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा भावभरी मन: स्थिति से चलाई गई हैं, वे आश्चर्यजनक सफलता के साथ सत्परिणाम उत्पन्न करती रही हैं ।

प्रयत्न यह होगा कि समीपवर्ती क्षेत्र के परिव्राजक ही इन शक्ति पीठों में नियुक्त रहें । ऐसी दशा में वे घर की देखभाल भी करते रहेंगे और सेवा-साधना में भी निश्चित रूप से निरत रहेंगे । उनके घर वालों को भी ऐसी दशा में कोई खास शिकायत न रहेगी । आशा यह की गई है कि घर में बारह भाई हैं, तो उनमें सक एक भाई युग शिल्पी के रूप में समाज को मिलना चाहिए और उसका निर्वाह व्यय घर वालों को उठाना चाहिए । कोई परिव्राजक नौकर नहीं होगा । वह यदि अपने से कुछ प्राप्त कर सकता है तो उसे अवश्य प्राप्त करेगा । निर्वाह में जितनी कमी पड़ेगी उसे शक्ति-पीठ से लेगा । किन्तु ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो भावनाशील, उत्साही तो हैं, पर घर से कुछ मिलने की सम्भावना नहीं है । ऐसे लोगों को भी निराश नहीं किया जायेगा । वे अपना पूरा निर्वाह व्यय इसी संस्था से प्राप्त करते रहेंगे । ऐसे प्रसंग में संस्था को यह देखना पड़ेगा कि व्यय भार इतना तो नहीं है, जिसे उठाने में अनुपयुक्त परम्परा बनती हो, या उँगली उठती हो । सामान्यतया यह सोचा गया है कि कोई ऐसा परिव्राजक नियुक्त न किया जाय जिसका व्यय भार दो सौ रुपया से भी अधिक बढ़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो। यह वेतन नहीं है, अधिकतम निर्वाह व्यय है। इसमें से वह अंश तो कम होगा ही जो पूर्व संचित आजीविका में से उपलब्ध होगा। स्वल्प निर्वाह व्यय में जिनका खर्च चलता होगा, उन्हीं को रखने की बात सोची जायेगी। साधारण रोटी कपड़े, जेबखर्च में तो सौ सवा सौ में भी मजे के साथ एक आदमी का खर्च चल सकता है। हलके बोझ वाले स्वस्थ, शिक्षित, भावनाशील व्यक्ति अवैतनिक रुप से अथवा स्वल्प व्यय-व्यवस्था में यदि नहीं मिल सकें, तो समझना चाहिए कि सेवा धर्म संसार से समाप्त ही हो गया। वेतन भोगी कर्मचारी के सहारे शक्ति पीठों के लिए उपयुक्त परिव्राजकों की पूर्ति नहीं हो सकेगी।

विश्वास किया गया है कि परिव्राजक अभियान में पंजीकरण कराने वाले समयदानी वरिष्ठ-कनिष्ठों में से ऐसे कितने ही होंगे जो शक्ति-पीठों के सुसंचालन में अपने आपकों खपा देंगे? वे गर्व गौरव का आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण का समन्वय देखेंगे और उस अवसर को न चूकना ही श्रेयस्कर समझेंगे ?

जिन्होंने प्रव्रज्या अभियान के सदस्यों में अपना नियमित पंजीकरण करा लिया है, अथवा न कराने पर भी युग पुकार में कुछ योगदान देने का निश्चय किया है, वे सभी शक्ति-पीठ-योजना के साथ अपने आपको जोड़कर अधिक सरलता के साथ परमार्थ परायण जीवन जी सकते हैं। पिछले दिनों जीवनदानियों ने आत्माहुतियाँ दी हैं, उन्हें अधिक साहस करना पड़ा है। वे उपार्जन, आजीविका और घर-गृहस्थी सभी समेट कर शान्ति कुञ्ज पहुँचे हैं और वहाँ रहकर साधु-जीवन बिताते हुए युग सृजन की तप-साधना में अहर्निशि लगे हुए हैं। यह अनुकरणीय आदर्श है, जिसे देखकर उन लोगों को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना पड़ेगा जो उपार्जन की जिम्मेदारियों से निवृत्त होने पर भी लोभ मोहग्रस्त जीवन जीते हैं और अवसर होते हुए भी आदर्शहीनों जैसे बने रहते हैं। स्पष्ट है कि माला-जप रामबाण नहीं है जो लोक और परलोक को सिद्ध चमत्कारों से भर दे। साधना तो जीवन परिष्कार की करनी पड़ती है। उपासना तो उत्कृष्टता के समीप बैठने और उसी में घुल जाने को कहते हैं। जिसे इस तथ्य की जानकारी है, वह आध्यात्मिकता और आदर्शवादिता को सहचरी मान कर चलेगा और दोनों को अन्योन्याश्रित मानेगा। ऐसी दशा में उसे परमार्थ परायणता अपनाने के लिए स्थिति का अनुरूप साहस जुटाना ही होगा। जिन्हें इस प्रकार का साहस उभारने की उमंग उठे वे उसे ईश्वरीय वाणी और आत्मा की पुकार समझें और कार्यान्वित करने के लिए श्रेयार्थियों जैसा कदम बढ़ायें। कहना न होगा कि जिनके मन:क्षेत्र में इस प्रकार का चिन्तन-मन्थन चल रहा हो उनके लिए शक्तिपीठों के साथ सुसम्बद्ध होने से बढ़ कर और कोई सुअवसर नहीं है। उसमें सेवा का अधिक सुव्यवस्थित अवसर भी है और उतना बड़ा साहस भी नहीं करना है जितना कि गत वर्ष जीवनदानियों को आत्माहुतियाँ देते समय करना पड़ा था।

समीपवर्ती क्षेत्र में सेवाकार्य करना उच्चस्तरीय आदर्शवादिता की कसौटी पर तो खरा नहीं उतरता, पर सरल और सुविधाजनक अवश्य है। महामानवों को परिपूर्ण श्रद्धा और समग्र निश्चिन्तता के साथ परमार्थ-पथ पर चलने के लिए अपने जन्म-स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा है। धर्म क्षेत्र की यही अनादि परम्परा है। सन्त-स्तर यहीं से प्रारम्भ होता है, किन्तु इससे कुछ छोटे स्तर का ब्राह्मण यह भी कर सकता है कि परिजनों की जिम्मेदारी एवं ललक को भी सम्भालते हुए लोक-कल्याण की प्रभु परायणता में तत्परता के साथ लगा रहे। प्राचीन काल का ब्राह्मण जीवन प्राय: इसी प्रकार का था, जिसमें परिवार तथा परमार्थ की समन्वित साधना का क्रम सफलता पूर्वक सध जाता था।

शक्ति-पीठों के साथ समबद्ध होकर युग सृजन का काम करने वालों को ब्राह्मण स्तर की गतिविधियाँ अपनाने का भी अवसर मिल जायेगा। हर शक्ति पीठ में एक परिपक्व स्तर का व्यक्ति विशिष्ट जिम्मेदारी सम्भालने के लिए रहेगा। वह पत्नी समेत भी रह सकता है। पत्नी ऐसी होनी चाहिए जो गले का पत्थर न होकर पति के क्रिया-कलापों में कन्धे से कन्धा लगाकर काम करे। गुजरात के वापा जलाराम, गाँधी जी, गुरुदेव आदि असंख्यों का उदाहरण ऐसे हैं जिसमें पति और पत्नी ने कन्धे से कन्धा मिलाकर परमार्थ पथ का अनुसरण किया है। इस स्तर के सुयोग्य व्यक्ति अपने समीप की शक्ति पीठ में रह सकते हैं और यदा-कदा घर-परिवार की भी खोज खबर लेते रह सकते हैं।

नौकरी से रिटायर पारिवारिक उत्तरदायित्व से निवृत्त, निर्वाह, उपार्जन से निश्चिन्त स्थिति वाले लोगों के लिए वानप्रस्थ परम्परा के निर्वाह की यह अत्यन्त सुविधा जनक व्यवस्था है, जिसे वे चाहें तो सहज ही अपना सकते हैं। समीपवर्ती शक्ति-पीठों का कार्यभार सम्भाल सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि वे शरीर से रुग्ण, चिन्तन से विकृत और चरित्र से दुर्बल नहीं हैं तो उनके लिए यह अवसर प्राय: वैसा ही है, जैसा किसी पवित्र तीर्थ में रहकर समग्र साधना करने वाले ऋषि स्तर के व्यक्ति को मिल सकता है ।

उसके अतिरिक्त वे परिव्राजक आते हैं जो पत्नी बच्चे, माता-पिता को न तो छोड़ने की स्थिति में हैं और न बाहर ले जाने की । ऐसे व्यक्ति यह कर सकते हैं कि प्रात: से लेकर शाम तक निकटवर्ती शक्ति-पीठ में काम करें और रात को साइकिल से घर पहुँच जाया करें । ऐसा भी हो सकता है कि सप्ताह में एक दिन घर रहें और छह दिन पूरे समय शक्ति पीठ का काम रकें । इस स्तर के लोग यदि अपने भोजन, वस्त्र की व्यवस्था निजी घर पर ही रखते हैं, तो उन्हें निर्वाह का वह पैसा जो शक्ति-पीठ में रहने पर खर्च होता, घर पर ही खर्च कर लेने को मिल सकता है। हाँ, इसे वेतन नहीं वरन् 'आनरेरियम' 'अवैतनिक' 'जेब खर्च' कह सकते हैं । यह राशि स्थिति के अनुरूप दो सौ रुपये तक हो सकती है । यों शक्ति-पीठ में रहने वालों पर सारा खर्च डेढ़ सौ रुपये से अधिक नहीं आता । ब्राह्मण और साधु का जीवन मितव्ययी ही होना चाहिए । विलासिता और फिजूलखर्ची साथ लेकर चलने पर परिव्राजक की पुण्य परम्परा का निर्वाह नहीं हो सकता । शक्ति-पीठों की व्यवस्था में यह प्रोवधान रखा गया है कि एक जोड़ा पति-पत्नी का और तीन-चार भ्रमणशील परिव्राजकों की नियुक्त हो और वे अपने समीपवर्ती क्षेत्र को योजना बद्ध रूप से सम्भालने, सुधारने में, विकसित, परिष्कृत करने में निरन्तर संलग्न रहें ।

घर छोड़कर दूर जा सकने वाले परिव्राजक थोड़े-थोड़े दिन विभिन्न शक्ति-पीठों की स्थानीय व्यवस्था को अधिक उत्तम बनाने का कार्य करते रहें । जो घर से बहुत दूर नहीं जा सकते, वे धर्म-संस्थानों के साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़कर अपना कार्य निश्चिन्तता पूर्वक करते रहें । वानप्रस्थों और परिव्राजकों में से प्रत्येक से इन पंक्तियों द्वारा पूछा जा रहा है कि क्या उनकी स्थिति अपनी भावी गतिविधियों के साथ जोड़ देने की है ? यदि है तो उसके लिए क्या करना ? शक्ति-पीठें प्राय: भारत के कोने-कोने में बनने जा रही हैं, इसलिए हर समयदानी को अपने समीपवर्ती क्षेत्र में ही काम करने का अवसर मिल सकता है ।

व्यक्ति-निर्माण, परिवार-निर्माण एवं समाज-निर्माण की शतसूत्री योजना में बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति के सभी तत्वों का समावेश है । सृजन शिल्पियों के सामने जन-मानस के परिष्कार और सत्प्रवृतियों के सम्बन्ध का विशाल क्षेत्र है । कहाँ की स्थिति में, क्या कार्य किस स्तर पर आरम्भ किया और आगे बढ़ाया जा सकता है, इसका दिशा निर्धारण तो पहले से भी हो सकता है, परन्तु व्यवहार में कब, कहाँ, क्या किया जा सकता है, इसका निर्णय-निर्धारण सामयिक सूझ-बूझ ही करेगी । सृजन के असंख्य पक्षों में से जहाँ, जो जितना बन पड़े, करना ही चाहिए । इसमें स्थानीय सहयोगियों की योग्यता एवं अभिरुचि को भी महत्त्व देना चाहिए ।

यह मात्र उस कार्यक्रम की चर्चा हुई, जो शक्ति पीठों के केंन्द्र स्थानों में परिव्राजक मण्डल द्वारा अपने सम्पर्क क्षेत्रों में प्रथमत: क्रियान्वित होगा । इस आरम्भिक उपक्रम से आगे सृजनात्मक सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिए आदर्शवादी एवं सेवाभावी व्यक्तियों को अपने-अपने ढंग से कुछ करने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा । यदि प्रतिभाएँ लोभ-मोह की वितृष्ण से विरत हो कर नव सृजन की दिशा में प्रवृत्त हो उठें और संकीर्ण स्वार्थपरता का जल सिमटने लगे, तो फिर नव-सृजन के लिए वांछित क्षमता का प्रचुर परिणाम में उत्पादन हो सकता है और तब उस क्षमता के द्वारा इतना कुछ कार्य सम्भव है, जितना किसी समर्थ शासन अथवा सुविस्तृत संगठन के लिए भी सम्भव नहीं ।

मिशन के सूत्र संचालकों का सहज सम्पर्क हिन्दू समुदाय के साथ ही अधिक होने से आरम्भ हिन्दू धर्म के कार्य क्षेत्र से किया है । यह सीमाबन्धन नहीं शुभारम्भ की सरलता भर है । युग सृजन अभियान देश जाति, धर्म की परिधि तक सीमित नहीं रखा जा सकता । वह सार्वभौम एवं सार्वजनीन है । अत: परिधि बन्धनों से आगे बढ़ा जाता और दृष्टिकोण एवं कार्य-क्षेत्र को निरन्तर व्यापक बनाया जाता रहेगा । उस प्रकाश में सभी देशों, धर्मों, जातियों को नवजीवन प्राप्त करने का अवसर मिलेगा । शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग, सहयोग जैसे सभी महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों को प्रगतिशील प्रोत्साहन मिलेगा । अवांछनीयताओं अनैतिकताओं, मूढ़ मान्यताओं, अन्ध परम्पराओं एवं कुरीतियों की विभीषिका मानवीय पतन एवं पराभव का प्रधान कारण बनी हुई है । उनके साथ संघर्ष कार्य सृजनात्मक सत्प्रवतियों के समतुल्य ही महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं । यह पक्ष उपेक्षणयी कदापि नहीं । लकां-दहन और समुद्र-सेतु बन्धन की दोनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योजनाएँ एक ही महान् लक्ष्य का अविच्छिन्न अंग हैं। इसे आरम्भ से ही ध्यान में रखा गया है और अन्त तक दृढ़ता पूर्वक अपनाया जाता रहेगा।

नव-सृजन का कार्य महान् और विराट है। श्रम, समय, मनोयोग के साथ ही उस हेतु अतिरिक्त साधन भी आवश्यक होंगे। बूँद-बूँद से घड़ा भरने की लोक श्रद्धा के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा गया है। दस पैसा रोज के ज्ञानघट, मुट्ठी-मुट्ठी अनाज जमा करने वाले धर्म-घट ही मिशन की आवश्यकता पूरी करते रहेंगे। लोक-शक्ति जागेगी तो सत्प्रयोजनों में लोक श्रद्धा की भी कमी नहीं रहेगी। जब विकृत धर्मतन्त्र तक को इतना विलासी और अपव्ययी परिपोषण मिल रहा है तो कोई कारण नहीं कि इस धर्म प्राण देश में जीवन्त धर्म धारणा को अपनी स्वल्प आवश्यकता जुटाने के लिए असफल रहना पड़े। सरकारों अथवा साधन सम्पन्नों से सहायता की अपेक्षा न करते हुए इतना बड़ा श्रम-साध्य, समय-साध्य कार्य जिस महाकाल की प्रेरणा से प्रारम्भ हुआ है, वह लोक श्रद्धा बरसाने के साथ ही आवश्यक साधनों की व्यवस्था भी उसी स्रोत से करेगा। यह विश्वास ही अपने बजट और कार्यक्रम का सुनिश्चित आधार है।

समाजोत्थान में गायत्री शक्ति-पीठों का स्थान

आधुनिक तीर्थों के रूप में गायत्री शक्ति-पीठों की स्थापना समाज की बहुमुखी प्रगति की दृष्टि से की जा रही है। हमारे सामने आज जो धार्मिक, आर्थिक, ग्रहस्थ जीवन, शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यवसाय, मनोरंजन आदि अनेक समस्यायें समय-समय पर उठती रहती हैं। उन सबका सम्बन्ध समाज से ही है। यदि समाज सही मार्ग पर चल रहा होगा, उसमें कल्याणकारी परम्पराओं का प्रचलन होगा, उसका मार्ग दर्शन करने वाले परोपकार और सेवाभाव से अनुप्राणित होंगे, तो वह सभी अवरोधों और विघ्न-बाधाओं से बचकर कर सुखी और सम्पन्न रहता हुआ अग्रसर होता जायेगा।

इन सब उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए प्राचीन मशीषियों ने जन-मानस को परिष्कृत और सामाजिक हित की दृष्टि से उत्कृष्ट बनाने के लिए धर्म धारणा का विशाल कलेवर बनाया था। ऋषियों और शास्त्रकारों की समस्त सूझ-बूझ इसी प्रयोजन में संलग्न रही। उन्होंने जिन प्रथा प्रचलनों का धर्मानुहानों का दार्शनिक निर्धारणों का निर्माण किया था, उनमें इसी मूल उद्देश्य को समाहित रखा गया था कि लोगों का अन्तरंग उच्चस्तरीय बने, उनकी आस्थाओं का स्तर अनुकरणीय बने और वे समाज के अन्य सदस्यों के हित की रक्षा करते हुए ही व्यवहार करें। संक्षेप में इसी प्रयास को कार्य रूप में परिणित करने से समाजोत्थान का उद्देश्य सुनिश्चित रूप से सिद्ध हो सकता है।

धर्म को मानव-जीवन का अंग बनाने के लिए मनुष्यों की आस्था और प्रवृत्तियों को समुन्नत-सुसंस्कृत बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए एक सीमा तक तो शास्त्र और साहित्य के माध्यम से भी कार्य हो सकता है, हर अधिक प्रभावी और पूरक उपाय यही है कि उष्कृष्टता सम्पन्न महामानवों का प्रयत्क्ष सम्बन्ध प्राप्त किया जाये। उनके परामर्श और प्रभाव में जुड़ी हुई महानता जन-जन को प्रभावित करने में समर्थ होती है। दीपक से दीपक जलते हैं। जीवन ही जीवन देते हैं। उठे हुए ही उठाने में समर्थ होते हैं। इसलिए तपः पूत प्रतिभाओं को जन-सम्पर्क का अधिकाधिक अवसर मिले इसके लिए धर्म चेतना के निर्धारणकर्त्ताओं ने पूरा ध्यान रखा है। कथा-प्रवचनों की सत्संग सान्निध्य की प्रक्रिया इसी निमित्त चलती है।

इन प्रयत्नों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण धर्म चर्या तीर्थ ही हैं। तीर्थ यात्रा से दोनों ही प्रयोजन पूरे होते हैं। एक यह कि समय-समय पर अपनी सुविधानुसार मनुष्य वहाँ पहुँच कर आरण्यकों के वातावरण में काया-कल्प का लाभ उठा सकते हैं, वहाँ प्राचीन समय में जो तीर्थ-संचालक ऋषि रहते थे, वे आगन्तुकों की भावभरी सहायता करते थे। प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त नदी सरोवर, श्रद्धा के केन्द्र देवालय और उस स्थान का सात्विक वातावरण तो मानसिक स्थिति को उष्कृष्टता की प्रेरणा देते ही थे, पर मूल स्रोत तीर्थ संचालक ऋषि ही होते थे। उनकी गतिविधियाँ तीन भागों में बँटी रहती थी—

(१) तीर्थवास के लिए आने वाने धर्म प्रेमियों के लिए साधना और शिक्षण की व्यवस्था।

(२) तीर्थ के समीपवर्ती क्षेत्र को एक मण्डल बना कर उसमें धर्मज्ञाता पुरोहितों का परिभ्रमण और उस परिधि में नियमित धर्म चेतना उत्पन्न करते रहने के उत्तरदायित्व को सम्भालते रहना। इन धर्म मण्डलों की सुव्यवस्था बनाये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने वाले मण्डलाधीश या मंडलेश्वर कहलाते थे। इन मंडलों के केन्द्रीय स्थानों को मठ कहा जाता था।

(३) लोगों को समय-समय पर उन तीर्थों में स्वल्प वास करके आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने की प्रेरणा देना। यह कार्य पर्व स्नान के रूप में होता था। इन्हें एक प्रकार से धर्म-सम्मेलन कहा जा सकता है। इन दिनों भी संस्थायें अपने वार्षिकोत्सव मनाती हैं और सामयिक आयोजन करती हैं, जिनका उद्देश्य बड़ी संख्या में जनता को एकत्रित करके उनमें अभीष्ट प्रेरणाएँ भरना होता है। पर्वों पर तीर्थ स्थान का विशेष महत्त्व उसी दृष्टि से बताया गया था कि धर्म जिज्ञासुओं का समुदाय एक ही अवसर पर एकत्रित होकर ऋषियों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली सामयिक प्रेरणाओं को ग्रहण करे और अपने-अपने स्थानों पर उस चेतना का विस्तार करें।

कभी-कभी धर्म प्रेमियों और ऋषि-तपस्वियों का मिलन सम्मेलन भी होता था, ताकि वे मिल-जुलकर सामयिक समस्याओं पर विचार कर सकें। पारस्परिक सुख-दुख की बातें पूँछ सकें, एक-दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सकें, और समय की माँग को पूरा करने के लिए उपायों का निर्धारण कर सकें। कुम्भ पर्व जैसे आयोजन इसी उद्देश्य से निर्धारित किये गये थे। यह चलते-फिरते तीर्थ थे और अपना स्थान तथा क्रम बदलते रहते थे। कुम्भ पर्वों की योजना दृष्टव्य है। हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन, नासिक इन चारों स्थानों पर तीन-तीन वर्ष बाद प्राय: एक-एक महीने के कुम्भ पर्व होते हैं। बारह वर्ष में यह चक्र पूरा होता है। धर्म प्रचारकों की मण्डलियाँ पहुँचती थी। इस प्रकार उस समय की आवश्यकता के अनुरूप बने एक बड़े धर्म का भ्रमण चक्र पूरा हो जाता था।

जब तीर्थ उपरोक्त तीनों भूमिका निभाते होंगे, तब उनके सुखद परिणाम किस प्रकार, किस परिमाण में प्रस्तुत होते होंगे, इसका परिचय अभी भी पुरातन इतिहास की झाँकी करने पर मिल जाता है। अतीत की स्वर्णिम परिस्थितियाँ दैवी वरदान थीं, जिनने इन महान् देश के नागरिकों को उनकी मातृभूमि को सच्चे अर्थों में गौरवान्वित किया था।

गायत्री शक्ति-पीठों की योजना में यही उद्देश्य निहित है। वे मन्दिरों के लिए एक उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित करेंगे और जन-साधारण को बतलायेंगी कि तीर्थों का कायाकल्प किस प्रकार हो सकता है ? इससे उनको ज्ञात हो सकेगा कि प्राचीन तीर्थ परम्परा मूल रूप में हानिकारक नहीं है वरन् उनकों दूषित कर देने का उत्तरदायित्व स्वार्थी और अकर्मण्य व्यक्तियों को ही समझा जाना चाहिए। हमारा उद्देश्य तीर्थ-संस्था को पुन: कल्याणकारी रूप देना है और इसी की पूर्ति गायत्री शक्ति-पीठ-योजना द्वारा होगी।

शक्ति-पीठों का निर्माण और प्रव्रज्या का अभिवर्धन साथ-साथ

इन दिनों युग निर्माण के समर्थ संगठनों में गायत्री शाक्ति-पीठों के निर्माण का कार्य सघन भाव ऋद्धा एवं परिपूर्ण तत्परता के साथ चल रहा है। बसन्त पर्व पर इन निर्माणों की संख्या चौबीस घोषित की गई थी। वह प्रथम चरण कब का पूरा हो गया। इन दिनों पचास का अंक पार हो चुका और १०८ की परिधि में निर्माण प्रयासों की श्रृंखला चल रही है। भारत में प्राय: ४०० जिले हैं। किसी को भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि अगले दिनों इतनी ही संख्या में इन धर्म संस्थानों को भी कार्यरत देखा जा सके।

धर्म तंत्र की उपयोगिता शासन तंत्र से कम नहीं। भौतिक प्रगति अपेक्षित है। किन्तु आन्तरिक उत्कृष्टता के बिना तो बढ़ी हुई सम्पन्नता भी विपत्ति और विनाश के विग्रह ही खड़े करती है। बहिरंग सम्पन्नता है, पर आन्तरंग की भी सुसंस्कारिता कम महत्त्व की नहीं है शासन व्यवस्था बनाने और सम्पन्नता बढ़ाने का कार्य हाथ में लेना है तो धर्म की उत्कृष्टता के अभिवर्द्धन का उत्तरदायित्व सम्भालना चाहिए। दोनों का कार्य-क्षेत्र तो अलग है, पर दोनों परस्पर मिलजुल कर मानवी गरिमा के उभय पक्षीय प्रयोजनों को पूरा कर सकते हैं। शासन की तरह ही धर्म को भी समर्थ होना चाहिए। दोनों अपनी-अपनी मर्यादाओं में रहकर एक दूसरे के सहायक और पूरक बन सकते हैं। युग सृजन से जन-मानस का परिष्कार ही प्रधान कार्यक्रम है। यह समृद्धि संवर्धन की तरह महत्वपूर्ण है। सुगठित धर्म संस्थानों के रूप में गायत्री शाक्ति पीठों का निर्माण हो रहा है। आवश्यकता को देखते हुए उनकी संख्या का विस्तार होना उज्ज्वल भविष्य का शुभ लक्षण है।

असमंजस का एक ही कारण हो सकता है कि धर्म संस्थानों की देवालयों की वर्तमान दुर्गति और सँड़ाद को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखते हुए विचारशील वर्ग चौंके और यह आशंका करे कि प्रतिगामिता की यह नई-नई हवेलियाँ तो नई बन रही हैं । ऐसा सोचना उचित भी है । देश में हजारों बड़े और लाखों छोटे मन्दिर बने हुए हैं । इनकी गतिविधि भी और उपलब्धियों का पर्यवेक्षण करने पर निराशा ही हाथ लगती है । प्रतिमा पूजन में इतनी जन-शक्ति और धन-शक्ति लगना किन्तु उत्कृष्टता के संवर्धन में उनसे कुछ भी योग दान न मिलना, रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिए इन समर्थ साधनों का कुछ भी उपयोग न होना निश्चय ही निराशाजनक है । बहुत बार तो निहित स्वार्थों द्वारा इन देवालयों की आड़ में जो विकृतियाँ उठाई जाती हैं उनसे अश्रद्धा ही नहीं बढ़ती उत्तेजना भी उत्पन्न होती है । विचारशील वर्ग की देवालयों के प्रति अवज्ञा से ही कोई परिचित है ऐसी दशा में गायत्री शक्ति-पीठों को सरसरी दृष्टि से देखने वालों को अप्रसन्नता ही हो सकती है ।

तथ्य को निकट से देखने पर यह आशंका सही ही तिरोहित हो जाती हैं । शक्ति-पीठों के निर्माण की योजना का सूत्र संचालन जिस केन्द्र से होता है वहाँ दूरदर्शिता और उपयोगिता को पूरी तरह ध्यान में रखा जाता है । धर्म-संस्थान किस रूप में अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति कर सकते हैं इसके प्रयोग परीक्षण का अवसर प्रस्तुत करना इस निर्माण का उद्देश्य है । इस प्रयोग की सफलता से लोकमत का दबाव बढ़ेगा कि देवस्थानों में लगे हुए साधनों का उपयोग इसी स्तर पर किया जाय । इससे चिन्तन को दिशा मिलेगी । धर्म-संस्थानों को अपनी गतिविधियों पर नये सिरे से विचार करना होगा और उनके पुनर्निर्धारण के लिए विवश होना होगा । तुलनात्मक अध्ययन के लिए जो अवसर चाहिए उसे यह शक्ति-पीठें प्रस्तुत कर सकेंगी ऐसा विश्वास किया जा सकता है । यदि हो सके तो यह एक बड़ी क्रान्ति होगी । धर्म के निमित्त लगने वाली धन-शक्ति, 'श्रमशक्ति, बुद्धिशक्ति और भावशक्ति को यदि सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन की ओर मोड़ा जा सके तो यह ऐसा ही चमत्कार होगा जैसा कि बाढ़ से भूमि और फसल को नष्ट करने वाली नदियों पर बाँध बना कर नहरें निकालना और बिजली घर बनाना । धर्म तन्त्र की अस्तव्यस्तता की व्यवस्था में प्रतिगामिता को प्रगतिशीलता में बदलने का यह अभिनय प्रयास है जिनसे धर्म-संस्थान बनाने की मूल भावना का प्रत्यक्ष स्वरूप देखा जा सकता है ।

धर्म तत्व की यदि इस बुद्धिवादी युग में अपना अस्तित्व बनाये रहने और सम्मान पाने की इच्छा हो तो उसे अपनी सृजानात्मक शक्ति का परिचय देना होगा । अन्यथा समय की दौड़ में पिछड़ने वाले प्राणी जिस प्रकार अपना अस्तित्व गँवा बैठे ठीक उसी तरह धर्म के प्रति बढ़ती हुई उपेक्षा अन्तत: उसे अवांछनीय घोषित करके ही रहेगी । शक्तिपीठों का सृजन, धर्म प्रचार की विडम्बना से एक कदम आगे बढ़कर धर्म तन्त्र का व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत करने वाले पुनीत संस्थानों के रूप में हो रहा है । देखने में वर्तमान देवालयों से ही मिलते-जुलते प्रतीत होंगे । प्रतिमाओं की पूजा आरती का सनातन उपक्रम देखकर अनुमान यही लगाया जायेगा कि मन्दिरों में विरादारियों में यह और एक नये सम्प्रदाय का जन्म है । किन्तु यह असमंजस आक्षेप देर तक टिक नहीं सकेगा । वस्तु स्थिति समझने का अवसर मिलते ही प्रतीत होगा कि आकृति मिलती-जुलती होने पर भी प्रकृति में जमीन आसमान जैसा अन्तर है । अपनी उत्कृष्टता और उपयोगिता सिद्ध करके शक्तिपीठ धर्म तन्त्र के प्रति बढ़ती हुई अश्रद्धा को रोकने और श्रद्धा सम्वर्धन का प्रयोजन पूरा करने में भली प्रकार समर्थ हो सके । यह सच्चाई कुछ ही दिनों में सामने आ खड़ी होगी ।

प्रत्येक शक्ति-पीठ में गायत्री के नौ शब्दों की प्रतीक नौ प्रतिमाओं की, नौ देवियों की प्रतिष्ठापना होगी । इन्हें व्यक्तिगत जीवन में नौ सत्प्रवृत्तियों और सामाजिक जीवन में नीति मर्यादाएँ कहा जा सकता है । हर दर्शानार्थी को एक प्रशिक्षित 'गाइड' इनका परिचय देते हुए वैयक्तिक उत्कर्ष के लिये आवश्यक नौ सद्गुणों की और समाज विकास के लिए अभीष्ट नौ रीति-नीतियों का महत्त्व एवं उपयोग समझाता रहेगा । हर देव-दर्शन को आने वाले हर व्यक्ति को कुछ न कुछ नई प्रेरणा लेकर ही वापिस जाते देखा जा सकेगा । जिनके पास समय होगा वे देवालयों में बैठकर साधन का, साथ ही स्वाध्याय का लाभ लेते रह सकेंगे । पुस्तकालय ज्ञान मन्दिर के रूप में हर शक्ति-पीठ का अविच्छिन्न अंग रहेगा । दर्शनार्थी घर ले जाकर पढ़ने और वापिस करने की शर्त पर बहुमूल्य युग साहित्य यहाँ से ले जाया करेंगे और इस सूत्र के सहारे जन मानस के परिष्कार का, विचार क्रान्ति का एक सीमा तक उद्देश्य पूरा किया करेंगे ।

शक्ति-पीठों में देवता के सम्मुख पैसा चढ़ाने का निषेध रहेगा । यह परम्परा प्राचीन काल में जिस भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्देश्य से चलाई गई हो आज वह अनेकानेक विकृतियों के निहित स्वार्थों के परिपोषणा का केन्द्र बिन्दु बन गई है। देवता के सामने पैसा चढ़ाना आवश्यक नहीं है । प्रतीक रूप में पुष्प अक्षत् चढ़ाये जा सकते हैं । यह न होने पर एक चमची जल, पाद्य, अर्घ के निमित्त चढ़ा देने से काम चल सकता है, देव स्थानों में धनी निर्धन का जो भेद-भाव वरता जाता है । देवता का अनुग्रह पाने को पैसे को निमित्त बनाने के प्रचलन का उसी प्रकार अन्त होगा । शक्ति-पीठों में कहीं भी देव प्रतिमा के सम्मुख पैसा न चढ़ेगा । कोई कुछ देना ही चाहेगा तो उसे तुरन्त उतने ही मूल्य का सस्ता युग साहित्य दे दिया जायेगा जिससे वे स्वयं लाभ उठाने और दूसरों तक उसका आलोक पहुँचाने में समर्थ हो सकें ।

हर शक्तिपीठ में पाँच परिव्राजकों की एक टीम रहेगी । एक देवालय की व्यवस्था सम्भालेगा । दो-दो की दो टोलियों में शेष चार परिव्राजक समीपवर्ती क्षेत्रों में सम्पर्क स्थापित करने जाया करेंगे । एक दिन में एक गांव हो सके इस दृष्टि से एक महीने में तीस गाँवों का शाक्तिपीठ मण्डल बनाने का विचार किया गया है । एक टोली हो तो महीने में एक दिन दो टोलियाँ हो तो महीने में दो बार उन गाँवों में जाने का अवसर मिलेगा । दिन में जन-सम्पर्क रात्रि में प्रवचन का क्रम चलेगा । प्रयत्न यह होगा कि गाँव के उपयोगी वर्ग से इस अवसर पर सम्पर्क साधा, और सघन बनाया जाए । अनेकों रचनात्मक प्रवृत्तियों का बीजारोपण एवं परिपोषण ही इस सम्पर्क का एकमात्र उद्देश्य होगा । नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति के लिए जिन स्थापनाओं की जिन उन्मूलनों की आवश्यकता है उन सबको सम्पर्क योजना में सम्मिलित रखा गया है । जहाँ जिसके लिए जिस प्रकार अवसर होगा वहाँ उसी प्रकार प्रगतिक्रम आगे बढ़ाया जायेगा संक्षेप में भौतिक एवं आत्मिक सत्प्रवृतियों की दृष्टि से आवश्यक सभी रचनात्मक योजनाओं को इसमें सम्मिलित रखा गया है ।

नव-निर्माण के लिए स्थान सम्बन्धी व्यवस्था का प्रयोजन शक्ति-पीठों की इमारत से सम्पन्न होगा । उस छायां में बैठकर सम्बद्ध मण्डल क्षेत्र को सुविकसित करने का उपयोगी निर्धारण और कार्यान्वयन उसी केन्द्र से होता रहेगा । इस सक्रियता का उभार न तो उभारते बन सकता है, न प्रतिमा से और न साधन सुविधा से । यदि इतने से ही काम चल गया होता तो वर्तमान हजारों लाखों मन्दिरों से न जाने सर्वतोमुखी प्रगति से कितनी बड़ी सहायता मिली होती । समर्थ गुरु के महावीर मन्दिर, सिख धर्म के गुरुद्वारे, बौद्धों के विहार, जैनों के चैत्य, साधुओं के मठ, वानप्रस्थों के आरण्यक, जिस उद्देश्य से बने थे यदि वही परम्परा प्रस्तुत देवालयों में प्रवेश कर सकी होती तो सचमुच वे धर्म और अध्यात्म की भारी सेवा कर सकने में समर्थ हो गये होते, किन्तु वैसा कुछ भी न हो सका इसका एक ही कारण है कि इन देवालयों में राम कृष्ण परमहंस परम्परा के पुजारियों का प्रबन्ध न हो सका । शक्ति-पीठों में पाँच प्रशिक्षित एवं परखे हुए परिव्राजकों की नियुक्ति के पीछे एक ही उद्देश्य है कि वे इन धर्म संस्थानों को अपने व्यक्तित्व एवं श्रम से कल्पवृक्ष की तरह चन्दन वृक्ष की तरह हर दृष्टि से सार्थक सिद्ध कर सके ।

रजत जयन्ती वर्ष से प्रव्रज्या अभियान को सुनियोजित गति दी गई है । वानप्रस्थ, तीर्थ यात्रा, लोक शिक्षण, समय दान, धर्म प्रचार, पर्यटन जैसे अनेक उपयोगी तत्वों को मिला कर 'प्रव्रज्या' अभियान का सुव्यवस्थित रूप दिया गया है । जागृत आत्माओं का युग सृजन के लिए समय दान करने के लिये प्रेरणा दी गई है । वह बहुत हद तक सफल भी रही है । परिव्राजकों का एक बड़े वर्ग का पंजीकरण हुआ है । उन्हें थोड़े-थोड़े समय के लिये प्रशिक्षण देकर गत वर्ष महापुरुश्चरण योजना के अन्तगर्त सम्पन्न हुए युग-निर्माण सम्मेलनों में योगदान करने के लिए पन्द्रह-पन्द्रह दिन के लिए हजारों स्थानों पर भेजा गया है । जन सम्पर्क और सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन का रचनात्मक अनुभव अभ्यास कराया गया है। इसके सत्परिणाम सामने हैं । बुरे सम्पर्क की, कुसंग की दुष्परिणामों की हानियाँ सर्व विदित हैं । सत्सम्पर्क एवं सत्संग का सत्परिणाम भी कम प्रभावी नहीं होता है ।

पाप से पुण्य की, दैत्य से देव की, ध्यंश से सृजन की शक्ति निश्चित रूप से अत्यधिक है । प्राचीनकाल में सन्त परम्परा ने जन-सम्पर्क के अनेकानेक उपाय अपनाकर लोक मानस में धर्म धारणा की फसल उगाई और गरिमा भरी रत्न राशि उगाई थी । आज भी भावनात्मक सृजन के लिए उन्हीं प्रयत्नों का पुनर्निधारण आवश्यक है । मात्र राजनैतिक और आर्थिक सुधार ही पर्याप्त नहीं । भौतिक समृद्धि ही सब कुछ नहीं है । व्यक्तित्वों में उत्कृष्टता की मात्रा का सम्वर्धन भी आवश्यक है । हर क्षेत्र में घुसे हुए अनाचार को चुनौती देना आवश्यक है । श्रेष्ठता का समर्थक-दुष्टता विरोधी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जनमानस तैयार किया ही जाना चाहिए । नव-सृजन के लिए जनजागरण और मार्ग निर्धारण आवश्यक है । यही कार्य इन परिव्राजकों को करना होगा । वे अपने भागीरथी प्रयासों से अपने सम्पर्क क्षेत्रों को पुष्पोद्यान की तरह सुविकसित कर सकेंगे ऐसी आशा और उपेक्षा सहज ही की जा सकती है ।

कहाँ क्या करना है ? किस क्षेत्र की परिस्थिति और आवश्यकता क्या है ? यह देखते हुए स्थूल गति विधियाँ निर्धारित की जायेंगी, किन्तु मूल तथ्य जहाँ का तहाँ रहेगा । जन-जन में चरित्र निष्ठा और समाज निष्ठा उत्पन्न करना और सृजन प्रयोजनों के लिए अपनी स्थिति के अनुरूप योगदान देना । यही जन-जन को सिखाया जाय । जिस आस्तिकता और धार्मिकता की आस्थाएँ जगानी हैं वे उनकी प्रतिक्रिया मनुष्य में चारित्रिक पवित्रता और व्यावहारिक प्रखरता उत्पन्न करने के रूप में ही सामने आनी है । शक्तिपीठों का, उनके साथ जुड़े हुए परिव्राजकों का प्रवाह, प्रयास उसी स्तर का होगा कि वे वातावरण में युगान्तरीय चेतना उत्पन्न करें और ध्वंस को सृजन में बदलने का चमत्कार कर दिखायें ।

लक्ष्य महान् है साथ ही व्यापक भी । ज्ञान यज्ञ से वातावरण में न जीवन का संचार करना, विचार क्रान्ति से आवांछनीयताओं को उलट देना अपने समय की, विश्व मानव की आज की महती आवश्यकता है । यह किसी देश जाति की नहीं ४०० करोड़ मनुष्यों के विनाश या विकास की समस्या के समाधान का प्रश्न है । इसलिए उसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है ! साथ ही जटिल और गहन भी । इस सृजन के लिए शिल्पी भी उच्च स्तर के ही चाहिए और बड़ी संख्या में भी । यही वह अदृश्य प्रश्न है जिसके समाधान पर शक्ति-पीठों का हर प्रयास सार्थक सिद्ध हो सकता है । अन्यथा निष्प्राण निर्माणों से धर्म का कलेवर भले ही बढ़ जाय उससे प्राण संचार सम्भव हो सकेगा । शक्तिपीठें मन्दिरों की भावुकता के उभारने के लिए नहीं, दूरगामी सृजन प्रयोजन को ध्यान में रखकर बनाई गई हैं । उनके पीछे परिव्राजकों का स्तर और प्रयास ही लक्ष्य को पूरा कर सकने में सफल होगा ।

एक ओर शक्ति-पीठों के निमार्ण कार्य में उत्साह उत्पन्न हुआ है। दूसरी ओर परिव्राजकों को ढालने का प्रयास चल पड़ा है । दोनों दिशा में चल रही तत्परता इन दिनों देखते ही बनती है । प्रथम श्रेणी की शक्ति-पीठें पिछले नक्शे के अनुसार प्राय: डेढ़ दो लाख लागत की बनती थीं । वे तीन मंजिली थीं । अधिक स्थानों पर यह निर्माण जल्दी और अधिक संख्या में सम्भव हो सके इसके लिए एक नया नक्शा बनाया है जो दो मंजिला है और एक लाख के करीब में बन जाता है । पहले इन्हें द्वितीय श्रेणी का माना गया था अब उनमें थोड़े संशोधन के साथ प्रथम श्रेणी में ही गिन लिया गया है । कस्बों और देहातों में शायद इतनी व्यवस्था भी न हो सके इसलिए वहाँ के लिए चालीस हजार लागत के द्वितीय श्रेणी के डेढ़ मंजिले शक्ति पीठों का निर्धारण हुए है । भूमि प्राय: सभी में साठ फुट चौड़ी-अस्सी फुट लम्बी आवश्यक होगी । भव्यता की शोभा, सुविधा, बढ़ी-चढ़ी होने के लाभ आकर्षण से इन्कार नहीं किया जा सकता । जहाँ अधिक पूँजी जुटा सकने का प्रबन्ध होगा, वहाँ वैसा ही किया जाना प्रशंसनीय है, किन्तु जहाँ तंगी है, वहाँ हलकी व्यवस्था से काम चलाने की नीति भी अपनानी पड़ेगी । अन्यथा प्रगति क्रम कुछ ही स्थानों तक सीमाबद्ध होकर रह जायेगा ।

नव निर्धारण के अनुसार दो मंजिलें, डेढ़ मंजिले, एक लाख एवं चालीस हजार वाले बड़े-छोटे शक्ति-पीठ स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार तेजी से बनते जा रहे हैं । समर्थ शाखाओं में सर्वत्र इस दिशा में भाव-भरे प्रयत्न चल रहे हैं और प्रतिस्पर्धा उभर रही है । यह उज्ज्वल विषय के शुभ चिन्ह हैं । साथ ही जागृत आत्माओं में यह उमंगें भी उठ रही हैं कि वे युग आह्वान में समयदान की आहुति देने के लिए रास्ता खोज निकालें । यह चिन्तन सही भी है । आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण के लिए श्रम, समय देने का इससे अच्छा और इससे सुव्यवस्थित सुअवसर कदाचित ही फिर किसी को मिल सकेगा । प्रव्रज्या में सम्मिलित होने का अदृश्य उत्साह भी उसमें कम नहीं उभर रहा है । जैसा कि भवन निर्माण का दृश्य प्रयास सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहा है । शक्ति-पीठों के साथ जुड़कर काम करने के लिए सृजन शिल्पियों के अत:करणों में इन दिनों उठ रही उमंगें देखते ही बनती हैं । प्रव्रज्या पंजीकरण की सूची बताती है कि पारमार्थिक तत्परता की युगान्तरीय चेतना जागृत आत्माओं को किस प्रकार झकझोरने और तनकर खड़ा होने के लिए विवश बेचैन कर रही है ।

प्रव्रज्या को गौरवास्पद बनाने के लिए हीरों को खरादने की तरह प्रशिक्षण का प्रबन्ध आवश्यक था । सो शान्ति कुंज में बना लिया गया है । वहाँ पहले से भी इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्तर का प्रबन्ध था, अब उसमें आवश्यक अभिवर्धन और भी कर दिया गया है । १५ जुलाई से यह प्रशिक्षण प्रक्रिया चल पड़ेगी । न्यूनतम एक महीना और अधिकतम जितना आवश्यक है, यह प्रशिक्षण हर युग-शिल्पी को नये सिरे से लेना होगा । पिछले दिनों जिनने अपना नाम वानप्रस्थों में वरिष्ठ-कनिष्ठ समय दानियों में नोट कराया था उन्हें नई आवश्यकता के अनुरूप योग्यता सम्वर्धन के लिए नये सिरे से इस अभिनव प्रशिक्षण में सम्मिलित होने के लिए कहा गया है। टोली नायक, कार्यवाहक, समयदानी वर्ग के कर्म-योगी भी इस पाठ्यक्रम में सम्मिलित हो सकते हैं । कौन कब आये इसका निर्धारण भी स्थान और सुविधा का संतुलन मिलाकर ही किया जायेगा । एक बार में १०० से अधिक के लिए प्रबन्ध नहीं हो सकता, इसमें से न्यूनतम एक महीना और अधिकतम बहुत समय ठहरने की प्रक्रिया भी चलेगी । ऐसी दशा में शिक्षार्थियों में से किसको कब आना है यह निर्धारण पत्र व्यवहार से ही सम्भव हो सकेगा ।

भाषण, कला, संगीत, पर्व संस्कार, यज्ञ आदि कर्मकाण्ड, कार्यक्षेत्र के अनुरूप रचनात्मक कार्यों का निर्धारण, प्रतिकूलताओं से निपटना, व्यक्तित्व का परिष्कार, प्रभावी जन सम्पर्क, सामयिक समस्याओं का समाधान जैसे अनेकों विषय पाठ्यक्रम में सम्मिलित रखे गये हैं । समझने से लेकर अभ्यास करने तक की प्रक्रिया साथ-साथ चलेगी । शिक्षार्थी की रगड़ाई, मँजाई इस स्तर की हो जायेगी कि पेनी और चमकीली तलवार से उसकी तुलना की जा सके ।

शक्ति-पीठों के कार्यक्षेत्र की लपेट में प्रायः सारा देश, सारा विश्व आ जाने की आशा है । ऐसी दशा में हर गाँव में स्थानीय कार्यकर्त्ता की भूमिका हर कोई अपने सामान्य उपार्जन कार्यों में संलग्न रहते हुए भी भली प्रकार निभा सकता है । प्रशिक्षित व्यक्ति अपने स्थान पर भी बहुत कुछ कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त वे लोग हैं जो पूरा समय इस योजना में देना चाहते हैं । इनमें से, हर एक को तो स्वीकृत नहीं किया जा सकता, फिर भी जो कसौटी पर खरे उतरेंगे उन्हें निश्चिन्तता पूर्वक काम करने की व्यवस्था बनाई गई है । शक्ति-पीठों के साधन उतने रहेंगे जिनके सहारे ब्राह्मणोचित निर्वाह का प्रबन्ध हो सके ।

शक्तिपीठों से जुड़े परिव्राजकों की निर्वाह व्यवस्था के कई स्तर हैं । परिवार के लिए जिन्हें कुछ भेजना नहीं पड़ेगा प्रायः वैसे ही लोगों को प्राथमिकता दी जा सकती है । सामान्यतया यह प्रबन्ध किया जा रहा है कि स्थायी कार्यकर्त्ताओं के निर्वाह का प्रबन्ध शक्तिपीठ करें । इनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो घर से अपना निर्वाह मँगाते रह सकें । हर शक्ति-पीठ में एक वानप्रस्थ पत्नी समेत रहेगा । बच्चे उसके साथ नहीं होंगे । यह पति-पत्नी मिलकर पूजा आरती से लेकर अतिथि सत्कार तक की स्थानीय व्यवस्था सम्भालेंगे आगन्तुकों के साथ सत्संग, परामर्श का क्रम भी यह लोग चलायेंगे और साहित्य केन्द्र का उत्तरदायित्व भी इन्हीं के कन्धों पर होगा। इसके अतिरिक्त चार अन्य परिव्राजक रहेंगे । चारों के पास साइकिलें होंगीं । दो-दो की जोड़ियों में निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सम्पर्क क्षेत्र में जायेंगे और एक-एक दिन एक-एक गाँव में रुकेंगे । इनका निवास निर्वाह का प्रबन्ध शक्ति-पीठ में रहेगा । इनमें से कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिनकी जन्म-भूमि समीप ही है और जो रात्रि को घर पहुँचने, दिन में ड्यूटी सम्भालने का क्रम चला सकते हैं । ऐसी दशा में घर और शक्तिपीठ दोनों को सम्भालना भी सम्भव हो सकता है और परिवार के लोगों का विरोध भी हल्का हो सकता है । ऐसे लोगों का निर्वाह व्यय इस प्रकार भी किया जा सकता है जिससे मिल-जुलकर उनके परिवार को भी थोड़ी सहायता मिल सके ।

निर्वाह व्यय के सम्बन्ध में सबको एक लाठी से नहीं हाँका जा सकता । परिस्थिति की भिन्नता को ध्यान में रखना होगा । किन्तु इतना अवश्य है कि उपयुक्त युग शिल्पियों में से अब किसी को भी यह असमंजस नहीं रहेगा कि वे निर्वाह की व्यवस्था न कर पाने के कारण समय की पुकार में योगदान दे सकने से वंचित रह गये ।

शक्ति-पीठों का निर्माण और प्रव्रज्या अभिवर्धन की दिशा में साथ-साथ उठ रहे कदमों को देखकर उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना हर विचारशील को अति निकट और सुनिश्चित ही दृष्टिगोचर होगी ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ संचालन के लिए पाँच परिव्राजक

शरीर पाँच तत्वों से बना है और चेतना का संचार पाँच प्राणों द्वारा होता है । काया की संरचना जल, पवन, पृथ्वी, अग्नि और आकाश से हुई है और जीवन चेतना का संचार प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान इन पाँच प्राणों के द्वारा हो रहा है । पंच, गव्य, पंचामृत पंचांग, पंच रत्न, जैसे वर्गीकरण में इस पंचधा संरचना का बोध होता है । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच नियम और पाँच उप नियम प्रसिद्ध हैं । यम ने नचिकेता को पंचाग्नि विद्या सिखाई थी । यह कुण्डलिनी जागरण के लिए प्रयुक्त होने वाली पाँच प्राण साधनाएँ हैं । वृहस्पति ने देव समुदाय के पाँच कोशों का अनावरण कराया था । यह वैदिक पक्ष है । इन साधनाओं की सफलता से जो पाँच विभूतियाँ उपलब्ध होती हैं, उन्हीं को देव संज्ञा दी गई है । पाँच देवता प्रसिद्ध हैं । उन्हीं की शक्तियों को देवियाँ कहते हैं । देव और देवियों में पाँच-पाँच ही प्रधान हैं । इन्हें सावित्री के पाँच मुख कह सकते हैं ।

गायत्री तीर्थों को पंच सूत्री कार्यक्रमों को बौद्ध-मर्यादाओं में प्रधानता प्राप्त पंचशील कह सकते हैं । शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में से प्रत्येक की पाँच-पाँच मर्यादाएँ हैं । उनमें प्रत्येक के उत्कर्ष की पाँच-पाँच योजनाएँ हैं । इन्हीं को पंचशील कहा गया है । गायत्री साधना के अविच्छिन्न अंग बलिवैश्व में की पाँच आहुतियाँ नित्य देने की विधि-परम्परा में इन्हीं पंचशीलों को धारण करने और उन्हें निष्ठापूर्वक अपनाये रहने का संकल्प दुहराया जाता है ।

गायत्री तीर्थों की निर्धारित कार्य पद्धति को सुसंचालित रखने के लिए पाँच-पाँच व्रतशील परिव्राजकों के जत्थे नियुक्त रहेंगे । रजत जयन्ती वर्ष में प्रव्रज्या अभियान को गतिशील किया गया है । समयदानी, कनिष्ठ और वरिष्ठ वर्ग के आस्थावान परिव्राजकों ने अपने श्रम समय का जो अनुदान, अंशदान किया है, उसका उपयोग करने के लिए उनकी नियुक्तियाँ इन्हीं गायत्री तीर्थों में होती रहेंगी और वे उस धर्म के स्थानीय गतिविधियों को सुसंचालित रखने के अतिरिक्त समीपवर्ती क्षेत्रों में नव जागरण की चेतना उत्पन्न करने के उद्देश्य से परिभ्रमण करते रहेंगे । साधारणतया तीन तीर्थ में रहकर वहाँ के उत्तरदायित्वों का निर्वाह करेंगे और दो अपने नियत निर्धारित मंडल में पैदल एवं साइकिलों से धर्म चेतना उत्पन्न करने के निमित्त नियमित रूप से जाया करेंगे । हर गायत्री तीर्थ में पाँच परिव्राजकों की नियुक्ति होगी और वे ही तीर्थ की सीमा में तथा उसके साथ जुड़े क्षेत्र में आलोक वितरण करने जाया करेंगे ।

प्रव्रज्या अभियान और गायत्री तीर्थ स्थापना को एक-दूसरे का पूरक कहा जाता है । दोनों के मध्य अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहेगा । तीर्थ की इमारत को पाँच तत्वों से बना हुआ शरीर और उसमें गतिविधियों का जीवन संचार करने वाले पाँच प्राणों के प्रतीक पाँच परिव्राजकों के रूप में देखा जा सकेगा । रजत जयन्ती वर्ष के आरम्भ में प्रचार केन्द्र बनाये जाने का संकेत किया गया था और प्रव्रज्या अभियान हाथ में लिया गया था । प्रव्रज्या अब प्रौढ़ हो गई है । उसने महापुरश्चरण अभियान में सफल योगदान दिया है । तीर्थ यात्रा पद यात्रा, प्रव्रज्या उस रूप में तो जारी रहेगी ही, अब उसी अभियान को गायत्री तीर्थों के संचालन का कार्य भार भी सौंपा जायेगा ।

आमतौर से मन्दिरों में पुजारी ऐसे रखे जाते हैं जिन्हें स्वल्प वेतन में उपलब्ध किया जा सके । थोड़ा वेतन पाने और आवश्यकता एवं इच्छा अधिक रहने के कारण उन्हें एक ही उपाय सूझता है कि चढ़ोत्तरी का पैसा मन्दिर समिति को न देकर अपने पास रखा जाय । आगन्तुकों को जप कराने, जन्म पत्री बनवाने, कथा, कराने, भोजन दिलाने जैसे आग्रह करके कुछ न कुछ वसूल करते रहा जाय । इस याचना वृत्ति का परिणाम अश्रद्धा ही हो सकता है, वैसा होता भी है । देवालय के पुजारी वहाँ पहुँचने वालों की दृष्टि से उथले स्तर के ही होते हैं । उनका कोई नैतिक प्रभाव नहीं होता । ज्ञान एवं तप का अभाव रहने से वे इन आगन्तुकों को कोई उच्चस्तरीय प्रेरणा भी नहीं दे पाते । प्रणाम तो कितने ही करते हैं, पर आशीर्वाद फलित हो सके ऐसे बल प्रभाव की पूँजी न होने से उनका कथन निष्फल ही चला जाता है । पुजारी होने के लिए ब्रह्माण वंश के लोग ही उपयुक्त समझे जाते हैं, पर यह नहीं देखा जाता है कि उनमें ब्राह्मणत्व कितनी मात्रा में है । कहीं निर्धन कहीं प्रचुर धनवान पुजारियों में उनका पिछड़ापन या चातुर्य ही कारण होता है । दोनों ही परिस्थितियों में उस विशिष्टता का अभाव ही दीखता है जो तीर्थ संचालकों में होनी चाहिए । देवपूजा के निरन्तर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संलग्न रहने वाले व्यक्ति भी यदि देवोपम न बन सकें तो फिर इस तथ्य को कौन स्वीकार करेगा कि देवालयों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं के दर्शन से किसी को कुछ सन्तोषजनक सत्परिणाम उपलब्ध हो सकेंगे ।

गायत्री तीर्थों का निर्माण उच्चस्तरीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा रहा है । आवश्यक है कि उनकी गतिविधियों का संचालन करने वाले भी व्यक्तित्व की दृष्टि से ऐसे हों, जो सम्पर्क में आने वालों में धर्म श्रद्धा का संचार कर सकें । यह स्तर ही वह आधार है जिसके सहारे इन धर्म सस्थानों के सफल सिद्ध होने की आशा की जा सकती है ।

गायत्री तीर्थों में नियुक्ति पाँच परिव्राजक स्थानीय कर्मचारी नहीं होंगे । वे ब्रह्मवर्चस् शान्ति कुञ्ज में प्रशिक्षण प्राप्त होंगे । उन्हें गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से ऐसा बनाने का प्रयत्न किया जायेगा जो सौंपे गये उत्तरदायित्व को सम्भाल सकने के उपयुक्त कहा जा सके। तीर्थ पुरोहित को उपासना पद्धति एवं धर्म-कृत्य करा सकने की शास्त्रीय जानकारी होनी चाहिए । वे अपने विषय में प्रवीण एवं अनुभवी सिद्ध हो सकेंगे तभी उन्हें इन तीर्थों में भेजा जायेगा । कोई सीधी नियुक्ति कहीं भी नहीं होगी और न उपयुक्त शिक्षण में प्रवीणता प्राप्त किये गये बिना किसी को तीर्थ संचालन का काम सौंपा जायेगा।

प्रत्येक तीर्थ में परिव्राजकों की संख्या न्यूनतम पाँच होगी । क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुसार उन्हें दस तक किया जा सकेगा । मन्दिर का कार्यक्रम पूरा करने के अतिरिक्त शेष जितने भी बनेंगे । दो-दो की टोलियाँ बनाकर समीपवर्ती क्षेत्रों में नियमित रूप से नव जागरण का वातावरण बनाने के लिए जाया करेंगे । प्रात: जाकर शाम को लौट आना । अथवा आवश्यकतानुसार रात्रि को कहीं रह जाना यह सब वे लोग अपने विवेक के अनुसार किया करेंगे ।

परिव्राजक एक वर्ष से अधिक कहीं नहीं रहेंगे । उनका स्थानान्तरण हर वर्ष होता रहेगा । पाँचों एक साथ ही रहें यह आवश्यक नहीं । पुरानी मण्डलियाँ बिखरती नई-नई बनती रहेगी । यह इसलिए कि व्यक्तियों में मोह बन्धन न जुड़ने पाये । पुरानी से हटने-बिछुड़ने और नयों के साथ तालमेल बिठाने में कठिनाई तो हर बार होती है, पर मोह बन्धन नहीं बाँध पाते और राग-द्वेष के वे अंकुर नहीं पनपने पाते जो लोक सेवा में निरत परमार्थ संलग्न व्यक्तियों के लिए अन्तत: हानि कारक ही सिद्ध होते हैं ।

एक वर्ष से अधिक ठहरने की बात कभी-कभी कहीं-कहीं अपवाद के रूप में ही बनेगी अन्यथा साधारणतया स्थानान्तरण ही होते रहेंगे । इससे बहुत बड़ा लाभ यह है कि कहीं कोई घनिष्टता का वैयक्तिक लाभ भी नहीं उठा सकेगा और मोह बंधनों से बँधकर उस उद्देश्य से च्युत होने लगेगा जो प्रव्रज्या ग्रहण करते समय परिभ्रमण करने की उत्तरदायित्व निभाने के लिए शपथ पूर्वक शिरोधार्य किया था । सरकारी अफसरों के अनिवार्यत: तबादिले होते रहते हैं । इसमें सरकारी खर्च भी बढ़ता है और अफसर भी नाक भौं सकोड़ते हैं, कठिनाई अनुभव करते हैं । इतने पर भी प्रवाहमान जल में स्वच्छता बनी रहती है अवरुद्ध जलाशय सड़ते हैं । बँधकर स्थान विशेष पर बैठे जाने वाले सन्त भी आपत्ति ग्रस्त होकर कई बार तो सामान्य गृहस्थों जैसे परिग्रही एवं प्रपंची हो जाते हैं । गायत्री तीर्थों के संचालक लोग लोभ मोह के बँधनों में न बँधने पायें, किसी संस्थान पर आधिपत्य जमाने की दुरभि सन्धि न रचने पायें, इसलिए आरम्भ से ही स्थानान्तरण की मर्यादा बना दी गई है । इसमें पुराना चोला छोड़ने, नया ग्रहण करने जैसी अड़चन तो अवश्य अनुभव होती है, पर उद्देश्य की दृष्टि से लाभ ही लाभ है । अनेक परिस्थितियों में रहने, अनेक समस्याओं का सामना करने, अनेक अनुभव सम्पादित करने का लाभ कम महत्वपूर्ण नहीं है । इसी प्रकार इन तीर्थ क्षेत्रों के लोगों को भी नये परिव्राजकों की नई विशेषताओं का अनुभव हर वर्ष होते रहने की नवीनता भी बनी रहेगी । इसमें हानि इतनी ही है कि मोह का दबाव पड़ता है । लाभ असीम है । इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए परिव्राजकों की मण्डलियाँ बिछड़ते रहने, स्थान बदलते रहने की परम्परा आरम्भ से ही बना दी गई है ।

परिव्राजकों को अपने निर्वाह के लिए स्वयं प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा । याचना करने की किसी से इस निमित्त घनिष्टता बढ़ाने और चापलूसी करने की भी उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उनका निर्वाह व्यय वहन करना शान्ति-कुञ्ज का उत्तरदयित्व होगा ।

गायत्री तीर्थों की यह परम्परा रहेगी कि वहाँ प्रतिमा के सम्मुख पैसा चढ़ाने की परम्परा नहीं होगी । कोई पैसा चढ़ाना चाहेगा तो उसके बदले में प्राय: उतने ही मूल्य का 'प्रसाद साहित्य' उसे हाथों हाथ दे दिया जायेगा । इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रयोजन के लिए गायत्री चालीसा, गायत्री चित्र युग निर्माण संकल्प के अत्यधिक सस्ते संस्करण छापे गये हैं । पैसा चढ़ने के बदले इस प्रसाद साहित्य को ले जाकर स्वयं पढ़े-पूजा प्रयोजन में प्रयुक्त करें और अन्य प्रियजनों को उसे देकर उनमें भी धर्म चेतना उत्पन्न करें, तो इतनी ही देव-दक्षिणा पर्याप्त मानी जायेगी । कोई विशेष दक्षिणा देना चाहेंगे तो अपने किसी दोष-दुर्गुण को छोड़ने घटाने की, किन्हीं सत्प्रवृत्तियों को अपनाने, बढ़ाने की प्रतिज्ञा निर्धारित संकल्प-पत्र पर लिखकर देवता के चरणों में प्रस्तुत करेंगे ।

प्रव्रज्या अभियान एवं तीर्थ स्थापना की प्रक्रिया आरम्भ करते ही यह व्यवस्था बनाई गई है कि युग निर्माण योजना के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाले सभी साहित्य का लाभांश विशुद्ध रूप से इसी पुण्य प्रयोजन के लिए सुरक्षित कर दिया है । भवन निर्माण का कार्य तो धर्म प्रेमी उदार लोगों की सहायता से सम्पन्न होगा, पर परिव्राजकों के निवार्ह का अधिकांश खर्च युग साहित्य में जो थोड़ा सा लाभांश रहता है उसी से पूरा करने का प्रयत्न किया जायेगा । जो कमी पड़ेगी उसकी पूर्ति उन लोगों के, अंशदान से की जायेगी जो प्रव्रज्या का महत्व तो समझते हैं, पर कारण वश स्वयं नही जा सकते । ऐसे लोग समय के स्थान पर कुछ पैसा दिया करेंगे तो उसका उपयोग कार्यक्षेत्र में गये हुए परिव्राजकों के निर्वाह व्यय के निमित्त कर दिया जाया करेगा । हर हालत में परिव्राजक स्वयं अपने निर्वाह कीं चिन्ता से मुक्त रहेंगे । और निजी रूप से इसके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करेंगे । परिस्थिति वश कहीं भोजन करना पड़े तो बात अलग है अन्यथा वस्त्र आदि के रूप में किसी का कोई दान उपहार निजी प्रयोजन के लिए स्वीकार न करेंगे । उन्हें आरम्भ से ही सिखाया गया है कि व्यक्तिगत रूप से दान ग्रहण करना प्रतिग्रह है । पूर्वजों की बात दूसरी थी । अपने समय में निजी रूप से याचना करना एवं उसे ग्रहण करना उपयुक्त नहीं । प्राचीन समय में भी प्रतिग्रह का निषेध था । वर्तमान स्थिति में युग निर्माण योजना के परिव्राजकों पर भी ऐसे ग्रहण पर प्रतिबन्ध लगाते हुए नियुक्त व्यक्तियों का व्यय भार मिशन द्वारा उठाये जाने और परिव्राजकों के स्वाभिमान को उच्चस्तरीय बनाये रहने का निश्चय किया गया है ।

गायत्री तीर्थों के लिए, भवन निर्माण के लिए, अर्थ साधन जुटाने के लिए जिस प्रकार प्रयत्न किये जा रहे हैं उसी जागरूकता के साथ परिव्राजकों की भर्ती उनकी शिक्षा के लिए भी प्रयास किया जा रहा है । शान्ति कुञ्ज ब्रह्म विद्यालय का पाठ्यक्रम लोक सेवी परिव्राजकों के लिए ही बनाया गया है । उसमें भाषण कला-संगीत, उपासना विज्ञान, यज्ञ-प्रक्रिया, पर्व एवं त्यौहार एवं षोड्स संस्कार करने, देव पूजा की शास्त्रीय पद्धति समीपवर्ती क्षेत्रों में-धर्म चेतना बढ़ाने की विधि व्यवस्था, युग समस्याओं के समाधानों की जानकारी, रचनात्मक प्रवृत्तियों का अभिवर्धन, अवांछनीयताओं के विरुद्ध संघर्ष, परिव्राजकों के लिए निर्धारित पंचशील का परिपालन जैसे अनेक विषयों का परिव्राजकों को नियमित अध्ययन कराया जायेगा हौर समय-समय पर उन्हें सामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप परामर्श निर्देश के लिए शान्ति कुञ्ज बुलाया भी जाता रहेगा ।

जिस प्रकार तीर्थों के भवन छोटे होते हुए भी तिमजिले भव्य, आकर्षक एवं धर्म परम्परा का गौरव बढ़ा सकने योग्य बनाये जा रहे हैं, उसी प्रकार यह प्रयत्न भी समानान्तर चल रहा हैं कि इन तीर्थों की संचालन कर्त्री पाँच देव कुमारों की मंडली भी अपने व्यक्तित्व आचरण एवं पुरुषार्थ से इस स्थापना को गौरवान्वित करने में सफल सिद्ध होती रहे । गायत्री तीर्थों पर निहित स्वार्थों की काली छाया मँडलाने न पाये, उसमें दुरभि संधियों को किसी छिद्र में होकर प्रवेश करके ध्वंस रचने का अवसर न मिलने पाये इसके लिए पैनी सतर्कता को आरम्भ से ही जुड़ा रखा गया है ।

गायत्री तीर्थों के उद्देश्य महान् हैं । उनके द्वारा जिन रचनात्मक प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन होने वाला है, उन्हें धर्म चेतना के पुनर्जीवन का देव प्रयास कहा जा सकता है। इनकी सफलता का विश्वास जिस आधार पर किया गया है वह है तीर्थ निर्माण के साथ प्रव्रज्या अभिमान का उस पुण्य प्रयोजन में सक्रिय योगदान । इन दोनों के मिलन को कृष्ण, अर्जुन की, राम, हनुमान की जोड़ी कह सकते हैं। युग सृजन की महाभारत योजना में हर तीर्थ में रहने वाले पाँच परिव्राजक पाँच पाण्डवों की भूमिका निभा सकेंगे, हमें ऐसी ही आशा करनी चाहिए ।

शक्ति-पीठों का संचालन परिव्राजकों द्वारा

शरीर को पाँच तत्वों का चमत्कार और चेतना का, पाँच प्राणों का सघन सहकार कहा जा सकता है । गायत्री

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्ति-पीठों का निर्माण जिस भाव-भरी आशा उमंगों के साथा किया जा रहा है उसका आधार उन पाँच परिव्राजकों को कहा जा सकता है जो उन देव-संस्थाओं का संचालन अपने देव-प्रयासों के माध्यम से करते रहेंगे। देवालयों के प्रति गिरती हुई श्रद्धा की रोकथाम करने तथा मन्दिरों को अनुपयोगी बनाने वालों को पुनर्विचार के लिए विवश करने में गायत्री शक्ति-पीठों की असाधारण भूमिका होगी। यह कार्य अनायास ही नहीं हो जायेगा। इमारतें उतना सब नही कर लेंगी । यह कार्य प्राणवान् परिव्राजकों का है । निर्माण में लगा हुआ धन एवं उदार श्रम सहयोग अपना कार्य करके कुछ ही समय में निवृत हो जायेगा, पर इन्हें इन धर्म-संस्थानों को जीवन्त रखने, उनके प्रति जन-साधारण की श्रद्धा अर्जित करने, प्रबुद्ध वर्ग को इन निर्माणों को उपयोगिता स्वीकार करने के लिए जिस प्रकार के उत्कृष्ट क्रिया-कलाप अपनाने होंगे उनका सूत्र संचालन यह परिव्राजक ही करेंगे।

गायत्री के पाँच मुख हैं, पाँच देवता प्रसिद्ध हैं, पंचामृत को उपयोगी माना जाता है, पाँच तत्व और पाँच प्राण अपनी समर्थता का परिचय देते रहते हैं । उन्हीं पंचकों में इन पाँच परिव्राजकों की भी गणना की जा सकती है जो इन गायत्री शक्ति-पीठों की विशिष्टता सिद्ध करने में अनवरत श्रम एवं भाव-भरे मनोयोग के साथ युग तपस्वियों की तरह निरन्तर जुटे रहेंगे । पाँच देव-कन्याओं के जत्थे महिला जागृति अभियान के अन्तर्गत पिछले दिनों देश भर में भेजे गये थे और उनने अपनी प्रखरता से वातावरण गरम किया । जिस प्रयोजन के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया गया था, वह एक शब्द में पूरी तरह सफल हुआ ही कहा जा सकता है । पाँच परिव्राजकों के जत्थे भी लगभग उसी स्तर के समझे जा सकते हैं ।

रजत जयन्ती वर्ष में प्रव्रज्या अभियान आरम्भ किया गया है । उसके लिए अग्रसर होने वाले युग शिल्पियों का एक अच्छा समुदाय उभर कर आगे आया है । जागृत आत्माओं के नाम भेजा गया महाकाल का युग-निमन्त्रण निरर्थक नहीं गया । भावनाशील उत्कृष्टता ने उसे ध्यानपूर्वक सुना और युग धर्म की आवश्यकता स्वीकार करते हुए अपना आत्मदान प्रस्तुत किया है । इन्हें इस वर्ष में विशेष सत्र लगाकर प्रशिक्षित किया गया है । महापुरश्चरण योजना के अन्तर्गत होने वाले आयोजनों में दो-दो परिव्राजकों के जत्थे भेजे गये हैं। उनने प्रस्तुत कार्यक्रमों में जिस शालीनता एवं तत्परता के साथ आयोजन कर्त्ताओं का हाथ बटाया है, उसकी सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है । महापुरश्चरण आयोजनों को एक वर्ष में समाप्त न करके २५ महीने चलने देने का निश्चय किया गया है । उसकी पूर्ण आहुति एक वर्ष बाद गायत्री जयन्ती सन् ८१ में होगी, तब तक प्रस्तुत परिव्राजकों को फिर दो-दो के जत्थों में आगामी कार्यक्रमों के लिए भेजा जाता रहेगा।

आशा की गई है कि रजत जयन्ती वर्ष का दूसरा वर्ष पूरा होते-होते जून ८१ तक एक वर्ष के भीतर चौबीस गायत्री शक्ति-पीठ बन चुके होंगे । इनमें पाँच-पाँच परिव्राजक नियुक्त कर दिये जायेंगे । तब तक महापुरश्चरण योजना के लिए उन्हें भेजने की आवश्यकता भी पूरी हो चुकेगी । इस प्रकार चैबीस तीर्थों में १२० परिव्राजक नियुक्त कर दिये जायेंगे। जहाँ अधिक की आवश्यकता सझी जायेगी, वहाँ पाँच से अधिक भी भेजे जा सकेंगे।

कहा जा चुका है कि यह जत्थे एक-एक वर्ष बाद बदल जाया करेंगे। उन्हें नये-नये स्थानों पर जाकर नये अनुभव सम्पादित करने का अवसर मिलेगा। शक्ति पीठों के सम्पर्क क्षेत्रों को भी नई विशेषताओं से युक्त नये लोक-सेवाओं के सम्पर्क का नया आनन्द लेते रहने की नवीनता का लाभ मिलता रहेगा। बड़ी बात है कि परिव्राजकों की गरिमा लोभ और मोह के चंगुल में फँसकर नष्ट-भ्रष्ट होने से बची रहेगी। सरकारी अधिकारियों की तरह शक्ति-पीठों के संरक्षकों का भी स्थानान्तरण उपयोगी समझा गया है । यों स्थान बदलने और सम्पर्क छोड़ने में भावनात्मक एवं व्यवस्था परक कठिनाई तो होती ही है, पर क्या किया जाय—जल-धारा के प्रवाह मान रहने पर ही उसकी स्वच्छता बने रहने का प्रयोजन पूरा होता है।

परिव्राजकों की भर्ती तथा उनके शिक्षण का क्रम शान्ति-कुञ्ज में विगत आठ महीने से चल रहा है। समय की आवश्यकता को देखते हुए थोड़े-थोड़े दिनों के शिक्षण सत्रों में उन्हें रखा गया और काम चलाऊ निर्देश देकर बाहर भेज दिया गया, पर आगे से उनके भावी उत्तरदायित्वों को देखते हुए अधिक कारगर शिक्षण की व्यवस्था की जायेगी और वह व्यक्ति विशेष की स्थिति के अनुरूप समय साध्य भी होगी । जुलाई ८० से प्रव्रज्या प्रशिक्षण की सुव्यवस्थित पाठ्य-प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी । अक्टूबर से फिर देश-व्यापी महापुरश्चरण आयोजन प्रारम्भ होंगे, उनके लिए परिव्राजकों के जत्थे अधिक कुशलतापूर्वक काम कर सकें इसके लिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुलाई-अगस्त-सितम्बर के तीन महीने विशुद्ध रूप से परिव्राजक प्रशिक्षण के लिए रखे गये हैं। भाषण कला, सम्भाषण कुशलता, संगीत, कथा प्रवचन, यज्ञ कृत्य, पर्व संस्कार जन्म-दिन आदि कर्मकाण्ड एवं जन-सम्पर्क के उतार-चढ़ाव, धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण की रूप-रेखा एवं कार्य पद्धति का इस प्रशिक्षण में समुचित समावेश रहेगा। तीन महीने की इस शिक्षा को भी अगले वर्षों के आयोजनों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर तदनुरूप ही बनाया जा रहा है। इसके उपरान्त इसे शिक्षण-पद्धति की सामयिक आवश्यकता की पूर्ति से आगे बढ़ा कर स्थायी कर दिया जायेगा और उसमें गायत्री शक्ति-पीठों के लिए स्थायी रूप से भेजे जा सकने योग्य युग शिल्पियों की भर्ती होगी ।

गायत्री शक्ति-पीठ प्राय: भारत के हर प्रान्त में बनने जा रहे हैं। उनको भाषा सम्बन्धी कठिनाई पड़ेगी । परिव्राजकों के स्थानान्तरण होते रहेंगे । उन्हें एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भेजा जाता रहेगा । ऐसी दशा में आवश्यक है कि उन्हें कई भाषाएँ आती हों । भारत में १४ भाषाएँ संविधान में मान्यता प्राप्त हैं । इसके अतिरिक्त ऐसी क्षेत्रीय भाषाएँ एक सौ से अधिक हैं जिनकी लिपि तो पृथक् नहीं है, पर शब्द कोश—व्याकरण आदि में पूरी-पूरी भिन्नता है। जो जिस क्षेत्र में जन-सम्पर्क के लिए उतरेगा, उसे उस समुदाय की भाषा आनी ही चाहिए इस दृष्टि से प्रव्रज्या विद्यालय में भाषायी प्रशिक्षण की अतिरिक्त कक्षाएँ चलेंगी और प्रयत्न किया जायेगा कि परिव्राजकों को कई-कई भाषाएँ आये। न केवल भाषा का, वरन् क्षेत्रीय संस्कृति एवं प्रथा परम्पराओं की भी उन्हें समुचित जानकारी हो। इसके बिना वे किसी एक क्षेत्र में भले ही जमे रहें, विभिन्न क्षेत्रो में काम करने योग्य न बन सकेंगे । ईसाई मिशनरी योरोप आदि देशों से आते हैं तो उन्हें जहाँ काम करना है वहीं की भाषा तथा संस्कृति का अध्ययन क्रिश्चियन कॉलेजों में प्राप्त करना पड़ता है। इसके उपरान्त ही वहाँ उन्हें भेजा जाता है । बौद्ध-प्रचारकों के लिये भी ऐसी ही व्यवस्था थी । नालन्दा, तक्षशिला आदि संघारामों में एशिया तथा योरोप की प्रमुख भाषाएँ पढ़ाने तथा जहाँ उन्हें भेजा जाना है, वहाँ की प्रथा-परम्परा सम्बन्धी जानकारियाँ भी प्रशिक्षण का अंग रहती थीं। अपने प्रव्रज्या प्रशिक्षण के लिए शान्ति-कुञ्ज में भी वैसी ही व्यवस्था बनाई जायेगी। कार्य-क्षेत्र तो अपना भी प्राचीन बौद्धों और अर्वाचीन ईसाइयों की तरह ही व्यापक बनना है । प्रवासी भारतीयों को भी युग सृजन में अपनी भूमिका निभाने की प्रेरणा दी जानी है और प्राय: ७४ देशों में बसे इन प्रवासी भारतीयों के उद्बोधन के लिए भी जत्थे भेजे जाने हैं । गायत्री शक्ति पीठें वहाँ भी बनती हैं। ऐसी दशा में भाषायी ज्ञान उन क्षेत्रों का भी कराने के लिए प्रस्तुत प्रशिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था सम्मिलित की जा रही है।

गायत्री शक्ति-पीठों के प्रकारान्तर से, धर्म मंच से लोक-शिक्षण को पुण्य प्रक्रिया के प्रसार केन्द्र कहा जा सकता है। चलते-फिरते पुस्तकालयों की तरह उन्हें चलते-फिरते ब्रह्म विद्यालय कहा जा सकता है। नियुक्त पाँच परिव्राजकों को इनमें प्रशिक्षण क्रम चलाने वाले पाँच उपाध्याय, अध्यापक कहा जा सकता है। स्कूली पढ़ाई और धर्म शिक्षा की प्रक्रिया में अन्तर होता है। इसी प्रकार छात्रों को एक जगह बिठा कर पढ़ाने के तथा घर-घर जाकर जन-जन से मिलकर सिखाने की रीति-नीति अलग प्रकार की होती है । इतने पर भी उद्देश्य एक ही है । परिव्राजकों की अध्यापन पद्धति जन-सम्पर्क होने के कारण चलते-फिरते स्तर की है तो भी उनसे आवश्यकता वही पूरी होती है, जिसे प्राचीन काल के गुरुकुल एवं आरण्यक पूरी करते थे। प्रव्रज्या पर्यटन नहीं है। परिव्राजक यायावरों की तरह भटकते नही हैं, उन्हें जन-जन में धर्म-चेतना उत्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है और उसी युग साधना में तपस्वी योगी की तरह एक निष्ठा भाव से लगे रहने के लिए कहा गया है। वह उसी उत्तरदायित्व को शपथपूर्वक निभावेंगे भी।

शक्ति-पीठों में भेजे गये परिव्राजकों की प्रशिक्षण प्रक्रिया इस प्रकार चलेगी (१) दर्शकों को नौ प्रतिमाओं के दर्शन कराते हुए नौ सत्प्रवृत्तियों का महत्त्व समझाना और उन्हें अपनाकर देवोपम जीवन जीने की प्रेरणा करना । (२) जिनमें जिज्ञासा के कुछ भी बीजांकुर मिलें उन्हें सत्संग कक्ष में बिठाकर आत्मीयतापूर्वक भारतीय संस्कृति के तत्त्व बीज गायत्री और उसके अवलम्बन का स्वरूप समझाना। इस अवलम्बन की दूरगामी प्रतिक्रिया समझाना । (३) सम्पर्क में जिनके साथ घनिष्ठता बढ़े उन्हें साधना, स्वाध्याय, संयम एवं सेवा के द्वारा सर्वतोमुखी आत्म-विकास के लिए प्रोत्साहन तथा मार्ग-दर्शन देना। (४) दो परिव्राजकों के एक जत्थे का प्रतिदिन दो गाँवों में जाना। विचारशील लोगों से सम्पर्क बनाना। नव-युग के सन्देशों से अवगत करना और तदनुरूप ढलने की प्रेरणा देना। (५) जन्म-दिन मनाने का उत्साह उत्पन्न करके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति-निर्माण की, संस्कार प्रचलन से परिवार निर्माण की, पर्व त्यौहारों को सामूहिक रूप से मनाकर समाज निर्माण की चेतना उत्पन्न करना । इन धर्म-कृत्यों के सहारे अधिकाधिक सम्पर्क साधना (६) रात्रि को किसी गाँव में रुक कर वहीं रामायण, गीता आदि की कथा कहना और धर्म-चेतना उत्पन्न करना (७) पन्द्रह दिन का गति चक्र बना कर हर दिन दो गाँवों में जाने के क्रम से तीस गाँवों का एक मण्डल बनाना और उसे अपना मण्डलीय कार्य क्षेत्र मानकर विचार-क्रान्ति के लिए पथ-प्रशस्त करना (८) अपने क्षेत्र में चल पुस्तकालयों की व्यवस्था बढ़ाना (९) प्रौढ़ शिक्षा, नशा निवारण, वृक्षारोपण, श्रमदान, व्यायामशाला, स्वच्छता सहकारिता, कुप्रथाओं, अंध-मान्यताओं का और अनैतिकताओं का उन्मूलन, जैसे रचनात्मक प्रयत्नों में स्वयं लगना तथा दूसरों को लगाना। (१०), कर्मक्षेत्र में चल रही सरकारी गैर सरकारी सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनाने के लिए जन-सहयोग जुटाना।

परिव्राजकों को सम्पर्क प्रयोजन, व्यक्तिगत दोस्ती बढ़ाना या आवारागर्दी में भटकना नहीं वरन् रचनात्मक कार्यों के लिए भावभरा जन-सहयोग उत्पन्न करना है। इन प्रयोजनों में निरन्तर दत्त चित्र रहने वाले परिव्राजक अपने उज्ज्वल चरित्र और शालीनता भरे सौम्य व्यवहार से असंख्यों को स्नेह-बन्धनों में जकड़ेंगे और उन्हें मानवी गरिमा को बढ़ाने वाला दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत करेंगे, ऐसा विश्वास किया जा सकता है। युग निर्माण योजना विशुद्ध रूप, से व्यक्ति निर्माण, परिवार-निर्माण और समाज-निर्माण के कार्यक्रमों में संलग्न है। उसका विश्वास है कि राष्ट्र और विश्व का वास्तविक निर्माण इसी प्रकार हो सकता है। राजनैतिक विरोध समर्थन दूसरे लोगों का काम है; परिव्राजक तो सरकारी गैर सरकारी सभी क्षेत्रों का, सभी व्यक्तियों का सहयोग समर्थन सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए उपलब्ध करने और उन्हें उचित सहयोग देने के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

गायत्री-शक्ति पीठों की बढ़ती हुई आवश्यकता को देखते हुए अगले दिनों प्रव्रज्या अभियान को अधिक आगे बढ़ाया जायेगा।

शक्ति-पीठों के लिए प्राणवान् परिव्राजक चाहिए !

अतीत के पुनरागमन, वर्तमान के निर्धारण और भविष्य के संयोजन के त्रिविधि उद्देश्य पूरे कर सकने में सर्वथा समर्थ गायत्री शक्ति-पीठ योजना अपने समय का अनुपम प्रयास है। इसे भागीरथी तप साधना के साथ जुड़ा हुआ गंगावतरण कह सकते हैं। अभी वह कल्पना के गर्भ में है । इन दिनों उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली सम्भावना और प्रतिक्रिया का सुखद अनुमान ही लगाया जा सकता है, पर जब भी वह मूर्ति रूप में सामने होगी तो प्रतीत होगा कि मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग अवतरण के संदर्भ में जो सोचा, कहा और किया जा रहा था, वह अनर्गल नहीं था।

प्राणवान् संकल्प-साधन हीन परिस्थितियों में भी किस प्रकार उगते-बढ़ते और फलते-फूलते हैं, इसके अनेक उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर अंकित हैं। उस श्रृंखला में नवयुग के अवतरण के लक्ष्य रख कर किये गये प्रयास को अपने समय का दुस्साहस ही कहा जायेगा। इसकी उपमा खोजनी हो तो समुद्र पाटने के लिए प्राणपण से सन्निद्ध टिटहरी से अथवा सागर को पाटने में प्रवृत्त गिलहरी से ही दी जा सकती है । सेतुबन्ध बँध जाने जैसे सहज बुद्धि द्वारा असम्भव घोषित किये जाने वाले कार्य को सम्भव बनाने के लिए रीछ-वानरों ने प्राणों की बाजी लगाई थी। साधन हीन क्या कर सकते हैं इसके लिए उनके लिए इतना ही सम्भव था कि लकड़ी-पत्थर जमा करने में श्रम लगायें। इतिहास साक्षी है कि काम उतने भर से भी चल गया था। पहाड़ मनुष्यों का भार वहन करते हैं, यह एक तथ्य है, पर मनुष्य पहाड़ का भार वहन कर सकते हैं यह विश्वसनीय नहीं है। इतने पर भी प्रचण्ड संकल्पों की सामर्थ्य जिन्हें विदित है वे जानते हैं कि मनुष्य-मनुष्य है। उसे भगवान की निकटतम प्रतिकृति ही कहा जा सकता है। जब वह उच्च-उद्देश्य को लेकर अपनी समस्त आस्था को नियोजित करके कार्यक्षेत्र में उतरता है तो सचमुच ही असम्भव जैसी कोई वस्तु रह नहीं जाती।

ग्वाल-बालों की कमजोर कलाइयाँ और पीले बाँस की लाठियाँ गोवर्धन उठा सकती हैं इस पर कौन, किस आधार पर विश्वास करे ? इतने पर भी अनहोनी, होकर रही गोवर्धन उठ ही गया। युग परिवर्तन का संकल्प महाकाल का है । उसी के प्राण उस अभियान में संलग्न हैं। जब मनुष्यों के प्राणवान् संकल्प पूरे हो सकते हैं तो सृष्टि संतुलन का उत्तरदायित्व सम्भालने वाली शक्ति की इच्छा क्यों पूरी न होगी ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अगले दिन सुखद सम्भावनाओं से भरे पड़े हैं। कुक्कुट बहुत समय से प्रभात के आगमन की सूचना दे रहा था। अब ब्रह्म मुहूर्त की उदीयमान उषा ने सुनिश्चित आश्वासन दिया है कि अरुणोदय सन्निकट है, उसके लिए अब अधिक समय प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी। इन दिनों उभरते उग्र विग्रहों को सूक्ष्मदर्शी प्रसव पीड़ा मानते हैं और कहते हैं अधीर होने की आवश्यकता नहीं, महान् उद्भव के दर्शन अब होने वाले हैं।

इस प्रभात बेला में प्रत्येक जागृत आत्माओं को युग सृजन के लिए अपना भाव भरा योगदान प्रस्तुत करना ही चाहिए। सृजन प्रयोजनों में गायत्री शक्ति-पीठों का निर्माण इमारत की दृष्टि से कम और लक्ष्य पूर्ति की दृष्टि से अधिक महत्त्व का है। इमारत बनाना भी एक काम है, पर उसमें भी बड़ी आवश्यकता उन आत्माओं के योगदान की है जो स्वयं जग चुके और दूसरों को जगा सकने की स्थिति तक जा पहुँचे हैं। प्रव्रज्या आमन्त्रण उन्हीं के लिए। रजत जयन्ती वर्ष के इस महान् अभियान ने अनेकों को आत्मा हुतियाँ देने के लिए झकझोरा और वे अपना बिस्तर समेट कर शान्ति-कुञ्ज में आ विराजे हैं। इनकी संख्या बड़ी है। गायत्री नगर इन्हीं की निवास व्यवस्था के लिए बन रहा है। इतने पर भी समय की माँग देखते हुए जितने आत्मदानी आगे आये हैं; वे जलते तबे पर पानी की कुछ बूदें पड़ने के समान हैं। वरिष्ठ और कनिष्ठ वानप्रस्थों का समय दान इस वर्ष महापुरश्चरण योजना में गति देने में बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। इतने पर भी माँग को देखते हुए इस संख्या को भी कम ही कहना चाहिए। प्रव्रज्या का युग निमन्त्रण स्वीकार करने के लिए असंख्यों के मन में हलचल मची हुई है। स्थानीय क्षेत्रों में दो-दो घण्टा समय नित्य देने वाले समयदानी यह अनुभव कर रहे हैं कि कुछ साहस और जुटाया जाय। रचनात्मक प्रवृत्तियों में दो घंटे नित्य देना सराहनीय तो है, पर संतोषजनक नहीं। वर्ष में दो महीने किसी प्रकार लगातार काम करने और बाहर जाने के लिए निकलने चाहिए। यह आन्तरिक हलचल युग-निर्माण परिवार के प्रत्येक जीवन्त घटक में चल रही है। समयदानियों, परिव्राजकों की संख्या बढ़ रही है और उनका दर्जा क्रमशः बढ़ रहा है। समयदानी, कनिष्ठ—और कनिष्ठ वरिष्ठ के रूप में अपनी पदोन्नति होते देख रहे हैं। इस प्रकार की प्रगति को परमेश्वर की वास्तविक अनुकम्पा एवं प्रत्यक्ष प्रेरणा ही मानना चाहिए।

गायत्री शक्ति-पीठों के लिए नये किस्म के परिव्राजक चाहिए। वे ऐसे होने चाहिए जो कुछ-कुछ समय बाद ही घर दौड़ने की आतुरता व्यक्त न करें। इसमें उन्हीं से काम चलेगा जो पैर जमा कर स्थिर चित्त से अपने प्रस्तुत प्रयोजन को ही सब कुछ माने और उसी में रमे जुटे रहें। जल्दी-जल्दी घर लौटने की जिन्हें आतुरता न हो। प्रत्यक्ष है कि इस प्रकार की भाग-दौड़ में जो किराया भाड़ा खर्च होता है, वह उतना जा पहुँचता है कि वेतन देकर काम करने जितना हिसाब जा पहुँचे। इन दिनों चल रहे महापुरश्चरण आयोजनों में उन्हें थोड़े-थोड़े दिन के लिए भेजने का कुछ तुक भी है, पर गायत्री शक्ति-पीठों में थोड़े दिन रहने और भाग खड़े होने से क्या काम चलेगा। वहाँ तो स्थायी रह सकने की मनःस्थिति एवं परिस्थिति वाले लोगों से ही काम चलेगा। निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति वे ही हो सकते हैं जिनके ऊपर पारिवारिक उत्तरदायित्व नहीं है। जो उनसे निवृत्त हो चुके अथवा जिनने अभी उस प्रकार का भार सिर पर उठाया नहीं है, एवं जल्दी ही उठाने का मन भी नहीं है।

तीर्थ सेवन एक प्रकार का तप है। फिर तीर्थों के संचालक तो ब्रह्मर्षि कहलाते हैं। जिन्हें यह गौरव अनुकूल पड़ता हो, जिन्हें यह आत्मकल्याण का उत्कृष्टतम माध्यम प्रतीत होता हो उनके लिए तीर्थ संचालकों की विशिष्ट श्रेणी के परिव्राजक होने का साहस जुटाना चाहिए। युग-निर्माण मिशन के सूत्र संचालक ने २४ वर्ष तक २४ गायत्री महापुरश्चरण पूरे करने में अपना सारा समय और मन लगाया है। इसी तपश्चर्या की उपलब्धि है जिससे उस काया में से ब्रह्मवर्चस् की प्रचण्ड ऊर्जा निस्तृत होती और युगान्तरीय चेतना उत्पन्न करती दृष्टिगोचर होती है। लगभग इसी स्तर की साधना उन्हें भी करनी होगी जो तीर्थ संचालक की साधना करें। इसे महन्त मैनेजर जैसा पद न समझा जाय। यश, मान, वैभव, सुविधा एवं अहंता की तृप्ति का इसे सरल माध्यम समझ कर कोई इस स्थान को न अपनाये। तीर्थ सेवन एक विशुद्ध तप है। इसी तप साधना का आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण से भरा पूरा यह अति महत्त्वपूर्ण स्वरूप है। इसमें आत्मसंतोष और ईश्वरीय आग्रह के दोनों तत्त्व समान मात्रा में भरे पड़े हैं। अपने युग की इसे सर्वोत्तम साधना कह सकते हैं। लोभ और मोह से जिन्हें निवृत्ति मिल चुकी हो, परिवार के उत्तरदायित्वों से जो निश्चिन्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हो चुके हों, उनके लिए इस परमार्थ द्वार में प्रवेश करने का खुला अवसर है ।

बौद्ध कालीन प्रव्रज्या का यही स्वरूप था । उसमें गृह-निवृत्त एवं पूर्णतया आत्म-समर्पित लोग ही दीक्षा ग्रहण करते थे । अतने समय में उस स्तर का आत्मबल लोगों में दिखाई नहीं देता, इसलिए सामयिक प्रव्रज्या के रूप में ही उस महान् परम्परा को किसी प्रकार लिया जा रहा है । दो-दो चार-चार महीने समय दे सकना भी आज की घोर स्वार्थपरता के वातावरण में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, उतने से भी बहुत काम बन रहा है । इतने पर भी यह पर्याप्त नहीं है । महान् प्रयोजनों के लिए, महान् व्यक्तित्वों की, साहसिक अनुदानों की आवश्यकता पड़ती है । गायत्री तीर्थ संचालन के लिए जिन परिव्राजकों की नियुक्ति होनी है उनकी स्थिति इतनी सुदृढ़ होनी चाहिए जो कुछ दिन खेल-खिलवाड़ करके फिर घर दौड़ जाने जैसी अस्थिरता न हो ।

एक वर्ष में एक तीर्थ में रहना होता है । चौबीस वर्ष में चौबीस तीर्थ पूरे हो जाते हैं, इसे एक प्रकार से पूर्ण योगाभ्यास कहना चाहिए । जो इस प्रकार का साहस करेंगे वे अपने मार्ग-दर्शन का सच्चा अनुगमन करने वाले कहे जायेंगे । एक स्थान पर बैठ कर चौबीस महापुरश्चरण करने की तुलना में तीर्थ संचालन की तपचर्या किसी भी दृष्टि से कम महत्त्व की नहीं है । तीर्थ मृत्यु को सौभाग्य माना जाता है । कितने ही लोग मरने से पूर्व 'काशी करवट' लेने पहुँचते हैं । जिन्हें यह अवसर नहीं मिल पाता, वे मरने के बाद अपनी अस्थियाँ किसी तीर्थ में विसर्जित करने की आकांक्षा करते हैं । यही प्रकारान्तर से तीर्थ सेवन की ही महिमा है जिसमे जीवित स्थिति में उसे पुण्य से वंचित रहने पर मरने से पूर्ण भी पश्चात् वहाँ पहुँचने की आकांक्षा करते हैं । यह सुयोग उन व्यक्तियों को मिल सकता है जो निवृत्त हो चुके हैं और तीर्थ-सेवन ही नहीं तीर्थ-संचालन का भी सौभाग्यप्राप्त कर सकते हैं ।

आमतौर से तीर्थ वास में निर्वाह खर्च स्वयं ही वहन करना पड़ता है । गायत्री शक्ति-पीठों में यह सुविधा भी है कि निवास एवं निर्वाह जैसे सुविधा साधन वहाँ उपलब्ध मिलेंगे । आत्म-कल्याण एवं लोक-कल्याण की सर्वांगपूर्ण साधना का तो सर्वोत्तम सुअवसर है ही; गृह-निवृत्त लोगों के लिए यह उपयुक्त अवसर है । अभी एकाकी व्यक्ति ही लिए जायेंगे, पर जिनकी गृहणी शारीरिक दृष्टि से समर्थ होंगी और तीर्थ प्रयोजन में कुछ हाथ बँटा सकेंगी उन्हें पत्नी समेत भी रहने की स्वीकृति मिल जायगी । बच्चे किसी भी स्थिति में साथ नही रह सकेंगे ।

जिनके ऊपर गृहस्थ के उत्तरदायित्व नहीं आये हैं और जल्दी ही उसे लादने का मन भी नहीं है, वे इस तीर्थ सेवन योजना में सम्मिलित हो सकते हैं । न्यूनतम एक वर्ष की भी यह अवधि हो सकती है अपेक्षा तो अधिक समय रहने की ही की गई है । क्योंकि प्रतिभा और कुशलता का निखार किसी भी कार्य में समय साध्य है । अनुभव और अभ्यास से ही प्रवीणता प्राप्त होती है और कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकना सम्भव होता है । इसलिए न्यूनतम एक वर्ष की अवधि ही तीर्थ संचालन के परिव्राजक प्रयोजन के लिए रखी गई है । अपेक्षा यह की जाय कि यह अवधि जितनी लम्बी हो उतनी ही निश्चिन्तता रहेगी और सुव्यवस्था बन पड़ेगी ।

तीर्थ संचालन से पूर्व न्यूनतम तीन मास की ट्रेनिंग प्राप्त करना आवश्यक है । ब्रह्मवर्चस् शान्ति-कुञ्ज में इसकी समुचित व्यवस्था है । यह ट्रेनिंग अवधि तीर्थ वास में सम्मिलित नहीं है, उसके अतिरिक्त है । इस प्रकार एक वर्ष का समय देने वालों को भी पन्द्रह महीने लग जायेंगे । दीर्घ कालीन और स्वल्प कालीन, सदा सर्वदा वाले और एक वर्ष बीते सभी परिव्राजकों की ट्रेनिंग एक जैसी, तीन महीने की ही है । इनके बाद ही किसी को तीर्थ संचालक के लिए परिव्राजक जत्थे में भेजा जा सकेगा । यों सभी परिव्राजक अवैतनिक होंगे । जिनके पास अपनी आजीविका है वे निजी खर्च अपने पास से भी चलायेंगे । जिनके पास वैसी सुविधा नहीं है वे तीर्थ में भोजन वस्त्र आदि निर्वाह प्राप्त कर सकेंगे । अपवाद के रूप में कुछ लोगों के लिए ऐसी व्यवस्था भी रखी गई है कि यदि अनिवार्य हो तो वह अधिकतम एक सौ रुपया मासिक तक उन पर अवलम्बितों के लिए भी भेज सकें । इस वर्ग की प्रथम ट्रेनिंग आगामी जुलाई, अगस्त सितम्बर में होगी । इसके बाद यह विद्यालय निरन्तर चलता रहेगा ।

जागृत आत्माओं का अंशदान अपेक्षित

गायत्री शक्ति पीठें, बनने जा रही हैं । उनकी इमारतें कलेवर की दृष्टि से निस्सन्देह छोटी हैं । इस घोर महँगाई के जमाने में मात्र डेढ़ लाख रुपया कितना होता है, और उतने भर से विशालता कहाँ उत्पन्न हो सकती है इसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुमान लगाने में किसी को भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इतने पर भी उनकी गरिमा इसलिए है कि वे अन्य देवालयों के समतुल्य दीखने पर भी सम्भावना की दृष्टि से नितान्त भिन्न हैं। बुद्ध के संघाराम और समर्थ गुरु के ग्राम्य मठ आरम्भ में कितने बड़े थे इसका कोई महत्त्व नहीं, गरिमा इस बात की है कि उनके द्वारा कितने महान् कार्यों का सम्पादन हुआ। गायत्री शक्ति पीठों का कलेवर देवालय—सत्संग भवन, अतिथि ग्रह का एक छोटा समन्वय ही होगा। विशालकाय धर्म-संस्थानों के निमित्त बनी इमारतों की तुलना में इन्हें; खिलौने भर ठहराया जा सकता है। इतने पर भी यह विश्वास किया जा सकता है कि वे अपने महान् प्रयत्नों के कारण अद्‌भुत एवं अनुपम ही कहे जायेंगे। इनके पीछे परिव्राजक योजना और धर्म चेतना उत्पन्न करने के निर्धारण को युग शक्ति कहा जा सकता है। युगान्तरीय चेतना उत्पन्न कर सकने की समर्थता ही इन निर्माणों के सम्मुख लोक विवेक को नतमस्तक होने के लिए विवश करेगी। धर्म का, धर्म संस्थानों का स्वरूप क्या होना चाहिए ? भूतकाल में क्या था ? इसका समाधान इन छोटे निर्माण की कुरेद बीन करने वाले किन्हीं महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँच सकेंगे, ऐसी आशा की जा सकती है।

गायत्री शक्ति-पीठों का निर्माण-युग की आवश्यकता का एक अविछिन्न अंग है। इसलिए समय की शक्तियाँ इस सृजन को पूरा कराने में परोक्ष सहयोग देंगी और निकट भविष्य में उन्हें देश के कौने-कौने में गर्वोन्नत मस्तक से खड़ा हुआ देखा जा सकेगा। यह शुभारम्भ जिस सत्ता और जिस संकल्प को साथ लेकर हुआ है उसकी पूर्णता को असंदिग्ध ही माना जाना चाहिए। २४ शक्ति पीठों का निर्माण आरम्भिक घोषणा का प्रथम चरण है। उसे 'इति' नहीं अथ कहना चाहिए। इस संख्या को कई गुनी विस्तृत होते हुए अगले ही दिनों देखा जा सकेगा।

इस निर्माण में हाथ बँटाने, कंधे से कन्धा, पैर से पैर मिला कर चलने के लिए जागृत आत्माओं को खुला आमन्त्रण प्रस्तुत है। सहयोग के अनेकों आधार हैं और उनमें से हर स्थिति का हर स्तर का व्यक्ति अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुरूप कुछ करने के लिए साहस जुटा सकता है। प्रश्न साधनों का नहीं साहस का है। साधन तो प्रचुर परिमाण में उनके पास भी लतियाते रहते हैं; जो निरन्तर अभाव की रट लगाये रहते और तृष्णा की आग में अध-जले मुर्दे की तरह झुलसते रहते हैं। बिना पढ़ा निर्धन, हजारी किसान, मात्र अपने श्रम का सहारा लेकर अजर-अमर हो सकता है और हजारी बाग जिले में हजार बाग लगा सकता है तो कोई कारण नहीं कि युग-सृजन की दृष्टि से उठाये गये ऐतिहासिक कदम में किसी भी स्थिति का व्यक्ति किसी न किसी प्रकार उसमें योगदन न दे सके।

भवन-निर्माण में पैसे की जरूरत पड़ेगी। युग-निर्माण परिवार में हजारों व्यक्ति ऐसे होंगे जो डेढ़ लाख रुपया अपनी प्रस्तुत सम्पत्ति में से निकाल दें तो उतने भर से उन्हें आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़े, ऐसी सम्भावना नहीं है। प्रश्न साधन का नहीं साहस का है। भगवान साधन तो असंख्यों को देते हैं, पर न जाने सत्साहस देने में क्यों कृपणता बरतते हैं। लगता है वही कृपणता उन लोगों पर छाई रहती है जिनके पास पैसा तो है, पर हृदय नहीं। उत्तराधिकारियों की अमीरी बढ़ाने के स्थान पर ऐसे लोग यदि अपने साधनों से युग की माँग पूरी करने में उदारता का परिचय दे सकें तो यही कहा जायेगा कि भगवान ने उन्हें साधन और साहस देकर सच्चे अर्थों में अपना कृपा पात्र बनाया।

कुछ लोग इतने प्रतिभावान और प्रतापी होते हैं कि अपने प्रभाव का उपयोग करके एक तीर्थ के निर्माण को लक्ष्य बना सकते हैं। प्रभाव भी एक प्रकार का वैभव ही है। जिनके पास वह है, उन्हें भी अमीरों की ही श्रेणी में गिना जायेगा। कुछ अपने पास से, कुछ मित्र परिचितों से समेट लिया जाय तो उतनी सी रकम इकट्ठी होने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। विशेषतया तब-जबकि उसकी पूर्ति में महाकाल का संकल्प जुड़ा होने से सफलता में कोई बड़ी अड़चन आने वाली नहीं है।

प्रस्तुत संकल्प २४ महीने में पूरा हो जाने की आशा है। बसन्त ७९ में सन्देश उतरा है। २४ महीने में बसन्त सन् ८१ तक यह संख्या पूरी ही नही हो जायगी वरन् इस परिधि को पार करके कहीं अधिक आगे बढ़ गई, कई गुनी पहुँच गई होगी। घोषित स्थानों में परिस्थितिवश परिवर्तन हो सकता है, पर स्थापनाओं में कमी नहीं पड़ेगी। इन २४ महीनों में निजी अनुदान के रूप में संचित पूँजी का एक अंश एवं मासिक आय का एक भाग नियमित रूप से देते रहने की बात सोची जा सकती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गिलहरी जब अपने बालों में बालू भरकर अपना श्रमदान सहयोग प्रस्तुत कर सकती है, केवट का नाव चलाने का श्रम सहयोग अविस्मरणीय बन सकता है तो भावनाशील लोगों का श्रम एवं श्रम का प्रतीक अंशदान भी इतना उपयोगी हो सकता है कि उससे आत्म-सन्तोष का एवं दूसरों के लिए अनुकरणीय उदाहरण का आधार बन सके। इस प्रकार के कण-कण भी एकत्रित होकर एक संयुक्त शक्ति के रूप में ऋषियों द्वारा संग्रहीत रक्त घट की उपमा बन सकते हैं। ऐसा संग्रह सीता के जन्म का कारण बना था । युग शक्ति के अवतरण में ऐसी भूमिका भी बहुत उपयोगी हो सकती है—भले ही वह कितनी ही छोटी क्यों न हो। २४ महीने लगातार कुछ-कुछ अंशदान देते रहने की बात धनी निर्धनों में से हर कोई सोच सकता है।

तीर्थ-यात्रा का पुण्य माना जाता है। तीर्थ में दान-पुण्य करने का महात्म्य बहुत है। फिर तीर्थ निर्माण का महत्त्व कितना बड़ा हो सकता है ? जप-तप करने वाले ब्राह्मण साधुओं को भोजन इस दृष्टि से कराया जाता है कि उनकी साधना का एक अंश इन अन्नदाताओं को भी मिलेगा। इन प्रचलित मान्यताओं में यदि कुछ सत्य और तथ्य हो तो तीर्थ-निर्माण का पुण्य इस सबसे अधिक ही माना जायगा। इन धर्म-संस्थानों से जो धर्म चेतना उत्पन्न होगी उस उत्पादन में इन पुण्यात्माओं का एक बड़ा भाग होगा जिनने इस सृजन में सहयोग दिया है।

तीर्थ यात्रा पाप निवृत्ति एवं प्रायश्चित के लिए भी की जाती है। यह प्रायश्चित तीर्थ स्नान से भी बढ़कर तीर्थ-निर्माण में किये गये अंशदान के रूप में भी पूरा हो सकता है।

यश कामना से जहाँ-तहाँ स्मारक बनाये जाते हैं। यह प्रयोजन भी वहीं अच्छी तरह पूरा हो सकता है, जहाँ अधिक लोग पहुँचें। अधिक लोगों द्वारा अधिक सराहना मिलने के लिए स्थान चुनना हो तो अपने पास-पड़ोस की बात सोचने के स्थान पर ऐसे स्थान चुने जाने चाहिए जहाँ से व्यापक और चिरस्थायी ख्याति मिलने की सम्भावना हो। प्रस्तुत तीर्थों में पाँच हजार से अधिक देने वालों के नाम के पत्थर लगा देने का भी निश्चय किया गया है। यों अच्छा तो यही है कि यश कामना करके पुण्य का मूल्य न घटाया जाय। स्वर्गीय पूर्वजों के निमित्त कई व्यक्ति कुछ दान-पुण्य करते हैं उनके लिए भी राशि को गायत्री शक्ति-पीठों के निर्माण में लगा देना अधिक श्रेयस्कर है।

अन्नदान, वस्त्र दान, गौ दान, औषधि दान, धनदान आदि का पुण्य फल समझा जाता है। इस सन्दर्भ में यह भी स्मरण रखा जाने योग्य है कि तीर्थ दान की गरिमा इस सबसे बड़ी है। गायत्री तीर्थ जीवन्त तीर्थ हैं—उनमें धर्म चेतना के व्यापक विस्तार का जो कार्यक्रम जुड़ा हुआ है उसे देखते हुए इसे ब्रह्मदान के रूप में मूर्धन्य माना जा सकता है।

युग-चेतना उत्पन्न करने वाले धर्म-धारणा के केन्द्र संस्थान बनने वाले इन गायत्री तीर्थों के निर्माण में जागृत आत्माएँ अपना ध्यान चौबीस महीने केन्द्रित रखें तो वे इस सन्दर्भ में बहुत बड़ी भूमिका प्रस्तुत कर सकती हैं । साधनों की दृष्टि से भले ही वे कितनी ही सामान्य क्यों न हों।

● ● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ यात्रा क्यों ? और कैसे करें ?

धार्मिक श्रेष्ठ सत्कर्मों में तीर्थ यात्रा को अग्रणी माना गया है। उसके दो प्रतिफल माने गये हैं, (१) पाप नाश (२) पुण्य फल की प्राप्ति। पाप नाश का अर्थ है दुष्कर्मों का प्रायश्चित। प्रायश्चित का अर्थ है किये हुए पापों का स्वेच्छापूर्वक दण्ड भुगत लेना। मात्र किसी नदी, सरोवर में शरीर को स्नान करा लेने का इतना ही उद्देश्य है कि शरीर की तरह अन्तःकरण एवं आचरण को भी पवित्र बनाने की उमंग उठे। यह उमंग जितनी व्यवहार में उतरेगी उतनी ही पवित्रता बढ़ेगी, पुण्य सम्पादित होगा। उससे जो लोक हित होता है उसके फलस्वरूप पिछले पापों का भुगतान होता है। समाज को जो क्षति पहुँचाई थी उसकी क्षति पूर्ति किये हुए पुण्य कर्मों से होती है। इस दिशा में नदी, सरोवरों के स्नान से, देव दर्शन से, तीर्थ यात्रा से जो प्रेरणा मिलती है उसकी प्रतिक्रिया पाप वृत्ति कर परित्याग करने के रूप में होती है। पाप नाश का अर्थ यह है कि पाप प्रवृत्ति का परित्याग किया जाये। किये हुए दुष्कर्मों की भरपाई करने के लिए उसी अनुपात से लोक हितकारी सत्कर्म करके पिछले दिनों जो हानि की है उसका सन्तुलन बनाने के लिए कष्ट सहा जाये, श्रम किया जाये और त्याग-बलिदान की उदार साहसिकता का परिचय दिया जाये।

तीर्थ यात्रा की दूसरी प्रेरणा है जीवन क्षेत्र में पवित्रता का अभिवर्धन उदारतापूर्वक परमार्थ प्रयोजनों में संलग्न होने से सत्कर्म की पूँजी बढ़ती है, पुण्य संचय होता है। तीर्थ यात्रा के साथ इस स्तर की जो उमंगें उठती हैं वे यदि प्रखर हुईं तो पुण्य कर्मों में लगाकर ही छोड़ती हैं। इस तरह प्रकारान्तर से तीर्थ यात्रा का प्रतिफल पुण्य कर्मों द्वारा पुण्य फल संचित कराने में सहायक होता है। यह प्रेरणा ही तीर्थ यात्रा का पुण्य फल सम्पादन का निमित्त बनती है। इसीलिए उसका वैसा ही महात्म्य बताया गया है।

तीर्थ यात्रा का वास्तविक स्वरूप धर्म प्रचार के निमित्त की गई पद यात्रा है। इसमें विराम स्थल प्राकृतिक एवं ऐतिहासिक स्थान भी रहते थे। यह मंडलियाँ सन्त सत्पुरुषों से मार्गदर्शन भी प्राप्त करती थीं। तीर्थों में वैसी सुविधा रहती ही थी। इसलिए विराम, विश्राम, निवास सत्संग के लिए उन विशेष स्थानों में वे टोलियाँ रहती थीं। जन-मानस का परिष्कार धर्म धारणाओं का विस्तार संसार का सबसे बड़ा पुण्य है। ब्रह्म-ज्ञान से, ज्ञान-दान से बढ़कर और कोई परमार्थ नहीं माना गया। धर्म प्रचार के निमित्त किया गया यह श्रम, त्याग निश्चित रूप से स्व-पर कल्याण का माध्यम और पुण्य फल संचय का साधन बनता था। ऐसा सत्साहस करने वालों के पाप कर्मों का प्रायश्चित होता ही है। पाप नाश और पुण्य फल संचय का जो महात्म्य तीर्थ यात्रा के साथ जुड़ा हुआ है उसका यही कारण है।

धर्मशास्त्रों में इसी कारण तीर्थ यात्रा के इन दोनों ही महात्म्यों के प्रतिफलों का स्थान-स्थान पर वर्णन किया है। कहा गया है कि—

अनुपातकिनस्त्वेते महापातकिनो यथा।
अश्वमेधेन शुद्धयन्ति तीर्थानुसरणेन च॥

—विष्णु स्मृति

पापी, महापापी सभी अश्वमेध से तथा तीर्थानुसरण तीर्थ यात्रा से शुद्ध हो जाते हैं।

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्त फलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्॥

पापी मनुष्यों के तीर्थ में जाने से उनके पाप की शान्ति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्यों के लिए तीर्थ यथोक्त फल देने वाला है।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रध्यानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्धचेत किं पुनः शुद्ध कर्मकृत्॥

जो तीर्थों का सेवन करने वाला, धैर्यवान, श्रद्धायुक्त और एकाग्र चित्त है, वह पहले का पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करने वाला है, उसकी तो बात ही क्या है ?

कामंक्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थभाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत्॥

जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थ यात्रा से कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती।

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्दसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो यथोक्त विधि से तीर्थ यात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्दों को सहन करने वाले वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं।

यावत स्वस्थोऽस्ति में देहो यावन्नेन्द्रिय विक्लवः।
तावत स्वश्रेयसां हेतुं तीर्थयात्रां करोम्यहम्॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब तक मेरा शरीर स्वस्थ है, जब तक आँख, कान आदि इन्द्रियाँ सक्रिय हैं, तब तक श्रेय प्राप्ति के लिए तीर्थ यात्रा करते रहने का निश्चय करें।

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्द्व सहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥

—नारद पुराण

जो यथोक्त विधि से तीर्थ यात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वों को सहन करने वाले वे धीर पुरुष स्वर्ग में जाते हैं।

विचारणीय यह है कि क्या तीर्थ यात्रा मात्र नदी, सरोवरों का स्नान, देव प्रतिमाओं का दर्शन या क्षेत्र विशेष का पर्यटन की प्रक्रिया भर है या उसके पीछे कोई लक्ष्य विशेष भी सन्निहित है। यदि कोई पुण्य फलदायक और पाप निवारक क्रिया-कलाप सन्निहित न हों तो पर्यटन दृश्य या स्पर्श मात्र के आधार पर आत्म-कल्याण जैसे महान प्रयोजन की पूर्ति कैसे हो सकती थी ? यदि परमार्थ इतना ही सस्ता रहा होता तो फिर कोई तप-तितीक्षा का कष्ट-साध्य मार्ग अपनाने के लिए क्यों तैयार होता। स्पष्ट है कि तीर्थ यात्रा के पीछे वे तत्व सन्निहित होने चाहिए जो व्यक्तिगत जीवन को परिष्कृत करने तथा लोक-कल्याण की सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन की भूमिका निभा सकें। यह नितान्त भ्रम ही है कि किसी स्थान विशेष में जैसे तैसे जा पहुँचने में तीर्थ यात्रा का पुण्यफल मिल सकता है। इस भ्रम का निवारण करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

न तोय पूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं मनोमतम्॥

जल से ऊपरी भाग को धो लेना ही स्नान नहीं है, स्नान तो उसका नाम है, जिससे बाहरी शुद्धि के साथ-साथ हम अपनी अन्तःशुद्धि भी कर लें।

न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्य भिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्ध मनोमलः॥

जल से शरीर को डुबो लेना ही स्नान नहीं कहलाता जिसने दम रूपी तीर्थ में स्नान किया है—मन इन्द्रियों को वश में कर रखा है, उसने वास्तव में स्नान किया है। जिसने मन का मैल धो डाला है, वही शुद्ध है।

जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्ध मनोमलाः॥

जल में निवास करने वाले जीव जल में ही जन्मते और मरते हैं, पर उनका मानसिक मैल नहीं धुलता इससे वे स्वर्ग कहाँ नहीं जाते।

न शरीर मल त्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः॥

—महाभारत

केवल शरीर के मैल को उतार देने से ही मनुष्य निर्मल नहीं हो जाता। मानसिक मैल का परित्याग करने पर ही वह अत्यन्त निर्मल होता है।

जिसके पीछे सत्प्रवृत्ति संवर्धन जैसा कोई उद्देश्य न हो, मात्र दर्शन पर्यटन तक ही जिसे पूर्ण मान लिया गया हो, ऐसी तीर्थ यात्रा पर व्यंग करते हुए महाभारतकार उसे निरर्थक भी बताता और निषेध भी करता है।

जाजले ! तीर्थमात्मैव मास्मदेशातिथिर्भव।
कारणैर्धर्ममन्विच्छन् न लोकानाप्नुते शुभान्॥

—शान्तिपर्व अ. २९६

हे जाजल, सबसे बड़ा तीर्थ आत्मा ही है, दूसरे तीर्थों में, देश-देश में, अतिथि बने क्यों भटको ? अपने भीतर ही धर्माधर्म को हेतु पूर्वक विचारो। जो मनुष्य हेतु युक्त धर्म पहिचानता और करता है वही तो शुभ लोकों को पाता है।

तीर्थ शब्द का अर्थ समझ लेने पर उसके उद्देश्य एवं स्वरूप का अच्छी तरह स्पष्टीकरण हो जाता है। तीर्थ शब्द 'तृ प्लवन तरणयो' धातु से बना है। 'पातृतुदिवचिरिचि सिचिभ्यस्थक्' इस उणादि सूत्र द्वारा 'थक्' प्रत्यय करने पर 'तीर्यते अनके' (जिससे तरा जाता है) यह अर्थ निकलता है।

निपानागमयोस्तीर्थमृषि जुष्ट जले गुरौ।

—अमर कोश

अमर कोश में निपान, आगम, ऋषि, जुष्ट तथा गुरु की भी तीर्थ संज्ञा कही है।

लोक व्यवहार में ज्ञानी, मनीषी, त्यागी, श्रेष्ठ सत्पुरुषों को भी तीर्थ उपाधि से विभूषित किया जाता है। संन्यासियों में एक सम्प्रदाय ही तीर्थ पदवी धारी होता है।

इन प्रसंगों पर विचार करने से वे व्यक्ति या साधन तीर्थ कहलाते हैं जो मनुष्य को भव बन्धनों से तारने उवारने में समर्थ होते हैं। आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने में सहायता करते हैं। स्पष्ट है कि साधनों एवं स्थानों की अपेक्षा सचेतन मनुष्य ही इस उद्देश्य को अच्छी तरह पूर्ण कर सकता है। इसलिए ज्ञानवानों का सान्निध्य तीर्थ यात्रा का उद्देश्य पूरा करता है। जहाँ ज्ञानी लोग रहते—सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन का प्रयत्न करते थे, वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्हीं विशेषताओं के कारण तीर्थ की मान्यता बनती थी और उन्हें तीर्थ कहा जाने लगता था। ज्ञानियों के सत्प्रयत्नों को मूर्तिमान करने वाले स्थान ही सच्चे अर्थों में तीर्थ कहलाने के अधिकारी हैं। इसमें महत्ता स्थान की नहीं ज्ञानियों की है। तीर्थों के प्राण ऐसी ही उच्चस्तरीय आत्माएँ होती हैं। कहा गया है कि—

न ह्याम्मयानि तीर्थानि न देवाः मृच्छिलामयाः,
ते पुनंति उरुकालेन दर्शनाद् एव साधवः,
तेषाम् एव निवासेन देशास्तीर्थी भवन्ति वै।

—भागवत्

जल से तीर्थ नहीं बनते, न देवता मिट्टी और पत्थर से बनते हैं, उनकी उपासना करने से बहुत काल में मन की शुद्धि होती है, पर सच्चे साधुओं के तो दर्शन और सत्संग से ही चित्त: सद्य: शुद्ध हो जाता है, तीर्थ स्थानों में जो सच्चे साधु, तपस्वी, विद्वान बसते हैं वे ही तीर्थ के तीर्थंकर हैं।

स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः।

—योगवाशिष्ठ

सन्त स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं।

विप्राणां चरणौ तीर्थं गवां प्रष्ठं तथा मतम्।
एते यत्र ही तिष्ठन्ति तच्च तीर्थमुदाहृतम्॥
बलानां च शिरस्तीर्थं स्वंतीर्थं चक्षु रुच्यते।
तथैव दक्षिणः कर्णस्तर्थं स्वं परिगण्यते॥
सत्यवाक्यं तु वाक्तीर्थं पुराण पठनं तथा।
देवालिंगधरं चित्तं तीर्थमित्यु च्यते बुधैः॥
असचिन्ता विरहितं मानसं तीर्थमुच्यते।
दातृणां करौ तीर्थं देवपूजाकरौ तथा॥

ब्राह्मणों के दोनों चरण तीर्थ हैं तथा गायों की पीठ तीर्थ मानी गयी है। जहाँ ये रहते हैं उसे भी तीर्थ ही कहा गया है। बालकों का सिर तीर्थ होता है तथा अपनी आँखें तीर्थ होती हैं। अपना दाहिना कान भी तीर्थ माना गया है। सत्य वचन वाणी का तीर्थ है, पुराणों का पठन भी तीर्थ है। देवताओं का ध्यान करने वाला चित्त भी विद्वानों द्वारा तीर्थ कहा जाता है। असत् चिन्तन से मुक्त मन ही तीर्थ है। दाताओं के दोनों हाथ तीर्थ होते हैं तथा देव पूजा करने वाले दोनों हाथ भी तीर्थ होते हैं।

ब्राह्मणाऽङ्गम तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
एषां वाक्योदकेनैव शुद्धयन्ति मलिना जनाः॥

—अगस्त्य

ब्राह्मण सर्वफल प्रद चलते-फिरते तीर्थ हैं, जिनके वाक्योदक से ही मलिन जन शुद्ध हो जाते हैं।

समान तीर्थेवासी—

—अष्टाध्यायी ४।४।१०७

जो छात्र एक गुरु से पढ़ते हैं उन्हें सतीर्थ कहते हैं, यथा—

समाने तीर्थ गुरौं वसतीति सतीर्थ्यः।

अचार्य गुरु ही तीर्थ हैं।

वृहद्धर्म पुराण के पूर्व खण्ड में तीर्थ-प्रादुर्भाव नाम के कुछ अध्याय ही हैं। उनके अन्त में यह भाव व्यक्त भी हुआ है—

वनवास गतो रामो यत्र तत्र व्यवस्थितः।
तानि चोक्तानि तीर्थानि शतमष्टोत्तरं क्षितौ॥

—वृहद्धर्म. पूर्व खण्ड १४।३४

भगवान राम वनवास के समय जहाँ-जहाँ रुके वे १०८ स्थान तीर्थ कहे गये।

व्रजेवाप्यथवारण्ये यत्रसन्ति बहुश्रुताः
तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत्।

—महा. वन.

नगर में अथवा वन अरण्यक में जहाँ भी ज्ञानी लोग रहते हैं वही स्थान तीर्थ बन जाता है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थी भूताः स्वं विभो।
तीर्था कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदा भृताः॥

—भागवत १।१३

तीर्थ दो प्रकार के हैं—एक दृश्यमान, दूसरे अदृश्य। तीर्थ स्वरूप अन्त:करण स्थान रूपी तीर्थों को पवित्र करते हैं।

दुर्योधन को उपदेश देते हुए उसके शुभ चिन्तक भगवान् कृष्ण को तीर्थ कहते हैं और उनके सम्पर्क से कुल की रक्षा करने का उपदेश देते हैं—

तदलं ते विरोधेन शमंगच्छ नृपात्मज।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि॥

—महा. उद्योग.

हे राजकुमार ! विरोध छोड़ शान्ति ग्रहण कर। तू कृष्ण रूपी तीर्थ की शरण में जा और अपने कुल की रक्षा कर।

उपर्युक्त उद्धरणों में तीर्थ स्थानों को श्रेय देने वाले ऋषि कल्प महामनीषी ही होते हैं। स्थानों की गरिमा वहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निवास करने वाले उन्हीं महामानवों की लोकोपयोगी सत्प्रवृत्तियों के कारण नहीं है।

तीर्थ यात्रा के समय भावनाएँ उच्चस्तरीय होनी चाहिए। उस अवधि में आत्म-निर्माण और लोक-कल्याण के लिए क्या करना चाहिए? किस प्रकार करना चाहिए ? यहाँ चिन्तन-मनन अन्तःक्षेत्र में चलता रहे। उस अवधि में अपने गुण-कर्म-स्वभाव को श्रेष्ठ बनाने का अभ्यास किया जाये। वैसी गतिविधियाँ अपनाई जायें जिनसे भविष्य में व्यवहार में उत्कृष्टता का समावेश स्थायी तथ्य बन जाये। इन यात्राओं में चिन्तन और क्रिया-कलाप उच्चस्तरीय रखने से ही तीर्थ यात्रा का फल मिलता है।

वस्तुतः यह आचरण बन्धन ही पुण्यफल का प्रधान कारण है—जो धनोपार्जन के लिए अनर्थ नहीं करता, जो मिताहारी, जितेन्द्रिय और निष्काम है, उसे तीर्थ का फल मिलता हैं। जो क्रोध रहित है और शुद्ध बुद्धि युक्त है, सत्य बोलने वाला, धार्मिक नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने वाला तथा प्राणिमात्र के सुख-दुःख को अपनी आत्मा के समान देखने वाला है, उसे तीर्थ का फल मिलता है।

जिसके हृदय में ईश्वर, देवता, धर्म, तीर्थ आदि पर श्रद्धा नहीं है, जो दुराचारी और नास्तिक है, जिसके हृदय में सन्देह भरे हुए हैं और जो व्यर्थ की तर्कणा करता है। ऐसे मनुष्य को तीर्थ का फल नहीं मिलता।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्च कीर्तिश्च सतीर्थ फलमश्नुते॥
प्रतिग्रहा पुण्यावृत्तः सन्तुष्ठो एव केनचित्।
अहंकार विमुक्तिश्च सतीर्थं फलमश्नुते॥
अदाम्भिको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्व संगैर्यः सतीर्थ फल मश्नुते॥
अक्रोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु सतीर्थफल मश्नुते॥
अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोछिन्न संशयः।
हेतु निष्ठश्च पंचैते न तीर्थ फल भागिनः॥

—महा. वन.

जिसके हाथ, पैर और मन वश में है, जिसमें विद्या और तप है, एवं जिसका यश है, अर्थात् जिसने परोपकार करके यश पाया है उस पुरुष को तीर्थ का फल मिलता है।

जो दान लेने से बचा है, जिसको भाग्यानुसार मिले हुए में सन्तोष है और अभिमान नहीं है, उसे तीर्थ का फल मिलता है जिसमें पाखण्ड नहीं है।

क्रिया क्रमेण महता तपसा नियमेन च।
दानेन तीर्थयात्राभिश्चिर कालं विवेकतः॥
दुष्कृतैः क्षयमापन्ने परमार्थ विचारणे।
काकतालीय योगेन बुद्धिर्जन्तोः प्रजायते॥

बहुत दिनों तक यज्ञ दानादि करने-कराने से, कठिन तपस्या, नियम, तीर्थ यात्रा आदि द्वारा विवेक बढ़ता है और इनके द्वारा बुरे कर्मों का नाश हो जाने पर काकतालीय न्याय से मनुष्य में परमार्थ बुद्धि प्रस्फुटित हो जाती है।

जो लोग सैर-सपाटे के उद्देश्य से तीर्थ यात्रा में परिभ्रमण तो करते हैं परन्तु अपने दोष-दुर्गुणों को छोड़ने की आवश्यकता नहीं समझते, उनके परित्याग की प्रेरणा नहीं लेते और न आत्म-सुधार का इस अवसर पर कोई विशेष साहस नहीं करते हैं उनकी यह यात्रा एक प्रकार से निरर्थक निष्फल ही चली जाती है। कहा भी है—

मनो वाक् काय शुद्धानां राजस्तीर्थं पदे पदे।
तथा मलिन चित्तानां गंगापि कीटकायिका॥

हे राजन् ! मन, वाणी और काया से शुद्ध हुये मनुष्यों के लिए पग-पग पर तीर्थ है, किन्तु मलिन चित्त वालों के लिये गंगा भी एक तलैया है।

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापी मलिन एव सः॥

जो लोभी है चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है, और विषयासक्त है, वह सब तीर्थों में स्नान करके भी पापी और मालिन ही रह जाता है।

दानमिज्या तपःशौचं तीर्थ सेवा श्रुतं तथा।
सर्वाण्ये तान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः॥

भीतर का भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच तीर्थ सेवन, शास्त्र श्रवण और स्वाध्याय ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं।

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थ स्नानान्न शुद्धयति।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥

चित्त के भीतर यदि दोष भरा है तो वह तीर्थ स्नान से शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिरा से भरे हुए घड़े को ऊपर से सैकड़ों बार धोया जावे तो भी वह पवित्र नहीं होता। उसी प्रकार दूषित अन्तःकरण वाला मनुष्य भी तीर्थ स्नान से शुद्ध नहीं होता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या
देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते
तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात्
भावं ततो हृत्कमले निधाय
तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा।

—नारद पुराण

गंगादि तीर्थों में मछलियाँ निवास करती हैं, देव मन्दिरों में पक्षीगण रहते हैं, किन्तु उनके चित्त भक्ति-भाव से रहित होने के कारण उन्हें तीर्थ सेवन और देव मन्दिर में निवास करने से कोई फल नहीं मिलता। अतः हृदय कमल में भाव का संग्रह करके एकाग्र चित्त होकर तीर्थ सेवन करना चाहिए।

अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्न संसयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफल भागिनः॥

—स्कन्द पुराण

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा (पाप का पुतला, पाप में गौरव बुद्धि रखने वाला), नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्क में ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकार के मनुष्य तीर्थ के फल को प्राप्त नहीं करते।

वस्तुतः सत्प्रवृत्तियाँ ही तीर्थ हैं। उन्हें उभारने की जिन स्थानों पर विशेष व्यवस्था एवं संभावना है, वे स्थान तीर्थ बन जाते हैं। तीर्थ की आत्मा उत्कृष्टता की आस्था ही है। इसलिए शास्त्रकारों ने मानस तीर्थों का भी वर्णन किया है, और सत्प्रवृत्तियों को तीर्थ ठहराते हुए उनका सुनिश्चित पुण्य फल भी बताया है।

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्व भूत दया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं क्षमा तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं च प्रियावादनम्॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थं मुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥

—स्कन्द पुराण ६-३०-३२

अर्थात् सत्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राणी मात्र पर दया, ऋजुता, दान, मनोनिग्रह, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, प्रिय भाषण, विवेक, धृत्ति और तपसा (कष्ट सहन)। इनमें सबसे बड़ी मन की परम शुद्धि ही है। बस यह तीर्थ यात्रा एक प्रकार का मन बहलावा है, जिसके द्वारा यात्री को इन उत्तम गुणों को अपने मन में, अपने जीवन में सम्पादन करने का अवसर मिलता है।

आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्था
सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः
तत्रावगाहं कुरु पाण्डुपुत्र
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥

—महा. उद्योग पर्व.

आत्मा नदी है, जिसमें संयम का पुण्यमय घाट है, सत्य ही जल है, शील किनारा है तथा दया की लहरें उठती रहती हैं। युधिष्ठिर ! तुम उसी में गोता लगाओ, (भौतिक) जल से (शरीर तो धुल जाता है) अन्तःकरण नहीं धुलता।

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥

—स्कन्द

जिसने इन्द्रिय-समूह को वश में कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ भी निवास करता है, वहीं उसके लिए कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं।

ब्रह्म ध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः।
दमस्तीर्थस्तु परमं भाव शुद्धि पर तथा॥
ज्ञान ह्रदे ध्यान जले राग-द्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥

—गरुड़ पुराण

ब्रह्म का ध्यान परम तीर्थ है। इन्द्रियों का निग्रह तीर्थ है, मन का निग्रह तीर्थ है, भाव की शुद्धि परम तीर्थ है। ज्ञान रूपी तालाब में, ध्यान जल में जो मन के तीर्थ में स्नान करके राग-द्वेष रूपी मैल को दूर करता है, वह परम गति को प्राप्ति होता है।

तीर्थानां ह्रदयं तीर्थं शुचिनां ह्रदय शुचि।

—महा. शि.

समस्त तीर्थों में हृदय (अन्तरात्मा) ही परम तीर्थ है, सारी पवित्रताओं में अन्तरात्मा की पवित्रता ही मुख्य है।

मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्मज्ञान जलेन च।
स्नाति यो मानसे तीर्थे तत् स्नानं तत्वदर्शिनाम्।

—महाभारत अनु.

अन्तःकरण में प्रकाशित ब्रह्मज्ञान रूपी जल से मानस तीर्थ में जो स्नान होता है, तत्वदर्शियों का वही परम स्नान है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

योगिकं स्नान माख्यातं योगेनहरिचिन्तनम्।
आत्मतीर्थ मिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः॥

—गरुड़ पूर्व.

ईश्वरा राधन योगियों का परम स्नान है। ब्रह्मवादी आत्म-तीर्थ का सेवन करते हैं।

मनोविशुद्ध पुरुषाय तीर्थं,
वाचां तथा चेन्द्रिय निग्रहश्च।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि,
स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवोधयन्ति॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थं स्नानैर्च शुध्यति।
शतशोपि जलधौतं सुरा भाण्डाभिवा शुचि।
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र-यत्र वसेन्नरः।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्कर तथा।

—ब्रह्म पुराण

मनुष्य का विशुद्ध मन ही महान् तीर्थ है। वाणी और इन्द्रियों का निग्रह यह सद्गुण शरीर में निवास करने वाला तीर्थ है। इसी मार्ग से स्वर्ग पहुँच जाता है।

यदि चित्त दुष्ट है तो तीर्थ स्नान से भी शुद्धि नहीं होती। सुरा भरा पात्र बार-बार धोने पर भी शुद्ध नहीं होता।

इन्द्रियजयी मनुष्य जहाँ भी निवास करता है वहीं कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर आदि तीर्थ बन जाते हैं।

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥

—स्कन्द पुराण

ध्यान के द्वारा पवित्र तथा ज्ञान रूपी जल से भरे हुए, राग-द्वेष रूपी मैल को दूर करने वाले मानस-तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है, वह परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है।

तीर्थ यात्रा का उद्देश्य आत्म-शोधन और परमार्थ परायणता की पुण्य प्रवृत्तियों को निखारना है। धर्म-प्रचार यात्राओं से ही यह उद्देश्य पूरा होता है। मेंहदी पीसने वाले के भी हाथ लाल होते हैं। सुगन्ध निर्माताओं के वस्त्र अनायास ही मँहकने लगते हैं। धर्म तत्व का प्रसार-विस्तार करने के उद्देश्य से निकले हुए व्यक्ति उन विचारों एवं क्रियाओं में संलग्न रहने के कारण स्वयं भी उस रंग में रँगते चले जाते हैं।

ऐसी तीर्थ यात्राएँ पैदल ही होनी चाहिए। ताकि अधिक लोगों के साथ सम्पर्क साधने—विराम स्थलों पर कथा, सत्संग करने का अवसर मिलता चले। पदयात्रा एक तप भी है, जिससे शारीरिक एवं मानसिक विकृतियों का परिशोधन होता है। शास्त्रकारों ने तीर्थयात्रा में वाहन के उपयोग का निषेध किया है। पदयात्रा ही तीर्थ यात्रा है। सामान लादने भर के लिए वाहन को भले ही प्रयोग किया जाये, पर नर्मदा परिक्रमा, ब्रजयात्रा, गोवर्धन परिक्रमा, शिव त्रियोदशी के जल काँवर की तरह उसे पैदल ही किया जाना चाहिए।

ऐश्वर्य लोभान्मोहाद् वागच्छेद यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य ततीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत्॥

—मत्स्य पुरा. ब्रह्मी सं.

तीर्थ यात्रा में यान वर्जित है। ऐश्वर्य के गर्व से, मोह से या लोभ से जो यानारूढ़ होकर तीर्थ यात्रा करता है, उसकी तीर्थ यात्रा निष्फल हो जाती है।

यानमर्धफलं हन्ति तदर्द्धं छत्र पादुके।
वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् सर्वं हन्ति प्रतिग्रह॥

—स्कन्द पुराण

सवारी तीर्थ यात्रा का आधा फल अपहरण कर लेती है। उसका आधा छत्र तथा पादुका अपहरण कर लेते हैं। व्यापार पुण्य का तीन चतुर्थांश अपहरण करता है तथा प्रतिग्रह तीर्थ के सारे पुण्य को नष्ट कर देता है।

सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम्।
तीर्थं तु फलदं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।
तीर्थानुगमने पद्भ्यां तपःपरमिहोच्यते।
तदेव कृत्वा यानेन स्नानमात्रफल लभेत्।

सभी वर्णों तथा सभी आश्रमों के लोगों को तीर्थ फलदायक होता है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए। जो पैरों से पैदल चलकर तीर्थ जाते हैं, वे परम तप करते हैं। जो सवारी से यात्रा करते हैं, उन्हें स्नान मात्र का ही फल मिलता है।

तीर्थ यात्रा का महत्त्व

वलीपलितदेहो वा यौवनेनान्वितोऽपि वा।
ज्ञात्वा मृत्युमनिस्तीर्यं हरिं शरणामाव्रजेत्॥
तत्कीर्तने तच्छ्रवणे वन्दने तस्य पूजते।
मतिरेव प्रकर्तव्या नान्यत्र वनितादिषु॥
सर्वं नश्वरमालोक्य क्षणास्थायि सुदुःखदम्।
जन्ममृत्युजरातीतं भक्तिवल्लभमच्युतम्।
स हरिर्ज्ञायते साधुसंगमात् पापवर्जितात्॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः ।
शृण्वन्ति यन्महाराज तत् संसारनिवर्तकम् ॥
तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः ।
यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहाम्बुशङ्कणिः ॥
तस्मात् तीर्थेषुगन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः ।
पुण्योदकेषु सततं साधुत्रैजिविराजिषु ॥

—पद्म पुराण, पातालखण्ड १९

(मनुष्य-जीवन का प्रधान उद्देश्य और एकमात्र परम लाभ है—भगवत्प्राप्ति ।) मनुष्य के शरीर में चाहे झुर्रियाँ पड़ गयी हों, सिर के बाल पक गये हों अथवा वह अभी नवयुवक ही हो, आयी हुई मृत्यु को कोई टाल नहीं सकता—यों समझकर (भगवत्प्राप्ति के लिये) भगवान् की शरण जाना चाहिये तथा भगवान् के कीर्तन, श्रवण, वन्दन और पूजन में मन लगाना चाहिये, स्त्रीपुत्रादि अन्य संसारी वस्तुओं में नहीं । यह सारा प्रपञ्च नाशवान्, क्षणभर रहने वाला तथा अत्यन्त दुःख देने वाला है; परन्तु श्रीभगवान् जन्म-मृत्यु और जरा से परे हैं (वे नित्य सत्य हैं) और भक्ति देवी के प्राणवल्लभ तथा अच्युत (सदा अपने सच्चिदानन्दस्वरूप में स्थित) हैं यह विचार-कर भगवान् का भजन करना उचित है ।

भगवान् का (उनके स्वरूप, तत्त्व, गुण, लीला, नाम आदि का) ज्ञान होता है, पाप रहित साधु संग से । साधु (वे नहीं हैं जो केवल नाम धारी हैं और मन से नहीं हैं: साधु वस्तुतः) वे हैं, जिनकी लोक-परलोक के विषयों में आसक्ति नहीं रह गयी है, जिनके मन में काम संकल्प नहीं है तथा जो लोभ से रहित हैं अर्थात् जो अनासक्त तथा धन और स्त्री से किसी प्रकार का मानसिक-सम्पर्क भी नहीं रखते । ऐसे साधु जो उपदेश देते हैं, उससे संसार का बन्धन छूट जाता है (भगवत्प्राप्ति हो जाती है) । ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्र जी के भजन में लगे हुए साधु मिलते हैं—तीर्थों में । इनका दर्शन मनुष्यों के पाप के ढेर को जला डालने के लिए अग्नि का काम करता है । इसलिये जो लोग संसार से डरे हुए अर्थात् संसार बन्धन से छूटना चाहते हैं, उनको पवित्र जल वाले तीर्थों में, जो सदा साधु-महात्माओं के सहवास से सुशोभित रहते हैं, अवश्य जाना चाहिये ।

तीर्थ का फल किसको मिलता है ?

यस्य हस्तौ च पदौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

जिसके हाथ, पैर और मन भली-भाँति संयमित हैं अर्थात् जिसके हाथ सेवा में लगे हैं, पैर तीर्थादि भगवत् - स्थानों में जाते हैं और मन भगवान् के चिन्तन में संलग्न है, जिसको अध्यात्मविद्या प्राप्त है, जो धर्म पालन के लिये कष्ट सहता है, जिसकी भगवान् के कृपा पात्र के रूप में कीर्ति है, वह तीर्थ को प्राप्त होता है ।

प्रतिग्रहानुपादत्तः संतुष्टो येन केनचित् ।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल जो कुछ भी मिल जाये उसी में संतुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकार का सर्वथा अभाव है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ।

अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ।
अमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामों को आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकार की आसक्तियों से छूटा हुआ है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ।

अक्रोधनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रत-पालन में दृढ़ है और सब प्राणियों में अपने आत्मा के समान अनुभव करता है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है ।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः ।
कृतपापो विशुद्ध्येत किं पुनः शुद्धकर्मकृत ॥

जो तीर्थों का सेवन करने वाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहले का पापाचारी भी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करने वाला है, उसकी तो बात ही क्या है ।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥

—स्कन्दपुराण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो अश्रद्धालु पापात्मा (पाप का पुतला पाप में गौरव बुद्धि रखने वाला) नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्क में ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकार के मनुष्य तीर्थ के फल को प्राप्त नहीं करते ।

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च ॥

सत्य तीर्थ है, क्षमा तीर्थ है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना भी तीर्थ है, सब प्राणियों पर दया करना तीर्थ है और सरलता भी तीर्थ है ।

दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते ।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥

दान तीर्थ है, मनका संयम तीर्थ है, संतोष भी तीर्थ कहा जाता है । ब्रह्मचर्य परम तीर्थ है और प्रिय वचन बोलना भी तीर्थ है ।

ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम् ।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥

ज्ञान तीर्थ है, धृति तीर्थ है, तप भी तीर्थ कहा गया है । तीर्थों में भी सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है अन्तःकरण की आत्यन्तिक विशुद्धि ।

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दम्भिको विषयात्मकः ।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः ॥

जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दंभी है और विषयासक्त है, वह सब तीर्थ में स्नान करके भी पापी और मलिन ही रह जाता है ।

विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते ।
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम् ॥

विषयों के प्रति अत्यन्त आसक्ति को ही मानसिक मल कहा जाता है और उन विषयों में वैराग्य होना ही निर्मलता कहलाती है ।

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचिः ॥

चित्त के भीतर यदि दोष भरा है तो वह तीर्थ-स्नान से शुद्ध नहीं होता । जैसे मदिरा से भरे हुए घड़े को ऊपर से जलद्वारा सैकड़ों बार धोया जाय तो भी वह पवित्र नहीं होता । उसी प्रकार दूषित अन्तःकरण वाला मनुष्य भी तीर्थस्नान से शुद्ध नहीं होता ।

दानयज्ञस्तपः शौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा ।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः ॥

भीतर का भाव शुद्ध न हो तो दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन, शास्त्रश्रवण और स्वाध्याय—ये सभी अतीर्थ हो जाते हैं ।

निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः ।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥

जिसने इन्द्रियसमूह को वश में कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ भी निवास करता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ हैं ।

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥

'ध्यान के द्वारा पवित्र तथा ज्ञानरूपी जल से भरे हुए, राग-द्वेषरूपी मैल को दूर करने वाले मानस-तीर्थों में जो पुरुष स्नान करता है, वह परम गति—मोक्ष को प्राप्त होता है ।

छः विशेष तीर्थ

१—भक्त-तीर्थ

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥

—श्रीमद्भागवत १ ।१३ ।१०

युधिष्ठिरजी भक्त श्रेष्ठ विदुरजी से बोले कि 'आप-जैसे भक्त—भगवान् के प्रिय भक्त स्वयं ही तीर्थरूप होते हैं । आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान् के द्वारा तीर्थों को भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं ।'

२—गुरु-तीर्थ

दिवा प्रकाशकः सूर्यः शशी रात्रौ प्रकाशकः ।
गृहप्रकाशको दीपस्तमोनाशकरः सदा ॥
रात्रौ दिवा गृहस्थानां गुरुः शिष्यं सदैव हि ।
अज्ञानाख्यं तमस्तस्य गुरुः सर्वं प्रणाशयेत् ॥
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनीपते ।

—पद्मपुराण, भूमिखण्ड ८५ ।१२-१४

सूर्य दिन में प्रकाश करता है, चन्द्रमा रात्रि में प्रकाशित होता है और दीपक घर में उजाला करता है तथा सदा घर के अँधेरे का नाश करता है; परन्तु गुरु अपने शिष्य के हृदय में रात-दिन सदा ही प्रकाश फैलाते रहते हैं । वे शिष्य के सम्पूर्ण अज्ञानमय अन्धकार का नाश कर देते हैं । अतएव राजन् ! शिष्यों के लिए गुरु ही परम तीर्थ हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

३.४—माता-तीर्थ—पिता-तीर्थ

नास्ति मातृसमं तीर्थं पुत्राणां च पितुः समम्।
तारणाय हितायैव इहैव च परत्र च॥
वेदैरपि च किं विप्र पिता येन न पूजितः।
माता न पूजिता येन तस्य वेदा निरर्थकाः॥
एष पुत्रस्य वै धर्मस्तथा तीर्थं नरेष्विह।
एष पुत्रस्य वै मोक्षस्तथा जन्म फलं शुभम्॥

—पद्मपुराण, भूमिखण्ड ६३ /१४,१९,२१

पुत्रों के इस लोक और परलोक के कल्याण के लिये माता-पिता के समान कोई तीर्थ नहीं है। माता-पिता का जिसने पूजन नहीं किया, उसे वेदों से क्या प्रयोजन है? (उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है।) पुत्र के लिये माता-पिता का पूजन ही धर्म है, वही तीर्थ है, वही मोक्ष है और वही जन्म-का शुभ फल है।

५—पति-तीर्थ

सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम।
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्॥
तस्य पादोदकस्नानात् तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः॥
सर्वतीर्थमयो भर्ता सर्वपुण्यः पतिः।

—पद्मपुराण ४२ /१२-१४

जो स्त्री अपने पति के दाहिने चरण को प्रयाग और बायें चरण को पुष्कर समझ कर पति के चरणोदक से स्नान करती है, उसे उन तीर्थों के स्नान का पुण्य होता है। ऐसा स्नान प्रयाग तथा पुष्कर स्नान के सदृश है, इसमें कोई संदेह नहीं है। पति सर्वतीर्थ मय और सर्वपुण्यमय है।

६—पत्नी-तीर्थ

सदाचारपरा भव्या धर्मसाधनतत्परा।
पतिव्रततरा नित्यं सर्वदा ज्ञानवत्सला॥
एवं गुणा भवेद् भार्या यस्य पुण्य महासती।
तस्य गेहे सदा देवस्तिष्टन्ति च महोजसः॥
पितरो गेहमध्यस्थाः श्रेयो वाञ्छन्ति तस्य च।
गंगाद्याः सरितः पुण्याः सागरास्तत्र नान्यथा॥
पुण्या सती सस्य गेहे वर्तते सत्यतत्परा।
तत्र यज्ञाश्च गावश्चऋषयस्तत्र नान्यथा॥
तत्र सर्वाणि तीर्थानि पुण्यानि विविधानि च।
नास्ति भार्यासमं तीर्थं नास्ति भार्यासमं सुखम्।
नास्ति भार्यासमं पुण्यं तारणाय हिताय च।

—पद्मपुराण, भूमिखण्ड ५९ /११-१५, २४

जो सब प्रकार से सदाचार का पालन करने वाली, प्रशंसा योग्य आचरण वाली, धर्म-साधन में लगी हुई, सदा पातिव्रत्य का पालन करने वाली तथा ज्ञान की नित्य अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती पुण्यमयी महासती जिसके घर में पत्नी हो, उसके घर में सदा देवता निवास करते हैं, पितर भी उसके घर में रहकर सदा उसके कल्याण की कामना करते हैं। जिसके घर में ऐसी सत्यपरायण पवित्रहृदया सती रहती है, उस घर में गंगा आदि पवित्र नदियाँ, समुद्र, यज्ञ, गौएँ, ऋषिगण तथा सम्पूर्ण विविध पवित्र तीर्थ रहते हैं। कल्याण तथा उद्धार के लिए भार्या के समान कोई तीर्थ नहीं है, भार्या के समान सुख नहीं है और भार्या के समान पुण्य नहीं है।

सर्वोत्तम तीर्थ

महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १०८ में उल्लेख है—

यद्गुरं सर्वतीर्थानां तन्मेब्रूहि पितामह।
यत्रचैवपरं शौचं तन्मेव्याख्यातु मर्हसि॥ १॥

युधिष्ठिर ने पूछा—हे पितामह ! जो तीर्थ सब से उत्तम हो और जहाँ परम पवित्रता प्राप्त हो सके उसका मुझसे वर्णन कीजिए।

भीष्म उवाच—

सर्वाणिखलु तीर्थानि गुणवन्ति मनीषिणः।
यत्तुतीर्थं च शौचं च तन्मे श्रृणुसमाहितः॥२॥

विद्वान पुरुषों को सब तीर्थ गुण देते हैं। परनतु इनमें भी जो तीर्थ अधिक पवित्र करने वाला है उसको तू सावधान होकर सुन।

अगाधे विमले शुद्धे सत्यतोये धृतिह्रदे।
स्नानतव्यं मानसेतीर्थे सत्यमालंव्य शाश्वतम्॥३॥

निरन्तर रहने वाले सत्य का सहारा लेकर अगाध, निर्मल, शुद्ध, सत्यरूपी जल से भरे हुए धैर्यरूप झरने वाले मानस तीर्थ में स्नान करना चाहिए॥३॥

तीर्थशौचमनर्थित्वमार्जवं सत्यमार्दवम्।
अहिंसा सर्वभूतानामनृशंस्यं दमः शमः॥४॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अयाचकता (माँगने की आदत न होना) सरलता, (मन, वाणी, शरीर का एक व्यवहार), सत्य बोलना, कोमलता, हिंसा न करना, दया, दम (इन्द्रियनिग्रह) और शम (मन का शान्ति) ये पवित्र करने वाले तीर्थ हैं ॥४ ॥

निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।
शुवयस्तीर्थभूतास्ते ये भैक्ष्यमुपभुञ्जते ॥५ ॥

ममता और अहंकार से रहित, सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ में एक, परिग्रह (संग्रह) रहित तथा भिक्षावृत्ति से आजीविका करने वाले पुरुष पवित्र और तीर्थ रूप माने जाते हैं ॥५ ॥

तत्त्ववित्त्वनहंबुद्धिस्तीर्थप्रवरमुच्यते ।
शौचलक्षणमेतत्ते सर्वत्रैवान्ववेक्षतः ॥ ६ ॥

तत्त्ववेत्ता और अहंकार रहित पुरुष उत्तम तीर्थ कहलाते हैं, तीर्थ का अवलोकन करने वाले तुझसे यह तीर्थ का लक्षण कहा ॥६ ॥

रजस्तमःसत्वमथो येषां निर्धोतमात्मनः ।
शौचाशौचसमायुक्ताः स्वकार्यपरिमार्गिणः ॥ ७ ॥

जिनका मन सत्व, रज और तम से रहित है अतएव जो बाहिरी पवित्रता और अपवित्रता से संयुक्त रहते हैं अर्थात् बाहिरी पवित्रता और अपवित्रता पर ध्यान नहीं देते हैं, अपने ब्रह्मविचार रूपी कार्य का विचार किया करते हैं ॥७ ॥

सर्वत्यागेष्वभिरताः सर्वज्ञाः समदर्शिनः ।
शौचेन वृत्तशौचार्थास्ते तीर्थाः शुचयश्च ये ॥ ८ ॥

सब प्रकार का त्याग करने में प्रसन्न रहते हैं, सर्वज्ञ होते हैं, सम दृष्टि रखते हैं, शुद्ध आचरण और शुद्ध रहते हैं, वे पुरुष तीर्थ रूप कहलाते हैं ॥८ ॥

नोदक क्लिन्न गात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते ।
स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥९ ॥

जिसका गात्र जल से भीगा है उसने वास्तविक स्नान नहीं किया है जिसने दम से (इन्द्रियनिग्रह से) स्नान किया है उसको बाहर-भीतर से स्नान किया हुआ जानो ॥९ ॥

अतीतेष्वनपेक्षा ये प्राप्तेष्वर्थेषु निर्ममाः ।
शौचमेव परं तेषांयेषां नोत्पद्यते स्पृहा ॥१० ॥

जो पुरुष विगत कार्यों की अपेक्षा नहीं रखते हैं और जो अपने पास के पदार्थों पर ममता नहीं रखते हैं, तथा जो इच्छा रहित हैं उन्होंने ही उत्तम तीर्थों में स्नान किया है ॥१० ॥

वृत्तशौचं मनःशौचं तीर्थशौचमतः परम् ।
ज्ञानोत्पन्न च यच्छौचं तच्छौचं परमं स्मृतम् ॥१२ ॥

सदाचार शुद्धि, मन की शुद्धि तथा तीर्थ शुद्धि इस प्रकार तीन प्रकार की शुद्धि कही हैं इनमें ज्ञान से जो शुद्धि होती है उसकी उत्तम शुद्धि समझना चाहिए ॥१२ ॥

तीर्थ परम्परा—पावन यज्ञ

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुल दक्षिणैः ।
न तत्फल मवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥
अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतु निष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफल भागिनः ॥
येषु सम्यक् नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम् ।
तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसारभीरुभिः ॥

—महाभारत । वन पर्व

हे महाभाग ! जो पुण्य अग्निष्टोम जैसे विशाल यज्ञों से उपलब्ध नहीं हो सकता वह तीर्थ यात्रा से तीर्थ सेवन से सहज सुलभ होता है, अश्रद्धा युत मात्र पर्यटन और मनोरंजन के लिये इधर-उधर परिभ्रमण करने वाले संशयात्मा व्यक्ति इस पुण्य फल को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते । तीर्थ यात्रा का उद्देश्य है—अन्तःकरण की शुद्धि और इस प्रकार शुद्ध हुए हृदय-अन्तःकरण से मानवीय जीवन की यथार्थता का बोध और प्राप्ति । इस आत्म-कल्याण के इच्छुक और अशान्त मनःस्थिति के लोगों को तीर्थ यात्रा को पुण्य लाभ प्राप्त करना चाहिये ।

तीर्थयात्रा का पुण्य प्रयोजन

तीर्थ यात्रा का उद्देश्य है—आत्म शुद्धि, पिछली भूलों का प्रायश्चित और भावी जीवन को अधिक पवित्र परिष्कृत बनाने का व्रत धारण । तीर्थ में जाकर कुछ पुण्य परमार्थ करने की भी परम्परा है । दिव्य जलाशयों में स्नान करते समय अन्तरंग और बहिरंग जीवन क्रम की शुद्धि का भाव भी जुड़ा रखा जाना चाहिए । जिस प्रकार शरीर का मैल एवं ताप इन पवित्र नदी सरोवरों के स्नान से धुलता है उसी प्रकार साहसपूर्वक अपने बौद्धिक एवं क्रिया क्षेत्र को भी पवित्र बनाने के संकल्प किये जाते थे तभी सच्चा तीर्थ स्नान माना जाता था ।

घर के वातावरण में अभस्त ढर्रे पर ही गतिचक्र घूमता रहता है । मनःस्थिति बदलने के लिए परिस्थिति बदलने की भी आवश्यकता है । इसके लिए तीर्थों का देव वातावरण हर दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होता था । जिस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार कूलर की समीपता से ठण्डक और हीटर के पास जाने से गर्मी लगती है उसी प्रकार प्राचीन काल के तीर्थों का वातावरण भी हर भावनाशील यात्री पर गहरी छाप डालता और उसे उदात्त प्रक्रिया अपनाने के लिए प्रोत्साहित करता था। अभ्यस्त अवांछनीय ढर्रे में परिवर्तन करने के लिए इस प्रकार का बदला हुआ वातावरण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। तीर्थयात्रा पर जाने वाले लोग उन पवित्र स्थानों पर कुछ समय रहते थे। दिव्य वातावरण में अपने को ढालते थे। दिव्य विचार-धारा एवं प्रेरणा से अभ्यस्त अवाँछनीयताओं का परित्याग करते थे। इन पुण्य प्रयोजनों में तीर्थों के शिक्षा संस्थानों से उपयोगी परामर्श मार्गदर्शन मिलता था। लौटकर घर पहुँचने पर तीर्थ यात्री धुला हुआ पवित्र परिष्कृत दृष्टिगोचर होता था। यह परिवर्तन ही तीर्थ यात्रा का प्राण है। इसी सम्भावना को देखते हुए इस धर्म परम्परा का इतना बढ़ा-चढ़ा महात्म्य बताया और यश गान किया गया है।

तीर्थ यात्रा का धर्मानुष्ठान द्वारा सत्प्रवृत्ति संवर्धन जो जितनी मात्रा में प्राप्त कर सके समझना चाहिए उसे उसी अनुपात से पुण्य फल मिला शास्त्रकारों ने इस तथ्य को पूरी तरह स्पष्ट किया है और तीर्थ यात्रा की सार्थकता-निरर्थकता, सफलता-असफलता का प्रमाण यह माना है कि यात्री ने श्रेष्ठता की दिशा में बढ़ चलने में कितनी प्रगति की। सद्भावनाएँ एवं सत्प्रवृत्तियाँ ही वे पुण्य फल दायक आधार हैं जिन्हें प्राप्त करने से सद्गति प्राप्त हो सकती है। तीर्थ और पुण्य परिष्कार की संगति मिलाते हुए शास्त्रकारों ने इस महात्म्य प्रक्रिया के पीछे छिपे तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेष मलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमांगतिम्॥

—*स्कन्द पुराण*

ध्यान से पवित्र, ज्ञानरूप जल से भरे हुए तथा राग द्वेष रूपी मैल को दूर करने वाले मानस तीर्थ में जो पुरुष स्नान करता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

अभिर्गात्रिणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञान शुद्ध्यति॥

—*महाभारत*

जलों से शरीर शुद्ध होता है। मन सत्य से शुद्ध होता है। विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।

अक्रोधनो ऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफल मश्नुते॥

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रत पालन में दृढ़ है और सब प्राणियों को अपने आत्मा के समान अनुभव करता है वही तीर्थ के फल को प्राप्त होता है।

अदम्भ को निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थ फल मश्नुते॥

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामों को आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकार की आसक्तियों से छूटा हुआ है, वही तीर्थ के फल को प्राप्त होता है।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तो लघ्वाहार जितेन्द्रियः।
निष्पापस्तीर्थ यात्री तु सर्वयज्ञफलं लभेत्॥

—*अग्नि पुराण*

जिस मनुष्य के पैर सन्मार्ग गामी हैं। हाथ सतकर्म निरत हैं। विद्या और तप के उपार्जन में जो संलग्न है। जिसके विचार और कार्य यशवी हैं। तीर्थयात्रा का पुण्य उसी को मिलता है।

जो दान नहीं लेता। कम और सात्विक भोजन करता है। इन्द्रियों को वश में रखता है उसी को तीर्थ यात्रा का पुण्य मिलता है।

मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं,
वाचां तथा इन्द्रिय निग्रहश्च।
एतानि तीर्थानि शरीर जान्नि
स्वर्गस्य मार्गस्य प्रबोध यन्ति। —*ब्रह्म पुराण*

मनुष्य का विशुद्ध मन एक तीर्थ है। वाणी की पवित्रता तथा इन्द्रिय निग्रह वाला शरीर तीर्थ है। इन्हीं तीर्थों में स्नान करके मनुष्य स्वर्ग जाता है।

इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नर।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्र प्रयाग पुष्करं तथा॥

—*ब्रह्म पुराण*

संयमी सदाचारी मनुष्य जहाँ-जहाँ रहता है। वहाँ वहाँ कुरुक्षेत्र, पुष्कर आदि तीर्थ समझना चाहिए।

दुर्बुद्धि और दुष्प्रवृत्ति यदि न छोड़ी जा सके तो फिर तीर्थ यात्रा का उद्देश्य ही नष्ट हो गया। ऐसी दशा में स्नान दर्शन मात्र से कोई पुण्य फल संभव नहीं। कहा गया है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

येनैकादश संख्यानि यन्त्रितानीन्द्रियाणि वै।
स तीर्थ फलमाप्नोति नरोऽन्यः क्लेशभाग् भवेत् ॥

जिसने अपनी ग्यारह (दस इन्द्रियाँ और मन) इन्द्रियों को वश में कर रखा है, वही तीर्थ यात्रा का वास्तविक फल पाता है, दूसरे अजितेन्द्रिय मनुष्य तो केवल क्लेश के ही भागी होते हैं।

तीर्थ में व्यक्ति का परिष्कार होता है, यह ठीक है। पर यह भी सत्य है कि उत्कृष्ट स्तर के ब्रह्मज्ञानी किसी स्थान को तीर्थ बना देते हैं।

यो न क्लिष्टोऽपि भिक्षेत ब्राह्मणस्तीर्थ सेवकः।
सत्यवादी समाधिस्थः स तीर्थस्योपकारकः ॥

जो तीर्थ सेवी ब्राह्मण अत्यन्त क्लेश पाने पर भी किसी से दान नहीं लेता, सत्य बोलता और मन को वश में रखता है, वह तीर्थ की महिमा बढ़ाने वाला है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीं कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता ॥

—भागवत

युधिष्ठिर विदुर से कहते हैं—आप जैसे भक्त स्वयं ही तीर्थ रूप होते हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान के द्वारा, तीर्थों को महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।

तीर्थ यात्रा का एक उद्देश्य है उन क्षेत्रों में निवास करने वाले मनीषियों से आत्म-कल्याण एवं उज्जवल भविष्य निर्माण के लिए उपयुक्त मार्गदर्शन प्राप्त करना।

तीर्थेषु लभ्यते साधु ब्रह्मज्ञान परायणः।
यद्दर्शन नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः ॥

—पद्म पुराण

तीर्थों में ब्रह्म परायण, साधु सज्जन मिलते हैं। उनका दर्शन मनुष्यों की पाप-राशि को जला डालने के लिए अग्नि के समान है।

तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसार भीरुभिः।
पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणि विराजिषु ॥

—पद्म पुराण

इसलिए जो लोग पाप से डरे हुए हैं और उसके बन्धन से छूटना चाहते हैं उन्हें पवित्र जल वाले तीर्थों में, जो साधु सज्जनों के समूह से सुशोभित हैं, अवश्य जाना चाहिए।

"तरति अनने इति तीर्थ"

तारने वाले को तीर्थ कहते हैं। तरना सत्कर्मों, सद्भावनाओं, सद्विचारों एवं सज्जनों के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए इन्हीं को तीर्थ कहते हैं। जिन स्थानों में इन प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाला वातावरण होता है उन्हें ही तीर्थ स्थान कहा गया है।

साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थ फलति कालेन सद्यः साधु समागमः ॥

साधुओं का दर्शन बड़ा पुण्यकारक होता है, क्योंकि साधु तीर्थ रूप ही हैं। तीर्थ तो समय पर फल देते हैं, किन्तु साधु समागम का तत्काल फल मिलता है।

मुख्या पुरुष यात्रा हि तीर्थ यात्रा प्रसंगतः।
सद्भिः समागमो भूमिभागस्तीर्थ तयोच्य ते ॥

—स्कन्ध पुराण

तीर्थ यात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिए जाना ही तीर्थ यात्रा का मुख्य उद्देश्य है, अतः जिस भू-भाग में सज्जन निवास करते हैं वही "तीर्थ" कहलाता है।

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥

—शातातपस्मृति

साधु-ब्राह्मण चलते-फिरते तीर्थ हैं। जिनके सदवाक्य रूपी निर्मल जल से मलिन जन भी शुद्ध हो जाते हैं।

सम्पूर्ण भारतवर्ष ही तीर्थ स्वरूप है। उसके किसी भी भाग की यात्रा की जाये उसे तीर्थ यात्रा ही माना जायेगा।

त्रयाणपि लोकानां तीर्थं मध्य मुदाहृतम्।
जाम्बवे भारतवर्षं तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम ॥
कर्म भूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थ तदुच्यते ॥

—ब्रह्म पुराण

तीनों लोकों के मध्य में स्थित कर्मभूमि भारतवर्ष साक्षात् तीर्थ स्वरूप है।

छोटों के लिए बड़े, शिष्यों के लिए अज्ञान निवारण करने वाले गुरुजन तीर्थ के समान ही श्रद्धास्पद होते हैं।

अज्ञानाख्यं तमस्तस्यं गुरुः सर्वं प्राणाशयेत्।
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनी यते ॥

—पद्म पुराण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

येनैकादश संख्यानि यन्त्रितानीन्द्रियाणि वै।
स तीर्थ फलमाप्नोति नरोऽन्यः क्लेशभाग् भवेत् ॥

जिसने अपनी ग्यारह (दस इन्द्रियाँ और मन) इन्द्रियों को वश में कर रखा है, वही तीर्थ यात्रा का वास्तविक फल पाता है, दूसरे अजितेन्द्रिय मनुष्य तो केवल क्लेश के ही भागी होते हैं।

तीर्थ में व्यक्ति का परिष्कार होता है, यह ठीक है। पर यह भी सत्य है कि उत्कृष्ट स्तर के ब्रह्मज्ञानी किसी स्थान को तीर्थ बना देते हैं।

यो न क्लिष्टोऽपि भिक्षेत ब्राह्मणस्तीर्थ सेवकः।
सत्यवादी समाधिस्थः स तीर्थस्योपकारकः ॥

जो तीर्थ सेवी ब्राह्मण अत्यन्त क्लेश पाने पर भी किसी से दान नहीं लेता, सत्य बोलता और मन को वश में रखता है, वह तीर्थ की महिमा बढ़ाने वाला है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीं कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता ॥

—भागवत

युधिष्ठिर विदुर से कहते हैं—आप जैसे भक्त स्वयं ही तीर्थ रूप होते हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान के द्वारा, तीर्थों को महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।

तीर्थ यात्रा का एक उद्देश्य है उन क्षेत्रों में निवास करने वाले मनीषियों से आत्म-कल्याण एवं उज्जवल भविष्य निर्माण के लिए उपयुक्त मार्गदर्शन प्राप्त करना।

तीर्थेषु लभ्यते साधु ब्रह्मज्ञान परायणः।
यद्दर्शन नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः ॥

—पद्म पुराण

तीर्थों में ब्रह्म परायण, साधु सज्जन मिलते हैं। उनका दर्शन मनुष्यों की पाप-राशि को जला डालने के लिए अग्नि के समान है।

तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसार भीरुभिः।
पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणि विराजिषु ॥

—पद्म पुराण

इसलिए जो लोग पाप से डरे हुए हैं और उसके बन्धन से छूटना चाहते हैं उन्हें पवित्र जल वाले तीर्थों में, जो साधु सज्जनों के समूह से सुशोभित हैं, अवश्य जाना चाहिए।

"तरति अनने इति तीर्थ"

तारने वाले को तीर्थ कहते हैं। तरना सत्कर्मों, सद्भावनाओं, सद्विचारों एवं सज्जनों के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए इन्हीं को तीर्थ कहते हैं। जिन स्थानों में इन प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाला वातावरण होता है उन्हें ही तीर्थ स्थान कहा गया है।

साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थ फलति कालेन सद्यः साधु समागमः ॥

साधुओं का दर्शन बड़ा पुण्यकारक होता है, क्योंकि साधु तीर्थ रूप ही हैं। तीर्थ तो समय पर फल देते हैं, किन्तु साधु समागम का तत्काल फल मिलता है।

मुख्या पुरुष यात्रा हि तीर्थ यात्रा प्रसंगतः।
सद्भिः समागमो भूमिभागस्तीर्थ तयोच्य ते ॥

—स्कन्ध पुराण

तीर्थ यात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिए जाना ही तीर्थ यात्रा का मुख्य उद्देश्य है, अतः जिस भू-भाग में सज्जन निवास करते हैं वही "तीर्थ" कहलाता है।

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥

—शातातपस्मृति

साधु-ब्राह्मण चलते-फिरते तीर्थ हैं। जिनके सदवाक्य रूपी निर्मल जल से मलिन जन भी शुद्ध हो जाते हैं।

सम्पूर्ण भारतवर्ष ही तीर्थ स्वरूप है। उसके किसी भी भाग की यात्रा की जाये उसे तीर्थ यात्रा ही माना जायेगा।

त्रयाणपि लोकानां तीर्थं मध्य मुदाहृतम्।
जाम्बवे भारतवर्षं तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम ॥
कर्म भूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थ तदुच्यते ॥

—ब्रह्म पुराण

तीनों लोकों के मध्य में स्थित कर्मभूमि भारतवर्ष साक्षात् तीर्थ स्वरूप है।

छोटों के लिए बड़े, शिष्यों के लिए अज्ञान निवारण करने वाले गुरुजन तीर्थ के समान ही श्रद्धास्पद होते हैं।

अज्ञानाख्यं तमस्तस्यं गुरुः सर्वं प्राणाशयेत्।
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनी यते ॥

—पद्म पुराण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

येनैकादश संख्यानि यन्त्रितानीन्द्रियाणि वै।
स तीर्थ फलमाप्नोति नरोऽन्यः क्लेशभाग् भवेत् ॥

जिसने अपनी ग्यारह (दस इन्द्रियाँ और मन) इन्द्रियों को वश में कर रखा है, वही तीर्थ यात्रा का वास्तविक फल पाता है, दूसरे अजितेन्द्रिय मनुष्य तो केवल क्लेश के ही भागी होते हैं।

तीर्थ में व्यक्ति का परिष्कार होता है, यह ठीक है। पर यह भी सत्य है कि उत्कृष्ट स्तर के ब्रह्मज्ञानी किसी स्थान को तीर्थ बना देते हैं।

यो न क्लिष्टोऽपि भिक्षेत ब्राह्मणस्तीर्थ सेवकः।
सत्यवादी समाधिस्थः स तीर्थस्योपकारकः ॥

जो तीर्थ सेवी ब्राह्मण अत्यन्त क्लेश पाने पर भी किसी से दान नहीं लेता, सत्य बोलता और मन को वश में रखता है, वह तीर्थ की महिमा बढ़ाने वाला है।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीं कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता ॥

—भागवत

युधिष्ठिर विदुर से कहते हैं—आप जैसे भक्त स्वयं ही तीर्थ रूप होते हैं। आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान के द्वारा, तीर्थों को महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं।

तीर्थ यात्रा का एक उद्देश्य है उन क्षेत्रों में निवास करने वाले मनीषियों से आत्म-कल्याण एवं उज्जवल भविष्य निर्माण के लिए उपयुक्त मार्गदर्शन प्राप्त करना।

तीर्थेषु लभ्यते साधु ब्रह्मज्ञान परायणः।
यद्दर्शन नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः ॥

—पद्म पुराण

तीर्थों में ब्रह्म परायण, साधु सज्जन मिलते हैं। उनका दर्शन मनुष्यों की पाप-राशि को जला डालने के लिए अग्नि के समान है।

तस्मात् तीर्थेषु गन्तव्यं नरैः संसार भीरुभिः।
पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणि विराजिषु ॥

—पद्म पुराण

इसलिए जो लोग पाप से डरे हुए हैं और उसके बन्धन से छूटना चाहते हैं उन्हें पवित्र जल वाले तीर्थों में, जो साधु सज्जनों के समूह से सुशोभित हैं, अवश्य जाना चाहिए।

"तरति अनने इति तीर्थ"

तारने वाले को तीर्थ कहते हैं। तरना सत्कर्मों, सद्भावनाओं, सद्विचारों एवं सज्जनों के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए इन्हीं को तीर्थ कहते हैं। जिन स्थानों में इन प्रवृत्तियों को बढ़ाने वाला वातावरण होता है उन्हें ही तीर्थ स्थान कहा गया है।

साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थ फलति कालेन सद्यः साधु समागमः ॥

साधुओं का दर्शन बड़ा पुण्यकारक होता है, क्योंकि साधु तीर्थ रूप ही हैं। तीर्थ तो समय पर फल देते हैं, किन्तु साधु समागम का तत्काल फल मिलता है।

मुख्या पुरुष यात्रा हि तीर्थ यात्रा प्रसंगतः।
सद्भिः समागमो भूमिभागस्तीर्थ तयोच्य ते ॥

—स्कन्ध पुराण

तीर्थ यात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिए जाना ही तीर्थ यात्रा का मुख्य उद्देश्य है, अतः जिस भू-भाग में सज्जन निवास करते हैं वही "तीर्थ" कहलाता है।

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥

—शातातपस्मृति

साधु-ब्राह्मण चलते-फिरते तीर्थ हैं। जिनके सदवाक्य रूपी निर्मल जल से मलिन जन भी शुद्ध हो जाते हैं।

सम्पूर्ण भारतवर्ष ही तीर्थ स्वरूप है। उसके किसी भी भाग की यात्रा की जाये उसे तीर्थ यात्रा ही माना जायेगा।

त्रयाणपि लोकानां तीर्थं मध्य मुदाहृतम्।
जाम्बवे भारतवर्षं तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम ॥
कर्म भूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थ तदुच्यते ॥

—ब्रह्म पुराण

तीनों लोकों के मध्य में स्थित कर्मभूमि भारतवर्ष साक्षात् तीर्थ स्वरूप है।

छोटों के लिए बड़े, शिष्यों के लिए अज्ञान निवारण करने वाले गुरुजन तीर्थ के समान ही श्रद्धास्पद होते हैं।

अज्ञानाख्यं तमस्तस्यं गुरुः सर्वं प्राणाशयेत्।
तस्माद् गुरुः परं तीर्थं शिष्याणामवनी यते ॥

—पद्म पुराण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे राजन् ! शिष्य के हृदय के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाले गुरु, शिष्यों के लिए परम तीर्थ हैं।

तीर्थ स्थान में जाकर पाप परित्याग का अभ्यास करना चाहिए। वहाँ अपने ऊपर कठोर नियन्त्रण करके यह प्रयत्न करना चाहिए उस पुण्य क्षेत्र में कोई अभ्यस्त दुष्प्रवृत्ति भी सक्रिय न होने पावे। तीर्थ मर्यादा का उल्लंघन करके वहाँ किये गये पाप तो और भी अधिक दुःखद एवं दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध होते हैं।

यदन्यत्र कृतं पापं तीर्थं तद् याति लाघवम्।
न तीर्थकृत मन्यत्र क्वचि देव व्ययोहति॥

दूसरे स्थान पर किया हुआ पाप तीर्थ में क्षीण हो जाता है, परन्तु तीर्थ में किया हुआ पाप अन्य स्थानों में कभी नष्ट नहीं होता।

अन्य क्षेत्रे कृतं पाप पुण्य क्षेत्रे विनश्चति।
पुण्य क्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यिति॥

—स्कन्द पुराण

दूसरे क्षेत्रों के पाप पुण्य क्षेत्रों में नष्ट हो जाते हैं किन्तु पुण्य क्षेत्रों में किये हुए पाप कहीं नष्ट होते।

तीर्थ यात्रा, पद यात्रा के रूप में ही होनी चाहिए। सवारी पर नहीं। तभी उसका समुचित लाभ मिलता है।

इति ब्रुवन् रसनया मनसा च हरिं स्मरन्।
पादचारी गति कुर्वात् तीर्थं, प्रति महोदयः॥

वाणी से कीर्तन करते हुए तथा मन में भगवान का स्मरण करते हुए, पैदल तीर्थ यात्रा करने वाले का महान अभ्युदय होता है।

ऐश्वर्य लाभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत्॥

—मत्स्य पुराण

ऐश्वर्य के गर्व से, मोह से या लोभ से जो सवारी पर चढ़कर तीर्थ यात्रा करता है, उसकी तीर्थ यात्रा निष्फल हो जाती है।

तीर्थ यात्रा हमारी महान धर्म परम्परा

प्राचीन काल में ब्राह्मण ज्ञान के लिए, क्षत्रिय राज्य के लिए यात्रा करते थे। वैश्य व्यापार के लिए यात्रा करता था। यात्रा के महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता—१५वीं, १६वीं सदी से ही यूरोप के विविध देशों में ज्ञान पिपासा, नये-नये देशों की खोज और ज्योतिष, भूगर्भ शास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन तथा चिकित्सा आदि विविध क्षेत्रों में अनुसंधान की होड़-सी लग गई है। सत्य के ज्ञान और प्रकृति के रहस्यों के उद्घाटन के लिए वैज्ञानिकों और दूसरे यात्रियों ने अपने प्राण संकट में डालकर दुस्साहस के अनेक कार्य किये थे। साहसी यात्रियों की गौरव गाथाएँ सर्वत्र गाई जाती हैं। प्रगतिशीलता का दूसरा नाम यात्रा है। वस्तुतः जीवन की पुकार ही "चरैवेति, चरैवेति" चलना है, चलना है, सब चलते हैं, जीवन गतिमान है।

यात्रा से मनुष्य की दृष्टि विस्तृत होकर उदार होती है। यात्रा से मस्तिष्क विराट होता है और हृदय विशाल।

प्राचीन काल में इसी दृष्टि से १२ वर्ष गुरुकुल में अध्ययन करने के बाद २ वर्ष देश भ्रमण करने की व्यवस्था रहती थी। प्रकृति की विविधता उसके सौन्दर्य और भयानकता से जहाँ यात्री आनन्द प्राप्त करता है वहाँ ज्ञान की वृद्धि भी होती है। इस प्राकृतिक आदान-प्रदान से मनुष्य में आध्यात्मिकता की दृष्टि एवं सत्यं-शिवं-सुन्दरम् की भावना जागृत होती है।

वैदिक ऋषि ने गाया है—"जो व्यक्ति चलते रहते हैं। उनकी जंघाओं में फूल खिलते हैं। उनकी आत्मा में फलों के गुच्छे लगते हैं। उनके पाप थककर सो जाते हैं, इसलिए चलते रहो, चलते रहो।" तीर्थ यात्रा मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम की सर्वथा अभिव्यक्ति है। यह देश पूजा की ऐसी विधि है जिससे धार्मिक भावों को बल मिलता है। साथ ही भौगोलिक चेतना बढ़ती है। तीर्थ यात्रा से मिलने वाले पुण्य लाभ के पीछे और भी कितने ही लाभ छिपे हैं।

यात्रा केवल चरणों से ही नहीं की जाती वरन् मन, बुद्धि, चित्त सभी यात्रा करते हैं। यह सृष्टि का विकास है। तन, मन सब धुलकर निखर जाते हैं।

स्कन्द पुराण के काशी खण्ड में कहा गया है कि तीर्थों के दो भेद हैं—मानस तीर्थ और भौम तीर्थ। जिनके मन शुद्ध हैं, जो आत्मज्ञानवान, ज्ञानी और तपस्वी हैं, ऐसे लोग मानस तीर्थ हैं, जितेन्द्रिय जहाँ रहते हैं वहीं वे तीर्थ बनाते हैं। भौम तीर्थ चार प्रकार के हैं—

(१) अर्थ तीर्थ—नदियों के तट और संगम पर व्यापार केन्द्र।

(२) धर्म तीर्थ—प्रजाओं के धर्म पालन के निमित्त पवित्र धर्म नीति के केन्द्र।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(३) काम तीर्थ—कला और सौन्दर्य साधना के केन्द्र।

(४) मोक्ष तीर्थ—विद्या, ज्ञान और अध्यात्म के केन्द्र।

जहाँ इन चारों का समुदाय हो और जीवन की बहुमुखी प्रवृत्तियों के सूत्र मिलते हों, वे बड़े तीर्थ महापुरियों के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। जैसे काशी, प्रयाग, मथुरा, उज्जयिनी आदि।

महाभारतकार ने वन पर्व ८०।३४-४० में कहा है कि ऋषियों ने वेदों में बहुत से यज्ञ कहे हैं। उनका फल जीते जी और मरकर लोगों को मिलता है। लेकिन दरिद्र जनता को वह फल कैसे मिल सकता है? यज्ञों हेतु विद्वान्, विधि विशेषज्ञ एवं साधन सामग्री की आवश्यकता होती है, निर्धन लोग अकेले बिना बहुत व्यय के यज्ञों का फल पा सके, इसकी युक्ति तीर्थ यात्रा है। तीर्थों में जाने का पुण्य यज्ञों से भी अधिक है।

इस प्रकार जनता को सांस्कृतिक आन्दोलन में सम्मिलित करने हेतु तीर्थ यात्रा बड़ी सहायक हुई। सुदूर क्षेत्रों, ग्रामों, जंगलों में रहने वाले लोग जो धर्म, संस्कृति, क्रिया और सदाचार की प्रवृत्तियों से अपरिचित रहते थे वे भी तीर्थ यात्रा के निमित्त स्वेच्छा से तीर्थ केन्द्रों में आते और उनके संस्कार ले जाते थे।

वस्तुतः तीर्थयात्रा एक पुण्य प्रक्रिया है जिसका मूल प्रयोजन है—"विचारशील सज्जनों का सर्वसाधारण से सम्पर्क बनाना और आदर्शवादी प्रशिक्षण से लोकमानस को परिष्कृत बनाना।" इससे बड़ा दान इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। ब्रह्म दान से—सद्ज्ञान से श्रेष्ठ वस्तु इस धरती पर और कोई नहीं। वृक्ष अपने फल उदारतापूर्वक बाँटते हैं। बादल धरती की प्यास बुझाने के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करते और धन्य बनते हैं। दीपक अपने को जलाते और अन्धकार में भटकने वालों को प्रकाश देते हैं। पुष्प अपनी शोभा से दर्शकों के नेत्र तृप्त करते हैं। चन्दन की सुगन्ध पवन को मिलती है और उस मलयानिल से सारा वातावरण सुरभित होता है। साधनों की सार्थकता उन्हें इसी प्रकार नियोजित किये जाने में है। जीवन को धन्य बनाने वालों के लिये यही एक मात्र राजमार्ग निर्धारित है। तीर्थ यात्रा की महत्ता इसी महान वितरण के साथ जुड़ी हुई है।

ज्ञानीजन तीर्थ यात्रा के लिए मण्डली बनाकर निकलते थे। यह यात्राएँ पैदल होती थीं। वाहन का उपयोग साधनों को ढोने के लिए भले ही होता रहा हो—उनका माहात्म्य पद यात्रा के द्वारा ही सम्भव होता था। पद यात्रा के असंख्य लाभ हैं। स्वास्थ्य सम्वर्धन की दृष्टि से उसका असाधारण महत्त्व है, इससे श्रेष्ठ, सन्तुलित, सरल और सर्वोपयोगी व्यायाम दूसरा नहीं है। टहलने की प्रक्रिया को अब्राहम लिंकन, महात्मा गाँधी जैसे अत्यन्त व्यस्त व्यक्ति भी अपनी दैनिक जीवनचर्या में सम्मिलित रखे रहे हैं। रोग चिकित्सा में यदि रोगी को टहलाने का उपचार भी सम्मिलित रखा जा सके तो उसे बहुमूल्य टॉनिकों और जीवाणुनाशी रसायनों से अधिक लाभदायक पाया जायेगा। यह टहलने का संकल्पित और क्रमबद्ध अनुष्ठान पैदल तीर्थ यात्रा से सम्भव होता है और गये-गुजरे स्वास्थ्य के लोग भी आश्चर्यजनक सुधार करके लौटते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों की जलवायु का सेवन शरीर की सहन शक्ति को परिपुष्ट करता है जो एक ही जगह अड़े-गड़े रहते हैं उन्हें कहीं अन्यत्र जाने या भिन्न परिस्थितियों में रहना पड़े तो उस परिवर्तन आघात को सहन कर सकना उनसे बन नहीं पड़ेगा।

तीर्थ यात्रा में शारीरिक स्वास्थ्य-सम्वर्धन और मानसिक मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान सम्पादन जैसे अनेकों लाभ जुड़े हुए हैं। आर्थिक दृष्टि से यह पूँजी का वितरण, परिभ्रमण और उत्पादन के लिए सुसंयत उपयोग है। इससे अनावश्यक संचय को वितरण का अवसर मिलता है। पैसा घूमने से अनेकों का उत्पादन एवं श्रम नियोजन के आधार खड़े होते हैं। इससे सार्वजनिक समृद्धि बढ़ती है।

मनुष्य कूप मण्डूक बना बैठा रहे तो शिक्षा सम्पन्न होते हुए भी अनुभवहीन ही बना रहेगा। अपने सीमित क्षेत्र की परिस्थितियों तक ही उसका मानसिक ढाँचा विनिर्मित होगा, ऐसी दशा में बहुमुखी दूरदर्शी चिन्तन के लिए मनःचेतना प्रशिक्षित ही न हो सकेगी। बुद्धिमत्ता के विकास साधनों में व्यवस्थित परिभ्रमण को भी उच्चस्तरीय स्थान प्राप्त है। पठन-पाठन से उसका महत्त्व किसी भी प्रकार कम नहीं है।

प्राचीन काल में तीर्थ यात्राएँ तमाशवीनी के उथले दृष्टिकोण से नहीं वरन् दूरदर्शी सत्परिणामों को ध्यान में रखते हुए होती थीं। जल्दी-जल्दी लम्बी यात्रा करने और बहुत देख लेने का लोभ किसी को नहीं होता। खाने और पचाने की समन्वयात्मक नीति ही अपनाई जाती थी। ग्रास थोड़ा लेते हैं उसे बार-बार चबा कर उदरस्थ करते हैं, तभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका रस रक्त बनता है। एक साथ मुँह में बहुत सारा भर लेने और बिना चबाये निगल जाने की नीति अपनाई जाये तो वह आहार लाभ देने के स्थान पर हानिकारक बन जायेगा। यात्रा के सम्बन्ध में भी यही बात है। द्रुतगामी वाहनों के सहारे नहीं उसकी सार्थकता धीरे चलने, थोड़ा देखने, निष्कर्ष निकालने और हृदयंगम करने की प्रक्रिया अपनाने से ही सम्भव हो सकती है। प्राचीन काल की तीर्थ यात्रा का यही स्वरूप था, धर्म प्रचार के उद्देश्य से मण्डलियाँ निकलती थीं । कुछ उनमें सत् वक्ता और कुछ शौनक-साथी श्रोता गण होते थे। अनेक ऋषियों के गुरुकुल भी उसी चल पद्धति के आधार को अपनी व्यवस्था बनाते थे। गौ समूह के साथ छात्रगण अपने गुरुजनों के साथ निकलते थे । मार्ग में स्काउटों के कैम्प फायर की तरह पड़ाव डालते—गौएँ चराते हुए ठहरते और आगे बढ़ते थे। साथ-साथ अध्ययन-अध्यापन भी चलता रहता था। वास्तविक शिक्षा में गधे की तरह छात्र पर पुस्तकों का अनावश्यक भार लाद देने का भोंडापन नहीं सर्वतोमुखी अनुभव सम्पादन का आधार जुड़ा रहता है। छात्रों को उस परिभ्रमणकारी शिक्षा के बहुमुखी लाभ मिलते थे। उपाध्यायगण स्थानीय लोगों को भी अपने धर्मोपदेशों से लाभान्वित करते रहते थे। नये छात्रों का प्रवेश भी उस मण्डली में होता रहता था। जो लोग गुरुकुल शिक्षा पद्धति का महत्त्व नहीं समझते थे उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेरणा मिलती थी और वे भी अपनी सन्तान का उसमें प्रवेश कराते थे। इसे तीर्थ यात्रा स्तर का गुरुकुलीय प्रशिक्षण कहा जाता था। लगातार ऐसा परिभ्रमण न हो सके तो भी प्रत्येक गुरुकुल को कुछ-कुछ समय के लिए शिक्षण सत्रों की छोटी-छोटी टोलियाँ विभिन्न दिशा में भेजनी होती थीं। इसमें छात्र, अध्यापकों को ही नहीं, सम्पर्क में आने वाले क्षेत्रों तथा जन-साधारण को भी बहुमूल्य ज्ञान सम्पादन का अवसर मिलता रहता था, तीर्थ यात्रा का कितना महत्त्वपूर्ण और कितना सार्थक स्वरूप था वह।

सन्तों की कितनी मण्डलियाँ प्राय: इसी प्रकार परिभ्रमण करती रहती हैं। आश्रम बनाकर एक ही स्थान पर जमा रहने वाले आचार्य तो केवल वे ही होते थे जो शोध कार्य चलाते थे, उन्हीं के लिए स्थान विशेष पर अपना अन्वेषण केन्द्र, प्रयोग परीक्षण चलाने की सुविधा मिलती थी। शेष सभी सन्त धर्म-प्रचारक की भूमिका निभाते थे। परिव्राजक स्तर का ही उनका स्वरूप और कार्यक्रम रहता था। भक्तिकाल के प्राय: सभी सन्तों की जीवनचर्या प्राय: इसी प्रकार की रही है।

बौद्ध धर्म में परिव्रज्या को आत्म साधना में सर्वोपरि महत्त्व दिया गया था। बिहारों में परिव्राजकों को प्रशिक्षित करने की ही व्यवस्था थी। नालन्दा, तक्षशिला आदि विश्वविद्यालयों में अर्थ उपार्जनी शिक्षा का नहीं लोक-शिक्षण के लिए प्रतिभाएँ विनिर्मित करने वाली उच्चस्तरीय ब्रह्म विद्या पढ़ाने का ही प्रबन्ध था। तपस्वी और तेजस्वी बनाने के लिए योगाभ्यास और तपश्चर्या को भी उस प्रशिक्षण का अंग बनाकर रखा गया था। जैन धर्म के चैत्य भी उसी पृष्ठभूमि पर बने और चले। इन संस्थानों से निकली हुई महान प्रतिभाओं ने अपने समय में भारत के कोने-कोने को सद्ज्ञान के आलोक से प्रकाशवान बनाया था। वे इस दिशा की सीमाएँ पार करके एशिया भूखण्ड के प्राय: सभी देशों में, ज्ञान-विज्ञान की सम्पदा बरसाने के लिए बादलों की तरह उड़ते हुए पहुँचे और घटाओं की तरह बरसे थे। उन्होंने इस पृथ्वी का कोई भाग ऐसा नहीं छोड़ा था जहाँ दुर्गम पथों को पार करते हुए वे महाभाग न पहुँचे हों और अपनी सेवा-साधना से असंख्य पिछड़े क्षेत्रों को समुन्नत न बनाया हो।

अवतारों के—महामानवों के—प्रेरक घटनाओं के स्मारक स्थान-स्थान पर अभी भी तीर्थ स्थानों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ नदी, पर्वत, देवालय आदि के स्मारक विद्यमान हैं। पर धर्म और संस्कृति के प्राण समझे जाने वाले ऋषियों के आश्रमों एवं गुरुकुलों के भग्न खण्डहर कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते। बौद्ध काल में बिहारों की परम्परा चली तो जनता ने उसके लिए प्रचुर धन दिया। इतने बड़े भवन बने कि उनके संसार भर में फैले हुए खण्डहर अभी भी आश्चर्यचकित करते हैं, फिर क्या कारण है कि ऋषियों की लाखों वर्षों तक चलती रही ज्ञान साधना का परिचय देने वाले स्थानों या खण्डहरों के कोई अवशेष कहीं नहीं हैं। ऋषियों की गरिमा उनकी शिक्षा की प्रखरता-प्रशिक्षण की व्यापकता से इनकार नहीं किया जा सकता। वही तो अपनी संस्कृति की रीढ़ रही है। फिर उसका स्थान परिचय क्यों नहीं मिलता? इस असमंजस का उत्तर एक ही है कि उन दिनों सन्तों और ऋषियों की क्रिया-पद्धति में 'परिव्रज्या' अनिवार्य अंग थी। जितने दिन जहाँ ठहरना हुआ वहाँ उतने दिन के लिए पड़ाव पड़ गये। आगे चले तो वह घास-फूँस के आच्छादन समाप्त हो गये। फिर स्मारक कहाँ से बनते?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीन काल में तीर्थ यात्रा भी सामान्य सन्तों की क्रिया-पद्धति थी। उनके सूत्र संचालन, मार्गदर्शन, आधार निर्धारण के शोध कार्य, ग्रन्थ लेखन के लिए उँगलियों पर गिनने लायक ही संस्थान बनते थे। व्यास, चरक, सुश्रुत नागार्जुन, पाणिनि, पतंजलि जैसे कुछ ही दार्शनिक तत्वदर्शी, अपने शोध-संस्थान स्थिर रूप से चलाते थे। तीर्थ यात्रा ही हर सन्त की क्रिया-पद्धति थी। तीन-तीन वर्ष में एक बार उनके विशाल सम्मेलन कुम्भ पर्वों के रूप में होते रहते थे जहाँ उन सबका मिलन और विचार विनियम हो जाता था। उसके बाद वे जन-सम्पर्क के लिए फिर बिखर जाते थे। कुम्भ पर्व अभी भी तीन-तीन वर्ष बाद उज्जैन, नासिक, हरिद्वार एवं प्रयाग में मनाये जाते हैं। पर उन्होंने मेले-ठेले का रूप ले लिया है । मूल प्रेरणा और दिशा धारा का दर्शन उनमें कहाँ होता है।

तीर्थ यात्रा में कुछ स्थानों का महत्त्व बताया गया है और वहाँ केन्द्र देवालय बनाये गये हैं। निर्माताओं का लक्ष्य इस निर्माण में यह रहा है कि तीर्थ यात्रा मंडलियों को उन स्थानों पर कुछ समय विराम, विश्राम का अवसर मिले और जो साधन कम पड़ जायें वे वहाँ से उपलब्ध हो सकें, श्रद्धालु लोग इन तीर्थों के देवालयों पर धन दान के रूप में श्रद्धाञ्जलि चढ़ाते थे। वह राशि, तीर्थ मण्डलियों के लिए सुविधा साधन जुटाने के लिए निर्धारित रहती थी। वस्त्र, पात्र, ग्रन्थ, औषधि आदि, जो भी साधन धर्म प्रचारक टोलियों को आवश्यक होते थे, इन तीर्थ देवालयों से मिल जाते थे और धर्म प्रचार की व्यापक व्यवस्था यथावत् चलती रहती थी, धर्मशालाएँ तीर्थों में या अन्यत्र बनाई जाती थीं, वे धर्म प्रचारकों के लिए आश्रय स्थल होती थीं। 'धर्मशाला' नामकरण ही धर्म प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होने वाले स्थान के लिए हुआ है। आज तो वे हर ऐरे-गैरे के लिए मुफ्त की सराय होटलों का रूप बनी हुई हैं। आरम्भ में उनका निर्माण धर्म प्रचार के निमित्त ही हुआ था।

तीर्थों में धर्म शिक्षा की सत्संग व्यवस्था रहती थी किसी न किसी तत्वदर्शी ऋषि का पड़ाव वहाँ बना ही रहता था, ऐसी दशा में उन स्थानों पर अपनी सुविधा के समय जा पहुँचते और उपयुक्त प्रकाश प्राप्त करते थे। प्राचीन काल की किसी प्रेरणाप्रद घटना की स्मृति उन स्थानों के साथ जुड़ी रहने से तीर्थों की महिमा और भी बढ़ जाती थी। प्राकृतिक दृश्य, यातायात के सुविधा साधन, धर्म प्रचार क्षेत्रों का भौगोलिक विभाजन आदि को ध्यान में रखते हुए मनीषियों ने तीर्थ केन्द्रों का निर्धारण एवं निर्माण किया था।

भारतभूमि के चारों सिरों को तीर्थ यात्रा सूत्र में बाँधकर देश-व्यापी सांस्कृतिक एकता बनाये रहने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भगवान आद्य शंकराचार्य ने चारों धामों का जीर्णोद्धार और उन्हें अभिनव स्वरूप दिया था। बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर और द्वारिका—ये चार धाम भारत में चार दिशाओं के चार कोनों पर अवस्थित हैं। चारों धाम की यात्रा करने का अर्थ है—पूरा भारत भ्रमण। सुविस्तृत मातृभूमि के प्रति एकनिष्ठ श्रद्धा बनाये रहने में इन चारों धामों ने महती भाव-भूमिका सम्पन्न की है। क्षेत्रीय विभेद के आधार पर पनपने वाली विलगता और विशृंखलता को रोकने में इस धाम स्थापना ने, उनकी परिभ्रमण परिक्रमा ने, दूरगामी सत्परिणाम प्रस्तुत किये हैं।

तीर्थयात्रा के इन मूल-भूत प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए, उनका समावेश करते हुए यदि उस पुण्य प्रक्रिया को गतिशील रखा जा सके तो उसे धर्म धारण के फलवती होने का अवसर मिलेगा। इसके बिना निरुद्देश्य पर्यटन से तीर्थ यात्रा का न तो उद्देश्य पूरा होता है और न पुण्य फल मिलता है। हिन्दू धर्म में ही नहीं, संसार के अन्य धर्मों में भी जिस तीर्थ यात्रा को उच्चस्तरीय महत्त्व दिया है उसके पीछे छिपी हुई धर्म भावनाओं को जन-मानस में जाग्रत एवं समुन्नत बनाने की योजना को प्रमुखता मिलनी चाहिए। इससे पैदल यात्रा को—सम्पर्क को—महत्त्व दिया जाना चाहिए । जो जन-मानस को परिष्कृत करने की प्रवचन शैली से परिचित हों, उन आदर्शों का व्यावहारिक जीवन में समावेश कर चुके हों, वे उस मण्डली के प्रवक्ता बन कर चलें। मण्डली के शेष सदस्य कीर्तन आदि में सहयोग दें। स्वयं श्रवण-मनन करें और धर्म प्रचारक का प्रशिक्षण प्राप्त करें। ये यात्राएँ आज की स्थिति में और अधिक आवश्यक हैं। उनसे यात्री की तपश्चर्या और युग की माँग पूरी करने के दोनों ही उद्देश्य समान रूप से पूरे हो सकते हैं।

ऋषियों की जीवन प्रक्रिया का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उनका अधिकांश समय परिभ्रमण में बीता। यही कारण है कि जहाँ अन्य वर्ग के महापुरुषों के स्थान, स्मारकों के चिह्न मिलते हैं वहाँ ऋषियों के इतने महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व होते हुए भी न तो किसी स्थान विशेष पर टिके और न उनके स्थान बने। मध्यकालीन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तों में से प्राय: प्रत्येक की क्रिया-प्रक्रिया यही रही है। उन्होंने अध्ययन एवं विशिष्ट तप साधना के लिए जितने समय जहाँ रुकना आवश्यक समझा, वहाँ रुके और इसके पश्चात् परिभ्रमण के लिए निकल पड़े। सिखाना और सीखना यही उनकी प्रधान प्रवृत्ति रही।

प्राचीन काल की तीर्थ यात्रा मण्डलियों में दो वर्ग के लोग रहते थे। एक वे मनीषी जो अपने साथियों तथा सम्पर्क क्षेत्रों को अपने ज्ञान तथा अनुभवों का लाभ पहुँचाते चलते थे। दूसरे वे जिज्ञासु जो मण्डली के वातावरण में अपने को श्रेष्ठता के लिए प्रशिक्षित करते थे, ताकि भविष्य में वे इस आधार पर उपार्जित किये चरित्र, ज्ञान एवं कौशल के आधार प्रचारकों की अगली भूमिका निभा सकें। यात्रा में कई व्यक्ति रहने से सुविधा भी रहती है और शोभा भी । भोजन आदि की दैनिक व्यवस्था और किसी के रुग्ण हो जाने पर परिचर्या, सुविधा का लाभ भी मण्डली में ही बन पड़ता है। सम्पर्क में कई प्रकार के कितने ही लोगों से वार्तालाप आदान-प्रदान करना पड़ता है इसमें कई व्यक्तियों का होना ही उपयुक्त रहता है। एक या दो व्यक्ति हों तो निजी व्यवस्था एवं सम्पर्कजन्य समस्याओं का निपटारा कठिन पड़ जाये। ऐसे ही अनेक कारणों को ध्यान में रखते हुए तीर्थयात्रा एकाकी नहीं वरन् टोलियों के रूप में निकलती थी। यों निषेध एकाकी का भी नहीं है। द्रुतगामी वाहनों के उपयोग से शारीरिक सुविधा तो रहती है पर अधिक लोगों से अधिक सम्पर्क उस जल्दबाजी में बन ही नहीं पड़ता। पैदल चलते हुए तो मार्ग में भी कितनों से ही बातें होती चलती हैं। वाहनारूढ़ व्यक्ति के लिए वैसा कर सकना सम्भव नहीं है।

नदियों, पर्वतों, पुण्य क्षेत्रों की परम्पराएँ अभी भी होती हैं । नर्मदा के उद्गम से लेकर अन्त तक की परिक्रमा हर साल निकलती है। गिरनार और गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा का पुण्य है। व्रज चौरासी कोस, प्रयाग की पंचकोशी परिक्रमाएँ प्रसिद्ध हैं। शिवरात्रि पर लोग कन्धों पर गंगाजल की 'काँवरें' उठाते हैं और अमुक शिवालय पर उन्हें चढ़ाते हैं। मार्ग में यह यात्री लोग भजन-कीर्तन गाते हुए चलते हैं ताकि चलते-चलते भी उद्बोधन का प्रयोजन पूरा होता चले।

प्रख्यात धर्म पुरुषों में से अधिकांश ने अपनी कार्य-पद्धति में तीर्थ यात्रा तप को प्रधान रूप से सम्मिलित रखा है। छोटे या बड़े सन्तों को जीवनचर्या पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आ खड़ा होता है।

देवर्षि नारद जी निरन्तर यात्रा निरत रहे। कहते हैं दो घड़ी से अधिक कहीं न ठहरने का उन्हें अभिशाप था। वे नित्य परिव्राजक हैं, उनका काम ही है अपनी वीणा की मनोहर झंकार के साथ भगवान के गुणों का गान करते हुए सदा यात्रा करना। भक्ति सूत्र निर्माता नारद जी के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि उनकी प्रतिज्ञा थी—सम्पूर्ण पृथ्वी पर घर-घर में एवं जन-जन में भक्ति की स्थापना करना।

दक्षिण में असुरों के बढ़ते हुए अत्याचार को रोकने के लिए अगत्स्य ऋषि ने दक्षिण की यात्रा कर वहाँ अपना आश्रम बनाया। लक्ष्मण को अगत्स्याश्रम का परिचय देते हुए राम कहते हैं—

यदा प्रभृति चक्रान्ता दिगियं पुण्य कर्मणा।
तदा प्रभृति निर्वैरा: प्रशान्ता रजनीचरा: ॥

—वाल्मी. रामा.

उन पुण्य कर्मा महर्षि अगस्त्य ने जब से इस दक्षिण दिशा में पदार्पण किया है, तब से यहाँ के राक्षस शान्त हो गये हैं तथा उन्होंने दूसरों से वैर-विरोध करना छोड़ दिया है।

भगवान श्री राम का तीर्थ यात्रा प्रेम अद्भुत था । उनकी तीर्थ यात्रा के बारे में स्कन्द, पद्म, अग्नि, ब्रह्म, गरुड़ तथा वायु आदि पुराणों में विस्तार से बताया गया है।

योगवाशिष्ठ में राम के बचपन में ही वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों के साथ अनेकों नदियों तथा प्रयाग, धर्मारण्य, गया, काशी, श्री शैल, केदार, पुष्कर तथा मानसरोवर आदि तीर्थों में भ्रमण करने का विस्तार से वर्णन है।

आनन्द रामायण में भगवान राम की अपने अनुचरों के साथ की गई तीर्थ यात्रा का 'यात्रा काण्ड' में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस यात्रा में भगवान राम ने देश के सभी तीर्थों का भ्रमण किया था।

भगवान राम सारे जीवन यात्रा ही करते रहे। इस यात्रा में पुराने तीर्थों का उद्धार, नये तीर्थों की स्थापना, धर्म प्रचार, दुष्टता का उन्मूलन आदि अनेक उद्देश्य निहित थे।

चौदह वर्ष के वनवास काल में भगवान जहाँ-जहाँ गये वे स्थान तीर्थ बन गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वनवासगतो रामो यत्र यत्र व्यवस्थितः ।
तानि चोक्तानि तीर्थानि शतमष्टोत्तरं क्षितौ ॥

—कूर्म पुराण

वनवास के समय राम जहाँ-जहाँ रहे, वहीं तीर्थ बन गये, से तीर्थों की संख्या १०८ हो गई थी ।

लोक कल्याण के व्रती महात्मा बुद्ध ने लगातर ४५ वर्ष तक देश भर में भ्रमण करके जनता को सत्य धर्म का उपदेश दिया और उनको अनेकों कुरीतियों और अन्धविश्वासों से छुड़ाकर कल्याणकारी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी ।

सम्राट् अशोक ने तेईस वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त ईसा पूर्व २४९ में उन्होंने अपने राज्य के तीर्थ स्थानों का भ्रमण किया । पाँच लाटों में अंकित वृत्त से यह पता चलता है कि वे मुजफ्फरपुर और चम्पारन होते हुए हिमालय की तराई तक गये और वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़कर लुम्बिनी वन पहुँचे जहाँ तथागत का जन्म हुआ था । अपनी यात्रा के स्मारक के रूप में उन्होंने लुम्बिनी वन में भी एक लाट स्थापित की थी । आचार्य उपगुप्त के साथ फिर कपिलवस्तु, सारनाथ, श्रावस्ती गये । इस प्रकार बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते-करते सम्राट् अशोक कुशीनगर पहुँचे । तीर्थ यात्रा के उपरान्त अशोक ने संन्यास धारण कर लिया एवं सारा समय धर्म-चर्या एवं धर्मोपदेश में बिताया ।

जगद्गुरु आद्य शंकराचार्य ने दिग्विजय का समारम्भ किया । अनन्तशयन, अयोध्या, इन्द्रप्रस्थपुर, उज्जयिनी, कर्नाटक, काँची, चिदम्बर, बदरी, प्रयाग आदि तीर्थ क्षेत्रों और महानगरों में आत्मज्ञान और धर्म का प्रचार किया । काश्मीर से रामेश्वर तक की विद्वन्मण्डली ने उनकी विद्वत्ता का लोहा मान लिया । उन्होंने पद यात्रा के अन्तर्गत दक्षिण में श्रृंगेरी, पूर्व में जगन्नाथपुरी में गोवर्धन, पश्चिम में द्वारका में शारदा और उत्तर बदरिकाश्रम में ज्योतिर्मठ की स्थापना की ।

सन्त ज्ञानेश्वर ने अलन्दी से, नेवा से वापिस आने पर, पन्द्रह वर्ष की आयु में सं. १३४७ वि. में 'ज्ञानेश्वरी गीता' का प्रणयन किया, तदुपरान्त तीर्थ यात्रा आरम्भ की । उनके साथ निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नरहरि सोनार, चोखामेला आदि तत्कालीन संत थे । वे पण्ढरपुर गये । वहाँ से सन्त नामदेव उनके साथ हो गये । फिर उक्त सन्त मण्डली ने उज्जैन, प्रयाग, काशी, अयोध्या, गया, गोकुल, वृन्दावन, गिरिनार आदि तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा की । लोगों को अपने सत्संग से सचेत कर जागरण का सर्वत्र सन्देश सुनाया । सन्त ज्ञानेश्वर की इस ऐतिहासिक, लोक-शिक्षणपरक तीर्थ यात्रा की बड़ी ख्याति सुदूर क्षेत्रों में फैल गई । वे मारवाड़ और पंजाब की ओर भी गये । तीर्थ यात्रा से लौटने पर पण्ढरपुर में सन्त नामदेव ने इस यात्रा यज्ञ की पूर्ति स्वरूप एक विशाल उत्सव का आयोजन किया ।

सन्त एकनाथ अपने अनुष्ठान की पूर्ति के बाद गुरु आज्ञा से तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़े । उनकी तीर्थ यात्रा में जनार्दन पन्त ने नाविक त्र्यम्बकेश्वर तक उनका साथ दिया । ब्रह्मगरि की परिक्रमा के उपरान्त गोदावरी, ताप्ती, गंगा और यमुना का स्नान किया । आठों विनायक और बारह ज्योतिर्लिंग के दर्शन किये । वृन्दावन, काशी, प्रयाग, गया, बदरिकाश्रम एवं द्वारिका की यात्रा की । सन्त एकनाथ ने १३ साल तक यात्रा की । २५ वर्ष की अवस्था में वे पैठण लौट लाये ।

चैतन्य महाप्रभु ने भी सामूहिक एवं एकाकी रूप से अनेक स्थलों का परिभ्रमण किया । गया गये, फिर नील्काचल के उपरान्त दक्षिण की यात्रा की । अपने भक्त और अनुचर गोविन्द को लेकर वे हाजीपुर, मिदनापुर होते नयनागढ़ गये । चैतन्य ने अलौकिक प्रेम भाव का ही उपदेश दिया । ढलेश्वर, जलेश्वर, हरिहरपुर, बलशोर होते हुए नीलगढ़ गये । अपनी तीर्थ यात्रा में उन्होंने जन-मानस का परिष्कार किया । सत्याबाई और कमलाबाई वेश्याओं का हृदय परिवर्तन किया । महाप्रभु काँचीपुरम् गये, शिव कांची, पक्षी तीर्थ, काल तीर्थ , सन्धि आदि पवित्र तीर्थों के दर्शन करते हुए वे तिरुचिरापल्ली पहुँचे । तज्जावूर, कृन्ती, कर्णपड़ा, पद्मकोट, त्रिपत्र, श्रीरंगम, रामेश्वर आदि दक्षिण भारत के अनेक तीर्थों का महाप्रभु ने भ्रमण किया । महाराष्ट्र के बाद गुजरात, द्वारका, सोमनाथ, जूनागढ़ प्रभास क्षेत्र होते हुए मध्यभारत के अनेक स्थलों के दर्शनार्थ गये । अन्त में उत्तर भारत की यात्रा अकेले पैदल की । मथुरा-वृन्दावन, प्रयाग, काशी गये । काशी का मन जीत श्री चैतन्य ने भारत का मन जीत लिया । मात्र ४८ वर्ष की आयु पाकर ही उन्होंने तीर्थ यात्रा द्वारा लाखों पतित-पददलितों का उद्धार किया । जो समाज में पद्च्युत थे उन्हें नई हैसियत दी । समग्र समाज को जीने के लिए एक नयी आस्था प्रदान की ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

६.२१ तीर्थ सेवन क्यों ? और कैसे ?

गोस्वामी तुलसीदास ने १४ वर्ष तक तीर्थ यात्राएँ कीं। वे प्रयाग, जगन्नाथ, रामेश्वर, द्वारिका, बदरिकाश्रम आदि पावन स्थलों के दर्शनार्थ गये। तीर्थ यात्रा के बाद वे काशी में रहकर सन्तों का संग और राम की कथा कहने लगे।

सन्त तुकाराम ने तत्कालीन महाराष्ट्र को ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र को आत्मदर्शन एवं भगवद् दर्शन प्रदान किया। पण्ढरी की यात्रा का उन्होंने आजीवन पालन किया।

गुरु नानक जी लगभग तीस वर्ष की आयु में सांसारिक बंधन से मुक्त होकर भटकती हुई मानवता को सत्य मार्ग का उपदेश देने निकल पड़े। गुरु नानक ने देश-विदेश की व्यापक यात्राएँ कीं। उन्होंनें १५ वर्ष तक भारतवर्ष की चारों दिशाओं में सभी प्रमुख स्थानों की यात्राएँ कीं और अन्त में अफगानिस्तान, ईरान, अरब और ईराक तक गये।

समर्थ गुरु रामदास ने १२ वर्ष के तप के उपरान्त १२ वर्ष तक तीर्थ यात्रा की एवं सं. १७०१ के वैशाख मास में कृष्णानदी के तट पर आये । तीर्थ यात्रा के प्रसंग में श्री समर्थ जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ इन्होंने मठ स्थापित किये। लोक-कल्याण की भावना से धर्म स्थापनार्थ उस युग में जब रेल, तार, जहाज, अखबार, प्रेस आदि का सर्वथा अभाव था, समस्त देश में घूमे। वे सर्वप्रथम काशी गये। फिर मथुरा-वृन्दावन से पंजाब, श्रीनगर एवं काश्मीर पहुँचे। वहाँ से चलकर हिमालय में केदारनाथ-बद्रीनाथ की यात्रा की। उत्तराखण्ड के उपरान्त जगन्नाथ गये। लंका से वापिस होते हुए केरल, मैसूर, फिर महाराष्ट्र आ गये। यहाँ उन्होंने गोकर्ण, बैंक्टेश, मल्लिकार्जुन बालनरसिंह, पालन नरसिंह का दर्शन किया, इसके बाद पठयसर, ऋष्यमूक, करवीर क्षेत्र, पंढरपुर आदि होकर पञ्चवटी लौट आये।

पुष्टिमार्गी सन्त गोस्वामी विट्ठलनाथ ने गुजरात तथा दक्षिण और मध्यभारत के तीर्थों की यात्रा की। बादशाह अकबर, मानसिंह, बीरबल, महारीन दुर्गावती, राजा आसकरण आदि उन्हें बड़े सम्मान एवं आदर की दृष्टि से देखते थे।

कृष्णोपासक सन्त दयारामभाई ने तीर्थ यात्रा सम्पादित की। दयाराम भाई श्रीनाथ द्वारा से कांकरोली गये। कांकरोली से मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि की यात्रा की। उन्होंने सम्पूर्ण ब्रज मण्डल चौरासी कोस की परिक्रमा की। तीर्थ यात्रा से लौटने पर दयाराम भाई ने बड़ौदा के गोस्वामी श्रीवल्लभ लाल जी महाराज से ब्रह्म सम्बन्ध लिया।

सन् १८८८ में स्वामी विवेकानन्द देश भ्रमण के लिए निकले। उन्होंने लगातार कई वर्ष तक देशव्यापी यात्रा परिभ्रमण किया। इस यात्रा से उन्होंने भारतीय विभिन्न वर्गों की अच्छी जानकारी प्राप्त की। राजस्थान में पहले वे अलवर गये। घूमते-घूमते ज्ञानोपदेश करते लिम्बड़ी काठियावाड़ गये, फिर मैसूर पहुँचे। फिर वे रामेश्वर होकर कन्याकुमारी पहुँचे। बाद में अमेरिका, इंगलैण्ड एवं अन्य पाश्चात्य देशों की यात्रा की।

स्वामी रामतीर्थ ने अपनी देश-विदेश की यात्राओं में अध्यात्म का सच्चा स्वरूप प्रतिपादित किया। सनातन धर्म सभा के प्रसिद्ध उपदेशक दीनदयाल शर्मा के साथ उन्होंने बज, प्रयाग और काशी की तीर्थ यात्रा की। उत्तराखण्ड की यात्रा भी की। हिमालय के अंचल से मैदान में उतर कर उन्होंने, मथुरा, फैजाबाद, लखनऊ, आदि की यात्रा कर वेदान्त पर महत्वपूर्ण भाषण दिया। स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिका, जापान तथा मिश्र आदि देशों की जनता को सत्य, शान्ति और प्रेम का सन्देश दिया।

स्वामी दयानन्द विद्याध्ययन के उपरान्त प्राय: परिभ्रमण ही करते रहे। आर्य समाजों की स्थापना, उन्हें गति देना, शास्त्रार्थ, साहित्य लेखन आदि सभी कार्य उन्होंने अपने प्रवास कार्य के साथ ही सम्पन्न किये थे।

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर ने विलायत से लौटकर तीर्थ यात्रा की। उन्होंने देश के गरीबों की स्थिति का अध्ययन करने हेतु कलकत्ते से पेशावर तक बैलगाड़ी में यात्रा की। यद्यपि उस समय रेलगाड़ी चल निकली थी किन्तु रेल यात्रा में पिछड़े हुए गाँवों और भूखे-नंगे कृषकों की अवस्था का क्या पता लग सकता था ?

अफ्रीका से लौटने पर गाँधीजी ने एक वर्ष तक समस्त देश का भ्रमण किया। एक वर्ष तक देश की यात्रा करने के उपरान्त गाँधीजी अहमदाबाद लौटे और वहाँ साबरमती नदी के किनारे उन्होंने अपने सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। उनकी डाँडी नमक सत्याग्रह यात्रा एवं नोआखाली की साम्प्रदायिक सद्भाव यात्रा तो प्रसिद्ध ही है।

सन्त विनोबा ने पूरे देश में पैदल घूम-घूमकर लाखों गरीबों की जीविका की व्यवस्था करने के साथ भारतीय जनता की दशा का निरीक्षण किया और उनकी समस्या

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को समझा। पाकिस्तान की भी पदयात्रा की। चौदह वर्ष सन् १९५१ से १९६४ तक लगभग ४३ लाख मील की पैदल यात्रा करके विनोबा ने जब पुन: अपने आश्रम में प्रवेश किया तो उस समय उनको ४,२३६-८२७ एकड़ जमीन भूदान में मिली और ७५६० ग्राम दान में मिले।

ईसामसीह ने अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासा की पूर्ति के लिए विदेशों की यात्रा की थी। डॉ. नोटोविच की कृति ईसामसीह का अज्ञात जीवन चरित्र के अनुसार चौदह वर्ष की आयु में ईसा सौदागरों के एक दल के साथ भारत (सिन्ध) आ पहुँचे। इसके बाद वे जगन्नाथ गये, वहाँ उन्होंने वेदशास्त्र का अध्ययन किया। फिर बनारस आदि स्थानों की यात्रा में ६ वर्ष व्यतीत हो गये। फिर कपिल-वस्तु पहुँचे। बौद्ध शास्त्रों का भी उन्होंने अध्ययन किया। उसके पश्चात् वे नैपाल और हिमालय से होते हुए ईरान पहुँच गये। तदुपरान्त स्वदेश पहुँच कर स्वजातीय भाइयों में उस आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करने लगे जो उन्होंने इतने वर्ष के अध्ययन और स्वानुभाव से प्राप्त किया था।

अन्यान्य धर्म संस्थापकों ने भी यही किया है। इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब ने अपनी धर्म प्रचार यात्रा जारी रखी। पारसी, यहूदी, माओ आदि संसार के प्रधान धर्म सम्प्रदायों के संस्थापकों एवं प्रचारकों को अपना अधिकांश समय धर्म प्रचार की तीर्थ यात्राओं में ही व्यतीत करना पड़ा है।

यह तो कुछ उदाहरण मात्र हैं। इसकी गणना की जाये और सूची बनाई जाये तो ऐसे प्रख्यात धर्मात्मा कहे जाने वाले प्राय: सभी लोग धर्म प्रचार की तीर्थ यात्रा को अपनाये हुए मिलेंगे। जिन्हें एक स्थान पर बैठकर शोध, लेखन, शिक्षण आदि कार्य करने पड़े हैं उन्होंने भी कभी न कभी लम्बी तीर्थ यात्राओं का पुण्य सम्पादित किया है। सामान्य गृहस्थ भी अपनी व्यस्तता में से अवकाश निकाल कर इस पुण्य लाभ के लिए समय निकालते रहे हैं। स्व-पर कल्याण का इससे अच्छा रोचक एवं उपयागी धर्म कृत्य दूसरा कोई भी नहीं है।

तीर्थ यात्रा के नाम पर स्थान दर्शन को आज महत्व मिल गया है। इस भगदड़ में मात्र निहित स्वार्थों को ही धन बटोरने का अवसर मिलता है। पर्यटन अपनी जगह पर कायम रहे, पर उसे तीर्थ यात्रा का नाम न मिले। इन विडम्बनाओं को बदला जा सके और युग की आवश्यकता पूरी कर सकने वाली तीर्थ यात्रा प्रक्रिया को योजनाबद्ध रीति से सुनियोजित किया जा सके तो यह महान् धर्म परम्परा आज की स्थिति में भी पूर्वकाल की तरह ही व्यक्ति और समाज के लिए सब प्रकार हितकारक सिद्ध हो सकती है।

तीर्थ यात्रा किस प्रकार की जाये, इसका शास्त्रीय प्रतिपादन यह है कि उसे पद यात्रा के रूप में सम्पन्न किया जाना चाहिए। वाहनों का उपयोग निषिद्ध है। अभी भी तीर्थ यात्रा की इस प्राचीन परम्परा का स्वरूप अनेक स्थानों पर अनेक प्रसंगों पर देखने को मिलता है। गोवर्धन, गिरनार आदि पर्वतों की—ब्रजधाम, प्रयाग पंचकोशी आदि क्षेत्रों की—परिक्रमा होती है। इन्हें पैदल ही किया जाता है। शिवरात्रि के अवसार पर शिव प्रतिमाओं पर गंगाजल चढ़ाने के लिए अभी भी कन्धे पर "काँवर' रखकर तीर्थ यात्रा की जाती है। श्रवण कुमार ने गंगाजल के स्थान पर अपने अन्धे माता-पिता को काँवर में बिठा कर तीर्थ यात्रा की थी। जो लोग दूर नहीं जा सकते, समीप ही तीर्थ यात्रा का पुण्य लेना चाहते हैं वे विशिष्ट पर्वों पर पीपल, बरगद, आँवला, तुलसी आदि की अमुक संख्या में परिक्रमा कर लेते हैं। देवालयों की प्रदक्षिणा की जाती है। यज्ञ की पूर्णाहुति के समय चार परिक्रमाएँ करने का विधान है। इन प्रचलनों के पीछे उस आदि परम्परा की झाँकी की जा सकती है जिसमें तीर्थों की स्थापना के साथ दूरगामी परिणामों को ध्यान में रखते हुए पदयात्रा जैसी कुछ नियम मर्यादाओं का समावेश किया गया था।

योग साधनाओं में, तपश्चर्याओं में, धर्मानुष्ठानों में महत्वपूर्ण स्थान तीर्थ यात्रा का भी है। यह इसलिए कि विचारशील धर्मज्ञ जन-जन में धर्म धारणा जागृत रखने के लिए गाँव-गाँव पहुँचते—घर-घर जाते और अलख जगाते थे। यह इसलिए आवश्यक था कि पिछड़े हुए क्षेत्र या वर्ग के लोग अपनी निर्वाह समस्याओं में ही उलझे रहते हैं, उन्हें धर्म, दर्शन, अध्यात्म जैसी उच्चस्तरीय अनुभूतियों के साथ सम्पर्क मिलाने की इच्छा ही नहीं होती। इच्छा हो तो अवसर नहीं मिलता। नगरों से दूर छोटे देहातों में प्राय: हर तरह के साधनों का अभाव रहता है। ऐसी दशा में उनकी मन:स्थिति एवं परिस्थिति इस योग्य नहीं रहती कि वे जीवन लक्ष्य को समझने और उसे उपलब्ध करने के लिए उपयुक्त प्रकाश प्राप्त कर सकें। बड़े नगरों में सम्पन्न लोगों के पास ज्ञानवान और विद्वान भी आसानी से पहुँचते रहते हैं, सुविधा साधन हर किसी को अपने निकट खींच बुलाते हैं। कथा प्रवचनों और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्संगों की वहाँ कमी नहीं रहती । लाभ उठाना न उठाना इच्छा पर निर्भर है, वहाँ ज्ञान का आलोक पहुँचने में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं है । देहातों की स्थिति ऐसी नहीं है । वहाँ छाया हुआ आर्थिक एवं बौद्धिक पिछड़ापन न तो धर्म जिज्ञासा के प्रति उत्साह उत्पन्न होने देता है और न साधनों के अभाव में—परिस्थितियों के दबाव से कहीं दूर स्थान पर जाकर धर्म प्रवीणों के साथ सम्पर्क साधनों का अवसर ही मिल पाता है । वे अन्यत्र जा नहीं सकते, उनके पास कोई पहुँचता नहीं, ऐसी दशा में पिछड़े क्षेत्र धर्म चेतना से लाभान्वित होने का सौभाग्य प्राय: प्राप्त ही नहीं कर पाते ।

धर्म प्रचारकों को भी ऐसे क्षेत्रों में पहुँचने में उत्साह नहीं होता । दक्षिणा, सुविधा, सम्मान का अभाव, यातायात साधनों की असुविधा, उन्हें उन क्षेत्रों में जाने से निरुत्साहित करती है । जब साधन सम्पन्न क्षेत्रों में ही उनकी बहुत माँग है और उन्हीं से फुरसत नहीं मिलती तो फिर पिछड़े क्षेत्रों में अनेकानेक असुविधाओं का सामना करने के लिए क्यों जाया जाये ? यही व्यवधान है जो पिछड़पन को प्रगतिशीलता में परिवर्तित करने वाले प्राणवान सत्संग सम्पर्क का सुयोग नहीं बनने देते और एक बहुत बड़े वर्ग के पिछड़ेपन की समस्या जहाँ की तहाँ उलझी रह जाती है । बड़ा वर्ग पिछड़े लोगों का है—जन-संख्या की दृष्टि से वे भारत में तीन-चौथाई के लगभग हैं । उनका प्रकाश कैसे पहुँचे ? उनमें उत्कृष्टता का आलोक कौन जगाये ? बिना उत्थान प्रयासों के कुसंस्कारी निकृष्टता कैसे घटे ? उत्थान का सम्बल कहाँ से मिले ? इन प्रश्नों का उत्तर एक ही निकाला गया—तीर्थ यात्रा का प्रचलन ।

ऐसी तीर्थ यात्रा पद यात्रा के रूप में ही होनी चाहिए । सवारी पर नहीं । तभी उसका समुचित लाभ मिलता है ।

इति ब्रुवन् रसनया मनसा च हरि स्मरन् ।
पादचारी गतिं कुर्यात् तीर्थं प्रति महोदय: ॥

वाणी से कीर्तन करते हुए मन में भगवान का स्मरण करते हुए पैदल तीर्थ यात्रा करने वाले का महान अभ्युदय होता है ।

ऐश्वर्य लोभान्मोहाद् वागच्छेद यानेन यो नर: ।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यान विवर्जयेत् ॥

—मत्स्य पुरा. सं.

तीर्थयात्रों में यान वर्जित है । ऐश्वर्य के गर्व से, मोह से या लोभ से जो यानारूढ़ होकर तीर्थ यात्रा करता है, उसकी तीर्थ यात्रा निष्फल हो जाती है ।

यानमर्धफलं हन्ति तदर्द्धं छत्रपादुके ।
वाणिज्यं त्रींस्तथा भागाम् सर्वं हन्ति प्रतिग्रह: ॥

—स्कन्द पुराण

सवारी तीर्थ यात्रा का आधा फल अपहरण कर लेती है । उसका आधा छत्र तथा पादुका अपहरण कर लेते हैं । व्यापार पुण्य का तीन चतुर्थांश अपहरण करता है तथा प्रतिग्रह तीर्थ के सारे पुण्य को नष्ट कर देता है ।.

सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम् ।
तीर्थं तु फलदं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा ।
तीर्थानुगमने पद्भ्यां तप:परमिहोच्यते ।
तदेव कृत्वा यानेन स्नानमात्रफलं लभेत् ।

सभी वर्गों तथा सभी आश्रमों के लोगों को तीर्थ फलदायक होता है—इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए । जो पैरों से पैदल चलकर तीर्थ जाते हैं, वे परम तप करते हैं । जो सवारी से यात्रा करते हैं, उन्हें स्नान मात्र का ही फल मिलता है ।

तीर्थ यात्रा का अर्थ पद यात्रा ही लिया गया है । जन-सम्पर्क साधने के लिए धीमे चलना, मार्ग में विराम देना और लोगों से मिलना-जुलना आवश्यक है । इसमें पुण्य प्रयोजन सन्निहित है ।

धर्म परायण व्यक्ति छोटी-बड़ी मण्डलियाँ बनाकर तीर्थ यात्रा के लिए निकलते थे । कहाँ से चलकर, किस मार्ग से, किन-किन स्थानों पर ठहरते हुए कब तक वापस लौटेंगे, इसकी रूपरेखा प्रत्येक मण्डली अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् बनाती थी । मार्ग में जो भी गाँव, झोंपड़े, नगले, पुरवे मिलते थे उनमें रुकते ठहरते किसी उपयुक्त स्थान पर रात्रि विश्राम करते थे । यही क्रम निरन्तर चलता था । दिन में जहाँ रुकना हो, वहाँ धर्म चर्चा करना—लोगों को कथा सुनाना और उन्हें उपयुक्त मार्ग-दर्शन देना यह क्रम प्रात: से सायंकाल तक चलता था । रात्रि में जहाँ रुकते वहाँ कथा-कीर्तन का—शंका-समाधान का सत्संग क्रम बनता था । यही कार्य-पद्धति पूरी यात्रा अवधि में बनी रहती थी । काय चिकित्सा, मानसिक समाधान, उपयोगी परामर्श, समर्थ शुभकामना जैसे अनेकों लाभ इस सन्त मण्डली के सम्पर्क से जन-साधारण को मिलते थे । इन मण्डलियों के स्तर एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रिया-कलाप से जन-जन के मन-मन में अपार श्रद्धा उमड़ती थी। अस्तु वे उनके प्रति न केवल भावभरा सम्मान व्यक्त करते थे वरन् उनके लिए आवश्यक सुविधा जुटाने में पूरा-पूरा सहयोग भी करते थे।

पानी की आवश्यकता खेतों को रहती है, वे बादलों तक याचना के लिए जा नहीं सकते। ऐसे साधन भी नहीं है कि वे मेघमाला को आमन्त्रित करने एवं बुला सकने में सफल हो सकें। बादल ही अपनी सहज करुणा से अपने पैरों चलकर—अपने कन्धों पर जल राशि लाद कर खेतों तक पहुँचते हैं और आवश्यकता से अधिक जल देकर उन्हें तृप्त करते हैं। संसार में छाये हुए शीत का निवारण करने के लिए धरती सूर्य के समीप नहीं पहुँच सकती। सूर्य ही उसकी आवश्यकता समझकर स्वयं उस पर अपना तेजस् बखेरते हैं। रात्रि के अन्धकार की व्यापकता कैसे मिटे ? चन्द्रमा के निकट चाँदनी माँगने निशा कैसे पहुँचे। चन्द्रमा स्वयं ही परिभ्रमण करते हुए रात्रि की तमिस्रा को घटाते हैं। उनके पास अपना प्रकाश नहीं है तो भी वे उदार सूर्य से माँग कर लाते हैं और रात्रि की कुरूपता मिटाते हैं। प्राणियों का जीवन प्राणवायु पर निर्भर है। उस बहुमूल्य पदार्थ को कौन, कहाँ से, कैसे खरीदे। पवन स्वयं ही प्राण वायु अपने ऊपर लादकर-हर जीवधारी के पास पहुँचता है और उसे जीवन सम्पदा प्रदान करता है। यदि यह उदारता संसार में न रहे, हर कोई बदला ही चाहे, बिना स्वार्थ के कोई किसी के काम न आये तो समझना चाहिए कि यह संसार नरक के अतिरिक्त और कुछ न होगा। यहाँ जो कुछ सौन्दर्य-सुषमा का दर्शन होता है उसके पीछे शालीनता ही काम करती है। इसी शालीनता का जब धर्म क्षेत्र में प्रयोग होता है तो उसे तीर्थ यात्रा जैसी पुण्य-प्रक्रिया में प्रयुक्त होते देखा जाता है।

भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष, अग्नि काण्ड, तूफान आदि दुर्घटनाओं से पीड़ित व्यक्ति तात्कालिक सहायता के लिए साधन सम्पन्नों का दरवाजा खटखटाते हुए पहुँचने की स्थिति में नहीं होते। उदार व्यक्तियों को ही अपनी सहज करुणा से प्रेरित होकर उन पीड़ितों की सहायता करने पहुँचना पड़ता है और अपने श्रम, सौहार्द एवं साधनों की सहायता से उन्हें ही आगे बढ़कर पीड़ितों का कष्ट हलका करना पड़ता है। तीर्थ यात्रा को ठीक इसी स्तर की परम्परा कहा जा सकता है जिसमें जन-जन तक घर-घर तक पहुँचने का प्रयत्न सद्भावना सम्पन्न व्यक्तियों द्वारा जब तब नहीं वरन् सुनियोजित रीति से किया जाता है।

तीर्थ स्थानों का महत्त्व इसलिए है कि वे तीर्थ यात्रा परम्परा को गतिशील रखने में उपयोगी आधार हैं। तीर्थ न हों तो तीर्थ यात्रियों को सुनियोजित यात्रा कार्यक्रम बनाने में भारी असुविधा हो। धर्म प्रचारकों को भी अपने से ऊँचे स्तर के ज्ञानियों और तपस्वियों का प्रकाश अनुदान प्राप्त करना होता है। उन महत्त्वपूर्ण अनुदानों को वे तीर्थ संचालक ऋषियों से प्राप्त करते हैं। उन ऋषियों के आरण्यक तीर्थों में चलते हैं। आरण्यकों को एक प्रकार के अध्यात्म् विद्यालय ही समझा जा सकता है। वहाँ स्थायी साधकों और समय-समय पर आने वाले आगन्तुकों के लिए उभय पक्षीय शिक्षण व्यवस्था का सुयोग रहता था। तीर्थों में सामान्य यात्री-नागरिक तो पहुँचते ही थे, धर्म-प्रचारक मण्डलियों को भी वहाँ से बहुत कुछ मिलता था। तीर्थ आरण्यकों में आवश्यक शिक्षण परामर्श, विश्राम एवं साधनों का लाभ उन्हें मिलता था। इस प्रकार वे अपनी थकान मिटाने, नवीन स्फूर्ति पाने और आत्म-कल्याण लोक-कल्याण की उस समन्वित साधना में निरत रहते थे।

तीर्थ यात्री के लिए उसका धर्म-प्रचार, पद-यात्रा एक उच्चस्तरीय तप साधना प्रक्रिया थी और जहाँ वे रुकते थे उनके लिए सौभाग्य सुअवसर जैसी दैवी अनुकम्पा। इसी भावनात्मक तालमेल के कारण तीर्थ यात्रा प्रक्रिया का धर्म प्रवाह सर्वत्र बहता था और उससे नदी-सरोवरों से भी अधिक मात्रा में जन-जन को लाभान्वित होने का अवसर मिलता था।

तीर्थ यात्रियों को अतिथि मानने और उनके सत्कार का प्रबन्ध करने की व्यवस्था को भारतीय जन-जीवन का अंग माना गया था। इसके लिए हर व्यक्ति अपना कुछ अंशदान नित्य नियमित रूप से निकालता था। एक परम्परा यह भी थी कि अपने भोजन से पूर्व अतिथि को भोजन कराया जाये। यदि वे उस दिन उपलब्ध न होते थे तो उस निमित्त निकाला हुआ अन्न सुरक्षित रख लिया जाता था और आवश्यकतानुसार उसे उसी प्रयोजन में लगा दिया जाता था, दैनिक वलिवैश्व-यज्ञ में एक आहुति अतिथि देव की भी है, कुछ अन्न नित्य उस प्रयोजन के लिए हर परिवार में निकाला जाता था। इससे पता चलता है कि उन दिनों अतिथि-तीर्थ यात्री कितने अधिक गौरवान्वित होते थे और उनकी उपयोगिता, आवश्यकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किस कदर समझी जाती थी। यह महत्व अकारण नहीं मिला था। तीर्थ यात्री कष्टसाध्य प्रक्रिया अपनाकर धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए जो उदारता बरतते और तितीक्षा सहते थे, उसी के फलस्वरूप वे अपने देव-प्रयोजन में संलग्न रहने के बदले देव स्तर का आत्मसन्तोष एवं लोक सम्मान प्राप्त करते थे।

प्राचीन काल में अनेकानेक मन्दिर, मठ एवं धर्मशाला बनाने को बहुत बड़ा पुण्य फल माना जाता था। उनका खर्च चलाने के लिए स्थायी सम्पत्ति की व्यवस्था की जाती थी। भेंट-पूजा, चढ़ोत्तरी आदि के माध्यम से जन-साधारण द्वारा उनकी समृद्धि बढ़ाने में योगदान दिया जाता था। यह धन प्राय: तीर्थ यात्रा को निकले धर्म प्रचार जत्थों की व्यवस्था पर ही खर्च किया जाता था। धर्मशाला बनाने का उद्देश्य था, धर्म प्रचार जत्थों के ठहरने के लिए उपयुक्त डाक-बंगले। कुछ समय विश्राम करने—अगली यात्रा के लिए आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध करने की सुविधा तीर्थ यात्रियों को इन्हीं मठों से, धर्मशालाओं से मिल जाती थी। वस्त्र, जूते, पात्र, साबुन औषधि आदि दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ अगली यात्रा के लिए वहीं से उपलब्ध कर लेते थे। धर्मचर्चा के लिए अनेक व्यक्ति इन चलते-फिरते ज्ञान भाण्डागारों से भेंट करने के लिए जिन स्थानों पर पहुँचते थे उन्हें धर्मशाला कहा जाता था। धर्म प्रयोजनों के लिए बनी हुई इन शालाओं के बनाने वाले इसलिए पुण्य के भागी बनते थे कि उनके धन से बनी हुई शाला-इमारत-सच्चे अर्थों में धर्म प्रयोजन की पूर्ति कर रही है। मठों में लगी हुई-मन्दिरों में देवे प्रतिमाओं पर चढ़ी हुई सम्पत्ति का एक ही उपयोग था—तीर्थ यात्रा के नाम से उत्पन्न की जाने वाली धर्म चेतना के लिए सरलता उत्पन्न करना। निरन्तर तीर्थ यात्रा के लिए परिभ्रमण करने वाले धर्म प्रचारक परिव्राजक कहलाते थे। उनमें वानप्रस्थ वर्ग का बाहुल्य रहता था।

जिन दिनों यह पुण्य परम्परा अपने असली रूप में क्रियान्वित होती होगी, उन दिनों कितना सुखद सुअवसर मिलता होगा। जन-जन का इसकी कल्पना मात्र से हृदय हुलसने लगता है। निरन्तर धर्म चेतना उत्पन्न करने के पवित्र प्रयोजन में संलग्न परिव्राजक एक प्रकार से चलते-फिरते जीवन्त तीर्थ ही रहे होंगे। उनकी तप:पूत ज्ञानसरिता में स्नान करके न जाने कितने पवित्र होते हैं—कितनों को भव-सागर से पार होने का नित्य ही अवसर मिलता होगा। ऐसी दशा में यदि यह देश किसी समय धर्म प्राण कहलाता रहा हो, यहाँ के नागरिक देवोपम जीवन जीते रहे हों—अपने सम्पर्क क्षेत्र को सुख-शान्ति की, प्रगति और समृद्धि की, स्वर्गीय परिस्थितियों से भरा-पूरा रखे रहे हों तो आश्चर्य ही क्या है। तैतीस कोटि देव नागरिकों की—स्वर्गादपि गरीयसी—यह भारतभूमि स्वयं गौरवान्वित रही और समस्त भूमण्डल को अपने अनुदानों से कृत-कृत्य बनाया, इसका परिचय उन विशेषणों से सहज ही लग जाता है जो संसार भर में इस देश के लिए प्रयुक्त होते थे। जगद्गुरु, चक्रवर्ती, नर-रत्नों के भाण्डागार इस देश को धरती का स्वर्ग कहा जाता था। इस स्थिति तक अपने देश को पहुँचाने में तीर्थ यात्रा का, उसमें संलग्न परिव्राजक मण्डलियों का सबसे बड़ा योगदान रहा है यह निश्चित है।

बड़े तीर्थ बड़े केन्द्र थे—उन्हें राजधानियाँ कह सकते हैं। छोटे तीर्थ जिले, तहसील आदि की भूमिका निभाते थे। उनके कार्यक्षेत्र बँटे हुए थे। इन क्षेत्रों को मण्डल कहते थे और मण्डलों में धर्म चेतना बनाये रहने, बढ़ाते चलने का उत्तरदायित्व सम्भालने वाले थे मण्डलेश्वर या मण्डलाशीध। इनके केन्द्र संस्थान तीर्थों के नाम से जाने जाते थे। इन्हीं केन्द्रों के माध्यम से देश भर में विश्व भर में—धर्म चेतना सुव्यवस्थित रखने का महान कार्य सम्पादित होता था। इस सूझ-बूझ और सुव्यवस्था को देखते हुए तीर्थ स्थापना करने वाले महान तत्वज्ञानियों की दूरदर्शिता के सम्मुख सहज ही श्रद्धा से प्रत्येक विचारशील का मस्तक झुक जाता है।

तीर्थ यात्रा क्यों करें ?

तीर्थ यात्रा के माहात्म्यों का धर्म शास्त्रों में सुविस्तृत वर्णन मिलता है। चारों धाम, सात पुरी, सात ज्योतिर्लिंगम्, तथा अनेक सरिता, सर, वन-उपवन तीर्थों की श्रेणी में गिने जाते हैं। इनके दर्शन, निवास, स्नान, भजन-पूजन, अर्चन करने में धर्म लाभ होने की हिन्दू धर्म में सुस्थिर मान्यता है। इन तीर्थों में लाखों-करोड़ों की संख्या में हिन्दू जनता धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर जाती है। विशेष पर्वों पर तो तीर्थों में असाधारण भीड़ें होती हैं। करोड़ों रुपया इस अवसर पर हस्तान्तरित होता है।

आधुनिक युग बुद्धिवाद का युग कहा जाता है। इस युग में हर बात को बुद्धिवाद की तराजू पर तोलने की प्रथा है। जब सभी विषयों में खोजें और अन्वेषण हो रहे हैं तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धार्मिक प्रयासों के सम्बन्ध में विचार-विमर्श होना स्वाभाविक है। तीर्थों के सम्बन्ध में भी नई पीढ़ी की बुद्धिवादी जनता विचार करती है। किन्तु जब वह नव-विकसित बाल-बुद्धि उनकी वास्तविकता और उपयोगिता को ठीक प्रकार समझ नहीं पाती तो कुतर्क करने लगती है। तीर्थों में अस्तित्व को अनुपयोगी, हानिकारक तथा अवांछनीय तक बताया जाता है। आइये, इस प्रश्न पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालें।

तीर्थों की स्थापना करने में हमारे तत्वदर्शी पूर्वजों में बड़ी बुद्धिमता का परिचय दिया है। जिन स्थानों पर तीर्थ स्थान स्थापित किये गये हैं वे जलवायु की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी हैं। जिन सरिताओं का जल विशेष शुद्ध, उपयोगी, हलका तथा स्वास्थ्यप्रद पाया गया है उनके तटों पर तीर्थ स्थापित किये गये हैं। गंगा के तट पर सबसे अधिक तीर्थ हैं, कारण यह है कि गंगा का जल संसार की समस्त नदियों से अधिक उपयोगी है। उस जल में स्वर्ण, पारा, गंधक तथा अभ्रक जैसे उपयोगी खनिज पदार्थ मिले रहते हैं । जिसके सम्मिश्रण से गंगाजल एक प्रकार की दवा बन जाता है, जिसके प्रयोग से उदर रोग, चर्म रोग तथा रक्त विकार आश्चर्यजनक रीति से अच्छे होते हैं। कुष्ट रोग को दूर करने की गंगाजल में महत्त्वपूर्ण क्षमता मौजूद है। इसी प्रकार अन्य नदी-सरोवरों में अपने-अपने गुण हैं। इन गुणों की उपयोगिता का तीर्थों के निर्माण में प्रधान रूप से ध्यान रखा गया है।

आजकल वायु परिवर्तन के लिए लोग पहाड़ों पर जाया करते हैं। रोगी और दुर्बलों को डॉक्टर लोग वायु परिवर्तन के लिए किन्हीं स्वास्थ्यप्रद स्थानों में भेजते हैं। यह दृष्टिकोण तीर्थों में भी रखा गया है। जहाँ की भूमि, वनस्पति, ऋतु, आदि के आधार पर स्वास्थ्यप्रद वायु पायी गई है, वहाँ तीर्थ कायम किये गये हैं। इन स्थानों पर कुछ समय निवास करके वहाँ के जलवायु का सेवन करने से तीर्थ यात्रियों के स्वास्थ्य पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है, इस तथ्य से प्रोत्साहित होकर विवेकशील आचार्यों ने वहाँ तीर्थ बना दिये।

तीर्थ यात्रा में पैदल चलने का विशेष महत्व बताया गया है। पैदल चलना शरीर को सुगठित करने और नाड़ी समूह तथा माँस पेशियों को बलवान बनाने के लिये आवश्यक उपाय है। आयुर्वेद शास्त्रों में प्रमेह चिकित्सा के लिए सौ योजन अर्थात् चार सौ कोस पैदल चलने का आदेश दिया है। अधिक चलने से जंघाओं की नाड़ियों और माँस पेशियों का अच्छा व्यायाम होता है और वे परिपुष्ट हो जाती हैं। ढीली नस, नाड़ियों की संकुचन शक्ति शिथिल पड़ जाने के कारण वीर्य नीचे की ओर स्रवित होता रहता है, और स्वप्नदोष, प्रमेह, पेशाब के साथ चिकनाई जाना, शीघ्र पतन, बहुमूत्र आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इस व्यथा से छुटकारा पाने के लिए कटि प्रवेश तथा जंघाओं के नाड़ी समूह तथा माँस पेशियों को ठीक करना पड़ता है। आयुर्वेद की सम्मति में इसका अच्छा उपचार नियमित रूप से पैदल चलना है। जिससे कटि, पेडू और जंघाएँ सुदृढ़ हो जावें। तीर्थ यात्रा इस उद्देश्य को बड़ी अच्छी तरह पूरा करती है। पैदल तीर्थ यात्रा करने से स्वस्थ व्यक्तियों का शारीरिक गठन ऐसा अच्छा हो जाता है जिसमें प्रमेह आदि का आक्रमण नहीं हो पाता । जिन्हें मूत्र रोग होते हैं, उन्हें उन व्यथाओं से बिना दवा-दारू में धन लुटाये स्थायी रूप से लाभ हो जाता है।

जो लोग लम्बी यात्राएँ नहीं कर पाते थे, सुदूर देश में जाने की जिन्हें सुविधाएँ न होती थीं, उन्हें किसी एक ही तीर्थ की परिक्रमाएँ करने को कहा जाता था। पेट के बल दंडवती परिक्रमाएँ करना आँतों के रोगों के लिए उपयोगी है, तिल्ली एवं जिगर भी इससे मजबूत होते हैं और उनके बहुत से विकार दूर हो जाते हैं। पर्वतों पर बहुत ऊँचे कुछ तीर्थ बनाये गये हैं । ऊँची चढ़ाई चढ़ने से हड्डियों की संधियाँ मजबूत होती हैं तथा गठिया होने का भय नहीं रहता। फेफड़ों को मजबूत बनाने के लिए ऊँचा चढ़ना और नीचे उतरना असाधारण रूप से उपयोगी है। पहाड़ी प्रदेशों के रहने वाले व्यक्ति, जिन्हें ऊँचा चढ़ना और नीचे उतरना पड़ता है, चौड़ी छाती वाले होते हैं, उन्हें तपेदिक जैसे फेफड़े के रोगों से ग्रसित नहीं होना पड़ता। कंधे पर गंगाजल की काँवर रख कर शिवरात्रि पर यात्रा की जाती है । इससे कंधे की नसों पर दबाव पड़ता है । इन नसों का मुलाधार चक्र की गुदा नाड़ियों से सम्बन्ध है, अतएव गुद स्थान पर उसका प्रभाव होता है और बवासीर सरीखे रोगों की सम्भावना नष्ट हो जाती है।

स्वास्थ्य लाभ के उपरोक्त दृष्टिकोण से तीर्थ यात्रा महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त देशाटन से अनावृत्ति का जो लाभ होता है वह भी कम उपयोगी नहीं है। जीवन की बहुमुखी उन्नति के लिए मनुष्य जाति के स्वभाव, आचार-विचार, व्यवहार, रहन-सहन, प्रथा, विश्वास, कार्यक्रम, परिपाटी, अर्थ, नीति आदि का अध्ययन करने की बड़ी भारी आवश्यकता है। देशाटन करने से मूर्ख मनुष्य भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुत अंशों में बुद्धिमान बन जाते हैं और घर से बाहर पैर न रखने वाले कूप मंडक ऊँची शिक्षा प्राप्त कर लेने पर भी अर्ध मूर्ख बने रहते हैं। देशाटन केवल मनोरंजन नहीं है वरन् एक ठोस शिक्षाक्रम है। जितना वास्तविक ज्ञान मनुष्य दो महीने के देशाटन में प्राप्त कर सकता है उतना दो वर्ष तक पुस्तकें पढ़ने पर नहीं पा सकता। उच्च श्रेणी के मनुष्य अपनी आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक तथा शारीरिक स्थिति अच्छी बनाने के लिए प्रतिवर्ष कुछ न कुछ समय देशाटन के लिए अवश्य निकालते हैं। बेवकूफ लोग अन्दाज लगाते हैं कि यह सैर-सपाटे का समय व्यर्थ जाता है पर सच बात यह है कि दस घंटे पिले रह कर आदमी जितना उपार्जन करता है, उन सैर-सपाटे के दिनों में कई दृष्टियों से बहुत ऊँची चीजें कमा लेता है, तीर्थ यात्रा के अवसर पर अनेक स्थलों को देखने, अनेक प्रकार के मनुष्यों की विभिन्नताएँ समझने को, विविध स्थलों की विशेषताएँ जानने का अलभ्य अवसर मिलता है। अनेक कठिनाइयों का एवं दुष्ट, चोर, ठग और धूर्तों का सामना करना पड़ता है । इस संघर्ष में मनुष्य की चेतना, जागरूकता, सतर्कता एवं विवेचना शक्ति बढ़ती है । यात्रा के अनुभवों से परिपुष्ट होकर मनुष्य का बौद्धिक स्वास्थ्य बढ़ता है और वह बढ़ोत्तरी शारीरिक स्वास्थ्य की तरह ही महत्त्वपूर्ण है।

देश के विविध भागों के एक स्थान पर जब एक समय में बहुत लोग पहुँचते हैं तो ऐसा अवसर स्वर्ण अवसर होता है। व्यापारी लोग अपनी वस्तुएँ उस बृहद् जन-समूह के हाथों बेचते हैं, ग्राहक लोग उन एकत्रित व्यापारियों से नई-नई वस्तुएँ देखते हैं और दुष्प्राप्य चीजों को सुविधा-पूर्वक खरीद लेते हैं। इससे देश की व्यापारिक, औद्योगिक एवं आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। आगन्तुक लोग एक ही स्थान पर विविध प्रदेशों की विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। एक-दूसरे से परिचय, संपर्क और हेल-मेल बढ़ा सकते हैं। कोई प्रचारक अपने विचारों को एक स्थान पर रह कर भी अनेकों व्यक्तियों में फैला सकता है। जन-संपर्क के इस स्वर्ण संयोग से आगन्तुकों को लाभ पहुँचे, इस दृष्टिकोण से तीर्थों में अनेकों प्रकार के आयोजन होते थे। कला, प्रदर्शनी, संगीत, वकृता, कीर्तन, प्रवचन, सत्संग, सभा, सम्मेलन, अभिनय, आदि द्वारा उपयोगी ज्ञान सामग्री प्राप्त करने की आगन्तुकों को यहाँ अनेक सुविधाएँ होती थीं।

तीर्थ पुरोहित—पण्ड्या (सद्बुद्धि के भंडार) तपस्वी विद्वान, बुद्धिमान, पथ प्रदर्शक, ऋषि कल्प, निस्पृह, ब्रह्मवेत्ताओं के आश्रमों में जाकर यात्री लोग ठहरते थे। इन स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकार के तीर्थों में स्नान करने से यात्री का तन और मन स्वस्थ, पुष्ट, चैतन्य एवं प्रफुल्लित हो जाता था। भूमि पर मंदिर-जलाशय आदि के रूप में स्थिति स्थावर तीर्थ हैं और ऋषि, तपस्वी, परोपकारी, उच्च आत्मा वाले महापुरुष जंगम तीर्थ कहे जाते हैं। शास्त्रकारों ने स्थावर तीर्थ से भी जंगम तीर्थों का माहात्म्य अधिक विस्तारपूर्वक बताया है। तीर्थ यात्रा में दोनों प्रकार के तीर्थों का समन्वय होता था अतएव शारीरिक और बौद्धिक दोनों ही दृष्टियों से वहाँ जाने वालों को समुचित लाभ मिल जाता था।

जीवन की व्यावहारिक कठिनाइयों को सुलझाने के लिए वे तीर्थ पूर्ण पथ प्रदर्शन करते थे । उन्हें विविध स्थानों की सुविस्तृत जानकारी होती थी । फलस्वरूप बेटी-बेटों के विवाद, विविध स्थानों की फसल, व्यापारिक स्थिति, जीविका, शिक्षा, चिकित्सा आदि अनेकों विषयों में इन तीर्थ केन्द्रों पर पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाती थी और उन जानकारियों के आधार पर ऐसे-ऐसे लाभ होते थे जो यात्रा में लगे समय तथा पैसे की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान होते थे। यात्री लोग अनेक दृष्टियों से इतने लाभ में रहते थे कि सांसारिक-व्यापारिक बुद्धि से देखने पर भी तीर्थ यात्री फायदे में रहते थे।

तीर्थ स्थानों के ऐतिहासिक महत्त्व भी हैं, उन स्थानों पर हमारे पूर्वज महापुरुषों के पुनीत चरित्रों का सीधा सम्बन्ध है। यह स्थान उन महापुरुषों के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की स्मृति दिलाते हैं जिससे दर्शक को प्रेरणा, प्रोत्साहन, जीवन, बल, साहस तथा प्रकाश मिलता है। इतिहास स्वयं जीवन निर्माता है। अतीत काल के अनुभवों से भविष्य निर्माण का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। पुस्तकों में अंकित इतिहास की अपेक्षा उन सम्बन्धित स्थलों के स्मृति चिह्नों के आधार पर पढ़ा हुआ इतिहास अधिक प्रेरणा-प्रद होता है, अधिक हृदयंगम बन जाता है।

तीर्थों की स्थापना इस प्रकार की गई है कि देश में महत्त्वपूर्ण भागों की यात्रा छूटने न पावे। चारों धाम (बद्रीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वर तथा द्वारिका) देश के चार कोनों पर स्थित हैं। इनकी यात्रा करने वाले को सारे देश की परिक्रमा करनी पड़ती है और भारत की समस्त संस्कृतियों, रीति-नीतियों, भाषाओं तथा भावनाओं के सम्पर्क में आना पड़ता है । ज्योतिर्लिंगों, पुरियों, पुण्य सरिता-सरों एवं क्षेत्रों की यात्रा का क्रम भी ऐसा ही है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनकी यात्रा में बड़े महत्त्वपूर्ण भूखंडों का सम्पर्क होता है। यह सम्पर्क देश की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा बौद्धिक उन्नति के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

मानवीय विद्युत विज्ञान की दृष्टि से यह सिद्ध है कि जिन स्थानों में विशिष्ठ आत्म बल वाले महापुरुष निवास करते हैं वहाँ का वातावरण उनकी आत्म विद्युत से भर जाता है। जहाँ कोई अहिंसा की साधना वाले तेजस्वी महात्मा निवास करते हैं वहाँ का वातावरण ऐसा शान्तिदायक हो जाता है कि गो और सिंह आपस में प्रेम-पूर्वक निर्भय होकर रहते हैं। अपना स्वाभाविक बैर भाव भूल जाते हैं। इस प्रकार जहाँ कोई अवतारी, कलाधारी, अलौकिक आत्माएँ रही हैं वहाँ का वातावरण भी उनके दिव्य तेज से भर जाता है और यह बहुत समय तक उन आत्माओं के चले जाने के चिरकाल पश्चात् तक बना रहता है। तपस्वी महात्मा अपनी तपश्चर्या के लिए प्राय: ऐसे स्थानों को चुना करते हैं जहाँ इस प्रकार के आत्म तेज पूर्वकाल से ही विद्यमान हों क्योंकि इससे उनको बल प्राप्त होता है, साधनों के विघ्नों से अनायास ही बहुत अंशों में छुटकारा मिलता है। इस परम्परा के अनुसार उन स्थानों पर एक-एक करके अनेकों महात्माओं के आत्म तेज के परत जमा होते जाते हैं। उस भूमि, जल, वायु, आकाश में वह दिव्य तेज भरा रहता है। कल्प-कल्पान्त से असंख्य महात्माओं, अवतारी पुरुषों का सुदृढ़ आत्म तेज जिन स्थानों में पाया गया है वह तत्वदर्शी मनीषियों से तीर्थ स्थापित किये हैं। वस्तुत: वह स्थान "सिद्धपीठ" हैं। वहाँ के वातावरण में सुलभता से सिद्धि प्रदान करने वाले तत्व भरे रहते हैं। इन तत्वों के प्रभाव से अध्यात्म मार्ग के पथिकों को असाधारण सफलता प्राप्त होती है। जिस प्रकार वृक्ष की छाया में बैठने से सभी प्रकार के लोगों को शीतलता अनुभव होती है उसी प्रकार इन सिद्धपीठों की छाया में पदार्पण करने से सुख-शान्ति एवं संकट निवारण की आशीर्वादात्मक भावनाएँ सुलभता पूर्वक हर एक को प्राप्त होती हैं। कभी-कभी तो ऐसे अप्रत्याशित लाभ लोगों को मिलते देखे जाते हैं जिन्हें दैवी कृपा, तीर्थ महात्म्य या पूर्व पुराणों का फल, या क्या नाम दिया जाय यह समझ नहीं पाता।

यह ठीक है कि वर्तमान काल में तीर्थों की स्थिति बड़ी लज्जाजनक हो गई है। वहाँ अनाचार, व्यभिचार, ठगी, धूर्तता, आदि का बोलबाला है। इस सच्चाई से कोई इन्कार नहीं कर सकता। संसार व्यापी अनैतिकता से तीर्थ भी अछूते नहीं रहे हैं। हर क्षेत्र में काम करने वाली बुराइयाँ तीर्थों में भी घुस पड़ी हैं। चोर, ठग, धूर्त, बेईमान, उठाईगीरे, व्यभिचारी, पाखण्डी, लोभी, नीच, निर्लज्ज व्यक्ति धर्म की खाल ओढ़ कर इन पुनीत स्थानों में कुछ से कुछ बन जाते हैं। हत्यारे, डाकू, चोर तथा अनेक भयंकर प्रकार के अपराधी अपनी सुरक्षा के लिए तथा जीविका की सुविधा के लिए साधू संत बन जाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणत्व एवं पौरोहित्य गुणों से रहित व्यक्ति ब्राह्मणों के वेष ओढ़ कर जनता को ठगते हैं। सच्चे ब्राह्मणों तथा महात्माओं की कमी तथा धूर्तों की बढ़ोत्तरी ने आज तीर्थों को बदनाम कर दिया है। उन्हें अब धूर्तता, बदमाशी, ढोंग और लूट का घर समझा जाने लगा है। वर्तमान परिस्थितियों के देखते हुए जनता की यह मान्यता उचित भी है। यह सब होते हुए भी तीर्थों की आधार-शिला एक बड़े उपयोगितावाद के ऊपर खड़ी होने के कारण उनका महत्त्व पूर्णतया किसी भी प्रकार नष्ट नहीं हो सकता।

विषधर सर्प लिपटे रहने से चन्दन का वृक्ष त्याज्य नहीं माना जाता, काँटेदार डाली पर लगा हुआ गुलाब का फूल निन्दित नहीं होता, गंदी नालियाँ गिरने पर भी गंगाजी की महिमा मिट नहीं जाती, कुछ स्वार्थी, धूर्त एवं दुश्चरित्र लोगों की उपस्थित के कारण तीर्थों की महिमा समाप्त नहीं हो सकती। हानिकारक विकार उत्पन्न होने पर उन विकारों को दूर करना चाहिए, उन विकारों के भय से मूल वस्तु को त्याग बैठना बुद्धिमत्ता नहीं। जुओं के भय से न तो कोई कपड़े फेंक देता है और न सिर के बाल घुटा डालता है, खटमलों के भय से चारपाई पर सोना कोई नहीं त्यागता। कुछ स्वार्थियों की दुष्टता के कारण तीर्थों की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। उनके द्वारा होने वाले लाभ इतने अधिक गंभीर एवं महान हैं कि इस छोटे से कारण की वजह से वे उपेक्षणीय नहीं हो सकते।

तीर्थों में जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, उन्हें सुधारना चाहिये। (१) दर्शनीय स्थानों को स्वच्छ, शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद बनाया जाना चाहिये। (२) भीड़ में स्त्रियों से कुचेष्टा करने वालों, जेबकटों, उठाईगीरों, ठगों तथा पाखण्डियों को रोकने का प्रयत्न होना चाहिये। (३) मन्दिरों में जमा तथा चढ़ावे के रूप में चढ़ने वाली सम्पत्ति का अधिकांश भाग लोक हितकारी सार्वजनिक कार्यों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यय होना चाहिये। (४) निस्वार्थ, सेवाभावी, निर्लोभ, विद्वान, सच्चे, सदाचारी एवं सहृदय पण्डा-पुरोहितों से ही सम्पर्क रखना चाहिये। (५) दान देते समय पात्र-कुपात्र का पूरी तरह अन्वेषण कर लेना चाहिए। (६) यात्रियों को अतिथि देव समझ कर उनकी समुचित सेवा सहायता करने वाली सेवा-समितियाँ होनी चाहिये। (७) सच्चे विद्वान ब्राह्मणों को तीर्थों में ऐसे आश्रम स्थापित करने चाहिये—जहाँ जिज्ञासुओं को आत्मिक क्षुधा बुझाने के लिए सच्चा बौद्धिक भोजन मिल सके। (८) हर तीथ में वहाँ का परिचय देने वाली पुस्तकें ऐसी सस्ते मूल्य पर उपलब्ध होनी चाहिये जिसमें वहाँ के ऐतिहासिक तथ्यों का तर्क-संगत विज्ञान बुद्धि के साथ शिक्षात्मक ढंग से वर्णन हो। (९) देव मन्दिरों में वेज्ञीटेविल घी, विदेशी वस्त्र, चर्बी की मोमवत्ती आदि अपवित्र पदार्थों का उपयोग न किया जाये। (१०) यात्रियों के लिए तीर्थ हर दृष्टि से उपयोगी बन सकें, ऐसी व्यवस्था करने वाली शिक्षणशालाएँ तथा संस्थाएँ खुलनी चाहिये। (११) पैदल तीर्थ यात्रा को प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

धर्म चेतना को जाग्रत रखने की सुव्यवस्था तीर्थ स्थापना

तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में शास्त्रों का निर्देश है कि इसे पदयात्रा के रूप में ही सम्पन्न किया जाना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार तीर्थयात्रा में वाहनों का उपयोग निषिद्ध है। कहा जा सकता है उन दिनों आज की तरह वाहन नहीं थे, इसलिए सामयिक परिस्थितियों के अनुसार ही पदयात्रा का विधान किया गया होगा। निस्संदेह उन दिनों आज की तरह द्रुतगामी वाहन नहीं थे, पर जो थे शास्त्रों ने उनका भी निषेध किया हुआ था। उनका प्रयोग न करने के लिए जहाँ भी तीर्थ यात्रा का प्रकरण आया है, वहाँ इस तरह के निर्देश मिलते हैं।

पैदल ही तीर्थयात्रा करने की परम्परा आज भी कई रूपों में विद्यमान है। अनेक स्थानों पर तीर्थ यात्रा की इस प्राचीन परम्परा का स्वरूप देखने को मिलता है। गोवर्धन, गिरनार आदि पर्वतों; ब्रजधाम, प्रयाग पंचकोशी आदि क्षेत्रों तथा नर्मदा, गंगा, यमुना आदि नदियों की परिक्रमा आज भी की जाती है। शिवरात्रि के अवसर पर लोग कंधे पर काँवर रखकर शिव प्रतिमा पर जल चढ़ाने जाते हैं। श्रवण कुमार ने इस काँवर परम्परा में एक नया ही प्रयोग किया, उन्होंने अपने अन्धे माता-पिता को काँवर में बिठा कर, कन्धे पर रख कर तीर्थ यात्रा की थी।

असमर्थ या असुविधा होने के कारण जो लोग दूर स्थानों की तीर्थ यात्रा नहीं कर सकते वे इस असुविधा से बचते हुए भी विशिष्ट पर्वों पर, समीपस्थ विशिष्ट स्थानों को या पीपल, बरगद, आंवला, तुलसी आदि कि अमुक संख्या में परिक्रमा कर लेते हैं तथा उसका पुण्य लाभ उठाने का संतोष प्राप्त करते हैं। देवालयों-मन्दिरों की परिक्रमा की जाती है, यज्ञ पूर्णाहुति पर यज्ञ शाला अथवा हवन कुंड की परिक्रमा की जाती है। इन प्रचलनों के पीछे तीर्थ यात्रा की उस आदि परम्परा का ही विधान है। इन प्रचलनों में तीर्थ की स्थापना के साथ पदयात्रा जैसे कुछ नियम मर्यादाओं का समावेश दूरगामी परिणामों को ध्यान में रखते हुए किया गया था।

साधना-उपासना, तप-अनुष्ठान और धार्मिक आयोजनों में भी तीर्थयात्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका मुख्य कारण यही है कि विचाशील व्यक्ति सर्वसाधारण में धर्म धारणा को जीवन्त रखने के लिए गाँव-गाँव जायें और जन-जन को प्रगतिशीलता की प्रेरणा दें। यह आवश्यक भी था, क्योंकि पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्ति अपनी निर्वाह समस्याओं में ही उलझे रहते हैं। उन्हें धर्म दर्शन और अध्यात्म की उच्चस्तीय अनुभूतियों का लाभ उठाने की इच्छा ही नहीं होती, इच्छा हो तो भी उसका अवसर नहीं मिलता। वैसे भी नगरों से दूर रहने के कारण देहातों में सुविधा साधनों का प्राय: अभाव ही रहता है। उन परिस्थितियों में जीवन लक्ष्य को समझने और उसे प्राप्त करने के लिए उपयुक्त उत्साह, प्रकाश और मार्गदर्शन नहीं मिल पाता था, नगरों में चूँकि पर्याप्त सुविधा साधन रहते हैं और सभी वर्गों के लोग बड़ी संख्या में भी रहते हैं । इसलिए उनके पास ज्ञानवान और विद्वान भी आसानी से पहुँचते रहते हैं कारण कि सुविधा साधन और उपयुक्त परिस्थितियाँ हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर खींच बुलाते हैं। यही कारण है कि नगरों में कथा प्रवचनों की कोई कमी नहीं रहती। कोई लाभ उठाये न उठाये, यह मनमर्जी की बात है पर उन क्षेत्रों में ज्ञान का आलोक पहुँचने के लिए कोई रुकावट नहीं है।

देहातों में ऐसी परिस्थितियाँ कहाँ होती हैं ? वहाँ तो प्राय: आर्थिक और बौद्धिक दोनों ही दृष्टि से पिछड़ापन छाया रहता है। इसलिया अव्वल तो लोगों में धार्मिक जिज्ञासा का उत्साह ही नहीं रहता। किसी प्रकार वह इच्छा उत्पन्न हो भी जाये तो साधनों के अभाव या अन्य कारणों से लोग अपनी जिज्ञासाओं की पूर्ति नहीं कर पाते,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्योंकि इसके लिए धर्म प्रवीणों के साथ सम्पर्क साधने को दूर स्थानों पर जाना पड़ता है और साधन सुविधा व समय लोगों के पास होता नहीं। पिछड़ापन जहाँ का तहाँ ही बना रहता है।

इसका एक कारण यह भी है कि ऐसे क्षेत्रों में धर्म प्रचारक भी पहुँचना नहीं चाहते या कि उनका उत्साह नहीं होता है। अपेक्षित दान-दक्षिणा न मिलने, प्रचुर सम्मान प्राप्त न होने, भारी भीड़ इकट्ठी न मिलने और साथ ही आने-जाने व अन्य प्रकार की असुविधाएँ उन व्यक्तियों को देहाती क्षेत्रों में पहुँचने के लिए एक प्रकार से निरुत्साहित ही करती हैं। जाने की इच्छा या उत्साह इसलिए भी उत्पन्न नहीं होता कि साधन सम्पन्न क्षेत्रों में ही उनकी काफी माँग रहती है, वहीं उनके व्यस्त कार्यक्रम रहते हैं, उन्हें इन कार्यक्रमों से ही फुरसत नहीं मिलती। जब पहले ही प्रचुर दान-दक्षिणा, पर्याप्त सम्मान और व्यस्त समय हो तो इन सुविधाओं से रहित देहाती पिछड़े क्षेत्रों में कोई क्यों जाय ? न जाने का कारण अपने स्थान पर मोटी दृष्टि से ठीक लगता है लेकिन इस के कारण समाज को क्षति भी कम नहीं पहुँचती है। देहातों में जहाँ पिछड़ापन है, वह पिछड़ापन ज्यों का त्यों बना रहता है और उसे प्रगतिशीलता में बदलने का कोई प्रयास नहीं होता फलतः न केवल पिछड़ापन ज्यों का त्यों बना रहता है वरन् वह और भी बढ़ता ही जाता है।

अपने देश में तीन चौथाई लोग देहातों में रहते हैं। एक प्रकार से इतनी बड़ी जनसंख्या, देश का तीन चौथाई भाग पिछड़ेपन की महाव्याधि से ग्रस्त है। उन तक प्रगतिशीलता का प्रकाश पहुँचना चाहिए उनमें उत्कृष्टता का आलोक फैलाना चाहिए, पिछड़ेपन को मिटाने तथा उत्थान प्रयासों को बढ़ाने के लिए कुसंस्कारी निकृष्टता घटाने के प्रयास चलने चाहिए। तीर्थयात्रा के प्रचलन से इन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

सन्तों की रुचि प्रायः व्यक्तिगत स्तर की साधनाओं में रहती हैं और वे इसी के लिए प्रायः इच्छुक, प्रयत्नशील और व्यस्त रहते हैं। जिस प्रकार निजी स्वार्थों लोग व्यक्तिगत रूप से धनवान-सम्पन्न बनाने तक ही अपनी इच्छाओं को सीमित रखते हैं, उसी प्रकार कई साधु संत साधक भी स्वर्ग मुक्ति की व्यक्तिगत उपलब्धियों को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं। ऐसे सन्त और सेठ यों लगते भर अलग हैं पर उनकी प्रवृत्ति एक ही दिशा में बहती देखी जा सकती है। निजी स्वार्थों तक ही सीमित रहने की यह प्रवृत्ति कदाचित उचित हो भी सही, लेकिन प्रशंसनीय और अनुकरणीय तो किसी भी तरह नहीं कहा जा सकती। लेकिन वास्तव में सन्त होने का अर्थ उदारता है। करुणा संत होने की पहली शर्त है। उदारता के बिना, आत्म-विस्तार और आत्म-कल्याण का लक्ष्य कदापि पूरा नहीं हो सकता। इन तथ्यों को ध्यान में रख कर ही ऋषियों ने तीर्थयात्रा का ऐसा सर्वांगपूर्ण विधान विकसित किया जिसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों का ही समान रूप से समन्वय है।

उन दिनों धर्मपरायण व्यक्ति छोटी मण्डलियाँ बना कर तीर्थयात्रा के लिए निकलते थे। कहाँ से चलकर किन-किन स्थानों पर ठहरते हुए कब तक वापस लौटेंगे इसकी रूपरेखा प्रत्येक मण्डली बनाती थी। मार्ग में जो भी गाँव, झोंपड़े, जंगल, पुरबे मिलते थे, उनमें रुकते ठहरते और किसी उपयुक्त स्थान पर रात्रि विश्राम करते थे। निरन्तर यही क्रम चलता था। दिन में जहाँ रुकना वहाँ धर्म चर्चा करना, लोगों की व्यथा सुनना और उन्हें उपयुक्त मार्गदर्शन देना यह क्रम प्रातः से सायंकाल तक चलता था। रात्रि में जहाँ भी ठहरना होता था—वहाँ कथा कीर्तन, शंका-समाधान, सत्संग, प्रवचन और सम्पर्क का क्रम बनता था। यही कार्य-पद्धति पूरी यात्रावधि में बनी रहती थी। काय चिकित्सा, उपयोगी, परामर्श, मानसिक समाधान तथा समर्थ शुभकामना जैसे कई एक लाभ इस मण्डली से सर्वसाधारण को मिलते थे। इसलिए वे लोग इस मण्डली के प्रति न केवल भावभरा सम्मान व्यक्त करते थे, वरन् आवश्यक सुविधायें जुटाने में भी पूरा-पूरा सहयोग देते थे।

इधर भारतीय संस्कृति में भी अतिथि को देव की संज्ञा दी हुई है। मातृ देवो भव—पितृ देवो भव—आचार्य देवो भव की तरह अतिथि देवो भव भी आर्य वचन है और अतिथि सत्कार को ग्रहस्थ धर्म के रूप में सम्मिलित किया गया है। माता-पिता और गुरु की तरह अतिथि को भी देवता मानकर उसके सम्मान सत्कार अनुशासन किया गया है।

तीर्थ यात्री और अपंग ये दो अतिथि माने गये हैं। अपंग करुणा के पात्र हैं, और उदार सहृदयता की अभिव्यक्ति के लिए उनके निर्वाह की व्यवस्था की जाती है, जबकि तीर्थ यात्री का सत्कार उनकी गरिमा के प्रति श्रद्धावनत होकर किया जाता है। जहाँ से वे गुजरते हैं उनके लिए ठहरने-भोजन-विश्राम करने की व्यवस्था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनाने और यथोचित आदर सम्मान देते हुए शालीनता अपनाने का निर्देश शास्त्रों में दिया गया है। प्राचीन काल में इन निर्देशों का निष्ठापूर्वक पालन भी किया जाता था। उन दिनों भारत आने वाले विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि—यहाँ दूध की नदियाँ बहती हैं, इसका तात्पर्य यही है कि वे जहाँ भी गये उन्हें दूध आदि से परिपूर्ण सत्कार मिला। अपंगों की व्यवस्था तो उन दिनों पड़ौसी या परिवार के लोग ही मिलजुलकर कर देते थे। वास्तविक अतिथि तो तीर्थयात्री ही कहे जाते थे।

इन दिनों कई निकम्मे निठल्ले लोग अपने स्वार्थ प्रयोजनों के लिए जहाँ-तहाँ घूमते रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अतिथि नहीं माना जा सकता। अतिथि उन्हें ही कहा जा सकता है जो उच्च उद्देश्यों के लिए, जन-जागरण के प्रयोजनों के लिए अपने व्यस्त समय में से समय निकाल कर पारमार्थिक उद्देश्यों से घूमते हैं। ऐसे व्यक्तियों को तीर्थ यात्री समुदाय की सुव्यवस्था बनाने और उनकी गतिविधियों में अड़चन न आने देने के लिए शास्त्रों में मनीषियों ने अनेकानेक स्थलों पर निर्देश दिये हैं।

उन दिनों धर्म प्रचार के लिए पदयात्रा, जिसे तीर्थ यात्रा भी कहा जा सकता है, एक उच्चस्तरीय तप साधना थी। जहाँ कहीं भी वे रुकते थे वहाँ के निवासी इस प्रवास को अपने लिए सौभाग्य सुअवसर जैसी देवी अनुकम्पा समझते थे। इसी भावनात्मक सामंजस्य के कारण तीर्थ यात्रा प्रक्रिया का धर्म प्रवाह सर्वत्र रहता था।

तीर्थ यात्री को अतिथि मानकर उसका यथेष्ट आदर सत्कार करना भारतीय जन-जीवन का अंग माना गया था और इसी उद्देश्य से हर व्यक्ति अपना-अपना कुछ अंशदान नित्य नियमित रूप से निकालता रहता था। एक परम्परा का प्रचलन यह भी था कि पहले अतिथि को भोजन कराया जाये इसे बाद स्वयं भोजन किया जाये। यदि उस दिन अतिथि नहीं आये होते थे तो उसके निमित्त निकाला हुआ अन्न सुरक्षित रख लिया जाता था और आवश्यकतानुसार उसे इसी प्रयोजन में लगा दिया जाता था। कुछ अन्न नित्य इस प्रयोजन के लिए हर परिवार से निकाला जाता था। दैनिक बलिवैश्व-यज्ञ में भी एक आहुति अतिथि देव के लिए नियत थी। इससे पता चलता है कि भारतीय संस्कृति में अतिथि, तीर्थ यात्री का कितना गौरवपूर्ण स्थान है और उनकी उपयोगिता आवश्यकता को कितना महत्त्व दिया गया है। यह महत्त्व अकारण ही नहीं मिला है। कष्ट साध्य और समय साध्य प्रक्रिया अपना कर तीर्थ यात्री धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए जो उदारता बरतते और तितीक्षा सहते थे उसी के फलस्वरूप वे अपने प्रयोजनों में संलग्न रहने के बदले आत्म-सन्तोष तथा लोक-सम्मान प्राप्त करते थे।

प्राचीन काल में मन्दिर, मठ, धर्मशाला एवं देव स्थान बनाने का बहुत बड़ा पुण्य माना जाता था। उनका खर्च चलाने के लिए स्थायी सम्पति की व्यवस्था भी की जाती थी। भेंट, पूजा, चढ़ावा आदि के माध्यम से जन-साधारण उनकी समृद्धि बढ़ाने के लिए पर्याप्य योगदान देते थे। यह सारी व्यवस्था और परम्परा धर्म प्रचार के लिए निकले तीर्थ यात्री जत्थों के लिए ही की जाती थी। धर्मशाला बनाने का उद्देश्य तीर्थ यात्री जत्थों के ठहरने का प्रबन्ध ही था। कुछ समय विश्राम कर तीर्थ यात्री आगे बढ़ सकें—यह व्यवस्था मार्ग में आने वाले अनेकानेक मठों, मन्दिरों और आश्रमों के माध्यम से हो जाती थी। इन स्थानों से ही अगली यात्रा के लिए वस्त्र, जूते, पात्र, साबुन औषधि आदि दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ प्राप्त कर ली जाती थीं। जिन स्थानों पर आकर ठहरने वाले चलते-फिरते ज्ञान भण्डारों से भेंट करने तथा धर्मचर्चा का लाभ उठाने के लिए आस-पास के लोग पहुँचते थे उन्हें धर्मशाला कहा जाता था।

धर्म प्रयोजनों के लिए बनी हुई इन शालाओं के बनाने वाले लोग इसलिए पुण्य के भागी बनते थे कि उनके धन से बनी हुई शाला इमारत सच्चे अर्थों में धर्म प्रयोजन की पूर्ति कर रही है। मठों से लगी हुई, मन्दिरों में देव-प्रतिमाओं पर चढ़ी हुई सम्पत्ति का ही उपयोग था कि तीर्थयात्रा के रूप में धर्म चेतना के जागरण हेतु किये जाने वाले प्रयासों में सहयोग प्रस्तुत करना।

जो लोग निरन्तर तीर्थ यात्रा के लिए परिभ्रमण करते थे, उन धर्म प्रचारकों को परिव्राजक कहा जाता था। इस वर्ग में वानप्रस्थ ग्रहण करने वाले व्यक्तियों की बहुलता थी। इस प्रकार थोड़ी अवधि के लिए या शेष पूर्ण जीवन के लिए धर्म प्रचार के उद्देश्य से तीर्थ यात्रा पदयात्रा की परम्परा जिन दिनों अपने असली स्वरूप में जीवित थी, उन दिनों जन-जन को कितना सुखद सुअवसर प्राप्त होता था। इसकी कल्पना भर से हृदय पुलक उठता है। धर्म चेतना उत्पन्न करने के लिए निरन्तर पदयात्रा करने वाले परिव्राजक एक प्रकार से स्वयं ही जीवित तीर्थ रहे होंगे। उनकी तपःपूत ज्ञान सरिता में स्नान कर न जाने कितने लोग पवित्र होते थे, कितनों को ही भवसागर से पान होने का अवसर नित्य मिलता रहता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन कारणों से यह देश किसी समय धर्मप्राण कहलाता रहा हो और यहाँ के नागरिक देवोपम जीवन जीते रहे हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अपने सम्पर्क क्षेत्र में ही नहीं दूर-दूरस्थ क्षेत्र के व्यक्तियों को भी सुखशांति और समृद्धि की स्वर्गीय परिस्थितियों से भरे पूरे वातावरण में रखने के लिए सचेष्ट देशवासियों के देश को जगद्गुरु कह कर सम्बोधित किया जाना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं हो सकता। तैंतीस कोटि देव नागरिकों की जन्म और कर्मस्थली यह भारत भूमि—स्वर्गादपि गरीयसी कह कर गौरवान्वित की गयी थी। समस्त भूमण्डल को अपने अनुदानों से कृतकृत्य बनाते रहने वाली इस भारतभूमि की गरिमा महिमा का परिचय उन सम्बोधनों से सहज ही पाया जा सकता है जो संसार भर में इस देश के लिए प्रयुक्त होते थे। जगद्गुरु, चक्रवर्ती, नर रत्नों के भाण्डागार इस देश को धरती का स्वर्ग ही नहीं स्वर्ग से भी श्रेष्ठ कहा जाता था। इस स्थिति तक अपने देश को पहुँचाने के लिए तीर्थ यात्रा में संलग्न परिव्राजकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

उदारता, करुणा और परमार्थ भावनाओं से भरे व्यक्ति स्वय मेव ही अपनी प्रतिभा, योग्यता और विभूतियों को लेकर उन क्षेत्रों तक पहुँचते हैं जहाँ उनकी आवश्यकता हो। प्रकृति की भी यही प्रेरणा है वहाँ भी जरूरत मन्द माँगने नहीं जा पाता बल्कि उदार तत्व स्वयं ही सहयोग के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं ।

तीर्थों की परम्परा का गतिशील रखने का महत्त्वपूर्ण आधार होने के कारण ही इनका महत्त्व है। यदि तीर्थ न हों तो परिव्राजकों को अपना यात्रा कार्यक्रम सम्पन्न करने में भारी असुविधा का सामना करना पड़े। इनके अलावा परिव्राजकों को भी अपनी योग्यता और तेजस् बुद्धि के लिए अपने से ऊँचे स्तर के ज्ञानियों तथा तपस्वियों का प्रकाश अनुदान प्राप्त करना आवश्यक होता है। यह महत्त्वपूर्ण अनुदान तीर्थ संचालक ऋषियों से ही प्राप्त किये जा सकते थे।

उन दिनों बड़े तीर्थ बड़े केन्द्र थे, उन्हें राजधानियाँ कह सकते हैं। छोटे तीर्थ जिला, तहसील आदि कहे जा सकते थे। इनके कार्यक्षेत्र बँटे हुए थे। क्षेत्रों को मण्डल कहा जाता था और मण्डल में धर्म चेतना जगाये रहने वाले वरिष्ठ परिव्राजक को मंडलाधीश, मण्डलेश्वर आदि कहा जाता था। बड़े क्षेत्रों का कार्य संचालन करने वालों को महामण्डलेश्वर कहा जाता था। इस प्रकार इन्हीं केन्द्रों-तीर्थों के माध्यम से सर्व धर्म चेतना बनाये रहने, जाग्रत रखने का महान कार्य सम्पन्न किया जाता था। इतनी सूझ-बूझ के साथ धर्म चेतना को जाग्रत रखने के लिए इतनी सुगठित व्यवस्था बनाने और तीर्थ स्थापना करने वाले महान मनीषियों के सम्मुख श्रद्धा से सहज ही प्रत्येक विचारशील व्यक्ति नत मस्तक हो उठता है।

तीर्थों में प्राण शक्ति भी जाग्रत रहे !

ऋषियों ने तीर्थों का जो शारीरिक ढाँचा तैयार किया था, वह तो अभी यथावत् ही है। बाहरी रूपाकार घटा नहीं, कुछ बढ़ा ही है। रेल-मोटरों की सुविधा हो जाने से यात्रा भी अधिक सस्ती और सुगम हो गई है। दूर-दराज की यात्रा में लगने वाला समय और श्रम अब बहुत कम हो गया है। पहले तो रात्रि में रुकने और दोनों समय भोजन बनाने की व्यवस्था करने के लिए भी बहुत खोजबीन, ढूँढ-छान जरूरी हो जाती थी, इसी कारण समय भी बहुत लगता था और कदम-कदम पर मुश्किल होती थीं। आज तेज रफ्तार गाड़ियों-वाहनों में लम्बी यात्रायें भी सुगमता-सुविधा के साथ पूरी करने की सुविधायें सुलभ हैं। पैसे भी कम ही लगते हैं। इन्हीं सब कारणों से तीर्थों में पहुँचने वाले यात्रियों की संख्या का औसत अब पहले से बहुत अधिक बढ़ गया है।

तीर्थों को अधिक आकर्षक अधिक मनोहर बनाने में लोगों को उत्साह भी है। देवताओं की कृपा-अनुकम्पा, पुण्य की प्राप्ति और प्रसिद्धि की चाह ने लोगों को प्रेरणा दी है कि इन तीर्थों में देव मन्दिर बनवाए जायें; धर्मशालाओं का निर्माण हो। यों कहीं और मन्दिर बनाने में भी कोई दिक्कत नहीं है लेकिन वहाँ उनके बनवाने वालों को आस-पास के थोड़े लोग ही जान पाते हैं जब कि तीर्थों में दूर-दूर से असंख्य लोग आते हैं। मन्दिरों को देखते समय वहाँ लगे नाम पट्टों, स्तम्भों आदि के द्वारा उन मन्दिरों के बनवाने वाले की भी जानकारी यात्रियों को होती है, धर्मशालाओं में जो लोग ठहरते हैं, वे भी निर्माता का नाम धर्मशाला में जुड़ा रहने से उसकी याद रखते हैं। इन निर्माताओं को स्वाभाविक ही लोग धर्म परायण मानते हैं। इस प्रकार सुदीर्घ अवधि तक यश मिलने का क्रम चलता रहता है । जिनके पास साधनों की प्रचुरता है, उनके मन में लोक-प्रसिद्धि और पुण्य-प्राप्ति का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्मिलित आकर्षण इस हेतु प्रेरणा देता है कि अपनी दानशीलता को तीर्थ स्थानों में इस प्रकार प्रस्तुत करें। यही कारण है कि अब पहले की अपेक्षा कहीं अधिक भव्य मन्दिर आदि पहले से कहीं अधिक संख्या में तीर्थों में देखे जा सकते हैं। सरकार मन्दिर तो नहीं बनाती पर वह पर्यटकों के मन को बाँधने-खींचने वाले अन्य दर्शनीय स्थलों का निर्माण एवं सुधार करती रहती है। स्थानीय निकाय भी इन स्थानों की स्वच्छता तथा शोभा वृद्धि के लिए कुछ न कुछ सोचते-करते ही रहते हैं और उस हेतु यात्री-कर भी वसूल करते हैं। व्यापारी भी अपने लाभ के लिए विविध उपायों द्वारा दर्शकों को ग्राहकी के लिए उत्साहित करने का प्रयास एवं प्रबन्ध करते हैं। मनोरंजन के साधनों की वृद्धि से पर्यटकों को तीर्थ यात्रा में दुहरा लाभ दीखता है। श्रमजीवियों से नवदम्पतियों तक सभी को ऊब, एक रसता, मिटाने तथा मन को हल्का-फुलका, प्रसन्न-प्रफुल्ल बनाने के लिए परिभ्रमण की आवश्यकता महसूस हुआ करती है और इस हेतु सर्वोत्तम स्थल हैं तीर्थ । गरमी की छुट्टियों में बच्चे अभिभावकों से बाहर चलने का आग्रह करते हैं। उन्हें भी उसी समय सुविधा प्रतीत होती है। इसलिए गर्मियों में तीर्थ-प्रवास और अधिक बढ़ जाता है। इन सब तथा दूसरे अनेक कारणों से दिनों-दिन तीर्थयात्रा के लिए पहुँचने वाली जन-संख्या बढ़ती ही नजर आती है। साथ ही पहले की तुलना में रूपाकार की दृष्टि से तीर्थ स्थल अधिक सुन्दर, अधिक भव्य, अधिक आकर्षक बनते चले जा रहे हैं । तीर्थयात्रा के लिए विशेष बसें, रेल-गाड़ियाँ चलने लगी हैं और उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। बूढ़े, बच्चे, महिलायें उनसे चलने का आग्रह करती हैं क्योंकि इससे सहूलियत भी बढ़ गई है और खर्च भी इतना होता है जिसे साधारण अच्छी या थोड़ी कमजोर आर्थिक स्थिति के लोग भी उठा सकते हैं। पुण्य का लोभ और पर्यटन की प्रेरणा दोनों मिलकर तीर्थ यात्रा की प्रवृत्ति को बढ़ाते हैं। यही कारण है कि बुद्धिवाद द्वारा धर्मश्रद्धा को लगातार चोट पहुँचाए जाने पर भी तीर्थ-प्रवास में कोई कमी नहीं दिखाई देती।

अब विचार करने की बात यह रह जाती है कि तीर्थों के जो प्रतिफल बताये जाते रहे हैं और जिनकी तीर्थों से वास्तविक अपेक्षा की जानी चाहिए वे क्या इन तीर्थयात्रियों को मिल पाते हैं। पर्यवेक्षण करने पर उत्तर निराशाजनक ही मिलता है। तीर्थों में जो लोग विनोद-मनोरंजनपूर्ण पर्यटन के लिए जाते हैं, वे इन्हें ठीक से नहीं प्राप्त कर पाते। तीर्थों में वे जहाँ कहीं भी जाते हैं, उनका चलना-बैठना दूभर हो जाता है, क्योंकि जहाँ देखो तो, वहीं भिक्षा व्यवसायी वर्ग के लोग घेर कर खड़े हो जाते हैं तथा अनुपयुक्त दबाव डालने और आपस में विनोद चर्चा तक करना दूभर कर देते हैं। यही कारण है कि सज्जन प्रकृति तक के लोग इन स्थितियों में खीझ उठते हैं और झल्लाते हुए ही लौटते हैं। ऐसे अधिकांश लोगों की यही प्रतिक्रिया रहती है कि भविष्य में तीर्थों के बजाय कहीं और जाना अधिक अच्छा होगा।

धर्मतत्व का प्रचलित स्वरूप बुद्धिवाद की कसौटी पर लोकोपयोगी नहीं दीखता। एक तो इस विकृति स्वरूप के कारण धर्मश्रद्धा वैसे ही घट रही है, उस पर धर्म के धंधेबाजों के ऐसे कुचक्र इन स्थानों में चलते रहते हैं कि उससे कोढ़ में खाज की तरह घटती हुई श्रद्धा में विक्षोभ का तत्व जुड़ जाता है।

विचार इस बात का किया जाना चाहिए कि तीर्थ स्थापना का जो महान उद्देश्य ऋषि-मनीषियों का था और जिस उत्कृष्ट लोकमत की भावना से उन्होंने तीर्थों के महत्त्व का प्रतिपादन किया था तथा तीर्थ यात्रा के सफल प्रचलन का प्रखर प्रयास किया था, वह भावना एवं उद्देश्य पूरा हो पा रहा है अथवा नहीं। विश्लेषण से उत्तर 'नहीं' में ही मिलता है। इस उत्तर से प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति को पीड़ा ही होती है, प्रसन्नता नहीं।

होना यह चाहिए था कि जैसे-जैसे तीर्थों का रूपाकार अधिक आकर्षक अधिक भव्य बनता गया, वैसे ही साथ ही साथ में लोगों की सच्ची धर्मश्रद्धा भी सुदृढ़ होती चली जाती और उसका प्रभाव लोगों पर यह पड़ता कि उनका व्यक्तित्व अधिक प्रखर, अधिक परिष्कृत बनता चला जाता, जो उनके आचरण में झलकता, इस प्रगति उन्नति से समाज में भी समृद्धि, सुव्यवस्था, प्रगतिशीलता की वृद्धि एवं विस्तार होता चलता। लेकिन ऐसा कुछ भी देखने में नहीं आता। न तो व्यक्तित्वों के परिष्कार के दृश्य दिखाई देते, न ही समाज में इन तीर्थों या धर्म धारणाओं का कोई श्रेयस्कर प्रभावपूर्ण परिणाम पड़ता नजर नहीं आता। पर्यटन केन्द्रों जैसा आकर्षण भले ही इन तीर्थों का बढ़ता रहे, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि तत्वदर्शियों ने जिस उद्देश्य से इस महान तीर्थ परम्परा का प्रवर्तन किया था, उसका क्या हुआ ? और क्या होगा? वही तो तीर्थ परम्परा का प्राण था। वह प्राण ही समाप्त हो गया तो रूपाकार का यह विस्तार किस मतलब का ? प्रथाओं के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निष्प्राण विस्तार को ही अनुचित रूढ़ियाँ तथा ढकोसला कहा जाता है। मानवीय अन्त:करण का परिपोषण करने वाली श्रद्धा की तुलना कामधेनु से की जाती है। धर्मकृत्यों का उद्देश्य उसी श्रद्धा का पोषण, संवर्धन हुआ करता है। तीर्थ परम्परा का प्रयोजन यही था। लम्बे समय तक वह प्रयोजन पूरा भी होता रहा। पर अब उसका समाप्त होते जाना खेदजनक है। यदि तीर्थ इसी प्रकार पर्यटन के केन्द्रों के रूप में ही सार्थक रह गये और कोई भी प्रेरणा उनसे बची नहीं, तो फिर उनकी गिनती भी विनोद-मनोरंजन के अन्य साधनों के साथ होने लगेगी। संस्कृति के परिपोषण के स्थान पर तीर्थ विनोद और विकृतियों के ही केन्द्र बनते चले जा रहे हैं। वे प्रकाश स्तम्भ नहीं रहे। समुद्र में खड़ा प्रकाश स्तम्भ यदि जयोतिर्मय न रहे, तो उधर से निकलने वाले जहाजों को खतरा है। वे प्रकाश स्तम्भ जो आलोकित रहने पर जहाजों का पथ प्रदर्शन करते थे, अब राह के भीषण रोड़े बन जायेंगे। उनसे टकराकर जहाजों के चूर-चूर हो जाने का खतरा है। जो सहायक थे, वही संकट उत्पन्न करने लगेंगे। तीर्थों से भी यदि प्रकाश प्रेरणा विलुप्त होती चली गई तो अनर्थकारी परिणाम ही सामने आयेंगे। आज तीर्थों की साज-सज्जा पर तो सरकार का भी ध्यान है गैर सरकारी संस्थाओं तथा व्यक्तियों का भी। लेकिन उनके प्राणों को प्रदीप्त रखने, उनकी ज्योति को जलाये रखने का ध्यान किसी को नहीं है। धर्म के नाम पर इन स्थानों में जो स्टाल लगे देखे जाते हैं उनमें ऐसा बिकाऊ माल रखा जाता है जो आत्मिक स्वास्थ्य को लाभ नहीं पहुँचाता, उल्टे हानि ही पहुँचाता है। यहाँ भावुक जनों का शोषण किया जाता है, और अन्धविश्वासों का पोषण। अमृत भी सड़ जाने पर जहर जैसा हो जाता है। मुर्दा शरीर तेजी से फूलता है, पर उससे किसी को खुशी नहीं होती। तीर्थों की आत्मा तो उनसे निकल चुकी, हाँ उनका शरीर फूलता दिख रहा है। इसमें प्रसन्न होने लायक कोई भी बात नहीं है। वस्तुत: तो यह स्थित पीड़ा प्रद ही है।

तीर्थयात्रा का उद्देश्य पुण्य-प्राप्ति ही माना जाता रहा है। इसी उद्देश्य से लोग घर से तीर्थों के लिए प्रस्थान करते हैं। वह उद्देश्य पूरी तरह विफल रहे तो फिर उसमें लगने वाली मेहनत, समय और धन भी बेकार ही खर्च हुआ समझना चाहिए। जिस विनियोजन से कोई भी उपलब्धि न हो, उससे विक्षोभ और विषाद ही बढ़ता है। उद्देश्य पूरा हो, इसके लिए जनता की ओर से अनुदानों में कोई कमी नहीं हुई है। जन-साधारण तो उस हेतु बहुत कुछ करता रहता है पर उसका नतीजा कुछ नहीं निकलता दीखता, मानों ऊसर जमीन पर बीज बो दिया गया हो।

तीर्थों के निर्माण में प्रचुर धन लगा हुआ है। उनके संचालन व्यवस्थापन में भी बहुत अधिक धन-शक्ति और जन-शक्ति लगती है। इसका व्यक्ति, समाज और देश को सत्परिणाम मिलना चाहिए था। फिर वे कौन से छेद हैं, जिनसे लोक-श्रद्धा की कामधेनु का अमृत जैसा दूध टपकता बहता-बिखरता रहता है और व्यक्ति-समाज को पुष्ट करने के स्थान पर चारों तरफ गन्दगी फैलाता रहता है।

इस स्थिति का अधिक गहराई से विश्लेषण करने पर आश्चर्यजनक तथ्य सामने आते हैं। उदाहरण के लिए—एक ही छोटी-सी बात लें सोमवती अमावस्या के दिन गंगास्नान। उत्तरकाशी से लेकर गंगासागर तक लगभग पचास लाख श्रद्धालुजन प्रत्येक सोमवती पर्व पर गंगाजी में नहाते हैं। इनमें कुछ लोग तो आस-पास के ही होते हैं कुछ दूर-दराज के। श्रम और समय सभी का लगता है, पैसा भी सभी का खर्च होता है, दूर वालों का आने-जाने में कुछ अधिक पैसा और समय खर्च हो जाता है। श्रम, धन तथा समय का औसत लगाया जाये तो हर एक व्यक्ति के पीछे औसतन दस रुपया खर्च बैठता है—पचास लाख के पीछे ५ करोड़ रुपया। साल भर में ४-५ सोमवती अमावस्याएँ होती हैं। इससे यह रकम २५ करोड़ हुई। यह अकेले गंगास्नान की बात हुई। भारत में ऐसी और अनेक पवित्र नदियाँ हैं जिनमें से नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, सरयू, यमुना आदि तो गंगा जैसी ही मानी जाती हैं। वहाँ भी उसी श्रद्धा से वैसी ही भीड़ उमड़ती है। इन सब नदियों में सोमवती स्नान करने वालों का कुल खर्च ७५ करोड़ रुपए तो माना ही जा सकता है। यानी कुल मिलाकर १०० करोड़ रुपए अकेले सोमवती-स्नान के सन्दर्भ में। इसके अतिरिक्त वर्ष भर तीर्थ यात्रा चलती रहती है। मौसम विपरीत होने के कारण कुछ महीनों में इसमें थोड़ी ढिलाई आती है, तो गर्मी में अनुपात बहुत अधिक बढ़ जाता है। पूरे वर्ष में हिन्दू तीर्थों पर पहुँचने वाले यात्रियों का समय और धन का कुल खर्च १ हजार करोड़ यानी १० अरब रुपया से अधिक का ही होता है। यह जन-सम्पदा यदि रचनात्मक प्रयोजनों में लग सकी होती तो उससे देश की प्रौढ़ शिक्षा जैसी कई समस्याएँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहज ही हल हो सकती थीं। इस रकम से कुटीर-उद्योग पनप सकते थे। पवित्र नदियों के किनारे बसे शहरों का गंदा पानी नदी में न गिरे, उसे खेतों तक पहुँचा दिया जाये, इस काम में भी यही रकम लग सकती था । उसके चमत्कारी परिणाम सामने आ सकते थे। खेतों को खाद मिला पानी मिलता तो उनकी उपज बढ़ती। नदियाँ भी साफ रहतीं। अगर एक साल की भी तीर्थयात्रा की रकम ऐसे कामों में लग जाये, तो नदियों की पवित्रता-स्वच्छता की वृद्धि की जा सकती है, अच्छे घाटों का निर्माण और प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार हो सकता है। सड़कें बन सकती हैं। जल-पूर्ति का बेहतर प्रबन्ध हो सकता है । तीर्थों में जो इमारतें बनी हैं और उनके संचालन के लिए जो स्थायी निधियाँ जमा हैं, उनको रचनात्मक कामों में लगाया जाता। यदि ऐसा नहीं भी हो पाता और धर्म-प्रयोजनों में ही ये रकमें थोड़ी बुद्धिमानी से साथ लगाई जातीं तो भी उसके सत्परिणाम निकलते और उन अच्छे नतीजों का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ता, लोग धर्मश्रद्धा की उपयोगिता स्वीकार करते।

धर्म के व्यवसायी जितना समय और जितना मनोयोग तीर्थ यात्रियों को फुसलाने और धन हड़प करने के लिए जाल-जंजाल फैलाने में लगाते हैं उसे ही यदि लोगों के अन्तःकरण में धर्म-चेतना उत्पन्न करने में लगाते, उनकी सदाशयता बढ़ाते, तो उनका गौरव भी बढ़ता, सम्मानपूर्वक जीविका भी चलती। लेकिन अभी इस क्षेत्र में हवा का जो रुख है, उसे देखते हुए इन लोगों के हृदय-परिवर्तन की कम ही सम्भावना है।

धर्मश्रद्धा मनुष्य-जीवन की बहुमूल्य थाती है। उसके अनेक रूप आदर्शवादी गतिविधियों के रूप में उभरते देखे जा सकते हैं। धर्मश्रद्धा के ही रूपान्तरण के रूप में परमार्थ परायणता, उदार सहृदयता, सेवा-साधना, आत्मसंयम, चरित्र निष्ठा, आदर्शवादिता, देश भक्ति, तप-तितिक्षा जैसी श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। इन सत्प्रवृत्तियों से व्यक्ति की गरिमा और समाज की श्रेष्ठता में वृद्धि होती है। यह उत्कृष्ट चेतना जिस दिशा में भी प्रवृत्त हो जाये, वही मनुष्य के गौरव को बढ़ाने वाले महान कार्य होते दिखाई देने लगते हैं। धर्मश्रद्धा का यह तत्व रत्न-राशि से सोने की खान से भी अधिक कीमती है। इसलिए इस महान तत्व को, इस उत्कृष्ट चेतना को अन्ध श्रद्धाओं से टकराकर चकनाचूर नहीं होने देना चाहिए। अवांछनीयताओं के पेट में समाकर उसकी दुर्गति हो ही जायेगी। यह स्थिति बदली-टाली जानी चाहिए। इस हेतु धर्मश्रद्धा को विवेक सृजनात्मक उपयोगी दिशा देना जरूरी है। कोसने, नाक-भौं सिकोड़ने, गालियाँ बकने से बात बनने की नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि अनुपयुक्तता के स्थान पर उपयुक्तता प्रस्तुत की जाये। ताकि जन-विवेक को दो में से एक चुनने को अवसर मिल सके। समतुल्य प्रस्तुतीकरण ही वह कारगर उपाय है जिसमें उपयुक्त और अनुपयुक्त का अन्तर समझा-समझाया जा सकता है तथा लोगों को अपने विवेक के अनुसार इच्छित मार्ग चुनने का मौका मिल सकता है।

तीर्थ प्रक्रिया भारतीय धर्म और दर्शन की अन्तरात्मा को प्रकट करती है। उसका पतनोन्मुख प्रवाह ही चलने दिया जाये या उसे उलटा-बदला जाये। यह एक ज्वलन्त प्रश्न है। किसी धर्म-स्थापना के नष्ट होने या उन्नत होने की बात यह नहीं है । यह बात तो मानवी गरिमा के ही उन्नत होने न-होने से सम्बन्धित है। तीर्थतन्त्र मानवीय गरिमा के पोषक हैं। उन्हें जीवन्त प्राणवान रखा जाये या उपेक्षा-अवमानना की चोटों से क्षत-विक्षत होते हुए अपनी मौत मरने दिया जाये ?

यदि तीर्थ-तत्व का उपयोग समझ में आता है, तो फिर उसे अर्ध मूर्च्छित रोग-जर्जर, विकृत दशा से उवारना भी जरूरी है। इस हेतु रचनात्मक प्रयासों की आवश्यकता होगी, तभी ऐसा परिवर्तन सम्भव है। जो विवेकशील लोग श्रद्धा को जीवन्त, प्राणवान एवं प्रगतिशील देखना चाहते हैं, उन्हें तीर्थों की ऋषि-परम्परा को पुनर्जीवित करने तथा उस हेतु कुछ सहायक कदम उठाने को आगें आना चाहिए।

तीर्थों की सुव्यवस्था हर दृष्टि से श्रेयस्कर

संसार भर में पर्यटन को एक स्वस्थ मनोरंजन माना जाता है और उसे सुविधाजनक बनाने के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी स्तर पर प्रयत्न किया जाता है। मनोरंजन के अनेकानेक माध्यमों में कुछ तो केवल विनोद तक सीमित रहते और खर्च की दृष्टि से महँगे पड़ते हैं। कई मनोरंजन दुर्व्यवसन सिद्ध होते हैं और उपभोक्ता के लिए कालान्तर में विपत्ति खड़ी करते हैं किन्तु पर्यटन ऐसा मनोरंजन है जिससे उदासी तो मिटती ही है, साथ ही कई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ भी मिलते हैं। तीर्थाटन को विशुद्ध विनोद प्रक्रिया से भी रखा गया होता तो भी उसके प्रति विज्ञजनों में जो अश्रद्धा बढ़ रही है वह न बढ़ती और उनका भविष्य अन्धकार मय न दीखता। स्पष्ट है कि समाज का मेरुदंड मध्यम वर्ग है। विचारशील लोगों के समर्थन से ही प्रवृत्तियाँ बलवती और निरजीवी होती हैं। बुद्धिवादी जन-समुदाय जिस तथ्य पर अविश्वास करने, अप्रामाणिक मानने लगता है, उसकी जड़ें खोखली होती जाती हैं और अपनी मौत मरने की स्थिति आ जाती है। अन्ध श्रद्धा का शोधन करने वाली प्रवृत्तियाँ उपेक्षित होतीं, उपहासास्पद बनतीं और विरोध के आघात न सह सकने के कारण धराशायी होती चली जाती हैं।

किले ढह गये। जागीर छिन गईं। फिर अपनी प्रामाणिकता एवं उपयोगिता गँवा बैठने पर बेचारे तीर्थ ही कितने दिन जीवित रह सकेंगे। यदि उन्हें अकाल मृत्यु के मुख में जाना पड़ा तो ऋषि प्रणीत इस महान परम्परा के टूट जाने से जो अपार क्षति होगी उसे अपने युग की भयानक दुर्घटना ही माना जायेगा।

पर्यटन का आनन्द उपलब्ध होता रहे और इस प्रयोजन को पूरा कर सकने में समर्थ वर्तमान तीर्थों को यदि स्वस्थ मनोरंजन का केन्द्र भर रहने दिया जाय तो भी वे अपनी उपयोगिता बनाये रहेंगे। यदि उनके साथ तीर्थों की आत्मा भी जुड़ी रहने का प्रबन्ध किया जाये तब तो उनका स्वरूप और भी अधिक आकर्षक बन जायेगा। तीर्थ निवासियों और तीर्थ प्रेमियों को मिलकर ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि निहित स्वार्थों की धर्म शोषण प्रवृत्ति पर अंकुश लगाया जाये। सम्भव हो तो उनकी धर्म गरिमा को भी उच्च स्तरीय बनाने का प्रयत्न किया जाये, अन्यथा उन्हें पर्यटन केन्द्र से तो नीचे गिरने ही न दिया जाये। ऐसा तभी हो सकता है जब कि तीर्थों में पनपने वाले छद्म—भिक्षा व्यवसाय को निरुत्साहित किया जाये और आगन्तुकों को भारी मन से लौटने का अवसर न आने दिया जाये।

एक स्थान पर रहते-रहते एक तरह का काम करते-करते मनुष्य को ऊब आती है। ऊब से मन उचटता है और हाथ के कामों में रस नहीं रहता। हठात् काम करते रहने से कार्य की मात्रा और उत्कृष्टता में भारी कमी आती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था बनाई गई है। मध्यान्ह में एक घण्टे का अवकाश रहने का नियम भी इसीलिए बना है कि सुस्ताने पर ऊब उतर सके और नये सिरे से उत्साहपूर्वक काम कर सकना सम्भव हो सके। पर्यटन अधिक समय का एवं दूर ले जाने वाला अवकाश है, जिससे भिन्न प्रकार की परिस्थिति से जाने और कुछ उत्साहवर्धक देखने-जानने का अवसर मिलता है। ऐसे अवकाशों में पैसा और समय तो खर्च होता है, पर इसके उपरान्त जो स्फूर्ति एवं विश्रान्ति मिलती है वह व्यक्ति का मनोयोग एवं क्रिया-कौशल बढ़ाकर पर्यटन में हुई क्षति की पूर्ति कर देती है।

पर्यटन यदि तीर्थ यात्रा स्तर का पैदल मार्ग के रूप में, साइकिल यात्रा के रूप में हो सके, तब तो उसका आनन्द और लाभ निश्चित रूप से कई गुना बढ़ जायेगा। पर यदि वैसा न हो सके तो सवारियों की सहायता से प्रकृति सौन्दर्य देखने, ऐतिहासिक स्थानों से प्रेरणा लेने, दर्शनीय स्थानों में जाकर नवीनता देखने, नये व्यक्तियों के नई परिस्थितियों के सम्पर्क में आने से नये प्रकार के अनुभव बढ़ाये जा सकते हैं और उस ज्ञान वृद्धि से प्रकारान्तर से अनेकों परोक्ष लाभ मिल सकते हैं।

अनुभव सम्पादन बड़ी बात है। सीमित दायरे में ही जीवन बिताने वाले यदि पुस्तकीय मान इकट्ठा करते भी रहें तो भी इतने से काम नहीं चलता। चेतना पर प्रत्यक्ष अनुभव का जितना प्रभाव पड़ता है उतना अन्य किसी प्रकार नहीं। अनुभव जन-सम्पर्क से बढ़ता है। जिन्हें ऐसे अवसर नहीं मिलते वे व्यवहार में अकुशल एवं आत्म-हीनता की ग्रन्थि से ग्रसित रह जाते हैं। ऐसे लोगों की समीक्षा बुद्धि, निर्णय शक्ति एवं दूरदर्शिता में भारी कमी बनी रहती है। यही कारण है कि घरों में कैद रहने वाली महिलाएँ मस्तिष्क की दृष्टि से तीक्ष्ण रहने पर भी अनुभव हीनता के कारण कई तरह के खतरे उठाती रहती हैं। जन-सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति सामयिक लाभ तो उठाते ही हैं अपने अनुभव एवं कौशल को भी बढ़ा लेते हैं और उसके दूरगामी सत्परिणाम उपलब्ध करते हैं।

सरकार का पर्यटन विभाग यात्रा को प्रोत्साहित करने तथा यात्रियों को सुविधा देने के लिए तरह-तरह के उपाय करता रहता है। इससे सरकार को कई प्रकार से टैक्स मिलने का नया स्रोत खुलता है। पर्यटन केन्द्रों के व्यवसायी तथा श्रमिक आगन्तुकों से आजीविका उपार्जित करते हैं। धन का वितरण होता है। समृद्धि फैलती है और नये उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है। इस लाभ का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक अंश जिस-तिस रूप में सरकार के पास भी जा पहुँचता है। विदेशी पर्यटकों से विदेशी मुद्रा का भी लाभ मिलता है। इसलिए हर देश विदेशी आगन्तुकों को अपने यहाँ बुलाने और सुविधा देने को उत्सुक रहता है।

भारत में पर्यटन की भौतिक उपयोगिता समझने के साथ-साथ भावनात्मक एकता, संस्कृति का क्षेत्र-विस्तार, धर्मधारणा के अभिवर्धन आदि अनेक उच्चस्तरीय लाभों को भी समन्वित रखा गया है। अस्तु धर्म पर्यटन के लिए तीर्थों को विराम स्थल मानते हुए परिभ्रमण के लिए प्रोत्साहित किया गया है। तीर्थ यात्रा इसी का नाम है।

पर्यटन का लौकिक मनोरंजन और सद्ज्ञान संवर्धन का आध्यात्मिक आनन्द दोनों की सम्मिलित प्रक्रिया तीर्थ यात्रा है। इससे व्यक्ति उत्थान और समाज कल्याण के दोनों ही प्रयोजन पूरे होते हैं। भारत में पर्यटन केन्द्रों की दृष्टि से भी तीर्थों का महत्त्व है। तीर्थों के साथ जुड़ी हुई प्राचीन परम्परा को शुद्ध स्वरूप में यदि उनके साथ सम्मिलित रखा जा सके तो उसके फलस्वरूप वैयक्तिक एवं सामाजिक उत्थान के नये द्वार खुलेंगे और उनके फलस्वरूप उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में असाधारण सहायता मिलेगी।

पर्यटन को आर्थिक दृष्टि से प्रोत्साहित करने वाला वर्ग यात्रियों के सुविधा सम्वर्धन का, स्थानीय आकर्षण का जितना विस्तार कर सके उतना उत्तम है। समाज को स्वच्छ और शालीन दीखने वाला वर्ग यह प्रयत्न करे कि आगन्तुकों की भाव श्रद्धा का अवांछनीय तत्वों द्वारा अनुपयुक्त शोषण न होने पाये। भीड़ से गंदगी न फैलने देने को; स्थानीय निकायों की सतर्कता और तत्परता बढ़नी चाहिए। व्यवसायी यात्रियों के निवास, भोजन एवं उचित मूल्य पर आवश्यक वस्तुएँ मिलने का प्रबन्ध करें। धर्म क्षेत्र की प्रभावी प्रतिभाओं को तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए ऐसे साधना सूत्रों का प्रबन्ध करना चाहिए जिससे आगन्तुकों को एक साथ उपरोक्त सभी लाभ मिल सकें। संयुक्त प्रयत्नों से ही तीर्थों का महत्त्व बढ़ सकता है। इस अभिवृद्धि को हर दृष्टि से श्रेयस्कर ही माना जायेगा।

पर्यटन और तीर्थ यात्रा का अन्तर

तीर्थ यात्रा और पर्यटन में जमीन-आसमान जितना अन्तर है। पर्यटन मनोविनोद का एक अंग है। सिनेमा, नाटक, नृत्य आदि कितने ही मनोरंजन के अंग हैं। उनमें पर्यटन को अग्रणी माना जाता है। अनेकों प्रकार की दृष्टियाँ, अनेकों जानकारियाँ पर्यटन में जुड़ी रहती हैं। विविधताओं का-नवीनताओं का बाहुल्य रहने के कारण पर्यटन प्रचलित मनोरंजन में सबसे अग्रणी है। उसमें ज्ञानवृद्धि भी है। यातायात, क्रय-विक्रय के नियम, व्यावसायिक लाभ भी अनेकों को होता है। श्रमिक, व्यापारी, दलाल, होटल वाले भरपूर लाभ उठाते हैं। जिनके पास फालतू पैसा है, जिनकी रंगीली तबियत है वे इस निमित्त ढेरों समय और पैसा खर्च करते हैं। सुहागरात जैसे हर्षोत्सव के अवसरों पर खुशहाल लोग इस निमित्त ढेरों पैसा खर्च करते हैं। अनेकों नगर इसी व्यवसाय के कारण सम्पन्न हुए। केनिया, युगाण्डा, तंजानियाँ जैसे देशों के प्राकृतिक दृश्यों को देखने योरोप जैसे धनी देशों के लोग बड़ी संख्या में वहाँ की लम्बी यात्रा पर निकलते हैं और विनोद के साथ उन देशों का वैभव बढ़ाते हैं। हर देश अपने यहाँ पर्यटन व्यवसाय बढ़ाने के लिए ढेरों पूँजी लगाते हैं। ताकि उनका व्यवसाय तथा मजदूरी वहाँ अच्छी आजीविका बढ़ा सके। इस दिशा में संसार भर में छोटे-बड़े प्रयास चलाने के लिए सर्वत्र प्रयत्न चल रहे हैं।

तीर्थ यात्रा इससे भिन्न है। उसमें पर्यटन विनोद जुड़ा तो है पर बात इतने तक ही समाप्त नहीं हो जाती। तीर्थ यात्रा धर्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। वहाँ जाने वाले धर्म लाभ करते हैं। तीर्थों में ऐसा वातावरण तथा पुण्य-प्रयोजन रहता है जिसके सम्पर्क में आने से यात्री को उच्चस्तरीय ज्ञान, कर्म तथा उपासना की शिक्षा एवं प्रेरणा मिलती है। उनके साथ चित्त को पवित्रता प्रदान करने वाला प्राकृतिक वातावरण तो जुड़ा ही होता है, साथ ही ऐसी ऐतिहासिक घटनायें भी संयुक्त रहती हैं, जिनसे आदर्शों के प्रति निष्ठा बढ़े। पूर्वजों द्वारा किये गये सत्कर्मों की स्मृतियाँ, अपने अवशेष वहाँ किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती हैं। उन्हें देखकर, सुनकर, समझकर मनुष्य अपनी उत्कृष्टता में अभिवृद्धि करता है। देवालयों में भक्ति-भावना, प्रकृति संदोह से पवित्रता और ऐतिहासिक घटनाओं से आदर्शवादी प्रेरणायें मिलती हैं।

भारतीय तीर्थयात्रा की एक और विशेषता है कि वहाँ कुछ न कुछ धार्मिक कर्मकाण्ड भी करने पड़ते हैं। दिवंगत पूर्वजों के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता व्यक्त करने, श्राद्ध-तर्पण तीर्थों में जाकर करने की प्रथा है। किये हुए पापों के लिए प्रायश्चित किये जाते हैं। अमुक संख्या या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीमा तक जप-तप करने की प्रथा है। कथा, सत्संग, स्वाध्याय के लिए इतना समय या धन लगाने का प्रचलन है। प्राचीनकाल में धर्म प्रचार की पदयात्रा के रूप में तीर्थ यात्रा की जाती थी सन्त-सज्जनों की मण्डलियाँ पदयात्रा करतीं, जहाँ ठहरती थीं वहाँ उनके सदुपदेश लोगों की धर्म-धारणा तथा चरित्रनिष्ठा बढ़ाते थे। इन सब प्रयोजनों के मिल जाने से पर्यटन का सुयोग, सोने में सुगन्ध का संयोग बना देता था।

वहाँ ऐसे शिक्षक तथा मार्गदर्शक रहते थे जो उस स्थान से सम्बन्धित ऐसी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ देते थे जिन्हें प्राप्त करके तीर्थ यात्री अपना चरित्र तथा भविष्य उज्जवल बना सकें।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि भारत के तीर्थ भाव प्रेरणा दे सकने की स्थिति में नहीं रह गये हैं और न विनोद-मनोरंजन का वातावरण बनाते हैं। यात्री भी उद्देश्य रहित होकर निरुद्देश्य भगदड़ मचाते हैं और गन्दगी फैलाकर समय नष्ट करते हैं। साधु-सन्तों के स्थान पर ठग प्रवंचक जिस-तिस बहाने से जेब काटते और यात्रियों को अश्रद्धा के गर्त में धकेलते हैं। लौटने पर यात्री थकान, खीझ और निराशा लेकर वापिस लौटते हैं। कम समय में अधिक वस्तुओं के दर्शन कर लेने की ललक में इस कदर भाग-दौड़ मचाते हैं कि न कुछ देखने लायक देखा जाता है और न कुछ सुनने लायक सुनने का अवसर मिलता है।

इस बेढंगे माहौल में एक छोटा स्वरूप प्रतीक-पूजा का विनिर्मित करने का शान्तिकुञ्ज हरिद्वार में प्रयत्न किया गया है। जिन्हें बहुत जल्दी अनेक तीर्थ देखकर अत्यधिक पुण्य लूटने की उतावली है। वहाँ ईंट-पत्थरों की तो नहीं वरन् चित्रों की एक ऐसी प्रदर्शनी विनिर्मित की गई है जिसमें देश के प्रायः सभी तीर्थ पन्द्रह मिनट में देखे जा सकते हैं। साथ ही यह भी सुना समझा जा सकता है कि उन्हें किस निमित्त बनाया गया था और जब वे अपने स्वस्थ स्वरूप में थे तब वहाँ क्या किया-कराया जाता था।

आज की परिस्थिति में पुरातन तीर्थों की गतिविधियों का एक स्वरूप बनाने का यहाँ प्रयत्न किया गया है। हरिद्वार-हिमालय का प्रवेश द्वार और गंगा के सात ऋषियों की तपोभूमि है। गायत्री के मन्त्र-दृष्टा विश्वामित्र ने यहीं उस महामंत्र को सिद्ध किया था। साथ ही पुरातन समय में सप्तऋषियों ने जिन महान सत्प्रवृत्तियों का सूत्र संचालन किया था, उनका स्वरूप आज की परिस्थितियों में क्या हो सकता है, इसका भी स्वरूप यहाँ देखा जा सकता है। ऋषियों की महान परम्परा ने ही कभी भारत को स्वर्गादपि गरीयसी बनाया था। उन्हें आज की स्थिति में कार्यान्वित होते हुए इस आश्रम में देखा जा सकता है।

हरिद्वार तीर्थ यात्रा के लिए आने वाले प्रज्ञा परिजनों के लिए यहाँ प्राचीन परम्परा के अनुरूप व्यवस्था की गई है। कार्यक्रम चार दिन का है। पहले तीन दिन में साधना तथा पुरातन इतिहास का पर्यवेक्षण होता है। बाद के दो दिन हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेष, लक्ष्मण झूला पर्यटन के लिए रहते हैं।

चार दिवसीय सत्र हर महीने नियत चार-चार दिन के हिसाब से ही सतत् चलते रहेंगे। १ से ४-५ से ८-९ से १२-१३ से १६-१७ से २०-२१ से २४-२५ से २८। जिन्हें इन तीर्थ यात्रा सत्रों में से किसी में भी आना हो, तो पहले से अपना नाम पंजीकृत कराकर स्वीकृति प्राप्त कर लेनी चाहिए।

● ● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ-प्रक्रिया का अभिनव पुनर्जीवन

अपने आरम्भ और उत्कर्ष की अवधि में तीर्थ-प्रक्रिया न केवल भारतवर्ष को प्राणवान, चेतन बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है अपितु सम्पूर्ण विश्व भी इस पुण्य-प्रक्रिया के प्रखर प्रकाश से लाभान्वित होता रहा है। पुण्य-तीर्थों का दर्शन और सेवन करने, पूरी दुनिया से भाव-सम्पन्न व्यक्ति यहाँ आते, रुकते, निवास करते, देखते-समझते और कृतकृत्य होकर लौटते रहे हैं। इतिहास में इन तथ्यों के प्रमाणिक विवरण विद्यमान हैं। ईसामसीह भी इसी तीर्थ-यात्रा, तीर्थ सेवन के लिए भारत आए थे और उन जीवन्त ऊर्जा-केन्द्रों में जीवन साधना कर ईश्वर-पुत्र होकर लौटे थे। उन दिनों भारत भूमि आज जितनी छोटी नहीं थी। प्राय: सम्पूर्ण एशिया में वृहत्तर भारत का विस्तार था। उसका प्रकाश सम्पूर्ण धरती पर सूर्य की भाँति आभा और ऊर्जा बिखेरता था। उस सतयुग-स्वर्णयुग की स्थापना के प्रमुख आधारों में तीर्थयात्रा का विशेष स्थान था।

यहाँ यह स्मरण कर लेना चाहिये कि तीर्थ तत्व किसी देव मन्दिर, सरित-सरोवर, पूजा-कृत्य तक सीमित नहीं है। अपितु ये सब तो उसके बाहरी कलेवर भर हैं। तीर्थ तत्व का प्राण वह विधि-व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत इन स्थानों में रहने वाले मनीषी ब्रह्मवेत्ता व्यापक जन-सम्पर्क के द्वारा जन-मानस में धर्म-धारणा को प्रतिष्ठित करने के प्रयास करते रहते थे। लोक चेतना में गहराई तक धर्म-धारणा जमाते थे। आस्था क्षेत्र को प्रखर उन्नत बनाते थे। इस प्रक्रिया एवं प्रयास का परिणाम आत्मिक स्वास्थ्य सम्वर्धन के रूप में सामने आता था, इसलिए इन्हें आध्यामत्मिक सेनेटोरियम जैसा समझा जाना चाहिये। ऋषियों के ये सुव्यवस्थित प्रयास मेघ-मण्डलों की तरह व्यापक क्षेत्र में प्रेरणा की वर्षा करते और भावनाओं की हरियाली चारों ओर उपजाते-बढ़ाते थे। अन्त: ऊर्जा का उत्पादन करने वाले बिजलीघरों की तरह तीर्थ-प्रक्रिया की भूमिका थी। यही प्राणवान प्रक्रिया ही तीर्थ तत्व का जीवन है। जब यह प्रक्रिया नहीं रही, तो फिर तीर्थों का निष्प्राण शरीर सड़-गलकर उस स्थिति में पहुँचना स्वाभाविक ही था, जिसमें वह आज है।

नि:सन्देह काय-कलेवर भी महत्त्वहीन नहीं। उसका अपना महत्त्व है। आवरण अनावश्यक नहीं होता। उपकरण व्यर्थ नहीं, आवश्यक होते हैं। उसके बिना भी काम नहीं चलता। लेकिन आवरण, उपकरण, साधन तभी तक उपयोगी एवं लाभकारी होते हैं, जब तक उनको कोई क्रिया-कुशल प्राणवान प्रयोग में ला रहा हो। अन्यथा वे शोभा की वस्तु, दिखाऊ चीजें बनकर रह जाते हैं। तीर्थों का गौरव वहाँ बने देव-मन्दिरों, के कारण या वहाँ की प्राकृतिक शोभा-सुषमा के कारण अथवा जलायशों के सौन्दर्य के कारण नहीं था। निसर्ग की सुन्दरता और आकर्षण तो अन्यत्र भी होते हैं। दर्शनीय स्थलों का निर्माण भी हर कहीं हो सकता है। क्या इतने भर से वे स्थल तीर्थ कहे जा सकेंगे ?

तीर्थ तो श्रद्धा के प्रतीक हैं। श्रद्धा वस्तुओं में नहीं होती। वह तो उन क्रिया-कलापों द्वारा उत्पन्न होती है, जो उत्कृष्ट व्यक्तियों द्वारा आस्थाओं के अभिवर्धन के लिए संचालित किये जाते हैं। बाहरी कलेवर से असंख्य गुनी महानता, तीर्थों में उन दिनों चलने वाली इन्हीं गतिविधियों से भरी होती थी। डिब्बी मे रखी अँगूठी ही महत्त्वपूर्ण होती है डिब्बी स्वयं में उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती। धान का छिलका नहीं, चावल ही मूल्यवान होता है। मूल्यांकन मनुष्य का किया जाता है। पहनावा तो साज-सज्जा भर है। पोशाक भर के आधार पर महत्त्व नहीं मिल सकता। हाँ बिना पोशाक के भी महानता और गरिमा को अक्षुण्ण रखना अवश्य सम्भव है। अच्छी वेशभूषा, अच्छा स्वास्थ्य, अच्छा डील-डौल एवं बाहरी-व्यक्तित्व हो सके, तब तो कहना ही क्या ? ये सुयोग व्यक्तित्व की शोभा बढ़ाते हैं लेकिन वे ही भर पर्याप्त नहीं होते। मूल गरिमा तो उत्कृष्टता सम्पन्न व्यक्तित्व की है। बुनियादी महत्त्व उसी का है। उसी की क्षमता और शोभा को बढ़ाने के ही कारण बाहरी व्यक्तित्व, पोशाक और स्वास्थ्य महत्त्व एवं उपयोग होता है।

मन्दिरों की भव्यता, जलाशयों की सुषमा या दर्शकों को आकर्षित करने वाली विचित्रता किसी स्थान को दर्शनीय तो बना सकती है, कौतूहल वश लोगों का आना-जाना बना रह सकता या बढ़ सकता है, इतने भर से ही उन स्थानों को सचमुच तीर्थ कहा जाना क्या उचित होगा ? पर्यटक विनोद के लिए वहाँ पहुँचे और व्यवसायी लोग कुशलता के साथ उन्हें विनोद बेचें, दाम कमायें, इतना ही उपक्रम चलते रहने पर तीर्थों का प्रयोजन पूरा हुआ नहीं माना जा सकता। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे किसी कलात्मक प्रतिमा का उपयोग तराजू के बाँटों के रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जा रहा हो। अगर प्रतिमा को नापजोख के ही काम में लाया जाता रहे, तो उससे प्रतिमा के निर्माता को असन्तोष होगा। उसने कितनी मेहनत, कलात्मक चिंतन, सूझ-बूझ, तन्मयता-तल्लीनता तथा प्रतिभा के साथ उस प्रतिमा को गढ़ा होगा, उन सबकी सार्थकता तो तभी थी, जब उससे दर्शकों की कलाबुद्धि को आनन्द प्राप्त होता। इसी प्रकार तीर्थों के निर्माता, तीर्थ-प्रक्रिया के चिंतक, संगठक और विस्तारक दूरदर्शी ऋषियों ने कितनी साध और साधना के साथ, इनको प्रारम्भ किया, प्रतिष्ठित किया। उनका वह उदार योगदान तभी सफल माना जा सकता है, जब इन तीर्थ केन्द्रों के द्वारा धर्म चेतना का जन-जन में प्रसार हो और उत्कृष्टता की प्राणवान प्रेरणायें उनके द्वारा फैलाई जायें।

इस तथ्य को स्मरण करने पर निश्चय ही आवश्यकता स्पष्ट हो जायगी कि तीर्थों के विशालकाय ढाँचे इन दिनों निष्प्राण हो चुके हैं और उनमें प्राण फूँके जाने चाहिए। इन दिनों तो इन तीर्थों की स्थिति असाध्य रोगियों जैसी हो गई है। या तो इनकी मृत्यु हो जाये या फिर इनमें ठीक से जीने की शक्ति आए। इस तरह चारपाई पर पड़े सड़ने की स्थिति से किसी को भी खुशी नहीं होगी। महान उद्देश्यों से बनाये गए और उस दृष्टि से पूरी तरह सुविधा सम्पन्न तीर्थों का सही उपयोग न हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इस स्थिति से तो यही पता चलता है कि वर्चस्वी प्रभावी वर्ग में विचारशीलता, जागरूकता और सुव्यवस्था बनाये रखने वाली प्रतिभा नहीं रही है। विवेक और पौरुष शिथिल हो गया है। लोक-नेतृत्व की क्षमता नहीं रही है। यह अपने युग की दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना कही जाएगी। यह आस्था के ह्रास की स्थिति है।

यह आस्था-संकट ही मनुष्य के आन्तरिक पिछड़ेपन का प्रधान कारण है। इसी के कारण व्यक्ति में दुष्टता और समाज में भ्रष्टता का अनुपात बढ़ता जा रहा है और सामयिक, आर्थिक, नैतिक, शासकीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अगणित समस्यायें-उलझनें बढ़ती चली जाती हैं। समाधान ढूँढ़ने वाले एक छेद को बन्द करें, तब तक दस नये छेद और फूट पड़ते हैं। यह सिलसिला तब तक रहेगा, जब तक सभी विकृतियों का आधारभूत कारण ही नहीं दूर किया जायेगा। वह है—आस्था का संकट। इस मूलभूत कारण के निवारण के लिए कारगर उपाय ढूँढ़ा जाना जरूरी है।

समाज की आर्थिक स्थिति एवं अर्थ व्यवस्था में सुधार, उपयोगी कानूनों का निर्माण और सुविचारों का विस्तार उपयोगी एवं आवश्यक है। किन्तु यह भी समझा जाना जरूरी है कि व्यक्तित्व का उद्गम मनुष्य के अन्तःकरण की गहराई में सन्निहित है और वहाँ तक न तो अर्थ साधनों की पहुँच हो पाती, न ही कानून की, न शिक्षण-प्रशिक्षण की। वह तो श्रद्धा का क्षेत्र है। वही उस गुफा में प्रविष्ट हो सकने में समर्थ है। उच्चस्तरीय श्रद्धा अन्तःकरण के मर्मस्थल में धर्म चेतना के माध्यम से ही उत्पन्न एवं सुदृढ़ होती है। यह विशेष कार्य प्रखर धर्मनिष्ठा का ही है और किसी का नहीं। धर्म अर्थात् आदर्श। आदर्शों का समझना-समझाना तो वाणी और लेखनी के द्वारा भी हो सकता है, लेकिन वे आदर्श अन्तःकरण की गहराई में सुस्थिर रूप से जमा सकना धर्मधारण के ही वश का काम है। धर्मात्मा वही है, जो आदर्शवादी आस्था को अविचलित रूप से अपनाये रहता है।

उच्चस्तरीय आदर्शों को व्यवहार में उतारने की विधि-व्यवस्था और पुण्य परम्परा धर्म कही जाती है। उसे स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन आदि के द्वारा अपनाया जाता है। धर्मानुष्ठानों के सहारे उसे अभ्यास में उतारा जाता है। ये वैयक्तिक प्रयास हुए। उसे ही सामूहिक तथा सुसंस्कृत रूप से जनमानस में जगाने और मजबूती से जमाने-फैलाने के लिए जो कारगर उपाय ऋषि-मनीषियों ने ढूँढ़े, उनमें तीर्थ-प्रक्रिया का महत्त्व असाधारण है। इतिहास के प्रमाणिक साक्ष्य तीर्थ प्रक्रिया के गौरवशाली परिणामों को स्पष्ट करते हैं।

युग-सृजन अभियान में जन-चेतना में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश करना होता है। यही आधारभूत उद्देश्य है। रचनात्मक गतिविधियों का धर्मचक्र इसी धुरी पर घूम रहा है। तीर्थयात्रा एवं तीर्थतत्व का पुनरुज्जीवन भी इन प्रयासों में से एक विशेष कार्य है। तीर्थ-प्रक्रिया विडम्बनाओं से मुक्त हो और उसमें धर्म-चेतना जाग्रत करने वाली तत्परता घुले-मिले तो उज्ज्वल भविष्य की संरचना का एक महत्त्वपूर्ण द्वार खुल गया।

यह युग की महती आवश्यकता है। इसे कैसे पूरा किया जाय ? सरल उपाय तो यह है कि वर्तमान तीर्थ संचालकों से ही अनुरोध किया जाय कि वे अपनी व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन करें, जिससे वहाँ तपःपूत मनीषियों द्वारा निःस्वार्थ भाव से धर्मधारण उत्पन्न करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाली गतिविधियाँ चलाई जा सकें । यह आशा की जा सकती है कि यदि वे लोग देवालयों-धर्म संस्थानों का उद्देश्य सचमुच समझते होंगे तो इस अनुरोध को अवश्य स्वीकार कर लेंगे और सब कुछ चुटकी बजाते ठीक हो जायेगा । तीर्थों की प्रक्रिया बदल जायेगी तथा अतीत के गौरवपूर्ण दृश्य सामने आने लगेंगे ।

यह आशा है तो उचित और सराहनीय पर व्यवहार में यह अत्यन्त कठिन है । यहाँ तक कि इसे लगभग असम्भव कहा जा सकता है । धर्म संस्थानों से होने वाली आमदनी और उनके स्वामित्व से सन्तुष्ट होने वाला वह दोनों का आकर्षण प्रचण्ड है आकर्षणों के दबाव से मुक्त होकर वर्तमान तीर्थ-संचालकों का हृदय-परिवर्तन हो पाना असम्भव है । स्वामित्व का प्रचण्ड मोह मनुष्य को इस कदर बाँधता है कि वह बिना उपयोग वाली अपनी वस्तुएँ तक किसी सत्प्रयोजन के लिए देने को तैयार नहीं हो पाता । फिर धन का स्पष्ट लोभ भी साथ हो तब तो बात बहुत बढ़ जाती है । अनेक धर्मसंस्थानों की आमदनी अच्छी खासी है । उसे गँवाने को वे क्यों तैयार होंगे ? धर्म का आडम्बर गढ़ना अलग बात है और स्वार्थों में कमी स्वीकार कर पाना बिल्कुल दूसरी । भजन-पूजन करने वाले असंख्य लोग हैं, परन्तु उनमें ऐसे लोग बहुत ही कम मिलेंगे, जो अपने स्वार्थों में तनिक सी भी कमी मन्जूर कर सकें ।

आज तो धर्म की विडम्बना उथले कर्मकाण्डों तक ही सीमित है । चरित्रनिष्ठा और समाज निष्ठा को उभारने वाली धर्म-धारणा की आत्मा जाने कहाँ चली गई ? आज की वस्तुस्थिति को समझने पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि जो लोग धर्म संस्थानों को संकीर्ण स्वार्थपरता के बन्धनों से मुक्त करने और उन्हें धर्म चेतना उत्पन्न करने योग्य बनाने का अनुरोध करते रहे हैं, उन्हें घोर असफलता का मुँह क्यों देखना पड़ा ?

आज शिक्षा, चिकित्सा, कला, सम्पन्नता की दृष्टि से हम पूर्वजों से आगे हैं । वैज्ञानिक और आर्थिक प्रगति ने सुविधा, साधनों के पहाड़ खड़े कर दिये हैं तो भी हम अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं । स्वास्थ्य, सन्तुलन, सन्तोष, सहयोग दिन-दिन गिर रहा है । आर्थिक तंगी पारिवारिक उपेक्षा, असहयोग, पारिवारिक विग्रह से सभी दुखी हैं । समस्याओं, विपत्तियों और विग्रहों के घटाटोप घिरते आ रहे हैं । आखिर ऐसा सब हो क्यों रहा है ? एक ओर प्रगति दूसरी ओर अवगति की यह विडम्बना खड़ी क्यों हो रही है ? सभी घुटन क्यों अनुभव कर रहे हैं ? आकांक्षाओं से आंतक का वातावरण क्यों बन गया है ? प्रकृति प्रकोप और महायुद्ध जैसी विभीषिकाएँ क्यों सघन होती जा रही हैं ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर एक ही है—मनुष्य के अन्तराल से धर्म धारणा का पलायन । भ्रष्ट चिन्तन और भ्रष्ट आचरण । आखिर ऐसा हुआ क्यों ? इसका कारण एक ही है—उद्यान को सींचने रखाने वाले तंत्र का अस्त-व्यस्त हो जाना । इस तंत्र का मूलभूत आधार ऋषिप्रणीत विद्या का बीज आज भी हमारे बीच विद्यमान है । परन्तु उसे जनस्तर पर क्रियान्वित करने की प्रक्रिया समाप्त हो गयी है । कभी साधु ब्राह्मण वर्ग जीवन्त था । वह जन-जन में धर्म धारणा सजीव रखने के लिए निरन्तर जन-जन से सम्पर्क साधता था और घर-घर अलख जगाता था । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए धर्म प्रचार की पद यात्राएँ चलती थीं । इसी को तीर्थ यात्रा कहा जाता था । तीर्थों का असाधारण पुण्य फल शास्त्रकारों ने गाया है । प्रकारान्तर से यह धर्म प्रचार यात्रा की महान परम्परा को प्रोत्साहन है । जब तक यह क्रम बना रहा तब तक इस देव भूमि की गरिमा गगन चुम्बी बनी रही ।

देव मानवों का समुदाय स्वल्प निर्वाह में संतोष करता था और अपना अधिकांश समय परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित करता था । बादलों की तरह हर प्यासे खेत पर बरसता था । पवन की तरह दौड़-दौड़ कर हर जीवधारी को प्राण चेतना प्रदान करता था । सूर्य, चन्द्र की तरह आलोक वितरण में उनका प्रयास अहिर्निश चलता था । धर्म प्रचार की पद यात्रा—तीर्थ यात्रा का यह उपक्रम जन-जन के चिन्तत में उत्कृष्टता, चरित्र में आदर्शवादिता और व्यवहार में उदारता भरे रहता था । उस प्रक्रिया के लड़खड़ाते ही मानवी गरिमा का स्तर बेतरह गिरा । आस्था संकट बढ़ा । फलत: परिस्थितियाँ ऐसी विपन्न हो गईं जिससे हर किसी को घुटन अनुभव होती है ।

संकटों से उबरने का एक ही उपाय है कि देव संस्कृति से पुरातनकाल की तरह जन मानस को अनुप्राणित किया जाय । यह कार्य भारत जैसे छोटे देहात में बसे हुए और अशिक्षा अवगति से घिरे हुए देश में धर्म प्रचार की पद यात्रा द्वारा ही सम्भव हो सकता है । इसके लिए भावनाशीलों को अपना समय निकालना चाहिए और लोक मानस के परिष्कार एवं सत्प्रवृति सम्वर्धन का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर वहन करना चाहिए । धर्म

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और संस्कृति के अन्धे माता-पिता को कन्धे पर बिठा कर हमें श्रवण कुमार की तरह तीर्थ यात्रा पर निकलना चाहिए। युग चेतना का आलोक वितरण करने के लिए प्राचीन काल के धर्मनिष्ठों की तरह घर-घर नव जागरण का अलख जगाना चाहिए। तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करना चाहिए।

तीर्थों का पुण्य फल असाधारण है। आज तो वह परम्परा मूढ़ मान्यताओं और निहित स्वार्थों के चंगुल में फँस गई पर जब वह अपने सही रूप में थी तब तीर्थों का स्वरूप आरण्यक स्तर का था। वहाँ गृहस्थ लोक जीवन परिष्कार की साधना और शिक्षा के निमित्त पहुँचते और निवास करते थे। नव जीवन प्राप्त करके वापिस लौटते थे। साथ ही वे धर्म प्रचारक प्रशिक्षित करते थे जो जन जागरण का प्रयोजन पूरा करते रह सकें।

नालंदा, तक्षशिला जैसे अगणित आरण्यक इस देश में थे। तीर्थ उनको भी कहा जाता था। तीर्थ आरण्यकों और तीर्थ यात्रा उपक्रम का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था। जब तक यह तंत्र खड़ा रहा सतयुगी वातावरण में कमी न पड़ने पाई। इस देश के धर्म प्रचारकों ने संसार भर में प्रगति और संस्कृति की प्रतिष्ठापना की। फलतः भारत जगद्गुरु, चक्रवर्ती, स्वर्ण सुमेरु आदि नामों से पुकारा जाता रहा। धर्मप्रेरणा का धनी यह देश स्वयं कृत-कृत्य हुआ और समस्त संसार को समुन्नत बनाने का श्रेय कमाया।

समय आ गया कि विश्व व्यवस्था को प्रस्तुत संकट से उबारने के लिए, देव मानवों की कार्य पद्धति को पुनर्जीवित करने के लिए प्रज्ञापरिजनों द्वारा नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ किया जाय। जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व हलके हैं वे इस निमित्त पूरा समय दें, जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व अभी भी भारी हैं वे भी वर्ष में न्यूनतम एक महीने का समय निकालें और अपने समीपवर्ती क्षेत्रों में पद यात्रा पर निकलें। इसके लिए किन्हीं देवालय को लक्ष्य बनाने की आवश्यकता नहीं है। इस देश का हर गाँव देवालय है। हमें स्थान नहीं, उद्देश्य को महत्त्व देना चाहिए और अपने-अपने क्षेत्रों में पद यात्रा के प्रवास चक्र बनाने चाहिए।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत तीर्थ प्रव्रज्या की योजना यह है कि पद यात्रा में साइकिलों को भी भार वाहन के रूप में सम्मिलित रखा जाय। पाँच-पाँच की टोलियाँ-पाँच साइकिलों पर निकलें। धर्म प्रचार के प्रयोजन से जन-जन को अवगत कराने वाले आच्छादन धारण करें। सभी के वस्त्र पीले रंगे हुए हों। प्रचार उपकरण साथ में रहें। प्रचारकार्य में संगीत की प्रमुखता रहे। इन पाँच में कम से कम दो तो सामान्य संगीत जानते ही हों। सस्ता और हलका वाद्य ढपली मंजीरा और करताल जैसे हो सकते हैं। यह साथ रखे जायें। उद्देश्य के अनुरूप भजनों का अभ्यास हो। प्रवचन प्रज्ञा पुराण कथा के रूप में हो। रात्रि को जहाँ विराम हो वहाँ कथा कीर्तन के, प्रज्ञा पुराण, युग संगीत के माध्यम से स्थानीय जन समुदाय को युग चेतना से अवगत अनुप्राणित किया जाय।

क्षेत्रीय तीर्थ यात्रा के लिए पाँच प्राणवान प्रचारकों की एक मण्डली गठित की जाय। उनके लिए पाँच साइकिलों का प्रबन्ध किया जाय। वे निजी भी हो सकती हैं और माँग कर या किराये पर भी ली जा सकती हैं। न्यूनतम पन्द्रह दिन का प्रवास चक्र बने। सवेरे हवन करके आगे चला जाय, हवन सामग्री साथ हो। पाँचों प्रचारक स्वयं हवन करें। स्थानीय लोगों को दर्शन सहयोगी के रूप में आस-पास बिठा लें। देव पूजन के आरम्भिक और पूर्णाहुति, परिक्रमा जैसे अन्तिम हवन कृत्यों में उन्हें सम्मिलित रखें। वेदिका मिट्टी की बना लें।

हवन के उपरान्त शीघ्र से शीघ्र निकला जाय। रात्रि को जहाँ पहुँचना है वहाँ के मार्ग में जितने गाँव आते हों उनमें रुकते-रुकते चला जाय। दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन स्टेन्सिलों या रंगीन चाक मिट्टी के सहारे किया जाता रहे। जहाँ कुछ व्यक्ति एकत्रित हों वहाँ दो चार भजन सुना दिये जायें और अपना अभिप्राय संक्षिप्त भाषण में सुना दिया जाय। इस प्रकार बीच के गाँवों को पार करते हुए विराम स्थान पर पहुँचा जाय। वहाँ नियत स्थान पर साइकिलों के साथ चलने वाली चित्र-प्रदर्शनी अपने ही लोगों में से एक के द्वारा लगाना प्रारम्भ कर दिया जाय। इस हेतु वहाँ चार बजे तक पहुँच जाना आवश्यक है, ताकि सूर्यास्त तक चित्र प्रदर्शनी दिखा लें। रात्रि को प्रज्ञा पुराण की कथा और संगीत कीर्तन हो। नित्य यही कार्यक्रम चलता रहे।

प्रवास क्रम निर्धारित करने के उपरान्त उन गाँवों के निवासियों को टोलियों के पहुँचने की पूर्व सूचना भिजवा दी जाय। विराम स्थान पूर्व निर्धारित हो। स्थानीय लोग ऐसा प्रबन्ध कर रखें कि नियत स्थान एवं समय पर जनता एकत्रित हो सके। रात्रि विश्राम तथा स्थल के लिए उपयुक्त स्थान चाहिए। इसलिए उसका निर्धारण पहले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से ही होना चाहिए और प्रयोजन में रस लेने सहयोग देने के लिए कुछ लोगों को पहले से ही प्रोत्साहित कर लेना चाहिए। अन्यथा नये स्थान पर बिना पूर्व सूचना या स्थानीय सहयोग के जा पहुँचने पर सारी व्यवस्था टोली को ही बनानी पड़े तो बात बनेगी नहीं। सफलता संदिग्ध बन जायगी।

योजना का प्रबन्ध स्वयं करने की तैयारी रखी जाय। खिचड़ी अमृताशन इसके लिए सुलभ पड़ता है। पाँच व्यक्तियों के लायक खिचड़ी पका सकने योग्य एक भगौनी साथ रखी जाय। चावल-दाल एक दिन के लायक साथ हों। अगले गाँव के लिए रास्ते में से फिर खरीदते चला जाय ताकि अनावश्यक बोझ न लादना पड़े। ईंधन, उपले तो रास्ते में से भी बीनते और थैले में भरकर ले चलने में कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। यदि कहीं स्थानीय निवासी भोजन का प्रबन्ध श्रद्धा पूर्वक कर दें तो उसे स्वीकार करने में कोई आना-कानी भी न की जाय वैसे दोनों समय के लिए व्यवस्था अपनी ही रख कर चलना चाहिए। आवश्यक कपड़े तथा बर्तन साथ रहें। साइकिलों के कैरियरों पर दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ, चित्र प्रदर्शनी, संगीत उपकरण, लाउड स्पीकर, हवन सामिग्री आदि लेकर चलने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसके लिए उपयुक्त थैले ऐसे लिए जायें जिनमें उपयुक्त सामान आसानी से रखा जा सके और टूटने-गिरने का भय न रहे। फोल्डर, साहित्य गायत्री के चित्र आदि विक्रय हेतु साथ रखे जाने चाहिए।

इस तीर्थ यात्रा प्रचलन को अग्रगामी बनाने के लिए तैयारी यह की जा रही है कि दो संगीत के जानकार परिव्राजक शान्ति कुन्ज से भेजे जायें, तीन स्थानीय हों। एक केन्द्र बने। इर्द-गिर्द के तीस-तीस किलोमीटर का प्रवास चक्र बनाया जाय। चित्र प्रदर्शनी, लाउड स्पीकर भी हरिद्वार के प्रचारक साथ लेकर चलें। एक केन्द्र-क्षेत्र पूरा होने पर वे दूसरे केन्द्र में चले जायें। इस प्रकार वे क्रमशः पन्द्रह-पन्द्रह दिन या न्यूनाधिक दिनों में एक-एक दिन में एक-एक क्षेत्र पार करते हुए आगे बढ़ते चलें। स्थानीय परिव्राजकों में से पाँच तो टोली में चलें और दो आगे-आगे व्यवस्था बनाने के लिए बढ़ते चलें। इस प्रकार पाँच स्थानीय और दो हरिद्वार के कुल मिलाकर सात की टोली रहेगी। प्रबन्ध इससे कम में नहीं बन पड़ेगा। सातों के पास साइकिल तो सुनिश्चित होनी ही चाहिए।

साइकिलों का प्रबन्ध शान्ति कुन्ज से हो रहा है। नई या आधी पुरानी साइकिल खरीदने की योजना है। वैसे साइकिलें स्थानीय लोग अपनी स्तेमाल करें तो अधिक सुविधा रहेगी। वर्षों में एक बार एक महीने की या दो बार पन्द्रह-पन्द्रह दिन के यह प्रवास चक्र बन सकते हैं, लम्बी यात्रा पर निकलना हो तो अपने यहाँ से शान्ति कुन्ज एक रास्ते से पहुँचने और वापस दूसरे रास्ते से इसी उपक्रम के साथ लौटने की योजना बन सकती है।

जिन उद्देश्यों और कार्यक्रमों से इस तीर्थ यात्रा में कथा-कीर्तन के माध्यम से जन-जन को अवगत कराया जाना चाहिए वे यह हैं—

(१) युग तीर्थ गायत्री तीर्थ में लोग पहुँचे। एक महीने के, नौ दिन के, या चार दिन के सत्र में प्रवेश प्राप्त करें। इधर से गुजरने वाले कम से कम इस तीर्थ का दर्शन अवश्य करें और यह समझने का प्रयत्न करें कि तीर्थों का उद्देश्य, और स्वरूप क्या हो सकता है और वे युग समस्याओं के समाधान में क्या योगदान कर सकते हैं।

(२) तीर्थ यात्रा के लिए स्थानीय लोगों में उत्साह उत्पन्न करना। गायत्री तीर्थ में जाकर बालकों के नाम करण, अन्न प्रांशन, मुन्डन, विद्यारम्भ, दीक्षा, यज्ञोपवीत आदि संस्कार कराना। बड़ों के लिए जन्मदिवसोत्सव, विवाह दिवसोत्सव मनाने के लिए यहाँ पहुँचना श्रेयस्कर है। उत्तरा खण्ड यात्री निर्विघ्न यात्रा के लिए आशीर्वाद लेकर जा सकते हैं।

(३) स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना उनके द्वारा प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने, स्लाइड प्रोजेक्टर, टेप रिकार्डर के माध्यम से सत्संग क्रम चलाने आदि की पंच सूत्री योजना कार्यान्वित कराई जाय।

(४) सूर्योदय के समय पाँच मिनट की मौन उपासना वाले महा अनुष्ठान से अधिकाधिक लोग भागीदार बनें। हर घर में गायत्री चित्र स्थापना तथा हर सदस्य द्वारा उसका नमन वंदन करने की परम्परा चले। पञ्च शीलों की प्रतिष्ठापना का प्रयास रहे।

(५) दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन, तथा घरों में आदर्श वाक्य टाँगने,स्टीकर चिपकाने का प्रचलन बढ़े।

(६) जन्म दिवसोत्सव के माध्यम से परिवार निर्माण-गोष्ठियों का प्रचलन हो नवरात्रि एवम् अन्य पर्व मनाकर धर्मतंत्र से लोक शिक्षण का क्रम आगे बढ़े।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(७) शिक्षा प्रसार के लिए पुरुषों की रात्रि पाठशालाएँ, महिलाओं की अपराह्न शालाएँ चलें। दो घण्टे की बाल संस्कार पाठशाला निःशुल्क ट्यूशन पढ़ाने के रूप में चले। इनमें सुसंस्कारिता सम्वर्धन की शिक्षा अनिवार्य रूप से समाविष्ट रहे।

(८) व्यायाम शालाओं की स्थापना। खेल कूदों का प्रचलन आसन, प्राणायाम वाले प्रज्ञा व्यायाम का प्रशिक्षण। सामूहिक श्रमदान से स्वच्छता अभियान।

(९) हरीतिमा सम्वर्धन। तुलसी का थावला घर आँगन में लगाने का उपक्रम। घरेलू शाक वाटिका एवम् पुष्प-वाटिका उगाना।

(१०) दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन। ऊँच-नीच, पर्दा प्रथा भिक्षा व्यवसाय, मृतक भोज, नशा आदि कुप्रचलनों की हानियाँ समझाना और उन्हें छोड़ने के लिए सहमत करना। खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं। इस तथ्य से जन-जन को अवगत कराना। जिनके लिए सम्भव हो उन्हें शान्ति कुन्ज में ऐसे विवाह कराने के लिए प्रोत्साहित करना।

उपरोक्त दसों सूत्रों को प्रज्ञा पुराण एवम् युग संगीत के कथा-कीर्तन के माध्यम से कहते हुए उन्हीं में से उभारे जा सकते हैं। जहाँ इस तीर्थ यात्रा प्रचलन के लिए उत्साह उभरे वहाँ के एक दो व्यक्ति एक महीने की कल्प साधना के साथ इसका भी शिक्षण प्राप्त कर लें।

पापों के प्रायश्चित्य और पुण्य परमार्थ का सञ्चय के दोनों ही प्रयोजन इस तीर्थ यात्रा प्रक्रिया से सम्पन्न होते हैं। प्रज्ञा परिजनों को उपरोक्त धर्म प्रचार की पद यात्रा की व्यवस्था बनाने और अन्यान्यों को इनमें सम्मिलित करने के लिए परिपूर्ण उत्साह के साथ प्रयत्न करना चाहिए।

तीर्थ यात्रा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जाय

तीर्थ यात्रा का पुण्य फल शास्त्रकारों ने इतना अधिक बताया है कि समूचे धर्म कृत्यों का महात्म्य और तीर्थ यात्रा की परिणति तराजू पर तौलकर बराबर ठहराई जा सकती है। गृहस्थ, विरक्त सभी के लिए यह सुलभ है। साथ में पर्यटन का विनोद मनोरंजन भी उसके साथ जुड़ा रहने से सर्व साधारण ने उसे पूरे उत्साह से अपनाया भी है।

तीर्थों का महात्म्य पढ़ने सुनने पर उसमें अत्युक्ति की भरमार प्रतीत होती है। प्रतिमा दर्शन या जल स्नान से पाप नाश, स्वर्ग प्राप्ति जैसे महान, पुण्य-फलों का उपलब्ध हो सकना किसी भी प्रकार बुद्धि ग्राह्य नहीं है। इतने स्वल्प मूल्य में इतनी बहुमूल्य विभूतियाँ मिलने लगें तो फिर कोई कष्ट कर जीवन यापन का मार्ग क्यों अपनाने जाएगा ? जिस कार्य में जितनी पूँजी लगती है उसी अनुपात से उसकी परिणित, उपलब्धि भी हाथ लगती है। इस शाश्वत तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। कम लागत में बहुत फायदा होने की बातें ठगों द्वारा अनाड़ियों से ही की जाती हैं। विवेकवान सदा से उचित मूल्य पर ही विश्वास करते हैं।

तीर्थों का पुण्यफल प्रतिपादन करने, कराने वाले शास्त्र, ऋषि और आप्तहन झूठे नहीं कहे जा सकते। साथ ही यह बात भी गले नहीं उतरती कि पर्यटक कुछ दर्शन झाँकी करने, डुबकी लगाने और जिस-तिस पर दान दक्षिणा के पैसे बिखेरने भर से स्वर्ग मुक्ति के अधिकारी बन सकते हैं या पापकर्मों से छूट सकते हैं। इस असमंजस के निवारण की आवश्यकता समझने वाले जब तथ्यों को खोजते और बुद्धि पर जोर देते हैं तो उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि तीर्थ यात्रा के साथ कोई उच्चस्तरीय उद्देश्य एवं कार्यक्रम भी जुड़े होने चाहिए। भले ही आज उन्हें बुरी तरह भुला दिया गया हो।

तीर्थ यात्रा का शास्त्रीय स्वरूप है—धर्म प्रचार की पदयात्रा। आज उस निर्धारण का प्राचीन स्वरूप लुप्त प्रायः होता जा रहा है। उसका स्थान पर्यटन, मनोरंजन ने ले लिया है। यों पर्यटन भी एक स्वस्थ्य मनोरंजन है। उससे भी घर में घुसे रहने की ऊब दूर होती है। नई-नई जगह जाने, देखने से अनुभव बढ़ता है। धन के वितरण का यह अर्थशास्त्र सम्मत उपाय है। मजदूर, वाहन, होटल सभी लाभान्वित होते हैं और सरकार को अनेकानेक माध्यमों से टैक्स मिलता है। पर्यटन को संसार भर में प्रोत्साहन दिया जाता है और उसे आकर्षक बताया जाता है। वह प्रक्रिया अपने ढंग से चलने पर तीर्थ यात्रा का धर्म प्रयोजन उसके साथ जोड़कर गुड़-गोबर एक न किया जाय इसी में विवेकशीलता है।

पर्यटन, मनोरंजन के विरुद्ध, यहाँ एक शब्द नहीं कहा जा रहा है और न वहाँ बने दर्शनीय स्थानों को न देखने की अश्रद्धा उत्पन्न की जा रही है। कहा इतना भर जा रहा है कि तीर्थ यात्रा के उस मूलभूत उद्देश्य को विस्मरण न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किया जाय जिसे ध्यान में रखते हुए ऋषियों ने महात्म्य वर्णन में शास्त्रों के इतने पृष्ठ रंगे और उस प्रवृज्या पर निकलने के लिए धर्म प्रेमियों को इतना ललचाया, उकसाया कि आज उसके पीछे अत्युक्ति, दुरभिसन्धि की दुर्गन्ध तक सूँघी जा सकती है। विलासी परिभ्रमण और दर्शन, झाँकी की भगदड़ भर की संगति उस पुण्यफल के साथ किसी भी प्रकार नहीं बैठती जिससे अध्यात्म क्षेत्र के उच्चस्तरीय प्रतिफलों और भौतिक मनोकामना पूर्ति की आशा बँन्ध सके। इस सन्दर्भ में विवेक ने हर विचारशील को गम्भीरतापूर्वक विचार करने और किसी उपयुकत निष्कर्ष पर पहुँचने की चुनौती दी है। उनकी बात दूसरी है जो परम्पराओं का मनमाना अर्थ लगाते और ठगने-ठगाने का अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहते। लकीर के फकीर बने रहने में ही भलाई सोचते और कमाई देखते हैं।

कहा जा चुका है कि जिस तीर्थयात्रा को धर्म कृत्यों में श्रेष्ठतम स्थान दिया और अजस्र पुण्य फलदायक बताया गया है, उसका वास्तविक स्वरूप धर्म प्रचार की पदयात्रा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जन-जन के मन-मन में धर्म धारणा की प्रतिष्ठापना करना यही वह ब्रह्मदान है जिसे सीप में स्वाति बूँद पड़ने पर मोती उगने की उपमा दी जाती है। साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ परिव्राजक एवं उदारचेता इस उच्चस्तरीय सेवा धर्म का परिपालन करते रहे। हर कोई उपयुक्त सान्निध्य, सत्संग का लाभ उठाने के लिए दूर-दूर तक नहीं जा सकता। ऐसे लोगों का हित साधन इसी में बन पड़ता है कि कोई पुण्यात्मा स्वयं ही उनके यहाँ कृपा पूर्वक पधारे और ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने की अमृत वर्षा से उन्हें कृत-कृत्य बनाये। अशिक्षित, पिछड़े देहातों के बाहुल्य वाले अपने देश में तो इस बात की और भी अधिक आवश्यकता है कि लोक चेतना में घुसी हुई प्रतिगामिता को हटाया और प्रगतिशीलता को जमाया जाय। आदर्शवादिता का नाम ही धर्म है। उत्कृष्टता का ही दूसरा नाम अध्यात्म है। स्वप्नलोक की अनगढ़ गाथा, कल्पनाओ में भावुकजनों को उछाल देना और फिर उन्हें अन्ततः निराशा, अश्रद्धा के गर्त में गिरने के लिए विवश कर देना आज की तथा कथित धार्मिकता, विडम्बना, व्यवसाय बन गया है। पर वस्तुतः वह अपने असली रूप में वैसा है नहीं। धर्म का अर्थ है प्रगतिशीलता और शालीनता का समन्वय। अभ्युदय और श्रेष्ठता की अविच्छिन्न समग्रता। धर्म प्रचार का तात्पर्य है इन्हीं तथ्यों का लोक मानस में वाणी अथवा कर्म काण्डों की सहायता से समावेश करने वाली योजना का क्रियान्वयन। तीर्थ यात्रा में यही करना होता है। पदयात्रा में धर्म प्रचार मण्डली निकलती है और मिलने वाले राहगीरों,गाँव, पुरवों में चलते चलाते यथा सम्भव प्रेरणायें देते चलना और रात्रि में जहाँ विश्राम हो वहाँ कथा कीर्तन का ज्ञान यज्ञ रच देना। यही है तीर्थ यात्रा का पुरातन एवं वास्तविक स्वरूप।

बादल खेत-खेत पर बरसते जाते हैं। खेतों को इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वे पंख लगाकर बादलों तक ऊँचे पहुँचें। हवा हर किसी की नासिका में प्रवेश करने और प्राण संचार करने के लिए स्वयं ही बिना बुलाये दौड़ लगाती है। प्राणियों को इतनी सुविधा कहाँ कि पवन देवता के लोक तक पहुँचें और अपनी आवश्यकता बताकर पल्ला पसारें। बाढ़, भूकम्प, अग्निकाण्ड, दुर्भिक्ष, महामारी, दुर्घटना आदि से आपत्ति ग्रस्तों को उदार चेतनाओं का पता पूछते-पूछते उनके दरवाजे में पहुँचना और सहायता की याचना करना कहाँ सम्भव होता है ? उदारचेता स्वयं ही समाचार पाते ही दौड़ पड़ते हैं और अनुरोध की प्रतीक्षा किए बिना ही अपना काम हर्ज करके, हानि सहन करते हुए भी जरूरत मन्दों की सेवा सहायता करते देखे जाते हैं। जिनके अन्तराल में धर्म चेतना उमँगती है उन्हें भी यही करना पड़ता है कि उत्कृष्ट दृष्टिकोण के अभाव में विविध शोक सन्ताप सहते दुर्गति ग्रस्त लोगों के यहाँ बिना बुलाये पहुँचे और उन्हें प्रगतिशीलता का महात्म्य समझाते हुए सुधार परिष्कार की प्रेरणायें समझाने हृदयंगम करने और अपनाने में समर्थ, सहमत बनायें। यही है धर्म प्रचार। अमुक कर्मकाण्डों की लकीर पीटने, चिन्ह पूजा करते रहने भर से वास्तविक धर्म की सेवा साधना कैसे बन पड़ेगी ?

तीर्थ यात्रा का महात्म्य और पुण्य फल इसी धर्म प्रचार पद यात्रा के साथ जुड़ा हुआ है। यदि तथ्य एवं प्राण जीवित रखा गया है। पर्यटन में उसका समुचित समावेश है तो समझना चाहिए कि सच्ची तीर्थ यात्रा बन पड़ी और क्रिया की उत्कृष्टता वास्तविक पुण्य फल भी प्रदान करके रहेगी। वैसा न हो तो भ्रम जंजाल में धक्के खाते, पैसा गँवाते, समय गँवाते हुए लोगों को देख कर आँसू ही बहाये जा सकते हैं।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत देव संस्कृति के हर पथ को पुनर्जीवित प्रदान करने के प्रबल प्रयत्न चल रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इनमें एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष है—तीर्थ यात्रा का जीर्णोद्धार, उसे दुर्गति से उबारकर यथार्थ की गौरव-गरिमा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कराना। इसके लिए दो कार्यक्रम हैं। एक तीर्थ स्थानों की पुरातन विधि व्यवस्था अभिनव निर्धारण। दूसरा है तीर्थ यात्रा पर निकलने वालों की कार्य पद्धति में धर्म प्रेरणा का समावेश।

शान्ति कुंज को गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित किया गया है। वहाँ अध्यात्म परिष्कार के लिए कल्प प्रक्रिया, लोकसेवियों के लिए युग शिल्पी शिक्षा, गृहस्थ परिजनों के लिए जीवन साधना के त्रिविध सत्रों का समावेश है। स्थान कम और आवेदन कर्ता अधिक होने से सभी को थोड़ा-थोड़ा लाभ देने की दृष्टि से उपरोक्त सत्र सीमित अवधि के रखे गये हैं। गायत्री तीर्थ का वातावरण ऐसा बनाया गया है कि वहाँ छाई रहने वाली अदृश्य प्रेरणाओं से परोक्ष लाभ हर तीर्थ सेवी को उत्साहवर्धक मात्रा में मिल सके। भूतकाल का प्रायश्चित, व्यक्ति विकास के षोडस संस्कार, अतिरिक्त समर्थता प्राप्त करने के विशेष अनुष्ठान, भविष्य निर्धारण के समाधान, परामर्श निर्धारण एवं संकल्प इन सभी प्रक्रियाओं का गायत्री तीर्थ में वैसा ही समावेश है जिसमें थोड़े समय रहने वाला भी कुछ नई अनुभूति पा सके, सन्तोष की साँस ले सके और उज्ज्वल भविष्य का पुलकन भरा सपना देख सके।

प्रज्ञा परिजनों को तीर्थयात्रा पर निकलने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है कि वे साइकिल को वाहन कदम का समन्वय समझ सकते हैं और आवश्यक सामान लादने और यात्रा का श्रम सरल करने की दृष्टि से इसका उपयोग कर सकते हैं। युग धर्म के अनुरूप उपकरण को भी पद यात्रा का ही एक प्रकार माना जा सकता है। पद यात्रा कहाँ तक, किस मार्ग से हो निर्धारित मण्डली ने कितना समय इसके लिए निकाला इस आधार पर पथ चक्र बन सकता है और विराम स्थलों का निर्धारण हो सकता है। इसमें प्राचीन तीर्थों के दर्शन आवश्यक नहीं आदर्शवादी घटनायें जहाँ हुई हों, चरित्र निष्ठ लोक सेवियों की जो कर्म भूमि रही हो, जहाँ अभी भी लोक सेवा की सत्प्रवृत्तियाँ चल रही हों, उन स्थानों को तीर्थ मानने में किसी विवेकशील को रत्तीभर भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। देव प्रतिमाओं की तरह सत्प्रवृत्तियों के केन्द्र भी नमन वन्दन के अधिकारी हैं। उनके दर्शन, सान्निध्य से भी प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। तदनुसार पुण्य फल प्राप्त करने का भी आधार बन सकता है। रास्ते में मिलने वाले राहगीरों के साथ विचार-विनिमय मार्ग के गाँव पुरवों की दीवारों पर गेरू या खड़िया से आदर्श वाक्य लेखन, जहाँ सुस्ताना हो और दस-बीस की उपस्थित दृष्टिगोचर होती हो वहाँ झोले से ढपली मजीरा निकालकर युग चेतना के गीत आरम्भ कर देना और फिर आगे बढ़ जाना। रात्रि में कथा कीर्तन का ज्ञानयज्ञ हर विराम स्थान पर बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। पूर्व सूचना होने से लोग सहज ही इकट्ठे हो जाते हैं। अन्यथा गीत गाते हुए पीत वस्त्र धारण कर पीली धर्म ध्वजा के साथ एक धर्म फेरी गली-कूँचों से स्वयं ही निकाली जाय और अपने आगमन का उद्देश्य तथा सत्संग का स्थान घोषित करते रहा जाय तो देहातों में कहीं भी उपस्थिति कम होने की शिकायत नहीं रहेगी। शहरों की कुरुचि पूर्ण मनःस्थिति में यह प्रयोग संदिग्ध भी हो सकते हैं पर वहाँ जाया ही क्यों जाय ? जाना हो तो गरीबों की पिछड़ी बस्तियों को ही देहात मानकर वहाँ अपनी सेवा साधना की धर्म ध्वजा को फहराया जा सकता है। यह हुई क्षेत्रीय तीर्थ यात्रा की पदयात्रा। जिसके कार्यक्रम तनिक सी सुविधा मिलते ही, तनिक सा उत्साह जगता हो तो तत्काल बन जाना चाहिए। वर्ष में ऐसी कई-कई तीर्थ यात्रायें, भिन्न-भिन्न पथ चक्रों का निर्धारण करते हुए चलाई जा सकती हैं—चल सकती हैं।

एक और भी उपाय है कि अपने स्थान से गायत्री तपोभूमि मथुरा एवं गायत्री तीर्थ हरिद्वार की तीर्थ यात्रा पर निकला जाय एक रास्ता जाने का दूसरा आने का निर्धारित किया जाय। शान्ति कुंज में प्रज्ञा परिजनों के साप्ताहिक सत्र चलते हैं उनमें सम्मिलित रहा जाय। इस प्रकार यह भी एक धर्मानुष्ठान बन जाता है। इसके लिए सभी प्रज्ञा परिजन योजना बनायें और पूर्व सूचना देकर मण्डली समेत चल पड़ें।

तीर्थ यात्रा की ऋषि प्रणीत, शास्त्रानुमोदित परम्परा यही है। इसमें लोक मानस के परिष्कार का युग धर्म जुड़ जाने से उसकी गरिमा, महिमा, उपयोगिता एवं आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है। अतः विचारशील लोगों को, साधु-ब्राह्मणों को, वानप्रस्थों को, धर्म-प्रचारकों को पुण्य परम्परा—तीर्थयात्रा को पुनर्जीवित करने के लिए आगे आना चाहिए। उन्हें अपने मानवी उत्तरदायित्वों को समझना चाहिए। जिन्हें ईश्वर ने सद्ज्ञान और सद्भाव की सम्पदा प्रदान की है उसे उन्हें अभावग्रस्त क्षेत्र में वितरित करने की उदारता दिखानी चाहिए। अपने उपार्जन का अपने लिए ही उपयोग करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने वाले स्वार्थी, अनुदार और कृपण कहे जाते हैं वह लांछन, सद्भाव-सम्पन् विज्ञ जनों पर नहीं लगना चाहिए। ज्ञान वितरण का उद्देश्य लेकर उन्हें भी अपने देश के पिछड़े क्षेत्र में मानवी आदर्शवादिता और युग के अनुरूप प्रगतिशीलता वितरित करने के लिए आगे आना चाहिए। अगले दिनों तीर्थयात्रा मण्डलियाँ इसी उद्देश्य के लिए निकलें । इसलिए विचारशील लोग अपनी टोलियाँ गठित करें।

इन टोलियों में मधुर कण्ठ ध्वनि के गायन को भी स्थान दिया जाय। कारण कि अपना कार्य क्षेत्र प्रधानतया छोटी देहातें बनाना है। शहरों में इतने अधिक सभा, सम्मेलन होते रहते हैं कि वहाँ बड़े आकर्षण होने पर ही लोक रुचि उत्पन्न हो सकती है। दूसरे उस क्षेत्र में पहले से ही उद्बोधन कर्त्ताओं की भरमार है। तीसरे उन लोगों को पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, लाइब्रेरियों का लाभ भी मिल जाता है, चौथे वे लोग अत्यधिक व्यस्त होने के कारण इस प्रयोजन में रुचि भी कम लेंगे। पाँचवे परस्पर विरोधी राजनैतिक तथा सामाजिक संस्थाओं की प्रतिद्वन्दिता ने उस क्षेत्र की जनता को दिग्भ्रान्त कर दिया है और वह सभी प्रचारकों को एक लाठी से हाँकती, अविश्वस्त ठहराती है। ऐसे ही अन्य अनेक कारण हैं, जिनसे हमें देहात को अपना कार्य क्षेत्र बनाना चाहिए।

अस्सी प्रतिशत भारत उसी इलाके में रहता है। यातायात की कठिनाई, निर्धनता, गैर जानकारी के कारण, नेताओं के स्वागत-सत्कार की कमी, स्वल्प उपस्थिति जैसे कारणों से उद्बोधनकर्त्ता उस क्षेत्र में पहुँचते नहीं हैं। देश में ७० प्रतिशत अशिक्षा अभी भी है। इसका अधिकांश भाग देहातों में है। रूढ़िवादिता, मूढ़मान्यता, अन्ध-विश्वास, जैसी विकृतियाँ उस क्षेत्र में अभी भी उतनी ही भरी पड़ी हैं जितनी अब से तीन सौ वर्ष पूर्व थीं। प्रगतिशीलता का प्रकाश वहाँ अभी भी बहुत कम पहुँचा है। हमें इसी क्षेत्र को जगाने में जुटने का साहस समेटना चाहिए। कहना न होगा कि यह जनता समाज शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति आदि को उतना नहीं समझती जितना कि परम्परागत धर्म परम्परा को। धर्म तन्त्र से लोक-शिक्षण का महत्त्व प्रधानतया इसी वर्ग के लोगों के लिए है। जाना हमें इसी क्षेत्र की जनता के पास है।

उनके बौद्धिक विकास को देखते हुए अपनी सेवा साधना में दो तथ्यों का समावेश करना ही होगा—एक तो यह कि जो कहना है उसमे धर्म कथाओं का पुट लगाते हुए कथन को श्रद्धा सिक्त बनाते चला जाय। दूसरे संगीत, सहगान, कीर्तन, भजन को प्रमुखता दी जाय। संगीत में स्वभावतः जन-साधारण की रुचि होती है—बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित उसे चावपूर्वक सुनते हैं। बौद्धिक प्रभाव ग्रहण करने के साथ-साथ भावान्दोलन की विशेषता भी उसमें रहती है। अस्तु तीर्थयात्रा पर निकलने वाली प्रचार मण्डलियों को जन-मानस में नवयुग के अनुरूप प्रगतिशीलता स्थापित करने के लिए प्रवचन शैली में धर्म-कथाओं का समावेश एवं सहगान कीर्तन की समन्वित शैली को अपना कर चलना चाहिए।

मण्डली में इतनी योगयता होनी चाहिए कि वह इन प्रयोजनों को भली प्रकार पूरा कर सके। बेकार की भीड़ साथ ले चलने से तो अव्यवस्था ही फैलेगी और असुविधा ही रहेगी। प्रायः पाँच प्रचारकों की तीर्थयात्रा टोली रहें यही उपयुक्त है। इस प्रयास में अधिक लोग सहयोग देने को उत्सुक हों तो एक साथ ही बड़ी भीड़ लगाने की अपेक्षा उन्हें पाँच-पाँच की टोलियों में—कई क्षेत्रों में चल पड़ना चाहिए। यदि सुनने-सीखने की दृष्टि से ही कुछ लोग साथ चलना चाहें तो पाँच प्रचारक और पाँच साथी दस की मण्डली पर्याप्त समझती जानी चाहिए अन्यथा अधिक लोगों के एक साथ चलने और दैनिक व्यवस्था जुटाने में ही सिर-दर्द खड़ा हो जायगा। ब्रज चौरासी कोस की भाद्रपद की यात्रा के समान पूरे साज सरंजाम और दलबल समेत निकलना हो तो बात दूसरी है। ऐसी बड़ी पद-यात्राओं की व्यवस्था में खान-पान, तम्बू-डेरा, पानी, दूध, प्रवचन पण्डाल आदि पूरा ठाट-बाट लेकर चलना होता है और उतने लोगों के स्नान, शौच, भोजन आदि का पहले से ही प्रबन्ध करना होता है। सामान ढोने, उसे यथास्थान जमाने, सुविधाएँ उत्पन्न करने के लिए वाहनों और कर्मचारियों की अतिरिक्त भीड़ साथ चले तो ही उतनी बड़ी व्यवस्था बन सकती है। यह बड़ी योजनाओं का अंग है वैसा प्रबन्ध कोई बड़े अनुभवी और साधन सम्पन्न लोग ही कर सकते हैं। हमें फिलहाल छोटी प्रचार टोलियों की बात ही सोचनी चाहिए और अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने में समर्थ व्यक्ति ही उन टोलियों के सदस्य होने चाहिए।

तीर्थयात्रा को पदयात्रा ही समझा जाना चाहिए। प्रचारकों को गाँव-गाँव, झोंपड़े-झोंपड़ें जाने कालक्ष्य रखकर चलना है तो वह कार्य द्रुतगामी वाहनों पर सवार होकर बढ़िया रास्तों से गुजरने पर सम्भव न हो सकेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसमें पगडण्डियाँ ही लाँघनी होंगी। ऐसी दशा में पदयात्रा की ही उपयोगिता बनती है। प्राचीन काल में भी पदयात्रा तीर्थयात्रा पर्यायवाची शब्द थे। अभी भी वह परिभाषा यथावत् रहनी चाहिए। नहाने-धाने के लिए वस्त्र, बिस्तर, दैनिक उपयोग, के उपकरण, भोजन की सामग्री, लाउडस्पीकर जैसे प्रचार साधन, दीवारों पर वाक्य लिखने के उपकरण जैसी वस्तुएँ यात्रा में स्वभावत: साथ चलेंगी ही। उन्हें कन्धे पर लादकर नहीं चला जा सकता। इसके लिए साइकिल का उपयोग भार वाहन के रूप में उपयोग करना अपेक्षाकृत अधिक सस्ता और सरल रहेगा। पर इसका कोई बन्धन नहीं है। जहाँ गधा, घोड़ा बैलगाड़ी आदि की सुविधा हो सकती हो। भोजन बनाने आदि कार्यों के लिए स्वयं सेवक या कर्मचारी चल सकता हो तो उसमें भी हर्ज नहीं। बात खर्च बढ़ने भर की है। जहाँ जैसा प्रबन्ध बन पड़े वहाँ उसके लिए प्रसन्नतापूर्वक प्रबन्ध किया जा सकता है। सुविधा साधन बढ़ने से तो काम करने में सरलता ही पड़ती है।

तीर्थयात्रा धर्म परम्परा के पुनर्जीवन का लक्ष्य लेकर निकली हुई टोलियों के सामने निर्धारित लक्ष्य और कार्यक्रम रहेगा। वे निरुद्देश्य यत्र-तत्र भटकती हुई समय और धन का अपव्यय नहीं करेंगी। निश्चित है कि गाँव-गाँव, दीवार-दीवार पर नव-युग का सन्देश देने वाले प्रेरणाप्रद वाक्य लिखे जाने चाहिए। बोलती दीवारों का सृजन करना चाहिए। हर गाँव में कीर्तन गान करते हुए मण्डलियों को गली-कूँचों की परिक्रमा करनी चाहिए। पीत वस्त्रधारी—तीर्थयात्री शंख ध्वनि करते हुए—कीर्तन गाते हुए जब गाँव की परिक्रमा करेंगे तो स्वभावत: गाँववासी उनके साथ चलेंगे। नारे लगाने और सहगान गाने में वे भी योग देंगे। परिक्रमा समाप्त होने पर टोली के सदस्य एक छोटा प्रवचन अपने भ्रमण प्रयोजन के सम्बन्ध में दे और शिक्षितों में 'प्रेमोपहार' पुस्तिका का वितरण करें। इसके बाद अगले गाँवों के लिए प्रयाण।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मार्ग के गाँवों, में परिक्रमा, दीवार लेखन करते हुए पड़ाव के लिए नियत गाँव में पहुँचा जाय। टोली स्वयं परिक्रमा करे और नियत सत्संग स्थल पर जन-साधारण को पहुँचने के लिए आमन्त्रित करे। प्राय: आठ से साढ़े दस का समय ग्रामीणों को सुविधाजनक रहता है। भोजन से निवृत्त होकर वे आ सकते हैं और कथा, कीर्तन के माध्यम से नव-चेतना उपलब्ध करने का लाभ उठा सकते हैं। प्रात:काल संक्षिप्त यज्ञ, प्रभावित लोगों को बुलाकर उन्हें कुछ काम सौंपना, संकल्प देना, जलपान से निवृत्त होना और अगले दिन के कार्यक्रम पर चल देना। यह टोलियों का कार्यक्रम है। कहीं अत्यधिक हो तो बात दूसरी है अन्यथा भोजन व्यवस्था का भार स्वयं ही टोलियों को वहन करना चाहिए। पकाया एक ही बार जाय। दूसरे समय के लिए बना हुआ रखा रहे। सबेरे या शाम कब पकाने में सुविधा रहेगी, क्या रसोई बने, यह निर्धारित करना टोली सदस्यों की रुचि, सुविधा एवं व्यवस्था पर निर्भर रहेगा।

गर्मियों के दिनों में छात्रों, अध्यापकों, किसानों तथा दूसरे अनेक वर्गों के लोगों का अवकाश रहता है। मई, जून के दो महीने इन टोलियों के लिए अतीव सुविधाजनक हैं। इन दिनों बिस्तर या भारी कपड़े लेकर चलने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। यह दो महीने तो हर क्षेत्र में तीर्थयात्रा के लिए अतीव उत्साहपूर्वक प्रयुक्त होने चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य महीनों में जब जहाँ जैसी व्यवस्था बन पड़े तब वहाँ उस प्रकार की योजना बना ली जानी चाहिए।

कर्मचारियों एवं दुकानदारों का साप्ताहिक अवकाश रहता है। वह पूरा दिन इस प्रयोजन के लिए लगा देने की बात बना सकती है। साल में ५२ सप्ताह तथा प्राय: १३ त्यौहार इस प्रकार ६५ दिन की छुट्टी तो रहती है। पाँच दिन काट दें तो प्राय: दो महीने इस कर्म के लिए लगाये जा सकते हैं। दूसरे वर्ग के लोग भी अपनी सुविधा के समय का अपने ढंग से उपयोग कर सकते हैं। जिनके पास पूरा समय है तो वे नई-नई टोलियों का गठन और नेतृत्व करते हुए दूरवर्ती क्षेत्रों में भी अपनी गतिविधियाँ सुविस्तृत कर सकते हैं।

जो दूर नहीं जा सकते, घर नहीं छोड़ सकते वे नित्य एक-दो घण्टे समीपवर्ती गली-मुहल्लों, बाजारों, कारखानों में जन-सम्पर्क के लिए निकल सकते हैं और झोला पुस्तकालयों की ढकेल गाड़ी—चल पुस्तकालयों की, सरल प्रक्रिया अपनाकर सत्साहित्य पढ़ने देने एवं वापिस लेने का कार्य कर सकते हैं। साप्ताहिक अवकाश का अधिकांश समय इस पुण्य कार्य में लगा सकते हैं। कथा कहने के लिए साप्ताहिक, मासिक तथा एक-एक दिन एक-एक घर, मुहल्ले में कार्यक्रम बनाये जा सकते हैं। स्लाइड प्रोजक्टर का प्रबन्ध हो सके तो प्रकाश चित्र दिखाते हुए हर रात्रि को एक मुहल्ले में लोकरंजन और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लोकशिक्षण की दुहरी प्रचार प्रक्रिया चल सकती है। चित्र प्रदर्शनियाँ बन सकें तो उन्हें भी यत्र-तत्र दिखाया जा सकता है। कुछ साधन न हों तो ऐसे ही जनसम्पर्क के लिए वार्तालाप सामान्य प्रसंगों से आरम्भ करके किसी आदर्शवादी निष्कर्ष तक पहुँचने का उपक्रम अभ्यास में लाया जा सकता है। बच्चों में कहानियाँ कहने की अपनी एक विशेष शैली है जिसमें बाल, वृद्ध सभी समान रूप से रस ले सकते हैं। प्रचार के ऐसे-ऐसे अनेकों साधन ढूँढ़े जा सकते हैं। तीर्थयात्रा की धर्म परम्परा का आंशिक निर्वाह इन छोटे एवं स्थानीय कार्यक्रमों से भी हो सकता है। बड़े रूप में तो कुम्भ के मेले में जहाँ-तहाँ से जाने वाली साधु मण्डलियों जैसा विशाल रूप भी बन सकता है। वे रास्ते में पड़ाव डालती हुई अपने दलबल के साथ चलती हैं और जहाँ ठहरती हैं वहाँ आकर्षण का केन्द्र बनती हैं। रूपरेखा क्या रहे—योजना किस स्तर की बने यह निर्णय करना टोलियों की मनःस्थिति एवं परिस्थिति पर निर्भर है। किन्तु उन्हें किसी न किसी रूप में चल पड़ना तो सर्वत्र ही चाहिए। 'अलख निरंजन' की—घर-घर धर्म प्रेरणा की साधु परम्परा पुनर्जीवित होनी चाहिए। विज्ञ विचारशील लोगों को आगे बढ़ कर उसका शुभारम्भ एवं नेतृत्व करना ही चाहिए।

इस सन्दर्भ में एक बात सबसे अधिक महत्त्व की है कि जब देश का प्रत्येक देहाती क्षेत्र इस धर्म-प्रचार योजना के अन्तर्गत लिया जाना हो तो तीर्थ स्थानों का भी अभिनव सृजन होना चाहिए। प्राचीन तीर्थों तक सीमित रहने से तो वह गतिविधियाँ अमुक क्षेत्रों तक ही सीमाबद्ध होकर रह जायँगी। अति हर चीज की बुरी होती है। अमुक क्षेत्र में ही तीर्थयात्री जाया करें तो उनका आकर्षण ही समाप्त हो जायगा दूसरे अन्य पिछड़े स्थान उस लाभ से वंचित ही बने रहेंगे। यों अपनी तीर्थयात्रा के लिए आवश्यक नहीं कि उनमें किन्हीं देवालयों का दर्शन या विराग जुड़ा ही रहे। सदुद्देश्य के लिए जिधर भी जाया जायगा उधर ही तीर्थ बन जायगा। फिर भी यदि तीर्थ स्थानों की बात भी उस प्रयोजन के साथ जुड़ी रह सके तो इससे सोने और सुगन्ध का दुहरा उद्देश्य पूरा होगा।

देवताओं, देवियों अवतारों, ऋषियों, सन्तों, सिद्ध पुरुषज्ञों, राजाओं, रानियों, राजनेताओं, धनियों, विद्वानों और ऐतिहासिक महापुरुषों, कलाकारों आदि के स्मारक जगह-जगह बने हुए हैं। इन उच्च वर्ग की सत्ताओं ने प्रायः उनके वर्चस्व ने बलात् जन-सम्मान हथियाया है। वह वर्ग इस अधिकार से वंचित ही रह गया जो आर्थिक, बौद्धिक एवं परिस्थितियों के पिछड़ेपन के कारण आदर्शवादिता के उच्चस्तरीय प्रमाण प्रस्तुत करते हुए भी उपेक्षित एवं उपहासास्पद बना रहा। यों स्तर की दृष्टि से वे देवताओं से भी किसी प्रकार कम नहीं थे। आवश्यकता इस बात की है कि नये तीर्थों की स्थापना में उनकी यश-गाथा को उभारने का दृष्टिकोण अपनाया जाय।

जब पुनर्जीवन ही अपना लक्ष्य है तो लगे हाथों नये तीर्थों की स्थापना की बात भी हाथ में लेकर चला जा सकता है। काम कठिन तो है, पर कठिन भी तो मनुष्य ही करते हैं। प्राचीन काल में भी तो मनीषियों ने तीर्थों की स्थापना के लिए प्रयास किया था। अकेले आद्य शंकराचार्य ने ही देश के चार कोनों पर, चार धामों की स्थापना की थी। मथुरा, वृन्दावन के अधिकांश तीर्थों के स्थान चैतन्य महाप्रभु ने अपनी दिव्य दृष्टि से बताये थे और उन विस्मृत स्थानों पर उनके अनुयायियों ने स्मारक खड़े किये थे। अन्यत्र भी आगे पीछे ऐसी ही परम्परा चलती रही है। अकेले हजारी किसान ने बिहार के हजारी बाग जिले में हजार आम के बगीचे लगाने में सफलता पाई थी; तो कोई कारण नहीं कि अपना भाव भरा परिवार अपने संगठित प्रयत्नों के द्वारा अभिनव तीर्थों का सृजन न कर सके।

परम्परागत तीर्थ प्रायः पौराणिक देव गाथाओं से जुड़े हैं। कहीं-कहीं ऋषियों, महापुरुषों की स्मृति स्वरूप भी तीर्थ बने हैं। उनसे अतीत पर श्रद्धा एवं भक्ति भावना की स्फुरणा तो होती है, पर बहुत खींच-तान करने पर भी वह प्रकाश नहीं मिलता जो दर्शकों को नवयुग के अनुरूप प्रेरणा दे सके। समय की माँग है कि उद्देश्य के अनुरूप आधार भी खड़े किये जायँ। प्रेरणा प्राप्त करने के लिए प्रेरणा स्रोत ढूँढ़े जायँ। इस दृष्टि से एक सुनियोजित योजना बनाकर देश के कोने-कोने में विशेषतया देहाती क्षेत्र में ऐसे तीर्थ स्थापित करने की तैयारी करनी चाहिए जो पदयात्रा टोलियों के लिए ही नहीं समीपवर्ती क्षेत्रों के लिए भी आदर्शवादी उत्साह का केन्द्र बन सकें।

होना यह चाहिए कि जिस क्षेत्र की जो प्रेरणाप्रद घटना घटी हो—अथवा आदर्शवादी व्यक्तियों ने अपने पीछे जो अनुकरणीय गाथा छोड़ी हो वहाँ छोटे स्मारक बनाये जायँ। उन पर तीर्थयात्री श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ाने जाया करें और स्थानीय लोग घटना का जयन्ती पर्व मनाते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए एक प्रेरणाप्रद उत्सव आयोजन वर्ष में एक बार गठित किया करें। ऐसे आयोजनों से न केवल भावना की दृष्टि से वरन् मेलों सम्मेलनों के माध्यम से होने वाले आर्थिक तथा भावनात्मक लाभ भी मिलते हैं। प्रचार के नये द्वार खुलते हैं। आदर्शवादी महामानव ही सच्चे देवता हैं। उत्कृष्टता का प्रतिपादन करने वाली घटनाओं की स्मृतियाँ सच्चे अर्थों में तीर्थ प्रयोजनों की पूर्ति करती हैं। अनुभव बताता है कि देव स्मारकों की तुलना में प्रेरणापद्र व्यक्तित्वों एवं घटनाक्रमों की स्मृतियाँ भी कम श्रद्धाभाजन नहीं होती। सच तो यह है कि विचारशील लोगों का आकर्षण उनकी ओर अपेक्षाकृत और भी अधिक होता है।

तलाश करने पर ऐसे सत्पुरुषों एवं घटनाक्रमों का इतिहास हर क्षेत्र में मिल सकता है जिनकी स्मृति बना देने से उस क्षेत्र के लोगों को सदुद्देश्य की दिशा में सदा प्रकाश एवं उत्साह मिलता रह सकता है। यहाँ प्रगतिशीलता का ध्यान भी रखना होगा अन्यथा अविवेकपूर्वक स्थापित किये गये स्मारक उलटे हानिकारक सिद्ध होने लगेंगे। पतियों के साथ जल मरने वाली सतियों की स्मृतियाँ बना देने से उस क्षेत्र की स्त्रियाँ इसी प्रकार के आत्मघात की पुनरावृत्ति की अवांछनीय प्रेरणा ले सकती हैं। इसी प्रकार मौनी बाबाओं की मठिया बना देने पर लोगों को वैसे ही अनगढ़ कृत्य कर गुजरने की सनक उठ सकती है। स्मारकों के पीछे चरित्र निष्ठा, समाज निष्ठा की आदर्शवादिता जुड़ी हो तभी उनकी कुछ उपयोगिता हो सकती है।

नये तीर्थों की स्थापना में विशालकाय इमारतों की आवश्यकता नहीं। निर्माण सामग्री का उपयोग हमें मानवी आवश्यकताओं की पूर्ति तक सीमित रहने देना चाहिए। नये तीर्थों को उद्यान, उपवनों के रूप में विकसित होना चाहिए। न्यूनतम एक वृक्ष को स्मारक बनाकर भी काम चलाया जा सकता है। भवन-निर्माण की दृष्टि से इतना ही पर्याप्त है कि दस-दस फुट या न्यूनाधिक लम्बाई-चौड़ाई का चबूतरा किसी वृक्ष की छाया में अथवा खुले में—बना दिया जाय। उस पर मध्य में दिवंगत आत्माओं के पत्थर पर खुदे चरण चिह्न बने हों। सामने वाले भाग पर संगमरमर पर काले अक्षरों में स्मृति का विवरण लिखकर लगा दिया जाय। इतने में कोई बड़ी लागात नहीं आती। सस्ता बनाना हो तो श्रमदान नियोजित होना चाहिए और उस क्षेत्र के जन-जन का मुट्ठी-मुट्ठी सहयोग संग्रहीत किया जाना चाहिए। सस्ते चबूतरे दो पाँच सौ में बन सकते हैं। मँहगे पत्थर के बनाने हों तो कुछ हजार पर्याप्त हैं। आवश्यकता समझी जाय तो स्तम्भ भी खड़े किये जा सकते हैं। उनमें भी कोई लम्बी-चौड़ी लागत नहीं आने की। यदि आवेगी भी तो जनता उसे खुशी-खुशी दे देगी।

स्मारकों के लिए स्थान चुनते समय कुछ बातों की दूरदर्शिता पूर्ण सावधानी रखनी चाहिए। वहाँ अधिक लोगों के जमा होने एवं समीप ही मेला लगने की गुन्जायश हो। पेड़ों की छाया तथा जलाशय का उपयुक्त प्रबन्ध हो ताकि वहाँ पहुँचने वाले लोग शान्ति से सुस्ता सकें और प्यास बुझाने तथा नहाने की आवश्यकता पूरी कर सकें। आने-जाने के लिए बैलगाड़ियाँ पहुँच सकने जितना चौड़ा रास्ता भी वहाँ तक होना चाहिए। कोई किसान अपने बाबा की स्मृति किसी खेत के कोने पर बना ले तो वहाँ तक बड़ी संख्या में जनता को पहुँचने और ठहरने आदि की सुविधा कहाँ होगी ? स्थान की उपयुक्तता पर दूरदर्शी दृष्टि डाली जानी चाहिए और भविष्य में वहाँ बड़े आयोजन सम्भव हो सकें इस तथ्य को पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिए। जल्दबाजी में अनुपयुक्त स्थान पर तीर्थ खड़ा कर देने में कुछ संकीर्णतावादियों का आग्रह हो सकता है वे घटना स्थल को ही महत्व देने का आग्रह कर सकते हैं, पर दूरदर्शी लोग ऐसी क्षुद्रता पर विचार नहीं करते। राम अयोध्या में और कृष्ण मथुरा में पैदा हुए थे, पर उनके स्मारक देश-विदेश में सर्वत्र फैले हुए हैं। इस दृष्टि से तीर्थ स्थापन में स्मारकों को थोड़े इधर-उधर करना पड़ता हो तो भी उसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं किया जाना चाहिए।

छायादार वृक्षों को लगाने के लिए उपयुक्त जमीन प्राप्त करके वहाँ नये सिरे से बगीचा लगाने का विचार भी अच्छा है; पर उसके बढ़ने में कई वर्षों का समय लग जायगा। इसलिए अच्छा यह है कि जहाँ पहले से ही छायादार वृक्षों के बगीचे मौजूद हैं उन्हें दान में प्राप्त करने अथवा खरीदने का प्रयत्न किया जाय। स्वभावतः जहाँ बगीचा होगा वहाँ कुआँ भी रहा होगा। अन्यथा बगीचा लगाना ही कठिन होता। यदि कुआँ नहीं है तो वह बनना चाहिए। तीर्थ स्थापना में चबूतरा तो प्रतीक भर है। वस्तुतः सघन छाया और शुद्ध जल के साधनों का प्रबन्ध होने से पूरी बात बनती है। ऐसे स्थान में एक छोटा प्रचार केन्द्र बनाकर वहाँ कोई वानप्रस्थ रह सकते हैं और उस क्षेत्र में दूर-दूर तक अपना सेवा क्षेत्र निर्धारित कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस घटना या व्यक्ति का यह तीर्थ स्मारक बन रहा हो उसका विवरण—आदर्श एवं प्रेरणा प्रकाश एक छोटी पुस्तिका के रूप में छपा होना चाहिए और उसका प्रचार उस सारे क्षेत्र में होना चाहिए। वस्तुतः यह तीर्थ स्थापन योजना आदर्शवादिता को सम्मान के उच्चस्तर पर प्रतिष्ठापित करने की नवयुग के अनुरूप प्रक्रिया है। अब तक लोक सम्मान-धनवानों, सत्ताधीशों, कलाकारों, विभूतिवानों के इर्द-गिर्द ही मँडराता रहा है अब उसे आदर्शवादिता के प्रति समर्पित होने के लिए मोड़ा जायगा। अन्यथा सम्मान प्राप्ति की मानवी आकांक्षा अपनी पूर्ति भौतिक साधनों में ही ढूँढ़ती रहेगी। आदर्शवादिता विकसित होने में सब से बड़ा अवरोध एक ही है कि उस मार्ग पर चलने वालों को आर्थिक दृष्टि से तो घाटा रहता ही है; लोक-सम्मान का स्वाभाविक अधिकार भी दूसरे लोग ही हड़प जाते हैं। अब इस स्थिति का अन्त होना चाहिए। आदर्शवादी तत्वों का अन्वेषण किया जाना चाहिए और जो दिवंगत हो चुके हैं उनकी स्मृति बनाये रहने से उन आत्माओं को भी सन्तोष होगा कि जीवन काल में न सही मरणोत्तर उन्हें लोक मान्यता मिल गई। ऐसे जीवन वृत्तान्त उभरने चाहिए जो जनसाधारण के लिए प्रेरणा केन्द्र बन सकें जिनका अनुकरण करने की प्रवृत्ति उपलब्ध लोक-सम्मान को देखकर सहज ही विकिसत हो सके। जन-मानस के परिष्कार में यह प्रक्रिया कितनी अधिक सहायक हो सकती है इसकी अभी तो कल्पना ही की जा सकती है। पर विश्वास यह है कि जब इस स्थापना का परिणाम सामने आवेगा तो व्यक्तित्वों को उत्कृष्टता की दिशा में उछालने की दृष्टि से अतीव आशाजनक सिद्ध होगा। इस प्रकार के असंख्य तीर्थ बनें और जीवन चरित्र छपें तो प्रतीत होगा कि अपना देश इन गई-गुजरी परिस्थितियों में भी महामानवों की खदान बना रहा है। उसकी महान् परम्पराएँ अभी भी जीवन्त हैं। हमारे लिए यह सब भी कम गर्व-गौरव का प्रसङ्ग नहीं है । इन प्रयासों से समूचे वातावरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा और लोक मान्यता में आदर्शवादिता की पुनः प्राण प्रतिष्ठापना होगी।

तीर्थयात्रा टोलियाँ गठित करना और उनके परिभ्रमण का कार्यक्रम बनाना सरल है। इस प्रयास में सामान्य प्रयत्नों से—सामान्य व्यक्तित्व भी भली प्रकार सफल हो सकते हैं। पर तीर्थ स्थापना का काम बड़ा है उसके लिए देश-व्यापी सर्वे करना होगा। तीर्थयात्रा धर्म परम्परा के निर्वाह में नये-नये तीर्थों की संगति बिठानी पड़ेगी कि मण्डलियाँ किस रास्ते, कितना चलकर, कहाँ विराम करेंगी? ऐतिहासिक तथ्यों को मिलाकर ही यह प्रतिष्ठापनाएँ होंगी। अस्तु इसे एक सुविस्तृत योजना समझा जायगा और इसके लिए सर्वेक्षण के साथ-साथ यह भी सोचा जायगा कि कहाँ क्या कर सकना सम्भव हो सकता है ?

राजा मान्धाता की सहायता से आद्य शंकराचार्य के लिए चारों धामों की प्रतिष्ठापना कर सकना सम्भव हुआ था। बुद्ध के हर्ष वर्धन सरीखे अनुयायियों ने अनेकों बौद्ध बिहारों की स्थापना की थी। अब वैसा एकाकी प्रयत्नों से सम्भव नहीं हो सकता। इसके लिए किन्हीं बड़े आयोगों की आवश्यकता पड़ेगी और उसका संचालन प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ही सम्पन्न करेंगे। यों इसके लिए आर्थिक एवं श्रम सहयोग स्थानीय जनता को भी मिलेगा, पर उसकी रूपरेखा बनाने एवं साधन सामग्री जुटाने का कार्य तो क्रिया कुशल हाथों से ही होना चाहिए। इन्दौर की रानी अहिल्याबाई ने मन्दिरों घाटों का जीर्णोद्धार कराने में ख्याति प्राप्त की थी। आवश्यकता ऐसे व्यक्तित्वों की है जो उसी प्रकार भूमिका निभा सकें। स्वयं आगे आयें और उस धर्म क्षेत्र के पुनरुत्थान की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में अन्य अनेकों का भी सहयोग जुटा सकें। ऐसे व्यक्तित्व अपने परिवार में से ही उभर कर आये इसकी अपेक्षा की आवश्यकता न की है। युग की इस चुनौती को भी हमें ही स्वीकार करना होगा।

तीर्थ यात्रा का पुण्य परमार्थ

तीर्थ यात्रा का अत्यधिक पुण्य और महात्म्य तो है, पर है तभी जब उसके पीछे पुण्य परमार्थ का धर्म प्रयोजन भी हो। वस्तुतः धर्म प्रचार की पदयात्रा को तीर्थ यात्रा कहा गया है। लोग उद्देश्य को भूल गये। रेलों, मोटरों में बोरों की तरह भरे हुए धक्के खाते और धक्के मारते जहाँ तहाँ जेब कटाते फिरते हैं। इस घुड़दौड़ में न उन्हें पर्यटन का आनन्द मिलता है और न धर्म प्रचार का पुण्य। थकान, खीज की अनेकों कथाएँ लेकर घर लौटते हैं।

भारत का हर गाँव, हर देवालय, हर नदी सरोवर तीर्थ है। इस देवभूमि में तीर्थ परम्परा के अतिरिक्त और कहीं कुछ है ही नहीं। एक साइकिल मण्डली बनाकर एक सप्ताह के धर्मप्रचार कार्यक्रम पर निकल पड़ा जाय। दीवारों पर आदर्श वाक्य हर गाँव के रास्ते किनारे वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घरों पर लिखे जायँ। रात्रि को जहाँ निवास हो, वहाँ के लोगों को शंख घड़ियाल बजाकर एकत्रित कर लिया जाय। किसी स्थान पर प्रज्ञा-पुराण की कथा और ढपली पर युग कीर्तन के भजन सुनाये जायँ। तो इतने भर से एक छोटी सार्थक तीर्थ यात्रा बन जाती है।

अधिक समय हो तो अपने गाँव से हरिद्वार तक और हरिद्वार से दूसरे रास्ते घर तक इसी योजना को कार्यान्वित करते हुए कुछ अधिक दिनों की यात्रा की जा सकती है। इसके अतिरिक्त भी अपने-अपने क्षेत्रों में जितने दिन का अवकाश हो उतने दिन की यात्रा की जा सकती है।

भोजन के लिए स्वावलम्बी रहना अच्छा है। कोई समय था जब तीर्थयात्रियों को धर्मात्मा माना जाता था और अतिथि सत्कार होता था। पर अब वैसा समय नहीं रहा। इसलिए अच्छा यह है कि एक भगौनी साथ लेकर रास्तें में खिचड़ी पकाते-खाते चला जाय। चिउड़ा, सत्तू, चना-गुड़ आदि जिन्हें जो अनुकूल पड़े उसको साथ ले जा सकते हैं या बाजार से खरीद सकते हैं। उन्हें समेटकर बाटी बनाई जा सकती है और आलू उसी तबे में भूनकर शाक बन सकता है।

दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन की बात तो ऊपर लिखी जा चुकी है। एक और कार्यक्रम साथ में लिया जा सकता है कि जितनी नदियाँ रास्तें में मिलें उनका स्थान या मार्जन करते जाया जाय। उसे भी गंगा की सहेली या सेविका माना जाय।

देश में प्राय: एक लाख मन्दिर टूटी-फूटी अवस्था में पड़े हैं। जिनमें चमगादड़े अवावील बसते हैं और वर्षों कोई बुहारी नहीं लगाता। इतनी सी देवपूजा से भी हमारी आँखे खुलती हैं कि नये मन्दिर बनाये जाने और उनके साथ कोई उपयोगी कार्यक्रम न जोड़ने से देवताओं को, हिन्दुओं की और आस्तिक समुदाय की कैसी अवमानना और भर्त्सना होती है। इसलिए देवालयों को यदि बनाना या चलाना है तो उनके पीछे ऐसे रचनात्मक कार्य जोड़ने चाहिए जिससे धर्म धारणा को प्रोत्साहन मिलता हो।

जो देवालय नगर से दूर है और जहाँ सर्व साधारण के पहुँचने में कठिनाई होती है उन्हें छोड़कर नगर के समीप वाले देवालयों का जीर्णोद्धार करने के लिए स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित किया जाय। नये मन्दिर बनाने से जीर्णोद्धार का पुण्यफल अधिक है। यह समझाने से हर गाँव में ऐसे लोग मिल सकते हैं जो उपयोगी स्थानों पर बने हुए मन्दिरों का जीर्णोद्धार कर सकें।

हर मन्दिर को सार्वजनिक बनाया जाय। किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति न रहने दिया जाय। निजी जायदाद बनाने के कारण ही हमारे मन्दिर जन साधारण की उपेक्षा के कारण बने हैं। पाँच प्रतिभाशाली, कर्मठ और धर्म प्रेमी व्यक्ति चुनकर उनका एक ट्रस्ट बना दिया जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि हर मन्दिर में पाँच प्रयोजन चलने लगें (१) प्रौढ़ शिक्षा (२) बाल संस्कार (३) व्यायामशाला (४) कथा-कीर्तन (५) पर्व-त्यौहारों को समूहिक रूपों में मनाने की प्रक्रिया। यह पाँच कार्यक्रम जहाँ भी चल पड़ेंगे वहीं देवालय में नव जीवन उभरता दिखाई देगा। चाहे वह जराजीर्ण ही क्यों न हो। मन्दिरों में एकरूपता लाने के लिए उन्हें शिवालय बना दिया जाय तो दैविक भोग पूजा के इतने झंझट न रहेंगे जिनके लिए एक व्यक्ति स्थायी रूप से नियुक्त करना पड़े।

तीर्थ यात्रा प्रवास में जहाँ ऐसे जीर्णोद्धार का क्रम बन पड़े उनका ताना-बाना बनुते हुए आगे बढ़ते जाना चाहिए।

शान्तिकुंज, हरिद्वार से तीर्थयात्रा की जीप गाड़ियाँ प्रज्ञा आयोजन समारोह करती हुई जाती हैं। इसके लिए एक वर्ष का समय माँगा गया है जिनका शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य अच्छा हो, कर्मठता, उत्साह और अनुशासन जो निभा सकें ऐसे युवा व्यक्ति ही इस प्रयोजन के लिए काम के सिद्ध होंगे। उन्हें पहले दिन दीवारों का वाक्य लेखन, दो रातें कथा-कीर्तन। एक दिन बीच का प्रज्ञा प्रशिक्षण पाठशाला चलाने के लिए परामर्श कराने में लगाना होगा। इस प्रकार हर आयोजन पीछे दो दिन लग जायँगे।

एक वर्ष के समयदानियों में तीन महीना हरिद्वार प्रशिक्षण के लिए। तीन महीना प्रवास में और तीन-महीने के लिए दो विद्यालयों में अध्यापन कार्य करने के लिए लगाने होंगे। इस प्रकार पूरा एक वर्ष सार्थक तीर्थ प्रयोजन में लग जायगा। इस अवधि में समयदानी की प्रतिभा निखरेगी और व्यक्तित्व उभरेगा। साथ ही इस अवधि में धर्म धारणा और भाव संवेदना उभरने का सच्चे अर्थों में परमार्थ भी सधेगा।

इन तीर्थ यात्रियों के लिए भोजन, वस्त्र और निर्वाह का प्रबन्ध तो मिशन की ओर से होगा किन्तु किसी को घर खर्च भेजने की व्यवस्था न होगी। अपवाद स्वरूप किसी के सामने विशेष विपन्नता होगी तो ही इस सन्दर्भ में विचार किया जा सकेगा। अपव्यय स्वरूप सालभर के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थान पर छः महीने के समयदान पर भी विचार किया जा सकता है।

प्रज्ञा परिजनों में भावनाशीलों की कमी नहीं। इनमें से जिन्हें भी आस्था और अवकाश हो वे अपना पूरा परिचय, मनःस्थिति और परिस्थिति लिखते हुए शान्तिकुंज से पत्र व्यवहार करने के उपरान्त हरिद्वार आने की स्वीकृति प्राप्त कर सकते हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण चरण-तीर्थयात्रा संयोजन

शिविर-आयोजन को एक छोटा, सामयिक एवं स्थानीय कार्यक्रम मात्र न समझा जाय, उसका दूरगामी महत्त्व है। 'युग-निर्माण योजना' के शाखा-संगठनों को अपना-अपना कार्य-क्षेत्र सँभालना है। उसमें प्रकाश, विस्तार करना है और नव-निर्माण की विविध हलचलों का सृजन करना है। इसलिए उनके कार्यकर्त्ताओं को वह सारी विधि-व्यवस्था और रीति-नीति समझानी है, जिसके बिना अधिक कुछ कर सकना उनके लिए सम्भव नहीं हो रहा है।

वानप्रस्थों ने जिस प्रकार साहसपूर्वक अधिक समय देने और अधिक त्याग करने के लिए साहस जुटाया है, वैसा संगठन के लाखों सक्रिय सदस्यों एवं कर्मठ-कार्यकर्त्ताओं के लिए सम्भव नहीं हो सकता। यदि कदाचित् वे उतना साहस कर भी लें तो उनको एक स्थान पर इकट्ठा करके एक साथ प्रशिक्षण भी सम्भव नहीं हो सकता। यदि स्थान और क्रम के अनुसार उन्हें बुलाने की विधि अपनाई जाय तो सौ वर्ष में भी वर्तमान कार्यकर्त्ताओं का नम्बर न आ सकेगा। इतने भी वर्तमान सदस्यों की अपेक्षा नये सृजन-सैनिकों की संख्या और अनेक गुनी बढ़ जायगी। उन्हें सिखाने के लिए हजार वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसलिए उपाय केवल एक ही है कि व्रतधारी वानप्रस्थ हरिद्वार आकर प्रशिक्षण प्रापत करें और वे दो-दो की टोलियाँ बनाकर शाखा-संगठनों में चले जायँ और वहाँ पन्द्रह-पन्द्रह दिन की शिविर-श्रृंखला चलायें। इस प्रकार जो कार्यकर्त्ता घर छोड़कर बाहर जाने की स्थिति में नहीं है, वे अपने स्थान पर रहते हुए भी, सामान्य कार्यों को करते हुए भी उस शिक्षा का सार घर बैठे प्राप्त कर सकें, जो वानप्रस्थोंको हरिद्वार बुलाकर सिखाया गया है। इस पद्धति से प्रशिक्षण की व्यापक आवश्यकता सरलता पूर्वक स्वल्प अवधि में सम्भव हो सकेगी।

शिविर-संचालन वानप्रस्थों का सामयिक एवं प्राथमिक क्रिया-कलाप है। आरम्भ में उन्हें वही सौंपा जायगा और तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति की जायगी, पर यह क्रिया सदा-सर्वदा ही नहीं चलती रहेगी। दूसरे कार्य भी उन्हें हाथ में लेने पड़ेंगे। यों शिविरों का भी अन्त नहीं हो जायगा। शाखाएँ हर वर्ष एक पन्द्रह दिवसीय आयोजन किया करें, कार्यकर्त्ताओं को क्रमिक रूप से अगली शिक्षा मिलती रहे। जनता को भी प्रथम वर्ष से आगे के विचार मिलते रहें। वानप्रस्थ हर वर्ष की नई शिक्षा-पद्धति सीख कर आते रहें और यह क्रम लगातार पाँच वर्ष तक चलता रहे, ऐसी योजना बनाई जा रही है। इस क्रम से इस वर्ष के शिक्षित वानप्रस्थों को एवं अगले वर्ष वालों को अगली बातें सीखते और सिखाते चलने का लाभ मिलता रहेगा। पाँच वर्ष तक यह शिविर-श्रृंखला हर खा चला भी सकती है और उनमें भेजे गये वानप्रस्थों का उपयोग हो सकता है। पीछे शाखाएँ स्वावलम्बी होकर अपने बल-बूते पन्द्रह दिन के या न्यूनाधिक दिनों के अपने वार्षिकोत्सव मनाती रह सकती हैं। प्रचार-कार्य तो निरन्तर ही जारी रखना होगा। अन्यथा भुलक्कड़ जनता एक बार बताई गई बात को सदा कहाँ स्मरण रख पावेगी ?

शिविर-संचालन प्रक्रिया के अतिरिक्त दूसरा जो कार्य वानप्रस्थों को हाथ में लेना है, वह है—तीर्थयात्रा आयोजन की तैयारी। जत्थे बनाकर, प्रचार-कार्य करते हुए एक निर्धारित लक्ष्य तक जाना और फिर दूसरे रास्ते लौट आना, यह तीर्थयात्रा हुई। प्राचीन काल में लोग समूह बनाकर पैदल तीर्थयात्रा पर निकलते थे जन-सम्पर्क बनाते थे। रास्ते में आने वाले गाँव-नगरों में सन्देश सुनाते थे और रात्रि को जहाँ बसते थे, वहाँ के लोगों को इकट्ठा करके धर्मोत्साह पैदा करते थे। अब पनुः उस पुण्य परम्परा का पुनर्जागरण करना है। विचार-क्रान्ति की दिशा में इससे एक नई धारा बहेगी। जन-जागरण का एक नया स्रोत खुलेगा।

वानप्रस्थ यह प्रयत्न करेंगे कि वे क्षेत्र-क्षेत्र में तीर्थ-यात्राओं की योजनाएँ बनायें। सामान्यतया उन्हें भी पन्द्रह दिन की ही रखा जा सकता है। हर दिन दस मील सन्त विनोबा की भूदान पद यात्रा चलती थी। यह दूरी साधारणतया ठीक है। यों उसे आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक भी किया जा सकता है। सामान्यतया एक यात्रा में पाँच से लेकर उस सदस्य तक हो सकते हैं। सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पीत-वस्त्र धारण करके चलें और उस अवधि को सामयिक वानप्रस्थ प्रशिक्षण स्तर की मानें।

रास्ते में टोली को आत्म-निर्माण और समाज-निर्माण की आवश्यक शिक्षा वानप्रस्थ लोग देते चलेंगे। जहाँ थोड़ा विश्राम किया जाय, वहीं कुछ प्रश्नोत्तर होते रहें। जहाँ कोई महत्वपूर्ण स्थान एवं ऐतिहासिक स्थल आवे, वहाँ उसके विषय में चर्चा होती चले। रास्ते के गाँवों में पोस्टर चिपकाने की—विज्ञप्ति वितरण की—दीवारों पर वाक्य-लेखन की प्रक्रिया चलती रहे। रात को जहाँ पड़ाव पड़ना हो, वहाँ ठहरने की, भोजन की तथा आयोजन की व्यवस्था बनाने के लिए दो अग्रदूत एक दिन पहले ही वहाँ पहुँच जा करें। यात्रा आरम्भ करने से पूर्व ही उस तरह की तैयारी करली जाय और उन स्थानों के लोगों पर उत्तरदायित्व सौंप दिया जाय तो और भी अधिक सुविधा रह सकती है। अन्यथा एक दिन पहले यात्रा के दो अग्रदूत पड़ाव पर जाकर आवश्यक व्यवस्था कर सकते हैं। वे अग्रदूत आगे-आगे ही चलते रहेंगे और जत्थे के वहाँ पहुँचने तक आवश्यक साधन बने मिलें ऐसा होता रह सकता है।

यात्रा किस स्थान तक, किस मार्ग से, कहाँ-कहाँ होकर जानी है ? पड़ाव कहाँ पड़ने हैं ? लौटना किस रास्ते से है ? यह रूपरेखा पहले ही बन जानी चाहिए। उसके लिए प्रार, विज्ञापन आदि भी छपाये जा सकते हैं। ताकि उन स्थानों की जनता को इस आगमन-आयोजन का पूर्व ज्ञान रहे और वह उसे सफल बनाने में अपने योगदान की पूर्व तैयारी कर सकें। जिस स्थान तक पहुँचना है, वह यदि कोई धार्मिक या ऐतिहासिक स्थान हो तो और भी उत्तम है। उस स्थान पर श्रद्धान्जलि अर्पित करना इस तीर्थयात्रा की टोली का लक्ष्य हो सकता है। यात्रा का नामकरण भी उसी आधार पर किया जा सकता है। इससे उन विस्मृत आधारों के सम्बन्ध में जन-भावना का जागरण भी होगा, जिनमें कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ विद्यमान थीं।

यों ऐसी टोलियाँ अपना आवश्यक सामान साथ ले चलने के लिए साइकिलों का भी उपयोग कर सकती हैं। अच्छा यह हो कि हाथ की धकेल-गाड़ी या बैल-गाड़ी का प्रबन्ध कर लिया जाय। हाथ-गाड़ी स्वयं धकेलते हुए ले जाई जा सकती है। बैलागाड़ी किराये पर मिल सकती है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान पहुँचाने की व्यवस्था हर जगह हो सके तो और भी अच्छा है। जो भी तरीका उपयुक्त हो उसका उपयोग करें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि बिस्तर, कपड़े, प्रचार-साधन आदि एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते रहें। अपने-आप मिल-जुलकर बनाने-खाने का प्रबन्ध भी साथ रखा जाना चाहिए। बाजार से खाने या स्थानीय लोगों पर भार पड़ने का अवसर कम ही आने देना चाहिए। जहाँ श्रद्धापूर्वक स्वागत-व्यवस्था की गई हो, वहाँ की बात अलग है। पर प्रबन्ध अपना भी रहना चाहिए, ताकि नियमित और शुद्ध भोजन समय पर प्राप्त करने में असुविधा न हो। यह सब वस्तुएँ ले जाने के लिए किसी गाड़ी आदि का प्रबन्ध करना ही उपयुक्त रहता है। यात्रा-व्यय के लिए आवश्यक धन-राशि भी मिल-जुलकर ही जुटा लेनी चाहिए।

पड़ाव के स्थान पर रात्रि को सामूहिक कीर्तन और प्रवचन होने आवश्यक हैं। इसकी जनता को जानकारी शंख, घड़ियाल बजाकर उस दिन-सबेरे से ही मिलती रहे, इसका पूर्व प्रबन्ध कर देना चाहिए। यह कार्य-व्यवस्था के लिये गये हुए अग्रदूत भी कर सकते हैं। जहाँ सम्भव हो, वहाँ दूसरे दिन प्रातः छोटा गायत्री-यज्ञ भी करना चाहिए। रात्रि के प्रवचन में आई हुई जनता को इसमें सम्मिलित होने की सूचना दी जा सकती है। प्रवचन और कीर्तन की बात न बन पड़े और स्लाइड प्रोजेक्टर साथ में हों—दिखाने के लिए अन्धेरे स्थान का प्रबन्ध हो तो रंगीन प्रकाश-चित्र दिखाते हुए प्रवचन करने की व्यवस्था बन सकती है। टोली में यदि गीत-संगीत की व्यवस्था हो तो गायनों के साथ थोड़ा-थोड़ा समझाने वाला प्रवचन जोड़ते चलने से भी काम चल सकता है। इस प्रकार हर पड़ाव की व्यवस्था बनाई जानी चाहिए। सबेरे ८-९ बजे तक यज्ञ कर लिया जय तो दस मील की यात्रा इसके बाद भी शाम तक पूरी हो सकती है। इस प्रकार रात्रि को प्रवचन और प्रातः यज्ञ का दुहरा कार्यक्रम भी इस यात्रा में चलता रह सकता है। यदि दस मील भारी पड़ते हों, तो उसे कुछ कम भी किया जा सकता है, ताकि प्रातः ९ से लेकर सायं ३ बजे तक छै घण्टे में उसे और भी आसानी से पूरा किया जा सके।

यह केवल संकेत हैं—उन्हें ध्यान में रखकर तीर्थयात्रा की तैयारी, रूपरेखा, विधि व्यवस्था अपने ढंग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से बनाई जा सकती है। हर जगह स्थिति एक जैसी नहीं होती, इसलिए कार्य-पद्धति एवं योजना में भी हेर-फेर की गुन्जायश रहेगी ही। यदि अवकाश हो और पड़ाव के स्थानों में उत्साह हो तो दो-दो दिन के कार्यक्रम रखे जा सकते हैं। दो दिन में तो एक अच्छा-खासा समारोह हो सकता है। यज्ञ-मण्डप तथा अन्यान्य उपकरण साथ में हों तो 'पंच कुण्डी यज्ञ' भी बड़े उत्साह के साथ हर पड़ाव पर होते रह सकते हैं। ऐसी दशा में अग्रदूतों की संख्या और योग्यता बढ़ी-चढी होनी चाहिए, ताकि आवश्यक प्रबन्ध पहले से ही पूरे कर लिये जायँ और मण्डली जब उस गाँव में प्रवेश करे तो उसकी शोभा-यात्रा एवं महिलाओं के मंगल-कलशों को जल-यात्रा की धूमधाम से निकाला जा सके। इससे आवश्यक प्रचार हो जाता है—उत्साह उमड़ता है और आयोजन की सफलता में चार चाँद लग जाते हैं। जहाँ ऐसे आयोजन होंगे, वहाँ नया शाखा संगठन खड़ा होना और जन-जागृति का नया श्रीगणेश होना स्वाभाविक है। जहाँ ऐसी सम्भावनाएँ दिखाई पड़ती हों, वहाँ दो-दो दिन के पड़ाव डाले जा सकते हैं। समय कम होगा तो आयोजन कम होंगे। अधिक आयोजन करने हों तो यात्रा की अवधि बढ़ानी चाहिए। यह सब बातें उस यात्रा के संचालकों की सूझबूझ, परिस्थिति एवं उस क्षेत्र के साथ परिचय, प्रभाव कितना है—लोगों का स्तर कैसा है ? इन सब बातों पर निर्भर है।

वानप्रस्थों को शिविर-संचालन के अतिरिक्त इस प्रकार की तीर्थ-यात्राओं का भी अनुभव, अभ्यास बढ़ाना चाहिए। शिविर तो वहीं हो सकते हैं, जहाँ पहले से समर्थ शाखा-संगठन मौजदू हैं। यह तो आमन्त्रण पर आ विराजना हुआ। इन शिविरों का श्रेय स्थानीय शाखा-संचालकों को है। वानप्रस्थों की प्रतिभा इस कसौटी पर कसी जायगी कि जहाँ पहले से कुछ नहीं था, वहाँ अपने मनोयोग एवं पुरुषार्थ का उपयोग करके कुछ नया कार्य आरम्भ किया—कोई नया क्षेत्र प्रभावित किया। अस्तु वानप्रस्थों की टोलियों को यह प्रयत्न करना चाहिए कि तीर्थ-यात्रियों की टोलियों में चलने के लिए ऐसे सुयोग्य व्यक्ति मिल जायँ, जो जन-जागरण में किसी न किसी प्रकार सहायता कर सकें। कूड़ा बटोर कर निरर्थक भार उठाने की चिन्ह-पूजा से यात्रा-प्रवास का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मण्डली में उपयुक्त व्यक्ति ही सम्मिलित करने चाहिए।

यात्रा की अवधि, गन्तव्य स्थान, पड़ावों की रूपरेखा, पहले से जाकर वहाँ के लोगों का सहयोग सम्पादन, आवश्यक प्रचार, एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान ले जाने का प्रबन्ध, समय और कार्यक्रम का निर्धारण, अर्थ-व्यवस्था, आवश्यक साधनों का जुटाना आदि अनेक कार्य ऐसे हैं जिन्हें समय से पहले ही जुटाना पड़ता है। सबके पीतवस्त्र, हाथ में लाल मशाल के झण्डे रास्ते में पड़ने वाले गाँवों में शंख-घड़ियाल के सहारे लोगों को इकट्ठा करना और मिशन का संक्षिप्त परिचय देना, दीवारों पर आदर्शवाक्य लिखना आदि कार्य ऐसे हैं, जिन की पूरी रूपरेखा सामने होगी तो ही तीर्थयात्रा प्रभावशाली बनेगी। नित्य कपड़े, धोने-सुखाने, भोजन बनाने-खाने जैसे कार्य लगते तो छोटे हैं, पर उनके साथ ऐसी छोटी-छोटी बातें जुड़ी रहती हैं, जिनका यदि पहले से ही ध्यान न रखा जाय तो बनी बनाई बात बिगड़ जाती है और हड़बड़ी में सबका सन्तुलन बिगड़ता है। अस्तु तीर्थयात्रा संयोजकों को एक युद्ध-संचालक के स्तर की सूझ-बूझ का परिचय देना पड़ता है। निःसन्देह यह प्रचार-यात्राएँ अतीव प्रेरणाप्रद सिद्ध होंगी, पर साथ ही संयोजकों की कुशलता भी पूरी तरह कसौटी पर कसी जायगी, जिसे खरी ही उतरना चाहिए।

यह कदम इन्हीं दिनों उठने चाहिए

तीर्थ सेवन और तीर्थ यात्रा दो कर्त्तव्य धर्म-प्रेमियों के हैं। तीर्थ का वातावरण बनाना—लोकोपयोगी कार्य पद्धति चलाना-यह दो कार्य सूत्र संचालकों के हैं। दोनों ही पक्ष सही हों तो बात बने। इनमें से एक पक्ष कमजोर होगा तो अपूर्णता रहेगी और वह लाभ न मिलेगा जो प्रतिपादित एवं अभीष्ट है।

गायत्री तीर्थ के सूत्र-संचालक अपने कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझते हैं। तदनुरूप वातावरण बनाने एवं विधि व्यवस्था निर्धारित करने में यथा समय कोई कमी नहीं रखी गयी है। मनुष्य अपूर्ण है। उसके प्रयास में भी अपूर्णता रहेगी। इस दृष्टि से पूर्णता का, सर्वथा निर्दोष त्रुटि विहीन होने का दावा तो नहीं किया जा सकता, पर यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि संचालकों ने पूरी ईमानदारी और तत्परता के साथ यह प्रयत्न किया है कि पुरातन तीर्थ परम्परा की अनुकृति विनिर्मित करने में कुछ उठा न रखा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूरवर्ती लोग अपरिचित होने के कारण आशंकाग्रस्त भी हो सकते हैं, किन्तु जिन्होंने भीतर घुस कर इस चेष्टा एवं उसकी परिणति को ध्यानूर्वक देखा और बारीकी से समझा है, उन्हें इस योजना में सामयिक आवश्यकताओं का समावेश तथा प्राचीनता के युग अवतरण की यथार्थता भली प्रकार झलकती दीखती है ।

अब प्रश्न दूसरे पक्ष का रह जाता है, जिन्हें भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड समझे जाने वाले तीर्थ प्रसंग से सचमुच ही लगाव हो, उन्हें पर्यटन गौण और साधना मुख्य मानना चाहिए बेतहाशा भगदड़, इस-स को देखते फिरने में कौतुक-कौतूहल के अतिरिक्त और कोई दम नहीं है । मन हलका करने के लिए दर्शन-झाँकी के लिए जाना चाहिए और उसमें जो अधिक आकर्षक हो उसी के साथ गुँथ जाने में उस सीमित समय का उपयोग किया जाय । तीर्थ में जितने समय रहना हो उतना आत्म समीक्षा और भविष्य निर्धारण में जिस परिवर्तन की आवश्यकता हो उसकी योजना बनाने में ही अधिकांश समय लगना चाहिए । इसमें साधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा की चार चरण वाली कार्य पद्धति निर्धारित की जा सकती है । गायत्री तीर्थ से इसका सुनियोजित निर्धारण पहले से ही है । तीन वर्ग हैं । जिसमें सम्मलित होना हो उसका स्वरूप समझने-जानने, मन में अपनाने एवं अनुशासन पालने में निरत हो जाना चाहिए । चित्त अस्तव्यस्त न किया जाय और लक्ष्य के साथ जोड़ के रखा जाय तो उसका प्रतिफल निश्चित रूप से सन्तोषजनक होगा ।

इस सन्दर्भ में दूसरा प्रसंग है—तीर्थ यात्रा का, माहात्म्य वर्णन में सर्वत्र इसके लिए पद यात्रा का निर्धारण और वाहनों का निषेध किया गया है । धर्म चेतना उत्पन्न करने वाली जन सम्पर्क प्रक्रिया को ही सच्चे अर्थों में तीर्थ यात्रा कहना चाहिए । प्रयत्न यह होना चाहिए कि इस पुण्य प्रयोजन के लिए अपने क्षेत्र में योजना बद्ध पदयात्रा का कार्यक्रम बनाया जाय । इस सन्दर्भ में बड़े तीर्थों को देखने की बात को महत्त्व न देकर लक्ष्य को प्रमुखता देनी चाहिए ।

धर्म प्रचार के लिए जन सम्पर्क की पदयात्रा कहीं से भी आरम्भ और कहीं भी समाप्त की जा सकती है । बात दो-चार दिन में तो नहीं बनती । समय न्यूनतम एक सप्ताह रहे और साथियों की टोली में कम-से कम तीन आदमी रहें तो काम चले । अकेला आदमी एक-दो दिन के लिए तीर्थ यात्रा क्रम बनाये तो बात बनती नहीं है । प्रवास में मण्डली से ही आनन्द आता है और मिले-जुले प्रयास से ही कुछ काम चलता है ।

इन दिनों साइकिल को भी पदयात्रा का ही स्वरूप माना जा सकता है । उसका उपयोग करने में श्रम एवं समय बचता है, सामान लादने की सुविधा रहती है । खर्च भी कुछ नहीं पड़ता । इसलिए टोली पीले कपड़े पहन कर निकले । साइकिल पर छोटी झण्डी हो और हैंडिल के आगे एक छोटी पट्टी पर 'प्रज्ञा अभियान पदयात्रा' का बोर्ड लगा हो । कैरियर पर एक ऐसा थैला या बक्सा कसा रहे जिसमें आवश्यक कपड़े तथा सामान रखा जा सके ।

रास्ते में मिलने वाले व्यक्तियों से—राहगीरों की तरह वार्तालाप करते हुए अपनी यात्रा का लक्ष्य, स्वरूप एवं प्रतिफल समझाया जाय । रास्ते में जहाँ गाँव पड़े, वहीं प्रभावत फेरी की तरह गली-कूचे में अलख जगाया जाय और मिलजुलकर युग संगीत गाया जाय । उस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से गीत लिखे और छपे हैं । उन्हें ढपली, मंजीरे पर आसानी से गाया जा सकता है । जिनके गले में तनिक भी मिठास है वे सुगम संगीत में—इतने गीत-बाद्य में एक महीने के प्रयास से भली प्रकार अभ्यस्त हो सकते हैं । शान्ति कुंज में ऐसे प्रशिक्षण का एक महीने का पाठ्यक्रम है । वैसे एक लय छंद पर बने हुये इन गीतों का गाना-बजाना अपने यहाँ भी बड़ी सरलता के साथ सीखा जा सकता है । इस प्रकार के गायन को 'कीर्तन' कहते हैं । रास्तें में कीर्तन करते हुए, घर-घर अलख जगाते हुए, हर गाँव-घर को युग चेतना से अवगत-उत्साहित करना चाहिए । दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखते चलें । जल्दी में गीली स्याही का उपयोग करने में कठिनाई पड़ती है इसलिए सफेद या रंगीन चाक से अथवा गेरू से बड़े-बड़े अक्षर आसामी से लिखे जा सकते हैं । यह साधारण सी प्रक्रिया लोक मानस के अचेतन पक्ष को अनुकूल बनाने तथा नव सृजन का पक्षधर वातावरण बनाने वाली अतीव उपयोगी किन्तु अति सरल प्रक्रिया है । तीर्थ यात्री अपनी प्रवज्या में इसका उपयोग भली प्रकार करते चल सकते हैं ।

रात्रि को जहाँ रहना हो, वहाँ शंख बजाते हुये गली-कूँचों, हाट-बाजारों में लोगों को एकत्रित करके यह बता सकते हैं कि वे कौन हैं ? कहाँ ठहरे हैं और किस समय अपने विचार कहाँ, किस प्रसंग पर व्यक्त करना चाहते हैं ? उस आधार पर कुछ ही घण्टे की सूचना पर इस रुझान वाले व्यक्ति सहज ही एकत्रित हो सकते हैं । प्रज्ञा पुराण के एक अध्याय की कथा एवं ढपली संगीत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का कीर्तन सुनाकर उपस्थित लोगों को युगान्तरीय चेतना की पृष्ठभूमि से परिचित कराया जा सकता है।

यह प्रयास योजनाबद्ध ढंग से चलना चाहिए। सम्भव हो तो एक व्यक्ति आगे चलकर स्थानीय लोगों को एकत्रित करता रहे। ठहरने का, भोजन का, प्रवचन का प्रबन्ध करता रहे। स्थानीय लोगों को पूर्व सूचना देकर उनसे भी सहयोग लिया जा सकता है। भोजन बनाने का सामान साथ हो तथा अलख न लगे तो स्काउटिंग के कैम्प फायर की तरह निवास तथा भोजन का प्रबन्ध स्वयं करते और उस नवीनता का आनन्द लेते हुए चला जा सकता है। अड़चन प्रतीत हो तो बाजार से खरीद कर भी काम चलाया जा सकता है। कोई आतिथ्य के लिए आग्रह करे तो उसे भी स्वीकार किया जा सकता है। धर्म प्रयोजनों में सहयोग करने की उदारता लोगों में भी जाग्रत करनी चाहिए।

गर्मी की छुट्टियों में या जब भी थोड़ी सुविधा हो तीन या पाँच व्यक्तियों की टोली बनाकर साइकिल यात्रा पर निकला जा सकता है। एक सप्ताह या अधिक दिन का यह कार्यक्रम बने। एक ओर से चलकर दूसरे रास्ते वापिस लौटने का मार्ग निर्धारण किया जा सकता है। लोगों को व्यक्ति, परिवार और समाज निर्माण के बहुमुखी कार्यक्रमों को अपनाने के लिए उत्साह पैदा करते चलना, आज के समय का अति महत्त्वपूर्ण कार्य है पिछड़े देहातों में पहुँचना और उस उपेक्षित समुदाय में नव चेतना उभारना अपने समय की सबसे बड़ी सेवा है।

मार्ग में कोई महत्त्वपूर्ण देवालय, स्मारक, संस्थान या महापुरुष मिलें तो उन्हें भी देवता मान कर दर्शन करते चलने और प्रेरणा उपलब्ध करने की बात बिना किसी कठिनाई से बन सकती है। लम्बा सफर रखना हो तो किसी बड़े महत्त्व वाले स्थान तक जाने और दूसरे रास्ते से लौटने की योजना बन सकती है। जल्दी पहुँचने-सीधा रास्ता ढूँढ़ने की अपेक्षा वही अच्छा है कि जहाँ पहुँचने की अधिक आवश्यकता हो उस मार्ग को अपनाया जाय, भले ही वह टेढ़ा तथा अधिक समय लेने वाला ही क्यों न हो।

इस सन्दर्भ में गायत्री तपोभूमि, मथुरा या शान्ति कुंज हरिद्वार को भी लक्ष्य मान कर चला जा सकता है और वहाँ विश्राम प्रशिक्षण लेकर दूसरे रास्ते धर्म प्रचार करते हुए साइकिल द्वारा ही लौटा जा सकता है।

तीर्थयात्रा के अनेकों प्रतिफल हैं (१) स्वास्थ्य सुधार (२) नवीन सम्पर्क से अभयस्त अनुभव (३) व्यवहार कुशलता की अभिवृद्धि (४) लोकमंगल का पुण्य परमार्थ। यह लाभ सवारी पर दौड़ते-उड़ते हुए किसी को भी उपलब्ध नहीं हो सकते। जन सम्पर्क की परिक्रमा को ही तीर्थों के पुण्यफल का आधारभूत कारण माना गया है। सवारी का उपयोग न करने का तात्पर्य उससे कोई पाप पड़ने जैसी बात नहीं, जन सम्पर्क की उपयोगिता बनाये रहना भर है। कोई अपंग वयोवृद्ध असमर्थ यदि इस प्रवास के लिए उपयुक्त है तो उनके लिए सवारी का प्रबन्ध करना चाहिए। टोली बड़ी है और प्रचार आयोजन भी बड़ा रखने की इच्छा है तो बैलगाड़ी, ऊँट, जीप आदि कोई वाहन सामान लादने को भी चाहिए। उसमें वाहन दोष नहीं है।

पुण्य अर्जन और पाप प्रायश्चित की जो फलश्रुति तीर्थयात्रा के साथ जुड़ी हुई है उसकी पूर्ति भी ऐसी ही सम्पर्क यात्राएँ सम्भव बनाती हैं। कर्मों की व्यापक प्रतिक्रिया असन्तोष भड़काने और दुष्प्रवृत्तियों की छूत फैलाने के रूप में ही वातावरण को दूषित करती और विक्षोभ फैलाती हैं। इसका समाधान यही हो सकता है कि जो खाई खोदी गई है उसे पाटा जाय। पाप की खाई पुण्य के अभिवर्धन से पटती है। यह कार्य दुर्भावनाओं को निरस्त करने वाले आलोक वितरण से होता है। जितना स्वार्थ सिद्ध किया था उतना ही परमार्थ बन पड़ने से बदला चुकता है।

तीर्थयात्रा में समय, श्रम, मनोयोग, मार्गव्यय में धन लगाने के पुण्य से किए हुए पापों का समाधान होता है आग पानी से बुझती है। दीवारों पर आदर्शवाक्य लेखन, जन जागरण का सत्परामर्श, कथा-कीर्तन ज्ञानयज्ञ के अविच्छिन्न अंग हैं। इन पुण्य कृत्यों से संचित पाप कर्मों की खाई पटेगी, प्रायश्चित होगा और अन्तराल पर चढ़े हुए कषाय-कल्मषों का भार उतरने से आत्मिक प्रगति के लक्ष्य तक जा पहुँचने का रामजार्ग मिलेगा। इस तथ्य को गहराई से हृदयंगम किया जा सके और तदनुरूप व्यवस्था बन सके तो ही तीर्थयात्रा का वास्तविक स्वरूप बन पड़ा ऐसा समझा जाना चाहिए।अन्यथा सैलानियों के सिर पर चढ़ी हुई खर्चीली, कष्टसाध्य श्रम विडम्बना के अतिरिक्त और कुछ हाथ लगने वाला नहीं है। तीर्थयात्रा के पीछे सन्निहित उपरोक्त तथ्यों का समावेश करते हुए हमें सुनियोजित ढंग से आलोक वितरण की व्यापक व्यवस्था बनानी चाहिए। इन दिनों इसी की सामयिक आवश्यकता है। युग-सन्धि के दिनों जन-जागरण के उद्देश्य को पूरा करने के लिए तो इस प्रवचन को युग धर्म समझ कर कार्यान्वित करना और व्यापक बनाना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसे और भी सुनियोजित बनाना हो तो सम्मेलनों के प्रधान कार्यक्रम बनाने चाहिए और उनकी पूर्ति के लिए पदयात्रा का प्रबन्ध करना चाहिए।

अन्तर स्पष्ट रूप से समझा जाय। एक कार्यक्रम वह है जिसमें पदयात्रा पर बिना किसी पूर्व सूचना और तैयारी के निकल पड़े। रास्ते में जहाँ भी सम्पर्क या विराम हुआ वहाँ लोगों को स्वयं ही इकट्ठा करने से लेकर तथा कीर्तन तक और अपने निवास भोजन तक का प्रबन्ध आये दिन परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं ही करते चलना पड़ता है। दूसरा, उद्देश्य की दृष्टि में समान होते हुए भी योजना की दृष्टि से भिन्न एवं विशाल है। कार्यक्रम प्रधान तीर्थयात्रा में समय से पहले ही विराम स्थान नियत करने होते हैं। वहाँ एक या अधिक दिन ठहरना है यह भी निश्चित करना होता है। तैयारी के लिए कुछ समय पूर्व दो व्यक्तियों का साइकिल जत्था आगे भेजना पड़ता है जो स्थानीय लोगों के सहयोग से इतनी व्यवस्था बना रखे जिससे प्रचारक टोली को आते ही कार्य संलग्न होने का अवसर मिल जाय। उसका समय सूचना देने, एकत्रित करने, व्यवस्था बनाने में नष्ट न हो। ऐसे आयोजनों की सफलता में स्थानीय लोगों का सहयोग अनिवार्य रूप से अपेक्षित होता है। जन समुदाय को एकत्रित करने, मंच-पंडाल बनाने, रोशनी, लाउड स्पीकर, बिछावट आदि का प्रबन्ध करने में उन्हीं की जानकारी एवं दौड़-धूप काम देती है। व्यय भार भी उन्हीं को उठाना पड़ता है। आयोजन छोटे हों तो भी उनकी पूर्णाहुति में गायत्री यज्ञ करने तथा देव दक्षिणा में दुष्प्रवृत्ति छोड़ने, सत्प्रवृत्ति अपनाने का वातावरण तो बनाना ही चाहिए, यह सामयिक बात हुई।

प्रयत्न यह भी होना चाहिए कि जहाँ आयोजन हुए हैं वहाँ युग-सन्धि के प्रथम चरण में, सभी प्रावधान क्षेत्रों में अनिवार्य रूप से कार्यान्वित होने वाली पन्चसूत्री योजना का भी शुभारम्भ हो। पन्च-सूत्री योजना में (१) कार्यालय की स्थापना, कार्यकर्ता की नियुक्ति तथा व्यवस्था के लिए ज्ञान घटों की स्थापना (२) ज्ञानरथ घुमारक हर शिक्षित को युग साहित्य बिना मूल्य, घर बैठे, नियमित रूप से पढ़ाना, वापिस लेना (३) स्लाइड प्रोजेक्टर द्वारा घर-घर में लोकरंजन के साथ मिला हुआ लोकमंगल कार्यक्रम चलाना। ज्ञानरथ से स्वाध्याय की और स्लाइड प्रोजेक्टर से सत्संग की आवश्यकता सरलता के साथ, बड़े प्रभावी ढंग से पूरी होती है (४) विचारशील लोगों के जन्म दिन मनाना (५) दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखना तथा घरों में आदर्श वाक्य टाँगना (६) संस्कारों के माध्यम से परिवारों में और पर्वों के माध्यम से गाँव-मुहल्लों में छोटी-बड़ी विचार गोष्ठियाँ तथा प्रवचन गायनों का प्रबन्ध करना। तीर्थयात्रा में जहाँ भी जनता में समर्थन-सहयोग जैसा उत्साह दीखे वहाँ उसे उपरोक्त पंचसूत्री योजना के कार्यान्वित करने में नियोजित कर देना चाहिए।

प्रयत्न का कितना प्रभाव पड़ा, कितना प्रतिफल सामने आया इसकी कसौटी दो हैं—एक, कितने लोगों ने आयोजन में सम्मिलित होने और सहयोग देने का उत्साह दिखाया। दूसरी यह कि सम्पर्क सधने पर पंचसूत्री योजना का कुछ भाग कार्यान्वित कर सकने जितना साहस उभरा। तीर्थयात्रा टोलियों को अपने प्रयासों में इस दृष्टि, चेष्टा एवं आकांक्षा को जोड़े रहना चाहिए कि यह परमार्थिता फलवती हो। मात्र चिह्न पूजा जैसी लकीर न पिटती रहे।

आगे चलकर इस यात्रा चक्र का और बड़ा रूप दिया जा सकता है। प्रज्ञा आयोजनों के इन दिनों बड़े उत्साहवर्धन कार्यक्रम चल रहे हैं। यह चार-चार दिन के होते हैं। प्रातःकाल प्रज्ञा पुराण की कथा, सांय-काल जन सभा, मध्याह्न को कार्यकर्ता गोष्ठी, अन्तिम दिन पंचकुण्डी यज्ञ। इस सरल योजना को सभी प्रज्ञा संस्थानों ने, जीवन्त शाखा संगठनों ने बड़े उत्साह के साथ अपनाया है। इसके लिए शान्तिकुन्ज हरिद्वार से प्रचारकों के जत्थे लेकर जीप गाड़ियाँ भेजी गई हैं। एक साथ दो-दो तीन-तीन कार्यक्रम एक-एक क्षेत्र में चले हैं। जीप सभी के लिए कार्यकर्ता पहुँचाती समेटती आगे बढ़ती रही हैं और इस योजना से देश के अधिकांश क्षेत्रों में नव जागरण का माहौल बना है। युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने की दृष्टि से यह प्रयत्न नितान्त सफल रहा है। यह योजना आगे भी चलेगी। इस जीप योजना को भी तीर्थयात्रा की पूर्ति में नितान्त सफल पाया गया और उसे मान्यता दी गई है।

इन्हीं आयोजनों की पूर्व तैयारी तथा पीछे उत्पन्न उत्साह की रचनात्मक कार्यक्रमों में परिणति के लिए दो-दो साइकिल पद यात्रियों के जत्थे जीपों के आगे-पीछे चलते रहे हैं। उनकी भूमिका जीप प्रचारकों से भी अधिक ठोस और कारगर रही है। यदि उन्हें न भेजा या छोड़ा गया होता और प्रचारकों की जीपें अनायास ही जो धमकतीं तो प्रतिफल उसका आधा भी हस्तगत न हुआ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होता जो इन दिनों होता रहा है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए वक्ता, गायकों के माध्यम से जो किया जाना है उसकी सही पृष्ठ भूमि बनाने में यह साइकिल जत्थे असाधारण रूप से समर्थ एवं सफल रहे हैं। भविष्य में भी जीप जत्थों से भी अधिक महत्व साइकिल जत्थों को दिया जाना है। अस्तु गायत्री तीर्थ के केन्द्र संस्थान ने साइकिलों की एक बड़ी संख्या खरीदने और उसके लिए उपयुक्त प्रचारक जत्थे प्रशिक्षित करने का निश्चय किया है।

गायत्री तीर्थ में साधना तथा शिक्षा के जो त्रिविध कार्यक्रम चलते हैं उन्हें स्थानीय एवं क्षेत्रीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नव निर्मित गायत्री प्रज्ञा पीठों में भी चलाने की योजना है। इस सन्दर्भ में इन दिनों छँटनी की जा रही है। कुछ संस्थान प्राणवान हैं और कुछ मृक मूर्छित। जहाँ मात्र इमारत बनी, प्रतिमा रखी गई और पूजा व्यवस्था के बाद चेतना समाप्त हो गई, उन उद्देश्यों को उपेक्षित कर दिया गया जिनके लिए इन निर्माणों का संकल्प उभरा था।

ऐसे निर्माणों को मात्र 'गायत्री मन्दिर' कहा जाएगा। उनके साथ जुड़े हुए शक्तिपीठ, प्रज्ञापीठ शब्द वापिस ले लिये जायेंगे। यह शब्द मात्र उन्हीं निर्माणों को प्रयुक्त करने दिया जाएगा जिनमें युगान्तरीय चेतना के प्रति आस्था है और उसे गतिशील रखने के लिए जिन्होंने महाकाल के संकल्प के साथ अपने को जोड़ा तथा निर्धारित अनुशासन पालने तथा कदम से कदम मिला कर चलने का निश्चय किया है। छाँट में से जो मात्र पूजा अर्चा वाले गायत्री मन्दिर होंगे उन्हें स्वेच्छा पूर्वक अपनी गतिविधियाँ चलाते रहने के लिए छोड़ दिया जायेगा। प्रज्ञा अभियान की आशाएँ उन्हीं पर केन्द्रित रहेंगी जहाँ जनसम्पर्क साधने और उस आधार पर जन समर्थन, जन सहयोग जुटाने की चेष्टाएँ चल रही होंगे। इन जीवन्त संस्थानों की प्रखरता को दिन-दिन प्रदीप्त प्रखर बनाने की दृष्टि से आवश्यक समझा गया है कि वर्ष में एक बार उनके वार्षिकोत्सव अवश्य हों। इनकी दो विशेषताएँ हों। एक मंडलीय कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन तथा प्राणवान परिजनों का कामकाजी शिक्षण शिविर। पाँच दिन के प्रज्ञा आयोजनों के साथ-साथ यह व्यवस्था भी चले और उसे मेले का आकर्षक स्वरूप मिले ऐसा प्रबन्ध किया जाना है। मेले में खरीद-बेच की वस्तुएँ तो समीपवर्ती दुकानदारन ही ले आते हैं पर प्रचार प्रदर्शनी के उपकरणों को इधर से उधर ले जाने का प्रबन्ध ऊपर से ही करना होगा। भले ही उसका व्यय भार सम्मेलन कर्त्ताओं को ही वहन करना पड़े संगीत मण्डली, नाटक मण्डली, चित्र प्रदर्शनी, कठपुतली आदि का समान एक ट्रक में लद कर एक वार्षिकोत्सव से दूसरे वार्षिकोत्सव में जाता रहे। उसी में लाउडस्पीकर, बिजली सज्जा आदि का सामान भी रहे तो और भी सुविधा रहेगी। इस प्रयास को भी साइकिल टोली, जीप टोली के अतिरिक्त ट्रक टोली के रूप में समझा जा सकता है। तीर्थयात्रा को जब युगान्तरीय चेतना का आधारभूत साधना बनाना है तो उस प्रकार की छोटी-बड़ी विशेषताएँ भी उसमें सम्मिलित करनी होंगी। क्षेत्र के आदर्श विवाह इसी सम्मेलन में हों। उपस्थित प्रज्ञा परिवार के लोग अपने विवाह योग्य लड़की-लड़के लेकर आयें और एक दूसरे को देख दिखा कर वहाँ विवाह सम्बन्धों की चर्चा चलायें। निश्चय करें तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। सामाजिक क्रान्ति में प्राथमिकता शादियों के साथ जुड़ी हुई बर्बादी समाप्त करने को देनी होगी। उसके लिए यह मेले वार्षिकोत्सव बहुत ही उपयोगी सिद्ध होकर रहेंगे।

गायत्री तीर्थ अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार तीर्थ परम्परा के अनुरूप वातावरण बनाने में कटिबद्ध हैं। उन प्रयत्नों का सहयोग जन साधारण को करना चाहिए। साइकिलों से टोली बनाकर हरिद्वार पहुँचना, तीन सत्रों में से किसी में सम्मिलित रहना और फिर दूसरे रास्ते वापिस लौटना इस प्रयोजन की सर्व सुलभ प्रक्रिया है। जो इस प्रकार न पहुँच सकें वे रेल से भी सत्रों में सम्मिलित होने पहुँच सकते हैं। एक कार्य यह हुआ जिससे तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित होने का अवसर मिलेगा।

दूसरा कदम यह कि प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक भावनाशील को इस पुण्य लाभ के लिए समय निकालना चाहिए। अपने क्षेत्र से स्थानीय योजना के अनुसार अथवा केन्द्र योजना के अन्तर्गत व्यापक परिभ्रमण के लिए सोद्देश्य निकल पड़ने की बात इन दिनों अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समझी जानी चाहिए। कम्बोडिया बौद्ध देश है। वहाँ हर धर्म प्रेमी एक वर्ष के लिए भिक्षु जीवन जीता है और बिहारों के अनुशासन में रहकर धर्म सेवा में निरत रहता है। प्रज्ञा परिजनों में से जो न्यूनतम दो महीने का समय एक बार में दे सकें उन्हें अपनी सुविधा तथा योग्यता का विवरण शान्ति कुंज भेजना चाहिए और जहाँ अपना उपयोग बनता हो वहाँ उसके लिए पंजीकरण करा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेना चाहिए। तीर्थ परम्परा के पुनर्जीवन में प्रज्ञा परिजनों को उपरोक्त प्रतिवेदनों के अनुसार अपनी जिम्मेदारी सँभालने की तैयारी करनी चाहिए।

तीर्थ यात्रा पर निकलिये

भारतीय समाज में तीर्थयात्रा का माहात्म्य और पुण्य इतने विस्तारपूर्वक बताया गया है कि धर्मशास्त्रों का अधिकांश भाग उसी से भरा पड़ा है। पुण्य अर्जन, पाप नाश, और मनोकामनाओं की पूर्ति, परलोक में सुख-शान्ति यह प्रधान उपलब्धियाँ तीर्थयात्रा की बताई गई हैं।

पर साथ ही उसके साथ कुछ कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व और विधान भी जुड़े हुए हैं। मात्र प्रतिमा दर्शन और जलाशय स्नान भर में इतने प्रयोजन पूर्ण नहीं हो सके। इन दिनों पर्यटकों की तीर्थों में काफी भीड़ रहने लगी है क्योंकि सैलानियों की सुविधा के तथा पुरातन स्मारकों के दर्शन वहाँ जितनी मात्रा में हो जाते हैं उतने अन्यत्र मिलना कठिन है। जलायशों का सान्निध्य और प्राकृतिक दृश्य भी अपेक्षाकृत वहाँ अधिक होते हैं। अन्य देशों में पर्यटन एक अच्छा-खासा मनोरंजन और उद्योग भी है। काश्मीर, श्रीनगर, गुलमर्ग आदि स्थान के लिए लोग विशुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से ही जाते हैं पर सर्वसाधारण के लिए सस्तेपन के साथ पुण्यफल मिलने का प्रलोभन भी जुड़ा रहता है। मँहगाई में किसान, कारीगर के पास पैसा भी बढ़ा है इसलिए उनकी सहज उमंग तीर्थयात्रा के लिए चल पड़ने की होती है। बसों और रेलगाड़ियों के डिब्बे भी तीर्थयात्रा की व्यवस्था बनाते हैं। उनमें लोगों को ठहरने सोने आदि की सुविधा भी रहती है। फलतः तीर्थयात्रा के लिए जाने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। इतने पर भी इस धर्म प्रयोजन के मूलभूत उद्देश्य को लोग एक प्रकार से भूलते ही जाते हैं।

प्राचीन काल में तीर्थ एक प्रकार से आरण्यक थे जिसमें गुरुकुल, वानप्रस्थाश्रम की व्यवस्था के साथ-साथ गृहस्थों को पवित्र वातावरण में रहने, साधना करने, सत्संग का लाभ उठाने एवं वहाँ के संचालकों से वर्तमान समस्याओं के समाधान और भविष्य को उज्ज्वल बनाने की योजना निश्चित करने की सुविधा मिलती थी। ऐसे आश्रमों में नदी, पर्वतों की प्राकृतिक दृश्यावली के साथ-साथ ऐतिहासिक किन्हीं प्रेरणाप्रद घटनाओं की स्मृतियाँ भी जुड़ी रहती थीं। तीर्थयात्रा पैदल करने का विधान है। वाहनों का उपयोग आवश्यक सामान लादने भर के लिए किया जा सकता है। आजकल जिस प्रकार लोग रेल मोटरों में दौड़ते हैं वैसा तीर्थ विधान शास्त्रों में कहीं नहीं है। वरन् ऐसी यात्राओं को निष्फल कहा और उनका उपहास उड़ाया गया है।

तीर्थयात्रा का एक रूप शिवरात्रि पर एवं सावन के महीने में काँवर कन्धे पर लादकर चलने वालों के रूप में उत्तर प्रदेश में देखा जाता है। गोवर्धन परिक्रमा, ब्रज चौरासी कोश परिक्रमा,प्रयाग की पंचकोशी परिक्रमा, नर्मदा परिक्रमा आदि के रूप में अभी भी देखा जाता है। उसमें पैदल चलने का ही विधान अपनाना पड़ता है। विनोबा की भूदान यात्रा भी पदयात्रा के रूप में ही सम्पन्न हुई थी। गाँधी जी का स्वतन्त्रता संग्राम डाँडी यात्रा के रूप में पैदल ही आरम्भ हुआ था।

पदयात्राओं के कितने ही भौतिक और कितने ही आध्यात्मिक लाभ हैं। भौतिक लाभ यह कि पैदल चलने का नियम स्वास्थ्य सुधार का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। देश दर्शन करने, समाज की परिस्थितियाँ समझने और अनेकों के साथ परिचय बढ़ाने, सम्पर्क साधने का अवसर मिलता है। विद्यालयों में पढ़ने के समान ही लम्बी यात्राओं में निकलने पर अनेक प्रकृति के लोगों से सम्बन्ध के कारण व्यावहारिक अनुभव में कहीं अधिक वृद्धि होती है।

आध्यात्मिक लाभ यह है कि सुयोग्य विज्ञजनों के नेतृत्व में जो जत्थे तीर्थयात्रा के लिए निकलते थे वे अपनी ज्ञान गरिमा और उत्कृष्ट भावना का लाभ उन लोगों तक घर बैठे पहुँचाते थे जो पेट प्रजनन तक ही सीमित रहते हैं और व्यवहार में आदर्शों को उतारने में कितना स्वार्थ एवं परमार्थ साधन है, इस तथ्य से अपरिचित हैं।

ऋषियों के गुरुकुल भी इसी प्रकार चलते-फिरते रहते और जगह-जगह डेरा डालकर उस क्षेत्र के वातावरण में धर्मधारणा की प्रतिस्थापना करते थे। एक स्थान पर न रहने की अपेक्षा उन्हें तीर्थयात्रा की असुविधा रहते हुए भी उसी प्रक्रिया को अपनाना पड़ता था। अभी भी अनेकानेक पुरातन ऋषियों में से कदाचित् ही किसी के निजी निवासी के मिलते हैं। क्योंकि उनकी कार्य प्रणाली ही चल प्रक्रिया पर अवलम्बित थी। एक तीर्थ में निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचकर वे दूसरे मार्ग से लौटते थे और अपनी मण्डली की ज्ञान सम्पदा में असाधारण बढ़ोत्तरी करते थे। इस पुण्य का फल निश्चय ही स्वर्ग मुक्ति जैसा होना चाहिए क्योंकि उसके साथ सद्ज्ञान सम्वर्धन की साधना जो जुड़ी रहती थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

७.२३ तीर्थ सेवन क्यों ? और कैसे ?

भारतीय ही नहीं, विश्व की सांस्कृतिक मान्यताओं में तीर्थयात्रा का अतिशय महत्त्व है। येरूसलेम मक्का, बोधगया सारनाथ आदि तीर्थों की यात्रा उन मतों के अनुयायी दूरवर्ती क्षेत्र तय करके उन केन्द्रों में पहुँचते और अपनी श्रद्धा की सघनता का परिचय देते हैं। भारतीय धर्म में उनकी महिमा और गरिमा का असाधारण प्रतिपादन हुआ है इसलिए असंख्य तीर्थयात्री इस प्रयोजन के लिए असाधारण यात्रा में समय, श्रम और धन का नियोजन करते हैं। इस प्रयास को अनेक सत्परिणाम उत्पन्न करने वाले धर्मानुष्ठानों में गिनते हैं। आद्य शंकराचार्य ने देश के चार कोनों पर चार धाम बनाये थे। इसके उपरान्त हजारों की संख्या में छोटे बड़े तीर्थ विभिन्न स्थानों पर बने। उनके कारण समीपवर्ती क्षेत्र के लोगों को भाव-संवेदनाएँ चरितार्थ करने के अवसर मिले।

इन दिनों विकृतियों ने कोई क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ा है। तीर्थ प्रयोजन भी नहीं। तीर्थयात्रा का महत्त्व एवं पुण्यफल इस तथ्य पर आधारित है कि वह धर्म प्रचार की पद यात्रा का रूप लेकर जन-जन से सम्पर्क साधती और उसका नेतृत्व करने वाले विचारशील जन-जीवन में समझदारी ईमानदारी एवं बहादुरी जैसी सत्प्रवृत्तियों को उभारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। पर आज तो द्रुतगामी वाहनों में सवारी करके बड़े-बड़े नगरों में अवस्थित भव्य देवालयों की दर्शन झाँकी करने मात्र जैसी लकीर पीट कर लोग अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। खीज, निराशा, निरर्थकता जैसी भावनाएँ लेकर वापस लौटते हैं। धक्का-मुक्की और फैली हुई गन्दगी के अतिरिक्त और कोई वस्तु बाद में स्मरण नहीं रहती। यह कैसी तीर्थयात्रा ? इतने भर से पुण्यफल कैसे आकाश से बरसेगा और पापों का क्षय होने जैसी मान्यताओं को किस आधार पर प्रश्रय मिलेगा ?

भूल सुधारनी पड़ती है। भटक जाने पर राह बदलनी पड़ती है। अच्छा हो तीर्थयात्रा सम्बन्धी प्रचलन में हम नये सिरे से विचार और परिवर्तन करें और देखें कि उस परिभ्रमण के साथ कहीं लोकमंगल जुड़ा है या नहीं। धर्म प्रचार की पद यात्रा के पुरान प्रचलन में अब यह अन्तर हो सकता है कि उसे विनोबा सर्वोदयी पदयात्रा स्तर की उपयोगिता से सम्बन्धित किया जाय। समीपवर्ती क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियों की प्राचीन या अर्वाचीन कार्य पद्धति के प्रति निष्ठा जमाने के लिए सुनियोजित क्रिया-प्रक्रिया निर्धारित करें।

गाँधी जी जब काँग्रेस के माध्यम से देश सेवा की तैयारी करने लगे तो उन्हें श्री गोखले ने सलाह दी कि वे पहले उस भारत माता की परिस्थितियाँ आँखों से देख लें। इसके लिए एक बार देश भ्रमण कर लें। गाँधी जी ने वही किया और एक अर्धनंगी महिला की परेशानी आँखों देखकर इतने द्रवित हुए कि स्वयं भी आधी धोती पहनने और आधी ओढ़ने लगे। तभी से वे सच्चे अर्थों में 'महात्मा जी' नाम से प्रख्यात हुए। लोक सेवियों के लिए तीर्थयात्रा इसलिए आवश्यक है कि वे अपने समाज की वस्तु स्थिति समझें और तदनुसार उपचार के लिए जुटें। संत परिव्राजक इसी प्रयोजन के लिए तीर्थयात्रा को धर्मकृत्य मानते और उसमें निरत होकर लोक-कल्याण की बहुमुखी योजनाओं में निरत होते थे।

आज की स्थिति में यह उपयुक्त लगता है कि जन-जागरण की साइकिल यात्राओं पर टोली बना कर निकलें। पदयात्रा के स्थान पर अब साइकिल यात्रा को अपनाने में कोई हर्ज नहीं। अब साइकिल ही सर्वजनीन वाहन बनने जा रही है।

ईंधन से चलने वाले वाहन तो उपयुक्त आवश्यकता जुटा न पाने और प्रदूषण फैलाने के कारण एक प्रकार से बे मौत मरने ही जा रहे हैं।

साइकिल यात्राओं की टोली एक प्रवास चक्र बना कर जन-जागरण के लिए निकलें और जिधर से गुजरें, उधर ही युग-चेतना का प्रकाश वितरण करें। दीवारों पर आदर्श वाक्यलेखन-सहगान कीर्तन और युग धर्म सम्बन्धित स्थानीय आधारों का स्वरूप और समाधान प्रस्तुत करें। इसके लिए देवालयों को केन्द्र बनाने की आवश्यकता नहीं है। अपने देश का हर गाँव एक तीर्थ बन कर रहेगा। इस स्थापना के लिए हम ही लोग कटिबद्ध होकर क्यों न निकल पड़ें।

योजना इस प्रकार बने कि साइकिल टोली प्रचारक अपने यहाँ से शान्तिकुंज को विश्व तीर्थ मान कर उसके लिए प्रयाण करें। जहाँ भी उपयुक्त लगे, विराम करें और अपने ढंग से प्रचार प्रक्रिया क्रियान्वित करें। शान्तिकुंज पहुँच कर दो-चार दिन विश्राम करें, साधना करें एवं प्रेरणा ग्रहण करें।

यों पैदलयात्रा में अधिक जनसम्पर्क होने खर्च कम पड़ने, चाहे जहाँ सुस्ताने आदि की अधिक सुविधाएँ तो हैं, पर समय अधिक लगने तथा श्रम को सहन करने की सुविधा भी तो चाहिए। जिन्हें साइकिल चलाना नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आता, ऐसे लोग विशेषतया महिलाएँ साइकिल की अपेक्षा पैदल चलने अथवा वाहनों का उपयोग करने के लिए विवश होती हैं, पर उन्हें साइकिलों की टोली बना कर निकलना ही सुविधाजनक होता है । साइकिलों की दो तीन-चार की टोली ही पर्याप्त हैं । इनमें से एक भार वाहक रिक्शा भी होना चाहिए, जिसमें बिस्तर कपड़े, भोजन, बनाने के साधन वाद्ययंत्र आदि को सुविधापूर्वक ले जाय जा सके । साइकिलों में लोग कैरियर पर बहुत सीमित सामान ही लाद सकते हैं । रिक्शे की टोली वाले बारी-बारी लेकर चल सकते हैं, अथवा यात्रियों में से भी कोई ऐसा हो सकता है, जो रिक्शा चलाने आगे जाकर सूचना देने, भोजन का प्रबन्ध करने में अपनी हेटी अनुभव न करे । छोटा या बड़ा लाउडस्पीकर, टेपरिकार्डर हर हालत में साथ रहना चाहिए । स्लाइड प्रोजेक्टर भी ऐसा ही, सस्ता साधन है जो रंगीन प्रकाश चित्र दिखा कर किसी गली मुहल्ले की भीड़ इकट्ठी कर सकता है और प्रवास के साथ धर्म प्रचार का दुहरा उद्देश्य एक साथ पूरा कर सकता है ।

यों झोला पुस्तकालय चलाना, ज्ञानरथ धकेलना घरों में स्लाइड प्रोजेक्टर दिखाना, आदर्शवाक्य लेखन, स्टीकर्स लगाना; प्रचार उपकरण पेटी से छोटी-छोटी गोष्ठियाँ नियोजित करना, प्रभात फेरी स्तर का अलख जागना, साप्तहिक सत्संग के लिए दौड़धूप करना यह सब भी प्रकारान्तर से पदयात्रा, तीर्थयात्रा की ही आवश्यकता पूरी करते हैं, पर साइकिल टोलीयात्रा का जो प्रभाव-परिणाम देखने को मिलता है, उसकी बात ही दूसरी है ।

तीर्थयात्रा के पुण्य से प्रभावित होकर कुछ करने की बात सोचने वाले उसमें उपयोगिता का समावेश नहीं कर पाते, तो नर्मदा परिक्रमा, गोदावरी परिक्रमा, गंगा परिक्रमा, किसी तीर्थ या क्षेत्र की परिक्रमा कर लेने भर से भी मन को सन्तुष्ट कर लेते हैं । महिलाएँ घरों के भीतर तुलसी के थाँवले तथा घर से बाहर पीपल वट आँवला आदि वृक्षों की परिक्रमा कर लेती हैं और कितनी बार भ्रमण हुए इसकी गणना के लिए सूत का कच्चा धागा निर्धारित केन्द्र के आस-पास लपेटती जाती हैं । इन चिन्ह पूजाओं को देखकर अभी भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस महान परम्परा की स्मृति तो किसी न किसी रूप में लोग अपनाये हुए ही हैं ।

श्रावण या फागुन के महीनों में गंगाजी की काँवर कँधे पर रखकर लोग ले जाते हैं और समीपवर्ती किसी शिवालय में उसे चढ़ाते हैं । काँवर पदयात्रा अभी भी देहाती क्षेत्रों में किया जाना प्रचलित है । जो लोग इस प्रयोजन के लिए निकलते हैं, वे मिल जुलकर धार्मिक गीत ऊँचे स्वर से गाते चलते हैं ताकि जो भी उस गायन को सुने वे कुछ प्रेरणा प्राप्त करें । जुलूसों में भी सहगान कोरस गाये जाते हैं । यह चिन्ह पूजा बताती है कि धर्म प्रचारक ही नहीं, तीर्थयात्रा का उपक्रम किसी न किसी प्रकार हर स्तर के लोग किसी न किसी रूप में क्रियान्वित करने के लिए लालायित रहते हैं ।

पापों के प्रायश्चित के लिए एक बहु प्रचलित माध्यम तीर्थयात्रा ही की मान्यता अभी भी है । साधु और ब्राह्मणों के लिए निर्धारित क्रियाकृत्यों में एक तीर्थयात्री भी है । वे चारों धाम उत्तराखण्ड यात्रा आदि पर निकलते हैं । अन्यथा इतना तो करते ही हैं कि समीपवर्ती किसी पर्व पर मेलों में सम्मिलित होकर उस तरह का मन बनाते हैं । कुम्भ आदि के बड़े मेलों एवं सोमवती अमावास्या, ग्रहण आदि के अवतार पर समीपवर्ती नदियों-सरोवरों में नहाने जाते हैं । वहाँ अच्छा खासा मेला लग जाता है ।

प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों की एक प्रशिक्षण पद्धति यह भी थी कि वे अपने शिष्यों की मण्डली साथ लेकर तीर्थयात्रा पर निकलते थे और उपयुक्त स्थानों पर विराम करते हुए अध्ययन-अध्यापन का क्रम चलाते रहते थे । इससे उस ऋषि मण्डली को अनेक क्षेत्रों के साथ सम्पर्क साधने, अनुभव बटोरने एवं स्वास्थ्य सम्वर्धन के बहुमुखी लाभ मिलते थे । पद यात्रा स्वास्थ्य सम्वर्धन का एक अति सरल और महत्त्वपूर्ण माध्यम माना गया है । अभी भी छुट्टी के दिनों में छात्रों, किसानों एवं दूसरे लोगों को पर्यटन-परिभ्रमण के लिए विशेष सुविधा मिलती रहती है । इस प्रकार पर्यटन एक उद्योग भी बन गया है, जिसमें अनेक श्रमिकों, व्यापारियों एवं वाहनों आदि को कुछ कमाई कर लेने का अवसर मिलता है । यह सब प्रयोजन प्राचीनकाल की उस तीर्थ परम्परा का ही स्मरण दिलाते हैं । जिससे अनेकों को अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ उठाते रहने का अवसर मिलता था ।

इक्कीसवीं सदी की युगान्तरीय चेतना का संदेश सुनाने एवं वातावरण बनाने, उत्साह उभारने के लिए उसी प्राचीन परम्परा को अब नये ढंग से नये कार्यक्रम के साथ प्रयुक्त करने की योजना बनाई गई है । जिसे अपनाकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचारकों और विचारकों ने यहाँ के जन समुदाय एवं वातावरण को उच्चस्तरयी बनाने में असाधारण सफलता अर्जित की, उसे पुनर्जीवित करके उद्देश्यमय तथा सार्थक बनाने का ठीक यही समय है ।

साइकिल टोलियों का प्रवास कार्यक्रम अपने चुने हुए क्षेत्र में किया जाय ताकि सर्वथा अजनबी क्षेत्र के साथ सम्पर्क साधने में, यात्रा सम्बन्धी तथा लोगों का सहयोग पाने के सन्दर्भ में असाधारण कठिनाई का सामना न करना पड़े । उचित निर्धारण में अपेक्षाकृत कम कठिनाइयों का सामना करने से काम चल जाता है ।

कभी प्रचलन यह भी रहा है कि देवालयों, धर्मशालाओं को निर्माण विशालकाय धर्म प्रचार केन्द्रों के रूप में ही किया जाता था । वहाँ दान-दक्षिणा के रूप में खाद्य-पदार्थों आदि का भी संचय रहता था ताकि प्रचारकों को कम से कम असुविधाओं का सामना करना पड़े । तब धर्म केन्द्र और तीर्थयात्रा प्रयोजन दोनों एक दूसरे के साथ अत्यन्त सघनतापूर्वक जुड़े हुए थे । अब यह समय न जाने कब आवेगा । इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । अब तो सिर्फ चिन्ह पूजा की मनोरंजन प्रक्रिया ही सर्वत्र हावी है, परमार्थ किसी को सूझता ही नहीं । देवालयों में मनोकामनापूर्ण करने या सस्ती वाहवाही लूटने के उद्देश्य से ही धर्म स्थानों का निर्माण होते देखा गया है ।

इस दिशा में शान्तिकुंज ने २४०० प्रज्ञापीठों की स्थापना उत्तर भारत के अनेकों स्थानों पर पिछले दिनों की थी । किन्तु दुर्भाग्य यही रहा है कि पुरानी मान्यताओं को बदल सकने में वैसी सफलता नहीं मिली जैसी मिलनी चाहिए । कलेवर मुख्य रहा और प्राण प्रतिष्ठा के तथ्य को एक प्रकार से उपेक्षित ही रखा गया ।

अब नये सिरे से नये ऐसे धर्म-स्थानों को बनाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है जो तीर्थयात्रा आन्दोलन के साथ सघन रूप से जुड़े हुए रहें । जहाँ धर्म प्रचारकों को ठहरने की, भोजन की और लोगों को एकत्रित कर लेने की तीनों ही सुविधाएँ उपलब्ध रहें ।

अगले दिनों हर गाँव-कस्बों को ऐसे ही धर्म संस्थानों की आवश्यकता बड़ी संख्या में पड़ेगी । भले ही वे आर्थिक असुविधा की स्थिति में, झोपड़ी, खपरैल, टिनशेड, चौपाल, सघन वृक्ष के उद्यान जैसे ही आच्छादनों के सहारे बना लिये जायँ । अपने तीर्थयात्री अब यह प्रयत्न भी करेंगे कि जहाँ ठहरें, वहाँ किसी न किसी रूप में एक प्रबल प्राण वाले तीर्थ आच्छादनों की स्थापना करें । भले ही उनके कलेवर सस्ते साधनों से बने हुए ही क्यों न हों ?

एक प्राचीन परम्परा यह भी थी कि हर घर से एक-एक रोटी संग्रह करके तीर्थयात्रियों की भोजन व्यवस्था जुटा ली जाती थी । किसी पर अधिक भार न पड़ता था । बनाने-पकाने का झंझट भी नहीं रहता था और देने वाला यह अनुभव करता था कि उसने भारतीय धर्म में सर्वोत्तम स्तर के माने जाने वाले कार्य में सहयोग दिया । अब से जहाँ सम्भव होगा । वहाँ शान्तिकुंज की साइकिल यात्राएँ उस परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करेंगी । जहाँ सम्भव न होगा वहाँ मण्डली के साथ रहने वाले भारवाहक रिक्शों में वे सभी साधन लदे रहेंगे जो यात्रा अवधि में भोजन, वस्त्र, प्रचार, उपकरण आदि के रूप में आवश्यक होते हैं ।

जहाँ भी प्रज्ञा केन्द्र हैं छोटे-बड़े संगठन बन चुके हैं, वहाँ समय-समय पर तीर्थयात्राएँ निकालने का प्रयत्न चलना चाहिए । साइकिल, रिक्शा आदि उपकरण एक बार पूरी तरह संग्रह कर लिए जायँ तो टोलियों में जाने वाले ढपलियों को बजाते हुए नये मार्ग से जाने और लौटने के लिए चुनते हुए प्रबन्ध ऐसा करें कि तीर्थ प्रक्रिया वर्षा को छोड़ कर अन्य महीनों में बराबर चलती रहे । जहाँ इतना प्रबन्ध न हो रहा हो वहाँ अपनी व अपने पड़ोसी की साइकिल माँग कर वर्ष में एक से दो बार तो टोलियाँ निकाल ही सकते हैं । इसके लिए फरवरी से जून तक का और सितम्बर से दिसम्बर तक का समय भी ऋतु की दृष्टि से अनुकूल रहता है । देश का हर गाँव तीर्थ बने, हर क्षेत्र में जीवन्त युगान्तरीय चेतना उभरे, इसके लिए मनीषियों को गाँव-गाँव पहुँचने और जन-जन को ऐसे विचारशील प्रतिभाशाली लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मिले तो समझना चाहिए कि नवयुग के अवतरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया का सूत्र संचालन शुरू पड़ा ।

जहाँ कोई बड़ी तैयारी नहीं है । पूर्व योजना बनाने तथा इस सम्बन्ध में अब तक प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला है वहाँ एक सरल उपाय यह है अपने यहाँ से हरद्वार चल पड़ने की योजना बनाई जाय । रास्ते में वाक्य लेखन, दीपयज्ञ, सहगान कीर्तन, प्रवचन, साहित्य विस्तार, स्टीकर लगाने आदि कार्य करते हुए शान्तिकुंज पहुँचा जाय । वहाँ दो चार दिन विश्राम एवं नये प्रशिक्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का लाभ प्राप्त करते हुए दूसरे रास्ते से घर वापस लौट चला जाय ताकि जाने में अलग और लौटने में अलग गाँवों से सम्पर्क सधे।

इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि अपने इलाके की एक परिधि बना कर उसके हर गाँव के साथ सम्पर्क बनाने का काम हाथ में लिया जाय और निर्धारित परिक्रमा पूरी की जाय। इमारतों, मन्दिरों-जलाशयों तक तीर्थयात्रा को सीमित न करते हुए उस क्षेत्र को ही एक जीवन्त तीर्थ मान लिया जाय और उसकी अभ्यर्थना नव चेतना संचार द्वारा की जाय।

अगले दिनों जन शक्ति ही समस्त समस्याओं का समाधान करेगी। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक एवं अनीति उन्मूलन, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन जैसे प्रज्ञाकर्मों में जो लोग निरत होंगे उन्हीं के हाथ सुदृढ़ और सुनिश्चित नेतृत्व अनायास ही जा पहुँचेगा। सेवा के बदले श्रद्धा उपलब्ध करने वाले ही संसार का नेतृत्व करते और महामानव बनते रहे हैं। वातावरण बदलने में भी उन्हीं को सराहनीय श्रेय मिला है। इस साधना को सम्पन्न करने वाले स्वयं लाभान्वित होंगे और अपने सम्पर्क क्षेत्र को भी लाभान्वित करेंगे। इसलिए नवयुग के आगमन की पुण्य बेला में तीर्थयात्रा के रूप में युग चेतना का अभिनव संचार किया जा रहा है।

इस सन्दर्भ में शान्तिकुंज की अपनी योजना है। बड़ी संख्या में यहाँ नई साइकिलें भाषण-वादन, प्रचार उपकरण आदि संग्रह कर लिये गये हैं।शान्तिकुंज के प्रामाणिक और प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता अपनी-अपनी टोलियाँ लेकर माँग वाले क्षेत्रों में भेजे जाते रहते हैं। यात्रियों, को कहाँ क्या करना चाहिए इस प्रकार का प्रशिक्षण भी मिल जाता है और सुविधा साधन भी जुट जाते हैं। शान्तिकुंज ने इन्हीं दिनों में एक हजार साइकिल टोलियों को कार्य क्षेत्र में भेजने का निश्चय किया है। आवश्यकतानुसार यह संख्या लाखों तक पहुँच सकती है—और समूचे विश्व को अपना कार्य क्षेत्र बना सकती है। इस तीर्थयात्रा की तैयारी हम में से हर एक को करनी चाहिए। और उससे मिलने वाले असाधारण लाभों एवं पुण्यफल से लाभान्वित होना चाहिए।

तीर्थयात्रा हर किसी के लिये हर स्थिति में सम्भव !

प्रायश्चित के लिए तीर्थयात्रा प्रक्रिया का निर्धारण अपनी साधना के अन्तर्गत रखा गया है, इस एक प्रक्रिया की पाँच महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं—(१) पापों का प्रायश्चित (२) सद्ज्ञान प्रसार-ब्रह्मदान का पुण्य सम्पादन (३) धर्म धारणा से ओत-प्रोत जीवनयापन की तपश्चर्या (४) जन-मानस परिष्कार के युग परिवर्तन आधार की पूर्ति (५) तीर्थयात्रा परम्परा के वास्तविक स्वरूप का पुनरुद्धार इन पुण्य प्रयोजनों का संयुक्त स्वरूप सम्मिलित करते हुए हमें धर्म प्रचार मण्डलियों के रूप में चिर प्राचीन एवं चिर नवीन-सांस्कृतिक अभियान का सूत्रपात्र करना चाहिए। ब्रह्म वर्चस् साधना तपश्चर्या का यह एक अति महत्त्वपूर्ण अंग रहना चाहिए।

तप साधना के विभिन्न प्रयोग विभिन्न समय में होते रहे हैं। व्यक्तिगत त्याग तितिक्षा—धार्मिक जीवन से आत्म-शोधन का उद्देश्य पूरा होता है। साथ ही यह प्रक्रिया परमार्थ प्रयोजन के साथ जुड़ी रहे तो दूना लाभ है। परमार्थ में सद्ज्ञान सम्वर्धन—धर्म प्रचार सर्वोपरि है। इसके प्रभाव से सामान्य मनुष्य भी ऋषि कल्प बन सकते हैं। दोष, दुर्गुणों से मुक्ति पाकर गुण, कर्म, स्वभाव की श्रेष्ठता प्राप्त कर सकना मनुष्य जीवन की सार्थकता और सुख-शान्ति का प्रधान आधार है। तीर्थयात्रा यदि उद्देश्य पूर्ण रीति-नीति अपनाकर योजनाबद्ध रूप से सम्पन्न की जाये तो उससे इन तीर्थयात्रियों को—उनके सम्पर्क में आने वालों को—तथा देश, धर्म, समाज, संस्कृति के प्रत्येक पक्ष के समर्थ बनने का आशातीत लाभ मिल सकता है।

तीर्थ अर्थात् श्रद्धा। यात्रा अर्थात् प्रगति। श्रद्धा, सद्भावना, आत्मीयता, शालीनता, चरित्र-निष्ठा, समाजनिष्ठा और सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन के लिए किये गये पदयात्रा प्रयासों को सच्चे अर्थों में तीर्थयात्रा कह सकते हैं। इस यात्रा से स्वास्थ्य सुधार, सात्विक मनोरंजन, अनुभव अभिवर्धन, जन-सम्पर्क, परिचय-विस्तार, उदात्त दृष्टिकोण का विकास जैसे अनेक लाभ मिलते हैं। साथ ही उन सत्प्रवृत्तियों के विकास, विस्तार का अवसर मिलता है जिनके ऊपर मानवी गरिमा की आधारशिला रखी हुई है। इस महान् परम्परा में घुस पड़ी विकृतियों का निराकरण और उसके वास्तविक रूप का प्रस्तुतीकरण करके वस्तुतः हम अपनी महान् संस्कृति की असाधारण सेवा करते हैं।

ब्रह्म वर्चस् साधना के अन्तर्गत गायत्री की उच्चस्तरीय साधना करने वालों को आत्म-शोधन और परमार्थ संचय के उभय-पक्षीय उद्देश्य से कुछ समय के लिए तीर्थयात्रा पर निकलने का कार्यक्रम बनाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रायश्चित की यह सर्वोत्तम प्रक्रिया है। इस सांस्कृतिक महान् परम्परा का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करने और उसे अभिनव प्रचलन का रूप देने में यह यात्राएँ धर्म क्षेत्र को एक अभिनव मार्ग-दर्शन कर सकती हैं।

यह तीर्थयात्रा मण्डलियाँ अपने-अपने परिचित कार्य क्षेत्रों में निकालना सरल है। यों उन्हें अपरिचित क्षेत्रों तक ले जाने और व्यापक बनाने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है, पर भाषा, प्रथा, परम्परा आदि से परिचित रहने के कारण सुविधा परिचित क्षेत्रों में ही रहेगी। प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए। संयोग वश कोई दर्शनीय स्थान रास्ते में आते हों तो वहाँ विराम रखने में कोई हर्ज नहीं। पर महत्त्व पिछड़े क्षेत्रों में उपयोगी सद्ज्ञान वर्षा को ही दिया जाना चाहिए। लक्ष्य को प्रधानता दी जाय—दर्शनीय या ऐतिहासिक स्थानों को नहीं।

तीर्थयात्रा पर एकाकी निकलने से न तो सुविधा रहेगी और न उद्देश्य सधेगा। इसलिए मण्डली बनाकर ही चलना चाहिए। प्रवक्ता दो पर्याप्त हैं। शेष सहायक रहें। सेवाभावी, परिश्रमी, सद्गुणी और अनुशासन प्रिय सभी को होना चाहिए। दुर्गुणी व्यक्ति धर्म-प्रचारकों की भूमिका नहीं निभा सकेंगे। जहाँ जायेंगे वहाँ स्वयं निन्दित होंगे, टोली का उपहास करावेंगे। इसलिए चुने और परखे लोगों को लेकर ही चलना चाहिए। न्यूनतम चार-पाँच और अधिकतम दस की मण्डली हो सकती है। सभी के पीत वस्त्र रहें। धर्म-प्रचारक तीर्थयात्रियों की एक निश्चित एवं निर्धारित ऐसी पोशाक होनी चाहिए जो धर्म-प्रचारकों के लिए उपयुक्त हो यात्रा पैदल हो। आवश्यक सामान साथ ले चलने के लिए साइकिल या बैलगाड़ी का उपयोग हो सकता है। भारत की ७० प्रतिशत जनता छोटे देहातों में रहती है। उन तक पहुँचने के लिए ऐसे ही भारवाही साधन चाहिए जो कच्चे रास्तों पर चल सकें। टट्टू या गधे से भी काम चल सकता है। जहाँ जैसी सुविधा हो वहाँ वैसा प्रबन्ध कर लेना चाहिए। जितने दिन की यात्रा निकली हो, उसको ध्यान में रखते हुए विराम स्थल बनाने चाहिए। जहाँ से चला जाय वहीं वापिस लौट आने के लिए इस प्रकार कार्यक्रम बनाना चाहिए कि जाना एक रास्ते और लौटना दूसरे रास्ते हो। यह कार्यक्रम पहले सही बन जाने पर उन स्थानों के निवासियों को इस आगमन की पूर्व सूचना दी जा सकती है। इससे ठहरने एवं वहाँ के निवासियों से सम्पर्क बनाने की पूर्व व्यवस्था रह सकेगी।

भोजन का भार किसी पर न डाला जाय। अपना प्रबन्ध साथ रखकर चला जाय। कहीं अति आग्रह हो तो उसे अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। पर सामान्यतया कहीं यह अनुभव नहीं होना चाहिए कि लोग पेट भरने के लिए निकले हैं। इसलिए सामान में भोजन पकाने के उपकरण तथा राशन साथ रहना चाहिए। खाने वालों की रुचि और काने की सरलता का तालमेल बिठाते हुए यह व्यवस्था ऐसी रहनी चाहिए जिसमें समय और धन कम खर्च हो। पकाने की कला टोली बालों को आनी चाहिए और किस स्थिति में इस सन्दर्भ में किस प्रकार क्या कर लेना चाहिए ? इसकी स्पष्ट रूपरेखा मस्तिष्क में रहनी चाहिए। पहनने, बिछाने-ओढ़ने के वस्त्र, पूजा उपकरण, प्रचार साधन, रस्सी बाल्टी, खाने पकाने के बर्तन, साबुन, मंजन जैसी दैनिक उपयोग की सामग्री पहले से ही सम्भाल लेनी चाहिए। मार्ग व्यय की व्यवस्था घर से ही करके चलना चाहिए ताकि कहीं याचना की आवश्यकता न पड़े। माँग जाँच प्राचीन काल में तो उचित थी, पर आज की परिस्थिति में वैसा करने से मण्डली का आधार सम्मान अश्रद्धा में बदल जायगा।

टोली का दैनिक कार्यक्रम प्रातः नित्यकर्म में निवृत्त होकर चल पड़ना होगा। अगले पड़ाव तक जो गाँव रास्ते में पड़ने वाले हों, उनके गली, मुहल्लों में—गीत गाते में नवयुग का सन्देश, उद्बोधन भरा रहे। जो लोग रास्ते में मिलें उन्हें अन्तिम स्थान पर एकत्रित होने के लिए साथ-साथ बुलाते भी चलें। जो इकट्ठे हो जायँ, उन्हें छोटे से प्रवचन में तीर्थयात्रा और उसके इस स्वरूप का—यात्रा उद्देश्य का-परिचय दिया जाय। इसी उद्देश्य के लिए छपी 'प्रेमोपहार' पुस्तिकाएँ वितरित की जायँ या बेची जायँ। वितरण कर्ताओं का नाम छपा देने से यह पुस्तिकाएँ मुफ्त में भी दिये जाने के लिए पर्याप्त संख्या में मिल सकती हैं। धर्म-फेरी —अन्त में प्रवचन के साथ-साथ रास्ते के गाँवों में दीवारों पर आदर्श वाक्यों का लेखन क्रम भी चलना चाहिए, इसके लिए गेरू का रंग, ब्रुश आदि साथ रखा जाय। एक दिन में न्यूनतम पाँच मील और अधिकतम दस मील की यात्रा रखी जाय। रास्ते में कितने गाँव पड़ते हैं और उनमें कितनी देर रुकना होता है, इसे ध्यान में रखते हुए ही यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि हर दिन कितने मील चलना है। यह दूरी स्थिति के अनुरूप न्यूनाधिक भी हो सकती है। पर उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्धारण पहले ही कर लेना चाहिए ताकि विराम स्थल पर ठीक समय पर पहुँचा जा सके।

विराम स्थल पर पहुँचने पर अपने आगमन की सूचना उस गाँव में धर्म फेरी घुमाते और शंख बजाते हुए करनी चाहिए। साथ ही भोजन व्यवस्था बनाने पर जुट पड़ना चाहिए। कुछ लोग धर्म फेरी में चलें, कुछ भोजन प्रबन्ध करें ऐसा भी हो सकता है। भोजन दिन में एक बार ही बनाया जाय। दूसरे समय के लिए बनाकर रख लिया जाय ताकि आवश्यक समय व्यर्थ बर्बाद न हो। यह कार्य प्रात:काल यात्रा आरम्भ करते समय भी पूरा किया जा सकता है। प्रात: या सांय जब भी सुविधा हो एक बार ही भोजन बनाने का क्रम चलाना चाहिए। वाहन यदि बैल, घोड़ा आदि है तो उसके लिए चारा माँगा भी जा सकता है। जहाँ अश्रद्धा या उपेक्षा दीखे वहाँ वह भी खरीद लेना चाहिए।

तीर्थयात्रा मण्डली कितने दिन चलनी है। इसी आधार पर विराम स्थानों की, राशन की, खर्च की उन गाँवों में पूर्व सूचना पहुँचाने की व्यवस्था करनी चाहिए। उन गाँवों में पर्चे, पोस्टर पहुँचाने—कपड़े के बड़े-बड़े पोस्टर गली, चौराहों पर लटकाने का भी प्रबन्ध हो सके तो स्थानीय जनता उस टोली की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा भी करेगी और प्रस्तुत कथा प्रवचन में भाग भी लेगी।

रात्रि को विराम स्थान पर प्राय: ढाई घण्टे का प्रचार कार्यक्रम रखा जाय। इसके लिए उपयुक्त स्थान एवं रोशनी, लाउडस्पीकर, बिछावन, मंच आदि का प्रबन्ध पहले से ही कर लिया जाय। लाउडस्पीकर साथ लेकर चला जाय। सहगान कीर्तन एवं कथा यह दो कार्यक्रम रहने चाहिए। संगीत ज्ञाता हों तो बाजे, ढोलक आदि का प्रबन्ध कर लिया जाय। अन्यथा बिना उसके भी कीर्तन हो सकता है। कथा की दृष्टि से उत्तर भारत में रामायण बहुत लोकप्रिय है। सुविधानुसार गीता एवं भागवत की भी कथा कही जा सकती है। रामचरित्र एवं कृष्णचरित्र में वे सभी आधार मौजूद हैं जिन्हें नवयुग के अवतरण को ध्यान में रखते हुए उभारा जा सकता है। कीर्तन, कथा शैली, वाक्य लेन, धर्म फेरी एवं तीर्थयात्रा के समय यात्रियों के नियम कर्त्तव्य आदि से भली प्रकार अवगत होने की दृष्टि से यात्रा मण्डली निकलने से पूर्व ही उसका प्रशिक्षण एवं रिहर्सल कर लिया जाय। इसकी व्यवस्था ब्रह्म वर्चस् आरण्यक में भी रखी गई है।

जहाँ लम्बे समय की यात्राएँ सम्भव न हों। वहाँ एक सप्ताह या जितना सम्भव हो उतना समय सुविधानुसार निकाला जा सकता है। गर्मी के दिनों में प्राय: सभी को अवकाश रहता है। किसान, छात्र, अध्यापक तो प्राय: उन दिनों छुट्टी ही मनाते हैं। ऐसे लोग उन दिनों का उपयोग तीर्थयात्रा में कर सकते हैं। यह धर्म-प्रचार के साथ-साथ अच्छा-खासा 'पिकनिक' भी है। साप्ताहिक अवकाश में दुकानें, दफ्तर, कारखाने सभी बन्द रहते हैं। उस एक दिन का उपयोग भी इस कार्य के लिए किया जाता रहे तो साल में ५२ दिन तीर्थयात्रा के लिए मिल सकते हैं। बड़े नगरों को एक पूरा प्रसार क्षेत्र ही माना जा सकता है। उसके गली-मुहल्लों को ही गाँव मानकर बहुत दिन तक उसी क्षेत्र में परिभ्रमण करते रहा जा सकता है। एक के बाद दूसरी, तीसरी फेरी होती रह सकती है। इस प्रकार बड़े शहरों में तीर्थयात्री उतने क्षेत्र में लगी हुई देहातों को सम्मिलित करके ऐसा कार्यक्रम बना सकते हैं जिसमें घर छोड़ने, भोजन व्यवस्था करने एवं छुट्टी लेने की भी आवश्यकता न पड़ेगी, काम पर जाने से पूर्व के प्रात: कालीन तीन घण्टे और काम से लौटने के बाद के तीन घण्टे इस प्रकार छै घण्टे हर दिन लगाने पर यह तीर्थयात्रा वहाँ निरन्तर जारी रखी जा सकती है। दोनों समय के लिए सम्भव न हो तो सायंकाल का समय तो बहुत ही सरलतापूर्वक मिल सकता है। कुछ काम तो सबेरे भी हो सकता है।

एकाकी स्थानीय तीर्थयात्रा तो हर किसी के लिए हर स्थिति में सम्भव हो सकती है। झोला पुस्तकालय हाथ में लेकर अपने परिचितों के यहाँ जाया जाय और उन्हें मिशन की पुरानी पत्रिकाएँ एवं पुस्तकें देने, वापिस लेने का क्रम चलाया जाय। चल पुस्तकालय की धकेल गाड़ी लेकर गली, मुहल्लों और बाजारों में जाया जाय। साहित्य पढ़ाने, वापिस लेने एवं बेचने का क्रम रखा जाय। दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन करते रहा जाय यह कार्य ऐसे हैं जो एकाकी—समीपवर्ती क्षेत्र में अत्यनत सरलतापूर्वक किये जा सकते हैं। इन्हें भी हलकी तीर्थयात्रा का ही एक स्वरूप माना जा सकता है। महत्त्व समझा जाय और आवश्यक साहस संकल्प हो तो तीर्थयात्रा का पुण्य फल सम्पादित करना हर स्थिति के—हर व्यक्ति के लिए सम्भव हो सकता है। जिन्हें अवकाश न हो वे पैसा देकर अपने स्थान पर अन्य यात्रियों को इस प्रयोजन के लिए भेजने की व्यवस्था बना सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ सेवन से आत्म परिष्कार

प्रज्ञा परिजनों के तीर्थ-सेवन-सत्र कार्य पद्धति एवं उद्देश्य

प्रज्ञा-परिजनों की संख्या लाखों को पार करके करोड़ों में पहुँचने वाली है । इस विशाल परिवार को भी युग चेतना के साथ अधिक दृढ़ता के साथ जोड़ने वाले प्राणवान् प्रशिक्षण, परामर्श एवं सान्निध्य की आवश्यकता अनुभव की गई है और उसका प्रबन्ध तीर्थ-सेवन सत्र के नाम से किया गया है । जन-साधारण की व्यस्तता को देखते हुए उसका समय भी पाँच दिन जितना स्वल्प ही रखा गया है । हर महीने १ से ५, ७ से ११, १३ से १७, १९ से २३, २५ से २९ तारीखों में यह सम्पन्न हुआ करेंगे । बीच की ६, १२, १८, २४ तारीखें शिविरार्थियों की विदाई और अगवानी के लिए रखी गई हैं । इन सत्रों में पर्यटन, प्रशिक्षण और तीर्थ-सेवन की तीनों ही विधि-व्यवस्थाओं का समुचित समावेश किया गया है, और उन्हें तीर्थ-सेवन-सत्र नाम दिया गया है ।

तीर्थों के महात्म्यों का धर्म-शास्त्रों में असाधारण रूप से वर्णन है । उन प्रतिपादनों और प्रेरणाओं से प्रभावित होकर प्राचीन काल में भी अगणित धर्म-प्रेमी लम्बी तीर्थ-यात्रा के लिए निकलते थे । प्रयास काल में कठिन व्रत साधना का परिपालन करते थे । अब वैसी मन:स्थिति नहीं रही, तो भी तीर्थ-यात्रियों की संख्या में कमी नहीं हुई है । उसके साथ अब पर्यटन-मनोरंजन भी जुड़ गया है । अपने देश में पर्यटन केन्द्र और तीर्थस्थान प्राय: पर्यायवाची बनते जा रहे हैं । पर्यटन को एक विनोद-माध्यम माना जाता है और संसार भर में उसका अपने-अपने ढंग का प्रचलन है, पर भारत में उसका तीर्थ-सेवन के साथ जुड़ जाना कुल मिलाकर अच्छा ही है ।

तीर्थ-परम्परा के पीछे कुछ स्थायी महत्त्व की स्थापनाएँ थीं और कुछ स्वल्पकालीन-निवास के लिए आने वालों के काम की । स्थायी महत्त्व के लिए उन स्थानों में बने हुए निवास और प्रशिक्षणों की उभयपक्षीय सुविधाओं से भरे-पूरे 'आश्रम' थे । तीर्थों का प्रधान आकर्षण वहाँ के प्राकृतिक दृश्य, इतिहास के प्रेरणाप्रद कथानक ही नहीं वह आश्रम भी थे, जो सृष्टा की कला कृति, प्रकृतिगत सुन्दरता—महामानवों की अमरगाथा, इतिहास कथा के साथ-साथ ऋषि परम्परा के प्रति जन-जन की मनोभूमि को श्रद्धासिक्त बनाने वाले 'आश्रम' कहा जा सकता है । इनसे व्यक्ति और समाज को जो उच्चस्तरीय लाभ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता था, उसे देखकर दर्शकों का अन्त:करण पुलकित गद्‌गद-हो उठना सहज-स्वाभाविक था । एक ने अपने अनुभव दूसरों को सुनाये और उस लाभ से लाभान्वित होने के लिए अन्यान्यों का उत्साह उमड़ता चला गया । तीर्थ प्रचलन के पीछे ऐसे ही तथ्यों का समावेश रहा है ।

सभी प्रमुख तीर्थों की ऐसी ही शिक्षण संस्थाएँ थीं । निवास और शिक्षा का लाभ हर वर्ण के लोगों को मिलता था । किशोरों के लिए गुरुकुल, गृहस्थों के लिए तीर्थ-सेवन, अधेड़ों के लिए आरण्यक की त्रिविध व्यवस्था के कारण इन आश्रमों को प्रत्यक्ष तीर्थ कहा जाता था । भारतीय संस्कृति में चार आश्रम हैं । ब्रह्मचारियों, गृहस्थों और वानप्रस्थों के व्यक्तित्व निखारने के लिए तो उपर्युक्त त्रिविध शिक्षण-पद्धति थी ही । चौथा आश्रम संन्यास—इस सारी व्यवस्था के सुसंचालन-अध्यापन के निमित्त था । संन्यास में कुछ जन-सम्पर्क साधने के लिए परिभ्रमण करते थे, कुछ तीर्थों की व्यक्तित्व ढालने वाली फैक्टरियों को चलाने में स्थायी वासी बनकर रहते थे । इस प्रकार चारों ही आश्रम किसी न किसी समय किसी न किसी तीर्थ के साथ अपने आपको जोड़ कर समान पवित्रता-प्रखरता का लाभ अर्जन करने में सफल रहते थे ।

यह लम्बी अवधि तक तीर्थों में रहने और अपने-अपने ढंग की—आवश्यकता की—शिक्षा प्राप्त करने का प्रसंग हुआ । अब अस्थायी रूप से समय-समय पर आने वाले गृहस्थों की बात आती है । वे तीर्थ-सेवन के लिए यों अपनी-अपनी सुविधानुसार भी पहुँचते थे । पर मुख्यतया कुछ नियमित पर्वों पर तीर्थ यात्रा का बहुत माहात्म्य कहा गया था । इसका अर्थ था एक साथ अनेकों की शिक्षा और साधना का सामूहिक उपक्रम बन पड़ना ।

तीर्थों की साधना करने वाले महामनीषियों ने उन स्थानों को कितनी ही विशेषताओं से युक्त बनाया था, और सोचा था कि उन निर्धारणों से लाभ उठाने की दृष्टि से अधिकाधिक लोगों को प्रस्तुत ऊर्जा के सम्पर्क में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आना चाहिए । उपयोगी परिचय प्राप्त करना चाहिए । प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए । पवित्र एवं प्रखर वातावरण के सान्निध्य में उसी स्तर की अवधारणा करनी चाहिए । संचित कुसंस्कारों से परित्राण पाने के लिए व्रतशीलता अपनानी चाहिए तथा मनीषा के साथ विचार विनिमय करने वाले अभिनव निर्धारण करने चाहिए ।

शान्तिकुंज गायत्री तीर्थ में प्राय: उन सभी व्यवस्थाओं का समावेश है, जो प्राचीनकाल में इन धर्मकेन्द्रों के साथ जुड़ी हुई थीं । तीर्थ-सेवन-सत्र, कल्प-साधना-सत्रों का त्रिविध समन्वय गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम बनता और तीर्थ-राज जैसी उत्कृष्टता उत्पन्न करता है । ऐसे ही संगम में कौये-कोयल और बगुले हंस बनने का कृत्य-उपक्रम करते देखे गये हैं । महर्षि व्यास ने गंगोत्री के निकट व्यास गुफा में महाभारत सहित अठारहों पुराण लिखे थे । महर्षि वशिष्ठ ने राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न समेत मूर्धन्यों को अलखनन्दा-भागीरथी संगम पर योग-वाशिष्ठ पढ़ाई थी । हिमालय की गोद और गंगा के तट पर ऐसे ही महान प्रयोजन स्थान-स्थान पर होते रहे हैं । चरक और वाग्भट्ट ने वनस्पतियों से रोगनिवृत का महान अनुसन्धान यहीं किया था । इन तीनों ही प्रयोजनों की समयानुसार आवश्यकता की पूर्ति इन दिनों शान्तिकुंज के एक ही स्थान से सम्पन्न हो रही है । यहीं युगपुराण सृजे जा रहे हैं । यहाँ युग की योग-वाशिष्ठ पढ़ने के लिए अनेकों मूर्धन्य आते हैं । जड़ी-बूटी अनुसन्धान का नये सिरे से प्रयोग चला है । जल, वायु, समय, स्थान के आधार पर वनस्पति सहित अन्यान्य खाद्य पदार्थों के गुणों में भारी अन्तर आता रहता है । इसलिए समय-समय पर पूर्व निर्धारणों में सुधार-परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ती है । ग्रह-गणित के बारे में भी यही बात है । मास-वर्ष का जो मोटा क्रम चला आ रहा है वह पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा करने का एक अनुमानित निर्धारण है । कुछ समय बाद इसी कारण पंचांगों में भारी अन्तर उत्पन्न हो जाता है । इसे ठीक करने के लिए ग्रह गणित को बीच-बीच में बार-बार परिशोधन करना पड़ता है । ऐसा परिशोधन अन्तिम बार भास्कराचार्य के सूर्य-सिद्धान्त में हुआ है । चरक और भास्कर की लम्बी अवधि बीत गई । अब औषधियों के गुण निर्धारण और ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति में नये सिरे से जाँच पड़ताल की आवश्यकता पड़ रही है । इसे कौन करे ? ऐसे कामों के लिए विलक्षण प्रज्ञा की आवश्यकता पड़ती है । उसे ऋषिकल्प तपस्वी ही अपनी आत्मशक्ति के सहारे उपलब्ध करते हैं । गायत्री तीर्थ में व्यास की लेखनी, वशिष्ठ की वाणी, चरक की खोज, भास्कर की पर्यवेक्षण क्षमता एक साथ काम करती देखी जा सकती है । जड़ी-बूटी उद्यान और ग्रहगणित की वेधशाला के माध्यम से जो अनुसन्धान हो रहे हैं उनमें प्राचीनकाल के तीर्थकेन्द्रों में होने वाले एकान्त अनुसन्धान की आधुनिक झाँकी देखी जा सकती है । ब्रह्मवर्चस् प्रक्रिया को इसी स्तर का समझा जा सकता है । भागीरथ का गंगावतरण, परशुराम का कुठारघात का उपक्रम नवयुग के निमित्त चल रही ढलाई और गलाई की प्रक्रिया में खोजा जा सकता है । तीर्थों का कलेवर तो भव्य-भवनों के ढांचे-ढकोसलों में असंख्य स्थानों पर खड़ा देखा जा सकता है किन्तु यदि उसकी आत्मा खोजनी हो तो शान्तिकुंज की उपेक्षा करने से प्रयास सर्वथा अधूरा ही रह जायेगा ।

बुद्ध की धर्मचक्र प्रवर्तन योजना में विहार, संघारामों की स्थापना और भिक्षु-भिक्षुणियों की एक तपस्विनी सेना उस प्रयोजन के लिए प्रव्रज्या पर निकालना अपने समय में अपने ढंग से हुआ था । पर उसकी अनुकृति देखनी हो तो शान्तिकुंज की प्रेरणा से बने २४०० गायत्री तीर्थों के निर्माण और हजारों वरिष्ठ प्रज्ञापुत्रों के रूप में सृजन शिल्पियों का कार्य क्षेत्र में प्रवेश-देखा जा सकता है । यह उसी बुद्ध कालीन परम्परा की पुनरावृत्ति का स्मरण दिलाता है । समर्थ गुरु रामदास के सहस्रों महावीर मन्दिर, लगता है, अब शान्तिकुंज की प्रेरणा से समय की पुकार पुरी करने के लिए फिर से बन रहे हैं । सप्तऋषियों की तपोभूमि में विनिर्मित एक ज्वलन्त तीर्थ शान्तिकुंज में पहुँचने पर किसी को अरुन्धती का अभाव भी खटकता नहीं ।

प्राचीन काल के तीर्थों का प्राण स्पन्दन किसी को देखना हो तो उसे शान्तिकुंज के वक्षस्थल पर हाथ रखकर धड़कता हुआ देखा जा सकता है । स्मारक अपनी जगह पर श्रद्धा के पात्र होते हैं । उनका नमन, वन्दन और भावभार अभिनन्दन होना चाहिए । किन्तु इतने से ही काम नहीं चलता । व्यवस्था परम्पराओं के पुनर्जीवन की भी होनी चाहिए । वह प्रयास भी गायत्री तीर्थ की छोटी-सी इमारत में जिस तत्परता, व्यवस्था और उत्कृष्टता के साथ हुआ है उसे देखते हुए गहराई में उतर सकने वाले पर्यवेक्षकों को आश्चर्यचकित ही रह जाना पड़ता है । स्वल्प साधनों में महान प्रयासों का नियोजन देखकर गोवर्धन उठाए गये और सेतुबन्ध बांधे गये इतिहासों की स्मृति हरी-भरी हो जाती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देश भर के प्रधान तीर्थों का एक स्थान पर इस प्रकार दिव्य दर्शन गायत्री तीर्थ की अपनी विशेषता है । इसके अतिरिक्त हिमालय के देवात्मा भाग का, भगवती भागीरथी के आरम्भ से लेकर अन्त तक का देवमन्दिर जैसा शान्तिकुंज में है वैसा अन्यत्र कही भी नहीं है ।

प्राचीनकाल की तीर्थ-सेवन परम्परा में कितने ही महत्त्वपूर्ण उपक्रमों का समावेश था । बताया गया पुण्य फल, मात्र प्रतिमा दर्शन, नदी स्नान से नहीं मिल जाता था वरन् उसके लिए आगन्तुकों को कुछ अध्यात्म उपचारों का भी आश्रय लेना पड़ता था, जिसके सहारे बताई गई फलश्रुति का कोई तर्क पूर्ण आधार बन सके । तीर्थार्थियों को प्राचीन काल में जो यहाँ रहकर करना पड़ता था उसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१- संचित कुसंस्कारों, कषाय-कल्मषों एवं दुष्कृतों का प्रायश्चित विधान । केश मुड़ाने के रूप में अभी भी इसका ध्वंसावशेष प्रचलन श्रद्धालुजनों द्वारा अपनाते हुए देखा जाता है ।

२- आत्म-बलवृद्धि के लिए उतनी अवधि में सम्पन्न हो सकने वाला व्रत अनुष्ठान ।

३- तीर्थ के निकटवर्ती देवालयों, स्मारकों एवं प्रेरणाप्रद घटनाओं से सम्बन्धित स्थानों का दर्शन । उनके साथ जुड़ी हुई प्रेरणाओं का अवगाहन ।

४- स्वाध्याय, सत्संग, संत-समागम, आत्म-परिष्कार के लिए आलोक उपलब्ध करना । भावी जीवन के लिए उपयोगी रीति-नीति अपनाने का व्रत ग्रहण करना ।

५- षोडश संस्कारों की महान परिवर्तन प्रस्तुत कर सकने में समर्थ प्रक्रिया से लाभान्वित होना ।

६- व्यक्तिगत समस्याओं के सम्बन्ध में व्यक्तिगत परामर्श तत्वदर्शियों से प्राप्त करना ।

इन प्रयोजनों की पूर्ति के लिए भी लम्बे समय तक ठहरने की आवश्यकता है । तो भी प्रयत्न यह किया गया है कि पाँच दिन जितनी स्वल्प अवधि में भी जितना सम्भव हो उतनी पूर्ति हो सके ।

तीर्थसेवन के साथ जुड़े क्रिया कृत्यों और निर्धारणों में प्रथम को प्रायश्चित कहा गया है । तीर्थ स्नान का पापों की निवृत्ति वाली फलश्रुति के पीछे आधारभूत तथ्य यही है कि परिमार्जन और परिष्कार की दुहरी प्रक्रिया को परिपूर्ण श्रद्धा के साथ सम्पन्न किया जाय । मुण्डन प्रायश्चित का एक प्रतीक है । तीर्थों में लोग मुण्डन कराते थे । इसका दार्शनिक अर्थ है—दृष्टिकोण का परिवर्तन—"ब्रेनवाशिंग" । इसके लिए क्षमा मांगने, स्नान करने, बाल कटाने भर से काम नहीं चलता वरन् संचित कल्मषों का उन्मूलन भी करना पड़ता है । प्रायश्चित ही पापों की निवृत्ति का एकमात्र उपाय है । इसमें खाया हुआ विष उगलना पड़ता है । अन्यथा वह मरण संकट उत्पन्न करता है । भारतीय धर्म में पापों के प्रायश्चित की परम्परा है । क्षमा माँगने में पश्चाताप का भाव है, यह परिष्कार की दृष्टि से शुभ चिन्ह है । पश्चाताप करने वाला भूतकाल की गलतियों पर जहाँ खेद प्रकट करता है वहाँ भविष्य के लिए उसकी पुनरावृत्ति न करने का संकल्प भी करता है ।

बात इतने पर ही समाप्त नहीं होती । समाज को, मानवी संस्कृति को जो आघात उन दुष्कर्मों के कारण लगा है उसकी भरपाई भी करना है । खोदी गई खाई को पाटना भी पड़ता है । दुष्कृतों का पलड़ा बराबर करने जितने सुकृत भी करने होते हैं । पतन की दिशा में जितना प्रवाह बहा था उतना ही पुरुषार्थ उत्थान का वातावरण बनाने के लिए करना पड़ता है । पाप की निवृत्ति पुण्य से होती है । पाप की निवृत्ति के लिए न केवल पश्चाताप, प्रायश्चित की अभिव्यक्ति के लिए तितीक्षा परक कष्ट सहने पड़ते हैं वरन् पुण्य परमार्थ के लिए भी वैसा ही साहस करना पड़ता है जैसा कि मर्यादा उल्लंघन की दुष्टता अपनाते समय बरता गया था ।

यह कार्य सत्प्रयोजनों के लिए श्रमदान, साधनदान द्वारा ही बन पड़ता है । पापों का प्रयश्चित न किया जाय तो वे चुभे हुए काँटे की तरह दर्द करते रहते हैं और आधि-व्याधि के विविध-विधि संकट उत्पन्न करते रहते हैं । सत्प्रयोजनों में मन लगने ही नहीं देते । आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में चट्टान बनकर अड़े रहते हैं । रंगाई से पहले धुलाई करनी पड़ती है । बोने से पहले जोतना पड़ता है । ठीक इसी प्रकार तीर्थ सेवन में सन्निहित आत्मिक प्रगति की भावना को चरितार्थ करने के लिए परिशोधन तप आवश्यक माना गया है । तीर्थों में जाकर पापों से मुक्ति पाने का तरीका स्नान, दर्शन भर नहीं है वरन् प्रायश्चित परिष्कार को चरितार्थ करना भी है ।

इसके लिए क्या किया जाय ? इसका कोई सुनिश्चित विधान नहीं है । पाप कर्म का वजन और प्रायश्चित कर्ता का धैर्य साहस देखते हुए इस सन्दर्भ में कुछ कृत्य भी कराये जाते हैं, कुछ संकल्प भी करने होते हैं और कुछ पुण्य परमार्थ की उदारता भी बरतनी होती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसके लिए यह उपचार किस प्रकार हो इसका एक ही मार्ग है कि जी खोलकर अपने समस्त दुष्कृत्यों को विस्तारपूर्वक तीर्थ आत्मा के सम्मुख प्रकट कर दिया जाय। इससे मन की गाँठें खुलती हैं, दुरावजन्य मनोविकारों से त्राण मिलता है और प्रायश्चित का स्वरूप निर्धारित करना भी सम्भव होता है । शान्ति कुंज में यह सारी व्यवस्था है । पूर्ण मुण्डन न सही, बाल छंटवा कर भी उसकी प्रतीक पूजा हो जाती है । तीर्थ सेवन के अध्याय में यह एक महत्त्वपूर्ण सोपान है ।

प्रायश्चित से धुलाई और १०८ माला का जप अनुष्ठान करने की रंगाई का सम्मिश्रण वैसा ही है जैसा कि मैले-कुचैले कपड़े को धोने, रफू करने के उपरान्त रंगने, कलफ लगाने और लोहा करने के उपरान्त उसका स्वरूप ही बदल जाता है । पाँच दिन में १०८ माला का लघु अनुष्ठान करने में प्रतिदिन २२ मालायें करनी पड़ती हैं। इसमें प्राय: दो घण्टे लगते हैं । उठने के बाद ८ बजे तक यह कृत्य भी हो जाता है और दैनिक यज्ञ में भी सम्मिलित रहा जा सकता है । साधारण जप का फल कम और अनुष्ठान का विशेष माना गया है । इसमें कारण एक ही है कि अनुष्ठान एक नियत स्थान पर, नियत क्रम से, नियत व्रत पालने के साथ करने होते हैं, जब कि साधारण जप में संख्या पूरी कर लेने भर से ही काम चल जाता है । विशेष संरक्षण, परिमार्जन, मार्गदर्शन एवं वातावरण सान्निध्य में की गई साधनाएँ सोने में सुगन्ध जैसा सुयोग बनाती हैं । इस प्रकार की साधना अधिक न सही थोड़ी भी बन पड़े तो साथ में महत्त्वपूर्ण तथ्य विनियोगों के जुड़ जाने से उसका प्रभाव भी उसी अनुपात से अधिक होता है।

तीर्थयात्रा की गरिमा को समझने वाले वहाँ कुछ समय उद्देश्य की पूर्ति के लिए ठहरते भी हैं । पर्यटकों जैसी कबड्डी नहीं खेलते और भगदड़ नहीं मचाते । जो पाँच दिन तीर्थ सेवन सत्र में शान्तिकुंज रुकें, उन्हें यह भी मानकर चलना चाहिए कि प्रायश्चित एवं अनुष्ठान की संयुक्त विधि को ही अपनायेंगे । परम्परा के इस प्रतिपालन में अनावश्यक समय न लगे, अत्यधिक श्रम न पड़े और पर्यटन के मनोरंजन के लिए भी पर्याप्त समय बच सके, इसके लिए पहले ही समुचित ध्यान रखा गया है और सन्तुलन ठीक बिठा लिया गया है । प्रात: चार बजे उठने की घंटी बजती है । शौच-स्नान के उपरान्त जप अनुष्ठान और प्रायश्चित विधान से आठ बजे तक पूर्ण निवृत्ति मिल जाती है । डेढ़ घण्टे प्रवचन सत्संग में सम्मिलित रहने और एक घण्टा भोजन से निवृत्त होने में लगता है । इस प्रकार साढ़े दस ग्यारह बजे तक आश्रम व्यवस्था के अन्तरंग कार्य-क्रम से छुटकारा मिल जाता है। इसके उपरान्त सायंकाल के पाँच छ: बजे तक परिभ्रमण के लिए पाँच-छ: घण्टे बचते हैं । इसमें एक दिन ऋषिकेश, लक्ष्मण झूला तथा दूसरे दिन हरिद्वार, कनखल के प्रमुख दर्शनीय स्थानों की दर्शन झाँकी की जा सकती है । बाजार से मोटा सामान खरीदना हो तो वह कार्य भी इसी अवधि में पूरा हो जाता है ।

सन्त-समागम, परामर्श प्रवचन का उपक्रम हर दिन दो बार चलता है एक प्रात: आठ से साढ़े नौ तक डेढ़ घण्टा। दूसरा रात्रि को कथा कीर्तन, स्लाइड प्रोजेक्टर, अभिनय प्रदर्शन आदि के माध्यम से हल्की फुल्की प्रेरणाप्रद किन्तु मनोरंजक शिक्षा ।

दोनों समय होने वाले इस संतसमागम-सत्संग में क्रमबद्ध प्रतिपादन मार्गदर्शन का पूर्ण नियोजन है । उसमें यह ध्यान रखा गया है कि यह शिक्षा आत्म-निर्माण, परिवार-निर्माण और समाज-निर्माण के तीनों तथ्यों पर प्रकाश डालने वाली आज की परिस्थितियों में व्यवहार में उतर सकने वाली हो । सिद्धान्त ऊँचे हों पर मन:स्थिति और परिस्थिति के कारण गले न उतरे—व्यवहार के साथ न जुड़े तो उस विसंगत कथा वार्ता से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । तीर्थ सेवन की अवधि में जो प्रेरणाप्रद प्रवचन दिये जाते हैं, उनमें उन्हीं तथ्यों का समावेश रहता है, जिनके आलोक में सामान्य स्तर का व्यक्ति भी शेष जीवन को सुख शान्तिमय बनाने के मार्ग पर चल पड़े । उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने मे सफल हो सके । खिन्नता को प्रसन्नता में परिवर्तित करने की चाबी हर मनुष्य के अपने हाथ में है । उसका विस्मरण हो जाने से ही लोग भटकते, टकराते और दु:ख पाते हैं । दृष्टिकोंण में थोड़ा-सा हेर-फेर कर लेने, रुझान और अभ्यास में तनिक-सी आदर्शवादिता का समावेश कर लेने भर से स्थिति कुछ से कुछ हो सकती है । रोग का निदान और उपचार सही हो तो औषधि की तनिक सी मात्रा अपना चमत्कार दिखाती है । सत्संग की महिमा असीम-गाई-बताई गई है । यह तभी सम्भव है जब वह तथ्यों पर आधारित एवं व्यवहार में उतर सकने योग्य हो। शान्ति-कुंज के तीर्थ यात्रियों को ऐसा ही उच्च स्तरीय सत्संग लाभ मिलता है । भले ही यह पाँच दिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का मिले पर रोग और निदान की सही संगति बैठने के कारण इतने से ही बहुत कुछ हो सकता है । नारद ढाई घड़ी ही कहीं ठहरते थे उनका सत्संग इतनी ही स्वल्प अवधि में पूर्ण हो जाता था । इतने पर भी ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, पार्वती, सावित्री इत्यादि न जाने कितनों को सामान्य से असामान्य बनने का उतने भर से लाभ मिल गया । प्रयत्न यही किया गया है कि इस स्वल्प अवधि में भी लोग इतना कुछ ग्रहण करके जा सकें जिसे वें अविस्मरणीय समझें और गले उतर सकने की मनःस्थिति हो तो उतने भर से कायाकल्प जैसा लाभ लेकर कृत-कृत्य बन सकें ।

सत्संग का दूसरा पक्ष है—स्वाध्याय। दोनों को मिलाने से ही पूर्णता बनती है । स्वाध्याय के आधार पर उन दिव्य विभूतियों के साथ सान्निध्य साधने का अवसर मिलता है जो सामने उपस्थित नहीं हैं । दिवंगत हो चुकी या पहुँच से परे बहुत दूर रहती हैं । महामानवों के व्यस्त जीवन में इतना अवकाश नहीं होता कि वे हर किसी को घण्टों बैठकर परामर्श देते रह सकें । उनके साथ सम्बन्ध स्थापन का—सान्निध्य सत्संग का—एक ही उपाय है—स्वाध्याय । सत्संग उनके साथ होता है जो सामने उपस्थित हों । ऐसी उपस्थिति सदा नहीं रहती । किन्तु स्वाध्याय की सुविधा कभी भी, कहीं भी उपलब्ध हो सकती है । तीर्थ सेवन सत्र में स्वाध्याय के लिए एक पुस्तिका अनिवार्य रूप से आवश्यक रखी गई है जो पाठकों के हाथ में है । दो दिन परिभ्रमण करने के अतिरिक्त तीन दिन शेष बचते हैं । इस अवधि में मध्यान्होपरान्त इस स्वाध्याय में निरत रहा जा सकता है । यह कार्य मात्र सरसरी नजर से पुस्तक के पन्ने पलट लेने भर से नहीं बनेगा वरन् साथ ही जो पकाया खाया है उसे हजम करने के लिए साथ-साथ मनन-चिन्तन भी चलाना होगा । स्वाध्याय के लिए लिखी गई जीवनदर्शन पुस्तक के हर पृष्ठ को यह विचारते हुए पढ़ना होगा कि प्रतिपादनों का कितना अंश किस प्रकार व्यवहार में उतारना अपने लिए शक्य सम्भव हो सकता है। यही मनन-चिन्तन है । स्वाध्याय भोजन है और मनन-चिन्तन उसका पाचन । यही प्रक्रिया तीर्थ सेवन सत्र के शिक्षार्थी तीन दिन अपनाते हैं । साथियों को पढ़कर सुनाते हैं और उन्हें भी उस दिशा में कुछ कदम उठाने के लिए सहमत करते हैं । इस प्रकार अपने लिए स्वाध्याय और साथियों के लिए सत्संग का दुहरा लाभ मिलता रहता है । यह दो ढाई घण्टे का ज्ञान यज्ञ भी सभी शिविरार्थी अपने-अपने निवास गृह में चलाते हैं । साथ ही यह प्रयत्न करते हैं कि वापिस लौटने पर दृष्टिकोण और व्यवहार में कुछ उपयोगी परिवर्तन करने की दिशा में कोई निश्चित प्रकाश एवं कार्यक्रम साथ लेकर चलें । उस आधार पर तीर्थयात्रा का सच्चा और चिरस्थायी लाभ उपलब्ध करें ।

तीर्थ सेवन का चौथा लाभ है—"संस्कार धारण ।" "षोडश संस्कार की गरिमा-महिमा से भारतीय संस्कृति को पूरी तरह अनुप्राणित समझा जा सकता है । जन्म से पशुस्तर का उत्पन्न होने और संस्कारों के आधार पर मानवी गरिमा से युक्त होने का शास्त्र प्रतिपादन अनेकों धर्मग्रन्थों में भरा पड़ा है । इसका प्रचलन भी है, परन्तु होती लकीर पीटने जैसी चिह्न पूजा भर है । उस कृत्य में वह प्राण प्रवाह अब संयुक्त रहता दीखता नहीं, जिसके आधार पर व्यक्ति को सुसंस्कारी बनाने की दिशा में कुछ कहने लायक प्रगति एवं उपलब्धि हस्तगत हो सके । यदि उस अध्यात्म विज्ञान सम्मत प्रक्रिया को सही ढंग से सम्पन्न किया जा सके तो कोई कारण नहीं कि प्राचीन काल जैसा वह प्रतिफल न मिल सके, जिसमें इस विधान को अपनाने वाले नर-वानर से उठकर नर-नारायण बनने की दिशा में तेजी से अग्रसर होते थे ।

बच्चों के पुंसवन, नामकरण, अन्न प्राशन, मुंडन, विद्यारम्भ, उपनयन संस्कार तीर्थ वातावरण में निष्णात कर्मकाण्डी धर्म-शास्त्रियों द्वारा शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न किये जाने पर उसका समुचित लाभ भी मिलता है । बच्चों की प्रतिभा और सुसंस्कारता बढ़ती है । चेचक आदि के टीके लगाने पर बालकों की सुरक्षा वाली बात जिस प्रकार सोची जाती है उससे भी अधिक वजनदार तथ्य यह है कि सही माध्यम से बालकों के संस्कार कपाने पर उन्हें संचित कुसंस्कारों से छुटकारा पाने तथा उत्कृष्टता के बीजाणुओं का बीजारोपण, अभिवर्द्धन का अवसर भी मिलता है । सर्वविदित है कि संस्कार प्रक्रिया का निर्धारण शिक्षा, प्रेरणा के अतिरिक्त दिव्य उदार अनुदान जैसे कितने ही महत्त्वपूर्ण तथ्यों का समन्वय करते हुए त्रिकालदर्शी ऋषियों ने किया है । उसकी सार्थकता अभी भी उस प्राण प्रयोजन को सही रूप में कर सकने वाले अनुभव कर सकते हैं ।

बड़ी आयु वालों के लिए मन्त्र-दीक्षा, यज्ञोपवीत, जन्मदिवसोत्सव विवाहदिवसोत्सव, विवाह, वानप्रस्थ जैसे संस्कारों का विधान है । तीर्थसेवन सत्र में इनमें से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनकी आवश्यकता समझी जाय उन्हें सम्पन्न कराया जा सकता है । प्रयोजन की सभी आवश्यक सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं । विवाह के उपरान्त प्रज्ञा परिवार के वरबधू सुखी गृहस्थ जीवन का आशीर्वाद प्राप्त करने आते हैं । बद्रीनाथ आदि उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा पर निकलने वाले भी सुरक्षा सफलता का आशीर्वाद पाने आते हैं । यह सभी कृत्य आए दिन विधिवत होते रहते हैं । इसके अतिरिक्त उपर्युक्त अन्य संस्कार भी इच्छा व्यक्त करने पर ठीक तरह करा दिये जाते हैं । अच्छा हो प्रज्ञा परिवार के सभी विवाह शादी गायत्री तीर्थ में ही कराए जायें । इससे जन्म पत्री मिलान, मुहूर्त कण्टक, मेगली कुण्डली, गृह-विपर्यस आदि के सभी अनिष्ट टलते हैं । वहाँ धूम-धाम से प्रदर्शन में, जमघट में, बरात-दावत में होने वाले कमर-तोड़ खर्च से भी सहज छुटकारा मिलता है ।

आदर्श का निर्वाह, दैवी वरदान, खर्च और सिर दर्द की बचत का जैसा सुयोग इस गायत्री तीर्थ में विवाह कराने से होता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । बसंत पर्व, शिवरात्रि, रामनवमी, अक्षय तृतीया, गायत्री जयन्ती, गुरुपूर्णिमा, जन्माष्टमी, विजयदशमी, देवोत्थान एकादशी, गीता जयन्ती तथा हर महीने की पूर्णिमा शान्ति कुंज में विवाह कराने के घोषित मुहूर्त हैं । इनमें सालग देखने एवं पंचाग परामर्श की आवश्यकता नहीं पड़ती जिन्हें जब सुविधा हो विवाहों की तिथि निश्चित करा सकते हैं । स्मरण रहे अभिभावकों की अनुमति एवं उपस्थिति में ही यहाँ विवाह होने की व्यवस्था है । प्रेमविवाहों के लिए यहाँ प्रबन्ध नहीं है ।

ढलती आयु में वानप्रस्थ का व्रतशील जीवन जीने के लिए संस्कार कराने की पुरातन परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है । इससे व्यक्ति संयमी, परिष्कृत, समर्थ, दीर्घजीवी एवं लोकसेवी बनता है । इसी आधार पर प्राचीन काल में उच्च स्तरीय लोक सेवियों का बाहुल्य रहा है और मनुष्य में देवत्व उभरने—धरती पर स्वर्ग उतरने जैसा वातावरण बनता रहा है । अच्छा हो तीर्थ यात्रा के साथ-साथ जो लोग इस स्थिति में हों, वानप्रस्थ में प्रवेश करने का संस्कार भी करालें ।

अन्तिम संस्कार अन्त्येष्टि है । वह तो जहाँ स्वर्गवास होता है वहीं करना पड़ता है । पर श्राद्ध-तर्पण का कृत्य ऐसा है जो मृत्यु की तिथि में, पितृ पक्ष में अथवा जब सुविधा हो तब कराया जा सकता है । तीर्थयात्री आमतौर से इस कृत्य को भी सम्पन्न कर लेते हैं । पूर्वजों को पिण्डदान देने की-तर्पण से तृप्त करने की परम्परा है । तीर्थस्थानों में उसका महत्त्व और भी अधिक माना जाता है । गया की तरह हरिद्वार, मथुरा, आदि भी इस सप्रयोजन के लिए पुण्य स्थान माने गये हैं । तीर्थ सेवन सत्र के साथ आगन्तुक चाहें तो इस प्रयोजन की पूर्ति भी करा सकते हैं । दिवंगत आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलियाँ अर्पित करने से अपना चित्त तो कृतज्ञता और सद्भावना से भरता ही है, स्वर्गस्थ प्रियजनों को उससे सन्तोष मिलने की बात भी कपोल कल्पित नहीं है ।

व्यक्तिगत समस्याओं के व्यक्तिगत समाधान की दृष्टि से भी इस अवसर पर आवश्यक परामर्श मार्ग-दर्शन प्राप्त करने की यहाँ सुविधा है । मात्र इन्हीं प्रयोजनों के लिए अनेकों प्रज्ञा परिजन समय-समय पर शान्तिकुंज आते रहते हैं । अच्छा हो वे साथ-साथ पाँच दिवसीय तीर्थ सेवन सत्र भी सम्पन्न कर लें । जब किराया भाड़ा खर्च हुआ ही है तो थोड़े समय की भी उसमें अभिवृद्धि करके दुहरा लाभ उठाया जा सकता है । पर्यटन की दृष्टि से निकला गया हो तो भी अधिक संख्या में अनेक स्थान-देवालय देखने के लिए घुड़दौड़ लगाने की अपेक्षा यह कहीं बुद्धिमतापूर्ण है कि समय की कमी होने पर भले ही दर्शन झाँकी में कुछ कमी कर ली जाय पर जो किया जाय उसे सार्थक और समग्र स्तर का किया जाय । इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए शान्तिकुंज के पाँच दिवसीय तीर्थ सत्रों को संक्षिप्त किन्तु सार्थक सारगर्भित समझा जा सकता है ।

तीर्थ प्रेरणा का अधिग्रहण

प्रज्ञा परिजनों का आत्मचिन्तन, दुनियादार लोगों से भिन्न प्रकार का होना चाहिए । इन दिनों की विचारणा और कार्य पद्धति विचित्र है । सम्पन्नता, सुविधा का पिछले दिनों उत्साहवर्धक विस्तार हुआ है । किन्तु साथ ही मानवी गरिमा को बनाए रहने के लिए जिस दृष्टिकोण को अपनाना आवश्यक है, उसमें भारी गिरावट आई है । लोग "मतलब से मतलब" रखते हैं । आपाधापी के अतिरिक्त और कुछ सूझता नहीं । संकीर्ण स्वार्थपरता की पूर्ति ही एक प्रकार से लक्ष्य बनकर रह गई है । वासना, तृष्णा और अहंता की पूर्ति में ही सारा समय, श्रम और मनोयोग खप जाता है । मानवी गरिमा को बनाए रहने के लिए चिन्तन में उत्कृष्टता और चरित्र में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदर्शवादिता का समावेश अपरिहार्य है । इसके लिए सर्वतोमुखी संयम बरतना और उदात्त दृष्टिकोण अपनाना होता है । वह न बन पड़े तो उपलब्ध प्रतिभा और सम्पदा का उपयोग हेय प्रयोजनों के लिए ही बन पड़ेगा । पानी स्वभावत: नीचे की ओर बहता है । संचित कुसंस्कारिता और प्रचलन में समाविष्ट निकृष्टता का दबाव मनुष्य को नीचे की ओर ही गिराता है । ऊँचा उठने के लिए जिस भाव से भरे वातावरण और प्रयास की आवश्यकता पड़ती है, उसका दुर्भिक्ष पड़ जाने से स्थिति एक प्रकार से दुर्भाग्यपूर्ण बन जाती है । उठे हुए ही दूसरों को उठा सकते हैं । जो गिर रहे हैं उनकी पकड़ तो गिरने की दिशा में ही धकेलती है । यही है आज के वातावरण का संक्षिप्त परिचय । निजी प्रखरता न उभरे और संव्यापत प्रदूषण का दबाव न घटे तो समझना चाहिए—सामान्य मनोबल के व्यक्ति का प्रवाह पतनोन्मुख ही बना रहेगा लोगों का दृष्टिकोण और जीवन-यापन यदि अपना भी मार्गदर्शन करे तो फिर समझना चाहिए कि निकृष्टता ही लक्ष्य रहेगी और अनर्थ एवं अपराधों जैसी विडंबना ही पल्ले पड़ेगी ।

प्रज्ञा परिजनों का चिन्तन कैसा हो ?

प्रज्ञा परिजनों की मौलिक विशेषता यह होनी चाहिए कि वे दूसरों से प्रभावित न हों, प्रथा प्रचलन को महत्त्व न दें और अपने दृष्टिकोण का, क्रिया-कलाप का निर्धारण आदर्शवादिता का समावेश करते हुए स्वतन्त्र रूप से करें । इसके लिए अन्तरात्मा और परमात्मा का परामर्श ही पर्याप्त मानना होगा । लोगों को प्रभावित करना है, उनसे प्रभावित नहीं होना है । प्रज्ञा परिजनों में इतना मनोबल तो उभरना ही चाहिए ।

नवयुग का अवतरण एक सुनिश्चित सचाई है । सृष्टा ने अपनी परमप्रिय कलाकृति इस धरित्री को सुन्दर समुन्नत बनाए रखने की जिम्मेदारी अपने वरिष्ठ पुत्र—युवराज मनुष्य को सौंपी है । वह यदि कर्त्तव्यच्युत, अनीतिरत होकर अनर्थ का मार्ग अपनाता है, तो निश्चय ही विनाश की विभीषिकाऐं खड़ी होंगी ।

लोग दु:ख-दारिद्रय से ग्रसित होते, पतन-पराभव जन्य अनेकानेक यातनाऐं सहते हैं । सामूहिक सर्वनाश भी प्रस्तुत होता है । 'दुर्मति और अनीति अपनाने में बुद्धिमता समझने वाले अपना और अन्यायों का भविष्य अन्धकारमय बनाते हैं । ऐसी दशा में असन्तुलन को सन्तुलन में बदलने का कार्य भगवान को स्वयं अपने हाथ में लेना पड़ता है ।

शासन तन्त्र असफल रहने पर राष्ट्रपति शासन लागू होता है । मनुष्य जब अपनी वरिष्ठता गंवा कर निकृष्टता अपनाते और कुमार्ग पर चलते हुए विग्रह खड़े करते हैं तो स्वभावत: विश्व संकट उभरते हैं । जब माचिस का खेल खेलकर भयानक आग भड़का देने वाले बच्चे उसे बुझा पाने में सफल नहीं होते तो फायर बिगेड वाला दस्ता ही उस पर काबू पाता है । मनुष्य दुष्प्रवृत्ति अपना कर संकट खड़े करने जैसा माचिस वाला खेल, खेल सकता है । पर, आग बेकाबू हो जाने पर नियन्ता की अवतरण प्रक्रिया ही काम करती है । उसी के मार्गदर्शन एवं विधान को अपना कर जागृत आत्माऐं अधर्म का नाश और धर्म के पुन: संस्थापन में अपनी कामना नियोजित करती और निराकार की आकांक्षा को अपने साकार पौरुष द्वारा पूर्ण करती हैं । प्रज्ञा अभियान सृष्टा की इसी सन्तुलन व्यवस्था का नाम है । उस आकार रहित सूक्ष्म प्रक्रिया को साकार रूप देने की जिम्मेदारी सदा से मूर्धन्य जागृत आत्माओं के कन्धों पर आती रही है । इस बार भी वही हो रहा है । प्रज्ञावतार की युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने में सृजन शिल्पी जुटे हैं । उन्हीं के तीन वर्ग हैं—विशिष्ट प्रज्ञापुंज, वरिष्ट प्रज्ञापुत्र और कनिष्ठ प्रज्ञापरिजन । घर परिवार में भी छोटे-बड़े होते हैं पर उनकी गरिमा, सम्पदा और जिम्मेदारी तो संयुक्त ही रहती है ।

प्रज्ञापरिवार के उपर्युक्त तीनों सदस्य किसी सुनिश्चित विभाजन रेखा के आधार पर बंटे नहीं हैं । जो घर परिवार तक सीमित हैं वे छावनी में ट्रेनिंग पाने वाले प्रज्ञा परिजन, जो कार्यक्षेत्र को सम्भालने के लिए मोर्चे पर पहुँचते और कमान सम्भालते हैं वे जुझारू प्रज्ञापुत्र कहलाते हैं । जिन्हें रक्षा मन्त्रालय सम्भालना है और आवश्यक साधन जुटाने हैं वे प्रज्ञापुंज । इन्हें क्रमश: किशोर, प्रौढ़ और परिपक्व कहा जा सकता है । विकाशक्रम में आज के प्रज्ञापरिजनों को कल प्रज्ञापुत्र और परसों प्रज्ञापुंज होना है । इसलिए कनिष्ठता वरिष्ठता और विशिष्टता का वर्गीकरण सामयिक एवं अस्थायी है । विकाशक्रम के साथ-साथ वह सहज स्वाभाविक रूप से बदलता जाता है । इन तथ्यों की ओर इंगित इसलिए किया जा रहा है कि प्रज्ञापरिजन अपना मन छोटा न करें । सोचते यही रहें कि वर्तमान कनिष्ठता अस्थायी है, निकट भविष्य में उन्हें बन्धन शिथिल करने हैं, सीमित से असीम बनना है और इन दिनों कम कर पाने पर भी अगले दिनों बहुत कुछ कर गुजरने की स्थिति तक पहुँचना हैं । केवट,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शबरी, गिलहरी अपनी विवशता के कारण उपहासास्पद नहीं बने वरन् उन्हें भी हनुमान, अंगद जितना ही श्रेय और स्नेह उपलब्ध हुआ । आज घर-परिवार के अथवा लोभ-मोह के बन्धन जटिल हैं, इससे खिला रहने एवं कनिष्ठता पर आत्मग्लानि करने की आवश्यकता नहीं है। आशा उज्ज्वल भविष्य की ही बनाए रहनी चाहिए । बालक और किशोर सदा अगली सफलताओं के ही सपने देखते हैं । मात्र बुड्ढे ही मौत के भय से डरते-कांपते और नरक भुगतने की अन्धेरी छाया देखते हैं । हमारी मन: स्थिति किशोरों और किशोरियों जैसी होनी चाहिए जिसमें सुनहरे दिनों, रंगीली रातों के झुण्ड ही आकाश में उड़ते और आंगन में थिरकते दीखते हैं ।

कोई प्रज्ञापरिजन अपने को हेय न समझें, निराशा, निरर्थकता, असफलता की बात न सोचें । उसकी कल्पनाएँ, महत्वकांक्षाएँ महानता के साथ जुड़ें । अमीर बनने और विलास-वैभव जुटाने की मृगतृष्णा में न भटकें। जो इस मरीचिका में ललचाया उसने खोया बहुत और पाया कम है । अमीरी जिन्हें भी मिली है, बड़ी मंहगी पड़ी है । चिन्तन और चरित्र की सारी क्षमता उसी कोल्हू में पिल गई हैं । सामान्य श्रम से बड़ा आदमी बनना कठिन है । उसके लिए छद्म और अनाचार के छुरों पर धार धरनी पड़ती है । अनेक निरीहों को ठगना, सताना या गिराना पड़ता है । आत्म-प्रताड़ना, लोक भर्त्सना और ईश्वर की घोर अप्रसन्नता का जिन्हें डर नहीं ऐसे ढीठ लोग ही देव जीवन की महान सम्भावनाओं को पद दलित करके ठाट-बाट की उच्छृंखलता खरीदते हैं । दूसरों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने के लिए रची गई यह विडम्बना कितनों को किस सीमा तक बहकाने में सफल हुई यह तो ईश्वर ही जाने पर अपना तो निश्चय ही इस जंजाल की जकड़न में कचूमर निकल जाता है । इस दुर्मति को कोई प्रज्ञा परिजन न अपनाऐं । 'सादा जीवन उच्च विचार' के साथ जुड़ी हुई मानवी गरिमा अपनाऐं, औसत भारतीय स्तर का जीवन यापन अपने लिए परिपूर्ण सन्तोष का कारण होना चाहिए । रोटी, कपड़ा और मकान जैसे शरीर को जीवित रखने वाले साधन जुटते रहें तो इसमें क्या हर्ज है । कोदों खाकर भी वनवासी नीरोग, हृष्ट पुष्ट रहते, दीर्घजीवी होते और हंसती-हंसाती हलकी-फुलकी जिन्दगी जीते हैं । उस आनन्द-उल्लास भरी सरल-सस्ती रीति-नीति का परित्याग करके कृत्रिमता रचने और ठाट बाट बनाने में, उसके लिए महानता की समस्त सम्भावनाओं को समाप्त करने में किस तर्क के आधार पर बुद्धिमानी हुई ?

लोग क्या कहते और क्या करते हैं, इस पर बहुत ध्यान नहीं देना चाहिए । लोग हमारे मुँह से क्या कहलवाना चाहते हैं, उस दबाव के सामने सिर नहीं झुकाना चाहिए । गांधीजी की चौकी पर सदा विराजमान रहने वाले उस जापानी बन्दर प्रतिमा का स्मरण करना चाहिए जिसने अपने आँख, कान और मुंह को बन्द कर रखा था । उस प्रतिमा की शिक्षा यह थी—दुनियादार जो कहते हैं, जो करते हैं, जो हमारे मुंह से सुनाना चाहते हैं उसकी उपेक्षा करने में ही खैर हैं । जमाना पतन और पराभव को लक्ष्य मान कर अन्धी भेड़ों की तरह एक के पीछे चलने वाली और गहरे गर्त में गिरने वाली भेड़ों का अनुकरण कर रहा है । अपनी आँखें खुली रखी जायें । बहुमत पर आच्छादित पतन परायणता को अपनाते हुए विवेक की तिलांजलि न दी जाय । सादगी का जीवन शिरोधार्य किया जा सके—उच्छृंखल महत्त्वाकांक्षाओं पर अंकुश लगाया जा सके तो इतने भर से महानता खरीदने के लिए आवश्यक पूंजी सहज ही जुटती चली जायेगी । मुट्ठी भर साधनों से शरीर को जीवित रखे रहना पूर्णतया सम्भव है। परिवार को बढ़ाया न जाय—उनके परिपालन की जिम्मेदारी है उसे औचित्य की सीमा का ध्यान रखते हुए निभाया जाय । परिवार के सदस्यों को स्वावलम्बी सुसंस्कारी बनाना ही कर्त्तव्य है । वे शौक-मौज के जितने साधन चाहते हैं उन्हें जुटाते रहने में न औचित्य है, न कर्त्तव्य, न परिजनों का हित । उत्तराधिकार में बड़ी सी सम्पदा छोड़ मरना ऐसी मोहग्रस्तता है जिससे जकड़े रहने वाले अपने को कोल्हू में पेलते ही हैं, मुफ्त में विलास-वासना की सामग्री लादकर उनकी भी दुर्गति ही की जाती है, जिनपर प्यार करने का दिखावा किया जाता है । परिवार पालन कठिन नहीं । औचित्य की मर्यादा के अन्तर्गत रहकर वह व्यवस्था भी बड़ी सरलतापूर्वक चल सकती है । घर के सभी-वयस्क लोग श्रमशील बनें और मितव्ययी रहें तो घर खर्च में लगने वाली राशि में भारी कटौती देखते-देखते हो सकती है । ऐसा अनुशासन अपनाने में प्रत्यक्षत: कठोरता भी दीखे तो वह परिवार में इतनी सुखद है कि उस पर प्यार के ढकोसले वाला तथाकथित प्यार सहज ही न्योछावर करके फेंका जा सकता है ।

चिन्तन में सदाशयता जुड़े

प्रज्ञा परिजनों के चिन्तन में महानता उपलब्ध करने की महत्त्वाकांक्षा जुड़नी चाहिए । अमीरी के नशे का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परित्याग करना चाहिए । सर्वसाधारण की तुलना में अधिक खर्चीला अधिक ठाटबाट का उपक्रम कभी गर्व गौरव का विषय रहा होगा । पर अब उसके विरोध में भयानक वातावरण बन रहा है । संग्रही पर आए दिन लांछन बरसते हैं । ईर्ष्यालु उसे सहन नहीं कर पाते हैं घात लगाकर अपना रोष तृप्त करते हैं । इनके पीछे मनोवैज्ञानिक तथ्य भी हैं और सामाजिक नैतिक मर्यादाओं का भी परोक्ष समर्थन है । कोई कमाये कितना ही पर उसे विलास में नहीं सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन के लिए खर्च करे । इसी में प्रतिभाशाली को गौरव है । उद्धत अपव्यय का ठाट-बाट का-संरजाम जुटाना इस बात का चिह्न है कि निष्ठुरता अपनाई गई है । जो साधन अनेकों का श्रेय साधन बन सकते थे वे विलास या संग्रह में लगे तो निश्चय ही ऐसे नियोजन का संकीर्ण स्वार्थपरता एवं समाज के प्रति उपेक्षा-अबज्ञा ही समझी जायेगी । इस स्थिति में यदि आज के विचारशील, ऐसों की भर्त्सना करे—उन पर तरह-तरह के लांछन लगायें, घात चलायें तो बचाव पक्ष के पास ऐसा कोई वजनदार आधार नहीं है । जिससे उसको निर्दोष ठहराया जा सके या सहानुभूति सहायता का अधिकारी पाया जा सके ।

शादियों में अन्धाधुन्ध खर्च करने वाले अपने मुँह मियां मिट्ठू बन सकते हैं पर सड़क गलियों में निकलकर उनके सम्बन्ध में चर्चा सुनी जाय तो हजार जिह्वाओं से हजार-हजार गालियाँ निकलती सुनी जा सकती हैं । यही बात कीमती पोशाकें और आभूषणों की साज-सज्जा से लदे, दुर्व्यसनों में अन्धाधुन्ध फूंकने वालों के सम्बन्ध में भी है । वे वैभव का प्रदर्शन करके अमीरी का रोब जमाना और सम्मान पाना चाहते हैं । यह कभी सम्भव रहा होगा किन्तु आज की स्थिति तो ठीक उल्टी है, उससे अमीरी का प्रदर्शन-जन आक्रोश का कारण ही बन सकता है । इस तथ्य को जो जितनी जल्दी समझेगा वह उतना ही दूरदर्शी कहा जायेगा । सम्यवादी समाजवादी विचारधाराएँ निरन्तर यह वातावरण बनाती चली जा रही हैं कि "सामर्थ्य भर काम लिया जाय और आवश्यकता भर के लिए दिया जाय ।" प्रवाह उसी दिशा में तेजी के साथ बह रहा है । वह दिन दूर नहीं जब सम्पत्ति पर समाज का अधिकार होगा और लोग राशन पद्धति से दूसरों की तरह सीमित साधन पाने और खर्चने के अधिकारी भर रह जायेंगे । इस सम्भावना को समय रहते समझ लेना ही बुद्धिमानी है । उसके अनुरूप अपनी महत्त्वाकांक्षा और व्यय व्यवस्था को बदल ही लेना चाहिए । प्रज्ञायुग का यह सुनिश्चित निर्धारण है कि लोग उच्च विचार रखेंगे और सादगी का जीवन जियेंगे ।

उच्च विचार से तात्पर्य है—महानता की महत्त्वाकांक्षा । इसका दूसरा पक्ष लोभ और मोह के चक्रव्यूह से निकलना भी है । लिप्सा और लालसा की हथकड़ी-बेड़ी ढीली हुए बिना महानता की दिशा में कोई एक कदम भी नहीं नहीं बढ़ सकता है । जिस पर लोभ, मोह और अंहता की पूर्ति का आवेश भूत-पिशाच की तरह चढ़ रहा हो उसके लिए आदर्शवाद और अध्यात्मवाद की चर्चा करना आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ है नहीं । ज्ञान वही जो कर्म में उतरे । सिद्धान्त वही जो व्यवहार में परिणत हो सके ।

ऊपर अवांछनीयताओं से छुटकारा पाने की कुछ सैद्धान्तिक चर्चा की गई है । दृष्टिकोण में इस प्रकार का परिवर्तन हो सके तो उस मुसीबत से छुटकारा मिलेगा जो समुन्नत और सुसंस्कृत जीवन के मार्ग में चट्टान की तरह अड़ी रहती है और काल्पनिक उड़ाने उड़ते रहने की छूट भर देकर उत्कृष्टता की दिशा में कोई ठोस साहस-पराक्रम तनिक भी नहीं करने देती । सादगी, संयमशीलता, मितव्ययिता, श्रमशीलता के आधार पर सामर्थ्य का अपव्यय बचाया जा सकता है और उस संचय के बल पर उस गौरव गरिमा को खरीदा जा सकता है जो प्रज्ञा परिजन स्तर की शोभा बढ़ाती है ।

अमीरी और महानता में से एक का चुनाव करने में प्रज्ञापरिजनों को अधिक गम्भीरता और दूरदर्शिता का परिचय देना चाहिए । अमीरी दूसरों की आँखों में चकाचौंध तो पैदा करती है पर उससे अपना हर दृष्टि से अहित होता है । यह इतनी बोझिल है कि उसे ढोने और बनाए रहने में व्यामोह ग्रस्त का कचूमर ही निकल जाता है । महानता हलकी है उसे आसानी से उगाया, कमाया, संजोया और सुरक्षित रखा जा सकता है । अन्य उपलब्धियों के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है और अनुकूलता की प्रतीक्षा करनी पड़ती है किन्तु महानता के अर्जन के सम्बन्ध में ऐसा कुछ नहीं है । मात्र अपनी लिप्साओं और कुत्साओं पर नियन्त्रण करना पड़ता है । इतना भर कर लेने से अन्य समस्त कठिनाइयों का समाधान सहज ही हो जाता है अन्य उपलब्धियों के सम्बन्ध में अनिश्चितता है । हर काम की सफलता संदिग्ध रहती है । किन्तु महानता का मार्ग अपनाने में वैसा कोई अवरोध नहीं है । यदि कोई व्यवधान है तो एक ही है—संचित कुसंस्कारों की सिर पर लदी बोझिल पाषाण शिला । इसी के कारण कुमार्ग-गामियों और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदूरदर्शियों का परामर्श मानने और अनुकरण करने की दुर्बलता भी पीठ पर लद बैठती है । इस दिशा में अपना कुछ निजी निश्चय हो और उसमें आदर्शों का पुट रहे तो फिर स्थिति दूसरी ही होगी । महानता की दिशा में चलने का आरम्भ कहाँ से—चल पड़ना कैसे और लक्ष्य के सर्वोच्च शिखर तक पहुँच सकना किस प्रक्रिया को अपनाने से सम्भव हो उसकी सुनिश्चित योजना बिना दूसरों के परामर्श के स्वयं भी बनाई जा सकती है । ईमान और भगवान ही मनुष्य के सच्चे मित्र हैं, उनका परामर्श और सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाय तो जीवन को सार्थक बनाने की योजना—रूपरेखा सहज ही बन और निभ सकती है ।

अन्य पराक्रमों के छोटे-छोटे प्रतिफल मिलते हैं । सो भी सन्दिग्ध रहते हैं । पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं होता—परिस्थितियों का तालमेल न बैठे तो सही और सुयोग्य भी हारते, खीजते देखे गये हैं । किन्तु महानता का मार्ग अपनाने वालों पर यह बात लागू नहीं होती । उन्हें हाथों-हाथ प्रतिफल मिलता है । सत्साहस नकद धर्म है—उसका सत्परिणाम प्राप्त करने में न तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है और न परिस्थितियों पर निर्भर रहना पड़ता है । दृष्टिकोण बदलने और ढर्रे में घुसी हुई अवांछनीयता को उलटने का प्रथम चरण ही थोड़ा कष्टकारक है । इतनी प्रसव पीड़ा जो सहन कर सकें उन्हें फिर सौभाग्य का सौन्दर्य वान शिशु गोदी में खिलाने का—बड़े होने पर उसकी सेवा से परिपूर्ण लाभ उठाने का सुनिश्चित अवसर मिलता है । आत्मसन्तोष, लोकसम्मान और ईश्वरीय अनुग्रह यह तीन ही मानव जीवन की वास्तविक विभूतियाँ हैं । उनका मिलना सन्मार्ग पर प्रथम कदम बढ़ाते ही आरम्भ हो जाता है जितने कदम बढ़ते हैं, उतना ही अर्जन का टोकरा भरता चला जाता है ।

तीर्थ प्रेरणा के अनुदान

तीर्थ प्रेरणा के दो ही स्वरूप हैं—एक पवित्रता दूसरी प्रखरता । पापनाश और पुण्य अर्जन यही दो स्वरूप हैं । इन्हीं उपलब्धियों के लिए तीर्थ यात्रा की जाती है । गंगा प्रवाह जैसा अपना अन्तःकरण हो और हिमालय जैसा सुदृढ़, समुन्नत अपना संकल्प तो, समझना चाहिए कि पवित्रता का गंगावतरण हो चला । हिमालय है तो अनन्त जल राशि का प्रवाह चल पड़ता है । अनेकों सरिताएँ परिप्लावित होती हैं । धरातल को हरीतिमा, प्राणियों का तृप्ति और दिवंगतों को मुक्ति देने वाली गंगा हिमालय की एक छोटी सी देन है । इसके अतिरिक्त भी यमुना, अलकनन्दा, सरयू, ब्रह्मपुत्र, सतलज, झेलम, रावी, सिन्धु-आदि अगणित धाराऐं भारत की ओर बहती हैं । अन्य दिशाओं में बहने वाले सरित प्रवाह इसके अतिरिक्त हैं । यह उपक्रम दृश्य जगत तक ही सीमित नहीं है । तीर्थ यात्री यह प्रकृति-लीला देखकर वापिस लौट जाय तो समझना चाहिए कि गंगा और हिमालय का सानिध्य सतही रहा । उस क्षेत्र पर छाये हुए अदृश्य शिव की झलक झाँकी भी नहीं मिली । तीर्थ भावमय होते हैं । उनका प्रभाव अन्तराल पर होना चाहिए । तभी तो पवित्रता और प्रखरता का पुण्य लाभ मिलेगा । प्रायश्चित की कष्ट सहन प्रक्रिया में पवित्रता अर्जन में जो आरम्भिक कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें साहसपूर्वक सहन करने का निर्धारण है । अनुष्ठान से प्रखरता निखारी जाती है । सन्मार्ग पर एकाकी चल पड़ने का संकल्प और साहस उभारा जाता है । तीर्थ तत्व का सीधा सम्बन्ध अन्तराल में अभीष्ट हलचल उत्पन्न करना और महान परिवर्तन का आधार खड़ा करना है । उसकी उपेक्षा होती रहे तो इतना ही समझा जायेगा कि सांस्कृतिक स्मारकों को आँखों देखने और पर्यटन का मनोरंजन उपलब्ध करने जितना ही कुछ उथला सा हस्तगत हुआ । समय और खर्च की तुलना में इतना सा लाभ कुल मिलाकर मंहगा ही पड़ता है और घाटे का सौदा सिद्ध होता है ।

शान्ति कुंज के तीर्थ सेवन सत्र में सम्मिलित होने वालों को तथ्यानुयायी होना चाहिए । उन्हें गंगा में पवित्रता और हिमालय से प्रखरता की प्रेरणा लेकर उस महानता का आश्रय लेना चाहिए जिसे अध्यात्म की भाषा में श्रेय या शिव कहते हैं । महानता की ओर मुँह मोड़ने और कदम बढ़ाने की उमंग का उठना ही तीर्थ का पुण्यफल है । जिन्हें ऐसा कुछ हाथ लगे, समझना चाहिए उन्हीं का तीर्थ सेवन सफल सार्थक हुआ । महानता ही है जिसकी परिणति-स्वर्ग और मुक्ति के रूप में होती है । उसी को अपनाने वाले सिद्ध पुरुष महामानव कहलाते हैं । तृप्ति, तुष्टि और शान्ति के त्रिविध उपहार इसी मार्ग पर चलने वालों को मिलते हैं ।

यदि रात्रि का अन्धकार हटे और ऊषाकाल उभरे तो समझना चाहिए कि महानता के अलोक से भरे पूरे दिनकर का उदय उद्भव सुनिश्चित हो गया । ऐसी दशा में अमीरी की लिप्सा का पलायन होते देखा जायेगा । साथ ही उसके चरण सेवक लोभ, मोह और अहंकार को भी बिस्तर समेटते देखा जायेगा । यह गन्दगी को बुहारना हुआ । अध्यात्म की भाषा में इसी को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिशोधन-परिमार्जन कहते हैं । इसी का दूसरा पक्ष है परिष्कार । अभिनव निर्णय के रूप निर्माण के रूप में इसी उत्कृष्टता को उभरते कार्यान्वित होते देखा जाता है, इस सन्दर्भ में क्या करना होगा ? यह सोचने के साथ ही यह समझना होगा कि कृषि व्यवस्था या शिक्षा चिकित्सा आदि किसी भी निर्माण उपार्जन के लिए आवश्यक साधन सामग्री की आवश्यकता पड़ती है । सर्वप्रथम इसी पूँजी को जुटाने की आवश्यकता पड़ेगी, प्रबन्ध इसी का किया जाना है ।

ऐसा ही प्रबन्ध महानता उपार्जन के लिए करना होगा । यह शक्ति सामग्री कहीं बाहर से एकत्रित करनें की आवश्यकता नहीं है । वह प्रचुर परिमाण में नियन्ता ने मनुष्य को आरम्भ से ही प्रदान की है उस सत्ता का ढाँचा समग्र है । पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति हुई है । चिनगारी में दावानल के सभी गुण मौजूद हैं । बिन्दु का विश्लेषण करने पर उसमें सिन्धु की सभी विशेषताऐं बीज रूप में सन्निहित पाई जाती हैं । मनुष्य भी अपने सृजेता की तरह महान है । उसकी सत्ता को छूंछ नहीं समझा जाना चाहिए वरन् यह विश्वास करना चाहिए कि परमात्मा की समस्त विभूतियाँ आत्मा में बीजरूप से विद्यमान हैं । उन्हें उभारा जा सके तो नर वानर का महामानव, ऋषिकल्प, देवात्मा, अग्रदूत, अवतार पद प्राप्त कर सकना सुनिश्चित रूप से सम्भव है । इस वैभव का मनुष्य मूर्खतावश अपव्यय करता रहता है । कमाया कुछ न जाय और अपव्यय जारी रखा जाय तो दिवाला पिटना स्वाभाविक है । दुर्गति का प्रधान कारण यह अपव्यय ही है । इसे रोका जा सके तो बरसाती नाले भी बांध बन्धने पर विशाल जलाशय बनते और सुविस्तृत क्षेत्र को सींचते रहते हैं । जब कि रोकथाम न होने पर नाले की वह जल सम्पदा निरर्थक ही नहीं चली जाती वरन् कभी अतिरेक होने पर समीपवर्ती क्षेत्रों को डुबो देने वाली बाढ़ बनकर विपत्ति तक सिद्ध होती है । उपार्जन उतना कठिन नहीं है जितना अपव्यय को रोकना । किसी की समझदारी परखनी हो तो उसकी कमाई को देख कर नहीं, खर्च का क्रम देखकर यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि मूर्खता और बुद्धिमत्ता में से यहाँ किसकी प्रमुखता है । चोर, उचक्के, जुआरी और भाग्य के सिकन्दर भी सम्पन्न देखे जा सकते हैं किन्तु खर्च करने में समझदारी और दूरदर्शिता का समावेश होने पर ही श्रेयस्कर सदुपयोग बन पड़ता है । अन्यथा वह वैभव उल्टा पतन पराभव का कारण बनता है ।

विभूति अर्जन की कुंजी : संयम

भगवान अदृश्य हैं इसलिए उसने निराकार आत्मा को उसी स्तर की कुछ विभूतियाँ प्रदान की हैं । उनका अपव्यय रोका ज़ा सके और उस बचत को सत्प्रयोजनों में लगाया जा सके तो समझना चाहिए कि उच्चस्तरीय सफलताऐं प्राप्त करने का सुयोग हस्तगत हो गया । (१) चिन्तन, (२) समय, (३) श्रम—यह तीन अनुदान ईश्वर प्रदत्त हैं । चौथा है धन-साधन, जिसे उपर्युक्त तीन विभूतियों के फलस्वरूप मनुष्य स्वयं उपार्जित करता है । कुल मिलाकर वैभव समेत चार सम्पदाएँ मानवी सत्ता के साथ जुड़ी हुई हैं । इनका उपयोग जिस भी भले बुरे काम में किया जाता है उसी दिशा में प्रगति होने लगती है । इस तथ्य को समझा जा सके तो फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचने में भी कठिनाई न पड़ेगी कि महानता खरीदने के लिए जिस पूँजी की—साधन-सामिग्री की—आवश्यकता है उसे जुटाने के लिए केवल इतना भर करने से काम चल जायेगा कि इनका अपव्यय रोका जाय और उस बचत संचय को सदुद्देश्यों की पूर्ति के लिए नियोजित कर दिया जाय । अध्यात्म की भाषा में इसी को संयम या जप कहते हैं । तप की शक्ति का, सिद्धि का, शास्त्रों और आप्तजनों ने विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । उसे सर्वथा सार्थक, तात्विक और सुनिश्चित ही समझना चाहिए ।

१— विचार परोक्ष और कर्म प्रत्यक्ष है । विचार को बीज और कर्म को वृक्ष माना गया है । सर्वप्रथम किसी प्रयोजन के विचार ही मन में उठते हैं । बुद्धि उनको चरितार्थ करने का उपाय खोजती है और शरीर तदनुसार कर्म करना आरम्भ कर देता है । चिन्तन की परिणति चरित्र में होती है । इसलिए विचार को भी एक शक्ति माना गया है । हमें अपने विचारों पर नियन्त्रण रखना चाहिए । अशुद्ध-चिन्तन को फटकने नहीं देना चाहिए । संचित कुसंस्कारों और गर्हित प्रचलनों के प्रभाव से यदि कुविचार मन में उठें तो उन्हें काटने के लिए सद्विचारों की सेना पहले से ही प्रशिक्षित एवं शस्त्रसज्जित रखनी चाहिए । कांटे को कांटे से निकाला जाता है और विष को विष से मारते हैं । निराशा, चिन्ता, भय, आशंका, उत्तेजना, ईर्ष्या, कामुकता, अनीति जैसी अशुभ विचारणाएँ आमतौर से अनगढ़ मस्तिष्कों में उठती रहती हैं । उन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कल्पनाओं में उलझे रहने पर चेतना उन्हीं से अभ्यस्त हो जाती है । फलतः मस्तिष्क को शरीर के क्रिया-कलाप उसी दिशा में बहने लगते हैं । जीवन को पतन-पराभव के गर्त में धकेलने लगी यही प्रक्रिया है । इससे बचने का एक ही उपाय है कि चिन्तन तन्त्र को सृजन और सौजन्य को चरितार्थ करने की कल्पनाएँ करते—योजना बनाते रहने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए । स्वाध्याय, सत्संग और चिन्तन-मनन से जो सिद्धान्त उपेक्षणीय समझे गये, उन्हीं में निमग्न रहने उन्हीं को कार्यान्वित करने की समस्या का समाधान खोजने में लगाने का प्रयत्न करना चाहिए । मनः संस्थान अभ्यस्थ प्रवाह में बहने का आक्षी होता है । बहुत समय से अचिन्त्य चिंतन अपनाए रहने का अभ्यास है तो वह तन्त्र अनायास ही उन्हीं के ताने-बाने बुनेगा । यदि प्रवाह उलटने में आरम्भिक साहस का परिचय दिया जा सके और हठ पूर्वक उत्कृष्ट चिन्तन के लिए तन्त्र को बाधित किया जा सके तो कुछ ही समय में मनः संस्थान सद्विचारों का अभ्यस्त हो जायेगा, फिर उसके सामने कुविचारों की दाल न गलेगी । निषेधात्मक चिन्तन को उलटकर सृजनात्मक चिन्तन अपनाने का अभ्यास डाला जा सके तो उसकी परिणति आश्चर्यजनक होगी । समूचे जीवन की दिशाधारा बदल जायगी । लोग समझते भर यह हैं कि परिस्थितियाँ मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण होती हैं किन्तु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है । सच्चाई यह है कि मनःस्थिति ही परिस्थितियों का निर्माण करती है । इसी आधार पर मनुष्य को अपने भाग्य का निर्माता—अपनी दुनिया का स्वतन्त्र सृजेता—माना गया है । प्रथम संयम यही है ।

तप साधना की दृष्टि से मनोनिग्रह का प्रथम स्थान है । अनेकों ध्यान-धारणाऐं इसी प्रयास में सफलता प्राप्त कराने वाले प्रयोगों के लिए की जाती हैं । हमें हर घड़ी अपनी चिन्तन चेतना का पर्यवेक्षण करते रहना चाहिए और उस क्षेत्र से गन्दगी हटाने तथा सत्यं, शिवं, सुन्दरं की शोभा-सुषमा प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । यह सतर्कता थोड़े दिन बरतने से काम चल जाता है और फिर विचारणा को शालीनता के साथ जोड़ते हुए महान व्यक्तित्व का निर्माण—निर्धारण कुछ कठिन नहीं रह जाता ।

२—समय ईश्वर प्रदत्त धन वैभव है । उसे जिस कार्य में भी नियोजित किया जाय उसी स्तर की सफलताऐं हस्तगत होने लगती हैं । महामानवों ने समय का मूल्य समझा है । उसका क्षण भी निरर्थक जाने नहीं दिया है । आलस्य-प्रमाद, ढीलपोल, लापरवाही में ढेरों समय बर्बाद होता रहता है । दिनचर्या न बनाने से कामों की क्रमबद्धता नहीं रहती । अन्यमनस्क रहने से काम आधे-अधूरे छूटते रहते हैं । मन्दगति से काम करने पर समय तो उतना ही लग जाता है पर उसकी परिणति नगण्य जितनी होती है । आद्य शंकराचार्य मात्र बत्तीस वर्ष जिए, विवेकानन्द को छत्तीस वर्ष जितनी नगण्य आयु मिली पर उनने समय के एक-एक क्षण को निर्धारित लक्ष्य के निमित्त पूरे मनोयोग और शरीर-श्रम के साथ नियोजित रखा और इतना कुछ कर सके जैसा कि सैकड़ों वर्ष जीवित रहकर भी नहीं किया जा सकता । कहते हैं रावण ने 'काल' को शैय्या की पाटी से बाँध रखा था और उसी पर दबाव देकर अपनी मनोकामनाएँ पूरी कराने—सफलताऐं दिलाने का लाभ लेता रहता था । इस अलंकार कथन का तात्पर्य इतना ही है कि वह समय का मूल्य समझता था और उसमें तत्परता, तन्मयता के साथ कार्यरत रहकर अभीष्ट सफलताएँ अर्जित करता था । यह तथ्य हर विवेकवान के लिए समझने और अपनाने योग्य है कि वह समय सम्पदा का एक कण भी आलस्य-प्रमाद की अस्त-व्यस्तता में अथवा दुष्प्रवृत्तियों में निरत रहकर इस सौभाग्य उपहार का तिरस्कार न करे । रात को सोते समय अगले दिन उठने से लेकर सोने तक के घण्टों की दिनचर्या बना लेनी चाहिए और जब तक कोई अपवाद कारण खड़ा न हो उस निर्धारण को तत्परतापूर्वक कार्यान्वित करने में निरत रहना चाहिए । स्मरण रहे समूचा मनोयोग और श्रम पुरुषार्थ खपा देने पर काम की मात्रा और उत्कृष्टता में आश्चर्यजनक वृद्धि होती है जबकि उदासी उपेक्षा की मनःस्थिति और अनखआलस की शिथिलता अपनाने पर काम का स्वरूप, स्तर एवं अनुपात अत्याधिक गिर जाता है ।

महामानवों में से प्रत्येक ने अपने समय का मूल्य समझा और सम्मान किया है । सम्मान का तात्पर्य है सदुपयोग । जो इस विनियोग को कर सका वह धन्य बनकर रहा । जिसने इस सन्दर्भ में जितनी उपेक्षा बरती वह उतना ही अभावग्रस्त रहा, पिछड़ेपन की भर्त्सना सहता रहा । भौतिक और आत्मिक दोनों ही स्तर की प्रगति यह अपेक्षा करती है कि समय के साथ श्रम और मनोयोग का समुचित नियोजन किया जाय । एक क्षण को भी अस्त-व्यस्तता में बर्बाद न होने दिया जाय । जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन 'साधना' के इस आधारभूत सिद्धान्त को अपनाऐ रहेंगे वे अभीष्ट दिशा में आश्चर्यजनक प्रगति कर सकने में सफल होंगे भले ही उनकी योग्यता कम—व्यवस्था स्वल्प एवं परिस्थिति प्रतिकूल ही क्यों न रही हो । लिंकन, वाशिंगटन जैसे महान् व्यक्तित्व इस तथ्य के साक्षी हैं । सहज साधन उपलब्ध न होने पर भी मनुष्य अपने पराक्रम पुरुषार्थ के सहारे से कहीं-कहीं जा पहुँचता है । पराक्रम का अर्थ इतना ही है—अपने श्रम और मनोयोग को पूरी तरह निर्धारित समय-सारणी के अनुसार प्रयत्नरत रखे रहना ।

३— तीसरी शक्ति इन्द्रिय जन्य है । ज्ञानेन्द्रियों के सहारे ज्ञानक्षेत्र को और कर्मेन्द्रियों के सहारे कर्म क्षेत्र को सम्भाला संजोया जाता है । धड़ तो एक प्रकार से इंजन, वायलर, जनरेटर है । वहाँ तो उत्पादन भर चलता रहता है । पुरुषार्थ के क्षेत्र इन्द्रियों के माध्यम से गतिशील रहते हैं । ज्ञानेन्द्रियाँ संसार के साथ तालमेल बिठाती और मस्तिष्क को यह अवसर प्रदान करती हैं कि किसी निर्णय पर पहुँचे और निर्देश करें । आँख, कान, जीभ, नासिका और जननेन्द्रियों को ज्ञानेन्द्रिय तथा पैरों को कर्मेन्द्रिय कहते हैं । कर्मेन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों के आधीन हैं । उन्हें जो निर्देश मिलता है स्वामिभक्त सेवक की तरह बिना ननु नच किए तत्काल कार्यरत रहती हैं । महत्त्व ज्ञानेन्द्रियों का ही है । इन पाँच में जीभ और जननेन्द्रिय मुख्य हैं । इनके पथ-भ्रष्ट होने पर चटोरेपन और कामुकता में अतिवाद घुस पड़ता है । फलत: शक्ति भण्डार के अवांछनीय अपव्यय का दुष्परिणाम आधि-व्याधियों के रूप में भुगतना पड़ता है । शारीरिक दुर्बलता और रुग्णता जीभ के चटोरेपन की देन है और मानसिक अस्त-व्यस्तता का प्रमुख कारण कामुकता का चिन्तन और अमर्यादित यौनाचार है । यों अन्य इन्द्रियाँ भी जब मर्यादाओं का उल्लंघन करती हैं तो अपने ढंग के संकट उत्पन्न करती हैं । पर उनके द्वारा उत्पन्न किए जाने वाले विग्रह प्राय: उतने चिन्ताजनक नहीं होते जितने कि रसना और कामुकता द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं ।

मिर्च-मसाले, शक्कर-चिकनाई आदि के द्वारा उत्तेजक बनाए गये खाद्य, चटोरी आदत वाली जीभ द्वारा स्वाद-स्वाद में अनावश्यक मात्रा में उदरस्थ किए जाते हैं । भूनने, तलने और उत्तेजक द्रव्यों के मिलाने से आहार गरिष्ट और पोषण रहित बन जाता है । इसे ठूंसते रहने पर पेट की स्वाभाविक पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है । फलत: थोड़ा भोजन भी ठीक तरह नहीं पचता । अपच से सड़न उत्पन्न होती है । इसे गैस बनना या विष बढ़ना कहते हैं । समस्त रोगों का उद्भव इसी केन्द्र से होता है । सृष्टि के अन्य सभी प्राणी नीरोग और समर्थ रहकर पूर्ण पुण्य पाते हैं । मनुष्य ही एक प्राणी ऐसा है जो आए दिन रुग्णता का रोना रोता रहता है । कारण मात्र एक ही है—खाद्य पदार्थों को दुर्गतिग्रस्त बना देने और चटोरी जीभ द्वारा उन्हें अनावश्यक मात्रा में उदरस्थ करते रहना । लोग स्वास्थ्य गंवाते रहते हैं पर इस कुटेव को नहीं छोड़ते । इसे बुद्धिमानों द्वारा अपनाई गई मूर्खता ही कहा जा सकता है ।

जीभ का उपयोग वार्तालाप में भी होता है । वाणी के साथ स्नेह-सौजन्य मिला न हो और अनगढ़पन के कारण अपने अहंकार तथा दूसरों के तिरस्कार का पुट उसमें रहने लगे तो समझना चाहिए कि वे सभी शत्रु बनते जायेंगे जिन्हें सहज ही मित्र श्रेणी में रखा जा सकता था । वाणी में विष और अमृत भरा है इस तथ्य को किसी मधुर भाषी और कटु-कर्कश स्वभाव वालों की उपलब्धियों की तुलना करते हुए सहज ही जांचा परखा जा सकता है ।

कामुकता की प्रधान हानि चिन्तन की कुमार्गगामिता है । कामुक चिंतन अतीव आकर्षक होता है । वह अपनी परिधि में विचार तन्त्र की अधिकांश क्षमता को समेट लेता है और अन्य उपयोगी कार्यों के लिए गम्भीरता पूर्वक सोचने का अवसर ही नहीं देता । इस दुष्प्रवृत्ति को अपनाने वाले छात्र प्राय: कक्षा में फिसड्डी रहते हैं । कुटेवों के आदी बनते और स्वप्न दोष जैसी बीमारियों में फंसते देखे जाते हैं । कामुक चिन्तन में जिन्हें रस आता है उनकी अधिकांश विचार शक्ति इसी जाल-जंजाल में उलझी रहती है और उत्कर्ष के लिए जिस गम्भीर चिन्तन और निर्धारण की आवश्यकता है, उसे प्राप्त करने से वंचित ही बनी रहती है । यौनाचार में अति बरतने का सीधा प्रभाव मानसिक दुर्बलता के रूप में सामने आता है । ऐसे लोग स्मरण शक्ति ही नहीं शरीर का ओजस्, मनोबल का तेजस् और सत्साहस का वर्चस् भी गंवाते जाते हैं । खोखले कलेवर में से मानो किसी ने प्राण ही खींच लिए हों ऐसी दुर्गति कामुकताग्रस्त लोगों की बनती चली जाती है । कहा जा चुका है कि शरीर को व्याधिग्रस्त, दीन-दुर्बल, अकालमृत्यु का चारा बनाने में चटोरी जिह्वा की करतूत ही आधारभूत कारण होती है । इस प्रकार साहस, मनोबल और एकाग्र मनोयोग की दृष्टि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से कामुकताग्रसित लोग, छूंछ जैसे बनते जाते हैं । रस निचोड़ लेने पर नीबू का छिलका आकृति मात्र ही शेष रह जाता है ।

इन्द्रिय संयम का अध्यात्म क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्व स्वाद जीतने और कामुकता के क्षेत्र में भगिनी, पुत्री, जननी जैसी मान्यताएँ बनाए रहने के लिए कहा गया है । यही बात स्त्रियों पर भी लागू होती है । इस संयम की परिणति नैतिक, सामाजिक क्षेत्र में भी शालीनता सुव्यवस्था बनाए रहती है, साथ ही मानसिक सन्तुलन जैसी व्यक्तित्व को उभारने वाली विशेषता का भी सन्तोषजनक मात्रा में संचय अभिवर्धन होता है ।

जीभ पर अंकुश करने के लिए अस्वाद का अभ्यास करना उत्तम है । यह भी एक प्रकार का 'तप संयम' ही है । इसे अपनाने पर जो वस्तु उपयोगी है उसी को उतनी मात्रा में लिया जा सकता है जितने से भूख बुझ भर जाय । "आधा पेट आहार से भरना चाहिए । चौथाई पेट पानी के लिए और चौथाई हवा के लिए खाली रखना चाहिए ।" यह नियम अस्वाद व्रत धारण करने पर सहज ही सध जाता है ।

कामुकता के विचारों को काटने के लिए ब्रह्मचर्य के लाभों और व्यभिचार-जन्य हानियों के सन्दर्भ में तथ्य उदाहरण एकत्रित करने चाहिए और उन पर बार-बार विस्तारपूर्वक विचार करते हुए कल्पना चित्र उभारने चाहिए । नैतिक एवं सामाजिक पवित्रता का ध्यान रखते हुए मर्यादा उल्लंघन की अनेकानेक हानियों और विपरीत पक्ष के लिए पवित्र भावना का अभ्यास करना चाहिए । बेटी या बहिन के प्रति जो पवित्र दृष्टि रखी जाती है उसी को रिश्ते से बाहर वाली युवा महिलाओं के लिए प्रयुक्त करना चाहिए । यही अभ्यास नारियाँ नर पक्ष के लिए करें तो गर्हित विचार चिन्तन से सहज छुटकारा पाया जा सकता है । यौनाचार की उत्तेजना को कुत्ते द्वारा सूखी हड्डी चबाने पर जबड़े से निकलने वाले रक्त को ईश्वरीय नियामत मानने की तरह उपहासास्पद ही माना जा सकता है । दाद खुजाने का जायका और चमड़ी फटने पर होने वाली पीड़ा से यदि कामुकता के दुष्परिणामों की संगति बिठाई जा सके तो फिर यह यही कहना पड़ेगा कि दोनों की ही तात्कालिक प्रसन्नता भावी परिणामों की दुःखद परिणति की तुलना में बिडम्बना पूर्ण ही मानी जायेगी । शवच्छेद के समय वाले घिनौने दृश्य के साथ यदि कामाचार अवयवों का भी वास्तविक स्वरूप देखा समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि घिनौने को आकर्षण केन्द्र मान बैठने में मात्र बौद्धिक भ्रम-जंजाल ही काम कर रहा था ।

ऐसे-ऐसे तर्क तथ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि इन्द्रिय शक्ति का अपव्यय अपने शक्ति भण्डार को फुलझड़ी की तरह जला देने के समान बचकानापन है । उसे दूरदर्शी विवेकशीलता अपनाकर रोका जाना चाहिए । अन्यथा महानता सम्पादन के लिए जिस जीवट की आवश्यकता है उसका साधन जुट ही नहीं सकेगा ।

४— चौथी सामर्थ्य है धन । इसका सदुपयोग करने वाले थोड़े से साधनों में ही न जाने कितना कर लेते हैं, इसके विपरीत अनावश्यक खर्च बढ़ा लेने वाले, आजीविका के साथ उसकी संगति न बिठा पाने पर कर्जा लेते, बेईमानी करते, चिन्ताग्रस्त रहते और अपनी तथा साथियों की शान्ति खोते रहते हैं । यदि सम्पन्नता की स्थिति है और अपव्यय करने में भी कोई अड़चन न हो तो भी यह सोचा जाना चाहिए कि इस राशि को अधिक उपयोगी प्रयोजनों में खर्च करने के सैकड़ों तरीके थे । अपने लिए अपने परिवार के लिए असका ऐसा उपयोग हो सकता था जिससे विलसिता और अहमन्यता की पूर्ति करते रहने के स्थान पर वे अधिक सुयोग्य बलिष्ठ, प्रबुद्ध एवं संस्कारवान बन सकें । इसी प्रकार जिस देश समाज में जन्म मिला है, उसमें संव्याप्त पीड़ा और पतन को घटाने के लिए यह धन काम में आ सकता था । पर ऐसा न करके यदि अपव्यय में उड़ाया, या मुफ्तखोरी के लिए जोड़ा-बढ़ाया जा रहा है तो यह उत्तराधिकारियों को दुर्व्यसनों के गर्त में धकेलने वाला अत्याचार ही कहा जायेगा । सर्वविदित है कि मुफ्तखोरी चाहे अपराध आक्रमण के आधार पर बढ़ी हो अथवा उत्तराधिकार की दौलत के सहारे । दोनों में से किसी भी आधार पर हस्तगत करने वाले तत्काल दुर्व्यसनी बनते हैं और अन्ततःदुर्गति के गर्त में गिरते हैं । बुद्धिमानी इसी में है कि लक्ष्मी माता को इस प्रकार के अनाचार में प्रयुक्त न किया जाय । कमाया कितना ही क्यों न जाय यदि वह औचित्य के आधार पर है तो सराहा ही जायेगा किन्तु प्रश्न उसके उपयोग का बना ही रहेगा । अपनी कमाई पर कानूनी हक प्राप्त रहने पर भी उसके पीछे जुड़े हुए नैतिक मूल्यों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए, जो कहते हैं कि 'अपनी रोटी मिल बाँटकर खाई जाय' व समूचे समुदाय के साथ कौटुम्बिकता की नीति अपनाई जाय इन सिद्धान्तों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को यदि जीवित रखना हो तो उसका एक ही उपाय है— औसत देशवासियों के स्तर को अपनाना । सादगी से रहना और बचत का श्रेष्ठतम प्रयोजनों में सदुपयोग करना ।

यह अर्थ संयम हुआ । चार संयमों में तीन ईश्वरप्रदत्त क्षमताओं के रूप में हर किसी को मिली हुई संयम, इन्द्रियशक्ति और विचार सम्पदा से सम्बन्धित है । शेष एक को भी यों कहना तो ईश्वर की रची प्रकृति-सम्पदा ही चाहिए जो मानवी सहयोग के सहारे उपलब्ध हो सकी ।

मनुष्य तो सामाजिक प्राणी है उसके लिए सम्पदा कमाना तो दूर निर्वाह तक के साधन जुटाना एकाकी प्रयत्न से सम्भव नहीं हो सकता । ऐसी दशा में सम्पत्ति को मात्र अपनी मान बैठना समाज का उस पर अधिकार स्वीकार न करना, मनमाने अनुपयुक्त ढंग से उसका उपयोग करना गलती है । उस विभूति का उपयोग ऐसे प्रयोजनों में ही होना चाहिए जिसमें औचित्य को बल मिलता हो । अर्थ संयम के अन्तर्गत ही दान पुण्य की श्रृंखला आती है, इसे शालीनता युक्त वातावरण की भी संज्ञा दी जा सकती है ।

तीर्थ सेवन फलदायी हों

महानता उपलब्ध करने की महत्त्वाकांक्षा साथ लेकर यदि तीर्थ सेवी लौटे तो समझना चाहिए उनका पुण्य-प्रयास सार्थक हो गया । यदि लोभ-मोह और अहंकार के भवबन्धन थोड़े शिथिल हो सकें तो समझना चाहिए तीर्थों में पाप कटने का प्रतिपादन अपने लिए सही सिद्ध हो गया । तीर्थों के दर्शन, स्नान, सत्संग, प्रायश्चित, दान-पुण्य से जो लाभ बताए गये हैं उनमें सारतत्व इतना ही है कि अन्तरात्मा में साधना से सिद्धि का उत्साह उमंगे । साधना के दो पक्ष हैं एक तप दूसरा योग । तप का अर्थ है-संयम । योग का अर्थ है-सीमित को असीम में, आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना । तप का तितीक्षापरक हठयोग भिन्न है । पर सौम्य योग में चार संयम अपनाने को ही व्यावहारिक जीवन की तप साधना कहा गया है ।

संयम चार हैं, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका— (१) विचार संयम, (२) समय संयम, (३) इन्द्रिय संयम, और (४) अर्थ संयम । इन चार छेदों में होकर ही ईश्वर प्रदत्त असीम वैभव का समूचा रस बहता है और धूलि में मिलता रहता है । यदि इन छेदों को बन्द किया जा सके तो बर्बादी रुक सकती है और ईश्वर से निरन्तर मिलते रहने वाले अजस्र अनुदानों की पूँजी इतनी अधिक बढ़ सकती है जिसे सत्प्रयोजनों में लगा देने पर महानता का लाभ अगले दिन से ही मिलना आरम्भ हो सकता है और इस क्रम के नियमित चलते रहने पर उस लक्ष्य तक पहुँचना संभव हो सकता है जिसके लिए यह सुर-दुर्लभ मनुष्य जीवन उपलब्ध हुआ है ।

तीर्थ साधक अपने दृष्टिकोण में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य करें । प्राचीन काल में लोग ऐसे स्थानों से पुराना चोला उतारने और नव जीवन धारण करने का कायाकल्प जैसा परिवर्तन लेकर लौटते थे । समय बदल गया तो भी सिद्धान्त यथावत् कायम है । मार्ग शाश्वत है । तीर्थ जिस उद्देश्य के लिए बने थे उनमें आगन्तुकों का आन्तरिक परिशोधन एवं परिष्कार ही प्रमुख था । उसे अपनाने वाले उन दिनों भी अक्षय-पुण्य फल पाते थे और अभी भी उस पुण्य परम्परा की यथार्थता समझने वाले और गम्भीरता पूर्वक अपनाने वाले कृतकृत्य हो सकते हैं ।

प्रज्ञापरिजनों का उपासना उपक्रम

जलते तो बल्ब ही हैं, घूमते तो पंखे ही हैं, चलते तो पम्प ही हैं, बजते तो रेडियो ही हैं, पर उनकी समर्थता बिजली घर के तारों के साथ जुड़ी होती है । यह सम्बन्ध कट जाय तो उपर्युक्त उपकरणों की संरचना एवं स्थिति सही होने पर भी वे निस्तब्ध पड़े रहेंगे, स्विच दबाने पर भी उनमें कोई हलचल दृष्टिगोचर न होगी । यह उदाहरण आत्मा और परमात्मा के सम्बन्धों के सन्दर्भ में दिया जा रहा है । आत्मा का स्तर बल्ब, पंखे, पम्प, रेडियो, जैसा है । यह उपकरण इस योग्य तो हैं कि बिजली मिलने पर अपने-अपने काम सही रीति से कर सकें, पर उनमें एकाकी शक्ति इतनी नहीं है कि अपने बलबूते सब कुछ कर सकें । यही बात आत्मा की सामर्थ्य और ईश्वरीय सम्बन्ध, अनुदान के सम्बन्ध में भी समझी जानी चाहिए । आत्मा परमात्मा के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ बने रहें तो समझना चाहिए कि उसकी उच्चस्तरीय आध्यचात्मिक प्रगति का मार्ग खुल गया ।

शरीर पंचतत्वों का बना है । उसका गुजारा प्रकृति पदार्थों के सहारे होता है । भोजन, वस्त्र, निवास आदि का प्रबन्ध हो जाने पर शरीर अपनी हलचलें जारी रख सकता है । मन को वासना, तृष्णा और अर्हता की पूर्ति के साधन मिलते रहें तो उसका उत्साह भी बना रहता है । परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो वैभव और वर्चस्व का लाभ भी मिलता है । इतने पर भी आत्मा का अपना क्षेत्र है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मछली को जिस प्रकार पानी चाहिए ही उसी प्रकार आत्मा की प्रगति और प्रखरता बनाए रहने के लिए ईश्वर का सान्निध्य सम्पर्क चाहिए ।

भूलोक की समस्त जल सम्पदा समुद्र में केन्द्रित है । बादल यहीं से अपने कमण्डल भर-भर कर लाते और धरातल पर जहाँ तहाँ बरसाते रहते हैं । थल क्षेत्र में जितना पानी दीखता है वह समुद्र की देन है । मनुष्य समुदाय के पास दो प्रकार के वैभव हैं । एक साधन सामग्री जो प्रकृति के खेत में पुरुषार्थ का बीज बोने पर उपलब्ध होती है । दूसरे प्रकार का वैभव वह है जिसे आत्मबल कहते हैं । यह सीधा ईश्वर से आता है । बादलों की तुलना उपासना साधना के उपक्रमों से दी जा सकती है । उनकी हलचलें ही समुद्र की जलराशि धरती तक, परमात्मा की विभूतियाँ आत्मा तक पहुँचाने का प्रयोजन पूर्ण करती हैं । दोनों के बीच सम्बन्ध बनाए रहने के लिए किसी सूत्र की आवश्यकता रहती है । यह सूत्र उपासना है ।

दो तालाबों के बीच यदि नाली बना दी जाय तो ऊँचे तालाब का पानी नीचे वाले में प्रवाहित होना आरम्भ हो जाता है और यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि दोनों की सतह बराबर नहीं हो जाती । उपासना के माध्यम से यह आदान-प्रदान यदि ठीक तरह चलता रहे तो क्रमशः आत्मा को परमात्मा की विभूतियों का अनुदान प्राप्त होता रहेगा और वह उठते-उठते अपने सम्बन्ध सूत्र तक जा पहुँचेगा । नल खोलने पर पानी बहने लगता है । पर, वस्तुतः वह ऊपर बनी किसी टंकी से, अथवा सशक्त मोटर के दबाव से आता है । यह टंकी या मोटर ईश्वर है । मनुष्य को नल कहना चाहिए । ईश्वर से सम्पर्क न सधे तो नल से पानी निकलेगा नहीं, भले ही टोंटी को बार-बार घुमाते रहा जाय ।

पतंग आसमान में उड़ती है पर उसका सूत्र संचालन उड़ाने वाला करता है । नाचती तो कठपुतली ही है पर उनके धागे छिपकर बैठे बाजीगर की उंगलियों में बंधे होते हैं । पनडुब्बे समुद्र में गहरे गोते लगाते हैं पर कमर का रस्सा ऊपर तैरने वाली नाव के कर्णधार को सौंप जाते हैं । अन्यथा डूबने का जोखिम रहेगा । ईश्वर के साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़ लेने से पतंग, कठपुतली, पनडुब्बे की तरह श्रेयाधिकारी बना जा सकता है ।

उपासना न तो खुशामद चापलूसी है और न कुछ भेंट उपहार देकर दैवी शक्ति को फुसलाने जैसी धूर्तता । दाने फेंककर कबूतर जाल में फंसाये जा सकते हैं आटे की गोली के लोभ में मछली को भी शिकंजे में कसा जा सकता है किन्तु परमात्मा के वैभव में साझीदार बनने के लिए यह चतुरता काम नहीं आती । उसके लिए पूँजी लगानी पड़ती है । अपने अन्तराल को परमात्मा के अन्तराल से मिलाने और दोनों की दिशाधारा एक बनाने के प्रयास को ही उपासना कहते हैं । अध्यात्म की भाषा में इसे समर्पण, शरणागति कहते हैं । अंचल पकड़ना, गोदी में बैठना जैसी उपमा भी दी जाती है । इसका तात्पर्य होता है आत्मभाव में विलय करना । क्षुद्रता को महानता में समर्पित, विसर्जित करने के लिए जिन व्यायामों और विनियोगों को अपनाना पड़ता है उन्हें 'उपासना' और 'साधना' कहते हैं । उपासना एक प्रकार का भावनात्मक व्यायाम है । पहलवान बनने के लिए उसको अपनाना ही पड़ेगा किन्तु स्मरण रहे इसमें आहार-विहार की सुव्यवस्था भी बनानी पड़ती है । मात्र व्यायाम ही सब कुछ नहीं होता । पहलवानों को पौष्टिक भोजन, ब्रह्मचर्य पालन, तेल मालिश आदि का प्रबन्ध भी करना पड़ता है । उपासना में जप, ध्यान, पूजा, अर्चा आदि की गणना है । इसका दूसरा पक्ष है साधना । साधना अर्थात् अनगढ़ कुसंस्कारी दृष्टिकोण व्यवहार को परिष्कृत करके सुगढ़, सुन्दर, समुन्नत बनाना । दोनों को मिला देने से ही अध्यात्म प्रगति का समग्र उपचार बनता है । गाड़ी दो पहियों पर चलती है । ताली दो हाथ से बजती है । नर और नारी के संयुक्त प्रयास से वंश चलता है । उपासना और साधना का भी अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । साधना में उच्चस्तरीय आदर्शों को अपनाना पड़ता है । आदर्शों का समुच्चय ही परमेश्वर है । उसे आत्मसमर्पण करने का, अर्थात् अपनी क्षुद्रता को महान विराट् में विसर्जित करना आदर्शों के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव अपमाना और उसी के प्रकाश में अपना मार्ग निर्धारित करना संक्षेप में इसे ईश्वरीय आदर्शों की अन्तराल में अवधारणा कह सकते हैं ।

उपासना का तत्वदर्शन

भक्ति भावना को चरितार्थ करने के लिए जिन उपचार प्रयोगों को पूजा-अर्चा के माध्यम से कार्यान्वित करना पड़ता है उन सबका लक्ष्य एक ही है—चेतना को सीमा बन्धनों से मुक्त करके असीम के साथ सघनता स्थापित करने का अभ्यास करना । इस स्थिति को सही ढंग से समझने-समझाने के लिए कुछ तथ्यों पर ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देना चाहिए और उनके साथ जुड़े हुए सिद्धान्तों को हृदयंगम करना चाहिए । आग के निकट आने पर गीली लकड़ी भी सूखने लगती है और ठण्डी से गरम हो जाती है । यह निकटता और बढ़े तो फिर आग और ईंधन की स्थिति एक हो जाती है । ईंधन तुच्छ है और आग महान फिर भी घनिष्ठता बनने पर दोनों एक हो जाते हैं । महान अपने समान ही तुच्छ को बना लेता है । पर इसके लिए सच्ची घनिष्ठता चाहिए । घनिष्ठता अर्थात् समर्पण-बुद्धि । यहाँ इस तथ्य को एकबार फिर समझ लेना होगा कि ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं, वह शक्ति है । आदर्शों के समुच्चय की बनी विराट् चेतना को ईश्वर कहते हैं । समर्पण उसी को करना होता है । प्रतिमाएँ तो ध्यान-धारणा की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता पूरी करने के लिए विनिर्मित की गई हैं । शक्तियाँ व्यापक होती हैं और निराकार । साकार तो व्यापक हो ही नहीं सकता ।

उपासना को आत्मिक क्षेत्र की महती आवश्यकता माना गया है और उसे दिनचर्या में सम्मिलित किए रहने के लिए आप्त निर्धारणों में बहुत जोर दिया गया है । उसमें प्रमाद न करने के लिए कहा गया है । इस सन्दर्भ में ऐसा नहीं सोचा जाना चाहिए कि ईश्वर को किसी की खुशामद या भेंट पूजा की आवश्यकता है और इस उपाय उपचार से उसकी प्रसन्नता-अनुकम्पा प्राप्त की जा सकती है । उपासना एक परिशोधन प्रक्रिया है । जिस प्रकार नित्य स्नान करना, दाँत माँजना, कपड़े धोना, बर्तन माँजना, बुहारी लगाना आवश्यक होता है उसी प्रकार मनःक्षेत्र में भीतर से उभरती और बाहर से घुसती मलीनता की परतें अन्तःकरण पर जमा न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि उस क्षेत्र की सफाई नित्य नियमित रूप से की जाय । यह उपासना का ही एक पक्ष है । दूसरा पक्ष है परिष्कार, विकाश, उत्थान, अभ्युदय । इसमें उपासक को ईश्वरीय विभूतियों को अपनाने, धारण करने का प्रबल प्रयास करना होता है । विभूतियों से तात्पर्य है चिन्तन में उत्कृष्टता और चरित्र में आदर्शवादिता की अवधारणा । ईश्वरीय सान्निध्य में ऐसी प्रेरणाऐं उपलब्ध होती हैं जो अवांछनीयता से मुँह मोड़ने और मानवी गरिमा के अनुरूप ढलने के लिए विवश कर सकें ।

पत्नी पति को आत्म समर्पण करती है और उसके सम्मान तथा वैभव की सहभागी बन जाती है । वैश्या की व्यवसायवृत्ति होती है इसलिए वह पत्नीवत् व्यवहार करने पर भी अपना पारिश्रमिक ही पाती है जबकि पत्नी हर दृष्टि से समान साझीदार बन जाती है । एकात्मता की यही महत्ता है । ईश्वर के साथ भी उच्चस्तरीय घनिष्ठता स्थापित करने के लिए उसके साथ एकात्मता स्थापित करनी पड़ती है । छोटा बड़े को समर्पण करता है । लकड़ी आग बनती है, आग लकड़ी नहीं । बूंद सिन्धु में विसर्जित होती है, समुद्र बूंद नहीं बनता । नाला नदी में मिलता है, नदी को नाला बनने के लिए नहीं कहा जाता । भक्त को भगवान के अनुशासन में चलना होता है । उसे यह ढिठाई नहीं करनी चाहिए कि अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए भगवान को अपनी विधि-व्यवस्था और न्याय मर्यादा का परित्याग करने के लिए दबाव डाले ।

पेड़ के साथ बेल लिपट जाती है और वृक्ष के बराबर ही ऊंची उठ जाती है । चन्दन के निकट उगे पौधे भी सुगन्धित हो जाते हैं । लोहा पारस को छूकर सोना बनता है । छोटे की बड़े के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की यही प्रक्रिया है । ऐसा कहाँ होता है कि पेड़ जमीन पर लेटे और बेल का सहचर बने । चन्दन झाड़ी नहीं बनता । झाड़ियों को ही चन्दन की सुवास अपने में धारण करनी पड़ती है । सोना पारस को छूकर लोहा नहीं बनता । भगवान को भक्त की मनोकामना पूरी करनी चाहिए इस प्रकार सोचना, न भक्ति है न भावना—न पूजा है न उपासना । ऐसी दुर्बद्धि को लाटरी लबाने जैसी लोभ लिप्सा ही कहना चाहिए कि नगण्य-सी भेंट-पूजा के बदले नियति व्यवस्था में व्यतिक्रम करने एवं तथाकथित भक्तजन की स्वार्थसिद्धि के लिए सब कुछ करने के लिए तत्पर रहना चाहिए ।

साधन-सुविधाएँ पुण्य-पराक्रम के बदले अर्जित की जाती हैं । ईश्वरीय सान्निध्य का तात्पर्य है—आन्तरिक उत्कृष्टता का अभिवर्धन । उससे गुण, कर्म, स्वभाव में शालीनता की मात्रा ही बढ़ती है । इस आधार पर मनुष्य महान बनता है और महानता जहाँ भी होती है वहाँ आत्मसन्तोष और जनसम्मान की कमी नहीं रहती । प्रामाणिक व्यक्तियों को सर्वत्र सहयोग मिलता है । उनके उच्च पदासीन होने एवं विभूतिवान बनने का यही रहस्य है । ईश्वर सान्निध्य से व्यक्तित्व में पवित्रता एवं प्रखरता की मात्रा बढ़ती है । अन्तःकरण में उदार आत्मीयता का क्षेत्र बढ़ाने की, सेवा साधना की उमंगें उठती हैं । मनःक्षेत्र में उदात्त दृष्टिकोण परिपक्व होता है । आचरण में कर्त्तव्य निष्ठा कूट-कूटकर भरती जाती है । इस प्रकार अन्तःक्षेत्र के विभूतिवान बनते जाने के परिणामस्वरूप मनुष्य को महानता सम्पन्न होना चाहिए । यह उपलब्धि जिसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जितनी मात्रा में मिलती है वह उतना ही बढ़भागी बनता और कृतकृत्य होता है । भक्ति की परिणति और प्रतिक्रिया यही समझी जानी चाहिए । जो मन्त्र-तन्त्र के बदले पुण्य परमार्थ से कहीं अधिक सफलताऐं पाने का ताना-बाना बुनते रहते हैं उन्हें अन्तत: निराश होना पड़ता है । छात्रवृत्ति तो अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण होने वालों को मिलती है । प्रतिस्पर्धा में बाजी जीतने वालों को पुरस्कार मिलता है । जमापूँजी होने पर ही बैंक से चेक सिकरता है । इन प्रयोजनों को कोई पूजा उपचार भर से करना चाहे तो वैसा किस प्रकार सम्भव होगा ? पुरुषार्थ का प्रतिफल मिलने वाली बात झुठलाई जा सके, कर्म व्यवस्था की रीति-नीति उलटी जा सके तो ही ऐसा कुछ बनेगा कि अनुनय-विनय करने भर से मनोकामनाएँ पूरी होती रहें ।

अध्यात्म सम्मत रीति-नीति अपनाने का नाम ही भक्ति-साधना है । भावुकता भरी कल्पना करते रहने और बिना पंख की रंगीली उड़ानें उड़ते रहने से कुछ काम नहीं बनता । सच्चे भक्त को हनुमान जैसी 'राम काज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम' वाली नीति अपनानी पड़ती है । नल-नील की तरह भगवत् कार्य में निरत रहना पड़ता है । सामर्थ्य न हो तो भी गिलहरी शबरी की तरह ईश्वरीय प्रयोजन में अपनी सामर्थ्य स्वल्प होते हुए भी यथासम्भव अनुदान प्रस्तुत करना होता है । केवट अधिक कुछ करने की स्थिति में नहीं था तो भी नाव उतारने का श्रमदान उसने भावना पूर्वक अर्पण किया । ऐसे अनुदान ही जिस जीवन में बीज की तरह बोए गये होंगे वहाँ वे उगेंगे और कल्प वृक्ष उद्यान की तरह सुख शान्ति की उत्साहवर्धक परिणति प्रस्तुति करेंगे । सफलताएँ किन्हीं तथ्यों और सिद्धान्तों पर निर्भर रहती हैं । लूटमार का—ठगी जादूगरी का आश्रय लेकर लम्बी चौड़ी सफलताएँ पाना—उनका स्थिर रहना तथा सुखद परिणति पा सकना सम्भव नहीं । ठीक उसी प्रकार भक्ति भाव में ऐसी कहीं कोई गुंजाइश नहीं है इस स्तर के कुछ कृत्य कर्मकाण्ड पूरे करने भर से मनोवांछाएँ पूरी होने लगे । हर वस्तु उचित मूल्य पर ही खरीदी जाती है । ईश्वर का अनुग्रह भी उस पुरुषार्थ के माध्यम से ही उपलब्ध होता है जिसके पवित्रता और प्रखरता ही अविच्छिन्न पक्ष हैं ।

सन्त महात्मा प्राय: कष्ट पीड़ितों को उबारते और उठने वालों को उछालते देखे गये हैं । यह उनकी उदारता है । पर स्मरण रहे ऐसी सामर्थ्य मात्र आत्मिक क्षेत्र की उन विभूतियों पर ही निर्भर है जो तपश्चर्या और योग साधना द्वारा कमाकर पर्याप्त मात्रा में जमा कर ली गई है । उपासना से उत्कृष्टता—उत्कृष्टता के बदले सिद्धि । सिद्धि से लोक सेवा । लोक सेवा से आत्मकल्याण और विश्वकल्याण की दुहरी सफलता । ऐसे सन्मार्गगामियों पर दैवी अनुग्रह की वर्षा । यही है वह गतिचक्र जिसके सहारे दैवी अनुग्रह उपलब्ध करने का सौभाग्य सुअवसर मिलता है जिसे वह मिल सका उसे और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता । सन्तजन अपनी उपलब्धयों को सार्थ बनाने के लिए पीड़ा और पतन के निवारण में अपने अनुदान बिखेरते रहते हैं । इसे आशीर्वाद कहते हैं । इसी प्रक्रिया का एक दूसरा पक्ष भी है—वरदान । वरदान उनके जो उच्चस्तरीय प्रयोजनों के लिए आर्थिक साहस, सुयोग और सहयोग की अपेक्षा रखते हैं । यह वरदान आशीर्वाद भी विवेक पूर्वक पात्र-कुपात्र का ध्यान रखते हुए, प्रतिक्रिया पर दूरदर्शी दृष्टिपात करके ही दिये जाते हैं । यह सोचना व्यर्थ है कि जो माँगा जायेगा वह मिल जायगा । न सन्तों की न देवताओं की ऐसी आदत है कि चापलूसी करने वालों को, आँखें बन्द करके निहाल करते चले जायें । जो ऐसा करेगा उसकी कमाई फुलझड़ी की तरह जल कर समाप्त हो जायेगी । सिद्धियों के साथ विवेक बुद्धि भी रहती है अन्यथा उनका उपयोग चमत्कार प्रदर्शन और अहंकार का आवरण बनाने में ही समाप्त हो जायेगा । साथ ही उससे भ्रष्ट परम्परा भी पनपेगी ।

शरीर से आत्मा का महत्त्व अधिक है । शरीर नश्वर है—आत्मा शाश्वत । शरीर द्वारा उपार्जित—शरीर भर के काम आने वाली सम्पन्नता भी सीमित सुख-सुविधाएँ ही अर्जित कर पाती है किन्तु आत्मा के क्षेत्र में उपलब्ध होने वाली विभूतियाँ चिरस्थायी और लौकिक—पारलौकिक श्रेय साधनों की दृष्टि से उच्चस्तरीय परिणाम प्रस्तुत करती हैं । इसलिए विवेकवान दूरदर्शी आत्मिक प्रखरता अर्जित करने के लिए प्रबल पुरुषार्थ करते हैं । उसी पराक्रम को आत्मबल संबर्धन प्रक्रिया कहते हैं । उसके लिए भावनात्मक उपासना और व्यक्तित्व परिष्कार की साधना के लिए संयुक्त प्रयास करना पड़ता है । समग्र आत्मिक प्रगति इसी मार्ग के अवलम्बन से सम्भव है बिजली के दो तार मिलने से करेन्ट उत्पन्न होता है । लम्बी यात्रा में दोनों पैरों का संयुक्त प्रयास ही काम देता है । दिन और रात्रि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की तरह—श्रम और विश्राम की तरह—दोनों की समान उपयोगिता है । शरीर और प्राण का सम्बन्ध ही जीवन है । उसी प्रकार—साधना और उपसना का युग्म मिलाने से ही आत्मिक प्रगति का उद्देश्य पूर्ण होता है ।

जीवन साधना : उपासना की पूरक

बीज बोने से पूर्व जमीन जोतनी पड़ती है । रंगाई से पूर्व धुलाई करनी होती है । ढालने से पूर्व धातु को गलाना पड़ता है । जीवन साधना की जुताई -धुलाई और गलाई से उपमा दी जा सकती है, उसके बिना रंगने, बोने और ढालने का प्रयोजन ठीक तरह पूरा नहीं हो सकता । उपासना को बाण कहा जाय तो साधना को धनुष मानना होगा । धनुष उपयुक्त न हो तो बाण की फेंक लम्बी और चोट गहरी नहीं जा सकती । कारतूस कितना ही अच्छा क्यों न हो, सही बन्दूक के बिना उससे निशाना सधेगा ही नहीं । चट्टान पर पूरी वर्षा उतर जाने पर भी हरियाली नहीं उगती । जितना गहरा गड्ढा होगा उतना ही पानी भरेगा । पात्रता के बिना उपलब्धि सम्भव कहाँ है ? आँख न हो तो दृश्य कैसे देखें ? कान न हो तो मधुर संगीत कौन सुने, उन्मादग्रस्त के लिए विद्वान की सिखावन क्या काम आवे ?अपनी पात्रता विकसित होती है और उपासना से उस पृष्ठभूमि पर महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ उगनी आरम्भ हो जाती हैं । इसलिए अध्यात्म परम्परा में ईश्वर उपासना और जीवन साधना को अविच्छिन्न एवं पूरक कहा गया है । जो दोनों के लिए समान प्रयत्न करते हैं वे अध्यात्म क्षेत्र की उच्चस्तरीय सफलता प्राप्त करके रहते हैं ।

जिस प्रकार शरीर को आहार देकर जीवित रखा जाता है उसी प्रकार आत्मा को ईश्वर सान्निध्य का अवसर उपलब्ध होना चाहिए। इसके बिना अन्तःकरण क्षुधार्त रह कर अर्धमृतक जैसी स्थिति में पड़ा रहता है । न उसमें उमंगें उठती हैं, न दिव्य प्रेरणाओं का आलोक जागता है । मूर्छित स्थिति में पड़ी आत्मा कुछ उच्चस्तरीय साहस पराक्रम करने में समर्थ नहीं होती । पेट भरने का उपक्रम तो शरीर सत्ता अपना ताना-बाना अपने आप बुन लेती है । पेड़-पौधे और अदृश्य जीवाणु तक जब प्रकृति व्यवस्था के अंग अवयव रहकर अपने निर्वाह साधन ढूंढ़ लेते हैं तो मनुष्य की विकसित काया को भरण पोषण की व्यवस्था बनाने में क्या कठिनाई होनी चाहिए? सुर दुर्लभ मनुष्य जीवन की सार्थकता इसमें है कि वह अन्य प्राणियों में से किसी को भी प्राप्त न हो सकने वाले आत्मिक वैभव को प्राप्त करे । उसके सहारे न केवल स्वयं पूर्णता प्राप्त करे वरन् अन्यान्यों को भी अपनी नाव पर बिठाकर पार करे । यह आध्यात्मिक पुरुषार्थ उन्हीं से बन पड़ता है जिनकी अन्तरात्मा जागृत और सक्षम है । यह जागृति एवं क्षमता उपासना—साधना के अवलम्बन ग्रहण करने पर ही सम्भव होती है । अस्तु , यह आवश्यक माना गया है कि इनके लिए भी जीवनचर्या में सुनिश्चित स्थान रहे और उस निर्धारण को नियमित रूप से भावनापूर्वक कार्यान्वित किया जाता रहे ।

जीवन-साधना का अभ्यास परिवार की व्यायाम-शाला, पाठशाला, प्रयोगशाला में किया जाता है । उसका उल्लेख अगले अध्याय में मिलेगा। यहाँ उपासना उपक्रम की चर्चा की जा रही है । उसके लिए एकाकी प्रयत्न करने होते हैं । इसके लिए एकान्त चाहिए जिसमें एकाग्रता सध सके । इसके लिए जिन उपाय उपचारों का अवलम्बन अपनाना होता है उसके प्रमुख अंग तीन हैं—(१) पूजन, (२) जप, (३) ध्यान । जिन्हें अधिक अवसर और अवकाश है उनके लिए अधिक विस्तृत और लम्बे समय में सम्पन्न हो सकने वाले विधि-विधान भी हैं । पर यह पंक्तियाँ उनको लक्ष्य मानकर लिखी जा रही हैं जिन्हें व्यस्तता अधिक रहती है और परमार्थ प्रयोजनों के लिए समय कम मिलता है । आमतौर से प्रज्ञा परिजन इसी स्तर के हैं । तीर्थ सेवन के लिए मात्र पाँच दिन जितना स्वल्प समय निकल सका, इसी से अनुमान लगता है कि उन्हें सांसारिक कार्यों में कितना व्यस्त रहना पड़ता होगा । ऐसी दशा में उनके लिए आधा घण्टा जितनी स्वल्प साधना बतानी ही समीचीन है । भले ही थोड़ा हो, पर यदि वह संकल्प नियमित रूप से निभ और सध सके—भावना एवं मनोयोग पूर्वक बन पड़े तो समझना चाहिए कि उतने से भी बहुत काम चल जायेगा ।

उपासना के लिए प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम है । किन्तु यदि किसी कारणवश वह नहीं सधता तो प्रयत्न करना चाहिए कि भोजन से पूर्व ही बन पड़े । रेल में दौड़ने वाले जैसे लोग अपवाद हैं जिनके लिए रात दिन का कोई नियमित निर्धारण नहीं । ऐसे लोग जब भी बन पड़े तभी कर लिया करें । भगवान से सम्पर्क साधने में कोई भी समय अनुपयुक्त नहीं माना गया है । साधारणतया स्नान से निवृत्त होकर ही बैठना ठीक है, पर यदि कारणवश वैसा न बन पड़े तो मौन मानसिक जप किसी भी समय, किसी भी स्थिति में किया जा सकता है । मुँह बन्द रखकर जो जप किया जाता है उसे 'मौन मानसिक जप' कहते है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थान यथासम्भव एकान्त का ही ढूंढ़ना चाहिए। आवागमन और कोलाहल रहित स्थान में एकाग्रता रहती है, मन लगता है किन्तु जिनके घर छोटे हैं उनके लिए जहाँ भी अनुकूलता दीखे वहीं कर लेना चाहिए। न करने से कुछ करना अच्छा। पूर्ण सुविधा न हो जितना कुछ सम्भव है उतने से ही काम चलाना चाहिए। गीता में भगवान् ने कहा है—'श्रेय मार्ग पर थोड़ा चलना भी श्रेयस्कर है।' इसमें किसी प्रकार के अहित की आशंका नहीं है। हानि इतनी भर है कि अविधिपूर्वक करने का लाभ स्वल्प मिले। भगवान विधान को नहीं भावना को देखते हैं। तान्त्रिक उपचारों की बात दूसरी है उसमें कर्मकाण्ड ही प्रधान रहने और हेय प्रयोजनों के लिए प्रयास चलने के कारण अविधि से हानि हो भी सकती है किन्तु सात्विक लक्ष्य रख कर की गई आत्मकल्याण की सौम्य उपासना में इस प्रकार की कोई आशंका नहीं करनी चाहिए कि विधि में त्रुटि रही तो हानि हो सकती है। देवता रूठ सकते हैं। जो ऐसा सोचते हैं देव सत्ता की गरिमा को ही नहीं समझते, वे भावना नहीं क्रियां भर देखते हैं।

उपासना का क्रिया पक्ष

उपासना की दृष्टि से गायत्री की, आद्यशक्ति महाप्रज्ञा की आराधना सर्व सुलभ और सार्वभौम हैं। इसमें धर्म, सम्प्रदाय, जाति, लिंग का कोई भेद-भाव नहीं। इस महामन्त्र का शब्द गुम्फन इतना वैज्ञानिक है कि उसका जप करने भर से सूक्ष्म शरीर के अनेक महत्त्वपूर्ण शक्ति स्रोत जगते हैं। उसका भावार्थ इतना प्रेरक है। उसमें बीजरूप से समग्र अध्यात्म विज्ञान और धर्म-शास्त्र समाहित पाया जा सकता है। नारी में देवत्व का दर्शन, श्रद्धा-प्रज्ञा-निष्ठा का समन्वय इस त्रिवेणी संगम में है। इसलिए इष्ट-निर्धारण में इस महाशक्ति को माध्यम बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी भजन-पूजन का पूर्वाभ्यास हो तो उसमें उसे भी साथ-साथ अपनाए रहने से हानि नहीं। फिर भी अच्छा तो यही है कि एक लक्ष्य रखा और उसी से तादात्म्य स्थापना का प्रयत्न किया जाय। भगवान की माता के रूप में उपासना अत्यन्त उच्चकोटि की तथा भावनामयी है ।

पूजा के लिए स्थान नियत रहे और बार-बार न बदलना पड़े तो अधिक उत्तम है। उस स्थान पर एक चौकी सुसज्जित करके उस पर गायत्री माता का चित्र स्थापित कर लेना चाहिए। एक ओर अगरबत्ती दूसरी ओर छोटा कलश पात्र रखा जाय। उपचार के लिए जल भरा पञ्चपात्र, चमची, दो छोटी तश्तरियाँ—एक तश्तरी में अक्षत, पुष्प, रोली, नैवेद्य जैसी उपचार सामिग्री रहे और दूसरी में जो अर्पित करना है उसे छोड़ते रहा जाय।

आसन पर पालथी मारकर बैठ जाय और सर्वविदित—(१) पवित्रीकरण, (२) आचमन, (३) शिखा वंदन, (४) प्राणायाम, (५) न्यास, (६) पृथ्वी पूजन—यह छः कृत्य कर लिए जायें। इनकी विधि किसी भी अभ्यस्त उपासक से देखी जानी जा सकती है। यह उपचार स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को पवित्र, पूजा योग्य बनाने की दृष्टि से किए जाते हैं।

चित्र में आद्यशक्ति के आवाहन की भावना आरम्भ में और विसर्जन की पूजा समाप्त होने के समय करनी चाहिए। उन दोनों कृत्यों को गायत्री मन्त्र से भी किया जा सकता है।

उपस्थित भगवती के प्रति श्रद्धा सम्मान की अभिव्यक्ति के लिए पंचोपचार पूजन किया जाता है। जल, अक्षत, पुष्प, रोली, नैवेद्य एक-एक करके दूसरी तश्तरी में छोड़ते जाना चाहिए। इसके बाद हाथ जोड़कर सिर नवाकर नमस्कार करना चाहिए। उसके लिए यों अलग-अलग मन्त्र भी हैं पर उन्हें ढूँढ़ने, याद करने में कठिनाई हो तो यह पाँचों कृत्य भी गायत्री मन्त्र से ही किए जा सकते हैं। इसी अवसर पर सर्वदेव नमस्कार भी करना चाहिए। मन्त्र हवन पद्धति में से याद कर लेने चाहिए।

जप की विधि साधारण है। पाँच माला गायत्री जप में प्रायः आधा घण्टा लगता है। माला के स्थान पर आधा घण्टा घड़ी से भी यह संख्या पूरी की जा सकती है। जप के साथ ध्यान करना आवश्यक है। ध्यान दो प्रकार के होते हैं—एक साकार, दूसरा निराकार। साकार में आँखें बन्द करके गायत्री माता की छवि का अपनी सगी माता की तरह ध्यान करते हैं। साथ ही उसकी गोदी में मोद मनाने, दुलार पाने की भाव-कल्पना भी की जाती है तन्मयता के लिए छवि का अवलोकन ही नहीं, उसके साथ सघन आत्मीयता का आदान-प्रदान होने की धारणा भी चलती रहनी चाहिए। अन्यथा छवि में मात्र सौन्दर्य ही देखने योग्य रह जायेगा। आत्मीयता का आदान-प्रदान न चले तो फिर एकाग्रता के लिए जिस तन्मयता की आवश्यकता है उसका सुयोग न बनेगा।

दूसरा ध्यान निराकार है। इसमें प्रातःकाल के स्वर्णिम सूर्य को, छवि को, गायत्री के प्राण सविता की प्रतिमा मानकर ध्यान करते हैं। उसकी किरणें अपने तीनों शरीर में प्रवेश करने और कण-कण को, नस-नस को,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रोम-रोम को अनुप्राणित करने की भावना की जाती है। स्थूल शरीर में निष्ठा, सूक्ष्म शरीर में प्रज्ञा और कारण शरीर में श्रद्धा बनकर यह स्वर्णिम किरणें प्रवेश करती हैं और अपने अनुदान से साधक को ज्योतिर्मय बनाती चली जाती हैं। यह भावना दृढ़ से दृढ़तर करने का परिपूर्ण विश्वास के साथ प्रयत्न किया जाय। मन इधर-उधर भागता हो तो उसे समेट कर इसी अनुभूति पर केन्द्रित किया जाय। इस विश्व ब्रह्माण्ड में सविता, किरणें, आत्मसत्ता और अनुदान का उपक्रम भर शेष है। अन्य और कोई पदार्थ या प्राणी यहाँ ऐसा शेष नहीं जिस पर जाने के लिए मन दौड़े। इतनी पृष्ठभूमि बना ली जाय तो एकाग्रता सधने लगती है और सविता के ब्रह्मतेजस् की उपलब्धि की अनुभूति होने लगती है। ध्यान और जप की संयुक्त प्रक्रिया श्रद्धा-विश्वास पूर्वक अपनाई जाती रहे तो इस आधा घण्टे की अवधि में ही स्थूल शरीर में ओजस्, सूक्ष्म शरीर में तेजस् और कारण शरीर में वर्चस् की अभिवृद्धि का अनुभव होता है। दिव्यलोक की दिव्य-चेतना से आत्मसत्ता के अनुप्राणित होने की यह अनुभूति साधक में पवित्रता और प्रखरता की मात्रा क्रमशः बढ़ाती चलती है।

जप और ध्यान का आधा घण्टा पूरा हो जाने पर हाथ जोड़ कर मस्तक नवाकर चित्र में आवाहन की गई आद्यशक्ति ऋतम्भरा का विसर्जन करना चाहिए। गायत्री मन्त्र को ही विसर्जन मन्त्र माना जाय। इसके उपरान्त छोटे जल कलश का पानी अर्घ्य रूप में सूर्य नारायण के सम्मुख या उनकी दिशा में धार बाँधकर चढ़ा दिया जाय। जल किसी पौधे की जड़ में चढ़ाना चाहिए। पूजा में प्रयुक्त हुई अक्षत, पुष्प आदि सामग्री इकट्ठी करते रहनी चाहिए। उसे किसी जलाशय में विसर्जित करना चाहिए या भूमि में गाड़ देना चाहिए। उपचार सामग्री या अर्घ्य जल अपवित्र जगह में न गिरे, पैरों तले न कुचला जाय इसका ध्यान रखना चाहिए।

यह नित्य नियम का जप हुआ। इसके अतिरिक्त आत्मसाक्षात्कार को भी ईश्वर साक्षात्कार जितना ही महत्त्व देना चाहिए। इसके लिए प्रातः उठते समय या रात को सोते समय का अवसर अधिक शान्त और एकान्त रहने से उपयुक्त माना गया है। यह दोनों समय बिस्तर पर लेटे हुए भी हो सकता है अथवा किसी शान्त-एकान्त जगह में बैठकार भी, सुविधानुसार अन्य समय में भी किया जा सकता है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट दो बार की बात न्यूनतम है। उसे सुविधा हो तो अधिक भी बढ़ाया जा सकता है। यह बात उसके न्यूनतम आधा घण्टे के सम्बन्ध में भी है। यह बढ़ सकता है तो बढ़ाना और भी अधिक प्रसन्नता की बात है। आत्म-साक्षात्कार के चार भाग हैं—(१) आत्म निरीक्षण, (२) आत्म-सुधार, (३) आत्म निर्माण, (४) आत्म विकास। इन चारों को मिलाकर इस प्रकार सोचा जा सकता है कि इन दिनों गुण-दोष की दृष्टि से अपने चिन्तन और चरित्र में क्या घट बढ़ हो रही है? दोषों को घटाने के लिए किस प्रकार, क्या किया जाना चाहिए और क्या किया जा सकता है? किन गुणों का अभिवर्धन इन दिनों विशेष रूप से करने की आवश्यकता है और इसके लिए क्या उपाय अपनाया जाय? क्या कार्यक्रम अपनाया जाये? अपने सीमा बन्धनों को कैसे काटा जाय? आत्मभाव कैसे व्यापक बनाया जाय ? स्वार्थ को परमार्थ में विकसित करने के लिये इन दिनों क्या कदम बढ़ाया जा सकता है ? सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन की सेवा साधना में किस समय, किस प्रकार, क्या किया जा सकता है? इन प्रश्नों को अपने से पूछा जाय और स्वयं ही उत्तर भी उभारा जाय आत्म साक्षात्कार प्रक्रिया का उद्देश्य यह है कि अपनी आन्तरिक स्थिति पर कड़ी नजर रखी जाय और सुधार परिष्कार के लिए वर्तमान स्थिति में जो सम्भव हो उसके लिए साहस भरे कदम बढ़ाने में कुछ उठा न रखा जाय।

ब्रह्म साक्षात्कार के लिए पूजन और जप ध्यान की प्रक्रिया नियत समय पर आधा घण्टा चलती रहे और सोते जगते समय पन्द्रह-पन्द्रह मिनट का प्रयास चलता रहे तो दोनों के लिए कुल मिलाकर एक घण्टा लग जायेगा। चौबीस घण्टे में यह घण्टा तीन बार में विभाजित करके त्रिकाल सन्ध्या का उपक्रम पूरा कर लेना चाहिए।

तीर्थ सेवन सत्र में १०८ माला का गायत्री अनुष्ठान पाँच दिन में पूरा करने के लिए कहा गया है। उसमें हर दिन २२ मालाऐं करनी पड़ती हैं जो प्रातःकाल हवन की पूर्णाहुति तक सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जाती हैं। शान्तिकुंज की नौ कुण्डी यज्ञशाला में सूर्योदय के समय यज्ञ प्रारम्भ होता है और प्रायः दो घण्टे में पूर्ण हो जाता है। यज्ञ से कुछ समय पहले जप कर बैठा जाय और अपनी पारी का हवन करने के अतिरिक्त समय में जप ध्यान करते रहा जाय तो वह अनुष्ठान कृत्य पाँच दिन में सरलतापूर्वक पूरा हो जाता है। ऐसे पुनीत और प्रेरणाप्रद वातावरण में—दिव्य सान्निध्य एवं संरक्षण में की गई यह छोटी सी साधना भी अन्यत्र रहकर किए गये सवालक्ष अनुष्ठान से अधिक प्रकाश प्रदान करने वाली सिद्ध होती है। घर लौटने पर दोनों नवरात्रियों में सामूहिक गायत्री अनुष्ठान में सम्मिलित रहने और उसे सफल बनाने में योगदान करने का भी निश्चय करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके साथ-साथ दैनिक उपासना का उपर्युक्त उपक्रम भावी जीवन में नियमित रूप से करते रहने का भी संकल्प लेना चाहिए और उसे सदा सर्वदा निभाते रहने का निश्चय करना चाहिए। उपासना में स्थान और समय का एक निश्चित निर्धारण बहुत हीं फलप्रद सिद्ध होता है। कभी किया कभी छोड़ दिया—कभी थोड़ा-कभी बहुत की अनिश्चितता न रहने देकर एक नियत निर्धारण अपनाया जाय और उसे पूरा करने के लिए अपने साथ थोड़ा कड़ा अनुशासन बरता जाय तो व्यतिक्रम होने की आशंका कम ही रहती है। नियत संकल्प को खाने या सोने से पूर्व ही कर लेंगे—ऐसा निश्चय रखा जाय तो आलस्य प्रमाद में जो अस्त-व्यस्तता उत्पन्न होती रहती है—उसकी सम्भावना न रहेगी। अनवरत साधना क्रम से संकल्प शक्ति बढ़ती है और अस्तव्यस्तता में न्यूनाधिक जब तब करते रहने की तुलना में लाभ भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है।

उपासना को फलश्रुतियाँ

तीर्थ सेवन सत्र में जहाँ एक लघु अनुष्ठान सम्पन्न करना चाहिए, वहाँ नियमित रूप से दैनिक उपासना का व्रत धारण करके भी जाना चाहिए। उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण में जिन व्रतों का आत्मिक प्रगति और भौतिक सुखशान्ति में भारी योगदान रहता है उनमें नियमित उपासना को दिनचर्या में सम्मिलित करना और उसमें व्यतिरेक न उत्पन्न होने देना एक बड़ा कदम है। उसे धारण करके लौटने पर उपलब्ध होने वाले सत्परिणामों को देखते हुए उसे पुण्यफल ही कहा जायेगा। आस्तिकता का दृष्टिकोण और व्यवहार में उतर जाना इतना बड़ा लाभ है जिसकी तुलना में बड़े से बड़ा उपार्जन भी हलका पड़ता है।

उपासना का अर्थ है समीप बैठना। समीप बैठने पर शक्तिशाली की क्षमताऐं कम शक्ति वालों में हस्तान्तरित होती हैं। चुम्बक के प्रभाव से लौहकण प्रभावित होते हैं और कुछ समय चिपके रहने पर वे भी अपने में चुम्बकत्व का गुण विकसित कर लेते हैं। उपासना यदि आत्मा में परमात्मा की विशेषताऐं विभूतियाँ उत्पन्न करने का लक्ष्य रखकर सच्चे मन से की गई हैं तो उपासक में महामानवों जैसी विशेषताऐं उत्पन्न होने लगती हैं। यह बड़ा लाभ है जिसे थोड़ा-सा समय और मनोयोग लगाने के बदले अनुदान प्राप्त करने वालों को सौभाग्यशाली ही कहा जायेगा।

जिसे अपने साथ ईश्वर के होने का विश्वास है वह न डरता है, व झुकता है, न टूटता है। उसे उज्ज्वल भविष्य का विश्वास बना रहता है। इतनी बड़ी शक्ति पीठ पर, उसका हाथ सिर पर रहने का विश्वास जिसे है वह मौत से भी नहीं डरता और अवरोधों के साथ पूरी शक्ति के साथ लड़ता है। साथ ही इतना धैर्य बनाए रहता है कि वैतरणी को भी तैरकर पार कर सके। कर्मफल तो ईश्वर भक्तों को भी भुगतान पड़ता है पर भक्त की विशेषता यह है कि उसका धैर्य सहज नहीं टूटता। फलतः मुसीबत का वह अंश अपने आप समाप्त हो जाता है। जो कुकल्पनाओं के कारण हर घड़ी शंका से शंकित और अनिष्ट की आशंका से सदा भयभीत बना रहता है।

ईश्वर का सर्वव्यापी न्यायकारी स्वरूप समझने वाले का कर्मफल की सुनिश्चितता पर भी विश्वास सुदृढ़ परिपक्व हो जाता है। ऐसी मनःस्थिति में छिपकर भी कोई पाप कर्म करना सम्भव नहीं रहता। वह सोचता है सरकार और समाज को चकमा दिया जा सकता है पर सर्वव्यापी सर्वदर्शी परमेश्वर को नहीं। भगवान स्वयं भी नियम व्यवस्था में बंधे हुए हैं। वे फिर सभी के साथ निष्कपट व्यवहार क्यों न करेंगे। कुमार्गगामी को दण्ड और सन्मार्गगामी को पुरस्कार क्यों नहीं देंगे। इस मान्यता के अनुसार ईश्वर का व्यवहार में उतरने वाला स्वरूप नीति-मर्यादा का अनुशासन ही प्रत्यक्ष होता है। उस विश्वास के आचार पर भगवद् भक्त को सदाचारी, साहसी और उदारमना सेवाभावी बनना पड़ता है जिसके पास यह विभूतियाँ हैं वह जन-जन का विश्वास स्नेह और सहयोग प्राप्त करेगा। अन्तःकरण प्रसन्न, प्रफुल्ल और सन्तुष्ट रहेगा । उपासना के आधार पर अर्जित किए जाने वाली यह उपलब्धियाँ इतनी महत्त्वपूर्ण हैं जिन्हें कुबेर के भण्डार से कम नहीं कहा जा सकता।

जीवन में सुसंस्कारिता का समावेश—परिवार निर्माण की साधना

तीर्थ सेवन सत्र के पाँच दिनों में पाँच उपलब्धियों को प्राप्त करने का प्रयत्न करने के लिए कहा गया है, उन्हें आत्मशोधन की दृष्टि से पंचगव्य कहा जा सकता है । भौतिक दृष्टि से वे बहुमूल्य पंचरत्नों के समान हैं । यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपलब्धियाँ जिन खदानों में होती थीं, उन्हें तीर्थ कहा गया है । खदानों में बहुमूल्य धातुऐं और रत्नराशि होती हैं, पर उसे कोई पोटली बाँध कर तो सिर पर नहीं लाद लेता । प्राप्तिकर्ता उसके लिए घोर परिश्रम करते हैं । पता लगाने से लेकर गहरे गड्ढे खोदने और मिट्टी मिले खनिजों को भट्टी में तपा कर शोधने के कष्ट साध्य पुरुषार्थ के उपरान्त ही उनके पल्ले वह पड़ता है जिस पर गर्व और सन्तोष किया जा सके । वरदान न तो तीर्थ उगलते हैं और सन्तों-देवताओं की कन्दराओं में टिड्डीदल की तरह निकल-निकल कर भक्तजनों के पेड़ों पर लद पड़ते हैं । ऐसे दिवास्वप्न देखने वालों को मन्दमति ही कहा जा सकता है । तथ्य पात्रता पर अवलम्बित है पात्रता में वरदानों से अधिक सामर्थ्य होती है । वही हरे-भरे क्षेत्रों की आकर्षण शक्ति बन कर उभरती है तो दूर आकाश में उड़ने वाले बादलों को वहाँ बरसने के लिए विवश कर देती है । तालाबों की गहराई दूर-दूर के क्षेत्रों से पानी को घसीट बुलाती और अपना भण्डार भर लेती है । प्रतिभा को हर दिशा में सहयोग का उपहार मिलता है जबकि पिछड़ापन जहाँ भी पहुँचता है लात खाता है । बाहर से कुछ पाने से पहले इच्छुकों को अन्यत्र से लम्बी चौड़ी आशा बाँधने की अपेक्षा अपनी पात्रता, क्षमता, विशिष्टता उभारनी पड़ती है और पुरुषार्थ के लिए साहस समेटना पड़ता है । सर्वव्यापी इसी नियम को तीर्थयात्री अपने ऊपर भी लागू करें । तीर्थों की वातावरण विशेषता का लाभ लेने के लिए अपनी मनोभूमि इस प्रकार की बनाएँ जिसमें दैवी अनुग्रह को ढूंढ निकालना, धारण करना और पचा लेना सम्भव हो सके अन्यथा समूची वर्षा ऋतु गुजर जाने पर भी चट्टानें सूखी ही पड़ी रहेंगी । अन्यत्र हरीतिमा लद जाने पर उन्हें शिकायत हो सकती है । वे चाहें तो वर्षा ऋतु पर, मेघ माला पर पक्षपात का दोषारोपण भी कर सकते हैं । दूसरों पर इल्जाम लगाकर अपना मन लगाने वाले तो अपनी सूझ-बूझ के लिए प्रख्यात हैं । कोई और नहीं दीखता तो दूरस्थ ग्रहों की दिशा उल्टी हो जाने की बात कहते पाए जाते हैं । इससे बनता कुछ नहीं आत्म प्रवंचना भर होती है । प्रगति के तथ्य तो अपने ही दृष्टिकोण और पुरुषार्थ पर पूर्णतया निर्भर रहते हैं ।

तीर्थ सेवन का 'दर्शन' समझें

जिस सदाशयता ने तीर्थ यात्रा की प्रेरणा दी हो उसी से यह अनुरोध भी किया जाना चाहिए कि वह इतनी सद्बुद्धि और भी दे कि उस दिव्य वातावरण में से अपने लायक कुछ सीखने-खींचने में भी समर्थ हो सके । बछड़ा चूसता है तभी गाय के थनों का दूध उतरता है । पाचन तंत्र हजम करता है तभी पौष्टिक खाद्य पदार्थों का लाभ मिलता है । तीर्थयात्री उन पाँचों उपलब्धियों को समेटने का प्रयत्न करें जो इस गये-गुजरे जमाने में भी कहीं-न-कहीं तो मिल भी जाती है । अन्यत्र न सही शान्तिकुंज में तो उसकी झलक-झांकी मिल ही सकती है । यहाँ से कुछ लेकर जाने के लिए भी उसी उत्कंठा को अग्रसर करना पड़ेगा, जो घर से लेकर यहाँ तक लम्बे प्रयास और भारी खर्च का प्रबन्ध कर सकने में समर्थ हुई हैं ।

तीर्थ स्थानों के सभी दर्शनीय स्थानों का इतिहास, उद्देश्य जानने का प्रयत्न करना चाहिए और उनकी परम्पराओं, प्रेरणाओं को हृदयगंम करना चाहिए । विचार यह भी करना चाहिए कि उन प्रतिपादनों में से आज की स्थिति में क्या कुछ ग्रहण करने योग्य है तथा क्या कुछ ऐसा है जिसे आज नहीं तो भविष्य में अनुकूलता होने पर ग्रहण किया जाना चाहिए । नाटक सभी देखते हैं पर गाँधीजी ने बचपन में हरिश्चन्द्र नाटक इस तरह देखा कि वह गरिमा उनके अन्तराल तक घुस गई और यह प्रतिज्ञा कराने के बाद ही लौटी कि अपने को भी हरिश्चन्द्र बनना है । इसी को दिव्य-दृष्टि कहते हैं । देवता का दर्शन इन्हीं ज्ञान चक्षुओं से किया जाना चाहिए अन्यथा आँखें फाड़-फाड़ कर देखने से छवि भर दृष्टिगोचर होती है और उससे कौतूहल भर को समाधान मिलता है । तीर्थयात्रा के परिभ्रमण में जो भी दर्शनीय स्थान देखे जायें उनकी परम्परा प्रेरणा को समझने-अपनाने की भी चेष्टा चलनी चाहिए, तभी वह कृत्य पुण्य-फल दायक हो सकता है ।

आत्मशोधन प्रायश्चित कल्प परिवर्तन का तीर्थसेवन के साथ सीधा सम्बन्ध है । यह कार्य शारीरिक नहीं आन्तरिक क्षेत्र का है । दृष्टिकोण और लोक-व्यवहार में यह परिशोधन-परिष्कार की प्रक्रिया कितनी मात्रा में किस प्रकार कब तक कार्यान्वित हो, इसका निर्धारण इन पाँच दिनों के स्वल्पकाल में पूरा कर लेना चाहिए । इन दिनों चिन्तन का एक-एक ही प्रमुख विषय रहे कि ऐसा कुछ ताना-बाना बुन लिया जाय जो भावी रीति-नीति का आधार बन सके ।

ईश्वर के साथ घनिष्ठता जोड़ सकना एक ऐसी साझेदारी है जिसमें हर दृष्टि से लाभ ही लाभ है । इसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए उपासना और साधना का उभयपक्षीय निर्धारण करना चाहिए । भजन, पूजा की लकीर पीटने में तो कितने ही लोग घण्टों का समय लगाते हैं, किन्तु उनके पीछे जिन भावनाओं का समावेश होना चाहिए उसी में प्राणतत्व भरा पड़ा है । उसी आधार पर वे लाभ मिलते हैं जो भगवत् भक्ति के साथ जुड़े हुए, कहे, बताए और माने जाते हैं । पाँच दिवसीय तीर्थ सेवन में न केवल १०८ माला का अनुष्ठान करना चाहिए वरन् यह भी निर्धारण करना चाहिए कि भविष्य में अपना उपासना क्रम क्या और किस प्रकार रहेगा । चित्र-विचित्र देवी-देवताओं का जमघट लगाने की अपेक्षा एक इष्ट का निर्धारण और उससे एकात्मतापूर्वक भाव नियोजन ही उपासना का उद्देश्य पूर्ण करता है । उसे बहुमुखी बना देने से विभाजन और बिखराव उत्पन्न होता है । श्रद्धा अस्तव्यस्त होती है अनेक मन्त्र, अनेक विधान, अनेक देवता वाली पूजा पद्धति से एकनिष्ठा समाप्त होती है और कौतूहल भर बढ़ता है । अनेक देवताओं से अनेक लाभ पाने की बाल बुद्धि छोड़ ही देनी चाहिए । भगवान एक है—उसी के अनेक नाम और स्वरूप देवी-देवताओं के नाम से रुचि भेद को ध्यान में रखते हुए गढ़े गये हैं । वास्तविकता एक ही परब्रह्म की है । ऐसी दशा में अकारण बिखराव उत्पन्न न करना ही बुद्धिमत्ता है । एकाग्रता की, एकनिष्ठा की, एकात्मता की, सत्प्रवृत्ति को पतिव्रत धर्म निभाने की तरह श्रेयस्कर माना गया है । इस निष्ठा को बहुतों पर बखेर देने से भक्ति व्यभिचारिणी हो जाती है । वेश्या को किसी भी दोस्त पर अधिकार जताने का साहस नहीं होता, जबकि पत्नी की अर्धांगिनी, सहचरी होने की स्थिति असंदिग्ध मानी जाती है । तीर्थ सेवन के दिनों में उपासना की अनिवार्य आवश्यकता को अनुभव करना चाहिए, उसे सुनियोजित बनाना चाहिए और भाविष्य में इसके निश्चित निर्वाद का व्रत लेकर लौटना चाहिए ।

यह तीन प्रसंग हुए—(१) तीर्थ स्थलों से प्रेरणा ग्रहण, (२) आन्तरिक परिशोधन-परिष्कार दृष्टिकोण एवं व्यवहार का अभिनव निर्धारण, (३) उपासना का सुनिश्चित उपक्रम । इन तीन के उपरान्त दो और रह जाते हैं, (४) जीवन साधना के लिए परिवार की प्रयोगशाला का उपयोग । (५) सदुद्देश्य की पूर्ति के लिए उदार अनुदान-देव-दक्षिणा तीर्थों को सुफल-सफल बनाने वाला दानपुण्य । इन दो पर अगले पृष्ठों पर कुछ प्रकाश-प्रतिपादन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

जीवन साधना : परिवार की प्रयोगशाला में

उपासना का अविच्छिन्न अंग है साधना । दोनों को मिला देने पर ही पूर्णता बनती है । जीवन साधना का तात्पर्य है, संचित कुसंस्कारों और वातावरण प्रदूषण—लोक प्रचलन से बने हुए अनगढ़ ढर्रे में साहस भरा परिवर्तन । गुण, कर्म, स्वभाव में घुसी हुई अनगढ़ आदतों—अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन । साथ ही उस विसर्जन की रिक्तता को दूर करने के लिए चिन्तन में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता का बीजारोपण-अभिवर्धन । इस उन्मूलन और संस्थापन की उभयपक्षीय प्रक्रिया ही समन्वित रूप में जीवन साधना कहलाती हैं । यह कहने-सुनने से, पढ़ने-लिखने से नहीं बनती । इसके लिए अभ्यास आवश्यक है । अभ्यास को ही संस्कार कहते हैं । संस्कारों में ही शक्ति होती है । ज्ञान और कर्म के समन्वय से संस्कार बनते हैं और वे ही अध्यात्म क्षेत्र के वास्तविक शक्ति-सामर्थ्य माने जाते हैं । उन्हीं को अर्जित करने के लिए लम्बे समय तक जप-तप, एकान्त, मौन आदि की लम्बे समय तक साधनाएँ करनी पड़ती हैं । मरने के बाद केवल संस्कार ही साथ जाते हैं और वे ही स्वर्ग-नरक, की पुनर्जन्म की सद्गति-दुर्गति की पृष्ठ भूमि बनाते हैं । स्वयं सुसंस्कारी बनने का ही नाम आत्मोपलब्धि है । दूसरों को सुसंस्कारी बनाने का नाम ही सच्ची परमार्थ साधना है । स्वयं सम्पन्न बनना एवं उसके लिए सुविधासाधन जुटाना शरीर को सुखद लगते हैं, किन्तु आत्मा का उत्कर्ष उन्हीं दैवी सम्पदाओं के सहारे होता हैं जिन्हें सद्गुण कहा जाता है । जीवन साधना में इसी क्षेत्र के प्रबल पुरुषार्थ करने होते हैं । परिशोधन को महाभारत जीतने, लंका विजय करने के समतुल्य माना गया है । परिष्कार को राम राज्य स्थापित करने के सदृश माना गया है । इसी को धरती पर स्वर्ग का अवतरण कहते हैं ।

इसका अभ्यास किस प्रकार, कहाँ किया जाय ? उसका उत्तर एक ही है—परिवार की प्रयोगशाला में सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन का अभ्यास किया जाय । व्यायामशाला में प्रवेश करके लड़ना—पाठशाला में भर्ती होकर पढ़ना, तालाब में कूद कर तैरना, मण्डली के साथ खेलना सम्भव होता है, उसी प्रकार सद्गुणों को विकसित करने के लिए कोई कार्य क्षेत्र चाहिए । इसी के लिए परिवार संस्था है । मनुष्य की मूल प्रवृत्ति पारिवारिकता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की है । इसी का विकसित रूप सामाजिकता या सहकारिता है । मनुष्य का निर्वाह और विकास बिना समूह में रहे अति कठिन है । एकाकीपन अन्वेषक वैज्ञानिकों के प्रयोग परीक्षण में अपवाद रूप में ही प्रयुक्त होता है । लोक प्रचलन में तो पग-पग पर सान्निध्य चाहिए । चिरस्थाई और निरन्तर सान्निध्य परिवार संस्था के अन्तर्गत ही बनता है । जीवन-साधना का अभ्यास इसी संस्था के आश्रय में रहकर किया और कराया जा सकता है ।

परिवार का अर्भ पत्नी और उसके पेट से उत्पन्न हुए बालबच्चों तक ही सीमित नहीं माना चाहिए । ऐसा तो पशु-पक्षी भी प्रकृति प्रेरणा से बनाते रहते हैं । मानवी-परिवार की व्यवस्था में प्रजनन एवं रक्त सम्बन्ध का कोई स्थान नहीं है । जो लोग एक साथ मिल-जुलकर सोते-खाते हैं उनका सहज परिवार बन जाता है । मिल-जुलकर जीवन साधना का आरम्भिक किन्तु नियमित अभ्यास करने के लिए ऐसे ही समुदाय की आवश्यकता पड़ती है । इसमें अपने पराए कोई भी सम्मिलित रह सकते हैं । परिवार बनाने के लिए विवाह करना और बच्चे जनना आवश्यक नहीं । अविवाहित लोग भी अपने साथियों की मण्डली में पारिवारिकता का विस्तार कर सकते हैं और समुचित लाभ ले सकते हैं ।

इन दिनों परिवार निर्वाह ही सबके ऊपर भूत की तरह चढ़ा रहता है । अपने लिए, अपने कुटुम्बियों के लिए अधिकाधिक सुविधा साधन जुटाना—इसी को परिवार की जिम्मेदारी निभाना कहते हैं । निर्वाह जुटाने की आवश्यकता से कोई इन्कार नहीं करता, पर देखा यह जाना चाहिए कि उन्हें विलासी, अपव्ययी, आलसी, अहंकारी बनाने वाले आवश्यक सुविधा साधन तो उन पर लादे नहीं जा रहे हैं । उनकी फरमाइशों को पूरा करते रहने में ही संतोष तो नहीं माना जाने लगा है । परिवार के लोग सुखी हैं या नहीं इस तथ्य को जानने के लिए उनकी इच्छा, रुचि या माँग को पूरा करने को कसौटी नहीं मानना चाहिए । वरन् यह देखना चाहिए कि उनकी सुसंस्कारिता बढ़ रही है या नहीं । इस सम्पदा के बिना किसी का सिर से पैर तक हीरक-हारों से लाद देने पर उसका पिछड़ापन दूर न हो सकेगा । जो भीतर से पिछड़ा है वह बाहर से सुसम्पन्न दीखते हुए भी भीतरी दुर्गुणों के कारण स्वयं खीजता और दूसरों को खिजाता रहेगा ।

सम्पन्नता अपने हाथ की बात नहीं । वर्तमान परिस्थितियों में उसे योग्यता और श्रमशीलता के आधार पर भी ईमानदार रहने पर एक सीमित मात्रा मे ही उपार्जित किया जा सकता है फिर उसे इच्छित मात्रा में कमाने के लिए या तो परिस्थितियों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है या फिर अपराधी दुष्प्रवृत्तियाँ अपना कर अनैतिकता का मार्ग अपनाना पड़ता है । इतने पर भी यह कहा नहीं जा सकता कि उससे परिवारियों की बढ़ी-चढ़ी मांगें और आवश्यकताऐं सन्तोषजनक मात्रा में पूरी हो सकीं या नहीं ?

यह दुनियादारी की बातें हुईं । जीवन साधना के लिए जिस उदात्त-दृष्टिकोण को अपनाना पड़ता है उसमें सम्पन्नता नहीं, महानता को महत्त्व दिया गया है । महानता सद्गुणों और सुसंस्कारों पर आधारित है । जीवन-साधकों को सोचना पड़ता है कि अपने को, अपने परिजनों को, सुसंस्कारों की दैवी सम्पदा से किस प्रकार अलंकृत, सुसज्जित किया जाय ? सारे चिन्तन और प्रयास को इसी धुरी पर केन्द्रित करने से गाड़ी आगे बढ़ेगी, अन्यथा परिवार-पोषण जीवनोत्कर्ष में सहायक कम और बाधक अधिक बनेगा । परिवार की संख्या बढ़ाते चलना इन दिनों परले सिरे की मूर्खता हैं । इसमें दुर्बुद्धिग्रस्त ही प्रसन्नता अनुभव कर सकते हैं । पत्नी का स्वास्थ्य, अपना अर्थ-सन्तुलन, बच्चों का भविष्य और राष्ट्र का व्यवस्था क्रम बिगाड़ डालना ही इन दिनों सन्तानोत्पादन के दुष्परिणाम हैं । जिन परिस्थितियों से होकर आज मनुष्य समाज गुजर रहा है उसमें बच्चे उत्पन्न करना किसी के लिए प्रसन्नता की, प्रतिष्ठा की, बात नहीं होनी चाहिए । घर के अन्य बच्चों को, पड़ोसियों सम्बन्धियों के बालकों को भी अपना मानने और उनके विकास में सहायक बनकर भी वह प्रसन्नता उपलब्ध की जा सकती है जो अपने निजी बालकों से सोची गई है । यही बात लड़की-लड़कों के सम्बन्ध में भेदभाव करने के सम्बन्ध में भी है । लड़की को हेय और लड़के को श्रेष्ठ मानना सर्वथा अनैतिक है । नर और मादा के रूप में ही मनुष्य समाज का ढाँचा खड़ा हुआ है । दोनों की महत्ता, उपयोगिता एवं भूमिका समान है, इसलिए इनमें से किसी को भी श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट नहीं मानना चाहिए । वंश चलने डूबने जैसा चिन्तन आदिम युग का हो गया । अभी भी कोई उसे अपनाए तो यही कहना चाहिए कि रामायणकार ने इन्हीं को लक्ष्य रखकर—'सबसे भले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विमूढ़, जिनहिं न व्यापहि जगत गति' वाली उक्ति लिखी है । लड़की लड़कों में भेदभाव करने की मध्यकालीन मूढ़ मान्यता को अब भी छाती से चिपकाये रह कर मरे बच्चे को छाती से बांधे फिरने वाली बंदरी का उदाहरण कम-से-कम विज्ञजनों को तो नहीं ही बनना चाहिए । बच्चे सो बच्चे। उन्हें लड़की-लड़के के नाम पर प्यार-दुलार,भरण-पोषण, मान-सम्मान में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाना चाहिए । दोनों को ही समर्थ-स्वावलम्बी बनाने पर दृष्टि रखी जानी चाहिए । धूम-धाम भरे खर्चीले विवाह-जल्दी-जल्दी निबटा देने की मूर्खता अपना कर कितने ही लोग अपने बच्चों को दुर्बलताग्रस्त एवं पिछड़ा, गया-गुजरा बना देते हैं । इस सम्बन्ध में समझदारी यह बरती जानी चाहिए कि उन्हें समर्थ स्वावलम्बी बनने तक अपने पैरों खड़े हो सकने की क्षमता अर्जित कर लेने तक विवाह-शादी के बन्धन में न बाँधा जाय ।

बच्चों की शिक्षा क्या हो ? यह प्रश्न भी विचाणीय है । नौकरी के लिए पढ़ाई वाली नीति अब क्रमशः पूरी तरह असफल होती जा रही है । जितने नौकरों के लिए सरकारी-गैर सरकारी संस्थानों में जगह है वे पूरी तरह भरे हुए हैं । रिटायर होने—मरने का क्रम भी ऐसा नहीं है जिसमें हर साल नौकरी के इच्छुक लाखों को खपाया जा सके । नये काम भी इस अनुपात में बढ़ने वाले नहीं हैं । ऐसी दशा में नौकरी के लिए पढ़ाई का प्रचलित ढर्रा विचारणीय हैं । अन्धी भेड़ चाल चलती रही तो शिक्षितों को बेकारी एक नया संकट खड़ा करेगी । महत्त्वाकांक्षाएँ संजोये रहने वालों को जब सब ओर अन्धेरा दीखता है, तो वह बागी होता, विग्रह पर उतरता और संकट खड़े करता है । इस स्थिति में अपने बच्चों को झोंकना किसी भी दृष्टि से बुद्धिमानी नहीं है । दूसरे क्या सोचते और क्या करते हैं, इस झंझट में न पड़कर हमें अपनी स्वतन्त्र विवेक बुद्धि का आश्रय लेना चाहिए और इस निर्णय पर पहुँचना चाहिए कि समय, श्रम, धन का अपव्यय बचाते हुए बालकों को किशोरावस्था समाप्त होते-होते ऐसी दिशा में मोड़ देना चाहिए जिससे वे स्वावलम्बनपूर्वक निर्वाह साधन जुटा सकें । उच्च शिक्षा के लिए जिनमें प्रतिभा विद्यमान है उन अपवादों को छोड़कर सामान्यजन उस मृगतृष्णा से पीछे हटें और मैट्रिक के उपरान्त बालकों की दिशा निर्धारित कर दें कि उन्हें आजीविका के लिए क्या करना है, जो कहना हो वही सिखाया जाय । ज्ञानवृद्धि के लिए तो स्वाध्याय मात्र का चस्का लगा देने और अभिरुचि के वातावरण से सम्पर्क साधे रहने पर बहुत कुछ काम चल जाता है । सरकार शिक्षा प्रणाली बदले तब तक प्रतीक्षा में ढर्रे पर लुढ़कते रहने की अपेक्षा यही अच्छा है कि निजी विवेक बुद्धि का उपयोग किया जाय तो बालकों के लिए स्वावलम्बन के रास्ते पहले से ही विनिर्मित कर दिये जायें । मेहनत से बचकर कुर्सी पर बैठकर बाबूगीरी की फिराक में फिरने की कुरुचि से हर व्यक्ति को विशेषतया बालकों को समय रहते ही विरत कर दिया जाना चाहिए । अन्यथा वे शरीर से दुर्बल मस्तिष्क से अक्षम, पराक्रम से शिथिल और भविष्य को जटिल-कठिन बनाने लगेंगे । शिक्षा, विवाह, स्वावलम्बन के प्रश्न को बुद्धिमत्ता के साथ हल करके ही बालकों के साथ न्याय किया जा सकता है । इस प्रसङ्ग में लड़की-लड़कों के बीच बरते जाने वाले भेद-भाव का अविलम्ब परित्याग किया जाना चाहिए ।

कहा जा चुका है कि जीवन साधना का प्रयोग-परीक्षण करने के लिए कोई प्रयोगशाला होनी चाहिए और वह निरन्तर उपलब्ध हो सकने की दृष्टि से परिवार संस्था ही हो सकती है । सद्गुणों को पढ़ते, सुनते रहने से काम नहीं चलता, उन्हें व्यवहार में उतारने पर ही कुछ लाभ मिलता है, अन्यथा निरर्थक कल्पना-जल्पना से तो मानसिक दबाव ही बढ़ता है । सद्गुणों में कुछ मानसिक, भावनात्मक, चारित्रिक, सामाजिक हैं उनमें जो नितान्त आवश्यक हैं, प्राथमिकता उन्हीं को देनी चाहिए । प्रयत्नों यह होना चाहिए कि अपने प्रियजनों में उनका प्रचलन हो । यह सरल भी है । क्योंकि परिवार के साथ अपना स्नेह-सौजन्य आत्मभाव ही नहीं दबाव भी जुड़ा रहता है । उन्हें बाहरी लोगों की अपेक्षा अन्य कामों की तरह सत्प्रवृत्तियाँ अपनाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक आसनी से सहमत और तत्पर किया जा सकता है ।

इसके लिए सर्वप्रथम अपने स्वभाव में उन अच्छाइयों का समावेश करना होगा जिन्हें कि परिवार के सदस्यों को स्वीकारने के लिए कहा जाता है । शिल्प व्यवसाय, भूगोल, इतिहास आदि की जानकारी तो स्कूली ढंग से पढ़ाने पर भी दूसरों को दी जा सकती है और उन्हें उस विषय में प्रवीण बनाया जा सकता है किन्तु चरित्र सम्बन्धी बातों में सबसे बड़ी बात यह है कि उसके लिए अनुकरणीय उदाहरण चाहिए । निकृष्टता तो सहज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वाभाविकता है । पानी ढलान की ओर सहज बहने लगेगा किन्तु ऊँचा उठाने के लिए विशेष उपकरण चाहिए । समाज में सत्प्रवृत्तियों का प्रचलन है नहीं, जिससे उन्हें अपनाने की प्रेरणा अन्यत्र से मिल सके । इसलिए घर-परिवार को सुधारने के लिए प्रयत्नशील लोगों को हीं अपना उदाहरण प्रस्तुत करना होगा । अन्यथा कोई सुन भले ही ले अपनायेगा नहीं । सीखने का यदि यह प्रतिपादन लाभदायक रहा होता तो सर्वप्रथम उपदेशकर्त्ता ने ही उसे अपनाया होता । श्रेष्ठ प्रयोजनों के लिए सदा से यही उपाय अपनाना पड़ा है कि प्रतिपादनकर्ता सर्वप्रथम उन आदर्शों को अपने जीवन में उतारें । साधु ब्राह्मणों के जिम्मे जन-साधारण को धर्म धारणा अपनाने के लिए तत्पर किये रहना था । यह कार्य वे तभी ठीक प्रकार कर सके जब उन्होंने अपनी जीवनचर्या को तदनुसार बनाया । श्रेष्ठता बढ़ाने, आदर्श अपनाने का प्रसंग जब भी सामने होगा तब सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की पड़ेगी कि जो कहा जा रहा है उसका प्रेरणाप्रद उदाहरण सामने हो । प्रत्येक परिवार निर्माता को स्वयं इसके लिए तैयार होना चाहिए कि परिजनों को जैसा भी कुछ बनाना है उसके अनुरूप अपनी आदतों को सुधारा, सम्भाला और परिपक्व किया जाय । जहाँ इतना बन पड़ेगा समझना चाहिए आधी समस्या हल हो गई । परिवार के प्रमुख व्यक्तियों का स्वभाव, आचरण, व्यवहार जैसा भी होता है घर के अन्य लोग भी उसी सांचे में ढलते जाते हैं ।

हर व्यक्ति को सभ्य, सुसंस्कृत, प्रगतिशील, सुखी, समुन्नत बनने के लिए जिन सद्गुणों की अनिवार्य आवश्यकता है । इनमें पाँच प्रमुख हैं—(१) श्रमशीलता, (२) शालीनता, (३) मितव्ययिता, (४) सुव्यवस्था, (५) सहकारी उदारता । इन पाँचों की महत्ता एवं उपयोगिता समझी जानी चाहिए । परिवार के हर व्यक्ति के स्वभाव में इनका समावेश करना चाहिए । साथ-साथ अपने आपको भी इनसे अभ्यस्त करते चलना चाहिए । इससे दुहरा लाभ है । परिवार के प्रति उच्चस्तरीय कर्त्तव्य का पालन और साथ ही अपनी जीवन-साधना का सहज सुगम-अभ्यास ।

परिश्रम के लिए उत्साह रखने वाले, उसे अपनी समर्थता विकसित करने का अवसर मानने वाले, प्रतिष्ठा का प्रश्न समझने वाले लोग अपने समय का पूरा लाभ उठाते हैं । इसके विपरीत आलसी, प्रमादी, कामचोर व्यक्ति अपनी मानसिक क्षमता घटाते, शरीर को जंग लगे लोहे की तरह गलाते चले जाते हैं । परिश्रम और मनोयोग का संयोग जिस भी काम में सुनियोजित ढंग से किया जायेगा उसकी सफलता सुनिश्चित बनेगी । साथ-साथ काया परिपुष्ट, नीरोग, दीर्घजीवी, सुडौल सुन्दर बनेगी । इसके अतिरिक्त बौद्धिक क्षमता, सूझ-बूझ प्रतिभा जैसी विभूतियाँ निरन्तर बढ़ती चली जायेंगी । सम्पन्नता एवं सफलता के सोपान पार करने वाले परिश्रमी ही हुए हैं । आलसी, तिरस्कृत होते, दरिद्र रहते और पिछड़ेपन की लानत से लदे रहते हैं । इसलिए घर के हर व्यक्ति को उसकी सामर्थ्यानुसार शारीरिक एवं मानसिक श्रम में लगे रहने की रुचि उत्पन्न करनी चाहिए । आलस्य माने दारिद्रय, पिछड़ापन, दुर्भाग्य यह सब परिभाषाएँ याद ही नहीं रखनी चाहिए वरन् रट भी लेनी चाहिए । घरेलू कार्यों को घर के सब लोग ही मिलजुल कर करें । इसे उत्साह सम्मान और क्षमता संवर्धन का सुयोग समझें । बड़ों का हाथ बंटाना, सुविधा देना कर्त्तव्य है । किन्तु किसी को भी यह अवसर नहीं देना चाहिए कि वह समर्थ होते हुए भी हाथ पर हाथ रखे बैठा रहे और आवारागर्दी में समय गुजारे । 'खाली दिमाग शैतान की दुकान' वाली उक्ति में बहुत कुछ सार है । यदि उपयोगी काम में न लगाये रहा जाय तो शरीर और मन दोनों ही सड़ने लगेंगे और बन्द अवरुद्ध गड्ढे की तरह सड़कर कीचड़ बनेंगे । झरना बहता है और सदा स्वच्छ रहता है यही बात आलसी और परिश्रमशील के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है ।

दूसरा महत्त्वपूर्ण सद्गुण है शालीनता । शालीनता का अर्थ है सभ्यता । सभ्यता अर्थात् शिष्टाचार का परिपालन । अपनी नम्रता और दूसरों के प्रति सम्मान की अभिव्यक्ति करने वाला मधुर वचन और सम्मान सूचक व्यवहार को शिष्टाचार कहते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ लोक मर्यादाऐं भी हैं जिनका जानना और प्रयोग में लाना आवश्यक है । छोटों को बड़ों के प्रति उठने-बैठने की नमन-बन्दन की- कई मर्यादाऐं क्षेत्रीय प्रचलनों के अनुसार निभानी पड़ती हैं । इन्हें दूसरे सभ्यजनों से पूछकर—देखकर सीख लेना चाहिए । कटु-कर्कश वचन, क्रोध, आवेश, पूछने पर उत्तर न देना आदि कितने ही असभ्यतासूचक माने जाते हैं । स्त्रियों की अतिशय श्रृंगारिकता, लज्जा अंगों को खुला या झांकने योग्य रहने देना, बेढंगेपन से इधर-उधर देखना, उद्धत हंसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हंसना—ऐसी आदतें हैं जिन्हें प्रगतिशीलता समझ कर अपनाया जाता है किन्तु अकारण ही चरित्र-हीनता की निशानी बन जाती है । छोटे-मोटे अनेकों शिष्टाचार हैं जिन्हें व्यावहारिक सभ्यता जैसी पुस्तकों के सहारे या शिष्ट लोगों के बीच रहकर सीखा जा सकता है ।

सचाई, ईमानदारी, मर्यादापालन, नागरिक-कर्त्तव्यों का निर्वाह, समय सम्बन्धी नियमितता, जैसे-नैतिक नियमों का पालन भी सज्जनता के शालीनता के अंग हैं । चरित्र-निष्ठा, प्रामाणिकता, सादगी की रीति-नीति भी शालीनता में सम्मिलित है । उच्छृंखलता, उद्दण्डता, से बचे रहना सज्जनोचित प्रक्रिया है । दूसरों से मिलने के समय आगमन पर सत्कार के, विदाई के समय आत्मीयता प्रकट करने के, कुछ ऐसे शिष्टाचार हैं जिन्हें पालन करने पर मनुष्य को रुखा, नीरस, असभ्य, असंस्कृत समझा जाने लगता है । ऐसी स्थिति न आने पाए इसके लिए शालीनता के सभी नियम अनुशासनों- को अपनाना चाहिए और उन्हें घर के हर सदस्य को प्रेमपूर्वक समझाना चाहिए । भूलने पर स्मरण दिलाना चाहिए ।

तीसरा सद्गुण है मितव्ययिता । पैसा कमाने में जितनी बुद्धिमानी और मेहनत की आवश्यकता पड़ती है उससे कही अधिक दूरदर्शिता खर्च करते समय अपनानी होती है । अपव्यय में लगा पैसा, दुर्व्यसन सिखाता है, विलासी और अहंकारी बनाता है । ठाट-बाट या उद्धत-प्रदर्शन में लगाई गई राशि अमीरी का सम्मान नहीं दिलाती, पर अप्रामाणिक और अदूरदर्शी होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है । ऐसे ही लोग धूर्तों द्वारा मित्रता, चापलूसी आदि के बहाने ठगे जाते हैं । पैसा एक शक्ति है । उसके बदले उत्थान, पतन, यश-अपयश, कुछ भी खरीदा जा सकता है । दूसरों की आँखों में धूल झोंकने, चकाचौंध उत्पन्न करने और इस बहाने अपने को सम्पन्न सफल बताने का आडम्बर रचा जाता है । उसका प्रतिफल इच्छा के विपरीत होता है ऐसे लोगों के प्रति पड़ोसियों की ईर्ष्या उमड़ती है—तरह-तरह के लांछन लगते हैं । अब वह समय चला गया जब फिजूलखर्ची अमीरी का चिह्न मानी जाती थी और लोगों की आँखों में इज्जत पैदा किया करती थी । इन दिनों समाजवाद, साम्यवाद की हवा है । सज्जनता और सादगी पर्यायवाची बनती जाती हैं । अपव्ययी लोगों को आवश्यक कार्यों में कटौती करनी पड़ती है और कर्जदार या बेईमान बनकर ये किसी प्रकार उस उच्छृंखलता की पूर्ति करते हैं । ऐसे लोगों से समझदार लोग बचते और अपने प्रियजनों को बचाते रहते हैं ताकि उनकी छूत का आक्रमण होने से अपना भी सर्वनाश न होने लगे । कुसमय में काम आने तथा सत्प्रवृत्तियों के परिपोषण के लिए—प्रगति के साधन जुटाने के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ती है । इसे वही लोग एकत्रित कर सकते हैं जिननें मितव्ययिता का महत्त्व समझा है ।

चौथा गुण है—सुव्यवस्था । समय की, पैसे की, वस्तुओं की, मकान की, सम्पदा हर किसी को न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध है । उनका कौन किस प्रकार उपयोग करता है, यह उसकी सुसंस्कारिता पर निर्भर है । अव्यवस्था को गन्दगी कहते हैं और यथास्थान रखने, यथावत् रखने को शोभा सुसज्जा । गन्दगी की अव्यवस्था को हटाने और कायदे-करीने से हर वस्तु का उपयोग करने, उसे शोभायमान, सुसज्जित रखने में कलाकारिता है । फूहड़ वे हैं जो व्यवस्था से परिचित नहीं और उपकरणों को जहाँ-तहाँ बखेरे, जिस-तिस स्थिति में पड़ा रहने देते हैं । बर्तन यदि जहां-तहां बिखरे पड़ें हों तो उन्हें कूड़े-करकट की तरह पाया जायेगा और यदि कचरा भी ढक्कनदार बन्द कूड़ेदान में रखा गया है तो अपने स्थान पर सुन्दर शोभायमान लगेगा । कपड़े जूते जहाँ-तहाँ पड़े हों तो वे कूड़े जैसे लगेंगे यदि वे यथा स्थान, पंक्तिबद्ध रखे हैं तो उस सुरुचि की सराहना की जायेगी ।

घर की वस्तुओं, पुस्तकों, कपड़ों, साधन-उपकरणों के साथ सुव्यवस्थित यथास्थान रखने की विधि व्यवस्था से उस सद्गुण का अभ्यास किया जा सकता है जो आगे चलकर कुशल व्यवस्था की विवेक बुद्धि जागृत करता है और हाथ में लिए काम को सफल कर दिखाने की प्रतिभा बनकर प्रकट होता है । स्मरण रहे साधनों का उपलब्ध होना उतने सौभाग्य का चिह्न नहीं जितना कि उनको सही तरीके से रखरखाव करना और यथासमय यथावत् उपयोग करने की कलात्मक दूरदर्शिता से अभ्यस्त होना । सफलताओं की कुंजी सम्पन्नता ही नहीं, सुव्यवस्था है । उच्च पदासीन बनाए जाने में इसी सद्गुण की प्रधानतया परख की जाती है ।

परिवार के सदस्यों को उस सद्गुण से अभ्यस्त बनाने के लिए हर दिन सप्ताह में या जैसी भी सुविधा हो घर के सब लोगों को इस कार्य में जुट पड़ना चाहिए कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर के हर सामान को सुसज्जित बनाया जाय। टूट-फूट की मरम्मत की जाय । मकान की सफाई, पुतायी, फर्नीचर की रंगाई, कपड़ों की धुलाई, वस्तुओं को यथास्थान रखने, शोभायमान बनाने की कुशलता में स्वयं लगते हुए, घर के अन्य लोगों को इसमें साथ देने, रुचि लेने के लिए समेटा-किया जाय । प्रयत्न यह किया जाय कि ऐसी सुरुचि सभी में पैदा की जाय दूसरों को अभ्यस्त करने के बहाने अपने में वह सद्गुण और भी अधिक मात्रा में विकसित होता है और जीवन-साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग बनकर स्वभाव में घुसी अवांछनीयता को हटाने और सुसंस्कारिता जमाने में सहायक होता है ।

पाँचवा सद्गुण है—उदार सहकारिता । इसका तात्पर्य है—आत्मीयता के क्षेत्र को अधिक व्यापक बनाना। मिल-जुलकर काम करना । एकाकीपन की संकीर्ण स्वार्थपरता को घटाते और हटाते हुए समाज का एक विनम्र घटक बनकर रहना । सामूहिक उन्नति में भरपूर सहयोग देना । इस प्रयास में तात्कालिक कुछ घाटा भी दीखता हो तो उसे गरिमा वृद्धि की तुलना में नगण्य मानते हुए प्रयत्न पूर्वक अपनाना ।

यह स्वभाव जैसे-जैसे बढ़ता और चरितार्थ होता जाता है, मनुष्य अधिकाधिक श्रद्धास्पद, सम्माननीय बनता है और उसे दूसरों का सहज सहयोग मिलने लगता है । अन्तरात्मा की इस प्रवृत्ति के साथ-साथ गर्व, गौरव, सन्तोष एवं आनन्द की अनुभूति भी बढ़ाता जाता है । सत्प्रयोजनों के लिए, सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए, बरती गई उदारता कभी किसी के लिए घाटे का सौदा सिद्ध नहीं हुई । संकीर्ण, स्वार्थतरता से ग्रस्त आपाधापी में निरत, दूसरे की उपेक्षा करने वाले, अपने मतलब से मतलब रखने वाले अपने को समझते तो चतुर हैं किन्तु दूसरे की सहानुभूति से वंचित रहने के कारण वे सहते अपेक्षाकृत घाटा ही हैं । इस तथ्य को समझते हुए परिवार में मिल-जुलकर काम करने की एक दूसरे का हाथ बंटाने की, सामूहिक उन्नति के लिए तत्पर रहने की वृत्ति विकसित करनी चाहिए । ऐसे अवसर जिस किसी के सामने आयें उसमें उन्हें चूकने नहीं देना चाहिए । बड़ी कक्षा वाले छात्र अपने छोटे भाई बहनों को पाठ याद करायें । छोटे अपने से छोटों की सहायता करें । मिल जुलकर काम करने से स्नेह, सद्भाव बढ़ता है । सहकारिता अपना कर ही मनुष्य ने इतनी उन्नति की है और सफलता के क्षेत्र में प्रवेश पाया है । महानता की दृष्टि से इसे एक आध्यात्मिक सत्प्रवृत्ति माना जाता है और सर्वतोमुखी प्रगति के लिए इसे अपनाने पर पूरा जोर दिया जाता है । प्रयत्न यह होना चाहिए कि घर का कोई भी व्यक्ति संकीर्ण-स्वार्थपरता की क्षुद्रता से ग्रसित न होने पाए । परस्पर सहायता और उदार सेवा करने से जी न चुराये । यह सत्प्रवृत्ति बढ़ने का अर्थ है—उज्जवल भविष्य का निर्धारण ।

दूसरे के लिए मेंहदी पीसने वाले के हाथ स्वयमेव रच जाते हैं । परिवार में उदार सहकारिता का अभ्यास कराने वाले इसके लिए तर्क प्रस्तुत करने और अभ्यास का उपक्रम बनाने को वह लाभ अनायास ही मिलता है और जीवन साधना का अभ्यास भली प्रकार चलता रहता है । सद्गुणों के सत्परिणामों की जानकारी भर रहने से कुछ काम नहीं चलता । उनका समावेश व्यवहार-स्वभाव में होना चाहिए । यह कार्य एकाकी नहीं हो सकता । अभ्यास के लिए जिस प्रयोगशाला की आवश्यकता है वह परिवार के रूप में हर किसी के सामने प्रस्तुत हैं ।

परिजनों को भी सुखी-समुन्नत बनाने में यदि सच्ची और गहरी आकांक्षा हो तो उन्हें सम्पन्न बनाने प्रसन्न रखने की बात ही नहीं सोचते रहना चाहिए वरन् यह भी देखना चाहिए कि उनकी सुसंस्कारिता बढ़ रही है या नहीं। दृष्टिकोण उदार और चरित्र आदर्श बन रहा है या नहीं । इस दृष्टि से पिछड़ापन बना रहे तो कुबेर जैसा सम्पन्न और इन्द्र जैसा चतुर होने पर भी मनुष्य की गरिमा हेय स्तर की ही बनी रहेगी और वह अपने लिए, सम्बद्ध लोगों के लिए समाज के लिए अभिशाप बन कर ही रहेगा। इस सम्बन्ध में सतर्कता बरती जाय तो अपने प्रियजनों का सच्चे अर्थों में हित साधन किया जा सकता है । इसके लिए एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की रखी जानी चाहिए । परिजनों को प्रसन्न रखना ही पर्याप्त नहीं उन्हें समुन्नत भी बनाया जाना चाहिए । परिवार में ही अपनी इन्द्रियों को, मन-बुद्धि-चित्त वाले अन्तःकरण को, गुण-कर्म-स्वाभाव को भी सम्मिलित रखना चाहिए और उन्हें भी अनगढ़ आदतों से छुड़ा कर सभ्य सुसंस्कारी बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नरत रहना चाहिए। स्मरण रहे आदतें बदलने के लिए सुनिश्चित संकल्प, अविचल धैर्य और अपनों से प्यार पूर्वक लड़ने की प्रखरता विकसित करनी पड़ती है । जो इस आरम्भिक तैयारी में सफल होते हैं वे अपने इस सृजन प्रयोजन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिना किसी विशेष कठिनाई के पूर्ण सफल होकर रहते हैं ।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक मन इस प्रकार काय परिवार के सदस्यों की संख्या ग्यारह है । दूसरा सम्बन्ध कुटुम्ब परिवार है । इसमें अंश-वंश के कई परिजन एक साथ रहते हैं और निर्वाह तन्तु के सहारे परस्पर गुंथे रहते हैं । इन दिनों परिवारों को सुव्यवस्थित समुन्नत बनाना ही एक प्रकार से किसी राष्ट्र का सूत्र संचालन करने के समान है । इसे जिम्मेदारी से भरा और समझदारी पर आधारित मानना चाहिए । जो इस निकटवर्ती शासन व्यवस्था को सम्भालने में सफल होते हैं उनसे यह आशा की जा सकती है कि वे बाह्य जगत में, सामाजिक जीवन में भी सृजनात्मक कुशलता का श्रेय प्राप्त करेंगे । इसलिए अपनी विवेक युक्त दूरदर्शिता का निर्माणात्मक प्रखरता का प्रयोग परिवार क्षेत्र में करते हुए आत्म सत्ता का उत्थान क्रम पर अग्रसर करते हुए पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त कर सकने की स्थिति तक पहुँचना चाहिए। यह एक अत्यन्त प्रभावी किन्तु सरल सौम्य व्यवहार एव तत्काल प्रत्यक्ष फलदायी साधन है । इसमें स्वार्थ और परमार्थ का, लौकिक और पारलौकिक हित साधन का पूरा-पूरा समावेश है । इस ओर यदि पिछले दिनों उपेक्षा बरती जाती रही हो तो तीर्थ सेवन की अवधि में उसे उलट देने का संकल्प करना चाहिए और परिवार निर्माण के माध्यम से अपनी जीवन साधना सुनियोजित करने की रूप रेखा इसी पवित्र एवं बदले हुए वातावरण में रहते-रहते सुनिश्चित कर लेनी चाहिए । कुटुम्बियों को प्रसन्न करने की अपेक्षा उन्हें सुसंस्कारी बनाने में यदि अपना और उनका कल्याण सोचा जा सके तो अपनाई गयी रीति-नीति में काया-कल्प जैसा परिवर्तन करना पड़ेगा । जो ऐसा कर सकेंगे वे धरती से उछल कर स्वर्ग-लोक में जा पहुँचने जैसा श्रेय सन्तोष प्राप्त करेंगे ।

आत्म-निर्माण और परिवार-निर्माण की तरह समाज निर्माण की तीसरी प्रक्रिया भी परिवार क्षेत्र में प्रयुक्त की जा सकती है और प्रज्ञा अभियान का व्यापक उद्देश्य इसी छोटे क्षेत्र में भी कार्यान्वित करने का संकल्प लेकर युग अवतरण के महान प्रयोजन में भावभरी भूमिका निभाई जा सकती है । समाज निर्माण के दो पक्ष हैं एक अवांछनीयता उन्मूलन दूसरा सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन । उनमें उन्मूलन प्रथम और सम्वर्धन द्वितीय है । जोतने के बाद ही बोने का नम्बर आता है । पहले नींव खुदती है बाद में दीवार उठती है । धोने के बाद कपड़ा रंगा जाता है । परिशोधन के बाद परिष्कार का प्रयत्न आगे बढ़ता है । देखा जाना चाहिए कि परिवार में अन्ध-विश्वास, कुरीति-प्रचलन और अनगढ़-आचरण की अवांछनीयता किस रूप में विद्यमान है । उनसे घर के कौन-कौन सदस्य किस रूप में प्रभावित हो रहे हैं । सामूहिक मान्यताऐं ऐसी तो नहीं बनी हुई हैं जो उपर्युक्त दुष्प्रवृत्तियों का अनजाने में समर्थन करती और पतन-पराभव का निमित्त कारण बनती हों । जहाँ कहीं भी इन विकृतियों ने जाले बुन रखे हैं उन्हें बुहारी से बुहार फेंकने का प्रयत्न करना चाहिए ।

कुरीतियों में, शादियों में होने वाला अपव्यय प्रमुख है । इससे घर की अर्थव्यवस्था चरमरा जाती है । परिवार के हर सदस्य की प्रगति रुकती है । प्रचलन की दृष्टि से यह अत्यन्त ही मूर्खतापूर्ण और विनाशकारी प्रथा है । यदि इसके बीजांकुर अपने घर में पनप रहे हों तो उन्हें परिपक्व होने से पूर्व ही काटना चाहिए । लड़की को अमीर घर में पहुँचा कर सुखी देखने की कल्पना ही उन पाषाण हृदय लोगों के यहाँ उसे धकेलने के लिए विवश करती है जो भारी दहेज पाए बिना सुयोग्य कन्या को भी लेने के लिए तैयार नहीं होते । दहेज इन्हीं की दुष्टता पूरी करने के लिए देना पड़ता है । अच्छा हो समय रहते दृष्टिकोण बदला जाय और श्रम जीवी साधारण स्थिति का लड़का ढूंढ़ कर अपने स्तर के परिवार में ही उसे भेजने का निश्चय किया जाय। लड़की इस योग्य बनाई जाय कि वह परिश्रम पूर्वक रोटी खा सके और किसी पर भार न बने । दहेज देना हो तो वह स्त्री धन के रूप में दिया जाना चाहिए और लम्बी अवधि के लिए बैंक में जमा करके ब्याज को आय का एक साधन बनाना चाहिए। विवाह पूर्ण सादगी से हों । न जेवर चढ़ाने, कीमती कपड़े दुल्हन पर चढ़ाने का परोक्ष संकेत और न दहेज, धूमधाम, प्रदर्शन, बारात-बाजे का झंझट । पारिवारिक उत्सवों, त्यौहारों के रूप में ही विवाह निपटा दिये जायें । अच्छा हो उस प्रयोजन के लिए वर-बधू को दो-चार घर के प्रमुख व्यक्तियों के साथ शान्तिकुंज भेजने और आदर्श विवाह कराने का निश्चय किया जाय । सामूहिक विवाह अपने क्षेत्र में भी हो सकते हैं । घर में ही पारिवारिक समारोह के रूप में उसे सस्तेपन और सादगी के साथ सम्पन्न किया जा सकता है ।

लड़के के विवाह में भी यही नीति अपनायी जाय । ऐक्टरों जैसी उच्छृंखल सुन्दरता चाहने पर लड़कों को डाँटा-डपका जाना चाहिए । जीवन निर्वाह शालीनता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ससंस्कारिता और दूरदर्शिता के आधार पर होता है, रूप-सौन्दर्य के आधार पर नहीं । लड़की इसी स्तर की तलाश की जाय और विवाह पूर्ण सादगी से बिना लेन देन करने का निश्चय किया जाय । अच्छा हो लड़की उस परिवार से ली जाय जहाँ कन्या सुयोग्य होते हुए भी पैसा न होने के कारण दम सूख रहा है । इस सहानुभूति का सत्परिणाम यह होता है कि दोनों पक्षों में सघन आत्मीयता और श्रद्धा-सद्भावना बनी रहती है । दहेज की लूट-खसोट में तो उसकी जड़ पर ही कुठाराघात होता है । देखने भर के लिए भले ही वे परिवार सम्बन्धी कहे जाते रहें पर वस्तुतः उसके साथ जुड़ा हुआ वह आक्रमण जीवन भर अविस्मरणीय ही रहता है, जिसने प्रकारान्तर से बेटी के परिवार को तहस-नहस ही करके रख दिया । घर में जितने भी लड़की लड़के विवाह योग्य हों उनके सम्बन्धी से यह विवाह नीति पहले ही निर्धारित कर ली जाय तो अकारण भटकने और जल्लादों के दरवाजे पर सिर पटकने की आवश्यकता ही न पड़ेगी । श्रमशीलता में सम्मान समझने वाले लड़की-लड़के अमीरी की विलासिता की तुलना में कहीं अधिक सुखी और प्रसन्न रहते देखे गये हैं ।

विवाह के सम्बन्ध में यह सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया जा सके तो अन्य छोटी-मोटी कुरीतियाँ भी छोड़ने-छुड़ाने का पथ-प्रशस्त होता है । मृतक भोज, उद्भिज देवी-देवताओं का जंजाल, टोना-टोटका, पीर-मुरीद, ओझा-ज्योतिषी घरों में येन-केन-प्रकारेण घुस जाते हैं तो फिर परिजनों को भ्रान्तियों के कुचक्र में फंसाते अनावश्यक डर दिखाते और जिस-तिस बहाने लूटते-खसोटते रहते हैं । इन छूत की बीमारियों को घर से बाहर ही रखना चाहिए और परिजनों को उनसे सम्बन्ध जोड़ने के दुष्परिणामों से भली प्रकार अवगत रखना चाहिए ।

अपने समाज में पर्दा प्रथा—जाँति-पाँति के नाम पर ऊँच-नीच की मान्यता—भिक्षा-व्यवसाय की तीन कुरीतियाँ और भी ऐसी हैं जिनके कारण अपने देश समाज को आसाधारण क्षति पहुंची है । प्रगति का क्षेत्र अवरुद्ध हुआ है और पिछड़ेपन का दौर बढ़ा है । संस्कृति की सनातन गरिमा धूमिल करने वाली इन अविवेक भरी अन्ध परम्पराओं को कम से कम अपने परिवारों में तो जड़ जमाने ही नहीं देनी चाहिए ।

नशेबाजी, अभक्ष्य-भक्षण, आवारागर्दी, जुआ, उच्छृंखल फैशन श्रृंगारिकता, जैसे दुर्व्यसन किसी प्रकार घर में घुस जाते हैं तो फिर वे घुन, दीमक की तरह घर की सुख-शान्ति और प्रगति समृद्धि को खोखला बनाकर ही छोड़ते हैं । यह बुरी लत यदि परिवार में घुस चुकी है या घुसने वाली हो तो सतर्कतापूर्वक उनसे बचने-बचाने में तेजस्विता का परिचय देना चाहिए । कहा जा चुका है कि एक आँख दुलार की, दूसरी सुधार की रखने से ही वह स्थिति बनती है जिसके सहारे परिवार को सुखी-समुन्नत बनाया जा सके और उसके लिए प्रयत्नरत गृह संचालक को जीवन साधना का—नव सृजन के भागीदार का श्रेय मिल सके । एक व्यक्ति या परिवार का सुधारना भी प्रकारान्तर से उतनी मात्रा में समाज या विश्व का सुधारना ही माना जायेगा ।

इसमें सिद्धान्तों का पालन और कुटुम्बियों के आग्रह का धर्म संकट उत्पन्न होने पर कुटुम्बियों की अवज्ञा करके धर्ममर्यादाओं को स्वीकारने का ही स्पष्ट निर्देश है ।

उन्मूलन की तरह ही सम्वर्धन की भी समानरूप से आवश्यकता पड़ती है । डाक्टर आपरेशन भी करता है और घाव भरने के लिए टांके लगाने से लेकर मरहम पट्टी के उपचार भी करते हैं । परिशोधन और परिष्कार का युग्म है । निर्वाह के साधन जुटाने और निकलने वाली गन्दगी को हटाने की दोनों ही विधि-व्यवस्थाऐं अपने-अपने स्थान और समय पर महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। सुधार के लिए संहर्ष और सृजन के लिए श्रम नियोजन की समान रूप से आवश्यकता पड़ती है । ध्यान यह भी रखा जाना चाहिए कि स्वास्थ्य सम्वर्धन की, ज्ञान अर्जन की, कौशल अभ्यास की, मर्यादा-पालन की परम्पराऐं घर में निभ रही हैं या नहीं । अपने स्वभाव-अभ्यास में उनका समावेश-सम्वर्धन हो रहा है या नहीं । इस सन्दर्भ में जो कमी या गलती दृष्टिगोचर हो उसे बदलने के लिए प्रखर प्रगतिशील की तरह प्रत्येक दूरदर्शी को तैयार रहना चाहिए । आहार-विहार में बरती जाने वाली छोटी-छोटी भूलें स्वास्थ्य सम्पदा को नष्ट कर देती हैं । इन भूलों को सुधारने का एक ही उपाय है कि उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास आरम्भ किया जाय । मात्र हटाने घटाने की रट लगाने से कुछ काम बनता नहीं । अभिनव स्थापना से ही अवांछनीयता हटती है । अन्धकार को गाली देते रहने से कुछ बनने वाला नहीं । प्रकाश उत्पन्न करने से ही उस संकट का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निराकरण होता है । आहार-विहार की सात्विकता, संयमशीलता, सुव्यवस्था बनाए रखी जाय तो स्वास्थ्य संकट खड़ा होने का अवसर ही न आये । स्वभाव में मधुरता सज्जनता सहिष्णुता का समावेश रहे तो आए दिन उत्पन्न होते रहने वाले विग्रहों की जड़ ही न जमे । धन न बढ़े तो आवश्यकता घटाकर अर्थ सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है । चिन्तन विश्व निर्माण की ही एक कड़ी है । बड़े रूप में न सही छोटे क्षेत्र में भी यदि सुधार और निर्माण का उपक्रम चलता है तो उसे भी विश्व मानव की सेवा साधना ही कहा जायेगा ।

बड़ों का सम्मान करना आवश्यक है । उनके उपकारों के प्रति कृतज्ञ भी होना चाहिए और मतभेद होने पर कोई ऐसा प्रतिकार नहीं करना चाहिए जिससे उनके प्रति शिष्टाचार का उल्लंघन होता हो । सामान्य नीति नियमों के पालन में यदि वे दबाव देते हैं तो भी मानने योग्य है । किन्तु जहां सिद्धान्तों का प्रश्न हो, वहाँ ईमान और भगवान् के अतिरिक्त और सभी के परामर्श की उपेक्षा की जा सकती है । इन दिनों रूढ़िवादिता और स्वार्थपरता का साम्राज्य, पुरानी पीढ़ी के लोगों का दृष्टिकोण प्राय: उसी ढांचे में ढला होता है । कुरीतियों का समर्थन और अपने मतलब से मतलब रखने—लोक सेवा जैसे कार्यों में समय न खर्च करने में उन लोगों के दबाव प्राय: बने रहते हैं और वे उन्हें मनवाने में अपने बड़े होने की दुहाई देने लगते हैं । जैसा भी वे कहें, उसे मानने के लिए विवश करने लगते हैं, भले ही उनका कथन अनीतियुक्त ही क्यों न हो । विवाह शादियों के सन्दर्भ में उनकी रुढ़िवादिता अनर्थकारी आदेश देती है । दहेज लेने, धूमधाम की शादी करने, मृतक भोज में पैसा फूंकने, महिलाओं को घूंघट से बाहर न होने देने जैसी नितान्त निरर्थक और हानिकारक प्रथाओं के पालन में उन्हें वे प्राय: अग्रणी देखा गया है । ऐसी परिस्थितियों में उनके साथ शिष्टाचार का पालन तो करना चाहिए किन्तु बात मानने से सर्वथा इन्कार भी किया जा सकता है । ऐसे प्रसंगों में तुलसीदास का वह पद याद रखा जा सकता है ।

'जिनके प्रिय न राम वैदेही ।'
तजिए तिनहिं कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥
पिता तज्यो प्रह्लाद, विभीषण बन्धु, भरत महतारी ॥
बलिगुरु तज्यो, कन्त ब्रज बनितनि, भे मुद मंगलकारी ॥

में उत्कृष्टता बनी रहती है और दृष्टिकोण में—निकृष्टता न घुसने दी जाय तो चरित्र की प्रामाणिकता बनी रहेगी और सभी का स्नेह सहयोग मिलेगा । कर्त्तव्य-परायणता में आलस्य प्रमाद न किया जाय तो पुरुषार्थ के आधार पर इतना उपार्जन हो सकता वे जिससे न आत्मगौरव झुलसना पड़े । आलस्य छोड़ा जा सके और श्रमशीलता में गर्व गौरव अनुभव किया जा सके तो समर्थता, सम्पन्नता घटेगी नहीं वरन् बढ़ती ही चलेगी । सच्ची कलाकारिता सृजन प्रयोजनों का ताना -बाना बुनने और पूरे मनोयोग से उन्हें गतिशील करने में है । ऐसे कलाकार सत्यं शिवं सुन्दरम् का प्रतिनिधित्व करने वाला जीवन जीते और असंख्यों के सामने अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित करते और कृतकृत्य बनते हैं ।

तीर्थ सेवन के दिनों जीवन साधना की इसी प्रक्रिया को जीवन चर्या की भावी-रीति-नीति का अंग बनाने के लिए अपने मन:संस्थान को तैयार करना चाहिए । इतना ही नहीं भविष्य में अपने में, अपने परिवार में किस प्रकार, क्या परिवर्तन करना है—इस परिष्कार योजना का ढांचा यहीं खड़ा कर लेना चाहिए । निश्चय का संकल्प इसी पवित्र भूमि पर होना चाहिए । घर लौटने पर तो इतना काम शेष बचना चाहिए कि तीर्थ सेवन की अवधि में जो प्रेरणा उभरी—जो योजना बनी उसे कार्यान्वित करने में समूचे संकल्प बल के साथ जुट पड़ा जाय । ऐसा बन पड़े तो समझना चाहिए कि पाँच दिन की साधना भी पाँच वर्षों की तपश्चर्या योगसाधना जैसे सत्परिणाम उत्पन्न करके रहेगी ।

तीर्थ सेवन और उसकी पूर्णाहुति

तीर्थ सेवन यज्ञ की पाँचवें दिन पूर्णाहुति समझी जानी चाहिए । पूर्णाहुति की प्रक्रिया में विसर्जन, समर्पण एवं अनुदान कृत्य सम्पन्न होता है । यज्ञ के अन्तिम चरण में स्विष्टकृत होम, पूर्णाहुति एवं वसोधारा के तीन प्रकरण हैं । अपने साधनों को विराट् के लिए, समर्पण करना, यही इस त्रिविध प्रक्रिया का सार-संक्षेप है । आत्म विकास में उदारता की भाव-संवेदनाऐं उभरती हैं और वे पुण्यपरमार्थ को सेवा-साधना के रूप में प्रकट परिलक्षित होती हैं । अनुष्ठानों की पूर्णाहुति में 'हव्य चरु' होमा जाता है । अपने साधनों को वायुभूत बनाकर विराट् विश्व के जीवधारियों के लिए परिपोषक प्राणवायु उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया जाता है । यज्ञ प्रकरण में एक भाग बलिदान का भी है । बलिदान माने देव-प्रयोजनों के लिए अपनी प्रिय वस्तुओं का परित्याग । सदुद्देश्य के निमित्त समर्पण ही समझा जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए । पुरश्चरण के अन्त में ब्रह्म-भोज, कन्याभोज, प्रसाद-वितरण के विधान हैं । इसका अर्थ भी प्रकारान्तर से उपरोक्त ही है । सत्प्रवृत्तियाँ सिंचन एवं पोषण चाहती हैं । यह कार्य श्रमदान, समयदान, साधनदान के द्वारा ही सम्पन्न होता है यह न बन पड़े तो जल के बिना फसल सूख जाने की तरह श्रेष्ठता भी दर्बल होती चली जायेगी ।

जप के अन्त में सूर्य को अर्घ्य जल चढ़ाने का विधान है । इस प्रतीक पूजा के पीछे भी यही भाव है । जपकर्ता अपने साधन जल को विराट के, सूर्य के निमित्त अर्पित करता है ताकि वह उस पानी को भाप बनाकर अन्तरिक्ष में बखेर दे और संसार में मेघमाला न सही ओस बिन्दु बनाकर यत्किंचित् शीतलता सम्वर्धन करें । बलि-वैश्व क्रिया में कौओं, कुत्तों, गायों, कृमि कीटकों, अतिथियों का भाग निकाला जाता है । श्राद्ध-तर्पण में पितरों को अन्न-जल प्रदान किया जाता है । वह भाग पितरों को मिला या नहीं यह विवादास्पद भी हो सकता है । किसी श्रद्धालु द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित किए जाने की प्रक्रिया तो प्रत्यक्ष ही है ।

तीर्थ सेवन की देव दक्षिणा

यज्ञ पत्नी का नाम दक्षिणा है । कहा गया है कि दक्षिणा रहित यज्ञ विधुर रहता है और निष्फल चला जाता है । यों समूची यज्ञ परम्परा में आदि से अन्त तक अपने प्रिय एवं उत्तम पदार्थों को लोकमंगल के लिए समर्पित करने की भावना ही ओत-प्रोत है । इतने पर भी अन्त में देव दक्षिणा प्रस्तुत करने की अनिवार्य आवश्यकता मानी गई है । यों देवताओं की प्रसन्नता के लिए दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग और सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन भी भावपरक परमार्थ विधान है । इतने पर भी साधन-दान के रूप में दक्षिणा की आवश्यकता फिर भी रहती है । धर्मानुष्ठान के इतिहास प्रकरण में उनकी समाप्ति पर दान-दक्षिणा का विधान अविच्छिन्न रूप से जुड़ा मिलता है । वाजिश्रवा ने सर्वमेध यज्ञ किया था जो संचय था वह सभी ब्रह्म कर्म के लिए विसर्जित कर दिया गया था यहाँ तक कि अपने पुत्र नचिकेता को भी इसी अवसर परा यमाचार्य के हाथों सौंप दिया था । जनकयाज्ञवल्क्य प्रसंग में यज्ञान्त में हजार गौऐं दान दिये जाने का वर्णन है ।

पापों के प्रायश्चित विधान में दुष्कृत्यों की निवृत्ति के लिए विभिन्न प्रकार के दानों का वर्णन है । इसी आधार पर समाज को पहुंचाई गई हानि और संस्कृति को लगाई गई चोट क्षति पूर्ति भरपाई होने का उल्लेख है । चान्द्रायण व्रत के अन्त में गोदान का सुनिश्चित विधान है । व्रत उद्यापनों के अन्त में भी यही कुछ करना पड़ता है ।

देवपूजन के षोडशोपचार में एक प्रक्रिया 'दक्षिणा'भी है । देवदर्शन के लिए खाली हाथ जाने का निषेध है । कुछ न कुछ पत्रपुष्प लेकर जाना ही चाहिए । गुरुजनों के सन्मुख भी खाली हाथ नहीं जाया जाता । कुछ न हो तो चार समिधाऐं तो लेकर चलना ही चाहिए । हर धर्मकृत्य के अन्त में दान-पुण्य की प्रक्रिया इसलिए जोड़कर रखी गई है । इस प्रचलन में सत्प्रवृत्तियों का सिंचन-पोषण होता रहे । इस सन्दर्भ में कृपणता बरती जाने लगी तो वे अभावग्रस्त होकर मुरझाती, कुम्हलाती, सूखती और मरती चली जायेंगी । फलत: उनके द्वारा जो व्यक्ति और समाज को सुस्थिरता एवं प्रगति का लाभ मिलता है उसका आधार नष्ट हो जाने से दुर्भिक्ष पड़ने की तरह सर्वत्र संकट उभरता चला जायेगा । गीताकार का वह प्रतिपादन इसी तथ्य का समर्थन करता है कि 'तुम देवत्व को सींचो, देवत्व तुम्हें समृद्धि से सींचेगा ।'

साधु-ब्राह्मण परम्परा

प्राचीन काल में साधु और ब्राह्मण का व्यक्तित्व एक प्रामाणिक धर्म संस्थान जैसा होता था । उनका चरित्र-चिन्तन सन्देह से परे, खरे सोने जैसा जाना-परखा होता था, इसलिए लोग अपनी धर्म भावना का परिपोषण करने के लिए जो उदार अनुदान प्रस्तुत करते थे वे सीधे उन्हीं के हाथों में सौंप देते थे और निश्चिंत रहते थे कि इस अमानत का सामयिक आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठतम धर्म प्रयोजनों में ही विनियोग होगा निजी आवश्यकताएँ उनकी अन्न वस्त्र तक ही सीमित थीं । इसके उपरान्त उनके हाथ में दानदक्षिणा रूपी जो सम्पदा पहुँचती थी उसे वे समयानुसार श्रेष्ठतम प्रयोजनों में ही लगाकर दाता के उद्देश्य की पूर्ति पूरी ईमानदारी के साथ कर देते थे । साधु-ब्राह्मण को दान-दक्षिणा देने में इसी विश्वस्त प्रामाणिकता और सत्प्रवृत्तियों की सिंचन आवश्यकता का समुचित समावेश रहता था ।

आज की स्थिति विचित्र है । सम्पन्न लोग भी दान-दक्षिणा समेटते हैं और निजी विलास-वैभव के लिए हाऊ हड़प करते रहते हैं । फलत: सर्वसाधारण की निष्ठा भी उस ओर से विमुख होती जा रही है । याचना और आग्रह करने पर भी लोग देने से कतराते हैं और दबाव पड़ने पर किसी प्रकार नगण्य सी राशि देकर पीछा छुड़ाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रयत्न करते हैं । किसी बड़े मगरमच्छ के जाल में फंसकर जेब कटाने की बात बन पड़ी तो उसे धूर्त और मूर्ख की आँख मिचौनी ही समझा जाना चाहिए । आजकल अधिकांश में ऐसा ही चलता है । इतने पर भी सनातन तथ्य अपने स्थान पर यथावत ही रहते हैं । उनमें अन्तर नहीं पड़ता ।

पुण्य-परमार्थ का सच्चा स्वरूप

साधनदान प्रकारान्तर से श्रमदान का ही रूप है । पुण्य-पाप शरीर से बन पड़ते हैं । इन दोनों ही प्रकरणों में समय, श्रम और मनोयोग का समन्वय होता है पुण्यकृत्य करने हों तो इन तीनों का ही समावेश आवश्यक होगा । इतने पर भी एक कठिनाई यह रहेगी कि जिस समय, जिस स्थान पर, जिस स्तर का श्रमदान चाहिए उसके लिए पुण्यकर्ता को किस प्रकार बुलाया पहुँचाया जाय इसकी अर्थशास्त्र सम्मत पद्धति यह है कि श्रम को धन में बदल लिया जाय । जब आवश्यकता हो तब धन को श्रम में, समय में, मनोयोग में बदल लिया जाय । वस्तुओं का विनिमय कभी वस्तुओं से होता था पर जब मुद्रा विनिमय की नई पद्धति हाथ लगी तो वह झंझट बहुत कुछ दूर हो गया, गेहूँ के बदले तेल पाने के लिए तलाशने—ढोने और सुरक्षित रखने के लिए स्थान बनाने की जरूरत नहीं रही । गेहूँ बेचकर पैसा बना लिया । जब जरूरत पड़ी तब उसके बदले में गेहूँ, तेल, गुड़, कपड़ा कुछ भी खरीद लिया । इस मुद्रा विनिमय-पद्धति से सभी को सुविधा हुई । अर्थ तन्त्र का एक विज्ञान-सम्मत ढाँचा बनकर खड़ा हो गया ।

परोपकार का एक तरीका शरीर से श्रम करने का है । इसी का दूसरा तरीका यह और भी आया है कि अपने शारीरिक-मानसिक श्रम को धन के बदले अन्य लोगों का श्रम खरीदकर अभीष्ट प्रयोजन में लगा दिया जाय । इस पद्धति को अपनाने में कई बार तो और भी अधिक सुविधा होती है और हित साधन बन पड़ता है । शरीर से तो मात्र वही सेवाऐं की जा सकती हैं जिन्हें करने की अपनी योग्यता है । योग्यता से बाहर के कामों को कन्धे पर उठाने से श्रम भी बेकार चला जाता है और काम के स्थान पर उलटा हो जाने की भी आशंका रहती है । जिस स्तर की सेवा करनी है उसी स्तर के व्यक्ति ढूंढ़ निकाले जाऐं और उन्हें उस काम में लगा दिया जाय तो वे उस भावनाशील की तुलना में अधिक काम काम कर सकेंगे, जिसमें अभीष्ट कार्य को करने की प्रवीणता है । इमारत चुनने में वकील की योग्यता किस काम आ सकती है । किसी अध्यापक से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह डाक्टर द्वारा सम्भव हो सकने वाली सेवाऐं अपने कन्धे पर उठा लें । जहाँ उपरोक्त स्तर के निष्णात व्यक्ति चाहिए वहाँ अच्छा तरीका यही है कि उन क्रिया कुशल व्यक्तियों की सेवाऐं बिना मूल्य न मिलती हों तो पैसा देकर खरीदी जायें और उस पैसे का प्रबन्ध भावनाशील अपना श्रम बेचकर कर दें ।

व्यावहारिक जीवन में यही होता है । असंख्य वस्तुओं की आए दिन आवश्यकता पड़ती है । उन्हें स्वयं बनाना अति कठिन है । सीधा और सरल तरीका यही है कि अपनी योग्यता के अनुरूप श्रम करके उसके बदले पैसा प्राप्त कर लिया जाय और फिर उस राशि के बदले जिन-जिन वस्तुओं की, जितनी मात्रा में, जिस समय आवश्यकता हो उन्हें खरीद लिया जाय । यह आदिम काल की आवश्यकता थी कि अपने शरीर श्रम से ही जो बन पड़े उतना करके सन्तोष किया जाय और अब श्रम के बदले श्रम खरीदने का व्यवहार चल पड़ा है । किसान अपना उपार्जन-गेहूं देकर डाक्टर की सेवाऐं खरीद सकता है और जो आँख का आप्रेशन स्वयं नहीं कर सकता था वह डाक्टर से करा सकता है । इसमें किसान का श्रम डाक्टर के श्रम में बदल जाना हर दृष्टि से उपयोगी ही हुआ । किसान आपरेशन नहीं कर सकता था और डाक्टर गेहूँ नहीं उगा सकता था । दोनों ने श्रम विनिमय करके एक बुद्धिमता भरा कदम ही उठाया । यही बात धर्म धारणा के विस्तार एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के सम्बन्ध में भी है । यह कार्य भी अपने ढंग के विशेष प्रकार के हैं। इनके लिए उस विद्या प्रवीण, अनुभवी एवं उच्चस्तरीय व्यक्तित्व के व्यक्ति चाहिए । यदि वे योग्यताएँ अपने में न हों तो यही अच्छा है कि जिनमें यह विशेषताऐं हैं उन्हें अभीष्ट प्रयोजनों में लग पड़ने के लिए सुविधाएँ जुटाई जायें । पेट भरने और तन ढंकने की आवश्यकता तो हर किसी को पड़ती है—इसके बिना ज्ञानी-अज्ञानी, साधु चोर किसी का गुजारा नहीं । पेट न भरे तो शरीर कैसे चले ? सेवा में जुटा रहे तो अर्थ उपार्जन कैसे बन पड़े ? इस अवरोध के निराकरण का एक ही उपाय है कि जो लोग सेवा साधना में प्रवीण एवं अनुभवी नहीं हैं वे अपना श्रम बेचकर पैसा बचायें और उसे उन लोगों का अवरोध दूर करने में लगा दें जो निर्वाह साधन न मिलने के कारण अपने उपार्जन में लगे रहते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और योग्यता आकांक्षा रहते हुए भी निर्वाह जन्य कठिनाइयों के कारण पूरी तरह जुट नहीं पाते । बचे हुए समय का ही थोड़ा बहुत उपयोग करके नगण्य सी सेवा करके सन्तोष कर लेते हैं और अधिक करने की अभिलाषा पूरी न हो सकने के कारण मन मसोस कर रह जाते हैं । ऐसे लोगों की कठिनाई को हल करना और उन्हें आवश्यक सुविधाएँ प्रदान करना उसी स्तर का पुण्य परमार्थ है जितना कि अपने शरीर से उन कामों में निरत रहकर किया गया होता ।

इन दिनों लोभ-मोह की तरह प्रख्यात होने का अहंकार भी जन-जन के मन-मन पर उन्माद की तरह चढ़ा है । परमार्थ की बात मस्तिष्क में आते ही उस पर यश लिप्सा चढ़ बैठती है आत्म-श्लाघा का ताना-बाना बुना जाने लगता है और ऐसा उपाय ढूँढ़ा जाता है जिससे अपनी परमार्थ-परायणता का ढोल जोर-जोर से बजे । ऐसे लोग इमारतें बनाने की बात सोचते हैं । मन्दिर, धर्मशाला जैसे स्मारक बनाने में परमार्थ भावना कम और यश लिप्सा अधिक होती है । ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि परोपकार इमारतें नहीं करतीं । सेवा मात्र साधनों से नहीं होती । इसके लिए उच्चस्तरीय व्यक्तित्व चाहिए । वे साधन रहित स्थिति में भी बहुत कुछ कर गुजरते हैं जब कि भव्य भवनों में बने तथाकथित परोपकारी लेविल वाले निर्माण के पीछे भ्रष्टाचार का बोलबाला देखा जा सकता है। घटिया व्यक्ति जो भी काम करेंगे उनसे परोक्षतः अनर्थ ही होता रहेगा । भले ही उसका ऊपरी ढकोसला परमार्थ जैसा ही क्यों न बना रहे ।

इन पंक्तियों में कहा यह जा रहा है कि भावनात्मक स्तर की सेवाएँ मात्र उत्कृष्ट स्तर के व्यक्ति ही कर सकते हैं । भौतिक क्षेत्र के उपार्जन भी उस स्तर के श्रमिक ही कर पाते हैं । अनगढ़ मजूर को किसी बहुमूल्य मशीन को चलाने के लिए खड़ा कर दिया जाय तो उससे इस चलाने वाले के लिए भी जान जोखिम है और मशीन के टूटने की भी आशंका । बुद्धिमत्ता इसी में है कि कारखाने का ढाँचा खड़ा करना ही पर्याप्त न माना जाय वरन् उसके लिए प्रशिक्षत कारीगर और बुद्धिमान व्यवस्थापक भी जुटाये जायें । साधना से भी अधिक उपयुक्तता योग्यता की है । योग्य साधन जुटा सकते हैं किन्तु मात्र साधन भर रहने से योग्यता की आवश्यकता पूरी नहीं होती । यही कारण है कि मन्दिर देवालयों से लेकर विभिन्न नाम लेबिलों वाले पारमार्थिक कहे जाने वाले संस्थानों का ऊपरी ढकोसला निर्माताओं का ढोल पीटता रहता है पर जिस उच्चस्तरीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए आशा की गई थी, उस सन्दर्भ में कुछ भी नहीं बन पाता । श्रमजीवी कारीगर भौतिक साधनों का उत्पादन भर कर सकते हैं, उनसे पारमार्थिक-भावना क्षेत्र को स्पर्श कर सकने वाले कार्य बन ही नहीं पाते । जो जिस कार्य का अनुभवी, प्रशिक्षित, अभ्यस्त न हो वह उसे कर भी कैसे पाये ?

समझा जाना चाहिए कि मनुष्य की सबसे बड़ी सेवा उसके दृष्टिकोण और व्यवहार को परिष्कृत कर देना है । इसके बिना उसे सुविधाओं से लाद देने पर भी कुछ बात बनेगी नहीं । कुपात्रता उन उपलब्धियों को दुर्व्यसनों में खर्च करेगी और दरिद्रता से भी वह सम्पन्नता मंहगी पड़ेगी । इसलिए लोक सेवा का सर्वश्रेष्ठ तरीका जनमानस में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का बीजारोपण एवं अभिवर्धन माना गया है । विपत्तिग्रस्तों की सहायता करना एक बात है और विज्ञापन बाजी के लिए सुविधा सम्पन्नों पर भी धन लुटाना दूसरी । अच्छा हो परोपकार की बात सोचने वाले यह भी समझें कि वह किस उपाय को अपनाने से बन पड़ेगा इस सन्दर्भ में अपनाई गई विवेकयुक्त दूरदर्शिता एक ही निष्कर्ष पर पहुँचती है कि जनमानस के परिष्कार एवं सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की जाय और प्रगति के समस्त द्वार खोलने वाले इसी एक अवलम्बन को प्राथमिकता दी जाय । दीन-दुखियों की सहायता एवं सुविधा सम्वर्धन का कार्य भी इसके साथ-साथ चलता रहता है किन्तु परमार्थ का प्राण तो जनमानस के परिष्कार में ही है । यदि लोग अपनी आन्तरिक उत्कृष्टता को उभार सकें और बहिरंग प्रतिभा प्रखरता की जन्म जात विभूतियों का सम्वर्धन सदुपयोग कर सकें तो न कोई पिछड़ा रहे न पराश्रित । समस्त अभावों और संकटों का एकमात्र कारण मनुष्य का व्यक्तित्व की दृष्टि से पिछड़ा हुआ होना ही है । यदि इस एक संकट से जूझा जा सके तो यह सुनिश्चित रूप से कहा और विश्वास पूर्वक समझा जा सकता है कि प्रस्तुत समस्याओं, विपत्तियों एवं आशंकाओं को उखाड़ फेंकने की कुंजी हाथ लग गई । इसकी उपेक्षा करने, भौतिक सुविधाएँ बढ़ाने एवं विकृतियों की रोकथाम करने वाले उपाय आवश्यक होने पर भी कठिनाई का आत्यन्तिक हल निकाल न सकेंगे ।

प्राचीन काल में जन-मानस के परिष्कार का कार्य साधु-ब्राह्मण करते थे । सत्प्रवृति सम्वर्धन में उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समूचा श्रम और मनोयोग नियोजित रहता था । उनका चरित्र, तप, ज्ञान, अनुभव भी इस स्तर का होता था कि उनके द्वारा सर्वोच्च स्तर के उपर्युक्त प्रयोजन की पूर्ति सम्भव हो सके । ऐसी प्रतिभाएँ पेट भरने के श्रम में जुटी रहें और समाज को उनकी सेवाओं से वंचित रहना पड़े तो उसे समूचे मानव समाज का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा । दूरदर्शिता ने सदा अपना मार्ग बनाया है । प्राचीन काल के पारमार्थिक निर्धारणों में प्राथमिकता इसको मिली कि साधु ब्राह्मण के निर्वाह का प्रबन्ध किया जाय । उन्हें निर्वाह उपार्जन से मुक्ति दिलाकर निश्चिन्तता पूर्वक समाज की महती आवश्यकता पूर्ण करने में संलग्न रहने का अवसर दिया जाय । इसी का नाम ब्रह्मभोज है । विभिन्न अवसरों पर विभिन्न रूपों में ब्राह्मण के हाथों दान-दक्षिणा सौंपने के पीछे इसी दूरदर्शिता का समावेश है ।

निठल्लों पर पैसा बिखेरने का आन्दोलन तो आज का है, उसमें उस विडम्बना का विरोध है जिसमें लोकमंगल से कोसों दूर रहने वाले, मुफ्त का माल चरने और उसके लिए लूट-खसोट के निमित्त अनेकानेक भ्रम जंजाल रचने वाले लोग दान-दक्षिणा बटोरते और गुलछर्रे उड़ाते देखे जाते हैं । निश्चय ही इस भिक्षा व्यवसाय को अनैतिक असामाजिक ठहराया जाना और उसका प्रबल प्रतिरोध होना आवश्यक है । वेश के नाम पर किसी को साधु और वंश के नाम पर किसी को ब्राह्मण नहीं माना जाना चाहिए । यह तो परमार्थ परायणों के दो वर्ग विशेष हैं । उन्हें उसी पुरातन रूप में अक्षुण्ण रहना चाहिए ।

ब्राह्मण परम्परा का परिपोषण अनादि काल से उच्चस्तरीय परमार्थ माना गया है और अनन्तकाल तक माना जाता रहेगा, उपयोगिता की दृष्टि से इससे बढ़कर और कोई अधिक श्रेयस्कर पुण्य प्रक्रिया कदाचित् ही और कोई हो । इसमें एक ही कमी है कि दानी का चिरकाल तक ढिंढोरा पीटने वाला स्मारक नहीं बनता । जिनका मन इस बाल क्रीड़ा में ललचाता न हो उनके लिए ब्रह्मणत्व के परिपोषण से बढ़कर और कोई दानपुण्य हो ही नहीं सकता । सुयोग्य ही अभीष्ट प्रयोजन पूरा कर पाते हैं । धर्म धारणा के विस्तार में तो निश्चय ही ब्राह्मण स्तर की प्रतिभाएँ ही सफल हो सकती हैं ।

ब्राह्मणत्व घट तो गया है पर मिटा अभी भी नहीं है । कुपात्रों ने दान-दक्षिणा के प्रति अश्रद्धा का वातावरण अवश्य बनाया है किन्तु उस शाश्वत सत्य और सनातन तथ्य में अभी भी कोई विसंगति उत्पन्न नहीं हुई है । लोकसेवियों का, विशेषतया धर्म क्षेत्र के मालियों और प्रहरियों की निर्वाह व्यवस्था बनाने वाली अन्तः श्रद्धा को दान दक्षिणा को जीवन्त ही रहना चाहिए । उसें मृतक-मूर्छित होने से पूर्व ही सम्भाल लिया जाना चाहिए ।

नवयुग के अनुरूप नई ब्राह्मण परम्परा को इन्हीं दिनों जन्म दिया गया है । यह तथ्य आँखों के सामने है । सृजनशिल्पियों की एक विशालकाय धर्मवाहिनी युगान्तरीय चेतना से लोकमानस में आलोक भरने के लिए व्रतशील कर्मनिष्ठों की तरह अग्रिम मोर्चे पर खड़ी है । अन्मूलन की दृष्टि से नैतिक क्रान्ति, बौद्धिक क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति का लाल मशाल लिए वह परिशोधन प्रक्रिया में संलग्न है । अनैतिकताओं, अन्धविश्वासों और कुरीतियों के जाल-जंजाल को काटने के लिए उसका परशुराम जैसा कुल्हाड़ा अनवरत गति से चलते हुए देखा जा सकता है । 'हम बदलेंगे युग बदलेगा' का उद्घोष अन्तरिक्ष को गुंजाते हुए विश्वव्यापी बनता चला जा रहा है । इस युगवाहिनी का दूसरा रोल है—सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन । व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण की दृष्टि से प्रचारात्मक, रचनात्मक और सुधारात्मक सत्प्रवृत्तियों का अभिनव प्रवाह बहा है उसे भागीरथ द्वारा गंगावतरण की पुनरावृत्ति माना गया है । कभी मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का उद्घोष दिवा-स्वप्न कहा जाता था, पर अब जिस प्रकार वह सृजन चेतना मत्स्यावतार की तरह व्यापक हुई है, आन्धी-तूफान की तरह गगनचुम्बी हुई है उसे देखते हुए उस उद्घोष को महाकाल का संकल्प और सुनिश्चित भविष्य के रूप में देखा-समझा जा रहा है । यह प्रगति कैसे सम्भव हुई ? इसका उत्तर एक ही हो सकता है कि निष्ठावान युगशिल्पी उस प्रयोजन में प्राण-पण से जुटे हैं और असम्भव को सम्भव करके दिखा रहे हैं । इन्हें सच्चे अर्थों में ब्रह्म परम्परा का उत्तराधिकारी समझा जा सकता है ।

प्रश्न और समाधान अभी भी उसी केन्द्र पर आ खड़ा हुआ है जिस पर कि प्राचीन काल में था । हल पूर्वकालिक निर्धारण और अनुकरण से ही सम्भव होगा । ब्राह्मण की निर्वाह व्यवस्था को प्राचीनकाल में भी सर्वोच्च स्तर की पुण्य-परम्परा मानी गयी थी । अब फिर उसी का पुनर्जीवित किया जाना है । दूध का जला छाछ को भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फूंक पिये—इसका औचित्य है, पर जब छाछ का ठण्डा होना अनुभवगम्य हो जाय तो फिर उसे फूंक कर पीने की आवश्यकता नहीं समझी जानी चाहिए । युग शिल्पियों का ब्राह्मणत्व यदि असंदिग्ध सिद्ध होता है तो दान-पुण्य की निर्झरणी का सदुपयोग इस उद्यान को सींचने में होना चाहिए ।

तीर्थों में दान-पुण्य की परम्परा आरम्भ काल से ही प्रचलित है । यों यह प्रक्रिया सदा से ही धर्म-धारणा का अविच्छिन्न अंग मानी और श्रद्धापूर्वक क्रियान्वित की जाती रही है । पर उसका तीर्थ स्थान में अधिक भावनापूर्वक चरितार्थ करने और सामान्य स्थानों की तुलना में अनेक गुना पुण्य फल माने जाने का जो शास्त्र वचन है, वह अकारण नहीं, उसके पीछे कुछ तथ्य भी हैं । तीर्थ के ऋषि आश्रम प्रकारान्तर से धर्म-धारणा की ऊर्जा उभारने वाले बिजली घर जैसे थे । ये सुविस्तृत क्षेत्र में शक्ति धारा भेजते और जन-जन के अभावों की पूर्ति करते थे । उन्हें ऐसे विशालकाय जलबांधों की भी उपमा दी जाती है जहाँ से अनेक नहरें निकलतीं और व्यापक क्षेत्र को सींचती हैं ।

तीर्थों में छोटों के लिए गुरुकुल—मझोलों के लिए तीर्थ-सेवन-प्रौढ़ों के लिए सृजन-शिक्षण और परिपक्वों के लिए आरण्यक चलते थे । जब छोटे-से-छोटे कार्य के लिए साधन चाहिए तो इन तीर्थ संस्थाओं की भी तो आवश्यकताऐं रहेंगी ही । अध्यापन और व्यवस्था में लगे व्यक्तियों को निर्वाह चाहिए । अच्छादन, उद्यान, प्रकाश, स्वच्छता आदि के लिए भी खर्च चाहिए । निजी उद्योग-व्यवसाय न होने पर उसकी पूर्ति कैसे हो ? उसका उत्तर एक ही केन्द्र बिन्दु पर आ टिकता है कि श्रद्धालु तीर्थ यात्री अपनी परमार्थ भावना का परिपोषण करने के लिए तीर्थ संस्थानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख और उनकी पूर्ति के लिए अपनी उदारता को भाव भरी उमंगों के साथ चरितार्थ होने दें ।

बुद्धकाल में हर्षवर्धन और अशोक ने अपना समूचा राजपाट उस समय के संघारामों, विहार विद्यालयों के लिए समर्पित किया था । अंगुलिमाल और अम्बपाली जैसों ने भी अपने पापों का प्रायश्चित इसी में समझा कि अनीति उपार्जन को ऐसे उपयोगी प्रयोजनों में लगाकर, पाप की खाई को, पुण्य से पाटा जाय । सर्व विदित है कि भगवान बुद्ध ने विशालकाय धर्मवाहिनी का गठन किया था । एक लाख के लगभग भिक्षु और तीस हजार के लगभग भिक्षुणियाँ उनके सामने ही दीक्षा ले चुके थे । उन्हें नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों मे धर्मचक्र प्रवर्तन योजना को कार्यान्वित कर सकने के उपयुक्त होने वाली कुशलता का अभ्यास कराया जाता था । इन्हीं विद्यालयों ने उन दिनों ऐसी विशालकाय भट्टियों की भूमिका निभाई थी जिनमें मिट्टी मिली कच्ची धातुओं को गलाने और ढालने की प्रक्रिया चली और फौलाद, खरे सोने जैसे व्यक्तित्व ढल कर निकले । इस प्रयास में संयोजकों एवं अध्यापकों की ही भूमिका नहीं रही । उन व्यवस्थापकों को भी श्रद्धासिक्त नमन-वन्दन किया जाता रहेगा, जिन्होंने इन प्रेरणा केन्द्रों के लिए आवश्यक साधन-सामग्री जुटाई । साधनों का महत्त्व अभी भी है और प्राचीन काल में भी रहेगा । शासन संस्था उसे कर लगाकर जुटाती है । धर्म संस्था के पास एक ही उपाय है—उदारचेताओं की भाव-श्रद्धा उभारना और उसे धर्म धारणा को प्रौढ़-परिपत्व बनाए रहने वाले केन्द्रों के साथ नियोजित करना । तीर्थों में मात्र शिक्षण संस्थाऐं ही नहीं चलती थीं उन केन्द्रों को संघारामों और बौद्ध विहारों की तरह धर्मसेवियों की ब्रह्म वाहिनी भी विनिर्मित करनी पड़ती थी । इसलिए उनकी आवश्यकताऐं भी बढ़ी-चढ़ी रहती थीं । जो तीर्थ-संस्था जितनी साधन सम्पन्न होती थी उतनी ही उसकी गतिविधियाँ भी समर्थ एवं व्यापक बनती चली जाती थीं ।

इन दिनों भी कितने ही धर्म संस्थानों के पास अच्छे आजीविका स्त्रोत्र हैं । तिरुपति बालाजी, साईंबाबा, नाथद्वारा, चारों धाम के शंकराचार्य मठ आदि का उल्लेख अभी भी सम्पत्तिवान् धर्म संस्थानों के रूप में किया जाता है । अन्यान्य छोटे बड़े मठ संस्थान भी ऐसे हैं जिनके पास प्रचुर सम्पदा है । यह परम्परा इसलिए चली कि वर्तमान ईसाई मिशन की तरह उनकी शक्ति अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति के अनेकानेक रचनात्मक प्रयोजनों में लगी रह सके । प्राचीन काल में बौद्ध संस्थान भी साधन सम्पन्न थे । यह राशि उन्हें लोक श्रद्धा की परमार्थ भावना के द्वारा उपलब्ध हो सकी थी ।

आज ऐसे संग्रही के प्रति जन आक्रोश उग्र होते देखा जा सकता है । सरकार की भी इनके प्रति दृष्टि कड़ी होती जा रही है । इसका एकमात्र कारण धर्म प्रयोजनों के लिए एकत्रित उस राशि का विलासी आडम्बरों में अपव्यय होते रहना और वास्तविक लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुछ भी न करने की धृष्टता ही है । इतना सब होते हुए भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधु-परम्परा के प्रति अभी भी तथाकथित धर्म प्रेमी लोग बहुत कुछ करते रहते हैं । उदाहरण के लिए ऋषिकेश, हरिद्वार में ही ऐसे कितने भण्डारे चलते देखे जाते हैं जिनमें हजारों साधु वेश धारी भोजन वस्त्र पाते और चैन आराम की जिन्दगी गुज़ारते हैं । क्या ही अच्छा होता, वे वेश के अनुरूप लोकसाधना में भी संलग्न रहते और साक्षरता, स्वच्छता, स्वास्थ्य संवर्धन जैसे रचनात्मक और नशा निषेध, दहेज, पर्दाप्रथा, ऊंच-नीच आदि कुरीतियों से निपटने जैसे सुधारात्मक काम हाथ लेते । चर्च के पादरियों का अनुकरण भी यदि हमारे धर्म संस्थान कर सके होते तो स्थिति यह न होती जो आज दीखती है ।

पुरातन तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए, ऋषि निर्धारणों का अनुकरण करने के लिए गायत्री तीर्थ का निर्माण हुआ है । संस्थापक संचालक अपने ढंग से उसे आदर्श एवं प्रखर बनाने में संलग्न हैं । इसके साधन जुटाने की बात उन्हें सोचनी होगी जो तीर्थ तत्व की पृष्ठभूमि समझते हैं और उसे प्राचीनकाल की तरह प्राणवान देखना चाहते हैं । इस प्रसंग पर तीर्थ सेवन सत्र में आने वालों को गम्भीरता पूर्वक विचार करना होगा । लकीर-पीटने वाली चिह्न पूजा यदि कंटक काटने की तरह भुगता दी जाय तो उससे मन बहला लेने जैसा ही कुछ नगण्य सा बन पड़ेगा । यह सम्भव न हो सकेगा कि अभाव से मुरझाती सूखती तीर्थ परम्परा को फिर से हरा-भरा कर देने जैसी स्थिति बन सके । इसके लिए हृदय को अधिक चौड़ा, अधिक विशाल करने की समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखने की आवश्यकता पड़ेगी । सच्ची परमार्थ भावना ऐसे ही गम्भीर चिन्तन से उभरती है और उसी की प्रेरणा से कहने लायक दानदक्षिणा का स्वरूप निखरता है ।

षोडश संस्कारों, प्रायश्चितों, अनुष्ठानों का लोगों को कर्मकाण्ड परक पक्ष ही स्मरण रह गया है और वे क्रिया प्रदर्शन को ही सब कुछ मानकर सन्तोष कर लेते और कृत्य की पूर्णता मान बैठते हैं । स्मरण रखा जाना चाहिए कि मन्त्रोच्चार, हवन, पूजन, विधिविधान का महत्त्व तो है और उसकी विधिवत पूर्णता भी होनी चाहिए । इतने पर भी यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि इसके अतिरिक्त भी इनके पीछे श्रद्धाभिव्यक्ति का कुछ ठोस प्रमाण प्रस्तुत करने की भी ऐसी आवश्यकता जुड़ी हुई है जिसे झुठलाया नहीं जाना चाहिए । बालकों के संस्कारों में प्राचीन परम्परा के अनुसार उनके वजन का घी या अनाज तो मध्यम श्रेणी के लोग भी देते थे । बड़े लोग उन्हें मूल्यवान धातुओं से तोलकर तुलादान करते थे । इसे उन संस्कार कर्मकाण्डों की प्राण-प्रतिष्ठा समझी जानी चाहिए । विवाह के अवसर पर उपस्थित ब्राह्मणों को पैसा बांटने एवं संस्थाओं को दान देने की, संस्थाओं के लिए राशि निकालने की प्रथा अभी भी है । मरणोत्तर संस्कार में अभी भी तेरह ब्राह्मणों को वस्त्र, पात्र, उपकरण दिये जाते हैं । श्राद्ध-तर्पण में भी ऐसा ही कुछ करना पड़ता है । दिवंगत आत्मा की स्मृति में वृक्षारोपण, सांड़ छोड़ने, स्मारक बनाने जैसी परम्पराऐं अभी भी प्रचलित हैं ।

प्रायश्चित्त विधानों में इष्टापूर्ति का प्रकरण गम्भीरता पूर्वक समझने और ध्यान देने योग्य है । चन्द्रायण व्रत आधे पेट खाने भर से पूरा नहीं हो जाता । उसकी पूर्णाहुति में गौदान पर अत्यधिक जोर दिया गया है । समाज को पहुँचाई गई क्षति के अनुरूप श्रमदान या साधनदान जुटाते हुए सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन का प्रयास करने से ही समग्रता बनती है ।

अनुष्ठानों के अन्त में भी यज्ञ हवन, ब्रह्मभोज, प्रसाद वितरण से ही उसका समापन माना जाता है । मात्र जप संख्या पूरी कर लेने भर से तो उस प्रक्रिया का एक बहुत छोटा अंश ही पूरा होता है । यज्ञ आहुति देने को ही नहीं कहते, उसकी साधन सामिग्री भी अपने पैसे की होनी चाहिए । दूसरों के धन से खरीदी गई सामिग्री को होमकर चल देना और इसका पुण्य मुफ्त में ही लूट ले चलने का सपना देखना व्यर्थ है । अनुष्ठान के अन्त में, तीर्थ यात्रा के प्रसंग में ब्रह्मभोज न हो तो समझना चाहिए कि उसका उपचार पक्ष ही आंशिक रूप से पूरा हुआ । शास्त्रोक्त पूर्णाहुति हुई ही नहीं । ऐसी दशा में अभीष्ट प्रतिफल भी कैसे मिले ?

पितरों के श्राद्ध में जल तर्पण और श्राद्धपरक, पिण्डदान की प्राचीन परिपाटी यही बताती है कि आत्माओं को सन्तोष ऐसी श्रद्धाभिव्यक्ति से होता है जिसके साथ परमार्थ परायणता भी जुड़ी हुई हो । वार्षिक या मासिक श्राद्धों में ब्राह्मण भोजन कराने की, कौए, कुत्ते आदि को भोजन देने की प्रथा में इसी तथ्य की ओर संकेत दिलाया गया है कि दिवंगत आत्माओं की शान्ति के लिए मात्र पूजा कृत्य कर देने से ही काम नहीं चल जाता । उसके साथ कुछ ऐसी उदार पारमार्थिकता भी जुड़नी चाहिए जिससे सदाशयता के परिपोषण में योगदान मिलता हो । वस्तुतः यह पुण्य ही स्वर्गीय आत्मा के पुण्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में जुड़कर उनकी पारलौकिक सद्गति का आधार बनता है ।

शिष्य जब गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त करके निकलते थे तब गुरु-दक्षिणा चुकाने का उपक्रम करते थे । उन दिनों मासिक रूप में ट्यूशन फीस जमा करने का रिवाज नहीं था तो भी छात्र एवं उनके अभिभावक अनुभव करते थे कि छात्रावास, अध्यापक आदि के उपकारों को मुफ्त में ही हजम नहीं करना चाहिए वरन् शिक्षण संस्था अपना सेवा कार्य आगे भी ठीक तरह चलाती रहे इसलिए उसका परिपोषण छात्र के विदा होते समय गुरु-दक्षिणा के रूप में करना चाहिए । एकलव्य, आरुणि, दयानन्द आदि की गुरु-दक्षिणा तो इतिहास प्रसिद्ध है ।

सामान्य गुरुदीक्षा में भी गुरु-दक्षिणा देने का विधान है । इसे पुरोहितों की लूट-खसोट इन दिनों इसलिए कहा जाने लगा है कि इस माध्यम से उपलब्ध राशि व्यक्तिगत कमाई मानी जाती है और उसे संचय के ठाट-बाट बनाने, गुलछर्रे उड़ाने तथा उत्तराधिकारियों को छोड़ मरने के लिए किया जाता है । दुरुपयोग से तो अमृत भी विष हो जाता है । किन्तु यदि दक्षिणा परम्परा के तत्वदर्शन को समझा जा सके तो सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन के लिए प्रस्तुत किए गये श्रद्धा भरे अनुदान जैसा ही बनता है । यों धन के अभाव में यह प्रयोजन श्रमदान से भी किया जा सकता है किन्तु उसमें कठिनाई एक ही पड़ती है कि अभीष्ट प्रयोजन के लिए जितना श्रम चाहिए वैसा अपना न हो तो उदारता अपनाने और भाव व्यक्त करने पर भी काम नहीं चलता । जिनकी ब्राह्मण स्तर की क्षमता है वे युग सृजन के महान प्रयोजन में अपना श्रमदान प्रस्तुत करें । इसी में समयदान की सार्थकता है । अन्यथा फिर दूसरा मार्ग यहीं रह जाता है कि अपना श्रम धन के रूप में बदला जाय और उसके द्वारा उन लोगों का श्रम खरीद लिया जाय जिनके द्वारा उस स्तर के प्रयास ठीक प्रकार बन पड़ते हैं । 'खरीदना' शब्द वस्तुतः व्यवहार में चलने वाले विनियोग की प्रक्रिया समझाने की दृष्टि से ही किया गया है । अन्यथा ब्राह्मण के महान अनुदान को कुबेर की सम्पदा निछावर कर देने पर भी चुकाया नहीं जा सकता है । उनके लिए प्रस्तुत किया गया निर्वाह तो उनकी गरिमा का विनम्र अभिनन्दन और अपनी भावश्रद्धा का विनयावनत प्रतीक परिचय ही है ।

युगपरिवर्तन की महान प्रक्रिया में सहयोगी बनने का महाकाल निमन्त्रण प्रत्येक जागृत आत्मा को सच्चे मन से स्वीकार करनी चाहिए । उस सुयोग-सौभाग्य को हाथ से जाने नहीं देना चाहिए । जिससे जिस प्रकार जो बन पड़े इस प्रयोजन में अपनी भागीदारी सम्मिलित रखने का प्रयत्न करना चाहिए । यह दो ही उपयोग से सम्भव है—श्रमदान द्वारा, साधनदान द्वारा । गायत्री परिवार की सदस्यता की प्राथमिक शर्त एक घण्टा समय श्रम एवं दस पैसा नित्य युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने के निमित्त नियोजित करते रहने की है । उसे न्यूनतम प्रतीक परिचय भर समझा जाना चाहिए । वह आरम्भिक प्रवेश पाने के लिए नगण्य जितना अनुदान है । जैस-जैसे परिपक्वता बढ़े उस उदारता को अधिकाधिक विकसित किया जाना चाहिए । इस अनुदान का उपयोग स्वयं भी ज्ञानयज्ञ के लिए घरेलू पुस्तकालय स्थापित करके किया जा सकता है और उनका लाभ परिवार को पड़ोसियों को दिया जा सकता है । इसके आगे की बात बढ़े तो स्थानीय प्रज्ञा संस्थानों के माध्यम से उस राशि का उपयोग किया जाय ।

शान्तिकुंज हरिद्वार के गायत्री तीर्थ के उत्तरदायित्व एवं कार्यक्रम दिन-दिन अधिक विस्तृत व्यापक होते चले जाते हैं । साथ ही उनके लिए साधनों की आवश्यकता भी बढ़ना स्वाभाविक है । निश्चय किया गया है कि इनकी पूर्ति के लिए कनिष्ठ एवं वरिष्ठ आत्मीय जनों के द्वारा प्रस्तुत की जा सकने वाली श्रद्धाजंलि को देखते हुए उतना ही कदम बढ़ाया जायेगा जिससे सन्तुलन को ठीक रखा जा सके । इस सन्दर्भ में तीर्थ सेवन स्तर के प्रज्ञा परिजनों से लेकर अन्य सभी जागृत आत्माओं को इस तीर्थ के परिपोषण का ध्यान रखने के लिए युग देवता ने विशेष रूप से अनुरोध-आग्रह किया है ।

तीर्थ सेवन सत्र-प्रज्ञा परिजनों की प्रखरता के लिए

पर्यटन और तीर्थसेवन दो बाहर से एक जैसे दीखने वाले कृत्य हैं, पर उनके बीच जमीन-आसमान जैसा अन्तर है । पर्यटन विशुद्ध मनोरंजन है । उसमें ऊब उतारने और कुछ नया-नया देख कर जी बहलाने, मन हल्का करने का भाव है । उससे उत्साह मिलता है । यत्किंचित् ज्ञान-अनुभव भी । नवीनता ताजगी लाती है । इस दृष्टि से पर्यटन पहले भी मनोरंजन के क्रिया-कृत्यों में सम्मिलित था, अब यातायात की सुविधा और आर्थिक सम्पन्नता बढ़ने से वह और भी अधिक लोकप्रिय हुआ है । प्रचलन बढ़ा है । न केवल अपने देश में वरन् समस्त संसार के गरीब-अमीर अब इसे अपनाते जा रहे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । सरकार को टैक्सों का—व्यापारियों को धन्धे का—श्रमिकों को मजदूरी का इससे लाभ मिलता हैं । इसलिए सरकारें इस प्रयत्न में रहती हैं कि पर्यटन को अन्यान्य उद्योगों की समता मिलें और उसे प्रोत्साहित करने का प्रयास बढ़े । इसमें कुछ अनुचित भी नहीं है । मनोरंजन भी जीवन का एक पक्ष है । उसकी आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता । सिनेमा आदि अन्य मनोरंजनों की तुलना में वह निर्दोष भी है और उपयोगी भी । इसलिए पर्यटन के प्रति यदि उत्साह पाया जाय तो उसे तभी रोका जाना चाहिए जब आर्थिक सन्तुलन बिगड़े । समय और धन की इतनी क्षति हो जिससे सामान्य जीवन क्रम ही लड़खड़ाने लगे । अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियाँ पनपाने वाले पर्यटन भी रोकथाम के योग्य हो सकते हैं ।

तीर्थ सेवन इससे भिन्न है । उसके पीछे उच्चस्तरीय उद्देश्यों का समावेश है। जबकि पर्यटन विशुद्ध मनोरंजन। मनोरंजन में सामान्य प्रचलनों तक की छूट रहती है फिर मर्यादा पालन की तो बात ही कहाँ बनती है। मेले-ठेलों में जाकर लोग जायकेदार खाद्यों पर टूट पड़ते हैं । समय का भी ध्यान नहीं रखते । हँसने-हँसाने, देखने-दिखाने में ही दिन गुजार देते हैं । होली जैसे त्यौहारों पर यह छूट-उच्छृंखलता और भी बढ़ जाती है । छात्रावासों में चलने वाली 'रैगिंग' की तरह उन दिनों शिष्टाचार भी ताक पर रख दिया जाता है । जो मुँह में आया सो कह दिया जो जी में आया सो कर दिया । मनोरंजन की प्रकृति ही ऐसी है । व्याह-बारातों में इस उच्छृंखलता के दृश्य पग-पग पर देखे जा सकते हैं । पर्यटन के दिनों भी ऐसा ही कुछ अनगढ़ चलता रहता है। किन्तु तीर्थसेवन की प्रकृति इससे सर्वथा भिन्न है । उसे किसी सैनीटोरियम में भर्ती कर अपने स्वास्थ्य का सांगोपांग निरीक्षण-परीक्षण कराने से लेकर विश्राम उपचार की व्यवस्था के समकक्ष देखा जा सकता है । उसके पीछे उद्देश्य भी है और अनुशासन भी । साथ ही तदनुरूप मूल्यवान सत्परिणाम भी ।

कभी-कभी दो वस्तुओं का स्वरूप तो एक जैसा होता है पर उनका वास्तविक मूल्यांकन करने पर जमीन आसमान जैसा अन्तर पाया जाता है । मुर्दा चिड़ियाघर और जिन्दा चिड़िया 'घर में जाकर आकृतियाँ समान देखी जा सकती हैं पर उन कलेवरों के बीच क्या भिन्नता है उसे समझने पर मृतक और जीवित का अन्तर सहज ही जाना जा सकता है । हीरे और कांच के नग में मोटी दृष्टि से अन्तर समझ में नहीं आता । इतने पर भी दोनों के मूल्य और महत्त्व को एक जैसा नहीं दिया जा सकता । मिट्टी के बने फल और असली फल का अन्तर करने में कभी-कभी आँखें धोखा खा जाती हैं । इतने पर भी दोनों एक प्रयोजन की पूर्ति नहीं कर सकते । असली फल वर्षों सुरक्षित नहीं रह सकता जबकि मिट्टी के फल से भूख बुझाने की बात किसी प्रकार नहीं बनती । यही अन्तर पर्यटन और तीर्थ सेवन के बीच भी समझा जाना चाहिए । दोनों के उद्देश्य भी भिन्न हैं और कार्यक्रम भी । समानता मात्र इतनी है कि दोनों ही वर्ग के लोग एक ही स्थान पर पहुँचते और एक जैसी गतिविधियाँ अपनाते देखे जाते हैं ।

अपना देश चिरकाल से धर्म प्रधान रहा है । यहाँ धर्म कृत्यों में तीर्थ यात्रा का समावेश बड़ी दूरदर्शिता पूर्वक किया गया है । शारीरिक, मानसिक और आत्मिक परिशोधन-परिमार्जन की आवश्यकता प्रगतिशील जीवन के इच्छुकों में से हरेक को रहती है । रहनी भी चाहिए । उस प्रयोजन की पूर्ति के लिए उपयुक्त स्थानों पर उपयुक्त व्यवस्था बनाने की ऋषिकल्प महामनीषियों ने दूरगामी सत्परिणाम उत्पन्न कर सकने वाले निर्धारण किए। इनमें तीर्थ स्थापना से लेकर उसकी यात्रा व्यवस्था एवं गन्तव्य स्थान पर अपनाई जाने वाली कार्यपद्धति का योजनाबद्ध ढांचा खड़ा किया । तीर्थ स्थान वहाँ विनिर्मित हुए जहाँ ऐतिहासिक प्रेरणाओं का समावेश तो था ही साथ ही स्वास्थ्य सम्वर्धक प्रकृति दृश्य, जलवायु की सुविधा की कमी नहीं थी । जनसंख्या वृद्धि और औद्योगिक विकास के कारण कितने ही तीर्थ अब किच-पिच के बीच घिर गये हैं और पर्यटन एवं तीर्थ सेवन की दृष्टि से उतने उपयुक्त नहीं रहे फिर भी कुल मिला कर स्थिति ऐसी है जिसमें पर्यटन केन्द्र भी वहीं बन सके हैं जहां पिछले तीर्थ स्तर की व्यवस्था थी ।

अन्य देशों में अन्य धर्मों में पर्यटन और तीर्थ सेवन के प्रयोजन एक दूसरे के साथ जोड़े नहीं जाते । किन्तु अपने लोगों का तो कहना ही क्या । भेड़िया धसान ने सब कुछ गुड़-गोबर करके रख दिया है । इस्लाम धर्मानुयायी संसार भर में मक्का मदीना के लिए हज यात्रा पर जाते हैं । ईसाई यरुसलम पहुँचते हैं । बौद्ध लुम्बिनी, कपिलवस्तु, श्रावस्ती, सारनाथ जाते हैं । यात्रियों के मन भावनाओं से भरे रहते हैं । उन तीर्थों में पहुंच कर उनकी श्रद्धा उमड़ती है । जितने समय ठहरते हैं वहाँ धर्म कृत्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ही निरत रहकर अपनी आत्मा को पवित्र बनाने और उन शक्ति केन्द्रों के साथ श्रद्धा सूत्र सघन करने की भावभरी स्थिति में रहते हैं । अपने देश में भी सिख, जैन, कबीर-पन्थी आदि को अपने तीर्थों या तीर्थंकारों में जाकर ऐसी ही श्रद्धासिक्त मन:स्थिति में देखा जा सकता है उनकी गतिविधियाँ भी श्रद्धालुओं जैसी-धर्म धारणा अपनाने वालों जैसी ही होती है ।

हिन्दू धर्म में तीर्थ यात्रा को अन्यत्र देखी जाने वाली तीर्थ श्रद्धा के साथ तुलना की जाय तो प्रतीत होता है कि असली और नकली के बीच—जीवित और मृतक के बीच जो अन्तर पाया जाता है—इसी की झांकी होती है । एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर में लुटेरों जैसी भगदड़ तिरस्कार पूर्वक पाई-पैसों को फेंक-बखेर, जलाशयों में डुबकी—दान पुण्य के नाम अश्रद्धा और व्यवस्था पूर्वक कराई गई जेब कटी, बस इतने में ही तीर्थ यात्रा की लकीर पिट जाती है और पर्यटक अपना शेष समय पर्यटकों की सहज स्वाभाविक मनोरंजक उच्छृंखलता में गुजारते रहते हैं । आमतौर से इसके लिए घर से ऊबे हुए एवं कौतुक प्रिय स्त्री-बच्चों का आग्रह रहता है । कई विभागों में इसके लिए सरकारी छूट अनुदान भी मिलते हैं । यात्री ट्रेनों, बसों के संयोजक अपने अर्थ लाभ को ध्यान में रखते हुए इसके लिए प्रचार प्रोपेगण्डा भी करते हैं । एक को चलते देख कर दूसरे का मन चलता है और फिर दो की तैयारी दस का झुण्ड बन जाती है । गाड़ियों में, धर्मशालाओं में, मन्दिरों में, घाटों में इस अनगढ़ भीड़ के कारण जो अव्यवस्था गन्दगी और अवांछनीयता उत्पन्न होती है उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि यह सब तीर्थ यात्रियों द्वारा किया जा रहा है या यहाँ तीर्थों की पवित्रता एवं उत्कृष्टता का कोई अवशेष बच रहा है ।

पर्यटन और तीर्थ सेवन दोनों के उद्देश्य अलग-अलग हैं । इसलिए उनके लिए निकलने वालों की मन:स्थिति एवं कार्य-पद्धति भी एक दूसरे से भिन्न रहनी चाहिए । सिनेमाघर और अस्पताल पास-पास होते हैं तो भी दोनों में प्रवेश करने वाले अपने-अपने ढंग से चलते और अनुरूप गतिविधियाँ अपनाते हैं । सिनेमा की भीड़ अस्पताल में घुस पड़े और मरीज सिनेमा घर में प्रवेश पाने के लिए मचलें तो निश्चय ही उसका प्रतिफल वैसा ही अवांछनीय दुखदायी, निराशाजनक होगा जैसा कि तीर्थ यात्रा से लौटने वालों को पछताते हुए देखा जाता है । वे बेचारे न मनोरंजन कर पाते हैं न तीर्थ सेवन । मात्र मिथ्या कल्पना उन्हें घेरे रहती है कि सस्ते में दुहरी कमाई कमाकर ले चलें । वास्तविकता यह कि उन्हें धक्के खाने, जेब कटाने के अतिरिक्त और कुछ पल्ले नहीं पड़ता । जब उद्देश्य और कृत्य के पीछे कोई ठोस आधार न हो तो प्रतिफल कैसा ? प्रतिमाऐं देखने और डुबकी लगाने भर से पुण्य या स्वर्ग मिला होता तो उस सस्तेपन के साथ किसी उच्चस्तरीय परिणाम की सम्भावना भी नहीं रहती । हर वस्तु उचित मूल्य देकर खरीदी जाती है । स्वर्ग या पुण्य इतना सस्ता हो सकता है—जैसा कि आज के पर्यटक समझ बैठे हैं—इसे बिना पंखों की उड़ान ही समझना चाहिए प्रज्ञा परिवार के परिजनों को शान्ति कुंज हरिद्वार में पांच दिवसीय तीर्थ सेवन सत्रों में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित किया गया है । पर्यटन की ललक को ध्यान में रखते हुए उसके लिए भी मध्याह्नोत्तर दो दिन का समय निर्धारण किया गया है । इतने कम समय में भी यह व्यवस्था रखी गई है कि उतने में ही इस क्षेत्र के सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों को देखा जा सके । उनके साथ जुड़ी हुई कथा-गाथाओं से उपयुक्त प्रेरणाऐं उपलब्ध करने का अवसर मिल सके । घूमने-फिरने का मनोरंजन सीमित रहना चाहिए । तीर्थ सेवन के साथ जुड़ी हुई अति महत्त्वपूर्ण निर्धारणा को प्रमुखता मिलनी चाहिए । यदि ऐसा न हुआ तो पर्यटन एवं तीर्थसेवन में से एक का भी समुचित लाभ न मिल सकेगा ।

प्रज्ञा परिवार के सदस्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—(१) "प्रज्ञा पुंज"—केन्द्रीय उत्तरदायित्वों के वहन करने में सूत्र संचालकों के साथ जिनकी भागीदारी है । (२) 'प्रज्ञापुत्र'—जो अपने-अपने क्षेत्रों में युगान्तरीय चेतना का विस्तार करने में संलग्न रहते हैं । समयदान और अंशदान से लोकमानस को नवजीवन से अनुप्राणित करने में कार्यरत रहते हैं । (३) 'प्रज्ञा परिजन'—जो कारणवश बाहर नहीं जा सकते पर निजी जीवन निर्माण और परिवार निर्माण के सीमित दायरे में युग प्रेरणाओं को प्रतिष्ठित करने में दत्तचित्त रहते हैं । शान्ति कुंज से आरण्यक में इन तीनों ही वर्गों के प्रशिक्षण की योजना बनाई गई है । तीनों ही पाठ्यक्रम एक ही समय में किन्तु भिन्न पाठ्यक्रमों के अन्तर्गत पृथक्-पृथक् रूप से चलते हैं ।(१) प्रज्ञा पुंजों के लिए एक महीने की कल्प साधना आवश्यक है । इससे उन्हें कम समय में वही लाभ मिलेगा जो योगी तपस्वियों को आत्मिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पवित्रता एवं प्रखरता के रूप में मिलता है । (२) प्रज्ञा पुत्रों के लिए भी एक महीने के युग शिल्पी सत्र हैं । जिनमें इस बार उन्हें वक्ता एवं स्वास्थ्य संरक्षक-चिकित्सक की अभिनव योग्यताओं से सुसज्जित किया जायेगा । प्रस्तुत पंच सूत्री योजना के कुशलता पूर्वक कार्यान्वयन का प्रशिक्षण तो साथ में है ही । (३) प्रज्ञापरिजनों के लिए पाँच दिन के तीर्थ सेवन सत्र । इनमें आत्म निर्माण और परिवार निर्माण की उस सप्त सूत्री योजना की बौद्धिक एवं व्यावहारिक शिक्षा दी जायेगी जिसका उल्लेख अखण्ड ज्योति के जून' ८२ अंक में विस्तार पूर्वक किया गया है ।

तीनों ही सत्र अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने स्तर के अनुरूप अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । जो पिछले किन्हीं सत्रों में शान्ति कुंज आ चुके हैं उनके लिए भी सामयिक विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए-पदोन्नति पर हर बार नई ट्रैनिंग का महत्त्व समझते हुए समय-समय पर सम्मिलित होते रहने का प्रयत्न करना चाहिए । कल्प वृक्ष के नीचे जितनी बार पहुँच जायेगा उतनी ही बार नये स्तर का नया लाभ मिलता रहेगा । यह मात्र प्रशिक्षण नहीं है । इसमें प्राणवान् अनुदान भी सम्मिलित हैं । जो अपने पुरुषार्थ से नहीं कमाया जा सकता, वह सुसम्पन्न अभिभावकों के अनुग्रह से उत्तराधिकारियों को मिलता रहता है । चन्दन, पारस, इत्र, आग आदि की समीपता के लाभों से जो परिचित हैं उन्हें प्राणवान् एवं अनुदान के लिए आकुल सानिन्ध्या प्रतिफल भी समझना चाहिए । सत्संग की महिमा शास्त्रों और आप्तजनों ने मुक्त कंठ से गाई है । निर्जीव ढकोसले के रूप में चलने वाली बकवास की बात दूसरी है । पर यदि सचमुच ही समर्थता हो तो उसकी छाया में बैठना किसी न किसी प्रकार अन्ततः श्रेयस्कर ही सिद्ध होगा ।

प्रज्ञा परिजनों के तीर्थ सेवन सत्र महत्त्वपूर्ण हैं । वे प्रगति पथ पर एकाकी चल सकने में अपने आपको दुर्बल पाते हों तो इन पंच दिवसीय सत्रों को ऐसे सहयोग के रूप में प्रयुक्त कर सकते हैं जैसा कि छोटे बालक बड़ों के कन्धों पर बैठकर उनसे भी ऊंचे दीखते और दूर-दूर तक वह दृश्य देखते हैं जो अपने पैरों पर खड़े रहते किसी प्रकार सम्भव नहीं है ।

जिनके लिए शान्ति कुंज पहुँचना सम्भव नहीं है, उनके लिए अगले दिनों पाँच-पाँच दिवसीय सत्र हर क्षेत्र में करने की योजना बनाई जा रही है । उनमें गुरुदेव माताजी तो नहीं पहुँचेंगे किन्तु वरिष्ठ प्रज्ञापुत्रों को उनमें प्रशिक्षण देने के लिए भेजा जायेगा । शिक्षा वही होगी जो शान्ति कुंज में पाँच दिनों तक निर्धारित सप्त सूत्री योजना को क्रियान्वित करने के सन्दर्भ में चलती हैं । शान्ति कुंज प्रज्ञा तीर्थ है, उसके साथ सम्बन्ध सूत्र जोड़ने और घनिष्ठ करने की दृष्टि से सत्र योजना के बहाने पहुँचने रहना, खर्च होने वाले समय एवं मार्ग व्यय की तुलना में अधिक लाभदायक है । फिर भी इस विवशता को ध्यान में रखना होगा जो परिवारिक एवं आर्थिक कारणों से वैसी सुविधा उपलब्ध नहीं होने देती ।

प्रज्ञा परिजनों में से प्रत्येक को कहा गया है कि जून १९८४ की अखण्ड ज्योति को कम से कम दो बार पढ़ें और अपने लिए सरल किन्तु अति महत्त्वपूर्ण युग धर्म को व्यावहारिक जीवन में उतारने की बात सोचें । इसके लिए काम तो अपने ही विवेक एवं साहस का उपयोग करने से चलेगा । फिर भी समर्थ सहायता का मूल्यांकन भी क्यों नहीं किया जाना चाहिए । जल में न तैर सकने वाले जलयान का, हवा में न उड़ सकने वाले वायुयान का और धरती पर द्रुतगति से दौड़ने के इच्छुकों को वाहनों का सहारा लेना पड़ता है । ऐसा सुयोग सहयोग प्राप्त कर लेने की सूझ-बूझ भी अपने निजी पुरुषार्थ में ही गिनी जाती है । लोक सेवा के क्षेत्र में जनसम्पर्क के लिए न निकल सकने वाले प्रज्ञा परिजनों के लिए अपने व्यक्तित्व एवं परिवार को सुसंस्कृत-समुन्नत बनाना भी एक बड़ा काम है, इसे वे तीर्थ सेवन सत्र में सम्मिलित होकर और भी अच्छी तरह सम्पन्न करते रह सकते हैं । जो सम्मिलित हो उनके लिए उचित है कि वे अन्यान्यों को भी इस सुयोग से लाभान्वित होने की प्रेरणा दें ।

स्पष्ट है कि सब लोग हरिद्वार पहुँचने में समर्थ न हो सकेंगे इसलिए इन पंक्तियों द्वारा प्रज्ञा परिवार के प्रत्येक परिजन को आमान्त्रित किया जाता है कि वे हरिद्वार न पहुँच सकें तो अपने समीपवर्ती प्रज्ञा आयोजन का स्थान एवं समय जवाबी पत्र लिखकर शान्ति कुंज से पूछ लें । स्वयं तथा प्रज्ञा परिवार के अन्य सदस्यों को इसमें सम्मिलित करने का प्रयत्न करें ।

● ● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थ यात्रा इस तरह की जाये

पद यात्राओं से लोक जागरण

तीर्थयात्रा भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न अङ्ग रहा है। बहुत ही दूरदर्शिता पूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखकर तत्त्वदर्शी ऋषियों ने इस प्रक्रिया का प्रचलन किया था।

धनवानों का कर्तव्य है कि वे अपनी उपार्जित कमाई का उपभोग अपने परिवार तक ही सीमित न रखें वरन् व्यापक पीड़ा और पतत के निवारण के लिए भी उसे दान रूप में नियोजित करें। धर्मकृत्यों में इसीलिए पग-पग पर दान-पुण्य का निर्देश है। जो अपनी कमाई को आप ही खाता है उस स्वार्थी को पाप खाने वाला, चोर, कृपण आदि कह कर कटु शब्दों में भर्त्सना की गई है।

ठीक इसी प्रकार भावनाशील, बुद्धिमान, प्रतिभा सम्पन्न लोगों के लिए भी यह आवश्यक माना गया है कि वे अपनी विभूति, सम्पदा का लाभ शरीर और परिवार को ही देते रहने की कृपणता न बरतें, वरन् मनुष्य जाति का पिछड़ापन दूर करने के लिए उदारतापूर्वक इसके विवरण की योजना बनायें और उसे कार्यान्वित करें। धनदान से भी बढ़कर ज्ञानदान का, ब्रह्मदान का पुण्य महात्म्य बताया गया है। यही कारण है कि धनदानियों की तुलना में ब्रह्मदानी, ज्ञानदानी, साधु ब्राह्मणों को कहीं अधिक सम्मान दिया जाता रहा है।

धन का महत्व सर्वविदित है। वह प्रत्यक्ष और दृश्य है। इसलिए अभावग्रस्त लोग—धनदानी का पता लगा लेते हैं और स्वयं उसके घर पर जा पहुँचते हैं। किन्तु ज्ञान के बारे में ऐसी बात नहीं है। वह सूक्ष्म है। उसकी आवश्यकता और उपयोगिता से कोई विरले ही परिचित होते हैं। समझा जाता है कि धन कमा लेने से सुख-शान्ति मिलती है किन्तु तथ्य यह है कि परिष्कृत व्यक्तित्व ही साधन उत्पन्न करने तथा उनका सदुपयोग करके समृद्धि और प्रगति का सच्चा एवं चिरस्थाई आनन्द ले सकता है। लोग धन कमाने और परिस्थितियाँ बदलने में तो उलझे रहते हैं पर पत्तों से ध्यान हटाकर जड़ सींचने पर ध्यान नहीं देते जिससे कि जीवन-कल्पवृक्ष सहज ही हरित पल्लवों, सुगन्धित पुष्पों और मधुर फलों से लदा हुआ दीख पड़े। मनःस्थिति के आधार पर परिस्थितियाँ अवलम्बित रहतीं हैं। जो यह जानता है उसे सूर्य की तरह यह तथ्य स्पष्ट दीख पड़ता है कि व्यक्ति और समाज की असंख्यों उलझनों के समाधान का एक ही उपाय है, उसके दृष्टिकोण में समाया हुआ पिछड़ापन दूर करना। ज्ञानवान् लोग सदा से यह तथ्य समझते रहे हैं कि जन-मानस का परिष्कार करके ही सतयुगी वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व अपनाने के लिए यदि मनुष्य को सहमत किया जा सके तो वह दयनीय दुर्दशा में से स्वयं भी उबर सकता है और स्वल्प साधनों में भी महामानव स्तर का देवोपम जीवन जी सकता है।

शरीर की आवश्यकतायें साधनों से पूरी होती हैं पर आत्मा की भूख तो प्रखर व्यक्तित्व ही बुझा सकता है। इस तथ्य को दूरदर्शी विवेकवान ही समझते हैं। वे जानते हैं कि लोगों के चर्मचक्षु साधनों का मूल्य समझते हैं, विचार शक्ति का नहीं। अस्तु वे न ज्ञान की इच्छा रखेंगे और न उसे माँगने के लिए ज्ञानवानों के पास आयेंगे। चारपाई पकड़ लेने वाला रोगी चिकित्सक के घर नहीं जा पाता। चिकित्सक को ही रोगी के घर जाना पड़ता है। दुर्भिक्ष, भूकम्प आदि प्रकृति प्रकोप से पीड़ितों की सहायता करनें धनवानों का धन दुःखियों के पास पहुँचता है।

महामारी, बाढ़, दुर्घटना आदि के अवसरों पर स्वयं सेवक अपनी शारीरिक सेवाएँ देने घटनास्थलों पर ही पहुँचते हैं। ठीक इसी प्रकार ज्ञानवान्, विवेकवान्, धर्मात्माओं को जन-मानस के परिष्कार का उद्देश्य लेकर घर-घर जाना पड़ता है। बादल भी खेतों को अपने घर बुलाने की प्रतीक्षा न करके स्वयं ही सूखे मरुस्थलों की, सींचने के लिए जहाँ-तहाँ पहुँचते और अपनी श्रम सम्पदा को उदारपूर्व बिखेरते हैं।

तीर्थयात्रा का यही उद्देश्य और यही शास्त्र सम्मत स्वरूप है, जिसका कि महात्म्य अत्यधिक पुण्यफल के रूप में शास्त्रकारों ने गाया, बताया है। शास्त्रीय परम्परा के अनुसार तीर्थयात्रा पैदल ही होती थी। कोई विशिष्ट ज्ञानवान् व्यक्ति अपने साथ छोटी धर्म प्रचार मण्डली लेते थे और गाँव-गाँव अलख जगाते, पड़ाव डालते, लम्बी यात्रा योजना बनाते थे। किसी मार्ग से चलकर, कहाँ होते हुए, किधर से लौटा जाये, यात्रा का आरम्भ और अन्त कहाँ किया जाये, इसका निर्णय करते समय प्रेरणाप्रद ऐतिहासिक स्थान व प्रकृति के शोभा स्थलों का भी ध्यान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखा जाता था। महामानवों की कर्मभूमियाँ तीर्थ कहलाती थीं। वहाँ स्वभावतः स्मृतियों को सजीव रखने वाले देवालय, खण्डहर आदि रहते थे। प्राकृतिक शोभा स्थलों में नदी-पर्वत होते ही हैं। देवालय का दर्शन, नदियों का स्नान, पर्वतों का आरोहण, यह तो मात्र तीर्थयात्रा का आवरण कलेवर था, उसका प्राण तो ज्ञानार्जन और ज्ञान-प्रचार में ही सन्निहित रहता था।

पर्यटन के अनेक अन्य लाभ भी हैं। इनमें स्वास्थ्य सुधार, अनुभवों की वृद्धि, परिचय क्षेत्र का विस्तार आदि प्रमुख हैं। व्यवसाय विस्तार की सम्भावनाएँ खोजने का अवसर भी पर्यटन में मिलता है। पर्यटन अपने आप में एक उद्योग है उससे यात्रा-स्थलों के दुकानदारों को, श्रमिकों को प्रत्यक्ष रूप से और अनेक स्थानीय लोगों को परोक्ष, रूप से आगन्तुकों की आवश्यकता पूरी करते हुए आजीविका मिलती है। यात्रियों को मनोरंजन, परिवर्तन, अनुभव एवं स्वास्थ्य लाभ तो प्रत्यक्ष ही मिलता है। प्राचीनकाल में तीर्थस्थलों में ऐसे महापुरुषों के आश्रम थे जहाँ आगन्तुक सत्संग लाभ लेकर अपनी जीवन समस्याएँ सुलझाने और भविष्य के लिए उपयोगी समाधान लेकर वापिस लौटते थे। तीर्थ यात्राओं का मार्ग-निर्धारण इसी दृष्टि से होता था।

चारों धाम की यात्रा, नर्मदा परिक्रमा, उत्तराखण्ड यात्रा आदि अनेक प्रचलन अभी भी विद्यमान हैं। ऐतिहासिक स्थलों की, नव-निर्माण की दर्शनीय संस्थाओं की यात्रायें अभी भी निकलती हैं। तीर्थयात्रा ट्रेन—स्पेशल बसें—रिआयती-रेल-टिकटें, छात्रों को भाड़ा-रिआयत आदि की सुविधा इसी दृष्टि से रहती हैं कि पर्यटन के साथ लोगों को ज्ञानवृद्धि का अवसर मिले।

प्राचीन काल में धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपनी धर्म मण्डलियों सहित पद यात्रा करते हुए तीर्थ यात्रा पर और भी ऊँचा उद्देश्य लेकर निकलते थे। उनका लक्ष्य था जन-साधारण से सम्पर्क स्थापित करके स्थानीय समस्याओं के अनुरूप उत्कृष्ट मार्गदर्शन किया जाय और पिछड़ेपन का अन्धकार जहाँ भी, जिस कोने में भी, छिपा पड़ा हो उसे भगा कर अभिनव आलोक का व्यापक विस्तार किया जाये।

उन दिनों 'धर्म' शब्द के अन्तर्गत ही व्यक्ति और समाज की समस्त उत्कृष्टताओं का समावेश था। आदर्शवादिता और सद्विचारणा का उनका विभाजन विस्तार उन दिनों नहीं था। इसलिए उत्कृष्टता और प्रगतिशीलता का समावेश 'धर्म' शब्द में ही हो जाता था। धर्म के व्याख्याकारों ने उसकी परिभाषा भौतिक अभ्युदय और आत्मिक 'निःश्रेयस' कर सकने वाले चिन्तन एवं कर्तृत्व के रूप में की है। धर्म प्रयोजनों को मूर्धन्य प्रक्रिया-तीर्थ यात्रा को इतना पुण्य फलदायक इसी दृष्टि से बताया गया है, कि उससे व्यक्ति एवं समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता-परिष्कृत दृष्टिकोण से विकास विस्तार की पूर्ति भली प्रकार होती थी।

धर्म प्रचार मण्डलियों, तीर्थयात्रा टोलियों के लिए ही धर्मशाला, अन्न-क्षेत्र, सदावर्त आदि की व्यवस्था धनवान लोग किया करते थे। अतिथि सत्कार, भिक्षा दान आदि का पुण्यफल इसी दृष्टि से बताया गया है कि इन यात्रा टोलियों को स्थान-स्थान पर निर्वाह की सुविधा मिलती रहे। मन्दिरों में स्थान तथा निर्वाह साधनों की सुविधा प्रस्तुत करने में इन तीर्थयात्री टोलियों को सुविधा देना ही प्रधान लक्ष्य रहता है।

कुम्भ जैसे विशाल पर्व तथा क्षेत्रीय मेला सम्मेलन भी धर्म सम्मेलनों के रूप में होते थे। तीर्थयात्रा मण्डलियाँ क्षेत्र-क्षेत्र में पैदल चल कर वहाँ पहुँचती थी। सामूहिक सम्मेलन में देश की सामयिक परिस्थितियों की समीक्षा होती थी और भविष्य के लिए नीति निर्धारित होती थी। इस महत्वपूर्ण चर्चा को सुनने और धर्म-प्रचारकों से सम्पर्क बनाने की उपयोगिता समझकर जनता भी वहाँ पहुँचती थी। यही था प्राचीन काल के 'पर्व समारोह' का स्वरूप।

आज तो सब कुछ गड़बड़ हो गया। तीर्थयात्रा द्रुतगामी वाहनों से होती है और यात्री लोग देवदर्शन करके नदी सरोवरों में डुबकी मारकर, तबड़ तोड़ वापिस लौटते हैं। इस भगदड़ में किसे क्या लाभ मिलता होगा यह समझना कठिन है। धर्मशालाओं और सदावर्तों का उपयोग किन लोगों द्वारा होता है, इस पर जब दृष्टि डाली जाती है तो एक ही निष्कर्ष निकलता है कि हमारी तीर्थयात्रा जैसी महान परम्परा मात्र लकीर पीटने तक ही रह गई है। उस चिन्ह पूजा से वाहनों के स्वामी, तीर्थ स्थानों के व्यापारी तथा धर्म व्यवसायी भले ही लाभ उठाते हों, बेचारा भावुक यात्री तो जेब कटाकर खाली हाथ ही वापिस लौट जाता है।

जो हो; हमें अपनी महान् सांस्कृतिक परम्परा को जीवन्त स्थिति में वापिस लाना चाहिए। आज इसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्राचीनकाल से भी अधिक आवश्यकता है। उन दिनों साधन तो स्वल्प थे पर जीवन दर्शन स्वच्छ होने से समृद्धि और प्रगति का वातावरण बना हुआ था। आज तो चिन्तन और क्रिया-कलाप में बेहिसाब विकृतियाँ भर गई हैं, फलतः हर क्षेत्र में उलझनों, विपत्तियों और संकटों के पहाड़ जैसे अवरोध खड़े हो गये हैं। एक का हल निकल नहीं पाता कि दूसरा संकट सामने आ खड़ा होता है। साधन बढ़ाने के प्रयत्न चल रहे हैं, सो चलें। हमें धर्मपक्ष को इतना सबल बनाना चाहिए कि उपार्जित उपलब्धियों का सदुपयोग हो सके। प्रस्तुत समस्त समस्याओं का एक ही हल है, दृष्टिकोण का परिष्कार। इसी आधार पर व्यक्तित्वों में प्रखरता उत्पन्न होगी और उसी विकास से सर्वतोमुखी प्रगति एवं चिरस्थायी सुख-शान्ति का लाभ लिया जा सकेगा। चरित्रनिष्ठ और उदात्त अन्तःकरण सम्पन्न मनुष्यों का समाज ही सुसंस्कृत और समुन्नत बन सकेगा। उज्जवल भविष्य का आधार यही हो सकता है। विश्वशान्ति का लक्ष्य इसी मार्ग पर चलने से सम्भव हो सकता है।

तीर्थयात्रा मंडलियों का गठन और प्राचीन आधार पर उनका प्रचलन किया जा सके, तो जन जागरण की महती आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है। यदि सुयोग्य, सुसंस्कृत और भावनाशील व्यक्ति लोकमङ्गल की आवश्यकता को समझें और अपने ज्ञान के साथ-साथ समय, श्रम को उसके लिए नियोजित करने के लिये कटिबद्ध हो जायें तो सांस्कृतिक पुनरुत्थान की, धर्म जागरण की, भावनात्मक परिष्कार की महती आवश्यकता पूरी करने का मार्ग निकल सकता है। अपने देश में आज की स्थिति में नव जागरण का यही सर्वोत्तम उपाय है।

सर्व विदित है कि भारत में ७० प्रतिशत अशिक्षित हैं और ८०. प्रतिशत आबादी छोटे देहातों में रहती हैं। यही है असली भारत का चित्र। अखबारों, संस्थानों, प्रचारकों, रेडियों, टेलीविजन जैसे साधनों की सीमा बड़े शहरों और मझोले कस्बों तक सीमित है। उन्हीं क्षेत्रों में शिक्षित भी अधिक हैं और प्रचार साधनों का भी बाहुल्य है। अस्तु सुधार के, प्रगति के नाम पर जो कुछ होता रहता है उसका अधिकांश भाग इसी क्षेत्र तक सीमित रह जाता है। देहात की अशिक्षा, दरिद्रता और यातायात की असुविधा सुधार-साधनों को वहाँ तक नहीं पहुँचने देती, फलतः प्रगति के ढोल बहुत छोटे क्षेत्र में पिटकर रह जाते हैं। देहात अभी भी नवयुग के प्रकाश से वंचित है। वहाँ तक पहुँचने में तीर्थ यात्रियों की धर्मप्रचार टोलियाँ ही समर्थ हो सकती हैं।

तीर्थयात्रा के अभिनव प्रयोग समय-समय पर होते रहे हैं। कितने ही ऋषि-मुनि अपनी छात्र मण्डली समेत पदयात्रा करते रहते थे और विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए उनके अनुभव की वृद्धि तथा लोकमानस के निर्माण का तीन गुना पुण्य प्रयोजन सिद्ध करते थे। दार्शनिक सुकरात समय-समय पर अपनी शिष्य मण्डली समेत लम्बी पद यात्राओं पर निकलते थे। भगवान बुद्ध के स्थापित बिहारों में तीर्थयात्रा की ही शिक्षा दी जाती थी। उसमें विश्वव्यापी धर्म प्रचार के उद्देश्य से ही भिक्षु और भिक्षुणी भर्ती किये जाते थे और जब वे चरित्र, ज्ञान की दृष्टि से प्रखर एवं जिस क्षेत्र में जाना है वहाँ की भाषा, परिस्थिति से अवगत हो जाते थे तो फिर सुदूर प्रदेशों में धर्म प्रचार के लिए भेज दिया जाता था। इतिहास साक्षी है कि बौद्ध प्रचारक एशिया के कोने-कोने में छा गये थे। उन्होंने प्राणघातक रेगिस्तानों, हिमाच्छादित पर्वतों, दलदलों, सघन वनों, उफनते नदी-नालों, समुद्री अवरोधों की चिन्ता न की और अपने संकल्प एवं पुरुषार्थ के बल पर पिछड़े क्षेत्रों में डेरे डालकर प्रगतिशीलता का आलोक वहाँ फैलाया। भगवान बुद्ध स्वयं आजीवन पर्यटक बनकर रहे। उनके विराम स्वल्पकालीन ही रहते थे। भगवान महावीर ने भी इसी परम्परा को निबाहा। मध्यकालीन सन्तों ने भी अपनी मण्डलियों समेत धर्म प्रचार की यात्राओं में ही जीवन का अधिकांश समय बिताया था, सन्त का अर्थ ही पर्यटक होता था। आश्रम व्यवस्था बनाकर रहने वाले तो ब्राह्मण कहलाते थे।

महात्मा गांधी की डाँडी, नमक यात्रा और नोआखाली की शान्ति यात्रा सर्वविदित है। सन्त विनोवा की भूदान यात्रा के सत्परिणामों से कौन परिचित नहीं है। इन दूरगामी परिणामों को प्राचीनकाल में भली प्रकार समझ गया था और अपने धर्मकृत्यों में धर्मप्रचार की तीर्थयात्रा को प्रमुख स्थान देने के लिए प्रत्येक धर्म प्रेमी से कहा गया था। जो असमर्थ रहते थे वे भी उच्च आदर्श का स्मरण करने के लिए प्रतीक रूप में नदियों, पर्वतों, वृक्षों, देवालयों की परिक्रमा करके किसी प्रकार मन की साध पूरी करते थे। अभी भी पीपल की, आँवले की, तुलसी की, परिक्रमा होती है। मथुरा-वृन्दावन में हर एकादशी को परिक्रमा में हजारों नर-नारी निकलते हैं। दो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महीने की वृजयात्रा होती है। गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा लोग अति श्रद्धापूर्वक करते हैं। ऐसे ही प्रचलन अन्य क्षेत्रों में भी पाये जाते हैं।

तीर्थयात्रा टोली सामयिक हो या स्थायी इसकी रूपरेखा तथा कार्य-पद्धति उसके सदस्यों को अवश्य बतायी जानी चाहिए। साथ ही यात्रा के उद्देश्य और प्रयोजन भी भली प्रकार हृदयमङ्गल करा दिए जाने चाहिए।

प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को अपनी समर्थता का एक महत्वपूर्ण अंश लोक मङ्गल के लिये समर्पित करने के उपरान्त शेष से अपना निर्वाह चलाना चाहिए। इस सृष्टि का चक्र इसी प्रकार चल रहा है। समुद्र, बादल, नदी, वृक्ष तक अनुदान की परम्परा निवाहते हैं। शरीर के अवयव एक-दूसरे को देने की नीति अपनाकर जीवन धारण किये रहते हैं। मनुष्य को अपना ज्ञान, समय, श्रम, प्रतिभा, धर्मनिष्ठा, धन आदि को बाँटकर खाना चाहिये। दान की महत्ता पग-पग पर गाई गई है। सर्वोपरि दान ज्ञान दान है। विवेकवान जात आत्माओं को अपना विवेक और जागरण दूसरों तक पहुँचाने के लिए दीपक जैसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। धर्मनिष्ठा का वितरण करें, यह प्रक्रिया तीर्थयात्रा में जितनी अच्छी तरह सम्पन्न होती है उतनी और किसी प्रकार नहीं।

महामारी, भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष, अग्निकांड दुर्घटना जैसी विषम परिस्थितियों में उदार लोग यह प्रतीक्षा नहीं करते कि कष्ट पीड़ित लोग हमारे दरवाजे पर आकर याचना करेंगे तब उनकी सहायता करेंगे। उदार लोग स्वयं ही दौड़कर जाते हैं। सूर्य, चन्द्र, पवन, बादल स्वयं ही परिव्राजक वन कर भ्रमण करते और अपनी शक्ति को दूसरों की सुविधा के लिए वितरित करते हैं। अपनी तीर्थयात्रा इसी प्रकार का प्रकाश वितरण है। इस प्रयास में उदार आत्मीयता के सच्चे आध्यात्म तत्व पूरी तरह जुड़े हुए हैं।

अपने देश की ८० प्रतिशत जनता छोटे देहातों में रहती है। अशिक्षा भी उसी क्षेत्र में अधिक है। वहाँ तक शहरी और अशिक्षितों के लिए सम्भव प्रचार साधन पहुँच नहीं पाते। जो पहुँचते हैं उन्हें वे ग्रहण नहीं कर पाते। अपने देश-वासियों की मनःस्थिति में धर्म परम्पराओं के लिए अभी भी स्थान है। अस्तु धर्मनिष्ठा के साथ नव जागरण का, सर्वतोमुखी प्रगतिशीलता का प्रकाश जन-जन तक पहुँचाया जाना सम्भव है, तीर्थयात्रा प्रक्रिया से यही प्रयोजन पूर्ण होता है।

भारतीय संस्कृति में तीर्थयात्रा को अत्यिधिक पुण्य फलदायक माना गया है। तीर्थ-निर्माण पर और उनकी यात्रा पर जितना धन और श्रम लगता है उतने पूरे धर्मक्षेत्र में और किसी काम पर नहीं। जो लोग तीर्थयात्रा करने में असमर्थ रहते हैं, वे स्थानीय पीपल, ऑवला, तुलसी, पर्वत, सरोवर, मन्दिर आदि की परिक्रमा करके अपने मन को सन्तोष देते हैं। तीर्थयात्रा का शास्त्रीय स्वरूप पदयात्रा ही है। प्राचीन काल में धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपनी मण्डलियाँ बनाकर, धर्म प्रचार के लिये निकलते थे। मील के पत्थरों की तरह रास्ते में अमुक ऐतिहासिक स्थानों एवं ज्ञान संस्थानों के सम्पर्क में जाकर लाभान्वित होने का लक्ष्य रहता था। इस रास्ते में गाँव-गाँव धर्म सन्देश सुनाते, पड़ाव के स्थान पर कथाकीर्तन करते सर्वत्र धर्मनिष्ठा जागते हुए वे तीर्थयात्रा मण्डल आगे-आगे बढ़ते थे। तीर्थयात्रा का उद्देश्य और स्वरूप सर्वसाधारण को समझाया जाना चाहिए ताकि उसके लिये जो सुविस्तृत माहात्म्य धर्मग्रन्थों में गाया गया है, उसका कारण-उत्पन्न सत्परिणामों के आधार पर जाना जा सके। लोगों को पता चलना चाहिए कि द्रुतगामी वाहनों पर चढ़कर मात्र अमुक देवालय का स्नान ही तीर्थयात्रा नहीं है, उसके पीछे धर्म प्रचार का, जनसाधारण की उदात्त दृष्टि का समन्वय हो तो ही मूल प्रयोजन पूरा हो सकता है।

प्रत्येक तीर्थयात्री को (१) स्वास्थ्य सुधार (२) ज्ञान असिवर्धन (३) परिचय एवं अनुभव विचार (५) उदात्त दृष्टिकोण के पाँच लाभ निजी रूप से मिलते हैं।

सभी कठिनाइयों, अभावों और समस्याओं का प्रधान कारण मनुष्य का भावनात्मक पिछड़ापन होता है। भौतिक समृद्धि बढ़ाने के साथ-साथ दृष्टिकोण को परिष्कार नितांत आवश्यक है। मानवता की सबसे बड़ी सेवा यह है कि जनमानस के परिष्कार के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया जाय। अपनी तीर्थयात्रायें यही प्रयोजन पूरा करेंगी। उनका उद्देश्य बिखराब को एकता में, पिछड़ेपन को प्रगति में, आलस्य को पुरुषार्थ में, अनीति को न्याय में और क्षुद्रता को महानता में परिवर्तित करना है। अस्तु उसका पुण्य फल न केवल तीर्थयात्रियों को वरन् सर्वतोमुखी प्रगति के रूप में समस्त संसार को मिलता है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि तीर्थयात्रा की अवधि में जिनसे भी सम्पर्क होगा उनकी सद्भावनाओं के उभार को सत्प्रवृत्तियों में संलग्न होने के लिए नियोजित किया जायगा। अपनी सत्प्रवृत्ति संवर्धन कार्यक्रम के इन दिनों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बीस सूत्र हैं। उनमें १० क्रियापरक और १० विचारपरक हैं।

क्रियापरक—(१) साक्षरता विकास के लिए प्रौढ़ पाठशालायें, रात्रि पाठशालाएँ (२) नारी शिक्षा के लिए तीसरे प्रहर की पाठशालाएँ (३) स्वास्थ्य सम्बर्धन के लिए व्यायाम शालाएँ (४) वृक्षारोपण (५) शाकवाटिकाएँ(६) स्वच्छता अभियान (७) गृह-उद्योग का प्रचलन (८) संगठित श्रमदान (९) परिवार नियोजन (१०) सहकारिता के विकास के लिये प्रयास।

विचारपरक—(१) दीवारों पर सदवाक्य लेखन (२) सद्साहित्य के पुस्तकालयों की स्थापना (३) बाल विवाह, अनमेल विवाह, विवाहों में अति व्यय और दहेज का विरोध (४) मृतक भोज एवं बड़े भोज, पर्दाप्रथा, शिक्षा व्यवसाय, छुआछूत जैसी कुप्रथाओं का परित्याग (५) भूतपलीत, भाग्यवाद, महूर्त शकुन विचार, टोने-टोटके जैसे अन्धविश्वासों का निवारण (६) नशेबाजी, माँसाहार जैसी आदतों का त्याग (७) जुआ, ठगी, रिश्वत, मुनाफाखोरी, कामचोरी, गुण्डागर्दी जैसी अवांछनीयताओं का परित्याग, असहयोग और विरोध (८) दैनिक जीवन में ईश्वर उपासना का स्थान (९) रात्रि में प्रेरक प्रसंग एवं गोष्ठियों का प्रचलन (१०) पर्व त्यौहारों के सामूहिक रूप की परम्परा स्थापित करके व्यक्ति, परिवार और समाज के नवनिर्माण की प्रेरणा संचार की व्यवस्था।

संक्षेप में यही युग निर्माण योजना का बीस सूत्री कार्यक्रम है। इसका परिचय तो सर्वत्र कराया जाय पर तात्कालिक स्थिति के अनुरूप किसी-किसी रूप में शुभारम्भ पड़ाव के दिन ही करा देने का प्रयास होगा और पीछे उस दिशा में कुछ न कुछ किया ही जाता रहे, ऐसा प्रयास इन धर्मप्रचार टोलियों का रहेगा।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि प्राचीन काल के धर्मनिष्ठ मनीषी तीर्थयात्रा को अपनी जीवन प्रक्रिया का प्रमुख अंग मानते रहे हैं। साधु, ब्राह्मण परिव्राजक, वानप्रस्थ इसी प्रयोजन में अधिकांश समय लगाते थे। जन जागृति के लिए यह प्रक्रिया असाधारण रूप से सफल रही है। यहाँ के धर्म प्रचारक जन स्तर को देवोपम बनाये रखते थे। अपने देश के ३३ करोड़ नागरिक ३३ कोटि देवताओं में गिने जाते थे और यह भारत माता, 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहलाती थी । सारे विश्व को अजस्र अनुदान दे सकना हमारे लिए इसी आधार पर सम्भव हुआ था। उसी पुण्य प्रक्रिया को तीर्थयात्रा टोलियाँ पुनर्जीवित करेंगी।

इन मण्डलियों का गठन कई सुविज्ञ व्यक्ति मिल-जुलकर कभी भी कर सकते हैं और अवकाश के दिनों का उपयोग इस पुण्य कार्य के लिए कर सकते हैं। गर्मियों में किसान तथा विद्यार्थी अन्य कई वर्ग के लोगों का अवकाश रहता है। त्यौहारों पर तथा साप्ताहिक छुट्टी का दिन भी खाली समय होता है इसका उपयोग अपने समीपवर्ती क्षेत्रों में तीर्थयात्रा प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है। यह मण्डलियाँ न बहुत छोटी, न बड़ी हों। साधारणतया चार से लेकर दस सदस्य इन मण्डलियों में हो सकते हैं। कम रहने से प्रभाव कम पड़ता है और अधिक रहने से व्यवस्था बिगड़ती है।

कोई उत्साही कर्मयोगी आगे बढ़कर विचारशील वर्ग से सम्पर्क बनाकर इस पुण्य प्रयोजन का उद्देश्य और स्वरूप समझाकर, ऐसे व्यक्ति तैयार कर सकते हैं जो अपना अवकाश का समय लगा सकें। व्यक्तियों की संख्या और उनकी सुविधा के समय का ध्यान रखते हुए अपने समीपवर्ती क्षेत्र में यात्रा कार्यक्रम बनाया जा सकता है।

यात्रा तो पैदल होगी पर सामान तो साथ रहेगा ही। इसके लिए बैल, घोड़ा, ऊँट आदि पशुओं का तथा गाँव में चल सकने योग्य गाड़ियों का प्रयोग किया जा सकता है। कुली लेकर भी चला जा सकता है। अधिक सस्ता और अच्छा तरीका साइकिलों का है। उनके आगे, पीछे बीच में इस प्रकार जगह बनाई जा सकती है कि आवश्यक सामान लाद कर चला जा सके। कांटे लगने से पंचर होने का डर जरूर रहेगा पर उसके लिए जोड़ने का सामान साथ रखा जा सकता है और ट्यूबों के भीतर सेलखड़ी एवं पिसे गट पार्चा से मिलकर बनने वाला 'पंचर प्रूफ' पाउडर थोड़ी मात्रा में भरा जा सकता है। साइकिलें इन दिनों सभी जगह उपलब्ध हैं। आमतौर से एक रुपया रोज पर किराये से भी मिल जाती हैं, उन्हें जुटाने में कहीं कोई बड़ी असुविधा नहीं होती। साधारण भार वाहक के रूप में उसका उपयोग सरल रह सकता है। पर्वतीय अथवा नदी नालों के कठिन मार्ग हों तो तदनुरूप दूसरी व्यवस्था बनानी चाहिए।

टोली के निकलने से पूर्व एक सप्ताह का शिक्षण सत्र चले। उसमें कीर्तन, कथा, धर्मफेरी, दीवारों पर सुन्दर अक्षरों में वाक्य लेखन, आवश्यकतानुसार भोजन का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रबन्ध, साइकिल मरम्मत, दिनचर्या का निर्वाह जैसे सभी कार्यों का ऐसा अनुभव अभ्यास कर लेना चाहिए कि तीर्थयात्रा पर चल पड़ने के बाद वह सारी प्रक्रिया जानी पहचानी और अभ्यस्त अनुभव होने लगे। इसके लिए अभ्यास के दिनों में समीपवर्ती गाँवों में जाया भी जा सकता है। सवेरे घर से निकला जाय और शाम को वापिस लौट आया जाय, इस क्रम को अपनाने से गाँवों में से गुजरने का अभ्यास तो बाहर हो जायगा और घरों पर अदल-बदलकर रामायण कथा एवं सहकीर्तन का क्रम चलता रह सकता है।

इस क्रम को भी अग्र प्रचार यात्रा या प्रारम्भिक तीर्थयात्रा प्रयोग कह सकते हैं। जहाँ अधिक बन पड़ता न दिखाई पड़े, वहाँ इतना तो अत्यन्त सरलता पूर्वक हो सकता है कि निकटवर्ती गाँवों के लिए सवेरे निकला जाय। वहाँ धर्मफेरी, सहकीर्तन, दीवार-लेखन, जन-सम्पर्क जैसे कार्य करते हुए रात को घर लौट आया जाय। इसमें दीवार लेखन के साधन ही साथ ले जाने पड़ेंगे, अस्तु साइकिल आदि की भी आवश्यकता न पड़ेगी। रात्रि को रामायण कथा का क्रम टोली संयोजन अपने ही गाँव में, मुहल्ले बदल-बदल कर रख सकते हैं। इसमें अन्य गाँवों में पड़ाव डालने की विशेषता तो नहीं है, पर प्रशिक्षण की दृष्टि से यह प्रयोग भी बुरा नहीं है। इससे भी आंशिक प्रयोजन तो पूरा होता ही है। यह प्रयोग तो हर जगह चल सकते हैं और चलने ही चाहिए। इस क्रम से प्रशिक्षित किये गये लोग बड़ी और पूरी प्रचार यात्राओं में अधिक सफल हो सकते हैं।

प्राचीनकाल में वानप्रस्थ एवं सन्त प्रधानतया इसी धर्म धारणा की तपश्चर्या में निरत रहते थे। भगवान बुद्ध ने मरते समय अपने शिष्यों और शिष्याओं को आदेश दिया था कि वे तीन दिन से अधिक एक स्थान पर न रहें और चलते रहकर ही अपनी तप साधना में परिव्रज्या सम्मिलित रखें। प्राचीनकाल में कितने ही महा-मनीषि अपने विद्यालय चलते फिरते ही रखते थे और छात्रों को अध्ययन के साथ-साथ अनुभव सम्पादन का दुहरा लाभ कराते रहते थे। विनोबा की भूदान यात्रा सर्वविदित है। बुद्ध और महावीर के शिष्यों ने जन जागरण के लिए प्रचार यात्राओं को अपना प्रधान कार्यक्रम बनाया था। गाँधीजी की डांडी नामक यात्रा और नोखाखाली की शान्ति यात्रा सर्वविदित है। जिनकी स्थिति इन पद चिह्नों पर चलने को हो उन्हें इस धर्म परम्परा को अपनाने के लिए साहसपूर्वक तैयार करनी चाहिए और भावी जीवन में अधिकाधिक समय नियोजित किये रहने की योजना बनानी चाहिए।

(१) जिनके बच्चे स्वावलम्बी बन गये (२) जिनके पास पेन्शन अपना ब्याज भाड़े आदि की निर्वाह योग्य आजीविका हैं, (३) जो परिवार अथवा सदस्यों में से एक को धर्म धारणा के लिए समर्पित करके उसके स्त्री बच्चों की व्यवस्था बनाये रह सकें, (४) जो अविवाहित अथवा बिना बच्चे के हैं वे बड़ी सरलतापूर्वक इस पुण्य प्रयोजन में प्रचीनकाल के वानप्रस्थों की तरह तीर्थयात्रा का व्रत निवाहने के लिए अग्रसर हो सकते हैं। इस दिशा में कदम उठाने वालों का शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक स्वास्थ्य ऐसा होना चाहिए जिसके आधार पर धर्मप्रचार जैसा अनुदान वितरित कर सकना सम्भव हो सके। अपनी दुर्बलता और विकृतियाँ बखेरने और उनसे लोगों में कुरुचि एवं विरक्ति उत्पन्न करने वालों को तो इस दुस्साहस का न अपनाना ही उचित है।

जिनकी स्थिति तीर्थयात्रा कार्यक्रम को, भावी जीवन में, सुनिश्चित रूप से अपनाने को हो, उनके लिए आवश्यक मार्गदर्शन प्रशिक्षण और सहयोग शान्तिकुञ्ज से मिल सकता है।

मण्डलियों का कार्यक्रम पहले से क्या रहेगा ? कहाँ होकर मण्डलियाँ गुजरने वाली हैं, पड़ाव डालने वाली हैं उन स्थानों पर पूर्व सूचना पहुँचाना, ठहरने एवं प्रवचन आदि के लिए सहयोगी व्यक्ति ढूँढते, बिछावट, रोशनी, साधन, पूरे गाँव में मुनादी, जानकारी एवं भोजन प्रबन्ध के लिए आवश्यक प्रयत्न, मण्डली चलाने से पूर्व ही सम्पन्न करने होंगे। ऐसे ही पूर्व सूचना और पूर्व तैयारी कराये बिना चल पड़ने से अभीष्ट उद्देश्य ठीक तरह न पूरा हो सकेगा।

साधारणतया हर दिन दो-तीन गाँव बीच के और एक विराम का हर दिन के प्रचार कार्यक्रम में सम्मिलित रहें। यों यह बहुत कुछ तो बीच की दूरी और रास्ते की सरलता और कठिनता पर भी निर्भर रहेगा, पर मोटी रूपरेखा तो बनानी ही पड़ेगी। किस मार्ग से कहाँ-कहाँ निकलते ठहरते वापिस लौटा जायगा, इसका नक्शा पहले ही बना लेना चाहिए और जिनका जहाँ परिचय हो वहाँ उन्हें भेजकर स्थानीय लोगों का आवश्यक सहयोग प्राप्त करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का प्रयत्न करना चाहिए, वे लोग मण्डली के साथ रहें, उनकी बात सुनने के लिए अमुक समय अमुक स्थान पर एकत्रित हो सकें तथा विछावन, रोशनी, प्रवचन मन्च आदि की जो आवश्यकता पड़ेंगी, उन्हें जुटाने, सहायता करने के लिए उन लोगों को सहमत करना ताकि आवश्यक वस्तुएँ यथा समय उपलब्ध हो सकें तथा पूर्व जानकारी होने के कारण अधिक लोग उस प्रचार का लाभ उठाने के लिए उत्सुक रह सकें।

भोजन व्यवस्था भी पूर्व निर्धारित होनी चाहिए। यदि पड़ाव के स्थान के लिए एक रात का भोजन और प्रात: काल जलपान श्रद्धापूर्वक जुटा सकें तो ठीक, अन्यथा अपना प्रबन्ध पहले से ही कर लेना चाहिए ताकि इस झंझट में अनावश्यक समय नष्ट न हो। अपना सामान देकर किसी से बनवा लेना, टोली के सदस्यों का अपने हाथों खिचड़ी आदि पका लेना अनेक ढंग हैं। जैसा जहाँ जो भी प्रबन्ध हो सके उसके लिये पूर्व व्यवस्था बनाकर रखनी चाहिए। पूर्व सूचना देने को जो लोग उन गाँवों में जायें, वे उपरोक्त सारी व्यवस्था बनाकर ही लौटें। तभी सुविधा रहेगी अन्यथा अनायास पहुँचने पर भी साधन तो जुट जाते हैं पर ढूँढ खोज में समय बहुत नष्ट होता है।

व्यक्तिगत आवश्यकता की वस्तुएँ तेल, साबुन, हजामत मंजन जैसी नित्य काम आने वाली वस्तुएँ साथ लेकर चला जाय। शौच, स्नान, पीने के लिए अपना लोटा रहना आवश्यक है। कुँए से पानीं निकालने के लिए डोरी तथा टार्च ले चलना भी जरूरी हैं।

छोटा लाउडस्पीकर जो बिजली और वैटरी दोनों से चल सके साथ रखा जाय और उसके लिए सैल साथ रखे जायें। उसे चलाना और सुधारना भी आना चाहिए। हवन सामिग्री, समिधा पात्र उपकरण तो साथ लेकर चलना ही चाहिए। घी, समिधा रास्ते में से भी खरीदते बटोरने चला जा सकता है पर वह सब ध्यान रहना ही चाहिए। दीवारों पर वाक्य लिखने के लिए गेरू, गोंद, डिब्बा, ब्रुश साथ लेकर चलना है।

टोली के सदस्यों के वस्त्र एक जैसे होने चाहिए। धोती, कुर्ता, जाकिट, कँधे पर दुपट्टा सभी एक जैसे, पीले रंग के हों। एक जैसी वेषभूषा का, विशेषत: पीले रंग का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। सभी को सहज आभास होता है कि यह कोई धर्मप्रयोजन के लिए निकली हुई मण्डली है। उसे देखने मात्र से दर्शकों को उसकी विशेषता का पता चलता है। एक कन्धे पर झोले टँगे हों उनमें प्रचार साहित्य भरा हो। दूसरे कन्धे पर बिगुल या शंख लटक रहा हो तो सहज ही उस वेषभूषा का आकर्षण लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और वे जिज्ञासावश अनायास ही समीप एकत्रित होते हैं। प्रयोजन की दृष्टि से यह पीले रंग के वस्त्रों की व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक है। टोली के सदस्यों को इसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए।

साधारणतया टोलियों का कार्यक्रम यह रहना चाहिए (१) प्रात: सूर्योदय से पूर्व नित्यकर्म से निवृत्ति (२) जहाँ पड़ाव हो वहाँ सूर्योदय से लेकर दो घण्टे के भीतर प्रात:काल का यज्ञ टोली के सदस्यों द्वारा। उसमें सम्मिलित होने के लिए स्थानीय लोग आमंत्रित किये जाँय (३) जलपान करके सूर्योदय से दो-तीन घण्टे के बाद अगले निर्धारित कार्यक्रम पर चल पड़ना (४) रास्ते में दो तीन गाँवों में प्रचार करना और रात्रि को पूर्व निर्धारित पड़ाव के स्थान पर पहुँचकर कथा कीर्तन का ढाई-तीन घण्टे का कार्यक्रम सम्पन्न करना।

प्रात: संक्षिप्त गायत्री हवन करने के लिए टोली अपने साथ अपने साधन लेकर चले। आहुतियाँ टोली के सदस्य स्वयं करें पर उनके अन्य कर्मकाण्डों में, पूर्णाहुति में स्थानीय लोगों को सम्मिलित रखें। गायत्री की गरिमा उत्कृष्ट चिंतन के रूप में और यज्ञ की महिमा आदर्श कर्तृत्व के रूप में उपस्थित लोगों को समझाई जाय और यज्ञीय दृष्टीकोण को जीवन व्यवहार में उतारने का मार्गदर्शन करते हुए हवन किया जाय और जो लोग उससे प्रभावित हों उन्हें अपने गुण कर्म स्वभाव में सम्मिलित बुराइयों में से एक का परित्याग और एक सत्प्रवृत्ति का समावेश करने का अनुरोध किया जाय। क्या छोड़ना और क्या अपनाना है उन्हें इस प्रकार समझाना चाहिए कि वे इस त्याग ग्रहण का महत्व भली प्रकार समझ सकें और उसके लिए उत्साह एवं साहस प्रदर्शित कर सकें।

साधारणतया इसके लिए यह मार्गदर्शन हो सकता है। छोड़ने योग्य बुराइयाँ—

(१) आलस्य प्रमाद, (२) असंयम, (३) अस्वच्छता, (४) अशिष्टता, (५) दुर्भावनाएँ,(६) बेईमानी, (७) निष्ठुरता, (८) व्यसन नशेबाजी, (९) असामाजिकता, (१०) कायरता, (११) ऊँचनीच की मान्यता, (१२) नारी तिरस्कार, (१३) विवाहों में दहेज और अपव्यय, (१४) मृत्यु भोज, (१५) पशुबलि, (१६) भिक्षावृत्ति (१७) अन्धविश्वास, (१८) अद्वत आचरण, (१९) कामुकता, (२०) अश्लीलता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२१) अधिक सन्तानोत्पादन, (२२) पर्दाप्रथा, (२३) अन्न की बर्बादी न करना, (२४) माँसाहार, (२५) जेबर एवं फैशन परस्ती, (२६) जाति-पाँति की मान्यता (२७) छूआछात इत्यादि ।

ग्रहण करने योग्य अच्छाइयाँ—

(१) नम्रता, (२) बड़ों का चरण स्पर्श, (३) कर्तव्य परायणता, (४) ईमानदारी, (५) मधुर भाषण, (६) सदाचार, (७) अनीति का प्रतिरोध, (८) स्वाध्याय (९) नियमित उपासना, (१०) नियमित दिनचर्या, (११) सादगी, (१२) मितव्ययिता (१३) श्रम का सम्मान ।

इस प्रकार सद्गुणों सत्प्रवृत्तियों के छोटे-छोटे नियमों को इस ढंग से प्रस्तुत किया जाय कि लोगों में उनका लाभ प्राप्त करने के लिए उमंग जाग जाय । जो लोग सहमत हों उनसे यज्ञ भगवान की साक्षी में उस त्याग एवं ग्रहण के संकल्प कराये जा सकते हैं और उन प्रतिज्ञाओं को आजीवन निवाहने तथा इसी प्रकार आत्मसुधार एवं लोकमंगल के लिए भविष्य में भी प्रयत्न करते रहने के लिए नये कदम उठाते रहने की प्रेरणा दी जा सकती है ।

मण्डली को हवन सामग्री तथा दूसरे साधन अपने ही रखने चाहिए ताकि वहाँ के अजनबी लोगों पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े । इसी प्रकार जलपान, भोजन आदि का प्रबन्ध भी अपने ढंग से अपना ही बनाया जाय । वहीं के लोग इन कार्यों में स्वेच्छा से योगदान दें तो उनका आग्रह स्वीकार करके धर्मबुद्धि जागृत रखने की गुँजायश रखी जा सकती है, पर जहाँ उपेक्षा हो वहाँ किसी प्रकार का ऐसा दबाव नहीं पड़ना चाहिए जिसे भार समझा जाय और अश्रद्धापूर्वक वहन करना पड़े ।

हवन के बाद प्रातःकाल जलपान करके आगे की यात्रा पर निकलना चाहिए । पेट न तो सर्वथा खाली रहे और न इतना भरा हुआ रहे कि रास्ता चलने में असुविधा पड़ने लगे ।

रास्ते में पड़ने वाले गाँवों में कार्यक्रम इस प्रकार रहना चाहिए—(१) जागरण गान गाते हुए गलियों में होकर धर्मफेरी निकालना (२) चौराहों पर शंख ध्वनि करके लोगों की एकत्रित करना, नारे लगाना इस समय जो एकत्रित हो जाँय उन्हें अपना, अपने मिशन का परिचय देते हुए उस गाँव में एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए अनुरोध करना (३) जो इकट्ठे हो जायें उनके सन्मुख आधा घन्टे का कीर्तनयुक्त प्रवचन करना (४) उस गाँव की दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखना (५) जो शिक्षित विचारशील लोग दिखाई पड़ें उन्हें प्रचार साहित्य देना ।

इस प्रकार प्रातः आठ नौ बजे से चलकर शाम को तीन बजे तक आठ घण्टे की पदयात्रा में दो-तीन या न्यूनाधिक गाँवों में धर्मप्रचार कार्य आसानी से हो सकता है और फिर पड़ाव के निर्धारित स्थान पर पहुँच कर वहाँ धर्मफेरी लगाई जा सकती है और लोगों को अपने आगमन की तथा अमुक स्थान पर उपस्थित होकर कथा, कीर्तन का लाभ लेने की सूचना सर्वसाधरण को दी जा सकती है ।

ठहरने के स्थान पर ठहरा जाये । शौच, संध्यावंदन एवं भोजन से निवृत्त हुआ जाये । भोजन का क्या कहाँ प्रबन्ध रहना है यह निश्चय पहले से ही कर रखा जाये । ग्रामीणों ने आतिथ्य की पूर्व व्यवस्था कर रखी हो तो ठीक अन्यथा अपने साधनों से खिचड़ी या कोई जल्दी सम्पन्न हो सकने वाली भोजन व्यवस्था स्वयं बनाई जा सकती है । खरीदकर भी काम चलाया जा सकता है, सत्तू जैसी चीजें साथ लेकर चला जा सकता है । साधारणतया नीति यह होनी चाहिए कि श्रद्धा और अनुरोध भरे आतिथ्य को ही स्वीकार किया जाये और उसमें भी उसी स्तर का भोजन लिया जाये जैसा कि वे लोग स्वयं करते हों । दबाव डालना, उपेक्षा पूर्वक मिलना यह दोनों ही बातें टोली के सम्मान के विरुद्ध हैं । उसे ध्यान में रखते हुए कहाँ भोजन की क्या व्यवस्था रहनी है इसकी जानकारी पहले से ही रहनी चाहिए और बिना समय गँवाये तदनुरूप प्रबन्ध करके यथा समय उस कार्य से निश्चिन्त हो जाना चाहिए ।

रात्रि को ढाई तीन घण्टे का सार्वजनिक कार्यक्रम रहे, आरम्भ में सहगान कीर्तन, बीस मिनट या आधा घण्टे काल । मध्य में रामायण कथा डेढ़-दो घण्टे की । अन्त में फिर सहगान कीर्तन बीस मिनट का, इस प्रकार ढाई-तीन घण्टे पूरे हो जाते हैं ।

धर्मफेरी में तथा कथा प्रसंग में गाये जाने योग्य सहगान कीर्तन-पुस्तिका में दिये गये है । इन्हें एक टोली बोले दूसरी दुहराये—का क्रम चलना चाहिए । सहगान का तात्पर्य यही है कि उसे मात्र एक ही न गाता रहे वरन् अन्य लोग भी दुहराने में भाग लेते रहें । धर्मफेरी के समय तो नहीं पर कथा के साथ कहे जाने वाले कीर्तन में पदों के बीच-बीच छोटी टिप्पणी करते हुए उस गायन की प्रेरणा को अधिक स्पष्ट किया जाता रह सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चूँकि अपना तीर्थयात्रा का उद्देश्य धर्मप्रचार है। इसलिए उसकी प्रचार पद्धति भी धर्म परम्परा के अनुकूल एवं अनुरूप रखी गई है। सभा सम्मेलनों में वर्तमान प्रचलन की अपेक्षा अपनी शैली प्राचीन परिपाटी के समतुल्य रहे यही ठीक है। अन्तर केवल प्रतिगामिता और प्रगतिशीलता का है।

प्रवचन के लिए हिन्दी भाषी ग्रामीण क्षेत्रों में रामायण अधिक उपयुक्त पड़ती है। जहाँ गीता, भागवत आदि अन्य कोई कथा-पुराण सरल पड़ता हो, लोकरुचि के अनुकूल हो वहाँ उसको माध्यम बनाया जा सकता है। कथा-प्रसंग, नव-निर्माण के उपयुक्त होने चाहिये। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक उत्कृष्टता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना अपना लक्ष्य है। इसके लिए कथा-प्रतिक्रिया के आधार पर लोकशिक्षण का प्रयोजन पूरा कर सकने वाला कोई भी धर्म ग्रन्थ प्रयुक्त हो सकता है।

फिलहाल हम रामायण को आगे लेकर चल रहे हैं। हमारी अन्य पुस्तकों में रामायण कथा की शैली पर विचार परक और क्रिया-परक प्रयोजन पूरे कर सकने वाले भाषणों की सामग्री छपी है। इसमें कथा प्रसंग और प्रेरणा का समुचित समन्वय है। स्थान-स्थान पर दृष्टान्त भी जोड़े गये हैं। इन संकेतों के आधार पर कुशल वक्ता अपने ढंग से आवश्यक प्रतिपादन करते हुए कथा प्रवाह में सरसता और सरलता का समुचित समावेश किये रह सकते हैं।

इस कथा शैली की पूर्व रिहर्सल घरों पर कर ली जानी चाहिए। अन्यथा नई जगह पर नया प्रयोग लड़खड़ाने लगेगा। इसी प्रकार सहगान कीर्तन का भी पूर्व अभ्यास होना चाहिए। टोली निकालने से पहले यह प्रयोग एक सप्ताह तक पूर्व तैयारी के रूप में चलाया और परिपक्व किया जाना चाहिए। चूँकि एक स्थान पर एक ही दिन ठहरना है और वहाँ एक ही प्रवचन होना है। इस क्रम से सभी पड़ावों पर एक प्रवचन से ही काम चल सकता है, फिर भी सुविधा के लिए दो भाषणों की सामग्री तैयार कर के रखनी चाहिए। अदल-बदल कर या एक में ही दोनों का समन्वय करके किस प्रकार कहाँ, क्या कहा जाये यह वक्ता की रुचि एवं स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है।

अभिनव गठन—आवश्यकता इस बात की है कि उस तीर्थयात्रा धर्म परम्परा को पुनर्जीवित किया जाये और उसके लिए नये सिरे से नये आधार पर अभिनव गठन किया जाय। यों तो बाँस की खपच्चियों और रंङ्गीन कागज के सहारे बनाये गये विशालकाय किन्तु निर्जीव हाथी की तरह वह अभी भी विद्यमान है, पर प्राणों के अभाव में उसकी आकृति मात्र ही शेष है। प्राणों का उसमें से पलायन हो जाये तो पुण्यफल की आशा किस आधार पर की जाये। जीवित तीर्थयात्रा ही भारतीय संस्कृति की आत्मा को गौरवान्वित कर सकती है और उसी से व्यक्ति तथा समाज का सच्चा हित साधन हो सकता है। आज की सामयिक समस्याओं के समाधान में तो वे और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

जन-मानस का परिष्कार, मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्गीय वातावरण, सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन यही है अपना लक्ष्य, जिसे आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के आधार पर जन-जन के अन्तःकरणों में प्रतिष्ठापित करने का प्रयत्न किया जाता रहा है और किया जाता रहेगा। राजतन्त्र और अर्थतन्त्र के क्षेत्र, देश की सुरक्षा व्यवस्था और समृद्धि के बढ़ाने में लगे हैं। वे अपने आप में उपयोगी कार्य हैं उन्हें अपने ढंग से अपना कार्य करने में लगे रहने देना चाहिए। भावना क्षेत्र को नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। यह कार्य धर्मतन्त्र का है क्योंकि अन्तःकरण की गहराई में प्रवेश करके आस्थाओं का स्पर्श कर सकना, जीवन दर्शन का बदलना, परिष्कृत दृष्टिकोण और आदर्शवादी क्रियाकलाप की आधारशिला रख सकना उसी के लिए सम्भव है।

विचारशील लोगों को, साधु-ब्राह्मणों को, वानप्रस्थों को, धर्म-प्रचारकों को पुण्य परम्परा—तीर्थयात्रा को पुनर्जीवित करने के लिए आगे आना चाहिए। उन्हें अपने मानवी उत्तरदायित्वों को समझना चाहिए। जिन्हें ईश्वर ने सद्ज्ञान और सद्भाव की सम्पदा प्रदान की है। उसे उन्हें आभाग्रस्त क्षेत्र में वितरित करने की उदारता दिखानी चाहिए। अपने उपार्जन का अपने लिए ही उपयोग करते रहने वाले स्वार्थी, अनुदार और कृपण कहे जाते हैं, वह लाँछन, सद्भाव-सम्पन्न विज्ञ जनों पर नहीं लगना चाहिए। ज्ञान वितरण का उद्देश्य लेकर उन्हें भी अपने देश के पिछड़े क्षेत्र में मानवी आदर्शवादिता और युग के अनुरूप प्रगतिशीलता वितरित करने के लिए आगे आना चाहिए। अगले दिनों तीर्थयात्रा मण्डलियाँ इसी उद्देश्य के लिए निकलें। इसलिए विचारशील लोग अपनी टोलियाँ गठित करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना कार्य-क्षेत्र प्रधानतया छोटे देहातों को बनाना है। शहरों में इतने अधिक सभा, सम्मेलन होते रहते हैं कि वहाँ बड़े आकर्षण होने पर ही लोक रुचि उत्पन्न हो सकती है। दूसरे उस क्षेत्र में पहले से ही उद्‌बोधनकर्ताओं की भरमार है। तीसरे उन लोगों को पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, लाइब्रेरियों का लाभ भी मिल जाता है। चौथे वे लोग अत्यधिक व्यस्त होने के कारण इस प्रयोजन में रुचि भी कम लेंगे। पाँचवे परस्पर विरोधी राजनैतिक तथा सामाजिक संस्थाओं को प्रतिद्वन्द्विता ने उस क्षेत्र की जनता को दिगभ्रान्त कर दिया है और वह सभी प्रचारकों को एक लाठी हो हाँकती, अविश्वस्त ठहराती है। ऐसे ही अन्य अनेक कारण हैं, जिनसे हमें देहात को अपना कार्य-क्षेत्र बनाना चाहिए।

अस्सी प्रतिशत भारत उसी इलाके में रहता है। यातायात की कठिनाई, निर्धनता, गैर जानकारी के कारण नेताओं के स्वागत सत्कार की कमी, स्वल्प उपस्थिति जैसे कारणों से उद्बोधनकर्ता उस क्षेत्र में पहुँचते नहीं हैं। देश में सत्तर प्रतिशत अशिक्षा अभी भी है। इसका अधिकांश भाग देहातों में है। रूढ़िवादिता, मूढ़मान्यता, अन्ध-विश्वास जैसी विकृतियाँ उस क्षेत्र में अभी भी उतनी ही भरी पड़ी हैं जितनी अब से तीन सौ वर्ष पूर्व थीं। प्रगतिशीलता का प्रकाश वहाँ अभी भी बहुत कम पहुँचा है। हमें इसी क्षेत्र को जगाने में जुटने का साहस समेटना चाहिए। कहना न होगा कि यह जनता समाजशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति आदि को उतना नहीं समझती जितना कि परम्परागत धर्म परम्परा को। धर्मतन्त्र से लोक शिक्षण का महत्व प्रधानतया इसी वर्ग के लोगों के लिए है। जाना हमें इसी क्षेत्र की जनता के पास है।

उनके बौद्धिक विकास को देखते हुए अपनी सेवा साधना में दो तथ्यों का समावेश करना ही होगा—एक तो यह कि जो कहना है उसमें धर्म-कथाओं का पुट लगाते हुए कथन को श्रद्धा सिक्त बनाते चला जाये। दूसरे संगीत सहमान, कीर्तन, भजन को प्रमुखता दी जाय। संगीत में स्वभावतः जन-साधारण की रुचि होती है—बाल-वृद्ध, शिक्षित-अशिक्षित उसे चावपूर्वक सुनते हैं। बौद्धिक प्रभाव ग्रहण करने के साथ-साथ भावान्दोलन की विशेषता भी उसमें रहती है। अस्तु, तीर्थयात्रा पर निकलने वाली प्रचार मण्डलियों को जन-मानस में नवयुग के अनुरूप प्रगतिशीलता स्थापित करने के लिए प्रवचन शैली में धर्म-कथाओं का समावेश एवं सहगान कीर्तन की समन्वित शैली को अपना कर चलना चाहिए।

मण्डली में इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह इन प्रयोजनों को भली प्रकार पूरी कर सके। बेकार की भीड़ साथ ले चलने से तो अव्यवस्था ही फैलेगी और असुविधा ही रहेगी। प्रायः पाँच प्रचारकों की तीर्थयात्रा टोली रहे यही उपयुक्त है। इस प्रयास में अधिक लोग सहयोग देने को उत्सुक हों तो एक साथ ही बड़ी भीड़ लगाने की अपेक्षा उन्हें पाँच-पाँच की टोलियों में—कई क्षेत्रों में चल पड़ना चाहिए। यदि सुनने-सीखने की दृष्टि से ही कुछ लोग साथ चलना चाहें तो पाँच प्रचारक और पाँच साथी दस की मण्डली पर्याप्त समझी जानी चाहिए अन्यथा अधिक लोगों के साथ चलने और दैनिक व्यवस्था जुटाने में ही सिरदर्द खड़ा हो जायेगा। ब्रज चौरासी कोस की भाद्रपद की यात्रा के समान पूरे साज-सरंजाम और दलबल समेत निकलना हो तो बात दूसरी है। ऐसी बड़ी पद-यात्राओं की व्यवस्था में खान-पान, तम्बू -डेरा, पानी, दूध, प्रवचन पण्डाल आदि पूरा ठाट-बाट लेकर चलना होता है और उतने लोगों के स्नान, शौच, भोजन आदि का पहले से ही प्रबन्ध करना होता है। सामान ढोने, उसे यथास्थान जमाने, सुविधाएँ उत्पन्न करने के लिए बाहनों और कर्मचारियों की अतिरिक्त भीड़ साथ चले तो ही उतनी बड़ी व्यवस्था बन सकती है। यह बड़ी योजनाओं का अङ्ग है वैसा प्रबन्ध कोई बड़े अनुभवी और साधन सम्पन्न लोग ही कर सकते हैं। हमें फिलहाल छोटी प्रचार टोलियों की बात ही सोचनी चाहिए और अभीष्ट उद्देश्य पूरा कर सकने में समर्थ व्यक्ति ही उन टोलियों के सदस्य होने चाहिए।

तीर्थयात्रा को पद यात्रा ही समझा जाना चाहिए। प्रचारकों को गाँव-गाँव, झोंपड़े-झोंपड़े जाने का लक्ष्य रखकर चलना है तो वह कार्य द्रुतगामी वाहनों पर सवार होकर बढ़िया रास्तों से गुजरने पर सम्भव न हो सकेगा। उसमें पगडण्डियाँ ही लाँघनी होंगी। ऐसी दशा में पदयात्रा की ही उपयोगिता बनती है। प्राचीन काल में भी पदयात्रा और तीर्थयात्रा पर्यावाची शब्द थे। अभी भी वह परिभाषा यथावत् रहनी चाहिए। नहाने धोने के लिए वस्त्र, लाउडस्पीकर जैसे प्रचार साधन, दीवारों पर वाक्य लिखने के उपकरण जैसी वस्तुएँ यात्रा में स्वभावतः साथ चलेंगी ही। उन्हें कन्धेपर लादकर नहीं चला जा सकता। इसके लिए साइकिल का उपयोग भारवाहन के रूप में करना अपेक्षाकृत अधिक सस्ता और सरल रहेगा। पर इसका कोई बन्धन नहीं है । जहाँ गधा, घोड़ा, बैलगाड़ी आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की सुविधा हो सकती हो भोजन बनाने आदि कार्यों के लिए स्वयंसेवक या कर्मचारी चल सकता हों तो उसमें भी हर्ज नहीं। बात खर्च बढ़ने भर की है। जहाँ जैसा प्रबन्ध बन पड़े वहाँ उसके लिए प्रसन्नता पूर्वक प्रबन्ध किया जा सकता है। सुविधा-साधन बढ़ने से तो काम करने में सरलता ही पड़ती है।

तीर्थयात्रा धर्म परम्परा के पुनर्जीवन का लक्ष्य लेकर निकली हुई टोलियों के सामने निर्धारित लक्ष्य और कार्य-क्रम रहेगा। वे निरुद्देश्य यत्र-तत्र भटकती हुई समय और धन का अपव्यय नहीं करेंगी। निश्चित है कि गाँव-गाँव, दीवार-दीवार पर नव युग का सन्देश देने वाले प्रेरणाप्रद वाक्य लिखे जाने चाहिए। बोलती दीवारों का सृजन करना चाहिए। हर गाँव में कीर्तन-गान करते हुए मण्डलियों को गली-कूँचों की परिक्रमा करनी चाहिए। पीत वस्त्रधारी—तीर्थयात्री शंख ध्वनी करते हुए—कीर्तन गाते हुए जब गाँव की परिक्रमा करेंगे तो स्वभावत: गाँववासी उसके साथ चलेंगे। नारे लगाने में वे भी योग देंगे। परिक्रमा समाप्त होने पर टोली के सदस्य एक छोटा प्रवचन अपने भ्रमण प्रयोजन के सम्बन्ध में दें और शिक्षितों से सम्पर्क कर उन्हें अपने मिशन का परिचय दें। इसके बाद अगले गाँवों के लिए प्रयाण करें।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मार्ग के गाँवों में परिक्रमा, दीवार लेखन करते हुए पड़ाव के लिए नियत गाँव में पहुँचा जाये। टोली स्वयं परिक्रमा करे और नियत सत्सङ्ग स्थल पर जन-साधारण को पहुँचने के लिए आमन्त्रित करें। प्राय: आठ से साढ़े दस का समय ग्रामीणों को सुविधाजनक रहता है। भोजन से निवृत्त होकर वे आ सकते हैं और कथा-कीर्तन के माध्यम से नव-चेतना उपलब्ध करने का लाभ उठा सकते हैं। प्रात:काल संक्षिप्त यज्ञ, प्रभावित लोगों को बुलाकर उन्हें कुछ काम सोंपना, संकल्प देना, जलपान से निवृत्त होना और अगले दिन के कार्यक्रम पर चल देना, यह टोलियों का कार्यक्रम है। कहीं अत्यधिक आग्रह हो तो बात दूसरी है अन्यथा भोजन व्यवस्था का भार स्वयं ही टोलियों को वहन करना चाहिए।

पकाया एक बार ही जाये। दूसरे समय के लिए बना हुआ रखा रहे। सवेरे या शाम कब पकाने में सुविधा रहेगी, क्या रसोई बने, यह निर्धारित करना टोली सदस्यों की रुचि, सुविधा एवं व्यवस्था पर निर्भर रहेगा।

गर्मियों के दिनों में छात्रों, अध्यापकों, किसानों तथा दूसरे अनेक वर्गों के लोगों को अवकाश रहता है। मई, जून के दो महीने इन टोलियों के लिए अतीव सुविधाजनक हैं। इन दिनों बिस्तर या भारी कपड़े लेकर चलने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। यह दो महीने तो हर क्षेत्र में तीर्थयात्रा के लिए अतीव उत्साहपूर्वक प्रयुक्त होने चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य महीनों में जब जहाँ जैसी व्यवस्था बन पड़े तब वहाँ उस प्रकार की योजना बना ली जानी चाहिए।

कर्मचारियों एवं दुकानदारों को साप्ताहिक अवकाश रहता है। वह पूरा दिन इस प्रयोजन के लिए लगा देने की बात बन सकती है। साल में ५२ सप्ताह तथा प्राय: १३ त्यौहार इस प्रकार ६५ दिन की छुट्टी तो रहती है। पाँच दिन काट दें तो प्राय: दो महीने इस कार्य के लिए लगाये जा सकते हैं। दूसरे वर्ग के लोग भी अपनी सुविधा के समय का अपने ढङ्ग से उपयोग कर सकते हैं। जिनके पास पूरा समय है तो वे नई-नई टोलियों का गठन और नेतृत्व करते हुए दूरवर्ती क्षेत्रों में भी अपनी गतिविधियाँ सुविस्तृत कर सकते हैं।

जो दूर नहीं जा सकते, घर नहीं छोड़ सकते वे नित्य एक-दो घण्टे समीपवर्ती गली-मुहल्लों, बाजारों, कारखानों में जन-सम्पर्क के लिए निकाल सकते हैं और झोला पुस्तकालयों की, ढकेल गाड़ी—चल पुस्तकालयों की, सरल प्रक्रिया अपनाकर सत्साहित्य पढ़ने देने एवं वापिस लेने का कार्य कर सकते हैं। साप्ताहिक अवकाश का अधिकाँश समय इसपुण्य कार्य में लगा सकते हैं। कथा कहने के लिए साप्ताहिक, मासिक तथा एक दिन एक-एक घर-मुहल्ले में कार्यक्रम बनाये जा सकते हैं। स्लाइड प्रोजक्टर का प्रबन्ध हो सके तो प्रकाश चित्र दिखाते हुए हर रात्रि को एक मुहल्ले में लोकरन्जन और लोक-शिक्षण की दुहरी प्रचार-प्रक्रिया चल सकती है। चित्र प्रदर्शनियाँ बन सकें तो उन्हें भी यत्र- तत्र दिखाया जा सकता है। कुछ साधन न हों तो ऐसे ही जन-सम्पर्क के लिए वार्तालाप सामान्य प्रसङ्ग से आरम्भ करके किसी आदर्शवादी निष्कर्ष तक पहुँचने का उपक्रम अभ्यास में लाया जा सकता है। बच्चों में कहानियाँ कहने की अपनी एक शैली है जिसमें बाल, वृद्ध सभी समान रूप से रस ले सकते हैं। प्रचार के ऐसे-ऐसे अनेकों साधन ढूँढ़े जा सकते हैं। तीर्थयात्रा की धर्म परम्परा का आंशिक निर्वाह इन छोटे एवं स्थानीय कार्यक्रमों से भी हो सकता है। बड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप में तो कुम्भ के मेले में जहाँ-तहाँ से जाने वाली साधु मण्डलियों जैसा विशाल रूप भी बन सकता है। वे रास्ते में पड़ाव डालती हुई अपने दलबल के साथ चलती हैं और जहाँ ठहरती हैं वहाँ आकर्षण का केन्द्र बनाती हैं। रूपरेखा क्या रहे—योजना किस स्तर की बने यह निर्णय करना टोलियों की मनःस्थिति एवं परिस्थिति पर निर्भर है। किन्तु उन्हें किसी न किसी रूप में चल पड़ना तो सर्वत्र ही चाहिए। 'अलख निरंजन' की—घर-घर धर्म-प्रेरणा की साधु परम्परा पुनर्जीवित होनी ही चाहिए। विज्ञ, विचारशील लोगों को आगे बढ़कर उसका शुभारम्भ एवं नेतृत्व करना ही चाहिए।

इस सन्दर्भ में एक बात सबसे अधिक महत्व की है कि जब देश का प्रत्येक देहाती क्षेत्र इस धर्म-प्रचार योजना के अन्तर्गत लिया जाना हो तो तीर्थ स्थानों का भी अभिनव सृजन होना चाहिए। प्राचीन तीर्थों तक सीमित रहने से तो वह गतिविधियाँ अमुक क्षेत्रों तक ही सीमाबद्ध होकर रह जायेंगी। अमुक क्षेत्र में ही तीर्थयात्री जाया करें तो उनका आकर्षण ही समाप्त हो जायेगा दूसरे अन्य पिछड़े स्थान उस लाभ से वंचित ही बने रहेंगे । यों अपनी तीर्थयात्रा के लिए आवश्यक नहीं कि उनमें किन्हीं देवालयों का दर्शन या विराम जुड़ा ही रहे। सदुद्देश्य के लिए जिधर भी जाया जायेगा उधर ही तीर्थ बन जायेगा। फिर भी यदि तीर्थ स्थानों की बात भी उस प्रयोजन के साथ जुड़ी रह सके तो इससे सोने और सुगन्ध का दुहरा उद्देश्य पूरा होगा।

जब पुनर्जीवन ही अपना लक्ष्य है तो लगे हाथों नये तीर्थों की स्थापना की बात भी हाथ में लेकर चला जा सकता है। काम कठिन तो है, पर कठिन भी तो मनुष्य ही करते हैं। प्राचीन काल में भी तो मनीषियों ने तीर्थों की स्थापना के लिए प्रयास किया था। अकेले आद्य शङ्कराचार्य ने ही देश के चार कोनों पर, चार धामों की स्थापना की थी। मथुरा, वृन्दावन के अधिकांश तीर्थों के स्थान चैतन्य महाप्रभु ने अपनी दिव्य दृष्टि से बनाये थे और उन विस्मृत स्थानों पर उनके अनुयायियों ने स्मारक खड़े किये थे। अन्यत्र भी आगे पीछे ऐसी ही परम्परा चलती रही है। अकेले हजारी किसान ने बिहार के हजारी बाग जिले में हजार आम के बगीचे लगाने में सफलता पाई थी, तो कोई कारण नहीं कि अपना भाव भरा परिवार अपने सङ्गठित प्रयत्नों के द्वारा अभिनव तीर्थों का सृजन न कर सके।

परम्परागत तीर्थ प्रायः पौराणिक देव गाथाओं से जुड़े हैं। कहीं-कहीं ऋषियों, महापुरुषों की स्मृति स्वरूप तीर्थ बने हैं। उनसे अतीत पर श्रद्धा एवं भक्ति भावना की स्फुरणा तो होती है, पर बहुत खींच-तान करने पर भी वह प्रकाश नहीं मिलता जो दर्शकों को नवयुग के अनुरूप प्रेरणा दे सके। समय की माँग है कि उद्देश्य के अनुरूप आधार भी खड़े किये जायें। प्रेरणा प्राप्त करने के लिए प्रेरणा स्रोत ढूँढे जायें। इस दृष्टि से एक सुनियोजित योजना बनाकर देश के कोने-कोने में, विशेषतया देहाती क्षेत्र में ऐसे तीर्थ स्थापित करने की तैयारी करनी चाहिए जो पदयात्रा टोलियों के लिए ही नहीं समीपवर्ती क्षेत्रों के लिए भी आदर्शवादी उत्साह का केन्द्र बन सकें।

यह तीर्थ स्थापना योजना आदर्शवादिता को सम्मान के उच्चस्तर पर प्रतिष्ठापित करने की नवयुग के अनुरूप प्रक्रिया है। अब तक लोक-सम्मान धनवानों, सत्ताधीशों, कलाकारों, विभूतिवानों के इर्द-गिर्द ही मँडराता रहा है। अब उसे आदर्शवादिता के प्रति समर्पित होने के लिए मोड़ा जाना चाहिए। अन्यथा सम्मान प्राप्ति की मानवी आकांक्षा अपनी पूर्ति भौतिक साधनों में ही ढूँढ़ती रहेगी। आदर्शवादिता के विकसित होने में सबसे बड़ा अवरोध एक ही है कि उस मार्ग पर चलने वालों को आर्थिक दृष्टि से तो घाटा रहता ही है, लोक सम्मान का स्वाभाविक अधिकार भी दूसरे लोग ही हड़प जाते हैं। अब इस स्थिति का अन्त होना चाहिए। आदर्शवादी तत्त्वों का अन्वेषण किया जाना चाहिए और जो दिवंगत हो चुके हैं उनकी स्मृति बनाये रहने से उन आत्माओं को भी सन्तोष होगा कि जीवन काल में न सही मरणोत्तर उन्हें लोक मान्यता मिल गई। ऐसे जीवन वृत्तान्त उभरने चाहिए जो जन-साधारण के लिए प्रेरणा केन्द्र बन सकें, जिनका अनुकरण करने की प्रवृत्ति उपलब्ध लोक सम्मान को देखकर सहज ही विकसित हो सके। जन-मानस के परिष्कार में यह प्रक्रिया कितनी अधिक सहायक हो सकती है इसकी अभी तो कल्पना ही की जा सकती है। पर विश्वास यह है कि जब इस स्थापना का परिणाम सामने आवेगा तो व्यक्तियों को उत्कृष्टता की दिशा में उछालने की दृष्टि से अतीव आशाजनक सिद्ध होगा। इस प्रकार के असंख्य तीर्थ बनें और जीवन-चरित्र छपें तो प्रतीत होगा कि अपना देश इस गई गुजरी परिस्थितियों में भी महामानवों की खदान रहा है। उनकी महान् परम्पराएँ अभी भी जीवन्त हैं। हमारे लिए यह सब भी कम गर्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गौरव का प्रसङ्ग नहीं है । इन प्रयासों से समूचे वातावरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा और लोक-मान्यता में आदर्शवादिता की पुन: प्राण प्रतिष्ठापना होगी ।

तीर्थयात्रा टोलियाँ गठित करना और उनके परिभ्रमण का कार्यक्रम बनाना सरल है । इस प्रयास में सामान्य प्रयत्नों से—सामान्य व्यक्तित्व भी भली प्रकार सफल हो सकते हैं । पर तीर्थ स्थापना का काम बड़ा है उसके लिए देश व्यापी सर्वे करना होगा । तीर्थयात्रा धर्म परम्परा के निर्वाह में नये-नये तीर्थों की संगति बिठानी पड़ेगी कि मण्डलियाँ किस रास्ते, कितना चलकर, कहाँ विराम करेंगी ? ऐतिहासिक तथ्यों को मिलाकर ही यह प्रतिष्ठापनाएँ होंगी । अस्तु इसे एक सुविस्तृत योजना समझा जायेगा और इसके लिए सर्वेक्षण के साथ-साथ यह भी सोचा जायेगा कि कहाँ क्या कर सकना सम्भव हो सकता है ?

राजा मान्धाता की सहायता से आद्य शङ्कराचार्य के लिए चारों धामों की प्रतिष्ठापना कर सकना सम्भव हुआ था । बुद्ध के हर्ष वर्धन सरीखे अनुयायियों ने अनेकों बौद्ध बिहारों की स्थापना की थी । अब वैसा एकाकी प्रयत्नों से सम्भव नहीं हो सकता । इसके लिए किन्हीं बड़े आयोगों की आवश्यकता पड़ेगी और उसका संचालन प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ही सम्पन्न करेंगे । यों इसके लिए आर्थिक एवं श्रम सहयोग स्थानीय जनता का मिलेगा पर उसकी रूपरेखा बनाने एवं साधन सामग्री जुटाने का कार्य तो क्रिया-कुशल हाथों से ही होना चाहिए । इन्दौर की सनी अहिल्या बाई ने मन्दिरों-घाटों का जीर्णोद्धार कराने में ख्याति प्राप्त की थी । आवश्यकता ऐसे व्यक्तित्वों की है जो उसी प्रकार भूमिका निभा सकें । स्वयं आगे आयें और उस धर्म-क्षेत्र के पुनरुत्थान की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में अन्य अनेकों का भी सहयोग जुटा सकें । ऐसे व्यक्तित्व अपने परिवार में से ही उभर कर आयें इसकी अपेक्षा समय की आवश्यकता ने की है । युग की इस चुनौती को भी हमें ही स्वीकार करना होगा ।

सार्थक तीर्थ यात्रायें

प्रचलित तीर्थ यात्रा के नाम पर इधर-उधर भटकने वाले लोगों को अधिक से अधिक पर्यटक शब्द से ही सम्बोधित किया जा सकता है । अधिक से अधिक शब्द का प्रयोग इसलिए किया जा रहा है कि 'पर्यटन' में पिकनिक जैसे विनोद की भी गुंजाइश रहती है । पर तीर्थ पर्यटकों का रेल-मोटर के बीच घिच-पिच और थकाने वाली लम्बी यात्राओं में देह का कचूमर निकल जाता है फिर जिन स्थानों में जाया गया है, वहाँ भी इतनी भीड़ी-भाड़ और गंदगी रहती है कि सुस्ताने के लिए तरसना पड़ता है ।

लोगों का कौतूहल इस बात में रहता है कि कम समय में अधिक संख्या में कितने देवालय देख लिए जायें ? कितनी प्रतिमाओं की दर्शन-झाँकी मिल जाये ? इस आतुरता में निरन्तर भगदड़ मची हरती है । सबेरे से रात तक इसी धमा चौकड़ी में लगा रहना पड़ता है । ठहरने का भी उपयुक्त स्थान कदाचित् ही किन्हीं को मिल पाता है । ऐसी दशा में न खाने का ठिकाना, न सोने का ठिकाना । क्या देखा ? क्यों देखा ? इसका भी कुछ याद नहीं रहता, फिर उन स्थानों से इतिहास सम्मत प्रेरणायें लेने की तो बात ही क्या ? साथ में लगने वाले पंडागण अपने मतलब की—पैसा झटकने की बातें करते हैं । किसी प्रकार तीर्थ यात्रा सफल होगी, यह उनकी स्वयं की जानकारी तक नहीं होती फिर यात्रियों को तो वे समझा ही क्या पायेंगे ? इस प्रकार प्रेरणायें-भावनायें लेकर लौटना तो दूर, थकान-खीज ही साथ लेकर वापिस लौटना पड़ता है, श्रम और पैसे की बर्बादी हुई सो अलग ।

घर में घुसा-घुसा, एक ही काम में लगा हुआ आदमी ऊबने लगता है । उस ऊब को मिटाने के लिए पुरातन मान्यताओं के अनुरूप एक तीर्थाटन ही ऐसा रह जाता है जिसका घर वाले भी बहुत विरोध नहीं करते । धर्म कार्य में रोड़ा अटकाने से वे भी डरते हैं । इसलिए अनिच्छा रहते हुए भी इज्जत मिल जाती है । संगी साथियों के साथ निकल पड़ते हैं । पर देखना यह है कि उस प्रयास की कुछ सार्थकता भी रही या नहीं ?

प्राचीन काल की तीर्थ यात्रा और आज की भ्रमणशीलता में जमीन-आसमान जितना अन्तर है । पुरातन काल में ऋषि आश्रमों की बहुलता ही तीर्थों की शान थी । वहाँ जाने वाले साधना करते और स्वाध्याय सत्संग का लाभ उठाते थे । प्रायश्चित करके और भविष्य को उज्जवल बनाने की रूपरेखा लेकर वापिस लौटते थे । ऋषि आश्रमों का स्वरूप ऐसा था कि वहाँ प्रवेश करते ही उच्च कोटि की प्रेरणायें मिलती थीं और व्यक्तित्व का काया कल्प कर देने वाले प्राण परामर्श मिलते थे । रास्ते में जाते समय एक मार्ग से, लौटते समय दूसरे मार्ग से जाते थे । धर्म प्रचार की पदयात्रा चलती थी और उससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना तथा सम्पर्क में आने वाले दोनों का ही भला होता था।

पर अब तो लोग आंधी की तरह जाते और तूफान की तरह लौटते हैं। जहाँ जाते हैं वहाँ चैन से बैठने को एक क्षण नहीं मिलता। ऋषि आश्रमों का एक प्रकार से अभाव हो चला है। जहाँ है, वहाँ का वातावरण ऐसा नहीं जो अन्तरंग में श्रद्धा के बीजांकुर उभार सके। सच्चे अर्थों में तीर्थ या तीर्थ पुरोहित कहे जाने वाले की गणना समूचे देश का पर्यवेक्षण करने का भी उङ्गलियों पर गिनने जितनी निकल सकती है।

यह बात विवेक सम्मत नहीं है कि अमुक प्रतिमा का दर्शन या अमुक जलाशय का स्नान किसी के आत्मोत्कर्ष में सहायक हो सकता है। यदि ऐसा ही होता तो उनमें निरन्तर जुड़े रहने वाले लोगों की स्थिति तो ऋषि महामानवों से भी ऊँची पहुँची होती। पवित्र जलाशयों में स्नान का तात्पर्य यह है कि अपना अन्तरंग और बहिरंग जीवन पवित्रतम बने।

इसी प्रकार प्रतिमा दर्शन का उद्देश्य अपने ध्यान को उस परब्रह्मा -परमात्मा के साथ घनिष्टता स्थापित करने का है जो सच्चे मन से शरणागत होने वाले को अपने समान ही पिवत्र एवं प्रखर बना लेता है। यदि यह मूलभूत उद्देश्य पूरे न हो रहे हों तो समझना चाहिए कि लकीर भर पिट रही है, चिह्न पूजा भर हो रही है। ऐसी दशा में उस प्रतिफल की आशा कैसे की जा सकती है, जिन्हें पुरातन काल में आत्म-शोधन और तप-साधन जैसे आत्मिक कायाकल्प प्रयोजनों के निमित्त किया जाता था।

जब भी भारत की स्थिति के बारे में विचार करना हो तो देहाती समाज ध्यान में रहना चाहिए। उसी की जन-संख्या तीन चौथाई है, जो गरीबी की सीमा से नीचे भी है। हमें जो भी योजना बनानी हो उसे उसी वर्ग की स्थिति के साथ ताल-मेल बिठा सकने वाले स्तर की बनानी चाहिए। देश में सुसंपन्न वर्ग एक तो है ही नहीं, जो है उनमें चिंतन में बड़प्पन जन्य अहंकार इतना अधिक है कि उन्हें कोई परामर्श देना भी अपना उपहास उड़वाना है।

मध्यवर्ती समुदाय भी समाज की रीढ़ रहा है। उसे भी तीर्थाटन की ऐसी सलाह दी जा सकती है जो इसके वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति करती हो।

छोटी प्रचार मंण्डलियों के रूप में गायकों वक्ताओं को अगामी बन कर तीर्थ यात्रा टोलियाँ निकालनी चाहिए। इसमें स्वस्थ और समझदार लोग ही सम्मिलित किये जायँ और धर्म-प्रचार की पदयात्रा स्तर का कार्यक्रम बनाया जाये। साथ में बिस्तर, बर्तन तो लेने ही होंगे। प्रचार सामग्री के भार वहन के लिए साइकिल से सस्ती सवारी और कोई नहीं हो सकती। आवश्यक समान पीछे कैरियरों पर लाद दिया जाये। जहाँ अच्छा रास्ता हो वहाँ सबारी भी की जा सकती है। जहाँ ऊबड़-खाबड़ हो वहाँ उसे घसीट कर ले जाय जा सकता है।

यदि अधिक दिनों की लम्बी यात्रा का सुयोग बने तो अपने गाँव से हरिद्वार तक पहुँचने और शान्ति कुञ्ज में एक शिवर सम्पन्न करने की बात सोचनी चाहिए। एक मार्ग से जाया जाये दूसरे से लौटा जाये। रास्ते में दीवारों पर आदर्श वाक्य अच्छी दीवारों पर लिखते चला जाये। पीले वस्त्रधारी साइकिल पर लाल मशाल का झण्डा लगाये हुए इस मंडली का गुजरना जहाँ से भी होगा वहाँ निश्चित रूप से विचारशील लोगों की उत्सुकता बढ़ेगी। वे जिज्ञासावश पूछना चाहेंगे। जहाँ कुछ लोग एकत्रित हों वहाँ ढपली-मंजीरे पर एक-दो प्रज्ञा गीत सुना कर उनका प्रेरणाप्रद मनोरंजन भी कर दिया जाये और तीर्थ यात्रा के वास्तविक स्वरूप की ओर लोगों का ध्यान मोड़ा जाये, जिससे कि उनमें से किसी की इच्छा कभी जागे तो सार्थक तीर्थ यात्रा ही करें। जो उत्साही श्रद्धालु प्रतीत हों, उन्हें गायत्री चालीसा उपहार में दिया जा सकता है और उनसे रोज एक पाठ कर लेने की प्रतिज्ञा कराई जा सकती है। गायत्री चालीसा शान्ति कुञ्ज में १) रु. के १५ मिलते हैं। पाँच रुपये का यह प्रसाद वितरण भी पूरी यात्रा के लिये पर्याप्त हो सकता है। बेचना हो तो पाँच पैसे में उसे बेचते हुए भी आगे बढ़ा जा सकता है।

रात्रि विराम जहाँ भी करना हो वहाँ प्रज्ञा पुराणों की कथा और साथ-साथ संगीत चलाने का क्रम अपनाया जाये। दो घंटे में ऐसी छोटी सभी प्रक्रियाएँ भली प्रकार पूरी हो सकती हैं।

मंण्डलियों के आदमियों में से ही एक दो मिलकर जब तक कथा चले तब तक भोजन बना लें। इसी प्रकार मध्याह्न को पानी की सुविधा देखते हुए भोजन बनाया, खाया जा सकता है।

जहाँ प्रज्ञा पीठें हैं—जहाँ स्वाध्याय मंण्डल—प्रज्ञा संस्थान हैं वहाँ ठहरने में सुविधा अधिक रहती है और भीड़ भी अच्छी इकट्ठी हो जाती है। एक-एक कार्यकर्त्ता के घर से एक-एक आदमी का भोजन आ जाने से उसे भी मिल बाँट कर खाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर जहाँ पहले से ही मिशन का प्रकाश नहीं पहुँचा है, वहाँ टोली के आगमन की—सभा स्थान की सूचना शंख, घड़ियाल बजाते हुए गली मुहल्लों में, चौरहों में स्वयं ही देनी चाहिए ताकि अपरिचित लोग भी नियत समय और नियत स्थान पर एकत्रित हो सकें।

यह यात्रा परिधि अपने समीपवर्ती क्षेत्र में भी बन सकती है। छोटे-बड़े मन्दिर प्राय: हर गाँव में होते हैं। उनकी दर्शन झाँकी करने के उपरान्त वहीं निवास भी किया जा सकता है।

ऐसी समीपवर्ती यात्राओं का एक गोलाकार कार्यक्रम बनाना चाहिए। दिन में दस मील चलने का क्रम रहे। विनोबा की भूदान पद यात्रा की तरह न्यूनतम एक सप्ताह का, अधिकतम एक महीने का समय इस कार्य के लिए लगाया जा सकता है। गर्मी की छुट्टियाँ इसके लिए अधिक सुविधा की रहतीं हैं।

जन-जागरण के लिए पद यात्रा प्रचार-यात्रा का रूप दिया जा सके तो वह समीपवर्ती परिभ्रमण भी सार्थक होने के कारण प्रख्यात तीर्थों की तुलना में अधिक पुण्य फल दायक हो सकता है। प्रतिभावान व्यक्ति आगे कदम बढ़ायें तो उसको अनेकों साथ चलने वाले अनुगामी मिल सकते हैं और यह तीर्थ यात्रा युग के अनुरूप एक पुण्यदायी धर्मानुष्ठान सिद्ध हो सकती है।

टोलियाँ और पद यात्राएँ चल पड़ें

यों काम तो एकाकी भी किया जा सकता है, पर समूह के रूप में काम से मनोबल कई गुना बढ़ जाता है। उत्साह उमड़ता है और परस्पर के सहयोग एवं विचार विनिमय से सूझ-बूझ के नये अंकुर फूटते रहते हैं। जहाँ जाया जाय जिससे मिला जाये वहाँ कई व्यक्तियों की मण्डली का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव पड़ता है। जिस प्रयोजन के लिए जाया गया था वह सफल होता है।

टोली पद्धति का दोहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव है। मण्डली का अपना मनोबल बढ़ा-चढ़ा रहता है। और जिससे मिला जाये उस पर समूह की इच्छा शक्ति का प्रभाव ही नहीं दबाव भी पड़ता है। पाँच व्यक्ति एक-एक करके पाँच जगह जायें, उसकी अपेक्षा पाँच व्यक्ति मिलकर एक जगह जायें तो निश्चित रूप से अधिक सफलता मिलेगी। समझा तो पहले भी ऐसा गया था, पर बसन्त पर्व पर इस प्रक्रिया का व्यापक प्रयोग जिस क्रमबद्ध रीति से हुआ और उसका जो आशातीत परिणाम निकला है, उसे देखते हुए अब किसी को सन्देह नहीं रह गया कि टोली पद्धति भावी कार्यक्रमों की सफलता के लिये अत्यधिक प्रभावी सिद्ध होगी।

परिवार के सभी सदस्यों को नव निर्माण के लिए एक घण्टा समय देना आवश्यक है। अब तक अधिकांश परिजन इस समय को झोला पुस्तकालय चलाने में ही लगाते रहे हैं। यह उचित भी था। अब इस व्यवस्था को एक कदम आगे बढ़ाया जाये। परिजन मिल-जुलकर अपने क्षेत्र और स्तर के साथियों को लेकर टोलियाँ बना लें।

प्रत्येक टोली में कम से कम दो और अधिक से अधिक पाँच सदस्य होने चाहिए। दो से कम की तो टोली बन ही नहीं सकती, पांच से अधिक की भीड़ हो जायेगी। जहाँ अधिक सदस्य हों अधिक टोलियाँ बनाई जा सकती हैं और क्षेत्र बाँट लिये जा सकते हैं। अथवा क्षेत्र एक ही रखकर कार्यकर्ताओं के अनुसार कार्य-विभाजन किया जा सकता है। यह अपनी सुविधा की बात है कि क्षेत्र बाँटकर एक ही टोली सभी कार्यक्रमों को लेकर चले अथवा एक ही क्षेत्र में अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग मण्डलियाँ सम्पर्क बनायें। यह प्रश्न तभी उठेगा जबकि परिवार बहुत बड़ा हो, सदस्य अधिक हों, और कई टोलियाँ बनाई गयी हों। कार्यक्रम क्षेत्र बड़ा और विस्तृत होने पर ही क्षेत्र-विभाजन की आवश्यकता पड़ेगी, छोटे क्षेत्र में तो एक ही टोली अपना काम करती रहेगी।

शतसूत्री कार्यक्रमों में सभी एक से एक महत्वपूर्ण हैं, सभी उपयोगी और आवश्यक हैं। समयानुसार, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार वे सभी कार्यान्वित करने होंगे, पर आरम्भ में कुछ कार्यक्रमों को प्राथमिकता देकर चलना होगा। कुछ कार्य ऐसे हैं जो अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं, उन्हें नव-निर्माण भवन की नींव भरने जैसा कहा जायेगा।

ऐसे कार्यक्रमों में प्रमुख यह है:—(१) पत्रिकाओं के पाठकों की संख्या वृद्धि (२) परिवार विस्तार ज्ञानघटों की स्थापना वाले सक्रिय सदस्यों की संख्या बढ़ाना (३) शाखा कार्यालय पर साप्ताहिक सत्सङ्ग, नियमित पुस्तकालय, प्रशिक्षण आदि गतिविधियों का संचालन (४) चल-पुस्तकालय (५) सद्वाक्य लेखन (६) सत्प्रवृत्ति वर्धन एवं दुष्प्रवृत्ति निरोध का हस्ताक्षर आन्दोलन (७) पुरुषों एवं महिलाओं के युग निर्माण विद्यालय (८) कविता सम्मेलन, संगीत सम्मेलनों की मण्डलियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गठन-कलामंच विस्तार (९) जन्म-दिन, विवाह दिन संस्कारों, पर्व त्यौहारों की सामुहिक रूप से मनाये जाने की व्यवस्था (१०) शाखा समर्थ स्तर को बनाना, शाखा भवन निर्माण तथा उसके लिये उपकरणों का संग्रह।

यह दस कार्यक्रम ऐसे हैं जिन्हें किले वन्दी या मोर्चा बन्दी कह सकते हैं। जहाँ इतनी नींव जम जायेगी वहाँ यह आशा की जा सकेगी कि इस क्षेत्र को सजग, सक्रिय एवम् अग्रगामी बनाने के लिये आवश्यक साधन जुट गये।

हर जगह यह दस सूत्री कार्यक्रम कार्यान्वित किया जा सकता है। अन्तिम दसवाँ साधन समर्थ शाखा निर्माण के साधन जुटाने में कुछ देर भी हो सकती है पर शेष आरम्भिक कार्य ऐसे हैं जिनकी पूर्ति के लिए प्रगति के लिये, छोटी-छोटी टोलियाँ ही बहुत कुछ कर सकती हैं और 'नैट' विमानों की तरह जौहर दिखा सकती है।

जहाँ युग निर्माण शाखायें स्थापित हो चुकी हैं वहाँ अपने सदस्यों को एकत्रित कर उनका टोली विभाजन करके उनके कार्य तथा उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दिए जाने चाहिए। जहाँ शाखा स्थापित नहीं है वहाँ सक्रिय सदस्यों की टोलियाँ बना लेनी चाहिए और कार्य-क्षेत्र में उतर पड़ना चाहिए। जहाँ केवल एक ही परिजन है वहाँ उसे कम से कम एक और साथ ढूँढ लेना चाहिए और दो की टोली में उपर्युक्त दस-सूत्री कार्यक्रमों की पूर्ति के लिये जुट जाना चाहिए।

टोलियों के निकलने का समय क्या रहे, यह स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है। नौकरी-पेशा लोग कार्यालयों से छुट्टी पाने के बाद या दफ्तर जाने के पहले या अन्य सुविधा का समय इस कार्य के लिए रख सकते हैं। रविवार एवं त्यौहरों की छुट्टियाँ होती हैं। दूकानदारों को बाजार बन्द होने का साप्ताहिक अवकाश सुविधाजनक रह सकता है। इसी प्रकार अन्य लोग अपने व्यवसाय के अनुसार सुविधा देखकर जितना अधिक समय निकाल सकें उसे टोली प्रयोजन के लिए निकालना चाहिए। जिन्हें समय अधिक मिलता है वे कम समथ वालों का बीच-बीच में साथ लेते छोड़ते-चलने का क्रम बना सकते हैं।

तीर्थ यात्रा—बनाम प्रचार यात्रा

पर्यटन का अपना महत्व है और अपना आनन्द। यह बहुत उत्कृष्ट स्तर का ज्ञानवर्धक मनोविनोद है। एक ही परिस्थिति में रहते-रहते मनुष्य ऊब जाता है। नवीनता उसे ताजगी प्रदान करती है। एक ही तरह की दाल खाते रहने से अरुचि होने लगती है और नये साग दाल की तलाश करनी पड़ती है। तीज-त्यौहार भी इस एक ही ढर्रे पर चलते रहने की ऊब को दूर करके नवीनता का संचार करते हैं। इससे भावनात्मक थकान दूर होती है और नये साहस एवं उत्साह का संचार होता है। मनुष्य में यह प्रवृत्ति विद्यमान है। सन्यासी तो परिव्राजक ही होता है उसे तीन दिन से अधिक कहीं भी नहीं ठहरना चाहिए, ऐसी शास्त्र की मर्यादा भी है। सरकार ने इस आवश्यकता को समझा है और पर्यटन केन्द्र, पर्यटन विभाग ने बनाये हैं। यह प्रवृत्ति छात्रों में आरम्भ करने के लिए हर वर्ष एक ज्ञान वर्धक दौरा करने के लिए विद्यालयों पर जोर दिया गया है, और इस प्रकार की यात्राओं के लिए कुछ सुविधा अनुदान भी रखे हैं।

हर साल से बहुत लोग लम्बी यात्राएँ करने निकलते हैं। उससे विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियाँ, रीति-रिवाजों एवं गतिविधियाँ समझने में—मानसिक विकास में असाधारण योगदान मिलता है। आवागमन से विभिन्न क्षेत्रों के लोग परस्पर सम्पर्क में आते हैं और आर्थिक आदान-प्रदान से आर्थिक पहिया भी घूमता है, व्यापार की सम्भावनाएँ बढ़ती हैं। यात्री कुछ अतिरिक्त खरीदते हैं और इससे उन क्षेत्रों के व्यवसाय पनपते हैं। अनेक धार्मिक मेले इसी दृष्टि से इन देश में आरम्भ किये गये थे। विदेशों में भी अपने-अपने ढंग तथा उद्देश्य से यात्राओं का प्रचलन है।

अपने देश में तीर्थ यात्रा को बड़ा पुण्य माना गया है। यों अमुक मन्दिरों-सरोवरों के दर्शन-स्नान के महात्म्य इस सन्दर्भ में जोड़कर रखे गये हैं, पर वे मूल कारण नहीं हैं। भगवान तो एक ही है, किसी भी तीर्थ में जाया जाये, नाम रूपों की भिन्नता के साथ उसी भगवान की प्रतिमा ही मिलेगी, सर्वव्यापी होने से वह तीर्थ की ही भाँति अपने घर में भी रहता है। उसकी सत्ता न कहीं न्यून है न अधिक। इसलिए किसी मन्दिर का दर्शन मुख्य नहीं, मुख्य तो अपने आप में वह पर्यटन है जिसके साथ धर्म अभिवृद्धि का प्रयोजन भी जुड़ा हुआ हो। तीर्थयात्रा का पुण्य निश्चित रूप से यहीं कारण है। प्राचीन काल में तीर्थ यात्रा पैदल ही की जाती थी क्योंकि जन-सम्पर्क अधिक धर्म विस्तार उसी के द्वारा सम्भव था। द्रुतगामी वाहनों में बैठकर तुर्त-फुर्त देश-दर्शन करके घर लौट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आना अब लकीर पीटना भर है, उसमें तीर्थ यात्रा की पुण्य भावना कहाँ रही ? यह तो देव -दर्शन ही हो गया ।

हमें प्राचीन काल के धर्म आदर्शों के अनुरूप तीर्थ यात्राओं की, पद यात्राओं की पुण्य प्रक्रिया को पुनः आरम्भ करना चाहिए। देशाटन के उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त उसका प्रधान उद्देश्य होना चाहिए । मार्ग में पड़ने वाले गाँव-नगरों में धर्म-भावना को प्रोत्साहित करना। पुण्य का मुख्य साधन यही है। इससे समन्वित पदयात्रायें ही तीर्थ यात्रा का पुण्य फल प्रदान कर सकती हैं।

समान विचारों के लोगों की एक मण्डली बना कर पद यात्रा की तैयारी करनी चाहिए। कितने समय के लिए जाना है, हर दिन कितने मील पैदल चला जा सकता है, इस बात को ध्यान में रख कर किसी सुन्दर से तीर्थ को जाने की तैयारी करनी चाहिए। तीर्थ धार्मिक ही हो यह आवश्यक नहीं। देव-दर्शन ही सब कुछ है, ऐसा नहीं मानना चाहिए, वरन् प्रेरणाप्रद घटनाओं एवं क्रिया-कलापों से सम्बन्धित प्रकृति का उल्लास प्रकट करने वाले किसी भी उत्साहवर्धक स्थान को इस सोद्देश्य तीर्थ यात्रा का लक्ष्य बनाया जा सकता है।

सामान रखने के लिए एक गाड़ी चलनी चाहिए। बैलगाड़ी, ऊँट गाड़ी, घोड़ा गाड़ी, मोटर, रिक्शा आदि कुछ भी ऐसा वाहन साथ लिया जा सकता है जिसमें बिस्तर, कपड़े, खाने पकाने के बर्तन तथा उपकरण रखे हुए हों। खर्च में किफायत की बात हो तो हलकी खिंचने वाली गाड़ी से भी काम चल सकता है। दिन भर की दिनचर्या, रात को ठहरने का स्थान आदि का कार्यक्रम पहले से ही बना लेना चाहिए। समय हो तो एक आदमी ठहरने के स्थानों पर पहले से ही भोजन, विश्राम, प्रचार कार्यक्रम आदि का प्रबन्ध करने के लिए आगे भेजा जा सकता है। इस टोली की वेशभूषा एक सी हो। वस्त्र पीले रंगे हुए हों। हाथ में युग निर्माण के लाल मशाल चिह्न सहित पीले चौकोर झण्डे हों तो जिधर भी निकलेंगे उधर ही उनके सम्बन्ध में पूछ ताछ होती रहेगी और उत्तर से उन्हें नव-निर्माण मिशन तथा उनके लिए समुद्यत मुक्ति वाहिनी सृजन सेना के प्रयासों का परिचय मिलता रहेगा।

जिस गाँव में होकर यह दल निकले उसमें प्रभात फेरी की तरह एक जुलूस परिक्रमा में सृजन गीत गाते हुए निकले। गेरू के टुकड़ों से दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखे। पढ़े-लिखे लोगों को मिशन के परिचय-पत्र बाँटे और विज्ञप्तियाँ वितरण करे। कुछ लोग तैयार हो जायें तो विज्ञप्तियाँ, पोस्टर जैसी सस्ती चीजों की बिक्री भी की जाये । इस प्रकार रास्ते में जो भी गाँव-नगर मिलें उनमें प्रचार करते हुए मार्ग में मौके की दीवारों पर गेरू के टुकड़े से वाक्य लिखते हुए चलते रहा जाये । रात्रि को जहाँ ठहरना हो वहाँ स्लाइड प्रोजेक्टर से प्रकाश चित्र दिखाये जायें। सहगान कीर्तन वाली पद्धति भी प्रचार की दृष्टि से उपयोगी है। सुविधानुसार उसे भी अपनाया जा सकता है या दोनों का मिला-जुला रूप रह सकता है, आदि और अन्त में यह गान कीर्तन और बीच में प्रकाश चित्र प्रदर्शन का क्रम बैठ सकता है।

मिल-जुल कर भोजन एक समय बनाया जाये, एक समय सत्तू आदि से गुजारा किया जाये। दोपहर को जहाँ विश्राम किया जाय कपड़ें धो कर सुखा लिये जायें। यह तीर्थ यात्रा मण्डली जिस रास्ते जाये उससे वापस नहीं लौटे। वापस लौटने का दूसरा रास्ता होना चाहिए। जाते समय की भाँति ही लौटते समय मार्ग में दूसरे गाँव आयें उनमें प्रचार कार्य होता चले।

यों यह धर्म प्रचार यात्रा ही है। उसमें मिशन का परिचय देना, उसके लिए सहयोग का आमन्त्रण देना, साहित्य मंगाने और मानव जाति का भविष्य निर्माण करने वाले अभियान में सम्मिलित होने की प्रेरणा देना भी है। उसका तत्काल का प्रभाव पड़ा ऐसा कुछ लेखा जोखा लेना नहीं है। फिर उस प्रयास से अनेक भावनाशील विचारवान व्यक्ति प्रभावित होंगे और उन्हें पत्रिकाओं का ग्राहक तत्काल बनाया जा सकता है। प्रचार साहित्य खरीदने के लिये सहमत किया जा सकता है। इस प्रयास से स्थानीय समस्याओं के सम्बन्ध में परामर्श मार्ग दर्शन दिये जाते रह सकते हैं और प्रभावित व्यक्तियों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके उन्हें अपने किसी आयोजन में आमन्त्रित किया जा सकता है। इस प्रकार नये क्षेत्र में नये व्यक्ति अपने सम्पर्क में आवेंगे और मिशन का प्रभाव-क्षेत्र एवं कार्य-क्षेत्र आगे बढ़ेगा।

इस प्रकार की तीर्थयात्रा-पदयात्रा टोलियाँ समय-समय पर आयोजित की जायें। गर्मी के दिन इसके लिए अधिक उपयुक्त रहते हैं । किसान खेती से निवृत्त हो जाते हैं। अध्यापक और विद्यार्थी पढ़ाई से। कोर्ट कचहरियों में भी उन दिनों छुट्टी रहती है। गर्मी की अधिकता जरूर रहती है पर मध्यान्ह में तपते सूर्य का समय लम्बे विश्राम के लिए रखा जाये और दो तीन घण्टे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सवेरे, दो-तीन घण्टे शाम का क्रम बनाया जाये। दस मील से कम ही यात्रा का लक्ष्य रखा जाये तो हँसते-खेलते बिना लू-धूप का कष्ट उठाये बड़े आनन्द पूर्वक गर्मी के दिनों में भी यह यात्रा चल सकती है। वयस्क छात्र अपने उत्साही अध्यापकों के साथ इस प्रेरणा पदयात्रा का लाभ उठा सकते हैं। इस यात्रा को एक शिक्षण शिविर माना जाये। मध्यान्ह को किसी बगीचे में भोजन विश्राम के बाद विचार-गोष्ठी चले और यात्रा के समय रास्ते में नव-निर्माण क्रिया-कलाप का व्यावहारिक शिक्षण मिलता चले। इस प्रकार यात्रा पर निकली हुई मण्डली जहाँ पर्यटन के साथ जुड़ें हुए लाभों से लाभान्वित होगी वहाँ लोक-मङ्गल की दिशा में उपयोगी योगदान भी करेगी। जन-सेवा का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त होता है सो अलग।

गर्मी के अतिरिक्त जब भी छुट्टियाँ हों, अवकाश हो, मण्डली का विचार बन जाये तभी कम या अधिक समय के लिए इस प्रकार का कार्यक्रम बनाकर चला जा सकता है। इस यात्रा में लगाया गया समय, श्रम तथा धन कितना हर्षोल्लास प्रदान करता है उसे अनुभव करके ही जाना जा सकता है।

तीर्थ प्रव्रज्या अब इस नूतन रूप में चल पड़े

अब शिक्षा, चिकित्सा, कला, सम्पन्नता की दृष्टि से हम पूर्वजों से आगे हैं। वैज्ञानिक और आर्थिक प्रगति ने सुविधा, साधनों के पहाड़ खड़े कर दिये हैं तो भी हम अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। स्वास्थ्य, संतुलन, संतोष, सहयोग दिन-दिन गिर रहा है। आर्थिक तंगी पारिवारिक उपेक्षा, असहयोग, पारिवारिक विग्रह से सभी दुःखी हैं। समस्याओं, विपत्तियों और विग्रहों के घटाटोप घिरते आ रहे हैं। आखिर ऐसा सब हो क्यों रहा है ? एक ओर प्रगति दूसरी ओर अवगति की यह विडम्बना खड़ी क्यों हो रही है ? सभी घुटन क्यों अनुभव कर रहे हैं ? आशंकाओं से आतंक का वातावरण क्यों बन गया है ? प्रकृति प्रकोप और महायुद्ध जैसी विभीषिकाएँ क्यों सघन होती जा रही हैं ?

इन सब प्रश्नों का उत्तर एक ही है—मनुष्य के अन्तराल से धर्म धारणा का पलायन। भ्रष्ट चिन्तन और भ्रष्ट आचरण। आखिर ऐसा हुआ क्यों ? इसका कारण एक ही है—उद्यान को सींचने रखाने वाले तन्त्र का अस्त हो जाना। इस तन्त्र का मूलभूत आधार ऋषि प्रणीत विद्या का बीज आज भी हमारे बीच विद्यमान है। परन्तु उसे जनस्तर पर क्रियान्वित करने की प्रक्रिया समाप्त हो गयी है। कभी साधु-ब्राह्मण वर्ग जीवन्त था। वह जन-जन में धर्म धारणा सजीव रखने के लिए निरन्तर जन-जन से सम्पर्क साधता था और घर-घर अलख जगाता था। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए धर्म प्रचार की पद यात्राएँ चलती थीं। इसी को तीर्थयात्रा कहा जाता था। तीर्थों का असाधारण पुण्य फल शास्त्रकारों ने गाया है। प्रकारान्तर से यह धर्म प्रचार यात्रा की महान परम्परा को प्रोत्साहन है। जब तक यह क्रम बना रहा तब तक इन देव भूमि की गरिमा गगन चुम्बी बनी रही।

देव मानवों का समुदाय स्वल्प निर्वाह में सन्तोष करता था और अपना अधिकांश समय परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित करता था। बादलों की तरह हर प्यासे खेत पर बरसता था। पवन की तरह दौड़-दौड़ कर हर जीवधारी को प्राण चेतना प्रदान करता था। सूर्य-चन्द्र की तरह आलोक वितरण में उनका प्रयास अहिर्निश चलता था। धर्म प्रचार की पद यात्रा-तीर्थ यात्रा का यह उपक्रम जन-जन के चिन्तन में उत्कृष्टता, चरित्र में आदर्शवादिता और व्यवहार में उदारता भरे रहता था। उस प्रक्रिया के लड़खड़ाते ही मानवी गरिमा का स्तर बेतरह गिरा। आस्था संकट बढ़ा। फलतः परिस्थितियाँ ऐसी विपन्न हो गईं जिससे हर किसी को घुटन अनुभव होती है।

सङ्कटों से उबरने का एक ही उपाय है कि देव संस्कृति से पुरातनकाल की तरह जन-मानस को अनुप्राणित किया जाये। यह कार्य भारत जैसे छोटे देहातों में बसे हुए और अशिक्षा अवगति से घिरे हुए देश में धर्म प्रचार की पद यात्रा द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इसके लिए भावना शीलों को अपना समय निकालना चाहिए और लोक-मानस के परिष्कार एवं सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन का उत्तरदायित्व अपने कंधों पर वहन करना चाहिए। धर्म और संस्कृति के अन्धे माता-पिता को कंधे पर बिठा कर हमें श्रवण कुमार की तरह तीर्थयात्रा पर निकलना चाहिए। युग चेतना का आलोक वितरण करने के लिए प्राचीन काल के धर्मनिष्ठों की तरह घर-घर नवजागरण का अलख जगाना चाहिए। तीर्थ परम्परा को पुनर्जीवित करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थों का पुण्य फल असाधारण है। आज तो वह परम्परा मूढ़ मान्यताओं और निहित स्वार्थों के चंगुल में फँस गई पर जब वह अपने सही रूप में थी तब तीर्थों का स्वरूप आरण्यक स्तर का था। वहाँ गृहस्थ लोग जीवन परिष्कार की साधना और शिक्षा के निमित्त पहुँचते और निवास करते थे। नवजीवन प्राप्त करके वापिस लौटते थे। साथ ही वे धर्म प्रचारक प्रशिक्षित करते थे जो जन-जागरण का प्रयोजन पूरा करते रह सकें।

नालंदा, तक्षशिला जैसे अगणित आरण्यक इस देश में थे। तीर्थ उनको भी कहा जाता था। तीर्थ आरण्यकों और तीर्थ यात्रा उपक्रम का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था। जब तक यह तन्त्र खड़ा रहा सतयुगी वातावरण में कमी न पड़ने पाई। इस देश के धर्म प्रचारकों ने संसार भर में प्रगति और संस्कृति की प्रतिष्ठापना की। फलत: भारत जगद्गुरु, चक्रवर्ती, स्वर्ण सुमेरु आदि नामों से पुकारा जाता रहा । धर्म प्रेरणा का धनी यह देश स्वयं कृत-कृत्य हुआ और समस्त संसार को समुन्नत बनाने का श्रेय कमाया।

समय आ गया कि विश्व व्यवस्था को प्रस्तुत संकट से अबारने के लिए, देव मानवों की कार्य पद्धति को पुन: जीवित करने के लिए प्रज्ञा परिजनों द्वारा नये सिरे से प्रयत्न आरम्भ किया जाये। जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व हलके हैं वे इस निमित्त पूरा समय दें, जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व अभी भी भारी हैं वे भी वर्ष में न्यूनतम एक महीने का समय निकालें और अपने समीपवर्ती क्षेत्रों में पद यात्रा पर निकलें। इसके लिए किन्हीं देवालय को लक्ष्य बनाने की आवश्यकता नहीं है। इस देश का हर गाँव देवालय है। हमें स्थान नहीं, उद्देश्य को महत्व देना चाहिए और अपने-अपने क्षेत्रों में पद यात्रा के प्रयास चक्र बनाने चाहिए।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत तीर्थ प्रव्रज्या की येजना यह है कि पद यात्रा में साइकिलों को भी भार वाहन के रूप में सम्मिलित रखा जाये। पाँच-पाँच की टोलियाँ—पाँच साइकिलों पर निकलें। धर्म प्रचार के प्रयोजन से जन-जन को अवगत कराने वाले आच्छादन धारण करें। सभी के वस्त्र पीले रंगे हुए हों। प्रचार उपकरण साथ में रहें। प्रचार कार्य में संगीत की प्रमुखता रहे । इन पाँच में कम-से-कम दो तो सामान्य संगीत जानते ही हों। सस्ता और हल्का वाद्य ढपली, मंजीरा और करताल जैसे हो सकते हैं। यह साथ रखे जायें। उद्देश्य के अनुरूप भजनों का अभ्यास हो। प्रवचन प्रज्ञा पुराण कथा के रूप में हो। रात्रि को जहाँ विराम हो वहाँ कथा कीर्तन प्रज्ञा पुराण, युग संगीत के माध्यम से स्थानीय जन-समुदाय को युग-चेतना से अवगत अनुप्राणित किया जाये।

क्षेत्रीय तीर्थयात्रा के लिए पाँच प्राणवान प्रचारकों की एक मण्डली गठित की जाये। उनके लिए पाँच साइकिलों का प्रबन्ध किया जाये। वे निजी भी हो सकती हैं और माँग कर या किराये पर भी ली जा सकती हैं। न्यूनतम पन्द्रह दिन का प्रवास चक्र बने। सवेरे हवन करके आगे चला जाये, हवन-सामग्री साथ हो। पाँचों प्रचारक स्वयं हवन करें। स्थानीय लोगों को दर्शक सहयोगी के रूप में आसपास बिठा लें। देव पूजन के आरम्भिक और पूर्णाहुति, परिक्रमा जैसे अन्तिम हवन कृत्यों में उन्हें सम्मिलित रखें। वेदिका मिट्टी की बना लें।

हवन के उपरान्त शीघ्र से शीघ्र निकला जाये। रात्रि को जहाँ पहुँचना है वहाँ के मार्ग में जितने गाँव आते हों उनमें रुकते-रुकते चला जाये। दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन स्टेन्सलों या रंगीन चाक मिट्टी के सहारे किया जाता रहे। जहाँ कुछ व्यक्ति एकत्रित हों वहाँ दो-चार भजन सुना दिये जायें। इस प्रकार बीच के गाँवों को पार करते हुए विराम स्थान पर पहुँचा जाये। वहाँ नियत स्थान पर साइकिलों के साथ चलने वाली चित्र प्रदर्शनी अपने ही लोगों में से एक के द्वारा लगाना प्रारम्भ कर दिया जाये। इस हेतु वहाँ चार बजे तक पहुँच जाना आवश्यक है, ताकि सूर्यास्त तक चित्र प्रदर्शनी दिखालें। रात्रि को प्रज्ञा पुराण की कथा और संगीत कीर्तन हो। नित्य यही कार्यक्रम चलता रहे।

प्रवास-क्रम निर्धारित करने के उपरान्त उन गाँवों के निवासियों को टोलियों के पहुँचने की पूर्व सूचना भिजवा दी जाये। विराम स्थान पूर्व निर्धारित हो। स्थानीय लोग ऐसा प्रबन्ध कर रखें। रात्रि विश्राम तथा सभी स्थल के लिए उपयुक्त स्थान चाहिए। इसलिए उसका निर्धारण पहले से ही होना चाहिए और प्रयोजन में रस लेने सहयोग देने के लिए कुछ लोगों को पहले से ही प्रोत्साहित कर लेना चाहिए। अन्यथा नये स्थान पर बिना पूर्व सूचना या स्थानीय सहयोग के जा पहुँचने पर सारी व्यवस्था टोली को ही बनानी पड़े तो बात बनेगी नहीं। सफलता संदिग्ध बन जायेगी।

योजना का प्रबन्ध स्वयं करने की तैयारी रखी जाये। खिचड़ी अमृताशन इसके लिए सुलभ पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पाँच व्यक्तियों के लायक खिचड़ी पका सकने योग्य एक भगौनी साथ रखी जाये। चावल-दाल एक दिन के लायक साथ हो। अगले गाँव के लिए रास्ते में से फिर खरीदते चला जाये ताकि अनावश्यक बोझ न लादना पड़े, ईंधन, उपले तो रास्ते में से भी बीनने और थैले में भरकर ले चलने में कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। यदि कहीं स्थानीय निवासी भोजन का प्रबन्ध श्रद्धा पूर्वक करदें तो उसे स्वीकार करने में कोई आनाकानी भी न की जाये वैसे दोनों समय के लिए व्यवस्था अपनी ही रखकर चलना चाहिए, आवश्यक कपड़े तथा बर्तन साथ रहें। साइकिलों के कैरियरों पर दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ, चित्र प्रदर्शनी, सगींत उपकरण, लाउडस्पीकर, हवन-समिग्री आदि लेकर चलने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए । इसके लिए उपयुक्त थैले ऐसे लिये जायें जिनमें उपयुक्त सामान आसानी से रखा जा सके और टूटने गिरने का भय न रहे। फोल्डर, साहित्य गायत्री के चित्र आदि विक्रय हेतु भी साथ रखे जाने चाहिए।

तीर्थयात्रा प्रचलन को अग्रगामी बनाने के लिए तैयारी यह की जा रही है कि दो संगीत के जानकार परिव्राजक शान्तिकुञ्ज से भेजे जायें, तीन स्थानीय हों। एक केन्द्र बने। इर्द-गिर्द के तीस-तीस किलोमीटर का प्रवास चक्र बनाया जाये। चित्र प्रदर्शन, लाउडस्पीकर भी हरिद्वार के प्रचारक साथ लेकर चलें। एक केन्द्र-क्षेत्र पूरा होने पर वे दूसरे केन्द्र में चले जायें। इस प्रकार वे क्रमशः पन्द्रह-पन्द्रह दिन या न्यूनाधिक दिनों में एक-एक दिनों में एक-एक क्षेत्र पार करते हुए आगे बढ़ते चलें। स्थानीय परिव्राजकों में से पाँच तो टोली में चलें और दो आगे-आगे व्यवस्था बनाने के लिए बढ़ते चलें। इस प्रकार पाँच स्थानीय और दो हरिद्वार के कुल मिला कर सात की टोली रहेगी। प्रबन्ध इससे कम में नहीं बन पड़ेगा। सातों के पास साइकिल तो सुनिश्चित होनी ही चाहिए।

साइकिलों का प्रबन्ध शान्तिकुञ्ज से हो रहा है। नई या आधी पुरानी साइकिल खरीदने की योजना है। वैसे साइकिलें स्थानीय लोग अपनी इस्तेमाल करें तो अधिक सुविधा रहेगी। वर्ष में एकबार, एक महीने की या दो बार पन्द्रह-पन्द्रह दिन के यह प्रवास चक्र बन सकते हैं। लम्बी यात्रा पर निकलना हो तो अपने यहाँ से शान्तिकुञ्ज एक रास्ते से पहुँचने और वापस दूसरे रास्ते से इसी उपक्रम के साथ लौटने की योजना बन सकती है।

जिन उद्देश्यों और कार्यक्रमों से इस तीर्थयात्रा में कथा कीर्तन के माध्यम से जन-जन को अवगत कराया जाना चाहिए वे यह हैं:—

(१) युग तीर्थ गायत्री तीर्थ में लोग पहुँचें। एक महीने के, नौ दिन के, या चार दिन के सत्र में प्रवेश प्राप्त करें। इधर से गुजरने वाले कम से कम इस तीर्थ का दर्शन अवश्य करें और यह समझने का प्रयत्न करे कि तीर्थों का उद्देश्य और स्वरूप क्या हो सकता है और वे युग समस्याओं के समाधान में क्या योगदान कर सकते हैं।

(२) तीर्थयात्रा के लिए स्थानीय लोगों में उत्साह उत्पन्न करना। गायत्री तीर्थ में जाकर बालकों के नाम-करण, अन्न प्राशन, मुँडन विद्यारम्भ, दीक्षा, यज्ञोपवीत आदि संस्कार करना। बड़ों के लिए जन्म दिवसोत्व, विवाह दिवसोत्सव मनाने के लिए यहाँ पहुँचना श्रेयस्कर है। उत्तराखण्ड यात्री निर्विघ्न यात्रा के लिए आर्शीवाद लेकर जा सकते हैं।

(३) स्वाध्याय मण्डलों की स्थापना उनके द्वारा प्रज्ञा साहित्य पढ़ाने, स्लाइड प्रोजेक्टर, टेप रिकॉर्डर के माध्यम से सत्संग क्रम चलाने आदि की पँच-सूत्री योजना कार्यान्वित कराई जाय।

(४) सूर्योदय के समय पाँच मिनट की मौन उपासना वाले महा अनुष्ठान में अधिकाधिक लोग भागीदार बनें। हर घर में गायत्री चित्र स्थापना तथा हर सदस्य द्वार उसका नमन बंदन करने की परम्परा चले। पञ्चशीलों की प्रतिष्ठापना का प्रयास रहे।

(५) दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन तथा घरों में आदर्श वाक्य टाँगने स्टीकर चिपकाने का प्रचलन बढ़े।

(६) जन्म दिवसोत्सव के माध्यम से परिवार निर्माण गोष्ठियों का प्रचलन हो नवरात्रि एवं अन्य पर्व मनाकर धर्मतन्त्र से लोक-शिक्षण का क्रम आगे बढ़े।

(७) शिक्षा प्रसार के लिए पुरुषों की रात्रि पाठशालएँ महिलाओं की अपराह्न शालाएँ चलें। दो घण्टों की बाल संस्कार पाठशाला निःशुल्क ट्यूशन पढ़ाने के रूप में चले। इनमें सुसंस्कारिता सम्वर्धन की शिक्षा अनिवार्य रूप से समाविष्ट रहे।

(८) व्यायाम शालाओं की स्थापना। खेल-कूदों का प्रचलन, आसन-प्राणायाम वाले प्रज्ञा व्यायाम का प्रशिक्षण सामूहिक श्रमदान से स्वच्छता अभियान।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(९) हरीतिमा सम्वर्धन। तुलसी का थांवला घर आंगन में लगाने का उपक्रम। घरेलू शाक-वाटिका एवं पुष्प-वाटिका उगाना।

(१०) दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन। ऊँच-नीच, पर्दा प्रथा, भिक्षा व्यवसाय, मृतक भोज, नशा आदि कुप्रचलनों की हानियाँ समझाना और उन्हें छोड़ने के लिए सहमत करना। खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमानी बनाती हैं। इस तथ्य से जन-जन को अवगत कराना। जिनके लिए सम्भव हो उन्हें शान्ति कुञ्ज में ऐसे विवाह कराने के लिए प्रोत्साहित करना।

उपर्युक्त दसों सूत्र के प्रज्ञा पुराण एवं युग संगीत के कथा-कीर्तन के माध्यम से कहते हुए उन्हीं में उसे उभारे जा सकते हैं। इस तीर्थयात्रा प्रचलन के लिए जहाँ उत्साह उभरे वहाँ के एक दो व्यक्ति एक महीने की कल्प साधना के साथ इसका भी शिक्षण प्राप्त कर लें।

पापों का प्रायश्चित्य और पुण्य परमार्थ का सञ्चय ये दोनों ही प्रयोजन इस तीर्थयात्रा प्रक्रिया से सम्पन्न होते हैं। कहना न होगा कि आज की परिस्थितियों में ऐसी घर-घर अलख जगाने वाली पदयात्रा कितनी अनिवार्य हो गयी है। अब धर्म तन्त्र के प्रहरियों को स्वयं द्वार-द्वार जाना होगा। इस पराक्रम पुरुषार्थ से कम में वह प्रयोजन पूरा नहीं हो सकेगा जिसकी कि आवश्यकता संक्रान्ति वेला में अनुभव की जा रही है।

सन्त मेघों की तरह बरसमे घर-घर पहुँचते थे। उन्हीं के आधुनिक संस्करणों के रूप में प्रज्ञा परिजनों को धर्म प्रचार की पदयात्रा की व्यवस्था बनाने और अन्यान्यों को भी साथ लेकर चलने हेतु उत्साह के साथ आगे आना चाहिए। महत्व पैदल या साईकल या द्रुतगामी वाहनों के साथ चलने का नहीं, ७० करोड़ व्यक्तियों को धर्म चेतना से अनुप्राणित करने का है।

पुरोहित वर्ग को अब लोक-शिक्षण करने हेतु प्रारम्भिक बीजारोपण इसी रूप में करना है। अगले दिनों ऐसे ही व्यक्तियों प्रतिभाओं का आह्वान किया गया है जो समय दान देकर इस पुनीत कार्य में जुट जाएँ। स्थायी कार्यकर्ताओं की माँग तो असीम है, पर समय के अकाल की इस बेला में थोड़ा समय दान देने वाले भी एक हजार परिजन निकल कर आ सकें तो एक बड़ा युग धर्म निभाने की महाकाल की योजना को साकार किया जा सकता है।

तीर्थयात्रा इस प्रकार चलेंगी

जिस प्रकार शिव रात्रि पर या श्रावण मास में शंकरजी पर जल चढ़ाने के लिए "कावर" बड़ी संख्या में निकलती हैं। उसी से मिलती-जुलती योजना बनाकर प्रज्ञा पुत्रों को जन-जागृति की तीर्थयात्रा पर निकलने की योजना बनानी चाहिए और उसे अपनी लगन के बल-बूते पूरा करके दिखाना चाहिए। जनजागरण के लिए अलख जगाने का काम अब वरिष्ठ प्रज्ञा पुत्रों को हाथ में लेना चाहिए और उसे तत्परता, तन्मयता के साथ आगे बढ़ाना चाहिए।

प्राणवान प्रज्ञा परिजन अपने-अपने यहाँ एक तीर्थयात्रा केन्द्र बनायें। उसमें सुगम संगीत तथा वाक्य लेखन का पाठ्यक्रम नियमित रूप से चलायें। नये उत्साही सेवाभावी तैयार करें और उन्हें सबसे सरल किन्तु सबसे महत्वपूर्ण स्वरूप समझायें। चोरी सोने वालों के यहाँ होती है। सेंध वहाँ लगती है जहाँ जागरूक पहरदार नहीं होते। जेब उन्हीं की कटती है जिनकी सतर्कता शिथिल रहती है। जागरूक रहने और रखने वालों की इन दिनों अत्यधिक आवश्यकता है। ताकि पतन और पराभव की दाल न गलने पाये। यह कार्य तीर्थयात्रा स्तर पर चलना चाहिए। संगठित रूप में और बड़े पैमाने पर।

यों प्रज्ञापीठें भी अपने यहाँ तीर्थ केन्द्र खोल सकती और समीपवर्ती लोगों का एक बड़ मण्डल बनाकर उसमें प्रचार जत्थे भेजती रह सकती हैं। जन-जागृति, जन-सम्पर्क, जन-सहयोग एकत्रित करके ही नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक सुधार का वह कार्य भली प्रकार हो सकता है जिसकी कि आज नितान्त आवश्यकता है। जो प्रज्ञा पीठें यह कर सकेंगी अपने को निष्क्रियता के कलंक से मुक्त कर लेंगी।

स्वाध्याय मण्डली और वरिष्ठ प्रज्ञा पुत्रों का भी यह प्रयत्न होना चाहिए कि सौ-सौ मील के दायरे में एक तीर्थयात्रा के केन्द्र स्थापित करें। उसमें लगभग दस-दस दिन के प्रवास केन्द्र बनायें। चार-चार की टोली रहे। मिशन की साइकिलें उनकी सुविधा के लिए रहें। एक यात्रा पूरी होते ही दूसरी चल पड़े, इस प्रकार हर प्रवास के लिए वही साइकिलें एक से दूसरे को हस्तान्तरित होती रहेंगी। इस प्रकार कार्य में एक महीने-दो महीने का समय उन केन्द्रों में देकर भी अखण्ड तीर्थयात्रा चला सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अलख जगाने का महान् कार्य उसी प्रकार पूरा करते रह सकते हैं, उसी प्रकार इस युग के प्रज्ञा पुत्र भी इस प्रक्रिया को जीवन्त रखे रह सकते हैं ।

केन्द्रों की स्थापना इस आधार पर होनी चाहिए कि वह कितनी दूरी तक का क्षेत्र सँभाल सकता है और उसके यहाँ कितने कार्यकर्ता हैं । अथवा प्रयत्न करके कितने कार्यकर्ता बनाये जा सकते हैं ।

प्राथमिकता मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात को दी जा रही है । इसके उपरान्त जैसे-जैसे प्रगति होगी अन्य प्रान्तों में भी उनका कार्य विस्तार होता चलेगा । समस्त भारतवर्ष में यह येजना कार्यान्वित की जा सकेगी । क्रमशः कदम बढ़ाना ही उपयोगी हो सकता है । इसकी व्यवस्था बनी रह सकती है ।

प्रत्येक तीर्थ केन्द्र को शान्तिकुञ्ज की ओर से जो सामान अमानत रूप में दिया जा सकेगा वह इस प्रकार है— (१) चार नई एटलस साइकिलें, (२) चार झोले, (३) चार छोटी बाल्टी, (४) झण्डे साइकिल पर लगाने के तथा (५) बिस्तर बन्द जिसमें आवश्यक कपड़े रखे जा सकें । यह वस्तुएँ निरन्तर तीर्थयात्रा कार्यक्रम के लिए एक से दूसरे जत्थे के हाथों हस्तांतरित किये जाने के लिए हैं । किसी को मुफ्त या उपहार में नहीं दी जा रही हैं । केन्द्र के निष्क्रिय रहने पर उन्हें बदला भी जा सकेगा और सामान भी साथ ही नव स्थापित केन्द्र पर भेजा जायेगा । इस सामान को निजी उपयोग में लाने की मनाही है ।

तीर्थयात्री जत्थे को अपने भोजन का प्रबन्ध प्रवास काल में स्वयं ही करना चाहिए । न किसी से अर्चना करे न आतिथ्य स्वीकारे । यह तीर्थ व्रत है जिसमें अपनी कमाई का भोजन करना ही उचित है । जंगली उपले बीनकर उन पर गरीबों जैसा भोजन बनाते-खाते चला जा सकता है । योजना यह है कि प्राणवान शाखा-संगठनों को अपने यहाँ तीर्थयात्रा चलानी ही चाहिए ।

तीर्थयात्रा की आहार व्यवस्था

तीर्थयात्रा में जहाँ पदयात्रा और धर्म प्रचार प्रमुख अंग है, वहाँ एक और भी तथ्य इसके साथ जुड़ा हुआ है, वह है सात्विक आहार । सात्विकता में सुपाच्य, न्यायोपार्जित और स्नेह-सद्भाव का और श्रम का समावेश होता है । इन सब तथ्यों के उचित समावेश होने से ही तीर्थयात्रा को सार्थक बनाने वाला दिव्य आहार बनता है ।

जो लोग पका नहीं सकते, वे सत्तू, चिवड़ा, चबैना, जैसी, चीजें लेकर चल सकते हैं । जिनका पाचन अच्छा है वे मठरी, सेव, लड्डू जैसी तली हुई वस्तुयें साथ ले सकते हैं, जो वासी होने पर भी सड़े नहीं । रोज खरीदना-खाना हो तो भिण्डी, टमाटर, केला, पपीता, आम जैसी वस्तुओं के सहारे या दूध, दही, छाछ लेकर तीर्थयात्रा के दिन पूरे कर सकते हैं । तामसिक, वासी, अवांछनीय तत्वों के बनाये-परोसे पदार्थ स्वादिष्ट कितने ही क्यों न हों, तीर्थयात्रा को स्थिर नहीं रख सकते ।

प्रज्ञा अभियान की गतिशीलता परिव्रज्या के साथ चलती है । प्रवास के बिना जन-सम्पर्क नहीं बनता और इसके बिना जन-समर्थन एवं जन-सहयोग का सुयोग नहीं बनता । यह लाभ न मिले तो तीर्थयात्रा मात्र पर्यटन, प्रवास, मनोविनोद का ही उद्देश्य पूरा कर सकती है ।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत तीर्थयात्री को साइकिल यात्रा के रूप में कार्यान्वत किया जा रहा है । मार्ग में दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखते चलने की प्रक्रिया एक प्रकार से धर्म प्रचार या जन-जागरण ही है । इससे घर-घर अलख जगाने और जन-जन से सदुद्देश्य के लिए सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता पूरी होती है ।

रात्रि विराम के अवसर पर उत्तम तो यही है कि प्रचलित वाद्य यन्त्रों के सहारे युग संगीत मिलजुल कर गाया जाये और बीच-बीच में दृष्टांतों, कथाओं एवं सामयिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करते चला जाये । जिन्हें यान्त्रिक सुविधायें उपलब्ध हैं, वे इस प्रयोजन की पूर्ति स्लाइड प्रोजेक्टर, टेप रिकॉर्डर, लाउडस्पीकर की सहायता से कर सकते हैं । जिन गाँवों में बिजली नहीं है वहाँ यह प्रचार १२ वोल्ट की बैटरी और चार्जर लगाकर किये जा सकते हैं । स्लाइड प्रोजेक्टर के साथ व्याख्या करने का क्रम चलता रहे तो बढ़िया व्याख्यान जम जाता है ।

भोजन के लिए दाल, चावल, दलिया-खिचड़ी जैसा उबली वस्तुओं को महत्त्व देना चाहिए । उबले या भुने आलू, बैंगन, टमाटर भी इसका स्वाद बढ़ा सकते हैं । सबेरे इसी नाश्ते को लेकर निकला जाये और दिन भर काम किया जाये तो ठीक है । उपलों पर दाल-बाटी जैसी बजनदान वस्तुयें भी बनाई जा सकती हैं । इसका प्रबन्ध तीर्थयात्रियों को स्वयं करना चाहिए ।

रात्रि को सहभोज का तरीका अपनाया जाये । जिनके चौके में साफ-साफाई रहती हो उन प्रज्ञा परिजनों के यहाँ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

से एक-एक रोटी एकत्रित करने का उपक्रम चलाया जाये। यह पद्धति बड़े आयोजनों और सम्मेलनों में भी काम में लाई जा सकती है। उनमें भोजन भर में खर्च होने वाली बड़ी राशि को सहज बचाया जा सकता है।

साइकिल तीर्थयात्रा पर आमतौर से चार व्यक्ति निकलें। उनके लिए सोलह से लेकर बीस रोटी पर्याप्त होनी चाहिए। यदि पहले से ही सूचना हो तो उतना अनुदान खुशी-खुशी एकत्रित हो सकता है। इकट्ठा करने वाले प्रतिभावन् व्यवहार-कुशल व्यक्ति चाहिए। यदि तथ्य को भली प्रकार समझाया जा सके, तो इससे सहयोग बढ़ता है और सद्भाव भी।

इसका बड़ी रूप प्रीतिभोज जैसा देना हो, तो लोगों को भी प्रीतिभोज में सम्मिलित किया जाये। उन्हें प्रतीक रूप में एक-रोटी-चटनी देना पर्याप्त है। भोजन वे भले ही अपने-अपने घर करें पर प्रसाद या प्रीतिभोज के रूप में सब लोग पंक्तिबद्ध बैठकर भोजन करें तो उससे जो प्रदर्शन बनता है, वह भी मिशन के अनुरूप होता है और रोटी के साथ जुड़ी हुई जाति-पाँति की विडम्बना भी घटती है। रात्रि भोजन हर जगह इसी प्रकार होने चाहिए। मिशन के कार्यक्रम का विस्तार होगा तो उसके साथ भोजन मद भी जुड़ी रहेगी। उसके लिए सर्वसुलभ समाधान है।

ग्राम तीर्थों की स्थापना और पदयात्रा

पुरातन सेवा साधनाओं के कारण अभी तक साधु ब्राह्मणों का वेश वंश पुजता चला आ रहा है। यद्यपि वे उन महान परम्पराओं से एक तरह विरत ही हो चुके हैं। यही बात तीर्थों के सम्बन्ध में भी है। वे किसी जमाने में अपनी महान गतिविधियों के कारण जन-जन के श्रद्धा पात्र बने हुए थे। पर अब तो वे भव्य-भवन खण्डहर मात्र रह गये हैं। पुरातत्व पर्यवेक्षण को दृष्टि से ही पर्यटक वहाँ पहुँचते और वर्तमान स्थिति पर खिन्नता, थकान, अश्रद्धा लेकर वापिस लौटते हैं।

भारतीय धर्मशास्त्रों में तीर्थयात्रा की बड़ी महिमा गाई गई है। यह महात्म्य किसी देवालय के दर्शन या जलाशय स्नान मात्र का नहीं, वरन् उन गतिविधियों का है जो किसी समय यह पूर्ण श्रद्धाभावना और तत्परता के साथ चलती थी। मात्र पुरातन इतिहास भी स्मृति जगाने के लिए कोई-कोई बुद्धिजीवी ही ऐसे स्थानों पर पहुँचते हैं। सर्वसाधारण की रुचि तो इस बात में होती है कि कहाँ कितने प्रेरणाप्रद काम चल रहे हैं? उनके साथ किस प्रकार सम्पर्क साधा जा सकता है और कितना लाभ उठाया या दिया जा सकता है?

तीर्थयात्रा का उद्देश्य और स्वरूप धर्म प्रचार पदयात्रा है। विज्ञपन ऐसी मण्डलियाँ लेकर निकलते थे और प्रगतिशीलता को प्रोत्साहित करने, पिछड़ेपन की जड़ें काटने के लिए प्रवास कार्यक्रम बनाते थे। रास्ते में जो गाँव, झोंपड़े, व्यक्ति मिलते थे उनसे सम्पर्क साधते हुए मानवी गरिमा को सींचने की प्रेरणा भरते थे। इसी प्रयोजन के लिए संत जन घर-घर अलख जगाते थे। अब इस आलस्य-प्रमोद के माहौल में तीर्थयात्रा भी पर्यटन मनोरंजन का एक अंग बन रह गई है। उस आधार पर कुछ श्रमिक और व्यापारी आजीविका भर भले ही प्राप्त कर लेते हों। अलख जगाने और पदयात्रा करने का तो कहीं परिचय ही नहीं मिलता। भीड़, भगदड़, धक्का-मुक्की यही इस सन्दर्भ में देखने को मिलती हैं।

जिस प्रतिफल को ध्यान में रखते हुए ऋषियों और शास्त्रकारों ने तीर्थयात्रा का प्रचलन किया और महात्म्य बताया था उसके पीछे छिपे हुए आधारभूत कारण को हमें समझना होगा। यह वस्तुतः सद्ज्ञान के अभाव को पूरा करने की पुन्य प्रक्रिया है। जिस प्रकार बादल घूम-घूमकर सूखी धरती को सींचते और हरितमा-शीलता विकसित करते हैं। ठीक उसी प्रकार तीर्थयात्रा के माध्य से लोकमानस को, प्रचलन को, सींचा एवं शोभायमान किया जाता है। मरीज अस्पताल तक पहुँचने की स्थिति में नहीं होता है तो डॉक्टर को ही उसके प्राण बचाने के लिए वहाँ तक जाना पड़ता है। यात्री नदी में तैरना नहीं जानते तो नाविक उन्हें अपनी नौका पर बिठाकर पार करते हैं। समाज में फैली प्रतिगामिता को निरस्त करके उसके स्थान पर प्रगतिशीलता का बीजारोपण करना, यही तीर्थयात्रा का एकमात्र उद्देश्य है। उसके सहारे धर्मधारणा, कर्तव्यनिष्ठा, दूरदर्शी विवेकशीलता आदि अनेकों सत्प्रवृत्तियाँ फलती-फूलती हैं। भटकों को राह मिलती है और पिछड़ों को उठने की सहायता।

तीर्थयात्रा की लकीर पीटते रहने की अपेक्षा उसे उसी प्रकार सोद्देश्य बनाना पड़ेगा जैसा कि पुरातन काल में थी। आज की आवश्यकता और पुरातन नीति-निर्धारण का समन्वय सहज ही हो सकता है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन्हें पर्यटन की उमंग पूरी करनी है वे कहीं भी ऐतिहासिक-प्राकृतिक शोभा सम्पन्न, अनोखे अजूबों वाले स्थानों का परिश्रमण करते रह सकते हैं। पर इस भ्रम को मन से निकाल देना चाहिए कि बिना किसी ऊँचे उद्देश्य या पुण्य-परमार्थ का समावेश किये आत्मिक या पारलौकिक सत्परिणाम की प्राप्ति असम्भव है। प्रतिभाओं को झाँकी और जलाशयों की डुबकी भी उस प्रयोजन की पूर्ति नहीं कर सकती है जो मनीषियों द्वारा तीर्थ महिमा को लक्ष करके बताई-समझाई है।

समीक्षा आवश्यक है पर काम उतने भर से ही तो नहीं चलता। कोई बात लड़खड़ा गई तो उसका पश्चाताप करते रहने की अपेक्षा यह अच्छा है कि नया रास्ता खोजा और नया विकल्प निकाला जाये।

प्रज्ञा अभियान के अन्तर्गत यह योजना इसी हीरक जयन्ती वर्ष से कार्यान्वित की गई है कि एक लाख गाँवों को तीर्थ स्तर पर सत्प्रवृत्ति सम्पन्न बनाया जाये उनकी भावनाओं-मान्यताओं में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश किया जाये। यह कार्य पूरी तरह फलित होना तो समय-साध्य है पर उसका बीजारोपण तो इन्हीं घड़ियों में हो सकता है।

भावनाशीलों ने मातृभूमि के हर घटक को एक ग्राम देवता के रूप में चित्रित एवं प्रतिपादित किया है। स्वर्गादपि गरीयसी भारतभूमि की समग्रता ग्राम इकाइयों से ही बनती है। ग्राम से तात्पर्य यहाँ शहरों से ईर्ष्या या उपेक्षा का भाव रखना नहीं है वरन् पिछड़ेपन की औसत रेखा से नीचे वाले वर्ग को प्रधानता देना है। शहरों में भी सम्पन्न और शानदार इलाके तथा व्यक्ति थोड़े ही होते हैं। वहाँ भी गली-कूँचों-झोपड़ियों और अनाधिकृत कौलोनियों में बसने वालों का ही बाहुल्य होता है। शहरों की सीमा में गिने जाने वाले इस पिछड़े जन-समुदाय को ग्राम ही कहा जा सकता है। ग्राम सेवा शब्द के अन्तर्गत इस क्षेत्र को भी सम्मिलित रखा गया है। शहरों के सम्पन्नों, प्रबुद्धों, वरिष्ठों को तो न किसी की सेवा की आवश्यकता है और न साधारण जन-आन्दोलनों की बात पर कोई ध्यान ही धरते हैं। इसलिए मिशन ने सोच-विचार करके अपना कार्य क्षेत्र देहात ही बनाया है। असली भारत वही है।

पिछड़ेपन का अन्धकार इन देहाती क्षेत्रों में ही घुसा पड़ा है। गरीबी, बीमारी, कलह, कुरीति, दुराग्रह जैसी अनेकों विडम्बनायें इसी क्षेत्र को जकड़े बैठी हैं। सेवा की सर्वाधिक आवश्यकता इसी क्षेत्र को है। अपना चुनाव भी यही है।

हर गाँव को एक तीर्थ बनाने की योजना का सार संक्षेप यह है कि वहाँ विचारशील लोगों की जत्थैबद्ध पहँच लगातार होती रहे और आवश्यक परामर्श मार्ग-दर्शन से उत्तेजित करके उस क्रिया-कलाप में जुटाया जाये जो सर्वतोमुखी प्रगति के लिए आवश्यक है। कहाँ क्या कार्य किस प्रकार किया जाये, इसका निर्धारण स्थानीय परिस्थितियों, आवश्यकताओं एवं उपलब्ध सुविधाओं को देखकर ही किया जा सकता है।

प्रारम्भ यहाँ से होता है कि पच्चीस-पच्चीस मील के घेरे के गाँवों को एक-एक तीर्थ मण्डल बनाया जाये। उसमें चार साइकिलें और प्रचार के संगीत उपकरण लाउडस्पीकार, साहित्य जैसे साधन रहें। चार-चार प्रचारकों के जत्थै प्रशिक्षित किये जायें। वे इस प्रकार प्रवास क्रम बनायें जिससे परिधि का कोई भी गाँव न छूटने पाये। जहाँ से चलें वहाँ की एक परिक्रमा पूरी करते हुए वापिस लौट आयें। यह परिक्रमाएँ एक सप्ताह में, दस दिन में या पन्द्रह दिन में आसानी से हो सकती हैं।

उपरोक्त साइकिल जत्थे पहले ही यह निर्णय कर लेंगे कि रात्रि प्रवास कहाँ-कहाँ करना है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक के बीच में ४-५ गाँव आसानी से हो सकते हैं। इस सब की दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखते चला जाये। जो शिक्षित मिलें उन्हें प्रचार साहित्य भी देते चला जाये। कुछ भीड़ होने लगे तो उसके सम्मुख प्रयोजन को मौखिक रूप में भी व्यक्त करते चला जाये।

रात्रि को जत्था जहाँ पहुँचे वहाँ शंख-घड़ियाल से गली-मुहल्लों में मुनादी करें कि तीर्थयात्री जत्था अमुक स्थान पर टिकेगा और अमुक समय से अपने गीत, प्रवचन आरम्भ करेगा। स्वभावत: इस नवीनता को देखने-सुनने के लिए अधिकांश ग्रामीण उपस्थित होंगे।

भोजन प्रबन्ध जत्था निजी साधनों से पूरा करेगा। रास्ते में सूखे पड़े गोवर को ईंधन के रूप में बटोरते चला जा सकता है। उसका अलाव बनाकर दाल-रोटी बनाने,भुने आलू, चावल जैसी आसानी से बन सकने वाली भोज्य वस्तुएँ बनाई-खाई जा सकती हैं। इसके लिए आवश्यक उपकरण भी साथ रहा करेंगे। इससे जत्थे को किसी पर भार नहीं बनना पड़ेगा। यों श्रद्धावश स्वेच्छा से सामान्य भोजन का प्रबन्ध कर दे तो उसे अस्वीकार करने जैसा दुराग्रह भी नहीं रहेगा। यही है वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रचार प्रक्रिया जो अपना कार्य बीज के रूप में आरम्भ करेगी और अनेकों शिक्षणात्मक, रचनात्मक, सुधारात्मक कार्यों को अग्रगामी बनाने की योजना कार्यान्वित करेगी।

निकटवर्ती क्षेत्रों की तीर्थयात्रा

सच्ची तीर्थयात्रा का विस्तार जितना ही अधिक हो, उतना ही उत्तम है। शास्त्रकारों ने इसमें अनेक लाभ देखें और उनके माहात्म्य बतायें। नियमित पदयात्रा स्वास्थ्य सुधार का एक अच्छा उपचार है। अनेक स्थानों की परिस्थितियाँ और अनेक आदमियों की मनःस्थितियाँ जानने से अनुभव की वृद्धि होती है। यह सबसे सस्ता और सबसे अधिक पुण्यफल से भरा हुआ प्रयास है। इसे पापों के प्रायश्चित के निमित्त भी किया जाता है। धर्म प्रचार की पदयात्रा वस्तुतः ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है जिसकी उपमा बादलों के जल बरसाने हेतु निकलने से दी जाती है।

यों लोग ऐतिहासिक और प्रकृति शोभा के स्थानों को देखने के लिए द्रुतगामी बाहनों पर चढ़कर दौड़ते हैं और उस सैर-सपाटे को ही तीर्थयात्रा कहते हैं। यह पर्यटन मनोरंजन भर है। जिस कार्य से किसी का हित साधन न हो। सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन का उपक्रम न बने, उसे धर्मकृत्य कैसे कहा जा सकता है। धरती बादलों तक पानी प्राप्त करने के लिए नहीं पहुँच सकती किन्तु उदार बादल स्वयं दौड़कर वहाँ पहुँचते हैं, धरातल की प्यास बुझाते हैं। धर्म प्रचार पदयात्रा में भी यही होता है। जहाँ पिछड़ापन है उसे घटाने और जहाँ प्रगति उत्साह है वहाँ उसे बढ़ाने के लिए धर्म प्रेमी तीर्थयात्रा का सच्चा फल प्राप्त करने के लिए पहुँचते रहते हैं। प्राचीनकाल में यही प्रचलन था। जो दूर जाने में असमर्थ थे तो वट, पीपल, तुलसी, आँवला आदि की परिक्रमा करके उस पदयात्रा की चिह्न पूजा करके मन समझाते थे।

भेड़िया धसान की तरह तीर्थयात्रा की चिह्न पूजा करने से कुछ लाभ नहीं। सत्कार्यों के पीछे सदुद्देश्य और सत्परिणाम भी जुड़े हुए रहने चाहिए। समय की माँग ऐसी तीर्थयात्रा की है जिसमें जन-जागरण और युग-चेतना का अभिवर्धन होता है। इसे प्राचीनकाल की 'अलख जगाने की' दिव्य साधना कहा जा सकता है। इन दिनों अगणित समस्याओं का उत्पादन भ्रष्टचिन्तन और दुष्ट आचरण के कारण हो रहा है। यह भाव दुर्भिक्ष ही अनेक समस्याओं और विपत्तियों का जन्मदाता है। युगधर्म की पुकार इसी से जूझने की है।

अपना देश छोटे देहातों में फैला हुआ है और वहाँ ७० प्रतिशत अशिक्षा का अन्धकार छाया हुआ है। ऐसी दशा में वहाँ प्रतिगामिता के साथ-साथ दरिद्रता का, बुराईयों का, आलस्य-प्रमाद आदि का जमघट भी बना ही है। जो पैसे का, बुद्धि का, श्रम का सदुपयोग नहीं जानता। उसको भाग्योदय का योग कभी मिलेगा ही नहीं। इस विपन्नता का समाधान तीर्थयात्रा से बढ़कर और कोई सरल एवं कारगर हो नहीं सकता। हमें युग-चेतना का अलख जगाने के लिए गाँव-गाँव निकलना चाहिए और वहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप जन-जन का मार्ग-दर्शन करना चाहिए।

भारतभूमि सर्वत्र तीर्थमयी है। अस्तु विचारशील तीर्थयात्रा के लिए अपना समीपवर्ती क्षेत्र ही चुनना चाहिए। मार्ग की जानकारी, लोगों के परिचय, भाषा ज्ञान, क्षेत्रीय समस्याओं से जानकारी होती है। इसलिए हीरक जयन्ती में जो तीर्थयात्रा आन्दोलन चला है उसे सभी प्रज्ञा परिजन अपने-अपने परिचित क्षेत्र में ही सम्बद्ध रखें तो इसमें घर-परिवार की भी सूचनायें मिलती रह सकती हैं और वह परमार्थ भी सधता रह सकता है, जिसकी कि आज सर्वाधिक आवश्यकता है।

हीरक जयन्ती वर्ष का प्रधान संकल्प जन-जीवन में फूँकने वाली तीर्थयात्रा के रूप में उभरा है। इसके लिए जितनी सम्भव है उतनी संख्या में मोटरों का भी प्रबन्ध किया गया है और उनमें टेलीविजन तथा लाउडस्पीकर भी लगाये गये हैं। पर उनसे भी साफ रास्तों से ही जाया जा सकता है। इस कमी की पूर्ति साइकिल यात्रा के माध्यम से ही बन पड़ सकती है। साइकिल भारवाहन भी है, गतिशील भी, सस्ती भी और कम से कम टूट-फूट वाली भी। उस पर बैठकर चलना एक प्रकार से पदयात्रा ही है।

प्रयत्न यह होना चाहिए कि हर क्षेत्र में विशिष्ट प्रज्ञा पुत्र चार साइकिलों की टोली बनायें और चार साइकिलों पर चार प्रचारक बैठकर एक प्रवास चक्र बना कर निकल पड़ें। यह चक्र न्यूनतम एक सप्ताह का, दस दिन का, पन्द्रह दिन का हो सकता है। इस वर्ष समयदान की याचना की गयी है। उदार चेताओं ने उसके लिए खुले मन से स्वीकृति भी दी है। इन समयदानियों संख्या हजारों में है। इन सभी का उपयोग साइकिल यात्रा से ही प्रचार कार्य करते हुए सम्भव बनाया जा सकता है। यों प्रबन्ध मोटरों का भी किया जा रहा है है पर इतना नहीं हो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता कि ७ लाख गाँवों में रहने वाले ७० करोड़ मनुष्यों तक पहुँचने की आवश्यकता पूरी कर सके और हर गाँव, झोंपड़े, नगले तक पहुँच सके। वहाँ तक पहुँचने का मोटर मार्ग भी नहीं होता। फिर तेल, पेट्रोल, मरम्मत, ड्राइवर का खर्च आदि भी इतना भारी पड़ता है कि उसकी पूर्ति के लिए स्थानीय लोगों का सहारा ही ताकना पड़ता है। जबकि साइकिल यात्रा में इस प्रकार का कोई झंझट नहीं है। वह पगण्डियों पर भी दौड़ती रह सकती है। पंचर आदि हो जाने पर उसकी मरम्मत भी खुद ही की जा सकती है।

मार्ग में दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन और रात्रि के विराम में भजन-गायन इतना छोटा कार्यक्रम सामान्य स्तर के लोग भी भली प्रकार पूरा कर सकते है। । इतना थोड़ा समय देने हेतु समीपवर्ती प्रज्ञा परिजनों को सहज ही तैयार किया जा सकता है और चार की टोली थोड़ी -सी दौड़-धूप में जुट सकती है ।

सुन्दर अक्षरों में आदर्श वाकय लेखन एक सप्ताह के अभ्यास से भी भली प्रकार सीखा जा सकता है। ढपली-खड़ताल पर नव-जागरण के गीत गाना भी सरल है। इस प्रकार का सुगम संगीत महीने-पंद्रह दिन के प्रयास में ही सीखा जा सकता है। एक-दो व्यक्ति शांति कुञ्ज आकर यह दोनों कार्य सीख सकते हैं। और फिर अपने घर आकर अन्यान्य सहयोगियों को कुछ दिन नियमित शिक्षण चलाकर प्रवीण बना सकते हैं। इस प्रकार हजारों की संख्या में प्रचार टोलियाँ साहसी लोग थोड़ी-सी दौड़-धूप से हर क्षेत्र में खड़ी कर सकते हैं और उनके द्वारा लाखों के साथ सम्पर्क सध सकता है, परामर्श और विचार गोष्ठियों के साथ संगीत मिला रहने पर उसकी प्रभाव शक्ति बहुत व्यापक हो सकती है।

जहाँ मिशन के सक्रिय केन्द्र और जिम्मेदार स्थाई कार्यकर्त्ता हैं वहाँ मिशन की ओर से भी चार साइकिलों का प्रबन्ध किया जा सकता है। इनका उपयोग निजी कार्य में तो कोई न करे, पर साथ ही ऐसा फेर बँधा रहें कि एक टोली का कार्यक्रम पूरा होते-होते दूसरी टोली तैयार हो जाये और वह दूसरा कार्यक्षेत्र बनाकर उसमें प्रचार-प्रवास के लिए चल पड़े। इस प्रकार जिन समयदानियों ने समय दिया है वे आधे दिन घर की देखभाल के लिए और आधा तीर्थयात्रा प्रवास के लिए निकालते रह सकते हैं। इसमें घर का भी विशेष हर्ज न होगा। नाराजी का भी बड़ा-सा विग्रह खड़ा न होगा और किस्तों में समयदान की यह योजना भी भली प्रकार चलती रहेगी। इस प्रकार जिम्मेदार लोगों से मिलकर बना एक केन्द्र वर्ष में सैकड़ों कार्यक्रम पूरे कर सकता है। सड़क किनारे से लेकर गाँव-गाँव तक की हर दीवार पर आदर्श वाक्य लिखे जा सकते हैं।

पीले धोती-कुर्ता, कमर में फैटा बाँधे हुए साइकिल पर पीला झण्डा लहराते हुए चार परिव्राजकों की टोली युग सन्तों की आवश्यकता पूरी करेगी। विशेषतया तब जब अपना पकाते-खाते चलने, किसी से कुछ न माँगने का व्रत लेकर यह मण्डली प्रवास पर निकलेगी, बोलती दीवारों का सृजन करेगी, अपने प्राणवान गीतों से दो घण्टे तक जनमानस को लहराती रहेगी तो उसका प्रभाव निश्चय ही गहराई तक प्रवेश करने वाला होगा। हाथ से बनाते-खाते चलने में दाल-वाटी, खिचड़ी जैसे पदार्थ सस्ते भी पड़ते हैं और सुपाच्य भी। यह खर्च तीर्थ यात्रियों को स्वयं ही वहन करना चाहिए जो एक दिन में एक रुपया जैसी स्वल्प राशि में पूरा हो सकता है। ईंधन की समस्या रास्ते में सूखे गोबर को बीन लेने पर भी पूरी हो सकती है।

तीर्थयात्रा का यह उपक्रम तुरन्त ही चल पड़ना चाहिए। वरिष्ठ प्रज्ञा पुत्रों को इस आन्दोलन को गतिशील बनाने के लिए तत्काल प्रबल-पुरुषार्थ आरम्भ कर देना चाहिए।

तीर्थ-प्रक्रिया का युगानुकूल निर्धारण

भारतीय ही नहीं विश्व की सांस्कृतिक मान्यताओं में तीर्थयात्रा का अतिशय महत्त्व है। येरूसलम, मक्का, बोधगया, सारनाथ आदि तीर्थों की यात्रा हेतु उन मतों के अनुयायी लम्बी दूरियाँ तय करके उन केन्द्रों में पहुँचते और अपनी श्रद्धा की सघनता का परिचय देते हैं। भारतीय धर्म में उनकी महिमा और गरिमा का असाधारण प्रतिपादन हुआ है, इसलिए असंख्य तीर्थयात्री इस प्रयोजन के लिए असाधारण मात्रा में समय, श्रम और धन का नियोजन करते हैं।

इन दिनों विकृतियों ने कोई क्षेत्र अछूता नहीं छोड़ा है; तीर्थ प्रयोजन भी नहीं। तीर्थयात्रा का महत्त्व एवं पुण्य-फल इस तथ्य पर आधारित है कि उसमें धर्म-प्रचार की पदयात्रा के रूप में जन-जन से सम्पर्क साधते थे। उसका नेतृत्व करने वाले विचारशील, जन-जीवन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्प्रवृत्तियों को उभारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। पर आज तो द्रुतगामी वाहनों में सवारी करके देवालयों की दर्शन-झाँकी करने, जलाशयों में डुबकी लगाने पूजा-पत्री करने मात्र जैसी लकीर पीट कर लोग तीर्थ यात्रा सार्थक मान लेते हैं। धक्का-मुक्की और फैली हुई गंदगी के अतिरिक्त और कोई वस्तु बाद में स्मरण नहीं रहती। यह कैसी तीर्थयात्रा ? इतने भर से पुण्यफल कैसे आकाश से बरसेगा और पापों का क्षय होने जैसी मान्यताओं को किस आधार पर प्रकाश मिलेगा?

भूल सुधारनी पड़ती है। अच्छा है तीर्थयात्रा सम्बन्धी प्रचलन में हम नये सिरे से विचार करें और देखें कि उस यात्रा के साथ कहीं लोकमंगल जुड़ा है या नहीं? धर्म प्रचार की पदयात्रा के पुराने प्रचलन में अब यह अन्तर हो सकता है कि उसे विनोबा की सर्वोदयी पदयात्रा स्तर की उपयोगिता से समन्वित किया जाये। समीपवर्ती क्षेत्र में सत्प्रवृतियों की प्राचीन या अर्वाचीन कार्य-पद्धति के प्रति निष्ठा जमाने के लिए सुनियोजित क्रिया-प्रक्रिया निर्धारित करें।

गाँधीजी जब काँग्रेस के माध्यम से देश-सेवा की तैयारी करने लगे, तो उन्हें श्री गोखले ने सलाह दी कि वे पहले उस भारतमाता की परिस्थितियाँ आँखों से देख लें। इसके लिए एक बार देश भ्रमण कर लें। गाँधीजी ने वही किया और एक अधनंगी महिला की परेशानी आँखे देखकर इतने द्रवित हुए कि स्वयं भी आधी धोती पहनने और आधी ओढ़ने लगे। तभी से वे सच्चे अर्थों में 'महात्माजी' नाम से प्रख्यात हुए। लोक सेवियों के लिए तीर्थयात्रा इसीलिए आवश्यक है कि वे अपने समाज की वस्तुस्थिति समझें और तदनुसार उपचार के लिए जुटें। संत-परिव्राजक इसी प्रयोजन के लिए तीर्थयात्रा को धर्मकृत्य मानते थे और उसमें निरत होकर लोक-कल्याण की बहुमुखी योजनाओं में निरत होते थे।

श्रावण या फाल्गुन के महीनों में गंगा जल की काँवर कंधे पर रखकर लोग ले जाते हैं और समीपवर्ती किसी शिवालय में उसे चढ़ाते हैं । जो लोग इस प्रयोजन के लिए निकलते हैं, वे मिल-जुलकर धार्मिक गीत ऊँचे स्वर से गाते चलते हैं; ताकि जो भी उस गायन को सुनें, वे कुछ प्रेरणा प्राप्त करें। यह चिह्न-पूजा बताती है कि धर्म प्रचारक ही नहीं, तीर्थयात्रा का उपक्रम हर स्तर के लोग किसी न किसी रूप में क्रियान्वित करने के लिए लालायित रहते हैं। पापों के प्रायश्चित के लिए एक बहुप्रचलित माध्यम तीर्थ-यात्रा की मान्यता अभी भी है।

प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों की एक प्रशिक्षण-पद्धति यह भी थी कि वे अपने शिष्यों की मण्डली साथ लेकर तीर्थयात्रा पर निकलते थे और उपयुक्त स्थानों पर विराम करते हुए अध्ययन-अध्यापन का क्रम चलाते रहते थे। इससे उन्हें अनेक क्षेत्रों के साथ सम्पर्क, साधन, अनुभव बटोरने एवं स्वास्थ्य संवर्धन के बहुमुखी लाभ मिलते थे। पदयात्रा स्वास्थ्य संवर्धन का एक अति सरल और महत्त्वपूर्ण माध्यम माना गया है। अभी भी छुट्टी के दिनों में छात्रों, किसानों एवं दूसरे लोगों को पर्यटन के लिए विशेष सुविधाएँ मिलती हैं। इस प्रकार पर्यटन एक उद्योग भी बन गया है। यह सब प्रयोजन प्रचीन काल की उस तीर्थ परम्परा का ही स्मरण दिलाते हैं, जिससे अनेकों को, अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष लाभ उठाते रहने का अवसर मिलता था।

इक्कीसवीं सदी की युगान्तरीय चेतना का संदेश सुनाने एवं वातावरण बनाने, उत्साह उभारने के लिए उसी प्राचीन परम्परा को अब नये ढंग से, नये कार्यक्रम के साथ प्रयुक्त करने की योजना बनायी गयी है। जिसे अपनाकर प्रचारकों और विचारकों ने यहाँ के जन-समुदाय एवं वातावरण को उच्चस्तरीय बनाने में असाधारण सफलता अर्जित की थी, उसे पुनर्जीवित करके उद्देश्यमय तथा सार्थक बनाने का ठीक यही समय है।

युग धर्म के पालन के लिए, जन-मानस के परिष्कार के लिए, सघन जन-सम्पर्क के लिए सार्थक तीर्थयात्राएँ प्रारम्भ की जायें। आज की स्थिति में यह उपयुक्त लगता है कि जन-जागरण के लिए उत्साही युगशिल्पी, साइकिल टोलियाँ बनाकर निकलें। साइकिल यात्रा को पद-यात्रा के समकक्ष ही माना जा सकता है। समय की बचत भी होती है, इच्छित क्रम से सम्पर्क किया जा सकता है, कहीं भी सुविधापूर्वक पहुँचा और रुका जा सकता है।

साइकिल टोलियाँ अपने साथ छोटा प्रचार-साहित्य, दीवाल लेखन के साधन, कीर्तन के लिए ढपली-मंजीरे जैसे वाद्य रखें। गोष्ठी सत्संग, कीर्तन, सहगान, वाक्य-लेखन, स्लाइड-प्रदर्शन छोटे, दीप-यज्ञ जैसे माध्यमों से जन-जन में युग-चेतना का संचार करते चलें। कस्बों, देहातों तक में, देश के कोने-कोने में इस प्रक्रिया द्वारा नव-जागरण का संदेश पहुँचाया जाना सम्भव है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साइकिल यात्रा में तीन-चार की टोली पर्याप्त है। टोली में एक साइकिल पर लाउडस्पीकर रहे, तो और भी अच्छा हो। इसके लिए हलके और छोटी बैट्री से भी काफी समय तक चल सकने वाले एम्प्लीफायर तैयार कराये गये हैं, जो शान्तिकुञ्ज में उपलब्ध रहते हैं। माइक-हॉर्न, बैट्री, बैट्री-चार्जर सहित मूल्य लगभग ११ सौ रुपये पड़ता है। इसी में कैसेट-प्लेयर भी जुड़ा है। इससे संगीत, उद्‌बोधन, गोष्ठी, जयघोष आदि सभी में सुविधाएँ रहती हैं।

यह तीर्थयात्राएँ किन्हीं स्थूल देवालयों को लक्ष्य करके निकाली जायें, यह आवश्यक नहीं। रामचरितमानस में यह कहा गया है—"मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू" अर्थात् लोकमंगल के लिए संकल्पित सक्रिय सज्जनों का, लोक-सेवियों का समुदाय चलते-फिरते तीर्थराज की तरह होता है। महाकाल का, युग-शक्ति का संदेश स्वयं तीर्थ-चेतना का प्राण है। उसे गाँव-गाँव स्थापित करके सारे देश को पुनः तीर्थ रूप में जागृत-विकसित करना, उन यात्राओं का महान उद्देश्य है। इनका पुण्य-फल भी असाधारण होता है।

इन यात्राओं के कई प्रकार हो सकते हैं। निकटवर्ती क्षेत्रों के लिए प्रातः चलकर रात्रि तक वापस लौट आने का क्रम सबसे सुगम है। दिन का भोजन अपने साथ रखा जा सकता है। सत्तू, चूड़ा (पोहा) आदि जैसे आहार साथ लेकर कई दिन की यात्राएँ भी सुविधापूर्वक की जा सकती हैं। अधिक ठण्ड हो, तो ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों की जरूरत पड़ती है। वैसे पुआल बिछाकर कम्बल ओढ़ कर अधिकांश समय काम चल जाता है। जैसी परिस्थितियाँ हों, तदनुसार विवेकपूर्व यात्रा योजना बनायी जा सकती है।

यों साइकिल पर पर्याप्त सामान लेकर चलना सम्भव नहीं है। यदि साइकिल यात्रा का उत्साह उभरे, नियमित क्रम चले, तो एक ट्रालीवाला रिक्शा भी एक टोली के साथ रखा जा सकता है। उसमें सबके लिए आवश्यक वस्त्र, भोजन का सामान आदि रह सकता है। साइकिल यात्री आस-पास के गाँवों में सम्पर्क करते हुए बढ़ें और रिक्शा सीधा निर्धारित भोजन या रात्रि विश्राम के स्थल पर पहुँचकर पूर्वव्यवस्था बनाकर रखें। ऐसा करने से लम्बी यात्राएँ भी बड़े मजे में की जा सकती है।

कभी प्रचलन यह भी रहा है कि देवालयों, धर्मशालाओं का निर्माण विशालकाय धर्म-प्रचार केन्द्रों के रूप में ही किया जाता था। वहाँ निवास एवं भोजन की व्यवस्था रहती थी; ताकि प्रचारकों को कम-से-कम असुविधाओं का सामना करना पड़े। अब वह समय न जाने कब आयेगा। अब तो मनोकामना पूर्ण करने या सस्ती वाहवाही लूटने के उद्देश्य से ही धर्मस्थानों का निर्माण होते देखा गया है।

इस दिशा में शान्तिकुञ्ज ने २४०० प्रज्ञापीठों की स्थापना उत्तर-भारत के अनेकों स्थानों पर पिछले दिनों की थी; किन्तु दुर्भाग्य यही रहा कि पुरानी मान्यताओं को बदल सकने में वैसी सफलता नहीं मिली, जैसी मिलनी चाहिए। अब नये सिरे से नये ऐसे धर्म-संस्थानों को बनाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, जो तीर्थयात्रा आन्दोलन के साथ सघन रूप से जुड़े हुए रहें। जहाँ ठहरने की, भोजन की और लोगों को एकत्रित कर लेने की तीनों ही सुविधाएँ उपलब्ध रहें। अगले दिनों हर गाँव-कस्बों को ही नये धर्म-संस्थानों की आवश्यकता बड़ी संख्या में पड़ेगी। भले ही वे आर्थिक असुविधा की स्थिति में, झोपड़ी, खपरैल, टीनशेड, सघन वृक्ष के उद्यान के रूप में ही बना लिए जायें।

एक प्राचीन परम्परा यह भी थी कि हर घर से एक-एक रोटी संग्रह करके तीर्थयात्रियों की भोजन-व्यवस्था जुटा ली जाती थी। किसी पर अधिक भार न पड़ता था। बनाने-पकाने का झंझट भी नहीं रहता था और देने वाला यह अनुभव करता था कि उसने भारतीय धर्म में सर्वोत्तम स्तर के माने जाने वाले कार्य में सहयोग दिया। अब से जहाँ सम्भव होगा, वहाँ शान्तिकुञ्ज की साइकिल यात्राएँ उस परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करेंगी। जहाँ संभव न होगा, वहाँ अपने साथ भोजन-व्यवस्था रखने जैसा अन्य क्रम बनाये जा सकते हैं।

जहाँ भी प्रज्ञाकेन्द्र हैं, छोटे-बड़े सङ्गठन बन चुके हैं, वहाँ समय-समय पर तीर्थयात्राएँ निकालने का प्रयत्न चलना चाहिए। साधन जुटाना कठिन नहीं, साइकिलें माँगी भी जा सकती हैं। इसके लिए फरवरी से जून तक का और सितम्बर से दिसम्बर तक का समय भी ऋतु की दृष्टि से अनुकूल रहता है। देश का हर गाँव तीर्थ बने, हर क्षेत्र में जीवन्त युगान्तरीय चेतना उभरे, इसके लिए मनीषियों को गाँव-गाँव पहुँचने और जन-जन को ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विचारशील प्रतिभाशाली लोगों के सम्पर्क में आने का अवसर मिले, तो समझना चाहिए कि नवयुग के अवतरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया चल पड़ेगी।

जहाँ कोई बड़ी तैयारी नहीं है, पूर्व योजना बनाने तथा इस सम्बन्ध में अब तक प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला है; वहाँ पर सरल उपाय यह है कि अपने यहाँ से हरिद्वार चल पड़ने की योजना बनायी जाये। रास्ते में वाक्य-लेखन, दीप-यज्ञ, सहगान-कीर्तन, प्रवचन, साहित्य -विस्तार, स्टीकर लगाने आदि कार्य करते हुए शान्तिकुञ्ज पहुँचा जाये। वहाँ दो-चार दिन विश्राम एवं नये प्रशिक्षण का लाभ प्राप्त करते हुए, दूसरे रास्ते से घर वापस लौट जाया जाये; ताकि लौटने में अलग गाँवों से सम्पर्क सधे।

उसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि अपने इलाके की एक परिधि बनाकर, उसके हर गाँव के साथ सम्पर्क साधने का काम हाथ में लिया जाये और निर्धारित परिक्रमा पूरी की जाये। ईमारतों, मंदिरों, जलाशयों तक तीर्थयात्रा को सीमित करते हुए उस क्षेत्र को ही एक जीवन्त तीर्थ मान लिया जाये और उसकी अभ्यर्थना नवचेतना-संचार द्वारा की जाये।

अगले दिनों जनशक्ति ही समस्त समस्याओं का समाधान करेगी। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, पारिवारिक एवं अनीति-उन्मूलन, सत्प्रवृत्ति-संवर्धन जैसे कार्यक्रमों में जो लोग निरत होंगे, उन्हीं के हाथ सुदृढ़ और सुनिश्चित नेतृत्व अनायास ही जा पहुँचेगा। सेवा के बदले श्रद्धा उपलब्ध करने वाले ही संसार का नेतृत्व करते और महामानव बनते रहे हैं। इस साधना को सम्पन्न करने वाले स्वयं लाभान्वित होंगे और अपने सम्पर्क-क्षेत्र को भी लाभान्वित करेंगे। इसलिए नवयुग के आगमन की पुण्यवेला में तीर्थयात्रा के रूप में युगचेतना का अभिनव संचार किया जा रहा है।

यों झोलापुस्तकालय चलाना, ज्ञानरथ धकेलना, घरों में स्लाइड प्रोजेक्टर दिखाना, आदर्श वाक्य लेखन, स्टीकर्स लगाना, प्रचार उपकरण पेटी से छोटी-छोटी गोष्ठियाँ नियोजित करना, प्रभात फेरी स्तर का अलख जगाना, सामूहिक सत्संग के लिए दौड़धूप करना—यह सब भी प्रकारान्तर से पद-यात्रा, तीर्थ-यात्रा की ही आवश्यकता पूरी करते हैं; पर साइकिल टोली यात्रा का जो प्रभाव परिणाम देखने को मिलता है, उसकी बात ही दूसरी है।

युगचेतना—संचार के लिए सूत्रधारों ने इस यात्रा-प्रक्रिया पर बहुत जोर दिया है। हर जागृतात्मा को इसमें जुटने के लिए कहा जा रहा है। हजारों साइकिल यात्री निकल पड़ें और नवजागरण की तीव्र लहर सब ओर उभर कर आये, ऐसी आशा-अपेक्षा की गयी है। शान्तिकुञ्ज से ऐसी क्रान्तिकारी टोलियाँ निकालने की भी व्यवस्था बनायी गयी है।

सही और सशक्त तीर्थयात्रा

आज भी संस्कृति की सीता का अपने ढंग का अपहरण दुष्ट दशानन ने कर लिया है। त्रेता में ऐसी ही घटना घटित होने पर, सुग्रीव के नेतृत्व में वानरों का समुदाय अपना घर-बार छोड़ कर, उसे खोज-प्रयोजन के लिए लम्बी और कष्ट-साध्य यात्रा पर निकल पड़ा था। लक्ष्मण को शक्ति लगने पर प्राण-संकट जैसी स्थिति आ गयी थी। वैद्य ने संजीवनी बूटी लोने को कहा। वह कठिन काम हनुमान के अतिरिक्त और किसी के बल-बूते का न था। वे गये और बूटी की सही पहचान न होने पर पर्वत को ही उखाड़ लाये। आज भी हमें युग सृजन में काम आ सकने वाले प्राणवान अग्रदूतों की आवश्यकता है। उन्हें घर-घर खोजने के लिए परिव्राजकों के रूप में प्रवास पर निकल पड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा है नहीं।

प्रव्रज्या सनातन परम्परा

आयुर्वेद चिकित्सकों को भी गुणकारी, ताजी जड़ी-बूटियाँ ढूँढने—निकलना पड़ता है। उपयुक्त वस्तु मिल जाने पर ही वे रोगियों को प्राण संकट से बचा पाते हैं। पनडुब्बे समुद्र की गहराई में उतर कर सुविस्तृत क्षेत्र में खोज-बीन करते हैं, तब कहीं बहुमूल्य मोतियों को लेकर वापस लौटते हैं। साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ अपने-अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए परिव्रज्या पर निकलते थे। वे अपने ज्ञान की अनुभव की वृद्धि भी करते थे तथा अपने ज्ञान से मार्ग में मिलने वाले लोगों की समस्याओं का समाधान भी निकालते थे। ऐसे ही उद्देश्यपूर्ण जन-सम्पर्क प्रयोजनों के साथ जुड़ी हुई पद यात्राओं को प्राचीन काल में तीर्थयात्रा कहा जाता था।

बादल परिव्राजक हैं। तभी उनकी अनुकम्पा से प्यासी धरती को हरियाली उगाने का सौभाग्य मिलता है। सूर्य और चन्द्रमा वस्तुतः अनवरत परिव्रज्या में संलग्न रहने वाले परिव्राजक हैं। यदि वे अपने कर्त्तव्य-धर्म की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपेक्षा करें, तो प्रकाश के दर्शन न दिन में होंगे न रात में। पवन भी परिव्राजक है, वह यदि निरन्तर न बहता रहे, तो विषैली घुटन से ही जीवन का अन्त हो जाये, किसी को भी प्राण-तत्त्व का अधिग्रहण करते न बन पड़े।

फल जब पक जाता है तो अपने घर-पेड़ को छोड़ देता है और जिन्हें उसको नितान्त आवश्यकता है, उनके पास जा पहुँचता है। यदि फल ऐसा न करे, तो फलों में रहने वाले बीजों को नये पौधों के रूप में विकसित होने का ही अवसर न मिले और वृक्ष का संसार ही समाप्त हो जाये। नदियाँ जीवन भर प्रव्रज्या करती हैं तभी क्षेत्रीय स्तर पर जल की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यदि वे बहना बंद कर दें, तो किसी बड़े तालाब के रूप में वह पानी भरा रहे, कीचड़ या दलदल के रूप में अपने क्षेत्र की उपयोगिता समाप्त कर दे।

लोक-व्यवस्था का संतुलन बनाए रखने के लिए सदा ही धर्म-प्रचारकों की प्रव्रज्या जारी रहती है; पर जब विशेष समय आता है, तो उसे आपत्ति-धर्म जैसा महत्त्व दिया जाता है। सीता की खोज में वानर ही नहीं निकले थे, वरन् समय की विकृतियों को बुहारने के लिए अपने समय में भगवान बुद्ध ने स्वयं भी प्रव्रज्या का ही सहारा लिया था। उन्होंने अपने सभी प्राण-प्रिय शिष्यों को देश-देशान्तरों में धर्म-चक्र प्रवर्तन की क्रिया सम्पन्न करने के लिए, युगधर्म की माँग पूरी करने के लिए स्थानीय साधना-विहार छोड़कर प्रव्रज्या पर निकल पड़ने का आदेश दिया था और उसका पूरी तरह पालन हुआ था। कोलम्बस जैसे न जाने कितनों ने लम्बी जलयात्राओं पर निकलकर देशों और द्वीपों को खोज निकालने का ऐसा उद्देश्य पूरा किया था, जिसने मनुष्य समाज की परिस्थितियों में काया-कल्प जैसा सुयोग उपस्थित कर दिया।

युग धर्म के रूप में प्रव्रज्या

उच्च उद्देश्यों के लिए प्रव्रज्या पर निकलना तीर्थयात्रा कहा गया है और उसके पुण्य-फल का माहात्म्य वर्णन शास्त्रकारों और आप्त-वचनों ने किया है। मात्र मनोरंजन के लिए किये जाने वाले सैर-सपाटों को वह श्रेय नहीं मिल सकता। घंटों में सैकड़ों मील की चाल से चलने वाले वाहनों में बैठकर कुछ प्रतिमाओं का दर्शन अथवा जलाशयों में डुबकी लगाने का वर्तमान प्रचलन, तीर्थ-यात्रा समझा तो जाता है, पर वस्तुतः है वह पर्यटन मात्र ही। जिस प्रवास का कोई उच्चस्तरीय उद्देश्य न हो, उस भगदड़ को पुण्य-फलदायक किस आधार पर कहा जा सकेगा ?

इन दिनों तीर्थ-यात्रा स्तर की प्रव्रज्या के लिए समय निकालना और प्रवास में आने वाली कठिनाइयों का सामना करना, यही है वह उद्देश्य जिससे जुड़े रहने पर आत्म-परिष्कार और लोक-मंगल की दुहरी आवश्यकता पूरी होती है। वरिष्ठ जनों को युग प्रहरियों की तरह 'चरैवेति' का उद्‌बोधन अपनाना है और जहाँ कुछ गड़बड़ी है, वहाँ उड़न-दस्ते की तरह बिना बुलाये ही जा पहुँचना है। देवर्षि नारद ने अन्य सब साधनाओं की अपेक्षा मात्र आलोक वितरण के लिए भ्रमण करते रहने की प्रक्रिया को प्राथमिकता दी और वे उसी आधार पर भगवान के दरबार में बिना रोक-टोक कभी भी जा पहुँचने की असाधारण छूट के अधिकारी बने।

युग संधि की इस वेला में दूरदर्शी प्राणवान परमार्थियों को, प्रव्रज्या को महाकाल की प्रमुख माँग के रूप में समझते हुए उस निमित्त उसी प्रकार तैयार होना चाहिए, जैसा कि बिगुल बजते ही सैनिक कमर कस कर कूच के लिए बिना समय गँवाये तैयार होकर जाते हैं। प्रभात काल आते ही पक्षी घोसले छोड़कर उड़ानें भरने लगते हैं। ब्राह्ममुहूर्त, बिना सूर्योदय की प्रतीक्षा किये दिग्-दिगन्त को निकट भविष्य की सुखद संभावनाओं का आभास देता फिरता है।

प्रव्रज्या को युग-धर्म माना जाये। युग-परिवर्तन का पूर्वार्ध आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व बुद्धकालीन धर्मचक्र, प्रवर्तन के रूप में गतिशील हुआ था। बुद्ध की, धर्म की, संघ की शरण में जाने वाले समर्पितों ने, अपने प्रेरणा-स्रोत से परिभ्रमण पर निकल पड़ने का संदेश पाया और उन्होंने भारत ही नहीं समूचे एशिया को कुछ ही समय में उस दार्शनिक क्रान्ति के आँचल में लपेट लिया। भारत के उत्तर प्रदेश, बिहार, मणिपुर, असम, अरुणाचल आदि प्रान्तों को उसी रंग में पूरी तरह रंग दिया। श्रावस्ती, सारनाथ, कपिलवस्तु, लुम्बनी से लेकर एरोला-अजन्ता की गुफाएँ भी तत्कालीन युग-क्रान्ति की साक्षी देने के लिए अभी भी अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। निकटवर्ती देशों में नेपाल, भूटान, तिब्बत, वर्मा, कम्बोडिया, मलेशिया, इण्डोनेशिया, लंका, जावा, सुमात्रा आदि में बौद्ध धर्म प्रायः राज धर्म जैसा बन गया । चीन, कोरिया, मंचूरिया, मंगोलिया, जापान आदि देशों में शासन तथा समाज ने उसी प्रेरणा प्रवाह को अंगीकृत कर लिया था। मध्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एशिया के अफगानिस्तान, ईरान, अरब, रूस आदि के भग्नावशेष अभी भी साक्षी हैं कि वहाँ कभी विशालकाय बौद्ध विहार थे।

नालंदा और तक्षशिला के विश्वविद्यालय तो खण्डहर मात्र ही रह गये हैं, पर उन्हें देखकर जाना जा सकता है कि वे अपने समय में सुयोग्य परिव्राजकों को, अष्ट-धातु से भी कड़ी मानसिकता और प्रतिभा से भरपूर बनाने में कितने सफल हुए थे। इतिहास के पृष्ठ उलटने पर यह सभी तथ्य-आखों के सामने तैरने लगते हैं। इक्कीस मंजिल ऊँचा कम्बोडिया का 'अंगकोरवाट' खण्डहर मात्र रह जाने पर भी विश्व का प्रमुख पुरातत्व कौशल माना जाता है। इनसे पता लगता है कि उन दिनों सर्व-साधारण ने ही युगधर्म को अंगीकृत नहीं किया था, वरन् शासक, कलाकार, धर्मध्वजी भी अपनी उफनती श्रद्धा का प्रमाण देने के लिए व्याकुल हो उठे थे। अशोक, हर्षवर्धन जैसों की कथा-गाथायें किसी से छिपी नहीं हैं। चीन देश मे कुमारजीव ने और दक्षिण-पूर्व एशिया में मनस्वी कौडिन्य ने किस प्रकार दार्शनिक क्षेत्र में चक्रवर्ती स्तर की सफलताएँ अर्जित की थीं, यह भी सर्वविदित है।

इन पंक्तियों में प्रव्रज्या की तीर्थ यात्रा की ऐतिहासिक झलक-झाँकी दिखाई गई है। पुरातन काल में यहाँ के ऋषि-मनीषियों ने संसार के कोने-कोने में पहुँच कर किस प्रकार देश-संस्कृति का विस्तार किया था, यह भी रहस्य नहीं रहा है। भारत को "स्वर्गादपि गरीयसी" समझी जाने वाली देव भूमि का, यहाँ के निवासियों को "देवमानव" होने का, प्रचारकों को 'जगद्गुरु' कहलाने का श्रेय प्राप्त हुआ था।

इतिहास ने इन दिनों फिर नई करवट ली है। पुनर्जीवन एवं पुनरुत्थान स्तर का माहौल बना है। धर्मचक्र प्रवर्तन का उत्तरार्ध अब युग निर्माण आन्दोलन के रूप में नये सिरे से उदीयमान हुआ है। पूर्वार्ध में ढाई हजार साल पहले वाला छूटा हुआ काम, अब फिर उत्तरार्ध रूप में नये सिरे से, नयी योजनाओं के साथ प्रकट हुआ और प्रकाश में आया है।

प्रज्ञा परिजनों की संख्या प्राय: एक चौथाई करोड़ है। बुद्ध के धर्म-चक्र प्रवर्तन ने भी प्राय: इतने ही प्राणवानों को अनुप्राणित किया था। परिव्राजकों और परिव्राजिकाओं की संख्या उन दिनों प्राय: एक लाख थी। अपने मिशन ने भी यही संकल्प लिया है कि युग संधि की इस वेला में इक्कीसवीं सदी के आगमन से पूर्व, एक लाख सृजन शिल्पियों को कार्य-क्षेत्र में उतार दिया जायेगा और उनके जनमानस के परिष्कार एवं लोक-व्यवस्था में उच्च स्तरीय आदर्शवादिता का समावेश करने के लिए, उन्हें अपनी समूची सामर्थ्य झोंक देने के लिए सहमत-उल्लसित किया जायेगा। इतनी कठिन साधना के लिए तत्पर होने वाले ही भगीरथ की तरह गंगा को स्वर्ग से धरती पर उतरने के लिए बाधित कर सकते हैं।

युग बदलने में, अपने ढंग से, अपनी सामर्थ्य के अन्तर्गत, साम्यवाद और प्रजातंत्र की विचारधाराओं ने भी आश्चर्यजनक सफलताएँ पायी हैं। ईसाई मिशनों ने भी जो कुछ इन थोड़े ही दिनों में कर दिखाया है उसे नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। युग-निर्माण आन्दोलन के विगत कर्तृत्व पर दृष्टिपात करने वाले, उस प्रमाण-परिचय के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त करते हैं, कि इतना समर्थ तंत्र अगले दिनों उज्ज्वल भविष्य की संरचना वाले युग परिवर्तन में अपने ढंग की अनोखी भूमिका प्रस्तुत कर सके, तो इसमें किसी को भी आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

प्रस्तुत उत्तरदायित्व

अभिनव कार्यक्रमों में युग सृजन आन्दोलन ने प्रव्रज्या को प्रमुखता दी है। प्रस्तुत प्रज्ञापुत्रों को अपने-अपने क्षेत्र में जन-सम्पर्क के लिए पद-यात्राएँ छोटे या बड़े रूप में आरम्भ कर देनी चाहिए। आत्म-निर्माण परिवार-निर्माण और समाज-निर्माण के लिए इन्हीं दिनों क्या करना है उसका आलोक वितरण करने में किसी घर, गाँव, मुहल्ले को उपेक्षित नहीं रहने देना चाहिए। घर-घर अलख जगाने का संकल्प अधूरा नहीं रहना चाहिए।

यह कार्य "दीपयज्ञो" को निमित्त-माध्यम मानकर किया जा रहा है। इन आयोजनों को युग-चेतना का प्रतीक मान कर चला जा रहा है। इनमें उपस्थित होने वाले भावनाशीलों में से जो भी प्रतिभावान दीख पड़ें, उन्हें संगठित करने के लिए प्रज्ञामंडलों का गठन कर देना चाहिए और उनके साप्ताहिक सत्संग-उपक्रम ठीक प्रकार चलते रहें, उसकी सुनियोजित व्यवस्था बना देनी चाहिए। इसी प्रकार इनके साथ अनेकों उन रचनात्मक क्रिया-कलापों को जोड़ दिया गया है, जो उज्जवल भविष्य की संरचना के लिए अनिवार्य रूप में आवश्यक हैं। इन कार्यक्रमों में नारी जागरण का विशेष महत्त्व है;

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्योंकि उससे विश्व की आधी जनसंख्या को अबला के स्तर से ऊँचा उठाकर शक्ति की अधिष्ठात्री के उच्च शिखर तक पहुँचाया जाना है ।

युग निर्माण मिशन के प्राणवान प्रज्ञा पुत्रों के जिम्मे यह कार्य सौंपा जा रहा है कि वे अपने प्रभाव क्षेत्र में उन गतिविधियों को चलाते रहें, जो अब तक चलती रहीं हैं और आगे भी चलाई जानी हैं । स्थानीय क्षेत्र में काम करने वालों के लिए पद-यात्रा के माध्यम से प्रभाव क्षेत्र के साथ सम्पर्क साधते रहने के लिए कहा गया है । झोला-पुस्तकालय और ज्ञानरथ घुमाने रहना इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं ।

दायरा कुछ मील आगे तक बढ़ाना है । निकटवर्ती दस-पाँच गाँवों में अलख जगाने का दायित्व वहन करने का साहस उभरे, तो फिर साइकिल प्रवास समय-समय पर नियोजित करते रह सकते हैं । दीवारों पर आदर्श वाक्य लेखन, सहगान-कीर्तन और युग साहित्य का प्रचार साइकिल यात्री करते रहें, तो इतने भर से देखने में छोटा, किन्तु परिणाम में बड़ा कार्य हो सकता है ।

शान्ति कुंज की प्रचारक टोलियाँ अब तक जीप-गाड़ियों द्वारा बड़े दीप यज्ञों में पहुँचती रही हैं । अब उस आवश्यकता की पूर्ति आस-पास के लोग ही मिल-जुलकर कर लिया करें, तो उनका परावलम्बन समाप्त होगा और स्वावलम्बन के सहारे नया साहस मिलेगा । नया अनुभव होगा और एक दर्जा ऊपर चढ़ जाने का सुयोग बनेगा ।

शान्तिकुंज की प्रचारक जीव-गाड़ियाँ भी सीमित क्षेत्र में ही घूमते रहने की अपेक्षा आगे कदम बढ़ायेंगी और नया क्षेत्र अपने प्रभाव-परिकर में सम्मिलित करेंगी । अब तक प्राय: हिन्दी भाषी क्षेत्रों में ही प्रधान रूप से नव-निर्माण का कार्य होता रहा है । गुजरात को छोड़कर अन्य भाषाई क्षेत्रों में यह आलोक नाम-मात्र के लिए ही पहुँचा है । शेष १४ भाषाओं या दायरे वाला क्षेत्र अभी एक प्रकार से अछूता ही पड़ा है । फिर युग परिवर्तन की नवचेतना का विस्तार तो समस्त संसार में होना है । अपनी परम्परा "वसुधैव कुटुम्बकम्" की रही है, फिर संसार के अन्य क्षेत्रों को कैसे उपेक्षित छोड़ दिया जायेगा ? कुछ हलचलें प्रवासी हिन्दू भारतीयों में ही पिछले दिनों चलती रही हैं । अब भाषाओं, सम्प्रदायों और देशों की परिधि में युग-चेतना को सीमित नहीं रखा जा सकता । उसे विश्वव्यापी बनाने की अपनी योजना प्राय: इस स्तर तक सोची जा चुकी है कि उसे कार्य रूप में परिणित करने में कठिनाइयाँ भले ही आवें, पर उसे असम्भव मानने की निराशा कहीं भी किसी में भी दृष्टिगोचर न हो ।

नये निश्चय के अनुसार शान्ति-कुञ्ज की दस प्रचार टोलियाँ फिलहाल हरिद्वार से सभी दिशाओं में इसी वर्ष भेजना आरम्भ किया जा रहा है । सुविधाएँ जैसे-जैसे हस्तगत होती जायेंगी, वैसे-वैसे उन्हें अधिक संख्या में बनाया और अनेक देशों-सुदूर क्षेत्रों तक फैल जाने के लिए भेजा जाना आरम्भ हो जायेगा ।

यों हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में अधिकांश भाग ऐसा है, जहाँ युग-चेतना का उल्लास-उमँगाना शेष है । प्रयत्न यह किया जाना है कि निकटवर्ती वर्तमान प्रभाव क्षेत्र की सम्पूर्ण परिधि में, नव-सृजन के लिए आवश्यक जानकारी पहुँचाने से लेकर उमंगें उभारने तक का कार्य पूरा कर लिया जाये । जिस-तिस क्षेत्र में जहाँ-तहाँ छिटपुट काम करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि एक क्षेत्र को जागृत करते चला जाये, साथ ही अपरिचित क्षेत्रों में प्रवेश भी करते चला जाये ।

भारत को तो अगली शताब्दी में नेतृत्व करना है, इसलिए उसे तो उस स्थिति में होना ही चाहिए कि अपना घर सँभालने के कार्य को प्रमुखता देते हुए, पड़ोस को साफ-सुथरा और समुन्नत बनाने के कार्य को भी हाथ में लिया जाता रहे । युग संधि के इस दूसरे वर्ष में प्रचारकों की टोलियाँ बुद्ध-परिव्राजकों का अनुसरण करते हुए सुदूर क्षेत्रों को प्रयाण करेंगी और जिस क्षेत्र में अब तक काम किया जाता रहा है, उसी तक सीमित न रहेंगी । अपने काम को इस अन्दाज से आगे बढ़ाया जाना है जैसे कि वामन अवतार ने कुछ ही डगों में सारे संसार को नाम लिया था । मत्स्यावतार की कथा में भी एक छोटे कमण्डल में पैदा हुई मछली विस्तार करते-करते समूचे समुद्र पर छा गयी थी ।

इस संदर्भ में शान्ति कुञ्ज का सुविस्तृत प्रव्रज्या कार्यक्रम, अभिनव योजनाओं के साथ हाथ में लिया जा रहा है और उसे बढ़ाते-बढ़ाते समूचे विश्व की परिधि में कैसे पहुँचा जाये, इस पर विचार-चिन्तन चल रहा है । कार्यक्रम बन रहा है और साधन जुटाने, माध्यम उभारने के लिए आवश्यक ताना-बाना बुना जा रहा है ।

इस वर्ष वर्तमान कार्यकर्त्ताओं को अपने-अपने समीपवर्ती कार्य-क्षेत्र स्वयं सँभालने की तैयारी करनी चाहिए । इसके लिए दो कार्य ऐसे हैं, जिन्हें बिना समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गँवाये अभी से जारी रखना चाहिए। एक यह, कि जो प्रतिदिन समयदान का न्यूनतम दो घंटे जितना अनुदान नित्य दे सकने की स्थिति में हों, उन्हें ढूँढ-ढूँढकर शान्ति कुञ्ज के युगशिल्पी सत्रों में एक माह रहने के लिए भेजा जाये। जिनके पास समय कम हो, उन्हें भी यह शिक्षण किसी प्रकार पूरा कराया जा सकता है। ऐसे प्रशिक्षित युग सृजेता जिन क्षेत्रों में बड़ी संख्या में होंगे, वहाँ आलोक वितरण के क्रियाकलापों में शिथिलता न आने पायेगी।

दूसरा कार्यक्रम यह है कि अब तक जो लोग मिशन के सम्पर्क में आ चुके हैं, उन्हें बैटरी चार्ज कराने के लिए नौ दिवसीय वर्तमान साधना सत्रों में नये सिरे से सम्मिलित होना चाहिए; ताकि वे युग संधि पुरश्चरण में सम्मिलित होने की एक शर्त पूरी करने के अतिरिक्त, इतनी चेतना नये सिरे से प्राप्त कर सकें, कि इस महान मिशन के सच्चे सदस्य होने की कसौटी पर कसे जाने पर खरे सिद्ध हो सकें। शान्ति कुञ्ज में उपरोक्त दोनों सत्र नयी तैयारी के साथ आरम्भ किये गये हैं। इनमें सम्मिलित होने के लिए सभी क्षेत्रों से ऐसे व्यक्ति भेजने चाहिए, जिनसे कुछ पौरुष प्रदर्शित करने की आशा हो। बूढ़े, अनियंत्रित, रोगी, छोटे बच्चों को, ऐसी भीड़ को सत्रों में नहीं ठेल देना चाहिए, जिनकी रुचि मात्र सैर सपाटे में हो, जो यहाँ आकर अनुशासन बिगाड़ते और जिनके साथ आते हैं, उनके लिए भी कुछ सीख सकना असम्भव कर देते हैं। मात्र चुने हुए शिविरार्थियों की ही आवश्यकता समझी जा रही है और आवश्यक भीड़ पर रोक-थाम अधिक कड़ाई से लगाई जा रही है।

दीप यज्ञों का उपक्रम तो अनवरत रूप से आगामी दस वर्षों तक चलता रहेगा। उन्हें विशाल रूप न देकर ऐसे छोटे-छोटे खण्डों में सम्पन्न करना चाहिए, जिनमें उपस्थिति १००-२०० से अधिक न हो। ऐसा सम्पर्क घनिष्ठता बढ़ाता है, परिचय को सुदृढ़ करता है और ऐसे प्रयत्न उत्पन्न करता है जो आगे चल कर मिशन के कार्यों में काम आते हैं। बड़े कार्यक्रम में धूम-धाम भी होती है और उत्साह भी उभरता है। अनेक व्यक्तियों की बातें सुनने का अवसर भी मिलता है; पर जैसे ही भीड़ें चली आती हैं, उसका परिणाम शून्य रह जाता है। इसलिए बड़े आयोजनों के फेर में पड़ने की अपेक्षा ईसाई मिशनों की रीति-नीति ही अपनानी चाहिए और घर-घर जाकर, सम्पर्क बनाने की सफल सिद्ध हुई प्रक्रिया को हस्तगत करना चाहिए।

अच्छा हो, अब बड़े दीपयज्ञ अपवाद रूप में ही सम्पन्न हों और जहाँ तक हो सके, शान्ति कुञ्ज की प्रचार-टोलियों को व्यापक कार्य क्षेत्र में ही उस नये और दूरवर्ती क्षेत्र में प्रवेश करने देना चाहिए, जिनके लिए कि उन्हें तैयार किया गया है और जो अत्यन्त दूरगामी सम्भावनाओं से भरा-पुरा भी है।

प्रज्ञा परिजनों की प्रव्रज्या

हिन्दू धर्म वर्णाश्रम धर्म है। इसमें चार वर्ण और चार आश्रम हैं। इन सब का मेरुदण्ड है—वानप्रस्थ आश्रम, जिसका स्वरूप है— निजी लोभ मोह का परित्याग करके लोक-मानस के लिए परिव्राजक की तरह घर-घर धर्म-चेतना का अलख जगाना और गाँव-गाँव युग-चेतना का आलोक वितरण करना।

गृहस्थ बनाने की क्षमता और दायित्व निबाहने की जिम्मेदारी यदि संभल सके तो वह प्रचलन भी बुरा नहीं है। स्त्री, पुरुष की चौकीदारी तथा सेवा करती है और पुरुष, स्त्री की। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के सहायक होकर सामान्यजनों की तरह जीवनयापन करते हैं. पेट भरते और बच्चे जनते हैं।

किन्तु जिनके मन में आत्म-कल्याण की उत्कृष्ट अभिलाषा हो तथा समाज की, विश्व की दुर्गति के लिए दर्द उठता हो, उनके लिए उचित यही है कि इस युग-संधि की बेला में अपना जीवन उच्च आदर्शों के लिए समर्पित करें।

किशोरावस्था पूरी होते-होते शंकराचार्य, विवेकानन्द, दयानन्द कुमारजीव की तरह अविवाहित रहकर अपने को वानप्रस्थ परम्परा निर्वाह के लिए समर्पित करें।

जिनके विवाह हो चुके हैं, वे आरम्भ में ही कुछ बच्चे पैदा करके ढलती आयु को परमार्थ के लिए समर्पित करने की तैयारी करें। यदि पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह हो, तो पच्चीस-तीस वर्ष गृहस्थ के लिए लगाकर ५०-५५ वर्ष की आयु में बच्चों को स्वावलम्बी बनाया जा सकता है और धर्मपत्नी को गृह व्यवस्था संभालते रहने के लिए छोड़कर जीवन का उत्तरार्द्ध परमार्थ के लिए लगाने की नीति अपनायी जा सकती है, जिनका छोटा गृहस्थ है वे अपने स्त्री-बच्चे को लेकर शान्ति कुञ्ज आ सकते हैं। अपनी संचित सम्पदा को बेचकर बैंक में जमा कर सकते हैं और उसके ब्याज से काम चला सकते हैं, जो कमीं पड़े उसे शान्ति कुञ्ज से लेते रह सकते हैं। कुछ लोगों के पास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने निजी साधन कुछ नहीं होते और कुटुम्ब छोटा है, भविष्य में भी छोटा ही रखना है तो भी शान्ति कुञ्ज में कार्य कर ब्राह्मणोचित निर्वाह प्राप्त करने के लिए आया जा सकता है और न्यूनतम छः महीने का आरम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त करके भविष्य के लिए परिव्राजकों की तरह प्रवास में जाया जा सकता है ।

मिशन की २४०० शक्तिपीठें, प्रज्ञापीठें अपनी निजी इमारतों वाली हैं। प्रथम दस हजार प्रज्ञा संस्थान स्वाध्याय मण्डल ऐसे हैं, जिनमें निज की इमारत तो नहीं हैं पर वे ठहरने का, भोजन का, प्रबन्ध निश्चित रूप से कर सकते हैं ।

इन सभी शाखा-प्रशाखाओं में लगनशील, सेवाभावी, परिश्रमी कार्यकर्ताओं की आवश्कता पड़ती है । जहाँ-तहाँ साइकिल पदयात्री के रूप में तीर्थ-प्रवास के कार्यक्रम भी चलते रह सकते हैं । इनमें जाकर अपना डेरा डाला और समपीवर्ती गाँवों का मण्डल बनाकर उनसे जन-सम्पर्क और आलोक वितरण के लिए जाकर रहा जा सकता है ।

शान्ति कुञ्ज के पुराने कार्यकर्ता कार्यक्षेत्र को संभालने के लिए बाहर भेजे जाते हैं और नयों को यहाँ की गतिविधियों में खपाकर प्रशिक्षित किया जाता रहता है । इनमें से जिनकी अधिक उपयोगिता समझी जाती है, उन्हें यहाँ रोक लिया जाता है। शेष को बाहर प्रज्ञापीठों, प्रज्ञा-संस्थानों में रह कर जन-जागरण में संलग्न रहने के लिए भेजा जाता है ।

शान्ति कुञ्ज से सम्बन्धित वानप्रस्थी एक घंटा नित्य अपनी प्रज्ञायोग तथा गायत्री जप की साधना करते हैं और शेष समय लोक-मंगल के लिए लगाते हैं । अपनी संस्था में ऐसा नहीं है, कि पूजा की आड़ में सारा समय हरामखोरी या मटरगश्ती में लगया जाये । प्राचीनकाल में भी ऐसा ही था । साधु-ब्राह्मण उपासना सीमित समय तक करते थे । चरित्र को आदर्श और अनुकरणीय बनाने की जीवन साधना पर हर घड़ी कड़ी नजर रखते थे और नित्यकृत्यों से बचा हुआ न्यूनतम छः घंटा समय जन कल्याण के लिए लगाते थे । जन-कल्याण की कितनी ही प्रवृत्तियाँ इन दिनों मिशन ने हाथ में ली हैं, जिनमें प्रौढ़ शिक्षा और व्यायामशाला मुख्य हैं। लोक-शिक्षण के लिए अकेले होने पर प्रज्ञापुराण की कथा और मण्डली हो तो युग कीर्तन भी साथ-साथ चलाया जाता है । झोला पुस्तकालय, टेपरिकॉर्डर, स्लाइड प्रोजेक्टर, दीवारों पर आदर्शवाक्य लेखन के अतिरिक्त कार्यकर्ताओं का जन्मदिन मनाना जैसे कितने ही कार्यक्रम हैं, जिनमें कर्ता का मनोरंजन भी होता रहता है, योग्यता भी बढ़ती रहती है, यश-गौरव भी मिलता है और पुण्य परमार्थ भी सधता है ।

पच्चीस जीप गाड़ियों में चार-चार महीने की टोलियाँ दो बार भेजी जाती हैं । इसके लिए वे लोग भी तैयार हो सकते हैं, जिनका कंठ मुधर, संगीत की ओर रुझान और प्रवचन का अभ्यास है । यह सभी प्रक्रियायें एक महीने के युग-शिल्पी सत्रों में सिखा भी दी जाती है । ऐसे लोग यदि गृहस्थ हैं तो उनके परिवार-पोषण का खर्च घर भेजते रहने का प्रबन्ध भी हो जाता है ।

इस दिशा में कदम बढ़ाने के लिए सभी भावनाशील परिजनों से अनुरोध किया जाता है और आशा रखी जाती है कि वे इस विषम बेला में स्वार्थ पर अंकुश लगाकर परमार्थ की दिशा में चल पड़ने का साहस दिखायेंगे ।

एकाकी प्रयासों से भी बहुत कुछ हो सकता है

शिविर-श्रृङ्खला और तीर्थयात्रा संचालन के दो कार्य आवश्यक तो हैं, पर इनके लिए दूसरे अन्य साथियों का सहयोग आवश्यक है । वानप्रस्थ एकाकी अपने बल-बूते इन्हें नहीं चला सकते । योजना से परिचित लोग जहाँ हों—जिनमें इस प्रकार की सेवा-भावना तथा विचारणा पहले से ही विद्यमान हो, उनका सहयोग मिलने पर उपरोक्त दोनों कार्यों का आधार बन सकता है । किसी ऐसे क्षेत्र में जाना पड़े, जहाँ मिशन का पहले से ही प्रवेश न हो पाया हो वहाँ इन कार्यों को करना अपरिचित वानप्रस्थ के लिए कठिन होगा ।

आवश्यक नहीं कि सदा सहयोगी और पूर्व परिचित मिलते ही रहें, फिर जहाँ पहले से ही हलचलें मौजूद हैं, वहीं स्वयं भी जाकर फिट हो जाना किसी प्रतिभाशाली धर्म प्रचारक के लिए कोई बड़े गौरव की बात नहीं है । बने-बनाये सजे-सजाये स्टेज पर जा बैठना और माइक पकड़ कर लम्बी-चौड़ी बातें हाँकने लगना आज एक सामान्य व्यसन हो गया है । ऐसी सस्ती नेतागीरी के लिए हर गली-मुहल्ले में प्यासे फिरने वाले महत्वाकांक्षी लोग मिल जायेंगे । इसी धन्धे को अपने लोग भी अपना बैठें तो फिर प्रतिभा की परख कहाँ होगी? वस्तुतः श्रेय वक्ताओं का नहीं, आयोजकों और व्यवस्था करने वालों का होता है । पसीना तो उन्हें ही बहाना पड़ता है—वजन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो उन्हीं पर पड़ता है—सूझ-बूझ और दौड़धूप उन्हीं की रहती है। लगातार समय देकर—साथी, सहयोगी समेट कर—साधन जुटा कर जिसने व्यवस्था बनाई है—साराहना उसी की जानी चाहिए। कर्मठता तो उसी की ही फलवती हुई।

वानप्रस्थों को बकवासी वक्ता मात्र बनने के लिए—इतना त्याग करने और साहस जुटाने के लिए बाध्य नहीं किया गया है। यह काम करने के लिए तो खुशामद से—प्रशंसा, प्रतिष्ठा का प्रलोभन देकर अथवा मेहनताना देकर किसी से भी, कहीं भी कराया जा सकता है। यह सस्ता सौदा है। इसके लिए न तो हमें इतना आग्रह, अनुरोध करने की आवश्यकता थी और न किसी की सामान्य क्रम-व्यवस्था उजाड़ने का परामर्श देने की। जिस प्रयोजन के लिए लगनशील और भावनाशील लोगों को आमन्त्रित किया गया है, वह यह है कि अपने प्रकाश को लेकर वे अँधेरे में प्रवेश करें और वहाँ उजाला करके दिखायें। इसी स्तर की प्रतिभा का परिचय देने के लिए तो उन्हें विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है—ऐसा ही आत्म-बल उत्पन्न करने के लिए उनसे तप-साधना करायी जाती है।

सदा ऐसे ही अवसर न रहें, जब पूर्व विनिर्मित शाखा सङ्गठनों में जाकर वहाँ इन्स्पेक्टर, अफसर की तरह आदेश-परामर्श देने भर की ड्यूटी पूरी करके वापिस चले आवें। वस्तुतः शाखाओं में भी उन्हें स्वयं आगे बढ़कर हर काम स्वयं करने और स्थानीय कार्यकर्त्ताओं में उस तरह की प्रवृत्ति, हिम्मत एवं क्षमता उत्पन्न करने के लिए भेजा जायेगा। जो कमियाँ उनमें रही हैं, उन्हें वे अपनी प्रतिभा से पूरा करें। इसलिए प्रस्तुत शाखा-सङ्गठनों में भी उन्हें आयोजकों का आयोजक ही तो बनाकर भेजा जा रहा है। अन्यान्य क्षेत्रों में भी सदा उन्हें यही करते रहना होगा।

दो वानप्रस्थों का जोड़ा रहना तो अच्छा है। उसमें कई प्रकार की सुविधा रहती है। आवश्यक नहीं कि निर्धारित दो व्यक्ति ही सदा साथ रहें। वे बदले भी जा सकते हैं, ताकि प्रकृति भिन्नता और योग्यता सम्बर्धन का कई-कई साथियों को लाभ मिलता रहे। इन जोड़ों के सामने स्वतन्त्र रूप से अजनबी क्षेत्रों में जाने और वहाँ जन-सम्पर्क स्थापित करने एवं मिशन की जड़ें जमाने का कार्य भी करना होगा। प्रचार-कार्य के कितने ही ऐसे माध्यम हैं, जो नये स्थानों में पहुँचने पर भी समुचित आकर्षण उत्पन्न कर सकते हैं और जन-सम्पर्क का पथ प्रशस्त कर सकते हैं।

स्लाइड-प्रोजेक्टर इसी प्रकार का माध्य है। इसमें रात्रि के समय बड़े साइज के रंगीन पर्दे पर दिखाये जाते हैं। दो-दो मिनट हर चित्र की व्याख्या करते चलें तो डेढ़ घण्टे का प्रवचन ४०-५५ स्लाइडें बदलते रहने से पूरा हो जाता है। व्याख्या तीन मिनट की करदी जाये तो उतने ही चित्रों का प्रदर्शन करते हुए दो घण्टे तक प्रवचन चल सकता है। यह सिनेमा तो नहीं है और न उसके साथ इसकी तुलना की जा सकती है, पर इतना जरूर है कि व्याख्या और प्रवचन के साथ इन चित्रों की संगति ठीक बैठ जाती है और भाषण अधिक आकर्षक एवं रोचक बन जाता है। स्त्री-बच्चे, शिक्षित-अशिक्षित इन चित्रों के माध्यम से प्रतिपादित विषय को अच्छी तरह हृदयङ्गम कर लेते हैं। जहाँ बिजली नहीं है, वहाँ इसमें फिट की हुई गैस बत्ती से उतना ही प्रकाश उत्पन्न किया जा सकता है। बैटरी में, बदलने और चार्ज करने का झंझट था, इसलिये 'युग-निर्माण योजना' ने अपने ढङ्ग की ऐसी मशीनें बनाई हैं, जो गैस के पैट्रोमैक्स की तरह जलती हैं। मिट्टी का तेल तो हर जगह मिल जाता है। इसकी १२० स्लाइडों का पूरा सैट है, इसमें तीन दिन प्रवचन चल सकते हैं और मिशन की प्रायः सारी सारभूत रूपरेखा उतने से ही समझाई जा सकती है। दो वानप्रस्थ एक मशीन लेकर निकल पड़ें। सबेरे स्वयं शङ्ख-घड़ियाल बजाते हुए गाँव के गली-मुहल्लों में रात को अमुक स्थान पर इस प्रदर्शन प्रवचन का ऐलान कर दें। रात को नियत स्थान पर स्वयमेव सारे गाँव की भीड़ इकट्ठी हुई मिलेगी। अपरिचित स्थानों में भी यह प्रयोग सफलता पूर्वक चलता रह सकता है। इस माध्यम से स्थापित हुआ जन-सम्पर्क मिशन की जड़ जमाने और परिचय-क्षेत्र बढ़ाने में अच्छी तरह काम आ सकता है।

दूसरा ऐसा ही माध्यम है 'सत्यनारायण व्रत-कथा'। 'युग-निर्माण योजना' ने पुरानी कथा का कथा-प्रसङ्ग तो ज्यों का त्यों रहने दिया है, **पर उसके मध्यवर्ती सम्वादों के श्लोक बदल दिये हैं।** इस प्रकार वह कथा ऐसी बन गई है कि मिशन की पूरी विचारधारा इस कथानक को सुनाने के साथ पूरी तरह मिलाकर कही जा सकती है। बीच-बीच में संस्मरणों, उद्धरणों, तथ्यों, घटना-क्रमों, दृष्टान्तों एवं उप-कथाओं का सम्मिश्रण करते चलने से वह इतनी रोकच एवं हृदयग्राही हो जाती है कि स्वल्पशिक्षित अथवा व्यस्त भी पूरे मनोयोग से उसे सुनते हैं। पुरानी कथा घिसी-पिटी, सैकड़ों बार की सुनी हुई, हर बार दुहराई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती है। उसमें सामान्यतया कुछ आकर्षण नहीं होता। सुनने का पुण्य-फल मिलने की बात सोचकर ही लोग किसी प्रकार ऊँघते-अलसाते उसे सुन लेते हैं। प्रेरणा की दृष्टि से उसमें अक्सर छूँछ ही हाथ लगती है। पर इस संशोधित, परिवर्तित कथा में सब कुछ प्रेरक, महत्वपूर्ण एवं आकर्षक है। उसके कहने की कितनी ही शैलियाँ शिक्षा-अवधि में वानप्रस्थों को सिखा दी जाती है। अशिक्षितों, स्त्री, बच्चों से लेकर विद्वान् मनीषी एवं तार्किक नास्तिकों के सामने विभिन्न शैलियों से इस कथा को इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे इस प्रतिपादन को मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहें। साथ ही वे प्रेरणा लेकर विदा हों, जिन्हें यह मिशन लोक-मानस में हृदयङ्गम कराने के लिए प्रयत्नशील है।

दो वानप्रस्थों का जोड़ा यदि 'सत्यनारायण व्रत-कथा' कहने का क्रम अपनाकर चल पड़े तो वह प्रचार-यात्रा अजनवी-अपरिचित स्थानों में भी भली प्रकार चलती रह सकती है। जहाँ अधिक उत्सुकता पाई जाये, वहाँ एक दिन में एक अध्याय विस्तार पूर्वक कहते हुए उसे पाँच दिन तक बड़ी अच्छी तरह खींचा जा सकता है और वह भागवत-सप्ताहों से कहीं अधिक रोचक, आकर्षक एवं प्रेरक प्रसङ्ग बन सकता है। उस पाँच दिन के आयोजन में सुनने वालों के गले वह सब कुछ उतारा जा सकता है, जिसके लिए अपना नव-निर्माण का अभियान चल रहा है।

कण्ठ में थोड़ी मधुरता हो और एक-दो सामान्य ताल वाद्य बजाना आता हो तो कीर्तन की विधि-व्यवस्था भी भाव-भरा वातावरण यों उत्पन्न कर सकती है। गला बिलकुल ही बेसुरा हो, तब तो कठिन है, अन्यथा थोड़ा भी ताल-मेल बिठाया जा सके तो एक-तारा, खरताल, मजीरा, चिमटा, खञ्जरी जैसे सरल वाद्य-यन्त्रों के सहारे आसानी से सह-गान के रूप में 'कीर्तन' का आयोजन हो सकता है। साथ देने के लिए स्थानीय गाने-बजाने वालों का भी थोड़ा सहयोग मिल जाये, हारमोनियम-तबला आदि की व्यवस्था वे लोग बनादें तो बात और भी अच्छी तरह बन जायेगी। वानप्रस्थ शिक्षा-काल में यह भी प्रयत्न किया जाता है कि कीर्तन की ध्वनियों पर गायन सिखाया जाये। गले को सधाने का अभ्यास कराया जाये। थोड़े प्रयत्न से सीखे जा सकने वाले उपर्युक्त वाद्यों का सामान्य अभ्यास कराया जाये। ऐसे गायन भी तैयार कराये गये हैं, जिनकी ध्वनि तथा शैली तो कीर्तन की हो, पर उनमें मिशन के सभी तत्वों का भली प्रकार समावेश रहे। बीच-बीच में थोड़ी व्याख्या करते चलने से बात और भी अच्छी तरह उभर आती है। सम्मिलित होने वाले भाव उल्लास का आनन्द लेते हुए, नव-निर्माण की वे प्रेरणाएँ भी उपलब्ध करते हैं, जो युग की उलझनों को सुलझाने की दृष्टि से अभीष्ट और आवश्यक हैं।

'सत्यनारायण-कथा' की तरह 'रामायण-कथा' के भी एक दिवसीय या अनेक दिवसीय कार्यक्रम रखे जा सकते हैं। गला यदि दोहा-चौपाई गाने में साथ देने लगे और उनकी एक-दो ध्वनियाँ सामान्य वाद्य-यन्त्रों पर फिट करली जायें तो यह थोड़ा-सा परिश्रम वानप्रस्थों को अच्छा रामायण कथा-वाचक बना सकता है। श्रद्धा और प्रेरणा की यह सम्मिलित प्रक्रिया अपने ढङ्ग की और भी अनूठी रहती है।

इसे अतिरिक्त एक क्रम ऐसा भी है, जिसमें कुछ भी कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं है। गेरु या कालोंच में थोड़ा गोंद मिलाकर उसकी लाल या काली स्याही बनाई जा सकती है। बुस अथवा लकड़ी में कपड़ा लपेट कर बनाई हुई कलम से दीवारों पर आदर्श-वाक्य लिखते हुए नियत संख्या अथवा समय पूरा न होने तक आगे बढ़ते हुए चला जा सकता है। यह कार्य भी किसी सभा-सम्मेलन से कम नहीं है। उस रास्ते निकलने वाले असंख्य लोग उन प्रेरक-वाक्यों को पढ़ते रहेंगे और मस्तिष्क में अभिनव स्पन्दन उत्पन्न हुए अनुभव करते रह सकते हैं।

यह माध्यम ऐसे हैं, जिन्हें अपरिचित क्षेत्रों में आरम्भ किया जा सकता है, पर वह अपरिचित स्थिति दो-चार दिन में ही समाप्त हो जाती है और सम्पर्क में आने वाले-बात सुनने वाले-कार्य पद्धति की जानकारी प्राप्त करने वाले व्यक्ति सामान्य परिचित ही नहीं बनते, वरन् घनिष्ट एवं सहयोगी के रूप में परिणत होते हैं। पतनोन्मुख पशु प्रवृत्ति ही आकर्षक होती है। कामुकता जैसी कुत्साओं में ही लोग रस लेते हैं। यह मान्यता इतनी ही मात्रा में सही है कि उन्हें लोक-रुचि के साथ मिलाकार प्रस्तुत किया जाता है। यदि सत्प्रवृत्तियों और सद्भावनाओं को भी उपयुक्त ढंग से जनता के सामने उपस्थित किया जाय तो प्रतीत होगा कि मनुष्य के भीतर रहने वाला देव-तत्व अभी पूर्णतया मरा नहीं है। उसे सींचा और उभारा जा सकता है। सत्प्रयोजनों की प्रेरणा देने वाले यदि लोक-मानस को समझते हैं, इसे ठीक तरह स्पर्श करना जानते हैं तो यह प्रत्यक्ष देखा जा सकेगा कि जनता ने सत्प्रवृत्तियों को अपनाने और उनमें सहयोग देने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

का द्वार बन्द नहीं किया है। इस दिशा में प्रयत्न करने वालों के समर्थन, प्रोत्साहन की भी कमी नहीं रहती। कमी केवल प्रस्तुत-कर्त्ताओं के शिथिल मनोबल की रहती है। यदि प्रचारकों की निष्ठा और चेष्टा प्रखर हो तो कोई कारण नहीं कि जन-मानस को पतन से मोड़कर उत्थान की दिशा में नियोजित करने में सफलता प्राप्त न की जा सके। गाँधी और बुद्ध के प्रयोग हमारे सामने हैं। गुरु गोविन्दसिंह और समर्थ गुरु रामदास को निराश एवं असफल नहीं रहना पड़ा है। जनता का उन्हें समुचित सहयोग उपलब्ध हुआ है। हमारा उत्साह और अरमान यदि उसी स्तर का हो तो अपने थोड़े-से वानप्रस्थ समस्त समाज को निश्चय ही उलट-पलट कर रख सकते हैं।

प्राचीन-काल में बौद्ध-प्रचारक गहन-श्रद्धा का सम्बल लेकर विश्व के कोने-कोने में धर्मचक्र-प्रवर्तन के लिए घर से निकले थे। अपने मिशन और संकल्प के लिये ही जीवित रहे। उसी के लिए प्रत्येक साँस का उपयोग करते रहे। कठिनाइयों को उन्होंने कठिनाई नहीं समझा, पर्वतों को पैरों से कुचलते हुए—भूख-प्यास, और शीत-ग्रीष्म की परवाह न करते हुए-मौत से जूझते हुए वे शब्दबेधी बाण की तरह लक्ष्य की ओर चले थे और धरती पर रहने वाली उस समय की अधिकांश जनसंख्या को उस महान् धर्म के झण्डे-तले लाने में समर्थ हुए हैं। हमारी लगन भी यदि उसी स्तर की हो तो वह सब कुछ सम्भव एवं सरल हो सकता है जो आज कठिन तथा असम्भव कहा-समझा जाता है।



www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तीर्थयात्रा-धर्म परम्परा का पुनर्जीवन

आधार और पृष्ठभूमि

भारतीय संस्कृति एक अति उदात्त अति मानवी दृष्टिकोण है जिसे अपनाकर वैयक्तिक और सामूहिक प्रगति एवं समृद्धि की सर्वतोन्मुखी सम्भावनाएँ विकसित होती हैं। इसे जो जितने अंशों में अपना सके उसे उसके लिए निरन्तर प्रयत्न करते रहना चाहिए। प्राचीन भारत की भौतिक महिमा और आत्मिक गरिमा का आधार यह संस्कृति ही रही है, जिसे किसी समय समस्त विश्व ने अपनाया और अतिशय लाभ उठाया था। अपनी सांस्कृतिक आदर्शवादिता में वे सभी तत्व कूट-कूट कर भरे हैं और जिन्हें यदि ठीक तरह समझा और ठीक तरह अपनाया जा सके तो मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग, सतयुग का अवतरण निश्चित रूप से सम्भव हो सकता है।

आत्मवादी तत्वज्ञान को कार्य रूप में परिणत करने के लिए जो धर्म परम्पराएँ प्रचलित हुई हैं उनमें तीर्थयात्रा को प्रमुखता दी गई है। पुण्य फलदायक धर्मकृत्यों की श्रृंखला में उसे प्रधानता दी गई है और अति विस्तार पूर्वक उसका महात्म्य गाया बताया गया है। हर भारतीय धर्मानुयायी के मन में तीर्थयात्रा की उमंग उठती रहती है और जब भी अवसर मिलता है वह उसके लिए समय और धन लगाने में प्रसन्नता अनुभव करता है। इसी जन आकांक्षा की पूर्ति के लिए अनेकों तीर्थ बने हैं और उनकी यात्रा के लिए विशेष पर्व, उत्सव, आयोजन एवं मेले होते रहते हैं। इस प्रयोजन पर आज भी प्रचुर परिमाण में जनशक्ति, श्रमशक्ति एवं धनशक्ति नियोजित होती रहती है।

यह सब अकारण नहीं है। दूरदर्शी मनीषियों ने यह पुण्य परम्परा यों ही नहीं चलाई थी। उसके पीछे वैयक्तिक और सामाजिक सुखद सम्भावनाओं को देखा समझा गया था और उसके लिए जन-साधारण में उत्साह उत्पन्न करके लोक-मंगल का एक अत्यन्त प्रभावोत्पादक आधार खड़ा किया गया था। इतिहास साक्षी है कि इस परम्परा को अपनाकर भारत ने जगत्गुरु, चक्रवर्ती शासक और स्वर्गादपि गरीयसी देवभूमि होने का श्रेय प्राप्त किया था। उस प्रचलन के पीछे दिये रहस्यों को समझने की चेष्टा की जाय तो प्रतीत होगा कि यदि उसे ठीक तरह कार्यान्वित किया जा सके तो मानवी भविष्य को उज्ज्वल बनाने वाली सर्वतोन्मुखी प्रगति का पथ प्रशस्त हो सकता है।

विवेकवान, धर्मनिष्ठ लोगों को मिल-जुल कर ऐसे स्थानीय प्रयत्न करना चाहिए जिससे इस पुण्य प्रयास का पुनर्जीवन सम्भव हो सके। आज तीर्थयात्रा की लकीर भर पिटती है और चिह्न पूजा को सब कुछ मानकर श्रम और धन की पर्वत जितनी साधन सम्पदा लगाई जाती है। उससे वाहनों के मालिक, व्यापारी एवं धर्म व्यवसायी तो अवश्य ही दोनों हाथों से पुण्यफल प्राप्त करते हैं पर बेचारा भावुक यात्री बहुमूल्य श्रम, समय और धन खर्च करके भी खाली हाथ लौट जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि धर्मनिष्ठ व्यक्ति उसका उद्देश्य समझें, दूसरों को समझायें और उसके वास्तविक स्वरूप को जन-साधारण के सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें। इसके लिए आवश्यक है कि मार्गदर्शक स्तर की टोलियाँ गठित की जायें और वे उस परम्परा को उस रूप में प्रस्तुत करें जिससे बुद्ध, महावीर, गांधी, विनोबा आदि ने जिस प्रकार सामयिक प्रयोजनों के लिए समय-समय पर अपनाया था । उसी आदर्श के अनुरूप एवं प्रचलन को सद्भावनाओं और सत्-प्रवृत्तियों को सुविस्तृत करने के लिए सुनियोजित ढंग से कार्यान्वित किया जाय। युग-निर्माण योजना अभियान के अन्तर्गत तीर्थयात्रा परम्परा पुनर्जीवन का अभिनव प्रयास इसी दृष्टि से आरम्भ किया गया है। उसके लिए सुयोग्य व्यक्तियों से स्थानीय टोलियाँ गठित करने के लिए अनुरोध किया गया है।

तीर्थयात्राओं के लिए सर्वप्रथम प्रयास विचारशील लोग टोलियाँ बनाकर आरम्भ करें और जिन्हें उस प्रयोजन के लिए उपयुक्त समझें उनसे सम्पर्क स्थापित करके इस पुस्तक में दिये गये उन तथ्यों को समझाने पढ़ाने का प्रयत्न करें जो 'उद्देश्य और प्रयोजन' अध्याय में दिये गये हैं। यात्रा मण्डलियाँ दो स्तर पर गठित की जानी चाहिए (१) स्थायी, (२) सामयिक। स्थायी तीर्थ यात्रा पर निकलने वाले सन्तों और वानप्रस्थों के पद चिह्नों पर चलेंगे और वे अपना अधिकांश समय इसी प्रयोजन के लिए लगा देंगे। ऐसे लोगों के प्रशिक्षण एवं निर्वाह की व्यवस्था शान्तिकुंज हरिद्वार से चलेगी और उन टोलियों का कार्यक्रम निर्धारण गायत्री तपोभूमि मथुरा से होगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

स्थानीय टोलियाँ कहीं भी, कभी भी, सुविधा और अवकाश का समय देखकर गठित की जा सकती हैं और उनकी स्वल्पकालीन और दीर्घकालीन योजना व्यवस्था बनती रह सकती है। तीर्थयात्रा अर्थात् धर्मप्रचार के लिए, जन-साधारण के लिए पदयात्रा। इनकी समान रूपरेखा इस पुस्तिका में दी गई है यों यह योजना घर-घर जाकर नव-जीवन का सन्देश सुनाने के रूप में शहर और कस्बों में भी चल सकती है पर अपना स्थूल लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्र है जहाँ नवयुग का प्रकाश बहुत देर में और बहुत स्वल्प मात्रा में पहुँचता है। अस्तु कार्यक्रम देहात को लक्ष्य रखकर ही बनने चाहिए।

टोलियों में जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति जितनी संख्या में मिल जायें वे जब जितने दिन का समय इस कार्य के लिए लगाने के लिए तैयार हों उसी आधार पर कब कहाँ जाया जायेगा इसकी योजना बननी चाहिए। कोई ऐतिहासिक, प्रगतिशील, सेवा संलग्न, देवालय, प्रकृति सौन्दर्य के साथ भी इस यात्रा के साथ जोड़े जा सकें और दिव्य दर्शन का दुहरा लाभ भी मिल सके तो और भी अच्छा है। यात्रा-पथ निर्धारण करते समय ऐसा कुछ तुक बैठ सके तो उसमें और भी अधिक उत्साह रहेगा अन्यथा धर्मप्रचार यात्रा वाली बात तो प्रमुख है ही।

मण्डलियों का कार्यक्रम पहले से क्या रहेगा ? जहाँ होकर मण्डलियाँ गुजरने वाली हैं। पड़ाव डालने वाली हैं उन स्थानों पर पूर्व सूचना पहुँचाना, ठहरने एवं प्रवचन आदि के लिए सहयोगी व्यक्ति ढूँढने, बिछावट, रोशनी साधन, पूरे गाँव में मुनादी जानकारी एवं भोजन प्रबन्ध के लिए आवश्यक प्रयत्न मण्डली चलने से पूर्व ही सम्पन्न करने होंगे। ऐसे ही पूर्व सूचना और पूर्व तैयारी कराये बिना चल पड़ने से अभीष्ट उद्देश्य ठीक तरह न पूरा हो सकेगा।

साधारणतया हर दिन दो-तीन गाँव बीच के और एक विराम का हर दिन के प्रचार कार्यक्रम में सम्मिलित रहें। यों यह बहुत कुछ तो बीच की दूरी और रास्ते की सरलता और कठिनता पर भी निर्भर रहेगा पर मोटी रूपरेखा तो बनानी ही पड़ेगी। किस मार्ग से कहाँ-कहाँ निकलते ठहरते, वापस लौटा जायेगा। इसका नक्शा पहले ही बना लेना चाहिए और जिनका जहाँ परिचय हो वहाँ उन्हें भेजकर स्थानीय लोगों का आवश्यक सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। वे लोग मण्डली के साथ रहें, उनकी बात सुनने के लिए अमुक समय, अमुक स्थान पर एकत्रित हो सकें तथा बिछावन, रोशनी, प्रवचन मंच आदि की जो आवश्यकता पड़ेगी उन्हें जुटाने, सहायता करने के लिए उन लोगों को सहमत करना ताकि आवश्यक वस्तुएँ यथा समय उपलब्ध हो सकें तथा पूर्व जानकारी होने के कारण अधिक लोग उस प्रचार का लाभ उठाने के लिए उत्सुक रह सकें।

भोजन व्यवस्था भी पूर्व निर्धारित होनी चाहिए। यदि पड़ाव के स्थान के लिए एक रात का भोजन और प्रातःकाल जलपान श्रद्धापूर्वक जुटा सकें तो ठीक, अन्यथा अपना प्रबन्ध पहले से ही कर लेना चाहिए ताकि इस झंझट में अनावश्यक समय नष्ट न हो। अपना सामान देकर किसी से बनवा लेना टोली के सदस्यों का अपने हाथों खिचड़ी आदि पका लेना, आदि अनेक ढंग हैं। जैसा जहाँ जो भी प्रबन्ध हो सके उसके लिए पूर्व व्यवस्था बनाकर रखनी चाहिए। पूर्व सूचना देने जो लोग उन गाँवों में जायें, वे उपरोक्त सारी व्यवस्था बनाकर ही लौटें। तभी सुविधा रहेगी अन्यथा अनायास पहुँचने पर भी साधन तो जुट जाते हैं पर ढूँढ़ खोज में समय बहुत नष्ट होता है।

व्यक्तिगत आवश्यकता की वस्तुएँ तेल, साबुन, हजामत, मंजन जैसी नित्य काम आने वाली वस्तुएँ साथ लेकर चला जाय। शौच, स्नान, पीने के लिए अपना लोटा रहना आवश्यक है। कुएँ से पानी निकालने के लिए डोरी तथा टार्च ले चलना भी जरूरी है।

छोटा लाउडस्पीकर जो बिजली और बैटरी दोनों से चल सके साथ रखा जाय और उसके लिए सेल साथ रखे जायें। उसे चलाना और सुधारना भी आना चाहिए। हवन सामग्री, समिधा, पात्र उपकरण तो साथ लेकर चलना ही चाहिए। घी, समिधा रास्ते में से भी खरीदते बटोरते चला जा सकता है पर वह सब ध्यान रहना ही चाहिए। दीवारों पर वाक्य लिखने के लिए गेरू, गोंद, डिब्बा, बुश सभी साथ लेकर चलना है।

टोली के सदस्यों के वस्त्र एक जैसे होने चाहिए। धोती, कुर्ता, जाकीट, कंधे पर दुपट्टा सभी एक जैसे पीले रंग के। एक जैसी वेषभूषा का, विशेषतः पीले रंग का अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। सभी को सहज आभास होता है कि यह कोई धर्मप्रयोजन के लिए निकली हुई मण्डली है। इसे देखने मात्र से दर्शकों को उसकी विशेषता का पता चलता है। एक कंधे पर झोले टँगे हों उनमें प्रचार साहित्य भरा हो। दूसरे कंधे पर बिगुल या शंख लटक रहा हो तो

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहज ही उस वेषभूषा का आकर्षण लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है और वे जिज्ञासावश अनायास ही समीप एकत्रित होते हैं। प्रचार प्रयोजन की दृष्टि से यह पीले रंग के वस्त्रों की व्यवस्था आवश्यक है। टोली के सदस्यों को इसमें किसी प्रकार का संकोच नहीं करना चाहिए।

साधारणतया टोलियों का कार्यक्रम यह रहना चाहिए (१) प्रातः सूर्योदय से पूर्व नित्यकर्म से निवृत्ति, (२) जहाँ पड़ाव हो वहाँ सूर्योदय से लेकर दो घण्टे के भीतर प्रातःकाल का यज्ञ टोली के सदस्यों द्वारा। उसमें सम्मिलित होने के लिए स्थानीय लोग आमन्त्रित किये जायें, (३) जलपान करके सूर्योदय से दो-तीन घण्टे के बाद अगले निर्धारित कार्यक्रम पर चल पड़ना, (४) रास्ते में दो-तीन गाँवों में प्रचार करना और रात्रि को पूर्व निर्धारित पड़ाव के स्थान पर पहुँचकर कथा-कीर्तन का ढाई-तीन घण्टे का कार्यक्रम सम्पन्न करना।

प्रातः संक्षिप्त गायत्री हवन करने के लिए टोली अपने साथ अपने साधन लेकर चले। आहुतियाँ टोली के सदस्य स्वयं करें पर उनके अन्य कर्मकाण्डों में पूर्णाहुति में स्थानीय लोगों को सम्मिलित रखें। गायत्री की गरिमा उत्कृष्ट चिंतन के रूप में और यज्ञ की महिमा आदर्श कर्तृत्व के रूप में उपस्थित लोगों को समझाई जाय और यज्ञीय दृष्टिकोण को जीवन व्यवहार में उतारने का मार्गदर्शन करते हुए हवन किया जाय और जो लोग उससे प्रभावित हों उन्हें अपने गुण, कर्म, स्वभाव में सम्मिलित बुराइयों में से एक का परित्याग और एक सत्प्रवृत्ति का समावेश करने का अनुरोध किया जाय। क्या छोड़ना और क्या अपनाना है, यह उन्हें इस प्रकार समझाना चाहिए कि वे इस त्याग ग्रहण का महत्त्व भली प्रकार समझ सकें और उसके लिए उत्साह एवं साहस प्रदर्शित कर सकें।

साधारणतया इसके लिए यह मार्गदर्शन हो सकता है छोड़ने योग्य बुराइयाँ—

(१) आलस्य प्रमाद, (२) असंयम, (३) अस्वच्छता, (४) अशिष्टता, (५) दुर्भावनाएँ, (६) बेईमानी, (७) निष्ठुरता, (८) व्यसन (नशेबाजी), (९) असामाजिकता, (१०) कायरता, (११) ऊँच-नीच की मान्यता, (१२) नारी तिरस्कार, (१३) विवाहों में दहेज और अपव्यय, (१४) मृत्यु भोज, (१५) पशुबलि, (१६) भिक्षावृत्ति, (१७) अन्धविश्वास, (१८) उद्धत आचरण, (१९) कामुकता, (२०) अश्लीलता, (२१) अधिक सन्तानोत्पादन, (२२) पर्दाप्रथा, (२३) अन्न की बर्बादी न करना, (२४) माँसाहार, (२५) जेवर एवं फैशन परस्ती, (२६) जाति-पाँति की मान्यता, (२७) छुआ-छूत इत्यादि।

ग्रहण करने योग्य अच्छाइयाँ—

(१) नम्रता, (२) बड़ों का चरण स्पर्श, (३) कर्त्तव्य-परायणता, (४) ईमानदारी, (५) मधुर भाषण, (६) सदाचार, (७) अनीति का प्रतिरोध, (८) स्वाध्याय, (९) नियमित उपासना, (१०) नियमित दिनचर्या, (११) सादगी, (१२) मितव्ययिता, (१३) श्रम का सम्मान।

इस प्रकार सद्गुणों सत्प्रवृत्तियों के छोटे-छोटे नियमों को इस ढंग से प्रस्तुत किया जाय कि लोगों में उनका लाभ प्राप्त करने के लिए उमंग जाग जाय। जो लोग सहमत हों उनमें यज्ञ भगवान की साक्षी में उस त्याग एवं ग्रहण के संकल्प कराये जा सकते हैं और उन प्रतिज्ञाओं को आजीवन निबाहने तथा इसी प्रकार आत्मसुधार एवं लोक-मंगल के लिए भविष्य में भी प्रयत्न करते रहने के लिए नये कदम उठाते रहने की प्रेरणा दी जा सकती है।

मण्डली को हवन सामग्री तथा दूसरे साधन अपने ही रखने चाहिए ताकि वहाँ के अजनबी लोगों पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े। इसी प्रकार जलपान, भोजन आदि का प्रबन्ध भी अपने ढंग से अपना ही बनाया जाय। वहीं लोग इन कार्यों में स्वेच्छा से योगदान दें तो उनका आग्रह स्वीकार करके धर्म बुद्धि जागृत रखने की गुंजाइश रखी जा सकती है पर जहाँ उपेक्षा हो वहाँ किसी प्रकार का ऐसा दबाव नहीं पड़ना चाहिए जिसे भार समझा जाय और अश्रद्धापूर्वक वहन करना पड़े।

हवन के बाद प्रातःकाल जलपान करके आगे की यात्रा पर निकलना चाहिए। पेट न तो सर्वथा खाली रहे और न इतना भरा हुआ रहे कि रास्ता चलने में असुविधा पड़ने लगे।

रास्ते में पड़ने वाले गाँवों में कार्यक्रम इस प्रकार रहना चाहिए—(१) जागरण गान गाते हुए गलियों में होकर धर्म फेरी निकालना, (२) चौराहों पर शंख ध्वनि करके लोगों को एकत्रित करना, नारे लगाना, इस समय जो एकत्रित हो जायें उन्हें अपना, अपने मिशन का परिचय देते हुए उस गाँव में एक स्थान पर एकत्रित होने के लिए अनुरोध करना, (३) जो इकट्ठे हो जायें उनके सम्मुख आधा घण्टे का कीर्तनयुक्त प्रवचन करना, (४) उस गाँव की दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखना, (५) जो शिक्षित विचारशील लोग दिखाई पड़ें उन्हें प्रचार साहित्य देना।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार प्रात: आठ-नौ बजे से चलकर शाम को तीन बजे तक आठ घण्टे की पदयात्रा में दो-तीन या न्यूनाधिक गाँवों में धर्म प्रचार कार्य आसानी से हो सकता है और फिर पड़ाव के निर्धारित स्थान पर पहुँचकर वहाँ धर्म फेरी लगाई जा सकती है और लोगों को अपने आगमन की तथा अमुक स्थान पर उपस्थित होकर कथा कीर्तन का लाभ लेने की सूचना सर्वसाधारण को दी जा सकती है।

ठहरने के स्थान पर ठहरा जाय। शौच, संध्यावंदन एवं भोजन से निवृत्त हुआ जाय। भोजन का क्या कहाँ प्रबन्ध रहना है यह निश्चय पहले से ही कर रखा जाय। ग्रामीणों ने आतिथ्य की पूर्व व्यवस्था कर रखी हो तो ठीक अन्यथा अपने साधनों से खिचड़ी या कोई जल्दी सम्पन्न हो सकने वाली भोजन व्यवस्था स्वयं बनाई जा सकती है। खरीद कर भी काम चलाया जा सकता है सत्तू जैसी चीजें साथ लेकर चला जा सकता है। साधारणतया नीति यह होनी चाहिए कि श्रद्धा और अनुरोध भरे आतिथ्य को ही स्वीकार किया जाय और उसमें भी उसी स्तर का भोजन लिया जाय जैसा कि वे लोग स्वयं करते हों। दबाव डालना और उपेक्षापूर्वक मिलना यह दोनों ही बातें टोली के सम्मान के विरुद्ध हैं। उसे ध्यान में रखते हुए कहाँ भोजन की क्या व्यवस्था रहनी है इसकी जानकारी पहले से ही रहनी चाहिए और बिना समय गँवाये तदनुरूप प्रबन्ध करके यथा समय उस कार्य से निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

रात्रि को ढाई-तीन घण्टे का सार्वजनिक कार्यक्रम रहे आरम्भ में सहगान कीर्तन। बीस मिनट या आधा घण्टे का। मध्य में रामायण कथा, डेढ दो घण्टे की। अन्त में फिर सहगान कीर्तन बीस मिनट का इस प्रकार ढाई-तीन घण्टे पूरे हो जाते हैं।

धर्म फेरी में तथा कथा प्रसंग में गाये जाने योग्य सहगान कीर्तन पुस्तिका में आगे दिये गये हैं। इन्हें एक टोली बोले दूसरी दुहराये का क्रम चलना चाहिए। सहगान का तात्पर्य यही है कि उसे मात्र एक ही न गाता रहे वरन् अन्य लोग भी दुहराने में भाग लेते रहें। धर्म फेरी के समय तो नहीं पर कथा के साथ कहे जाने वाले कीर्तन में पदों के बीच-बीच छोटी टिप्पणी करते हुए उस गायन की प्रेरणा को अधिक स्पष्ट किया जाता रह सकता है।

चूँकि अपना तीर्थयात्रा का उद्देश्य धर्म प्रचार है। इसलिए उसकी प्रचार पद्धति भी धर्म परम्परा के अनुकूल एवं अनुरूप रखी गई है। सभा सम्मेलनों में वर्तमान प्रचलन की अपेक्षा अपनी शैली प्राचीन परिपाटी के समतुल्य रहे यही ठीक है। अन्तर केवल प्रतिगामिता और प्रगतिशीलता का है।

प्रवचन के लिए हिन्दी भाषी ग्रामीण क्षेत्रों में रामायण अधिक उपयुक्त पड़ती है। जहाँ गीता, भागवत आदि अन्य कोई कथा पुराण सरल पड़ता हो, लोकरुचि के अनुकूल हो वहाँ उसको माध्यम बनाया जा सकता है। कथा प्रसंग नव-निर्माण के उपयुक्त होने चाहिए। नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक उत्कृष्टता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना अपना लक्ष्य है। इसके लिए कथा प्रतिक्रिया के आधार पर लोकशिक्षण का प्रयोजन पूरा कर सकने वाला कोई भी धर्म ग्रन्थ प्रयुक्त हो सकता है।

फिलहाल हम रामायण को आगे लेकर चल रहे हैं। इसी पुस्तक के अगले पृष्ठों पर रामायण कथा की शैली पर विचारपरक और क्रियापरक प्रयोजन पूरे कर सकने वाले भाषणों की सामग्री छपी है। इसमें कथा प्रसंग और प्रेरणा का समुचित समन्वय है। स्थान-स्थान पर दृष्टान्त भी जोड़े गये हैं। इन संकेतों के आधार पर कुशल वक्ता अपने ढंग से आवश्यक प्रतिपादन करते हुए कथा प्रवाह में सरसता और सरलता का समुचित समावेश किये रह सकते हैं।

इस कथा शैली का पूर्व रिहर्सल घरों पर कर लिया जाना चाहिए। अन्यथा नई जगह पर नया प्रयोग लड़खड़ाने लगेगा। इसी प्रकार सहगान कीर्तन का भी पूर्व अभ्यास होना चाहिए। टोली निकालने से पहले यह प्रयोग एक सप्ताह तक पूर्व तैयारी के रूप में चलाया और परिपक्व किया जाना चाहिए। चूँकि एक स्थान पर एक ही दिन ठहरना है और वहाँ एक ही प्रवचन होना है। इस क्रम से सभी पड़ावों पर एक प्रवचन से ही काम चल सकता है फिर भी सुविधा के लिए दो भाषणों की सामग्री इस पुस्तिका में नोट कर दी गई है। अदल-बदल कर या एक में ही दोनों का समन्वय करके किस प्रकार कहाँ, क्या कहा जाय यह वक्ता की रुचि एवं स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर है।

प्रवचन कथा शैली पर होना है इसलिए रामायण की मोटी पुस्तक लकड़ी की 'टिखटी' पर रखी जानी चाहिए और वक्ता को चौकी पर बैठकर कथा व्यास की शैली से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रवचन करना चाहिए। आरम्भ और अन्त में भावनात्मक वातावरण बनाने के लिए प्रार्थना स्तोत्र जैसे श्लोकों का पाठ वक्ता को करना चाहिए।

तीर्थयात्रा टोली सामयिक हो या स्थायी यह रूपेरखा तथा कार्य पद्धति उसके सदस्यों को अवश्य बतायी जानी चाहिए। साथ ही यात्रा के उद्देश्य और प्रयोजन भी भली प्रकार हृदयंगम करा दिये जाने चाहिए ।

उद्देश्य और प्रयोजन

(१) तीर्थयात्रा धर्म परम्परा के पुनर्जीवन अभियान के प्रत्येक सदस्य को यह अनुभव करना चाहिए कि यह दिव्य सत्ता के उच्च उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नियुक्त अधिकारी स्वयंसेवकों, सन्त सुधारकों में से एक है। यह गौरव किसी भी लौकिक पद एवं प्रतिष्ठा की तुलना में कहीं अधिक उच्चस्तरीय है। इस गौरव को अनुभव करना, उससे जुड़े उत्तरदायित्वों को प्रसन्नतापूर्वक, उत्साह के साथ स्वीकार करना तथा अपने आचरण एवं व्यवहार को इसकी गरिमा के अनुरूप बनाये रखना हर सदस्य के लिए आवश्यक है।

(२) प्रत्येक सदस्य को यह अनुभव करना चाहिए कि उसका श्रमदान, समयदान भारतीय संस्कृति के मेरुदण्ड को स्वस्थ बनाने की दिशा में चमत्कारी प्रतिफल उत्पन्न करेगा। वह अपना यह योगदान भारतीय धर्म की मूर्छना को हटाकर उनमें नव जीवन उत्पन्न करने के प्रयत्न में लग रहा है।

(३) प्रत्येक सदस्य को अनुभव करना चाहिए कि प्रत्येक समर्थ व्यक्ति को अपनी समर्थता का एक महत्त्वपूर्ण अंश लोक-मंगल के लिए समर्पित करने के उपरान्त शेष से अपना निर्वाह चलाना चाहिए। इस सृष्टि का चक्र इसी प्रकार चल रहा है। समुद्र, बादल, नदी, वृक्ष तक अनुदान की परम्परा निबाहते हैं। शरीर के अवयव एक-दूसरे को देने की नीति अपनाकर जीवन धारण किये रहते हैं। मनुष्य को अपना ज्ञान, समय, श्रम, प्रतिभा, धर्मनिष्ठा, धन आदि को बाँटकर खाना चाहिए। दान की महत्ता पग-पग पर गाई गई है। सर्वोपरि दान ज्ञान दान है। विवेकवान जागृत आत्माओं को अपना विवेक और जागरण दूसरों तक पहुँचाने के लिए दीपक जैसा उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। धर्मनिष्ठा का वितरण करें, यह प्रक्रिया तीर्थयात्रा में जितनी अच्छी तरह सम्पन्न होती है उतनी और किसी प्रकार नहीं।

(४) प्रत्येक सदस्य को अनुभव करना चाहिए कि महामारी, भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष, अग्निकाण्ड दुर्घटना जैसी विषम परिस्थितियों में उदार लोग यह प्रतीक्षा नहीं करते कि कष्ट पीड़ित लोग हमारे दरवाजे पर आकर याचना करेंगे तब उनकी सहायता करेंगे। उदार लोग स्वयं ही दौड़कर जाते हैं। सूर्य, चन्द्र, पवन, बादल स्वयं ही परिव्राजक बन कर भ्रमण करते और अपनी शक्ति को दूसरों की सुविधा के लिए वितरित करते हैं। अपनी तीर्थयात्रा इसी प्रकार का प्रकाश वितरण है। इस प्रयास में उदार आत्मीयता के उच्च आध्यात्म तत्त्व पूरी तरह जुड़े हुए हैं।

(५) प्रत्येक सदस्य को अनुभव करना चाहिए कि अपने देश की ८० प्रतिशत जनता छोटे देहातों में रहती है। अशिक्षा भी उसी क्षेत्र में अधिक है। वहाँ तक शहरी और अशिक्षितों के लिए सम्भव प्रचार साधन पहुँच नहीं पाते। जो पहुँचते हैं उन्हें वे ग्रहण नहीं कर पाते। अपने देश-वासियों की मनःस्थिति में धर्म परम्पराओं के लिए अभी भी स्थान है। अस्तु धर्मनिष्ठा के साथ नव-जागरण का, सर्वतोन्मुखी प्रगतिशीलता का प्रकाश जन-जन तक पहुँचाया जाना सम्भव है। तीर्थयात्रा प्रक्रिया से यही प्रयोजन पूर्ण होता है।

(६) हमें अनुभव करना चाहिए कि भारतीय संस्कृति में तीर्थयात्रा को अत्यधिक पुण्य फलदायक माना गया है। तीर्थ-निर्माण पर और उनकी यात्रा पर जितना धन और श्रम लगता है उतने पूरे धर्मक्षेत्र में और किसी काम पर नहीं। जो लोग तीर्थयात्रा करने में असमर्थ रहते हैं वे स्थानीय पीपल, आँवला, तुलसी, पर्वत, सरोवर, मन्दिर आदि की परिक्रमा करके अपने मन को सन्तोष देते हैं। तीर्थयात्रा का शास्त्रीय स्वरूप पदयात्रा ही है। प्राचीनकाल में धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपनी मण्डलियाँ बनाकर, धर्म प्रचार के लिए निकलते थे। मील के पत्थरों की तरह रास्ते में अमुक ऐतिहासिक स्थानों एवं ज्ञान संस्थानों के सम्पर्क में आकर लाभान्वित होने का लक्ष्य रहता था। इस रास्ते में गाँव-गाँव धर्म सन्देश सुनाते, पड़ाव के स्थान पर कथा-कीर्तन करते सर्वत्र धर्मनिष्ठा जगाते हुए वे तीर्थयात्रा मण्डल आगे-आगे बढ़ते थे। उसी पुण्य परम्परा को हम लोग पुनर्जीवित करने के अभिनव प्रयास पर पुनः आरूढ़ हुए हैं।

(७) अनुभव किया जाना चाहिए कि तीर्थयात्रा का उद्देश्य और स्वरूप सर्वसाधारण को समझाया जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए ताकि उसके लिए जो सुविस्तृत महात्म्य धर्मग्रन्थों में गाया गया है उसका कारण-उत्पन्न सत्परिणामों के आधार पर जाना जा सके। लोगों को पता चलना चाहिए कि द्रुतगामी वाहनों पर चढ़कर मात्र अमुक देवालय का स्नान ही तीर्थयात्रा नहीं है; उसके पीछे धर्म प्रचार की, जनसाधारण की उदात्त दृष्टि का समन्वय हो तो ही मूल प्रयोजन पूरा हो सकता है।

(८) अनुभव किया जाना चाहिए कि प्रत्येक ताथयात्री को (१) स्वास्थ्य सुधार, (२) ज्ञान अभिवर्धन, (३) परिचय एवं अनुभव विचार, (४) उदात्त दृष्टिकोण के पाँच लाभ निजी रूप से मिलते हैं।

(९) अनुभव किया जाना चाहिए कि सभी कठिनाइयों, अभावों और समस्याओं का प्रधान कारण मनुष्य का भावनात्मक पिछड़ापन होता है। भौतिक समृद्धि बढ़ाने के साथ-साथ दृष्टिकोण का परिष्कार नितान्त आवश्यक है। मानवता की सबसे बड़ी सेवा यह है कि जनमानस के परिष्कार के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया जाय। अपनी तीर्थयात्राएँ यही प्रयोजन पूरा करेंगी। उनका उद्देश्य बिखराव को एकता में, पिछड़ेपन को प्रगति में, आलस्य को पुरुषार्थ में, अनीति को न्याय में और क्षुद्रता को महानता में परिवर्तित करना है। अस्तु उसका पुण्यफल न केवल तीर्थयात्रियों को वरन् सर्वतोन्मुखी प्रगति के रूप में समस्त संसार को मिलेगा।

(१०) अनुभव किया जाना चाहिए कि अपने धर्म प्रचार का उद्देश्य जन-मानस में आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता की त्रिवेणी का पुण्य प्रवाह पूरे वेग के साथ गतिशील करना है। पिछले अन्धकार युग में इन तीनों क्षेत्रों में जो विकृतियाँ भर गई हैं उन्हें एक जुट होकर हटा देने का प्रयत्न करना है।

(११) अनुभव किया जाना चाहिए कि अपना लक्ष्य, मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण है। इसके लिए नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक उत्कृष्टता की स्थापना नितान्त आवश्यक है। सच्चरित्रता, विवेकबुद्धि, सहकारिता, समाजनिष्ठा एवं तत्पर कर्मनिष्ठा जैसी सत्प्रवृत्तियों के जन-मानस से उभारने का शाश्वत प्रयोजन ही अपनी यात्रा प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ है। हम व्यक्ति, परिवार और समाज की आदर्शवादी रचना के लिए प्रयत्नशील हैं और यही दृष्टिकोण तीर्थयात्रा में सन्निहित धर्म प्रचार का स्वरूप है। संक्षेप में इरो सद्भावना विस्तार समझा जा सकता है।

(१२) स्मरण रखा जाना चाहिए कि तीर्थयात्रा की अवधि में जिनसे भी सम्पर्क होगा उनकी सद्भावनाओं के उभार से सत्प्रवृत्तियों में संलग्न होने के लिए नियोजित किया जायेगा। अपनी सत्प्रवृत्ति संवर्धन कार्यक्रम के इन दिनों बीस सूत्र हैं। उनमें से १० क्रियापरक और दस विचारपरक हैं।

क्रियापरक—(१) साक्षरता विकास के लिए प्रौढ़ पाठशालाएँ, रात्रि पाठशालाएँ, (२) नारी शिक्षा के लिए तीसरे प्रहर की पाठशालाएँ, (३) स्वास्थ्य संवर्धन के लिए व्यायाम शालाएँ, (४) वृक्षारोपण, (५) शाकवाटिकाएँ, (६) स्वच्छता अभियान, (७) गृह-उद्योग का प्रचलन, (८) संगठित श्रमदान, (९) परिवार नियोजन, (१०) सहकारिता के विकास के लिए प्रयास।

विचारपरक—(१) दीवारों पर सद्वाक्य लेखन, (२) सद्साहित्य के पुस्तकालंयों की स्थापना, (३) बाल विवाह, अनमेल विवाह, विवाहों में अति व्यय और दहेज का विरोध, (४) मृतक भोज एवं बड़े भोज, पर्दाप्रथा, भिक्षा व्यवसाय, छुआ-छूत जैसी कुप्रथाओं का परित्याग, (५) भूतपलीत, भाग्यवाद, मुहुर्त, शकुन विचार, टोने-टोटके जैसे अन्ध-विश्वासों का निवारण, (६) नशेबाजी, माँसाहार जैसी आदतों का त्याग, (७) जुआ, ठगी, रिश्वत, मुनाफाखोरी, कामचोरी, गुण्डामर्दी जैसी अवांछनीयताओं का परित्याग, असहयोग और विरोध, (८) दैनिक जीवन में ईश्वर उपासना का स्थान, (९) रात्रि में प्रेरक प्रसंग एवं गोष्ठियों का प्रचलन (१०) पर्व त्यौहारों के सामूहिक रूप की परम्परा स्थापित करके व्यक्ति, परिवार और समाज के नव-निर्माण की प्रेरणा संचार की व्यवस्था।

(१३) संक्षेप में यही युग-निर्माण योजना का बीस सूत्री कार्यक्रम है। इसका परिचय तो सर्वत्र कराया जायेगा पर तात्कालिक स्थिति के अनुभव किसी-किसी रूप में शुभारम्भ पड़ाव के दिन ही करा देने का प्रयास होगा और पीछे उस दिशा में कुछ न कुछ किया ही जाता रहे, ऐसा प्रयास इन धर्मप्रचार टोलियों का रहेगा।

(१४) स्मरण रखा जाना चाहिए कि प्राचीन काल के धर्मनिष्ठ मनीषि तीर्थयात्रा को अपनी जीवन प्रक्रिया का प्रमुख अंग मानते रहे हैं। साधु, ब्राह्मण, परिव्राजक, वानप्रस्थ इसी प्रयोजन में अपना अधिकांश समय लगाते थे। जन-जागृति के लिए यह प्रक्रिया असाधारण रूप से सफल रही है। यहाँ के धर्मप्रचारक जन-स्तर को देवोपम बनाये रखते थे। अपने देश के ३३ करोड़ नागरिक ३३

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोटि देवताओं में गिने जाते थे और यह भारत माता 'स्वर्गादपि गरीयसी' कहलाती थी। सारे विश्व को अजस्र अनुदान दे सकना हमारे लिए इसी आधार पर सम्भव हुआ था। उसी पुण्य प्रक्रिया को तीर्थयात्रा टोलियाँ पुनर्जीवित करेंगी।

(१५) स्मरण रखा जाय, दलगत राजनीति से अपना कोई सम्बन्ध नहीं है। अपना मिशन मानवीय उत्कर्ष के आधारभूत तथ्यों को सामने रखकर चलता है। जो युग निर्माण मिशन और उसके सूत्र संचालक का व्यक्तिगत दृष्टिकोण जानते हैं उन्हें विदित है कि हम राजनैतिक दलदल में उलझने की अपेक्षा उच्चस्तरीय नव-निर्माण में अपनी भारी शक्ति नियोजित किये हुए हैं अपनी तीर्थ यात्राओं का उद्देश्य भी यही है।

सामयिक तीर्थयात्रा टोलियाँ

इन मण्डलियों का गठन कोई सुविज्ञ व्यक्ति मिल-जुलकर कभी भी कर सकते हैं और अवकाश के दिनों का उपयोग इस पुण्य कार्य के लिए कर सकते हैं। गर्मियों में किसान तथा विद्यार्थी अन्य कई वर्ग के लोगों को अवकाश रहता है। त्यौहारों पर तथा साप्ताहिक छुट्टी का दिन भी समय होता है इसका उपयोग अपने समीपवर्ती क्षेत्रों में तीर्थयात्रा खाली प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है। यह मण्डलियाँ न बहुत छोटी न बड़ी हों। साधारणतया चार से लेकर दस सदस्य इन मण्डलियों के हो सकते हैं। कम रहने से प्रभाव कम पड़ता है और अधिक रहने से व्यवस्था बिगड़ती है।

मण्डलियों के सदस्यों में बहुत छोटे बच्चे और अति वृद्ध नहीं होने चाहिए। जो जायें वे छूत के रोगी अथवा अन्य बीमारियों से ग्रसित नहीं होने चाहिए। नशेबाज, कटुभाषी, गन्दे, आलसी, उद्धत, अशिष्ट प्रकृति के लोगों को भी मण्डली में नहीं लिया जाना चाहिए। ऐसे लोग जहाँ जाते हैं वहीं अपने स्वभाव की बुरी छाप जगह-जगह छोड़कर आते हैं। मण्डली के सदस्यों की शिक्षा, शालीनता, धर्मप्रचार जैसे महान उद्देश्य के उपयुक्त होनी चाहिए। जिनका पिछला इतिहास अप्रमाणिकता सिद्ध करता हो उनका इन टोलियों में जाना ठीक न रहेगा। ध्यान रखने की बात इतनी ही है कि विचारशील लोगों को तीर्थयात्रा टोलियों की सदस्य संख्या बढ़ाने के लिए पूरा प्रयत्न अधिकाधिक उत्साह के साथ किया तो जाना चाहिए पर साथ ही यह भी ध्यान में रहना चाहिए कि सदस्यगण स्वास्थ्य के लिए शिक्षा एवं शालीनता की कसौटियों पर कसे जाने से खरे सिद्ध हो सकने जैसे हों। घटिया स्तर की भीड़ें इस प्रयोजन में निकलेंगी तो उससे उपहास ही होगा और अश्रद्धा ही फैलेगी।

कोई उत्साही कर्मयोगी आगे बढ़कर विचारशील वर्ग सम्पर्क बनाकर, इस पुण्य प्रयोजन का उद्देश्य और स्वरूप समझाकर, ऐसे व्यक्ति तैयार कर सकते हैं जो अपना अवकाश का समय लगा सकें। व्यक्तियों की संख्या और उनकी सुविधा के समय को ध्यान में रखते हुए अपने समीपवर्ती क्षेत्र में यात्रा कार्यक्रम बनाया जा सकता है।

यात्रा तो पैदल होगी पर सामान तो साथ रहेगा ही। इसके लिए बैल, घोड़ा, ऊँट आदि पशुओं का तथा गाँव में चल सकने योग्य गाड़ियों का प्रयोग किया जा सकता है। कुली लेकर भी चला जा सकता है। अधिक सस्ता और अच्छा तरीका साइकिलों का है। उनके आगे, पीछे बीच में इस प्रकार जगह बनाई जा सकती है जिस पर आवश्यक सामान लाद कर चला जा सके। काँटे लगने से पंचर होने का डर जरूर रहेगा पर उसके लिए पंचर जोड़ने का सामान साथ रखा जा सकता है और ट्यूबों के भीतर सेलखड़ी एवं पिसे गटापार्चे से मिलाकर बनने वाला 'पंचर प्रूफ' पाउडर थोड़ी-मात्रा में भरा जा सकता है। साइकिलें इन दिनों सभी जगह उपलब्ध हैं। आमतौर से एक रुपया रोज पर किराये से भी मिल जाती हैं, उन्हें जुटाने में कहीं कोई बड़ी असुविधा नहीं होती। साधारणतया भार वाहन के रूप में उसका उपयोग सरल रह सकता है। पर्वतीय अथवा नदी नालों के कठिन मार्ग हों तो तदनुरूप दूसरी व्यवस्था बनानी चाहिए।

साइकिल मरम्मत, लाउडस्पीकर, हवन, भोजन तीनों के लिए खर्च की जरूरत पड़ेगी। रास्ते में बार-बार कपड़े रंगने पड़ेंगे उसके लिए रंग चाहिए। इन सब साधनों को टोली के सदस्य आपस में ही मिल-जुलकर जुटायें। अनुमानित खर्च की रूपरेखा पहले ही बना ली जाय और जो लोग उसके लिए जितना दे सकें उनसे उतना लेकर बजट का सन्तुलन बिठा लेना चाहिए। साइकिल तथा लाउडस्पीकर उधार या किराये पर भी मिल सकते हैं। यह सब साधन यदि अपने जुटाये जा सकें तो समय-समय पर उनके प्रयोग की सुविधा बनी रहेगी। पैसे का जहाँ जैसा प्रबन्ध हो वहाँ वैसी ही व्यवस्था बना ली जानी चाहिए। अच्छा हो यह मण्डलियाँ समय-समय पर चलाने और उसके लिए आवश्यक साधन जुटाने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए प्रमाणिक सज्जनों की छोटी समिति गठित कर ली जाय। एक बार सारे उपकरण जुटा लेने और भविष्य के लिए उन्हें सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी इसी समिति के ऊपर छोड़ी जा सकती है। संगठित रूप से, योजनाबद्ध. यह प्रक्रिया समीपवर्ती तथा दूरवर्ती क्षेत्रों में चलाई जा सके तो निश्चित रूप से इस प्रचार अभियान के दूरगामी सत्परिणाम प्रस्तुत होते रह सकते हैं।

टोली के निकलने से पूर्व एक सप्ताह का शिक्षण सत्र चले। उसमें कीर्तन, कथा, धर्मफेरी, दीवारों पर सुन्दर अक्षरों में वाक्य लेखन, आवश्यकतानुसार भोजन का प्रबन्ध, साइकिल मरम्मत, दिनचर्या का निर्वाह जैसे सभी कार्यों का ऐसा अनुभव अभ्यास कर लेना चाहिए कि तीर्थयात्रा पर चल पड़ने के बाद वह सारी प्रक्रिया जानी पहचानी और अभ्यस्त अनुभव होने लगे। इसके लिए अभ्यास के दिनों में समीपवर्ती गाँवों में जाया भी जा सकता है। सवेरे घर से निकला जाय और शाम को वापस लौट आया जाय, इन क्रम को अपनाने से गाँवों में से गुजरने का अभ्यास तो बाहर हो जायेगा और घरों पर अदल-बदलकर रामायण कथा एवं सहकीर्तन का क्रम चलता रह सकता है।

इस क्रम को भी अग्र प्रचार यात्रा या प्रारम्भिक तीर्थयात्रा प्रयोग कह सकते हैं। जहाँ अधिक बन पड़ता न दिखाई पड़े वहाँ इतना तो अत्यन्त सरलतापूर्वक हो सकता है कि निकटवर्ती गाँवों के लिए सवेरे निकला जाय। वहाँ धर्मफेरी, सहकीर्तन, दीवार लेखन, जन-सम्पर्क जैसे कार्य करते हुए रात को घर लौट आया जाय। इसमें दीवार लेखन के साधन ही साथ ले जाने पड़ेंगे अस्तु साइकिल आदि की भी आवश्यकता न पड़ेगी। रात्रि को रामायण कथा का क्रम टोली संयोजक अपने ही गाँव में, मुहल्ले बदल-बदल कर रख सकते हैं। इसमें अन्य गाँवों में पड़ाव डालने की विशेषता तो नहीं है। प्रशिक्षण की दृष्टि से यह प्रयोग भी बुरा नहीं है। इससे भी आंशिक प्रयोजन तो पूरा होता ही है। यह प्रयोग तो हर जगह चल सकते हैं और चलने ही चाहिए। इस क्रम से प्रशिक्षित किये गये लोग बड़ी और पूरी प्रचार यात्राओं में अधिक सफल हो सकते हैं।

स्थायी तीर्थयात्रा की पृष्ठभूमि

परिवार के लिए उपार्जन उत्तरदायित्व जिनके ऊपर नहीं है अथवा कम है वे स्थायी रूप से तीर्थयात्रा जैसे पुण्य परमार्थ में अपना अधिकांश समय समर्पित कर सकते हैं। यदि अति उच्चस्तरीय योग, तप एवं पुण्य परमार्थ है। उसमें आत्मिक कल्याण एवं लोक-मंगल का दुहरा धर्म लाभ जुड़ा है। प्राचीनकाल में वानप्रस्थ एवं सन्त प्रधानतया इसी धर्म धारणा की तपश्चर्या में निरत रहते थे। भगवान बुद्ध ने मरते समय अपने शिष्यों और शिष्याओं को आदेश दिया था कि वे तीन दिन से अधिक एक स्थान पर न रहें और चलते रहकर ही अपनी तप साधना में परिव्रज्या सम्मिलित रखें। प्राचीनकाल में कितने ही महामनीषि अपने विद्यालय चलते-फिरते ही रखते थे और छात्रों को अध्ययन के साथ-साथ अनुभव सम्पादन का दुहरा लाभ कराते रहते थे। विनोबा की भूदान यात्रा सर्वविदित है। बुद्ध और महावीर के शिष्यों के जन-जागरण के लिए प्रचार यात्राओं का अपना प्रधान कार्यक्रम बनाया था। गांधीजी की डाँडी नमक यात्रा और नोआ खाली की शान्तियात्रा सर्वविदित है। जिनकी स्थिति इन पद चिह्नों पर चलने की है उन्हें इस धर्म परम्परा को अपनाने के लिए साहसपूर्वक तैयारी करनी चाहिए और भावी जीवन में अधिकाधिक समय नियोजित किये रहने की योजना बनानी चाहिए।

(१) जिनके बच्चे स्वावलम्बी बन गये, (२) जिनके पास पेन्शन अथवा ब्याज भाड़े आदि की निर्वाह योग्य आजीविका है, (३) जो परिवार अपने सदस्यों में से एक को धर्म धारणा के लिए समर्पित करके उसके स्त्री-बच्चों की व्यवस्था बनाये रह सकें, (४) जो अविवाहित अथवा बिना बच्चे के हैं वे बड़ी सरलतापूर्वक इस पुण्य प्रयोजन में प्राचीनकाल के वानप्रस्थों की तरह तीर्थयात्रा का व्रत निवाहने के लिए अग्रसर हो सकते हैं। इस दिशा में कदम उठाने वालों का शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक स्वास्थ्य ऐसा होना चाहिए जिसके आधार पर धर्मप्रचार जैसा अनुदान वितरित कर सकना सम्भव हो सके। अपनी दुर्बलता और विकृतियाँ बखेरने और उनसे लोगों में कुरुचि एवं आश्रय उत्पन्न करने वालों का तो इस दुस्साहस का अपनाना ही उचित है।

जिसकी स्थिति तीर्थयात्रा कार्यक्रम को भावी जीवन को सुनिश्चित योजना लहर अपनाने की हो, उनके लिए आवश्यक मार्गदर्शन और सहयोग शान्तिकुंज से मिल सकता है। सबसे प्रथम आवश्यकता प्रशिक्षण की है। तीर्थयात्री का व्यक्तित्त्व, गुण, कर्म, स्वभाव का समन्वय प्रभावोत्पादक होना चाहिए। यह किस प्रकार विकसित किया जाय, अनुभव एवं अभ्यास होना प्रथम चरण है। दूसरा चरण है प्रचार प्रयोजन का ठीक तरह सम्पन्न कर सकने योग्य दृष्टिकोण एवं अनुभव की परिपक्वता।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके लिए भी बहुत कुछ सीखना, समझना एवं अभ्यास में उतारना होता है। धर्म प्रचार में संभाषण की प्रभावोत्पादन कला आनी चाहिए। आये दिन प्रस्तुत होने वाले प्रश्नों के उत्तर तथा सामयिक समस्याओं के समाधान को सुलझी हुई जानकारी धर्म प्रचारक के पास रहनी चाहिए। प्रचार यात्रा के अनेकों रचनात्मक एवं सुधारात्मक क्रिया-कलापों का प्रदर्शन, संस्थापन एवं अभिवर्धन करना होता है वह सब जितनी अच्छी तरह विदित होगा उतना ही तीर्थयात्रा का प्रयोजन ठीक तरह सम्पन्न हो सकेगा। अनगढ़ व्यक्ति तो इधर-उधर मारे-मारे ही फिरेंगे और उनके निरुद्देश्य परिभ्रमण से किसी का कोई लाभ न हो सकेगा। सामान्य शिल्प उद्योगों तक के श्रमिकों को अपने कार्य की ट्रेनिंग लेनी पड़ती है तो फिर धर्म प्रचार जैसे अति महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए आवश्यक ज्ञान सम्पदा का अभीष्ट क्रिया कौशल का सम्पादन तो और भी अधिक आवश्यक होगा।

इस ट्रेनिंग के लिए शान्तिकुंज में व्यवस्था है। साधारणतया काम चलाऊ प्रशिक्षण तीन महीने में पूरा हो जाता है। इसमें आत्मशक्ति तथा दिव्य चेतना विकसित करने के लिए विधिपूर्वक गायत्री पुरश्चरण भाषण कला, व्यक्ति और समाज की असंख्य समस्याओं का स्वरूप तथा समाधान, धर्ममंच से लोकशिक्षण प्रक्रिया की आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग, रामायण कथा, गीता-भागवत की प्रेरणात्मक कथा व्याख्या, पर्व संस्कार आदि आयोजन के माध्यम से व्यक्ति, परिवार और समाज के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए प्रयुक्त हो सकने वाली प्रभावोत्पादक क्रिया-प्रक्रिया, प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं सुधारात्मक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन, संस्थापन एवं अभिवर्धन जैसे अनेकों उपयोगी अभ्यास इसी स्वल्प अवधि में पूरा करा दिये जाने की सुनियोजित शिक्षण प्रक्रिया बनाकर रख दी गई है। शिक्षार्थी को इन्हीं का व्यावहारिक अभ्यास करना पड़ता है।

इन तीर्थयात्रा के लिए समर्पित व्यक्तियों के निर्वाह की व्यवस्था शान्तिकुंज से होती रहेगी और उन्हें कार्यक्रमों का मार्गदर्शन गायत्री तपोभूमि से मिलता रहेगा।

मनुष्य के दैनिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र, साबुन, मंजन, ब्लेड जैसी वस्तुएँ आती हैं। ब्राह्मण, वानप्रस्थ, साधु सदा औसत जन स्तर से कम निर्वाह लेकर अपनी त्याग और अपरिग्रह वृत्ति का प्रमाण देते रहे हैं। जब कार्य पद्धति ऋषि परम्परा की अपनाई गई तो स्वभावतः निर्वाह क्रम भी औसत भारतीय के स्तर से कुछ कम लेकर ही चलना चाहिए। जिसके पास अपनी पूर्व उपार्जित आजीविका, पेन्शन, ब्याज भाड़े की आमदनी पुत्रों या परिवार वालों द्वारा ऋण मुक्ति के लिए दी गई सहायता के रूप में यदि कुछ व्यवस्था है तो उचित यही है कि अपना निर्वाह तीर्थयात्री उसी से चलायें। यदि पैसा बिल्कुल नहीं है, या आंशिक है तो उस कमी की पूर्ति सार्वजनिक धन से संस्था द्वारा हो सकती है। पर यह अनुदान लिया उसी स्थिति में जाय जबकि निजी स्रोत पूरी तरह सूख गये हों। निजी कमाई को समर्थ कुटुम्बियों के लिए छोड़ना और संग्रहित धन पर गुजारा करना उन्हीं के लिए उचित है जो वस्तुतः उसके अधिकारी हों ऐसे लोगों की निर्वाह व्यवस्था संस्था की ओर से की जायेगी। दैनिक आवश्यकता की, शरीर यात्रा के लिए आवश्यक वस्तुएँ उन्हें शान्तिकुंज से भी मिलती रह सकती हैं। सभी यात्रियों का आहार-विहार, वस्त्र वेष एक जैसे रखे जायेंगे ताकि किसी के धनी दरिद्र होने का अन्तर प्रतीत न हों।

तीर्थयात्रियों का शिक्षणकाल तीन महीने का है। शान्तिकुंज में कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर-वानप्रस्थ, वर्ष में लगातार चलते रहेंगे। (१) जनवरी-फरवरी-मार्च, (२) अप्रैल-मई-जून, (३) जुलाई-अगस्त-सितम्बर, (४) अक्टूबर-नबम्बर-दिसम्बर। ये चार सत्र इन प्रयोजन के लिए होते हैं—प्रथम मास में यज्ञ, संस्कार, पर्व, गोष्ठी, सम्मेलन आदि आयोजनों के माध्यम से जनता को एकत्रित करने, भावनात्मक वातावरण बनाने और आयोजनों के अनुरूप लोकशिक्षण करने की विधि व्यवस्था हृदयंगम कराई जाती है। दूसरे महीने में रामायण रामचरित्र के माध्यम से व्यक्ति और परिवार निर्माण की अगणित समस्याओं के समाधान जन-साधारण के सम्मुख प्रस्तुत कर सकने की क्षमता उत्पन्न की जाती है। तीसरे महीने गीता भागवत कृष्ण चरित्र की व्याख्या के साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं के हल समझा सकने की योग्यता विकसित की जाती है।

इन प्रशिक्षणों के साथ-साथ तीनों माह बौद्धिक शिक्षण का क्रमबद्ध पाठ्यक्रम लगातार चलता रहेगा। उसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश रहेगा।

(१) धर्म प्रचारकों के उपयुक्त व्यक्तित्त्व का निर्माण अभीष्ट उद्देश्य के लिए आवश्यक गुण कर्म स्वभाव का परिष्कार।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) सर्वतोन्मुखी प्रगति, उज्ज्वल भविष्य एवं स्थायी सुखशान्ति के लिए उठाये जान योग्य चरणों की तैयारी। मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण के लिए उपयुक्त योजनाओं का स्वरूप तथा उनके लिए आवश्यक साधन जुटाने के आधार।

(३) व्यक्ति, परिवार और समाज निर्माण के क्षेत्र में उपस्थित समस्याओं का स्वरूप और समाधान।

(४) जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त विकृत मान्यताओं का विवेचन तथा उनके अध्यात्मसम्मत प्रतिपादन।

(५) धर्म प्रचार के मार्ग में प्रस्तुत होने वाले अवरोधों के कारण और विवरण।

(६) मधुर आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक वार्तालाप की शैली, विभिन्न अवसरों पर प्रवचन करने के लिए प्रयोग में लायी जाने योग्य भाषण शैलियों का अभ्यास।

(७) मिशन की विशिष्ट कार्य पद्धतियों का स्वरूप तथा वर्तमान समय में उनकी अनिवार्यता तथा उपयोगिता की विवेचना।

यह प्रशिक्षण न केवल तीर्थयात्रा पर निकलने वाले धर्म प्रचारकों के लिए वरन् युग निर्माण शाखाओं के कार्य वाहकों, कर्मठ कार्यकर्त्ताओं एवं सभी वानप्रस्थों के लिए भी आवश्यक है। अस्तु ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि तीर्थ यात्रियों के अतिरिक्त अन्य सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने के इच्छुक भी आवश्यक मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें। प्रवेश पाने के इच्छुकों को अपनी शारीरिक, शैक्षणिक, पारिवारिक, आर्थिक परिस्थितियों का तथा अब तक के जीवनयापन तथा भावी आकांक्षा का विस्तृत उल्लेख करते हुए आवेदन पत्र भेजना पड़ता है। शिक्षण के लिए सीमित सीटें ही निर्धारित हैं, अस्तु इच्छुकों को कब प्रवेश मिलेगा यह स्वीकृति स्थिति के अनुसार ही भेजी जा सकेगी।

सामान्यतया भोजन व्यय वहन करने की अपेक्षा शिक्षार्थियों से की जाती है। इसकी न्यूनतम राशि ६५ रु. मासिक है। पर यदि शिक्षार्थी पूरा वहन करने की स्थिति में न हो तो जितना अंश सरलता से दे सकें उतने को भी स्वीकार कर लिया जायेगा। किसी को इस शिक्षा के लिए इच्छुक को इसलिए वंचित न रहने दिया जायेगा कि वह अपना भोजन व्यय आधा-अधूरा व बिल्कुल भी न दे सकने की स्थिति में थे।

उपरोक्त तीन महीने के शिक्षण को जो एक साथ पूरा नहीं कर सकते। इतने लम्बे समय तक जिनके लिए घर से बाहर रह सकना, कृषि, व्यवसाय, नौकरी आदि में अवकाश निकल सकना सम्भव नहीं वे उसे दो बार या तीन बार में भी पूरा कर सकते हैं। एक-एक महीने करके तीन शिविरों में, तीन बार में या एक बार दो महीने, एक बार एक महीने का प्रवेश लेकर यह शिक्षा पूरी की जा सकती है।

स्थायी धर्म प्रचारकों के लिए भजन कीर्तन की शैली भी बहुत उपयोगी समझी गयी है, इसलिए उनके लिए संगीत शिक्षण की व्यवस्था भी बनायी गयी है। किन्तु यह शिक्षण सभी को नहीं दिया जा सकता। संगीत शिक्षण की यह शर्तें हैं कि प्रशिक्षार्थी पूरे तीन माह शिक्षण में रहे और उनका गला तथा उनकी मानसिक क्षमता संगीत के उपयुक्त हो। जो इन शर्तों को पूरा कर सकेंगे उन्हें काम चलाऊ संगीत का अभ्यास भी कराया जायेगा।

जहाँ भी तीर्थयात्रा आरम्भ की जाय, शिक्षार्थियों का पूर्व प्रशिक्षण आवश्यक है। इस पुस्तिका में दिये गये संकेतों के आधार पर न्यूनतम एक सप्ताह तक कोई विवेकशील व्यक्ति पदयात्रा पर जाने वाली मण्डली को आवश्यक समझने और नियम पालन करने की शिक्षा दे सकते हैं। बिना कुछ जाने समझे ऐसे ही यात्रा पर अनायास ही चल पड़ना अभीष्ट परिणाम उत्पन्न न कर सकेगा। हर हालत में एक सप्ताह की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त ही इस पुण्य प्रयोजन के लिए निकल जाना चाहिए।

यह टोलियाँ अपनी योजना बनाकर परस्पर सहयोग के सहारे आवश्यक खर्च की व्यवस्था बनाकर कहीं भी, किसी भी दिशा में निकल सकती हैं। लाउडस्पीकर के सैल, साइकिल मरम्मत, हवन सामग्री, प्रचार साहित्य वितरण का प्रचार खर्च है और निर्वाह में दैनिक भोजन व्यवस्था का प्रधान प्रश्न है। यदि स्वतन्त्र रूप से चला जाय तो प्रचार के लिए लगने वाले समय में से कुछ काट कर एक बार में भोजन स्वयं बनाने का प्रबन्ध करना चाहिए। दूसरे समय के लिए बनाकर रखा रहने दिया जा सकता है। ऐसा करना हो तो भोजन पकाने खाने के बर्तन भी साथ लेकर चलना होगा। आटा, दाल, चावल, नमक जैसी वस्तुएँ तो हर जगह मिल जाती हैं। किस प्रकार के भोजन का अभ्यास है और सरलतापूर्वक साधन क्या मिल सकते हैं, इसे देखते हुए क्या भोजन बनेगा और उसकी व्यवस्था क्या करेंगे। यह निर्णय परिस्थितियों के अनुरूप टोलियों को स्वयं ही करना पड़ेगा। कभी घर-घर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से एक-एक रोटी माँग कर भी तीर्थयात्राएँ आसानी से चल जाती थीं । मन्दिरों में उनके निवास भोजन की सर्वत्र व्यवस्था रहती थी । धर्मशाला अन्न क्षेत्र प्रधानतया इन्हीं धर्म प्रचारकों के लिए बनाये जाते थे पर अब तो लोग तथ्यों को भूल कर विडम्बनाओं के जंजाल में जकड़े हुए धर्मकार्य में प्रयुक्त होने वाले साधनों को अनर्थकारी प्रयोजनों में ही लगा रहे हैं । ऐसी दशा में अपनी तीर्थयात्रा टोलियों को निवास, भोजन लेकर प्रचार के लिए साधन जुटाने तथा जन-समूह को एकत्रित करने तक के उत्तरदायित्त्व अपने ही कन्धों पर उठाने होंगे ।

तीर्थयात्रा टोलियों के कार्यक्रमों की अपनी सुनियोजित योजना फिलहाल यह है कि युग-निर्माण शाखाएँ यह निश्चय करें कि किस शाखा को अपने समीपवर्ती क्षेत्र में कितने दिन के लिए पदयात्रा टोलियों की आवश्यकता है । यह समय न्यूनतम पन्द्रह दिन और अधिकतम एक महीना होना चाहिए । जहाँ उत्सुकता और तैयारी हो वहाँ से हरिद्वार या मथुरा के केन्द्रों को सूचना देकर अपने यहाँ के लिए समय लेने का पत्र व्यवहार कर लेने चाहिए । केन्द्र से दो या तीन पदयात्री भेज दिये जायेंगे उनके साथ जाने के लिए स्थानीय लोग भी दो या तीन की संख्या में तैयार होने चाहिए । इस प्रकार पाँच-छः यात्रियों की मण्डली उस क्षेत्र में अपना काम ठीक तरह कर सकती है और प्रशिक्षित लोगों के साथ नये लोग भी उस प्रक्रिया से परिचित हो सकते हैं । केन्द्र से पहुँचाने वाले पदयात्री अपने बिस्तर, साइकिल, साधन आदि साथ लेकर पहुँचेंगे पर वहीं सब साधन स्थानीय लोगों की अपने यहाँ से जुटाकर यात्रा तिथि से पहले ही पूरी तरह तैयार कर लेनी चाहिए ।

जो शाखाएँ प्रचार के लिए पदयात्री बुलायें उन्हें उनकी भोजन व्यवस्था तथा यात्रा में होने वाले प्रचार व्यय का आर्थिक भार स्वयं ही उठाना चाहिए । यों इसमें कोई बड़ी रकम नहीं लगती तो भी प्रबन्ध की बात सोचनी ही पड़ती है ।

शाखाओं की माँगें एकत्रित हो जाने पर दो या तीन पदयात्रियों को टोलियों के प्रवास चक्र के आधार पर कार्यक्रम बनाकर सौंप दिया जायेगा और वे एक के बाद दूसरे समीपवर्ती कार्यक्रम को पूरा करते हुए आगे चलने और वापस लौटने की बात पूरी करेंगी । यों यह सूत्र संचालन तो केन्द्र का है पर उसकी क्षेत्रीय व्यवस्था किन्हीं विशेष शाखाओं के सुपुर्द रहेंगी । टोलियों में से किसी के बीमार पड़ने, छुट्टी जाने अथवा निर्धारित कार्यक्रमों में कारणवश हेर-फेर करने, किसी सामयिक समस्या को सुलझाने जैसे कार्य भी क्षेत्रीय संचालकों को ही सँभालने पड़ेंगे । वर्षात के सत्रों में आमतौर से सभी पदयात्री विश्राम, साधना द्वारा अभिनव शक्ति संचय करने एवं नवीन शिक्षण के लिए तीन महीने हरिद्वार रहेंगे । इस अवधि में साइकिलें, लाउडस्पीकर आदि प्रचार साधन वे क्षेत्रीय संचालकों के पास ही छोड़ दिया करेंगे । उन्हें सुरक्षित रखना अक्टूबर से नया क्रम आरम्भ होने पर वे उपकरण नये जत्थे को सुपुर्द कर देना इन क्षेत्रीय संचालकों का ही काम होगा । उन्हीं के परामर्श से उस क्षेत्र की यात्राओं का निर्धारण हुआ करेगा तथा वे ही उसकी पृष्ठभूमि, योजना, व्यवस्था, प्रशिक्षण, मार्गदर्शन, साज-सँभाल का कर्त्तव्य पूरा किया करेंगे । प्रत्येक प्रान्त में ऐसे क्षेत्रीय केन्द्रों का निर्धारण किया जा रहा है जिसके सहयोग से इस योजना को अधिकाधिक विस्तारपूर्वक कार्यान्वित किया जा सके ।

स्थायी रूप में तीर्थयात्रा मिशन के लिए आत्मदान करने वाले ऐसे भावनाशील लोगों की बड़ी संख्या में आवश्यकता है जिनके ऊपर आजीविका उपार्जन की अनिवार्य जिम्मेदारी नहीं है । धर्म को जीवित रखने के लिए उसकी जड़ों को खाद-पानी मिलते रहना चाहिए । धर्म के सही रूप का परिचय और उसका अन्तःकरण के गहन अन्तराल में इतना प्रवेश जो व्यावहारिक जीवन में ठीक तरह उतर सकें, यही है धर्मवृक्ष का खाद-पानी जिसकी अनेक माध्यमों से पूर्ति की जा सकती है । इन पूरक प्रयोजनों से सर्वसुलभ और सर्वोत्कृष्ट माध्यम तीर्थयात्राओं , पदयात्राओं का ही है । इसे प्राचीन काल में अत्यधिक श्रद्धा और तत्परतापूर्वक अपनाया गया था । आज भी उस पुण्य परम्परा को पुनर्जीवित करने में उसी दूरदर्शिता और सदाशयता का परिचय दिया जाना चाहिए ।

भावनाशील व्यक्ति इस तपश्चर्या के लिए आवश्यक शिक्षण तथा साधन जुटाने का प्रयत्न मिशन की ओर से होगा । इस तीर्थयात्रा मिशन को भावनात्मक एवं साधनात्मक सहयोग प्रत्येक धर्मनिष्ठ व्यक्ति से अपेक्षित है । उसी अनुदान के आधार पर यह व्यक्ति और समाज का कायाकल्प कर सकने वाली, धर्म प्रक्रिया का सत्परिणाम विकसित वर्तमान और उज्ज्वल भविष्य के रूप में परिलक्षित हो सकेगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उद्‌बोधन-प्रवचन

तीर्थयात्रा के क्रम में जहाँ टोली का पड़ाव होगा वहाँ रात्रि में एक या दो प्रवचन करने उद्‌बोधन संदेश देने का अवसर मिलेगा। इसके लिए कथा शैली को ही उपयुक्त समझा गया है। रामायण के आधार पर अपने मिशन के उद्देश्य तथा कार्यक्रम उन भाषणों में कहे जाने चाहिए। तद्‌नुसार दो भाषण एक सिद्धान्तपरक तथा दूसरा कार्यक्रमपरक यहाँ दिये जा रहे हैं।

भाषणों में केवल सूत्र दिये गये हैं। उनके मुख्य आधार को न बदला जाय अपने शब्दों में उन्हें आवश्यकतानुसार बढ़ाया घटाया जा सकता है। यदि दो भाषण किये जावें तो वे एक-एक घण्टे तक के हों। यदि एक ही भाषण करना हो तो उसमें डेढ घण्टे तक का समय लिया जाना उचित है। भाषणों में यह ध्यान रखा जाय कि यह तीर्थयात्रा के वातावरण में कहे जा रहे हैं। उनमें भावना की सरसता बनी रहे वे सूखे उपदेश या जोशीले उद्‌बोधन का रूप न लेने पावें। इसीलिए उन्हें रामायण के आधार पर रचा गया है, किन्तु वक्ता को भी यह बात ध्यान में रखनी होगी।

भाषण प्रारम्भ करते समय प्रारम्भ तथा अन्त में वन्दना के कुछ श्लोक स्पष्ट स्वर में सस्वर बोले जावें। वे श्लोक ऐसे हों जिनमें वन्दना के साथ-साथ कुछ दिशा भी हो इसके लिए उपयुक्त श्लोकों के संकेत नीचे दिये जा रहे हैं उनमें से किन्हीं दो-चार श्लोकों का उपयोग हर प्रवचन में किया जा सकता है।

संक्षिप्त हवन पद्धति के देवपूजन के —(१) गुरु वन्दन, (२) वन्दे देवमुमापति— (३) शुक्लां ब्रह्मविचार सार परमा— (४) गायत्री स्तवन में से कोई पद लिए जा सकते हैं—

दैनिक आरती में से (१) स्तुता मया वरदा— (२) एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ— (३) त्वमेकं शरण्यं— (४) अणोरणीयन्महतो महीयान्— (५) श्रीराम कथा के हर अध्याय के प्रारम्भ में दिए श्लोकों में से किसी का भी उपयोग किया जा सकता है।

प्रवचनों में रोचकता लाने के लिए उसमें दृष्टान्तों का समावेश आवश्यक है। रामायण की जिन चौपाइयों का उपयोग प्रवचनों में किया गया है उनसे सम्बन्धित घटना क्रमों का उल्लेख करने से यह विशेषता उत्पन्न हो सकती है। दूसरे प्रवचन में कथा प्रवाह के क्रम में ही कही गयी है—जहाँ जिस कथा प्रसंग को बढ़ाना आवश्यक लगे उसे बढ़ाया जा सकता है।

यात्रा के बीच जिन गाँवों में होकर निकला जाय उनमें यदि कहीं १०-१५ मिनट कुछ कहने का अवसर मिले, स्थिति बने तो 'तीर्थयात्रा अभियान का प्रेमोपहार' पुस्तिका का सारांश सुगम शब्दों में कह देना चाहिए।

१. प्रवचन-सिद्धान्तपरक

भारतवर्ष ऋषियों, देवताओं का देश कहा जाता रहा है। यह गौरव हमें इसलिए मिल सका कि हमारे ऋषि महर्षि, महापुरुष हमेशा यह प्रयास करते रहे हैं कि इस देश के लोगों में ऋषियों और देवताओं के गुण विकसित होते रहें। जन-साधारण को यह प्रेरणा दी जाती रही कि वे अपने सामान्य जीवनक्रम के साथ ऐसे नियम जोड़कर रखें जिससे उनमें ऐसी श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ बढ़ती रहें, पुष्ट होती रहें।

इसके लिए अनेक व्यवस्थाएँ बनाई गई थीं, उनमें से एक अति महत्त्वपूर्ण व्यवस्था रही है तीर्थों की स्थापना और तीर्थयात्रा परम्परा का प्रचलन। इसका उद्देश्य है कुछ समय तक स्वयं को दिव्य वातावरण में तथा सत्‌कार्यों में पूरी तरह लगाये रखना।

तीर्थ दिव्य संस्कारयुक्त वे स्थान कहे गये हैं—जहाँ जाने से उत्कृष्ट चिन्तन तथा आदर्श कर्तृत्व की प्रेरणा प्राप्त हो। तीर्थों को विकृत न किया जाय, उन्हें सस्ते में पुण्य लूटने का हथकण्डा न बनाया जाय।

तीर्थों में ऐसे विचारक आदर्श जीवन जीने वाले ऋषि रहते थे जिनके दर्शन और परामर्श से लोगों को श्रेष्ठ जीवन की प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता था। इसीलिए लोग तीर्थयात्रा करते थे।

जो लोग तीर्थों तक न पहुँच सकें उन्हें तीर्थों का लाभ देने के लिए ऋषियों का सन्देश जगह-जगह देते हुए हर तीर्थयात्री का कर्त्तव्य रहा है। कुछ लोग अपना जीवन इसी पुण्यकार्य के लिए लगाते रहे हैं, उन्हें सन्त कहा जाता था और चलता-फिरता तीर्थ माना जाता रहा है। रामायण में लिखा है—

मुद मंगल मय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई भी व्यक्ति सन्त वेष बनाकर घूमने लगे तो उससे ही जंगम चैतन्य तीर्थ नहीं बन जाता उसकी कुछ शर्तें हैं । तीर्थराज में गंगा, यमुना, सरस्वती की तीन धारायें एक स्थान पर मिलती हैं उसी प्रकार जहाँ, जिस व्यक्तित्त्व में, जिस समाज में, जिस कथा में आस्तिकता, आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता की धाराएँ एक साथ बहेंगी वहीं तीर्थ बन सकता है । लिखा है—

रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा ।
सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा ॥
विधि निषेधमय कलिमल हरनी ।
करम कथा रविनन्दनि बरनी ॥

यह तत्व न केवल वाणी में बल्कि आचरण में भी होना आवश्यक है । इस आध्यात्मिक त्रिवेणी को जीवन में प्रवाहित करने के अपने पुण्य धर्म कर्त्तव्य के प्रति जिनकी गहरी आस्थ है ऐसा सत्कर्म परायण समाज कहीं भी तीर्थ बना सकता है । लिखा है—

बटु विश्वास अचल निज धर्मा ।
तीरथ राज समाज सुकर्मा ॥

ऐसे तीर्थों का ऋषियों का सन्देश लेकर घूमने वाले तीर्थ यात्रियों का लाभ हर व्यक्ति को हर जगह मिल सकता है । इसी में उनकी सार्थकता है—

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा ।
सेवत सादर समन कलेसा ॥

जिस प्रकार औषधि का लाभ उसके सेवन से ही मिल सकता है उसी प्रकार इस प्रकार के तीर्थों का लाभ भी आदरपूर्वक सेवन करने से ही मिलता है । यदि सेवन किया जा सके तो इस तीर्थ का पुण्य लाभ अद्भुत कहा गया है ।

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ ।
देइ सद्यफल प्रकट प्रभाऊ ॥

इस तीर्थ का लाभ उठाने का सेवन का ढंग बतलाते हुए तुलसीदासजी लिखते हैं—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन,
मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तन,
साधु समाज प्रयाग ॥

सुनने, समझने और उसकी प्रेरणाएँ जीवन में अपनाने से, इन तीर्थों के प्रभाव से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फल इसी जन्म में प्राप्त हो सकते हैं । इनका प्रभाव तुरन्त दिखाई देता है—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला ।
काक होंहि पिक बकहु मराला ॥

कौऐ से कोयल और बगुले से हंस बनने की उक्ति के पीछे यह तथ्य स्पष्ट है कि बाहर से रंग रूप भले बदले अन्दर से प्रवृत्तियों का, गुण, कर्म, स्वभाव का कायाकल्प हो जाता है । अन्तःकरण की स्थिति बदलते ही मनुष्य अपने आपको स्वर्ग जैसी स्थिति में अनुभव करने लगता है ।

लोगों को इस स्थिति तक पहुँचाने के लिए सच्चे संतों को जो भी कठिनाई उठानी पड़े वे उठाते हैं क्योंकि उनका हृदय करुणा से भरा होता है । लोगों को कष्ट में देखकर उनका मन हाहाकार कर उठता है और वे अपनी सारी शक्ति उन पीड़ाओं, व्यथाओं के निवारण में लगा देते हैं । तुलसीदास द्वारा रामचरित्र को प्रेरक के रुप में प्रस्तुत करने के पीछे उनकी सद्भावना ही कारण बनी । तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन करते हुए गीतावली में उन्होंने लिखा है—

दारिद दसानन दबाई दुनी दीनबंधु,
दुरति दहन देखि तुलसी हहाकरी ।

दरिद्रता रूपी दसानन दुनिया को बहुत दुःख देता है । गरीबी नहीं—मनुष्य की आत्महीनता को ही दरिद्रता कहा जाता है । तुलसीदासजी इसको सबसे बड़ा दुःख मानते हैं तथा इसका निवारण सच्चे सन्तों द्वारा सम्भव मानते हैं । लिखा है—

नहिं दरिद्र सम दुःख जग माहीं ।
संत मिलन सम सुख कछु नाहीं ॥

संत दरिद्रता का निवारण ईश्वरत्त्व के अनुदान देकर करते हैं । ईश्वरीय उद्देश्यों में संत सच्चे सहयोगी बनकर अपनी सारी शक्तियाँ उसी में लगा देते हैं । यह कार्य कैसे सम्भव है इस पर मानस की यह चौपाई प्रभाव डालती है—

रामसिंधु घन सज्जन धीरा ।
चंदन तरु हरि संत समीरा ॥

जैसे बादल समुद्र का जल तथा वायु चंदन की सुगन्धि बिखेरते रहते हैं, वैसे ही संत ईश्वरीय सन्देश, श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ सारे संसार में फैलाकर जनहित और जन-कल्याण का अपना लक्ष्य पूरा करते रहते हैं । यह सबके धन या यश की कामना से नहीं अपनी सहृदयता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कारण करते हैं। संत के लक्षण बतलाते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवहिं नवनीता।
पर दुःख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

अपनी इसी सहृदयता के कारण सच्चे सन्त अपने स्वर्ग एवं मुक्ति के अधिकार को त्यागकर भी लोक-मंगल के कार्यों में लगे रहते हैं। वर्तमान तीर्थयात्रा धर्म परम्परा के पुनर्जीवन अभियान के पीछे भी ऐसे ही ऋषि की प्रखर प्रेरणा तथा समर्थ आशीर्वाद कार्य कर रहा है।

भारत की यह सनातन परम्परा रही है कि समय-समय पर तीर्थों में ऋषि लोग एकत्रित होते थे, वहाँ लोक-कल्याण के सूत्र निर्धारित करते थे।

ब्रह्मनिरूपण धरम विधि, बरनहिं तत्व विभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संयुत ज्ञान विराग॥

ज्ञान वैराग्य तथा भक्ति के व्यावहारिक सूत्रों के धर्मनिष्ठ लोग जन-जन तक पहुँचाते थे। श्रेष्ठ सिद्धान्तों का निर्धारण ही नहीं उनका प्रचार भी लोक-मंगल के लिए आवश्यक है। तुलसीदास जी श्रीराम के चरित्र की आवश्यकता तथा उपयोगिता अनुभव करते हुए लिखते हैं—

जनमानस जेहि विधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहौं प्रसगं सब, सुमिरि उमा वृषकेतु॥

राम चरित्र के प्रचार का उद्देश्य श्रीराम के उज्ज्वल चरित्र से लोक-जीवन को प्रेरणा देना ही है। स्वयं श्रीराम अपनी जीवनचर्या इसी अनुसार बनाते थे। आनन्द रामायण में लिखा है—

श्रृणु शिष्य वदाम्यद्य राम राज्ञः शुभावहां।
दिनचर्या राज्य काले कृता लोकान् हि शिक्षुतुम्॥

अर्थात् हे ! शिष्य सुनो अब मैं तुम्हें श्रीराम की दिनचर्या के बारे में बताता हूँ। उनकी सारी क्रियाएँ लोकशिक्षण के लिए होती थीं।

भगवान की लीलाओं का उद्देश्य यही है कि उसको देख समझकर लोग उनके गुणों का अनुकरण करें। भगवान के नाम रूप के साथ उनके गुणों का स्मरण होने से ही—उन्हें जीवन में धारण करने से ही लौकिक पारलौकिक विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। मानस में स्पष्ट लिखा है—

जग मंगल गुन ग्राम राम के।
दानि मुकुति धन धरम धाम के॥

भगवान के गुणों के प्रभाव से ही कथा हर प्रकार की कामनायँ पूरी करने वाली कामधेनु के समान सिद्ध होती है। उसके इस प्रभाव को लक्ष्य करके ही उसे सभी अपनाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

राम कथा सुर धेनुसम, सेवत सब सुख दानि।
सत समाज, सुरलोक सब, को न सुनय अस जानि॥

भगवान के चरित्र का वर्णन अनेक प्रकार से अनेक लोग करते हैं, उनका अनुकरण किया जाना चाहिए। किन्तु यह कार्य अविवेकपूर्वक नहीं, विवेकसम्मत होना चाहिए। समय के अनुसार पुराने सिद्धान्तों में थोड़ा बहुत सुधार करके ही उन्हें वर्तमान के उपयुक्त बनाया जा सकता। इसी भाव को व्यक्त करते हुए तुलसीदासजी लिखते हैं—

करहुं मनोहर मति अनुसारी।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी॥

इसी आधार पर विवेकपूर्वक यदि श्रेष्ठ चरित्रों का अनुकरण किया जाय तो मनुष्य में देवत्व के उदय की सम्भावना को साकार बनाया जा सकता है। जब मनुष्य का अन्तःकरण उस योग्य बन जाता है तो भगवान की सत्ता वहाँ फूट पड़ती है। ऋषि सुतीक्ष्ण के साथ ऐसा ही हुआ—

अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा।
प्रगटे हृदय हरण भवभीरा॥

अन्तःकरण में भगवान के साक्षात्कार—देवत्व के उदय की अनिवार्य शर्त है मन की निर्मलता। स्वयं भगवान कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहिं कपट छल छिद्र न भावा॥

स्वच्छ मन की उपलब्धि अनायास ही नहीं हो जाती, उसके लिए साहसपूर्वक सुधारात्मक प्रक्रिया भी अपनानी पड़ती है। यह भी एक तरह का संग्राम होता है जिसमें साहस शौर्य का परिचय देकर ही आगे बढ़ा जा सकता है। सांसारिक उपलब्धि हो या आध्यात्मिक, सुधारात्मक संघर्ष के बिना जीवन में सफलता नहीं मिलती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काकभुशुण्डिजी तो भक्ति मार्ग में भी उसे अनिवार्य बतलाते हुए गरुड़ जी से कहते हैं—

बिरति चर्म असि ग्यान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सोइ हरि भगति, देख खगेश बिचारि॥

जब मनुष्य इस प्रकार अपने अन्तःकरण को भक्तों के अनुरूप बना लेता है तो फिर उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। परिवार आदि सम्बन्ध फिर माया के बन्धन नहीं आत्मविकास की सीढ़ी के रूप में दिखने लगते हैं। परिवार एक पाठशाला, व्यायामशाला जैसा दिखाई देता है जिसमें आत्मीयता को पुष्ट बनाया जाता है। मोह बुद्धि से उनके पालन-पोषण की नहीं कर्त्तव्य बुद्धि से उन्हें श्रेष्ठ संस्कार देने की बात सोची जाती है। हर सम्बन्धी अपने शरीर के नाते नहीं भगवान के नाते से अपना लगता है।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिअहिं राम के नाते॥

ऐसा दृष्टिकोण हो जाने पर ग्रह-प्रमुख परिवार वालों की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ यह भी प्रयास करता है कि उनका स्तर, उनके संस्कार, उनके गुण, कर्म, स्वभाव इस स्तर के बनें ताकि वह भगवान से जुड़े रहने योग्य बने रहें। गृह-प्रमुख पिता हो या बड़ा भाई, अपने परिजनों को श्रेष्ठ दिशा देना उसका कर्त्तव्य होता है। श्रीराम ऐसा ही करते हैं—

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती।
नाना भाँति सिखावहिं नीती॥

परिवार के माध्यम से व्यक्ति की आत्मीयता का विकास होता है और वह क्रमशः समाज तक फैल जाती है। अपनी व्यक्तिगत साधना और परिवार के निर्माण से आगे उसे समाज रूप में भी परमात्मा का बोध होने लगता है। भगवान राम भक्तराज हनुमान को यह तथ्य समझाते हुए कहते हैं—

सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त॥

जब यह क्रम मनुष्य की समझ में आने लगता है तो हर व्यक्ति देवता बनने लगता है। जहाँ देवता रहते हैं वहीं स्वर्ग बन जाता है। जहाँ सद्गुण रहते हैं वहीं सतयुग प्रकट हो जाता है। स्वर्ग तथा सतयुग आदि स्थान या समय विशेष का नहीं स्थितियों का नाम है। यह स्थितियाँ मनुष्य के आचरण से पैदा होती हैं। रामराज्य में यह तथ्य प्रकट करते हुए कहा गया है—

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी।
त्रेता भई सतयुग कै करनी॥

मनुष्य जब कथनी से आगे बढ़कर करनी भी ठीक करने लगते हैं तो उन्हें सही अर्थों में श्रेष्ठतम सुख मिलने लगते हैं। रामराज्य में लोग अपने संयम नियम के आधार पर स्वर्ग के देवताओं जैसा सुन्दर और स्वस्थ जीवन जीते हैं—

अल्प मृत्यु नहिं कबनेहुँ पीस।
सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा॥

व्यक्तिगत मर्यादाओं के निर्वाह से जिस प्रकार निरोगी और स्वस्थ जीवन प्राप्त होता है उसी प्रकार सामाजिक मर्यादाओं के पालन से आदर्श समाज की उपलब्धि होती है। समाज भी एक विशाल शरीर है उसका हर अंग-हर व्यक्ति स्वस्थ हो, तालमेल से चले तो सभ्य और पुष्ट समाज का अनुपम लाभ मिल सकता है। उस स्थिति का वर्णन करते हुए रामायण में लिखा है—

वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोगा॥

भारत फिर ऐसे गौरव का अधिकारी बने। हर भारतवासी ऋषियों की सच्ची सन्तान, देवता कहला सके यही स्थिति पैदा करना हमारी पदयात्राओं का उद्देश्य है। एक पुण्यात्मा ऋषि के निर्देश के अनुसार ऐसी स्थिति लाने के सूत्र, जीवनक्रम अपने भाइयों को बतलाते हुए हम अपने उत्तरदायित्व को पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं और चाहते हैं कि अन्य भावनाशील बन्धु भी इसमें भागीदार बनें।

२. प्रवचन कार्यक्रमपरक

हम चाहते हैं कि हम और हमारे देशवासी सच्चे अर्थों में ऋषियों की सन्तान कहलायें। इसके लिए केवल बातचीत तक ही सीमित न रह कर हमें अपनी आस्थाओं और क्रियाओं में भी श्रेष्ठतम आदर्शों को शामिल करना होगा। यह आदर्श कौन से हों ? कहाँ से आवें ? यह कोई समस्या नहीं है। हमारे धर्मग्रन्थों में श्रेष्ठ मानवों और अवतारों के जीवन चरित्रों में वह बड़ी मात्रा में मिल जाते हैं जिन्हें अपनाकर हर मनुष्य पुरुषोत्तम बन सकता है।

यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखी जानी चाहिए। वह यह है कि हमारे धर्मग्रन्थ तथा अवतारों के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चरित्र तो विशाल भण्डार हैं उनमें से हर सूत्र हर स्थिति में उपयोगी नहीं हो सकता। दवा की दुकान में सभी दवाएँ उपयोगी होती हैं, किन्तु किसी एक रोगी के लिए हर दवा लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकती। हाँ यह बात सच है कि हर रोगी के लिए उपयुक्त दवा वहाँ से प्राप्त की जा सकती है। हमारे धर्म ग्रन्थों में वर्णित सिद्धान्त भी ऐसे ही हैं। हर स्थिति में हर सिद्धान्त उपयोगी नहीं हो सकता । किन्तु हर स्थिति के लिए उपयुक्त समाधान सूत्र उनमें से प्राप्त किया जा सकता है।

जिस प्रकार उपयुक्त दवा का निर्णय डाक्टर या कोई अनुभवी व्यक्ति ही कर सकता है, इसी प्रकार धर्म ग्रन्थों में से युगानुरूप जन-साधारण के लिए हितकारी सिद्धान्त भी उस समय के दृष्टा मनीषी ही निकाल पाते हैं। उनको जीवन में अपनाकर जनसाधारण धर्मग्रन्थों के निर्देश के अनुसार जीवनयापन करते हुए श्रेष्ठ सामाजिक सुख तथा उच्च जीवन लक्ष्य प्राप्त करने में सफल होते हैं।

भगवान की कथा को भवरोगों की दवा कहा जाता है। यह कथन गलत भी नहीं है। भगवान की कथा में उनके स्वयं के तथा उनके सहयोगी श्रेष्ठ पुरुषों के चरित्रणों का वर्णन होता है। श्रेष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा हमें उनसे प्राप्त होती है। हम चाहते हैं कि हम, हमारा परिवार और समाज भी महामानवों जैसा हो तो हमें देखना होगा कि उनके निर्माण और विकास के ढंग क्या हैं।

श्रीराम कथा के प्रारम्भ में ही हम देखते हैं कि बालकों में श्रेष्ठ संस्कार पैदा करने पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। राम, लक्ष्मण आदि चारों भाई यज्ञीय वातावरण में पैदा होते हैं। यज्ञ त्याग, बलिदान, परमार्थ परायणता का प्रतीक है। यह संस्कार उन्हें गर्भ से ही मिलते हैं। जन्म के बाद माता-पिता और गुरु मिलकर उन्हें संस्कार देने के लिए बराबर सतर्क और तत्पर रहते हैं। सभी भाइयों को यज्ञोपवीत दिया जाता है।

भये कुमार जबहिं सब भ्राता,
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥

यज्ञोपवीत व्रतबन्ध कहलाता है। मनुष्य जन्म के साथ-साथ मनुष्यता के गौरव के अनुकूल मर्यादाओं का पालन, उसके अनुरूप प्रवृत्तियों के विकास का संकल्प उसके साथ जुड़ा रहता है।

यज्ञोपवीत पहना देने की लकीर पीटना भर काफी नहीं है, उसके अनुरूप उनके गुण, कर्म और स्वभाव का परिष्कार भी किया जाता है। उसके लिए नियमबद्ध जीवन जिया जाता है। श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए समर्थ न्यायकारी सत्ता के रूप में ईश्वर पर विश्वास तथा उसकी उपासना आवश्यक है। राम, लक्ष्मण आदि सभी भाई संध्या वन्दन करते हैं। समारोह शादी, व्याह हो या जीवन के कठिन प्रसंग उपासना क्रम नियमित चलना चाहिए। जनकपुर में धनुष यज्ञ के अवसर पर लिखा है—

समय जानि गुरु आयसु पाई।
संध्या करन चले दोउ भाई ॥

वनगमन प्रसंग में निषाद राजे के गाँव में भी ऐसा उल्लेख मिलता है। उन परिस्थितियों में भी श्रीराम समय पर सन्ध्या वन्दन करते हैं।

पुरजन करि जोहार घर आये।
रघुवर संध्या करन सिधाये ॥

जनकपुर में विश्वामित्र जी के सत्संग में सभी लोग बैठते थे। वहाँ संध्या वन्दन करते हैं।

समय जानि गुरु आयसु दीन्हा।
सबहीं संध्या वन्दन कीन्हा ॥

संध्या में गायत्री मन्त्र का प्रयोग निश्चित रूप से होता है। समय पर व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से गायत्री उपासना सभी के लिए उचित मानी गयी है।

उनका आहार-विहार भी सात्विक रहता है। राक्षसों से मोर्चा लेने की शक्ति भी सात्विक आहार से ही प्राप्त हो जाती है। वन में उनकी दिनचर्या के वर्णन में लिखा है—

राम लखन सीता सहित, कंद मूल फल खाय।
शयन कीन्ह रघुवंश मनि, पाय पलोटत भाय ॥

ऋषियों के यहाँ, सबरी के यहाँ सभी जगह वे शाक फल ही खाते हैं। मनुष्य के लिए यही आदर्श आहार है। अन्य लोगों का भी यही क्रम है । चित्रकूट में अयोध्यावासी और जनकपुरवासी सभी लोग एकत्रित होते हैं; उस समय आहार व्यवस्था का वर्णन इस प्रकार है कि—

सादर सब कहँ राम गुरु, पठये भरि-भरि भार।
वंदि बिप्र सुर अतिथि सब लगे करन फरहार ॥

सद्प्रवृत्तियों और सात्विक आहार का प्रचलन उस समय था। मनुष्य के लिए यही आहार उपयुक्त है।

बच्चों को संस्कार देने की व्यवस्था गर्भकाल से ही की जाती है, व्यावहारिक ज्ञान की भी उपेक्षा नहीं की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती । जैसे ही पढ़ने योग्य होते हैं उन्हें पढ़ने भेजा जाता है—

गुरुगृह पढ़न गये रघुराई ।
अल्पकाल विद्या सब पाई ॥

शिक्षा उचित वातावरण में ही होती है इसके लिए राजकुमारों को भी गुरु के आश्रम में भेजा जाता है । बच्चों में शिक्षा के प्रति उत्साह पैदा करने से वे थोड़े समय में ही बहुत प्रगति कर सकते हैं ।

स्कूली शिक्षा के साथ ही शिक्षा का क्रम बन्द नहीं हो जाता, जीवन भर यह क्रम चलाया जाना चाहिए । ऋषि विश्वामित्र कथाओं के माध्यम से राम-लक्ष्मण का शिक्षण करते हैं—

कहत कथा इतिहास पुरानी ।
रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥

देर तक कथा शिक्षण चलना दोनों पक्षों की उसमें रुचि होने का प्रतीक है ।

रामायण काल में श्रेष्ठ कथाओं के माध्यम से यह शिक्षण का क्रम घर-घर चलता है । अयोध्या के परिवारों का क्रम है—

सबके गृह-गृह होंहि पुराना ।
रामचरित सुन्दर विधि नाना ॥

श्रीराम अपने राज्य में प्रजाजनों के शिक्षण की व्यवस्था भी करते हैं तथा उनका उत्साह बढ़ाने के लिए स्वयं भी उसमें रुचि लेते हैं ।

वेद पुरान वशिष्ठ बखानहिं ।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥

छोटों में बड़ों के अनुकरण की वृत्ति होती है इसलिए ऐसे प्रसंगों में उन्हें स्वयं उत्साह लेना चाहिए । अयोध्या में एक दूसरे का शिक्षण देने का क्रम जनस्तर पर चल पड़ता है—

जहँ तहँ नर रघुपति गुण गावहिं ।
बैठ परस्पर इहइ सिखावहिं ॥

बालकों एवं प्रौढ़ों सभी में शिक्षा प्रसार, ज्ञान सम्पादन का क्रम चल पड़ने का प्रभाव यह होता है कि सारे राज्य में एक भी स्त्री-पुरुष अशिक्षित या अज्ञानी नहीं रह जाता ।

सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी ।
सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

राम राज्य जैसी स्थिति लाने के लिए अशिक्षा तथा अज्ञान का निवारण आवश्यक है ।

शिक्षा पाकर राजकुमार योग्य हो जाते हैं । उन्हें सत्कार्यों के सहयोग की शिक्षा दी जाती है । उसी प्रसंग में उनका विवाह भी हो जाता है । सब प्रकार योग्य हो जाने पर उन्हें उत्तरदायित्व सौंपने की व्यवस्था की जाती है । राजा दशरथ बड़े पुत्र राम को युवराज बनाने का निश्चय करते हैं । यह शुभ कार्य कब करें यह पूछने पर गुरु वशिष्ठ उत्तर देते हैं—

बेगि बिलंब न करिय नृप, साजिय सबइ समाज ।
सुदिन सुमंगल तबहिं जब राम होहिं जुबराज ॥

रूढ़िवाद नहीं विवेकपूर्वक कार्य करने का यहाँ स्पष्ट समर्थन है । शुभ कार्यों की व्यवस्था बनाकर जितनी जल्दी प्रारम्भ किया जा सके उतना ही अच्छा है ।

इस प्रकार परम्पराओं की तुलना में विवेक को प्रधानता देने का क्रम रामायण में बराबर चलता है । भाग्यवाद के नाम पर बैठे रहना बड़ा दोष, कायरता और आलस्य का चिन्ह माना जाता है । समुद्र पार करने की समस्या पर अपने विचार प्रकट करते हुए लक्ष्मण कहते हैं—

कादर मन कहँ एक आधारा ।
दैव-दैव आलसी पुकारा ॥

भाग्य मनुष्य के पुरुषार्थ का ही प्रतिफल है । विवेकवान इसीलिए भाग्य के नाम पर रुके नहीं रहते । भगवान राम ने भी यही किया । पुरुषार्थ से ही समुद्र पार किया । भगवान राम स्त्रियों को पर्दे में रखने के विरुद्ध हैं । सीता उनके साथ चलती हैं, पर्दा नहीं करतीं । लंका विजय के बाद वहाँ की प्रथा के अनुसार विभीषण सीता को डोली में लेकर आते हैं, बन्दर दर्शन करना चाहते हैं तो रक्षक उन्हें रोकते हैं । तब श्रीराम कहते हैं—

कह रघुबीर कहा मम मानहु ।
सीतहिं सखा पयादे आनहु ॥
देखहिं कपि जननी की नाईं ।
बिहँसि कहा रघुबीर गोसाईं ॥

पर्दा रखना गलत है, आँख का शील ही रखा जाय । यही शिक्षा लोगों को दी जानी चाहिये ।

रूढ़ियों में श्राद्ध के साथ जुड़ा हुआ मृतक भोज भी बड़ा भयंकर है । श्राद्ध कहते हैं श्रद्धायुक्त कर्म को । मृत व्यक्ति की बची हुई सम्पदा को श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ कार्यों में लगा देना ही श्राद्ध है । उसे पुण्य के नाम पर अविवेकपूर्वक बाँट देना या भोजों में बर्बाद कर देना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गलत है। दशरथ जी के निधन के बाद भरत उनका श्राद्ध करते हैं उसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

भये विशुद्ध दिये सब दाना।
धेनु बाजि गज बाहन नाना॥
पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी।
सो मुख लाख जाय नहिं बरनी॥

मृतात्मा का हित देखकर श्राद्ध किया जाता है। अपनी वाहवाही के लिए नहीं। उसका हित उसके उपार्जन का अधिक से अधिक अंश लोक-मंगल के कार्यों में लगने से होता है। यहाँ भोज का कहीं नाम भी नहीं है, ऐसा विचारपूर्ण श्राद्ध ही सराहनीय होता है।

मूढ़ मान्यताओं को विवाह प्रसंगों में भी स्थान नहीं मिलता। विवाह शुद्ध भावना से सात्विक भाव से सम्पन्न किये जाते हैं। पार्वती विवाह का प्रसंग है—

गहि गिरीश कुश कन्या पानी।
भवहिं समरपी जानि भवानी॥

कुश सादगी और पवित्रता का प्रतीक है, दहेज आदि अनावश्यक है। पिता अपनी स्थिति अनुसार जिस प्रकार लड़कों को अपनी सम्पत्ति का अंश देता है वैसे ही कन्या को दे तो बुरा नहीं पर उसे विवाह के पवित्र वातावरण से अलग ही रखा जाना चाहिए।

विवाहों में निरर्थक समय एवं धन की बर्बादी रोकने का एक ढंग सामूहिक विवाह है। राम सहित सभी भाइयों के विवाह एक साथ कर दिये जाते हैं—

जसि रघुवीर ब्याह विधि बरनी।
सकल कुँवर ब्याहे तेहि करनी॥

रामायण में विवाहों की तरह सन्तान के सम्बन्ध में भी विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाता है। कन्या को भी सौभाग्य का चिह्न माना जाता है। पार्वती और सीता के उदाहरण स्पष्ट हैं। बच्चों की संख्या न बढ़ाकर उन्हें सद्गुण सम्पन्न बनाने की बात ध्यान में रखी जाती है। स्वयं राम सहित सभी भाई इस मर्यादा का निर्वाह करते हैं—

दुइ सुत सुन्दर सीता जाये।
लव कुश वेद पुरानन्हि गाये॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे।
भये रूप गुन सील घनेरे॥

गुण सम्पन्न बालक ही परिवार एवं कुल का नाम ऊँचा करते हैं, रावण की तरह असंख्य कुसंस्कारी सन्तान तो विनाश का कारण ही बनती हैं।

इस प्रकार विवेकपूर्वक हर कार्य का निर्धारण करने का शिक्षण राम कथा से मिलता है। राम के अभिषेक के लिए गुरु वशिष्ठ की सलाह राजा मान लेते हैं, किन्तु कैकेयी के वरदान उसमें बाधक बन जाते हैं। राम को सीता लक्ष्मण सहित बन जाना पड़ता है। वहाँ श्रीराम अपना प्रधान कार्य अनीति का उन्मूलन प्रारम्भ कर देते हैं। वन में राक्षसों द्वारा मारे गये ऋषियों की हड्डियों के ढेर देखकर अपने संकल्प की घोषणा करते हैं—

निशिचर हीन करउँ महि भुज उठाय प्रन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

अनीति के प्रतिरोध का आदर्श रामायण के अनेक पात्रों में मिलता है। बूढ़ा जटायु भी विश्व विजयी रावण को ललकार देता है—

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही।
निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥

जटायु की तरह निषादराज भी अनीति प्रतिरोध के यज्ञ में सर्वस्व झोंक देने को तैयार हैं। भरत की नीयत पर शक होते ही वह उनकी चतुरंगिणी सेना का सामना करने को तैयार हो जाता है। कहता है—

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ।
जियत न सुरसरि उतरन देऊँ॥

रामायण में पत्नियाँ भी पतियों को अपनी शक्ति भर अनीति से रोकती हैं। रावण सीता को मारने दौड़ता है तो मन्दोदरी रोकती है।

सुनत बचन पुनि मारन धावा।
मय तनया कहि नीति बुझावा॥

बालि अपने भाई पर क्रोध करके उसके साथ अनीति बरतता है तो तारा उसे समझाती है।

सुनत बालि क्रोधातुर धावा।
गहि करि चरन नारि समुझावा॥

भरत तो अनीति बरतने पर अपनी माता कैकेयी को भी झिड़क देते हैं।

जो हसि सो हसि मुँह मसिलाई।
आँखि ओटि उठि बैठहि जाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शौर्य के समर्थन और उचित के आग्रह का सुन्दर संयोग रावण के पुत्र प्रहस्त के आचरण में दिखता है । वह कहते हैं कि पहले राम को सीता लौटा दो—

नारि पाइ फिरि जाहिं जौ, तौन बड़ायइ रारि ।
नाहिं त सनमुख समर महि, तात करिय हठि मारि ॥

अपनी अनीति का कदम वापस लेना उचित है फिर भी कोई न माने तो वीरता प्रदर्शित करना बुरा नहीं । विभीषण स्वयं अपमानित होकर भी रावण को अनीति मार्ग से हटाने का प्रयास करते हैं । जब वह किसी प्रकार नहीं मानता तो उसे सावधान करते हुए उससे सम्बन्ध तोड़ देते हैं—

राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल वश तोरि ।
मैं रघुवीर शरण अब, जाऊँ देहु जनि खोरि ॥

यात्रा सम्बन्धी सामान्य कुछ विशेष ज्ञातव्य

मण्डली के सभी सदस्य पीत वस्त्र धारण किये होंगे । धोती, कुर्ता, जाकिट, कन्धे पर दुपट्टा यह सभी पीले रंग के और एक ही जैसी डिजायन के होने चाहिए । इस वस्त्र विशेषता का सेना के सिपाहियों जैसी एकरूपता का भारी प्रभाव पड़ता है ।

चूँकि रात में जगह-जगह पड़ाव डालने हैं और वहाँ स्नान, भोजन, शयन आदि करना है । ऐसी दशा में आवश्यक वस्त्र, बिस्तर तथा दैनिक आवश्यकता की दूसरी चीजें भी साथ लेकर चलना होगा । लाउडस्पीकर, प्रचार साहित्य तथा हवन के उपकरण एवं दीवारों पर वाक्य लेखन के साधन भी साथ ले जाने हैं । इस सारे सामान को लाद कर चलने का वाहन भी साथ होना आवश्यक है । इसके लिए स्थानीय सुविधा के अनुसार जो भी व्यवस्था बन सके बनानी चाहिए । बैल, घोड़ा, गधा, ऊँट जैसे वाहन प्रयुक्त हो सकते हैं या दो पहियों से चलने वाली गाड़ी काम में लायी जा सकती है । कुली रखने से भी काम चल सकता है । लादने की आदत हो तो पीठ पर भी सामान लादकर चला जा सकता है । अधिक उपयुक्त साधन साइकिल है । तीर्थ यात्रा तो पैदल ही होती है । प्रश्न केवल सामान लाद कर चलने वाली सुविधा का है । इसके लिए साइकिल अधिक सुविधाजनक रहेगी । फेरी से माल बेचने वाले, दूध वाले उसके आगे-पीछे इतने डब्बे, खोखे बना लेते हैं जिस पर ढेरों सामान लद सके । वही व्यवस्था अपनी साइकिलों पर भी हो सकती है और उसे पूरा भार वाहन बनाया जा सकता है । इसे हाथ से पकड़ ही लेना पड़ेगा । देहात में रास्ते भी खराब होते हैं और तीर्थयात्रा का पुण्य भी पैदल चलने से ही है । ऐसी दशा में साइकिल पर अधिक सामान लाद कर चलने में कोई विशेष असुविधा न होगी । काँटे लगने से पंचर होने का डर रहता है । इसके लिए पंचर जोड़ने का सामान साथ लेकर चला जा सकता है ।

साथ में ले चलने वाले सामान में दैनिक उपयोग का बिस्तर, स्नान के कपड़े, प्रचार साधन, यज्ञ उपकरण मुख्य हैं । यदि उस क्षेत्र में भोजन भी स्वयं ही बनाने की बात बने तो उसके उपकरण भी साथ ले चलने पड़ेंगे ।

साइकिलों पर मिशन के उद्देश्य प्रकट करने वाले वाक्य पट्टियों पर लिखा लेने चाहिए । फ्रेम के बीच जो जगह खाली रहती है उस पर टीन का बोर्ड जड़ा जा सकता है और उस पर दोनों ओर मिशन का परिचय पेण्ट कराया जा सकता है ।

एक ओर लिखा जाय, मनुष्यता के आधार—आस्तिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिकता । दूसरी ओर लिखा जाय, हमारा लक्ष्य—मनुष्य में देवत्व और धरती पर स्वर्ग का अवतरण ।

पीछे वाले पहिए के दोनों ओर दो बड़े डिब्बेनुमा बक्से कैरियर के नीचे लगे रहने चाहिए । उसमें आवश्यक सामान भरा रह सकता है । इनकी दो साइडें, बगल की और पीछे की, पेण्टिंग करने के लिए उपयुक्त हैं । बगल का हिस्सा चौड़ा और पीछे का सँकरा होता है । बगल में एक ओर तीन चरण—व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण और दूसरी आरे तीन माध्यम—बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक क्रान्ति पेण्ट कराया जाय ।

पीछे की दिशा में दोनों डिब्बों पर (१) हमारी मान्यता—मानव मात्र एक समान । (२) हमारी मान्यता—नर और नारी एक समान । और दूसरी ओर (१) हमारी आकांक्षा—एक बनें नेक बनें । (२) हमारी आकांक्षा—अंधविश्वास टूटें, कुरीतियाँ छूटें, लिखे रहें । इस प्रकार सामने हैण्डिल की पट्टी पर फ्रेम के बीच खाली जगह में, दोनों ओर-पीछे के पहिये की अगल-बगल में लटके दोनों डिब्बों पर दो-दो ओर, यह पेण्टिंग करा देने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से साइकिल अपने आप ही पूरी प्रचार गाड़ी बन सकती है। इसमें एक और भी गुँजाइश है। हैण्डिल के आगे—अगले पहिये पर सहारा देकर कैरियर और लग सकता है और उस पर भी वक्ता लाउडस्पीकर आदि रखने के लिए बन सकता है। यदि वह भी लगाना हो तो उस पर तीन साइडें प्रचार प्रयोजन के लिए पेण्ट कराई जा सकती हैं । हमारा मिशन "तीर्थ यात्रा परम्परा का पुनर्जीवन, युगान्तर चेतना शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार" यह तीर्थयात्रा मिशन का घोषित नाम है। एक बगल की साइड में—युग की माँग महिला जागरण, दूसरी बगल की साइड में—परिवर्तन की शर्त 'हम बदलेंगे युग बदलेगा' लिखा जाय। इन वाक्यों के साथ स्थान बचाकर मशाल भी बनाई जा सकती है। पिछले पहियों के अगल बगल में लटकने वाले डिब्बों का साइज १६" लम्बाई, चौड़ाई १८" ऊँचाई १६" और हैण्डिल के आगे वाले की लम्बाई १८ इंच, ऊँचाई १२ इंच, चौड़ाई १२ इंच रखा जाय तो साधारणतया ठीक रहता है। शान्तिकुञ्ज में प्रचार साइकिलों में लगे डिब्बों का साइज यही रखा गया है। सुविधानुसार इसमें हेर-फेर किया जा सकता है और कोई अधिक आकर्षक एवं सुविधाजनक ढंग सोचा जा सकता है।

साथ ले जाने योग्य उपकरण—तीर्थयात्री टोलियों को ऋतु के अनुसार पहनने तथा ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र तथा अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता की वस्तुएँ रखनी चाहिए। वस्तुओं का चुनाव इस ढंग से किया जाय कि निरर्थक भार भी न बढ़े तथा अपना काम भी न रुके। व्यक्तिगत के अतिरिक्त कुछ सामान सामूहिक आवश्यकता का भी होगा जिसे ध्यान में रखा जाय। जैसे—

१. साइकिल मरम्मत का सामान।

२. पानी के लिए रस्सी, बाल्टी, लोटा तथा भोजन बनाने के बर्तन।

३. वाक्य लेखन के लिए गेरु का रंग और ब्रुश आदि।

४. ऋतु के अनुरूप कुछ औषधियाँ भी साथ में रखी जा सकती हैं।

५. हवन के लिए न्यूनतम उपकरण यह हो सकते हैं—

श्रुवा-१, श्रुचि-१, प्रणीता-१, तश्तरी ६, पंचपात्र-५, कलश का पात्र-१, अगरबत्ती स्टैण्ड-१, दीपक-१, गायत्री माता का फ्रेम तथा स्टैण्ड लगा चित्र-१, शंख-२ नग (यह उद्घोष घोषणा के काम भी आवेंगे), झाँझ-मंजीरे एक जोड़ी, चीमटा-१.

हवन केवल टोली के सदस्य करें। उनमें से एक आचार्य का काम करे। गाँव के लोग आवें, देखें, प्रेरणा लें। यदि प्रसाद की व्यवस्था वहाँ हो जाय तो प्रसाद अथवा जल, तुलसीदल का पंचामृत ही वितरित कर दिया जाय। सबको यज्ञ करने का उत्साह हो तो किसी समय सामूहिक यज्ञायोजन रखने का निश्चय करके उस समय आने का आश्वासन दें। कार्यक्रम निश्चत करते हुए आगे बढ़ें अथवा बाद में पत्र में निश्चित सूचना भेजें।

हवन केवल २४ आहुतियों का किया जाय। घी की आहुति केवल आज्याहुति, पूर्णाहुति एवं वसोधारा में ही दी जाय। इस प्रकार कार्य करने से १५ दिन की यात्रा के लिए २ किलो हवन सामग्री तथा ४०० ग्राम घी पर्याप्त होगा। घी ऐसे पात्र में रखा जाय जिसमें से घी फैलकर अन्य वस्तुओं को खराब न करे। समिधाएँ हर स्थान पर मिल जाती हैं, इसीलिए उन्हें साथ लेना उचित नहीं। एक छोटी कुल्हाड़ी साथ रखना सुविधाजनक सिद्ध हो सकता है।

भोजन पकाने के लिए कम से कम बर्तनों का निर्धारण टोली सदस्यों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार स्वयं कर लेना चाहिए। भोजन के लिए थाली, प्लेट जैसे पात्र भी रखे जा सकते हैं। धर्म प्रचारकों के लिए गाँवों में भोजन व्यवस्था हो जाना स्वाभाविक है, किन्तु अपने साथ दाल, चावल, आटा, सत्तू जैसे भोज्य पदार्थों की व्यवस्था रखनी ही चाहिए। गाँव वाले भोजन कराना चाहें तो पूरी टोली को एक ही स्थान पर भोजन कराने का आग्रह न किया जाय। एक-एक, दो-दो व्यक्तियों को अलग-अलग भोजन कराने में किसी पर अधिक भार नहीं पड़ता। लोग संकोचवश ऐसा करते नहीं हैं, किन्तु यह पद्धति सुगमता से अपनायी जाने योग्य है।

यदि तीर्थयात्रा टोली में संगीत जानने वाले व्यक्ति हैं तो एक हारमोनियम तथा एक ढोलक या ढपली जैसे साज भी साथ में रखे जा सकते हैं। साइकिल पर लगाये गये कैरियरों तथा डिब्बों में पर्याप्त सामान रखा जा सकता है। आवश्यकतानुसार मजबूत थैलों में सामान रखकर उन्हें हैण्डिल पर भी लटकाया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविधा की दृष्टि से सामूहिक उपयोग की वस्तुएँ एक या दो साइकिलों पर तथा व्यक्तिगत उपयोग का सामान मिला-जुलाकर शेष साइकिलों पर रखना ठीक है। वैसे अपनी सुविधानुसार सामान का जैसा सैटिंग बने वैसा कर लेना चाहिए।

नारे-वाक्य

तीर्थयात्रा टोलियों की पोशाक क्रिया-पद्धति तथा भाषणों की तरह उनके द्वारा लगाये जाने वाले नारे और लिखे जाने वाले वाक्यों में भी एकरूपता और मर्यादा का ध्यान रखा जाना चाहिए। इस क्रम में लगाये जाने के लिए निर्धारित नारे ये हैं—

(१) गायत्री माता की—जय
(२) यज्ञ भगवान की—जय
(३) भारतीय संस्कृति की—जय
(४) भारत माता की—जय
(५) हम बदलेंगे—युग बदलेगा
(६) जाति वंश सब—एक समान
(७) नर और नारी—एक समान
(८) जन-जन में—देवत्व जगायें
(९) इस धरती को—स्वर्ग बनायें
(१०) हमारी युग निर्माण योजना—सफल हो

दीवारों पर लिखने के लिए वाक्य

(१) हम बदलेंगे—युग बदलेगा
(२) जन-जन में देवत्व जगायें—इस धरती को स्वर्ग बनायें
(३) जातिवंश सब एक समान—नर और नारी एक समान
(४) अनीतियाँ मिटायें—कुरीतियाँ हटायें
(५) सादा जीवन—उच्च विचार सामूहिकता—सद्व्यवहार
(६) सन्तान नहीं—हरियाली बढ़ायें
(७) नशेबाजी—धीमी आत्महत्या है
(८) वयस्कों में से एक भी अशिक्षित न रहे।
(९) लड़के न बेचो—दहेज न दो
(१०) सुख बाटें—दुःख बटायें
(११) स्वच्छता मनुष्यता की पहली शर्त है।



Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन्दिर जन-जागरण के केन्द्र बनें

धर्म निष्ठा को परिपुष्ट करना देवालयों का मूल प्रयोजन रहे

ईश्वर-भक्ति का मतलब इतना ही नहीं कि कुछ जप कर लिया जाय, देव-प्रतिमा को भोग चढ़ा दिया जाय अथवा किसी धार्मिक पुस्तक का पाठ कर लिया जाय। थोड़े से क्रिया-कृत्य से ईश्वर को प्रसन्न कर लेने वाली बात पूरी हो जाती तो संसार के सभी लोग परमात्मा की कृपा-अनुकम्पा स्वल्प श्रम से ही प्राप्त कर लेते। जीवन को सुविकसित, सुसंस्कृत, सद्गुणी तथा व्यवस्थित बनाने की क़ठिन साधना की कोई जरूरत न होती। ईश्वर का नाम लेते ही सारे लौकिक, पारलौकिक लाभ मिल जाते तो संसार का कोई भी व्यक्ति दीन-दुःखी या दरिद्री न होता, सब आनन्द से सुखपूर्वक रह रहे होते।

ईश्वर उपासना का एक महत्त्वपूर्ण अंग धर्मनिष्ठा का अभाव न होना भी है। मनुष्य के भीतर भरे हुए कुविचार, कुकर्म, दुर्भाव और दुष्प्रवृत्तियों का शमन न हो तो कर्म-काण्ड मात्र का जप-तप आत्मिक स्तर को ऊपर नहीं उठा सकता इसके लिए सदाचार, सद्गुण और नैतिकता की भी आवश्यकता है। धर्मनिष्ठा का तात्पर्य यही है कि लोग जहाँ ईश्वर-प्राप्ति के लिए जप-तप, पूजा प्राणायाम आदि प्रक्रियाओं का प्रश्रय ग्रहण करें वहाँ व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छता और सात्विकता की वृद्धि तथा बुराइयों का परित्याग भी करते रहें।

मन्दिर के निर्माण का उद्देश्य जनमानस में इस उभय पक्षीय व्यवस्था में सन्तुलन रखने में योग देना था। जन-साधारण के अन्तःकरण में उपासना और जीवन-शोधन की क्रिया को जाग्रत रखने, व्यक्ति को कर्त्तव्यपरायण, आदर्शवादी तथा सुविकसित व्यक्तित्व बनाये रखने की दृष्टि से ही किसी समय मन्दिरों का प्रादुर्भाव हुआ था। वह एक प्रकार से विद्या, बुद्धि संस्कार एवं सद्प्रवृत्तियों को चारों दिशाओं में फैलने वाले केन्द्र समझे जाते थे। विद्वान्, महात्मा जिनके व्यक्तिगत रूप से न कोई घर होते थे न परिवार, इन मन्दिरों में रहकर समाज को समुन्नत रखने वाली प्रवृत्तियों का संचालन करते रहते थे। यही कारण था कि उन दिनों आमतौर पर समाज में आसुरी शक्तियों की प्रबलता न होने पाती थी। मन्दिरों द्वारा प्रसारित ज्ञान और जीवन विद्या की प्रबलता के कारण बुराइयों को उग्र होने का अवसर ही न मिलता था।

तब मन्दिरों को धन-दान दक्षिणा तथा ब्राह्मणों और पुजारियों को भोजन कराने की पुण्य परम्परा प्रचलित थी, उसका मतलब यही था कि सद्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि करने वाले इन संचालन केन्द्रों की शक्ति कम न हो और न ही उन्हें किसी प्रकार का अभाव रहे जिससे जन-जागरण के कार्यों में किसी प्रकार की असुविधा जान पड़े। मन्दिरों, पुजारियों तथा ब्राह्मणों के प्रति, भले ही श्रद्धा के रूप में पर, भारतीय जनता में भी श्रद्धा और आदर का भाव देखा जा सकता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार लोग धन-द्रव्य आदि से उनकी सहायता भी करते रहते हैं किन्तु मन्दिरों में कर्त्तव्य-पालन की इस आर्षभावना का अब बिल्कुल ह्रास हो चुका है। इतना ही नहीं वे पाप, आडम्बर-अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, भाग्यवाद आदि दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देने वाले केन्द्र बनते जा रहे हैं।

भारतवर्ष में लगभग छै लाख मन्दिर हैं जिनमें पुजारी नियत हैं और नियमित रूप से सेवा-पूजा की व्यवस्था होती है। इतनों में सैकड़ों ऐसे हैं जिनमें दर्जनों कर्मचारी विभिन्न प्रयोजनों के लिए रहते हैं, पर हम न्यूनतम औसत निकालने के लिए यह मान लेते हैं कि हर मन्दिर के पीछे केवल एक कर्मचारी नियुक्त है । यद्यपि हजारों ही मन्दिर ऐसे हैं जिनका भोग-प्रसाद, उत्कृष्ट श्रृंगार, सफाई, रोशनी, मरम्मत आदि का खर्च लाखों रुपया मासिक है। पर न्यूनतम औसत भोग-प्रसाद, दीपक, मरम्मत आदि तथा पुजारी का वेतन आदि कुल मिलकार १०० रुपया मासिक मान लिया जाय तो अधिक नहीं वरन् कम से कम ही समझना चाहिए। यह अनुमान तो लगा ही लेना चाहिए कि ६ लाख मन्दिरों का खर्च १०० रुपया प्रतिमास के हिसाब से ६ करोड़ रुपये मासिक अर्थात् ७२ करोड़ रुपये वार्षिक है।

विशाल जनशक्ति और विपुल धनशक्ति

भारतवर्ष में ५६७१६९ गाँव और २६९० शहर हैं। कुल मिलाकर इनकी संख्या ६ लाख होती है। इनमें से हर जगह एक मन्दिर का हिसाब तो मानना ही चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मामूली गाँवों और कस्बों में कई-कई सम्प्रदाय के कई देवताओं के कई-कई मन्दिर होते हैं। बड़े शहरों में तो उनकी संख्या सैकड़ों होती है। फिर भी औसतन हर गाँव के पीछे एक का औसत मान लिया जाय तो इनकी संख्या भी ६ लाख हो जाती है।

हर मन्दिर के पीछे कई-कई कर्मचारी होते हैं। पुजारी महन्त, मुनीम, चौकीदार, माली आदि । कितने ही बड़े मन्दिरों में तो सैकड़ों कर्मचारी काम करते हैं। दो-दो, तीन-तीन तो हजारों में होंगे, फिर भी न्यूनतम एक पुजारी तो हर मन्दिर के पीछे मानना ही होगा। इस प्रकार ६ लाख मन्दिरों में ६ लाख पुजारी हो गये। यह सब गृहस्थ होते हैं। अन्य उद्योगों में लगे हुए व्यक्तियों के घर वाले भी अपने काम-धन्धों में सहायक होते हैं—किसान, जुलाहे, धोबी, पशु-पालक आदि प्राय: सभी उद्योगों में उनके परिवार का भी श्रम-सहयोग रहता है। पुजारियों के परिवारों में चार-छै व्यक्ति हो सकते हैं, पर कम से कम एक व्यक्ति तो ऐसा मानना ही चाहिए जो उनके कार्य में थोड़ा सहयोग दे सके। इस प्रकार ६ लाख वे सहायक भी हो जाते हैं। यदि परिवार का व्यक्ति सहायता न भी करे तो भी यह मानना होगा कि बड़े मन्दिर में एक ही व्यक्ति नहीं कई-कई भी होते हैं। इस तरह भी कम से कम दो की औसत बैठ जाती है और ६ लाख मन्दिरों के पीछे १२ लाख व्यक्तियों का श्रम लग जाता है।

यों साधारण श्रमिकों की अपेक्षा भोजन, वस्त्र, दक्षिणा, वेतन, मुफ्त निवास आदि का प्रबन्ध रहने से पुजारी का खर्च कहीं अधिक होता है, पर औसतन न्यूनतम यह खर्च १००) तो मानना ही चाहिए। इसमें पूजा-उपकरण भोग-प्रसाद, पुजारी का वेतन, फूल, दीपक आदि सभी मान लिया जाय तो यह रकम कम ही होगी, अधिक नहीं। ६ लाख मन्दिरों में से १०० रु. मासिक के हिसाब से ६ करोड़ रुपये मासिक अर्थात् ७२ करोड़ रुपये वार्षिक का खर्च बैठता है। वस्तुत: उससे कई गुना अधिक होता होगा क्योंकि मथुरा वृन्दावन के मन्दिरों में से कई का खर्च लाखों रुपया महीना है। ऐसे-ऐसे हजारों मन्दिर देश में मौजूद हैं। इस तरह ७२ करोड़ तो न्यूनतम अनुमानित राशि ही है।

६ लाख मन्दिरों में से सैकड़ों मन्दिर ऐसे हैं जिनकी लागत लाखों नहीं करोड़ों रुपये है। लाखों की लागत वाले तो हजारों होंगे। इस प्रकार हम ६ लाख मन्दिरों की इमारती लागत ६०० करोड़ रुपये होती है।

मन्दिरों का खर्च चलाने के लिए स्थायी फण्ड सर्वत्र है। किसी मन्दिर से कृषि लगी हुई है, किसी से मकान जायदाद, किसी के पास नकदी के रूप में स्थिर कोष है। यह पूँजी भी औसतन १० हजार तो माननी ही पड़ेगी क्योंकि इससे कम की ब्याज या आमदनी से किसी छोटे मन्दिर का खर्च नहीं चल सकता। इस प्रकार यह रकम भी निर्माण पूँजी के बराबर अर्थात् ६०० करोड़ हो जाती है। मन्दिरों का इमारती मूल्य और स्थिर पूँजीकोष दोनों मिलाकर १२०० करोड़ होते हैं।

यह सामर्थ्य व्यर्थ नष्ट न हो

इतनी विशाल जनशक्ति और इतनी विशाल धन-शक्ति का यदि राष्ट्रीय पुनरुत्थान में ठीक तरह उपयोग हो तो उसका परिणाम जादू जैसा हो सकता है। माना कि मन्दिरों की शक्ति भौतिक विकास में खर्च नहीं की जानी चाहिए। न की जाय, पर बौद्धिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक एवं नैतिक कार्यक्रम भी क्या कम है ? देश को इन दिशाओं में भी अभी बहुत काम करना है। देश जिस आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है, उससे अधिक भावनात्मक दृष्टि से पीछे रह गया है। शिक्षा का घोर अभाव है। देश में केवल २० प्रतिशत साक्षर हैं, शेष ८० प्रतिशत तो निरक्षर ही पड़े हैं। मनुष्य के बौद्धिक दिमाग से कम से कम साक्षरता की आवश्यकता तो पूरी करनी ही होगी। सामाजिक कुरीतियों ने हमें नैतिक दृष्टि से खोखला एवम् दिवालिया बनाकर रख दिया है। स्वास्थ्य जर्जर हो रहे हैं, भावनाओं में न उल्लास है न उत्साह। आर्थिक आडम्बर तो जाल-जंजाल की तरह फैलता जा रहा है पर धार्मिक कर्त्तव्यों से विरक्ति दिन-दिन बढ़ रही है। हमारी मानसिक स्थिति, सामाजिक स्थिति ही नहीं, हर दिशा में जर्जरित हो रही है। इनके सुधार एवम् पुन: निर्माण में मन्दिरों में लगी हुई विशाल जनशक्ति को यदि सुनियोजित किया सके जो तो हमारा काया-कल्प ही हो सकता है। भौतिक विकास की योजनाएँ सरकार बनाये यह कार्य उसका है, पर मानसिक एवम् भावनात्मक निर्माण तो धर्म-तन्त्र के माध्यम से ही हो सकता है। भौतिक विकास का उद्देश्य पूर्ण होगा जब लोग भावनात्मक दृष्टि से परिष्कृत हो चलें। यदि भाग्यवाद, पलायनवाद, आलस्य, अकर्मण्यता, अनुत्साह, संकीर्णता, स्वार्थपरता, सामाजिक असहयोग जैसे दुर्गुणों से मनोभूमि ग्रसित बनी रही तो भौतिक उन्नति के सारे प्रयास निष्फल चले जायेंगे। जो कमाई बढ़ेगी वह दुर्गुणों में खर्च कर दी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायगी फिर कैसे गरीबी दूर होगी ? असंयमी लोग दवा-दारू का अधिक प्रबन्ध होने पर भी रोगग्रस्त रहेंगे। इसलिए राष्ट्रीय विकास के लिए जहाँ भौतिक प्रयत्नों की आवश्यकता है वहाँ यह भी कम आवश्यक नहीं कि जनमानस का भावनात्मक परिष्कार किया जाय और यह प्रयोजन सरकार नहीं वरन् धर्म संस्थाएँ ही पूर्ण कर सकती हैं। मन्दिर संस्थानों में लगी हुई जनशक्ति और धनशक्ति को यदि इस कार्य में लगाया जा सके तो हमारी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता सहज ही पूरी हो सकती है।

मन्दिर और उनका मूल प्रयोजन

मन्दिरों के निर्माण का प्रमुख उद्देश्य जनमानस में धार्मिकता की निष्ठा ही जमाने और बढ़ाने में योग देना ही था। ईश्वर-भक्ति का मतलब इतना ही नहीं है कि कुछ मंत्र जप लिये जायँ, कुछ पाठ कर लिया जाय, देव-दर्शन कर लिया जाय और प्रतिमाओं को भोग-प्रसाद लगाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली जाय और इतने से ही यह आशा लगा ली जाय कि यह थोड़ा-सा क्रिया कृत्य ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है। ईश्वर-भक्ति का मतलब अपने भीतर भरे हुए कुविचार और कुकर्मों का, दुर्भावों और दुष्प्रवृत्तियों का शमन करना है। यह जितनी ही बढ़ती है उतना ही हमारा आत्मिक स्तर बढ़ता है और इसे बढ़ोत्तरी के अनुपात से ही ईश्वर के निकट पहुँच सकना सम्भव होता है सद्गुणी, सुसंस्कृत, विकसित, व्यवस्थित होना ही ईश्वर की कृपा-अनुकम्पा का एकमात्र चिन्ह है। विवेक के रूप में ही ईश्वरीय प्रकाश को अपने अन्तःकरण में प्रकाशवान् होते हुए हम अपने भीतर देख सकते हैं। इन मान्यताओं को जनसाधारण के अन्तःकरण में जाग्रत रखना, व्यक्ति को कर्त्तव्य परायण, आदर्शवादी और सुविकसित व्यक्तित्व का बनाये रहना मन्दिरों का उद्देश्य है। प्राचीनकाल में जब उनका निर्माण आरम्भ किया गया था तब ऋषियों के मस्तिष्क में एक ही प्रयोजन था कि इन धर्म संस्थानों के माध्यम से जनमानस में धर्म धारण का जागरण एवं अभिवर्धन होता रहे।

मन्दिर एक प्रकार की धर्मशाला है। जिस प्रकार आजकल सभा संस्थाएँ बनती हैं, चन्दा इकट्ठा होता है, पदाधिकारी चुने जाते हैं, तू-तू मैं-मैं होती है, धन और पद का लाभ लेने के संघर्ष खड़े होते हैं, और अन्त में वे संस्थाएँ जो दूसरों का उद्धार करने को बनी थीं स्वयं ही दयनीय दुर्दशा में जा पहुँचती है। दूरदर्शी ऋषियों को इस सम्भावना का पता था इसलिये उन्होंने धर्म संस्थाओं को मन्दिरों का रूप दिया। भगवान की प्रतिमाएँ स्थापित कीं। संस्था का संचालक व्यक्तियों को नहीं भगवान को बनाया। उनके निवास स्थान के रूप में सुन्दर इमारतें बनीं। इस धर्म संस्था के कार्यक्रमों को नियमित रूप से चलाने के लिए पुजारी एवं महन्तों की नियुक्ति की गई। अर्थ-व्यवस्था का ऐसा क्रम बनाया गया कि इस धर्म संस्था के कार्यकर्ताओं के निर्वाह का क्रम ठीक चलता रहे, उनके स्वाभिमान को किसी प्रकार की ठेस न पहुँचे। भगवान के भोग-भोजन जलपान, रात्रि को दूध आदि का प्रबन्ध किया गया ताकि उस निमित्त उसे उस संस्था के कार्यकर्ताओं को नियत समय पर सुसन्तुलित आहार मिलता रहे और वे अपना शरीर स्वस्थ रखते हुए नियत उत्तरदायित्वों को ठीक तरह निभाते रह सकें। जो दक्षिण और पूजा चढ़ाई जाय सो भगवान के चरणों में रखी जाय ताकि कार्यकर्ताओं के आवश्यक निर्वाह व्यय का क्रम ठीक-ठीक तरह चलता रहे। देने वाला यह न समझे कि हमने कार्यकर्त्ताओं को देकर उनके ऊपर अहसान किया और कार्यकर्त्ता यह अनुभव न करें कि उन्हें दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है। दानी को अहंकार और प्रतिग्राही को दीनता उत्पन्न न होने पावे इसलिए भगवान् को माध्यम बनाकर उनके निमित्त से कार्य-कर्त्ताओं के निर्वाह का उचित स्थायी प्रबन्ध करना उचित एवं दूरदर्शितापूर्ण ही था।

भगवान की प्रसन्नता का माध्यम

स्पष्टतः भगवान किसी के द्वारा दिये हुए रोटी, कपड़े के इच्छुक नहीं हैं। वे स्वयं इन वस्तुओं के उत्पादक हैं और मनुष्य को देते हैं। ऐसी दशा में ये वस्तु उन्हें प्रसन्नता-अप्रसन्नता देने वाली नहीं बन सकतीं। भगवान् तो भावना के भूखे रहते हैं। उनको प्रसन्नता-अप्रसन्नता का कारण मनुष्य की सत्प्रवृत्तियाँ-दुष्प्रवृत्तियाँ ही हो सकती हैं। आरती-स्तुति आदि देख-सुनकर भी वे किसी के साथ पक्षपात या कृपा करने को तत्पर नहीं हो सकते। उनके सामने तो मनुष्य के सत्कर्म एवं दुष्कर्म ही विचारणीय होते हैं। वे इसी आधार पर किसी को भक्त-अभक्त, आस्तिक-नास्तिक मानते हैं। पूजा उपकरण तो इसलिये बनाये गये हैं कि उनके निमित्त से मनुष्य अपने और ईश्वर के स्वरूप तथा सम्बन्ध को समझता रहे और पथ-भ्रष्ट न होकर कर्त्तव्य पथ पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ बना रहे। ऐसी दशा के बिना मन्दिर के—बिना पूजा अनुष्ठान के भी मनुष्य अपनी सच्चरित्रता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं सद्भावना के आधार पर ईश्वर-प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है। फिर मन्दिरों का निर्माण क्यों हुआ ? क्यों उनके लिये इतनी धनशक्ति इतनी जनशक्ति लगानी पड़ी ? इसका उत्तर एक ही है और वह यह कि इन धर्म संस्थानों के माध्यम से सत्प्रवृत्तियाँ फैलती रहें जो मनुष्यों की आस्तिकता एवं धार्मिकता को बढ़ाने का उद्देश्य पूर्ण करें।

प्राचीनकाल में मन्दिरों में देव पूजन मात्र ही नहीं होता था वरन् वे समस्त रचनात्मक प्रवृत्तियाँ भी पलती थीं जो जन-कल्याण के लिये आवश्यक थीं । मन्दिर एक प्रकाश स्तम्भ की तरह होते थे। अपने क्षेत्र में मानवीय उत्कर्ष एवम् कल्याण के सभी सम्भव आयोजन करते रहते थे। पुजारी का, महन्त का एकमात्र उद्देश्य जन-जीवन में सत्प्रेरणाएँ उत्पन्न करने के लिये निरन्तर प्रयास करते रहना ही था। मन्दिर-रूपी धर्म-संस्था उन सभी सत्प्रवृत्तियों की केन्द्र रहती थीं जो उस समय की आवश्यकताओं की दृष्टि से अभीष्ट होती थीं । जिस प्रकार शासनतन्त्र के कचहरी कार्यालय आदि होते हैं, उसी तरह धर्म तन्त्र के कार्यालय ये मन्दिर थे। भ्रमण करने वाले परिव्राजक साधु सन्त, वहाँ ठहरते थे अफसरों के दौरे में जो उद्देश्य डाक बंगलों-इन्सपेक्शन हाउसों से पूरा करते हैं, वही सुविधा मन्दिरों में परिव्राजक साधुओं एवं धर्म प्रचारकों को मिलती थी। जैसे तहसील थाने आदि में सरकारी अफसर रहते हैं वैसे ही धर्मतन्त्र के कार्यकर्त्ता पुजारियों पुरोहितों महन्तों और साधुओं के रूप में रहते थे। सरकारी कर्मचारी जनता की भौतिक सुरक्षा एवं व्यवस्था की जिम्मेदारी उठाते हैं उसी प्रकार धर्म-पुरोहितों को जनता के मानसिक स्तर की भावना-संस्थान की, चरित्र एवम् स्तर की देख-रेख करनी थी। इसलिए उनका कार्य एवं उत्तरदायित्व भी शासन तंत्र की अपेक्षा किसी प्रकार कम न था। सरकार को इमारतें कर्मचारी तथा सम्पत्ति चाहिये तो धर्मक्षेत्र में काम करने के लिये भी इन तीनों की आवश्यकता रहेगी ही। इन साधनों को सुव्यवस्थित रूप से जुटाने के लिये मन्दिर बनाये गये। उन्हें धार्मिक किले ही कहना चाहिये।

चिरकाल तक मन्दिर अपना यही विशुद्ध स्वरूप बनाये रहे, पर आज तो जबकि सब कुछ उलटा ही हो रहा है तो मन्दिरों से ही यह आशा कैसे की जाय कि वे वही कार्य करते रहेंगे, जिनके लिये उनका निर्माण करने की योजना दूरदर्शी ऋषियों ने बनाई थी ? अब तो मन्दिर बनाने वाले इसलिये मूर्तियाँ पधारते हैं कि भगवान को रोटी, कपड़ा, स्नान, स्तुति, आरती आदि की जो सुविधा-साधन जुटावेंगे उनके बदले में वैसी ही सुख सुविधाएँ भगवान भी उन्हें तथा उनके घर वालों को दिया करेंगे। भगवान के ऊपर अहसान किया जा रहा है तो भगवान भी कृतघ्न क्यों होंगे वे भी अहसान का बदला अहसान में चुकायेंगे। हम भगवान को रहने का बढ़िया प्रबन्ध करें और भगवान बदले में हमें यहाँ कोठी-बंगले और स्वर्ग में बड़े-बड़े महल-तिवारे दें, ऐसी ही कामनाएँ लेकर लोगों के मन्दिर बनते चलते हैं। पुजारी अपना कर्त्तव्य प्रतिमा का श्रृंगार कर देना, भोग लगा देना, आरती कर देना मात्र समझकर छुट्टी पा लेते हैं। दर्शनार्थी केवल प्रतिमा को देखकर और उसे नमस्कार कर देवता के अनुग्रह एवं वरदान का अपने को अधिकारी मान लेते हैं। आज ऐसी ही लोक विडम्बना चारों ओर फैली-फैली फिर रही है। उन उद्देश्यों को एक प्रकार से भुला ही दिया गया है जिनको लेकर ऋषियों के मस्तिष्क ने मन्दिरों की सुव्यवस्थित योजना विनिर्मित की थी।

उपयोगी धर्म-संस्था

"खाली दिमाग शैतान की दुकान" वाली कहावत प्रसिद्ध है। जहाँ सुविधायें सब हों और काम करने को न हो वहाँ दिमाग में खुराफातें सूझने लगना स्वाभाविक है। आज मन्दिरों के कलेवर में कहाँ क्या-क्या होता है, उसे जानते हुए भी हम अधिक कुछ कहना नहीं चाहते क्योंकि उनके प्रति जनता की रही बची श्रद्धा के भी उठ जाने का भय है। यदि ऐसा हुआ तो यह और भी बुरी बात होगी। जो लोग मन्दिरों को अनावश्यक मानते हैं, उन्हें हटा देने की बात सोचते हैं, हम उनमें से नहीं है। हमारा विश्वास है कि यह बहुत ही उपयोगी धर्म-संस्था है, उन्हें बड़ी सूझ के साथ प्रचलित किया गया है। धर्म-तंत्र को सुव्यवस्थित एवं सतेज रखने में वे महत्त्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं और आगे भी देंगे। आवश्यकता केवल इतनी भर है कि जो विकृतियाँ उनमें आ गई हैं उन्हें सुधार दिया जाय। उनके आज के अनुपयोगी स्वरूप को उपयोगी बना दिया जाय। आज की अव्यवस्था से क्षोभ होना स्वाभाविक है, कई व्यक्ति इसी से आवेश में आये और मूर्ति-पूजा एवम् मन्दिरवाद का खण्डन करने लगे हैं । यह ठीक नहीं है । मूर्ति पूजा एवम् मन्दिर संस्था की नींव अब इतनी गहरी जा चुकी है कि उसे उखाड़ने की बात सोचना भी हास्यास्पद है। प्राचीन काल में हमारी उपासना का जो भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप रहा हो, भले ही निराकारवाद प्रधान रहा हो, पर अब वह हमारी संस्कृति एवम् भावना का इतना अविच्छिन्न अंग बन चुका है कि उसे उखाड़ने की बात सोचना भी अप्रसंगात्मक है। हाँ, उसमें सुधार हो सकता है और वह होना चाहिए।

समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र भर में लगभग ८०० हनुमान मन्दिर स्थापित किये थे और उनके माध्यम से छत्रपति शिवाजी की सेना के लिए रसद एवम् सैनिकों की आवश्यता पूर्ण की जाती थी। उन मन्दिरों में सेवा पूजा करने वाले महन्त, पुजारी वस्तुतः समर्थ गुरु की धर्म सेना के सैनिक मात्र थे। वे भगवान हनुमान के पूजन, वन्दना, आरती प्रसाद की व्यवस्था करते थे, पर साथ वह भी जानते थे कि अधर्म के बाद नाश और धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम देने वाले अंजनि कुमार की कृपा केवल उसे मिलेगी जो उनके आदर्शों को अपनावेगा। हर पुजारी, हर हनुमान भक्त उन दिनों हनुमान का अनुयायी बनाने और असुरता के शासन को उखाड़ फेंकने में लगा हुआ था।

गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्ख सम्प्रदाय के गुरुद्वारों को सैनिक छावनियों के रूप में परिष्कृत किया था। वहाँ कीर्तन, पाठ, पूजन, आरती, प्रसाद सब कुछ होता था, पर साथ ही यह उद्देश्य हर सिक्ख के मस्तिष्क में भरा रहता था कि उन्हें अनीति के विरुद्ध संघर्ष करना है, आसुरी नृसंशता को परास्त करके धर्मराज्य की स्थापना करनी है। भगवान की भक्ति का यहीं कर्मठतापूर्ण स्वरूप भी है। जिसके साथ देश, धर्म, समाज, संस्कृति के उत्कर्ष की सम्भावनायें जुड़ी न हों, जो केवल ऋद्धि-सिद्धि एवम् स्वर्ग मुक्ति की स्वार्थपरता तक चिपकी पड़ी हो, वह न तो भक्ति है न साधना, वह तो ओछी स्वार्थपरता का एक उपहासास्पद रूप मात्र है जिससे न लोक बनता है न परलोक। ओछे आदमी के ओछे विचार उसे ओछे मन तक ही सीमित रखते हैं और ओछे ही प्रतिफल देते हैं, उस लक्ष्य को सिक्ख-धर्म के संस्थापक भली-भाँति जानते थे इसलिए उन्होंने गुरुद्वारों द्वारा उन्हीं भावनाओं का प्रसार किया, फलस्वरूप उनकी कृतियों से भारतीय धर्म सदा गौरवान्वित रहेगा।

जो कार्य समर्थगुरु रामदास द्वारा परिष्कृत हनुमान मन्दिरों ने और सिक्ख गुरुद्वारों ने किया प्राचीन काल में अपनी-अपनी सामयिक परिस्थितियों के अनुसार हर मन्दिर करता था। उनकी सेवा से सारा समाज लाभान्वित होता था और धर्म की महत्त्वपूर्ण सेवा बन पड़ती थी। ईश्वर की पूजा रोली-अक्षत से ही नहीं, सत्कर्मों से भी होती है। वह भोग-आरती की ही नहीं त्याग-बलिदान की भी अपेक्षा करता है। जब तक मन्दिर दोनों प्रयोजनों को पूरा करते रहे, तक उनका गौरव सर्वत्र अक्षुण्ण बना रहा।

पुनः आदर्श उपस्थित करें—अब पुनः इस बात की आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि मन्दिर संस्था अपने उसी स्वरूप और लक्ष्य को प्राप्त करे जिसके लिए उसका निर्माण किया गया था निश्चय ही भगवान को भोजन कराना, जगाना, सुलाना, इतने विशाल कार्यक्रम का प्रयोजन नहीं हो सकता। यदि इतना ही उद्देश्य रहा तो उसे अपने-अपने घरों में बड़ी आसानी से किया जा सकता है। जनशक्ति और धनशक्ति को इतने बड़े परिमाण में क्यों लगाया जाता ? धार्मिकता का सर्वांगीण प्रसार और विकास ही मन्दिर संस्था का प्रयोजन है। आज उन्हें अपनी सारी सामर्थ्य और क्षमता को समेट कर योजना-बद्ध रूप से उसी कार्य में लगाना चाहिये। व्यक्तिगत जीवन में जितनी अधार्मिकता आज है इतनी पहले कभी न थी, बाहर से लोग आस्तिकता एवम् धार्मिकता का दम्भ करने वाले अगणित हैं, पर आचरण द्वारा इन आदर्शों को कोई विरले ही कार्यान्वित करते हैं। वासना और तृष्णा, विलासिता और स्वार्थपरता हर व्यक्ति का लक्ष्य बना हुआ है। इन कार्यों में सहायता करने के लिये ही लोग ईश्वर का दरवाजा खटखटाते हैं। यदि उन्हें यह पता लगे कि ईश्वर उनकी मनोकामनायें पूर्ण करने में सहायक नहीं हो रहा है तो उसे भी पूजा की चौकी पर से उठाकर तालाब में डुबोने के लिये तैयार हो जाते हैं।

सामाजिक जीवन जितना कलुषित आज है, इतना पहले कभी नहीं रहा। सेवा, सहयोग उदारता, भाईचारा और निःस्वार्थ प्रेम की प्रवृत्ति मिटती चली जा रही है। संगठन और स्नेह के तत्व समाप्त होते चले जा रहे हैं। मूढ़ता के कारण दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। यों हम अपने को सभ्य कहते हैं। पर वस्तुतः अवास्तविक आदर्शों को अपनाकर असभ्यता की ओर तेजी से चल रहे हैं। प्राचीनकाल में हमारा देव-समाज था, पर अब तो वह दुष्ट, असुर समाज बनता चला जा रहा है। यह सब होता रहे और हमारा पुरोहित वर्ग ऐसी ही गहरी निद्रा में पड़ा रहे, मन्दिर संस्थाऐं हाथ-पैर छोड़कर निष्क्रिय बन बैठें यह शर्म-से डूब मरने की बात है। देश और धर्म की ऐसी अवनति के समय भी यदि यह संस्थाऐं काम न आयीं तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भावी इतिहासकार उनकी अकर्मण्यता को धिक्कारते ही रहेंगे। पिछला बहुत सारा समय इस प्रकार गुजारा-गँवाया जा चुका, अब उसमें एक क्षण का विलम्ब किये बिना इस प्रकार का परिवर्तन आरम्भ कर दिया जाना चाहिए कि मन्दिर-संस्था की उपयोगिता सभी को स्वीकार करनी पड़े। उनके निर्माण का प्रयोजन पूर्ण हो और उदीयमान राष्ट्र की सृजनात्मक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में उनका आशाजनक योगदान मिले। मन्दिरों को अब जन-जागृति के नव-निर्माण के प्रयोजन आगे बढ़कर पूर्ण करना चाहिये। मन्दिरों को धर्म एवम् संस्कृति के पुनर्जागरण का केन्द्र बनाया जाना चाहिये। पूजा, अर्चना, आरती, भोग, प्रसाद, श्रृंगार का जो क्रम अब चलता है, भली प्रकार चलता रहे पर उसमें तो कार्यकर्त्ताओं को दो तीन घण्टे समय ही लगाना है। स्थान भी काफी है। उन सबका उपयोग निर्माणात्मक कार्यों में होना चाहिये। उनमें ऐसी प्रवृत्तियाँ चलनी चाहिये जिससे जन मानस को रचनात्मक दिशा में मोड़ा जा सके, अवसाद, कुण्ठा एवम् जड़ता को मिटाया भी जा सके। ऐसे अनेक कार्यक्रम हो सकते हैं, जिनसे मन्दिर में पर्याप्त पड़े हुए स्थान का सदुपयोग हो सकता है। जो व्यक्ति वहाँ निवास करते हैं उनके समय को उस प्रयोजन में प्रयुक्त किया जा सकता है। जो मन्दिरों का वास्तविक प्रयोजन है।

स्थान, धन और श्रम यह तीन ही आवश्यकताएँ सार्वजनिक प्रवृत्तियों के लिए अभीष्ट होती हैं ,संयोग से यह तीनों ही समुचित मात्रा में वहाँ बिना किसी सदुपयोग के बड़ी मात्रा में खाली पड़े रहते हैं। इनको रचनात्मक कार्यक्रमों में नियोजित किया सके तो इसका परिणाम आशाजनक एवं उत्साहवर्धक ही होगा। गोबर जहाँ-तहाँ पड़ा रहे तो उससे सड़न उत्पन्न होती है और गन्दगी फैलती है, जिसे बीमारियाँ फैल सकती हैं। किन्तु यदि वही गोबर एक गड्ढे में गाड़कर खाद बना दिया जाय तो फिर जमीन को उपजाऊ बनाने, अधिक अन्न उपलब्ध कराने में सहायक होता है। उससे जनता का स्वास्थ्य और वैभव दोनों बढ़ते हैं, दुरुपयोग और सदुपयोग का यही अन्तर है। मन्दिर में बेकार पड़े हुए श्रम, धन एवम् स्थान के सम्बन्ध में भी यही बात है। आज जो स्थिति है, उसे यदि कल बदल दिया जाय तो जो मन्दिर अपेक्षित पड़े रहते हैं, यदा कदा ही कोई दर्शन भजन को वहाँ जाता है, कल अपनी उपयोगिता के आधार पर सर्व-साधारण के लिये श्रद्धा एवं आकर्षण के केन्द्र बन सकते हैं।

रचनात्मक प्रवृत्तियों के केन्द्र—

छोटी-छोटी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हर मन्दिर में बड़ी आसानी से चलाई जा सकती हैं। प्रौढ़ पाठशाला चलाया जाना वहाँ बिल्कुल भी कठिन नहीं है। महिलाएँ आमतौर से मध्याह्न के भोजनादि गृह कार्यों से निवृत्त होकर दो बजे तक घर से छुट्टी पा जाती हैं। रात्रि में भोजन बनाने का क्रम उन्हें प्राय: ५ बजे से आरम्भ करना पड़ता है। इन तीन घण्टों में महिलाओं की प्रौढ़ पाठशाला चले। वयस्क महिलाएँ अपनी पढ़ाई आरम्भ करें। वे धीरे-धीरे एक-एक बार एक कक्षा पार करती हुई मैट्रिक तक की पढ़ाई उसी क्रम से बड़ी आसानी के साथ तीन चार वर्ष में पूरी कर सकती हैं। हमारी निगाह में ऐसी सैकड़ों महिलाओं के उदाहरण हैं जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर लगभग चार वर्ष में ही मैट्रिक पास कर लिया जबकि वे आरम्भ में बिलकुल निरक्षर थीं। मन्द बुद्धि, तीव्र बुद्धि से या अवकाश कम ज्यादा मिलने से सफलता का समय न्यूनाधिक हो सकता है, पर जो लाभ रहेगा वह आगे ही बढ़ेगा। इस शिक्षा क्रम में स्कूली पाठ्यक्रम के साथ-साथ एक विषय जीवन निर्माण, परिवार निर्माण एवम् समाज निर्माण का भी रहे जिससे उन्हें मनुष्य जीवन का उद्देश्य समझने और उसे उपलब्ध करने का प्रकाश एवम् मार्ग दर्शन भी प्राप्त होता रहे ?

जहाँ यह क्रम चल पड़ेगा वहाँ उस मन्दिर द्वारा समाज की बड़ी सेवा होगी। पुजारी जी प्राय: शिक्षित ही होते हैं समय भी उनके पास खाली ही रहता है। जहाँ तक उनकी योग्यता हो वे स्वयं पढ़ावें। जब कक्षाऐं ऊँची उठने लगें वे न पढ़ा सके तो छोटी कक्षाओं का जिम्मा अपने ऊपर लेकर ऊँची कक्षा पढ़ाने के लिए ग्राम के किन्हीं अवकाश प्राप्त वयोवृद्ध सज्जनों या किन्हीं सुशिक्षित महिलाओं की बिना मूल्य सेवा प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकते हैं आमतौर से ऐसे प्रयत्न में सफलता मिल जाती है। यदि वैसी व्यवस्था न हो सके तो चन्दा करके उसकी पूर्ति की जा सकती है। बहुत करके तो मन्दिर के कोष में भी पैसा रहता है उसे अन्य कार्यों से मितव्ययितापूर्वक बचाकर इस विद्यादान में लगाया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि यदि यह प्रवृत्ति वहाँ प्रचलित की जा सके और उसे चलाने वालों में आवश्यक उत्साह हो तो निश्चय ही उसमें सफलता मिलेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बड़ी आयु के पुरुषों को प्राय: दिन छिपे के बाद अवकाश मिलता है। अपने काम-धन्धे से छुटकर वे दिन छिपे तक आ जाते हैं । एक घण्टे में नित्य कर्म से निवृत्त होकर वे मन्दिर पहुँच सकते हैं। जो बिना पढ़े ही पढ़ना आरम्भ करें जो पढ़े-लिखे हैं वे पढ़ना आरम्भ कर दें। इस प्रकार देव-दर्शन के साथ-साथ मन्दिर में पहुँचकर लोग विद्या रूपी भगवान का प्रसाद प्राप्त करने एवम् वितरण करने का प्रबन्ध करें तो निश्चय ही मिठाई वाले भोग प्रसाद की अपेक्षा वे इस आयोजन से अधिक प्रसन्न होंगे और जो इस ज्ञान यज्ञ में भागी बने रहे हैं उन्हें प्रत्यक्ष अपने आशीर्वाद का प्रमाण देंगे। विद्या प्राप्ति से जो मानसिक विकास होता है वह भगवान का प्रत्यक्ष वरदान ही है। कहना न होगा कि साक्षरता प्रसार के साथ-साथ वैयक्तिक एवम् सामूहिक समस्याओं का स्वरूप एवम् उनका हल बताने के लिये बौद्धिक प्रशिक्षण का भी एक विषय इस शिक्षण व्यवस्था में अनिवार्य रूप से सम्मिलित रखा जाय ताकि उन्हें शिक्षा ही नहीं विद्या का भी लाभ प्राप्त होता चले। इस कार्यक्रम की व्यवस्था जहाँ भी बन सकेगी वहाँ के मन्दिर जाने वाले अधिक लाभान्वित होते रहेंगे, उनकी शिक्षा उच्च शिक्षा तक पहुँच सकेगी। तब मन्दिरों में न जाने वाले अपनी मूर्खता पर पछतावेंगे और आज जिस तरह मन्दिर जाने वालों का उपहास किया जाता है तब उन मन्दिर न जाने वालों को मूर्ख ठहराया जाया करेगा।

विद्या और ज्ञान का प्रकाश

हर मन्दिर में एक पुस्तकालय आसानी से चल सकता है। स्थान की इसके लिये वहाँ कोई कमी है ही नहीं। जहाँ कुछ कमी हो वहाँ एक दो अलमारियों की व्यवस्था बड़ी आसानी से चल सकती है। उत्तम प्रेरणाप्रद, जीवन विकास में सहायता करने वाली पुस्तकें ही वहाँ रहें। जैसे शुद्ध दूध में एक बूँद विष या घृणित वस्तु डाल दी जाय तो वह सारा ही अशुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार अश्लील, वासनायें भड़काने वाली, ऊट-पटांग, भ्रम जंजाल उत्पन्न करने वाली पुस्तकें भी पुस्तकालय का उद्देश्य ही नष्ट नहीं करतीं वरन् उल्टी घातक सिद्ध होती हैं। इसलिये उस पुस्तकालय में भले ही थोड़ी पुस्तकें हों, पर हों सभी चुनी हुई, एक से एक अधिक प्रेरणाप्रद सुलझे हुय विचारों की। आरम्भ में मन्दिर के समीपवर्ती क्षेत्र के सुशिक्षित सत्पुरुषों से दान या उधार के रूप में ऐसी पुस्तकें माँगी जा सकती हैं। दो तीन व्यक्ति योजना बनाकर निकल पड़ें और उस क्षेत्र के सुशिक्षितों के पास घूम जायँ तो बहुत-सी पुस्तकें इसी प्रकार इकट्ठी कर सकते हैं। दस-पाँच रुपये महीने का बजट भी इस कार्य के लिये रखा जाय तो अच्छी पुस्तकें एवम् पत्र-पत्रिकाएँ मँगाने का एक ढर्रा आसानी से बन सकता है और एक छोटा सा ज्ञान-मन्दिर, पुस्तकालय भी उस मन्दिर के साथ-साथ ही चलने लग सकता है।

इस सम्बन्ध में सबसे बड़ी कठिनाई एक ही है कि लोगों में सत्साहित्य पढ़ने के लिये रुचि नहीं के बराबर है। एक तो लोग पढ़ते ही इतना हैं जो नौकरी के काम आ सके, इसके अतिरिक्त किसी को कुछ पढ़ना होता है तो मनोरंजन के लिये—मनोरंजन भी कैसा—अश्लील फिल्म, जासूसी, तिलस्म आदि के किस्से कहानियों का। यह पढ़ने की रुचि उन न पढ़ने वालों से भी बुरी है। इसलिये सबसे बड़ा प्रयत्न सद्विचारों के प्रति—सत्साहित्य के प्रति अभिरुचि उत्पन्न करने का है। यह कार्य उतनी ही तत्परतापूर्वक किया जाना चाहिये जितना कि बीड़ी या चाय के प्रचारकों ने निरन्तर संलग्न रहकर इन व्यसनों से सर्वथा अपरिचित लोगों को उनका ऐसा आदी बना दिया कि अब चाय बीड़ी बिना उनकी गुजर ही नहीं। यह कार्य कठिन है पर मनस्वी लोग सब कुछ कर सकते हैं। वे घर-घर जाकर सत्साहित्य की महत्ता समझाकर लोगों की खुशामदें, मिन्नतें कर छोटी-छोटी प्रेरणाप्रद पुस्तकें दिया करें, वापिस लाया करें और उनमें लिखे विषयों पर चर्चा किया करें तो धीरे-धीरे यह शौक उन्हें लगेगा। हो सकता है सौ जगह प्रयत्न करने पर बीस जगह ही सफलता मिले, पर जिनको यह शौक लग गया समझना चाहिये कि उनके कल्याण का पथ प्रशस्त हो गया।

व्यसन और व्यभिचार के विचार आरम्भ में हल्के-हल्के रूप से मस्तिष्क में ही घुसते हैं, धीरे-धीरे जड़ जमाते हैं और जब वे परिपक्व हो जाते हैं तो मनुष्य वैसी क्रियाएँ करने का अवसर निकाल लेता है। छोटे-छोटे अवसर मिलने से अभ्यस्त बन जाता है और फिर उन बुराइयों की ऐसी लत पड़ जाती है जो निन्दा, बीमारी, हानि आदि अनेक दुष्परिणाम सहते हुए भी उन्हीं में लगा रहता है और धीरे-धीरे सर्वनाश के गर्त में गिरता चला जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। ठीक इसके विपरीत क्रम सद्विचारों का है। उनकी प्रेरणा जब मस्तिष्क में घुमड़ने लगती है तो व्यक्ति अपने को सुधारने के लिये उत्साहित होता है । यह उत्साह कुछ अधिक सक्रिय हो उठा तो मनुष्य अपनी जीवन व्यवस्था में आदर्शवादी परिवर्तनों के लिए दृढ़ता धारण करता है। गिरते-पड़ते अच्छे काम करता है। धीरे-धीरे इस तरह का उसका स्वभाव बन जाता है। आदतन अच्छे काम करता है और अन्ततः वह आन्तरिक प्रगति के पथ पर बढ़ता हुआ, नर रत्नों की तरह—महापुरुषों की तरह जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकने में सफल होता है।

पुस्तकालय देखने में एक छोटी प्रक्रिया भले ही लगे, पर वस्तुतः उसमें जीवन विकास की अगणित सम्भावनाएँ सन्निहित हैं। प्राचीनकाल में जो कार्य सत्संग आयोजनों या कथा-प्रवचनों से पूरा होता था वह अब अच्छे पुस्तकालयों से पूरा हो सकता है। पूर्वकाल में अशिक्षित जनता अधिक थी, उसे जो ज्ञान देना हो उसे सुनाना ही पड़ता है। इसलिए एक विचार सुनने में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए कथा—प्रवचनों एवं सत्संगों का महत्त्व एवम् माहात्म्य बताना पड़ा। अब यह सत्संग एवम् कथा-प्रवचन पुस्तकालयों के माध्यम से हर शिक्षित व्यक्ति के लिए उसकी सुविधा के समय, चाहे जितनी देर उपलब्ध होता रह सकता है। किसी भी महापुरुष से अपनी रुचि के विषय पर घण्टों वार्तालाप करते रहने का अवसर हम उनकी लिखी पुस्तकों के माध्यम से चाहे जब उपलब्ध कर सकते हैं। यह लाभ सामान्य नहीं असामान्य है। देवपूजन से इस स्वाध्याय साधना की महिमा रत्ती भर भी कम नहीं है। जो जितनी देर सद्विचारों के मनन-चिन्तन में डूबा रहता है, वह एक प्रकार से परमेश्वर के भावरूप की आराधना ही करता है। प्रतिमा रूप की अपेक्षा भावरूप से भगवान् की अर्चना करना किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। मन्दिरों में जहाँ प्रतिमा पूजन की व्यवस्था रहे वहाँ भाव पूजन की व्यवस्था जुटाकर पुस्तकालयों के माध्यम से भी ज्ञान रूप परमेश्वर की आराधना का प्रबन्ध करना चाहिये। यह आराधना करने वाला भी ईश्वर के अनुग्रह का अपने अन्तःकरण के परिवर्तन के रूप में प्रत्यक्ष अनुभव करता रहेगा। पुस्तकालयों की स्थापना एक प्रकार की देव-प्रतिमाओं की स्थापना ही है और सद्विचारों में रुचि उत्पन्न करना—ईश्वर-भक्ति को अपनाने का ही एक उपयोगी माध्यम है। अतएव मन्दिरों में पुस्तकालयों की स्थापना की जानी चाहिये। जिस प्रकार देवपूजन का खर्च जुटाया जाता है, उसी प्रकार पुस्तकालय का खर्च भी उसी मद में सम्मिलित रखा जाना चाहिये। पुजारी जी तथा अन्य भक्त लोग उसकी व्यवस्था मिल-जुल कर इस प्रकार चलावें कि लोगों में रुचि उत्पन्न हो और वे सद्विचारों की उपयोगिता समझ कर उन्हें व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए तत्पर हो सकें। जो भी इस सेवाक्रम को अपने जिम्मे लेगा वह वस्तुतः मानव जाति की बहुत बड़ी सेवा करेगा। उसका पुण्य उसे उत्कृष्ट कोटि की ईश्वर भक्ति के समान ही मिलेगा।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य—महिलाओं और पुरुषों की प्रौढ़ पाटशालाऐं, प्रेरणाप्रद साहित्य का पुस्तकालय यह दोनों प्रवृत्तियाँ जिन मन्दिरों में नियमित रूप से चल पड़ें, समझना चाहिये कि उसकी सार्थकता में चार चाँद लग गये। योगासन, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार, ड्रिल जैसी छोटी शारीरिक उत्थान की प्रक्रियाऐं आसानी से चल सकती हैं। छोटे-छोटे खेल बच्चे खेल सकते हैं। साधारण घरों में जगह बहुत कम होती है। बच्चे उतने में खेल-कूद नहीं पाते और न मनोरंजन के साधन जुटा पाते हैं। इससे उनका मानसिक एवं शारीरिक विकास रुका पड़ा रहता है। मन्दिरों में यदि थोड़ा-सा स्थान हो तो एक कक्ष छोटे बालकों के खेलों एवं मनोरंजन के लिए रखा जा सकता है। किण्डर गार्डन लकड़ी के छोटे टुकड़ों से अक्षर या खिलौने बनाना एक मनोरंजन खेल है। आजकल सैकड़ों तरह के ऐसे खिलौने चले हैं जो मनोरंजन के साथ बालकों का बहुत ज्ञानवर्धन भी करते हैं। यह मँगा कर रखे जा सकते हैं। फ़िसलने वाली सीढ़ी, झूले, गेंद-बल्ला, शेरबीन, दुर्बीन, खिलौने, चित्र आदि अनेक चीजें ऐसी हो सकती हैं जो बच्चों का मन बहलाने एवं ज्ञानवर्धन करने में सहायता करें इसी अवधि में उन्हें छोटे-छोटे गायन, ड्रिल, शरीर और वस्त्रों की स्वच्छता, गुरुजनों का अभिवादन, सामान्य शिष्टाचार आदि कितनी ही उपयोगी बातें सिखाई जा सकती हैं। दो घण्टे का समय सायंकाल बच्चों को स्कूली छुट्टी के बाद इस प्रकार के मनोरंजन के लिये मिल जाया करे तो मन्दिर बड़ों के मन में ही नहीं छोटे-छोटे बच्चों तक के मन में भक्ति भावना उत्पन्न करने के माध्यम बन सकते हैं। बच्चों की इस प्रकार की शिक्षा के लिए पुजारी जी के परिवार का कोई समर्थ सदस्य बड़ी आसानी से अपना समय दे सकता है। बच्चों के मनोरंजन को अपना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोरंजन बनाकर स्वयं बिना खर्च एक स्वर्गीय आनन्द एवं उल्लास का लाभ प्राप्त कर सकता है। ऐसे कार्यों में अन्य धार्मिक लोग भी अपने अवकाश का समय लगाकर सेवा एवम् मनोरंजन का दुहरा लाभ ले सकते हैं। प्रयत्न करने पर ऐसे सेवा-भावियों का मिल सकना कुछ भी कठिन नहीं है।

जहाँ व्यायामशालाओं के लिए सुविधाजनक स्थान हो वहाँ नव-युवकों के लिये अखाड़े तथा दूसरे उपकरण बनाये जा सकते हैं। कुछ मन्दिर तो पूजा करने जितनी जगह में ही बने होते हैं उनमें तो नहीं पर जो नगर से थोड़े हटकर हैं, जिनमें छोटा बगीचा है, वहाँ व्यायामशालाएँ बड़ी सफलतापूर्वक चल सकती हैं। लाठी चलाना व्यायाम का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। इससे शारीरिक विकास ही नहीं मानसिक विकास भी होता है, साहस बढ़ता है और आत्मरक्षा की सामर्थ्य मिलती है। अन्य अस्त्रों के चलाने का प्रशिक्षण जहाँ सम्भव हो, व्यायामशालाओं में व्यवस्था करनी चाहिए। आसन-प्राणायाम सिखाने का प्रबन्ध तो छोटे और कम स्थान वाले मन्दिरों में भी हो सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा बहुत सरल है। उसके सिद्धान्तों की जानकारी तथा चिकित्सा की विधि बहुत ही आसानी से सीखी जा सकती है, 'टब' आदि उपकरण भी बहुत मँहगे नहीं हैं। उनकी व्यवस्था कर सकना किसी के लिए भी कुछ कठिन नहीं है। केवल थोड़ी दिलचस्पी और मेहनत की जरूरत है। पुजारी जी या कोई और सेवाभावी व्यक्ति दो तीन घण्टे समय रोज इसके लिए लगा दिया करे तो देखते-देखते एक छोटा निःशुल्क प्राकृतिक चिकित्सालय चल सकता है। चिकित्सा कराते समय रोगी लोग आरोग्यशास्त्र के सिद्धान्तों को सीखते-सुनते भी रह सकते हैं और यदि वे उन्हें अपनाने को तैयार हो जायँ तो उसी बार बीमारी से नहीं छूटें वरन् भविष्य में कभी बीमार न पड़ने का लाभ लेकर जायँ।

जहाँ प्राकृतिक-चिकित्सा भी न बन पड़े वहाँ फर्स्टएड के सामान्य उपकरण रखे जा सकते हैं और घरेलू चिकित्सा के उपयुक्त छोटी-छोटी बीमारियों की बिना खतरे वाली दवाऐं रखी जा सकती हैं। इनसे कितने ही लोग सामयिक लाभ उठाते रह सकते हैं और यह छोटा-सा चिकित्सालय इसी कदर अपनी उपयोगिता द्वारा लोक सेवा का कुछ प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। स्वास्थ्य-शिक्षा सम्बन्धी कक्षाऐं भी इस विभाग द्वारा चलाई जा सकती हैं।

संगीत एवं भजन कीर्तन—भजन संगीत द्वारा कीर्तन आदि करने की परम्परा मन्दिरों में चिरकाल से प्रचलित है। अब तक देवस्तुति, अवतारों के चरित्र जैसी बातें ही इन कीर्तन-गायनों के प्रधान विषय रही हैं। अब इन विषयों में कुछ और भी वृद्धि होनी चाहिए। चरित्र-गठन, आदर्शवाद, पुरुषार्थ के लिए प्रोत्साहन, शिक्षा स्वास्थ्य आदि की महत्ता, सहयोग एवं सद्भाव, मानव-मात्र की समता, दुष्प्रवृत्तियों का प्रतिरोध जैसे विषयों पर भी भजन-गायन बनें और वे इन मन्दिरों में गाये जाया करें। एक कीर्तन मण्डली व्यवस्थित की जाय जो स्वयं तो इन नवीन गायनों का अभ्यास करे ही, साथ-साथ अन्य लोगों की अभिरुचि जाग्रत करके उन्हें गायन का अभ्यास कराये। संगीत के वाद्ययन्त्रों की संख्या बढ़ाई जाय जिससे नये शिक्षार्थी उनके माध्यम से गाने-बजाने की शिक्षा प्राप्त करते रहें। कीर्तन-मण्डली में से जो अधिक निपुण हों वे दूसरों को सिखाने का सेवाकार्य अपने जिम्मे लें। एक-दो घण्टे रोज का यह कार्यक्रम चलता रहे तो जिन्हें गाना आता है, वे नवीन प्रेरणाप्रद गायनों के अभ्यस्त बन सकते हैं और कितने ही नये गायक पैदा हो सकते हैं। यह बढ़ी हुई कीर्तन-मण्डली व्रत, उत्सव, पर्व जब भी सुविधा या आवश्यकता हो जगह-जगह अपने गायन का प्रेरणाप्रद कार्यक्रम रख सकती है, इससे जहाँ लोगों का मनोरंजन होगा वहाँ उन्हें जीवन-निर्माण एवं समाज निर्माण की दिशा में आवश्यक प्रेरणा भी मिलेगी। धर्मप्रचार का यह भी एक महत्त्वपूर्ण तरीका है, जो मन्दिरों के माध्यम से धीरे-धीरे पनपता और बढ़ता रह सकता है।

भावनाओं के विकास में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्तःकरण की भाव-तरंगों को लहरा देना और उसे किसी भी दिशा में प्रोत्साहित कर देना संगीत के द्वारा सम्भव है। हर बाल-वृद्ध संगीत पसन्द करता है और कठोर मनोभूमि का व्यक्ति भी उसके द्वारा कुछ न कुछ प्रभावित होता है। आज कामुकता की प्रवृत्तियाँ जनसमाज में बेतरह बढ़ चली हैं, उनका बहुत बड़ा उत्तरदायित्व वासना भड़काने वाले गायनों को है। सिनेमा के गन्दे रिकार्ड लोग सुनते हैं और उनकी ध्वनियों से प्रभावित होकर स्वयं भी गाने लगते हैं। जो गाते हैं, जो सुनते हैं वे उन गायनों में व्यक्त भावनाओं से प्रभावित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए बिना नहीं रह सकते। छोटे बच्चों से लेकर बूढ़ों तक के मन-मस्तिष्कों में वासनापरक अशिक्षाएँ उभार देने में इन दिनों ऐसे ही कुत्सित गायनों ने आग-फूँस का काम किया है। लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को उस अहितकर गायन प्रवाह ने बुरी तरह चौपट किया है। पत्नीव्रत धर्म और पतिव्रत धर्म की नीवें खोखली कर पारिवारिक सुव्यवस्था को इसने बहुत बड़ी क्षति पहुँचाई है।

आवश्यकता इस बात की है कि संगीत की धारा को ऐसा मोड़ दिया जाय कि वह आज के विकृत स्वरूप से बदल कर सृजनात्मक उद्देश्यपूर्ण कर सके। लोगों को पतन से विमुख कर उत्थान की ओर तरंगित कर सके। यह कार्य मन्दिरों में पनपने वाली कीर्तन पद्धति से आसानी से हो सकता है। सिनेमा की पहुँच बड़े नगरों में है जिनकी संख्या सारे भारतवर्ष में २६९० मात्र है। राष्ट्र की १७ फीसदी जनसंख्या ही उनमें रहती है। सिनेमा, रेडियो या दूसरे तरीकों से कुत्सित प्रकार का संगीत पनपता है। उसका क्षेत्र इतने ही लोगों तक अभी सीमित है, देहातों में उसकी हवा तो पहुँचती है पर प्रत्यक्ष में उतना कुप्रभाव नहीं पहुँचता। करीब ३ लाख गाँवों में रहने वाली ८३ फीसदी जनता का मन्दिरों की कीर्तन प्रणाली का सदुपयोग करके अभी भी कुत्सित प्रवृत्तियों से बचाव हो सकना और सद्प्रवृत्तियों का बढ़ाना सम्भव हो सकता है। अतएव भावनात्मक नव-सृजन के लिए यह मन्दिरों की संगीत-प्रणाली महत्त्वपूर्ण योग दे सकती है।

महिला जीवन में गायनों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे पर्वों, त्यौहारों, घरेलू उत्सवों विवाह आदि संस्कारों के अवसरों पर कुछ न कुछ गाती ही हैं। सावन के झूले, फागुन के वसन्त, उनमें मिलजुल कर गाने की उत्कण्ठा पैदा करते हैं। उन अवसरों पर वे वही गा पाती हैं जो पिछली पीढ़ी की महिलाओं से उन्होंने सीखा है। देखा जाता है कि उसमें विशेष आकर्षण या उत्साह का तत्व नहीं रहता, घिसी-पिटी सी ही विचारधारा रहती है। विवाह शादियों के अवसर पर तो अधिकतर फूहड़ गाने ही महिलाओं के मुख से सुनने को मिलते हैं। कहना न होगा कि उनका प्रभाव सभी सुनने वालों पर चाहे वे बाल-वृद्ध कोई भी हों सभी पर बुरा पड़ता है। बुरे प्रभाव का परिणाम बुराइयों की अभिवृद्धि के रूप में ही हो सकता है।

आवश्यकता महिलाओं के गायनों में भी नया मोड़ उत्पन्न करने की है। पर उन्हें घर-घर सिखाने कैसे जायँ ? अधिकांश तो उनमें अशिक्षित ही होती हैं। इसलिए छपी पुस्तकें आदि के द्वारा भी उनमें से बहुत कम ही कुछ गायन सीख पावेंगी। अच्छा तरीका प्रत्यक्ष गायनों का है जो मन्दिरों में चलने वाले कीर्तन कार्यक्रमों द्वारा आसानी से पूरा हो सकता है। जहाँ पुरुषों को उनके उपयोगी गाने सिखाये जायें वहाँ महिलाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप गायनों का अभ्यास भी वहाँ कराया जाय।

पुरुषों के फुरसत के और स्त्रियों के फुरसत के समय में अन्तर है। दोपहर के भोजन के उपरान्त दो-तीन घण्टे के लिये महिलाएँ आमतौर से थोड़ी फुरसत में रहती हैं, जबकि पुरुषों के लिए वह सबसे अधिक काम-धन्धे का समय होता है। जिस प्रकार प्रौढ़ पाठशालाओं के कार्यक्रम में उस एक ही मन्दिर में भिन्न-भिन्न समयों पर कार्यक्रम चले, उसी प्रकार संगीत का भी क्रम चल सकता है। या तो प्रौढ़ पाठशाला के समय के आदि या अन्त में संगीत का समय रहे अथवा इसके लिए सप्ताह में दो दिन नियत रखे जायँ अथवा प्रौढ़ शिक्षा एवं संगीत के अलग-अलग भी क्रम चल सकते हैं। उनका स्थान अलग रह सकता है। जो भी क्रम जहाँ ठीक बैठे वहाँ उस तरह यहा खाँचा मिला लेना चाहिए और यह प्रयत्न करना चाहिए कि पुरुषों को ही नहीं महिलाओं को भी हारमोनियम, ढोलक, मजीरा आदि बजाने का एवम् प्रेरणापद सृजनात्मक गीत सीखने का अवसर मिले। यह व्यवस्था जो भी मन्दिर बना सकेंगे, नर-नारायण की इतनी महत्त्वपूर्ण सेवा करेंगे जिससे भगवान की प्रसन्नता निश्चित रूप से उपलब्ध हो सके।

कथा-प्रवचन एवं सत्संग में विचार विनिमय—हर मन्दिर में एक साप्ताहिक उत्सव का दिन नियत रहना चाहिए। सम्बद्ध लोगों में अधिकांश को वहाँ कौन दिन सुविधा का पड़ता है यह ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्थानों पर यह दिन भिन्न-भिन्न भी रखा जा सकता है। कई जगह सरकारी कर्मचारियों की संख्या अधिक होती है वहाँ रविवार अच्छा पड़ेगा, पर जहाँ व्यापारियों की संख्या अधिक हो वहाँ बाजार बन्दी वाला दिन ठीक रहता है। जहाँ ऐसी कुछ विशेषता न हो, वहाँ रविवार का दिन उचित रहेगा। इस दिन विशेष धर्मानुष्ठान का आयोजन रहा करे। सामूहिक जप, ध्यान, हवन कीर्तन जैसे धर्मायोजन सामूहिक रूप से हों। इसके पश्चात् प्रेरणाप्रद गायन तथा कथा-प्रवचनों का क्रम रहे जैसे सत्यनारायण-कथा, गीता-कथा, रामायण, महाभारत आदि।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कथा-प्रवचन धार्मिक आधार पर हों, उनका कलेवर धार्मिक रहे पर उद्देश्य जीवन-निर्माण एवम् समाज निर्माण ही रहना चाहिए। जिन विकृतियों और दुष्प्रवृत्तियों में आज सारा मानव-समाज डूबा पड़ा है उनके विरुद्ध घृणा, विरोध एवम् संघर्ष उत्पन्न करने के बीज इन कथाओं में रहने चाहिए। भाग्यवाद, पलायनवाद, अकर्मण्यतावाद, परम्परावाद जैसी मूढ़ता लोगों के मस्तिष्कों में से बहिष्कृत हो, विवेकशीलता एवम् दूरदर्शिता बढ़े, सद्गुणों, सद्विचारों, सद्भावनाओं और सत्कर्मों के लिये उत्साह उपजे ऐसे—केवल ऐसे ही हमारे कथा-प्रसंग होने चाहिए। साम्प्रदायिक समस्याओं का स्वरूप और हल उन्हीं प्रसंगों द्वारा सर्व-साधारण को बताया जाना चाहिये। वे इतने उपयोगी हों कि सुनने वाला यह न समझे कि उसे किसी देवता का अप्रासंगिक एवम् अनुपयोगी चरित्र सुनाकर समय नष्ट किया गया है वरन् उसकी अन्तरात्मा यही विचार करे कि इसे सुनने से उसे उपयोगी, आवश्यक ज्ञानवर्धन एवं प्रकाश की ओर उन्मुख करने वाली सामग्री मिली है। ऐसी कथायें ही अब अपनी उपयोगिता के आधार पर जन आकर्षण का आधार बन सकती हैं और उन्हीं से धार्मिक उत्कर्ष का प्रयोजन पूरा हो सकता है। अमुक पुस्तक पढ़ लेने मात्र से अब कथा-प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। अस्तु, प्राणवान् कथा-प्रसंग कह सकने की क्षमता भी मन्दिर के पुजारी या अन्य व्यक्तियों में होनी चाहिये।

सुधार की नितान्त आवश्यकता—यह थोड़े से सुझाव हैं जो पिछली पंक्तियों में व्यक्त किये गये हैं जहाँ जैसी सुविधा हो, वहाँ उस प्रकार की योजना व्यवस्था बनाई जा सकती है। मूल बात इतनी ही ध्यान रखने की है कि चारित्रिक, भावनात्मक, बौद्धिक एवं सामाजिक विकास के लिये मन्दिरों की इमारत, पूँजी एवं जनशक्ति को निरर्थक न पड़ा रहने दिया जाय। निरर्थकता से सड़न और विकृति पैदा होती है। जहाँ गतिशीलता है वहाँ जीवन है। धार्मिकता को जीवित रखना हो तो मन्दिरों को भी जीवित ही रखना चाहिए। जहाँ ऐसी गतिशीलता होगी सशक्तता भी बनी रहेगी। सशक्तता के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है। यदि मन्दिरों के द्वारा लोक सेवा की प्रवृत्तियों को बढ़ाया जाता रहे तो उससे उनका गौरव ही बढ़ेगा।

हमको यह बहुत अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि मन्दिर एक सार्वजनिक संस्था के समान हैं और उनका उपयोग अनिवार्य रूप से जन कल्याण की दृष्टि से किया जाना चाहिये। वर्तमान समय में जितने मन्दिर हमारे देखने में आते हैं उनका निर्माण प्रायः हजार साल के भीतर ही हुआ है। उससे प्राचीन मन्दिरों को या तो विदेशी आक्रमणकारियों, विशेषतः मुसलमानों ने ही तोड़ डाला या वे कालक्रम से जीर्ण-शीर्ण होकर स्वयं टूट-फूट गये। राम और कृष्ण के मन्दिर तो अभी चार पाँच सौ वर्षों के भीतर वैष्णव सम्प्रदाय का उत्तर भारत में अभ्युदय होने पर बनाये गये हैं। शिव के मन्दिर अवश्य कुछ प्राचीन हैं पर उत्तर भारत में शायद ही कोई मन्दिर हजार डेढ़ हजार साल से अधिक प्राचीन हो भारतवर्ष की जलवायु में इतने दिनों में अवश्य ही मजबूत इमारतें भी जीर्ण-शीर्ण हो जाती है।

इसलिये हम सहज ही यह अनुमान कर सकते हैं कि आरम्भ में मन्दिरों के निर्माण कर्ताओं का उद्देश्य अपने साम्प्रदायिक धर्म संगठन को सुदृढ़ बनाना, प्रचारकों के एकत्रित होने और विचार-विनिमय करने के लिये एक केन्द्रीय कार्यालय प्रस्तुत करना ही रहा होगा। हम यह भी जानते हैं कि ऐतिहासिक काल (गत २५०० वर्षों) के भीतर भारत में सर्वप्रथम "बौद्ध विहार" ही बनाये गये थे। उसके बाद संन्यासियों के मठ निर्मित हुए और उसके भी पश्चात् अन्य साधुओं के आश्रम और मन्दिर बनाये गये। प्राचीन बौद्ध विहार भी अब काल प्रभाव से ध्वस्त होकर कई-कई गज भूमि के नीचे दब गये हैं। प्राचीन मठों तथा मन्दिरों के खँडहर भी देश में हजारों जगह विद्यमान हैं। फिर किसी मन्दिर या धर्मस्थान के इससे अधिक प्राचीन, त्रेता या द्वापर का बना कह देना पुरातत्व विज्ञान से अपनी अनजानकारी प्रकट करना ही है। ये सब मध्य काल के या यवन काल के धर्म प्रेमियों ने सर्व-साधारण में धर्म भावना का प्रसार करने के निमित्त ही बनाये हैं और उसी दृष्टि से अब भी उनका उपयोग होना चाहिये।

इस समय देश में जो मन्दिर हैं, वे तो प्रायः सौ, दो सौ या तीन सौ वर्ष के भीतर के ही है। उनके निर्माण कर्त्ताओं ने स्वयं अन्य कार्यों में संलग्न रहने के कारण उनकी प्रबन्ध व्यवस्था परोपकारी वृत्ति के धर्म-सेवा करने वालों के सुपुर्द करदी। काल क्रम से निर्माता गणों का अन्त हो गया और मन्दिर अधिकांश में व्यवस्थापकों, महन्त, पुजारी आदि के अधिकार में आ गये। पर वे वास्तविक रूप में सार्वजनिक संस्था ही हैं और उसी दृष्टि से उनका उपयोग किया जाना उचित है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनके हाथ में मन्दिरों की व्यवस्था है । उन समितियों एवं दूसरों को ऐसे सुधार करने चाहिये । महन्त और पुजारी चाहें तो वे बिना किसी कठिनाई के ऐसा कर सकते हैं । आरम्भ में कुछ श्रम उन्हें जरूर करना पड़ेगा पर उसका समुचित श्रेय भी उन्हें मिलेगा, मन्दिर के साथ-साथ उनका भी गौरव बढ़ेगा । यह सोचना ठीक नहीं कि यहाँ कोई लोग आने-जाने लगेंगे तो सम्भव है मन्दिर की आमदनी ही उनसे छिन जाय । सेवा भाव से जड़ें जमती हैं कटती नहीं, यह विश्वास रखना चाहिये ।

मन्दिरों का सदुपयोग होने लगना, उनमें रचनात्मक प्रवृत्तियों का शुभारम्भ होना भारतीय धर्म एवं राष्ट्र के लिये एक आशाजनक सौभाग्य होगा । प्राय: छोटी-छोटी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हर मन्दिरों में चलाई जा सकती हैं । २० व्यक्तियों को शिक्षा के लिए भी यदि एक मन्दिर में प्रौढ़ पाठशाला चलाई जा सके तो प्रतिवर्ष एक करोड़ २० लाख प्रौढ़ों को साक्षर बनाकर कुछ ही वर्षों में सारे देश की निरक्षरता को दूर किया जा सकता है । सायंकाल गाँवों या शहरों के प्राय: सभी निवासियों को अवकाश का समय मिलता है । इस समय मन्दिरों में प्रतिदिन संगीत, भजन, कीर्तन और प्रवचन की व्यवस्था हो जाय तो उससे लोगों को पर्याप्त मनोरंजन के साथ-साथ नैतिक-प्रशिक्षण भी मिलता रहेगा ।

मन्दिरों में संस्कारों की पद्धति का प्रचलन किया जाय तो उसमें सामाजिक जीवन में आत्म शोधन की एक नई चेतना का आविर्भाव हो सकता है । संस्कार मनुष्य जीवन को ऊँचा उठाने और उसे क्रमश: आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर अग्रसर करने में बड़ा महत्त्व रखते हैं पर जनसाधारण को उनकी शिक्षाओं का ज्ञान नहीं होता, फलस्वरूप वे उनके वास्तविक लाभों से वन्चित रह जाते हैं ।

स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ इन मन्दिरों से प्रसारित की जा सकती हैं । प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय, समाज-सुधार, व्यायामशालाएँ चलाने, शाक-सब्जी उगाने का आन्दोलन, संगीत-विद्यालय, आसन प्राणायामों की शिक्षा, भजनोपदेशक तथा धर्मोपदेशक तैयार करने के लिए पाठ्यक्रम, प्राकृतिक चिकित्सा, फर्स्टएड आदि की विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाई जा सकती हैं । इनसे सामाजिक जीवन की एकता, संगठन और अनुशासन की भावना बढ़ती है तथा समाज को ऊँचा उठाने वाले गुणों की प्रतिष्ठा भी होती है । मन्दिरों में आज की परिस्थितियों के अनुरूप राष्ट्रीयता और अनुशासन की भावना को उभारने के लिए रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलायी ही जानी चाहिए ।

दर्शन तो करें, पर इस तरह

दर्शन करने की हमारे समाज में बड़ी महिमा मानी जाती है । देव मन्दिरों के तीर्थों के दर्शन करने लोग बहुत कष्ठ उठाकर बहुत पैसा लगाकर जाते हैं और दर्शन करने के उपरान्त बहुत सन्तोष अनुभव करते हैं । कहते हैं हमारे भाग्य में ऐसा सुअवसर लिखा था जिसके अनुसार अमुक तीर्थ या देव प्रतिमा के दर्शन हो सके । इसी प्रकार किसी सन्त, महात्मा, विद्वान् या महापुरुष को देखने के लिए भी लोग दौड़-दौड़ कर जाते हैं और समझते हैं कि दर्शन का पुण्य फल उन्हें प्राप्त हो गया । हमारे देश में यह मान्यता बहुत गहराई तक जड़ जमाये बैठी है । दर्शन के लाभ के सम्बन्ध में लोगों की मान्यता चरम सीमा तक पहुँच गई है । कितने ही लोग तो कल्याण का एक मात्र उपाय दर्शन को ही मान लेते हैं । कुम्भ के मेले में लाखों व्यक्ति इसलिए जाते हैं कि वहाँ जाने पर तीर्थ स्नान के अतिरिक्त सन्त महात्माओं के भी दर्शन होंगे, जिससे उनके पाप कट जायेंगे और पुण्य लाभ मिल जायगा ।

अति न की जाय—महात्मा गाँधी के दर्शनों के लिए लाखों व्यक्ति पहुँचते थे, जिधर से वे निकलते थे उधर के स्टेशनों पर भारी भीड़ जमा होती थी और दर्शन के लिए आग्रह करती थी । दिन भर के कठोर श्रम से थके होने पर रात को वे गाड़ी में सो रहे होते थे तो भी लोग उन्हें जगाने और दर्शन देने का आग्रह करते थे । उन्हें विश्राम न मिलने से कष्ट होगा, बीमार पड़ जायेंगे, जैसी बातों की उन्हें परवाह नहीं होती थी, हर हालत में उन्हें दर्शन चाहिये ही । बेशक लोगों के दिल में महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धा भावना भी थी पर साथ ही दर्शन से पुण्य मिलने का लोभ भी कम न था । यदि श्रद्धा मात्र ही रही होती और उसके साथ विवेक का नियंत्रण भी रहता तो कठोर काम से थके हुए एक वयोवृद्ध परमार्थी सत्पुरुष को रात्रि में जगाने का आग्रह क्यों किया जाता ? ऐसी दशा में लोग अपनी श्रद्धा को अन्त:करण तक भी सीमित रख सकते थे और बिना दर्शन पाये भी उसका काम चला सकते थे । पर जब दर्शन का पुण्य लाभ ही लेना ठहरा तो किसी को कष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगा, बीमार पड़ जाने का खतरा रहेगा, इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता समझी जाय ?

यह दर्शन के पुण्यफल सम्बन्धी मान्यता की अति है। अति की सीमा पर पहुँचकर अमृत भी विष बन जाता है। श्रद्धा जब विवेक की सीमाओं का उल्लंघन करती है तब वह अन्ध-श्रद्धा कहलाती है और उससे लाभ के स्थान पर हानि ही होती है। श्रद्धा जहाँ आत्मा को ऊँचा उठाती है, ईश्वर तक ले पहुँचती है वहाँ अन्ध-श्रद्धा मनुष्य को अविवेक, अनाचार एवं अधःपतन के गर्त में धकेल देती है। अन्ध-श्रद्धा का शोषण करके अगणित धूर्त लोग बेचारी भोली जनता का बुरी तरह शोषण करते रहते हैं। यह शोषण दोनों पक्षों के लिए अहितकर है। शोषक अधिकाधिक दुष्टता पर उतारू होता है और शोषित दिन-दिन दीन-हीन बनता चला जाता है। इसलिए शास्त्रों में जहाँ श्रद्धा की प्रशंसा है वहाँ अन्ध-श्रद्धा की भर्त्सना भी कम नहीं की गई है। दर्शन का लाभ बहुत है उससे इनकार नहीं किया जा सकता, पर जब उसके सम्बन्ध में इतना अति उत्साह बरता जाय तो अन्ध-श्रद्धा तक जो पहुँचे तो यही मानना चाहिए कि अब इससे लाभ कम और हानि अधिक होने की सम्भावना है।

दर्शन वह प्रथम प्रयास है जिससे किसी विषय की जानकारी मिलती है। जानकारी से श्रद्धा बढ़ती है। श्रद्धा से उसका तथ्य समझने के लिए उत्साह बढ़ता है। तथ्य को अपनाने का प्रयत्न करने पर वह अभ्यास में आता है। अभ्यास परिपक्व होने पर उस विशेषता के कारण अभीष्ट लाभ मिलता है। दर्शन का लाभ इतनी मंजिलें पार करने पर फलित होता है। यह सोचना सही है कि देखने भर से अभीष्ट उद्देश्य प्राप्त हो जायगा।

स्कूल का दर्शन—किसी से सुना है कि माथुर प्राथमिक स्कूल में स्वच्छता, व्यवस्था एवं शिक्षा पद्धति बड़ी अच्छी है। उसमें बच्चे को पढ़ाना अच्छा रहता है। इच्छा हुई कि स्कूल के दर्शन करने चाहिए। वहाँ पहुँचे देखा, जैसा बताया गया था वैसा ही है। इमारत बहुत बढ़िया, सफाई हवा का, रोशनी का प्रबन्ध ठीक, बैठने की सुविधाजनक व्यवस्था, फीस कम, शिक्षक सुयोग्य, हर साल का परीक्षाफल सन्तोषजनक। स्कूल के दर्शन करने पर इतनी प्राथमिक जानकारी मिली और मन प्रसन्न हुआ, श्रद्धा बढ़ी। इस श्रद्धा ने जिज्ञासा उत्पन्न की कि इसमें क्या-क्या विषय पढ़ाये जाते हैं, हमारे बच्चों के लिए क्या विषय पढ़ना ठीक होगा, उसे पढ़ने में क्या सुविधा-असुविधा रहेगी, इस स्कूल में भर्ती होने पर विद्यार्थी को क्या-क्या शर्तें पूरी करनी होंगी। अधिकारियों से पूछा गया, उन्होंने सब कुछ सन्तोषजनक ढंग से बता दिया। अब बच्चा स्कूल में दाखिल करा दिया गया। सोचा गया था इसे डाक्टर बनाना है, इसलिए 'जीव-विज्ञान' का विषय भी पढ़ते रहना चाहिए। पढ़ाई चालू हुई। बच्चे ने परिश्रमपूर्वक पढ़ना आरम्भ किया। इण्टर कक्षा उत्तीर्ण करने तक उसने अपना अध्यवसाय धैर्यपूर्वक जारी रखा। अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुआ। डाक्टरी कालेज में भर्ती हुआ। पाँच साल सर्जरी आदि में अभ्यास किया। परीक्षा दी, पास हुआ। उपक्रम से उस प्राथमिक स्कूल में भर्ती होने से लेकर डाक्टर बनने तक की प्रक्रिया पूर्ण करने के उपरान्त वह किसी अस्पताल में डाक्टर की कुर्सी सुशोभित करने लगा। प्राथमिक स्कूल में बच्चे को भर्ती करने से पूर्व उसका जो दर्शन किया था वह फलदायक हो गया। बच्चे को डाक्टर बनाने के लिए पढ़ाना था। इसके लिए अच्छे स्कूल की तलाश थी। सुने अनुसार उपर्युक्त पाठशाला का पता चला तो उसके प्रत्यक्ष दर्शन किये। दर्शन का अभीष्ट फल भी मिला, समयानुसार बालक के डाक्टर बनने में सफलता भी प्राप्त करली। दर्शन का प्रत्यक्ष पुण्यफल मिल गया।

एक कोई व्यक्ति सोचता है—"अमुक अच्छी प्राथमिक पाठशाला की कृपा से कई बच्चे डाक्टर हो चुके हैं, इसलिए हम भी उसका लाभ उठावें। लाभ उठाने के लिए उसे इतना ही पर्याप्त लगता है कि इस स्कूल का दर्शन कर लिया जाय, उसकी परिक्रमा लगा ली जाय। दण्डवत् कर लिया जाय और थोड़े समय में थोड़ा खर्च करके यह कर्मकाण्ड पूरा होने पर घर चला आया जाय, बस इतने मात्र से डाक्टर बनाने का पुण्यफल बच्चे को मिल जाय। कई बच्चे जब इसी स्कूल की कृपा से डाक्टर हुए हैं, तो हमारा बच्चा क्यों न होगा ?" इस प्रकार सोचने वाले व्यक्ति की श्रद्धा चाहे कितनी ही बढ़ी-चढ़ी हो और वह उस पाठशाला के प्रति कितने ही उच्चभाव क्यों न रखे, अपने बच्चे को डाक्टर बनाने में सफलता प्राप्त न कर सकेगा। कारण यह है कि वह दर्शन से लेकर अभीष्ट लाभ तक के बीच की जो लम्बी कड़ी है, उसे आँख से ओझल कर रहा है। कितना श्रम करने पर, कितना समय लगाने पर, कितने साधन जुटाने पर पाठशाला के छात्र डाक्टर बनते हैं यदि इन बातों की उपेक्षा की जाय तो उचित न होगा। पाठशाला के दर्शन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते ही डाक्टर होने का वरदान मिलने की आशा करना, न तो उचित है न विवेक सम्मत। वह पूरी हो भी कैसे सकती है ?

अस्पताल की दर्शन झाँकी—अपना शरीर रुग्ण है। सुना है कि अमुक अस्पताल में इस रोग का ठीक इलाज होता है। कई रोगी अच्छे हुए हैं। श्रद्धा बढ़ी। वस्तु स्थिति जानने के लिए वहाँ गये। देखा अस्पताल में वस्तुत: बहुत अच्छी व्यवस्था है। रोगियों की सुविधा का पूरा ध्यान रखा जाता है, डाक्टर सुयोग्य एवं सेवाभावी हैं। इस रोग के विशेषज्ञ हैं। बहुत रोगी अच्छे होते हैं। इस जानकारी से श्रद्धा बढ़ी। अब अधिक विवरण जानने की उत्कंठा हुई। क्या उपचार होता है, कितना समय लगता है, क्या शर्तें पूरी करनी होती हैं, कितना खर्च पड़ता है, आदि जिज्ञासाओं का समाधान अधिकारियों से पूछा गया, उन्होंने सब कुछ सन्तोषजनक ढंग से समझा दिया। पूरी जानकारी प्राप्त करने के बाद अस्पताल में भर्ती हुए। डाक्टरों ने जितने दिन जो करने के लिए, जिस तरह रहने, परहेज करने के लिए कहा था, उसी तरह रहे। उपचार चलता रहा, रोग घटता रहा, एक समय आया जब रोग से मुक्ति मिल गई। अस्पताल की प्रशंसा करते हुए घर आ गये। प्रथम दिन अस्पताल का दर्शन करने जिस कामना को लेकर गये थे वह पूर्ण हो गई। जैसा बताया गया था, जैसा सुना था अक्षरश: सच निकला।

एक दूसरा व्यक्ति उसी रोग का रोगी है। अस्पताल की प्रसंशा सुनता है, वहाँ जाता है, दर्शन करता है। इसके उपरान्त परिक्रमा लगाता है, दण्डवत् करता है, फाटक पर पुष्पहार समर्पित करता है। दीपक जलाता है। अस्पताल की स्तुति बखानता है और घर चला आता है। सोचता है उसका दर्शन पूजन रोग मुक्ति की अभीष्ट मनोकामना पूर्ण कर देगा। ऐसे व्यक्ति का उपहास ही किया जायगा क्योंकि वह आदि और अन्त की प्रक्रिया से ही परिचित है। अस्पताल जाने वाले रोग मुक्त होते हैं, केवल इतनी ही जानकारी उसे है। बेचारे को यह पता ही नहीं कि आदि और अन्त के बीच में "मध्य" भी एक तथ्य होता है। कामना और उसकी पूर्ति के बीच में एक लम्बा व्यवधान भी रहता है जिसे लम्बी मंजिल की तरह क्रमबद्ध रूप से पूरा करना होता है। इस मध्यवर्ती साधना क्रम की उपेक्षा करने से अभीष्ट उद्देश्य कैसे पूरा हो सकता है ? इस कड़वी सच्चाई को बेचारा भावुक व्यक्ति समझ ही नहीं पा रहा है। अस्पताल के दर्शन करने से रोग मुक्ति की आशा लगाये बैठा है। भले ही उसकी श्रद्धा कितनी ही प्रबल क्यों न हो, चिकित्सा का कष्ट साध्य आयोजन किये बिना, अस्पताल द्वारा मिल सकने वाला लाभ किसी को कहाँ मिल सकेगा ?

मण्डी के दर्शन से अर्थ लाभ—किसी से सुना कि मण्डी में कई व्यक्ति जाकर खरीद-फरोख्त का व्यापार करते हैं और धन कमाते हैं। मण्डी में आने-जाने वाले, उस क्षेत्र के सम्पर्क में रहने वाले, नित्य-दर्शन करने वाले लोग धनी व्यापारी बन जाते हैं। इस चर्चा को सुनकर एक बेकारी दूर करने का इच्छुक मण्डी जाता है, वहाँ का रंग-ढंग देखता है, कइयों को बेचने में और कइयों को खरीदने की क्रिया करते हुए और लाभ कमाते हुए देखता है। उसकी श्रद्धा बढ़ती है कि बात ठीक है। यहाँ बेकारी दूर करने और कुछ उपार्जन करने के साधन मौजूद हैं। अब वह वहाँ वालों से पूछ-ताछ करता है कि मेरी स्थिति के अनुसार यहाँ क्या काम करना सम्भव हो सकता है। जो सुझाव समझ में आया उसे अपनाता है। निरन्तर परिश्रम करता है, भूलों को सुधारता है और क्रमश: व्यापार बढ़ाते चलाने में प्रयत्नशील रहता है। समयानुसार लाभ बढ़ता चलता है और वह धनी व्यापारी बन जाता है। दूसरे बड़े व्यापारियों की तरह मोटर कोठी बना लेता है। जो पूछता है उसी से मण्डी की प्रशंसा करता है और कहता है यही सौभाग्य-वृद्धि का वरदान है। जो इसके दर्शन करता है, अमीर बन जाता है। उसका कथन अक्षरश: सही और अनुभूत भी है।

दूसरा व्यक्ति मण्डी के द्वारा धनी होने की चर्चा सुनता है, उसका माहात्म्य सुनकर लालायित हो उठता है। प्रात:काल स्नान कर, चन्दन धारण कर, हाथ में धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, अक्षत लेकर जा पहुँचता है। मण्डी देवी की मनौती मनाता है, स्तुति करता, पूजा उपहार समर्पित करता है, परिक्रमा लगाता है, साष्टांग प्रणाम करता है और घर चला आता है। घड़ी-घड़ी विकलतापूर्वक प्रतीक्षा करता है कि लक्ष्मी जी कब आवें, कब मोटर, कोठी खरीदी जाय ? इस प्रकार की प्रतीक्षा करने वाले को बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसने मंडी द्वारा लक्ष्मी प्राप्त होने की चर्चा मात्र सुनी है, पूरा तथ्य समझने की कोशिश नहीं की है। यदि उसने वस्तुस्थिति जानने का प्रयत्न किया होता तो प्रतीत होता कि मण्डी का दर्शन तो एक शुभ आरम्भ मात्र है, यहाँ से एक लम्बी श्रृंखला आरम्भ होती है, जिसके साथ कठोर श्रम, अविचल धैर्य, पर्याप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय, आवश्यक सूझबूझ, कठोर संघर्ष का ताना-बाना बुना हुआ है। उस लम्बी मंजिल को जो साहसपूर्वक पार कर सकता है केवल वही लक्ष्मी उपार्जन का अधिकारी बनता है। यदि यह तथ्य उसे विदित होता तो मण्डी के दर्शन मात्र से लक्ष्मी प्राप्ति का वरदान पाने के लिए लालायित न बैठा रहता।

दर्शन का उद्देश्य एवं प्रयोजन—उपर्युक्त तीन उदाहरणों से यह समझने का अवसर मिलता है कि स्कूल का दर्शन डाक्टर की पदवी दिलाने में, अस्पताल का दर्शन रोग मुक्ति कराने में, मण्डी का दर्शन लक्ष्मी की प्राप्ति में निश्चित रूप से समर्थ है। इसलिये दर्शन की यदि प्रशंसा की जाती है, उपयोगिता बताई जाती है, आवश्यकता प्रतिपादित की जाती है तो वह यथार्थ है। इसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है पर यह भुला न देना चाहिए कि "दर्शन की अभीष्ट मनोकामना पूर्ति" के प्रतिपादन के पीछे लम्बी किन्तु "परन्तु" लगी हुई है और वह इतनी कठोर सच्चाई है कि उसकी उपेक्षा करने से प्रतिपादन की सारी दीवार ही भरहरा कर गिर पड़ती है और फिर मिथ्या कल्पना के अतिरिक्त उसका कोई स्वरूप ही नहीं बच रहता। बदनाम शेखचिल्ली की हँसी सिर्फ इसलिए उड़ाई जाती है कि सिर पर रखे घड़े से मिलने वाली मजदूरी के चन्द पैसे से उसके विवाह होने, पुत्र होने और उसके साथ मनोरंजन करने तक की मनोवांछा को चन्द मिनटों में ही पूरी होते देख लिया था, वह यह भूल गया था कि घड़ा ढोने की मजदूरी मिलने पर उसे कितने अध्यवसाय के साथ, कितनी कठोर आर्थिक साधना कितने मनोयोग पूर्वक करनी होगी, तब कहीं यह पैसे मुर्गी—मुर्गी से गाय—गाय से भैंस—भैंस से शादी—शादी से बच्चे—बच्चे का क्रमिक विकास होने पर उसके साथ मनोरंजन करने का अवसर आवेगा। यदि वह लम्बी मन्जिल पूरी कर सकने का बानिक न बन सका तो उससे कल्पना के गुब्बारे उड़ाना सर्वथा निरर्थक है। सोचते कुछ भी रहा जाय पर मिलेगा कुछ नहीं। शेखचिल्ली मियाँ ने इस कटुसत्य को यदि समझ लिया होता तो सम्भवत: उनकी योजना उतनी ही लम्बी एवं विस्तृत होती, जितनी कि अनुभवी, व्यवहार बुद्धि एवं विवेकशील लोगों की होती है। तब फिर उसकी पूर्ति में भी कोई बाधा न थी। संसार में असंख्य मनुष्य ऐसे हुए भी हैं, जिन्होंने न्यूनतम साधनों की सहायता से उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचने में सफलता प्राप्त की है। शेखचिल्ली भी वैसा कर सकता था। तब उसकी न तो हँसी होती और न बदनामी वरन् उसकी योजना को सराहा ही जाता।

देखें ही नहीं विचारें भी—'दर्शन' शब्द देखने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, इसी शब्द का दूसरा अर्थ—विवेचना, या विचारणा भी होता है। शुभ दर्शन करना अपने आप में एक अच्छी बात है पर उसके अच्छाई के पीछे भी एक विवेचना या विचारणा सन्निहित है। हमें उस पर ध्यान देना चाहिए। जिस तथ्य के आधार पर देखने जैसी एक अत्यन्त तुच्छ क्रिया को इतना महत्त्व मिला है, उसके सम्बन्ध में हमें अपरिचित नहीं रहना चाहिए अन्यथा फिर देव प्रतिमाओं से लेकर सन्त, महात्माओं तक के दर्शन का न कोई मूल्य रह जायगा और न कोई प्रयोजन हीं रहेगा।

गीता, रामायण वेद शास्त्रों के हम दर्शन करें यह बहुत उत्तम है पर देखने के पश्चात् उनमें प्रतिपादित शिक्षाओं को भी सुनना-समझना चाहिए। इतना ही नहीं वरन् उन शिक्षाओं को कार्यान्वित भी करना चाहिये। जो इतना कर सकेगा उसे उपर्युक्त पुस्तकें श्रेय प्रदान करेंगी, जो माहात्म्य बताया गया है उसे भी प्रत्यक्ष प्रमाणित करेंगी। किन्तु यदि देखने भर की बात को शास्त्रों के लाभ को आधार मान लिया गया तो उतनी सी तुच्छ क्रिया से, शास्त्रों के माध्यम से मिल सकने वाला पुण्य कदापि न मिल सकेगा। पुस्तक विक्रेताओं के गोदामों में बहुमूल्य ग्रन्थरत्न अनाज के बोरों की तरह भरे रहते हैं, वे उन्हें रखते, उठाते देखते-भालते रहते हैं, पर इससे न तो उनकी ज्ञानवृद्धि में कोई सहायता मिलती है और न उनके द्वारा मिल सकने वाला पुण्य का प्रयोजन सिद्ध होता है। प्रेस वालों के यहाँ तो पुस्तकों का जन्म ही होता है। वे कम्पोज करने, छापने, जिल्द बनाने तक की सारी क्रियाएँ करते हैं। गीता के प्रवक्ता भले ही कृष्ण रहे हैं, छन्दोबद्ध भले ही व्यासजी ने किया हो पर पुस्तक को मूर्ति रूप देने का श्रेय तो प्रेस वालों को ही है। वे भी कृष्ण एवं व्यास के बाद तीसरे नम्बर के गीता, उद्गाता कहे जायँ तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। फिर भी गीता वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन में जिस लाभ की आशा की जा सकती है क्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह उन पुस्तक विक्रेताओं या प्रेस वालों को मिल पाता है ?

भावनायें ही आधार हैं—मन्दिरों में प्रतिष्ठापित प्रतिमाएँ मूर्तिकारों की कला और मेहनत का परिणाम हैं। वे अपने जीवन में विभिन्न देवी-देवताओं को गढ़ते, बनाते रहते हैं, पर क्या मीरा को जो लाभ 'गिरधर गुपाल' की छोटी-सी प्रतिमा ने दिया था वह उन मूर्तिकारों को मिलता है ? कारण स्पष्ट है मूर्तिकार केवल पत्थर को खोदता, चीरता, तरासता, घिसता है, उसकी कार्य पद्धति यहाँ तक सीमित है। देवता को हृदय में बिठाने और उन भावनाओं के अनुरूप जीवन को ढालने बदलने से उसे कुछ प्रयोजन नहीं होता, फलस्वरूप उसे वह लाभ भी नहीं मिलता जो भावुक भक्त उन्हीं प्रतिमाओं के माध्यम से प्राप्त करते रहते हैं। यही बात बुकसेलरों और प्रेस वालों के सम्बन्ध में लागू होती है। वे किताबों का व्यवसाय मात्र करते हैं। जो मूल्य कुँजड़े की दृष्टि से आलू का है, वही इन लोगों की दृष्टि से ग्रन्थों का। ऐसी दशा में स्वाध्याय द्वारा जीवन निर्माण के प्रयत्न में लगे हुए ज्ञान साधकों की तरह उन्हें लाभ मिल भी कैसे सकता है ?

दर्शन तब तक अधूरा है जब तक उसका दर्शन भी हृदयंगम करने के लिए हम तत्पर न हों। तीर्थों में मन्दिरों में, अगणित लोग देव दर्शन के लिए जाते हैं। प्रतिमाओं को देखते भर हैं। हाथ जोड़ दिया या एक दो पैसा चढ़ावे का फेंक दिया अथवा पुष्प, प्रसाद आदि कोई छोटा-मोटा उपहार उपस्थित कर दिया, इतने मात्र से उन्हें यह आशा रहती है कि उनके आने पर देवता प्रसन्न होंगे, अहसान मानेंगे, और बदले में मनोकामनायें पूर्ण कर देंगे। आमतौर से यही मान्यता अधिकांश दर्शनार्थियों की होती है। पर देखना यह है कि क्या यह मान्यता ठीक है, क्या उसके पीछे कुछ तथ्य भी है, या ऐसे ही एक भ्रम परम्परा से भ्रमित लोग इधर से उधर मारे-मारे फिरते हैं ?

ईश्वर एक है, सर्वत्र व्याप्त है। उसकी उपस्थिति कण-कण में विद्यमान है। किसी स्थान में न तो वह अधिक है और न कम। भावनापूर्वक जहाँ भी उसे देखा जायगा वहाँ प्रस्तुत होगा और जहाँ भावरिक्तता रहेगी वहाँ उसका अस्तित्व भी अनुभव न होगा। गंगाजल की शीशी हाथ पर रख कर झूठी कसम खाने का प्रश्न आने पर एक आस्तिक ग्रामीण की छाती दहलाने लगती है और वह बड़े से बड़े लाभ के लिए भी वैसा नहीं कर पाता, परन्तु जिन्हें गंगा की दिव्य शक्ति के प्रति आस्था नहीं है, वे गंगा में नहाते हुए भी झूठ बोलते रहते हैं, इसमें उन्हें तनिक भी झिझक नहीं होती। गंगा स्नान करने कराने का व्यवसाय करने वाले लोग दिन भर अनर्गल झूठ गंगा तट पर ही बोलते रहते हैं उन्हें उस ग्रामीण की तरह संकोच नहीं होता जो शीशी में थोड़ा-सा गंगाजल भी हाथ पर रखते हुए तनिक-सा असत्य बोलते हुए घबराने लगता है। महत्त्व गंगा का उतना नहीं, जितनी आस्था का है। आस्था न हो तो पानी का कुछ महत्त्व नहीं। कितना ही नहरों और तालाबों में भी गंगाजल भरा रहता है पर आस्था के अभाव में वह जल कोई धार्मिक प्रयोजन सिद्ध नहीं करता। गंगाजल का दर्शन तो उसमें नाव चलाने वाले और मछली पकड़ने वाले भी करते हैं पर उन्हें तब तक पुण्य लाभ कैसे मिलेगा जब तक उस जल दर्शन के साथ-साथ भाव दर्शन भी संयुक्त एवं समन्वित न हो।

सत्पुरुष और उनके दर्शन—व्यक्तियों के दर्शन पर भी यही बात लागू होती है। किन्हीं सन्त महात्मा, महापुरुष ज्ञानी का शरीर दर्शन तभी उपयोगी हो सकता है जब उन्हें देखने के बाद उनको सुनने, समझने, विचारने एवं अपनाने का भी प्रयत्न किया गया। सत्पुरुष के शरीर-दर्शन से जो प्रेरणा मिले उसे एक कदम आगे बढ़ाया जाना चाहिए। उसकी महत्ता किन कारणों, किन गुणों के कारण है, उन्हें समझना चाहिए। एक हाड़-माँस के व्यक्ति को अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ सम्मानित जिन सद्गुणों ने, जिन आदर्शों ने बनाया, उन्हें अधिक श्रद्धा, अधिक भावना अधिक, तन्मयता से देखना चाहिए। इतना ही नहीं, इन श्रेष्ठताओं को अपने भीतर भी ओत-प्रोत होने का एक भावपूर्ण कल्पना चित्र हृदयंगम करना चाहिए। शरीर दर्शन एवं गुण चिन्तन से जो प्रेरणा प्राप्त हो उसे अपने को उसी दिशा में चलने का सम्बल बनाना चाहिए। यदि इतना काम किया जा सका तो समझना चाहिए कि दर्शन सार्थक हो गया। जिन्होंने इस प्रकार की मानसिक स्थिति में सत्पुरुषों के दर्शन किये हैं, वे धन्य हो गये। उन्हें लाभ मिल गया जो दर्शन से मिलना चाहिए किन्तु जिन्होंने आँख के पलक मात्र खोलकर कलेवर देखा उन्हें कुछ भी न मिल सका, वे खाली हाथ ही बने रहे।

गांधी जी का भाव दर्शन करने वाले नेहरू, पटेल, विनोबा, राजेन्द्र प्रसाद जैसे व्यक्ति कृत-कृत्य हो गये, उन्होंने गांधी दर्शन का प्रत्यक्ष पुण्यफल प्राप्त कर लिया। पर जो लोग केवल उनका शरीर भर देखते रहे, देखते ही नहीं उस शरीर की सेवा के लिए नाई, धोबी, ड्राइवर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रसोइया, चपरासी, सरीखे काम भी वर्षों करते रहे, उनमें रत्ती भर भी कोई हेर-फेर न हुआ उन्हें वेतन में भी कर्मचारी को मिलने वाले साधारण से अर्थ लाभ के अतिरिक्त और कोई उपहार प्राप्त न हुआ। विनोबा ने गाँधी जी के पैर दबाने, मालिश करने, हजामत बनाने जैसा निकटतम दर्शन भले ही न किया हो पर उन्होंने गाँधी के तत्वज्ञान को बारीकी से देखा, सीखा और अपनाया फलतः वे आज जीवित गाँधी के रूप में उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उन लोगों का पता भी नहीं जो गाँधीजी की नित्य शारीरिक सेवा तथा साज-सम्भाल करते थे और उनके इर्द-गिर्द में ही दिन-रात बने रहते थे। यदि शरीर दर्शन से कुछ लाभ हुआ होता तो निश्चय ही गाँधी, पटेल, विनोबा आदि की अपेक्षा वे लोग ही अधिक उच्चकोटि के महापुरुष बन गये थे जो निरन्तर उनके साथ-साथ या सामने ही रहते थे।

प्रेरणा आवश्यक तो है पर पर्याप्त नहीं—प्रारम्भिक प्रेरणा के रूप में स्थूल दर्शन-शरीर या प्रतिमा का देखना एक हद तक उपयोगी हो सकता है, होता भी है। देव स्थान में जाने पर आस्तिकता के भाव उदय होते हैं, भौतिक जीवन से आध्यात्मिकता की ओर झुकाव होता है। निश्चित ईश्वर का स्मरण आता है। यह एक प्राथमिक संकेत लाभ है। इतने मात्र का पुण्य तो है, पर है वह राई रत्ती भर ही। श्मशान में जाने पर कुछ क्षण के लिए वैराग्य के भाव उदय होते हैं। पर वे पीठ फेरते ही विलीन हो जाते हैं। बहुत दिन बाद मरघट जाया जाय तो वे भाव फिर भी न्यूनाधिक मात्रा में उदय होते हैं, पर यदि मरघट के पास ही अपना खेत का रास्ता हो और जल्दी-जल्दी उसे देखने का अवसर मिले तो वह वैराग्य के भाव जागना भी बन्द हो जाता है। तीर्थों में बाहर के लोग श्रद्धा-भक्ति पूर्वक जाते हैं और मन्दिरों के दर्शन करके भावान्वित होते हैं, पर जो उन मन्दिरों के आस-पास ही रहते हैं, उनके मन में कोई आकर्षण पैदा नहीं होता। आँखों के आगे अभ्यस्त रहने से साधारण वस्तुओं जैसे ही देखते रहते हैं। यदि स्थूल दर्शन में ही कोई विशेषता या महत्ता रही होती तो निश्चय ही मन्दिरों के समीप रहने वाले, तीर्थों में निवास करने वाले अथवा सत्पुरुषों के साथी बनने वालों के जीवन क्रम में कोई विशेष श्रेष्ठता उत्पन्न अवश्य हुई होती, पर प्रत्यक्ष में बिलकुल भी वैसा देखने में नहीं आता। मरघट में यदि वैराग्य उत्पन्न करने की क्षमता रही होती तो उधर से बार-बार निकलने वाले व्यक्ति अवश्य ही वैरागी बन गये होते।

भगवान् बुद्ध ने जीवन में प्रथम बार ही एक रोगी, एक वृद्ध एवं एक मृतक का दर्शन किया और वे जीवन दर्शन की गहराई तक उतर गये। फलस्वरूप उन्हें अपनी विचार पद्धति और कार्य प्रणाली से भारी हेर-फेर करना पड़ा। राज महल को छोड़कर वे निविड़ वन प्रदेश में चले गये। विलासिता का परित्याग कर कठोर तप करने लगे। दर्शन की सार्थकता इसी में है। ऐसा ही दर्शन पुण्यफल दायक होता है। चाहें तीर्थ के दर्शन किये जायँ चाहे देव प्रतिमा के, चाहें किसी सन्त सत्पुरुष के। उसे आँखों से देख भर लेना पर्याप्त न माना जाना चाहिए। कलेवर को देखना ध्यानाकर्षित करने का प्राथमिक उपचार हो सकता है पर इतनी ही सीमा में यदि अवरुद्ध बना रहा जाय और इतने को ही पर्याप्त मान लिया जाय, इतने से ही प्रचुर फल प्राप्ति की आशा बाँध ली जाय तो समझना चाहिए कि वस्तुस्थिति को समझा ही नहीं गया है। यदि कोई बालक पट्टी, कलम, खड़िया, को हाथ में पकड़ते ही एक-एक पास होने पर जो लाभ मिलेंगे, उन्हें तत्काल पाने की आशा करने लगे और एक-एक तक की पढ़ाई करने वाली कष्ट-साध्य प्रक्रिया को भुला दे तो उसे बालक की नासमझी ही कहना चाहिए। हम में से अधिकांश दर्शनार्थी प्रायः ऐसी ही नासमझी करते रहते हैं।

फल के लिए कर्म आवश्यक—हमें यह जानना चाहिये कि कोई प्रयोजन कर्म के द्वारा सिद्ध होता है। कर्म की प्रेरणा प्रखर विचारों से मिलती है, विचारों का उन्नयन स्वाध्याय एवं सत्संग से होता है, और वैसा वातावरण जहाँ भी हो, उन व्यक्तियों, स्थानों, सन्तों और तीर्थों को देखना, वहाँ जाना वैसी अभिरुचि या सुविधा उत्पन्न करना है जिससे स्वाध्याय सत्संग का लाभ मिल सके। प्राचीन काल में तीर्थों का निर्माण इसी प्रयोजन से हुआ था। वहाँ ऋषियों का, मनीषियों का निवास रहता था और वे बाहर से आते रहने वाले जिज्ञासुओं, तीर्थयात्रियों को वह प्रेरणा, शिक्षा एवं परामर्श देते रहते थे जिससे अभाव, कष्ट एवं उद्वेग भरा जीवन सुख-शान्ति, प्रगति एवं समृद्धि की दिशा में परिवर्तित हो सके। यह प्रशिक्षण ही तीर्थों का प्राण था। ऐसे पुनीत स्थानों पर भगवान के मन्दिर भी होने ही चाहिए, होते भी थे। उनमें दर्शन करने वाले यात्री जो उत्साह प्राप्त करते थे उसको सत्संग से प्रेरणा मिलती थी, कुछ दिनों उस बदले हुए वातावरण में रहकर लोग जो प्रकाश प्राप्त करते थे उससे उनकी कार्य पद्धति ही बदल जाती थी। जहाँ जीवन क्रम बदला, वहाँ परिस्थितियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बदलना भी स्वाभाविक ही है। शुभ दिशा का परिवर्तन मनुष्य के लिए कल्याण कारक ही होता है। तीर्थों में जाकर जिसने यह लाभ प्राप्त कर लिया वह पुण्यफल का अधिकारी हो ही गया। उसे सत्परिणामों का स्वर्ग सन्तोष मिलने में सन्देह ही क्या ?

देव-दर्शन से भाव समन्वय—देव-दर्शन के साथ-साथ यह भावनाऐं अविच्छिन्न रूप में जुड़ी रहनी चाहिए कि दिव्यता ही श्रद्धा एवं सम्मान की अधिकारिणी है। हम देव प्रतिमा के माध्यम से विश्वव्यापी दिव्यता के सम्मुख अपना मस्तक झुकायें, उसका प्रकाश अपने अन्त:करण में प्रवेश और जीवन के कण-कण को दिव्यता से ओत-प्रोत करें। देवता का अर्थ है दिव्यता का प्रतीक प्रतिनिधि। आदर्शवाद देवता है, कर्त्तव्य देवता है, प्रेम देवता है, साहस देवता है, संयम देवता है, दान देवता है, क्योंकि उनके पीछे दिव्यता की अनन्त प्रेरणा विद्यमान रहती है। चाहे मनुष्य हो, चाहे नदी, तालाब अथवा देव प्रतिमा। जिसमें भी हम दिव्यता देखें उसी में देवत्व भी परिलक्षित होगा और जहाँ देवत्व हो उसका श्रद्धापूर्ण सम्मान एवं अभिवन्दन होना ही चाहिए। देव प्रतिमा को जब ईश्वर का प्रतीक या प्रतिनिधि माना जाय तो उसके आगे सिर झुकेगा ही। जब कण-कण में ईश्वर विद्यमान है तो देव प्रतिमा वाला पत्थर भी उसकी सत्ता से रहित नहीं हो सकता।

इस प्रकार देव प्रतिमा में ईश्वर की मान्यता करके श्रद्धापूर्वक उसके आगे मस्तक झुकाने में हर्ज कुछ नहीं, लाभ ही है। जो अवसर दिन में अन्य अवसरों पर बन नहीं पाता वह देव दर्शन के माध्यम से कुछ क्षण के लिए तो प्राप्त हो ही जाता है। इस दृष्टि से यह उत्तम ही है। पर भूल यह की जाती है कि इतनी मात्रा प्रारम्भिक क्रिया को लक्ष्य पूर्ति का आधार मान लेते हैं। यह तो ऐसी ही बात है जैसे अस्पताल दर्शन से रोग मुक्ति, स्कूल दर्शन से, ग्रेजुएट की उपाधि प्राप्त होने की आशा करना। बेशक अस्पताल रोग मुक्त करते हैं और स्कूल ग्रेजुएट बनाते हैं पर लम्बे समय तक एक क्रमबद्ध आचरण करना पड़ता है तभी वह लाभ सम्भव होता है। इसी प्रकार देव-दर्शन से जो प्रारम्भिक उत्साह एवं ध्यानाकर्षण होता है उसे लगातार जारी रखकर यदि आत्म-निर्माण की मन्जिल पर चलते रहा जाय तो समयानुसार वह दिन आ सकता है जब ईश्वर दर्शन, स्वर्ग मुक्ति आदि का मनोरथ पूरा हो जाय पर किसी तीर्थ या देव मन्दिर की प्रतिमा को आँखों से देखने या पाई पैसा चढ़ा देने मात्र की क्रिया करे यह आशा करना कि—"अब हम कृतकृत्य हो गये। हमारी साधना पूर्ण होगी। यह दर्शन या पूजन हमें स्वर्ग प्राप्त करा देगा।" सर्वथा उपहासास्पद है। आज लाखों तीर्थ यात्री उसी आशा से विभिन्न तीर्थों की यात्राऐं करते हैं जो जीवन साधना की तपश्चर्या द्वारा आत्म-निर्माण का प्रयोजन पूरा होने पर ही मिल सकना सम्भव है।

घोड़ा लकड़ी का नहीं, जानदार हो—छोटे बच्चे लकड़ी की लाठी को घोड़ा बनाकर उस पर सवार होते हैं और घुड़सवार जैसा अनुभव करते हैं। उनका अपना मन बहलाव इस प्रकार होता है पर क्या वस्तुत: इस प्रकार घोड़ा मिलने का लाभ उन्हें मिल गया ? बढ़िया घोड़ा बाजार में बेचने पर आठ सौ रुपये दे सकता है, पर वह लकड़ी का घोड़ा उस बच्चे को एक रुपया भी नहीं दिला सकता। बढ़िया घोड़े पर सवार होकर घण्टे भर में छै: मील पहुँचा जा सकता है पर यह लकड़ी का घोड़ा तो जरा सी दूर भी भार वहन नहीं कर सकता। वरन् उलटा बच्चे को ही हाथ से पकड़ कर खींचना पड़ता है। मन-बहलाव बात अलग है। वह तो सस्ते से सस्ते उपकरण द्वारा भी हो सकता है। नाटक में कोई साधारण व्यक्ति भी राजा बन सकता है। राजा जैसे कपड़े पहन कर वैसा ही अभिनय करते हुए कुछ देर अपने को राजा अनुभव कर सकता है पर वस्तु स्थिति तो वस्तु स्थिति ही रहेगी। इस प्रकार नाटक का राजा बनने से कोई व्यक्ति राज-पाट का अधिकारी नहीं बन सकता, और न उसे वह सुख-सुविधा मिल सकती है जो असली राजाओं के पास होती है। देव दर्शन से स्वर्ग मुक्ति प्राप्त होने की आशा करना लकड़ी पर चढ़े हुए घुड़सवार जैसी मन बहलाव की भाव भरी कल्पना तो है पर उसमें क्या कुछ तथ्य भी है, यह बात दूसरी है। इसके उत्तर प्राप्त करने के लिए हमें सोचना होगा कि जब सांसारिक छोटे-छोटे लाभों के लिए जीवन भर एड़ी से चोटी तक पसीना बहाना पड़ता है, तब आध्यात्मिक लाभ, जो भौतिक लाभों से अनेक गुने महत्त्वपूर्ण एवं कठिन हैं क्या प्रतिमा दर्शन जैसे अति सरल साधन के द्वारा ही पूरे हो जायेंगे। यदि वे इतने सस्ते रहे होते तो स्वर्ग मुक्ति जैसे लाभों का फिर कोई मूल्य ही न रह जाता। प्रतिमाएँ सर्वत्र हैं प्राय: हर व्यक्ति कहीं न कहीं किसी न किसी देव प्रतिमा को किसी न किसी प्रयोजन से देख ही लेता है, यदि दर्शन मात्र से मुक्ति सम्भव रही होती तो संसार के अधिकांश मनुष्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को वह अनायास ही मिल गई होती और फिर तब किसी को तप, त्याग, संयम, सेवा जैसे कठिन कार्यों को करने की कोई आवश्यकता या उपयोगिता ही नहीं रहती ।

अच्छा यह है हम बाल-विनोद की आदत को छोड़ें और हर बात की गहराई में उतर कर उसकी वास्तविकता समझने का प्रयत्न करें । यही बुद्धिमत्ता का मार्ग है । इसी से कुछ प्रयोजन सिद्ध होता है । ईश्वर के सभी पुत्र हैं, पर उसका विशेष अनुग्रह उन्हें प्राप्त होता है जो अपनी पात्रता सिद्ध करते हैं । यह पात्रता सद्विचारों एवं सत्कर्मों द्वारा सिद्ध होती है । गुण, कर्म, स्वभाव को उत्कृष्ट एवं आदर्श बनाकर हम अपने में देवत्व बढ़ाते हैं और जहाँ देवत्व होता है वहीं देवता का अनुग्रह बरसता है । भौंरे वहाँ आते हैं जहाँ सुगन्धित पुष्प खिले होते हैं । गन्दी कीचड़ में कोई भौंरा क्यों जायगा । देवता की अनुकम्पा उन आत्माओं को प्राप्त होती है जो अपने भीतर देवत्व जाग्रत करते हैं । आत्मा को परमात्मा तक पहुँचाने के लिए यह मंजिल हर हालत में पूरी करनी पड़ेगी । उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । इस मंजिल को पूरी करने में अनेकों धार्मिक कर्मकाण्ड, अनुष्ठान एवं आयोजनों की आवश्यकता पड़ती है । उसी में से एक छोटा-सा आयोजन देवदर्शन भी हो सकता है । यदि उसे करने के बाद अपना मन बदले और असुरता के विमुख होने एवं देवत्व की ओर चलने की प्रेरणा प्राप्त करे तो समझना चाहिए कि देव-दर्शन सार्थक हुआ और यदि यह मान लिया जाय कि—"दर्शन से अब तक के पाप तो कट ही गये आगे जब कभी वे फिर बहुत संचित हो जाया करेंगे तो फिर कुछ किराया भाड़ा खर्च करके फिर दर्शन कर आया करेंगे ।" तो यही मानना चाहिए कि ऐसा दर्शन उलटा भ्रम उत्पन्न करने वाला हुआ क्योंकि पाप के दण्ड से छूटने की सरल तरकीब मिल जाने से मनुष्य उस ओर से निर्भय एवं निःशंक हो गया । इसी प्रकार जिसने यह मान लिया कि—"देवता के दर्शन कर उससे दोस्ती गाँठ ली गई और उस दोस्ती के आधार पर स्वर्ग मुक्ति जैसी सुविधा बिना कोई मूल्य चुकाए प्राप्त कर लेंगे ।" तो भी यही कहना होगा कि इस देव-दर्शन ने हमें ऐसी भ्रान्ति में धकेल दिया जो कभी भी सम्भव नहीं हो सकती ।

छल्लेदार चुसनी चूसने में क्या मिलेगा ?—छोटे बच्चे जब रोते हैं और उन्हें दूध देना नहीं होता है तो ग्लेसरीन भरी हुई छल्ले वाली चुसनी उसके मुँह में लगा देते हैं । बच्चे उसे चूसते रहते हैं और यह अनुभव करते रहते हैं कि वे दूध पीने की क्रिया कर रहे हैं । बच्चे का मन बदल जाता है और वे रोने चिल्लाने की बात छोड़ देते हैं । यद्यपि उनका पेट भरने वाली कोई बात उस छल्लेदार चुसनी में नहीं होती । उसका प्रयोजन इतना भर होता है बालक की तड़पन आकांक्षा कुछ देर के लिये शान्त हो जाय । ऐसा ही प्रयोजन उन छुटपुट धार्मिक क्रिया-काण्डों से भी पूरा होता है जो करने में अति सरल होते हैं—थोड़ा-सा समय और थोड़ा-सा पैसा खर्च करके जिन्हें कोई भी पूरा कर सकता है । इन क्रिया कृत्यों का माहात्म्य इतना बढ़ा-चढ़ाकर बताया जाता है कि बाल बुद्धि लोग उतने भर से बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध लेते हैं । हर व्यक्ति के भीतर एक आन्तरिक तड़पन रहती है कि वह श्रेष्ठता प्राप्त कर ऊँचा उठे और आत्मिक विभूतियों का आनन्द लाभ करे । क्षुधा एवं काम वासना जैसे शरीर को उद्विग्न करती है उसी प्रकार आत्मा को भी उत्कृष्टता की भूख सताती रहती है । ईश्वर मिलन, ब्रह्म निर्माण, आत्म-विकास उसी आकांक्षा का नाम है । यह किसी जादू मन्त्र से या क्रियाकृत्य मात्र से पूरी नहीं हो सकती वरन् एक-एक कदम अपने दोष दुर्गुणों का परिष्कार करते हुए, दिव्य तत्वों के अभ्यस्त बनते हुए प्राप्त की जाती है । आत्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ बनने के लिए हर व्यक्ति को संयम का, त्याग का, सेवा का मार्ग अपनाना पड़ता है । यह कठिन, समय साध्य एवं श्रम साध्य है । पग-पग पर अपने-अपने से संघर्ष करना पड़ता है । कुसंस्कारों को कुचलना पड़ता है और सत्प्रवृत्तियों के अभ्यस्त, बनने की साधना करनी पड़ती है । यही तो तपश्चर्या का, ईश्वर प्राप्ति की साधना का एकमात्र उपाय है । प्राचीन काल के ऋषि मुनि, महापुरुष एवं सद्गृहस्थ इसी साधना में निरन्तर निरत रहकर आत्मिक लक्ष्य पूर्ण करते थे । वही मार्ग प्राचीन काल में था, वही अब है । इसका न कोई विकल्प था और न होगा । यदि कोई सरल रास्ता रहा होता तो ऋषियों को आजीवन इस तरह साध्य साधनाएँ नहीं करनी पड़तीं, वे ऐसे ही कोई सस्ते नुस्खे ढूँढ़ लेते जैसे कि हम ढूँढ़ लेते हैं, तब वे भी हमारी ही तरह भौतिकता में कण्ठ तक डूबे रहते हुए भी ईश्वर प्राप्ति, स्वर्ग प्राप्ति, मोक्ष प्राप्ति का दुहरा लाभ प्राप्त करने से क्यों चूकते ? वे हमसे अधिक बुद्धिमान थे, मूर्ख नहीं । यदि सस्ते नुस्खे कारगर होते तो इन्होंने आवश्यक ही उन्हें खोजा और अपनाया होता पर वे जानते थे कि ईश्वर के सनातन नियम अपरिवर्तनीय हैं । आत्म-शोधन के बिना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आत्मनिर्माण के बिना, आत्म-विकास के बिना, आत्म-कल्याण कदापि सम्भव नहीं हो सकता। इस मान्यता के आधार पर प्राचीन भारत का हर छोटा बड़ा नागरिक अपने-अपने ढंग से जीवन निर्माण की साधना में संलग्न रहता था और आत्म-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करता था।

हमारी मूर्खतापूर्ण बुद्धिमानी—हम अपने ढंग के अनोखे बुद्धिमान हैं, जिन्होंने सस्ते से सस्ते मूल्य पर कीमती उपलब्धता प्राप्त करने की तरकीबें खोज निकाली हैं। हमारी मान्यता है कि अमुक तीर्थ, देव-प्रतिमा या सन्त का दर्शन कर लेने मात्र से आत्म-कल्याण का लक्ष्य अत्यन्त सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। विचारणीय यह है कि क्या हमारी यह मान्यता सही हो सकती है ? विवेक का एक ही उत्तर हो सकता है—नहीं, कदापि नहीं। काशीवास करने से यदि मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करते तो वहाँ रहने वाले दुष्ट दुराचारियों को भी सद्गति मिल जाती। अरे ! कर्मफल जैसा कोई सिद्धान्त ही शेष न रहता, तब कोई सत्कर्म करने की आवश्यकता भी न समझता, तब ईश्वरीय न्याय एवं व्यवस्था जैसी कोई वस्तु भी इस संसार में न होती। तब पक्षपात की ही आपाधापी का बोलबाला रहता। काशीपति से जिनकी पहचान हो गई—वे उनके गाँव में रहने के कारण वही लाभ उठाते जो भ्रष्टाचारी मिनिस्टरों से उनके स्वजन सम्बन्धी या निकटवर्ती लोग उठाया करते हैं। जब ईश्वर भी वैसा ही करता है तब मनुष्यों को पक्षपात करने पर दोष कैसे दिया जा सकेगा ? जब दर्शन करने मात्र से देवता इतने प्रसन्न हो जाते हैं कि जीवन निर्माण की साधना के लम्बे मार्ग पर चलने वालों से भी अधिक लाभ बात की बात में दे देते हैं तब तो उन लोगों की दृष्टि में दर्शन से बड़ी बात और हो ही क्या सकती है।

व्यवस्थित विश्व का हर कार्य व्यवस्थित—यह विश्व सुदृढ़ न्याय एवं व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। ईश्वर यदि ऐसा ढुलमुल हो कि कर्मफल के स्थान पर छोटे-छोटे क्रिया कृत्यों को ही सब कुछ मान बैठे तो उसकी सत्ता उपहासास्पद बन जायगी ? यहाँ ऐसा न कभी हुआ है और न आगे होगा। विश्व न्याय और व्यवस्था पर आधारित है। ईश्वर स्वयं ही अपने आपको इसी मर्यादा में आबद्ध किये है। राजा स्वयं कानून तोड़ेगा तो प्रजा से उसे पालन करने के लिए वह किस मुँह से कह सकेगा ? जो लोग यह आशा करते हैं कि जीवन निर्माण की साधना के वास्तविक अध्यात्म की उपेक्षा करें और देव दर्शन जैसे छोटे उपकरण के माध्यम से इस महान् लक्ष्य की प्राप्ति करलें, वे मनसूबे बाँधने वाले जैसे बालबुद्धि लोग ही हो सकते हैं। कागज की नाव पर चढ़ कर किसी न किसी नदी को पार कर सकना सम्भव नहीं हो सकता। रबड़ की छल्लेदार चूसनी चूसते रहने पर भी बालक का पेट नहीं भर सकता। आत्मा की यह महत्त्वाकांक्षा जो अपने आपके आदर्श एवं उत्कर्ष बनाने वाली गतिविधियाँ अपनाने से ही तृप्त हो सकती हैं। यदि हम धार्मिक क्रिया कृत्यों के बढ़े-चढ़े महात्म्य की कल्पना कर उससे झूठा आत्म-सन्तोष करने लगेंगे तो यह आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ भी न होगा।

तीर्थयात्रा हमें करनी चाहिए, अवश्य करनी चाहिए, पर उसके पीछे उतना ही प्रयोजन मन में रहना चाहिए जो वास्तविक है। वे साधन आवश्यक हैं, जिनसे मनुष्य की ज्ञान-बुद्धि होती है, अनुभव बढ़ता है, संसार का स्वरूप समझने में सहायता मिलती है, एक ही परिस्थिति में रहते-रहते जो 'ऊब' आने लगती है, वह दूर होती है। नये-नये प्रदेशों और व्यक्तियों से सम्पर्क बनता है, ऐतिहासिक स्थानों एवं व्यक्तियों से प्राप्त हो सकने वाली प्रेरणा मिलती है, जलवायु बदलती है, आदि अनेक लाभ ऐसे हैं जो महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा करने से मिलते हैं। यात्रा मानव जीवन का महत्त्वपूर्ण मनोरंजन है। गरीब, अमीर उसे अपने-अपने ढंग और साधनों के अनुरूप करते हैं और करनी भी चाहिये पर उससे उतने ही प्रतिफल की आशा करनी चाहिए जो स्वाभाविक एवं सम्भव है। अत्युक्ति पूर्ण माहात्म्य बनाना और जादू के प्रतिफल मिलने की मान्यता बनाना यह दोनों ही बातें अनुपयुक्त हैं। दूध पीने से स्वास्थ्य सुधरता है यह ठीक है पर कोई यह कहे कि दूध पीने से वकील बन जाते हैं तो यह बात अत्युक्ति पूर्ण है। यदि इस कथन में कोई संगति हो भी सकती है तो वह इसी प्रकार होगी कि दूध पीने से स्वास्थ्य बढ़े, उसे अध्ययन में लगाये रहकर समयानुसार वकील बना जा सकता है। अध्ययन के श्रम वाली बात छोड़ या हटा दी जाय तो दूध पीकर वकील बनने की बात का तुक कैसे बिठाया जा सकेगा यात्राऐं करने से मनुष्य की आत्मोन्नति स्वर्ग-प्राप्ति आदि के बारे में भी इसी प्रकार सोचना चाहिए।

देखें और सीखें—देव मन्दिरों में दर्शन हमें करने चाहिए और जिन देव आत्मा की वह प्रतीक प्रतिमा है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके सद्गुणों एवं सत्कर्मों को अपने में प्रतिष्ठापित एवं विकसित करने का विचार करना चाहिये। वह विचार इतना भावपूर्ण प्रेरक हो कि देवता की विशेषताएँ जीवन में उतारने की प्रेरणा प्रस्तुत करने लगे तो समझना चाहिए कि देव-दर्शन हुआ। हनुमान जी का दर्शन करके ब्रह्मचर्य, सत्यपक्ष की निःस्वार्थ सहायता, दुष्टता के दमन में अपने प्राणों तक की बाजी लगा देना, जैसी विशेषताएँ अपने भीतर बढ़ानी चाहिए। भगवान राम के दर्शन करने हों तो पिता-माता के प्रति श्रद्धा, भाइयों के प्रति सौहार्द्र, पत्नी के प्रति अनन्य स्नेह, दुष्टता में जूझने से साहस और भगवान कृष्ण के दर्शन करने पर मित्रता निबाहना, असुरता से लड़ना, रथवान जैसे कामों को भी छोटा न मानना, गीता जैसी मनोभूमि रखना आदि श्रेष्ठ तत्वों को हृदयंगम करना चाहिए। शंकरजी से सहिष्णुता, उदारता, त्याग-भावना, सूर्य से तेजस्वी एवं गतिमान रहना, दुर्गा से प्रतिकूलताओं के साथ साहस पूर्वक जूझना, सरस्वती से ज्ञान का अविरत विस्तार करना जैसे गुणों की प्रेरणा प्राप्त की जा सकती है। यह प्रेरणा जितनी ही प्रबल होगी देव-दर्शन उतना ही सार्थक माना जायगा। यदि इस प्रकार से कोई गुण चिन्तन न किया गया और उन विशेषताओं को अपने जीवन में बढ़ाने के लिए कोई प्रयत्न न किया गया तो फिर किसी प्रतिमा के दर्शन मात्र से स्वर्ग जाने या मनोकामनाएँ पूर्ण होने जैसी मान्यता बना बैठना असंगत ही होगा। देखने का लाभ तो है पर इतना नहीं जितना लोगों ने मान रखा है। अत्युक्ति सर्वथा अनुपयुक्त ही होती है। फिर चाहे वह अल्पविकसित लोगों को धर्म की ओर कदम बढ़ाने के प्राथमिक प्रयास के रूप में ही क्यों न की गई हो।

मनुष्यों का दर्शन भी ठीक इसी प्रकार है। किन्हीं ज्ञानी, सन्त, त्यागी, महात्मा या महापुरुष का दर्शन करना उनके प्रति श्रद्धा, सद्भावना का होना प्रकट करता है पर इतने से ही कुछ काम चलने वाला नहीं, कदम आगे भी बढ़ना चाहिए। जिनके दर्शन किये गये हैं उनमें यदि कोई उपयुक्त विशेषताएँ हैं तो उन्हें ग्रहण करना चाहिए, उनके उच्चादर्शों या सिद्धान्तों में से कोई अपने लिए उपयुक्त हो उसे ग्रहण करना या व्यवहार में लाना चाहिए। उनसे आत्मीयता बढ़ाकर प्रगति की दिशा में सहयोग लेना चाहिए। ऐसा करने पर ही वह दर्शन लाभदायक होगा। अन्यथा आजकल जिस मान्यता से लोग साधु पुरुषों के दर्शन करने जाया करते हैं, उसमें तथ्य अल्प और भ्रान्ति विशेष है। आज तो लोग देवताओं की तरह मनुष्यों के दर्शनों से भी यह आशा करते हैं कि दूर से चलकर देखने आने को वे अपने प्रति किया गया अहसान मानेंगे, और उस अहसान की कृतज्ञता दिखाने के बदले हमारी मनोवाँछाएँ, पूरी कर देंगे। यह आशा-दुराशा मात्र है क्योंकि कल्याण, कर्मों से ही होता है। सत्कर्मों के लिए प्रेरणा प्राप्त करना ही तो दर्शन का उद्देश्य है पर प्रेरणा पाने और अपने को बदलने की बात मन में घुसे नहीं, देखने से ही सब कुछ मिल जाने की आशा की जाय तो यह किसी भी प्रकार सम्भव हो सकने वाली बात नहीं है।

दार्शनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता—ऐतिहासिक, प्राकृतिक, कला प्रधान प्रगतिशील स्थानों को देखने के लिए—यात्रा मनोरंजन करने के लिए अक्सर लोगों का जाना होता है। यात्रा जहाँ एक अच्छा मनोरंजन है, वहाँ उससे ज्ञान एवं अनुभव बढ़ने का लाभ भी होता है। इसलिए भारत ही नहीं संसार भर के लोग अपनी रुचि एवं पहुँच के स्थानों की यात्रा करते रहते हैं और गन्तव्य स्थान पर जो कुछ देखने योग्य होता है उसे देखकर अपने कौतूहल तथा जिज्ञासा की तृप्ति का लाभ प्राप्त करते हैं। यह भी एक प्रकार का दर्शन ही है। देव दर्शन न सही—प्रकृति दर्शन, इतिहास दर्शन, कला दर्शन, प्रगति दर्शन सही, जहाँ कोई विशेषता देखते हैं वहीं लोग जाते हैं। देखते और वापिस चले आते हैं। लौटने पर अपने देखे हुए दृश्यों का दर्शन स्वजन परिजनों को सुनाते हैं, कोई 'सौगात' वहाँ की होती है तो लाते, दिखाते, देते हैं। बस, इतने से ही उनकी यात्रा का प्रयोजन पूरा हो जाता है।

यात्रा का पूरा लाभ तब है जब उन दृश्यों के साथ सम्बद्ध भावनाओं का भी हम स्पर्श करें और उनसे समुचित प्रेरणा प्राप्त करें। हर स्थूल के साथ एक सूक्ष्म पौजूद है, जड़ पदार्थों में भीतर भी एक चेतन विद्यमान रहता है। दार्शनिक इसी का दर्शन करते और कृतकृत्य होते हैं। पंचतत्वों, वृक्षों, पर्वतों, नदी, सरोवरों, वन-उपवनों में उन दृष्टाओं की सूक्ष्म दृष्टि एक उत्कृष्ट आत्मा का दर्शन करती है देव-दर्शन का आनन्द लेती और धन्य होती है। यह दृष्टि यदि न हो तो जो कुछ घमण्ड की आँखों से देखा जाता है केवल देखने भर का आँखों का हलका सा क्षणिक मनोरंजन मात्र प्रदान कर सकता है। ईश्वर चमड़े की आँखों से नहीं, दिव्य चक्षुओं से देखा जाता है, इसी प्रकार किन्हीं विशेष स्थानों के दर्शन का भावनात्मक एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेरणात्मक लाभ दार्शनिक दृष्टिकोण से उन वस्तुओं एवं स्थानों को देखने पर ही प्राप्त होता है।

ऐसे स्थलों को देखने जब जायँ तो गहराई तक प्रवेश करने का प्रवेश करें, वे स्थान क्या सुनाते और दिखाते हैं उसे बारीकी से देखें और सुनें। गाँधी जी ने बचपन में एक बार सत्य हरिश्चन्द्र नाटक देखा था, देखकर भावान्वित हुए और प्रतिज्ञा की कि वे हरिश्चन्द्र बन कर रहेंगे। वैसा ही हुआ भी। अनेक लड़के रोज ही तरह-तरह के खेल-तमाशे, सिनेमा ड्रामे देखते हैं, उनमें कई स्थानों पर धार्मिक प्रेरणाएँ भी होती हैं पर वे उसे दिव्य दृष्टि के अभाव में सुन-समझ नहीं पाते, मनोरंजन मात्र करके चले आते हैं। ऐसा देखना एक कौतुक मात्र ही माना जायगा। जिस विशिष्ट को देखने हम जायँ उसकी विशेषता, महत्ता, प्रेरणा एवं आत्मा को भी देखने समझने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार पानी की बूँद में रहने वाले कीड़ों को देखने के लिए खुर्दवीन यंत्र की जरूरत है उसी प्रकार संसार में जो विशिष्ट है उसका प्रकाश प्राप्त करने के लिए हमें अपने भीतर दार्शनिक दृष्टि उत्पन्न करनी चाहिये तभी दर्शन का वास्तविक लाभ प्राप्त हो सकेगा।

ऐतिहासिक प्राकृतिक, धार्मिक किसी भी पुण्य स्थल के विद्वान्, त्यागी तपस्वी किसी भी पुण्य व्यक्ति के दर्शन करने हम जाएँ तो उससे कुछ सीखने, समझने, प्रेरणा एवं उत्साह प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह प्रेरणा यदि जीवन को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने वाली हुई तो अवश्य ही दर्शन का समुचित लाभ मिलेगा। किन्तु यदि देखने को कौतूहल तृप्त करने तक ही बात सीमित रही तो समझना चाहिये कि उस दर्शन का पुण्य उतना ही रहा जितना प्रत्यक्ष मनोरंजन हो सका।

दर्शन का लाभ बहुत है पर है तभी जब उससे मिल सकने वाली प्रेरणाएँ भी हम उपलब्ध करें। दिव्य दर्शनों के लिए हमें उत्साहपूर्वक शुभ स्थानों, दिव्य व्यक्तियों एवं उपयुक्त आयोजनों के सम्पर्क में आते रहना चाहिए पर साथ ही दर्शन का दर्शन भी समझना चाहिए। दर्शन से यदि कुछ प्रेरणा मिले तो उससे ही हमारा भला होगा, देखने भर की क्रिया एक सामान्य शरीर आचरण है और उसका लाभ भी उसी अनुपात से नगण्य सा ही होता है।

हमारी भावना ही देवता को सामर्थ्य देती है—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं मूर्तियों के दर्शनों, तीर्थों की यात्रा, महापुरुषों के सान्निध्य में जाने से जो लाभ मिलता है उसमें मुख्यता भावना की ही होती है। अगर आन्तरिक श्रद्धा, दृढ़ विश्वास, कल्याण प्राप्त करने की सच्ची अभिलाषा न हो तो चाहे रोज दर्शन किया जाय तो भी उससे कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध न होगा। पंडा, पुजारी सदैव मन्दिर के भीतर ही रहते हैं, और मूर्तियों के अंग-प्रत्यंग को निकट से बहुत अच्छी तरह देखा करते हैं, पर उनको वह प्रभाव और प्रेरणा प्राप्त नहीं होती जो एक भावुक और विश्वासी दर्शनार्थी को दूर से केवल दो-चार मिनट दर्शन करने से प्राप्त हो जाती है। इतना ही क्यों दर्शनार्थियों में से भी जो जैसी भावना रखकर दर्शनों को जाता है, वह वैसे ही परिणाम को प्राप्त करता है। बहुत से व्यक्ति नियम पालन के लिये नित्य प्रति किसी मन्दिर में जाकर दर्शन कर आते हैं, पर उनको वर्षों ऐसा करते रहने पर भी कोई विशेष आध्यात्मिक लाभ नहीं मिलता। सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से वे जैसे भले-बुरे पहले से होते हैं, दर्शनों के करते रहने पर भी वैसे ही रहते हैं। सावन के झूलों के अवसर पर हजारों व्यक्ति मन्दिरों में सजावट और रासलीला आदि देखने को पहुँचते हैं। मूर्ति के सामने हाथ जोड़ देने पर भी उनको उसके प्रभाव या महत्त्व का कुछ भी ध्यान नहीं आता। वे केवल रोशनी, सजावट की सामग्री खेल-तमाशों तथा वहाँ की भीड़-भाड़ से ही मनोरंजन करके चले जाते हैं। इनको देव मूर्ति के दर्शन से कुछ लाभ होता है यह किसी प्रकार समझ में नहीं आता।

इतना ही क्यों अनेक लोग तो मन्दिर में जाकर वहाँ देवता के दर्शन करके कुछ सद्भावना या आत्म-कल्याण का विचार करने के बजाय वहाँ भी खेलने की मनोवृत्ति प्रकट करने लगते हैं। एक शिवजी के मन्दिर में शिवरात्रि के मेले के अवसर पर अनेक व्यक्ति भीतर जाकर जल चढ़ा सकना कठिन समझकर बाहर से जल से भरे मिट्टी के पात्र को फेंककर मन्दिर के शिखर पर मारते हैं। उनमें अधिकांश व्यक्ति इसी को अपनी विशेषता समझते हैं कि उनका फेंका पात्र ऊपर के शिखर पर जाकर ठीक तरह लग जाय। ऐसे व्यक्ति वहाँ घण्टों तक खड़े होकर यही तमाशा देखते रहते हैं कि किसका पात्र शिखर में अच्छी तरह लगता है और किसका गलती से दूसरी तरफ चला जाता है नीचे ही लग कर फूट जाता है। अगर ऐसे मनोरंजन करने वाले यह समझें कि हमको शिवजी पर जल चढ़ाने का पुण्य फल प्राप्त हो गया तो इसे विडम्बना ही कहना पड़ेगा।

इस सबका कारण यही है कि फल तो भावना का होता है। देव मूर्ति तो पाषाण या धातु या लकड़ी आदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की किसी शिल्पकार के द्वारा बनाई ही गई है। किसी मन्दिर में प्रतिष्ठित कर दिये जाने से वह 'देव' की तरह मानी जाने लगी और हजारों व्यक्तियों को फल भी देने लगी। अन्यथा यदि उसी मूर्ति को कोई कला प्रेमी खरीद कर अपने संग्रहालय (म्यूजियम) में रख देता तो वह न देवता मानी जाती और न उसमें किसी प्रकार का फल देने की शक्ति अनुभव की जाती है। इतना ही क्यों आजकल मूर्ति चोर जब किसी मन्दिर में पूजी जाने वाली प्रतिमा को चुरा कर विदेशी और विधर्मी व्यक्तियों के हाथ बेच देते हैं, जिनका उद्देश्य उसके द्वारा केवल अपनी बैठक को सजाना होता है, तो मूर्ति का 'दैवी प्रभाव और शक्ति' भी समाप्त हो जाती है, और वह मनोरंजन करने वाली एक कलाकृति मात्र समझी जाने लगती है। इन उदाहरणों से हम अन्त में महाकवि रबीन्द्रनाथ की उस कविता के तात्पर्य को सत्य समझते हैं जिसमें कहा गया है कि "मूर्ति अथवा मन्दिर या उससे संलग्न रहने वाले उपकरणों का कोई महत्त्व या दैवी शक्ति मानना युक्तियुक्ति नहीं, वरन् जो कुछ चमत्कार है वह सर्वत्र व्याप्त परमात्म-शक्ति का है।"

देव दर्शन के पीछे दिव्य दृष्टि भी रहे

दर्शन शब्द का अर्थ जहाँ देखना है वहाँ उसका एक अर्थ विवेचना या विचारणा भी है। अनेक लोग देव प्रतिमाओं, तीर्थ स्थानों, संत एवं सत्पुरुषों के दर्शन करने आया करते हैं, वे इसमें पुण्य लाभ का विश्वास करते हैं। शुभ व्यक्तियों अथवा शुभ स्थानों का दर्शन करना शुभ ही है। किन्तु उसका वास्तविक लाभ तभी हो सकता है जब दर्शन को देखने तक ही सीमित न रक्खा जाये प्रत्युत उसके अन्दर निहित विचारणा पर भी ध्यान दिया जाये। जितनी ही श्रद्धा, भक्ति एवं भावना से किसी देव प्रतिमा, संत पुरुष अथवा तीर्थ स्थान के दर्शन क्यों न किये जायें, उससे वास्तविक लाभ तब तक सम्भव नहीं जब तक उस व्यक्ति प्रतीक अथवा स्थान की उन विशेषताओं को हृदयंगम न किया जायेगा जिनके कारण उनका महात्म्य है। केवल पलक उधार कर दर्शनीय को देख भर लेने से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता।

दृग्-दर्शन मात्र से स्वर्ग, मोक्ष, सुख, शान्ति, सम्पत्ति अथवा समृद्धि आदि का लाभ पाने का विश्वास रखने वालों की श्रद्धा को विवेक सम्मत नहीं माना जा सकता। उनकी वह अति श्रद्धा अथवा अति विश्वास एक प्रकार से अज्ञानजन्य ही होता है जिसे अन्ध-विश्वास अथवा अन्ध-श्रद्धा भी कहते हैं। श्रद्धा जहाँ आत्मा की उन्नति करती है, मन-मस्तिष्क को सुसंस्कृत एवं स्थिर करती है, ईश्वर प्राप्ति के लिये व्यग्र एवं जिज्ञासु बनाती है, वहाँ मूढ़-श्रद्धा अथवा अन्ध-विश्वास उसे अवास्तविकता के अन्ध गर्त में गिरा देती है। अन्धविश्वासियों अथवा अन्ध-श्रद्धालुओं को अपनी अविवेकपूर्ण धारणाओं से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है, आज धर्म के नाम पर जो धूर्तता देखी जाती है उसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उन अन्ध-श्रद्धालुओं पर ही है जो धर्म के सत्य स्वरूप एवं कर्म की विधि और उसका परिणाम नहीं जानते। जनता की अन्ध-श्रद्धा के आधार पर न जाने कितने आडम्बरी एवं प्रवचक लोग अर्थ एवं आदर का लाभ उठाया करते हैं। यही कारण है कि शास्त्रों में जहाँ श्रद्धा की प्रशंसा की गई वहाँ अन्ध-श्रद्धा की निन्दा भी।

दर्शन करने के सम्बन्ध में भी भोले लोगों की यह अन्ध-श्रद्धा उन्हें दर्शन के मूल प्रयोजन एवं उससे होने वाले लाभ से वंचित ही रखती है। लाखों-करोड़ों लोग प्रति वर्ष तीर्थों तथा तीर्थ पुरुषों के दर्शन करने देश के कोने-कोने से आते-जाते हैं। अनेकों लाभ तो प्रतिदिन प्रातः, सांय मन्दिरों में देव प्रतिमा के दर्शन करने जाया करते हैं। किन्तु क्या कहा जा सकता है कि इन लोगों को वह लाभ होता होगा जो उन्हें अभीष्ट रहा करता है। निश्चय ही नहीं। उन्हें इस बाह्य दर्शन द्वारा एक भ्रामक आत्म-तुष्टि के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिल सकता।

यदि केवल देवप्रतिमा देवस्थान अथवा देवपुरुष को देखने मात्र से, हाथ जोड़ने, दण्डवत करने, पैसा अथवा पूजा प्रसाद चढ़ा देने भर से ही किसी के पापों का मोक्ष हो जाता, दुःखदारिद्रय दूर हो जाता, पुण्य, परमार्थ, स्वर्ग, मुक्ति आदि मिल सकते, मन, बुद्धि आत्मा की उन्नति हो सकती, जीवन में तेजस्विता, देवत्व अथवा निर्द्वन्दता का समावेश हो सकता तो दिन-रात देव प्रतिमाओं की परिचर्या करने वाले पुजारियों, मन्दिरों की सफाई सँभाल करने वाले सेवकों को यह सभी लाभ अनायास ही मिल जाते। उनके सारे दुःख द्वन्द्व दूर हो जाते और सुख-शान्ति पूर्ण स्वर्गीय जीवन के अधिकारी बन जाते हैं। किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। मन्दिरों के सेवक और प्रतिमाओं के पुजारी भी अन्य सामान्य जनों की भाँति ही अविशेष जीवन में पड़े-पड़े दुःखों, द्वन्द्वों तथा शोक संतापों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहते रहते हैं। उनके उक्त जीवन में रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं होता, यद्यपि उनकी पूरी जिन्दगी देव प्रतिमाओं के सान्निध्य एवं देवस्थान की सेवा करते-करते बीत जाती है।

अनेक लोगों की धारणा रहती है कि दर्शन कर लेने, फूल माला चढ़ा देने, दीपदान कर देने अथवा दण्डवत् प्रदक्षिणा का क्रम पूरा कर देने मात्र से ही देवता प्रसन्न होकर अभीष्ट मनोरथों को पूरा कर देंगे। इस प्रकार के भ्रान्त विश्वासी यह नहीं समझ पाते कि परमात्मा के प्रतिनिधि देवता उन निकृष्ट कोटि के लोगों की तरह नहीं होते जो हुजूर में हाजिरी दे देने अथवा कोई भेंट-उपहार उपस्थित कर देने, प्रशंसा अथवा स्तवन वाक्यों का उच्चारण कर देने मात्र से प्रसन्न हो जाते हैं और अपनी खुशामद पसन्द आदत के कारण चाटुकार के दुर्गुण नहीं देखते और अपने निकट कर लेते हैं। यदि देवताओं की प्रकृति इसी प्रकार की होती तो उनमें और साधारण अधिकारियों में कोई भेद न रहता। खुशामद सुन कर अथवा किन्हीं अन्य प्रकारों से प्रसन्न होकर वे किसी पर भी अनुग्रह कर देते।

देवताओं की प्रसन्नता खुशामद पसन्द लोभी व्यक्तियों की तरह सस्ती नहीं होती। उनकी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिए किसी को भी कदम-कदम पर अपने दोष-दुर्गुणों को दूर करना होगा, जीवन को पवित्र तथा पुण्यपूर्ण बनाना होगा। अपने मन, वचन, कर्मों में देवत्व का समावेश करना होगा। जिसके लिये आत्म-संयम, त्याग तथा तपश्चर्यापूर्वक जीवन साधना करनी होगी। दिव्यता की यह उपलब्धि श्रम एवं समयसाध्य है, जिसको केवल वही व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, जो क्षण-क्षण पर अपने आचार-विचार तथा व्यवहार में सावधान रहकर चलेगा। देव अनुग्रह की उपयुक्त पात्रता प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति केवल देवदर्शन अथवा दक्षिणा-प्रदक्षिणा द्वारा मनोरथ को सिद्ध नहीं कर सकता।

साधारण उपक्रमों द्वारा यदि देवताओं का अनुग्रह हो सकता, परमात्मा को प्रसन्न किया जा सका तो ऋषि मुनि कष्टसाध्य तपश्चर्या में आजीवन अपने तन-मन को न तपाते, वे भी कोई ऐसा ही सरल सस्ता मार्ग निकाल कर अपने उद्देश्य में कृतकृत्य हो जाते।

देवताओं, महात्माओं तथा देवस्थानों का दर्शन करना शुभ है। उनका एक सीमा तक महत्त्व भी है और उपयोगिता भी, किन्तु हमें उस तथ्य से भी अपरिचित अथवा अनभिज्ञ न रहना चाहिये जिसके आधार पर दर्शन करने जैसी साधारण बात को इतना महत्त्व प्राप्त है। यदि देव प्रतिमाओं, सत्पुरुषों तथा देवस्थानों के दर्शन के पीछे वर्तमान उपयोगी तथ्य को नहीं समझते तो देवमूर्तियों का देवस्तर प्रतिमाओं, महात्माओं का सामान्य व्यक्तियों और तीर्थ स्थानों का साधारण शहरों अथवा गाँवों से अधिक कोई महत्व न होगा। तथ्य को देखे, समझे और हृदयंगम किये बिना दर्शनों का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध न होगा।

किसी मांगलिक उपलब्धि के किये शुभ दर्शन प्रारम्भिक उपक्रम मात्र है। जब तक हम जो चीज देखते नहीं उसके जानने के विषय में उत्कंठा नहीं होती, जब तक जिसके विषय में जानकारी नहीं होती उसके गुणों का पता नहीं होता और जब तक गुणों का ज्ञान नहीं होगा उन्हें अपनाने का प्रयास नहीं किया जा सकता। देखने से, दर्शन करने से, परिचय होता है, किसी के विषय में ज्ञान होता है। ज्ञान से श्रद्धा और श्रद्धा से तथ्य तक पहुँचने का उत्साह प्राप्त होता है। तथ्य का ज्ञान होते ही वह हृदय में आप से आप पैठ जाता है जिससे मनुष्य का आचरण भी यथा योग्य ही ढल जाता है। इस क्रम में आगे बढ़ने पर ही दर्शनों का यथार्थ लाभ हुआ करता है। कोई यदि यह समझता है कि केवल मात्र किसी शुभ-शुभाश्रय को पलक उठाकर कर देख भर लेने से अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी तो वह भारी भ्रम है।

दर्शन करने की सार्थकता तभी है जब हम दर्शनीय की विशेषताओं को अपने जीवन में भी प्रतिष्ठित करें। दर्शनार्थ जाने का अर्थ है हृदय के गुण ग्रहण करने का उपक्रम करना। यदि कोई राम, कृष्ण, शिव अथवा हनुमान जी के दर्शन करने जाता है और प्रतिमा को नमस्कार कर अथवा कुछ पूजा-पत्री चढ़ाकर चला आता है तो उसका दर्शन अधूरा है। दर्शन तभी पूरा होगा जब हम उनके चारु चरित्र की जानकारी प्राप्त करें और उसे अपने जीवन का आदर्श बना कर चलें। मन्दिर में जा कर राम के दर्शनों द्वारा उनका अनुग्रह तभी प्राप्त किया जा सकता है जब हम उन्हीं की तरह माता-पिता के प्रति श्रद्धा, भाइयों के प्रति सौहार्द्र, पत्नी के प्रति अनन्य स्नेहवान बनने का प्रयत्न करें प्रतिमाओं के दर्शन में जो बुद्धिमान व्यक्ति अपने सत्प्रयोजन की सिद्धि के लिये प्रेरणा प्राप्त करता है वास्तव में दर्शन तो वही करता है बाकी तो लाखों करोड़ों दर्शक उस बच्चे की तरह झूठे आत्म-संतोष से बहलते रहते हैं, जिसे दूध न पिलाने के मन्तव्य से माँ शहद लगी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चुसनी मुँह में दे देती है। बच्चा उसे यह समझ कर चूसता रहता है कि वह माँ का स्तन पी रहा है। बच्चा बहल जाता है और उसका रोना-धोना बन्द हो जाता है। यद्यपि उस चुसनी से दूध का प्रयोजन पूरा नहीं होता तथापि बालक की व्यग्रता, तथा आकांक्षा कुछ देर को अवश्य बहल जाती है और उसे झूठा आत्म-संतोष हो जाता है। यही हाल उन दर्शकों का समझना चाहिये जो केवल किसी देव प्रतिमा को आँख से देख भर लेने से ही किसी उद्देश्य की पूर्ति की आशा बाँध लेते हैं।

यही बात किसी सत्पुरुष अथवा महात्मा के दर्शनों में भी है। जिन्होंने महापुरुषों का दर्शन उनके हाड़-माँस के भौतिक एवं बाह्य शरीर तक ही सीमित रखा और उनके हृदय उनके विचारों अथवा गुणों में गहराई के घुसने का प्रयत्न नहीं किया, उन्होंने उनके दर्शन ठीक उन धोबी, नाई, ड्राइवर, रसोइया, चपरासी आदि बाह्य सेवकों की तरह ही किये जो महात्मा गाँधी को दिन-रात देखते रहे किन्तु कोई विशेष लाभ न उठा सके। जब कि उनकी शारीरिक सेवा न करते हुए भी उनके यथार्थ दर्शक जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, डा. राजेन्द्र प्रसाद और संत विनोबा भावे संसार के श्रेष्ठतम व्यक्तित्व बन गये। इस विषमता एवं विपर्यय का कारण यही रहा कि जहाँ उक्त सेवकों की दृष्टि तथा भक्ति गाँधी जी के पंच भौतिक शरीर तक ही सीमित थी वहाँ इन प्रधान पुरुषों ने उनके चारु-चरित्र एवं आदर्श विचारों के भी दर्शन किये। व्यक्ति के स्थान पर व्यक्तित्व को प्रधानता देकर दर्शन करने वाले स्वभावत: सत्पुरुषों के समान ही महान बन जाते हैं। दर्शन लाभ की पूर्णता विचार एवं आचार को मिला कर ही होती है केवल शरीर देख लेने अथवा चरण स्पर्श कर लेने मात्र से नहीं।

तीर्थावलोकन की सार्थकता तभी है जब कोई वहाँ जा कर यह जाने की इस-इस स्थान पर ऐसे क्या कार्य सम्पादित हुये हैं जिनके कारण इसकी इतनी महिमा है। इसके पीछे ऐसा कौन-सा उज्ज्वल इतिहास है जिससे आलोक पाने के लिए संसार के कोने-कोने से लोग दौड़े चले आ रहे हैं। इस प्रकार की जानकारी पाये और उसे शिक्षा लिये बिना ही जो व्यक्ति लौट आता है वह मानो रीता ही लौट आया है। उसे तीर्थस्थल जाने और उसका दर्शन करने का कोई लाभ नहीं हुआ।

किसी भी विशिष्ट व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान का देखना, देव अथवा दिव्यता का दर्शन करना तभी सार्थक होता है जब उसके गुणों, महत्त्व अथवा विशेषताओं को सूक्ष्मता से देखें, उनकी महत्ता को समझें, हृदयंगम करें और जीवन विकास के लिये उससे प्रेरणा एवं शिक्षा ग्रहण करें अन्यथा उथला एवं दृग्-दर्शन कुतूहल तृप्ति के अतिरिक्त अधिक लाभ न कर सकेगा ?

दर्शन मात्र से वरदान मिलने की ललक

किसी के घर में प्रवेश करने के लिये उनका द्वार खोलने और देहरी लाँघने की आवश्यकता पड़ती है। इसके पूर्व अपरिचित होने के कारण खटखटा कर अपना परिचय भी देना पड़ता है। इसी प्रकार किसी नये व्यक्ति से सम्पर्क साधने का सिलसिला दर्शन से आरम्भ होता है। **अभीष्ट उद्देश्य के लिये सत्संग, सान्निध्य, परामर्श, मार्गदर्शन के लिये यह प्रारम्भिक सूत्र है।** किसी को देखे बिना उससे आदान-प्रदान का सिलसिला कैसे चले ? बाजार से कुछ खरीदना हो तो सर्वप्रथम उसे भली-भाँति देख-परख कर लिया जाता है। हर प्रकार की नियुक्ति में साक्षात्कार अनिवार्य होता है। लिखित उत्तर भर ही काफी नहीं होता। विवाह सम्बन्ध निश्चित करने के लिए सर्वप्रथम वर कन्या एक दूसरे को देखते हैं। छवि देखने भर से किसी का पूर्ण परिचय तो नहीं मिलता तो भी छवि, परिधान, आच्छादन, वातावरण, स्वभाव की इतनी जानकारी तो मिल ही जाती है कि अगले कदम उठने न उठने की आवश्यकता का अनुमान लग सके।

तीर्थ अथवा किसी विभूतिवान पुरुष के मात्र चर्मचक्षुओं से दर्शन से क्या व्यक्ति निहाल हो जाता है ? स्पर्श का अपने स्थान पर महत्व होते हुए भी एक तथ्य अधिसंख्य व्यक्ति भूल जाता है कि दर्शन इतना 'सस्ता' नहीं होता इसके लिये अन्त: चक्षुओं का खोलना अनिवार्य है। फिर प्रत्यक्ष दर्शन का अभाव खलता नहीं।

दर्शन इसी आवश्यकता की पूर्ति करता है। पूर्व परिचय या सम्बन्ध की धुँधली स्मृति दर्शन मात्र से हरी हो जाती है। जिनके सम्बन्ध में सुना भर था उन्हें देख लेने से कल्पना निर्धारण में वास्तविकता का समावेश होता है। ऐसे-ऐसे अनेकों कारण हैं, जिनके आधार पर सन्त सज्जनों के दर्शनों की भी आवश्यकता समझी जाती है। अपनी अभिलाषा पूरी करने लोग दूर-दूर से दौड़ते भी हैं। नेताओं, अभिनेताओं, विशिष्टता सम्पन्न जिन अन्य लोगों के नाम सुने जाते रहे हैं, उन्हें देखने का मन होता है। कौतूहल समाधान हेतु अनेकों जगह जाया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चेतन ही नहीं, जड़ वस्तुओं में छिपे सौन्दर्य को देखने-मन की आस पूरी करने हेतु लोग ताजमहल कुतुबमीनार, गुलमर्ग, मंसूरी, समुद्र तट की ओर दौड़ पड़ते हैं। हिमालय का प्राकृतिक सौन्दर्य मन को ललचाता है भव्य देवालयों किलों, राज महलों को देखने की इच्छा भी इसी कारण होती है। पौराणिक आख्यानों से जुड़े तीर्थों की यात्रा व पुण्य कमाने की आस भी दर्शन हेतु खींच ले जाती है। पर्यटन उद्योग की पृष्ठभूमि में इस 'दर्शन' पक्ष की बड़ी महत्ता है।

इतने पर भी विचारणीय है कि दर्शन से पुण्य या अनुग्रह मिलने की लोक मान्यता में कोई दम है या नहीं। आमतौर से लोग अलौकिक विशेषता, सम्पन्न व्यक्तियों को देखने इसलिये दौड़ पड़ते हैं कि छवि देखने भर से पुण्य मिलेगा पाप कटेगा। भले ही चरण स्पर्श न करना सम्भव हो सके दूर से देख भर लेने से आँखें तृप्त हो जाएँगी अन्तःकरण कृत-कृत्य हो उठेगा। ऐसे सिद्ध पुरुषों "तथा कथित" से जुड़े कई स्थान ऐसे भी हैं जिनके दर्शन की मनौती मानी जाती है। इसी प्रकार कई व्यक्ति बाजार के सौदे की तरह सशर्त दर्शन करते हैं। पुत्र उत्पन्न होगा तो नौचंदी देवी का दर्शन करेंगे। मन्शा पूरी होगी तो अमुक देवी को प्रसाद चढ़ाएंगे। यदि मुकदमा जीतेंगे हनुमान पर प्रसाद चढ़ाऐंगे। आकस्मिक को टालने के लिये सशरीर दण्डाय मान लेटकर प्रणाम हेतु जाने की सनक भरी मनौती भी मानी जाती है ।

ऐसी मनोभूमि वाले व्यक्तियों की वस्तुतः कमी नहीं। वे सन्त-महात्माओं योगी जनों से यह अपेक्षा रखते हैं कि दर्शन करने वालों को इतने भर से अपना भक्त मानेंगे और अपनी मनोकामना की पूर्ति का आशीर्वाद देंगे। सम्भवतः दर्शन देने वालों की भीड़ से उन्हें कुछ लाभ होता होगा, अतः इस बिडम्बना से जान बूझकर वे मुक्ति पाने का प्रयास नहीं करते एवं अपने चारों ओर जमघट बनाये रख सिद्धि चमत्कार का आश्वासन देते रहते हैं। सट्टे का नम्बर बताने और पूछने वाले फकीर-मुरीदों के यहाँ इसी कारण भीड़ जमी देखी जा सकती है जो यह सोचने को विवश कर देती है कि क्या 'दर्शन' इतना सस्ता है ? और आगे की सोचें तो देवालयों में अमुक पर्व या स्नान आदि जैसे अवसरों पर होने वाली भीड़ में सच्ची भक्ति भावना वाले नहीं के बराबर और वरदान पाने के इच्छुक अधिकांश होते हैं। वह पौराणिक कथा तो सुविख्यात है जिसमें शंकर-पार्वती धरतीवासियों का पर्यवेक्षण करने हेतु मानवी काया धारण कर एक तीर्थ स्थान पर पहुँचते हैं एवं कोढ़ी बने शंकर जी पार्वती जी के उस असमंजस का समाधन करते हैं कि मन्दिरों-भक्ति स्थानों के आसपास लगी भीड़ किस मनःस्थिति में वहाँ आती है ? पार्वतीजी के सौन्दर्य पर अभिभूत दर्शन हेतु जाते, कटाक्ष करते व्यक्तियों को देखकर उनके मन का भ्रम मिट जाता है कि भक्ति भावना का आँकलन लोगों के दर्शन हेतु जमघट से किया जाना कितना औचित्य पूर्ण है ? यहाँ तक कि मन्दिरों में पैसा, प्रसाद चढ़ाने की रिश्वत के पीछे भी काम करा लेने की शर्त जुड़ी रहती है। पूरी न होने पर अमुक मन्दिर या देवता के प्रति अनास्था बढ़ती है किन्तु औरों के पीछे भागने का क्रम नहीं टूटता।

देखना यह चाहिए एवं बुद्धिमत्तापूर्वक सोचा जाना चाहिए कि इस लोक मान्यता में कुछ दम भी है या ऐसे ही अन्धविश्वास ग्रसित लोग एक का अनुकरण करते हुए, दूसरे भेड़-चाल की तरह नकल करते और भीड़ के पीछे भीड़ के चलने का उदाहरण बनाते हैं। दर्शन पक्ष की वैज्ञानिकता को परखा जाना चाहिए ताकि अन्ध श्रद्धा मिटे, अनास्था दूर हो एवं समय, धन, मनःशक्ति अपव्यय भी न हो।

तर्क, तथ्य और विवेक का प्रतिपादन यह है कि दर्शन से परिचय का उद्देश्य भर पूरा होता है। लाभ मिलना होगा तो इसके उपरान्त हुई घनिष्ठता, उत्कृष्टता के साथ तद्रूपता एवं आदान-प्रदान की क्रिया द्वारा ही सम्भव होगा। व्यक्ति या प्रतिमा की आकृति भर देख लेने पर भी किसी जादू-चमत्कार की आशा नहीं की जानी चाहिए, चाहे इसके सम्बन्ध में कितनी ही अटकल बाजियाँ सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा अनुभूति, घटना क्रम के रूप में बखानी जाती रही हों।

जिनके पास कुछ देने योग्य होता है, उनमें विवेक बुद्धि भी होना चाहिए कि पात्र-कुपात्र का विचार करें। आँखें मूँदकर किसी भी दर्शन करने वाले पर वे अर्जित आत्मबल सम्पदा को लुटाते नहीं फिरते। संसार में कोई भी विचारशील ऐसा नहीं है जो हर माँगने वाले को निहाल कर सके। उसकी इच्छा के पीछे औचित्य-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनौचित्य की जाँच-पड़ताल न करे। यदि ऐसी अन्धेरगर्दी चली होती तो बैंकों में धन माँगने वालों की भीड़ लग जाती और रिजर्व बैंक का दिवाला निकल गया होता। अफसर का पद पाने के लिये "थू प्रापर चैनेल" जाने के बजाय, लोग नियुक्त कर्त्ताओं की मनुहार करते-फिरते और हल्की-फुल्की भेंट पूजा करके उच्चतम पद पाने का अपना मनोरथ पूरा कर लेते। कोई भी कुपात्र किसी की सुयोग्य कन्या को पत्नी रूप में पाने के लिये जा पहुँचता और दर्शन करते ही निहाल होकर सब कुछ पाकर लौटता। पर ऐसा कहीं होता नहीं है, हो भी नहीं सकता।

देवताओं या सन्तों की दर्शन-झाँकी करने वालों में से कितने सफल मनोरथ हुए, कितनों की मनोकामना पूरी हुई, इसका लेखा-जोखा यदि लिया जा सके तो उत्तर पूरी तरह निराशाजनक, असमंजस भरा निकलेगा। कारण स्पष्ट है। देवताओं, सन्तों की भी नियन्ता की तरह कुछ विधि व्यवस्था मर्यादाएँ होंगी। देने से पूर्व के भी तो याचक के व्यक्तित्व और उद्देश्य को देखना चाहेंगे। अन्यथा मुफ्तखोर कुछ भी माँगने और बदले में पाने लगेंगे तो पात्रता और पुरुषार्थ का कहीं कोई प्रतिबन्ध ही न रहेगा। लूट-खसोट की इस रेलमपेल में अवांछनीय व्यक्ति सबसे आगे होंगे और अनुचित से अनुचित मनोकामना पूरी करने के उपरान्त ऐसी अन्धेरगर्दी खड़ी करेंगे जिसमें भ्रष्टाचार के अतिरिक्त और कुछ शेष ही न रहेगा। सज्जन तो औचित्य की बात सोचकर सन्तोष भी कर सकते हैं, पर ढीठ-मनचलों-बेशर्मों को इसमें लज्जा आने जैसी कोई कठिनाई नहीं पड़नी चाहिए।

यह स्पष्टत: समझ लेना चाहिए कि वरदान देने के साथ सन्तों को अपना अर्जित तप या पुण्य भी देना पड़ता है। इसके बिना मात्र शब्दोच्चारण भर से किसी का कोई लाभ नहीं हो सकता। तप और पुण्य का उपार्जन धन कमाने से भी अधिक कष्टसाध्य है। इस बहुमूल्य सम्पदा को कोई चापलूसी भरी मनुहार द्वारा या पत्र-पुष्प जैसे सस्ते उपहार लेकर ऐसे ही मुफ्त में लुटा देगा और लुटेरों को स्वेच्छाचार बरतने का अवसर देगा यह किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। मुफ्तखोरी को प्रश्रय देकर-कुपात्रों के हाथ मजबूत करके उन्हें भ्रष्टाचार की छूट देने के लिए किन्हीं सन्त तपस्वी का पुण्य खर्च हो चले तो इसे अध्यात्म जगत का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा।

देवताओं की वरदान परम्परा में पौराणिक आख्यान यही बताते हैं कि उन्हें प्रसन्न करने के लिये तप-तितिक्षा का मार्ग अपनाना पड़ा है। इसके उपरान्त ही उन्होंने पात्रता परखी और आवश्यक सहायता दी है। प्रतिमा दर्शन भर से—सन्तों के चेहरे को चर्म-चक्षुओं से देखने मात्र से वह लम्बी मंजिल ऐसे ही चुटकी बजाते पूरी हो जाया करे तो फिर देवाराधन में से तपस्वी होने—तपश्चर्या करने की शर्त ही समाप्त हो जाएगी। सैलानी लोग राशि के हिसाब से पंक्तिबद्ध हो प्रतिमा को झाँक भर लेने एवं पैसा, अनुदान फेंककर इच्छित मनोरथ प्राप्त कर लिया करें तो समझना चाहिए कि यह लाटरी सट्टे की तरह सस्ते सौदे का नया धन्धा चल पड़ा।

यह चर्चा इस सन्दर्भ में विशेष ध्यान जहाँ श्रद्धालुजन अमुक सन्त—महामानव के अपनी आँखों से दर्शन कर लेने व उससे कृत-कृत्य होने की सोचते हैं। जो विचार वे अपने पीछे छोड़ जाते हैं, जीवन जीने की दिशा साहित्य संजीवनी के रूप में दे जाते हैं उसे इस दर्शन—अभिलाषा के पीछे गौण मानना, आज के मनुष्य की सबसे बड़ी विडम्बना है। दर्शन का अर्थ है—तत्वज्ञान। इसका अगला कदम अध्यवसाय भी है। गाँधी का तत्वदर्शन जिन्होंने समझा व अपनाया, विनोबा, राजेन्द्र बाबू, नेहरू, पटेल, राजगोपालाचार्य, जयप्रकाश, कालेल कर जैसे हो गए और जिन्होंने रेल से गुजरते या प्रवचन मंच पर बैठे बापू को देखा भर, उनके पल्ले कौतूहल निवारण के अतिरिक्त और कुछ क्या पड़ा होगा ?

सन्त देवताओं की छवि देखने में हर्ज नहीं। पर उसका महत्त्व इतना ही माना जाना चाहिए कि इससे एक महत्त्वपूर्ण भवन में प्रवेश करने का द्वार खुलेगा। खुलने और प्रवेश पाने के बाद भी कुछ कार्य तो करना ही होगा। वह जाकर ऐसा कुछ किया जाय जिसके बदले में कारगर अनुग्रह या अनुदान उपलब्ध हो सकें। जो दरवाजे की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दहलीज पर पैर रखते ही उस भवन में विद्यमान सम्पदा को बटोर लाने का स्वप्न देखते हैं, वे भूल करते हैं। ऐसा बन पड़ना तर्क, विवेक एवं औचित्य की कसौटी पर कहीं भी सही नहीं माना जा सकता।

नियति व्यवस्था ऐसी अन्धेरगर्दी का समर्थन कर नहीं सकती। जिन्हें मुफ्तखोरी ही सब कुछ दीखती है, जिन्हें देवता या सन्त विक्षिप्त स्तर के दीखते हैं, वे ही ऐसी कामनाएँ सँजोते, समय श्रम गँवाने के उपरान्त निराश होते, खीजते, अनास्था व्यक्त करते देखे जाते हैं। अध्यात्म तत्वज्ञान के अनुसार आत्म-परिष्कार एवं लोक-मंगल के लिए की गयी तप साधना ही एकमात्र वह राह है, जिस पर चलते हुए दिव्य अनुदान या विभूतिवान वरदान किसी को उपलब्ध हो सकें।

मन्दिर आस्तिकता और सत्प्रवृत्तियाँ जगाने में लगें

भगवान् हर जगह मौजूद है। उसे साकार और निराकार विधि से कहीं भी—किसी भी प्रतीक माध्यम से पूजा जा सकता है। कागज का चित्र या मिट्टी की प्रतिमा घर पर रखकर भी भावनापूर्वक पूजा से उपासना का प्रयोजन पूरी तरह प्राप्त किया जा सकता है। विशालकाय मन्दिरों का निर्माण करने की प्रक्रिया भारतीय मनीषियों ने अति महत्त्वपूर्ण प्रयोजन की पूर्ति के लिए विनिर्मित की हैं।

भगवान् की मन्दिरों में स्थापना करके सर्वसाधारण के मन में आस्तिकता की मान्यतायें परिपुष्ट करना हमारे देवालयों का प्रमुख प्रयोजन है। आस्तिकता का अर्थ है ईश्वर के आदेशों का पालन करना—नैतिक जीवन जीना। दुष्कर्मों से बचे रहना और विश्वात्ममय—परमात्मा को सुरमित बनाने के लिए अपना अधिकाधिक योगदान देना। आस्तिकता का प्रथम चरण जप, ध्यान एवं पूजा-पाठ हो सकता है पर उसकी पूर्णता भगवान् को, उनके आदेशों को जीवन में घुला लेना ही है। नेक, सदाचारी, भला और परमार्थ परायण जीवन क्रम ही किसी की आस्तिकता का प्रमाण हो सकता है। इस आस्तिकता के ऊपर ही व्यक्ति और समाज की उत्कृष्टता एवं सुख-शान्ति निर्भर है। भगवान् हमारे अति समीप अन्तःकरण में विद्यमान है। उसे किसी की निन्दा स्तुति से कुछ लेना-देना नहीं। उसकी प्रसन्नता, अप्रसन्नता—कृपा-अकृपा इस बात पर निर्भर है कि कौन उसके आदेशों का कितना पालन करता है। इस तथ्य को समझने वाला सज्जनोचित सदाचारी जीवन ही जियेगा और समाज के प्रति अपने महान् कर्त्तव्यों को ध्यान में रखते हुए लोक-मंगल के लिये अपना बढ़ा-चढ़ा अनुदान देने में तत्पर रहेगा। आस्तिकता व्यक्ति और समाज की भावनात्मक भूमिका को ऊँची उठाने का प्रयोजन पूरा करती है। इसलिए उसे मानव-जीवन की एक महती आवश्यकता माना गया है। पूजा-उपासना का सारा कलेवर इसी प्रयोजन के लिए खड़ा किया गया है। मन्दिरों की स्थापना के मूल में मनीषियों का एक मात्र प्रयोजन यही था कि इन धर्म केन्द्रों के द्वारा आस्तिकता के आदर्शों का जन-मानस में व्यापक प्रकाश पहुँचाया जाय।

मन्दिरों के निर्माण में विपुल धन सम्पत्तियों के लगाये जाने में एकमात्र प्रयोजन यह है कि इन धर्म केन्द्रों के द्वारा आस्तिकता की सर्वतोमुखी प्रवृत्तियों का विस्तार किया जाय। पूजा-आरती भी वहाँ होती रहे सो ठीक है। लोग दर्शन करने आयें और यह स्मरण करें कि भगवान् की सत्ता इस संसार में विद्यमान् है। अस्तु हमें उसके दण्ड से बचने और अनुग्रह को पाने के लिए सज्जनोचित जीवन जीना चाहिये। मनुष्य की भावना को भूलकर ही कोई कुकर्म कर सकता है। यदि परमात्मा और उसकी न्याय व्यवस्था हमारी स्मृति में बनी रहे तो अनीति की दिशा में एक कदम भी बढ़ सकना सम्भव नहीं। भावनात्मक परिष्कार की दृष्टि से आस्तिकता का भारी महत्त्व है। व्यक्ति एवं समाज का कल्याण उसी पर निर्भर है। मन्दिरों का प्रयोजन है कि भगवान की प्रतिमा का दर्शन, पूजा करने के लिए जनसाधारण को आमंत्रित, आकर्षित करें, साथ ही उन आगन्तुकों में आस्तिकता की मूल मान्यतायें हृदयंगम कराने के लिए बहुमुखी प्रवृत्तियों का संचालन करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मन्दिर वस्तुत: एक धर्म केन्द्र है। जहाँ से मनुष्य के भावनात्मक निर्माण के लिए आवश्यक हर प्रवृति का संचालन होता रहे। नित्य के कथा-प्रवचन वहाँ इसलिए होते हैं। जुमा की नमाज के बाद मस्जिदों में मुल्ला लोग भाव भरे और दिशा देने वाले प्रवचन करते हैं। गिरजाघरों में पादरी लोग रविवार को प्रार्थना के बाद उपस्थित धर्म-प्रेमियों को उनके व्यक्तिगत एवं सामाजिक कर्त्तव्यों का बोध कराते हैं। हिन्दू धर्म किसी समय सबसे आगे था, वहाँ कथा प्रवचनों के माध्यम से वह सब कुछ हर दिन नियमित रूप से सिखाया जाता था, जो समग्र स्थिरता एवं प्राप्ति के लिए आवश्यक था। इतना ही नहीं, वहाँ पाठशालाओं, पुस्तकालयों, व्यायामशालाओं, संगीत एवं कला-कौशलों की समस्त उन प्रवृत्तियों का संचालन होता था, जो भावनात्मक निर्माण में सहायक हो सकती हैं। सर्वतोमुखी विकास की सम्पूर्ण योजनायें और प्रक्रियायें मन्दिरों के धर्म-केन्द्र ही संचालित करते थे। उनका भारी प्रभाव पड़ता है। आस्तिकता की भावनायें किस प्रकार कार्यान्वित की जा सकती हैं ? उनका रचनात्मक, व्यावहारिक स्वरूप क्या हो सकता है ? इसका प्रत्यक्ष स्वरूप देखने और प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति मन्दिरों में जाता था और उनकी उपयोगिता अनुभव करता था। उनके निर्माण को पुण्य कर्म माना और उनमें विपुल धन लगाया जाना, इसीलिए उपयुक्त माना जाता था कि उस रचना से अगणित व्यक्ति प्रकाश पाने और समग्र उत्कर्ष के लिए अग्रसर होने में समर्थ होंगे।

धर्म प्रेमी लोग अपनी उपार्जित सम्पत्ति को मंदिरों के बनाने और उनके चलाने में समर्पित करके अपने को धन्य मानते थे, क्योंकि उससे अच्छा उपयोग किसी पैसे का हो नहीं सकता। जनता भी देव प्रतिमा के आगे कुछ न कुछ श्रद्धान्जलि अर्पित करती रहती थी, ताकि उस पैसे से रचनात्मक सत्प्रवृत्तियों का संचालन हो सके। पुजारी लोग पूजा-अर्चा में प्रात: सायंकाल देव प्रतिमा के लिए लगाकर शेष सारा समय मन्दिर संस्था द्वारा संचालित सत्प्रवृत्तियों में लगाते रहते थे। वे सुयोग्य विद्वान् ही नहीं, सदाचारी और लोक-सेवी भी होते थे। उन्हें सामाजिक आवश्यकताओं का ज्ञान रहता था, तदनुरूप वे अपने व्यक्तित्व, प्रभाव एवं आधार का उपयोग जनमानस की दिशा सुव्यवस्थित करने में लगाते रहते थे । समर्थगुरु रामदास ने महाराष्ट्र में सैकड़ों महावीर मन्दिर स्थापित किये थे और उन स्रोतों से शिवाजी के स्वतन्त्रता संग्राम के लिए धन एवं जन शक्ति को विपुल मात्रा में उपलब्ध किया था। सिख धर्म के सारे गुरुद्वारे अनुपयुक्त शासन को हटाने में केन्द्र बिन्दु बनकर अपनी स्थापना का महत्त्व प्रतिपादित करते रहे। बुद्ध बिहार विश्वव्यापी धर्म प्रसार योजना के सुव्यवस्थित केन्द्र थे। यहाँ सदा से यही परम्परा प्रचलित रही और मन्दिरों ने अविस्मरणीय भूमिका सदा से प्रस्तुत की।

आज सब कुछ उल्टा हो गया है। मन्दिर केवल शंख-घड़ियाल बजाने और आरती उतारने तक सीमित हैं। पुजारी लोग प्रात:सायं थोड़ी-सी टंट-घंट करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं। उन विशाल इमारतों का कोई उपयोग नहीं और जो प्रचुर धन उनमें लगा हुआ है, वह उन मठाधीशों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनता और उन्हीं के उपयोग में व्यय होता देखा जाता है। किन्हीं प्रेरक प्रवृत्तियों के संचालन की बात भी वहाँ सुनाई नहीं पड़ती। ऐसी दिशा में उन्हें प्राण रहित निर्जीव कलेवर की तरह ही जहाँ-तहाँ खड़ा देखा जा सकता है। उपयोगिता खोजने पर जन-आकर्षण का घट जाना भी स्वाभाविक है। किन्हीं मेले उत्सवों पर थोड़ी भीड़ दीखने के अतिरिक्त नियमित रूप से पहुँचने वाले वहाँ थोड़े से ही रहते हैं। जो पहुँचते हैं वे भी समय काटने की दृष्टि से ही जाते हैं। मिलता इन्हें भी कुछ नहीं। अनुपयोगी चीज सड़ने लगती है। इन धर्म स्थानों में धीरे-धीरे अनाचार का प्रवेश जिस प्रकार हो रहा है, उससे दु:ख और दोष ही उत्पन्न होते हैं।

अपने मन्दिरों में लगभग सौ अरब रुपये की सम्पत्ति लगी है। उनकी दैनिक आमदनी करोड़ों रुपया है। इमारतें इतनी विस्तृत हैं कि उनमें ईसाई मिशन के द्वारा संसार भर में हो रहे कार्यों से भी कई गुने रचनात्मक कार्य आरम्भ किये जा सकते हैं। करीब एक लाख व्यक्ति उन मन्दिरों की सेवा-पूजा में नियुक्त हैं। इतने व्यक्ति यदि काम के हों और उन्हें रचनात्मक दिशा में लगाया जा सके तो सारे समाज का काया-कल्प हो सकता है। जनता जिस श्रद्धा से धन इनमें चढ़ाती है, उसके अनुरूप यदि धर्म संस्थापना की बहुमुखी प्रवृत्तियाँ भी इनमें संचालित हो सकें तो हमारा समाज कुछ ही दिनों में कहाँ से कहाँ पहुँच सकता है। साधनों के अभाव में काम रुका रहे यह समझ में आता है, किन्तु प्रचुर साधन होते हुए भी उनका सदुपयोग न हो सके यह बड़ी लज्जा और पीड़ा की बात है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समय आ गया है कि इन धर्म-केन्द्रों का सदुपयोग करने की दिशा में हम विचार करें और साहसपूर्ण कदम उठायें। जिनके हाथ में मन्दिर संचालन व्यवस्था है, उन्हें सोचना चाहिये कि—क्या इन केन्द्रों में लगे हुए धन का सही उपयोग हो रहा है ? भगवान् की पूजा उचित है और आवश्यक भी, पर यह अबुद्धिमत्तापूर्ण है कि प्रचुर धन-शक्ति और जन-शक्ति का उपयोग इतने भर के लिए ही समाप्त हो जाय। ईश्वर भक्ति, पूजा-आरती तक ही सीमित नहीं है। व्यक्ति और समाज का भावनात्मक उत्कर्ष भी ईश्वर भक्ति का ही अंग है। देश-धर्म, समाज और संस्कृति की उत्कृष्टता अभिवर्द्धन के लिए जो रचनात्मक कार्य हो सकते हैं उन्हें ईश्वर पूजा से कम महत्त्व का किसी भी प्रकार नहीं समझा जाना चाहिए। मन्दिरों की उपयोगिता तभी अक्षुण्य रह सकती है, जब उनमें पूजा के साथ-साथ आस्तिकता के अभिवर्द्धन एवं परिपोषण में सत्प्रवृत्तियाँ भी संचालित होती रहें।

श्रद्धा और सद्भावना के केन्द्र—देवालय

देवत्व के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा और सम्मान की भावना भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा है। देवत्व का अर्थ है विश्व कल्याण की कामना। जो सबके हित में अपने हितों का होम कर दें वह देव-पुरुष हैं, ऐसे माननीय पुरुषों को सम्मान देना योग्य बात है। समाज को सुखी और समुन्नत बनने की कला सिखाने वाले और उस संकल्प की पूर्ति के लिये जीवन-दान देने वालों की जितनी पूजा की जाय, वह कम ही है। महान् सेवा के लिये महान् श्रद्धा व्यक्त होनी ही चाहिये।

देवत्व के प्रति श्रद्धा और पारस्परिक सद्भावना के प्रतीक के रूप में देव-मन्दिरों के निर्माण का विधान है। सद्भावना का लोक-जीवन की सम्पन्नता से घनिष्ट सम्बन्ध है। सामाजिक आचरण में जब दुर्भावनायें अनाचरण, व्यामोह, विक्षिप्तता, पारस्परिक वैमनस्य तथा आध्यात्मिक विकृति पैदा हो जाती है तो जन जीवन में दुःख, क्षोभ और असन्तोष उमड़ पड़ता है। आज का लोक जीवन इन आसुरी प्रभावों से पूर्णतया सराबोर है। इसी से लोकतांत्रिक ढाँचा लड़खड़ाता हुआ नजर आता है। इस मूढ़ता का कारण लोगों का भौतिकतावादी दृष्टिकोण है। विवेक या विचार शक्ति की न्यूनता के कारण लोग अपने मूल लक्ष्य से भटकते हैं। देव मूर्तियाँ लोगों के सद्भाव को जाग्रत करने में अलौकिक शक्ति रखती हैं, किन्तु उनके पीछे यदि किसी महान् व्यक्तित्व का हाथ न रहा तो केवल प्रतीक से किसी प्रकार के बचाव की सम्भावना न की जानी चाहिये। यह भूल यहाँ हुई है पर आगे इससे सबक लेना है।

मोहम्मद गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर पर आक्रमण किया। सोमनाथ के साथ करोड़ों रुपये की जागीरें थीं। बड़े-बड़े सन्त महात्मा वहाँ निवास करते थे, किन्तु मूर्तिवाद के नाम पर फैले आडम्बर के कारण वह स्थान लोगों की श्रद्धा बनाये न रख सका। बेचारी मूर्ति कैसे प्रतिवाद करती ? उसे तोड़ कर मोहम्मद गजनवी हीरे जवाहरातों के जखीरे भर ले गया। धन गया वह इतनी दुःखद घटना नहीं जितनी आस्थाओं पर आघात हुआ, यह हृदय छेदने वाली बात है। हिन्दुत्व के प्रति जिन्हें भी थोड़ी बहुत प्रीति होगी उनके दिलों में इस प्रकार की कसक उठना स्वाभाविक है।

इसमें एक बात सीखने को मिलती है कि देवालय बनें किन्तु उनके साथ व्यक्तित्व का भी शिलान्यास हो। मूर्तियाँ स्थापित हों किन्तु सद्भावनायें जगाने वाली प्रवृत्तियाँ सभी उनके साथ जोड़ी जायँ। विचार और व्यवहार में शिक्षा से पूर्णता आती है। भावना के साथ कर्म की शक्ति भी चाहिये। देवालय शरीर का काम करते हैं, सद्भावनायें जाग्रत करने वाली प्रवृत्तियाँ उनमें "प्राण" का काम करती हैं। देह और प्राण के सम्मिश्रण से चैतन्यता आती है। अकेली देह निर्जीव है। हम देवालयों के महत्त्व को अस्वीकार नहीं करते, पर वह प्राण विहीन भी न हों।

इन दिनों देव मन्दिरों में दिखावट और ढंग बनाकर लोगों की श्रद्धा और उनके विश्वास छीन लेने की जो चोर बाजारी चल रही है उसे किस तरह दूर किया जाय यह एक विकट समस्या है। अधार्मिक लोगों की अन्ध श्रद्धा वालों के साथ गठबन्धन जो चल रहा है इसे कैसे दूर किया जाय ? समाज में सौमनस्य सांस्कृतिक उन्नयन और सदाचार जगाने की विवेकपूर्ण प्रवृत्तियाँ किस तरह जागरूक हों ? इन समस्याओं का समाधान न हुआ तो भारतीय अध्यात्म की जड़ें निरन्तर खोखली होती चली जायँगी और जो धर्म के बचे खुचे अंकुर शेष हैं उन्हें भी नष्ट होने में कितनी देर लगेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब यह तथ्य लोगों को समझ ही लेना चाहिये कि तीर्थ-यात्रा और देव मन्दिरों के दर्शन का जो प्रयोजन लोग लेकर चलते हैं, वह वास्तव में सिद्ध नहीं होता। तीर्थ-यात्रा के बाद भी लोगों को नैतिकता का, अच्छे रहन-सहन और व्यवहारिक आध्यात्म का विकास न हो तो कौन कह सकता है कि आपका भ्रमण सफल रहा। इससे तो यही समझा जायगा कि लोगों ने समय, श्रम और धन का ही अपव्यय किया है। इस जीवन में देवत्व को प्राप्त न कर सके तो कौन जाने मृत्यु के बाद कोई पारलौकिक सुख मिलेगा भी या नहीं। कोई भी विचारवान् व्यक्ति इस बात पर विश्वास कर लेगा ऐसा समझना कठिन है।

देव-स्थानों का निर्माण लोगों में श्रेष्ठ संस्कार जाग्रत करने की दृष्टि से किया जाता है। यह आशा की जाती है कि महापुरुषों का सत्संग लाभ लोगों को अधिक मिले इसलिए सत्संग, स्वाध्याय, ठीक संगठन आदि का अखण्ड यज्ञ देवालयों में चलता रहे। पर व्यवहार में यह सब कुछ नहीं होता। लोग आते हैं, चन्दन, अक्षत, पुष्प, पाई-पैसा की सस्ती भेंट चढ़ाकर अपनी अन्ध श्रद्धा व्यक्त करके चले जाते हैं। उनके लौकिक जीवन में किसी प्रकार का प्रकाश उत्पन्न नहीं होता। वही आसक्ति, वही वासना, क्रोध, मोह सब कुछ वही। न पारिवारिक जीवन में किसी तरह का उल्लास आया, न गन्दी आदतें छूटीं। अन्तःकरण में अच्छे संस्कार न बढ़े और आप यह मान्यता बनाये बैठे हों कि परलोक में आपको स्वर्ग मिलेगा तो इस पर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। आत्मबल, उत्सर्ग, संयम त्याग और सद्भावना की प्रामाणिकता इस जीवन में न मिली तो परमात्मा की अकृपा ही समझना चाहिये। इसके बिना जीव का किसी प्रकार कल्याण सम्भव नहीं है।

लोक जीवन में जिस निवृत्ति की कामना करते हैं उसका आधार है विवेक, जो आत्म-ज्ञान पैदा करता है। इस जीवन में आत्म-ज्ञान का सम्पादन न हो और परलोक की जीवन मुक्ति पर विश्वास करें तो इसे हास्यास्पद ही माना जायगा। निवृत्ति या मोक्ष—मनुष्य के आत्मज्ञान और सद्प्रवृत्तियों के रूप में दिखाई देता है। इन्हीं के आधार पर पारलौकिक मुक्ति पर विश्वास किया जा सकता है।

देवालयों का महत्त्व इसलिये नहीं होता कि उनमें परमात्मा की मूर्ति स्थापित होती है। प्रतिमा परमात्मा का प्रतीक मात्र है। अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिये ईश्वर के बाह्य कलेवर को मूर्तिरूप में मान लेते हैं किन्तु उसकी आत्मा सद्-भावनाओं में सन्निहित है। देवालय का अर्थ है—जहाँ देवपुरुषों का निवास हो। उनके सत्संग से ही परमात्मा के आन्तरिक कलेवर को प्राप्त करते हैं इसी दृष्टि से देव-स्थानों का महत्त्व होता है।

जड़ में भी परमात्मा का अस्तित्व मानने की अपूर्व श्रद्धा और देवालयों की भावनात्मक विशेषता के परिणामस्वरूप दर्शक में जो संस्कारों की सूक्ष्म प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है उसी से लोक कल्याण का पथ प्रशस्त होता है। अखिल विश्व में परमात्मा की व्याप्ति, भावनाओं की शुद्धि और गार्हस्थ्य जीवन की सफलता के लिए विवेक पूर्ण प्रवृत्तियों का संचालन हो तो देव-मन्दिरों की सार्थकता है।

शिक्षा, सद्भावना और जीवन दिशा का प्रशिक्षण देने का उत्तरदायित्व वहन करने वाले देवालय के पुजारी हैं, उन्हीं से कुछ लोकोपकार की कामना की जा सकती है। चरित्र, प्रेम, मैत्री, करुणा, दया, प्रतिमा, मेधा और मनस्विता की शिक्षा देने का गुरुतर कार्य देव मन्दिरों की जिम्मेदारी है। लोक जीवन में समृद्धि लाना ही उनका उद्देश्य है। संस्कृति का प्रसार और संस्कारों की प्रशस्ति का उत्तरदायित्व देवालयों का है। इन्हीं के आधार पर उनको इतना महत्त्वपूर्ण स्थान मिलता है। आध्यात्मिक प्रशिक्षण के, ब्रह्मकर्म के निर्वाह कारण ही उनका महत्त्व सर्वोपरि है। इस गौरव को प्राप्त न कर सके तो देवमन्दिर की अपेक्षा किसी ऐसे सद्ग्रहस्थ के घर को ही अच्छा मान लेना चाहिये, जिसमें पारस्परिक प्रेम, इन्साफ दया और धर्म भर रहा हो। उन घरों को ही उपासनालय मान लें तो कहीं अधिक लाभ की गुंजाइश रहेगी।

बाह्य कलेवर की अपेक्षा आन्तरिक भावनाओं की उपासना अधिक फलवती होगी। हमें पाषाण नहीं देवत्व की आत्मा को मूर्ति रूप में पूजना है और उन पर अपनी सद्भावनाओं की अर्घ्य चढ़ाना है। इतना कर सकें तो अनैतिकता और भ्रष्टाचार दूर करने में अपना बहुत बड़ा योगदान समझा जायेगा। मन्दिरों की सर्थकता इन्हीं सत्प्रवृत्तियों के विकसित करने में है।

मन्दिर आस्तिकता के पोषण केन्द्र बनें

हमारे देश में हजारों-लाखों मन्दिर हैं। करोड़ों लोग उनमें स्थापित देवमूर्तियों का दर्शन कर अपनी श्रद्धा को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुष्ट करते हैं तथा यह विश्वास करते हैं कि उन्होंने देवमूर्ति का दर्शन कर ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर ली अथवा जिन कठिनाइयों और समस्याओं को वे अपने अन्य साथियों से कहने में संकोच करते हैं, वह भगवान से कह लीं। मन्दिरों दर्शन के लिए भक्तिभाव से जाने वाले लोग अपने देवता के सामने जाकर हर बात कह लेते हैं जो औरों से कहने पर हँसी का कारण बन जाती हैं तथा इस प्रकार अपना जी हल्का कर लेते हैं। पर मन्दिरों की व्यवस्था इतने मात्र से ही सार्थक नहीं हो जाती। अपनी अपूर्ण कामनाओं, औरों को हास्यास्पद लगने वाली इच्छाओं, छोटी-छोटी समस्याओं और जरा-जरा-सी कठिनाइयों को ही कहने के लिए मन्दिर बनाये जाते तो उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि ये बातें घर के एक कोने में बैठकर भी कही जा सकती थीं। भगवान को सुनाने का ही उद्देश्य रहता तो वह उद्देश्य कहीं भी प्राप्त किया जा सकता था क्योंकि भगवान तो हर जगह व्याप्त है और अन्तर्यामी भी है। बिना कहे ही वह हमारी बातों को सुन सकता है और समझने की सामर्थ्य रखता है।

जिन उद्देश्यों को सामने रखकर मन्दिरों का निर्माण किया गया उन पर विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनमानस में आस्तिकता और धर्मनिष्ठा की भावना को विकसित करना मन्दिरों का एक मुख्य उद्देश्य हो सकता है। प्राचीनकाल से अब तक भारतीय जनमानस में जो धार्मिकता विकसित हुई और यहाँ का जन-जीवन धर्म भावनाओं से जिस प्रकार ओत-प्रोत दिखाई देता है उसमें मन्दिरों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सामान्यत: मनुष्य अपनी सारी दिनचर्या व्यस्त रहते हुए व्यतीत करता है। विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों से जूझते हुए हारा हुआ और थका-थका सा लगने लगता है। आस्तिकता और ईश्वर के प्रति भावनायें उमंगें इसके अवसर लगभग नहीं के बराबर आते हैं। इसीलिए प्रतीकों के रूप में मन्दिरों की आवश्यकता हुई। व्यक्ति चाहे जितना व्यस्त रहे और चाहे जितना ख्यालों में खोया हुआ हो पर मन्दिर के सामने से गुजरते हुए उसे ईश्वरीय सत्ता का स्मरण हो ही जाता है। भावनाशील व्यक्ति को यह याद हो आता है कि ईश्वर है और वह हमारे कार्यों, गतिविधियों को देखता रहता है। क्षण भर के लिए ही सही उसकी आत्मा में एक सिहरन तो उत्पन्न होती ही है। नित्य वहाँ आते-जाते और उस क्षेत्र से गुजरते हुए यह भावना पुष्ट होती जाती है। हम उस स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते जबकि मन्दिर न रहे होंत और जन सामान्य अपने सांसारिक बोझों का भार वहन करते हुए ईश्वर की सत्ता का कहीं परिचय ही नहीं पाता, तो क्या होता ? महात्मा गाँधी से एक बार किसी ने पूछा था कि लोग इतने बिगड़े हुए हैं फिर भी आप रामधुन का प्रचार करते हैं। लोग उसे अपनाते भी हैं पर उनके आन्तरिक जीवन में कोई असर नहीं होता क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि ईश्वर का प्रचार करना व्यर्थ है।

प्रश्नकर्त्ता को उत्तर देते हुए गाँधी जी ने कहा था—"सोचो जब ईश्वर की सत्ता लोग मानते हैं तब यह दशा है और अगर न माना जाये तो क्या हालत होगी ?" लोगों का व्यक्तित्व भले ही परिष्कृत न होता हो पर मन्दिर इस कारण अनुपयोगी नहीं है हर व्यक्ति के मन में जो ईश्वर को मानता है, ईश्वर के प्रति यह धारणा होती है कि वह हर भले-बुरे कर्म का साक्षी है तथा वह उनका न्यायानुकूल ढंग से पुरस्कार या दण्ड देता है। यह धारणा केवल ऊपरी सतह तक ही रह जाती है इसलिए लोग इसके अनुसार अपने आचरणों में परिवर्तन नहीं करते। आवश्यकता इस बात की है कि इस मान्यता की निष्ठा के स्तर तक गहराई में उतारा जाय।

मन्दिर जीवन और चेतना को प्रभावित न करें तथा केवल प्रतीक रूप में ही ईश्वरीय सत्ता का परिचय देते रहें यह पर्याप्त नहीं है। यह काम तो घर में एक चित्र लगाकर भी किया जा सकता है। फिर मन्दिरों के लिए लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करने की क्या आवश्यकता ? हमारे देश में सात लाख गाँव हैं। औसतन प्रत्येक गाँव में एक मन्दिर है। शहरों में तो मन्दिरों की संख्या और भी ज्यादा है। एक-एक शहर में कम से कम आठ-आठ दस-दस मन्दिर हैं। ऐसे नगर भी हैं जहाँ मन्दिरों की संख्या हजारों में है, तीर्थस्थानों की गणना ऐसे नगरों में की जा सकती है। यदि आँकड़े इकट्ठे किए जायें तो भारत भर में कम से कम दस लाख मन्दिर होंगे। एक मन्दिर में पुजारी, नौकर, रक्षक तथा पूजन का खर्च जोड़ा जाय तो कम से कम पाँच सौ रुपये तो हो ही जाता है। इससे ज्यादा और कई गुना भी खर्च होता है। फिर भी हम न्यूनतम ही मानें तो प्रति मन्दिर के हिसाब से दस मन्दिरों के लिये पचास करोड़ रुपये प्रतिमास खर्च होता है। केवल ईश्वरीय सत्ता के प्रतीक परिचय हेतु इतनी बड़ी रकम खर्च करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। लेकिन मन्दिरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के उद्देश्यपूर्ण पक्ष को सामने रखा जाय तो वे एक वृहद संस्था के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जो लोगों को आस्तिकता और आध्यात्मिकता की प्रेरणा दे सकते हैं। न केवल दे सकते हैं वरन् देना चाहिए अन्यथा मन्दिरों का उतना ही प्रयोजन रहा तो कहना पड़ेगा कि बहुत कम पाया जा रहा है।

आज के सन्दर्भ में अधिकांश मन्दिर इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर रहे हैं। इनका उद्देश्य आस्तिकता की रक्षा करना बताया जाता है पर इसका मतलब यह भर नहीं कि मूर्ति के आगे सिर झुका लिया जाय, पुष्प-पत्र चढ़ा दिये जायँ, मूर्तियों के सामने स्तवन और आरती पढ़ ली जाय तथा उन्हें नहला-धुलाकर सेवा कर ली जाय। लेकिन अधिकांश मन्दिरों में यही होता है। वहाँ के पुजारी, पण्डे लोगों की धर्म भावनाओं का शोषण कर अपना घर भरते हैं तथा जनता अपनी भावना से प्रेरित होकर जो कुछ देती है समाज को इसका कोई प्रतिदान नहीं मिलता। यही कारण है कि बुद्धिजीवी वर्ग मन्दिरों के प्रति अश्रद्धालु होता है। हम उन्हें नास्तिक, अधार्मिक तथा अभिमानी चाहे जो कहलें और उन पर दोषारोपण कर अपने मन को समझा लें पर वस्तुतः दोष उनका नहीं है। दोषी वे आस्तिकजन और मन्दिरों के कर्त्ता-धर्त्ता हैं जो मन्दिरों के उद्देश्यों की जरा भी परवाह नहीं करते। यहाँ तक कि उन पर मन्दिरों को नष्ट करने का दोष सिद्ध होता है। महमूद गजनवी और औरंगजेब मुगल बादशाहों ने तो कुछ एक मन्दिरों की इमारतों को ही तोड़ा लेकिन ऐसे व्यक्ति जो मन्दिरों के स्वरूप में कोई प्रगतिशील परिवर्तन नहीं आने देना चाहते हैं, मन्दिरों को भावनाओं और उपयोगिता की दृष्टि से नष्ट करने का कारण बन रहे हैं। कई साम्यवादी देशों ने इसी कारण अपने यहाँ के देवालयों और पूजा स्थानों को नष्ट कराकर उनमें सरकारी कार्यालय खोले हैं। इसलिए कि उन्हें इन स्थानों की कोई उपयोगिता नहीं लगी। भविष्य का समाज जिसमें हर चीज उपयोगिता और अर्थवेत्ता के कारण टिकेगी क्या इस तरह मन्दिरों को टिकने देगा।

आवश्यक है कि मन्दिरों को सच्चे अर्थों में आस्तिकता और धार्मिकता की भावना को पोषण देने वाले केन्द्रों के रूप में विकसित किया जाय। कहा जा चुका है कि आस्तिकता का अर्थ केवल मन्दिर अथवा मूर्ति के आगे सिर झुकाना और पूजा-पत्री चढ़ाना ही नहीं है। इसका अर्थ है ईश्वर में अखण्ड विश्वास और धार्मिक मर्यादाओं का ठीक-ठीक पालन। पूजा-पाठ करना जप-ध्यानादि की क्रियायें अपनाना धार्मिकता की स्थूल अभिव्यक्ति हो सकती है किन्तु धर्म का उद्देश्य इतने भर से पूरा नहीं हो जाता। वास्तविक धर्म पालन का अर्थ है अपने आत्मिक गुणों को बढ़ाना और गुण कर्मों का परिष्कार करना। प्राचीन काल में मन्दिरों की स्थापना का उद्देश्य भी यही रहा है कि वे आस्तिक जनों को वास्तविक धर्म के पालन की ओर उन्मुख करें। इसीलिये पूर्वकाल में उनमें आरती वन्दन के साथ-साथ कथा-कीर्तन और उपदेश प्रवचन आदि के कार्यक्रम भी चला करते थे। स्थानीय पुजारी तो नित्य कोई न कोई प्रसंग आयोजन करते ही रहते थे, साथ ही बातचीत चरित्र में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्णन करने के उद्देश्य से लोकसेवी साधु-महात्माओं को बुलाकर भी इस तरह के आयोजन कराते रहते थे । जनता से दान-दक्षिणा और भेंट पूजा लेने का इतना ही उद्देश्य था कि उनसे इन कार्यक्रमों की समुचित व्यवस्था की जाती रहे। वहाँ आने वाले लोकसेवी और जीवन दानी साधु-महात्माओं की निर्वाह आवश्यकतायें जुटायी जा सकें। ध्यान रहे इस वर्ष में वे ही लोग रखे जाते थे जो निःस्वार्थ भाव से लोक सेवा के लिए अपने आपको समर्पित कर देते थे।

. लेकिन जब से मन्दिरों में पुजापा, भेंट और चढ़ावा को ही प्राथमिकता दी जाने लगी तथा धर्म प्रचार के मूल उद्देश्य को उपेक्षा के गर्त में डाल दिया गया जब से बुद्धिजीवी और विचारशील व्यक्ति मन्दिरों की ओर से उदासीन होने लगे हैं। अपने मूल उद्देश्य से भटककर केवल धन बटोरने के लिए मन्दिर तरह-तरह के अन्धविश्वासों और आडम्बरों को भी जन्म देने लगते हैं। जैसे किसी मन्दिर के सम्बन्ध में यह प्रचारित कर दिया जाता है कि वहाँ की मूर्ति के दर्शन से रोग बीमारी ठीक हो जाती है तो कहीं के सम्बन्ध में यह विश्वास गड़ा जाता है कि वहाँ जाने और मनौती मनाने से प्रत्येक मनोकामना पूरी होती है।

एक ओर जहाँ आज का समाज धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से दिनों-दिन घिरता जा रहा है। वहीं मन्दिर तरह-तरह के अन्धविश्वास पैदाकर उसे और धकेलने तथा तेजी से गिराने का कारण बन रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समाज के गिरते हुए स्तर को उठाया जाय तथा उसे उन्नत और जन-साधारण को सन्मार्ग के पथ पर अग्रसर करने के लिए मन्दिर अपने दायित्व सम्हालें और लोक चेतना को परिष्कृत करने, समाज का चरित्र ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस तरह के कई कार्यक्रम चुने जा सकते हैं जिनसे लोक शिक्षण का उद्देश्य पूरा किया जा सके। पुस्तकालय, विचार गोष्ठियाँ, सत्संग चर्चा, प्रगतिशील ढंग से कथा सप्ताहों का आयोजन, प्रेरक पद्धति से पर्व और संस्कार मनाने की व्यवस्था, दीप यज्ञों को मनाना आदि ढेरों कार्यक्रम ऐसे हैं जिनके द्वारा मन्दिर जनमानस का रचनात्मक शिक्षण कर सकते हैं और अपनी गौरव गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रह सकते हैं। प्रज्ञा अभियान द्वारा बनाये गए प्रज्ञा-संस्थानों के मूल में यही दर्शन है।

मन्दिर अपनी गरिमा को सार्थक करें

हमारे देश में हजारों लाखों मन्दिर हैं। करोड़ों लोग उनमें स्थापित देवमूर्तियों का दर्शन कर अपनी श्रद्धा को पुष्ट करते हैं तथा यह विश्वास करते हैं कि उन्होंने देवमूर्ति का दर्शन कर ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर ली अथवा जिन कठिनाइयों और समस्याओं को वे अपने अन्य साथियों से कहने में संकोच करते हैं वह भगवान से कह लीं । मन्दिरों में दर्शन के लिए भक्ति-भाव से जाने वाले लोग अपने देवता के सामने जाकर हर बात कह लेते हैं जो औरों से कहने पर हँसी का कारण बन जाती तथा इस प्रकार अपना जी हल्का कर लेते हैं। पर मन्दिरों की व्यवस्था इतने मात्र से ही सार्थक नहीं हो जाती। अपनी अपूर्ण कामनाओं, औरों को हास्यास्पद लगने वाली इच्छाओं छोटी-छोटी समस्याओं और जरा-जरा सी कठिनाइयों को ही कहने के लिए मन्दिर बनाये जाते तो उनकी कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि ये बातें घर के एक कोने में बैठकर भी कही जा सकती थीं। भगवान को सुनाने का ही उद्देश्य रहता तो वह उद्देश्य कहीं भी प्राप्त किया जा सकता था क्योंकि भगवान तो हर जगह व्याप्त है और अन्तर्यामी भी हैं। बिना कहे ही यह हमारी बातों को सुन सकता है और समझने की सामर्थ्य रखता है।

जिन उद्देश्यों को सामने रखकर मन्दिरों का निर्माण किया गया उन पर विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जनमानस में आस्तिकता और धर्मनिष्ठा की भावनाओं को विकसित करना मन्दिरों का एक मुख्य उद्देश्य हो सकता है। प्राचीन काल से अब तक भारतीय जन मानस में जो धार्मिकता विकसित हुई है और यहाँ का जन-जीवन धर्म भावनाओं से जिस प्रकार ओत-प्रोत दिखाई देता है उसमें मन्दिरों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। सामान्यतः मनुष्य अपनी सारी दिनचर्या व्यस्त रहते हुए व्यतीत करता है। विभिन्न समस्याओं और कठिनाइयों से जूझते हुए हारा हुआ और थका-थका सा लगने लगता है। आस्तिकता और ईश्वर के प्रति भावनायें उमड़े इस तरह के अवसर लगभग नहीं के बराबर आते हैं। इसलिए प्रतीकों के रूप में मन्दिर की आवश्यकता हुई। व्यक्ति चाहे जितना व्यस्त रहे और चाहे जितना ख्यालों में खोया हुआ हो पर मन्दिर के सामने से गुजरते हुए उसे ईश्वरीय सत्ता का स्मरण हो ही आता है। भावनाशील व्यक्ति को यह याद हो आता है कि ईश्वर है और वह हमारे कार्यों, गतिविधियों को देखता रहता है। क्षण भर के लिए ही सही उसकी आत्मा में एक सिहरन तो उत्पन्न होती है। नित्य वहाँ आते-जाते और उस क्षेत्र से गुजरते हुए यह भावना पुष्ट होती जाती है। हम उस स्थिति की कल्पना नहीं कर सकते जबकि मन्दिर न रहे होते और जन-सामान्य अपने सांसारिक बोझों का भार वहन करते हुए ईश्वर की सत्ता का कहीं परिचय ही नहीं पाता तो क्या होता ? महात्मा गाँधी से एक बार किसी ने पूछा था कि "लोग इतने बिगड़े हुए हैं फिर भी आप रामधुन का प्रचार करते हैं। लोग उसे अपनाते भी हैं पर उनके आन्तरिक जीवन में कोई असर नहीं होता क्या यह इस बात का सबूत नहीं है कि ईश्वर का प्रचार करना व्यर्थ है।"

प्रश्नकर्त्ता को उत्तर देते हुए गाँधीजी ने कहा था— सोचो जब ईश्वर की सत्ता लोग मानते हैं तब यह दशा है और अगर न माना जाये तो क्या हालत होगी। लोगों का व्यक्तित्व भले परिष्कृत न होता हो पर मन्दिर इस कारण अनुपयोगी नहीं है। हर व्यक्ति के मन में जो ईश्वर को मानता है, ईश्वर के प्रति यह धारणा होती है कि वह हर भले बुरे कर्म का साक्षी है तथा उनका न्यायानुकूल ढंग से पुरस्कार या दण्ड देता है। यह धारणा केवल ऊपरी सतह तक ही रह जाती है इसलिए लोग इसके अनुसार अपने आचरणों में परिवर्तन नहीं करते। आवश्यकता इस बात की है कि इस मान्यता को निष्ठा के स्तर तक गहराई में उतारा जाय।

मन्दिर जीवन और चेतना को प्रभावित न करें तथा केवल प्रतीक के रूप में ही ईश्वरीय सत्ता का परिचय देते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहें यह पर्याप्त नहीं है। यह काम तो घर में एक चित्र लगाकर भी किया जा सकता है। फिर मन्दिरों के लिए लाखों करोड़ों रुपये खर्च करने की क्या आवश्यकता है हमारे देश में सात लाख गाँव हैं। औसततन प्रत्येक गाँव में एक मन्दिर है। शहरों में तो मन्दिरों की संख्या और भी ज्यादा है। एक-एक शहर में कम से कम आठ-आठ दस-दस मन्दिर हैं। ऐसे नगर भी हैं जहाँ मन्दिरों की संख्या हजारों में है, तीर्थ स्थानों की गणना ऐसे नगरों में की जा सकती है। यदि आँकड़े इकट्ठे किये जायँ तो भारत भर में कम से कम दस लाख मन्दिर होंगे। एक मन्दिर में पुजारी, रक्षक, नौकर तथा पूजन आदि का खर्च जोड़ा जाय तो कम से कम पाँच सौ रुपये तो हो ही जाता है। इससे ज्यादा और कई गुना भी खर्च होता है। फिर भी हम न्यूनतम ही मानें तो प्रति मन्दिर के हिसाब से दस लाख मन्दिरों के लिए ५० करोड़ रुपये प्रतिमास खर्च होता है। केवल ईश्वरीय सत्ता के प्रतीक परिचय हेतु इतनी बड़ी रकम खर्च करना कोई बुद्धिमानी नहीं है। लेकिन मन्दिरों के उद्देश्यपूर्ण पक्ष को सामने रखा जाय तो वे एक वृहद् संस्था के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जो लोगों को आस्तिकता और आध्यात्मिकता की प्रेरणा दे सकते हैं। न केवल दे सकते हैं वरन् देना चाहिए अन्यथा मन्दिरों का उतना ही प्रयोजन रहा तो कहना पड़ेगा कि बहुत अधिक खर्च कर बहुत कम पाया जा रहा है।

आज के सन्दर्भ में अधिकांश मन्दिर इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर रहे हैं। इनका उद्देश्य आस्तिकता की रक्षा करना बताया जाता है पर इसका मतलब यह भर नहीं है कि मूर्ति के आगे सिर झुका लिया जाय पुष्प-पत्र चढ़ा दिये जाँय, मूर्तियों के सामने बैठकर स्तवन और आरती पढ़ ली जायँ तथा उन्हें नहला-धुलाकर सेवा कर ली जाय। लेकिन अधिकांश मन्दिरों में यही होता है। वहाँ के पुजारी, पण्डे लोगों की धर्म भावनाओं का शोषण कर अपना घर भरते हैं तथा जनता अपनी भावना से प्रेरित होकर जो कुछ देती है समाज को इसका कोई प्रतिदान नहीं मिलता। वही कारण है कि बुद्धिजीवी वर्ग मन्दिरों के प्रति अश्रद्धालु होता है। हमें उन्हें नास्तिक अधार्मिक और अभिमानी चाहे जो कहलें और उन पर दोषारोपण कर अपने मन को समझा लें पर वस्तुतः दोष उनका नहीं है। दोषी वे आस्तिक जन और मन्दिरों के कर्त्ता-धर्त्ता हैं जो मन्दिरों के उद्देश्य की जरा भी परवाह नहीं करते। यहाँ तक कि उन पर मन्दिरों को नष्ट करने का दोष सिद्ध होता है। महमूद गजनवी और औरंगजेब मुगल बादशाहों ने तो कुछेक मन्दिरों की इमारतों को ही तोड़ा लेकिन ऐसे व्यक्ति जो मन्दिरों के स्वरूप में कोई प्रगतिशील परिवर्तन नहीं बहने देना चाहते थे। मन्दिरों को भावनाओं और उपयोगिता की दृष्टि से नष्ट करने का कारण बन रहे हैं। कई साम्यवादी देशों ने इसी कारण अपने यहाँ के देवालयों और पूजा स्थानों को नष्ट कराकर उनमें सरकारी कार्यालय खोले हैं। इसलिए कि उन्हें इन स्थानों की कोई उपयोगिता नहीं लगी। भविष्य का समाज जिसमें हर चीज उपयोगिता और अर्थवेत्ता के कारण टिकेगी क्या इस तरह मन्दिरों को टिकने देगा।

आवश्यक है कि मन्दिर को सच्चे अर्थों में आस्तिकता और धार्मिकता की भावना को पोषण देने वाले केन्द्रों के रूप में विकसित किया जाय। कहा जा चुका है कि आस्तिकता का अर्थ केवल मन्दिर अथवा मूर्ति के आगे सिर झुकाना और पूजा-पत्री चढ़ाना ही नहीं है। इसका अर्थ है ईश्वर में अखण्ड विश्वास और धार्मिक मर्यादाओं का ठीक-ठीक पालन। पूजा-पाठ करना, जप-ध्यान आदि की क्रियायें अपनाना धार्मिकता की स्थूल अभिव्यक्ति हो सकती है किन्तु धर्म का उद्देश्य इतने भर से पूरा नहीं हो जाता। वास्तविक धर्म पालन का अर्थ है अपने आत्मिक गुणों को बढ़ाना और गुण कर्मों का परिष्कार करना। प्राचीन काल में मन्दिरों की स्थापना का उद्देश्य भी यही रहा है कि वे आस्तिक जनों को वास्तविक धर्म के पालन की ओर उन्मुख करें। इसीलिए पूर्वकाल में उनमें आरती-वन्दन के साथ-साथ कथा-कीर्तन और उपदेश प्रवचन आदि के कार्यक्रम भी चला करते थे। स्थानीय पुजारी तो नित्य कोई न कोई प्रसंग आयोजन करते ही रहते थे साथ ही मानवीय चरित्र में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करने के उद्देश्य से ऐसे लोकसेवी साधु महात्माओं को बुलाकर भी इस तरह के आयोजन कराते रहते थे। जनता से दान-दक्षिणा और भेंट पूजा लेने का इतना ही उद्देश्य था कि उनसे इन कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है। वहाँ आने वाले लोक सेवी और जीवन दानी साधु महात्माओं की निर्वाह आवश्यकतायें जुटायी जा सकें। ध्यान रहे इस वर्ग में से ही लोग रखे जाते थे जो निःस्वार्थ भाव से लोकसेवा के लिए अपने आपको समर्पित कर देते थे।

लेकिन जब से मन्दिरों में पुजापा, भेंट और चढ़ावा को ही प्राथमिकता दी जाने लगी तथा धर्म प्रचार के मूल उद्देश्य को उपेक्षा के गर्त में डाल दिया गया तब से बुद्धिजीवी और विचारशील व्यक्ति मन्दिरों की ओर से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदासीन होने लगे हैं। अपने मूल उद्देश्य से भटक कर केवल धन बटोरने के लिए मन्दिर तरह-तरह के अन्धविश्वासों और आडम्बरों को भी जन्म देने लगते हैं। जैसे किसी मन्दिर के सम्बन्ध में यह प्रचलित कर दिया जाता है कि वहाँ की मूर्ति के दर्शन से रोग बीमारी ठीक हो जाती है तो कहीं के सम्बन्ध में यह विश्वास गढ़ा जाता है कि वहाँ जाने और मनौती मानने से प्रत्येक मनोकामना पूरी होती है।

एक ओर जहाँ आज का समाज धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से दिनों-दिन गिरता जा रहा है वहीं मन्दिर तरह-तरह के अन्ध-विश्वास पैदा कर उसे और धकेलने तथा तेजी से गिराने का कारण बन रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समाज के गिरते हुए स्तर को उठाया जाय तथा उसे उन्नत और जन साधारण को सन्मार्ग के पथ पर अग्रसर करने के लिए मन्दिर अपने दायित्व सम्हालें और लोक चेतना को परिष्कृत करने, समाज का चरित्र ऊँचा उठाने के लिए प्रयास करें।

इस तरह के कई कार्यक्रम चुने जा सकते हैं जिनसे लोकशिक्षण का उद्देश्य पूरा किया जा सके। पुस्तकालय, विचार गोष्ठियाँ, सत्संग चर्चा, प्रगतिशील ढंग से कथा सप्ताहों का आयोजन, प्रेरक पद्धति से पर्व और संस्कार मनाने की व्यवस्था आदि ढेरों कार्यक्रम हैं जिनके द्वारा मन्दिर जनमानस का रचनात्मक शिक्षण कर सकते हैं और अपनी गौरव गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रह सकते हैं।

स्मारक एवं देवालय

लोगों में एक कमजोरी या महत्वाकांक्षा यह रहती है कि उन्हें जीवित रहते यश मिले और मरने के बाद भी किसी स्मारक के बहाने उनकी स्मृति बनाये रखें। शरीर से अमर होना तो सम्भव नहीं, पर यश शरीर से जीवित रहने की महत्त्वाकांक्षा भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं। क्योंकि इस बहाने मनुष्य को कुछ न कुछ ऐसे काम करने पड़ते हैं जिन्हें लोग उपयोगी समझें। जिनके बहाने उसे अन्य लोगों की तुलना में श्रेष्ठ, धर्मात्मा आदि समझा जाने लगे।

जिन दिनों देश में विवेकशीलता थी, उन दिनों यश कामना को लोकोपयोगी कार्यों के निमित्त जगाया जाता था। अपने यश के लिए अथवा पूर्वजों का नाम प्रख्यात रखने के लिये लोग कुएँ, तालाब, बाबड़ी बनाते थे। उन दिनों बाँध, नहर जैसे प्रचलन नहीं थे। पानी का मनुष्यों और पशु-पक्षियों के लिए अभाव रहता था। इस हेतु जलायश बनाने की, पुण्यकर्मों की गणना उचित ही होती थी।

पेड़ लगाने या उद्यान लगाने का कार्य भी ऐसा था जिससे शुद्ध वायु, छाया, पक्षियों के लिए आश्रम, फल आदि के कितने ही लाभ दूसरों को मिलते थे। जिनके पास भूमि थोड़ी अधिक थी वे उसका एक भाग पेड़ लगाने के लिए निकालते थे और उस बहाने लकड़ी से लेकर अनेक प्रकार की सुविधाएँ सर्वसाधारण को मिलती थी।

वृषभोत्सर्ग भी एक पुण्य कार्य था। बैल तो खेती के काम में लगे रहते थे, दुबले भी होते थे। इसलिए बैल को साँड़ के रूप में चिन्हित करके छोड़ दिया जाता था। वह उपयोगिता अभी भी अपने स्थान पर विद्यमान है। कृत्रिम गर्भाधान से मादा-पशुओं को हानि पहुँचती है और वंशज भी दुर्बल होते थे। प्राकृतिक क्रम सदा ही उपयोगी होता है। वृषभोत्सर्ग की स्थानापन्न प्रणाली दूसरी नहीं हो सकेगी।

उपरोक्त ऐसे काम थे जिनका लाभ प्रत्यक्ष दीख पड़ता था और उनके निर्माण में जो राशि लगती थी वह इतनी बड़ी नहीं होती कि एकाकी व्यक्ति अपने स्वजन परिजनों का श्रम संग्रहीत करके उसे पूरा न कर सके। बिहार प्रान्त के एक मध्यवर्ती हजारी नामक किसान ने अपने क्षेत्र में आम्र उद्यान लगाने का व्रत लिया था और एक हजार आम्र उद्यान जनसाधारण को प्रोत्साहित करके खड़े कर दिये थे। कुएँ, तालाब भी इसी प्रकार के श्रमदान से सहयोगपूर्वक बन जाते थे। उनमें कोई बहुत बड़ी पूँजी नहीं लगानी पड़ती थी। दुर्भिक्ष के दिनों में सम्पन्न लोग कष्ट पीड़ितों की सहायता के लिए ऐसे ही परमार्थ कामों के लिए अपना खजाना खाली कर देते थे। शासन का ध्यान तो सेना के उपयोग की सर्हद बनाने में रहता था, पर व्यापारी नगरों को जोड़ने में और साधु, सन्त तीर्थस्थान के मार्ग और निवास बनाने में अपनी भक्त मंडली का सहयोग देते थे। दान में विवेक का समावेश रहता था कि कोई ऐसा काम बन पड़े जो लोकोपयोगी हो।

मध्यकाल के अन्धकार युग में पुरातन प्राचीन काल ने करवट ली और मृतक के शव संस्कार का स्मरण दिलाने वाले मकबरे बनने लगे। छोटे श्मशानों में भी पत्थरों पर स्मृति की जाने लगी। यद्यपि ऐसे कार्यों से दर्शकों का ध्यान खिंचने, कौतूहल बनने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होता था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक और जमाना चल पड़ा। पितरों की सुविधा के लिए उनके बैठने की चबूतरी या मठिया बनाई जाने लगी। उनमें कोई उपयोगिता तो नहीं थी, पर अपनी मान्यता के अनुसार यह विचार कर लिया जाता था कि पूर्वज इस कृत्य से सुविधा अनुभव करेंगे और बदले में सांसारिक सुविधा सहायता प्रदान करेंगे।

यह मान्यता भूत-पलीतों से आगे बढ़कर उसी स्तर के देवी-देवताओं तक चली गई । पितर कहीं दूसरी जगह जन्म भी ले सकते हैं और सहायता भी सीमित ही कर सकते हैं, पर उनसे थोड़े ऊँचे दर्जे के देवी-देवता बहुत दिन तक बने रहते और अपने को तथा वंशजों को उस निर्माण के बदले कृतज्ञतापूर्वक सहायता कर सकते हैं। चूँकि हर आदमी कम खर्च में अधिक लाभ उठाना चाहता है इसलिए देवी-देवताओं की छोटी-छोटी मठिया बनाने की प्रथा चल पड़ी और एक की देखा-देखी दूसरे ने वही राह अपनाई।

विशाल देवालयों—धर्म संस्थानों और धर्मशालाओं का उद्देश्य इससे ऊँचा था। ऋषि युग में बौद्ध भिक्षुओं और जैन श्रवणों की तरह साधु सन्तों का प्रवास और धर्म धारणा के निमित्त सत्संगों एवं रचनात्मक कार्यों का प्रयास निरन्तर चलता था। वे भ्रमण करते थे तो स्थान की आवश्यकता पड़ती थी। धर्मशालाएँ ऐसे ही सत्संग भवनों और सृजन कृत्यों के केन्द्र रूप में बनती थीं । देव प्रतिमा इसलिए मन्दिरों में स्थापित की जाती थी कि उनके भोग प्रसाद के नाम पर आगन्तुक अतिथियों की भोजन तथा निर्वाह व्यवस्था चलती रहे। सन्त गण अपने-अपने सेवा क्षेत्र भी बाँट लेते थे और उस प्रवेश सज्जनता सेवा भावना बनाये रहने के लिए निरन्तर कार्यरत रहते थे। मिलन परामर्श के लिए—सामयिक आयोजनों के लिए वे धर्म स्थान काम देते रहते थे जिन्हें धर्म प्रयोजन के लिए—आस्तिकता, आध्यात्मिकता की फसल उगाने हेतु बनाया गया।

जब तक ऐसे निर्माण विवेकपूर्वक बनते रहे तब तक उनमें सत्प्रवृत्तियाँ चलने और चलाये जाने का दबाव डालने का क्रम बना रहा। वह बहुत ही उत्तम व्यवस्था थी। परिव्राजकों का अपना निर्वाह माँगने में समय खर्च नहीं करना पड़ता था वरन् एक ही स्थान पर अनेक लोक सेवियों को निर्वाह की आवश्यक सुविधाएँ मिल जाती थीं। यह प्रयत्न व्यक्तिगत रूप से किये गये हों या सामूहिक रूप से, ये उपयोगी और लोकहित की भूमिका निभाने वाले।

विकृतियाँ इस क्षेत्र में भी घुस पड़ीं । धर्म सेवा के स्थान पर जिस देवता का मन्दिर बनाया है उसे अनुग्रहीत करने और बदले में मनोकामनाएँ पूरी करने की क्षुद्रता ने लोगों के मनों में स्थान बनाया। धर्मशालाएँ फोकट की सरायें बन गईं जिसमें सैनानी, व्यवसायी और आवारा लोग अपना अड्डा जमाने लगे। धर्मशाला का अर्थ धर्म प्रयोजनों के निमित्त बना हुआ आश्रय स्तर का निवास होता है, पर किन्तु जब धर्म समागमों का विचार और क्रम समाप्त हो गया तो लोगों ने उन बेकार इमारतों को मुफ्त की सराय के रूप में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। बनाने वालों ने अपना मन यह सोच कर बहला लिया कि मुफ्त सुविधा देने का अर्थ पुण्य होता है। भले ही उस सुविधा का लाभ पात्र, कुपात्र कोई भी क्यों न उठाये ? यह तथ्य विस्तृत हो गया कि रिश्वत देने-लेने की तरह कुपात्रों को दान देना भी हेय माना गया है। जो व्यवसायी, सैनानी या बरातीद गुलछर्रे उड़ाने आया है उससे तो होटलों जैसा किराया वसूल किया जाना चाहिए।

धर्म का सीधा साधा-सा अर्थ है—लोक-मंगल, सत्प्रवृत्तियों का सम्वर्धन जो भवन इस काम आये उसे धर्मशाला कहना चाहिए अथवा वह दीवारों पर विज्ञापन पेन्ट कराने की तरह लोकेषणा मात्र हुई। जो भवन यही प्रयोजन करते हों, उनसे लाभ उठाने वाले यदि उचित किराया दें तो यह हर दृष्टि से उचित ही होगा।

बदलते समय के साथ मन्दिर भी बदलें

विश्व में जितने भी धर्म सम्प्रदाय प्रचलित हैं उनमें किसी न किसी रूप में देवालयों की, सामूहिक पूजागृहों की प्रतिष्ठा है। लोग इन देवालयों में जाते हैं, जो क्रियायें घरेलू व्यस्त जीवन में सम्पन्न नहीं कर पाते वे इन सामूहिक सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में कर लेते हैं। ईसाइयों के चर्च, मुसलमानों की मस्जिद, पारसियों की अगियारी, बौद्धों के विहार आदि ऐसी व्यवस्थायें हैं जिनमें कि लोगों को पूजा उपासना की, आराधना प्रार्थना की सुविधा के साथ-साथ धर्म और अध्यात्म की प्रेरणाएँ प्राप्त करने का अवसर भी मिलता है। हिन्दू मन्दिरों में भी पूजा—आरती का विधान किसी न किसी रूप में पूरा किया जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेकिन पूजा आरती का मात्र इतना ही प्रयोजन नहीं है कि टण्ट-घण्ट या विधि विधान पूरे कर लिये जायँ। भगवान की भक्ति का इतना ही अर्थ नहीं है कि उन्हें कुछ फूल चढ़ा दिये जायँ या भोग लगा दिया जाय अथवा उनकी स्तुति में कुछ गीत भजनादि गा लिये जायँ। इतने भर से भगवान को प्रसन्न कर लेना सम्भव हुआ होता तो सभी लोग उन्हें प्रसन्न कर लेते और मौज-मजे की जिन्दगी गुजारते।

अत: यह मानना चाहिए कि पूजा उपासना के केन्द्र मन्दिर देवालयों का प्रयोजन यही नहीं है कि वहाँ आरती या भोग प्रसाद चढ़ा दिये जायँ। जिन दिनों लोगों की मनोभूमि सरल सहज रही होगी उन दिनों इतने मात्र से वह उद्देश्य पूरा हो जाता होगा, जो कि मन्दिरों के पीछे रहना चाहिए । मन्दिरों का उद्देश्य है लोगों में धर्मनिष्ठा का अभाव न होने देना। पूजा उपासना और आरती भोग आदि क्रियाकलापों का भी यही प्रयोजन रहा है। सच्ची आस्तिकता और धर्मनिष्ठा यह है कि मनुष्य अपने भीतर भरे हुए कुविचारों और दुर्भावनाओं को बाहर निकाले तथा उनके स्थान पर सद्विचार सद्भावनाओं की प्रतिष्ठा करे। कर्मकाण्डों की प्रेरणा यह है कि सदाचार, नैतिकता और सद्गुणों का अभिवर्धन किया जाय। जिस समय लोग सरल सहज और प्राकृतिक जीवन जीते थे फलत: उनका चित्त निर्मल रहा था, तो वे स्तोत्रों और आरतियों से ही वह प्रेरणा प्राप्त कर लेते थे। आरतियों और स्तोत्रों में गाये जाने वाले पद, तथा उनमें निहित भावनायें देर तक उनके अन्त:करणों में गूँजती रहतीं और उन्हें प्रभावित करती रहतीं। पर अब स्थिति भिन्न है। आज के यांत्रिक और व्यस्त जीवन में मनुष्य का चित्त देर तक उन भावनाओं को अपने में बसाये नहीं रहता और न ही उसकी दृष्टि से मन्दिर देवालयों की इतनी उपयोगिता रह गयी है कि उसके लिए समय निकालना आवश्यक अनुभव करें। अत: मन्दिरों के वर्तमान स्वरूप में कुछ ऐसा परिवर्तन होना चाहिए कि वे अपने उद्देश्य-धर्मनिष्ठा को परिपुष्ट बनाये रखने को भी पूरा करते रहें और लोगों की दृष्टि में उसकी उपयोगिता भी बढ़े।

आरती, पूजा, स्तोत्र, पाठ और भोग की गतिविधियों तक ही मन्दिरों के क्रियाकलाप सीमित रह गये हैं। अत: आत्यन्तिक धर्म श्रद्धालु जन ही उनमें भाग लेते हैं। यह बात और है कि पूरा लाभ उन्हें भी नहीं मिल पता हो। इसके लिए सर्वसाधारण को दोष देना या लोगों में घटती आस्था को उत्तरदायी ठहराना एकांगी और अनुचित ही है। देखा यह भी जाना चाहिए कि मूल कारण क्या है ? मन्दिरों का उद्देश्य यह है कि धर्मनिष्ठा का अभाव न होने दिया जाय और धर्मनिष्ठा का अर्थ यह है कि जप, तप, पूजा, प्राणायाम के साथ व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छता और सात्विकता के अभिवर्धन की निरन्तर प्रेरणा मिलती रहे। जब इन दोनों में से एक भी अर्थ प्रयोजन पूरा नहीं हो पाता हो तो मन्दिरों और देवालयों को अश्रद्धा की दृष्टि से देखने वालों का क्या दोष ?

भारतवर्ष में मन्दिरों की संख्या लगभग ६ लाख है। गाँव और शहरों की संख्या क्रमश: ५.६७ लाख तथा २ हजार ६ सौ ९० है। औसतन प्रत्येक गाँव में एक मन्दिर होना चाहिए और नये-नये बनते जा रहे मन्दिरों की संख्या, देवी-देवताओं के देवालयों की संख्या तो अलग है। इस हिसाब से प्रत्येक एक हजार आदमी के पीछे एक मन्दिर अपने देश में है। यह संख्या तो ऐसे मन्दिरों की है जहाँ विधिवत् पूजा-आरती और भोग प्रसाद होते हैं। एक पुजारी और एक सहायक पर कम से कम १५० रुपया खर्च तो आता ही होगा। भोग प्रसाद, भगवान के श्रृंगार मन्दिर की सफाई, पुताई, रंगाई मरम्मत पर १०० रुपये से कम क्या खर्च होता होगा। इस प्रकार एक मन्दिर पर २५० रुपये प्रतिमास खर्च हुआ। वर्ष भर में यह खर्च लगभग २ हजार रुपये पड़ता है और सारे देश के मन्दिरों में न्यूनतम खर्च का हिसाब लगाया जाय तो लगभग २४० करोड़ रुपये आता है। इन मन्दिरों में कई तो ऐसे भी हैं जहाँ एक वक्त के भोग प्रसाद पर ही हजार, दस हजार खर्च आता है। उन्हें छोड़कर न्यूनतम व्यय का अनुमान यहाँ लगाया गया है। अन्यथा उन्हें भी जोड़ लिया जाय, तो पाँच-छ: अरब रुपयों से कम का खर्च मन्दिरों पर नहीं होता और प्रयोजन क्या है उनका कुछ नहीं। क्या उद्देश्य पूरा होता है—कुछ नहीं। क्या काम होता है, बस केवल आरती, पूजा और भोग, प्रसाद। इतनी विशाल राशि का निष्प्रयोजन व्यय यदि किसी रचनात्मक गतिविधि में लगे तो नवनिर्माण का लक्ष्य एक बड़ी सीमा तक पूरा किया जा सकता है।

तो क्या मन्दिरों को बन्द कर दिया जाय ? नहीं यह भी अनुचित होगा। करोड़ों धर्म प्राण भारतीयों का लगाव भले ही न हो पर उनके लिए मन्दिर इतने महत्त्वहीन नहीं हैं कि उनकी वे उपेक्षा करने लगें। आवश्यक है कि मन्दिरों के वर्तमान स्वरूप में समय के अनुरूप परिवर्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाया जाय तथा उनकी गतिविधियाँ इस प्रकार की निर्धारित की जायें कि वे अपना उद्देश्य पूरा कर सकें। जनसामान्य के कन्धे पर मन्दिरों के व्यय निर्वाह का भार पड़ता है। वह भेंट-चढ़ावे के रूप में मिलता हो या दान-दक्षिणा के रूप में। मन्दिरों और उनकी व्यवस्था में लगे व्यक्तियों का खर्च जनता की उदारता से ही चलता है परन्तु मान्दिरों से बदले में आजकल वैसा कुछ नहीं मिल रहा है। जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि बरती गयी उदारता निरर्थक नहीं गयी।

मन्दिरों में काम करने वाले पुजारी और कर्मचारियों के जिम्मे आजकल मुख्य काम यही है कि वे सुबह-शाम की आरती का प्रबन्ध करें और समय-समय पर आते रहने वाले पर्व त्यौहार मनाने की व्यवस्था करें। मन्दिरों की पूजा-आरती का समय प्रातःकाल और संध्या काल रहता है। दोनों वक्त की व्यवस्था और कार्यक्रम में एक-एक घण्टा लगा माना जाय तो दिन भर में दो घण्टे का समय लगता है । सुबह शाम कुल मिलाकर दो घण्टे का समय यदि मन्दिर के लिए लगा दो एक घण्टा और अतिरिक्त कार्यों के लिए मान लिया जाय तो शेष २० घण्टे का समय बचता है। इन बीस घण्टों को पुजारी या मन्दिर के कर्मचारी किस प्रकार व्यतीत करते हैं यह कहना मुश्किल है। क्योंकि और कोई काम भी तो नहीं होता मन्दिर के सम्बन्ध में। खाने-पीने और सोने के १२ घण्टे निकाल दिये जायँ तो भी शेष आठ घण्टे का समय बचता है और इसमें पुजारियों के पास कोई काम नहीं रहता। निठल्लापन सभी तरह की खुराफातों और शैतानियों का जनक है। कहा भी है—खाली दिमाग शैतान का घर होता है। तो अधिकांश पण्डे, पुजारी नशेबाजी, मक्कारी, चालाकी और अन्य दूसरी दुष्प्रवृत्तियों के शिकार हो जाते हों तो आश्चर्य नहीं।

उनके कार्यों का, दुष्प्रवृत्तियों का सर्वसामान्य पर जो प्रभाव पड़ता होगा, वह मन्दिर, मन्दिर के पुजारी और कर्मचारियों पर अनास्था तथा अश्रद्धा उत्पन्न करने का ही कारण बनता है। एक समय था जब इन्हीं मन्दिरों से धर्मनिष्ठा और सत्शिक्षण का प्रेरणा प्रवाह बहता था, एक समय था जब मन्दिरों में चलने वाली धर्म चर्चाओं तथा सत्संग कार्यक्रमों में भाग लेकर लोग अपनी समस्याओं का समाधान खोजते थे। पर आज स्थिति यह है कि उन या उन जैसे कार्यक्रम चलाने की बात तो दूर पण्डे, पुजारियों की दिनचर्या और रहन-सहन देखकर विचारशील व्यक्तियों को जुगुप्सा उत्पन्न होती है।

बात ऐसी नहीं है कि अब ही कोई नया परिवर्तन करना जरूरी हो गया हो। समय-समय पर मन्दिरों से जन जागरण के कार्य चले हैं और लोगों की धर्मनिष्ठा को एक नयी दिशा मिली है। मध्यकाल में महाराष्ट्र भर के धर्म संस्थानों में अखाड़ों की काम में लाया गया है। उस समय मुगल शासकों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों का सामना करने के लिए तेजस्वी बलवान और मनस्वी नागरिकों की आवश्यका हुई तो समर्थ गुरु रामदास ने मन्दिरों को अखाड़ों का केन्द्र बनाया। मन्दिरों के पुजारी और मठों के महन्त पूजा पाठ करने और कराने के साथ लोगों को कसरत, कुश्ती, खेलकूद तथा शस्त्र संचालन की शिक्षा भी देने लगे। इन्हीं शिक्षण केन्द्रों से निकले लोग शिवाजी की सेना में भर्ती हुए और अन्याय का मुकाबला डट कर करते रहे।

गुरुगोविन्द सिंह ने भी गुरुद्वारों के निर्माण के साथ कीर्तन पाठ और सैनिक शिक्षा का उद्देश्य जोड़े रखा। वहाँ शस्त्र संचालन के साथ-साथ नवयुवकों को ऐसी शिक्षा भी दी जाती थी, जिससे कि उनके हृदय में देश भक्ति का ज्वार लहराने लगता और वे दासता के विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार खड़े हो जाते।

देशव्यापी नास्तिक विचारधारा को निरस्त करने के लिए इनसे भी पूर्व आद्य शंकराचार्य ने देश भर के मठ मंदिरों को धर्मशिक्षा का केन्द्र बनाया। वहाँ प्रशिक्षित नवयुवक नास्तिक लोगों के बुद्धिवादी तर्कों का उनकी ही भाषा में उत्तर देते और यह अभियान ऐसा सफल रहा कि कालान्तर में ही देश भर में वैदिक धर्म की जय पताका लहराने लगी।

आज की परिस्थितियाँ भिन्न हैं। अपने देश को आजाद हुए अभी तीन दशक भी पूरे नहीं हुए हैं। यों तो इस अवधि में भी कितने ही देशों ने अपना कायाकल्प कर लिया है। परन्तु अपने यहाँ जन-स्तर पर चलाये जाने वाले किसी ऐसे कार्यक्रम का अभाव रहा है जिसमें सर्वसाधारण की नागरिक चेतना जग सके, राष्ट्र के नव निर्माण का उसे दायित्व बोध हो। अतः इस प्रकार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ मन्दिरों में चल पड़ें जिनसे कि सर्वसामान्य को नव निर्माण की प्रेरणा मिल सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभी अपने देश में अशिक्षा का बोलवाला है। मन्दिरों में प्रौढ़शाला चलायी जायँ तो वर्ष भर में ही इसके चमत्कारी परिणाम सामने आ सकते हैं। अधिक न सही २५ व्यक्तियों को ही प्रौढ़शाला में साक्षरता का अभ्यास कराया जाय और ६ महीने में ही एक ग्रुप को साक्षर बनाया जाय तो वर्ष भर में तीन करोड़ व्यक्तियों को अशिक्षा के अन्धकार से निकाला जा सकता है। शहर या गाँवों में संध्या समय प्राय: सभी लोगों को अवकाश मिलता है। उस समय लोगों को मन्दिर में इकट्ठा कर उन्हें धर्म और अध्यात्म की प्रगतिशील प्रेरणाओं को स्फुरित किया जाय तो पर्याप्त मनोरंजन के साथ-साथ सर्वसामान्य को नैतिक शिक्षण भी मिलता रह सकता है।

सामाजिक जीवन में परिष्कार की प्रेरणा देने के लिए प्रगतिशील धर्म आयोजनों, संस्कार कार्यक्रमों को भी अपनाया जा सकता है। मन्दिरों को ज्ञान मन्दिर के रूप में भी प्रतिष्ठित किया जा सकता है। जीवन जीने की कला सिखाने वाला सत्साहित्य रखकर मन्दिर के ही किसी कमरे में पुस्तकालय चलाया जाय तो कई व्यक्तियों की ज्ञान पिपासा शान्त करने का सुवसर मिलेगा। प्रौढ़ शिक्षा, पुस्तकालय, समाज सुधार, व्यायामशाला, शाक-सब्जियाँ उगाने, संगीत सीखने और आसन-प्राणायामों की शिक्षा देकर मन्दिरों की उपयोगिता में चार-चाँद लगा सकते हैं। मन्दिरों को जन जागरण का केन्द्र बनाकर न केवल उनकी महत्ता और उपयोगिता को बढ़ाया जा सकता है, उन्हें जन-जागरण का केन्द्र बनाकर लोक श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु बनाया जा सकता है। बदलते समय के साथ मन्दिरों को जन जागरण का केन्द्र बनाकर ही उनकी सुरक्षा की जा सकती है अन्यथा उनका अस्तित्व उपयोगिता के अभाव में संदिग्ध ही रहेगा।

नये मन्दिरों का निर्माण नहीं पुरानों का नवोन्मेष आवश्यक

बद्रीनाथ के वर्तमान छोटे मन्दिर के स्थान पर बड़े भव्य मन्दिर का निर्माण करने का निर्णय मन्दिर की प्रबन्धक, व्यवस्था समिति ने ले लिया है। ३,००० मीटर की ऊँचाई पर बनने वाले इस मन्दिर के निर्माण में लगभग एक करोड़ से अधिक ही रुपया लगेगा। धर्म प्राण देश भारत में भव्य और विशाल मन्दिरों का बनाना कोई नयी बात नहीं। पहले भी बनते थे और आज भी बन रहे हैं किन्तु देखना यह है कि क्या भारत में मन्दिरों की कमी है? आज के समय में इतना धन लगा कर नये मन्दिर बनाना आवश्यक है ? क्या ईंट, पत्थर और सीमेण्ट के मन्दिर बना देने से ही धर्म के टिके रहने का काम पूरा हो जायगा ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर खोजा जाय तो नये मन्दिरों के निर्माण के स्थान पर पुरानों का जीर्णोद्धार नवोन्मेष और मन्दिरों के साथ जुड़ी हुई और समाज की प्रगति का जन-जागरण का लक्ष्य पुनर्जीवित किया जाना कहीं अधिक आवश्यक और उपयोगी है।

सार्वजनिक और लोक कल्याण के उद्देश्य से निर्मित किसी भवन, संस्थान या केन्द्र का निर्माण जितना महत्त्वपूर्ण होता है उनका संरक्षण, उनकी सुरक्षा और उनका सार्थकत्व बनाये रखना भी उससे कुछ कम महत्त्व नहीं रखता। मन्दिर की इमारतों को ही लें। पुरी के महत्त्वपूर्ण धार्मिक व ऐतिहासिक मन्दिर के भवन में ऐसी खतरनाक दरारें पड़ गयी हैं कि उसकी मरम्मत के लिए केन्द्र सरकार से सहायता की याचना करनी पड़ी है।

इस प्रसंग पर बोलते हुए केन्द्रीय शिक्षा व संस्कृति मन्त्री नरूल हसन ने बताया था कि पुरी मन्दिर की देखभाल का दायित्व केन्द्र सरकार नहीं उड़ीसा सरकार का है किन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में केन्द्र सरकार आर्थिक सहयोग देने को तैयार है। उसके साथ ही उन्होंने जिन तथ्यों पर प्रकाश डाला वे सोचने का विषय है। उन्होंने बताया कि १९६४ के पहले इस मन्दिर की सुरक्षा, देखभाल व प्रबन्ध वहाँ के राजा करते थे। उसके पश्चात् उड़ीसा सरकार द्वारा गठित एक प्रबन्ध समिति के हाथ में इसका दायित्व आया, वह चार-बार इसकी मरम्मत करा चुकी है। मन्दिर की सम्पत्ति सारे देश भर में है किन्तु उसे लोगों ने दबा ली है और मरम्मत के लिए सरकार से सहायता चाही जा रही है। मन्दिर का प्रबन्ध भी सरकार के हाथ में है, पुरी के जिलाधीश की अध्यक्षता में मन्दिर की प्रबन्ध समिति गठित की गयी है।

यह स्थिति केवल पुरी के मन्दिर की ही हो सो बात नहीं ऐसे कितने ही मन्दिर हैं जो ऐतिहासिक व धार्मिक महत्त्व के होते हुए भी जीर्णशीर्ण अवस्था में हैं। सरकार द्वारा गठित देवस्थान बोर्ड द्वारा उनकी देखभाल, सुरक्षा व प्रबन्ध में सहायता दी जाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ ही महीनों पहले तंजबूर के एक सर्वदलीय सम्मेलन में बताया गया है कि अकेले तमिलनाडु में मन्दिरों की कुल संख्या १३,००० है प्राय: सभी मन्दिर धार्मिक व ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। इनमें नब्बे प्रतिशत मन्दिर ऐसे हैं कि जिनके भवनों की तत्काल मरम्मत नहीं करायी गयी तो ये बहुत शीघ्र ही ध्वस्त हो सकते हैं। यही बात सी. पी. रामस्वामी अय्यर समिति ने भी बतायी थी। अकीट के नबलूर मन्दिर चिंगुलपुर के तिरपचूर जैसे ऐतिहासिक मन्दिर भी जीर्णशीर्ण हो चले हैं। इनकी देखभाल व सुरक्षा के लिये तमिलनाडु सरकार ने तमिलनाडु देवालय बोर्ड की स्थापना की है जो इनकी प्रबन्ध व व्यवस्था देखता है और उनकी मरम्मत के लिए आर्थिक सहायता देता है जो मन्दिर की संख्या व मरम्मत के लिए आवश्यक राशि से बहुत कम होती है। इस प्रकार सरकार के आधिपत्य में प्रबन्धित मन्दिर और सरकारी ढंग ढर्रे से चलने वाली व्यवस्था जहाँ हमारे लिए लज्जाजनक स्थिति उत्पन्न करती है वही नये मन्दिरों के निर्माण को अनावश्यक सिद्ध करती है। जो मन्दिर पहले के हैं उनके भवनों की मरम्मत भी नहीं हो रही है तो नयों के निर्माण का औचित्य कहाँ रह जाता है।

पिछली कई शताब्दियों से मन्दिरों में लगी हुई अपार धन सम्पदा ने कई समस्याएँ उत्पन्न की हैं। एक तो उनकी सुरक्षा का प्रश्न ही बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया। मन्दिरों में आवश्यकता से अधिक सम्पदा, स्वर्णाभूषण आदि एकत्रित हो जाना भी हमारे प्राचीन देवमन्दिरों के तोड़े जाने, मूर्तियों के खण्डित किये जाने का एक कारण बना था। सौराष्ट्र के सोमनाथ महालय की अछूती धन सम्पदा के लोभ में गजनी का दुर्दान्त दश्यु महमूद भारत आया और उस मन्दिर को ध्वस्त कर मूर्ति तोड़ अपार सम्पदा लूट ले गया। यही क्यों उसने सत्रह बार भारत को प्राय: हर बार मन्दिर ही उसकी लूट के लक्ष्य बने थे। यों वह यह लूट धर्म प्रचार के नाम पर करता था किन्तु उसका मूल प्रयोजन लूटना ही था।

औरंगजेब के 'गाजी' बनने व हिन्दू मन्दिर को तोड़ने के पीछे उसकी धन लिप्सा भी प्रमुख थी। मुस्लिम बादशाहों द्वारा हिन्दू मन्दिरों को तोड़ने के पीछे यह धन सम्पदा भी थी जो उन्हें ललचाया करती थी और वे 'कुफ्र' मिटाने के बहाने उसे लूट लिया करते थे।

धन को देखकर विचलित हो जाना मानव मन की एक सहज कमजोरी है। जिस प्रकार आवश्यकता से अधिक धन एकत्रित हो जाने के कारण बड़े-बड़े मन्दिर मुसलमान शासकों, लुटेरों द्वारा लूटे गये थे वैसी प्रकट तो नहीं पर छद्म लूट आज भी कम नहीं चल रही है। मन्दिरों में छोट-मोटी चोरियाँ होने के समाचार भी यदाकदा प्रकाश में आते ही रहते हैं। मन्दिरों के प्रबन्ध कर्त्ताओं के भ्रष्टाचार व अनियमितता के कई प्रसंग भी सामने आते रहते हैं, जिनके मूल में मन्दिरों में आवश्यकता से अधिक धन सम्पदा का एकत्रित हो जाना ही है। सम्पत्ति आती रहे यह बात तो ठीक है किन्तु वह लोकहित के कार्यों में लगायी जाती रहे तो ऐसी स्थिति उत्पन्न ही न हो।

स्वर्गीय सी. पी. रामस्वामी अय्यर की अध्यक्षता में जो जाँच समिति गठित की गयी थी उसने अपनी जाँच के बाद यह तथ्य सामने रखा कि हिन्दू देवस्थानों के हिसाब-किताब में भारी अनियमितता बर्ती जाती है, इस आयोग ने देखा कि इन कई धार्मिक संस्थानों, मन्दिरों में जो रख-रखाव व प्रबन्ध का खर्च खातों में अंकित किया जाता है वह वास्तविक व्यय से कई गुना अधिक होता है। दक्षिण के मन्दिरों में त्रिकाल पूजा का भारी खर्च खातों में चढ़ा रहता है, जबकि वहाँ एक ही बार पूजा होती है।

भ्रष्ट लोग धन के लोभ से प्रेरित हो अच्छी आय वाले मन्दिरों की प्रबन्ध समिति में घुस कर मन्दिर की चल, अचल सम्पत्ति पर हाथ साफ करने का भी सफल प्रयास कर जाते हैं। जैसा कि पुरी के मन्दिर के सम्बन्ध में केन्द्रीय शिक्षा, संस्कृति मन्त्री ने बताया था। ऐसा कई मन्दिरों के साथ हुआ है और हो रहा है। अत: इस प्रकार आवश्यकता से अधिक सम्पदा का एकत्रित रहना कई तरह की हानियाँ उत्पन्न करता है।

आज भी हमारे अधिकांश देवस्थानों में आवश्यकता से कहीं अधिक आय होती है। तिरुपति के देवस्थानम् की आय ९,१८,४४,००० रुपये है और भी ऐसे हजारों मन्दिर हैं जिनकी आय लाखों रुपये वार्षिक है। यह धन जनता की जेब से ही आता है अत: उसका संग्रह न करके जनहित के कार्यों में ही लगा दिया जाना उचित है।

इन सब तथ्यों के प्रस्तुतिकरण का अभिप्राय यह कहना नहीं है कि मन्दिरों की कोई उपयोगिता नहीं, वे व्यर्थ हैं या उनसे जनता को कुछ भी लाभ नहीं मिलता और न ही उपरोक्त तथ्यों से यह ध्वनि ही निकलती है। किन्तु यह बात तो स्पष्ट है कि मन्दिरों से जो उपयोगिता समाज को मिल सकती थी, और उनके द्वारा समाज की जो महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पूरी होने के उद्देश्य को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टिगत रखते हुए उनकी आवश्यकता, अनिवार्यता को स्वीकारा गया था, वह पूरी तरह समाज को नहीं मिल पा रही है। उसके लिए मन्दिरों को उपयोगी और सार्थक बनाये जाने की आवश्यकता है।

बुरा मानने की बात नहीं है आज का विज्ञान-विश्वासी, तर्कशील और बुद्धिवादी व्यक्ति मन्दिरों की ओर मुँह करना नहीं चाहता। उसके पीछे उस उपयोगिता के नहीं दिख पाने और उनके साथ जुड़ जाने वाले मिथ्याडम्बर व ऊपर वर्णित विकृतियाँ ही नजर में आना बहुत बड़ा कारण है।

ऐसी बातें हिन्दू देवालयों व धर्म संस्थानों के साथ ही हुई हों सो बात नहीं है। ऐसे उदाहरण प्राय: सभी धर्मों में देखने को मिल जाते हैं कि जहाँ किसी भी धार्मिक संस्थान या व्यवस्था में जड़ता आयी, उनकी उपयोगिता पूरी तरह सिद्ध नहीं हुई वहाँ विकृतियाँ फैलीं और उनमें सुधार करना पड़ा। पीतल के लौटे को नित्य माँजने की तरह ये सुधार भी आवश्यक है। व्यक्ति के लिए जिस प्रकार आत्म निरीक्षण का अपरिहार्य महत्त्व है वैसे धर्म, सम्प्रदाय व राष्ट्र के लिए भी है। हमारे मन्दिर आज उसी दौर में गुजर रहे हैं।

मन्दिर, जहाँ आस्तिकता, धर्म, अध्यात्म और समाज सेवा के महान लक्ष्यों को सम्पादित करने के उद्देश्य से निर्मित किये जाते थे वहाँ हर वर्ग, हर समुदाय व हर जाति का व्यक्ति आता था और आत्म चेतना के साथ समाज-चेतना, विश्व-चेतना को जगाकर जाता था। समाज के जनता के जागरण के लिए केन्द्र थे—मन्दिर। जैसे स्कूल के पीछे शिक्षा, अस्पताल के पीछे चिकित्सा, घर के पीछे पारिवारिक व दाम्पत्य माधुर्य, वैश्यालय के पीछे रूप व तन की हाट का बोध होता है, वहाँ इसी प्रकार के क्रिया-कलाप चलते हैं वैसे ही मन्दिर के साथ जुड़ा हुआ है मनुष्य और ईश्वर जो जन-जन में अभिव्यक्त हो रहा है, उनके दिव्य सम्मेलन और विकास का अर्थ जुड़ा हुआ है। मन्दिर यह अर्थ देते रहें तभी कहा जा सकता है कि उनकी पूरी उपयोगिता व्यक्ति को, समाज को, विश्व को मिल रही है।

यह अर्थ स्थूल पत्थर चूने व प्रतिमा-युक्त मन्दिर में निहित नहीं रहता उसके साथ जुड़ी भावनाओं और तदनुरूप उनसे चलाये जाने वाले क्रिया-कलापों में निहित रहता है। स्कूल की इमारत जरूरी तो है पर वही सब कुछ नहीं होती यदि छात्र अध्यापक और शिक्षा धर्म का पालन वहाँ न हो। उसी प्रकार चिकित्सालय आदि के भवनों व उपकरणों की भी वही स्थिति है जो शरीर और प्राण की। मन्दिर की इमारत यदि शरीर है तो उसमें निहितार्थ उसका प्राण है। लगता है हमारे वर्तमान मन्दिरों के शरीर व प्राण दोनों ही छीजते, क्षीण होते जा रहे हैं—उन्हें पर्याप्त चिकित्सा की आवश्यकता है।

यह प्राण ही वही शक्ति है जो मृत को जीवित कर देती है। इतिहास साक्षी है एक समय फ्रांस के शरीर—भूत भाग पर जर्मनी का अधिकार हो गया था किन्तु उसका प्राण देशभक्तों के हृदय में जीवित था—लन्दन में बैठे जनरल दगाल के हृदय में जीवित था और उसने फिर अपने शरीर को जर्मनों से छीन लिया। यहूदियों के पास एक समय राष्ट्र की भावना तो थी, भूमि नहीं थी उस भावना ने भूमि भी पा ली और आज इसाइल अपने से पाँच गुने मिस्र को तीन-तीन बार पछाड़ चुका है। कहने का अर्थ है हमारे लिए मन्दिरों की इमारतों, उसके धन को ही महत्त्व नहीं उनकी उपयोगिता उनके साथ जुड़ी जनश्रद्धा, भावना की रक्षा का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है।

मन्दिरों की क्षीण हो चली सामाजिक उपयोगिता को पुन: सबल बताया जा सके, स्थापित किया जा सके इसके लिए उस ओर ध्यान देना पहली आवश्यकता है। यदि वहाँ स्थापित हो गयी तो अभी जो लाखों मन्दिर भारतवर्ष में है वे ही काफी हैं। छोटे से तमिलनाडु में जब १३,००० जाने-माने मन्दिर हैं तो सारे भारत में लाखों मन्दिर होंगे। उन्हें ही जन जागरण के केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है।

मन्दिरों के स्थूल कलेवर—भवनों की सुरक्षा, मरम्मत व रख-रखाव के लिए ही अभी बहुत कुछ करना है। धर्म के क्षेत्र में धर्म—निरपेक्ष सरकार की सहायता चाहना हमारी अश्रद्धा व जागरूकता के अभाव को ही स्पष्ट करता है। यह भी मान लिया जाय कि सरकार की दृष्टि मन्दिरों की सम्पदा व आय पर है तो भी जब तक उनके स्थापित प्रबन्धकों संचालकों की ओर से कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न न की जाय या उनकी कोई कमजोरी सामने न आये तब तक कोई भी धर्म निरपेक्ष सरकार किसी के देवालयों के मामलों में हस्तक्षेप करके हस्तगत करने का साहस नहीं कर सकती। अत: मन्दिरों का रख-रखाव मरम्मत आदि धर्मावलम्बियों को ही करनी चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करोड़ों रुपयों की लागत से नये मन्दिर बनाने की अपेक्षा पुरानों का जीर्णोद्धार कराया जाना अधिक आवश्यक है।

भगवान सबके हैं। सब मन्दिरों में एक ही सत्ता की भिन्न-भिन्न स्वरूपों में पूजा होती है। यदि बद्रीनाथ धाम के नये मन्दिर निर्माण की राशि पुरी धाम के जगन्नाथ मन्दिर के जीर्णोद्धार में लग जाय तो उसमें कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं है। हमारे देश में इतने मन्दिर और धर्मार्थ भवन हैं कि उन्हीं का पूरा लाभ उठाया जा सके तो भी हम कहीं से कहीं पहुँच जायँ।

कन्हैलाल कपूर नामक व्यंगकार ने अपने एक व्यंग लेख 'सी इण्डिया' में देवालयों के बारे में लिखा था उसका आशय है कि बम्बई नगर में इतने मन्दिर-मस्जिद और गिर्जाघर आदि भगवान के घर हैं कि उनमें लाखों आदमी रह सकते हैं किन्तु भगवान बहुत बड़े हैं उन्हें रहने को बहुत जगह चाहिए इसलिये हजारों बम्बई वासियों को इन देवालयों में स्थान नहीं मिल सकता, उन्हें फुटपाथों पर सोना पड़ता है। व्यंग बड़ा पैना है पर उसमें सच्चाई का अंश भी है उसे कड़वी दवाई की तरह पी जाने, स्वीकार लेने और उन कमियों को निकाल देने में ही लाभ है जो हमारे मन्दिरों और धार्मिक मान्यताओं को समयानुकूल बना सकेंगे।

आज विज्ञान ने अपनी उपयोगिता को सिद्ध किया है तो उसे हर किसी को मानना पड़ता है। हमारे मन्दिरों में देवमूर्तियों के लिए भी बिजली के पंखे लगाये जाते हैं। ऐसे कितने ही उदाहरण देखने को मिल जाते हैं वैसे ही अध्यात्म, धर्म भी अपने उपयोगिता विज्ञान से दस गुनी सिद्ध कर सकता है और उसे सिद्ध करने की आवश्यकता है। मन्दिरों को भी केवल, मूर्ति की पूजा, अर्चा, दर्शन, दान, दक्षिणा, उत्सव, महोत्सव तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता। उनकी उपयोगिता को प्रखर और सामयिक सन्दर्भ में जनता के सामने रखना होगा।

लकीर पीटने वाली बात को-पिछली बात को पिछली पीढ़ी तो मानती रह सकती है पर आने वाली पीढ़ी जो राकेट युग में जन्म ले रही है जो जाने अनन्त ब्रह्माण्डीय स्थिति में अपने को विकसित हुआ देखे तो, वह इन सब ढर्रों को गले उतारने वाली नहीं है और विज्ञान का यह कोरा बुद्धिवाद और भौतिकवाद संसार को शुष्क और नीरस बनाकर रख देगा।

भारतवर्ष में ऐसे गाँव गिने-चुने ही होंगे जहाँ कि एक भी मन्दिर न हो। पहले तो सारा ईश्वर एक मन्दिर में ही बसा हुआ है। भुवनेश्वर मन्दिरों के आधिक्य के कारण मन्दिरों का नगर कहलाता है, वृन्दावन में घर-घर में मन्दिर हैं। जिन गाँवों में मन्दिर नहीं हो वहाँ प्राचीन ऋषि परम्परा के ऋषिकुलों की तरह गाँव की चौपाल या किसी सघन वृहद विरप की सुखद छाँव को ही मन्दिर मान कर उसमें निहित भावनाओं व उद्देश्यों को साकार किया जा सकता है। इन मन्दिरों में पूजा, अर्चना तो यथावत् चलती रहे उसके साथ ही वहाँ से ऐसी गतिविधियाँ भी चलायी जायँ जो लोगों के सम्मुख धर्म का आदर्श और व्यावहारिक स्वरूप सामने रख सकें। 'व्यक्ति' इनके सहारे अपने व्यक्तित्व, सुख, सुविधा, आनन्द का विकास कर सके व दूसरों के लिए उनकी प्राप्ति में सहयोगी बन सकें जीवन की इस सफलता, सार्थकता में धर्म का क्या उपयोग हो सकता है मन्दिरों की क्या भूमिका हो सकती है ? इसका शिक्षण भी मन्दिरों में चलाया जाय। धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की समस्त प्रचारात्मक, रचनात्मक व संघर्षात्मक गतिविधियाँ यहाँ से चलायी जानी चाहिए। इसके लिये प्रत्येक धर्म प्राण भारतीय को वैचारिक स्तर पर संगठित होकर प्रयास करने के लिए भोजन, निन्द्रा आदि नित्य कर्मों की तरह जैसे पहले यज्ञ, हवन आदि किया करते थे, उसी नियमितता व तत्परता से करना चाहिए। ऐसी स्थिति में मन्दिरों से समाज पूरी उपयोगिता पा सकेगा।

मन्दिरों का एक ही अर्थ है—जन साधारण में धर्म भावनाओं का, श्रद्धा आस्थाओं का जागरण और उनकी पुष्टि—संवर्धन। देवस्थान पुराने हों अथवा नये उनका एक स्वरूप होना चाहिए और यदि देवमन्दिर पुराने हैं, जीर्ण-शीर्ण हो रहे हैं तो ऐसे व्यक्तियों को विचार करना चाहिए जो नये मन्दिरों का निर्माण करने की बात सोच रहे हैं। उन्हें यह विचार करना चाहिए कि नये मन्दिर का निर्माण अधिक आवश्यक है या पुराने मन्दिरों का नवोन्मेष न्यायतुला पर विचार कर ही कोई कदम उठाना अधिक उचित होगा।

परिवर्तन के लिए धर्मतन्त्र का ही आश्रय लेना होगा

किन्हीं देशों में किन्हीं अन्य माध्यमों से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवर्तन हुए हों परन्तु भारत में कोई भी परिवर्तन धर्मतन्त्र का सहारा लिए बिना सम्भव नहीं हुआ है। इतिहास का पन्ना-पन्ना इस बात साक्षी है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनमानस के बारे में यहाँ तक कहा है कि—'यदि आपको भारत में नास्तिकवाद का भी प्रचार करना है तो लोग आपकी बात तभी सुनने को तैयार होंगे जब आप उस विचार को धर्म का कलेवर देंगे।

इन दिनों जिस सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक क्रान्ति की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, उसका समर्थ माध्यम भी केवल धर्मतन्त्र ही हो सकता है। क्योंकि रूढ़ और प्रगतिगामी होते हुए भी जनसाधारण के मन मस्तिष्क में धर्म का जो स्थान है वह अन्य किसी तन्त्र, विचारधारा या दर्शन से सम्भव नहीं है। साथ ही ऐसा भी नहीं है कि भारत में धर्मतन्त्र ऐसा निकम्मा है, जिसके माध्यम से जनमानस में परिवर्तन न हो सके।

धर्मतन्त्र के माध्यम से जनमानस में परिवर्तन करने की आवश्यकता पूरी करने की हमारे देश में पूरी सम्भावना है। इन दिनों यद्यपि धर्ममंच प्रतिगामी हाथों में है और उससे प्रतिगामी प्रेरणायें ही मिलती हैं फिर भी इतनी अधिक जनशक्ति और धनशक्ति इस तन्त्र में लगी हुई है कि उसके सदुपयोग का प्रयत्न किया जाय तो सुखद परिवर्तन की आशा की जा सकती है। उदाहरण के लिए मन्दिरों को ही लें। भारत में गाँवों और शहरों की कुल संख्या छह लाख है। एक स्थान पर कम से कम एक मन्दिर तो मानना ही चाहिए। यद्यपि मामूली गाँवों और कस्बों में कई-कई देवताओं के कई-कई मन्दिर भी होते हैं फिर भी औसतन एक गाँव में एक का औसत भी मानें तो मन्दिरों की संख्या छः लाख होती है।

इन छः लाख मन्दिरों में कम से कम छः लाख पुजारी तो होंगे ही, उनके परिवार भी हैं। इस प्रकार छः लाख परिवारों का श्रम-समय मन्दिरों में ही लग जाता है।

इन छः लाख मन्दिरों में सैकड़ों मन्दिर ऐसे हैं जिनकी लागत लाखों में नहीं करोड़ों में है। लाखों की लागत वाले मन्दिर तो हजारों होंगे। यदि एक मन्दिर की औसत लागत २० हजार भी मानी जाये तो छह लाख मन्दिरों की इमारत लागत १,२०० करोड़ रुपये होती है। इसके अतिरिक्त मन्दिरों का खर्चा चलाने के लिए स्थाई फण्ड सर्वत्र है। किसी मन्दिर से कृषि लगी हुई है तो किसी से मकान-जायदाद। यह पूँजी भी कम से कम २० हजार तो मानी ही जा सकती है। इससे कम की ब्याज या आमदनी से छोटे मन्दिर का भी खर्च नहीं चल सकता। इस प्रकार यह रकम भी निर्माण पूँजी के बराबर अर्थात् १,२०० करोड़ हो जाती है। मन्दिरों का इमारती मूल्य और स्थिर पूँजी दोनों ही मिलाकर करीब २,४०० करोड़ होते हैं।

इतनी विशाल धन सम्पत्ति का उपयोग यदि ठीक तरह समाज के पुनरुत्थान में हो सके तो उसके चमत्कारी सत्परिणाम सामने आ सकते हैं। माना कि मन्दिरों की शक्ति का व्यय स्थूल भौतिक प्रयोजनों के लिए नहीं किया जाना चाहिए—न किया जाय, पर बौद्धिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक एवं नैतिक विकास के कार्यक्रम भी क्या कम हैं। इन दिशाओं में अभी बहुत काम होना है। देश जितना आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। उस पिछड़ेपन को दूर किया जा सके तो भौतिक एवं आर्थिक विकास की दिशा में भी कारगर कदम उठाये जा सकते हैं।

प्राचीनकाल में जब मन्दिरों का निर्माण हुआ तो उन का प्रमुख उद्देश्य जनमानस में धार्मिकता की निष्ठा जमाना और उस निष्ठा को आगे बढ़ाना था। उस समय ऋषियों और मनीषियों के मस्तिष्क में एक ही प्रयोजन था कि इन धर्म संस्थानों के माध्यम से जनमानस में धर्मधारण का जागरण एवं अभिवर्धन किया जाता रहे। मन्दिर एक प्रकार के धर्मसंस्थान हैं। प्राचीनकाल में ये धर्म संस्थान मात्र देवपूजन के केन्द्र ही नहीं होते थे वरन् उनमें वे समस्त रचनात्मक प्रवृत्तियाँ भी पलती थीं जो जन-कल्याण के लिए आवश्यक थीं। मन्दिर एक प्रकाश स्तम्भ की तरह होते थे। अपने क्षेत्र में मानवीय उत्कर्ष एवं कल्याण के सभी सम्भव आयोजन करना उनका उद्देश्य होता था। पुजारी या महन्त का एक मात्र उद्देश्य जन जीवन में सत्प्रेरणायें उत्पन्न करने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना ही था। मन्दिर रूपी धर्म संस्था उन सभी सत्प्रवृत्तियों का केन्द्र रहती थी जो उस समय की आवश्यकताओं के लिए अभीष्ट होती थीं। जिस प्रकार शासन तन्त्र के कचहरी, कर्यालय आदि होते हैं उसी तरह धर्मतन्त्र के कार्यालय मन्दिर होते थे। भ्रमण करने वाले परिव्राजक, साधु-सन्त वहाँ ठहरते थे और अफसरों के दौरे के समय जो उद्देश्य डाक-बंगलों और इन्सपैक्शन हाउसों से पूरा होता है, वही सुविधा मन्दिरों में परिव्राजक साधुओं एवं धर्म प्रचारकों को मिलती थी।

आज मन्दिरों के कलेवर में कहाँ क्या होता है ? इसे जानते हुए अधिक कुछ कहना आवश्यक नहीं है। आवश्यकता केवल इतनी भर है कि इस पवित्र संस्था में जो विकृतियाँ आ गई हैं उन्हें दूर किया जाय और उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज के अनुपयोगी स्वरूप को पुनः उपयोगी बनाया जाय। आज की अव्यवस्था से क्षोभ होना अस्वाभाविक नहीं है। इस क्षोभ के आवेश में ही कई व्यक्ति मूर्ति पूजा एवं मन्दिरवाद का खण्डन करने लगे हैं। यह अनुचित तो है ही, असम्भव भी है। मूर्तिपूजा एवं मन्दिर संस्था की नींव अब इतनी गहरी जा चुकी है कि उसे उखाड़ने के लिए प्रयत्न करना अपनी शक्ति का अपव्यय करना ही होगा। विचार किया जाना चाहिए कि प्रत्यक्षतः कोई उपयोगिता नहीं दिखाई देने पर भी लोग इन धर्म-संस्थानों के प्रति इतने श्रद्धालु हैं कि अपना पेट काटकर इनके लिए साधन व्यवस्था जुटाते रहते हैं तो उपयोगी हो जाने पर तो और अधिक सहयोग मिल सकता है।

धर्ममंच में लगी जनशक्ति और उसकी निर्वाह व्यवस्था का उपरोक्त विवरण तो एक अंश मात्र है। मन्दिरों के अतिरिक्त आश्रमों, अखाड़ों, साधु-सन्तों की निर्वाह व्यवस्था का एक बड़ा भाग अभी नहीं गिना है। उन सबको शामिल किया जाय तो कल्पना करना मुश्किल होगा कि जनमानस धर्म के प्रति कितना आस्थावान् और कितना श्रद्धा सम्पन्न है।

खेद है कि इस महत्त्वपूर्ण माध्यम का अभी सदुपयोग नहीं हो रहा है और जनमानस के निर्माण के अभाव में सारे प्रगति प्रयास अधूरे पड़े हैं। अपने देश की, आज की स्थिति पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि उसका सुधार धर्मतन्त्र के माध्यम से लोक शिक्षण के बिना सम्भव नहीं होगा। उदाहरण के लिए दरिद्रता को ही लें। दरिद्रता अभिशाप है और उसके कारण मनुष्य की स्थिरता और प्रगति में भारी बाधा पड़ती है। यह तथ्य सर्वमान्य है, पर यह भी भुला नहीं देना चाहिए कि हाथ-पैर और मस्तिष्क रहते हुए भी यदि मनुष्य दरिद्र रहता है तो इसमें सबसे बड़ा कारण उसका मानसिक पिछड़ापन ही हो सकता है।

अपने समाज को व्याप्त कुरीतियों ने जितनी हानि पहुँचाई है उतनी विदेशी दासता ने भी नहीं पहुँचाई होगी। बात को यों भी कहा जा सकता है कि लम्बी राजनैतिक पराधीनता का बहुत बड़ा कारण अपने सामाजिक ढाँचे और चिन्तन स्तर में खोखलापन घुस जाना ही रहा है अन्यथा इतनी बड़ी जनसंख्या का, इतनी सामर्थ्य और परम्परा का धनी देश इतने समय तक इस प्रकार के उत्पीड़न और अपमान का शिकार नहीं रहता।

जाति-उपजातियों के आधार पर प्रचलित ऊँच-नीच और अपने-विराने की मान्यता ने एक समाज को अनेक समाजों में विभक्त करके रख दिया है। मत-मतान्तरों और सम्प्रदायों ने एक ही धर्म के टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिये हैं और एक ही संस्कृति के अनुयायियों के बीच गहरी खाइयाँ खोदकर खड़ी कर दी हैं। आधी जनसंख्या नारी वर्ग को प्रतिबन्धित और पद-दलित स्थिति में पटक दिये जाने के कारण समाज अर्धांगं पक्षाघात से पीड़ित की तरह अपंग बन गया है। आधी जनसंख्या दुर्दशाग्रस्त स्थिति में रहे तो उसकी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ दयनीय रहेंगी ही। पिछड़ी नारी प्रतिभा सम्पन्न पीढ़ियों का निर्माण कैसे कर सकेगी और कैसे उस पिछड़ेपन के रहते हुए परिवारों के वातावरण में हर्षोल्लास की अनुभूतियाँ जीवन्त रह सकेंगी।

विवाह-शादियों में जितना खर्च होता है, उसके रहते आर्थिक स्थिरता बने रहना असम्भव ही है। जो कमाया जाता है वह शादियों में स्वाहा हो जाता हैं। वह पैसा बच सकता होता और पूँजी बनकर प्रगति के आधार खड़े करता तो आज अपने देश में हर ओर खुशहाली दृष्टिगोचर होती, पर इस दुर्भाग्य को क्या कहा जाय कि शादियों में होने वाले अपव्यय के रूप में हमारे उपार्जन का अधिकाधिक भाग होली की तरह जलता रहता है। मृतक भोज अलन-चलन, देवी-देवता, भिक्षुकों की सेना द्वारा खड़े किये जाने वाले नित नये आडम्बर सब मिलकर समाज पर इतना अधिक आर्थिक दबाव डालते हैं कि उत्पादन प्रयत्नों की उपलब्धि जलते तबे पर पानी की बूँदों के समान भाप बन कर उड़ जाती है।

आर्थिक उन्नति के प्रयासों की तुलना दुधारी गाय से की जाये—सामाजिक कुरीतियों को टूटे पेंदे का दोहन पात्र कहा जायेगा। गाय जो दूध देगी वह फूटे पेंदे से होकर नीचे निकल जायेगा फिर गोपालन से जो आशाएँ लगाई गई थीं वे साकार कैसे हो सकेंगी ? गरीबी दूर करने के लिए उपार्जन बढ़ाने की जितनी आवश्यकता है उतना ही यह भी आवश्यक है कि उन कुरीतियों का उन्मूलन किया जाय जो हमारी आर्थिक बर्बादी के लिए उत्तरदायी हैं। यदि कुरीतियाँ और उनका स्रोत मानसिक पिछड़ापन ज्यों का त्यों चलता रहा तो प्रगति के सभी प्रयास किसी भी स्थिति में समुचित लाभ प्रस्तुत नहीं कर सकते।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाति-उपजाति छूत-अछूत, वर्ग-सम्प्रदायों के खाई-खन्दक हमें एक जाति, एक राष्ट्र की तरह सुगठित और सशक्त नहीं बनने देंगे और भीतर की दुर्बलतायें बार-बार उभर-उभर कर आती रहेंगी। अस्तु सशक्तता बढ़ाने के लिए पौष्टिक भोजन जुटाने की तरह यह भी आवश्यक है कि भीतर ही भीतर खोखलापन उत्पन्न कर रही बीमारियों का उपचार किया जाय अन्यथा बलिष्ठता उत्पन्न करने की विशालकाय तैयारी रक्त में घुली बीमारी से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों की तरह उज्ज्वल भविष्य की सम्भावनाओं को कभी भी गतिमान नहीं होने देगी।

दरिद्रता की तरह शिक्षा की कमी भी अपने पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण है, पर स्मरण रखा जाना चाहिए कि सरकारी स्कूलों की योजना से अशिक्षा का समय उन्मूलन सम्भव न होगा सकेगा। उसके लिए भी भावनात्मक वातवरण बनाना होगा और जिस तरह लोग अपने पुरुषार्थ से रोटी कमाते हैं, सरकार से माँगने नहीं जाते, उसी प्रकार अपनी और अपने परिवार की शिक्षा-व्यवस्था जुटाने की आवश्यकता जब अनिवार्य समझी जायेगी तो अन्य दैनिक साधन जुटाने की तरह ही शिक्षा का प्रबन्ध स्वत: किया जायेगा।

चाहे दरिद्रता हो चाहे अशिक्षा। सभी दुर्बलतायें मनुष्य के पिछड़े हुए चिन्तन एवं दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया है। यदि इस वस्तु स्थिति को समझ लिया जाय तो पत्ते सींचने के साथ-साथ जड़ सींचने की आवश्यकता भी अनुभव की जायेगी और वह ठोस आधार हस्तगत हो जायेगा जिससे व्यापक दु:ख-दैन्य से स्थाई मुक्ति मिल जायेगी। अस्तु जनमानस में विवेकशीलता उत्पन्न करना अपने युग का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। यदि सोचने की सही दिशा और कार्य करने की सही शैली उपलब्ध हो सकें तो हर मनुष्य अपने साधनों में ही समुचित उपार्जन कर सकता है और आगे बढ़ने का रास्ता निकाल सकता है तथा अपनी एवं समाज की समस्याओं के समाधान में समुचित योगदान दे सकता है। ऐसी स्थिति में दरिद्रता जैसी अनेकों समस्याओं को अपने बलबूते पर ही किया जा सकता है। यदि इस तथ्य की ओर ध्यान दिया जा सकें तो प्रतीत होगा कि आर्थिक उन्नति की तरह ही सोचने की परिष्कृत एवं प्रगतिशील पद्धति से जनसाधारण को परिचित कराया जाना भी उतना ही आवश्यक है और उतना ही महत्त्वपूर्ण है। इस आवश्यकता को अनुभव करने के बाद इसकी पूर्ति के लिए अविलम्ब व्यवस्था जुटाई जानी चाहिए।

कहना नहीं होगा कि यह आवश्यकता प्रभावपूर्ण लोकशिक्षण से ही पूरी हो सकती है। विचारणीय यह है कि भारत के लोकमानस में मानवतावादी सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों की स्थापना किस पृष्ठभूमि पर हो सकती है तथा उन्हें उपयोगी गतिविधियाँ अपनाने के लिए किस आधार पर सहमत किया जा सकता है। यहाँ यह तथ्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अपने देश की तीन-चौथाई जनता अशिक्षित है और आबादी की दृष्टि से प्राय: तीन-चौथाई जनता ही छोटे देहातों में रहती है। आज की अपनी जनसंख्या ९६ करोड़ में से करीब ४५ करोड़ अशिक्षित तथा उतने ही देहाती हैं—यही है असली भारत। शिक्षितों को उपयोगी जानकारियाँ देने के लिए पुस्तकें, पत्रिकायें हैं तो शहरी लोगों के लिए सभायें, संस्थायें, अपने-अपने ढंग से काम करती रहती हैं। समस्या ४५ करोड़ लोगों की है, जिनके लिए प्रगतिशीलता का मार्गदर्शन करने वाले उपयुक्त माध्यमों का खटकने वाला अभाव सामने खड़ा है। शिक्षितों को राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजविज्ञान आदि कितने ही आधारों पर समझाया जा सकता है क्योंकि उनकी मानसिक पृष्ठभूमि का इतना विकास पढ़ने-सुनने से हो चुका है कि इन आधारों के सहारे आज की सामयिक समस्याओं का स्वरूप और हल समझाया जा सके, किन्तु अशिक्षित और देहाती भारत की कठिनाई यही है कि उनकी पूर्व जानकारी प्रधानतया धार्मिक जानकारियों तक ही सीमित है।

धर्म भारतीय जनता का प्रिय विषय भी है। अस्तु, बात का सिलसिला उसी से जोड़कर वैसे ही उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे तथ्य हृदयंगम कराये जा सकते हैं, जिन्हें आज की स्थिति में समझाना और अपनाया जाना आवश्यक है। पहले भी इस तरह के कई प्रयोग सफलतापूर्वक किये जा चुके हैं। समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र भर में करीब ८०० हनुमान मन्दिर स्थापित किये थे और उनके माध्यम से छत्रपति शिवाजी की सेना के लिए रसद एवं सैनिकों की आवश्यकता पूरी की जाती थी। उन मन्दिरों में सेवा-पूजा करने वाले महन्त वस्तुत: समर्थ गुरु की धर्म सेना के सैनिक मात्र थे। वे भगवान हनुमान के पूजन, वन्दन, आरती, प्रसाद की व्यवस्था करते थे, पर साथ ही यह भी जानते थे कि अधर्म के नाश और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म की रक्षा के अपना सर्वस्व होम देने वाले अंजनिकुमार की कृपा केवल उसे ही मिलेगी जो उनके आदर्शों को अपनायेगा। हर पुजारी, हर हनुमान भक्त उन दिनों हनुमान का अनुयायी बनने और असुरता के शासन को उखाड़ने में लगा हुआ था।

गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख सम्प्रदाय के गुरुद्धारों को सैनिक छावनियों के रूप में विकसित किया था। वहाँ कीर्तन, पाठ-पूजन, आरती-प्रसाद आदि सब कुछ होता था पर साथ ही यह उद्देश्य हर सिक्ख के मस्तिष्क में भरा था कि उन्हें अनीति के विरुद्ध संघर्ष करना है और आसुरी नृशंसता को परास्त करके धर्मराज्य की स्थापना करनी है।

जो कार्य समर्थ गुरु रामदास द्वारा परिष्कृत हनुमान मन्दिरों ने और सिक्ख गुरुद्वारों ने किया, प्राचीनकाल में अपनी-अपनी सामयिक परिस्थितियों के अनुसार हर मन्दिर करता था। उनकी सेवा से सारा समाज लाभान्वित होता था और धर्म की महत्त्वपूर्ण सेवा बन पड़ती थी। वर्तमान परिस्थितियों में यही पद्धति उपयुक्त है। परिवर्तन के लिए, समग्र प्रगति के लिए धर्मतन्त्र का आश्रय लेने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। इसके लिए धर्मतन्त्र का आश्रय लेकर उसकी कथा-गाथाओं की संगति मिलाते हुए व्यक्ति, परिवार और समाज की समस्त समस्याओं का हल हृदयंगम कराया जाय तथा उन्हें प्रगतिशील गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। धार्मिक आयोजनों में भावनात्मक वातावरण बनता है—उसमें गरम लोहे से उपकरण ढालने जैसी बात और भी आसानी से बन सकती है। यह प्रयोग प्राचीनकाल से चलता रहा है और अपने समय की माँग को पूरा करने के लिए इस प्रक्रिया को व्यापक बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

धर्म जागृति के महान् केन्द्र—देव मन्दिर

भारतीय धर्म की मान्यताओं के अनुसार देवमन्दिरों की स्थापना को एक बहुत बड़ा पुण्य माना गया है। कारण यह है कि देव-मन्दिरों में प्रवेश करने से ही नहीं, उनके दर्शन मात्र से आस्तिक मस्तिष्कों में धर्म भावना का विकास होता है। जिन लोगों के जीवन में नियमित पूजा-उपासना का स्थान नहीं है, वे भी देव-मन्दिर में जाने का अवसर आने पर भगवान् का स्मरण करते हैं, उन्हें मस्तक झुकाते हैं, इस प्रकार इस बहाने उन्हें उपासना का थोड़ा-बहुत अवसर मिलता है।

साधारण जनता का आकर्षण सदा दृश्य वस्तुओं पर केन्द्रित रहता है। बुद्धिजीवी और सुविकसित दार्शनिक अभिरुचि के व्यक्ति बहुत थोड़े होते हैं। प्रबुद्ध मानस की जनता निराकार उपासना से ध्यान, मनन, चिन्तन से काम चला सकती है, पर जिनकी वह भूमिका जाग्रत नहीं हुई है, उस कोटि-कोटि जन समूह के लिए दृश्य आकर्षण युक्त देव-मन्दिरों की आवश्यकता रहती है। लोग उन देवस्थानों की शोभा, विशालता, विचित्रता, विशेषता तथा समय-समय पर होते रहने वाले उत्सव आयोजनों को देखने कौतूहलवश जाते हैं, पर अन्ततः धर्म-बुद्धि के विकास का, भगवत स्मरण का न्यूनाधिक अवसर वहाँ मिल ही जाता है।

आज देव-मन्दिर कुछ पंडे, पुजारियों का पेट पालने मात्र के माध्यम रह गये हैं, पर प्राचीन काल में धर्म-प्रचार एवं सामाजिक संगठन के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे। जो पुरोहित-पुजारी वहाँ रहते थे, उनके भोजन निर्वाह की व्यवस्था भगवान् का भोग लगने के नाम पर जनता कर देती थी और वे उपार्जन की चिन्ता से निवृत्त होकर अपना सारा समय जनता की धर्म बुद्धि जाग्रत रखने में लगाते थे। लोगों के परस्पर मिलते-जुलते रहने और विद्यालय, चिकित्सालय, व्यायामशाला, सत्संग पुस्तकालय, न्याय-व्यवस्था आदि अनेकों सत्प्रवृत्तियों का वहाँ से संचालन होता था। परिव्राजक सन्त-महात्मा, धर्म प्रचारक इन देव स्थानों में आश्रय पाते थे और गाँव-गाँव पाये जाने वाले इन मन्दिरों में रहने वाले भोजन, ठहरने आदि की व्यवस्था के द्वारा अपना धर्मप्रचार भ्रमण बड़ी आसानी से जारी रखते थे। मन्दिरों में अन्न क्षेत्र खुले रहने का यही कारण था।

मन्दिरों को आध्यात्मिक एवं धार्मिक सत्प्रवृत्तियों का, नैतिकता एवं भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के केन्द्र बनाया जाना चाहिए। इतनी विशाल इमारतों में अनेक लोकोपयोगी प्रवृत्तियों का संचालन बड़ी आसानी से हो सकता है। भगवान् का भोग जो वहाँ लगता है, उससे कई लोक-सेवी अपना निर्वाह करके सारा समय रचनात्मक कार्यों में लगा सकते हैं और समाज को सुसंगठित करके प्राचीन काल के ऋषि युग का दृश्य उपस्थित कर सकते हैं। बड़ी-बड़ी जायदादें जो मन्दिरों से लगी हुई हैं या जो दैनिक चढ़ावा वहाँ आता है, उस प्रचुर धन का उपयोग यदि मुरझाये हुए हिन्दू-धर्म को सींचने में किया जाने लगे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तो वह पुनः हरा-भरा हो सकता है, सुगन्धित पुष्पों और मधुर फलों से लद सकता है, उसकी छाया में भारत ही नहीं सारा संसार सुख-शांति प्राप्त कर सकता है। नव-जागरण और पुनर्निर्माण के इस युग में हमें अपने महत्त्वपूर्ण प्रेरणा केन्द्र देवालयों की ओर समुचित ध्यान देना होगा। उपेक्षा करने से तो यह धर्म-शक्ति व्यर्थ ही नहीं जायगी, अनैकिता और दुष्प्रवृत्तियों का केन्द्र भी बनती चली जायगी।

देव मन्दिरों की महान उपयोगिता का सदुपयोग करना जितना आवश्यक है उतना ही कठिन भी है, क्योंकि जिन लोगों के व्यक्तिगत आर्थिक स्वार्थ उन सम्पत्तियों तथा आमदनियों से जुड़े हुए हैं वे यह बात सहज ही स्वीकार न करेंगे कि वे अब तक जो मनमानी सुविधा, प्रतिष्ठा एवं आर्थिक लाभ उठाते रहे हैं उसमें किसी प्रकार का घाटा पड़े, मन्दिरों के निर्माता एवं संचालक भी अधिकतर ऐसे ही मिलते हैं जो सेवा एवं लोकहित का महत्त्व नहीं समझते और देखते हैं कि पुजारीजी को बदला या नाराज किया या अब तक की परम्पराओं में कोई हेर-फेर किया तो देवता उनसे नाराज हो जायेंगे, ऐसी दशा में कार्य काफी जटिल हो जाता है। कानूनी दाँवपेच भी इन्हीं लोगों के पक्ष में पड़ते हैं जो मन्दिरों के स्थान तथा धन को अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए उपयोग करते रहे हैं।

इस दिशा में पहला कदम यह उठाना होगा कि जन साधारण को देव मन्दिरों सदुपयोग की बात समझाई जाय। जब तक यह उपयोगिता समझ में न आ जाय तब तक सत्ताधिकारियों का स्वामित्व जमाये हुए लोगों की कुछ हेर-फेर करने के लिए तैयार करना कठिन है। जनता का विवेक सर्वथा एवं सर्वदा अन्धविश्वास पर ही आधारित नहीं रहता। यदि समझदारी की बात ढंग से लोगों को लगातार समझाई जाती रहे तो वह वस्तु स्थिति को देर-सबेर में समझ भी सकती है।

दूसरा कार्य जो करना है वह यह है कि आदर्श देवालय स्थापित किये जायँ। जिनके कार्य-कर्ताओं और कार्यक्रमों को देखकर हर कोई यह अनुभव करे कि देवस्थानों का वास्तविक आदर्श यही होना चाहिए और इसी प्रक्रिया का सर्वत्र अनुकरण किया जाना चाहिए। एक आदर्श नमूना उपस्थित करा देने से लोग उसकी सार्थकता और उपयोगिता से प्रभावित होते हैं। गायत्री तपोभूमि शान्तिकुंज एवं ब्रह्मवर्चस् का निर्माण इसी आधार पर हुआ है। यहाँ स्थापित गायत्री माता की प्रतिमाएँ मानवता, पवित्रता, सात्विकता, आस्तिकता, सद्बुद्धि, सेवा, श्रद्धा आदि दैवी सत्प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि के रूप में किया गया है। नारी की श्रेष्ठता, मातृ भाव की महानता एवं सत्प्रेरणा के रू५ में ईश्वर की झाँकी करने के लिए गायत्री माता का प्रतीक सर्वोत्तम है। अन्यान्य देवताओं के गुण, स्वभाव, कार्य एवं चरित्रों के सम्बन्ध में पुराणों में काफी घोटाला मिलता है और उससे साधारण बुद्धि के साधकों में अश्रद्धा भी बढ़ती है। ऐसी परिस्थितियों में मानवी चरित्र दुर्बलता के इतिहास से सर्वथा रहित गायत्री माता की प्रतिमा को सर्वथा निर्दोष एवं साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्दिता से रहित एक धरम पवित्र माध्यम माना जा सकता है।

गायत्री की देव प्रतिमा के पूजन अर्चन पर बहुत थोड़ा खर्च होता है। सारी इमारत एवं उपलब्ध एक-एक पाई का उपयोग सार्वजनिक धर्म सेवा के लिए होता है। पूजा-उपासना के नियत समय के अतिरिक्त यहाँ के निवासियों का पूरा समय जनहित के धर्म-सेवा के कार्यों में लगता है। अनेकों सत्प्रवृत्तियों का संचालन यहाँ से होता रहता है। जो एक बार इस मन्दिर को ध्यानपूर्वक देख लेता है उसे मन्दिरों की उपयोगिता समझने में देर नहीं लगती और वह सोचने को विवश होता है कि—"काश, ऐसे ही प्रेरणाप्रद अन्य मन्दिर भी होते।"

गायत्री परिवार के आदर्शों के आधार पर छोटे-बड़े गायत्री-मन्दिर जगह-जगह स्थापित होने चाहिए। गरीब लोग भी थोड़े-थोड़े पैसे इकट्टे करके श्रमदान करके, कच्चे-पक्के मन्दिर बना सकते हैं। जहाँ मूर्तियों की सुविधा नहीं वहाँ बड़े चित्र सुन्दर चौकी पर सुसज्जित रीति से स्थापित कर लिए जायँ। सच पूछा जाय तो मूर्तियों की अपेक्षा चित्र स्थापना अधिक सुविधाजनक है क्योंकि उनमें नियमित भोग, प्रसाद एवं पूजा-अर्चा का कठिन प्रतिबन्ध नहीं है। जहाँ सम्भव हो वहाँ अखण्ड ज्योति भी स्थापित करनी चाहिए और नित्य अग्निहोत्र का प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसे मन्दिरों से धर्म-सेवा की, समाज-सेवा की अनेकों सत्प्रवृत्तियाँ संचालित की जा सकती हैं। जहाँ नया मन्दिर बनाना सम्भव न हो वहाँ एक कमरा माँगकर या किराये पर लेकर गायत्री-मन्दिर के रूप में सुसज्जित किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्मरण रहे यह गायत्री-मन्दिर ऐसे स्थान पर स्थापित किये जायँ, जहाँ जनता का आवागमन अधिक संख्या में एवं अधिक सरलता से हो सके। नगर से दूर कहीं जंगल-बगीचे में ऐसे मन्दिर बनाना बेकार है। जमीन सस्ती या मुफ्त में मिलने के लोभ में कई बार गाँव से दूर ऐसे स्थान बना लिए जाते हैं तो पीछे उनकी रखवाली भी नहीं हो पाती, चोर सामान उठा ले जाते हैं, आलसी जनता वहाँ पहुँच नहीं पाती, स्त्रियाँ दूर जाने में संकोच करती हैं। ऐसी दशा में वह प्रयत्न बेकार चला जाता है। मन्दिर भले ही माँगे के या किराये के कमरे में हों पर होना ऐसे स्थान पर चाहिए जहाँ सबकी निगाह पड़े और जनता को वहाँ पहुँचने में सुविधा हो। ऐसे मन्दिर का एक छोटा नमूना अखण्ड-ज्योति प्रेस में स्थापित उपासना-गृह देखा जा सकता है। नया मन्दिर बनाने में भी श्रमदान से, मामूली कच्चे मन्दिर बनाये जा सकते हैं जो कम खर्च में बन जायँ। बहुत बड़ी, अत्यन्त विशालकाय इमारत बनाने की अब जरूरत नहीं, वह धन तो धर्म जागृति के कार्यों में व्यय किया जाना चाहिए। धनीमानी लोग अपने पैसे का सदुपयोग इस प्रकार के मन्दिरों की स्थापना में करें तो कम खर्च में अधिक कीर्ति और अधिक पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। गायत्री परिवार की हर शाखा को यह प्रयत्न करना चाहिये कि उसका एक गायत्री मन्दिर भी अवश्य हो।

सामाजिक जीवन में आध्यात्मिकता एवं धर्मभावना को प्रवेश करने के लिये जिस प्रकार सार्वजनिक देव-मन्दिरों की आवश्यकता है उसी प्रकार पारिवारिक जीवन में सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों को सुरक्षित रखने तथा बढ़ाने के लिये पारिवारिक देव-मन्दिरों की आवश्यकता होती है। भारतीय संस्कृति से प्रेम रखने वाले सद् गृहस्थों के घरों में अभी भी जहाँ-तहाँ छोटी देव पूजा की स्थापना दिखाई देती है। जिन घरों में नियमित पूजा, उपासना होती है, इसके लिये नियत कक्ष बने होते हैं वहाँ अपेक्षाकृत बुराइयाँ घटतीं और अच्छाइयाँ बढ़ती जाती हैं। पाप, द्वेष, दुराचार, रोना-शोक, दुख-दारिद्रय घटते हैं और श्री, समृद्धि, उन्नति, सफलता एवं प्रसन्नता के कारण बढ़ते हैं। उपासना से उत्पन्न होने वाले शक्ति कम्पनों से ऐसा परिणाम होना सहज एवं स्वाभाविक है।

पारिवारिक देव-मन्दिरों की नितान्त आवश्यकता है। यह तो हिन्दू-परिवार में होने चाहिए। गायत्री उपासना कहलाने वाले प्रत्येक व्यक्ति के घर में तो ऐसे देवालय अवश्य ही रहें। जिन घरों की एक स्वच्छ, हवादार कोठरी गायत्री मन्दिर स्थापना के लिए स्वतन्त्र रूप से मिल सके वहाँ उसे बहुत ही नयनाभिराम ढंग से बनाकर उपासना गृह बनाना चाहिए। दीवारों पर आदर्श वाक्य एवं महापुरुषों के चित्र लगे हों। चौकी पर गायत्री माता एवं यज्ञ पिता के चित्र शीशे में मढ़े हुये रखे हों। स्थापना की चौकी, पीले वस्त्र से ढकी हो, उस पर पूजा उपकरण शंख, पंच-पात्र, आरती, धूपदानी, गंगाजली आदि सजी हुई हों। कुशाओं के आसन बिछे हों। घर के सभी लोग एकसाथ या बारी-बारी अपनी उपासना किया करें। प्रातः सायं दोनों समय आरती हुआ करे, जहाँ अलग स्वतन्त्र कोठरी की व्यवस्था न हो वहाँ ऐसे कमरे की अलमारी में या कोने में उपासना चौकी स्थापित करनी चाहिये जिनमें बहुत सामान न भरा हुआ हो और जहाँ अधिक आवागमन या कोलाहल न होता हो।

उपासना-गृहों में स्वाध्याय की व्यवस्था अनिवार्य है। गायत्री सद्बुद्धि की देवी है। सद्बुद्धि का प्रधान मार्ग स्वाध्याय है। जप, ध्यान, पूजा, वन्दन के अतिरिक्त हर धर्म-प्रेमी को नियमित रूप से स्वाध्याय भी करना चाहिये। बुद्धि की देवी केवल रोली, अक्षत, धूप, दीप से प्रसन्न नहीं हो सकती, उसे प्रसन्न करने के लिए स्वाध्याय आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक उपासना-गृह के साथ सत्साहित्य की एक अलमारी या सन्दूक भी अवश्य रहनी चाहिए। स्वाध्याय के लिये विचारोत्तेजक एवं जीवन की, समाज की गुत्थियों पर प्रकाश डालने वाला साहित्य होना चाहिये। बुद्धि-विकास के लिये यह व्यवस्था आवश्यक है। अमुक महापुरुष, अवतार या देवता के चरित्रों को रोज-रोज पढ़ते रहना ही आजकल स्वाध्याय माना जाता है, पर वस्तुतः सच्चा स्वाध्याय वही माना जायगा जो हमारी व्यक्तिगत एवं सामूहिक गुत्थियों के सुलझाने में सहायक हो सके। इस कसौटी पर खरी-उतरने वाली चुनी हुई पुस्तकें ही इन ज्ञान मन्दिरों में रहें, जिनसे बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष सभी उन्नति एवं कठिनाई निवारण में व्यवहारिक सफलता प्राप्त कर सकें।

साधारणतः सभी गायत्री-उपासकों को और विशेषतया प्रज्ञा परिजनों को अपने घरों पर गायत्री ज्ञान मन्दिर की स्थापना करनी है। गायत्री-पुस्तकालय और ब्रह्म विद्यालय चलाने हैं। देव मन्दिर किसी सद्-गृहस्थ को भार रूप न होना चाहिये। इसके द्वारा उत्पन्न होने वाले सत्परिणाम और प्राप्त होने वाले पुण्य की तुलना में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह खर्च ऐसा नहीं जिसे बहुत भारी माना जाय। जहाँ यह कठिन दिखाई पड़े वहाँ कई व्यक्ति मिलकर एक ज्ञान मन्दिर की स्थापना कर सकते हैं।

ज्ञान-मन्दिर संस्थापकों का कर्त्तव्य है कि इस साहित्य को अपने परिचित लोगों को पढ़ाने के लिए प्रेरणा करना आरम्भ कर दें। उनके घर जाकर यह साहित्य देने और वापिस लाने का कष्ट उठावें। इस बहाने लोगों से सम्पर्क स्थापित करने का और उन्हें अपने विचारों का बनाने का अवसर मिलेगा। यह धर्म-फेरों का श्रमदान ही 'ब्रह्म विद्यालय' का संचालन है।

प्रयत्न यह करना चाहिए कि कम से कम १० व्यक्तियों को यह साहित्य पूर्णाहुति तक पढ़वा दिया जाय। इतना कार्य कर लेने वाले और इस ज्ञान प्रसार सेवा प्रक्रिया को आगे भी जारी रखने का व्रत लेने वाले गायत्री-परिवार में 'धर्म प्रचारक' उपाध्याय गिने जावेंगे। इन उपाध्यायों को पूर्णाहुति के अवसर पर लाखों जन समूह के सामने उनके सत्प्रयत्न की प्रशंसा एवं प्रतिज्ञा का प्रदर्शन करते हुए 'उपाध्याय' की उपाधि से विभूषित किया जायगा।

जहाँ हजारों रुपये की लागत से बड़े-बड़े मन्दिर बनते हैं, वहाँ थोड़ी-सी लागत से बनने वाले यह छोटे ज्ञान-मन्दिर देखने में मामूली से प्रतीत होंगे पर निश्चय ही इनके द्वारा कार्य इतना बड़ा होगा, जितना अनेकों मन्दिर नहीं कर पाते। घर में पूजा उपासना होती रहे इतना ही नहीं, वरन् अपने समीपवर्ती क्षेत्र में यह ज्ञान-मन्दिर सद्बुद्धि का प्रकाश भी करते रहेंगे और इन्हीं के आधार पर लाखों-करोड़ों जनता को सद्विचारों की सत्कार्यों को सन्मार्ग की, आत्म-कल्याण की, नैतिकता एवं मानवता की एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की शिक्षा दे सकना सम्भव होगा। यह बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक क्रान्ति का महान् आयोजन है। ज्ञान-मन्दिर योजना के अन्तर्गत हजारों उपाध्याय जब अपने-अपने विद्यालयों को चलाने के लिए समय दान करने लगेंगे तो कोटि-कोटि भारतीयों को धर्म भावनाओं से प्रगति करके प्राचीन काल जैसे गौरवपूर्ण शुभ युग की प्रतिष्ठापना का स्वप्न अवश्य ही सार्थक हो सकेगा।

इन ज्ञान-मन्दिरों और ब्रह्म विद्यालयों की श्रृंखला आगे भी बराबर चलती रहे, इसके लिए मासिक बजट ३०) रखा जा सकता है। तीस रुपया महीना का यह खर्च, किन्हीं अत्यन्त कृपणों को छोड़कर किसी भी सद्गृहस्थ के लिए कठिन न होना चाहिए। एक रुपये रोज प्रायः बच्चे ले भागते हैं। इतना खर्च एक मन्दिर की, विद्यालय की, पुस्तकालय की स्थापना में करते रहना कोई इतना बड़ा भार नहीं है, जो मामूली स्थिति का व्यक्ति भी उठा न सके। हाँ, कार्य की उपयोगिता समझ में न आवे या जो बहुत ही छोटा हो तो बात दूसरी है।

घरों में देव-मन्दिर स्थापित करने वाले एक रुपये रोज का भोग-प्रसाद सहज ही बाँट देते हैं, यह प्रसाद मिठाई के रूप में न होकर ज्ञान के रूप में हो तो अधिक उत्तम है। गायत्री माता निश्चय ही इस प्रकार के विवेक पूर्ण भोग प्रसाद से केवल मिठाई के भोग की अपेक्षा सहस्रों गुनी अधिक प्रसन्न होंगी। नैवेद्य में केवल श्रद्धा है, ज्ञान भोग में श्रद्धा और विवेक दोनों का समन्वय होने से यह 'सोना सुगन्धि' जैसा सुयोग बनता है।

गायत्री ज्ञान-मन्दिरों की स्थापना ब्रह्म विद्यालयों का संचालन ही वह कार्य है, जिसके आधार पर जन-जन के मन-मन में गायत्री माता और यज्ञ पिता का सन्देश पहुँचाया जाना सम्भव है। राष्ट्र के ठोस सांस्कृतिक पुनर्निर्माण के लिए यह प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है। इसे सफल बनाने और सुविस्तृत करने के लिए हमें कुछ त्याग और पुरुषार्थ करना ही चाहिए।

चूँकि गायत्री-उपासना केवल उपासना मात्र तक ही सीमित नहीं है। ज्ञान वृद्धि उसका महत्त्वपूर्ण अंग है, इसलिए गायत्री, मन्दिरों को केवल मन्दिर न कहकर इन्हें गायत्री ज्ञान-मन्दिर कहना चाहिए। अब समय आ गया है कि सामूहिक और व्यक्तिगत गायत्री ज्ञान-मन्दिरों की सर्वत्र स्थापना की जाय। गायत्री-परिवार की प्रत्येक शाखा अपनी प्रवृत्तियों का केन्द्र सामूहिक गायत्री ज्ञान-मन्दिर के रूप से स्थापित करें, इसी प्रकार गायत्री-परिवार के प्रत्येक सदस्य के घर में एक घरेलू गायत्री ज्ञान-मन्दिर हो। यह ज्ञान-मन्दिरों की श्रृंखला सर्वत्र फैले और वर्तमान बड़े मन्दिरों की इमारत तथा साधनों का सदुपयोग हो तो निश्चय ही भारत के सांस्कृतिक पुनरुत्थान में बड़ा योग मिल सकता है।

जनजागरण हेतु ऋषि संस्कृति की दो महत्त्वपूर्ण स्थापनाएँ

अथर्ववेद में दो मंत्र आते हैं—

"अस्ति सन्तं न जहाति, अस्ति सन्तं न पश्यति,"

"देवस्य पश्य काव्यं, न ममार न जीर्यति"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्—"पास बैठे हुए को छोड़ता नहीं, पास बैठे हुए को देखता नहीं" "परमात्मा के काव्य को देख, जो न कभी मरता है, न बूढ़ा होता है !" पहले मंत्र में कहा गया है कि जीवन की विपत्तियों के दो ही कारण हैं—मनुष्य पास बैठे साथी-प्रकृति से चिपटा रहता है तथा वह पास बैठे साथी परमात्मा को देखता नहीं। दूसरे मंत्र में रोग का उपचार-विपत्तियों का समाधान बताया है—परमात्मा की सृष्टि जो न कभी क्षय होती है, न कभी यौवन उसका क्षीण होता है, उससे प्रेरणा लें। वेद मंत्र सृष्टि को परमात्मा का काव्य कहता है। यही बात सांख्ययोग के प्रकारान्तर से, इसी अर्थ में कही गयी है व प्रेरणा दी गयी है कि पुरुष परमात्मा से संयोग करे। इसके लिए ज्ञान अर्जित कर अपनी दृष्टि खोले।

यह विवेचना जिस सन्दर्भ में की जा रही है, इसे समझने का प्रयास करें। हमारे संस्कृति की ज्ञान सम्पदा ऐसी है जिसमें जीवन जीने की शैली का व्यावहारिक शिक्षण दिया गया है। जीवन को कैसे सुव्यवस्थित ढंग से जिया जाय, इसे ऋषियों ने "विद्या" नाम दिया था, जिसे जानने के बाद व्यक्ति बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जब यह समझ में आ जाता है कि मनुष्य भौतिकवादी संसार में रहते हुए कैसे उस परमसत्ता का सान्निध्य पा सकता है, तब सारे अज्ञान के काले मेघ जो प्रज्ञा पर छाये हुए थे, छँट जाते हैं एवं ज्ञान का प्रकाश व्यक्ति को वह दूरदर्शिता देता है जिसे विवेक बुद्धि कहते हैं। इस ज्ञान के, विद्या के सम्बन्ध में जितना हम आर्ष वाङ्मय में पढ़ते हैं, ऋषियों की प्रज्ञा पर, जीवन के बहुरंगी पक्षों पर उनकी पकड़ से आश्चर्यचकित होकर रह जाना पड़ता है। इस विद्या को जन-जन तक पहुँचाने का इसके विस्तार का, जन चेतना को जगाते रहने का पुरातनकाल में क्या उपक्रम था, इस सम्बन्ध में तीर्थ, गुरुकुल तथा आरण्यक की चर्चा पिछले पृष्ठों पर की जा चुकी है। जीवन की शोध कर मानव मात्र के लिए सद्गृहस्थ के लिए प्रेरणादायी निर्धारणों को देने वाला आश्रम तंत्र तथा सत्प्रवृत्तियों का शिक्षण करने वाला देवालयतंत्र ऐसा है, जिसकी महत्ता उतनी ही तथा आज भी प्रासंगिक है।

आज का समाज एक प्रकार से असाध्य रुग्णता से ग्रसित है। आस्थाएँ गिरती चली जा रही हैं। नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। संस्कार परम्परा समाप्त हो जाने के कारण जो विवाह संस्कार अब सम्पन्न होते हैं, वे धूम-धड़ाके के साथ अर्थ प्रधान वातावरण में कामज सम्बन्ध स्थापित होने के रूप में होते हैं। वासना प्रधान वातावरण में बँधे दो प्राणियों से क्या आशा की जाय कि सुसंतति जन्मेगी तथा पारिवारिक वातावरण सुसंस्कृत होगा। परिणाम यही है कि एक घुटन संत्रास भरा विक्षुब्ध जीवन जीते अधिकांश गृहस्थ देखे जाते हैं। लगता है कि दो प्राणियों को जबर्दस्ती बाँध कर इस घर में कैद कर दिया गया है। यदि सामाजिक मर्यादाओं का ध्यान न होता तो ये भी भाग निकलते। जीवन जीने की कला के विभिन्न पक्षों की जानकारी के अभाव के कारण अच्छे खासे शिक्षित, पढ़े-लिखे, ऊँचा वेतन पाने वाले लोग भी ऐसा अनगढ़-श्रुद्र मानवों जैसा जीवन जीते देखे जाते हैं। मानसिक तनाव में दोनों जीते हैं पति भी, पत्नी भी तथा बच्चे इन दोनों के आक्रमणों को झेलकर उद्दण्ड, कुसंस्कारी, संवेदनाहीन प्राणियों के रूप में विकसित होते देखे जाते हैं। यही प्रकारान्तर से आज की परिस्थितियों का सर्वेक्षण है। देव संस्कृति के प्रणेताओं ने परिवार संस्था से लेकर जनसाधारण की स्थिति को दृष्टिगत रख सद्गृहस्थों के प्रशिक्षण हेतु आश्रमों के रूप में एक तंत्र की स्थापना की थी। इसी प्रकार समय-समय पर सुसंस्कारिता का पोषण उन्हें मिलता रहे, इसके लिए जन जागृति के केन्द्रों के रूप में देवालयों-मन्दिरों की स्थापना की थी। यह दोनों स्थापनाएँ मूलतः जनसाधारण "ले मेन" उन नागरिकों के लिए थी जो बहुधा समय निकालकर वहाँ जाते व संजीवनी साधना का शिक्षण लेकर आते थे।

आज तो जो हाल प्रजा का है, उससे बुरा धर्मतंत्र की इन दोनों है स्थापनाओं का है। जीवन की व्यावहारिक शोध करने वाले आश्रमों में तपस्वी ऋषि रहकर अपनी कायसत्ता की प्रयोगशाला में शोध कार्य करते थे तथा उन निष्कर्षों से उन्हें लाभान्वित करते थे जो न गुरुकुलों से जुड़े थे, न आरण्यकों से तथा जिनके पास इतना समय नहीं था कि तीर्थाटन का लाभ ले सकें। आज वही आश्रम मात्र मठ या गेस्ट हाऊस बनकर रह गये हैं। या तो वे व्यावहारिक जीवन से कोसों दूर हैं। ब्रह्म ज्ञान के जिज्ञासु के नाम पर कुछ बाबाजी वहाँ अन्नक्षेत्र के बलबूते पलते देखते जाते हैं। ब्रह्मज्ञान का जिन्हें ककहरा भी नहीं मालूम वे उनके गुरु बने चढ़ावा स्वयं पाते, खाते तथा अपने चेलों को सिखाते देखे जाते हैं अथवा ये आश्रम सुख-सुविधाओं के साधनों से भरे-पूरे गेस्ट हाऊस जैसे बनवाए हैं जिनमें शर्त एक ही है कि वहाँ आने वाला व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, संस्कारों व सभ्यता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मापदण्डों पर भले ही वह गया बीता हो। जब मूल प्राण ही स्थापना का यह विकृत रूप ले लेगा तो वहाँ जाने वालों का क्या कुछ होगा, इसकी परिकल्पना की जा सकती है। मात्र विलासिता ही जिनका उद्देश्य हो, उन संचालकों से क्या अपेक्षा की जा सकती है कि वे औरों में प्रेरणा-उत्साह भरेंगे। सब नहीं प्राय: बहुसंख्य स्थापनाओं की यह स्थिति है।

दूसरा प्रसंग देवालय का लें। इनके निर्माण का प्रमुख उद्देश्य था, जनमानस में धार्मिकता की निष्ठा जमाना व बढ़ाना। मूर्त्तियों के माध्यम से वहाँ सत्प्रवृत्तियों का शिक्षण दिया जाता था। यदि शिवलिंग स्थापित था तो उसके मूल में प्रेरणा संचार करना मूल उद्देश्य था एवं यदि देवमूर्ति स्थापित थी तो उसका भी उद्देश्य यही था। यही नहीं ज्यामितीय दृष्टि से मन्दिरों के निर्माण इतने विलक्षण होते थे कि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का संग्रहण कर मूर्ति के स्थान पर उसका धनी भूत अंश दर्शनार्थी साधकों को नमन करते समय लाभ पहुँचाता था। गुम्बद कमलाकार पुण्य प्रतीक के रूप में बनता था, जिसमें प्रणववाद गूँजता देखा जाता था। मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा होती थी, विधि-विधान के साथ। पाषाण की बनी मूर्ति में जीवन विद्या के कलाकार ऋषि मुनि निश्चित ही अपनी तप ऊर्जा से मंत्र शक्ति के माध्यम से प्राण संचार कर देते थे। आने वाले व्यक्ति मूर्ति को नमन कर उस ऊर्जा से अनुप्राणित होकर जाता था जो उस स्थान विशेष पर विज्ञान सम्मत आधार पर सदैव संग्रहीत बनी रहती थी। इतिहासकारों का मत है कि भारत की स्थापत्यकला से ही मेसोपोटेमिया में पिरामिड निर्माण की प्रेरणा मिली। मस्जिदों के गुम्बदों से लेकर गोथिक प्रणाली पर बने चर्चों के निर्माण के मूल में भी भारतीय देवालयों के स्थापत्य को प्रमुख माना जाता है। पिरामिडों में ऊर्जा संग्रहीत रहती है तथा देहात्मवादी व्यक्तियों ने शवों तथा अन्यान्य वस्तुओं की सुरक्षा हेतु उन्हें पिरामिडों में रखा। पिरामिडॉलाजी अब एक बहु प्रतिष्ठित विद्या है तथा पूर्णत: विज्ञान सम्मत है। इसकी जननी भारतीय मन्दिरों का स्थापत्य ही है। विश्वभर के व्यक्ति भारत के देवालयों की शिल्पकला देखकर भूरि-भूरि सराहना करते हैं क्योंकि उस निर्माण में मात्र कला ही नहीं तत्कालीन विकसित विज्ञान की भी झलक दिखाई देती है।

किन्तु आज की स्थिति देखकर मन क्षुब्ध हो उठता है। भारत में प्राय: ७ लाख गाँव हैं। सब में नहीं तो तीन चौथाई में निश्चित ही एक मन्दिर देखा जा सकता है। कहीं-कहीं गाँवों-कस्बों-बड़े शहरों में एक नहीं कई-कई मन्दिर हैं। इस प्रकार कुछ नहीं तो न्यूनतम पाँच लाख मन्दिर अपने देश में मान लेना चाहिए। पुजारी, महन्त, चौकीदारों के रूप में कर्मचारी के नाम पर हर मन्दिर के पीछे एक व्यक्ति मानें तो पाँच लाख व्यक्ति इसी कार्य में लगे हैं। यदि इन में दो सौ रुपया प्रतिमाह का खर्च भी पूजा उपचार तथा पुजारी पर हो रही व्यवस्था का मान लिया जाय तो दस करोड़ रुपये मासिक एवं १ अरब बीस करोड़ रुपये वार्षिक धनराशि इसी में लगी समझी जा सकती है। यह तो औसत की बात हो रही है। मथुरा, वृन्दावन, काशी, हरिद्वार, मदुराई आदि में तो ऐसे कई मन्दिर हैं जिनमें से प्रत्येक का खर्च कई-कई लाख रुपये मासिक है। इमारती लागत आदि मिलाकर यह लागत लगभग पाँच सौ अरब रुपये बैठती है। इतनी बड़ी धनशक्ति व इतनी विशाल जनशक्ति का यदि सही उपयोग हुआ होता तो उसका परिणाम जादू जैसा हो सकता था। बौद्धिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक व नैतिक उत्थान के ढेरों कार्यक्रम चल सकते थे। सारे राष्ट्र को साक्षर बनाया जा सकता था। हरीतिमा संवर्धन से लेकर कुरीति उन्मूलन के ढेरों कार्यक्रम चल सकते थे। किन्तु राष्ट्रीय विकास तो दूर, धर्मधारणा का विस्तार करने में भी यह अक्षम देखे जाते हैं, इतने बड़े धर्मतंत्र के बावजूद नास्तिकता बढ़ी ही है। मन्दिर दर्शन कर तमाम तरह के भ्रष्ट आचरण में लिप्त प्रच्छन्न नास्तिक अगणित संख्या में देखे जा सकते हैं। मन्दिरों के नाम पर एक दूसरे को धर्मान्ध बनाकर लड़ते-लड़ाते वे देखे जाते हैं जिनके कंधों पर राष्ट्र के संचालन नेतृत्व का दायित्व है। ऐसे में देवालयों के प्रति लोगों की बढ़ती अरुचि अकारण नहीं है। जो जाते हैं, वे भी प्रतिमा को भोग लगाकर मनोकामना पूरी होने की ललक से जाते हैं फिर वह आशा कैसे की जाय जिसकी ऋषिगणों ने अपेक्षा की थी।

धर्मतंत्र से लोक शिक्षण की मुहिम हाथ में लेकर प्रगतिशील अध्यात्म का प्रतिपादन करते हुए जनसाधारण को केन्द्र बिन्दु बनाते हुए आज के आस्था संकट का व्यावहारिक समाधान खोजा गया धर्म के नाम पर हुई स्थापनाओं पर जन-श्रद्धा होना स्वाभाविक है। यदि उसे सही मोड़ दिया जा सके व आश्रमों को पुन: जीवन के प्रयोगों की कार्य-स्थली तथा देवालयों को जन-जागृति का केन्द्र बनाया जा सके तो व्यक्ति की चेतना को सही दिशा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दी जा सकनी सम्भव है। समय के अनुसार आ गयी विकृतियाँ यदि मिटायी जा सकें तो पुन: उन्हें वह सुव्यवस्थित रूप दे सकना सम्भव है जो उनका मूलभूत स्वरूप था, विद्या-विस्तार का व्यापक तंत्र जिनके माध्यम से चलता था। दूरदर्शी ऋषियों ने जो स्थापनाएँ कीं उनकी गरिमा अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए परम पूज्य गुरूदेव ने तीर्थ-आरण्यक-गुरूकुल परम्परा के पुनर्जीवन के अतिरिक्त आश्रम संस्था तथा देवालय तंत्र को भी नये प्राण दिये। प्रतीकोपासना का मूलभूत तत्वर्दशन समझाने तथा देवालयों के माध्यम से जनमानस का जागरण कैसे सम्भव है यह साकार रूप देकर उदाहरण सामने रखकर जन-जन को समझाया। समर्थ गुरु रामदास द्वारा स्थापित हनुमान मन्दिरों तथा गुरुगोविन्द सिंह द्वारा स्थापित गुरुद्वारों की तरह उनमें पुन: प्राण प्रतिष्ठा की। यह बताया कि ईश्वर की पूजा रोली अक्षत से ही नहीं सत्कर्मों से भी होती है। ईश्वर भोग, आरती की ही नहीं, त्याग और बलिदान की अपेक्षा भी रखता है।

आश्रम के रूप में संजीवनी साधना का शिक्षण देने हेतु, लोकसेवी सदृगृहस्थ प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण तथा जीवन की उलझनों को समझते हुए उनका व्यावहारिक समाधान करने हेतु दो स्थापनाएँ स्वयं में विलक्षण हैं। ये हैं गायत्री तपोभूमि मथुरा तथा शान्तिकुंज हरिद्वार। पहली पूर्वकाल की तथा दूसरी उत्तरकाल की स्थापना है। गायत्री तपोभूमि मथुरा में सभी तीर्थों की जल, रज तथा सप्त अखण्ड अग्नियों की स्थापना कर एक तीर्थ की स्थापना की गयी है जहाँ पर अब युग साहित्य निर्माण-प्रकाशन का तंत्र विद्यमान है। क्रान्ति की आग मचा देने वाला, जन चेतना जगाने वाला साहित्य तथा प्रतिमाह घर-घर पहुँचाने वाली प्राणवान पत्रिकाएँ वहाँ से तथा समीपस्थ अखण्ड ज्योति संस्थान से प्रकाशित होती हैं। यही नहीं प्रात:काल से लेकर संध्याकाल तक की दिनचर्या यहाँ की ऐसी है कि व्यक्ति स्वत: ही सुसंस्कारिता के ढाँचे में ढल जाता है। समीप ही प्रज्ञानगर में दो सौ से अधिक व्यक्तियों के रहने व साधनादि उपक्रमों की व्यवस्था है। मूलत: प्रज्ञा अभियान-युग निर्माण आन्दोलन का कार्यक्षेत्र सँभालने वाला केन्द्रीय तंत्र वही है।

आश्रम के रूप में दूसरी महत्त्वपूर्ण स्थापना सप्तर्षि आश्रम के समीप सप्त सरोवर हरिद्वार में शान्तिकुंज की हुई है। विश्वामित्र ऋषि की तप:स्थली में बना यह आश्रम गायत्री का संस्कारित सिद्धपीठ-तीर्थ है, जहाँ युग ऋषि पूज्यवर तथा वंदनीया माताजी ने अगणित साधकों व कुमारी कन्याओं ने करोड़ों गायत्री मंत्र के अनुष्ठान सम्पन्न किए हैं। तीर्थ सेवन से लेकर आश्रम रूपी रिसर्च लेबोरेट्री में रहकर जीवन के मर्म को समझने व अपनी समस्याओं के हल स्वयं निकालने की प्रक्रिया यहाँ सम्पन्न हो जाती है। सभी आर्षकालीन ऋषियों की परम्परा का बीजारोपण व पुनर्जीवन कर के इस स्थान को दैवी चेतना की गंगोत्री के रूप में परिणत कर दिया गया है। यहाँ रहकर नौ दिन की संजीवनी साधना कर कोई भी व्यक्ति व्यक्तित्व निर्माण का परिष्कार का शिक्षण लेता रह सकता है। यही काम आश्रमों में ऋषिगण किया भी करते थे। मूलत: ऋषि प्रबन्धक स्तर के सुव्यवस्था बनाने वाले मन की गुत्थियों को सुलझाने वाले मनश्चिकित्सक थे, जिन्हें चेतना जगत की पहेलियाँ बुझाना आता था। अपने आचरण, पैदा किये गये वातावरण, तप-ऊर्जा तथा उद्बोधन, शिक्षण एवं साधक द्वारा की जाने वाली साधनाओं द्वारा वे आश्रम में रहने वाले व्यक्ति का आमूलचूल काया कल्प कर देते थे। यही प्रक्रिया प्रतिमाह १ से ९,११ से १९ व २९ से २९ तारीखों में माह में तीन बार तथा वर्ष भर में चलने वाले २६ संजीवनी साधना सत्रों में शान्तिकुंज में सम्पन्न होती हैं। दैनन्दिन जीवन का तनाव कैसे ठीक किया जाय, यह बहुमूल्य परामर्श यहाँ की प्रयोगशाला में मनोविज्ञान प्रधान उपकरणों पर परीक्षण कर नि:शुल्क दिया जाता है। व्यक्ति कैसे सारे जीवन को एक प्रयोगशाला बनाकर संस्कारों की खेती कर सकता है व प्रगति पथ पर चाहें वह भौतिक हो अथवा अध्यात्मिक आगे बढ़ सकता है, यह शिक्षण यहाँ दिया जाता है। कभी किसी समय इस धरा पर कण्व ऋषि से लेकर विश्वामित्र, अत्रि ऋषि से लेकर व्यास तथा योग-सूत्रों का आविष्कार करने वाले पतंजलि के आश्रम स्थान-स्थान पर थे। सबका एक ही लक्ष्य था कि मानवी मनकी गुत्थियों का समाधान हो। व्यक्ति शालीनता में भरा सुसंस्कृत जीवन जीना सीखे। शान्तिकुंज उसी परम्परा की एक स्थापना है।

देवालय कैसे होने चाहिए उनका युगानुकूल स्वरूप क्या हो तथा विचारक्रान्ति-सांस्कृतिक क्रान्ति में उनकी भूमिका क्या हो सकती है, यह प्रज्ञा संस्थानों-शक्ति पीठों की उन स्थापनाओं के रूप में देखा जा सकता है जिनके निर्माण का संकल्प संस्कृति पुरुष गुरुदेव द्वारा समय की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभीषिका को देखते हुए लिया गया। आस्थाओं की विषम विभीषिका से जूझने के लिए उन्होंने सारा वातावरण गायत्रीमय बनाने-परोक्ष जगत का संशोधन करने के लिए जन-जागृति केन्द्रों के रूप में गायत्री शक्ति पीठों की स्थापना की बात कही। यह भी कहा कि नये निर्माण जरूरी नहीं। यदि पहले से कोई शिवालय या देवालय स्थापित है तो उसमें प्राण संचार भर कर देना, सत्प्रवृत्ति संवर्धन का तंत्र भर चला देना काफी है। शेष सारी प्रक्रिया तो धर्म तंत्र से लोकशिक्षण की उस स्थापना द्वारा भली-भाँति चल सकती है।

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का लिखा "आनन्दमठ" नामक उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुआ था। "बन्दे मातरम्" गीत जो बाद में राष्ट्रीय गीत बना, इसी से लिया गया था। मन्दिरों से एक क्रान्ति की कल्पना इस संवेदनशील संस्कृति चिन्तन वाले मनीषी ने की थी। यह कल्पना यह बताती है कि कितने अधिक अपेक्षा जन साधारण को उस समय धर्मतंत्र से थी। वे यह चाहते थे कि मन्दिर जागें, ब्राह्मण-साधु आगे आयें तथा जन मूर्च्छना को जगायें। बाद में दक्षिणेश्वर से श्रीरामकृष्ण परमहंस द्वारा यही कार्य सम्पन्न हुआ। क्रान्तिकारी युवा संन्यासी विवेकानन्द वहीं से उभरे व दक्षिणेश्वर की रज परतंत्रता के प्रति विद्रोह की प्रतीक बन गयी। मन्दिर कैसे होने चाहिए ? वस्तुत: हमें दक्षिणेश्वर की काली जैसी जागृति आद्यशक्ति वाले मन्दिर चाहिए जो जनक्रान्ति कर दें। जनमानस में घर जमाए बैठी असुरता से मोर्चा लें। संस्कार भारती केन्द्र बनें। श्रेष्ठ नागरिक बनने का शिक्षण उनमें चले। श्री मदनमोहन मालवीय जी की कल्पना की "पाठशाला-मल्लशाला, प्रतिपर्व महोत्सवा" नामक भारत की पुनर्जागरण योजना उसमें क्रियान्वित हो तथा समर्थ रामदास के व्यायाम मन्दिर बनकर वे समर्थता-संस्कारों के अर्जन का शिक्षण दें। शक्तिपीठों के माध्यम से परमपूज्य गुरुदेव ने देवालय तंत्र को पुनर्जाग्रत कर दिया जो मृतप्राय स्थिति में पड़ा साँसें भर ले रहा था। इसके लिए सामर्थ्यानुसार एक छोटे चरण पीठ से लेकर, बड़े भवन निर्माण तक तथा ज्ञान मन्दिर से लेकर एक हाल में स्थापित प्रतिभा व सत्संग कक्ष तक के निर्माण की छूट उन्होंने दी। शर्त एक ही रखी गयी कि यह तीर्थ परम्परा से लेकर देवालय परम्परा का पुनर्जागरण है अत: इन्हें जन जागृति का केन्द्र बनना होगा। यहाँ से व्यक्ति परिवार, समाज निर्माण की बहुमुखी गतिविधियाँ चलेंगी और मन्दिरों की तरह ये भी मात्र पूजापाठ तक सीमित होकर न रह जायँ। इसे सुनिश्चित करने के लिए वे प्राण प्रतिष्ठा हेतु, कहीं शिलान्यास हेतु स्वयं पूरे भारत भर में २ वर्ष तक भ्रमण करते रहे तथा एक महान परम्परा का पुनर्जीवन कर गए, उसे बनाए रखना व उसके माध्यम से सारे कार्यक्रम चलाना अब हमारा पुनीत कर्तव्य है।

वस्तुत: देव संस्कृति के दो विद्या-विस्तार के ये तंत्र स्वयं में अनूठे हैं भारतवासियों की मनोभूमि धर्म प्रधान है। धर्मतंत्र को प्रगतिशील मोड़ देकर उस माध्यम से साम्प्रदायिकता से लेकर धर्मोन्माद तथा सामाजिक कुरीतियों से मोर्चा लेने से लेकर राष्ट्रीय उत्थान के सशक्त कार्यक्रम भली-भाँति चलाए जा सकते हैं। धर्मतंत्र से लोकशिक्षण की प्रक्रिया में उन्होंने चिरपुरातन स्थापनाओं का युगानुकूल प्रस्तुतीकरण कर बताया कि मन्दिर यदि जाग जायें, संस्कारों का घर-घर विस्तार करें तथा आश्रम अपनी जिम्मेदार समझ लें जीवन के विभिन्न पक्षों पर सर्वांगपूर्ण दृष्टि डालने व समस्याओं को सुलझाने वाला तंत्र विकसित कर लें तो एक विराट स्तर पर अध्यात्मिक सांस्कृतिक क्रान्ति सम्भव है। भारत भूमि में चप्पे-चप्पे में श्रेष्ठ संस्कार प्रसुप्त स्थिति में पड़े हैं। दूरदर्शी द्रष्टा ऋषि ने उन्हें देखकर जगाया है। यदि इन जगे केन्द्रों को क्रान्ति का संदेश वाहक बनाया जा सके तो उज्ज्वल भविष्य बस समीप ही है।

देवस्थापना क्यों ? किसलिए ?

युगसन्धि वेला के अन्तिम दशक के इस पहले वर्ष में जो सर्वाधिक आवश्यकता अनुभव की जा रही है, वह है नवसृजन के लिए विशिष्ट आत्माओं का, सुसंस्कारी देवशक्तियों का धरती पर अवतरण। उनकी खोज व मार्गदर्शन, सही वातावरण देकर उन्हें युग प्रयोजन का बोध कराते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ाना। नवसृजन के लिए सहयोगी तो गीध, गिलहरी भी हो सकते हैं, पर युगान्तरीय दायित्वों को देखते हुए अंगद, हनुमान, नल-नील जैसे मूर्धन्यों की आवश्यकता इन दिनों प्रतीत हो रही है। गौ चराने, गेंद खेलने, और लाठी से गोवर्धन उठाने में तो ग्वाल-बाल भी अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सके थे, किन्तु महाभारत जीतने में भीम, अर्जुन आदि से ही काम चला। महान् परिवर्तनों में योगदान तो हमेशा से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असंख्यों का रहा है, किन्तु उसका सूत्र संचालन संस्कार सम्पन्न महामानव ही करते रहे हैं।

जब खण्डहर बन गए भवन को पूरी तरह विस्मार कर नए रूप में पुनः बनाने जैसा नवयुग सृजन का कार्य सामने हो तो मौलिक संस्कारगत प्रखरता वाले महामानवों की आवश्यकता पड़ती है। प्रशिक्षण, वातावरण एवं सम्पर्क का प्रभाव अपनी जगह महत्त्वपूर्ण है, पर महामानव इतने से ही नहीं बन जाते। उसके लिए जन्म-जन्मान्तरों से संचित संस्कारगत मौलिकता की आवश्यकता होती है। विश्वामित्र ने राम लक्ष्मण को संस्कार पहचान कर ही आग्रहपूर्वक माँगा व उन्हें बला-अतिबला विद्याएँ सिखाकर महान् परिवर्तन के लिए क्षमता सम्पन्न बनाया था। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त, समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी, बुद्ध ने आनन्द, रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द व मत्स्येन्द्रनाथ ने गोरखनाथ को भारी भीड़ से बड़ी कठिनाई से ढूँढ़ निकाला था।

देव भूमिका निभाने के लिए घुने बीजों की नहीं सही बीजों की, संचति संस्कारों वाली आत्माओं की ही खोज होनी है। खिलौने बालू के नहीं, चिकनी मिट्टी के बनते हैं। हथौड़े की चोट जंग लगे लोहे नहीं, फौलादी इस्पात ही सह पाते हैं। ऐसी भूमिका सम्पन्न कर सकने वाली आत्माएँ ऐसी धातु की बनी होती हैं कि उनका उपयोग विशेष प्रयोजन के लिए सम्भव हो सकता है।

ऐसी देव शक्तियाँ अगले दिनों अधिकाधिक संख्या में समाज में जन्म लेने जा रही हैं। जो जन्म ले चुकी हैं उन्हें सहयोगी वातावरण अभीष्ट है। तभी वह प्रयोजन पूरा हो सकेगा। जिसे युगसन्धि के महत्त्वपूर्ण समय में किसी भी स्थिति में पूरा होना है। सम्पदा, शिक्षा श्रमशीलता जैसी विभूतियों से भी अधिक आवश्यकता आज उन देवात्माओं की है जिनमें आन्तरिक वर्चस् विपुल परिमाण में भरा पड़ा है, जिनमें दैवी अनुदान की, संस्कारों कीं समुचित मात्रा विद्यमान है।

कृषि कार्य में किसान का पुरुषार्थ ही सब कुछ नहीं होता, उपयुक्त भूमि और सही बीज का कहीं अधिक योगदान होता है। शिल्पियों की कुशलता कितनी बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो उन्हें भी सही उपकरण चाहिए। कच्चा माल सही न हो तो कारखाने बढ़िया सामग्री कैसे बनाएँ ? बालू से कोई भी कुम्हार टिकाऊ बर्तन नहीं बना सकता। चिकित्सकों के उपचार रोगी की जीवनी शक्ति के आधार पर ही सफल होते हैं। कच्चे लोहे की तलवार से कितना ही बलिष्ठ योद्धा क्यों न हो, जीत नहीं सकता।

इन सब साक्षियों का निष्कर्ष एक ही है कि मौलिक विशिष्टता अपनी जगह जरूरी है। नवसृजन का दायित्व पूरा करने के लिए उसे ढूँढ़ा जाना, खरीदा जाना व मोर्चे पर सही जगह लगाना अब बहुत जरूरी हो गया है। अवतार प्रयोजन को पूरा करने के लिए देवात्माएँ सदैव उपयुक्त माध्यम चुनती हैं। दुष्ट दुरात्माओं की गन्ध उन्हें नहीं भाती। सदाशयता सम्पन्न माता-पिता के रज़ बीज का ही वे आश्रय लेती हैं। स्वयं मनु एवं भगवती शतरूपा ने तप करके अपनी काया ऐसी बनायी थी कि देवात्माओं को गर्भ में निवास करने में कष्ट न हो। मदालसा, सीता, शकुन्तला जैसी महान् महिलाएँ ही अपनी कोख से दिव्य आत्माओं को जन्म दे सकने में सफल हुईं। दिव्य आत्माएँ धार्मिकता से अभिपूरित श्रेष्ठ वातावरण में ही जन्म लेती रही हैं व आगे भी वहीं अवतरित होंगी। यदि किसी प्रकार कहीं अनुपयुक्त वातावरण में वे आ जाती हैं तो उन्हें वहाँ घुटन अनुभव होती है। इसीलिए सन्धिकाल में संस्कारों की महत्ता से लेकर परिवारों में सुसंस्कारिता के अभिवर्धन की महत्ता समय-समय पर बताई जाती रही है।

शान्तिकुंज द्वारा 'देव स्थापना' कार्यक्रम इसी निमित्त आरम्भ हुआ है। चूँकि यह समय विशेष महान् आत्माओं के अवतरण का है वे अपने लिए उपयुक्त स्थान का चयन कर सकें, श्रेष्ठ वातावरण के सान्निध्य का लाभ मिल सके, इसी प्रयोजन से चुने हुए घरों में ये देव स्थापनाएँ इस वर्ष से कराई जा रही हैं। यदि जिले का सर्वोच्च अधिकारी भी हमारे घर आने वाला हो, तो हम घर की सफाई करते हैं। साज-सज्जा की व्यवस्था बनाते हैं, उनकी गरिमा के अनुरूप तैयारी अनिवार्य है। जब प्रसंग संस्कारवान उच्चस्तरीय आत्माओं का हो तो मात्र स्वच्छता ही नहीं-सुसंस्कारिता, आध्यात्मिक ऊर्जा से अभिपूरित वातावरण बनाए जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। देव स्थापना आने वाले मेहमान के लिए स्तर के अनुरूप तैयारी का ही एक पूर्वाभ्यास है। संत हर घर में नहीं जाते, उन्हें पवित्र तीर्थ ही प्रिय होते हैं। उच्चस्तरीय वातवारण यदि बनाया जा सके तो निश्चित ही वह हवाई पट्टी विनिर्मित हो सकेगी, जहाँ अन्तरिक्ष से आने वाले यानों के उतरने की तरह देवात्माएँ अपने पग धर सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह प्रतीक मात्र एक चित्र एवं जल-रज की स्थापना के रूप में नहीं है वरन् इसके साथ दिव्य प्रेरणाएँ जुड़ी हैं जो इन्हें मार्गदर्शक प्रकाश स्तम्भ के रूप में विनिर्मित करने जा रही हैं। लाइट हाउस के माध्यम से भटकने वाले जहाज भी गन्तव्य तक पहुँच जाते हैं । ध्रुवतारा पथ प्रदर्शक की भूमिका निभाता हुआ घोर घने अन्धकार में भी यात्री को लक्ष्य तक पहुँचा देता है। देवस्थापना जिन-जिन घरों में होगी वे उच्चस्तरीय आत्माओं के लिए लाइट हाउस की, ध्रुवतारे की भूमिका निभाएँगी। नित्य बलिवैश्य यज्ञ (अग्नि होत्र) नियमित उपासना व सतत् स्वाध्याय अनिवार्य शर्त के रूप में इन स्थापना के साथ जुड़े हुए तीन महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम हैं। ब्रह्मकुण्ड के जल-रज के रूप में प्रतिष्ठित की साकार प्रतिमा प्रतिदिन उपासना का स्मरण करायेगी और ब्रह्मवर्चस् ब्राह्म तेजस्विता प्रदान करेगी। उपासना परिवार के प्रत्येक सदस्य महिलाओं बालकों तक के लिए इस देवास्थापना का अनिवार्य कृत्य है भले ही व्रह स्थापित प्रतीकों के नमन वंदन जितना संक्षिप्त ही क्यों न हो। देवात्मायें अपनी ब्राह्मी शक्ति को समीप पाकर बिगड़े संसार को सम्हालने आने के अपने लक्ष्य को निरंतर स्मरण रखेंगी।

बलिवैश्व इस स्थापना का दूसरा अनिवार्य कृत्य है मध्यान्ह भोजन से पूर्व रोटी के पाँच टुकड़े घृत और गुड़ या चीनी के साथ गायत्री मंत्र के साथ पाँच बार अग्नि में आहुति देने से बलिवैश्व पूर्ण हो जाएगा। जिन घरों में नित्य हवन की परम्परा हो वे भी एक बरौसी में अग्नि रखकर यह कार्य अवश्य सम्पन्न करें। जहाँ रोटियाँ गैस पर पकती हों वे छोटी-छोटी समिधाएँ कटी हुई रखें और मिट्टी की बरौसी में पहले उन्हें जला कर अग्नि बना लिया करें।

ज्ञान उपासना को आत्मसात करने की जुगाली है। ज्ञान ही भौतिक जीवन की सर्वोपयोगी शक्ति है, जल-रज उस पवित्रता का, गति का निरन्तर बोध कराएँगे। युग साहित्य का न्यूनतम अखण्ड ज्योति-युगनिर्माण योजना या युगशक्ति गायत्री का सतत् स्वाध्याय तीसरी अनिवार्यता है। जहाँ-जहाँ भी यह कार्यक्रम चल रहे होंगे, देवशक्तियाँ वातावरण बना देख स्वत: पहुँच जाएँगी। वन्य जीवों को सघन वन में देखना हो तो चुपचाप वहाँ किसी जलायश के निकट बैठ जाना चाहिए। प्यास बुझाने वे निश्चित रूप से आते हैं, ऐसे जलायशों की समाज में स्थान-स्थान पर निर्माण करने की आवश्यकता है, जहाँ देव शक्तियाँ अपनी युगों की प्यास बुझाने भगवत् प्रयोजन में स्वयं को निरत करने आ रही हैं।

प्रतीक के रूप में भेजे जा रहे चित्र का भाव यह है कि अंतरिक्ष से देवशक्तियों का अवतरण इस स्थान पर हो रहा है, जहाँ युग ऋषि ने इक्कीसवीं सदी को उज्ज्वल भविष्य के रूप में प्रतिपादित कर गंगा को धरित्री पर प्रवाहित किया। यह स्थान प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा के रूप में गायत्री तीर्थ में विनिर्मित वे स्थापनाएँ हैं जहाँ पूज्य गुरुदेव की कारण शरीर की सत्ता परोक्ष रूप में विद्यमान है। उनके स्थूल शरीर को जहाँ अग्नि को समर्पित किया गया वह पावन स्थली है यह। यहाँ से उनकी शक्ति सभी परोक्ष जगतधारी देवात्माओं के साथ मिलकर इन सभी के यहाँ सघनरूप में बरस रही है, जो देव प्रयोजनों में निरत हैं। ऐसे घरों में वातावरण सुसंस्कारों से अभिपूरित हो, श्रेष्ठ बनता चला जाएगा।

स्वाधीनता संग्राम के दिनों में महर्षि अरविंद ने अपनी कारण सत्ता से अन्तरिक्ष को मथकर सरदार बल्लभ भाई पटेल, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, लालबहादुर शास्त्री, रफी अहमद किदवई, दादाभाई नौरोजी जैसी महान् आत्माओं को जगाया था, तब स्वाधीनता का प्रयोजन पूर्ण हुआ था। युग को नई दिशा देने का कार्य उससे हजार गुना बड़ा है। उसे पूर्ण करने के लिए अन्तरिक्ष को मथा जा रहा है सो इस स्थापना को अहं महत्त्व का कार्यक्रम समझना चाहिए ।

राज्यपाल, राष्ट्रपति के कार्यक्रम ऐन वक्त पर निरस्त हो जाते हैं, तो भी जब तक उस स्थान की स्वच्छता-साज-सज्जा ही मोहक बन जाती है तब तक निरीक्षण के लिए छोटे मंत्रीगण, कलेक्टर, एस. पी. स्तर के अनेक लोग चक्कर काट जाते हैं, यह आवश्यक नहीं कि जिन घरों में देव स्थापना हो वहाँ देवात्मायें ही जन्म लें, यदि वे न भी आयें तो भी आई ए. एस. पी. सी. एस. आई. पी. एस. स्तर की मूर्धन्य आत्मायें तो आएँगी ही यह सुनिश्चित समझा जाना चाहिए ।

सुयोग्य-व्यक्तियों के घर युगान्तरीय चेतन सत्ता की प्राण प्रतिष्ठा करने हेतु यह एक सुनियोजित कार्यक्रम देवस्थापना के रूप में बनाया गया है। उसका लाभ हर संस्कारवान व्यक्ति को मिले व उनके माध्यम से देव शक्तियाँ अवतरित हों, समाज की नूतन संरचना हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकें, उसके लिए शान्तिकुंज के देव स्थापना अभियान को उतनी ही गम्भीरता से सुपात्रों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक पहुँचाने की आवश्यकता है। इस देव स्थापना का एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष यहाँ शान्तिकुंज से पूरा किया जा रहा है। वह संस्कार चित्र और जल-रज में स्थापित किए जा रहे हैं। यह स्थापना मंत्र के बीजाक्षरों की भाँति शान्तिकुंज के ब्रह्मबीज की स्थापना है। उसे उतनी ही श्रद्धा मिलनी चाहिए। चाहे जहाँ से चित्र या गंगाजल मँगाकर की गई स्थापना से उसकी तुलना न की जाए।

देवालयों में प्राणचेतना फूँकने हेतु भावभरा आव्हान

भारतवर्ष में स्थान-स्थान पर देवालय मन्दिर विनिर्मित देखे जा सकते हैं। इनके निर्माण का मूल उद्देश्य था, जनमानस में धर्मधारण का विस्तार करना, सत्प्रवृत्ति संवर्धन तथा आस्तिकता की भावना को जगाना और जमाना। स्थापित देव-प्रतिमाओं की उस स्थान विशेष पर जाकर पूजा-अर्चा से तात्पर्य था कि जन-जन के मन में भरे कुविचार, दुर्भाव निकलें तथा ईश्वर भक्ति के माध्यम से व्यक्ति सद्गुणी सुसंस्कृत एवं व्यवस्थित बने।

मन्दिरों में मात्र देवपूजन ही नहीं होता था वरन् वे समस्त रचनात्मक प्रवृत्तियाँ भी पलती थीं जो लोक कल्याण के लिए आवश्यक थीं। देवालयों का स्वरूप एक प्रकाशस्तम्भ, लाइट हाउस की तरह था। वे अपने-अपने क्षेत्रों में मानवीय उत्कर्ष एवं कल्याण के सभी सम्भव आयोजन करते रहते थे। देवालय रूपी धर्म संस्था उन सभी सत्प्रवृत्तियों का केन्द्र रहती थीं जो उस समय की आवश्यकताओं की दृष्टि से अभीष्ट मानी जाती थीं। उनका उपयोग देव संस्कृति के निर्धारणों का जन-जन तक पहुँचाने, राष्ट्र के बौद्धिक-भावनात्मक उत्थान के निमित्त विद्याविस्तार प्रक्रिया हेतु होता था। ऋषिगण वहाँ निवास कर दर्शनार्थी श्रद्धालुओं को प्रतीकों के माध्यम से शिक्षण देते थे एवं इस प्रकार पुरातन भारत का सांस्कृतिक गौरव अक्षुण्ण बना हुआ था।

साधु-ब्राह्मण परम्परा में भ्रमण करने वाले परिव्राजक तीर्थयात्री इन पावन तीर्थस्थलों पर रुकते हुए आगे बढ़ते थे। उनका उद्देश्य विश्राम करना नहीं, अपितु जनता के मानसिक स्तर की, भाव संस्थान तथा चारित्रिक स्तर की देखरेख करने का था। वे जीवन में उतारे हुए अपने उपदेशों द्वारा जो शिक्षण देते थे, वे स्वत: जन साधारण में गहराई तक उतरते चले जाते थे। इस प्रकार इन देवालयों को सत्प्रवृत्ति संवर्धन के विशिष्ट उद्देश्य के लिये विनिर्मित एक प्रकार का धार्मिक किला सर्किट हाऊस कहा जा सकता है।

चिरकाल तक मन्दिरों तीर्थों देवालयों का यही विशुद्ध स्वरूप बना रहा किन्तु आज स्थिति उलटी है। आज इस समूचे तंत्र में वे सभी विकृतियाँ समाहित हैं, जिनकी कल्पना की जा सकती है। आज देवालय इसलिए विनिर्मित होते हैं या हुए हैं कि प्रतिष्ठित मूर्ति में विद्यमान भगवान को नैवेद्य, स्नान, आरती की जो सुविधा जुटाई गयी है, उसके बदले में कामना यह रही है कि उन्हें सेवा या प्रतिष्ठा करने वालों को कई गुनी सम्पत्ति मिलेगी। भगवान के रहने के बढ़िया प्रबन्ध के बदले में उनसे एक लोक में कोठी बँगले और स्वर्गलोक में बड़े-बड़े महलों की एडवांस बुकिंग कराने की शेखचिल्ली की कल्पनाओं को लेकर ही आज भव्य मन्दिर बनते हैं। पुजारी प्रतिमा श्रृंगार-भोग-आरती भर में छुट्टी मान लेते हैं। दर्शनार्थी प्रतिमा दर्शन-नमन तथा परिक्रमा द्वारा दैवी अनुग्रह व वरदान का स्वयं को अधिकारी मान लेते हैं। द्रुतगामी वाहनों पर चलकर जिस-तिस की दर्शन झाँकी करते चलना जेब कटाना और अश्रद्धा तथा थकान लेकर घर वापस लौटना यही तीर्थयात्रा का स्वरूप रह गया है।

धर्म के प्रति जनमानस की गहरी आस्था बढ़ाने के उद्देश्य से विनिर्मित इन देवालयों कों जनजागृति का केन्द्र बनना चाहिए था। किन्तु होता ठीक इससे उलटा है। नित्य नये खड़े होते मन्दिर, उनके नाम पर उन्माद तथा पारस्परिक विवाद, कतिपय लोगों द्वारा लोगों की धार्मिक भावना का दोहन कर धन संचय होते देख लोगों की इनके प्रति आस्था धीरे-धीरे घटती जा रही है। देवालयों का वास्तविक उपयोग यदि संस्कृति एवं जन-जन के नैतिक उत्थान के निमित्त होता तो न आज आस्था संकट दिखाई पड़ता और न ही अशिक्षा, अज्ञान, अभाव से ग्रस्त यह राष्ट्र आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से पिछड़ा ही कहलाता।

कभी समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र भर में लगभग आठ सौ हनुमान मन्दिर स्थापित किये थे। इन मन्दिरों के साथ जुड़ी व्यायामशालाएँ स्वास्थ्य सम्वर्धन का शिक्षण देती थीं। मन्दिरों में सेवा-पूजा करने वाले महन्त पुजारी वस्तुत: समर्थ गुरु की धर्म सेना के सैनिक मात्र थे। वे मन्दिर में हनुमान जी की प्रतिमा के पूजन, वंदन, आरती प्रसाद की व्यवस्था के साथ यह भी ध्यान रखते थे कि अधर्म-अनीति के नाश और धर्म-नीति की रक्षा के लिए सर्वस्व होम कर देने वाले अंजनि कुमार की कृपा मात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हीं को मिलेगी जो उनके आदर्शों को अपनाएगा। हर देवालय यह कार्य युगानुकूल धर्म के रूप में किसी न किसी सत्प्रवृत्ति को चलाने के रूप में करता रहता था। कहीं संस्कारों के अभिवर्धन का शिक्षण चलता था तो कहीं संतों का समागम व जन-जन की समस्याओं का निराकरण होता था। कहीं साक्षरता विस्तार से लेकर विद्या विस्तार की प्रक्रिया चलती थी तो कहीं लोक-सेवियों की ढलाई होती थी। आज के मन्दिरों में ऐसा कुछ देखा नहीं जाता। कहीं घण्टे-घड़ियाल भर बजते हैं व कहीं वे भी नहीं। मात्र कबूतर-अबाबीलें चक्कर काटते व मन्दिर-परिसर को अस्वच्छ बनाते देखे जाते हैं। ऐसे में जनश्रद्धा का इन पर से हटना स्वाभाविक है। आज आवश्यकता है कि अब बिना अधिक विलम्ब किए वह परिवर्तन चक्र चल पड़े जिससे कि देवालयों की उपयोगिता सिद्ध हो एवं जन जागृति के मूल उद्देश्यों को पूरा करने के निमित्त उनका सक्रिय योगदान हो।

इसी परम्परा के पुनर्जीवन हेतु तीर्थों देवालयों की जीर्णोद्धार के निमित्त धर्म चेतना को गाँव-गाँव तक पहुँचाने के लिए तीर्थ यात्रा अभियान को परिक्रमा अभियान की गति दी प्रदान की गयी है। इसका उद्देश्य निष्क्रिय पड़े देवालयों में चेतना आए वह रचनात्मक गतिविधियाँ चल पड़ें तथा अभी जहाँ मात्र पूजा आरती का उपक्रम चलता है, वहाँ नैतिक भावनात्मक व राष्ट्रीय उत्थान की सक्रिय योजनाएँ न्यूनाधिक रूप में आरम्भ हो जायँ। नये मन्दिरों के निर्माण की न तो अब आवश्यकता है न राष्ट्र की स्थिति को देखते हुए वह औचित्यपूर्ण कही जाएगी। अब तो जो उपेक्षा अब तक दिखाई गई है, उसकी क्षतिपूर्ति मात्र ही की जा सके तो प्रायश्चित की बात पूरी हुई मानी जा सकती है।

यदि भारत के प्रति सात ग्राम-कस्बों के पीछे एक मन्दिर मान लिया जाय तो भी एक लाख मन्दिरों की देख-रेख व उनके पुनर्जीवन की बात सामने आती है। भारतवर्ष के लिए पुरातन इतिहास में तो हर गाँव-एक तीर्थ माना गया है। यदि इतना सम्भव न हो सके तो जो देवालय, पुरातन तीर्थ, ऋषियों की पावन तपस्थलियाँ विद्यमान हैं, जिनके बारे में ज्ञात जानकारी उपलब्ध है उन्हीं में स्थानीय निवासियों के सहयोग से सत्प्रवृत्ति विस्तार का कार्यक्रम चलाया जा सकता है। इसके लिए पूज्य गुरुदेव ने साइकिलों द्वारा अथवा वाहनों द्वारा जन-जागरण की तीर्थ यात्रा का प्रचलन चलाया है। पद यात्रा को तीर्थयात्रा को साइकिल यात्रा के रूप में मान्यता दी है। तीर्थयात्री टोलियाँ अपने-अपने स्थानों में निकलें व सात दिन का एक प्रवास चक्र बनाकर उस परिधि में आने वाले सभी देवालयों को केन्द्र बनाकर मार्ग में आदर्श वाक्य लेखन करती हुई चलें। देवालयों से जुड़ी आबादी में परिक्रमा लगाकर युग संगीत प्रस्तुत करते हुए युग संदेश हेतु सभी को देवालयों में आमंत्रित किया जाए। मन्दिरों में आयोजित समागमों में सोदाहरण यह बताया जाय कि मन्दिरों की झाड़-पोंछ सफाई प्रतिमा के नियमित पूजन के साथ-साथ प्रौढ़शिक्षा बाल संस्कारशाला अस्वच्छता निवारण, व्यायामशालाएँ, नशा बन्दी, मितव्ययता, सहकारिता, वृक्षारोपण जैसी सत्प्रवृत्तियों के विस्तार की आज की परिस्थितियों को देखते हुए कितनी आवश्यकता है, कैसे मिलजुल कर इन्हें क्रियान्वित किया जा सकता है तथा उन प्रयत्नों का कैसे भरपूर लाभ उठाया जा सकता है। पीतवस्त्रधारी ये सभी तीर्थयात्री अपने ठहरने की व्यवस्था देवालयों में ही रखें व अपना भोजन स्वयं बनायें, दूसरों पर आश्रित न रहें।

यदि वाहनों द्वारा अपने-अपने स्थानों से अधिक संख्या में परिजन अपने गुरुद्वारे शान्तिकुंज की यात्रा पर निकलते हैं तो इस यात्रा को पर्यटन मात्र तक सीमित रख सोद्देश्य बना सकते हैं। वे मार्ग में पड़ने वाले देवालयों के दर्शन भी करें व उनमें जागृति लाने का भी प्रयास करें। कुछ देर रुककर वहाँ सत्प्रवृत्ति विस्तार का शिक्षण देने का क्रम चलायें। यदि कम समय में इतना सम्भव न हो तो कम से कम सब मिलकर उस स्थान की सफाई करें, अपना श्रम सीकर बहायें, अपने हाथों से भोजन पकाकर प्रसाद पाकर कुछ देकर संकीर्तन करते हुए संक्षेप में अपने उद्देश्य उत्सुक जिज्ञासुओं को बताते हुए आगे बढ़ते जाएँ।

मूल प्रतिपादन इस जनजागरण अभियान के पीछे एक ही है कि चारित्रिक-सामाजिक उत्कर्ष के लिए बने देवालयों की इमारत, पूँजी व जन शक्ति को निरर्थक न पड़े रहने दिया जाय। जहाँ गतिशीलता है—वहीं जीवन है। धार्मिकता को जीवित रखना है तो मन्दिरों को भी जीवित रखना होगा व वहाँ से लोक सेवा की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते रहना होगा। इसके लिए स्थानीय स्तर के प्रयास तो चलें ही, धर्म प्रचार की तीर्थयात्रा द्वारा देवालयों में चेतना के पुनर्जागरण की प्रक्रिया भी अविलम्ब चल पड़े यही समय की माँग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरोहित जागें—साधु चेतें

ब्राह्मणत्व का उद्देश्य एवं स्वरूप

सफाई कर्मचारी हड़ताल करदें तो सर्वत्र गन्दगी ही गन्दगी फैली दिखाई पड़ेगी। धोबियों की भट्ठी चढ़ना बन्द हो जाय तो भकाभक कपड़े पहनने का अवसर किसी को भी न मिले। फूल न खिलें तो संसार से सौन्दर्य की सबसे बड़ी इकाई समाप्त हो जाय। दीपक न जलें तो रात्रि की भयानकता विकराल ही बनी रहे। घर में भी हाथों हाथ न सूझे। ठीक यही घटना तब घटित होती है जब पुरोहित अर्थात् ब्राह्मण वर्ग की संख्या और स्थिति घटती चली जाती है। उसी की जिम्मेदारी है कि व्यक्ति और समाज को शालीनताओं से उबारे, उन्हें साफ सुथरा बनाकर रखे।

दूसरे वर्ग यह काम नहीं कर सकते क्योंकि जिनने जिस सिद्धान्त को अपने निजी जीवन में समाविष्ट नहीं किया है, उसके द्वारा दिये गये उपदेश प्रभावी नहीं हो सकते, भले ही वे प्रांजल भाषा या मुधर कण्ठ से ही क्यों न दिये गये हों। बुराइयाँ कोई भी सिखा सकता है। चोरी, जुआ, बेईमानी, बदमाशी के स्कूल कहीं भी नहीं खुले हैं। इन्हें एक-दूसरे की नकल करने भर से सीखा जाता है। पानी को ढलान की ओर बहने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। मुश्किल तब प्रतीत होती है जब किसी को बहुत ही ऊँचा उछालना या किसी मनुष्य को अभ्यस्त दुष्प्रवृत्तियों से छुड़ाकर साफ-सुथरा बनाना हो। मक्खी पेट में चले जाने भर से मितली आने लगती और वमन का सिलसिला चल पड़ता है। कठिनाई तो तब पड़ती है, जब किसी रोगग्रस्त को उस संकट से मुक्त करके दिखाया जाता है। अग्निकाण्ड जैसे ध्वंस कार्य तो एक माचिस भी कर सकती है। उस छोटी-सी तीली से समूचा घर या खलिहान जलकर स्वाहा हो सकता है। किन्तु यदि वह सब पूर्वत् फिर से विनिर्मित करना हो तो ढेरों श्रम, समय और साधन चाहिए।

ब्राह्मण को दुहरा काम करना पड़ता है। जहाँ कहीं भी ठहरना या आना-जाना हो वहीं गन्दगी बिखरी मिलेगी और बहुत पहले से ही उसके आगमन का इन्तजार कर रही होगी कि कौन देवदूत आये और यहाँ का वातावरण स्वच्छ बनाये। इसी प्रकार खण्डहरों की कहीं कमी नहीं, जो जीर्णों द्धार के लिए उधर से निकलने वालों में से प्रत्येक का मुँह तकते रहते हैं। हर घाट पर उतरने वालों की भीड़ लगी रहती है और वे भी नाव वाले माँझी की प्रतीक्षा में बैठे होते हैं। माँझी अर्थात् ब्राह्मण। सफाई कर्मचारी अर्थात्-ब्राह्मण । गांधी अर्थात् ब्राह्मण । स्वच्छता और सृजन प्रक्रिया को जारी रखने की उसी की जिम्मेदारी है।

भौतिक क्षेत्र में तो इन कामों को मजूरी पर करने वाले सर्वत्र असंख्यों मिल जाते हैं। जहाँ, जितने, जिस काम के लिए श्रमिक चाहिए, वे वहाँ अनायास ही मिल जाते हैं। अभाव उनका नहीं। अभाव है—चिन्तन, चरित्र और व्यवहार में सुधार परिवर्तन लाने वालों का। व्यक्तित्व का इस प्रकार निर्माण करने की आवश्यकता है, जिसमें कोई लुंज-पुंज, दीन-हीन, समर्थता और तेजस्विता के ढाँचे में ढल जाय। यह कार्य केवल वही कर सकता है जो अपनी कला की प्रवीणता के लिए अपने आप पर सफल प्रयोग कर चुका हो। ऐसे ही लोगों को प्रवीण पारंगत कहा जा सकता है। ऐसे ही लोग सड़े गोबर को पुष्प उद्यान में परिणत करके दिखाते हैं। ऐसे ही लोग सामान्य से कपड़े को कुछ ही पैसे के रंगों में बहुमूल्य चित्र बनाकर दिखाते हैं। उन्हीं की छैनी हथौड़ी अनगढ़ पत्थर को तराश कर देव प्रतिमा का स्वरूप देती है। जिसने अपना सुधार नहीं किया वह दूसरों को सुधार सकेगा इसकी आशा करनी व्यर्थ है।

चिन्तन और चरित्र की एकता होने पर ही दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता उपलब्ध होती है। एक नशेबाज अपने जीवन में दूसरे नये नशेबाज उत्पन्न कर लेता है और एक वेश्या कितने ही अनजानों को व्यभिचार के मार्ग पर घसीट लेती है। इसका कारण यही है यह लोग जैसा सोचते हैं वैसा ही करते भी हैं । कथनी और करनी के बीच का अन्तर हट जाय तो व्यक्ति निश्चित रूप से प्रभावशाली हो जाता है। भलाई सिखाई जाय या बुराई यह आगे की बात है। पर चिन्तन और चरित्र की एकता तो नितान्त आवश्यक है विशेषतया कुसंस्कारों से घिरे हुए लोगों को सुसंस्कारी बनाने के लिए।

ऐसे व्यक्तित्व अब क्रमशः घटते जा रहे हैं जो निजी जीवन में आदर्शों की सभी कसौटियों पर खरे उतरें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साथ ही उस विशिष्टता का उपयोग लोक मंगल के लिए जन-मानस का परिष्कार करने के निमित्त करने में भावनापूर्ण समग्र तत्परता और तन्मयता के साथ संलग्न रहें। जहाँ यह दोनों बातें मिलती हैं, वहीं ब्राह्मणत्व की क्षमता परिपक्व होती है।

ब्राह्मण वर्ग की दो धाराएँ हैं एक गृहस्थ, दूसरी विरक्त जिनके ऊपर पारिवारिक उत्तरदायित्व लदे हैं, जिन्हें निर्वाह के साधन भी जुटाने पड़ते हैं और सीमित सम्पर्क क्षेत्र में ही सेवा कार्य कर सकते हैं, वे ब्राह्मण हैं। वे अपने परिवार क्षेत्र में सत्प्रवृत्तियों का प्रयोग अभ्यास करके देश को उत्कृष्ट स्तर के नर-रत्न प्रदान करते रहते हैं। साथ ही सम्पर्क क्षेत्र को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाने में भी पीछे नहीं रहते।

दूसरा वर्ग है—साधु। निजी परिवार न बसाने या उसके निर्वाह दायित्वों से व्यवस्थापूर्वक छुटकारा पा लेने वाले यदि प्रव्रज्या पर निकलते हैं, परिव्राजक की तरह परिभ्रमण को अपनी रीति-नीति बनाते हैं, उनकी अधिक उपयोगिता और प्रतिष्ठा इसलिए है कि उनका कार्यक्षेत्र सुविस्तृत होता है। जहाँ भी पिछड़ापन अधिक बड़ी मात्रा में दीखता है वहीं जा पहुँचते हैं। वे दीपक की तरह जलते और बादल की तरह बरसते हुए अपना जीवन बिताते हैं। जहाँ भी दुर्घटना घटित हो रही होती है, वहीं दौड़कर जा पहुँचने का उपक्रम करते हैं। यह बात गृहस्थों के लिए कठिन पड़ती है। यह निरन्तर या बहुत समय तक घर से बाहर नहीं रह सकते।

ब्राह्मण और साधु वर्गों में से दोनों को ही परमार्थ परायण होना चाहिए। लोक सेवा में निरत। यदि आदर्शों के अपनाने में निजी जीवन में प्रयोग तो किया गया। व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्य, मृदुल व्यवहार आदि का अभ्यास करने में अन्तः संघर्ष तो किया गया पर उसका मूलभूत उद्देश्य स्वार्थ साधन ही रहा तो बात बनी नहीं। स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, चमत्कार, यश, सम्मान जैसे स्वार्थ यदि छूटे नहीं और घूम फिरकर उसी मलीनता में लिपट गया तो प्रयत्न की गरिमा चली गई। हाथी सरोवर में नहाने के उपरान्त बाहर निकलता है तो सूँड से ऊपर बालू छिड़क लेता है और पहले जैसा ही मलीन हो जाता है। ऐसा ही प्रयत्न यदि सम्मानास्पद साधु ब्राह्मण भी करें और चित्र-विचित्र साधनाओं तक सीमित रहें तो समझना चाहिए कि उपार्जन तो सीखा पर उपयोग नहीं आया। कहा गया है कि—"यषा बिनु सन्त कराई।" स्पष्ट है जिसके भी हृदय में दया करुणा का भाव होगा वह स्नेह की आत्मीयता की अभिव्यक्ति किये बिना रह नहीं सकेगा। सेवा धर्म अपनाये बिना अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश या श्रेय प्राप्त करने की कुछ उपयोगिता नहीं रह जाती। स्वार्थ सिद्धि में निरत रहना संकीर्णता है क्षुद्रता भी। सामान्यजन धन वैभव उपार्जित करने में मरते खटते रहे हैं और जो करते हैं उसे विलासों में उड़ा देते हैं। ठीक यही बात उन साधु ब्राह्मणों के लिए भी कही जा सकती है जो मनोकामना की पूर्ति के लिए देवताओं की मनुहार करते हैं। भले ही वह इच्छा स्वर्ग मुक्ति जैसी परलोक से सम्बन्धित ही क्यों न हो ?

ब्राह्मणत्व का मर्म

श्रुति कहती है—

'न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्र—पठनादपि।
देव्यास्त्रिकालाभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद द्विजऽन्था॥

(वृ. संध्या भाष्य)

अर्थात्—"वेद और शास्त्रों के पढ़ने से ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता। तीनों कालों में गायत्री उपासना से ब्राह्मणत्व होता है, अन्यथा वह द्विज नहीं रहता है।"

सभी शास्त्र अभिमतों में जहाँ गायत्री महाशक्ति की महिमा-महत्ता का गुणगान है, वहाँ उसके साथ परोक्ष रूप से एक शर्त भी लगी हुई है कि साधक को ब्राह्मण एवं तपस्वी होना चाहिए। ब्राह्मण का अर्थ है—विचारणा और चरित्र निष्ठा का उत्कृष्ट होना। तपस्वी का अर्थ है—आदर्शों के निर्वाह में जो संयम बरतना पड़ता और कष्ट सहना पड़ता है उसे दुखी होकर नहीं, प्रसन्नतापूर्वक सहन करना।

स्पष्ट है कि जिन्हें उच्चस्तरीय विचारणा और गतिविधियाँ अपनानी होती हैं, उन्हें विलासिता में, सम्पन्नता में कटौती करनी होती है और औसत नागरिक स्तर का जीवन-यापन करना पड़ता है। अन्यथा बड़प्पन की अहंता प्रदर्शित करने के लिए अधिक धन चाहिए। स्पष्ट है कि भारत जैसे पिछड़े देश की गई गुजरी स्थिति में कोई समृद्ध-सुसम्पन्न जीवन ईमानदारी में व्यतीत नहीं कर सकता। करे भी तो उस प्रयोजन में इतना समय लगाना पड़ेगा कि मानवीगरिमा के अनुरूप गतिविधियाँ अपनाने के लिए समय ही शेष न बचेगा। यही बात परिवार को अधिक विस्तृत करने और उन्हें अधिकाधिक साज-सज्जा-सुविधा-प्रदान करने के सम्बन्ध में है। वह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी अपना चित्त और समय उसी प्रयोजन के लिए लगाये रहेगा। परमार्थ प्रयोजनों से लेकर आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की योजना ऐसी दशा में आधी-अधूरी ही बनी रहेगी। दोनों में से एक भी प्रयोजन ठीक प्रकार न सध सकेगा। फलतः दोनों ही दिशाओं में असफल रहना पड़ेगा।

ब्राह्मण को तपस्वी होना चाहिए, इसका तात्पर्य संयमशीलता से है। संयम की चार दिशायें हैं—(१) इन्द्रिय संयम, (२) अर्थ संयम, (३) समय संयम, (४) विचार संयम। इन्हें साधने पर दूसरे स्वेच्छाचारी लोगों की तुलना में ब्राह्मण को अभावग्रस्त भी रहना पड़ेगा। उपहास भी सहना पड़ेगा और जिनके स्वार्थों को धक्का पहुँचता होगा, उन्हें उनका विरोध प्रतिरोध करके झंझटों में, कष्टों में भी फँसना पड़ेगा।

जो इस स्थिति को प्रसन्नतापूर्वक सह सकता हो, इन कठिनाइयों को तपजन्य सुयोग मान सकता हो, उसे तपस्वी कहते हैं। शरीर को अकारण कष्टों में डालकर सताना तप नहीं। तप एक उच्चस्तरीय व्रत है, संकल्प है जिसमें प्रतिकूलता के रहते हुए भी अपने निश्चय पर अटल रहना पड़ता है। संयम द्वारा बचाई हुई श्रम, समय और साधनों की शक्ति को लोकमंगल के परमार्थ प्रयोजनों में लगाना पड़ता है। मोटी दृष्टि से यह मूर्खता है। चतुरों की दृष्टि में अपने को मूर्ख सिद्ध होने देना और इस कारण निजी जीवन में अभाव और बाहरी जीवन में विरोध-उपहास सहना भी कष्ट साध्य होता है। इसलिए उसे भी तप की ही एक शाखा माना गया है।

गायत्री ब्राह्मण की कामधेनु है अर्थात् ब्रह्म-परायण-उत्कृष्ट जीवन यापन करने वालों को ही उसका समुचित परिणाम मिलता है। गायत्री उपासक को ब्राह्मण होना चाहिए।

यहाँ जन्म-जाति और कुलवंश की चर्चा नहीं हो रही है। इस दृष्टि से किसी को ऊँचा-नीचा नहीं माना जा सकता। ब्राह्मण जाति के लोगों को ही इसका लाभ मिलता है, ऐसा सोचना सर्वथा निरर्थक है। क्योंकि मनुष्य मात्र एक ही जाति है। मानवी मौलिक अधिकार सबको समान हैं। धार्मिक क्रिया-कृत्यों में, पूजा-उपासना में भी कोई जाति-भेद लिंगभेद व्यवधान नहीं डालता। ऐसी दशा में एक वर्ण को गायत्री का अधिकार होना और दूसरों को न होना यह न तो बुद्धि संगत है और न न्याय संगत और न भारतीय संविधान के अनुकूल। हिन्दू धर्म की वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित है। स्तर बदलते ही वर्ण बदल जाते हैं। इसलिए यहाँ किसी को इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि शास्त्रकारों का मन्तव्य ब्राह्मण शब्द से किसी जाति विशेष के सम्बन्ध में है। वे तो मात्र गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से उत्कृष्ट व्यक्ति को अध्यात्मवादी, सत्पात्र, साधक, अधिकारी मानते हैं। गायत्री उपासना का यदि वास्तविक प्रतिफल देखना हो तो व्यक्ति को इतनी सुनिश्चित आदर्शवादी जीवनचर्या अपनानी पड़ेगी कि उसे ब्राह्मण या तपस्वी कहने में किसी को संकोच न करना पड़े। यदि सही अर्थों में ब्राह्मणोपम जीवन जिया जा सके तो गायत्री साधना का सम्पुट मिलकर जीवन में चमत्कारी परिवर्तन लाता व ब्राह्मणत्व को सार्थक बना देता है।

ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं, कर्म से

ब्राह्मणत्व की श्रेष्ठता गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर है। जन्म के आधार पर नहीं। उच्च कुल में जन्म लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता। उसके लिये अभीष्ट ज्ञान एवं कर्म भी होना चाहिए। तभी वह सम्मानास्पद पद प्राप्त करने का अधिकारी होता है। वर्णव्यवस्था में जन्म को नहीं कर्म को शास्त्रकारों ने प्रधान माना है। उसी का उल्लेख भी है—

न योनिः नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम्॥

—महाभारत वन. ३१३।१०८

ब्राह्मणत्व न जन्म जाति से, न संस्कार से, न विद्या से प्राप्त होता है। उसका एकमात्र आधार सदाचार है।

पूज्यः श्रोतियको नित्यं सदाचारसमन्वितः।
सद्रवृत्तः कलुषैर्मुक्तस्तीर्थभूतोजनोऽनघः॥
क्षत्रियाणां कुले जातो विश्वामित्रोऽस्ति मत्समः।
वेश्यापुत्रो वसिष्ठश्च अन्ये सिद्धाः द्विजादयः॥
जन्मनाब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विजउच्यते।
विद्ययायातिविप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय लक्षणम्॥

—पद्म पुराण

ब्रह्माजी ने कहा—जो विप्र श्रोत्रिय हो और नित्य ही सदाचार से समन्वित हो, सत् चरित्र वाला हो, समस्त प्रकार के कलुषों से मुक्त जो अनघ विप्र होता है वह तीर्थ स्वरूप हुआ करता है।

विश्वामित्र महर्षि तो क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे किन्तु उनकी तपश्चर्या की क्रिया ऐसी उच्च स्तर की थी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि वह मेरे समान की जगत्पूज्य एवं वन्दनीय हो गये हैं। वसिष्ठ महामुनि वेश्या से समुत्पन्न पुत्र हैं—और, इनके अतिरिक्त अन्य भी द्विज आदि सिद्ध हैं।

ब्राह्मण तो जन्म से होता है अथात् ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होने से ब्राह्मण कहलाता है किन्तु वह द्विज तभी होता है, जबकि उसके समुचित संस्कार किये जाते हैं। जब उसे विद्या प्राप्त होती है तो उसको विप्रत्व का पद मिलता है।

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये।
त्रैलोक्यं धारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरताश्चयाः॥

—पाराशर स्मृति

जो ब्राह्मण वेद पढ़ते हैं, यज्ञों में निरत हैं, जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने अपने तप से तीनों लोकों को धारण किया हुआ है।

एतद्देश सूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथव्यां सर्वमानवाः॥

इस देश में उत्पन्न ब्राह्मणों से संसार के सब मनुष्य अपने-अपने चरित्र आचरण की शिक्षा ग्रहण करें।

ऋज वश्शुद्ध वर्णाभाः क्षमावन्तो द्विजातया।
स्वधर्म निरता येस्युस्ते द्विजेषु द्विजातया॥

—सूर्य दर्शन सिद्धान्त

असली ब्राह्मण वे हैं जो सच्चे हैं, शुद्ध हैं, क्षमाशील हैं। दयालु और धर्मपरायण हैं।

ब्राह्मयज्ञं तु यजते योगद्वेदात्मकं सदा।
ब्रह्मणो विपुलं ज्ञानमैश्वर्य च प्रवर्तते॥
ततः प्रथममैश्वर्य युञ्जानेन प्रवर्तितम्।
ब्राह्मणा ब्रह्मभूतेन भूतानां हितं मिच्छता॥

—हरिवंश पुराण

जो सच्चे ब्राह्मण वेदानुकूल ब्रह्म-यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, उससे उनको विपुल ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त होता है। उस प्राप्त ऐश्वर्य को स्वार्थ में व्यय न करके परोपकार में लगा देना ब्राह्मण का आवश्यक कर्त्तव्य है।

उपवासव्रतं चैव स्नानं तीर्थ फलं तपः।
द्विजसपादन चैव संपन्नं तस्यं तत्फलम्॥

जो ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य, कर्म में निरत हैं उन्हें अनायास ही व्रत, उपवास, स्नान, तीर्थ, तप का फल मिल जाता है।

जन्मजा ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते॥

जन्म से ब्राह्मण जानना चाहिए। संस्कार से द्विज कहलाता है। विद्या से विप्रत्व की प्राप्ति होती है और इन तीनों के मिल जाने से श्रोत्रिय कहलाता है।

विद्या और ब्राह्मण

विद्या ह वै ब्राह्मणमा जगाम गोपाल मा शेवधिष्टेऽहमस्मि। असूयकायनृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्॥

विद्या ब्राह्मण के पास आई ओर कहने लगी ब्रह्मन्, मेरा निवेदन सुनो !

ब्राह्मण—क्या आज्ञा है, भगवती !

विद्या—मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारा कोष हूँ।

ब्राह्मण—मैं तुम्हारी रक्षा अब किस प्रकार करूँ ? अब तक तुम्हारी रक्षा के लिए ही मेरे तन-मन-धन-प्राण व्यय हुए हैं। मेरे पूर्वज तुम्हारी रक्षा में ही अनन्त काल से संलग्न रहे हैं। कहो देवि ! क्या कष्ट है ? तुम्हारी रक्षा में क्या त्रुटि है ?

विद्या—ब्रह्मन् आपसे यही प्रार्थना है कि आप निन्दक, कुटिल स्वभाव वाले, ब्रह्मचर्य्य-व्रत-शून्य शिष्यों को कभी न पढ़ाइए। यदि आप इस बात का ध्यान रखेंगे और अधिकारियों को-भक्त-शक्त शिष्यों को हो मेरा दान करेंगे तो मैं अवश्य पराक्रम-शालिनी बनूँगी।

यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्य्यों पपन्नम्। यस्तेन द्रुह्येत्कतमच्चानाह तस्मै मा ब्रुया निधिपाय ब्रह्मन् !

विद्या—जिसको आप जानें कि यह शुचि-शुद्ध है, मनसावाचा-कर्मण एक रूप है, अप्रमत्त प्रमाद-रहित है, मेधावी है, ब्रह्मचारी है और किसी दशा में भी आपके साथ द्रोह-बुद्धि रखने वाला नहीं है, उसी को आप मेरा दान कीजिए। ब्रह्मन्, वही शिष्य सच्चा निधिप है, मेरी रक्षा करने वाला है। ब्रह्मन्, इस बात का यथेष्ट ध्यान रखिएगा।

विद्या शिष्यों के प्रति बोली—

य आतृणत्य वितयेन कर्णो अदुःख कुर्च्वन्, अमृतं सम्प्रयच्छन्। तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत् कतमच्चनाह॥

विद्या—हे शिष्यो, जो मधुर उपदेशों से, विद्यादान द्वारा सत्य के प्रकाश से अज्ञान के बन्धनों को काटता है, ज्ञान-रूपी अमृत देता है, उसी को तुम अपना माता-पिता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझो। उसके साथ किसी दशा में भी द्रोह न करो। द्रोह करोगे तो मैं (विद्या) निष्फल हूँगी।

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्तों विप्रा वाचा मनसा कर्मणा वा। यथैव ते न गुरोर्भोजनीयाः तथैव तान् न भुनक्ति श्रुतं तत्॥

विद्या—जो बुद्धिमान शिष्य उपर्युक्त तत्व को न समझ कर मन-वचन-कर्म के द्वारा गुरुओं का आदर नहीं करते, वे जिस प्रकार गुरु द्वारा रक्षा नहीं किये जाते, उसी प्रकार उससे पड़ा हुआ-सुना हुआ भी सफल नहीं होता-शिष्य का अध्ययन निरर्थक हो जाता है। शिष्यो, इस तत्त्व को हृदय में धार लो, जिसके साथ तुम द्रोह-बुद्धि रखोगे, उस गुरु का हृदय-कमल तुम्हारे पढ़ाने के लिए कैसे खिलेगा और तुम ही उससे क्या प्राप्त कर लोगे ?

यह है विद्या, गुरु और शिष्य की बातचीत, जो अलंकाररूप में निरुक्त तथा मन्वादि धर्मशास्त्रों में वर्णित है। कैसा सुन्दर उपदेश है। गुरु-शिष्यभाव को स्थिर रखने का-विद्या को तेजस्वी बना कर सुरक्षित रखने का कैसा सुन्दर उपाय है ! प्राचीन समय में प्रत्येक गुरु-गृह साक्षात् गुरुकुल था। आचार्य पिता और गायत्री माता थी। आचार्य पूर्व रूप, अन्तेवासी उत्तर और प्रवचन सन्धान थी। इन्हीं गुरुकुलों में ब्रह्मचर्य पूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेदाध्यापन होता था, इसी से वर्णाश्रम-धर्म सुरक्षित थे।

प्राचीन तपोधन ऋषि-मुनि-ब्राह्मणों के तप से आर्य जाति जीवित है—यह क्या थोड़ी बात है ? ईश्वर की इच्छा है कि अपने पापों के भुगतान के पश्चात् यह जाति फिर उठे और इसके द्वारा केवल भारत का ही भला न हो बल्कि अखिल संसार मात्रा का भला हो—एवमस्तु।

ब्राह्मण तो वह है—जो.....

हस्तावुपस्थमुदरंवाक्चतुर्थी चतुष्टयम्।
एतत्सुसंयतं यस्य स विप्रः कथ्यते बुधैः॥

(गरुड़ पु. प्रेतखण्ड अ. १०)

जिसके हाथ, उपस्थ (शिश्न) उदर, तथा वाणी से सुसंयत (बुरे कर्मों से बचे) हैं विद्वान् उसको ब्राह्मण कहते हैं।

हस्त आदि का सुसंयत होना क्या है सो आगे स्पष्ट करते हैं—

परवित्तेन गृहणाति न हिंसा कुरुते तथा।
अक्षक्रीडारतो यस्तु हस्तौ तस्य सुसंयतौ॥

जो दूसरे के द्रव्य को अनुचित रीति से नहीं लेता, किसी जीव को सताता नहीं, जुआ नहीं खेलता तो समझना चाहिये कि इस पुरुष के हाथ सुसंयत हैं अर्थात् बुरे कर्मों से बचे हैं।

पर स्त्री वर्जनरतस्तस्योपस्थं सुसंयतम्।
अलोलुपमिदंभुंक्ते जठरं तस्य संयतम्॥

जो पुरुष पर स्त्री का त्यागी है उसकी उपस्थ इन्द्रिय संयत है अर्थात् कब्जे में है और जिस की भोजन में लोलुपता नहीं उसका उदर सुसंयत (बुरे कर्म से बचा) है।

सत्यंहितंमितं ब्रूते यस्माद् वाक् तस्य संयता।
यस्यसंयतान्येतानि तस्य की तपसोऽध्वरैः॥

जो पुरुष सत्य, हित और मितभाषी है तो समझो कि उसकी वाणी संयत है। जिसके ये हस्त आदि सुसंयत (बुरे कर्मों से बचे) हैं उसको तपस्या और यज्ञ से क्या प्रयोजन है। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि सदाचार से रहना ब्राह्मण का लक्षण है। और भी देखिये—

वृत्तस्थमपिचांडालस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः॥

(पद्म पु. सृष्टि खण्ड ४७।११३)

सदाचारी चांडाल को देवता ब्राह्मण कहते हैं।

निवृत्तः पापकर्मेभ्यो ब्राह्मणः सें विधीयते।
शूद्रोऽपिशीलसम्पन्नो ब्राह्मणदधिकोभवेत्॥

(भविष्य पु. अ. ४४)

जो पाप कर्म सै बचा हुआ है वही ब्राह्मण है। सदाचार सम्पन्न शुद्र भी ब्राह्मण से अधिक है। आचार हीन ब्राह्मण शुद्र से गया बीता है।

चतुर्वेदोपि दुर्वृत्तः सशुद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरोदान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः॥

(म. भा. धन. ३१४।१११)

चारों वेदों का जानकार यदि दुराचारी है तो शूद्र से भी गया बीता है जो अग्नि होत्री (काम क्रोधादि को हवन करने वाला) और इन्द्रिय निग्रही है वह ब्राह्मण है। इस प्रकार के लक्षण वाले ब्राह्मणों को लक्ष्य करके ही शास्त्रकार कहते हैं—

अहोतिदुर्भगा लोकाः प्रत्यक्षे केशवे द्विजे।
प्रतिमादिपु सेवन्ते तदभावेहि तत् क्रिया॥
तेषां पाणौ च यहछन्तं हरिपाणौ तदर्पितम्॥

(पद्म पु. आदि खण्ड ६१)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्चर्य है कि दुर्भागी पुरुष प्रत्यक्ष ब्राह्मण केशव के होने पर प्रतिमा आदि का सेवन करते हैं योग्य ब्राह्मण के अभाव में प्रतिमा पूजन है ॥४१

उन ब्राह्मणों के हाथ में देना मानों भगवान् के हाथ में देना है ।

विप्राणां वपुरास्थाय सर्वा: तिष्ठन्ति देवता: ।
अत: पूज्यास्तु ते विप्रा अलाभेप्रतिमादय: ॥

(स्कं. पु. ७ ।१ ।१०६ ।४३)

ब्राह्मणों के शरीर में देवता निवास करते हैं अत: ब्राह्मण पूजने योग्य हैं योग्य ब्राह्मण के अभाव में प्रतिमादि हैं । स्मरण रहे कि इसी प्रकार का वचन कूर्म पु. उत्तरार्ध (२६ ।३६) पद्म पु. आदि खण्ड (४७ ।३६) में आता है ।

इन वचनों से सिद्ध है कि जहाँ कहीं शास्त्र में ब्राह्मणों की प्रशंसा के वचन हैं वे सदाचार सम्पन्न विद्वान ब्राह्मणों के विषय में हैं अनपढ़ के बारे में तो शास्त्रकार लिखते हैं—

अनधीयानमृत्विजम् (म. भा. उ. २३ । ७६)
बिना पढ़े पुरोहित को छोड़ देना चाहिये ।

विद्याहीनं गुरुं त्यजेत् (चाणक्य नीति)
विद्याहीन गुरु को त्याग देना चाहिये ।

विवेक, सदाचार, स्वाध्याय और परमार्थ ब्राह्मणत्व की कसौटी है । जो इस कसौटी पर खरा उतरता है वही सच्चा ब्राह्मण है ।

ब्राह्मणत्व का अर्थ है— त्यागमय जीवन

समाज में चार वर्णों की स्थापना हिन्दू धर्म की एक बहुत बड़ी विशेषता है । वैसे तो सभी देशों में सामाजिक व्यवस्था के संचालन के लिये समाज में विभिन्न श्रेणियाँ पाई जाती हैं, पर उनकी । हमारी वर्ण व्यवस्था के साथ तुलना करना सर्वथा असंगत है । उन समाजों का श्रेणी-विभाग केवल सामयिक सुविधा की दृष्टि से किया गया होता है और उसमें प्राय: सौ दो सौ वर्ष के भीतर ही अनेक परिवर्तन हो जाते हैं । पर हिन्दू-धर्म की वर्ण व्यवस्था ऐसी स्थायी बनाई गई है कि हजारों वर्षों के पिछले इतिहास में उसका प्रमाण मिलता है और आज भी लोग सिद्धान्त रूप से उसे आदर्श मानते हैं । भारतवर्ष का कोई भी उल्लेख-योग्य सम्प्रदाय या समुदाय ऐसी नहीं जो वर्णव्यवस्था की निन्दा करता हो अथवा उसे पूर्णतया हानिकारक बतलाता हो । यदि कुछ लोग उसका विरोध करते हैं तो उसका कारण वर्ण-व्यवस्था में समय के प्रभाव से उत्पन्न हो गई अनेक प्रकार की विकृतियाँ ही हैं ।

प्राचीन काल में चारों वर्णों में ब्राह्मणों की ही प्रधानता थी और समाज का संचालन करने की शक्ति उन्हीं के हाथ में रहती थी । पर वह शक्ति वर्तमान समय की राजनैतिक शक्ति से सर्वथा भिन्न प्रकार की थी । आजकल तो जिस समुदाय के हाथ में धन, सम्पत्ति, उत्पादन के साधन होते हैं वही प्राय: राजनीतिक सत्ता को भी अपने हाथ में रखता है, और उसके द्वारा सबसे पहला काम यह करता है कि कोई दूसरा समुदाय या व्यक्ति उसके स्वार्थों को हानि न पहुँचावे । इसके परिणामस्वरूप अन्य समुदायों में स्वभावत: ईर्ष्या और द्वेष की उत्पत्ति होती है और वे सत्तारूढ़ दल को नीचे गिराने की कोशिश करने लगते हैं । वैसे संघर्ष बुरी बात नहीं है और उसी के द्वारा मनुष्य ने इतनी प्रगति की है, पर इस प्रकार तुच्छ स्वार्थभाव का संघर्ष समाज में दोषों की उत्पत्ति का कारण ही बनता है और उससे लोगों में अनैतिकता, संकीर्णता, छल, कपट आदि की प्रवृत्तियों की वृद्धि होती है ।

पर वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्तानुसार समाज की संचालन शक्ति जिन ब्राह्मणों के हाथों में रखी गई थी वे धन सम्पत्ति के उत्पादन और स्वामित्व से कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे । उन लोगों ने राज्य क्षत्रियों के लिये छोड़ दिया था, वाणिज्य कृषि आदि वैश्यों के सुपर्द कर दिये थे, शारीरिक श्रम द्वारा अर्थोपार्जन का कार्य शूद्रों को सौंप दिया था । ब्राह्मणों के लिये केवल त्याग ही त्याग रखा गया था । उनको लिये जीवन निर्वाह के साधन भी बहुत थोड़े और बड़े कठिन रखे गये थे, जिससे भोग विलास में लिप्त हो सकने की सम्भावना ही नहीं रहती थी । ब्राह्मण अपना उदर पोषण किस प्रकार करे इस सम्बन्ध में "मनुस्मृति" में लिखा है—

ऋतामृताभ्यां जीवेन्तु मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताव्यामपि व न श्ववृत्या कदाचन ॥
ऋतमुच्छशिलं क्षेयममृतं स्यादयाचितम् ।
मृतं तु याचितं भक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥
सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत ॥

(मनु ४ ।४–६)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्–"ब्राह्मण ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत या सत्यानृत से अपना जीवन वितावें परन्तु श्ववृत्ति अर्थात्-सेवावृत्ति (नौकरी) न करे। उञ्छ (खेतों में पड़े दाने बीन लाना) और शिल (खेतों में पड़ी हुई वालें बीन लाना) को ऋत जानना चाहिये। बिना माँगे मिला हुआ अमृत कहलाता है। माँगी हुई भिक्षा मृत कही जाती है और खेती को प्रमृत कहते हैं। वाणिज्य को सत्यामृत कहते हैं और विवशता के समय उससे भी जीविका चला सकतें हैं। पर सेवा (श्ववृत्ति) का आश्रय कदापि नहीं लेना चाहिए।

इस प्रकार आदर्श और उच्चश्रेणी का ब्राह्मण वही है जो अपने लिये कभी किसी प्रकार की सम्पत्ति तथा अन्य वस्तुओं का संग्रह न करके कम से कम सामग्री में अपना निर्वाह करता रहे। उसका मुख्य कार्य वेदाध्ययन तथा यज्ञ-कर्म में संलग्न रहना है। यदि कोई आपत्ति काल आ जाय तो वह क्षत्रिय अथवा वैश्य की वृत्ति द्वारा भी जीवन धारण कर सकता है, पर सेवावृत्ति (नौकरी) उसके लिये सर्वथा त्याज्य मानी गई है। कारण यह है कि नौकरी में मनुष्य दूसरे का वशीभूत हो जाता है उसकी स्वतन्त्र विचार करने और सम्मति देने की शक्ति कुण्ठित हो जाती है और तब वह समाज का संचालन करने में अयोग्य हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन ग्रन्थों और पुराणादि में ब्राह्मण की अत्यन्त प्रशंसा लिखी है और उसे लोकोत्तर अधिकार प्रदान किये हैं, पर साथ ही उनमें ब्राह्मणों के लिये ऐसे आदर्श भी बतलाये गये हैं कि जिनका पालन साधारण व्यक्तियों के लिये सम्भव ही नहीं है। 'श्री मद्भागवत्" में भगवान स्वयं कहते हैं—

धृता तनूरुशती में पुराणी
येनेह सत्वं परमं पवित्रम्॥
शमो दमः सत्यमनु ग्रहश्च
तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र॥
मत्तो ऽप्यनन्तः त्पयरताः परस्मा
त्स्वर्गापवर्ग धिपतेर्न किंचित्।
येषां किमु स्यादि तरेण तेषा—
मकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम्।

अर्थात्—"उन ब्राह्मणों ने इस लोक में मेरी अति सुन्दर और पुरातन वेद रूपी मूर्ति को अध्ययनादि द्वारा धारण किया है। उन्हीं में परम पवित्र सत्त्वगुण, शम, दम, सत्य, अनुग्रह, तप, सहनशीलता और अनुभव आदि पाये जाते हैं। वे ब्राह्मण द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगने वाले नहीं होते, साधारण मनुष्य से कुछ माँगना तो दूर रहा, मुझ अनन्त और सर्वेश्वर परमेश्वर से भी वे कुछ नहीं चाहते। वे अकिञ्चन (सर्वत्यागी) महात्मा विप्रगण केवल मेरी भक्ति में ही सन्तुष्ट रहते हैं।"

अन्य ग्रन्थों में भी ऐसे ही वचन स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं—

ब्राह्मणस्य तू देहोऽयं न सुखाय कदाचन।
तपः क्लेशाय धर्माय प्रेत्य मोक्षाय सर्वदा॥

(वृहद्धर्ग पुराण २।४४)

"ब्राह्मण की देह विषय सुख के लिये कदापि नहीं है। यह तो सदा सर्वथा तपस्या का क्लेश सहने धर्म का पालन करने और अन्त में मुक्ति के लिये ही उत्पन्न होती है।"

सम्मानादि ब्राह्मणो नित्यभुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षे दव मानस्य सर्वदा॥

(मनुस्मृति १।१६२)

"ब्राह्मण को चाहिये कि वह सम्मान से सदा विष के समान डरता रहे और अपमान की अमृत के समान इच्छा करता रहे।"

हम नहीं समझते कि त्याग और तपस्या का इससे बढ़ कर और कोई आदर्श हो सकता है। ऐसे ब्राह्मण केवल किसी एक समाज के ही नहीं वरन् मनुष्य मात्र के लिये बन्दनीय समझे जाने चाहिये। यही कारण था कि प्राचीन काल में ऐसे ब्राह्मणों का सम्मान मनुष्य तो क्या देवता तक करते थे। पर आज अवस्था सर्वथा विपरीत हो गई है। विश्वामित्र, वशिष्ठ, पाराशर आदि के वंशज बनने वाले ब्राह्मण, चपरासी और सिपाही की छोटी-छोटी नौकरी कर रहे हैं, जूते बनाने तथा धोबी की दुकान में भी काम करते दिखलाई पड़ते हैं और दो चार पैसे के लिये झूठ और बेईमानी करने को तैयार रहते हैं। ऐसे लोगों को किस प्रकार ब्राह्मण माना जाय, किस प्रकार उनको लोकोत्तर सम्मान दिया जाय, और किस प्रकार उन्हें समाज का सर्वोच्च संचालक बनाया जाय ? यदि कोई समाज ऐसा करेगा तो उसका पतन सुनिश्चित है। इसलिये हमको ब्राह्मण के वास्तविक आदर्शों का ध्यान रखते हुए अधिकाधिक तप व त्याग का उदाहरण उपस्थित करना चाहिये, तभी ब्राह्मणत्व की रक्षा हो सकेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मणत्त्व का तात्त्विक विवेचन : आज के परिप्रेक्ष्य में

इस संसार में, कर्म की प्रधानता है। उसी के आधार के कोई ऊँच या नीच बनता है। इसलिए "ब्राह्मण" शब्द उन्हीं के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए जिनमें ब्रह्मचेतना और धर्मधारणा जीवित एवं जागृत है। भले ही वे किसी भी क्षेत्र, वर्ग या वंश में क्यों न उत्पन्न हुए हों ?

बुद्ध जन्म से क्षत्रिय थे। गान्धी वैश्य एवं विवेकानन्द कायस्थ। ऋषि-मुनि शूद्र वंश में पैदा हुए हैं। रावण के ब्राह्मण होते हुए भी हर वर्ष उसका पुतला जलाया जाता है। महत्त्व वंश का नहीं वरन् स्तर एवं कर्त्तव्य का है। सदा से वही था और सदा वही रहेगा।

ब्राह्मण को क्या करना चाहिए? इस प्रश्न के उत्तर का प्रथम चरण यह है कि वह आत्म निरीक्षण, आत्मसुधार, आत्म निर्माण और आत्म विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। आन्तरिक पवित्रता और बहिरंग प्रखरता अर्जित करने के लिए साधना उपासना का आश्रय लिये रहे और स्वाध्याय सत्संग एवं चिन्तन मनन का ऐसा क्रम चलाता रहे जिससे व्यक्तित्व निखरे और सेवा साधना की उमंग उभरे। न्यूनतम समय श्रम से अपने व्यक्तिगत निर्वाह का प्रबन्ध करे और शेष सारा समय विराट ब्रह्म की—जनता जनार्दन की भावनात्मक सेवा के लिए नियोजित रखे।

संसार में तीन वर्ग हैं—(१) पिछड़े, (२) मध्यवर्गीय और (३) समर्थ सम्पन्न। इन तीनों की स्थिति भिन्न-भिन्न प्रकार की है इसलिए उनकी आवश्यकता और सम्भावना पर विचार करते हुए तदनुरूप प्रयत्न क्रम अपनाना चाहिए।

पिछड़े हुए लोगों का पिछड़ापन उनकी गन्दी आदतों के कारण होता है। उनकी आलस्य, प्रमाद, कलह, मलीनता, दुर्व्यसन जैसी आदतों को छुड़ाने के निमित्त सम्पर्क साधना चाहिए। वे अपनी भाषा समझते हैं तो ठीक अन्यथा उनकी भाषा सीखनी चाहिए। उनकी मान्यताओं का आधार समझना और उसी पृष्ठभूमि के साथ तारतम्य बिठाते हुए सुधार और प्रगति के लिए प्रोत्साहन भरना चाहिए। इस वर्ग के लिए कथा-गाथायें अधिक उपयोगी पड़ती हैं, क्योंकि वे सैद्धान्तिक और दार्शनिक प्रतिपादन परामर्श, मार्गदर्शन समझने की स्थिति में कम ही होते हैं। बहुत कहने पर थोड़ा बहुत ही उनके पल्ले पड़ता है जबकि कथा कीर्तन का, संगीत अभिनय का प्रभाव उन पर कहीं अधिक पड़ता है। उनकी गोष्ठियाँ समय-समय पर जहाँ-तहाँ नियोजित करनी चाहिए और प्रचारक की अपेक्षा साधु सन्त के वेश में उनके सम्मुख जाना चाहिए। कदाचित उन्हें सुधार, स्वावलम्बन, परिवर्तन और उत्थान के लिए उभारा जा सके तो बिना दूसरों की सहायता के भी वे ऊँचे उठेंगे। संसार में ऐसे अगणित उदाहरण विद्यमान हैं जिनमें सर्वथा गई गुजरी स्थिति में जन्मे और पले व्यक्ति अपने निज के प्रयत्नों से उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचे हैं। ऐसे दृष्टान्तों की व्याख्या विवेचना और साथ ही उनकी वर्तमान स्थिति के साथ संगति बिठाने वाली योजना बनाते हुए धीरे-धीरे चल पड़ने के लिए सहमत करना चाहिए। प्रवृत्तियाँ ठण्डी तो नहीं हो गईं इसके लिये इन्हें बार-बार झकझोरते रहना चाहिए।

मध्यवर्ती समुदाय ऐसा क्षेत्र है जिसमें से सदा नर रत्न मिलते रहे हैं। उन्हें शिक्षा भी उपलब्ध होती रही है और जिस समुदाय के बीच वे रहते हैं उसके सम्पर्क से उत्पन्न हुई विचारशीलता के संस्कार भी रहते हैं। इतिहास के महामानवों के व्यक्तित्व और कृतित्व भी उनकी दृष्टि में रहे होते हैं। मध्यवर्ग वालों की पारिवारिक आर्थिक स्थिति भी ऐसी रही होती है जिसमें वे चाहें तो आसानी से सेवा कार्यों के लिए समय निकाल सकते हैं। पूर्वजों की छोड़ी सम्पदा एवं संयुक्त परिवार की व्यवस्था में इतनी गुंजायश रहती है कि परिवार पीछे एक आदमी सेवा कार्यों के लिए निकाल सकें। ऐसे लोगों को विचारोत्तेजक साहित्य देना चाहिए और जीवन का महत्त्व और लक्ष्य बताते हुए समय की पुकार सुनने-समझने के लिए सहायता करनी चाहिए। सामुदायिक प्रवचनों की अपेक्षा व्यक्तिगत विचार विनिमय का प्रभाव कहीं अधिक पड़ता है फिर समय-समय पर रचनात्मक कार्यों में उन्हें सम्मिलित करने, श्रेय देने और हलके उत्तरदायित्व सौंपने से उन्हें इस स्थिति में लाया जा सकता है कि वे लोक-सेवी की छोटी-बड़ी भूमिका निभा सकें। स्वाध्याय मण्डलों का संचालन प्राय: इसी वर्ग के लोग कर रहे हैं। प्रज्ञापीठों के निर्माण में उन्हीं का प्रमुख योगदान रहा है और जीप गाड़ियों के माध्यम से मिशन के प्रचार कार्य को सफल बनाने में प्राय: उन्हीं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

हीरक जयंती वर्ष में दस हजार श्रद्धावान समयदानियों की एक 'वाहिनी' तैयार की गयी और उस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समुदाय को गुरुदेव ने हीरक हार की संज्ञा दी गई है। निश्चित है कि वह परिकर मध्यवर्ग के उठती आयु वालों का ही होगा। इनसे बड़े काम लिए गए हैं, लिये जा सकते हैं और वह कर गुजरने की आशा जा सकती है जिसे "लोक नेतृत्व" का नाम दिया जा सके।

समर्थ सम्पन्न वर्ग के पास शक्ति भी होती है और सम्पदा भी। वे चाहें तो अपने निजके बलबूते बहुत कुछ कर सकते हैं और अपने सम्पर्कवाले प्रभाव क्षेत्र में बहुत कुछ करा सकते हैं। व्ययसाध्य योजनाओं को वे सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं। शान्तिकुंज को एक-एक जीपगाड़ी प्रचार कार्यों के लिए अधिकांश ने अपनी निजी सम्पदा से ही दी है। वे चाहें तो उत्तराधिकारियों को विपुल सम्पदा देने के स्थान पर ऐसे कार्यों के लिए अपनी कमाई लगा सकते हैं जिनसे लोग मानस के परिष्कार का कार्य सरलता पूर्वक सम्पन्न होता रहे।

अगले दिनों देश की, विश्व की विभिन्न भाषाओं में ऐसा साहित्य प्रस्तुत करना पड़ेगा जो व्यक्तियों को उभारने, निखारने की भूमिका सम्पन्न कर सके। और समाज के इस गंदले स्वरूप को उलट कर सीधा कर सके। कहना न होगा कि अवांछनीयताओं की भरमार जीवन और समाज के हर पक्ष में बुरी तरह समाई हुई है। इसका परिशोधन करने के लिए एक समर्थ प्रकाशन तन्त्र खड़ा होना चाहिए और सीधे जन-सम्पर्क के लिए वक्ताओं, गायकों, अभिनेताओं की अनेकों टोलियाँ अनेक भाषायी क्षेत्रों में भेजी जानी चाहिए। इस स्तर के लोगों का शिक्षण, निर्वाह और यातायात क्रम चलाने के लिए हर हालत में आरम्भिक पूँजी चाहिए।

ईसाई मिशनों के स्तर पर हमें पादरी स्तर के लोकसेवियों का एक बड़ा तन्त्र खड़ा करना चाहिए। भगवान बुद्ध ने धर्मचक्र प्रवर्त्तन के लिए नालन्दा तक्षशिला विश्वविद्यालयों को पुनर्जीवन दिया था। जिनमें दस-दस हजार प्रचारक छात्र पढ़ते थे। उनके निर्वाह तथा अध्यापकों की अजीविका के प्रबन्ध के लिए स्थिर व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त छोटे-बड़े सैंकड़ों विहार और संघाराम चले थे जो विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय भाषाओं के सहारे जन जागरण का, प्रवाह परिवर्तन का—काम कर सके।

इस सन्दर्भ में अब विज्ञान ने उपयुक्त प्रगति की है। सिनेमा, वीडियो, स्लाइड प्रोजेक्टर आदि कितने ही यन्त्र ऐसे निकल पड़े हैं जो क्षेत्रों के अनुरूप आवश्यक सुधार प्रयास में कारगर योगदान दे सकते हैं। इनकी व्यवस्था बनाना भी समय को देखते हुए कम आवश्यक नहीं है।

दरिद्रों, भिक्षुकों और अनाथों के बच्चे, निराश्रित महिलायें जिन्हें पेट के लिए अपने स्वाभिमान बेचने पड़ते हैं यदि एक स्थान पर उपयुक्त आजीविका और शिक्षा प्राप्त कर सकें तो सच्चें अर्थों में दान पुण्य का प्रयोजन पूरा होगा। इतना ही नहीं इन समुदायों में से कुछ ऐसी प्रतिभाएँ भी निकल सकती हैं जो नवसृजन के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध हो सकें। समर्थों और सुसम्पन्नों को प्राय: इसी स्तर की प्रेरणा देने के लिए प्रभावी ब्राह्मण और साधुवर्ग को आगे आना चाहिए।

संवेदनामूलक समाज का मेरुदण्ड—"ब्राह्मण"

'विश्व-संस्कृति' के उद्घोष को अर्थ है—समूची दुनिया में मानवीय संवेदनाओं के सुव्यवस्थित तन्त्र के निर्माण का संकल्प। सम्भव है यह संकल्प ध्वंस के चक्रव्यूह में फंसे हुए अनेकों को बचकाना—बेतुका, अटपटा लगे। इतने पर भी सत्य अपरिवर्तनीय है। अपनी समूची निष्ठुरता के बावजूद ध्वंस आज अन्तिम क्षणों में है। इसके अन्तिम क्षणों का मतलब है—निर्माण के आरम्भिक्र क्षण। जिनमें सम्वेदनशीलता के अवरुद्ध प्रवाह को फिर से उमगना-उफनना है। इसके संचालन के दायित्व बोध में रचे-बसे व्यक्तियों का संस्कृति प्रचलित नाम 'पुरोहित' है। 'लोक शिक्षण' में स्वयं को खपाने समर्पित करने की वजह से आधुनिक अर्थों में इन्हें "लोक-शिक्षक" कह लें तो—कोई आपत्ति नहीं।

इस शब्द ने अब तक अनेकों भावों को उभारा और समेटा है। अथवा यों कहा जाय कि इसमें अपनी मर्जी के मुताबिक अर्थों-भावों का आरोपण प्रतिरोपण हुआ है। इसके घने आवरण में ढंके मूल उत्स को कहाँ तक समझा अपनाया गया, इसमें सन्देह है। सन्देह की पुष्टि करते हुए मनीषी पाल गुडमैन ने एक किताब लिखी है "ग्रोइंग अप एब्सर्ड"। इसमें उनने कहा है कि मनुष्य जाति ने जिन-जिन सुविधाओं की आकांक्षा की थी, वे सब पूरी हो गईं। उसने जो-जो सपने देखे थे वे भी लगभग पूरे हो चुके हैं। इसके बाद भी आज जैसी दारुण व्यथा कभी नहीं रही। इसकी तीव्रता में कमी की जगह दिन-दूनी रात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चौगुनी बढ़ोत्तरी होती जा रही है। कारण में गुडमैन का मानना है—सुविधाओं के अम्बार में मनुष्यता के शिक्षक दब गए। मनुष्य जाति की दुःख संहारक सेना समाप्त हो गई स्वयं को पुरोहित और शिक्षक कहने वालों की भारी-भरकम तादाद देखते हुए हो सकता है गुडमैन का कथन अविश्वसनीय लगे। किन्तु विचारों की शल्यक्रिया से तथ्य स्वयमेव उर कर सामने आ जाता है।

यूरोपियन धर्मशास्त्री मेस्टर एकहार्ट कहते हैं "पुरोहित व्यक्ति है, जिसने जीवन सिद्धान्त का विचार और व्यवहार में एकात्म स्थापित किया। विचारों की व्यावहारिक अनुभूति के साथ उसके लिए जरूरी है बौद्धिक और भावनात्मक संप्रेषण शैली। इसके बिना शिक्षण की सम्भावना नहीं। बौद्धिकता और भावनात्मकता दो आदितम मानवीय भाषाएँ हैं जिन्हें मानव ने अपने अस्तित्व के उद्‌गम से अपनाया है और चिर अनन्त तक अपनाता रहेगा। अतएव जरूरी है सिखाने वाला द्विभाषाविद् हो, पर भाषा जानने भर से तो काम नहीं चलता जब तक अनुभूति का प्राण न हो। जहां ये प्राण नहीं वहां प्रभावी शिक्षण नहीं।" तब फिर आज की जमात ? चौंकाने वाले इस सवाल का जवाब सहज है। ये उदर पूर्ति के लिए स्वयं को नियोजित करने वाले श्रमिक हैं। जिनकी निष्ठा लोकशिक्षण में नहीं सुखोपभोग पर टिकी है। किसी कारणवश यदि कोई ऐसा अवसर आ टपके जहाँ साधन-सुविधाएँ ज्यादा हैं तो ये यहाँ से वहाँ चले जाएँगे।

माननीय तथ्य है कि 'पुरोहित' कोई पद नहीं—यह विकसित व्यक्तित्व की विशेष अवस्था है। जिसे शास्त्रकारों ने 'ब्राह्मण' कहा है। ब्राह्मण और पुरोहित में व्यक्तित्व और कर्तृत्व का सम्बन्ध है। एक आन्तरिक संरचना में उत्कृष्टता का द्योतक है, दूसरा कार्य के स्वरूप और उसकी प्रखरता का पर्याय। प्राच्यविद, आई. ए. रोजेट ने भी अपनी रचना 'वैदिक इण्डिया' में इस तथ्य को स्वीकारा है। उनके अनुसार 'ब्राह्मण' शब्द जाति, कुल, गोत्र, रूप, रंग का द्योतक न होकर एक मनोवैज्ञानिक अवस्था का द्योतक है। इसका ठीक-ठीक समानार्थी शब्द जब यहीं के प्राचीन अर्वाचीन चिन्तन में नहीं है, तब पश्चिम के रीति कोश से कुछ भी आशा करना बेकार है।

वैसे भी पश्चिमी मनोविज्ञान ने ज्यादातर रोगियों की छान-बीन की है। बीमार, टूटा-फूटा मन इन विचारकों के कार्य की सीमा रेखा बन गई। फ्रायड की कभी सामना नहीं पड़ा स्वस्थ व्यक्तित्व से। पड़ता भी क्यों? सही—सलामत आदमी को क्या पड़ी है वैद्य डॉक्टर के पास जाने की। यही कारण है फ्रायड, एडलर, जैनेव इन सभी ने अपने सिद्धान्तों की इमारत बीमार मन की जमीन पर खड़ी की। व्यक्तित्व पर किए गए अध्ययन को समग्रता के परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह तीन वर्गों में बँटा दीखता है। एक रोगात्मक जिसमें पश्चिमी अध्ययन का बहुत कुछ अंश समाया है। वहाँ अभी-अभी इधर कुछ धारणाओं ने जोर पकड़ा है, जो स्वस्थ व्यक्ति के बारे में सोचती हैं। लेकिन वे एकदम आरम्भ पर ही हैं। पहले कदम भी नहीं उठाए गए। दूसरे प्रकार के अध्ययन वे जो स्वस्थ व्यक्ति के विषय में सोचते हैं। स्वस्थ मन पर आधारित हैं। ये हैं पूर्व के मनोवैज्ञानिक बुद्ध, पतंजलि, झेन, सूफी इन्होंने इस पर गहरी ढूँढ़ खोज की है। इनकी मदद व्यक्तित्व विकास की पूर्णता पाने के लिए है।

फिर एक तीसरा प्रकार है जिसें गुरजिएफ "परम मनोविज्ञान" कहता है। इसमें विकास की पूर्णता पाए हुए व्यक्तित्वों का अध्ययन करने की चेष्टा है। श्री अरविन्द की पुस्तक "सीक्रेट ऑव द वेद" में वैदिक ऋषियों के इन प्रयासों पर संकेत हैं। उनका खुद का भी प्रयास है। ब्राह्मणत्व की साधना के चरम शिखर पर पहुँचने वाला कैसा होगा? यहीं पर उसकी एक झलक देखने को मिलती है। संक्षेप में कहें तो ब्राह्मण उत्कृष्टतम व्यक्तित्व है जिसके हर अणु में विद्या और तप सँजोया रहता है।

इनका विवरण देते हुए श्रीमद्‌भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध, बारहवें अध्याय के दसवें श्लोक में साफ उल्लेख है कि "सतयुग में सिर्फ एक वर्ण था ब्राह्मण (हंस)।" तभी सतयुग का एक और नाम प्रचलित हुआ ब्राह्मण युग। इसका मतलब यह नहीं कि व्यक्तित्व विकास की अन्य अवस्थाएँ नहीं थीं। बल्कि सभी लोग अपनी-अपनी अवस्था से इस ओर निष्ठपूर्वक बढ़ रहे थे और ब्राह्मणत्व की ओर निष्ठापूर्वक जो बढ़े सो ब्राह्मण। जिस तरह ब्रह्मचर्य का साधक ब्रह्मचारी कहलाता है उसी तरह ब्राह्मणत्व का साधक भी ब्राह्मण की संज्ञा से विभूषित होता है। अपनी इसी निष्ठा की बदौलत क्षत्रिय-विश्वमित्र, धीवर कन्या के पुत्र व्यास, वेश्या के पुत्र वशिष्ठ, दासी पुत्र सत्यकाम, जाबाल ब्राह्मणत्व की चरमावस्था को पा सके। शास्त्रकारों ने ऐसे-व्यक्तित्वों को ही पुरोहित का दायित्व सौंपा है। यही कारण है समाज में यह मान्यता दृढ़ होती गई कि पुरोहित को ब्राह्मण होना अनिवार्य है। कालान्तर में तो ब्राह्मण और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पुरोहित—दोनों एक-दूसरे के पर्याय हो गए। इन्हीं के दायित्व निर्वाह पर समाज की स्थिरता-समृद्धि और सतयुग की सृष्टि टिकी है। इसी कारण इन्हें सावधान करते हुए भागवतकार ग्यारहवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय के बयालीसवें श्लोक में कहते हैं "ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्र कामाय नेष्यते" ब्राह्मण का जीवन क्षुद्र कामनाओं के लिए नहीं है।

वैदिक समाज ने क्षुद्र कामनाओं से ऊबर सकने वाले इन्हीं व्यक्तित्वों को लोक शिक्षण पुरोहित का कार्य सौंपा था। जन्म से लेकर मृत्यु तक जाति वर्ग के भेद-भाव से रहित प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में इसकी अनिवार्यता समाई है। "समूचा जीवन शिक्षण बने-समूची धरती विद्यालय" इसी उदात्त भाव ने विभिन्न संस्कारों कर्मकाण्डों, प्रतीकों की रचना की। धर्म तन्त्र से लोक शिक्षण की एक समग्र प्रणाली अस्तित्व में आयी। पुरोहित इस दायित्व का वहन करके ही मनुष्य में देवत्व विकसित करने में सफल हुए। यही वजह है ऐतरेय ब्राह्मण ८/२६ तथा ऋग्वेद के ४/५०/७ से ९ तक के मन्त्रों में इसकी महिमा का व्यापक गान मिलता है। कहा गया है "ब्रह्म वै वृहस्पति बृहिस्पत्वो-ब्राह्मणों दवतया स्वामेव देवतां पुरोधाया उपासान् स्वैन देवता पुरोधां गणपति (मैं. सं. २/२/३)" अर्थात्-"पुरोहित का कार्य ब्राह्मण का है। ब्रह्म ही बृहस्पति बनता है। बृहस्पति से ब्राह्मण की उत्पत्ति होती है। पौरोहित्य की प्राप्ति हेतु ब्राह्मण अपने आराध्य देव बृहस्पति की शरण में जाता है।" सच्चा ब्राह्मण और सच्चा पुरोहित वही बताया गया है जो अहं और आसक्ति से ऊपर उठकर करुणा से लबालब भरा हो। समाज को सदैव नव जीवन देने वाले पुरोहित को वेदों ने साक्षात् अग्नि भी कहा है। ऋचा कहती है "अग्नि भीड़े पुरोहितं यजस्व देवमृत्विग्जम्। होतारं रत्न धातमम्।" अर्थात् अग्नि ही पुरोहित है। वह समाज में अग्रणी है। भारतीय संस्कृति के प्रवाह भूमण्डल पर प्रवाहित करने के अभिलाषी समाज को पुरोहित पद का भाव हृदयंगम कर लेना चाहिए। ऋग्वेद में सबसे पहले अग्नि की स्तुति कर उसे पुरोहित पद से विभूषित किया है। पुरोहित का भाव है आगे रहना "पुर अग्रेहित: स्थापित: ।" निरुक्त में पुरोहित को सबसे पूर्व रखकर पुर एव दधनीति पुरोहित: यानि पुरोहित साक्षात् ब्रह्म का सत्य बताया है।

काल-प्रवाह में इधर-उधर बिखर रही मानवीय इतिहास की कड़ियाँ बटोरे तों पाते हैं कि इन्हीं विशिष्टों और वरिष्ठों ने मानव की अनगढ़ भीड़ को समाज का स्वरूप दिया। भीड़-झुण्ड को समाज नहीं कहा जा सकता। इसका अपना विशिष्ट स्वरूप है, जिसके साथ लोक शिक्षक के अन्तर्सम्बन्ध गहनता से जुड़े हैं, इन्हें दोनों के स्वरूप से सुपरिचित हुए बिना नहीं पहचाना जा सकता। व्यक्ति की तरह शरीर का हर कोश अपने में स्वतन्त्र सत्ता है। श्वसन से लेकर उत्सर्जन तक सारी क्रियाएँ उसमें होती हैं। इतने पर भी अकेला कोश अथवा कोशों की भीड़ को शरीर नहीं कहा जा सकता। समान रचना व उद्देश्य वाले ये कोश ऊतक बनाते हैं। ऊतक इसी सिद्धान्त को स्वीकार कर अपने को अंग में बदलते हैं। अंगों की उद्देश्य समता शरीर का निर्माण करती है। इस बृहदाकार निर्माण के हर कदम पर समता का आलोक है। व्यक्ति को भी समता के कई सोपानों से गुजार का गढ़ा गया है। समाज (सम + ज) शब्द अपने में इसी अर्थ और भाव को छुपाए है। समता से जिसका जन्म हुआ वह समाज। जिसने समता से जन्म लेकर एकता पाई है उसका महान उद्देश्य भी एकता और समता है।

उत्कृष्टता के उत्कर्ष की ये विभूतियाँ यों ही नहीं साकार हो गईं। "संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनासि" के प्रबलतम पुरुषार्थ के बाद ही यह सम्भव हो सका। संज्ञान सूक्त के इन मन्त्रों को ऋषि स्पष्ट करता है "समानो मन्त्र: समिति: समानी" तब बन पड़े जब "समान मन: सह चित्त मेषाम" की कला साधी गई । पुरोहित ही थे वे प्रबल पुरुषार्थ जिन्होंने मोटे-महीन, छोटे-लम्बे सब तरह के धागों को मिलाकर संस्कारित कर अम्बर जैसी चादर बुन डाली। अन्यथा मानव भेड़ बकरियों के झुण्ड से अधिक न होता।

आज जो समस्याओं की हुँकार-मानवीयता का करुणा रव सुनाई पड़ रहा है—उसके पीछे सत्य, इसी अनूठी कड़ी का टूटना है। जब मन ही समान और एक नहीं तब साथ-साथ कदम बढ़ें तो कैसे ? ऐसी दशा में घर के आँगन, देश के प्रांगण, और वसुधाव्यापी प्रसार में विभाजन की रेखाएँ और बँटवारे की दीवारें न खिंचेंगी तो और क्या होगा ? नृतत्वशास्त्र के आख्यान बताते हैं कि मानव को अपनी उत्पत्ति के साथ यह दु:ख भोगना पड़ा, उसमें और आज के इन्सान में अन्तर इतना भर है कि आज वह प्रत्यक्षत: एक-दूसरे से अलग हो रहा है, पहले परिस्थितियों के कारण अलग था। अलगाव और अकेलेपन की पीड़ा बड़ी मर्मान्तक है। ईससे उबरने के लिए झुण्ड पनपे जो समूह में बदले। इसका रूपान्तरण

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवारों में हुआ और इन परिवारों की जुड़ती कड़ियों ने समाज बनाया।

सिस्टर निवेदिता के अध्ययन कोश "द वेव ऑव इण्डियन लाइफ" के अनुसार निर्माण के प्रारम्भिक दौर में विचारक (ऋषि), लोक शिक्षक (पुरोहित), लोकसेवी (प्रशासनतन्त्र) तक के सारे दायित्व एक को ही निभाने पड़े। "द ओरिजन ऑव सोसाइटी" शोध निबन्ध के रचनाकार ए. जोली इसी मत के समर्थक हैं। मेसोपोटामिया, सुमेर, मिश्र आदि प्रागैतिहासिक समाजों का हवाला देते हुए उनका कहना है कि मनुष्यता के उदय के साथ पुरोहित का उदय हुआ जो अपने समाज में सर्वोपरि था। उसी के मार्गदर्शन में समाज का ढाँचा बना-गढ़ा। भारत के आदि पुरोहित ऋषि प्रशासक मनु महाराज थे। फैलाव के साथ तन्तुओं में बढ़ी उलझन निपटाने के लिए दो विभाग हुए। एक ने विचार और शिक्षण सम्भाला, दूसरे ने व्यवस्था और लोकसेवा। लेकिन विस्तार की जटिलता कहीं, मिले मन को तोड़ न दे। नए मन जो मिल रहे हैं, वे एकात्मता के भाव को सही ढंग से सीख सकें जीवन सही ढंग से चला सकें। इस भाव के कारण ब्राह्मणत्व सम्पन्न व्यक्तित्व ने ऋषि और पुरोहित के अलग-अलग दायित्व सँभाले। एक का कार्य हुआ-विचारों की शेध, दूसरे का दायित्व सुसंस्कृत लोकसेवियों का निर्माण। फिर भी ऐसा नहीं कि ऋषियों ने शिक्षण समाप्त कर दिया। शिक्षण तो उसने किया, पर पुरोहितों का। ऋषि व्यास द्वारा सूत, शौनक जैसे अनेकों लोक शिक्षकों का निर्माण, वैशम्पायन द्वारा याज्ञवल्क्य की गढ़ाई, जिन्होंने लोकसेवी जनकों की परम्परा चला दी, आदि अनेकों उदाहरण हैं। परिणामस्वरूप तन्त्र इतना मजबूत बन गया कि विशालता और जटिलता की खींचतान के बावजूद समाज रूपी चादर फटी नहीं बल्कि-बढ़ी-चढ़ी विशालता को ढंकने के लिए विशालतर-विशालतम होती चली गई।

पुरोहित ने जो गरिमापूर्ण दायित्व सम्भाला, उसे निभाना सहज न था। सिद्धान्तों की फूट-दुरूह भाषा को व्यवहार में भावगम्य बनाना। विचारकों की दार्शनिक शैली को-लोक जीवन में उतारना। साथ ही प्रभाविकता अपनी इस चरम प्रखरता तक बनी रहे ताकि लोक जीवन सागर का मन्थन अगणित लोकसेवी रत्नों को उड़ेलता-उमगाता रहे। यही समस्या शिक्षण शैलियों का उद्गम बिन्दु बनी। औसत व्यक्तित्व में 'क्रिया' और 'भाव' इन दो तत्वों में से किसी एक अथवा दोनों की प्रधानता रहती है। इसी के अनुरूप कर्मकाण्ड संस्कार-और कथा शैली का विकास हुआ। कर्मकाण्ड का उद्देश्य विभिन्न उपचारों के माध्यम से अस्तित्व की गहराई में कुछ विशेष परिवर्तन करना अथवा किन्हीं तत्वों का समावेश करना होता है। कथा शैली में भावों को स्पन्दित कर-व्यक्तित्व को बदला जाता है। पुरोहितों के दोनों रूप हमें शास्त्रों और समाज में दिखाई पड़ते हैं।

वैदिक भारत के अलावा परिवर्तीकाल में तथा अन्य देशों में लोक शिक्षण का यही स्वरूप दिखाई पड़ता है। बौद्धों में जहाँ एक ओर जातक कथाएँ हैं वहीं दूसरी ओर शून्यवाद की जटिल मीमांसा। जैन कथाओं और स्यादवाद के बीच यही सम्बन्ध है। ईसा का वचनामृत पादरियों के कर्मकाण्ड यही झलक देते हैं। ताओ-शिन्तों किन्हीं भी मतों और किन्हीं भी क्षेत्रों में नजर डालें लोकशिक्षण का वैदिक ढाँचा थोड़े बहुत बदले रूप में नजर आता है।

आर्य भूमि की जो संस्कृति अपने यौवन में विश्वभर में प्रचलित-प्रतिष्ठित हुई, उसका निर्माण यों ही नहीं हो गया। निर्माण के दौर में किन-किन पेचीदा उलझनों से गुजरना पड़ा, इसे सुलझाने में श्रमसीकरों की जो मन्दाकिनी बही, उसे देखकर आश्चर्यभूत होना पड़ता है। रक्तवाही नलिकाओं की तरह फैलाई गई सांस्कृतिक संवेदना के संवहन तन्त्र में पुरोहित ने हृदय की भूमिका निभाई है। विचारक ने भले मस्तिष्क की तरह संकेत दिए हों पर लोक जीवन की आपदा-व्यथा की धड़कने उसी का जीवन रहा है। कहीं कोई जीवन अंग सुसंस्कारिता के प्राण संचार के अभाव में सूख तो नहीं रहा। लोक सेवा रूपी श्वेत रक्त कण क्षय तो नहीं हो रहे। किस की कब और कैसे साज-सँभाल करनी है इसी व्याकुलता को अपना अस्तित्व मानं-पुरोहित ने जीवन जिया है। आज जब महाकाल ने विश्व की सास्कृतिक संवेदना को सुव्यवस्थित और सुचारू करने का उद्घोष किया उसी को 'वयं राष्ट्रे जागृयामि पुरोहितः' के अपने महत् संकल्प को जागृत कर सुसंस्कृत समाज के निर्माण का अपना दायित्व निभाना है।

ब्राह्मणत्व का उच्च आदर्श

प्राचीन काल में हमारे सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए कर्म, व्यवसाय, योग्यता आदि की दृष्टि से वर्ण व्यवस्था की गई थी। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की दृष्टि से ऐसा करना उचित ही था।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हमारे पूर्वज मनीषियों ने दूरदर्शिता से काम लेकर वर्णव्यवस्था की जो सुरुचिपूर्ण योजना बनाई, वह विश्व संस्कृति के लिए महान् देन है ।

वर्ण व्यवस्था की सुरुचिपूर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण को समाज में सर्वोपरि स्थान दिया गया । साथ ही साथ समाज की महान् जिम्मेदारियाँ भी ब्राह्मण पर छोड़ी गईं । राष्ट्र एवं समाज के नैतिक स्तर को कायम रखना उन्हें प्रगतिशीलता एवं विकास की ओर अग्रसर करना, जन जागरण एवं अपने त्यागी तपस्वी जीवन में महान आदर्श उपस्थित कर लोगों को सत्पथ का प्रदर्शन करना ब्राह्मण जीवन का आधार बनाया गया ।

ब्राह्मण का जीवन त्याग अथवा बलिदान की जीवन होता है । उसका प्रत्येक कार्य अपने लिए नहीं वरन् समाज के लिए होता है । ब्राह्मण स्वयं के लिए कुछ नहीं करता । इसी कारण उसे समाज में विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा । अपनी साधारण सी आवश्यकता रख कर ज्ञान विज्ञान की अनवरत साधना और उससे समाज को उन्नत एवं स्वस्थ बनाने का परम पुनीत कर्त्तव्य एवं महान् जिम्मेदारी ब्राह्मण पर ही है । किसी भी समाज एवं राष्ट्र का तथा ब्राह्मण का पहला सम्बन्ध होता है । वेद भगवान् भी कहते हैं "हरातत् सिंच्यते राष्ट्र ब्राह्मणो यत्र जागते" जिस देश का ब्राह्मण हारता है वह देश खोखला हो जाता है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्र की जागृति, प्रगतिशीलता एवं महानता उसके ब्राह्मणों पर आधारित होती है । ब्राह्मण राष्ट्र निर्माता होता है, मानव हृदयों में जागरण का संगीत सुनाता है, समाज का कर्णधार होता है । देश, काल पात्र के अनुसार सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करता है और नवीन प्रकाश चेतना प्रदान करता है । त्याग और बलिदान ही ब्राह्मणत्व की कसौटी है ।

ब्राह्मण का जीवन साधारणतया दो सूत्रों पर आधारित होता है—(१) स्वयं का आत्म विकाश और आदर्शमय जीवन का निर्माण । इसके लिए जीवन पर्यन्त ज्ञान विज्ञान की सतत: साधना, तपश्चर्या, खोज, आदि । ये जीवन पर्यन्त चलते रहना आवश्यक है ।

(२) अपने अनुभवों, सत्य सिद्धान्तों एवं नैष्ठिक जीवन के अनुसार समाज सेवा । जिसके अन्तर्गत समाज के बौद्धिक स्तर को उच्च बनाना, अन्धविश्वास अन्ध परम्पराओं को समाप्त करना, कुरीतियों एवं बुराईयों को मिटाना, समाज को नैतिक एवं कल्याणकारी पथ प्रदर्शन करना उसे विकास एवं प्रगतिशीलता की ओर प्रेरित करना आदि महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारियाँ हैं ।

ब्राह्मण के दूसरे कर्त्तव्य के अनुसार समाज की बौद्धिक एवं आध्यात्मिक सेवा का उत्तरदायित्व महान् है । भारतीय तत्वदर्शियों ने ज्ञान दान की इस पुनीत योजना के लिए दो मार्ग अपनाये थे । जो प्रत्येक ब्राह्मण के लिए आवश्यक हैं । ज्ञान दान के अन्तर्गत अपने विचारों, अनुभवों, सिद्धान्तों एवं सुधारात्मक प्रक्रियाओं को वाणी और लेखनी द्वारा विस्तृत मानव समाज तक क्रियान्वित करना और उनका प्रसार करना आवश्यक कर्त्तव्य है । वाणी के द्वारा धर्मप्रचार, कथा उपदेश, प्रवचन, सत्संग आदि हैं । अपने विचारों को कहकर समाज को ज्ञान लाभ पहुँचाने के साथ-साथ ही पत्र लिखना, विद्वानों के लिखित ग्रन्थों क' लिखित विचारों का विस्तार कर यदि सुविधा हो तो स्वयं भी साहित्य निर्माण करना ब्राह्मण के लिए उचित है । सद्विचार, सत्य सिद्धान्त, अनुभवगम्य ज्ञान लेखन बद्ध कर देने पर काफी समय तक ये मानव समाज का हित करते हैं ।

हमारे पूर्वज ऋषियों की पवित्र जीवन इन्हीं तत्वों पर आधारित था । उनका आदर्श एवं महान् कर्त्तव्यपरायण जीवन समाज को निरन्तर प्रगति विकाश एवं उत्थान की ओर अग्रसर करता रहता था । यही कारण था कि उस समय हमारा देश ज्ञान-विज्ञान, कलाकौशल, व्यापार, उद्योग-धन्धे, नैतिकता, सच्चरित्रता, धार्मिकता आदि में बढ़ा-चढ़ा था । मनुष्यों तक ही नहीं वरन् हमारा सम्बन्ध इतने प्राणियों से भी घनिष्ठता एवं आत्मीयता के सूत्रों में पिरोया हुआ था । ज्ञान विज्ञान के अगाध भण्डार स्वरूप नाना शास्त्र, पुराण, उपनिषद्, मीमांसा, दर्शन कलाओं का विकाश आज भी भारत के गौरव को बढ़ा रहा है । आज भी उस समय के ब्राह्मणों का पवित्र एवं मर्यादापूर्ण जीवन हमें प्रकाश की ओर मार्ग प्रदर्शन कर रहा है । और भविष्य में करता रहेगा ।

खेद है कालान्तर में ब्राह्मणत्व की उन महान् जिम्मेदारियों एवं उत्तरदायित्व पूर्ण कठोर, कर्त्तव्यों को अधिकांश रूप में भुला दिया गया है । आज केवल जाति अथवा वंश परम्परा के आधार पर ही ब्राह्मण जीवन की इतिश्री मान ली गई है । इतना ही नहीं इस रूढ़िवाद में अधिकांश रूप में घुसी हुई लोभ, संचय, स्वार्थ वृत्ति आदि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने तो ब्राह्मणत्व के महान आदर्श को प्राय: भुला दिया है। बहुत से लोगों ने तो ब्राह्मण जीवन को स्वार्थपूर्ति, धन संचय, ऐश्वर्य, वैभव आदि का ही उद्देश्य बना लिया है। इतना ही नहीं अपने स्वार्थ के लिए भिन्न-भिन्न गलत परम्पराओं, सिद्धान्तों, अन्ध विश्वास आदि का प्रतिपादन किया है । इनसे भोली भावुक एवं श्रद्धालु जनता को गलत निर्देश भी मिला है जो देश और समाज के लिए पतन, अवनति एवं दुर्भाग्य का सूचक है।

महान् जिम्मेदारी एवं कठोर कर्त्तव्य पालन के लिए ब्राह्मण का समाज से जीवन निर्वाह मात्र सामिग्री लेकर ज्ञानदान सत्‌शिक्षण, नैतिक धर्मप्रसार आदि प्रक्रियाओं को चलाते रहना जीवन का उद्देश्य होता है। किन्तु आज देखा जाता है कि अधिकांश रूप में ब्राह्मण नाम पर अनाधिकृत दान दक्षिणा लेने, का पेशा बना लिया जाता है। इस प्रकार की धन संचय वृत्ति, स्वार्थ-साधना, ब्राह्मणत्व के विपरीत है। ब्राह्मण के नाम पर कलंक है।

अपनी अवास्तविक एवं गलत स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसे सुधार लेना ही हितकर होता है। जाति पर अड़ना "चोरी और सीनाजोरी" करना ही ब्राह्मण नाम की आड़ में होने वाले मर्यादा विरुद्ध अन्धपरम्परा युक्त, कर्त्तव्य विरुद्ध पतनकारी दुष्कर्मों, आडम्बरों, ढोंग, स्वार्थ एवं संचय वृत्ति, आदि इस युग में अधिक नही टिकने वाले हैं।

इस समय परिवर्तनों का युग है, जिसमें कई राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं। जिससे देर तक पोल खाता नहीं चल सकता। जिन्हें ब्राह्मणत्व से प्रेम है उनका कर्त्तव्य है कि उन महान आदर्शों का पालन किया जाय तो इस महान पद के लिए उचित एवं आवश्यक है।

आज कई धर्मसेवी, समाज सेवी व्यक्ति ब्राह्मणत्व की महान् मर्यादाओं का पालन करते हुए देश के नैतिक तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए कठोर श्रम कर रहे हैं। ऐसे ब्राह्मणों को, धर्मसेवकों को इस पवित्र उद्देश्य की ओर चढ़ने में सहयोग देना, देश वासियों का परम कर्त्तव्य है। ताकि राष्ट्र की धार्मिक चेतना पुन: जाग उठे।

आज सूक्ष्म लोक से ऋषियों की आत्मायें हमारे अन्त:करणों में "वयं राष्ट्रे जाग्रयाम पुरोहिता" हम ब्राह्मण इस राष्ट्र को जगाये रखें, का दिव्य सन्देश झंकृत कर रही है। इस गम्भीर उद्‌घोष को साकार रूप देने के लिए हमें आज सांस्कृतिक एवं नैतिक पुनरुत्थान के लिए तैयार हो जाना है। ब्राह्मण जीवन की उच्च तथा कठोर मर्यादाओं का पालन करना ही सच्चे धर्म प्रेमियों, के लिए इस युग की साधना है, तपश्चर्या है।

ब्राह्मणत्व की महान जिम्मेदारी

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय।
आयु: तणं प्रजां पशून्कीर्तिं यज्ञमानं चवर्धय

अ. १९ /१३ /१

अर्थात्—हे वेद का अनुशीलन करने वाले ब्राह्मण उठ? तैयार हो, देवों को अर्थात्-विद्वा और ज्ञान की कामना करने वालों को यज्ञ द्वारा, अध्ययन द्वारा जगा। आयु, प्राणशक्ति, प्रजा, पशु कीर्ति और यजमान को बढ़ा।

उक्त वेद मन्त्र में ब्राह्मण के महान कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का विवेचन किया गया है। वेद भगवान ब्राह्मण के महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य का ज्ञान कराते हुए उसे कार्य रूप में परिणित करने का आदेश दे रहे हैं और ब्राह्मण को सावधान कर रहे हैं। उक्त वेद मन्त्र के अनुसार "ब्रह्मणस्पते" वेदज्ञानुसार चलने वाला वेद पालक होना ब्राह्मण का प्रथम आवश्यक कर्त्तव्य है। वेदज्ञान से परिपूर्ण होने के लिए उसे विचार एवं कार्य दोनों में उतारने के लिए, वेदभगवान की आज्ञाओं के अनुसार आचरण करने के लिए ब्राह्मण का प्रारम्भिक जीवन होता है। यह प्रारम्भिक जीवन वेदाध्ययन, वेदाभ्यास एवं वेद के अनुकूल आचरण करके उसे जीवन में सराबोर करने का समय है। ब्राह्मण को सर्वप्रथम वेदज्ञान, वेदानुकूल आचरण, वेदाध्ययन आदि में रत होकर तपश्चर्यामय जीवन बिताना चाहिए। जब इसमें पूर्णता प्राप्त हो जाय तो वेद भगवान दूसरा आदेश दे रहे हैं।

"उत्तिष्ठ" उठ, सावधान हो। वेदाध्ययन एवं उसके अनुसार जीवन को बना लेना ही ब्राह्मण के लिए काफी नहीं है। इसके बाद भी कुछ और महान् कर्त्तव्य का पालन करना है जिसके लिए वेदभगवान ब्राह्मण को सचेत कर रहे हैं कि उठ, सावधान हो अर्थात् "हे वेदज्ञान परिपूर्ण, वेदपालक ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणत्व की महान् शक्ति को समझ और सावधान हो।" शक्ति सम्पन्न होते हुए भी यदि मनुष्य निरुद्देश हो, उसके जीवन में सावधानी न हो, ढी ढाल हो तो यह शक्ति कोई महत्त्व नहीं रखती तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वह शक्ति सम्पन्न व्यक्ति भी कुछ नहीं कर सकता। उसका जीवन यों ही निरुद्देश्य समाप्त हो जाता है। अत: आगामी कर्त्तव्यक्षेत्र में उतरने के पहले वेद भगवान ब्राह्मण को सावधान करते हैं और सदैव अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग रहने के लिए सचेत करते हैं।

जिस प्रकार युद्ध शुरू होने के पूर्व सेना को सेनापति की ओर से सावधान होने का आदेश मिलता है उसी प्रकार वेद भगवान भी ब्राह्मण को इस संसार के समरांगण में अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए उतरने से पहले सावधान कर रहे हैं। निश्चय ही ब्राह्मण का जीवन संसार में व्याप्त अज्ञानान्धकार, बुराईयाँ, दु:ख, कमजोरी कुरीतियाँ आदि को दूर करने लिए ही होता है। दूषित एवं अनैतिक तत्वों से संघर्ष कर स्वस्थ समाज के निर्माण का महान् उत्तरदायित्व ब्राह्मण पर ही है। संसार पथिक को उलझनों, संघर्ष, कठिनाईयों, दु:खों, उद्वेगों से बचाकर अपने विस्तृत वेदज्ञान अमृत का पान कराते हुए उसे सुख, शान्ति, सम्पन्नता, आदि से परिपूर्ण करना ब्राह्मण का ही पवित्र और पावन तथा महान् कर्त्तव्य है।

वेदज्ञान से पूर्ण होकर और सावधान होकर फिर ब्राह्मण को क्या करना चाहिए इसके लिए वेदभगवान कहते हैं "देवान यज्ञेनबोधय।" देवों को अर्थात् सत्पथ का अनुगमन करने वालों को, परमार्थ के लिए कुछ त्याग एवं कष्ट सहन करने वालों को यज्ञ द्वारा जगा। अर्थात् उनमें यज्ञ भावनाओं को भरके परमार्थ, समाज सेवा धर्मसेवा की शिक्षा देकर उन्हें जगा। ब्राह्मण का प्रधान आवश्यक कर्त्तव्य सच्चा जनसेवक, एवं त्यागी तपस्वी व्यक्तियों का निर्माण करना है। यदि ब्राह्मण अपने वेदज्ञान, ब्रह्मचर्य, तपस्या आदि की शक्ति से लोगों की भौतिक कमियों को पूरा करें तो कोई महत्त्व की बात नहीं है। वैसे इनकी भी आवश्यकता है किन्तु सर्वप्रथम सच्चे जनसेवकों, उत्तम शिष्यों, लोकसेवियों का निर्माण करना आवश्यक है इसीलिए उक्त वेद मन्त्र में इस पर प्रथम जोर दिया है।

समाज में, समाजसेवी, धर्मसेवी, परोपकारी, व्यक्ति बहुत कम ही निकलते हैं। अधिकतर लोग सम्पन्नता, ऐश्वर्य एवं सांसारिक जीवन ही अच्छा समझते हैं। अत: इस दूसरे वर्ग का हित साधन करने के लिए भी वेदभगवान् ब्राह्मण को आदेश दे रहे हैं "आयु: प्राणं, प्रजां पशून्कीर्ति यजमानं च वर्धय" आयु को, प्राणशक्ति को, सत्सन्तान को, पशुओं को, कीर्ति को और यजमान को बढ़ा। ब्राह्मण सत्शिक्षण, सदुपदेश, सद्ज्ञान प्रसार से लोगों की आयु, प्राणशक्ति, सत्सन्तान, पशु कीर्ति आदि को बढ़ावें क्योंकि इनकी वृद्धि भी तभी सम्भव है जब इनके सम्बन्ध में सम्यक् ज्ञान एवं आवश्यक जानकारी हो। अत: यह भी एक महान् आवश्यक कर्त्तव्य है जिसकी जिम्मेदारी ब्राह्मण को दी गई है।

समाज की उक्त भौतिक सम्पदायें बढ़ने पर योग्य यजमान का निर्माण करना भी अत्यावश्यक है। उक्त भौतिक सम्पदायें प्राप्त व्यक्ति में आस्तिक, श्रद्धालु, विश्वासी, नम्र, परोपकारी एवं राष्ट्र हित की भावनायें भरना भी कोई साधारण कार्य नहीं है इस प्रकार उक्त वेद मन्त्र में बताया गया है कि स्वयं वेदज्ञान से परिपूर्ण हो, सावधान हो, दूसरों को सावधान करें और समाज का सभी तरह कल्याण करें।

ब्राह्मणत्व की महान् मर्यादाओं, कर्त्तव्यों, आदि पर मनन करके उसके महत्त्व को समझ के उसके अनुकूल जीवन बनाकर स्वयं को, राष्ट्र को, समाज को धन्य बनाना प्रत्येक ब्राह्मण का आवश्यक कर्त्तव्य है। आज ऐसे ही सच्चे ब्राह्मणों को हमारे देश को आवश्यकता है। जिन्हें ब्राह्मणत्व का गौरव प्रिय है अपने कर्त्तव्यों की ओर ध्यान देना और उनके पालन करने के लिए तत्पर होना आवश्यक है। ब्राह्मणत्व की जिम्मेदारी महान है। उसकी ओर जागरूक रहने के लिए ही वेदभगवान ने इस मन्त्र में आदेश किया है।

ब्राह्मणत्व गिरेगा तो समाज की बर्बादी होगी

नदियों के तेज बहाव को रोककर उससे नहरें निकाली जाती हैं। बिजली पैदा होती है और दूसरे कई प्रयोजन सिद्ध होते हैं । यदि बहाव को यथावत् बहने दिया जाय दो किनारों की मिट्टी कटेगी और गहराई नीची होती जाने से उस पानी का उपयोग ऊपर के क्षेत्र में न हो सकेगा। बहता पानी समुद्र के खारी जल में जा मिलेगा। पर्वती गहरी नदियों के तेज बहाव से उस क्षेत्र के तटवर्ती निवासियों को कोई लाभ नहीं मिलता वरन् बच्चे, चौपाये आदि के वह जाने का ही खतरा रहता है।

लोक मानस ऐसा ही प्रवाह है जिसमें रूढ़ियाँ, मूढ़ मान्यताएँ, संकीर्ण स्वार्थपरताओं की तीव्रता रहने से जन शक्ति और सम्पदा का अपव्यय एवं दुरुपयोग ही होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहता है। जनसंख्या, शिक्षा, सम्पदा, बलिष्ठता आदि की वृद्धि के साथ-साथ उनके उद्धत प्रयोग से दुष्परिणाम ही बनते हैं। अनर्थ ही खड़े होते हैं।

इस प्रवाह की रोकथाम करके बाँध की भूमिका निवाहने वाला एक ही वर्ग है, वह है ब्राह्मण। ब्राह्मण अपनी निजी सुख सुविधाओं का विसर्जन करके एक ही चिन्ता और क्रिया में निरत रहता है कि किस प्रकार कुप्रचलनों की रोकथाम हो, किस तरह उद्धत दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगे—और किस प्रकार सत्प्रवृत्ति के प्रचलन में सज्जनता की रीति-नीति में अभिवृद्धि हो—ब्राह्मण का यह एक लक्ष, उद्देश्य और धर्म कर्म है।

कभी इस देश में ब्राह्मण परम्परा जीवन्त थी। एक बहुत बड़ा वर्ग इसी निमित्त अपने को समर्पित किये रहता था। वह समाज की शालीनता को सुरक्षित रखने और उसे समुन्नत बनाने के लिए जो कुछ बन पड़ता था सो सब कुछ करता था। इसी उत्सर्ग का प्रतिफल था कि समूचा समाज उत्कृष्टता के शिखर बिन्दु तक पहुँचा रहता था और अनीति का—अनौचित्य का कहीं कोई चिह्न तक परिलक्षित नहीं होता था।

आज ब्राह्मण परम्परा मिटती जा रही है। उसके दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं यही कारण है कि अवांछनीयताएँ हर दिशा में सिर उठाती और अनर्थ सँजोती दीख पड़ती हैं। बाँध न बाँधें तो अधोगामी प्रवाह की रोकथाम कैसे हो। यदि रोक न लगे तो नहरें निकलने और बिजलीघर बनने का सुयोग किस प्रकार सम्भव हो ?

यहाँ ब्रह्म शब्द से तात्पर्य किसी जाति या वंश विशेष से नहीं। जिस प्रकार बढ़ती जनसंख्या की धूम है उसी प्रकार अन्य जातियों की तरह ब्राह्मण जाति भी बढ़ रही है। पर इससे क्या प्रयोजन सधा। यहाँ जाति-पाँति के जाल-जंजाल को देखते हुए यह आशा नहीं बँधती कि वे गुण कर्म स्वभाव से भी अपनी पैतृक परम्परा का दायित्व सम्भालेंगे। जो परिकर जिस विशेषता के लिए प्रसिद्ध है यदि वह उसे गँवा बैठे तो फिर ढाँचा ढकोसला ही शेष रह जाता है और उससे आत्म प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ हस्तगत नहीं होता।

ब्राह्मण को धरती का देवता माना गया है। उसे अभिवादन, प्रणाम, सम्मान का उच्चस्तरीय श्रेय दिया गया है। ब्रह्मभोज कराते हुए लोग पुण्य सम्पादन की कल्पना करते हैं। दान दक्षिणा देते समय ब्राह्मण को खोजा जाता है। ऐसा क्यों ? जब सभी मनुष्य एक जैसे रक्त-मांस के एक-एक स्वभाव संरचना के हैं तो किसी वर्ग विशेष को श्रेष्ठता या प्रतिष्ठा क्यों दी जाय ? इस प्रश्न का सीधा-सा उत्तर है कि उनके लक्ष्य, दृष्टिकोण एवं क्रिया-कलाप को देखते हुए इस प्रकार की वरिष्ठता दी गई है न कि निजी वंश परिवार में जन्म लेने के कारण ऊँच-नीच का निर्धारण हुआ है।

ब्राह्मण का स्वरूप है लोक सेवा में विशेषतया लोक मानस को परिष्कृत बनाने की प्रक्रिया में निरत होने के कारण उसकी उपयोगिता एवं सेवा साधना के उपलक्ष्य में श्रेय देने की परम्परा चली है। इसके साथ ही यह आशा भी की गई है कि वे वही कार्य करेंगे जो उनके पूर्ववर्ती करते रहे हैं। कर्त्तव्य से इन्कार करने पर तो अधिकार भी छिन जाता है। स्वर्णकार को आभूषण बनाने की कला आनी चाहिए औ उसकी दुकान में यही सब सरंजाम रहना चाहिए। पर ऐसा कुछ न हो स्वर्णकार हजामत बनाने का धन्धा करने लगे तो फिर उस वर्ग में उसकी गणना कैसे होगी और आवश्यकता पड़ने पर उसे उस कार्य के लिए कौन पुकारेगा, कौन उसके घर जायेगा। व्यवसाय बदल लेने पर तो बिरादरी भी बदल जाती है। पूर्वज भले ही स्वर्णकार रहे हैं पर अब जिसकी हजामत बनाने की दुकान चलती है उसे 'बारबर'—हज्जाम आदि विशेषणों के साथ ही पुकारा जायेगा।

पूर्वजों की विशेषता के आधार पर कोई अपने बड़प्पन का दावा नहीं कर सकता डॉक्टर, इन्जीनियर आदि के लड़के बिना पढ़े हों या कुछ और धन्धा अपनायें तो अपने नाम के साथ पिता वाली पदवी जोड़ने का उन्हें कोई अधिकार नहीं रह जाता। कलाकार का बेटा यदि चपरासी है तो उसे कलाकार की कुर्सी पर जा बैठने का अधिकार किस प्रकार मिल सकेगा। आज के ब्राह्मण अपने वंश की गरिमा का श्रेय उठाना चाहते हैं तो उन्हें तदनुरूप गतिविधियाँ अपनाने के लिए तत्परता दिखानी होगी।

निस्वार्थ लोक सेवा से ही कोई परमार्थी बनता है। पर जिन्होंने मानवी सत्ता की प्राण सम्पदा—विचारणा को निकृष्टता के गर्त्त में न गिरने देने का—स्वच्छ निर्मल बनाये रहने का—ऊँचा उठाने और स्तर को श्रेष्ठतर बनाये रहने का जिम्मा अपने सिर पर लिया है उसके निमित्त कष्ट सहा और त्याग किया है उसे सहज सम्मान मिलेगा। महानता उपार्जित करने में लोग तपस्वी जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीते, आसमान जितना ऊँचा सोचते और बाजरू श्रमिकों की तुलना में कहीं अधिक श्रम करते हैं उनकी साधना कम से कम लोग श्रद्धा की अजस्र वर्षा तो करेगी ही।

कला कौशल सिखाने वाले तक को अपने विषय का प्रवीण पारंगत बनना पड़ता है। फिर कोई कारण नहीं कि लोक व्यवहार में शालीनता का समावेश करने वाले सर्वप्रथम अपने ही व्यवहार में उन विशिष्टताओं का समावेश किया बिना ही, दूसरों को मात्र प्रवचन देकर ही आदर्शवादिता की रीति-नीति अपनाने के लिए सहमत करलें ।

खिलौने, आभूषण, पुर्जे आदि ढालने के लिए सर्वप्रथम साँचे बनाने पड़ते हैं जब वे ठीक तरह बन जाते हैं तो उनके साथ सटने वाली मुलायम वस्तुएँ भी ठीक आकार की बनती जाती हैं । गलाने और ढालने का यही तरीका सर्वथा अपनाया जाता है। अग्रगामियों के पीछे अनुगामी भी चल पड़ते हैं।

ब्राह्मणों को अग्रगामी होना पड़ता है और अनुकरणीय आदर्शों से भरा-पूरा भी। वक्ता ऊँची चोटी पर बैठता है। श्रवणकर्त्ताओं की पंक्ति नीचे रहती है।

सामान्य जानकारी देने की बात है तो उस स्तर का लैक्चर कोई भी दे सकता है। किन्तु यदि जीवन को शालीनता के ढाँचे में ढालने तथा लोकहित के लिए कुछ त्याग बलिदान करने की बात हृदयंगम बनाने की अभीष्ट हो तो उसके लिए आबश्यक है कि स्वयं प्रतिपादन को निज के जीवन में चरितार्थ करके दिखाया जाय। संयम और लोक सेवा ही सत्प्रवृत्तियों में गिनी जाती है। धर्म मंच से इन्हीं का उपदेश दिया जाता है। ब्राह्मण जनता का स्तर ऊँचा बनाये रखने का उद्घोष करता है। ऐसी दशा में यह नितान्त आवश्यक है कि उन उत्कृष्टताओं को अपने निज के जीवन में इतनी गहराई तक संस्थापन किया जाय जिसे कड़ी कसौटी लगाने पर भी कोई खोटी सिद्ध न कर सके। ब्राह्मण को उपदेशक ही नहीं निजी जीवन की श्रेष्ठताओं से भरा-पूरा भी रहना चाहिए।

"ब्राह्मणः आविर्भवन्ति गुह्य न केचित्"

एक बार राजा पुष्यजित महर्षि अंगिरा के पास गये और उनसे अपने राज्य में फैल रही अशान्ति के निवारण का उपाय पूछा। राज्य की सही स्थिति समझने के बाद महर्षि ने पुष्यजित को बाताया—राजन्। तुम्हारे राज्य में ब्राह्मणों का अभाव है इसीलिए सर्वत्र अशान्ति है। जिस राज्य में ब्राह्मणों का अविर्भाव नहीं होता वह राष्ट्र पतित हो जाता है। तुम अपने यहाँ फिर से ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा करोगे तो तुम्हारे राज्य में फिर से सुख-समृद्धि का अभिवर्द्धन होगा, वर्तमान कलह दूर होगा और सामाजिक जीवन में शान्ति की स्थापना हो सकेगी।

महर्षि अंगिरा की वह वाणी आज हमारे समाज के लिये भी अक्षरशः आवश्यक प्रतीत हो रही है। सामाजिक-सुव्यवस्था का सम्पूर्ण भार प्रशासन पर लाद कर उसके सबल होने की कभी भी कल्पना नहीं की जा सकती। उसके लिये तो सुयोग्य, तेजस्वी और ब्रह्मनिष्ठ लोकसेवी मार्गदर्शकों की ही आवश्यकता होगी। जो निष्काम सेवाभाव से राष्ट्र के स्वाभिमान को ऊँचा उठाये सकने के कठोर कर्त्तव्य का पालन कर सकते हों, समाज के प्रति न्याय और सुव्यवस्था की आशा उन्हीं से की जा सकती है। पदलोलुप, स्वार्थी, महात्त्वकांक्षी व्यक्ति उन्हें चाहे कितने ही बड़े अधिकार क्यों न मिले हों वे सभी स्थायी शान्ति और सामाजिक व्यवस्था को मजबूत नहीं रख सकते ।

प्राचीनकाल से ही इस देश में यह महत्त्वपूर्ण पद ब्राह्मणों और पुरोहित को मिला हुआ है। हिन्दू ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूक्त उपलब्ध हैं, जिनसे यह पता चलता है कि ब्राह्मणों नेउस समय की सामाजिक व्यवस्था को मजबूत बनाने का कितना कठोर व्रत धारण किया था। उन्हें कितनी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी और उसे स्थिर रखने के लिए उन्हें कितनी कठित कर्त्तव्य-साधना करनी पड़ती थी। ऋग्वेद में कहा है—"आर्पाव्रता विसृजन्तो अधिक्षमि" अर्थात् वे प्रत्यक्ष देवता हैं, जो धर्म-प्रेरणा को सजीव रखने के लिये मर मिटते हैं।

"परातत तिच्यते राष्ट्रं ब्रह्मणे पत्र जीयते"—जहाँ ब्राह्मण हारते हैं वह देश खोखला हो जाता है।

"न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रं जागार कश्चना।"

जहाँ ब्राह्मण का तिरस्कार होता है वहाँ से सुख-शान्ति चली जाती है।

"अग्निऋषिः पावमानः पाञ्चजन्य पुरोहितः"—पुरोहित की पवित्र जिम्मेदारी केवल वे लोग उठावें जिनमें आवश्यक गुण हों।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तमेव ऋषि तमु ब्राह्मणमाहुर्यज्ञन्य सामगा"—जो अपने ज्ञान से दूसरों को सन्मार्ग पर लगाता है वही ऋषि, वही ब्राह्मण है।

"प्रियं अतिर्थि गृणीर्षाण"—हे आदरणीय ब्राह्मणों घूम-घूम कर धर्मोपदेश करो—और

"देव उन्नयथा पुनः"—गिरे हुओं को फिर से ऊपर उठाओ।

इस प्रकार के अभिवचन शास्त्र में पग-पग पर उपलब्ध हैं, जिनमें ब्राह्मण के कर्त्तव्य, गौरव, महत्त्व एवं सम्मान का निर्देश दिया गया है। इनमें ब्राह्मण के गुण कर्म तथा स्वभाव का भी समुचित निर्देश किया गया है, इन गुणों के कारण ही उनको भूसुर कहलाने का गौरव मिला था और समाज शरीर का उन्हें शीर्ष सम्बोधित किया गया था।

ब्राह्मण का प्रमुख कर्त्तव्य यह है कि वह राष्ट्र के चरित्र और मनोबल को न गिरने दे। यह कार्य वह धर्मोपदेश द्वारा करता है पर समाज की विषैली परिस्थितियों में वह अपनी वाणी का प्रभाव तभी डाल सकता है जब उसने स्वयं भी ज्ञान, संयम, चरित्र की साधना की हो और सन्मार्ग पर चलने की उसकी अपनी भावना इतनी मजबूत हो जो कैसी भी विकट परिस्थिति आने पर भी झुक न सके। ब्राह्मण मर जाते हैं पर अपने आदर्शों से नहीं गिरते। जीवन भर कठिनाइयों से लड़ते रहते हैं पर समाज के प्रति सेवाओं का कोई लौकिक मूल्य माँगने वाला शब्द उनकी जबान पर नहीं आता।

ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठा का "पर्यायवाची" शब्द है। जिसने केवल परमात्मा का आश्रय ग्रहण कर लिया हो उसके लिए लौकिक सुखों की आवश्यकता भी क्या और क्यों वह इनके लिये औरों के आगे हाथ बढ़ायेगा। ब्राह्मण अध्यात्म शक्ति से ओत-प्रोत ज्ञानी और तेजस्वी ही नहीं होते वे त्यागी, तपस्वी और परमार्थी भी होते हैं, इसलिए वे भूसुर कहलाते हैं। इतने बड़े व्यक्तित्व को इससे छोटा पद और हो भी क्या सकता है ?

धर्म और अध्यात्म, नीति और दर्शन—यह समाज को व्यवस्थित रखने वाले स्थायी अंग हैं। लोगों को पथभ्रष्ट होने से बचाने का एक मात्र साधन "धर्म" ही है। राजनैतिक नेता केवल सामयिक समस्याओं तथा भौतिक असुविधाओं को ही हल कर सकते हैं। समाज के आन्तरिक जीवन में प्रवेश कर उसकी उत्कृष्टता को जागृत करने का उत्तरदायित्व कोई देव-शक्ति ही वहन कर सकती है। ब्राह्मण वही देव पुरुष हैं जो इस कार्य को भली प्रकार पूरा कर सकते हैं।

पहली समस्या यह है कि आज कल ऐसे सेवानिष्ठ ब्राह्मणों की भारी कमी है। जहाँ कुछ लोगों को अपने इस कर्त्तव्य धर्म में रुचि है भी उन्हें व्यवहारिक मार्गदर्शन नहीं मिलता। एक ओर ब्राह्मणों का अभाव, दूसरी ओर उनका तिस्कार इन दोनों ने परिस्थितियों को बिगाड़ा है।

अपने पद के अनुरूप ब्राह्मण का कर्त्तव्य कठिन और महान् है। इस महानता को विकसित करने का पहला उत्तरदायित्व भी ब्राह्मणों पर ही आता है। वे अपने चरित्र और व्यक्तित्व को ऊँचा उठाने के लिए अपनी वासनाओं, तृष्णाओं को परास्त करने के लिए कटिबद्ध हो जायें तो सामाजिक जीवन में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पुनः अपने पूर्वस्वरूप को ग्रहण कर सकती है। माना इस युग में आसुरी तत्वों की प्रबलता है तो भी भारत की आत्मा में धार्मिक संस्कारों के बीज अभी पूर्ण सुरक्षित हैं, भारतीय जनता इतनी कृतघ्न नहीं है जो अपने पुरोहितों का सम्मान न कर सके और उनके उपदेशों पर चलने के लिए राजी न हो। उसे जहाँ भी विश्वास मिलता है, वह सहर्ष अपनी मनोवृत्तियों को उधर इस आशा से मोड़ने के लिये तैयार हो जाती है कि इससे उसके पारलौकिक जीवन की सफलता सम्भव हो सके? जनता ठगी गई है इसलिए यदि वह अविश्वास रखती है तो उसका भी दोष नहीं अतः अब ब्राह्मणों को ही अपने आपको इस योग्य बनाना चाहिये कि समाज उन पर विश्वास कर सके। कठिन कसौटी पर भी वे खरे उतर सकें तो समाज उनकी अगवानी के लिये आज भी उसी भावना से तत्पर मिलेगा।

ब्राह्मणों का दोष यह रहा है कि उन्होंने भाग्यवाद् भविष्यवाद, चमत्कारवाद, टोना-टोटका भूत-प्रेत, झाड़-फूँक जैसी अविवेकपूर्ण भ्रान्तियों का समर्थन तथा प्रसार किया और जनता का कसूर यह रहा कि उसने इन्हें ही "बाबा वाक्य प्रमाणम्" मानकर स्वीकार कर लिया।

मानसिक दासता और संकीर्णता के बीज अवसर पाकर अन्य क्षेत्रों में पनपे और उनने हमारे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया। थोथी परम्परायें जनता में फूट के बीज बोने का कारण बनीं। समाज ही विभिन्न मत-मतान्तरों से भर गया। पूर्व-पश्चिम, उत्तरी दक्षिणी, प्रान्तवाद, जातिवाद, धर्मवाद,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

मतवाद आदि के वाद-विवाद इस सीमा तक बढ़े कि हिन्दू जाति का सम्पूर्ण संगठन विशृंखलित हो गया और इसका लाभ उठाकर विदेशी शासकों ने हमें दास बना लिया।

सौभाग्य से हमें राजनैतिक पराधीनता से छुटकारा मिल गया है। राष्ट्र पुनः अंगड़ाई लेकर उठ खड़ा होने की चेष्टा कर रहा है पर यहीं पर हमें यह भी समझना चाहिये कि राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति और अपनी महान् आध्यात्मिक विरासत को जीवित रखने के लिये ब्रह्म परम्परा को नष्ट नहीं होने देना चाहिये। समाज-शरीर का शीर्ष ब्राह्मण ही विशृंखलित हो गया तो भौतिक उन्नति कर लेने पर हमारी दशा भी पाश्चात्य देशों जैसी अशान्तिमय बन जावेगी। भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक तत्वों में पारस्परिक तालमेल रखकर ही हम अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर सकते हैं। इस कार्य का शुभारम्भ आज अपने समाज के शीर्ष भाग—ब्राह्मण को जगाकर ही करना चाहिये। उन्हें आगे बढ़कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये ताकि हमारा देश पुनः ऊपर उठ सके। अपने जातीय अस्तित्व को बनाये रख सके।

साधु-ब्राह्मण की गरिमा जीवन्त रहे

धर्मकृत्यों का जब भी, जहाँ भी, जैसा भी प्रचलन हुआ है तब-तब उसकी सामयिक उपयोगिता का ध्यान रखा गया है। समय के साथ उपयोगितायें भी बदलती रहती हैं और उसके अनुरूप विज्ञजनों द्वारा परिवर्तन भी होते रहे हैं। प्रथाएँ पत्थर की लकीर नहीं हैं। उनके पीछे कुछ ऐसे प्रयोजन सोचे और जोड़े गये हैं जो सर्वसाधारण के लिए उपयोगी और सत्प्रवृत्तियों के सम्बर्धन में सहायक सिद्ध हो रहे हों।

अपने यहाँ साधु-ब्राह्मण वर्ग की अत्यधिक मान्यता रही है उन्हें भूसुर-धरती के ध्वता कहा जाता है। यह मान्यता अकारण नहीं है। किसी वंश या वेष को बिना किसी हेतु के श्रद्धा का भाजन समझा गया हो और उनके सत्कार को पुण्य माना गया हो सो बात नहीं है। भारतीय धर्म के कण-कण में विवेक भरा पड़ा है। तथ्य और तर्क का आश्रय लेकर किसी प्रचलन को मान्यता मिली है। कारण और उपयोगिता की कसौटी पर कसी जाती रही है। जो खरा सिद्ध हुआ उसे अपनाया गया और जो खोटा लगा उसे हटा दिया गया, भारतीय धर्म बुद्धिमानी का धर्म है। उसके प्रत्येक कदम के साथ विवेक, शालीनता और दूरदर्शिता जुड़ी हुई है।

यहाँ चर्चा साधु-ब्राह्मण की चल रही है। भारतीय धर्म अध्यात्म और तत्वज्ञान परमार्थ-परायण है। इसमें इस बात की प्रेरणा ओत-प्रोत है कि सांसारिक वैभव और वर्चस्व को महत्त्व न दिया जाय वरन् परलोक और परमार्थ की गरिमा को समझा जाय। सुविधा-साधनों से इन्द्रिय-तृप्ति और इच्छापूर्ति तो होती है किन्तु ऐसा कुछ नहीं बन पड़ता जिससे अन्तरात्मा को सन्तोष और उल्लास मिले। ललक-लिप्साओं के पीछे नशीले पदार्थों जैसी ललक जुड़ी होती है। आदत पड़ जाने पर उनके बिना काम नहीं चलता। अभाव होने या कमी पड़ने पर उद्विग्नता बढ़ जाती है। निरन्तर सुविधाओं के बढ़ाने की इच्छा होती है। जब वे सामान्य प्रयासों से इच्छित मात्रा में नहीं मिल पाते तो किसी भी प्रकार उन्हें पाने के प्रयत्न चलते हैं, चाहे वे अनर्थ या कुकर्म जैसे ही क्यों न हों। हर वस्तु उपार्जन की तरह कीमत चाहती है। वैभव के सम्बन्ध में भी यही बात है। उनके लिए धन चाहिए। धन बिना श्रम, समय और मनोयोग के हस्तगत नहीं होता। आत्मिक ललक के लिए अधिक प्रयास चाहिए। लोलुपों की सारी क्षमता उसी में खर्च हो जाती है। यहाँ तक कि सामान्य प्रयासों से पूर्ति न बन पड़ने पर कुमार्ग अपनाना पड़ता है। दुर्व्यसन पीछे लग लेते हैं। अहंकार का आदेश चढ़ा रहता है। मित्र-सम्बन्धी उस पर हाथ मारना चाहते हैं और शहद के छत्तों की तरह अपहरण की योजना बनाते हैं। इसका परिणाम अक्खड़ मनुष्य के लिए विग्रह, पतन और द्वेष के रूप में ही आता है। इन तथ्यों को दर्शन शास्त्र ने अधिकाधिक गहराई के साथ समझने और इस मार्ग से विरत रहने का परामर्श दिया है। औसत भारतीय स्तर का जीवन-यापन ही यहाँ सदा से आदर्श माना जाता रहा है।

इस नीति को अपनाने पर स्वल्प समय और परिश्रम में ही निर्वाह चल जाता है और अधिकांश समय, साधन सत्प्रयोजनों में लगते रहने की सुविधा बन जाती है। आत्म-सन्तोष भी रहता है और सेवाधर्म अपनाने के कारण जन-सम्मान भी मिलता है। ऐसे ही क्रिया कृत्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को धर्मधारणा, भाव-सम्वेदना या ईश्वर भक्ति के साथ जोड़ा जाता है और आन्तरिक उल्लास के रूप में उसका सत्परिणाम भी हाथों-हाथ मिलता है। किसी को पृथ्वी का देवता कहा जाना उसके लिए सबसे बड़े गौरव की बात है।

इन तथ्यों को भली प्रकार हृदयंगम करने वाला समाज अपने आप को साधु-ब्राह्मण की श्रेणी में सम्मिलित करता था जिन्हें आश्रम स्तर के काम करने पड़ते थे। वे सपत्नीक रहते थे और आश्रम स्तर के विद्यालय, चिकित्सालय स्तर के काम हाथ में लेते थे। इन कार्यों में पूँजी का पूरा उपयोग हो जाता था। जिन्हें प्रवास या प्रचार में रहना पड़ता था वे विरक्त रहते थे। उन्हें घर-गृहस्थी की आवश्यकताएँ जुटाने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। बादल बिना बुलाये ही भूमि पर बरसते और हरितिमा उपजाते रहते हैं। यह क्रिया साधु जनों की होती थी।

जीवन दर्शन के असंख्य पहलुओं पर विचार करने के उपरान्त उस जमाने में हर भावनाशील अपने को साधु ब्राह्मण वर्ग में सम्मिलित करने का प्रयत्न करता था। इसलिए वह समुदाय बड़ी संख्या में बढ़ता गया। परिणाम यह हुआ कि यातायात के साधन न होते हुए भी देश के हर कोने में यह देववर्ग पहुँचता रहा और वहाँ की दुष्प्रवृत्तियों को उखाड़ने और सत्प्रवृत्तियों को जमाने में अनवरत प्रयत्न करता रहा। फलतः यह भारतभूमि सच्चे अर्थों में स्वर्गादपि गरीयसी बन कर रही।

विश्व में अन्यत्र ऐसा वातावरण नहीं था इसलिए न केवल भारत वरन् समस्त विश्व को उनकी उच्चस्तरीय सेवाओं का लाभ मिलता रहा। फलतः यह देश जगद्गुरु कहलाया। विश्व का कोई कोना ऐसा न बचा जहाँ भारतीय धर्म प्रचारक न गये हों और वहाँ की तात्कालिक समस्याओं के समाधान में सहायक न बने हों। यह है अपने देश और धर्म की महती गिरमा।

आज दान-दक्षिणा का लोभ-लालच अनेकों को उस वेष में भ्रमण करने वाला बनाये हुए है। वह वंश और वेष तो पहले से घटा नहीं वरन् बढ़ ही गया है। मुफ्त में धन और सम्मान मिलता हो तो उसे कौन छोड़े। वेष बनाने में तो नाटकों के नट और विदूषक पूरी तरह प्रवीण हो जाते हैं। असली गायों की तुलना में मिट्टी की गाय अधिक संख्या में बिकतीं है। लकड़ी और लुगदी के शेर कम पैसे में खरीदे जा सकते हैं और उन्हें किसी भी कोने में सजाया जा सकता है। पर उनमें कमी इतनी ही होती है कि वे मिट्टी की गाय दूध नहीं देतीं और लकड़ी के शेर किसी को काटते नहीं। फलतः वे मनोरंजन घर के काम आते हैं। असली होने पर जो प्रभाव उनका पड़ना चाहिए था वह नहीं पड़ता। बच्चे हँसी-हँसी में उन्हें तोड़-फोड़ भी डालते हैं। इसके लिए उन पर किसी की लताड़ भी नहीं पड़ती।

साधु अपने देश में साठ लाख हैं। ब्राह्मण तो उससे भी कहीं अधिक होने चाहिए। यदि वे वेष और वंश का ढकोसला ओढ़ने भर से सन्तुष्ट न हुए होते, उन कर्त्तव्यों का भी पालन किया होता जो उन्हें करना चाहिए था तो उसका प्रभाव जादू-चमत्कार जैसा होता। जिस देश में इतने सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हों वे सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाने और दुष्प्रवृत्तियों को मिटाने में जुट पड़ें तो निश्चय ही वह पुरातन युग फिर लौट सकता है जिसको सतयुग के नाम से हम स्मरण करते रहते हैं।

समय की माँग है कि पुराने साधु-ब्राह्मण जराजीर्ण हो गये तो उनके स्थान पर नई पीढ़ी पैदा की जाती है। धान पक कर कट जाते हैं जो किसान खेत को खाली नहीं छोड़ते, उसे नये सिरे से जोतते और बोते हैं। ब्राह्मण और साधु की गरिमा का पुनर्जीवन प्रदान करने की आज महती आवश्यकता है। प्राचीन समय में उनका जो सम्मान था वह पुनः प्राप्त हो सकता है। शर्त एक ही है कि सेवाधर्म अपनायें और समय की महती आवश्यकताओं को पूरा करें।

ब्राह्मण अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा न करें

संसार में जन्म लेकर जीवित तो सभी प्राणी रहते हैं, पर मनुष्य योनि में आकर सफल जीवन उसी का कहा जाता है जो सुख, समृद्धि, यश गौरव आदि प्राप्त करके लोगों के बीच उच्च थान पर प्रतिष्ठित होता है। ऐसे व्यक्ति समाज में मुखिया, संचालक, नेता आदि नामों से पुकारे जाते हैं पर इससे भी महान् पद मनुष्य को तब प्राप्त होता है जब वह आत्मज्ञान प्राप्त करके संसार के हित-साधन को अपना लक्ष्य बना लेता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुख समृद्धि आदि भौतिक जगत से सम्बन्ध रखने वाली बातें हैं और उनके प्राप्त करने में विज्ञान से सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार के भौतिक ज्ञान को शास्त्र में "अविद्या" कहा गया है, जैसे—

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

उपनिषद् के इस वाक्य में स्पष्ट कहा गया है कि मृत्युलोक के धन्धों को चतुराई के साथ सम्पन्न करने के लिये "अविद्या" ही उपयोगी होती है। यहाँ "विद्या" से जो लोग लिखने-पढ़ने का आशय समझेंगे वे इस तत्व को कभी न जान सकेंगे। संसार के साधारण लोगों की दृष्टि में तो यह "अविद्या" ही असली विद्या जान पड़ती है, और जिसे उपनिषदकार ने विद्या कहा है वह निकम्मी तुच्छ वस्तु प्रतीत होती है क्योंकि उनके कथनानुसार तो जो ज्ञान पेट भरने, चाँदी की टुकड़े के प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करता है वही असली विद्या है। इसके विपरीत जिस ज्ञान से मनुष्य को अकिंचन अवस्था में रहना पड़े, दिन भर परिश्रम करने पर भी दो-चार रुपये गाँठ में दिखाई न दें वह विद्या नहीं, परम मूर्खता का चिन्ह है। गीता में भी इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से कह दिया गया है—

या निशा सर्व भूतानाम् तस्यां जागृति संयमी।
यस्यां जागृति भूतानि सा निशा पश्य तो मुने॥

इस श्लोक में भी यही बतलाया गया है कि जिस विषय को संसारी लोग रात्रि के समान अन्धकारपूर्ण निरुपयोगी मानते हैं, ज्ञानी जन उसी के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, जिन बातों को दुनिया वाले बड़ी महत्त्व एवं लाभ की समझते हैं, ज्ञानवान उनकी तरफ से आँखें बन्द कर लेते हैं।"

संसार में आज तक जितने भी महापुरुष, ज्ञानी संत हुए हैं उन सबने, चाहे वे किसी देश और जाति के क्यों न हों, यही कहा है कि शरीर-रक्षा और आश्रितों के पालन के लिये मनुष्य कोई व्यवसाय या रोजगार भले ही करता रहे, पर उसे यह सदैव याद रखना चाहिये कि उसका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष लाभ करना ही है। साथ ही यह भी कह दिया गया है कि विद्या और अविद्या दोनों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके लौकिक और पारलौकिक उद्देश्यों को एक साथ पूरा कर लेना सरल काम भी नहीं है। उसके लिए जीवन में उत्तम प्रकार के संयम और प्रलोभनों से बचकर रहने की आवश्यकता है। इसीलिये कहा गया है—

सुखार्थिनः कुतो विद्या
नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्

"जो लोग सुख के फेर में पड़े रहते हैं उनको विद्या के दर्शन नहीं हो सकते और जो विद्या की अकांक्षा रखने वाले हैं उनको सुख की लालसा नहीं रखनी चाहिये।" इस मार्ग पर चल कर विद्या का प्राप्त कर सकना उन्हीं "विद्यार्थियों" के लिये सम्भव है जो आलस्य, मद, मोह, चंचलता, अभिमान, उद्दण्डता आदि से बचकर ज्ञान की आराधना किया करते हैं। इस प्रकार के "विद्यार्थियों" को उचित मार्ग का प्रदर्शन भी वे ही दिव्य चरित्र वाले महानुभाव कर सकते हैं जो सांसारिक वैभव, सुखोपभोग से निर्लिप्त रह कर संसार के उद्धार का व्रत लिया करते हैं।

बिना ज्ञान के प्रसार के संसार में सच्चे सुख और शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। सैन्यबल, राज्य बल और अर्थबल से जो सुख-शान्ति प्राप्त की जाती है वह क्षणिक हुआ करती है। परन्तु ज्ञान अर्थात् विद्या के प्रभाव से जो शान्ति स्थापित की जाती है, वह पर्याप्त समय तक स्थिर रह कर लोक कल्याण करती रहती है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में ज्ञान को सर्वोपरि स्थान दिया गया था। यहाँ पर ज्ञान-प्रचार का कार्य करने वालों को सबसे अधिक श्रद्धाभाजन बतलाया गया था और उच्च स्वर से घोषित कर दिया था—

"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते।"

"ज्ञान के सदृश्य पवित्र वस्तु संसार में अन्य कोई नहीं है।" प्राचीन भारत की आश्रम-व्यवस्था में ब्रह्मचर्य आश्रम का सबसे अधिक महत्त्व और वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया जाना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इस देश की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में भौतिक पदार्थों के बाजय ज्ञान को ही सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया गया था। खेद का विषय है कि आज हम इन्हीं दोनों को सबसे अधिक उपेक्षित दशा में देख रहे हैं।

ज्ञान-प्रसार के अभाव से देशों में जो कष्ट और अशान्ति का वातावरण दिखलाई पड़ रहा है उसका दोष शासकों अथवा धनवानों पर उतना अधिक नहीं रखा जा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है जितना कि उस वर्ग पर जो ज्ञान विभाग का उत्तरदायी बनाया गया था और जिसे "ब्राह्मण" का नाम दिया गया था।

यह "ब्राह्मण" वर्ग वही है जिसके पूर्वजों ने अपने जीवन का ध्येय अध्ययन और अध्यापन बनाया था, यह ब्राह्मण कही जाने वाली जाति वही है जिसने किसी भी सांसारिक मान, किसी भी वैभव और किसी भी पद को महत्त्व न देकर ज्ञान को ही एक मात्र श्रेष्ठ विषय समझ कर अपनाया था। इसके लिये उन्होंने न केवल दरिद्रता, गरीबी को सहर्ष स्वीकार किया था, वरन् आवश्यकता पड़ने पर जिसके लिये वे अपना जीवन भी उत्सर्ग कर देते थे। यही कारण था कि उस समय देश के छोटे से लेकर बड़े से बड़े तक सब कोई ब्राह्मणों की महिमा को बखानते थे और उनके चरणों में मस्तक नवाना सौभाग्य का चिह्न मानते थे।

पर आज उन्हीं ब्राह्मणों के वंशधर अपने कर्त्तव्य को भूल गये हैं और भौतिक सम्पत्ति के लिये नीच ने नीच कर्म करने को तैयार हो जाते हैं। बस जहाँ उन्होंने अपने कर्त्तव्य की ओर से निगाह फेरी कि जनता में उनका दर्जा घट गया और लोग उनको अवहेलना की दृष्टि से देखने लगे। पूजा तो गुणों के कारण ही होती है। जब वह श्रेष्ठ कर्म ही न रहे तो लोगों की श्रद्धा कैसे टिक सकती थी इसलिये जो लोग ब्राह्मणों की उपेक्षा और दुर्दशा की शिकायत करते हैं उनको वास्तविक कारणों पर ध्यान देना चाहिये। यदि ब्राह्मण अब भी अपने प्राचीन कर्त्तव्य पर आरूढ़ हो जायें और सांसारिक सुखों का मोह त्याग कर जन-कल्याण को अपना ध्येय बनालें तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सर्वसाधारण की दृष्टि में वे फिर वैसे ही पूजनीय बन जायेंगे।

समाज के उत्थान और पतन का उत्तरदायित्व ब्राह्मणों पर है

महाभारत के शान्ति पर्व (अध्याय १८९) में महर्षि भारद्वाज ने भृगु ऋषि से पूछा—"हे द्विजोत्तम, ब्राह्मण कैसे होते हैं? क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कैसे होते हैं ?" भृगु नें उत्तर दिया—"ब्राह्मण वही है जो यथा विधि सुसंस्कृत, पवित्र, वेदाध्ययन शील, पंटकर्मान्वित सदाचारी, विद्याव्यसनी, गुरुप्रिय, सत्यपरायण हो। जिसमें सत्य, दान, अद्रोह (मैत्री), अक्रूरता, लज्जा, क्षमा और तप है वही ब्राह्मण है।" फिर शूद्र का लक्षण बतलाते हुये वे कहते हैं—"जो नित्य सब प्रकार की वस्तुएँ खाता है, जो अपवित्र है, जो सब तरह के कर्म करता है, जो वेद त्याग कर आचार हीन हो गया है, वही शूद्र है।" आगे चलकर महर्षि कहते हैं—"जन्म जात शूद्र यदि चरित्रवान और सुसंस्कृति हो तो वह शूद्र नहीं रहता और यदि उपर्युक्त लक्षण जन्मना ब्राह्मण में न हों तो वह ब्राह्मण नहीं रहता।" इस प्रकार एक जमाना था जबकि हम ब्राह्मण मनुष्य-समाज में सर्वोपरि माने जाते थे। देवता तक हमारा मुँह ताकते थे और तीनों लोक में हमारी धाक जमी थी। हम आकाश में उड़ते थे, समुद्र के तल को छानते थे और पहाड़ों को भी हिला देते थे। समस्त संसार में हमारा आदर होता था और देश-विदेशों में हम गुरु मान कर पूजे जाते थे हम अन्धकार में प्रकाश करते थे, सोते हुओं को जगाते थे, प्राणहीनों में जीवन डाल देते थे। हम बिगड़ों को बना देते थे, गिरे हुओं को उठाते थे, भूले हुओं को राह पर लाते थे। किसी भी धूर्त या चालाक व्यक्ति की हमारे आत्मबल के सामने पेश नहीं पड़ती थी।

छोटे-बड़े सभी लोग हमारी कृपा-कटाक्ष के लिये लालायित रहते थे।

पर ये सब गुजरे जमाने की बातें हैं। आज तो कोई इन पर विश्वास करने को भी तैयार नहीं। इतना ही नहीं इनका कहने वाला आज पागल समझा जायगा। आज हमारा आचरण और रहन-सहन ऐसा बदल गया है कि हम स्वयम् अपने को नहीं पहिचान सकते। लोक कहते हैं कि जमाना बदल गया है, दैव ही हम से रूठा है और इसीलिये हमारी ऐसी बुरी हालत हो रही। पर ये सब बातें मन को समझाने और अपने दोष पर पर्दा डालने वाली हैं, वास्तव में न दैव ही हमारे प्रतिकूल है और न हमारा भाग्य ही लौट गया है। हम जो कुछ भोग रहे हैं। वह सब हमारी करतूतों का ही परिणाम है। आज हमारे मुखिया कहलाने वालों की ही मति उल्टी नहीं हो गई है, वरन् कर्मठ व्यक्ति भी उल्टे मार्ग पर चल रहे हैं। आजकल वीरता और साहस इसी में रह गया है कि अपने ही भाइयों की जड़ खोदी जाय, उन्हीं के साथ जूतम पैजार की जाय। हम अपने ही सगे-सम्बन्धियों का पेट काट कर अपना पेट भर रहे हैं, अपने पड़ोसियों का घर जलाकर अपने घर में रोशनी कर रहे हैं। धनवानों की तो बात ही मत पूछो, उनको अपना पेट भरने से ही फुरसत नहीं, चाहे उनके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छोटे भाई भूखों मर जायें। सण्डे-मुसण्डे डण्डे के बल से भले ही माल वसूल करलें, पर सीधे-सादे और भले आदमियों को ये किसी प्रकार की सहायता नहीं दे सकते।

यह तो सभी जानते हैं कि भारतवर्ष के पतन और उसकी दुर्दशा का कारण आपस की फूट ही रहा है। पर जब चारों वर्णों के नेता-सिरमौर-ब्राह्मणों में ही फूट घुस गई तो फिर कल्याण की आशा कहाँ से की जा सकती थी। वास्तव में ब्राह्मणों में स्वार्थपरता का भाव उत्पन्न हो जाने से ही देश को यह दिन देखना पड़ा। अन्यथा वे अगर अपने त्याग और तपस्या के व्रत पर कायम रहते तो हर तरह के विघ्न बाधाओं के होते हुए भी देश को नीचे गिरने से बचा सकते थे। अब भी यदि हम अपना और समाज का उत्थान करना चाहते हैं तो उसके लिये आत्म-बलिदान के प्राचीन भाव को ही जागृत करना पड़ेगा।

साधु ब्राह्मण की परम्परा का पुनर्जीवन

किसी समय चल और अचल देवालय परस्पर पूरक बनकर-समय की आवश्यकता का समग्र समाधान प्रस्तुत करते थे। समुद्र अचल है पर उसकी गरिमा का सह निर्वाह करने में उसका बादल स्वरूप ही कारगर सिद्ध होता है। अन्यथा समुद्र की सरसता का लाभ इस मध्य वर्ती कड़ी के बिना मिल ही न सके। राज दरबार की मण्डली अपने-अपने स्थानों पर बैठकर महत्त्वपूर्ण विचार विनिमय और निर्धारण करती है किन्तु प्रहरियों, सैनिकों गुप्तचरों और सन्देश वाहकों को निरन्तर दौड़ धूप में निरत रहना पड़ता है। दोनों ही स्तर के कार्य विभाजन अपने-अपने ढंग से—अपने-अपने स्थान पर सही हैं। बैंक खजाने अस्पताल, कारखाने अपने स्थानों पर स्थिर रहते हैं। पर रेलों, मोटरों जहाजों का एक स्थान पर बैठने से क्या काम चले ? एक समय ऐसा होता है जब दुर्भिक्ष पीड़ितों को तकावी माँगने और न्याय चाहने वाले वादी-प्रतिवादियों को अर्जी लेकर कचहरी में हाजिर होना पड़ता है, किन्तु डकैती, कत्ल जैसी दुर्घटना घटित होने पर पुलिस सुराग मिलते ही बिना बुलाये जा पहुँचती है। अग्निकाण्ड, बाढ़ भूकम्प, महामारी जैसे आकस्मिक विग्रहों के समय सद्भाव सम्पन्नों की सहायता के लिए स्वयं ही दौड़ना पड़ता है।

ब्राह्मण आश्रम बना कर रहते थे। पत्नियाँ गुरुकुल के छात्रों के लिये भोजन आच्छादन, चिकित्सा, दुलार, उपचार जैसे प्रयत्नों में निरत रहती थीं और मनीषियों को साधना लेखन, अध्यापन, परामर्श जैसे कार्यों में निरत रहकर अपने हिस्से का काम पूरा करना पड़ता था। आश्रमों का वातावरण ही परिवार जैसा होता था उसके संचालक ब्रह्मपरायण-लोक सेवी यदि गृहस्थ बनाकर रहते हैं तो यह उचित भी है आवश्यक भी।

साधु वर्ग के लोक को प्रव्रज्या पर निकालना पढ़ता है। जन जागरण के लिए जन सम्पर्क आवश्यक है। जन समर्थन से ही जन सहयोग उपलब्ध होता है।

प्रज्ञा अभियान को भी उपर्युक्त दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त दो प्रकार के कार्यक्रमों का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। स्थिर स्थानीय कार्यक्रम प्रज्ञापीठें उसी प्रकार चलायें जिस प्रकार कि भूतकाल में देवालय, तीर्थ आरण्यक, गुरुकुल शोध संस्थान चलाते थे। चल कार्यक्रमों को झोला पुस्तकालयों और ज्ञानरथों के सुपुर्द कर दिया गया है वे घर-घर पहुँचने और अलख जगाने की अपनी जिम्मेदारी निभाया करेंगे। दोनों को ही यह समझना है कि उन्हें वर्तमान कुप्रचलनों का अनुयायी नहीं बनना है वरन् प्रकाश स्तम्भों की तरह अभिनव आदर्श उपस्थित करते हुए समूचे प्रभाव क्षेत्र में प्रकाश वितरण करना है। मार्गदर्शन बनना है।

प्रज्ञापीठें वर्तमान दुर्दशाग्रस्त मन्दिरों का अनुकरण करें। आरती चौकीदारी भर में कर्त्तव्य की इतिश्री न समझें। वरन् जन जागृति के पुरातन काल जैसे समर्थ केन्द्र बन कर अपनी उपयोगिता सिद्ध करें और श्रद्धा जगायें। इसी प्रकार युग प्रव्रज्या को ६० लाख साधु बाबाओं का अनुकरण नहीं करना है, जो भिक्षा व्यवसाय के सहारे आडम्बर ओढ़ कर दिन गुजारते हैं। सातलाख गाँवों वाले देश में साठ लाख साधु क्या कर सकते हैं, इसकी अनुभूति जन-जन को कराने की जिम्मेदारी झोला पुस्तकालयों और ज्ञान रथों की है। प्रज्ञा प्रव्रज्या पर निकलने वाले तीर्थ यात्रियों के जत्थे भी इसी वर्ग में आते हैं और धर्म प्रचार की पद यात्रा में निरा रहकर प्रज्ञायोजनों के माध्यम से युग चेतना का सन्देश सुनाते और भविष्य परिवर्तन का वातावरण बनाते हैं। इन पंक्तियों में इन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों को अपने लक्ष्य स्वरूप और प्रयास का बोध कराया गया है ।

वर्तमान समय में ब्राह्मणों का कर्त्तव्य

मैं गत कुछ वर्षों से गम्भीरता पूर्वक इस विषय पर विचार कर रहा हूँ कि आज की वर्तमान स्थिति में ब्राह्मणों का क्या कर्त्तव्य होना चाहिए? भारतीय सभ्यता के आधार पर वह भौतिकत्व त्याग तथा सेवा है । अतः यह उचित ही था कि ब्राह्मणों को प्राचीन समय में उच्च स्थान दिया गया ।

सच्चा ब्राह्मण वह है, जो ब्रह्मवेत्ता हो अर्थात् ब्राह्मज्ञान तथा साक्षात बुद्ध को अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान को प्राप्त कर लिया हो । पुरातन काल के ब्राह्मण, ब्रह्मविद्या का अध्ययन भी करते थे तथा उसका अध्यापन भी करते थे । उनके विचार में ब्रह्मविद्या सबसे ऊँची विद्या थी तथा अन्य सम्पूर्ण ज्ञान उसके अधीन थे । कठोपनिषद में एक प्रश्न पूछा गया है कि जब ज्ञान प्राप्त किया गया हो तो शेष सब कुछ मालूम हो जाता है । उन लोगों ने इस रहस्य को समझ लिया था कि सम्पूर्ण विश्व एक है तथा विभिन्न रूपों तथा आकृतियों में एक आवश्यक तथा अपरिवर्तनशील भीतरी सत्ता विद्यमान है । यह सम्पूर्ण विश्व की आत्मा है । शेष सब वस्तुएँ उसी के अंग हैं ।

इस ज्ञान प्राप्ति ने ही उन्हें पूर्ण जीवन व्यतीय करने तथा समत्व प्राप्त करने का सामर्थ्य प्रदान किया । इस ज्ञान ने ही मानव कार्यों में उनके आचार-व्यवहार को प्रभावित किया और उन्हें श्रेष्ठ रूप प्रदान किया था । उन्होंने विश्व तथा मानवता के भगवान् और सेवा का रूप समझा तथा उसकी पूजा की ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मण तमभ्यर्च्य सिद्धिं बिन्दति मानव ॥

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विश्वरूप दिखलाया, जब अर्जुन ने उनसे अपना वास्तविक रूप दिखाने के लिये कहा था । हमें प्रतिदिन के जीवन में प्रत्येक वस्तु में भगवान् की सत्ता स्वीकार करनी चाहिये, तथा सब जीवों को उसी की छाया समझना चाहिये—कहा भी है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगो परमो मतः ॥

मनुष्यों में कोई बड़ा अथवा छोटा नहीं है । यदि सब जीव भगवान् के एक ही शरीर के अंग हैं तो एक अंग का दूरे अंग से भेद नहीं किया जा सकता ।

प्राचीन काल में छुआछूत की प्रथा का जो भी कारण रहा हो, परन्तु आज इसका व्यवहार अपराध माना जाता है । कानून की दृष्टि से यह ऐसा ही है, किन्तु इसे व्यवहार रूप में (अच्छी प्रकार से) समझ लेना चाहिए ।

विद्या-विनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

सच्चे ज्ञान का वर्णन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है—

सर्वभूतेषु येनैकम् भावमव्य समीक्षते ।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।

समत्व का व्यवहार करना चाहिये । अब ब्राह्मणों को जहाँ भी वे हैं, यह अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए कि वे देहातों में जायें तथा जनता के हृदय में हरिजनों के प्रति वास्तविक परिवर्तन करें ।

ज्ञान तब तक पूर्ण नहीं है, जब तक उस पर अनुष्ठान नहीं किया जाता । गीता में ज्ञान का वर्णन अहिंसा, सत्य, अक्रोध आद के रूप में किया गया है । केवल व्यक्तिगत पवित्रता मनुष्य को उसकी मुक्ति की ओर नहीं ले जाती । इस पर आचरण भी करना चाहिए तथा इसके साथ सेवा की भावना भी आवश्यक है । गीता के १२वें अध्याय में कहा है—भगवान् का सच्चा भक्त वह है जो भगवान् में निरन्तर ध्यान रखता है तथा अपनी आत्मा को विश्व-भावना में लगा कर भगवान से प्रेरणा शक्ति प्राप्त करके ऐसे संसार में प्रवेश करता है जिसमें प्रेम के साथ-साथ सेवा की भावना भी है ।

श्रीरामचन्द्र अपने बलिदानों के कारण ही अवतार बन सके । अपने राजतिलक के अवसर पर उन्होंने अपने भाई के पक्ष में अपना राज्य त्याग दिया था ।

जातीय एकता समय की माँग है । पहले से ही अनेक मतभेदों (दृष्टान्त रूप में छुआछूत और वर्गगत भेदों की कट्टरता) के कारण बहुत से लोग हिन्दुओं से अलग हो गये । यदि यही मनोवृत्ति अब भी जारी रही तो हमारे देश में और बहुत से पाकिस्तान बन जायेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

१२.२५ तीर्थ सेवन क्यों ? और कैसे ?

वर्णों की व्यवस्था का मूल कारण समाज के कार्यों को सुविधा से पूर्ण करने के लिए ही वर्गीकरण किया जाना था, जिससे सहयोगी समाज का निर्माण किया जा सके। प्रतियोगिता ही एकमात्र कानून रह गया था। हमारे पूर्वजों ने अनुभव किया कि प्रतियोगिता के स्थान पर मानव-सम्बन्धों में सहयोग की स्थापना अवश्य की जानी चाहिये।

सम्मिलित कुटुम्ब एक समाजवादी इकाई है तथा एक देहात भी—जो कार्य करने के लिए संगठित किया गया था, समाजवादी राज्य की एक बड़ी इकाई थी। किन्तु धीरे-धीरे यह विशेषता जाती रही तथा इसका स्थान उन नई सभ्यताओं ने ले लिया जिन्होंने भारत पर आक्रमण किया। उन संस्थाओं को बचाने के लिए वर्ण-व्यवस्था की कोमलता ने कंठोरता का रूप धारण कर लिया। जीवन में प्रतियोगिता तथा संघर्ष अधिकाधिक तीव्र हो गये। उदरपूर्ति के पुराने ढंग इस समय परिवर्तित हो चुके हैं। संस्कृत के अध्ययन की उपेक्षा होती है तथा ब्राह्मणों ने उदरपूर्ति के लिए अन्य बहुत से उपाय अपना लिये हैं, जिनसे वे अपने शरीर तथा आत्मा को एक स्थान पर केन्द्रित कर सकें । बदली हुई परिस्थितियों में ब्राह्मणों का क्या दर्जा है अथवा उनका अपने तथा समाज के प्रति क्या कर्तव्य है ? यह तो निश्चित ही है कि वह जीवन में अपनी उदरपूर्ति के लिए कोई भी मार्ग अपनावे, फिर भी वह जाति के लिए नि:स्वार्थ सेवा तो कर ही सकता है। वह एक सच्चा पुरोहित बन सकता है, यदि वह अपने जीवन को सरल बना ले बलिदान करने के लिए तत्पर रहे तथा दूसरों की सेवा के लिए अपने आपको प्रवृत्त कर दे। जो भी कार्य वह करे वह सेवा तथा त्याग भाव की भावना से किया जा सकता है। वह सदैव शान्ति के लिए कार्य कर सकता है । समय आ गया है जब प्रत्येक व्यक्ति को सब वर्णों के कार्य करने हैं। प्रत्येक को ज्ञान की प्राप्ति करनी है तथा अध्ययन करना है। सब को क्षत्रिय के रूप में अपने देश के लिए संघर्ष करना है, राष्ट्र के उत्पादन में वृद्धि करनी है तथा आर्थिक विकास में योग देने के साथ-साथ मानवता की सेवा भी करनी है। जब संसार की सब जातियों ने युद्ध में एक-दूसरे के साथ लड़ना आरम्भ कर दिया है, तब ऐसी स्थिति में केवल कुछ क्षत्रिय यह कार्य पूर्ण नहीं कर सकते और न केवल कुछ ब्राह्मण ही शिक्षा की समस्या को हल कर सकते हैं।

इसलिये प्रत्येक को सब कार्य आज की आवश्यकतानुसार करने होंगे। अलग रहने की भावना को छोड़ना होगा। पुराने दिनों में ब्राह्मण एक सच्चा पुरोहित होता था। पुरोहित शब्द एक आदर सूचक भावना का शब्द समझा जाता था तथा हमारे पूर्वज पुरोहित होने में गर्व अनुभव करते थे। वह व्यक्ति जो जाति तथा समाज के कल्याण के लिए विचार करता है तथा तदनुसार कार्यवाही करता है, वह पुरोहित है तथा वह उनका सखा, विचारक तथा पथ प्रदर्शक बनता है।

इस देश के आर्थिक पुर्ननिर्माण की समस्याओं की ओर भी आप सब का ध्यान निरन्तर आकर्षित होना चाहिए। हिन्दू तथा अन्य जातियों का एकमात्र भेद यह है कि हिन्दू अपने सब कार्य भगवान् के प्रति बलिदान की भावना से करता है। आप तब तक आदर प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक आप सादा जीवन नहीं व्यतीत करते। आप ज्ञान की प्राप्ति छोड़िए तथा सदैव सादा जीवन व्यतीत कीजिए। अन्य व्यक्तियों को भी ब्राह्मणों में सम्मिलित करना चाहिए। व्यवसाय इन ऊपर के भेदों का प्रतिरूप मात्र है। बहुत से अन्य व्यक्तियों को ब्राह्मणों में सम्मिलित किया जाना है। यही वह मार्ग है जिसके द्वारा पुराने दिनों में ग्रीक तथा अन्य लोग हिन्दुओं में सम्मिलित किये गये थे। विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए भी तपस्या के कारण ब्राह्मण बने। तथाकथित शूद्र वास्तव में शूद्र नहीं। जो भी भूमि पर कृषि कार्य करता है, वह वैश्य है।

हमारी सभ्यता तथा धर्म से सम्बन्ध रखने वाले सब ग्रन्थ संस्कृत में हैं अत: प्रत्येक हिन्दू को संस्कृत पढ़नी चाहिये, जिससे वह आर्य जीवन व्यतीत कर सके। संस्कारों को वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार अपनाया जाना चाहिए तथा जप-यज्ञ के स्थान पर द्रव्य-यज्ञ को स्थान प्राप्त होना चाहिए। व्यक्तिगत जीवन में प्रत्येक मनुष्य को पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए तथा उसे अन्य लोगों के लिए एक दृष्टान्त बनना चाहिए।

हमें प्रत्येक व्यक्ति के लिए पूजा की समान पद्धति बनानी है तथा सबको गायत्री की शिक्षा देनी है। पुरोहितों के लिए संस्कृति की शिक्षा अपेक्षित है जिससे वे अर्थों को समझाकर पुरोहित का कार्य सम्पन्न कर सकें। प्रसिद्ध विद्वानों को ही मठाधीश का स्थान मिलना चाहिए। मठों को विद्या (ज्ञान) का पीठ (स्थान) बनाना चाहिए।

आध्यात्मिकता को पुन: स्थान प्राप्त होना तथा जीवन की उस आर्य पद्धति की पुन: स्थापना किया जाना जिसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आधार सेवा तथा बलिदान पर हो आवश्यक है सामाजिक मूल्य भी सेवा पर आधारित हो जिससे मनुष्य का भाईचारा (साहचर्य) फिर से स्थापित किया जा सके तथा प्रत्येक व्यक्ति के आचार-व्यवहार में उन्नति तथा प्रगति हो सके। तभी संसार में स्थायी शान्ति स्थापित होगी।

ब्राह्मणत्व और साधुता का जागरण

अज्ञान मनुष्य जाति का सबसे बड़ा शत्रु है, उसके कारण पग-पग पर अगणित कष्ट एवं क्लेशों का सामना करना पड़ता है। इस आपत्ति से संसार को बचाने के लिए, ज्ञान जन्य सुख समृद्धियों को बढ़ाने के लिए हमारे देश में कुछ उदारमनां व्यक्ति अपना जीवन अर्पण करते थे। कार्य महान था, उसकी महत्ता इतना बड़ी थी कि समस्त भूलोक की सुख शान्ति उस पर निर्भर है। इस गुरुतर उत्तरदायित्व को अपने कन्धे पर लेने वालों को पूरी सावधानी, दिलचस्पी, लगन, मेहनत तथा ईमानदारी से जुटना पड़ता था। वे लोग अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को अत्यन्त सीमित करते थे ताकि निजी उलझनों में उनकी शक्तियाँ कम से कम खर्च हों । जो आवश्यकताएँ अनिवार्य थीं उनको वे समाज के ऊपर छोड़ देते थे। जनता उनके भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था धर्म बुद्धि के साथ करती थी। ज्ञान विज्ञान के स्तम्भ यह महापुरुष "ब्राह्मण" नाम से पुकारे जाते थे। ब्राह्मणों को "भूसुर" पृथ्वी के देवता कहा गया है। उनका ज्ञान वर्धन कार्य, त्याग-सेवा भाव सचमुच इसी योग्य था कि उन्हें भुसुर की गौरवमयी उपाधि से अलंकृत किया जाय और उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो कुछ दिया जाय वह अत्यन्त सम्मानपूर्वक, दिया जाय। यह ब्राह्मण—जातीय जीवन के मस्तिष्क कहे जाते थे, उनसे राजा और प्रजा सभी को प्रेरणा मिलती थी । वे धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, सदाचार, एकता एवं प्रेम का प्रचार करते थे साथ ही चिकित्सा, रसायन, खगोल, भूगर्भ, शिल्प, कृषि विज्ञान आदि के नये-नये आविष्कार करते थे। उनके समस्त जीवन का एक-एक क्षण लोक हित के लिए लगता था।

ऐसे उपकारी तपोपूत, ब्रह्म परायण ब्राह्मणों के चरणों में सबके मस्तक नवते थे। उनको दान देते हुए देने वाले का अन्तःकरण आनन्द से भर जाता था। पर आज तो सब कुछ उलटा हो रहा है। ब्रह्म परायण, लोकसेवी तपोपूत ब्राह्मण, पुरोहित, गुरु, उपदेशक, साधु, संयासी, महात्माओं के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं, उनके स्थान पर साठ लाख भिक्षुकों की एक ऐसी सेना विराजमान हो गई है जो संसार को देती कुछ नहीं परन्तु लेने के लिए अनेकों उचित अनुचित आडम्बर बनाये बैठी है। अपना व्यक्तिगत लाभ उनका उद्देश्य है—स्वयं स्वर्ग लाभ करने मुक्ति पाने के लिए तथाकथित कर्मकाण्डों की चिह्न पूजा करते हैं पर अपने चारों और हो रहा चीत्कार उनके कानों तक नहीं पहुंचता। अपने पूर्वजों के पवित्र नाम पर उनके उत्तराधिकारी के नाम पर दान और प्रतिष्ठा तो प्राप्त करते हैं पर पूर्वजों के महान उत्तरदायित्वों की, कर्त्तव्यों को, आदेशों को पूरा करने से दूर रहते हैं। शरीर में मस्तिष्क का पतन हो जाय तो जो कुछ दुर्दशा न हो थोड़ी है। जिस जाति के जातीय मस्तिष्क ब्राह्मणत्व का अधः पतन हो जाय उसका ईश्वर ही रक्षक है।

नव जागरण की इस वेला में अपने जातीय गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए हमें अग्रसर होना है। इस कार्य के लिए मस्तिष्क को सब से आगे आना होगा, सबको प्रमुख भाग लेना होगा। प्रातः स्मरणीय ऋषियों की वंशज ब्राह्मण, मुनि, महात्माओं के अनुयायी साधु-सन्यासी आजकल करीब साठ लाख हैं, यह विशाल सेना यदि जनता का उद्बोधन करने के लिए उठ खड़ी हो, जिन्होंने पीड़ियों से दान देकर पालापोसा है उनके आड़े वक्त में काम आकर अपनी कुछ नमक हलाली दिखावे और अपने कर्त्तव्य को पालन करे तो चन्द दिनों में हमारा देश कुछ से कुछ हो सकता है। गृहस्थी का झंझट पीछे न होने से और दान के निर्धारित स्रोतों से जीविका की समुचित व्यवस्था होने से उस वर्ग को कार्य करने में बड़ी भारी सुविधा है। प्रति पचास गृहस्थों के पीछे एक भिक्षाजीवी की औसत है। यदि वे पचास-पचास व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूहों की सेवा करने के लिए बैठ जायें तो उन्हें चाहे जिस ढाँचे में ढाल सकते हैं। उन्हें चाहे जिधर प्रेरित कर सकते हैं। वे जिस बात का प्रचार करने उतर पड़ें उसे बच्चे-बच्चे के मस्तिष्क में भर सकते हैं, जिस कार्य को करने खड़े हो जायें उसे एक-एक उंगली लगा कर पूरा कर सकते हैं। किसी काम के लिए धन एकत्रित करना हो तो हाथों के अन्दर अरबों रुपया जमा कर सकते हैं, किसी शासन से बिगड़ खड़े हों तो उसकी नींव हिला सकते हैं। बलिदान करने को, शीशदान करने को खड़े हो जायें तो गंगा और यमुना को रक्त से लाल कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह जिस दिशा को मुड़ पड़ें उसी को धूलि-धूसरित कर सकते हैं। पाकिस्तान के अभागे हिन्दुओं की प्राण रक्षा के लिए चल पड़ें तो उनका बाल बांका होने से भी रोक सकते हैं।

इस सेना की अपार शक्ति है, बिना नौकरी के सेवक, बिना वर्दी के सैनिक, यह साठ लाख ब्रह्म वंशजों की सेना अपने कर्त्तव्य और धर्म की प्रचण्ड प्रेरणा के साथ जिधर भी बढ़ेगी उधर मोर्चा फतेह करेगी, इसे न कप्तानों की जरूरत है, न रसद की, न गोला बारूद की सब चीजें उसके साथ हैं। पीछे के लिए कोई चिन्ता उन्हें नहीं। हमारी यह धर्म सेना आज आलस्य, प्रमाद और भ्रान्ति के फेर में पड़ी हुई है। इसे जब जगाया जायेगा और अपने स्वरूप को पहचान कर उठ खड़ी होगी, तो जो कार्य, सरकार और संस्थाएँ अथक परिश्रम द्वारा भी नहीं कर पा रही हैं उसे यह सेना स्वल्पकाल में बड़ी आसानी से पूरा करके दिखा सकती है।

जरूरत सेना बनाने की नहीं, बनी हुई सेना को जगाने की है। यह जागरण कार्य कठिन है। पर अखण्ड ज्योति अपने को इस सेवा के लिए स्वयं समर्पित करती है। हम लोग देश-भर में भ्रमण करके साधु संस्थाओं से, मठाधीशों से, महन्तों से, जमातों और अखाड़ों के गद्दीधारी गुरुओं से, तीर्थ पुरोहितों से, पण्डित मण्डलियों से, सन्त महात्माओं से, आश्रम संचालकों से, संस्कृत पाठशालाओं के अध्यापकों से व्यक्तिगत रूप से, सामूहिक रूप से मिलेंगे और उन्हें लेखनी एवं वाणी से इसके लिए प्रेरित करेंगे कि भारतीय जीवन की जागरण वेला में वे रचनात्मक कार्य करें। हिन्दुत्व को पुनः प्राचीन पद तक पहुँचाने के लिए वे समस्त शक्ति के साथ जुट जावें। स्वर्ग या मुक्ति की प्राप्ति में यदि एक जन्म की देरी हो जावे तो यह थोड़ी देर सबेर अनन्त जीवन में कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखती। पर वह जन्म तो लोक जागरण के लिए लगना चाहिए। अखण्ड ज्योति ने देश के धर्म क्षेत्र और अध्यात्म क्षेत्र में जितना प्रवेश पा लिया है उसका दृढ़ता और विस्तृतता के आधार पर पाठक यह आशा कर सकते हैं कि अगामी एक वर्ष में समस्त भिक्षु संस्था का सौवां भाग-साठ हजार का एक समूह देशोत्थान के कार्य में अवश्यमेव प्रवृत्त होगा। इस समुदाय को सामने प्रधान उद्देश्य मनुष्य मात्र के हृदय में हिन्दू संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम विश्वास और तदनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित करना होगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठन, गोष्ठियाँ, पंचायतें, व्यायामशालाएँ पाठशालाएँ, एवं ज्ञान मन्दिर स्थापित करने की जहाँ जैसी आवश्यकता अनुभव होगी वहाँ वैसा करेगा। कार्य बिल्कुल रचनात्मक होगा। कार्यकर्ता भिक्षा द्वारा अपने निर्वाह के लिए अन्न वस्त्र प्राप्त करेंगे। धन को वे स्वयं स्पर्श न करेंगे। यात्रा पैदल करेंगे।

इस समुदाय में से कम से कम एक हजार साधु पंजाब एवं बंगाल जायेंगे और वहीं बस जायेंगे, वहाँ उनका कार्य शान्ति स्थापना का होगा।

राजनैतिक हलचलों एवं उत्तेजनाओं से सर्वथा दूर रहकर वे अपने क्षेत्र के लोगों को सद्ज्ञानामृत का पान करावेंगे।

हमारे मन्दिरों में ईश्वर भक्ति के साथ-साथ ईश्वर के आदेशों का पालन करने की प्रेरणाओं का भी केन्द्र बनना चाहिए। जो लोग ब्राह्मणत्व के नाम पर जीविका प्राप्त करते हैं उनका अनिवार्य कर्त्तव्य होना चाहिए कि जाति को ऊँचा उठाने में अपने समय का क्रियात्मक उपयोग करें। ब्राह्मण एवं साधु समाज का इन कर्त्तव्यों को सुझाने, मनवाने और कार्यारूढ़ करने के लिए यदि विशेष रूप से प्रेरणा दी जायेगी तो जो सच्चे होंगे वे आगे बढ़ेंगे और जो झूठे होंगे वे आडम्बर की चादर फेंक कर भाग जायेंगे। हम जनता को जागृत करेंगे। जब ब्राह्मणत्व और साधुत्व कसौटी पर कसा जायेगा, अग्नि में तपाया जायेगा तो खोटे माल की अपने आप छाँट हो जायेगी। दूध पीने वाले मंजनू, कटोरा फेंक कर भाग खड़े होंगे।

वर्तमान ब्राह्मण संस्था और साधु संस्था में से जितना भी अधिक से अधिक उपयोगी अंश निकाला जा सकेगा, उसे निकालने के लिए हम हर सम्भव प्रयत्न को काम में लावेंगे। फिर भी केवल इतने मात्र से काम न चलेगा। आग लगती है तो सबों को पानी लेकर दौड़ना पड़ता है, चाहे कोई किसी भी पेशे वाला क्यों न हो। आपत्ति काल में, निर्माण में, विशेष अवसरों पर सभी को एक कार्य करना पड़ता है। आज भी वैसा ही अवसर है। राष्ट्र की आत्मा को जगाने के लिए गिरे हुए हिन्दुत्व को ऊपर उठाने के लिए आज सभी को प्रयत्न करना है। हर मनुष्य में रहने वाले ब्राह्मणत्व से साधुता से हम गम्भीर अपील करते हैं कि वह जागृत हो और पुनरुत्थान के कार्य में सहयोग प्रदान करें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधु-ब्राह्मण की परम्परा पुनर्जीवित की जाये

जो स्थान शरीर में हृदय और मस्तिष्क का है वही विश्व मानव की स्थिरता के लिए साधु और ब्राह्मण का है। साधु हृदय है और ब्राह्मण मस्तिष्क। यों दोनों ही एक लक्ष्य के पथिक हैं, पर स्थिति में थोड़ा-सा अन्तर है। हृदय भावनाओं का केन्द्र माना जाता है, करुणा, कोमलता, ममता, सेवा जैसे भाव-भरे कृत्य उसी के हैं। इसीलिए उदार, परमार्थ-परायण, स्नेह-सौजन्य भरे लोगों को सहृदय या सुहृद कहते हैं। साधु का स्वरूप यही है वह भाव-भरा होता है। दूसरों का कष्ट उससे देखा नहीं जाता। पीड़ा और पतन उसे असह्य हैं। उसके पास जो कुछ है उसे पीड़ित मानवता की प्यास बुझाने के लिए ले दौड़ता है। वह भूल जाता है कि अपने लिए कुछ बचेगा या नहीं। सन्त एकनाथ ने प्यास से मरते हुए गधे की प्यास बुझाने के लिए अपनी वह गंगाजली उँडेल दी थी जो रामेश्वरम् पर चढ़ाये जाने के उपरान्त स्वर्ग मिलने की आशा बँधाती थी। प्यासे गधे को मरते देख कर उनकी करुणा तिलमिलाई और स्वर्ग की तुलना में सहृदयता को बना लेना उन्होंने उचित समझा।

साधुता, सहृदयता पर्यायवाची शब्द हैं। करुणार्द्र आत्म अपने सुख साधनों को पिछड़े, पीड़ित और पतितों पर निछावर करती रही है। देवत्व के परिपोषण के लिए दधीचों को अस्थिदान देने पड़े हैं। विश्वामित्र की युग परिवर्तन प्रक्रिया को सार्थक बनाने के लिए हरिश्चन्द्र ने न केवल राजपाट वरन् अपना परिवार बेचकर भी उस वट वृक्ष को सींचा था; जिसकी छाया में संतप्त जन समाज की तत्कालीन छाया प्राप्त करने का सहारा मिलने वाला था। साधु अपनी शारीरिक वासनाओं को—मानसिक तृष्णाओं को—दुत्कारता हुआ जो मिला है उस समस्त वैभव को जनता-जनार्दन के चरणों पर चढ़ा देता है। संयम और बलिदान का दूसरा नाम ही तप है। तपस्वी ही आदर्शों को सजीव रखने वाले प्रकाश स्तम्भ होते हैं। लोग उन्हीं से श्रेय पथ पर अनुगमन करने का साहस उत्पन्न करने वाली प्रेरणा प्राप्त करते हैं। इन साधु तपस्वियों से-मानवता को-अपना मस्तक ऊँचा करने का अवसर मिलता है। देवत्व उन्हीं के कारण जीवित रहता है।

समाज शरीर का दूसरा आधार है—मस्तक-ब्राह्मण। ब्राह्मण और साधु की स्थिति में थोड़ा अन्तर होता है। ब्राह्मण एक स्थान पर रह कर बुद्धि प्रधान कार्य करने को अपने लिए उपयुक्त देखता है इसलिए वह घर परिवार भी बना लेता है। ज्ञान साधन में संलग्न होता है। पढ़ता है और पढ़ाता है। नियत स्थान पर रहकर नियत क्षेत्र में नियत व्यक्तियों का पौरोहित्य करता है और उस सीमित क्षेत्र में उत्कृष्टता आदर्शवादिता बनाये रहने के लिए सतत् सेवा संलग्न रहता है।

साधु परिव्राजक होता है। घर न तो बनाता है न बसाता है। यदि बस गया या बन गया था तो तब तक उसका निर्वाह करता है जब तक कि आश्रित व्यक्ति स्वावलम्बी न हो जायें। आरम्भ में ही जिनकी भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं वे बिना गृहस्थ में प्रवेश किये सीधे साधु बन जाते हैं और जिनका घर बस गया वे उपयुक्त अवसर आने तक ठहरते हैं। इसके पश्चात वे समस्त विश्व को अपना घर—समस्त मानव जाति को अपना परिवार मानकर ससीमता के बन्धन तोड़ते हुए असीमता में प्रवेश करते हैं और जीवन मुक्ति का इसी जन्म में लाभ लेते हैं। लोक मंगल ही उनका लक्ष्य होता है। बादलों की तरह वे हर प्यासी भूमि पर पानी बरसाते हैं। रुकने में न उनकी रुचि होती है न आवश्यकता।

ब्राह्मणत्व सुविधाजनक है, साधुता बाह्य दृष्टि से कष्ट कारक। ब्राह्मण विचार प्रधान होता है, साधु भावना प्रधान। ब्राह्मण यथा शक्ति चलता है और साधु दुस्साहस का आदर्श प्रस्तुत करता है। इसलिए साधु को ब्राह्मण से श्रेष्ठ माना गया है और ऊँचा सम्मान दिया गया है। यह ऊँचा दर्जा न केवल साधु की तपश्चर्या को देखते हुए दिया गया है, वरन् यह भी देखा गया है कि उनकी सेवा साधना की उपयोगिता भी अत्यधिक है। न्यूनतम निर्वाह में वे अधिक व्यापक अधिक महत्त्वपूर्ण सेवाएँ कर सकते हैं जो कि सीमा क्षेत्र में बँधे हुए ब्राह्मण के लिए सम्भव नहीं है।

आज साधु और ब्राह्मण की दोनों ही परम्पराएँ नष्ट हो गईं। प्रायः दोनों का ही वंश नाश हुआ दिखाई पड़ता है। यों वंश के ब्राह्मण और वेश के साधु दोनों मिल कर एक करोड़ के लगभग जा पहुँचे हैं। पर इनसे कुछ बनता नहीं उपहास ही होता है। स्वार्थ सिद्धि के लिए मुफ्त खोरी ही जिनका लक्ष्य होगा; वे स्वयं भी गिरेंगे और जो उन्हें पकड़े होंगे उन्हें भी साथ ले गिरेंगे। पण्डा पुरोहित धन लूटने में और साधु बाबा स्वर्ग, मुक्ति और चमत्कार सिद्धि लूटने में लगे हैं। दोनों को ही सम्मान चाहिए, पैसा चाहिए। बदले में अपने शिष्य यजमानों को कुछ ऐसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जादू मन्त्र ही सिखा सकते हैं जिनसे उन बेचारों का समय और धन ही नष्ट होने वाला है। इस वर्ग में देश धर्म समाज संस्कृति के लिए दर्द होता तो वे अपना कार्य क्षेत्र प्राचीन काल के ऋषि मुनियों की तरह लोकमंगल का बनाते—जन कल्याण में जुटते। अपने को उसका अधिकारी बनाने पर उस स्तर की इच्छा तक उन्हें छूकर नहीं गई है। ऐसी दशा में यह आशा करना व्यर्थ है कि इन वेश और वंश के आधार पर पुजने वाली निर्जीव प्रतिमाओं से कोई प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा। जन मानस में सद्विचारणाएँ भरने वाले ब्राह्मण और लोक अन्तःकरण में सद्भावनाएँ विकसित करने वाले साधु यों देश में कुछ तो होंगे ही पर उनकी संख्या जलते तबे पर पड़ने वाली थोड़ी-सी पानी की बूँदों से अधिक नहीं हो सकती।

प्रत्येक दुर्भिक्ष प्राणघातक संकट उत्पन्न करता है। वर्षा न होने से सूखा पड़ता है, अनाज और चारा न उपजाने से, पीने का पानी कम पड़ने से अगणित मनुष्य पशु एवं अन्य प्राणी भूख प्यास से तड़पते हुए प्राण त्यागते हैं। सद्ज्ञान की वर्षा न होने से इससे भी बड़ा दुर्भिक्ष पड़ता है। शरीर भूखा मरे तो भी आत्मा के स्तर को आँच नहीं आती। किन्तु यदि सद्ज्ञान की वर्षा बन्द हो जाय तो मनुष्य की आत्मा ही मरती है। विचारणा और भावना का स्तर गिर जाने का स्वाभाविक परिणाम कुकर्मों का-दुष्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन होता है। इस दुर्भिक्ष से पीड़ित जनमानस संकीर्ण स्वार्थ भरे व्यक्तिवादी दल-दल में फँसता है। अनाचारों और अपराधों में लाभ देखता है। और प्रकट-अप्रकट रूप से ऐसी गतिविधियाँ अपनाता है जिससे मनुष्य को असुर रूप में देखा जा सके और सामाजिक जीवन में नारकीय परिस्थितियाँ उफन चलें। आज यही दृश्य सामने है। इस दुर्गुति के लिए गरीबी अशिक्षा आदि को दोष देना व्यर्थ है। यह सब तो चिन्तन भ्रष्टता को, विष वेल पर लगने वाले छोटे-छोटे फल मात्र हैं।

इस तथ्य को हमें हजार बार समझना चाहिए कि मनुष्य, हाड़-मांस का पुतला नहीं है। वह एक चेतना है। भूख चेतना की भी होती है । विषाक्त आहार से शरीर मर जाता है और भ्रष्ट चिन्तन से आत्मा की दुर्गति होती है। प्रकाश न होगा तो अन्धकार का साम्राज्य ही होना है। सद्ज्ञान का आलोक बुझ जायेगा तो अनाचार की व्यापकता बढ़ेगी ही। भ्रष्ट चिन्तन और दुष्ट कर्तृत्व का परिणाम व्यक्ति और समाज की भयानक दुर्दशा के रूप में ही सामने आ सकता है। यह सिद्धान्त मात्र नहीं—प्रत्यक्ष तथ्य है। आज हम चारों ओर आँख उठाकर यही सब देख रहे हैं। रोटी कपड़े के बिना कोई नहीं मर रहा है—निर्वाह की आवश्यकता किसी की भी रुकी नहीं पड़ी है फिर भी हर व्यक्ति वैसा सोच रहा है—वैसा कर रहा है जिससे मनुष्यता का गौरव नहीं बढ़ता। समाज में शान्ति का वातावरण नहीं बनता। इस विपत्ति का कारण मानवी चेतना को सद्ज्ञान का पोषण न मिलना ही एक मात्र कारण है। यदि यह दुर्भिक्ष न पड़ा होता तो भौतिक साधनों की इतनी कमी नहीं होती, जिसके कारण दशों-दिशाओं में त्राहि-त्राहि गुँजाने वाला करुण, क्रन्दन उठ रहा है।

अपने युग की इस मान विपत्ति की दूर करने के लिए सद्ज्ञान की गंगा का अवतरण पुनः करना होगा। अब ६० हजार नहीं ६० करोड़ सगर पुत्र नरक की आग में जल रहे हैं। इन्हें शान्ति देने के लिए स्वर्ग से धरती पर गंगा अवतरण वाली पौराणिक गाथा की जीवन्त पुनरावृत्ति होनी चाहिए। इसके लिए भाव-भरे भागीरथों को कठोर तप साधना के लिए आगे आना चाहिए। इससे कम में युग वेदना को शान्त न किया जा सकेगा। विनाश का सर्वभक्षी वृत्तासुर दधीचियों की अस्थियों के बज्र के अतिरिक्त किसी शस्त्र से मरेगा नहीं।

साधु और ब्राह्मण की परम्पराओं का पुनर्जीवन हमारा प्रधान लक्ष्य है। मनुष्य की गरिमा को सुस्थिर बनाये रहने और ऊँचा उठाते चलने के लिए यही दो भुजाएँ दैवी प्रयोजन पूरा करती रही हैं—कर सकती हैं।

अखण्ड-ज्योति प्रयत्न यह भी करती रही है कि वंश और वेश धारण करने वाले लोगों को उनके कर्त्तव्य उत्तरदायित्वों का बोध कराया जाय और उन्हें कर्त्तव्य पालन करने के लिए कहा जाय जिसके नाम पर उन्हें पीढ़ियों से प्रचुर धन सम्मान मिलता चला आ रहा है। ऋण चुकाने के नाम पर भी उन्हें कुछ करना चाहिए था, देव लक्ष्य पूरा करने की भावना जगती तब तो बात ही क्या थी; पर हमें अत्यन्त दुःख के साथ अपनी असफलता स्वीकार करनी पड़ती है कि परम्परागत साधु ब्राह्मणों के दरवाजे पर पूरी तरह लम्बे समय से सिर फोड़ते रहने पर भी उन्हें पिघलाना सम्भव न हो सका। जिन्हें मुफ्त का धन और मान मिल रहा है उन्हें ऐसे झंझट में पड़ना जरा भी नहीं सुहाया जिसमें उन्हें स्वयं कष्ट साध्य आदर्शवाद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनाना पड़ता और लोक सेवा पथ पर चलते हुए पग-पग पर तप-तितीक्षा का परिचय देना पड़ता।

नव युग-निर्माण के लिए नये सिरे से अपने प्रयत्न आरम्भ हुए हैं। इस भवन का निर्माण साधु और ब्राह्मणों के ईंट-चूने से ही सम्भव होगा। इनकी आवश्यकता कहीं से भी—किसी भी मूल्य पर पूरी करनी पड़ेगी। युग की इस महती आवश्यकता के साधन जुटाने के लिए हम कितने प्यासे फिर रहे हैं—कितने छटपटाते हैं इसे कोई भी हमारे समीप आकर हमारे भीतर घुस कर देख सकता है।

अपने ४० वर्षों के प्रयास में अखण्ड-ज्योति ने ब्राह्मण संस्था का एक छोटा ढाँचा खड़ा करने में थोड़ी सफलता प्राप्त की है। युग निर्माण परिवार के कर्मठ कार्यकर्त्ता सद्ज्ञान सम्पदा के निर्माण एवं वितरण की आवश्यकता समझते हैं। वे संयमी ब्राह्मणों की तरह अपनी निजी सुख-सुविधा में कटौती करके जो समय, मनोयोग, पैसा बचाते हैं उसे ज्ञान देवता के युग यज्ञ में भावनापूर्वक होते रहते हैं। यही है वह आलोक जिसे देखकर हमारी आँखों में आशा की ज्योति जलती रहती है।

ब्राह्मण घर परिवार में रहता है और अपनी गृहस्थी के निर्वाह में न्यूनतम शक्ति नियोजित करने के पश्चात् जो कुछ बचता है उसे लोक मंगल में लगा देता है। अपने कर्मठ कार्यकर्त्ता यही करते हैं। पेट पालने के लिए परिवार पोषण के लिए जितनी न्यूनतम शक्ति खर्च करने से काम चल सकता है; उतनी से ही काम चलाते हैं। अमीर बनने, दौलत जमा करने और बड़े आदमी होने की लिप्सा छोड़ देने और किसी प्रकार निर्वाह चलने से सन्तुष्ट रहने की, मनोभूमि बना लेने के उपरान्त ही उनके लिए इतना कुछ कर सकना सम्भव हुआ है जिससे नवयुग का अरुणोदय होता हुआ दिखाई पड़ रहा है। इसे इन कर्मवीर युग निर्माताओं के तप त्याग का—ब्राह्मणत्व का—अनुदान ही कहा जा सकता है।

आपत्ति धर्म के रूप में ब्राह्मणत्व और साधु परम्परा को पुनर्जीवित कराने के लिए अपने प्रयास सामयिक हैं। इससे कुछ तो काम चलता ही है, पर वह बात नहीं बनती जो पूरा समय लगाने वाले साधु ब्राह्मणों द्वारा बनती थी—बन सकती है। हमारे अगले प्रयास इस दिशा में होने चाहिए और साधु ब्राह्मणों की गरिमा को मूर्तिमान करने में अपना समूचा जीवन समर्पित करने वाले उदाहरण आगे आने चाहिए। यह प्रयोजन अखण्ड-ज्योति परिवार के लोगों को ही पूरा करना होगा। अब उसमें इतनी भावना और क्षमता उत्पन्न होनी चाहिए कि साधु और ब्राह्मणों को आधे-अधूरे नहीं पूरे परिपक्व प्रतीकों को युग देवता के चरणों में प्रस्तुत कर सकें। अपने परिवार ने बालपन समाप्त करके प्रौढ़ता में प्रवेश पा लिया; इसका यही प्रमाण हो सकता है—कि वह साधु और ब्राह्मणों की युग आवश्यकता को पूरा करके दिखाये।

ब्राह्मणत्व की महान जिम्मेदारी

संसार में सबसे बड़ी गोरवास्पद वस्तु 'बुद्धि' है। बुद्धि बल की अधिकता से ही मनुष्य का बड़प्पन कूता कहा जाता है। बड़प्पन प्राप्त करते ही उसके ऊपर अपने से छोटों के हित का ध्यान रखने की जिम्मेदारी आ जाती है। घर का प्रमुख, जिसे बाबा या दादा कह कर पुकारते हैं स्वयं बहुत किफायतशारी का जीवन बिताता है और छोटे बाल-बच्चों को अपनी कमाई के पैसों से खिला पिला कर पहिना उढ़ाकर प्रसन्न होता है। विद्यावान भी ऐसा ही बुजुर्ग है जिसे अपने लिए उस तरह की चमक-दमक की चीजें रुचिकर नहीं होती जैसी कि बच्चों की होती हैं। अपनी विद्या द्वारा अपना ही बड़प्पन बढ़ाना उसे निरा बालकपन और अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल दिखाई पड़ता है। दादी यदि नातिनियों की जैसी बेल बूटे की गोटे पट्टे की पोशाक पहनना आरम्भ कर दे तो लोग उसे देखकर हँसते-हँसते लोट-पोट हो जायेंगे, कहेंगे इस बुढ़िया को बुढ़ापे में कैसा शौक चर्राया है। यह बात उन ज्ञान-वृद्धों के सम्बन्ध में कही जायेगी जो विद्या का, बुद्धि का विवेक का महान गौरव ग्रहण करके बुजुर्ग बन चुके हैं परन्तु ऐश-आराम, शौक, मौज और धन संचय की बालक्रीड़ा में जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों का अपव्यय कर रहे हैं।

जब हम अपने प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें विद्यावानों की ईमानदारी की निर्मल झांकी होती है जो जितना ही ज्ञान सम्पन्न है वह उतना ही त्यागी बनता है। ठीक भी है जो वृक्ष फलों से जितना लदता है वह उतना ही झुक जाता है, विद्या के भार से झुके हुए ब्राह्मण लोक सेवा के लिए अपना मस्तक झुका देते हैं और एक अकिंचन किंकर की तरह समाज हित के लिए जीवन व्यतीत करते हैं ऋषियों का, मुनियों का, ब्राह्मणों का, ज्ञानियों का, विवेकवानों का जीवन सदा ही त्यागमय होता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। वनों में घास फूँस की झोंपड़ी बनाकर वे अपना निर्वाह करते हैं, शरीर पर वही वस्त्र रखते हैं जो अत्यावश्यक हैं। घास का बिछौना, लकड़ी के जूते, कद्दू का कमण्डल, काठ के पात्र उनकी सादगी के चिह्न हैं। संग्रह को पाप समझना, केवल उतनी ही चीजें रखना जो तात्कालिक आवश्यकता के लिए बहुत ही जरूरी हैं उनकी नीति है। पीपल-वृक्ष के छोटे-छोटे फलों को खाकर गुजारा करने वाले ऋषि का नाम 'पिप्पलाद' पड़ जाता है। खेतों में गिरे हुए दाने-कण बीन-बीन कर काम चलाने वाले महर्षि को 'कणाद' कहकर पुकारते हैं । एक बड़े साम्राज्य का महामन्त्री होने पर भी महर्षि चाणक्य अपनी कुटिया में ही निवास करते हैं और ब्राह्मणोचित सादगी के साथ त्याग पूर्ण जीवन बिताते हैं। कौरवों के गुरु होते हुए भी द्रोणाचार्य अपने लिए कोई जागीर नहीं लेते वरन् सन्तों के उपयुक्त सादगी के साथ रहते हैं। रघुवंशियों के गुरु वशिष्ठ जी की सलाह के बिना उन राजाओं का पत्ता नहीं हिलता था फिर भी वशिष्ठ जी का रहन-सहन सच्चे ब्राह्मण की मर्यादा से बाहर जाकर राजसी कभी नहीं हुआ । दो-चार उदाहरण देने से काम न चलेगा, आदि से अन्त तक सभी ऋषि, सभी ब्राह्मण एक से एक बढ़कर विद्यावान् हैं, साथ ही उनका त्याग भी एक से एक बढ़कर है। उन्होंने अपने लिए अपनी शक्तियों का न्यूनतम भोग खर्च किया है और शेष योग्यताओं को, बचे हुए सारे समय को जनता के लिए, देश के लिए, समाज के लिए, धर्म के लिए, परमात्मा के लिए लगाया है तभी तो यह भारत भूमि देव भूमि बन सकी थी । तभी तो वैदिक संस्कृति की ध्वजा आकाश में फहराती थी। तभी तो चक्रवर्ती आर्य यहाँ बसे थे । तभी तो हमारे घरों पर सोने के कलश रखे रहते थे और मोतियों के चौक पुरते थे। घर-घर में आनन्द मंगल होते थे, कहीं भी किसी प्रकार का कष्ट न था। ब्राह्मणों के तप का फल सारा राष्ट्र भोगता था।

उस स्वर्ण-युग की आज के विद्यावान, बुद्धिमान् विवेकवान का नाम ही ब्राह्मण है। अमुक वंश में जन्म लेने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता, हाँ, ब्राह्मण बनने का दम्भ कर सकता है। ब्राह्मण वही है जिसके पास विद्या, बुद्धि की पूँजी है। इस प्रकार के विद्या के धनी-ब्राह्मण आज कम नहीं हैं। हमारे विद्यालय (कॉलेज) और विश्वविद्यालय (यूनीवर्सिटियाँ) प्रतिवर्ष सहस्त्रों स्नातक (ग्रेजुएट) तैयार करती हैं। गैर सरकारी, धार्मिक प्रयोजन से चलने वाली शिक्षा संस्थाएँ भी प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में सुशिक्षित व्यक्ति तैयार करती हैं। अध्यवसाय और व्यक्तिगत प्रयत्नों से कितने ही मनुष्य बुद्धिबल प्राप्त करते हैं यह सब मिलकर बहुत बड़ी संख्या हो जाती है। परन्तु हम देखते हैं कि विद्यावानों का यह ब्राह्मण वर्ग अपनी इस महत्त्वपूर्ण ज्ञान शक्ति को उस दिशा में प्रवृत्त करता है जिससे उनको अधिक पैसे मिल सकें और उन पैसों को उन कामों में खर्च करता है जिससे उन्हें अधिक ऐश-आराम, शान-शौकत, प्राप्त हो सके। पैसे जितने अधिक मिलते हैं उतनी ही उनकी आवश्यकताएँ और तृष्णाएँ बढ़ती जाती हैं। अन्ततः उस विद्या के बदले में प्राप्त हुए मर्यादित धन, उन अमर्यादित तृष्णाओं और बढ़ाई हुई आवश्यकता के मुकाबले में कम ही पड़ता रहता है और जीतोड़ प्रयत्न करने पर भी वह अपने को गरीब ही अनुभव करता रहता है।

जो लोग अपनी प्रचण्ड तर्क शक्ति और न्याय विशेषता के द्वारा लोगों को प्रभावित करके उन्हें अनीति से विरत कर सकते थे, न्याय का प्रचार कर सकते थे, अन्याय का निवारण कर सकते थे, झगड़ों को मिटा सकते थे, वे वकील अपने कानूनी पाण्डित्य को मुकद्दमे बाजों को प्रोत्साहन देने में खर्च कर रहे हैं। गवाहों को, मुवक्किलों को झूठे बयान सिखाने में अपनी चतुरता खर्च कर रहे हैं। इस रीति से वेशक उन्हें अधिक पैसे मिल जाते हैं पर जन-साधारण के लिए यह विद्या अभिशाप ही सिद्ध होती है। उनसे संसार में द्वेष की, असत्य की, मन मुटाव की, अपव्यय की वृद्धि ही होती है और लोगों में अशान्ति एवं क्लेश का ही अभिवर्धन होता है। क्या विद्या का यही प्रयोजन है ? क्या विद्वानों का यही उत्तरदायित्व है ?

कौन डॉक्टर रोगियों को प्राकृतिक आहार बिहार का महत्त्व समझाता है, निरोग रहने के नियमों पर सदा चलने के लिए रोगी को तैयार करता है। उनका तो कार्य आज इतना ही रह गया है कि मामूली बीमारी को भयंकर बताकर रोगी को डरादें जिससे वह घबरा कर अधिक से अधिक पैसे देने को तैयार हो जाये, दूसरा कार्य उनका यह रह गया है कि मामूली दवा को भड़कीले नाम और पैकिंग के साथ वेशकीमती बताकर मनमाने दाम वसूल कर लेना। कुछ समय के लिए वे एक रोगी को दवा दे सकते हैं पर धीरे-धीरे रोगी का घर नाना प्रकार की बीमारियों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अजायबघर बनता जाता है। इस डॉक्टरी से संसार का क्या लाभ हुआ? वे यदि चाहते तो निरोग रहने के नियमों पर चलने के लिए रोगी को तैयार कर सकते थे जिससे वह तथा उसका अनुकरण करने वाले अन्य लोग बीमारी और दवाई के चंगुल से बच जाते। पर आज उस उत्तरदायित्व को कौन डॉक्टर पूरा करता है?

अध्यापक को लीजिए वह चाहे तो कच्ची लकड़ी की तरह मोड़कर, गीली मिट्टी की तरह दबा कर अपने छात्रों को चाहे जैसा बना सकते हैं। पर आज समर्थ गुरु रामदास कहाँ हैं जिनके शिष्य शिवाजी निकलें। आज सन्दीपन कहाँ हैं जिनके छात्र योगिराज कृष्ण बनें, द्रोण कहाँ हैं, जिनके शिष्य धनुर्धर अर्जुन निकनें, विरजानन्द कहाँ हैं जिनके शिष्य दयानन्द बने। आज तो वेतन भोगी मास्टर रह गये हैं जिनके छात्र सामने ही मुँहजोरी करते हैं और पीठ पीछे उन्हें उल्लू बनाते हैं। शिक्षक डरते रहते हैं कि कहीं उनका विद्यार्थी नाराज न हो जाय नहीं तो ट्यूशन की नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा। आयोदधौम्य जैसे गुरु ही नहीं तो गुरु की आज्ञा पालन के लिए प्राणों की बाजी लगा देने वाले आरुणि और उपमन्यु जैसे छात्र कहाँ से आवें ? अध्यापक वर्ग चाहता तो अपने उज्जवल चरित्र की छाप छात्रों के ऊपर लगाकर उन्हें किसी उत्तम साँचे में ढाल सकता था। पर वह दृष्टि हो तब न? ब्राह्मणत्व की आग किसके हृदय में जलती है? विद्या की ईश्वरीय अमानत कौन मानता है? पढ़ाना और बदले में रोटी कमाना एक सीधा सा व्यापार बन गया है। गुरु के महानपद का भार वे कैसे उठा सकते हैं जिनके सामने जीविका ही एक मात्र आधार है।

पण्डित, पुरोहित, पुजारी, साधु, संन्यासी आदि का उत्तरदायित्व इन सबसे बड़ा है क्योंकि जनता केवल इसी लिए दान देकर उनके सारे खर्चे अपने ऊपर लेती है कि वे अर्थ उपार्जन की चिन्ता से मुक्त होकर अपना सारा समय मनुष्यों का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाने में लगावें। मन्दिर एक प्रकार से सार्वजनिक संस्था के रूप में स्थापित किये जाते थे जिनमें पाठशाला, व्यायामशाला, आरोग्य शाला, स्वाध्यायशाला, सत्संग, अध्यात्म साधन आदि की अनेकों लोकोपयोगी प्रवृत्तियाँ संचलित होती थीं। इन प्रवृत्तियों का संचालन करने के लिए जो विद्वान सदाचारी, कर्मनिष्ठ, ब्रह्मवृत्ति का लोक सेवक रहता था उसे पुरोहित या पुजारी कहते थे इस पुरोहित को सम्मान सहित जीविका देने के लिए भगवान का भोग मन्दिर का चढ़ावा आदि निमित्त रखे गये थे। जिससे लोग भगवान की नियत पूजा की अनिवार्यता को न भूलें और पुरोहित के खर्च में कमी न पड़ने पावे। यही बात सोलह संस्कार, यज्ञ आदि कर्मकाण्ड कथा पर चढ़ावा पर्वदान, ब्रह्मभोज आदि की दक्षिणा के नाम पर अन्य पुरोहितों की जीविका के लिए चालू की गई थी। इस प्रकार इन बुद्धि-जीवी ब्रह्म परायण व्यक्तियों को उपार्जन की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी और वे यजमानों को, उनके स्त्री-बच्चों को सदैव बुद्धिदान देकर ज्ञान का प्रसार करते हुए घर-घर में आनन्द की वृद्धि किया करते थे, मनुष्य बना कर संसार की सबसे बड़ी सेवा किया करते थे। इतने बड़े, इतने महान कार्य के उपलक्ष में, उनके त्याग, संयम और बुद्धिबल से प्रभावित हुई जनता ब्राह्मणों में असीम श्रद्धा रखती थी, उनके चरण स्पर्श करती थी, उन्हें बड़े से बड़ा सामाजिक सामान प्रदान करती थी।

आज ऐसे ब्राह्मण कहाँ है? वंश विशेष में जन्म लेने मात्र से वे ब्राह्मण होने का अहंकार करते हैं, ब्रह्म सम्मान को प्राप्त करने का दावा करते हैं, यजमानों से दान दक्षिणा पाना अपना अधिकार समझते हैं। जनता श्रद्धा या असम्मान से, इच्छा या मजबूरी से किसी कदर अपना भाग अदा करती है, लाखों करोड़ों रुपया प्रतिमास दान के रूप में दिया जाता है परन्तु हम देखते हैं कि इन दान जीवी व्यक्तियों में से ऐसे लोक सेवक उँगली पर गिनने लायक मिलेंगे जो दान प्राप्त करने के फलस्वरूप स्वभावतः कंधे पर आने वाली लोक सेवा की जिम्मेदारी को पूरा करते हैं। मुफ्त का माल और बिना सेवा का सम्मान प्राप्त करने के फल स्वरूप उनमें नाना प्रकार के दोष दुर्गुण उत्पन्न हो चले हैं। आलस्य, ठगी, याचकता की निर्लज्जता, अहंकार, मिथ्या विश्वासों का प्रसार करके अपने लाभ की वृद्धि करना, नैतिकता का पतन, दुर्व्यसन-हीनत्व की भावना, दम्भ-पाखण्ड आदि अनेकों दोष दुर्गुणों से दिन-दिन अधिक ग्रस्त होते चले जारहे हैं। ऐसे लोग अपने आप में एक पाप के, एक पतन के, एक अनैतिकता के, एक बुद्धि हीनता के प्रतीक हैं फिर वे दूसरों की नैतिकता को, मनुष्यता को, बौद्धिक-स्तर को ऊँचा उठाने में किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं।

हम जिधर दृष्टि प्रसार कर देखते हैं उधर ही ब्राह्मणत्व का लोप सा हो चला प्रतीत होता है। यों ब्राह्मण वंश के लोगों की संख्या भारतवर्ष में तीन करोड़ से अधिक है पर सच्चे ब्राह्मण, जो वस्तुतः ब्राह्मणत्व की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिम्मेदारी पूरी कर रहे हों, अपने ज्ञान बल से जनता का विवेक जागृत करने में (सर्वतोभावेन) लगे हुए हों, उँगलियों पर गिनने लायक मिलेंगे। ऐसी दशा में यदि हमारा सारा समाज गिरी हुई अवस्था में पड़ा रहे तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। जिस घर का मुखिया, गृहपति परिवार के प्रति अपना उत्तरदयित्व ठीक प्रकार न चालन कर रहा होगा तो उसके आश्रित अन्य परिजनों को दीन-हीन दशा में रखना पड़ेगा। शराबी मजदूर के बाल-बच्चों को दुःख-दारिद्र से ग्रस्त जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जिस समाज में उदार हृदय एवं समुन्नत मस्तिष्क नहीं होते, त्यागी नेताओं की कमी होती है उस समाज वालों को पतित अवस्था में रहना पड़ता है। भारतीय समाज को भी चिरकाल से ऐसे ही दुःख भोगने पड़ रहे हैं।

संसार में दुःख तीन प्रकार के हैं—(१) अज्ञान जन्य, (२) अशक्ति जन्य, (३) अभाव जन्य। लोग अपनी मूर्खता से, कमजोरी या वस्तुओं की कमी से दुःख पाते हैं। इन तीनों में भी अज्ञान सर्वप्रधान कारण है। उलझे हुए मस्तिष्क के, भ्रान्त विचारों के, कुसंस्कारी, अविचारी, अन्धविश्वासी मनुष्य साधारण सी बात को लेकर मन में भारी क्लेश की स्थापना कर लेते हैं और उस क्लेश से उद्विग्न होकर अपने लिए तथा दूसरों के लिए भारी संकट उपस्थित कर लेते हैं। जिन बातों को एक विचारवान व्यक्ति बिल्कुल साधारण समझता है और उन्हें हँसकर टाल देता है उन्हीं के लिए अविवेकी मनुष्य इतने उद्विग्न एवं उत्तेजित हो जाते हैं मानो जीवन का ध्रुव केन्द्र वह घटना ही हो। और उन छोटी वस्तुओं के मिलने या चले जाने से उनका सर्वस्व नष्ट हो रहा हो। संसार में प्रतिदित घटित होती रहने वाली घटनाओं का वास्तविक मूल्यांकन करने की योग्यता का नाम ही तत्वज्ञान है और उनका न होना भ्रान्ति, माया या अज्ञान है। इस अज्ञान के कारण लोग बहुत छोटी और बालविनोद जैसी मामूली बात को बड़ा भारी महत्त्व दे देते हैं और तिल का ताड़ बनाकर अपने चित्त को दुखाते रहते हैं। जो लोग वस्तुस्थिति का ठीक मूल्यांकन नहीं कर सकते उन्हें आये दिन किसी न किसी बहाने सन्ताप होता ही रहेगा। कल्पवृक्ष उनके आंगन में लगा दिया जाये तो भी वे सुखी नहीं रह सकते। जीवन का आनन्द केवल वे ही उठा सकते हैं जो घटना क्रम का ठीक मूल्यांकन कर सकते हैं, यह योग्यता स्कूल कॉलेजों की शिक्षा से नहीं आती वरन् जीवन विज्ञान का उस शिक्षा से आती है जो त्यागी, तपस्वी, मननशील, विद्वान और लोक सेवी ब्राह्मणों द्वारा प्राप्त होती है।

स्कूली शिक्षा की आज खूब समृद्धि हो रही है। गणित, भूगोल, इतिहास, भाषा, शिल्प, रसायन, चिकित्सा, व्यापार, कला-कौशल आदि की शिक्षा के लिए अनेकों शिक्षण संस्थान मौजूद हैं। इनके द्वारा शिक्षार्थियों को रोटी कमाने का रास्ता मिल जाता है परन्तु वह रास्ता नहीं मिलता जिस पर चलकर पारस्परिक प्रेम, भ्रातृभाव, उदारता, स्नेह, सदाचार, संयम, नम्रता, शिष्टाचार, सहनशीलता तथा घटनाओं का ठीक मूल्यांकन करना सीखा जाता है और उसके फलस्वरूप साधारण परिस्थितियों में भी सुख शान्ति पूर्वक जीवन बिताया जाता है और निकटवर्ती लोगों को आनन्दमग्न रखा जाता है । इस विद्या के ऊपर ही मानव जीवन की सुख शान्ति निर्भर है। जिस व्यक्ति में या जिस समाज में यह विद्या जितनी अधिक मात्रा में होगी वह उतना ही सुखी, स्वस्थ और सम्पन्न रहेगा।

विद्यावान और बुद्धिमानों के पास जो बुद्धि वैभव है उसका उपयोग स्वल्प बुद्धिमानों को अधिक बुद्धिमान बनाने के लिए किया जाना चाहिए। इस कार्य में विद्वानों को अपना निज का स्वार्थ छोड़ना पड़ेगा, ऐश आराम और संयम की तृष्णा को घटाना पड़ेगा। जीवन निर्वाह की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित रहना पड़ेगा। उनका यह त्याग बड़ा भारी त्याग है। बुद्धिमान मनुष्य ईमानदारी से भी काफी कमा सकते हैं फिर यदि वे बेईमानी पर उतर आवें तब तो कहना ही क्या है ? अनेकों चतुर धनियों की तरह वे भी श्री सम्पन्न हो सकते हैं। पर इस प्रलोभन से बचकर गुजारे मात्र से काम चलाना और शेष समय तथा शक्तियों को जनता जनार्दन की सेवा में समर्पित कर देना यही ब्राह्मणत्त्व का सच्चा आदर्श है, यह त्याग ही सच्चा तप है, तपस्वी ब्राह्मणों की इसी तपश्चर्या के फलस्वरूप सारा देश, सारा समाज सुख सम्पन्नता का लाभ उठाता था। थोड़े सी नदियों से बड़े विस्तृत क्षेत्र में भूमि की सिंचाई हो जाती है और वह क्षेत्र धनधान्य से, वृक्ष, वनस्पतियों से, फल-फूलों से भरा-पूरा रहता है यदि वे नदियाँ सूख जायें अथवा अपना जल दूसरों के उपयोग के लिए मुफ्त देने से इन्कार कर दें, त्याग और सेवा के सिद्धान्त की अवहेलना कर दें तो वह नदियाँ पानी से चाहे कितनी ही भरी-पूरी क्यों न रहें यह निश्चित है कि वह प्रदेश शुष्क, कुरूप और श्री-विहीन हो जायेगा। दुर्भाग्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भारतभूमि और हिन्दू जाति को भी ऐसी ही बुरी स्थिति का सामना करना पड़ा है। ब्राह्मणों ने विद्या को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ कर उसका उपयोग स्वार्थ साधन तक ही सीमित रखा, फलस्वरूप उचित नेतृत्व और पथ प्रदर्शन के अभाव में जनता पथ भ्रान्त हो गई और ऐसी दशा में उसका दीनता, दासता, भ्रान्ति, अनैतिकता, स्वार्थ परता आदि की उलझन भरी झाड़ियों में भटक जाना स्वाभाविक ही था।

श्रेष्ठता के चिन्हों में 'दया' सर्व प्रथम गुण है। जो श्रेष्ठ होगा उसके हृदय में छोटों के प्रति, निर्बलों के प्रति, दुःखियों के प्रति करुणा की भावना अवश्य ही प्रस्फुरित होगी। कहते हैं कि—"दया बिना सन्त कसाई" कबीर की उक्ति है कि—

कबीर सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर वे पीर॥

संस्कृत भाषा में एक सन्त ने अपनी कामना का दिग्दर्शन इस प्रकार कराया है—

नत्वहं कामये राज्यं न सौख्यं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तनाशनम्॥

अर्थात्-मैं राज्य की, सुख की, अच्छे पुर्नजन्म की इच्छा नहीं करता। मेरी तो एक मात्र कामना दुःखी प्राणियों के दुःख दूर करने की है।

यह निश्चित है कि संसार में जितने, दुःख, शोक, पाप, रोग, क्लेश, कलह, द्वेष, सन्ताप, उद्वेग आदि कष्ट हैं उन सबका प्रधान कारण अज्ञान है। उस अज्ञान का विनाश केवल सद्ज्ञान की स्थापना से ही हो सकता है और इस कार्य को त्यागी, तपस्वी, सदाचारी, परमार्थ परायण, विद्वान-ब्राह्मण ही कर सकते हैं। यह ठीक है कि स्कूल कॉलेजों की शिक्षा का प्रसार सरकार द्वारा हो रहा है पर उतने से ही काम नहीं चल सकता। व्यक्तियों का नैतिक धरातल ऊँचा उठाने के लिए, उनकी संकुचितता भ्रान्ति, स्वार्थपरता और लिप्सा दूर करने के लिए उस जीवन विद्या की आवश्यकता है जो अध्ययनशील, विचारवान्, परिपुष्ट, दूरदर्शी मस्तिष्कों द्वारा— अनुकरणीय आदर्श चरित्र के व्यक्तियों द्वारा—लोगों के अन्तःकरणों में भरी जाय। इस कार्य को तपस्वी ब्राह्मण ही कर सकते हैं।

हम देखते हैं कि आज विद्वानों, विचारवानों और परिपुष्ट मस्तिष्क के विद्वानों की कमी नहीं है। धर्म, दर्शन, नागरिकता, सहयोग, समता आदि के सिद्धान्तों को भली प्रकार समझने वाले और उन्हें दूसरों को समझा देने की प्रतिभा एवं योग्यता रखने वाले विज्ञ मनुष्य काफी बड़ी संखा में मौजूद हैं। दूसरी वह असंख्य जनता है जो सद्ज्ञान ही तोता रटन्त की बावालता भले ही जानते हों पर जीवन विद्या से, सदविचारों के महत्त्व से सर्वथा अपरिचित हैं और इसी कारण नाना प्रकार के दुःखों में संतप्त रहते हैं। एक ओर मीठे शीतल जल का कुँआ मौजूद है दूसरी ओर प्यास से तृषित असंख्यों व्यक्ति छटपटा रहे हैं। बीच का वह सूत्र नहीं हैं जो जल और प्यासे का सम्मिलन कराके अनिर्वचनीय सुख सन्तोष की सृष्टि कर सके। यह सूत्र है—ब्राह्मणत्व। आज भारत भूमि का ऋषि पुत्रों का ब्राह्मणत्व मूर्छित पड़ा हुआ है। अज्ञान के संतप्त असंख्य जनता क्रन्दन कर रही है, पीड़ाओं से छटपटा रही है, पशुओं सा पतित जीवन बिता रही है, इतना सब होते हुए भी जिन आँखों में आँसू नहीं आते, जिन हृदयों में दर्द नहीं होता, जिन अन्तः करणों में करूणा फूट नहीं पड़ती, उनके लिए कैसे कहा जाय कि इनमें ब्राह्मणत्व जाग्रत है जीवित है। जिनमें सहृदयता है, जिनमें सद्ज्ञान है, जिनमें श्रेष्ठता है उनकी छाती ऐसी स्थिति को देख कर पसीजे बिना नहीं रह सकती। वे यह सहन नहीं कर सकते कि अज्ञान ग्रस्त जनता अपने पैरों को कुल्हाड़े मार-मार कर काट रही हो, अपने घर को आप जला रही ही और वे इस मूर्खता को रोकने के लिए, कुछ प्रयत्न करें, अपने सुख साधन छोड़कर उनकी सहायता करने के लिए न दौड़ पड़ें।

शास्त्र कहता है कि—"विद्यावान, ब्राह्मण संसार के अज्ञान को अपने तप द्वारा दूर करें।" जिन व्यक्तियों को आज विद्या प्राप्त है, बुद्धि प्राप्त है, जिनके हृदय में दया है, जिनके हृदय में ब्रह्मणोचित तप त्याग की भावना है वे ही सच्चे अर्थों में ब्राह्मण हैं, चाहे वे किसी भी वंश में उत्पन्न क्यों न हुए हों। ऐसे ब्राह्मणों को गायत्री का प्रथम सन्देश है कि—"बुद्धि संसार का सर्वश्रेष्ठ तत्व है वह तुम्हारे पास एक ईश्वरीय अमानत है उसे शक्ति भर प्रयत्न के साथ जनता जनार्दन में वितरण करो तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठो और अपना गौरव इस बात में समझो कि ईश्वर ने आपको योग्य और ईमानदार वितरण करने वाले के पद पर नियुक्त किया है। अपने कर्त्तव्य का पालन करो, अज्ञान दुःख से संतप्त जनता को सुखी बनाने के लिए सद्ज्ञान रूपी अमृत का वितरण करो और स्वयं तपश्चर्या एवं परोपकार का स्वर्गीय सुख उपलब्ध करो।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राह्मणो ! आप ऐसा मत सोचिये कि हम परमार्थ में प्रवृत्त होंगे तो हमारा खर्च कैसे चलेगा। ईश्वर पर विश्वास कीजिए जनता में सद्ज्ञान का प्रसार करने के लिए कदम बढ़ाइये अपने उत्तम ज्ञान और उज्जवल चरित्र से अन्धकार से भरे हुए हृदयों में प्रकाश उत्पन्न कीजिए, खर्च की कुछ कमी न रहेगी। मनुष्य की वास्तविक जरूरत बहुत थोड़ी होती हैं, फिर ब्राह्मण की जरूरतें और भी कम होती हैं। जन्म से पूर्व दूध के भरे हुए ऐसे दो घड़े जो सदा भरे ही रहते हैं जिसने उपस्थित कर दिये थे वह ईश्वर इस सृष्टि से उठ नहीं सकता। ब्राह्मणत्व के प्रति असीम श्रद्धा का मानव हृदय में से मिट नहीं सकती, इन महान् तत्वों पर विश्वास कीजिए। कंकड़ मत समेटिये, हीरों का व्यापार कीजिए । शास्त्र कहता है कि—हे बुद्धि जीवियो ! प्रलोभनों में मत पड़ो, ब्राह्मणोचित कर्म करो, संसार में सद्ज्ञान का प्रसार करो ।

ब्राह्मणत्व जागेगा तो राष्ट्र जागेगा

ऋषियों ने मनुष्य समाज की प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन कर यह निश्चिय किया कि उसका नेतृत्व और मार्गदर्शन ऐसे व्यक्तियों के हाथ में हो, जो पक्षपात रहित, निर्लोभ रहकर सर्वसाधारण के हित की रक्षा कर सकें। नेतृत्त्व एक बड़ी शक्ति है, बुरे व्यक्तियों के हाथों में पड़कर जिसका दुरुपयोग भी हो सकता है। अतः यह आवश्यकता समझ में आयी कि समाज के बुरे तत्वों पर अंकुश रखने के लिये राज्य की बागडोर किसी के भी हाथ में रहे पर उसका नियन्त्रण उन लोगों के हाथ में रहे जो उस शक्ति का दुरुपयोग न होने दें।

सामाजिक व्यवस्था, सर्वसाधारण के हित, श्रेष्ठ व्यक्तियों के हाथ में नेतृत्व मार्गदर्शन एवं प्रशासनिक नियन्त्रण रखने की दृष्टि से यहाँ जातियों का वर्गीकरण हुआ और प्रत्येक की स्थिति, गुण कर्म तथा स्वभाव के अनुरूप अधिकार और कर्त्तव्य भी प्रदान किये गये।

ब्राह्मण समाज का शिरोमणि समझा गया। उसके कर्त्तव्य और जिम्मेदारियाँ बहुत बड़ी थीं, उसका जीवन एक कठोर तपश्चर्या थी, इसलिये उसे अधिकार भी बढ़े हुए दिये गये। ब्राह्मण ने भी इस कठोर जीवन को सहर्ष स्वीकार किया क्योंकि लोक-कल्याण के लिये उसका हृदय बड़ा विस्तृत, बड़ा विशाल था।

ब्राह्मण बुद्धि, विचार और सत्कर्म आदि की दृष्टि से तो श्रेष्ठ होता ही है ब्रह्म शक्ति से आविर्भूत होने के कारण वह प्रचुर क्षमतावान् समझा जाता है। जो व्यक्ति अपनी शक्तियों सामर्थ्यों का उपयोग निजी स्वार्थों तक ही बाँध रखते हैं उनकी तुलना में तपस्वी, परोपकारी, त्यागी और कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को बड़ा पद मिलना भी चाहिये था। जो समाज कल्याण तथा लोकोपकार के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे, ऐसे ब्राह्मणों के बाहुल्य से ही जातीय विकास सम्भव हुआ है। हिन्दू इस योग्य हुआ है कि वह अन्य राष्ट्रों के समक्ष अपना गौरव ज्वलन्त रख सके। राष्ट्र की शान और सुरक्षा भी ब्राह्मणों के हाथ अक्षुण्ण रही है।

ब्राह्मण मनुष्य समाज का देवता है। वह जन-कल्याण की भावना से निरन्तर उत्सर्ग करता है। इस दृष्टि से समाज में उसे प्रथम स्थान मिले तो यह सर्वथा उपयुक्त ही है।

शास्त्र का भी मत ऐसा ही है। कहा है—

"ब्रह्मक्षत्रिय वैश्य शूद्रा इति चत्वारो वर्णस्तेषां वर्णानां

ब्राह्मण एव प्रधान इति वेद वचनानुरूपं स्मृतिमिरप्युक्तम्।"

अर्थात्-ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण कहे गये हैं। इनमें ब्राह्मण प्रधान है ऐसा वेद का मत है। स्मृतियों में भी यही कहा गया है।

किन्तु "ब्राह्मण" शब्द के अर्थ पर अब लोगों में बड़ा तीव्र मतभेद है। कोई ब्राह्मणत्व का आधार श्रेष्ठ, सत्कर्म मानते हैं, कोई जन्म परम्परा से ही जातियों का वर्गीकरण हुआ मानते हैं। यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। इस पर विचार करना और भी आवश्यक है।

शब्दिक अर्थ के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होने वाले को कह सकते हैं। पर ब्रह्म-ज्ञान की स्थिति सामान्य बात नहीं जो हर किसी को तपश्चर्या के अभाव में भी मिल जाया करे। यों तो आज भी शास्त्र पारंगतों की कमी नहीं पर ब्रह्मनिष्ठ का ज्ञान मात्र वाचिक नहीं अनुभव सिद्ध भी होता है। जिसका पाण्डित्य असाधारण हो वह ब्राह्मण है। यह अर्थ-सार्थक और सही लगता है।

ब्राह्मण "शक्ति" का प्रतीक है। उसकी सामर्थ्य, उसका प्राण और उसकी विद्वता असीम बनाई गई है इन विशेषताओं को देखते हुए वंश परम्परागत ब्राह्मण होने की बात तर्क संगत नहीं प्रतीत होती।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसके सही निर्णय के लिये वहीं चलना पड़ेगा जहाँ ब्राह्मण का प्रादुर्भाव हुआ है।

बज्र सूचिकोपनिषद् में इसे लेकर ८ श्लोकों तक ब्राह्मण को क्रमशः जीव, देह तथा ज्ञानी मानकर उसका विश्लेषण किया गया है और यह बताया गया है कि जीव ब्राह्मण नहीं क्योंकि वह विभिन्न योनियों में शूकर, कूकर आदि के रूप में भी जन्म लेता रहता है। देह अर्थात्-जन्म से भी वह ब्राह्मण नहीं क्योंकि ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी पंच भौतिक शरीरों वाले हैं। अन्य प्राणियों के शरीरों की भी ऐसी ही दशा है। शिक्षा भी ब्राह्मणत्व का आधार नहीं क्योंकि शिक्षा के विविध रूप हैं और उसका पारंगत कोई भी व्यक्ति हो सकता है।

अन्तिम श्लोक में ब्राह्मण की परिभाषा देते हुये कहा है "जो आत्मा के द्वैत-भाव से रहित अर्थात्-अपने को सदैव आत्मा के रूप में ही देखता हो। सत्य, ज्ञान और आनन्द; अनन्त स्वरूप तथा निर्विकल्प रहने वाला हो। परमात्मा की तरह ही सब भूतों का अन्तर्यामी, काम, राग आदि से रहित हो उसे ब्राह्मण कहते हैं। संयम-नियम का पालन करने वाला, मत्सर, तृष्णा, आशा, मोह, दम्भ, अहंकार आदि से पृथक् रहने वाला ही ब्राह्मणत्व का अधिकारी होता है।

इस तरह का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि जन्म-जात ब्राह्मण होने की बात अप्रमाणित है। ब्राह्मण की स्थिति सामान्य नहीं होती, उसकी क्षमता और ब्रह्म की क्षमता में एकरूपता होती है इसीलिये उसका इतना गौरवपूर्ण स्थान है। यह गुण जाति परम्परा से देखने में नहीं आते इसलिये ब्राह्मण की शास्त्रीय व्याख्या ही बुद्धि संगत है।

दुर्भाग्य से आज ऐसे ब्राह्मणों का राष्ट्र में नितान्त अभाव है। इसीलिये राष्ट्रीय जीवन में किसी प्रकार गौरव दिखाई नहीं देता। राजनैतिक स्वतन्त्रता भले ही मिल गई हो पर विचार और आचरण की दृष्टि से राष्ट्र अभी भी परतन्त्र है। इस स्थिति का निराकरण सच्चे ब्राह्मणों के उदय से ही सम्भव है।

स्वतन्त्रता के नाम पर आज जो स्वेच्छाचारिता, पदलोलुपता, दम्भ, दुराचार आदि बढ़ रहे हैं उससे इस देश को भारी अहित हुआ है। यहाँ का नैतिक जीवन बुरी तरह नष्ट हुआ है। कलह और प्रतिस्पर्धा बढ़ने से जन-असन्तोष भी बुरी तरह बढ़ा है। इसमें मनुष्य के स्वतन्त्र चिन्तन का अभाव एक बहुत बड़ा कारण है।

ब्राह्मण चिन्तनशील होता है। वह अपनी बुद्धि की सूक्ष्मता तथा ब्रह्मतेज से युक्त होकर अपने चारों ओर की परिस्थितियों को प्रभावित करता है। उसके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति एक अलौकिक प्रकाश का अनुभव करते हैं और उन्हें भी सत्कर्मों की प्रेरणा होती है। समाज में सदाचार और सत्प्रवृत्तियाँ जागृत होती हैं तो उससे सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की सम्भावनायें तीव्रता से विकसित होती हैं।

ऐसे थोड़े से ब्राह्मणों का भी प्रादुर्भाव यहाँ हो जाय तो यहाँ के जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार और बुराइयों का प्रभाव कम होते देर न लगे। प्रकाश जहाँ रहता है अन्धकार को वहाँ से भागना ही पड़ता है, सत्प्रवृत्तियों को जहाँ जोरदार समर्थन मिल रहा हो वहाँ दुःख, दीनता और दरिद्रता का टिक पाना असम्भव है। ब्राह्मण की जागृति इसलिये अनिवार्य है कि उसमें राष्ट्रीय चेतना की जागृति छुपी हुई है।

इस जागृति के लिये साधना की आवश्यकता होगी। ब्राह्मण का आविर्भाव कठिन तपश्चर्या से होता है, पर इस युग की परिस्थितियाँ इतनी गिर गई हैं कि लोग साधारण स्तर की तपश्चर्या से, कठिनाई से भी भय खाते हैं। लोगों का नैतिक स्तर जितना गिरा है मनोबल उससे भी अधिक गिरता हुआ चला जा रहा है। ऐसी स्थिति में साधना की कठिनाइयों में देर तक टिके रहना सबके लिये कठिन हो जाता है और एक महान् आवश्यकता की पूर्ति यों ही अधूरी पड़ी रह जाती है।

आज लोग भोग चाहते हैं अधिक से अधिक सुख चाहते हैं; इस तृष्णा में हमारा परलोक ढंक गया है। सुखोपभोग की भ्रामक बुद्धि ने आत्म-ज्ञान पर पर्दा डाल दिया है। लोगों का जीवन उद्देश्यहीन हो गया है। अब लोग स्वार्थ के लिये सदाचार को छोड़ देने में पटु हो गये हैं, अतः यह समस्या खड़ी हो गई है कि सच्चे ब्राह्मणत्व का पुनर्जागरण किस प्रकार किया जाय ?

जिस दिन से ऐसा वातावरण बनने लगेगा उस दिन से राष्ट्रीय जीवन में भी नव-जागरण का शुभारम्भ हो जायेगा। साधना जागृत होगी तो निश्चित ही राष्ट्र का ब्राह्मणत्व जागृत होगा। ब्राह्मण जागृत होगा तो यह राष्ट्र जागृत हो जायेगा और यह देश पुनः अपने अतीत कालीन ज्ञान, गौरव और समृद्धि की ओर बढ़ने लगेगा। ब्राह्मण इस देश के विकास की रीढ़ है उसे अब जागृत होना ही चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सेवाव्रती साधुओ ! आओ ! !

हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज की सेवा के व्रती लाखों साधु संन्यासी, भारतवर्ष के, ग्रामों, कस्बों और नगरों में स्वतन्त्रता से विचरते हैं। हिन्दू जाति के इस घोर संकट के समय उनका क्या कर्त्तव्य है? इस विषय पर कुछ लिखना अनुचित न होगा। क्योंकि जो प्रभाव हिन्दू जनता पर इन विरक्तों का पड़ता है, वह और किसी का नहीं पड़ सकता। अविद्या अन्धकार में सोई हुई हिन्दू जनता को यह महात्मा लोग बहुत शीघ्र जगा सकते हैं। उनका सिंहनाद हिन्दू सन्तान में नई जान फूँक सकता है। छोटे से छोटे कस्बे में सन्त महात्माओं के मठ बने हुए हैं जहाँ से हिन्दू-संगठन का काम बड़ी आसानी से हो सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि साधु सन्त हिन्दू संगठन के उद्देश्य को भली प्रकार जानें।

हिन्दू जनता आज कैसी दीनावस्था में है, उस पर विधर्मी गुण्डे कैसा संगठित प्रहार कर रहे हैं, यह सब देखकर कौन ऐसा साधु संन्यासी होगा, जिसका हृदय न फटता हो। हिन्दू गृहस्थ सदा श्रद्धा और प्रेम से साधुओं की सेवा करते हैं, देवियाँ बड़ी भक्ति भाव से विरक्तों की पूजा करती हैं, आज उन विरक्तों को हिन्दू गृहस्थों के प्रति अपना-अपना कर्त्तव्य पालने का समय आ गया है। प्रत्येक साधु को दण्ड और कमण्डल उठाकर, हिन्दू संगठन के काम में लग जाना चाहिए। ग्राम-ग्राम और कस्बे-कस्बे में घूम कर अज्ञानी जनता को चैतन्य करना चाहिए, और उसे स्वार्थी लोगों के हथकण्डों से बचाना चाहिए। कोई नगर, कोई कस्बा, हिन्दू संगठन से, संघ से खाली न रहे। बड़ी शान्ति से गृहस्थों को समझा बुझाकर ऐसे विचार फैलावें, कि जिससे हिन्दू फौलादी दीवार की तरह संगठित हो जावें और कोई उन्हें सता न सके।

जो साधु महात्मा देश जाति और धर्म की सेवा करना चाहते हैं, वे अब कमर कस कर तैयार हो जायें और संगठन के बिगुल को हाथ में लेकर नगर-नगर में इसे बजाते हुए घूमें। आज बैठने का समय नहीं, जिसमें जो कुछ हो सकता है उसे उतना काम करना ही चाहिए। हिन्दू संगठन की इस जागृति के काल में जो साधु-महात्मा इस महाप्रतापी हिन्दू जाति की सेवा करेगा, उसका नाम भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा।

यदि हम अपने भगवे कपड़े की सार्थक करना चाहते हैं, तो हमें हिन्दू संगठन का कठिन व्रत लेना होगा। स्थान-स्थान पर व्यायाम शालायें खुलवा कर, हिन्दू बच्चों में क्षात्र-धर्म का तेज भरना होगा। उनको उन्नत-मार्ग दिखलाना होगा, लाखों साधु आज इस धर्मक्षेत्र में आकर अपने जीवन को पवित्र बना सकते हैं। धर्म की सेना में आज ऐसे लाखों विरक्तों की आवश्यकता है। इसलिए आइए हम साधुओं का जबर्दस्त संगठन कर हिन्दू जाति की सेवा में लग जायें इसी में हमारा कल्याण है।

लोक-मानस की शुद्धि कौन करेगा ?

संसार के भी महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए एक विशेष योग्यता और शक्ति की आवश्यकता होती है। अनेक व्यक्ति कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने की आकांक्षा तो करते हैं पर उनको पूर्ण करने के लिए जिस क्षमता एवं शक्ति की आवश्यकता है उसे सम्पादित नहीं करते, फलस्वरूप उन्हें सफलता से भी वंचित ही रहना पड़ता है। जिसने भी कोई बड़ा पुरुषार्थ किया है, बड़ी विजय प्राप्त की है उसने तात्कालिक परिस्थितियों से ही सब कुछ नहीं कर लिया होता वरन् उनकी पूर्ण तैयारी ही उस सफलता का मूल कारण रही होती है।

आसुरी प्रकृति से बढ़ने और फैलने की शक्ति, दैवी प्रकृति में अधिक है। कुविचारों और कुकर्मों की ओर मन जितनी आसानी से आकर्षित होता है उतना सद्विचारों और सत्कर्मों की ओर नहीं। बुराइयों में उठे हुए अपने प्रत्यक्ष आचरण द्वारा बुराइयों को बढ़ाने और फैलाने वाले व्यक्ति संख्या और सक्रियता की दृष्टि से अग्रगामी रहते हैं। इसके विपरीत अच्छाइयों से परिपूर्ण, उच्च मनोभूमिका वाले ऐसे व्यक्ति बहुत ही कम होते हैं जो अपने साथी बनाने और बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें। परिणाम यह होता है कि संसार में धीरे-धीरे बुराइयाँ बढ़ती रहती हैं, अच्छाइयों की तुलना में उनकी मात्रा बहुत अधिक हो जाती है। तब नाना प्रकार के क्लेश, कलह और शोक सन्ताप बढ़ते हैं और सर्वत्र दुःख दारिद्र की आधिव्याधिकी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन्हें देख कर सहृदय सत्पुरुष द्रवित होते हैं और उस विषम परिस्थितियों का समाधान करने का प्रयत्न करते हैं।

ऋषि, मुनि, सन्त, महात्मा, नेता, सुधारक, देवदूत, लोक सेवी प्रकृति के मनुष्य सदा यही प्रयत्न हैं कि संसार

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में बुसइयाँ घटे और उनके स्थान पर अच्छाइयों की अभिवृद्धि हो, ऐसे प्रयत्न सफल भी होते हैं और उनके सत्प्रयत्नों से काफी समय तक के लिए शान्तिमय सतोगुणी वातावरण उत्पन्न हो जाता है। आनन्द और उल्लास का सभी को अनुभव होता है।

जन मानस में से दुष्प्रवृत्तियों को हटा कर उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों की स्थापना करना अत्यन्त ही उच्चकोटि का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसकी तुलना में और सभी सत्कार्य तुच्छ बैठते हैं। विवेकशील उच्च आत्माएँ समय-समय पर इस आवश्यकता का अनुभव करती हैं और वे लोक मानस में सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करती रहती हैं। यह कार्य जितना ही महान है उतनी ही महान क्षमता और शक्ति भी इसके लिए अपेक्षित होती है। यदि उसका अभाव रहा तो इस प्रकार की कामना और भावना रहते हुए भी कुछ विशेष सफलता नहीं मिलती।

आज का वातावरण बहुत हद तक दूषित हो चला है। उसमें आसुरी तत्व एक बड़ी मात्रा में उत्पन्न हो गये हैं। अनीति, अन्याय, अधर्म और अकर्म का चारों ओर बोलवाला है। स्वार्थ, पाप, वासना, तृष्णा, ममता और अहंकार की तूती बोल रही है। एक-दूसरे का शोषण करके, सताकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने में कटिबद्ध हो रहे हैं। प्रेम की उदारता, सहृदयता, सेवा और सज्जनता की मात्रा दिन-दिन घटती जा रही है, फलस्वरूप ऐसी घटनाओं की बाढ़ आ रही है जिनमें चीत्कार एवं हाहाकार की भरमार रहती है। लगता है कि यह प्रवृत्तियाँ बढ़ती रहीं तो मानव सभ्यता ही खतरे में पड़ जायेगी। विज्ञान ने मनुष्य के हाथ में विनाश की भी एक बड़ी शक्ति दे दी है। एटम शक्ति के आधार पर किसी सिर-फिरे का एक छोटा-सा पागलपन कुछ ही क्षणों में सारे संसार के लिए तबाही उत्पन्न कर सकता है। ऐसे जमाने में इस बात की अत्यधिक आवश्यकता है कि लोग सज्जनता और मानवता के आवश्यक गुणों से सम्पन्न हों अन्यथा विज्ञान से प्राप्त हुई शक्ति के सहारे दुर्गुणों से ग्रसित मानव शोक-संताप के गहन गर्त में आसानी से बात की बात में डूब मरने की परिस्थिति पैदा कर लेगा ।

इस ओर विवेकशील लोगों का ध्यान गया है। वे लोक सुधार के लिए अपने-अपने ढंग से काम भी कर रहें हैं। प्रवचन और लेख द्वारा यह कार्य सरल हो सकता है। उस विचार से अनेकों उपदेश, प्रवचनकर्ता, लेखक, पत्रकार बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। अनेकों सभा-सोसाइटियाँ इसी उद्देश्य के लिए विविध-विधि मनोरंजक आयोजनों की व्यवस्था करती रहती हैं। सरकारें भी इसके लिए सनेष्ट हैं। राजनैतिक कर्णधार जनता को सज्जनता अपनाने की अपीलें करते रहते हैं। उनके प्रचार साधन, रेडियो, चलचित्र, बुलेटिन, विज्ञप्ति, पत्रिकाएँ आदि कार्य भी इसी उद्देश्य के लिए बहुत व्यय और प्रयत्न करते हैं। किन्तु जब विचारपूर्वक इन सब कार्यों के परिणामों को देखा जाता है तो भारी निराशा होती है। लगता है कि प्रयत्न की तुलना में परिणाम की मात्रा बहुत ही नगण्य है। बुराइयाँ जितनी तेजी से बढ़ रही हैं और सुधार के प्रयत्न जिस प्रकार निष्फल से सिद्ध हो रहे हैं उसे देखते हुए हर विचारशील व्यक्ति के मन में व्यथा होना स्वाभाविक है।

यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि लोकमानस में से दुष्प्रवृत्तियों को हटा कर उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों को स्थापित करने का वास्तविक उपाय क्या है ? इसके उत्तर ढूंढने के लिए हमें इतिहास के पृष्ठ उलटने पड़ेंगे और यह देखना पड़ेगा कि जिन महापुरुषों ने इस प्रकार की विषम परिस्थितियों से अपने समय में जन मानस को सुधारा था उनमें क्या विशेषता थी जिसके कारण वे स्वल्प साधनों से ही चमत्कार उत्पन्न कर सके, जबकि हमारे आज के सुधारक विविध विधि साधनों से सम्पन्न होने पर भी कुछ कर नहीं पा रहे हैं।

पूर्वकाल में लाखों करोड़ों वर्षों तक सतयुग की सुख-शान्ति भरी परिस्थितियाँ इस संसार मे बनी रही हैं। इसका कारण एक ही रहा है कि उस समय के लोक नायक, मार्ग दर्शक आत्म शक्ति से सम्पन्न रहे औस्वाणी से नहीं अपनी आन्तरिक महानता की किरणें फेंक कर जन मानस को प्रभावित करते रहे। मस्तिष्क की वाणी मस्तिष्क तक पहुँचती है और आत्मा की आत्मा तक। कोई सुशिक्षित व्यक्ति अपनी ज्ञान शक्ति का लाभ सुनने वालों की जानकारी बढ़ाने के लिए दे सकता है पर अन्तःकरण में जमी हुई आस्था में हेर-फेर करने का कार्य ज्ञान से नहीं आत्मिक शक्ति से ही सम्पन्न होना सम्भव है। प्राचीन काल के लोक नायक ऋषि मुनि इस तथ्य को भली-भाँति जानते थे इसलिए वे दूसरों को उपदेश देने में, उनकी बाह्य सेवा करने में जितना समय खर्च करते थे उससे कहीं अधिक प्रयत्न वे अपना आत्म बल बढ़ाने के लिए तप करने में लगाते थे। तप से ही वह आत्म शक्ति प्राप्त होती है। जिसकी प्रेरणा से किसी के मन पर जमे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए बुराइयों के आकर्षक कुसंस्कारों को हटा कर अच्छाइयों के कष्टसाध्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जा सके।

उस समय में जब कि लोकनायकों ने जनता के विचारों और कार्यों को उच्च स्तर पर स्थिर रखने में वास्तविक सफलता प्राप्त की थी; तप साधना का महत्त्व भली प्रकार समझा जाता था। प्रत्येक ऋषि इस ओर दत्त चित्त रहता था। वह जानते थे कि यदि तप के अभाव में हमारी आत्मा दुर्बल रही तो प्रवचन मात्र से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा। आज के उपदेशक जिस प्रकार अपनी चतुरता, योजना, दौड़धूप, संगठन शक्ति का भाषण शैली पर विश्वास करके उन्हीं के सहारे सब कुछ कर लेने की बातें सोचते हैं और स्वत: विलासी जीवन बिताते हुए जनता को अन्धी भेड़ों की तरह चाहे जिधर हाँक ले जाने की बात सोचते हैं। प्राचीन काल में कोई उस तरह नहीं सोचता था। जो कोई भी नेता बनने की महान जिम्मेदारी अपने कन्धे पर लेने की बात सोचता था वह सबसे पहले अपने आपको तपस्या से तपा डालने की तैयारी करता था। इस माध्यम से वह अपने को जितना ही पवित्र करता चलता था उतना ही कदम लोक सेवा के लिये मानस को उत्कृष्ट बनाने के लिये उठाता था।

प्राचीन काल के इतिहास पुराणों में यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है। पिछले दो हजार वर्षों में भी इसी आधार पर जन मानस का सुधार एवं परिवर्तन करना सम्भव होता रहा है। भगवान बुद्ध के मन में अपने तथा संसार के दु:खों का निवारण करने की आकांक्षा जागी। इसके लिए वे २५ वर्ष की आयु में घर से निकल पड़े और २० साल तक निरन्तर विभिन्न स्थानों पर आत्म निर्माण एवं तप साधना में संलग्न रहे। ४१ वर्ष की आयु में उनने अपने अन्दर परिपक्वता अनुभव की तो दूसरों को शिक्षा देने के कार्य में हाथ लगाया। भगवान महावीर ने अपनी आयु का तीन चौथाई भाग तप में और एक चौथाई भाग धर्मोपदेश में लगाया। इन दोनों महापुरुषों ने उपदेश उतने नहीं दिये जितने आज के मामूली उपदेशक दे लेते हैं। फिर भी उनका प्रभाव पड़ा और आज भी संसार की एक चौथाई जनता उनकी शिक्षाओं पर आस्था रखती है।

जगद्गुरु शंकराचार्य ने उत्तराखण्ड में जोशीमठ स्थान पर उग्र तप किया था। वे बत्तीस वर्ष की आयु लेकर आये थे। विद्या पढ़ने के बाद लगभग १२ वर्ष उनके जीवन में काम करने के लिये शेष थे । इसमें से भी आधा समय उन्होंने तप में लगाया और शेष ६-७ वर्षों में ही अपनी आत्म शक्ति के बल पर वैदिक धर्म के उद्धार के लिये अत्यन्त प्रभावशाली कार्य कर डाला। गुरु नानक की तपश्चर्या प्रसिद्ध है। गुरु गोविन्द सिंह ने हिमालय में लोकपत स्थान पर जहाँ घोर तप किया था। वह स्थान आज के सिख धर्मानुयायियों का तीर्थ बना हुआ है। यदि इन गुरुओं के पास तप की पूँजी न रही होती तो वे दुर्धर्ष यवन काल में हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये इतना अद्भुत कार्य कर सकने में कदापि समर्थ न हो सके होते।

समर्थ गुरु रामदास ने छत्रपति शिवाजी सरीखे कितने ही महापुरुष तैयार किये थे। इतिहास के पृष्ठों पर उनमें से अकेले शिवाजी ही चमके पर उस तरह के सैकड़ों धर्म सैनिक उनने बना कर दिये थे। इस निर्माण में उनकी आत्मा का प्रभाव ही प्रधान रूप से काम करता था। स्वामी दयानन्द १९ वर्ष की आय में घर से निकले और ४२ वर्ष की आयु में अपने आपको धर्म प्रसार के योग्य बना सके। संवत् १९२४ के कुम्भ में हरिद्वार में उन्होंने पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराई और धर्मोपदेश दिये पर उनका कुछ विशेष प्रभाव न पड़ा। इसका कारण, उन्होंने अपने आत्मबल की न्यूनता समझी और तीन वर्ष के लिए पुन: तप करने उत्तराखण्ड के अज्ञात स्थानों को चले गये। गंगोत्री के पास कराली की गुफाओं में रह कर उन्होंने तपस्या की और जब अन्दर प्रकाश देखा तो कार्य क्षेत्र में उतरे। उस समय उनकी वाणी में दैवी तेज था। उसी के बल पर वे अकेले ही इतना कार्य कर गये जितना अनेकों संगठित सभायें मिलकर भी आज नहीं कर पा रही हैं।

राम कृष्ण परम हंस ४९ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए ४० वर्ष की आयु तक वे विशुद्ध रूप से साधना रत रहे। एक दिन उन्हें लगा कि उन्हें शिष्य प्राप्त होने वाले हैं। एक वर्ष वे शिष्यों को प्रतीक्षा करते रहे। अन्त में उन्हें ब्रह्मानन्द, शिवानन्द और विवेकानन्द जैसे थोड़े से प्रतिभा सम्पन्न शिष्य घर बैठे प्राप्त हुए और उन्हीं के सहारे उनकी आत्मा ने संसार को हिन्दू संस्कृति का महान सन्देश दिया। स्वामी विवेकानन्द का धर्म प्रचार कार्य प्रसिद्ध है पर उससे पहले उन्होंने भी रामकृष्ण परमहंस के बताये अनुसार कई वर्ष तपश्चर्या करके आत्मा को तपाया था।

योगी अरविन्द घोष, महर्षि रमणस्वामी रामतीर्थ की तपश्चर्या प्रसिद्ध है। वैष्णव आचार्यों में से रामानुजाचार्य,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निम्बार्काचार्य, माधवाचार्य, प्रभृति आचार्यों ने जितना ज्ञान संचय किया था उतनी ही तप साधना भी की थी।

संसार के अन्य वे महापुरुष जिनने लोगों की आत्मा को उच्च भूमिका की ओर बढ़ाया निश्चित रूप से तपस्वी थे। महात्मा ईसा के जीवन में २७ वर्ष तपश्चर्या में लगे। मुहम्मद ने २५ साल की आयु में साधना की ओर कदम बढ़ाया और ४० साल तक वे उसी में संलग्न रहे। ६५ वर्ष की आयु में उन्होंने धर्मोपदेश और इस्लाम की स्थापना का कार्य आरम्भ किया। यहूदी धर्म के संस्थापक यहोवा और पारसी धर्म के देवदूत जरदुश्त की दीर्घकालीन कठोर तपश्चर्याएँ प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार संसार में आदि काल से लेकर अब तक एक ही तथ्य समय-समय पर स्पष्ट होता रहा है कि तपश्चर्या द्वारा आत्मबल सम्पादित करने वाली आत्माएँ ही संसार का सच्चा मार्ग दर्शन करने और जन मानस को शुद्ध करने में समर्थ हो सकती हैं।

आज का लोक मानस निम्न से निम्नतर स्तर की ओर तेजी से गिरता जा रहा है। उसे सम्भालने और सुधारने की नितान्त आवश्यकता है। पर यह कार्य आत्मबल से रहित, तपश्चर्या से विहीन व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता भले ही वे सभा सुसाइटियों के द्वारा; भाषणों, लेखों, योजनाओं, प्रदर्शनों के द्वारा इसके लिए सिर तोड़ प्रयत्न करते रहें। यह महान कार्य महान आत्माएँ ही कर सकेंगी और महान आत्माओं के अनेक गुणों में एक तपश्चर्या भी है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

अतीत इतिहास के पृष्ठ हमें इसी ओर निर्देश करते हैं। युग निर्माण होना है पर उसका भार वाचालों के नहीं, तपस्वियों के कन्धे पर रहेगा। युग की आवश्यकता आज ऐसे ही तपस्वियों की प्रतीक्षा कर रही है।

साधु लोक-मंगल की मुहीम सम्भालें

समय था जब संसार में भारतीय धर्म का बोलबाला था, उसकी सभ्यता एवं संस्कृति उच्चतम शिखर पर विराजमान थी। यह उच्चता उसे यों ही प्राप्त नहीं हो गई थी। इसके लिए भारतवासियों को त्याग और तपस्या करनी पड़ी थी। भारतीय समाज में दो वर्ग तो ऐसे थे जिनका एक मात्र जीवन ध्येय, देश, धर्म तथा सभ्यता संस्कृति के विकास एवं प्रचार करना ही था। वे दिन-रात देश धर्म की सेवा में लगे रहते थे और समाज उन्हें इस उपकार के बदले में साधन तथा सम्मान दिया करता था यह दोनों वर्ग ब्राह्मण एवं साधु नाम से प्रसिद्ध थे और आज भी प्रसिद्ध हैं, और कमोवेश उसी तरह माने भी जाते हैं और यह अपेक्षा भी की जाती है कि वे देश धर्म की सेवा उसी प्रकार करेंगे जिस प्रकार पूर्वकालीन लोग करते रहे थे। किन्तु खेद है कि इन दोनों वर्गों ने अपने कर्त्तव्यों को तिलांजलि तो दे दी है, किन्तु अपने मान-सम्मान की पिपासा को नहीं त्यागा है! इस समय देश धर्म बड़ी विषम स्थिति से गुजर रहा है, साधु ब्राह्मणों को अपना दायित्व समझना तथा कर्त्तव्य करने के लिए पुनः परिकर बाँध कर मैदान में उतरना होगा। अन्यथा नहीं कहा जा सकता कि काल की करालता और विकृतियों को विषमता समाज, राष्ट्र तथा उन्हें किस स्थिति में ले जाकर पटक दे।

पूर्वकालीन ब्राह्मणों तथा सन्त महात्माओं में कोई विशेष अन्तर नहीं था। उनके दायित्व एवं कर्त्तव्य समान ही थे साथ ही अधिकारों में भी कोई विषमता नहीं थी। यह दोनों शब्द एक ही व्यक्तित्व के दो नाम थे। अन्तर ही था तो केवल स्थिति का साधु, सन्त अधिकतर गृहत्यागी होते थे और उनका रहन-सहन उस स्थिति के अनुरूप रहता था। परिवार अथवा घर-गृहस्थी की परिधि से परे हो जाने से साधुओं का कार्य-क्षेत्र सारा देश रहा करता था। वे आजीवन परिभ्रमण करते हुए देश के कोने-कोने में घूमते रहते थे और जहाँ भी विकृति अथवा अवांछनीयता देखते थे वहीं रुक कर, संस्कार तथा शोधन का अपना कर्त्तव्य-पालन किया करते थे।

ब्राह्मणों पर गृह त्याग का प्रतिबन्ध न था। वे इच्छानुसार परिवार बसा कर रह सकते थे, आजीविका के लिए अध्यापन तथा धर्मशिक्षण का कार्य कर सकते थे। फिर भी समाज के प्रति उनका कर्त्तव्य वही था जो साधु अथवा संन्यासी का! परिवार में रहने से ब्राह्मणों का कार्य क्षेत्र सारा देश न होकर उनका एक सीमित क्षेत्र ही रहा करता था। जहाँ वे घर-घर जाकर लोगों के धार्मिक स्वाध्याय की देख-भाल किया करते थे। कथा प्रवचन तथा पूजा-पाठ द्वारा लोगों की धर्मनिष्ठा को सम एवं समुचित बनाये रहते थे।

आज समय कुछ बदल गया है। परिस्थितियाँ उन दिनों जैसी नहीं रह गई हैं। अधिकतर ब्राह्मणों को परिवार पोषण के लिए अनेक काम करने पड़ गये हैं। आज उनके पास समाज सेवा के लिए उतना समय तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधन नहीं रह गया है जितना कि पहले था। किन्तु साधु-सन्तों तथा संन्यासियों की स्थिति यथावत् बनी हुई है। आज भी वे उसी प्रकार आग्रही, परिव्राजक तथा समाज द्वारा सम्मानित एवं पोषित हैं, उन्हें अपनी आजीविका अथवा जीवन रक्षा के लिए कोई उद्योग नहीं करना पड़ रहा है। समाज उनका सारा भार वैसे ही वहन कर रहा है जैसा कि पहले किया करता था। अस्तु, समाज-सेवा समाज-सुधार तथा धर्म-प्रचार का सारा दायित्व एवं कर्त्तव्य इन साधु, संन्यासियों तथा सन्त, महात्माओं पर आ गया है जिसे उन्हें पूरा करना ही चाहिये।

किन्तु, क्या आज के साधु-संन्यासी अपने दायित्व को समझ और कर्त्तव्य को पूरा कर रहे हैं? इसका उत्तर 'न' में होने के सिवाय और क्या हो सकता है । आज के साधुजन वेश रचना के सिवाय शायद यह भी नहीं जानते हैं कि साधुता का क्या अर्थ होता है। क्या आज के छप्पन-साठ लाख साधुओं में से कोई यह स्वीकार कर सकता है कि वेश-विन्यास से साधुता का कोई भी सम्बन्ध नहीं। साधु-सज्जन शब्द का पर्यायी है। जिसमें निष्कलंक सज्जनता है वही साधु कहलाने योग्य हो सकता है। जिसका समय, श्रम, ज्ञान तथा मनोभावनाएँ व्यक्तिगत स्वार्थों में ही न लगे रह कर समस्त मानव समाज की सेवा में लगी हों वही साधु है। साधु उस व्यक्ति को ही माना जा सकता है जो अपने सर्वस्व को सार्वजनिक सम्पत्ति समझता हो और जन-सेवा के कार्यों में उपयोग करता हो। जिसके मन-मन्दिर में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की महान् ज्योति जल रही हो और जिसका आचरण उसी से प्रकाश एवं प्रेरणा लेकर सक्रिय हो रहा हो, वही साधु है। उसी को साधु माना जाना चाहिए। पूर्वकालीन ऋषि-मुनियों अथवा साधु-संन्यासियों जैसा वेश बना लेना ही साधुता नहीं है।

साधुता तथा साधु-संन्यासियों के कर्त्तव्य समझना तो दूर, आज के साधु जन शायद उस वेश-विन्यास का तात्पर्य भी नहीं जानते होंगे जिसे बनाये फिरते हैं और जिसके कारण वे जनता में आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। जो वेश-विन्यास आज का साधु समुदाय बनाए घूमता है वह पूर्वकालीन ऋषि-मुनियों का ही अनुकरण है। इस प्रकार का वेश विन्यास ऋषियों के लिए ऋचाओं की तरह ईश्वर प्रेरित नहीं था। बल्कि ऋषियों ने इसे सामयिक परिस्थिति एवं अपनी स्थिति के अनुसार ही चुना था।

साधु का प्रथम धर्म है अपरिग्रहण। अपनी जीवनचर्या में वे कम से कम खर्च करना अपना पावन कर्त्तव्य समझते थे। कमण्डलु नामक लौकी के खोखले से पात्र का काम चलाते थे। जंगल की साधारण लकड़ी के खड़ाऊँ पहनते थे। उस समय आज जैसी कपड़ों की बहुतायत न थी। जो कुछ कपड़ा होता भी था, समाज की सुविधा तथा आवश्यकता का ध्यान रखने वाले साधुजन स्वयं उसका प्रयोग न करते थे। जब तक सरदी-गर्मी सहन होती थी एक कोपीन के सिवाय कुछ न पहनते थे। हवा तथा धूप से बचने के लिए भस्म मल लेते थे, या पेड़ों की छाल छील कर बल्कल-वस्त्र बना लेते थे। भोजन के नाम पर अधिकतर जंगलों में पैदा होने वाले फल-फूलों एवं कन्द-मूलों का ही सेवन करते थे। ऋषियों द्वारा जटा-जूट रखाये जाने कारण यही रहा है कि जंगलों की ओर रहने के कारण वहाँ हजामत बनाने की सुविधा न थी और इसके लिए वे हर तीसरे दिन नगरों की ओर दौड़ते रहते तो उनके द्वारा समाज के लिए किये जाने वाले चिन्तन एवं शोध कार्यों में विघ्न पड़ता। वे जटा-जूट रखा सकते थे किन्तु समाज-सेवा में लगे हुए जीवन का एक क्षण भी खराब करना स्वीकार न कर सकते थे। इस प्रकार ऋषि-मुनियों के वेश विन्यास एवं रहन-सहन में उनकी परिस्थिति तथा स्थिति की अनुरूपता के सिवाय और कुछ न था। किन्तु आज के साधु समाज ने केवल वेश-भूषा को ही धारण करना साधुता की चरमावधि मान लिया है।

आज का जो साधु-समुदाय वेश-विन्यास बना लेने को ही साधुता प्राप्त कर लेना समझता है वह यह नहीं समझ पाता कि यदि वेश की अनुरूपता अथवा अनुकरण किसी व्यक्ति को वैसा करना बना सकता तो नाटकों एवं स्वाँगों के नट-विदूषक सब राजा, साधु-सन्त अथवा महात्मा बन जाते जो उन जैसा विन्यास बनाते और अभिनय करते हैं। साधु के गुणों एवं कर्मों से रहित रह कर जो अपना बाह्य कलेवर उन जैसा बना कर गली-गली घूमते-फिरते हैं, उन्हें कोई मूढ़-मति व्यक्ति भले ही साधु मान ले किन्तु जिसके पास जरा-भी बुद्धि होगी, साधुता का तनिक भी अर्थ समझता होगा—वह उनको प्रवंचक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अथवा उस विदूषक के समान उपहासास्पद ही मनेंगे, जो लोगों को तरह-तरह के वेश बना कर हँसाता और पैसा माँगता फिरता है। साधु के रूप में रह कर उन जैसा कर्त्तव्य न करना घोर विडम्बना है। आज ऐसे ही विन्यासी साधुओं की तरह समाज में साधु शब्द को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा लगा है । साधु शब्द सुनते ही किसी आडम्बरी, प्रवंचक अथवा भिक्षुक की तस्वीर सामने आ जाती है।

आज देश में ६० लाख साधु बतलाए जाते हैं। यदि उनमें से अपाहिज, अपंग, अशिक्षित एवं उचक्कों को निकाल दिया जाय तब भी २०-३० लाख ऐसे साधु निकलेंगे जो शिक्षित तथा समझदार होंगे। किन्तु खेद है कि साधुओं के बीच जो पुजने और पुजापा खाने की हवा चल रही है वे भी उसी में बहते चले जा रहे हैं। उन्हें अपने समुदाय तथा वर्ग के वंचकों का अनुकरण न कर के साधुजनों के सच्चे कर्त्तव्य को पूरा करना चाहिये। उन्हें अपने उस समाज की वर्तमान दयनीय दशा के प्रति दयार्द्र एवं संवेदनशील होना चाहिये जो उन्हे हार्दिक आदर, सम्मान तथा सब प्रकार के साधन देता रहा है। साधु होकर उपकार के बदले प्रत्युपकार न करने के समान कोई पाप नहीं। यह कृतघ्नता है जिसे शास्त्रों में महापातक कहा गया है।

सज्जन् एवं सच्चे साधुओं को वर्गवाद के दलदल से निकल कर समाज-सेवा के कार्य में लग ही जाना चाहिए। उन्हें स्थानस्थ होकर पूजा लेने के स्थान पर परिव्रजन का कार्यक्रम बना लेना चाहिये और गाँव-गाँव, नगर-नगर, द्वार-द्वार धर्मोद्धार एवं समाज-सुधार का शंख फूँक देना चाहिये। आज के कठिनतम आर्थिक युग में अभाव के समय में जनता की सहज श्रद्धा के शोषण रूप बन कर समाज का बोझ बढ़ाना अनुचित ही कहा जायेगा। साधुजनों को अपना यह कलंक धो डालने के लिये पूर्वकालीन साधु-परम्परा को सच्चे मानों में जाग्रत कर यह दिखला ही देना चाहिए ऋषि-मुनियों के इस देश की वह साधुता अभी मर नहीं गई है जिसके बल पर भारत का धर्म, उसकी सभ्यता, संस्कृति एवं समाज संसार का सिरताज बना रहा है। साधु समुदाय के पास ऐसा कोई पारिवारिक उत्तरदायित्व नहीं जो उन्हें उनके समय अथवा श्रम का कोई अंश छीन रहा हो। संयोग भाग्य अथवा संस्कारों वश साधुओं के लिए वे पूर्वकालीन सारी परिस्थितियाँ आज भी विद्यमान हैं उनका समुचित उपयोग कर वे लोक-परलोक दोनों का सराधन कर सकते हैं। उन्हें करना भी चाहिए। अन्यथा संसार में बुद्धिवाद बहुत तेजी से बढ़ रहा है, श्रद्धा का अस्तित्व धुंधला पड़ता जा रहा है। भगवान् न करे यदि निषेधात्मक युग आ जाए तो इस साधु-समाज की क्या स्थिति हो सकती है यह साधुओं के लिए विचारणीय एवं करणीय है।

भावनाशील व्यक्ति लोक-निर्माण के लिए आगे आयें

किन्हीं व्यक्तियों, समाजों तथा राष्ट्रों का उत्थान पतन का हेतु उतना बाह्य वातावरण नहीं होता, जितना कि उनका आन्तरिक वातावरण अथवा उनकी अपनी प्रवृत्तियाँ। यह बात सही है कि व्यक्ति पर समाज की अच्छाई-बुराई का प्रभाव पड़ता है, किन्तु पड़ता उन पर ही है जो अन्दर से निर्बल होते हैं। जिसकी प्रकृति उत्तम है, स्वभाव उत्कृष्ट है और प्रवृत्तियाँ ऊर्ध्वगामिनी हैं, उस पर समाज की विकृतियों का निकृष्ट प्रभाव नहीं पड़ सकता। वह कीचड़ में कमल के समान और कमल पर पानी की बूँद के समान ही निर्लिप्त रहा करता है। इसी सिद्धान्त को कविवर रहीम ने एक दोहे में कहा है—"जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग। चंदन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग।"

सामाजिक विकृतियों का प्रभाव उन दुर्बलमना व्यक्तियों पर ही पड़ता है जिनके पास अपनी विवेक बुद्धि, विचार शक्ति नहीं होती है। जैसा दूसरों को करते देखते हैं, अपना भला-बुरा सोचे बिना खुद भी वैसा करने लगते हैं। यह वृत्ति भेड़-वृत्ति है। एक अगली भेड़ के कुएं में गिर जाने पर पीछे की सारी भेड़ें उसका अनुकरण कर कुएं में गिर जाया करती हैं। आत्मावान पुरुष—सिंहों को यह भेड़-वृत्ति शोभा नहीं देती। रोग उन्हीं पर आक्रमण करता है जिनका स्वास्थ्य कमजोर होता है। स्वस्थ व्यक्ति पर रोग के कीटाणु हावी नहीं हो पाते। रोगों के कीटाणुओं में अपनी शक्ति से अधिक व्यक्ति के निर्बल स्वास्थ्य का बल रहा करता है। यदि उनमें अपना निज का ही अमोध बल रहा करता, तब किसी बीमारी के फैलने पर कोई भी निरोग न रहता, सभी रोगी हो जाते। पर ऐसा होता नहीं है। रोग से सामान्यत: प्रभावित होने वाले के लिए यह सोचा जा सकता है कि यह व्यक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं ही स्वस्थ नहीं था इसीलिये इस पर रोग की संक्रामकता का प्रभाव पड़ा है। पूर्ण स्वस्थ मनुष्य शीघ्र संक्रमित नहीं होता।

ठीक यही बात विकृतियों के सम्बन्ध में भी है। विकृतियाँ भी रोगों की तरह ही संक्रामक होती है। समाज में एक से दूसरे के बीच फैलती हैं। किन्तु उनके चंगुल में फँस जाने वाले को इसे सहज स्वाभाविक अथवा अनिवार्य प्रक्रिया नहीं मान लेना चाहिये। उसे समझ लेना चाहिए कि अवश्य ही उसका मन, उसकी वृत्तियाँ और उसका चरित्र निर्बल है तभी दूसरे की विकृति उसे प्रभावित कर सकी है। उसे अपने चारों तरफ देखने पर पता चलेगा कि उसी समाज एवं उसी वातावरण में अनेकों ऐसे सज्जन हैं जिन पर इन विकृतियों के संक्रमण का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे यथावत शुद्ध-बुद्ध और सुशील बने हुए हैं। किसी को अपने पतन का दोष बाह्य परिस्थितियों अथवा किसी अन्य को न देकर साहसपूर्वक उसका दायित्व अपने निर्बल अन्तःकरण को ही देना चाहिए। यही सोचने का सही ढंग है यही वह मार्ग है जिसके द्वारा कोई अपने को ही उत्तरदायी समझकर आत्म सुधार में प्रवृत्त हो सकता है। दूसरों पर दोष थोपते रहने से आत्म सुधार की जिज्ञासा सम्भाव्य नहीं होती।

किन्तु खेद है कि आज समाज में निर्बल मनोभूमि वाले लोगों की ही बहुतायत है जिससे एक-दूसरे के बाद अनेक विकृतियाँ समाज को घेरे ही चली जा रही हैं। ऐसी दशा में व्यक्तियों को स्वयं तो आत्म सुधार का प्रयत्न करना ही चाहिए, साथ ही सबल मनोभूमि के सत्पुरुषों को भी सामूहिक सुधार के लिए अपनी सेवायें समर्पित करनी चाहिए। सुधार—सुधार करने से ही होगा। रोग का निदान उपचार ही है, योंही अपने आप उपाय किये बिना न कोई रोग दूर होता है और न विकृति।

भगवान तिलक ने एक स्थान पर कहा है—"व्यक्ति यद्यपि अपने आप में शक्तिवान एवं समर्थ है, किन्तु कोई विरले ही अपनी उस महत्ता को समझने और कार्यान्वित कर सकने में समर्थ होते हैं। साधारणतया लोग गर्मी, सर्दी से मुरझाने, हरियाने वाले पौधों की तरह समाज के भले बुरे वातावरण से प्रभावित होते रहते हैं। यदि सामाजिक परम्परायें एवं मान्यतायें अच्छी होंगी निश्चय ही समाज के लोग सुसंस्कृत तथा सुविकसित बनेंगे। इसके विपरीत यदि समाज में दुष्प्रवृत्तियों का बाहुल्य होगा तो लोगों का चरित्र एवं जीवन क्रम अस्त-व्यस्त होगा और वे दुःख-दारिद्रय, कष्ट क्लेशों के चंगुल में फँसते चले जायेंगे। अतएव विज्ञ विद्वान, बुद्धिमान एवं सज्जनों का कर्त्तव्य है कि वे अपने समाज की स्थिति की बारीकी के साथ समीक्षा करें और जहाँ भी जिस प्रकार की विकृति देखें, उसे प्रयत्नपूर्वक सुधारने में तत्पर हो जायें।

जन-साधारण अपनी भेड़चाल के लिए बदनाम है। उनके पास अपनी स्वयं की वह बुद्धि विकसित नहीं होती, वह विवेक जागरुक नहीं होता जिसके आधार पर अपना पंथ स्वयं प्रशस्त कर सकें अथवा भलाई-बुराई की समीक्षा कर उसका संग्रह त्याग कर सकें। उनके सामने बुरे लोग आ जाते हैं तो उनका अनुकरण करने लगते हैं, सत्पुरुष अथवा भले लोग आ जाते हैं तो उनसे प्रभावित होने लगते हैं। आज समाज की व्यापक विकृति का मुख्य कारण यह है कि बुरे लोग ही अधिक जन-साधारण के सम्मुख आये हुए हैं, मैदान में उतरे हुए हैं। जनसाधारण उनसे प्रभावित होकर विकारों, विकृतियों तथा अवांछित प्रवृत्तियों को अपनाते हुए अपना सर्वनाश करते चले जा रहे हैं। स्वाभाविक है कि जो सामने आयेगा, मैदान हाथ में लेगा—वह प्रभाव डालेगा ही।

एक तो दैव दुर्विपाक अथवा सामाजिक दुर्भाग्य से सत्पुरुषों की संख्या ही बहुत अधिक नहीं है और कुछ सत्पुरुष हैं भी वे या तो समाज से दूर एकान्त में आत्मकल्याण की साधना में विश्वास किये बैठे हैं अथवा एक दर्शक की तरह तटस्थ भाव से अलग खड़े लीला देखते रहते हैं। बहुत से सत्पुरुष ऐसे भीरु स्वभाव के भी होते हैं जो समाज की विकृतियों से इस डर से संघर्ष में नहीं आते कि कहीं कोई विकृतियाँ उन्हें भी न पकड़ लें। और ऐसे विरागी व्यक्तियों की तो कमी नहीं है—जो हर उत्थान, हानि-लाभ, अच्छाई-बुराई को भगवान की इच्छा अथवा लोगों का कर्मभोग समझते हैं और उसमें दखल देने के लिए न तो अपने को अधिकारी समझते हैं और न हस्तक्षेप करना उचित ही। जैसा जो कुछ चल रहा है, चलने दिया जाये। ठीक होने को होगा ठीक हो जायेगा नहीं तो हरि इच्छा।

ऐसे साधु, सज्जन तथा सत्पुरुषों से क्या कहा जाये ? उनकी क्या आलोचना की जाये ? केवल इतना ही कहा जा सकता है कि एकान्त में आत्म-कल्याण की साधना में विश्वास रखने वाले उस स्वार्थी गृहस्थ की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तरह, भौतिक न सही आध्यात्मिक स्वार्थी हैं जो घर में आग लगी होने पर असहाय स्त्री-बच्चों की चिन्ता न करके सबसे पहले अपने बचाव का उपक्रम करता है। अलग से खड़े लीला देखने वाले तटस्थों को एकक्षण भी यह न भूलना चाहिये पड़ौस की आग से उपराम रहने वाले अपना घर भी जला लिया करते हैं। जिन विकृतियों को आज वे समाज को ग्रास करते देख रहे हैं उनके प्रति उपेक्षा मान लिये बैठे हैं वे विकृतियाँ उनकी उपेक्षा न कर सकेगी और देर-सबेर उन पर भी आक्रमण कर अशान्त एवं असन्तुष्ट बना देंगी। दुरित जब दुर्दमनीय हो जाते हैं तब समान भाव से अच्छे-बुरे, साधु-असाधु सबको धर लिया करते हैं। दिग्व्यापी अन्धड़ चलने पर सभी प्रभावित होते हैं क्या वटवृक्ष, क्या पौधे, सभी में कम्पन आता है और सभी समान रूप से धूल-धूसरित हो जाते हैं ।

स्वयं आक्रान्त होने के डर से जो विकृतियों से लोहा लेने से दुबकते हैं उन सज्जनों को समझ लेना चाहिये कि अभी उनकी मनोभूमि कमजोर है, आत्म विश्वास की कमी है नहीं तो क्या आज तक अन्धकार को प्रकाश पर हावी होते कहीं देखा सुना गया है। डॉक्टर यदि इस शंका से रोगियों के उपचार से विरत रहे कि कहीं कोई रोग उन्हें भी न लग जाये तो बेचारे रोगियों को मृत्यु के अतिरिक्त और कौन-सी गति शेष रह जायेगी। निर्विकार आत्मायें ही विकार ग्रस्तों की शोधक और सुधरे हुए ही बिगड़े हुओं के सुधारक होते हैं। सत्पुरुष ही समाज के त्राता हैं, उन्हें किसी भय, भ्रम अथवा आशंका से अपने इस नैतिक कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिये। यह उनकी सावधानी नहीं भीरुता अथवा पलायन ही कहा जायेगा।

समाज की हर अच्छाई-बुराई, उत्थान पतन को भगवान् की इच्छा अथवा लीला समझ कर उसमें हस्तक्षेप को अनुचित मानने वालों को या तो इस ज्ञान का अभाव रहा करता है कि परमात्मा की इच्छा में विकृति नहीं होती। वह सदा शुद्ध एवं प्रबुद्ध है, अस्तु उसकी इच्छायें भी शुद्ध एवं प्रबुद्ध ही होती हैं। निर्विकार परमात्मा की इच्छा में विकार का क्या प्रयोजन ? अथवा वे वाक्-चतुर ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपनी अकर्मण्यता अथवा उदासीनता को आलोचना का विषय बनने से बचाने के लिए अत्यान्तिक आस्तिकता का अनुचित सहारा लिया करते हैं।

अस्तु, कुछ भी सही आज समय की आवश्यकता है कि सज्जन एवं सत्पुरुष आगे आयें, मैदान में उतरें और पतनोन्मुख धावमान मनुष्यता की रक्षा विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों एवं दुष्टताओं से करें। आज अच्छाई-बुराई का देवासुर संग्राम छिड़ ही जाना चाहिये देवपुरुष सज्जनों को अपने-अपने क्षेत्रों में अपने योग्य मोर्चा सम्भाल लेना चाहिये । अपने सत्कार्यों सदाचरण एवं सद्वृत्तियों की मशालें लेकर निकलें और जहाँ-जहाँ अन्धकार देखें उसे दूर करें। समाज की विकृतियाँ अब उस सीमा पहुँच चुकी हैं, जहाँ पर यदि उन्हें आगे बढ़ने से न रोका गया तो निश्चय ही भारत न रह जायेगा।

मनुष्यता बहुत अधिक मूल्यवान वस्तु है उसकी रक्षा करना प्रत्येक जागरुक व्यक्ति का परम कर्त्तव्य है। परमात्मा ने मनुष्य का निर्माण सज्जनता के ही उपकरणों से इसलिए किया है कि वह स्वयं तो दिव्य एवं अदीन जीवन जिये ही साथ ही अन्य प्राणियों को भी सुख शान्तिपूर्ण जीवन जीने में सहायता करे। उस निर्माता ने प्रत्येक मनुष्य से यह आशा की थी कि वह सृष्टि में सज्जनता, सद्भावना, सहयोग तथा सौहार्दय का वातावरण उपस्थित कर उसे स्वर्ग बना देगा। किन्तु काल विक्षेप अथवा मानवता के दुर्भाग्य से आज मानव समाज ईश्वरीय आशा के विरुद्ध आचरण करने लगा है। जिन सौभाग्यवानों को अज्ञान, अन्धकार अथवा अनाचरण नहीं घेर पाया वे ईश्वरीय आशा को चरितार्थ करें। मानव समाज के सुधार में तत्पर होकर श्रेय के भागी बनें। जिनका पतन हो गया है या हो रहा है उनसे तो किसी बात की आशा की नहीं जा सकती, आशा केवल उनसे ही की जा सकती है, जो प्रभु कृपा से पतन से बचे हैं, जिन्हें अपने चरित्र एवं सद्वृत्तियों पर विश्वास है और जो यह समझते हैं कि अपेक्षाकृत उन पर दूसरों से अधिक ईश्वरीय अनुकम्पा है, जिससे उनके हृदयों में सद्भावनाओं का शेषांश विद्यमान है वे ही देवपुरुष पतनोन्मुख समाज का उद्धार कर सकते हैं। उन्हें मनुष्यता की इस आशा को पूरा करना ही चाहिये।

विकृतियों में अपनी न तो कोई शक्ति होती है और न धैर्य। उनका अस्तित्व ठीक उसी प्रकार अस्वाभाविक है जैसे प्रकाश के अभाव में अन्धकार का। जिस समय समाज के सामने सत्-प्रवृत्तियाँ आने लगेंगी विकृतियाँ स्वयं ही भागने लगेंगी विकृतियों का अस्तित्व निश्चय ही सत्-प्रवृत्तियों के गोपन के कारण है। अच्छाई का सामने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आने दिया जाये, भलमनसाहत को आगे बढ़ाया जाये, देखते ही देखते समाज का सुधार प्रारम्भ हो जायेगा। जनसाधारण तभी तक बुराई को अपनाये हुए हैं जब तक बुराई उनके सामने है और अच्छाई के दर्शन नहीं होते। अच्छाई का दर्शन तो साधु, सन्त तथा सज्जन पुरुष ही करा सकते हैं। वे किसी जगह किसी साधना में क्यों न लगे हों, समाज कल्याण के कर्त्तव्य का ध्यान रखें और अपने सुझावों, कार्यक्रमों एवं आदर्श चरित्रों से जनसाधारण को प्रकाश दें, राह दिखलायें। भारतीय समाज का नेतृत्व सदैव से धार्मिक पुरुषों ने किया है। जिस दिन से वे अपने इस अधिकार से उदासीन हो गये समाज का विकास एवं सुधार बन्द हो गया। वे सावधान होकर अपने अधिकार को कर्त्तव्य समझ कर सम्भालें, बस समाज का कल्याण हो गया।

लोक सेवा में सच्ची भगवद्-भक्ति

भगवान की भक्ति के नाम पर लोग ऐसी विडम्बनाएँ रचते रहते हैं, जिसमें पूजा पाठ जैसी कुछ खिलवाड़ तो होती रहे, पर बदले में ऋद्धि सिद्धियाँ, चमत्कारों और वरदानों का जखीरा लूट के माल की तरह हाथ लगे। कई स्वर्ग और मुक्ति का वैभव स्वर्ग लोक में पहुँच कर बटोरना चाहते हैं। कइयों को दर्शन की इच्छा होती है मानो किसी रूपसी की समीपता का रसास्वादन करना चाहते हों। दस पैसे की मिठाई मनौती के लिए चढ़ाकर मालोमाल बनने और मुफ्त में बढ़-चढ़कर सफलताएँ प्राप्त करने की हविश तो इस समुदाय के अधिकांश लोगों को होती है। कहीं-कहीं रात भर नाचकूद चलते हैं ताकि भगवान की नींद हराम करके जितना कुछ लपक सकना सम्भव हो, लपक लिया जाय। बच्चों को बहकाने-फुसलाने या चिड़ियाँ मछलियाँ पकड़ने की धूर्त्तता तो कितने ही करते रहते हैं। भगवान की दुकान को आँखों में धूल झोंककर लूट लाने का कुचक्र तो उस क्षेत्र में आमतौर से रचे जाते देखा जा सकता है।

यथार्थता की कसौटी पर कसे जाने के उपरान्त स्पष्ट होता है कि भगवान का दरबार अन्धेर नगरी चौपट राजा की उक्ति चरितार्थ नहीं करता। वहाँ उन्हीं को अनुकम्पा का अनुदान मिलता है, जिन्हें प्रामाणिकता और उदारता की कसौटी पर खरा कस लिया जाता है। भक्ति का सीधा अर्थ सेवा है। सेवा अर्थात् परमार्थ लोकमंगल। यह उन्हीं से बन पड़ता है, जो अपने को हर दृष्टि से संयम की आग में तपाते हैं। औसत नागरिक का जीवन जीकर उससे ऐसा कुछ बचा लेते हैं जिसे समयदान, अंशदान के रूप में दरिद्र नारायण के चरणों पर अर्पित किया जा सके। सत्प्रवृत्ति सम्बर्धन में उसका बढ़ा-चढ़ा उपयोग किया जा सके। सच्चे भगवद्-भक्त इसी स्तर के होते रहे हैं और बदले में आत्म सन्तोष, लोक सम्मान और दैवी अनुग्रह का प्रत्यक्ष प्रतिफल उपलब्ध करते रहे हैं।

सुदामा का उदाहरण सामने है। उनका विशालकाय गुरुकुल था। सुयोग्य अध्यापन और वातावरण जहाँ भी होगा, वहाँ छात्रों की कमी न रहेगी। पुरातन काल में गरुकुल-विश्व विद्यालय ही छात्रों के शिक्षण और निर्वाह की दुहरी व्यवस्था वहन करते थे। पर उस क्षेत्र में उदार चेताओं की कमी पड़ जाने से गुरुकुलों के ऊपर भारी आर्थिक कठिनाई लदी रहने लगी। आसरा किसका लिया जाय। सोचा गया कि भगवान को पकड़ जाय। वे द्वारिका पहुँचे। कृष्ण ने स्थिति को जाना और अपनी सम्पदा कुटुम्बियों के विलास हेतु छोड़ने की अपेक्षा यह उचित समझा कि जो पास में है वह सब कुछ उच्च आदर्श के हेतु विसर्जित कर दिया जाय। द्वारिकापुरी की सारी सम्पदा उठ कर सुदामापुरी चली आई। लक्ष्मी नारायण की अनुकम्पा ऐसों को ही प्राप्त होती है। जेब कटी का रास्ता अपनाने वालों को नहीं।

भक्तों में एक आते हैं-विभीषण। उनने अनीति में सगे भाई तक का साथ न दिया। अपमान और अभाव सहते रहे और समय आने पर अपनी समूची वफादारी उस न्याय और नीति के पक्ष में समर्पित कर दी, जिसे प्रकारान्तर से भगवान कहते हैं। भगवान के दरबार से कोई खाली हाथ नहीं आता। उसे सोने की लंका और अद्वितीय विदुषी मन्दोदरी का लाभ मिला। ऐसे ही प्रसंग सिद्ध करते हैं कि भगवान भक्त-वत्सल और विभूतियों के अधिपति हैं।

सच्चे भक्तों की श्रेणी में सुग्रीव का नाम आता है। राम के साथ अनीति हुई। दुष्टों ने सीताहरण कर लिया। खोजने के लिए दूतों और लड़ने के लिए सैनिकों की आवश्यकता हुई। भक्त सुग्रीव ने जो कुछ भी अपने पास था मुक्तहस्त से दिया। दानी खाली हुई जेब भगवान भर देते हैं। सुग्रीव को अपना खोया हुआ राज्य और परिवार वापस मिल गया। भगवान की उदारता में कमी नहीं। पर उसे पाने के लिए घण्टी हिला देना भर काफी नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुउद्देश्यों के लिए बढ़ चढ़कर त्याग बलिदान प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

मनुष्यों की चालाकी में कमी नहीं। उनका बस चले तो उनके निवास और परिवार तक को बेच खायें। पर भक्त ऐसा नहीं कर सकते। सुग्रीव के सभी साथी सहचर समुद्र पर पुल बनाने और लंका का दमन करने के लिए निहत्थे होते हुए भी गये थे। नल नील ने इंजीनियर का कौशल दिखाया था। बेचारी गिलहरी तक बालों में बालू भर कर समुद्र पाटने में सहायता करने के लिए पहुँची थी। उसने राम की हथेली पर बैठकर दुलार भरा वह प्यार पाया जिसके लिए तथाकथित योगी-यती तरसते ही रहते हैं। भगवान का दर्शन पाने की जिन्हें सचमुच ललक है, उन्हें गिलहरी जैसा पुरुषार्थ और जटायु जैसा अनीति के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए । चाहे प्राण भले ही देने पड़ें। घायल जटायु को भगवान ने अपने आँसुओं से स्नान कराया था। जो इस झंझट से बचकर पंचामृत से शालिग्राम को स्नान कराने पर सम्पदाओं की गठरी लूटना चाहते हैं, उन्हें उनकी क्षुद्रता उस स्थान तक पहुँचने ही नहीं देती, जहाँ वे पहुँचना चाहते हैं।

हनुमान का समर्पण सर्वविदित है। राम का पक्ष न्याय का था और रावण का अन्याय का। धर्म की रक्षा और अधर्म का उन्मूलन करना ही अवतार का और उसके अनुयायियों का कर्त्तव्य है। इसमें चाहे निजी हानि कितनी ही होती हो, कठिनाई कितनी ही उठानी पड़ती हो। हनुमान ने यही किया। वे किसी व्यक्ति विशेष के दास या चाकर नहीं थे उन्होंने नीति को विजयी बनाने के लिए लंका दहन, संजीवनी पर्वत उखाड़ने से लेकर अनेकानेक कष्ट सहे। पर क्या वे घाटे में रहे? सुग्रीव के यहाँ साधारण सेवक की तरह कार्य करने का बंधन छूटा और वे देवताओं की गणना में गिने गये। राम पंचायत में छठे सदस्य बने और संसार भर में पूजे गये। जितने मंदिर राम के हैं उससे कहीं अधिक हनुमान के हैं। उन्हें जो बल, पराक्रम, विवेक, कौशल, यश प्राप्त हुआ वह सब उस भक्ति का प्रतिफल था जो सच्चे अर्थों में कर्त्तव्य-पारायणता और उदार साहसिकता से भरी पूरी थी।

निषादराज की कथा प्रख्यात है। राम मिलन के लिए सेना समेत भरत के सम्बन्ध में उसने समझा कि वे लोग राम को मारकर निष्कंटक राज करने जा रहे हैं। निषाद ने भरत की सारी सेना को गंगा में डुबो देने की तैयारी कर ली। पीछे वस्तुस्थिति विदित होने पर डुबाने की अपेक्षा खर्चीले आतिथ्य की व्यवस्था सीमित साधनों में उसने की। भक्ति इसी कहते हैं, जिसमें अनीति से लड़ना और नीति का समर्थन करना होता है।

शबरी के झूठे बेर भगवान ने खाये थे, पर वह सुयोग बना तब, जब उस भीलनी ने मातंग ऋषि के आश्रम का समीपवर्ती रास्ता साफ बनाए रखने का व्रत वर्षों निभाया था।

अर्जुन के घोड़े भगवान ने चलाये, वे सारथी बने। पर कदम उठा तब जब दैन्य, हीनता का भाव मिटाकर विशाल भारत बनने की योजना कार्यन्वित करने के लिए वह तैयार हुआ। बलि के दरवाजे पर भगवान भिक्षा माँगने पहुँचे थे ताकि पृथ्वी पर सुव्यवस्था की स्थापना का अवसर मिल सके। द्रौपदी को उन्होंने लाज बचाने हेतु वस्त्र, इसलिए दिया था कि वह इससे पूर्व एक सन्त को वस्त्र हीन देखकर अपनी आधी साड़ी फाड़ कर दान दे चुकी थी। भगवान दानी तो अवश्य हैं। एक बीज के बदले हर वर्ष हजारों फूल, फल, बीज देते हैं। पर यह होता तभी है जब आरम्भ में एक बीज अपने को मिट्टी में मिलाकर गला देने के लिए तैयार होता है। भक्ति और उसके वरदान मिलने की बात इसी प्रकार सोची जा सकती है। मीरा को विष के प्याले और सर्पों के पिटारे से इसलिए बचाया था, कि वह राणा के भयंकर प्रतिबन्धों की चिन्ता न करते हुए गाँव-गाँव, घर-घर भक्ति का अमृत बाँटने के लिए प्रचार यात्रा पर निकल पड़ी थी।

वीरपुर (गुजरात) के बापा जलाराम को भगवान ने दर्शन भी दिये थे और अखण्ड अन्नपूर्णा भण्डार वाली झोली दी थी, किन्तु यह अनुग्रह पाने से पहले जलाराम यह व्रत निभाते रहे थे कि वे दिन भर खेत पर काम करेंगे और पत्नी सत्पात्रों को तब तक भोजन पकाती खिलाती ही रहेगी जब तक घर में अनाज रहे। भगवान उदार तो हैं पर हैं उन्हीं के लिए जो प्रामाणिकता और उदारता की कसौटी पर खरे सिद्ध हो चुके। छल करने वालों के लिए उनका "छलिया" नाम भी प्रसिद्ध है । दुष्टों के दमन में उनका "रुद्र" रूप ही परिलक्षित होता है।

भगवान का दृश्य और प्रत्यक्ष रूप विराट ब्रह्म ही है, जिसे अर्जुन, यशोदा, कौशल्या, काकभुशुण्ड जी आदि ने देखा था। इसे विश्व उद्यान या जनता-जनार्दन भी कह सकते हैं। लोक सेवा के रूप में भक्ति की यथार्थता का परिचय जिस प्रकार दिया जा सकता है उतना और किसी प्रकार नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुदामा के पैर धोकर भगवान ने पिये थे। भृगु की लात सीने पर खाई थी। यह ब्राह्मण की गरिमा को अपने से बड़ी बताने के उद्देश्य से भगवान ने किया था। ब्राह्मण वे हैं, जो गृहस्थी सम्भालते हुए क्षेत्रीय सेवा साधना की योजना में संलग्न रहते हैं और अपना निर्वाह अपरिग्रही की तरह करते हैं। साधु, ब्राह्मण वर्ग का वह पक्ष है जो विरक्त वानप्रस्थ रहकर परिव्राजक की तरह अलख जगाता, वायु की तरह प्राण संजोता और बादलों की तरह सद्विचारों का अमृत बरसाता है। इस वर्ग को श्रेष्ठ, पूज्य और भगवान के अधिक समीप इसलिए माना गया है कि वे भगवान के परमार्थ परक प्रयोजनों में निरन्तर लगे रहते हैं, अपने स्वार्थ साधन को सर्वथा भुलाये रहते हैं।

भगवान की भक्ति में घाटा उन्हें पड़ता है जो पूजा पाठ का दाना बिखेर कर चिड़ियों की तरह देवी देवताओं को बहकाने फँसाने में लगे रहते हैं। किन्तु जिन्हें सेवा धर्म प्रिय है, जो लोक सेवा को भगवान का अविच्छिन्न अंग मानते हैं, वे जितना पाते हैं उससे अनेक गुना पाते हैं। मक्का का एक बोया हुआ दाना हजारों मक्का के दानों का समुच्चय बनकर वापस लौटता है। इसी प्रकार भक्ति का वास्तविक स्वरूप यदि सत्प्रवृत्ति सम्वर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन के रूप में चरितार्थ किया जाय तो भक्त-भगवान के प्राणप्रिय बनते हैं। नारद कभी-कभी विष्णुलोक जा पहुँचते थे। यह छूट इन्हें इसलिए मिली थी कि वे भक्ति प्रचार के लिए, धर्म विस्तार के लिए निरन्तर भ्रमण करते रहते थे। ढाई घड़ी से अधिक एक स्थान पर खड़े न होते थे। भगवान बुद्ध को मनुष्य होते हुए भी भगवान कहलाने का श्रेय इसलिए मिला कि संसार में फैले हुए अभाव को मिटाने और सर्वत्र धर्मचक्र प्रवर्त्तन की प्रक्रिया गतिशील करने के लिए अपने को उन्होंने पूर्णतः समर्पित कर दिया। सेवाभावी जहाँ जन समाज का नेतृत्व करता है, वहाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष इतने लाभ पाता है जो त्याग की तुलना में हजारों गुने अधिक होते हैं।

ब्राह्मण अपना उत्तरदायित्व सम्भालें

ब्राह्मण को शास्त्रों में 'भू-सुर' कहा गया है। भू-सुर का अर्थ है—पृथ्वी का देवता। एक देवता वे होते हैं, वे स्वर्ग में रहते हैं और उद्देश्य रूप से मनुष्यों की सेवा सहायता करते हैं। उनकी कृपा पात्र बनने के लिए लोग तरह-तरह के पूजा-उपचार करते हैं ताकि देवता प्रसन्न एवं परितुष्ट रहें और अपने अनुग्रह की वर्षा इस धरती के लोगों पर करते रहें। लगभग ऐसी ही स्थिति भू-सूरों की भी है। इन पृथ्वी के देवता-ब्राह्मणों की समुचित पूजा हिन्दू समाज में होती है। उन्हें अन्य वर्णों से ऊँचा माना जाता है। कम आयु के ब्राह्मण को भी बड़ी आयु के अन्य लोग प्रणाम करते हैं। समय-समय पर उन्हें दान-दक्षिणा देते हैं और भोजन कराते हैं। यह इसीलिए किया जाता है कि अन्तरिक्ष में रहने वाले अदृश्य देवताओं की तरह यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले भू-लोक वासी ब्राह्मण देवता भी हमारी श्रद्धा, भावना, दानदक्षिणा आदि से परितुष्ट होकर हमारे कल्याण का आयोजन करेंगे।

समाज पुरुष का शीर्ष-ब्राह्मण—ब्राह्मणों का स्वरूप ही ऐसा है। शास्त्रों में उनके कर्त्तव्य ऐसे कठोर बताये हैं जिनका पालन करने वाले को देवता ही कहना पड़ेगा। जो ब्राह्मण की कसौटी पर खरा उतरता है उसे देवता नहीं तो और क्या कहेंगे ? आस्तिकता के महान् आदर्शों के प्रति निष्ठावान् बने रहने के लिए भावनापूर्ण ईश्वर-उपासना, व्यक्तित्व को उत्कृष्ट स्तर का बनाने के लिए आत्म-निर्माण की कठोर जीवन-साधना और जनमानस में सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करने के लिए अनवरत श्रम यह तीन कार्यक्रम जिन्होंने अपने लिए निर्धारित कर लिये हैं और जो इसी राजमार्ग पर निरन्तर चलते रहकर अपना ही नहीं समस्त संसार का कल्याण करते हैं उनके चरणों पर सभी का मस्तिष्क झुक जाना स्वाभाविक है।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मन्त्रों में समाज पुरुष के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए ब्राह्मण को 'मुख' की उपमा दी है। यह बड़ी सार्थक उपमा है। मुख अर्थात् शिर, उसी में मस्तिष्क, जीव, कान, नाक, आँख, वाणी, रसना आदि महत्त्वपूर्ण अवयव रहते हैं। जीवन की स्थिरता, प्रसन्नता एवं प्रगति का तीन चौथाई आधार उस कण्ठ से ऊपर वाले भाग पर ही निर्भर रहता है। मस्तिष्क की प्रखरता, बुद्धि, विचार धारा, तर्क-विवेचना, सूझ-बूझ आदि पर ही सारे शरीर को सुख-दुःख, सम्मान-अपमान, का अवसर मिलता है। दिमाग, पागल, सनकी, मूढ़, विकृत, बन जाय, उलटी बातें सोचें, आंशकाएँ भरी रहें, पग-पग पर सनकता रहे तो ऐसा व्यक्ति हर जगह तिरस्कृत होगा और शरीर के अन्य अंगों की भी भोजन वस्त्र जैसी आवश्यकताओं को यथावत् प्राप्त कर सकना कठिन हो जायगा। ब्राह्मण की विचारणा यदि उलटी हो जाय तो उसका कष्ट सारे समाज को भोगना पड़ेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पागल आदमी के किस अंग को क्या सुख मिलता है ? समाज को मानसिक नेतृत्व की जिम्मेदारी अपने कन्धे पर उठाने वाला ब्राह्मण वर्ग यदि अपने कर्त्तव्यों से विचलित होने लगा तो उसका परिणाम ब्राह्मणत्व का ही नहीं, सारे समाज का पतन भी होगा ।

ब्राह्मण मस्तिष्क ही नहीं समाज की आँख भी है । वह दूरदर्शिता पूर्वक, सूक्ष्म दृष्टि से, बारीकी के साथ यह देखता रहता है कि मेरी निज की विचारधारा, भावना, आकांक्षा कार्य-पद्धति एवं आदर्शवादिता में कहीं कोई त्रुटि तो नहीं आ गई है, यदि कोई छिद्र दिखाई पड़ता है तो वह उसे बन्द करने के लिए प्राणप्रण से जुट जाता है । चरित्र ही तो ब्राह्मण का धन है । उसमें दोष आगया तो फिर उसके पास बचा ही क्या ? इसी प्रकार वह समाज पुरुष को भी अपनी ही आत्मा का परिधन मानता है और यह भी देखता है कि मानव समाज में कहीं चारित्रिक, मानसिक, भावनात्मक दोष दुर्गुण तो पैदा नहीं हो रहे हैं । स्वच्छ एवं सभ्य समाज के लिए भी ब्राह्मण को प्रहरी की तरह प्रयत्नशील रहना पड़ता है । जहाँ जो त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं उन्हें सुधारने के लिए वह सारी सामर्थ्य लगा देता है । ऐसा उसे करना होगा । नेत्रों का काम ही यह है कि वस्तु स्थिति को सावधानी से देखें और जहाँ जो अव्यवस्था दीखे उसे ठीक कराने की व्यवस्था के लिए उपयुक्त अंगों को प्रेरणा दे । ब्राह्मण को भी यही सब तो करना होता है । इसलिए तो उसे मुख कहा गया है ।

मुख के अवयव ही कान, नाक आदि हैं । इन माध्यमों से भी सूंघता सुनता रहता है । हर वस्तु को देखा जाना सम्भव नहीं । उन्हें नाक, कान आदि के माध्यम से जाना जाता है । ब्राह्मण हर सम्भव उपाय से अपनी और अपने समाज की स्थिति को सूंघता सुनता है और यह जानने के लिए प्रयत्न रत रहता है कि कहाँ क्या त्रुटि एवं विकृति उत्पन्न हो रही है । सुधारने से पूर्व जानना भी तो आवश्यक है । अच्छाइयों के प्रति प्रसन्नता व्यक्त करना और उन्हें प्रोत्साहित सच्चा ब्राह्मण का धर्म है । जहाँ भी जो भी शुभ हो रहा हो उसे प्रोत्साहित करना, प्रशंसा करना, समर्थन देना और सहयोग करना एक आवश्यक धर्म कर्त्तव्य है । इसी प्रकार जहाँ गड़बड़ी चल रही है वहाँ सुधारने का वातावरण भी उसे बनाना पड़ता है । जो अपने से बन पड़े सो स्वयं करता, अन्यथा समाज को उन विकृतियों के विरुद्ध असहयोग, विरोध एवं संघर्ष करने के लिए खड़ा कर देना इसके जीवन क्रम का एक आवश्यक अंग होता है । कान गालियाँ सुनते रहे, नाक दुर्गन्ध सूंघती रहे भला यह कैसे हो सकता है ? ऐसी विकृतियाँ जहाँ भी देखेंगे उनके निराकरण का प्रयत्न करेंगे क्योंकि ब्राह्मण मुख है, मुख में कान, नाक भी हैं इसलिए उसे यह सब भी अनिवार्यत: करना ही होता है ।

मुख के भीतर जिह्वा रहती है जिसे दो काम करने पड़ते हैं एक भोजन नियमन:, दूसरा वाणी उच्चारण यह दोनों कार्य पिछले कार्यों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । क्या भक्ष्य है, क्या अभक्ष्य, क्या ग्राह्य है, क्या अग्राह्य उसका निर्णय जिह्वा को करना पड़ता है । जो उपयुक्त होता है उसे ही वह भीतर जाने देती है अन्यथा चखकर ही वापिस लौटा देती है । कडुए विषैले, दुगन्धित पदार्थ वह भीतर नहीं जाने देती । इसी प्रकार ब्राह्मण समाज शरीर में अवांछनीय तत्वों को घुसने नहीं देता । वह पूरी-पूरी चौकीदारी करता है कि कोई विषैली दुष्प्रवृत्ति समाज पुरुषों के पेट में न चली जाय । दूषित विचारधाराओं और दुष्प्रवृत्तियों का अभक्ष्य कहाँ जन-साधारण मन-शरीर में प्रवेश न कर जाय उसकी सुरक्षा ब्राह्मण को रखनी ही पड़ती है ।

मुख जो पाता है उसे वह अपने आप नहीं रखता, वरन् पीस कूट कर रसायन बनाता है और पेट में भेज देता है ताकि उसका रस-रक्त वन कर साने शरीर का पोषण हो । ब्राह्मण अपरिग्रही होता है । लोग उसे खूब दान-दक्षिणा देते हैं, स्वयं अपनी योग्यता एवं प्रतिभा से भी कमाता है, कमा सकता है, पर उस उपार्जन में से शरीर निर्वाह मात्र के लिए लेकर शेष सारा किसी न किसी रूप से समाज को लौटा देता है । उसकी सारी कमाई का लाभ समाज उठाता है । मुख को स्वादिष्ट पदार्थ दिये जाते हैं वह उन्हें लेता भी है, पर इस हाथ ले उस हाथ दे वाली नीति से तुरन्त हीं वह उससे समाज को लाभान्वित करने की योजना बना लेता है । जो कण दाँतों में उलझें रह जाते हैं उन्हें भी वह कुल्ला करके बाहर निकाल देता है, ब्राह्मण को मुख की तरह अपरिग्रही होना ही चाहिए ।

जिह्वा दूसरा काम करती है—बोलने का । मधुर बोलना, श्रेयस्कर बोलना, सीमित बोलना, वाणी की विभूतियाँ हैं । यह विभूतियाँ जिसकी जिह्वा में हैं वे अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं, अपने लिए व्यक्तिगत जीवन की प्रगति का अनेक दिशाओं से पथ प्रशस्त होता है । इतना ही नहीं जब दूसरों को उनके कल्याण का परामर्श सन्मार्ग की ओर चलने का मार्ग दर्शन एवं प्रगति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए प्रोत्साहन देने का क्रम बना लिया जाता है तो उसका परिणाम समस्त समाज के लिए शुभ होता है। जितना उपकार किसी को धन आदि की स्थूल सहायता देने से हो सकता है उससे हजार गुना पुण्य-परोपकार दूसरों को सत्प्रेरणा देकर कमाया जा सकता है। संसार की जितनी सेवा जिह्वा द्वारा हो सकती है उतनी और किसी प्रकार नहीं, इसलिए ब्राह्मण अपना सेवा धर्म वाणी द्वारा ही निवाहता है। कथा, प्रवचन, सत्संग, परामर्श, विचार-विनिमय जैसे कार्यक्रम उसके चलते ही रहते हैं। फलस्वरूप समय-समय पर अगणित लोगों को वह प्रकाश मिलता रहता है, जिसके आधार पर वे अपने उज्जवल भविष्य का निर्माण कर सकें। यह सेवा का उच्चतम स्वरूप है। आज 'प्रेस युग' चल पड़ने से यह प्रवचन कार्य एक सीमा तक लेखनी द्वारा भी होने लगा है।

उपर्युक्त आधार पर ब्राह्मण की तुलना मुख से ठीक ही की गई है। वह समाज का शीर्ष है। शिर ठीक रहेगा तो सब कुछ ठीक हो जायेगा, बिगड़ी बात भी बन जायेगी पर यदि शिर ने अपना काम छोड़ दिया तो बनी बात को बिगड़ने में भी देर न लगेगी। जिस व्यक्ति ने समाज रूपी शरीर में अपना स्थान एवं कर्त्तव्य शिर के अनुरूप चुना है, उसकी जितनी महिमा गाई जाय उतनी ही कम है, जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है, जितनी उपयोगिता मानी जाय उतनी ही कम है। इसी आधार पर उसे 'भू-सुर' कहा जाता है। ब्राह्मण निश्चित रूप से पृथ्वी का देवता है। देवता उन्हें ही कहते हैं जो देते रहते हैं। जो दे वह देवता, जो ले वह लेवता। स्वार्थियों को लेवता पर परमार्थियों को देवता कहा जाता है। चूँकि ब्राह्मण का जीवन-क्रम परमार्थ से ही ओत-प्रोत है, अतएव उसे देवता कहना सर्वथा सार्थक है। देवताओं की पूजा होनी चाहिए। उन्हें प्रणाम अभिनन्दन एवं भेंट पूजा से सम्मानित किया ही जाना चाहिए । ब्राह्मण का ऐसा ही सम्मान किया भी जाता है।

ब्राह्मण और ब्राह्मणत्व—वेद भगवान् ने मनुष्य को ब्राह्मण बनने की ब्राह्मणत्व अपनाने की प्रेरणा दी है और कहा है।

मर्त्या हवा अग्ने देवा आसुः। अर्थात्—शुभ कर्म करो और इसी शरीर से भू-सुर का पद प्राप्त करो। "आर्यावृता विसृजन्तो अधिक्षमि" अर्थात् वे प्रत्यक्ष देवता हैं जो धर्म प्रेरणा को सजीव रखने के लिए मर मिटते हैं।

"अग्निर्ऋषिः पावमानः पाञ्चजन्य पुरोहितः।" अर्थात् पुरोहित की पवित्र जिम्मेदारी केवल वे लोग उठावें, जिनमें आवश्यक गुण हों।

"तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्य सामगा।" अर्थात् वही ऋषि और वही ब्राह्मण है जो अपने ज्ञान से दूसरों को सन्मार्ग पर लगाता रहता है।

"परातत सिच्यते राष्ट्रं ब्रह्मणे यत्र जीयते" अर्थात् जहाँ ब्राह्मण हारते हैं वह देश खोखला हो जाता है।

"ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं दुच्दुना" अर्थात् जहाँ ब्राह्मण की उपेक्षा होती है वह राष्ट्र दुःख पाता है।

"न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रं जागार कश्चन" अर्थात् जहाँ ब्राह्मण का तिरस्कार होता है वहाँ से सुख शान्ति चली जाती है।

"देव उन्नयथा पुनः" अर्थात् हे ब्राह्मणो, गिरे हुओं को फिर उठाओ।

"प्रियं अतिथिं गृणीषणि" अर्थात् हे सम्मान योग्य ब्राह्मणो, घूम-घूम कर धर्मोपदेश करते रहो।

इस प्रकार के अभिवचन शास्त्र में पग-पग पर भरे पड़े हैं जिससे ब्राह्मण के कर्त्तव्य, गौरव, महत्त्व एवं सम्मान का निर्देश किया गया है। देवता की अभ्यर्थना होनी भी चाहिए। जिसका चरित्र पवित्र है, आदर्श उत्कर्ष है और कर्म में सेवा-धर्म ओत-प्रोत है, उस देवता के प्रति समुचित श्रद्धा की ही जानी चाहिए। उससे त्रुटि करना अनुचित है। जो ब्राह्मण का मूल्य महत्त्व नहीं समझते वे दुःख-दारिद्र्य के भागी बनते हैं, इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। इसी सन्दर्भ में ब्राह्मण के गुण कर्म स्वभाव का भी समुचित निर्देश किया गया है, इन गुणों के कारण ही उसको मान एवं गौरव मिला है। यदि वे न रहें तो फिर उसका मूल्य ही क्या रह जाता है ?

ब्राह्मण की प्रथम प्रतिज्ञा है—"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः" अर्थात् हम ब्राह्मण राष्ट्र को जीवित एवं जागृत रखेंगे। अपने समाज में नवजीवन का संचार करते रहना एवं उसे कर्त्तव्य धर्म अपनाये रहने के लिए जागृत रखना ब्राह्मण की ही परम पवित्र जिम्मेदारी है। उस जिम्मेदारी को पूर्ण तत्परता एवं सावधानी से निबाहते रहना ही ब्राह्मण धर्म है। ब्राह्मण वस्तुतः समाज का सच्चा नेता है, क्योंकि उसी के द्वारा जनमानस को पथ-भ्रष्ट होने से बचाया व रोका जाता है। राजनैतिक नेता, सामयिक समस्याओं को सुलझाने भौतिक असुविधाओं को हल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने के लिए प्रयत्न करते हैं। उनका महत्त्व सामयिक होता है। इसी प्रकार सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में जन-नेतृत्व करने वाले भी तात्कालिक व्यवस्थाओं के बारे में सोचते हैं। ब्राह्मण धार्मिक नेता है जिसे मानव-जीवन की चिरन्तन व्यवस्था को सुधार या सम्भालना पड़ता है। वह मूल को सोचने वाला है। मनुष्य अपने समाज के सामने जितनी भी उलझनें, कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ हैं इन सबका उद्‌गम मनुष्य के कुविचार, कुसंस्कार एवं कुकर्म ही हैं। इन्हें सुधारा सम्भाला न जाय तो एक समस्या के हल होते-होते दूसरी नई उलझन उठ खड़ी होगी। स्थायी शान्ति एवं प्रगति मनुष्यों की सद्‌भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर रहती है। वे बढ़ेंगी तो प्रगति की सम्भावनायें बढ़ेंगी। वेघटेंगी तो अगणित कष्ट एवं क्लेशों का उद्‌भव होने लगेगा। इस तथ्य को समझने वाला जो व्यक्ति मानव समाज के अतिरिक्त स्तर को स्वस्थ बनाये रहने के लिए धार्मिकता एवं अध्यात्मिकता की शिक्षा देता है, वस्तुतः वही सच्चा नेता कहला सकता है। उसी का प्रयत्न वट-वृक्ष की तरह दीर्घकालीन सत्परिणामों का सृजन करता है। इसलिए राजनैतिक एवं सामाजिक नेतृत्व की अपेक्षा धार्मिक नेतृत्व का अपेक्षा धार्मिक नेतृत्व का महत्त्व अधिक है। इसी अनुपात से ब्राह्मण का मान, गौरव एवं महत्त्व भी अधिक है।

कठिन कर्त्तव्य और महान् उत्तरदायित्व—अपने पद के अनुरूप ब्राह्मण का कर्त्तव्य ही कठिन एवं महान् है। उसे सबसे पहले अपने को कसना पड़ता है, अपने दोष, दुर्गुणों से लड़ना पड़ता है, मनन एवं चिन्तन द्वारा अपनी वासना एवं तृष्णा को परास्त करना पड़ता है। संयम की कसौटी पर निरन्तर कसते रहना पड़ता है। यह इसलिए आवश्यक है कि दूसरे लोगों की तुलना में अपना चरित्र एवं व्यक्तित्व ऊँचा न हो तो फिर मार्ग-दर्शन करने की प्रक्रिया ही लड़खड़ा जायेगी। वक्ता को सुनने वालों की अपेक्षा कुछ ऊँचे स्थान पर बैठना पड़ता है, तभी वे उसका चेहरा देख पाते और प्रवचन सुन पाते हैं। यदि वक्ता श्रोताओं की पंक्ति में ही जा बैठे अथवा उनसे भी नीचे से घुस जाय और फिर प्रवचन करे तो सुनने वाले न तो उसका चेहरा देख पावेंगे और न आवाज ही ठीक तरह सुन पावेंगे। इसी प्रकार जनता का धार्मिक नेतृत्व करने वाला व्यक्ति यदि व्यक्तित्व एवं चरित्र की दृष्टि से दूसरों से ऊँचा न हो तो उसकी जन-नेतृत्व कार्य-पद्धति ही निरर्थक हो जायेगी।

भारतीय जनता कृतघ्न नहीं हैं। उसने ब्राह्मणों द्वारा की जाने वाली समाज की सेवा की उपयोगिता एवं महत्ता को समझा है और बदले के रूप में अधिक नहीं तो इतना तो किया है कि उन्हें उच्चतम सामाजिक सम्मान प्रदान करने के अतिरिक्त आजीविका की भी निर्वाध व्यवस्था करदी है। वेतन के रूप में नहीं, सम्मानसिक्त श्रद्धा के रूप में। नियमित वेतन भी दिया जा सकता था पर इसमें उनका सम्मान घटता। वे कर्मचारी स्तर पर आ जाते, इसलिए उनके गौरव के उपयुक्त यही था कि निर्वाह का प्रबन्ध भी हो जाय और सम्मान में कमी भी न आने पावे। हिन्दू धर्म में पग-पग पर धर्मोत्सवों, व्रत-उद्यापनों, कथा-प्रवचनों, संस्कार, त्यौहारों, श्राद्ध, जन्मदिनों का विधान है। हर गृहस्थ को यह सब कई-बार करना होता है। सब में अन्न, वस्त्र, धन, फल आदि का दान होता है और उसके अधिकारी ब्राह्मण ही होते हैं। इससे हर छोटे ग्राम के पीछे भी चार, छः ब्राह्मण परिवारों का अभी भी भली प्रकार गुजारा होता है। जनता की यह गुण-ग्राहकता, कृतज्ञता सब प्रकार सराहनीय है।

यह क्रम दोनों ओर से जब तक ठीक चलता रहा, तब तक समाज की सुव्यवस्था भली प्रकार चलती रही। ब्राह्मण घर-घर जाकर अपने यजमानों को उपदेश करते थे, स्त्रियों, बच्चों, युवको, युवतियों, वृद्धों सभी को उनके कर्त्तव्य समझाते थे। जो पथ-भ्रष्ट हो रहा होता था, उसे सम्भालते थे। जिस प्रकार स्वास्थ्य का बीमा करने वाली कम्पनियों द्वारा नियुक्त 'फैमिली डाक्टर' अपने बीमेदारों की स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी पूछ-ताछ और व्यवस्था स्वयं करते रहते हैं, उसी प्रकार पुरोहितों का कर्त्तव्य था कि अपने यजमानों में से कोई बाल-वृद्ध कुसंस्कारों वाला एवं कुमार्गगामी न बने। यजमानों के घरों से प्रत्येक सदस्य से वे अपना प्रगाढ़, आत्मीय सम्बन्ध बनाये रहते थे और उनका समुचित पथ-प्रदर्शन करते रहते थे। जहाँ सद्‌बुद्धि रहेगी, नीति-पूर्वक जीवन जीने की पद्धति अपनाई गई होगी वहाँ सुख, समृद्धि की कमी क्यों रहेगी? सारी जनता फलती-फूलती थी। पुरोहितों ने माली बनकर जिस बगीचे को बोया, सींचा, बढ़ाया, रखाया है, वह पत्र पुष्पों से सुरक्षित और फलों से लदा हुआ क्यों न होगा? यजमानों के घरों पर जाकर संस्कार, पर्व आदि के अवसरों पर उद्‌बोधन और अपने घर आश्रमों पर यजमानों के बालकों को पढ़ाने के लिए गुरुकुलों का संचालन यह ब्रह्मचर्य उनकी आत्मा को भी पूरा-पूरा सन्तोष देता था

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सारी जनता उनके इसी सेवा साधना का सत्परिणाम माँगती थी।

अवनति और पतन का क्रम—धीरे-धीरे यह क्रम बदला। श्रम की स्थान आलस्य ने ले लिया, अधिक उपार्जन का लोभ उपजा, उत्कृष्ट व्यक्तित्व रखने की कष्ट-साध्य जीवन-साधना की उपेक्षा की जाने लगी, स्वाध्याय से मुँह मोड़ा गया और सेवा से आँख चुराई जाने लगी। जहाँ ब्राह्मण समाज की बहुमूल्य सेवा करते थे और बदले में निर्वाह की थोड़ी-सी सुविधा प्राप्त करते थे, अब अधिकाधिक दक्षिणा बटोरना तो याद रहा पर सेवा के कर्त्तव्य एक प्रकार से भुला ही दिये गये। पहले अपनी विद्या, नम्रता, सेवा एवं सद्गुणों के कारण उन्हें सम्मान मिलता था, उससे सम्पन्न बनते थे, अब वंश को ही श्रेष्ठता का आधार मान लिया गया और ऐसा सोच लिया गया कि अमुक वंश में जन्मने के कारण हम सबसे श्रेष्ठ हैं और इस वशागत श्रेष्ठता के कारण ही हमें वह अधिकार मिल गया है कि बिना लोक-सेवा के भी जन सम्मान एवं दान-दक्षिणा प्राप्त करते रह सकें।

क्या यह आधार उचित है? क्या कोई बिना सेवा एवं श्रेष्ठता के भी सम्मानास्पद बन सकता है? क्या वंश के कारण किसी को उच्च माना जा सकता है? फिर कोई उच्च भी हो तो क्या उसे बिना समुचित प्रतिफल चुकाये किसी से दान आदि लेने का अधिकार है? इन प्रश्नों का उत्तर 'नहीं' हो सकता है।

हमारे पूर्वज ऋषि या ब्राह्मण थे, इसलिए हमें भी वैसा ही माना जाय, यह माँग सर्वथा हास्यास्पद है। किसी के पिता कलक्टर थे, किन्तु वह स्वयं चपरासी है तो ऐसी दशा में उस चपरासी का यह दावा कैसे स्वीकार किया जाय कि वंश परम्परा के कारण उसे भी कलक्टर माना जाय। डाक्टर का बेटा यदि अशिक्षित हो तो उसे डाक्टर मानकर चिकित्सा कराने के लिए कौन तैयार होगा? किसी संगीतज्ञ की सन्तान को यदि गाना, बजाना कुछ भी न आता हो तो संगीत-सम्मेलन में उच्च पद कैसे मिलेगा? मूल्य गुणों का है वंश परम्परा का नहीं—इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता। जब ब्राह्मण अपना कर्त्तव्य छोड़ते गये, और सम्मान और दान के लिए लालायित रहे, ऐसी दशा में जनसाधारण की दृष्टि में उनका मूल्य घटना स्वाभाविक ही था। मूल्य घटने के साथ अजीविका भी घटेगी ही। भौतिक-जीवन के उपकरणों में खर्च बढ़ता है, दान-दक्षिणा पर निर्भर रहा जाय और अपना मूल्य गिरा लिया जाय तो खर्च की पूर्ति में कमी पड़ेगी ही। इसकी पूर्ति कैसे हो सिवाय अनुपयुक्त ढंग की आमदनी बढ़ाने के लिये और किया भी क्या जाय?

पिछले दिनों, भाग्यवाद, भविष्यवाणी, गृहवाद, देवपूजन से अमुक प्रकार की सिद्धियाँ, स्वल्प, कर्मकाण्ड से प्रचुर भौतिक लाभों की आशा, भूत-प्रेत, झाड़-फूँक, टमना-टोटका के वे सिर-पैर की ऐसी भ्रान्तियाँ फैलाई गईं जिनमें वास्तविकता कुछ भी न थी केवल लोगों के अज्ञान और अपने पूर्व संचित सम्मान का अशोभनीय तालमेल बिठाकर आमदनी की तरकीवें गढ़ी गईं। इससे ब्राह्मण की थोड़ी आमदनी बढ़ी भी हो, पर उसका स्तर और भी गिरा। विचारशील लोगों से वस्तुस्थिति छिपी नहीं रहती, वे वास्तविकता को ताड़ जाते हैं। अज्ञानी लोग भले ही बहके रहें पर विचारवानों को तथ्य समझने में देर नहीं लगती। वे इस प्रकार के व्यवहार से खिन्न ही होते हैं।

ब्राह्मण के पतन की यही दर्द भरी कहानी है। आज वंश परम्परा की दृष्टि से ब्राह्मणों की संख्या करोड़ों है। जनसंख्या की दृष्टि से अल्प जातियों की तुलना में वे ही सबसे अधिक हैं पर कर्म से जो ब्राह्मण हों ऐसे लोगों की संख्या लाखों क्या, हजारों क्या, सैकड़ों से भी कम होगी। किसान ब्राह्मण, व्यापारी ब्राह्मण, नौकर ब्राह्मण, नाई ब्राह्मण, दर्जी ब्राह्मण, बजाज ब्राह्मण, हलवाई ब्राह्मण, आदि अगणित वर्ग और श्रेणी के वे मौजूद हैं पर ब्रह्म कर्म परायण ब्राह्मणों की संख्या तेजी से घटती चली जा रही है और खतरा यहाँ तक पैदा हो गया है कि कहीं यह परम्परा ही नष्ट न हो जाय। यदि यह पुण्य परम्परा नष्ट हो गई तो भारतीय धर्म एवं संस्कृति का ही नहीं, सारी मनुष्य जाति का बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा।

यह पुण्य परम्परा नष्ट न हो—ब्रह्म परम्परा को नष्ट नहीं होने देना चाहिए। समाज—शरीर का शीर्ष ही अस्त-व्यस्त हो गया तो शेष अंगों का भी क्या बनेगा? धार्मिक नेतृत्व ही नष्ट हो गया तो धार्मिकता कहाँ बचेगी? अतएव नव-निर्माण की इन पुण्य घड़ियों में यह प्रयास ही होना चाहिये कि जन-मानस में आस्तिकता एवं धार्मिकता का प्रकाश उत्पन्न कर सकने वाले उत्कृष्ट व्यक्तित्व का अस्तित्व बना रहे। सच्चरित्रता भाषणों से नहीं अनुकरणीय आदर्श सामने प्रस्तुत करके सिखाई जाती है। प्राचीन काल के ऋषि जीभ से उतना प्रभाव नहीं डालते थे, जितना अपने उज्ज्वल चरित्र से। राजनीति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चतुरता और योग्यता के आधार पर नेतृत्व किया जा सकता है पर धार्मिक नेतृत्व तो चरित्रवानों के हाथ में ही रहेगा। इसमें थोड़ी भी त्रुटि रहेगी तो वाणी का कोई विशेष प्रभाव न रह जायेगा। मोर जैसा बोलने वाले वक्ताओं के चरित्रगत-दोष जब जनता के सामने आते हैं तो वे सभी की दृष्टि में गिर जाते हैं और फिर उनके प्रवचनों का भी कोई मूल्य नहीं रह जाता। अतएव ब्रह्म-परम्परा को स्थिर रखने के लिए जो आगे आयें उन्हें सबसे पहले अपने व्यक्तितव का स्तर ऐसा उज्जवल एवं विकसित रखना होगा जिससे बिना कहे भी दूसरों को उत्साहवर्धक प्रेरणा मिलती रहे।

अन्तःकरण में उच्च आदर्शवाद सुदृढ़ बना रहे इसलिए आस्तिकता में गहन आस्था होना आवश्यक है। ईश्वर विश्वास का सम्बल पकड़े बिना मनुष्य भय एवं प्रलोभनों के अवसर सामने आने पर निर्धारित लक्ष्य से विचलित हो जाता है। इस स्थिति में केवल ईश्वर का विश्वास ही प्रकाश एवं साहस प्रदान करता है और कुमार्ग के भवसागर में डूबने से बचा लेता है। उपासना उसी प्रयोजन के लिए की जाती है। यह बहुत बड़ा लाभ है, जीवन नौका का सन्मार्ग की दिशा में चलने वाला मांझी जिसे मिल सके उससे अधिक सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है ? ईश्वर से धन, वैभव, स्वास्थ्य, सफलता, स्त्री, पुत्र आदि माँगना अपना ईश्वर का और उपासना का मखौल बनाना है। यह वस्तुएँ तो मनुष्य को अपनी प्रतिभा, क्षमता, योग्यता और श्रमशीलता बढ़ाकर उनके मूल्य पर प्राप्त करनी पड़ती हैं। उसके अभाव में दिन-रात प्रार्थना उपासना करते रहने वाले को भी खाली हाथ ही रहना पड़ता है। श्रेष्ठ ब्राह्मण की उपासना सच्ची उपासना होनी चाहिये। भौतिक दुकानदारी की प्रवंचना को उपासना कहा जाय तो उससे आत्मिक बल की वृद्धि नहीं हो सकती और आत्मबल के अभाव में ब्राह्मणत्व कहाँ ? अतएव ब्राह्मण को जो दूसरा काम करना है वह है—सदुद्देश्य पूर्वक उपासना। भले ही वह एक घण्टे या आधे घण्टे नित्य हो, पर यदि सही आधार पर की गयी है तो वह आशा-जनक प्रतिफल उत्पन्न करेगी। महात्मा गांधी के एक घण्टे की प्रार्थना उनमें अपार बल भर दिया करती थी।

ब्राह्मणत्व का दर्शन और कर्त्तव्य—व्यक्तित्व एवं जीवन निर्माण की साधना, आदर्शवाद को अन्तःकरण से परिपक्व करने वाली उपासना के साथ-साथ ब्राह्मण का तीसरा कर्त्तव्य अनवरत समाज सेवा का है। इसमें इसका तन, मन, धन, सब कुछ समर्पित रहना चाहिये। मस्तिष्क उसी की बात सोचे और शरीर वही क्रिया करे तो समझना चाहिए ब्राह्मण-जीवन सार्थक हुआ। उसमें न आलस्य के लिए गुंजायश है और न प्रमाद के लिए। विश्व-मानव को विराट् ब्रह्म की प्रत्यक्ष प्रतिमा मानकर उसका अभिषेक ज्ञानरूपी अमृत से करते रहना, यह भगवान् का सर्वश्रेष्ठ भजन और आत्म-कल्याण का सबसे उत्तम साधन है। ब्रह्म धर्म की आत्मा यही है। इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए देवता ब्राह्मण का शरीर धारण कर इस धरती पर अवतार लेते हैं। धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश यही अवतार का उद्देश्य है। ब्राह्मण का देव अवतार भी इसीलिए है। वह ज्ञान रूपी तलवार लेकर मैदान में उतरता है और अन्याय एवं अज्ञान के शासन को ध्वस्त करता चला जाता है। परशुराम जी ने इस पृथ्वी पर से ऐसा ही अज्ञानान्धकार अपने कुल्हाड़े के बल पर २१ वार मिटाया था। अज्ञानी को नहीं अज्ञान को मारने के लिये ब्राह्मण का कुल्हाड़ा शूरवीर योद्धा की रह निरन्तर चलता ही रहता है।

देवताओं के आशीर्वाद वरदान से हमारा कल्याण होता है इसलिए उनकी आराधना करके हम उनका अनुग्रह प्राप्त करने का प्रयत्न किया करते हैं। भू-सुरों की—ब्राह्मणों की अनुकम्पा से भी अगणित मानवों का अपार हित साधन होता है। इसलिये उनके आगे हम मस्तक झुकाते हैं और उनका आशीर्वाद समय-समय पर प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं । आत्मा-परमात्मा का ही तो अंग है। मल आवरण -विक्षेपों कषाय कल्मषों का कूड़ा-कचरा जमा हो जाने से ही उसका शुद्ध स्वरूप ढंक जाता है। मलीन बन जाता है। इन आवरणों को हटा दिया जाये तो आत्मा में परमात्मा की झांकी परिलक्षित होती है। उससे सारे ईश्वरीय गुण प्रकट होते हैं और अनेक बार तो ईश्वरीय सामर्थ्यें भी बड़ी मात्रा में उनके भीतर विद्यमान रहती हैं। जिस प्रकार परमात्मा का सान्निध्य एवं अनुग्रह प्राप्त करके मनुष्य श्रेय-सत्परिणाम प्राप्त करता है उसी प्रकार समुचित आत्मा वाले ब्राह्मणों का सम्पर्क भी उसके कल्याण का निमित्त बनता है जबकि धनी, गुणी, विद्वान्, सत्ताधीश बड़े आदमियों की समीपता एवं कृपा प्राप्त कर लेने पर साधारण मनुष्य कई तरह के लाभ प्राप्त कर लेते हैं तो आध्यात्मिक विभूतियों से परिपूर्ण सन्त सज्जनों की कृपा का लाभ हमें क्यों न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलेगा। कल्पवृक्ष अपने नीचे बैठने वाले को कल्पवृक्ष नहीं बना सकता, केवल कुछ कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। पारस लोहे को सोना बना सकता है पारस नहीं। अमृत पीकर व्यक्ति अमर बन सकता है वह स्वयं अमृत नहीं बन सकता। किन्तु साधु ब्राह्मण में यह विशेषता है कि उनका कृपा पात्र अपने समीप आने वाले व्यक्ति को अपने जैसा ही बना देते हैं। नारद के सम्पर्क से बाल्मीकी डाकू के ऋषि बनने की कथा प्रसिद्ध है। ध्रुव जैसा अज्ञान बालक विश्व ब्रह्माण्ड का केन्द्र बिन्दु, अजर-अमर ध्रुव तारा नारद जी की ही कृपा से बन गया। भगवान् बुद्ध के सम्पर्क अंगुलीमाल डाकू और अम्बाली वेश्या जैसे पतितों ने समुचित जीवन उपलब्ध किया था। समर्थ गुरु रामदास ने एक साधारण से मराठा बालक को छत्रपति शिवाजी बनाकर खड़ा कर दिया था। विश्वामित्र द्वारा परीक्षा में तपाया हुआ हरिश्चन्द्र एक साधारण-सा राजा नहीं, इतिहास का सूर्य सत्यवादी हरिश्चन्द्र बन गया। अन्यथा उस बेचारे का नाम भी आज सुनने में न आता। गान्धी के सम्पर्क में आने वाले कितने जवाहर लालों को यशस्वी होने का अवसर मिला अन्यथा उन्हें पड़ौसी भी जान न पाते। साधु, ब्राह्मणों की कृपा का ऐसा ही फल होता है। चन्दन की सुगन्ध भी शीतल होती है। हिमालय में जाकर उष्णता के रोग से व्यथित रोगी भी शीतलता भरी शान्ति अनुभव करता है। सन्त महान् होते हैं उनकी समीपता एवं अनुकम्पा का फल भी महान् ही होना चाहिए।

प्रजातन्त्र की शासन पद्धति 'रूसो' के मस्तिष्क की सूझ है। अर्थ, वर्ण एवं लिंग की समता का सन्देश विश्व को देने वाले कार्लमार्क्स हैं। इन दार्शनिकों के विचारों से आज समस्त संसार लाभान्वित हो रहा है। गान्धी, तिलक जैसे विचारकों ने भारत को स्वतन्त्रता की प्रेरणा दी और उस लक्ष्य को प्राप्त भी कर सका, विचारों की शक्ति धन आदि स्थूल साधनों की अपेक्षा सहस्त्रों गुनी अधिक है। ज्ञान का दान ब्रह्म-दान कहलाता है, जिसका पुण्य सब पुण्यों से अधिक है। कहते हैं कि दानी कर्ण सवा मन सोने का दान नित्य किया करते थे, उनकी प्रशंसा है पर उनसे भी सहस्त्रों गुनी प्रशंसा उनकी होनी चाहिए जो ढेरों ज्ञान का अनुदान मानव समाज को निरन्तर देते रहते हैं और अगणित प्राणियों को नर-पशु के स्तर से ऊँचा उठाकर पुरुष-पुरुषोत्तम बना देने में सफल होगा। ऐसा ब्राह्मण भिक्षुक नहीं, कर्ण से भी बढ़कर दानी ही माना जायेगा जो जन-जागरणके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है।

प्रायश्चित्त का साहस करें—पिछले दिनों ब्राह्मणत्व का स्तर गिरा है इसका उत्तरदायित्व हमें स्वीकार करना चाहिए और उसका प्रायश्चित करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। हिन्दू-धर्म को भारतीय दर्शन की मुख्य मान्यताओं के सर्वथा विपरीत आज अगणित अन्धविश्वासी, मूढ़ताएँ, रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ एवं भ्रान्त-धारणाएँ फैली हुई हैं, वे अब धर्म का एक अंग-सी बन चली हैं, कितने ही व्यक्ति तो इन रूढ़ियों को ही धर्म का एकमात्र साधन समझते हैं। जो किसी के हाथ का छुआ भोजन कर लेता है वह अधर्मी और जो न किसी को छूता और न छुआ खाता है, वह धर्मात्मा माना जाता है। वंश, वेष, परिधान, उपकरण, तिलकछाप आदि को धर्म का स्वरूप मान लिया गया है। इस भ्रान्ति से यह हानि हुई कि लोग धार्मिकता का वास्तविक स्वरूप ही भूल गये और केवल आवरण कर्मकाण्डों में उलझे रहकर यह सोचने लगे कि हमने धार्मिकता एवं आस्तिकता पूरी करली, अतएव जो सत्परिणाम इनके मिलने चाहिए वे सब ही मिल जायेंगे। जरा-जरा से कर्मकाण्डों से स्वर्ग-मुक्ति मिलने के सम्बन्ध में निश्चित हो जाना, एक ऐसी भयानक भूल है जिसके कारण लोग अपने कठोर कर्त्तव्यों का पालन करने की उपेक्षा करने लगते हैं। न कोई उच्च-चरित्र बनाना है और न आदर्शवादी बनना है। जब सस्ते नुस्खे से ही काम चल गया तो कोई कष्ट सहने के लिए तैयार भी क्यों हो ?

प्रस्तुत भ्रान्तियाँ अनेक हैं। सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक हर क्षेत्र में भ्रान्तियों का घटाटोप छाया हुआ है। इस जंजाल में से जब तक हम अपने देश की जनता को न निकाल सकेंगे तब तक उसकी वास्तविक प्रगति हो सकना असम्भव ही रहेगा। आज ब्राह्मण की ही यह स्थिति सुधारनी चाहिए। उसी के पूर्वजों ने यह जाल-जंजाल बिछाये हैं। इसलिये उनको उखाड़ने-उधेड़ने का तप भी अब उन्हें ही करना चाहिए। विचार-भ्रान्ति के लिए आज के ब्राह्मण को बुद्ध, शंकराचार्य, दयानन्द, गान्धी, विवेकानन्द, राम मोहन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षित कर्वे, ठक्कर बापा जैसे सुधारवादियों की तरह आगे आना चाहिए। रूढ़ियों से लड़ते हुए यदि उन्हें विरोध, अपमान, उत्पीड़न सहना पड़े तो उसे प्रायश्चित की तपश्चर्या ही मानना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुकरात, मन्सूर, ईसा, गान्धी आदि ने तो प्राण तक दिये थे। अंग्रेजों का अनीति शासन उखाड़ने वालों ने हँसते-हँसते गोलियाँ सहीं थीं, हमें कम से कम गालियाँ तो सहनी ही पड़ेंगी। उससे कम कोई इतने बड़े पाप का प्रायश्चित हो भी कैसे सकता है ? भारतीय जन-मानस की भावना, मान्यता, विचारणा एवं आस्था की दृष्टि से हमें पवित्र, परिष्कृत एवं परिमार्जित बनाना ही होगा। यह कार्य प्रायश्चित स्वरूप अधिकाधिक श्रद्धा और अधिकाधिक तत्परता के साथ किया जाना चाहिए, तभी यह सम्भव होगा कि धर्मिकता की उपयोगिता लोग समझें और उसके प्रति जो अश्रद्धा एवं उपेक्षा के भाव रखे हुए हैं, उन्हें बदल दें। हिन्दू-धर्म की धार्मिक उपेक्षा एवं अश्रद्धा दलदल में नष्ट होने से उबारा ही जाना चाहिए।

वातावरण बदला जाय—पिछले दिनों में धर्म-तन्त्र ने कुछ ऐसा ही क्रम अपनाया है, जिसने आज धर्म के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न कर दी है। अशिक्षितों में तथा भावुक श्रद्धालु लोगों में धार्मिकता पाई जाती है पर सुशिक्षित एवं विवेकशील लोग उसकी उपेक्षा करने लगे हैं। पढ़े-लिखे लोगों के कन्धों पर न जनेऊ दिखाई पड़ता है न शिर पर चोटी। जिसे धर्म-विश्वासी समझा जाता है उसकी मखौल बनाई जाती है और बेवकूफ बनाया जाता है। यह खेद-जनक स्थिति केवल हिन्दू-धर्म में है, न मुसलमानों में, न इसाइयों में, न सिखों में, न पारसियों में, न यहूदियों में, न बौद्धों में। समस्त विश्व के समस्त धर्म, अपने अनुयायियों की अटूट श्रद्धा के भाजन बने हुए हैं। स्वयं उतना कर न पाते हों, किन्तु दूसरों पर इन्हें अपने धर्मों पर श्रद्धा अवश्य होती है। एक अभागा हिन्दू-धर्म है जिसके अनुयायी स्वयं उसका मखौल उड़ाते एवं अश्रद्धा प्रकट करते देखे जाते हैं।

इसके लिए नई सभ्यता, अंग्रेजी शिक्षा को, कलियुग को दोष देना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि ऐसा ही होता तो सभी धर्मों के लोगों की स्थिति वैसी ही हो गई होती पर वस्तुतः वैसा नहीं है। कॉलिजों में पढ़ने वाले सिख युवक अभी भी 'पंच केश' रखाते हैं, कड़ा पहनते हैं, गुरुद्वारों में जाते हैं और जहाँ तक पन्थ का प्रश्न है वे उसके लिए वफादार हैं। बड़े-बड़े फौजी अफसर जिस जोश के साथ नानक जयन्ती, बैसाखी आदि पर कीर्तन करते हैं, उसे देखने में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें अपने धर्म के प्रति अश्रद्धा है। गुरुद्वारों की जो प्रगति हो रही है, शरणार्थियों ने जितने गुरुद्वारे बना दिये हैं, उनमें जिस श्रद्धा से जाया जाता है उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि सिख जनता अपने धर्म के प्रति अश्रद्धालु है या उसका तिरस्कार करती है।

मुसलमानों को लीजिए। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी, हैदराबाद यूनिवर्सिटी के अधिकांश मुसलिम छात्र अपने धर्म से सगांते खाने वाली पोशाक पहनते, टोपी लगाते, मूछें कटाते आर भाषा बोलते देखे जा सकते हैं। हमें चोटी रखने में कष्ट होता है उनके यहाँ पर हर बच्चे की सुन्नत होती है और अंग-भंग का कठिन कष्ट सहन करना पड़ता है पर कोई सुशिक्षित भी उससे इनकार नहीं करता। ईद के दिन नमाज में तथा समय-समय पर मस्जिदों में जो उपस्थिति होती है, अपने धर्म के प्रति जो जोश भरा रहता है उसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि मुसलमान जनता ने अपने धर्म का बहिष्कार करना या मखौल उड़ाना शुरू कर दिया है। अभी वे विश्व मुसलमान संगठन की बात सोचते हैं और बहुत करके वैसा ही क्रम चला भी रहे हैं। काश्मीर के प्रश्न पर कितने मुस्लिम देशों की प्रत्यक्ष-परोक्ष सहानुभूति पाकिस्तान के साथ है। यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं। अनौचित्य में भी अपने मन का पक्षपात धार्मिक आधार पर ही बढ़ा है। यदि धर्म के प्रति अश्रद्धा होती तो वे भी हमारी ही तरह अपनों को ही कोसते और इस प्रकार की प्रवृत्तियों की साम्प्रदायिकता घोषित करते।

ईसाइयों का धार्मिक उत्साह—ईसाई धर्म को लीजिए। उसका जन्म हुआ अभी दो हजार वर्ष भी पूरे नहीं हुए कि संसार की एक तिहाई जनता को उसकी दीक्षा मिली। संसार भर की जनसंख्या ३ अरब के कसीब है, जिसमें एक अरब ईसाई हैं। बम्बई में पिछले दिनों जो विश्व ईसाई सम्मेलन हुआ था उसमें उन लोगों ने इस बात पर दुःख प्रकट किया था कि—"अभी तक केवल एक तिहाई संसार ही ईसाई बनाया जा सका, अब हमें अपने प्रयत्न उतने तीव्र करने चाहिये कि अगले सौ वर्षों में शेष २ अरब जनता को भी ईसाई धर्म में दीक्षित करना सम्भव हो सके।"

इतनी आश्चर्यजनक जनता सफलता उन्हें तभी मिली है जब ईसाई जनता में अपने धर्म के प्रति अपार निष्ठा है। हजारों लाखों पादरियों ने योरोप, अमेरिका की साधन सम्पन्न परिस्थितियों के सुख-साधन छोड़कर एशिया और अफ्रीका के साधन रहित कष्ट-साध्य जीवन जी सकने योग्य वन्य प्रदेशों में रहना स्वीकार किया और वहाँ के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिछड़े हुए लोगों के साथ घुल मिलकर अपने धर्म का प्रसार किया। त्याग केवल पादरियों का ही नहीं वरन् ईसाई जनता का भी उसमें महान् योगदान है। बाइविल तथा दूसरी धर्म पुस्तकों का संसार की लगभग सभी ६०० भाषाओं में अनुवाद किया जाता है और लागत से भी कम मूल्य में, बहुत करके बिना मूल्य भी—करोड़ों रुपये की लागत की तैयार करके विश्व के कौने-कौने में पहुँचाया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय बाईबिल सोसायटी का खर्च इतना है जितना योरोप के छोटे-छोटे देशों की सरकारों का। संसार भर में लाखों चर्च बने हुए हैं उन पर अरबों रुपया हर महीने खर्च होता है। यह सारी धनराशि ईसाई जनता अपनी धर्म श्रद्धा से विभोर होकर स्वयं देती है। ऐसी प्राप्ति के लिये किसी पादरी को न अपने धर्मानुयायियों को किसी भ्रम जंजाल में फँसा कर ठगना पड़ता है और न उनमें अन्ध श्रद्धा उत्पन्न करती पड़ती है। ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त, विचार शील लोग इस धर्म अभिवर्धन अभियान में स्वेच्छापूर्वक विपुल धनराशि प्रदान करते रहते हैं, उसी से तो इतनी बड़ी व्यय व्यवस्था बन पाती है।

अंग्रेजी पढ़ाई, बुरा जमाना, कलियुग का आगमन आदि बातें हिन्दू धर्मानुयायियों को बढ़ती हुई अश्रद्धा का कारण बनाकर हम अपने आपको धोखा भले ही देते रहें, झूँठा आत्म-सन्तोष भले ही करते रहें, पर वस्तुत: यह वास्तविकता से आँखे मीच लेना ही होगा। ऐसे बहकावे किसी समस्या का हल नहीं कर सकते। यदि वस्तुत: उच्च शिक्षा या कलियुग के कारण ही धार्मिक अश्रद्धा बढ़ रही होती तो सिख, मुसलिम, ईसाई, बौद्ध, पारसी आदि धर्मों पर भी उसका असर दिखाई पड़ता। किन्तु देखा यह जाता है कि सभी ओर उत्साह हिलोर ले रहा है केवल अपना एक ही धर्म ऐसा है जिसकी बधिया बैठती चली जा रही है। हर साल लाखों हिन्दू ईसाई धर्म में दीक्षित होते हैं पर कितने ईसाई हिन्दू बने यह सुनने में नहीं आता। कभी-कभी शुद्धि की जो रिपोर्ट अखबारों में छपती रहती है वे उन लोगों की होती हैं कि जो कुछ ही दिनों में ईसाई बने थे किन्तु उनकी विरादरी तथा दूसरे अन्य लोगों की प्रेरणा से वे फिर पूर्ववत् बने रहने को तैयार हो गये। जन्मजात ईसाई या मुसलमान हिन्दू बने हों ऐसी घटनाएँ कभी अपवाद रूप से ही घटित होती हैं। इस्लाम धर्मानुयायियों ने पाकिस्तान बाँट लिया, ईसाई नागालेण्ड लेने की तैयारी में हैं, सिख राज्य के लिए माँग जारी है। अब कुल मिलाकर समस्त विश्व में ३४ करोड़ मात्र हिन्दू रह गये हैं। वर्तमान परिस्थितियाँ इसी प्रकार चलती रहीं, इनमें सुधार न हुआ तो कौन जाने अगले सौ वर्ष में अपने धर्म का कोई स्वरूप बचा भी रहेगा या नहीं ?

आज आत्म-निरीक्षण का समय है, हमें अपनी दुर्बलताओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा और जो कारण हमें वर्वाद करने पर तुले हुए हैं, उन्हें सुधारना—बदलना पड़ेगा। यथा स्थिति बनी नहीं रह सकती। या तो हमें आगे बढ़ना होगा या पीछे हटाना होगा। जीवन और मृत्यु में से एक को हमें चुनना ही होगा। यदि अपने रोम-रोम में घुसे हुए रोगों का हम न तो निदान कराना चाहते हैं और न चिकित्सा तो भी मरण निश्चित है। हमारे धर्म तन्त्र का आज जो स्वरूप है, वह देर तक वैसा ही चल नहीं सकता है। उनमें इतने घुन लग गए हैं कि यह शहतीर अगले दिनों धराशायी भी हो सकता है। समय का तकांजा आ पहुँचा कि या तो हम सम्भलें अन्यथा अन्धकारमय भविष्य के लिये तैयार रहें जिसमें प्रखरता न हो ऐसी कोई जाति इस बुद्धिवाद और विज्ञान वाद के युग में देर तक अपना अस्तित्व बनाये नहीं रह सकती।

छँटनी आवश्यक—अब छँटनी का समय आ गया। ब्राह्मण विरादरी मात्र तक करोड़ों व्यक्ति भले ही बने रहें पर उन्हें इतना तो तुरन्त आरम्भ कर देना चाहिए कि ब्रह्मभोज के निमन्त्रण स्वीकार करना एवं दक्षिणा लेना बन्द करदें। जो ब्रह्मकर्म में लगे हुए नहीं हैं, उन्हें इसका किसी भी प्रकार अधिकार नहीं है। किसान ब्राह्मण, व्यवसायी ब्राह्मण अपने को इसी वर्ग का मानें न वे ब्राह्मणत्व का अहंकार करें और न बिना प्रतिफल चुकाने की क्षमता के ब्रह्मभोज स्वीकार करें। यदि वे इतना कर पाते हैं तो भी मानना चाहिए कि उनने ऐसे अवाँछनीय कार्य से छुटकारा पा लिया जो उनके लिये सर्वथा अनुचित ही था।

ब्राह्मण रक्त की प्रतिष्ठा इतनी भी न गिरने देनी चाहिए कि जिससे यह कहा जाने लगे कि अब ब्रह्म परम्परा मिट ही गई। नये रक्त के लोगों को उसका कष्ट साध्य उत्तरदायित्व वहन करने के लिए साहस पूर्वक आगे कदम बढ़ाना चाहिए अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को कुचलते हुए—अपरिग्रही जीवन का व्रत लेकर जन जागरण के लोक मानस का उत्कर्ष करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये—धार्मिक नेतृत्व की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठाने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए। विचार क्रान्ति के अग्रदूत बनकर नव-निर्माण अभियान में उन्हें अपना उत्साह-वर्धक सहयोग देना चाहिए।

जिनके यहाँ पौरोहित्य कृत्य होता है, उन्हें अपने क्रिया-कृत्यों के साथ आज की नैतिक एवं सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की शिक्षा का समन्वय कर देना चाहिए। आजकल पण्डित लोग अमुक धर्मानुष्ठानों में केवल पूजा उपचार का विधि-विधान करा देने पर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि किसी भी धर्मानुष्ठान का—कर्मकण्ड का—महत्त्व तभी है जब उसके साथ जुड़ी हुई प्रेरणा एवं शिक्षा भी यजमानों को समझाई जाय। यदि केवल मन्त्रोच्चारण एवं क्रिया कृत्य ही पूरा किया गया है तो मानना चाहिए कि मूल प्रयोजन पूरा न होने से वह विधि-विधान सर्वथा अधूरा ही रह गया। हिन्दू समाज में अनेकों धर्म-कृत्यों का प्रचलन है, उनके साथ यदि नैतिक एवं सामाजिक शिक्षा की प्रक्रिया भी जोड़ दी जाय तो सका परिणाम सब प्रकार उत्तम ही होगा और उन कर्मकाण्डों का उद्देश्य भी पूरा होगा।

गर्भ काल से लेकर मृत्यु पर्यन्त, पुंसवन, नामकरण, अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, वानप्रस्थ आदि सोलह संस्कार होते हैं। हर घर में कई-कई व्यक्ति रहते हैं। हर एक के सोहल संस्कार होते हैं। फिर इनमें से प्रत्येक का जन्म दिनोत्सव और विवाह दिनोत्सव भी मनाया जाय तो वर्ष में दस बार तो ऐसा अवसर आ ही सकता है कि प्रत्येक गृहस्थ को उसके आवश्यक कर्त्तव्यों का ध्यान दिलाया जा सके। जिस घर में जो विकृतियाँ घुस गई हों, उनके समाधान का उपाय भी इन्हीं अवसरों पर प्रस्तुत कर्मकाण्डों की व्याख्या में समझाया जा सकता है। होली, श्रावणी, विजयादशमी, दिवाली, बसन्त पंचमी, शिवरात्रि आदि अनेक त्यौहार होते हैं। इन त्यौहारों को प्राचीन काल की भाँति सामूहिक धर्मानुष्ठान के रूप में मनाए जाने का प्रबन्ध करना चाहिए और उसमें जो सम्मिलित हों तो उन्हें उन पर्वों के साथ जुड़ी हुई समाज निर्माण की प्रेरणाएँ समझानी चाहिए। इन छोटे-छोटे आयोजनों से—संस्कारों और त्यौहारों से—विचार गोष्ठियों का प्रयोजन पूरा होता है। उपस्थित लोगों को बहुत कुछ सुनने समझने का अवसर मिलता है। धार्मिक वातावरण में इस प्रकार की शिक्षाएँ देने से उनका प्रभाव और भी अधिक पड़ता है। इन धर्म कृत्यों को लोक शिक्षण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्यम बनाया जा सकता है। पुरोहित लोक यदि उन अवसरों का ठीक उपयोग करने लगें तो लोक मानस की दिशा बदल-देना कुछ भी कठिन न रहे।

सभा सोसाइटियों में सब लोग उपस्थित नहीं हो पाते, महिलायें तो प्रायः वहाँ जा ही नहीं पातीं पर उपर्युक्त पद्धति से हर घर में, हर बाल-वृद्ध, नर-नारी तक धर्म का तत्वज्ञान और उसके जीवन में उतारने का व्यावहारिक कार्यक्रम भली प्रकार-बार-बार सिखाया—समझाया जा सकता है। उस पद्धति से एक भी व्यक्ति ऐसा न बचेगा जिस तक नवनिर्माण के लिए आवश्यक प्राचीन आदर्शों का प्रकाश एवं सन्देश न पहुँचाया जा सके। सत्यनारायण कथा बार-बार हर छुट्टी के दिन या शुभ अवसर पर कही जा सकती है। उसके माध्यम से लोगों को असत् गति विधियाँ त्यागने और सद्विचारों-सत्यकर्मों के द्वारा भगवान् सत्यनारायण की पूजा करने और उसके फलस्वरूप जीवन लाभ प्राप्त करने की शिक्षा दी जा सकती है। जब अवसर हो तो गीता-कथा के माध्यम से एक सप्ताह एक ऐसा धार्मिक शिक्षण शिविर लगाया जा सकता है जिससे गीता की व्याख्या करते हुए पौराणिक, ऐतिहासिक कथाओं के माध्यम से व्यक्ति-निर्माण एवं समाज-निर्माण के हर पहलू पर प्रकाश डाला जा सके। ऐसे आयोजनों के लिए धार्मिक जनता बड़ी प्रसन्नतापूर्वक तैयार रहती है। अतएव उनके लिए लोगों को प्रोत्साहन देते हुए लोक शिक्षक के अधिकाधिक कार्यक्रम बनाने चाहिए।

प्रस्तुत आवश्यतकता की पूर्ति के लिये उसकी व्यावहारिक शिक्षा आवश्यक है। इसकी पूर्ति के लिए गायत्री तपोभूमि में अल्प समय में ही यह धर्मोपदेश कर सकने की ट्रेनिंग मिलने का प्रबन्ध हो गया है। उपर्युक्त सारे कार्यक्रम और काम चलाऊ संगीत का प्रशिक्षण साढ़े चार महीनों में पूरा हो सकता है। इतनी अवधि में सामान्य योग्यता का व्यक्ति काम चलाऊ अच्छे ढंग का धर्मोपदेशक बनने की योग्यता प्राप्त कर लेता है। शिक्षा सर्वथा निःशुल्क है। निवास, बिजली से रोशनी, पलंग, मेज, कुर्सी आदि आवश्यक वस्तुओं की सुविधा है। केवल भोजन खर्च अपना करना पड़ता है। इसके लिए भी निर्धन व्यक्तियों को १५) मासिक छात्रवृत्ति मिल सकती है। इस योजना का लाभ उठाकर लोक-शिक्षक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की ऐसी धर्म सेवा अपनाई जा सकती है जिसमें जन कल्याण के साथ-साथ अपने निर्वाह उपार्जन का सरल हल भी जुड़ा हुआ है ।

यह आवश्यकता अपूर्ण न रहे—जिन्हें आजीविका की दृष्टि से यह कार्य न करना हों वे विशुद्ध सेवा भाव से भी यह परम पुनीत ब्रह्म कार्य करते रह सकते हैं। आजीविका दूसरे कार्यों से उपार्जित करें और उपर्युक्त धर्मानुष्ठानों को निःशुल्क किया करें । कोई कुछ दे भी तो उसे स्थानीय नव-निर्माण कार्यक्रमों को चलाने के लिए लगा दिया करें । इस प्रकार उन्हें दान लेने का पण्डित कर्म कराने में झिझक एवं संकोच करने की आवश्यकता न रहेगी । अवकाश का समय इन कर्मों के लिये सुरक्षित रखकर भी बहुत काम हो सकता है ।

जिनका जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ है उनके लिये तो यह एक परम्परागत कर्त्तव्य भी है कि वे लोग शिक्षण कर्मों में आवश्यक अभिरुचि लेकर, समय देकर अपना पवित्र उत्तरदायित्व निवाहें । साथ ही जो अल्प वर्ण में जन्मे हैं, पर ब्रह्म कर्त्तव्यों की उपयोगिता एवं आवश्यकता अनुभव करते हैं, उन्हें भी इस सामयिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए उत्साहपूर्वक अग्रसर होना चाहिये ।

आज की सबसे बड़ी माँग जन-मानस को पवित्र, परिष्कृत, प्रबुद्ध एवं प्रगतिशील बनाने की है। इसकी जितनी पूर्ति होती चलेगी हमारी भौतिक एवं आध्यात्मिक समृद्धि तथा सुख-शान्ति बढ़ती चलेगी । यह प्रयोजन पूर्ण करने के लिये भू-सुरों का अभाव दूर होना ही चाहिए ।

साधु की महान् परम्परा और जिम्मेदारी

ब्राह्मणत्व की तरह भारत वर्ष की साधुता विश्वविख्यात है । यहाँ साधु-सन्तों का सदा से बाहुल्य रहा है, गृहस्थों के रूप में भी और विरक्तों के रूप में भी । साधु सज्जन को कहते हैं । जिसमें निष्कलंक सज्जनता है, उसे साधु ही कहा जायेगा । यह सज्जनता का उच्चतम स्तर है कि अपने समय, श्रम, ज्ञान एवं मनोभाव अपने व्यक्तिगत एवं पारिवारिक प्रयोजनों में सीमित न रखकर उसे समस्त विश्व के लिये समर्पित करदें । अपने व्यक्तित्व को सार्वजनिक सम्पत्ति समझें और उसका उपयोग इस प्रकार करें कि उसका लाभ अपने शरीर को एवं परिवार को ही नहीं, वरन् समस्त विश्व को प्राप्त हो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उदारता एवं महानता जिस किसी अन्तःकरण में उदय हो रही होगी, वह अपनी आन्तरिक महानता के कारण इस धरती का देवता माना जायेगा, उसे साधु-महात्मा कहकर पूजा जायेगा ।

ज्ञान के प्रकाश का अरुणोदय—साधु गेरुआ वस्त्र पहनते हैं। यह रंग प्राप्तः काल की ऊषा का है। अरुणोदय के समय सर्वत्र लालिमा छाई रहती है, यही भगवा रंग है । ब्राह्म-मुहूर्त की पूर्व से उदय होने वाली लालिमा संसार में नवजीवन संचार करने, नई स्फूर्ति करने, जागरण का सन्देश देने एवं प्रकाश उत्पन्न करने आया करती है । साधु का जीवनोद्देश्य भी यही होता है । अपने उद्देश्य एवम् कार्यक्रम की जानकारी सर्व-साधारण को कराने के लिये यह वस्त्र पहने जाते हैं । जिस प्रकार फौज या पुलिस की वर्दी पहने हुए व्यक्ति को हर कोई आदमी आसानी से पहचान लेता है और यदि उससे कुछ प्रयोजन होता है, तो उसकी सूचना उन्हें देता है । बड़े रेलवे स्टेशनों पर मुसाफिरों की सेवा सहायता एवं मार्ग-दर्शन के लिये कुछ कर्मचारी नियत रहते हैं । उनकी भुजा पर एक पट्टी लगी रहती है, जिसमें उनका परिचय लिखा होता है । यह इसलिये कि जिन मुसाफिरों को उनकी आवश्यकता हो, वे उन्हें पहचान कर अपनी आवश्यकता बता सकें । ठीक उसी प्रकार परिचय चिन्ह गेरुआ वस्त्र है । इसे जो व्यक्ति पहने हो, समझना चाहिये यह त्यागी, परमार्थी व्यक्ति है, यह अपने कुटुम्ब की सीमा में सीमित नहीं रहा, अब इसने सारे विश्व को अपना कुटुम्ब मान लिया है और जिस प्रकार साधारण व्यक्ति अपने कुटुम्ब की साज-सम्भाल एवम् सेवा करते हैं उसी प्रकार यह हर किसी की उसी प्रेम एवम् तत्परता पूर्वक सेवा करने का व्रत लिये हुए हैं । भगवा-वस्त्र इसी घोषणा के लिए हैं ।

जिस प्रकार अरुणोदय, संसार का अन्धकार दूर करने के लिये होता है, उसी प्रकार अरुणोदय जैसे. भगवा-वस्त्र पहन कर साधु अपने लिये यह एक स्मृति चिह्न बना लेता है कि उसके भावी कार्यक्रमों की रूप-रेखा एवम् आधार क्या है ? उसे प्रातः कालीन सूर्य की तरह सौम्य एवं मनभावन रहना है । मध्याह्न के तेजस्वी सूर्य की तरह प्रखर नहीं बनना है जिसकी गर्मी सहन करना दूसरों को कष्ट कारक हो । प्रातः कालीन सूर्य प्रकाश तो देता है, पर अरुणिमा-मिश्रित पीतवर्ण होने के कारण उसे खुले नेत्रों से आसानी से देखा जा सकता है । उससे किसी को कष्ट नहीं होता, वरन् सबके प्रसन्नता होती है । मध्याह्न की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तपन से तो लोग बचते हैं, छाया का आश्रय टटोलते हैं और सोने व विश्राम करने की चेष्टा करते हैं पर प्रातःकालीन सूर्य के उदय होते ही सब उसका दर्शन करते हैं और कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। साधु अपना जीवन वैसा ही बनाता है। उसका कार्य अज्ञान-अन्धकार को दूर करना, ज्ञान के प्रकाश को फैलाना होता है। यह सेवा मनुष्य जाति की सबसे बड़ी सेवा है। इसे हर कोई नहीं कर सकता, जिसने अपने चरित्र, अन्तःकरण एवम् मस्तिष्क का समुचित विकास किया होगा, उसके लिये यह सम्भव है कि अज्ञानान्धकार के रौरव नरक में डूबते-उतरते असह्य अगणित कष्ट सहने वाले मनुष्य को अपनी ज्ञान-रूपी नौका पर सवार कराके पार कर सके। यह साहस और अधिकार हर किसी को कहाँ ? इसके लिये अपना व्यक्तित्व परिष्कृत करना होता है। यह हिम्मत साधु की ही है कि वह अपनी व्यक्तिगत समस्त महत्त्वाकांक्षाओं को समाप्त करके संसार में ज्ञान-प्रकाश फैलाने की महती सेवा के लिये अपना बलिदान करें। जिन्होंने इतना महान् परमार्थिक व्रत लिया हो उन्हें जीवित—शहीद ही कहना चाहिये। इनके दर्शन से भी मनुष्य धन्य हो जाता है। जो इतनी आवश्यक एवम् महत्त्वपूर्ण सेवा के लिये अपने आपको आत्मदानी की तरह समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं, उनके लिये महात्मा, सन्त, महापुरुष जिन शब्दों का भी प्रयोग किया जाय, कम है।

वेष-भूषा रहन-सहन का प्रयोग—साधु अपरिग्रही होते हैं, वे न्यूनतम खर्च में अपनी गुजर करते हैं और कम से कम साधन—सामान अपने पास रखते हैं। बर्तन के नाम पर लौकी का खोखला बनाकर कमण्डल ले लिया जसमें कुछ भी लागात न लगी, लकड़ी काट-छील कर खड़ाऊँ बना लिये। वस्त्रों के बिना काम चल जाय, शरीर को सर्दी-गर्मी का कष्ट न सहना पड़े इसलिये त्वचा पर भस्म मल ली। अधिक सर्दी पड़ने लगी पर जंगलों में हिंसक पशुओं के आक्रमण का भय हुआ तो, धूनी जला ली। धूनी जलाने की आवश्यकता इसलिए भी पड़ी की जंगलों में बड़े-बड़े पेड़ उखड़ कर आमतौर से गिरते हैं, पत्थरों में जड़ें गहरी नहीं जाती, दूसरे चट्टानें इधर-उधर खिसकती रहती हैं, फलस्वरूप पेड़ अपना सन्तुलन खो बैठते हैं और एक ओर झुककर गिर पड़ते हैं। उनके गिरने से निकलने तक का रास्ता बन्द हो जाता है। मानव एवम् पशु दोनों को ही इनसे असुविधा एवम् कष्ट का ही सामना करना पड़ता है ऐसी दशा में यह भी उस प्रदेश के लिये एक सेवा-कार्य ही है कि उन गिरे हुए पेड़ों को हटाकर जला दिया जाये । जलाने के अतिरिक्त वहाँ उनका कोई उपयोग भी नहीं हो सकता। इससे तपस्वी को अपना शीतनिवारण, हिंसक पशुओं से रक्षा, भोजन बनाने की सुविधा तथा जंगल साफ कर देने की सेवा का प्रयोजन पूरा करने का सहज अवसर मिल जाता है। इसलिए धूनी जलाना भी आवश्यक था।

जंगलों में मकान बनाना कठिन था, इसलिये फूँस की झोंपड़ी बनाना या जमनी खोदकर गुफा बना लेना सुविधाजनक होता है। ऐसे निर्माण कोई वनवासी अपने निज के श्रम के बिना दूसरों की सहायता के लिये भी कर सकता है। इसलिए निवास के लिये वैसे ही निर्माण उपयुक्त समझे गये। जंगलों में अपनी मौत मरे हुए हिरन, सिंह, व्याघ्र आदि के शरीर पड़े होते हैं, तो उस प्रदेश में निवास करने वाले उनके चर्म उतार लेते हैं और उनसे अपने ओढ़ने, बिछाने, पहनने आदि की आवश्यकता पूरी कर लेते हैं। यह सभी बातें वनवासी जीवन के उपयुक्त साधारण सी रहन सम्बन्धी व्यवस्थायें हैं। इनमें साधुता का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यदि जंगल में न रहकर बस्ती में रहना है तो इनमें से किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती वरन् सच तो यह है कि यह उपकरण उसी प्रकार अनुपयुक्त हो जाते हैं जैसे ग्रीष्म-ऋतु में सर्दी के प्रयोग होने वाले भारी तथा कसे हुए वस्त्र।

अन्धानुकरण से क्या लाभ ?—आज साधु जीवन के लक्ष्य एवं कार्यक्रम को भुला दिया गया है और उस वेष-भूषा को धारण करना, साधु होने का प्रमाण मान लिया गया है, वह वन्य-जीवन के उपयुक्त तो है, पर नगरों में रहने पर सर्वथा अनुपयुक्त है। नारियल के बने हुए जो कमण्डल आजकल बाबा लोग लिये फिरते हैं, वे तीस-तीस रुपये तक की कीमत में आते हैं। जबकि पीतल की छोटी बाल्टी चार-पाँच रुपये में खरीदी जा सकती है, उनको नारियल की तरह थोड़ी चोट लगने से टूटने का डर भी नहीं, फिर भीतरी सफाई भी आसानी से हो सकती है। ऐसी दशा में नारियल का तीस रुपये वाला कमण्डल लेकर साधु के उपयुक्त मितव्ययिता कहाँ हुई ? यह तो खर्च और भी बढ़ गया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

धूनी जलाने की बात वन्य प्रदेशों में उपयुक्त थी। अखण्ड-अग्नि रखी हो तो यज्ञ कुण्ड में विधिवत् रखा जाना चहिये और उसमें नित्य शास्त्रोक्त-यज्ञ होना चाहिये। दोनों में से एक भी प्रयोजन नहीं फिर भी तीन-चार रुपये मन की दो-तीन मन लकड़ी नित्य जलाई जाये और दस-बारह रुपये नित्य का खर्च बढ़ाया जाय तो उसका क्या उपयोग रहा ? लकड़ी की आजकल भारी कमी है। उतनी लकड़ी में जनता के आवश्यक काम चलते, वही बिना किसी प्रयोजन के जलादी गई, तो उसमें साधुता का कौन-सा प्रयोजन पूरा हो गया ?

जंगलों में मरे पड़े जानवरों के चमड़े का उपयोग समझ में आता है। पर आज जब कि हजार के पीछे ९९९ चमड़े जीवित पशुओं की हत्या करके विशेषतया चमड़े के लालच में प्राप्त किये जाते हैं। उस चमड़े का उपयोग एक प्रकार से मांसाहार जैसा ही हो गया। इसे बगल में दबाये फिरना, गन्दगी और बदबू से लिपटे रहना कौन बुद्धिमानी की बात है ? कपड़े, कुश, ऊन आदि के आसन एक से एक सुन्दर, बढ़िया, सुविधाजनक एवम् सस्ते मिल सकते हैं, फिर बेचारे हिरन की जान के—चमड़े के ग्राहक बनने में क्या अध्यात्म रहा ? जब कि कपड़ा मिलना अब उतना दुर्लभ नहीं, तो भस्म मलने की भी उतनी उपयोगिता नहीं रह गई। जब जंगल में रहकर कन्दमूल-फल खाने वाला आहार प्राप्त करने वाली बात की परम्परा नहीं निवाही जा सकती, अन्न खाने, मकान में रहने जैसी सुविधायें स्वीकार की जा सकती हैं तो फिर भस्म मलने के स्थान पर कपड़ा लेने में क्या हर्ज ? जो कपड़ा पहनते हैं उन्हें भस्म मलने की क्या जरूरत ? जब धूनी नहीं जलती तो आग सम्भालने वाला कड़ा या चिमटा लिये-लिये फिरना किस प्रयोजन के लिये ?

साधुता का वेष-विन्यास से तनिक भी सम्बन्ध नहीं। जंगल में जिन बातों की उपयोगिता है, वे वहाँ प्रयोग की जायें और जिनकी ग्राम-नगर जीवन में आवश्यकता है, वे यहाँ काम में लायी जा सकती हैं। वनवान में हजामत कैसे बने ? कौन बनावे ? उपकरण कहाँ से आवें ? वहाँ जटाजूट रखना ही पड़ेगा। किन्तु नगर में रहने वाले यदि बालों की उतनी सफाई न रख सकें तो बालों को कटा-मुड़ा भी सकते हैं। अब जब कि निवास के लिये हवादार और सुविधाजनक स्थान मिल या बन सकता है तो गुफा खोदने और उसमें बन्द हवा के कारण हो सकने वाली असुविधा को सहने का क्या प्रयोजन ?

गुणों का अनुकरण—गुणों के स्थान पर कलेवर को प्रधानता देना, मनुष्य की अन्धमान्यता का चिह्न है। प्राचीन काल के ऋषिमहात्मा अमुक प्रकार के वस्त्र पहनते थे, अमुक तरह नहाते थे, अमुक उपकरण बरतते थे तो हम भी उस प्रकार का आवरण बनाने से वैसे ही साधु बन सकते हैं यह सोचना और मानना हास्यास्पद है। शरीर निर्वाह करने की बाह्य-पद्धति इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं कि उसके बदलने मात्र से कोई व्यक्ति साधुता एवम् श्रेष्ठता प्राप्त कर सके। यदि ऐसा ही होता तो नाटक, स्वाँग एवम् फिल्मों में काम करने वाले अभिनेता साधुओं का वेष-विन्यास सजधज के साथ बनाते रहते हैं, वे क्यों सन्त नहीं हो जाते ? जैसे के तैसे नट-विदूषक क्यों बने रहते हैं ? वेष-परिवर्तन से यह व्यक्तित्त्व बदल जाता तो उससे सस्ता और सुगम उपाय साधुता प्राप्त करने का था ही नहीं।

वेष साधु जैसा हो न हो, उससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। प्रश्न केवल यह है कि साधु के उत्तरदायित्व एवम् कर्त्तव्य को निवाहा जा रहा है या नहीं ? यदि निवाहा जा रहा है तो वेष कैसा ही होने पर भी वह साधुता अभिनन्दनीय मानी जायगी और उसे मुक्त कण्ड से भूरि-भूरि सराहा जायगा। किन्तु यदि कर्त्तव्यों की उपेक्षा और वेष की सजावट की सराहना की जा रही है तो उसे निन्दनीय वंचकता ही कहा जायेगा ? गधा यदि सिंह की खाल ओढ़कर सिंह बनना चाहे तो उसका यह प्रयत्न अवाँछनीय एवम् अनैतिक समझा जायगा। उसके इस बाल-कौतुक को घृणा की दृष्टि से ही देखा जायेगा। दुनिया भले ही नैतिक दृष्टि से गिरती चली जा रही हो, पर बुद्धि अवश्य बढ़ रही है। जिनमें थोड़ी भी बुद्धि होगी वे गुण विहीन आडम्बर को उपहासास्पद ही मानेंगे। विदूषक अनेक तरह के वेष बनाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। कभी राजा, कभी रानी, कभी बेदर, कभी देवता का वेष बना लेते हैं और अपना आर्थिक स्वार्थ पूरा करते हैं। साधु का वेष बनाकर कोई व्यक्ति मुफ्त में गुजारे की व्यवस्था हल कर लेता है, तो उसका कृत्य-विशुद्ध विदूषक जैसा ही कहा जायेगा।

तीर्थ स्थानों में होने वाले बड़े-बड़े मेले-ठेलों में बहुत किस्म के भिखारी जा पहुँचते हैं। उनमें बहुत से ऐसे भी होते हैं जो साधु का वेष बनाने और उसकी जैसी क्रियायें करने में अभ्यस्त होते हैं। कई काँटों पर लेटे होते हैं, तो कई एक पैर से खड़े होते हैं, कई गड्ढा खोद कर उसमें बन्द

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैठे होते हैं केवल सिर बाहर निकला होता है, कई धूनी तपते हैं, कई मौनी बने बैठे होते हैं, किसी के गले में निर्विष साँप लिपटा होता है। इस प्रकार शारीरिक चमत्कार दिखाकर, राहगीरों को आकर्षित करते हैं और उनसे भिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। यदि वे सचमुच तपस्वी होते तो इस प्रकार मेले-ठेलों में तपस्या करने की उन्हें क्या आवश्यकता पड़ती ? कहीं एकान्त में शान्तिपूर्वक अपने अभ्यास करता। पर भीड़ में यह कौतुक दिखाने से ही उनका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। पढ़े-लिखे और कुछ ऊँचे स्तर के बाबा लोग इतने घटिया खेल तो नहीं करते पर कुछ ऐसे प्रपंच रच लेते हैं, जो लोगों को आकर्षित करें। लँगोटे नहीं पहनते पर ऊनी और रेशमी बिस्तरों में मशहरी लगे पलंगों पर सोते हैं। रोटी हाथ में रखकर खाते हैं, बर्तन उपयोग नहीं करते, पर मोटरों के मालिक बने हुए हैं। मौन रहने पर स्लेट-पैंसिल तथा हाव-भाव बताने—बोलने से भी अधिक अभिव्यक्तियाँ प्रकट करते हैं। ऐसी ही एक-दो शारीरिक विशेषताएँ अपने में बना लेते हैं और उतने से ही उनकी साधुता पूर्ण हो जाती है। फल-दूध तो मँहगा और पौष्टिक भोजन है। कोई दूधाहारी, फलाहारी, बनता हो तो उसमें तो अधिक खर्च होने और अधिक बल मिलने वाली बात है। त्याग की इसमें क्या बात रही? यदि विशुद्ध रूप से अपनी आर्थिक एवम् शारीरिक व्यवस्था का प्रश्न है। उससे किसी की साधुता-असाधुता न घटती है न बढ़ती है।

आड़ा तिलक लगाने से शंकर जी, सीधा सफेद तिलक लगाने से रामजी, रोली का पतला तिलक लगाने से कृष्णजी प्रसन्न होते हैं। भुजाओं पर शंक, चक्र की छाप लगी देखकर यमदूत भाग जाते हैं और विष्णु दूत स्वर्ग में ले जाते हैं। पेड़ के नीचे पड़े हुए एक दुष्ट व्यक्ति की लाश पर कौऐ ने बीट कर दी, जो तिलक जैसी बन गई। बस इतने से ही चिह्न को देखकर विष्णु-दूत आये और उस प्राणी की आत्मा का यमदूतों को नरक में ले जाने से छीनकर स्वर्ग ले गये। इन मान्यताओं के भरोसे यदि प्रतीकों का अवलम्बन लेकर यह सन्तोष कर लिया गया कि हमारा तो लक्ष्य इतने में ही पूरा हो जायेगा, तो यह भारी भूल होगी। वस्तुतः इस विश्व में मनुष्य के उत्थान और पतन का, स्वर्ग और नरक का एक मात्र आधार साधुता है। इसलिये साधु बनने और साधुता के फलस्वरुप मिलने वाले महान् लोगों को प्राप्त करने के लिये वह विचारधारा एवम् कार्य-पद्धति अपनानी पड़ेगी जो संन्यासी जीवन की आधार-शिला कही जा सकती है।

साधुता का सुअवसर—पारिवारिक उत्तरदायित्वों में लगे हुए ब्राह्मण तथा अन्य लोक-सेवी अपने-अपने सीमित क्षेत्र में ही कामकर पाते हैं। बहुत दूर एवम् बहुत दिनों के लिये बाहर जा सकना उनके लिये सम्भव नहीं होता। ऐसे लोक-सेवी ब्राह्मण हर जगह होते भी नहीं। इसलिये परिव्राजक रूप से भ्रमण करते हुए सन्त-महात्मा को यह देखना पड़ता है कि कहीं कोई क्षेत्र ऐसा तो नहीं पड़ा है, जहाँ विकृतियों का बाहुल्य हो चला है। जो ऐसे स्थान मिलते हैं, वे वहाँ रुक जाते हैं, वातावरण को सुधारते हैं और फिर आगे के लिये चल पड़ते हैं। आजकल तो बहुत-सा काम पत्र-व्यवहार द्वारा एवम् अखबारों द्वारा भी हो जाता है। प्राचीन-काल में जब ऐसी सुविधाएँ नहीं थीं, तब यही परिव्राजक लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेरणा-वर्धक कृतियों का परिचय कराते थे, सत्पुरुषों की विरुदावलियाँ सुनाते थे और जहाँ जैसा अवसर होता था वहाँ वैसा प्रशिक्षण करते थे। नारद जैसे ऋषि-महर्षि, मुनि जनजागरण का अलख जगाते हुए देश के कोने-कोने में भ्रमण करते रहते थे। मन्दिरों के डाक-बँगले उनके ठहरने के लिये बने थे, वहाँ उनके भोजन पकाने का भी प्रबन्ध रहता था, फिर जहाँ भी जाना हो चल दिये, रास्ते में जहाँ आवश्यकता हुई रोटी मंगाली और आगे चल दिये। जिस प्रकार पुलिस के सिपाही रात्रि में सीटी बजाते हुए पहरा देते हैं और सोते हुए लोगों का चोर-उचक्कों से कोई अहित न होवे वह प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार साधु-महात्मा परिव्राजक बन कर तीर्थ-यात्रा, पद-यात्रा, जारी रखते हैं और मार्ग में जहाँ जो धर्म विकृति दीखती है, उसे सुधारने के लिये वहीं रुक जाते हैं। धर्म, समाज, संस्कृति एवम् राष्ट्र की सुरक्षा में सावधान एवम् कर्मठ प्रहरी का नाम ही संन्यासी है। साधु एक प्रकार का बलिदानी है जिसने व्यक्तिगत एवम् पारिवारिक सब प्रकार के लोभ-मोह से ऊँचा उठकर संसार में धर्म और ज्ञान की ज्योति जगाये रहने के लिये अपने आपको तिल-तिल कर खपाते रहने का व्रत लिया होता है। भारत की साधु परम्परा का आदर्श यही है।

भारत का प्राचीन गौरवमय इतिहास वस्तुतः साधु-इतिहास ही है। उन्होंने उन महान् मान्यताओं, भावनाओं, प्रेरणाओं एवं क्रिया-पद्धतियों का आविर्भाव, प्रसार एवम् अभिवर्धन किया था, जिनके कारण इस देश का बच्चा-बच्चा नर-रत्न एवम् महापुरुष बन सका। यहाँ के हर मनुष्य का, व्यक्तित्व आदर्श, लक्ष्य एवम् कर्त्तव्य,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतना उत्कृष्ट था कि उसकी गणना भूलोकवासी देवताओं में की जाने लगी थी। किसी इमारत को बनाने एवम् उद्योग को खड़ा कर देना जितना कठिन है, उससे हजारों गुना कठिन व्यक्तियों का निर्माण है। मानवीय चरित्र की इमारत बनाना इतना महान् है कि उस पर ताजमहल बनाने वाले हजार इंजीनियरों को निछावर किया जा सकता है। नारदजी ने वाल्मीकि को डाकू से ऋषि बना दिया उनकी कला की जितनी सराहना की जाय उतनी ही कम है। जो कलाकार भारत माता की कोख से पैदा हुए हर पत्थर को अपनी खराद पर काट-छाँटकर जगमगाते रत्नों के रूप में परिणित करते थे उनकी कलाकारिता को जितना सराहा जाय उतना ही कम है।

ऋषियों का महान् कर्त्तव्य— चरक, सुश्रुत, वाणभट्ट, धन्वन्तरि, अश्विनीकुमार आदि ऋषियों ने चिकित्सा-विज्ञान, शल्यक्रिया, वनस्पति अन्वेषण आदि शोध कार्यों में अपना जीवन घुलाया और फलस्वरूप मानव-प्राणी की शारीरिक व्यथाओं का हल निकल सका। शिल्पज्योतिष, रसायन, कृषि, संगीत, भाषा, विधि, वाहन, आदि अनेक विज्ञान की शाखा-प्रशाखाओं की वह शोध उन्होंने की जिसका लाभ आज भी समस्त संसार उठा रहा है। समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान, योग-विज्ञान, भाव-विज्ञान, धर्म-विज्ञान आदि विचार विज्ञान की अगणित शाखा प्रशाखाओं को उनने जन्म दिया। कितने वेद वैज्ञानिक, शोधकर्त्ता, लगनशील, कर्मठ एवम् परोपकारी थे। नर-नारायण की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पित करने की कितनी महान् साधना की थी उन्होंने। उनके उपकार का प्रत्युपकार चुका सकना समस्त संसार के लिये सम्भव नहीं। जब तक सूर्य-चन्द्र विद्यमान है, उनके महान् कर्त्तव्य के लिये मानव जाति सदा उनको श्रद्धा-पूर्वक स्मरण करते हुए अपना मस्तक झुकाती रहेगी।

वैज्ञानिकों के अपने शोध-कार्यों के लिये एकान्त की आवश्यकता होती है। प्रकृति की समीपता, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाती है। इस दृष्टि से वे बस्तियों से थोड़े हटकर ही रहते थे। बड़े नगर उन दिनों में थे भी नहीं। आबादी कम और भूमि अधिक, वन प्रदेशों का बाहुल्य इन परिस्थितियों में आमतौर से सभी को वनवासी रहना पड़ता था। ऋषि कुछ और भी हटकर रहते थे। यह उनकी निवास सम्बन्धी अभिरुचि थी। अभी भी परिष्कृत दृष्टिकोण के लोग अपने कोठी बँगलों के आस-पास पेड़े-पौधे उगाते हैं। बगीचों में भी उनके समीप का रहना-बैठना ही पसन्द करते हैं। यह रहन-सहन का अच्छा ढंग है। इससे यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिये कि वे कुछ काम ही न करते थे। सामाजिक उत्तरदायित्वों को छोड़कर एकान्त वनों में वन्य पशुओं की तरह रहने चले जाते थे, यदि ऐसा होता तो उन कर्त्तव्यों का पालन कैसे कर पाते, जिनके आधार पर सारे भारतीय समाज की सम्पन्नता, प्रगति, शिक्षा एवम् महानता निर्भर थी। हर ऋषि के आश्रम में कृषि, गोपालन से लेकर विशाल गुरुकुलों तक का विस्तृत कार्यक्रम बना रहता था। देश-देशान्तारों से छात्र उनके यहाँ अध्ययन करने आते थे। बड़े-बड़े शास्त्रों और ग्रन्थों का प्रवचन होता था। मनीषियों की विचारधाराओं और गोष्ठियों के आयोजन होते थे। विश्व व्यापी समस्याओं के हल खोजे जाते थे और उन हलों को कार्यान्वित करने के लिये विशाल कार्यक्रम बनते थे। धार्मिक मेले इसी उद्देश्य से लगते थे कि वहाँ पहुँचकर देश भर के मनीषी लोग समय-समय पर बदलती रहने वाली परिस्थितियों के समाधान का उपाय करें। प्रयाग का कुम्भ बारह वर्ष बाद और हरिद्वार, नासिक, उज्जैन, वृन्दावन आदि मेले बीच-बीच में यथा क्रम होते रहते थे। ये वस्तुएँ एक प्रकार के सम्मेलन एक धर्म-संसद के सूत्र थे। इनमें महत्त्वपूर्ण निर्णय होते थे और वे विराट् तैयारियों के साथ सुसंगठित रूप से कार्यान्वित होते थे। राज्य-शासन का नियन्त्रण ऋषि ही करते थे, सूर्यवंशियों के पुरोहित वशिष्ठ जी के परामर्श से उनकी राज्य-व्यवस्था का क्रम चलता था। ऐसी ही व्यवस्था अन्य राज्यों के यहाँ भी थी। चाणक्य जैसे प्रधान मन्त्री ऋषि के रूप में ही भारत का विशाल साम्राज्य सम्भालते थे।

कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों का पालन—यदि ऋषियों ने अपने इन सामाजिक उत्तरदायित्वों को तिलांजलि दे दी होती और आज के साधु—बाबाओं की तरह संसार को माया, मिथ्या, भ्रम, प्रपंच, भव-सागर कह कर इससे दूर रहने का प्रयत्न किया होता, कर्त्तव्यों को छोड़ बैठने का नाम त्याग माना गया होता तो भारतीय इतिहास का गौरवास्पद स्वरूप बनता ही नहीं, अपनी ऋषि सिद्धि और स्वर्गमुक्ति के जंजाल में उलझे हुए वे अन्य सकीर्ण स्वार्थियों की तरह अपना व्यक्तित्व लाभ उठा लेते पर उनके द्वारा संसार को कोई हित साधन सम्भव न हुआ होता, भारतीय समाज के उत्कर्ष में वे कोई योग दान न दे सके होते। पर आज जैसी उलटी विचार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धारा उन दिनों थी कब ? जहाँ विश्व मानव को विराट् ब्रह्म समझा गया हो और स्वेद कणों से स्नान कराने पर भगवान् के प्रसन्न होने की भावना रखी गयी हो वहाँ कर्त्तव्यों को त्याग, गुफा में बैठे माला सटकाते रहने तक सीमित रहने की बात किसी के मन में घुस ही नहीं सकती थी। भगवान् बुद्ध ने सारे जीवन भ्रमण करके धर्म प्रचार किया। जब उनका मरण समय आया तब उनके शिष्यों ने पूछा—"तथागत, आप तो मुक्ति के अधिकारी बनेंगे।" बुद्ध ने कहा— "जब तक एक भी प्राणी भव-बन्धनों में बँधा हुआ है तब तक मैं कदापि मुक्ति स्वीकार नहीं करुँगा। बार-बार जन्म लूँगा और मरूँगा और निरन्तर विश्व-मानव की सेवा करता रहूँगा।" अकेले बुद्ध ही क्यों, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द, गाँधी, गुरुगोविन्द सिंह, समर्थगुरु रामदास आदि साधुओं ने पिछले ही दिनों कितने महत्त्व के कार्य किये हैं, इसे कौन नहीं जानता। प्राचीन काल में व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, भारद्वाज, गौतम, कपिल, कणाद आदि ऋषियों ने अपने महान् कर्त्तव्य के द्वारा भारत ही नहीं सारे संसार को प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त की थी। उनके विचार यदि आज जैसे पलायनवादी रहे होते, संसार को माया-जाल बताकर किसी कोने में जिन्दगी के दिन काटने के लिये चुपचाप जा छिपे होते तो उनकी क्या महत्ता रहती और उस तरह की साधुता अपनाने से उनका या संसार का क्या भला होता ?

उल्टी-गंगा न बहे— आज जहाँ सभी कुछ उल्टा हो रहा है वहाँ साधुता के सिद्धान्त और आदर्श भी उलटे हो रहे हैं । वस्तुतः सन्त या त्यागी वह होता है, जो समाज को दे बहुत और बदले में ले कम। पर अब यह परिभाषा बदल गई है। जो लोगों से मान, धन आदि लेता तो निरन्तर रहे पर देने के नाम पर पूरी तरह अगूँठा दिखा दे वही महात्मा कहा जाय। देने का प्रश्न भी कैसे उत्पन्न हो, जब संसार को माया, मिथ्या, स्वप्न, भव-सागर मान लिया गया और इससे जल्दी से जल्दी छूट भागने की ठानली गई तो सेवा की बात मन में उठेगी ही कैसे ? भला भव सागर की भी कहीं सेवा की जाती है ? अच्छा यह होता कि लेने के समय भी यही मान्यता स्थिर रखी जाती। जब देना नहीं तो लेना क्यों ? भवसागर का दिया हुआ भोजन, वस्त्र, धन, सम्मान यह सब बातें भी मिथ्या समझ कर उसी तरह त्याग दी जाती जिस तरह कर्त्तव्य-पालन एवम् सेवा-धर्म त्याग दिया गया है तो उत्तम होता। फिर किसी को उंगली उठाने की गुञ्जायश तो न रहती। प्राप्त करने के लिये संसार सत्य और बदला चुकाने के लिए मिथ्या। यह दुमुँही नीति अपने आपको भ्रम में डालने एवम् झूँठ आत्म-सन्तोष कर लेने के लिये कुछ काम भले ही जाय, पर दूसरा कोई भी विचारशील इससे सन्तुष्ट नहीं होगा। न्याय यही कहता है कि कोई साधु जब कि अपने निज के लिये ऋद्धि-सिद्धि, चमत्कार, स्वर्ग, मुक्ति, चाह रहा है और इसी के लिए जप-तप भी कर रहा है तो फिर अपने श्रम द्वारा उपार्जित धन से ही उसे गुजारा भी करना चाहिए। औरों की पसीने की कमाई के आधार पर अपने लिये सुख-साधन जुटाना यह अनैतिक है। स्वर्ग या ताजमहल होटल में मौज-मजा करने जाना है तो प्रसन्नतापूर्वक जायें, पर उसके लिये दूसरों पर अपना भार क्यों डाला जाय ?

यह बात कुछ और ही है, माया, मिथ्या, भवसागर आदि बातें तो कहने भर की हैं। वे तथाकथित साधु-सज्जन भी यह सब जानते हैं। यदि ऐसा होता तो स्वादिष्ट भोजन में, सुविधा और असुविधा में, मान और अपमान में, स्तुति और निन्दा में उन्हें कोई अन्तर ही न दीखता। पर होता ऐसा कहाँ है ? साधारण लोगों की तरह संसार में जो कुछ प्रिय है, सुन्दर है, उसी में उनकी भी रुचि होती है। विलासिता के लिए वे भी औरों की तरह ही लालायित रहते हैं। मिथ्यावाद, मायावाद का बहाना तो इसलिये है कि उन्हें कोई कुछ काम करने के लिये न कहे। आमतौर से आलसी, अकर्मण्य और जीवन के हर क्षेत्र में असफल व्यक्ति ही यह रास्ता अपनाते हैं। उन्हें बिना कमाई के गुजर और बिना झंझट के दिन काटने का इससे सस्ता और कोई तरीका नहीं दीखता कि दो-पैसे के गेरूआ कपड़े रंगते ही महात्मा बन जाया जाय और इधर-उधर की बातें करके अपनी सिद्धि या भक्ति का रंग जमाकर भोले लोगों से धन ही नहीं मान भी प्राप्त किया जाय। जब अपना प्रयोजन पूर्ण हो गया तो फिर झंझट में पड़ने से क्या लाभ ? किसी आदर्श के लिये तो वे साधु बने नहीं थे, जो सेवा धर्म अपनाने या नर-नारायण को श्रम-संचित श्रद्धांजलि अर्पित करने की बात सोचते। जब गुजारे के लिए श्रम करना ही झंझट समझ कर छोड़ दिया गया तो फिर 'सेवा' कार्य जिसमें श्रम की मजदूरी भी नहीं मिलने वाली है, अपनाकर एक व्यर्थ का झंझट—सिर दर्द क्यों मोल लिया जाय ? ऐसे लोगों को कोई कुछ कुछ कहता भी है तो वे उसे अपना अपमान समझते हैं। बाबा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुए हैं तो क्या सेवा करने के लिए ? यह वेष तो उन्होंने सेवा कराने और मुफ्त की सुविधायें लूटने के लिये पहना है। यदि श्रम ही करना होता तो इस वेष को क्यों अपनाते ? फिर तो कोई दूसरा ही उद्योग कर रहे होते।

जिस की जैसी मान्यताएँ हैं। उन्हीं की संख्या आज अधिक है। भारतीय जनगणना के अनुसार धर्म-व्यवसाय से जीविका-उपार्जन करने वालों की संख्या ५६ लाख है। इसमें से १ लाख अपंग-असमर्थ निकाल दिया जाय तो ५५ लाख वे ही बचते हैं, जिन्हें साधु, सन्त या पण्डित, पुरोहित कहा जाय। दोनों को आधे-आधे मान लिया जाय तो २७ लाख के करीब सन्त-महात्मा ही रह जाते हैं। आतंकवादी चीन जिसने एशिया की शान्ति खतरे में डाल दी है—२५ लाख नियमित सेना के बल पर उछलकूद रहा है। सत्ताईस लाख बाबाजी यदि कोई आदर्श लेकर जिन्दगी जी रहे होते तो उनकी शान्ति सेना इतनी बड़ी होती कि संसार का आतंक, अभाव, अज्ञान मिटा सकने में सफलता प्राप्त हो गई होती।

भगवान् बुद्ध के कुछ हजार शिष्यों ने समस्त भारतवर्ष में बौद्धधर्म की स्थापना की थी और पूर्वी एशिया के चीन, वर्मा, जापान, जावा, सुमात्रा, मालवा, इण्डोचायना, लंका आदि देशों को पूरी तरह बौद्ध बना दिया था। इसमें उन्हें कुल दो-तीन सौ वर्ष लगे थे। ईसाईयों ने पिछले तीन सौ वर्षों में अपनी थोड़ी-सी जनसंख्या को बढ़ाकर संसार की एक तिहाई—एक अरब बना लिया। यह करीब १० हजार पादरियों के पुरुषार्थ का फल है। यदि अपने ७० लाख सन्त-महात्मा कोई आदर्श एवम् उद्देश्य भी लिये होते तो उनसे समाज की—संसार की—धर्म संस्कृति की—अगणित समस्यायें हल करके रख दी होतीं। लोक-परलोक कुछ तो प्राप्त कर लिया होता पर बेचारों को दोनों में से कुछ भी नहीं मिल पाता। मुफ्त में रोटी-पाना ही उनका लक्ष्य था और उसे ही वे प्राप्त भी करते रहते हैं।

समय रहते बदलें—ऐसे लोगों से न तो हमें कुछ कहना है और न कुछ आशा है क्योंकि जिनका स्तर इतना गया-गुजरा हो उससे किसी आदर्शवाद को अपनाने की बात कहना व्यर्थ है। फिर जिनका व्यक्तित्व शिक्षा, ज्ञान, विचार, संस्कार थोड़ा ऊँचा उठा हुआ न हो, वे लोगों की कुछ सेवा कर भी नहीं सकते। सेवा तो वे कर सकते हैं जिनके पास कुछ देने को हो, जिनकी जेब खुद ही खाली है वे किसी को देंगे भी कहाँ से ? इन महाशयों से तो इतना ही कहना है कि अब इस धन्धे की समाप्ति के दिन आ पहुँचे। मुफ्तखोरी का व्यवसाय अब लाल-पीले कपड़ों की आड़ में भी चल न सकेगा। दुनिया का विवेक जागृत हो रहा है। क्यों कैसे का प्रश्न तेजी से उठ रहा है। हर बात को खोजा-टटोला जा रहा है। ऐसी दशा में अब साधु-सन्तों की उपयोगिता-अनुपयोगिता जाँची जायेगी और अनुपयुक्त को हटाना ही पड़ेगा। इसलिये अच्छा यही है कि समय रहते, सम्मानपूर्वक अपने लिये दूसरा प्रबन्ध कर लिया जाये। उन्हें यह भविष्यवाणी नोट कर लेनी चाहिए कि अगले दस वर्षों में इस तरह गुजर करना किसी के लिये भी सम्भव न रहेगा। माला की आड़ में भी उनका वर्तमान क्रम जारी न रह सकेगा। ऐसी दशा में बुद्धिमत्ता इसी में है कि जिन्हें दस वर्ष से अधिक जीने की आशा हो वे अपने लिये गुजारे का कोई दूसरा उपाय ढूँढ निकालें। भजन करना हो, करें, वह तो अपनी कमाई पर निर्भर रहते हुए भी हो सकता है। जब जनता में मुफ्तखोरी के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो रहा है। अगले दिनों यह रोष के रूप में परिणत होगा और फिर अन्ततः वह विद्रोह के रूप में बदल जायेगा। इसके सामने टिक सकना तब सम्भव ही हो जायेगा। इसलिये समय बदलने के साथ-साथ अपने को बदल लेने में ही बुद्धिमानी है।

आत्म-निरीक्षण और आत्म-चिन्तन की घड़ी—जिनमें विचार और विवेक मौजूद है, जो किन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर महात्मा बने हैं, जिनमें व्यक्तित्व एवम् भावना विद्यमान है, यह पंक्तियाँ उन्हीं के लिये लिखी जा रही हैं और अनुरोध किया जा रहा है कि वे एक बार आदि से अन्त तक अपनी स्थिति पर विचार करें। जिन विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने घर-बार छोड़ा है, संन्यास लिया है, उनकी निष्पक्ष समीक्षा करें और नये सिरे से यह सोचें कि उन्हें प्रस्तुत विचारधारा एवं कार्य-पद्धति में कोई परिवर्तन करना अभीष्ट है या नहीं। शान्तचित्त, निष्पक्ष-भाव और निर्मल विवेक को साथ रखकर यदि प्रस्तुत समस्या पर विचार किया जायेगा तो निश्चित रूप से एक ही निष्कर्ष निकलेगा कि जो साधु हैं, उन्हें अपना समय दो—पाँच माला अन्यमनस्क मन से घुमा लेने मात्र में ही अपना बहुमूल्य जीवन बर्बाद नहीं करना चाहिए। वेश देखकर लोग कुछ कहें, बात दूसरी है, पर अपनी अन्तरात्मा तो कहेगी ही। मानव-जाति को, धर्म और संस्कृति को जिस दुर्दशाग्रस्त परिस्थितियों में होकर इन दिनों गुजरना पड़ रहा है, उनमें साधु ब्राह्मण का वही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्त्तव्य है, जो आगे चलने पर उसके समीप उपस्थित समर्थ व्यक्तियों का। आज की वर्तमान विषमताओं को दूर करने और नव-निर्माण की उदीयमान प्रवृत्तियों को बढ़ाने के लिये एक साधु का योग सबसे अधिक हो सकता है। भारतीय धर्म-भावनाओं के अनुरूप साधु का सम्मान स्वभावतः समाज में अधिक होता है। ऋषि-परम्परा में उसे यही विरासत मिली है। लोकश्रद्धा मनुष्य के पास एक बहुत बड़ी शक्ति है। इसके अतिरिक्त पारिवारिक उत्तरदायित्वों से युक्त होना, गुजारे की समस्या से निश्चिन्त होना मनुष्य-जीवन का एक अनुपम सुअवसर है। यह अवसर हजारों-लाखों में से किसी एक को मिलता है। अन्यथा सर्वसाधारण का तो सारे का सारा श्रम और मनोयोग पारिवारिक एवं आर्थिक समस्याओं के सुलझाने में ही लग जाता है। कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने के लिये अन्तरात्मा निरन्तर छटपटाती रहती है पर विवशता के बन्धन उन्हें करने कुछ नहीं देते। जिन्हें ऐसी विवशता नहीं, उन्हें ईश्वर का अनुपम वरदान मिला यही कहना चाहिए। यह सुअवसर नर-नारायण की सक्रिय पूजा उपासना में ही लगाया जाना चाहिये। मानवीय सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में लगाया गया श्रम-समय एवं मनोयोग इतना बड़ा तप है, जिसकी तुलना और किसी पुण्य से नहीं हो सकती। अपनी प्रेरणा से जिसका जितने अंशों में परिष्कार हुआ उसमें उतना ही श्रेय है। सत्प्रेरणा पाकर जिन लोगों ने जो सत्कर्म किये हैं, उनका पुण्य करने वाले को तो मिलता ही है साथ ही वह प्रेरणा देने वाला भी पुण्य-फल का भागी होता रहता है। शास्त्र में प्रेरणा देने वाले को दशवाँ अंश पुण्य मिलने की बात लिखी हुई है। यदि अपनी प्रेरणा से १०० व्यक्ति सन्मार्ग-गामी हुए तो दश व्यक्तियों के सुकृतों जितना पुण्य अपने को भी मिलेगा। लाभ की दृष्टि से भी यह बहुत उत्तम उपाय है।

यदि ऐसा न भी सोचें तो भी जिस देश, धर्म, जाति, समाज में अपना जन्म हुआ है उसकी सेवा करना, उसे अधिक समुन्नत, सुखी, परिष्कृत एवम् व्यवस्थित बनाने के लिये प्रयत्न करना मनुष्य का पवित्र कर्त्तव्य है। फिर सन्त-महात्मा, जिन्होंने अपना जीवन ही ईश्वर को अर्पित कर दिया, उनके लिए तो यह सब अनिवार्य रूप से आवश्यक है। ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि सेवा कार्यों में लग जाने से ईश्वर-भजन को समय न मिलेगा और ऋद्धि-सिद्धि या स्वर्ग-मुक्ति प्राप्त करने का उद्देश्य अधूरा रह जायेगा। यह मान्यता सही नहीं है कि ईश्वर भजन करने से ही प्रसन्न होता और सिद्धियाँ योग-साधना का ही फल है। हमें जानना चाहिये कि सेवा ईश्वर की प्रत्यक्ष उपासना है और इस तपश्चर्या का चमत्कार किसी भी हठयोग, तन्त्रयोग, कुण्डलिनीयोग आदि से रत्तीभर भी कम नहीं है। महात्मा गान्धी की तपस्या लोक-सेवा थी पर उनके चमत्कार कितने अभूतपूर्व थे जिन्हें देखकर दंग रह जाना पड़ता है। हमने स्वयं अपने जीवन का दो तिहाई भाग सेवा-कार्यों में लगाया है और यह पाया है कि उसका परिणाम उससे कहीं अधिक आश्चर्यजनक है जितना कि मन्त्र-तन्त्र द्वारा सम्भव है। हमने वैसी उपासनाएँ भी की हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यह परीक्षण भी किया है कि दोनों में से कौन माध्यम भारी पड़ा तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि तन्त्र-मन्त्र की संलग्नता से भी कई गुनी आध्यात्मिक प्रगति एवम् उसकी विभूति-अनुभूति सेवाधर्म को अपनाने में होती है। निश्चित रूप से सेवा-धर्म एक उत्कृष्ट कोटि की साधना एवम् तपश्चर्या है और इसे अपनाने वाले को वह सभी सत्परिणाम मिल जाते हैं जो आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा सम्भव हैं। लोक मंगल से दूसरों को जो लाभ मिलता है या अपनी आत्मा में जो शान्ति आती है वह लाभ तो अतिरिक्त ही है। इसलिये संसार से कुछ मतलब—रखना ही, केवल अपना ही भला करना हो, उसके लिये भी यही उचित है कि सेवा-धर्म अपनाने और मानव अन्तःकरण को उत्कृष्ट बनाने के लिए जो भी उपाय सम्भव हों उनमें प्राण-प्रण से जुट जाया जाय।

शिक्षा-प्रसाद की मुहीम—हमारे देश में शिक्षा की बड़ी कमी है, ६० प्रतिशत जनता निरक्षर पड़ी है। निरक्षरता मानव जीवन का बहुत बड़ा अभिशाप है। इस युग में मनुष्य की व्यक्तिगत एवम् सामाजिक उलझनें एवम् आवश्यकतायें इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उनके हल करने में शिक्षा की सहायता आवश्यक है। बिना पढ़े व्यक्ति की भौतिक एवं आन्तरिक प्रगति रुकी पड़ी रहती है। अपने आस -पास के वातावरण में जो कुछ सीख लिया गया है, उतना ही उलटा या सीधा वह समझ पाता है। संसार में अन्यत्र किस प्रकार सोचा और किस प्रकार किया जा रहा है, किस प्रकार किया गया है इसका उन्हें पता ही नहीं चल पाता, इस प्रकार वे कूप-मण्डूप बने, आँख रहते हुए भी अन्धे की स्थिति में पड़े रहते हैं। इस दुर्दशा से भारतीय जनता को निकालना ही चाहिये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अविद्या भी एक नरक है। इससे किन्हीं प्राणियों का उद्धार करना सचमुच बहुत बड़ा पुण्य-कार्य है। संसार के सभी सभ्य देशों में अल्पायु बालकों को छोड़कर शेष सभी बोधवान् व्यक्ति शतप्रतिशत शिक्षित होते हैं। निरक्षरता को वहाँ मानव-जीवन का कलंक माना है। इसलिये एक भी नागरिक इसे स्वीकार नहीं करता। अन्धे, बहरे, गूँगे, अपाहिज, असमर्थ तक विद्याध्ययन करते हैं। अमेरिका की एक महिला कुमारी केला जो अबोध अवस्था में ही अन्धापन, बहरापन, गूँगापन, इन तीनों व्यथाओं से ग्रसित हो गई थी। उसकी बड़ी बहिन ने कहा—प्रकृति के कोप में मनुष्य का वश नहीं, पर उसे अपना पुरुषार्थ तो करना ही चाहिये। उसने स्वयं अविवाहित रहने का निश्चय किया और अपनी इस अपंग बहिन को इशारों से पढ़ाती रही। धीरे-धीरे वह इतनी अधिक सुशिक्षित बनीं कि अमेरिका के १८ विश्वविद्यालयों ने उसे सम्मानित डॉक्टरी की उपाधि दी।

कहाँ संसार भर में शिक्षा के लिये यह प्रेम और उत्साह की अन्धे, गूँगें, बहरे तक ग्रेजुएट बनें, भटियारे, धोबी और महतर तक अपना धन्धा करते हुए रात्रि-विद्यालयों की सहायता से उच्च-शिक्षा प्राप्त करें, कहाँ हमारा देश जहाँ खाते-पीते लोग भी पढ़ने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। अभी तक देश में यही नहीं समझा जा सका है कि विद्या की भी कोई आवश्यकता है। क्या इसे समझना और शिक्षा में रुचि उत्पन्न कराना आज की स्थिति में सन्त, महात्माओं का पवित्र कर्त्तव्य नहीं है ? गाँव-गाँव जाकर वे लोगों को यह समझावें कि वे अपने बच्चों को सुशिक्षित बनाने का कर्त्तव्य पालन करें। लड़कों को ही नहीं लड़कियों को भी पढ़ावें। जहाँ सरकारी स्कूल हैं वहाँ उनमें बच्चों को भेजें, जहाँ नहीं हैं, वहाँ चन्दा-पद्धति से अध्यापक नियुक्त करके पढ़ाई आरम्भ करावें। जहाँ स्कूलों की इमारतें नहीं है, वहाँ बनवावें। जिस प्रकार पिछले दिनों मन्दिर, कुआं, तालाब, धर्मशाला बनवाना लोग पुण्य कार्य समझते थे, उसी प्रकार अब स्कूलों का बनवाना उससे भी बड़ा पुण्य-कार्य माना जाना चाहिये। सन्त-महात्मा जिस प्रकार चन्दा करके मन्दिर बनवाते, भण्डारा या यज्ञ करते कराते हैं, उसी प्रकार अब उन्हें स्कूलों की व्यवस्था करने, स्कूलों को इमारतें बनवाने का काम अपने हाथ में लेना चाहिए। इस कार्य में सरकारी अनुदान भी मिलता है। शेष पैसा गाँव से इकट्ठा किया जाय। सन्त-महात्मा इसके लिये कटिबद्ध हों और जैसे इतने यज्ञ, इतनी कथा-भागवत, इतना ब्रह्म-भोज आदि कराने की प्रतिज्ञा पहले बाबाजी किया करते थे, उसी प्रकार अब इतने स्कूल खुलवाने, उनकी इमारतें बनवाने, घर-घर जाकर बच्चों को स्कूल भेजने के लिये अभिभावकों को तैयार करने जैसे कार्यों की संख्या निर्धारित करके सकंल्प करें तो उस तरह का परमार्थ व्रत उनकी साधुता को सार्थक बना सकता है।

लोग लड़कों को तो स्कूल भेज भी देते हैं पर लड़कियों को नहीं भेजते, सोचते हैं उन्हें पढ़ाने से क्या फायदा, कोई नौकरी थोड़े ही करानी है। इस अविवेक को दूर करना चाहिये और बताना चाहिए कि अच्छे घरों में, अच्छे लड़कों के साथ विवाह करना हो तो अब लड़की का पढ़ा-लिखा होना भी आवश्यक माना जाने लगा है। बिना पढ़ी रखेंगे तो उसे उसी स्तर का घरवार मिलेगा। नई पीढ़ियों की उत्कृष्टता शिक्षित लड़कियाँ ही कर सकेंगी। इसलिये भी कन्या-शिक्षा की आवश्यकता है। फिर अब लड़के पत्नी व्रत-धर्म के प्रति आस्था छोड़ने लगे हैं, उनके मन विलासी एवं अनास्थावान् होते जाते हैं। ऐसी दशा में पति यदि धोखा दे तो शिक्षित कन्या कम से कम अपने पैरों पर तो खड़ी हो ही सकती है। आपत्ति की घड़ी जीवन में कभी आ खड़ी हो तो शिक्षा उसका सम्बल बन सकती है और उस नाव पर बैठकर वे अपनी जिन्दगी पार कर सकती है। इन सब कारणों से लड़की की शिक्षा लड़के से भी अधिक आवश्यक है। यह बातें गाँव-गाँव, घर-घर जाकर समझाई जायें और अभिभावकों में बच्चे पढ़ाने का उत्साह जगाया जाय तो आजकल स्कूलों में जितने बच्चे पढ़ते हैं उसकी अपेक्षा यह संख्या दूनी-चौगुनी हो सकती है। वर्तमान स्कूलों की अपेक्षा चौगुने स्कूल खुल सकते हैं और शिक्षा का प्रकाश देश के कोने-कोने में फैल सकता है। यह कार्य साधु-सन्त बड़ी आसानी से कर सकते हैं। जिस घर में रोटी माँगने जायें उसी घर में अपना-अपना प्रवचन एवम् अनुरोध आरम्भ कर दें। आवश्यकता हो तो सत्याग्रह तक की ठान-ठानलें। एक व्रतधारी साधु इस प्रकार प्रयत्न करता रहे तो अपनी जिन्दगी में कम से कम एक हजार बच्चों की शिक्षा की प्रेरणा तथा व्यवस्था का अभिनव आयोजन कर सकने में सफल हो सकता है।

प्रौढ़-शिक्षा आवश्यक—प्रौढ़-शिक्षा की और भी अधिक आवश्यकता है शिक्षा के लिये कोई भी आयु अधिक नहीं। जवान या बूढ़े और भी जल्दी पढ़ सकते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । यह भ्रम हटाया जाना चाहिये कि पढ़ाई बचपन में ही होती है। शिक्षा के लिए हर आयु बचपन ही है । गाँवों में बड़ी आयु के स्त्री-पुरुष अधिकतर अशिक्षित ही होते हैं। उनको अशिक्षित ही नहीं रहने दिया जा सकता। अवकाश के समय इन सब को पढ़ाना आरम्भ करना चाहिये । महिलाओं को तीसरे प्रहर और पुरुषों को रात्रि के समय को अवकाश मिलता है । उस समय वे दो-दो घण्टे पढ़ा करें तो एक दो वर्ष में ही वे निरक्षरता का कलंक मुँह पर से धोकर शिक्षित कहला सकने योग्य बन सकते हैं । मन्दिरों में या अन्यत्र इसके लिये जगह खाली मिल सकती है । रिटायर्ड, अवकाश प्राप्त या जिनके पास समय है, ऐसे सेवा-भावी अथवा वानप्रस्थ लोग पौढ़-पाठशालाओं में अवैतनिक शिक्षा दे सकते हैं । चन्दा करके भी काम चलाया जा सकता है और कोई विद्वान् अध्यापक रखा जा सकता है । सरकार से भी अनुदान मिल सकता है । यदि प्रयत्न किया जाय और साधु-सन्त यह कार्य अपने हाथ में लें तो देखते-देखते हर गाँव में प्रौढ़-पाठशाला चल सकतीं हैं और प्रगति पथ की सबसे बड़ी बाधा-निरक्षरता देखते-देखते हट सकती है । यह कार्य सरकारी प्रयत्न से नहीं, साधु-सन्तों के प्रयत्न से आंसानी के साथ हो सकता है ।

पुस्तकालय ज्ञानमन्दिर—जो थोड़े से पढ़े हैं, पर ज्ञान-वर्धक उपयुक्त साहित्य न मिलने से गन्दी और फूहड़ किताबें पढ़कर अपनी जिज्ञासा तृप्त करते हैं क्योंकि बेचारों को देहाती मेलों में वैसी ही निकम्मी किताबें बिकती मिलती हैं । अब हर गाँव में ऐसे पुस्तकालय खोले जाने चाहिये जहाँ लोग जीवन को समुन्नत बनाने और संसार की स्थिति समझने के लिये आवश्यक-ज्ञान प्राप्त कर सकें। इतनी अधिक पुस्तकें खरीद सकना हर किसी के वश की बात नहीं, वह आवश्यकता पुस्तकालय ही पूरी कर सकते हैं । पुस्तकालय भगवती, सरस्वती के साक्षात् मन्दिर हैं । कोई गाँव ऐसा नही बचना चाहिये जहाँ जीवन में अभिनव प्राण-संचार करने वाली पुस्तकों से भरा-पूरू एक पुस्तकालय न हो यह स्थापना मन्दिर निर्माण के स्तर पर ही होनी चाहिये । आमतौर से रचनात्मक विचारों की पुस्तकें मनोरंजक नहीं होतीं, उन्हें लोग पढ़ते हुए अनखनाते है । यह अभिज्ञान-परिष्कार भी साधुओं को ही करना चाहिये । भजन-कीर्तन करने की तरह ही जीवन-संचार कर सकने वाला साहित्य पढ़ने की, स्वाध्याय की भी प्रेरणा देनी चाहिये और उसे एक प्रकार की ईश्वर-उपासना ही समझना चाहिये । स्वाध्याय में प्रवृत्ति बढ़ाना आत्म-कल्याण का प्रथम सोपान है । उसे आध्यात्मिकता की पहली सीढ़ी भी कहा जा सकता है । आज तो सत्संग की आवश्यकता स्वाध्याय मात्र से ही पूरी हो सकती है ।

साधु ज्ञान का अग्रदूत है, उसने भगवा वस्त्र ज्ञानरूपी सूर्य का प्रकाश फैलाने के लिये ही धारण किये हैं । वह अरुणोदय का प्रतिनिधि है । उसकी साधना विश्व में ज्ञान की अभिवृद्धि के लिये ही होनी चाहिये । इसी में साधुता की सार्थकता है । ऐसी उपयोगी साधना करने वाला देश, धर्म, समाज और संस्कृति की कर्त्तव्यपूर्ण सेवा करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करके ही रहता है ।

ज्ञान के दो अंग हैं एक शिक्षा, दूसरा विद्या । शिक्षा वह जो पढ़ने-लिखने की क्षमता प्रदान करती है । विद्या वह जो विवेक के नेत्र खोलती है, सद्विचार, सद्भाव एवम् सत्संस्कारों को जगाती है। स्कूल शिक्षा के मध्यम हैं तो पुस्तकालय विद्या के । दोनों संस्थायें जहाँ होंगी वहाँ कहा जायेगा कि महाभगवती सरस्वती की—माता गायत्री की दोनों भुजायें समर्थ रूप से काम कर रही हैं । लोक-कल्याण की दृष्टि से यह दोनों आयोजन जितने महत्वपूर्ण हैं उनकी तुलना में श्रेष्ठ कार्य और कोई सूझ नहीं पड़ता । भारत में गाँवों की संख्या ५६७१६९ और शहरों की २६९० है । कुल मिलाकर छः लाख से भी कम है । साधु-ब्राह्मणों की संख्या ५५ लाख है। (५६ लाख में से एक लाख अपंग भिखारी छोड़कर शेष ५५ लाख बचते हैं।) यदि वे सभी शिक्षा एवम् विद्या प्रसार के इन आरम्भिक प्रयोजनों को हाथ में लेते तो हर गाँव के पीछे करीब १० साधु-ब्राह्मण आते हैं। वे देखते-देखते राष्ट्र की इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता को स्वयं ही बिना किसी के सहारे वे ही पूरा कर सकते हैं

यदि सब साधु-ब्राह्मण इसके लिये तैयार न हों और एक लाख भी ऐसे कर्मठ निकल आवें तो एक साधु छः ग्रामीणों को आसानी से सम्भाल सकता है । एक छोटा ७ गाँवों का सेवा-मण्डल बनाकर बैठ जायें। सात दिनों में से एक-एक दिन एक-एक गाँव के लिये नियत कर लें । हर सप्ताह प्रेरणा देने के लिए पहुँच जाया करें, भजन-कीर्तन, कथा, रामायण, पूजा, हवन की आंशिक शिक्षा एवम् विद्या की महत्ता समझाने एवम् उनके व्यवस्था क्रम को अग्रगामी बनाने का प्रयत्न किया करें तो कुछ ही दिनों में आशाजनक चमत्कारी परिणाम हो सकते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। इन प्रयत्नों से साधुता धन्य हो सकती है। एक लाख साधु, ब्राह्मण भी यदि सच्चे हों तो ५६ लाख के शिर पर लगे हुए कलंक को धोकर स्वच्छ कर सकते हैं।

आज प्रत्येक दिशा में अन्धकार छाया हुआ है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र में हम पिछड़े हुए हैं, हर दिशा में बहुत कुछ करना शेष है। सच्चे लोक-सेवियों के अभाव हैं, सर्वत्र अन्धेरा छाया हुआ है, उज्ज्वल व्यक्तियों के अभाव से सदियों से गले में बँधा हुआ पिछड़ापन हटाये हट नहीं पा रहा है, उसके लिये ऐसे कर्मठ कार्यकर्त्ताओं की नितान्त आवश्यकता है जो उपने-अपने परिवार की चिन्ताओं से मुक्त रहकर अहर्निश लोक-सेवा से संलग्न रह सकें। यह कार्य साधु-सन्त जितनी अच्छी तरह कर सकते हैं, उतना कोई और नहीं। भारतमाता को ऐसे ही सन्तों की आज आवश्यकता है। प्रत्येक सच्चे साधु को, विश्व-मानव की सेवा के लिये अपने आपको तत्पर करना चाहिये तभी हमारी साधु-परम्परा का गौरव, महत्त्व, एवं उपयोग अक्षुण्ण रह सकेगा।

साधुता का ठीक-ठीक अर्थ समझा जाये

भारतवर्ष को जहाँ आर्य भूमि कहा जाता है वहाँ इसे देव भूमि भी कहा जाता है । इसको देवभूमि कहने का तात्पर्य यही है कि इस भूखण्ड के निवासियों का चरित्र एवं कर्तृत्व देवताओं के तुल्य ही रहा है। जिस प्रकार देवताओं में करुणा, दया, क्षमा, अनुकम्पा आदि गुण सुविकसित होने के कारण उन्हें मनुष्यों से ऊपर माना जाता है, उसी प्रकार अपने चरित्र, अध्यात्म एवं परमार्थ के कारण भारतवर्ष के निवासी भी भूलोक के देवता माने जाते थे । संसार ने इसी देश के वासियों से सभ्यता एवं संस्कृति के मूल तत्व एवं शिक्षायें प्राप्त की हैं, इसीलिए इसे जगद्गुरु होने का गौरव भी प्राप्त है ।

देश को यह गौरव दिलाने में भारत में आदि काल से चली आ रही साधु परम्परा का बहुत श्रम एवं श्रेय है । भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का अनुशीलन करने से स्पष्ट पता चलता है कि इस देश को संसार का सर्वश्रेष्ठ देश बनाने और यहाँ के निवासियों में देवोपम प्रवृत्तियों का स्फुरण करने में ऋषि, मुनि, महात्माओं एवं साधु, सन्तों के ही तप त्यागमय आदर्श-जीवन एवं कर्मों का तेज क्रियाशील रहा हे ।

देश की साधु परम्परा ने समय-समय पर देश, काल की परिस्थितियों के अनुसार जिन महान् मान्यताओं, भावनाओं, परम्पराओं, पद्धतियों एवं क्रियाकलापों का प्रसार एवं प्रचलन किया, उन्हीं के अनुसार अपने जीवन को ढालकर यहाँ के निवासी आवाल, वृद्ध स्त्री-पुरुष आदर्श नरी-नारी बन सके । आदर्श पद्धतियों एवं जीवन क्रम को अपनाने से भारत वासियों का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, आदर्श एवं लक्ष्य इतने उत्कृष्ट एवं उन्नत हो सके थे कि वे मनुष्य होते हुए भी देवता माने जाते थे ।

इस सब सम्मान का एक मात्र श्रेय देश के साधु-सन्तों को ही है, जिन्होंने मानव कल्याण एवं मानवता के विकास के लिये अपने जीवन को संसार की समस्त सुख-सुविधाओं को त्याग को तपस्या पूर्ण परमार्थ में खपा दिया । आजीवन तपोरत रह कर उन्होंने अपनी आत्मा में जिस दिव्य ज्योति का जागरण किया उसे केवल अपने कल्याण में न लगाकर जन-जन को प्रकाशवान बनाया । भारत के तपोपूत सन्तजन न केवल अपने जीवन, चरित्र एवं आत्मा के शिल्पी थे बल्कि वे संसार की समस्त मानव जाति के शिल्पी थे । वे जंगलों में तप करके और गाँव-गाँव धूमकर आत्मिक एवं बाह्य परिस्थितियों, रहस्यों एवं तथ्यों व सत्यों की खोज किया करते थे और अपने व्यक्तिगत-जीवन में उनकी उपयोगिता तथा हानि-लाभ को परख पहचान कर जन-मानस में प्रेरित किया करते थे । उनको एक मात्र कार्य यही रहता था कि वे मानव जीवन की उन्नति एवं विकास का रहस्य अपने अन्दर खोजते थे और उन्हें जनसाधारण में प्रणीत किया करते थे । महात्माओं एवं साधुओं के अनुभवों का लाभ उठाकर समाज दिन-दिन देवत्व की ओर बढ़ता चला जाता था । उसका जीवन खरे सोने की तरह निर्विकार हो उठता था ।

आज हम भारत वासियों में जो कुछ सभ्यता-संस्कृति, ज्ञान, विज्ञान आचार-विचार की आदर्श परम्परा चल रही है वह सब उन्हीं मनीषी महात्माओं की चलाई हुई है । भारत के तपोनिष्ठ महात्मा देश में जिस महान मानवता की नींव रख गये थे उसी के आधार पर आज भी भारतीय आचार-विचार एवं सभ्यता संस्कृति का राजभवन खड़ा हुआ । महात्माओं की रखी हुई यह नींव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इतनी मजबूत और सच्चे आधारों पर स्थिर है कि हजारों साल तक आक्रमणों के भूकम्प आने पर भी भारत की आदर्श परम्पराओं एवं मान्यताओं का महान महल आज भी उसी प्रकार संसार में अपना शिर ऊंचा किये खड़ा है ।

भारत ने अपनी सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकृति के कारण राजनैतिक पराधीनता के दिन अवश्य देखे हैं किन्तु मनुष्यता की महानता के नाते वह सदा ही सबसे आगे रहा है और आज भी है । जिस साधु परम्परा में हम भारतवासियों को एक शिल्पी की तरह गढ़ कर ठीक-ठीक मनुष्य बनाया और संसार के सम्मुख आदर्श उदाहरण की तरह उपस्थित किया है उस साधु परम्परा को जितना आदर एवं सम्मान दिया जाये वह कम ही है ।

आज देश में लाखों साधु जटाजूट रखाये, रंगे वस्त्र पहने, बड़े-बड़े तिलक लगाये, कमण्डल एवं मृगछाला लिये, शरीर में विभूति रमाये और लंगोटा मारे दिन-रात घूमते दिखाई देते हैं । जनता की उन पर श्रद्वा भी है, किन्तु विचारणीय बात यह है कि क्या वास्तव में यह साधु सन्त अथवा तपस्वी महात्मा हैं ?

साधुता वेश विन्यास का बनाव शृंगार नहीं है । साधुता एक आन्तरिक विशेषता है, एक महान गुण है । निष्कलंक सज्जनता को ही साधुता कहते हैं, साधु का शाब्दिक अर्थ है—सज्जन । जो मन, वचन, कर्म से सज्जन है और जिसकी सज्जनता अपना कोई मूल्य नहीं चाहती वही वास्तव में साधु है । यह आवश्यक नहीं कि विरक्तों, गृहत्यागियों अथवा संन्यासियों को ही साधु कहा जाये और न यह ही आवश्यक है कि बिना गृह त्यागे, विरक्त अथवा संन्यासी हुए कोई साधु हो ही नहीं सकता । जिसमें साधुता के गुण हैं, जो मन, वचन, कर्म से सज्जनता का व्यवहार करता है वह गृहस्थ भी साधु ही कहा एवं माना जावेगा । जो अपने समय, श्रम, सम्पत्ति, गुणों, विशेषताओं, ज्ञान, बुद्वि विद्या आदि की सारी निधि स्वयं अपने अथवा अपनों के हित में ही न लगा कर मानवता के कल्याण में यापन करता है, उसकी कल्याण कामना के साथ अपने कर्मों से भी उसे सुख-सुविधा, आनन्द एवं ज्ञान देने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता है वह साधु है, महात्मा है, फिर चाहे वह गृहस्थ हो अथवा विरक्त । इसके विपरीत जो लोक कल्याण से विरत है, स्वार्थी है, संकुचित एवं संकीर्ण है वह कितना भी विरक्त क्यों न बने, कितनी ही वेश भूषा क्यों न बनायें, साधु नहीं माना जा सकता । आज के गली-गली घूमते-फिरते साधु समाज में साधुता के गुणों का दर्शन होना प्राय: दुर्लभ ही है फिर भला इन्हें साधु किस प्रकार माना जा सकता है ।

प्राचीन काल के साधु-सन्तों की वेशभूषा की नकल मात्र करने से ही तो कोई साधु नहीं हो सकता । साधुता में प्रधानता गुणों की है बाह्याडम्बर अथवा कलेवर की नहीं । ऋषि मुनियों जैसा वेश-विन्यास तो बना लिया जाये किन्तु आत्मा उनकी तरह उन्नत एवं उज्जवल न हो तो कोई ऋषि मुनि नहीं बन जाता । यदि कलेवर भर बदल लेने से अथवा वेशभूषा धारण कर लेने मात्र से ही कोई वैसा बन जाता तो स्वाँगों में रूप भरने वाले और तरह-तरह के वेश बना कर पैसे माँगने वाले बहुरुपिये अवश्य ही राजा देवता, सन्त अथवा महात्माओं का स्तर पा लेते ।

साधु अथवा महात्मा की पहचान वेश से नहीं उसके गुणों और कर्मों से होती है । यदि कोई साधारण गृहस्थ के वेश में भी साधुता के काम करता है तो वह साधु ही है और उन्हीं की तरह ही आदर सम्मान का पात्र है । आजकल तीर्थ स्थानों तथा मेले ठेलों में हजारों ऐसे साधु देखने को मिल सकते हैं जो नाना प्रकार के ढोंग बनाकर और चतुरता, चालाकी के चमत्कार दिखलाकर लोगों को चकित किया करते हैं । कोई एक टाँग से खड़ा है , तो कोई बायां हाथ उठाये है, कोई गड्ढे में बैठा है तो कोई पानी में खड़ा है, कोई सर नीचे किए है तो कोई पैर ऊपर । कोई जाड़े में बालू पर पड़ा है तो कोई गरमी में आग ताप रहा है, कोई कीलों पर लेटा बैठा है तो कोई सूरज से आँखजोरी कर रहा है । इन सब विलक्षण एवं विचित्र कार्यों को करने से कोई न तो साधु हो जाता है और न महात्मा अथवा तपस्वी । यह सब भोली अनपढ़ अथवा अन्धविश्वासी जनता को प्रभावित करके ठगना और पैसा कमाने का ही ढ़ंग मात्र होता है ।

यदि वास्तव में इस प्रकार के हजारों लाखों स्वांगिए, सच्चे साधु सन्त हुए होते तो भारत वर्ष की यह दशा न होती जो आज दीख रही है । आज भी देश पूर्वकाल की तरह ही अपने गौरव को प्राप्त किये होता । न तो देश में अन्ध परम्परायें चल रही होतीं और न अन्धविश्वास ही फैले होते । लोगों का जीवन शूद्र एवं सात्विक होता । किसी समय जब एक महात्मा संसार में आविर्भूत हो जाता है तो संसार का कायाकल्प ही हो जाता है, तो फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह लाखों बहुरुपिये वास्तव में साधु ही हुए होते तो न जाने यह देश और यह संसार क्या से क्या बन जाता ?

कहना न होगा कि यदि आज भी यह तथाकथित साधु महात्मा अपने देश एवं सम्मान के अनुसार किसी अंश तक भी समाज कल्याण में लग जायें तो यह अधोपतित समाज उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है । आज भी अधिकांश जनता बहुत कुछ जानती हुई भी इन वेश धारी साधुओं पर श्रद्धा करती है, इनकी बात में विश्वास करती है । यह साधुजन जनता की इस श्रद्धा का उपयोग करके उसे ठीक मार्ग की ओर बढ़ायें तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है ।

आवश्यकता इस बात की है कि इस साधु समाज में जो पढ़े लिखे साधुजन हैं, जिन्हें थोड़ा बहुत भी आध्यात्मिक अथवा धार्मिक ज्ञान है, वे अपनी योग्यता को बढ़ायें और निर्माण योग्य दूसरे साधुओं को इस योग्य बनायें कि वे गाँव-गाँव घूम कर जनता में सत्प्रवृत्तियों का प्रचार कर सकें । जिन्होंने घर त्याग दिया है और भिक्षाटन पर ही गुजर करना स्वीकार कर लिया है यदि वे अपने मार्ग दर्शन की क्षमता भी उत्पन्न करलें तो उनकी जीविका भी चलती रहे, समाज कल्याण का पुण्य कर्म भी होता रहे और वे अकर्मण्यता, अथवा भ्रान्ति फैलाने के पाप से भी बच जायें । जिस राष्ट्र और जिस समाज के बल पर वे सुविधापूर्वक अपनी जीविका चलाते हैं, जिस जिह्वा से बहुत सी तरह-तरह अमगढ़ बातें बनाकर स्वार्थ सिद्ध करते हैं या जिन कष्टकर एवं विचित्र कामों से अपने प्रभाव का पैसा बनाते हैं यदि इन सब बातों में वास्तविकता एवं उपयोगिता का समावेश कर लें तो उनके सब काम भी बनते रहें और उनका सम्मान व आदर भी बढ़ जाये ।

इधर गृहस्थों को देशपूजा की अपनी दुर्बलता को छोड़ देना चाहिये । उन्हें साधुता के लक्षणों को ठीक-ठीक समझ लेना चाहिये और उसी कसौटी पर कस कर साधु-असाधु की पहचान कर उसकी सेवा सहायता अथवा पूजा अर्चना करें । अपात्र के प्रति श्रद्धा रखने में पुण्य तो दूर उल्टा पाप ही होता है ? साधुता की सच्ची कसौटी पर जो खरा उतरे उसे ही साधू मानें फिर चाहे वह गृही हो अथवा गृहत्यागी ।

इस प्रकार उभय ओर से उचित प्रयत्न होने पर आज गढ़े में गिरे हुए भारतीय समाज को उठते देर न लगे । भारत धर्म प्रधान देश है और साधु धर्म के प्रतीक माने जाते हैं । यदि यह धर्म के माध्यम से ठीक-ठीक अपना कर्त्तव्य निवाहें तो देश एवं समाज का कायाकल्प ही हो सकता है । इन हजारों लाखों साधुओं में से यदि पच्चीस प्रतिशत भी अपना उत्तरदायित्व समझें और कर्त्तव्य का पालन करें तो जो सुधार कार्य अन्य संस्थायें दस बीस वर्ष में नहीं कर सकतीं वह काम यह साधु वर्ग वर्षों में ही करके दिखा सकता है ।

पचास वर्ष की आयु और उसका तकाजा

समाज की दिन-दिन बढ़ती दुरावस्था देखकर किसी भी विचारशील व्यक्ति के मस्तिष्क में यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता कि यदि इसी प्रकार पतन होता अथवा बना रहा तो यह समाज मानव-समाज से बदल कर क्या बन जायेगा ? क्या कुछ ही समय में ऐसी विकट विभीषिका का स्वरूप न बन जायेगा जिसमें न तो कोई मर्यादा रह जायेगी और न आदर्श ? मनुष्य भी जल्दी ही अपनी सम्पूर्ण मानवता को भूलकर अन्य पशुओं की तरह न बन जायेगा । ऐसी दशा में धर्म का, अध्यात्मा का आत्मा का, सभ्यता एवं संस्कृति का क्या होगा ? क्या यह सारी सम्पदायें नष्ट होकर काल के गाल में न चली जायेंगी ?

निःसन्देह आज अपने समाज की हर दिशा में अन्धकार ही अन्धकार व्याप्त होता जा रहा है । अविद्या, अत्याचार, अन्याय, अनैतिकता, बेईमानी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार आदि ऐसा कौन-सा दोष शेष रह गया है जो आज के सामाजिक जीवन में प्रवेश न कर चुका हो, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक पतन अपनी पराकाष्ठा की ओर बढ़ता जा रहा है । आहार विहार के असंयम ने आरोग्य, काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष तथा स्वार्थपूर्ण अर्थपरता ने मानसिक स्तर, अशिक्षा, अन्धविश्वास, अविद्या तथा अविवेक ने बौद्धिक प्रकाश तथा अनास्था, नास्तिकता, अविश्वास, अश्रद्धा, आडम्बर एवं अधर्म ने आध्यात्मिक अस्तित्व को छिन्न-भिन्न कर डाला है । समाज से व्यवस्था, अनुशासन, मर्यादा तथा सन्तुलन के आधार-स्तम्भ जीर्णशीर्ण होते दृष्टिगोचर हो रहे हैं । समाज की यह भयावह स्थिति किसी भी भावुक को व्यग्र और दूरदर्शी व्यक्ति को सम्भाव्य भविष्य की अन्धकारपूर्ण विरूपता से चिन्तित किए बिना नहीं छोड़ती ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किन्तु चिन्तित अथवा व्यग्र होने मात्र से तो कोई प्रयोजन सिद्ध न होगा । जो अन्धकार बढ़ता हुआ समाज की मनुष्यता को ग्रस लेना चाहता है उसे रोकना होगा । मानव मूल्यों के उन प्रदीपों को पुर्नप्रज्ज्वलित करना होगा जो समय की विपरीत वायु ने बुझा दिये हैं । जिन खतरों, भयों अथवा आशंकाओं का ज्ञान हो जाये और जिन विपरीत उपस्थितियों की हानि समझ में आ जाये यदि उन्हें रोकने मिटाने अथवा बदलने का प्रयास नहीं किया जाता तो होने वाले विनाश का दायित्व और किसी पर नहीं उन्हीं मनुष्यों पर होगा जो समय रहते सावधान तथा सक्रिय न हुए ।

आज समाज के हर समझदार सदस्य से पूर्ण अपेक्षा की जा सकती है कि वह समाज सुधार में अपना योगदान करे । यह योगदान व्यक्तिगत सुधार से लेकर समष्टिगत सुधार तक हो सकता है । जो जिस क्षेत्र में रहता-बसता अथवा काम करता है, वह उसमें भरी हुई गन्दगी को निकालने की यशाशक्ति कोशिश करने में प्रमाद न करे । गन्दगी का प्रभाव केवल गन्दे आदमी पर ही नहीं पड़ता बल्कि उसका संक्रामक परिणाम अच्छे-बुरे और साफ सुथरे प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित किया करता है । व्यापक विकृतियों को दूर करने के लिये व्यापक प्रयत्न की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ति सामूहिक रूप से ही की जा सकी है ।

समाज के सुधार एवं उसकी नव रचना के लिए जन-जन के सहयोग की आवश्यकता अवश्य है किन्तु ऐसे बहुत से व्यक्तियों की अनिवार्य आवश्यकता है जो अपना पूरा समय एवं श्रम निष्काम भाव से इस सेवा के लिये दे सकें । स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति केवल वही हो सकते हैं जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व पूर्ण हो चुके हों, जिनके स्वार्थों का शमन एवं वासनाओं का दमन हो चुका हो और जो अर्थ के दायरे से निकलकर परमार्थ की परिधि में प्रवेश करने के योग्य प्रौढ़ता को विकसित कर रहे हों । सेवा अथवा सुधार से भी समाज सेवा अथवा सुधार का कार्य सुचारु रूप से वे सत् पुरुष ही कर सकते हैं जो अधिक से अधिक निस्पृह एवं सहनशील हों । जिसको परिवार के प्रति लिप्सा बनी हुई, अर्थ और स्वार्थ की वितृष्णा ने अभी जिसे नहीं छोड़ा है उससे परमार्थपूर्ण सेवा कार्य बन सकना कठिन है । जो स्वयं अपनी गन्दगी दूर नहीं कर सका है उससे किस प्रकार आशा की जा सकती है कि वह किसी दूसरे की गन्दगी को दूर कर सकता है ।

समाज सेवा के पारमार्थिक पुण्य के सर्वथा योग्य तो वे ही भाग्यवान हो सकते हैं जिनके बच्चे सयाने और योग्य हो चुके हैं । जिनका परिवारिक भार उनके कन्धों से पुत्रों के कन्धों पर जा चुका है और अब जिनके पास आत्मकल्याण की चिन्ता के अतिरिक्त अन्य कोई विशेष चिन्ता न रह गई हो । प्राय: किसी भी सद्गृहस्थ को यह निश्चित स्थिति पचास वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते प्राप्त हो जाती है । एक अच्छी खासी अवधि तक गृहस्थ भोग कर लेने, संसार का रूप रंग देख लेने और जीवन की वास्तविकता समझ लेने से उसकी वृत्तियाँ, व्यवस्थित, वासनायें जीर्ण और विवेक परिपक्व हो जाता है । यदि ईमानदारी से देखा जाए तो वह एक प्रकार से तृष्णा तृप्त व्यक्ति ही हो जाता है । यों तो गैर ईमानदार वासना-कृमि पचास क्या साठ और सत्तर अथवा सौ वर्ष की आयु तक असमर्थ अवस्था में भी विषय विकारों के दास बने रहना चाहते हैं । ऐसे लोभी एवं लोलुप व्यक्ति किसी सत्पुरुष के लिये दया के पात्र होने के सिवाय और क्या हो सकते हैं ? किन्तु बहुत कुछ पतन हो जाने पर भी इस भक्ति भूमि भारत में अब भी ऐसे सद्ग्रहस्थों की कमी नहीं है जो ५० के बाद उपयुक्त भोगों के बन्धन उतार कर रख देते हैं और भगवद्जन की ओर उन्मुख हो जाते हैं । समाज सुधार के लिए आज ऐसे ही निस्पृह एवं निरामय सत्पुरुषों की आवश्यकता है । वे जहां भी जिस क्षेत्र में हों, समाज की नव रचना में योगदान करने के लिए आगे बढ़े ।

आज की यह पुकार किसी नवीन परम्परा के प्रवर्तन की घोषणा नहीं है, यह भारत की बहुत प्राचीन परम्परा है, जिसे वानप्रस्थ की संज्ञा से सम्बोधित किया गया है । ऋषियों ने मानव-जीवन को चार भागों में बांटकर जिन ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तंथा संन्यास आश्रमों की व्यवस्था की थी उसमें वानप्रस्थ आश्रम का मुख्य प्रयोजन आत्मशोधन एवं समाज सेवा ही था । कुछ समय से विपरीत परिस्थितियों एवं तज्जन्य मन:स्थितियों के कारण इस पावन परम्परा में अवरोध आ गया था । सैकड़ों वर्षों की पराधीनता, अत्याचार तथा संघर्ष ने सारे आश्रमों को मिलाकर एक रूप कर दिया था और एक गृहास्थाश्रम के अतिरिक्त किसी अन्य आश्रम की मान्यता एवं परम्परा उठ-सी गई थी । इसी काल-विक्षेप का फल यह हुआ कि समाज को सेवक, सुधारक तथा वानप्रस्थी मिलने बन्द होगये । दिन-दिन विकृतियाँ बढ़ती और पनपती गई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

और आज उनकी संख्या एवं परिमाण इतना बढ़ गया है कि भारतीय समाज का भविष्य निविड़ से निविड़तर अन्धकार में डूबता जा रहा है । भारत अब हर पराधीनता से मुक्त है, अस्तु आवश्यक है कि वानप्रस्थ की पावन एवं प्राचीन परम्परा को पुन: प्रबुद्ध किया जाये और समाज की अभिनव रचना का अभियान पूरे वेग से चलाया जाये ।

समाज का नैतिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास वानप्रस्थ आश्रम की सफलता एवं व्यवस्था पर निर्भर है । सुधार एवं लोक शिक्षण के लिए जिन अनुभवी चरित्रवान तथा निस्वार्थ समाज सेवकों एवं कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है उनकी पूर्ति वानप्रस्थ आश्रम से ही हो सकती है । अस्तु आवश्यक है जिन महानुभावों ने जीवन के उत्तरार्ध को पूरा कर लिया हो और जिनको उनके बच्चों ने पारिवारिक भार लेकर मुक्त कर दिया हो, वे वानप्रस्थ ग्रहण करें और समाज की सद्भावना, सद्प्रवृत्तियों, सदाशयता एवं सदाचरण को जाग्रत करने और रखने के लिये अपना नेतृत्व एवं कर्तृत्व प्रदान करें ।

वानप्रस्थ लेने के लिए केवल वे ही आगे न बढ़ें जिनका उतरदायित्व उनके पुत्रों ने ग्रहण कर लिया है बल्कि वे सब सत्पुरुष भी आगे आयें जिन पर किन्हीं कारणों से पारिवारिक भार नहीं है और जो सेवा अथवा कार्य मुक्त हो चुके है । सुविधा एवं साधनों की प्रचुरता से भी जिन पर परिवार का कोई विशेष उतरदायित्व नहीं है और वे अपना समय एवं श्रम समाज को देने की स्थिति में हैं उन्हें तो आयु पाकर इस पुण्याश्रम में अवश्य ही प्रवेश करना चाहिए । आज देश, समाज तथा राष्ट्र की रक्षा विकास तथा उन्नति की दृष्टि से वानप्रस्थ आश्रम के जागरण तथा विस्तार की महती आवश्यकता है, जिसे उन सब व्यक्तियों को पूरा ही करना चाहिए जो पचास वर्ष के होकर अपने गार्हस्थ उत्तरदायित्वों से मुक्त हो गये हैं अथवा किन्हीं कारणों से उनका उत्तरदायित्व उन्हें अपने तक रोक रखने के लिए दबाव नहीं डालता ।

वानप्रस्थ के मुख्य प्रयोजन की रक्षा करते हुए यह आवश्यक नहीं है कि आधुनिक परिस्थितयों में प्राचीन नियमों के लकीर के फकीर बन जायें । वानप्रस्थ की प्राचीन परम्परा घर छोड़कर वन में रहने की थी । किन्तु आज की परिस्थिति में यह सम्भव नहीं है । आज न तो पूर्वकाल जैसे राजरक्षित वन रहे है और न फल-फूल अथवा कन्द-मूल जिनसे प्रत्येक ऋतु में पूरी तरह से गुजारा चल सके । इसलिए आज का वानप्रस्थ घर रहकर भी उक्त आश्रम के कर्त्तव्य पूरे कर सकता है । पूर्वकाल में वानप्रस्थ को किसी सद्ग्रहस्थ से मधुकरी कर लेने का अधिकार था । किन्तु आज के दुष्काल में न तो वैसे सद्भाव एवं सच्चरित्र गृहस्थ ही मिलते हैं और न अन्न की इतनी बहुतायत है—अस्तु अन्न के दोष से अपनी प्रवृत्तियों एवं सूक्ष्म संस्कारों की रक्षा करने के लिए आज के वानप्रस्थ को भिक्षा पर निर्भर न रहकर भोजन के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर ही रहना चाहिये । इसके लिये जिन्हें विशेष आर्थिक सुविधा नहीं है वे गुजारे भर का कोई ऐसा काम कर सकते हैं जिसमें समय भी थोड़ा लगे और जिससे किसी न किसी रूप में नि:स्वार्थ तो सहस्वार्थ ही सेवा हो सके ।

पूर्वकाल में सपत्नीक वानप्रस्थ लेने और आजीवन अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करने का नियम था । आज की परिस्थितियों एवं मानसिक भूमियों को देखते हुए यह आवश्यक नहीं कि पत्नी यदि परिवार में रहना चाहती हो तो उसे वानप्रस्थ लेने के लिए विवश किया जाये । आज जिस प्रकार की मनोभूमि से मनुष्य को गुजरना पड़ रहा है उसे देखते हुए ब्रह्मचर्यव्रत की शपथ उसी सीमा तक लेना चाहिए जिस सीमा तक उसका अधिकाधिक निर्वाह हो सके और व्रतभंग का अवसर पश्चाताप एवं पाप लेकर न आने पावे । तात्पर्य यह कि वानप्रस्थ के प्राचीन नियमों में ऐसा कोई भी संशोधन कर लेने में हर्ज नहीं है जो वानप्रस्थ आश्रम के मूल उद्देश्य के विरुद्ध न हो और जिससे कर्त्तव्य निर्वाह में सरलता एवं सुविधा हो ।

प्राचीन काल में वानप्रस्थ का मूल उद्देश्य आत्मशोधन एवं आत्मनिर्माण ही माना गया था और जिसका उपाय एक मात्र भजन को ही बताया गया था । किन्तु समय के अनुसार आज उपासना का भी रूप बदल गया है । भजन शब्द का वास्तविक अर्थ सेवा ही है । सेवा यदि नि:स्वार्थ भाव से मानव समाज की भी की जाती है तो वह भी ईश्वर की ही सेवा है । भजन पूजन के समान जनता जनार्दन की सेवा करने से भी मनुष्य की आत्मा का विस्तार होता है । मनुष्य विराट विश्वरूप परमात्मा में तल्लीन होकर भी मुक्त हो सकता है जिसके प्रमाण महात्मा बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, दयानन्द, तथा महात्मा गाँधी आदि जीवन मुक्त महापुरुष हो गये हैं । इसलिए आवश्यक नहीं कि आत्म द्धार के लिए समाज से

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अलग बैठकर भजन पूजन तथा जप जोग किया जाय । जो उद्देश्य जप-जोग से पूरा होता है वही लोक सेवा से भी । बल्कि जन सेवा से आज के वानप्रस्थी को दोहरा लाभ होगा । एक तो उसका आत्म कल्याण होगा दूसरे समाज सुधार का श्रेय लाभ भी उसकी पुण्य पुस्तक में लिख जायेगा ।

सेवा एवं सुधार कार्यों के लिए यदि कोई वानप्रस्थी यह नहीं समझ पाये कि उसे क्या करना चाहिए और कैसे करना चाहिए तो वह युगनिर्माण योजना के अन्तर्गत शतसूत्री कामों में से अपनी स्थिति, परिस्थिति तथा वातावरण के अनुसार कोई भी कार्यक्रम चुनकर इस पुण्य कार्य में प्रवृत्त हो सकता है । वानप्रस्थ की अवस्था में पहुँचे हुए किसी भी योग्य व्यक्ति का आज बेकार में घरवार की गुफा में पड़ा रहना एक प्रकार से समाज द्रोह ही है जिसका कलंक किसी भी बुद्धिमान को नहीं लेना चाहिए ।

समाज का ऋण चुकाना ही श्रेयस्कर

मनुष्य की निजी आवश्यकताऐं और इच्छाऐं हैं । उनकी पूर्ति के लिए वह प्रयत्न करता है, और प्रयत्न करने पर अभीष्ट की प्राप्ति भी होती है । पर वह जो कुछ पाता है वह उसका अपना उपार्जन ही नहीं होता उसे जुटाने में समाज का भारी योगदान रहता है । यदि वह न रहे तो एकाकी मनुष्य पेट भरने और तन ढंकने की आवश्यकता भी शायद ही पूरी कर पावे । बुद्धि तो उसमें बहुत है पर शरीर इतना अशक्त है कि वह बिना दूसरों के सहयोग के अपनी बढ़ी-चढ़ी इच्छाओं की पूर्ति किसी भी प्रकार नहीं कर सकता । इस दृष्टि से मनुष्य अन्य जीवों की तुलना में काफी पिछड़ा हुआ है ।

गाय, हिरन, लोमड़ी, खरगोश आदि के बच्चे जन्म लेने के कुछ ही देर बाद अपने पाँवों पर खड़े हो जाते हैं । माता का दूध अपने प्रयत्न से पीने लगते हैं और कुछ ही दिनों में चल फिर कर घास आदि ढूँढ़ने और पेट भरने लगते हैं । मनुष्य के बच्चे में यह योग्यता बहुत वर्ष बीतने पर भी नहीं आती । माता दूध न पिलाये तो वह भूखा ही मर जायेगा । अपने पुरुषार्थ से माता को या उसके स्तन को ढूँढने में समर्थ न होगा , सोने, खाने, नहाने, मल-मूत्र विसर्जन जैसे छोटे कामों के लिए भी बहुत दिनों तक उसे अपने अभिभावकों पर निर्भर रहना होता है । अपने पैरों पर खड़े होने की अपना गुजारा आप करने की योग्यता तो कहीं पन्द्रह सोलह वर्षों में आती है ।

आजीवन साथ रहने के लिए प्रस्तुत सुयोग्य पत्नी— मनुष्य का अपना उपार्जन नहीं होती । माँ-बाप उस लड़की को सुयोग्य बनाते और उदारता पूर्वक ब्याह कर देते हैं । यह सामाजिक योगदान है । अन्य प्राणी कामोद्देश्य के लिए क्षणिक दाम्पत्य जीवन बनाते और बिछुड़ जाते हैं । मनुष्य को जो सुव्यवस्थित दाम्पत्य जीवन मिला है उसमें समाज का अनुग्रह ही मुख्य है । भोजन के लिए अन्न, पहनने के लिये वस्त्र, निवास के लिए घर, शिक्षा के लिए विद्यालय, आजीविका के लिए उद्योग, यात्रा के लिए वाहन, बीमारी की दवा, क्या यह सब उपलब्धियाँ मनुष्य की निजी कमाई हैं, यदि समाज का सहयोग प्राप्त न हो तो कितना ही परिश्रम करके उस स्तर की वस्तुऐं प्राप्त नहीं हो सकतीं जितनी कि हम में से प्रत्येक को मिलती हैं । बोलना, लिखना, पढ़ना जो मनुष्य ने सीखा है उसमें माँ संगी-साथियों का ही नहीं असंख्य पीढ़ी के पूर्वजों का योगदान है । सामाजिक, शासकीय, वैज्ञानिक, बौद्धिक सुविधाओं से जो असाधारण लाभ प्राप्त किया जा सका है और जिनके बल पर मनुष्य सृष्टि का मुकुट मणि बना है वह सब कुछ एक प्रकार से समाज का ही अनुदान है । निजी पुरुषार्थ तो उन उपलब्धियों में नगण्य ही समझा जाना चाहिए ।

जिस समाज का इतना उपकार और अनुदान लेकर मनुष्य सुख-सुविधाऐं प्राप्त करता है, उसका वह ऋणी है । इस ऋण को चुकाना कृतज्ञता की, प्रत्युपकार की और सामाजिक शृंखला परम्परा बनाये रखने की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है । यदि लोग समाज के कोष से लेते तो रहें पर उसका भण्डार भरने की बात न सोचें तो वह सामूहिक कोष खाली हो जायेगा । समाज खोखला और दुर्बल हो जायेगा उसमें व्यक्तियों की सुविधा बढ़ाने एवं सहायता करने की क्षमता न रहेगी फलतः मानवीय प्रगति का पथ अवरुद्ध हो जायेगा । प्राप्त तो करें पर उसे लौटायें नहीं की नीति अपना ली जाय तो बैंक दिवालिये हो जायेंगे, सरकार खोखली रह जायेगी, जमीन का उपार्जन बन्द जायेगा, व्यापार की शृंखला ही बिगड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायेगी । इस संसार में 'लो और दो' की नीति पर सारी व्यवस्था चल रही है । 'लो' के लिए तैयार—'दो' के लिए इन्कार, की परम्परा यदि चल पड़े तो सारा क्रम ही उलट जायेगा, तब हमें असामाजिक आदिम युग की ओर वापिस लौटना पड़ेगा ।

आधा भाग मनुष्य की बुद्धि और श्रमशीलता का और आधा भाग सामाजिक अनुदान का माना गया है । तदनुसार तत्वदर्शियों ने यह व्यवस्था बनाई है कि उसे अपनी जीवन सम्पदा का आधा भाग अपनी शरीर यात्रा के लिए रखना चाहिए और आधा सामाजिक उत्कर्ष के लिए लगा देना चाहिए । पेट भरना, तन ढकना, निवास, शिक्षा, चिकित्सा, गृहस्थ, उपार्जन, मनोरंजन आदि वैयक्तिक सुविधा साधनों के लिए उसकी क्षमता का आधे से अधिक भाग खर्च न होना चाहिए आधा तो समाज सेवा के लिये सुरक्षित ही रहना चाहिए ।

आश्रम धर्म की व्यवस्था भारतीय संस्कृति में इसी दृष्टि से की गई है । आयुष्य का एक चौथाई भाग खेल-कूद तथा ज्ञान और शरीर की वृद्धि के लिए यह ब्रह्मचर्य हुआ, एक चौथाई विवाह सन्तान, परिवार, यश, वैभव मनोरंजन आदि के लिए यह गृहस्थ हुआ । इतना भाग निजी सुख-सुविधा के लिए है । शेष आधा वानप्रस्थ और संन्यास के रूप में लोक-मंगल के लिए आत्मिक उत्कृष्टता अभिवर्धन के लिए नियुक्त होना चाहिए । जीवन सम्पदा का यही श्रेष्ठतम विभाजन है । भारतीय धर्म और संस्कृति की यह एक अति महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है जिस पर उसकी महान सामाजिक व्यवस्था की आदर्श परिपाटी निर्भर रही है ।

सामाजिक उत्कृष्टताओं के अभिवर्धन, सत्परम्पराओं के संचालन और विकृतियों के निवारण के लिए निरन्तर प्रयत्न किया जाना आवश्यक है । यह प्रयोजन, सुयोग्य अनुभवी और निस्पृह लोगों के द्वारा ही पूरा हो सकता है अनेक सत्प्रवृतियों के गतिशील रहने से ही समाज की श्रेष्ठता और महानता सुदृढ़ रह सकती है । इस कार्य के लिए ढलती आयु के व्यक्तियों को अपना जीवन समर्पित करना चाहिए । उसे उदारता, दान, परमार्थ, धर्म, पुण्य कुछ भी कहा जा सकता है । ऋण चुकाना या कर्त्तव्य-पालन भी इसे कह सकते हैं । कहा कुछ भी जाय, यह है नितान्त आवश्यक । यह परम्परा चलते रहने से ही सुयोग्य समाज सेवियों की आवश्यकता पूरी हो सकती है और सामाजिक महानता अक्षुण्ण रह सकती है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक भारतीय धर्मानुयायी को शास्त्र मर्यादा या ईश्वरीय आज्ञा के रूप में ढलती आयु में वानप्रस्थ ग्रहण करके अपना श्रम, समय और मनोयोग लोक-कल्याण के लिए लगाने का निर्देश किया गया है ।

शास्त्रकारों और आप्त पुरुषों ने पग-पग पर इस परम्परा के पालन का निर्देश किया है । धर्म ग्रन्थों में हर जगह इसी प्रकार के निर्देश की भरमार है ।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यम् समाश्रयेते ॥१

(शंखस्मृति)

जब गृहस्थ का भार बड़ा सम्भाल ले, बाल सफेद होने लगें, तब मनुष्य को वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिए ।

उषित्वैवम् गृहे विप्रोद्वितीयादाश्रमात् परम् ।
वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयन्तु समाश्रयेत् ॥ ९७

(सम्वर्त स्मृति ९७)

जब गृहस्थ पालन करने के उपरान्त चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जायें, बाले सफेद होने लगें तो तीसरे पन में वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए ।

एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयश्चैव किल्विषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ॥ २

(हरीत स्मृति ६ ।२)

गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए । इससे समस्त मनोविकार दूर होते हैं और वह निर्मलता आती है जो संन्यास के लिए आवश्यक है ।

महर्षिपितृदेवानां गत्वाऽऽनृण्यं यथाविधि ।
पुत्रे सर्वं समासज्य वसेन्माध्यस्थ्यमास्थितः ॥

(मनु. ४ । २५७)

ढलती आयु में पुत्र को गृहस्थ का उत्तरदायित्व सौंप दें । वानप्रस्थ ग्रहण करे और देव, पितर तथा ऋषियों का ऋण चुकावे ।

उत्पाद्य पुत्रानानृणांश्च कृत्वा ।
वृत्तिं च तेन्योऽ नुविधाय काञ्चित् ॥
स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा ।
अरण्यसंस्थोऽय मुनिर्बुभूषेत् ॥

पुत्रों को उत्पन्न कर उन्हें ऋण के भार से मुक्त करके उनके लिए किसी जीविका का प्रबन्ध कर दे अपनी सभी कन्याओं का योग्य वर के साथ विवाह कर दे तत्पश्चात् वन में मुनिवृत्ति से रहने की इच्छा करे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपत्यसंतर्तिदृष्ट्वा प्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमगच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ॥ २४
इत्येषपापशुद्ध्यर्थ मात्मनश्चोपकारकः ।
वानप्रस्थाश्रमस्तमाद्विक्षोस्तुचरमोपरः ॥२७

(मार्कण्डेय पुराण)

दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता इसमें है कि सन्तान के समर्थ होने पर अपने शरीर के क्षरण पर भी विचार करे और ढलती आयु में वानप्रस्थ ग्रहण करे । आत्म शुद्धि के लिए यह कदम बढ़ाना आवश्यक है । पापों का शोधन ऋणों से मुक्ति और आत्म-कल्याण का प्रयोजन पूरा करने के लिए वानप्रस्थ ग्रहण करना ही चाहिए ।

गृहस्थ : पुत्रपौत्रादीन् दृष्ट्वा पलितामात्मनः ।
भार्य्यां पुत्रेषु निःनिक्षिप्य सह वा प्रविशेद्वनम् ॥२
तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा ।
विमुक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥
१०

(हरीत स्मृति)

जब बाल सफेद होने लगें और पुत्र घर सम्भालने योग्य हो जाये तो वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए ।

ढलती आयु में तपश्चर्या आरम्भ कर देनी चाहिए । इससे पाप और ऋण धुलते हैं, आत्मा को शान्ति मिलती है और दिव्य पुरुष की स्थिति प्राप्त होती है ।

ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ।
वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राड्निष्परिग्रहः ॥
इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथावनंततः ॥१२

(मार्कण्डेय पुराण)

गृहस्थ के आवश्यक उत्तरदायित्वों को पूरा करके, पुत्र को कामकाज सौंपदे और वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे । वानप्रस्थ परिपक्व होने के पश्चात् ही संन्यास लिया जाता है ।

बालमनोनन्दयबान्धवानांगुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ।
स्त्रीणांयुवासत्कुलभूषणासंवृद्धोवनेवत्सवने चरणाम् ॥६१

(मार्कंडेय पुराण)

बाल्यकाल, में परिवार को हँसाना, विनोद देना, किशोर अवस्था में माता-पिता की सेवा करना, युवावस्था में पत्नी, वृद्ध जनों तथा आश्रितों की सहायता करना और अन्त में वानप्रस्थ लेकर विश्व-कल्याण के परमार्थ प्रयोजन में जीवन व्यतीत करना ।

वयः परिणतो राजन्कृत्यो गृहाश्रमी ।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ १८

(विष्णु पुराण)

जब गृहस्थ धर्म का पालन करते-करते अवस्था ढल जाय, तब अपनी स्त्री के पालन का भार पुत्रों को सोंप या उसे भी अपने साथ लेकर वन को प्रस्थान करे ।

अथ जनको ह वैदेही याज्ञवल्क्यमुपसमेत्योवच । भगवन्संन्यासमनुब्रूहीति । स होवाच याज्ञवल्क्यः । ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेत् । गृही भूत्वा वनी भवेत । वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ।

(जाबालोपनिषत् ३ । १)

एक दिन राजा जनक महर्षि याज्ञवल्क्य के पास गये और कहा भगवन् संन्यास की शिक्षा दीजिये । इस पर याज्ञवल्क्य ने कहा—पहले ब्रह्मचर्य आश्रम, फिर गृहस्थाश्रम इसके बाद वानप्रस्थ होना चाहिए इसके उपरान्त ही संन्यास है ।

यदिमद्वचनंतात श्रद्धास्यविशंकितः ।
तत्परित्यज्यगा र्हस्थ्यं वानप्रस्थमनाभव ॥ ३ ॥
तमनुष्ठायविधि वह्निहायाग्नि परिग्रहम् ।
आत्मन्यात्मानधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रहः ॥ ४
एकांतशीलोवश्यात्माभव भिक्षुरतंद्रितः ।
तत्रयोगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्श विवर्जितः ॥ ५
ततःप्राप्स्यसितंयोगादु,:खसंयोगभेषजम् ।
मुक्तिहेतुमनौपस्यमनात्स्येयमसंज्ञितम ॥ ६

(मार्कण्डेय पुराण ३ । ४ । ५ । ६)

पुत्र ने अपने पिता से कहा— तात, आप संकल्प-विकल्प छोड़कर मेरा अनुरोध मानिये । गृहस्थ धर्म पूरा हो गया अब वानप्रस्थ ग्रहण कीजिए । परिग्रह, लोभ और मोह की लिप्सा छोड़िये । मन को वश में कीजिए । आलस्य छोड़िये और मन को सांसारिक लालसाओं से हटाइए । जब आप योग साधन करेंगे तभी दुःख द्वन्द्वों से छूटेंगे ।

जब तक इस वानप्रस्थ परम्परा का निर्वाह भारतीय समाज में ठीक तरह होता रहा, तब तक यहाँ की सामाजिक स्थिति अति उच्चकोटि की बनी रही, और उससे प्रभावित होकर घर-घर में नर रत्न उत्पन्न होते रहे, जिन्होंने समस्त विश्व में श्रेष्ठता की मर्यादाओं को स्थापित करने में महान योगदान दिया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब से हम संकीर्ण और स्वार्थी होते चले गये । समाज का ऋण भार लेने की निर्लज्जता अपना बैठे । मरते समय तक पैसा और बेटे पोतों की ही बात सोचने वाले क्षुद्र स्तर पर आ गये तो समाज को सुयोग्य और निस्वार्थ प्रतिभाऐं मिलती ही कहाँ से ? और उनके बिना सामाजिक स्तर ऊँचा रहता ही कैसे ? इस अभाव की पूर्ति के बिना कोई राष्ट्र और समाज प्रखर और महान् रह ही नहीं सकता ।

इस अभाव की पूर्ति की जानी चाहिए । जनसाधारण का दृष्टिकोण बदला जाना चाहिए । सारा जीवन पैसे और परिवार के लिए ही लगाया जाना सामाजिक अपराध घोषित किया जाना चाहिए । हर व्यक्ति को यह अनुभव कराना चाहिए कि आधा जीवन गौ ग्रास है । वह समाज सेवा की अवधि है । उसका अपहरण करके निजी सम्पदा बढ़ाते रहना माँ-बेटे पोतों की टहल चाकरी करते रहना गौ के मुख से ग्रास को छीन कर गधे को खिलाने के बराबर है ।

पुरोहित अपना उत्तरदायित्व सम्भालें

"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः ।"

वेद की इस ऋचा में ब्राह्मण की आजीवन पर्यन्त उत्तरदायित्व पूर्ण प्रतिज्ञा की झांकी है कि हम पुरोहित राष्ट्र को जीवित एवं जागृत रखेंगे । सम्पूर्ण राष्ट्र जिसके इशारे पर चलने वाला हो । जिसका प्राण, दिशा, विचार, भावना सभी कुछ ब्राह्मण हो । उसे क्यों न समाज का सच्चा नेता कहें । न केवल वह यही है वरन् वह तो धर्म नेता भी है । वह मनुष्य के कुविचार, कुसंस्कार तथा कुकर्म पर निरन्तर कुठाराघात करता हुआ उनमें शान्ति सद्भावनाओं सद्प्रवृत्तियों तथा सद्बुद्धि के बीज करने के लिए प्रयत्न करता रहता है ।

इसीलिए उसने समाज में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया है । वह भूसुर की उपाधि से शोभित किया गया है क्योंकि वह पृथ्वी पर देव तुल्य सृष्टि के हित में अहर्निश कार्य करता रहता है। इन कार्यों को निरहंकारी भाव से सम्पादित करने के लिए वह ईश्वर-उपासना से तथा आत्म-निर्माण की कठोर जीवन-साधना में अमर शक्ति प्राप्त करना है ।

भूतकाल में पुरोहित और ब्राह्मण शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग होता था । ब्राह्मण लोक-मंगल की साधना में निरत रहते थे ।

ब्राह्मण को ऋग्वेद में मुख की उपमा इसी कारण दी गई है । वह मुख में स्थित मस्तिष्क के समान समाज में मस्तिष्क प्रेरणा तथा दिशा को पूरित करता रहता है । आँख सदृश वह स्वयं के चरित्र का सूक्ष्म दृष्टा बनकर स्वयं की त्रुटियों का परिमार्जन करता रहता है । जो चरित्र गढ़ने में पूर्णतया अग्रसर है । वह कान नाक के समान समाज की हर गन्दगी को सुनाता । तथा सूँघता है । उसकी गन्दगी का निवारण करते हुए सामाजिक शुभ कार्यों के लिए समर्थन तथा सहयोग प्रदान करता है । जिह्वा के समान ब्राह्मण विषैली दुष्प्रवृत्तियों को समाज पुरुष के पेट में जाने से रोकता है । जिस प्रकार मुख अपने पास कुछ न रखते हुए पाचन हेतु उदर को भेजता है उसी भाँति अपरिग्रही बन करके अपने समस्त आध्यात्मिक, बौद्धिक भावनात्मक अर्जन को समाज हित में अर्पण कर देता है । जिह्वा के समान मुधर-भाषी बनकर समाज को सत्प्रेरणा देता है । वह इस प्रेरणा के युग में लेखनी द्वारा समाज को दिशा भी प्रदान करता है ।

अतएव 'पराता ष्टंच्यते राष्ट्र' ब्राह्मण मन्त्र जीतते" जहाँ ब्राह्मण हारते हैं वह देश खोखला हो जाता है । वर्तमान समय में देश की दुर्दशा का मूल कारण यही है कि राष्ट्र को सही दिशा देने वाला प्रबुद्ध वर्ग अर्थात् ब्राह्मण अपने कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों से च्युत हो गया है ।

इतने महान् पद पर आसीन ब्राह्मण पुरोहित के कर्त्तव्य बहुत कठोर हैं । सर्व प्रथम वह अपने दुर्गुणों को दूर करके सद्गुणी, चिन्तक तथा मनन कर्ता बनता है । जिससे उसका चरित्र समाज में सामान्य समाज पुरुष की अपेक्षा सदैव ऊँचा बना रहे । तभी वह अन्य लोगों पर अपने चरित्र प्रभाव डाल सकता है । वह घरघर जाकर सभी को कथा, प्रवचन, सत्संग, उत्सव, त्यौहार आदि के माध्यम से सदुपदेश देता है । वह अपनी भावनाओं से जन-जन के हृदय में अपना स्थान बना लेता है । तभी समाज उसके पदचिह्नों पर चलता है तथा उसे भरपूर सम्मान भी मिलता है । जहाँ तक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रश्न है वेतन के रूप में नहीं लेता है । वरन् आवश्यकतानुसार समाज से समय-समय पर आर्थिक सहयोग लेता है । वेतन भोगी बनने पर समाज में उसका स्तर कर्मचारी के समान हो जाता है ।

वर्तमान समय में समाज में अन्ध-विश्वास कुरीतियाँ भ्रान्तियाँ, कुरूढ़ियाँ, अज्ञान आदि का अन्धकार,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामाजिक नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, मानसिक आदि क्षेत्रों में छाया हुआ है। उस अन्धकार में प्रकाश फैलाने के लिए गाँधी, दयानन्द, विवेकानन्द, आदि महान् पुरुषों के समान ब्राह्मण वर्ग को आगे आना चाहिए।

"पुरोहित" के जागरण की आवश्यकता

मनुष्य में दो तन्त्र प्रधान हैं, एक विवेक, दूसरा 'बल'। बल अनेक प्रकार के हैं, शरीर बल, चातुर्य बल, धन बल, संघ बल आदि । इन बलों द्वारा शासन, उत्पादन और निर्माण कार्य होता है, इन्हीं के द्वारा सम्पत्ति एवं ऐश आराम के साधन उपलब्ध होते हैं। विवेक द्वारा इन सब बलों को सम्पादन करने की प्रेरणा मिलती है, उपाय का अवलम्बन मिलता है एवं बल द्वारा प्राप्त सामिग्री के उपयोग तथा सुरक्षा की व्यवस्था होती है।

मस्तिष्क बल और विचार बल में थोड़ा अन्तर है, उसे भी हमें समझ लेना चाहिये। मस्तिष्क बल का शरीर बल से सम्बन्ध है। विद्याध्ययन, व्यापारिक कुशलता, किसी कार्य व्यवस्था को निर्धारित प्रणाली के अनुसार चलाना, यह सब मस्तिष्क बल का काम है। वकील, डॉक्टर, व्यापारी, कारीगर, कलाकार आदि का काम इसी के आधार पर चलता है। यह बल शरीर की आवश्यकता और इच्छा की पूर्ति के कारण उत्पन्न होता और बढ़ता है परन्तु विवेक बल आत्मा से सम्बन्धित है, आध्यात्मिक आवश्यकता, इच्छा और प्रेरणा के अनुसार विवेक जागृत होता है। उचित अनुचित का भेदभाव यह विवेक ही करता है।

मस्तिष्क बल शरीर जन्य होने के कारण उसकी नीति शारीरिक हित साधन की होती है। इन्द्रिय सुखों को प्रधानता देता हुआ वह शरीर को समृद्ध एवं ऐश्वर्यवान बनाने का प्रयत्न करता है। अपने इस दृष्टिकोण के आगे वह उचित अनुचित का भेद भाव करने में बहुत दूर तक नहीं जाता। जैसे भी हो वैसे भोग ऐश्वर्य इकट्ठा करने की धुन में प्राय: लोग कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ध्यान भूल जाते हैं, अनुचित रीति से भी स्वार्थ साधन करते हैं।

विवेक इससे सर्वथा भिन्न है। देखने में 'विवेक' भी मस्तिष्क बल की ही श्रेणी का प्रतीत होता है पर वस्तुत: वह उससे सर्वथा भिन्न है। विवेक आत्मा की पुकार है, आत्मिक स्वार्थ का वह पोषक है। अन्त:करण में से सत्य, प्रेम, न्याय-त्याग, उदारता, सेवा, एवं परमार्थ की जो भावनाएँ उठती हैं उनका वह पोषण करता है। सत् तत्वों के रमण में उसे आनन्द आता है। जैसे शरीर की भूख बुझाना मस्तिष्क बल का प्रयोजन होता है वैसे ही आत्मा की भूख बुझाने में 'विवेक' प्रवृत्त रहता है। काम और अहंकार की पूर्ति में बलशाली लोग सुख अनुभव करते हैं पर उससे अनेकों गुना आनन्द-परमानन्द-विवेकवान् को प्राप्त होता है।

बल द्वारा सम्पत्ति और भोग सामिग्री उपार्जित होती है, परन्तु इस उपार्जन का तरीका इतना संकुचित और स्वार्थमय होता है कि उसकी धुन में मनुष्य धर्म अधर्म की परवाह नहीं करता। इसलिए केवल बल द्वारा उत्पन्न की हुई सम्पत्ति कलह और क्लेश उत्पन्न करने वाली, दु:खदायक एवं परिणाम में विष के समान होती है। ऐसी सम्पत्ति का उपार्जन संसार में अशान्ति, युद्ध, शोषण, उत्पीड़न एवं प्रतिहिंसा की नारकीय अग्नि को प्रज्ज्वलित करने में घृत का काम करता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए विवेक बल का शरीर बल पर, मस्तिष्क बल पर नियन्त्रण कायम करना पड़ता है।

बल के ऊपर विवेक का नियन्त्रण कायम रहना अत्यन्त आवश्यक है, बिना इसके संसार में सुख शान्ति कायम नहीं रह सकती। बल अन्धा है और विवेक पंगा है। केवल बल की प्रधानता रहे तो उससे अनर्थ, अत्याचार एवं पाप की उत्पत्ति होगी, बल के अभिमान में मनुष्य अंधा हो जाता है। विवेक नेत्र स्वरूप है वह सत्पथ का प्रदर्शन करता है किन्तु अकेला विवेक क्रिया रहित हो जाता है, अनेकों एकान्तवासी विवेकशील विद्वान एक कोने में पड़े अपनी निरुपयोगिता सिद्ध करते रहते हैं। जब विवेक और बल दोनों का सामंजस्य हो जाता है तो उसी प्रकार सब व्यवस्था ठीक हो जाती है जैसे एक बार अन्धे की पीठ पर पंगा आदमी बैठ गया था और वे दोनों आपसी सहयोग के कारण जलते हुए गाँव में से बचकर बाहर निकल गये थे। यदि दोनों सहयोग न करते तो दोनों का ही जल मरना निश्चित था।

धर्मशास्त्रों ने बल के ऊपर विवेक का शासन स्थापित किया है। भौतिक जगत में भी यही प्रथा और परिपाटी कायम की गई है। कला कौशल-बल, धन बल और शरीर बल इन तीनों बलों के प्रतिनिधि स्वरूप शूद्र, वैश्य एवं क्षत्रिय पर विवेक के प्रतिनिधि ब्राह्मण का शासन कायम किया गया है। हम प्राचीन इतिहास में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखते हैं कि हर एक राजा की शासन प्रणाली राजगुरु के आदेशानुसार चलती थी। तीनों वर्णों का पथ प्रदर्शन ब्राह्मण करते थे।

एतरेय ब्राह्मण ७-४-८ में एक श्रुति आती है—"अर्धात्मोहवा एथ क्षत्रियस्य यत्पुरोहित:।"

अर्थात्—क्षत्रिय का आधार आत्मा पुरोहित है। पुरोहित के अभाव में क्षत्रिय आधा आत्मा मात्र है। हम देखते हैं कि जनता के आन्दोलनों का समुचित लाभ प्राप्त होना नेताओं की सुयोग्यता पर निर्भर है। विवेकशील सुयोग्य नेताओं के नेतृत्व में अल्प जन बल से भी महत्त्वपूर्ण सफलता मिल जाती है। नेपोलियन के पास थोड़े से सिपाही थे, पर वह अपने बुद्धि कौशल द्वारा इस थोड़ी सी शक्ति से ही महान् सफलताएँ प्राप्त करने में समर्थ हुआ।

जो विवेकवान् व्यक्ति पथ प्रदर्शन एवं नेतृत्व कर सकने योग्य क्षमता रखते हैं उन पुरोहितों का उत्तर दायित्व महान् है। एतरेय ब्राह्मण के ८-५-२ में ऐसे पुरोहितों को 'राष्ट्र गोप' अर्थात् राष्ट्र की रक्षा करने वाला कहा है। यदि देश समाज एवं व्यक्तियों का बल अनुचित दिशा में प्रवृत्त होता था तो उसका दोष पुरोहितों पर पड़ता था। ताण्ड्य ब्राह्मण के १३-३-१२ में एक कथा आती है कि इक्ष्वाकुवंशीय अरुण नामक एक राजा की अहंकारिता और उद्दण्डता सीमा से बाहर बढ़ गई। एक बार उस राजा के लापरवाही से रथ चलाने के कारण एक व्यक्ति को चोट लग गई। वह व्यक्ति अरुण के पुरोहित 'वृश' के पास गया और उनकी भर्त्सना करते हुए कहा—आपने राजा को उचित शिक्षा नहीं दी है। आपने अपने गौर वास्पद पुरोहित पद के कर्त्तव्य का भली-भांति पालन नहीं किया है। यदि किया जोता तो राजा इस प्रकार का आचरण न करता। उस व्यक्ति के यह वचन सुनकर 'वृश' बहुत लज्जित हुए। उनसे कुछ कहते न बन पड़ा उन्होंने उस व्यक्ति को अपने आश्रम में रखा और जब तक उसकी चोट अच्छी न हो गई तब तक उसकी चिकित्सा की।

उपर्युक्त कथा इस सत्य को प्रदर्शित करती है कि राज्य के प्रति पुरोहित का कितना उत्तरदायित्व है। बल को उचित दिशामें प्रयोजित करने की 'विवेक' की कितनी बड़ी जिम्मेदारी है। आज पुरोहित तत्व और राज्य तत्व दो पृथक् दिशाओं में चल रहे हैं, एक ने दूसरे का सहयोग कम कर दिया है फलस्वरूप हमारी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक सुव्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो रही है। जब तक पुरोहित तत्व अपने उचित स्थान को ग्रहण न करेगा तब तक हमारे बाह्य और भीतरी जीवन में शान्ति स्थापित भी न होगी। विवेक का—प्रतिनिधियों का—शरीर राष्ट्र और समाज राष्ट्र के ऊपर समुचित शासक होना चाहिये।

जनता को अज्ञानान्धकार से छुड़ाकर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर करना पुरोहित का कार्य है। जो व्यक्ति ज्ञानवान हैं जागृत हैं, पथ प्रदर्शन करने की क्षमता रखते हैं उन पुरोहितों का कर्त्तव्य है कि जनता को जागृत करते रहें। सामाजिक, राष्ट्रीय, शारीरिक एवं आर्थिक खतरों से सजग रखना और कठिनाइयों का हल करने का मार्ग प्रदर्शित करना पुरोहित का प्रधान कर्त्तव्य है। अन्त:करण में रहने वाले पुरोहित का कर्त्तव्य है कि वह विवेक द्वारा शक्तियों पर नियन्त्रण करे और उन्हें कुमार्ग से बचाकर सन्मार्ग पर लगावें।

हे पुरोहित ! जाग ! राष्ट्र के बारे में जागरुक रह। वेद पुरुष कहता है—"वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता:।" पुरोहित राष्ट्र के सम्बन्ध में जागते रहें-सोवें नहीं। हमारे अन्त:करण में बैठे हुए हे विवेक पुरोहित ! जागता रह ! ताकि हमारा बल "क्षत्रिय" अनुचित दिशा में प्रवृत्त न हो। हमारे देश और जाति का नेतृत्व कर सकने की क्षमता रखने वाले हे सच्चे पुरोहितो ! जागते रहो, ताकि हमारी राष्ट्रीय और सामाजिक शक्तियों का अनुचित आधार पर अपव्यय न हो। हे पुरोहित ! जाग, हमारे बल पर शासन कर, ताकि हम पुन: अपने अतीत गौरव की झांकी कर सकें।

राष्ट्रीय उत्कर्ष में साधु अपना योगदान दें

साधु और समाज का सम्बन्ध फूल तथा सुगन्ध के समान है। समाज फूल है तो साधू उसकी सुरभि है। अनादि काल से साधु समाज का दिशा सूचक यन्त्र रहा है। वह समाज के लिए प्रेरणा का आल्पस झरना है। जिसमें समाज अपने आप को सदैव निर्मल बनाता रहा है। वह धर्म की प्रति मूर्ति है। धर्म की ध्वजा उसी के कन्धों पर फहराती है। देश काल, परिस्थिति के अनुसार वह धर्म के आदेशों में संशोधन, सम्वर्धन, न्यून करके समाज को नूतन तथा प्राणवान मार्ग दर्शाता है वह समाज का शाश्वत प्रकाश स्तम्भ है। जिसके प्रकाश में समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अहर्निश प्रकाश की किरणें पाता रहा है। समाज के कोनों-कोनों में छाये हुए अन्धकार को नीलकण्ठ के समान साधू निगल जाता है। और बदले में अच्छाइयों के रूप में अमृत प्रदान करता है। साधु तो समाज का दर्पण है। इस दर्पण में समाज सदैव अपना आत्म निरीक्षण करके अपना सौन्दर्य संवारता है तथा कुरूपता हटाता है।

यदि दर्पण स्वयं ही मटमैला, गन्दा, टूटा फूटा, अस्त व्यस्त हो जावें तो उसमें कैसे प्रतिबिम्ब का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है। वही हालत वर्तमान काल में साधु की हो गई है। उसमें भीतरी प्रकाश अस्त हो गया है। मात्र बाहरी आडम्बर शेष रहा है। जो तिलक, छापा, गेरुए वस्त्र के रूप में दिखाई देता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि सभी साधु ऐसे हैं। देश में ५६ लाख साधु है। इस बहुत बड़ी जमात में कुछ साधु अवश्य ही पहुँचे हुए हैं। किन्तु वे अपना सम्पूर्ण जीवन एकान्त साधना में व्यतीत कर देते हैं। समाज को उनसे केवल सूक्ष्म निर्देश मिलते रहते हैं। जिन्हें पकड़ने की समाज में सामर्थ्य नहीं रहती है। वैसे कुछ साधु गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए भी समाज को दिशा देने में अधिक समर्थ हैं। कारण कि अकेले साधु से नारी समाज को कुछ भय-सा बना रहता है। क्योंकि आये दिन अनेक ऐसे किस्से घटित होते रहते हैं। इसलिए गृहस्थ वर्तमान काल में अधिक उपयोगी, कामगर सिद्ध हो सकते हैं।

क्योंकि साधु कोई वेशभूषा, नहीं है। प्रत्युत एक वृत्ति है। कोई भी व्यक्ति अपनी उपासना के माध्यम से इस वृत्ति को अपने आप में पैदा कर सकता है। उपासक का दर्जा गृहस्थ को भी साधु बना सकती है। यह तो और ही अच्छा है कि गृहस्थ-साधु सांसारिक कार्यों में भी अच्छाई फैलाकर समाज में आदर्श स्थापित करेगा। पुरुष वर्ग वह स्वयं तथा उसकी पत्नी नारी वर्ग को दिशा प्रदान करने का काम कर सकती है। उसकी पत्नी तो सारे समाज को वात्सल्य जिसमें उपासना की शक्ति भरी हुई है, में भाव भरकर परोपकारिता का विकास कर सकती है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में बुद्धि पक्ष इतना प्रबल हो गया है कि मनुष्य अपने व्यवहारों से सखा, बेलोच हो गया है। यदि साधु पत्नी से इस प्रकार का मातृ-प्रेम समाज को मिलता रहे तो हृदय पक्ष पुन: प्रबल हो सकता है। जिससे बुद्धि और हृदय का सन्तुलन स्थापित होने पर सन्तुलित व्यक्ति तथा सन्तुलित समाज निर्मित हो सकते हैं। गृहस्थ के साथ व्यवहारिक जीवन की कठिनाइयों को भुगत लेता है। ऐसी दशा में समाज उन कठिनाइयों से संघर्ष करता हुआ किस भाँति अच्छाइयों को बढ़ा हो सकता है। उसका सही निर्देश देने में समर्थ होता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि गृहस्थ साधु को समाज छोड़ कर अन्यत्र जाकर उपासना करनी चाहिए। वह तो संसार के साथ रहते हुए अपनी अध्यात्म शक्ति का अर्जन करता है। जब अपने आपको पत्नी सहित अध्यात्म शक्ति से परिपूर्ण कर लें तो अपना सम्पूर्ण उत्तरदायित्व पुत्र पौत्र पर छोड़कर समाज के कल्याण में लग जावें। इस कार्य हेतु उसे कहीं बाहर नहीं जाना है अपितु आपने समवर्ती क्षेत्रों में ही अनेक ऐसे सामाजिक कार्य हैं, जिन्हें दिशा की आवश्यकता रहती है। उन्हें वह मनोयोग से दिशा प्रदान कर सकता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि साधु न हों किन्तु वे अपनी भीतरी अध्यात्म शक्ति से सम्पन्न होकर समाज के सामने स्वच्छ दर्पण बनकर उतर आवें तो देश को आत्म-निर्भर बनने में देर नहीं लगेगी। बल्कि सारे विश्व के लिए एक प्रकाश स्तम्भ भी भारत बन सकता है।

उनसे—जो पचास के हो चले

मानव-जीवन को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है—पहला पूर्वार्द्ध, दूसरा उत्तरार्द्ध। यदि सौ वर्ष की आयु मानी जाय तो प्रथम पचास वर्षों को पूर्वार्द्ध और इक्यावन से सौ वर्ष की आयु को उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है।

मनीषियों ने इन दो खण्डों को दो कार्यक्रमों में विभक्त किया है। प्रथम पचास वर्ष का समय समाज के सहयोग एवं अनुदान के आधार पर वह अपनी व्यक्तिगत शक्तियों और सुविधाओं को बढ़ाते हुए सुखोपभोग करता है। धन, मान, विनोद, परिवार आदि वैभव प्राप्त करते हुए विभिन्न प्रकार के लाभ एवं आनन्द लेता है। उत्तरार्द्ध में इस ऋण-अनुदान को चुकाता है ताकि उसे इस संसार से ऋणी होकर विदा न होना पड़े। इस जगत में ईश्वर की विधि—व्यवस्था पूर्ण तथा नियमबद्ध है। जो व्यक्ति ऋणी बनकर मरते हैं, वे उस ऋण भार को अगले जन्मों में चुकाते हैं। ८४ लाख योनियों में से एक मनुष् योनि को छोड़कर शेष सभी भोग योनियाँ हैं। उनमें नया विचारपूर्ण कर्तृत्व सम्भव नहीं। बुद्धि के अभाव में जो विधान उनके साथ जुड़ा हुआ है, उसके अनुसार वे अपनी जिन्दगी के दिन पूरे करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य जीवन इसलिए नहीं मिला—मनुष्य जीवन सुख-चैन के लिए मौज-मजा करने के लिए नहीं है। इसके साथ अगणित वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्य जुड़े हुए हैं। प्रधानमन्त्री को ऊँचा वेतन, कोठी, सवारी, नौकर आदि कितनी ही तरह की ऐसी सुविधायें मिलती हैं जो अन्य सरकारी कर्मचारियों को नहीं मिलती, पर विशेष सुविधाओं के साथ-साथ प्रधानमन्त्री पर अनेक उत्तरदायित्व भी होते हैं। यदि वह उन्हें पूरा नहीं करता तो तत्काल पदच्युत कर दिया जाता है और सारे राष्ट्र की घृणा एवं भर्त्सना का भागी बनता है। फौज के ऊँचे अफसर यदि अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते तो उन्हें कोर्टमार्शल करके मौत के घाट उतार दिया जाता है। मनुष्य को अन्य सभी प्राणियों से अधिक सुविधायें प्राप्त हैं, पर साथ ही उतने ही अधिक कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व भी उसके कन्धे पर हैं। सामाजिक व्यवस्था को सन्तुलित बनाये रखना सभी जीवों की सुख-सुविधा के उपयुक्त वातावरण बनाना, आस-पास की गन्दगी को साफ करना, पिछड़े हुओं को ऊँचा उठाने में सहायता करना, दुःखियों की सहायता करना जैसे अनेक कर्त्तव्य भी उसके ऊपर हैं। जो बुद्धि, प्रतिभा एवं महत्ता उपलब्ध हुई है, वह खाने, पीने, मौज, उड़ाने और अपनी ही संकीर्ण स्वार्थपरता में समाप्त कर देने के लिए नहीं है। यदि प्राप्त उपलब्धियों को आहार, निद्रा, भय, मैथुन में, तृष्णा-वासनाओं में ही खर्च कर दिया जाय तो जो सृष्टि-सन्तुलन में कर्त्तव्य इसे सौंपे गये थे, वे पूरे नहीं होते और इस उपेक्षा के दण्ड स्वरूप फौजी अफसर के कोर्ट मार्शल जैसी सजा चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने को मिलती है। हर योनि में विविध प्रकार के कष्ट एवं अभाव सहने पड़ते हैं।

कुछ प्राणी ऐसे हैं जो मनुष्य प्राणी से सम्बद्ध हैं और उसी के लिए आजीवन श्रम एवं त्याग करते रहते हैं। गाय, बैल, भैंस, बकरी, घोड़ा, गधा, ऊँट, कुत्ता आदि ऐसे ही जीव हैं, जिन्हें मनुष्य के लिए आजीवन कठोर श्रम करना पड़ता है। यह वही लोग हैं जिन्होंने पिछले जन्मों में मनुष्य होने पर ऋण तो अनेकों का लिया, किन्तु चुकाया नहीं। कर्ज मारकर भाग जाने की इस सृष्टि में कोई सुविधा नहीं। मरने के बाद भी वह वसूल कर लिया जाता है। गधे, घोड़े, बैल, ऊँट आदि को अपना कर्ज चुकाते हुए सारी जिन्दगी व्यतीत करनी पड़ती है। यदि मनुष्य जन्म से ही उसने यह ध्यान रखा होता कि जो ऋण हम ले रहे हैं, उसे चुकाने का भी ध्यान रखें तो उन्हें इन योनियों में जन्मने और इस प्रकार का ऋण चुकाने का कष्ट सहन न करना पड़ता।

ऋण से उऋण हों—ऋण केवल पैसे का ही नहीं होता। श्रम, सहयोग एवं भावनाओं का भी होता है। अन्य प्राणी तो जन्म से कुछ ही समय बाद स्वावलम्बी हो जाते हैं और अपने आप अपनी शारीरिक, मानसिक आवश्यकतायें पूरी करने लगते हैं, पर मनुष्य का बालक बहुत समय तक स्वावलम्बी तो क्या बन सकेगा, दूसरों की सहायता के बिना जीवित भी नहीं रह सकता। माता उसे दूध न पिलाये, मल-मूत्र न धोये, स्नान न कराये, कपड़े न पहिनाये तो उसका जीवित रह सकना सम्भव नहीं। आरम्भ में तो वह करवट तक नहीं बदल पाता वह भी माता को ही बदलवानी पड़ती है। बड़ा होने पर जब तक अपनी कमाई न करने लगे तब तक उसे पिता की कमाई और माता की पाकशाला पर निर्भर रहना पड़ता है। भोजन, वस्त्र, निवास, मनोरंजन, जेबर, खर्च, फीस, पुस्तकें, दवा-दारु सभी खर्च तो अभिभावक उठाते हैं। क्या बच्चा इसका मूल्य चुकाया करता है ? नहीं, यह सब कुछ बिना मूल्य सेवा एवं सहृदयता के उपहार रूप में उसे प्राप्त हुआ। अध्यापकों ने शिक्षा दी, उसकी फीस जरूर देनी पड़ी, पर वह ज्ञान जो मिला, फीस से हजारों गुने अधिक मूल्य का था। शब्दों में उच्चारण से लेकर अक्षरों के लिखने तक का जो परिष्कृत स्वरूप सामने आया, उसमें हजारों वर्षों की, लाखों व्यक्तियों की सूझ-बूझ और श्रम-साधना सम्मिलित है, फिर स्कूल में अक्षर और शब्द ही तो नहीं पढ़ाये जाते, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान अनेक विषय सम्मिलित होते हैं, उस ज्ञान की शोध करके वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने में सहस्त्रों लोगों का अनवरत श्रम सम्मिलित है। उसकी कीमत दो-चार रुपया स्कूली फीस के रूप से नहीं चुकाई जा सकती। बेशक पुस्तकें पैसे के बदले में खरीदी गई हैं, पर वह कीमत कागज, छपाई तथा मुद्रक, प्रकाशक एवं विक्रेता के श्रम की है। जो कुछ पुस्तकों में लिखा गया है, उस जानकारी के लिए अपना जीवन खपाने वालों का तो अपने ऊपर अनन्त उपकार का बोझ बना ही रहा।

विवाह हुआ, धर्मपत्नी आई। उसकी सेवा, सहायता, सद्भावना, आत्म-समर्पण का मूल्य क्या रोटी-कपड़े के रूप में ही चुक जायेगा ? शरीर निर्वाह की व्यवस्था तो केवल ब्याज मात्र है, पत्नी का आत्मदान तो ऋण रूप में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने ऊपर लदा ही रहा। व्यापार किया, लाभ हुआ, पर वह लाभ तो ग्राहकों के सहयोग से ही सम्भव हुआ। यदि वे असहयोग करते, आपकी दुकान पर खरीद करने न आते तो लाभ कहाँ से होता? नौकरी में तरक्की हुई, वेतन बढ़ा तो इसमें अफसरों, साथियों एवं जिन्होंने अपने से सन्तोष पूर्वक सेवा स्वीकार की उन सबका भी तो सहयोग है। यदि वे सभी रुष्ट हो गये होते, तो वेतन बढ़ना तो दूर, नौकरी बनी रहना भी कठिन हो जाता। बीमारी के समय जिन चिकित्सकों ने उपचार किया और मृत्यु तक के खतरे को टाल दिया, उनके उपकार का मूल्य दवा की कीमत आदि के रूप में नही चुकाया जा सकता। वह तो औषधियों में पड़े सामान तथा बनाने वाले, बेचने वाले के परिश्रम का मूल्य है। जिस प्रयत्न और अध्यवसाय द्वारा चिकित्सा शास्त्र का निर्माण हुआ, औषधियों में पड़ने वाले पदार्थों में वनस्पतियों के गुण-दोष की खोज हुई और सांगोपांग चिकित्सा पद्धति का ढाँचा बनकर खड़ा हुआ, उसमें लगे हुए अगणित अन्वेषकों के अध्यवसाय का मूल्य कौन चुकावेगा?

यह सब उपकार ही उपकार हैं, जितने भी सुख-सुविधा के साधन हमें उपलब्ध हैं उनमें से एक-एक को बताने में चिर अतीत से अगणित लोगों का श्रम लगता रहा है और अब भी लाखों-करोड़ों व्यक्तियों का श्रम लग रहा है। यदि ऐसा न हुआ तो एकांकी मनुष्य समस्त साधन सुविधाओं से वंचित रहकर आजन्म वन्य पशुओं की तरह किसी प्रकार जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा होता।

अगणित व्यक्तियों के अगणित उपकार—अपने उपयोग में आने वाली एक छोटी-सी वस्तु को लीजिए और देखिए कि उसे वर्तमान रूप में पहुँचने में कितने लोगों का श्रम लगा है। एक छोटे से रूमाल को लीजिए, वह कहाँ से आया, कैसे बना, इस प्रकार गम्भीरतापूर्वक विचार कीजिए। किसान ने खेत में कपास बोई, उससे रुई बनी, सूत कता, कपड़ा बुना, दूकान पर आया, आपने खरीदा, मोटी दृष्टि से उतने ही लोगों का श्रम-सहयोग उसमें लगा है, पर बारीकी से देखा जाय तो इस छोटी-सी प्रक्रिया में ही अगणित लोगों का ज्ञान, श्रम-सहयोग, अध्यवसाय एवं सद्भाव सम्मिलित मिलेगा। किसान ने जिस हल से खेत जोता उसे बनाने में लुहार और बढ़ई का श्रम लगा, जो लोहा उसमें लगा वह लोहे की खान में से निकलने के बाद गला, ढला एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया गया। खान से लोहा निकालने और उसे साफ करने में बड़ी मशीनों के बनाने में अनेकों कारीगरों, इन्जीनियरों का सहयोग मिला। इन्जीनियरों ने वह चन्द पुस्तकों से पढ़ा। वे पुस्तकें प्रेस में छपीं, प्रेस और कागज बनाने में फिर अनेकों का श्रम एवं ज्ञान लगा। पुस्तकें, मशीनें आदि इधर से उधर लाने ले जाने में रेल, मोटर आदि वाहनों का उपयोग हुआ। इन वाहनों में छोटी-बड़ी असंख्यों वस्तुएँ लगीं और उनके बनाने, उपयोग करने से कितनों को ही बहुत कुछ करना पड़ा। इतनी लम्बी बेल तो अकेले हल की फैल रही है। उस रूमाल के बनाने में हल के अतिरिक्त रुई उत्पन्न होने से लेकर कपड़ा बुने जाने और खरीदे जाने तक जो-जो काम हुए हैं, उन सबको यदि ऐसी ही बेल फैलाई जाय तो पता चलेगा कि प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से करोड़ों व्यक्तियों का सहयोग किसी न किसी रूप से रूमाल में लग चुका है। रूमाल जैसी ढेरों चीजें हमारे दैनिक उपयोग में आती हैं। साबुन, शीशा, कंघी, तेल, मंजन, रुई, दियासलाई जैसी छोटी-छोटी चीजों के बनाने में समाज के कितने लोग सहयोगी रहे हैं। फिर जीवन की पूरी गतिविधियों और आवश्यकताओं से सम्बन्धित वस्तुओं एवं व्यक्ति के सहयोग सम्बन्धी विचार किया जाय तब तो स्पष्टतः संसार के अधिकांश मनुष्यों का ही नहीं पशु-पक्षियों एवं वृक्षों का भी असाधारण उपकार जुड़ा हुआ मिलेगा।

तात्पर्य है कि मनुष्य की बुद्धिमत्ता एवं प्रगति इस बात पर निर्भर है कि उसे दूसरों का कितना अधिक सहयोग मिला। भेड़िये ने आगरा जिले के खन्दोली गाँव के पास एक मनुष्य के बच्चे को उठा लिया और खाने के स्थान पर उसे पाल लिया। शिकारियों द्वारा उस भेड़िये को मारकर यह मनुष्य का आठ वर्षीय बालक पकड़ा गया तो उसकी बोलने, खाने, चलने आदि की सारी चेष्टायें भेड़ियों जैसी ही थीं बच्चे को लखनऊ मैडिकल कॉलेज में रखा गया, उसका नाम राजू था। उसे मनुष्य की तरह रहने, खाने की शिक्षा ८ वर्षों से दी जाती रही, पर वह अपने जंगली संस्कार नहीं छोड़ पाया। उससे प्रकट होता है कि यदि मनुष्य को दूसगें के सहयोग से वंचित रहना पड़े तो वह बन्य पशुओं से भी गया-गुजरा अशक्त-असमर्थ ही बना रहे। उसकी बुद्धिमत्ता का विकास तो सहयोग प्रवृत्ति के कारण हुआ है। परस्पर मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे की सेवा-सहायता करने से ही मनुष्य की अब तक की सारी प्रगति सम्भव हुई।

सहयोग से ही प्रगति सम्भव—मनुष्य पग-पग पर दूसरों से उपकृत होता है। जो जितना सुखी, समृद्ध एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रसन्न है, समझना चाहिए कि उसे दूसरों के उपकार का उतना ही अधिक लाभ मिला है। यह सहयोग जिसे जितना कम मिलता है, वह उतना ही निराश चिन्तित, दु:खी, असफल एवं अस्वस्थ पाया जाता है। जिसके परिवारी असहयोग रखे रहे होंगे, स्त्री का विरोध, पुत्रों की अवज्ञा, भाइयों का द्वेष चल रहा हो तो उस घर में रहते हुए क्या सुख मिलेगा? जिसके स्वजन सम्बन्धी स्नेह की वर्षा करते हैं, उसे आर्थिक या शारीरिक कठिनाई रहते हुए भी जीवन-यापन करना भार नहीं लगता। प्रेम के आनन्द का बखान करते-करते कभी थकते नहीं, शास्त्रों में प्रेम को परमेश्वर का रूप बताया गया है। यह प्रेम पारस्परिक सहयोग का शारीरिक एवं मानसिक समीपता का ही दूसरा नाम है। जो जिसे प्रेम करता है, उसे उसके उपकार एवं सहयोग की ही बात निरन्तर सोचते रहना पड़ता है और यह भाव जहाँ प्रेमी को लाभ पहुँचाता है, वहाँ प्रेम करने वाले को भी कोई दोष प्रदान नहीं करता।

जिसने इस संसार में जितना सुख पाया है, समझना चाहिए कि उसे दूसरों का उतना ही सहयोग मिला है। यह ठीक है कि उस सहयोग की अपने में पात्रता होनी चाहिए अन्यथा कुपात्रता से खिन्न होकर उदार व्यक्ति भी अनुदार और सहयोगी भी द्वेषी बन जायेंगे। फिर भी पात्रता अपने आप में अपूर्ण है। सामने वालों का सद्भाव भी उसमें समन्वित होना चाहिए। हम जितनी प्रगति कर पाते हैं, उसके मूल में किसका कितना सहयोग रहा है इस पर उदार दृष्टि से विचार करें तो यही प्रतीत होगा कि अगणित व्यक्तियों की विभिन्न प्रकार की सज्जनता, सद्भावना एवं उदारता के फलस्वरूप ही अधिक सुखी एवं सन्तुष्ट रहने का अवसर मिला।

उत्तरार्द्ध का श्रेष्ठता में सदुपयोग—जीवन का पूर्वार्द्ध प्राय: इसी प्रकार व्यतीत होता है, जिसमें व्यक्तिगत सफलताओं एवं सुखोपभोग का बाहुल्य रहता है। विद्या पढ़ने से लेकर विवाह होने और धन कमाने से लेकर सन्तान सुख तक जितने प्रकार की उपलब्धियाँ हैं, वे प्राय: इस पूर्वार्द्ध में अधिकाधिक मात्रा में मिल लेती हैं। अस्तु सहयोगियों का ऋण भी अधिकाधिक चढ़ जाता है। इन उपकारों का ऋण चुकाने के लिए जीवन का उत्तरार्द्ध निर्धारित किया गया है। अब तक लोगों का उपकार अधिक मिला और उसका बदला कम चुकाया गया था। अब उत्तरार्द्ध में यह क्रम बनाना है कि उपकार किया अधिक जाय, लिया कम जाय। हिसाब तभी तो बराबर होगा अन्यथा जीवन के अन्त तक यदि दूसरों की उदारता का लाभ ही अधिकाधिक मात्रा में लेते रहा गया, बदला न चुका तो ऋण इतना अधिक चढ़ जायेगा कि शरीर त्यागने का अवसर आने तक उसका भार असहनीय दिखाई देने लगेगा।

सृष्टि के समस्त प्राणियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट मानव-जीवन हमें ईश्वर ने इसलिए प्रदान किया है कि उसमें सन्निहित अगणित श्रेष्ठ सामर्थ्यों को इस प्रकार खर्च किया जाय कि इस संसार को अधिकाधिक सुख, शान्तिमय श्रेष्ठ एवं सुन्दर बनाने के ईश्वरीय प्रयोजन में सहायता मिल सके। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य को ही ऐसे दिव्य-जीवन का लाभ क्यों देता? अन्य प्राणियों को इन विशेषताओं से वंचित क्यों रखता? किसी की अच्छी किसी की बुरी परिस्थितियों वाला शरीर देने में यों ईश्वर का पक्षपात दीखता है, पर वस्तुस्थिति यह है कि ऐसा उसने विशेष प्रयोजन के लिए ही किया है उसने आशा रखी है और कामना की है कि मानव-प्राणी इन अतिरिक्त उपलब्धियों को सृष्टि-सन्तुलन की व्यवस्था में सहयोगी बनकर सदुपयोग करेगा, पर जब मनुष्य उस निर्धारित कर्त्तव्य की ओर से मुँह मोड़कर खड़ा हो जाता है और दूसरों से अधिकाधिक सहयोग बटोरता हुआ अपने व्यक्तिगत लाभ का उपार्जन करता रहता है, तो ईश्वर को निराशा ही होती है। उसकी दृष्टि में मनुष्य कर्त्तव्य त्यागने के पाप का अपराधी ही ठहरता है।

स्वार्थी जीवन बिताना आध्यात्मिक दृष्टि से एक अपराध है। सामाजिक दृष्टि से ऋण बटोरने और कर्जदार बनने जैसा अनैतिक है। दोनों ही दृष्टि से जो पापी-अपराधी बनता चला जाता है, वह आगे फिर मनुष्य-जन्म न पा सकेगा। उसे निकृष्ट कष्टदायक योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा। कानून तोड़ने वाले और दूसरों के साथ अन्याय बरतने वाले अपराधी न्यायालय से दण्ड पाते हैं और जेलखाने की कठोर यातनायें भुगतते हैं। इसी प्रकार वे व्यक्ति, जिन्होंने सारा जीवन स्वार्थपरता में गँवा दिया, मनुष्य-शरीर त्यागते ही कीट-पतंगों जैसी योनियों में चले जाते हैं और अभावग्रस्त कष्ट साध्य जीवन व्यतीत करते हैं। गधा, घोड़ा, ऊँट, बैल, कुत्ता आदि बनकर उनका ऋण चुकाते हैं जिनका सहयोग लिया तो बहुत कुछ था, पर बदला चुकाने से कतराते रहे थे। मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र होने से ऋण समेटने की चतुरता करने और बदला चुकाने में आनाकानी कर जाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को स्वतन्त्र हैं, पर उस कुटिलता के दण्ड से बच नहीं सकता। ईश्वर की इस सुव्यवस्थित सृष्टि में न्याय की, कर्मफल की समुचित व्यवस्था विद्यमान है। यहाँ कोई चालाक धूर्तता के आधार पर मनमानी नहीं कर सकता। आज के दुष्कर्मों का फल, कल तो उसे भोगना ही होता है। आज अपनी बारी है तो स्वार्थपरता बुद्धिमानी जैसी लगती है, पर कल जब न्याय का पलड़ा ऊपर होगा और अपने को नारकीय यन्त्रणायें सहने को विवश होना पड़ेगा तो आज जिसे चतुरता समझकर गर्व किया जाता है, कल वही पर ले सिरे की मूर्खता प्रतीत होगी।

श्रेष्ठ परम्परा का पालन करें—इस दुःखद स्थिति से मानव-प्राणी को बचाये रहने के लिए शास्त्रकारों ने मानव-जीवन का क्रम-विभाजन इस सुन्दर-ढंग से किया है कि मनुष्य जन्म का आनन्द भी परिपूर्ण मात्रा में मिलता रहे और ईश्वरीय प्रयोजन की उपेक्षा करने एवं ऋण भार से लदकर भविष्य को अन्धकारमय बनाने का अवसर भी न आये। यह व्यवस्था पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विशेष कार्यक्रमों के रूप में हमारे सामने है। चार आश्रमों में ब्रह्मचर्याश्रम और गृहस्थाश्रम जन सहयोग का लाभ लेकर अधिक सशक्त बनने और उपलब्धियों का भौतिक आनन्द लेने के लिए हैं। यद्यपि इनमें भी साथ-साथ प्रत्युपकार करते रहने का विधान है, पर उत्तरार्द्ध को तो ऋण चुकाने के परमार्थ में लगाना ही आवश्यक माना जाता है। यदि सौ वर्ष की आयु मानी जाती है तो पचास वर्ष बाद उत्तरार्द्ध प्रारम्भ हो जाता है। यद्यपि आजकल सौ वर्ष कोई बिरला ही जीता है, बहुधा सत्तर-अस्सी तक भी कम ही पहुँच पाते हैं। इस दृष्टि से तो उत्तरार्द्ध और भी जल्दी, चालीस से ही आरम्भ हो जाना चाहिए, पर चूँकि पूर्वकालीन व्यवस्था को भी अपने लाभ की दृष्टि से ठीक माना जाय तो भी पचास वर्ष के बाद आरम्भ होने वाला जीवन काल ऋण चुकाने की दृष्टि से किए जाने के लिए है। इस अवधि में वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम आते हैं। उनकी उपयोगिता एवं आवश्यकता भी वैसी ही है, जैसे जीवन के पूर्वार्द्ध में विद्या पढ़ने, विवाह करने और पैसा कमाने की।

देखा जाता है कि जो विद्या नहीं पढ़ते, गृहस्थ नहीं जमा पाते या रोटी नहीं कमा पाते उनसे लोग घृणा करते हैं और उसे असफल मानते हैं किन्तु आश्चर्य यह है कि उत्तरार्द्ध के लिए जो जीवन-क्रम निर्धारित है उसकी उपेक्षा करने वालों को घृणा एवं तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देखा जाता। होना यही चाहिए कि जिस प्रकार स्कूल जाने से कतराने वाले किशोर को हर कोई धमकाता है और रोटी न कमाने वाले प्रौढ़ की आवारागर्दी की भर्त्सना करता है, उसी प्रकार पचास वर्ष का हो जाने पर भी वानप्रस्थ ग्रहण न करने और समाज का ऋण चुकाने में तत्पर न होने का प्रमाद बरतता है उसकी भी सर्वत्र निन्दा एवं भर्त्सना की जाय। यह अवसर होते हुए भी जो ऋण नहीं चुकाता कर्ज मारकर भागने की नीयत रखता है वह अनैतिकता अपनाने वाला व्यक्ति लोगों की दृष्टि में गिरा हुआ रहता है, उसी प्रकार पचास वर्ष का होने पर भी सेवा-धर्म को अपनाने के वानप्रस्थ कर्त्तव्य को जो शिरोधार्य नहीं करता, वह लोक-निन्दा, सामूहिक घृणा एवं सामाजिक तिरस्कार का भागी होना चाहिए। अच्छा हो ऐसे लोगों को एक सामाजिक अपराधी घोषित कर उनका तिरस्कारपूर्ण बहिष्कार आरम्भ कर दिया जाय। बिरादरियों की पंचायतें किसी जातीय नियम तोड़ने वाले को जाति से बाहर कराने आदि के दण्ड दिया करती हैं। क्या ही अच्छा होता उन लोगों को भी ऐसा ही दण्ड मिलता जो गृहस्थ के संचालन भार से मुक्त होने पर भी वासना, तृष्णा की सड़ी हुई कीचड़ में कुल-बुलाने कीड़े बने रहना चाहते हैं।

जीवन का समुचित विभाजन—भारतीय धर्म में आश्रम व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जीवन को चार भागों में बहुत सोच-समझकर दूरदर्शितापूर्ण सूझबूझ के साथ विभाजित किया गया। प्रथम चौथाई जीवन यदि विद्या प्राप्ति, स्वास्थ्य संम्वर्धन, अनुभव, संचय, सद्गुणों के अनुशीलन में न लगाया जाय तो जीवन की इमारत किस पर खड़ी होगी ? नींव ही मजबूत न होगी तो दीवार का अस्तित्व कब तक रहेगा ? चौथाई आयु जीवन की नींव भरने में, अध्ययन आदि में लगाने के बाद एक चौथाई आय परिवार संस्था के संचालन में व्यतीत की जानी चाहिए ताकि संसार की भौतिक प्रगति एवं समृद्धि का व्यवस्था क्रम यथावत् चलता रहे। उपयोगी परिवार संस्था का तारतम्य न टूटे। भावी पीढ़ियों का निर्माण होता विधिवत् रहे और इन्द्रियजन्य तथा कामना जन्य भौतिक आकांक्षाएँ भी तृप्त होती रहें। यह प्रयोजन गृहस्थ से ही पूरे होते हैं। अब दान-पुण्य का नम्बर आया, जैसे ही बड़ी सन्तान गृहस्थ का बोझ सम्भालने लायक हो जाय, वैसे ही उसके ऊपर पारिवारिक उत्तरदायित्वों को धीरे-धीरे सौंपते रहना चाहिए और अपनी उँगली पत्थर के नीचे से निकालते चलना चाहिए। विश्वास हो जाय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि बड़े बच्चे ने घर सम्भाल लिया तो फिर प्राय: सारा ही समय सामाजिक ऋण चुकाने में लग जाना चाहिए। यही वानप्रस्थ का प्रयोजन है।

मनुष्य जाति की नैतिक, मानसिक, सामाजिक प्रगति की पूरी सम्भावना वानप्रस्थ आश्रम पर निर्भर है। समाज का आध्यात्मिक एवं धार्मिक विकास इसी आश्रम की सफलता एवं सुव्यवस्था पर टिका हुआ है। लोक शिक्षण के लिए अनुभवी, चरित्रवान् एवं निःस्वार्थ कार्यकर्त्ता चाहिए। वे कहाँ से मिलें ? अल्प आयु के नवयुवकों में उत्साह एवं शारीरिक चेतना तो होती है, पर अन्य कई त्रुटियाँ उनमें रहती हैं। अतृप्त इच्छाएँ उन्हें काम और लोभ की ओर खींच ले जाती हैं, फलत: कितने ही लोकसेवी नवयुवक इस फिसलन में अपना चरित्र खोते देखे गये हैं। यह कमी राजनीति के नेतृत्व में तो किसी प्रकार खप सकती हैं, पर सामाजिक एवं नैतिक क्षेत्र में सेवा-कार्य, नेतृत्व कराने वाले के लिए उसकी मौत का कारण बन जाती हैं। फिर नई उम्र के कार्यकर्त्ता पर यदि गृहस्थ की जिम्मेदारियाँ लदी होंगी तो उसे वेतन लेना पड़ेगा। वेतन-भोगी कार्यकर्त्ता अपना सम्मान खो बैठते हैं, जिसका सम्मान नहीं उसका प्रभाव भी कहाँ पड़ता है ? इसलिए नई आयु के सामाजिक कार्यकर्त्ता अपने दैनिक जीवन में थोड़ा समय निकाल कर सामाजिक कार्यों में थोड़ा योगदान तो दे सकते हैं, पर पूरा समय लगा सकना उन्हीं के लिए सम्भव होता है, जो आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हैं और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ बड़े लड़के के कन्धों पर चले जाने से अवकाश भी जिनके पास है। ऐसे लोग ही पूरे मन और पूरे श्रम के साथ सार्वजनिक प्रवृत्तियों के अभिवर्धन में जुट सकते हैं। वानप्रस्थ इसी आवश्यकता को पूर्ण करता है।

धार्मिक नेतृत्व का उत्तरदायित्व—जन समाज की सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियों को जागृत रखने के लिए जिन उज्ज्वल व्यक्तियों का नेतृत्व एवं कर्तृत्व आवश्यक है, वे प्राय: वानप्रस्थ आश्रम में से ही मिलते हैं। वे न मिलें तो सार्वजनिक एवं सामूहिक रचनात्मक प्रयत्नों का गतिशील रहना कठिन हो जाय। अवकाश, अनुभव, सद्भाव और सत्प्रयोजनों के सम्मिश्रण से वानप्रस्थ जन जागरण की महती आवश्यकता को पूर्ण करता है और प्राचीन काल में समस्त शिक्षण संस्थाओं को वानप्रस्थ लोग ही चलाते थे, कथा-प्रवचनों के माध्यम से लोक मानस को सुसन्तुलित रखते थे, रचनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन करते थे। सम्मेलन-सत्र, धर्मानुष्ठान एवं विचार गोष्ठियों की व्यवस्था करते एवं घर-घर जाकर सन्मार्ग का पथ-प्रदर्शन करते थे। जहाँ भी अनीति, अव्यवस्था एवं अविद्या को पनपते देखते वहाँ उसका विरोध करने डट जाते थे। इस प्रकार साधु-ब्राह्मणों की एक बड़ी आवश्यकता यही आश्रम पूरी करता था। समाज को तपे हुए अनुभवी और निस्वार्थ पथ-प्रदर्शक प्रदान करते थे । इस प्रकार साधु-ब्राह्मणों की एक बड़ी आवश्यकता यही आश्रम पूरी करता था । समाज को तपे हुए, अनुभवी और निस्वार्थ पथ-प्रदार्शक प्रचुर मात्रा में मिलते रहते थे । उसी दशा में उसका सबल, समृद्ध, सुसंस्कृत एवं सुविकसित रहना स्वाभाविक ही था। भारतीय समाज की संसार भर में जो श्रेष्ठता मानी जाती रही है, उसमें वानप्रस्थों को महत्तवपूर्ण योगदान रहा है। ब्राह्मणों के दो वर्ग हैं-एक जन्मजन्य दूसरे कर्मजन्य। जन्मजन्य ब्राह्मणों में समुचित संस्कार के अभाव में दोष रह सकते हैं, परं जिसने ढलती आयु में, संसार के अनुभवों से तृप्त होकर लोक-मंगल के लिए अपना जीवन समर्पित किया है, उसके फिसलने की सम्भावना कम ही रहती है। अनुभवी और क्रमबद्ध वानप्रस्थ, फिर वे किसी भी वर्ण में क्यों न जन्में हों, एक सच्चे ब्राह्मण, एक सच्चे साधु की ही आवश्यकता पूर्ण करते हैं। कर्मजन्य ब्राह्मणों की उपयोगिता और भी अधिक असंदिग्ध रहती है। ऐसे देवपुरुष जिस देश में बढ़ेंगे उसका सब प्रकार कल्याण ही कल्याण होगा।

आज की परिस्थितियों में ऐसे लोग-नेताओं की अत्यधिक आवश्यकता है। गन्दगी ज्यादा फैली हो तो सफाई करने वाले भी अधिक ही चाहिए। संक्रामक बीमारियों का प्रकोप हो रहा हो, तो चिकित्सक एवं परिचर्याकर्त्ताओं की भी आवश्यकता बहुत होगी। भयंकर अग्निकाण्ड का दावानल धधक रहा हो तो उसे बुझाने वाले स्वयं सेवक भी अधिक चाहिए। शत्रुओं की प्रबल सेना का मुकाबला करने के लिए रक्षाबल की संख्या भी अधिक ही होनी चाहिए। इन दिनों ऐसी ही परिस्थितियाँ हैं। नैतिक-सामाजिक, आर्थिक-बौद्धिक, शारीरिक-मानसिक हर दृष्टि से अपना देश पिछड़ गया है। उसे सम्भालने, सुधारने एवं उठाने के लिए सबल, समर्थ एवं प्रतिभा सम्पन्न वानप्रस्थों की जितनी अधिक आवश्यकता है उतनी और किसी की नहीं । समाज को खोखला करने में लगी हुई कुरीतियों, अन्ध-परम्पराओं, मूढ़-मान्यताओं एवं अनैतिक आकांक्षाओं से तेजस्वी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वानप्रस्थों के अतिरिक्त और कौन लड़ेगा ? असंगठित, अवसादग्रस्त, गुण-कर्म-स्वभाव की मलीनता से आक्रान्त जनता का उद्धार कौन करेगा ? अकर्मण्यता, विलासिता और भौतिकता की मूर्छा में पड़े हुए इस राष्ट्र-लक्ष्मण को संजीवन बूटी लाकर वानप्रस्थ हनुमान के बिना और कौन पुनर्जीवित करेगा। आज आड़े समय में मातृभूमि की पुकार योगी एवं वानप्रस्थों के लिए है, आगे बढ़कर आयें और अपनी जिम्मेदारियाँ सम्भालें तो कायाकल्प होते देर न लगे। आज के दुर्दिन कल ही स्वर्णिम सौभाग्य के रूप में परिणत होते हुए दृष्टिगोचर होने लगें।

सम्मिलित परिवार का स्वर्णिम सूत्र—सम्मिलित परिवारों की सुन्दर सुव्यवस्थित परम्परा तब चले जब वानप्रस्थ ग्रहण करने के लिए जन-साधारण में उत्साह पैदा हो। बड़े लड़के अपनी बहिन-भाइयों को भी अपने कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व में सम्मिलित रखें तो आज जो आपा-पूती की संकीर्णता घर करती जा रही है, व न पनपे। आज तो परिवार में जो भी कमाऊ होता जाता है, अपनी पत्नी को लेकर अलग ही बैठता है, जो कमाता है अपने और अपनी पत्नी के शौक-मौज में ही लगाता है। बहिन-भाइयों, माता-पिता आदि की चिन्ता ही नहीं करता। वह जानता है कि बूढ़ा बाप किसी तरह घर की गाड़ी धकेलता रहेगा। हम क्यों इस झंझट में पड़ें, पर जब उसे यह विदित होगा कि पिताजी अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए वानप्रस्थ लेंगे और उसे परिवार का उत्तरदायित्व सम्भालना होगा, तो वह दूसरी बात सोचेगा और लोक निन्दा से बचने के लिए उदार दृष्टिकोण अपनावेगा। यही वृत्ति अन्य लड़कों में भी पनपेगी। दूसरा लड़का बड़ा होगा तो वह भी बड़े भाई का अनुकरण करेगा और छोटे भाई-बहनों के विकास-निर्माण में हाथ बँटावेगा। इस प्रकार परिवारों में उदार-परम्परा बनी रहेगी। उन बच्चों के बच्चे भी इसी प्रकार सोचेंगे और करेंगे। आज तो बाप को भी जब बुढ़ापे तक तृष्णा-वासना से छुटकारा नहीं तो बेटे भी उसका अनुकरण क्यों न करेंगे ? वर्तमान परम्परा के अनुसार छोटे बच्चों की व्यवस्था पूरी करने तक पिता को गृहस्थ ही सम्भालते रहना पड़ता है। जब वानप्रस्थ की बात ध्यान में होगी तो कम बच्चे पैदा करने और उनकी जिम्मेदारियों से जल्दी निवृत होने की बात भी सोचेगा। बुढ़ापे में सन्तान पैदा न करेगा। यह बात मन में रहे तो समाज का अनेक दृष्टियों में हित-साधन ही होगा। परिवारों में उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता का वातावरण रहने लगेगा। बुढ़ापे तक सन्तानोत्पादन की प्रक्रिया जारी रहने पर बच्चे अशक्त उत्पन्न होते हैं और ढलती आयु के लोगों का शरीर भी ब्रह्मचर्य के अभाव से जर्जर एवं अनेक रोगों से ग्रसित बना रहता है। यदि ब्रह्मचर्य मिश्रित वानप्रस्थ का उपक्रम फिर पूर्ववत् चल पड़े तो ब्रह्मचर्य से होने वाले लाभों का प्रतिफल स्त्रियों, पुरुषों बच्चों सभी को मिले और दुर्बलता एवं रुग्णता का वातावरण सबलता एवं सार्थकता में परिणत होने लगे।

आज की परिस्थिति का आदर्श—संन्यास-वानप्रस्थ परम्परा पहले घर छोड़कर वन में रहने की भले ही रही हो, पर आज की परिस्थितियों में वैसी ही आवश्यकता नहीं रही। न तो अब प्राचीनकाल जैसे वन रहे न उनमें ऐसे कन्द-मूल फल होते हैं, जिनसे हर ऋतु में आनन्दपूर्वक गुजारा हो सके। जंगलों में रहने वाले साधु लोग भी अन्नाहार ही करते हैं और वह भी उन्हें गृहस्थों से ही जुटाना पड़ता है। आज लोगों की कमाईशुद्ध नहीं रही। अनीतिपूर्वक कमाया हुआ अन्न खाकर कोई व्यक्ति अपनी प्रवृत्तियाँ सावधान नहीं रख सकता। भिक्षा जीवी सन्त-महात्माओं को आलस्य एवं अवसाद घेरे रहता है, मन में कुमार्ग दौड़ता है, भजन में मन नहीं लगता क्योंकि जिस दान से उनका रक्त और मन बनता है, वह सात्विक नहीं होता। अन्यावोपार्जित धन जहाँ जाता है, वहीं गड़बड़ी फैलाता है। इसलिए अब न साधु को, न वानप्रस्थ को, किसी को भी जहाँ तक सम्भव हो भिक्षा-जीवी नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से गुजारे का प्रबन्ध अपने घर से ही रखना चाहिए। जिन्हें आजीविका की हानि से पूर्ण स्वावलम्बन प्राप्त नहीं है, आधा समय उपार्जन के लिए और आधा समय लोक सेवा के लिए लगाकर इस व्रत का पालन कर सकते हैं। रोटी, कपड़े का प्रबन्ध घर में रखना चाहिए। इसके बदले दोपहर तक आधा दिन परिवार की देखभाल की व्यवस्था में लगाना चाहिए। वैसे भी जिस घर में रहना होता है, उसकी व्यवस्था की देखभाल करना, मार्ग-दर्शन करना, परामर्श देना और सम्भालना-सुधारना मानवोचित-कर्त्तव्य है। जब दूसरों के सुधारने एवं सेवा करने कार्यक्रम बनाया है तो अपने घर वालों को उस सेवा-लाभ से विमुख क्यों रखा जाय ?घर छोड़ने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। इसी घर में रहना चाहिए। हाँ मोह-ममता, के बन्धन तोड़ देने चाहिए। अपने घर वालों को भी जनता मात्र मानकर यथोचित सेवा करते रहना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह मोह-बन्धन शिथिल करने इसलिए आवश्यक हैं कि आत्मीयता की छोटी सीमा का बन्धन तोड़कर व्यापक क्षेत्र में विस्तृत हो सके और सेवा धर्म पूरे मनोयोग के साथ पालन किया जाता रहे । अगले जन्मों की उत्तम गति भी मोह बन्धन तोड़ने से ही होती है, अन्यथा जीव लौटकर फिर घर के ही समीप अपनी वासना के द्वारा खिंचा चला आता है । मोहग्रस्त की मुक्ति नहीं हो सकती। सीमित दायरे मे अपने को बाँधे रखने वाला असीमितता का, आध्यात्मिकता का आनन्द नहीं ले सकता। अतएव वानप्रस्थ को ममता-त्याग के लिए कहा गया है । घर की एक कोठरी अलग से अपने लिए ले लेनी चाहिए या खेत, बगीचे में एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगना चाहिए । अकेला रहना, अपनी कोठरी को ही अपना एकान्त तपोवन मान लेना वानप्रस्थ आश्रम के उपयुक्त है । पत्नी का यदि बच्चों में लगाव हो तो उसका इन्हीं के साथ रहना उचित है, पर यदि वह भी आत्म-कल्याण के लिए लोकसेवा का व्रत धारण करे तो दो साथी साधुओं की तरह वह भी पति के साथ रह सकती है। पत्नी को त्यागने की आवश्यकता नहीं है, पर शरीर-आसक्ति को त्याग देना चाहिए । उसे स्वामी नहीं वरन् छोटा भाई मानना चाहिए ।

वानप्रस्थ संस्कार विवेचन

जन्म और मरण की अवधि में दो बार संचय काल और दो बार उपयोग काल आता है । बालकपन और बुढ़ापा संचय काल हैं । और यौवन तथा परलोक—भोग उपयोग काल हैं। संचय की अवधि में जो इकट्ठा कर लिया जाता है, उपभोग-काल में उसी का आनन्द उपलब्ध होता है । बचपन में विद्याध्ययन एवं व्यायाम आदि के द्वारा जो शारीरिक, मानसिक बल उपार्जित कर लिया जाता है उसी का सत् परिणाम यौवन काल में वैभव एवं आनन्द के रूप में उपभोग करने को मिलता है।

जिन्होंने बचपन में परिश्रमपूर्वक पढ़ाई जारी रखी, उच्च शिक्षा प्राप्त की, अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण हुए कला-कौशल सीखी, वे अपने उस अध्ययन-तप का लाभ युवावास्था में उठाते हैं । उनकी बौद्धिक क्षमता बढ़ी-चढ़ी होने के कारण अच्छा व्यवसाय, अच्छी नौकरी, अच्छा काम मिल जाता है । अच्छी आमदनी होती है । प्रतिष्ठा का पद मिलता है इन उपलब्धियों के फलस्वरूप वे शोक-मौज के, ऐश-आराम के, गौरव-सम्मान के अनेकानेक साधन जुटा लेते हैं । स्वयं मौज में रहते हैं, अपने घर वालों को मौज में रखते हैं और दूसरों का भी बहुत कुछ भला कर देते हैं ।

इसी प्रकार जिन्होंने व्यायाम, ब्रह्मचर्य, आहार-विहार के संयम द्वारा अपना स्वास्थ्य बना लिया वे सदा निरोग रहते हैं, बहुत दिन जीते हैं, परिपुष्ट रहने से यौवन में इन्द्रिय सुख भी भोगते हैं । अच्छी नींद सोते और हँसी-खुशी के दिन बिताते हैं । पुष्ट शरीर से काम भी खूब होता है और विरोधी भी डरते रहते हैं । जो खाते हैं, पच जाता है । बीमारियों की व्यथायें नहीं सहनी पड़ती, सन्तानें स्वस्थ होती हैं और दवा-दारू का खर्च नहीं करना पड़ता । तात्पर्य यह है कि जिसने बचपन में स्वस्थ बनने की तपश्चर्या कर ली, वह उसका लाभ जवानी में उठाता है । बचपन और कुछ नहीं, यौवन को जैसा भी कुछ बनाना हो, उसकी तैयारी का समय है । किसी को डाक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर, अफसर, पहलवान आदि जो कुछ महत्त्व प्राप्त करना हो उसकी तैयारी का तप बचपन में ही करना होता है । जो लोग उस तैयारी की अवधि आलस्य, प्रमाद और उच्छृंखलता में बिता देते हैं, उन्हें उसका दुष्परिणाम युवावस्था में भोगना पड़ता है ।

जिन लड़कों ने बचपन में पढ़ने से जी चुराया है, वे बड़े होने पर बिना पढ़े-गंवार बने रहे और आजीविका, पद तथा सामाजिक सम्मान की दृष्टि से गये-गुजरे स्तर पर पड़े रहने के लिए विवश हुए, कोई अच्छा काम न पा सके, उच्चस्तरीय लोगों के बीच सिर उठाकर बैठ सकने की स्थिति न रही । इसी प्रकार जिन्होंने व्यायाम न किया, आहार-विहार, में असंयम बरता, ब्रह्मचर्य तोड़ा उनको जवानी आने से पूर्व ही बुढ़ापे ने धर दबाया । तरह-तरह की बीमारियों के शिकार बने रहे । देह से कुछ महत्त्वपूर्ण काम न हो सका । दवा-दारू में पैसा उड़ता रहा, देह कष्ट पाती रही, इन्द्रिय सुख भोगने का सौभाग्य ही न मिला, सन्तानें दुबली हुईं, अल्प अवधि में ही काल-कवलित हो गईं, जब तक जिए तब तक भी दूसरे उपहास, उपेक्षा अथवा तिरस्कार की दृष्टि से देखते और घृणा भरा व्यवहार करते रहे । बलवान शत्रुओं ने सताने में कमी न छोड़ी । अपनी दुर्बलता अपने को ही डराती एवं परेशान करती रही । बचपन में शरीर बल संचय के कर्त्तव्य की जो उपेक्षा की गई थी उसका दण्ड यौवन में भुगता ही जाना था, भुगतना भी पड़ा । संचयकाल की बर्बादी उपभोग काल में विपत्ति बनकर सामने आती है, यह एक सुनिश्चित तथ्य है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन्हें यौवन काल समुचित स्थिति मे व्यतीत करने की महत्वाकांक्षा हो, उन्हें बचपन एवं किशोर अवस्था में उसके लिए आवश्यक तप करना ही होता है । इसके बिना और कोई रास्ता युवावस्था को शानदार बनाने का है नहीं । अपवाद की बात दूसरी है, छप्पर फाड़कर किसी को दौलत मिले तो यह उसका पूर्व संचित भाग्य ही कहा जायेगा, पर आमतौर से ऐसा होता नहीं, होता यही है कि जो किया जाता है, उसका फल मिलता है । इसलिए क्या अभिभावक, क्या आध्यापक, क्या शुभचिन्तक, क्या अच्छे मित्र सभी किशोर और नवयुवकों को यही नेक सलाह देते हैं कि वे पूरी मेहनत, एकाग्रता और दिलचस्पी से अपने बौद्धिक एवं शारीरिक विकास में लगे रहें । जो लड़के इस सलाह को मान लेते हैं वे आगे चलकर सुख पाते हैं । जो इन परामर्शों पर कान नहीं धरते उन्हें समय आने पर उस उपेक्षा का बेतरह पश्चाताप करना पड़ता है ।

दृश्य यौवन की तरह एक अदृश्य यौवन भी है । स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की शक्ति एवं महत्ता कहीं अधिक होती है । स्थूल शरीर की तुलना अधिक सामर्थ्यवान है । शरीर बल की तुलना में बुद्धिबल का उपयोग अधिक है । ठीक उसी प्रकार मरणेत्तर का महत्त्व इस दृश्य यौवन की अपेक्षा हजारों-लाखों गुना अधिक है । दीखने वाली जवानी दस—बीस वर्ष ठहरती है, पर मरने के बाद स्वर्ग-नरक की अवधि उसकी तुलना में बहुत अधिक लम्बी होती है । उसमें मिलने वाले सुख एवं दुःखों का स्तर भी जवानी में मिलने वाली थोड़ी-सी-सुविधा-असुविधाओं की तुलना में कहीं अधिक गहरा है । स्वर्ग में जो आनन्द है, वह सांसारिक पदार्थों में कहाँ ? नरक में जो व्यथा-वेदना है, स्थूल जगत उसका हजारवाँ अंश भी नहीं । यहाँ तो सुख-दुःख बटाने वाले भी कई मिल जाते हैं, पर वहाँ तो सब कुछ अकेले ही सहना पड़ता है । यौवन उसे कहते हैं जिसमें शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हों । सांसारिक जीवन में हमारी अन्तःचेतना बहुत करके प्रसुप्त स्थिति में पड़ी रहती है । इन्द्रिय-लिप्सा एवं सांसारिक आकर्षण एवं मानसिक भ्रम-जंजाल उसे दबाये बैठे रहते हैं, पर मरणेत्तर काल में वे सभी हट जाते हैं और अन्तःचेतना बहुत अधने प्रौढ़ रूप में विकसित होती है । तब उसके सुख-दुःख की अनुभूतियाँ भी तीव्र हो जाती हैं ।

स्वर्ग-नरक के सुख-दुःखों का स्तर इसलिए इस संसार की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ा होता है । नये जन्म की सारी भूमिका भी इसी मरणेत्तर यौवन में बन जाती है । जिस प्रकार युवावस्था में जैसा होता है वैसा ही सन्तान का भी स्वास्थ्य होता है । ठीक इसी प्रकार प्राणी को मरणेत्तर काल में जैसी संवेदनायें भुगतनी पड़ती हैं, ठीक उसी स्तर का पुनर्जन्म भी होता है । नरक भोगने वाले प्राणी संसार में उतरते हैं तो उन्हें नीच योनियों में कष्टकारक परिस्थितियों में जन्मना पड़ता है और जो स्वर्ग से आते हैं वे अपनी आत्मिक स्थिति के अनुरूप उत्कृष्ट स्तर के वातावरण में जन्मते और महत्त्वपूर्ण जीवन-यापन करते हैं ।

उच्चस्तरीय सुख के लिए उच्चस्तरीय तप

इस मरणेत्तर जीवन को सुखी एवं समुन्नत स्तर का बनाने के लिए बुढ़ापे में तैयारी करनी पड़ती है । जिस प्रकार बचपन की सीमा रेखा से यौवन जुड़ा हुआ है । उसी प्रकार बुढ़ापे की सीमा रेखा से मरणेत्तर यौवन जुड़ा है । इसलिए उस सूक्ष्म, अदृश्य किन्तु महान यौवन की तैयारी भी ठीक इन्हीं दिनों करनी पड़ती है । जिन्होंने अपनी ढलती आयु का ठीक उपयोग कर लिया, उन्होंने मरणेत्तर यौवन को सुव्यवस्थित बनाने की योजना बना ली, किन्तु जो उस महत्त्वपूर्ण अवधि को आलस्य, प्रमोद और माया मोह में गँवाते रहे उनका महान मरणेत्तर यौवन उसी प्रकार अन्धकारमय बनता है जैसा कि उच्छृंखल और आवारा बच्चों का सांसारिक जीवन अस्त-व्यस्त रहता है । कितने ही बेवकूफ लड़के अपनी ढीठता में इतने ग्रसित होते हैं कि भावी जीवन के बिगड़ने की बात में उन्हें कोई सार दिखाई नहीं देता । उसी तरह कितने ही बूढ़े ऐसे अदूरदर्शी होते हैं कि वे अजर-अमर बने रहने पर विश्वास करते हैं और मरणेतर यौवन की समस्याओं को फूटी आँख से भी नहीं सोचना चाहते । उस सम्बन्ध में सोचने की उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती । नाती-पोतों की ममता उन्हें छोड़ती ही नहीं । जो कमाना, जो करना, जो सोचना सो सब बेटे-पोतों के लिए ही । इस प्रकार के मूढ़ताग्रस्त बुड्ढे फिर चाहे वे पढ़े-लिखे हों या अनपढ़ सच्चे अर्थों में मूढ़मति कहे जायेंगे । आज हमारा समाज उच्छृंखल लड़कों और अदूरदर्शी मन्द मति बूढ़ों से भरा पड़ा है । फलस्वरूप हम प्राचीन गौरव गरिमा से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दिन-दिन गिरते हुए पतन के गहरे गर्त में गिरते चले जा रहे हैं ।

इस स्थिति को बदलना ही होगा । नव निर्माण की, युग परिवर्तन की समस्या इसी प्रकार हल होगी । बालकों में अनुशासन संयम, परिश्रम एवं शिष्टाचार की भावनाऐं विकसित करके उन्हें सांसारिक प्रगति में योगदान कर सकने योग्य बनाना आवश्यक है । उसी प्रकार वयोवृद्धों को कहना होगा कि वे मरणेत्तर जीवन को समुन्नत बनाने की तैयारी में लग जायें । यह तैयारी दूहरे लाभ की है । उनका निज का परलोक स्वर्गीय सुख-शान्ति से परिपूर्ण होगा, पुर्नजन्म की महती सम्भावना रहेगी एवं मुक्ति का आनन्द मिलेगा । साथ ही इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए जो साधना करनी पड़ेगी, वह संसार में सर्वतोमुखी सद्भावना उत्पन्न करने की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी । वे करेंगे तो अपने आत्म-कल्याण का कार्य पर उसके फलस्वरूप विश्व शान्ति में जो योगदान मिलेगा वह लोक-कल्याण की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जायेगा । इसलिए दूरदर्शी महर्षियों ने भारतीय जीवन के अन्तिम अध्याय को जिस प्रकार व्यतीत करने की परम्परा बनाई है, उसमें दुहरा लाभ है । वृद्ध पुरुष अपना परलोक तो सुधारते ही हैं साथ ही संसार की भी इतनी बड़ी सेवा करते हैं कि इस लोक में स्वर्ग के अवतरण का मनोरम दृश्य दिखाई देने लगता है। जन साधारण को उनके इस तप से गुलाब या चन्दन की सुगन्धि की तरह अनायास ही महत्त्वपूर्ण लाभ मिलता है।

ढलती उम्र का तकाजा है—वानप्रस्थ—परिवारिक जिम्मेदारयाँ जैसे ही हलकी होने लगें, घर को चलाने के लिए बड़े बच्चे समर्थ होने लगे और अपने छोटे भाई-बहिनों की देखभाल करने लगें, तब वयोवृद्ध व्यक्तियों का एक मात्र कर्त्तव्य यही रह जाता है कि वे पारिवारिक जिम्मेदारियों से धीर-धीरे हाथ खींचें और क्रमशः वह भार समर्थ लड़कों पर बढ़ाते चलें । ममता को परिवार की ओर शिथिल कर समाज की ओर विकसित करते चलें । सारा समय घर के लोगों के लिए ही खर्च न कर दें वरन् उसका कुछ अंश क्रमशः अधिक बढ़ाते हुए समाज के लिए समर्पित करते चलें ।

घर छोड़कर एकान्त कुटी में जा बैठना और भजन के नाम पर निष्क्रिय जीवन बिताने लगना आजकल लोगों ने भक्ति या वैराग्य का रूप मान लिया है । इसी दृष्टि से कई आध्यात्मवाादी व्यक्ति तीर्थों में, नदियों के किनारे एकान्त कोठरियों में जा बैठने को ही बड़ा आध्यात्मवादी व्यक्ति तीर्थों में, नदियों के किनारे एकान्त कोठरियों में जा बैठने को ही बड़ा आध्यात्मिक पुरुषार्थ मान बैठते हैं, यह धारणा अज्ञानान्धकार युग के निराशावादी और अकर्मण्य लोगों ने फैलाई जिसके फलस्वरूप आज ८० लाख व्यक्ति धर्म के नाम पर निष्क्रिय, अनुपयोगी जीवन बिताते हुए भिक्षुक बने हुए जनता पर भार बनकर जी रहे हैं । यह विडम्बना न अध्यात्म है, न धर्म, न योग है, न वैराग्य । न उससे व्यक्ति का भला होता है और न समाज का । प्राचीनकाल का वैराग्य रचनात्मक वैराग्य था, जिसमें व्यक्ति के कल्याण तथा समाज के उत्कर्ष का उभय पक्षीय कार्यक्रम समान रूप से सन्निहित थे । बुढ़ापे को वानप्रस्थ के लिए समर्पित करने का जो शास्त्रीय विधान है । उसका स्वरूप यह है कि (१) उपासना, (२) स्वाध्याय, (३) संयम, (४) सेवा । इन चार कार्यक्रमों में अपनी शक्तियों को सुव्यवस्थित रीति से संलग्न किया जाय । वृद्धों को उचित है कि घर-परिवार से अपना समय और जिस अनुपात में बचावें, उसे असी अनुपात से इन चार कार्यों में संलग्न करते चलें ।

वानप्रस्थ का अर्थ घर छोड़कर किसी दूर देश में चले जाना कदापि नहीं । घर से सम्पर्क शिथिल हो, पारिवारिक ममता घटे, इस दृष्टि से घर में एक अलग कमरा लेकर रहने लगना और यह सोचना कि मैं छात्रावास निरीक्षक की तरह इस परिवार का मार्गदर्शक तो हूँ, पर इनसे बंधा हुआ नहीं, वरन् मेरा जीवन समाज की सम्पति है, वास्तविक वानप्रस्थ है । जहाँ तक सम्भव हो, परिवार की स्थिति यदि उपयुक्त है तो निर्वाह खर्च घर से ही लेना चाहिए । जिनकी पेन्शन है या जिनकी पूर्व संचित सम्पति, कृषि आदि है वे उसका उपयोग आने निर्वाह में भी करे तो यह न्यायोचित है । यह जरूरी नहीं कि अपनी उपार्जित अब तक की सारी सम्पदा परिवार को ही दे दी जाय और खुद भिक्षुक बन कर दूसरों की रोटी पर जिया जाये । आजकल दूसरों का धान्य कुधान्य ही है ! उसे खाने से आत्मिक विकास में सहायता नहीं मिलती वरन् बाधा ही पड़ती है । इसलिए सेवा कार्य में संलग्न स्थिति में कहीं अवसर आने पर किसी के यहाँ रोटी खाली यह बात दूसरी है, साधारणतया गुजारा अपने बलबूते पर ही करना चाहिए । यदि परिवारिक स्थिति ठीक न हो तो कुछ समय परिश्रम करके गुजारे की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवस्था निकाल लें और बाकी समय अपने आध्यात्मिक कार्यक्रमों में लगावें ।

कार्य पद्धति की रूपरेखा—किसी जमाने में वानप्रस्थ लोग वनों में रहते थे । उस जमाने में बनों में कन्दमूल फल इतने अधिक थे कि जीवन निर्वाह की व्यवस्था गाँव, नगरों की अपेक्षा कहीं अधिक सरलता से हो जाती थी । अब कहीं ऐसा जंगल नहीं रहा, इसलिए निर्वाह की सुविधा गाँव-नगरों के माध्यम से ही जुटानी पड़ती है । अतएव निवास का प्रबन्ध भी वैसा ही करना उचित है । प्राचीनकाल में वानप्रस्थी पीत वस्त्र धारण करके ऋषियों के गुरुकुलों में छात्रों की तरह ही स्वाध्याय करते थे । बच्चों की पढ़ाई में और बूढ़ों की पढ़ाई में अन्तर तो होता है, पर रीति एक ही है । वानप्रस्थों को अपना मानसिक विकास करने के लिए स्वाध्याय की अनिवार्य आवश्यकता रहती है । प्राचीनकाल में वानप्रस्थ संयम की दृष्टि से ब्रह्मचर्य और आहार के सम्बन्ध में पूरी कड़ाई बरतते थे । आज की परिस्थिति में इतनी ढील रखी जा सकती है कि इन्द्रियों का संयम अधिकाधिक सावधानी से किया जाय, पर ऐसा कोई व्रत न लिया जाय जो टूट जाय तो आत्मग्लानि में जलना पड़े । उपासना का द्वार गृहस्थ और विरक्त सबके लिए समान रूप से खुला है । गृहस्थी की उपासना बहुत थोड़ी चल पाती है और अनियमित भी हो जाती है, वानप्रस्थ इस सम्बन्ध में अधिक तत्परता बरतें । उनकी साधना संकल्पपूर्वक, नियमित एवं व्यवस्थित चलनी चाहिए । समय भी अपेक्षाकृत अधिक लगाना चाहिए । चौथा काम सेवा का है । वयोवृद्ध वानप्रस्थों को जनमानस का स्तर ऊँचा उठाने, जनता में सद्भावना एवं सत्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने के लिए सामाजिक परिस्थतियों के अनुरूप रचनात्मक कार्यक्रम बनाने चाहिए और उन्हें पूरा करने के लिए उसी उत्साह से लगा रहना चाहिए जैसे कि गृहस्थ में धन उपार्जन के लिए तत्परता बरती जाती है । वानप्रस्थ का प्रतीक पीत वस्त्र है । सारे वस्त्र पीले न हों तो एक दुपट्टा या रूमाल पीले रंग का अपने पास एक धार्मिक बर्दी की तरह रखा जा सकता है । उपर्युक्त क्रम में यदि अपना जीवन क्रम ढाल लिया जाय तो समझना चाहिए कि वानप्रस्थ की तैयारी एवं व्यवस्था पूर्ण हो गई ।

उपर्युक्त प्रकार की सुविधा जो जुटा सकते हैं, उन्हें पचास वर्ष की आयु के बाद भी वानप्रस्थ ले लेना चाहिए । जिनके पास पहिले से ही पारिवारिक गुजारे की व्यवस्था बनाने के लिए पैतृक सम्पति मौजूद है, या जिनके बाल-बच्चे हैं ही नहीं वे किसी भी आयु में वानप्रस्थ ले सकते हैं । उन्हें एक ही बात का ध्यान रखना होगा कि वानप्रस्थ के उपरान्त सन्तानोत्पादन न करें ।

आश्रम वानप्रस्थ संस्कार भारतीय धर्म और संस्कृति का प्राण है । जीवन को ठीक प्रकार जीने की समस्या उसी से हल होती है । युवावस्था के कुसंस्कारों का शमन एवं प्रायश्चित इसी साधना द्वारा होता है । जिस देश, धर्म जाति तथा समाज में उत्पन्न हुए हैं, उनकी सेवा करने का, ऋण-मुक्त होने का अवसर भी इसी स्थिति में मिलता है । इसलिए जिन भी नर-नारियों की स्थिति इसके लिए उपयुक्त हो उन्हें वानप्रस्थ लेना चाहिए । एक प्रतिज्ञा बन्धन में बंध जाने पर व्यक्ति अपने जीवन क्रम को तदनुरूप ढालने में अधिक सफल होता है । बिना संस्कार कराये मनोभूमि पर वैसी छाप गहराई तक नहीं पड़ती । इसलिए कदम कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे हटते रहते हैं । विवाह न होने तक प्रेमिका का सहचरत्व सन्दिग्ध रहता है, पर जब विवाह हो गया तो सब कुछ स्थाई एवं सुनिश्चित हो जाता है । संस्कार के बिना पारमार्थिक भावनाओं का उफान कभी शिथिल या समाप्त भी हो सकता है, पर यदि विधिवत् संस्कार कराया गया तो अन्तःप्रेरणा तथा लोक-लज्जा दोनों ही निर्धारित गति-विधि अपनाये रहने की प्रेरणा देती रहेंगी । इसलिए शास्त्र मर्यादा के अनुरूप जिन्हें सुविधा हो वे विधिवत् संस्कार करा लें । जिन्हें सुविधा न हो वे बिना संस्कार के भी उपर्युक्त प्रकार की रीति-नीति अपनाने के लिए यथा सम्भव प्रयत्न करतें रहें ।

सुसंस्कार का सृजन—वृद्धावस्था में जो संस्कार जमते हैं वे ही मरणेत्तर जीवन में साथ जाते हैं, इसलिए इस अवधि में उत्कृष्ट विचारों को मस्तिष्क में भरे रहने और उत्कृष्ट गतिविधियाँ अपनाये रहने का प्रयत्न करना चाहिए । विचार और कर्म दोनों के सम्मिलन से ही संस्कार बनते हैं और यह संस्कार ही प्राणी के साथ जाते हैं । विचारों की उत्कृष्टता अर्जित करने के लिए शास्त्रों का स्वाध्याय नितान्त आवश्यक है । इस अध्ययन की पुष्टि तब होती है, जब उसे दूसरों को भी सुनाया जाय । जिस प्रकार पढ़ने और लिखने की दोनों क्रियायें मिलने पर पढ़ाई का पूरा क्रम बनता है, केवल पढ़ते ही रहें लिखें नहीं तो साक्षरता अधूरी रहेगी । इसी प्रकार स्वाध्याय तो करें पर उसे किसी को सुनावें नहीं तो वह अध्ययन भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ठीक तरह हृदयंगम नहीं हो सकेगा । ज्ञान अर्जन और ज्ञान दान दोनों ही वानप्रस्थी के आवश्यक कर्त्तव्य हैं । उपासना भी उसी प्रकार उभय पक्षीय है । भगवान का भजन, ध्यान, पूजन, जप, कीर्तन एक पक्ष है, दूसरा पक्ष विश्व मानव के, विराट् ब्रह्म के इस मूर्तिमान स्वरूप संसार की रचनात्मक सेवा करने से, विचार और कार्य का समन्वय होने से भजन में समग्रता आती है । जो केवल माला फेरते हैं, सेवा से कतराते हैं, उनका भजन वैसा ही है जैसा कि रोटी तो खाना पर पानी न पीना । आहार-विहार का संयम शारीरिक, मानसिक स्वस्थता की दृष्टि से आवश्यक है । इन्द्रिय निग्रह की तपश्चर्या से मनुष्य की भावनात्मक प्रवृतियों का मोड़ वासना, तृष्णा से हटकर परमार्थ प्रयोजनों की ओर प्रवाहित होता है । यह सारी विधि-व्यवस्था ऐसी है जिससे वयोवृद्ध व्यक्ति अपनी अन्तःचेतना को उस मार्ग पर विकसित करते हैं जिस पर चलते हुए मरणेत्तर यौवन में अक्षय सुख-शान्ति को प्राप्त कर सकना सरल हो जाता है ।

लोक शिक्षण की आवश्यकता

इस गतिविधि के अपनाने से समाज की भी भारी सेवा होती है । प्राचीन काल में लोक निर्माण की सारी गतिविधियां एवं प्रवृत्तियों के संचालन का उतरदायित्व साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थों पर ही था । वे अपनी सारी शक्तियाँ परमार्थ भावना से प्रेरित होकर जन साधारण को सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त किए रहने में लगाये रहते थे । फलसवरूप चारों ओर धर्म, कर्त्तव्य, सदाचार का वातावरण ही बना रहता था । वयोवृद्ध, अनुभवी, परमार्थ परायण लोक सेवियों का प्रभाव जन-साधारण पर स्वभावतः बहुत गहरा पड़ता है । टिकाऊ भी होता है । ऐसे लोग जन नेतृत्व करने के लिए जब धर्मतन्त्र का उचित उपयोग करते थे तो सारे समाज में सत्प्रवृत्तियों के लिए उत्साह उमड़ पड़ता था । शिक्षा, स्वास्थ्य, सदाचार, न्याय, विवेक, वैभव, शासन, सुरक्षा, व्यवस्था आदि सभी क्षेत्रों में यह वयोवृद्ध लोग ही नेतृत्व करते थे । इतने अधिक अनुभवी और धर्म परायण व्यक्तियों की निःशुल्क सेवा जिस देश या समाज को उपलब्ध होती हो उसको संसार का मुकटमणि होना ही चाहिए । प्राचीन काल में ऐसी ही स्थिति थी । आज वानप्रस्थ की परम्परा नष्ट हुई, बूढ़े लोगों को लोभ, मोह के बन्धनों में ही ग्रसित रहना प्रिय लगा तो फिर देश का पतन अवश्यंभावी था, हुआ भी, हो भी रहा है ।

यह पुण्य परम्परा पुनः सजीव हो

प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि समाज में पूर्वकाल की भाँति यह प्रथा प्रचलित हो कि हर ढलती आयु का व्यक्ति वानप्रस्थ लेकर पारमार्थिक जीवन जिए और समाज द्वारा विविध-विध प्राप्त हुई सुख-सुविधाओं का ऋण वृद्धावस्था में समाज सेवा का व्रत लेकर चुकाये । अपना परलोक सुधारे, जीवन सार्थक करे और संसार को सुरम्य बनाने में समुचित योगदान करे ।

मूल प्रयोजन समझा जाय

वानप्रस्थ का मूल प्रयोजन अपनी आत्मीयता एवं ममता को छोटे से परिवार तक सीमित न रखकर विश्व-मानव तक विस्तृत एवं विकसित कर देना है । आत्मोन्नति इसी को तो कहते हैं । आत्मा तो सीढ़ियों पर चढ़ती है और न उसकी धन, वजन,पद आदि की दृष्टि से उन्नति होती है । जितने छोटे दायरे में पहले अपनेपन का भाव सीमित था, वह यदि बढ़ता है, विस्तृत होता है, अनेकों परिवार अपने ही परिवार दीखते हैं और अनेकों व्यक्ति अपने ही कुटुम्बी लगते हैं, तो समझना चाहिए कि आत्मा की, उसके दृष्टिकोण एवं सद्भाव की वृद्धि हुई है । यही प्रगति आत्मा को परमात्मा एवं नर को नारायण बनाती है । जब तक मनुष्य अपने शरीर एवं परवार को ही अपना मानेगा तथा अन्य शरीरों के प्रति परायेपन का भाव रखेगा तब तक बन्धनों में बँधा हुआ ही कहा जायेगा । स्वार्थपरता के बन्धन जैसे-जैसे ढीले होते जाते हैं, परमार्थ में स्वार्थ दिखाई देता है, बिराने, अपने जैसे लगते हैं और अपनों के प्रति जो ममता होती है, वह विस्तृत होकर सर्वसाधारण के लिए व्यापक हो जाती है । तब यह समझा जाता है कि आत्मा अपनी लघुता छोड़कर महान् बनने के लिए अणु से विभु और आत्मा से परमात्मा बनने के लिए अग्रसर हो रही है । भजन करने का उद्देश्य इसी स्थिति को प्राप्त करने का मनोवैज्ञानिक व्यायाम करना है । यह लघुता जैसे-जैसे महानता में, स्वार्थपरता "वसुधैव कुटुम्बकम्" स्तर में विकसित होती जाती है, वैसे ही वैसे ईश्वर अपने निकट आता जाता है । जिस दिन सबमें अपनी ही आत्मा प्रकाशवान् दिखाई पड़े तो कहते हैं कि शारीरिक साक्षात्कार हो गया । इसी प्रकार यदि अपनेपन का भाव अन्य शरीर रूपी दर्पणों में दीख पड़े तो समझना चाहिए आत्म-साक्षात्कार होने लगा । स्वप्न में किसी देवता की प्रतिमा दीख पड़ना या जाग्रत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवस्था में ध्यान, एकाग्रता से कोई उपासना प्रतीक चलते-फिरते नजर आ जाना, यह तो अपनी कल्पना की सघनता अथवा भावना की एकग्रता का छोटा-सा चमत्कार मात्र है । ऐसे भाव दर्शन तो उन प्रियजनों के भी होते रहते हैं जिनके प्रति अपना आकर्षण अधिक होता है । इनका अधिक मूल्य या महत्त्व नहीं । इस प्रकार का अनुभव यदि किसी को होने लगे तो उससे यह मान्यता न बना लेनी चाहिए कि हमें ईश्वर-दर्शन हो गये या भगवान की अनुकम्पा प्राप्त हो गई । वास्तविक आत्म-साक्षात्कार तो प्राणिमात्र में ईश्वर की सत्ता समाई हुई देखकर, उनके प्रति सद्व्यवहार करने की भावना का उदय होने को ही कहते हैं । कल्याण तो उसी स्थिति में पहुँचने वाले का ही होता है ।

योगाभ्यास एवं तपश्चर्या

वानप्रस्थ में इसी आत्म-विस्तार का योगाभ्यास करना पड़ता है । यह सब कहने-सुनने में तो सरल है, पर करने में कठिन है । जब तक कोई मान्यता व्यवहार रूप में न उतरे तब तक मान्यता का कोई वास्तविक मूल्य नहीं होता है । सर्वव्यापी परमेश्वर की प्रत्यक्ष आराधना, उपासना, सेवा-धर्म अपनाये बिना नहीं हो सकती । इसलिए वानप्रस्थ में नर-नारायण की सेवा के लिए विस्तृत कार्यक्रम बनाना पड़ता है और अपने अधिकांश समय, श्रम, धन एवं मनोयोग इसी प्रयोजन के लिए समर्पित करने होते हैं । यह कर्म-पद्धति विशुद्ध रूप से योग साधना एवं तपश्चर्या है । धूप में या पानी में खड़े रहने की अपेक्षा जन-सेवा की साधना अधिक उपयुक्त है क्योंकि उससे दूसरों को लाभ पहुँचता है और अपने को तत्काल सन्तोष मिलता है । धूप में खड़े रहने से उन दोनों में से एक भी प्रयोजन नहीं सधता, न किसी को लाभ पहुँचता है और न अपने अन्तःकरण में कुछ श्रेष्ठ कार्य करने जैसा सन्तोष ही अनुभव होता है ।

ईश्वर उपासना एवं भजन

वह भजन भी करता है और भक्ति भी । प्रातः सायं श्रद्धापूर्वक प्रभु का नाम स्मरण करता है, गायत्री मन्त्र जपता है, हृदय खोलकर प्रभु के सामने रखता है, आध्यात्मिक दृष्टिकोण एवं गुण-कर्म-स्वभाव में उत्कृष्टता बढ़ाने की प्रार्थना करता है, सत्पथ पर चलने में आने वाली कठिनाइयों से जूझ सकने लायक आत्मबल एवं साहस की याचना करता है । भाव-विभोर होकर की हुई ऐसी प्रार्थना भी ईश्वर के अन्तःस्थल पर चोट करती है । ऐसे सच्चे सदुद्देश्य के लिए, न्याय और नीति की मर्यादायें सुरक्षित रखने वाली प्रार्थना सुनकर ईश्वर द्रवित हो उठता है और वह उस ज्ञानी भक्त के ऊपर अपने प्यार की, अनुग्रह की, अविरल वर्षा करने लगता है ।

ऐसे ईश्वर

भक्त वानप्रस्थ के लिए यह आवश्यक नहीं कि पूरा दिन माला घुमाने में ही लगा दें । माहात्मा गांधी की तरह वह एक घण्टे भी सच्चे मन से निकली हुई, ईश्वर की अन्तरात्मा को छूने वाली पुकार-प्रार्थना करता रहे, तो वह चौबीस घण्टे आँख बन्द किए ध्यान-भजन करते रहने से कहीं अधिक श्रेयस्कर है । धर्म युद्ध के मोर्चे पर लड़ने वाले सैनिक यदि अपना गोला-बारूद चलाते हुए दो-पाँच मिनट भी ईश्वर का नाम ले लिया करें तो वह उनका पूरा सन्ध्या-वन्दन हो जाता है । वह कथा प्रसिद्ध है जिसके अनुसार एक देवदूत की बगल में भक्तों की नामावली देखकर किसी लोकसेवी ने इसमें अपना नाम होने न होने की जिज्ञासा की थी । नाम न निकला तो दुःखी भी हुआ था, पर जब दूसरा देवदूत आया और उसकी बगल में लगी छोटी पुस्तक के बारे में लोकसेवी ने पूछ-ताछ की तो देवदूत ने बताया कि उसमें उन लोगों के नाम हैं जिनका भजन ईश्वर स्वयं करते हैं और उस पुस्तक में सबसे पहले इस लोकसेवी का नाम था ।

कथा चाहे अलंकारिक ही क्यों न हो पर उसमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वास्तविकता का नग्न उद्घाटन किया गया है । एक महान सच्चाई को ज्यों की त्यों खोलकर रख दिया गया है । अध्यात्मवाद का सार यही है । भजन शब्द 'भज्'धातु से बना है जिसका अर्थ 'सेवा' ही होता है । कहते भी हैं 'पूजा-सेवा' करते हैं । पूजा, सेवा के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है । जिस विधान में सेवा सम्मिलित नहीं वह न तो पूजा है न आराधना । सेवा की गंगा में स्नान किए बिना किसी की आत्मा पवित्र नहीं हो सकती । जो ईश्वर का अनुग्रह चाहता है, उसे ईश्वर के पुत्रों पर अनुग्रह करना होता है । जो मनुष्य रूपी खेतों में दया के बीज बोता है, उसे ही ईश्वर की छाया प्राप्त करने का प्रतिफल उपलब्ध होता है । जनता-जनार्दन की, नर-नारायण की, पुरुष-पुरुषोतम की भक्ति करने के लिए सेवा-धर्म को जीवन में ओत-प्रोत करना होता है और यही वह तपश्चर्या है जिसके आधार पर वानप्रस्थ को या किसी को भी प्रभु का वास्तविक अनुग्रह प्राप्त कर सकना सम्भव होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वेद एवं स्नेह का अभिसिंचन

वानप्रस्थ की उपासना पद्धति लोक-सेवा के साथ जुड़ी रहती है । यह प्रातः-सायं आवश्यक पूजा-भजन करता रहता है, साथ ही दिन-रात अपने चारों ओर ईश्वर की चलती-फिरती प्रतिमाओं को अपने स्वेद एवं स्नेह से सिंचित करने का भी ध्यान रखे रहता है । इस भावना से प्रेरित होकर वह अपनी योग्यता और निकटवर्ती परिस्थितियों का तालमेल बिठाकर इस प्रकार के कार्यक्रम बनाता रहता है, जिनके आधार समीपवर्ती लोगों का आन्तरिक स्तर ऊँचा उठे, विवेक जागे, सत्प्रवृत्तियों का उदय हो और गुण, कर्म, स्वभाव में परिष्कार आरम्भ हो । मनुष्य का आन्तरिक स्तर ऊँचा उठाना, यही तो उस पर अमृत वर्षा करना है । जिस आत्मा का बुझा हुआ प्रकाश चमक उठा, समझना चाहिए कि उसके लिए सभी विभूतियों को प्राप्त करने का द्वार खुल गया । मनुष्य अपनी कुपात्रता के फलस्वरूप ही अवनति के गर्त में पड़ा नरक भोगता रहता है । जब उसकी पात्रता प्रखर होती है, तो वह गई-गुजरी परिस्थितियों को तोड़-मरोड़ कर रख देता है और हर हालत में अपने लिए स्वर्गीय परिस्थितियों का निर्माण कर लेता है । मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, जिसने अपनी गतिविधियों के निर्माण की कला सीख ली उसके भाग्योदय में देर ही कितनी लगती है । इन तथ्यों की वास्तविकता को समझते हुए वानप्रस्थ के सेवा कार्य-क्रमों का क्रम उसी प्रकार बनता है जिससे समीपवर्ती लोग सद्विचारों एवं सत्कर्मों को अपनाने की प्रेरणा प्राप्त करें । इससे बढ़कर मनुष्य की और कुछ सेवा हो भी नहीं सकती । अन्न, वस्त्र, धन आदि देने से किसी की क्षणिक आवश्यकताऐं पूर्ण होती हैं, और कुछ समय बाद वही अभाव फिर सामने आ उपस्थित होता है, पर जिसका अन्तःकरण, मानसिक स्तर एवं चरित्र ऊँचा उठा दिया गया, वह तेजी से आगे बढ़ता है, अपना उद्धार करता है और दूसरे अनेकों के लिए प्रकाश स्तम्भ का काम करता है ।

जो कार्य-पद्धति साधु-ब्राह्मणों की सदा से रही है उसी को वानप्रस्थी अपनाते हैं । जन-जागरण, विवेक का परिष्कार, चरित्रगठन, सद्भाव-अभिवर्धन, कर्त्तव्य-पालन, सहृदयता एवं सेवा भावना का उन्नयन जिन भी कार्यों के द्वारा सम्भव हों सके, उनका आयोजन करते रहना ही उसे अभीष्ट होता है । चूँकि इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ धार्मिक वातावरण में ही पनपती और परिपुष्ट होती हैं इसलिए उसे ऐसे धार्मिक कर्मकाण्डों, विधि-विधानों, आयोजनों, उत्सवों एवं रचनात्मक क्रम-विधानो की भी व्यवस्था करनी होती है, जिससे धर्म-शिक्षा के उपयुक्त वातवरण विनिर्मित हो सके । स्वाध्याय एवं सत्संग का, शिक्षा एवं विद्या का कोई न कोई विधि-विधान उसे रचते ही रहना पड़ता है । जनसम्पर्क के लिए सम्मान एवं संकोच को छोड़कर घर-घर अलख जगाता फिरता है । जन-जन के पास जाता है, कोई उसकी उपेक्षा करता है या उपहास करता है तो भी विचलित नहीं होता, वरन् ऊसर में खेती करने वाले साहसी किसान की तरह दिन, रात चौगुने उत्साह के साथ अपने प्रयत्नों को जारी ही रखे रहता है ।

शतसूत्री साधना क्रम

युग निर्माण योजना के अन्तर्गत शतसूत्री कार्यक्रमों की सुविस्तृत श्रंखला इसी उद्देश्य से बनाई गई है । आज की परिस्थितियों में जिन सर्वांगीण सुधार-सेवाओं की आवश्यकता है, उन्हे इस शतसूत्री योजना में जोड़ दिया गया है । साधु-ब्राह्मणों और वानप्रस्थों को इनमें से जो भी कुछ जहाँ जिस प्रकार करना उपयुक्त लगे, वहाँ-वहाँ आरम्भ किया जा सकता है । कार्यक्रमों का बाह्य माध्यम कुछ भी क्यों न हो, उसके मूल में व्यक्ति के अन्तःकरण का विकास ही सन्निहित रहना चाहिए । भौतिक उन्नति का योजनाओं में दूसरे लोग लगे हैं, वह राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में संलग्न व्यक्तियों का काम है । उनमें हमें नहीं उलझना चाहिए । धार्मिक लोगों का सेवा-क्षेत्र विशुद्ध रूप से भावनात्मक होना चाहिए । यह इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण है कि उसे यदि धर्म क्षेत्र के लोग पूरा कर सकें तो मानव जाति की अगणित समस्याओं में से ९९ प्रतिशत का हल हो सकता है । भौतिक लाभ बढ़ जाय किन्तु आन्तरिक स्तर गिरा रहे तो मनुष्य का कुछ भी भला न होगा किन्तु यदि आत्मिक स्तर उठ जाये तो भौतिक स्तर गिरा हुआ रह ही नहीं सकता, यदि रहे भी तो उससे कुछ बिगड़ नहीं सकता । अतएव जन-मानस में सद्भावनाओं की, सत्प्रवृतियों की कृषि करना और उसे सुरभित फलते-फूलते उद्यान के रूप में बनाये रहना, यही साधु पुरुषों का काम होता है । चतुर माली की तरह वे धार्मिकता, आध्यात्मिकता एवं सुसंस्कारिता की वाटिका को सुरम्य बनाने में एक कर्मठ माली की तरह लगे रहते हैं । इस साधना एवं तपश्चर्या में लगा हुआ उनका प्रत्येक स्वेद-बिन्दु प्रत्येक भाव-कण उनके स्वयं के लिए ही नहीं समस्त संसार के लिए वरदान बनकर सामने आता है, उससे विश्व-शान्ति की वास्तविक सम्भावना का सृजन होता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिनके जीवन का पूर्वार्द्ध बीतने की सीमा तक पहुँचा हो, उन्हें विचार करना चाहिए कि क्या शेष जीवन भी इसी तरह गुजारना है जैसा कि आम लोग गुजारते हैं ? मनुष्य जीवन की महत्ता एवं उसके अनुपम सौभाग्य का मूल्य-महत्त्व हमें समझना चाहिए और इस अलभ्य अवसर को ऐसे ही अर्धतन्द्रित अवस्था में बिता नहीं देना चाहिए । उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ करना ही चाहिए, जिनके लिए यह मनुष्य जन्म मिला है । समाज का वह ऋण चुकाना ही चाहिए जिसका लाभ हम तथा हमारे परिवारी जन उठा रहे हैं । पत्नी की वैसी स्थिति न हो तो उसका कर्ज भी हम चुकावें, क्योंकि वह आत्म-समर्पण करने का बाद अपने को लय कर चुकी तो उसकी जिम्मेदारी भी अपने ही ऊपर आ गई । मात-पिता कर्ज छोड़ मरते हैं तो वह भी बेटे को चुकाना पड़ता है । यदि हमारे माता-पिता कोई अभिनव आदर्श अपने पीछे नहीं छोड़ गये हैं, या बिना समाज का ऋण चुकाये ही रह गये हैं, तो वह भी हमें चुकाना चाहिए । वानप्रस्थ व्रत लेकर अपने को और अपने परिवार को एक नैतिक ऋण से मुक्त करना चाहिए । सेवा धर्म अपनाये बिना जीवन की सार्थकता नहीं हो सकती । इसलिए विचारशीलता एवं दूरदर्शिता का आश्रय लेकर हमें यही निश्चय करना चाहिए कि जीवन का उत्तरार्द्ध पमार्थिक कार्यों के लिए समर्पित कर दिया जाय ।

जन्म-जन्मान्तर की यातना सहकर आज जो हमने यह मानव जीवन पाया है, इस अमूल्य जीवन का सदुपयोग कर परमात्मा सत्ता का ज्ञान प्राप्त करें । हम जान लें कि हम उसी परमात्म सत्ता के अंश हैं । यह बड़ी मूर्खता होगी कि हम अपने उस सत्य स्वरूप को पाने का प्रयत्न न कर पुन: असंख्यों अधम योनियों में भटकने के लिए वापस चले जायें, इसे पागलपन के सिवाय और क्या कहा जा सकता है । जो जिन कक्षाओं को उत्तीर्ण कर चुका है और उन्हीं में वापस जाने की सोचे । उच्च पद पर से पतित हो जाने से बढ़कर जीवन की असफलता और क्या हो सकती है ? पर यदि हम परमात्मा को पाने के लिए उसके उपाय में समय रहते नहीं लगते तो इस अमूल्य मानव जीवन की निस्सारता एवं असफलता की आशंका बनी ही रहेगी । अत: उस उच्च स्थिति को पाने तक हमारा पावन कर्त्तव्य है कि हम ईश्वर प्राप्ति को शेष जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बनाकर तदनुरूप जीवन व्यतीत करें । स्मरण रखिए जिसको जीवन के सदुपयोग की चिन्ता हो गई, जिसने सत्य का, धर्म का तथा पवित्रता का अवलम्बन ग्रहण कर लिया उसे अपने अन्दर आत्म-सन्तोष और बाहर से सहयोग एवं सम्मान की तरंगें उठती दिखाई देंगी और वह परमानन्द में निमग्न होकर मानव जीवन भर की सफलता का रसास्वादन कर रहा होगा । ईश्वर ने हमें इस कर्मक्षेत्र में मुख्यता: भेजा ही इसीलिए है कि हम सत्कर्म और सात्विकी साधना तथा उपासना करके दैवी मार्ग पर अग्रसर हों और जीवन को उच्चत्तर बनाते हुए अपने महान लक्ष्य को प्राप्त करें अत: श्रद्धा, लगन व दृढ़ आत्म-विश्वास के साथ अपने इस शेष जीवन को लक्ष्य प्राप्ति के निमित्त उत्सर्ग करने में नियोजित कीजिए ।

● ● ●

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के ज़ीवन काल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युगनिर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरतो पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्रनिर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़ पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद कांग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रंगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका-मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोबा जी के चले जाने के बाद अस्तित्त्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि. संवत् २०६८ में जन्में राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराम मत्त कहलाने वाले, आचार्य श्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रांति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माता जी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका-अपनी लेखनी से लिखी ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उनने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाब लाये कोई क्रांति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्व दर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में संपन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरु सत्ता को देखकर त्याग करने की यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उनने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेघ के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से संपन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक आँवल खेड़ा से अपनी जन्मभूमि से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी 12 वर्ष पूर्व आरंभ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंत: स्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

हवेली कहा जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जोकि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ बनाई गई। १९५३ में एवं क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों- प्रज्ञा संस्थानों भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों-चरणपीठों का महत्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्य पूर्ण था। ***परम पूज्य गुरुदेव की महत्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ, इस प्रकार हैं-***

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शांतिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष जन्मा संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन ब्राह्म मुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर १९११ के दिन आती थी। एक श्री मंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित-पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थी। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुआँ, जिसे पूरे गाँव का एक मात्र मीठे जल वाला कुआँ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीर धारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशा धारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इंटर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धन राशि द्वारा विनिर्मित्त है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ-एवं कन्या इंटर कालेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा एवं एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित संस्कारवान आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव निर्माण की सांस्कृतिक-भावनात्मक क्रांति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीया मण्डी, मथुरा में स्थित हैं। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रांतिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरंभ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तंभ व अन्यान्य

लेखों की पंक्तियों के माध्यम से संपन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतस्तल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुखी, तनाव ग्रसित व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परम वंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी टेण्ड्रिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजा घर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में 1942-43 में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ सहस्र कुण्डीयज्ञ की आधार शिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परम वंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं संपन्न हुआ। जन सम्मेलनों छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन विस्तार डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परम वंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू० गुरुदेव की साधना स्थली व प्रातः काल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन संपन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा संपन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्य श्री ने युग निर्माण योजना के शत सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युगनिर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरंभ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युगनिर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शांतिकुंज, हरिद्वार- ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया । इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने 24 कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़ गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था । पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्त्तन सत्र जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े । यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का तांता लगा रहता है । पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं ।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्त ऋषियों की मूर्त्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को संपन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार संपन्न होते हैं। इस बीच परम वंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ संपन्न करना आरम्भ रखा । देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया । इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा ।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक अकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थ स्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया । यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी । स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है ।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परम-पूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवी स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७९ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था । वर्तमान शांतिकुंज-गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्त्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फल-श्रुतियों सहित स्थापित हैं । द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्त्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये । इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है । यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों-जैव विद्युत आदि पर पड़ा यह देखा जाता है । विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं । तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित हैं, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं । यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं । यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता ।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीला संदोह रचकर चली गयी । प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान २४००० से अधिक प्रज्ञा मण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जायें तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है । ▫▫▫

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्तिं स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखें स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org